Śodha Pravāha

Śodha Pravāha is a multidisciplinary quarterly refereed research journal. The journal is meant to serve the interest of creative writers, researchers, scientists of the country and abroad. Hence articles, papers, reviews and comments are invited from researchers, educationist and scientists working in Arts, Linguistics, Humanities, Social and Basic Sciences. We hope that the journal will certainly cater the needs of the young researchers in their all future academic endeavors. The forthcoming issues are expected in the months of January, April, July and October every year.

The generation of knowledge is a continuous process which needs to be recorded and documented for future references. Hence, the qualitative aspect of the journal will always be a primary parameter in publishing the contents and will be solely based on the report of the experts. We thank all of you for associating and contributing your original work in this issue of the journal in making this academic endeavor a great success. We invite your contributions for the forthcoming issues. Let us come together; and join our hands in making the India a knowledge super power.

Annual Subscription	India	Foreign
Institution	₹ 2500	US $ 200
Individual	₹ 2000	US $ 125
Students & Teachers	₹ 1800	US $ 100
Life Membership	₹ 15000	US $ 500

Chief Editor :
Dr. S. K. Tiwari
Academic Staff College,
Banaras Hindu University
Varanasi - 221005 (INDIA)
sodhapravaha@gmail.com, sktiwari.bhu@gmail.com
Contact (Editor) : 09415390515, 08960501747

ISSN 2231 - 4113

Śodha Pravāha Vol. 10, Issue II April 2020

UGC Approved Journal No - 49297
ISSN 2231 - 4113

Śodha Pravāha

A Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal

Vol. 10, Issue II April 2020

Chief Editor
Dr. S. K. Tiwari
Editor
Dr. S. B. Poddar

(IIJIF) Impact Factor - 3.262

Regd. No. : 1687-2006-2007 ISSN 2231-4113

Śodha Pravāha

(A Multidisciplinary Peer Reviewed Refereed Research Journal)

Editor : S. B. Poddar

Vol. 10

Issue II

April 2020

Chief Editor : S. K. Tiwari

Academic Staff College
Banaras Hindu University,
Varanasi-221005, INDIA

E-mail : sodhapravaha@gmail.com **www.sodhapravaha.blogspot.com**

Editorial Board

Dr S K Tripathi
MGCG Vishwavidyalay,
Chitrakoot, Satna,Madhya Pradesh

Dr. N K Mishra
Technological Institute of Textile & Science,
Bhiwani, Haryana

Dr G R Sharma
Department of Higher Education
Government of Uttar Pradesh

Dr. A Rahman
Jamia Milia IslamiaUniversity,
New Delhi

Dr. Archana Singh
Associate Prof., Physical Education
Mahila Maha Vidyalaya
Banaras Hindu University,Varanasi

Dr. Priti Saxena
Professor, Department of Human Rights,
School for Legal Studies,
BBAU Lucknow

Dr. Reeta Yadav
Deptt. of Home Science
VPG College, Faizabad

Dr Rajiv Kumar Bhatt
Department of Economics
BHU, Varanasi, Uttar Pradesh

Dr. S K Shukla
Institute of Technology
B.H.U., Varanasi, Uttar Pradesh

Dr. Pradeep Kumar
Editor-Shodh Prerak
Lucknow

Editorial Advisory Board

Prof. S N Tiwari
BRA Bihar University,
Muzaffarpur, *Bihar*

Prof. B L Dubey
Department of Psychology
University of Alska, USA

Prof. Ajit Kumar Pandey
Department of Sociology
Banaras Hindu University, Varanasi

Dr. A Sisodia
Physical Education
LNUIP, Gwalior, Madhya Pradesh

Dr Anant Shastri
Washington DC, USA

Dr A Bhowmik
Niyame, Niger, Africa

Dr G C Pandey
Bhagalpur University,
Bihar

Dr. Pratima Pakla
University of Minnesota,
USA

Dr. A K Singh
CIMFR, (CSIR), Dhanbad,
Jharkhand

Dr. H K Pandey
CGWB,GOI, Raipur,
Chhatisgarh

Contents

- **भारत विभाजन और सरदार वल्लभ भाई पटेल** **1-4**
  अजय कुमार चौरसिया, NET (UGC), शोध छात्र (राजनीति विज्ञान),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **प्राचीन मिथिला का इतिहास एवं संस्कृति** **5-8**
  डॉ. कुमारी विभा, पीएच. डी. (इतिहास),ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
- **कवि नागार्जुन का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह** **9-12**
  डॉ. सोनी, ग्राम- अब्दुलपुर रैनी, पोस्ट- रैनी (टी.सी.ए.ढ़ोली) थाना- सकरा, जिला-मुजफ्फरपुर
- **सल्तनत कालीन मिथिला की धार्मिक अवस्था** **13-17**
  डॉ. सुमन कुमार, पीएच. डी. (इतिहास),बी. आर. ए. बिहारविश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **बाल अपराध की रोकथाम में परिवार एवं विद्यालय की भूमिका** **18-21**
  डॉ. कुमारी अलका, पीएच. डी. (गृह विज्ञान),बी. आर. ए. बिहार वि वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **आधुनिकीकरण एवं ग्रामीण जीवन के बदलते स्वरूप का समाजशास्त्रीय विश्लेषण** **22-25**
  डा. मंजू रॉय, पीएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **भारत में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति** **26-30**
  डॉ. प्रीति शरण, पीएच. डी. (गृह विज्ञान),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **संताल हूल** **31-33**
  सोनाली मंडल, NET (UGC) शोध छात्रा (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **राष्ट्र विकास की भूमिका में राजनीतिक चिंतन की समीक्षा** **34-35**
  तोहीद आफताब, राजनीति विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय
- **राही के उपन्यासों में भारतीय समाज संस्कृति** **36-38**
  राधेश्याम राय, शोध छात्र, हिन्दी विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **मध्यकालीन समाज एवं नगरों की अवधारणा** **39-42**
  दीपक कुमार ठाकुर, (UGC NET) इतिहास विभाग, डी. डी. यू. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर
- **भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार निवारण के उपाय** **43-45**
  दीपक कुमार राय, शोध छात्र,राजनीतिशास्त्र विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
  डॉ. मो. अलाउद्दीन, शोध निदेशक, एसोसिएट प्रोफेसर एवं विभागाध्यक्ष,,राजनीतिशास्त्र विभाग,एस.पी. जैन कॉलेज, सासाराम,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में श्री अरविन्द के विचारों की प्रासंगिकता** **46-49**
  डॉ.संत कुमार झा, संस्कृत विभाग, बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर

- **विद्यासागर नौटियाल के उपन्यास 'मेरा जामक वापस दो' में भूस्खलन से पीड़ित लोगों की त्रासदी** **50-54**
  डॉ. गायत्री
- **पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक चिंतन का ऐतिहासिक अध्ययन** **55-58**
  डॉ. वीरेन्द्र राम, इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा
- **कंसवहो एक संस्कृति झांकी** **59-60**
  डॉ. कुमारी शिल्पा, एम.ए. (प्राकृत), पी-एच.डी. (प्राकृत-जैनशास्त्र), प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वाशोकुण्ड, वैशाली
- **स्वच्छ भारत अभियान और पर्यावरण सुरक्षा : एक भौगोलिक अध्ययन** **61-64**
  भीष्म कुमार सिंह, शोध छात्र (भूगोल),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **अनुसूचित जातियों को न्याय दिलाने में पंचायती राज की भूमिका एवं सुझाव : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण** **65-70**
  डॉ. प्रवीण कुमार पासवान, पीएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **प्राचीन काल में मुद्रा एवं एतिहासिक महत्व** **71-73**
  डॉ. योगेन्द्र कुमार, एम.ए., पीएच.डी.,मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार
- **स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद शिक्षा का विकास : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण** **74-78**
  डॉ. ललन प्रसाद सिंह, पीएच. डी. (समाजशास्त्र), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **उच्च शिक्षा में आरक्षण नीति : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन** **79-84**
  शाइस्ता यासमीन, पीएच. डी. (समाजशास्त्र), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **कमलाकरी टीका का शास्त्रीय दृष्टिकोण** **85-89**
  डॉ. बिमला कुमारी, संस्कृत विभाग, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा
- **आस्टियोपोरोसिस - कारण एवं इसे दूर करने में कैल्शियम के उपयोग का अध्ययन** **90-94**
  डॉ. सुजाता कुमारी, पीएच. डी. (गृहविज्ञान),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **भारत के विभिन्न उद्योगों में लगे बाल श्रमिकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन** **95-98**
  डॉ. उदय शंकर कुमार, पीएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय मुजफ्फरपुर
- **सामाजिक परिवर्तन और ग्रामीण समाज** **99-102**
  डॉ. प्रमोद कुमार, पाएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **मिथिला का सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूप** **103-107**
  प्रदीप महतो, सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),राघवेन्द्र संस्कृत कॉलेज, तरेतपाली, नौबतपुर, पटना
- **सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में प्रकृति** **108-112**
  अमिता सिंह, लतीफपुर, शाहगंज, जौनपुर

- **स्थविरवाद में भवंग-चित्त की अवधारणा** **113-118**
  विवेक कुमार, पी.एच.डी. शोधार्थी, पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **विज्ञानमयकोशसन्दर्भे बुद्धेः स्वरूपम्** **119-123**
  अनिल कुमार अवस्थी, शोधच्छात्रः (शिक्षाशास्त्र विभागः) केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालयस्य लखनऊ परिसर
- **बी.एड. स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन** **124-128**
  डॉ. रमेन्द्र तिवारी, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय) प्रयागराज (उ.प्र.)
- **पं. दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक एवं आर्थिक चिन्तन का अनुशीलन** **129-134**
  विजय लक्ष्मी गुप्ता
  डॉ. रीता सिंह
- **शारीरिक शिक्षा में यंग मैंन क्रिश्चियन एसोसिएशन (YMCA) का प्रभाव** **135-140**
  रामधारी राम, असि. प्रो., शा. शि.,स्वामी स.स्ना. महा. गाजीपुर
- **भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में श्रमिक आंदोलन का योगदान : एक ऐतिहासिक अध्ययन** **141-144**
  अनिल कुमार, शोध छात्र, इतिहास विभाग ,जय प्रकाश विश्वविद्यालय छपरा
- **शोध में सांख्यिकी की उपयोगिता** **145-147**
  डॉ. विद्याधर उपाध्याय, असिस्टेंट प्रोफेसर , एस.बी.एस गवर्नमेंट पी.जी. कालेज ,रूद्रपुर
- **योग साधना में बाधक तत्वों के संदर्भ में यौगिक तत्वों का अनुशीलन** **148-153**
  जसबीर, श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला,विश्वविद्यालय झुंझनू राजस्थान
- **मानव निर्माण की शिक्षा में स्वामी विवेकानन्द जी का योगदान** **154-158**
  दीपशिखा नामदेव, शोध छात्रा, शिक्षा शास्त्र विभाग, कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय, कोटा-राजस्थान
  डॉ. ब्रज सुन्दर गौतम, असि. प्रोफेसर, जवाहर लाल नेहरु टी. टी. कालेज, कोटा-राजस्थान
- **भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता** **159-162**
  डॉ.राजीव रौशन, सहायक आाध्यापक, आर. एन. ए. आर. कॉलेज, समस्तीपुर
- **नगरीकरण का ग्रामीण संरचना पर प्रभाव** **163-166**
  रविकांत प्रसाद, शोध छात्र,इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
  डॉ. राधा गोविन्द सिंह, शोध निदेशक ,एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,महिला कॉलेज, डालमियानगर, डेहरी ऑन-सोन,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **मुगलकाल में स्त्रियों के कानूनी अधिकार** **167-169**
  नीलू कुमारी, शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
  डॉ. अरविंद कुमार सिंह, शोध निदेशक,एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,डी.के. कॉलेज, डुमरांव,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

- **धूमिल की कविताओं में राजनीतिक समझ व राजनीतिक लेखा-जोखा** **170-173**
  नीलम चतुर्वेदी, शोध छात्रा, हिंदी विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
  डॉ. दिवाकर पाण्डेय , शोध निदेशक, प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,एच.डी. जैन कॉलेज, आरा,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **मध्यकाल में भारत की सामाजिक स्थिति** **174-175**
  अर्चना कुमारी, शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
  डॉ. ब्रजकिशोर सिंह, शोध निदेशक, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, जो. बी. कॉलेज, रामगढ़, कैमूर, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **ग्रामीण विकास में अत्याधुनिक तकनीकों के योगदान की समीक्षा** **176-179**
  अरविन्द कुमार यादव, शोधार्थी (जे.आर.एफ.), समाजशास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज
- **''बी.एड़. इंटीग्रेटेड के (चार वर्षीय) विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन''** **180-183**
  श्रीमती कृष्णा कुमारी गौत्तम, आवक्ताः- हितकारी सहकारी महिला शिक्षा महाविद्यालय, आरामपुरा, धाकड खेडी, कैथून रोड़,कोटा (राज.) 325001
- **भारत की गुट-निरपेक्षता की नीति** **184-186**
  लाल बहादुर सिंह, शोध छात्र ,इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **वैदिक परम्परा में अग्नि की उपासना** **187-189**
  शान्ती देवी, शोधछात्रा, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज
- **अवध के गुलालपंथी संत पलटू साहब तथा उनका साहित्यिक अवदान** **190-194**
  अनामिका त्रिपाठी, शोध-छात्रा, हिन्दी, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म०प्र०)
- **झारखण्ड के टानापंथ समुदाय का गोशाला एवं गौ माता की उपमा** **195-198**
  असरिता कच्छप, यू. जी. सी. नेट/ जे. आर. एफ., जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा, विभाग राँची विश्वविद्यालय, राँची
- **नाट्य दृष्टि से प्रतिमानाटक के मुख्य पात्रों का पर्यालोचन** **199-204**
  डॉ. हिमावती बिन्हा, सहायक प्राध्या. (संस्कृत विभाग) जगन्नाथ नगर महा. धुर्वा, रांची -४
- **खोरठा नाटक** **205-208**
  रीया दे, शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची
- **कथा साहित्य में नागपुरी लोक कथाओं का वर्गीकरण** **209-213**
  युगेश प्रजापति, यू.जी.सी. नेट/जे.आर.एफ. वरीय शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय राँची
- **दिव्यांगजनो की मनोदशा** **214-216**
  अमित कुमार पाण्डेय, शोध छात्र- शिक्षा शास्त्र, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु सिद्धार्थनगर, एम० ए० (राजनीति शास्त्र, हिन्दी एवं शिक्षा शास्त्र) बी० एड० , नेट- शिक्षा शास्त्र, पता- ८६ गोरक्षनगर कालोनी, सिंघड़िया कूड़ाघाट, जनपद- गोरखपुर २७३००८, उत्तर प्रदेश

- **''बालक के पालन-पोषण में अभिभावकों की मनोवैज्ञानिक योग्यता''** **217-220**
  डॉ. अनुपम, असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग, सरस्वती देवी पी०जी० कालेज, नन्दापार, जैतपुर, गोरखपुर
- **समकालीन उदारवादी दर्शन एवं नारी विमर्श : एक विश्लेषण** **221-224**
  ज्योति यादव, शोध छात्रा, रानीति विज्ञान विभाग, का. हि. वि. वि.
- **मार्क्सवाद बनाम डॉ. अम्बेडकर** **225-229**
  बिन्दु वर्मा, शोध छात्रा, अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
  डॉ. प्रिया कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
- **''समकालीन भारतीय राष्ट्रवाद के समक्ष नई चुनौतियाँ''** **230-232**
  डॉ. कृष्णा नन्द चतुर्वेदी, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र, स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर-२३३००१
- **मौर्य साम्राज्य का पतन** **233-235**
  अंकित सिंह, यू०जी०सी०-नेट, चकिया खखरेरू, फतेहपुर
- **ब्रिटिश सम्राट के शासन काल में भारतीय शिक्षा का विकास** **236-240**
  दीपिका, शोध छात्रा, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
- **अश्वघोश के महाकाव्यों में वर्णित योग की वर्तमान समय में प्रासंगिकता** **241-247**
  डॉ० स्मृति, असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,पी० जी० कॉलेज गाजीपुर, उ०प्र०
- **खिलजी काल के कला, स्थापत्य एवं साहित्य पर देशज प्रभाव** **248-251**
  नरेश कुमार, असि. प्रो. इतिहास, स.भ.सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूद्रपुर (उ.सिं.नगर) उत्तराखण्ड
- **हिन्दी नाट्य साहितय में अभिव्यक्त वैयक्तिक त्रासदी का स्वरूप** **252-257**
  डॉ. सीमा शर्मा, जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
- **शास्त्रीय संगीत के शिक्षण में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी द्वारा रचित सरगम एवं लक्षण गीतों का महत्व** **258-262**
  श्रेयसी पावगी, पी.एच.डी. शोध छात्रा, संगीत विभाग एस.एन.डी.टी. महिला विद्यापीठ, पुणे
  डॉ. शीतल मोरे, मार्गदर्शिका सहयोगी प्राध्यापक
- **सामाजिक पर्यावरण व आधुनिकता के विविध पहलू : एक वैचारिक विमर्श** **263-266**
  डॉ. विजय कुमार वर्मा, समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान एवं समाजकार्य, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्व विद्यालय लखनऊ
- **स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के संदर्भ में आत्मविश्वास एवं अभिवृत्ति के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन** **267-271**
  रीना पाटील , सहायक प्राध्यापक, ज्ञानोदय शिक्षा महाविद्यालय, इन्दौर, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

- **हिन्दी कविता में आम आदमी** **272-275**
  आलोक रंजन, एसोसिएट प्रोफेसर,, मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर, (बिहार)
- **भारत में महिला संरक्षण अधिनियम** **276-278**
  धनराज कुमार, शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **सनातन कवि रेवा प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व** **279-283**
  सविता यादव, शोध छात्रा, संस्कृत, स्नातकोत्तर महाविद्यालय मलिकपूरा, गाजीपुर
- **मनुस्मृति में प्रतिपादित धर्म का स्वरूप** **284-286**
  डॉ. शुभ्रा सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू पी.जी. कॉलेज ज़मानियाँ, गाज़ीपुर
- **प्राचीन भारत में तीर्थ यात्रा** **287-290**
  डॉ.शैलेन्द्र कुमार उपाध्याय, प्राचार्य कनक त्रिपाठी डिग्री कॉलेज बरगदही भटहट गोरखपुर
- **भारत-नेपाल सम्बन्ध एवं वर्तमान स्थिति** **291-294**
  डॉ. अनूप कुमार श्रीवास्तव, असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार उनवल, गोरखपुर
- **वर्णाश्रम धर्म का दर्शन और नैतिकता** **295-300**
  डॉ. बासुकी नाथ चौधरी, एसोसिएट प्रोफेसर पी.जी.डी.ए.वी. (सांध्य) कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय
- **शिक्षण विधि के विभिन्न स्वरूप (बौद्ध शिक्षा पद्धति के विशेष संदर्भ में)** **301-304**
  श्वेता यादव, शोध छात्रा, इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी
- **प्राचीन बौद्ध धर्म में वर्णित भिक्षुओं के नियम और उपनियम का ऐतिहासिक विश्लेषण** **305-307**
  सत्येन्द्र पासवान, शोध छात्र, प्रा० भा० एवं ए० अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
- **राजा राममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना** **308-310**
  प्रतिभा यादव, शोधार्थिनी (NET) इतिहास विभाग मडियाहूँ पी. जी. कॉलेज पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुा (उ. प्र)
- **पूर्व मध्यकाल एवं उसके पूर्व नगरों की स्थिति** **311-315**
  डॉ. सर्वेश कुमार मिश्र, असिस्टेंट प्रोफेसर, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ गंगापुर परिसर, वाराणसी
- **मूल्य : मानवीय आचार एवमू व्यवहार के संदर्भ में** **316-319**
  विकास सिंह, प्रवक्ता- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया
- **बौद्ध शिक्षा और इसका प्रमुख उद्देश्य** **320-322**
  अरविन्द कुमार यादव, प्रवक्ता- बी० एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया
- **नारी शिक्षा : एक अध्ययन** **323-326**
  डॉ. नागेन्द्र राम, विभागाध्यक्ष- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

- **राष्ट्र निर्माण में प्राथमिक शिक्षा रजनीश कुमार शुक्ल** **327-330**
  रजनीश कुमार शुक्ल, प्रवक्ता- बी० एड० विभाग, किसान पी० जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया
- **लाला लाजपत राय के विचार : शिक्षा के संदर्भ में** **331-332**
  राम विलास यादव, प्रवक्ता- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़,बलिया
- **शिक्षा की आधुनिक अवधारणा** **333-335**
  संजीव कुमार चतुर्वेदी, प्रवक्ता- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया
- **द्वैध शासन के अन्तर्गत भारतीय शिक्षा** **336-342**
  सुरेन्द्र कुमार रजक, प्रवक्ता- बी० एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया
- **विदेश नाति निर्धारण में विचारधाराओं का स्वरूप : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में** **343-347**
  डॉ अश्विनी कुमार पाण्डेय , प्रवक्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया
- **भारत में बढ़ता बाल अपराध कारण एवं निवारण** **348-354**
  डॉ. संजय तिवारी, एम०ए०, एल-एल.बी., पी-एच०डी०, एसो० प्रो० एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी० ए०वी० पी०जी०, कालेज, लखनऊ
- **महिला सशक्तीकरण में पंचायती राज व्यवस्था का योगदान** **355-359**
  किरन यादव , शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पी. जी. कॉलेज हण्डिया, प्रयागराज
- **प्रमात्मक ज्ञान की भारतीय-भारतीय दृष्टि** **360-364**
  डॉ. जयन्त उपाध्याय, सहायक प्रोफेसर, दर्शन व संस्कृति विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रोय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा
- **कर्म की अवधारणा वेदों और उपनिषदों के संदर्भ में** **365-367**
  डॉ. रंजना त्रिपाठी, (सहायक व्याख्याता), स्नातकोत्तर दर्शन विभाग, सिदो कान्हो मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, (झारखंड)
- **जयप्रकाश नारायण की राजनीतिक विचारधारा : एक सिंहावलोकन** **368-373**
  रूपक कुमार, शोध-प्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
- **वेदे मनस्तत्त्वचिन्तनम्** **374-377**
  डॉ. अमन्द मिश्र, अतिथि प्राध्यापक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत वि वविद्यालय, वाराणसी।
- **अशोक स्तंभ, सारनाथ की कला एवं प्रतीकात्मक अर्थ** **378-380**
  डॉ. इन्दुभूषण द्विवेदी, एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग कन्हैया लाल बसन्त लाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मीरजापुर, उत्तर प्रदेश।
- **कबीर का दार्शनिक एवं रहस्यवादी चिन्तन** **381-386**
  डॉ. राम कृष्ण, एसो० प्रोफे०, हिन्दी विभाग, पं० दीनदयल उपाध्याय राजकीय बालिका, महाविद्यालय सेवापुरी वाराणसी (उ०प्र०)।

- **महिला सशक्तिकरण : चुनौतियां (भारत के विशेष सन्दर्भ में)** **387-389**
  डॉ. स्मिता पाण्डेय, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, पं.दी.द.उ.रा.म.पी.जी. कॉ. राजाजीपुरम लखनऊ
- **भारतीय जीवन पर कोरोना काल का प्रभाव** **390-393**
  डॉ. दयाशंकर सिंह यादव, एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, सकलडीहा पी जी कालेज सकलडीहा चंदौली
- **यू० पी० ए० सरकार और भारत-बांग्लादेश संबंध** **394-396**
  डॉ. मनोज कुमार मिश्र, एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एव स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी जौनपुर
  अंकुर कुमार सिंह, शोध छात्र, रक्षा एव स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डाभी जौनपुर
- **माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन** **397-400**
  बृजेन्द्र बहादुर सिंह, शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा म० प्र०
- **भारत के गन्ना और चीनी उद्योग में सधार एवं समीक्षा** **401-404**
  धनंजय कुमार सिंह, शोधार्थी वाणिज्य विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सह व्याख्याता, वाणिज्य विभाग, डी बी एस डी डिग्री कॉलेज, रामपुर (कदना), गरखा, सारण, बिहार
- **आदिवासी समाज का यथार्थ** **405-407**
  (वाल्टर भेंगर 'तरूण' की कहानी 'जंगल की ललकार' के विशेष सन्दर्भ में)
  सुनील कुमार वर्मा, (शोध छात्र), गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय गाँधी नगर, गुजरात
- **महाकविकालिदासस्य भाषा-शैली छन्दोविधानञ्च** **408-410**
  श्री गणेश गिरिः, गवेषकः बौद्ध दर्शन विभागः सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः,वाराणसी
- **बिहार में नक्सलवाद : एक विश्लेषण** **411-413**
  पप्पु ठाकुर, शोध छात्र (इतिहास), वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **पशु अधिकार : एक नैतिक विमर्श** **414-419**
  नितीश कुमार, शोधार्थी, स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया
- **Covid-19 एवं आदिवासी आजीविका चुनौतियां एवं प्रभाव** **420-423**
  डॉ. श्वेता सेवते, समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्विद्यालय सागर (म. प्र.)
- **पंचायती राज व्यवस्था : स्वशासन की अवधारणा** **424-430**
  जितेन्द्र कुमार, प्रवक्ता, नागरिक शास्त्र, श्री गांधी इण्टर कॉलेज, ढोटारी, गाजीपुर
- **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधी शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता और नई शिक्षा नीति-2020** **431-435**
  संजय कुमार भारती, प्रवक्ता, हिन्दी, श्री गांधी इण्टर कॉलेज, ढोटारी, गाजीपुर
- **शास्त्रीय संगीत का उदगम एवं आयाम का विश्लेष्णात्मक अध्ययन** **436-442**
  नेहा कुमारी, एम.ए. संगीत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

- **मिथिला में पर्यटन की समस्याएँ एवं सम्भावनाएँ** **443-447**
  उपेन्द्र मेहतर, शोध छात्र, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, ग्राम +पो०+थाना-देवधा, भाया-जयनगर, जिला-मधुबनी (बिहार)
- **मधुबनी जिला में कृषि विकास : एक भौगोलिक अध्ययन** **448-451**
  डॉ. रामशरण यादव, रिसर्च स्कॉलर, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा
- **संस्कृत साहित्य में साहित्य दर्पण एवं काव्य प्रकाशन का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन** **452-456**
  प्रो. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय, शोध निर्देशक (मणि), राष्ट्रीय संस्कृति संस्थान गंगा नाथ झा परिसर प्रयागराज केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, देलही
  रामधन, शोध छात्र,एम.ए., एम.एड., नेट जे.आर.एफ पी.एच.डी.
- **स्त्री अस्मिता-विमर्श के संदर्भ में शांति सुमन के गीतों का अध्ययन** **457-464**
  मोहन कुमार, शोधार्थी, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी
- **स्निग्ध की नजर में नक्षत्र मालाकार** **465-468**
  शशि सुधा कुमारी, शोधार्थी, हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **कृष्णा सोबती की नारी दृष्टि : विहंगावलोकन** **469-471**
  सुनन्दा कुमारी, शोधार्थी हिन्दी विभाग पटना विश्वविद्यालय, पटना
- **आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण** **472-475**
  डॉ. सुमन कुमारी, पीएच० डी० (समाजशास्त्र) बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन** **476-479**
  सैदा हुसैन, शोधार्थी शिक्षा संकाय, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)
  डॉ. आसिफ कमाल, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)
- **जाति प्रथा के अध्ययन से सम्बन्धित प्रमुख समाजशास्त्रीय सिद्धान्त** **480-484**
  डॉ. देवेश कुमार सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रताप बहादुर पी. जी. कालेज प्रतापगढ़
- **हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श** **485-488**
  मनीष कुमार यादव, शोध छात्र, जी. एफ. कॉलेज, शाहजहाँपुर, उ. प्र.
- **बुद्ध के जातक कथाओं में पर्यावरण के तत्व** **489-491**
  संजय सिंह, नेट, जे. आर. एफ. शोध छात्र, प्राचीन इतिहास बीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

- **भारत में ग्रामीण सिंचाई का मूल्यांकन और इसका कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता पर प्रभाव** **492-496**
  डॉ. प्रिया कुमारी, (एसोसिएट प्रोफेसर) (अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग) डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ. प्र.)
  रवि शंकर, शोधार्थी(अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग) डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ. प्र.)
- **दक्षिण एशिया का भौगोलिक, भौतिक, सांस्कृतिक, भू-स्त्रातजिक, राजनीतिक स्वरूप तथा क्षेत्रीय राष्ट्रों के साथ बढ़ रहे चीन के सामरिक संबंध** **497-509**
  डॉ. रजनीश कुँवर, एसेसिएट प्रोफेसर रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग सकलडीहा पी. जी. कालेज, सकलडीहा, चन्दाली
- **''भारतीय योग परम्परा का अध्ययन''** **510-515**
  डॉ. संजय कुमार, शारीरिक शिक्षा विभाग, श्री महंथ रामाश्रय दास स्ना. महाविद्यालय भुड़कुड़ा, गाजीपुर
- **कोरोना, असंगठित क्षेत्र और पलायन** **516-522**
  डॉ. वरुण कुमार
- **मानव विकास और आर्थिक विकास** **523-527**
  डॉ. अमूल्य कुमार सिंह, विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राकीय पी. जी. कॉलेज, ओबरा, सोनभद्र
- **''प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि तथा शिक्षकों की अभिवृत्ति पर विद्यालयीय दशाओं के प्रभाव का अध्ययन''** **528-539**
  मुकेश कुमार मखीजा, शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, जयपुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय
  डॉ. ऋषिकेश मिश्रा, प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, जयपुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय
- **मम्मटोक्तकाव्यलक्षणविमर्शः** **540-544**
  अभिषेकचतुर्वेदी. शोधच्छात्रः, दर्शनविभागः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः,वाराणसी
- **प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्यों का अनुशीलन** **545-550**
  शिखा मिश्रा, शोधार्थिनी शिक्षाशास्त्र विभाग, राजा श्री कृष्णदत्त पी. जी. कालेज, जौनपुर, उ. प्र.
  डॉ. गयानन्द उपाध्याय, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजा श्री कृष्णदत्त पी. जी. कालेज, जौनपुर, उ. प्र.
- **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की दशा और दिशा** **551-553**
  दिग्विजय सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, महार्षि शान्डिल्य प्रशिक्षण संस्थान, गौरीगंज, अमेठी
- **वेदों में नारीवाद का अस्तित्व : एक विवेचन** **554-557**
  भावना राव, शोध छात्रा, राजकीय महिला पी. जी. कॉलेज, गाजीपुर, उ. प्र.
- **श्रीरंजन सूरिदेव का आलोचना साहित्य : एक अध्ययन** **558-561**
  वर्षा रानी, शोधार्थी हिन्दी विभाग मगध विश्वविद्यालय
- **भारतीय दर्शन के अध्ययन की अनिवार्यता : सभ्यता व संस्कृति के सन्दर्भ में** **562-567**
  अनिता यादव, शोध छात्रा (बी.एच.यू.)

- **भारतीय संस्कृति एवं उसकी विशेषताएँ** **568-574**
  डॉ. उमेश कुमार सिंह, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, देवेन्द्र पी.जी. कॉलेज, बिल्थरा रोड, बलिया
- **वैश्विक महामारी में बदलती मानसिकता** **575-578**
  डॉ. आशा, एसो. प्रो. पं. दी. द. उ. रा. बा. महा. सेवापुरी, वाराणसी
- **लक्षणामूलाव्यञ्जनावृत्तिविवेचनम्** **579-581**
  डॉ. विष्णु दत्त तिवारी, संस्कृताध्यापकः, राजकीय-बाल-वरिष्ठ-माध्यमिक-विद्यालयः, नवदेहली
- **जौनपुर के वर्तमान औद्योगिक विकास में संघृत विकास का महत्व** **582-584**
  प्रसेनजीत सिंह, भूगोल,वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल , विश्वविद्यालय जौनपुर
- **पश्चिम चम्पारण जिला की भूमि उपयोगिता औश्र प्रवासन** **585-587**
  डॉ. अशोक सहनी, भूगोल विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **कमलेश्वर के उपन्यास 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' का समीक्षात्मक अध्ययन** **588-590**
  बलिराम यादव, ग्राम-विसईपुर, पोस्ट- युधिष्ठिर पट्टी जिला-आजमगढ़, पिन-२२३२१
- **मोहन राकेश की कहानियों में 'आधुनिकता बोध'** **591-593**
  संदीप कुमार मौर्य, शोधार्थी हिन्दी विभाग, रामबचन सिंह राजकीय महिला महाविद्यालय, बगली, पिंजरा मउ उत्तर प्रदेश
- **उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में यौन स्वच्छंदता** **594-596**
  प्रियंका कुमारी, शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा
- **साहित्यकार राजेन्द्र यादव की दृष्टि में महिला कथाकार** **597-599**
  हरिओम यादव, शोधार्थी हिन्दी विभाग, रामबचन सिंह राजकीय महिला महाविद्यालय, बगली, पिंजरा मउ उत्तर प्रदेश
- **भारत में नारी की ऐतिहासिक प्रस्थिति** **600-602**
  प्रशान्त कुमार शुक्ल, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान (विभाग), मड़ियाहूँ, पी.जी.कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
- **भारतीय नारीवादी आन्दोलन का दार्शनिक आधार** **603-605**
  जगतम्बा, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान (विभाग), मड़ियाहूँ, पी.जी.कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर
- **''भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका बनाम यौन शोषण व आपराधिक घटनाएं''** **606-612**
  डॉ. सविता शाही, एसोसिएट प्रोफेसर राजनीतिशास्त्र, डी.ए.वी.पी.जी. कालेज, लखनऊ
- **धर्म निरपेक्षता और दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी चिन्तन** **613-614**
  दुर्गेश बंहादुर सिंह, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, मड़ियाहुँ पी. जी. कालेज जौनपुर
- **हर्ष कालीन बौद्ध धर्म** **615-616**
  अरविन्द कुमार, शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, बयालसी पी. जी. कालेज, जलालपुर, जौनपुर

- **स्वतंत्रता पूर्व कथा-साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति और ग्राम्य जीवन** **617-621**
  डॉ. रेनू दुग्गल, सह-आचार्य, हिन्दी-विभाग, श्री गुरू नानक देव खालसा कॉलेज, देव नगर करोल बाग, दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय
- **'न्यायदर्शनानुसारेण बन्धमोक्षयोः स्वरूपम्'** **622-624**
  डॉ. जया मिश्रा, एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी
- **'रेणु' के समकालीन कहानीकार तथा 'रेणु' के कथाशिल्प का वैशिष्ट्य : एक तुलनात्मक अध्ययन** **625-627**
  उमाकान्त कुमार, शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा
  प्रो. डॉ. राम नरेश राय, विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जगदम कॉलेज, छपरा (बिहार)
- **बिहार में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमण्डल के गठन की समस्यायें एवं चुनौतियाँ** **628-630**
  डॉ. निकेता सिंह, पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर
- **न्यायिक पुनर्विलोकन एवं राजनीतिक प्रश्न** **631-638**
  डॉ. पंकज कुमार सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, हरिशचन्द्र पी.जी. कॉलेज, वाराणसी
- **कुमाऊँ पर गोरखा शासन का अन्त ओर ईस्ट इंडिया कम्पनी का आधिपत्य** **639-643**
  डॉ. ज्योति साह, एसोसियेट प्रोफेसर, 'इतिहास', दीन दयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीतापुर
- **दलित अस्पृश्यता : हिन्दू समाज का अमानुशिक विधान** **644-645**
  बबिता कुमारी, शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **1885 से 1905 तक का उदारवादी युग** **646-647**
  मनोरमा कुमारी, शोध छात्रा., इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा
- **समसामयिक परिप्रेक्ष्य में 'एक कंठ विषपायी'** **648-651**
  अनूप कुमार सिंह, शोधार्थी (हिन्दी तथा आधुनिक भाषा विभाग), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
- **मानव मूल्यों के विकास में संस्कृत वाड्.मय का योगदान** **652-655**
  डॉ. अनीता कुमारी, एसो. प्रो. संस्कृत विभाग, राजकीय महिला पी. जी. कॉलेज, गाजीपुर
- **वैश्विक आर्थिक संकट और समाधान के कदम** **656-658**
  आदित्य विक्रम देव, शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
- **भारत में दलित एवं अस्पृश्यता के स्वरूप में परिवर्तन की स्थिति** **659-663**
  डॉ. राजेश कुमार सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातंजिक अध्ययन विभाग, राष्ट्रीय पी. जी. कालेज, जमुहाई, जौनुपर
- **भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों के बीच जम्मू कश्मीर का मुद्दा** **664-671**
  डॉ. शैलेन्द्र नाथ सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातंजिक अध्ययन विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनुपर

- **भारत की सुरक्षा के लिए बांग्लादेश में सक्रिय आई.एस.आई. की भूमिका** **672-675**
  डॉ. उपेन्द्र कुमार सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातंजिक अध्ययन विभाग, प्रताप बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़ सिटी, प्रतापगढ़
- **जनपद-जौनपुर में पंचायत चुनाव 2015 के निर्विरोध क्षेत्र पंचायत अध्यक्षों का स्थानीय विश्लेषण** **676-679**
  डॉ. श्रीमती पुष्पा सिंह, अवकाश प्राप्त एसो. प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजा हरपाल सिंह पी. जी. कालेज, सिंगरामऊ
  निशा निषाद, जौनपुर शोध छात्रा, भूगोल विभाग, राजा हरपाल सिंह पी. जी. कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर
- **संत कबीर के राम** **680-683**
  सरयू प्रसाद साहू, शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **'मानव अधिकारों के संरक्षण में नागरिको की प्रतिबद्धता'** **684-688**
  डॉ. अनुपम शाही, एसोसिएट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी
  डॉ. अनुराधा राय, एसोसिएट प्रोफेसर (शिक्षा संकाय), हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी
- **श्रीमद्भगवद्गीता में योग और उसकी साधनानुशंसा** **689-691**
  अभिनव कुमार पाण्डेय, शोधच्छात्र, वैदिक दर्शन विभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **रघुवीर सहाय के काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन** **692-698**
  विपिन कुमार मिश्र, शोधछात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
- **उच्च शिक्षा में अनुसन्धान एवं नवाचार नये आयाम** **699-700**
  डॉ. हरीश कुमार, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास, राजकीय महाविद्यालय, सलेमपुर, देवरिया
- **उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता का उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अध्ययन** **701-705**
  डॉ. चंद्रावती जोशी, एसोसिएट प्रोफेसर बी.एड विभाग ऍम. बी राजकीय पी जी महाविद्यालय हल्द्वानी जिला नैनीताल (उत्तराखंड)
  शांति, एम. बी. राजकीय पी. जी. महाविद्यालय, हल्द्वानी जिला, नैनीताल (उत्तराखंड)
- **बंगाल के लोक संगीत की प्रमुख विधाओं का अध्ययन** **706-708**
  डॉ. प्रमिति चौधरी, एसोसिएट प्रोफेसर संगीत, प्रयाग महिला विद्यापीठ डिग्री कॉलेज, प्रयागराज
- **मोदी युग में विदेश नीति का उभरता यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य** **709-714**
  डॉ. जयकुमार मिश्र, एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ.प्र.)
- **एकात्म मानववाद : पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के राजनीतिक विचारों की समीक्षा** **715-718**
  डॉ. सरिता सिंह, असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.बी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादुन

- **पालिशब्दानुशासने पाणिनः प्रभावः** **719-720**
  श्रवण दास स्वामी, गवेषकः, बौद्धदर्शनविभागः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी
- **विभिन्न वर्गों की शहरी व ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन** **721-728**
  डॉ. हरीश चन्द्र, असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, आर.बी.एस. कॉलेज, आगरा
- **पूर्व मध्यकालीन सिक्कों पर विदेशी प्रभाव : प्रतिहारों के विशेष संदर्भ में** **729-730**
  अमित कुमार दूबे, शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी, सम्बद्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
- **सामाजिक वर्ग एवं मूल्य-विन्यास के सन्दर्भ में लखनऊ विश्वविद्यालय के विभिन्न शैक्षिक वर्ग के विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति-आवश्यकता' का तुलनात्मक अध्ययन** **731-736**
  डॉ. गीता रानी, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र विभाग, बी.एस.एन.वी.पी.जी. कॉलेज, लखनऊ
- **महात्मा गाँधी : स्वराज** **737-741**
  अब्दुल कलाम अंसारी, शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय
- **हिन्दी दलित उपन्यासों में सामाजिक प्रतिरोध का स्वरूप** **742-746**
  डॉ. अभिमन्यु कुमार, महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह महाविद्यालय, सरिसब-पाही, मधुबनी (बिहार) के हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत
- **पिछड़े दलितों के उत्थान का गलियारा : समवादी सत्ता** **747-749**
  आशुतोष यादव, जन्मः 07.07.1992, माता-पिताः- श्रीमती मीरा देवी, श्री सूरत यादव, शिक्षा-स्नातक/परास्नातक-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर
- **भारत-पाकिस्तान संबंध : अविश्वास एवं आशा की गाथा** **750-757**
  डॉ. अमित कुमार सिंह, विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, आर. एस.एम.पी.जी. कॉलेज धामपुर बिजनौर, (उ.प्र.)
- **पंचतन्त्र विमर्शः** **758-771**
  डॉ. हेमन्त मिश्र, प्राचार्यः आकाशदीप शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, हर्ष रोड़, साँवली, सीकर
- **कौशल विकास योजना एक संक्षिप्त परिचय** **772-778**
  महेन्द्र प्रसाद, शोधछात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय ज्ञानपुर भदोही (उ.प्र.) (सम्बद्ध- महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी)
- **न्याय प्रमाणा की वैज्ञानिकता** **779-782**
  रवि सागर, पीएच.डी. शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची
- **अनुसूचित जाति के अन्तर्गत लोनाचमार जाति का एक समाजशस्त्रीय अध्ययन (अम्बेडकरनगर जनपद के विशेष संदर्भ में)** **783-791**
  डॉ. दिलीप कुमार, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, भानमती स्मारक पी.जी. कालेज अकबरपुर, अम्बेडकरनगर

- **कोरोना त्रासदी में गाँधी चिंतन की प्रासंगिकता** **792-796**
  डॉ. सुषमा दयाल, इतिहास विभाग, शिक्षिका, मा. वि. कुसहा (मयुरवा) त्रिवेणीगंज, सुपौल
- **संस्कृति और शिक्षा** **797-798**
  डॉ. उमाशंकर सिंह, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, के.एन.आई., सुलतानपुर, उ.प्र.।
- **अम्बेडकर नगर जनपद में प्राथमिक शिक्ष की स्थिति एवं समस्याओं का एक अध्ययन** **799-801**
  डॉ. विभा सिंह, विभागाध्यक्ष श्री वासुदेव प्राथमिक शिक्षण, प्रशिक्षण संस्थान गुतवन, जलालपुर, जौनपुर।
- **अक्षमताग्रस्त बच्चों की देख-भाल में माता-पिता की भूमिका** **802-805**
  डॉ. प्रमोद कुमार, प्राचार्य, राधाकृष्णन कॉलेज ऑफ एजुकेशन, साहपुर विक्रम पटना
- **भक्तिकाल : समता और सहअस्तित्व का काल** **806-810**
  डॉ. शिखा तिवारी, एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), डी.सी.एस.के.पी.जी.कालेज, मऊ
- **पंचायती राज का समग्र मूल्यांकन** **811-816**
  डॉ. राकेश यादव, एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)
- **योग एवं संगीत** **817-820**
  डॉ. शशि शुक्ला, एसो. प्रोफेसर, सा.रा.म.महाविद्यालय, बरेली।
- **"उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के समायोजन का अध्ययन"** **821-824**
  विकास सिंह, शिक्षक शिक्षा, विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर
  डॉ. रीता सिंह, निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर
- **इन्दिरा गाँधी की आर्थिक परिकल्पना** **825-826**
  प्रमोद कुमार, असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०ब०पं०पी०जी० कालेज, प्रतापगंज, जौनपुर।
- **।। आत्मज्ञानार्थ योग दर्शन व सांख्य दर्शन की सार्थकता।।** **827-831**
  डॉ. नमिता अग्रवाल, एसो.प्रो. (संस्कृत), अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा, बांदा (उ.प्र.)
  प्रीती शर्मा, (शोधच्छात्रा, संस्कृत), अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा, बांदा (उ.प्र.)
- **बिहार के पूर्वी लोकगीतों में महेन्द्र मिसिर का योगदान** **832-834**
  पल्लवी जोशी एवं प्रो. शर्मिला टेलर, मंच कला विभाग, बनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)
- **संस्कृत रूपग्राम** **835-839**
  गणेश शंकर पाण्डेय, सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कालेज, आजमगढ़।
- **''जनवादी कविता के बेजोड़ कवि'' नागार्जुन** **840-843**
  डॉ रेखा गुप्ता, एसोसिएट प्रोफंसर, हिन्दी, अवध गर्ल्स डिग्री कॉलेज, लखनऊ
- **चरितग्रन्थ हर्षचरित** **844-846**
  डॉ. जया कुमारी आर्यन, इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

- **माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के दायित्वबोध की तुलना** **847-850**
  योगेश कुमार सिंह, सहायक अध्यापक (अंग्रेजी), एम.ए. (शिक्षाशास्त्र, अंगेजी) बी.एड्.,
  भद्रेश्वर इण्टरमीडिएट कालेज, डेरवा, प्रतापग
- **साहित्य में मई विद्या के प्ररोधा : बनारसीदास जैन** **851-854**
  डॉ. आशा गुप्ता, एसोसिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी, हिंदी विभाग, साहू राम स्वरूप महिला
  महाविद्यालय बरेली
- **वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिन्तन की प्रासंगिकता** **855-857**
  डॉ. सरोज कुमारी, एसोसिएट प्रोफेसर (बी.एड. विभाग), चाधरी शिवनाथ सिंह शाडिल्य (पी.
  जी.) कॉलेज,माछरा, मेरठ।
- **विन्ध्यक्षेत्र में नवपाशाणिक अधिवास प्रक्रिया के सामाजिक-आर्थिक आयाम** **858-863**
  (Socioecomic Dimention of Vindhyan Neolithic Settlement Pattern)
  डॉ. रमाकान्त, एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, नागरिक पी.
  जी. कालेज, जंघई, जौनपुर
- **भारत में उच्च जनसंख्या वृद्धि-दर की समस्या : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन** **864-869**
  डॉ. ज्ञान माला सिंह, कृषि विज्ञान केन्द्र कालोनी, क्वा. नं. जी-3, राजगढ़ नाका,
  झाबुआ-457661, म.प्र.
- **ब्रिटिश कालीन उत्तराखण्ड में यात्रामार्ग तथा परिवहन** **870-876**
  डॉ. किरन त्रिपाठी, एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज,
  मुरादाबाद
  प्रो. कल्पना पन्त, प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, पावकी देवी, टिहरी गढ़वाल
- **वैदिक काल में नारी शिक्षा पर प्रकाश का एतिहासिक विहंगावलोकन** **877-880**
  डॉ. राम निहोर, एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर
  महाविद्यालय, चुनार, मीरजापुर

भारत विभाजन और सरदार वल्लभ भाई पटेल

*अजय कुमार चौरसिया**

22 मार्च 1947 ई० को लार्ड माउण्टबेटेन भारत के वायसराय का पद ग्रहण करते ही अपनी योजना के अनुसार कहा कि मै एकदम घिर आयी वास्तविक समस्या को महसूस करता हूँ। यदि हमने शीघ्रता से काम नहीं किया तो वह गृह युद्ध का रूप ले लेगी। इसका विभाजन ही योग्य समाधान होगा। इसके अतिरिक्त मै कोई दूसरा विकल्प सपने में भी नहीं देखता।

इसके लिए माउण्टबेटेन ने विभिन्न राजनीतिज्ञों से मुलाकात की और माउण्टबेटेन का विचार था कि यदि सरदार वल्लभभाई पटेल को अपनी योजना से सहमत कर लिया जाय तो कांग्रेस इस योजना को स्वीकार कर लेगी, अतएव उन्होंने सबसे अधिक विभाजन के बारे में सरदार वल्लभभाई पटेल को ही समझाने का कार्य किया जिसमें उन्हें सफलता भी मिली। सरदार वल्लभभाई पटेल माउण्टबेटेन योजना से सहमत हो गये और कहा कि हमने हिन्दुस्तान के टुकड़े किये जाना कबूल कर लिया है। कई लोग कहते हैं कि ऐसा हमने क्यों किया और यह गलती थी। मैं अभी तक नहीं मानता कि हमने कोई गलती की। और मैं यह भी मानता हूँ कि यदि हमने हिन्दुस्तान का टुकड़े करना मंजूर नहीं किया होता, तो आज जो हालात है उससे भी बुरी हालात होने की संभावना थी जिससे हिन्दुस्तान के दो नहीं अपितु अनेक टुकड़े हो जाते। इसलिए हमने सोचा कि अभी दो टुकड़े करने से काम ठीक हो जाता है तो वैसा ही कर लें। हमने मान लिया कि ठीक है, अपना अलग घर लेकर यदि यह भाई शान्त हो जाता है और अपना घर सम्भाल लेता है तो हम अपना घर सम्भाल लेंगे लेकिन हमने यह बात इसी उम्मीद से मानी है कि हम शान्ति से अपना काम करेंगे। ऐसे मे मुझे इसमें गलती नहीं दिखाई देती हैं।

महात्मा–गाँधी विभाजन से सहमत नहीं थे परन्तु जब सरदार वल्लभभाई पटेल ने उनको समझाया कि यदि दो भाई भी आपस में लड़ पड़ते हैं तो अपना–अपना घर लेकर अलग हो जाते हैं, तब जाकर गाँधी जी ने सहमति दी। यद्यपि गाँधी जी ने विभाजन रोकने के लिए जिन्ना से कहा था कि वह प्रधानमंत्री बन जाय लेकिन जिन्ना इसके लिए तैयार नहीं हुए वह सिर्फ विभाजन चाहते थे। के० एम० मुंशी ने विभाजन के संबंध में सरदार वल्लभभाई पटेल की मानसिक स्थिति की चर्चा करते हुए कहा कि सरदार वल्लभभाई पटेल जो अखण्ड भारत के समर्थक थे किन्तु अचानक वह भारत विभाजन के समर्थक बन गये। मुंशी ने लिखा है कि मुझे स्वाभाविक धक्का लगा क्योंकि सदैव सरदार वल्लभभाई पटेल विभाजन का समर्थन करने वाले लोगों की कड़ी आलोचना करते थे। सरदार वल्लभभाई पटेल ने विभाजन के पक्ष में दो तर्क दिये। प्रथम यह कि कांग्रेस अहिंसा में विश्वास करती है वह हिंसा का मुकाबला नहीं कर सकती। यदि कांग्रेस अपने सिद्धान्त को भी बदल दे और वर्तमान स्थिति में हिंसा का सहारा लेकर कांग्रेस मस्लिम लीग से एक लम्बा संघर्ष करे तो कांग्रेस समाप्त हो जायेगी। सरदार वल्लभभाई पटेल ने दूसरा कारण यह बताया कि अगर विभाजन को अस्वीकार कर लिया गया तो शहरों और गाँवो में साम्प्रदायिक झगड़े होंगे, सेना और पुलिस भी साम्प्रदायिक आधार पर बँट जायेगी। एक मजबूत संगठन के अभाव में हिन्दुओं का नुकसान होगा क्योंकि हिन्दू स्वभाव से उदारवादी होते है। दूसरी तरफ यदि संघर्ष होता है तो वह संगठित सरकारों के द्वारा आसानी से नियंत्रित किया जा सकता है, क्योंकि दो सरकारों के बीच समझौता करना पूरे देश में फैले हुए दो सम्प्रदायों के बीच समझौते से आसान है। इसके अतिरिक्त अन्य कारण भी थे जो निम्नवत् है –

* NET (UGC) शोध छात्र (राजनीति विज्ञान),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

1. मुस्लिम लीग से छुटकारा पाने के लिए विभाजन आवश्यक है और सरदार पटेल का विचार था कि स्वतंत्र इकाई के रूप में पाकिस्तान अधिक दिन नहीं टिकेगा। वह थोड़े समय पश्चात् पुनः भारतीय संघ में सम्मिलित हो जायेगा और जिन्ना शीघ्र ही उनके साथ आ जायेंगे।
2. विभाजन के उपरान्त एवं शक्तिशाली एवं सुसंगठित केन्द्र की स्थापना हो सकेगी।

विभाजन के प्रस्ताव का समर्थन करते हुए मौलाना अब्दुल कलाम आजाद ने सरदार वल्लभभाई पटेल के विभाजन के प्रस्ताव को स्वीकार करने पर लिखा कि – यह इतिहास का एक सत्य है कि हिन्दुस्तान में जो आदमी लार्ड माउण्टबेटेन का सबसे पहले शिकार हुआ वह सरदार वल्लभभाई पटेल थे। कार्य परिषद् में जो स्थिति पैदा हो गयी थी सरदार उससे बहुत चिढ़ गये थे, वे बंटवारे में विश्वास करने लगे। इसलिए माउण्टबेटेन ने जब विभाजन की योजना सुझायी तो सरदार वल्लभभाई पटेल के मन में यह बात पक्की हो गयी थी कि वह लीग के साथ कार्य नहीं कर सकते।

इस प्रकार विभाजन संबंधी निर्णय को मान्यता प्रदान करने के लिए कांग्रेस कार्यसमिति की बैठक 14 जून 1947 ई० को संविधान क्लब में प्रारम्भ हुई जिसमें गांधी जी के विशेष निमंत्रण पर अधिवेशन में उपस्थित हुए। आचार्य कृपलानी की अध्यक्षता में हुई इस बैठक में विभाजन का प्रस्ताव पं० गोविन्द वल्लभ पंत ने रखा जिसका अनुमोदन मौलाना आजाद ने किया हालांकि वे प्रस्ताव के कट्टर विरोधी थे। चर्चा के बाद प्रस्ताव 15 जून 1947 ई० को 15 के विरूद्ध 157 मतों से पारित कर दिया गया। समिति की बैठक में सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा यदि एक अंगूठा विषपूर्ण हो जाय तो उसे अलग ही कर देना चाहिये अन्यथा सम्पूर्ण शरीर की अत्यधिक हानि उठानी पड़ती है।

सरदार वल्लभभाई पटेल को विभाजन का बड़ा दुख था जिसे उन्होंने स्वयं स्वीकार करते हुए कहा कि – मैं जीवन भर भारत की एकता के लिए प्रयत्नशील रहा हूँ आप सबको इस प्रस्ताव से जो दुःख हुआ है उससे कम मुझे नहीं है परन्तु मेरे दिल में यह बात बैठ गयी है कि इस पिछले कुछ महीने से देश की शासन व्यवस्था हम लोग चला रहे हैं जिससे मैने देखा और अनुभव किया कि यदि हम यह प्रस्ताव स्वीकार नहीं करेंगे और पिछले नौ मास से देश का शासन जिस तरह चला है और ब्रिटिश सरकार ने जिस तरह उसे चलने दिया है वैसे ही यदि वह अधिक दिनों तक चलता रहा, तो मुझे निश्चित भय है कि समूचा भारत पाकिस्तान बन जायेगा। इसलिए यदि भारत को पाकिस्तान बनने से बचाना हो तो इस प्रस्ताव को स्वीकार करके, देश के विभाजन का खतरा उठाकर भी अंग्रेज सरकार को भारत से हटाने में कुछ हानि नहीं है। इसमें देश का सुख निहित है। भविष्य में बहुत बड़ी बुराइयों को रोकने के लिए इस बुराई को स्वीकार करके अंग्रेजों को भारत में से हमें विदा करना चाहिये। इस दृष्टि से मै दुःख और वेदना से रूदन करने वाले मित्रों से अनुरोध करता हूँ कि वे इस कड़वे घूँट को पी जाये।

विभाजन की योजना 3 जून 1947 को स्वीकार कर ली गयी किन्तु इसको कार्यान्वित करने के लिए दो प्रकार के उपाय आवश्यक थे। प्रथम विधेयक द्वारा इसे कानूनी अधिकार प्रदान करना और द्वितीय विभाजन के प्रशासनिक परिणामों का सामना करना। लॉर्ड माउण्टबेटेन ने विभाजन के प्रशासनिक परिणाम नामक एक 32 पृष्ठीय दस्तावेज राजनीतिक दलों के समक्ष पेश किया तथा विभाजन समिति की नियुक्ति की जो 5 जून 1947 ई0 को विभाजन परिषद् में परिवर्तित हो गयी। लार्ड माउण्टबेटेन इस परिषद् के अध्यक्ष थे तथा इसमें प्रत्येक डोमिनियन के दो–दो प्रतिनिधि थे। कांग्रेस की ओर से इसमें सरदार वल्लभभाई पटेल और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद थे। राजगोपालाचारी को वैकल्पिक सदस्य के रूप में रखा गया तथा मुस्लिम लीग की ओर से जिन्ना और लियाकत अली थे। अब्दुल खनिश्तर को वैकल्पिक सदस्य के रूप में रखा गया था। काम को सुगम बनाने के लिए दो सदस्यीय एक संचालन समिति तथा अधिकारियों और 10 विशेषज्ञ उप समितियाँ भी बनायी गयी। विशेषज्ञों एवं उप समितियों के अधीन प्रशासन का सम्पूर्ण क्षेत्र जैसे – परिसीमन, परिसम्पति एवं दायित्वों का विभाजन, राष्ट्रीय ऋण का विभाजन, संगठन सेना आदि का विभाजन था। इसके अतिरिक्त एक मध्यस्थ परिषद् बनायी गयी थी जो उन मामलों पर निर्णय करती थी जो विभाजन परिषद् के समक्ष विवादास्पद थे।

विभाजन परिषद की बैठक 27 जून 1947 ई0 से लेकर विभाजन के पूर्व 6 अगस्त तक कुल सोलह बैठकें हुई। सरदार वल्लभभाई पटेल तथा जिन्ना प्रत्येक बैठक में उपस्थित रहे। विशेषज्ञ समितियों ने इतनी सद्भावना से कार्य किया कि बहुत ही कम मामले संचालन समिति के पास गये। के०एम० मुंशी के शब्दों में प्रत्येक मामलों में सरदार वल्लभभाई पटेल और जिन्ना एक स्वीकार्य फार्मूले पर सहमत हो जाते थे। जब कभी मतभेद होता था तो माउण्ट बेटेन सुलह के लिए आ जाते थे।

यद्यपि विभाजन परिषद ने अनेक महत्वपूर्ण मुद्दों को सुलझा लिया लेकिन चल–अचल सम्पति तथा सेना को लेकर कुछ समस्यायें आयी। युद्ध के कारण ब्रिटिश सरकार अपने पीछे पांच बिलियन डॉलर का ऋण छोड़ गये थे। नकद सम्पति के रूप में स्टेट बैंक में धन तथा सोना था काफी विवाद के पश्चात् तय हुआ कि पाकिस्तान को 17 अनुपातें प्रतिशत नकदी मिलेगी तथा उसी अनुपात में वह ऋण को अदा करेगा। चल सम्पति का बटवारा 80 और 20 के अनुपात में हुआ। सरदार वल्लभभाई पटेल पाकिस्तान को नकदी भुगतान स्थगित करना चाहते थे। ताकि काश्मीर युद्ध में पाकिस्तान को कमजोर किया जा सके। परन्तु गाँधी जी के उपवास के कारण सह सम्भव न हो सका। लियाकत अली 6 में से एक मुद्रणालय पाकिस्तान को स्थानान्तरित करवाना चाहते थे। जिसका सरदार वल्लभभाई पटेल ने यह कहकर विरोध किया कि किसी ने पाकिस्तान को अलग होने के लिए नहीं कहा। हमें इस बात की चिन्ता नहीं है कि वे अपने साथ सम्पति ले जाय, परन्तु हम भारत की कार्य प्रणाली में इस कारण व्यवधान सहन नहीं करेंगे कि पाकिस्तान के पास साधन नहीं है।

सेना का विभाजन एक कठिन कार्य था। भारतीय सेना एक संस्था के रूप में विकसित हुई थी। विभाजन परिषद् सेना का विभाजन 15 अगस्त 1947 के पूर्व चाहती थी जबकि सेनाध्यक्ष सर क्लाड आचिन लेक इस विभाजन के पक्ष में नहीं थे। उनके अनुसार सेना जैसे संगठन को विभाजित करना, उसको नष्ट करना है। परन्तु माउण्टबेटेन ने विभाजन पर बल दिया। विभाजन परिषद् की अन्तिम बैठक में सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा कि भारत चाहता है कि पाकिस्तान एक सम्पन्न पड़ोसी के रूप में उभरे। उन्होंने स्पष्ट कर दिया है कि भारत पाकिस्तान के प्रति सद्भावना के अतिरिक्त कुछ नहीं चाहता है।

सीमा निश्चित करने के लिए दोनों पक्ष इस पर सहमत हो गये कि पूर्वी और पश्चिमी प्रदेशों के लिए दो आयोग बना दिये जाय और उसके अध्यक्ष सर सीरिल रैडक्लिफ हों। बंगाल और पंजाब प्रान्तों के मध्य भौगोलिक विभाजन की रेखा खींचने के लिए रैडक्लिफ की नियुक्ति की गयी किन्तु वे इस क्षेत्र से पूर्णतया अनभिज्ञ थे यह जानते हुए भी लॉड माउण्टबेटेन के साथ–साथ नेहरू और जिन्ना ने भी अध्यक्ष बनाने का प्रस्ताव किया था। माउण्टबेटेन ने इस विषय में कहा कि उन्हें कोई खुशी नहीं हुई क्योंकि वे जानते हैं कि यह कार्य बड़ा जटिल है और इसमें वे किसी पक्ष को पूर्णतः सन्तुष्ट नहीं कर पायेंगे। सीमांकन के लिए नियुक्त रैडक्लिफ कमीशन में भारत की ओर से सरदार वल्लभभाई पटेल तथा पाकिस्तान की ओर से जिन्ना अपना पक्ष रखने के लिए अधिकृत किये गये।

रैडक्लिफ महोदय को भारत की भौगोलिक एवं लोगों के बारे में कोई जानकारी नहीं थी और उनको इस कार्य के लिए जो नक्शे दिये गये वे अधूरे थे तथा साधन एवं समय की भी पर्याप्त कमी थी। परिणामस्वरूप विभाजन को लेकर रैडक्लिफ कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। रैडक्लिफ कलकता को लेकर भारी उलझन में थे क्योंकि जिन्ना ने उस पर दावा किया था। आर्थिक रूप से सहमत होने के बावजूद बहुसंख्यक हिन्दुओं की आबादी के कारण रैडक्लिफ ने उसे भारत में ही रहने दिया। बंगाल के विभाजन में दोनों राष्ट्रों के लिए आर्थिक समस्या को उत्पन्न कर दिया क्योंकि जूट उत्पादन वाला भू–भाग पूर्वी पाकिस्तान में चला गया और भारत के हिस्से में जूट का सामान बनाने वाले 100 से भी अधिक कारखाने और जूट का सामान निर्यात करने वाला कलकत्ता बंदरगाह भारत के हिस्से में आया इसी कारण यह विभाजन दोनों राष्ट्रों के लिए आर्थिक समस्या का कारण बना। इसी प्रकार जल्दबाजी में किये गये विभाजन से पंजाब में भयानक स्थिति उत्पन्न हो गयी जैसे कुछ घरों का दरवाजा भारत में खुलता था तो छत पाकिस्तान में थी, और एक ही गांव के कुछ घर पाकिस्तान में चले गये तो कुछ भारत में आ गये, इस प्रकार विभाजन में अनेक त्रुटियाँ थी फिर भी दोनों देशों ने

इस विभाजन को स्वीकार कर लिया। सर रैडक्लिफ विभाजन के उपरान्त त्रासदी के लिए उतरदायी थे इसीलिए उन्होंने अन्त में कहा कि जैसा कि मुझे आभास हो गया था कि जल्दबाजी से खिंची इस विभाजन रेखा से उतर–भारत रक्त रंजित हो उठेगा। अतः इस प्रकार विभाजन के परिणामस्वरूप पंजाब में भीषण दंगा हो गया। एक अनुमान के मुताबिक करीब 5 लाख निर्दोष लोग मारे गये और अपार सम्पति का विनाश हुआ। अतः जब यह देखा गया कि दोनों राष्ट्रों के अल्पसंख्यक सुरक्षित नही रह सकते थे। तो जनसंख्या के अदला बदली का प्रस्ताव किया गया। इस प्रकार लगभग एक करोड़ जनसंख्या की अदला–बदली की गयी।

इस समय भारतीय मुसलमानों का पाकिस्तान जाने का मार्ग अमृतसर ही है और अमृतसर के सिक्ख पाकिस्तान में मुसलमानों द्वारा किये गये सिक्खों पर अत्याचार सामूहिक हत्याकांड और स्त्रियों के अपमान से इतने क्षुब्ध थे कि उन्होंने स्पष्ट घोषणा की अमृतसर के किसी मुसलमान को जीवित नहीं जाने दिया जायेगा। अतः मुसलमानों को सुरक्षित बाहर निकाले जाने की जिम्मेदारी थल सेनाध्यक्ष तिमैया को सौंपी गयी। इस समस्या के समाधान के लिए सरदार वल्लभभाई पटेल स्वयं मेनन जी के साथ अमतृसर गये और सिक्खों को समझा बुझाकर मुसलमानों को पाकिस्तान जाने का मार्ग प्रशस्त किया। 30 सितम्बर 1947 ई0 को अमृतसर में सिक्ख नेताओं को सम्बोधित करते हुए सरदार वल्लभभाई पटेल ने कहा कि – मैं आपसे अपील करता हूँ कि आप कम–से–कम एक सप्ताह के लिए आक्रमणों के इस व्यापक प्रसार को रोक दें और फिर देखें कि क्या इसका उतर संतोषजनक मिला है कि नहीं यदि आपको निराश होना पड़ा तो इस बात को सारा संसार जान जायेगा कि वास्तविक अपराधी कौन हैं।

संदर्भ :

1. मुंशी के० एम०; इण्डियन कान्सीट्युशनल डाकूमेन्ट्रस वाल्यूम–1, बम्बई, 1967, पृ० 132
2. आजाद मौलाना, आजादी की कहानी, कलकता, 1965, पृ० 204–205
3. मेहरोत्रा एवं कपूर, सरदार वल्लभभाई पटेल व्यक्तित्व एवं विचार, दिल्ली, 1997, पृ० 132–142
4. सिंह, शरद; सरदार वल्लभ भाई पटेल – राष्ट्रवादी व्यक्तित्व, सामयिक बुक्स, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2015, पृ० 131–154
5. पटेल, राव जी भाई; म० हिन्द के सरदार, अहमदाबाद, 1994, पृ० 205
6. मेहरोत्रा एवं कपूर; सरदार वल्लभभाई पटेल व्यक्तित्व एवं विचार, दिल्ली 1997, पृ० 134
7. पटेल, दिलावर सिंह जैसवार, मनोदित भारत के निर्माता सरदार पटेल, नयी दिल्ली, 2000, पृ० 233
8. त्रिपाठी, दिनकर मनी सरदार वल्लभभाई पटेल – व्यक्तित्व एवं कृतित्व, राज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2019, पृ० 27–44

***

प्राचीन मिथिला का इतिहास एवं संस्कृति

*डॉ. कुमारी विभा**

मिथिला की अपनी संस्कृति और भव्य परम्परा है। इसका गौरव पूर्ण अतीत एक महान् धरोहर है, जिसके कारण यह देश लोगों के लिए और भी प्रिये रमणीय तथा आर्कषक बन गया है। इसकी अतिशय लोकप्रियता का उल्लेख मिथिला में प्रचलित गीतों में भी मिलता है यौं तो मिथिला के बारह नामों का उल्लेख मिलता है।[1] परन्तु विदेह मिथिला और तीरभूक्ति नाम ही परम्परा – प्रख्यात तथा प्रचलित है। अन्य नाम तो न्युनाधिक अंश में इस अंचल की विशेषताओं के परिचायक मात्र है।

विदेह :– मिथिला भूखंड के सस्थापक माधव विदेह, पंचनद प्रदेश में सरस्वती के तट पर रहते थे। एक बार अग्निदेव (वैश्वानर) के साथ वे पूर्व की ओर चले। जब वे सदानीरा (गंडक) के तट पर पहुंचे तो अग्निदेव ने उन्हें सदानीरा से पूर्व की ओर जाकर बसने का आदेश दिया। यद्यपि यह भूभाग दलदल तथा निवास के सर्वथा अयोग्य था, फिर भी विदेह ने अग्निदेवता का आदेश शिरोधार्य कर वहँ जाकर बसने का निश्चय किया। वैश्वानर के कृपा से दलदल भी सुखकर कठोर तथा निवास करने योग्य बन गई। फिर तो आर्य विदेह आनन्द से रहने लगे। यज्ञ, हवन आदि धार्मिक अनुष्ठानों के द्वारा उन्होंने इस भूखण्ड को और भी पवित्र तथा आकर्षक बना दिया। इस प्रकार विदेह राज्य की स्थापना हुई।[2] विदेह नाम की प्राचीनता भी इसी से स्पष्ट हो जाता हैं। अनेक पुराणों में इस नाम का उल्लेख मिलता है।

मिथिला : कालान्तर में विदेह राज्य मिथिला नाम से अभिहित होने लगा। सर्वप्रथम मिथिला शब्द का प्रयोग सम्पूर्ण राज्य के लिए नहीं अपितु ऐ स्थान अथवा नगर विशेष के लिए होता था। परन्तु शनैः शनैः इसके अर्थ में विस्तार होते गया और पीछे चलकर इस शब्द में सम्पूर्ण विदेह राज्य का बोध होने लगा। मिथिला शब्द का प्रयोग भागवतपुराण, स्कंदपुराण, वाल्मीकि रामायण, रघुवंश आदि प्रमुख प्राचीन ग्रंथों में हुआ है।[3]

मिथिला शब्द की व्युत्पति पर विद्वानों में मतैक्य नहीं है। डॉ. सुभद्र झा ने मिथिला शब्द का संबंध मिथ अर्थात् मिश्र (साथ) से बतलाते हुए कहा है कि मिथिला उस भूभाग को कहा गया है जिसके अन्तर्गत विदेह, वैशाली तथा अंग राज्य सन्निविष्ट था। परन्तु इस मत का खंडन करते हुए जयकान्त मिश्र ने लिखा है कि प्रारम्भ में मिथिला एक नगर विशेष का वोधक था, सम्पूर्ण राज्य का नहीं फिर विदेह, वैशाली तथा अंग राज्यों को कैसे उसमें अर्न्तभुक्त किया जा सकता है।[4] पाणिनि ने मिथिला शब्द की व्युत्पति 'मंथ' धातु से मानी है, उनकी दृष्टि में जिस क्षेत्र में शत्रुओं का मर्दन किया जाय वही मिथिला है।[5]

डॉ. जयकान्त मिश्र[6] और डॉ. तेज नारायण लाल[7] ने इसी मत को स्वीकार किया है परन्तु डॉ. उदय नारायण तिवारी ने इससे अपनी असहमति प्रकट करते हुए इस व्युत्पति को काल्पनिक माना है। तथ्य यह है कि भारत में राजा के नाम पर नगर बसाने की सुदीर्घ परम्परा रही है। आज भी भारत में प्रमुख नेताओं अथवा विशिष्ट व्यक्तियों के नाम पर नगरों का निर्माण किया जाता है। स्वयं जनकपुर जिसे आज मिथिला की राजधानी कहते हैं, राजा जनक के नाम से सम्बद्ध है। अतः यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि मिथिला का सम्बन्ध राजा मिथि से है। चूँकि उन्होने ही मिथिला नगर का निर्माण करवाया अतः वह मिथिला के नाम से प्रसिद्ध हुआ। हाँ, स्वयं राजा मिथि के नाम की व्युत्पति के संदर्भ में पाणिनि की विवेचना कुछ अंशों में संगत मानी जा सकती है। चूँकि राजा निमि के शरीर

* पीएच. डी. (इतिहास),ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

के मंथन के पश्चात राजा मिथि का प्रादुर्भाव हुआ था अतः उसका नाम मिथि रखा गया। मत्स्यपुराणानुसार मिथिल नाम के एक अति तेजस्वी ऋषि के नाम पर मिथिला नाम पड़ा।[8]

तीरभुक्ति : संसार परिवर्तनशील है। यहां कण कण क्षण – क्षण परिवर्तन होता रहता है। विदेह और मिथिला के नाम में भी परिवर्तन हुआ और काल प्रवाह में मिथिला के साथ साथ तीरभुक्ति नाम भी प्रचलित हो गया। इसी नाम से मिथिला अंचल का बोध होने लगा। वेद, प्राचीन पुराण, महाकाव्य आदि में इस नाम का प्रयोग नहीं मिलता जिससे सहज ही प्रकट है कि यह नाम बहुत बाद का है।

तीरभूक्ति नाम का विवेचना करते हुए विल्सन के आधार पर कनिंधम ने बतलाया है कि 'तीर का अर्थ' नदी का किनारा और भुक्ति अर्थ 'सीमा' है। इस प्रकार 'तीरभुक्ति' शब्द का अर्थ नदी किनारे का भू भाग हुआ। यह अर्थ संगत तथा समीचीन मालूम पड़ता है। मिथिला के निर्माण तथा विकास में प्राचीन काल से ही नदियों का बहुत बड़ा सहयोग रहा है।[9]

अतः उपर्युक्त नाम की सार्थकता स्वतः प्रतिपादित हो जाती है। तीरभुक्ति के इतिहास पर प्रकाश डालते हुए श्री श्याम नारायण सिंह ने बतलाया है कि कालान्तर में एक बृहत्तर राज्य का गठन हुआ और तत्कालीन जेज भुक्ति, पुंड्रावर्धन भुक्ति आदि नामों के साम्य पर नवनिर्मित राज्य का नाम तीरभुक्ति पड़ा। यह भू भाग तीन ओर से अपनी सीमाओं पर गंडक, कोशी तथा गंगा से घिरा हुआ था।[10] अब तीरभुक्ति को साधारणतः तिरहुत के नाम से पुकारा जाता है। भौगोलिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक दृष्टियों से अद्यावधि तिरहुत को चार स्थितियों से गुजरना पड़ा है। सर्वप्रथम यह विदेह राज्य के रूप में था। दूसरी स्थिति में यह एक वृहत्तर गणतंत्र का द्योतक बना। अपनी तीसरी स्थिति में इसे मगध राज्य के अन्तर्गत बिहार का एक सूबा बनना पड़ा और चौथे तथा अन्तिम चरण में इसे तिरहुत कमिश्नरी का रूप दिया गया जिसमें दरभंगा, मुजफ्फरपुर, सारण और चम्पारण चार जिलों का अन्तर्भाव किया गया।[11]

यद्यपि कालचक्र में पड़कर 'तिरहुत' अब गणतन्त्र बोधक न होकर मात्र कमिश्नरी का बोधक है, परन्तु मिथिला वासियों को लोग आज भी तिरहुतिया कहकर संबोधित करते है। मिथिला के अत्यन्त ख्यात लोकप्रिय तथा मर्मस्पर्शी गीत 'तिरहुत' अब भी प्राचीन 'तिरहुत गणतंत्र' की स्मृति को अपने आप में संजोए हुए है। अबुलफजल[12] तथा बेसेटस्मियन[13] ने 'तिरहुत' शब्द का प्रयोग अपने ग्रंथों में किया हैं।

सीमा और विस्तार : गंगा और हिमवत पर्वत के मध्य पन्द्रह नदियों द्वारा अभिसिंचित होने वाला प्रख्यात तथा पावन देश तीरभुक्ति है। इसकी उत्तरी सीमा पर नागाधिराज हिमालय दक्षिण में पावनी गंगा नदी, पूर्व में कौशिकी तथा पश्चिम में नारायणी (गंडक या सदानीरा) नदी प्रवाहित है। मिथिला के प्रसिद्ध लोकगाथा गीत 'लोरिक मनिआर' में मिथिला की सीमा का उल्लेख इस प्रकार किया गया है।[14]

बृहद विष्णु पुराणानुसार पूर्व से पश्चिम अर्थात कोशिकी नदी से नारायणी तक मिथिला की लम्बाई चौबीस योजन अर्थात 192 मील है तथा दक्षिण से उत्तर अर्थात गंगा प्रवाह से हिमालय तक इसकी चौड़ई सोलह योजन अर्थात 128 मील है। चूँकि नदियों के प्रवाह के मार्ग निरंतर परिवर्तित होते रहते है। अतः वर्तमान स्थिति में पूर्व से पश्चिम मिथिला की लम्बाई लगभग 250 मील तथा दक्षिण से उत्तर इसकी चौड़ाई लगभग 100 मील मानी जाती है।[15]

किसी क्षेत्र के सीमा निर्धारण में वहां की भाषा अत्यन्त सहायक होती है। मिथिला की भाषा मैथिली प्राणवंत और साहित्यिक भाषा होने के कारण अपना विस्तार निरंतर करती रही है। मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सहरसा, भागलपुर, पूर्णिया तथा उत्तरी मुंगेर के अतिरिक्त संथाल परगना के गोड्डा, राजमहल और देवघर अनुमंडलों का भाषा मैथिली है। नेपाल तराई के रोहतक, सरलाही, महोत्तरी, सप्तरी तथा मोरंग जिले की भाषा भी मैथिली है। चम्पारण जिला अब प्रायः मैथिली भाषा से बाहर पड़ जाता है। यद्यपि बेतिया समेत उक्त जिले के पूर्वी उत्तरी भाग में अब भी विकृत मैथिली का प्रचार है परन्तु उस पर भोजपुरी का अमिट प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है। इस प्रकार वर्तमान मिथिला क्षेत्र का क्षेत्रफल लगभग तीस हजार वर्गमील है।[16] आज मिथिला में लगभग 5 करोड़ लोग रहते है। क्षेत्रफल और

जनसंख्या दोनो दृष्टि से मिथिला क्षेत्र एशिया तथा यूरोप के अनेक सार्वभौम सत्ता सम्पन्न देशों से बड़ा है।

मिथिला का इतिहास लगभग पाँच सहस्त्र वर्षो का है। इस भूभाग की स्थापना माधव विदेह के द्वारा हुई अतः इस वंश के राजा विदेहवंशी कहला। कालान्तर में वे जनक नाम से विख्यात हुए। इस जनक राजाओं का राज्यकाल लगभग ढाई हजार वर्ष (3000 ई. पूर्व से 600 ई. पूर्व तक) रहा।[17] जनक राजाओं में हस्वलोभा के ज्येष्ठपुत्र शीरध्वज बड़े ही ज्ञानी और पराक्रमी हुए। उनके छोटे भाई का नाम कुशध्वज जनक था। राजा शीरध्वज जनक की ही पुत्री जानकी थी।[18] कालान्तर में ये जनक राजे अति विलासी और आराम प्रिय बन गए। परिणामतः इस राजवंश का अंत हो गया और विदेह तथा वैशाली को मिलाकर एक बृहतर गणतंत्रात्मक राज्य का गठन हुआ जो वृज्जि गणतंत्र के नाम से विख्यात हुआ। बाद में शायद यही वृज्जि संघ मिथिला अथवा तीरभुक्ति के नाम से पुकारा जाने लगा। उस समय वृज्जि, कोशल, अंग, मगध, मल्ल, बत्स, सुरमुन, पंचाल, गंधार, कंबोज आदि अनेक जनपद वर्तमान था। परन्तु वृज्जि संध उसमें सर्वाधिक शक्तिशाली तथा प्रमुख था। लगभग तीन सौ वर्षो तक वृज्जि गणतंत्र सम्यक रूप से कार्य करता रहा। किन्तु कालान्तर में वहाँ के ग्राम प्रमुख आपस में स्वतंत्रतापूर्वक लड़ने – झगड़ने लगे। इससे आक्रमण के लिए विदेशियों को अच्छा अवसर मिल गया। अतः लगभग 326 ई. से 1097 ई. तक शुंगवंशी, नन्दवंशी, कुशान, पालवंशी आदि अनेक राजा मिथिला पर आक्रमण तथा अधिकार करते रहे। सच्चाई तो यह है कि विदेह राज्य और वृज्जि संघ के विघटन के पश्चात सैकड़ों वर्ष मिथिला में महान उथल पुथल होता रहा। इस अवधि के इतिहास को पराजय और आत्मसमर्पण का इतिहास कहा जा सकता है। लेकिन समय ने पलटा खाया और कर्णाट राज्य की स्थापना के साथ मिथिला में एक नवीन उज्जवल युग का शुभारम्भ हुआ।[19] उस समय बंगाल (गौड़) तथा मिथिला (गौड़वासव) पर पाल राजाओं का शासन था। आपसी मतभेद के कारण पाल राजा भी अशक्त हो चुके थे। अतः अवसर पाकर कलचुरि गांगेयदेव के क्षत्रिय सेनापति नान्यदेव ने गांगेयदेव के बिखरे सैनिको का संगटन कर मिथिला पर आक्रमण कर दिया। नान्यदेव के पुत्र गंगदेव और मल्लदेव ने पश्चिम से तथा स्वयं नान्यदेव ने दक्षिण से तत्कालीन पाल राजा मदनपाल को आक्रांत कर दिया। मदनपाल को मुँह की खानी पड़ी और विजय माला नान्यदेव के गले में पड़ी। इस प्रकार 1097 ई. के लगभग कर्णाट वंशीय राज्य की स्थापना हुई। इनका राज्य लगभग 1324 ई. तक रहा। इन राजाओं में राजा हरिसिंह देव (1296 – 1324 ई.) सर्वाधिक प्रमुख रहे। मिथिला के प्रसिद्ध पंजी प्रथा का प्रचलन इन्ही के समय से हुआ। इस राज्य वंश की समाप्ति के पश्चात ओइनवार राज्य की स्थापना हुई। उन दिनो सुल्तान फिरोजशाह (1351 – 88) के अधीन मिथिला का राज्य था। प्रजापति झा की वंश परंपरा में पण्डित नाह ठाकुर (ओइनी ग्रामोपार्जक) के अति वृद्ध प्रयोग सिद्ध कामेश्वर को सर्वप्रथम यह राज्य समर्पित किया गया, किन्तु अपनी तपस्या में बिध्न समझकर उन्होंने इसे स्वीकार नही किया। अतः उनके ज्येष्ठ पुत्र भोगीश्वर ठाकुर को राज्य मिला, जिन्होंने लगभग तैंतीस वर्षो तक मिथिला पर राज्य किया।[20] इस प्रकार ओइनवार राज्य की स्थापना 1353 ई. के आसपास हुई और लगभग 1526 ई. तक इस वंश का राज्य रहा। ओइनवार वंशी राजाओं में राजा शिवसिंह (1412 – 1416 ई.) सबसे प्रसिद्ध हुए। इन्ही के दरबार में कवि शिरोमणि विद्यापति ठाकुर रहते थे। धीरे – धीरे ये राजे भी शक्तिहीन होते गये और मुसलमान तथा मुगलसम्राट की शक्ति बढ़ गयी। अतः भारत के अन्य भागों के सदृश मिथिला पर भी उनका आधिपत्य हो गया। यद्यपि राजनीतिक दृष्टि से मिथिला पराधीन हो गया, किन्तु यहाँ की संस्कृति अक्षुण्ण रही। पठन पाठन का क्रम चलता रहा। महामहो पाध्याय पं. महेश ठाकुर और उनके शिष्य रघुनन्दन इसके प्रमाण है। इनके विशाल पाण्डित्य पर ही प्रसन्न होकर मुगल सम्राट अकबर ने इन्हें मिथिला का राज्य समर्पित कर दिया था। मिथिलेश महेश ठाकुर (1557 – 1571) ई. ने खण्डवला कुल राज्य की नींव डाली, जिनके वंशज अब भी दरभंगा तथा राजनगर में विद्यमान है। इस प्रकार मिथिला की गौरवपूर्ण सांस्कृतिक परम्परा का अन्य स्त्रोत विभिन्न आंधी तुफानों के बावजूद अबाध रूप से प्रवहयान रहा है।

संदर्भ :

1. मिथिला महात्म्य 14/2/22–24 पृ. 28 रामेश्वर छापाखाना दरभंगा
   '' मिथिला तैश्मुक्तिश्च वैदेही नैमिकाननम् ज्ञान क्षेत्रं कृपापीठं स्वर्णलांगलपद्धतिः।
   जानकी जन्मभूमिश्च निरपेक्षा विक्लम्बा रामानन्दकरी विश्वभाविनी नित्यमंगला''।।
2. मिथिला महात्म्य – 14/2/14 – पृ. – 16 – रामेश्वर छापाखाना, दरभंगा
   मिथिलानाम नगरी तत्रास्ते लोक विश्रुता।
   पंचभिः कारणैः पुण्या विख्याता जगती गये।।
3. Dr. Subhadra Jha : Formation of Maithili Language Introduction, London (1958).
4. Dr. J.K. Mishra : History of Maithili Language Vol. I, P. 8 Tirbhukti Publication, Allahabad.
5. भट्टोजिदीश्रित : सिद्धान्त कौमुदी, उणादि प्रकरण (सं.) अच्युतानन्दशास्त्री पृ. – 311, पंडित पुस्तकालय, काशी (1999 सं.)
6. Dr. J.K. Mishra : History of Maithili Literature Vol. I, P. 8 Tirbhukti Publication, Allahabad(1949).
7. डॉ. तेज ना. लाल : मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, पृ. – 44, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा (प्र. संस्करण, 1962 ई.)
8. डॉ. उ. ना. तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ. – 202, बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (प्रथम संस्करण, 1954 ई.)
9. डॉ. उ. ना. तिवारी : भोजपुरी भाषा और साहित्य, पृ. – 202 बिहार राष्ट्रभाषा परिषद्, पटना (प्रथम संस्करण, 1954 ई.)
10. A. Cunningham : Archoeological Survey of India Vol. XVI, P-A (1880-81).
11. S. N. Singh : History of Tirhut, P.S. Calcutta Baptist Mission (1922).
12. Dr. J.K. Mishra : History of Maithili Literature Vol. I, P. 6, Tirbhukti Publication, Allahabad(1949).
13. H. S. Jorret : Airve Akabari, Vol – III, P. 252, A.S.B. (1891).
14. A. Vincent Smith : Early History of India (3rd edition) P. 36, OXFORD CLARENDON.
15. डॉ. तेज ना. लाल : मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, पृ. – 44, विनोद पुस्तक मंदिर (प्र. सं., 1962 ई.)
16. Dr. Lakshman Jha, Mithila, P- 10, Mithila Mandal (1954) (क) कवि चन्दा झा ने अपनी 'रामाग्ण' में मिथिला की सीमा का वर्णन इस प्रकार किया है।
17. डॉ. तेज नारायण लाल : मैथिली लोकगीतों का अध्ययन, पृ. – 46 विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा (प्रथम संस्करण, 1962 ई.)
18. Dr. Upendra Thakur, History of Mithila, Content, Mithila Institute, Darbhanga (1956)
19. पं. शशिनाथ झा : विद्यापति पदावली, तृतीय भाग (वि. रा. प., पटना से प्रकाशित) की भूमिका
20. डॉ. उमेश मिश्र : विद्यापति ठाकुर, पृ. – 14, हिन्दुस्तानी एकेडमी इलाहाबाद (तृतीय संस्करण – 1960 ई.)

***

कवि नागार्जुन का राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह

*डॉ. सोनी**

नागार्जुन की कविता अपने समय और समाज की विसगतियों, विकृतियों का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करती है, इनकी अधिकांश कविताएं राजनीतिक है, जिसमें अधिकतर व्यंग्यपूर्ण है, जो राजनीति समस्त जीवन व्यवस्था का सामाजिक ढ़ांचे का, आर्थिक–सांस्कृतिक संबंधों का, नीतियों का नियामक तत्त्व बन गई, नागार्जुन उसकी विस्तृत परिधि को अपनी कविताओं में समेटने का प्रयास करते हैं।

'अपने समय और समाज में सक्रिय राजनीतिक दमन, आर्थिक शोषण और सांस्कृतिक ठहराव के खिलाफ हस्तक्षेप की सार्थक भूमिका रचना ही उनके लेखन कर्म का एक मात्र उद्देश्य साबित होता है। यथार्थ को निरपेक्ष ढ़ंग से प्रस्तुत कर देना ही उन्हें स्वीकार्य नहीं है, वे यथार्थ में संघर्ष की चेतना को शामिल करने के पक्षधर लेखक हैं।[1] अन्याय, दमन, शोषण के विरोध हेतु उन्होंने समय–समय पर लेखनी का प्रयोग किया है। वे स्वयं लिखते हैं कि–

नई–नई सृष्टि रचने को तत्पर
कोटि–कोटि कर–चरण
देते रहें अरहर स्निग्ध इंगित
और मैं अलस–अकर्मा
पड़ा रहूँ चुपचाप!
यह कैसे होगा?[2]

नागार्जुन अपने देश का चप्पा–चप्पा छान चुके हैं, लोगों की भावनाओं को बहुत करीब से परखा है। समाज में भरी हुई विसंगतियों, राष्ट्रीय संस्कृति की अस्मिता पर किश्तवार धक्कों ने नागार्जुन को विद्रोही कवि बना दिया है, इसका कारण यह है कि अपने जीवन की स्थति से अपने विविध अनुभवों के प्रसंग में नागार्जुन की चेतना को जो आधारभूमि तैयार हुई उसकी स्वाभाविक परिणति क्रांतिकारी दिशा में ही हो सकती है। नागार्जुन की क्रांतिकारी आस्था, सजग वर्ग दृष्टिकोण और सहज अनुभव विवेक उन्हें भारतीय जनता का राष्ट्रीय कवि बनाते हैं। नागार्जुन का यही आक्रोश, संघर्षशीलता, विद्रोही स्वर देश की राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक, राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय व्यवस्था सभी में देखने को मिलती है। ऐसा कोई भी क्षेत्र अछूता नहीं है जहाँ नागार्जुन का आक्रोश व विद्रोह न पहुँच सका हो।

नागार्जुन की कविताएँ गलत के खिलाफ विनाश का प्रचण्ड उद्घोष है कभी–कभी तो ये रचनाएं कविता के दायरे से भी बाहर निकल जाती हैं परंतु ऐसा होना भी स्वाभाविक ही है क्योंकि डॉ. विजय बहादुर सिंह भी कहते है कि 'सच्ची और महान कविता वादों के दायरे का अनुशासन कभी नहीं मानती।'[3] नागार्जुन भी किसी सीमा के दायरे में नहीं बंधे उन्होंने जो भी लिखा, बेहिचक ओर बेफिक्र होकर लिखा। उनकी कवितांए सीधी दिल पर चोट करती है किंतु इसके पीछे भी बहुजन का कल्याण करने का लक्ष्य छिपा होता है। ये कविताएं न केवल प्रहार करने वाली है बल्कि कर्त्तव्य की याद दिलाने वाली है। शोषित तथा अपमानित जनता को जागृत करने वाली है।

नागार्जुन जैसे जुझारू प्रतिबद्ध लेखक के सन्दर्भ में रचना और राजनीतिक विचारधारा का प्रश्न उठना स्वाभाविक है। नागार्जुन साहित्य को राजनीति से बिल्कुल विच्छिन्न नहीं मानते थे, अनका लेखन इस बात का प्रमाण है। उन्होंने अपने कथाचक्र के निर्माण में जिस तरह सामाजिक जन–जीवन का सूक्ष्म निरीक्षण किया है, ठीक उसी प्रकार से राजनीतिक क्षेत्र का भी अवलोकन किया है और इस निष्कर्ष पर पहुँचते है कि–

''राजनीति क्या है? बिष्ठा है, मल है।

---

* ग्राम- अब्दुलपुर रैनी, पोस्ट- रैनी (टी.सी.ए.ढ़ोली) थाना- सकरा, जिला-मुजफ्फरपुर

साहित्य क्या है? गंगा का जल है।''[4]

आज़ादी से पहले कांग्रेस जनता को रामराज्य का स्वप्न दिखाती थी। रामराज्य के रूप में भारतीय जनता सुखी समाज की जो कल्पना करती थी, उसमें उसकी मानवीय आकांक्षा और सांस्कृतिक विरासत का मेल था। आज़ादी से पहले 'रामराज्य' का जो स्वप्न जनता की प्रेरक शक्ति थी, आजादी के बाद वही जीवन का सबसे बड़ा व्यंग्य बन गया। नागार्जुन ने भारतीय जीवन की इस गंभीरतम असंगति को व्यक्त करने के लिए जो राजनीतिक कविताएं लिखीं, उनमें कांग्रेसी नेताओं के फरेब के खिलाफ जनता का पराजित विश्वास करने पूरे सात्विक क्रोध के रूप में प्रकट होता है–

दस हज़ार, दस लाख मरें, पर झंडा ऊँचा रहे हमारा!
कुछ हो कांग्रेसी शासन का डंडा ऊँचा रहे हमारा!
सत्य अहिंसा की लाशों पर नादिरशाह तदत जमाएं,
नयी पौध को मसल–मसल कर दुनिया भर में नाम कमाएं।[5]

राजनीति पर लिखी हुई नागार्जुन की व्यंग्य कविताएं भारतीय जनता के अपमान की प्रतिक्रिया है। यह बात 'टके की मुस्कान, करोड़ों का खर्चा', आओ रानी हम ढ़ोएंगे पालकी, नदियाँ बदला ले ही लेंगी आदि प्रसिद्ध कविताओं से भी समझी जा सकती है और प्रकटतः भावावेश लगने वाली उन दर्जनों कविताओं से भी जिनमें 'रामराज्य में रावण अब की नंगा होकर नाचता है। भारत माता के गालों पर कसकर लगा तमाचा है' जैसे कविताएं शामिल है। नागार्जुन के अनुसार राजनीतिज्ञों का जीवन विलासिता का पर्याप्त मात्र बन कर रह गया हो नागार्जुन ने किसी भी राजनीतिक घटनाक्रम को नहीं छोड़ा सभी घटनाओं पर उन्होंने बेबाक लिखा है फिर चाहे वह चुनावी टिकट का मामला हो अथवा किसी नेता की आगवानी हो सभी पर उन्होंने अपनी दृष्टि अवश्य डाली है, राष्ट्रकल्याण की ओढ़ी हुई भावना, थोक के भाव नैतिकता और त्याग सेवा का ओवरफ्लो लिए हुए जब वे कांग्रेसी नेताओं को चुनावी माहौल में टिकट पाने के लिए धक्का, मुक्की, उठा–पटक करते देखते हैं तो वे अपने को रोक नही पाते।

'आये दिन बहार के' कविता में उन्होंने इसी घटना को कलमबद्ध किया है–

खेत श्याम–रतनार अखियाँ निहार के,
सिड्डी केटी प्रभुओं की पगधूरि झार के,
दिल्ली से लौटे हैं, कल टिकट मार के,
खिले हैं दाँत ज्यों दाने अनार के।[6]

साधनाओं और बलिदानों के फलस्वरूप 1947 में राष्ट्र को स्वतंत्रता हस्तगत हुई। देश में लोकतंत्र की स्थापना हुई। कुछ समय पश्चात् ही लोकतंत्र में अलोकतांत्रिक कार्यों की भीड़ लग गई। प्रजातंत्र के सिद्धांतों में विश्वास करने वाले नागार्जुन स्वयं बगावत का झंडा लेकर आगे बढ़ते हैं और लोकतंत्र के इस बिगड़े स्वरूप को अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करते हैं–

''अपराधों की राख मलो तुम
लोकतंत्र के दर्पण में''
बीस गुना चमकेगा मुखड़ा,
फिर तो आत्मसमर्पण में,
अरे हटाओं क्या रक्खा है,
गांधी जी के तर्पण में
छविरानी के हत्यारे तो
पैदा होते क्षण–क्षण में
अपराधों की राख मलो तुम
लोकतंत्र के दर्पण में।[7]

कवि नागार्जुन यथार्थ चित्रण में शीर्षस्थ राजनयिकों को भी नहीं छोड़ते। उनका मानना है कि आत्मसेवारत राजनीति के महारथियों ने देश को बदहाली ही थमाई। नागार्जुन ने ऐसे ही

एक–एक व्यक्ति की खबर ली है। गाँधी जी, जवाहरलाल, मोरार जी, इंदिरा गाँधी जैसे राष्ट्रीय राजनीति के चर्चित व्यक्तित्त्व अपनी कमियों को नागार्जुन की दृष्टि से बचा नहीं सके। इंदिरा गांधी पर उन्होंने बहुत सी कविताएं लिखी है जैसे– इंदुजी क्या हुआ आपको (खिचड़ी विप्लव) अब तो बंद करो हे देवी (तुमने कहा था) नदियां बदला ले ही लेगा (पुरानी जूतियों का कोरस) बाघिन (खिचड़ी विप्लव) लाल भवानी (हज़ार–हज़ार बाँहों ताली)

नागार्जुन ने पं. जवाहरलाल पर भी अनेकों कवितांए लिखी है जिनमें 'नेहरू' तुम रह जाते दस साल और, पण्डित जी जाने वाले हैं रानी के दरबार में, आओ रानी हम ढ़ोएंगे पालकी इत्यादि सम्मिलित है। पण्डित जवाहरलाल नेहरू की अंग्रेजी परस्ती की खुलकर निन्दा करते हुए वे लिखते हैं कि–

रत्ती भर भी नहीं लगेगा बट्टा शाही शान में,
मरे पटापट लोग भूख से चाहे हिन्दुस्तान में।[8]

नागार्जुन जनवादी क्रांति के पक्षधर है। उनका मानना है कि 'यह पूँजीपति वर्ग जनवादी क्रांति के कार्य पूरे नही कर सकता। इन कार्यों को मजदूर वर्ग के नेतृत्व में, भारत की जनता ?, मुख्यतः किसान ही पूरे करें। उनकी यह नयी चेतना उनके राजनीतिक व्यंग्य में सर्वाधिक व्यक्त हुई है। 'लाल भवानी' कविता में नागाजुर्न की राजनीतिक समझ, खासकर क्रांति सम्बन्धी उनके स्वप्न के आधारभूत घटक को प्रस्तुत करती है –

सेगें और जमींदारों को नहीं मिलेगा एक छदाम,
खेत–खान–दूकान–मिलें सरकार करेगी दखल तमाम,
खेत–मजदूरों और किसानों में जमीन बँट जायेगी,
नहीं किसी कमकर के सिर पर बेकारी मँडरायेगी,
× × × ×
इन कानों को तृप्ति मिलेगी, तब उस मस्त तराने में,
लाल भवानी प्रकट हुई है सुना कि तेलंगाने में।[9]

इसकी एक–एक पंक्ति, एक–एक शब्द, जनवादी क्रांति के बारे में नागार्जुन की समझ का दस्तावेज है। नागार्जुन की राजनीतिक कविता के दायरे के बाहर भी चली जाती है पर अपवाद रूप में नागार्जुन के यहाँ वह समर्थ आधुनिक राजनीतिक कविता भी मिलेगी जिसका काव्यानुशासन किसी बड़े कवि से ही सध सकता है, 'चन्दू मैंने सपना देखा' इस दृष्टि से उल्लेखनीय कविता है, इस कविता की सादगी में अर्थ की तीक्ष्णता और सधनता जिस तरह मूर्त्त हुई है यह देखने योग्य है :

चन्दू, मैंने सपना देखा, उछल रहे तुम ज्यों हिरनौटा,
चन्दू, मैंने सपना देखा, अमुआ से हूँ पटना लौटा,
चन्दू, मैंने सपना देखा, तुम्हें खोजते बद्री बाबू,
चन्दू, मैंने सपना देखा, खेल–कूद में ही बेकाबू,
चन्दू, मैंने सपना देखा, कल परसों ही छूट रहे हो [10]

नागार्जुन का काव्य अधिकांश राजनीतिक प्रभावों का दस्तावेज है वे हमेशा राष्ट्र के साथ रहे किसी भी विसंगति का उन्होंने खुलकर विरोध किया। वास्तव में देखा जाए तो स्वाधीनता–प्राप्ति के, बाद देश की राजनीतिक अवस्था जैसी बनी, उसमें नागार्जुन जैसे कवि के लिए उदासीन बैठे रहना संभव न था। उनके राजनीतिक व्यवस्था के प्रति विद्रोह से भरे काव्य इस बात का प्रमाण है कि अमर साहित्य रचने का लोभ दिखाकर वे इस दिशा में प्रवृत्त हुए हैं तो केवल अपने कवि–दायित्त्व को निभाने के लिए।

संदर्भ :

1. डॉ. राजकुमार शर्मा–उद्‌भावनाः अंक 51, 52, पृ. 9
2. नागार्जुन रचनावली–। –सतरंगे पंखोवाली, 'यह कैसे होगा? पृ. 290 संपादन–संयोजन–शोभाकान्त राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पटना, इलाहाबाद।
3. डॉ. विजय बहादुर सिंह – नागार्जुन कर रचना संसार, पृ. 97, संभावना प्रकाशन, हापुड–245101
4. नागार्जुन रचनावली–।–पुरानी जूतियों का कोरस/नया पथ/ अमलेंदु एम.एल.ए. जनवरी–1955, राजकमल प्रकाशन पृ.268
5. नागार्जुन रचनावली– ।– हज़ार–हज़ार बाँहोवाली/खून और शोले/झंडा, 1955 पृ. 282
6. नागार्जुन रचनावली– तुमने कहा था, 'आये दिन बहार के, पृ. 423,
7. नागार्जुन रचनावली–।। – पुरानी जूतियों का कोरस–लोकतंत्र के दर्पण में पृ. 265
8. नागार्जुन रचनावली–। – पुरानी जूतियों का कोरस– पंडित जी जानेवाले है रानी के दरबार में पृ.स. 240, राजकमल प्रकशन।
9. नागार्जुन रचनावली–। – हज़ार–हज़ार बाँहोवाली/ लाल भवानी पृ.100 राजकमल प्रकाशन।
10. नागार्जुन रचनावली–।। – खिचड़ी विप्लव देखा हमने 'चन्दु मैंने सपना देखा पृ.118, राजकमल प्रकाशन।

***

सल्तनत कालीन मिथिला की धार्मिक अवस्था

*डॉ. सुमन कुमार**

उत्तर–वैदिक–काल से ही, मिथिला वैदिक धर्म विकास की केन्द्रस्थली रही है। और, उपनिषद्–काल में तो यहाँ धर्म के इस स्वरूप का इतना अधिक विकास हुआ कि यह उक्ति ही प्रसिद्ध हो गई कि 'धर्मस्य निर्णयोज्ञेयो मिथिला व्यवहारतः'। जनक, याज्ञवल्क्य, मैत्रेयी, गार्गी आदि के आविर्भाव से, वहाँ उसकी जड़ इतनी ठिकाने से जम गई कि, उसे हिलाना भी कठिन हो गया।[1] यह स्थिति प्राग्बुद्धकाल तक रही। फिर, बौद्धधर्म के आगमन के पश्चात् इस धर्म के अनुयायियों के साथ बौद्ध–धर्मवावलम्बियों का संघर्ष आवश्यम्भावी था। इस संघर्ष में शंकर, कुमारियल, उदयन, रामानुज आदि ने बौद्धधर्मावलम्बियों से सीधा टक्कर लिया और अपनी विस्तृत एवं उदार विचारधारा के कारण, इन्होंने दोनों की परस्पर मतभिन्नता को समाप्ति करने में सहायता पहुँचाई। और, इस प्रकार मिथिला की धार्मिक अवस्था, जो एक प्रकार से अस्तव्यस्त हो गई थी, वह कर्णाटवंशीय–शासन तक आते–आते अपनी प्राचीन गरिमा को प्राप्त हो गई। इसी बीच मिथिला में जैनधर्म का भी प्रचार हुआ और मुसलमानों के हिंसक आक्रमण भी हुए, शैव, शाक्त एवं वैष्णव; सम्प्रदायों का प्रचार–प्रसार भी हुआ, किन्तु, मिथिला ने अपनी परम्परागत धार्मिक व्यवस्था की जड़े नहीं हिलने दी। यों, तंत्र के प्रचारस्वरूप मिथिला में शिव, शक्ति एवं विष्णु–पूजन तो गृहीत हो ही चुका था, गणेश एवं सूर्य की आराधना भी स्वीकृत हो चुकी थी। डॉ. हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसी कारण एक प्रकार से यह ठीक ही कहा है कि मिथिला स्मृति–काल से ही स्मार्त्तधर्मावलम्बी रही है।[2] पंचदेवोपासक होने के कारण स्मार्त्त शिव, शक्ति और विष्णु के साथ–साथ गणेश और सूर्य की भी उपासना करते हैं। चन्देश्वर ने अपने ग्रन्थ कृत्यरत्नाकर[3] में सल्तनत काल में मिथिला में प्राचलित विभिन्न प्रकार के पर्व एवं त्योहारों का विस्तृत विवेचन किया है, जिनमें निम्नलिखित पर्व एवं त्योहार समाज के सभी वर्गों द्वारा हर्ष एवं उल्लास के साथ मनाये जाते थे।

मिथिला में पर्व–त्योहार को 'पावनि–तिहार' कहते हैं। साल–भर कोई न कोई पर्व–त्योहार आता ही रहता है। वास्तविकता तो यह है कि ऐसा कोई दिन अथवा तिथि नहीं है; जिस रोज कोई त्योहार न पड़ता हो। साल–भर का कोई महीना ऐसा नहीं है, जिसमें दो–चार पर्व–त्योहार अथवा व्रत नहीं पड़ते हों। आबाल–वृद्ध वनिता, पुरूष, नारी, कृषक–मजदूर, धनी–निर्धन एवं द्विज और अद्विज सभी के लिए ये पर्व–त्योहार हर्ष और उल्लास के अक्षय स्रोत हैं। ऐसे मधुमय अवसरों पर वे आनन्द से झूम उठते हैं। व्रत अधिकांशतः नारियों द्वारा रखा जाता है।

मिथिला के पर्व–त्योहारों का अपना महत्त्व के साथ ही सामाजिक महत्त्व भी है। पर्व–त्योहारों के अवसर परएक दूसरे को हँकार देने की प्रथा है जो आपसी कटुता, भेद–भाव एवं वैमनस्य को समाप्त कर आपसी भाई–चारा, एकता एवं सौहार्द्र की भावना को मजबूत करता है। यह लोगों के बीच भावनात्मक लगाव को बढ़ाता है वहीं रागात्मक सम्बन्ध को सुदृढ़ करने में सहायक बनता है। एक दूसरे के सुख–दुःख में सहभागी बनने का अवसर प्रदान करता है जिससे अपनत्व की भावना विकसित होती है साथ ही सामाजिकता का विकास होता है।

कर्णटवंशीय–शासन के समय मिथिला में अनेकानेक देवी–देवताओं के पूजन का विधान मिलता है। चण्डेश्वर के 'कृत्यरत्नाकर' में गौरी–शंकर एवं विष्णु के कूर्मावतार[4] के साथ–साथ अन्य अनेक देवी–देवताओं के पूजा–विधान का उल्लेख है। उनके द्वारा लिखित 'पूजारत्नाकर' में शिव, दुर्गा, विष्णु एवं सूर्य आदि देवी–देवताओं की तांत्रिक–रीति से आराधना का उल्लेख आया है। इसके अतिरिक्त अपने 'शैवमानसोल्लास' में भी उन्होंने विष्णु एवं शिव के एकात्मरूप की अभ्यर्थना की है।[5]

---

* पीएच. डी. (इतिहास),बी. आर. ए. बिहारविश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

विद्यापति के युग में भी पंचदेवोपासना के पश्चात् ही आराध्य के पूजन का विधान है। तत्कालीन साहित्य में तो देव एवं मातृकापूजनादि के पर्व पंचदेवों का पूजन परमावश्यक माना गया है। स्वंय विद्यापति ने अपनी प्रथम रचना 'भू परिक्रमण'[6] में लिखा है।

विद्यापति के समकालीन वाचस्पति एवं रूद्रधर ने तो उपरोक्त पंचदेवों की पूजा के विधान, फलादि का उल्लेख विस्तृत रूप में किया है। इसके अतिरिक्त, आगमाचार्य हरपति ने तो अपने मंत्रपदीय में, शाक्त एवं वैष्णव देवी–देवताओं की उपासना का विस्तार से वर्णन किया ही है, वर्द्धमान एवं गौढ़ि की रचनाओं में भी शिव, विष्णु आदि अनेक देवी–देवताओं की उपासना के वर्णन मिलते हैं।[7]

इन सारी बातों से यह प्रमाणित होता है कि विद्यापति के समय मिथिला के हिन्दू प्रायः सभी देवी–देवताओं की भक्ति समान श्रद्धाभाव से करते थे और अत्यधिक सहिष्णु होने के कारण, उनकी दृष्टि बहुत ही उदार थी। एक ही व्यक्ति, एक साथ शिव, विष्णु और दुर्गा तीनों की उपासना करना चाहे तो उसमें किसी प्रकार की बाधा नहीं थी। आज भी किसी मैथिल के ललाट पर विष्णु का प्रतीक श्वेत चंदन, शिव का प्रतीक भष्म और दुर्गा का प्रतीक सिन्दुर देखकर कोई सहज ही यह अनुमान कर सकता है कि मिथिलावासी धार्मिक दृष्टि से कितने सहिष्णु एवं उदार हैं। विद्यापति के युग में भी दृष्टि ज्यों–की–त्यों बरकरार थी।

अपने 'पुरूष–परीक्षा' ग्रंथ में, तो उन्होंने अत्यंत स्पष्ट शब्दों में कहा है कि ''ईश्वर एक है, भले ही उसके नाम अनेक हों।''[8]

धर्म की परिभाषा देते हुए विद्यापति ने 'पुरूष–परीक्षा' में स्पष्ट लिखा है कि –

दानाध्ययन योगादि वेदवक्यानुसारतः
स्वामीष्टक साधकः कर्मविशेषो धर्म उच्यते।

अपने मैथिली पदों के माध्यम से भी उन्होंने राधाकृष्ण के अतिरिक्त शिव, जानकी, गंगा आदि अनेक देवी–देवताओं को स्मरण किया है। एक पद में तो ब्रह्मा, विष्णु और महेश का अनेकत्व प्रदर्शित करते हुए, उन्होंने स्पष्ट ही अपने युग में प्रचलित उदारवादी धार्मिक दृष्टिकोण का संकेत दे दिया है।[9] विद्यापति के समकालीन वाचस्पति मिश्र ने भी स्पष्ट रूप से विष्णु एवं शिव में एकत्व की घोषणा की है।[10]

विद्यापति के काल मे प्रचलित धार्मिक सहिष्णुता का एक और प्रमाण प्रस्तुत करते हुए वर्द्धमानेश्वर महादेव के मन्दिर का हवाला देते हैं।[11] वे कहते हैं कि उस समय के मंदिरों में अनेकानेक देवी–देवताओं की स्थापना की गयी थी। उस समय के मंदिरों में, उनके अनुसार शिव के अतिरिक्त गणेश, दुर्गा, सूर्य आदि की मूर्तियाँ भी स्थापित हैं। विद्यापति के युग में लोग कर्मकाण्ड में अधिक विश्वास करते थे और देवी–देवताओं की आराधना अधिकतर मंदिरों में ही हुआ करती थी। धर्म के परिपालन में, शासक–वर्ग भी पूरी रूचि लेता था और उनके शासन–क्षेत्र में भी धर्म की ही प्रधानता होती थी। मिथिलाधिपतियों का तो आदर्श ही था – ''धर्माखि धन भरि भंडार।'' प्रजा में धर्म का परिपालन नियमोचित हो, इसके लिए उनकी ओर से कई कोटि के अधिकारी भी नियुक्त किये जाते थे। एक अधिकारी होता था 'महाधर्माधिकरणिक' जो राज्य के सम्पूर्ण धार्मिक क्रिया–कलापों पर नियंत्रण रखता था। यज्ञ याजन एवं शान्ति स्थापना के लिए, 'शान्तिकरणिक' नियुक्त होता था। मंदिरों में पूजा–व्यवस्था का कार्य 'महादेवागरिक' के अधीन था, जिसकी देख रेख में कई देवागरिक कार्य करते थे और इन देवागारिकों के अधीन थे 'पुष्पभट्ट', 'मालाकार' एवं 'बटुक'।

आराधना या पूजन की दृष्टि से सल्तनतयुगीन मिथिला में सूर्य, गणेश, विष्णु, शिव, दुर्गा (शक्ति) एवं गंगा का विशेष महत्त्व था। इनके आराधना पूजानादि के तत्कालीन विधि–विधानों पर विद्यापति ने विशेष रूप से प्रकाश डाला है। उनका आभार स्वीकारते हुए नीचे एतद्सम्बन्धी संक्षिप्त विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है। सूर्यः वैदिक–युग से ही, सूर्य सभी पापों से मुक्ति करके, ऐश्वर्य, यश, स्वास्थ्य तथा अन्यान्य वरदान देनेवाले देवता के रूप में पूजित हैं। ब्राह्मण और गृह्यसूत्र में भी सूर्य–पूजन का उल्लेख मिलता है। गुप्तकाल में तो सूर्य की पूजा को विशेष महत्त्व दिया जाता था।

गुप्तकाल की तरह मिथिला के कर्णाटवंशीय–शासकों के युग में भी मिथिला में सूर्योपासना का प्रभूत प्रचार था। चंडेश्वर के 'कृत्यरत्नाकर' में सूर्य–पूजन का उल्लेख तो मिलता ही है, उसमें सूर्य सम्बन्धी व्रत करने की प्रथा का भी विशेष विवेचन है। अष्टमूर्त्ति–वर्णना के संदर्भ में, ज्योतिरीश्वर ने भी सूर्य की मूर्त्ति का उल्लेख किया है।[12] इस प्रकार हम देखते हैं कि विद्यापति के युग से पूर्व में ही मिथिला में सूर्योपासना का पूर्ण प्रचार हो चुका था और विद्यापति के युग में तो वह प्रचलित था ही। ओइनवारवंशीय शासकों ने सूर्य की मूर्त्तियों के निर्माण के प्रयास भी किये थे। ओइनवारवंशीय नरसिंहदेव ने भी एक सूर्य–मंदिर का निर्माण करवाया था, ऐसा कनदाहा–अभिलेख से ज्ञाता होता है। देवकुली के शिव–मंदिर की भित्ति पर सूर्य की खंचित प्रतिमा एवं गोरहैल तुमौल (बिरौल दरभंगा) में प्राप्त सूर्य की मूर्ति से भी इस मत को समर्थन मिल जाता है। विद्यापति की 'गंगावाक्यावली' के आधार पर अनुमान किया जाता है कि इस युग में गंगातट पर सूर्य मंदिर के निर्माण की प्रथा प्रचलित रही होगी; क्योंकि 'गंगावाक्यावली' में लिखा है कि गंगा–तट पर सूर्य का मंदिर बनवानेवाला सूग्र लोक को प्राप्त करता है। 'गंगावाक्यावली' से ही ज्ञात होता है कि उस युग में लोगों के द्वारा सूर्य की पूजा प्रतिदिन की जाती थी।[13]

अपनी 'भू–परिक्रमा' के मंगलश्लोक में भी विद्यापति ने सूर्य की ही अभ्यर्थना की है। उन्होंने स्वंय लिखा है कि देवपूजा के संदर्भ में, सर्वप्रथम सूर्य की ही पूजा की जाती थी। लोग व्रतों का भी आरम्भ स्नानोपरान्त सूर्य को अर्ध्य देकर ही करते थे। सूर्य के सम्मान में आज की तरह उस युग में 'रविव्रत' की प्रथा तो प्रचलित थी ही, कार्तिक–मास में छठ व्रत (रविषष्ठि–व्रत) का भी प्रचार था। सूर्य–ग्रहण को विशेष महत्त्व दिया जाता था। विद्यापति ने अपने 'वर्षकृत्य' में सूर्यग्रहण के समय गंगा स्नान का उल्लेख करते हुए, उसके फलाफल का भी विस्तृत विवेचन किया है।[14] कहते हैं, उस युग में यह धारणा प्रचलित थी कि सूर्य की पूजा करनेवाले पारंगत ब्राह्मण को एक सहस्त्र गोदान करने का फल प्राप्त हो जाता था।

गणेश या गणपति पूजन वैदिक युग से ही मिथिला में प्रचलित था, ऐसा प्रमाण मिलता है। गणेश को विघ्ननाशक एवं रक्षक–देवता के रूप में मान्यता प्राप्त थी। उनकी उपासना महाहस्ती, वक्रतुण्ड, एकदन्ती, विनायक आदि अनेक नामों से की जाती थी। प्राचीनकाल में 'गाणपत्य–सम्प्रदाय' की विद्यमानता भी गणपति आराधना की इसी प्राचीनता का संकेत देती हैं। इन दिनों महाराष्ट्र में प्रचलित 'गणपति–महोत्सव' में भी उसकी परिणति देखी जा सकती है।

कर्णाटवंशीय–शासकों के युग में भी मिथिला के निवासियों के बीच गणेश व गणपति–पूजन का काफी प्रचार–प्रसार था। उस समय चतुर्भुज–गणेश की प्रतिमाएँ भी निर्मिण होती थी और गणेश–पूजन के दिन उपवासादि का भी विधान था। भादव शुक्ल चतुर्थी के दिन गणेश व्रत करने के लिए विधि–विधनादि के साथ–साथ उसके फलाफल का वर्णन 'कृत्यरत्नाकर' में वर्णित है।

कर्णाटवंशीय मिथिला की तरह विद्यापतियुगीन मिथिला में भी गणेश–चतुर्थी की परम्परा थी और उस दिन गणेश की प्रतिभा की विधिवत् आराधना की जाती थी। गणेश–मूर्ति की स्थापना की भी परम्परा उस समय थी, ऐसा वर्द्धमानेश्वर महादेव के मंदिर में, दीवार पर खचित चतुर्भुज गणेश की मूर्ति से प्रमाणित हो जाता है। स्वंय विद्यापति के 'वर्षकृत्य' से ज्ञात होता है कि उस समय गणेश की पूजा प्रत्येक भक्त के लिए आवश्यक थी और प्रत्येक तीर्थयात्री को तीर्थयात्रा से एक दिन पूर्व गणेश की पूजा करनी पड़ती थी।[15] विद्यापति ने 'कीर्तिपताका'[16], 'लिखनावली'[17], 'दुर्गाभक्तितरंगिणी'[18] आदि अपने ग्रंथों में भी विभिन्न रूपों से गणेश की अभ्यर्थना की है।

विष्णु से संबद्ध छह–सात 'सूक्त–ऋग्वेद' में मिलते हैं। किन्तु, विष्णु; सम्बन्धी वैष्णव मत के मूलभूत सिद्धान्तों के दर्शन पहले–पहल हमें उपनिषदों में ही होते हैं। आगे चलकर विष्णु की पूजा–आराधना परब्रह्म के रूप में होने लगी और वैदिक काल के इन्द्र का स्थान विष्णु ने ले लिया।[19] मिथिला के कर्णाटवंशीय शासकों के समय मिथिला में, विष्णु की पूजा–आराधना पर विशेष बल दिया जाने लगा, ऐसा प्रतीत होता है। भीठ–भगवानपुर में प्राप्त लक्ष्मी एवं लक्ष्मी–नारायण की, बहेड़ा उत्खन्न से उपलब्ध विष्णु के वराहावतार की, भैरवबलिया के भग्नावशेष से निकली विष्णु की मूत्तियाँ उपरोक्त

धारणा को ही बल देती है। इनके अतिरिक्त, अँधराठाढ़ी एवं नौलागढ़ के अभिलेख के साथ–साथ नान्यदेव के मंत्री द्वारा 'श्रीधर' नाम से निर्मित विष्णु–मंदिर भी इसी मत को पुष्ट करते हैं।

विष्णु के अवतारों में मत्स्य, कूर्म, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, राम, कृष्ण, बुद्ध एवं कल्कि मुख्य माने गये हैं। मिथिलावासियों के हृदय में, उस युग में भी विष्णु के इन सभी अवतारों के प्रति पूर्ण आस्था थी। अपने 'पूजारत्नाकर' में चण्डेश्वर ने विष्णु पूजन की चर्चा की ही है, अपने 'कृत्यरत्नाकर' में भी उन्होंने विष्णु के विभिन्न अवतारों के पूजन का भी संकेत किया है। उनके अनुसार, इन अवतारों की पूजा मुख्य रूप से ज्येष्ठ–शुक्ल–द्वादशी, माघ एकादशी द्वादशी एवं फाल्गुन एकादशी–द्वादशी को की जाती थी।

कृत्यरत्नाकर' में, विष्णु के पूजन कालादि का भी स्पष्ट निर्देश है, जिसके अनुसार तत्कालीन विष्णुभक्त आराधना पूजन करते थे। चंडेश्वर के बाद, गणेश्वर के पुत्र गोविन्ददत्त ने भी अपने 'गोविन्दमानसोल्लास' में अपने को 'हरिकिंकर' कहते हुए, विष्णु–पूजन सम्बन्धी विधि–विधानों एवं उसके माहात्म्य का वर्णन किया है।[20]

इन सारी बातों से यह प्रमाणित होता है कि विद्यापति युग के पूर्व से ही मिथिला में, विष्णु की उपासना प्रचलित थी और विद्यापति के युग में यह और भी विकसित हुई। विद्यापति के समकालीन अभिनव वाचस्पति कृत 'कृत्यप्रदीप' से ज्ञात होता है कि विद्यापति के युग में, देव एवं मातृका–पूजन के प्रसंग में, विष्णु की पूजा भी की जाती थी। स्वंय विद्यापति रचित 'वर्षकृत्य' एवं चंडेश्वरकृत 'कृत्यमहार्णव' से होता है कि उस समय सम्पूर्ण कार्तिक–मास में विष्णु की आराधना एक सामान्य बात थी। 'कृत्यप्रदीप' के साथ–साथ 'कृत्यमहार्णव' में, इस पूजन के महात्म्य एवं विधिविधानों का तो सांगोपांग वर्णन देखने को मिलता है। विष्णु–पूजन के अवसर पर उस युग में जिन वस्तुओं के दान की परम्परा थी, उनका विवरण विद्यापति ने ही अपने ग्रंथ 'दानवाक्यावली' में विस्तार से किया है। जयेष्ठ–दशहरा के दिन गंगास्नान के उपरान्त विभिन्न देवी–देवताओं के पूजन के साथ–साथ नारायण या विष्णु की पूजा भी आवश्यक है, ऐसा 'गंगावाक्यावली' में लिखा है। उसी ग्रंथ में लिखा है कि गंगा–तट पर विष्णु–मंदिर बनवाने से मनुष्य विष्णुत्व को प्राप्त करता है। इस उल्लेख से यह स्पष्ट हो जाता है कि विद्यापति के युग में, विष्णु मंदिरों के निर्माण की भी प्रथा वर्त्तमान थी। विद्यापति के 'वर्षकृत्य' के अनुसार उस युग में बालकों के विद्यारम्भ के समय भी विष्णु की पूजा का संकेत मिलता है। अपने में 'भू–परिक्रमण' में तो स्पष्ट ही विद्यापति ने विष्णु की अभ्यर्थना की है और 'पुरूष–परीक्षा' में वैष्णव मत का उल्लेख मिलता है।[21]

विद्यापति के समाकालीन अभिनव वाचस्पति ने 'तीर्थ–निर्णय' छोड़कर अपने प्रायः सभी ग्रंथों में, विष्णु के विभिन्न रूपों का वर्णन–अर्चन किया है। इनके अतिरिक्त, मिशरू मिश्र, पक्षधर मिश्र, केशव मिश्र, राजा भैरवसिंह, लक्ष्मीनारायण, कंसनारायण आदि अनेकानेक विद्वानों एवं महीपों ने भी उस युग में विष्णु–पूजन के प्रमाण प्रस्तुत किये हैं।[22]

विद्यापति के युग में, विष्णु के साथ–साथ उनके विभिन्न अवतारों की भी आराधना प्रचलित थी। स्वंय विद्यापति ने ही, कृष्ण से सम्बन्धित अनेक पदों की रचना की थी। उनके श्रृंगार–सम्बन्धी पदों में भी बंगाल के वैष्णव भक्ति–रस के स्रोत का दर्शन करते हैं। रूद्रधर के 'वर्षकृत्य' के अनुसार उस युग में चैत्र–मास में रामनवमी और वैशाख–मास में जानकी–नवमी मनाने की प्रथा थी। चंडेश्वर ने तो अपने 'कृत्यरत्नाकर' में, स्पष्ट शब्दों में लिखा है कि उस युग में मिथिला में सीता की पूजा–उपासना भी खूब होती थी। स्वंय विद्यापति ने अपने एक पद में जगतजननी सीता की अर्भ्यथना–वन्दना की है।[23]

इन सारे प्रमाणों एवं विवरणों से स्पष्ट ज्ञात होता है कि विद्यापति के युग में, विष्णु एवं उनके विविध अवतारों के प्रति मिथिलावासियों में पर्याप्त आस्था थी और वे उनकी पूजा उपासना बिना किसी भेद–भाव के करते थे।

संदर्भ :

1. डॉ. इन्द्रकान्त झा – लिखनावली भूमिका, पृ. 18–20
2. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी – मध्यकालीन धर्म साधना, पृ. 32
3. चन्देश्वर – कृत्य रत्नाकर, पृ. 103–108
4. पं. कमला कृष्ण – कृत्य रत्नाकर, पृ. 1
5. आर. एल. मिश्र – पूजा रत्नाकर, पृ. 162
6. ए कैटेलाग ऑफ मैनसक्रिप्टस इन मिथिला, पृ. 455
7. डॉ. वासुकी नाथ झा – भू–परिक्रमण, पृ. 1
8. डॉ. इन्द्रकान्त झा – विद्यापति कालीन मिथिला, पृ. 352
9. पं. रामानाथ झा – पुरूष परीक्षा, पृ. 115
10. वाचस्पति मिश्र – कृत्यप्रदीप, हस्तलेख पत्र सं. – 1
11. डॉ. इन्द्रकान्त झा – विद्यापति कालीन मिथिला, पृ. 355
12. पं. कमला कृष्ण स्मृति तीर्थ – कृत्यरत्नाकर, पृ. 504
13. डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी – वर्णरत्नाकर, पृ. 58
14. डॉ. इन्द्रकांत झा – विद्यापति कालीन मिथिला, पृ. 363
15. श्री विमल चौधरी – गंगावाक्यावली, पृ. 235
16. डॉ. वासुकीनाथ झा – भूपरिकर्मण, पृ. 1
17. कृत्यमहार्णव – हस्तलेख पत्र सं. 19
18. वर्षकृत्य – हस्तलेख पत्र सं. 15
19. कमलाकृष्ण स्मृतितीर्थ – कृत्यरत्नाकर, पृ. 271
20. सावलिया बिहारी वर्मा – विश्वदर्शन, पृ. 278
21. जरनल ऑफ विहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी, भाग 9, पृ. 303
22. पं. कमलाकृष्ण – कृत्यरत्नाकर, पृ. 128
23. कृत्यमहार्णव – हस्तलेख पत्र सं. 117

***

बाल अपराध की रोकथाम में परिवार एवं विद्यालय की भूमिका

*डॉ. कुमारी अलका**

बाल अपराध को रोकने के लिए दो महत्वपूर्ण पक्ष प्रभावी हो सकते हैं पहला परिवार है तथा दूसरा विद्यालय। परिवार को भी प्रथम पाठशाला व विद्यालय माना जाता है। दोनों की ही महत्वपूर्ण भूमिका बाल अपराध को रोकने में हैं। प्रस्तुत शोध–पत्र बाल अपराध की रोकथाम में परिवार एवं विद्यालय की भूमिका पर आधारित है। यह शोध–पत्र तथ्य संकलन के द्वैतीयक स्रोतों पर आधारित है।

बाल अपराध को रोकने में माता–पिता, परिवार के सदस्य, संरक्षक आदि की अमूल्य भूमिका होती है, जिसे कदापि नकारा नहीं जा सकता। बालक सबसे पहले माता की गोदी में खेलकर उसके आँचल की छाँव में पलकर बड़ा होता है तथा नैतिक गुणों को सीखता है। फिर वह परिवार के दूसरे सदस्यों एवं विद्यालय के संगी–साथियों एवं शिक्षकों के सम्पर्क में आता है। इसलिए प्रथम दायित्व माता–पिता का ही होता है कि वे बालकों को अपराधी नहीं बनने दें। इससे निम्नांकित पारिवारिक प्रयास जरूरी है, जैसे –

(i) पारिवारिक वातावरण खुशनुमा बनाये रखना – अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि जिन परिवारों में आये दिन कलह–क्लेश, मारपीट, लड़ाई–झगड़े, गाली–गलौज आदि होता रहता है, उन परिवारों के बालकों को अपराध की ओर प्रवृत्त होने की सम्भावना बढ़ जाती है। इसलिए यह जरूरी है कि परिवार का वातावरण सौहार्द्रपूर्ण एवं खुशनुमा होना चाहिए। माता–पिता में आवसी प्यार होना चाहिए। परिवार के सभी सदस्यों में परस्पर प्रेम, त्याग, बलिदान, सहानुभूति, करूणा, दया आदि सद्‌गुण होना चाहिए। ऐसे वातावरण में बालक स्वयं को सुरक्षित महसूस करता है।

(ii) बालकों की आदतों पर ध्यान देना – परिवार के सदस्यों का यह दायित्व है कि वे बालकों की आदतों पर नजर रखें। बालक नादान होते हैं, उन्हें अच्छे–बुरे का कोई ज्ञान नहीं होता है। अतः वे अनजाने में ही गलत आदतों का शिकार हो सकते हैं।

यदि बालक कोई अनुचित व गलत कार्य कर रहा हो। स्कूल से कागज, कमल, किताब या पेंसिल चुराकर लाया है तो माता का यह पहला कर्तव्य है कि वह उससे पूछे कि आपने इन चीजों को कहाँ से लिया है? उनके सही–सही बताने पर चीजों को लौटाने को कहें। साथ ही ऐसी हरकतों को दोबारा न करने की सख्त हिदायत दें। बालक का कोई भी नकारात्मक व्यवहार जो उसे आगे चलकर अपराधी बना सकता है, उसे बढ़ने से पहले ही रोकने का प्रयास करें।

(iii) आवश्यकताओं की पूर्त्ति समय पर करना – बालकों की आवश्यकताओं की पूर्ति समय पर अवश्य ही की जानी चाहिए। यदि उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति समय पर नहीं की जाती है तो उनमें असंतोष का भाव उत्पन्न होता है। फलतः वे अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए छोटी–छोटी चोरी कर सकते हैं, जो आगे चलकर उन्हें एक दुर्दान्त, खुँखार अपराधी भी बना सकता है।

(iv) बालकों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार – बालकों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाना जरूरी है, विशेषकर किशोरावस्था में, जब उनमें शारीरिक एवं मानसिक परिवर्तन होते हैं, संवेगात्मक उथल–पुथल रहती है, तब उन्हें ज्यादा प्यार–दुलार की आवश्यकता होती है। परन्तु माता–पिता यह सोचते हैं कि अब उनका बच्चा बड़ा हो गया है, वह अपना कार्य स्वयं कर लेगा तथा घरेलू कार्यों में भी उनका हाथ बंटाएगा। उनकी इतनी अधिक अपेक्षा बालकों के उत्तम स्वास्थ्य एवं चहुंमुखी विकास के लिए अच्छा नहीं होता है। बालक अभी इतना छोटा होता है कि वह माता–पिता की आशाओं के

---

* पीएच. डी. (गृह विज्ञान),बी. आर. ए. बिहार वि ववविद्यालय, मुजफ्फरपुर

अनुरूप व्यवहार कर पाने में असमर्थ होता है। वह माता–पिता की इन सभी आशाओं, आकांक्षाओं की पूर्ति नहीं कर पाता है। फलतः माता–पिता उसे डाँटते–फटकारते रहते हैं। इसलिए यह जरूरी है कि बालकों के साथ प्रेमपूर्ण व्यवहार किया जाना चाहिए। सभी बालकों के साथ एक समान व्यवहार किया जाना चाहिए। बालकों पर उचित ध्यान दिया जाना चाहिए।

(v) बालाकें के मित्रों पर नजर रखना – बालक के संगी–साथी, यार–दोस्त कैसे हैं ? इस पर भी एक नजर रखना जरूरी है। यदि बालक के मित्रों का व्यवहार दोषपूर्ण है, वे आपराधिक प्रवृत्ति के हैं, तब अपने बालकों को उनसे दूर रखें। उनके साथ खेलने–कूदने नहीं दें।

(vi) बालकों की योग्यतानुसार शिक्षा देना – माता–पिता अपने बालकों से बहुत अधिक अपेक्षाएँ रखते हैं। जो कमियाँ उनके जीवन में रह जाती हैं उसे वे बालकों द्वारा पूरा होते देखना चाहते हैं। ऐसी स्थिति में बालक की शारीरिक एवं मानसिक क्षमता को नजर अंदाज कर दिया जाता है तथा उनकी क्षमता से अधिक काम लेने का प्रयास किया जाता है। परिणामतः बालक परेशान व तनावग्रस्त हो जाता है। हीन भावना एवं कुंठा का शिकार हो जाता है। वह अपनी कुंठा को दूर करने के लिए मद्यपान, धूमपान, वेष्यागमन आदि का सहारा लेता है जो बाद में उसकी आदत बन जाती है तथा वह अपराध करने की ओर प्रवृत्त होने लगता है। अतः बालक की योग्यता को ध्यान में रखते हुए ही काम दें तथा अपेक्षा रखें।

(vii) अधिक लाड़–प्यार न दें – कई माता–पिता अपने बालकों को बहुत ही ज्यादा लाड़–प्यार करते हैं। उनकी आवश्यकताओं की पूर्ति तो तत्काल करते ही हैं, साथ ही ऐसी चीजें भी दिलवाते हैं जो निहायत अनुपयोगी होती है। वे अपने बालकों के प्रेम में इतने अंधे हो जाते हैं कि उन्हें उनकी गलतियाँ नजर ही नहीं आती। ऐसी स्थिति में बालक बिगड़ जाते हैं।

(viii) बालकों को अनुशासान में रखना – बालकों को अनुशासित रखना भी जरूरी है। परन्तु उन्हें इतना अधिक कठोर अनुशासन में भी नहीं रख जाना चाहिए। लोकतांत्रिक तरीके से अनुशासित करना चाहिए। आवश्यकता पड़ने पर दण्ड एवं पुरस्कार दोनों की ही व्यवस्था की जानी चाहिए।

(ix) बालकों में जिम्मेदारियों का विकास – किशोरवय के बालकों में अपार ऊर्जा होती है। इस ऊर्जा का यदि सही उपयोग नहीं किया जाए तो उनके बिगड़ने की संभावना बढ़ जाती है। अतः उन्हें घर के छोटे–मोटे कामों को पूरा करने की जिम्मेदारी दी जानी चाहिए। आत्म–निर्भर बनाने के लिए छोटे–मोटे कार्य सिखाना चाहिए ताकि उनमें आत्मविश्वास जागृह तो सके।

बाल अपराध की रोकथाम में विद्यालय की भूमिका :– बाल अपराध को रोकने में विद्यालय की प्रमुख भूमिका होती है जिसे कदापि नकारा नहीं जा सकता है। विद्यालय के शिक्षक इसमें महत्वपूर्ण भूमिका आद कर सकते हैं। इसके लिए निम्नांकित प्रयास जरूरी हैं[14]–

(i) शिक्षक अनुशासित एवं समय के पाबंद हों – बाल अपराध रोकने का सबसे अच्छा साधन है कि बालकों के समक्ष शिक्षक स्वयं को एक आदर्श की तरह प्रस्तुत करें। वे अनुशासित हों, समय के पाबंद हों। समय पर कक्षा लेते हों तथा विद्यालय के सभी कार्यों को निपटाते हों। उन्हें अपने विषय का पूरा ज्ञान हो। जब ऐसे शिक्षक से बालक शिक्षा ग्रहण करेंगे तो निश्चित ही उसमें अच्छे गुणों का विकास होगा तथा वे अपराधी नहीं बन सकेंगे।

(ii) विद्यालय का वातावरण अच्छा हो – बाल अपराध को रोकने में विद्यालय के वातावरण की अहम भूमिका होती है जिसे कदापि नकारा नहीं जा सकता है। विद्यालय साफ–सुथरा एवं स्वच्छ होना चाहिए। विद्यालय भवन सुन्दर एवं आकर्षक होना चाहिए जहाँ उनकी खेल व पढ़ाई सम्बन्धी आवश्यकताओं की सभी चीजें उपलब्ध हों। अच्छी शिक्षण व्यवस्था हों। मनोरंजन के पर्याप्त साधन हों। सह शैक्षणिक गतिविधियों पर ध्यान दिया जाता हो, ताकि बालक अपनी रूचियों का विकस कर सकें।

(iii) शिक्षण विधि रोचक हो – बालकों को पढ़ाते समय यह ध्यान रखा जाना चाहिए कि उन्हें जो भी पाठ पढ़ाया जाए वह रोचक एवं आकर्षक ढंग से प्रस्तुत किया जाए ताकि कक्षा के प्रत्येक बालक को समझ में आ जाए। जब बालक को पढ़ाई समझ में नहीं आती है, तब वह कक्षा से भागना चाहता है, क्योंकि उसका मन पढ़ाई में लगता ही नहीं है। अतः वह कक्षा में शरारत करता है अथवा पीछे के बेंच पर बैठकर अश्लील तस्वीरें बनाता है, कार्टून बनाता है या गंदी–गंदी बातें डेस्क पर लिखता है। उसकी यह आदत उसे अपराध प्रवृत्ति की ओर धकेलती है।

(iv) अभिभावकों एवं शिक्षकों से सम्पर्क बनाये रखना – बाल अपराध को रोकने के लिए समय–समय पर अभिभावक–शिक्षक सभा समारोह का आयोजन किया जाना चाहिए। इससे बालकों के अन्दर क्या कमियाँ हैं, क्या खूबियाँ हैं, इसे उनके अभिभावक को बताना चाहिए। यदि बालक विद्यालय से अक्सर भाग जाता है, तो इसकी सूचना भी अभिभावक को दी जानी चाहिए ताकि उन्हें भी यह पता चल जाए कि बालक विद्यालय न जाकर कहीं और जाता है तथा अनुचित व गलत कार्यों को सीखता है। उसके स्कूल से भगाने की समस्या पर विचार किया जाना चाहिए तथा उसके समाधान हेतु विकल्प ढूँढ़े जाने चाहिए।

(v) नैतिक शिक्षा पर जोर देना – बालकों को नैतिक शिक्षा दिया जाना जरूरी है ताकि उनमें मानवीय मूल्यों का विकास हो सके। कविताओं, कहानियों, नुक्कड़ नाटक आदि के माध्यम से उनमें नैतिक शिक्षा का विकास किया जाना चाहिए। इससे बालकों में स्वस्थ मानसिक विकास होता है।

(vi) सह–शैक्षणिक गतिविधियों को बढ़ावा दें – विद्यालय में न केवल निर्धारित पाठ्यक्रम पढ़ाये जाने की व्यवस्था होनी चाहिए बल्कि सह–शैक्षिक (Co-curricular activities) पर भी पूरा–पूरा ध्यान दिया जाना चाहिए। इससे बालक अपनी रूचि के अनुसार गतिविधियों में भाग ले सकेंगे। अतः विद्यालय में Indoor, Outdoor games, कढ़ाई, बुनाई, पेंटिंग आदि की प्रतियोगिता करायी जानी चाहिए, इससे उनमें कुछ सीखने की ललक पैदा होती है।

(vii) अनुशासित रखें – विद्यालय में बालकों को अनुशासित रहना सिखायें। इसके लिए अनुशासन के सही मानदण्डों को अपनायें। कक्षा में यदि कोई बालक पहली बार गलती करता है तो कठोर दण्ड न दें अपितु सुधारात्मक तरीके अपनायें क्योंकि कठोर दण्ड उन्हें अपराधी बना सकता है। परन्तु यदि बालक बार–बार गलती करता है, जान–बूझकर शरारत करता है, तब अवश्य कठोर दण्ड दिया जाना चाहिए। ऐसी स्थिति में उसका नाम काटकर स्कूल से निकाला भी जा सकता है।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारतवर्ष में बाल अपराध की रोकथाम और सुधार के सम्बन्ध में अनेक महत्वपूर्ण कदम उठाए गए हैं। बाल अपराध की रोकथाम या सुधार सम्बन्धी कानूनों के बनने से पहले भी अनेक समाजसेवी संगठन इस दिशा में कार्य कर रहे थे। भारत में बाल अपराध की रोकथाम के लिए अनेक सुधारवादी संस्थाएँ भी बने हैं। बाल अपराध के निवारण के लिए परिवार, विद्यालय तथा शिक्षक, स्वस्थ मनोरंजन के साधनों में वृद्धि एवं सामुदायिक संगठन महत्वपूर्ण भूमिका निभा सकते हैं।

संदर्भ :

1. C. Reckless, Handbook of Practical Suggestions for the treatment of Adult and Juvenile Deliquent Offenders, Govt. of India, 1956.
2. Healy and Bronner, Delinquents and Criminals, Their Making and Unmaking, Macmillan, New York, 1926.
3. K. S. Shukla, "Sociology of Deviant Behaviour" in ICSSR Survey of Research in Sociology and Social Antrhopology 1969-1979.
4. डॉ. एम. एम. लवानिया एवं शशि के. जैन, अपराधशास्त्र, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर 2007–08.
5. डॉ. धर्मवीर महाजन एवं डॉ. कमलेश महाजन, अपराध एवं समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2006.

6. डॉ. डी. एस. बघेल, अपराधशास्त्र, विवेक प्रकाशन, जवाहरनगर दिल्ली, ग्यारहवाँ संस्करण, 2013.
7. राम आहूजा, सामाजिक समस्याएँ, रावत पब्लिकेशन, जयपुर/नई दिल्ली, 2000.
8. ग्रेबिल मिस्ट्रॉल, द्वारा डॉ. बृन्दा सिंह, बाल अपराध, पंचशील प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2007.

***

आधुनिकीकरण एवं ग्रामीण जीवन क बदलते स्वरूप का समाजशास्त्रीय विश्लेषण

*डॉ. मंजू रॉय**

आजादी के बाद से ही भारत कल्याणकारी राज्य रहा है और इसका प्राथमिक उदेश्य लोगों का कल्याण करना है। नीतियां और कार्यक्रम ग्रामीण विकास के उद्देश्य से बनाए गए हैं। ग्रामीण गरीबी के उन्मूलन के लिये नीतियाँ और कार्यक्रम बनाना भारत में नियोजित विकास का मुख्य उद्देश्य रहा है। यह महसूस किया गया है कि गरीबी उन्मूलन की सतत रणनीति का आधार विकास प्रक्रिया में उत्पादक रोजगार अवसरों को बढ़ाना है। गरीबी, अज्ञानता, बीमारी तथा अवसरों की असमानता एवं बेहतर और उच्च गुणवता इसका मूल आधार है; जिस पर विकास की योजनाएं बनाई जाती है।

ग्रामीण विकास का अर्थ जनता की आर्थिक दशा में सुधार सामाजिक परिवर्तन भी शामिल है। ग्रामीण को आर्थिक विकास की बेहतर संभावनाएं प्रदान करने के लिये, ग्रामीण विकास कार्यक्रमों में लोगों की भागीदारी बढ़ाने, नियेाजन विकेंद्रीकरण, बेहतर भूमि सुधार तथा आसानी से ऋण उपलब्धता की परिकल्पना की गई है। प्रारंभ में विकास का मुख्य बल कृषि, उद्योग, संचार, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा संबंद्ध क्षेत्रों पर रहा, लेकिन बाद में यह महसूस किया गया कि त्वरित विकास तभी हो सकता हैं, जब सरकारी प्रयासों की पूर्ति निचले स्तर पर लोगो की प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष भागीदारी से हो। इसी के अनुरूप 1952 में योजना आयेाग के अंतर्गत सामुदायिक परियोजना प्रशासन नामक संगठन की स्थापना की गई । इसका उदेश्य सामुदायिक विकास से संबंधित कार्यक्रमों को कार्यान्वित करना था। सामुदायिक विकास कार्यक्रम का शुभारंभ 2 अक्टूबर, 1952 को किया गया। यह ग्रामीण विकास के इतिहास में मील का पत्थर था। इस कार्यक्रम में अनेक परिवर्तन हुए और इसे अनेक मंत्रालयों द्वारा देखा गया। अक्टूबर 1974 में खाद्य एवं कृषि मंत्रालय के रूप में ग्रामीण विकास विभाग एक खंड अस्तित्व में आया। 18 अगस्त 1979 को इस विभाग का दर्जा बढ़ाकर इसे ग्रामीण पुनर्निर्माण मंत्रालय नाम दिया गया। फिर इसका नया नामकरण हुआ – ग्रामीण विकास मंत्रालय। यह नाम की कृषि एवं ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत बदला गया। बाद मे सितंबर 1985 में इसका नाम कृषि मंत्रालय ग्रामीण विकास मंत्रालय के अंतर्गत बदला गया। बाद में सितंबर 1985 में इसका नाम कृषि मंत्रालय कर दिया गया। 5 जुलाई 1991 को विभाग को ग्रामीण विकास मंत्रालय का दर्जा दिया गया। 1992 में एक अन्य विभाग – बंजर भूमि विकास का गठन किया। मार्च 1995 में मंत्रालय का नया नाम ग्रामीण क्षेत्र तथा रोजगार मंत्रालय रखा गया। इसमें तीन नये विभाग – ग्रामीण रोजगार तथा गरीबी उन्मूलन, ग्रामीण विकास तथा बंजर भूमि विकास रखे गए।

ग्रामीण सामज में सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, धार्मिक और राजनैतिक जीवन का कोई भी पक्ष ऐसा नहीं बचा है जिसमें बदलाव नहीं आया हो। जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में ग्रामीण समाज में होने वाले सामाजिक परितर्वन को निम्नलिखित रूप से देखा जा सकता है –

1. परिवार में परिवर्तन – ग्रामीण समाज के वर्तमान सामाजिक जीवन में परिवार की संरचना कार्यों और महत्व मे तेजी से बदलाव आ रहा है। अब परिवार के जीवन पर किसी एक व्यक्ति का एकाधिकार नहीं रहा गया। बल्कि समानता और स्वतंत्रता की भावना बढ़ने से भी सदस्य समान अधिकारों की मांग करने लगे हैं आज सामाजिक नियंत्रण का सबसे शक्तिशाली साधन परिवार नहीं रहा वरण व्यक्ति अपनी ज्यादा जरूरतों को परिवार के बाहर ही पूरा कर लेता है। परिवार में बच्चों का पालन–पोषण तथा शिक्षा जेसे महत्वपूर्ण कार्य भी दूसरी संस्थाओं को हस्तान्तरित हो रहे है।

2. संयुक्त परिवार का विघटन – भारत में हजारों वर्षों से संयुक्त परिवार प्रभावशाली बने रहने के बाद आज विघटित हो रहे हैं। आज विभिन्न परिवर्तनकारी कारकों के प्रभाव के फलस्वरूप संयुक्त परिवारों की संख्या में काफी गिरावट आई है और दूसरी तरफ जो संयुक्त परिवार बचे भी है वे परम्परागत

---

* पीएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

आर्दशों से बहुत दूर हो गये हैं। शिक्षा, विवाह और रोज की आवश्यकताओं के क्षेत्र में सदस्यों के अधिकारों में वृद्धि हुई है। धार्मिक कार्यों को पूरा करना परिवार का मुख्य दायित्व नहीं रहा। आज स्त्रियों की स्थिति में काफी सुधार हुआ है।

3. बदलती हुई वैवाहिक मान्यताएँ – भारतीय समाज में विवाह परम्परागत रूप से पूर्णतया एक धार्मिक संस्कार था और प्रत्येक व्यक्ति के विवाह से सम्बन्धित अनेक आदेशों और निषेधों का पालन करना अनिवार्य था। बाल विवाह, दहेज, विवाह–विच्छेद पर प्रतिबन्ध, विधवा पुनर्विवाह पर नियंत्रण तथा अन्तर्जातीय विवाह के प्रति कठोर विचार भारतीय सामाजिक व्यवस्था की विशेषताएं रही है। ग्रामीण समाज में आज इन सभी मान्यताओं में वर्तमान समय में तेजी से परिवर्तन हुआ है। आज शिक्षा के विकास और तार्किक दृष्टिकोण के कारण बाल विवाह की समस्या खत्म हो चुकी है। विधवा स्त्रियों का पुन र्विवाह करना किसी प्रकार की अनैतिकता के रूप में नहीं देखा जाता है।

4. सामाजिक स्तरीकरण के रूप में परिवर्तन – वर्षों से भारतीय सामाजिक व्यवस्था में व्यक्ति की सामाजिक स्थिति उनकी योग्यता और कुशलता से निर्धारित न होकर उसकी जाति और वंश से निर्धारित होती थी। प्रत्येक समाज की व्यवस्थाओं में कुछ व्यक्तियों को अधिक और कुछ को तुलनात्मक रूप से कम अधिकार मिलते है। व्यक्ति को पेशे में परिवर्तन अथवा अन्तर्जातीय विवाह के द्वार अपनी स्थिति में परिवर्तन करने की भी कोई छूट नहीं थी। इस प्रकार भारत में सामाजिक स्तरीकरण की प्रकृति और बन्द प्रकृति की थी। वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में प्रत्येक व्यक्ति को अपनी योग्यता दिखाने और अपनी कार्य क्षमता के अनुकूल पद प्राप्त करने का मौका मिला। धन का महत्व बढ़ने से व्यक्ति की सामाजिक स्थिति का निर्धारण उसकी आर्थिक सफलता के आधार पर होने लगा।

5. जाति–प्रथा में परिवर्तन – वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में जाति–प्रथा का रूप लगभग बिल्कुल ही बदल चुका है। आज ग्रामीण समाज में जाति–प्रथा में निम्नलिखित बदलाव आये है –

(a) जाति व्यवस्था की संरचना में परिवर्तन – आज ग्रामीण समाज में सामाजिक व्यवस्था में ब्राह्मणों के साथ–साथ अन्य जातियों का भी वर्चस्व बढ़ा है और अब कोई भी जाति अपने को दूसरी जाति से नीचा मानने के लिए तैयार नहीं है। प्रत्येक जाति अपनी सामाजिक स्थिति को ऊँचा उठाने और स्वयं को उच्च जातियों के समकक्ष दिखाने की कोशिश कर रही है।

(b) जातिगत प्रतिबन्धों में परिवर्तन – ग्रामीण समाज में अब भोजन सामाजिक सहवास और पेशों से सम्बन्धित जाति–प्रथा के प्रतिबन्धों में शिथिलता आ गई है। परिवर्तित समय में होटलों, जलपान गृहों और सांस्कृतिक आयोजनों में सभी जातियों के व्यक्ति सभी जातियों के व्यक्तियों द्वारा बनाया हुआ भोजन बड़ी रूची के साथ खाते है। रेलों बसों और मेलों में भी सभी जातियों के व्यक्ति एक दूसरे के सम्पर्क में आते है। कोई भी पेशा आज किसी विशेष जाति के लिए सुरक्षित नहीं है। बल्कि सभी जातियों के व्यक्ति सभी व्यवसायों को करते है।

(c) जाति से सम्बन्धित मनोवृतियों में परिवर्तन – आज ग्रामीण समाज में जातिगत मनोवृतियों में तेजी से परिवर्तन हुआ है। अब न तो कोई व्यक्ति जन्म के आधार पर अपने को नीचा मानते के लिए तैयार है और न ही वह जाति व्यवस्था को ईश्वरीय शक्ति की रचना मानने में विश्वास करता है।

6. स्त्रियों की स्थिति में सुधार – ग्रामीण समाज में स्त्रियों की स्थिति में सुधार भारतीय सामाजिक जीवन में होने वाला एक महत्वपूर्ण परिवर्तन है। आज स्त्रियाँ पर्दे से बाहर निकलकर शिक्षा के क्षेत्र में तेजी से आगे बढ़ रही है। अब महिलाएं पुरुष की दया पर आश्रित नहीं है। विवाह के प्रति स्त्रियों के दृष्टिकोण में व्यापक परिवर्तन हुआ है। अब वे संयुक्त परिवार में रहकर अपनी सारी इच्छाओं को त्यागने के लिए तैयार नहीं है। बल्कि एकाकी परिवारों की स्थापना करके सभी प्रकार के अधिकारों की मांग करती हैं। आज ग्रामीण समाज की महिलाओं पर टी.वी. धारावाहिकों का स्पष्ट प्रभाव देखने को मिल रहा है। ग्रामीण राजनीति में भी महिलाओं की सहभागिता बढ़ी है।

7. नैतिकता के बदलते हुए प्रतिमान – भारतीय ग्रामीण समाज में नैतिकता के स्तर में व्यापक परिवर्तन हुआ है। नैतिकता का अर्थ उचित और अनुचित की धारणा से है और यही विचार सामाजिक सम्बन्धों

के रूप को प्रभावित करती है। हमारे समाज में परम्परागत रूप से स्त्री–पुरुषों के बीच नियंत्रित सम्पर्क, सामूहिकता धार्मिक आचरण और समूह कल्याण की भावना नैतिकता के मुख्य आधार रहे है। वर्तमान समय में इन सभी के प्रति व्यक्तियों के दृष्टिकोण में ही परिवर्तन नही हुआ है बल्कि नैतिकता के एक दोहरे स्तर का भी विकास हुआ है।

8. शिक्षा में परिवर्तन – स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद ग्रामीण समाज में शिक्षा के प्रसार और शिक्षा के प्रति व्यक्तियों की मनोवृतियों में तीव्र परिवर्तन हुआ है। आज सभी व्यक्ति शिक्षा को जीवन का अनिवार्य अंग समझते है और बहुत हद तक व्यक्तित्व के निर्माण के लिए शिक्षा को जरूरी समझा जाने लगा है। शिक्षा से सामाजिक भेदभाव, छुआछूत, रूढ़ियों और अन्धविश्वासों के प्रभाव में कमी आयी है तथा स्वस्थ समाज के निर्माण में यह सहायक सिद्ध हो रही है। इस प्रकार शिक्षा में होने वाले बदलाव भविष्य में सामाजिक परिवर्तन की रफ्तार को और अधिक तेज होने का इशारा करते हैं।

9. मनोरंजन के नवीन साधन – भारत में सामाजिक परिवर्तन के क्षेत्र में मनोरंजन का महत्वपूर्ण स्थान है। आज से कुछ समय पहले तक परिवार मनोरंजन का केन्द्रीय स्थान था जिसमें समाज के सांस्कृतिक मूल्यों के अनुसार व्यक्तियों का मनोरंजन होता था। वर्तमान समय में ग्रामीण समाज के लोगों के मनोरंजन का यह काम सिनेमा, क्लबों, होटल और व्यवसायिक प्रतिष्ठानों के द्वारा होने लगा।

10. सामाजिक गतिशीलता में वृद्धि – ग्रामीण समाज में सामाजिक गतिशीलता पहले की तुलना में बहुत ज्यादा बढ़ गई है। आज सिर्फ व्यक्ति की सामाजिक स्थिति और आर्थिक स्तर में ही परिवर्तन नहीं आया है बल्कि कई ऐसे समूहों को भी काफी प्रतिष्ठा मिली है जिन्हें जाति व्यवस्था के प्रभाव से पहले बहुत नीची नजर से देखा जाता था। वर्तमान समय में आर्थिक साधनों पर किसी वर्ग या समूह विशेष का ही अधिकार न होने के कारण ज्यादातर निम्न स्थिति के व्यक्ति उच्च स्थितियों में और उच्च स्थिति के व्यक्ति निम्न स्थितियों में पहुंच जाता है।

11. सामाजिक सम्बन्धों में परिवर्तन – ग्रामीण समाज में भी आज सामाजिक सम्बन्धों के क्षेत्र में पहले की तुलना में व्यापक परिवर्तन हुआ है, लेकिन सम्बन्धों मे घनिष्ठता के बजाय औपचारिकता ज्यादा पनपी है। आज समाजिक सम्बन्धों की स्थापना का आधार अधिकतर संकुचित स्वार्थ होते जा रहे है।

12. सामाजिक नियंत्रण के साधनों में बदलाव – वर्तमान समय में ग्रामीण समाज में सामाजिक नियंत्रण के अनौपचारिक साधनों, जैसे – धर्म, नैतिकता प्रथा, परम्परा आदि का प्रभाव हुआ है। फलस्वरूप समाज में व्यवस्था बनाये रखने की दृष्टि से औपचारिक साधनों पुलिस अदालत जेल कानून इत्यादि का महत्व बढ़ा है। औपचारिक साधनों में बाहरी बाध्यता के डर से लोगों के व्यावहार को नियंत्रित करने की कोशिश की जाती है।

उपरोक्त तथ्यों से स्पष्ट होता है कि आज भारत में ग्रामीण समाज के हरेक क्षेत्र में मूलभूत परिवर्तन हुए है। इन क्षेत्रों के अलावा अन्य क्षेत्रों जैसे सांस्कृतिक, मानसिक और भौतिक जीवन में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन देखने को मिलते है। स्वतंत्रता प्राप्ति से पहले के भारतीय समाज की तुलना में वर्तमान समाज में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है।

संदर्भ :

- प्रेम नारायण पाण्डेय, ग्रामीण विकास एवं संरचनात्मक परिवर्तन, रावत पब्लकेशन, जयपुर, 2000
- डॉ. बी. एन. सिंह, ग्रामीण समाजशास्त्र, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2013
- डॉ. अमित अग्रवाल, भारत में ग्रामीण समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2006
- मोहन, अरविन्द, प्रवासी मजदूरों की पीड़ा, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1998.
- रंजीत गुहा : एलीमेंटरी आस्पेक्ट्स ऑफ पिजेन्ट इन्सरजेन्सी इन कोलोनियल इण्डिया : ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस दिल्ली – 1896
- ए. सी. गुप्ता : एग्रेरियन रिलेशन एण्ड अर्ली ब्रिटिश रूल इन इण्डिया 1801–33 : कलकत्ता, 1963

- ग्रामीण विकास : सिद्धान्त, नीतियाँ एवं प्रबन्ध, कटार सिंह, अनुवादक यतीन्द्र सिंह सिसोदिया, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 2011.
- Singh, Y. P.; Studies in Agricultural Communication in India, in K.N. Singh et al. (ed.); Towards a Dynamic Agriculture, New Delhi. Indian Agricultural Research Institute, 1970
- Sorokin, P. A., Social and Cultural Dynamics (4 Vols.), American Book Company, New York, 1937 – 1941.

***

भारत में महिलाओं की शिक्षा की स्थिति

*डॉ. प्रीति शरण**

किसी भी क्षेत्र में महिलाओं को एक खास मुकाम प्राप्त करना संघर्षों की एक लंबी गाथा का परिणाम होता है। शिक्षा का क्षेत्र भी ऐसा ही है, जहां कई सारे संघर्षों को झेलने के बाद महिलाओं ने उँचे पदों को प्राप्त कर तमाम मिथकों को तोड़ा है। हमारी सामाजिक संरचना ऐसी रही है कि महिलाओं को बराबरी का हक देना मुनासिब नहीं समझा गया, बावजूद इसके अपने बलबूते महिलाओं ने जो भी सफलता प्राप्त की, जिस पद को भी सुशोभित किया, वहाँ उन्होंने अपनी एक अमिट छाप छोड़ी है, एक उदाहरण प्रस्तुत किया है, जो अन्य के लिए प्रेरणादायी साबित हो सकती है।

उच्च शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी भी लगातार बढ़ती जा रही है। साहित्य जगत से लेकर राजनीति विज्ञान, गणित, दर्शन, मनोविज्ञान सहित कई विषयों में पुरूषों के समान महिलाओं ने भी सशक्त रूप से अपनी उपस्थिति दर्ज करायी है। तमाम वर्जनाओं व स्थापित मान्यताओं को तोड़ते हुए उन्होंने उच्च शिक्षा के क्षेत्र में अलख जगाए रखा है। बिहार में भी ऐसी महिलाओं की कमी नहीं है जिन्होंने उच्च शिक्षा में आकर अलग – अलग पदों को सुशोभित कर अपने महिला होने की सार्थकता साबित की है तो पुरूष समाज को एक चुनौती भी पेश की है। विश्वविद्यालय के विभिन्न विभागों महाविद्यालयों व उच्च विद्यालयों में कार्यरत व अवकाश प्राप्त शिक्षिकाएँ इस श्रेणी में जाती हैं। जिन्होंने ज्ञान बांटने के साथ – साथ अनुशासन स्थापित करने में भी एक मिशाल कायम की है।

19वीं शताब्दी में भारत में बौद्धिक और सांस्कृतिक हलचलें अँगड़ाई ले रही थीं, जिसको सामाजिक क्षेत्र में भी महसूस किया जाने लगा था। यह बौद्धिक लहर ब्रिटिश साम्राज्य के विस्तार और इसके साथ औपनिवेशिक संस्कृति और विचारधारा के प्रतिक्रियास्वरूप उठी। विदेशी संस्कृति के फैलाव से भारतीयों के लिए यह जरूरी हो गया था कि वे आत्मनिरीक्षण करें और अपनी संस्कृति और संस्थाओं की शक्ति और कमजोरियों की छानबीन करें। इसी क्रम में उनका ध्यान महिलाओं के अधःपतन पर गया। उन्होनें उनकी सामाजिक स्थिति का अवलोकन किया, उनके कारणों को ढूढ़ा तथा उनकी स्थिति को सुदृढ़ करने के लिए सुधार आन्दोलनों का सूत्रपात किया।

भारत की प्राचीनतम सभ्यता सिन्धु सभ्यता एवं वैदिक सभ्यता में महिलाओं को आदरपूर्ण अधिकार प्राप्त था। उनके धार्मिक तथा सामाजिक अधिकार पुरूषों के ही समान थे। शतपथ ब्राह्मण में स्त्री को पुरूष की अर्धांगिनी बताया गया है। बशिष्ट का मानना है कि आचार्य का गौरव दस उपाध्यायों से बढ़कर होता है, पिता का गौरव सौ आचार्यों से बढ़कर होता है किन्तु माता का गौरव एक हजार पिताओं से भी बढ़कर होता है। महाभारत में यह स्पष्ट लिखा है कि स्त्रियाँ समृद्धि की देवी हैं। समृद्धि चाहने वाले व्यक्ति को उनका सम्मान करना चाहिए। विधि ग्रंथकार मनु का मत है कि जहाँ स्त्रियों की पूजा होती है वहाँ देवता रमण करते हैं तथा जहाँ स्त्रियों की पूजा नहीं होती है वहाँ सभी कार्य व्यर्थ हो जाते हैं। इसी प्रकार कालिदास कहते हैं कि गृहिणी, सम्मति देनेवाली सहचरी तथा एकान्त की सखा के रूप में होती है। इन सब मंतव्यो के बावजूद सूत्रकाल में स्त्रियों की दशा पतन्नोमुख हो गई। कन्या का जन्म अभीष्ट नहीं था। स्त्रियों की स्वतंत्रता पर प्रतिबंध लगाया गया। बशिष्ट ने उद्घोषणा की कि 'स्त्री स्वतंत्रता के योग्य नहीं है। बचपन में पिता, युवावस्था में पति तथा वृद्धावस्था में पुत्र उनकी रक्षा करते हैं। मनु तो यहाँ तक कह गये कि पति के दुराचारी तथा चरित्रहीन होने की दशा में भी पत्नी का कर्तव्य है कि वह देवता की तरह उसकी पूजा करें। स्त्रियों का उपनयन संस्कार बन्द कर दिया गया। विवाह को ही उपनयन मान लिया गया। स्त्री को शुद्र और मदिरा के समकक्ष मान लिया गया। स्त्री द्वारा जल स्पर्श अशुद्ध घोषित किया गया। उसका जूठा खाना और

---

* पीएच. डी. (गृह विज्ञान),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

उसकी संगति को बुरा माना गया तथा स्त्री हत्या करने वाले को शुद्र हत्या का व्रत करने को कहा गया। ऐसा लगता है कि रोम में वर्ग विभाजित पितृसत्तात्मक समाज में स्त्रियों और दासों को एक ही श्रेणी में रखा जाता था। उसी प्रकार भारत में स्त्रियों और शुद्रों को भी एक ही श्रेणी में रखा गया।

वैदिक साहित्य में कई ऐसी स्त्रियों का उल्लेख मिलता है जिन्होनें मंत्रों की रचना की थी। याज्ञवल्क्य की पत्नी मैत्रेयी तथा गार्गी को अत्यंत विदुषी बताया गया है। विश्ंववरा को ब्रह्मवादिनी और मंत्रद्रष्टी कहा गया है। कुछ ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं जहाँ पिता विदुषी एवं योग्य कन्याओं की प्राप्ति के लिए विशेष धार्मिक कृत्यों का अनुष्ठान करते थे। कन्या को पुत्र के समान शैक्षणिक अधिकार एवं सुविधायें प्रदान की गई थी। गुप्तकाल में महिलाएँ शिक्षा के अधिकार से वंचित कर दी गई। महिला अध्यापिकाओं, दार्शनिकों और चिकित्सकों का उल्लेख प्राचीन साहित्य में ही मिलता है लेकिन उनकी संख्या अधिक नहीं है।

एक बार नेपोलियन ने कहा, 'मुझे एक सौ शिक्षित महिलाएँ दो और मैं तुम्हें एक अच्छा और मजबूत राष्ट्र दूंगा।'

हमारे भारतीय समाज में औरतें कई रूतबों का आनन्द उठाती हैं। वह एक मां है, एक बेटी, एक बहन और एक परिवार की मुक्तिदाता है। वह आत्मत्याग का प्रतीत है। यदि एक औरत शिक्षित है, तो वह राष्ट्र के लिए महान या बहुत बड़ा फायदा करेगी। एक बच्चा अपनी मां से नागरिकता का सबसे अच्छा पाठ पढ़ता है।

स्त्री शिक्षा को पुरूष शिक्षा से अधिक महत्व देते हुए कोठारी कमीशन ने विचार दिया है कि –

'मानव स्रोतों के पूरे विकास के लिए, मनुष्यों के सुधार और बचपन के प्रभावशाली सालों में बच्चों के निर्माण में, एक औरत की शिक्षा पुरूष की शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है।'

भारत में स्वतंत्रता से पहले स्त्री शिक्षा पर कोई ध्यान नहीं दिया जाता था। उस समय महिलाओं को घर की चार–दीवारी में कैद रख जाता था। उनका काम केवल घरेलू काम–काज तक ही सीमित था। यहाँ तक कि वे 'पर्दे' में रहती थीं। भिन्न–भिन्न समय पर औरत और उसकी शिक्षा ने भिन्न–भिन्न रूप दिखाए।

आजादी प्राप्त करने के बाद इस बात पर जोर दिया गया कि समय और राष्ट्र के सुधार के लिए औरतों को भी आगे आना चाहिए। ये भी सुझाव दिए गए कि औरतों को देश की मुख्य धारा में आना चाहिए और उन्हें सामाजिक, राजनैतिक, प्रशासनिक कार्य करने चाहिए। कई आयोगों और कमेटियों ने इसके लिए कई सुझाव दिए।

स्त्री शिक्षा में राष्ट्रीय कमेटी का सुझाव – यह कमेटी शिक्षा मन्त्रालय द्वारा 1958 में गठित की गई। यह कमेटी 'श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख' की अध्यक्षता के अधीन गठित की गई थी। इस आयोग ने स्त्री शिक्षा के विकास के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए–

- पुरूष शिक्षा और स्त्री शिक्षा के बीच जो दूरी है उसे जितनी जल्दी हो सके समाप्त कर देना चाहिए।
- लड़कियों और स्त्रियों की शिक्षा के लिए राजकीय और राष्ट्रीय कौंसिल बनाई जानी चाहिए।

किसी भी देश में परिवर्तन या क्रांति में शिक्षा शिक्षा अपनी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। क्योंकि बच्चा जहाँ देश का भविष्य है वहीं स्त्री उसकी पहली शिक्षिका, पेशिका और दिग्दर्शिका है। लेकिन देश में तमाम प्रयासों के बावजूद ग्रामीण क्षेत्र के बालिकाओं की स्थिति दयनीय है।

आज भी समाज में शिक्षा के क्षेत्र में उच्च लैंगिक अंतर बना हुआ है। लेकिन शिक्षा के मामले में बालिकाएँ अब बालकों से ज्यादा दूर नहीं रही है। हालाकि वर्तमान समय में आधुनिकीकरण का का प्रभाव बच्चे के अभिभावक पर भी पूर्ण रूप से पड़े हैं। आज लैंगिक अतंर पहले से काफी कम हुआ है और अभिभावकों की मानसिकता में बदलाव हुआ है। प्रत्येक अभिभावक आज बच्चे को पढ़ाने की लालसा रखने लगे हैं। लेकिन गरीबी, सामाजिक कुरीतियाँ, सांस्कृतिक विसंगतियाँ आज शिक्षा में उच्च लैंगिक अंतर के प्रमुख कारण बन चुके हैं। पंचवर्षीय योजना के लिए योजनाबंदी आयोग या कमीशन को स्त्री–शक्ति की जरूरतों का अनुमान लगाना चाहिए।

- पिछड़े क्षेत्रों से संबंधित लड़कियों को मुक्त यातायात और रिहायत की सुविधा उपलब्ध करानी चाहिए।
- वजीफे का प्रबंध होना चाहिए।
- शिक्षा के प्रचार के कार्यक्रम होने चाहिए।
- स्त्री शिक्षा को बल देने के लिए स्त्री शिक्षा के विषय पर भाषण प्रतियोगिताएँ करवाई जानी चाहिए।
- अर्द्ध–सरकारी संगठन, निजी संस्थाओं, अध्यापक संगठन और जनता आदि को सहयोग देना चाहिए।
- लड़कियों की शिक्षा का मुख्य लक्ष्य विश्वव्यापी भर्ती होना चाहिए। यह लक्ष्य 1976 से 6–11 वर्ष के आयुवर्ग की लड़कियों में होना चाहिए। 1981 से यह 11–14 वर्ष की आयु वर्ग में है। इस आयोग ने कई दूसरे सुझाव भी दिए जैसे –
- लड़कियों के लिए तकनीकी संस्थाओं का विकास।

स्त्री शिक्षा के लिए राष्ट्रीय कौंसिल :– स्त्री शिक्षा के राष्ट्रीय आयोग का महत्वपूर्ण नतीजा यह हुआ कि 1959 में स्त्री शिक्षा के लिए शिक्षा मंत्रालय द्वारा (National council for Women Education) बनाया गया।

इस कौंसिल के मुख्य कार्य इस प्रकार है–

- स्त्री शिक्षा के क्षेत्र में समय–समय पर हुई तरक्की के बारे में बताना।
- स्त्री शिक्षा से संबंधित खोज का कार्य और भाषायी प्रतियोगिताओं के बारे में सुझाव देना।
- सरकार को लड़कियों की स्कूली शिक्षा और कॉलेज स्तर की शिक्षा के बारे में सुझाव देना।
- स्त्री शिक्षा के विस्तार और सुधार के लिए वित्ती, कार्यक्रम और निगम आदि बनाना और सुझाव देना।
- जनता को स्त्री शिक्षा के बारे में जागरूक करवाने के लिए विभिन्न साधनों के बारे में सुझाव देना।

श्रीमती हंसा मेहता कमेटी के सुझाव :– लड़के और लड़कियों की प्रत्येक स्तर पर शिक्षा से संबंधित कई मुश्किलें थी। इन कठिनाईयों का अध्ययन करने के लिए स्त्री शिक्षा की राष्ट्रीय कौंसिल "National Council for Women Education" ने श्रीमती हंसा मेहता कमेटी गठित की। इस कमेटी ने लड़के और लड़कियों की पढ़ाई के बीच में असमानता को दूर करने के लिए निम्नलिखित सुझाव दिए –

1. **प्राथमिक स्तर पर** (At Primary Stage) – लड़के और लड़कियों की पढ़ाई में कोई अंतर नहीं होना चाहिए। साधारण सुई का काम, संगीत और शिक्षा लड़के और लड़कियों दोनों के लिए शुरू होने चाहिए।

2. **मिडिल स्तर पर** (At Middle Stage) – दोनों स्तरों के समान पाठयक्रम के आधार पर माध्यमिक शिक्षा स्तर पर सामान्य शिक्षा क्रम से कम कोर्स उपलब्ध करवाने चाहिए। यहाँ तक कि गृह–विज्ञापन भी इस स्तर पर शुरू करना चाहिए। माध्यमिक शिक्षा स्तर पर वोकेशनल कोर्स के लिए कोई अनिवार्यता नहीं होनी चाहिए। स्थानीय जरूरतों के अनुसार शिल्पकला की शिक्षा का प्रबंध होना चाहिए। एक से ज्यादा शिल्पकला की शिक्षा का प्रबंध होना चाहिए।

3. **माध्यमिक स्तर पर** (Secondary Stage) – इस स्तर पर शिल्पकला और हस्तकला को सामान्य कोर्स का मुख्य विषय बनाना चाहिए। गृह विज्ञान, फाइन–आर्ट्स, घर की सजावट (Interior Decoration) आदि जो कि लड़कियों में काफी चर्चित है, को माध्यमिक शिक्षा स्तर पर शुरू करना चाहिए। इन कोर्सों को लागू करते समय लड़कियों के लिए यह विषय लेने अनिवार्य नहीं होने चाहिए। लड़कियों को गणित तथा विज्ञान विषयों की पढ़ाई के लिए प्रोत्साहित करना चाहिए। यह किशोरावस्था होती है जिसमें सैक्स ऐजुकेशन योग्य या अच्छी तरह से सिखलाई प्राप्त अध्यापाकों द्वारा दी जानी चाहिए।

4. यूनीवर्सिटी स्तर (University State) – लड़कियों तथा स्त्रियों की मुख्य जरूरतों को ध्यान में रखते हुए यूनीवर्सिटी में विभिन्न कोर्स शुरू होने चाहिए। यूनिवर्सिटी में यह कोर्स समय–समय पर होने चाहिए ताकि लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ अपनी विशेष जरूरतें पूरी कर सकें।

वर्तमान समय में भी ग्रामीण समाज में काफी परिवार गरीबी रेखा से नीचे गुजर–बसर कर रहे हैं। आँकड़ों में देश की लगभग 26 करोड़ जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन–यापन कर रही है। गरीबी की स्थिति में परिवार शिक्षा पर अधिक ध्यान संकेन्द्रित नहीं कर पाते हैं। यदि किसी भी कारण से शिक्षा की ओर उन्मुख होने के अवसर यदि उन्हें मिलते हैं तो उनकी प्राथमिकता बालकों की ही होती है। गरीब परिवारों परिवारों में जहाँ रोजी–रोटी का उचित प्रबन्ध नहीं है तो बालिकाओं को शिक्षा देने का प्रश्न ही नहीं उठता है। ऐसे में माता–पिता चाहते हैं कि बच्चे चाहे वे बालक हो या बालिकाएँ कुछ न कुछ कमा कर लायें ओर परिवार की आय में कुछ न कुछ योगदान करें। हालाकि परिवार की आय में उन बच्चों की आय का योगदान वे शिक्षा का परित्याग करके ही कर सकते हैं। सामाजिक–सांस्कृतिक विसंगतियों तथा कुरीतियों के बने रहते हुए भी बालिकाओं की शिक्षा व्यवस्था से जुड़ पाने में कठिनाई होती है और दो–चार जमात के बाद पढ़ाई छोड़ देती है और शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुँच ही नहीं पाती। इन विसंगतियों तथा कुरीतियों के चलते माता–पिता बालकों को तो घर के अन्य खर्चे काटकर भी यहाँ तक की कर्ज भी लेना पड़े तो लेते हैं और पढ़ाते हैं। घर से दूर भेजकर पढ़ाई की व्यवस्था करते हैं। परंतु बालिकाओं कितनी भी योग्य हो उन्हें पढ़ाने से वंचित रखा जाता है। जबकि बालक पढ़ना नहीं चाहते हैं तो भी उन्हें पढ़ाई के लिए कहा जाता है लेकिन अगर बालिकाएँ पढ़ना चाहती है तो उन्हें रोक दिया जाता है। पुरूष प्रधान मानसिकतावाले कुछ परिवार आज भी यह सोचते हैं कि बालिका पराया धन है इसलिए उनकी शिक्षा पर खर्च करना लाभहीन निवेश है जिसका फायदा घरवालों को नहीं मिलेगा। दूसरे यह भी सोचते हैं कि यदि बालिकाओं को अधिक पढ़ाया–लिखाया गया तो उन्हें वर ही अधिक पढ़ा–लिखा ढूँढ़ना होगा और अधिक पढ़ा–लिखा वर तभी मिल पायेगा जब अच्छा खासा दहेज दिया जाये।

इसके अलावे पुरूष प्रधान मानसिकतावाले कुछ परिवार बालिकाओं को न पढ़ाने के पीछे या अधिक नहीं पढ़ाने के पीछे तर्क देते भी नहीं अघाते कि बालिका के लिए शिक्षा की कोई आवश्यकता नहीं है आखिकार शादी के बाद उसे घर ही संभालना है। ऐसे में उसे घर के काम–काज में पारंगत होने की अधिक आवश्यकता है और घर के कामकाज में वह बिना पढ़े–लिखे भी पारंगत हो सकती है ताकि शादी के बाद जब वह अपनी ससुराल जाये तो एक कुशल गृहणी साबित हो सके। कुछ परिवारों में परिवार का हर एक सदस्य बालिकाओं से यह अपेक्षा करता है कि वह परिवार के छोटे बच्चों की देखभाल करेगी, पानी चारा लायेगी, गोबर इकट्ठा करेगी और घर के अन्य छोटे बड़े कार्य करेगी। ऐसे में वह शिक्षा संस्थानों में पढ़ने के लिए कैसे जा पायेगी या शिक्षा के लिए कैसे समय निकाल पायेगी। आज भी बहुत से अंधविश्वासी रूढ़िवादी हिन्दू परिवारों में बालिकाएँ पर्दा प्रथा और अन्य बंदिशों के रहते पढ़ ही नहीं पाती या शिक्षा के उच्च स्तरों तक पहुँच ही नहीं पाती।

संदर्भ :

- समकालीन भारतीय समाज : एक समाजशास्त्रीय परिदृश्य – नदीम हसनैन, भारत बुक सेन्टर, 17 अशोक मार्ग लखनऊ, प्रथम संस्करण वर्ष – 2004
- भारतीय समाज के परिप्रेक्ष्य – धर्मवीर महाजन एवं कमलेश महाजन, विवेक प्रकाशन, जवाहर नगर नई दिल्ली, नवीनतम संस्करण – 2006
- भारतीय नारी : संघर्ष और मुक्ति – वृंदा करात, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 2000

- भारतीय महिला सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ. राजकुमार, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2003
- भारतीय महिलायें : दशा एवं दिशा – सुभाष शर्मा, शताब्दी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2010
- महिला सशक्तिकरण – कमलेश कुमार गुप्ता, बुक इन्कलेव, जैन भवन, जयपुर, 2005
- भारतीय समाज एक विस्तृत अध्ययन – लवानिया एवं जैन, रिसर्च पब्लिकेशन, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2001

***

संताल हूल

*सोनाली मंडल**

ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन से आजादी की लड़ाई में भारत के विभिन्न हिस्सों से अनेक समुदाय के लोगों ने अपने–अपने तरीके एवं स्तर से ब्रिटिश उपनिवेशवाद के विरूद्ध समय–समय पर संघर्ष किया एवं अपने शौर्य का परिचय दिया। आज हम मंगल पांडे, रानी लक्ष्मीबाई, कुँवर सिंह आदि के संबंध में किताबों में पढ़कर जानते है लेकिन कुछ ऐसे लोग एवं समुदाय है, जिन्होंने विदेशी आक्रांताओं से संघर्ष तो पूरे जीवटता के साथ किया परंतु इतिहास लेखन की क्रूरता के शिकार हो गए और इसका परिणाम यह हुआ कि सामान्य जनता उनसे लगभग अनभिज्ञ ही रही। झारखण्ड के जनजातियों ने व्यैक्तिक एवं सामाजिक दोनों स्तरों पर अंग्रेजों के विरूद्ध जंग छेड़ा था। सिदों और कान्हु, बिरसा मुंडा, नारायण मांझी, जतरा भगत आदि बहुत से स्वतंत्रता सेनानियों ने अपने पौरूष पराक्रम के मन–मस्तिष्क में आतंक का साम्राज्य स्थापित कर दिया। इसी क्रम में एक महत्वपूर्ण कड़ी है–संतालों का विद्रोह, जिसे 'संताल हुल' कहा जाता है।

संताल हुल एक महत्वपूर्ण घटना है लेकिन दुर्भाग्य वश इस संबंध में आज तक तथ्यपरक खोज को सामान्य जनता तक लाने का प्रयास नहीं किया गया। हालाकि मानव विज्ञान, इतिहास, राजनीतिशास्त्र, समाजशास्त्र, पत्रकारिता एवं जनजातीय अध्ययन; आदि विषयों के शोधार्थियों ने अपने शोध कार्य के लिए कुछ कार्य अवश्य किया है परन्तु उनके प्रयास भी इसे जन सामान्य तक पहुँचाने में बहुत हद तक असमर्थ हो रहे है। सरकारी दस्तावेजों में भागलपुर एवं संताल परगना के निकार्ड रूम में इस संबंध में जानकारियाँ पड़ी हुई है। बीच–बीच में कुछ अंग्रेज लेखकों, विद्वानों एवं प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा हुल के संबंध में येन–केन प्रकारेण लिख दिया गया है, जिसमें कई महत्वपूर्ण तथ्य अनुपस्थित पाया जाता है। एक भ्रम यह भी पैदा किया गया है कि दिक्कु लोगों द्वारा जब संताल जनजाति के सीधे–साधे पर अत्याचार किया जाने लगा एवं अमानवीय तरीके से उनका शेषण किया जाने लगा तो संतालों ने विद्रोह कर दिया। यहाँ पर यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि दिक्कु का अर्थ बाहरी लोगो से है, जो गैर जनजाति हैं इस विचारधारा के लोगों की मान्यता यह है कि संताल एवं अन्य जनजाति समुदाय के लोग यह चाहते थे कि सभी दिक्कुओं को झारखण्ड विशेषकर संताल परगना से भगा दे और इस क्षेत्र में संतालों का एक छत्र राजय कायम कर दें।

यह धारणा भ्रामक एवं निराधर है। सही अर्थो में 'संताल हुल' संताल जनजाति का पहला स्वतंत्रता संग्राम था, जो अंग्रेजों के विरूद्ध था। औपनिवेशिक व्यवस्था के शोषण से त्रस्त संताल जनजाति ने अंग्रेजों के विरूद्ध सशस्त्र विद्रोह किया। विद्रोह का मूल कारण यह था कि संतालों को जंगल आदि साफ कर निवास एवं कृषि कार्य के लिए जो जमीन अंग्रेजों ने दी थी, उस पर मालगुजारी लेने की बात नहीं थी परंतु जब संतालों ने कठिन परिश्रम से जमीन का कृषि योग्य बना लिया तो अंग्रेजो ने वादाखिलाफी कर जमीन पर मालगुजारी लगा दिया। मालगुजारी की राशि धीरे–धीरे बढ़ाई जाने लगी। परिणाम यह हुआ कि 1836–37 में इनकी जमीन की मालगुजारी जहाँ 2,611 रूपये थी, वह 1854–55 में बढ़कर 58033, रूपये हो गई। इससे आक्रोश की ज्वालामुखी शनैः शनैः फूटने की अवस्था में आ रही थी। शांत, निश्चल प्रकृति की गोद में रहने वाले संतालों के मन–मस्तिष्क में क्रांति की भावना उत्पन्न हो रही थी।

संताल हुल के कुछ अन्य कारण भी थे। संतालों से मालगुजारी वसूल करने के लिए अंग्रेज सरकार ने भागलपुर में एक अंग्रेज कलक्अर बहाल किया था, जिनकी सहायता के लिए कुछ तहसीलदार भी बहाल किए गए थे। ये तहसीलदार घुसखोर, उपद्रवी एवं बदमिजाज होते थे। संतालों के साथ ये बहुत बुरा व्यवहार करते थे। ये तहसीलदार, संतालों के फौजदारी मामलों में थानेदार भी

* NET (UGC) शोध छात्रा (इतिहास),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

होते थे। संताल चावल निर्मित हांड़ी एवं मुहए के शराब आदि नशीले पदार्थो के सेवन के आदि होते थे। फलतः धीरे–धीरे ये स्थानीय महाजनों एवं साहुकारों के चंगुल में फँसते चले गए। यदि कभी इन्हें अंग्रेज हाकिमों या महाजनों के विरूद्ध मुकदमा दायर करना होता था तो इन्हें जंगीपुर (बंगाल) जाना पड़ता था क्योंकि उनके सभी दीवानी एवं फौजदारी मुकदमों की सुनवाई वही होती थी। वहाँ भी इनके साथ अन्याय होता था क्योंकि मुकदमे की जाँच पड़ताल की जिम्मेवारी, लहसीलदारों पर छोड़ा जाता था, जो हमेशा इनके खिलाफ होते थे। लाचार एवं असहाय संताल जनजाति के लोग महाजनों के मारे तहसीलदारों के पास एवं तहसीलदारों के मारे महाजनों के पास गेन्द की तरह ठाकरे खाने लगे।

उस समय पाकुड़ एवं राजमहल में अंग्रेजों की कोठियाँ स्थापित हो चुकी थी। ये लोग भी संतालों पर बहुत अत्याचार करते थे, जिसने आग में घी का काम किया। इसी समय एक और ज्वलंत तात्कालीन कारण उपस्थित हो गया। पूर्वी इलाके में रेल लाइन बिछाई जा रही थी, जहाँ बहुत से संताल स्त्री–पुरूष काम करते थे। वहाँ संतालों की बहु–बेटियों की इज्जत लूटी जाती थी, जो इन्हें बर्दास्त नहीं था। इससे वे क्षुब्ध हो गए।

1855 के जून में विद्रोह की ज्वाला फूट पड़ी, जिसे नेतृत्व प्रदान किया–अदम्य एवं आश्चर्यजनक साहस से उत्साहित होकर भोगनाडीह के सिदों, कान्हु, चाँद एवं भैरव ने। इन चारों भाईयों ने अंग्रेजों के विरूद्ध संतालों को एकजुट होकर संघर्ष हेतु गाँव–गाँव घूमकर तैयार किया। इन्होंने बुद्धिमानी से इस बात को संताल समाज में फैलाया कि– ''हमारी इष्ट देवी ने हमें अंग्रेजी हुकुमत से स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए समस्त संताल जनजपति का नेतृत्व करने का आदेश दिया है। इतना ही नहीं मरांग बुरू (प्रथम ईश्वर) एवं जाहेर आयों (उनकी पत्नी) ने हम चारों भाईयों को सात बार विभिन्न रूपों में दर्शन दिया और निर्देश दिया कि स्वतंत्रता के इस संदेश को देश के कोने–कारेने में फैला दो ताकि सभी लोग भावी संकट का मुकाबला करने के लिए तैयार हो जाए, तभी तुम लोग पूर्व की भाँति स्वतंत्र रह सकोगे।''

चारों भाईयों एवं अन्य समर्थकों द्वारा इस तरह के प्रचार ने जादू का कार्य किया तथा सिदो एवं कान्हु संतालों के नेता मान लिए गए। उनका सम्मान समस्त संताल समाज में देवता या मसीहा की तरह का हो गया। शायद ही ऐसा रानी लक्ष्मीबाई, महराणा प्रताप, कुँवर सिंह को ऐसा जन समर्थन एवं मरने–मिटने के लिए तैयार सहयोग मिला हो, जैसा सिदो एवं कान्हु को मिला। उनके एक इशारे पर समस्त संताल समुदाय मरने–मिटने के लिए तैयार था। वे सच्चे जननायक बन गए। 30 जून 1855 को पूर्णिमा के दिन लगभग दस हजार संताल परंपरागत हथियार के साथ भोगनाडीह नामक गाँव में एकत्रित हुए और सिदो–कान्हु के नेतृत्व में स्वतंत्रता की घोषणा कर दी। घोषणा की गई– ''अब हम स्वतंत्र है। हमारे ऊपर अब कोई सरकार नहीं है, अब अपना राज स्थापित हो गया हैं।''

अपने राज्य की आर्थिक स्थिति को संतुलन में रखने के लिए उन्होंने यह भी घोषणा की– ''अब से हमलोग भैस के प्रतिहल पर चार आना और बैल के प्रति हल पर दो आना मालगुजारी अपने राजा को देंगे। कर्ज का सूद भी रूपये में सिर्फ एक पैसा प्रतिवर्ष देना पड़ेगा यही मरांग बुरू का आदेश है।''

इसके बाद उपस्थित लोग अंग्रेजी सरकार एवं उनके अधिकारियों, कर्मचारियों एवं महाजनों के विरूद्ध उग्र हो गए। किसी भी हालत में थानेदार, महाजन एवं अंग्रेजी सरकार को खदेड़ना उनका लक्ष्य हो गया। अपनी भूमि अपने लोग एवं अपनी संपत्ति की रक्षा एवं संचालन वे स्वयं करना चाहते थे। संतालों की विशाल सेना अंग्रेज सरकार थानेदारों एवं महाजनों को अपने क्षेत्र से उखाड़ फेकने की योजना से आगे बढ़ी। अंग्रेज, थानेदार, महाजन जहाँ–जहाँ रहते थे, वहाँ–वहाँ संतालों ने अस्त्र–शस्त्र से प्रलयंकर धावा बोला था। संतालों का युद्ध तकनीक बिल्कुल परंपरागत एवं सटीक थे। संताल फौज कई टुकड़ियों में विभक्त थी तथा प्रत्येक टुकड़ी संचालकों के अधीन थी। एक प्रमुख टुकड़ी फुदकपुर गाँव की ओर बढ़ी। फुदकपुर में कुछ निहले गोरे रहते थे, जिन्हें मार दिया गया। साहेबगंज में निहले गोरे बहुत अधिक संख्या में रहते थे। जब उन्हें मालूम हुआ कि संतालों की फौज उन्हें माने के लिए आ रही है, तब गंगा नदी को पार कर अपवनी जान बचाई। पैलापुर गाँव में भी कुछ अंग्रेज रहते थे।

संताल फौज ने उन पर भी हमला कर दिया। इस बीच अंग्रेजी सरकार तक विद्रोह की सुचना पहुँच चुकी थी। अंग्रेजों की पाँच चुकी थी। अंग्रेजों की पाँच सौ सैनिकों की टुकड़ी ने पैलापुर में संताल फौज का सामना किया लेकिन जीत संताल फॉज की ही हुई। लगभग 15 दिनों तक संताल फौज ने भागलपुर–कहलगाँव से लेकर राजमहल तथा तैतरिया से रानीगंज तक नियंत्रण कायम रखा। इसके बाद संताल फौज ने पाकुड़ एवं महेशपुर की ओर कूच किया। इस बीच धुलियान से अंग्रेज सैनिक संतालों का सामना करने के पवाकुड़ पहुँच चुके थे। यहाँ भी संताल फौज हावीं रही। इस प्रकार विजय प्राप्त करता हुआ संतालों की फौज महेशपुर तक पहुँच गई जहाँ सरकारी सैनिकों से उनका मुकाबला हुआ, जिससे संतालों को भारी क्षति उठानी पड़ी। अपनी शक्ति कम होते देख संताल फौज पुनः बरहेट पहुँची, और अपने फौजी संगठन को पुनः व्यवस्थित किया, जिसमें उन्हें गैर आदिवासियों का भी समर्थन मिला लेकिन बरसात के कारण उन्हें कई बाधाओं का सामना करना पड़ा। बरहेट पर पुनः अंग्रेजों का कब्जा हो गया। अंग्रेजों के दमन–चक्र एवं मौसम के कारण संताल फौज की शक्ति घटती जा रही थी लेकिन उन्होंने आत्मसमर्पण नहीं किया। मार्शल लॉ जारी किया गया तथा क्षेत्र में सरकारी सैनिकों को फैला दिया गया। ऐसी स्थिति में ही स्वतंत्रता के महान पुजारियों को दब जाना पड़ा। सरकार ने सिदो सहित अन्य संताल नेताओं को अपार जनसमूह के सामने पेड़ पर लटका कर फाँसी दे दी।

स्थानीय आकांक्षाओं को ध्यान में रखते हुए 1992 में संताल परगना क्षेत्र में संताल हुल के नेता एवं अमर शहीद सिदो एवं कान्हु के नाम पर दुमका में सिदो कान्हु मुर्मू विश्वविद्यालय की स्थापना की गई तथा कई स्थानों पर इनकी प्रतिमाएँ स्थापित की गई। आज आवश्यकता इस बात की है कि 1857 की क्रांति के पूर्व ही संताल समुदाय के लोगों ने ब्रिटिश औपनिवेशिक शासन का प्रतिरोध जिस अदम्य साहस एवं शौर्य के साथ किया था, उसे जन साधारण के बीच ले जाए।

संदर्भ :

- कल्शा डब्लू० जे० : ट्राईबल हेरिटेज, ल्यूटसवर्थ प्रेस लंदन, 1949
- विश्वास, पी० सी० : संथाल्स ऑफ दि संथाल परगना, भारतीय आदिम सेवक संघ, नई दिल्ली।
- डाल्टन, डैटी : डिस्क्रिप्टिव एथनोलॉजी ऑफ बंगाल, गर्वनेंट ऑफ बंगाल, प्रेस कलकत्ता, 1973 द्वितीय पुनमुद्रित
- बुचनन फ्रांसिस : एन एकाउन्ट ऑफ दि डिस्ट्रिक्ट ऑफ भागलपुर, 1810, भाग – 2, बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसाइटी
- चौधरी, ए० बी० : दि संथाल रिलीजन एण्ड रिचुअल्स, एशिया पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली – 1987
- चौधरी, पी० सी० राय : बिहार में 1857 विवरणिका पुनरीक्षण शाखा, पटना, 1959, छोट राई देशी मांझी 'रियल कथा' दि संथाल मिशन ऑफ दि नार्दन चर्चेज, 1938
- बॉल, वी० : ट्राईवल एण्ड पीजेंट लाईफ ईन नाईन्टीन सेन्चुरी, मोहन प्रेस, नई दिल्ली
- के० के० दत्ता : दि संथाल इन्सरेक्शन ऑफ 1855–57, युनिवर्सिटी ऑफ कलकत्ता, 1940

***

राष्ट्र विकास की भूमिका में राजनीतिक चिंतन की समीक्षा

*तोहिद आफताब**

विकास परिवर्तन से होता है। परंतु परिवर्तन सकारात्मक व नकारात्मक दोनों ही अवस्था में हो सकते हैं। परंतु विकास का संबंध नकारात्मकता से नहीं है वरन् किसी भी देश व समाज की बेहतरी की दिशा में होने वाला परिवर्तन ही वास्तव में विकास को प्रदर्शित करता है। विकास के माध्यम से कोई देश व समाज अपने उपलब्ध साधनों व क्षमता के आधार पर उत्तरोत्तर परिवर्तित होता है। वस्तुतः राष्ट्र विकास किया जा सकता है; जैसे आर्थिक विकास, राजनीतिक विकास, सामाजिक विकास, सामुदायिक विकास आदि। संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा विकास की परिभाषा दी गई है, उसके अनुसार ''विकास का तात्पर्य है–कि सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, संस्थाओं सेवाओं की बढ़ती क्षमता जो संसाधनों का प्रयोग। इस प्रकार से कहें ताकि जीवन स्तर में अनुकूल परिवर्तन आये।''

विश्व में स्थापित प्रत्येक राज व्यवस्थाओं के अपने रंग व शैलीयाँ होती हैं। इन रंगों में उस राज व्यवस्था के सामाजिक, धार्मिक, सवांस्कृतिक, आर्थिक अनेक प्रकार के रंग होते हैं। इसीलिये वह दूसरे किसी भी शासन व्यवस्था से अपनी अलग पहचान रखते है। भारतीय राज व्यवस्था भी इन से अलग नही है। भारत की विश्व में अपनी उच्च सभ्यता, संस्कृति, राजनीतिक दृष्टिकोण व चिंतन तथा अनेक व्यक्तिगत गुणों जैसे की उदारता, सहिष्णुता, समानता, सह–अस्तित्वता, परोपकारिता, दया, साहस, तथा वीरता आदि तत्व विश्व के दूसरे देशों से अलग पहचान बनाते हैं। अनेक बार ऐसा अवसर आया जब भारत के इन गुणों की परीक्षा का समय था; चाहे वह किसी विदेशी आक्रमण का समय हो या आंतरिक परिवर्तन का, भारत ने अपनी गरिमा को बनाये रखा। आज भारतीय अपनी सामाजिक सांस्कतिक पहचान को संजोये हुये विकास के मार्ग पर दिन प्रतिदिन अग्रसर हो रहे है।

राष्ट्र विकास

विकास परिवर्तन से होता है। परंतु परिवर्तन सकारात्मक व नकारात्मक दोनो हो सकते हैं। परंतु विकास का संबंध नकारात्मकता से नहीं है वरन् किसी भी देश व समाज की बेहतरी की दिशा में होने वाला परिवर्तन ही वास्तव में विकास को प्रदर्शित करता है। विकास के माध्यम से कोई देश व समाज अपने उपलब्ध साधनों व क्षमता के आधार पर उत्तरोत्तर परिवर्तित होता है। वस्तुतः राष्ट्र विकास किया जा सकता है; जैसे आर्थिक विकास राजनीतिक विकास सामाजिक विकास, सामुदायिक विकास आदि।

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा विकास की परिभाषा दी गई है। उसके अनुसार ''विकास का तात्पर्य है–कि सामाजिक व्यवस्था, सामाजिक संरचना, संस्थाओं सेवाओं की बढ़ती क्षमता जो संसाधनों का प्रयोग इस प्रकार से कहे ताकि जीवन स्तर में अनुकूल परिवर्तन आयें।'' भारत के राष्ट्रीय विकास पर राजनीतिक चिंतन और विचार धाराओं का प्रभाव पड़ा है। भारत में प्राचीन राजनीतिक चिंतन के अंतर्गत मनुस्म ति, रामायण, महाभारत जैसे धार्मिक ग्रंथ तथा कौटिल्य के द्वारा रचित अर्थशास्त्रा जैसे राजनीति व दंड नीति पर आधारित ग्रंथ का योगदान निहित है। इन ग्रंथों ने तात्कालिक समाज व राज्य को दिशा–निर्देशन दिया। तात्कालिक समाज शिक्षित, विकसित व जागृत किया।

स्वतंत्रता पूर्व ही भारत में आधुनिक राजनीतिक चिंतन का आर्विभाव हो चुका था। स्वतंत्रता पूर्व भारत की स्थिति कितनी दयनीय थी यह सभी को ज्ञात है। ऐसे भारत को पुनर्जाग त करने का कार्य अनेक महान विभूतियों द्वारा किया गया। 19वीं शताब्दी को भारतीय पुनर्जागरण की शताब्दी मानी गई है। भारतीय पुनर्जागरण से अभिप्राय है एक लंबी निद्रा से राष्ट्र के मानस, आत्मा तथा मनस्तत्व का जागृत होना। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में एक महान तथा अद्भुत संस्कृति का घोर अधःपतन हुआ था। अनेक कुप्रथाओं का जन्म हुआ; यथा सती, बलात, वैधव्य, अस्प श्यता, कन्याओं की बालहत्या आदि। इन कुप्रथाओं ने समाज को खोखला कर दिया। वस्तुतः यह काल स जनात्मक चिंतन की सुसुप्ता अवस्था का था। भारत की जीवन तथा बुद्धि गतिहीन हो गई थी। यह अचेतन अवस्था थी, म त अवस्था नहीं। राजा राम मोहन राय, स्वामी दयानंद सरस्वती, विवेकानंद, दादाभाई नौरोजी, बाल गंगाधार तिलक, महात्मा गाँधी, गोपाल कृष्ण गोखले जैसे पुनर्जागरण के देवदूतों ने भारत की आत्मा तथा शील को पुनः जाग त किया।

भारतीय राजनीतिक चिंतन की विशेषताओं को समझना यहाँ आवश्यक है; जिनका प्रभाव वर्तमान राष्ट्र विकास की आवधारणा पर पड़ा है –

1. **धर्म आध्यात्म का प्रभाव :–** राजनीतिक चिंतकों में जो प्रमुख स्थान रखते हैं; जैसे गांधी जी, विवेकानंद, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे, भीमराव अंबेडकर, आदि हैं। सभी के राजनीतिक चिंतन पर धर्म व आध्यात्म का प्रभाव स्पष्ट देखा जा सकता है। गांधी जी ने स्वयं स्वीकार किया है कि किसी भी तरह से राजनीति को धर्म से पृथक नहीं किया जा सकता। धर्म वह धरातल है, जिस पर राजनीति का भवन खड़ा है। गांधी जी गीता से बेहद प्रभावित थे। इसी लिये वे कहते थे की दानव की उपासना करके देव उपासना का फल प्राप्त नहीं किया जा सकता। हिंसा करके अहिंसा को जीवित नहीं रखा जा सकता।
2. **समाजवाद का प्रभाव :–** भारत के सामाजिक एवं राजनीतिक चिंतन पर पाश्चात्य समाजवादी विचारधारा की छाप भी दिखाई देती है। रूस में हुई साम्यवादी क्रांति का प्रभाव भारत में भी पड़ा। भारतीय विचारधारा ने पाश्चात्य समाजवाद को देश की प्राचीन आध्यात्मिक पृष्ठभूमि और आवश्यकताओं के अनुकूल बनाने का चेष्टा की।

* राजनीति विज्ञान विभाग, इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय

3. **उदारवाद का प्रभाव :–** 19वीं शताब्दी में प्रथम विश्व युद्ध के प्रारंभ होने तक उदारवाद यूरोप व अमेरिका का प्रधान दर्शन था। उदार वाद धार्मिक सहिष्णुता तथा धर्म निरपेक्षता को भी स्वीकार करता है। भारतीय राजनीतिक चिंतकों को उदारवाद पर बहुत सारी व्यवस्थाओं को प्रेरति किया।
4. **पाश्चात्य राजनीतिक संस्थाओं का प्रभाव :–** पाश्चात्य देशों से संपर्क के प्रभाव से भारत में राजनीतिक संस्थाओं का सूत्रापात हुआ। विधि आयोग, संघ निर्माण, सर्वोच्च न्यायालय, संसद आदि पाश्चात्य राजनीतिक संस्थाओं के प्रतिमान हैं।
5. **भारतीय अतीत का अनुसंधान :–** भारतीय ज्ञान विज्ञान और चिंतन के अनुसंधान कार्य ने भी भारत के आत्म गौरव को उत्तेजना प्रदान की और भारतीयों के मन में यह विश्वास पैदा कर दिया कि भारत संसार में सबसे महान तथा अद्वितीय देश है। देखते ही देखते भारत का प्राचीन इतिहास दैदीप्यमान हो उठा और भारतवासी इस इतिहास पर अभिमान करने लगे।
6. **सांप्रदायिकता का प्रभाव :–** 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने सांप्रदायिकता के बीज बोये। सांप्रदायिकता के विकास ने हमारे राजनीतिक चिंतन को अत्यधिक प्रभावित किया। इसी पृष्ठभूमि में हम सावरकर, सैय्यद अहमद, मुहम्मद इकबाल तथा मुहम्मद अली जिन्ना के राजनीतिक विचारों का मूल्यांकन कर सकते हैं।

राष्ट्रविकास में राजनीतिक चिंतन

आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में कई धारायें दिखाई देती हैं। आधुनिक राजनीतिक चिंतन का प्रारंभ धार्मिक एवं सामाजिक सुधारों से हुआ। इनमें राजा राम मोहन राय व दयानंद सरस्वती का नाम विशेष उल्लेखनीय है। उदारवादी विचारधारा का परचम् दादाभाई नौरोजी, फिरोज शाह मेहता, गोपाल कृष्ण गोखले ने लहराया तो बाल गंगाधर तिलक, विपिन चंद पाल, लाला लाजपत राय ने उग्रराष्ट्रवादी विचार धार को प्रबल बनाया। आध्यात्मिक राष्ट्रवाद की ज्वाला विवेकानंद व श्री अरविंद ने भड़काई। स्वराज वादी चितरंजन दास मोतीलाल नेहरू थे। सर्वोदयी विचारधारा के प्रणेता महात्मा गाँधी, जयप्रकाश नारायण, विनोबा भावे थे। मानवेन्द्र नाथ राय नवमानवता वादी तथा जवाहरलाल नेहरू, राम मनोहर लोहिया लोकतांत्रिाक समाजवाद के प्रतिनिधि रहे।

संक्षेप में आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन में सुधारवादी, उदारवादी, उग्रवादी, सांप्रदायिक सर्वोदयी और समाजवादी धारायें दिखाई देती है। जहाँ एक ओर भारतीय राजनीतिक चिंतन पर पाश्चात्य विचारों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। वहाँ दूसरे तरफ भारतीय दर्शन व आध्यात्मिकता से भी ओत–प्रोत है।

वर्तमान में राष्ट्र विकास के प्रतिमान

आज भारत विश्व की महाशक्तियों में शामिल होने को तत्पर है। स्वतंत्रता प्राप्त हुये 70 वर्ष हो चुके हैं; भारत की राजनीतिक व संवैधानिक व्यवस्था पर गौतम से लेकर गांधी तक के चिंतन का स्पष्ट प्रभाव देखा जा सकता है। आज भारत के समक्ष विकास के नवीन लक्ष्य हैं। नवीन चुनौतियाँ भी हैं। आज भारत एक सक्षम, व ताकतवार राष्ट्र है। आज विश्व भारत में तेजी से हो रहे, विकास को देखकर दातों तले ऊँगली दबा रहा है। अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर भारत के अनेक प्रतिस्पर्धी हैं, जो भारत को चुनौती दे रहे है और कुछ हद तक भारत के विकास से भयभीत भी दिखाई पड़ रहे हैं। आज सैन्य दृष्टि से भी भारत आधुनिक अस्त्रा शास्त्रों से तथा स्वयं के बनाये व विकसित तकनीकों से युक्त है। भारत बाहरी तौर पर जहाँ मजबूती व ताकत से खड़ा है, वहाँ दूसरी ओर आंतरिक सुधार व विकास के भी नये प्रतिमान गढ़ रहा है। 'मेक इन इंडिया', स्वच्छ भारत, न्यू इंडिया कॉन्सेप्ट आदि विचारधारा भारत को आगे बढ़ा रही हैं। शिक्षा, स्वास्थ्य, कौशल उन्नयन, संचार तकनीकी के क्षेत्रा में नये कीर्तिमान स्थापित किये हैं। भारत के समक्ष चुनौतियों में महंगाई की समस्या, गरीबी, बेरोजगारी, नक्सलवाद, आतंकवाद, सांप्रदायिक्ता, जातिवाद, भाषावाद, भ्रष्टाचार आदि है।

राष्ट्र विकास के मार्ग में आने वाले समस्याओं का समाधान तथा नवीन अवसरों की उपलब्धता निश्चित तौर पर चिंतन की सतत् प्रक्रिया द्वारा ही संभव होगा। भारतीय राष्ट्र विकास का स्वरूप भी शुद्ध देश चिंतन के अनुरूप होना ही श्रेयष्कर होगा।

संदर्भ :

1. फड़िया, डा.बी.एल.; आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिंतन
2. मुखर्जी, रविन्द्रनाथ; सामाजिक विचारधारा
3. नवभारत दैनिक समाचार पत्र – दिनांक 23 नवंबर 2017
4. कर्ण सिंह भारतीय राष्ट्रीयता का अग्रदुत थामसन प्रेस इण्डिया, नई दिल्ली
5. पुरूषोत्तम नागर, आधुनिक भारत का सामाजिक एवं राजनीतिक चिन्तन, जयपुर, 1984 पृ0 455
6. हरिदास मुखजी, उमा मुखर्जी, श्री अरविन्दो एण्ड दि न्यू शॉट इन इण्डियन पालिटिक्स कलकत्ता,1964 पृ00379–80
7. विश्वनाथ प्रसाद शर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, आगरा, 1982–88, पृ0 257–58

***

राही के उपन्यासों में भारतीय समाज संस्कृति

*राधेश्याम राय**
*डॉ. पुष्पा महाराज***

राही के उपन्यासों में भारतीय समाज–संस्कृति का सफलतापूर्वक चित्रण हुआ है। आधा गाँव उपन्यास में राही ने शीया मुसलमानों के दस परिवारों को गाजीपुर के गंगौली नामक वास्तविक गांव की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत किया है। यह उत्तर प्रदेश के गाजीपुर जिले का मशहूर और बड़ा गांव है जिसमें हिंदू और मुसलमानों की अनेक जातियां निवास करती हैं। परंतु लेखक ने इस उपन्यास में केवल शीया मुसलमानों के जीवन को चित्रित करने का यत्न किया है–यदाकदा आवश्यकतानुसार अन्य जातियों एवं संप्रदायों का उल्लेख मात्र किया गया है। इसीलिए लेखक ने अपने उपन्यास 'आधा गांव' कहना अधिक उचित समझा। 'ऊंघता शहर' नामक प्रथम अध्याय में लेखक ने प्रस्तावना–स्वरूप अनेक संकेत दिए हैं जिनसे उपान्यास की रचना पर प्रकाश पड़ता है। लेखक अपनी विनम्रता को प्रकट करते हुए कहता है, ''मैं गाजीपुर की तलाश में निकला हूं, लेकिन पहले मैं अपनी गंगौली में ठहरूंगा। अगर गंगौली की हकीकत पकड़ा में आ गई तो मैं गाजीपुर का 'एपिक' लिखने का साहस करूंगा।'' इसके अलावा लेखक पाठकों को सचेत करते हुए कहता है कि, ''यह कहानी न कुछ लोगों की है और न कुछ परिवारों की। यह उस गांव की कहानी भी नहीं है जिसमें इस कहानी के भले–बुरे अपने को पूर्ण बनाने का प्रयत्न कर रहे है। यह कहानी न धार्मिक है, न राजनीतिक। क्योंकि समय न धार्मिक होता है, न राजनीतिक और यह कहानी है समय ही की। यह गंगौली में गुजरने वाले समय की कहानी है।''

राही ने इस उपन्यास में 1937 से 1952 तक के 15 वर्षों की अवधि में होने वाली घटनाओं और उनकी गंगौली के शीआ मुसलमानों पर प्रभावों को बांधने का प्रयत्न किया है। यह काल वर्तमान भारत के इतिहास का सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण काल है। इसी काल में 1937 में प्रांतीय विधानसभाओं के लिए पहली बार चुनाव हुए और प्रांतों में भारतीय सरकारों का प्रथम बार निर्माण हुआ। 1942 में 'भारत छोड़ो' का प्रस्ताव पारित हुआ जिसके परिणामस्वरूप देशव्यापी क्रांति का प्रभावशाली कांड प्रस्तुत हुआ और ब्रिटिश सरकार का क्रूरतम अत्याचारी रूप भी सामने आया। इसी काल में ब्रिटिश सरकार की युद्ध–नीति के फलस्वरूप और भारतीय व्यापारियों की लोभवृत्ति के कारण 1943 में अकाल पड़ा जिसमें बंगाल में लगभग तीस लाख व्यक्ति कालकवलित हुए। 16 अगस्त, 1946 में मुस्लिम लीग के 'डायरेक्ट एक्शन' की घोषणा हुई जिसके फलस्वरूप देशभर में हिंदू–मुस्लिम दंगे शुरू हो गए केवल कलकत्ता में 7 हजार निर्दोष लोगों को जान से हाथ धोने पड़े। भयंकर मार–काट के साथ 1947 में भारतवर्ष का बंटवारा हुआ और पाकिस्तान का निर्माण हुआ। 1950 में भारत में नये संविधान की स्थापना हुई। प्रांतीय सरकारों ने जमींदारी उन्मूलन के कानून बनाए। नये संविधान के अनुसार 1952 के प्रारंभ में सार्वजनिक चुनाव हुए जिससे सारे देश में जनतंत्र की एक नयी लहर पैदा हो गई। इन परिवर्तनों का गंगौली के शीआ मुसलमानों पर क्या प्रभाव पड़ा और उनके जीवन में कैसे परिवर्तन आये–राही ने इस उपन्यास में इन्हीं रूपों को प्रदर्शित किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में उपर्युक्त घटनाओं में से लगभग सभी का उल्लेख मिलता है जबकि कुछ घटनाओं को विशेष रूप से कथा में नियोजित किया गया है। 1937 के चुनाव की ओर निश्चित संकेत प्राप्त होते हैं जिसमें कांग्रेस और मुस्लिम लीग मुसलमानों का प्रतिनिधित्व करने के लिए कटिबद्ध थीं। फुस्सू मियां ने सवाल पेश किया, ''ऐ मामू, ई अली जहीर साहेब अउर एकबाल सुहैल के एलेक्शनवा में का किया जाए साहेब?'' (पृ. 42) जिसक समाधान करते हुए गोरे दा कहते हैं, ''भाई एकबाल सुहैल तो

---

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग,वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
* शोध निदेशक,एसोसिएट प्रोफेसर, हिन्दी विभाग,महिला कॉलेज,डालमियानगर, रोहतास,वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

अहले–बैत के सख्त दुश्मन है। मगर मेरे ख्याल में मुस्लिम लीग को वोट देने से भी कोई फायदा नहीं।'' (पृ. 43) बीस पृष्ठों के बाद ही जमींदारी उन्मूलन की संभावना पर विचार–विमर्श प्रस्तुत किए गए हैं और साथ ही मुसलमानों के इस ख्याल को भी प्रकट किया है कि कांग्रेस जमींदारी जरूर खत्म करेगी क्योंकि कांग्रेस हिंदुओं की पार्टी है और क्योंकि अधिकांश जमींदार मुसलमान हैं। इन लोगों की एकमात्र आशा को भी प्रस्तुत किया गया है कि ब्रिटिश सरकार इतनी जल्दी भारत छोड़कर नहीं चली जाएगी। यह सच है कि उस समय ही कांग्रेस के सामने जमींदारी–उन्मूलन का प्रस्ताव था परंतु उस समय कांग्रेस ने इतना क्रांतिकारी कदम उठाने का साहस नहीं किया, केवल बंटाई वगैरह के प्रश्नों के संबंध में 'टेनैंसी एक्ट' पारित किया था जिससे एक ओर तो किसानों का समर्थन प्राप्त होता रहे और दूसरी ओर जमींदारों का सहयोग भी मिलता रहे।[1]

पाकिस्तान के प्रस्ताव को गंगौली के शीआ मुसलमानों के समक्ष अलीगढ़ के कुछ सक्रिय विद्यार्थियों द्वारा प्रस्तुत कराया गया है जो मुस्लिम लीग की राजनीति का प्रचार कर रहे थे। (पृ. 69–70) गांव के लोग ऐसे विचारों के प्रति अपनी अनिभिज्ञता प्रकट करते हुए पाकिस्तन के प्रस्ताव का विरोध करते हैं। कुछ पात्र हिंदुस्तान विरोधी इस आंदोलन का विरोध इसलिए भी करते हैं क्योंकि इमाम हुसैन ने स्वयं हिदुस्तान जाने की इच्छा प्रकट की थी। हुसेन के सच्चे अनुयायी होने के नाते धार्मिक दृष्टि से भी शीआ मुसलमान हिदुस्तान विरोधी प्रस्ताव स्वीकार नहीं कर सकते, ऐसा राही ने स्पष्ट रूपायित किया है। हिंदुस्तान का पक्ष लेते हुए सितारा शीआओं की ओर से कहती है–''और यह मुआ जिन्ना कैसा शीआ है कि हिंदुस्तान के खिलाफ है।'' इसके अलावा वे लोग अपने बाप–दादों की कब्रों को छोड़कर और अपनी जमीन को त्यागकर किसी भी पाकिस्तान के लिए तैयार नहीं।

द्वितीय विश्वयुद्ध के भी अनेक उल्लेख हैं कि जिन्हें पृष्ठ 129 से बराबर देखा जा सकता है। सिपाहियों की भर्ती के लिए अनेकों केंद्रों के खुल जाने की चर्चा है और गंगौली के अनेक नवयुवकों को फौज में शामि होते हुए दिखाया गया है। कुछ नवयुवक लड़ाई में काम आते हैं और कुछ लंगड़े–लूले होकर वापस लौटते हैं। गंगौली के अधिकांश लोग ब्रिटिश सरकार के वफादार है और कुछ लोगों ने तो लड़ाई का चंदा इकट्ठा करन में बड़ी मेहनत की है और खिताबों की उम्मीदें लगाए बैठे हैं। कासिमाबाद थाने का थानेदार साम–दाम–दंड–भेद के सभी दांव–पेच लगाकर अधिक से अधिक चंदा जमा करने में जुटा हुआ है, जिसका बड़ा भाग वह अपनी जेब के हवाले करना चाहता है। लोगबाग प्रायः महंगाई की चर्चा करते हैं और शक्कर, कपड़ा, किरासीन के अभाव का रोना रोते हैं। कुछ लोग इस लड़ाई में के लिए हिटलर को कोसते हैं तो कुछ हिटलर की जीत के लिए मस्जिदों में प्रार्थना करते हुए चित्रि किए गए हैं। (पृ. 176) यह सच है कि उस समय साधारण जनता में हिटलर की विजयों के प्रति बड़ा उत्साह था क्योंकि वे आशा करते थे कि इसी प्रकार एक दिन हिटलर भारत के दुश्मन ब्रिटेन को भी पराजित कर देगा। 1942 के 'भारत छोड़ो' की जनक्रांति के भी अनेक प्रकरण हैं जिनमें कासिमाबाद कस्बे के थाने पर धावा बोल देने का भी विस्तृत चित्रण है। फुन्नन मियां का छोटा लड़का इसी हमले में पुलिस की गोली का शिकार होता है।

1945 में विश्वयुद्ध समाप्त होता है और आजादी की संभावना के साथ–साथ हिंदु–मुस्लिम दंगे शुरू हो जाते हैं और मुस्लिम लीग की बंटवारे की नीति के फलस्वरूप 1946 की 16वीं अगस्त को 'डायरेक्ट ऐक्शन' शुरू होता है और खुले आम सांप्रदायिक मार–काट प्रारंभ हो जाती है, जिसके अनेक उल्लेख उपन्यास में उपलब्ध होते हैं। पड़ोस के गांव में इस सांप्रदायिक वैमनस्य को उभारा गया है जिसमें एक हिंदू जमींदार अपनी मुसलमान प्रजा की रक्षा करत है। किंतु गंगौली में अपेक्षाकृत शांति रहती है। मुस्लिम लीग का प्रचार बढ़ते हुए दिखाया गया है जिसके फलस्वरूप कुछ लीगी नेता भी गंगौली में व्याख्यान देते हैं। अंततोगत्वा मुस्लिम लीग की राजनीति सफल सिद्ध होती है और 14 अगस्त, 1947 को पाकिस्तान के निर्माण की घोषणा की जाती है जो और भी भयंकर एवं अमानवीय नरसंहार को जन्म देती है। गंगौली के कुछ शीआ मुसलमान भी पाकिस्तान जाते हैं जिसके परिणामस्वरूप गंगौली के अनेक परिवार टूटते हुए दिखाए जाते हैं। गंगौली में जो शेष बचता है, वह हैं टूटे हुए परिवार और घहराता हुआ अकेलापन।

जैसे इतनी यातना पर्याप्त न थी जिसको दोबाला करने के लिए आती है जमींदारी उन्मूलन की खबर। अगर पाकिस्तान के निर्माण ने उनके यकीदों को हिला दिया था और हिंदुस्तान के प्रति उनकी वफादारी पर शक पैदा कर दिया था तो जमींदारी उन्मूलन ने उन छोटे–मोटे शीआ मुसलमानों को घर से बेघर कर दिया था। जिस जमीन के लिए और जिस सामाजिक सम्मान और रूतबे के लिए वे पाकिस्तान को भी धता बताने के लिए तैयार थे, वहीं जमीन उनके पैरों के नीचे से खिसकी जा रही थी। जमींदारी को जो, मजहब की तरह मजबूत' (पृ. 366) समझते थे वे ही ''लोग देखते–देखते पलभर में नूरूद्दीन शहीद के मकबरे की तरह गिर गए।'' (पृ. 367) लेखक इसी स्थिति को समेटते हुए लिखता है कि, ''सदियों से रहने–बसने और जीने–मरने वाले मियां लोगों ने देखा कि जिस गांव को वे अपना कहते और समझते आये थे उस गांव से उनका कोई रिश्ता ही नहीं रह गया था। इन लोगों के लिए पाकिस्तान का बनना या बनना बेमानी था, लेकिन जमींदारी के खात्मे ने इनकी शख्सियत की बुनियादें हिला दीं। वे घरों से निकले और जब घर ही छूट गया तो गाजीपुर और करांची में क्या फर्क है। करांची में कम–से–कम इस्लामी हुकूमत तो है।'' (पृ. 367) ऐसी मानसिक स्थिति में पड़े हुए गंगौली के शीआ मुसलमानों का चित्रण इस उपन्यास में हुआ है जो इस 15 वर्ष की अवधि में होने वाली घटनाओं के परिणामस्वरूप उत्पन्न हो गई थीं। इसीलिए लेखक ने कहा है कि, ''यह कहानी है समय ही की'' जिसे अकाल्पनिक इतिहास की संज्ञा दी जा सकती है।

संदर्भ :

1. लेखक : राही मासूम रजा, दिल्ली, 1966।
2. हमीद दलवाई का लेख 'भारतीय मुसलमान का अंतरंग', धर्मयुग, 30 जून, 1968, पृ. 10।
3. राही का लेख, 'हुई मुद्दत कि गालिब मर गया', धर्मयुग, 9 फरवरी, 1969, पृ. 25।
4. सुरेन्द्रनाथ तिवारी का लेख 'समीक्षात्मक कोण पर आधा गांव', संचेतना का वसंतांक, 1968, पृ. 55।
5. परमानन्द श्रीवास्तव का लेख 'मरी हुई डोर का एक सिरा और अपने लिए मातम करते हुए लोग', 'धर्मयुग', 10 सितंबर, 1967, पृ. 22।

***

मध्यकालीन समाज एवं नगरों की अवधारणा

*दीपक कुमार ठाकुर**

मध्यकालीन भारतीय समाज एक सम्बद्ध तथा परम्परागत समाज था जिसमें नगरों की अपेक्षा ग्रामीण समाज की उपस्थिति अधिक थी। मध्यकाल से पूर्व ग्रामीण समाज ही भारतीय समाज का पहचान–बना हुआ था। भारत में तुर्कों के आक्रमण के साथ ही नयी व्यवस्था की शुरूआत हुई तथा नगरों का अभ्युदय प्रारम्भ हुआ। भारत पर मुहम्मद गोरी के विजय के पश्चात् नगरीय क्रान्ति का प्रादुर्भाव हुआ। भारतीय कर्मकार जो नगरों से बाहर रहते थे, उन्होंने मुहम्मद गोरी के सेना के साथ नगरों में और लड़ाकू सैनिक के रूप में निर्मित उत्पादों के उत्पादन के लिए औद्योगिक अपनी सेवाएं सरकार को दी। नई राजव्यवस्था ने नगर श्रमिकों के प्रति सभी प्रकट भावों को समाप्त कर दिया। इस्लाम में नगर– श्रमिकों जैसे महावतों, कसाईयों, बुनकरों को आकर्षित करने तथा उनके धर्मान्तरण के लिए चुम्बक की तरह काम किया तथा उनको सामाजिक गतिशीलता प्रदान की तथा श्रम प्रक्रिया ही नगरीकरण का आधार बना जिसकी पुष्टि इतिहासकार मोहम्मद हबीब ने की।

मध्यकालीन भारत में नगरीकरण की प्रक्रिया को श्रम प्रक्रिया से जोड़ने पर प्रसिद्ध इतिहासकार इरफान हबीब ने खण्डन किया है तथा उनका मानना है कि तेरहवीं तथा चौदहवीं शताब्दियों के दौरान नगरों की संख्या और आकार में वृद्धि शिल्प उत्पादन तथा वाणिज्य में वृद्धि के साथ नगरीय अर्थव्यवस्था को स्वीकारते हुए बी0डी0 चट्टोपाध्याय और आर0 चम्पक लक्ष्मी ने मध्यकालीन भारतीय नगरों का उद्भव नौवीं सदी के बाद के काल को माना है। चट्टोपाध्याय ने उत्तर–पश्चिमी भारत पर ध्यान केन्द्रित करते हुए सिन्धु–गंगा दोआब, ऊपरी गंगा बेसिन और मालवा क्षेत्र के नगरों के अभ्युदय पर प्रकाश डाला है। उनका मानना है कि इसका मुख्य कारण व्यापार से उत्सर्जित शक्तियाँ थी। उन्होंने इन भौगोलिक क्षेत्रों के आर्थिक केन्द्रीय बिन्दुओं का परीक्षण कर यह दर्शाया है कि गुर्जर–प्रतिहारों के काल पूर्व भी नगरीय केन्द्र के रुप में उनका अभ्युदय हो चुका था तथा वे स्थानीय व्यापार के धुरी बिन्दू थे। ग्यारहवीं सदी के दौरान गुजरात में 20 राजस्थान में 131, कर्नाटक में 78 और 10वीं शताब्दी से 1336 की अवधि में आन्ध्रप्रदेश में 70 नगरों के उदय का अनुमान लगाते हैं। यद्यपि उनमें से अनेक नगरों का उद्गम व्यापार के कारण हुआ उनमें से बहुत से नगर क्षेत्रीय शासकों के सत्ता के केन्द्र थे।

आर0 चम्पक लक्ष्मी जिन्होंने दक्षिण भारत के नगरों का अध्ययन किया है उनका मानना है कि नौवीं तथा तेरहवीं सदियों के बीच की अवधि में विदेशी व्यापार से प्रेरित होकर चोल राज्य क्षेत्र के विभिन्न आकारों और प्रवृत्ति अनेक नगरों का विकास हुआ। अपने सूक्ष्म विश्लेषण से यह दर्शाती है कि सभी मध्यकालीन दक्षिण भारतीय नगर एक जैसे नही थे। इसके विपरीत वह चोलों के व्यापारिक नगरों, शाही नगरों, आनुष्ठानिक सह–धार्मिक नगरों और विजयनगर राज्य के सैन्यीकृत तथा किलेबन्द नगरों के भव्य दिखने वाले स्पष्ट अन्तरों की बात करती है। चोल साम्राज्य जिसका आंध्र से लेकर दक्षिण कर्नाटक तक विस्तार था, ने दसवीं सदी में लम्बी दूरी के व्यापार के पुनरुद्धार तथा अंततः विभिन्न श्रेणियों के द्वारा वाणिज्य के संगठन के कारण अनेक नगरों की उत्पत्ति विशेषरुप से समुद्रतटीय क्षेत्र में हुई। नौवीं सदी में ब्रह्मदेयो और मन्दिरों से अधिरोप के अभिसरण और मन्दिरों में राजनीतिक सत्ता तथा आर्थिक सत्ता के अधिकाधिक केन्द्रित होने के कारण भी अनेक नगरीय केन्द्रों का विकास हुआ। तंजौर जैसे राजकीय नगरों जहाँ सम्भ्रान्तों और शक्ति समूहों ने मंदिर के आनुष्ठानिक केन्द्र के चतुर्दिक केन्द्रीय स्थल को अपने नियन्त्रण में ले रखा था जबकि शिल्पकार समूह और सेवा समूह बाहरी परिधि में रहते थे। ये मन्दिर उन राजसी नगरों के आर्थिक कार्य कलापों की प्रमुख संग्रहण संस्था बन गये। वीर दलम और सुरदलम जैसी नवीन नगरीय प्रक्रियाओं का विकास तेरहवीं सदी में

* (UGC NET) इतिहास विभाग, डी. डी. यू. गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर

सैन्य रुप में संरक्षित नगरों के रुप में हुआ। यह इस काल में व्यापारिक निकायों द्वारा प्राप्त सत्ता के नियन्त्रण का सूचक था वह किलेबन्द नगरीय केन्द्रों का भी उल्लेख करती है जिस सैन्यीकृत विजयनगर राज्य के नायकों ने चौदहवीं सदी के पवित्र परिसर से भिन्न नगरों के रुप में अपने नियन्त्रण क्षेत्रों के रुप में स्थापित किया।

मध्यकालीन भारत की सामाजिक–आर्थिक प्रक्रियाओं का अध्ययन करने वाले अनेक इतिहासकारों के लिए नगर और गाँव के बीच के अन्तरसम्बन्धों का अध्ययन विश्लेषण का एक साधन रहा है। उत्तर भारत में मध्यकालीन भारतीय नगरों की रचना कैसे हुई? यह के0एम0 अशरफ, एच0के0 नकवी और डब्ल्यू0 मोर लैण्ड जैसे विद्वानों के लिए यह विश्लेषण का केन्द्र रहा। उनका अध्ययन मुख्य रुप से उत्तर भारत के प्रमुख नगरों की मुख्य विशेषताओं तथा आर्थिक प्रगति के साथ–साथ उनके सम्बन्धों के ऊपर था। शीरीन मूसवी उत्तर भारत के प्रमुख शिल्प उत्पादक नगरों पर ध्यान केन्द्रित करती है तथा उनका मानना है कि नगरीकरण के पीछे शिल्प व्यापार ही है। सतीशचन्द्र मध्यकालीन भारत में नगरीकरण के लिए अभिजात वर्ग जोड़ते हैं।

मध्यकालीन नगरों के प्रादुर्भाव तथा सम्पोषण के लिए कारणात्मक कारक समय समय पर भिन्न–भिन्न रहे हैं। आगरा जैसे नगर का प्रादुर्भाव राजनीतिक कारणों से हुआ तो वही बनारस जैसे कतिपय नगर जो धार्मिक और तीर्थ कारणों से विकसित हुए। गोवा जैसा नगर जो प्रारम्भ में व्यापार की प्रेरक शक्ति से अस्तित्व में आया। समय के अलग–अलग बिन्दुओं पर नगरीय कृत्यों की अतिव्याप्ति और विभिन्न स्वतः समूहों के द्वारा विरोधी दावें स्थानिक प्रक्रियाओं में प्रतिबिम्बित होते रहते हैं तथा नगर स्थान में अभिलिखित मूल्यों तथा तर्क के विभिन्न स्तरों के कालानुक्रम का पता नगरीय भौगोलिक स्तरों के रहस्योद्घाटन से ही चल पायेगा।

मूल रूप से मध्यकाल में दो प्रकार के नगरवाद का अविर्भाव हुआ। एक ओर वाणिज्यिक रुप से आवेशित नगर वाद था जो शिल्पकारों द्वारा निर्मित वस्तुओं तथा व्यापारिक उत्पादक सहविनिमय केन्द्रों द्वारा उत्सर्जित आर्थिक शक्तियों के कारण इन स्थानों पर अस्तित्व में आया और दूसरी ओर राजनीतिक दृष्टि से आवेशित नगरवाद था जहाँ नगरीकरण के लिए अपेक्षिक शक्तियों का उत्सर्जन वास्तविक सत्ता आधारित गतिविधियों के कारण हुआ। राजनीतिक रुप से आवेशित नगरीय केन्द्रों में दिल्ली सबसे प्रमुख था जबकि दौलताबाद, गुलबर्गा, गौड़, आगरा लाहौर विजापुर गोलकुण्डा आदि अन्य राज्य महत्वपूर्ण राजनीति के नगरों के रूप में उभरे। वाणिज्यिक रूप से आवेशित केन्द्रों का विकास देश की विभिन्न दशाओं की ओर जाने वाले प्रमुख व्यापारिक भागों के संधि बिन्दुओं पर हुआ। जौनपुर, बुरहानपुर, मुल्तान, पटना, अहमदाबाद, उज्जैन, अजमेर और इलाहाबाद मुख्य रुप से वाणिज्यिक दृष्टि से आवेशित नगरों के रुप में नगरीय केन्द्रों में प्रान्तीय राजधानियों की स्थापना के साथ उनकी नगरीय प्रवृत्ति में एक अलग मोड़ आ गया। चूँकि इस अवधि के दौरान वाणिज्य और राजनीति परस्पर गूंथे हुए थे। बहुधा नगरों की ये दो भिन्न श्रेणियों पृथक आवृत इकाईयों में मौजूद नहीं थी अपितु भू–आर्थिक इकाईयों के रुप में दोनों की ही विशेषताएं अभिन्न रुप में मौजूद थी। इन क्षेत्रों में अनेक मिलन बिन्दु थे। वस्तुतः 10वीं और 11वीं सदियों के व्यापार के पुनरुद्धार थे। भारत के विभिन्न भागों में नगरीय प्रसार की प्रक्रिया को प्रेरित किया, तथापि ईरानी साम्राज्य की नगरीय संस्कृति की परम्परा के तत्वों के साथ इस्लाम के प्रवेश ने इस प्रक्रिया को और तेज कर दिया जिसके कारण आर्थिक और सांस्कृतिक विनिमयों के केन्द्रों के रुप में अनेक नगरों तथा अन्य नगरों का उदय हुआ तथा नगरीयकरण की प्रक्रिया को बल मिला।

भारत में इस्लाम की स्थापना के बाद इस्लामिक विचारधारा ने कतिपय कई प्रथाओं को जन्म दिया जिसने उनकी धार्मिक आस्था सम्बन्धी आवश्यकताओं को पूरी करने के लिए कई विशिष्ट प्रकार की वस्तुओं के उत्पादन तथा उपभोग को तीव्रता प्रदान की। इस्लामी तौर–तरीकों के अनुसार पुरुष और महिला दोनों ही के द्वारा अपना पूरा शरीर वस्त्र से ढकने की आवश्यकता ने विभिन्न प्रकार के वस्त्रों तथा परिधानों की माँग में अचानक प्रचुर मात्रा में वृद्धि की जिसने अभूतपूर्व रूप से वस्त्र उत्पादन कार्य–कलापों को तेज कर दिया। यहाँ इस बात का उल्लेख करना समाचित होगा कि उस

समय इस्लाम तथा मुसलमान बुनकरों के साथ वस्त्र उत्पादन का जो अंतर्भूत संबंध था के कारण भारत के विभिन्न भागों में गैर–मुस्लिम बुनकरों द्वारा भी कई उत्सवों जैसे मुहर्रम जिसे आन्ध्र प्रदेश में बिल्कुल ही भिन्न नाम से कुछ हिन्दू बुनकरों द्वारा मनाया जाता था को मनाना प्रारम्भ कर दिया गया। इस प्रक्रिया ने लम्बे अन्तराल में कपड़ा उत्पादन के कार्य–कलापों में सम्मिलित लोगों के विभिन्न समूहों को विकास कर रहे इस्लामी एन्क्लेब की ओर एक आकर्षण की तरह आकृष्ट किया जो शीघ्र ही शिल्पकारी तथा व्यापारियों के लिए अभिसरण बिन्दु बन गये। मुल्तान, अहमदाबाद, बड़ौदा, सूरत इत्यादि जैसे अधिकतर नये उभरते हुए नगरों में बुनकर समूह प्रभावशाली था जिसे विभिन्न प्रकार के वस्त्र उत्पादन में विशेषज्ञता हासिल थी। इक्तेदारी प्रणाली के उत्सर्जित आर्थिक शक्तियों ने उपभोक्ताओं का एक बड़ा वर्ग उत्पन्न किया जिसके पास प्रचुर श्रम क्षमता थी। इसने नगरीय प्रसार की प्रक्रिया को अव्य अधिक तेज कर दिया। इक्तेदारों ने कृषि अधिवेश को अपने आवासीय क्षेत्रों में खींचकर अनेक एन्क्लेवों में नगरीकरण की प्रक्रिया प्रारम्भ की।

मध्यकालीन भारत में नगरीयकरण की प्रक्रिया को आगे बैठाने में सूफी तथा भक्ति आन्दोलन का प्रसार भी एक महत्वपूर्ण कारण के रुप में दर्शित होता है। अनेक छोटे नगरों और नगरों में बुनकरों तथा शिल्पकारों की विभिन्न श्रेणियों को ग्रामीण समाज द्वारा प्रदत्त निकृष्ट तथा तिरस्कृत हैसियत के कारण स्वयं को उस समाज से अलग कर इन नगरों के उदीयमान मध्यवर्ग में स्वयं को सामाजिक रुप में स्वीकार्य तथा ग्राह्य बनाने के लिए यह वर्ग सूफी तथा भक्ति परम्परा से स्वयं को जोड़ता गया। सूफी और भक्ति आन्दोलनों में दोनों का ही भारत के अनेक हिस्सों में नगरवाद की सांस्कृतिक शक्ति के रुप में विकास हुआ और अपने बहुमंचों, आनुष्ठानिक प्रथाओं तथा विचारधारों के माध्यम से उन्होंने बिखरी हुई शिल्पकारों की श्रेणियों के कतिपय समूह हो आपस में जोड़ा, उन्हें एक नया सन्दर्भ और नई प्रकार की पहचान प्रदान की जिससे उनमें आत्म गौरव को बढ़ाया। सूफी तथा भक्ति आन्दोलन के शिल्पकारों समूहों ने अपनी विचारधारा को स्वीकार्य बनाने के प्रयास में श्रम की संस्कृति को वैध बताया परिणामस्वरूप जिसने द्वितीयक क्षेत्र में उत्पादन तथा नगरीय संरचना की प्रक्रिया को भी उत्प्रेरित किया। इसका निश्चित परिणाम यह हुआ कि गाँव की सीमा के अन्दर श्रमिकों को नियंत्रित करने की ग्रामीण अभिजातों तथा कुलीनों की शक्ति में कभी होती गयी और इसके बाद नए विकसित होते नगरीय क्षेत्रों में श्रम बल का अत्यधिक प्रवाह हुआ जहाँ उन्हें कार्य मिलने के अवसर प्राप्त थे जिसका नगरीकरण का सम्बल देने में सहायता मिली।

मध्यकालीन भारत में नगरीयकरण की प्रक्रिया का प्रकटीकरण में अनेक अवधारणों का समावेश है। इस प्रक्रिया में श्रम की क्रान्ति तथा श्रमिक वर्ग की आवश्यकता, शिल्प व्यापार तथा उसको प्रोत्साहित करने व्यापारिक मार्ग, भारत का सामाजिक, सांस्कृतिक ढ़ाँचा तथा भारत की भूआकृति जो जलीय तंत्रों तथा जलीय भू:आकृति भागों से भरपूरा तथा इस्लामिक विचारधारा मध्यकालीन राजाओं की नगरीकरण प्रक्रिया को आत्मसात् करने की इच्छा शक्ति की महत्वपूर्ण भूमिका रही होगी।

सन्दर्भ :

1. अबुल फजल, दि आइने अकबरी, अनु0 एच0 ब्लाक मैन, भाग–1, नई दिल्ली, ओरियन्टल बुक्स रिप्रिंट कारपोरेशन
2. अशरफ, के0एम0, लाइफ एण्ड कण्डीशन्श ऑफ द पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान, दूसरा संस्करण, नई दिल्ली, 1970, पृ0 214
3. चम्पकलक्ष्मी आर0, ट्रेड आइडियोलॉजी एण्ड अर्बनाइजेशन : साउथ इण्डिया, 300 वीसी एण्ड 1300 ए0डी, दिल्ली, ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996, पृ0 184–185
4. चंदा सतीश, ऐसेज ऑन मेडिवल इण्डियन हिस्ट्री, हर आनन्द पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2006, पृ0 71–80
5. चंदा, सतीश, मिडिवल इण्डिया, दिल्ली सल्तनत (1206 से 1526) भाग–1, हर आनन्द पब्लिकेशन्स, 1997, पृ0 128–30

6. खान, मकसूद, अहमद, सूफीज एण्ड देयर कन्ट्रीब्यूशन इन दि प्रोसेस ऑफ अर्बनाइजेशन, नीरू मिश्र (सम्पा0), सूफीज एण्ड सूफीज्म, सम पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2004, पृ0 188–190
7. हबीब इरफान, इकोनामिक हिस्ट्री ऑफ दी देल्ही सल्तनत : ऐन ऐसे इन इन्टरप्रेटेशन, इण्डियन हिस्टोरिकल, रिव्यू, भाग–IV, स0 2, 1978, पृ0 289–98
8. ग्रेवाल, जे0एस0 और इंदु बगा, स्टडीज ऑफ अर्वन हिस्ट्री, गुरुनानक देव, यूनिवर्सिटी, अमृतसर, 1985, पृ0 174–175।

***

भारतीय राजनीति में भ्रष्टाचार निवारण के उपाय

दीपक कुमार राय *
डॉ. मो. अलाउद्दीन **

भारतीय राजनीति में व्याप्त भ्रष्टाचार को समाप्त करने की दिशा में कुछ निम्नलिखित व्यावहारिक सुझाव दिए जा सकते हैं जिनका अनुपालन संभवतः आशा के नए सूर्य का अरूणोदय करा सकता है–

1. भ्रष्टाचार के आधारभूत कारणों में देश की बढ़ती हुई जनसंख्या को भी एक मूल कारण के रूप में माना जा सकता है। जनसंख्या वृद्धि के कारण रोजगारहीनता तथा जनता में विपन्नता की स्थिति का प्रादुर्भाव होता है। पीड़ित जनता ऐसी स्थिति में अपनी समस्याओं के समाधान के लिए लोकतन्त्र में सत्तासीन राजनेताओं की ओर उन्मुख होती है तथा येन–केन–प्रकारेण उन्हें कुछ लाभ पहुँचाकर अपनी समस्याओं के समाधान में उनका सहयोग प्राप्त करती है। ऐसे में जहाँ उनका यह आचरण एक तरफ राजनेताओं को भ्रष्ट करता है वहीं दूसरी तरफ अनैतिक साधन अपनाकर जनता स्वयं भी भ्रष्टाचार की दोषी बन जाती है। अतः भ्रष्टाचार की समस्या से निजात पाने के लिए जनसंख्या वृद्धि पर अंकुश लगाया जाना चाहिए।
2. भ्रष्टाचार पर अंकुश पाने के लिए एक महत्त्वपूर्ण उपाय, जिसके बारे में समय–समय पर सुझाव दिए गए और तमाम सरकारों द्वारा अब तक असफल प्रयास किए गए, देश में लोकपाल पद की स्थापना भी है। लोकपाल के निरीक्षण की सीमा में प्रधानमंत्री के कार्यों को भी समाहित किया जाना चाहिए।
3. न्यायपालिका के सक्रियता को और भी सकारात्मक स्वरूप प्रदान करके भ्रष्टाचार को समाप्त किया जा सकता है।
4. प्रशासनिक एवं आर्थिक विकेन्द्रीकरण की नीति एवं उसका क्रियान्वयन भी भ्रष्टाचार उन्मूलन की दिशा में एक प्रभावी कदम हो सकता है।
5. चुनावों को भ्रष्टाचार से मुक्त करने के लिए सुझाव है कि चुनावों का पूरा खर्च सरकार को वहन करना चाहिए तथा विभिनन राजनीतिक दलों के चुनाव लड़ने के लिए उनकी स्थिति के अनुसार धन आवंटित करना चाहिए। साथ ही सरकार की तरफ से चुनाव प्रचार के लिए सार्वजनिक मंच उपलब्ध कराया जाना चाहिए।
6. देश में सभी की सम्पत्ति की हर दस वर्ष पर गणना हो और एक करोड़ से अधिक के सम्पत्ति धारक लोगों की सूचना बनाकर कम्प्यूटर से मॉनिटरिंग हो जिससे यह पता चल सके कि सम्पत्ति का केन्द्रीकरण कैसे हो रहा है, या बेमानी सम्पत्ति कैसे बन रही है। अवैध सम्पत्ति को न केवल अधिगृहित किया जाना चाहिए बल्कि दोषी व्यक्तियों को दण्डित भी किया जाना चाहिए।
7. भूमि खण्डों, मकानों, टुकड़ों, पेट्रोल पम्पों, टेलीफोन बूथों, आपूर्ति सम्बन्धी ठेकों जैसे सार्वजनिक क्षेत्रों के उद्यमों से संबंधित एजेंसियों तथा गैस, बिजली, टेलीफोन कनेक्शनों, रेल व वायुसेवाओं में सीटों के आरक्षण तथा वित्तीय अनुदानों के आवंटन हेतु प्रभावी नियम बनाए जाने चाहिए। उपरोक्त सम्बन्ध में मंत्रियों तथा व्यवस्थापिका के सदस्यों के विशेषाधिकार पर प्रभावी नियंत्रण के उपाय किये जाने चाहिए।

---

* शोध छात्र,राजनीतिशास्त्र विभाग,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
* शोध निदेशक, एसासिएट प्राफेसर एवं विभागाध्यक्ष, राजनीतिशास्त्र विभाग,एस.पी. जैन कॉलेज, सासाराम, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

8. दल–बदल की प्रवृत्ति पर अंकुश लगाने हेतु निर्मित ''दल–बदल विरोधी अधिनियम, 1985'' ने आज दल–विभाजन को अस्तित्व में ला रखा है। इस प्रवृत्ति को नया अधिनियम बनाकर हतोत्साहित किए जाने की आवश्यकता है।
9. समस्त राजनीतिक दलों के अन्दर लोकतान्त्रिक प्रक्रिया को और मजबूत बनाया जाना चाहिए।
10. मंत्रिपरिषद् की सदस्य संख्या को कानून द्वारा निश्चित कर दिया जाना चाहिए और यह सुनिश्चित कर दिया जाना चाहिए कि दल–बदल/दल–विभाजन करके आए सदस्यों को मंत्रिपरिषद् में मंत्री पद से पुरस्कृत न किया जा सके।
11. ब्रिटिश कालीन ''ऑफिशियल सीक्रेट एक्ट, 1923'' में व्यापक संशोधन लाकर नागरिकों को सूचना प्राप्त करने का अधिकार प्रदान किया जाना चाहिए।
12. विद्यालयों में छात्र संगठनों के वर्तमान स्वरूप एवं उनकी स्वेच्छाचारित पर रोक लगानी चाहिए क्योंकि छात्र संघों की स्थापना के पीछे छिपे आदर्श विलुप्त होता जा रहा है और प्रशिक्षित तथा अनुभव प्राप्त पढ़े–लिखे भावी राजनीतिज्ञों की जगह अपराधी और भ्रष्ट भावी राजनीतिज्ञों की सेना खड़ी हो रही है।
13. देश में स्थाई सरकार की स्थापना के लिए प्रभावी कानून बनाया जाना चाहिए। यदि आवश्यकता पड़े तो इसके लिए संविधान में संशोधन भी किया जाना चाहिए।
14. अच्छे एवं ईमानदार राजनीतिज्ञों का नाम तथा जीवनी का व्यापक रूप से प्रचार–प्रसार करना मीडिया के लिए आवश्यक कर देना चाहिए।
15. सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण सुझाव यह है कि आम जनता को भ्रष्टाचार के विरूद्ध जागरूक एवं आन्दोलित किया जाना चाहिए। इसके लिए शासन–प्रशासन, शिक्षकों एवं सामाजिक संगठनों को आगे आने की आवश्यकता है। मीडिया को भी इसके लिए अपनी महत्त्वपूर्ण सकारात्मक भूमिका निभाने के लिए प्रयास करना चाहिए।
16. भ्रष्ट एवं आपराधिक चरित्र वाले संदिग्ध व्यक्तियों का राजनीति में प्रवेश प्रतिबंधित करते हुए प्रभावी कानून बनाया जाना चाहिए।
17. भ्रष्टाचार का एक महत्वपूर्ण कारण एवं उदाहरण दल–बदल है जो सत्ता प्राप्ति की राजनीतिज्ञों की व्यक्तिगत स्वार्थ लिप्सा तथा अवसरवादिता के दृष्टिकोण का परिचायक है। लोकतंत्र में सरकार के निर्माण तथा उसके सुगम एवं संतुलित संचालन हेतु राजनीतिक दलों का प्रादुर्भाव हुआ। यह इस मान्यता पर आधारित है कि सरकार का निर्माण बहुमत प्राप्त राजनीतिक दल द्वारा किया जाएगा तथा अल्पमत प्राप्त दल विरोध पक्ष का निर्माण करके सत्तारूढ़ दल की नीतियों एवं कार्यक्रमों पर पैनी दृष्टि रखते हुए उसे नियंत्रित, संतुलित एवं संवैधानिक प्रावधानों के अनुकूल शासन संचालन को विवश करते रहेंगे। इससे लोकतंत्र लोकहित के साधन का सार्थक माध्यम बन सकेगा।

स्वतंत्र भारत में दलीय पद्धति पर आधारित लोकतांत्रिक व्यवस्था स्थापित हुई। स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् कुछ वर्षों तक कांग्रेस के वर्चस्व में स्थिर गति से शासन संचालन का कार्य भी अबाध गति से चला, लेकिन जनता की राजनीतिक अजागरूकता के चलते क्षेत्रीय भावनाओं के उभार के कारण क्षेत्रीय राजनीतिक दलों को बढ़ावा मिला और कांग्रेस के व्यापक जनाधार को गंभीर अघात पहुँचा। सन् 1967 के चतुर्थ आम चुनाव के बाद राजनीतिक परिदृश्य और अधिक बिखराब का शिकार हो गया। कांग्रेस के कम होतो जनाधार से क्षेत्रीय राजनीतिक दलों में सत्ता प्राप्ति की आकांक्षा बलवती होने लगी। जिसके फलस्वरूप दल–बदल को तीव्र गति से प्रोत्साहन मिला। वैसे यदा–कदा दल–दबल के उदाहरण 1967 के पूर्व भी देखने को मिलते हैं, लेकिन चौथे आम चुनाव के बाद कांग्रेस के कमजोर होते जनाधार, राजनेताओं में नैतिकता का गिरता हुआ स्तर, राजनीतिक दलों की आंतरिक गुटबंदी, आर्थिक प्रलोभन, सत्ता प्राप्ति की अभिलाषा के कारण इस प्रवृत्ति को अत्यधिक बढ़ावा मिला, जिसने भारतीय राजनीतिक को अस्थिर कर दिया।

भारतीय राजनीति में व्याप्त दल–बदल की बुराइयों पर अंकुश लगाने के दृष्टिकोण से सन् 1985 में राजीव गांधी की सरकार ने अन्ततः दल–बदल विरोधी अधिनियम, 1985 को संसद से पारित

कराया, किन्तु व्यवहार में उसका कोई निर्णायक प्रभाव नहीं देखा गया। विपरीत रूप में इसने एक नई विकृति को जन्म दिया और दल–बदल के स्थान पर ''दल–विभाजन'' की दुष्प्रवृत्ति ने गंभीरत्तम रूप में भारतीय राजनीति को ग्रसित कर लिया। जून 1995 में उत्तर प्रदेश की विधानसभा में मुलायम सिंह यादव की समाजवादी पार्टी को समर्थन देने के प्रश्न पर, सितंबर 1996 में गुजरात विधानसभा में तथा अक्टूबर 1996 में पुनः उत्तर प्रदेश की विधानसभा में सत्ता के खेल में दल–विभाजन का जो नग्न ताण्डव देखा गया, उसके दुष्प्रभाव के दूरगामी विकृत परिणाम की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता। आश्चर्य यह है कि सत्ता के इस खेल में विधानसभाध्यक्षों की भूमिका भी आलोचना का विषय रही।

उपरोक्त के आलोक में इस सत्य से विमुख नहीं हुआ जा सकता है कि एक लोकतान्त्रिक देश में जनता इस प्रत्याशा के साथ प्रतिनिधियों को चुनकर उन्हें शासन संचालन का सुअवसर प्रदान करती है कि वे लोक मर्यादाओं के अनुरूप आचरण करते हुए नैतिकता, ईमानदारी एवं सच्चरित्रता के साथ जनहित एवं देश हित में कर्त्तव्य पालन में प्रवृत्त होंगे तथा जन समस्याओं के समाधान के साथ–साथ समाज, देश तथा अपने क्षेत्र के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करेंगे, लेकिन दुर्भाग्य है कि व्यवहार में इसका विपरीत रूप ही परिलक्षित होता है। आश्चर्य तब होता है कि निर्वाचन के दौरान आदर्श की दुहाई देकर सत्ता की कुर्सी पर आरूढ़ हुए ये जन प्रतिनिधि उन्हीं आदर्शों की हत्या करने लगते हैं। उनके द्वारा दिए जाने वाले मंचीय भाषण का उनकी व्यावहारिक जिन्दगी के साथ कोई तादात्म्य नहीं रह जाता। मेरे संज्ञान में अब तक ऐसे किसी राजनेता का नाम नहीं आया है जिसने जनता के सम्मुख भ्रष्टाचार की वकालत की हो। संसद अथवा विधानसभाओं में घोटालों से संबंधित अनेकानेक प्रकरणों पर चर्चा के दौरान जो तस्वीर उभर कर सामने आती है वह निश्चित रूप से राजनेताओं के बाह्य भ्रष्टाचार विरोधी विचारों का प्रतिनिधित्व करती है, किन्तु पर्दे के पीछे उनमें से अधिकांश का व्यवहार कोई दूसरी ही कहानी कहता है। कुछ बुद्धिजीवियों की जागरूकता और संचार माध्यमों की सर्तकता के चलते ऐसे तमाम राजनेताओं की विकृत तस्वीर आज घोटाले के दर्पण में जनता के सम्मुख प्रतिबिम्बित हो चुकी है जिन्हें कल तक वो अपने रहनुमा तथा देश एवं समाज की तकदीर समझती थी। बोफोर्स प्रकरण, सेंट किट्स प्रकरण, चारा घोटाला, दूरसंचार घोटाला, हवाला कांड तथा झारखंड मुक्ति मोर्चा सांसद रिश्वत प्रकरण आदि इसके स्पष्ट उदाहरण हैं।

निःसन्देह, भ्रष्टाचार' आज भारतीय राज व्यवस्था की सबसे ज्वलन्त समस्या है। लोक–सत्ता की अवधारणा पर स्थापित भारतीय लोकतंत्र को भ्रष्टाचार ने इतना विद्रूप कर दिया है कि लोक की कीमत पर तन्त्र का दवानल समाज और व्यक्ति दोनों को बुरी तरह प्रभावित कर रहा है। लोकाश्रित शासन व्यवस्था में व्यवस्था के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगा दिया है। फिर भी ऐसा विश्वास किया जाना चाहिए कि आशा की कुछ किरणें अभी भी शेष हैं, जो कभी–कभी कुछ बुद्धिजीवियों की आलोचनाओं और जन सामान्य के क्षणिक उद्‌गार में प्रस्फुटित होती रहती हैं। भारतीय इतिहास के अतीत के तमाम पन्ने यथार्थ आदर्श एवं नैतिक परंपराओं के स्वर्णिम काल की गाथाओं से भरे पड़े हैं। यदि दृढ़ निश्चय के साथ जन सामान्य अपनी आदर्श परंपरा से प्रेरणा लेते हुए जागरूक मस्तिष्क के साथ सार्थक प्रयास करे तो अतीत की उन स्वर्णिम परंपराओं की पुनरावृत्ति की संभावनाओं को नकारा नहीं जा सकता। कार्य कठिन है, मगर असंभव नहीं। आवश्यकता है, बस, यही दिशा में बढ़ाने की।

संदर्भ :

1. अग्रवाल, आर.सी. : भारतीय राजनीतिक व्यवस्था, नई दिल्ली, 1982।
2. कश्यप, सुभाष : दल–बदल और राज्यों की राजनीति, मेरठ, 1970।
3. कोठारी, रजनी : भारत में राजनीति, नई दिल्ली, 1972।
4. कौशिक, डॉ. सुशीला : भारतीय शासन एवं राजनीति, नई दिल्ली, 1987।

शर्मा, डॉ. हरिशचन्द्र : भारत में राज्यों की राजनीति, जयपुर, 1988।

***

वैदिक साहित्य के सन्दर्भ में श्री अरविन्द के विचारों की प्रासंगिकता

*डॉ.संत कुमार झा**

भारत में प्राचीन काल से वेदों की व्याख्या की परम्परा रही है। यद्यपि प्रधानता कर्मकाण्डीय व्याख्या की ही है, किन्तु जैसा किया श्री अरविन्द ने अनुभव किया था, वेदों में व्याख्या के वैकल्पिक सिद्धान्तों और स्तरों की प्रतीति भी कहीं–कहीं बनी हुई है। वेदों के विषय में सायण का भाष्य सर्वाधिक प्रचलित और प्रयुक्त होने वाला भाष्य है। वह स्वयं कितना ही अनुष्ठानिक हो किन्तु उसमें भी इतस्तः इन वैकल्पिक व्याख्या–सम्प्रदायों के अस्तित्व का साक्ष्य स्पष्ट रूप से विद्यमान है। उपनिषदों पर विशेष रूप से एकाग्र शताब्दियों तक विस्तृत भाष्य–परम्परा के बाद उन्नीसवीं सदी में स्वामी दयानन्द और बीसवीं सदी ने आनन्द कुमार स्वामी, श्री अरविन्द तथा अनिर्वाण को ऋग्वेद के एक ऐसे नये और अद्यतन भाष्य की आवश्यकता अनुभव हुई जो इस विश्वास से प्रेरित थी कि इन वैदिक मंत्रों में कुछ ऐसी नई और महत्वपूर्ण अर्थ राशि है जो विचार और संवेदना की दृष्टि से आमूल–चूल बदल चुके हमारे इस संसार के बीचों–बीच और आर–पार भी आधुनिक मन को संवेदित और प्रभावित कर सकती है, जिसके साथ हम भारत और पश्चिम दोनों की बौद्धिक परम्पराओं में भागीदारी करते हुए एक सार्थक विश्वव्यापी संवाद में संलग्न हो सकते हैं।

परिचय

वैदिक साहित्य भारतीय मनीषा के ज्ञान का प्राचीनतम दस्तावेज है। श्री अरविन्द का वेदों से सम्बन्ध एक अनौपचारिक घटना है। श्री अरविन्द शास्त्रों के पास अपने दर्शन के समर्थन के लिए नहीं जाते और न ही वह उनका अपने दृष्टिकोण से अर्थ देते हैं। वह उनका इस दृष्टि से अध्ययन करते हैं कि देखें क्या उनमें उनकी उन महत्वपूर्ण आध्यात्मिक उपलब्धियों का समर्थन है, जो उनके पास बेतहाशा आती चली गयीं, क्या उस ज्ञान की पुष्टि है जो उनकी अनुभूतियों के आधार पर खड़ा है? वेदों में उनका प्रवेश कुछ विचित्र परिस्थितियों में हुआ। उन्होंने बताया है कि उन दिनों के शिक्षित भारतीयों की तरह उन्होंने भी प्राच्यविद्या विशारदों की तरह यह मान लिया था कि उत्तरी आर्यों ने दक्षिण के द्रविड़ों पर आक्रमण किया था और वेदों से हमें इन गोरे आक्रामकों और काले देशी लोगों के युद्ध के बारे में काफी ऐतिहासिक प्रमाण मिल जाते हैं। अपने दक्षिण निवास के आरम्भ में ही उन्हें इस विषय में संदेह होने लगा, जब उन्होंने दक्षिण के लोगों में आर्य चेहरे देखें और उन्हें उत्तर के लोगों में दक्षिण के चेहरे–मुहरों की याद आयी। उनके अन्दर के पंडित ने वैदिक सूक्तों में इन लोकप्रिय मान्यताओं के पक्ष या विपक्ष में प्रमाण ढूँढ़ने चाहे। सौभाग्यवश उनके सायण के साथ अपरिचय ने उन्हें सीधा वैदिक सूक्तों के पास भेज दिया और वहाँ पर उन्होनें जो पाया वह आश्चर्यजनक था। न सिर्फ यह कि वहाँ एक जाति का दूसरी जाति पर आक्रमण का कोई उल्लेख नहीं था, बल्कि मंत्रों के मनोवैज्ञानिक रूप के काफी प्रमाण भी थे। जाति रूप भी भौतिक भिन्नताओं के नहीं मनोवैज्ञानिक पृथकता के द्योतक थे। उन्होंने अपने मन की आँखों के आगे आध्यात्मिक अनुभूतियों का एक समूह–सा प्रकट होता हुआ देखा, जिसे भिव्यक्त करने वाली अभिधा में नहीं संकेत देने वाली भाषा में लिखा गया है। उन्हें ऐसे सूक्त मिले जो उनकी ऐसी आन्तरिक अनुभूतियों पर प्रकाश डालते थे जो अभी तक उनके लिए धुँधली–सी थीं। इसने उन्हें और अधिक अध्ययन के लिए प्रेरित किया। वह यह अध्ययन अपने आप, बिना टीकाओं और भाष्यों की सहायता के करते थे और इससे वह उन किन्हीं निश्चित निष्कर्षों पर पहुँचे, जिन्हें उन्होंने 'आर्य' में 'दि सीक्रेट ऑफ दि वेद' के सामान्य शीर्षक तले प्रकाशित किया और साथ ही साथ कुछ टिप्पणियों सहित कुछ चुने हुए वैदिक सूक्तों का अनुवाद भी छापा।

ऋग्वेद के सूक्तों के अपने विलक्षण अध्ययन में उन्हें यास्क की प्राचीन प्राणाली का काफी समर्थन मिला कि वेद के तीन प्रकार के अर्थ होते हैं, अधिभौतिक, अधिदैविक और आध्यात्मिक। श्री अरविन्द नाना प्रकार के भाष्यों का खण्डन नहीं करते, लेकिन उनका कहना है कि आध्यात्मिक अर्थ ही सबका केन्द्र है।

---

* संस्कृत विभाग,बी.आर.ए.बी.यू. मुजफ्फरपुर

वह वैदिक धर्म और रहस्यवाद का उसके अलग–अलग अंगों में विश्लेषण करते हैं, जैसे यज्ञ, परम्परा, देवता जिन्हें आहूतियाँ दी जाती थीं। आहूतियों का महत्व और यज्ञ का फल, यज्ञ करने का क्रम और मंत्रों में बहुधा आने वाले कुछ महत्वपूर्ण शब्दों के कई अर्थ। वह वेद के अपने गहरे अध्ययन में आध्यात्मिक और मनौवैज्ञानिक अर्थों को पुष्ट करते हैं जो आज भी हजारों वर्षों के बाद आध्यात्मिक जिज्ञासु के लिए सुसंगत है। उन्हें ये लेख 'हिम्स टु मिस्टिक फायर', शीर्षक से 1846 में छपे थे।

उनके शिष्य और संस्कृत के सुप्रसिद्ध विद्वान श्री टी0 वी0 कपाली शास्त्री ने श्री अरविन्द के दिये हुए संकेतों की सहायता से ऋग्वेद के प्रथम अष्टक पर विस्तृत भाष्य किया है। प्राचीन शास्त्रीय परिपाटी के अनुसार दिया गया यह भाष्य 'सिद्धधांजन' नाम से 1850–51 में छपा था। अब उसका अंग्रेजी अनुवाद हो गया है।

यहाँ तक हम श्री अरविन्द के वैदिक साहित्य के साथ सम्पर्क की एक झलक देखते हैं। आगे इस बिन्दु पर विचार करना अधिक समीचीन होगा कि श्री अरविन्द ने वैदिक साहित्य पर जो प्रकाश डाला है उसके आधार पर श्री अरविन्द के अनुसार वेद की व्याख्या पद्धति क्या है?

श्री अरविन्द का साहित्यिक मूल्यांकन करते हुए उसके माध्यम से संस्कृत साहित्य को श्री अरविन्द के योगदान के क्रम में उनके वैदिक दृष्टिकोण के विस्तार और उसकी गहनता को समझना आवश्यक है। श्री अरविन्द का 1813 का लिखा एक लेख श्री अरविन्द आर्काइव्स व रिसर्च जर्नल के दिसम्बर 1885 के अंक में संकलित है। इसे श्री अरविन्दाश्रम से 'श्री अरविन्द आन द वेद' शीर्षक पुस्तिका में और 'वेदार्थ दीपिका' नाम से हिन्दी अनुवाद के रूप में प्रकाशित किया गया है। इसके अन्दर श्री अरविन्द ने लेख के अन्त में दो परस्पर विरोधी किन्तु वास्तव में एक–दूसरे की परिपूरक बातें कही हैं:– एक तो यह कि ''शक्तिशाली वाह्य उपादानों के नैरन्तर्य के होते हुए भी काल के कठोर विपर्ययों के कारण हमने वेदार्थ पर अपनी पकड़ खो दी और इसीलिए वेदान्त का भी सम्पूर्ण अर्थ हम नहीं जानते, दूसरे यह कि इन दोनों क्षतियों की पूर्ति योग और ध्यान की विधियों से और समय–समय पर प्रकट हुए साक्षात्कारी महापुरूषों के अनुभव के साक्ष्य से की जा सकती है।'' इस निष्कर्ष के पीछे स्वयं श्री अरविन्द का अन्तःप्रमाण विद्यमान है जिसे हम उनके जीवन और कृतित्व में अक्षरशः चरितार्थ होता हुआ देखते हैं। इसी अन्तःप्रमाण के बल पर वह 1813 में ही यह देख सकने में समर्थ हुए थे कि ''वेद के परिपूर्ण सत्य की पुनरूलब्धि केवल आधुनिक मनुष्य के बौद्धिक कौतूहल की तृप्ति के लिए एक निर्णायक व्याख्या की लालसा भर नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के भविष्य के लिए ठोस व्यावहारिक आवश्यकता है।'' उनका दृढ़ विश्वास है कि ''वेद में छिपा रहस्य जब पूरी तरह उपलब्ध हो जाएगा तब दिव्य जीवन का ज्ञान और अभ्यास उसमें पूरी तरह परिभाषित होगा और मानव जाति की दिव्य जीवन की ओर जो अचेतन महायात्रा रही है, वह बुद्धि और इन्द्रियों की तृप्ति रूपी एक लम्बे भटकाव के उपरान्त निश्चय ही अपने केन्द्र की ओर लौटेगी।''

'समस्या और उसका हल' शीर्षक 'वेद–रहस्य' नामक ग्रन्थ के प्रारम्भिक अध्याय में ही श्री अरविन्द लिखते हैं:–

''ऋग्वेद जो यूरोपीय विद्वानों की दृष्टि में एकमात्र प्रामाणिक वेद ठहरता है– उसमें हम यज्ञीय मंत्रों का एक ऐसा समुच्चय पाते हैं जो एक अति प्राचीन भाषा में रचे गये हैं और कई लगभग असमाधेय समस्याएँ खड़ी करते हैं। यहाँ हमारा सामना प्राचीन वांगरूपों और शब्दों से पड़ता है, जो परवर्ती भाषा में नहीं पाये जाते और जिन्हें अधिकतर बौद्धिक चातुर्य से प्रेरित अटकलों द्वारा ही किसी संदिग्ध अर्थ में बांधा जाता रहा है। फिर कई सारे शब्द जो शास्त्रीय संस्कृत के साथ उभयनिष्ठ है, वे भी यहाँ उस परवर्ती साहित्यिक भाषा में उनके सुपरिचित अर्थों में भिन्न अर्थों में प्रयुक्त किये गये हैं। अनेक सहस्राब्दियों के मध्य, कम से कम तीन ऐसे व्याख्या–प्रयत्न इन मंत्रों के तात्पर्य को स्थिर करने की दिशा में मिलते हैं, जो अपनी प्रविधियों में ही नहीं, परिणामों में भी एक–दूसरे से नितान्त भिन्न हैं। एक तो प्रागैतिहासिक समय में निश्पन्न हैं और केवल कुछ टुकड़ों में ब्राह्मण–ग्रन्थों तथा उपनिषदों में यत्र–तत्र झलकता है; दूसरा जो पूरा और अखण्ड भाष्य पारम्परिक ढंग का उपलब्ध है, वह सायण का है, और तीसरा हमारे अपने समय में आधुनिक यूरोपीय विद्वानों के द्वारा तुलना और अनुमान द्वारा परिश्रम पूर्वक किया गया कार्य है। इन अन्तिम दोनों प्रयत्नों में एक समान रूप से अनुभव की जा सकती हैं और वह है अर्थ की असाधारण असंगति और क्षीणता जो उनके परिश्रम के परिणामस्वरूप उन प्राचीन मंत्रों पर अंकित हो गई है।''

विश्व साहित्य के इतिहास में यह एक दुर्लभ संयोग है कि एक दुरूह रचना को दुनिया के सर्वाधिक समृद्ध धर्म और सर्वाधिक गहन–गंभीर और सूक्ष्म दर्शनों का स्रोत मान लिए जाने का सौभाग्य प्राप्त हुआ हो किन्तु यदि चाहे हम सायण अथवा आधुनिक यूरोपीय सिद्धान्त को मान लें तो वेदों की उक्त सारी महान और अति पावन पारम्परिक प्रतिष्ठा का मिथ्या गढ़न्त से अधिक और कुछ नहीं रह जायेगी। इन सिद्धान्तों का सारा विकट अध्यवसाय केवल इस निष्कर्ष पर पहुँचने के लिए प्रायोजित लगता है कि ये मंत्र प्रशिक्षित और स्थूल भौतिक प्रपंचों में लिप्त असभ्य आदिम कबीलों की कपोल–कल्पनायें भर हैं। चूँकि परवर्ती धार्मिक और दार्शनिक समृद्धि की नींव उपनिषद् है अतः यह मान लेना होगा कि उपनिषद् वेदों के अनुष्ठानिक भौतिकवाद के विरुद्ध सूक्ष्मग्राही और विचारवान दार्शनिक मस्तिष्कों का विद्रोह है।

श्री अरविन्द वेद–उपनिषदों के सम्बन्ध में इस तरह की टिप्पणियों को स्वीकार नहीं करते। उनके अनुसार यूरोपीय इतिहास की समझ से उपजी यह परावर्तित मान्यता नितान्त अनर्गल और अप्रयुक्त है, क्योंकि इससे कुछ भी तर्कसंगत समाधान प्राप्त नहीं होता। औपनिषदिक तत्व ज्ञान शून्य में से नहीं उपजा है। मानवीय मस्तिष्क की प्रगति सदैव ज्ञान से उच्चतर ज्ञान की ओर होती है, पहले के गूढ़, अस्पष्ट संकेतों को पकड़ कर वह नऐ आविष्कारों की ओर उन्मुख होती है। उपनिषदों का तत्वज्ञान किसी पूर्ववर्ती महान मूलाधार की ओर इंगित करता है, जिसका उपर्युक्त व्याख्याएँ और मनमाने ढंग से आरोपित सिद्धान्त कोई पता नहीं देतें तब फिर इस अपाट्य खाई को पाटने के लिए दूसरे मनगढ़न्त उपाय प्रयोग में लाये जाते हैं– जैसे बर्बर आक्रमणकारियों द्वारा द्रविड़ सभ्यता का विस्थापन–उन्मूलन और तब उन पराजितों के विचारों का अधिग्रहण इत्यादि। श्री अरविन्द मानते हैं कि इस तरह यह खाई हमारी अपनी बनाई हुई है और वास्तव में इसका कोई अस्तित्व नहीं है। वह इस प्रचलित कल्पना की जगह एक दूसरा विचार अपनी ओर से प्रस्तावित करते हैं। उनके अनुसार, ''हमारा कठिन किन्तु अनिवार्य कर्त्तव्य है वैदिक शब्दों और प्रतीकों का अर्थ स्थिर करना तथा साथ ही वैदिक देवताओं के मनोवैज्ञानिक कार्यों (भूमिकाओं) को भी स्पष्टतः समझना।'' ''मेरे ये अध्याय और उनके साथ दिये गये अनुवाद'' वे कहते हैं– ''इसी अनिवार्य कर्त्तव्य की दिशा में एक तैयारी की तरह ग्रहण किये जाय।''

वेदों के विषय में यह धारणा स्वीकार कर लेने से इसके तीन लाभ है। पहला, यह धारण उपनिषदों के उन भागों को आलोकित कर देगी जो अभी तक असूझ और अबूझ बने हुए हैं और साथ ही पुराणों के भी अधिकांश का मूल स्रोत इससे स्पष्ट हो जायेगा। दूसरा, यह धारणा से भारत की समस्त प्राचीन परम्परा को यथावत समझने और उसका तार्किक औचित्य स्थापित करने का मार्ग भी खुल जायेगा। यह बात भी इससे खुलकर सामने आ जायेगी कि वेदान्त, पुराण, तन्त्र, षड्दर्शन सम्प्रदाय और समस्त भारतीय धर्मों का मूल उद्गम वेद ही है। तीसरा, लाभ यह होगा कि स्वयं वैदिक पाठों को प्रतीयमान असंगतियों में संगति बिठाकर उन्हें दूर किया जा सकेगा। वे असंगतियाँ तभी तक हैं जब तक अर्थ का वास्तविक आधारभूत सूत्र एक आन्तरिक अभिप्राय में नहीं खोज लिया जाता।

वेद पर लिखे गये श्री अरविन्द के प्रारम्भिक निबन्धों के कुछ अंश वेद की समझ और व्याख्या पद्धति पर पर्याप्त प्रकाश डालते हैंः–

''ऋग्वेद अपने समस्त विभागों में एक और अखण्ड है। हम चाहे जिस भी मण्डल पर ध्यान एकाग्र करें, हमें वही सार, वही विचार–सूत्र, वही बिम्ब और वही पदावलियाँ बारम्बार मिलेगी। इन सूक्तों के रचयिता ऋषि एक ही सत्य के द्रष्टापद पर आरूढ़ दिखेंगे और हम पायेंगे कि उस सम्य–दर्शन की अभिव्यंजना हेतु वे एक ही सर्वनिष्ठ भाषा अथवा पदावली का प्रयोग करने को अन्तर्विवश और प्रेरित हुए हैं।''

''वेद का प्रत्येक अंश–यदि वह सम्यक् रूप से समझा जाता है, तो हर दूसरे अंश को आलोकित करता है। विसंगति वहीं उपजती है, जहाँ हम उस पर पड़े आवरणों को भेदने में असमर्थ होते हैं और इसी कारण अपने वास्तविक लक्ष्य से भटक जाते हैं।''

''वेद के मंत्र सर्वदा और सर्वधा एक–दूसरे की पुष्टि करते मिलेगें–मंत्रों में अनिवार्यतः उन्हीं–उन्हीं प्रयुक्त पदों, भावों और भावों के बीच उसी प्रकार के अन्तःसम्बन्ध मिलते हैं। यह कदापि संभव न होता–यदि वे सभी एक ही सघन–सुसम्बद्ध साक्षात्कृत सिद्धान्त पर आधारित न होते और उनके द्वारा प्रयुक्त पद भी एकाग्र और सुनिश्चित अर्थ का द्योतन करने वाले न होते। यहाँ पर कुछ स्वैर, मनमाने ढ़ंग से नहीं होता। अपनी समग्र सुसंगति और एकता में वेद एक पूर्ण और सर्वांग सुन्दर कृति है। अतः यदि हम

विविध सूक्तों में विनिवेशित प्रतीकों को सही–सही समझना चाहते हैं तो हमें सर्वप्रथम एक एकता को समग्रतः आत्मसात करना होगा।''

वेदों में निबद्ध ये विभिन्न प्रतीक और दृष्टान्त कथाएँ आपस में किस तरह जुड़े हुए हैं, यह देखने की बात है। यदि हम रूपक कथा को अपने–आप में असम्बद्ध एक बाहरी मिथक की तरह व्यवहार करते हैं, बिना वेद की सर्वसामान्य भावभूमि के अन्तर्गत उसके सही जगह को पहचाने तो हम व्याख्या के सच्चे मार्ग से ही भटक जायेंगे।

उपर्युक्त सिद्धान्त जिसे हमने बाहर से आरोपित नहीं किया बल्कि जो सीधे मंत्रों की भाषा और उनमें अन्तर्निहित संकेतों के भीतर से ही उद्भूत होता है, वही सारी बिम्ब–माला को अन्तर्ग्रथित करने और सारी प्रतीयमान विसंगतियों के बीच एक सुस्पष्ट अर्थ–संगति बिठा पाने में सक्षम है। वास्तव में, जहाँ एक बार उक्त केन्द्रीय भाव को आत्मसात कर लिया औ वैदिक ऋषियों की भाव–भूमि और चेतना स्तर में प्रवेश पा लिया तथा उनकी प्रतीक–सृष्टि के तत्व को हृदयंगम कर लिया, वहाँ फिर किसी प्रकार की असंगति या अव्यवस्था का स्थान नहीं रह जाता। तभी हम देख पायेंगे कि यहाँ एक सुदृढ़ सुनिश्चित प्रतीक व्यवस्था है, जिसमें केवल कुछ परवर्ती मंत्रों को छोड़कर, कोई विशेष बदलाव नहीं आते। यह भी कि इन्हीं प्रतीकों के प्रकाश में वेद अपना आन्तरिक मर्म सहज रूप से और सर्वत्र ही हमारी बुद्धि की ग्रहण–शक्ति के लिए स्पष्ट करते हैं। दूसरे शब्दों में, इस सारी विम्बमाला के पीछे उसे प्रेरित करने वाला सारभूत विचार निरन्तर एक सा, सुस्थिर, सुसंगत और अपरिवर्तनीय है।

निष्कर्ष

श्री अरविन्द के उपनिषद् साहित्य पर दिये गये विचारों भाष्यों और लेखों के आधार पर कहा जा सकता है कि प्रत्येक महान एवं प्रामाणिक उपनिषद् की अपनी एक विशिष्टता है तथा उसका अपना एक सुनिश्चित क्षेत्र है, इसी प्रकार उन सभी के विचारों का आरम्भ बिन्दु एवं परम सत्य समान है, जिनके प्रकाश में उनके समस्त ज्ञान को समझना आवश्यक है। परात्पर 'सत्ता' में ही वैश्व अस्तित्व की एकात्मता है एवं एकमात्र वही परम 'सत्ता' यहाँ अथवा अन्यत्र कहीं भी अभिव्यक्त हो रही है, यह सभी उपनिषदों की समान थाती है तथा यही सभी का आधारभूत विचार है।

सन्दर्भ :

1. दृष्टव्य, हिन्दी अनुवाद वेदार्थ दीपिका तथा श्री अरविन्द ऑन द वेद प्रकाशनः श्री अरविन्द सोसायटी व श्री अरविन्द आश्रम, पाण्डिचेरी (1971) पृ. 45
2. श्री अरविन्द, वेद–रहस्य (पूर्वार्द्ध) श्री अरविन्द–साहित्य खण्ड – 10, श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डिचेरी–2, 1971. पृ. 78
3. श्री अरविन्द, वेद–रहस्य (पूर्वार्द्ध) श्री अरविन्द–साहित्य खण्ड – 10, श्री अरविन्द सोसायटी, पाण्डिचेरी–2, 1971, पृ. 35–36.
4. रमेश चन्द शाह, श्री अरविन्द की वेद व्याख्या पद्धति अदिति, चौदहवीं प्रस्तुति, श्री अरविन्द जयन्ती 2004, पृ. 22–29.
5. वही, पृ. 31

***

विद्यासागर नौटियाल के उपन्यास 'मेरा जामक वापस दो' में भूस्खलन से पीड़ित लोगों की त्रासदी

*डॉ. गायत्री**

जाने माने वरिष्ठ कथाकार एवम् पूर्व विद्यायक विद्यासागर नौटियाल के लेखन का मूल विषय टिहरी–गढ़वाल के दुर्गम पर्वतों और उनकी घाटियों में कठिन परिस्थितियों में रहने–जीने वाले लोगों के दुख–सुख रहे हें। जिनके बीच उन्होंने बचपन से लेकर, अपने जीवन का ज्यादातर समय बिताया। नौटियाल ने एक स्थान पर स्वयं लिखा है–

''पहाड़ दरअसल वैसा नहीं है, जैसा वह सैलानियों को दिखाई देता है। सूरज, नदियां घाटियां और इन पहाड़ों में बसने वाले लोग ये सब शक्ति देते हैं। उच्च शिखरों पर बुग्यालों के रंगीन कालीन के ऊपर बैठकर एक क्षण के लिए सूर्य की किरणों के दर्शन जीवन को सार्थक करने लगते हैं लेकिन इन पहाड़ों के भीतर जीवन विकट है। याद रखना चाहिए कि इस हिमालय में पांडव भी गलने आए थे। मैं इस विकट पहाड़ में रम बस गया। इसे छोड़कर कहीं बाहर भाग जाने की बात नहीं सोची अपनी रचनाओं में मैं इस पहाड़ की सीमाओं के अंदर घिरा रहा। हिटरी के बाहर नहीं निकला। निकलूंगा भी नहीं।''[1]

नौटियाल ने अपने इस विचार से प्रमाणित कर दिया कि उनका समस्त लेखन कार्य पहाड़ पर बसे लोगों की विकट जिंदगी और उनके दुख दर्द की अभिव्यक्ति करता है। अपने आठवें उपन्यास 'मेरा जामक वापस दो' में लेखक ने भूस्खलन से पीड़ित लोगों के जीवन की त्रासदी का मार्मिक चित्रण किया है कि कैसे प्राकृतिक आपदाओं के कारण पर्वतवासियों को जान–माल की भारी कीमत चुकानी पड़ती है। जिसके कारण लोगों को कठिन परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है। घरों के गिरने और अपनों के बिछुड़ने का गम सदैव इंसान की स्मृति में छाया रहता है। यादों की यह स्मृति छाया तब तक बनी रहती है, जब तक वह स्वयं इस दुनिया में रहता है। कुदरत के इस भयंकर प्रकोप को रोकना इंसान के बस की बात नहीं है। लेखक ने उपन्यास में प्रकृति आपदा के प्रकोप का बड़ा ही हृदय विदारक वर्णन किया है–

''कुदरत भी जिसका कुछ न बिगाड़ सके ऐसा कोई भवन कौन बना सका है आज तक? कुदरत की बात अलग है। उसकी हरकतें किसी को पूछकर नहीं होतीं। वह एक झटके में इंसानी बस्तियों को नेस्तनाबूद कर दे। पहाड़ों को झकझोरते हुए वहां जमा मिट्टी–पत्थरों को घाटियों में बिछा दे और उनकी सूरत–शक्ल को ही बदल डाले। तालाबों के तल पर दरारें पैदा कर, उन्हें खंड–खंड कर तोड़ डाले। वहाँ भरी हुई भूमिगत असीमित, अदृश जलराशि को बहाकर बाढें, पैदा कर दे। जंगल में खड़े मजबूत दरख्तों को जड़पट कर डाले। उखाड़े गए पेड़ों का ज़मीन पर बिछौना–बिछा दे। कुदरत से कौन जीत सकता है? आदमी, पालतू पशु और बनैले जानवर, वनस्पति? इनमें कुदरत जिसे चाहे उसे घायल कर दे, अशक्त बना दे। वह जिसकी चाहे जान ही ले बैठे। पेड़, पहाड़, वनस्पति, नदी, घाटी, इमारतें या बस्तियां–कुदरत जिसे चाहे उसे जड़ से उखाड़कर एक ओर फेंक दे।''[2]

प्रकृति के भयावह रूप का वर्णन करके लेखक ने यह बताया है कि मानव चाहे कितना ही शक्तिशाली और ज्ञानी हो। परन्तु प्राकृतिक आपदा से होने वाली क्षति उसे तोड़कर रख देती है।

उपन्यास में लेखक ने ''जामक'' नामक एक छोटे से गांव का वर्णन किया है। इस गांव के एक छोर पर काली रहता है, दूसरे छोर पर हरि। काली ऊँचाई पर रहता है। जहाँ हरि रहता है, वह जगह गांव में सबसे निचले स्तर पर, भागीरथी के तट के पास है। हरि के मकान के बाद पुल को पार

करते ही वह बटिया शुरू होती है, जो मनेरी बांध की और जाती है। गाँव की सीमा के बाहर नदी को पार कर लेने के बाद वह बटिया गंगोत्री–उत्तरकाशी मोटर मार्ग से जुड़ जाती है। काली और हरि दोनों भाईयों में आपस में बहुत प्रेम है। परन्तु अचानक एक दिन हरि अपना हिस्सा माँगने काली के घर आता है,और उसे घात डालने की धमकी दे जाता है। उसी रात घनघोर बारिश और भयंकर भूस्खलन के कारण घरों की दीवार खिसकने लगती है। काली और उसके परिवार के सामने अपनी जान की रक्षा करने की विकट परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है। घर की छत के गिर जाने के कारण भुवनी और जैंती बुरी तरह मलबे में दब जाती हैं। माँ और बेटी की दर्द भरी आवाज़ सुनकर काली परेशान हो जाता है और उन्हें बचाने के लिए सोचने लगता है। सोच विचार में डूबे काली को अचानक ही अपने पशुओं का भी ख्याल सताने लगता है। पशुओं की रक्षा के लिए काली दौड़कर ओबरे में घुसा और पशुओं को उनके निश्चित स्थान से हटाने लगा।

''बैल को खोलते–खोलते काली के सिर पर अचानक पानी की बूंदें टपकने लगीं। ओबरे के भीतर घने अधंकार के बावजूद, दूसरे पशुओं की हिलने–डुलने की हरकतों का भी आभास होने लगा। टपकते पानी ने काली को अहसास करवा दिया कि अब गोशाला भी सुरक्षित नहीं।''[3]

पशुओं को बाहर निकालते ही उसे माँ बेटी की जान की चिंता सताने लगी। ''काली वैसे ही, उसी हालत में अपने घर से बाहर पड़ोस की ओर दौड़ पड़ा था। अधनंगा। वह पड़ोसियों के हाल–चाल भी जानना चाहता था और उसने सहायता लेने की बात भी सोचने लगा था। वह अपनी बेटी और घरवाली को मलबे से बाहर निकालने में दूसरों की मदद लेना चाहता था। समूचे गांव–बस्ती पर आई घोर विपदा के इस मौके पर वह इस बारे में भी आश्वस्त हो लेना चाहता था कि हरि के परिवार पर तो भूकंप का कोई असर नहीं हुआ। वह हरि, महेश और उसकी बई के बारे में भी आशंकित होने लगा था। उन पर भूकंप का कोई असर न हो, मन ही मन वह ऐसी कामना भी करने लगा था। उनकी ओर से वह अपने मन में इस बात को सोचकर थोड़ा आशावान होने लगा था कि वे जिस घर में रहते हैं, वह सीमेंट का बना है। शायद सीमेंट के भवन पर भूंचल का उतना असर न हो। पक्की इमारत भूंचल के झटकों को ज़रूर थाम लेती होगी। अभी तक गांव में सीमेंट के मकान तो बनते ही नहीं थे। मनेरी बांध के निर्माण से पहले सभी लोग मिट्टी पत्थरों के पटाल–छोंह घरों में ही रहते आए थे। बाप–दादों के जमाने से, सदियों से उसी तरह रहते आए थे। हरि को अपने साथ लेकर वह अपने घर लौट आने के लिए आतुर होने लगा था। वे दोनों, महेश और उसकी बई भी जैंती और उसकी बई के मलबे के नीचे दब जाने की खबर सुनते ही हरि के साथ उसके घर आने को खुद ही तैयार हो जाएंगी। पड़ोसी घर की राह पर चलते हुए वह अपने मन में ऐसी बातों पर सोचता जा रहा था।''[4]

घर पहुँचते ही काली के सामने जो दृश्य उपस्थित था उसे देखकर काली माँ और बेटी को निकालने के लिए सोच भी नहीं सकता था। काली असमंजस की स्थिति में घर की दहलीज पर खड़ा सोचता रहा–

''सीढ़ी पर खड़े काली को छत के धड़ाम से टूटने की जोरदार आवाज सुनाई दी। कमरे की पत्थरों की छंवाई से ढकी हुई छत। भवन का सुरक्षा–कवच। टूटी छत का मलवा कमरे के भीतर भरने लग गया। प्रवेश– द्वार की देहली और उसके ठीक सामने कमरे की पिछली दीवार के बीच, जितनी भी खाली जगह बाकी थी, उसे ऊपर से टूटकर आई कड़ियों, शहतीरों और पटेलों ने पाट दिया। अपने निश्चित स्थानों से नीचे गिरते ही वे सब मलवा बन चुके थे। बेतरतीब मलबे का एक ढेर। उस बेतरतीब मलबे की वहां एक दीवार खड़ी हो गई, जिसे लांघकर काली अब अंदर नहीं जा सकता था और अंदर फंसी हुई मां–बेटी वहां से खुद ही बाहर नहीं निकल सकती थीं। अपने ही घर की देहली ने उसके आने–जाने की राहें रोक दी थीं। तुम अब अंदर नहीं जा सकते! यहां पर भी खड़े मत रहो। अपने को ज़िंदा देखना चाहते हो तो सीधे बाहर निकल जाओ।''[5]

भूकंप और तेज वर्षा के कारण चारों और तबाही मच गई थी। रात के अंधेरे में लोगों के घर अब श्मशान में बदल चुके थे। कई लोग मलबे के ढेर के नीचे दब कर मर गये और जो जीवित थे वह

घायल अवस्था में थे अपनी जान बचाने में असमर्थ थे। सुबह होते–होते पूरा जामक गांव मैदानी बस्ती में तब्दील हो चुका था। समस्त जामकवासी अपनी इस अवस्था को देखकर चिंतित थे परन्तु फिर भी नये सिरे से जिंदगी शुरू करने की जिजीविषा मन में थी। लेखक ने भूकंप से पीड़ित लोगों का बड़ा ही मार्मिक चित्र उकेरा है– ''जाड़ों का मौसम। आज धूप दिखाई दे रही है। जामकवासी अपने घरों के उजड़ जाने के बाद से हमेशा घोर चिंता में डूबे रहते हैं। ऐसे कब तलक काम चल सकता है? ज्यादातर जामकवासी घना के खेत के किनारे आकर आपस में सलाह–मशविरा करने लगे हैं। ऐसे लोग, जिन्हें अब दिन–दिन भर किसी और के मंगनी के घर पर बिछे बिस्तर पर लेटे रहने की मजबूरी नहीं है, वे भी वहां पर आ गए हैं इस पर पहुंच जाने से जामकवासियों को ऐसा लगने लगता है कि वे एक बार फिर से बाहरी दुनिया को अपनी आंखों से देखने लगे हैं कि उन्हें बाहरी दुनिया की ताजा हलचलों से परिचित होने का मौका मिलने लगा है।''[6]

यहां लेखक ने भूकंप पीड़ित गांववालों की मन स्थिति का सजीव वर्णन किया है।

भूकंप के चलते जामकगांव वीरान हो गया तो वहीं पानी, बिजली और टेलीफोन की व्यवस्था चौपट हो गई। मार्ग में पड़े मलबे के ढेर के कारण यातायात के साधन अवरूद्ध हो गये। यातायात के साधनों के अवरुद्ध होने के कारण देश के कई राज्यों द्वारा भेजी गई खाद्य सामग्री और स्वस्थ संबंधी सेवाओं को भूकंप पीड़ित जामकवासियों तक पहुँचाने में ड्राइवरों और सरकारी कर्मचारियों को दिक्तों का सामना करना पड़ रहा था। उपन्यास में लेखक ने मार्ग के अवरुद्ध हो जाने की समस्या का वर्णन इस प्रकार किया है– ''डी.एम. की बात सुन लेने के बाद एसिस्टेंट इंजीनियर सी.डी. कपूर ने अपनी बात कही–

लेकिन सर! कुछ जगहों पर सड़क पूरी तरह गायब हो चुकी है। उन जगहों पर सड़क का पता ही नहीं लग रहा है।'

'कहां चली गई सड़क' ?

'भागीर थी के प्रवाह में समा गई है सर!'

'कहां की बात कर रहे हैं?'

'यह मातली के पास हुआ है सर!'

'अब पानी के घट जाने के बाद सड़क के कुछ हिस्से दिखाई देने लगे होंगे?'

'करीब एक किलोमीटर के टुकड़े को नदी का तेज बहाव पहाड़ से तोड़कर अपने साथ बहा ले गया। वहां पर अब सिर्फ पीछे का पहाड़ दिखाई देता है।'

'उस पहाड़ पर नई सड़क नहीं बनाई जा सकती?'

नहीं सर, उस पूरे टुकड़े पर अब किसी भी तरह का निर्माण–कार्य किया जाना असंभव हो गया है। नदी के पानी ने अपना रूख बदल दिया है। उसकी तेज़ धारा उस पहाड़ के तल पर, गायब हो गई सड़क की पूरी लंबाई में उसके नीचे से बहती जा रही है और उसे लगातार कुरेदती भी जा रही है।

'उसके विकल्प के बारे में तुमने कोई योजना बनाई है कपूर?' 'हमारे पास सिर्फ एक ही विकल्प बचा है सर! हम उस पहाड़ के पीछे की तरफ एक नया, वैकल्पिक मार्ग बन सकते हैं। इस सिलसिले में आपसे एक निवेदन करना है।'

'जिला प्रशासन आपको हर तरह की सहायता देगा।'

'मुख्य बात तो उस नरा एलाइनमेंट में पड़ने वाली सरकारी या गैर सरकारी जमीन की है सर! हमें वह जमीन फौरन उपलब्ध करवाई जानी चाहिए।''[7]

देश के अन्य राज्यों और सरकार द्वारा भूकंप पीड़ित जामकवासियों की सहायता के लिए भेजी गई राहत सामग्री और स्वस्थ्य सेवाओं से लाभ उठाने स्थानीय सरकारी कर्मचारी और कई राजनीतिक दलों के नेताओं ने जनता को बरगलाना शुरू कर दिया जिसके कारण भोले–भाले अशिक्षित जामकवासी उनके बेहकावे में आ गये। लेखक ने उपन्यास में एक स्थान पर नेताओं के दोहरे चरित्र का चित्रण किया है– ''बलबीर प्रधान के पास बनचौंरा में विकट राहों को पार करता हुआ भिटारा का

राजेंद्र सिंह आया है। उसे देखकर बनचौंरा के कई लोग उसके घर में जमा हो गए हैं। राजेन्द्र सिंह को गांव के अंदर आते हुए पूरे गांव ने देख लिया था। सभी लोग उसे अच्छी तरह पहचानते थे।

''तुमने कोई न कोई दाम तो अपने मन में तय किया होगा, ठाकुर जी! वही बता दो। हम अनपढ़ लोग क्या दाम बता सकते हैं? हमें टीनों का मोल–भाव करने का कभी मौका ही नहीं मिला। हम तो इस मामले में तुम्हीं को अपना पंच भी बना रहे हैं। बस ऐसा दाम बता दो कि हमारी गरीब बस्ती का कुछ फायदा हो सके।'

उसकी बात को सुनते ही राजेंद्र सिंह ने अपने दोनों कानों को हाथ से ढकते हुए अपनी बात आगे बढ़ाई।

'मैंने कहा न, कि तुम मुझे बहुत मुश्किल में डाल रहे हो। मैं कोइ दाम बता ही नहीं सकता। ऐसा करते हैं, मैं फिलहाल दस रूपए फी टिन का भाव तय कर रहा हूं। बाकी तुम लोग अपने–अपने हिस्से की टीनें लेने जब पटवारी के पास बैठ जाओगे, तो उसी दिन टीनों के भाव के बारे में, वहां पर जांच–पूछ करके पता लगा लेना। वहां पर जो तुम बोल दोगे, वह मुझे मंजूर होगा।'

दो मिनट तक रूककर लोगों के चेहरों के भावों का आकलन करने के बाद वह बोला।

'और इस वक्त मैं गांव में आया हूं तो सभी भाई लोगों को कुछ अग्रिम के नाम पर पांच–पांच रुपए फी टीन भुगतान कर देता हूं, प्रधान जी, तुमने लिस्ट बना ली है न?'

'हा, लिस्ट तैयार है ठाकुर जी!'

'तो इन सबके नाम की रकम मैं तुम्हारे पास जमा कर देता हूं। तुम सबको पैसा बांट देना। वह लिस्ट मुझे दे दो। मैं पटवारी के कागजों से उसका मिलान कर, जो कोई नाम छूट गए हो, उन्हें भी शामिल करवा दूंगा।

नुकसान तो सबका हुआ है न?'

सभी गांव वाले एक स्वर से कह बैठे।

'सबका नुकसान हुआ साहब। ऐसा तो कोई मवासा नहीं है जिसका नुकसान न हुआ हो।'

'इसलिए पूछ रहा हूं कि अगर पटवारी जांच करने आता है तो वह मुझे झूठा न कह दे।'

'ऐसा हो ही नहीं सकता ठाकुर जी! हम तुम्हें फंसाएंगे थोड़े ही। तुम बेफिकर होकर सबके नाम लिख दो।'

राजेन्द्र सिंह ने बलबीर से लिस्ट लेकर गिनती के हिसाब से सबका अग्रिम पैसा प्रधान को दे दिया।

'तुम बांट लेना प्रधान जी!'

'आप निसफिकर रहें ठाकुर साहब!'

राजेन्द्र सिंह जाने लगा तो पूरा गांव उसे छोड़ने गांव के बाहर तक आया। सबके मन में यह भरोसा भरने लगा था कि उससे उनको एक अच्छी रकम मिलने वाली है।''[8]

इस उपन्यास के जरिये लेखक ने जहाँ भूकंप से पीड़ित लोगों की त्रासदी का वर्णन किया है तो वहीं इसके कारणों का भी उल्लेख किया है। नदी के पानी को रोककर बांध का निर्माण किया जाता है ताकि सुरंग के रास्ते पानी भेजकर बिजली पैदा की जा सके। सुरंग का निर्माण करने के लिए कर्मचारी चट्टानों पर विस्फोट करते हैं। उनके एक ही धमाके से पहाड़ की पक्की से पक्की चट्टानें दरकने लगती हैं। चट्टानों का अपनी जगह से खिसकने के कारण ही धरती भूकंप के झटकों को रोक नहीं पाती है जिसके कारण धरती के ऊपरी भाग पर भूकंप के झटकों से मनुष्य की रिहाइश के लिए बने भवन टूटकर गिरने लगते हैं जिससे जान माल की भारी तबाही मच जाती है। इसी दुखद घटना का उल्लेख लेखक ने उपन्यास में किया है और साथ ही भूकंप पीड़ित लोगों को चेतावनी भी दी है कि कोई कर्मचारी और राजनीतिक नेता सहायता के नाम पर उनकी मजबूरी का फायदा न उठा पाये।

यह कह सकते हैं कि यह उपन्यास लेखक द्वारा नागरिकों के जीवन में भूकंप के पश्चात् घटित होने वाली परेशानियों का लिखित ब्यौरा है।

संदर्भ :

[1] विद्यासागर नौटियाल, मोहन गाता जाएगा, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्राइवेट लिमिटे, जी–17, जगतपुरी, दिल्ली–110092, प्रथम संस्करण–2004, पृष्ठ 14,15

[2] विद्यासागर नौटियाल, मेरा जामक वापस दो, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ 8

[3] विद्यासागर नौटियाल, मेरा जामक वापस दो, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ 30

[4] विद्याासागर नौटियाल, मेरा जामक वापस दो, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ 38

[5] विद्यासागर नौटियाल, मेरा जामक वापस दो, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ 6

[6] विद्यासागर नौटियाल, मेरा जामक वापस दो, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ 179

[7] विद्यासागर नौटियाल, मेरा जामक वापस दो, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ 90

[8] विद्यासागर नौटियाल, मेरा जामक वापस दो, किताबघर प्रकाशन, 4855–56/24, अंसारी रोड, दरियागंज नयी दिल्ली–110002, प्रथम संस्करण–2012, पृष्ठ 142,143

***

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के राजनीतिक चिंतन का ऐतिहासिक अध्ययन

*डॉ. वीरेन्द्र राम**

सार–संक्षेप

पंडित दीनदयाल जी का दर्शन उच्च कोटि का है जिससे प्रत्येक भारतीय युवा अपने जीवन में उतारकर एक निश्चित दिशा में जाकर अपने लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है। आदरणीय मोदी जी की जीवनशैली में बहुत से गुण पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के दर्शन से समरसता रखते हैं। उसका कारण उन्होंने अपने जीवन के कटु सत्यों को समाज एवं राष्ट्र के समक्ष रखकर नई युवा पीढ़ी को अवगत कराया कि यदि सबका साथ सबका विकास होगा तो राष्ट्र की छवि सम्पूर्ण विश्व के समक्ष एक गौरवमयी बनेगी। जो विश्व के समस्त राष्ट्रों के लिये अनुकरणीय होगी। आज तृतीय विश्व का हर देश पाश्चात्य अर्थशास्त्र से जूझ रहा है। राजनीतिक साम्राज्यवाद भी अब प्रच्छन्न आर्थिक साम्राज्यवाद का अधिष्ठान ग्रहण कर रहा है। आधुनिक पाश्चात्य तकनीकी के साथ प्रताडित समाजों की प्रतिभा का मेल बैठना कठिन है। आज न चाहते हुए भी तृतीय विश्व के देश साम्राज्यवादी अर्थशास्त्र से अपने को मुक्त नहीं कर पा रहे है। अपने स्वदेशी जन को भूखा मारकर भी साम्राज्यवादियों को बाजार देने के लिए वे बाध्य है।

परिचय

पण्डित दीनदयाल उपाध्याय का हमारे भारतीय राजनीतिक इतिहास में विशेष महत्त्व है। पण्डित दीनदयाल जी का राष्ट्र प्रेम ऐसा था कि वे राष्ट्र की सहस्र–सहस्र प्रजाशक्ति को ही वे परमेश्वर का रूप मानते थे। वे कहते थे राष्ट्र ही परमेश्वर है और राष्ट्र की उपासना ही परमेश्वर की उपासना है। उनके यह विचार स्वामी विवेकानन्द के विचारों से एकदम मेल खाते हैं। स्वामी जी ने भी राष्ट्र को ईश्वर से बड़ा मानते हुए कहा है – ''आगामी पचास वर्ष के लिए यह जननी जन्म भूमि भारत माता ही हमारी आराध्य देवी बन जाए। तब तक के लिए हमारे मस्तिष्क से व्यर्थ के देवी देवताओं के हट जाने में कोई हानि नहीं है। अपना सारा ध्यान इसी ईश्वर में लगाओ। हमारा देश ही हमारा जाग्रत देवता है। सर्वत्र उसके हाथ है। सर्वत्र उसके पैर हैं और सर्वत्र उसके कान हैं। समझ लो कि दूसरे देवी देवता सो रहे हैं। जिन व्यर्थ के देवी देवताओं को हम नहीं देख पाते उनके पीछे तो हम बेकार दौड़े और जिस विराट् देवता को हम अपने चारो ओर देख रहे हैं, उसकी पूजा ही न करें? जब हम इस प्रत्यक्ष देवता की पूजा कर लेंगे, तभी हम दूसरे देव देवियों की पूजा करने योग्य होंगे, अन्यथा नहीं।''

दीनदयाल उपाध्याय का कोई व्यक्तिगत जीवन न था। वे राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के जीवन समर्पित प्रचारक थे। भारतीय जनसंघ को अपने जीवन का ध्येयकार्य उन्होंने संघ के स्वयंसेवक के कारण ही स्वीकार किया था। अतः संघ–जनसंघ के अलावा उनका कोई अन्य सार्वजनिक एवं व्यक्तिगत जीवन नहीं था। वे सत्तरह वर्ष तक जनसंघ के महामंत्री के नाते उसके संगठनकर्त्ता एवं विचारक रहे।

राजनीतिक दल की एक महत्त्वकांक्षा सत्ता–प्राप्ति होती है। यह उसका दायित्व भी होता है। सत्तास्पर्धा के लिए राजनीति में उतरना अथवा अपने सिद्धांतों व आदर्शों के अनुसार सत्ता व समाज को नेतृत्व देने के लिए राजनीति में प्रवेश करना, इन दोनों स्थितियों में मौलिक अन्तर है। इस सन्दर्भ में दीनदयाल कहते हैंः– ''भारतीय जनसंघ एक अलग प्रकार का दल है। किसी भी प्रकार सत्ता में आने की लालसा वाले लोगों का यह झुण्ड नहीं है जनसंघ एक दल नहीं वरन् आन्दोलन है। यह राष्ट्रीय

* इतिहास विभाग, ल.ना.मि.वि., दरभंगा

अभिलाषा का स्वयंस्फूर्त निर्झर है। यह राष्ट्र के नियत लक्ष्य को आग्रहपूर्वक प्राप्त करने की आकांक्षा है।''

इसलिए कोई सत्ताकांक्षी व्यक्ति जनसंघ का नेतृत्व करने में सक्षम नहीं था। मुखर्जी की मृत्यु के बाद जब अनेक स्थापित नेताओं के नाम जनसंघ के अध्यक्ष पद के लिए आने लगे तब दीनदयाल उपाध्याय ने कहा, ''चूंकि बहुत से लोग हमारे समक्ष उपस्थित आदर्शवाद और उससे उत्पन्न हमारी अटल श्रद्धा की आंतरिक शक्ति को समझने में असमर्थ हैं इसलिए हमारी संस्था की अध्यक्ष गद्दी के भविष्य के सम्बन्ध में मनमानी अटकलें जगाई जा रही हैं। हवा में अनेक नाम उड़ रहे हैं। उनमें से अधिकांश तो जनसंघ के सदस्य भी नहीं हैं। किसी को यह नहीं समझना चाहिए कि हम किसी नेता की तलाश में दुनिया भर में चक्कर लगाते फिरेंगे और जहाँ कहीं उसे दर्शन को जाएँगें वहीं तुरन्त उसके गले में जयमाला डाल देंगे। हमारे लिए नेता कोई अलग व्यक्ति न होकर संगठन शरीर का अभिन्न अंग होता है। हम नहीं समझते कि नेताओं की कोई अलग जाति होती है और इसलिए हम उन लोगों से सहमत नहीं हैं जो ऐसा समझते हैं कि चूँकि हिन्दू महासभा के पास नेता है और जनसंघ के पास सबल संगठन, इसलिए दोनों को एक हो जाना चाहिए।''

पं. दीनदयाल उपाध्याय के सामाजिक व राजनीतिक विचारों को अलग–अलग करना काफी कठिन कार्य है; क्योंकि उपाध्याय राजनीति व राज्य–व्यवस्था को समाज की प्रतिनिधि व्यवस्था नहीं मानते। उनके राजनीतिक विचार भी सामाजिक ज्यादा व राजनीतिक कम हैं।

'एकात्म मानववाद' में मानव के समग्र जीवन के सम्बन्ध में विचार करते हुए पण्डित दीनदयाल जी ने बताया कि जीवित रहने की इच्छा ही मानव की प्रमुख स्वाभाविक प्रवृत्ति है जीवित रहने की ही नहीं तो फिर दीर्घ एवं 'सुखी' जीवन व्यतीत करना उसका लक्ष्य रहता है। सुख भी केवल इन्द्रिय सुख या एकांगी नहीं उसे शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का सुख चाहिए क्योंकि हमारी संस्कृति ने मनुष्य को शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा का समुच्चय माना है। इसलिए एकांगी सुख से काम नहीं चलेगा। कई बार ऐसे अवसर आते हैं कि जब हम इन्द्रिय सुख की वस्तु को त्याग देते हैं। उदाहरण के लिए भोजन से हमें इन्द्रिय सुख मिलता है। लेकिन अपने शत्रु के घर हम भोजन नहीं कर सकते क्योंकि हमारा मन गवाही नहीं देता मन को सुख नहीं प्राप्त होता। यह तो भावना का प्रश्न है। जैसे– 'उद्धव मन माने की बात' अर्थात् अपने–अपने मन का प्रश्न है। इसके साथ मनुष्य के पास बुद्धि भी है मन तो चंचल होता है सुख की दौड़ में उचित अनुचित विचार करना बुद्धि का कार्य है। किसी उलझे हुए प्रश्न का उत्तर मिल जाने से व्यक्ति का मुखमण्डल खिल उठता है, यही बुद्धि का सुख है 'तथापि बुद्धि का सुख अन्तिम चिरानन्द सुख नहीं है बुद्धि से भी ऊपर का सुख है माँ बच्चे को गोद में लेकर आत्मिक सुख का अनुभव करती है। यह आत्मा की विशालता का सुख है। इस सुख के सामने सभी सुख तुच्छ हैं।.... ..... इस प्रकार शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा चारों प्रकार के सुख की वृद्धि ही जीवन लक्ष्य है।'' संस्कृति के राजदूत परिकल्पना ने ही उन्हें 'अजातशत्रु' बनाया था। वे एक लोकतांत्रिक संसदीय व्यवस्था में विरोध पक्ष के नेता थे, तो भी वे 'विरोधवादी' नहीं थे। उनके सौम्य राजनीतिक नेतृत्व के विषय में मा0 स0 गोलवलकर ने कहाः–

''पं0 दीनदयाल जी एक विरोधी दल के प्रमुख व्यक्ति थे। उनका तो यह कर्त्तव्य ही था कि जो अनिष्ट दिखे, जो–जो कुछ त्रुटिपूर्ण दिखाई दे, उसके विषय में अपना मत वे असंदिग्ध शब्दों में प्रकट करें। यह उन्होंने किया भी परन्तु उनके सब लेखों को देखें तो हमें दिखायी देगा कि उनके हृदय के अन्दर कोई कटुता नहीं थी। शब्दों में भी कटुता नहीं थी, बड़े प्रेम से बोला करते थे। मेरा तो बहुत सम्बन्ध था। कभी किसी पर जरा भी नाराज नहीं हुए। बहुत खराबी होने पर भी खराबी करने वाले के प्रति अपशब्द का प्रयोग नहीं किया। ये युधिष्ठिर के समान थे। दुर्योधन में दुराक्षर था इसलिए वे 'दुर्योधन' नहीं 'सुयोधन' कहा करते थे। दीनदयाल जी भी इसी परम्परा के थे इसीलिए उनमें कटुता दिखाई नहीं दी। शब्दों में नहीं, हृदय के अन्दर नहीं, वाणी में भी नहीं।''

दीनदयाल उपाध्याय सत्ताकांक्षी राजनीति के नहीं वरन् राजनीति को तथा भारतीय लोकतंत्र को संस्कृति से आप्लावित करने के महत्वाकांक्षी थे। उनका यह जीवनव्रत उनके समस्त राजनीतिक व्यवहार में परिलक्षित होता है।

आम आदमी विषमताग्रस्त होकर उपेक्षित होता है। नेतृत्व वर्ग एवं मध्यम प्रतिभा के धनी अल्पशिक्षित वर्ग के निहित स्वार्थों को साम्राज्यवादी पाश्चात्य अर्थशास्त्र कुछ सीमा तक पूरा करता रहा है। परिणामतः एक सांस्कृतिक अराजकता, राजनीतिक अस्थिरता व आर्थिक गुलामी का सृजन हो रहा है।

उपाध्याय के आर्थिक विचार मानव्य प्रधान एवं समाजपरक है। उनका सांस्कृतिक अर्थशास्त्र आत्मरंजक भी लगता है, बुद्धिगम्य भी; लेकिन जिन निहित स्वार्थों का उन्होने वर्णन किया है, क्या उन्हें संस्कारों के बल पर नियंत्रित किया जा सकता है? लोकतांत्रिक मानवाधिकारों के दुरुपयोग ने ही पूंजीवाद को जन्म दिया था। सरकार द्वारा नियमन तो उपाध्याय को स्वीकार है, नियंत्रण नहीं। सरकारी व संसदीय नियमन तथा आर्थिक निहित स्वार्थों में संघर्ष की अवस्था का वर्णन उपाध्याय अपने विचारों में नहीं करते है। उनका विवेचन ज्यादा विधायक है तथा सृजनात्मक है। यह सही है कि संघर्ष को किसी दर्शन का आधार नहीं बनाया जा सकता; लेकिन व्यवहार में इससे बचना कठिन है।

दीनदयाल उपाध्याय का उत्तर है; संस्कार, शिक्षा, लोकमत–परिष्कार व नियमन–यही लक्ष्मण रेखा है। इसी की मर्यादा में हमें प्रयोग करने चाहिए। मानव की श्रेष्ठता में उनका अगाध विश्वास है। समाज के ऋषि व्यक्तित्व जीवन के सत्यों का साक्षात्कार करते हैं। सुखी वैयक्तिक व सामाजिक जीवन के नियमों को ढूँढ़ते हैं। ये बूढे हुए नियम ही 'धर्म' कहे जाते है। उनकी मूल प्रवृति एक ही होती है। व्याख्या में फर्क के कारण 'धर्मविवेचन' के अनेक संप्रदाय बन जाते है; लेकिन समाज संचालन में कोई बाधा उत्पन्न नहीं होती। समाज एक अनौपचारिक सर्वानुमतिवाला नीतिशास्त्र विकसित कर लेता है।

यह 'राज्यविहीन सामाजिक धर्मव्यवस्था' दुनिया के बहुत से दार्शनिकों का अत्यंत प्रिय विषय रही है। दुनिया के सभी 'अराज्यवादी' अराजकतावादी नहीं होते, 'धर्मवादी' होते हैं। उपाध्याय भी मूलतः धर्मवादी थे। व्यवस्था के माध्यम से समाज में धर्मव्यवस्था का प्रणयन होता है। किसी भी समाज के लिए अभी तक यह असंभव रहा है कि उत्पन्न होने वाली हर संतान के लिए शिक्षा व संस्कार की योग्य व्यवस्था कर सके। समुदायों का परस्पर संक्रमण, जनसंख्या का वर्धन एंव निहित स्वार्थो का सृजन समाज की शिक्षा व संस्कार व्यवस्था को चुनौती देते रहते है। तब समाज को एक औपचारिक व्यवस्था की जरुरत होती है जो 'अनीतिमान्' लोगों से बल पूर्वक नीति का पालन करवाए तथा 'नीतिमान्' लोगों के नीति पालन में किसी को बाधा उत्पन्न न करने दे। इसी आवश्यकता की पूर्ति के लिए 'नीतिशास्त्र' का 'राजनीतिशास्त्र' में परिवर्द्धन होता है। 'राज' समाज में 'नीतिशास्त्र' के संरक्षण के लिए है,

यह 'धर्मराज्य' की मान्यता है। दीनदयाल उपाध्याय 'धर्मवादी होने के साथ ही 'धर्मराज्यवादी' भी थे। उपाध्याय मानते थे कि हमारी राज्यविहीन धर्मव्यवस्था एवं पंचायत पद्धति श्रेष्ठ मानवीय जीवन की प्रतिपादक थीं। हमने 'राज्य' तत्व की अवहेलना की, इसी कारण विदेशी ताकतों को भारत में घुसने का अवसर मिला, और इसीलिए बाद में हमें 'स्वराज्य' को ही अपना 'स्वधर्म' घोषित करना पडा।

दीनदयाल उपाध्याय का लोकतंत्र विषयक विचार लोकतंत्र की पाश्चात्य व भीरतीय अवधारणा से प्रारंभ होकर उसके भारतीयकरण अर्थात् लोकमत–परिष्कार' की विवेचना करते हुए भारतीय लोकतंत्र के विश्लेषण के साथ पूर्ण होता है। उपाध्याय का चिंतन आदर्शवादी है। वे अपने विचारों में समाजशस्त्रीय व मनोवैज्ञानिक तत्वों से ज्यादा नीतिशास्त्र से प्रभावित है।

किसी दल को नीतिशास्त्रीय नेता उपलब्ध होना बडे सौभाग्य की बात होती है। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी जो आदर्श का आचरण करता है वही नीतिशास्त्र की महता को भी सिद्ध कर पाता है। समझौतावादी लोग आदर्श व नीति को तात्कालिक परिणामों के भय से त्याग देते है। उनकी व्यवहार नीति के नाम पर अवसरवाद पनपता है। जिस 'अवसरवाद' के बारे में दीनदयाल उपाध्याय ने

चेताया था, उसका जब भयानक दौर भारत में प्रारंभ हुआ, उसी दौर में उनकी हत्या हो गई। लोकतंत्र की यह बडी क्षति थी।

उपाध्याय समाजवाद पर अपने विचारों को व्यक्त करते समय उसे भारतीय संदर्भ में ही विवेचित करते है, जो सैद्धांतिक के साथ–साथ राजनीतिक भी था। उनके विचारों के कुल स्वर को सुनकर कहना हो तो यह कहा जा सकता है कि वे विधायक रूप से 'समष्टिवादी' थे। वे पूँजीवाद व समाजवाद इन दो कठोर दायरों विचारधाराओं को बाँटकर, किसी एक दायरे की तरफदारी के खिलाफ थे। पूँजीवाद के खिलाफ तो वे समाजवादी ही थे; लेकिन प्रतिक्रिया में उत्पन्न राज्यवादी समाजवाद के खिलाफ वे मानववादी थे। उपाध्याय का यह तकनीकी आधार पर समाजवाद का विरोध लोगों को बहुत समझ में नहीं आया अतः लोगों ने उन्हें प्रचलित समाजवादी खेमे के विरोधी अर्थात् 'पूँजीवादी' खेमे मे धकेल दिया। आज के तकनीकी युग में उद्योगवाद के विरोधी को आधुनिकीकरण का विरोधी भी माना जाता है। संभवतः यही कारण था कि उपाध्याय के विचार लोग ठीक से समझ नही पाए।

पं. दीनदयाल जी जैसे तत्वग्राही प्रवृत्ति वाले एवं भक्तिभावना से ओतप्रोत व्यक्ति ने हमारे हिंदू राष्ट्रस्वरूप का दर्शन जितनी उत्कृष्टता एवं सुस्पष्टता से किया, उसे अपने लेखन में वैसा ही प्रतिबंधित करना तो मेरे बूते की बात नहीं, फिर भी आशा है, पंडित जी के राष्ट्रविषयक विचारों का पुनरावलोकन करने के इस विनम्र प्रयास में पाठक रूचि लेंगे। मनुष्य का सृष्टि के साथ सम्बंध, सृष्टि में मनुष्य के उपरांत भी पशु पक्षी, वृक्ष वनस्पति, पंच महाभूत (आकाश, भूमि, वायु, अग्नि, जल) आदि अनेक सजीव और निर्जीव हैं। इन सब का जीवित रहने का अधिकार भी मनुष्य जितना ही है। मनुष्य के संबंध सृष्टि के साथ एकात्म होने चाहिये। जैसे प्रथम चरण में कहा गया उसके अनुसार सृष्टि का रक्षण और पोषण करना यह मनुष्य का कर्तव्य है।

निष्कर्ष

पंडित दीनदयाल उपाध्याय के विचारों एवं कार्यों के समीक्षात्मक अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि वे महान चिन्तक, कर्मयोगी, मनीषी एवं राष्ट्रवादी विचारक थे। दीनदयाल उपाध्याय का अर्थचिंतन समग्रतावादी है। निपट आर्थिक दृष्टि से ही सम्पूर्ण मानव–जीवन को देखने के वे विरोधी है। मानवीय सांस्कृतिक मूल्यों की दृष्टि से उनका अर्थचितंन आदर्शवादी है लेकिन वह चिंतन अव्यावहारिक न बने अतः उन्होंने साथ–साथ व्यवहार्य व्यवस्थाओं के विवेचन का भी प्रयत्न किया है। वे किसी वादविशेष से कट्टरतापूर्वक बंधने की बजाय शाश्वत जीवन–मूल्यों के प्रकाश में यथासमय आवश्यक परिवर्तन एवं मानवीय विवेक में आस्था रखते है।

संदर्भ :

1. गोयनका, कमल किशोर पंडित दीनदयाल उपाध्याय व्यक्ति दर्शन, 03, दीनदयाल शोध संस्थान, नई दिल्ली – 1992, पृ. 550.
2. अवस्थी, डॉ. ए., अवस्थी, डॉ. आर.के. आधुनिक भारतीय सामाजिक स्वयं राजनीतिक चिन्तन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, टिरीपोलिया बाजार, जयपुर – 02, पृ. 156.
3. शर्मा, डॉ. महेश चन्द्र, पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 2,3,5,6, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सकरार, नई दिल्ली–2004, पृ. 47.
4. राजस्वी, एम.आई. पंडित दीनदयाल उपाध्याय, 8,9,10, मनोज पब्लिकेशन्स 761, मेनरोड़ बुराडी, दिल्ली, 2009, पृ. 36.
5. शर्मा, महेशचन्द्र दीनदयाल उपाध्याय कर्तृत्व एवं विचार 99,100, प्रभात पेपर बैक्स 4/19, आसफ अली रोड, नई दिल्ली, 2005, पृ. 89.

***

कंसवहो एक संस्कृति झांकी

डॉ. कुमारी शिल्पा *

कंसवहो के अध्ययन से मालूम होता है कि इसके माध्यम से मानव में साहस, वीरता, प्रेम, त्याग, सत्य एवं कर्त्तव्यपरायण जैसे – नैतिक मूल्यों का ज्ञान प्राप्त हो, ऐसे तत्वों का समावेश किया गया है।

कथानक का आधार श्रीमद् भागवत् है, जो कि भारतीय संस्कृति की अमूल्य धरोहर है। इसकी गणना विश्व साहित्य के श्रेष्ठ ग्रंथों में की जाती है। इस काव्य में मानव को प्राचीन भारत की गौरवशाली संस्कृति से परिचित कराने का प्रयास किया गया है, जो विश्व में सबसे अनूठी होने के साथ–साथ जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में सबके लिए आदर्श मूल्यों को स्थापित करने का प्रयास करती है।

अपने शत्रु का पता चलने के बाद कंस ने अपने सहयोगियों और मित्रों को बुलाकर कहा – बलराम और कृष्ण ब्रज में निवास करते हैं। मैंने उन्हें धनुष यज्ञ के बहाने बुलावा भेजता हूँ। तुमलोग हाथी लेकर मुख्य द्वार के पास ही तैयार रहना, ज्योंहि वो मंडप की ओर से निकले, त्योंहि उसे रौंद डालना। इतनी व्यवस्था के बाद कंस ने अक्रूरजी को बुलाया। कंस ने अक्रूरजी से आदरपूर्वक कहा – आप अविलम्ब ब्रज को जाइए। वहाँ समस्त व्रज निवासियों को बताइए कि धनुष यज्ञ मेंआप समस्त ब्रजवासी निमंत्रित हैं। और बलराम–कृष्ण को साथ ही लेकर आइए। कंस का आदेश पाकर अक्रूर जी को आनंद हुआ। श्री कृष्ण जी को देखने के आशा में उनका चित् चकोर उत्फुल्ल हो उठा। अगले दिन अक्रूरजी रथ पे सवार होकर ब्रज की ओर चल परे। रस्ते भर वो अपने भाग्य को सराहते जा रहे थे, कौन से पुण्य किये हैं जो आज अनायास ही भगवान के दर्शन मिलने वाले हैं।

संस्कृत की शैली पर इस काव्य को लिखे जाने के कारण इसमें अलंकारों की समुचित योजना की गयी है। उपमा, उर्त्पेक्षा, रूपक, दृष्टान्त, निदशरना आदि अलंकार प्रयुक्त है। उपना द्वारा कवि ने भावों में कितनी स्फीति उत्पन्न की है, यह दर्शनीय है। यथा –

हरिस्स एवं चिअ संचरेह हो, हरिम्माणी–सामल, कोमल–प्पहं।
सिनिह–केसचिअ–मोर पिंछिअं, विसट्ट–कन्दीट्ट विसाल–लोअणं।। 1।41।।

भांति–भांति की मोहक कल्पनाओं में डूबे अक्रूर जी संध्या होते–होते वृन्दावन जा पहुँचे। बलराम–कृष्ण सायं काल के समय ब्रज में घुम रहे थे। उसी समय अक्रूर जी उनके पास आए। कृष्ण ने उनका स्वागत किया। अक्रूर जी ने उन्हें स्तुति की। अक्रूर जी कृष्ण दर्शन के आनंद में भावविहल हो रहे थे। उनके नेत्रों से अश्रु झर रहे थे। श्री कृष्ण ने उन्हें गले से लगा लिया और मथुरा का वृतान्त पूछने लगे। तब अक्रूर जी ने श्री कृष्ण जी से कहा ''कंस ने आप दोनों भाई को धनुष्य यज्ञ का निमंत्रण भेजा है।''

बलराम–कृष्ण निमंत्रण स्वीकार करते हुए अक्रूरजी के साथ ही चलने का निश्चय किया।

कवि ने बलराम का अन्तद्वंन्द्व मनोविज्ञान की आधार पर शिलापट प्रस्तुत किया है। कवि कहता है–

पवट्ठए चावमाहं ति कोदुअं। निवट्टए वंचण –सहणं ति तं ।।
दुआ बसे भादर भाव–बंधणं। महत्ति तं जंपइ रोहिणी–सुओ।। 1।27 ।।
इदं वओ भग्गइं वण्णमालिणा। अलं कवित्थेण पलंव–सूअण।।
अकज्ज–सज्जाण हि सत्रु–सम्भूबो। कुदो भअं कज्ज–पहुम्मुहाण णो ।। 1।28।।

रोहिणी सुत बलराम कहने लगे– भई! मेरा मन बड़ी दुविधा में पड़ा है। धनुष यज्ञ हो रहा है, उसे देखने का बड़ा कौतुक है। पर ऐसा भी मालूम पड़ रहा है कि वह हमें धोखा देने का एक षडयंत्र

---

* एम.ए. (प्राकृत), पी-एच.डी. (प्राकृत-जैनशास्त्र), प्राकृत जैनशास्त्र और अहिंसा शोध संस्थान, वाशोकुण्ड, वैशाली

(साधन मात्र) है। इस कारण मन चिन्ता में पड़ गया है, जिनकी इच्छा होते हुए भी मन को पीछे हटना पड़ रहा है। कृष्ण उत्तर देते हैं – प्रलम्ब को पछाड़नेवाले आपको इस प्रकार संदेह करना उचित नहीं। शत्रु की सम्भावना तो उसको करनी चाहिए जो अकार्य में प्रवृत होते हैं। जब हम कर्त्तव्यपरायण हैं, तब हमें किसी से क्या भय?

इस प्रसंग में बलराम और कृष्ण की विचारधारा का सुन्दर विश्लेषण हुआ है।

प्रस्थान के समय का दृश्य देखकर गोपियों का हृदय सन्तप्त हो उठा। पुनः लौट के आयेंगे ऐसा गोपियों को कहते हुए कृष्ण चल पड़े। तत्पश्चात् बलराम–कृष्ण अपने परिजनों सहित यमुना में डुबकी लगाये। कहा जाता है कि कृष्ण यमुना में डुबकी लगानक बाद बाहर नहीं निकले–धर्मरक्षक, वेदोपदेशक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ और महान पराक्रमी श्रीकृष्ण।

तत्पश्चात् संध्या होते ही बलराम–कृष्ण ब्रजवासियों की टोली मथुरा में जा पहुँची। मार्ग में जाने के क्रम में कंस के धोबी से समारोह में पहनने के लिए वस्त्र मांगे। इस पर वह दुर्वचन कहने लगा। श्रीकृष्ण ने एक घूँसा में धर धरती पर गिरा दिया। पुनः कंस की दासी के द्वारा केसर–चंदन स्वीकार कर कुब्जा को छु दिया, जिससे उसका कुबड़ापन दूर हो गया और वह एक सुन्दर युवती बन गयी। वहाँ से चलकर धनुषशाला में प्रविष्ट हुए और धनुष को तोड़ दिया।

प्रातः काल होने पर वन्दीजनों ने स्तुती–पाठ कर श्रीकृष्ण को जगाया। आगे चलते हुए बलराम–कृष्ण ने असुर को युद्ध कर स्वर्ग पहुँचा दिया। इस समाचार से क्रुद्ध होकर कंस स्वयं शस्त्र लेकर श्रीकृष्ण की ओर दौड़ा ही था, तत्क्षण कृष्ण ने उसे पछाड़कर अपने खड्ग द्वारा उसको अंत कर दिया। कंस की मृत्यु से दिव्य पुष्प वृष्टि हुई, दुन्दुभि बाजे बजने लगे और देवाङ्नाएँ नाचने लगी। समस्त जनता को आनंद और संतोष हुआ। माता–पिता देवकी और वासुदेव को बंदीगृह से छुड़ाया, माता–पिता ने स्नेह से गदगद होकर आशीर्वाद दिया।

कवि की कल्पनाएँ हृदयग्राही और मार्मिक है। हृदय में रहने वाले बिम्बों को उत्प्रेक्षाओं द्वारा सहज–सहज अभिव्यज्जना प्रदान की है। यथा :–

इमसस कज्जस्स सरीए में रिसम, जहीं कु पाणाआइ विप्पलं नं।
ण वच्च वा णंदअ वच वा तुवं, विही णिसेहो वि ण दूअ–कर्तओ ।।1।26।।

हरितमणि के समान कोमल श्याम प्रभाव वाले–मयुर पंख से सुशोभित स्निग्ध केशवाले और विकसित कमल के समान विशाल नेत्र वाले कृष्ण के रूप का स्मरण करो।

उस प्रेम के अत्यन्त–अदभूत विकास के जो उस वृंदावन की मधुर लीला में रूपक भाव से वर्णित हुआ है, जो प्रेम के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहता, जो प्रेम स्वर्ग की भी आकांक्षा नहीं करता, जो प्रेम इहलोक और परलोक की किसी भी वस्तु की कामना नहीं करता, गोपियों के उस प्रेम से उत्पन्न विरह व्यथा के भाव को कौन समझ सकता है।

इस काव्य का बहुभाग जैन लेखकों द्वारा लिखित है, तो भी इसमें तत्कालीन लोक जीवन का जैसा स्पष्ट प्रतिबिम्ब अंकित है, वैसा कही नहीं मिलता। विभिन्न देशीय ऐतिहासिक, राजनैतिक, सामाजिक और सांस्कृतिक छवियाँ उपलब्ध है।

इस प्रकार प्राकृत 'कसवहो' में भारतीय संस्कृति और साहित्य को समझने के लिए एक अत्यन्त मनोरम भंडार है। राष्ट्र के लिए नव प्रकाश है।

सन्दर्भ :

1. वासुनन्दि श्रावकाचा (हिन्दी भाषानुवाद) सं. 1952 ई. भारतीय ज्ञानपीठ कासी।
2. कृष्ण लीला (गोविन्ददास)
3. कंसवहो – रामपाणिवाद सं. डॉ. ए.एन. उपाध्ये, प्र. हिन्दी ग्रंथकार हजारीबाग बम्बई।

***

स्वच्छ भारत अभियान और पर्यावरण सुरक्षा : एक भौगोलिक अध्ययन

*भीष्म कुमार सिंह**

स्वतंत्रता के 68 वर्ष पूरे हो गए हैं। भारत विकासशील देश से विकसित देश की ओर तेजी से बढ़ रहा है। भारत गाँवों का देश रहा है पर आज के संचार युग में भारत का पिछड़ा गाँव भी 'ग्लोबल विलेज' में बदल गया है। एक क्लिक पर भारत विश्व के किसी भी कोने से जुड़ जाता है। भारत हर तरफ आगे बढ़ रहा है लेकिन भारत आज भी एक बड़ी चीज से निजात नहीं पा सकता है जिसे गंदगी, कचरा या प्रदुषण कहा जा सकता है। इस समस्या से निजात पाने के लिए सभी को आगे आने की आवश्यकता है। इसमें बच्चे, बुढ़े तथा महिलाएँ सभी की भूमिका अनिवार्य प्रतीत होगी।

भारत में स्वच्छता अभियान कोई नई बात नहीं है, वर्तमान सरकार के इस मिशन से पहले भी देश में स्वच्छता के लिए कई मुहिल चलायी गयी। सरकारी और गैर–सरकारी संस्थाओं के अलावा यूएन ऐजेंसियों ने बहुत सी योजनाएँ चलायी। लेकिन ज्यादातर योजनाएँ लगभग असफल रहीं। 2011 की जनगणना से यह पता चलता है कि देश में लगभग आधी आबादी के पास शौचालय नहीं है। स्वच्छता अभियान को व्यापक बनाने की मुहिम में महिलाओं को जोड़ा जाना आवश्यक प्रतीत होता है। अब तक ग्रामीण क्षेत्र में महिलाओं द्वारा गठित स्व–सहायता समूहों, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा आय सृजन जैसी गतिविधियों में महिलाओं की सहभागिता महत्वपूर्ण मानी जाती है। अतः इस अभियान में भी महिलाओं की सहभागिता अनिवार्य है।

प्रदूषण नियंत्रण की दृष्टि से नागरिकों की भूमिका अहम् है। इनके योगदान का प्रभाव न केवल समुदाय, शहर, राज्य अथवा राष्ट्र के सामने आएगा; अपितु अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर भी पहचाना जाएगा। समस्त मानव सभ्यता, जो धरती पर निवास करती है, की जिम्मेदारी है कि वे अपने आवास, आसपास के जीव–जन्तु व वनस्पति की रक्षा करें। इस ओर उठाया गया एक कदम पर्यावरण संरक्षण की दृष्टि से सार्थक पहल होगी। आवश्यक है कि हमारी जीवन–शैली पर्यावरण के हित में हो।

- सी. एफ. सी. के उत्पादन में कमी लाई जाए।
- रेफ्रीजरेटर और वातानुकूल यन्त्र में सी. एफ. सी. का प्रयोग न हो।
- प्रदूषण नियन्त्रण की अपेक्षा, प्रदूषण में कमी लाने पर जोर हो।
- प्रदूषण मुक्त उत्पादन पर जोर दिया जाए।
- प्रदूषण मुक्त उत्पादन हो चाहे आर्थिक दृष्टि से यह सौदा महंगा पड़े।
- वायु प्रदूषण नियन्त्रण के लिए स्वच्छ ईंधन जैसे हाइड्रोजन को अपनाया जाए। हाइड्रोजन उत्पादन के लिए सौर–ऊर्जा का प्रयोग हो।
- अपेक्षाकृत कम हानिकारक रसायनों का प्रयोग हो।
- साबुन और अपमार्जक आदि के निर्माण में फॉस्फेट का प्रयोग न्यूनतम हो।
- रासायनिक उर्वरकों के स्थान पर जैविक खाद का प्रयोग हो।
- घातक रसायनों, विलायकों, तेल आदि की नदियों में विसर्जन न हो।
- विभिन्न क्रियाकलापों में जल का उपयोग न्यूनतम हो।
- अधिकाधिक वृक्षारोपण हो।
- जनसंख्या वृद्धि की दर पर रोक लगे।
- जीवाश्म ईंधन पर निर्भरता कम हो।

* शोध छात्र (भूगोल),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

- बिजली की बचत की जाए।
- गैर–परम्परागत ऊर्जा स्त्रोतों के उपयोग पर बल दिया जाए।
- अपशिष्ट का पुनर्पयोग और पुनर्चक्रण हो।
- यातायात के लिए सामुदायिक साधनों का प्रयोग हो।

विशेषतः नगरीय क्षेत्र में कूड़ा–करकट उठाना, उनका रख–रखाव व उनका उपयोग एक विकट समस्या है। देश में सरकार प्रतिवर्ष नगरीय क्षेत्र के कूड़े–करकट के एकत्रीकरण व रख–रखाव पर 507000 मिलियन से अधिक रुपया व्यय कर रही है। देश के नियोजकों व वैज्ञानिकों के सामने इसके प्रबन्धन की समस्या एक चुनौती बनकर रह गई है। ठोस अपशिष्टों के प्रबन्धन के लिए निम्न कदम उठाने चाहिये –

(1) कूड़े–करकट के जैविकीय भाग का प्रयोग खाद बनाने में करना चाहिये।
(2) नगरों में कूड़ा एकत्रित करने के लिए कचरा घर होना चाहिये। इसे एक स्थान पर एकत्रित करके नगर के बाहर भेजा जा सकता है। घरों में भी कूड़ादान होना चाहिये जिससे कचरा नालियों में बिखरा हुआ न हो।
(3) कचरे के अनेक पदार्थ, जैसे – कागज, गता, प्लास्टिक, लोहा आदि को पुनः उपयोग में लाने का प्रयास करना चाहिये।
(4) भू–संरक्षण व प्रदूषण नियन्त्रक उपायों का पालन करना चाहिये।
(5) कचरे की प्रकृति के अनुसार उनके निस्तारण की विधियाँ अलग–अलग होती है। अतः घरेलू में से पुनः चक्रित होने वाले पदार्थों का अलग, अजैविक व जैविक कचरे को अलग–अलग रखना चाहिये।
(6) जैविक कचरे का उपयोग बायो गैस, बिजली उत्पादन आदि कार्यों में किया जाना चाहिये।
(7) विभिन्न प्रकार का कूड़ा–करकट एकत्रित करके जला देना चाहिये।
(8) नगरों के निकट ईंट आदि के निर्माण में बनी खाइयों को समतल बनाने के लिए ठोस अपशिष्ट का उपयोग करना चाहिये।

बढ़ती जनसंख्या व औद्योगीकरण के कारण तकनीकी सभ्यता के द्वारा वैभव और ऐश्वर्य प्राप्त करने में चाहे अस्थायी रूप से हम सफल क्यों न हो जाएँ, परन्तु हमारा स्थायी विकास संदिग्ध है; क्योंकि पारिस्थितिकीय व्यवस्था में असंन्तुलन द्रुत गति से हो रहा है। जल्दबाजी व उतावले ढ़ंग से पर्यावरण पर विजय पाने की लालसा ने प्रकृति द्वारा निर्मित पारिस्थितिकीय तंत्र पर प्रतिकूल असर डाला है, जो किसी समाज या राष्ट्र तक सीमित न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यावरण–सन्तुलन बिगाड़ रहा है। मानव और प्रकृति की परस्पर अंतःनिर्भरता एवं सद्भावनाओं को समाप्त करने से हमारा पारिस्थितिकीय तंत्र डगमगा रहा है। कालांतर में भी यदि मानव की यही अभिवृद्धि बनी रही, तो प्रकृति द्वारा करोड़ों वर्षो की यात्रा के उपरान्त बना प्राकृतिक पर्यावरण नष्ट हो जाएगा। 'मेन मेड ईको–सिस्टम' में मानव अपने अस्तित्व को खतरे में डाल देगा, जब तीव्र गति से हो रहे जल, नभ, थल, वायु, ध्वनि आदि प्रदूषण बढ़ते–बढ़ते ऐसी स्थिति पैदा कर देंगे कि मानव स्वयं घुटकर मृतप्राय हो जाने की स्थिति में आने लगेगा। अतः समय रहते पारिस्थितिकी तंत्र एवं मानव समाज के परस्पर निर्भरता के संबंधों को बनाए रखना होगा और अत्यधिक प्रकृति–दोहन न करने की चेतना का विकास करने हेतु विश्वव्यापी अभियान छेड़ना होगा, जिससे प्रकृति एवं जीवधारी अपना कार्य संतुलित ढ़ंग से करते रहे और एक दूसरे के सह–सम्बन्ध निरन्तर अग्रसर हो सके। मानव मात्र को चाहिए कि पारिस्थितिकीय नियमों का अपने हित में सोच–विचार कर पालन करे। प्रगति के नाम पर प्रकृति पर नियंत्रण करने की लालसा में ढ़ील देते हुए अपने आपको प्रकृति का अभिन्न अंग समझने का प्रयास करना होगा, ताकि पारिस्थितिकीय तंत्र एवं समुदाय के बीच परस्पर संतुलन बनाए रखा जा सके।

कोई भी जीव सर्वथा एकल जीवन व्यतीत नहीं कर सकता। किसी भी सीान पर निवास करने वाले जीव की दूसरे जीव के साथ सहवासिता अनिवार्य है, अर्थात् भौतिक एवं जैविक घटकों के मध्य गहरा संबंध है। प्रत्येक जीव को उसका भौतिक पर्यावरण प्रभावित करता है; प्रत्येक प्राणी भोजन के

लिए प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रुप से पौधों पर निर्भर करता है। उदाहरणार्थ, शेर का भोजन मांस है। शेर प्रत्यक्ष रुप से पेड़–पौधों पर निर्भर नहीं है, लेकिन शेर का भोजन हिरण है और हिरण का भोजन पेड़–पौधें हैं तो हम कह सकते हैं कि शेर अप्रत्यक्ष रुप से पेड़–पौधों पर ही निर्भर है। प्रकृति अपना कार्य संतुलित ढ़ंग से तभी कर पाती है, जब भौतिक व जैविक अंशों का उचित मात्रा में अस्तित्व विद्यमान रहे। दोनों में से किसी एक का आवश्यकता से अधिक या कम होना पारिस्थितिकीय तंत्र की विफलता का सूचक है। इससे पर्यावरण प्रभावित होता है।

सभी जीव तथा स्वयं मनुष्य पर्यावरण में अन्तःसम्बन्ध स्थापित करता है। पर्यावरण के पदार्थों और ऊर्जा से ही इनका निर्माण हुआ है। पर्यावरणीय पदार्थों से संपोषित होकर ही ये प्रजनन द्वारा अपनी संतती कायम रखते हैं। प्रजनन के क्रम में आनुवांशिक अनुकूलन के द्वारा जैव विविधता विकसित होती है। जब जीव की मृत्यु होती है तो वे उसी में विलीन हो जाती हैं। पर्यावरण पर पड़ने वाले प्राकृतिक या मानवजनित प्रभावों विभिन्न प्रकार की विपदाओं के रुप परिलक्षित होते हैं। क्योंकि इनके संतुलन में तनिक भी विचलन समस्याएँ पैदा करते हैं। आधुनिक विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी से सम्बन्ध मानव के लिए पर्यावरण का अध्ययन सबसे महत्वपूर्ण विषय है। इसके महत्व को अग्रलिखित बिन्दुओं के द्वारा भली–भाँति समझा जा सकता है।

प्रकृति अपना कार्य संतुलित ढ़ंग से तभी कर पाती है, जब भौतिक व जैविक अंशों का उचित मात्रा में अस्तित्व विद्यमान रहे। दोनों में से किसी एक का आवश्यकता से अधिक या कम होना पारिस्थितिकीय तंत्र की विफलता का सूचक है। इससे पर्यावरण प्रभावित होता है।

स्वस्थ नागरिक ही एक मजबूत राष्ट्र का निर्माण कर सकते हैं। स्वास्थ्य का स्वच्छता से सीधा सम्बन्ध है। स्वच्छ देश स्वस्थ नागरिकों का गारंटीकार्ड है। यही नहीं जो देश और उसके नागरिक स्वच्छ, स्वस्थ होंगे, वो देश ही समृद्ध हो पाएगा। चूँकि स्वच्छ–स्वस्थ माहौल में ही कोई देश और उसके नागरिक समृद्धता के बारे में सोच समझ सकते हैं और उसमें अपना योगदान दे सकेत हैं। यही नहीं एक स्वच्छ–स्वस्थ देश विश्व पर्यटन मानचित्र पर अपनी अलग पहचान कायम करता है और दुनिया भर के पर्यटकों को भी अपनी ओर आकर्षित करता है। पर्यटकों के आने–जाने से हमें न केवल विदेशी मुद्रा मिलती है साथ ही वैचारिक धरातल भी व्यक्ति और देश समृद्ध होता है।

स्वच्छता और आर्थिक विकास से सीधा सम्बन्ध है। गंदगी से बीमारियाँ फैलती हैं। खुले में शौंच बीमारी को खुला न्यौता है। उस पर जब बुनियादी स्वास्थ्य सेवाओं की कमी हो तो बीमारी बढ़ेगी ही। बीमार व्यक्ति किसी काम को ठीक ढ़ंग से नहीं कर सकता और इसका सीधा असर उत्पादकता पर पड़ता है। जिस देश के लोग स्वस्थ नहीं होंगे जाहिर तौर पर उस देश की सबसे बड़ी पूँजी 'मानव संसाधन' उत्पादक नहीं हो पाएगी और पूरे देश की आर्थिक स्थिति प्रभावित होगी। अपर्याप्त स्वच्छता की वजह से वर्ष 2006 में 2.44 खरब रूपये या प्रति व्यक्ति 2180 रूपये का नुकसान होने का अनुमान लगाया गया। ये सकल घरेलु उत्पाद के 6.4 प्रतिशत के बराबर है। 2011 में जारी एक रिपोर्ट जिसका शीर्षक भारत में अपर्याप्त स्वच्छता के आर्थिक प्रभाव (इकोनॉमिक इम्पेक्ट ऑफ इनएडिक्वेट सेनिटेशन इन इंडिया) है, के अनुसार स्वच्छता दरअसल मानव मलमूत्र, ठोस कचरा और गंदे पानी की निकासी की प्रबंधन का निष्कर्ष है।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी ने राष्ट्रपिता महात्मा गाँधी की जयंती 2 अक्टुबर 2014 को स्वच्छ भारत अभियान की शुरूआत की थी। स्वच्छ भारत अभियान की अवधारणा के अनुसार शौचालय, कचरा प्रबंधन, गाँवों की सफाई एवं साफ व प्रचुर मात्रा में स्वच्छ पेयजल सुविधा सुलभ होनी चाहिए। इस कार्यक्रम की शुरूआत पेयजल एवं स्वच्छता मंत्रालय ने की है। महात्मा गाँधी की 150वीं जयंती, यानि 2019 तक स्वच्छ भारत को वास्तविक रूप प्रदान करने के लिए एक विस्तृत योजना भी तैयार की जा चुकी है। इस अभियान के अंतर्गत 2019 तक सार्वजनिक शौचालयों की संख्या मौजूदा 3 प्रतिशत से 10 प्रतिशत तक करने का लक्ष्य है। मौजूदा दौर में प्रतिदिन 14,000 शौचालयों के निर्माण को बढ़ाकर 48,000 तक करने की योजना है।

संदर्भ :

1. ''भारत में स्वच्छता अभियान : कार्यनीति और क्रियान्वयन'', महीपाल, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, भारत, नेहरू भवन, बसंत कुंज, नई दिल्ली, 2016.
2. स्वच्छता का समाजशास्त्र, अनल वाघेला, कल्पाज पब्लिकेशन, सत्यवती नगर, दिल्ली, 2015.
3. स्वच्छता का समाजशास्त्र, डॉ० बिन्देश्वर पाठक, सुलभ इंटरनेशनल, सोशल सर्विस ऑर्गेनाईजेशन, दिल्ली, 2013.
4. मलहान, पी० एन०, कम्युनिकेशन मीडिया : येसटर्डे, टुडे एण्ड टुमारो, न्यू देहली : पब्लिकेशन डी, 1985.
5. गवर्नर जी०, क्वॉटेड वाई बी० के० राय वर्मन, मास कम्युनिकेशन इन चेंजिग वर्ल्ड, इन मेनस्ट्रीम वॉल्यूम, नवम्बर 17, दिसम्बर 26, 1985.
6. कुरूक्षेत्र, मासिक पत्रिका, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली
7. योजना, मासिक पत्रिका, ग्रामीण विकास मंत्रालय, भारत सरकार, नई दिल्ली

***

अनुसूचित जातियों को न्याय दिलाने में पंचायती राज की भूमिका एवं सुझाव : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

*डॉ. प्रवीण कुमार पासवान**

भारतीय संविधान के अनुसार भारत के प्रत्येक नागरिक को समानता का अधिकार प्राप्त है। लेकिन अत्यधिक विभेदीकृत भारतीय सामाज में जाति व्यवस्था ने पिछड़ी, शूद्र और अस्पृश्य जातियों जैसे कमजोर वर्गों की लगभग दो तिहाई आबादी को निम्न सामाजिक जीवन जीने हेतु विवश कर दिया है। समाज, सत्ता और संस्कृति में समुचित भागीदारी हेतु समान और वास्तविक अवसर उपलब्ध कराना ही सामाजिक न्याय है। सामाजिक न्याय सफल लोकतंत्र की आवश्यक शर्त है। मशीन प्रधान अर्थतंत्र में कमजोर वर्ग के श्रमिक, जिनमें अधिकांशतः अकुशल होते हैं, अप्रासंगिक होते जा रहे हैं। सरकारी सेवा के सिमटते अवसर ने संपूर्ण 'आरक्षण व्यवस्था' के समक्ष प्रश्न–चिह्न उत्पन्न कर दिया है। संस्कारगत सोच और निम्न आर्थिक स्थिति का असर कमजोर वर्गों के शैक्षणिक विकास पर पड़ रहा है। क्षेत्र विशेष के अनुरूप सरकारी और गैर सरकारी यथार्थपरक प्रयासों के साथ–साथ प्रतियोगितामूलक वातावरण का निर्माण भी आवश्यक है। तथापि, शैक्षणिक क्षेत्र में अध्यापकों के जातिगत समीकरणों में आये बदलाव का क्रमशः प्रभाव देखने को मिल रहा है।

राजनैतिक क्षेत्रों में सामाजिक न्याय की अवधारणा अपेक्षाकृत अधिक मुखरित हुई है। विगत दो दशकों से सत्ता की कुंजी कमजोर वर्गों–विशेषकर पिछड़ों के हाथों में हैं। 2001 ई० और 2006 ई० में त्रिस्तरीय पंचायती की प्रक्रिया तेज कर दी है। तथापि, प्रशासनिक क्षेत्रों में कमजोर वर्गों के प्रति अत्याचार की शिकायतें या तो अनदेखी की जाती है या तोड़–मरोड़ कर असहनीय बना दी जाती है। भ्रष्टाचार और राजनैतिक में अपराधियों के वर्चस्व ने विकास संबंधी कार्यों के साथ–साथ तमाम सरकारी सुविधाओं को कागजी–कारोबार मात्र बना दिया है; जिसका सर्वाधिक खामियाजा कमजोर वर्गों को ही भुगतना पड़ता है। ग्रामीण क्षेत्रों में कमजोर वर्गों की उमंग, उत्साह, श्रद्धा एवं विश्वास लोक–कलाओं के माध्यम से अभिव्यक्त होती है। जनसंचार के नवीन साधनों के साथ–साथ इलेक्ट्रॉनिक्स माध्यम के बढ़ते प्रभाव ने संपूर्ण सांस्कृतिक परिवेश को कृत्रिम और उबाऊ बना दिया है। कमजोर वर्गों की विशाल आबादी के समक्ष सांस्कृतिक पहचान का संकट उत्पन्न हो गया है। ग्रामीण भारत जहाँ कि देश की जनसंख्या का एक बड़ा भाग निवास करता है वह आज भी अशिक्षा, गरीबी, बेरोजगारी आदि में जीवन व्यतीत करने को विवश है। ऐसी स्थिति में विशेषकर सामाजिक न्याय की स्थापना के सन्दर्भ में पंचायती राज संस्थाओं की भूमिका और बढ़ जाती है। 73 वें संविधान संशोधन अधिनियम के माध्यम से पंचायती राज व्यवस्था को पुनर्जीवित किया गया है साथ ही संविधान में निहित भावना के अनुसार जमीनी स्तर की प्रतिष्ठा बढ़ाने की कोशिश की गई है।

कमजोर वर्गों के अर्न्तगत अनुसूचित जातियाँ आती हैं। अनुसूचित जातियों में असमानता के कारण जमींदारों, धनवान कृषकों और उच्च जातियों द्वारा सभी हरिजनों के लिए व्यवहार एक–सा नहीं है। वे हरिजन जो अत्याचार तथा शोषण के शिकार नहीं होते, उच्च "वर्ग" से जुड़े हुए हैं। तुलनात्मक दृष्टि से ये धनी जमींदारों के हाथों शिकार नहीं बनते। विभिन्न नीतियाँ और कार्यक्रमों से इस वर्ग के हरिजन सबसे अधिक लाभ उठाते हैं। बेलची, आगरा, पन्तनगर, मराठवाड़ा, बजीतपुरा और कुछ अन्य स्थानों पर गरीब हरिजनों की सामूहिक हत्याएँ की गईं, उन्हें लूटा गया, और महिलाओं के साथ बलात्कार किया गया। "अछूतों" की प्रगति में जाति की भूमिका बहुत बाधक रही है। रामकृष्ण मुखर्जी ने जाति वर्ग संबंधों का विश्लेषण करते हुए लिखा है कि जाति उपद्रव उन क्षेत्रों में बहुत होते हैं, जहाँ जाति के आधार पर सामाजिक वंचन स्पष्ट रूप से वर्ग पर आधारित वंचन से सहसंबंधित हैं। बिहार,

* पीएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

महाराष्ट्र और तमिलनाडु आदि में ऐसा पाया गया है। मुखर्जी के अनुसार, जाति व्यवस्था में अन्तर्निहित वर्ग विरोधाभासों के कारण ये जाति विरोधाभास पाए जाते हैं।

जाति व्यवस्था उत्पादन के संबंध में एक विचारधारा दोनों रूप में कार्यरत हैं। इसलिए जाति आर्थिक और सामाजिक संगठन दोनों हैं। "अछूतों" के आर्थिक शोषण का यह एक स्रोत है। जाति व्यवस्था एकमात्र श्रम विभाजन ही नहीं, यह श्रमिकों का भी एक विभाजन है। पूँजीवादी संबंधी के कारण कृषक और औद्योगिक श्रमिक अपने आप में एक विशिष्ट वर्ग बन जाते हैं, परन्तु जाति व्यवस्था उनको अपने आपके लिए एक वर्ग बनने से रोकती है। जाति और धर्म का उपयोग एक विशिष्ट वर्ग संरचना को बनाए रखने के लिए किया जाता है। जाति सामन्ती विचारधारा के अंग के रूप में हैं। भारतीय समाज के कमजोर वर्गों में वर्ग चेतना के प्रादुर्भाव को जाति ने निरूत्साहित किया है, और सही बात तो यह है कि जाति राजनैतिक सत्ता से जुड़ने के बाद वर्ग की तरह ही प्रकार्य और क्रियाएँ करती है।

यह देखा गया है कि साक्षरता, शिक्षा और रोजगार अनुसूचित जातियों में सामाजिक गतिशीलता के बहुत महत्वपूर्ण सूचक हैं। हिंसा की दुर्घटनाएँ इसी सामाजिक गतिशीलता के साथ समीप से जुड़ी हुई हैं। वे अनुसूचित जातियाँ जो गतिशीलता के मार्ग से ऊपर पहुँच चुकी हैं, अपने शोषण और दमन के विरोध में बहुत तीखी प्रतिक्रियाएँ व्यक्त करती हैं। इसीलिए वे उच्च जातियों के प्रकोप के निशाने बनती हैं। उच्च जातियों में अनुसूचित जातियों के विरूद्ध पूर्वाग्रह के अलावा यह भी तथ्य है कि अब प्रतिस्पर्द्धा सम्पन्न अनुसूचित जातियों और इन हिन्दू जातियों के बीच है जो आकर्षक नौकरियाँ, शक्ति के पद और उच्च स्थिति चाहते हैं। इस प्रकार से जाति उपद्रवों की ओट में यह एक "वर्ग युद्ध" है।

आजकल उच्च जातियाँ "योग्यता" के आधार पर उच्च शिक्षा, नौकरियाँ और पदोन्नति देने की माँग कर रही हैं। कमजोर तबकों को सवर्ण हिन्दुओं के स्तर तक लाने के लिए अनुसूचित जातियाँ संरक्षणात्मक भेदभाव और आरक्षण की नीतियों की अवधि बढ़ाने की माँग कर रही हैं। उच्च जातियां आज इतनी मजबूत हैं कि वे 1955 के अस्पृश्यता अपराध अधिनियम के उल्लंघन करने पर दण्ड पाए बिना बच निकलती हैं। इस अधिनियम के अन्तर्गत अस्पृश्यता पर आधारित आचरण एक प्रज्ञेय अपराध है।

अधिकतर अनुसूचित जातियाँ खेतिहर और मेहनतकश मजदूर हैं। वे हमले, हत्या, बलात्कार, निर्दयी और अमानवीय व्यवहार के शिकार होते हैं। इन अमानवीय व्यवहारों के प्रति तनिक भी प्रतिक्रिया करने पर अनुसूचित जातियों को सामाजिक बहिष्कार, सार्वजनिक सुविधाओं और जमींदारों के खेतों पर मजदूरी वंचन का सामना करना पड़ा है। इस तरह की घटनाएँ बिहार, उत्तर प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र, मध्यप्रदेश, आंध्रप्रदेश, तमिलनाडु और राजस्थान आदि प्रदेशों में होती रही हैं। मई 1977 में बेलची में 9 हरिजनों को जीवित जला दिया गया। बिहार में नृशंसता की अन्य घटनाएँ कर्गधर, पथड़ा, छौंदनो, गोपालपुर ओर धर्मपुर में हुई हैं। वे लोग इसलिए ही नहीं मारे गए थे कि वे हरिजन थे, बल्कि इस तथ्य के कारण भी कि वे धनी व प्रभुत्व जमीदारों के खेतों पर कृषक श्रमिकों और बटाईदारों के रूप में कार्य करते थे। इन घटनाओं में निम्नतम मजदूरी, बटाईदारों के दखल अधिकार और सार्वजनिक सुख–सुविधाओं के उपयोग के प्रश्न भी उलझे हुए थे। चूँकि इस तरह के अत्याचार गैर हरिजन सर्वहारा वर्ग पर नहीं किए जाते, सवर्णों द्वारा हरिजनों पर किए गए इन अत्याचारों में हरिजनता का एक तत्व अवश्य सम्मिलित है। कभी–कभी इज्जत और उच्च–निम्न जाति संघर्ष के मुद्दे "अछूतों" के अमानवीकरण में स्पष्ट तौर पर दिखाई देते हैं।

जुलाई 1978 में महाराष्ट्र में मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम परिवर्तित कर डाक्टर बाबा साहेब अम्बेडकर विश्वविद्यालय रखने के प्रश्न को लेकर उपद्रव हुए। दलित और गैर दलित विद्यार्थी सक्रियतावादियों के बीच संघर्ष उभरकर आया। दलितों के विरूद्ध आन्दोलन में हिंसा भड़की, जिसमें लोगों की हत्या, हरिजन स्त्रियों के साथ छेड़खानी और बलात्कार, हरिजनों के घरों और झोपड़ियों को जलाना, उनकी बस्तियों को लूटना, घरों और गाँवों से निष्कासन, पशुओं को मारना और पीने के पानी

तथा रोजगार से वंचित करने आदि की घटनाएँ हुईं। उच्च जाति के प्रभु लोगों ने सोचा कि हरिजनों को मराठवाड़ा विश्वविद्यालय का नाम "एक हरिजन नेता" के नाम पर कैसे रखने दिया जा सकता है। उन्होंने इसे अपनी शान से विरूद्ध समझा और सोचा कि इससे तो इस क्षेत्र में उनकी इज्जत घट जाएगी।

जमीन के झगड़ों, निम्नदरों पर मजदूरी के भुगतान, ऋणग्रस्तता, बेगार और सार्वजनिक स्थानों पर पहुँच से वंचन के कारण अत्याचार की घटनाएँ रोजमर्रा की बात बन गई हैं। 1977 में केवल अनुसूचित जातियों पर नृशंसता के 8905 मामले दर्ज किए गए थे, और उनमें से 50 प्रतिशत से अधिक मामले उत्तर प्रदेश से थे।

सवर्ण हिन्दू समाज के प्रभु समझे जाने वाले अनुभवों के शिकंजे से निकालने के लिए हरिजनों ने अनेक प्रयास किए हैं। सांस्कृतिकरण, बौद्धधर्म में रूपान्तरण, प्रवसन, शिक्षा, नगरीय रोजगार आदि इन्हीं प्रयत्नों के उदाहरण हैं। कुछ समय से शिक्षित हरिजन अपने अत्याचारियों के विरूद्ध कुछ जुझारूपन प्रदर्शित कर रहे हैं। भारतीय समाज में अपने अधिकारपूर्ण स्थान के बारे में हरिजनों में चेतना उत्पन्न करने के लिए महाराष्ट्र दलित साहित्य आन्दोलन शुरू किया है। दलितों की दयनीय स्थिति पर दलित लेखकों ने लेख लिखे हैं। दलित पत्रिकाएँ प्रकाशित की गई हैं। हरिजनों को गैर हरिजनों के साथ समानता प्राप्त करने के लिए एक लम्बे समय तक संघर्ष करते रहना होगा। ये प्रयास समानता के लिए खोज की दिशा में सराहनीय हैं, परन्तु सवर्ण हिन्दुओं के साथ बराबरी की वास्तविक उपलब्धि के लिए पर्याप्त नहीं हैं।

अनुसूचित जातियों एवं कमजोर वर्गों को पंचायती राज संस्थाओं द्वारा न्याय दिलाने के लिए सुझाव :–

- कमजोर वर्गों को न्याय दिलाने के लिए यह आवश्यक है कि इनसे सम्बन्धित पंचायती राज के सरकारी अधिकारियों और जन–प्रतिनिधियों के बीच सन्देह और अविश्वास को दूर किया जाय और सम्बन्धों में सुधार लाया जाये। ऐसा करने के लिए एक–दूसरे के अधिकारों एवं कर्तव्यों को स्पष्टतः प्रमाणित और पृथक्–पृथक् कार्यक्षेत्र को निर्धारित करना काभदायक सिद्ध होगा। दोनों को ही एक दूसरे के कार्य–क्षेत्र में हस्तक्षेप करने से रोका जाना अच्छे सम्बन्ध बनाने की दृष्टि से आवश्यक है। इनके बीच पाये जाने वाले तनावों को कम करने हेतु अधिकारियों तथा जनता के प्रतिनिधियों दोनों के लिए ही ऐसे गहन शिक्षण कार्यक्रम को चलाने की आवश्यकता है जिसमें दोनों के ही संयुक्त प्रयास पर विशेषतः जोर दिया जाय ताकि राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति में सभी नागरिकों का सहयोग प्राप्त किया जा सके। यदि पंचायती राज संस्थाओं में सरकारी अधिकारियों के रूप में कार्य करने हेतु ऐसे व्यक्तियों का चयन किया जाये जो पंचायती राज व्यवस्था के मूल लक्ष्यों को समझते हों और उसके प्रति पूरी तरह समर्पित हों, तो उनमें कार्य के प्रति उदासीनता नहीं पायी जायेगी। अतः आवश्यकता कुशल और कार्य के प्रति निष्ठावान व्यक्तियों के चयन की हैं।
- कमजोर वर्गों को न्याय बहुत कुछ मात्रा में उचित प्रकार के नेतृत्व के विकास पर निर्भर करती है। योग्य, शिक्षित, विकासोन्मुख तथा आधुनिकीकरण का हामी नेतृत्व ग्रामीण क्षेत्रों के सर्वांगीण विकास हेतु अत्यन्त आवश्यक है। ऐसे नेतृत्व को विकसित करने हेतु विशेष प्रयत्न किये जाने चाहिए जो जाति, गांव, नातेदारी ओर संयुक्त परिवार की संकीर्ण सीमाओं के परे व्यापक दृष्टिकोण से सोच सके, सम्पूर्ण क्षेत्र के हित की दृष्टि से प्रयत्न कर सके और ग्रामीण क्षेत्रों में तेजी से सामाजिक–आर्थिक परिवर्तन ला सके। विभास चटर्जी ने बताया है कि पंचायती राज संस्थाओं का भविष्य काफी सीमा तक अच्छे नेतृत्व क उद्भाव पर निर्भर करता है।
- कुछ लोगों की मान्यता है कि पंचायती राज संस्थाओं के कारण ग्रामीण क्षेत्रों में गुटबन्दी और दलगत राजनीति पनपी है जो ग्रामों के सर्वांगीण विकास में बाधक है, अतः इनसे ग्रामों की मुक्त रखा जाना चाहिए। ऐसा मानने वाले लोगों के अनुसार क्षेत्रों में राजनीतिक दलों को पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में भाग लेने या अपने प्रत्याशियों को खड़े करने का अवसर दिया जाना चाहिए। साथ ही ग्रामीण क्षेत्रों में गुटबन्दी या परस्पर धड़ों के निर्माण को रोकने की दृष्टि से सर्वसम्पति से पंचायतों के लिए जन–प्रतिनिधियों को चुने जाने पर विशेष जोर दिया जाता है।

राजनीतिक दलों को पंचायती राज संस्थाओं के सन्दर्भ में ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवेश और अपने कार्य के विस्तार की आज्ञा देनी चाहिए या नहीं, इस सम्बन्ध में परस्पर विरोधी विचार पाये जाते हैं। सादिक अली, पारीख, हरदयालसिंह तथा दिवाकर कमेटियों ने ग्राम पंचायतों से राजनीतिक दलों को अलग रखने की आवश्यकता पर जोर दिया है। दूसरी ओर संथानम कमेटी ने सुझाव दिया है कि पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों में राजनीतिक दलों के भाग लेने पर कोई प्रतिबन्ध नहीं होना चाहिए।

कुछ ने राजनीतिक दलों को पंचायती संस्थाओं के लिए विष के रूप में देखा है। ऐसी राय परिस्थिति के उचित मूल्यांकन पर आधारित नहीं है। क्या यह सम्भव नहीं है कि पंचायती राज की स्थापना तथा राजनीतिक दलों के ग्रामीण क्षेत्रों में प्रवेश के पूर्व से ही वहां गुट पाये जाते हों ? अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात होता है कि वास्तविकता यही है। इन गुटों के मध्य पायी जाने वाली कटुती, पंचायती राज संस्थाओं के चुनावों के अवसर पर प्रकट रूप से व्यक्त होती है। गुटों के आपसी संघर्ष के लिए राजनीतिक दल माध्यम बन जाते हैं और इसी आधार पर उन्हें बदनाम भी किया जाता है। इस सम्बन्ध में नर्मदेश्वर प्रसाद ने लिखा है कि राजनीतिक दल की प्रतिष्ठा को स्वार्थी तथा सत्ता के भूखे गुटों द्वारा जो केवल अपने स्वयं के लक्ष्यों की पूर्ति चाहते हैं, ठेस पहुंचायी गयी है। ग्रामीण लोगों में आधुनिक विचारों के प्रसार हेतु ग्राम पंचायत राजनीति में राजनीतिक दलों की उपस्थिति अनिवार्य है। ऐसा होने पर लोगों की जाति, गुट और नातेदारी के संकुचित दायरे में ऊपर उठने और सम्पूर्ण समुदाय या राष्ट्र के हित में कार्य करने के लिए प्रोत्साहित किया जा सकेगा। राजनीतिक दल ग्रामीण क्षेत्रों में अपनी विचारधारा के प्रसार द्वारा ऐसा करने में समर्थ हो सकेंगे। वे वहां परिवर्तन के अभिकर्ता के रूप में भूमिका निभा सकेंगे। ग्रामीण क्षेत्रों में सर्वसम्मति से चुनाव पर जोर और मर्तक्य के लिए बाध्यता प्रजातन्त्र के मूल तत्व 'विचार स्वातन्त्रय' को ही नष्ट कर देगा। इस सम्बन्ध में सी. पी. भाम्भरी ने लिखा है कि सर्वसम्मति तथा मतैक्य में विश्वास करने वाले परिवर्तन की नवीन प्रक्रियाओं की उत्पत्ति में बाधा डालेंगे और निहित स्वार्थों को पनपाने, परम्परागत नेताओं को बनाये रखने, कमजोर वर्गों को दबाये रखने और उनका शोषण करने तथा पंचायती राज की स्थापना के मूल लक्ष्य को विफल बनाने में योगय देंगे। ग्रामीण स्तर पर राजनीतिक दल की उपस्थिति से ग्राम के लोग अखिल भारतवर्षीय दल की विचारधारा और कार्य प्रणाली से परिचित हो उच्चस्तरीय संस्थाओं में भी अधिक सरलता से प्रवेश कर सकेंगे। नर्मदेश्वर प्रसाद का विचार है कि ग्रामीण स्तर पर राजनीतिक दलों की उपस्थिति को रोकना पंचायती राज और राष्ट्रीय लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए घातक सिद्ध होगा।

- पंचायती राज संस्थाओं को अपने–अपने क्षेत्र में कार्य करने की पूर्ण स्वतन्त्रता होनी चाहिए। ग्रामीणों को परम्परा से छुटकारा दिलाने और आधुनिकता की ओर अग्रसर करने हेतु यह आवश्यक है कि इन संस्थाओं को कार्य सम्बन्धी पहल (Initiative) का अधिकार प्राप्त हो। पंचायती राज संस्थाओं की स्वतन्त्रता बनाये रखते हुए आवश्यक प्रावधान किया जाना चाहिए। जो योजना स्वयं जनता के प्रतिनिधियों के द्वारा बनायी और कार्यान्वित की जाती है, उसमें जनता की रूचि और अधिक मात्रा में जन–सहयोग का पाया जाना स्वाभाविक है। इसका कारण यह है कि जनता इसे अपनी स्वयं कील एक ऐसी योजना समझेगी जो उनकी स्वयं की आकांक्षाओं पर आधारित और आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होगी। पंचायती राज संस्थाओं की शक्तियों और सत्ता को स्पष्टतः निश्चित कर दिया जाना चाहिए। इनके कार्य के क्षेत्र का निर्धारण कर देने के पश्चात् उन क्षेत्रों में कार्य का सम्पूर्ण दायित्व इन संस्थाओं पर छोड़ दिया जाना चाहिए। ऊपर के स्तर की संस्थाओं को नीचे की संस्थाओं को धन और सुझावों के रूप में आवश्यक समर्थन देना चाहिए। पंचायती राज संस्थाओं द्वारा विभिन्न कार्यक्रमों के सम्बन्ध में जनता तक आवश्यक जानकारी पहुंचायी जानी चाहिए। ऐसा होने पर जनता का अधिक सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जा सकेगा।

पंचायती राज संस्थाओं के सफल कार्य–संचालन के लिए इनके वित्तीय साधनों को बढ़ाना नितान्त आवश्यक है। इन्हें समय रहने स्पष्टतः बता दिया जाना चाहिए कि उन्हें कितनी धनराशि कब उपलब्ध करायी जायेगी और निश्चित समय पर उसे उपलब्ध भी कराया जाना चाहिए। यकायक निर्धारित धनराशि को कम कर देने से विकास कार्यक्रमों के समय पर पूरा नहीं होने से इनके प्रति लोगों मे अविश्वास पैदा होता है। सरकार को इतना तो निश्चित कर ही देना चाहिए कि इन संस्थाओं को कम से कम इतना धन तो अवश्य मिलेगा ही। ऐसा होने पर ये संस्थाएं अपना बजट और विकास योजनाएं ठीक से बना सकेंगी। इन संस्थाओं के वित्तीय साधनों को बढ़ाने हेतु सुझाव के रूप में यह कहा जा सकता है कि भूमिकर सम्पूर्ण रूप में पंचायती राज संस्थाओं को ही दे दिया जाना चाहिए ताकि वे स्वयं ही उसे एकत्र करें और ग्रामीण विकास हेतु काम में लें।

- अनेक अध्ययनों से ज्ञात हुआ है कि ग्रामीण क्षेत्रों में विकास कार्यक्रमों का लाभ अधिकांशतः उन्हीं को मिल पाया है जो पहले से सम्पन्न थे। सामाजिक न्याय की दृष्टि से विकास योजनाओं के लाभ का वितरण सभी लोगों में समान रूप से होना चाहिए और कमजोर या गरीब वर्ग के लोगों की आर्थिक स्थिति को ऊंचा उठाने का विशेष प्रयत्न किया जाना चाहिए। इस हेतु पंचायती राज संस्थाओं को कृषि सुधार की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए। भूमि सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन कर अनुसूचित जातियों, अस्पृश्यों, पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जनजातियों तथा अन्य निर्धन व्यक्तियों को कृषि हेतु भूमि उपलब्ध करायी जानी चाहिए।
- पंचायती राज की कमियां काफी सीमा तक हमारे देशवासियों में राष्ट्रीय चरित्र के अभाव का परिणाम है। आज इस देश का व्यक्ति अपने आप में इतना संकुचित हो गया है कि वह व्यक्तिगत स्वार्थ से ऊपर उठकर सम्पूर्ण समाज एवं राष्ट्र के हित की दृष्टि से चिन्तन और आचरण नहीं कर पाता है, यद्यपि कुछ अपवाद अवश्य हैं। आज व्यक्ति सीमित दायरे में सोचता है वह परिवार, नातेदारी, गोत्र तथा जाति की संकीर्ण सीमाओं में जकड़ा हुआ है। वही कारण है कि अधिकांशतः लोगों में अपने कार्य के प्रति अरूचि और निष्ठा का अभाव पाया जाता है। यह प्रमुखतः एक मानवीय समस्या है जिसका निराकरण चरित्र–निर्माण के द्वारा ही सम्भव है। यदि यह कहा जाय कि इस दिशा में अपनी भूमिका निभाने में परिवार, शिक्षण संस्था और व्यक्तित्व निर्माण में सहायक अन्य संगठन काफी कुछ मात्रा में असफल रहे हैं तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी। अतः वर्तमान में आवश्यकता ऐसे व्यक्तियों के निर्माण की है जो अपने तुच्छ स्वार्थों से ऊपर उठकर समाज और सम्पूर्ण राष्ट्र के हित को सर्वोपरि मानकर उस दृष्टि से निष्ठापूर्वक कार्य कर सकें।

  यद्यपि पंचायती राज संस्थाएं लोगों की इच्छाओं या अपेक्षाओं को पूर्ण नहीं कर पायी है, परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि पंचायती राज सही दिशा में एक प्रयास है, समाज के निम्न वर्ग के बहुत से लोग अब ग्रामीण समुदाय के सामाजिक आर्थिक जीवन में सक्रिय भाग लेने लगे हैं। इस पंचायती राज व्यवस्था ने ग्रामीण स्तर पर शक्ति संरचना को सामाजिक रूप से पिछड़े हुए लोगों के पक्ष में कुछ सीमा तक परिवर्तित करने में भी योग दिया है। यदि ये संस्थाएं लोगों में परिवर्तन की तीव्र आकांक्षाएं जाग्रत कर सकीं, उन्हें परिवर्तन की आवश्यकता को महसूस करा सकीं, तो ये ग्रामीण समुदायों में सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन लाने में अवश्य सफल हो सकेंगी। वर्तमान में पंचायती राज संस्थाओं को अधिक शक्तिशाली बनाने का प्रयत्न किया गया है।

संदर्भ :

- अम्बेडकर, भीमराव; ''कास्ट्स इन इंडिया'' भीम प्रकाशन, जालंधर, 1977.
- आईजक, आर. इण्डियाज एक्स अनटचेबुल्स, बॉम्बे : एशिया पब्लिशिंग हाउस 1965
- देसाई, आई.पी., अनटचेबिलिटी इन रूरल गुजरात, बॉम्बे : पॉपुलर प्रकाशन, 1976
- पासवान, भोला; दलित कल्याण : सरकारी–गैर सरकारी प्रयास, जानकी प्रकाशन, पटना, प्रथम संस्करण, 2010.

- महार, जे. माइकल, दि अनटचेबल्स इन कंटेम्पोरेरी इंडिया, टसकॉन : दि यूनिवर्सिटी ऑफ अरीजोना प्रेस, 1969.
- मुखर्जी रविन्द्र नाथ, भारत में सामाजिक परिवर्तन, विवेक प्रकाशन, नई दिल्ली, 2005
- H. Rahman, Social Change Through Panchayati Raj, *Khadi Gramodyog*, 1965, II (10).
- Kamal Krishna, Leadership in Panchayati Election of Uttar Pradesh, in M.V. Mathur and Iqbal Narain (Eds.) *Panchayati Raj*, *Planning and Democracy*, 1976.

***

प्राचीन काल में मुद्रा एवं एतिहासिक महत्व

*डॉ. योगेन्द्र कुमार**

संसार में मुद्रा कि उत्पत्ति का मूल कारण आर्थिक स्थिति मानी गई है। भारत में प्राचीन काल से ही विनियम हेतु मुद्रा का उपयोग होने लगा था। प्रारंभ में कुछ विदेशी विद्वानों का यह मत था कि भारत में सिकन्दर के आगमन के बाद ही सिक्कों प्रचलन हुआ है। परन्तु उत्खनन से प्राप्त प्राचीन सिक्कों ने इस तथ्य को पुरी तरह से नकार दिया है। उत्खननों से प्राप्त साक्ष्यों के आधार पर यह स्पष्ट हो चुका है कि विनियम माध्यम हेतु मुद्रा का उपयोग सैन्धव सभ्यता के समय भी प्रचलित थी।

सैन्धव सभ्यता से पत्थर के छोटे–छोटे टुकड़े मिले है। इतिहासकार इन्हें मुहरें मानते हैं। इनकी तौल एक ग्रेन की है। कुछ पाषाण के टुकड़े का वजन 52 ग्राम भी है। संभ्वतः इनका प्रयोग विनियम माध्यम के ही होता होगा। ब्राह्मण ग्रंथों एवं वैदिक साहित्या में कृष्णन, सुवर्ण, शतमान तथा निष्क शब्दों के विवेचन के आधार पर इतिहासकार भण्डारकर इन्हें सुवर्ण के सिक्के का ही बोध माना है। यद्यपि वे वैदिक काल में विनियम का माध्यम गाय को माना गया है। किन्तु वस्तु विनियम में इसका प्रयोग कठिनता को जन्म देने वाला ही था। अतः कम मात्रा में वस्तु के विनियम के लिए मुद्राओं का ही प्रयोग किया जाता रहा होगा। अतः वस्तु विनियम में सोने एवं चांदी का भरपुर उपयोग होता था। कम मूल्य की वस्तु के लिए तांबे के सिक्के का भी उपयोग होता था। विद्वानों का मत है कि निष्क शब्द का प्रयोग वैदिक काल में गहनों एवं सिक्कों जो कि स्वर्ण के होते थे प्रयोग किया जाता था। ब्राह्मण और संहिताओं में 'स्वर्ण दिख्य' एवं शतमान का उल्लेख मिला है। एक शतमान की तौल 108 रत्ती था। शतमान वृत्तकार होता था। राज्याभिषेक और राजसूभ यज्ञ के अवसर पर इनका प्रयोग होता था। 'सूवर्ण्य हिरण्य' का तौल 80 रत्ती और 144 ग्रेन होता था। इन सिक्कों का उल्लख उपनिषद में भी मिलता है। पतंजलि ने 'पानिष्क' शब्द का उल्लेख किया है। संभवतः परिष्क, निष्क था शतमान का चौथाई भाग रहा होगा। 'पनिष्क' भी एक स्वर्ण सिक्का था। 800 ई0पू0 से 300 ई0पू0 के साहित्य में मुद्राओं का उपयोग मिलता है। पाणिनी की अष्टाध्यायी, सुत्त पिटक, जातक, विनय पिटक इन सभी में मुद्राओं का उल्लेख मिलता है। स्वर्ण मुद्रा इस काल तक एक सामान्य बात थी। रजत तथा ताम्त मुद्राओं का आगमन 600 शताब्दी ई0पू0 के लगभग हुआ था। इसकी पुष्टि तक्षशिला से प्राप्त सिक्के से हो जाते है। इस तरह इन सभी बातों से यह तो स्पष्ट हो जाता है, कि सिक्कों का प्रयोग सिकन्दर के आक्रमण से बहुत पूर्व ही हो चुका था। सिक्कों का प्रयोग सोने, चांदी एवं तांबे के सिक्के के रूप में होता था एवं वस्तु के मूल्य के आधार पर उपयुक्त सिक्कों का प्रयोग किया जाता था। अगर वस्तु कीमती होता तो सोने के सिक्के प्रयोग में लाए जाते थे तथा कम कीमती वस्तु के विनियम में चांदी एवं तांबे के सिक्के का प्रयोग होता था। प्राचीन काल के ये सिक्के न केवल वस्तु विनियम के आधार बने वरन् आज के संदर्भ में इन सिक्कों ने इतिहासकारों की भी इतिहास लेखन में काफी मदद की– मुद्राओं को इतिहास का स्त्रोत माना जाता है। अतीत बीत चुका है, हम उसे देख नहीं सकते और इतिहास का निर्माण ही किया जा सकता है। जो तथ्य लिखित सामग्रियों से नहीं मिलते, साहित्यिक साक्ष्य जहाँ हार मान लेते हैं, और अन्य तथ्य जाहाँ घुटने टेक देते हैं– वहाँ मुद्रा शास्त्र हमारी सहायता को हमेषा तैयार रहता है। इस प्रमाण ने उनेक रहस्यमय घटनाओं का पता लगाकर इतिहास की टूटी श्रृंख्लाओं को जोड़ने का काम किया है। प्राचीन भारतीय इतिहास में इन्ही सिक्कों की बदौलत राजाओं के शासन काल, उनकी वंषावली एवं युद्धों का वर्णन हम ज्ञान सके हैं। शकों पर गुप्तों की विजय और आंध्रों एवं क्षत्रियों के युद्ध वर्णन इन्हीं सिक्कों से मिलता है। यद्यपि मुद्राएँ होती हुआ करती थी एवं उन पर लिखावट कम ही हुआ करते थे फिर भी इतिहास की व्याख्या करने में ये सक्षम साबित हुए। इतना ही नहीं इतिहास के निरंतर प्रवाद में अनेक ऐसे काल है जिनकी जानकारी मुद्राओं की

* एम.ए., पीएच.डी.,मगध विश्वविद्यालय बोधगया, बिहार

वजह से होती है। मुद्रा शास्त्र ने ऐतिहासिक राजनैतिक धार्मिक, प्रषासनिक, सामाजिक, राज्य विस्तार, समय विशेष की कला एवं व्यापारिक उन्नति को समझने में इतिहासकारों की बड़ी सहायता की है।

भारतीय इतिहास का 106 ई0पू0 से 300 ई0पू0 का काल इतिहास लेखन के लिए चुनौतिपूर्ण काम था, क्योंकि इस दिशा में अन्य सारे स्त्रोत मौन थे। इस संदर्भ में मुद्राओं में अपना भरपूर योगदान दिया। प्रसिद्ध इतिहासविद् डॉ0 मजमुदार ने भी स्मारकों के बाद इतिहास लेखन में मुद्राओं का भरपूर सहारा लिया है। प्राचीन साहित्य में सिक्कों को 'कार्षपण' नाम से पूकारा गया है। प्रत्येक राज्यवंष सिक्के तैयार कराते थे एवं इनपर कुछ–न–कुछ चिन्ह भी बुकेरे जाते थे। इन्ही चिन्हीत सिक्कों को आहत मुद्रा (Puch marked coins) कहते थे 'कार्षापण' नाम से जानी जाने वाली इन सिक्कों का निर्माण कई तरह किया जाता था। आकार में काफी भिन्नता थी। इनका आकार लम्बा, चपटा, चतुर्भुज, वृत्ताकार पंचकोणीय एवं षट्कोणीय हुआ करती थी। चाँदी की छड़ों को काट कर एवं पीट–पीट कर सिक्का उपरोक्त आकारों में बनाया जाता था। परन्तु मथुरा एवं राजगृह आदि स्थानों से ढ़लाई किये हुए भी सिक्कों के निर्माण में ढ़लाई की प्रक्रिया को भी शामिल किया गया था। बाद में सिक्कों पर ठप्पे का निशान लगाया जाता था। इन ठप्पों के द्वारा मुद्राओं पर कई तरह के चिन्ह अंकित किये जाते थे, जिन्हें निम्नांकित वर्गो में बाँटा जा सकता है।

(क) प्राकृतिक चिन्ह– इसके अंतर्गत सूर्य, पर्वत वृक्ष एवं दंद्वधनुष का चिन्ह अंकित होता था।
(ख) पषु आकृतियाँ– इनके अंतर्गत सिक्कों पर हाथी, घोड़ा, कुत्ता, शेर, गंडा, मछली, साँप और कछुआ का चिन्ह होता था।
(ग) पक्षी आकृति– सिर्फ मोर की आकृति ही पायी गयी है।
(घ) आयुद्ध आकृति– युद्ध में शामिल होने वाले चक्र, धनुष–बाण तीर, त्रिषुल एवं डमरू का चिन्ह शामिल होता था।
(च) ज्यामितिक आकृतियाँ– इसके अंतर्गत निम्न ढंग से चिन्ह उकेरे गये थे।
1. आयत के भीतर पंक्ति वृक्ष एवं दो आयतों में अनेक विंदु
2. वगाकार, त्रिभुज, अर्धवृतों के निर्मित्त आकार मौर्यकाल से पूर्व भारत पर किसी सषक्त साम्राज्य का शासन नहीं रहा जो इस दिषा में ध्यान देना। देष की समृद्धि व्यापार पर निर्भर होती हैं एवं व्यापार सिक्कों की लेन देने की प्रक्रिया पर आधारित होते हैं। प्राचीन भारत में व्यापार श्रेणी अथवा 'निगम' नामक की संस्थाओं के हाथ में था। राष्ट्र का सम्पूर्ण जीवन एवं वैभव व्यापारिक संस्थाओं की संस्तुति पर निर्भर था। वैषाली, भीटा तथा राजघाट 'नैगम' या श्रेणियों की मुद्राएँ उपलब्ध हुयी हैं अधिकतर विद्वानों का मत है कि सिक्के तैयार कराने का अधिकार जन, 'श्रेणी' संस्थाओं को था या हम कह सकते हैं कि व्यापारिक संस्थाएँ ' कार्षापण' तैयार करती थी। मोर्य काल से पूर्व समाज का आम सदस्य अपने घर की चाँदी से सिक्कों का निर्माण करवा सकता था। परंतु सिक्कों के उपर 'श्रेणी' की मुहर का होना अति आवश्यक होता था। कौटिल्या ने मुद्रा को राजकीय अधिकार में बाँट दिया था। जहाँ सिक्के बनते थे टकसाल कहा जाता था एवं उसकी निगरानी के लिए 'लक्षणाध्यक्ष' की नियुक्ति की गई थी। बौल साहित्य में' पाठ' नामके सिक्के का उल्लेख है। 'षतमान' नामके सिक्के गोरखपुर और तक्षषिला से मिले है। इन सिक्कों पर बोधिवृक्ष अथवा ब्रह्ममी का 'म' का चिन्ह अंकित है। इन आहत सिक्कों की आरंभिक तिथि पाँचवी–छठी शताब्दी के मध्य मानी जा सकती है। ये

(छ) नदी की आकृति।
(ज) मनुष्यों की आकृति– इसके अंतर्गत कभी एक मनुष्य या मनुष्यों की श्रृखला का सिंह अंकित होता था।

'कार्षापण' भारत का राष्ट्रीय सिक्का था जो सर्वत्त ही प्रचलत था। देश में विभिन्न जगहों से खुदाई में प्रचूर मात्रा में सिक्के प्राप्त हुए हैं। इन स्थानों में प्रमुख हैं–

(क) उत्तर–प्रदेश– कौशाम्बी में पूर्व मौर्य एवं मौर्य कालीन सिक्के। मिर्जापुर, अयोध्या– निधि–से 500 सिक्के, खीरी लिका में पैका निधि– 1245 सिक्के एवं गाजीपुर–
(ख) मध्यप्रदेश में बेसनगर, एरण, उज्नैयिनी एवं कोषक।

(ग) राजपूताना– नागरी–चितौड़गढ़ गएव जयपुरी।
(घ) महाराष्ट्र– हैदराबाद निधि (वारंगल तथा करीम नगर)
(च) तमिलनाडु– त्रिचनापल्ली एवं कोयम्बटूर जिले के निधि।
(छ) महाराष्ट्र– हैदराबार निधि (वारंगल तथा करीम नगर)
(ज) बिहार– महुवातोली, गोललपुर, गोरहवाघाट, पाटलीपुत्र, मसोढ़ी, बोध गया एवं राजगीर।
(झ) पश्चिमोत्तर प्रदेष– मीर नामक टीला, तक्षषिला पेषावर एवं रावलपिंडी।
(ट) पंजाब प्रदेश– कांगड़ा निधि एवं अफगानिस्तान निधि।

उपरोक्त सभी जगहों से भरपूर मात्रा में खुदाई के दौरान सिक्के प्राप्त हुए हैं। थोड़ी भिन्नता होते हुए भी ये सिक्के आपस में काफी समाज है एवं इनके विषय काफी मिलते–जुलते हैं। पूरे देश की सांस्कृतिक एवं राजनैतिक एकता की व्याख्या ये सिक्के खुद कर देते हैं। 'कार्षापण' के निर्माणकर्त्ता कौन थे विद्वान अभी तक एक मत नहीं हो सके हैं। आहत सिक्के नवीन शोधों के आधार पर निरंतर नई–नई जानकारियाँ इतिहास को उपलब्ध कराते रहेंगे एवं इनकी बदौलत इतिहास अपनी सटीकता का प्रमाण देने में सक्षम होता रहेगा।

संदर्भ :

1. प्राचीन सिक्के– श्री विनोद पांडे।
2. प्राचीन भारत का इतिहास– श्री राधा कृष्ण चौधरी।

***

स्वतंत्रता प्राप्ति क बाद शिक्षा का विकास : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

*डॉ. ललन प्रसाद सिंह**

सन् 1950 में भारतीय संविधान लागू हो गया। संविधान के अनुच्छेद 45 में निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा संबंधी लक्ष्य इस प्रकार दर्शाया गया है ''राज्य 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान संविधान लागू होने के दस वर्ष के भीतर करेगा।'' भारतीय संविधान के लागू होने के पश्चात् बिहार में शिक्षा के क्षेत्र में अभूतपूर्व विकास हुआ। कई प्रारंभिक विद्यालयों की स्थापना हुई तथा इन विद्यालयों में शिक्षकों की संख्या के साथ–साथ प्रशिक्षित शिक्षकों की संख्या में और बच्चों का विद्यालयों में नामांकन में परिमाणात्मक विकास हुआ। शिक्षा में लैंगिक अन्तराल को कम करने का भी प्रयास किया गया। सन् 1946–47 में बिहार में प्रारंभिक विद्यालयों की संख्या 20,260 थी। सन् 1965–66 में इन विद्यालयों की संख्या 44,434 हो गई। सन् 1950 के दशक में लड़कों के नामांकन में 176.57 प्रतिशत और लडकियों में लगभग पाँच गुणा वृद्वि हुई। 1960 के दशक में इनका प्रतिशत 28.87 और 44.59 रहा। इस नामांकन के आँकड़े से पता चलता है कि लड़कियों के प्रति उनके अभिभावकों का रूझान पढ़ाई के प्रति काफी बढ़ा जो लैंगिक समता का सूचक माना जा सकता है।

इस अवधि में मुख्य रूप से कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) द्वारा दिए गए सुझाव एवं संस्तुतियों के आधार पर प्रारंभिक शिक्षा के उन्नयन एवं संख्या में गुणात्मक विकास हुआ है जिनकी संस्तुतियों एवं सुझावों को वर्त्तमान शिक्षा प्रणाली में भी अपनाया गया है।

कोठारी शिक्षा आयोग ने देश में संपूर्ण ढ़ाँचे की समीक्षा की और शिक्षा द्वारा आधुनिक समाज की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कई महत्वपूर्ण सुझावों का उल्लेख किया। सन् 1966 से 1986 तक प्रारंभिक शिक्षा के सुधार के उपाय कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) की संस्तुतियों को ध्यान में रखकर किए गए। इनकी मुख्य संस्तुतियों एवं सुझाव जैसे प्रारंभिक विद्यालय हर बच्चे को एक मील के अंदर ही मिलना चाहिए तथा कक्षाओं में प्रगति की रफ्तार इतनी हो कि बच्चों की प्रगति को देखकर अकारण ही बच्चे को अनुत्तीर्ण न किया जाए। इन दो मुख्य सुझावों को आज तक अपनाया गया है।

बिहार की शिक्षा प्रणाली में 1970 के दशक में दो महत्वपूर्ण परिवर्त्तन हुए। पहला, राज्य सरकार ने 1976 में सभी प्राथमिक और मध्य विद्यालयों का अधिग्रहण कर लिया। तनदुसार बिहार में सभी प्राथमिक और मध्य विद्यालयों के नियंत्रण और प्रबंधन को शिक्षा विभाग में स्थानांतरित कर दिया गया।

कोठारी शिक्षा आयोग (1964–66) एवं राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1968) की संस्तुतियों पर विचार–विमर्श करने के पश्चात् भारत सरकार ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) की घोषणा की। प्रारंभिक शिक्षा में विशेषतया बाल केन्द्रित शिक्षा पर बल देते हुए भारतीय संविधान के अनुच्छेद 45 के लक्ष्य को शीघ्र से शीघ्र प्राप्त करने के लिए योजना बनाई गई। साथ ही यह भी कहा गया कि बीच में पढ़ाई छोड़ने वाले बच्चों के लिए कार्यक्रम चलाने पर बल दिया जाए।[4]

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) :– सन् 1986 में संपूर्ण भारतीय शिक्षा का अध्ययन किया गया। सन् 1986 में एक नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति बनी। शिक्षा नीति में प्रारंभिक शिक्षा पर भी देश के सामने कुछ महत्वपूर्ण लक्ष्य रखे गए। राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) में निम्नलिखित मुद्दों पर मुख्य जोंर दिया गया।

1) 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों का विद्यालयों में नामांकन और विद्यालय में टिके रहना।

---

* पीएच. डी. (समाजशास्त्र), बी. आर. ए. बिहार वि वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

2) शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार होना चाहिए।
3) बाल–केन्द्रित शिक्षा पर जोर दिया गया।
4) विद्यालय में आधारभूत संरचना का विकास एवं प्रत्येक विद्यालय में दो शिक्षकों में एक शिक्षक और एक शिक्षिका होंगे।
5) पूरे देश में प्राथमिक विद्यालयों की दशा को सुधारने के लिए एक क्रमिक अभियान शुरू किया जाएगा, जिसका सांकेतिक नाम ऑपरेशन ब्लैक बोर्ड होगा।
6) राष्ट्रीय शिक्षा नीति ने इस बात पर जोर दिया कि जो बच्चे विद्यालय में पढ़ने नहीं आते है अर्थात् बाहर हैं तथा जिन्होंने विद्यालय छोड़ दिए है, उन बच्चों की शिक्षा जारी रहे, इसके लिए अनौपचारिक शिक्षा की व्यवस्था की जाए। यह सुनिश्चित किया जाए कि विद्यालय बीच में ही छोड़ने वाले बच्चे जो 1990 में 11 वर्ष के हो जाएँगे, उन्हें उस आयु पर समतुल्य शिक्षा मिल जाए। समतुल्य शिक्षा का तात्पर्य यह है कि जिस आयु में बच्चे को सापेक्ष वर्ग की शिक्षा मिलती है, वही शिक्षा विद्यालय छोड़ने वाले बच्चे को पुनः प्राप्त हो जाए जिसे अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र के ब्रिज पाठ्यक्रम करके पूरा किया जा सकता है। इसी प्रकार इस नीति में यह प्रावधान था कि 1995 तक 14 वर्ष तक की आयु वाले सभी बच्चों को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा दी जाएगी।

ख) 1992 की संशोधित राष्ट्रीय शिक्षा नीति : क्रियान्वयन योजना (1992) जर्नादन रेड्डी समिति की सिफारिशों के अनुसार 1986 की नीति को अधिक सार्थक तथा प्रभावशाली बनाने के लिए प्राथमिक शिक्षा में कुछ संशोधन किए, जो निम्नलिखित है :

प्राथमिक शिक्षा की वर्त्तमान स्थिति :– राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) एवं सन् 1992 की संशोधित राष्ट्रीय नीति व क्रियान्वयन योजना (Programme of Action-PoA) में दिए गए सुझावों एवं संस्तुतियों को ध्यान में रखते हुए बिहार में प्रारंभिक शिक्षा के उन्नयन हेतु काफी ध्यान दिया गया जो इस प्रकार है :–

प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण (अर्थात् सभी बच्चों को शिक्षा का समान अवसर मिले) के उद्देश्य से बिहार में 1991 में बिहार शिक्षा परियोजना की स्थापना हुई और इसने यूनिसेफ (UNICEF) की वित्तीय मदद से प्रारंभिक शिक्षा के क्षेंत्र में अपनी गतिविधियाँ शुरू कर दी।

प्राथमिक शिक्षा की चुनौतियाँ :– स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद यह महसूस किया गया कि देश के अधिकांश लोग जो आर्थिक रूप से पिछड़े हुए है तथा सामाजिक परिदृश्य में विशेषकर पिछड़ी जाति के समुदाय निरक्षर है। यह सबसे बड़ी चुनौति थी। इनके शैक्षणिक उत्थान के लिए संविधान निर्माणकत्ताओं एवं जनता के प्रतिनिधियों ने मिलकर यह आवाज उठाई कि शैक्षणिक रूप से पिछड़े समाज के लोगों को शिक्षित एवं साक्षर होने के लिए शिक्षा प्रदान करने की ऐसी व्यवस्था की जाए कि आज के बच्चे शिक्षा प्राप्त कर भविष्य में शिक्षित और साक्षर होकर अच्छा नागरिक बनें। इसी उद्देश्य से संविधान में राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के अनुच्छेद 45 में 14 वर्ष की आयु तक के बच्चों के लिए अनिवार्य एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान करने का राज्य ने संकल्प लिया। इस हेतु तब से प्रारंभिक शिक्षा के लिए समय–समय पर आयोग, समितियाँ एवं नीतियाँ बनी। इसके सुझाव एवं संस्तुतियों पर बच्चों को प्रारंभिक स्तर की शिक्षा प्रदान करने के लिए प्रयास किए गए। सन् 1985 में आपरेशन ब्लैक बोर्ड एवं 1995 में जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम के तहत् प्रारंभिक शिक्षा के लिए बच्चों के विद्यालय प्रवेश एवं पढ़ाई के लिए कार्य किए गए। सर्व शिक्षा अभियान जो प्रारंभिक शिक्षा के लिए व्यापक कार्यक्रम है, सन् 2000 से लागू होने के पश्चात् बिहार में शिक्षा में अभूतपूर्व परिवर्त्तन हुए जो इस प्रकार है :–

1) राज्य के ग्रामीण एवं शहरी क्षेत्र में बच्चों की संख्या को देखते हुए तथा एक किलोमीटर की परिधि में प्रारंभिक विद्यालय खोले गए।
2) शिक्षकों की प्रशिक्षण एवं शैक्षिक अनुसमर्थन हेतु संकुल संसाधन केन्द्र एवं प्रखंड संसाधन केन्द्र स्थापित किए गए।
3) बच्चों के विद्यालय में नामांकन हेतु यह प्रयास किया जा रहा है कि ज्यादा से ज्यादा बच्चे विद्यालय आए।

4) जो बच्चे विद्यालय से बाहर है, उनके लिए शिक्षा की वैकल्पिक व्यवस्था में शिक्षण केन्द्र खोले गए।
5) 6–14 वर्ष के बच्चों को विद्यालय मे प्रवेश एवं उसकी शिक्षा के लिए शिक्षा के अधिकार को संविधान के मूल अधिकारों में रखा गया।

सरकार द्वारा किए गए प्रयासों के बावजूद प्राथमिक शिक्षा के सामने कुछ चुनौतियाँ हैं, जो इस प्रकार है :–

1) बेरोजगारी की समस्या होने के कारण बिहार राज्य के शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्र के लोग आर्थिक रूप पिछड़े हुए हैं। जब कोई समाज अर्थिक रूप से पिछड़ा रहता है तो शैक्षिक रूप से भी पिछड़ा रह जाता है क्योंकि इस समाज के 6 से 14 वर्ष तक की आयु के बढ़ते–फलते बच्चों के हाथ को शारीरिक श्रम करके परिवार के अभिभावक को सहयोग करना होता है। सरकार के प्रयास के बाद ये बच्चे विद्यालय में नामांकित होने के बावजूद नियमित ढंग से विद्यालय उपर्युक्त वर्णित कारणों से नहीं जा पाते हैं। कई बच्चे कुछ समय के बाद विद्यालय छोड़ देते है। इस परिस्थिति को देखकर सरकार के द्वारा मध्याह्न भोजन की व्यवस्था की गई, इसके बावजूद भी यह समस्या कई स्थितियाँ में बरकरार है। विद्यालय छोड़ने वाले बच्चों की संख्या/प्रतिशत के मामलों में अब कुछ कमी आई है।
2) विद्यालय एवं समुदाय के बीच पारस्परिक संबंध नहीं है। प्रधानाध्यापकों एवं शिक्षकों का अभिभावकों से बातचीत करने एवं बच्चों की शिक्षा हेतु उनसे संबंध स्थापित करने में काफी उदासीनता है। काम की तलाश में निकले तथा स्वरोजगार में जुड़े अभिभावकों को इतना समय नहीं मिलता है कि वे विद्यालय जाकर शिक्षकों से अपने बच्चे की प्रगति के बारे में बात कर सके। यह मजबूरी में अभिभावक की उदासीनता है तथा उदासीनता इस बात से भी अभिभावक को है कि विद्यालय से तुरंत रोजगार मिलने वाला नहीं है। अतः कार्य करके तुरंत आमदनी प्राप्त करने वाले लोगों की इस मानसिक सोच से उनके नजर में शिक्षा का महत्व क्षीण हो जाता है।
3) प्रत्येक विद्यालय अपनी आधारभूत संरचनाओं एवं बच्चों के लिए सारी शिक्षण सुविधाओं से युक्त होता है। अब प्रायः विद्यालयों में शिक्षकों की कमी नहीं है फिर भी विद्यालय में गुणात्मक विकास अपेक्षित स्तर तक नहीं हो पा रहा है। इसका कारण विद्यालय का आंतरिक प्रशासन तथा विद्यालय के बाहर जिला स्तर पर बाह्य प्रशासन से है। आंतरिक प्रशासन के अंतर्गत विद्यालय के प्रधानाध्यापक हैं जो शिक्षक समूह के साथ मिलकर शैक्षिक कार्यक्रम एवं शैक्षिक संचालन के लिए पाठ्यचर्या, पाठ्यक्रम, पाठ्य सहगामी गतिविधियों और खेलकूद एवं स्थानीय भ्रमण के लिए वार्षिक कैलेंडर का निर्माण नहीं तय कर पाते है। दूसरा, शैक्षिक सोच के साथ प्रधानाध्यापक एवं शिक्षकों में समन्वयन का अभाव है। विद्यालय शिक्षकों के द्वारा शिक्षक डायरी का उपयोग नहीं किया जाता है जबकि प्रधानाध्यापक के लिए शिक्षक डायरी अति महत्वपूर्ण है जिसके द्वारा वे शिक्षकों की शिक्षण प्रक्रिया का अनुश्रवण कर सकते हैं। शिक्षक डायरी वह साधन है जिससे शिक्षक एवं शिक्षा में गुणात्मक विकास लाया जा सकता है।
4) बाह्य प्रशासन में जिला के शिक्षा पदाधिकारी एवं अधीनस्थ कार्यक्रम पदाधिकारी आते हैं। उन पदाधिकारियों को पता नहीं है कि शिक्षा में गुणात्मक विकास के लिए विद्यालय में चल रही शिक्षण अधिगम प्रक्रिया में राष्ट्रीय पाठ्यचर्या 2005 एवं बिहार पाठ्यचर्या 2008 में दिए गए सिद्धांतों के आधार पर क्या तब्दीली होनी चाहिए। इसके लिए उन्हें प्रशिक्षण देना आवश्यक है।
5) प्रखंड संसाधन केन्द्र एवं संकुल संसाधन केन्द्र शिक्षा की गुणवत्ता के लिए विद्यालय जाकर शिक्षकों को शैक्षिक अनुसमर्थन करने में उदासीन है।
6) कई विद्यालयों में शिक्षण सामग्री उपलब्ध नहीं है। जहाँ उपलब्ध है वहाँ उनका उपयोग भी नहीं होता है जो सामग्री आसपास में है, उसका इस्तेमाल नहीं होता है।

उपर्युक्त वर्णित स्थितियों को देखकर पता चलता है कि स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद प्रारंभिक शिक्षा के लिए अथक प्रयत्न किए जा रहे है जिससे विद्यालय में सभी बच्चे नामांकित होकर शिक्षा की

गुणवत्ता के साथ ज्ञानार्जन कर साक्षर एवं शिक्षित हुए है। परन्तु प्रत्येक स्तर पर शैक्षिक प्रक्रिया की समझ नहीं होने के कारण शिक्षा में समस्या एवं चुनौति बरकरार है।

भारत में शिक्षा की लम्बी परम्परा रही है। सर्वप्रथम परिवार ही शिक्षा का एकमात्र स्त्रोत था। परिवार का मुखिया अपनी जानकारी के हिसाब से अपने पुत्रों को वेद का ज्ञान प्रदान करता था। बाद में गुरू के रूप में व्यावसायिक शिक्षक एवं गुरूकुल एवं आश्रम के रूप में शिक्षण संस्थाएँ अस्तित्व में आई। छात्र गुरू के साथ परिवार के सदस्य के रूप में रहकर शिक्षा ग्रहण करते थे। इस समय शिक्षा मुख्यतः धार्मिक थी। बाद में शिक्षित ब्राह्मणों ने शिक्षा प्रदान करना प्रारंभ किया। इनके द्वारा व्यवस्थित रू‍प से दी जाने वाली शिक्षा 'ब्राहणिक शिक्षा' कही जाने लगी। इसके तहत धार्मिक शिक्षा के साथ–साथ पारिवारिक परंपरा के अनुसार व्यवसाय के लिए भी तैयार किया जाता था। इस समय गुरू शिष्य संबंध बड़े मधुर थे। यद्यपि शिक्षा लड़कों के लिए निःशुल्क थी परंतु लड़कियाँ जो उच्च कुल की थी वे अपने घरों पर ही शिक्षा प्राप्त करने थे।

बौद्ध धर्म के प्रसार ने बौद्ध को लोकप्रियता प्रदान की। अनेक बौद्ध मठ शिक्षा के केन्द्र बन गए। यहाँ सभी जाति एवं वर्ग के बच्चों को शैक्षिक सुविधाएँ उपलब्ध होने लगी। यहाँ धार्मिक नियमों एवं कर्मकांडों की पढ़ाई न कर पाली भाषा (जो जनसामान्य की भाषा थी) को पढ़ाई का माध्यम बनाया गया। शिक्षा का मुख्य बल पढ़ने, लिखने, गणित तथा चरित्र निर्माण पर था। अधिकतर शिक्षा मौखिक होती थी।

जब मध्यकाल में मुसलमानों का शासन हुआ तो इस्लामी शिक्षा का प्रचलन बढ़ा। प्रारंभिक शिक्षा मकतबों में तथा उच्च शिक्षा मदरसों में दी जानी लगी। चूँकि मस्जिदें सारे देश में बन गई थी इसलिए शिक्षा जनसामान्य को आसानी से उपलब्ध होने लगी। मकतबों में हिन्दु बच्चों को भी प्रवेश दिया जाने लगा। कुरान पढ़ने व लिखने के साथ–साथ गणित की शिक्षा दी जाती थी। इस काल में भी लड़कियाँ की शिक्षा की अवहेलना की गई।

अंग्रेजों के आने से शिक्षा व्यवस्था में बहुत बड़ा परिवर्त्तन आया। विद्यालयों की पश्चिमी प्रणाली शुरू हुई तथा अंग्रेजी भाषा शिक्षा के माध्यम के रूप में उभर कर सामने आई। अब अलग विद्यालय भवन बनने लगे जहाँ सिर्फ शिक्षण कार्य होता था। शिक्षक को काम के बदले वेतन प्राप्त होने लगा। इस समय पढ़ने, लिखने एवं अंकगणित पर बल दिया गया। शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य ऐसे नागरिकों का वर्ग तैयार करना था जो रूचि, मत और बुद्धि से अंग्रेज हों। जो पढ़कर ब्रिटिश शासन के कार्यो में सहयोग कर सकें। लेकिन यह व्यक्ति स्थानीय समुदाय के लिए उपर्युक्त नहीं था। तब भी मुख्य बल उच्च वर्गो की उच्च शिक्षा पर था। 1882 के भारतीय शिक्षा आयोग ने प्रारंभिक शिक्षा को स्थानीय समुदाय की जरूरत के अनुकूल बनाने परबल दिया जिससे जनसामान्य के लिए प्रारंभिक शिक्षा की मांग की। इसी समय गोपाल कृष्ण गोखले जैसे नेताओं ने (जो स्वतंत्रता आंदोलन से भी जुड़े थे) निःशुल्क एवं अनिवार्य प्रारंभिक शिक्षा की मांग की। परंतु अंग्रेज शासकों ने लम्बी बहस के बाद इस मांग को ठुकरा दिया। इन्होनें प्रारंभिक शिक्षा के विस्तार की अपेक्षा उसके दृढ़ीकरण पर बल दिया। शैक्षिक प्रशासन के लिए लोक शिक्षा विभागों की स्थापना हुई। विद्यालय निरीक्षक विद्यालयों का निरीक्षण करते थे। पाठ्य सामग्री भी निर्धारित की गई परंतु इनका विद्यार्थियों के जीवन अनुभवों से कोई संबंध नहीं था। इस प्रकार उपनिवेशात्मक शासन के फलस्वरूप हमारी संपूर्ण देशी शिक्षा व्यवस्था धीरे–धीरे नष्ट हो गई। 1921–37 के बीच शिक्षा व्यवस्था भारतीयों के हाथ में आ गई और इस समय इसमें काफी उल्लेखनीय प्रगति हुई। 1928 के हैरटोग समिति की सिफारिश के कारण इसका व्यापक फैलाव संभव नहीं हो सका। फिर भी इस समिति ने ठहराव की दृष्टि, छीजन एवं छीजन एंव स्थगन में कमी लाना तथा प्रारंभिक शिक्षा की बेहतरी के लिए काफी बल दिया। स्वतंत्रता के पूर्व ही महात्मा गाँधी की बुनियादी शिक्षा जिसे वर्धा विद्यालय प्रणाली कहा जाता है के द्वारा प्रारंभिक शिक्षा के विकास के तहत कमाने के साथ सीखने पर बल दिया गया। विद्यालय के बीच बेहतर संबंध इत्यादि इस शिक्षा कार्यक्रम की मुख्य विशेषता थी।

स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत को एक जनतंत्रात्मक, कल्याणकारी राज्य के रूप में ''प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकीरण'' तथा ''सभी के लिए समान शैक्षिक अवसर'' को अपनी सांविधानिक प्रतिबद्धता के रूप में स्वीकार किया। भारतीय संविधान के भाग 4 में राज्य के नीति निदेशक तत्व के तहत अनुच्छेद 45 में बच्चों के लिए निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा का उपबंध किया गया। वही अनुच्छेद 46 में अनुसूचित जातियाँ, अनुसूचित जनजातियाँ और अन्य दुर्बल वर्गो की शिक्षा और अर्थ संबंधी हितों की अभिवृद्धि का संवैधानिक प्रावधान किया गया। 86वें संविधान संशोधन के द्वारा अनुच्छेद 21 (क) को जोड़कर दिसम्बर 2002 में मूल अधिकार के रूप में शामिल किया गया। अब राज्य ने इस उत्तरदायित्व को स्वीकार किया है कि वह प्रत्येक बच्चे को शिक्षित करेगा, चाहे वह किसी भी जाति, धर्म या सामाजिक–आर्थिक स्तर का हो। तभी से पूरे देश में प्रारंभिक शिक्षा के सार्वभौमिकीकरण को उच्च प्राथमिकता दी जा रही है तथा अनेक योजनाएँ कार्यान्वित की जा रही है।

संदर्भ :

1. एस. एल. दोषी, पी. सी. जैन, भारतीय समाज, संरचना और परिवर्तन, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, जयपुर – 05, तृतीय संस्करण, वर्ष – 2005
2. गवर्नर जी०, क्वॉटेड वाई बी० के० राय वर्मन, मास कम्युनिकेशन इन चेंजिग वर्ल्ड, इन मेनस्ट्रीम वॉल्यूम, नवम्बर 17, दिसम्बर 26, 1985.
3. मलहान, पी० एन०, कम्युनिकेशन मीडिया : येसटर्डे, टुडे एण्ड टुमारो, न्यू देहली : पब्लिकेशन डी, 1985.
4. Nurullah, Syed & Naik, J. P. History of Education in India, Macmillan, Calcutta, Reprint, 1971.
5. Report of the Education Commission Ministry of Education, Govt. of India, New Delhi, 1964-66.
6. The National Policy of Education, 1986 , Ministry of Human Resource Development, Govt. of India, New Delhi.
7. बिहार जिला योजना के आँकड़ों के आधार पर संकलित, सन् 2010–11
8. बिहार योजना वर्ष 2010–11 के आधार पर संकलित
9. एप्रेजल रिपोर्ट ऑफ ए डब्ल्यू पी एंड बजट, 2011–12

***

उच्च शिक्षा में आरक्षण नीति : एक आलोचनात्मक मूल्यांकन

*शाइस्ता यासमीन**

प्रस्तावना (Abstract) :- रिजर्वेशन अंग्रेजी भाषा का शब्द है इस शब्द का हिंदी में अर्थ आरक्षण है । आरक्षण का अर्थ है किसी व्यक्ति विशेष के लिए स्थान को उसके लिए सुरक्षित करना होता है । चाहे वह रेल के डब्बे की सीट हो या फिर नौकरी का स्थान हो, इसे आरक्षण कहते हैं । सरकारी सेवाओं व संस्थानों में पर्याप्त भागीदारी नहीं रखने वाले पिछड़े जाति, समुदायों तथा अनुसूचित जातियों और जनजातियों को सामाजिक और शैक्षिक पिछड़ेपन को दूर करने हेतु सरकार अपने कानून के तहत सरकारी तथा सार्वजनिक क्षेत्रों में आरक्षण देती है ।

शब्द कुंजी (Key words) :- आरक्षण ,उच्च शिक्षा, नौकरी, सामान्य वर्ग, पिछड़ा वर्ग ।

परिचय (Introduction) :- आजादी के पहले प्रेसीडेंसी रीजन और रियासतों के एक बड़े हिस्से में पिछडे वर्ग के लिए आरक्षण की शुरुआत हुई। महाराष्ट्र में कोल्हापुर के महाराजा छत्रपति शाहूजी महाराज ने 1901 में पिछड़े वर्ग से ग़रीबी दूर करने और राज्य प्रशासन में उन्हें उनकी हिस्सेदारी देने के लिए आरक्षण शुरू किया। यह भारत में दलित वर्गो के कल्याण के लिए आरक्षण उपलब्ध कराने वाला पहला सरकारी आदेश है।

1908 में अंग्रेजों ने प्रशासन में हिस्सेदारी के लिए आरक्षण शुरू किया । 1921 में मद्रास प्रेसिडेंसी ने सरकारी आदेश जारी किया जिसमें गैर ब्राह्मण के लिए 44 फीसदी , ब्राह्मण,मुसलमान,भारतीय-ऐंग्लो/ईसाई के लिए 16-16 फीसदी और अनुसूचित जातियों के लिए 8 फीसदी आरक्षण दिया गया। 1935 में **"भारत सरकार अधिनियम 1935"** में सरकारी आरक्षण को सुनिश्चित किया गया ।1942 में डॉ भीमराव अंबेडकर ने सरकारी सेवाओं और शिक्षा के क्षेत्र में अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षण की मांग उठाई।

आरक्षण का उद्देश्य केंद्र और राज्य में सरकारी नौकरियों,चुनाव, योजनाओं, और शिक्षा के क्षेत्र में हर वर्ग की हिस्सेदारी सुनिश्चित करना था । लेकिन सवाल ये उठा कि किसको कितना आरक्षण दिया जाए, इसके लिये पिछड़े वर्ग को तीन समूहों में बंटा गया - अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति तथा अन्य पिछड़ा वर्ग। भारत सरकार द्वारा इन तीनों समूहों को अलग-अलग आरक्षण दिया गया है।

वर्तमान में उच्च शिक्षा में आरक्षण (Reservation in higher education in present time) :- हाल ही में "अब नारी की बारी" अभियान के तहत रांची के एस एस मेमोरियल कॉलेज में "हिन्दुस्तान इन कैंपस (Hindustan in campus)" का आयोजन किया गया। इसमे शामिल छात्र/छात्राओं ने आरक्षण, ग़रीबी, सुरक्षा और रोजगार आदि मुद्दों पर अपनी बात रखी। विद्यार्थियों ने उच्च शिक्षा में आरक्षण का विरोध किया और कहा कि आरक्षण व्यवस्था आर्थिक आधार पर हो क्योंकि हर वर्ग में गरीब विद्यार्थी हैं, जिन्हें मदद की ज़रूरत है इन्हें मदद मिलनी चाहिए ताकि प्रतिभावान विद्यार्थी निखर कर सामने आए। आरक्षण ने केवल समाज को आपस मे विभक्त किया है।

---

* पीएच. डी. (समाजशास्त्र), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

इसके अतिरिक्त इसी वर्ष जनवरी 2019 में समान्य श्रेणी के आर्थिक रूप से पिछड़े लोगो को सरकारी नौकरी और शिक्षा में 10% आरक्षण देने का संबैधानिक प्रावधान प्रभाव में आया है। इस प्रावधान के अनुसार सालाना 8 लाख रुपये से कम आय वाले सवर्णों को भी नौकरी और शिक्षा में 10% आरक्षण मिलेगा।

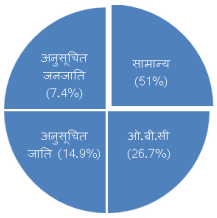

ये मत लोकसभा में 323 मतों के साथ पास हो गया जबकि 2 विरोधी मत भी प्राप्त हुए और राज्यसभा में 165 मत इसके पक्ष में आये जबकि 7 विरोधी मत प्राप्त हुए। ये संविधान (124 वां संशोधन) विधेयक 2019 के अंतर्गत पास किया गया है। केंद्रीय मानव संसाधन विकास मंत्री प्रकाश जावड़ेकर ने कहा है कि शिक्षा और नौकरी में सामान्य वर्ग 10 फीसदी आरक्षण अगले शैक्षिक सत्र 2019-2020 से लागू होगा ,यह आरक्षण सरकारी और निजी शिक्षा संस्थानो में दिया जाएगा तथा ये भी बताया कि ऊँची जातियों के गरीबों को दिए जाने वाले इस 10 फीसदी आरक्षण का कोई भी असर अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के मौजूदा आरक्षण पर नहीं पड़ेगा । गुजरात पहला ऐसा राज्य बन गया है, जहां सामान्य वर्ग के आर्थिक रूप से कमजोर लोगों को शिक्षा और नौकरी में 10 प्रतिशत आरक्षण दिया जाएगा। यह आरक्षण देश के करीब 40 हजार कॉलेजो में और 900 विश्वविद्यालयों में लागू होगा जिसके फलस्वरूप करीब 25 फीसदी सीटे बढ़ेंगी।

लेकिन इस प्रकार के आरक्षण से कुछ फायदे भी हैं और कुछ नुकसान भी। परन्तु ये जानने से पहले ये जान लिया जाए कि ये आरक्षण कितना सही है और कितना गलत। यदि हम उच्च स्तर की प्रतियोगी परीक्षाओं की बात करे तो हम देखते है कि इनमे भी चयन प्रक्रिया और परीक्षाफल आरक्षण से प्रभावित होती है। परीक्षा के बाद जो कटऑफ सामने आती है वो दिमाग को सुन्न कर देती है।आरक्षण का सबसे ज्यादा नुकसान सामान्य वर्ग को होता है,उनके लिए परीक्षा उत्तीर्ण करना लौहे के चने चबाना जैसा होता है,जबकि अन्य वर्गों के लिये ये उतना ही आसान।

अब मुद्दा ये है कि इसमें सामान्य वर्ग का क्या कसूर? क्या ये ज़रूरी है कि उन्हें पढ़ने के लिये अच्छा माहौल मिला हो? क्या सामान्य वर्ग में गरीबी नहीं? या फिर क्या ये मान लिया जाए कि सामान्य वर्ग के लोगो मे ज्यादा दिमाग़ है इसलिए इनके लिये ज्यादा कटऑफ निर्धारित की जाती है?

आज के समय मे शिक्षा में आरक्षण एक बड़े असन्तोष का कारण ही नहीं बल्कि विद्यार्थियों के दिमाग मे ज़हर घोलने का काम भी करता है।

केंद्र के द्वारा दिया गया आरक्षण (Reservation given by central government) :-

वर्ग	कितना आरक्षण
अनुसूचित जाति (SC)	15 % (लगभग 14.9%)
अनुसूचित जनजाति (ST)	7.5 % (लगभग 7.4%)
अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC)	27 % (लगभग 26.7%)

कुल आरक्षण 49.5 % (लगभग 51%)

बाकी 50.5% (लगभग 51%) आरक्षण सामान्य वर्ग के लिए रखा गया जो कि एस सी,एस टी और ओबीसी वर्ग के लिए खुला है। हाल ही में प्रस्तावित आरक्षण का कोटा वर्तमान कोटे से अलग होगा. अभी देश में कुल 49.5 फ़ीसदी आरक्षण है. अन्य पिछड़ा वर्ग को 27 फ़ीसदी, अनुसूचित जातियों को 15 फ़ीसदी और अनुसूचित जनजाति को 7.5 फ़ीसदी आरक्षण की व्यवस्था है। ग़रीब सवर्णों को प्रस्तावित 10 फ़ीसदी आरक्षण मौजूदा 50 फ़ीसदी की सीमा से अलग होगा ।

आरक्षण की वर्तमान स्थिति (Present condition of reservation) :-

- महाराष्ट्र में शिक्षा और सरकारी नौकरी में मराठा समुदाय को 16% और मुसलमान को 5% अतिरिक्त आरक्षण दिया गया।
- तमिलनाडु में सबसे अधिक 69 फीसदी आरक्षण लागू किया गया है। इसके बाद महाराष्ट्र में 52 % और मध्यप्रदेश में कुल 50 % आरक्षण लागू है।

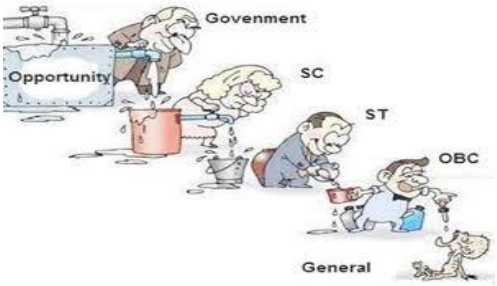

उच्च शिक्षा में आरक्षण नीति (Reservation policy in higher education) :- आरक्षण के द्वारा विशेष वर्ग को ही फायदा हो रहा है जबकि अन्य वर्गों को खासा नुकसान उठाना पड़ रहा है।यहां ये साफ साफ नही कहा जा सकता कि उच्च शिक्षा में आरक्षण उपयोगी है या नहीं क्योंकि कहीं का कहीं आरक्षण की वजह से छात्र/छात्राओं को समान अवसर नहीं मिल पा रहे हैं।

उपरोक्त चर्चा के बाद आइये अब बात करते हैं आरक्षण के द्वारा होने वाले लाभ और हानि की।

जैसा कि हम जानते ही है कि पिछड़े वर्ग को संविधान द्वारा आरक्षण रूपी ब्रह्मास्त्र प्राप्त है जिसके द्वारा इस वर्ग को होने वाले लाभ की चर्चा करते हैं।

आरक्षण के लाभ (Merit of Reservation) :-

सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में सुधार (Improvement in social and economical condition) :- इस बात में कोई शक नहीं कि आरक्षण से आरक्षित वर्गों की सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति में सुधार हुआ है। आरक्षित वर्गों में आने वाले एससी, एसटी तथा ओबीसी के लोगों की मात्रा सरकारी संस्थानों में बढ़ी है। भारी मात्रा में ये सरकारी संस्थानों में हैं, चाहे सरकारी नौकरी हो या पढ़ाई इन सभी क्षेत्रों में आरक्षित वर्ग की वृद्धी हुई है।

शिक्षा प्रणाली में भागीदारी बढ़ी (Participation in teaching system increased) :- सरकारी स्कूल कॉलेजों में दिए गए आरक्षण से आरक्षित वर्गों के छात्र-छात्राओं की शिक्षा भी मजबूत

हुई है। आरक्षित वर्ग के ज्यादातर छात्र-छात्राओं ने स्नातक तथा स्नातकोत्तर में दाखिले के लिए आवेदन किए है। इन व्यवस्थाओं की संख्या में भी भारी उछाल आया है।

उच्च शिक्षा का अवसर (Opportunity for higher education) :- निम्न वर्ग के अधिकांश विद्यार्थी 12 वी के बाद पढ़ाई का मन त्याग देते हैं,क्योंकि उनको ये लगता है कि वे स्नातक/स्नाकोत्तर में दाखिले के लिए होने वाली प्रतियोगिता परीक्षा में सफल नही हो पाएंगे,ऐसे में उनको आरक्षण का सहारा मिलता है और वे उच्च शिक्षा के पथ पर चलना प्रारंभ कर देते हैं।

रोजगार के अवसर (Employment opportunities) :- उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद अब बात आती है रोज़गार की। तो यहां भी आरक्षित वर्ग के लोग अपने आरक्षण की वजह से अन्य लोगो को पछाड़ते हुए बाजी मार लेते हैं और समाज मे अपनी एक अलग पहचान बना लेते हैं। इस प्रकार आरक्षित वर्ग स्वयं को मिलने वाले आरक्षण से पूर्ण रूप से लाभान्वित हो रहा है। उच्च शिक्षा में आरक्षण के लाभ की चर्चा के बाद अब बात करते हैं इसकी हानि की।

आरक्षण से हानि (Demerit of Reservation) :- हर चीज के लाभ और हानि दोनों ही होते हैं। इसी तरह आरक्षण से कई प्रकार की हानियां होती है तो आइए जानते हैं इससे होने वाली हानियों की-

एकता और अखंडता में दरार (Crack in unity and integrity) :- चुंकि आरक्षण जातीय आधार पर नियमित है तो इससे सवर्ण जातियों से आने वाले वर्गों को खासी दिक्कतों का सांना करना पड़ता है। ऐसा कई बार होता है कि सामान्य वर्ग से आने वाला छात्र आरक्षित वर्गों पीछे रह जाता है, ऐसा इसलिए क्योंकि आरक्षित वर्ग को दाखिले में तथा सरकारी नौकरियों में अंकों की रियायत मिलती है, इसके कारण सामान्य वर्ग से आए छात्र-छात्राओं को मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। इस कारण देश की एकता और अंखडता में दरार आ जाती है। इससे देश में शांति का माहौल बिगड़ जाता है।

प्रतिभा का स्थानांतरण (Transfer of talent) :- आरक्षित वर्गों को सरकारी संस्थानों में मिल रही रियायत से सामान्य वर्गों के प्रतिभाशील बच्चे पीछे रह जाते हैं। कई बार कम अंक आने के बाबजूद आरक्षित वर्ग के उम्मीदवार सामान्य वर्ग के उम्मीदवार से आगे निकल जाते हैं। आरक्षित वर्गों को मिल रहे रियायत कारण कई प्रतीभाशील उम्मीदवार को उसका हक नहीं मिल पाता है। जाहिर है इसका असर उन संस्थानों में भी पड़ता है जहाँ प्रतिभाशील उम्मीदवार का चयन ना होकर आरक्षण से आए हुए उम्मीदवार का चयन होता है। इस प्रकार प्रतिभाशाली उम्मीदवार को अपने पसंदीदा संस्थान त्यागना पड़ता है और विवश होकर उसे अन्य संस्थान में दाखिला लेना पड़ता है।

पारदर्शिता की कमी (lack of transparency) :- हम सभी जानते हैं कि ओबीसी वर्ग के सभी लोग अभी तक भारत सरकार की जनगरणा लिस्ट में शामिल नहीं हैं। ऐसे में जो एस सी, एस टी, और ओबीसी वर्ग से आते हैं वे अपने अधिकार के लिए आंदोलन करते हैं, क्योंकि उनके अनुसार उनको आरक्षण का लाभ नहीं मिल पाता है। आरक्षण व्यवस्था की पारदर्शिता की कमी को दर्शाता है। आज के समय में आरक्षण की जो परिस्थिति है यह जगहाजिर है।

एक तबके को फायदा (Benefit to a section) :- सामाजिक संगठन की ओर से किए गए सर्वे में सामने आया है कि उच्च शिक्षा में भी आरक्षण का फायदा एक तबका ले रहा है जो कि

आरक्षण का फायदा लेकर उच्च पदों पर पहुंच रहा है। फलस्वरूप सामान्य वर्ग गरीब लोगो को ओर पिछड़े वर्ग के गरीब एवं सुविधाहीन लोगो को इसका कोई फायदा नही मिल पा रहा है और इस प्रकार वे पिछड़ते ही जा रहे हैं। जबकि वास्तविक हकदार ग्रामीण और निम्न परिवार इसका फायदा नहीं ले पा रहा है। यही वजह है कि एक एससी, एसटी वर्ग का व्यक्ति आज भी गरीबी में रहने को मजबूर है।

आर्थिक आधार पर आरक्षण पर जोर (Emphasis on reservation on economic basis):- अभी तक जातीय आधार पर आराक्षण का प्रावधान है, लेकिन समाज का एक तबका आर्थिक आधार पर आरक्षण की मांग कर रहा है। सूत्रों की मानें तो केंद्र की मोदी सरकार इस विषय में राय भी ले रही है, अगर वाकई यह व्यवस्था बनी तो समाज के हर वर्ग को आर्थिक पर आरक्षण का लाभ मिल सकता है।

आरक्षण पर देश में बहुत राजनीति हुई है, लेकिन यह भी कड़वा सत्य है कि आरक्षण से सिर्फ मुट्ठी भर लोगों को ही फायदा पहुंच रहा है। आज की परिस्थिति में जरुरत है आरक्षण की व्यवस्था को नये सिरे से देखने की। नेता दलगत राजनीति से ऊपर उठकर इस व्यवस्था को देखें तो देश में जात-पात की राजनीति का अंत हो सकता है।

निष्कर्ष (Conclusion) :

उच्च शिक्षा में आरक्षण के सम्बंध में जो चर्चा हमने की है उसके अनुसार ये आरक्षण समाज को दो भागों में बाट देता है ,एक तो वह जो आरक्षण से लाभ ले रहा है और दूसरा वो जो कि आरक्षण से मिलने वाले लाभ से वंचित है। आरक्षण उस व्यक्ति को मिलना चाहिये जो सही मायने मे उसका हकदार है जबकि उस व्यक्ति को कोई भी फायदा नही मिल पा रहा है।और ये कहीं न कहीं व्यक्ति को मेहनत से दूर कर के आरक्षण का आदी बना रहा है जो कि एक गम्भीर समस्या है।

परन्तु गरीब वर्ग के लिए ये काफी ज़रूरी है ,वर्तमान में आरक्षण जाति के आधार पर दिया जाने का प्रावधान है जो कि कहीं न कहीं गलत है। आरक्षण को आर्थिक आधार पर दिए जाने की आवश्यकता है जिससे कि गरीब और जरूरतमंद को इसका फायदा मिल सके और ये वर्ग अपनी सामाजिक और आर्थिक उन्नति में पंख लगा सके ।

अतः ये कहा जा सकता है कि आरक्षण को जाति, धर्म और, लिंग तक ही सीमित न किया जाए क्योंकि आज आर्थिक वृद्धि भी बहुत जरूरी है। एक समय था जब पिछड़े वर्गों, अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति को इसकी बहुत जरुरत थी, पर आज हर जगह इनका वर्चस्व फैल गया है जिससे, सामान्य जाति के ऐसे लोग जो कि, आर्थिक रूप से पिछडे हुए हैं,उनको भी आरक्षण की बहुत आवश्यकता है चूँकि गरीब और सुविधाहीन प्रत्येक वर्ग में मौजूद हैं इसलिए आरक्षण को आर्थिक आधार पर दिया जाए चाहे बात उच्च शिक्षा की हो या नौकरी की इसलिए जाति, लिंग, धर्म के अलावा आर्थिक परिस्थिति व योग्यता को भी ध्यान मे रख कर, आरक्षण का निर्धारण किया जाए जिससे सभी की समस्या का समान रूप से, हल निकले और आरक्षण का सही मायने मे, सभी को लाभ मिल सके ।

संदर्भ :

1. Laskar, Mehbubul Hassan. "Rethinking Reservation in Higher Education in India" Law Review pp. 29–30
2. Satish Deshpande, "Reservation in higher Education". Vol. 41, Issue No. 24, 17 Jun, 2006
3. Kancha llaiah,"Merit and demerits of Reservations in higher education". Vol. 41, Issue No. 24, 17 Jun, 2006
4. Jayati Ghosh, "Case for Caste-based Quotas in Higher Education". Vol. 41, Issue No. 24, 17 Jun, 2006
5. Anirudh Prasad, "Reservation policy and practice in India". Deep and Deep publication, Delhi 1991
6. Jscob Aikara," Scheduled caste and higher Education". Dastane Ramechandra and co. Raviwar peth, poona,1980

वेबसाइट (Website) :

http://bipard.bih.nic.in>reservation>inner

https://www.bhaskar.com/news/NAT-NAN-know-the-facts-about-reservation-policy-in-india-5093986-PHO.htm

http://hindi.timesofelection.com/भारत-में-आरक्षण-के-लाभ-और-हानि/

https://www.chauthiduniya.com/2009/06/uuch-shikshar-sansthano-me-any-pichare.html

***

कमलाकरी टीका का शास्त्रीय दृष्टिकोण

*डॉ. बिमला कुमारी**

सार–संक्षेप

कमलाकर के अनुसार ज्ञान का विषय ज्ञान से भिन्न होता है। वैसे ही कार्य से भिन्न उसका फल भी होता है। विषय सिद्ध होता है। फल जन्य व असिद्ध होता है तो दोनों में एकता कैसे हो सकती है। फल को न्याय नय में संवित्ति कहा गया है। मीमांसक मत के प्रकटता शब्द से अभिहित है। वेदाति के मत में आवरण अंग कहा गया है। अभिप्राय यह है कि ज्ञान का अर्थात् संवेदन का विषय अर्थात् क्षेत्र अन्य है। उससे भिन्न है। फलज्ञान का परिणाम है। अर्थात् फल ज्ञान के विषय एवं ज्ञान से भी पृथक् है। क्योंकि फल और में सम समय उमुत्पाद नहीं देखा गया है। इन्द्रियार्थ सार्थकर्ष जन ज्ञान का नाम प्रत्यक्ष है। आदि पद से अनुमान का भी ग्रहण करना चाहिए। उस प्रत्यक्ष का विषय नील, नीलगुण अथवा घट पटादि पदार्थ हुआ करता है। विषय फलाश्रय होता है। फल का अर्थ है। परिणाम। प्रकटता का अर्थ है– प्राकट्य। यह अर्थ भट्ट नय में किया गया है। कमलाकर ने अपनी टीका में मीमांसा शास्त्र का अधिक प्रयोग किया है। मीमांसा के न्याय एवं सिद्धान्त अधिक लागू हुए हैं। जहाँ भी शास्त्र की चर्चा हुई है। वहाँ मीमांसा के दृष्टिकोण का ख्याल रखा गया हैं ध्यातव्य है कि आचार्य मम्मट का भी सिद्धान्त मीमांसा शास्त्र पर आधारित है।

परिचय

कमलाकर ने अपनी टीका में मीमांसा शास्त्र का अधिक प्रयोग किया है। मीमांसा के न्याय एवं सिद्धान्त अधिक लागू हुए हैं। जहाँ भी शास्त्र की चर्चा हुई है। वहाँ मीमांसा के दृष्टिकोण का ख्याल रखा गया हैं ध्यातव्य है कि आचार्य मम्मट का भी सिद्धान्त मीमांसा शास्त्र पर आधारित है। पांचवें उल्लास में व्यंजना सिद्धि पर विशद् विचार करते हुए मीमांसा के समग्र सिद्धान्तों का सांगोपांग विवेचन किया है। उसी परिप्रेक्ष्य में कमलाकर ने भी अपनी टीका में उन सभी सिद्धान्तों का सम्यक् निवेश किया है। संकेतितश्चतुर्भेदो जात्यादि जातिरेव वो इस मम्मट के सूत्र पर कमलाकर ने अपनी विविध शास्त्रीय मौलिकता के सिद्धान्त को निरूपित करने की चेष्टा की है। साध्य का निरूपण करते हुए कमलाकर ने प्रयत्न समुदाय भावना रूप को क्रिया से अभिहित किया है। जैसा कि अपनी टीका में 'दुक्तं राणके' कहकर इस प्रकार अभिव्यक्त किया हैः–

प्रेयत्नश्च करोत्यर्थस्तदस्यानुपलम्भनात्।
घात्वर्थ व्यतिरिक्तातः प्रयत्नार्थाख्य भावना।।
तस्मादाय परिस्पन्दात् प्रभृत्याफल लाभतः।
यत्नापूर्व परीभूता क्रिया सा वर्तते तदा।।

(श्लो0 वा0)

आचार्य मण्डन मिश्र ने भी इसी प्रकार अपना अभिप्राय व्यक्त किया हैः–

'अन्यात्पादानुकूलात्पा भावना किं प्रदुष्यति'।

शब्द के चार भेद को स्वीकार करते हुए समर्थन में शब्द को प्रधान मानकर उसके भेद का निरूपण भी किया है। जैसा कि अधोलिखित उद्धरण के द्वारा प्रमाणित किया गया हैः–

शब्दैरेव प्रतीयन्ते जाति द्रव्य गुण क्रियाः।
चातुर्विध्यादमीर्षा तु शब्द उक्तश्चतुर्विधः।।

इसी प्रकार वैयाकरण सम्मत जाति गुण क्रिया के स्वरूप का वर्णन करते हुए उदाहरण के द्वारा उसे सिद्ध करने का भी प्रयास किया है। जैसा कि अधोलिखित उदाहरण के द्वारा स्पष्ट हैः–

भिन्नेष्वभिन्नधीशब्दौ घबलादिषु यद् बलात्

---

* संस्कृत विभाग, कामेश्वर सिंह दरभंगा संस्कृत विश्वविद्यालय, दरभंगा

वर्तेत जातिद्वेषा स्यान्माला सूत्रवदन्विता।
द्रव्याश्रयस्ततो भिन्नस्तत् प्रतीतेरपाश्रयः
विपरा वृत्ति घर्मा च निर्गुणो गुण क्ष्यते।।
कर्त्रादिकारक ग्राम निर्वर्त्या सत्त्वघर्मतः
पदार्थो व्याप्य कर्तृस्थः क्रिया विद्भः क्रियेष्यते।।

(का0 प्र0 पृ0–56)

हित्थादि शब्दों के निरूपण में हित्व शब्द को संज्ञावाचक स्वीकार किया है। अपनी टीका में नागेश चण्डीदास, जयराम तर्कपचानन प्रभृति के मतों का उल्लेख करते हुए उनका खण्डन भी किया है। जिसका निरूपण शोध की दृष्टि से नीचे कर देना अनुपयुक्त न होगा। 'अयमेव हित्थादि शब्दः संज्ञाख्यः यदृच्छात्मकः यदृच्छा वक्तुः स्वेच्छैव तया आत्मा स्वरूप यस्य तादृः इति जात्यादि विभाग प्रकरण सिद्धौ। अयमेव संज्ञा शब्दों द्रव्यशव्दे इति व्यवह्रियते। श्रावण ज्ञानस्य शाब्द बोधे हेतुत्वांगी कारात् नात्याश्रय इति उद्योते स्पष्ट्म। जयराम तर्क–पंचाननास्तु अन्त्य वर्ण बुद्धौ पूर्ववर्णोपमन वशान्निःशेषतो विषयीभूत मत एव संहृतक्रमं तद् वर्ण बुद्धयनन्तरं तद् वर्णबुद्धिरिति क्रम शूनयं यत्स्वरूपं डित्थादि पदरूप मिति सुधासागरे स्पष्ट्म। वस्तुतस्तु जात्यादि शब्देषु पूर्व प्रयोगापरः पर प्रयोग इति यः क्रमा सो त्र न भवति। साक्षि इति सर्वत्र स्पष्ट्म तदयमत्र संग्रहः–

नामरूपेण संवितेः कश्चित् संज्ञा निगद्यते। नामेति तद्यथा चैत्रः
संज्ञाशव्दश्च तद ध्वनिः प्रतीति भेद पोश्रित्य द्रव्यशव्दात् पृथवकृतः
यद यद् विशिष्यते किंचित तत् तत् द्रव्यमिहेष्यते वस्तू पलक्षणं
यत्र सर्वनाम प्रयुज्यते। द्रव्यमित्युच्यते सो थो द्रव्यत्वेन विवक्षितः।

(का0 प्र0 क0 पृ0–57)

उपाधि के प्रसंग में जाति, गुण, क्रिया एवं द्रव्य के भेद से शब्द के भी चार भेद स्वीकार करते हैं। जैसा कि गौ शुक्लः, चलः डित्थः। ऐसा कहकर विभाग करते हैं। इसके कारण संकेतितार्थ भी चार प्रकार के हैं। वस्तुत के एक होने पर भी आश्रय के भेद होने से भेद की तरह प्रतीत होते हैं। यह वैयाकरणों का मत है। मीमांसक जाति में संकेत ग्रह स्वीकार करते हैं। अन्य अर्थों का उसी में अन्तर्भाव हो जाता है। नैयायिक जाति विशिष्ट व्यक्ति में शक्ति ग्रह स्वीकार करता है। बौद्ध अपोह में शक्ति ग्रहमानता है और वह स्वेतात्व निरास रूप ही है।

वैशेषिक ने परमाण्वादि का पाठ गुणों के बीच में करके पारिभाषिक गुणत्व स्वीकार किया है। वस्तुतस्तु वह भी प्राणप्रद होने के कारण जाति रूप ही है। कुछ लोग परमाण्वादि में रहनेवाले परमाणत्व को जाति के रूप में स्वीकार नहीं करते। उनका मत है कि सांकर्य दोष के कारण परमाणुत्व जाति नहीं बन सकती। क्योंकि यहाँ साकर्यदोष है। घर और जल के परमाणु परस्पर दोनों भिन्न हैं। और दोनों का समावेश पृथिवी परमाणु में हैं। वहाँ पृथिवित्व एवं परमाणुत्व भी है। अतः जाति सांकर्ण प्रसंग होने के कारण परमाणुत्व में जाति की कल्पना नहीं की जा सकती। जैसा कि अधोलिखित उद्धरण से स्पष्ट हैंः–

व्यक्तेरभेदस्तुल्यत्वं शंकरोऽथनवस्थितिः।।
रूपहानिरसम्बन्धो जातिवाधक संग्रहः।।

(मु0 पृ0–46)

यह शंका नहीं की जा सकती है। परमाण्वादी का कांकय संभव नहीं है। परमाणु में रहनेवाला परमाणुत्व जाति विशेष है और वह भूषणादि की तरह व्यवच्छेदक नहीं होता है अपितु सौन्दर्य मात्र का आधान करता है। इसलिए परमाणु भी प्राणप्रद होने के नाते जाति ही है। गुण नहीं– ऐसा आचार्य का मत है। यह विचार मीमांसा शास्त्र पर आधारित है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वैयाकरण मत में संकेतितार्थ जाति गुण क्रिया और द्रव्य ये चार अर्थ होते हैं। ये चारों ही प्रवृत्ति निमित्त के कारण हैं। अतः संकेतितार्थ चार हैं। मीमांसक के मत में गुणादि का भी जाति में ही अन्तर्भाव होने के कारण जाति ही संकेतितार्थ है। इन दोनों मत में पहला

मत मम्मट का है। जबकि दूसरा मत मीमांसक का है। मीमांसक का कहना है कि जिसके कारण जगह शुक्लत्व का बोध, जिसके कारण सर्वत्र पाकादि क्रिया का बोध, एवं यदृच्छया डित्थादि अर्थों का बोध होता है वह सब सामान्य ही है। यद्यपि शंख की शुक्लता एवं वर्ण की शुक्लता भिन्न–भिन्न है। और डित्थादि शब्दों में भी भिन्न–भिन्न वक्ता के द्वारा उच्चरित होने के कारण सर्वत्र पाकः पाकः, शुक्ला शुक्ला आदि जो अनुगत सामाकारा प्रतीति होती है वही है। जाति। अतः जाति में ही शक्ति माननी चाहिए। उसमें लाघव भी है। जैसा कि टीकार ने उद्धरण के रूप में अधोलिखित पद्य को उद्धृत किया है:–

घटतीति घटो ज्ञेयो नाघटन घटतामियात्
अघटत्वा विशेषेण घटो पि स्याद् घटो न्यथा।
घटना च घटात्मत्वापतिरूपा क्रिया मता
यः का श्चिदर्थ शब्दांना व्युत्पत्तौस्या न्निबन्धनम्।
प्रवृत्तौ तु क्रियैवेका सतापालन लक्षणा।।

(का0 प्र0 पृ0–61)

जो लोग शब्द में उपाधि मानते हैं। उनके मत में भी शब्द के अनेक होने के कारण उसमें रहनेवाली जाति में ही संकेत ग्रह करना चाहिए। जो लोग धर्म मात्र में शक्ति मानते हैं। उनके मत में भी अर्थ के अनेक होने के कारण जाति में ही संकेत ग्रह मानना चाहिए। इसलिए सर्वत्र जाति में ही संकेत ग्रह सम्भव है। इस प्रकार आचार्य ने इस परिच्छेद में उपाधि शक्तिवाद, जाति शक्तिवाद, जाति विशिष्ट व्यक्ति शक्तिवाद, अपोहवाद का क्रमशः विश्लेषण किया है।

लक्षणा विषय के विचार करते हुए कमलाकर ने प्राचीन मत का समर्थन करते हुए कहा है कि 'शक्य सम्बन्ध' को लक्षण माना है। लक्ष्य का सम्बन्ध लक्षणा नहीं है। मुख्यतः यह लक्षणा न्याय मत से अनुप्राणित है। 'लक्षणा शक्य सम्बन्धस्तात्पर्यानुपपत्तितः' (मुक्तावली) कुछ लोगों ने कहा कि शक्य सम्बन्ध से अशक्यार्थ की उपस्थिति (प्रतीति) ही लक्षणा है। और यह प्राचीनों का मत है तो इसका खण्डन करते हुए कमलाकर ने कहा कि यह ठीक नहीं है। वृत्ति शब्द का अर्थ है व्यापार और वह वृत्ति प्रतीति का कारण है। उस वृत्ति के द्वारा स्मर्यमाण लक्ष्यार्थ होने के कारण वह व्यापार ही लक्षणा है। मुख्यार्थ और लक्ष्यार्थ में साक्षात् सम्बन्ध बतलाने के लिए ही तद योगे का उपादन हुआ है। अन्यथा गंगा पद से यमुना की भी प्रतीति होने लग जाती। लक्षणा वस्तुतः अर्थ की प्रतीति है। शब्द में वह आरोपित है। शबद व्यवाहित लक्ष्यार्थ विषयक होने के कारण। क्रिया शब्द का अर्थ है वृत्ति शब्द व्यापार। इस प्रकार मुख्यार्थ से उत्तर अर्थ का प्रतिपादन करनेवाली शब्द की वृत्ति लक्षण है। लक्षणा का बीज तात्पर्यानुपपत्ति है। अन्वयानुपपत्ति नहीं है। यदि अन्वयानुपपत्ति ही लक्षणा का बीज हो तो 'पापी गच्छति गंगायाम्' इस प्रयोग में गंग पद की लक्षणा नरक में होने लग जाती। किन्तु पूर्वार्जित पापावच्छिन्न लक्ष्यकत्व स्वीकार कर लेने पर कोई दोष नहीं है। इसी प्रकार 'नक्षत्र' दृष्ट्वावपि विसृजते' इस प्रयोग में नक्षत्र विशेष यहाँ पर काल विशेष का उपलक्षक होने के कारण दिन में नक्षत्र दर्शन होने पर भी वापी का विसर्जन नहीं करना चाहिए। यहाँ नक्षत्र शब्द काल विशेष का वाचक है। अतः तात्पर्यानुपपत्ति ही लक्षण का बीज है। कमलाकर ने सोदाहरण लक्षण के छः भेद प्रतिपादित किया है। जैसा कि उद्धरण के रूप में अधोलिखित है :

1. प्रयोजन हेतुक स्वसिद्धि निमित्तक पराक्षेप लक्षण उपादन लक्षणा। उ0कुन्ताः प्रविशन्ति।
2. प्रयोजन हेतुक परमितित्तिक स्वसमर्पण लक्षण लक्षण लक्षणा। गंगायां घोषः।
3. प्रयोजन हेतुक गौणी, सारोपा विषयि विषय उभय उपस्थिति लक्षणा तृतीया। जैसे गौर्वाहिकः। यहाँ पर गुण साजात्य को लेकर गोपद के द्वारा वाहीकार्थ लक्षित होता है। प्रयोजन जाड्यमान्धातिशय है।
4. प्रयोजन हेतुक गौणी साध्यवसाना निगीर्ण विषय लक्षणा चतुर्थी लक्षणा है। जैसे गौरयम्। यहाँ प्रयोजन है, नितान्त अभेद का प्रत्यायन।

5. प्रयोजन वही शुद्धा सारोपा कार्य कारण भावादि रूप। जैसे– आयुधृर्तम्। यहाँ पर आयु का जनक घृत आयु शब्द के द्वारा लक्षित होता है। प्रयोजन है यहाँ अन्य वस्तु की अपेक्षा विलक्षण रूप से कार्य कारण भाव का ख्यापन।
6. प्रयोजन हेतुक शुद्ध साध्यवसाना लक्षणा छठी है। जैसे 'आयुः पिवति' इस उदाहरण में आयु शब्द के द्वारा धृत रूप अर्थ लक्षित होते हैं। प्रयोजन है। अव्यय चरित रूप में कार्य कारित्वभाव का द्योतन।

इस कारण से भाट्टनय में ज्ञातता रूपा प्रकटता ज्ञेय का धर्म है। प्रत्यक्ष ज्ञान का फल है। वहाँ पर विषय प्रकटता ज्ञान के विषय नीलादि से सर्वथा भिन्न है। नैयायिक मत में प्रत्यक्षादि ज्ञान का फलअनु व्यवसाय है। और उसका विषय संवित्ति है। व्यवसाय संवित्ति का विषय नीलादि से भिन्न है। संवित्ति ज्ञान का धर्म है। प्रकृत में लक्ष्यार्थ ज्ञान का विषय है। फल शीतत्व और पावनत्व है। पकता एवं संवित्रिकी तरह। उन दोनों की प्रतीति अभेद तथा नहीं भासित हो सकती। यहाँ पर एक विचारणीय प्रश्न यह है कि फल जन्य होता है। विषय जनक। पावनत्वादि में जन्यत्व का अभाव होने के कारण पावनत्वादि के ज्ञान में विषय से भेद स्पष्ट है। इस प्रकार कारिका ग्रन्थ की संगति तो लग जाती है, किन्तु वृत्ति ग्रन्थ की संगति नहीं लगती क्योंकि पकता ज्ञान प्रत्यक्ष जन्य नहीं है, अतः वृत्ति ग्रन्थ का विरोध स्पष्ट है। इसका समाधान करते हुए टीकाकार ने कहा कि जैसे ज्ञान का जनकीभूत विषय ज्ञान से अन्य होता है। ठीक उसी प्रकार फल भी स्वतः भिन्न होता है। कारण की तरह कार्य का भी भिन्न काल होना स्वाभाविक है। यहाँ पर पावनत्वादि प्रतीति शक्य सम्बन्ध रूप लक्षणा का फल है। न कि लक्ष्य पात्र की प्रतीति। इस प्रकार अन्ययानुपति के द्वारा फैलती लक्षणा जितना अंश अन्वय का उपपादक हो सकता है, उतने ही अंश को विषय बनाने में समर्थ हो सकती है। न कि अनुपपादक को। इसलिए तट रूप अर्थ को ही लक्षणा विषय बनाती है। न कि शीतत्त्व पावनत्व को। यह जो कहा जाता है कि ताप के उपशमय के लिए सेव्य मान चन्दन तापोपशमन के साथ शैत्य को भी पैदा करता है। ठीक उसी तरह लक्षणा सोद्देश्य होने पर भी शैत्य को कैसे नहीं विषय बनायेंगी, इस आक्षेप के उत्तर में टीकाकार ने कहा है कि चन्दन सन्निधि मात्र से शैत्य पैदा करता है। किन्तु लक्षणा अनुपपति प्रसार द्वारा इसलिए दोनों में वैषम्य होने के कारण। जैसा कि काव्य प्रदीप में स्पष्ट है। वस्तुतस्तु जैसे कारण होने के कारण ज्ञान से विषय भिन्न होता है। उसी तरह कार्य होने के कारण फल भी भिन्न होता है। यदि तीर और पावनत्व दोनों के अभेद मान लिया जाए तो दोनों जन्य जनक भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकेगी। इसलिए विशिष्ट में भी लक्षणा संभव नहीं है। अर्थात् शीतत्व एवं पावनत्व विशिष्ट तट लक्षणा का विषय नहीं हो सका। इस प्रकार उस शीतत्व एवं प ावनत्व रूप अर्थ की प्रतीति व्यंजना से ही होती है। व्यंजना अभिधा और लक्षणा से सर्वथा भिन्न है।

निष्कर्ष

उपर्युक्त बातों की व्याख्या करते हुए कमलाकर ने कहा है कि ज्ञान का विषय ज्ञान से भिन्न होता है। वैसे ही कार्य से भिन्न उसका फल भी होता है। विषय सिद्ध होता है। फल जन्य व असिद्ध होता है तो दोनों में एकता कैसे हो सकती है। फल को न्याय नय में संवित्ति कहा गया है। मीमांसक मत के प्रकटता शब्द से अभिहित है। वेदाति के मत में आवरण अंग कहा गया है। अभिप्राय यह है कि ज्ञान का अर्थात् संवेदन का विषय अर्थात् क्षेत्र अन्य है। उससे भिन्न है। फलज्ञान का परिणाम है। अर्थात् फल ज्ञान के विषय एवं ज्ञान से भी पृथक् है। क्योंकि फल और में सम समय उमुत्पाद नहीं देखा गया है। इन्द्रियार्थ सार्थकर्ष जन ज्ञान का नाम प्रत्यक्ष है। आदि पद से अनुमान का भी ग्रहण करना चाहिए। उस प्रत्यक्ष का विषय नील, नीलगुण अथवा घट पटादि पदार्थ हुआ करता है। विषय फलाश्रय होता है। फल का अर्थ है। परिणाम। प्रकटता का अर्थ है– प्राकट्य। यह अर्थ भट्ट नय में किया गया है। वा से पक्षान्तर लिया गया है। संवित्ति– घट ज्ञान के वा 'घटमहं जानामि'। इस रूप में है। अभिप्राय यह है कि प्रत्यक्षादि के द्वारा घट के ज्ञात हो जाने के बाद 'ज्ञाता' घटः इस ज्ञान से उस घट में ज्ञातता है अपर अर्थात् दूसरा नाम जिसका ऐसी प्रकटता उत्पन्न होती है। यह है कुमारिलभट्ट का मत है। प्रकटता वा ज्ञातता ज्ञेय पदार्थ (घटादि) का धर्म है। ज्ञान का फल भिन्न है। ठीक उसी

प्रकार नैयायिक के मत में प्रत्यक्षादि ज्ञान का फल अनुव्यवसाय है। और उसका फल संवित्ति है। इसलिए ज्ञान का फल ज्ञात का धर्म है।

सन्दर्भ :

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास (पं0 रामचन्द्र मिश्र) : चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पृ. 45
2. काव्यादर्श : चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी, पृ. 66
3. मामह काव्यालंकार : चौखम्बा ओरिएन्ट, पृ. 152
4. काव्य प्रकाश (कमलाकरी) : भारतीय विद्या प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 240
5. अग्नि पुराण : चौखम्बा सरस्वती प्रकाशन, वाराणसी, पृ. 130
6. काव्यानु शासन : मोतीलाल बनारसी दास, पृ. 115
7. काव्य मिमांसा : चौखम्बा संस्कृत सीरिज, वाराणसी, पृ. 103
8. काशिका मीमांसा : मोतीलाल बनारसी दास, पृ. 42
9. काव्य दर्पण : भारतीय विद्या प्रकाशन, पृ. 119

***

आस्टियोपोरोसिस - कारण एवं इसे दूर करने में कैल्शियम के उपयोग का अध्ययन

*डॉ. सुजाता कुमारी**

जब कैल्सीयम का ह्रास होने लगता है तब महिलाएँ एक विशेष रोग से ग्रसित हो जाती है जिस रोग को आस्टियोपोरोसिस कहा जाता है। प्रत्येक चार महिलाओं में एक और प्रत्येक आठ पुरूषों में एक व्यक्ति अस्थि शुषिरता रोग से प्रभावित होते हैं। अस्थि शुषिरता रोग मुख्य रूप से महिलाओं के मेनोपेज के बाद प्रारम्भ होता है। मासिक धर्म के बन्द होने की क्रिया को मेनोपोज कहा जाता हैं। मेनोपेज की क्रियाएँ सभी महिलाओं के जीवन की प्राकृतिक देन है। संसार की सभी महिलाएँ इस स्थिति से गुजरती हैं यह अवस्था आते ही महिलाओं की अण्डाशय की गर्भधारण करने की क्षमता समाप्त हो जाता है और अन्त में बंध्यापन परिपक्व हो जाती है। मेनोपोज की अवस्था अचानक नहीं धीरे–धीरे आती है। मेनोपोज का सम्बन्ध महिलाओं में होने वाली अस्थि–शुषिरता रोग से होता है। मेनोपोज के कारण अण्डाशय से स्त्रावित होने वाले एन्ट्रोजम हार्मोन्स कार्य करना बन्द कर देता है। एस्ट्रोजन के अभाव में कैल्सीयम लवण का क्षरण तेजी से होने लगता है जिसके कारण महिलाओं में आस्टियोपोरोसिस रोग जन्म लेने लगता है। हमारे द्वारा लिये गये कैल्सीयम का 99% भाग दाँतों एवं अस्थियों में उपस्थित एवं संग्रहित रहता है। हमारे अस्थियों के निर्माण के लिए कैल्सीयम आवश्यक तत्व है तथा कैल्सीयम पर अस्थि स्वास्थ्य एवं अस्थि घनत्व निर्भर करता है। जब महिलाओं में कैल्सीयम–लवण का प्रतिशत मात्रा सामान्य स्तर से नीचे हो जाता है तो उनमें आस्टियोपोरोसिस रोग हो जाता है। इस रोग में अस्थियों में दर्द होने लगता है। इस रोग का पहचान तब होता जब महिलाओं की अस्थियाँ टूट जाती है तथा टूटी हुई अस्थियों की चिकित्सा के क्रम में जाँच के बाद इस रोग की पहचान मुख्य रूप से हो जाती है। 50 वर्ष से अधिक उम्र की महिलाओं में अस्थियों का टूटना प्रायः आस्टियोपोरोसिस का लक्षण माना जाता है। इस रोग की अवस्था में कलाई, रीढ़ एवं कमर हड्डियों के टूटने की सम्भावनाएँ अधिक होती है लेकिन इसके अतिरिक्त भी शरीर के किसी भी भाग में अस्थियाँ टूट सकती है। मासिक धर्म बन्द होने के 1 से 7 वर्षों की अवधि में अस्थियों का क्षरण 2 से 5% प्रतिवर्ष होता है। अस्थियों का घनत्व वंशानुकिता, जाति, लिंग, शारीरिक स्वास्थ्य, पोषण तथा आँत के द्वारा कैल्सीयम के अवशोषण पर निर्भर करता है। तम्बाकू, अल्कोहल, कैफीन, रिफाईन्ड तथा अत्याधिक प्रोटीन युक्त भोजन भी इस रोग के कारण है। आमतौर पर 50 वर्ष की उम्र तक पहुँचते – पहुँचते अक्सर शरीर की हड्डियों का धीरे – धीरे क्षरण होने लगता है। इस कारण अस्थियों का द्रव्यमान (घनत्व) दिनोंदिन घटने लगता है। आस्टियोपोरोसिस को हड्डियों का छिद्रमय का मर्ज कहा जाता है। इस मर्ज में जरा सा आघात लगने पर शरीर के प्रभावित अंग की हड्डी टूट जाती है। कुल्हे की हड्डी टूट सकती है और किसी अन्य भाग की भी, लेकिन अब एलसीपी तकनीक से हड्डियों के टूटने को बेहतर ढ़ंग से जोड़ा जा सकता है। ऑस्टियोपोरोसिस की रोकथाम ही इसकी सर्वोत्तम चिकित्सा है। पर्याप्त मात्रा में कैल्सियमयुक्त खाद्य पदार्थ जैसे दूध तथा दही ग्रहण करना और प्रातः धूप का सेवन करने से इस मर्ज में राहत मिलती है। सुबह की धूप में विटामिन डी. पाया जाता है। इसके अलावा प्रतिदिन नियमित रूप से 15 से 20 मिनट तक पैदल चलने और डॉक्टर के परामर्श से व्यायाम करने भी राहत मिलती है।

एक नई उपलब्धि है – लाकिंग प्लेट (एलसीपी)। इसके परिणामस्वरूप बेहतर बायोमैकेमिकल गुण बनते हैं। इस एलसीपी को शेष अन्य प्लेटों की तरह कार्य करने के लिए हड्डियों में फिट किया जा सकता है। यह जोड़ पर दबाव बना सकता है और जोड़ के बचाव का काम आसानी से कर सकता है जबकि बाकी दूसरी प्लेटें जैसे लैस इन्वेसिव स्टेबिलाइजेशन सिस्टम आदि की प्लेट केवल

* पीएच. डी. (गृहविज्ञान),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

'ब्रिजिंग' और अंदरूनी जोड़ का ही कार्य कर सकती है। इस स्क्रू हेड की सतह प्लेट के धागों के साथ अच्छी तरह फिक्स हो जाती है। इस विशेष तरह के स्क्रू की वजह से हड्डी को स्थिर करने के लिए अधिक दबाव की जरूरत नहीं पड़ती। इन लाकिंग प्लेट्स को अंदरूनी जोड़ के लिए इस्तेमाल किया जा सकता है।

ऑस्टियोपोरोसिस और बढ़ती उम्र आदि के कारण अतीत में फैक्चर ठीक ढ़ंग से जुड़ नहीं पाता पर अब उन्हें इस स्क्रू प्लेट की कोणात्मक स्थिरता के द्वारा जोड़ा जा सकता है। इससे टूटे हुए भाग में रक्त प्रवाह सुचारू रूप से होने लगता है। मरीज को ज्यादा समय तक अस्पताल में रूकने की आवश्यकता नहीं पड़ती। कैल्सीयमयुक्त आहार और व्यायाम दोनों हड्डियों की मजबूती के लिए बढ़िया हैं क्योंकि ऑस्टियोपोरोसिस होने का खतरा भी नहीं होगा और लंबी उम्र तक स्फूर्ति बरकरार रहेगी।

एक उम्र के बाद खासतौर से महिलाओं की हड्डियों की मजबूती कम होने लगती है जिससे चलने – घूमने और उनकी काम करने की क्षमता पर प्रभाव पड़ता है। इतना ही नहीं हड्डियां किसी हल्की चोट को भी बर्दाश्त नहीं कर पातीं और जल्दी टूट जाती है। हड्डी रोग विशेषज्ञ मानते हैं कि 30 वर्ष की उम्र तक महिलाओं की हड्डियों का क्षरण बहुत तेजी से होता है हड्डियां जल्दी टूट जाती हैं और नयी हड्डियां बनने मे बहुत वक्त लगता है। तकरीबन 45 की उम्र तक आते – आते हड्डियों की दुश्वारियां हर साल 1 से 2 प्रतिशत बढ़ने लगती है और मेनोपॉज में ये अपनी चरम में पहुँच जाती है। मेनोपॉज के दौरान महिला की ओवरी से इस्ट्रोजन बनना बंद हो जाता है। इस्ट्रोजन वह हारमोन होता है, जो हड्डियों को सुरक्षित रखता है। इसलिए महिला की उम्र जब मेनोपॉज के आसपास होती है या उसके परिवार में ऑस्टियोपोरोसिस का इतिहास रहा हो, तो उसे अपने डॉक्टर को इस विषय में जरूर जानकारी देनी चाहिए। अगर परिवार के इतिहास में ऐसा नहीं हैं तो महिला ऑस्टियोपोरोसिस के खतरे को नियंत्रण में रख सकती है। महिलाओं में ऑस्टियोपोरोसिस फ्रेक्चर ज्यादातर कमर, रीढ़ की हड्डियों और कूल्हे में होते हैं। आस्ट्रेलिया के एक शोधकर्ता जूडी स्टेनमार्क के मुताबिक, ''ऑस्टियोपोरोसिस में एक सबसे बड़ी दिक्कत यह है कि हड्डियों के फ्रेक्चर से पहले इसके लक्षण या दर्द का कोई आभास नहीं होता।'' पश्चिमी आस्ट्रेलियाई विश्वविद्यालय में कैल्सियम तथा विटामिन डी को लेकर 70 वर्ष से अधिक उम्र की 1460 महिलाओं पर शोध किया गया। इन महिलाओं को 600 मिलीग्राम कैल्सियम की गोलियों का नियमित सेवन करने की सलाह दी गयी पर ज्यादातर महिलाओं ने इसका नियमित सेवन नहीं किया जिससे गोलियों ने शरीर में प्रिवेंटिव थेरैपी के तौर पर काम नहीं किया। जिन महिलाओं ने नियमित कैल्शियम की गोलियों का सेवन किया उन्हें गोलियों का पूरा लाभ मिला।

शोधकर्ता रिचर्ड प्रिंस के अनुसार ''बढ़ती उम्र में हड्डियों का क्षरण तेजी से होने लगता है जिसका नतीजा आप ऑस्टियोपोरोसिस मान सकती है।'' यह क्षरण धीमा हो और महिला के स्वास्थ्य को प्रभावित नहीं करे, इसके लिए चिकित्सक कैल्शियम को सप्लीमेंट के तौर पर खाने की सलाह देते हैं। कैल्शियम लेना अधेड़ उम्र की महिलाओं के लिए फायदेमंद जरूर है पर उसे अनियमित तौर पर लेना घातक सिद्ध हो सकता है। कैल्शियम सप्लीमेंट को महिलाएं बहुत दिनों तक नियमित तौर पर नहीं खा पातीं, इसलिए चिकित्सक लगातार कैल्शियम सप्लीमेंट खाने की सलाह देने के बजाय कुछ समय या खास अंतराल के लिए खाने के निर्देश देते हैं। उन महिलाओं को कैल्शियम बहुत फायदा पहुंचाता है, जो लंबे समय के लिए इसका सेवन करती है। उन्हें हड्डियों के क्षरण होने की बीमारी नहीं होती और हड्डियों की लचक लंबी उम्र तक बनी रहती है।

तालिका – 01 सामान्य भोज्य पदार्थों में कैल्सीयम की उपस्थित मात्रा

भोज्य पदार्थ	कैल्सियम की मात्राा	भोज्य पदार्थ	कैल्सियम की मात्राा
गाय का दूध	120	बादाम	230
भैंस का दूध	210	रागी	330
बकरी का दूध	170	उड़द की दाल	200
दूध का पाउडर	950	गाजर की पत्तियाँ	340
चूर्ण	790	सेंगरी की पत्तियाँ	460
छेना	650	करी का पता	810
खोआ भैंस के दूध	1450	पोदीना	200
का दही	150	चौलाइ	500
तिल	100–1500	करी की पत्तियाँ	810
छिलके रहित तिल	600–6000	गाजर की पत्तियाँ	460
मछली ताजी	1450	मेथी	390
मछली सूखी	150	पोदीना	200
छिलका सहित	70–400	सहजन की	460
छिलका रहित	290	पत्तियाँ	124
हरी पत्तेदार	310	सम्पूर्ण हरा चना	400
सब्जियाँ		सूखा नारियल	
चौलाई			
मूली की पत्तियाँ			

कैल्सीयम की दैनिक आवश्यकता :– फुड एण्ड एग्रीकल्चर आर्गनाइजेशन, वर्ल्ड हैल्थ आर्गनाइजेशन तथा इण्डियन काउन्सिल ऑपफ मेडीकल रिसर्च जैसे विभिन्न संस्थाओं ने विभिन्न उम्र में कैल्सियम की आवश्यक मात्राओं को प्रस्तावित की है।

तालिका संख्या 02

व्यक्ति	FAO/WHO (1962) mg/day	ICMR (1993) mg/day
0–12 माह	500–600	500
1–9 वर्ष	400–500	400
10–15 वर्ष	600–700	600
16–19 वर्ष	500–600	500
व्यस्क	400–500	400
गर्भवती+स्तनपान	1000–1200	1000

हड्डी रोग विशेषज्ञों के मुताबिक भले ही ऑस्टियोपोरोसिस महिलाओं के लिए खतरनाक बीमारी है लेकिन अपने आहार में कैल्शियम की उचित मात्रा शामिल कर और व्यायाम से इस बीमारी के खतरे को कम किया जा सकता है। हड्डी रोग विशेषज्ञ डॉ. नवल भाटिया बताते है कि महिलाओं को अपने जीवन की पहली माहवारी के बाद से ही कैल्शियम का मुख्य स्रोत जैसे डेरी प्रोडक्ट को अपने रूटीन आहार में शामिल करना चाहिए जिससे 30 साल की उम्र के बाद शरीर में जमा यह कैल्शियम काम आए। खाने – पीने की चीजों में 1 गिलास दूध, 1 कटोरी दही तथा हफ्ते में 2 – 3 बार पनीर या छोटी मछली शामिल रखना चाहिए। इन खाद्य पदार्थों में अच्छी मात्रा में कैल्शियम होता है। उचित मात्रा में कैल्शियम लेने से हल्की चोट लगने पर हड्डियों के टूटने होने की संभावना कम हो जाती है। कैल्शिमयम की कमी होने पर हड्डी रोग विशेषज्ञ उन्हें सप्लीमेंट देते हैं। पर्याप्त मात्रा में कैल्शियम खाने से ऑस्टियोपोरोसिस से बचना संभव हो सकता है। सभी महिलाओं को कैल्शियम सप्लीमेंट की जरूरत

नहीं होती। सप्लीमेंट खाना तभी फायदेमंद है जब आपके अंदर उसकी कमी होने लग रही हो। कैल्शियम को पचाने के लिए विटामिन डी भी साथ में लेना जरूरी है। जिन महिलाओं के रक्त में विटामिन डी का स्तर कम है उनमें कोलोन और मलाशय से संबंधित कैंसर होने की संभावना बढ़ जाती है। डॉक्टर रोज 700 से 1000 आईयू विटामिन डी लेना जरूरी बताते हैं। लेकिन रूटीन के आहार व धूप आदि से विटामिन डी की मात्रा केवल 400 आईयू ही मिल पाती है। आजकल सप्लीमेंट के तौर पर विटामिन डी की गोलियां भी बनने लगी है। सप्लीमेंट लेने से पहले विशेषज्ञ से एक बार सलाह जरूर लेना चाहिए। हड्डियों का घनत्व ज्यादा हो इसके लिए कैल्शियमयुक्त आहार के साथ – साथ व्यायाम भी जरूरी है। विशेषज्ञ मानते हैं कि महिलाओं को रोज रस्सी कूदना भी असरदार साबित होगा। दिल्ली के कॉन्टूर्स एक्सप्रेस महिला जिमनेजियम की क्लब मैनेजर के मुताबिक ''महिला की उम्र को देख कर हम पहले उसकी हड्डियों के घनत्व की जांच एक खास मशीन के द्वारा करते हैं। उसके बाद जिम इंस्ट्रक्टर की मदद से वजन उठाने के खास व्यायाम तय किए जाते हैं।'' यदि महिला की उम्र 35 के आसपास हो, तो वह घर पर भी साधारण व्यायाम कर सकती है। अपने पैरों की उंगलियों के सहारे उछले और सख्ती से एड़ियों के सहारे नीचे आए। किसी विशेषज्ञ की सलाह हल्के – फुल्के वजन उठानेवाले कर व्यायाम भी कर सकती हैं। एक घंटा शाम को चहलकदमी करने के बजाय 20 मिनट बहुत तेजी से चले तो पैरों और कूल्हों की हड्डियाँ मजबूत हो जाती है।

तालिका संख्या 03 विशेष कैल्सीयम धारण तालिका

पदार्थ	कैल्शियम की मात्रा
1 कप क्रीमरहित दही	450 मिलीग्राम
1 कप दूध	300 मिलीग्राम
3 सूखी खुबानी	80 मिलीग्राम
1 संतरा	50 मिलीग्राम
1 कप हरी गोभी	70 मिलीग्राम
1/2 कप बींस	40 मिलीग्राम
50 ग्राम बादाम	110 मिलीग्राम
100 ग्राम पालक	50 मिलीग्राम
1 अंडा	21 मिलीग्राम
1 स्लाइस ब्राउन ब्रेड	16 मिलीग्राम

नेशनल हेल्थ एंड न्यूट्रीशनल एग्जामिनेशन सर्वे के अनुसार रजोनिवृति के बाद महिलाएं अपने भोजन में पर्याप्त रूप से कैल्शियम नहीं होती है। अधिकतर दिनभर के लिए जरूरी कैल्शियम की आधे से भी कम मात्रा लेती है। एक महिला दिनभर में 1000 से 1200 मिलीग्राम कैल्शियम की जरूरत होती है।

कैल्शियम लेने के कई तरीके हैं। कैल्शियम से भरपूर चीजें जैसे कम वसावाले डेरी उत्पाद लेना ठीक होता है। घर में बिना चिकनाईवाले दूध से तैयार चीजें खाएं, जैसे – कस्टर्ड तथा दही ग्रहण करना चाहिए। कुछ महिलाएं डेरी उत्पाद पचा नहीं पाती क्योंकि उनमें लेक्टेस नाम का एंजाइम नहीं होता। यह एंजाइम दूघ को लेक्टोज में परिवर्तित करता है। दूध को नहीं पचा पानेवाली महिलाएं दही और पनीर को बिना किसी परेशानी के आसानी से पचा लेती है। दही के 200 ग्राम में 500 मिलीग्राम कैल्शियम होता है, जो युवा महिला के लिए रोज जरूरी कैल्शियम की आधी मांग को पूरा करता है।

आस्टियोपोरोसिस से निजात पाने के लिए कैल्सीयम को विभिन्न आहारों के माध्यम से निश्चित ही अनुशंसित मात्राओं में ग्रहण करना अनिवार्य है और इस संदर्भ में महिलाओं को अधिक सतर्क एवं सचेत रहने की आवश्यकता है। क्योंकि नगरीय क्षेत्र जहाँ ग्रामीण क्षेत्रों की अपेक्षा कम दूध तथा कैल्सीयम धारण करने वाले पदार्थ ताजा रूप में उपलब्ध है वहीं ग्रामीण क्षेत्रों उपरोक्त पदार्थों की उपलब्धता है फिर वहाँ के निवासी भी इस रोग से आक्रांत है। ऐसा क्यों ? यह तथ्य तो प्रमाणित तौर

पर वगैर प्रयोगशालात्मक विश्लेषण के नहीं कहा जा सकता है पर इस अध्ययन की प्रक्रिया एवं आहारीय अर्न्तग्रहण की दृष्टि यह निश्चित ही कहा जा सकता है कि कैल्शियम धारण करने वाले ताजे आहारों के उपलब्धता के बाद भी इस क्षेत्र के लोगों को कैल्शियम के संबंध में भरपूर अज्ञानता है और इस रोग के होने के मूल कारण अज्ञानता तथा शिक्षा है। बढ़े उम्र में रोग का अल्प प्रतिशत तथा कम उम्र में रोगों का अधिक संख्या होना इस बात को प्रदर्शित करता है कि छोटे उम्र के लोगों का आहार एवं उनका अर्न्तग्रहण अनियमित तथा अवैज्ञानिक है। इस अध्ययन से यह भी ज्ञात होता है कि अधिक उम्र वाले लोगों में इस रोग की प्रतिशत कम है लेकिन उतरोत्तर नीचे की उम्र की ओर बढ़कर अध्ययन करने पर ज्ञात होता है कि वर्तमान पीढ़ी यह रोग अधिक प्रतिशत में प्रसारित है जिससे यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि अगर इसके ओर विशेष ध्यान नहीं दिया गया तथा राज्य एवं केन्द्रीय सरकारों के द्वारा जागरूकता अभियान नहीं चलाया गया तो यह भविष्य के पीढ़ीयों के लिए खतरनाक संकेत होगा।

संदर्भ :

1. आहार एवं पोषण, रश्मि मनोज छंगानी, हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर एवं नई दिल्ली, 2009.
2. पोषण एवं आहार विज्ञान, डॉ० जी० पी० शैरी, अग्रवाल पब्लिकेशन, संजय पैलेश, आगरा, 2011.
3. हैण्ड–बुक ऑफ डाइट थैरेपी, टर्नर डी. एफ., थर्ड एडीशन, शिकांगो यूनिवर्सिटी प्रेस शिकांगो, 1959.
4. फाउण्डेशन ऑफ न्यूट्रीशन, एम० एस० रोज, दी मैकमिलन कम्पनी, 1994.
5. आहार एवं पोषण विज्ञान, वर्मा एवं पाण्डेय, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1990.
6. भारतीय चिकित्सा अनुसंधान परिषद् के भोज्य विशेषज्ञों द्वारा भारतीयों के लिए दैनिक पोषक तत्वों की प्रस्तावित मात्रा, 1993
7. वनिता, सेहतमंद फाइबर, हिन्दी मासिक पत्रिका, 2007

***

भारत के विभिन्न उद्योगों में लगे बाल श्रमिकों का समाजशास्त्रीय अध्ययन

*डॉ. उदय शंकर कुमार**

बच्चों द्वारा किया जानेवाला कौन सा कार्य शोषणामूलक कार्य है और कौन सा गैर शोषणमूलक, यह बात कार्य पर नहीं बल्कि उस पर्यावरण व परिस्थिति पर निर्भर करता है जिसमें बच्चों को कार्य करना पड़ता है। प्रत्येक बच्चा जो स्कूल नहीं जा रहा है उसे या तो वास्तविक या संभावित बाल श्रमिक मानना चाहिए। चूँकि स्कूल से बाहर रहने वाला बच्चा प्रायः अपने परिवार के लिए पूरक श्रम का कार्य करता है या तो वह पूर्ण समय आधार पर या आंशिक समय आधार पर अपने पारिवारिक व्यवसाय में सहायता पहुँचाएगा या वयस्क द्वारा किए जाने वाले कार्य करेगा। अतः प्रत्येक स्कूल न जाने वाला बच्चा संभवतः बाल श्रमिक है। अधिकार आधारित आगम के आधार पर हम उन सभी बच्चों को शामिल करते हैं जो स्कूल से बाहर हैं। भले ही वो कृषि में उद्योग में या घर में कार्यरत हो। (यू. एन. डी. पी. रिर्पोट 2001)

कार्य शोषण का रूप धारण कर लेता है जब बच्चे :

1. कच्ची उम्र में कार्य करते हों
2. कार्य घंटे का अंतराल लम्बा हो
3. कार्य के लिए उन्हें बहुत थोड़ा भुगतान किया जाए
4. खतरनाक कार्य स्थितियां हो
5. किसी संबंध के तहत बंधुआ रूप में कार्य करना पड़ा।

असंगठित क्षेत्र की छोटी से बड़ी गतिविधियों में करोड़ों बच्चे संलग्न हैं यथा –

(क) सामान्य कार्य में – कृषि, पशुपालन, मत्सयपालन, वानिकी इत्यादि।

(ख) खतरनाक कार्य में – कांच उद्योग, ईंट भट्टा, बीड़ी उद्योग, माचिस तथा आतिशबाजी उद्योग, पीतल बर्तन उद्योग, हथकरघा एवं पापरलूम जड़ी एवं कढ़ाई, हीरा कटिंग, रद्दी चुनना, स्लेट उद्योग, पत्थर व स्लेट, ढ़क्कन कालीन उद्योग, ताला उद्योग, आदि।

(ग) अति खराब दशा में – वेश्यावृति, ट्रैफिकिंग, बलात् व बंधुआ श्रम, अपराध, सैन्य संघर्ष आदि में लगे बाल श्रमिक।

बच्चों द्वारा किया गया कोई कार्य जो उसके सम्पूर्ण शारीरिक विकास, वांछित न्यूनतम शिक्षा या मनोरंजन संबंधी जरूरतों में विध्न डालता हो (होमर फोकस)। अंतराष्ट्रीय श्रम संगठन की जनरल बॉडी का 87वां सत्र जिनेवा में 1 जून 1999 को हुआ जिसमें ऐतिहासिक 'वर्स्ट फार्म ऑफ चाइल्ड लेबर' कन्वेंशन 182, 1999 स्वीकार किया गया तथा बालक एवं बालश्रमिक को इस प्रकार परिभाषित किया गया। बालक शब्द का अर्थ कन्वेंशन 182 के उद्देश्य के लिए उन व्यक्तियों से जिनकी आयु 18 वर्ष से कम हो (अनुच्छेद – 2, कन्वेंशन – 182, आई. एल. ओ. – 1999) जबकि अति खराब दशा के बालश्रमिक इस श्रेणी के अंतगर्त आते हैं।

भारत के कुछ प्रमुख व्यवसायों एवं प्रक्रियाओं में नियोजित बालश्रमिकों की सूची :

व्यवसाय/प्रक्रिया	स्थान का नाम	बालश्रमिकों की संख्य
माचिस	शिवकाशी, तमिलनाडु	45,000
दरीकालीन बुनाई	मिर्जापुर भदोही, उ. प्र.	15,000
कालीन बुनाई	जम्मु कश्मीर, राजस्थान	1,00,000
जरी उद्योग	बनारस, लखनऊ, दिल्ली, मुम्ब	3,00,000
बीड़ी उद्योग	सम्पूर्ण भारत	3,27,500

* पीएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

कांच उद्योग	फिरोजाबाद, उ. प्र.	50,000
पीतल बर्तन	मुरादाबाद, उ. प्र.	45,000
ताला उद्योग	अलीगढ़, उ. प्र.	10,000
चीनीमिट्टी उद्योग	खुर्जा, उ. प्र.	5,000
रेशम उद्योग	बनारस, उ. प्र.	4,409
वस्त्र उद्योग	बनारस, उ. प्र.	1100
चाकु उद्योग	रामपुर, उ. प्र.	3,000
हस्तशिल्प	जम्मु कश्मीर	26,478
रेशम बुनाई	भागलपुर, बिहार	10,000
चिमनी भट्ठा	पश्चिम बंगाल	35,000
स्लेट पेन्सिल	मंदसौर, मध्य प्रदेश	1,000
हीरा कटाई उद्योग	सूरत, गुजरात	15,000
कीमती पत्थर	जयपुर राजस्थान	13,600
पावरलूम	भिवंडी महाराष्ट्र	15,000
सूती होजरी	तिरूपपुर, तमिलनाडु	8,000
कालीन बुनाई	राजस्थान	12,000
हथकरघा उद्योग	जम्मू कश्मीर	28,348
कांच की खान	मेघालय	28,000
बीड़ी	सम्बलपुर	54,000
बीड़ी	बिहार, उ. प्र., आंध्रप्रदेश	2,00,000
पटाखा आतिशवार्ज	भावनगर, गुजरात	13,000

स्त्रोत : राष्ट्रीय श्रम संस्थान, गाजियाबाद (उ. प्र.)

भारत के विभिन्न राज्यों में बाल श्रमिकों की संख्या कम नहीं है। अब यह प्रश्न उठता है कि ये बाल श्रमिक आखिर किन किन उद्योगों में लगे में हुए है ? विभिन्न उद्योगों में लगे बाल श्रमिकों का विवरण इस प्रकार है :–

1. माचिस पटाखा उद्योग, शिवकाशी (तमिलनाडु) :– समुची दुनिया में माचिस एवं पटाखे बनाने के लिए शिवकाशी काफी मशहुर है। एक अनुमान के मुताबिक करीब 200 पटाखे के कारखाने शिवकाशी जिले मे है। शिवकाशी माचिस एवं पटाखे उद्योग में लगभग 50,000 से 80,000 बाल श्रमिक कार्य करतें है। ये बाल श्रमिक 5 साल से लेकर 15 साल तक की आयु के हैं। इन बाल श्रमिकों में अधिकतर बालिकाएं ही हैं।

2. चीनी मिट्टी बर्तन उद्योग, खुर्जा (उत्तर प्रदेश) :– उत्तर प्रदेश के बुलंदशहर जिले में स्थित खुर्जा कस्बे में चीनी मिट्टी के बर्तनों एवं अन्य सामानों का निर्माण लगभग 600 वर्षों से किया जा रहा है। यहां लगभग 20,000 बाल मजदूर प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से इस कार्य में लगे हुए हैं। इनमें करीब 50000 बाल श्रमिक हैं। 8 घंटे तक काम करने वाले बाल श्रमिकों को 150 से 200 रूपये की मजदूरी एक माह में 1990 के दशक में मिलती थी।

3. जवाहरात (कीमती पत्थर) पॉलिश उद्योग, जयपुर :– दुनिया भर में 'पिंकसिटी' (गुलाबी शहर) के नाम से मशहुर जयपुर जवाहरात की पॉलिस के लिए विश्व प्रसिद्ध है। समूचे भारत में कीमती पत्थरों की रंगाई कार्य का लगभग 95 प्रतिशत जयपुर में किया जाता है। एक अनुमान के मुताबिक करीब 60,000 बाल मजदूर इस कार्य में लगें हैं इसमें 51,000 मुसलमान तथा 9,000 हिन्दु हैं। गुरूपदास्वामी समिति ने अपनी रिर्पोट में लिखा था कि वहां लगभग 10,000 बाल श्रमिक काम करते हैं। नीरा बुर्रा के अनुसार वहां करीब 13,000 बाल श्रमिक काम करतें हैं। अपरेन्टिशिप प्रशिक्षण के नाम पर बाल श्रमिकों से लगभग 10 घंटे तक कार्य लिया जाता है तथा यहां 50 प्रतिशत से अधिक बाल श्रमिक अशिक्षित है।

4. ताला उद्योग, अलीगढ़ (उत्तर प्रदेश) :– अलीगढ़ शहर जहाँ एक ओर साम्प्रदायिक दंगे के लिए विख्यात है। करीब 100 वर्षों से वहां ताला बनाने का काम बड़ी तादाद में किया जाता है। प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से वहां करीब 90,000 लोग ताला उद्योग में लगे हुए हैं। इनमे करीब 10,000 के लगभग बच्चे 14 वर्ष की उम्र के हैं। हालांकि सरकारी ऑकड़ों के अनुसार वहां करीब 55,000 मजदूर है। उनमें लगभग 5,000 बाल श्रमिक है।

5. पीतल बर्तन उद्योग, मुरादाबाद (उत्तर प्रदेश) :– मुरादाबाद शहर मुख्यतः दो चीजों के लिए समुची दुनिया में प्रसिद्ध है। एक तो साम्प्रदायिक दंगे के लिए और दुसरे पीतल के बर्तनों एवं कलात्मक वस्तुओं के लिए करीब 1.5 लाख लोग इस उद्योग से जुड़े है जिनमें करीब 40 हजार बाल श्रमिक है। हालाकि बाल श्रमिकों की विभिन्न एजेन्सियों में भिन्न भिन्न आंकी गई है। उदाहरणार्थ श्रमायुक्त, उत्तर प्रदेश के अनुसार 1998 में 2000 जिला उद्योग केन्द्र के अनुसार 5,000 इंडस्ट्रियल डेवलपमेंट सर्विसेज रिर्पोट 1983 के अनुसार 10,500 नेशलन इंडस्ट्री डेवलपमेन्ट सर्विसेज रिर्पोट के अनुसार 7566, डी. के. कुलश्रेष्ठ एवं एस. के. शर्मा 1980 के अनुसार 24,000 तथा नीरा बुर्रा 1988 के अनुसार 40,000 बाल श्रमिक मुरादाबाद में काम करतें हैं।

6. कांच उद्योग, फिरोजाबाद :– जिस तरह से आगरा का ताजमहल दुनिया के सात आश्चर्यों में से एक होने के नाते विश्वप्रसिद्ध है। उसी तरह फिरोजाबाद भी कांच की चुड़ियाँ बनाने के लिए विश्वप्रसिद्ध है। उत्तर प्रदेश के फिरोजाबाद स्थित कांच उद्योग में लगभग 50,000 बाल श्रमिक कार्य करते हैं। ये बाल श्रमिक 800 डिग्री सेल्सियस तक के तापमान वाली भट्ठियों में कार्य करते हैं।

7. कालीन उद्योग :– भारत में कालीन उद्योग में आजकल बहुत बच्चे कार्य कर रहें है। जम्मू कश्मीर, उत्तर प्रदेश एवं राजस्थान सहित देश के अन्य कालीन बुनाई केन्द्रों में लगभग 1,00,000 – 1,50,000 तक की संख्या में बच्च कार्यरत हैं। जम्मु कश्मीर की हथकरघा गणना के अनुसार वहां की विभिन्न कालीन बुनाई इकाइयों में लगभग 27,000 बच्चे कार्य कर रहे हैं। इनमें 17 हजार घरेलू एवं 4 हजार गैर – घरेलू इकाइयां तथा 6 हजार कार्यशालाओं में कार्य करतें है। एक अन्य अध्ययन के अनुसार वहां के पंजीकृत कालीन उद्योगों में लगभग 30,000 बच्चे कार्यरत हैं।

इसके अलावा भी अन्य स्थानों पर काफी संख्या में बाल श्रमिक कार्य करतें हैं। सर्कस में तथा घरेलू नौकर के रूप में बहुसंख्यक बाल श्रमिक कार्य करते हैं। जैसा कि स्पष्ट है, बाल–श्रमिकों को जोखिमपूर्ण एवं खतरनाक उद्योगों एवं उत्पादन–प्रक्रियाओं में लगे रहने के कारण अनेक प्रकार की बीमारियों का शिकार होना पड़ता है। अधिकांश बाल–श्रमिकों के स्वास्थ्य पर बुरा प्रभाव काम की प्रकृति एवं परिस्थितियों के कारण होता है। इसके अलावा बच्चों का शरीर इतना हृष्ट–पुष्ट नहीं होता कि वे भारी बोझा उठा सकें या जलती भट्ठियों की आंच सह सकें। इसके अलावा परिवेशगत अव्यवस्थाओं के कारण भी बाल श्रमिकों के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। यद्यपि बाल–श्रमिक अधिनियम 1986 की धारा–13 के तहत केन्द्र और राज्य सरकार को किसी प्रतिष्ठान या व्यवसाय में काम करने वाले बच्चों के स्वास्थ्य एवं सुरक्षा के लिए नियमावली बनाने का अधिकार है यानी कार्य स्थल, सफाई, रद्दी के निष्पादन, रोशनदान एवं तापमान, धूल एवं धुआँ, कृत्रिम नमी, प्रकाश, पीने के पानी, शौचालय एवं मूत्रालय, थूकदान, मशीनों की घेराबन्दी, खतरनाक मशीनों में लगे बच्चों का प्रशिक्षण एवं पर्यवेक्षण, बिजली काटने की पद्धति, स्वचालित मशीनों, सीढ़ी तथा पहुँच के साधन की व्यवस्था, गड्ढ़े तथा अत्यधिक भार के बारे में, आँखों की सुरक्षा, ज्वलनशील गैस एवं धुआँ से सुरक्षा, आग से सावधानी, भवन का रख–रखाव आदि पर नियम बनाने का अधिकार है।

बाल श्रम प्रथा किसी भी राष्ट्र की अर्थव्यवस्था पर एक बोझ मानवता के नाम पर एक कलंक तथा बच्चों के लिए अभिशाप है लेकिन कुछ वर्गों के निजी स्वार्थों के रहते, ये न केवल भारत या तीसरी दुनिया के देशों में बल्कि संसार के संपन्न और विकसित कहे जाने वाले देशों में भी नियोजित प्रकार से तेजी से प्रचलित है। यहां तक की अमेरिकी जैसे धनी और संपन्न देश तक में बालश्रम की घटनाओं में लगातार वृद्धि हो रही है। अमेरिकी महालेखाकार की रिर्पोट के अनुसार वर्ष 1990 से 2000 के बीच अमेरिका में बाल श्रम कानून के उल्लंघन की घटनाओं में 150 से भी अधिक प्रतिशत की वृद्धि हुई है।

वहां के उद्योगपति सस्ती मजदूरी के लिए बाल श्रमिकों को सेवानियोजित करते है। इसी प्रकार मध्य और पूर्वी युरोप तक में इस प्रकार मध्य और पुर्वी युरोप तक में इस प्रकार की घटनाओं में वृद्धि दर्ज की गई है लेकिन तीसरी दुनिया के देशों में यह समस्या अति विकराल है। विभिन्न संगठनों द्वारा एकत्रित आंकड़ों के निष्कर्ष के रूप में कहा जा सकता है। तीसरी दुनिया के लगभग सभी देशों में बच्चों को विभिन्न उद्योगों और कार्यों में नियोजित कर उनका शोषण किया जाता है।

संदर्भ :

- छिल्लर, सुशील कुमार एवं मंजूलता; भारत में बाल श्रम, राहुल पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 2013.
- दशोरा, मनोज कुमार; बाल श्रमिक : समस्या एवं समाधान, हिमांशु पब्लिकेशन, उदयपुर, 2006.
- दास, दीपेन्द्रनाथ; चाइल्ड लेबर इन इंडिया : ए स्टडी ऑन मैग्निट्यूड, डायमेंशन एण्ड डिटरमिनेट्स, सेज प्रकाशन, दिल्ली, 1996.
- देवी, एल०; चाइल्ड लेबर : इन्साइक्लोपीडिया ऑफ चाइल्ड एण्ड फैमिली वेलफेयर सीरीज, इंस्टीच्यूट ऑफ सस्टेनेवल डेवलपमेन्ट, अनमोल प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, 1988.
- भार्गव, प्रमिला एच०; द एलिमिनेशन ऑफ चाइल्ड लेबर : हूज रिस्पांसिबिलिटी, ए प्रैक्टिल वर्क बुक, सेज पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003.
- वर्मा, अंजना एवं सोमवंशी, रश्मि; भारत में बालश्रम : एक अभिशाप, साहित्य चन्द्रिका प्रकाशन, जयपुर, 2018.
- शर्मा, सुभाष; भारत में बाल मजदूर, प्रकाशन संस्थान, दरियागंज, नई दिल्ली, 2010.
- शर्मा, एस०; एक्सप्लोइटेड चिल्ड्रेन एण्ड डिसऐबल्ड सोसायटी; कॉमनबेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 2002.
- सत्यार्थी, कैलाश (नोबेल शांति पुरस्कार विजेता); आजाद बचपन की ओर, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, 2016
- सिद्दिकी, एम० एल०; चाइल्ड लेबर : हाउ टू इन्वेस्टिगेट, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2003.
- सिंह, उषा एवं सिंह, एच० पी०; भारत में बाल श्रम : समस्याएँ और समाधान, क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 2007.
- त्रिपाठी, एस० एन०; चाइल्ड लेबर इन इंडिया : इश्यूज एण्ड पॉलिसी ऑप्शन्स, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1996.
- Dingwancy, Manjari and Others; Children and Darkness : A manual of child labour in India, Rural labour Cell, New Delhi, 1982.
- Mehta, P. L. and Jaiswal, S. S.; Child Labour and The Law, Deep and Deep Publishers, New Delhi, 1996.
- Mishra, L. D.; Child Labour in India, Oxford University Press, New Delhi, 2000.

***

सामाजिक परिवर्तन और ग्रामीण समाज

*डॉ. प्रमोद कुमार**

भारत एक विकासशील और धर्म प्रधान देश है। इसलिए एक लम्बे समय तक यहाँ परिवर्तन की गति अत्यन्त धीमी रही है। इसके अनेक कारण हो सकते है। आर्थिक, सामाजिक क्षेत्र, में परिवर्तन न होने के मुख्य कारण है अशिक्षा, निर्धनता, रूढ़िवादिता, जातिवाद, सामन्ती प्रथायें, अन्धविश्वास आदि। किन्तु स्वतन्त्रता के प्श्चात भारत के आर्थिक सामाजिक और राजनैतिक ढाँचे में उल्लेखनीय परिवर्तन हुए है। भारतीय नगरीय और ग्रामीण समाज पर औद्योगीकरण, विज्ञान, मशीनीकरण, शिक्षा, पंचवर्षीय योजनाओं का मुख्य रूप से काफी प्रभाव पड़ा है। ग्रामीण समाज के आर्थिक–सामाजिक और सांस्कृतिक क्षेत्र में परिवर्तन लाने के लिए अनेक प्रकार की योजनायें भारतीय सरकार ने कार्यान्वित की है। इनके कारण ग्रामीण–ढाँचे में तीव्रता से परिवर्तन हो रहे है ।

ग्रामीण समाज के अध्ययन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि ग्रामीण संरचना मूलतः जाति–व्यवस्था पर आधारित है। उसकी जड़ता और निर्धनता की पृष्ठभूमि में कहीं गहरे जातिवाद आज भी उपस्थित है। एस0 एन0. श्रीनिवास ने सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया को समझाने के लिए सांस्कृतिकरण और प्रबल–जाति की अवधारणायें प्रस्तुत की । अनेक समाजशस्त्रियों का कहना है कि ग्रामीण क्षेत्र में जो परिवर्तन हो रहे हैं वे नये वर्गो में शक्ति उत्पन्न होने से उत्पन्न हुए हैं। साथ ही इन पर औद्योगीकरण और पाश्चात्यीकरण का भी धर्मनिरपेक्षवाद का प्रभाव अत्यधिक है।

इसलिए ग्रामीण क्षेत्र का अध्ययन करते समय हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि परिवर्तन का एक कारक किसी क्षेत्र में जितना प्रभवशाली है। वह उतना ही सुदूर–ग्रामीण अंचलों में नहीं हो सकता है। यह कहना ग्रामीण–अंचलों के सभी स्तरों पर सांस्कृतीकरण, पाश्चात्यीकरण, धर्मनिरपेक्षवाद, नगरीकरण और औद्योगीकरण आदि का समान प्रभाव पडद्यता है, पूर्णतया गलत है। इस प्रकार के निष्कर्ष निकालना न तो वैज्ञनिक है और न उचित ही । सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया समस्त गाँवों के समान न होकर भिन्न–भिन्न होती है। उदाहरण के लिए क्या संपूर्ण भारत के गाँवों में सांस्कृतीकरण के कारण ही परिवर्तन हो रहे हैं अथवा पाश्चात्यीकरण और औद्योगीकरण के द्वारा, आपका उतार नकारात्मक ही होगा। फिर भी ग्रामीण–संरचना, व्यवस्था और संगठन में जो परिवर्तन आज देखने का मिल रहे हैं उनके पृथक–पृथक कारण है जिन्हें निम्नलिखित बिन्दुओं के आधार पर समझा जा सकता है। आधुनिक समय में गाँववासियों के सामाजिक जीवन मूं अनेक प्रकार के परिवर्तनों को देखा जा सकता है। इन्हें निम्नलिखित आधारों पर समझा जा सकता है –

- **केन्द्रीय परिवारों का जन्म –** औद्योगीकरण और नगरीकरण के विकास ने संयुक्त–परिवार को विघटित कर दिया है। अधिकांश ग्रामीण व्यक्ति जीविका की खोज में नगरों में आता है। यहाँ अपना स्थायी निवास–स्थान भी बना लेता है। वह मात्र फसल के बोने औरकाटने के समय जाता है। इससे संयुक्त–परिवार टूटने लगे और उनके स्थान पर छोटे परिवार, जिन्हें केन्द्रीय परिवार भी ककहते हैं, स्थापित होने लगे ।
- **परिवार के कार्यो और आदर्शो में परिवर्तन –** ग्रामीण जीवन के अपने मूल्य आदर्श और परम्परायें थी जो नगरीकरण और औद्योगीकरण के प्रभाव से समाप्त होती जा रही है। आज का व्यक्ति परम्परात्मक आदर्शो में विश्वास नहीं करता है वह स्वंय अपने आदर्शो का निर्माता है। अपने स्वार्थो और महत्वकांक्षाओं के आधार पर अपने जीवन को गढ़ता है। इसीलिए ग्रामीण से परम्परात्मक आदर्श भी समापत होते जा रहे है ।
- **जाति–प्रथा में परिवर्तन –** ग्रामीण समाज मूलतः जाति–प्रथा पर आधारित है। जातियों की एक लम्बी–सूची, जिसका न कोई आदि है और न अन्त, देखने को मिलती है। इस जाति–सूची का

* पीएच. डी. (समाजशास्त्र),बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

वर्ण–व्यवस्था से कहीं दूर का भी संबंध नहीं है। काम के आधार पर जो जातियाँ बनी थी और जो नहीं बनी थी, वे सब अपना मूल कार्य धीरे–धीरे त्यागती जा रही है क्योंकि इनके सम्मुख जीविका के अनेक विकल्प आज उपस्थित है। चमार, धोबी, नाई, लोहार, सुनार, बढ़ई, जुलाहे आदि अपना परम्परात्मक काम छोड़कर नगरों में काम करने लगे है। इनमें से बहुत से शिक्षित होकर उँचे और बड़े पदों पर आसीन हैं ।

सत्य यह है कि वर्ण–व्यवस्था पर यह समाज कभी भी आधारित नहीं था। पुस्तकों में वर्ण–व्यवस्था स्थापित थी। आज स्वर्ण भी उन कार्यो को कर रहा है जिसे हरिजन या पिछड़ी हुई जातियाँ करती रही है जैसे जूते और लाण्ड्री की दुकान खोलना, लोहे और बढ़ई का काम करना आदि। दूसरी तरफ खान–पान, वेश–भूषा आदि पर जो प्रतिबन्ध थे, वे सब भी ग्रामीण–जीवन से धीरे–धीरे समाप्त होते जा रहे है। हरिजन और पिछड़ी हुई जातियों के अधिकारों में वृद्धि हुई है। उन्हें अनेक सुविधायें देकर उनकी आर्थिक–सामाजिक स्थिति को सुधारने का प्रयत्न किया जा रहा है। ग्रामीण अंचलों मं भी स्वर्ण और हरिजन के मध्य जो अलगाव और दूरी थी वह निरन्तर कम होती जा रही है। अब हरिजन की परछाई पड़ने से कोई अपवित्र नहीं होता । गांव में वे एक स्थान पर बैठते हैं, बातें करत हैं और बहुत से समाजिक कार्य मिल जुलकर करते हैं। ग्रामीण सामाजिक, जीवन में यह बहत बड़ा परिवर्तन है।

- **बाल–विवाह के दृष्टिकोण में परिवर्तन –** नगर, गाँव में पहुंचते जा रहे है। नगर की संस्कृति, सभ्यता, दृष्टिकोण, किसी न किसी रू‍प में गांव के निवासियों को प्रभावित कर रहे हैं । नगर मे बाल–विवाह को अच्छा नहीं माना जाता है। इसकी अनेक बुराइयाँ है, जैसे अधिक बच्चे, अल्पायु में मृत्यु, गंभीर बीमारियाँ, अस्वस्थ बच्चे, गरीबी आदि। इसके अतिरिक्त गाँव में शिक्षा का प्रचार और प्रसाद होने से व्यक्तियें के दृष्टिकोण में परिवर्तन आया। इसीलिए वे भी बाल–विवाह को एक सामाजिक बुराई मानने लगे। अस्तु बाल–विवाह की संख्या ग्रामीण–समाज में निरन्तर कम होती जा रही है । कानूनी रू‍प से भी 1955 में हिन्दू विवाह और तलाक कानून पारित कर इसे सरकारी स्तर पर पूर्णतया समाप्त कर दिया गया है।
- **विधवा–पुनर्विवाह पर बदलता दृष्टिकोण –** भारतीय परम्परावादी, रूढ़िवादी समाज में विधवा पुनर्विवाह को न तो अच्छी दृष्टि से देखा जाता है और न इसे मान्यता दी जाती थी। प्रसन्नता की बात है कि आधुनिक–युग में धार्मिक अन्धविश्वास के घेरे से व्यक्ति निकलता जा रहा है। उसके दृष्टिकोण में परिवर्तन आ रहे हैं। नगरीय समाज में विधवा–पुनर्विवाह को अब बुरा नहीं माना जाता। अनेक समाज–सेवी संस्थायें इस प्रकार के विवाह को प्रोत्साहित करती है। ग्रामीण–समाज में हरिजन और पिछडी हुई जातियों में विधवा पुनर्विवाह होते रहे हैं और सब सवर्णो के दृष्टिकोण में भी प्र्याप्त परिवर्तन आया है। विषेष तौर से शिक्षित सवर्णो के सोचने–विच0ारने में काफी परिवर्तन हुआ है। वे विधवा पुनर्विवाह को एक सामाजिक बुराई मानते है। उसका विचार है कि इसे शीघ्र ही समाप्त होना चाहिए ।
- **खान–पान पर प्रतिबन्ध लचीले हुए –** ग्रामीण समाज में खान–पान पर कड़ा प्रतिबन्ध लगा था। एक जाति का व्यक्ति किसके यहाँ खा सकता था और किसके यहां नहीं। किसके यहां पक्का खा सकता था और किसके यहां कच्चा, सब कुछ पहले से ही निर्धारित था। खाने में छुआछूत, पवित्रता, अपवित्रता की भावना अत्याधिक थी किन्तु औद्योगीकरण और नगरीकरण के प्रभाव ने विभिन्न जातियों के व्यक्तियों को एक साथ एक ग्रामीण होटल और रेस्ट्रोरेन्ट में खाने की प्रेरणा दी। ग्रामीण समाज में आज विभिन्न जातियाँ एक दूसरे के यहाँ भोजन करती है। यद्यपि इनकी संख्या बुत कम है फिर भी इस परिवर्तन को स्पष्ट रू‍प से देखा जा सकता है।
- **जातियों के कार्य–ढाँचे में परिवर्तन–** इस पिछड़े, अशिक्षित, रूढ़िवादी देश में जातियों के कार्य निश्चित कर दिये गए थे। जो जिस जाति में जन्म लेता था उसे अपनी जाति के अनुसार ही कार्य करना पड़ता था। वह चाहते हुए भी उसे छोड़ नहीं सकता था। यह प्रसन्नता की बात है कि स्वतन्त्रता के प्श्चात अब किसी भी जाति का व्यक्ति कोई भी कार्य कर सकता है। काम के आधार

पर छोटे और बड़े की भावना में काफी परिवर्तन हआ है। अब सवर्ण जूते और लाण्ड्री की दुकान खोल सकता है, लोहार और बढ़ईगिरी का काम भी कर सकता है और कोई हरिजन विश्वविद्यालय का शिक्षक, वैज्ञानिक, डाक्टर औ इन्जीनियर, मंत्री और समाज सेवक भी हो सकता है। ग्रामीण समाज में जातिगत कार्यो में परिवर्तन को स्पष्ट रू‍प से देखा जा सकता है। ये किसी भी प्रगतिशील समाज के शुभ लक्षण है।

- **ऊँच–नीच की भावना में परिवर्तन –** हिन्दू–जातियों में सवर्ण–असवर्ण, हरिजन और पिछड़ी जातियों मे परस्पर ऊँच–नीच की भावना बहुत गहराई से कुण्डली मारे बैठी हुई थी किन्तु औद्योगीकरण और नगरीकरण के प्रभाव में उंच–नीच की भावना को समाप्त करने में काफी सहायता की है वहीं सरकार के अथक प्रयास भी इसे समाप्त कर रहे हैं। ग्रामीण समाज में विभिन्न छोटी–बड़ी जातियों के मध्य उंच–नीच की भावना निरन्तर कम होती जा रही है। आज ग्रामीण समाज के व्यक्ति की स्थिति, शिक्षा, धन, पद आदि से आंकी जाती है न कि जाति से । यह बहुत बड़ा परिवर्तन रूढ़िवादी ग्रामीण–समाज में हो रहा है। आज ग्रामीण–समाज की प्रगति में इसकी महत्वपूर्ण भमिका है।
- **हरिजन और पिछड़ी जातियों की स्थिति मे परिवर्तन –** धार्मिक शास्त्रों और जड़वादी, रूढ़िवादी धार्मिक सोच और मानसिकता के हरिजन और पिछड़ी हुई जातियों की शताब्दियों से अपेक्षा की है। इनहें मानवीय अधिकार नही दिए गए । इनका शताब्दियों तक शोषण किया गया । शताब्दियों तक इनकी आर्थिक सामाजिक, राजनैतिक स्थिति निम्नतम कोटि की रही है। स्वतन्त्रता के पश्चात सरकार ने विविध प्रकार के कानूनों को पारित कर इन्हें विशेष सुविधाएं प्रदान की है। इन्हं उन्नति और प्रगति के समान अवसर प्रदान किए गएहै। कुछ अधिकार ऐसे हैं जो सवर्णो को भी प्राप्त नहीं है। ये सुविधाएँ शिक्षा, नौकरी, और पदोन्नति की है। आज इन वर्गो के व्यक्ति उंचे से उंचे पदों पर देखे जा सकते हैं। ग्रामीण–समाज में भी इनका आर्थिक–सामाजिक और राजनैतिक स्थिति में बदलाव आया है। एक बार गांधी से यह पूछा गया कि स्वतन्त्र भारत कैसा हो ? उन्होंने कहा, ''मै ऐसे भारत का निर्माण करना चाहता हूँ, जिसमें निर्धन से निर्धन भी यह समझ सके कि यह मेरा देश है और इसके बनाने में मेरी राय कम न होगी, ऐसा भारत जिसमें न कोई नीचा होगा और न ऊचा, ऐसा सम्प्रदाय जिसमें सभी पूर्णतया घुल–मिलाकर रहेंगे'' भारतीय सरकार की यही आकांक्षा है नीति की ।
- **स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन –** भातर की स्त्रियाँ शताब्दियों से पुरुष प्रधान समाज की गुलाम रही है। उन्हें पुरुष की तुलना में न के बराबर अधिकार प्राप्त थे। वे शोषण की पात्री रही है। ग्रामीण समाज की स्त्रियों की दशा तो और भी शोचनीय और दयनीय थी। ये न शिक्षित थीं और न अपने अधिकारों के प्रति जागरूक ही । स्वतन्त्रता के प्श्चात अनेक शिक्षित स्त्रियाँ गांव में कार्यरत है। ये स्त्रियाँ ग्रामीण–स्त्रियाँ को जहां शिक्षित कर रही हैं वही उन्हें अलग–अलग कार्यो में प्रशिक्षित भी कर रही है। इनकी अतिरिक्त बढ़ी है ये अपने अधिकार के प्रति सजग भी हुई। इस तरह ग्रामीण स्त्रियों की स्थिति में भी परिवर्तन देखे जा सकते है ।

ग्रामीण समाज में एक नहीं अनेक रजनैतिक दल है। प्रत्येक दल के हजारों, लाखों सदस्य है। उन्हीं दलों के एम0. एल0 ए0 पी0 और मंत्री भ्झी है। गांव की राजनीति अब किसी की व्यक्तिगत सम्पति नहीं है वरन उसमें भाग लेने का सभी को समान अधिकार है। हरिजन और पिछड़ी हुई जातियों को राजनीति में कुछ विशेष सुविधाएं दी गयी है जो सवर्णो को भी प्राप्त नहीं है। इनके कुछ स्थान विधान सभा और संसद में सुरक्षित है जिन पर इसी जाति के व्यक्ति चुनकर जाते है। इस तरह ग्रामीण–समाज को स्वतन्त्रता से पूर्ण राजनैतिक चेतना में लगभग शून्य या आज राजनैतिक चेतना गांव–गांव पहुंच चुकी है। आज ग्रामीण व्यक्ति भी अपेन दल और दलगत भावना के अनुसार राजनैतिक समस्याओं पर अपने विचार प्रकट करता है। यह ग्रामीण–राजनैतिक चेतना में बदलाव को दर्शाते है।

उपर्यक्त तथ्य इस बात के प्रतीक है कि ग्रामीण समाज और ग्रामीण जीवन के प्रतिमान में चतुर्मुखी परिवर्तन हो रहे है। ये परिवर्तन ग्रामीण समजा के आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और राजनैतिक ढांचे को परिवर्तति कर रहे है। ये परिवर्तन जहां औद्योगिक और नगरीकरण की देन है। वहीं साकार की नियोजित पंचवर्षीय योजनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। गांव के आर्थिक ढाँचे और स्वरूप में परिवर्तन हुआ है। पहले की अपेक्षा व्यक्तियों की आर्थिक सामाजिक स्थिति और जीवन में सुधार हआ है। गांव के अन्धविश्वासी, रूढ़िवादी और जातिवादी ढांचे में बदलाव आया है। ग्रामीण समाज में जितनी तीव्रता से निर्धनता और अशिक्षा का अभिशाप समाप्त होगा उतनी ही तीव्रता से गांव विकास और प्रगति की ओर अग्रसर होंगे।

इसके साथ ही ग्रामीण समाज को सकारात्मक रूप में परिवर्तति करने के लिए, वे सभी ग्रामीण योजनायें भी महत्वपूर्ण है, जो ग्रामीण समाज के आर्थिक–सामाजिक ढांचे को बदलना चाहती है। ये गांव का विकास इस तरह करना चाहती है कि वे असंख्य ग्रामीण व्यक्ति जो गरीबी को रेखा से नीचे है उन्हें उठाया जाय। गांव की बेरोजगारी को दूर किया जाय। इसलिए स्व–रोजगार योजनाओं को महत्व दिया जा रहा है। इसके साथ–ही–साथ कृषि व्यवसाय को भी आधुनिक बनाने का प्रयास किया जा रहा है। सीमान्त किसानों को जहां सुविधायें दी जा रही है। वहीं भूमिहीन श्रमिकों के लिए रोजगार की व्यवस्था की गई है। इस तरह हम यह कह सकते हैं कि ग्रामीण समाज एक सकारात्मक बदलाव से गुजर रहा है।

संदर्भ :

- अग्रवाल, अमित; भारत में ग्रामीण समाज, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2006.
- गुप्ता, ए० सी०; एग्रेरियन रिलेशन एण्ड अर्ली ब्रिटिश रूल इन इण्डिया 1801–33 : कलकत्ता, 1963.
- गुप्ता, एम० एल० एवं शर्मा, डी० डी०; भारतीय ग्रामीण समाजशास्त्र, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2010.
- गुप्ता, एम० एल० एवं शर्मा, डी० डी०; भारतीय समाज मुद्दे एवं समस्याएँ, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2001
- पाण्डेय, प्रेम नारायण; ग्रामीण विकास एवं संरचनात्मक परिवर्तन, रावत पब्लकेशन, जयपुर, 2000.
- सिंह, कटार; ग्रामीण विकास : सिद्धान्त, नीतियाँ एवं प्रबन्ध,, अनुवादक यतीन्द्र सिंह सिसोदिया, रावत पब्लिकेशन, जयपुर 2011.
- सिंह, जे० पी०; आधुनिक भारत का समाज, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2019.

***

मिथिला का सामाजिक सांस्कृतिक स्वरूप

*प्रदीप महतो**

ऋग्वेद काल से ही मिथिलांचल के समाज में वर्ण–व्यवस्था का प्रचलन रहा है। इसके अन्तर्गत ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्र आते हैं। ब्राह्मण, क्षत्रिय एवं वैश्य द्विज कहलाते हैं; क्योंकि वे उपनयन संस्कार में भाग लेते हैं। प्रारंभ में एक वर्ण के लोग, दूसरे वर्ण में जा सकते थे; किन्तु आजकल एक वर्ण जातियों का समूह है। ब्राह्मणों में शाकलद्विपीय ब्राह्मण, मैथिल या गायावाल के बीच कोई समानता नहीं है। इसी तरह राजपूत, क्षत्रिय और खत्री बिल्कुल भिन्न जातियाँ हैं। वैश्यों में कुछ शुद्ध और सम्मानित माने जाते हैं; जबकि कुछ अन्य की गणना शूद्रों की कोटि में होती है।

प्रायः प्रत्येक जाति अनेक उपजातियों में विभक्त है। उपजातियों के निर्माण के अनेक कारण हैं। मूल गृहभूमि को छोड़कर दूर–दराज के इलाकों में बस जाने से भी उपजाति का निर्माण हो जाता है। एक निम्न पेशे को ग्रहण करने या त्यागने, शादी–विवाह करने या खान–पान करने से भी उपजातियाँ बन जाती हैं। उदाहरणस्वरूप डोम जाति को ही लें। वे बुनकिया जो रेशम के कीड़े पालते हैं; दाई डोम जिनकी औरतें दाई का काम करती हैं; तपसपुरिया, जो शव को खोदते हैं; जहां शव को जलाया जाता है; घसेरा जो घास काटते हैं; कालिंदी जो किसान और सूप–दौरा बनाने वाले हैं। कौरस जो सूअर पालते हैं; बांसफोड़, जो बांस की संदूक बनाते हैं; चपारिया जो छतों के लिए बांस के बल्ले बनाते हैं; इत्यादि। निम्न जाति की स्त्री से उच्च जाति के पुरूष का विवाह अनुलोम विवाह कहलाता है। समाज में इस तरह के विवाह होते रहे हैं। ठीक इसका उल्टा प्रतिलोम है जो समाज में निषेध है। इसमें उच्च वर्ग की स्त्री निम्न वर्ग के पुरूष से ब्याह करती है। इसके लिए वर को अर्थदंड भी देना पड़ता है। बिहार में वर को इसकी ऊँची कीमत देनी पड़ती है। कानून द्वारा भी इसका उन्मूलन संभव नहीं हो पाया है।[1]

हमेशा से मिथिलांचल की जाति व्यवस्था काफी कठोर रही है। एक हिन्दू अपने बच्चे को मुसलमान, ईसाई या यूरोपीय के साथ खानपान की इजाजत नहीं देता है; किन्तु उनके द्वारा संचालित विद्यालयों में वह अपने बच्चे को भेज सकता है। शाकलद्विपीय ब्राह्मण किसी के यहाँ बने भोजन को नहीं खाते; किन्तु किसी के यहां के अनाज, तेल या घी को दान–दक्षिणा में ले लेते हैं। वे निम्न जातियों के यहां भी सूखा भोजन खा लेते हैं। पोशाकों में रेशम या जूट को यदि निम्न जाति स्पर्श कर लेता है तो वह अशुद्ध नहीं माना जाता है; किन्तु सूती कपड़ा को माना जाता है। एक ब्राह्मण चिकित्सक हाथ में दस्ताना पहने बिना शूद्र की नाड़ी नहीं देख सकता। इस तरह खाल और चमड़ा अपवित्र माने जाते हैं, लेकिन बाघ और बारहसिंगा के चमड़े अपवित्र नहीं माने जाते। चोरी या जालसाजी करने पर कोई हिन्दू अपनी जाति नहीं खोता है; लेकिन एक समय था कि जब वह समुद्र पार करता था तो जाति से बहिष्कृत कर दिया जाता था। गड़ेरिए घरेलू नौकर के रूप में काम करते हैं; लेकिन अपने स्वामी के स्नान के लिए पानी दे सकते, किन्तु स्नान के बाद उनके कपड़े नहीं धो सकते।

मिथिलांचल का सामाजिक स्वरूप का ताना–बाना जातीय संरचना से निर्मित है। अनेक जातीय वर्जनाएँ भी मौजूद हैं। कुछ ब्राह्मण मांस, मछली, लहसुन, प्याज से परहेज करते हैं। किन्तु जो मांस नहीं खाते लेकिन निम्न जाति के लोग सुअर और भैंस का मांस खाते हैं। उच्च वर्ग के लोग निम्न जाति के यहां खानपान नहीं करते। धूम्रपान और पेय जल पर भी प्रतिबंध थे लोगों को अपनी उप–जाति में ही विवाह करने पड़ते थे। उच्च और निम्न जातियों में कोई सामाजिक समागम नहीं था। एक ही मार्ग से विभिन्न जाति के लोग रह नहीं सकते थे, न तो वे एक ही चटाई पर बैठ सकते थे। ब्राह्मण के आवास पर कोई शूद्र नहीं रह सकता था। जाति–बहिष्कार का तात्पर्य खानपान, धूम्रपान,

* सहायक प्राध्यापक (हिन्दी),राघवेन्द्र संस्कृत कॉलेज, तरेतपाली, नौबतपुर, पटना

शादी–ब्याह पर प्रतिबंध था। जाति से बहिष्कृत व्यक्ति हेय दृष्टि से देखा जाता था। यह सजा उन व्यक्तियों को भुगतान करना पड़ता था जो अपनी जाति में कलंक, अपवित्रता, समुद्र पार कर विदेश गमन, निषिद्ध भोजन को खाने, निम्न जाति की स्त्री से विवाह करने तथा निषिद्ध वस्तुओं जैसे गाय की खाल बेचने आदि का काम करते थे। जाति–संगठन ऐसे व्यक्तियों पर अर्थदंड लगाता था। अनिच्छापूर्वक छोटे–छोटे रीति–रिवाजों को तोड़ने पर भी अर्थ दंड दिया जाता था। सभी दंडों में जाति–बहिष्करण या धर्म बहिष्करण सबसे कठोर दंड था; लेकिन यह उतना बुरा नहीं था जितना यह सोचा जाता है। बहिष्कृत व्यक्ति निश्चित रूप से अपनी जाति से अलग–थलग हो जाता था; लेकिन इसका मतलब यह नहीं कि वह विदेशी हो जाता था। आमलोगों के साथ सामान्य ढ़ंग से ही व्यवहार करते थे। 'ऐसे लोगों को पुनः जाति में जाने के लिए पूरी प्रक्रिया थी। जब बहिष्करण अंतिम मान लिया जाता तो ऐसे लोगों के वंशजों की एक अलग उपजाति बन जाती थी।'[2]

मिथलांचल में जातियाँ अपने ढ़ंग से काम कर लेती थीं। उच्च जातियों में ऐसी कोई नियंत्रक एजेंसी नहीं थी जो शिकायतें सुनकर निर्णय देतीं। 19वीं सदी के प्रारंभ में उच्च जातियों की अपनी पंचायतें थीं; जिनकी अध्यक्षता पड़ोस के सबसे विद्वान और संपन्न व्यक्ति करते थे। प्रायः क्षत्रियों तथा कायस्थों की सभाओं को ब्राह्मण मदद पहुँचाते थे। पटना और शाहाबाद (अब भोजपुर) में ब्राह्मण सभाओं को 'समूह' कहा जाता था। कायस्थों तथा अन्य उच्च जातियों में कोई मुखिया नहीं होता था। निम्न जातियों में जाति निर्णय के लिए कुछ संस्थाएँ थीं। यहाँ जाति पंचायत थी। जाति शासन की कुछ निश्चित सीमितियाँ थीं। जन्म से जाति सदस्यता की सीमा निर्धारित होती थी। कभी–कभी उपजाति ही इकाई होती थी। समूह की शक्ति प्रादेशिक मानदंडों पर निर्धारित होती थी। यदि समूह दूर–दूर तक छितराया हुआ है तो उनकी अनेक पंचायतें होती थीं। प्रत्येक समूह की पंचायत अपने सदस्यों को जाति बहिष्कृत कर सकती थी। इसमें पुरोहित, हजाम और धोबी की भी मदद ली जाती थी।

प्रायः मिथिलांचल में जाति नियमों के उल्लंघनों का पता लगाकर दंड देने के लिए ब्राह्मणों, राजपूतों एवं कायस्थों में कोई संगठन नहीं था। ऐसा होने पर वे स्वयं अपने विरादरियों (समुदाय) के प्रति कार्रवाई करते थे। यदि अपराध साफ जाहिर है तो इसके सदस्य अपराधी के साथ अपना संबंध तत्काल तोड़ देते थे। यदि अपराध संदिग्ध है तो जाति के प्रभावशाली सदस्य अनौपचारिक ढ़ंग से एक जगह मिल बैठकर इस पर विमर्श करते हैं तथा कार्रवाई करने का कोई रास्ता ढूँढ़ लेते हैं। संदिग्ध व्यक्ति अपने बचाव पक्ष में साक्ष्य (प्रमाण) देता है। यदि वह दोषी पाया जाता है तो पंडितों से विचार–विमर्श (चर्चा–परिचर्या) करके उसपर अर्थदंड लगाया जाता है। पाप से मुक्ति के लिए पश्चाताप तथा अन्य धार्मिक कर्मकांडों का आयोजन किया जाता है। शुद्धिकरण के लिए तीर्थयात्रा, गंगा में स्नान करने, निश्चित काल के लिए भिक्षाटन कर जीने, निश्चित समय के लिए मौन रहना, चौबीस घंटे में केवल एक बार आहार, गाय के पाँच उत्पादों के मिश्रण को निगलना तथा उपवास करना आदि मुख्य थे। 'पाप से मुक्ति पाने के कर्मकांडों में यज्ञ, सत्यनारायण स्वामी की पूजा, पारिवारिक पुरोहित को गाय दान, ब्राह्मणों तथा स्वजातियों को भोजन कराना पड़ता था।'[3]

मिथिलांचल में निम्न जातियों का संगठित होना जाति का शान है। इकाई में चटाई है; इसका अर्थ है जाति–सभा में एक ही चटाई पर बैठने का अधिकार। एक स्थान विशेष में किसी जाति के कितने लोग रहते हैं; यह उस चटाई की शक्ति को दर्शाता है। प्रत्येक चटाई की एक स्थायी समिति होती है; जिसमें एक, दो या तीन अधिकारी होते हैं। मिथिलांचल की कुछ जगहों में मुखिया को सरदार कहा जाता है। उपाध्यक्ष को मांजन कहा जाता है। तीसरे सदस्य को छड़ीदार कहा जाता है, जो सरदार के दूत के रूप में काम करता है। वह पंचायत को बुलाता है और इसके आदेशों का पालन करवाता है। कुछ जाति पंचायतों के अधिकारी पुश्तैनी होते हैं। कुछ में इन्हें आजीवन के लिए चुन लिया जाता था। इन पदों पर जाने के लिए बड़ी ललक रहती थी; क्योंकि ये पद, प्रतिष्ठा और अधिकार के थे।

आदिकाल से ही मिथिलावासी खान–पान के शौकीन थे। यह उनकी संस्कृति का महत्वपूर्ण हिस्सा रहा है। मिथिला के लोग चावल, विभिन्न प्रकार की दालें, चूड़ा, दही, दूध–घी, खीर, विभिन्न प्रकार के साक–सब्जियाँ, तिल, मकई, गेहूँ की सामग्रियाँ व भिन्न प्रकार के पकवान, केला एवं अन्य फलों, मखान, पान तथा मांस मछली भोजन के रूप में ग्रहण करते थे। कर्णाटकाल में मिथिलावासी, भोजन में जौ, बाजरा, मटर, ईख, लहसुन, प्याज, मंगरैल, मेथी, सोआ, सौंफ, आम, केला, कटहल, जामुन, मधु, ताड़ी, महुआ का दारू, पान तथा पान मसाला के उपयोग करने का उल्लेख मिलता है। कमोवेश आज भी संपूर्ण मिथिला में खानपान इसी प्रकार का है। मिथला की एक महत्वपूर्ण विशेषता रही है कि समन्वयकारी विचारधारा के कारण एक ही परिवार में शैव–वैष्णव एवं शाक्यों के रहते हुए भी खानपान के मामले में सभी पूर्णतया स्वतंत्र रहे।

यहाँ पुरूषों का प्रधान वस्त्र धोती, कुर्त्ता और द्वितीय वस्त्र (गमछा) था। पुरूषों द्वारा पाग (मैथिल टोपी) धारण करने की परंपरा रही है। महिलाएँ, साड़ी, चोली और पेटीकोट (प्राचीन काल में कपड़े का टुकड़ा लपेटा जाता था) धारण करती थी। मुसलमानी आक्रमण के बाद पुरूषों द्वारा क्रमशः पायजामा, कुर्त्ता, अचकन, शेरवानी तथा महिलाओं द्वारा घघरी, कुर्ती, सलवार–दुपट्टा एवं बुर्का (मुसलमानों में) धारण करते हैं। कालांतर में पैंट, शर्ट, टाई, कोट आदि धारण करने का रिवाज प्रचलित हुआ। वेशभूषा के क्षेत्र में मिथिला ने अपनी संस्कृति की मौलिकता को अक्षुण्ण रखने के साथ ही परिवर्तन को भी अपनाया। आज तक इन्हीं वस्त्रों का प्रयोग मिथिला में होता आया है। मौसम के अनुरूप मिथलावासियों द्वारा सूती, ऊनी एवं रेशमी वस्त्र धारण करने का उल्लेख मिलता है। इसके अतिरिक्त मिथला में अनेक प्रकार की कशीदाकारी वस्त्रादि भी देखे जा सकते हैं। 'वर्ण–रत्नाकर' में ज्योतिश्वर ने 30 प्रकार के वस्त्र तौलिया (अंग पोछा) और मुशहरी (मच्छड़दानी) का वर्णन किया है। रंगरेजों का भी उल्लेख पाया जाता है।'[4]

शिक्षा के क्षेत्र में मिथलांचल हमेशा से आगे रहा है। जनक वंश से कर्णाट, ओइनवार एवं खंडवाल युग की मिथला की विद्या परंपरा अक्षुण्ण रही; इसलिए शिक्षा का समुचित विकास हुआ। मिथिला में घर–घर गृहपतियों द्वारा बच्चों की शिक्षा की समुचित व्यवस्था थी। बालक–बालिकाओं के बीच कोई भेदभाव नहीं रखा जाता था। 'प्रारंभिक काल में चार आश्रम व्यवस्था अनिवार्य नहीं थी; किन्तु जब धीरे–धीरे कौटुबिक शिक्षा व्वस्था कठिन प्रतीत होने लगी तब नियमित प्रख्यात शिक्षकों की बहाली को प्रोत्साहन दिया गया। इसी क्रम में चरण और यायावर शिक्षा का उल्लेख आता है।'[5] राजा जनक की राजसभा ब्रह्मविद्या की विमल ज्योति से उद्भाषित थी और स्वयं राजा जनक उपनिषदों की शिक्षा के प्रचार–प्रसार को प्रोत्साहित किया करते थे। 'भारतीय दर्शन के उच्च कोटि के चिंतन का प्रारंभ राजा जनक की सभा की शोभावर्द्धक तथा उज्जवल राताओं के समान पंडित मंडली के द्वारा ही हुआ था।'[6] उनके विद्वता की ख्याति के कारण देशभर के पंडित उनकी सभा में पहुँचते थे। 'वृहदारण्यक उपनिषद', के उद्धरणों से इस तथ्य की पुष्टि होती है – 'जनकः जनकः इति वैजनकः धावन्ति' (जनक–जनक करते हुए उनके पास दौड़ा करते थे)। मिथिला के राजा में ही नहीं; अपितु यहाँ के जन सामान्य में भी दार्शनिक भावनाएँ कूट–कूट कर भरी हुई थी।'[7] महिलाओं द्वारा पुरूषों के समान शिक्षा प्राप्त करने की व्यवस्था थी। इस क्षेत्र में 'सुक्क'[8] के धार्मिक अभिभाषण तथा 'खेमा'[9] द्वारा दार्शनिक शास्त्रार्थ का उल्लेख प्राप्त होता है। कर्णाट एवं ओईनवार वंश के शासन काल में शिक्षा का उत्तम प्रबंध था।

मिथिलांचल की भूमि की संस्कृति का विलक्षण प्रभाव यह रहा कि वहां एक से एक अद्वितीय विद्वानों का अवतरण हुआ; जिन्होंने सांस्कृतिक एवं दार्शनिक चिंतन को उच्चतम शिखर पर पहुँचा दिया। भारत के प्रसिद्ध सामाजिक विधि–विज्ञान के रचयिता याज्ञवल्क्य ने यज्ञानुष्ठान एवं प्राचीन जीर्ण–शीर्ण विचार के स्थान पर दार्शनिक धरातल पर धर्म का विवेचन किया। माया मुक्ति, कर्म और ब्रह्म के सिद्धांतों को विशेष महत्व दिया।

भाषा, मिथिला की सांस्कृतिक चेतना की अमूल्य कड़ी है; जिसका उद्देश्य अपनी अभिव्यक्ति को दूसरे तक पहुँचाना है। संस्कृत भाषा न केवल भारत, बल्कि अनेक अंतर्राष्ट्रीय भाषाओं की जननी

रही है। मिथिला की भाषा संस्कृत ही थी। आगे चलकर अपभ्रंश से अवहट्ट फिर मैथिली का विकास हुआ। मैथिली भाषा समुन्नत एवं सुकोमल है एवं इसकी स्वतंत्र लिपी मिथलाक्षर है। इस भाषा में प्राचीन काल के धर्म, दर्शन, कला, संस्कृति आदि के अनेक ग्रंथ उपलब्ध हैं।

मिथिलांचल में शक्ति की पूजा, दूर्गा, अंबा, गौरी, काली, भैरवी, छिन्नमस्ता, तारा आदि कई रूपों में होती रही है। शक्ति पूजा ने तांत्रिक पद्धति को बढ़ावा दिया। देवादित्य वर्धमान, मदन उपाध्याय तथा अनेक तांत्रिक एवं महान संतों आदि शक्ति के महान उपासक हुए। 'शक्ति पूजा का विराट रूप मिथिला में नवरात्रा के दौरान देखा जा सकता है। उसके अतिरिक्त संस्कार, पाग, धारण, मातृका पूजा, दीक्षा आदि मिथिला के धार्मिक जीवन में शक्ति के महत्त्व का परिचायक है।'[10] तुलजा देवी की स्थापना महत्त्वपूर्ण है जिनकी पूजा आज तक नियमित रूप से नेपाल में हो रही है और यही देवी आगे चलकर कौलिक देवी के रूप में हरिसिंह देव के समय कर्णाटवंश की कुलदेवी बनी थी।

मिथिलांचल के प्रमुख त्योहारों में वसंतपंचमी, होली, रामनवमी, दुर्गापूजा, दिवाली, कोजगरा, छठ, देवोत्थान एकादशी, लबान (नये फसल का त्योहार), सतुआनी, जुड़शीतल एवं कार्तिक पूर्णिमा, भाई दूज (भ्रात् द्वितीया) एवं सामाचकेवा आदि प्रमुख हैं, जो मिथिला के लोगों की धार्मिक आस्था को प्रकट करती हैं। इन पर्वों को सभी वर्गों के लोग प्राचीन काल से मिलजुल कर मनाते आये हैं। चौदहवीं एवं पन्द्रहवीं सदी में मुसलमानी आक्रमण के समय मिथिला में इस्लाम का प्रवेश हुआ। हालांकि मिथिला के सनातन धर्म ने इस धर्म के प्रवाह को रोकने की कोशिश काफी दिनों तक की परंतु समय के साथ ही इस वर्ष का प्रभाव हिन्दू धर्म पर पड़ने लगा। इस्लाम एवं हिन्दू धर्म में परस्पर सांस्कृतिक आदान–प्रदान हुआ; जिससे एक समन्वयकारी समाज बना।

मिथिलांचल के लोग प्रारंभिक काल से प्रकृति एवं पशुपूजक रहे हैं। यहाँ प्रारंभ से ही सूर्योपासना प्रचलित रही है। अभी कुछ दिन पहले उत्खनन में दरभंगा के बहादुरपुर प्रखंड में काले ग्रेनाईट के बने सूर्य की प्रतिमा; इसका प्रमाण है कि यहाँ सूर्योपासना आदिकाल से होता रहा है। चंद्रमा की उपासना भी यहाँ होती आई है। तुलसी, पीपल, बटवृक्ष, आँवला तथा केला के वृक्षों की पूजा भी यहाँ होती है। पशुओं में गाय, बैल, सांढ़, नाग आदि पूजित होते हैं। नदियाँ तो मिथिलावासी के धार्मिक अनुष्ठान का एक प्रमुख साधन रही हैं।

स्थापत्य कला के क्षेत्र में मिथिला की अपनी शैली थी; जिसे प्रसिद्ध इतिहासकार स्पूनर ने 'तिरहुत शैली' कहकर पुकारा। 1916 में स्पूनर ने मिथिला के अनेक मंदिरों का अध्ययन कर यह सिद्ध कर दिया कि बगहा कर हरमंदिर (चंपारण), त्रिवेणी का कमलेश्वरनाथ मंदिर (चंपारण), सौराठ (मधुबनी) का महादेव स्थान, अहियारी के अहिल्यास्थान का रामचंद्र मंदिर, गुबेगढ़ का भवगती मंदिर, शिवहर का शिव मंदिर, मुजफ्फरपुर का राम मंदिर, सिमराबंगढ़ का कंकाली देवी मंदिर, कंदाहा मंदिर आदि 'तिरहुत शैली' के उत्कृष्ठ नमूने हैं। मुजफ्फरपुर के मंदिरों को उन्होंने 'नवरत्न शैली' का नाम दिया है। तिरहुत शैली मंदिर स्थापत्य में पूर्णतया चिकना, समतल एवं अनलंकृत भित्ति, चित्रित छत तथा चौकोर रचना होती थी।

मिथिला के आर्थिक जीवन का दिग्दर्शन हमें वर्णरत्नाकर में होता है। इस काल की मुख्य फसलें थीं – पान, मखान, धान, जौ, विभिन्न प्रकार की दालें, बाजरा, मटर, तेलहन, ईख, कपास, लहसुन, प्याज, मंगरैल, सौंफ, मेथी, सोआ आदि।

इस प्रकार हम देखते हैं कि मिथिला का इतिहास वास्तव में दिग्विजय अथवा महान साम्राज्य की स्थापना का इतिहास नहीं यद्यपि ज्ञान व विद्या का अक्षुण्ण सांस्कृतिक इतिहास है।

संदर्भ :

1. 'बिहार का इतिहास', रामप्रवेश सिंह, ज्ञानदा प्रकाशन, पटना 1968, पृष्ठ 67 !
2. वही !
3. 'बिहार का धार्मिक इतिहास', श्याम परमार, अजन्ता प्रकाशन, वाराणसी, 1998, पृष्ठ 132 !
4. 'वर्ण रत्नाकर में मिथिलांचल', विनोद बिहारी, रामजी पुस्तक केन्द्र, नई दिल्ली, 2005, पृष्ठ 36!
5. 'शतपथ ब्राह्मण', 11.6.2.1, गीताप्रेस, गोरखपुर, 1976 !

6. 'बिहार के लोग : जीवन और चिंतन', रास बिहारी बोहरा, पारिजात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 56 !
7. वही, पृष्ठ 60 !
8. 'शेरीगाथा की टीका', नागेन्द्र तिवारी, संजय प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972, पृष्ठ 133 !
9. वही !
10. 'बिहार के लोग : जीवन और चिंतन', रास बिहारी बोहरा, पारिजात प्रकाशन, नई दिल्ली, 1990, पृष्ठ 102 !

***

सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में प्रकृति

*अमिता सिंह**

छायावादी युगीन हिन्दी कविता को प्रकृति चित्रण के काव्य का स्वर्णिम युग कहा जाता है। इस स्वर्ण युग को निर्मित करने में पंत जी का अतुलनीय योगदान है। 'पंत जी को प्रकृति का सुकुमार कवि कहा जाता है। पंत द्वारा रचित प्राकृतिक साहचर्य की कविताओं में केवल मौलिक प्रकृति का रूप चित्रण नहीं मिलता बल्कि उसका भाव चैतन्य भी मिलता है। फलस्वरूप इनके प्रकृति काव्य में शोभना प्रकृति के रूप और भाव दोनों का रागात्मक समेकन है।''[1] पंत ने अपनी कोमल कल्पना के बल पर प्रकृति का ऐसा रूप प्रदान किया है कि वह हमारे सामने सजीव हो चलने फिरने लगती है। शोध पत्र में पंत के काव्य में प्रकृति चित्रण का अध्ययन किया गया है। सुमित्रानन्दन पंत जी की कविताएं पाठक के मन को भी प्रकृति के गोद में लाकर रख देती हैं। प्रकृति मानव जीवन के लिए अपरिहार्य है। सृजन का माध्यम है। प्रकृति विहीन संसार में मनुष्य एक क्षण भी नहीं रह सकता। पंतजी का प्रकृति के प्रति विचार लोक शिक्षा प्रदान करने का काम करता है।

हिन्दी साहित्य के इतिहास में छायावाद का समय 1918 ई० से 1936 ई० तक का है। इस काल में चार महत्त्वपूर्ण प्रतिभाशाली कवियों का उदय हुआ – जयशंकर प्रसाद, सुमित्रानन्दन पंत, महादेवी वर्मा और सूर्यकान्त त्रिपाठी निराला। 'छायावादी प्रकृति काव्य को सर्वोच्च बनाने का श्रेय सुमित्रानन्दन पन्त जी को है'।[2] जयंत कुमार बोरो कहते हैं 'छायावादी कवि पंत जी ने प्रकृति का जिस रूप में वर्णन किया है वह पाठकों के लिए वरदान स्वरूप है। कवि ने अपनी जीवन की सम्पूर्ण भावनाओं को कवि कर्म के प्रति समर्पित कर दिया था। प्रकृति के प्रति जो उनका लगाव है वह और कवियों में कम पाया जाता है।'[3]

पंतजी ने प्रकृति चित्रण के तहत प्रकृति के विभिन्न रूपों को उभारा है। उनकी कविताओं में प्रकृति का ऐसा रूप रंग निखरा है जिसके आगे स्त्री का सौन्दर्य भी तुच्छ हो जाता है। पंत जी कहते हैं –

'छोड़ द्रुमों की मृदु छाया,
तोड़ प्रकृति से भी माया
बाले! तेरे बाल–जाल में कैसे उलझा दूँ लोचन?
भूल अभी से इस जग को'![4]

पंतजी ने प्रथम रश्मि, एकतारा, गुंजन, परिवर्तन, बादल, हिमाद्रि, नौका विहार में प्रकृति आलम्बन रूप में चित्रित है। पंत जी की वीणा नामक रचना में संकलित प्रकृति संबंधी कविताएँ महत्त्वपूर्ण स्थान रखती है। यह कविता कुमांचल के पहाड़ी वातावरण को ध्यान में रखकर रची गयी है। इस बारे में स्वयं पंत जी कहते हैं, 'वीणा' की विस्मय भरी, रहस्य प्रिय बालिका, अधिक मांसल, सुरुचि, सुरंगपूर्ण बनकर, मुग्ध युवती का हृदय पाकर जीवन के प्रति अधिक संवेदनशील होकर, 'पल्लव' में प्रकट हुई है। इस प्रकार प्रकृति की रमणीय वीथिका से होकर ही मैं काव्य के भाव–विशद सौन्दर्य–प्रसाद में प्रवेश पा सका।[5] वीणा में संकलित प्रथम रश्मि शीर्षक कविता का उदाहरण है –

'तूने कैसे पहचाना?
कहाँ, कहाँ, हे बाल–बिहंगिनी।
पाया तूने यह गाना?'[6]

.....

''सोई थी तू स्वप्न नीड़ में
पंखों के सुख में छिपकर
ऊँघ रहे थे, घूम द्वार पर

---

* लतीफपुर, शाहगंज, जौनपुर

प्रहरी से जुगनू नाना
शशि–किरणों से उतर–उतरकर
भू पर कामरूप नभ–चर
चूम नवल कलियों का मृदु–मुख
सिखा रहे थे मुसकाना।
स्नेह–हीन तारों के दीपक,
श्वास–शून्य थे तरु के पात,
विचर रहे थे स्वप्न अवनि में
तम ने था मंडप ताना।''[7]

प्रथम रश्मि में निहित प्रकृति चित्रण के सन्दर्भ में डॉ० विजयपाल सिंह कहते हैं – 'प्रथम रश्मि' में प्राकृतिक चित्रण किया गया है। कवि को आश्चर्य है कि सर्वप्रथम 'बाल बिहंगिनी' को ही प्रभात का आगमन कैसे ज्ञात हो जाता है। सारा संसार सुख की नींद में सो रहा होता है, तभी तरुवासिनी प्रात का स्वागत करने के लिए जागरण का शंखनाद फूँक देती है। कवि उस गीत को अलौकिक मानता है; क्योंकि किसी दैवी प्रेरणा से ही वह प्रथम रश्मि के प्रस्फुटित होने को समझ जाता है। रात्रि के अन्धकार में प्रकृति की पहचान खो जाती है किन्तु प्रभात होते ही प्रकृति पल–पल में अपने वेश को परिवर्तित करने लगती है। कवि विहंगिनि से अवगत होती है। भाव और भाषा दोनों दृष्टियों से कविता अपना प्रभाव डालती है।'[8] प्रथम रश्मि में प्रकृति के विभिन्न रूपों व उपादानों का चित्रण है। इस कविता में पंत ने प्रकृति के चेतन रूप को कविता के माध्यम से रखा है। मानव–प्रकृति संबंध इस कविता में झलकता है। पंतजी ने 'पल्लव' में संकलित 'पूर्व–सुधि' कविता में बादलों के सौन्दर्य को अत्यन्त सुंदर तरीके से चित्रित किया है –

'बादलों के छायामय मेल
घूमते हैं आँखों में फैल
अवनि और अंबर के खेल
शैल में जलद–जलद शैल
शिखर पर विचर मरुत रखवाल
वेणु में भरता था जब स्वर
फुदकते थे प्रमुदित गिरि पर।'[9]

पंत जी 'पूर्व–सुधि' में बादलों के सौन्दर्य के साथ–साथ अन्य तत्त्वों पर भी दृष्टि रखते हैं। वह प्रकृति के हरेक तत्त्वों को बारीक तरीके से उकेरते हैं।

'पपीहों की वह पीन पुकार,
निर्झरों की भारी झर–झर
झींगुरों की झीनी झनकार
घनों की गुरु गम्भीर गहर
बिन्दुओं की छनती छनकार
दादुरों के वे दुहरे स्वर।'[10]

पपीहों की पुकार पर्वतों से बहने वाले निर्झर की झर–झर ध्वनि, झींगुर और दादुरों की आवाज मन मोह लेती है। पंत जी की कविता में प्रकृति की धड़कन, स्पंदन, कंपन व सिहरन सुनाई देती है। संयोग काल में प्रकृति सुखद अनुभूति एवं भावनाओं को उद्दीप्त करती है वहीं विरह की स्थिति में वेदना उद्दीप्त करती है। उनकी कविता मधुवन, गुंजन, प्रथम मिलन में प्रकृति के उस रूप का वर्णन मिलता है जो संयोग के अवसर पर भावों को उद्दीप्त करती है।

संयोग की अनुभूति –

'जननि अंचल में झूल सकाल
मृदुल उर–कंपन–सी–बपुमान

स्नेह सुख में बढ–बढ़ सखि–चिरकाल
दीव की अकलुष–शिखा समान
कौन सा आलय, नगर विशाल
कर रही तुम दीपित, द्युतिमान?
शलभ–चंचल मेरे मन–प्राण
प्रिय, प्राणों की प्राण!'[11]

संयोग की स्थिति में मन–प्राण चंचल और वियोग की स्थिति में प्रकृति वेदना को उद्दीप्त करती है जिसकी वजह से पीड़ा बढ़ती है –

विरहानुभूति –

'विरह है अथवा यह वरदान
कल्पना में है सिसकती वेदना
अश्रु में जीता, सिसकती गान है,
शून्य आहों में सुरीले छन्द हैं,
मधुर लय का क्या कहीं अवसान है?'[12]

पंतजी सांध्य बेला में बाँस के झुरमुटों पर चिड़ियों के चहचहाने को ध्वनि सा बताते हैं। वह सांध्य बेला के आनंददायक अलख के बारे में बताते हुए कहते हैं –

''बाँसों का झुरमुट–
संध्या का झुटपुट
हैं। चहक रही चिड़ियाँ
टी–वी–टी–टुट–टुट!''[13]

पंत जी का कवि हृदय स्वयं गाने को आतुर दिखता है। कवि का अपना मन पक्षी जैसा बन जाता है –

''गा सके खगों–सा मेरा कवि
विश्री जग की संध्या की छवि!
गा सके खगों–सा मेरा कवि
फिर हो प्रभात–फिर आवे रवि!''[14]

कवि के प्रकृति चित्रण में संध्या को रूपसि कहा गया है। उसका संबोधन हृदय को मोह लेता है –

'कहो, तुम रूपसि कौन?
व्योम में उतर रही चुपचाप
छिपी निज छाया–छवि में आप,
सुनहला फैला केश–कलाप
मधुर, मंथर, मृदु मौन!''[15]

पंत जी ने अपनी कविता बादल, नौका–बिहार और चाँदनी में प्रकृति के अचेतन स्थिति को चेतना से संचारित करने का काम किया है। 'गंगा' को अपनी कविता नौका–विहार में एक नायिका के रूप में चित्रित किया है जो बालू रूपी शैया पर थक कर लेती है –

'शांत स्निग्ध, ज्योत्स्ना उज्ज्वल!
अपलक अनन्त नीरव–भू–तल!
सैकत–शय्या पर दुग्ध–धवल, तन्वंगी गंगा, ग्रीष्म विरल,
लेटी है श्रांत, क्लान्त, निश्चल!''[16]

वह आगे गंगा को चित्रित करते हुए कहते हैं –

'तापस–बाला गंगा, निर्मल, शशि–मुख से दीपित मृदु–करतल
लहरें उस पर कोमल कुन्तल।

गोरे अंगों पर सिहर–सिहर, लहराता तार–तरल सुन्दर
चंचल अंचल–सा नीलाम्बर।'[17]

'द्रुत झरो जगत के जीर्ण पत्र' कविता में कवि, कोयल को प्रतीकात्मक रूप में प्रस्तुत करते हुए, आशा करता है कि वह सनातन का संदेश लाए एवं नवगान का सृजन करने को इंगित करता है। जिसका कवि ने मानवीकरण किया है।

गा, कोकिल, स्वर में कंपन
झरे जाति–कुल–वर्ण–पूर्ण धन
अंध नीड़–से रूढ़ि रीति धन
व्यक्ति राष्ट्र गल राग–द्वेष रण
झरे, भरे विस्मृत में तत्क्षण।[18]

पंतजी ने प्राकृतिक सौन्दर्य की सम्पूर्णता को अपने काव्य में संग्रहीत करने का अप्रतिम प्रयास किया है। वे प्रकृति के चितेरे कवि हैं। इस संदर्भ में कुमार विमल जी कहते हैं, ''पंतजी की प्रकृति कविताएँ, इनकी अन्य प्रकार की कविताओं की तुलना से अधिक टिकाऊ होंगी। इनकी प्रकृति कविताओं की विशेषता को, जिसका आधार कूर्मांचल, कत्यूर की घाटी, हिमालय और उसके प्रांतर का सौंदर्य है, रूप के साहित्य विवेचकों ने भी लक्षित किया था। इसलिए जब इनकी चुनी हुई प्रकृति कविताओं के रूसी अनुवाद का संकलन गिमलाइस्कया तेत्राज के नाम से मास्को से सन् 1965 ईस्वी में प्रकाशित हुआ, तब उसके प्रत्येक पृष्ठ को निकोलस रोरिक के हिमालय से सम्बन्धित विभिन्न चित्रों की प्रतिकृति से मंडित कर मुद्रित किया। इस संदर्भ में यह उल्लेखनीय है कि पंत की प्रकृति–कविताओं में चित्रकार ब्रस्टर के प्रकृति–चित्रों पर भी विचार किया जाना चाहिए। वयोवृद्ध अमेरिकी चित्रकार मिस्टर ब्रस्टर अल्मोड़ा में बस गये थे और उन्होंने यहाँ की पहाड़ियों तथा हिमशिखरों की अनेक रंगमुखर छायाकृतियाँ अंकित की थी, जो पंत को बहुत प्रिय थीं।'[19]

पंत जी के काव्य में आकर्षण के सम्मोहन का कारण उनके काव्य में प्रकृति के सभी पक्षों का समावेश होना है। उनकी रचनाएँ छायावादी काल के अनेक विम्ब और प्रतीक से परिपूर्ण है। उनकी रचनाएँ अनायास ही सौन्दर्य–भावना के माध्यम से पाठक के स्मृति पटल पर छा जाती है। पंत जी की कविता का महत्त्वपूर्ण तत्त्व उनका प्रकृति प्रेम है, जो उनके जीवन के प्रारम्भ से ही उनके साथ था।

सन्दर्भः

1 कुमार विमल (संपा०), 'भूमिका' सुमित्रानन्दन रचना संचयन (नई दिल्ली, साहित्य अकादमी : 2006) पृ० 11

2 कुमार विमल (संपा०), 'गंधविधी (पंत) की भूमिका' वही

3 जयंत कुमार बोरो, ''छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पंत के काव्य में प्रकृति चित्रण : एक समीक्षात्मक अध्ययन'' 'शोध संचयन', भाग–8, अंक–1 (15 जनवरी 2017), पृ० 42

4 द्वारिका प्रसाद सक्सेना, 'हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि सुमित्रानन्दन पंत' (आगरा, विनोद पुस्तक मंदिर–वर्ष अनु०) पृ० 244

5 सुमित्रानन्दन पंत, 'रश्मि बंध' (दिल्ली, राजकमल प्रकाशन : 1958), पृ० 5

6 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन', वही, पृ० 39

7 पल्लव पंत जी का एक काव्य संग्रह है जिसकी रचना काल सन् 1926 ई० है। इसमें लिखी अपनी भूमिका को छायावाद का मैनिफैस्टो कहा जाता है।

8 विजयपाल सिंह, 'छायावाद के प्रतिनिधि कवि' (वाराणसी, विश्वविद्यालय प्रकाशन : 1973), पृ० 30–31

9 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपादक, 'पूर्व–सुधि' से, पृ० 46

10 वही, पृ० 46

11 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपा०', 'भावी पत्नी के प्रति शीर्षक से', पृ० 62

12 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपा०', 'आँसू से', वही, पृ० 48

13 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपादन', 'बाँसों का झुरमुट कविता से', वही, पृ० 75

14 वही, पृ० 75

15 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपादन', 'संध्या कविता से', वही, पृ० 78

16 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपादन', 'नौका विहार कविता से', वही, पृ० 69

17 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपादन', 'नौका विहार कविता से', वही, पृ० 69

18 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपादन', 'द्रुत झरो जगत के जीर्णपत्र कविता से' वही, पृ० 77

19 कुमार विमल, 'पंत रचना संचयन व संपादन', 'भूमिका', वही, पृ० 10

***

स्थविरवाद में भवंग-चित्त की अवधारणा

*विवेक कुमार**

जीवन क्या है? जीवन की सातत्यता क्या है? मृत्यु क्या है? आखिर मृत्यु के पश्चात क्या होता है? क्या मृत्यु के बाद भी जीवन है या मृत्यु के बाद जीवन की क्या गति होती है? लोग जिसे मृत्यु कहते हैं वह मात्र उस शरीर का अन्त है जो पंच स्कन्धों से निर्मित है या और किसी वस्तु का, यह केवल भारतीय समाज के लिऐ ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण वैश्विक समाज के लिए बहुत ही जटिल विषय वस्तु थी। इस जटिलता को सुलझाने के लिऐ विभिन्न विचारधाराओं ने भिन्न–भिन्न तरीकों से इसे हल करने का प्रयास किया। किसी ने जीवन को बनाये रखने के लिए आत्मतत्व का प्रतिपादन किया तो किसी ने अनात्मतत्व चित्त, विज्ञान, चेतनतत्वादि का, परन्तु सभी ने जीवन, मृत्यु और पुनर्जन्म के साथ मुख्य कड़ी के रूप में कर्म सिद्धांत को सर्वोपरि माना, इसी प्रकार इस जटिल समस्या को सुलझाने के लिऐ बौद्ध धर्म तथा बौद्ध धर्म के विभिन्न निकायों के अनुयायियों तथा आचार्यों बीच हमेशा से ही अनात्मतत्व और कम्म जैसे विरोधाभासी प्रतीत होने वाले कथनों के बीच कड़ी को खोजने में एक बड़ी समस्या रही है क्योंकि कोई भी व्यक्ति एक स्थाई पदार्थ नहीं है[1] यह वाष्पीकरण तथा संघनन क्रिया के समान जन्ममरण श्रृंखला के बंधन में बंधा हुआ है। इसलिए यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस पृष्ठभूमि पर आध्यात्मिक प्रश्न अत्यधिक लोकप्रिय हो गए। बुद्ध के महापरिनिर्वाण के पश्चात बौद्ध धर्म जो विभिन्न संप्रदायों में विघटित या बिखरे हुये थे। वे आत्म सिद्धांत के दृष्टिकोण से सर्वदा मुक्त थे इन्होंने पुनर्जन्म, पुनर्भव तथा अस्तित्व की अवधारणा को सिद्ध करने के लिए आत्मतत्व के स्थान पर विभिन्न तत्वों, शब्दों तथा परिभाषाओं का प्रतिपादन करने का प्रयास किया है लेकिन जब हम प्रारंभिक बौद्ध धर्म की गंभीर रूप से जांच करते हैं तो ऐसा लगता है कि कार्य कारण सिद्धांत (पटिच्चसमुप्पाद) ही मृत्यु के बाद अस्तित्व के बारे में एक अध्ययन प्रस्तुत करता है जो बुद्ध की समस्त शिक्षाओं का केंद्र बिंदु है। दूसरी ओर, निस्संदेह है कि अस्तित्व को समझने के लिये विज्ञान स्वीकार किया गया है। जो प्रतित्यसमुत्पाद के ही अधीन है तथा सौत्रान्तिकों ने प्रारंभिक बौद्ध धर्म को स्वीकार करते हुये 'बीज' की अवधारणा का प्रतिपादन किया एवं मौजूदा अस्तित्व की पहचान और प्रामाणिकता की पुष्टि की तथा योगाचार्य निकाय ने इस समस्या को 'आलय विज्ञान' के माध्यम से हल किया है।[2] लेकिन यदि सूक्ष्मतः से देखा जाऐ तो भवंग–चित्त भी मृत्यु के बाद होने के अस्तित्व एवं वर्तमान अस्तित्व के बारे में एक तर्क प्रधान, बुद्धिवादी एवं वैज्ञानिक अध्ययन प्रस्तुत करता है। भवंग–चित्त की चर्चा सीधे तौर पर प्रारंभिक बौद्ध धर्म में प्राप्त नहीं होती है लेकिन यह उल्लेखनीय है कि यह अवधारणा प्रारंभिक बौद्ध धर्म के कुछ कारकों से प्रभावित है जो 'भवसोत' एवं विञ्ञाणसोत' के नाम से विदित हैं।[3] भवंग–चित्त स्थविरवाद बौद्ध मनोविज्ञान का एक अत्यंत महत्वपूर्ण पक्ष है। यह एक ऐसा सिद्धांत है जो थेरवाद बौद्ध निकाय में उत्पन्न और विकसित हुआ, जिसका सामान्य तौर पर पाश्चात्य विद्वानों ने अंग्रेजी में भिन्न–भिन्न अनुवाद किया है किसी ने अचेतन, अवचेतन, चेतन तो किसी ने जीवन निरंतरता या जीवन की सतत्य के रूप में अनुवादित किया है। भवंग–चित्त थेरवाद बौद्ध दर्शन में प्राप्त सबसे परिष्कृत अवधारणा है जो वास्तव में आध्यात्मिक तथ्य एवं भौतिकवादी प्रश्नों को हल करने के प्रयास के रूप में उत्पन्न हुई। सामान्य तौर पर, विद्वान स्वीकार करते हैं कि सर्वप्रथम भवंग शब्द का प्रतिपादन मिलिन्दप्रश्न के अंतर्गत मिलता है। सारचंद्र इस प्रमाणिकता की पुष्टि के लिये एक तर्क स्थापित करते हैं कि मिलिन्दप्रश्न में इसके वर्णन के बाद भवंग शब्द अभिधम्म में सामान्य वाक्यांश का हिस्सा बन गया था ताकि चित्त धारा को जारी रखा जा सके इसलिए स्पष्ट रूप से यह देखा जा सकता है कि विशुद्धिमग्ग और अभिधम्म साहित्य, जैसे अभिधम्मत्थसंगहो, अभिधम्मावतार आदि ने इस अवधारणा को विस्तृत रूप दिया।[4] इसके अलावा इस शब्द का उल्लेख अभिधम्मपिटक के पट्ठान, दीघनिकाय

* पी.एच.डी. शोधार्थी, पालि एवं बौद्ध अध्ययन विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

(पथिकवग्ग), मज्झिमनिकाय (मूलपण्णासक) की अट्ठकथा, अट्ठसालिनी, नेत्तिपकरण, पेटकोपदेश[5] तथा लेदी सयादो कृत परमत्थदीपनी संगहमहाटीकापाठ, अनुदीपनीपाठ, पट्ठानुद्देदीपनीपाठ आदि में भी प्राप्त होता है। भवंग शब्द दो शब्दों से व्युत्पन्न शब्द है यथा– भव + अंग ''भवस्स अंग भवंग'' भव के अंग को भवंग कहते हैं। भवंग का शाब्दिक अर्थ है 'जीवन का कारक' होता है। भवंग का आम तौर पर अंग्रेजी में अनुवाद 'जीवन–सातत्य' किया जाता है। भवंगचित्त उस चेतना का उदय है, जो किसी विशेष व्यक्ति द्वारा की गई सभी पिछली गतिविधियों के परिणाम के संचय के साथ अस्तित्व की वर्तमान स्थिति का आधार तैयार करने के रूप में कार्य करती है।[6] अधिकांश पश्चिमी विद्वान भवंग–चित्त को चित्त की एक अचेतन अवस्था के रूप में समझते हैं। वे यह मानते है कि भवंग–चित्त एक स्वप्नरहित गहरी नींद की स्थिति, निश्चेतावस्था तथा चित्त की एक रिक्त अवस्था के समान है। यथा– एन.के.जी. मेडिज के अनुसार चित्त सक्रिय तथा निष्क्रिय दो प्रकार के होते हैं। निष्क्रिय होता है। जब उसे पंचद्वार के द्वारा प्रोत्साहन, उद्दीपन प्राप्त होता है। यहाँ निष्क्रिय चित्त (अचेतन) की अवस्था की ही भवंग–चित्त कहते हैं[7] आई. बी. हॉर्नर ने भवंग का अंग्रेजी में 'अचेतन' अनुवाद किया है[8] शायद हॉर्नर ने भवंग को असंज्ञानात्मक मानसिक स्थिति के अर्थ में स्वीकार किया है एवं राइस डेविड्स तथा एडरिविरा सारचंद्र का कहना है कि भवंग या अवचेतन है[9] तथा ज्ञानातिलोक थेर के भी अनुसार भवंग–चित्त, चित्त की एक अचेतन अवस्था है। वे कहते हैं कि भवंग एक भंडारण है जहाँ अतीत के समस्त अनुभव और विचार, चित्त की सक्रिय (चेतन) अवस्था में छिपे रहते हैं और समय–समय पर वे अवचेतन घटना के रूप चित्त में उभरते रहते हैं। फिर भी, यह अनुभव और अनुभूति अभिधर्म सिद्धांत दृढ़ता से बताता है कि प्रत्येक संज्ञानात्मक (ज्ञान–सम्बन्धी) प्रक्रिया अंत में भवंग में समा जाती है इसलिए, प्रत्येक नई संज्ञानात्मक प्रक्रिया भी उसी से निकलती है। उदाहरण के लिए, कोई व्यक्ति खाना खा रहा है और अचालक दरवाजे की घंटी बजती है। यह अनुभूति अभिधर्म सिद्धांतानुसार उस क्षण दरवाजे की घंटी सुनने के तुरंत पहले जो चित्त का जो अवधान होता है उसे भवंग कहते हैं।[10] स्थविरवादी बौद्ध कर्म, कर्मफल, पुनर्जन्म आदि व्यवस्था के लिए भवंग नामक चित्त स्वीकार करते हैं। इनके अनुसार भवंग ही व्यक्तित्व का प्रमुख उपादान कारण है। संक्षिप्तता भवंग ही व्यक्तित्व है।[11] भवंग–चित्त भव का अंग इसलिए भी है क्योंकि समस्त धर्म इसके कार्य एवं कारण हैं अर्थात समस्त धर्म इससे कार्य एवं कारण के रूप में उपनिबद्ध हैं अथवा वह भवंग–चित्त का अंग इसलिए भी है क्योंकि जीव इस अंग (भवंग–चित्त) में क्लेशों तथा वासनाओं से आसक्त होते हैं। जो कुछ–कुछ अवस्थाओं को छाड़कर बुद्धत्व की प्राप्ति न होने तक सत्वों में भीतर ही भीतर समुद्र की भाँति निरन्तर अविच्छिन्न रूप से प्रवृत्त एवं प्रवाहित होता रहता है। प्रतिसन्धि, भवंग च्युति एक ही धर्म है, एक ही जाति के हैं प्रतिसन्धि का जो आलम्बन होता है वहीं भवंग का तथा च्युति का आलम्बन होता है।[12]

मिलिन्दप्रश्न में भवंग–चित्त :

मिलिन्दप्रश्न में भवंग शब्द का प्रतिपादन नागसेन द्वारा मिलिन्द को नींद और सपनों का विवरण देने के लिए किया गया था। मिलिन्द नागसेन से प्रश्न करते हुऐ कहते हैं कि भन्ते नागसेन! जो स्वप्न देखते हैं, वह सोते हुऐ देखते है या जागते हुऐ?[13] तत्पश्चात नागसेन जबाव देते हुऐ कहते हैं कि महाराज! जो स्वप्न देखता है न सोते हुऐ देखता है और न जागते हुऐ। किन्तु जब व्यक्ति के गहरी नींद का उनींदापन हो जाने पर भवंग की जो अवस्था होती है उसी समय स्वप्न आते हैं महाराज! गहरी नींद हो जाने पर चित्त भवंग गत (विस्मृत) हो जाता है, तब भवंग गत चित्त कार्य नहीं करता है, और तब उसी सुख दुःख का भान नहीं होता है जब चित्त कुछ भी नहीं जानता तब उसे स्वप्न भी आते हैं।[14] तदनन्तर इसी बात को स्पष्ट करने के लिऐ नागसेन ने उपमा के माध्यम से मिलिन्द को समझाया कि महाराज! जैसे अत्याधिक अंधेरे में स्वच्छ दर्पण पर परछाई नहीं पड़ती है। महाराज! उसी प्रकार, गहरी नींद में चित्त के भवंगत (विस्मृत) हो जाने पर शरीर बने रहने पर भी चित्त कार्य नहीं करता है। जब चित्त कार्य नहीं करता तब स्वप्न भी अपना कार्य नहीं करते इसी प्रकार महाराज! जैसा दर्पण है वैसा शरीर समझना चाहिए; जैसा अंधेरा है वैसा ही गहरी नींद समझनी

चाहिए; जैसा प्रकाश है वैसा चित्त को समझना चाहिए।[15] यहाँ दर्पण भौतिक पदार्थ के लिए तथा अधेरा उनींदापन अंधेरे के लिए एवं प्रकाश चित्त के लिए उद्दीपन है। इसके अलावा नागसेन का कहना है कि दो परिस्थितियों में चित्त अनुपलब्ध रहता हैः–

1. गहरी नींद में चित्त के विस्मृत (भवंगगत) हो जाने पर
2. निरोध–अवस्था होने पर[16]

इसका मतलब यह है कि जब कोई व्यक्ति गहरी नींद में होता है तब वह भवंग या असंज्ञानात्मक चित्त की अवस्था में होता है। मिलिन्द तथा नागसेन का यह संवाद गहरी नींद में व्यक्ति के अस्तित्व के रूप में भवंग को दर्शाता है अर्थात यह कह सकते हैं कि नागसेन की यह व्याख्या संज्ञानात्मक मानसिक घटना को नहीं बल्कि व्यक्ति की निरन्तरता की धारा को संदर्भित करती है।

अभिधम्म में भवंग–चित्त :

अस्तित्व की समस्या को सुलझाने के लिऐ अभिधम्म के अन्तर्गत भवंग–चित्त का प्रमुख एवं अवश्यंभावी स्थान है। यह चित्तकृत्य के दौदह भागों में से एक है जो इस प्रकार हैं यथा– पटिसंधि (पुनर्जन्म), भवंग (जीवन सातत्य), आवज्जन (आवर्जन, तुष्टिकरण), दस्सन (देखना), सवन (श्रवन), घायन (संघना), सायन (चखना), फुसन (स्पर्शन), सम्पटिंछन (ग्रहण करना), संतीरण (अन्वेषण करना), वोट्ठपन (निर्धारण करना), जवन (आवेग), तदारम्मण (पंजीकरण, भवंग का आलम्बन ना रह जवन–चित्त का आलम्बन होना), च्युति (मरण)। अभिधम्म में, भवंग–चित्त उसी प्रकार का है जैसे कि जीवन का पहला पटिसंधि चित्त (पुनर्जन्म–चेतना)। जब पटिसंधि–चित्त उत्पन्न होकर पतित जाता है तब ऐसी स्थिति में भवंग–चित्त उत्पन्न होता है जो कि जीवन का पहला भवंग चित्त होता है। पटिसन्धि चित्त, भवंग–चित्त, तथा च्युति चित्त ये तीनों प्रकृति से एक ही होते हैं। इनके कार्य अलग–अलग होने के कारण इनके नाम अलग दिये गये हैं।[17] भवंग का कार्य व्यक्ति के अस्तित्व की निरंतरता को बनाए रखना है। मिलिन्दप्रश्न में, भवंग का वर्णन गहरी नींद में सोते हुऐ व्यक्ति के चित्त की प्रकृति की व्याख्या करने के लिए किया गया है इसके अलावा इससे परे जाकर, अभिधम्म यह बताता है कि भवंग–चित्त केवल गहरी नींद तथा जागने के क्षण में ही नहीं बल्कि जीवन के हर क्षण में उत्पन्न एवं पतित रहता है। भवग–चित्त एक आयुपर्यन्त चलने वाला चित्त है[18] तथा जब कोई नया विषय या आलम्बन चित्तधारा (सन्तति) के सामने उपस्थित होता है उस क्षण चित्त की शान्त अवस्था में प्रकम्पन उत्पन्न होने लगता है। जिसे भवंग–चलन कहते हैं।[19] तथा विषय को ग्रहण करने के पश्चात वीथि चित्त होता है, उस समय भवंग–चित्त निरुद्ध हो जाता है अथवा ऐसा कह सकते हैं कि चित्त का शान्त प्रवाह उच्छिन्न हो जाता है, पतित हो जाता है या अपनी पूर्व अवस्था में आ जाता है इसे ही भवगोंच्छेद कहते हैं। अभिधम्मानुसार भवंग–चित्त से ही समुद्र की तरगों की भाँति षड् विज्ञानवीथियाँ[20] उत्पन्न या प्रवृत्त होती रहतीं हैं और अन्ततः उसी में पतित हो जाती है। स्थविरवादी एक काल में एक से अधिक विज्ञान की स्थिति को नहीं मानते हैं। विथि का मतलब चित्त परम्परा होता है। वह जिस–जिस विज्ञान में प्रवर्तित होती है। उस–उस विज्ञान के नाम से जानी जाती है। इसी प्रकार जीवनपर्यंत यह परम्परा इसी तरह संचालित होती रहती है।

1. **क्या भवंग–चित्त भी विपाक चित्त होता है?**

भवंग कुशल, अकुशल कर्मों का विपाक होता है क्योंकि यह जन्मों के कुशलाकुशल कर्मों के रूप में उत्पन्न होता है। इस प्रकार विपाक के रूप में उत्पन्न होना ही पटिसंधि कहलाता है। पूर्व जन्मों के कर्मों की शक्ति के अनुरूप यह जन्म में चित्तधारा के रूप में प्रवृत्त होता है तथा जब पूर्व जन्मों का वेग समाप्त हो जाता है तब उसी धारा समाप्त हो जाती है इसे च्युति (मृत्यु) कहते हैं किन्तु च्युति के अनन्तर पुनः पटिसंधि (जन्म) हो जाती है क्योंकि कर्मों का वेग अभी समाप्त नहीं हुआ है। कर्मों के वेग से जितने समय तक यह धारा के रूप में प्रवृत्त होता है वहीं प्राणी की आयु होती है। इस तरह जन्म जन्मान्तरों में उत्पाद तब तक होता रहता है। जब तक भवंग–चित्त अर्हत के निरुपाधिशेष निर्वाण धातु में विलीन नहीं हो जाता है। तब तक च्युति के निरुद्ध होने के अनन्तर भी पुनः पुनः प्रतिसन्धि, भवंग, च्युति नामक चित्त रथ की भाँति अविच्छिन्न रूप से परिवर्तित होते रहते हैं।[21]

भवंग–चित्त एक ऐसा चित्त है जिसके बिना संसार की प्रवृत्ति एवं निवृत्ति दोनों सम्भव नहीं हो सकती है। स्थविरवादी मतानुसार जो चित्त जीवन के प्रथम क्षण में प्रतिसन्धि कृत्य करता है[22] और जीवन के अन्तिम क्षण में च्युति कृत्य करता है, वहीं चित्त वाकी समय में भवंग कहलाता है। भवंग–चित्त एक विपाकचित्त है। यह उन्हीं कर्मों का परिणाम है जिनके द्वारा पटिसंधि चित्त का उत्पादन होता है। प्राणी के जीवन में केवल एक पटिसंधि चित्त होता है लेकिन भवंग–चित्तों की संख्या असीमित होती है। न केवल पहला भवंग–चित्त, बल्कि एक जीवन काल के दौरान उत्पन्न होने वाले सभी भवंग–चित्त उस कर्म का परिणाम हैं, जो कर्म पटिसंधि–चित्त का उत्पादन करते हैं।

2. क्या भवंग–चित्त भी वासनाओं का आधार होता है?

जिस समय भवंग का निरोध हो जाता है फलतः भवंग ही वासनाओं के आधार नहीं होते अपितु लोकोत्तर चित्तो को छोड़कर अन्य चित्त भी वासनाओं के आधार हो जाते हैं तथा प्रवृत्त होकर उसी में विलीन हो जाते है। भवंग एक संस्कृत एवं क्षणिक धर्म है। विज्ञानवादियों की दृष्टि से इन्द्रिय, अर्थ और वासनाऐं सभी आलयविज्ञान के आलम्बन होते हैं तथा पंचइन्द्रिय विज्ञानों के सारे विषय उसके आलम्बन होते हैं। उसी प्रकार स्थविरवादी मतानुसार भंवग को भी मनोद्वारा कहते हैं।[23] साथ ही प्रत्युत्पन्न, अतीत एवं प्रज्ञाप्तिभूत समस्त कर्म, कर्मनिमित्त (चेतनानिमित्त) और गतिनिमित्त के रूप में भवंग के आलम्बन होते हैं।

3. किन क्षणों में भवंग–चित्त उत्पन्न होता है?

यहाँ ऐसे क्षण भी होते हैं। जिसका कोई अर्थ नहीं होता है, जब कोई सोचता है, तब कोई कुशल चित्त या अकुशल चित्त नहीं होते हैं। क्या उन क्षणों में भी चित्त उत्पन्न होते हैं? हाँ यहाँ तक कि जब कोई भावना और कोई सोच नहीं होती है, तब भी भवंग–चित्त उत्पन्न होता रहता है और जिस प्रकार चित्त उठता है उसी प्रकार कुछ ही क्षणों में मार्ग से पतित हो जाता है।

निष्कर्ष

भवंग चित्त बौद्ध दर्शन एवं बौद्ध मनोविज्ञान दोनों पक्षों को अपने में समाहित किये हुऐ है। भवंग चित्त एक जीवन का ऐसा कारक है जिसके कारण व्यक्ति वर्तमान में विद्यमान है तथा जिसके कारण व्यक्ति के अगले अस्तित्व (पुनर्जन्म) का निर्माण होता है जो मृत्यु से पहले और मृत्यु के बाद के जीवन पर समन्वय केन्द्रित करता है। लेकिन समस्या केवल शब्द की व्याख्या में प्रतीत होती है क्योंकि पाश्चात बौद्ध विद्वानों ने भवंग को चेतन, अवचेतन, अचेतन के रूप में स्वीकार किया है तथा कुछ पिटकेत्तर ग्रंथों में भवंग चित्त का प्रतिपादन एक मनोद्वार प्रक्रिया के रूप में किया है तो कुछ में जीवन क्षण के रूप में, लेकिन सभी ने इसे पुनर्जन्म का कारण एवं जीवन के कारक के रूप में ही स्वीकार किया है। यदि भवंग चित्त को मनोविज्ञान की दृष्टि से देखा जाऐ तो यह मनोविज्ञान की शाखा परामनोविज्ञान तथा आधुनिक मनोविज्ञान की शाखा ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान में समन्वित हो सकता है। क्योंकि मनोविज्ञान की एक शाखा जो परमोविज्ञान के नाम से विदित है जो पुनर्जन्म पर ही आधारित है। इस के मूल सिद्धान्त पुनर्जन्म की अवधारणा का प्रतिपादन करते है तथा मनोविज्ञान की आधुनिक शाखा ट्रांसपर्सनल मनोविज्ञान के अनुसार व्यक्ति का एक भाग वर्तमान जीवन और पिछले जीवन के समन्वय पर केंद्रित रहता है।

संदर्भ :

अभि.को. : अभिधर्मकोश, आचार्य नरेन्द्र देव द्वारा अनुदित, हिंदुस्तानी ऐकेडमी, ईलाहाबाद, 1988
अभि.को.भा. : अभिधर्मकोशभाष्य (आचार्यवसुन्धुकृत),
अर्थविनि. : अर्थविनिश्चयसूत्र
अभि.प्र. : प्रो. रामशंकर त्रिपाठी, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, तृतीय संस्करण
अभि.स. : अभिधम्मत्थसंगहो (आचार्यनुरुद्धकृत), भदन्त आनन्द कौसल्यायन द्वारा अनुदित, सम्यक प्रकाशन, दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2013
अभि.पु.टी. : अभिधम्मावतारपुराण टीका, प्रथम भाग, छट्ठसंघायन, विपश्यना शोध संस्थान : het.:// w www.tipitaka.org/dev/

अभि.वि. : अभिधर्म बिन्दु, (2001), हरिशंकर शुक्ल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्रकाशन अ.वि.व्या.: आचाय ंवसुबन्धुप्रणीतं विज्ञप्तिमात्रतासिद्धि – प्रकरणद्वयम्व्याख्यात्रयोपेतम्, सम्पूर्णानन्दसंस्कृत विश्वविद्यालय, द्वितीय संस्करणम्, 1992
दी.नि. : दीघनिकाय, नालन्दा, प्रथम संस्करण
मि.प. : मिलिन्दपन्न, छट्ठसंघायन, विपश्यना शोध संस्थान : het://www.tipitaka.org/dev/[24]

---

1 Ferenc Bodo, "Analysis of Bhavanga Citta", Widening Knowledge of Abhidhamma- IBCA 2018, Pg. 87-91

2Ven. Suriyawewa. Wijayawima. A study on the Evaluation of the Bhavanga citta. Web. PDF repository .kln.ac. ik> bit stream>handle

3 वही.

4 Sarachchandra Ediriwira. (2009). Buddhist Psychlogy of perception, Buddhist Cultural Centre : Nedimala, Sri Lanka

5 Gethin, RML. (1994) Bhavanga and rebirth according to the abhidhamma. In V. Pagel, & T. Skorupski (Eds). The Buddhist Forum Vol III (pp. 11 – 35). School of Oriental and African Studies.

6 Prof. Bimalendra Kumar.(2014) A Comparative Study of Bharanga-Citta and Alaya-Jijnana in Abhidharma Tradition. Contribution of Buddhism to the World Culture, Pg. 90

7 N.K.G. Medis. The Abhidhamma in practice. The wheel Publication, Pg. 20

8 Milinda's Questions : vol. ii (1999). Trans. I.B. Horner. Oxford : Pali Text Society.

9 Dipen Barua, (2018). Consciousness and Process-free Consciousness in the Conginitive Process of Buddhist Psychology, The Asian Conference on Ethics, Religion & Philosophy, Pg. 143

10 Ferenc Bodo, (2018). An Analysis of Bhavanga Citta, Widening Knowledge of Abhidhamma IBCA 2018, Pg. 87-91

11 आ.वि.प्र.व्याण प्रो. रामशंकर त्रिपाठी द्वारा अनूदित. पृ. 51

12 पटिसंधि, भवंगन्च तथा चवनमानसं।
एकमेव तथेवेकविसयंचेकजातियं।।–अभि.स., पंचम परिच्छेद

13 ''भन्ते नागसेन, यो सुपिनं पस्सति, सो निद्दायन्तो, उदाहु जागरन्तो पस्सती'' ति?

14 ''यो सो, महाराज, सुपिनं पस्सति, न सो निद्दायन्तो पस्सति, नापि जागरन्तो पस्सति। अपि च ओक्कन्ते मिद्धे असम्पत्ते भवंगे एत्थन्तरे सुपिनं पस्सति। मिद्धसमारूल्हस्स, महाराज, चित्तं भवंगतं होति, भवंगतं चित्तं नप्पवत्तति, अप्पवत्तं चित्तं सुखदुःखं नप्पजानाति, अप्पटिविजानन्तस्स सुपिनों न होति, पवत्तमानो चित्ते सुपिनं पस्सति''।, मि.प., पृ. 168

15 ''यथा महाराज, तिमिरे अन्धकारे अपभासे सुपिरिसुद्धेपि आदासे छाया न दिस्सति, एवमेव खो, महाराज, मिद्धसमारूल्हे चित्ते भवंगते तिट्ठमानेपि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति, अप्पवत्ते चित्ते सुपिनं न पस्सति। यथा, महाराज, आदासो, एवं सरीरे दट्ठब्बं; यथा अन्धकारो, एवं मिद्धं दट्ठब्बं; आलोको, एवं चित्तं दट्ठब्बं''।, मि.प., पृ. 168

16 ''दिन्नं, महाराज, सन्तपि सरीरे चित्त अप्पवतं होति, मिद्धसमारूल्हस्स भवंगस्स सन्तपि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति, निरोधसमापन्नस्स सन्तपि सरीरे चित्तं अप्पवत्तं होति'', मि.प., पृ. 168

17 पटिसंधियट्ठानतो पटिसंधियाकिच्चवसेन भवंगस्सट्ठानतो पटिसंधियाकिच्चवसेन च्युतियट्ठानतो च्युतियाकिच्चवसेन... ।, अभि.पु.टी., पृ. 12

18 अभि. स., पृ. 9

19 अभि. वि., पृ. 268

20 1. चक्षुविज्ञानवीथि, 2. श्रोतविज्ञानवीथि, 3. घाणविज्ञानवीथि, 4. जिह्वाविज्ञानवीथि, 5. कायविज्ञानवीथि, 6. मनोविज्ञानवीथि– इन्हें चित्त प्रवृत्तियाँ भी कहते हैं।

21 अभि. प्र., द्वितीय भाग, पृ. 316,

22 तत्र संसारप्रवृत्तिः निकायसभामान्तरेषु प्रतिसन्धिबन्धः।

निवृत्ति सोपाधिशेषो निरुपाधिशेषश्च निर्वाणधातु।।, विज्ञाप्तिमात्रता सिद्धि, पृ. 84

अर्थात्– ''संसार की प्रवृत्ति का अर्थ है अन्य निकायसभाग शरीरों का प्रतिसन्धि का बन्ध और निवृत्ति का अर्थ है। सोपाधिशेष तथा निरुपाधिशेष निर्वाणधातु''

23 मनोव्दारं पन भवंग ति पवुच्चति– अभि. प्र., 34, पृ. 240

***

विज्ञानमयकोशसन्दर्भे बुद्धेः स्वरूपम्

*अनिल कुमार अवस्थी**

सृष्टे आदिकालादद्यावधि पर्यन्तं परिवर्तिनि संसारेऽस्मिन् शिक्षायाः गौरवं सर्वैः मन्यन्ते। शिक्षयैव सभ्यतायाः संस्कृतेश्च परिवर्तनं भवति। अनेन सुसभ्य विवेकशीलमानवस्य समाजस्य च सङ्कल्पना भवति। सुसभ्य मानवस्य निर्माणार्थं सद्ज्ञानस्यावश्यकता भवति। ज्ञानमेव प्रयोगेण परीक्षितं भूत्वा विज्ञानं भवति। विज्ञानमेव बौद्धिक शक्तिं समुत्पादयति। अनेनैव कर्तृत्वं समायाति, अथ च अस्माकमुपनिषत्सु पञ्चकोश सङ्कल्पना प्रथिता वर्तते। तेषु कोशेषु बौद्धिक कोशः विज्ञानमय कोशः वर्तते। कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धेः स्वरूपं प्रतिपादयति।

विज्ञानमयकोशः

उपनिषत्सु विज्ञानमयकोशोऽयं मनोमय कोशस्यात्मा वर्तते। कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धेः समुच्चयं विज्ञानमयकोशः भवति उक्तं च –

ज्ञानेन्द्रियैः सह बुद्धिर्विज्ञानमय कोशः॥[1]

विज्ञानं नाम ज्ञानं तद् ज्ञानं तु अध्ययनेन भवति किन्तु अध्ययनानन्तरं प्रयोगेण अनुभवेषु परिणतं ज्ञानं विज्ञानं भवति तदेव विशिष्टं ज्ञानमर्थात् यथार्थरूपेण व्यवहारे परिवर्तनं स्यात् अतः परिवर्तनं तु कर्तृत्वरूपेण बुद्धयासाकं ज्ञानेन्द्रियैः भवति। मनोमयकोशः पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि मनसा साकं वर्तते। मनः तु ज्ञानेन्द्रियाणां कारणरूपेण विद्यते परञ्च कर्तृत्वरूपेण ज्ञानेन्द्रियाणि बुद्धया साकं निश्चयं कुर्वन्ति। कोशोऽयमानन्दमयेन पूर्णो भवति।

आनन्देन सदा पूर्णः सदा ज्ञानमयः सुखम्॥[2]

कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः साकं वृत्तियुक्तं बुद्ध्यैव कर्तृत्वस्य स्वभावत्वेन विज्ञानमयकोशो भवति। कोशोऽयं पुरुषस्य जन्म-मरणञ्च इत्यनयोः स्वभावस्य कारणं भवति। उक्तं च –

बुद्धिर्बुद्धीन्द्रियैः सार्धं सवृत्तिः कर्तृलक्षणः।
विज्ञानमय कोशः स्यात्पुंसः संसार कारणम्॥[3]

कोशोऽयं प्राणमयमनोमयाभ्यां साकं सूक्ष्म शरीरं निर्माति। अनेन शरीरेण स्वप्नावस्थायां प्राणिषु कर्तृत्वं समायाति। उक्तं च –

बुद्धि कर्मेन्द्रिय प्राणपञ्चकैर्मनसाधिया। शरीरं सप्तदशभिः सुसूक्ष्मं लिङ्गमुच्यते॥[4]

अन्नमय, प्राणमय, विज्ञानमयश्चेति एतैः त्रिभिः कोशैः संयुक्ता आत्मा बुद्धया चिन्तयति तदा तस्याः बुद्धयुक्तस्वरूपं विज्ञानमय कोशमुच्यते। उक्तं च –

एतत्कोशत्रयंसंसक्तं तद्भूतविशेषज्ञो यदा भासते तदा विज्ञानमयकोशः इत्युच्यते॥[5]

तैत्तिरीयोपनिषदि शाङ्करभाष्ये विज्ञानमय कोशोऽयं मनोमयकोशस्यात्मा वर्तते। मनोमयकोशोऽयं विज्ञानमयकोशं विना पूर्णो न भवति। अतः वेदानामुच्चारणे मनसि तु सङ्कल्पभावं भवत्येव किन्तु तेषां मन्त्राणामर्थविषये यो निश्चयात्मिका बुद्धिः वर्तते। सा बुद्धिः ज्ञानेन्द्रियैः साकं विज्ञानमयं वर्तते। सैव अन्तःकर्णस्याध्यवसाय धर्मः वर्तते। तन्मयः अर्थात् प्रमाणस्वरूप निश्चयः विज्ञानेन (निश्चयात्मिका बुद्धया) निष्पन्नो जातत्वात् आत्मा विज्ञानमयोऽस्ति। कारणमिदं वर्तते यत् वेदानामुच्चारणं तु याज्ञिककार्ये भवत्येव किन्तु तस्य विस्तारः प्रमाणेन विज्ञानपूर्वकं भवति। अतः विज्ञानं यज्ञस्य हेतुः वर्तते। उक्तञ्च –

यतो वाचो निवर्तन्ते। अप्राप्य मनसा सहेत्यादि। तस्य पूर्वस्य प्राणमयस्यैष एवात्मा शारीरः शरीरे प्राणमये भवः शारीरः। कः? य एष मनोमयः तस्माद्वा एतस्मादित्यादि पूर्ववत्। अन्योऽन्तर आत्मा विज्ञानमयो मनोमयस्याभ्यन्तरो विज्ञानमयः। मनोमयो वेदात्मोक्तः। वेदार्थविषया बुद्धिर्निश्चयात्मिका विज्ञानं तच्चाध्यवसायलक्षणमन्तः करणस्य धर्मः। तन्मयो निश्चय विज्ञानैः प्रमाणस्वरूपैर्निर्वर्तित आत्मा विज्ञानमयः। प्रमाण विज्ञान पूर्वको हि यज्ञादि हेतुत्वं च वक्ष्यति श्लोकेन॥[6]

---

* शोधच्छात्रः (शिक्षाशास्त्र विभागः) केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालयस्य लखनऊ परिसरः

अयं विज्ञानमयकोशः बुद्धेः कोशः वर्तते। यो आत्मनः सन्निकटो वर्तते। आत्मनः प्रकृत्या सह संयोगेन सर्वप्रथममस्यैव निर्माणमभवत्। अनेनैव महत्तत्वमपि कथ्यते। अस्याः बुद्धेः कारणेन मनुष्येषु 'अहं' भावोत्पन्नो भवति। येन कोशोऽयं स्वकीयमात्मनः भिन्नोऽस्ति इति मन्यते। मानवस्य जन्म-मृत्योश्च कारणं वर्तते। अयं कर्त्तृत्वममित्यस्यानुभवं करोति। अस्य सम्बन्धः ज्ञानेन्द्रियैः सह भवति। अनेन कोशोऽयमनुभवं करोति।

बुद्धेः स्वरूपं

सर्वव्यवहारहेतुर्बुद्धिर्ज्ञानम्। सा च द्विविधा स्मृतिरनुभवश्च। संस्कारमात्रजन्यं ज्ञानं स्मृतिः। तद्भिन्नं ज्ञानमनुभवः। सः द्विविधः यथार्थोऽयथार्थश्च। तद्वति तत्प्रकारकोऽनुभवो यथार्थ। यथा रजते 'इदं रजतमि'ति ज्ञानम्। सैव प्रमेत्युच्यते। तद् भावयति तत्प्रकारकोऽनुभवोऽयथार्थः। यथा-शुक्तौ 'इदं रजतमि'ति ज्ञानम्। सैवाऽप्रमेत्युच्यते॥[7]

आहार-विहारादि समस्त व्यवहारस्य हेतोः गुणः बुद्धिः वर्तते तदेव ज्ञानं। सा द्विविधा वर्तते स्मृतिरनुभवश्च। या संस्कारमात्रेण जायमाना सा स्मृतिः (स्मरणं) वर्तते। तदतिरिक्तं यद् वर्तते तद् ज्ञानं सैवानुभवः। अनुभवोऽपि द्विविधः यथार्थमयथार्थं च। यादृशं यद् पदार्थं वर्तते तादृशमेवानुभवं यथार्थं वर्तते यथा यथार्थरजतं, रजतमिति। इयं यथार्थानुभवं 'प्रमा' इति कथ्यते। यादृशं यद् पदार्थं तादृशं ज्ञानं नैव अयथार्थमनुभवमिति यथा – शुक्तौ इदं रजतमिति ज्ञानम् 'अप्रमा' इति कथ्यते।

अथ च बुद्धेः कार्याणि निश्चयात्मकं ज्ञानं यथा– कर्त्तव्यम्-अकर्त्तव्यं, ग्राह्यम्-अग्राह्यं, त्याज्यं-उपादेयं, लाभः-हानिश्च त्यादिषु कर्त्तव्येषु चयनमथ च कर्त्तृत्वस्यागमनमिति। सात्त्विक बुद्धेः चत्वारो गुणाः वर्तन्ते। सांख्यमतानुसारम् उक्तञ्च –

अध्यवसायो बुद्धिर्धर्मो ज्ञानं विराग ऐश्वर्यम्।
सात्त्विकमेतद्रूपं तामसमस्माद्विपर्यस्तम्॥[8]

सात्त्विकबुद्धेः चत्वारो गुणाः वर्तन्ते यथा –

धर्मः, ज्ञानम्, वैराग्यम्, ऐश्वर्यञ्चेति

धर्मः – अभ्युदयनिः श्रेयसोश्च साधकं धर्मरिति कथ्यते।

ज्ञानम् – वस्तूनां प्रकाशकर्त्तृत्वं ज्ञानमिति कथ्यते।

वैराग्यम् – पुत्र-कलत्रादिषु पदार्थेषु रागत्वं न वैराग्यमिति कथ्यते।

ऐश्वर्यम् – तच्चाष्ट गुणैः युक्तो वर्तते यथा – अणिमा, महिमा, लघिमा, प्राप्तिः, प्राकाम्य, ईशित्वं, वशित्वं, कामावसायित्वञ्चेति बुद्धेः ये चत्वारो तामसधर्माः सन्ति। ते एषां सर्वथा विपरीतो वर्तन्ते यथा – अधर्मम्- अज्ञानम्-अवैराग्यम् अनैश्वर्यञ्चेति। अस्मिन् विषये गीतायामपि वर्णितं वर्तते यथा –

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये।
बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी॥[9]

सात्त्विकबुद्ध्या मनुष्यः किं करणीयं? किं न करणीयमयं जानाति? सः विषयेभ्यः बिभेति अथ च सद्कर्मसु प्रवृत्तो भूत्वा स्वयमेव कर्त्ता भोक्ता च इति न मन्यते।

अपि च राजसी बुद्धिः –

यया धर्ममधर्मं च कार्यं चाकार्यमेव च।
अयथावत्प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी॥[10]

मानवः यद् धर्मम् अधर्मं, करणीयमकरणीयञ्च कर्माणि करोति। तेषु कर्मसु वास्तविकं किं करणीयं तत्र भेदः कर्त्तुं न शक्यते। स अधर्ममपि धर्मं मन्यते। एषु कर्मसु या बुद्धिः प्रवर्तिता भवति सा राजसी इत्युच्यते।

अपि च तामसी बुद्धिः –

अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता।
सर्वार्थान्विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी॥[11]

तामस बुद्धियुक्तः मानवोऽहंकारस्य वशीभूतः भवति अथ च विषयेषु अत्युत्कट रागः भवति। अनेन सः शरीरमात्मनोश्च भेदः कर्त्तुं न शक्यते। अहं कर्त्ता भोक्ता च इति मन्यते। बुद्धिः मोहरूपी घनान्धकारे प्रवृत्तो भूत्वा अधर्मं धर्मं मन्यते अथ च कर्त्तृत्वेन सर्वथा भौतिक जगति नश्वरवस्तूनि प्रति आसक्तिः भवति।

अपि च केशवमिश्र प्रणीतेन तर्कभाषायां बुद्धेः लक्षणमेवं वर्तते –

अर्थ प्रकाशो बुद्धिः। नित्याऽनित्या च। एतादृशी बुद्धिर्नित्या, अन्यदीया त्वनित्या॥[12]

अर्थ प्रकाशः अर्थस्य प्रकाशकं ज्ञानं सा बुद्धिः नित्याऽनित्या च ईश्वरस्य बुद्धिः नित्याऽनित्या मनुष्यादयः। आत्मानमन्त इन्द्रियाणि 'मन' तथा च चक्षुरादि बाह्य इन्द्रियैः अर्थ प्रकाशको ज्ञानं भवति। अनेन कारणेन "अर्थ प्रकाशको बुद्धिः" इदं लक्षणं बुद्धेः क्रियते। एतद्विश्चितमेव बुद्ध्यैव अर्थस्य ज्ञानं भवति। तद् ज्ञानं यदा विशिष्टं यथार्थरूपं प्रयोगात्मकं च तदैव विज्ञानं भवति। मनसि बहवः विचाराः समायान्ति तेषु विचारेषु मनः संकल्पं-विकल्पं च करोति, सङ्कल्प सुदृढं निश्चयं च यदा बुद्धिः करोति तदा अर्थप्रकाशको भवति। अनेनैव कर्त्तृत्वं समायाति तदैव कार्यसिद्धिः सम्भवति। बुद्ध्या येषां शब्दानामर्थप्रकाशको भवति, ते बुद्ध्यादयः षट्मानसप्रत्यक्षाः वर्तन्ते यथा – प्रीतिः, सुखम्, पीडा, रागः, क्रोधः, उत्साहश्चेति।

१.प्रीतिः – प्रीतिरानन्दयोश्च नाम सुखं वर्तते।

२.सुखम – (सर्वात्मनामनुकूलवेदनीयम्) सम्पूर्णात्मभि अनुकूलेऽनुभवं कर्त्तुं योग्योऽस्ति।

३.पीडा – पीडायाः नाम दुःखं वर्तते। तद् दुःखं (सर्वात्मनाम्) सर्वैरात्मभिः (प्रतिकूलवेदनीयम्) प्रतिकूलरूपेऽनुभवं कर्त्तुं योग्यो वर्तते।

४.रागः – रागस्य नाम इच्छा वर्तते। कामना, अभिलाषा, लालसा, स्पृहा इत्यादयश्च तस्य पर्यायवाचिनः सन्ति। अस्य द्वौ भेदौ स्तः नित्यमिनित्यं च ईश्वरस्य इच्छा नित्या भवति, जीवस्य ईच्छा अनित्या भवति।

५.क्रोधः – क्रोधस्यापरं नाम द्वेषः वर्तते। अयं जीवात्मनः विशेषगुणः वर्तते।

६.उत्साहः – उत्साहं नाम प्रयत्नमपि कथ्यते। सोऽपि नित्यमनित्यं च। ईश्वरस्य प्रयत्नं नित्यं भवति। अनित्यं प्रयत्नं त्रिप्रकारकं भवति यथा – प्रवृत्तिं, निवृत्तिं, जीवयोनिं च। एषु प्रवृत्ते उदयं रागेन, निवृत्ते उदयं द्वेषेन, जीवयोने उदयमदृष्टेन प्रारब्धकर्मणा च वा भवति। एषु यदा-कदा प्रवृत्तिं निवृत्तिं च जाग्रदवस्थायां भवति किन्तु तृतीयो प्रयत्नः जीवयोनिं सततं भवति अथ च प्रारब्धकर्मणां भोगस्य समाप्तेः तावदस्य प्रयत्नस्य धारा चलति।

पञ्चदशीकार विद्यारण्यमुनिना स्वकीयपञ्चदशीग्रन्थे मनबुद्ध्योश्च भेदं क्रियते यथा अन्तरिन्द्रिय यद् भवति तदेव मन इति कथ्यते। इन्द्रियमिदं कर्त्तृत्वेन, करणरूपत्वेन च परिणतं भवति। यदा कर्त्तृत्वेन परिणतं तदा विज्ञानमयकोशः कथ्यते, यदा करणत्वेन परिणतं भवति तदा मनोमयकोशः भवति। मन एवश्च बुद्धिः परस्परमन्तर्बहिश्च तिष्ठति। यदा बुद्धिरन्तः तदा मनः बहिः तिष्ठति। यदा मनोऽन्तः तिष्ठति तदा बुद्धिः बहिः। अनेन एकस्यैव द्वौ कोशौ स्तः यथा – मनोमयः, विज्ञानमयश्चेति। उक्तं च –

कर्त्तृत्वकरणत्वाभ्यां विक्रियेतान्तरिन्द्रियम्।
विज्ञानमनसी अन्तर्बहिश्चैते परस्परम्॥[13]

अथ च विज्ञानमयकोशः, पञ्चज्ञानेन्द्रियाणि श्रोत्र, त्वक्, चक्षुः, रसना, घ्राणश्च एतैः ज्ञानेन्द्रियैः जीवं कर्त्तृत्वमाप्नोति। अनेन करणरूपेण मनः यद् संकल्पं-विकल्पं च करोति। ताभ्यां संकल्पविकल्पाभ्यां निश्चयं बुद्धिः करोति। एतदर्थं पञ्चज्ञानेन्द्रियाणां पञ्चविषयेषु बुद्धिः प्रवृत्तो भूत्वा कार्यं करोति। वेदान्तसारे उक्तं च –

इयं बुद्धिर्ज्ञानेन्द्रियैः सहिता विज्ञानमय कोशो भवति॥[14]

विज्ञानमयकोशं पञ्चज्ञानेन्द्रियैः साकं बुद्धिः शरीरे नेतृत्वं करोति। कथं नेतृत्वं? अतः रथमयशरीरे बुद्धिः सारथी भवति। ज्ञानेन्द्रियाणि अश्वाः भवन्ति। अश्वाः विषयरूपी मार्गे बुद्ध्यानुसारं धावन्ति। एतदर्थं देहस्य सर्वाणि कार्याणि बुद्धेः कर्त्तव्यानि वर्तन्ते। उक्तश्च –

आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु।
बुद्धिं तु सारथिं विद्धि मनः प्रग्रहमेव च॥[15]

अतः बुद्धिरूपी सारथी यदा कुशलः सर्वदा समाहितचित्तो भवति तदा इन्द्रियरूपी अश्वाः तस्याः बुद्धे अधीनो भवन्ति। अधीनस्थकर्त्तुं सारथिं विज्ञानवान् अर्थात् सदसदयोश्च ज्ञानं भवेत्। अनेन मनः नियन्त्रितं, समाहितश्च भवति।

मनः बुद्धेः अधीनो भवति तदा निश्चितमेव जीवः संसारे सद्कर्त्ता भवति।

उक्तञ्च –

यस्तु विज्ञानवान्भवति युक्तेन मनसा सदा।
तस्येन्द्रियाणि वश्यानि सदश्वा इव सारथेः॥[16]

अथ च एतद्निश्चितमेव वर्तते यत् विज्ञानमयकोशमेव साक्षात् बुद्धेः स्वरूपं वर्तते।

निष्कर्षः

अथ च विज्ञानमयकोशसन्दर्भे बुद्धेः स्वरूपं यत्र उपस्थाप्यते तर्हि ज्ञानं भवति यत् बुद्धिः विज्ञानमयकोशात् पृथक् नास्ति, अपितु तस्यैव स्वरूपं वर्तते। कोशोऽयं ज्ञानेन्द्रियैः साकं बुद्धेः समुच्चयं वर्तते। आधुनिकैः केवलं बुद्धेः स्वरूपं मन्यन्ते परञ्च एतद्निश्चितमेव वर्तते यद् विज्ञानमयकोशस्य उपस्थापनं भवतु तर्हि बुद्धेः स्वरूपं विशिष्टरूपेण स्पष्टीयते। विज्ञानमयकोशमेव बुद्धिः वर्तते। अस्य विशद वर्णनमस्माकं भारतीय वाङ्मयेषु वर्तते। अस्याः बुद्धेः स्वरूपस्य वर्णनं निश्चितमेव शिक्षाजगति समुपयोगि भविष्यति।

सन्दर्भ :

1. अन्नमभट्ट, तर्कसंग्रह, चौखम्बा संस्कृत संस्थान, वाराणसी, 2014, प्रथम संस्करण
2. आचार्य शङ्कर भाष्यार्थ, ईशादि यौ उपनिषद्, गीताप्रेस, गोरखपुर, संवत् 2068
3. आचार्य शङ्कर, विवेक चूडामणि, रणधीर प्रकाशन, दिल्ली, 2019, राजा आफसेट प्रिण्टर्स दिल्ली
4. ईश्वरकृष्णविरचिता, सांख्यकारिका, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2013
5. 108 उपनिषद्, युग निर्माण योजना विस्तार ट्रस्ट, मथुरा, 2016, मुद्रक- युग निर्माण योजना प्रेस, मथुरा.
6. पाठक पी.डी., शिक्षामनोविज्ञान, अग्रवाल पब्लिकेशन्स, आगरा, मुद्रक – आर्यन प्रिण्टर्स
7. मिश्र, केशव, तर्कभाषाः, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015, पुनः मुद्रित संस्करण
8. विद्यारण्यमुनि, पञ्चदशी, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, वाराणसी, 2017, पुनःमुद्रित, संस्करण
9. शाङ्करभाष्यम्, ब्रह्मसूत्र, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2017
10. श्रीमद्भगवद्गीताः, गीताप्रेस, गोरखपुर, 158 संस्करण
11. सदानन्द, वेदान्सारः, चौखम्बा विद्याभवन, 2014,

---

[1] पैंगलोपनिषद् २/४

[2] कठोपनिषद्, २५

[3] वि.चू., १८६

[4] शारीरिकोपनिषद् , १६

[5] सर्वसारोपनिषद्, ५

[6] शाङ्करभाष्य तै. उ., १/व.२/अ.४

[7] प्रत्यक्षखण्डः गुणलक्षण प्रकरणम्, तर्कसंग्रहः, ३३

[8] सांख्यकारिका, २३

[9] श्रीमद्भगवद्गीता, ३०/१८

[10] श्रीमद्भगवद्गीता, ३१/१८

[11] श्रीमद्भगवद्गीता, ३२/१८

[12] पदार्थनिरूपण तर्कभाषा, १६

[13] पंचदशी पंचकोश विवेकप्रकरणम्, ८

[14] वेदान्तसार, १३

[15] कठोपनिषद्, ३/३

[16] कठोपनिषद्, १/३/६

***

बी.एड. स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक-आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन

*डॉ. रमेन्द्र तिवारी**

*प्रस्तुत अध्ययन **बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन** करना है। विद्यार्थियों, छात्रों एवं छात्राओं को अलग–अलग उद्देश्यों के आधार पर अध्ययन किया गया है। शोध समस्या की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अध्ययनकर्ता ने वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसंबंधात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है। जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जिले के बी0एड0 के छात्राध्यापकों को लिया जायेगा, जो कि विषमजातीय सीमित वास्तविक जनसंख्या है। वर्तमान शोध हेतु न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जिले के 4 बी0एड0 संस्थाओं का चयन यादृच्छिक विधि से करने के पश्चात् वहाँ अध्ययनरत् बी0एड0 के 200 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श हेतु यादृच्छिक न्यादर्शन विधि से किया गया है। बी0एड0 छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि के मापन हेतु प्रोफेसर के0एस0 मिश्र द्वारा निर्मित ''संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण–छात्राध्यापक प्रारूप'' (TEI) तथा सामाजिक–आर्थिक स्तर मापनी का निर्माण एवं प्रमापीकरण डॉ0 वी0के0 सिंह, एस0 शर्मा तथा एस0 सुमन द्वारा किया गया है। प्रदत्तों के संकलन एवं परिगणन के पश्चात् निर्मित की गयी शून्य–परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध तकनीक का उपयोग किया गया है। अध्ययन के निष्कर्ष में पाया कि बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों, छात्रों एवं छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध नहीं है।*

की–वर्ड– बी0एड0, विद्यार्थी, छात्र, छात्राएँ, संवेगात्मक बुद्धि, सामाजिक–आर्थिक स्तर, सहसंबंध

प्रस्तावना–

शिक्षा वर्तमान समय के वैश्वीकरण के दौर में राष्ट्रीय विकास का मुख्य सूचक है। परिवर्तनशील वैश्विक समाज की माँग को पूरा करने के लिए गुणवत्तापूर्ण शिक्षा की आवश्यकता प्रतीत होती है। वर्तमान समय में मात्रात्मक शिक्षा व्यवस्था, गुणात्मक शिक्षा व्यवस्था का स्थान ले रही है तथा शिक्षा की गुणात्मकता शिक्षकों की गुणात्मकता पर निर्भर करती है। **राष्ट्रीय अध्यापक– शिक्षा परिषद अधिनियम–2014** के व्यवहार में आने के पश्चात् सेवापूर्व अध्यापक–शिक्षा की अवधि दो वर्ष कर दी गयी है जिसके अन्तर्गत भावी शिक्षकों को प्रशिक्षण अवधि के दौरान अनिवार्य प्रश्न पत्र, दो शिक्षण विषयों तथा उससे सम्बन्धित विषय वस्तु का ज्ञान, अभ्यास शिक्षण, दत्त कार्य एवं प्रायोगिक कार्य को सम्पादित करना होता है। उपर्युक्त अकादमिक कार्य अच्छे एवं प्रभावशाली ढंग से तभी सम्भव हो पायेगा जब भावी अध्यापक परिवार, समाज तथा विद्यालय में सामाजिक एवं संवेगात्मक ढंग से पूरी तरह समायोजित हों तथा सामाजिक–संवेगात्मक अधिगम कौशलों को स्वयं में विकसित कर लें। इलियॉज (2006) ने सामाजिक–संवेगात्मक अधिगम के लिए भावी अध्यापकों में भावनाओं की पहचान करना, उत्तरदायी होना, सबलताओं को पहचानना, संवेगों का प्रबन्धन करना, परानुभूति का प्रदर्शन करना, प्रभावी संप्रेषण करना इत्यादि कौशलों के निर्माण को महत्त्वपूर्ण माना है।

आज का विद्यार्थी कल का निर्माता है। वर्तमान में जैसा देखने में आ रहा है कि सरकार द्वारा उच्च शिक्षा को रोजगार परक बनाने की पूरी कोशिश की जा रही है। लेकिन भू–मण्डलीयकरण के इस दौर में जब तक गुणवत्तायुक्त शिक्षा नहीं दी जायेगी तब तक छात्र एवं छात्राओं के भविष्य को सुदृढ़ नहीं किया जा सकता है। यद्यपि सरकारी एवं गैर सरकारी प्रयासों के द्वारा लोगों को शिक्षा तो दी जा रही है, परन्तु शिक्षा अब व्यवसाय का रूप लेकर अपनी गुणवत्ता को खो चुकी है। अतः सरकार को उपाधि शिक्षा प्रसार के स्थान पर गुणवत्तायुक्त शिक्षा देने के लिए प्रशासनिक स्तर पर प्रयास करने

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, शिक्षक-शिक्षा विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय) प्रयागराज (उ.प्र.)

होगें जिससे उच्च शिक्षा प्राप्त करने के बाद व्यक्ति एक सुरक्षित भविष्य पा सके तथा तनाव मुक्त एवं मानसिक रूप से स्वस्थ्य रहकर देश तथा स्वयं का विकास कर सके।

विद्यार्थियों के संवेगात्मक बुद्धि को विकसित करने के चार आयाम– अभिभावकीय प्रतिक्रिया, अभिभावकीय सकारात्मक दृष्टिकोण, अभिभावकीय नकारात्मक दृष्टिकोण और अभिभावकीय संवेग आधारित परवरिश की भूमिका काफी महत्त्वपूर्ण है। परिवार के संवेगात्मक वातावरण का विद्यार्थियों से सार्थक रूप से जुड़ाव है। स्पष्ट रूप से हम पाते है कि परिवार की संवेगात्मक बुद्धि, खुशी एवं प्रेरणा विद्यार्थियों में अहम् भूमिका निभाते है।

अतः अध्ययनकर्ता द्वारा वर्तमान स्थिति एवं परिस्थिति को देखते हुए बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करने का प्रयास किया गया है।

समस्या कथन

बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित उद्देश्यों का अध्ययन किया गया है–

1. बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
2. बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन करना।
3. बी0एड0 स्तर के छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक– आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन करना।

शोध की परिकल्पनाएँ–

प्रस्तुत अध्ययन में निम्नलिखित शून्य परिकल्पनाओं का परीक्षण किया गया है–

1. बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक –आर्थिक स्तर में सम्बन्ध नहीं है।
2. बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर में सम्बन्ध नहीं है।
3. बी0एड0 स्तर के छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक –आर्थिक स्तर में सम्बन्ध नहीं है।

शोध विधि

शोध समस्या की प्रकृति को ध्यान में रखते हुए अध्ययनकर्ता ने वर्णनात्मक अनुसंधान के अन्तर्गत सहसंबंधात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

जनसंख्या–

जनसंख्या के रूप में प्रयागराज जिले के बी0एड0 के छात्राध्यापकों को लिया जायेगा, जो कि विषमजातीय सीमित वास्तविक जनसंख्या है।

न्यादर्श–

वर्तमान शोध हेतु न्यादर्श के रूप में उत्तर प्रदेश के प्रयागराज जिले के 4 बी0एड0 संस्थाओं का चयन यादृच्छिक विधि से करने के पश्चात् वहाँ अध्ययनरत् बी0एड0 के 200 विद्यार्थियों का चयन न्यादर्श हेतु यादृच्छिक न्यादर्शन विधि से किया गया है।

प्रयुक्त उपकरण

बी0एड0 छात्राध्यापकों की संवेगात्मक बुद्धि के मापन हेतु प्रोफेसर के0एस0 मिश्र द्वारा निर्मित ''संवेगात्मक बुद्धि परीक्षण–छात्राध्यापक प्रारूप'' (TEI) तथा सामाजिक–आर्थिक स्तर मापनी का निर्माण एवं प्रमापीकरण डॉ0 वी0के0 सिंह, एस0 शर्मा तथा एस0 सुमन द्वारा किया गया है।

प्रयुक्त सांख्यिकीय तकनीक

प्रदत्तों के संकलन एवं परिगणन के पश्चात् निर्मित की गयी शून्य–परिकल्पनाओं के परीक्षण के लिए गुणनफल आघूर्ण सहसम्बन्ध तकनीक का उपयोग किया गया है।

परिकल्पनाओं का परीक्षण–

1. बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक– आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

सारणी संख्या–1

बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के के मध्य सहसम्बन्ध

क्र0सं0	सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं संवेगात्मक बुद्धि	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=200)
1	विद्यार्थी	0.015

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान .015 है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से सम्बन्धित नहीं है। अर्थात् बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों के सामाजिक–आर्थिक स्तर में कमी या वृद्धि का उनके संवेगात्मक बुद्धि में कमी या वृद्धि से सम्बन्ध नहीं है। अतः परिणामतः कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव नहीं है।

2. बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

सारणी संख्या–2

बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के के मध्य सहसम्बन्ध

क्र0सं0	सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं संवेगात्मक बुद्धि	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=100)
1	छात्र	0.011

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी संख्या 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान .011 है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं है। अतः यह कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से सम्बन्धित नहीं है। अर्थात् बी0एड0 स्तर के छात्रों के सामाजिक–आर्थिक स्तर में कमी या वृद्धि का उनके संवेगात्मक बुद्धि में कमी या वृद्धि से सम्बन्ध नहीं है। अतः परिणामतः कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव नहीं है।

3. बी0एड0 स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन

सारणी संख्या–3

बी0एड0 स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के के मध्य सहसम्बन्ध

क्र0सं0	सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं संवेगात्मक बुद्धि	सहसम्बन्ध गुणांक r (N=100)
1	छात्राएँ	0.017

*.05 स्तर पर असार्थक

सारणी संख्या 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि बी0एड0 स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सहसम्बन्ध गुणांक का मान .017 है जो .05 स्तर पर सार्थक नहीं

है। अतः यह कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर से सम्बन्धित नहीं है। अर्थात् बी0एड0 स्तर की छात्राओं के सामाजिक–आर्थिक स्तर में कमी या वृद्धि का उनके संवेगात्मक बुद्धि में कमी या वृद्धि से सम्बन्ध नहीं है। अतः परिणामतः कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर का प्रभाव नहीं है।

निष्कर्ष–

प्रस्तुत लघु शोध प्रबन्ध में निम्नलिखित उद्देश्यों के विश्लेषणोपरान्त निम्नलिखित निष्कर्ष प्राप्त हुये–

- **बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–**

निष्कर्ष– बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध नहीं है अतः निष्कर्ष कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके संवेगात्मक बुद्धि पर प्रभाव नहीं है।

- **बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–**

निष्कर्ष– बी0एड0 स्तर के छात्रों की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध नहीं है अतः निष्कर्ष कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर के छात्रों की सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके संवेगात्मक बुद्धि पर प्रभाव नहीं है।

- **बी0एड0 स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि पर सामाजिक–आर्थिक स्तर के प्रभाव का अध्ययन–**

निष्कर्ष– बी0एड0 स्तर की छात्राओं की संवेगात्मक बुद्धि एवं सामाजिक–आर्थिक स्तर के मध्य सम्बन्ध नहीं है अतः निष्कर्ष कहा जा सकता है कि बी0एड0 स्तर की छात्राओं की सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके संवेगात्मक बुद्धि पर प्रभाव नहीं है।

सुझाव–

संवेगात्मक बुद्धि के उचित पोषण हेतु शिक्षक–प्रशिक्षकों को ऐसे मॉडल प्रस्तुत करने चाहिए जिसका छात्राध्यापक अनुसरण कर सकें और अपने संवेगात्मक चातुर्य को बढ़ा सकें। चूँकि शिक्षकों में संवेगात्मक बुद्धि का विकास व्यक्तिगत एवं सामाजिक दोनों ही दृष्टि से बहुत ही उपयोगी है अतः भावी शिक्षकों को स्वयं के एवं दूसरों के संवेगों को जानने समझने तथा उनका उचित प्रबन्धन करने का ऐसा प्रशिक्षण दिया जाना चाहिए कि वे अन्तःसम्बन्धों को बनाये रखकर अपने शैक्षिक वातावरण के साथ समायोजन करने में कुशल एवं प्रवीण सिद्ध हो सकें।

सन्दर्भ :

- आरौपैल्ली, आर0 एवं पैसरागोण्डा, एस0 (2015). ए केस स्टडी ऑफ इमोशनल इन्टेलिजेन्स एमंग टीचर्स ऑफ वारंगल डिस्ट्रिक्ट इन तेलंगाना स्टेट। *आई0जे0ए0आर0आई0आई0ई0,* 2(3), पृ0 (4002–4010)।
- अस्थाना, विपिन (2001). मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ।
- अग्रवाल, जे.सी. (2006). शैक्षिक तकनीकी एवं प्रबन्ध, विकास पब्लिशिंग हाउस प्रा.लि., नई दिल्ली।
- इशाक, एन0, जदैतवी, एम0टी0 ऐण्ड इब्राहिम, वाई0एस0 (2011). माडरेटिंग इफेक्ट ऑफ जेण्डर ऐण्ड एज ऑन द रिलेशनशिप बिटवीन इमोशनल इंटेलिजेन्स ऐण्ड सोशल ऐण्ड एकेडमिक ऐडजेस्टमेण्ट एमंग फर्स्ट ईयर यूनिवर्सिटी स्टूडेन्ट्स। *इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ साइकोलॉजिकल स्टडीज,* 3(1)।

- कर, डी0, साहा, बी0 एवं मण्डल, बी0सी0 (2016). इमोशनल इंटेलिजेन्स ऐण्ड ऐडजेस्टमेण्ट एबिलिटी एमंग हायर सेकेण्ड्री स्कूल स्टूडेन्ट्स : ए कोरिलेशनल स्टडी। *अमेरिकन जर्नल ऑफ सोशल साइन्सेज,* 4(4), पृ0 (34–37)।
- काउट्स, ए0 एवं सरोज, आर0 (2010). स्टडी ऑफ टीचर इफेक्टिवनेस ऐण्ड आक्यूपेशनल स्ट्रेस इन रिलेशन टू इमोशनल इंटेलिजेन्स एमंग टीचर्स ऐट सेकेण्ड्री स्टेज। *जर्नल ऑफ हिस्ट्री ऐण्ड सोशल साइंसेज,* 1(1)।
- प्रकाश, अरून एवं विमल, कृष्ण (2016). ए जेण्डर बेस स्टडी ऑफ इमोशनल इंटेलिजेन्स ऑफ शिड्यूल कॉस्ट स्टूडेन्ट्स. इन्टरनेशनल जर्नल ऑफ सोशल साइंस ऑफ इन्टरडिस्पिलिनरी रिर्सच. 5(2). 113–121
- महमोण्डी, ए0 (2011). इमोशनल इंटेलिजेन्स एमंग बी0एड0 टीचर–ट्रेनीज। *इण्टरनेशनल जर्नल ऑन ह्यूमैनिटीज, सोसायटी ऐण्ड कल्चर,* 20, पृ0 (302–305)।
- मौसबी, एच0एस0 एट आल (2012). ए केस स्टडी ऑफ इमोशनल इन्टेलिजेन्स एमंग टीचर्स ऑफ वारंगल डिस्ट्रिक्ट इन तेलंगाना स्टेट। आई0जे0ए0आर0आई0आई0ई0, 2(3), पृ0 (4002–4010)।

***

पं. दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक एवं आर्थिक चिन्तन का अनुशीलन

*विजय लक्ष्मी गुप्ता**
*डॉ. रीता सिंह***

भूमिका :

संस्कृति जीवन की विधि है। संस्कृति किसी समाज में गहराई तक व्याप्त गुणों के समग्र स्वरूप का नाम है, जो उस समाज के सोचने, विचारने कार्य करने के स्वरूप में अर्न्तनिर्हित होता है, भारतीय संस्कृति को देव संस्कृति कहा जाता है, इसमें मनुश्य को आदर्श निश्ठा बनाये रखने के लिए हर स्तर पर प्रखर दर्शन और विवेक संगत परम्पराओं का ऐसा क्रम बनाया गया है कि मनुश्य सहज रूप में ही प्रगति तथा समृद्धि का अधिकारी बन सके। भारतीय संस्कृति में प्रत्येक सिद्धान्त आदर्श एवं विधि–विधान की रचना इस दृश्टि से की गयी कि रचना इस दृश्टि से की गयी कि उनका प्रभाव जन मानस को ऊँचा उठाने एवं परिश्कृत बनाने के लिए उपयोगी सिद्ध हो सके। हमारी संस्कृति प्राचीन, सनातन तथा मृत्यंजय है। सहिश्णुता विशालता उदारता प्रेम और सहिश्णुता की दृश्टि से अन्य संस्कृतियों की अपेक्षा अग्रणी स्थान रखती है।

कभी–कभी धरती के जनमानस को नई दिशा देने और युग–परिवर्तन के ईश्वरीय कार्य को सम्पन्न करने के लिए युग पुरूशों का जन्म होता है, ऐसे ही प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वामी विवेकानन्द और महर्शि अरविन्द की गौरवशाली भारतीय परम्परा को आगे बढ़ाने वाले प्रखर राश्ट्रभक्ति की अलख जलाने वाले बहुमुखी प्रतिभा के धनी 'एकात्म मानववाद' के प्रणेता महामानव पं0 दीनदयाल जी का जन्म 25 सितम्बर 1916 विक्रम संवत, 1973 शालिवाहन शक 1938 भाद्र अश्विन कृश्णा 13 सोमवार को आज सारा विश्व सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक और आर्थिक समस्याओं के दुश्परिणामों से ग्रसित है। विज्ञान और तकनीकी ने मानव–जीवन को उन्नत बनाने का प्रयास किया है परन्तु समस्याओं से सुलझने की बजाय मानव–जीवन समस्याओं से जूझ रहा है। इन समस्याओं से उबरने के लिए सभी राश्ट्र, प्रान्त–प्रदेश, स्वैच्छिक संगठन तथा संयुक्त राश्ट्र संघ अपनी–अपनी दिशा में सक्रिय होकर कार्य कर रहे हैं। ऐसी परिस्थितियों में पं0 दीनदयाल उपाध्याय की एकात्म–मानववादी विचारधारा जो भारतीय और भारत बाह्य सभी चिन्तनधाराओं का सम्यक आकलन करके चलता है, उनकी शक्ति दुबलताओं को भी परखता है और एक ऐसा मार्ग प्रशस्त करता है जो मानव की अब तक के उसके चिन्तन अनुभव और उपलब्धि की मंजिल से आगे बढ़ा सके। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी भारतीय संस्कृति में जुड़ी एकरूपता के साथ–साथ व्यक्ति या जनसंख्या को व्यक्ति की आवश्यकताओं को तथा आवश्यकताओं की पूर्ति से सम्बन्धित संसाधनों को और उससे जुड़ी समस्याओं को देखते हुए जो दर्शन प्रस्तुत किया है उनका वह दर्शन एकात्म मानववाद कहलाया। भारतीय संस्कृति और अर्थनीति के बारे में दिये गये चिन्तन एवं विचारों को प्रस्तुत अध्ययन में उनके दर्शन के रूप में लिया गया है। दीनदयाल जी ने अपने आर्थिक चिन्तन में अर्थव्यवस्था के विभिन्न पहलुओं को समाहित करके भारतीय अर्थनीति की भावी दिशा और दशा की रूपरेखा तैयार की है।

अध्ययन के उद्देश्य–

1. पं0 दीनदयाल उपाध्याय के सांस्कृतिक एवं आर्थिक चिन्तन से सम्बन्धित विभिन्न पक्षों का अध्ययन करना।
2. भारतीय संस्कृति पर आधारित आर्थिक पक्षों पर पं0 दीनदयाल उपाध्याय के विचारों का अनुशीलन करना।

---

*

पं0 दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार भारतीय संस्कृति की संकल्पना :

भारतीय संस्कृति भारतीय समाज की गहराई में व्याप्त गुणों का एक ऐसा समग्र स्वरूप है जो भारतीयों के सोचने–समझने तथा करने के रूप में विराजमान है। मनुश्य स्वभाव से एक प्रगतिशील प्राणी है मानव अपनी बौद्धिकता का प्रयोग करके अपनी प्राकृतिक परिस्थितियों को निरन्तर सुधारता है और उसे उन्नत बनाता है। भारतीय जीवन की प्रत्येक जीवन पद्धति जैसे– रीति–रिवाज, रहन–सहन, आचार–विचार तथा नये–नये आविश्कार जो मनुश्य के प्रगति का सूचक है। मनुश्य अपना जीवन शरीर, मन और आत्मा के साथ व्यतीत करता है। भौतिक सुख प्रगति का सूचक है पर ये आवश्यकताओं की पूर्ति करता है, जबकि संस्कृति मानसिक क्षेत्र की प्रगति का सूचक है। मन और आत्मा की तृप्ति के लिए मनुश्य जिस रूप में अपना विकास और उन्नति करता है वही हमारी संस्कृति है। भारतीय संस्कृति में अमूर्तता तथा अभौतिकता का भाव व्याप्त है, जो हमें समाज व परिवार का सदस्य होने के रूप में प्राप्त होता है। आचार और विचार का बहुत ही घनिश्ठ सम्बन्ध है, व्यक्ति जिन परिस्थितियों में रहता है उसी परिस्थिति के वातावरण में रहकर वह अनेक कार्य करता है जिससे मनुश्य के विचार और मनोभाव भी उसकी परिस्थितियों के अनुकूल बन जाता है। रहन–सहन, रीति–रिवाज, भेश–भूशा, भाव–विचार व्यवहार तथा एक पारम्परिक परिस्थितियों के साथ एक इतिहास और उसका दर्शन होता है। अतः हम कह सकते हैं कि ऋशि प्रणीत दर्शन के अनुसार मनःस्थिति रखनी है तो हमें व्यवहार में भी उन्हीं परम्पराओं को ध्यान में रखना होगा जो जीवन रूपी मार्ग में सहायक होने के साथ–साथ अति आवश्यक भी है। उच्च अन्तः मनोभूमि के अनुकूल जीवन की पद्धति ही भारतीय संस्कृति है।

मानव के नैतिक जीवन का निर्माण स्वतः नहीं होता है, एक विशेष परिश्कार के माध्यम से ही मनुश्य जीवन में नैतिकता के गुण समाहित होते हैं, मानव को मानव बनाने का परिश्कार संस्कार का है और उसे संस्कारित करने की जो क्रिया पद्धति है वह है हमारी भारतीय संस्कृति। भारतीय संस्कृति का उद्देश्य मानव जीवन में नैतिकता का निर्माण कर राश्ट्रीयता को सुदृढ़ बनाना है, नैतिकता के द्वारा मानव–जीवन में स्वभावतः प्रेम, सहअस्तित्व, संहिश्णुता तथा शान्ति–भाव का निर्माण करना है, जिससे सम्पूर्ण मानव जाति को संगठित किया जा सके।

भारतीय संस्कृति ने प्राचीन काल में ही देश के कोने–कोने में आदर्शवादिता के शुभ प्रकाश से देश को प्रकाशित किया है और अनेक मानव–रत्नों को जन्म दिया है जिन्होंने सुख–शान्ति की स्वर्णिम परिस्थितियों को फिर से देश में लाने के लिए अथवा प्रयास किया हैः– जिससे सांस्कृतिक पुनरूत्थान हो सके जा हमारे राष्ट्र के लिए अत्यन्त आवश्यक है।

देश की सांस्कृतिक पुनरूत्थान के लिए कई महापुरूशों ने जन्म लिया और अपना सम्पूर्ण जीवन राश्ट्र के नाम समर्पित कर दिया, उन्हीं महापुरूशों ने जन्म लिया और अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र के नाम समर्पि कर दिया, उन्हीं महापुरूशों में पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी का नाम भी शामिल है।

पं. दीनदयाल उपाध्याय जी द्वारा दिया गया एकात्म मानव दर्शन भारतीय संस्कृति का ही मौलिक चित्रण है, भारतीय संस्कृति सम्पूर्ण सृश्टि का समन्वित विचार धारा है। संस्कृति भारत देश की आत्मा है और सदैव गतिशील रहती है। इसकी सार्थकता तभी है जब देश की जनता को उसकी आत्मानुभूति हो। आज भारत वर्श अनेक समस्याओं से जूझ रहा है वर्शों की गुलामी से मुक्ति पाने के बाद हमारी प्राथमिकता आर्थिक, सामाजिक, आध्यात्मिक तथा सांस्कृतिक स्वतन्त्रता होनी चाहिए, परन्तु हमारी दुर्भाग्य रहा है कि भारतवासियों को इसकी आत्मानुभूति नहीं हो सका। हमारे स्वतन्त्र जीवन की सार्थकता हमारे अपने देश की संस्कृति को आत्मसात् करने से है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के अनुसार भारतीय संस्कृति किसी काल विशेष अथवा व्यक्ति विशेष के बन्धन से मुक्त स्वतन्त्र एवं विकासशील जीवन की मूल प्रवृत्ति है, इस संस्कृति को ही हमारे देश में धर्म कहा गया है, जिसका अर्थ रिलीजन, मत या कोई मजहब नहीं है, बल्कि भारतीय संस्कृति है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने सांस्कृतिक राष्ट्रवाद पर जोर दिया और कहा है कि संस्कृति–प्रधान जीवन की विशेशता है कि जीवन के मौलिक तत्वों पर जोर दिया जाये और व्यक्ति की स्वतन्त्रता इस प्रकार हो कि उसके प्रत्येक क्षेत्र

का विकास हो सके। दीनदयाल उपाध्याय जी ने भारतीय संस्कृति में निहित मानव शरीर, मानव मन, मानव की बुद्धि तथा मानव की आत्मा इन चारों के पुश्ट होने से ही मानव जीवन समग्र के विकास और मानव की समग्रता के विकास से ही राश्ट्र के विकास की परिकल्पना की है। प्रत्येक मनुश्य अपने सर्वांगीण विकास हेतु अपने शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों की चिंता करता है, मानव का यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है। मानव की इस प्रवृत्ति को ही दीनदयाल जी ने एकात्म मानववाद की संज्ञा देते हुए इसे राश्ट्रीय परिप्रेक्ष्य में प्रतिपादित किया कि राश्ट्र का स्वाभाविक प्रवृत्ति हो उसकी संस्कृति है। कन्याकुमारी से लेकर कश्मीर तक बोले जाने वाली बोली–भाशा, खान–पाल, रहन–सहन एवं वेशभूशा सब अनेक रूपों में दिखाई देने के बाद भी भारत की आत्मा एक है। जिस प्रकार मानव शरीर के संचालन व निर्माण में प्रत्येक अंग का योगदान है, ठीक उसी प्रकार देश के निर्माण व संचालन में विभिन्न क्षेत्रों व प्रान्तों का योगदान होना आवश्यक है। हमें स्वहित को त्यागक राश्ट्रहित की चिन्ता करनी है जो हमारी मूल संस्कृति है। विश्व को यदि हम कुछ दे सकते हैं तो वह है– हमारी संस्कृति जिसमें सत्य शिवम और सुन्दरम की भावना व्याप्त है जो विशाल एकात्मता को प्रकट करती है।

भारतीय अर्थनीति पर पं0 दीनदयाल उपाध्याय का चिन्तन :

भारत के सर्वांगीण विकास की संभावनाओं को खोजती विचारधारा को पं0 दीनदयाल उपाध्याय द्वारा लिखित पुस्तक 'भारती, अर्थनीतिः विकास की एक दिशा' में भारतीय अर्थव्यवस्था पर भारतीय संस्कृति की विभिन्नताओं को देखते हुए अर्थशास्त्र के विभिन्न बिन्दुओं पर विचार किया गया हैः–

हमारे दैनिक जीवन में धन (अर्थ) जो महत्व है उसे नकारा नहीं जा सकता है, परन्तु अर्थ के प्रति प्रेम तथा जीवन के प्रति आसक्ति को कम करना एक विचारणीय आवश्यकता है। दीनदयाल जी का भारतीय अर्थव्यवस्था के विकास के लिए अर्थ (धन) का प्रभाव अभाव दोनों ही हानिकारक है प्रभाव व अभाव को मिटाकर समुचित व्यवस्था को ही दीनदयाल जी ने 'अर्थायाम' कहा है। दीनदयाल जी का मानना था कि समाज के मानदण्डों को इस प्रकार निर्धारित किया जाये कि वस्तु का मोल पैसा ही न हो, मूल्यों से उसके मोल को मापा जाये। समाज की सेवा, देश के प्रति राश्ट्रप्रेम देश के लिए जान की बाजी लगा देना, असहाय की सहायता करना, स्त्री के सतीत्व, अध्यापक के विद्यादान इत्यादि का अपना मूल्य है और इसे पैसे से नहीं खरीदा या बेचा जा सकता है। पैसे–रूपये से मूल्यों को आकना असंभव है क्योंकि उनका मोल नहीं होता है।

किसी भी देश का उत्थान वहाँ के मानवीय और प्राकृतिक संसाधनों के उचित प्रयोग से ही सम्भव है। सैकड़ों वर्श तक भारत पराधीनता की जंजीरों में जकड़ा रहा, भारतवर्श में शासन करने वालों ने भारत के संसाधनों का अमानवीय रूप से दोहन किया, जिसके परिणामस्वरूप स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद भी हमारा विकास संभव न हो सका, जिसका मुख्य कारण है भरतीय संस्कृति की अवहेलना। पर्याप्त संसाधनों की उपलब्धता के बाद भी हमारे भारतवर्श पर शासन करने वालों ने विकासोन्मुख भारतीय अर्थनीति की दिशा की ओर संकेत तो किया परन्तु भारत के विकास की शक्तियों का प्रार्दुभाव करते हुए उन्हें गति देने का योजनापूर्वक प्रयास नहीं किया। लम्बे अर्से की पराधीनता के कारण परागति की ओर मुड़ने वाली अर्थव्यवस्था को प्रगति की दिशा में बदलने के लिए हमें अपनी परिस्थितियों के अनुसार अपने दायित्व का निर्वहन करने के लिए योजना एवं नीतियों को निर्धारित करने की आवश्यकता है, क्योंकि हमारे देश की अर्थव्यवस्था में शिथिलता आ चुका है और स्वतःसामर्थ्य सुधार का सामर्थ्य नहीं रहा।

जिस प्रकार से भारतीय संस्कृति में मनुश्य के सर्वांगीण विकास के लिए उसके शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा इन चारों का विकास आवश्यक माना गया है, ठीक उसी प्रकार से किसी देश की अर्थव्यवस्था के विकास में भी पारिवारिक, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक मूल्यों के विकास को आवश्यक माना गया है। एक नियोजित प्रक्रिया को ध्यान में रखते हुए भारतीय अर्थनीति के अन्तर्गत सभी पहलुओं पर ध्यान देते हुए0 पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी ने अपने आर्थिक चिन्तन के रूप में 'एकात्म मानव दर्शन' को राश्ट्र के समक्ष प्रस्तुत किया जो सैद्धान्तिक व व्यावहारिक दोनों ही दृश्टि से एक सार्वकालिक एवं सार्वभौमिक दर्शन है यह दर्शन विश्वगुरू भारत की वैदिक संस्कृति के विज्ञान

समस्त जीवन सूत्रों पर आधारित मौलिक चिन्तन है जो समस्त वैयक्तिक, राश्ट्रीय एवं वैश्विक जटिलताओं के सार्थ एवं सकारात्मक समाधान हेतु व्यावहारिक नीतियों हेतु मार्ग दर्शन करता है।

धर्मस्य मूलमर्थ :

युगो–युगो से धन की भूमिका और महत्व को हम स्वीकारते आये है धन के बिना धर्म की रक्षा नहीं हो सकती है। महर्शि चाणक्य ने कहा हैः– सुखस्य मूल धर्मः। धर्मस्य मूलमर्थः। अर्थ के अभाव में धर्म नहीं टिकता। अर्थ या धन के अभाव में कोई आपूर्ति रहे तो हम वहाँ धर्म की रक्षा नहीं कर सकते और इसके लिए हमें धर्म से हटकर किसी भी प्रकार का कार्य करना पड़ता है तो वह कार्य हमारा आपद् धर्म का निर्वाह है, परन्तु जिस समाज में धन का अभाव है तो वहाँ धर्म का भी होगा और ऐसी परिस्थिति में समाज नश्ट हो जायेगा। अतः दीनदयाल जी की अर्थनीति में धन के अभाव व प्रभाव के बिच सामंजस्यता स्थापित करना है। विश्वामित्र भूख से पीड़ित होकर रात्रि के समय एक चाण्डाल के घर से कुत्ते का जूठा माँस खाया था जो धर्म की अनेक मर्यादाओं का उलंघन है पर आपद्धर्म की संज्ञा देकर शास्त्रकारों ने उनके इस व्यवहार को समुचित ठहराया। अतः भारतीय अर्थव्यवस्था के धर्म और धन दोनों की सामंजस्यता होनी आवश्यक है।

आत्मनिर्भरता :

आत्मनिर्भरता किसी भी राश्ट्र का एक आवश्यक अंग है, लोकतान्त्रिक स्वतन्त्रता उसके अर्थव्यवस्था पर निर्भर होती है और अर्थ व्यवस्था ही देश की स्वतन्त्रता के मानक को तय करती है। दीनदयाल जी ने भारतीय अर्थव्यवस्था के लिए आर्थिक–आत्मनिर्भरता को आवश्यक माना है, यदि हमारी परियोजनाएं अपने कार्यक्रमों की पूर्ति हेतु विदेशी सहायता पर आश्रित रहती हैं तो किसी न किसी रूप में स्वतन्त्र होकर भी परतन्त्र रहेंगे। दूसरे राश्ट्र पर निर्भरता हमारे स्वाभिमान की भावना को नश्ट कर देगी और साथ ही साथ दूसरे राश्ट्रों से सहायता लेने पर हमें अपनी योजनाओं को उनके अनुकूल बनानी होगी जो हमारी सांस्कृतिक मूल्यों के लिए घातक होगा। किसी भी राश्ट्र की आर्थिक सम्पन्नता और राजनीतिक स्वतन्त्रता बनाये रखने के लिए उस देश की सैनिक सामर्थ क्षमता का सुदृढ़ होना आवश्यक है।

उपभोग्य वस्तुओं का आधिक्य :

भारतीय अर्थनीति को दिशा प्रदाान करने के लिए देश में उत्पादन और उपभोग किये जाने वाले वस्तुओं में समन्वय का होना भी आवश्यक है क्योंकि मनुश्य की सभी आर्थिक क्रियाओं का लक्ष्य उपभोग वस्तुओं की प्राप्ति है कम शक्ति लगाकर जितनी अधिक मात्रा में इन्हें प्राप्त किया जाये उतना ही अच्छा है, आवश्यकता से अधिक वस्तुओं के उत्पादन से मानव सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती है। किसी भी प्रकार से श्रम व शक्ति का शोषण नहीं होना चाहिए।

औद्योगीकरण और कृशि व्यवस्था :

भारत एक कृशि प्रधान राश्ट्र है, इस दृश्टि से यह अत्यन्त आवश्यक है कि कृशि और औद्योगीकरण के मध्य इस प्रकार की सामंजस्यता स्थापित हो जिससे किसानों की दशा में सुधार लाया जा सके। उद्योगों के लिए कच्चे माल की पूर्ति और कच्चे माल की पूर्ति करने में लगे व्यक्तियों को अन्न आवश्यकता होती है अतः अर्थव्यवस्था के अर्न्तगत इस प्रकार की परियोजनाओं को शामिल किया जाए जो कृशि और उद्योगों दोनों को एक नयी दिशा प्रदान करें।

भारतीय अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत किसानों के फसलों का मूल्य–निर्धारण एक बड़ी समस्या है देश के अन्नदाता को उसके परिश्रम का उचित मूल्य नहीं मिलता है, भारतीय अर्थनीति में सुदृढ़ता लाने के लिए आवश्यक है कि ऐसी व्यवस्थाएं की जाये जिससे किसानों के हित में मूल्यों को नियन्त्रित किया जा सके जिसका सीधा प्रतिफल किसानों को प्राप्त हो न कि मध्यस्थों को। कृशि प्रधान राश्ट्र भारत वर्श में जब तक कृशि पद्धति में सुधारात्मक स्थिति नहीं आयेगी तब तक देश की अर्थनीति को सही दिशा नहीं मिल पायेगा। आज तकनीकी विकास का दौर है परन्तु भारतीय खेतों के लिए परम्परागत कृशि पद्धति की सेवन की अपेक्षा परम्परागत पद्धति का प्रयोग जैसे फसलों का

अदला–बदली, वृक्ष लगाना, भूक्षरण रोकने हेतु मेंड़ बाँधना हरी खाद का प्रयोग करना इत्यादि जिससे भूमि की उर्वरता को बनाये रखा जा सके।

इस प्रकार दीनदयाल उपाध्याय जी ने देश की अर्थनीति में औद्योगिकीकरण की प्रक्रिया या विकास पर भी बल दिया है। कृशि के विकास के साथ–साथ भारत का औद्योगिकरण का विकास इस प्रकार से किया जाये जिससे हम किसी अन्य देशों पर आश्रित न रहें अपने देश में इस प्रकार का औद्योगिकरण हो जिससे अन्तर्राश्ट्रीय बाजार में हम उत्तम वस्तुओं का व्यापार भी कर सके और हमारे देश के नागरिकों को भी अभाव ग्रस्तता न झेलनी पड़े। भारतीय अर्थनीति को ध्यान में रखते हुए दीनदयाल जी का यह मानना है उद्योग धन्धों का विकास देश के विकास का मार्ग प्राप्त करता है। उद्योग धन्धों का विकास देश की गरीबी–उन्मूलन बहुत ही सहायक सिद्ध हो सकती है। अर्थव्यवस्था को पूँजीकरण भी प्रक्रिया से जोड़ते हुए दीनदयाल जी का मानना है कि भावी उत्पादन के लिए स्वयं से बचाये गये पूँजी का विनियोग करना आवश्यक है और इसके लिए उद्योग–धन्धों के व्यापक प्रसार–प्रचार, ऋण की उपलब्धि पर विशेष ध्यान देना आवश्यक है।

किसी भी देश की अर्थव्यवस्था की सुदृढ़ता के लिए विदेशी पूँजी के महत्व को नकारा नहीं जा सकता है, दीनदयाल जी का दृश्टिकोण है कि विदेशी पूँजी का प्रयोग हम विदेशों में ही कर सकते हैं हम भारी मात्रा में बाहर से विदेशी पूँजी मँगाते हैं, यदि इसके राजनीतिक पहलू को छोड़ दिया जाये तो आर्थिक दृश्टि से भी इसकी एक अंश की उपादेयता है। किसी भी देश की अर्थव्यवस्था में छोटे कारखानों का अपना महत्वपूर्ण सथान है देश की समृद्धि के नजर से इन्हें नकारा नहीं जा सकता है। भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करने के लिए दीनदयाल जी ने कहा कि ''यद्यपि हम सामन्य रूप से इन छोटे कारखानों को आधार मानकर चलेंगे किन्तु कुछ ऐसी वस्तुएँ रहेंगी, जिनका उत्पादन केवल घर में बैठकर नहीं हो सकता इसके लिए छोटे–छोटे कारखाने स्थापित करने पड़ेंगे। शासकीय दृश्टि से छोटे कारखानों की उन्नति करना चाहिए। भारतीय अर्थ नीति को दृश्टिगत करते हुए दीनदयाल जी ने कहा कि ''छोटे उद्योगों के अनेक गुण एवं बड़ों से होनेवाली बुराईयों के उपरान्त भी कुछ ऐसे क्षेत्र हैं, जहाँ हमें अपरिहार्य रूप से बड़े उद्योगों की स्थापना करनी पड़ेगी, किन्तु इस अपरिहार्यता का विचार सम्पूर्ण पूर्वग्रह एवं पश्चिमी अर्थव्यवस्था की मान्यताओं से मुक्त होकर करना होगा।

निष्कर्ष :

दीनदयाल जी का व्यक्तित्व बहुआयामी है उनसे प्रेरणा ली जा सकती है। आज की युवा पीढ़ी उनके जज्बें से प्रेरणा ले सकता है। युवा–वर्ग को भावी सकारात्मक दिशा मिले। मनुश्य के शरीर, मन, बुद्धि और आत्मा आवश्यकताओं की पूर्ति उसकी विविध कामनाओं इच्छाओं तथा ऐशणाओं की संतुश्टि और उसके सर्वांगीण विकास की दृश्टि से व्यक्ति के सामने कर्तव्य रूप में हमारे यहाँ चतुर्विध पुरूशार्थ की कल्पना की गयी है। भारतीय संस्कृति में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष चार पुरूशार्थ है। पुरूशार्थ का अर्थ उन कार्यों से है जिनसे पुरूशत्व सार्थक हो। पं0 दीनदयाल उपाध्याय जी के सांस्कृतिक एवं आर्थिक चिन्तन को वर्तमान में निम्न रूपों में उपयोगी माना जा सकता हैः–

1. वर्तमान भारतीय संस्कृति तथा अर्थनीति के अन्तर्गत उत्पन्न समस्याओं में दीनदयाल जी के विचारों को उसमें समाहित करके समस्याओं को कम किया जा सकता है।
2. भारतीय अर्थव्यवस्था से सम्बन्धित दीनदयाल उपाध्याय जी के द्वारा लिखित पुस्तक– 'भारतीय अर्थनीतिः विकास की एक दिशा में दिये गये बिन्दुओं पर विचार कर उन्हें भारतीय शासकीय व्यवस्था में लागू किया जा सकता है।
3. सरकार, समाज तथा शैक्षिक संस्थाओं के माध्यम से देश के प्रत्येक नागरिक का जो सबसे छोटे स्तर पर है उसका विकास करना चाहिए। जिससे देश का विकास हो पायेगा।

सन्दर्भ :

1. उपाध्याय, दीनदयाल– 1958 भारतीय अर्थनीति : विकास की एक दिशा, राश्ट्रधर्म प्रकाशन, लखनऊ।
2. लाल, रमन बिहारी– 2014–15 शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. सिंह, अमरजीत–एकात्म मानववाद के प्रणेता दीनदयाल उपाध्याय, प्रकाशक प्रमात पेपर बैक्स 1/19 आसफ अली रोड, नई दिल्ली।
4. राश्ट्र जीवन की दिशा, लोकहित प्रकाश, लखनऊ (1971)
5. राश्ट्र जीवन की समस्या में राश्ट्र धर्म पुस्तक प्रकाशन नई दिल्ली (1968)।
6. कुलकर्णी शरद अनन्त– पं0 दीनदयाल उपाध्याय विचार दर्शन (खण्ड 4) एकात्म अर्थनीति, सुरूचि प्रकाशन नई दिल्ली।
7. शैक्षिक मथन 2015 (पत्रिका)।

***

शारीरिक शिक्षा में यंग मैंन क्रिश्चियन एसोसिएशन (YMCA) का प्रभाव

*रामधारी राम**

शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र को बिना कुशल प्रशिक्षकों के किसी भी प्रकार से विकसित नहीं किया जा सकता, क्योंकि खिलाड़ी सबसे अधिक इसी तथ्य से प्रभावित होता है कि उसे किस प्रकार का प्रशिक्षण प्राप्त होता है। कुशल प्रशिक्षकों को प्रशिक्षित करने के कार्य में महत्वपूर्ण योगदान प्रदान किया। इस संस्था की स्थापना सन् 1920 में मद्रास में की गयी तथा इसके संस्थापक श्री एच0सी0 वक्क इस संस्था में मुख्य रूप से तीन प्रकार के कोर्स आयोजित किए। इसमें सभी को (महिला एवं पुरुष) को दाखिला लेने का अधिकार था। इस संस्था में डिप्लोमा, राजकीय प्रमाण–पत्र, उच्च ग्रेड तथा राजकीय प्रमाण–पत्र निम्न ग्रेड के कोर्सों की व्यवस्था थी। यंग मैंन क्रिश्चियन एसोसिएशन (YMCA) का निर्माण 1841 में लन्दन (इंग्लैण्ड) में एक मालबाबू विलियम ने किया।

क्रिश्चियन शारीरिक शिक्षा कालेज

यह महाविद्यालय लखनऊ (उ.प्र.) में स्थापित किया गया था। इस महाविद्यालय में शारीरिक शिक्षा विभाग को आरम्भ करने का श्रेय अमेरिका के शारीरिक शिक्षा निर्देशक को जाता है। उन्होंने इस विभाग का गठन सन् 1932 में किया था। विभिन्न प्रकार की खेलल क्रियाओं का प्रशिक्षण इस महाविद्यालय में प्रदान किया जाता है तथा यहाँ पर दो प्रकार के कोर्स आयोजित किए गये, क्रमशः डिप्लोमा, डी0पी0एड0 पाठ्यक्रम व सी0पी0एड0 पाठ्यक्रम तथा प्रमाणपत्र। इस संस्था में मुख्य रूप से तैराकी, एथलेटिक्स, कुश्ती तथा बास्केट बॉल जैसी खेलों का प्रशिक्षण्ध प्रदान करने की व्यवस्था आज भी हे। यह उत्तर भारत की सबसे प्राचीन संस्था है।

वाई0एम0सी0ए0 विशेषताएं

ईसाई नवयुवकों में धर्मपरायणता लाने के लिए वाई0एम0सी0ए0 ने नवयुवकों की सभाएं करके 'बाईबल' पढ़ने का कार्यक्रम शुरु किया। इन सभाओं ने बाद में एक संस्था का रूप धारण कर लिया। इंग्लैण्ड में यह संस्था ईसाई धर्म के प्रचार के लिए अमेरिका तथा अन्य अनेक देशों में फैल गई।

वाई0एम0सी0ए0 के कार्यक्रम

जैसे ही इस संस्था ने अमेरिका में पदार्पण किया तो अमेरिका ने इसे संसार में प्रचारित करने का कार्य किया। अमेरिका की आधुनिक शारीरिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए वाई0एम0सी0ए0 तथा वाई डब्ल्यू0सी0ए0 की विशेष देन है। अनुभवों के आधार पर इस संस्था में निम्नलिखित कार्यक्रम रखे गये।

1. नवयुवकों को अहितकारक तथा हानिकारक संगति से बचाने के लिए और उनके चरित्र को अच्छा रखने के लिए कोई विशेष कार्यक्रम दिया जाना चाहिए।
2. नवयुवकों को सही मार्ग दर्शाने के लिए शारीरिक शिक्षा विभाग शुरु किया।
3. सभा स्थानों पर वाई0एम0सी0ए0 भवनों में खेल तथा शरीरिक शिक्षा प्रशिक्षण संस्थाएं खोली गई।
4. इस प्रयास को सफल बनाने के लिए अच्छा नेतृत्व देने के लिए प्रशिक्षण संस्थाएं खोली गई।

---

* असि. प्रो., शा. शि.,स्वामी स.स्ना. महा. गाजीपुर

5. वाई0एम0सी0ए0 द्वारा अल्पावधि में विशेष प्रशिक्षणों का आयोजन किया जाने लगा। इससे बहुत लोगों ने लाभ उठाया।
6. वाई0एम0सी0ए0 के केन्द्रों पर शारीरिक शिक्षा संचालक नियुक्त करके उनके द्वारा शारीरिक शिक्षा कार्यक्रम का नियन्त्रण तथा संचालन करना है।

वाई0एम0सी0ए0 की ही स्त्रियों के लिए एक संस्था है जिसका नाम वाई0एम0सी0 एफ0 है। यह संस्था भी वाई0एम0सी0ए0 की तरह अन्य देशों में फैल गई। इस संस्था ने भी शारीरिक शिक्षा के कार्यक्रमों को अपनाया। इस संस्था ने विशेष रूप से मनोरंजन कार्यों को शुरु किया।

आजकल वाई0एम0सी0ए0 शारीरिक शिक्षा को लगभग सभी देशों में प्रचार माध्यमों से विकसित कर रही है।

वाई0एम0सी0ए0 मद्रास

भारत में इस संस्था को 1910 में शुरु किया गया तथा इइसके प्रथम सचिव रहे श्री नेहरन। भारत में इस संस्था ने खेलों तथा शारीरिक शिक्षा को शुरु कियया। शुरु में शिक्षकों के लिए अल्पावधि प्रशिक्षणों का आयोजन किया।

भारत में शारीरिक शिक्षा के पितामह हैरी क्रो बक है। सन् 1920 में श्री बक ने वाई0एम0सी0ए0 कॉलेज आफ फिजिकल एजुकेशन शुरु किया। पहले इसे विद्यालय का रूप दिया गया परन्तु 1913 में इसे एक महाविद्यालय का रूप दे दिया गया। इस संस्था ने भारत में खेलों तथा शारीरिक शिक्षा को बढ़ावा दिया। आज भी वाई0एम0सी0ए0 कॉलेज मद्रास शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र में एक अग्रणी कालेज है।

योगदान

1. भारत में सबसे पहले प्रशिक्षित शिक्षक देश को उपलब्ध किये।
2. शारीरिक शिक्षा को वैज्ञानिक ढांचा दिया।
3. भारत में शारीरिक शिक्षा को पाठशालाओं में शुरु करने के लिए भारत सरकार को सुझाव दिया।
4. शारीरिक शिक्षा में अनुसंधान कार्य शुरु किया।
5. विदेशी खेलों को पूरे भारत में प्रचलित करने में मदद की।
6. सन् 1920 में बालीबाल खेल को शुरु करके पूरे भारत में प्रदर्शन किया तथा इसे लोकप्रिय बनाया।
7. श्री बक के नेतृत्व में भारतकी नौएथलीटों की एक टीम सन् 1924 में पेरिस ओलम्पिक में भाग लिया था।
8. 16 फरवरी से 12 मार्च सन् 1958 में वाई0एम0सी0ए0 शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय मद्रास में भारत के सभी शारीरिक शिक्षा के महाविद्यालयों के प्राचार्यों की एक सभी बुलाई जिसमें 58 संस्थाओं के प्राचार्यों ने भाग लिया। इस सभा द्वारा दिये गए सुझावों से भारत की केन्द्रीय सरकार ने शारीरिक शिक्षा की तरफ ध्यान देना शुरु किया।

श्री बक ने शारीरिक शिक्षा की क्रियाओं के चुनावों के सिद्धान्त निम्ननलिखित दिए हैं–

1. कार्यक्रम भाग लेने वालों की रुचि तथा आवश्यकता के अनुसार होने चाहिए।
2. भाग लेने वालों की आवश्यकताएं
3. क्रियाओं का सामाजिक प्रभाव।
4. व्यायामों का प्रभाव।

वाई0एम0सी0ए0 औद्योगिक मजदूरों के लिए भी मनोरंजन की क्रियाओं का प्रबन्ध करती है। यह बहुत से खेल मुकाबले और गेमों का प्रबन्ध करती है।

वाई0एम0सी0ए0 पद्धति

इस पद्धति में वर्गीकरण हेतु आयु और भार दोनों तरह (Biological difference) का कोई महत्व नहीं रह जाता जैसे एक ही समूह के लम्बे और सुदृढ़ शरीर वाले विद्यार्थी खेल में लाभ की स्थितियों में रहते हैं। शरीर में ऐच्छिक पेशियों का परिणाम एवं विकास भी भार में बढ़ोत्तरी करता है और अधिक मांसपेशियों को सुदृढ़ कर शरीर की त्वरित गतिशीलता को बढ़ाता है। भोजन अथवा शेल्डन एवं क्रेशमर के वर्गीकरण की तरह इसमें शारीरिक सुदृढ़ता बनावट को विशेष महत्व नहीं देते हैं। इस पद्धति में वर्गीकरण के लिए निम्न वर्ग बनाये गये हैं–

वर्ग प्रथम/Class I– 12 वर्षीय बालक जिनका भार 81 पौण्ड से कम हो।

Class II – 13 वर्षीय बालक जिनका भार 81 पौण्ड तक हो।

Class III– 14 से 15 वर्ष के बालक जिनका भार 96 पौण्ड से कम हो।

Class IV– 14 से 15 वर्ष के बालक जिनका भार 96 पौण्ड से अधिक हो।

Class V– 16 से 17 वर्ष की आयु के बालक/ तरुण जिनका भार 111 पौण्ड से कम हो।

Class VI– 16 से 17 वर्ष की आयु के बालक/ तरुण जिनका भार 111 पौण्ड से अधिक हो।

Class VII - 18 वर्ष और अधिक आयु के तरुण के लिए भार आप्रासंगिक हो जाता है।

गटस्मथ का शारीरिक शिक्षा पर प्रभाव

सन् 1785 ई0 में क्रिश्चियन गोथीफ साल्जमैन के द्वारा शनैपन थाल शिक्षा विद्यालय खोला गया। इस विद्यालय का निर्माण जिस व्यक्ति ने किया था वह वेसडो के विद्यालय में एक शिक्षक के रूप में कार्य कर चुका था। उसने शारीरिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया था। उसने निम्नलिखित शारीरिक क्रियाओं को करने की ओर जोर दिया– 1. जिमनास्टिक का अभ्यास, 2. पोल वाल्टिंग 3. फेंकना 4. पहाड़ी पर दौड कर चढ़ना तथा उतरना।

इस प्रकार 1786 ई0 आन्द्रे के स्थान पर गटम–मथ ने शारीरिक शिक्षक के रूप में कार्य किया। जिस विद्यालय में शारीरिक शिक्षा की देखरेख आन्द्रे के द्वारा की जाती थी और वही उसके समस्त कार्यक्रमों को भी देखता था। अब उस विद्यालय का कार्यभार गटम–मथ के द्वारा सम्भाला जाने लगा। उसने भी आन्द्रे के द्वारा प्रदान की जाने वाली अनेक शारीरिक क्रियाओं को ही विद्यालय में करने की अनुमति दी। परन्तु इन सभी के साथ–साथ उसने और भी कई शारीरिक क्रियाओं को शारीरिक शिक्षा में सम्मिलित किया। उनकी सूची निम्नलिखित प्रस्तुत की जा रही है– 1. पैदल चलना, 2. लम्बी दूरी तक दौड़ना, 3. सन्न्तुलन बनाए रखने की क्रियाएं 4. धकेलने की क्रियाएं, 5. तैराकी, 6. कुश्ती।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचना से यह स्पष्ट हो जाता है कि गटम–मथ ने शारीरिक शिक्षा में अनेक प्रकार के परिवर्तन किए। आज भी गटम–मथ को जर्मन जिमनास्टिक व्यायाम का जन्मदाता कहा जाता है। उसके द्वारा प्रदान की जाने वाली कार्यप्रणाली से यहाँ की शारीरिक शिक्षा बहुत अधिक प्रभावित हुई।

फ्रेड्रिक लडविग जॉन का शारीरिक शिक्षा पर प्रभाव

यूरोपीय राष्ट्रवाद के उदर–काल से ही जर्मनी में शारीरिक शिक्षा और राजनैतिक उद्देश्यों की साधारणतया एक मिश्रित दृष्अिकोण से देखा जाने लगा। सबसे प्रथम व्यक्ति जिसने शारीरिक शिक्षा को जर्मन लोगों में राष्ट्रीय एकता के साधन के रूप में प्रतिष्ठित किया। यह उसके ही अथक परिश्रम का परिणाम था कि जर्मनी में 'जर्मन जिम्नास्टिक समाज'' का प्रतिपादन हुआ।

1806 ई0 में जब नैपोलियन ने जर्मनी को विजय कर लिया तो जॉन ने यह महसूस किया कि जर्मन को विदेशी अधिपत्य से छुटकारा दिलाने के लिए प्रेरणा–मंत्र फूंकना आरम्भ कर दिया। 1810 ई0 में जॉन बर्लिन प्लेमान की पाठशाला तथा ग्रेवन कलोस्टर में अध्यापन का कार्य करता था। 1811 ई0 में उसने एक निश्चित योजना बनाई जिसके अनुसार उसने एक आयताकार क्षेत्र को घेरे में लेकर व्यायाम–क्षेत्र बनाया। अपने विद्यार्थियों की सहायता से जॉन ने संतुलन स्तम्भ, अन्तरिक्ष–बार, सीढ़ियाँ कूदने के गड्ढे तथा एक धावन–पथ का निर्माण किया। केल तथा व्यायाम–कथाएं सप्ताह में चार बार लगा करती थी जिनमें लगभग 200 विद्यार्थी सम्मिलित होते थे।

1912 ई0 में और अधिक उपकरण बन गए तथा व्यायाम क्षेत्र को भी विस्तृत कर दिया गया। कई बार तो व्यायामियों की संख्या 500 तक पहुँच जाती थी। 1816 में लडविग जॉन ने जर्मन जिमनास्टिक नामक पुस्तक लिखी। उसी वर्ष इस व्यायाम विद्यालय में व्यायामियों की संख्या लगभग 100 हो गई। इन व्यायामियों जिन्हें जॉन ने टर्नर का नाम दिया, जो आयु के आधार पर वर्गीकृत किया गया।

1888 में व्यायाम क्षेत्र की यह क्रान्ति बहुत लोकप्रिय हो गई तथा देश के कोने–कोने में ऐसी व्यायामशाओं का उच्चाधिकारियों द्वारा उद्घाटन सम्पन्न हुआ।

1819 ई0 में लड़विन जॉन पर घातक षडयन्त्र का आरोप लगाया गया। उसे कारावास का दण्ड दिया गया। जर्मन जिमनास्टिक समाज को अवैध घोषित कर दिया गया। छः वर्ष पश्चात 1825 ई0 में जॉन को जेल से छुटकारा तो मिल गया परन्तु उसका वर्लिन में रहना निषेध कर दिया गया।

1852 ई0 में उस पर प्रतिबन्ध हटा दिया परन्तु उस समय तक वह स्वर्ग जा चुका था। 1860 ई0 में कोवर्ग तथा 1861 ई0 में बर्लिन में विशेष महा–सभाएं हुई। दूसरी महासभा में लगभग 1500 सदस्यों ने भाग लिया। 15 व्यक्तियों की एक समिति बना दी गई। एक नया संविधान बनाया गया तथा पुरानी समिति की सदस्य संख्या को 15 से बढ़ाकर 22 कर दिया गया।

एफ0 एच0 लिंग का शारीरिक शिक्षा पर प्रभाव

शारीरिक शिक्षा के इतिहास में स्वीडन के इस महान शारीरिक शिक्षक का नाम सर्वप्रथम आता है जिन्होंने जिमनास्टिक में एक नये ढंग को अपनाया जिसे स्वीडिश जिमनास्टिक कहा जाता है। लिंग ने वैज्ञानिक सोच के आधार पर शरीर रचना तथा व्यायाम क्रिया विज्ञान को भी खेलकूद गतिविधियों में लगाया। उसने स्टाल वार, रिंग एवं रस्से आदि जैसे नये उपकरण खेलकूद में जोड़े। उसके इस कार्य को बाद में Hjai Marling ने जारी रखा। ये दोनों स्वीडिश शारीरिक शिक्षा विज्ञान में अपना एक अलग स्थान रखते हैं।

सन् 1904 में श्री लिंग स्वीडन के लुन्ड विश्वविद्यालय में फेन्सिंग शिक्षक के रूप में नियुक्त किये गये। श्रीलिंग का मानना था कि शारीरिक शिक्षा का प्रशिक्षण देने के लिए जरूरी है कि शिक्षक को शरीर रचना का ज्ञान हो।

श्री लिंग ने स्वीडन के नागरिकों को स्वस्थ बनाने के लिए शारीरिक शिक्षा की एक राष्ट्रीयशाला बनाने की योजना बनाई। स्वीडन सरकार ने इस योजना को सहमति दी तथा 1814 में स्टॉकहोम में एक इंस्टीच्यूट की स्थापना की। इस इंस्टीच्यूट में शारीरिक शिक्षकों को सैनिकों की प्रशिक्षण देने के लिए तैयार किया जाने लगा।

शिक्षकों के लिए हैण्डबुक ऑफ जिमनास्टिक नामक पुस्तक भी लिखी गई। 1839 में श्रीलिंग मृत्यु को प्राप्त हुए। श्रीलिंग के बाद केन्द्रीय संस्थान के संचालक के रूप में श्री एल0जी0ब्रेटिंग को नियुक्त किया गया। 1860 में रायल सेन्ट्रल इंस्टीच्यूट आफ

जिमनास्टिक का पुनर्गठन किया गया। इसमें तीन अलग–अलग विभाग बनाए गये।– 1. शिक्षा सम्बन्धी, 2. चिकित्सा सम्बन्धी, 3. सेना सम्बन्धी।

स्वीडिश शारीरिक शिक्षा पद्धति ने स्कूल तथा सेना के कार्यक्रमों को मिलाकर इसे स्कूल के कार्यक्रम के लिए उपयुक्त बना दिया है। यह पद्धति शरीर रचना के आधार पर बनाई गई है। इसलिए इसे बच्चों के लिए उपयोगी माना ाजता है। आज स्वीडन के सभी स्कूलों में शारीरिक शिक्षा अनिवार्य है।

4. एडाल्फ स्पीज का शारीरिक शिक्षा पर प्रभाव

जॉन ने शारीरिक शिक्षा को सामान्य शिक्षा के पाठ्यक्रम में स्थान दिलवाने के सम्बन्ध में कोई कदम न उठाये उसके प्रेरक राजनैतिक उद्देश्य ही थे जिन्हें प्राप्त करने के लिए शारीरिक शिक्षा का काफी उपयोग किया। एडाल्फ स्पीज ही एक ऐसा व्यक्ति था जिसने जर्मनी में पाठशाला व्यायाम की नींव रखी। 1833–48 ई0 में उसने जब वह स्विटजरलैंड में निवास करता था 'जिमनास्टिक प्रणाली' नामक पुस्तक लिखी तथा पाठशाला के लिए जिमनास्टिक पुस्तिका भी लिखनी आरम्भ कर दी। 1848 ई0 में उसने अपनी व्यायाम प्रणाली को एक पाठशाला में प्रारम्भ करना स्वीकार कर लिया। इस श्रेय की प्राप्ति के लिए उसने निम्नलिखित विचारों का प्रचार किया–

1. जिमनास्टिक व्यायाम के लिए प्रतिरूप पाठशालाओं में एक स्कूल घंटा मिलना चाहिए।
2. लड़कियों के लिए विशेष व्यायाम प्रणाली का प्रबन्ध होना चाहिए।
3. प्रत्येक पाठशालाओं में एक व्यायाम कक्ष तथा एक खुला व्यायाम क्षेत्र अवश्य होना चाहिए।
4. आयु स्तर तथा लिंग के अनुसार व्यायाम उपकरणों तथा सामग्रियों का वर्गीकरण किया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक विद्यार्थी को वांछित–फल की प्राप्ति हो।
5. व्यायाम को भी अन्य विषयों की भांति समान रूप से मान्यता प्राप्त होनी चाहिए।
6. विद्यार्थियों को अपनी व्यायाम के आधार पर अंक भी दिए जाने चाहिए जिसमें उन्हें और अच्छी उपलब्धियों के लिए प्रेरणा मिले।

1842 में जिमनास्टिक व्यायाम को शिक्षा के एक अंग के रूप में मान्यता दे दी गई। सभी पापठशालाओं को यह आदेश दिया गया कि व्यायाम के प्रसार के लिए अधिक से अधिक उपकरण तथा सामग्री जुटाई जाए तथा प्रचुर समय का भी परियोजना किया जाए। 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक तथा शारीरिक शिक्षा प्रणाली में यहाँ कोई महत्वपूर्ण परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होते।

प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त जर्मनी में नाजी पार्टी ने शासन की बागडोर सम्भाली, उन्होंने अपने आदर्शों की प्राप्ति के लिए शिक्षा तथा शारीरिक–दीक्षा दी जाने लगी। नाजियों का विचार था कि राष्ट्र का निर्माण एवं उत्थान शिक्षा–संस्थाओं द्वारा ही हो सकता है।

हिटलर ने तत्कालीन खेल संगठनों तथा व्यायाम संघों को तोड़ दिया तथा उनके स्थान पर नए संगठनों का निर्माण किया। 1936 ई0 में एक उच्च सैनिक अधिकारी राष्ट्रीय खेल आयुक्त नियुक्त किया गया। हिटलर का स्पष्ट उद्देश्य राजनैतिक ही था तथा वह शारीरिक शिक्षा को भी इसे प्राप्त करने का महत्वपूर्ण साधन मानता था। शारीरिक शिक्षा को भी एक विषय की भांति पाठशालाओं तथा विश्वविद्यालयों में स्थान दे दिया गया। हिटलर शारीरिक प्रशिक्षण द्वारा एक सशक्त राष्ट्र बनाने में सफल हुआ।

5. एच0 सी0 बक का शारीरिक शिक्षा पर प्रभाव

एच0सी0 बक ने शारीरिक शिक्षा को परिभाषित करते हुए लिखा है ''शारीरिक शिक्षा सामान्य शिक्षा कार्यक्रम का एक अंग है जो बच्चे के प्रचुर बाहुबल वाले क्रियाकलापों के माध्यम से उसकी वृद्धि, विकास और शिक्षा से जुड़ा है। यह सम्पूर्ण

बच्चे की शिक्षा है जो शरीर क्रियाकलापों से आती है। शारीरिक क्रियाकलाप औजार है। ये इतने चुनिंदा एवं संचालित हैं कि बच्चे के जीवन के हर–पहलू– शारीरिक, मानसिक, भावनात्मक और नैतिक को प्रभावित करते हैं।

एच.सी.बैक जिनको भारत में आधुनिक शारीरिक शिक्षा का एक महान विचारक तथा प्रचारक माना गया है। उनके अनुसार शारीरिक शिक्षा के निम्न लाभ हैं – 1. शारीरिक विकास, 2. मस्तिष्क का मांसपेशियों से सामंजस्य 3. खेल के लिए उचित क्षमता का विकास, 4. सामाजिक तथा चारित्रिक विकास। 5. अच्छी आदतों तथा स्वभाव का विकास।

निष्कर्ष

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि शारीरिक शिक्षा में वाई0एम0सी0ए0 का काफी योगदान रहा है। शारीरिक शिक्षा के क्षेत्र को बिना कुशल प्रशिक्षकों के किसी भी प्रकार से विकसित नहीं किया जा सकता क्योंकि खिलाड़ी सबसे अधिक इस तथ्य से प्रभावित होता है। इस संस्था में डिप्लोमा, राजकीय प्रमाण पत्र, उच्च ग्रेड तथा राजकीय प्रमाणपत्र एवं निम्न ग्रेड के कोर्सों की व्यवस्था किया जाना चाहिए। शारीरिक शिक्षा में गतस्मथ, फ्रेड्रिक लडविग जॉन, एफ0एच0लिंग, एडाल्फ स्पीज एवं एच0सी0 बक शारीरिक शिक्षा को बच्चे के प्रचुर बाहुबल वाले क्रियाकलापों के माध्यम से उसकी वृद्धि, विकास और शिक्षा से जुड़ा है। बच्चे के जीवन के हर पहलू–शारीरिक, मानसिक भावनात्मक और नैतिकता को प्रभावित किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. सिंह, होशियार, शारीरिक शिक्षा का इतिहास, लक्ष्य पब्लिकेशन्स 7/26 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 2013, पृ0 सं0 129–140, 155, 156
2. बाली विनोद मारोतराव, शारीरिक शिक्षा का इतिहास तथा आधार, खेल साहित्य 7/26 अंसारी रोड दरियागंज, नई दिल्ली 2013, पृ0 सं0 42–43
3. अटवाल, हरभजन सिंह, डॉ0 आर0 के0 यादव, शारीरिक शिक्षा के इतिहास, अमित ब्रदर्स पब्लिकेशन्स, धारेलेन घंटोली नागपुर, 1999, पृ0 221–223
4. कवर, रमेश चन्द, शारीरिक शिक्षा की पद्धति, अमित ब्रदर्श पब्लिकेशन्स, 2011, पृ0 57

***

भारत के स्वतंत्रता आंदोलन में श्रमिक आंदोलन का योगदान : एक ऐतिहासिक अध्ययन

*अनिल कुमार**

आधुनिक काल में 1857 से व्यवस्थित रूप से भारत में स्वतंत्रता आंदोलन प्रारंभ हुए । लेकिन इस दौर का आंदोलन मोटे तौर पर राष्ट्रीय नेतृत्व में ना चल कर अलग–अलग नेताओं द्वारा क्षेत्रीय स्तर पर चलाए जा रहे इसमें महादेव गोविंद रानाडे, एस.एन. व्योमेश चंद्र बनर्जी जैसे नेता शामिल थे जिनका सरोकार सामाजिक एवं राजनैतिक दोनों था। यह वह दौर था जब भारत में कारखाने स्थापित हो रहे थे तथा इन कारखानों में मजदूरों का आना धीरे–धीरे बढ़ रहा था। 1854 में स्थापित प्रथम कारखाने के बाद 1875 तक मजदूरों की दशा देखने वाला कोई नहीं था दूसरी तरफ मजदूर अपने काम में व्यस्त थे उन्हें भी राष्ट्रीय राजनीति से कोई मतलब नहीं था। 1875 में बंगाल के एक समाजसेवी शशिपाद बनर्जी ने पहली बार मजदूरों की दशा पर काम करना प्रारंभ किया उन्होंने श्रमजीवी पत्रिका निकाली। इस दौरान इन्होंने एक श्रमिक क्लब की भी स्थापना की।[1] 1877 मैं जब नागपुर के एंप्रेस मिल मजदूरों ने कम वेतन के लिए हड़ताल किया तो उसे भी समकालीन बड़े नेताओं का समर्थन नहीं मिला और ना ही मजदूरों ने किसी से संपर्क किया। 1878 में मुंबई के सोराबाजी शपूर मैं मजदूरों की स्थिति को सुधारने तथा वेतन बढ़ाने से संबंधित एक विधेयक पास कराना चाहा लेकिन यह विधेयक पास नहीं हो पाया।[2]

1880 के दशक में तिलक के भारतीय राजनीति में उभरने के साथ मजदूरों का जुड़ाव राष्ट्रीय राजनीति से होने लगा। वह पहले ऐसे नेता थे जिन्होंने मजदूरों को राजनीति से जुड़ा तथा उनके समर्थन में अपनी पत्रिका मराठा एवं केसरी में लिख भी लिखे। महाराष्ट्र में 1880 तथा 1890 के दशक में जितने भी बड़ी हड़तालें हुई सब में तिलक की भागीदारी कहीं न कहीं व्यापक थी। 1890 में व्यवस्थित तौर पर श्रम संघ बनने लगे। जिसमें पहला श्रम संघ एम.ए. लोखांडे द्वारा स्थापित किया गया जिसे बंबई मिल हैंड्स एसोसिएशन के नाम से जाना गया। इसे भारत का पहला श्रम संघ अवश्य माना जाता है लेकिन इसे वैधानिक श्रम संघ नहीं माना जा सकता है। क्योंकि जिस प्रकार से श्रम संघ बनते हैं या उनकी जो नियमावली है उसके अनुसार यह श्रम संघ अनुकूल नहीं। भारत में पहला वैधानिक श्रम संघ डी.पी.वाडिया द्वारा 1918 में मद्रास लेबर यूनियन के नाम से स्थापित किया। यदि हम श्रमिकों की बात करें तो 1887 एवं 1899 मैं मजदूरों ने कई बड़ी हड़तालें आयोजित इन हर तालुको समकालीन बड़े नेता बाल गंगाधर तिलक , फिरोजशाह, सुरेंद्रनाथ बनर्जी, डी. ई.वाचा गोखले सहित अनेक नेताओं का समर्थन मिला।[3] इन सभी नेताओं ने मजदूरों के समर्थन में सभाएं आयोजित किया।लेकिन इन सबके बावजूद यह आंदोलन राष्ट्रीय नहीं बन पाया क्योंकि मजदूरों की मांगे अलग तथा निश्चित तौर पर समकालीन समय में उनका राष्ट्रीय मांग के साथ कम तालमेल था।

भारत में जब 1905 में स्वदेशी आंदोलन ने जोर पकड़ा तब इस आंदोलन में आम लोगों के साथ आंशिक तौर पर मजबूर भी शामिल हुए ,विशेषकर बंगाल के क्षेत्र में। 16 अक्टूबर 1905 को बंगाल के सभी मजदूरों ने एक दिवसीय हड़ताल रखा था।[4] इस समय मजदूरों को लग रहा था कि बंगाल का बंटवारा उनके हित के विपरीत है। 1905 से लेकर 1919 तक के सभी आंदोलनों में मजदूरों सीमित ही शामिल हो पाए। क्योंकि इस दौर में उन्हें डर था कि यदि आंदोलन व्यापक चला तो उनके रोजगार चले जाएंगे। इसी दौर में महात्मा गांधी ने अहमदाबाद में 1918 में अहमदाबाद टेक्सटाइल लेवर एसोसिएशन की स्थापना की। 1920 के कांग्रेस के नागपुर अधिवेशन कांग्रेस ने पहली बार मजदूरों के प्रति अपनी सहानुभूति दिखाते हुए उनसे संबंधित प्रस्ताव अपनी बैठकों में शामिल किया। यह वही दौर था जब एम.एन.जोशी, लाला लाजपत राय एवं जोसेफ बैपटिस्ट ने मिलकर 1920 में

* शोध छात्र, इतिहास विभाग ,जयप्रकाश विश्वविद्यालय छपरा

अखिल भारतीय ट्रेड यूनियन कांग्रेस की स्थापना की। यह ऐसी संस्था थी जिसमें कांग्रेस के बड़े–बड़े नेता शामिल हुए तथा इसके पहले अध्यक्ष भी लाला लाजपत राय बने।

दूसरी तरफ महात्मा गांधी का उदय भारतीय राजनीति में पूर्ण रूप से हो चुका था। वे समाज के हर तबके के प्रति सहानुभूति रखते थे तथा उनके प्रस्ताव में किसान – मजदूर भी शामिल होते थे ऐसे में गांधी जी ने जब 1920 से 22 तक असहयोग आंदोलन चलाया तो इस आंदोलन में देशभर के मजदूरों ने जमकर हिस्सा लिया। मजदूरों को लगता था कि यदि गांधीजी सफल हो गए तो हमें स्वराज मिल जाएगा । यहां उनके स्वराज का अर्थ था उनकी मजदूरी दर बढ़ जाना ,काम की आजादी ,कार्यस्थल में सुधार आदि। लेकिन इस दौर में मजबूर इस बात पर भी सतर्क थे कि यदि कांग्रेस पूंजी पतियों के निकट आती है तो उनका ही प्रभावित होगा। इन सबके बावजूद कानपुर , बंबई ,मद्रास एवं कलकत्ता में मजदूरों ने बढ़ चढ़कर हिस्सा लिया। मजदूरों ने फैक्ट्री तो नहीं छोड़ेगा लेकिन हड़ताल अवश्य किया तथा धरना प्रदर्शन में भी वह शामिल हुए। 1920 से 1922 तक कांग्रेस पूर्ण रूप से इस बात पर जोर देती रही की मजदूर तथा मिल मालिक के साथ इस तरह के संबंध रखे जाए कि दोनों साथ रहें। इसी को ध्यान में रखते हुए 1922 के कांग्रेस के गया अधिवेशन मैं कांग्रेस ने निर्णय लिया कि सभी श्रमिकों को संघ बंद करने के लिए वह एक के साथ मिलकर कार्य करेगी।

असहयोग आंदोलन के द्वारा 1921 में जब प्रिंस ऑफ वेल्स का भारत आगमन हुआ ।[5] इस समय मजदूरों ने जमकर उनका विरोध किया । मजदूरों ने यह दिखाया कि वह एक है तथा उनका स्वागत हड़ताल के साथ हुआ। जब वे बंबई आए तो लगभग 1,40,000 मजदूरों ने हड़ताल कर दीया तथा वे सड़कों एवं गलियों में निकल गए। इधर कई मजदूर नेता गांधीजी को समर्थन देने लगे गांधी जी ने मजदूरों में आपसी एकता स्थापित करने पर जोड़ दिया। उन्होंने उद्योग में ट्रस्टीशिप का सिद्धांत तथा मध्यस्थता जैसे विषयों पर जोड़ दिया जिसका प्रभाव मजदूरों पर व्यापक तौर पर पड़ा। श्रमिक भी गांधीजी के सिद्धांत से प्रभावित होकर खादी तथा गांधी टोपी पहने लगे। उस समय गांधी टोपी पहनना सबसे बड़ा अपराध माना जाता था। 1922 तक भारत में वामपंथ का आगमन नहीं हुआ था जिसके कारण मजदूर कांग्रेस को ही अपना सच्चा पथ प्रदर्शक मानती तथा उसी के अनुरूप आंदोलन को आगे बढ़ाते थे। लेकिन 1922 के प्रारंभ होने के साथ ही असहयोग आंदोलन भी सिथिल पढ़ने लगा तो दूसरी तरफ मजदूर आंदोलन भी कमजोर होने लगा या कहा जा सकता है कि मजदूर आंदोलन से पीछे हटने लगे। इसका सबसे बड़ा कारण यह था कि 1914 से 1919 के बीच जो प्रथम विश्व युद्ध हुआ था, उसमें भारतीय उद्योग का व्यापक विकास हुआ था। दूसरी तरफ 1920 के बाद ब्रिटेन की अर्थव्यवस्था तथा उद्योग दोनों पटरी पर लौटने लगे क्योंकि वहां भी उत्पादन अधिक होने लगा जिससे बाजार का संतुलन बदल गए। दूसरी तरफ भारत में ब्रिटिश उत्पाद आना तेज हो गए जिससे डरे हुए भारतीय उद्योगपतियों ने मजदूरों को वापस उद्योग की तरफ खींचना प्रारंभ कर दिया। इधर गांधी जी द्वारा असहयोग आंदोलन को स्थगित करने से भी मजदूरों में निराशा थी क्योंकि मजदूर चाहते थे कि आंदोलन और अधिक चले तथा अपने लक्ष्य को प्राप्त करे।

1922 से 1927 तक मजदूर आन्दोलन का राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ाव कमजोर रहा क्योंकि इस दौर में कम्युनिस्ट विचारधारा का भारत आगमन हो चुका था तथा उनकी विचारधारा काफी निकट थी। यह वह दौर था जिसमें मजदूर साम्राज्यवादी ताकतों की जगह पूंजीपतियों के विरुद्ध आंदोलन करने लगे। यदि इस रास्ते पर साम्राज्यवाद आता था तो वह उसके खिलाफ भी आवाज उठाने लगते थे। एम.एन . राय,सत्य भक्त , अवनी प्रसाद मुखर्जी , मुजफ्फर अहमद तथा श्रीपाद अमृत डांगे बड़े मजदूर नेताओं ने मजदूरों के बीच मार्क्सवाद को व्यापक तौर पर फैलाने का कार्य किया जिसका प्रभाव यह पड़ा कि मजदूर राष्ट्रीय आंदोलन की जगह उन्हें अपनी मांग तरफ बढ़ बढ गए। इस दौर में ऐसा देखा गया कि कांग्रेस पर दक्षिणपंथी नेताओं की पकड़ अधिक थी जबकि कांग्रेस के भीतर वामपंथ धीरे–धीरे उभर रहा जिसके कारण मजदूर कांग्रेस से दूर हो रहे थे तथा वामपंथियों के निकट आ रहे थे।

1927 के बाद भारतीय राजनीति पुनः पटरी पर लौटी क्योंकि इसी वर्ष साइमन आयोग के भारत आने की घोषणा की गई जो 1928 तक भारत आया। यह आयोग भारत पर कानून बनाने के लिए बना था लेकिन इसमें कोई भी भारतीय नहीं था। अतः भारतीय राजनीति के हर तबके से इसका विरोध प्रारंभ हुए। इस विरोध में मजदूर भी शामिल हुए जबकि वामपंथी नेताओं का इससे कोई अधिक लेना–देना नहीं था लेकिन मजदूरों का शामिल होना यह बतलाता है कि मजदूर अभी भी राष्ट्रीय चेतना को प्राथमिकता में रखते थे।[6] 1928 में साइमन आयोग के विरोध में चले हड़ताल में मजदूर भी शामिल हुए जिसका सर्वाधिक प्रभाव समकालीन बौंबे प्रांत मैं देखने को मिला। इसी आंदोलन की एक कड़ी के रूप में नागपुर, कानपुर , मद्रास आदि जगहों पर मजदूरों ने हड़ताल ओं का आयोजन किया। 1930 में जब गांधी जी ने व्यापक तौर पर सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ करने की घोषणा कर दी तो उसमें ऐसा माना जा रहा था कि मजदूर शामिल नहीं होंगे। लेकिन इसके विपरीत 1930 से 32 तक चले सविनय अवज्ञा आंदोलन में नागपुर में मजदूरों ने व्यापक तौर पर हड़ताल किया तो वहीं दूसरी तरफ देश के अन्य भागों में भी मजदूर संगठन के तौर पर तो नहीं बल्कि व्यक्तिगत तौर पर आंदोलन में जरूर शामिल हुए।

इस दौर में भारतीय मजदूर मुख्य तौर पर एमस्टरडम धूरी तथा मास्को धूरी के बीच बंटे थे। मजदूरों की मूल मान उद्योग जगत से जुड़ी हुई थी अतः उद्योगपतियों के विरुद्ध की लग रहे थे। दूसरी तरफ कांग्रेस के बाहर के वामपंथियों ने यह भ्रम फैला दिया था कि कांग्रेस दक्षिणपंथीओं की पार्टी है जिसके कारण मजदूर कांग्रेस से दूरी बनाए हुए थे। 1930 से 32 के दौरान सविनय अवज्ञा आंदोलन में मजदूरों की भागीदारी काफी उत्साहजनक नहीं रही इसका एक कारण यह भी था कि मजदूरों के एक बड़े नेता लाला लाजपत राय जीवित नहीं थे। 1932 के बाद 1941 मजदूर अधिकतर व्यक्तिगत आंदोलन में हीं लगे रहे। 1942 में जब भारत छोड़ो आंदोलन प्रारंभ हुआ तब मजदूरों की भागीदारी इस आंदोलन में व्यापक तौर पर रही। जबकि इस दौर में सभी कम्युनिस्ट नेताओं ने तथा कम्युनिस्ट पार्टी ने भी अपने को इस आंदोलन से अलग रखा था।[7] लेकिन जैसे ही या आंदोलन प्रारंभ हुआ वैसे ही इसका स्वरूप जन आंदोलन हो गया तथा यह आंदोलन संपूर्ण भारत में फैल गया। इस आंदोलन में हर प्रांत के मजदूरों ने भाग लिया क्योंकि उन्हें लगता था कि यदि यह आंदोलन सफल हो गया तो उन्हें आजादी मिल जाएगी।

भारत छोड़ो आंदोलन के दौर में तथा उसके बाद भी मजदूरों का आंदोलन जारी रहा क्योंकि उन्हें लग रहा था कि उनका वास्तविक हित तभी पूर्ण हो पाएगा जब देश आजाद होगा। मजदूरी, काम के घंटे तथा कार्य स्थल जैसे विषयों को लेकर छिटपुट या संगठित तौर पर आंदोलन करते रहे लेकिन 1940 के दशक में मैं मुख्य रूप से देश की आजादी के लिए होने वाले आंदोलनों में जुड़े। 1930 तथा 1940 के दशक में कांग्रेस तथा वामपंथी दोनों विचारधाराओं के लोगों का मानना था कि अधिक से अधिक मजदूरों को अपने पक्ष में लाया जाए।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतया कहा जा सकता है कि भारत में श्रमिक आंदोलन 1880 के दशक में प्रारंभ हुई लेकिन इसका विस्तार 1900 के बाद हुआ।1905 से मजदूर आंदोलन राष्ट्रीय आंदोलन के साथ जुड़ा जिस चुनाव का सबसे बड़ा कारक बंगाल विभाजन था। इससे पूर्व मजदूर अपनी मांग को लेकर ही आंदोलन कर रहे थे मैं काम के घंटे कम करने , मजदूरी बढ़ाने तथा कार्यस्थल सही करने जैसे मांग शामिल थे। 1905 के स्वदेशी आंदोलन के बाद भी व्यवस्थित तौर पर मजदूर राष्ट्रीय आंदोलन के साथ नहीं चल पाए। मजदूरों का राष्ट्रीय आंदोलन के साथ वास्तविक जुदा हो 1920– 22 के असहयोग आंदोलन से हुआ। इस आंदोलन में भाग लेने वाले मजदूरों को ऐसा लगता था कि यदि वे आंदोलन में शामिल हो जाते हैं तथा आंदोलन सफल हो जाता है तो उन्हें स्वराज मिल जाएगा ।उनके लिए स्वराज का सही अर्थ था कार्यक्षेत्र अधिक वेतन तथा काम के घंटे कम होना। 1920 के दशक में वामपंथी विचारधारा के भारतीय राजनीति में प्रवेश के कारण मजदूरों का एक व्यापक वर्ग साम्राज्यवादी

विरोधी आंदोलन से कटकर पूंजीवाद के विरुद्ध आंदोलन में लग गया जिसका प्रभाव 1930 के दशक में भी देखा गया। गांधी जी ने जब 1930 सविनय अवज्ञा आंदोलन प्रारंभ किया था तो उसने भी मजदूरों में हिस्सा लिया लेकिन उनकी भागीदारी कम रही। 1942 के भारत छोड़ो आंदोलन के दौरान मजदूरों ने जमकर हिस्सा लिया क्यों किया जन आंदोलन था। 1920 से 1947 के दौरान जितने भी मजदूर आंदोलन हो गई उनमें श्रम संघ का प्रभाव अधिक रहा। अर्थात श्रम संघ विचारधारा को मानता था उससे जुड़े श्रमिक उसी विचारधारा के अनुसार आंदोलन करते थे।

संदर्भ :

1. ग्रोवर बी. एल. एवं यशपाल (2003) : आधुनिक भारत का इतिहास, एस. चाँद प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 351.
2. झा, डॉ. आदित्य चन्द्र (2014) : आधुनिक भारत का इतिहास, प्लासी से आदाजी तक, प्रीयर्शन प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 238.
3. शुक्ल, रामलखन (2007) : आधुनिक भारत का इतिहास, (संपादित). हिंदी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली. पृष्ठ संख्या 470.
4. चन्द्र, बिपिन(1990) : भारत का स्वतंत्रता संघर्ष हिंदी माध्यम कार्यान्वन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली. पृष्ठ संख्या 157.
5. वही – पृष्ठ संख्या 158
6. सरकार, सुमित (1992) : आधुनिक भारत, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृष्ठ संख्या 288
7. वही – पृष्ठ संख्या 417.

***

शोध में सांख्यिकी की उपयोगिता

डॉ. विद्याधर उपाध्याय *

शोध के माध्यम से ही हम नवीन ज्ञान की प्राप्ति करते हैं या अपने परंपरागत ज्ञान का परिष्कार करते हैं। खुद को परिभाषित करते हुए विभिन्न प्रकार के विचारकों ने अलग–अलग विचार दिए। रैडमैन और मोरी ने अपनी किताब "दि रोमांस ऑफ रिसर्च" में शोध का अर्थ स्पष्ट करते हुए लिखा है, कि नवीन ज्ञान की प्राप्ति के व्यवस्थित प्रयत्न को हम शोध कहते हैं। एडवांस्ड लर्नर डिक्शनरी ऑफ करेंट इंग्लिश के अनुसार– किसी भी ज्ञान की शाखा में नवीन तथ्यों की खोज के लिए सावधानीपूर्वक किए गए अन्वेषण या जांच– पड़ताल को शोध की संज्ञा दी जाती है।वहीं लुण्डबर्ग ने शोध को परिभाषित करते हुए लिखा है, कि अवलोकित सामग्री का संभावित वर्गीकरण,साधारणीकरण एवं सत्यापन करते हुए पर्याप्त कर्म विषयक और व्यवस्थित पद्धति है।

प्रस्तुत तीनों परिभाषा पर हम गौर करें तो हम आते हैं कि शोध एक प्रकार से निरंतर चलने वाली प्रक्रिया है जिसमें एक शोधकर्ता द्वारा शोध नैतिकता का पूरा ध्यान रखते हुए किसी समस्या का समाधान किया जाता है । जहां तक समस्या का प्रश्न है तो समस्या की उत्पत्ति तब होती है जब दो परस्पर विरोधाभासी विचार उत्पन्न हो जाए या फिर पुराने ज्ञान तथा नवीन ज्ञान के बीच एक अंतर हो अथवा हमें अपने ज्ञान में परिष्कार करना हो। इन्हीं परिस्थितियों में शोध किया था । शोध मानव ज्ञान को दिशा प्रदान करता है तथा ज्ञान भंडार को विकसित एवं परिमार्जित करता है। शोध से व्यक्तित्व का बौद्धिक विकास होता है तथा शोध पूर्वाग्रहों के निदान और निवारण में सहायक है । जब हम शोध के प्रकार की चर्चा करते हैं तो उसमें कई प्रकार के शोध हमारे सामने प्रस्तुत होते हैं। जिसमें दो प्रकार के अनुसंधान अति महत्वपूर्ण है पहला गुणात्मक अनुसंधान तथा दूसरा मात्रात्मक अनुसंधान। इसके अलावा ऐतिहासिक अनुसंधान, विवरण आत्मक अनुसंधान तथा विश्लेषणात्मक अनुसंधान भी शामिल है। यदि हम गुणात्मक अनुसंधान तथा ऐतिहासिक अनुसंधान को छोड़ दें तो सभी प्रकार के अनुसंधान में सांख्यिकी का उपयोग व्यापक पैमाने पर किया जाता है क्योंकि सांख्यिकी एक प्रकार का विज्ञान है जो हमें आंकड़ों के माध्यम से इक्षित शोध निष्कर्ष पर पहुंचने में मदद करता है।

सांख्यिकी को परिभाषित करते हुए महान विद्वान लेविट ने लिखा है ष्सांख्यिकी वह विज्ञान है जो घटनाओं के स्पष्टीकरण, विवरण और तुलना के आधार के रूप में संख्यात्मक तथ्यों के संग्रह, वर्गीकरण और सारणीकरण से संबंधित है।ष वही सिटक्लिफ ने सांख्यिकी को परिभाषित करते हुए कहा है कि ष्आंकड़ों में पूर्वाग्रह से संबंधित और पूर्वापेक्षित उद्देश्य से संबंधित, तथ्यों के एकत्रीकरण का संग्रह, सारणीकरण, प्रस्तुति और विश्लेषण शामिल है।ष प्रो ए एल बॉली के अनुसार ष्सांख्यिकी को गिनती का विज्ञान कहा जा सकता है।ष उपरोक्त तीनों परिभाषाओं यदि हम गौर करें तो हम पाते हैं कि सांख्यिकी विज्ञान की मदद से उन शोध कार्यों को आसानी से पूर्ण किया जा सकता है जिसमें आंकड़े की आवश्यकता है।

विशेष रूप से हम जब विवरणात्मक अनुसंधान करते हैं तो ऐसी परिस्थिति हमें सांख्यिकी का है सहारा लेना पड़ता है। वर्तमान समय देश काल , शिक्षा ,आर्थिक प्रयोग , सामाजिक प्रयोग सभी में सांख्यिकी का उपयोग हो रहा है। देश में कोई योजना लागू करना हो अथवा पुराने योजनाओं की समीक्षा करना होता तो इन सभी में शोध की आवश्यकता होती है। ऐसे शोध के लिए हमें सांख्यिकी की आवश्यकता होती है। जनसंख्या से संबंधित शोध या उनके आंकड़ों से देश की दशा दिशा तय करने हेतु भी शोध की आवश्यकता होती है । ऐसे शोध में भी सांख्यिकी का सहारा लेना पड़ता है।जिससे हम पुराने आंकड़े तथा नवीन आंकड़ों के बीच तुलना कर निष्कर्ष तक पहुंचते हैं। आज विश्व के हर देश में सांख्यिकी का महत्व व्यापक है क्योंकि हर देश अपने विकास से संबंधित पैमाने

* असिस्टेंट प्रोफेसर , एस.बी.एस गवर्नमेंट पी.जी. कालेज ,रूद्रपुर

सांख्यिकी के ही मदद से तय करते हैं तथा इसके लिए पहले विस्तृत शोध किया जाता है तथा उसी के आंकड़े का सांख्यिकीय विश्लेषण द्वारा आगे की दिशा तय की जाती है। विषय चाहे खेल का या आपदा प्रबंधन का या फिर किसी नए तत्व का सभी में सांख्यिकी का महत्व व्यापक है।

शिक्षा के क्षेत्र तथा शैक्षिक अनुसंधान में सांख्यिकी महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इसकी मदद से न केवल शिक्षा व्यवस्था में नवीनता लाते हैं अपितु शिक्षा को नई दिशा भी प्रदान करते हैं। यदि हमें समूहों के बीच तुलना करनी हो तो हम सांख्यिकी का उपयोग करते हैं क्योंकि एक वर्ग की उपलब्धियां हर विषय में एक समान नहीं होती हैं। यह पाया गया है कि एक वर्ग तेजी से प्रगति कर रहा है, एक विषय है, जबकि दूसरा प्रगति कर रहा है एक अलग है। यहां तक कि एक विशेष वर्ग के विभिन्न खंड समान रूप से प्रगति नहीं करते हैं। वहीं दूसरी तरफ छात्रों के व्यक्तिगत तुलना में भी सांख्यिकी का उपयोग किया जाता है।सांख्यिकी छात्रों की उम्र, क्षमताओं और खुफिया स्तरों के संबंध में अलग–अलग तुलना करने में मदद करती है। यह आंकड़े हैं जो हमें बताते हैं कि इस प्रकार जो छात्र हर दूसरे सम्मान में समान हैं फिर भी समान उपलब्धि नहीं दिखाते हैं वह एक विशेष विषय है।शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन सांख्यिकी का प्रयोग किया जाता है क्योंकि प्रत्येक व्यक्तिगत छात्र अपनी बौद्धिक क्षमता, रुचियों, दृष्टिकोण और मानसिक क्षमताओं में दूसरों से भिन्न होता है छात्रों को शैक्षिक और व्यावसायिक मार्गदर्शन दिया जाता है ताकि वे इन क्षमताओं का सबसे अच्छा उपयोग कर सकें और मार्गदर्शन की प्रक्रिया केवल आंकड़ों पर आधारित हो।

शैक्षिक प्रयोग और अनुसंधान पूर्ण रूप से सांख्यिकी पर ही आधारित है इसका मूल कारण यह है कि स्थान, रेखा और परिस्थितियों में परिवर्तन के साथ, उद्देश्य, पाठ्यक्रम और शिक्षा के तरीके बदलते रहते हैं। आँकड़ों के उपयोग के बिना शोध और प्रयोग का कार्य विश्वसनीय और मान्य नहीं बन सकता। वही नवीन पाठ्यक्रम का निर्माण या नवीन पाठ्यक्रम में अनुसंधान के लिए अन्य शोधों के साथ–साथ सांख्यिकिय शोध या या उस शोध पर अधिक बल देना पड़ता है जिससे परिणाम आंख रूप के रूप में स्पष्ट तौर पर मिले। दूसरी तरफ शिक्षकों की व्यवसायिक दक्षता के लिए जो सूट चलते हैं उसमें भी आंकड़ों का व्यापक प्रयोग होता है। शिक्षक की जिम्मेदारी तब समाप्त नहीं होती जब वह कक्षा में किसी विशेष विषय को पढ़ाता है। उनकी जिम्मेदारी में छात्रों को पढ़ाना, स्वयं के लिए वांछित स्तर प्राप्त करना और व्यवहार में संशोधन की उपलब्धि का आकलन करना शामिल है।

यदि हम ऐतिहासिक अनुसंधान की बात करें तो माना जाता है कि उसमें सांख्यिकी का प्रयोग नहीं होता। लेकिन जब हम किसी प्राचीन काल या मध्य काल के या फिर शासकों के कार्य से संबंधित शोध करते हैं।ऐसे शोध में हमें दोनों शासकों के द्वारा किए गए कार्य की तुलना कभी कभी उनके आंकड़ों के माध्यम से करनी पड़ती है। उदाहरण के लिए अकबर के काल में लगान की दर तथा उससे पूर्व अलाउद्दीन अथवा शेरशाह की काल में लगान की दर के बीच तुलना करने के लिए हमें सांख्यिकी का ही प्रयोग करना पड़ेगा। ऐसे प्रयोगों से हम यह पता कर पाएंगे कि दोनों शासक में कौन कम लगा लेता था। जब शासकों के राज्य की खुशहाली के बीच तुलना करते हैं तो हमें आंकड़ों के माध्यम से यह सिद्ध करना पड़ता है कि किस काल में अधिक मंगाई थी अथवा किस शासक के दौर में किस मामले में जनता खुशहाल थी। दूसरी तरफ इतिहास के उन काल के बारे में हमें जब अध्ययन करना पड़ता है जिसके कोई लिखित स्रोत ही नहीं है तो ऐसी परिस्थिति में हम कार्बन डेटिंग पद्धति अथवा अन्य काल निर्धारण की विधि के माध्यम से उस काल की व्याख्या करते हैं। इस विधि में भी सांख्यिकी का ही प्रयोग किया जाता है। वस्तुतः सांख्यिकी शैक्षिक मनोविज्ञान की समस्याओं के लिए वैज्ञानिक दृष्टिकोण का आधार बनती है।इसके अलावा सांख्यिकी उन समस्याओं के समाधान में भी मदद करता है जिन समस्याओं का समाधान गुणात्मक विधि से नहीं किया जा सकता है।

सांख्यिकी की मदद से किसी भी शोध में तुलनात्मक विश्लेषण और व्याख्या प्रभावी और आसानी से की जा सकती है। इसके अलावा विभिन्न मूल्यवान आँकड़े जैसे माध्यिका, मोड, चतुर्थक आसानी से गणना की जा सकती है। इस तरह के प्रतिनिधित्व के माध्यम से, हमें दो चर के बीच सहसंबंध का संकेत भी मिलता है।इस तरह के प्रतिनिधित्व से वस्तुओं और व्यक्तियों की विशेषताओं के

उचित आकलन और व्याख्या में मदद मिल सकती है। सांख्यिकी शोध को गुणात्मकता प्रदान करता है। वर्तमान समय में माध्य ,माध्यिका, मानक विचलन ,चतुर्थांश , टी परीक्षण ,एनोवा, काई वर्ग आदि का प्रयोग शोध में व्यापक पैमाने पर हो रहा है। इसके अलावा ,पाई चार्ट, डायग्राम बार ग्राफ , आदि के माध्यम से भी आंकड़ों को व्यक्त निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है। किसी भी शोध में सांख्यिकी का प्रयोग किया गया हो तथा आंकड़ों में मानवीय हस्तक्षेप ना हुआ हो तो ऐसा माना जाता है कि शोध के परिणाम बेहतर होंगे।

निष्कर्ष : निष्कर्षतया कहा जा सकता है कि शोध पूर्ण रूप से एक वैज्ञानिक विधि है। जिसके स्पष्ट चरण है। शोध भी कई प्रकार के होते हैं। जिस शोध में आंकड़ों का प्रयोग किया जाता है । वह शोध वर्णनात्मक या विश्लेषणात्मक अनुसंधान के तहत आता है। इसके अलावा ऐतिहासिक अनुसंधान सहित अनुसंधान के कई ऐसे क्षेत्र हैं जिसमें यह मानकर चला जाता है कि उसमें आंकड़ों का प्रयोग संभव नहीं है लेकिन उसमें भी वर्तमान समय में आंकड़ों का प्रयोग हो रहा।आज देश काल की समस्त योजनाओं से संबंधित शोध में आंकड़ों का व्यापक प्रयोग किया जा रहा है। इसके अलावा शिक्षा के क्षेत्र में होने वाले अनुसंधान में तो सांख्यिकी का विशेष रूप से प्रयोग किया जाता है। क्योंकि बिना इसके प्रयोग के शैक्षिक अनुसंधान पूर्ण हो ही नहीं सकता। अनुसंधान के अन्य क्षेत्र में धीरे –धीरे सांख्यिकी का प्रयोग बढ़ रहा। कुछ विशेष अनुसंधान को छोड़ दिया जाए तो शेष सभी प्रकार के अनुसंधान में सांख्यिकी का प्रयोग इसलिए किया जा रहा है कि इससे सटीक आंकड़े तथा सटीक निष्कर्ष तक पहुंचा जा सकता है।

संदर्भ :

1. कपिल एच.पी. (1983); अनुसंधान के मूल तत्व एवं सांख्यिकी, भार्गव बुक डिपो, आगरा।
2. कुमार ,अरुण (2010); मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियां, मोतीलाल बनारसीदास प्रकाशन नई दिल्ली।
3. कॉल ,लोकेश(2005); शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली ,विकास पब्लिकेशन ,नई दिल्ली।
4. गुप्ता, एसपी, (2012); शैक्षिक अनुसंधान, शारदा प्रकाशन प्रयागराज,
5. भटनागर ,ए.बी. एवं भटनागर अनुराग (2011); शैक्षिक अनुसंधान की कार्यप्रणाली, आर.लाल बुक ,डिपो मेरठ।
6. बेस्ट जॉन डब्लू.(1997); रिसर्च इन एजुकेशन, इंगल
7. शर्मा,डॉ. विनयमोहन, (2006). शोध–प्रविधि. नयी दिल्लीरू नेशनल पेपरबैक्स. पृ० 11

***

योग साधना में बाधक तत्वों के संदर्भ में यौगिक तत्वों का अनुशीलन

*जसबीर**

सारांश *:–*

भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति में योग का महत्वपूर्ण स्थान रहा है , योग एक आध्यात्मिक प्रक्रिया है जिसमें शरीर , मन एवं आत्मा को एक साथ लाने का कार्य ही योग होता है। परन्तु कुछ विघ्नों के कारण साधक मुक्ति को प्राप्त नहीं कर सकता है इसलिए योग के ग्रंथों में योग के बाधक तत्वों से कैसे निजात पा सकते है और उनसे छुटकारा पाकर जीवन को सफल बना सकते हैं , हठयोग प्रदीपिका , योगदर्शन , दतात्रेय एवं मार्कण्डेय आदि ग्रंथों में स्पष्ट रूप से समझाया है। इसलिए योग को जीवन में अपनाना चाहिए और विघ्नों को दूर करना चाहिए । संसार की पहली पुस्तक ऋग्वेद में भी कहा गया है

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञा विपश्चितश्चन । स धीनां योगमिन्वति।।[1]

अर्थात् योग कार्य के बिना विद्वानों का कोई भी यज्ञ कर्म सिद्ध नहीं होता।

योग क्या है योग का सामान्यतः तीन अर्थ माने जाते हैं:– **युजिर् योगे**[2] – जोड़ना , **युज् समाधौ**[2] – समाधि , **युज् संयमने**[2] – संयम करना । परन्तु **महर्षि व्यास** ने योग का सही रूप समाधि[3] माना है। योग दर्शन में महर्षि पतंजलि ने योगश्चित्तवृत्ति निरोधः[4] अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। वेद कहता है **योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे सखाय इन्द्रमूतये।**[5] अर्थात् योग कि क्रियाओं से प्रत्येक पुरूष का व्यक्तित्व विकास , बौद्धिक विकास , शारीरिक विकास , मानसिक विकास और आध्यात्मिक विकास होता है योग के द्वारा ही व्यक्तित्व अपने स्वरूप में स्थित होता है : **तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**[6] अर्थात् साधक अपने स्वरूप में लीन हो जाता है। वेदांत भी आत्मज्ञान को श्रेष्ठ सत्य मानता है। विवेकशील होकर देखने पर सत्य स्वरूप प्रतिष्ठित होता है। **प्रज्ञानं ब्रह्म**[7] प्रज्ञा ही ब्रह्म है , **अहम् ब्रह्मास्मि**[8] मैं ब्रह्म हूँ , **तत्त्वमसि**[9] वह ब्रह्म तुम ही हो **अयमात्मा ब्रह्म**[10] अर्थात् यह आत्मा ब्रह्म है। योग वह सत्य है जिसके द्वारा परमात्मा को जाना जाता है इसको प्राप्त करने के लिए योग के अनेक विधाएं मिलती है :– जैसे ज्ञानयोग , भक्तियोग , हठयोग , राजयोग , मन्त्रयोग , लययोग , कर्मयोग , आदि। किसी भी कार्य को करने के लिए दो रास्ते होते है सही और गलत , सहायता करने वाले भी मिलते है और रोकने वाले भी मिलते हैं उसी प्रकार योगरूपी साधना करते समय साधक के सामने बाधाएं उत्पन्न होती है , स्वामी स्वात्माराम जी ने हठयौगिक ग्रंथ हठप्रदीपिका में योगसाधना में विघ्नकारक माने हैं – **अत्याहार प्रयासश्च प्रजल्पो नियमग्रह :। जनसंङ्गश्च लौल्यं च षड्भिर्योगो विनश्यति।।**[11]

[1]अर्थात् अधिक आहार खाना , अत्यधिक प्रयत्न करना , अत्यधिक बोलना , ज्यादा सिद्धांतवादी बनना अर्थात् अत्यधिक नियमों के प्रति संवेदनशील होना , लोगों से ज्यादा मिलना , जुलना , और मन को चंचल बनाना ये योग के मार्ग में आने वाले बाधक तत्व जो आपके विकास एवं उन्नति में विघ्न है। आचार्य बालकृष्ण भी कहते हैः – **अत्याशितालौल्यजनाति संगप्रजल्पिता वै नियमग्रहश्च । आयासकृत्यं हठप्रदीपिकां प्रोक्तानि षड् बाधक कारणानि** ।।[12]

अर्थात् अत्याहार , आयास , प्रजल्प , नियमग्रह , जनसंग और लौल्यं ये छः बाधक कारक है।

अत्याहार :– **बुभुक्षातोऽधिकत्वेन भोजनग्रहणं त्विह । अत्याहारो भवेद् यस्य त्यागो योगस्य सिद्धये।।**[13] अर्थात् भूख से अधिक भोजन करना , अत्याहार कहलाता है , इसका त्याग योगी के लिए परमावश्यक है । क्योंकि अत्यधिक आहार लेने से आलस्य , निद्रा , मोटापा , अपच , कब्ज , अम्लता आदि रोग उत्पन्न होते है और जठराग्नि को ज्यादा कार्य करना पड़ता है। इसलिए आहार का संयम करना

* श्री जगदीश प्रसाद झाबरमल टीबड़ेवाला,विश्वविद्यालय झुंझनू राजस्थान

चाहिए। अन्यथा इसके निराकरण हेतु षट्कर्म , आसन , प्राणायाम आदि क्रियाओं के अभ्यास में समय नष्ट होगा जो योगसाधना में प्राकृतिक रूप से बाधित है। आयुर्वेद में भी कहा है : –

आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवा स्मृतिः । स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः।[14]

अर्थात् संतुलित आहार एवं मिताहार भोजन करना चाहिए , आहार शुद्धि द्वारा सत्व की शुद्धि होती है , सत्व की शुद्धि से स्मृति की शुद्धि होती है , एवं संबंधों की मुक्ति होती है , त्रिगुणात्मक प्राप्ति होती है ये पदार्थ भी तीन प्रकार के होते है सात्विक , राजसिक और मानसिक भगवद्गीता में कहे गए हैं :–

आयुः सत्वबलारोग्यसुखप्रीतिवर्धनाः। रस्याः स्निग्धाः स्थिरा हृदया आहाराः सात्विकप्रियाः।।[15]

कट्वम्ललवणत्युष्णतीक्ष्ण रूक्षविदाहिनः । आहारा राजसस्येष्टा दुःखशोकामयप्रदाः।।[16]

यातयामं गतरसं पूति पर्यूषितं च यत्। उच्छिष्टमपि चा मेध्यं भोजनं तामसप्रियम्।।[17]

अर्थात् मिताहार , संतुलित खान पान से आयु बढ़ती है , इस सात्विक भोजन से बुद्धि निर्मल , तीक्ष्ण होती है , परन्तु अत्यधिक भोजन राजसिक या तामसिक प्रवृति लाता है , आलस्य कठोर एवं बुद्धि का ह्रास करता है। भगवान् श्री कृष्ण कहते हैं :–

नात्यश्नतस्तु योगोऽस्ति न चैकान्तमनश्नतः। न चातिस्वप्नशीलस्य जाग्रतो नैव चार्जुन।।[18]

अर्थात् यह योग न तो अधिक खाने वालो का है न बिल्कुल खाने वाला का तथा न अधिक सोने वाले का और न बिल्कुल सोने वाले का है। इसलिए हमें कम मात्रा में आहार लेना चाहिए और दिनचर्या का सही पालन करना चाहिए।

युक्ताहार विहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु । युक्तस्वप्नाबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।[19]

अर्थात् जो साधक संतुलित आहार का सेवन करते है एवं जो कर्मों के प्रति सजग है और दिनचर्या को पूर्णरूप पालन करते है उनके दुःखों का योग के द्वारा नाश होता है।[2]

प्रयास :– यहां पर प्रयास का अर्थ है योगसाधक को ज्यादा शारीरिक एवं मानसिक कार्य नहीं करने चाहिए क्योंकि इससे सात्विक गुण कम होगा , राजसिक और तामसिक गुण प्रबल होंगे। यहीं योग साधना में बाधक बनेंगे। आचार्य श्री बालकृष्ण जी कहते हैं –

स्वशक्त्यतिक्रमात् कायमनोवाणीपरिश्रमः। प्रयास उच्यते यस्य त्यागो योगिभिरिष्यते।।[20]

अर्थात् सीमा से अधिक शारीरिक , मानसिक एवं वाचिक परिश्रम करना ही आयास है इसलिए योग साधक को इसको छोड़ देना चाहिए क्योंकि इससे शारीरिक मानसिक थकान होती है जो योग साधना में बाधक है।

प्रजल्प :– वाचाल प्रकृति होना , समय को व्यर्थ गंवाना , लोगों में हंसी का पात्र बनना , गपशप करने से समय की हानि होती है जिससे नकारात्मक सोच बढ़ती है जो ईर्ष्या , द्वेष , लोभ , मोह , आदि कारणों को बढ़ाती है। आचार्य बालकृष्ण भी कहते हैः–

मितसम्भाषणाद्भयान् संवादस्तु मनीषिभिः। प्रजल्पः प्रोच्यते यश्च बहुभाषणमुच्यते।।[21]

अर्थात मात्रा से अधिक भाषण या संवाद करना बहुभाषण कहलाता है। जिससे वह अपना व औरों का भी समय नष्ट करता है इसलिए इसको छोड़ना चाहिए।

नियमग्रहः– योगसाधना करने वाले मनुष्य के लिए शास्त्रों के अनुसार सामाजिक नियमों के अनुसार या धार्मिक मान्यताओं के अनुसार नियमों का पालन करना जरूरी नहीं है ठंडे जल से स्नान करना परन्तु सर्दी के मौसम में यह उपयुक्त नहीं , जैसे मुझे वहीं बैठना , किसी निश्चित स्थान के प्रति लाड़ दुलार भी साधक के लिए हानिकारक है आचार्य बालकृष्ण भी कहते है : –

सम्प्रदायान्तरप्रोक्तनियमानांच पालने ।दुराग्रहः समाख्ययातो लोके तु नियमग्रहः ।।[22]

यथा शीतजलेनैवावेगाहः प्रातरेव वा , फलाद्येकान्नभक्षादिनियमधारणस्य वै।

संङ्कल्पो दृढ़तोपेतो योगवर्त्मनि बाधकः ।।[23]

अर्थात् सामाजिक सम्प्रदाय एवं धर्मों के द्वारा बनाये नियमों के पालन में दुराग्रह करना नियमाग्रह कहलाता है। जैसे :– ठण्डे जल से स्नान करना वो भी सुबह ही करना , खाने में केवल विशिष्ट पदार्थों को ही ग्रहण करने के नियम बनाना , समय काल और परिस्थिति को न समझकर अपने नियमों में अडिग रहना ये कार्य योग रूपी साधना में विघ्न माने गये है।

जनसङ्ग :– जनसङ्ग का अर्थ है लोगों के बीच में ज्यादा रहना , घुलना , मिलना , इत्यादि साधना के समय को नष्ट करता है और लोगों की संगति का असर साधक के मस्तिष्क को प्रभावित करता है इसलिए जनसंग का परित्याग करना चाहिए । आचार्य बालकृष्ण भी कहते है :– [3]

भूयांस्तु जनसम्पर्को जनसंग उदाहृतः। अनेन योगिनश्चिते कामक्रोधादयोऽखिलाः।।[24]

विकाराः सम्यगाक्रम्य प्रतिबध्नन्ति साधनाम्। जनसङ्गमतो योगी दूरतः परिवर्जयेत्।।[25]

अर्थात् निरर्थक पुरूषों से ज्यादा संपर्क स्थापित करना जनसंग कहलाता है इससे साधक के चित में काम क्रोध , लोभ , मोह , राग , द्वेषादि विकार जागृत होते हैं जो योग में बाधा पहुंचाते हैं इसलिए साधक को जनसंसर्ग का त्याग करना चाहिए।

लौल्यं :– लौल्यं का सामान्य अर्थ है चंचलता , मानव के अंदर नकारात्मक वृत्तियां बढ़ने पर व्यक्ति अधीर हो जाता है , एक दिन सुबह योग साधना 5 बजे करना , दूसरे दिन आलस्य के कारण 7 बजे करना यह प्रवृति लौल्य कहलाती है। इस तरह की अस्थिरताओं को चित्त विक्षेपक या योगान्तराय कहते है जो चित्त को विक्षिप्त करके उसके एकाग्रभाव को नष्ट कर देते है इन्हें योगान्तराय कहते है ''योगस्य अन्तःमध्ये आयान्ति ते अन्तरायाः'' अर्थात् ये विघ्न साधक की साधना के मध्य आते है कई बार साधक इन विघ्नों के कारण साधना छोड़ देता है इसलिए या तो विघ्न आएं नहीं अगर आ जाए तो उनसे लड़ने की शक्ति ईश्वर हमें प्रदान करें । परन्तु सामान्यतः देखा जाता है '' श्रेयांसि बहुविघ्नानि'' प्रत्येक शुभकार्य में बाधा अकसर आती है इसलिए उनसे मुकाबला करने का साहस योगसाधक में होना चाहिए। आचार्य श्री बालकृष्ण जी कहते हैः– **इन्द्रियाणान्तु चापल्यं लौल्यं तत् प्रणिगद्यते ।[26]**

दशेन्द्रियाणि सन्त्यत्र देहे येष्वेकतोऽथवा। सर्वेषु लोलुपत्तिबुर्द्धिस्थैर्यं निहन्त्यरम्।।[27]

अनेन स्थैर्यनाशेन साधना व्यवधीयते। साधकस्तेन षड् विघ्नान् यत्नतः परिवर्जयेत्।।[28]

अर्थात् इन्द्रियों की चपलता को लौल्य कहते हैं। मानव के शरीर में विद्यमान दसों इन्द्रियों में से किसी भी एक इन्द्रि में चंचलता आने से साधक की एकाग्रता नष्ट हो जाती है । इसलिए स्थैर्यनाश से भी योग में विघ्न होना अवश्यम्भावी है , इसलिए हठयोग में साधक के लिए इन छः कर्मों को त्यागने के लिए कहा है।

महर्षि पतंजलि ने योगदर्शन में नौ विघ्न बताएं हैं :– **व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरतिभ्रांतिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः[29]**

अर्थात् व्याधि , स्त्यान , संशय , प्रमाद , आलस्य , अविरति , भ्रांतिदर्शन , अलब्धभूमिकत्व , अनवस्थित्व ये चित्त के नौ बाधक अंतराय है । 1. व्याधिः– धातु , रस , तथा इन्द्रियों की विषमता अर्थात् अर्थात् शरीर व मन के स्वभाविक क्रियाकलापों में पैदा हुआ किसी भी प्रकार का व्यवधान व्याधि कहलाता है। आयुर्वेद में इस व्यधान का कारण वात पित और कफ की असमानता बताई गई ।

स्वामी निरंजनानंद सरस्वती के अनुसार **व्याधि** के मुख्य कारणः– 1. जैविक अभिकर्ता विषाणु , परजीवी , सर्पकीट आदि । 2. जलवायु एवं पर्यावरण से संबंधित कारक अत्यधिक गर्मी/सर्दी , वायु , जल और मृदा का दूषित होना। 3.खाद्य पदार्थों का संदूषण 4. बुरी आदतों का शिकार होना , अत्यधिक दवाईयों का सेवन 5. अनुवांशिक घटक [4]

मानसिक :– **आंतरिक द्वन्द्व** – इनकी उत्पति भय , चिंता परेशानी तनाव से होती है जो मनोग्रंथि का आकार लेकर चिंतन जम जाती है।

भावनात्मक प्रतिक्रियाएं:– दुःख , क्रोध , घृणा , अहंकार एवं इच्छाएं आदि।

स्त्यानः– ''**स्त्यानं अकर्मण्यता चित्तस्य**'' अर्थात् चित्त की अकर्मण्यता स्त्यान कहलाती है। समाधि को प्राप्त करने की इच्छा चित्त में होती है परन्तु उसको प्राप्त करने की शक्ति इसमें नहीं होती , केवल सोचने मात्र से योग सिद्ध नहीं होता इसलिए योगाभ्यास की शक्ति होनी चाहिए। धन कमाने की लालसा , सांसारिक मोहमाया रूपी कर्म चित्त को व्यस्त रखते है यही अकर्मण्यता योग में विघ्न है।

संशय :–'' **उभयकोटिस्पृश् विज्ञानं संशय** '' अर्थात् यह भी हो सकता है और वह भी हो सकता है। इस तरह के ज्ञान संशय कहलाता है। यौगिक संदर्भ में :– योगसाधक को साधना के समय

सकारात्मक व नकारात्मक पक्षों को मानसिक विचारणा के द्वारा छूना संशय कहलाता है जैसे :– मैं योगसाधना कर पाउंगा या नहीं , मुझे समाधि की प्राप्ति होगी या नहीं । इसलिए इसे मन में ना आने दें क्योंकि यहीं विचार योग मार्ग में बाधक है

प्रमाद :– **समाधि साधनानामभावनम्** – अर्थात् समाधि को प्राप्त करने के लिए उत्साह , लग्न एवं विश्वास पूर्वक कार्य न करना ही प्रमाद है , प्रमाद अविवेक से उत्पन्न से होता है (मानसिक लापरवाही)।

मानसिक लापरवाही शारीरिक सामर्थ्य का पद , जवानी का जोश , धन और सत्ता का घमंड साधक के उत्साह को शिथिल कर देता है इसलिए प्रमाद को त्यागना चाहिए इसके लिए योगदर्शन में कहा – ''**देशबंधचित्तस्यधारणा**''[30] मन में धारणा हो तो हर कार्य कर सकता है।

आलस्य :– **आलस्यं कायस्य चित्तस्य च गुरूत्वादप्रवृतिः** '' अर्थात् कार्य के कारण एवं तमोगुण के प्रबल होने पर शरीर और चित्त में जो भारीपन आता उसे आलस्य कहते है। इसकी उत्पति अत्यधिक गरिष्ठ भोजन से और पेट की सफाई ना होने से होती है। इसलिए हमें मिताहार एवं षट्कर्म को अपनाना चाहिए क्योंकि आलस्य योग में बाधक है।

अविरति :– **चित्तस्य विषयसम्प्रयोगात्मा गर्धः अविरति** , अर्थात् शब्दादि विषयों के भोग से तृष्णा का प्रादुर्भाव होता है जो वैराग्य की शत्रु है , समाधि की प्राप्ति के लिए वैराग्य भाव जरूरी है। मनुष्य को मोहक दृश्य , लुभावना संसार , स्वादिष्ट व्यंजन तत्व ज्ञान को ढक लेते है और साधक को विषयों में आसक्त बना देते हैं यहीं आसक्ति अविरति है इसलिए योग साधना में यह भी बाधक है अतः इसे त्यागना चाहिए।

भ्रांतिदर्शन :– मिथ्याज्ञान को अर्थात् जहां भ्रम पैदा हो जाएं उस स्थिति को भ्रांतिदर्शन कहते है। रस्सी को देखकर सांप की कल्पना करना , सांप समझना यहीं भ्रम है। योगरूपी कार्यों को बेकार समझना । जैसेः– योग तो केवल बुढ़ों के लिए है ।

अलब्धभूमिकत्वः– अपने लक्ष्य को प्राप्त न कर पाना अर्थात् साधक के द्वारा मोक्ष को प्राप्त न कर पाना ही अलब्धभूमिकत्व।[5]

अनवस्थितत्व :– सफलता को प्राप्त करने पर उसको कायम न रख पाना , साधक के द्वारा समाधि प्राप्त करने पर उसको निरंतर स्थिर न कर पाना ही अनवस्थित्व है।

श्री दत्तात्रेय भी अपने ग्रंथ में योग के चार बाधक तत्वों के बारे में बताते हैं :–

आलस्यं प्रथमो विघ्नो द्वितीयस्तु प्रकथ्यते।
पूर्वोक्त धूर्तगोष्ठी च तृतीय मन्त्रसाधनम्।।
चतुर्थो धातुवादः स्यात् इति योगविदो विदुः।।[31]

आलस्यः–कर्म करने में मक्कारी करना , सुस्त रहना , लग्नपूर्वक कार्य न करना , कार्य को मन लगाकर न करना , बहाना बनाना , हमेशा उपेक्षा का भाव रखना आलस्य है।

धूर्तगोष्ठी :– दुष्ट व्यक्तियों का साथ देना या उनके साथ मिलकर कार्य करना , हमेशा बुरे व्यक्तियों का संग करके छल कपट से लोगों को ठगना, मूर्ख बनाना ही धूर्तगोष्ठी है।

मन्त्र साधन :– मंत्रों के द्वारा सम्मोहन , वशीकरण , जादू टोना एवं तांत्रिक कार्यों की सिद्धि प्राप्त करके इसका दुरूपयोग करना योग मार्ग में बाधक है।

धातुविद्या :– औषधियों के द्वारा हल्की धातु पर मूल्यवान धातु का लेप चढ़ाना, जैसे तांबा , लोहा , रंगा आदि धातुओं पर सुवर्ण एवं चांदी की परत चढ़ाना और फिर लोगों को ठगना , जिस ये धातुएं परत चढ़ने से संपूर्ण रूप से सोने एवं चांदी की नहीं होती उसी प्रकार औषधियों के सेवन से कोई मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता है।

मार्कण्डेय पुराण में भी कहा हैः–

उपसर्गाः प्रवर्तन्ते दृष्टाह्यात्मनि योगिनः। ये तांस्ते सम्प्रवक्ष्यामि समासेन निबोध मे।।
काम्याः क्रियास्तथा कामान् यो मनुष्योऽभिवांछति। स्त्रियों दानफलं विद्यां मायां कुप्यं धनं वसु।।
देवत्वममरेशत्वं रसायनः वयः क्रियाम्। मेरू प्रयत्नं यज्ञं जलाग्न्यावेशनं तथा।।

श्राद्धानां शक्तिदानानां फलानि नियमास्तथा । तथोपवासात् पूर्ताच्च देवपित्रर्चनादपि।।
अर्थात् जब कोई साधक अपनी साधना शक्ति का दुरूपयोग करता है तो उसे योगफल/मोक्ष कभी प्राप्त नहीं हो सकता इसलिए साधक को सुंदर स्त्रियों की कामना , किए गए दान के फल की इच्छा , विद्या का दुरूपयोग , सम्मोहन , जादू – टोना , देवताओं के या इन्द्र के समान पद की लालसा नहीं करनी , देहकल्प , ज्यादा पर्वतों पर चढ़ना ,जल एवं अग्नि में प्रवेश इत्यादि कर्मों को न करें एवं करने से बचे।
उपसंहार :– उपरोक्त तथ्यों के आधार हम कह सकते हैं :– किसी भी कार्य में बाधा आना स्वभाविक परन्तु उन बाधाओं को योग के द्वारा करके हम अपने जीवन को सफल बना सकते है और आगे जीवन में ना आयें इन्हें हम छोड़ सकतें है । आचार्य श्री रवि कुमार शास्त्री जी कहते है बाधाएं जीवन में परीक्षा लेने के लिए आती है इसलिए हमें कभी घबराना नहीं चाहिए। इन बाधाओं को दूर करके साधक मोक्षरूपी रत्न को प्राप्त कर सकता है। ये बाधक तत्व जीवन को क्षणिक आनंद देकर उसको समूल कर्मों को नष्ट कर देती है इसलिए हमें बाधक तत्वों को जीवन से दूर करना चाहिए योगाभ्यास का अभ्यास करना चाहिए।

संदर्भ :

1. योग दर्शन स्वामी रामदेव जी महाराज प्रकाशक दिव्य प्रकाशन
2. हठप्रदीपिका सम्पादक एवं व्याख्याकार स्वामी श्री द्वारिकादासशास्त्री प्रकाशक चौखम्भा विद्याभवन वाराणसी
3. योगविज्ञान स्वामी बालकृष्ण दिव्य योग मंदिर पतंजलि योगपीठ हरिद्वार
4. योगदर्शन आचार्य राजबीर आर्ष कला ट्रस्ट दिल्ली
5. श्रीमद्भगवदगीता गीताप्रैस गोरखपुर
6. हठरत्नावली श्री सतपाल खिचड़ ओम श्री डिवाइन पब्लिकेशन्स रानिया सिरसा हरियाणा
7. धातुपाठ गुरूकुल गौतम नगर नई दिल्ली – 110049
8. ऋग्वेद संहिता गुरूकुल झज्जर हरियाणा
9. यजुर्वेद संहिता गुरूकुल झज्जर हरियाणा
10. अष्टांग योग वैज्ञानिक विवेचन एवं चिकित्सा स्वामी देवव्रत आर्ष योग संस्थान मिर्जापुर फरीदाबाद हरियाणा
11. दतात्रेय संहिता एवं मार्कण्डेय संहिता
12. ब्रह्मचर्य के साधन स्वामी ओमानंद सरस्वती गुरूकुल झज्जर हरयाणा
13. आसन प्राणायाम मुद्रा बंध स्वामी सत्यानंद सरस्वती योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट मुंगेर बिहार
14. वैदिक योगामृत एवं योगमार्ग स्वामी ब्रह्ममुनि सत्यधर्म प्रकाशन गुरूकुल लाढौत रोहतक
15. योग साधना स्वामी सत्यानंद सरस्वती योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट गंगादर्शन मुंगेर बिहार
16. समग्र स्वास्थ्य के लिए योग एवं प्राकृतिक चिकित्सा पर राष्ट्रीय अभियान आयुष मंत्रालय भारत
17. स्वाध्याय एवम् योग चिकित्सा डॉ दत्तात्रेय रामचंद्र वझे प्रकाशक बी–4 राहुलनगर कोथरूड पुणे
18. आयुर्वेद का दर्शन शरीर क्रिया एवं स्वस्थ वृत ब्रह्मवर्चस श्री वेदमाता गायत्री ट्रस्ट शांतिकुंज हरिद्वार

---

[1] . ऋग्वेद संहिता 1/18/7
2. धातुपाठ
3. व्यास भाष्य 1/1
4. पातंजल योग दर्शन 1/2
5. ऋग्वेद संहिता 1/33/11, यजुर्वेद 1/14 , अथर्ववेद 20/26/1
6. योगदर्शन 1/3
7.ऐतरयोपनिषद् 3/1/3 ऋग्वेद
8. बृहदारण्योपनिषद् 1/4/10 यजुर्वेद
9.छांदोग्योपनिषद् 6/8/7 सामवेद

10. माण्डूक्योपनिषद् 2 अथर्ववेद
11.हठप्रदीपिका 1/15 , हठरत्नावली पृष्ठ 22
12.योगविज्ञान – 4/23
13.योगविज्ञान – 1/24
14.छांदोग्योपनिषद् 7/102
15.श्रीमद्भगदगीता 17/08
16..श्रीमद्भगदगीता 17/09
17..श्रीमद्भगदगीता 17/10 पृष्ठ 831
18..श्रीमद्भगदगीता 6/16
19..श्रीमद्भगदगीता 6/17
[3]20. योगविज्ञान :– 4/25
21. योगविज्ञान :– 4/26
22. योगविज्ञान :– 4/27
23. योगविज्ञान :– 4/28
24. योगविज्ञान :– 4/29
25.योग विज्ञाान 4/30
26..योग विज्ञाान 4/31
27..योग विज्ञाान 4/32
28..योग विज्ञाान 4/33
29.योग दर्शन 1/30
30. योगदर्शन 3/1

***

मानव निर्माण की शिक्षा में स्वामी विवेकानन्द जी का योगदान

*दीपशिखा नामदेव**
*डॉ. ब्रज सुन्दर गौतम***

सार:

शिक्षा प्रत्येंक व्यक्ति के जीवन में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है, आज के प्रतिस्पर्धा भरे वैश्विकरण के युग में इसका महत्व स्वयं सिद्ध है। एक अच्छी शिक्षा, आरामदायक जीवन की गारण्टी प्रदान करती है क्योंकि यह एक अच्छी नौकरी प्राप्त करने की आवश्यक शर्त होती है। जो एक उच्च गुणवत्ता वाले विद्यालयों/ विश्वविद्यालयों में ही प्राप्त हो सकती है। स्वामी विवेकानंद भारतीय शिक्षा के इतिहास के प्रसिद्ध दार्शनिक एवं शिक्षाविद भी हैं। उनके शैक्षिक विचार, उनके जीवन दर्शन से प्रभावित है। स्वामी विवेकानंद नव्य वेदांत दर्शन में विश्वास करते थे जो मानता है कि मानव जीवन का अंतिम लक्ष्य ईश्वर से साक्षात्कार प्राप्त करना है। उनके अनुसार जव ईश्वर हर इंसान के अंदर निवास करते है। तब, भगवान की सर्वश्रेष्ठ पूजा मानव जाति के लिए सेवा ही है। स्वामी विवेकानंद के महत्वपूर्ण विचारों में से एक, युवाओं में एक मजबूत चरित्र का निर्माण है। उन्होंने एक ऐसी शैक्षिक प्रणाली की वकालत की, जो सही मायने में मानव निर्माण में सक्षम है। उनके अनुसार इस तरह की शिक्षा का अर्थ मनुष्य में पूर्णता की अभिव्यक्ति से है। स्वामी विवेकानंद हमेशा मानते थे कि वास्तविक शिक्षा के बिना राष्ट्र का विकास संभव नहीं है। उनके अनुसार राष्ट्र निर्माण के लिए प्रत्येक मनुष्य में अच्छे व्यक्तित्व का विकास बहुत आवश्यक है। इसीलिए, स्वामी विवेकानंद ने मैन मेकिंग एजुकेशन पर जोर दिया जिसके द्वारा हम अपने राष्ट्र के विकास के लिए एक अच्छे नागरिक का निर्माण कर सकते हैं। स्वामी विवेकानंद के अनुसार,'मनुष्य बनाने का अर्थ है शरीर, मन और आत्मा का सामंजस्यपूर्ण विकास है'

शब्द संकेत: प्रखरता , मानव–निर्माण, अभिव्यक्ति,, सामंजस्यपूर्ण, आवश्यक।

प्रस्तावना:

"शिक्षा आपके मस्तिष्क में डाली गई सूचनाओं की मात्रा नहीं है और वहां दंगा करवाती है, जिससे आपका सारा जीवन बेकार हो जाता है। हमारे पास जीवन–निर्माण, मनुष्य निर्माण, चरित्र निर्माण और विचारों को आत्मसात करने की क्षमता होनी चाहिए। हम चाहते हैं कि शिक्षा जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण हो, मन की शक्ति बढ़े, बुद्धि का विस्तार हो और जिससे व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके।''

– स्वामी विवेकानंद

समकालीन भारतीय चिंतन की नव–वेदांत मानवतावादी परंपरा में, विवेकानंद ने मानव–निर्माण के लिए शिक्षा का दर्शन प्रस्तुत किया। शिक्षा के समकालीन भारतीय दार्शनिकों में से वह उन लोगों में से एक थे, जिन्होंने भारत में ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली को लागू करने के खिलाफ विद्रोह किया। वह भारत में अंग्रेजों द्वारा शुरू की गई शिक्षा के प्रणाली के गंभीर आलोचक थे।

उन्होंने महसूस किया कि शिक्षा की वर्तमान प्रणाली भारत की संस्कृति के अनुरूप नहीं है। उन्होंने कहा कि इस तरह की शिक्षा बिना किसी आंतरिक बल के बाहरी परिवर्तन लाती है। जो मानव निर्माण में सक्षम नही हो सकती है।

पूर्व शिक्षा प्रणाली

---

* शोध छात्रा, शिक्षा शास्त्र विभाग, कैरियर प्वाइंट विश्वविद्यालय, कोटा-राजस्थान
** असि. प्रोफेसर, जवाहर लाल नेहरु टी. टी. कालेज, कोटा-राजस्थान

समकालीन शैक्षिक प्रणाली के खिलाफ विवेकानंद द्वारा उठाए गए मुख्य आक्षेप यह था कि यह पुरुषों को गुलाम बनाने में, गुलामी में सक्षम था और कुछ नहीं। प्रचलित विश्वविद्यालय की शिक्षा के बारे में, उन्होंने टिप्पणी की कि ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली क्लर्कों के निर्माण की एक कुशल मशीन ज्यादा कुछ नहीं थी। यह लोगों को उनकी आस्था और विश्वास से वंचित करता था। अंग्रेजी शिक्षित लोगों का मानना था कि गीता झूठी है और वेद, ग्रामीण लोक विद्या से अधिक महत्वपूर्ण नहीं है। शिक्षा की इस प्रणाली की आलोचना करते हुए विवेकानंद ने इसकी तुलना उस व्यक्ति से की जो अपने गधे को घोड़े में बदलना चाहता था, उसे इस परिवर्तन को प्राप्त करने के लिए गधे को फेंकने की सलाह दी गई और इस प्रक्रिया में उसने अपने गधे को मार दिया।

विवेकानंद ने मानवतावादी दृष्टिकोण से शिक्षा की समकालीन प्रणाली की भी आलोचना की। वह एक मानवतावादी थे और मानव–निर्माण के लिए शिक्षा की याचना की है। ऐसी शिक्षा अंग्रेजों द्वारा प्रतिपादित नहीं थी। इसलिए, विवेकानंद ने इसकी निंदा की। उन्होंने टिप्पणी की है कि, *''यह एक मानव–निर्मित शिक्षा नहीं है, यह केवल और पूरी तरह से एक नकारात्मक शिक्षा है। एक नकारात्मक शिक्षा या कोई भी प्रशिक्षण जो कि नकारात्मकता पर आधारित है, जो मृत्यु से भी बदतर है। बच्चे को स्कूल ले जाया जाता है, और पहली चीज जो वह सीखता है, वह यह है कि उसका पिता एक मूर्ख है, दूसरी बात यह है कि उसके दादाजी लम्पट हैं, तीसरी बात यह है कि उनके सभी शिक्षक पाखंडी हैं, चौथा, कि सभी पवित्र पुस्तकें झूठ हैं। जब तक वह सोलह वर्ष का हो जाता है तब तक वह उपेक्षा, निर्जीव और बंधनहीन होता है। और इसका नतीजा यह है कि पचास साल की शिक्षा ने तीन मूल सिद्धांतों में एक मूल आदमी का उत्पादन नहीं किया है। मौलिकता का हर आदमी जो शिक्षा का उत्पादन किया गया है, वह शिक्षा कहीं और है, न कि इस देश में या वे अंधविश्वासों को खत्म करने के लिए एक बार फिर पुराने विश्वविद्यालयों में गए हैं।''*

शिक्षा का उद्देश्य

विवेकानंद दर्शन के अनुसार शिक्षा के उद्देश्य निम्नलिखित हैं–

1. स्वयं का विकास

शिक्षा की समकालीन प्रणाली के विपरीत विवेकानंद ने आत्म–विकास के लिए शिक्षा की वकालत की है। उन्होंने कहा, *''शिक्षा से मेरा अर्थ वर्तमान व्यवस्था से नहीं है, बल्कि सकारात्मक शिक्षण की दिशा में कुछ है। मात्र पुस्तक सीखने से ऐसा नहीं होता है। हम चाहते हैं कि शिक्षा जिसके द्वारा चरित्र का निर्माण हो, मन की शक्ति बढ़े, बुद्धि का विस्तार हो और जिसके द्वारा व्यक्ति अपने पैरों पर खड़ा हो सके। हम जो चाहते हैं, वेदांत, ब्रह्मचर्य के मार्गदर्शक आदर्श वाक्य के रूप में, और श्रद्धा, और एक स्वयं में विश्वास के साथ पश्चिमी विज्ञान युग्मित हैं।''*

विवेकानंद जी के ये शब्द शिक्षा की विशिष्ट भारतीय परिभाषा का प्रतिनिधित्व करते हैं। अधिकांश पश्चिमी शिक्षाविदों के अनुसार शिक्षा का उद्देश्य पर्यावरण के साथ मनुष्य का समायोजन है। दूसरी ओर, भारतीय दार्शनिक परंपरा के अनुसार, शिक्षा मनुष्य में निहित ज्ञान की प्राप्ति है। सच्चा ज्ञान बाहर से नहीं बल्कि भीतर से आता है, यह व्यक्ति के साथ खोजा जाता है, स्वयं में जो सभी ज्ञान का स्रोत है। दुनिया को जो भी ज्ञान प्राप्त हुआ है, वह सभी मन से आता है ब्रह्मांड का अनंत पुस्तकालय आपके दिमाग में है। बाहरी दुनिया केवल सुझाव, अवसर है, जो आपको अपने मन को अध्ययन करने के लिए तैयार करती है।

उदाहरण स्वरूप सेब के गिरने ने न्यूटन को सुझाव दिया, और उन्होंने अपने मन का अध्ययन किया। उन्होंने अपने दिमाग में विचार के सभी अनमोल लिंक को पुनः व्यवस्थित किया और उनके बीच एक नई कड़ी की खोज की जिसे हम लॉ ऑफ ग्रेविटेशन कहते हैं। इस प्रकार, विवेकानंद के अनुसार, शिक्षा का कार्य हमारे दिमाग में छिपे ज्ञान का उजागर करना है। शिक्षा स्व–विकास की प्रक्रिया है। विवेकानंद के शब्दों में, *''आप किसी बच्चे को एक पौधा उगाने से ज्यादा कुछ नहीं सिखा सकते। संयंत्र अपनी प्रकृति विकसित करता है।''* एक व्यक्ति की शिक्षा को उसके द्वारा पढ़ी जाने वाली पुस्तकों की संख्या से नहीं बल्कि उसके दिमाग पर अज्ञानता के आवरण की मोटाई से आंका जाता है।

जितना मोटा यह आवरण है, उतना ही अज्ञान है। जैसा कि ज्ञान का प्रकाश अज्ञानता के इस आवरण को धीरे–धीरे चकनाचूर कर देता है। शिक्षक का काम अपने मार्गदर्शन से ज्ञान को उजागर करना है। उनका मार्गदर्शन मन को सक्रिय बनाता है और शिक्षित स्वयं उनके भीतर पड़े ज्ञान का अनावरण करता है।

2. स्वाधर्म का पालन

विवेकानंद ने स्वधर्म विचार का समर्थन किया है। हर किसी को अपनी तरह विकसित होना है। किसी को भी दूसरों की नकल नहीं करनी चाहिए। इसलिए उन्होंने विदेशी शिक्षा को लागू करने की निंदा की। उन्होंने पूछा कि, *"एक विदेशी भाषा में दूसरों के विचारों को दिल से प्राप्त करना और अपने मस्तिष्क को उनके साथ जोड़ना और कुछ विश्वविद्यालय, डिग्री लेना, आप खुद को शिक्षित होने पर गर्व कर सकते हैं। क्या यह शिक्षा है?"* सच्चा सुधार आत्म–प्रेरित होना चाहिए। बच्चों पर किसी भी प्रकार का कोई बाहरी दबाव नहीं होना चाहिए। बाहरी दबाव केवल विनाशकारी प्रतिक्रियाओं का कारण बनता है जिससे रुकावट और अनुशासनहीनता जन्म लेती है। स्वतंत्रता, प्रेम और सहानुभूति के वातावरण में, बच्चे में साहस और आत्मनिर्भरता का विकास होगा। उसकी गतिविधियों में अनावश्यक रूप से जाँच नहीं की जानी चाहिए। शिक्षक को उसे ऐसा करने के लिए लगातार नहीं कहना चाहिए। ऐसी नकारात्मक दिशाएँ उसकी बुद्धि और मानसिक विकास को कुंद करती हैं। उसे खुद से खड़े होने के लिए, खुद के लिए बात करने के लिए बात की जानी चाहिए। यह तब से है क्योंकि विवेकानंद ने सुझाव दिया कि, ''दि आप उसे एक शेर बनने की अनुमति नहीं देते हैं, तो वह एक लोमड़ी बन जाएगा।'' इसलिए, व्यक्तिगत रूप से बच्चे के अनुरूप शिक्षा को संशोधित किया जाना चाहिए। प्रत्येक बच्चे को अपनी आंतरिक प्रकृति के अनुसार विकसित होने के अवसर दिए जाने चाहिए।

3. स्वतंत्र विकास

इस प्रकार विवेकानंद बच्चों पर किसी भी प्रकार के बाहरी दबाव के खिलाफ थे। वह स्वतंत्रता के कट्टर पक्षधर थे। आत्म–विकास के लिए स्वतंत्रता पहली आवश्यकता है। बच्चो को अपनी प्रकृति के अनुसार बढ़ने की स्वतंत्रता दी जानी चाहिए। विवेकानंद के शब्दों में, *"आप किसी बालक को एक पौधा उगाने से ज्यादा कुछ नहीं सिखा सकते। आप केवल मदद कर सकते हैं। आप बाधाओं को दूर कर सकते हैं, लेकिन ज्ञान प्रकृति से बाहर आता है। मिट्टी को थोड़ा ढीला करें, ताकि वह आसानी से बाहर आ सके। इसके चारों ओर हेज लगाओ, और वहां आपका काम रुक जाता है। आप कुछ और नहीं कर सकते। शेष अपनी प्रकृति के भीतर से एक अभिव्यक्ति है।"*

4. चरित्र निर्माण

चरित्र आत्म–विकास का एक ठोस आधार है। आत्म–विकास के रूप में शिक्षा का उद्देश्य, चरित्र निर्माण की है। चरित्र को परिभाषित करते हुए, विवेकानंद ने कहा, *"किसी भी पुरुष का चरित्र उसकी प्रवृत्ति का समुच्चय है, लेकिन उसके दिमाग की कुल राशि। जैसा कि उनकी आत्मा के सामने खुशी और दर्द गुजरता है, वे इसे अलग–अलग चित्रों पर छोड़ देते हैं और इन संयुक्त छापों का परिणाम यह है कि एक आदमी का चरित्र कहा जाता है।''* चरित्र निर्माण व्यक्ति द्वारा पोषित आदर्शों पर निर्भर करता है। शिक्षक को बालकों के समक्ष उच्च आदर्श प्रस्तुत करना चाहिए। चरित्र विकसित करने का सबसे अच्छा तरीका शिक्षक द्वारा स्थापित उच्च चरित्र का व्यक्तिगत उदाहरण है। इस बिंदु पर जोर देते हुए विवेकानंद ने कहा, *"शिक्षक के व्यक्तिगत जीवन के बिना कोई शिक्षा नहीं होगी। उनके चरित्र के साथ एक बहुत ही लड़कपन से जीना होगा, जिसका चरित्र एक धधकती आग की तरह है, और उसके सामने उच्चतम शिक्षण का एक जीवित उदाहरण होना चाहिए ... ज्ञान प्रदान करने का आरोप फिर से टाइगिस के कंधों पर गिरना चाहिए।''* प्राचीन भारतीय शिक्षा पद्धति में शिक्षक विद्यार्थियों के सामने उच्च आदर्श प्रस्तुत करते थे, जिन्होंने अपनी क्षमता के अनुसार इन आदर्शों की शुरुआत की। चरित्र निर्माण के लिए निम्नलिखित बातों की आवश्यकता होती है–

5. कठोर परिश्रम

विवेकानंद के अनुसार चरित्र निर्माण, कड़ी मेहनत की आवश्यकता है। यह उन लोगों द्वारा संभव नहीं है जिनके पास सभी प्रकार के आनंद की इच्छा है। चरित्र निर्माण में स्ट्रगल सबसे अच्छा शिक्षक है। गतिविधि और पुरुषार्थ जीवन के लक्षण हैं। निष्क्रियता जीवन शक्ति की अनुपस्थिति को दर्शाती है। सभी प्रकार के आरामों में रहने और सभी प्रकार के श्रम से भागने के दौरान, कोई भी उच्च चरित्र का निर्माण नहीं कर सकता है।

6. नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यः

कड़ी मेहनत के अलावा, चरित्र निर्माण में शुद्धता, ज्ञान की प्यास, दृढ़ता, विश्वास, विनम्रता, अधीनता और वंदना आदि जैसे गुणों की आवश्यकता होती है, जैसे गुणों को शिक्षक के उदाहरण और शिष्य के प्रयासों द्वारा विकसित किया जा सकता है। विवेकानंद के अनुसार, *"शिक्षक के प्रति हमारे दिलों में विश्वास, विनम्रता, समर्पण और मन्नत के बिना, हम में कोई वृद्धि नहीं हो सकती है। उन देशों में, जिन्होंने इस तरह के संबंध को बनाए रखने के लिए उपेक्षा की है, शिक्षक एक मात्र व्याख्याता बन गए हैं, शिक्षक को अपने पांच डॉलर की चिन्ता है और व्यक्ति ने अपने मस्तिष्क को शिक्षक के शब्दों से भरा हुआ होना सिखाया और प्रत्येक ने इसके बाद अपने तरीके से जाना बहुत हो गया। सच्चा शिक्षक वह है जो तुरंत छात्र के स्तर पर उतर सकता है, और अपनी आत्मा को छात्र की आत्मा में स्थानांतरित कर सकता है और अपने दिमाग के माध्यम से देख और समझ सकता है।"*

7. गुरुकुल प्रणाली

शिक्षक और शिक्षार्थी के बीच ऐसा संबंध केवल शिक्षा के गुरुकुल प्रणाली में ही संभव है। इसलिए, विवेकानंद शिक्षा के प्राचीन भारतीय गुरुकुल प्रणाली के पक्षधर थे। इन गुरुकुलों में विद्यार्थियों ने शिक्षक की सेवा की, जिन्होंने अपनी बारी में, ज्ञान प्राप्त करने के लिए हर जगह विद्यार्थियों की मदद की। शिक्षक और शिक्षा के बीच शायद ही कोई आर्थिक संबंध था, जो शिक्षा की वर्तमान प्रणाली का अभिशाप है।

8. सद्भावनाओं का सूत्रपात

चरित्र आंतरिक रूप से आदतों से जुड़ा हुआ है। आदतें चरित्र व्यक्त करती हैं। अच्छी आदतें अच्छे चरित्र के लिए बनती हैं। जबकि समकालीन मनोवैज्ञानिक एक जीवन में आदतों के मूल्य को स्वीकार करते हैं, विवेकानंद ने केवल इस जीवन में लेकिन आने वाले जीवन में आदतों के मूल्य को इंगित किया है। विपरीत आदत को विकसित करके एक बुरी आदत को तोड़ा जा सकता है। अगर एक आदमी लगातार सोचता है कि वह साहसी और प्रगतिशील होगा, तो वह बुरी आदतों को तोड़ने के लिए आत्मविश्वास विकसित कर सकता है। यह शिक्षक नहीं अभिभावक है जो किसी व्यक्ति की आदत में सुधार कर सकता है लेकिन केवल वह स्वयं ही। मनुष्य अपने कर्मों के जाल में फंस जाता है जिससे वह अकेला निकल सकता है, कोई और सीधे उसकी मदद नहीं कर सकता। जीवन में संघर्ष में हमारे सबसे अच्छे मार्गदर्शक में हमारा अपना स्व ही होता है।

चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में बच्चे को गलती करने की अनुमति दी जानी चाहिए। वह अपनी गलतियों से ज्यादा कमाएगा। त्रुटियां चरित्र में हमारी प्रगति के लिए बढ़ते कदम हैं। इस प्रगति के लिए साहस और दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती है। दृढ़ इच्छाशक्ति महान चरित्र की निशानी है। पुरुषों को महान बना देगा। इसलिए, हतोत्साहित होने या रोने का कोई अवसर नहीं है, व्यक्ति को अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करना चाहिए और वह उन चीजों को देखेगा, जिन्हें वह असंभव समझता था, वे आसान और संभव हो जाते हैं। विवेकानंद स्वयं एक आदर्श शिक्षक थे। उनके शब्दों ने पुरुषों और महिलाओं पर जादू की तरह काम किया। यह केवल एक शिक्षक के मामले में ही संभव है, जो खुद ऊंचा उठ गया हो। अपना स्वयं का उदाहरण पेश करते हुए, विवेकानंद ने लोगों से अपने चरित्र का निर्माण करने और अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने के लिए कहा, जो कि एफलजेंट, द रिस्प्लेंडेंट, एवर प्योर है।

9. गलतियों से अधिगम

चरित्र निर्माण की प्रक्रिया में बच्चे को गलती करने की अनुमति दी जानी चाहिए। वह अपनी गलतियों से ज्यादा कमाएगा। त्रुटियां चरित्र में हमारी प्रगति के लिए बढ़ते कदम हैं। इस प्रगति के लिए साहस और दृढ़ इच्छाशक्ति की आवश्यकता होती है। दृढ़ इच्छाशक्ति महान चरित्र की निशानी है। पुरुषों को महान बना देगा। इसलिए, हतोत्साहित होने या रोने का कोई अवसर नहीं है, व्यक्ति को अपनी इच्छाशक्ति का प्रयोग करना चाहिए और वह उन चीजों को देखेगा, जिन्हें वह असंभव समझता था, वे आसान और संभव हो जाते हैं।

विवेकानंद स्वयं एक आदर्श शिक्षक थे। उनके शब्दों ने पुरुषों और महिलाओं पर जादू की तरह काम किया। यह केवल एक शिक्षक के मामले में ही संभव है, जो खुद ऊंचा उठ गया हो। अपना स्वयं का उदाहरण पेश करते हुए, विवेकानंद ने लोगों से अपने चरित्र का निर्माण करने और अपने वास्तविक स्वरूप को प्रकट करने के लिए कहा, जो कि एफलजेंट, द रिस्प्लेंडेंट, एवर प्योर है।

संदर्भः

1. भूपेंद्रनाथ दत्ताः ''स्वामी विवेकानंद, देशभक्त–पैगंबर'', नबाभारत पब्लिशर्स, कोलकाता, 1993।
2. चौबे, एस.पी.: ''भारत में शैक्षिक दर्शन'', राम प्रसाद एंड संस, आगरा, 1967।
3. चतुर्वेदी बद्रीनाथः ''स्वामी विवेकानंद'', द लिविंग वेदांत, पेंगुइन, 2006।
4. मैरी लुईस बर्कः ''स्वामी विवेकानंद, आधुनिक युग के पैगंबर'', रामकृष्ण मिशन इंस्टीट्यूट ऑफ कल्चर, कोलकाता, 1974।
5. रोमेन रोलैंडः ''द लाइफ ऑफ विवेकानंद एंड द यूनिवर्स गोस्पेल'', अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 1975।
6. राधा, आरः ''विभिन्न युगों के माध्यम से भारत में महिलाओं के खिलाफ हिंसा का ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य'', बेसिक और एप्लाइड रिसर्च के अंतर्राष्ट्रीय जर्नल, वॉल्यूम 9 नंबर 6, जून 2019 पीपी 149–153, यूजीसी जर्नल नंबर 64041, आईएसएसएन 223–3352 (पी) 2278–0505 (ई), कॉसमॉस इम्पैक्ट फैक्टर–5.960।
7. शर्मा, बीः ''स्वामी विवेकानंद–ए फॉरगॉटन चौप्टर ऑफ हिज लाइफ'', ऑक्सफोर्ड पुस्तक, मिशिगन, 1963।
8. सिंह, वी.: ''स्वामी विवेकानंद सामाजिक क्रांति में पायनियर'', विस्टा इंटरनेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 2008।
9. श्रीवास्तव, के.एस.; श्रीवास्तव, एस.:''महान दार्शनिक और विचारक'', एपीएच प्रकाशन निगम, नई दिल्ली, 2011।
10. स्वामी तेजस्वानंदः ''स्वामी विवेकानंद का संक्षिप्त जीवन'', अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2012।
11. स्वामी विवेकानंद स्वयं, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2006।
12. स्वामी विवेकानंद की पूरी रचना, खंड–5, अद्वैत आश्रम, कोलकाता, 2008।
13. वर्मा, एम.: ''द फिलॉसफी ऑफ इंडियन एजुकेशन'', मीनाक्षी प्रकाशन। मेरठ, 1969।

***

भारतीय राजनीति में साम्प्रदायिकता

*डॉ.राजीव रौशन**

भारत विभिन्न धर्मों का समागम स्थल है और सभी धर्मों की अपनी फलती–फूलती संस्कृति है यही कारण है कि भारतीय संविधान द्वारा भारत को पंथ निरपेक्ष राष्ट्र घोषित किया गया है। जहाँ धार्मिक विभिन्नताओं के बाबजूद एकता की मिसाल कायम की है, वही समाज में विभिन्न प्रकार के तनाव भी पैदा होते है और इन तनावों को बढाने में अति धार्मिक व्यक्ति तथा इनके शिष्यों के आलावा राजनीतिज्ञों की भी भूमिका रहती है। पिछले 72 वर्षों का इतिहास बतलाता है कि गुजरात, महाराष्ट्र, उत्तरप्रदेश, बिहार जैसे राज्यों में हुई घटना इस बात का पुख्ता प्रमाण है कि साम्प्रदायिक वैमन्सय अभी भी विद्यमान है और भारत की राजनीति एवं शासन उसके आग में जलने लगता है।

समकालीन भारत में साम्प्रदायिकता दो विशिष्ट कारणों से खतरनाक आयाम ग्रहण चुकी है।–

1. साम्प्रदायिकता की मनोवृति शहरों की दीवारो को तोड़कर सुदूर ग्रामीण क्षेत्रों के सौहार्दपूर्ण वातावरण में तेजी से फैल रही है।
2. इसने क्रमशः जन आंदोलन का रुप ले लिया है। जैसे रामजन्म भूमि–बाबरी मस्जिद विवाद आदि।

साम्प्रदायिकता, साम्प्रदायिक मस्तिष्क की उपज है। यह धार्मिक पुर्वग्रहों व धार्मिक अंधभक्ति से जुड़ी है। इससे प्रेरित व्यक्ति यह मानने लगता है कि उसका मत व विश्वास ही सर्वोपरि है। दूसरे को तुच्छ समझते हुए उसे समाप्त करने की बात सोचने लगता है। इसके पीछे एक तरह का भय एवं आशंका होती है कि उक्त सम्प्रदाय हमारी संस्कृति और मूल्यों को नष्ट कर देगा। वर्तमान समय में साम्प्रदायिकता का आधार केवल धर्म हीं नहीं है, बल्कि इसके साथ साथ सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनीतिक ध्येय भी जुड़े हैं। यह प्रवृति स्वार्थपूर्णता के लिए धर्म का सहारा लेती है, जिससे तनाव बढ़ता है।

भारत में साम्प्रदायिक राजनीति का विकास :–

अंग्रेजों के आने से पूर्व मुगलशासकों का भारत पर राज था। इस्ट इंडिया कम्पनी इस मुस्लिम शासकों से डरती थी इसलिए उन्होने हिन्दुओं के प्रति अपनी सहायता प्राप्त करने की कोशिश की। प्लाासी के युद्ध के बाद जब कम्पनी ने शासन प्रारंभ किया तो उन्होने मुसलमानों के साथ सौतेला व्यवहार किया और हिन्दुओं को नौकरियों में प्रोत्साहन देकर उसे सर ऑखो पर बैठाया। फलतः बहावी आंदोलन के रुप में मुस्लिम असंतोष व्यक्त हुआ। सन् 1857 की क्रान्ति में हिन्दुओं व मुसलमानों ने मिलकर अंग्रेजों का विरोध किया था। हिन्दुओं की विरोधी नीति और उसके विकास आधुनिकरण ने अंग्रेजों के कान खड़े कर दिए। फलतः उसने हिन्दुओं को छोड़कर मुसलमानों से मित्रता की। सबसे पहले सन् 1905 में कर्जन ने बंगाल का विभाजन मुसलमानों को खुश करने व राजभक्ति प्राप्त करने के लिए किया। 1906 में ढाका में मुस्लिम लीग की स्थापना करवायी। 1909 के मार्ले मिन्टों सुधारों में साम्प्रदायिक आधार पर पृथक चुनावों की व्यवस्था का समावेश कर दिया गया। सन् 1916 में लखनऊ पैक्ट द्वारा कॉग्रेस द्वारा इसको मान लेना साम्प्रदायिकता वातावरण को बढ़ाने का एक जरिया मिल गया। फिर 1919 और 1935 द्वारा साम्प्रदायिकता निर्वाचन पद्धति का विस्तार हुआ और 1947 में साम्प्रादायिकता के आधार पर भारत का विभाजन भारत और पाकिस्तान दों देवों के रुप में हुआ।1946 में संविधान सभा का गठन भी प्रान्तों की विधानसभाओं के सदस्यों के साम्प्रादायिक समूहों द्वारा अप्रत्यक्ष रीति से हुआ था। निष्कर्ष के रुप में देखा गया था की अंग्रेजों ने फूट डालों और शासन करो की नीति अपनायी और वर्षों शासन बरकरार रखा।

स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद पिछले 72 वर्षों में देश में साम्प्रदायिक घटनाओं की कुल संख्या लगभग 5000 ठहरती है। अक्सर यह देखा जाता है कि राजनीति को साम्प्रदायिकता का जामा पहनाने की बढती प्रवृति के कारण सम्प्रदाओं के आपसी वैमनस्यता बढती जा रही है। गृहमंत्रालय के दस्तावेज

---

* सहायक आाध्यापक, आर. एन. ए. आर. कॉलेज, समस्तीपुर

के अनुसार किसी एक मुद्दे ने हिन्दु–मुस्लिम समुदाय के आपसी सद्भाव को इस कदर नहीं बिगाड़ा जितना की राम जन्म भूमि बावरी मस्जिद विवाद ने बिगाड़ दिया। सभी दलों ने इस घटना से लाभ उठाते हुए अपने वोट बैंक को बढाया है।

साम्प्रदायिकता के उदय के कारण :–

विद्वानों ने जहाँ स्वतंत्रतापूर्व साम्प्रदायिकता का कारण फूट डालो व शासन कारो की नीति को दोषी मढ़ा वहीं स्वतंत्रता प्रप्ति के बाद कुछ अलग तरह के कारण उभर कर सामने आए :–

1. मुसलमानों में पृथक्करण की भावना :–

ऐसा माना जाता है कि मुसलमानों में पृथक्करण की भावना आज भी विद्यमान है और वे अपने आप को राष्ट्रीय धारा में समाविष्ट नहीं कर पाए। इसका प्रमुख कारण है बहुत से मुस्लिम नेताओं व संगठनों ने इस बात पर जोर दिया की मुस्लिम सम्प्रदाय की हितों की सुरक्षा के लिए उन्हें पृथक रुप से भाग लेना चाहिए। जमायत–ए–इस्लाम व जीमयत–उल–उलेमा–ए हिन्द ने मुसलमानों की राष्ट्रीय राजनीति से पृथक रहने की सलाह दी। 1948 में मुस्लिम लीग पृथक निर्वाचन की माँग की। 1961 में मुस्लिम लीग की स्थापना की गयी है और यह प्रचार किया गया कि मुस्लिम हितों का संरक्षण सिर्फ मुस्लिम लीग ही कर सकती है। अधिक्तर चुनावों के समय भी अखिल भारतीय राजनीति सम्मेलन भी आयोजित किया। इस प्रकार कह सकते है कि इन संगठनों व दलों ने व्यक्ति के दिलों में पृथ्थकरण की भावना को प्रबल किया।

2. मुसलमानों का आर्थिक दृष्टि से पिछड़ापन :–

यह बात बिलकुल सच है कि अंग्रेजी काल से ही मुसलमान आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं और सन 2006 में सच्चर कमेटी ने भी अपनी रिपोर्ट मे कहा कि आज भी उनकी आर्थिक स्थिति सुदृढ नही हो पायी है शैक्षणिक, राजनीतिक दृष्टि से पिछडेपन के कारण उनका सरकारी नौकरियो व्यापार एवं उद्योग–धंधो मे उनकी स्थिति सुधर नहीं पायी। इससे उनमें असंतोष बढा है और यही असंतोष उग्र रूप धारण कर लेता है और कभी–कभी हिंसात्मक भी हो जाता है भारत सरकार के कृषि मंत्रालय ने अपनी रिपोर्ट मे कहा कि उत्तर हिन्दी भाषी क्षेत्र में 50 प्रतिशत अतिरिक्त भूमि का सही वितरण न हो पाना बढती सम्प्रदायिकता का कारण है

3 संकुचित हिन्दी राष्ट्रवादः–

भारत के हिन्दू सम्प्रदाय में भी ऐसे लोग तथा गुट हैं जो धर्मान्धता की संकीर्ण भावनाओं से ओत–प्रोत हैं हिन्दू महासभा तथा विश्व हिन्दु परिषद जैसे संगठनों ने हिन्दूओं की धार्मिक भावनाओं कों बराबर उत्तेजित किया है ये लोग तो यह भी मॉग करते है कि भारत को हिन्दी राष्ट्र घोषित किया जाएँ हद तो तब हो जाती है जब ये मुसलमानों से भारत से बाहर निकल जानें को कहते हैं इन लोगों की कट्टरता से संकीर्ण मनोवृति साम्प्रदायिकता को उत्पन्न करती है

4 पाकिस्तानी प्रचार :–

जब कभी भारत में हिन्दू –मुस्लिम तनाव की छुट–पुट घटना होती है तो पाकिस्तानी रेडियो तथा समाचारपत्रों एवं सोशल मिडीया इसको तुल देने का प्रयास करते हैं वे भारत सरकार की आलोचना करते हैं और ऐसी घटनाओं को हिन्दूओं द्वारा मुसलमान का जाति कहकर पुकारते हैं भारत के गरीब व अशिक्षित मुसलमान यह समझ बैठते हैं कि पाकिस्तानी उनके हितों की रक्षा के लिए कह रहा है

5 सरकार की उदासीनता और तुष्टिकरण की नीति :–

सरकार और प्रशासन की उदासीनता के कारण भी कभी–कभी साम्प्रदायिक दंगो हो जाते है सामान्य सी घटना प्रशासन की असावधानी के कारण कई बार साम्प्रदायिक दंगो का रूप ले लेती है शाहवानों के मामले में राजीव सरकार ने सुप्रीम कोर्ट का फैसला नही माना और साम्प्रदायिक दवाब के चलते मुस्लिम महिला विधेयक पारित करवाया ।

6 राजनीतिक दलः–

साम्प्रदायिक दंगो सम्बन्धी सात जाँच आयोगों की रिपोर्ट ने अप्रत्यक्ष तौर पर कहा है कि राजनीतिक दल इसके लिए जिम्मेदार है तभी तो रघुवीर दयाल कमेटी (1969) में कहा कि राजनीतिक दलों को अपने उदेश्यों की पूर्ति के लिए सम्प्रदायिक या जातीय भावनाओं को उभारना नहीं चाहते अन्य आयोगों का भी कहना है कि दलें सम्प्रदायों को सदैव ही वोट बैंक समझते है और उनका प्रमुख हित है सत्ता को प्राप्त करना और इसके लिए वे हर तरह के हथकंडे अपनाते हैं

साम्प्रदायिकता के दुष्परिणाम

भले ही विभिन्न धर्म आपस में टकराव कर साम्प्रदायिकता को जन्म देते हैं और बढावा भी देते है जिसके बहुत घातक परिणाम सामने आते है जो निम्नलिखित हैः–

1 आपसी द्वेष

साम्प्रदायिकता ने विभिन्न वर्गो मे आपसी द्वेष को बढावा दिया है केवल बढावा ही नहीं वरन आपसी द्वेष का एक बहुत बड़ा कारण साम्प्रदायिकता है जब हिन्दू व मुसलमान अपने–अपने हितो के लिए लड़ते है तो आपस में द्वेष वैमनस्य हो जाना स्वाभाविक ही है यही तो आपस में द्वेष कभी भयंकर रूप धारण कर समाज में आतंक फैला देता है और यही समाज की शांति भंग कर सकता है और यही द्वेष समाज में दंगे भी फैला सकता है।

2 आर्थिक हानिः–

साम्प्रदायिक दंगों के कारण आर्थिक हानि भी होती है न जाने कितनी दुकानें लुटी जाती है न जाने कितनी राष्ट्रीय सम्पति नष्ट की जाती है और साथ ही साम्प्रदायिक दंगों पर काबू पाने के लिए न मालूम कितना धन व्यय किया जाता है।

3. प्राण हानि :–

साम्प्रदायिकता के कारण प्राण हानि भी होती है। लगभग देगों में व्यक्तियों की जाने जाती है। राँची भागलपुर गुजरात, उत्तरप्रदेश आदि के साम्प्रदायिक दंगों के उदाहरण सामने हैं जब साम्प्रदायिकता चरम सीमा पर होती है तो कोई भी धर्म टकराव से नहीं बचता और जो भी सामने आता है उसके प्राण लेने से भी नहीं कतराता है।

4. राष्ट्रीय एकता में बाधाः–

साम्प्रदायिकता राष्ट्रीय एकता का गम्भीर शत्रु है। जहाँ राष्ट्रीय एकता सभी लोगों को साथ मिलजुलकर रहने की बात करता है। वहीं साम्प्रदायिकता ठीक इसके विपरीत विभिन्न सम्प्रदाय के व्यक्ति अपने अपने हितों के लिए संघर्ष करतें है।

5 राष्ट्रीय सुरक्षा को खतरा

भारत एक बहु धर्मवादी देश है और इन धर्मो के आपसी विवाद से राष्ट्रीय सुरक्षा को गम्भीर खतरा पैदा हो सकता है।

उपरोक्त दुष्परिणामों के अतिरिक्त साम्प्रदायिकता से देश में आर्थिक उन्नति व औद्योगिक विकास में भी बाधा पड़ती है। इससे अंतराष्ट्रीय छवि भी धूमिल होती है और अन्य राष्ट्रों पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

साम्प्रदायिकता को दूर करने के सुझाव

साम्प्रदायिकता मानवता के लिए एक गम्भीर अभिशाप है और भारत देश में तो यह और भी घातक है। समय–समय द्वारा साम्प्रदायिकता को दूर करने के लिए कुछ सुझाव निम्न हैः–

1. सरकार को ऐसा कोई कार्य नहीं करना चाहिए जिससे साम्प्रदायिकता को बढावा मिले।
2. कानून निर्माण सभी के लिए समान हो समान नागरिक आचार संहिता लागु की जाए।
3. शिक्षण में आध्यात्मिक मूल्यों का समावेश किया जाएँ। सम्प्रदायिक या मजहवी क्रियाकर्म भिन्न चीज है।
4. किसी भी सार्वजनिक क्षेत्र में बहुमत के आधार पर कोई प्रवृति पैदा न की जाए। सारा कार्य एस तरीके से हो कि अल्पसंख्यकों को अपने अल्पसंख्यक होने का मान ही न रहे।

5. आरक्षण जैसे मुद्दो ं को धर्म को आधार नही माना चाहिए। इससे किसी भी धर्म के प्रति अलगाव की भावना पनपती है।
6. भाषा के संदर्भ मे सरकार के नई नीति तैयार करनी चाहिए।

इस प्रकार कहा जा सकता है कि भारतीय राजनीति में धर्म एवं साम्प्रदायिकता का प्रभाव बढने से पंथनिरपेक्ष राजनीति के विकास का मार्ग अवरूद्ध हुआ है। चूँकि यह देश धर्मनिरपेक्ष और इसकी संस्कृति सर्व धर्म समभाव और धार्मिक सहिष्णु की है और इस बात पर सभी को गर्व है परन्तु इस शब्दावली को व्यवहारिकता प्रदान नहीं की गई है। राजनीतिक दल इसे साधन के रूप में अपनाते हैं दंगे के उन्माद या पागलपन में किसी इंसान पर आक्रमण करना उसकी हत्या करना सिर्फ इसलिए कि वह दूसरे समुदाय का है राजनीति का यह घिनौना एवं विभत्स रूप है राजनीति अपने वोट बैंक के रूप में इसका इस्तेमाल करता है आज आवश्यक इस बात की हैं कि राजनीति चेतना की वृद्धि हो और इसका दायित्व राष्ट्रीय नेताओं पर भी है। नागरिकों को चाहिए कि लोकतंत्रिक मूल्यों के साथ धर्मनिरपेक्षता की भावना को मन से स्वीकार करें तभी भारत एक विवेकशील व विकसित राष्ट्र बन सकेगा।

सन्दर्भ :

1. पण्डेय, रामकिशोर एवं भटनागार,महेश (2018)भारतीय शासन तथा नागरिक जीवन. मेरठ : चित्रा प्रकाशन.
2. शुक्ल वीरेन्द्र (2017). राजनीतिशास्त्र. पटना : भारती भवन
3. Chandra, Bipan, Mukharjee, Mridula and Mukharjee, Aditya (2019). Penguin Random House India
4. Indian Polity and governance (2020) . Arihant Publishers
5. अम्बेदकर, बी,आर, (2018). भारत का संविधान, जयपुरः बुद्धम् पब्लिशर्स.
6. wwwmha.gov.in
7. www.hindikunj.com>2017/12

***

नगरीकरण का ग्रामीण संरचना पर प्रभाव

*रविकांत प्रसाद**
*डॉ. राधा गोविन्द सिंह***

भारत मूलतः गाँवों का एक देश है जिसकी 72.22 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती है। प्राचीन समय में भी यहाँ नगर थे, किन्तु वे आज के नगरों से भिन्न थे। तब गाँव एवं नगर के जीवन में कोई विशेष अन्तर नहीं था। किन्तु जब नगरों में बड़े–बड़े उद्योगों की स्थापना की गयी तो नगरों की काया ही पलट गयी और वे ग्रामों से भिन्न प्रकार के सामाजिक जीवन के क्षेत्र बन गये। नगरों में प्राप्त सुविधाओं को पाने के लिए गाँवों की जनसंख्या नगरों की ओर उमड़ पड़ीं इससे नगरों की जनसंख्या में वृद्धि हुई और नगरीकरण की प्रक्रिया तीव्र हुई। नगरीकरण की प्रक्रिया के परिणामस्वरूप भारत में अनेक सामाजिक परिवर्तन हुए हैं। परिवार, जाति, विवाह, अर्थव्यवस्था, राजनीति, धर्म, सभी कुछ तो परिवर्तन के दौर में हैं। यही नहीं, नगरीकरण ने अनेक नवीन समस्याओं को भी जन्म दिया।

समाजिक संरचना एवं संस्थाओं पर प्रभाव :

भारतीय सामाजिक संरचना के मूल आधार हैं– परिवार, विवाह, जाति–व्यवस्था एवं ग्रामीण समुदाय। नगरीकरण के कारण इनके मौलिक स्वरूप में परिवर्तन हुआ है।

1. परिवार पर प्रभाव – परम्परागत भारतीय परिवार संयुक्त परिवार होते थे, जिनमें तीन या चार पीढ़ियों के सदस्य एक साथ एक ही घर में निवास करते थे। उनकी सम्पत्ति, खेत एवं कुएँ भी सामूहिक थे। जन्म, मृत्यु, विवाह एवं अन्य अवसरों पर सामूहिक कोष में से ही खर्च किया जाता था। परिवार के सभी कार्यों पर वयोवृद्ध व्यक्ति का नियंत्रण होता था और वही परिवार से सम्बन्धित महत्वपूर्ण विषय पर निर्णय लिया करता था। परिवार के अन्य सदस्य उसकी आज्ञा का पालन करते थे और धन कमाकर परिवार के सामूहिक कोष में दिया करते थे, किन्तु नगरीकरण के प्रभाव के कारण परम्परात्मक संयुक्त परिवारों का विघटन हुआ। गाँवों से लोग रोजगार की तलाश में नगरों में आने लगे। इससे गाँवों में संयुक्त परिवार टूटे। नगरों में मकानों की समस्या, महँगाई, उच्च जीवन–स्तर की इच्छा, आदि के कारण संयुक्त परिवार के सभी सदस्यों का एक साथ रहना व खर्च चलाना कठिन हो गया। परिणामस्वरूप नगरों में छोटे–छोटे परिवार बनने लगे। जो लोग गाँवों से नगरों में आते थे, वे पैसा बचाकर गाँव के परिवार के सदस्यों के लिए भोजन उचित नहीं मानते और नगरों में प्रचलित स्वतंत्रता और व्यक्तिवाद की भावना के कारण वे पितामह के नियंत्रण से मुक्ति चाहने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि वे अपने मूल परिवार से सम्बन्ध तोड़ लेते हैं और नगरों में एकाकी परिवार, जिसमें केवल पति–पत्नी और बच्चे ही होते हैं, में रहते हैं जहाँ वे परिवार के मामले में अधिक स्वतंत्र हो जाते हैं।

देश के विभिन्न भागों में हुए अध्ययन इस बात की पुष्टि करते हैं कि नगरीकरण के प्रभाव के कारण भारत में परम्परात्मक संयुक्त परिवारों की संरचना एवं कार्यों में परिवर्तन हुआ है, किन्तु वे पूरी तरह से विघटित नहीं हुए हैं। वर्तमान में परिवार संरचना की दृष्टि से तो एकाकी दिखायी देते हैं, किन्तु प्रकार्यों की दृष्टि से संयुक्त प्रकृति के हैं। नवीन परिस्थितियों के कारण तीन–चार पीढ़ियों के सभी सदस्यों को एक स्थान पर रहना, साथ–साथ पूजा एवं भोजन करना तो सम्भव नहीं है, किन्तु एकाकी परिवारों में रहने वाले सदस्यों की सम्पत्ति अब भी संयुक्त पायी जाती है। विवाह, जन्म, मृत्यु, त्यौहार एवं उत्सव आदि के अवसर पर विभिन्न स्थानों पर रहने वाले सदस्य अपने मूल निवास–स्थान

* शोध छात्र,इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
** शोध निदेशक ,एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,महिला कॉलेज, डालमियानगर, डेहरी ऑन-सोन,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

पर एकत्रित होते हैं, अपने कर्त्तव्यों तथा दायित्वों का निर्वाह करते हैं, परस्पर एक–दूसरे की आर्थिक सहायता भी करते हैं।

2. विवाह पर प्रभाव– नगरीकरण के प्रभाव के कारण परम्परागत भारतीय विवाह संस्था में भी अनेक परिवर्तन हुए हैं। नगर व्यक्तिवाद, भौतिकवाद, समानता व स्वतंत्रता के विचारों के गढ़ हैं जिनका प्रभाव विवाह पर भी पड़ा है। अब जीवन साथी के निर्धारण में परिवार के वयोवृद्ध व्यक्तियों एवं रिश्तेदारों के स्थान पर स्वयं लड़के व लड़कियों की राय को अधिक महत्व दिया जाने लगा है। नगरों में ही प्रेम विवाह, अन्तर्जातीय विवाह, कोर्ट मैरिज, विधवा पुनर्विवाह, तलाक आदि अधिक दिखायी देते हैं। नगरों के लोग विवाह को अब एक धार्मिक संस्कार न मानकर एक सामाजिक समझौता मानने लगे हैं जिसे कभी भी तोड़ा जा सकता है। अब विवाह का उद्देश्य धार्मिक कार्यों की पूर्ति न मानकर सन्तानोत्पत्ति एवं रति आनन्द माना जाने लगा है। पति–पत्नी के सम्बन्धों का आधार समानता है। अब पत्नी–पति को परमेश्वर न मानकर एक मित्र और साथी मानने लगी है। बाल–विवाह कम हुए हैं और उनके स्थान पर अविवाहित रहने और देर से विवाह करने की प्रवृत्ति बढ़ी है। अब बहुपत्नी विवाह के स्थान एक विवाह को ही श्रेष्ठ माना जाने लगा है। बहिर्विवाह के विभिन्न प्रतिबन्धों जैसे– सगोत्र, सप्रवर एवं सपिण्ड विवाह के नियमों में शिथिलता आयी है। विवाह के लिए विज्ञापन देने की प्रवृत्ति बढ़ी है और नगरों में ऐसे कई संगठन हैं जो विवाह की व्यवस्था करते हैं। अब विवाह कुछ ही घण्टों में सम्पन्न कर दिया जाता है और अधिक दहेज लेना व देना प्रतिष्ठा का सूचक माना जाने लगा है। विवाह समारोह में अब केवल अपने रिश्तेदार, जाति व गोत्र के व्यक्ति ही नहीं वरन् अन्य जातियों के व्यक्तियों को भी आमंत्रित किया जाने लगा है। इस प्रकार हम देखते हैं कि नगरीकरण के कारण विवाह संस्था परिवर्तन के दौर में है, किन्तु फिर भी वह पूरी तरह से परम्परा के बन्धनों से मुक्त नहीं हुई है।

3. जाति–प्रथा पर प्रभाव– नगरीकरण के कारण भारतीय जाति–प्रथा में भी परिवर्तन हुआ है। परम्परात्मक जाति–प्रथा में संस्तरण की एक प्रणाली पायी जाती है जिसमें जातियों की स्थिति ऊँची और नीची होती है। प्रत्येक जाति का इस संस्तरण में एक स्थान निश्चित होता है। ऊँची जातियाँ नीची जातियों से खान–पान एवं व्यवहार में भेदभाव बरतती रही हैं। ऊँची जातियों को निम्न जातियों की तुलना में अधिक अधिकार एवं सुविधाएँ प्राप्त रही हैं। प्रत्येक जाति का एक परम्परात्मक व्यवसाय होता है और एक जाति के व्यक्ति अपनी ही जाति में विवाह करते हैं। जजमानी प्रथा द्वारा विभिन्न जातियाँ एक–दूसरे की सेवा करती हैं और आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक सम्बन्धों में बँधी रही हैं, किन्तु नगरीकरण के कारण जाति प्रथा की उपर्युक्त विशेषताओं में परिवर्तन हुआ है। अब व्यक्ति का मूल्यांकन उसकी जाति के बजाय उसके गुणों के आधार पर होने लगा है। जातीय संस्तरण में भी परिवर्तन हुआ है और उन जातियों की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है जो संख्या की वृद्धि से अधिक है, आर्थिक दृष्टि से सम्पन्न है और जिन्हें राजनीतिक सत्ता प्राप्त है। खान–पान के सम्बन्धों एवं छुआछूत में भी शिथिलता आयी है। नगर के होटलों में सभी जातियों के व्यक्ति साथ–साथ बैठते व खाते–पीते हैं, रेल, बस, वायुयान आदि में विभिन्न जातियों के व्यक्ति सहयात्री बनकर साथ–साथ यात्रा करते हैं। फैक्ट्रियों, कारखानों, खानों, दफ्तरों आदि में विभिन्न जातियों के लोग साथ–साथ काम करते हैं। अब कच्चे व पक्के भोजन का भेद भी जातीय आधार पर समाप्त हुआ है। उच्च जातियाँ अन्य जातियों के यहाँ कच्चा भोजन तक भी ग्रहण करने लगी हैं। नगरों में ऐसी बस्तियाँ भी हैं जहाँ विभिन्न जातियों के व्यक्ति साथ–साथ रहते है। अब यह आवश्यक नहीं है कि एक व्यक्ति अपनी जाति के परम्परागत व्यवसाय को ही करे। एक जाति के व्यक्ति कई व्यवसायों में और एक व्यवसाय में कई जातियों के व्यक्ति लगे हुए हैं। नगरों में अन्तर्जातीय विवाह गाँवों की अपेक्षा अधिक देखने को मिलेंगे। कई निम्न जातियों के व्यक्ति शिक्षा ग्रहण कर उच्च पदों पर कार्य करने लगे हैं जो पहले उनके लिए निषिद्ध थे।

4. ग्रामीण समुदायों पर प्रभाव– नगरीकरण की प्रक्रिया का प्रभाव ग्रामीण समुदायों पर भी पड़ा है। यद्यपि गाँवों में आज भी संयुक्त परिवार प्रथा, जाति–प्रथा व कुछ मात्रा में जजमानी प्रथा का प्रचलन है फिर भी नगरों के प्रभाव से ग्राम बच नहीं पाये हैं। नगर के गाँव पर पड़ने वाले प्रभावों का उल्लेख डी.

एन. मजूमदार, एम.एन. श्रीनिवास, एस.सी. दुबे, डॉ. राव, कापड़िया आदि अनेक विद्वानों ने अपनी रचनाओं में किया है। गाँव के लोग दूध, घी, सब्जी एवं फसलों को नगरों में बेचने आते हैं, इससे उन्हें अच्छा पैसा मिलता है। ग्रामों में वस्तु के स्थान पर मुद्रा विनिमय प्रचलन बढ़ा है। ग्रामीणों की आर्थिक स्थिति में सुधार होने से उनके जीवन, दृष्टिकोण एवं मूल्यों में परिवर्तन हुआ है और नयी आकांक्षाएँ पैदा हुई हैं। पहले गाँव लगभग आत्मनिर्भर थे और अपनी आवश्यकताओं की वस्तुएँ स्वयं ही पैदा कर लिया करते थे, किन्तु अब वे नगरों में निर्मित वस्तुएँ जैसे– कपड़ा, प्लास्टिक, घड़ी, रेडियो, पंखा, फर्नीचर एवं अनेक अन्य वस्तुओं का उपभोग करने लगे हैं। जिन गाँवों में नल व बिजली की सुविधाएँ हो गयी हैं वहाँ पर नगरों की भाँति ही विभिन्न व्यवसाय पनपने ले हैं। यहाँ पर भी आधुनिक दुकानें, चाय की होटलें व शिक्षण संस्थाएँ चल रही हैं। गाँवों में जजमानी प्रथा कमजोर हुई है और कई ग्रामीण लोग नगरों में जाकर अपना जातीय व्यवसाय करने लगे हैं। धीरे–धीरे गाँवों की आत्म–निर्भरता समाप्त हो रही है और गाँवों में नगरीय संस्कृति एवं अर्थव्यवस्था पनपने लगी है। ग्रामीण लोग भी नगरीय फैशन, वस्त्र, खान–पान, जीवन शैली, मनोरंजन के साधनों आदि का प्रयोग करने लगे हैं। ये नवीन परिवर्तन गरीब लोगों की अपेक्षा सम्पन्न लोगों में अधिक देखे जा सकते हैं।

2. आर्थिक क्रियाओं पर प्रभाव :

नगरीकरण की प्रक्रिया ने आर्थिक क्रियाओं और संस्थाओं में भी अनेक परिवर्तन उत्पन्न कर दिए हैं। आज नगरों में बड़े–बड़े उद्योग स्थापित हुए हैं, वे उत्पादन के केन्द्र बन गए हैं। वहाँ बाजार, बैंक, मुद्रा व साख आदि की सुविधाएँ भी उपलब्ध हैं। इसी कारण नगर व्यापार और वाणिज्य के केन्द्र बन गये हैं। वहाँ किसी भी नये व्यवसाय को प्रारम्भ करने में कठिनाई नहीं होती। नगरों में बने माल को राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मण्डियों तक आसानी से पहुँचा दिया जाता है। नगरों में श्रम विभाजन और विशेषीकरण अधिक पाया जाता है। नगर विभिन्न प्रकार के उद्योगों और व्यवसाय के केन्द्र बनते जा रहे हैं जहाँ ग्रामीण व्यक्ति आकर अपनी उत्पादित वस्तुओं को बेचते और अपनी आवश्यकता की वस्तुएँ खरीदते हैं। नगरों में उपलब्ध सुविधाओं के कारण ही नगरों में औद्योगीकरण अधिक हुआ है और इसके परिणामस्वरूप ग्रामीण व्यवसाय नष्ट हुए हैं और बेकारी बढ़ी है। नगर में आर्थिक विषमता अधिक पायी जाती है।

3. राजनीतिक क्षेत्र पर प्रभाव :

नगरीकरण की प्रक्रिया ने राजनीतिक क्षेत्र को प्रभावित किया है। नगरों में ही लगभग सभी राजनीतिक दलों के कार्यालय होते हैं और नगर ही उनकी गतिविधियों के केन्द्र हैं। वे कई आन्दोलनों का प्रारम्भ नगरों से ही करते हैं। नगरों में यातायात एवं संचार के साधनों, पत्र–पत्रिकाओं एवं समाचार–पत्रों आदि की सुविधाओं होने के कारण, राजनीतिक दल अपने विचारों और सिद्धान्तों को सरलता से जनता तक पहुँचा देते हैं। नगरों में सभी प्रकार के राजनीतिक दलों के अनुयायी पाये जाते हैं। श्रमिकों एवं आम जनता को विभिन्न प्रकार की सुविधा दिलाने के लिए राजनीतिक दल सरकार पर दबाव डालने के लिए नगरों में ही धरना, घेराव, तालाबन्दी, हड़ताल, एवं आन्दोलन प्रारम्भ करते हैं। इस प्रकार नगरीकरण ने लोगों में राजनीतिक जागृति पैदा की और नवीन मूल्यों से लोगों को परिचित कराया है।

4. धार्मिक क्षेत्र पर प्रभाव :

नगरों में धर्म का प्रभाव धीरे–धीरे क्षीण होता जा रहा है। वहाँ लोग भाग्य तथा ईश्वर में कम विश्वास करते हैं और अपने श्रम पर अधिक भरोसा रखते हैं। धार्मिक आडम्बर, पाखण्ड, कर्मकाण्ड व अन्धविश्वास नगरों में बहुत कम ही देखने को मिलते हैं, क्योंकि शिक्षा की अधिकता के कारण वहाँ व्यक्ति हर बात का तर्क एवं विज्ञान के आधार पर मूल्यांकन करते हैं। वहाँ पण्डों, पुजारियों, पुरोहितों एवं पादरियों के ढोंग अधिक नहीं चल पाते। इसका तात्पर्य यह नहीं कि नगरों में धर्म का कोई महत्व और प्रभाव ही नहीं है। वर्तमान नगरों में लोग मानसिक रूप से अधिक पीड़ित हैं, अतः वे पुनः धर्म की शरण में जाने लगे हैं और अब वहाँ नये–नये धार्मिक संगठन स्थापित हुए हैं जो लोगों को धर्म की ओर आकर्षित कर रहे हैं।

5. कुछ अन्य क्षेत्रों पर प्रभाव :

नगरीकरण के कारण कुछ अन्य सामाजिक–सांस्कृतिक क्षेत्रों में परिवर्तन हुए हैं, जो निम्नलिखित हैं–

1. स्त्रियों की स्थिति में परिवर्तन– नगरों में स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा में वृद्धि हुई है। वहाँ स्त्रियों को उच्च शिक्षा दिलायी जाती है, अतः वे पढ़–लिखकर स्वयं धन अर्जित करने लगी हैं और उनकी पुरूष पर आर्थिक निर्भरता समाप्त हुई है। वे घर की चारदीवारी से बाहर आयीं और सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक सभी क्षेत्रों में कार्य करने लगी हैं। अब उन्हें जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में पुरूषों के साथ कन्धे–से–कन्धा मिलाकर काम करते देखा जा सकता है। नगरों में स्त्रियों को डॉक्टर, इंजीनियर, प्राध्यापक, विधायक, मंत्री और अन्य पदों पर कार्य करते देखा जा सकता है। बाल–विवाह की संख्या में कमी एवं विधवा–पुनर्विवाह के कारण स्त्रियों की पारिवारिक परिस्थिति भी ऊँची उठी है। वर्तमान में परिवारों में पत्नी को पति के समकक्ष दर्जा प्राप्त है। नगरों में पर्दा–प्रथा और घूँघट–प्रथा का प्रचलन लगभग समाप्त हो गया है।

2. रूचियों में परिवर्तन – नगरीकरण के कारण लोगों की मनोवृत्तियों एवं रूचियों में भी परिवर्तन हुआ है। नगर का व्यक्ति सादगी के स्थान पर तड़क–भड़क, चमक–चमक और फैशन को अधिक पसन्द करता है। नगरों में ही नये–नये फैशन, केश–विन्यास, वस्त्र–शैली ओर फर्नीचर की नयी–नयी डिजाइनें और मॉडल देखे जा सकते हैं। नगरों में ही नये–नये आविष्कार होते हैं जो लोगों की बदलती रूचि और आवश्यकताओं की पूर्ति कर सकते हैं।

3. व्यक्तिवाद– वर्तमान समय में पश्चिमी सभ्यता और संस्कृति के प्रभाव के कारण नगरों में व्यक्तिवाद पनपा है। वहाँ सामूहिकता और पारिवारिकता के स्थान पर व्यक्ति अपने व्यक्तिगत हितों को ही अधिक महत्त्व देने लगा है।

4. द्वैतीयक सम्बन्धों की प्रधानता– नगरों में द्वैतीयक एवं औपचारिक सम्बन्ध अधिक पाये जाते हैं। वहाँ व्यक्तियों के बीच पाये जाने वाले सम्बन्ध किसी–न–किसी स्वार्थ पर आधारित होते हैं। अतः उनमें आत्मीयता का अभाव पाया जाता है। प्राथमिक सम्बन्धों की भाँति वहाँ घनिष्ठता एवं सहयोग देखने को नहीं मिलता।

इस प्रकार भारतवर्ष में नगरीकरण को अपनी अलग परम्परा नहीं रही है– यही कारण है कि नगरीकरण का प्रारूप यहां भी कुछ वैसा ही है जैसा कि अन्य विकसित देशों में है। वास्तविकता तो यह है कि यहां लोग पश्चिमी नगरीकरण के तौर तरीकों को अपना रहे है। भारतीय नगरीकरण की जो बाह्य विशेषता परिलक्षित हो रही है वह यह है कि अपेक्षाकृत कम क्षेत्र में बहुत अधिक लोग रहते है। जैसे दिल्ली में जनसंख्या का घनत्व क्षेत्रफल के अनुपात में बहुत अधिक है। यद्यपि भारतीय नगरीकरण पश्चिम के नगरीकरण से कुछ भिन्न है फिर भी नगरीकरण का प्रभाव यहां भी वैसा ही पड़ रहा है जैसा कि पश्चिमी समाजों पर पड़ रहा है।

संदर्भ :

1. कापड़िया : भारत में विवाह और परिवार, 1966
2. बेस्टर मार्क : दी हिस्ट्री हूमन मैरिज : भाग 1
3. ए० एस० अल्टेकर : दी पोजीशन ऑफ वोमेन इन हिंदू सिविलाइजेशन, पृ. 75
4. पी० वी० काणे : हिस्ट्री ऑफ धर्म शास्त्राज : भाग 2
5. डी० आर० गाडगील : दी इन्डस्ट्रीयल इभोल्यूशन ऑफ इण्डिया इन रीसेन्ट टाईम्स : कलकता : 1959
6. गाडगिल, ब्यूकैनन, वाडिया ऐंड मर्चेंट आवर इकनामिक प्राबलम, 1943, पृ. 28–29

***

मुगलकाल में स्त्रियों के कानूनी अधिकार

*नीलू कुमारी**
*डॉ. अरविंद कुमार सिंह***

मुगल काल में सल्तनत काल की अपेक्षा स्त्रियों की अवस्था अपेक्षाकृत अधिक संतुलित थी। बाबर ने तैमूर और चंगेज खाँ की परंपराओं का अनुसरण किया और अपनी स्त्रियों को राजनीति में सक्रिय रूप से भाग लेने के लिए प्रोत्साहित किया। परन्तु बाबर ने संप्रभुता का अधिकार उन्हें नहीं दिया। तजिस समय बाबर के पिता उमर शेख मिर्जा की मृत्यु हुई (1494) उसकी उम्र 11 वर्ष की थी। अपनी दादी एहसान दौलत बेगम के निर्देश से बाबर ने प्रशासन का कार्य चलाया और अपनी स्थिति सुदृढ़ की। बाबर की माँ कुतलुक निगार खानम सदैव युद्धों में बाबर के साथ रही। बाबर की पत्नी महीन बेगम ने अपने पति की कठिनाइयों में सर्वदा उसका साथ दिया। अपनी योग्यता के कारण राज्य में उसको अधिक सम्मान प्राप्त था और बाबर के बगल में दिल्ली के तख्त के समीप बैठती थी। बाबर की मृत्यु के ढाई वर्ष बाद तक वह राजनीति में भाग लेती थी। बाबर की दूसरी पत्नी बीवी मुबारिका यूसुफजाई कबीले की थी। यूसुफजाई कबीले के लोगों और बाबर के बीच उनसे समझौता कराने में योगदान दिया। जिसके कारण बाबर का अधिकार अफगानिस्तान पर बना रह सका।

हुमायूँ के शासनकाल में खानजादा बेगम ने जो बाबर की बड़ी बहन थी दरबार में महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किया। महीब बेगम की मृत्यु के बाद उसे 'पादशाह बेगम' की उपाधि से विभूषित किया गया। उसने हुमायूँ और उसके भाइयों के बीच समझौता कराने का प्रयास किया, परंतु वह असफल रही।[16] हुमायूँ के चचेरे भाई सुल्तान मिर्जा की पत्नी हराम बेगम प्रशासकीय योग्यता के लिये प्रसिद्ध थी। उसे 'वली नियामत' की उपाधि मिली थी। 1549 ई. में जब हुमायूँ काबुल से बल्ख पर आक्रमण करने के लिये रवाना हुआ तब उसने हराम बेगम से सहायता माँगी जो उसे तुरंत दी गई। 1566 में हराम बेगम ने काबुल की राजनीति में बड़ी रूचि दिखलाई परन्तु वह काबुल पर अधिकार न कर सकी। उसने बदखशाँ के प्रशासन को संभाला। वह महत्त्वाकांक्षी महिला थी। अभिजात वर्ग के लोग और राजकीय परिवार के सदस्य उससे भयभीत रहते थे और उसका आदर करते थे।

चुनार के अफगान गवर्नर ताजखां सारंगखानी की पत्नी लाड मलका अत्यंत सुन्दर और प्रखर बुद्धि महिला थी। उसकी उदारता से सैनिक अधिकारी और अभिजात वर्ग के लोग उसका समर्थन करते थे। अन्त में ताजखाँ की मृत्यु के बाद शेरशाह ने उससे विवाह कर लिया और चुनार पर अधिकार कर लिया।

अकबर के समय में उसकी सौतेली माँ माहचुचक बेगम का नाम उल्लेखनीय है। वह एक महत्वाकांक्षी महिला थी। उसका बेटा मिर्जा मोहम्मद हकीम काबुल का गवर्नर नियुक्त किया गया (1556)। माहवुचक बेगम ने काबुल के प्रशासक को प्रभावित किया। अकबर को प्रमुख दाई महाम अनगा भी एक प्रभावशाली महिला थी। अकबर की प्रमुख दाई महाम अनगा भी एक प्रभावशाली महिला थी। उसके ही कारण बैरम खां का जो अकबर का संरक्षक था, पतन हुआ (1560)। वह अकबर को प्रभावित करने में सफल हो सका। दो वर्षों तक अकबर महल की स्त्रियों के प्रभाव में रहा, जिसका नेतृत्व महाम अंगा कर रही थी। सन् 1662 में अकबर ने इन स्त्रियों के प्रभाव से अपने को मुक्त कर लिया जब कि महाम अंगा के पुत्र अधम खां को वजीर की हत्या के अपराध में मृत्युदण्ड दिया गया। कुछ समय के बाद पुत्रशोक में महाम अंगा की मृत्यु हो गयी।

अकबर की एक चचेरी बहन बरन्नुन्निसा बेगम थी जिसका विवाह बदखशाँ के ख्वाजा हसन से हुआ था। काबुल के गवर्नर मिर्जा मुहम्मद हाकिम के विद्रोह करने के बाद अकबर ने उसे काबुल का

---

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
** शोध निदेशक,एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग,डी.के. कॉलेज, डुमरांव,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

गवर्नर नियुक्त किया (1581)। अकबर के शासनकाल में उसकी माँ मरियम मकानी और उसकी पत्नी सलीमा बेगम राजनीति में अधिक रूचि लेती थीं। 1599 ई. में सलीम के विद्रोह करने पर मरियम मकानी ने अपना प्रभाव पिता पुत्र पर डालकर समझौता कराया। 1601 ई. में दूसरी बार जब सलीम ने विद्रोह किया तब सलीमा बेगम और गुलबदन बेगम ने सलीम को अकबर से क्षमादान दिलाया।

जहाँगीर के गद्दी पर बैठने के एक वर्ष बाद उसके पुत्र खुसरो ने मिर्जा अजीज कोका के उकसान पर विद्रोह कर दिया। जहाँगीर ने विशिष्ट अमीरों से मंत्रणा को निर्णय लिया कि मिर्जा को तुरंत मृत्युदण्ड दिया जाय, जिसका विरोध खाँने जहाँ लोदी ने किया। ठीक उसी समय सलीमा बेगम ने जहाँगीर को पर्दे के अन्दर से यह कहकर बुलवाया कि सम्राट तुरंत जनानखाने में आ जावें, नहीं तो स्त्रियाँ स्वयं उनके पास आवेंगी। जहाँगीर को विवश होकर जनानखाने में जाना पड़ा और स्त्रियों के कहने पर मिर्जा अजीज कोका को क्षमा करना पड़ा। स्त्रियों के समझाने पर जहाँगीर ने खूसरो को अपने पास आने दिया।

जहाँगीर के शासनकाल में नूरजहाँ सामाजिक और राजनीतिक क्षेत्र अत्यंत प्रभावशाली रही। उसने प्रशासन का कार्य चलाने के लिये अपना एक दल बनाया। उसने न केवल प्रशासनिक कार्य में बल्कि सैनिक क्षेत्र में भी अद्‌भुत कुशलता प्रदर्शित की जब उसने अपने पति जहाँगीर को महावत खाँ के चंगुल से छुड़वाया। नूरजहाँ ने सामाजिक क्षेत्र में भी उल्लेखनीय कार्य किया। उसने निर्धन मुसलमानों को सरकार की ओर से अनुदान दिया जिसमें वे अपनी पुत्रियों का विवाह कर सकें। उसने नये–नये डिजाइनों के वस्त्रों का उपयोग किया और नये फैशन चलाये। जहाँगीर की मृत्यु के बाद शाहजहाँ के गद्दी पर बैठने के बाद उसने राजनीति से संन्यास ले लिया।

शाहजहाँ के शासनकाल में मुमताज महल ने राजनीति में अपना प्रभाव बनाये रखा। उसने गुजरात के गवर्नर सैफ खाँ को शाहजहाँ के क्रोध से बचा लिया। मनुची के अनुसार मुमताज महल ने पुर्तगालियों के विरूद्ध सैनिक अभियान के लिये शाहजहाँ को प्रेरित किया। 1631 में मुमताजमहल की मृत्यु के बाद शाहजहाँ की पुत्री जहाँनारा ने राजनीति में रूचि दिखलाई और अपना प्रभाव स्थापित किया। जिस किसी को पदोन्नति के लिये सम्राट से प्रार्थना करनी होती थी वह जहांनारा के द्वारा अपना कार्य करवाता था।

जहाँनारा ने मुगल परिवार के दुःखी सदस्यों को सांत्वना दी। उसके ही प्रभाव के कारण शाहजहाँ ने औरंगजेब को कई बार क्षमा किया और उसको अपने पद पर बने रहने दिया। 1656 में गुलकुण्डा के सुल्तान अब्दुल्ला कुतुबशाह ने जहाँनारा को पत्र लिखा कि वह सम्राट पर अपना प्रभाव डाले और औरंगजेब के उसके राज्य पर आक्रमा को रोकने में सहायता करे। उत्तराधिकार के संबंध में विजयी होने के बाद औरंगजेब ने अपने भाइयों को मरवा डाला और शाहजहाँ को कैद कर लिया। ऐसे समय में जहाँनारा निरंतर शाहजहाँ की सेवा करती रही। जहाँनारा अपने मृत भाइयों के बच्चों की देखभाल करती रही। औरंगजेब ने भी सदैव जहाभी सदैव जहाँनारा का सम्मान किया।

रोशनारा बेगम शाहजहाँ की दूसरी पुत्री थी। उसने सदैव औरंगजेब का साथ दिया। वह अपने बड़े भाई दारा की विरोधी थी और उसने दारा को मृत्युदण्ड देने के लिये दबाव डाला। औरंगजेब ने उसे 1669 ई. में 'शाह बेगम' की उपाधि दी और 5 लाख रूपया दिया। औरंगजेब की दो पत्नियों, दिलरस बानू बेगम और उदयपुरी महल ने उस पर अपने प्रभाव डाले। सन् 1662 में जब औरंगजेब बीमार पड़ा, रोशनारा बेगम ने शाही मोहर अपने अधिकार में रखा और सम्राट की बीमारी को छिपाये रखा।

औरंगजेब की पुत्रियों ने भी राजनीति में रूचि दिखलाई। जेबुन्निसा बेगम ने शाहनबाज खाँ को अपने पिता के हाथों दण्डित होने से बचा लिया। जेबुन्निसा ने अपने छोटे भाई मुहम्मद अकबर का साथ दिया जिससे अकबर के विद्रोह करने पर और भागने पर उसे बन्दी बनाया गया। उसका वजीफा बन्द कर दिया गया (1702)। औरंगजेब ने अपनी दूसरी पुत्री जीन्नतुन्निसा बेगम की मरहठा कैदियों, शम्भुजी की विधवा और शाहू की देखभाल का कार्य सौंपा।

काबुल के गवर्नर अमीर खाँ की पत्नी साहिबजी प्रशासकीय मामलों में दक्ष थी। वह राजनीति में भाग लेती थी। काबुल प्रांत का वास्तविक गवर्नर उसे समझा जाता था।

जहाँदार शाह के शासनकाल में लाल कुँवर प्रशासकीय मामलों में हस्तक्षेप करती थीं। उसके ही कहने पर लोगों को जागीरें दी जाती थीं। उसके सगे संबंधियों को उसकी सिफारिश पर जागीरें दी गई। उसे शाही चिन्ह प्रदान किये गये। 1712–12 में फरूखसियर मुगल सम्राट बनाया गया। बाद में अपनी माँ की सिफारिश पर मुहम्मद मुराद कश्मीरी को विकालत खां की उपाधि और 1000 मनसब दिया।

मुहम्मद शाह के समय में उसकी माँ नवाब कुरेसिया बेगम ने राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका अदा की। उसके प्रयासों के कारण सैयद भाइयों का पतन हुआ। उसके शासनकाल में कोकी ज्यू ने राजनीति में सक्रिय भाग लिया। उसने सम्राट की माँ नवाब कुरेसिया को अपने ज्योतिष के ज्ञान से प्रभावित किया। मुहम्मद शाह के सम्राट बनने के बाद कोकी ज्यू को शाही मोहर रखने के लिये दिया। बहुत से अमीरों ने ऊँची जागीरों के लिये उसके माध्यम से सम्राट से संपर्क स्थापित किया और उन्हें सफलता मिली। इस प्रकार कोकी ज्यू ने 'पेशकश' के रूप में बहुत–सा धन संग्रहीत किया।

मुगल काल में राजकीय परिवार की स्त्रियों को विविध उपाधियों से सम्मानित किया जाता था, जैसे 'मरियम मकानी', 'मरियम जनानी', बिलकिस मकानी, सबसे महत्वपूर्ण उपाधि 'नूर महल' और 'नूरजहाँ' जहाँगीर ने मेहरून्निसा को दी। उसे 'शाह बेगम' भी कहा जाता था। शाहजहाँ ने अपनी पत्नी अर्जुमन्दबानू बेगम को 'मुमताज महल' की उपाधि दी और उसकी स्मृति में ताजमहल बनवाया।

जहाँनारा को 'साहिबातु जजमानी' पादशाह बेगम की उपाधियाँ दी गई। औरंगजेब की पुत्री जीनतुन्निसा बेगम को 'पादशाह बेगम' की उपाधि मिली। औरंगजेब ने अपनी पत्नियों को उन स्थानों के नाम की उपाधियाँ दीं जहाँ से वह आई थीं, जैसे– 'औरंगबादी महल', 'उदयपुरी महल' और जहाँदार शाह की प्रिय बेगम लाल कुँअर को 'इमतियाज महल' की उपाधि मिली। इसी प्रकार मुहम्मद शाह की माँ को 'हसरत बेगम' और 'मलिकाये जमानी' की उपाधियाँ दी गई। इन स्त्रियों को व्यक्तिगत जागीरें और नकद धन शाही खजाने से दिया जाता था। सबसे अधिक अनुदान 2 करोड़ रू. वार्षिक लाल कुँअर को जहाँदार शाह ने दिया।

ऐसा समझा जाता है कि राजकीय परिवार की कुछ महिलाओं ने निजी व्यापार की रूचि दिखलाई और माल भेजने के लिए अपने–अपने अलग जहाजों की व्यवस्था की जहाँगीर की माँ का जहाज 1200 टन माल ले जाने की क्षमता रखता था। इसी प्रकार नूरजहाँ के पास कई जहाज थे। वह विदेशी व्यापार में दिलचस्पी रखती थी। नूरजहाँ का मुख्य प्रतिनिधि उसका भाई आसफ खाँ था। जहाँनारा भी अपना निजी व्यापार करती थी और उसके कई जहाज थे। उसने अंग्रेज और हालैण्ड के व्यापारियों से सम्पर्क स्थापित किया और व्यापार में अधिक लाभ प्राप्त किया।

मुगल सम्राटों ने अपने हरम के जनानखाने को सुव्यवस्थित किया। स्त्रियों की सुरक्षा के लिये अंगरक्षक (अहदीज) महल के चारों तरफ रखे जाते थे। महल में नाजिर होता था जिसकी देख–रेख में अंगरक्षक कार्य करते थे। इसके अतिरिक्त मुगल सम्राट महल के अन्दर स्त्रियों की नियुक्ति करता था, जिनका कार्य हरम के विषय में प्रतिदिन विस्तृत जानकारी सम्राट को देना होता था। हरम में स्त्रियों को पर्दे में रखा जाता था। कोई बाहरी व्यक्ति अन्दर नहीं जा सकता था।

अभिजात वर्ग की स्त्रियाँ बडे ही शान शौकत से रहती थीं। टेवर्नियर ने लिखा है कि जफरखाँ की स्त्री बहुत उदारता से खर्च करती थी। उसने एक दावत में सम्राट अकबर को भी आमंत्रित किया था।

संदर्भ :

1. आई0 एच0 कुरेशी, एडमिनिस्ट्रेशन ऑफ दि सुल्तान्स ऑफ देहली
2. आर0 पी0 त्रिपाठी, सम ऐस्पेक्ट्स ऑफ मुस्लिम एडमिनिस्ट्रेशन
3. रशब्रुक विलियम्स, एन एम्पायर बिल्डर ऑफ दि सिक्स्टींथ सेंचुरी
4. एस0 के0 बनर्जी, हुमायूँ बादशाह
5. ईश्वरी प्रसाद, लाइफ एण्ड टाइम्स ऑफ हुमायूँ
6. आर0 पी0 त्रिपाठी, लेख 'महाम अंगा एण्ड अकबर–जर्नल ऑफ ई.हिस्ट्री
7. बनारसी प्रसाद सक्सेना, हिस्ट्री ऑफ शाहजहाँ ऑफ देहली
8. आर0 के0 मुखर्जी, दि इकनॉमिक हिस्ट्री ऑफ इण्डिया

***

धूमिल की कविताओं में राजनीतिक समझ व राजनीतिक लेखा-जोखा

*नीलम चतुर्वेदी**
डॉ. दिवाकर पाण्डेय **

समकालीन कवियों में धूमिल ही एक ऐसे कवि हैं, जिनकी कविताओं में राजनीतिक परिस्थितियों को नये अन्दाज एवं तेवर में प्रस्तुत किया गया है। इस कवि ने सही रूप में समकालीन समस्याओं को समझा है तथा इसी समझ के आधार पर व्यक्ति–समष्टि के परस्पर सम्बन्ध एवं दायित्व को एक ओर कविता, भाषा और व्याकरण के पारस्परिक सम्बन्ध से प्रस्तुत करता है तो दूसरी ओर वह इनमें व्याप्त अन्तर्विरोधों तथा जटिलताओं को राजनीतिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत क रता है। यही कारण है कि इनकी अधिकांश कविताओं में जनतंत्र को कई रूपों में प्रस्तुत किया गया है–इन सभी रूपों में कवि–लक्ष्य सही स्थिति की पहचान कराना रहा है। वह इसकी समझ तथा पहचान से आगे का कार्य भी करते है–वह है जनजीवन में संश्लिष्ट रूप में चेतना या जागरूकता का मन्त्रोच्चार। यही कारण है कि हमें धूमिल की काव्य–चेतना में मूलतः व्यक्ति एवं समाज–सड़क तथा संसद के माध्यम से 'सामाजिक दायित्व' एवं 'राजनीतिक समझ' की सहज प्रतीति होती है। कवि को राजनीति में 'जनतंत्र' तथा कविता में 'शब्दतंत्र' की ऐसी पहचान करनी है जो पूर्व का कवि न कर पाये हों। इसीलिए वह स्पष्टतः घोषित करते है–

मुझे अपनी कविताओं के लिए
दूसरे जनतंत्र की तलाश हैं।

उन्होंने इन पंक्तियों में सचमुच संक्षिप्ततः काफी कुछ अनकहा व्यंजित करना चाहा है। पहला जनतंत्र उनकी दृष्टि में व्यर्थ रहा है, मात्र प्रदर्शन, भ्रष्टाचार तक सीमित रहा है–लोगों में रोटी (भूख) की समस्या पूर्ववत् है, इसीलिए वह राजनीतिक क्रान्ति द्वारा दूसरे जनतंत्र की तलाश करना चाहते है। महत्त्वपूर्ण यह है कि उन्हें दूसरे जनतंत्र की तलाश अपनी कविताओं के लिए करनी है। इस सम्बन्ध में हम इतना कहना चाहेंगे कि धूमिल ही एक ऐसे कवि है, जिसमें कविता और राजनीति की समझ एक रूप में है। पर प्रभात कुमार त्रिपाठी ने धूमिल की कविता में इसे विपरीत स्थिति में देखा है। लेखक का अभिमत है–''जिन पात्रों से उनका मन जुड़ता है, वे पात्र भारतीय जनतंत्र की असल ताकतें हैं, लेकिन धूमिल अपने बाहर के इन तमाम चेहरों के पास, गहरें राजनीतिक–विवेक के साथ नहीं जाते। बाह्य विरूपता के पीछे काम करने वाली राजनीति के विपक्ष में उनकी कविता खड़ी है–लेकिन वे अपना पक्ष भाषा के जिस तेवर में स्पष्ट करते हैं, वह तेवर पाठक को देर तक विचलित नहीं करता। धूमिल मानव–सम्बन्धों की अधिक मूर्त दुनिया में, खासकर व्यक्ति अन्तर्मन की दुनिया में राजनीति की क्रूरता को नहीं देखते। हालात को अपने विस्तृत जटिल आयामों में परिभाषित करते हुए, अपने भीतर चलने वाले युद्ध की भाषा खोजने में धूमिल अधिक सफल नहीं हो पाये हैं।''

धूमिल राजनीतिक चेतना एवं जागरूकता के कवि है। समकालीन कविता की सबसे बड़ी पहचान यथार्थ (वास्तव) को यथारूप में प्रस्तुत करना है। 'संसद से सड़क तक' में कवि ने राजनीतिक स्थिति को उजागर करने के लिए अनेक प्रसंगों–सन्दर्भों को कविता का विषय बनाया है। यही कारण है कि धूमिल की कविता को समझने के लिए उसकी राजनीतिक समझ को जानना अनिवार्य है। वैसे तो कवि ने हर क्षेत्र में मुखौटों को अनावृत्त करने का उपक्रम किया है, पर राजनीतिक विडम्बनाओं में उसका व्यंग्य एवं खीझ कुछ अधिक प्रखर रूप में सामने आती है। उन्हें राजनीतिक स्थिरता का आभास मात्र टोपियों के बदलने से होता है। उनका दृढ़ विश्वास है कि–

---

* शोध छात्रा, हिंदी विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
** शोध निदेशक, प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग,एच.डी. जैन कॉलेज, आरा,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

हाँ यह सही है कि कुर्सियाँ वही हैं
सिर्फ टोपियाँ बदल गयी हैं।

'कुर्सियाँ' यहाँ विशिष्ट सन्दर्भ की द्योतक हैं। नेहरू के पश्चात् इन्दिरा गाँधी और पश्चात् परिवार पोषण एवं अधिकार–चेष्टा की ओर स्पष्ट संकेत है। इसको वह अत्यन्त नाटकीय ढंग से प्रस्तुत करता है। धूमिल की दृष्टि राजनीति में आज किसी प्रकार की मर्यादा, शालीनता एवं देशहित को स्थान नहीं मिल पा रहा था–सभी तरफ आपाधापी, अधिकार–लिप्सा, प्रजातंत्र के नाम पर लूट का बोलबाला था। राजनेता का अर्थ ही बदल गया था। नैतिक मान्यताओं का सर्वथा लोप हो चुका है।

चीनी आक्रमण से स्थिति की वास्तविकता का बोध हुआ–तभी धूमिल को मोहभंग हुआ–जनता को वस्तुस्थिति का परिचय तो मिला पर इसका परिणाम कोई सुखद नहीं हुआ। परन्तु साहित्यिक दृष्टि से एक आन्तरिक पीड़ा, खीझ एवं विद्रोह स्वरूप आक्रोश का स्वर सुनायी पड़ने लगा। अधिकांश स्थिति की समझ तक अपने आपको सीमित रखते हैं, जबकि कवि धूमिल इसकी तह तक पहुँचने के लिए उत्सुक है। यही कारण है वह संसद से सड़क तक तथा सड़क से संसद तक की दूरी में जो कुछ देखते, सुनता तथा भोगते है, उन्हें अपनी कविता का विषय बनाते है। राजनीतिक स्थिति में भी वह आरोपण का पक्षधर है, वह प्रत्यक्षतः अपनी खीझ व्यक्त करते है तथा तीक्ष्ण प्रहार पर उन्हें आश्चर्य तब होता है जब देश के नेता अपने देश की समस्याओं की ओर ध्यान न दे अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं एवं सुधार अथवा विश्व–शान्ति का प्रचार करते हैं। डॉ. शिवप्रसाद सिंह ने आधुनिक परिवेश की कई सन्दर्भों से चर्चा करते हुए स्वतंत्रता के पश्चात् भारतीय बौद्धिकों के इतिहास को सिर्फ आत्मबल के ह्रास का इतिहास माना है। लेखक का यहाँ तक अभिमत है कि हमारे देश ने स्वतंत्रता के सही अर्थ को आज तक नहीं समझा है–उसे मूल्यों की पहचान नहीं है।

राजनीतिक बोध में व्यंग्य–स्वर उभरने का एक और महत्त्वपूर्ण कारण होता है–राजनेताओं की निरर्थक नारेबाजी। इसका भी धूमिल ने अनेक बार अनेक प्रसंगों में उल्लेख किया है। नेताओं के व्यक्तित्व का दोहराव, उनकी चरित्रहीनता, निर्वाचित प्रतिनिधियों में दायित्व–पलायन योजनाओं की विफलता के साथ अन्य थोथी सही का चित्रण भी किया है, जिनसे कवि की राजनीतिक चेतना का परिचय सहज ही मिल जाता है। कवि स्वतंत्रता पश्चात् के वांछित सुधार एवं विकास की प्रतीक्षा करता रहता है। वह अन्दर ही अन्दर स्वयं से कई प्रश्न देश की वर्तमान स्थिति पर चिन्तन के रूप में करता रहता है–उसे इससे कुछ भी प्राप्त नहीं होता है–सिवा इसके कि वह भी एक जानवर की भाँति सन्तोष कर लेता है तथा अपनी जिन्दगी को दूसरे लोगों की तरह व्यतीत करता रहता है–इसे भी वह एक प्रकार से निष्क्रिय भाव से स्वीकारता है। देशव्यापी असन्तोष और नेताओं की कोरी कलावादी उसे लिखने एवं सोचने पर विवश करती है। उसे गत बीस वर्ष भी दृष्टियों से व्यर्थ प्रमाणित होते हैं और वह मुखर होता है–

बीस साल बाद और इस शरीर में
सुनसान गलियों से चोरों की तरह गुजरते हुए
अपने आपस सवाल करता हूँ–
क्या आजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है
जिन्हें एक पहिया ढोता है
या इसका कोई खास मतलब है।

इससे स्पष्टतः कवि की खीझ मुखरित हुई है। किसी राजनीतिक पद्धति–विशेष में अनास्था की समस्या नहीं है। वह जन्तान्त्रिक मूल्यों की हत्या होते देखता है तो बौखला उठता है, इस बौखलाहट में उसकी वाणी में बाह्य धरातल पर तीक्ष्णता अवश्य है, आन्तरिक दृष्टि से कवि पूर्णतः आश्वस्त है कि पुराना युग एवं शासन पूर्णतः असफल रहा है–अब आवश्यकता नये विधान एवं नेताओं के सत्ता में आने की है। उसे तथाकथित देशभक्ति का नारा लगाने वालो नेताओं की वास्तविकता का बोध हो जाता है, तभी वह कहने पर विवश होता है–

उस मुहावरे को समझ गया हूँ

जो आजादी और गाँधी के नाम पर चल रहा है
जिससे न भूख मिटी है, न मौसम
बदल रहा है।

आम आदमी की रोटी की समस्या का समाधान राजनीतिक चेतना के आधर पर हुआ है। उसका विश्वास प्रत्येक से समाप्त होता दिखता है–यही कवि का निरर्थक–बोध युग की सही स्थिति को उजागर करता है। देश की उत्तरोत्तर स्थिति का विकट होते जाने से वह क्षुब्ध है, उसे आदमी, देश, आजादी तथा प्यार में मात्र नफरत ही सही प्रतीत होती है। इसमें युग–बोध को यथारूप में देखा जा सकता है। देश की स्थिति की विकरालता एवं ह्रासोन्मुखता से उसमें आक्रोश का स्वर मुखरित होना स्वाभाविक है। कवि राजनेताओं के प्रति रूष्ट तो है ही, साथ ही युवा पीढ़ी की दिशाहीनता को भी दृष्टि से ओझल नहीं करता–उसे मूलतः शासन–प्रणाली एवं व्यवस्था में कमी दिखती है, तभी वह कहता है–

मैं उन्हें समझाता हूँ
वह कौन सा प्रजातान्त्रिक नुस्खा है
कि जिस उम्र में
मेरी माँ का चेहरा
झुर्रियों की झोली बन गया है।

पटकथा के विषय में इसीलिए नेमिचन्द्र जैन मानते हैं कि ''देश की और अपनी बेरहम तस्वीर इतनी बेबाकी उतार सकना एक समर्थ सर्जनात्मक प्रतिभा द्वारा ही सम्भव है, यह कविता धूमिल को समकालीन कवियों में एक अलग, खास और ऊँचा दर्जा देती है।''

राजनीतिक दृष्टि से हम धूमिल को उस कोटि का कवि मानते हैं जो प्रत्येक स्थिति को जड़ से पकड़ने का आदि है। यही कारण है कि वह प्रजातान्त्रिक मूल्यों की आवश्यकता पर बल देता हुआ इस अव्यवस्था को मूल रूप में समाप्त करने का पक्षपाती है। वह अनेक ऐसे प्रसंगों के 'पटकथा' में संयोजना करता है, जिनसे आज के राजनेताओं की वास्तविक स्थिति का पर्दाफाश होने लगता है। कवि ने ऐसे लोगों को षड्यन्त्रकारी, सुराजिये, चालाक इत्यादि विशेषणों से सम्बोधित किया है। ऐसे नेता प्रजा की कमजोरी से भली–भाँति परिचित थे तथा उन्हें गुमराह करने में सदैव सफल भी होते रहे हैं–इसलिए हर पाँच वर्ष के पश्चात् चुनाव होते रहे, टोपियों के परिवर्तन के साथ नेता 'व्यवस्था' को अपने हाथों सम्भालने में सफल होते रहे–उनकी वाचाल मोनोवृत्ति को भारतीय जनता समझ नहीं सकी। यही कारण है कि आम आदमी दिनोंदिन समस्याओं से घिरता गया है–और अन्ततः सम्पूर्ण देश में समस्याएँ ही समस्याएँ सामने आने लगी हैं–अन्न समस्या, जनसंख्या समस्या और न जाने कितनी समस्याएँ–यह देश 'समस्याओं का देश' बनकर रह गया है। कवि धूमिल को किसी प्रकार के सुधार की आशा नहीं दिखती है। वह इसके लिए जनता को दोषी ठहराता है, क्योंकि प्रजातंत्र में शासन की व्यवस्था स्वयं प्रजा (जनता) के हाथों होती है, चुनाव परिवर्तन का आधार होते हैं, पर हुआ इसके सर्वथा विपरीत।

धूमिल ने देशवासियों की सुप्त (मृतप्राय) मनोवृत्ति पर भी तीक्ष्ण प्रहार किया है। उसे विश्वास है कि भारतीय जनता अकर्तव्य होने के साथ विचारशून्य स्थिति को पहुँच चुकी है। जनता की दृष्टि में क्रन्ति का कोई महत्त्व नहीं रह गया है, क्योंकि उसके लिए क्रान्ति किसी अबोध बच्चे के हाथों की जूजी है।

धूमिल की कविताओं की विशिष्टता इस बात में है कि वे सोद्देश्य होती हैं–प्रत्येक उक्ति, पंक्ति, वक्तव्य एवं पूरी कविता अपने में पूर्ण अर्थ को व्यंजित करने की सामर्थ्य धारण किये हैं। 'पटकथा' में वह जनता और राजनेताओं की वस्तु–स्थिति से जहाँ देश में व्याप्त अव्यवस्था को उजागर करता है, वहाँ अन्य कविताओं में कवि सड़क के आम आदमी से संसद के निर्वाचित प्रतिनिधियों तक की आन्तरिक स्थिति को पहचानता है, खूब समझता है और इसीलिए कहीं–कहीं तीक्ष्ण प्रहार व्यंग्य रूप में करता है। वह जिस किसी व्यक्ति, स्थिति, प्रसंग को एक बार पकड़ता है उसकी तह तक पहुँचे

बिना नहीं रहा। यही कारण है कि राजनेताओं की चालाकी, दायित्वहीनता की वृत्तियों को ही व्यक्त नहीं करता, वरन् उनके चारित्र्य पतन का उल्लेख भी करने में नहीं हिचकता। कवि की विशेषता इस बात में है कि पाठक को ऐसी स्थितियों से परिचित वह सपाट रूप में करवाने के साथ कविता के मर्म को कदापि विस्मृत नहीं करता। जहाँ कहीं उसे राजनीतिक अव्यवस्था का दिग्दर्शन कराना होता है वह कविता में कहीं वाक्य, शब्द अथवा व्याकरण की चर्चा द्वारा प्रस्तुत करता है। ऐसा करने से कवि धूमिल की काव्यात्मक संवेदना सर्वत्र लक्षित होती है।

संदर्भ :

1. विद्यानिवास मिश्र, 'प्रस्तावना', 'कल सुनना मुझे', सम्पादक : राजशेखर, 1977
2. शिवप्रसाद सिंह, आधुनिक परिवेश और नवलेखन, 1970
3. नामवर सिंह, 'गँवई अनुभव और किसानी संस्कार का कवि : धूमिल', 1980
4. विनय, 'धूमिल का काव्य : जन–समूह से असम्पृक्त जनवाद', 'आजकल' (अंक 11, मार्च 1980), पृ. 11
5. वेदप्रकाश अमिताभ, हिन्दी साहित्य : विविध प्रसंग
6. सुदामा पाण्ड का प्रजातंत्र, पृष्ठ 22
7. धूमिल, डायरी के कुछ पृष्ठ नया प्रतीक, सम्पा. स. ही. वात्स्यायन (अप्रैल 78, पृष्ठ 15)

***

मध्यकाल में भारत की सामाजिक स्थिति

*अर्चना कुमारी**
*डॉ. ब्रजकिशोर सिंह***

भारतर्ष में मुस्लिम शासन की स्थापना तथा मुस्लिम साम्राज्य के विस्तार के साथ मुसलमानों की बस्तियों का भी विस्तार प्रारम्भ हुआ। हिन्दू–मुस्लिम सहयोग के बावजुद भारतवर्ष दो स्पष्ट हिन्दू एवं मुस्लिम समाज में विभक्त था। पारस्परिक सम्बन्धों के रहते हुए भी इन दोनों के सामाजिक स्वरूप में किसी प्रकार का परिवर्तन दृष्टिगोचर नहीं होता है।

डॉ0 आर्शीवादी लाल श्रीवास्तव के अनुसार मुस्लिम शानकाल (1200–1803) में हिन्दू समाज का स्वरूप अपरिवर्तनशील रहा है। निःसंदेह आर्थिक तथा नैतिक दृष्टिकोण से हिन्दू समाज का पतन हुआ है। सर यदुनाथ सरकार ने तो स्पश्ट लिखा है कि हिन्दुओं के नैतिक तथा सामाजिक पतन के लिए मध्ययुगीन मुस्लिम प्रशासन एकमात्र उत्तरदायी है। निश्पक्ष दृष्टि से सामाजिक विवेचना करने पर यह बात स्पष्ट हो जाती है कि नैतिक तथा सामाजिक पतन के लिए न केवल मुस्लिम प्रशासन अपितु हिन्दू समाज स्वयं उत्तदायी था।

कर्म के आधार पर प्राचीन सामाजिक व्यवस्था का अस्तित्व लुप्त हो चुका था। जन्म के आधार पर जाति प्रथा ने ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्रों को अनेक उपशाखाओं में विभक्त कर दिया था। आपस में सहयोग तथा सद्भावना का अभाव था। शूद्रों को समाज में घृणित स्थान देकर हिन्दू समाज ने अशान्ति, अराजकता तथा अव्यवस्था को प्रोत्साहन दिया। इसके अतिरिक्त वर्णसंकर तथा चाण्डाल भी नहीं था। कबीर, नानक तथा चैतन्य क अथक प्रयास के बावजूद भी हिन्दू सामाजिक दृष्टिकोण में कुछ भी परिवर्तन नहीं हुआ। मध्ययुगीन हिन्दू समाज के स्पष्ट चित्रण के लिए उसे तीन वर्गों में विभक्त कर सकते है– शासक वर्ग, सामन्त वर्ग तथा साधारण वर्ग।

सम्राट हर्श का शासन काल प्राचीन तथा मध्ययुगीन समाज के बीच सीमांत रेखा है। समकालीन साहित्यकार बाणभट्ट की साहित्यिक रचनाएँ तत्कालीन समाज पर प्रकाश डालती है। राजपूत शासकों की सबसे बड़ी अभिलाशा चक्रवती बनने की थी। इसके लिए वे सदैव अपने पड़ोसियों पर आक्रमण करते थे। लोकहित के चितन के अभाव के कारण जनता में राजाओं के प्रति श्रद्धा कृतज्ञता तथा स्नेह का अभाव था। वे प्रायः युद्ध से अवकाश पाने पर इन्द्रियसुखों में लिप्त होकर मादक द्रव्यों का प्रयोग करते थे। पृथ्वीराज रासो के लेखक के अनुसार पृथ्वीराज तथा राजा जयचंद में शत्रुता का प्रमख कारण पृथ्वीराज द्वारा जयचंद की पुत्री संयुक्ता का अपहरण था। राजपूत शासकों की पारस्परिक शत्रुता हिन्दु समाज के लिए घातक सिद्ध हुई। इसी आधार पर प्रो0 मुहम्मद हबीब, डॉ0 अजीज अहमद तथा डॉ0 कुरेशी ने लिखा है कि राजपूतों की साधारण प्रजा के प्रति उदासीनता के कारण भारतीय जनता ने विदेशी आक्रमणकारियों को उद्धारकर्त्ता समझ कर स्वागत किया[55] और उनके आते ही कृतज्ञतापूर्वक उनका आश्रय ग्रहण किया।

भारतीय जनता के कुछ व्यक्तियों ने स्वार्थ बुद्धि से प्रेरित होकर विदेशियों का साथ दिया परन्तु अधिकांश जनता ने उन्हें सांस्कृति स्तर में हेय, धर्मांधता में घृणित और राजनीतिक क्षेत्र में पराजय मान कर उनका विरोध किया।

सम्पूर्ण मध्ययुगीन इतिहास में केवल एक उदाहरण मिता है राणा संग्राम सिंह की छत्र–छाया में अधिकांश राजपूत शासक विदेशी आक्रमणकारी का मुकाबला करने के लिए एकत्रित हुए। अकबर के समय में तो उन्होंने अपनी वंश परम्परा तथा गौरव को भुला दिया था। भारमल ने अपनी राजकुमारी की शादी मुगल सम्राट अकबर से की। भारमल, राजा भगवान दास, मानसिंह, राजा टोडरमल तथा बीरबल जैसे व्यक्तियों ने तो मुगल सम्राट के यहाँ नौकरी स्वीकार कर ली।

राणा उदय सिंह तथा महाराणा प्रताप ने अपनी गौरव की रक्षा के लिए अनेक कश्ट सहन किया। राणा प्रताप के भाई शक्तिसिंह तथा जगमल ने सम्राट अकबर का साथ दिया। इससे स्पश्ट हो जाता है कि हिन्दू समाज के शासक वर्ग का नैतिक पतन हो रहा था। सम्पूर्ण मध्ययुगीन इतिहास के क्षितिज पर राजपूत गौरव का चमक कभी–कभी हुई। हिन्दू–समाज के पतन में इनका उत्तरदायित्व कम नहीं है।

---

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)
** शोध निदेशक, सेवानिवृत्त एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र विभाग, जो.बी. कॉलेज, रामगढ़, कैमूर,वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

शासक वर्ग का जाति प्रथा में इतना विश्वास था कि राजपूतों के अतिरिक्त अन्य किसी वर्ग के लोगों को सेना में भर्ती नहीं करते थे, यद्यपि समाज में अधिक क्षमता वाले व्यक्ति राष्ट्र की रक्षा कर सकते थे। इस कारण हिन्दू समाज में राष्ट्रीयता की भावना का विकास न हो सका।

सामंत प्रथा मध्ययुगीन हिन्दू समाज की विशेषता रही है। हिन्दू राज्य अनेक वर्गों में विभक्त था। प्रत्येक सामंत अपनी जागीर में शासन व्यवस्था के लिए उत्तरदायी था। युद्ध तथा शांति की घोशणा एवं सिक्का ढालने के अतिरिक्त उसे सभी प्रशासनिक अधिकार प्राप्त थे। राजा की उदासीनता ने स्थानीय सामंतो की कार्यपटुता को विकसित होने का अवसर दिया और उनको आत्मनिर्भर बनाया। सामंत वर्ग इतना महत्वाकांक्षी हो गया कि वे कभी–कभी राजगद्दी के लिये राजद्रोह तक करने के लिए तैयार थे। बनबीर नामक सामन्त ने तो राणा उदयसिंह की हत्या का प्रयास किया, परन्तु पन्नाधाई के कारण उदयसिंह की प्राण रक्षा हो सकी। इस प्रकार हिन्दू समाज में अराजकता तथा अव्यवस्था के लिए सामन्त वर्ग भी उत्तरदायी था। विलासप्रिय जीवन में वे राजपूत शासकों का अनुकरण करते थे।

शासक तथा सामन्त वर्ग के अतिरिक्त सभी जनता सर्वसाधारण वर्ग के अंतर्गत थी। इसमें ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र सभी थे। जाति प्रथा के कारण इनमें प्रेम तथा सद्भावना का अभाव था। जाति के आधार पर ही कार्य विभाजन हुआ था। मुस्लिम समाज की समानता के अधिकार से प्रभावित होकर शूद्र भी हिन्दू समाज में समानता के अधिकार के लिए प्रयत्नशील थे। तुलसीदास ने समाज का बड़ा ही उपर्युक्त चित्रण किया है

बादंहि सूद्र द्विजन सह हम तुम ते कछु घाट।
जनहि ब्रह्म सो बिप्रवर आँख देखावहि डांट।।

शूद्रों को वेद अध्ययन, धर्मानुकरण का अधिकार न था। अधिकांश लोग इस्लाम धर्म स्वीकार करने के लिए तैयार थे। कबीर, नानक, चैतन्य, तुलसी दास ने उन्हें समाज में समानता का अधिकार देने का अथक प्रयास किया। परन्तु उनके प्रयास का परिणाम भी सफल सिद्ध नहीं हुआ क्योंकि हिन्दू समाज का स्वरूप अपरिवर्तनशील रहा है। ब्राह्मणों की रूढ़िवादिता तथा धर्मान्धता इसके लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी थी। हिन्दू समाज में सती प्रथा, बाल विवाह की अनेक कुरीतियां प्रचलित थी।

शासक तथा सामंत वर्ग के विलासप्रिय जीवन तथा युद्ध का भार सर्वसाधारण वर्ग को वहन करना पड़ता था। यह वर्ग करों के भार से दबा हुआ थ। कर देने के अतिरिक्त वे कुछ भी नहीं जानते थे। मुस्लिम शासन की स्थापना के बाद सर्वसाधारण वर्ग की दशा में और भी ह्रास हुआ है। यदि उनमें राश्ट्रीयता की भावना का विकास नहीं हुआ तो इसके लिए शासक तथा सामंत वर्ग उत्तरदायी था। यही कारण है कि मुस्लिम शासन में हिन्दूओं ने अनेक कठिनाईयों का सहन किया परंतु सम्मिलित होकर एक स्वर से शासक की गलती तथा कश्टदायक नीतियों का प्रतिरोध नहीं किया। यदि कहीं प्रतिरोध अथवा विद्रोह हुआ भी तो उसका स्वरूप स्थानीय था, समाज के सभी वर्गों ने साथ नहीं दिया। उनकी असफलता ने उनके कश्टों को बढ़ा दिया।

संदर्भ :

1. टाइटस : पृ. 175 : इंडियन इस्लाम
2. अवध बिहारी पाण्डेय, पूर्व मध्यकालीन भारत
3. स्मिथ, अकबर दी ग्रेट मुगल दिल्ली, 1958
4. ई0वी0 हैवल : इंडियन आर्किटेक्चर : लंदन 1915
5. अशरफ, लाइफ एंड कंडीशन ऑफ दी पीपुल ऑफ हिन्दुस्तान
6. ए.बी. पाण्डेय, लेटर मेडिवल इण्डिया
7. आशीर्वादी लाल श्रीवास्तव, मेडिवल इंडियन कल्चर, 1964
8. ताराचन्द, इनफ्लूएन्स ऑफ इस्लाम आन इंडियन कल्चर

***

ग्रामीण विकास में अत्याधुनिक तकनीकों के योगदान की समीक्षा

*अरविन्द कुमार यादव**

भारत गाँवों का देश है। गाँवों के विकास बिना भारत के विकास की कल्पना करना असम्भव है। देश में ग्रामीण समुदाय भारतीय समाज का केन्द्र बिन्दु है और वहीं भारत का वास्तविक प्रतिनिधित्व करता है। आज जब सम्पूर्ण विश्व में वैश्वीकरण, उदारीकरण तथा निजीकरण की लहर दौड़ रही है ऐसे में संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी का महत्त्व भी तेजी से बढ़ रहा है। सूचना प्रौद्योगिकी के तेजी से प्रचार–प्रसार के चलते इसने एक क्रांति का रूप ले लिया है। सूचना प्रौद्योगिकी की इस क्रांति के कारण आज सम्पूर्ण विश्व एक गांव में परिवर्तित हो गया है। आज घर बैठे ही कोई भी व्यक्ति विश्व के किसी भी कोने से आवश्यक जानकारी, सूचना का आदान–प्रदान, तथा परामर्श अविलम्ब हासिल कर सकता है। सूचना क्रांति के इस युग में यह जरूरी है कि गांवों में भी कृषि, स्वास्थ्य, शिक्षा, चिकित्सा एवं यातायात आदि में सूचना प्रौद्योगिकी के उपयोग को सुनिश्चित करने के हर संभव प्रयास किए जाएं।

गांवों के विकास के लिए आज यह जरूरी हो गया है कि वहां परिवर्तित परिस्थितियों के अनुरूप पारदर्शी, उत्तरदायी व जवाबदेह प्रशासन विद्यमान हो। अच्छे व आधुनिक प्रशासन के माध्यम से सीधा व प्रत्यक्ष सम्पर्क कायम करके ग्रामीण विकास के चिर–परीक्षित लक्ष्य को प्राप्त करना संभव है। गांवों में किसान ई–खेती को लेकर काफी उत्सुक हैं। गांवों में संचार सुविधाओं के पहुंचने के बाद ई–खेती की दिशा में तेजी से कदम बढ़ रहे हैं। भारत सरकार की ओर से भी किसानों को इस दिशा में व्यापक सहयोग दिया जा रहा है। किस फसल में कितनी मात्रा में पानी और कब खाद एवं उर्वरक का प्रयोग करें, यह सभी सुविधाएं किसानों को एक पल में ही उपलब्ध हो रही हैं। यह सब ई–खेती के जरिए ही संभव हो सका है।

सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से गांव–गांव में ब्राडबैंड पहुंचाने की योजना को भी दूरसंचार आयोग झंडी दे चुका है। इससे ग्रामीण क्षेत्रों में कृषि से संबंधित सेवाओं को पहुंचाना आसान हो जाएगा। देश की सभी पंचायतों को आप्टिकल फाइबर केबल से जोड़ा जा रहा हैं जहां फसल उत्पादन से लेकर किसानों को मौसम तक की जानकारी मिल सकेगी।

आज देश में जिस प्रकार सूचना एवं संचार प्रौद्योगीकी की लहर दोड़ रही उससे उसमें ग्रामीण क्षेत्र भी पीछे नहीं रहा है आज लगभग शहर से सटे सभी ग्रामीक्ष क्षेत्र सूचना एवं तकनीकी का लाभ उठा रहे है परन्तु अभी कुछ ऐसे क्षेत्र बचे है जो बहुत और आन्तरिक क्षेत्र में पाये गये जहां तकनीकी विकास पहुंच नहीं पाया है और अगर पहुंच गया है वहां सूचना प्रौद्योगीकी गति धीमी अवस्था में पाई गयी है। आज देश को कोने–कोने तक ग्रामीण क्षेत्रों को सूचना एवं संचार के माध्यम से जोड़ा जा रहा है और गांव–गांव जाकर उनको जानकारियों से अवगत कराया जा रहा है इसके लाभ लोगों तक पहुंच भी रहा है और आज ग्रामीण क्षेत्रों में जिनको जिस अत्याधुनिक तकनीकी के विकास से प्रयोग रहा है और लोग जानकारियों से अवगत होकर उससे लाभ उठा रहे हैं उसे निम्नलिखित प्रकार से जाना जा सकता है–

1. **ई–खेती–** आज ग्रामीणों व किसानों के पास सूचनाएँ और नई–नई जानकारियाँ प्राप्त करने के कई माध्यम हैं। परन्तु ग्रामीण विकास व कृषि से जुड़ी किसी भी समस्या का समाधान करने के लिये इंटरनेट सबसे प्रभावी, सरल व आसान माध्यम है। आज किसान देश के किसी भी कोने से ई–मेल कर अपनी कृषि सम्बन्धित किसी भी समस्या का हल पा सकता है। ई–खेती ने वैज्ञानिकों, प्रसार कार्यकर्ताओं और विषय–वस्तु विशेषज्ञों पर ग्रामीणों की निर्भरता को बहुत

* शोधार्थी (जे.आर.एफ.), समाजशास्त्र विभाग, नेहरू ग्राम भारती (मानित विश्वविद्यालय), प्रयागराज

ही कम कर दिया है। इंटरनेट के प्रयोग से बाजार सुनिश्चित कर खेती की जाए तो निश्चित तौर पर इससे फायदा होगा।

2. **किसान पोर्टल–** किसान पोर्टल एक वेबसाइट है जिसे कृषि एवं किसान कल्याण मंत्रालय द्वारा विकसित किया गया है। देश का कोई भी किसान इस पोर्टल की साइट से बीजों, उर्वरकों, कीटनाशकों, फार्म मशीनरी, मौसम, बाजार मूल्य, योजनाएं एवं बीमा, ऋण एवं न्यूनतम समर्थन मूल्य आदि की जानकारी स्थानीय भाषा में हासिल किया जा सकता है।
3. **फसल बीमा पोर्टल –** खेतों में कटाई उपरान्त प्रयोग की सूचना को डिजिटल कराने के लिये सी.सी.ई. कृषि मोबाइल एप विकसित हुआ है जिसे जी.पी.एस. के माध्यम से यह एप खेत का स्थान स्वतः ही ग्रहण कर, फोटोग्राफ एवं डाटा को वेब सर्वर तुरन्त स्थानान्तरित करता है। इस माध्यम से पारदर्शिता को बढ़ावा मिलता है। किसानों, बीमा कम्पनियों एवं बैंकों सहित सभी स्टैक होल्डर के लिये एक ही पोर्टल है। इसमें दोनों बीमा योजनाओं जैसे पी.एम.एफ.बी. वाई. और डब्ल्यू.बी.सी.आई.एस. शामिल है। इस एप के माध्यम से प्रीमियम की अन्तिम तारीख एवं किसानों को उनकी फसल सम्बन्धी सूचना प्रदान करता है। बीमा प्रीमियम की गणना को सृजन करना एवं ऋण बीमा हेतु किसानों के आवेदन और बैंकों के साथ इनका संयोजन करता है।
4. **ई–पशुहाट पोर्टल** –देश में पहली बार राष्ट्रीय दुग्ध दिवस 26 नवम्बर, 2016 के अवसर पर ई–पशुधन हाट पोर्टल की शुरुआत की गई है। यह पोर्टल देशी नस्लों के लिये प्रजनकों और किसानों को जोड़ने में एक महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस पोर्टल के द्वारा किसानों को देशी नस्लों की नस्लवार सूचना प्राप्त होगी। इससे किसान एवं प्रजनक देशी नस्ल की गाय एवं भैंसों को खरीद एवं बेच सकेंगे। देश में उपलब्ध जर्मप्लाज्मा की सारी सूचना पोर्टल पर देखी जा सकती है जिससे किसान भाई इसका तुरन्त लाभ उठा सकें। इस पोर्टल के द्वारा उच्च देशी नस्लों के संरक्षण एवं संवर्धन को नई दिशा मिलेगी। इस वेबसाइट (www-epashuhaat-gov-in) पर किसान और प्रजनकों को जोड़ा जाता है। किसानों को पता चलता है कि कौन–कौन सी नस्लें उपलब्ध हैं तथा उन्हें कहाँ से खरीदा जा सकता है।
5. **किसान एस.एम.एस. पोर्टल–** भारत सरकार ने किसानों के लिये एक एस.एम.एस. पोर्टल की शुरुआत की है। इस सुविधा के माध्यम से किसान कृषि के सम्बन्ध में अपनी आवश्यकताओं, स्थान और अपनी भाषा के अनुरूप सलाह और सूचनाएँ प्राप्त कर सकते हैं। किसान एस.एम. एस. पोर्टल प्रणाली में किसानों को उनके मोबाइल पर एस.एम.एस. सन्देश मिलते रहते हैं जिनमें सूचना या सेवा की जानकारी या विशेषज्ञों, वैज्ञानिकों और अधिकारियों की आवश्यक सलाह दी जाती है।
6. **साइबर कृषि–** कम्प्यूटर तकनीकी के माध्यम से कृषि में सही आवश्यकताओं का पता लगाया जाता है जिससे जल, ऊर्जा, धन और समय की बचत होती है। यह ग्रामीणों, किसानों, मजदूरों व पशुपालकों को हर प्रकार की सुविधा उपलब्ध कराता है। डिजिटल साइबर कृषि ने एक मूक क्रान्ति का रूप लिया है जो आने वाले समय में ग्रामीण भारत की तस्वीर बदल सकती है। इससे ग्रामीण जीवन बहुत ही आसान एवं व्यवस्थित बना सकते हैं। अतः ग्रामीणों को इन तकनीकों का लाभ लेकर अपनी जीवनचर्या को और बेहतर बनाना चाहिए।

सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी ने ग्रामीण क्षेत्रों के विकास में निम्नलिखित प्रकार से भी अपनी भूमिका निभा रही है जिसमें ग्रामीणों इस तकनीकी विकास से योजनाओं की जानकारी एवं जागरूकता के साथ–साथ शिक्षित भी हो रहे है–

1. स्वास्थ्य के क्षेत्र योगदान :–एम्बुलेंस सेवा, ई–मेडिसन, एव आधुनिक पैथोलॉजी की मशीने तथा आपरेशन की नवीन आधुनिक विधिया जिससे ग्रामीणों को अपनी ही क्षेत्र में सुविधा मुहैया प्रदान हो जा रही है।

2. शिक्षा के क्षेत्र में योगदान :– ई–पुस्तके, परीक्षा के नमूने वाले प्रश्न–पत्र, पिछले वर्षों के प्रश्न–पत्र आदि देखने के लाभ विशेष व शोधकर्ताओं, व्यावसायिक साथियों से दुनिया के किसी भी कोने पर आसानी से सम्पर्क स्थापित करना सरल एवं सुगम हो गया है।

3. यातायात– सड़क एक शहर से दूसरे शहर जोड़ने का सफल माध्यम जिससे ग्रामीणों को अपने उत्पादन का आयात–निर्यात आवागमन कर सुलभ हो रहा है और राष्ट्रीय राजमार्गों के रख रखाव हेतु टोल–टैक्स आदि में सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी का अहम योगदान है।

4. बिजली संरक्षण में योगदान– ऊर्जा के संसाधन सीमित है। ई0एफ0एल0 का प्रयोग कर हम बिजली की लागत को कम कर सकते है। ऊर्जा संरक्षण कर हम उन गांव तक बिजली पहुंचा सकते है। जहां आज तक बिजली पहुंची नही है।

5. जल संरक्षण में योगदान–प्रधानमंत्री ने अपने रेडियों कार्यक्रम में मन की बात में बढ़ते सूखे के बीच जल और जलाशय संस्थान की बात कही है इसके लिए मीडिया से भी सहयोग मांगा ताकि लोगों में जागरूकता उत्पन्न हो।

6. पर्यावरण संरक्षण में योगदान– पर्यावरण सूचना पत्र के द्वारा पर्यावरण सम्बन्धी सभी जानकारियाँ–प्रदूषण के कारण, नवीनीकरण ऊर्जा मुरुस्थलीकरण, जैव विविधता आदि के बारे में जानकारियों को कम्प्यूटर से संग्रहित कर जन सामान्य तक पहुचायी जा सकती है।

7. प्रजातंत्र को सफल बनाने में योगदान– लोकतंत्र का आधार लोक सम्पर्क है। लोक सम्पर्क के सर्वोत्तम माध्यम का अर्थ समाचार पत्र करते है इसके बाद रेडियो, टेलीविजन, चलचित्रों और इन्टरनेट आदि का स्थान है, सूचना एव संचार तकनीकी की क्षमता को अधिक सफल एवं

सुझाव–

सूचना एवं संचार तकनीकी को बढाने के लिए शिक्षा के स्तर को बढाया जाना अति आवश्यक है। संचार एवं तकनीकी का बढावा देने के लिए सरकार को सब्सिडी देना चाहेगी। सरकार एवं गरै –सरकारी संगठनो के माध्यम से कृषि मे ं तकनीकी संसाधनों से सम्बन्धित प्रशिक्षण कार्यक्रमों को निरन्तर करवाया जाना आवश्यक है। संचार तकनीकी से सम्बन्धित होने वाली हानि सम्बन्धित कमियों को दूर किया जाना चाहिए। कौशल विकास के माध्यम से लोगों को तकनीकी की जानकारी दी जा सकती है।

गांवों में संचार सुविधा पहुंचने के बाद ई–खेती की दिशा में कदम बढ़ रहे हैं। देश के किसानों में ई–खेती को लेकर काफी उत्सुकता है। भारत सरकार की ओर से भी इस सम्बंध में व्यापक सहयोग मिल रहा है। किस फसल में कितनी मात्रा में पानी और कब खाद व उर्वरकों का प्रयोग करें, यह सभी सुविधाएं किसानों को एक पल में ही उपलब्ध हो रही हैं। यह सब ई–खेती के जरिए ही सम्भव हो सका है। इन प्रदेशों में हो रहे प्रयोग को देखकर दूसरे प्रान्तों में भी ई–खेती को लेकर किसानों में जागरुकता आई है। ई–खेती के द्वारा यह भी प्रयोग किए जा रहे हैं कि कम से कम पानी में खेती कैसे की जाए।

उपरोक्त से स्पष्ट होता है कि संचार माध्यम और सूचना प्रौद्योगिकी के कारण हमारा ग्रामीण परिवेश बदल रहा है फिर भी इस दिशा में और गति अपेक्षित है। संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के लिए विद्युत सप्लाई लगातार होना आवश्यक है। हमारे कई जिले ऐसे हैं जहाँ 100 प्रतिशत ग्रामीण विद्युतीकरण तो हो चुका है परंतु विद्युत सप्लाई अभी भी चुनौती बनी हुयी हैं। इसके अतिरिक्त इंटरनेट कनेक्टिविटी भी ग्रामीण क्षेत्रों में आज भी चुनौती का विषय है। हालाकि मोबाइल के माध्यम से इंटरनेट की उपलब्धता ने इसे काफी हद तक दूर करने में सफलता प्राप्त की है। परंतु गाँवों में आज भी आधुनिक संचार एवं सूचना प्रौद्योगिकी के लाभ प्राप्त करने के लिए वित्तीय संसाधनों की आवश्यकता है। ग्रामीण परिवेश की इन कमियों को दूर करके सूचना एवं संचार प्रौद्योगिकी के प्रभाव को और भी विस्तृत एवं प्रभावशाली बनाया जा सकता है क्योंकि उन्नत गॉव ही उन्नत देश का आधार होता है।

संन्दर्भ :

1. मोदी, अनिताः, ''ई–प्रशासन गाँवों के विकास का स्तम्भ'' कुरुक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मन्त्रालय, नई दिल्ली, जुलाई, 2014 पेज संख्या 27–30
2. सिंह कटार, ग्रामीण विकास सिद्धान्त नीतियॉ एवं प्रबन्ध, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2011
3. दयाल, मनोज, विकास संचार अर्थअवधारणा एवं प्रक्रिया पाठ, प्रकाशक वर्धमान महावीर वि0 विद्यालय, कोटा, 2008
4. *The Media & The Information & Communication Technology & Poverty# An Asian Perspective*. ADB Institute Working Paper (12).2001
5. Srinivasa, G, *Rural Telephony*, Kurukshetra, PD, New Delhi, October, 2001
6. Tenth Five Year Plan, Chapter Communication, Govt of India, New Delhi, 2002-07.
7. दत्त आर0 एवं सुन्दरम के0पी0एम0, भारतीय अर्थव्यवस्था, टी.बी.एच. पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 1994
8. यादव, रामजी ग्रामीण विकास, अर्जुन पब्लिशिंग हाउस, पृ0–7, 2003
9. योजना, फरवरी, पृ0–7–8, 2006

***

''बी.एड़. इंटीग्रेटेड के (चार वर्षीय) विद्यार्थियों क नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन''

*श्रीमती कृष्णा कुमारी गौत्तम**

सारांश :

भारत देश में अनेक विद्यार्थी बी.एड़. इंटीग्रेटेड (चार वर्षीय) प्रशिक्षण प्राप्त करते है। इस शोध कार्य के द्वारा विज्ञान वर्ग व कला वर्ग के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों को जानने का प्रयास किया गया है। शोध कार्य के लिए न्यादर्श के रुप में 50 छात्र/छात्राऐं विज्ञान वर्ग व 50 छात्र/छात्राऐं कला वर्ग के प्रशिक्षणार्थियों का चयन किया गया है। आंकडो के विश्लेषण के लिए मध्यमान, प्रमापा विचलन व टी परीक्षण का प्रयोग किया गया। परीक्षण के पश्चात् यह निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि बी.एड़. इंटीग्रेटेड के विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है। और बी.एड़. इंटीग्रेटेड के कला वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

मुख्य शब्द : नैतिक मूल्य, बी.एड़. इंटीग्रेटेड, विद्यार्थी, मानवीय, अहिंसा, उपलब्धि।

1. प्रस्तावना :

नैतिक मूल्य विद्यार्थियों के जीवन में बहुत आवश्यक है। इसका आरम्भ विद्याार्थियों के बाज्यकाल से ही हो जाता है। नैतिक मूल्यों की समाज में बहुत ही अहम् भूमिका है, आज अगर देखा जाए तो मानवीय जीवन सिर्फ और सिर्फ अपने जीवन को सुधारने में ही लगा रहता है। जिसके लिए वह तरह–तरह की शिक्षाए ग्रहण करता है। नैतिक शिक्षा भी मानव जीवन की सबसे बड़ी आवश्यकता है। क्योकि जीवन में नैतिक मूल्यों का होना जीवन का प्रथम लक्ष्य होना चाहिए। शिक्षा मानव को पशुओं से अलग बनाती है। क्योकि शिक्षा ही हमें बताती है कि हमें जीवन में कैसे आगे बढ़ना है। और समाज में हमें इन आदर्शो के साथ सम्बन्ध स्थापित करके अपने जीवन को सुखमय बनाना है। मूल्य मानव के अन्तःकरण द्वारा नियन्त्रित होते है। ''मूल्य एक मानव विश्वास है जिसके आधार पर मनुष्य वरीयता प्रदान करने का कार्य करता है।'' सत्य, अहिंसा, स्नेह, प्रेम, त्याग, दया, परोपकार, विश्वास आदि ऐसे मूल्य है जिनसे मानव सुखी रह सकता है। साथ ही समाज में भी खुशहाली का प्रसार कर सकता है।

2. शोध का औचित्य :

किसी भी शोध समस्या का चयन करते समय यह ध्यान रखना अति आवश्यक है कि समस्या कितनी सार्थक एवं उपयोगी है अतः समस्या का औचित्य परीक्षण अत्यन्त आवश्यक है। क्योकि औचित्य ही शोध की उपदेयता सिद्ध करता है।

2.1 विद्यार्थियों के लिए शोध का औचित्य :

प्रस्तुत शोध विद्यार्थियों के लिए बहुत महत्व रखता है। इस शोध का अध्ययन करके विद्यार्थी इस तथ्य से अवगत हो सकते है कि उनका नैतिक मूल्य कैसा तथा उनके नैतिक मूल्यों का उपलब्धि एवं व्यवहार पर क्या प्रभाव पड़ता है।

2.2 समाज एवं राष्ट्र के लिए शोध का औचित्य :

प्रस्तुत शोध समाज एवं राष्ट्र के लिए महत्व रखता है। इस शोध के माध्यम से समाज को भावी अच्छे नागरिक व राष्ट्र को उन्नति के पथ पर अग्रसर करने वाले विद्यार्थियों के बारे में पता लग जाएगा।

समस्या कथन :

बी.एड़. इंटीग्रेटेड के (चार वर्षीय) विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन।

सम्बन्धित साहित्य का अध्ययन :–

---

* आवक्ताः- हितकारी सहकारी महिला शिक्षा महाविद्यालय, आरामपुरा, धाकड खेडी, कैथून रोड़,कोटा (राज.) 325001

शोधकर्त्ता के शोध से सम्बन्धित क्षेत्र में अभी तक जो कार्य हुए है उनमें प्रमुख निम्नलिखित है–

* मैथ्यू महोदय ने 1944 ई. में फ्रायड एडलर एवं जुंग के शैक्षिक विचारों का तुलनात्मक अध्ययन किया था। गोविन्द राव महोदय ने 1955 ई. में दस अंग्रेजी उपन्यासकारों की कृतियों में विद्यमान शैक्षिक तत्वों का विश्लेषण किया।
* सन् 1956 ई. में नायक महोदय ने गांधी के बेसिक शिक्षा के सिद्धान्त का व्यवहार का अध्ययन किया जबकि सुबमण्यम महोदय ने 1958 ई. में गांधी के विचारों की तुलना टैगोर के विचारों से की। सन् 1970 ई. में राबिन्सन महोदय ने विशेषकर बेसिक शिक्षा के संदर्भ में शिक्षा में व्यवहारिकतावाद का आलोचनात्मक अध्ययन किया और बेसिक शिक्षा तथा व्यवहारिकतावाद में समान तत्वों को खोजा।
* सन् 1973 ई. में भट्ट महोदय ने तथा सन् 1974 ई. में सिंह महोदय ने भावे के शैक्षिक विचारों को अपने अध्ययन का विषय बनाया, भट्ट महोदय ने गांधी के दर्शन में पर्याप्त साम्य है किन्तु गांधी का दर्शन देश की आजादी से जुडा है। जबकि भावे दर्शन सामाजिक संरचना से युक्त है।
* सन् 1970 ई. में राखी महोदय ने अपने शोध प्रबन्ध ''एजुकेशनल फिलासफी ऑफ लोकमान्य तिलक एण्ड स्वामी विवेकानन्द, ए कम्परेटिव स्टडी'' में तिलक एवं विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन किया है। इस अध्ययन में नायर महोदय ने यह निष्कर्ष निकाला है कि ''शिक्षा का उद्देश्य व्यक्ति की आन्तरिक शक्तियों का प्रस्फुटन ही है।'' इस प्रकार सन् 1978 ई. में फुदियथ तथा सन् 1978 ई. में चौहान महोदय ने स्वामी विवेकानन्द के शिक्षा दर्शन को अपने शोध अध्ययन का विषय चुना।

शोध के उद्देश्य :

इस शोध में शोधार्थी शोध अध्ययन के लिए निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए–

* बी.एड़. इंटीग्रेटेड की छात्राओं के नैतिक मूल्यों का पता लगाना।
* बी.एड़. इंटीग्रेटेड की छात्रों के नैतिक मूल्यों का पता लगाना।

शोध की परिकल्पनाएँ :

* बी.एड़. इंटीग्रेटेड के विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं होताहै।
* बी.एड़. इंटीग्रेटेड के कला वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्रिय ने सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध उपकरण :–

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्रिय ने स्वनिर्मित उपकरण, नैतिक मूल्य प्रशनावली का प्रयोग कया गया है।

न्यादर्श :

प्रस्तुत शोध में कोटा के बी.एड़. इंटीग्रेटेड महाविद्यालय में अध्ययनरत 100 छात्र व छात्राओं का न्यादर्श के रुप में चयन किया गया है। जिसमें 50 छात्र व छात्राऐं विज्ञान वर्ग व 50 छात्र व छात्राऐं कला वर्ग के लियें गये।

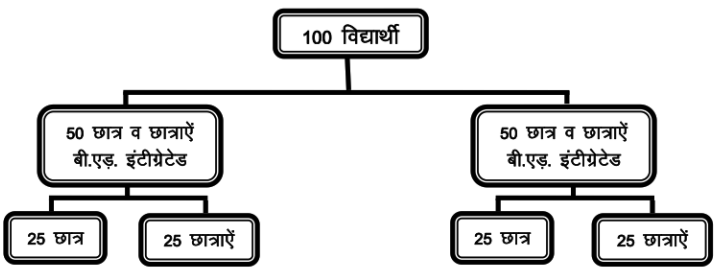

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी :

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु निम्न सांख्यिकीय प्रविधियों का प्रयोग किया गया है।

* मध्यमान
* मानक विचलन
* टी– परीक्षण

व्याख्या प्रदत्तों का विश्लेषण एवं व्याख्या :–

* **परिकल्पना –1** बी.एड़. इंटीग्रेटेड के विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सारणी – 1

क्र.सं.			N	मध्यमान	प्रमाप विचलन	T परीक्षण	सार्थकता मे अन्तर
1	विज्ञान वर्ग	छात्र	25	134.44	3.02		
2		छात्राएँ	25	130.72	2.94	2.44	

*

$df = N_1 + N_2 - 2$

$25 + 25 - 2 = 48$

0.05 सार्थकता स्तर का t मान = 1.98

0.01 सार्थकता स्तर का t मान = 2.66

उपर्युक्त सारणी का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि बी. एड. इंटीग्रेटेड के विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों का माध्यमान क्रमशः 134.44, 130.72 प्रमाप विचलन क्रमशः 3.02, 2.94 प्राप्त हुआ और इसी आधार T मूल्य 2.44 प्राप्त हुआ। जो $df = 48$ के 0.01 के सारणीमान 2.66 से कम है।

बी. एड. इंटीग्रेटेड के विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

* **परिकल्पना –2** बी.एड़. इंटीग्रेटेड के कला वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं होता है।

सारणी – 2

क्र.सं.			N	मध्यमान	प्रमाप विचलन	T परीक्षण	सार्थकता मे अन्तर
1	कला वर्ग	छात्र	25	131.32	2.96		
2		छात्राएँ	25	129.03	2.84	2.40	

*

$df = N_1 + N_2 - 2$

$25 + 25 - 2 = 48$

0.05 सार्थकता स्तर का t मान = 1.98

0.01 सार्थकता स्तर का t मान = 2.66

उपर्युक्त सारणी का अवलोकन करने से ज्ञात होता है कि बी. एड. इंटीग्रेटेड के कला वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों का माध्यमान क्रमशः 131.32, 129.03 प्रमाप विचलन क्रमशः 2.96, 2. 84 प्राप्त हुआ और इसी आधार T मूल्य 2.44 प्राप्त हुआ। जो $df = 48$ के 0.01 के सारणीमान 2.66 से कम है।

बी. एड. इंटीग्रेटेड के कला वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

निष्कर्ष :–

बी.एड़. इंटीग्रेटेड के (चार वर्षीय) विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का तुलनात्मक अध्ययन करके समीक्षा करने पर निम्नलिखित परिणाम तथा निष्कर्ष प्राप्त हुऐ।

* परिकल्पना 1 के अनुसार बी. एड. इंटीग्रेटेड के विज्ञान वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।
* परिकल्पना 2 के अनुसार बी. एड. इंटीग्रेटेड के कला वर्ग के छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों में सार्थक अन्तर नहीं है।

शैक्षिक उपादेयता :

(1) प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्री ने बी. एड. इंटीग्रेटेड के विज्ञान व कला वर्ग में पढ़ने वाले छात्र व छात्राओं के नैतिक मूल्यों को जानने का प्रयास किया है कि वर्तमान में विद्यार्थियों का नैतिक मूल्य कैसा है।

(2) प्रस्तुत शोध के माध्यम से विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का पता लगाकर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।

(3) इस शोध के माध्यम से विद्यार्थियों के शिक्षण अधिगम का पता लगाया जा सकता है।

सुझावः

एक अच्छा शोधकर्त्ता वह माना जाता है जो अनेक नवीन शोध कार्यो के लिए दिशा प्रदान करता है। प्रस्तुत शोध इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण योगदान देने में सहायक हो सकता है।

भावी शोध हेतु निम्न सुझाव प्रस्तुत है–

(1) विभिन्न संकायो के विद्यार्थियों के नैतिक मूल्यों का पता लगाया जा सकता है।
(2) न्यादर्श के रुप में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों को लिया जा सकता है।
(3) मन्द–बुद्धि वाले बालकों के नैतिक मूल्यों का पता लगाया जा सकता है।
(4) बालक व बालिकओं के नैतिक मूल्यों का पता लगाया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. कटियार, पी. सी. (1989) वैल्यू एण्ड वोकेशनल प्रिफरेन्स, आगरा, भार्गव बुक हाउस
2. पाण्डेय, आर. एस. (1990) भारतीय शिक्षा के विभिन्न आयाम, आगरा, विनोद पुस्तक मन्दिर
3. राष्ट्रीय शिक्षा नीति (1986) मानव संसाधन विकास मंत्रालय, भारत सरकार नई दिल्ली
4. सिंह, मंजु (2003) प्राथमिक स्तर पर शिक्षकाओं के नियन्त्रण केन्द्र एवं मूल्यों के मध्य सम्बन्ध का अध्ययन भारतीय अनुसंधान शिक्षा वर्ष 22 अंक 2 अक्टूबर 2003
5. सिंह, सारनाथ मोहन कुमार (2008) माध्यमिक स्तर के छात्र व छात्राओं के जीवन मूल्यों की तुलना भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका वर्ष 27 अंक 2 जुलाई– दिसम्बर 2008

***

भारत की गुट-निरपेक्षता की नीति

*लाल बहादुर सिंह**

गुट–निरपेक्षता की नीति अपनाने वाला भारत पहला देश था। भारत की नीति सकारात्मक और सक्रिय रूप से विश्व राजनीति में भाग लेने की नीति है। भारत की गुट–निरपेक्षता की नीति, केवल गुटों की राजनीति से दूर रहने की नीति है। यह राजनीति से सन्यास नहीं है। नेहरू ने 1949 में अमरीकी कांग्रेस बोलते हुए कहा था कि यदि कहीं पर स्वतंत्रता संकट में पड़ेगी या न्याय को खतरा होगा या कहीं आक्रमण किया जाएगा तो हम न तो तटस्थ रह सकते हैं और न रहेंगे। हमारी नीति तटस्थतावादी नहीं है, बल्कि यह ऐसी नीति है जो सक्रिय रूप से शांति स्थापित करने और उसे मजबूत आधार देने की नीति है। भारत की विदेश नीति पर टिप्पणी करते हुए के० एम० पणिक्कर ने कहा था कि भारत ने अपने लिए एक स्वतंत्र स्थान बनाया है और अपने जैसे अन्य राज्यों के सहयोग से अंतर्राष्ट्रीय सद्भाव स्थापित करने में उसका काफी प्रभाव रहा हैं एक प्रकार से यह नीति महात्मा गाँधी के अहिंसा के विश्वास को प्रोत्साहन देती है। भारत की नीति के समीक्षकों ने शुरू में ही यह कहा था कि यह नीति ''लोकतंत्र के पक्ष में तटस्थता'' की नीति होगी।

भारत की संविधान सभा में 4 दिसंबर 1947 को बोलते हुए नेहरू ने यह भ्रम दूर करने का प्रयत्न किया था कि गुट–निरपेक्षता का अर्थ तटस्थता भी होता है। उन्होंने कहा था कि, हमने पिछले एक वर्ष में यह घोषणा की है कि हम किसी एक समूह विशेष के साथ अपने को जोड़कर नहीं रखेंगे। इसका तटस्थता से या इसी प्रकार के निष्क्रियता से कुछ लेना देना नहीं है। ''यदि कहीं कोई बड़ा युद्ध होता है, तो कोई कारण नहीं है कि हम उसमें कूद ही पड़ें... यदि हम ऐसा कर सकें तो हम युद्ध में शामिल नहीं होंगे, और यदि ये हमारे हित में हुआ तो हम किसी के पक्ष के साथ अपनी इच्छा से समय आने पर युद्ध में भाग ले भी सकते हैं।''

भारत संसार को तीसरे महायुद्ध से बचाना चाहता था। नेहरू ने कहा था कि यदि कोई विपत्ति आएगी तो वह समस्त संसार को प्रभावित करेगी... हमारा पहला प्रयास यह होना चाहिए कि विपत्ति को आने से ही रोका जाए। भारत के इस संकल्प को दोहराते हुए कि हम शक्ति गुटों से दूर रहेंगे, नेहरू ने 1949 में कहा था कि, ''यदि किसी कारण से हमें एक शक्ति गुट में शामिल होना ही पड़ता है तो शायद एक दृष्टिकोण से हम कुछ भला ही करेंगे, पर मुझको इसमें कोई भी शंका नहीं लगती कि एक विशाल दृष्टिकोण से ऐसा करना न केवल भारत के लिए बल्कि विश्व शांति के लिए हानिकारक होगा।''

भारत की विदेश नीति की सदा ही कुछ प्राथमिकताएँ रही हैं। वे हैं : देश का आर्थिक विकास, विदेशी मामलों में कार्य करने की स्वतंत्रता, देष की संप्रभुता और प्रादेशिक अखण्डता को सुरक्षित रखना तथा विश्व शांति। भारत का यह दृढ़ विश्वास रहा है कि इन उद्देश्यों की प्राप्ति केवल शक्ति गुटों से दूर रहकर और विदेश नीति संबंधी निर्णय स्वतंत्रता से लेकर ही की जा सकती है।

नेहरू की प्रतिबद्धता उदारवाद की पश्चिमी धारणा और लोकतंत्र के प्रति थी। परन्तु उन्होंने कभी भी उन सैनिक गठबंधनों का समर्थन नहीं किया जिन्हें अमेरिका ने साम्यवाद के प्रसार को रोकने के लिए स्थापित किया था। उन्होंने सैनिक संधियों का यह कहकर विरोध किया था कि उनसे उपनिवेशवाद को नए रूप में प्रोत्साहन मिलता है; और इसलिए भी उनका विरोध किया था कि इन संधियों के प्रतिक्रिया स्वरूप दूसरे गुट में भी सैनिक संधियाँ होंगी और अस्त्रों के लिए दौड़ शुरू हो जाएगी। नेहरू समाजवाद से भी प्रभावित थे और उन्होंने लोकतांत्रिक समाजवाद के विचार का समर्थन

* शोध छात्र ,इतिहास विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

किया था। परन्तु उन्होंने साम्यवादी राज्य को एकाधिकारवादी कहकर अस्वीकार किया था और मार्क्सवाद को घिसा–पिटा सिद्धान्त बताया था। नेहरू ने अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में शक्ति गुटों की राजनीति के विचार का ही विरोध किया था। इस प्रकार भारत की नीति का उद्देश्य एक तीसरा गुट बनाना नहीं था, परन्तु नए स्वतंत्र हुए राज्यों की निर्णय करने की स्वतंत्रता सुनिश्चित करने के लिए एक कदम था। भारत ने गुट–निरपेक्षता को शांति की नीति के रूप में अपनाया था, झगड़ा बढ़ाने के लिए नहीं। भारत की गुट–निरपेक्षता अंतर्राष्ट्रीय संबंधों में स्थिति को अपरिवर्तनीय रखने की नहीं थी। यह तो देश और संसार के हित में परिवर्तन लाने, उपनिवेशवाद, साम्राज्यवाद, जाति–भेद और नव–उपनिवेशवाद का विरोध करने की नीति है। भारत संसार से इन बुराइयों को दूर करवाना चाहता है। दूसरे, गुट–निरपेक्षता इस विचार का खंडन करती है कि महा–शक्तियाँ किसी भी प्रकार अन्य देशों से श्रेष्ठ हैं। ये तो सभी राज्यों की समानता की वकालत करता है। तीसरे, गुट–निरपेक्षता सभी देशों के मध्य मैत्रीपूर्ण संबंधों को प्रोत्साहन देती है। गुट–निरपेक्षता बल प्रयोग को अस्वीकार करके अंतर्राष्ट्रीय विवादों के शांतिपूर्ण समाधान का समर्थन करती है। यह सभी परमाणु अस्त्रों के विनाश और पूर्ण निरस्त्रीकरण की सिफारिश करती है। गुट–निरपेक्षता संयुक्त राष्ट्र को शक्तिशाली बनाने की नीति है। भारत की विदेश नीति समस्त मानवता की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं के समाधान पर जोर देती है। अन्याय और असंतुलन पर आधारित वर्तमान अर्थव्यवस्था को समाप्त करके एक नई अंतर्राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की स्थापना का भारत पूरी तरह समर्थन करता है।

भारत ने गुट–निरपेक्षता की नीति इसलिए अपनाई क्योंकि वह निर्णय लेने की स्वतंत्रता की रक्षा करना चाहता था। इसके अतिरिक्त आर्थिक विकास पर भारत बहुत अधिक बल दे रहा था। यह नीति लगभग पचास वर्ष तक सफलतापूर्वक लागू की गई। एम० एस० राजन ने आरम्भ में गुट–निरपेक्षता की नीति अपनाने के कारणों का उल्लेख किया है। पहला, यह विश्वास किया गया कि अमेरिका या सोवियत गुट के साथ भारत की संलग्नता अंतर्राष्ट्रीय तनाव को बढ़ा सकती थी। इससे अंतर्राष्ट्रीय शांति को प्रोत्साहन मिलने वाला नहीं था। इसीलिए नेहरू ने कहा था कि शक्ति गुटों से विपत्तियाँ आएँगी और भारत इनसे दूर रहना चाहता था। इसके अतिरिक्त भारत ने आगे चलकर यह भी अनुभव किया कि देश के आकार को ध्यान में रखते हुए, भौगोलिक और सामाजिक महत्व के कारण, और सभ्यता के विकास में उसके योगदान के आधार, अंतर्राष्ट्रीय तनाव कम करने, शांति को प्रोत्साहन देने और दोनों गुटों के बीच एक सेतु का कार्य करने की सकारात्मक भूमिका उसको निभानी थी। दूसरे, भारत न तो एक बड़ी शक्ति थ और न बिल्कुल महत्वहीन राष्ट्र ही था। भारत के पास एक महान् शक्ति बनने की संभावना अवश्य थी। गुट–निरपेक्षता की नीति भारत की वर्तमान आवश्यकताओं और उसकी राष्ट्रीय पहचान बनाए रखने के लिए आवश्यक थी दूसरी ओर गुट–निरपेक्षता का उद्देश्य यह भी था कि भविष्य में भारत को एक महान् शक्ति के रूप में उभरने में सहायता मिले।

तीसरे, भारत ने भावात्मक और वैचारिक कारणों से भी किसी शक्ति गुट में शामिल न होने का निर्णय लिया। भारत पश्चिमी गुट में इसलिए भी शामिल नहीं हो सकता था क्योंकि इस गुट के अनेक देश उपनिवेशवादी शक्ति थे या रह चुके थे। कुछ देश अब भी जातीय भेद का व्यवहार कर रहे थे। दूसरी ओर भारत सोवियत गुट में इसलिए शामिल नहीं हो सकता था क्योंकि साम्यवाद की विचारधारा भारत को कभी स्वीकार्य नहीं थी।

चौथे, भारत किसी भी अन्य संप्रभुता संपन्न देश की तरह अपने निर्णय स्वयं करना चाहता था। भारत किसी दूसरे देश की डोरी के साथ बाँधा नहीं जा सकता था। दूसरे शब्दों में भारत प्रत्येक प्रश्न का गुण–दोष के आधार पर स्वयं निर्णय करना चाहता था।

पांचवें, भारत ने जब अपने आर्थिक विकास के लिए अनेक परियोजनाएँ लागू कीं तो उनकी सफलता के लिए विदेशी पूँजी की तुरंत आवश्यकता थी। राजनीतिक तौर पर यह उचित नहीं था कि हम किसी एक विशेष देश से सहायता लेते। देश के लिए लाभदायक तो यह था कि हमें जहाँ से भी सहायता मिले, उसे स्वीकार करें, यदि उसके साथ कोई कठिन शर्तें न जुड़ी हों।

छठे, भारत का यह पारम्परिक विश्वास है कि सत्य और अच्छाई किसी एक धर्म या दर्शन के एकाधिकार में नहीं होते। भारत सहनशीलता में विश्वास करता है। उस समय की स्थिति में सहनशीलता और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व ही देश के हित में थे। भारत जिस आदर्श पर चलना चाहता था, यह था– मित्रता सबके साथ, शत्रुता किसी से नहीं।

अंतिम कारण यह था कि देश की आंतरिक स्थिति भी गुट–निरपेक्षता की नीति अपनाने के लिए बहुत कुछ उत्तरदायी थी। राजन का यह मानना है कि यदि भारत सरकार किसी भी गुट के साथ संलग्न होने का निर्णय करती तो उससे राजनीतिक विवादों और देश की अस्थिरता को बल मिलता।

वास्तव में गुट–निरपेक्षता अपनाने का चाहे कुछ भी कारण रहा हो, यह स्पष्ट है कि भारत की जनता ने आमतौर पर नेहरू की इस नीति का समर्थन किया। अन्य अनेक देशों ने भी इस नीति को अपने राष्ट्रीय हितों के अनुकूल पाया।

गुट–निरपेक्ष आन्दोलन को 1961 में भारत की पहल पर शुरू किया गया और औपचारिक रूप से गुट–निरपेक्ष आन्दोलन का शुभारंभ प्रधानमंत्री नेहरू, युगोस्वालिया के राष्ट्रपति टीटो और मिस्त्र के राष्ट्रपति नासिर ने किया। बेल्ग्रेड में हुए गुट–निरपेक्ष देशों के पहले सम्मेलन में पच्चीस देशों ने भाग लिया। इसकी अध्यक्षता टीटो ने की थी। किस देश को बुलाना है और किसको नहीं इसका निर्णय सामूहिक रूप से नेहरू, नासिर और टीटो ने किया था। उन्होंने निमंत्रण भेजते समय विभिन्न देशों के विदेश नीतियों का परीक्षण किया था। पहले शिखर सम्मेलन में भाग लेने के लिए पाँच आधार तय किए गए थे। ये आधार थे : (1) वह देश गुट–निरपेक्षता और शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व की विदेश नीति पर स्वतंत्र आचरण करनेवाला हो; (2) वह देश उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद का विरोध करता हो; (3) वह देश शीत युद्ध से संबंधित न हो; (4) उसने किसी महा–शक्ति के साथ कोई द्विपक्षीय संधि न की हो; और (5) उस देश की भूमि पर कोई भी विदेश सैनिक अड्डा स्थापित न किया गया हो।

गुट–निरपेक्ष आन्दोलन पच्चीस देशों ने शुरू किया था। गुण और संख्या दोनों की दृष्टि से इसके विकास में कई परितर्वन आए हैं। इस आन्दोलन की सदस्य संख्या बढ़कर 1997 में 113 तक पहुँच गई। समय–समय पर इसके शिखर सम्मेलन होते हैं जिनमें अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के विभिन्न ज्वलंत प्रश्नों पर विचार किया जाता है, और यह प्रयत्न किया जाता है कि आन्दोलन के सभी देश एक समान दृष्टिकोण अपनाएँ। यह कार्य कठिन अवश्य हो गया, क्योंकि सदस्य संख्या बढ़ने से सहमति आसानी से नहीं हो पाती। 1961–1995 की अवधि में ग्यारह शिखर सम्मेलन हुए हैं। जकार्ता (1992) और कार्टेगना (1995) के दो शिखर सम्मेलन शीतयुद्ध के समाप्त होने के बाद हुए। उस समय एक सोवियत संघ का विघटन हो चुका था, उपनिवेशवाद का पूरी तरह उनमूलन हो गया था, नमीबिया स्वतंत्र हो चुका था और दक्षिण अफ्रीका में रंगभेद समाप्त हो गया था। शीतयुद्ध के समाप्त होने पर गुट–निरपेक्षता का औचित्य अवश्य कम हुआ है। यद्यपि, आज भी अनेक नेता यह मानते हैं कि गुट–निरपेक्ष आन्दोलन आज भी प्रासंगिक है।

संदर्भ :

1. पी० एन० खन्ना, लिपाक्षी अरोड़ा : भारत की विदेश नीति
2. डॉ० पुष्पेश पंत, श्री पाल जैन : अंतर्राष्ट्रीय संबंध
3. डॉ० बी० एल० फाड़िया : अंतर्राष्ट्रीय संबंध
4. पुष्पेश पंत : 21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय सम्बन्ध
5. जौहरी जे० सी० : विश्व राजनीति के बदलते आयाम
6. दिनेशचन्द्र पाण्डेय : द्वि–धुव्रीयता में गुट–निरपेक्षता
7. एम० एस० राजन : गुट–निरपेक्षता आन्दोलन एवं संभावनाएँ
8. डॉ० आर० एस० : भारत की विदेश नीति : एक विश्लेषण

***

वैदिक परम्परा में अग्नि की उपासना

*शान्ती देवी**

अति प्राचीन काल से अग्निदेव की उपासना न केवल भारत में अपितु संपूर्ण विश्व में होती चली आयी है। भारतीय जनमानस में अग्नि को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था। मानव की आदिम अवस्था में अग्नि के आविष्कार का श्रेय महर्षि अंगिरस को जाता है। वैदिक परम्परा में अग्नि को प्राकृतिक रूप में देखा गया था, एक ओर तो उसका उपयोग पशुओं और मछलियों के मांस को भुनने में किया गया, तो दूसरी ओर उसे शत्रु–बाधा को दूर करने एवं भूत–प्रेतादि को भगाने वाली महाशक्ति के रूप में पूजा गया। यायावरी जीवन के पश्चात मानव ने पशुपालन एवं कृषि कार्य प्रारम्भ किया। अग्नि की सहायता से मानव की उन्नति का दूसरा रूप तब सामने आया, जब ज्ञात हुआ कि अग्नि के द्वारा धातु को गलाकर बड़े–बड़े असंभव कार्य संभव हो सकते हैं।

धातु युग में समाज का परिवेश ही बदल गया और इस बदले हुए परिवेश में यज्ञ की सृष्टि हुई। यज्ञ की सृष्टि वैदिक काल में हुई। वैदिक सभ्यता का मूल आधार यज्ञ संस्कृति थी। यज्ञ–वेदियों में अग्नि प्रज्जवलित कर हविष् की आहुतियां दी जाती थी। यहीं यज्ञ संस्कृति ने पूजा का मार्ग प्रशस्त किया। वैदिक साहित्य में उल्लिखित पृथ्वी स्थानीय देवमण्डल में अग्नि देवता को प्रमुख स्थान प्राप्त है। ऋग्वेद में उनकी लगभग दो सौ सूक्तों में स्तुति की गयी है। द्युस्थानीय सूर्य अंतरिक्ष स्थानीय विद्युत तथा पृथ्वी स्थानीय अग्नि के रूप में की गयी है। वैदिक ग्रंथों में द्यौस, पृथ्वी, त्वष्ट्रा, जल का पुत्र, अन्यत्र दो अरणियों के घर्षण से उत्पन्न होने वाला अथवा शक्ति का पुत्र कहा गया है। त्रिगुणात्मक अस्तित्व को पृथ्वी, वायु और आकाश में स्थित माना गया है। वेदों में वे ब्राह्मण के रूप में स्वीकार किये गये हैं। यज्ञ के प्रमुख होने के कारण अग्नि होतृ तथा अध्वर्यु भी माने गये हैं। ऋग्वेद में अग्नि को प्रज्जवलित तीन सिर, सात ज्वालाओं, तीन जिह्वाओं चार सिंहो, तीन पैरों तथा सात भुजाओं वाला बताया गया है। शतपथ ब्राह्मण में अग्नि देवता को पुरोहित का काम करने वाला ब्राह्मण कहा गया है। वेदों में अग्नि की सात जिह्वा, सुनहले चमकीले दांतो, चार नेत्रों, हजारों सिंहों वाला तथा धूम्र पताका धारण करने वाला कहा गया है। मानव रूप में अग्नि देवता की तुलना श्येन, वृषभ तथा अश्व के साथ की गई है। अग्नि का मानव जीवन से घनिष्ठ सम्बंध है। वह घर–घर में उपस्थित है। अग्नि को गृहपति, दमनस आदि उपाधियां मिली है। अग्नि के लिए दिन में तीन बार आहुतियां दी जाती है। वाजसनेयी संहिता में अग्नि के त्रिविद रूप का वर्णन है। वे यज्ञ में देवताओं को बुलाते हैं, इसलिए उन्हें 'होता' कहा गया है। अग्नि देवताओं के पिता और राक्षसों के नाशक हैं।

सभी याज्ञिक कार्य अग्नि के माध्यम से किया जाता था। उनकी कृपा से इच्छित वस्तुओं की प्राप्ति होती थी। अग्नि के बिना यज्ञ नहीं हो सकता था, इसलिए पुरोहित होता था, जो 'याज्ञिक' कहा जाता था। दाहकर्म अग्नि से संभव था। अग्नि का महत्व दो दृष्टियों से था एक तो हवियों को यज्ञ के माध्यम से देवताओं तक पहुंचाना, दूसरे शव का दाह करना। चर, अचर का ज्ञाता होने के कारण उसे जातवेदस्य भी कहा गया है।

अथर्ववेद में अग्नि को उदित होने वाला मित्र एवं सायंकाल का वरूण कहा गया है। उपयोगिता की दृष्टि से अग्नि का महत्व प्रारम्भिक काल से वर्तमान काल तक अक्षुण्ण है तथा बाद के कालों तक भी इनकी महत्ता कायम रहेगी। पौराणिक काल में अग्नि की महत्ता में उल्लेखनीय परिवर्तन हुआ। इस काल में अग्नि एक ब्राह्मण के रूप में उल्लेख प्राप्त होता है। जड़ तथाचेतन रूप से मिलकर अग्नि के स्वरूप का निर्धारण होता है। व्रत एवं कर्मकाण्डो की पूजन विधि एवं इनके अनुशीलन से प्राप्त होने वाले फल से धार्मिक जीवन पर प्रकाश पड़ता है। ऋग्वेद तथा अथर्ववेद आदि में अग्निविषयक अनेक मंत्रों का विवरण मिलता है। अग्निष्टोम जैसे यज्ञों, एकादशी तथा अन्य अवसरों

* शोधछात्रा, प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, प्रयागराज

पर दीपदान की महत्ता का वर्णन मिलता है। ऐतरेय ब्राह्मण से विदित होता है कि प्रजापति के चिंतन से अग्नि, अंतरिक्ष से वायु, आकाश से सूर्य उत्पन्न हुए हैं। भृगु, अंगिरस जैसे कुछ ऐतिहासिक एवं पौराणिक नाम भी प्राप्त होते हैं।

वाजसनेयी संहिता में अग्नि के यज्ञात्मक रूप का उल्लेख मिलता है। ब्राह्मण ग्रंथों में केवल अग्नि को ही अमर्त्य बताया गया है। वैदिक वाड्.मय में आह्वनीय दाक्षिणात्य तथा गार्हपत्य नामक तीन अग्नियों का उल्लेख मिलता है। ऋग्वेद में अग्नि का प्रचण्ड तथा पिता के समान कल्याणकारी स्वरूप भी परिलक्षित होता है। अग्नि को नित्य आवाह्नों का अतिथि कहा गया है।

अग्नि देवता के प्रतिमा के निर्माण का आधार वेदों, महाकाव्यों एवं पुराणों में वर्णित उसका रूप परिलक्षित होता है। महाभारत में अग्नि को वायु पुत्र, सात जिह्वाओं, सात मुखों वाला, लालग्रीवा तथा चमकीले केश से युक्त बताया गया है। पुराणों में अग्नि का रूप और अधिक स्पष्ट हो गया था। विष्णु धर्मोत्तर पुराण के अनुसार वायुदेव के सारथी युक्त चार तोतों से नीचे जाने वाले धूम्र रथ पर सवार चार भुजाओं वाले अग्निदेव को चार दाँतों, तीन आँखों से युक्त दाढ़ी के साथ बनाना चाहिए। उनकी पत्नी स्वाहा को बायीं ओर बैठाना चाहिए। अग्नि के हाथों में ज्वालापुंज, त्रिभुज एवं अक्षमाला होनी चाहिए।

महाभारत के आदिपर्व में अग्नि की प्रार्थना पर अर्जुन द्वारा खाण्डव वन घेर लेने पर वन भस्म हो जाता है। मत्स्यपुराण का ईशान कल्प वृतान्त प्रसंग अग्नि द्वारा वशिष्ठ ऋषि के लिए कहा गया। वामनपुराण में सारस्वत स्रोत के प्रसंग में राक्षस वृतांत तथा राक्षस गृहमुनि द्वारा अग्नि की प्रार्थना मिलता है। अग्निपुराण के अनुरूप देव के दायें हाथ में अक्षमाला एवं बायें हाथ में कमण्डल होना चाहिए। उनकी दाढ़ी लम्बी एवं ज्वाला प्रभामण्डल युक्त हो। अग्नि एवं मत्स्य दोनों पुराणों में उनके वाहन के रूप में मेष का उल्लेख है।

वैदिककालीन साहित्य में अग्नि को यज्ञ का पिता, राजा, शासक, निरीक्षक तथा केतु कहा गया है। लपटों से युक्त सिर वाले या तीन सिर वाले तथा सात किरणों वाले के रूप में हुआ है। वेदों और महाकाव्यों में अग्नि की मानवाकृति न होकर मात्र एक आलंकारिक कल्पना मिलती है। अग्नि का सर्वप्रथम अंकन पांचाल मुद्राओं पर देखने को मिलता है। अग्नि–मित्र की मुद्राओं में एक जगती पर बने स्तम्भ में द्विभुजी अग्नि को पांच ज्वालाओं सहित दिखाया गया है। अग्नि की प्राचीनतम प्रतिमा मथुरा संग्रहालय में प्रदर्शित है। कुषाणकालीन यह प्रतिमा द्विभुजी स्थानक उन्नतोदर है। इस पर यक्ष मूर्तियों का प्रभाव है। गुप्तकाल की अग्नि प्रतिमाएं लखनऊ पटना, संग्रहालय में प्रदर्शित है। ये सभी द्विभुजी प्रतिमाएं दाढ़ी विहीन है। इन पर वाहन मेष का भी अंकन नहीं मिलता है। बिहार के शाहाबाद से प्राप्त पीली बलुई मिट्टी की अग्नि प्रतिमा में देवताओं को ललितासन में चित्रित किया गया है। पहाड़पुर से प्राप्त अग्नि के चित्र में पृष्ठभूमि में आग की लपटें दर्शायी गयी है। विष्णु पांडा मंदिर की बाहरी दीवार पर पत्थर पर अग्निचित्र अंकित पालकालीन है। भुवनेश्वर के राजा–रानी मंदिर में भी अग्नि का चित्रण किया गया है। खजुराहो के पार्श्वनाथ मंदिर एवं कंदारिया महादेव मंदिर में भी अग्नि प्रतिमा का उल्लेख मिलता है। दक्षिण–भारत में अग्नि प्रतिमा प्रायः एक सिर वाली दर्शायी गयी है, जबकि दक्षिण भारत में वे दो सिरों वाले हैं। अग्नि प्रतिमा के माध्यम से उत्तर भारतीय कला शैली एवं दक्षिण भारतीय कला शैली में विभिन्नता स्पष्ट रूप से मिलती है।

स्पष्ट रूप से हम यह कह सकते हैं कि वैदिक साहित्य में अग्नि की पूजा परम्परा पारस्परिक रूप से अद्यावधि अस्तित्व माना गया है। अग्नि की महत्ता याज्ञिक क्रियाओं एवं दाह–संस्कारों के कारण यथावत बनी हुई है। अग्नि पूजा की पवित्रता आज भी उसी रूप में अक्षुण्ण है। अन्त्येष्टि संस्कार की अवधि में निरन्तर अग्नि जलाने का विधान पूर्वकाल से चला आ रहा है। संस्कार, विवाह, यज्ञ आदि अन्य अवसरों पर परम्परागत रूप से अग्निदेव को साक्षी मानकर संस्कार सम्पन्न किया जाता है, जो आज भी अनेक दैनिक एवं विशिष्ट यज्ञ अग्नि के माध्यम से ही सम्पन्न होता है।

संदर्भ :

1. ऋग्वेद 5/2/8, 10/2/6, 5/11/6

2. वही, 3/15/2
3. वही, 320/21
4. वही, 2/1/23, 3/5/4, 1/94/6
5. वही, 3/20/21
6. शतपथ ब्राह्मण, 10/4/1/5
7. ऋग्वेद 5/2/3, 1/31/13, 6/2/18, 1/27/11
8. वही, 1/4/3/5
9. वाजसनेयी संहिता 1/17
10. ऋग्वेद 3/12/2
11. वही, 1/11
12. वही, 10/8/7
13. वही, 10/7
14. वाजसनेयी संहिता 1/17
15. महाभारत आदिपर्व, 222, 31–32
16. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, अध्याय, 56, पृ0 1–10
17. अग्निपुराण, अध्याय 51/5
18. मत्स्यपुराण, अध्याय 261
19. श्रीवास्तव, डॉ0 वी0के0 ब्राह्मण धर्म एवं दर्शन, पृ0 8
20. सहाय भागवत, आइकनोग्राफी ऑफ माइनर हिंदू एण्ड बुद्धिस्ट स्टडीज, पृ0 207
21. बनर्जी, जे0एन0, डेवलपमेंट ऑफ द हिंदू आइकनोग्राफी, पृ0 146–47
22. बाजपेयी, के0डी0, मथुरा, पृ0 32
23. सहाय, भागवत, आइकनोग्राफी ऑफ माइनर हिन्दू बुद्धिस्ट स्टडीज, पृ0 37–38

***

अवध के गुलालपंथी संत पलटू साहब तथा उनका साहित्यिक अवदान

*अनामिका त्रिपाठी**

अवध क्षेत्र मध्यकाल से ही सन्त–भक्त कवियों की ज्ञान साधना, निर्गुण भक्ति काव्य रचना और सामाजिक जागरण का प्रमुख केन्द्र रहा है। यहाँ सन्तों के अनेक मत पंथ स्थापित और विकसित हुए। उन्हीं में गुलालपंथ के संतों का नाम भी दर्ज है। अवध के निर्गुण संत काव्य–परम्परा में गुलालपंथ के प्रखर कवि संत पलटू साहब का नाम उल्लेखनीय है। उन्होंने अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों की रचनाकर गुलालपंथी संत काव्य को नई गरिमा प्रदान की। पलटू साहब गोविन्द साहब के बाल सखा होने के साथ ही उनसे सर्वप्रथम दीक्षा लेने वाले शिष्य थे।

इनका जन्म जिला फैजाबाद के नगपुर, जलालपुर नामक ग्राम में हुआ था। पलटू साहब के जन्म स्थल पर अब राम–जानकी का मन्दिर स्थापित है। उस मन्दिर में राम और जानकी की प्रतिमाओं का वैष्णव विधि से पूजन होता है। पलटू साहब ने अपने जन्म स्थान की ओर स्वयं संकेत किया है–

नग जलालपुर जन्म भयो, बस्यो अवध की खोर।
कहै पलटू परसाद से, मच्यो अवध में शोर।।[1]

पलटू साहब वैश्य परिवार में उत्पन्न हुए तथा इनका उपगोत्र कादू था। इन्होंने अपनी रचना में अनेक स्थलों पर स्वयं को 'बनिया' कहा है–

मन सबको हरि लेय सभन को राखै राजी।
तीन देखि ना सकै वैरागी पण्डित काजी।।
पलटूदास इक बनिया रहै अवध के बीच।
ऐसी भक्ति चलावे मची नाम की कीच।।[2]

इनके जन्म सम्वत् के सम्बन्ध में कुछ कह पाना सम्भव नहीं है। जैसा कि पहले कहा जा चुका है कि पलटू साहब गोविन्द साहब के बाल सखा व सहपाठी थे किन्तु गोविन्द साहब के जन्म समय के विषय में भी अब तक कुछ निश्चित न हो सकने के कारण पलटू साहब का जन्म समय भी अन्धकार में है। उनके वंशज भी इस सम्बन्ध में मौन दिखाई देते हैं। कुछ लोगों का ऐसा मानना है कि पलटू साहब नवाब शुजाउद्दौला के समय वर्तमान थे। महन्त जगन्नाथ दास द्वारा प्रकाशित पलटू साहब की शब्दावली में पलटू साहब के जीवन परिचय के सम्बन्ध में उनका समय उन्नीसवीं सदी के प्रथम चरण में माना है। इस सम्बन्ध में हुलासदास का एक अरिल्ल दर्शनीय है–

नौमी तिथि का जन्म रोज इतवार है,
माघ महीना मकर पक्ष उजियार है।
सतगुरु पलटू हमार, सन्त औतार है,
हरि हों हुलास को दीन्हा, आइ नाम अधार है।।
सम्वत् अठारह सौ छब्बीस गुरु शब्द जनम पत्र है।
हरि हों हुलास को दीन्हा, आइ नाम अधार है।।[3]

---

* शोध-छात्रा, हिन्दी, जीवाजी विश्वविद्यालय, ग्वालियर (म०प्र०)

उपर्युक्त अरिल्ल में दी गई तिथि को मानना न्याय संगत नहीं है, किन्तु उक्त अरिल्ल के आधार पर यह तो निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि पलटू साहब का समय 1826 के पूर्व रहा होगा।

पलटू साहब के बाल्यकाल के विषय में भी कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नहीं है। दीनमुहम्मद साहब जो कि नेउरी निवासी थे, के कथनानुसार पलटू साहब और गोविन्द साहब ने प्रारम्भिक शिक्षा एक साथ प्राप्त की थी। ये बचपन से ही भगवद्भक्त और साधु प्रेमी थे। तीर्थयात्रा की ओर इनकी विशेष रुचि थी। पलटू साहब ने काशी यात्रा की तथा भीखा साहब से दीक्षित होने के पश्चात् उनको अपना गुरु स्वीकार किया। यथा––

चारि बरन को मेटि के, भक्ति चलाया मूल।
गुरुगोविन्द के बाग में पलटू फूला फूल।।[4]

इनका पारिवारिक जीवन सुखमय नहीं था। वे सदैव लक्ष्मी की अकृपा के भाजन रहे–

गिरहस्थी में जब रहे पेट को रहे हैरान।
पेट को रहे हैरान, तसदिया से मिले अहारा।
साग मिल्यो बिन लोन, बही तब ऐसी धारा।।[5]

प्रारम्भ में गृहस्थाश्रम में रहकर भगवद्भजन में लीन रहते थे, किन्तु बाद में उन्होंने गृहस्थाश्रम का परित्याग कर विरक्ताश्रम स्वीकार किया था। विरक्त होने के पश्चात् उन्होंने अपना निवास स्थान अयोध्या को बनाया। निम्नांकित पद से यह स्पष्ट है–

सहर जलालपुर मुँड मुँडाइनि, अवध तोरिनि करधनियाँ।
पलटूदास सतगुरु बलिहारी, पाइनि भक्ति अमनियाँ।।[6]

इनके सरल स्वभाव तथा धार्मिक एवं सात्विक वृत्ति के कारण उनका यश शीघ्र ही चारों ओर फैल गया। उस समय छद्मवेशी महन्तों, आडम्बर व विडम्बनापूर्ण धार्मिक साधनाओं के दुराचार से क्षुब्ध हुई जनता का पलटू साहब की ओर आकर्षित होना स्वाभाविक था। पलटू की स्पष्टवादिता, अक्खड़ता एवं कटु आलोचना को दम्भी महन्त वैरागी सहन न कर सके। पलटू साहब के निम्नांकित वक्तव्य से स्पष्ट है–

तीनि देखि ना सके वैरागी, पंडित, काजी।[7]

और इन तीनों ने पलटू साहब को अपमानित करने के लिए अनेक उपाय किये तथा उन्हें नाना प्रकार से कष्ट पहुँचाया। इस सम्बन्ध में एक घटना इस प्रकार है। उन्हीं के शब्दों में–

सब बैरागी बटुरि करि पलटुहिं किया अजात।
पलटुहिं किया अजात, प्रभुता देखि न जाई।
बनिया काल्हिक भक्त, प्रगट भा सब दुतियाई।
हम सब बड़े महन्त, ताहि को कोउ न माने।
ऐसी ईर्ष्या जाति कोउ न आवै खाइ।
बनिया ढोल बजाइ कै रसोई दिया लुटाइ।
मालपुवा चारिउ वरन, बाँधि लेत कछु खात।
सब बैरागी बटुरि के, पलटुहिं किया अजात।।[8]

इस प्रकार पलटू द्वारा दिये गये निमंत्रण को बैरागियों द्वारा स्वीकार कर निश्चित समय पर उठ कर चले जाना इन्हें अपमानित करने के लिए ही किया गया था।

इनके मृत्यु के सम्बन्ध में चमत्कारपूर्ण जनश्रुति प्रचलित है, उनके अनुसार पलटू के विरोधियों ने इन्हें जीवित जला देने का प्रयत्न किया और अयोध्या में वैरागियों द्वारा जलाने के पश्चात् भी पलटू साहब जगन्नाथपुरी में सदेह दिखाई दिये। इसका उल्लेख भी मिलता है।[9] पलटू साहब की समाधि के विषय में लोगों में मतभेद दिखाई देता है। पं0 परशुराम चतुर्वेदी ने बताया है कि पलटू की समाधि अयोध्या से चार मील की दूरी पर वर्तमान है जहाँ वह जलाये गये थे। किन्तु, इस सम्बन्ध में चतुर्वेदी जी को यह जानकारी कहाँ से प्राप्त हुई कुछ कहा नहीं जा सकता। कुछ लोगों के अनुसार इनकी समाधि कशिया (कुशीनगर) के निकट वर्तमान है। अयोध्या में स्थित पलटू अखाड़ा नामक स्थान पर राम–जानकी का एक मन्दिर बना हुआ है जिसके बाँई ओर एक समाधि बनी है जो पलटू की समाधि कही जाती है। इस मन्दिर में एक प्रस्तर की प्रतिमा भी स्थापित है जिसे पलटू साहब की मूर्ति बताया जाता है। वर्तमान समय में यह स्थान शून्य पड़ा रहता है। इस अखाड़ा के प्रधान महन्त मोकलपुर में रहते हैं।

गुरु परम्परा–

इनके शिष्य हुलास दास ने अपनी पुस्तक 'व्रत विलास' में अपनी गुरु–परम्परा इस प्रकार दी है–

जै जै रामानन्द दयानन्द भक्त उजागर
मयानन्द जै जइत बावरी बीरु दिवाकर,
यारीदास अनन्त मगन बूला बलिहारी
सोमत राग गुलाल विराजत प्रेम की वारी।
भीखानन्द गोविन्द पलटू धनि महाराजा।
हुलासदास के मंसादास के गरीबदास संतन सिरताजा।
हरि भजन दास के विदुरदास किये भक्ति अपारा।
रामशरनदास अपार भये सहित विवेक विचारा।

इस प्रकार उपर्युक्त पद के माध्यम से पलटूदास की गुरु–परम्परा द्रष्टव्य है।

शिष्य परम्परा–

पलटू की शिष्य–परम्परा इस प्रकार है। इनके प्रमुख शिष्यों के नाम हैं– परसाद साहब, हुलासदास तथा जगन्नाथपुरी के राजा जानू आदि।

पलटू साहब की रचनाएँ–

पलटू साहब का नाम सन्त–परम्परा के यशस्वी सन्तों में आता है। इन्होंने विपुल साहित्य की रचना की है। वेलवेडियर प्रेस, प्रयाग से पलटू साहब के 1000 पदों का संग्रह 'पलटू साहब की बानी' नाम से तीन खण्डों में प्रकाशित है। प्रथम खण्ड में 260 कुण्डलियों, दूसरे खण्ड में 324 रेखते, झूलनें, अरिल्ल कवित्त और सवैये तथा तीसरे खण्ड में 157 शब्द (पद) और 165 साखियाँ संकलित हैं। 'आत्मकर्म' नाम से इनका एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित है। पलटू साहब के अखाड़े के महन्त प्रभुदास जी ने 'पलटू–दर्शन' नाम से एक अन्य ग्रन्थ भी प्रकाशित किया है।

नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्ट सन् 1920, 21 और 22 में पलटू साहब की तीन कृतियों का उल्लेख किया है। इनके प्रामाणिक ग्रन्थ इस प्रकार हैं–

1. आत्मकर्म– यह एक लघुकाय रचना है। इसमें 128 श्लोक हैं। खोज रिपोर्ट के आधार पर 'आत्मकर्म' का प्रतिपाद्य निम्नलिखित है– प्रार्थना, कर्म की प्रमुखता, भक्ति नाड़ी विचार, स्वर्गादि वर्णन, मन, बुद्धि आदि का वर्णन, समताभाव, व्यापकता, जीव अस्तित्व, आत्मा

का श्रृंगार वर्णन, भक्तिध्यान वर्णन, जीव के लिए आसनादि, संसार का प्रसार, निर्गुण ब्रह्म, तुलसी, कबीर का उदाहरण, अलख वर्णन, राम से मिलने के उपाय, ब्रह्म साधना का उपाय आदि।

2. राम कुण्डलियाँ– इसमें 209 श्लोक हैं। श्लोकों की उक्त संख्या में केवल 196 कुण्डलियाँ ही पलटू की हैं। शेष 13 कुण्डलियाँ बाँके बिहारी, बिहारीदास, तुलसीदास और गिरधर कविराय की हैं। यह रचना 100 पृष्ठों की है।

3. पलटू साहब की बानी– पलटू साहब के शब्दों, रेखतों, अरिल्लों और झूलनों का एक संग्रह वेलवेडियर प्रेस इलाहाबाद से तीन भागों में प्रकाशित है।

(क) प्रथम भाग– इस भाग के शीर्षक का नाम 'पलटू साहब की बानी' है। जिसमें पलटू साहब की केवल कुण्डलियाँ संकलित हैं। इनकी संख्या 268 है।

(ख) द्वितीय भाग– 'पलटू साहब की बानी' नामक इस शीर्षक में पलटू साहब के रेखते, झूलनें, अरिल्ल, कवित्त और सवैये सम्मिलित हैं। इन विविध शैली में लिखे गये पदों की संख्या इस प्रकार है– रेखते–99, झूलने–68, अरिल्ल–148, कवित्त–6, सवैये–2।

(ग) तृतीय भाग– उक्त शीर्षक के अन्तर्गत इस भाग में पलटू साहब के शब्द और साखियाँ प्रकाशित हुई हैं। जिसमें 157 शब्द और 165 साखियाँ सम्मिलित हैं।

4. शब्दावली– 'शब्दावली' पलटू साहब की रचनाओं का प्रामाणिक संग्रह है। इसको पलटू साहब का अखाड़ा, अयोध्या के महन्त जगन्नाथदास जी ने प्रकाशित करवाया था। 'शब्दावली' का आधार कतिपय पाण्डुलिपियाँ हैं, जो अब भी उक्त महन्त जी के पास जीर्णावस्था में सुरक्षित बताया जाता है।

'शब्दावली' में पलटू के पद और साखियाँ संकलित हैं जिनमें प्रमुख हैं– दिहला, मंगल, लटका, सोहर, मंगल आरती, गारी, सन्त रहनी, चौबोला आदि।

पलटू साहब कृत 'सत्यद्वार दृष्टि' नामक एक कृति संस्कृत भाषा में उपलब्ध है। इस कृति में भक्ति, ज्ञान, योग का विवेचन किया गया है। डॉ. राधिकाप्रसाद त्रिपाठी के निजी संग्रहालय से एक हस्तलिखित प्रति प्राप्त हुई है जिसकी प्रतिलिपि पलटू साहब के अयोध्या स्थित अखाड़े के सन्त हजारीदास जी ने चैत्र कृष्ण 8, विक्रम 1984 में तैयार की थी।[10] भाषा शैली के उदाहरण–रूप में इनके कुछ छन्द नीचे उदृधृत किये जा रहे हैं–

(1) नाभिकुण्ड विजानीमातनीयं विचक्षणाम्।
ऊर्ध्वमुखं चगणतव्यं जाननीयं विचक्षणाम्।।

(2) कमल ऊर्ध्वमुखमेकं सृष्टि वस्यकृत यथा।
चतुर्मुख्यं च वेदांग तस्य पश्यं न स्थिते।।

(3) निद्रानआलसंजातदुधा तृषा नव कर्मणा।
वः वाणी न मूकं च सद्गुणं सर्वदापिवत्।।

इसके अतिरिक्त पलटू साहब की कुछ रचनाएँ शास्त्रीय रागों के अन्तर्गत संकलित हैं। जो इस प्रकार हैं–विहाग, झुमक मनोखा, झुमक, राम राग सोरठ, सारंग, जैजैवन्ती, काफी, बिलावल, प्रभावती, जोगिया, आसावरी आदि। अयोध्या अखाड़े के महन्त श्री प्रभुदास जी ने भी विशद भूमिका के साथ पलटू साहब की रचनाओं का एक संग्रह प्रकाशित करवाया है।

पलटू साहब ने अपने रेखतों, झूलनों, अरिल्लों और कुण्डलियों में परम्परागत परिपाटी के अनुसार सर्वप्रथम गुरु की महिमा का वर्णन किया है। सन्त–परम्परा के सगुण और निर्गुण सभी सन्तों के नाम को सर्वोपरि मानकर उनकी भूरि–भूरि प्रशंसा की है। पलटू साहब ने भी उक्त परम्परा का पालन किया है।

सन्दर्भ :

1. श्री पलटू साहब कृत शब्दावली, पृ0–106
2. पलटू साहब की बानी, भाग–1, पृ0–26
3. पलटू साहब (जीवन चरित, भाग), पृ0–6
4. पलटू साहब की वाणी, भाग–3, पृ0–101
5. पलटू साहब की वाणी, भाग–1, पृ0–94
6. पलटू साहब की वाणी, भाग–3, पृ0–101
7. पलटू साहब की बानी, भाग–1 पृ0–23
8. वही, भाग–3, पृ0–99
9. पलटू साहब (जीवन चरित) भाग–3, पृ0–2
10. हिन्दी साहित्यकारों की संस्कृत रचनाएँ, डॉ. सीमा त्रिपाठी, पृ. 308

***

झारखण्ड के टानापंथ समुदाय का गोशाला एवं गौ माता की उपमा

*असरिता कच्छप**

भूमिका :

छोटानागपुर की विभिन्न अनुसूचित जनजातियां बुद्ध,महावीर और गांधी जी के मूल शिक्षा से अलग प्रारंभिक काल से ही जुझारू एवं लडाकू प्रवृति के रहे है,लेकिन 20वीं शताब्दी के भारतीय जनजातीय समाज की गिरती हुई दशा को सुधारने का प्रयास किया गया, जिसमें एक ओर भारतीय जनजातीय समाज राष्ट्रीय दृष्टि से हिंसा, बलि,संघर्ष में विश्वास करती थी और मांस मदिरा का सेवन, डाइन–भूत ओझा–गुनी जैसी अंधविश्वास एवं कुप्रथाओं में विश्वास रखती थी, वही दूसरी ओर टानापंथ समुदायों का जीवन बड़ी ही सच्चाई,सादगी,अहिंसा ,देश प्रेमी एवं भ्रातृत्व पर आधारित है। महात्मा गाँधी ने टानापंथ समुदाय को शुद्धिकरण की शिक्षा–दीक्षा के मार्ग पर सत्य,अहिंसा भ्रातृत्व तथा विश्व बन्धुत्व का पाठ पढ़ाते हुए गोशाला खोलने का महान कार्य किये थे। गाँधी जी के इन्हीं आदर्शों पर चलने वाले उनके सच्चे अनुयायी टाना भगतों ने छोटानागपुर में गोशाला का सूत्रपात किये। टाना भगतों के गोशाला बड़ी ही श्रद्धा–भक्ति के साथ गोमाता की सेवा –पूजा प्रत्येक वृहस्पतिवार के दिन करते और प्रसाद के रूप में गुड़ रोटी खिलाते थे। वर्तमान समय में टानापंथ समुदाय के पास सायद ही कोई ऐसा घर होगा जिसके पास गाय नहीं है। गुरूवार के दिन लक्ष्मी दिवस के रूप में मानते हैं और किसी व्यक्ति घर में भिक्षाटन माँगने आते या कोई अन–धन का लेन देन करते तो गुरूवार के दिन नहीं देते हैं। टानापंथ समुदाय का मानना है कि वृहस्पतिवार के दिन में किसी को भिक्षा या लेन देन करने से घर की लक्ष्मी चली जाती है।

"वयोवृद्ध झीरिगा टाना भगत के मतानुसार महात्मा गाँधी ने जब देखा कि टाना भगत समुदाय अपने हक के लिए मलगुजारी सामाजिक रूप से जन आन्दोलन छेड चुके हैं, तो गाँधी जी और डॉ० राजेन्द्र प्रसाद के साथ सर्वप्रथम सोनचिपी से ही आश्रम के निमार्ण के लिए 5,000 रू० दिये चरखा संध और गोशाला केन्द का सूत्रपात किया गया।"[1] टाना भगतों ने महात्मा जी को जतरा टाना भगत का आवतार पुरूष मानते हुए अपने लोक गीतों में गोशाला के प्रति आवाज बुलन्द करते हुए लोगों को जागरूक करने लगे–जो इस प्रकार है–

"छोटानागपुर गोशाला धरमशाला,उबुकन मंज्जा भइरो
उबुकन मंज्जा भइरो,उबुकन मंज्जा भइरो–2
धरम खतरी चेला,
उबुकन मंज्जा भइरो,उबुकन मंज्जा भइरो।"[2]

भावर्थ–

टाना भगत के अगुवा अपने शिष्यों को गोशाला के प्रति खुशी जहिर करते हुए बताते हैं कि हमारे हीरा छोटानागपुर में गोशाला अर्थात धर्मशाला का सूत्रपात हो गया है। यह धर्मशाला धार्मिक और आर्थिक दृष्टि से बहुत महत्व है। इसी के पथ पर चलकर हमारे समाज का उद्धार हो सकता है और गो माता का ऋण चुका सकते हैं। हे आदिवासी भाई इसे तन मन धन से स्वीकर किजिए। जिससे हमारे घर गृहस्थी में भी धन धान्य की उन्नति होगी।

विभिन्न विद्वानों के द्वारा गोमाता की उपमा–

"हिन्दू गाय को परम्परा से माता मानते आए हैं,परन्तु गौ केवल हिन्दुओं की माता ही नहीं बल्कि 'गावो विश्वस्य मातरः'–गौवें समस्त विश्व की मात हैं। गाय समान रूप से विश्व के मानव मात्र का पालन करने वाली माँ है। गो के शरीर में तैंतीस करोड़ देवता निवास करते हैं। एक गाय की पूजा

* यू. जी. सी. नेट/ जे. आर. एफ., जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा, विभाग राँची विश्वविद्यालय, राँची

करने से स्वयंमेव करोड़ों देवताओं की पूजा हो जाती है। 'माताः सर्वसुखप्रदाः' –गाय सब प्राणियों की माता है और प्राणियों को सब प्रदान के सुख प्रदान करती है।"[3]"

समस्त संसार के दुधारू पशुओं की संख्या का चौथाई हिस्सा अकेले भारत में है,परन्तु दूध की दृष्टि से अत्यंत दरिद्र है। महात्मा गाँधी के मतानुसार गोरक्षा मनुष्य के सारे विकास क्रम में सबसे अलौकित वस्तु मालूम हुई है। गाय का अर्थ गाँधी जी बताते हुए कहते हैं कि मनुष्य से नीचे की सारी गूँगी जीव सृष्टि करता है। इसमें गाय के बहाने इस तत्व द्वारा मनुष्य को सम्पूर्ण चेतन–सृष्टि के साथ आत्मीयता अनुभव कराने का प्रयत्न है। गाँधी जी फिर कहते हैं कि मुझे यह भी स्पष्ट दिखता है कि गाय को ही यह देवभाव क्यों प्रदान किया गया होगा। इसलिये कि हिन्दुस्तान में गाय ही मनुष्य का सबसे सच्चा साथी और सबसे बड़ा आधार है। गाय ही हिन्दुस्तान की एक कामधेनु थी। वह सिर्फ दूध ही नहीं देती बल्कि हमारी सारी खेती का आधार –स्तम्भ है। वह तो दया –धर्म की मूर्तिमती कविता है।"[4]

"गोस्वामी तुलसीदास के मतानुसार–"धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष में चारों फल गाय के चार थन है।"

भगवान महावीर स्वामी के मतानुसार–"गो रक्षा बिना मानव रक्षा संभव नहीं।"

पैगम्बर हजरत मुहम्मद साहब के मतानुसार–"गाय का दूध रसायन,गाय का घी अमृत तथा मांस बीमारी है।'साथ ही गाय दौलत की रानी है।"

भगवान बुद्ध के मतानुसार– ज्ञान और मुक्ति का मार्ग दिलाने वाली,साथ ही वे मनुष्य की परममित्र 'गावों नो परमा मित्ता'कहते है।"

पूज्य गाँधी जी के मतानुसार–"गोरक्षा का प्रश्न स्वराज्य के प्रश्न से भी अधिक महत्वपूर्ण है।'गोवंश की रक्षा ईश्वर की सारी मूक सृष्टि की रक्षा करना है। भारत की सुख–समृद्धि गो के साथ जुड़ी हुई है।'गाय उन्नति और प्रसन्नता की जननी है। गाय कई प्रकार से अपनी जननी से भी श्रेष्ठ है।"[5]

टानापंथ में गोमाता को धन की देवी लक्ष्मी की उपमा देते हुए प्रत्येक वृहस्पतिवार के दिन इनकी सेवा कर भक्ति भाव से इसकी स्तुतिकर पूजा अर्चना करते हैं। गोशाला टाना भगतों का बहुत बड़ा सेवा भाव है। टाना भगतों का कहना है कि हम गरीब किसानों का एक मात्र सहारा करने वाला गो माता ही है। इनकी महिमा अपरम्पार है। वयोवृद्ध श्री तुरिया टाना भगत का कहना है कि "गौ रक्षी टाना भगत पीतल का बैज बनकर गले से कमर तक पहनते थे। इस बैज बेल्ट को स्त्री–पुरूष पहनकर गो माता का पूजा किया करते थे। प्रसाद के रूप में गुड़ रोटी और सेंधहा नमक को खिलाया जाता था। टाना भगतों के परिवार में जैसी हेसियात उसी प्रकार प्रसाद दिया जाता था। गो माता सभी टाना भगतों को पहचानती थी। सुबह और शाम गो माता की पैरो को धोया जाता था और जब गोशाला में प्रवेश कराते समय एक सीधी लाईन में खड़ी हो जाती थी। गोशाला में महिलाएँ अधिक ध्यान देती थी। भण्डारा,जामुनडीपा,पलामू,लातेहार छिपादोहर के टाना भगत गोरक्षा के बैज पहनकर प्रार्थना,पूजा,स्तुति, भजन आदि करते थे।"[6] जो इनके लोक गीतों में देखने को मिलती है–

"धइन गौ माता जन्म लेले माता,
मनवा के तोहें जे पोसले।2
घास –पोरा खाले, दूध मही,बच्छड़ा देले,
मनवा ले अन–धन उपजायो देले माता–2
मूत तोरा अमृत ,गोबर तोरा चन्दन,
धरती के पवित्र करले माता –2
आदिवासी भईया गौ सेवा करू भाई,
गौ सेवा धरम तोहर भाई।"[7]–2

भावर्थ–

टाना भगत कहते हैं कि हे गो माता धरती में जन्म लेने के लिये धन्यवाद ,हे माँ हम गरीब के पास देने के लिए कुछ भी नहीं है। हम मानव को पालन–पोषण करते हुए नया जीवन दान दिया,घास–पोआल खाकर दूध, दही, मही, और घी देकर हमें स्वस्थ्य और बलवान बनते हुए,अन–धन

से भरपूर करती हो। हे माँ मूत्र तेरा अमृत के समान,गोबर तेरा चन्दन के समान इस पृथ्वी को तू ही सुधार रही हो और पवित्र करते हुए धरती को उपजाऊ बनाकर नाना प्रकार के फसलों को लहलाहते और भौंरों की मधुरा संगीत से तथा छोटे –छोटे बच्छड़ा इस पृथ्वी में फूदक–फृदक कर मन मोह लेती है। इस पृथ्वी के समस्त प्राणी और देवता भी आपकी गुनगान करतें हैं। हे माँ हमें धन–धन्य से भरपूर करती हो। फिर आगे टाना भगत कहते हैं कि हे माँ अन्न ऋण और धन ऋण को किसी तरह वापस कर लेगे लेकिन आपका ऋण कैसे वापस करेंगे? फिर आगे कहते हैं गाय सेवा करने से और गो धरम करने से आपके ऋणों से मुक्त हो जाएगे। हे आदिवासी भाई गो सेवा धरम सेवा है इसके जैसे माता खोजने से भी नहीं मिलेगी।

महात्मा गाँधी जी के मतानुसार–"गोरक्षा की भावना मानव जाति के लिए हिन्दू–धर्म की एक बड़ी भेंट है,लेकिन मेरे ये उद्‌गार गोरक्षा की मेरी विशिष्ट कल्पना के अनुसार ही लिए जाएँ। फिर गाँधी जी ने गो सेवा के बारे में कहते हैं कि मैंने गो सेवा के विषय में खूब अध्ययन किया और जितनी गोशालाएँ मैंने देखी है, उतनी शायद ही और किसी ने देखी है। फिर गाँधी जी कहते हैं कि– मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि हिन्दुओं का पहला काम अपना ही घर साफ करने का है। मुझमें शक्ति हो मुझे समय मिले तो मैं गो रक्षा मण्डलियों को पिंजरा पोलों को सुधारने में,पशु–पालन शास्त्र का ज्ञान जनता को देने में,निर्दय हिन्दुओं का अपने जानवरों पर दया करना सिखाने में और गरीब–से गरीब बालक और रोगी के पास शुद्ध दूध पहुँचाने में लगाऊँ। सबसे पहले में हिन्दुओं से इन गोरक्षा मण्डलियों की व्यवस्था और प्रत्यक्ष गो सेवा का भगीरथ कार्य कराऊँ।"[8] गाय को हिन्दू मात्र माता समझता है और वह माता है भी । एक अंग्रेज लेखक ने गाय को मानव समृद्धि की माता माना है–"मदर ऑफ प्रॉस्पेरिटी "कहा है और यह प्रयोग ठीक भी है। यह दूसरी बात है कि पश्चिम में लोग गाय को खा जाते हैं,लेकिन वे भी मानते है कि मनुष्य जीवन में जो अनेक प्राणी हिस्सा लेते है। उनमें गाय का सबसे बड़ा स्थान है।"[9]

"गाँधी जी कहते हैं कि गाय कि रक्षा का अर्थ गाय नाम के पशु की रक्षा नहीं, बल्कि प्राणी मात्र की ,जीव मात्र की रक्षा है।प्राणी मात्र में मनुष्य तो आ ही जाते है, इसलिए गाय की रक्षा के लिए मुसलमान या अंग्रेजों को मारना अधर्म है। मैं सनातन हिन्दू धर्म को मानने का दावा करता हूँ और वह धर्म मुझे सिखाता है कि गाय को बचाने के लिए मैं अंग्रेज या मुसलमान को नहीं मार सकता। गो रक्षा के मानी प्राणी मात्र की रक्षा है।" बिनोवा भावे की तरह जमनालाल जी भी मानते थे कि प्रत्येक गो–सेवक को गाय के ही दूध–घी का सेवन करना चाहिए। वही अगर गाय के दूध–घी का सेवन नहीं करेगा तो उसकी बात कौन सुनेगा? गाँधी जी ने जमनालाल जी की मृत्यु, पर जो 1942 की 10 फरवरी को हुई ,कहाः "दुःख होना तो स्वाभाविक है, क्योंकि वही मेरे लिए तो कामधेनु थे। त्याग की दृष्टि से उनका अंतिम कार्य सर्वश्रेष्ठ रहा। देश के पशुधन की रक्षा का काम उन्होंने अपने लिए चुना था, और गाय को उसका प्रतीक माना था।"[10]

गाय का धार्मिक सांस्कृतिक महत्त्व –

"ब्रह्मा जी के मुख से फेन निकला,उससे गौएं उत्पन्न हुई और गोदूध से क्षीर सागर बना। समुद्र मंथन से कामधेनु की उत्पत्ति हुई। ब्रह्माण्ड पुराण में भगवान व्यासदेव ने गो–सावित्रीस्तोत्र में कहा,'समस्त गौएं साक्षात् विष्णुरूप हैं,उनके सम्पूर्ण अंगों में भगवान केशव विराजमान रहते हैं।'पद्मपुराण के मतानुसार –गौ के मुख में षडङ्ग और पदक्रम सहित चारों वेद रहते हैं। स्कन्द पुराण के अनुसार गौ सर्वदेवमयी और वेद सर्वगोमय है।'ऋग्वेद में गाय को 'अघन्या कहा है। यजुर्वेद में गोःमात्रा न विद्यते'अर्थात् गो अनुपमेय है।' अथर्ववेद में गाय को धेनुः सदनम् रयीणम् अर्थात् गाय संपत्तियों का घर है।महाभारत में अंगों और मंत्रों सहित समस्त वेद हर्षित होकर नाना प्रकार के मंत्रों से गौ की स्तुति करते हैं। ब्रह्मा–विष्णु–महेश कातधेनु की स्तुति निम्न प्रकार करते हैं–त्वं माता सर्वदेवानां त्वं च मत्तस्य कारणम्। त्वं तीर्थ तीर्थानां नमस्तेऽस्तु सदानघे। भगवान कृष्ण को सारा ज्ञानकोष गोचरण से ही प्राप्त हुआ। जिससे आगे चलकर संसार उद्धार करने वाली गीता का ज्ञान निकला। श्री कृष्ण गो सेवा से जितने शीघ्र प्रसन्न होते हैं,उतने अन्य किसी सेवा से नहीं।"[11]

निष्कर्ष–

सम्पूर्ण भारत वर्ष के अन्दर भले ही आजादी की लड़ाई में लोग भाग लिये परन्तु टाना भगत जैसे देश प्रेमी,सत्य–अहिंसा के मार्ग पर चलने की ललास और त्याग, बलिदान ,सेवा भावना, सभी प्राणीयों को एक सम्मान देखना आदि इनके बीच पायी जाती है। समाज में अन्य जाति धर्म के लोग रूढ़िवादी विचार तथा अन्धविश्वास की संज्ञा दी जाती है परन्तु टाना भगत अपने कार्यो में अटल और सत्य के मार्ग में चलने के लिए अडिग है।

टाना पंथ समुदाय गौशाला के प्रति एक अलग ही संस्कृति देखने को मिलती है। प्रत्येक वृहस्पतिवार के दिन लक्ष्मी दिवस के रूप में मानते हैं। इस दिन किसी भिक्षाटन माँगने वाले या अन्न–धन को नहीं देते हैं, इनका मानना है कि इस दिन किसी को धन या रूपया देने से घर की लक्ष्मी चली जाती है। टाना भगत विशेष रूप से कार्तिक पूणिमा में लक्ष्मी त्योहार के रूप में मानते है। अपने रिति–रिवाज में गो माता को सर्वोच्च स्थान देते हैं। भारत वर्ष गाँवों मे बसा हुआ है और ग्रामवासियों को पशुपालन और खेती–बारी से ही अपनी आजीविका चलाते हैं। अधिकतर की आर्थिक स्थिति दयनीय है,तंगहाली के बावजूद इन्होंने गाँधी गीरी नहीं छोड़ी है। महात्मा गाँधी के सच्चे अनुयायी टाना भगत दुनिया में इकलौता समुदाय है जिसकी जिन्दगी ही स्वच्छता पर टिकी है।

संदर्भ :

1 श्री भगत टाना झिरिगा गाँव सूरसा मण्डार राँची, साक्षात्कार
2 भगत टाना गहनु –छोटानागपुर के टाना भगत
3 एक स्वयंसेवक –गोवंश, रक्षण, पालन, और संवर्द्धन, प्रकाशन वर्ष 4 नवम्बर 2000,प्रकाशक राष्ट्र जागरण अभियान दक्षिण बिहार श्रीनिकेतन निवारणपुर राँची–834002पृष्ठ सं०1
4 उपाध्याय हरिभाऊ–बापू कथा पृ०सं०185
5 एक स्वयं सेवक–गोवंश,रक्षण,पालन और संवर्द्धन,पृ०सं०3
6 भगत टाना तुरिया– ग्राम हेसल मंगन टोली,पोस्ट –हेसल,थाना–लोहरदगा, जिला–लोहरदगा
7 अनमोल –कड़ियाँ, प्रकाशन–राजी पड़हा टाटी पो०कुडू जिला राँची,मुद्रक–भारती प्रेस,राँची वर्ष1971,पृ०सं०20
8 उपाध्याय हरिभाऊ –बापू कथा प्रकाशक मंत्री सर्व सेवा संघ, वाराणसी वर्ष 1969 पृ०सं०186,187
9 साहब काका कालेलकर –बापू की कलम से पृ०सं० 334
10 उपाध्याय हरिभाऊ –बापू कथा प्रकाशक मंत्री सर्व सेवा संघ वाराणसी वर्ष1969 पृ० सं०185
11 एक स्वयं सेवक –गोवंश रक्षण पालन और संवर्द्धन,प्रकाशक राष्ट्र जागरण अभियान वर्ष 2000 पृ०सं०1

***

नाट्य दृष्टि से प्रतिमानाटक के मुख्य पात्रों का पर्यालोचन

*डॉ. हिमावती बिन्हा**

संस्कृत साहित्यशास्त्र में नाट्य विवेचना को सर्वप्रथम स्थान प्राप्त है **''वाचस्पति गैरोला''** के शब्दों में

''नाट्यशास्त्रकार के रूप में महामुनि भरत का व्यक्तित्व साहित्य शास्त्राकाश में एक देदीप्यमान दिनमणि की भाँति प्रकाशित है। भरत का नाट्यशास्त्र नाट्य विषय का पहला सर्वांगपूर्ण ग्रंथ है''। [1]

भारतीय ज्ञान– विज्ञान के प्रसिद्ध विधाओं में नाट्यशास्त्र का विशेष महत्व है। [2]

भारत में नाट्यशास्त्र का प्रयोग अर्वाचीन काल से होता आ रहा है। पाणिनि, पंतजलि, जैन, बौद्ध, पुराण ग्रंथ साक्ष्य रूप में विद्यमान हैं। नाट्यशास्त्र साहित्य के विकास में वैदिक, लौकिक, सामाजिक परिस्थितियों के साथ ही लोकगीत का भी विशेष योगदान रहा है। [3]

नाटक की उत्पत्ति भारतीय परम्परानुसार त्रेता युग में ब्रह्मा द्वारा हुई। ब्रह्मा ने ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद तथा अथर्ववेद के आधार पर नाट्यवेद की रचना की। [4]

यह नाट्य वेद पंचम वेद है, जिसमें पाठ्य, गीत, अभिनय तथा रस, चारों वेदों से चार तत्व ग्रहण किये गये हैं– नाट्यवेद की संज्ञा देते हुए कहा गया है –

'' ऋग्भ्यः पाठ्यं तु सामभ्यो गीतमाथर्वणाद्रसान्।
यजुर्भ्योऽभिनयं प्राप्तो नाट्यवेदो हि पञ्चमः।'' [5]

ब्रह्मा की प्रेरणा से **'विश्वकर्मा'** ने नाट्य गृह की रचना की और भरतमुनि ने अभिनय की व्यवस्था की। भरत ने अपने सौ शिष्यों तथा अप्सराओं को नाट्यकला की शिक्षा दी। नाट्यकला को मूर्त्त रूप देने के लिए **'शिव'** ने नाट्य के साथ ताण्डव और पार्वती ने **''लास्य''** का समावेश कर दिया। [6]

''रसभावाह्यभिनया धर्मीवृत्तिप्रवृत्तयः ।
सिद्धिः स्वरास्तथातोद्यं गानं रङ्गं च सङ्ग्रहः''।

रस, भाव, अभिनय, धर्मी, वृत्ति, प्रवृत्ति, सिद्धि, स्वर, आतोद्य गान और रंग ।

प्रारम्भ में नाट्यशास्त्र की रचना के तीन प्रमुख उद्देश्य माने गये थे– (i) अभिनेताओं को शिक्षा देना (ii) श्रोता, पेक्षक अथवा सामाजिक को नाट्य के दोष – गुण से परिचित कराना (iii) कवि अथवा नाट्यकार को नाटकीय रसानुभूति के सूक्ष्म कला– कौशल से परिचित कराना। [7]

नाट्यशास्त्र की विवेचना के साथ महानाटककार भास के व्यक्तित्व एवं उनकी ''वाल्मीकीय रामायण'' कथा पर आधारित 'प्रतिमानाटक'' के मुख्य पात्रों में आज्ञापालक एवं भाईयों के प्रति वात्सल्य रखने वाले राम, बड़े भाई के प्रति अनुरक्त भरत, पति का हर अवस्था में अनुगमन करने वाली सीता, स्नेहमयी माताएँ और स्वामीभक्त सुमंत्र के आदर्शों को चरित्र चित्रण में भास की कल्पित मनोगत भावनाओं को दर्शाना सार तत्व है। [8]

इसमें मुख्य रूप से **''दशरूपककार धनंजय''** के रूपकों के भेदक तत्वों –'वस्तु, नेता और रस' में नेता अर्थात् नाटक का मुख्य (नायक) एवं पात्रों की विशेषताओं को बताना मुख्य उद्देश्य है। [9]

''भास'' संस्कृत साहित्य इतिहास में गीर्वाणवाणी के एक अमर कवि हैं। सन् 1909 ई0 में पं0 टी0 गणपति शास्त्री को कन्याकुमारी अन्तरीप से लगभग 20 मील दूर पद्मनाभपुरम् के समीप **मलकिङकरमधम्** नामक स्थान पर ताड़ पत्रों पर प्राचीन मलयालम लिपि में निम्नलिखित नाटक मिले – **स्वप्नवासवदत्तम् प्रतिज्ञायौगन्धरायण, पंचरात्र, चारूदत्त, दूतघटोत्कच, अविमारक, बालचरित, मध्यमव्यायोग, कर्णभार, उरूभंग और दूतवाक्य।**

---

* सहायक प्राध्या. (संस्कृत विभाग) जगन्नाथ नगर महा. धुर्वा, रांची -४

'प्रतिमानाटक' और **'अभिषेकनाटक'** की पाण्डुलिपियाँ कैलासपुरम स्थान से प्राप्त हुई। ये सभी मलयालम लिपि में थी। पं0 गणपति शास्त्री ने इनको त्रिवेन्द्रम की **'' अनन्तशयनम् ग्रन्थमाला''** से प्रकाशित कराया और इनको भासकृत बताया भास द्वारा रचित अन्य नाटकों में वर्त्तमान में संस्कृत साहित्य में (13) तेरह ही नाटक उपलब्ध है। [10]

'नाट्यशास्त्र' के नियमों के अनुसार नाटक में (5) पाँच या इससे अधिक अंक होने चाहिये। 'प्रतिमानाटक' में 7 अंक है। प्रतिमानाटकम् नाटक का नामकरण 'प्रतिमा 'इसलिए रखा गया है क्योंकि 'इक्ष्वाकुवंशीय' दिवंगत (मृत) राजाओं के प्रतिमा निर्माण पर यहाँ विशेष महत्व दिया गया है । अयोध्या से बाहर 'प्रतिमागृह' का निर्माण किया जाता था। कथानक का आधार वाल्मीकि रामायण है परन्तु महाकवि 'भास' ने 'रामायण' के कथानक में काफी परिवर्त्तन कर स्वयं की अनेक कल्पनाओं का संयोजन किया है। [11]

संक्षिप्त कथानक – इक्ष्वाकुकुल के छठे वंशज इन्द्र के समान तेजस्वी राजा दशरथ का ज्येष्ठ पुत्र, कौशल्या नंदन राम के राज्याभिषेक की तैयारी से लेकर उनके सीता और लक्ष्मण सहित वन जाने, सीता हरण, रावण वध से लेकर सीता सहित राम के वापिस लौटने तथा जनस्थान में उनका राज्याभिषेक होकर अयोध्या की ओर वापिस लौटने तक की कथा है। [12]

प्रतिमानाटक की घटनाएँ तीन स्थानों पर घटित हुई हैं– अयोध्या से राजप्रासाद, अयोध्या के बाहर प्रतिमागृह और जनस्थान का तपोवन ।

पहले दूसरे और छठे अंक की घटनाओं का स्थान अयोध्या के राजमहल हैं। तीसरे अंक का घटनास्थल अयोध्या के बाहर प्रतिमागृह है । चौथे, पाँचवे और सातवें अंक का घटनास्थल जनस्थान का तपोवन है। [13]

सीता द्वारा परिहास में वल्कल पहनना यह भास की मौलिकता है। तृतीय अंक में प्रतिमा का पूरा प्रकरण ही कवि कल्पित है। 'भरत' को 'प्रतिमा' के प्रसंग में ही अयोध्या में हुए सारी घटनाओं का वृतान्त मिलता है। पाँचवें अंक में सीता का हरण भी नवीन ढंग से बताया गया है । यहां राम के **'उटज'** में वर्त्तमान रहने पर ही रावण वहाँ आता है और दशरथ के श्राद्ध के लिए उन्हे **काञ्चनपार्श्व** मृग लाने को कहता है और उन्हें **काञ्चनमृग** दिखाकर दूर हटाता है। पांचवे अंक में सुमन्त्र का वन में जाना और लौटकर भरत से सीता हरण का समाचार यह कवि कल्पना ही है। कैकेयी द्वारा यह कहना भी कि शाप से उद्वार अर्थात् ऋषि वचन सत्य करने के लिये राम को वन भेजना यह 'भास' की प्रसृति है।

इस प्रकार 'भास ' ने नाटक में प्रचलित कथा को कल्पित ढंग से एक नवीन रूप दे दिया है। [14]

'नाट्यशास्त्र में प्रकृति के आधार पर 'नायक' या 'नेता' चार प्रकार के बतलाए गए है– धीरललित, धीरशांत, धीरोदात्त, धीरोद्धत।

लक्षण –

धीरललित :– ''निश्चिन्तो धीरललितः कलासक्तः सुखी मृदुः'' ।।
धीरशांत :– ''सामान्यगुणयुक्तस्तु धीरशांतो द्विजादिकः'' ।।
धीरोदात्त :– ''महासत्त्वोऽतिगम्भीरःक्षमावानविकत्थनः ।।
स्थिरो निगूढाहङ्कारो धीरोदात्तो दृढ़व्रतः'' ।।
धीरोद्धत :– ''दर्पमात्सयभूयिष्ठो मायाच्छद्मपरायणः ।
धीरोद्धतस्त्वहङ्कारी चलश्चण्डो विकत्थनः'' ।।

धीरललित –''चिन्तारहित, गीत आदि कलाओं का प्रेमी, सुखी और कोमल स्वभाव तथा आचार वाला नायक ''। (1.6 नाट्य दर्पण)

'धीर' शब्द – धैर्य युक्त अर्थात् महान संकट में भी कातर न होने वाला (नाट्य दर्पण1.6)

धीरशांत नायक –'सामान्य गुणों से युक्त द्विज आदि नायक ''।

धीरोदात्त –'उत्कृष्ट अन्तःकरण (सत्त्व) वाला अत्यन्त गम्भीर, क्षमाशील, आत्मश्लाघा न करने वाला स्थिर, अहंभाव को दबाकर रखने वाला, दृढ़व्रती नायक ''।

धीरोद्धत –''जिसमें घमण्ड (दर्प) और डाह (मात्सर्य) अधिक होता है , जो माया और कपट में तत्पर होता है, अहंकारी, चंचल, क्रोधी तथा आत्मश्लाघा करने वाला ''। [15]

नायक का चरित्र – प्रतिमानाटक के नायक ''राम'' वही नाटक के फल का अधिकारी होता है। नाटक का सारा चक्र नायक – नायिका के आस–पास ही घूमता रहता है। नायक–विनम्र, मधुर, त्यागी, चतुर, प्रियभाषी, लोकरंजक, पवित्र मन वाला, बातचीत में निपुण, कुलीनवंश का, स्थिरचित, युवा दृढ़निश्चयी, बुद्धिमान, प्रज्ञावान, कलाविद्, मानधनी, शूर, तेजस्वी, शास्त्रवेत्ता और धार्मिक होता है। '' [16]

'राम' धीरोदात्त प्रकृति का नायक हैं। नेता (नायक) 'नि' उपसर्ग 'त्रा' शब्द से बना है जिसका अर्थ प्रजा को इतिभीति नामक विघ्न से त्राण देना या रक्षा करना। कवि ने उनको एक आदर्श पुत्र, भाई, पति, राजा और शौर्य के प्रतीक रूप में प्रस्तुत किया है। **''माता पिता के प्रति निश्चल भक्ति''** को कवि ने दर्शाया है – वे पिता के वचनों का दृढ़तापूर्वक पालन करते हुए भरत से कहते है कि मैं पिता के आदेश से वन (14 वर्षो के लिए) आया हूँ, हमारा कुल सत्यधन है अतः मैं इसका उल्ल्घंन नही कर सकता। [17]

श्लोकः–

''पितुर्नियोगादहमागतो वनं न वत्स ! दणन्नि भयान्न विभ्रमात् ।
कुलं च नः सत्यधनं ब्रवीमि ते कथं भवान्नीचपथे प्रवर्त्तते । (प्रतिमा. 4/20)।।

राज्य की अप्राप्ति तथा वनगमन की आज्ञा से उनके चित्र में जरा भी विकार उत्पन्न नहीं होता और यह प्रसंग उन्हें दैवी स्तर पर प्रतिष्ठित कर देता है। कैकेयी के प्रति जितनी उनकी भक्ति है उसका पता निम्न श्लोक से लग जाता है –

''यस्याः शक्रसमो भर्ता मया पुत्रवती च या ।
फले कस्मिन् स्पृहा तस्या येनाकार्यं करिष्यति । (प्रतिमा. 1/13)

जिस माता कैकेयी का पति इन्द्र के समान परमैश्वर्यशाली है और जो मेरे से पुत्रवती है अर्थात् मैं जिसका पुत्र हूँ, उसकी और किस फल के प्रति अभिलाषा होगी जो इस अहित कार्य को करेगी ।

पत्नी स्नेह – श्री राम सीता को अपना अर्धांश ही समझते हैं–

'' मा स्वयं मन्युमुत्पाद्य परिहासे विशेषतः ।
शरीरार्धेन में पूर्वमाबद्धा हि यदा त्वया''।।/10 (प्रतिमा.)

वन गमन के समय सीता द्वारा वन जाने का अनुरोध करने पर वे उसको वन जाने से रोकते हैं क्योंकि फूल सी कोमल सीता को वनों में रहना अत्यधिक कष्ट होगा। कवि ने सीता के प्रति राम के स्नेह को भारतीय (गृहस्थ) गार्हस्थ्य जीवन के रूप में आर्दश प्रस्तुत किया है। [18]

मित्र और सहायक – 'सुग्रीव' से मित्रता कर तथा भ्राता 'बाली' का वध कर किष्किन्धा नगरी, राज्य एवं पत्नी को सौंप कर मित्रता का आदर्श प्रस्तुत किया है। राज्य को उन्होंने तिनके के समान छोड़ दिया था – ''तृणवदगणितराज्यैश्वर्यः'' (प्रतिमा. पृष्ठ 53) राम सभी प्रजाजनों के हृदयों को आनन्दित करनेवाले है–

सर्व जनहृदय नयनाभिरामो रामः (प्रतिमा. पृष्ठ 55)

'भास' ने 'राम' के शौर्य और तप की अनेक स्थलों पर अभिव्यजना की है। वे बलशालियों के उत्तम उदा0 है – ''सत्ववतां सन्निदर्शनम'' **(प्रतिमा. पृष्ठ 109)**

इस प्रकार राम के विविध गुणों को कवि ने श्लोक के माध्यम से उद्धत किया है–

'' सत्यसन्ध स्थितप्रज्ञ विमत्सर जगत्प्रिय
गुरूशुश्रूषणे युक्त प्रतिवाक्यं प्रपच्छ मे ''।। (प्रतिमा. 2/6)

सत्यप्रतिज्ञ, क्रोध को जीतने वाले, ईर्ष्या से रहित, लोकों के प्रिय, गुरूओं की सेवा में लगे रहने वाले ! तुम मुझको उत्तर दो [19]

नायिका (सीता) – साहित्य दर्पण (3.56) में नायिका के तीन प्रकार संस्कृत शास्त्रज्ञों ने बताए हैं– ''स्वकीया'', 'परकीया', ''सामान्या''। 'स्वकीया' – (स्वयं की पत्नी) **लक्षण–** ''मुग्धा मध्या प्रगल्भेति स्वीया शीला र्जवादियुक् '' ।15।

'शील' तथा सरलता आदि से युक्त–मुग्धा, मध्या तथा प्रगल्भा तीन प्रकार की होती है।

'शील' का अर्थ– अच्छा आचरण, पतिव्रता, कुटिलता रहित, लज्जावती और पति की सेवा में निपुण होती है ।

सीता स्वकीया नायिका हैं। स्वकीया नायिका के लक्षण में संस्कृत के साहित्य शास्त्र में आर्दशवादिता की झलक मिलता है।

परकीया – ''अन्यस्त्री कन्यकोढ़ा च नान्योढाडड़ि॥ रसे क्वचित्'' परकीया दो प्रकार की होती है – कन्या और विवाहित नायिका । ।20।

सामान्य नायिका – ''साधारणस्त्री गणिका कला प्रागल्भ्यधौ र्त्युयक्''।। 21।।

(सा. द. 3.67–71)

जो कला, प्रगल्भता और धूर्त्तता से युक्त होती है। [20]

सीता राम की अर्धांगिनी है, वह केवल भार्या ही नहीं सहधर्मचारिणी है –''ननु सहधर्म– चारिणी खल्वहम्'। पति से साथ वन में रहकर कष्ट उठाना उसके लिए प्रसाद स्वरूप है– ''तत्खलु मे प्रसादः''। भास ने सीता को साक्षात् अरून्धती कहा है। सीता को सुमन्त्र साक्षात् शील रूप कहते हैं। भास ने सीता की तेजस्विता और कोमलता का भी वर्णन किया है। तपोवन में सीता को देखकर भरत कहते हैं कि यह तो स्त्री के रूप में साक्षात् तेज ही है जो राजा जनक के खेतों में से उत्पन्न हुआ था–

'' इदं तत् स्त्रीमयं तेजो जातं क्षेत्रोदराद्धलात्।
जनकस्य नृपेन्द्रस्य तपसः सन्निदर्शनम् । (प्रतिमा. 4.14)

लक्ष्मण के प्रति भी बहुत स्नेहशील है। सीता एक कुशल गृहिणी एवं पति की परामर्शदात्री है। यहाँ सीता का चरित्र नितान्त उदात्त तथा प्रोज्जवल प्रदर्शित किया गया है। [21]

'भरत' का चरित्र– प्रतिमानाटक के दूसरे प्रमुख पात्र भरत है। राम को वे अपना परम देवता ही समझते हैं– 'तमहं द्रष्टुमिच्छामि दैवतं परमं मम''। (प्रतिमा.–4.3) अयोध्या में वापस आने पर जब राम के वन जाने का समाचार सुनकर शोक से मूर्छित हो जाते हैं, वे निश्चय करते है कि राम के बिना अयोध्या नहीं है। मैं वहीं जाऊंगा। उनके लिए अयोध्या जंगल के समान लगता है। वे राम की ओर उसी प्रकार दौड़ रहे हैं जैसे कि प्यासा नदी की ओर दौड़ता है–

''अयोध्यामटवीभूतां पित्रा भ्रात्रा च वर्जिताम्।
पिपासार्तोऽनुधावामि क्षणितोयां नदीमिव '' (प्रतिमा. 3.10)

उनका कैकेयी पर आक्रोश उनके चारित्र्य और मनोभाव की निर्मलता का प्रतीक है। राज्याभिषेक के निर्णय के प्रसंग में भरत राम को पुनः उनका राज्यभार लौटाने वन में जाते हैं परन्तु न मानने पर व्यथित भरत कहते है– कि आपका जन्म जिस वंश में हुआ है उसी में मेरा भी हुआ है। हम दोनों के एक ही पिता हैं। केवल मातृदोष से पुरूषों को दोषी नहीं गिना जाता। मैं आर्त्त हूँ, मुझ पर दया कीजिये–

''अपि सुगुण! मयापि त्वत्प्रसूतिः प्रसूतिः
स खलु निभृतधीमांस्ते पिता मे पिता च
सुपुरूष ! पुरूषाणां मातृदोषो न दोषो
वरद! भरतमार्तं पश्य तावद्यथावत्।। (4/21 प्रतिमा.)

भरत में शौर्य और ओज भी कम नहीं है। कवि ने भरत के बाह्य सौन्दर्य और स्वर की बहुत प्रशंसा की है। [22]

कैकेयी का चरित्रः– नाटकीय कथावस्तु के विन्यास विस्तार में कैकेयी का महत्व बहुत अधिक है। भास ने कैकेयी के जिस चरित्र को अंकित किया है, वह 'रामायण' की कैकेयी से भिन्न है ' रामायण' की

कैकेयी मन्थरा दासी के कहने पर वशीभूत हो गई थी और राज्य के लोभ में आकर उसने भरत के लिए राज्य तथा राम के लिए वनवास (14 वर्ष) ये दो वर माँगे थे परन्तु भास ने कैकेयी के चरित्र को अति उज्जवल दिखाया है उसने पति की और कुल की रक्षा के लिए सब प्रकार की निंदाओं और ताड़नाओं को सहन किया । जब भरत कहते है कि तेरे कुकर्म से प्रतापी इक्ष्वाकुवंश की स्त्रियों का हरण होने लगा तो उससे नहीं रहा जाता। वह कहती है कि ऋषिशाप को सत्य करने मात्र के लिए उसने राम के वनवास का वर मांगा तथा चौदह दिन के लिये ही वनवास करना चाहती थी, किन्तु मानसिक विफलता से चौदह वर्ष निकल गया।

यहाँ नाटककार ने कैकैयी के चरित्र का परिमार्जन करने का पर्याप्त प्रयास किया है। [23]

सुमन्त्र– कवि ने वृद्ध सचिव सुमन्त्र को एक उदात्त महाराज दशरथ का परम हितैषी तथा स्वामीभक्त सारथि के रूप में प्रस्तुत किया है। वह इक्ष्वाकुवंश में इन विपत्तियों (संकटों के पहाड़) को देखकर अपनी दीर्घ आयु की निंदा करता है–

" नरपतिनिधनं भवत्प्रवासं भरतविषादमनाथतां कुलस्य।
बहुविधमनुभूय दुष्प्रसह्यं गुण इव बह्वापराद्धमायुषा मे।। (प्रतिमा. 4/18)

सुमन्त्र (शोक में भरकर) राजा दशरथ की मृत्यु, राम– सीता और लक्ष्मण तीनों का वनवास, भरत का दुःख रघुकुल का अनाथ होना, इस प्रकार के अनेकों असहनीय दुःखों का अनुभव करके मेरी लंबी आयु ने गुणों के समान ही बहुत अधिक अपराध किया है। अतः मैं लंबी आयु को सहन कर पाने में असमर्थ हो गया हूँ। श्रीरामचन्द्र वन में भरत आदि के जाने पर उससे कहते हैं कि– 'आप महाराज दशरथ की ही भांति भरत का हित तथा संरक्षण कीजिए।' भरत पुनः उसे वन में राम का पता लगाने के लिये भेजते हैं तथा वह आकर सीता हरण की बात सुनाता है।

सुमन्त्र इक्ष्वाकुवंशियों का सारथि ही नहीं, सहायक भी है। भरत जब भी राम के वियोग के कारण घबराते हैं, उस समय उनको सात्वना देता है। सुमन्त्र को यह भी जानकारी है कि राजसिंहासन खाली नहीं रहना चाहिये, इससे राज्य पर विपत्तियाँ आ सकती हैं–

"एवं नृपतिहीनाहि विलयं यान्ति वै प्रजाः।। (प्रतिमा 3.23)
अतः वह भरत को राज्याभिषेक कराने का परामर्श देता है। [24]

भास अपने वर्ण्य विषयों को बड़ी सूक्ष्मता के साथ पेश करते हैं। चरित्र चित्रणों में भास ने इतनी सफलता प्राप्त की है कि पात्रों में काल्पनिकता का मान तक नहीं होता। भास भारतीय वृत्ति के महनीय आचार्य हैं। भास की सरल भाषा शैली को कुछ लोगों ने रामायणीय प्रभाव माना है। भास की महती विशेषता है कि पात्रों के चरित्र को उजागर करने के लिये भास को लोक प्रसिद्ध कथानकों में भी परिवर्तन कर देना पड़ा है उदा0 कैकेयी के चरित्र। भास इतने कुशल हैं कि कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक व्यंजना का प्रयास करते है। सरल भाषा एवं संक्षिप्त शब्दों में मनोगत अभिप्राय को प्रकट करना ही इन पात्रों का स्वभाव है। भास के पात्रों के चरित्रगत विशेषताओं में अपनी विशदता एवं उत्कृष्टता के कारण सदैव स्मरण किये जायेगे।

वस्तुतः संस्कृत नाट्य साहित्य के प्रथम कवि और नाटककार भास नाटकीय रचना की दृष्टि से अनुपम है, अतः भास को कविताकामिनी कहा जाना यथार्थ ही है।

संदर्भ :

1. संस्कृत साहित्य का इतिहास– डॉ0 राजकिशोर सिंह, रेलवे क्रॉसिंग, सीतापुर रोड, लखनऊ (प्रकाशन केंद्र) पृष्ठ– 146
2. दशरूपकानशीलन– डॉ0 त्रिभुवन मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी पृष्ठ–1 (1992)
3. लौकिक संस्कृत साहित्य का इतिहास– विनयकुमार भारद्वाज –स्टूडेन्ट स्टोर बिहारीपुर, बरेली– 1970 पृष्ठ– 78
4. दशरूपकम् श्रीधनंजय विरचितम्– साहित्य भंडार, मेरठ– 1992 पृष्ठ संख्या– 1
5. दशरूपकानशीलन– डॉ0 त्रिभुवन मिश्र, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी पृष्ठ–1

6. दशरूपकम् श्रीधनंजय विरचितम्– साहित्य भंडार, मेरठ– 1992 पृष्ठ संख्या– 1
7. संख्या–2, वही, पृष्ठ– 2
8. महाकवि भास (प्रणीत) प्रतिमानाटकम्– डॉ0 कृष्णकुमार, साहित्य भण्डार, 1989–90 पृष्ठ– 36–37
9. दशरूपकानशीलन– डॉ0 त्रिभुवन मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी पृष्ठ–8 (1992)
10. संख्या–8, पृष्ठ– 14–15
11. महाकवि भास एक अध्ययन– आचार्य बलदेव उपाध्याय– चौखम्बा विद्या भवन, वाराणसी 2008 पृष्ठ– 94
12. दशरूपकानशीलन– डॉ0 त्रिभुवन मिश्र– चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, पृष्ठ– 20,
13. वही पृष्ठ– 32
14. प्रतिमा0 डॉ0 कृष्णकुमार, साहित्य भंडार, 1989–90 पृष्ठ– 94–95 संख्या–8
15. दशरूपकम् श्रीधनंजय विरचितम्– साहित्य भंडार, मेरठ– 1992 पृष्ठ संख्या– 113–121
16. वही पृष्ठ– 109
17. दशरूपकानशीलन– डॉ0 त्रिभुवन मिश्र चौखम्बा सुरभारती प्रका0 वारा0 पृष्ठ– 37
18. वही पृष्ठ– 38–39
19. वही पृष्ठ– 39–41
20. दशरूपकम् श्रीधनंजय विरचितम् पृष्ठ संख्या– 134–148
21. दशरूपकानशीलन – डॉ0 त्रिभुवन मिश्र पृष्ठ– 50–52
22. वही पृष्ठ– 41–44
23. वही पृष्ठ– 47–48
24. संख्या–8 वही, पृष्ठ– 97–98

***

खोरठा नाटक

*रीया दे**

भारतीय परम्परा में नाटक को 'पंचमवेद' कहा जाता है। इसमें धर्म, यश और सदुपदेश समाहित है। यह दृश्य काव्य के अंतर्गत आता है। जो रंगमंच का विषय है। भरतमुनि के मतानुसार–'' देवताओं की प्रार्थना पर ब्रह्मा ने ऋग्वेद से पाठ, सामवेद से गान, यजुर्वेद से अभिनय और अर्थवेद से रस लेकर पांचवे वेद के रूप में नाट्यवेद की रचना की। इसके लिए शिवजी ने ताण्डव नृत्य दिया और पार्वती जी ने लास्य प्रदान किया।''1

नाटक में सभी कलाओं का समावेश होता है। नाटक की परिधि विस्तृत और वृहद है। नाटक हमारे यर्थाथ जीवन के बड़े गहरे रूप से संबंध रखता है। नाटक में सभी प्रकार के ज्ञान शिल्प, विद्या, कला, शास्त्र की अनुभूति समाहित रहती है। साहित्य के अन्य विधाओं की अपेक्षा नाटक अधिक स्थाई और व्यापक होती है। श्रव्य काव्य यर्थाथ पाठक काव्य में शब्दों द्वारा कल्पना की सहायता से मानसिक चित्रण उपस्थित किये जाते हैं परन्तु दृश्य काव्य में हमें कल्पना पर इतना बल नही देना पड़ता। वहाँ कल्पना की कमी पात्रों की भाव भंगीमा पूरा कर देती हैं। नाटक साहित्य के अन्य अंगो के अपेक्षा साधारण जनता से अधिक नजदीक होने के कारण उसका महत्व और बढ़ जाता है।

अभिनय कला के माध्यम से मनुष्य और समाज के चरित्रों का प्रदर्शन ही नाटक है। आचार्य सीताराम चतुर्वेदी के अनुसार –'नाटक वह रचना है, जो अभिनेताओं द्वारा खेले जाने के लिए लिखी गई हो। नाटक का व्यापक अर्थ है– ऐसा खेल, जिसमें कुछ लोग किसी कथा के पात्रों का रूप धारण करके अपने साथियों के सामने उन पात्रों के समान आचरण करते है। यह अनुकरण या रूपधारण ही नाटक का प्रथम और मूलतत्व है।'2

प्राचीन भारतीय आचार्यो ने नाटक के तीन प्रमुख तत्व माने है– 1. वस्तु 2. नेता और 3. रस। जबकि आधुनिक भारतीय विद्वानों ने कहानी और उपन्यास की भांति नाटक के छह तत्व माने है – 1. कथावस्तु 2. पात्र 3. कथोपकथन 4. देशकाल/वातावरण 5. भाषा शैली 6. उद्देश्य।

नाटक की सार्थकता उसके अभिनय में निहित रहती है। अनुकरण की प्रवृति मनुष्य में स्वभावगत प्रवृति है। अनुकरण के साथ ही नाटक के बल में तीन मनोवृत्तियाँ और काम में हो रहे उस अभिनय को देखकर अपने भावों को प्रकाशित करने का अवसर पा जाते है।

खोरठा भाषा में तो वैसे कई नाटक गाँव में खेले जाते है। खोरठाचंल के लगभग सभी गाँव–घरो में पर्व त्योहार या समारोह के समय अक्सर नाटक खेलने की परम्परा रही है। शायद यही से खोरठा नाटकों का शुरूआत माना जा सकता है परन्तु शिष्ट खोरठा नाटक के रूप में खोरठा नाटक की शुरूआत श्रीनिवास पानुरी जी के 'उद्भासल कर्ण' से माना जाता है। श्रीनिवास पानुरी जी ने 'उद्भासल कर्ण' और 'चामी–काठी' नाटक लिखकर खोरठा भाषा में लिखित नाटक के परम्परा शुरूआत किया।

बोकारो से प्रकाशित खोरठा पतरिका 'लुआठी' के अंक पन्द्रहें नरेश नीलकमल जी के एगो मनपरवा लेख छपल हइ जकर में ऊ इ बात के कहले हथ कि ऊ श्रीनिवास पानुरी जी के आपन साइकिलें बइठाय के जे गाँवे खोरठा नाटक करेक माँग रहो हलइ, सइ गाँवे लेइ जा हलथ आर हुँवा टीम खड़ा कइर के खोरठा नाटक खेलल जा हलथ। मुइख रूप से पानुरी जीक लिखल 'उदबासल कर्न' आर 'चाभी–काठी' नाटक रह हलइ।

ई भाभें पानुरी जीक नाटक 'उद्बासल कर्ण' आर चाभी–काठी के खोरठा नाटक लिखेक परंपराज् पाहिल मानल जाइ पारे। '3

---

* शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

'उद्‌भासल कर्ण' और 'चाभी–काठी' पहला नाटक होते हुए भी ये दोनों काफी देर से प्रकाशित हुए ये हमारा दुरभाग्य है। पहले किताब के रूप में प्रकाशित नाटक में सुकुमार जी का डाह और ए0 के0 झा जी का 'मेकामेकी ने मेटमाट' का नाम आता है। 'किताब रूपें सुकुमारेक लिखल 'डाह' आर ए0 के0 झा 'मेकामेकी ने मेटमाट' के नाम गनल जा हे। तकर बाद श्री राज जीक इ 'अजगर' से हिसाबे बेसी पाकठाइल रचना हे।'4

इमतियाज गदर का नाटक 'बेचारा मासटर' भ्रष्टाचार के ऊपर लिखा गया नाटक है। 'परासचित' मनपूरन गोस्वामी द्वारा लिखा गया नाटक है। खोरठा नाटक के भी कई रूप दिखाई देते है जिसमें है–

1. एकांकी
2. नुक्कड़ नाटक
3. रेडियो नाटक

एकांकी वैसी रचना होती है जिसमें सम्पर्ण कथानक की समाप्ति एक ही अंक में हो जाती हैं। एकांकी नाटक का ही छोटा रूप होता है इसे नाटक के ही एक अलग विद्या के रूप में देखा जा सकता है। मनुष्य की व्यस्तता और गतिमयता के कारण अब नाटक का स्थान धीरे–धीरे एकांकी ले रहा है। खोरठा में भी एकांकी रूपी नाटक लिखें गए हैं। रामटहल ओहदार जी का 'मइलाइल हवा' एक एकांकी नाटक है। मनपूरन गोस्वामी जी का 'परासचित' भी एक एकांकी नाटक है। लुआठी पत्रिका मे मनपूरन गोस्वामी का ही 'आपन मंगल' नाटक प्रकाशित हुआ था। इन सब को छोड़कर कई खोरठा और गैर खोरठा पत्र–पत्रिकाओं में भी छोटे–छोटे एकांकी नाटक प्रकाशित हुए हैं।

खोरठांचल के हर गाँव के नुक्कड़ में हमें नुक्कड़ नाटक देखने को मिल जाता है। ये नाटक छोटी–मोटी समस्याओं को लेकर लोगों के बीच जागरूकता पैदा करने के लिए किया जाता है। झारखण्ड प्रदेश में ऐसे नुक्कड़ नाटकों का प्रदर्शन शहर–नगर के चौक–चौराहों पर आये दिन देखे जा रहे हैं। शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से अब ये नुक्कड़ नाटक ग्रामीण समाज में भी पैर जमाने लगे हैं। 5 हमारे खोरठा भाषा–भाषियों के बीच आपने मातृभाषा में नुक्कड़ नाटक का प्रदर्शन होते हुए भी उन्हे अभी तक पुस्तक के रूप में संकलन नहीं किया गया है।

खोरठा भाषी अक्सर अपने क्षेत्र में रेडियो के माध्यम से भी नाटक प्रस्तुत करते रहते है। इन नाटकों को सुनकर इनका आनन्द लिया जाता है। अतः रेड़ियो नाटक को भी खोरठा नाटक का ही एक रूप माना जा सकता है।

खोरठा के प्रमुख नाटक

उद्‌भासल कर्ण –

उद्‌भासल कर्ण श्रीनिवास पानुरी जी का प्रथम खोरठा नाटक है। इसका कथावस्तु और पात्र पौराणिक है। इस नाटक में महाभारत के पात्र कर्ण को आधार बनाकर समाज में फैले भ्रष्टाचार को दिखाया गया है। 'उद्‌भासल कर्ण' का अर्थ होता है उपेक्षित कर्ण। हमारे समाज में किस प्रकार जाति व्यवस्था के आधार पर लोगों को बाँटकर उनका शोषण किया जाता है, यही नाटककार ने दिखाने की कोशिश की है। नाटककार ने महाभारत के आख्यान को लेकर समाज के उस घृणित रूप को प्रकट किया है, जहाँ व्यक्ति का आदर–सम्मान उसके चरित्र के गुण से न कर उसके जाति देश या कुल के आधार पर किया जाता है।

उद्‌भासल कर्ण नाटक में कुँवारी माँ कुन्ती के मनोस्थिति, द्रोणाचार्य और कर्ण के बीच का संबंध, द्रोणाचार्य का एकलव्य पर किया गया अत्याचार कर्ण के वीरता का अपमान, अर्जून का धोखे से कर्ण का वध और दानवीर कर्ण के महानता का उल्लेख पानुरी जी ने काफी बेजोड़ और सरल शब्दों में किया है।

चाभी–काठी :–

चाभी–काठी भी श्रीनिवास पानुरी जी के द्वारा लिखा गया नाटक है। यह गाँव के शोषक जमींदार द्वारा गाँवों के गरीब किसानों पर किए गए अत्याचार का नाटक है। नाटक का नायक शंभु

पढ़ा–लिखा क्रांतिकारी युवक है जो बेरोजगार है। शंभु को अपने गाँव के गरीब लोगों का दर्द महसूस होता है और वह शहर से अपने गाँव का सेवा करने के लिए लौट आता है। 'ना! सेठ जी मैं पागल नहीं। मैं ठीक ही कह रहा हूँ। मुझे गाँव प्रकार रहा है, गाँव भूख प्यास से तड़प रहा है। मुझे बुला रहा है। मुझे जाना ही पड़ेगा। किन्तु मैं ऋणी हूँ। आपने मुझे मुसीबत के समय मदद की है। शरण दी है,यह मैं नहीं भूलूंगा अच्छा सेठ जी मुझे क्षमा करेगें।'6

डाह :–

डाह नाटक सुकुमार जी द्वारा लिखा गया एक सामाजिक नाटक है। इस नाटक में समाज में व्याप्त ईर्ष्या, जलन जैसे बुराई को उजागर किया गया है। ईर्ष्या एक ऐसी वस्तु है जो राम, लक्ष्मण जैसे भाईयों के बीच फूट डालकर उन्हें बर्बाद कर देती है। विवेक और शेखर दो भाई है। विराट विवेक से ईर्ष्या के कारण शेखर को भड़काकर दोनों भाईयों में फूट डाल देता है। इस नाटक की कथावस्तु को देखकर लगता है कि यह नाटक ग्रामीण परिवेश में लिखा गया है।

'अइसन बुझा हइ जइसे लेखकें बड़ी भाइभ कुन समाजें उड़िस नियर दबरल एगो अइसन घिन करे जुकुर मानसिक कुरीति के नगटवे खोजल हइ, जेकर उपर लोकें पराय कमे भाभय। जकर चलते नाना रकमेक लउवाः लाठी आर बरबादी हामर टीला–परोसहीं आइस भइ रहल हइ। हामें आसरा कर–ही जे जरूर पढुवा सभेक इ रचना टाइं एको घरी भाभेक डहरें सोझक्त।'7

मेकामेकी न मेटमाट :–

मेकामेकी ना मेटमाट श्री अजीत कुमार झा जी द्वारा लिखा गया नाटक है। यह नाटक अंग्रेजो के समय होने वाली भू बंदोबस्ती पर लिखी गई है। लाचार किसान को किस प्रकार सरकारी लोग लुटते है, परेशान करते है, उसे दिखाया गया है। झा जी अपने स्वभाव के अनुरूप इस नाटक में भी भरपूर मात्रा में ठेठ खोरठा शब्दों का प्रयोग किए है, जो बिना बूढ़े लोगों के मदद के बिना समझा नहीं जा सकता है। इस नाटक की सबसे बड़ी बात यह है कि इसमें एक भी स्त्री पात्र नहीं है। जिसे नाटककार ने भी स्वयं स्वीकारा है और क्षमा प्रार्थना भी की है।

'ई नाटकवों में से बेराक किसान सभेक लाचार अवस्था, आना–गोनाक, फरदवाइ, सोझा–माठा किसानेक उपर सरकारी दूत सभेक झिंझींकुकुर रकम लुटेक आर साधेक जीउमारा चाइल–आर अइसने–अइसने जन बिरोधी अबस्थाय मिलवइया आनखाइ दामी, मेनेक अध खेंचरा नियाय के डहर धरा टा से बाँचेक उपाइ बा काम–से–कम तकर उतासुताज–मेकामेकी ना मेटमाट' तोहिन ठिनें हाजिर हो।'8

अजगर :–

'अजगर' नाटक खोरठांचल के एक हुबगर और क्रांतिकारी रचनाकार विश्वनाथ दसौन्धी राज जी की रचना है। इस नाटक में नाटककार ने समाज में फैले शोषण और भ्रष्टाचार के साथ–साथ जाति प्रथा, अंधविश्वास, नारी जागरण को केन्द्र बिन्दु बनाया है। आज मनुष्य जहाँ भी नजर दौड़ता है मनुष्य के रूप में बड़ा–बड़ा अजगर मनुष्य को निगलने की होड़ में लगे हुए है। इन्ही लोगों के कारण यहाँ के लोगों के पेट में भर पेट अनाज नहीं है। शरीर ढ़कने के लिए लूगा–फटा भी नहीं है।'9 समाज में इसी शोषण के खिलाफ आवाज बुलंद करने के लिए इस नाटक में प्रेरित किया गया है।

बेचारा मास्टर :–

इमतियाज गदर 'बेचारा मास्टर' नाटक के नाटककार है। खोरठा के अन्य सभी नाटक के ही तरह यह नाटक भी भ्रष्टाचार पर ही गढ़ा गया है। इस नाटक के मुख्य पात्र गोलकनाथ जी है। जो ईमानदारी से हेडमास्टर के रूप में शिक्षा विभाग में सेवा देते है। परन्तु अपने नौकरी के अंतिम वर्ष में उन्हें समाज के कई भ्रष्टाचारी लोगों द्वारा तंग किया जाता है यही इस नाटक का कथावस्तु है।'10 इमतियाज गदर जी सरकारी विभागों में हो रहे घोटाले और सीधे सच्चे लोगों पर उनके शोषण को नाटक का रूप प्रदान किया है।

संदर्भ :

1. गणपति चन्द्र गुप्त, साहित्यिक निबंध, पृष्ठ सं0–398.
2. डॉ0 अर्चना कुमारी, खोरठा शिष्ट साहित्य एक अध्ययन, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, राँची 2015 पृष्ठ सं0 –214.
3. डॉ0 बी0 एन0 ओहदार, खोरठा भाषा एवं साहित्य (उद्‌भव एवं विकास), खोरठा भाषा साहित्य–संस्कृति अकादमी, रामगढ़ 2012, पृष्ठ सं0 –111.
4. गिरीधारी गोस्वामी 'आकाश खूँटी' अजगर बालीडीह खोरठा कमिट, बोकारो, 2004 पृष्ठ सं0 –भूमिका.
5. डॉ0 अर्चना कुमारी, खोरठा शिष्ट साहित्य एक अध्ययन, प्यारा केरकेट्टा फाउण्डेशन, राँची, 2015 पृष्ठ सं0 –232.
6. श्रीनिवास पानुरी, चाभी–काठी, बालीडीह खोरठा कमिटी बोकारो, 2006, पृष्ठ सं0–18.
7. शिव प्रसाद महतो, डाह, श्रीमति कुंती देवी, भेण्डरा बोकारो, 1992, पृष्ठ सं0–11.
8. डॉ0 ए0 के0 झा, मेकामेकी ना मेटमाट, झारखंड झरोखा, राँची 2013 पृष्ठ सं0–7.
9. विश्वनाथ दसौन्धी 'राज', अजगर, बालीडीह खोरठा कमिटी, बोकारो, झारखण्ड, 2004, पृष्ठ सं0– आपन बात
10. इमतियाज गदर, सानी प्रकाशन, धनबाद, 2014 पृष्ठ सं0–लेखक बाट ले।

***

कथा साहित्य में नागपुरी लोक कथाओं का वर्गीकरण

युगेश प्रजापति *

कथा साहित्य में नागपुरी लोककथा कहने की परम्परा प्राचीन काल से झारखण्ड क्षेत्र के सभी जाति के समुदायों में कही और सुनी जा सकती है जो पूर्वजों के द्वारा परम्परागत चली आ रही है। नागपुरी कथा साहित्य का विकास लोक–साहित्य से संभव हुआ है। यह विविध संस्कृतियों का दर्पण है। लोक साहित्य में परम्परागत विश्वास, आचार–विचार, प्रथाँए, जीवन के हर्ष–विवाद, अतीत–वर्तमान सभी कुछ सुरक्षित है। लोक साहित्य में लोक–कथाओं का महत्वपूर्ण स्थान है। लोक कथा की व्यापकता और प्रचुरता अवर्णनीय है। लोक कथाओं का प्रचार भारत में अत्यन्त प्राचीन काल से ही माना जाता है। वेदों में भी लोक–कथाएँ मिलती है। सर्वप्रथम लोककथा को जन्म देने का श्रेय भी इसी भारत भूमि को है। भारतीय कथा साहित्य अत्यन्त प्राचीन है। भारतीय कथाओं की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका प्रभाव संसार के प्रायः सभी सभ्य देशों के कथा–साहित्य पर पड़ा है। इन कथाओं का पश्चिमी देशों में प्रचार की कहानी बड़ी लम्बी है। सर्वप्रथम इन कहानियों का अनुवाद अरबी के साथ–साथ अन्य भाषाओं में प्रस्तुत किए गए। यूरोप में प्रचलित '' ईसप्स फेबुल्स'' (ईसप की कहानियाँ) में भारतीय प्रभाव स्पष्ट दृष्टि–गोचर होता है।''**1**

जब से मानव का इस पृथ्वी पर जन्म हुआ है तभी से कहानी का भी जन्म हुआ होगा ऐसी मान्यता हैं। इसी कारण मानवीय कलाओं में कहानी कहने की कला सबसे प्राचीन हैं। आदिम युग से ही मनुष्य ने अपनी अनुभूतियों को कथा का रूप देना प्रारम्भ किया और वह कथाओं के माध्यम से ही अपने जीवन दर्शन को अभिव्यक्त करने लगा। इस संबंन्ध में डॉ0 कुन्दनलाल उत्प्रेती ने अभिव्यक्ति के दो रूप माने है :–

(क) पौराणिक कथाओं के रूप में तथा

(ख) लोक–कथाओं के रूप में। **2**

कथा को कलात्मक कथन–प्रणाली द्वारा साहित्यिक सौन्दर्य प्राप्त होती है लोक कथा कही जाती है। इसमें जीवन के नाना रूपों को दर्शाया या प्रकट किया जाता है। मानव के आस्थाएँ, विश्वास, रीति–रिवाज एवं दुःख इसे लोककथाओं में अभिव्यक्त करते चले आ रहे है। लोक कथा मौखिक होते है। जो पूर्वजों के द्वारा पीढ़ी दर पीढ़ी प्राप्त होती चली आ रही है।

सही अर्थो में कहा जाए तो कथा ऐसी मौखिक परम्परा है जिसमें जनमानस के तत्व विशेष रूप से विद्यमान होती है, जिनका उद्देश्य जन–मनोरंजन तथा प्रत्यक्ष रूप से ज्ञानवर्द्धक होती है वही लोक कथा मानी जा सकती है।

मौखिक रूप से ही लोककथाएँ प्राप्त होती है यही कारण है कि लोककथा का मूल रूप परिवर्तनशील है। कहानी कहने वाला कहानी के तथ्यों के अलावे उसके शाब्दिक तथा भावनात्मक रूप को अपने ही तरीके से बदल कर कहता है। कभी–कभी लोककथाओ के तथ्यों में वक्ता के द्वारा परिवर्तन कर दिया जाता है।

''मानवशास्त्र के विद्वानों का कहना है कि मानव मन में जो शाश्वत बाल–भाव समाया रहता है, उसकी भाषा, उसका साहित्य, उसकी भावाभिव्यक्ति ही कथा है।''**3**

वास्तव में लोककथाएँ विभिन्न रूपों में लोक–जीवन को आच्छादित करती है। आदिकाल से ही यह लोककथा मनुष्य की चेतना में घर कर गयी है।

लोककथाओं में मानव के सुख–दुख, वीर–भाव, प्रीति–श्रृंगार और बैर को सम्माहित किया हैं। रहन–सहन, रीति–रिवाज, धार्मिक विश्वास, पुजा–उपासना आदि इन सबसे कहानी का ठाट बनता

---

* य.जी.सी. नेट/जे.आर.एफ. वरीय शोधार्थी, जनजातीय एवं क्षेत्रीय भाषा विभाग, राँची विश्वविद्यालय राँची

और बदलता रहता हैं। कहानी मनुष्य के लिए अपूर्व विश्रान्ति का साधन है मन के आयास को हटाने के लिए कहानी मानव–समाज का प्राचीन रसायन है।''**4**

लोक–कथा का परिभाषा :– डॉ0 सत्या गुप्त के अनुसार – '' लोक कथाओं में मानस लोक–मानस की सब प्रकार की भावनाएँ तथा जीवन दर्शन समाहित है। भूत जानने की जिज्ञासा, घटनाओं के सूज सभी कुछ लोककथा में मिल जाते है।''**5**

पारम्परिक रूप से चली आ रही से पिढ़ी दर पिढ़ मौखिक रूप में प्रचलित कहानियाँ लोक कथा या लोक कहानियाँ कहलाती हैं।

वास्तव में देखा जाय तो लोककथा की शास्त्रीय परिभाषा देना अत्यन्त ही कठिन है।

नागपुरी–भाषी क्षेत्र में कहनी की परम्परा अत्यधिक पुरानी है। दादा–दादी की कहानियाँ आज तक एक परम्परा बन कर चली आ रही है। घर के बूढ़े–बूढ़िया अपने पोते–पोतियों, नाती–नतनियों को कहानियाँ सुनाते है। अनमें से प्रायः सभी कहानियाँ अलिखित अर्थात मौखिक है। गाँवो के खोइर में जब बच्चे इकट्ठे होते है तब भी वे छोटी–छोटी कहानियाँ कह कर अपना मनोरंजन करते है। इन कहानियों को इस तरह से लिखा जा सकता है।

(1) वीर रस की कहानियाँ
(2) परियों की कहानियाँ
(3) भूत–प्रेतो की कहानियाँ
(4) राजा–रानी की कहानियाँ
(5) राजकुमार की कहानियाँ तथा
(6) बुढ़े–बूढ़यों की कहनियाँ प्रमुख है।

अनुसंधान करने पर पता चला कि जो कहानियाँ झारखण्ड के नागपुरी क्षेत्र में कही जाती है वही कहानियाँ झारखण्ड के अन्य हिस्सों में भी कही जाती है। लेकिन उनमें कुछ–न–कुछ अन्तर आ जाती है, क्योंकि कहानियाँ मौखिक एवं परम्परागत है। अगर एक कन्या का विवाह दूसरे गाँव में होता है, तो स्वाभाविक है कि उसके द्वारा सुनी कहानी दूसरे गाँव में चली जाती है, क्योंकि कहानी कहने की परम्परा दादी या नानी बनने पर निभानी पड़ती है ये कहानियाँ वातावरण के कारण बदल जाती है वैसे झारखण्ड की लोककथाएँ एक दूसरे से मिलती जुलती है।''**6**

नागपुरी लोककथाआ में आदर्शवादिता का समन्वय स्वयंमेव ही हो गया है इसमें नीति और उपदेश के तत्व समाहित है। इन कहानियों में चमत्कार प्रधान काल्पनिकता का प्रयोग हुआ है। इसके अनेक सजीव उदाहरण है। नागपुरी लोक कथाओं में आदर्श के रूप में मंगल भावना तथा यथार्थ के रूप में लोक की सहज अनुभूतियों का प्रकाशन हुआ है। नागपुरी लोक कथाओं में यथार्थ और आदर्श का अद्‌भुत सामंजस देखने को मिलता है।

लोक कथाओं का वर्गीकरण

लोक कथाओं का वर्गीकरण विद्वानों ने अपने–अपने ढंग से किया है। डॉ0 स्टिथ थोपसन ने दो आधार माने है–

(1) सरल कथाएँ तथा
(2) जटिल कथाएँ

(1) सरल कथाओं के अन्तर्गत वह सब कथाएँ आती है जिनका कथानक सीधा और सरल होता है। ऐसी कथाएँ प्रारम्भ से अन्त तक एक सी चलती है। धोखे, मूर्खो, ठगो, बुरी पत्नी, सौतेली माँ, आलसी पति आदि की कथाएँ इसके अन्तर्गत ही आती है। पशु–पक्षी सम्बन्धी कहानियाँ आदि भी इसमें शामिल है। धार्मिक कहानियाँ भी इसी के अन्तर्गत आती है।
(2) जटिल कथाओ में कथानक में कई बार उतार–चढ़ाव आ जाते है तथा जटिलता बढ़ जाती है। इसके अन्तर्गत परियों की कहानियाँ, जादु की कहानियाँ तथा दानवों की कहानियाँ आती हैं।''**7**

डॉ0 सत्येन्द्र ने लोककथाओं को निम्न वर्गो में वर्गीकरण किया है :–

(1) गाथाएँ
(2) पशु सबन्धी अथवा पंचपंत्र
(3) परी की कहानियाँ

(4) वीरता की कहानियाँ
(5) बुझोंवल
(6) निरीक्षण गर्भित कहानियाँ
(7) साधु पीरों की कहानिया।''**8**

डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय ने भी भोजपुरी प्रदेश में उपलब्ध कहानियों का वर्गीकरण इस तरह किया है –

(1) उपदेशात्मक
(2) मनोरंजनात्मक
(3) वर्णनात्मक
(4) प्रेमात्मक
(5) व्रतात्मक
(6) सामाजिक।''**9**

संस्कृत के आचार्य आनन्दवर्द्धन ने इसे तीन वर्गो में रख है :–
(1) परी कथा
(2) सफल कथा
(3) खण्ड कथा।

हरिचन्द्र आदि आचार्य ने लोक–कथाओं को 4 वर्गो में विभत किया है :–
(1) अर्थ–कथा
(2) काम–कथा
(3) धर्म–कथा
(4) संकीर्ण कथा।''**10**

पाश्चात्य विद्वानों ने भी लोक कथाओं को 4 वर्गो में विभक्त किया है :–
(1) कल्पित कथा
(2) परियों की कथा
(3) दान कथा तथा
(4) पौराणिक कथा।''**11**

नागपुरी कथा साहित्य के अन्तर्गत निम्न प्रकार से वर्गीकरण किया जा सकता है :–
(1) आनुष्ठानिक
(2) विश्वास कथाएँ
(3) प्रेमात्मक
(4) नीति कथाएँ
(5) मनोरंजन सम्बन्धी
(6) समाजिक कथाएँ
(7) बाल कथाएँ

(1) आनुष्ठानिक लोककथाएँ :– जो कहानियाँ विभिन्न पर्व–त्योहारों के अवसर पर पूजा के समय कही जाती है वे अनुष्ठान सम्बन्धी कहानियाँ कहलाती हैं। ये धार्मिक भावनाओं से ओत–प्रोत होती है। किसी भी धार्मिक विधान के अन्तर्गत कहानी कहने की अनिवार्यता होती है। व्रत कहानी के अभाव में अपूर्ण माना जाता है। नागपुरी–भाषी क्षेत्र के आदिवासी सदान विभिन्न अनुष्ठानों के अवसर पर स्वयं कहानियाँ सुनाते है। या फिर सदानों के अनुष्ठानों में पुरोहित द्वारा भी कहानियाँ सुनाई जाती है। इनमें किसी–न–किसी देवी–देवताओं का उल्लेख अवश्य ही होता है। करम, जितिया, तीज, सरहुल, सोहराई, आदि की कहानियाँ अनुष्ठान–विषयक कहानियों के अन्तर्गत आती है। इसीलिए धार्मिक लोक–कथाएँ, लोक–जीवन के धार्मिक पक्ष को अधिक सबल बना देती है। करम पर्व के धार्मिक लोक कथा – करमा–धरमा की कथा तो **कहीं** सात भाई (करमा, धरमा, धनवा, रिझा, मंगरा, भँवरा एवं लिटा) –सात गोतनी की कथा सुनाई जाती है करम पूजा में। इस कथा से कर्म के साथ धर्म की आस्था बताई गई है। कर्म ही जीवन है, कर्म ही धर्म है, कर्म ही पूजा है, सेवा ही कर्म है, कर्म ही आनन्द है

की शिक्षा दी जाती है। इसी तरह जीतिया पर्व में भी करम कथा की तरह जीतिया कथा जिसमें चील –सियार की कथा सुनाई जाती है। चील और सियार पीपल वृक्ष में रहती थी। चील वृक्ष की शाखा में और सियारिन वृक्ष की खोखल में। सियारिन बराबर मांस लाकर खाती थी और चील कभी–कभी खाती थी क्योंकि चील धार्मिक प्रवृति की थी।

एक बार कहीं जीवित पुत्रिका व्रत की कथा हो रही थी चील उस कथा को सुनकर आयी और अपनी सहेली सियारिन को बताई। दोनों ने भी जीवित पुत्रिका व्रत करने को ठान ली और दोनों व्रत करने लगे। चील कही से ब्रहमण द्वारा कथा सुनकर आयी और अपनी सहेली को सुनाने लगी इसी बीच आधी कहानी सुन पायी थी कि भूख से तड़पने, छटपटाने लगी और आधे में ही व्रत तोड़ भरपेट मांस खाकर अपनी भुख मिटाई। इधर चील बिना खाये–पिये रात भर रह गई और सुबह गौशाले में जाकर दूध पी ली। कुछ दिन बाद दोनों की मृत्यु हो जाती है और संयोग से दोनों का जन्म एक ही घर में होता है। सियारिन बड़ी बहन एवं चील छोटी बहन बनी। दोनों सभी गुणों से युक्त थी।

बड़ी बहन की शादी काशीराज के साथ और छोटी बहन की शादी उसके मंत्री के साथ विधिपूर्वक हुई। पूर्व जन्म के फल के कारण बड़ी बहन के जो भी संतान उत्पन्न होती वे मर जाती। छोटी बहन ने आठ तेजस्वी पुत्रों को जन्म दिया और सभी जीवित रह गये। छोटी बहन के पुत्रों को देखकर बड़ी बहन जलने लगी और छोटी बहन के पुत्रों को मारने के लिए राजा को कह दी। राजा आठ पुत्रों को मरवा कर बक्सा में डाल कर उनकी माता के पास भिजवा दिया। आठों सिर किमती जवाहरात में बदल गये और आठों पुत्र अपनी माता के पास सकुशल पहुँच गये। ये सब जीवित पुत्रिका व्रत का फल था। बड़ी बहन छोटी बहन के आठों पुत्रो को जीवित देखकर चकित हो गयी और छोटी बहन से इस विषय में पूछी की आपके पुत्र कैसे जीवित बच गये राजा ने इन्हे मरवा दिये थे। फिर जीवित कैसे? तो छोटी बहन ने बड़ी बहन को विस्तृत रूप से जीवित पुत्रिका व्रत की पूर्व विवरण पूर्व जन्म की बताई। और बड़ी बहन छोटी बहन की बात मान कर जीवित पुत्रिका व्रत प्रारम्भ कर दी। व्रत के फलस्वरूप बड़ी बहन अर्थात रानी के कई बेटे सुन्दर सुखी और दीर्घायु होकर बड़े–बड़े राजा हुए। उसी समय से सभी स्त्रियों ने जीवित पुत्रिका व्रत करना प्रारम्भ किया।''12

इस तरह से अनुष्ठानिक लोक कथाएँ व्रत पर्व में कही जाती है।

(2) विष्वास कथाएँ :–

नगपुरी की ऐसी कहानियों में किसी कार्य के पीछे कारण रूप में निहित कल्पना की ओर संकेत होता है। इन कहानियों को कहने वाला कहानी के कथ्य पर पूर्ण विश्वास रखता है और लोक में वैसे ही विश्वास की जड़ मजबूत होती जाती है। इन कहानियों में लोक–विश्वास का उभरता हुआ स्वरूप मिलता है। नागपुरी लोक कथाओं में दृश्य और अदृश्य जगत के प्रथिक जनसमुदाय का दृष्टिकोण प्रतिलक्षित होता है। इस तरह की कहानियों को अंग्रेजी में ''इटिमोलोजिकल'' कहानियाँ कहते है।''13

(3) नीति कथाएँ :–

नागपुरी लोक कथाएँ सामान्यतः नीति परक होती है। ये कहानियाँ किसी विशेष उद्देश्य को ध्यान में रखकर ही रची गयी प्रतीत होती है। इन कहानियों का मुख्य उद्देश्य शिक्षा देना होता है। इन कहानियों में ''ईसप की नीति कथाओं'' एवं पाली की ''जातक कथाओं'' की तरह पात्र केवल पशु–पक्षी ही नहीं होते।

(4) मनोरंजन संबंधी कथाएँ :–

नागपुरी की ये कहानियाँ ज्ञानवर्द्धक के साथ–साथ मनोरंजन की कहानियाँ होती है। सामान्यतः इन कहानियों को नानी अथवा दादी ही सुनाया करती है। ये कहानियाँ काल्पनिकता मस्तिष्क की स्वप्न–सृष्टि न होकर उनके जीवन के अनिवार्य अंग बन गये हैं।

(5) प्रेमात्मक कथाएँ :–

नागपुरी लोक कथा में प्रेम से परिपूर्ण कहानियाँ भी उपलब्ध है। इन कहानियों में प्रेम के अटूट संबंध का उल्लेख मिलता है। भाई–बहन का प्रेम, राजकुमार और राजकुमारी का विशुद्ध प्रेम तथा माँ अपने पुत्र–पुत्रियों के साथ वात्सत्य प्रेम की कहानियाँ बहुतायत से नागपुरी में प्राप्त है।

(6) सामाजिक कथाएँ :–

इसके अन्तर्गत समाज से संबंधित भिन्न–भिन्न प्रकार की कहानियाँ आती है। इन कहानियों में समाज के विभिन्न पहलुओं पर गहन प्रकाश डाला जाता है। सामाजिक बुराइयों को उजागर करते हुए समाज में व्याप्त कुरीतियों को दूर करने की स्पष्ट इंगित होती है।

(7) बाल कथाएँ :–

नागपुरी में भी बालकथाएँ उपलब्ध है। इन कथाओं में बालको के मनोरंजन की कथाएँ है। वास्तव में कहानियाँ बाल मनोवृति की सूचक है। ''मैना आउर बूट'' नागपुरी की एक प्रसिद्ध लोककथा है जो बड़ी ही रोचक होती है।''14

नागपुरी लोककथा को उपयुक्त के अलावे अलग–अलग विद्वान अपने–अपने स्तर से वर्गीकरण किया है। जिसे इस तरह से भी वर्गीकरण कर सकते है– सृजन, देवी–देवता, पशु–पक्षी, पेड़–पौधा, डाइन–भूत, जादू–टोना, अंधविश्वास, पर्व–त्योहार, खाना–पीना, शिकार करना, चोर, डाकू, ठग, बनियाँ, सॉप, लड़ाई, जड़ी–बूटी, दवाइ–बीरो, राकस, परी, राजा–रानी, गहना–गुरिया, इतिहास, प्रेम, हॉसी, मनोरंजन, बदला, बिहा–सादी, उलगुलान, अत्याचार, मूरखइ, छउवा,मेला–जतरा, अगमजानी, सपना, साधु महात्मा, बरदान, सराप, जनि, धांगर–धंगरिन, नेयाय–फैसला, बुधि परीक्षा, कहावत, बलिदान और अलग–अलग कथा मिलता है।

इस तरह से अनेक विद्वानों द्वारा नागपुरी कथा साहित्य में लोक–कथाओं का वर्गीकरण किया गया है। जो समाज को एक अलग पहचान दिलाने का कार्य किया है।

संदर्भ :

1. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, लोक साहित्य की भूमिका, वाराणसी, द्वितीय संस्करण 1970, पृ0 124.
2. डॉ0 कुन्दनलाल उत्प्रेती साहित्य के प्रतिमान, अलीगढ़, द्वितीय संस्करण 1980, पृ0 116.
3. सत्यव्रत अवस्थी, लोक साहित्य की भूमिका, प्रयाग, 1957 पृ0 71.
4. नागपुरी लोक साहित्य डॉ0 भुवनेश्वर अनुज पृ0 59.
5. डॉ0 सत्या गुप्त खड़ी बोली का लोकसाहित्य, इलाहाबाद, प्रयाग संस्करण 1965, पृ0 147.
6. नागपुरी लोकगीत साहित्यक एवं सांस्कृतिक अध्ययन कलावती ओहदार प्रथम संस्करण,2002 पृ0 27.
7. नागपुरी लोक–साहित्य, डॉ0 भुवनेश्वर अनुज, पृ0 60.
8. डॉ0 सत्येन्द्र ब्रजलोकसाहित्य का अध्ययन, आगरा 1949.
9. डॉ0 कृष्णदेव उपाध्याय, भोजपुरी लोक साहित्य का अध्ययन, वाराणसी 1960 पृ0 414.
10. नगपुरी लोक साहित्य डॉ0 भुवनेश्वर अनुज, पृ0 61.
11. लोक गीतों की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, पृ0 53. (डॉ0 रहमत उल्लाह, लोक साहित्य में आमोद–प्रमोद, कानपुर, 1984 पृ0 84 से)
12. नागपुरी लोकगीत साहित्यिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन, कलावती ओहदार, प्रथम संस्करण 2002, पृ0 109.
13. नागपुरी लोक साहित्य, डॉ0 भुवनेश्वर अनुज पृ0 62.
14. नागपुरी लोक साहित्य, डॉ0 भुवनेश्वर अनुज पृ0 64.

***

दिव्यांगजनो की मनोदशा

*अमित कुमार पाण्डेय**

यदि कोई मानव शारीरिक एवं मानसिक रूप से सामान्य न होकर अक्षम है तो उसे विकलांग (दिव्यांग) कहा जाता है । यह अंग्रेजी के हंडीकैप HANDICAPPED का हिन्दी अभिप्राय है, लेकिन विकलांग शब्द एक अपमानजनक या अप्रिय स्वरूप का चित्रण करता है। समाज में ऐसा विशिष्ट व्यक्ति स्वयं को असहज महसूस करता है। बदले हुए परिवेश में इस प्रकार के व्यक्तियों के लिए दिव्यांग संज्ञा का प्रयोग उन व्यक्तियों के लिए सम्मान सूचक एवं आदरणीय भाव को प्रदर्शित करने हेतु किया जा रहा है। जो स्वयं को अन्य लोगो में हीन भावना से ग्रस्त महसूस करते है।

दिव्यांग शब्द अपने शाब्दिक विन्यास में संस्कृत के दिव् धातु से दिव्य के रूप में विकसित हुआ है। इसका अभिप्राय दैवीय, स्वर्गीय, अलौकि, उज्ज्वल, मनोहर, सुन्दर इत्यादि है। हलाकि यह संबोधन भी विरोधाभाषी है तथापि प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी ने अपने रेडियो संबोधन में 27 दिसम्बर 2015 को विकलांग के समानार्थी शब्द के रूप में दिव्यांग शब्द का प्रयोग किया और इसके बाद से ही यह शब्द प्रचलन में आ गया।

आज विकलांगता (दिव्यांगता) दो स्वरूपों में हमारे सम्मुख दिखाई देती है, शारीरिक दिव्यांग एवं मानसिक दिव्यांग। अल्बर्ट आंइस्टीन की सीखने की क्षमता कम थी फिर भी उन्होंने सापेक्षता का सिद्धांत दिया, एडिसन श्रवण बाधित थे तथापि बिजली के रूप में वैज्ञानिक चमत्कार हमारे समक्ष ला दिया। ब्रेल अंधे थे फिर भी उन्होंने नेत्रहीनो के लिए ब्रेललिपि का आविष्कार कर दिया। इन लोगो ने यह सिद्ध किया है कि प्रतिभा के सामने अक्षमता बौनी है। इसके बावजूद आज दिव्यांगजन व्यवहारिक, शारीरिक और सामाजिक बाधाओ से लड़ रहे है। हमारा समाज दिव्यांगजनों को एक अभिशाप या कलंक के रूप में देखता है। व्यक्ति प्रत्येक कार्य को बहुत अच्छे ढंग से करके उस कार्य के द्वारा अपनी एक अपनी विशेष छाप छोडना चाहता है, परन्तु कई बार उसकी मनःस्थिति के कारण ऐसा सम्भव नही होता है। मनःस्थिति अथार्त मनोदशा एक ऐसी स्थिति है व्यक्ति की जिसमे प्रायः उतार चढाव आते रहते है, जिसका प्रत्यक्ष प्रभाव व्यक्ति के ऊपर होता है। जैसे यदि मनःस्थिति अच्छी है तो वह हर कार्य को बहुत अच्छे से करता है और परिस्थिति का आनन्द ले पाता है अपनी खुशियों को सबको बॉटता फिरता है परन्तु यदि मनःस्थिति खराब हो जाये तो किसी भी काम में मन नही लगता यहा तक कि किसी से भी बात करना भी पसन्द नही करता। मनोदशा का हमारे जिन्दगी पर बहुत असर होता है। अगर हम अच्छी मनोदशा में होते है तो अपना विरोध करने वाले बातों व आलोचनाओं को भी आसानी से सुन लेते है। लेकिन यदि खराब हो मनोदशा तो हम अपने खिलाफ एक शब्द भी नही सुनना चाहते। जैसा कि मनोवैज्ञानिक प्रो0 डा0 आर्ट मार्कमैन (टेक्सास विश्वविद्यालय) ने कहा है कि हमारी जिन्दगी को संतुलित बनाने के लिए अच्छी मनोदशा का होना बेहद आवश्यक है। हमारा समाज अपने आप को कई न देखने वाले वर्गो में खुद को विभाजित कर चुका है, जैसे बलवान, अमीर, गरीब, निर्धन, सबल, दुर्बल इत्यादि। सबल, अमीर, बलवान आदि तबके के लोगो द्वारा निचले निर्धन, विकलांग,गरीब व्यक्ति का किसी ना किसी रूप में उपहास किया जाता है जिसके कारण इन वर्गो के व्यक्ति अपने आप को हीन महसूस करने लगते हैं।

हम अपने पास पडोस में दिव्यांगजनों को देखकर उनकी मनोदशा असानी से समझ सकते हैं। एक विशेष आवश्यकता का बालक चुनौतियों और तनाव के उच्च स्तर में रहकर अपना जीवन व्यतीत करता है। जिसमें कभी–कभी वह हार जाता है। और अपना जीवन समाप्त करने की चेष्टा करने का प्रयास करता है। उसकी इस पीडा में हम समाज के लोग और अधिक बढा देते हैं, उनका उपहास

---

* शोध छात्र- शिक्षा शास्त्र, सिद्धार्थ विश्वविद्यालय, कपिलवस्तु सिद्धार्थनगर, एम० ए० (राजनीति शास्त्र, हिन्दी एवं शिक्षा शास्त्र) बी० एड० , नेट- शिक्षा शास्त्र, पता- ८६ गोरक्षनगर कालोनी, सिंघड़िया कूड़ाघाट, जनपद- गोरखपुर २७३००८, उत्तर प्रदेश

करके, ब्यंजनात्मक शब्दबाण छोड़कर। दिव्यांगजन घर–परिवार विद्यालय समाज तथा कार्य स्थलो पर स्वयं को असहज पाते है। और उनकी मनोदशा विकृत हो जाती है। उनकी इस प्रकार की मनोदशा को हम नि0 लि0 रूप में आसानी से समझ सकते है जब वे अपने आप को मानसिक रूप से असंतुलित अथवा अव्यवस्थित समझ रहे होते हैं।

1. यदि दिव्यांग बालक दीर्घकाल से उदास है, चिन्तित है, या स्वयं को किसी कारण वश अकेला महसूस कर रहा है।
2. यदि दिव्यांग बालक अपना आत्मविश्वास खो दिया, और निराश है।
3. यदि दिव्यांग बालक की दिनचर्या परिवर्तित लग रही है, उसकी गतिविधियां सीमित हो गयी है।
4. यदि दिव्यांग बालक किसी विषय वस्तु के कारण चिडचिडा या संवेदनशील हो गया हो।
5. समूह से हट कर यदि स्वयं को अकेला रखने का प्रयास कर रहा हो।

दिव्यांगजनो की मनोदशा सुधारने के उपाय– दिव्यांगो की भी समाज से कुछ अपेक्षाएं है। वे भी सामान्यजनो की भांति कंधे से कंधा मिलाकर जीवन का आनन्द लेना चाहते है, अपने प्रति प्रदर्शित किये जा रहे शोषण और अत्याचार की समाप्ति चाहते है। अब समय आ गया है कि परिवार, समाज और राज्य उनके मांगो पर गम्भीरता पूर्वक विचार करे जिससे कि उनकी मनोदशा परिवर्तित हो सके, वे समाज में सक्रिय रूप से अपनी भागीदारी प्रदर्शित कर सके।

उपर्युक्त विचारो के आलोक में दिव्यांगजनो की स्थिति एवं मनोदशा सुधारने और उनके समाजिक समायोजन नि0 लि0 कार्य योजना अमल में लायी जानी चाहिए।

1. विभिन्न श्रेणियों के दिव्यांगो की आवश्यकता, क्षमता पर सहानुभूतिपूर्वक विचार करते हुए जागरूकता कार्यक्रम चलाना।
2. चिकित्सको, अध्यापको, वकीलो, राजनेताओ तथा प्रशासन के अधिकारियो द्वारा स्वयं के प्रयास से लोगों को दिव्यांगजनो के प्रति अपने दृष्टिकोण में बदलाव लाने को कहना।
3. दिव्यांगजनो को स्वयं की क्षमता को जानने, पहचानने के लिए प्रेरित करना।
4. शिक्षा के विभिन्न स्तरो तथा शिक्षक प्रशिक्षण में समावेशी शिक्षा की संकल्पना को गम्भीरतापूर्वक लागू करना।
5. विकलांगो को अत्यधिक अवसर सुलभ कराना।
6. समावेशन प्रक्रिया में गम्भीरता लाना।
7. सरकारो द्वारा समय–2 पर प्रोत्साहन हेतु कार्य किया जाना।

उपसंहार

हमारा समाज शारीरिक/मानसिक रूप से असक्षम अर्थात विकलांग लोगो को इतने हीन भाव से देखता है कि वह व्यक्ति अपने आप में ही टूटकर रह जाता है। उसकी मनोस्थिति ऐसी होती है कि वह सिर्फ खुद का ही हो कर रह जाता है अर्थात खराब मनोदशा के कारण सबसे दूरी बना लेता है। कई बार मेडिकल कारणों से व्यक्ति के विशेष अंगो में दोष उत्पन्न हो जाता है जिसकी वजह से उन्हें समाज में विकलांग की संज्ञा दी जाती है। और उन्हें एक विशेष वर्ग के सदस्य के तौर पर देखा जाने लगता है। आमतौर पर हमारे देश में विकलांगो के प्रति दो तरह की धारणाएं दखने को मिलती है। पहला– यह जरूर इसके पहले जन्म के पापों का फल है। दूसरा जो विकलांग होते है वो कहीं न कहीं निम्न किस्म के व्यक्ति है और जीवन भर इनको कठिनाई सहना है, इसलिए उन पर दया दिखानी चाहिए।

हालांकि यह दोनों धारणा पूरी तरह बेवुनियाद और तर्कहीन है, बावजूद इसके विकलांग पर लोग अनजान या जानकर छींटाकशी करने से बाज नही आते। वे इतना भी नही समझ पाते कि क्षणिक मनोरंजन की खातिर दिव्यांगो का उपहास उडाने से भुक्तभोगी की मनोदशा किस हाल में होगी। तरस आता है ऐसे लोगो की मानसिकता पर जो दर्द बांटने के बजाय बढ़ाने को आतुर है। घर–परिवार वाले अगर मानसिक सहयोग न दे तो व्यक्ति अन्दर से टूट जाता है। वास्तव में लोगो के तिरस्कार की वजह से विकलांग स्व–केन्द्रित जीवन शैली व्यतीत करने को विवश हो जाता है।

विकलांगो का इस तरह विखराव उनके मन में जीवन के प्रति अरूचिकर भावना को जन्म देता है। अन्य देशो की अपेक्षा भारत में विकलांगो की स्थिति अत्यन्त दयनीय है। ऑकड़ो के हिसाब से भारत में करीब 2 करोड़ लोग शरीर के किसी विशेष अंग से विकलांगता के शिकार है। इन्हे मानसिक सहयोग की जरूरत है। कुल जनसंख्या का मुट्ठी भर यह हिस्सा आज हर दृष्टि से उपेक्षा का शिकार है। विकलांगो को प्रेरित कम हतोत्सहित अधिक किया जाता है। यहा तक देखा गया है कि उन्हे सहयोग कम मजाक का पात्र अधिक बनाया जाता है। हॉ यह बात जरूर है कि विकलांगो के हित में बने ढेरो अधिनियम संविधान की शोभा बढ़ा रहे है लेकिन व्यवहार के धरातल पर देखा जाय तो विकलांगो की स्थिति सोचनीय है। यहॉ तक प्रतिमाह विकलांगो को दी जाने वाली पेंशन में राज्यवार भेदभाव होता है। जैसे– दिल्ली में पेंशन 1500/माह है तो झारखण्ड़ जैसे अनेक राज्यो में 400/माह।

अगर विकलांगो को शिक्षित कर सृजनात्मक कार्यो की ओर मोडा जाय तो वह भी राष्टीय सम्पत्ति की वृद्धि में अपना बहुमूल्य योगदान दे सकते है। और परिवार पर बोझ (आश्रित) होने की समस्या का समाधान कर सकेंगे। अच्छी बात है कि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र दमोदर दास मोदी जी ने अगले 7 वर्षो मे 38 लाख विकलांगो को लक्ष्य बना कर राष्टीय कौशल नीति पेश की है। साथ ही उन्होने विकलांगो को दिव्यांग कहने की अपील की, जिससे दिव्यांग को प्रोत्साहन मिले। दिव्यांगजनो को मानसिक रूप से सबल बनाने के लिए संयुक्त राष्ट्र संघ(न्छव्) ने भी प्रतिवर्ष 3 (तीन) दिसम्बर को अंतराष्ट्रीय विकलांग दिवस मनाने का प्रावधान रखा है।

संदर्भ :

1. मित्तल, एम0एल0, उदीयमान भारतीय समाज मे शिक्षा, डार्लिग किडस्ले (इण्डिया) प्रा0 लि0, 2012
2. हैण्डबुक, विकलांग कल्याण एवं सक्षमता विकास निदेशालय विकलांग कल्याण उत्तर प्रदेश 1995
3. योजना, प्रकाशन विभाग भारत सरकार मई 2016
4. पाठक, पी0डी0 (2012) भारतीय समाज में शिक्षा एवं शिक्षक श्री विनोद पुस्तक मंदिर नई दिल्ली
5. भटनागर सुरेश, शिक्षा मनोविज्ञान, मेरठ 1991
6. चन्द्र दिनेश, भारतीय शिक्षा की आधुनिक समस्याएं, जयपुर

***

''बालक के पालन-पोषण में अभिभावकों की मनोवैज्ञानिक योग्यता''

*डॉ. अनुपम**

बाल संगोपन सृष्टि की नैसार्गिक प्रक्रिया है। बच्चों का पोलन– पोषण मादा वर्ग द्वारा होता है। बच्चे सृजनहार सृष्टि के अनमोल रत्न और राष्ट्र का भविष्य होते हैं। बच्चों के पालन–पोषण हेतु अभिभावक के भीतर की लगन और समर्पण चाहिए। ऐसी त्वरा होनी चाहिए, भीतरी आवेग होना चाहिये यह बच्चों के जीवन पर्यन्त व्यक्तित्व को प्रभावित करती है, संसार में सबसे अटूट और महीन रिश्ता कोई है तो वह है माता–पिता और बच्चे का। माँ–बाप के सारे सपने, अरमान बच्चे में केन्द्रित होते है।

''धन्य हैं वे जिनके अंग धूलि से मलिन होते है, धन्य है वे मातायें जिनकी गोद सुन्दर शसक्त बालकों से शोभित है और धन्य है वे घर जो बाल रत्नों से समृद्ध हैं।''

प्राचीन भारत के अनेक कवियों ने भी बालक के प्रतिभाओं का वर्णन अपनी रचनाओं में किया है भारतीय भाषाओं की लोकप्रियता एवं कहावतों में भी बालक को समुचित स्थान मिला है। एक ऐसी ही संस्कृत की उक्ति में कहा गया है कि **''बच्चों के अभाव में घर कब्रिस्तान की तरह होता है जहाँ डरावनी खामोशी के अतिरिक्त कुछ नहीं होता हैं। यद्यपि वयस्कों के लिये बालक सदैव आनन्द का स्त्रोत और साहित्यकारों के लिये एक अत्यन्त आकर्षक विषय रहा है।''**

मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से पालन–पोषण की प्रक्रिया में बालक की भौतिक एवं बुनियादी आवश्यकताओं की पूर्ति मात्र नहीं है बल्कि यह बढ़ते हुये बच्चे तथा माता–पिता के बीच बहने वाला आपसी सम्प्रेषण का एक सतत् प्रवाह हैं। बाल संगोपन में माँ का स्थान सर्वोपरि है क्योंकि माँ का सान्निध्य, उष्मा, माधुर्य बालक को उत्कृष्टता की ओर ले जाता है। अर्थात् जीवन में स्थिति प्रतिस्पर्धा में उत्कृष्टता प्राप्ति में माँ का उदाहरण बालक के सामने आदर्श होता है, प्रथम पाँच वर्ष में बालक शरीर और मन दोनों से ही बड़ा ही ग्रहणशील होता है।

बालक के लिये माँ वरदान स्वरूप है, अभिभावक विहीन बच्चों का तो जीवन धन ही लुट जाता है, बड़े होकर वे उदण्ड, दुराचारी, अपराधी, डरपोक, उत्साहीन व अन्तर्मुखी हो जाते है।

''सरल, निष्कपट, भोला बचपन, जिसकी एक मुस्कान, एक किलकारी पर बड़ों को सौ–सौ बार न्यौछावर होते देखा गया है, किन्तु इतना ही निरीह, मासूम और बड़ों पर आश्रित बचपन, जिस पर बड़ों की नासमझी, गरीबी जन्य, विवशता, अज्ञानता और उसके मूड के अत्याचार होते हुये कम नहीं देखे गये।''

बच्चे माता–पिता की भावानात्मक जरूरत है किन्तु वे भूल जाते है कि बच्चों की भी भावात्मक जरूरतें हैं प्रायः बच्चों की वहीं बाते मानते है जिससे उन्हें संतुष्टि मिलती है, उनका अधिकार मान कर नहीं।

बालक के पालन–पोषण के विभिन्न आयाम है जिसके अन्तर्गत शिशु का विकास निहित होता है।

शिशु आहार – प्रथम छः माह तक शिशु माँ के दूध पर रहता है किंतु इसके पश्चात् उसे ऊपरी दूध एवं क्रमशः पूरक आहार पर लाया जाता है।

जन्म के बाद शिशु को स्तनपान के लिये माता के पास निश्चित समय पर दिन में 3 से 6 बार लाया जाता हैं परन्तु जीवन के पहले सप्ताह शिशुओं को 4–16 बार स्तनपान कराना आवश्यक हैं। 1993 के बाद स्तनपान कराने की दर में गिरावट आने लगी। आज विकासशील देश शहरीकरण की तरफ तेजी से बढ़ रहे है। आज पुरानी मान्यतायें छोड़ी जा रही है। संयुक्त परिवार टूट रहे हैं। ऐसी स्थिति में स्तनपान संबंधी समस्यायें आ रही है, अमेरिका, ऑस्ट्रेलिया, दक्षिण पूर्व एशिया, स्कैनडिनेविया

* असिस्टेंट प्रोफेसर, गृह विज्ञान विभाग, सरस्वती देवी पी०जी० कालेज, नन्दापार, जैतपुर, गोरखपुर

आदि स्थानों पर माताओं ने अपने समूह बनाये है जिनके सदस्य माताओं को स्तनपान सम्बन्धित व्यवहारिक जानकारी देते है। आज लाखों–करोड़ों लोग अपनी पारम्परिक तथा ग्रामीण जीवन शैली को छोड़ कर पाश्चात्य देशों का अनुकरण कर रहे है। सन् 1983 में भारत सरकार ने ''इण्डिया नेशनल कोड फॉर प्रोटेकशन एण्ड प्रोमोशन ऑफ ब्रेस्ट फीडिंग को पारित किया। 1990 में Innocents Declaration, Convention of the Rights of the child तथा World Summit Declaration ने जिनके घोषणा पत्रों पर भारत के भी हस्ताक्षर है स्तनपान के महत्व पर ध्यान आकृष्ट कराया गया है। विश्व स्तनपान सप्ताह 1994 का विषय वस्तु'' स्तनपान का संरक्षण तथा क्रियान्वयन था।

Infant milk substitute, feeding bottles and infant food act एक ऐसा कानून है जो शिशु अनुकल्प आहारों, दुग्धपान के लिये बोतलों तथा शिशु आहारों के उत्पादन आपूर्ति तथा वितरण पर नियंत्रण करता है।

Ghai 1990 :– अध्ययन में देखा गया है कि केवल माँ या गाय के दूध से शिशुओं को पर्याप्त मात्रा में प्रोटीन तथा ऊर्जा नहीं मिल पाती है। जिससे 4 महीने के बाद उनके विकास की दर निश्चित रूप से बढ़ती रहें। अतः यह आवश्यक हैं इस उम्र में शिशुओं में समाहारित पूरक पोषण दिये जाये तथा शिशु माता के अतिरिक्त अन्य प्रकार के आहार से परिचित हो सकें।

Join WHO, UNICEF 1980 :- यदि शिशुओं को अपर्याप्त या कम पोषण युक्त आहार दिया जाता है, जब वे माता का दूध छोड़ रहें हो तो इसका परिणाम यह होता है कि वे कुपोषण तथा बीमारियों के चपेट में आ जाते हैं। अतः उन्हें ऐसा पूरक आहार देना चाहिये जो पर्याप्त हो उचित पोषण युक्त हो, सफाई से तैयार किया गया हो तथा सांस्कृतिक, सामाजिक और आर्थिक रूप से स्वीकार्य हों।

शिशु के वस्त्र :– शिशु के वस्त्र उनके अनुकूल होना चाहिए, भारतीय पोशाक में भी प्राचीनता पर नवीनता का प्रभाव पड़ा है और भारतीय वस्त्रों में आवश्यक परिवर्तन हुये है। ''हमारा देश आज का भारत वैभवपूर्ण विरासत का उत्तराधिकारी है।'' **विंगो** महोदय ने भी वस्त्रों को व्यक्तित्व उभारने में सहायक माना है। **लाइल** के अनुसार वस्त्र हमारी सुविधा अच्छे अनुभव, आत्म गौरव व विश्वास को बढ़ाते है। एलिजावेथ हरलॉक ने अपनी पुस्तक चाइल्ड डेवलपमेंट में बाल व्यवहार पर उचित परिधान का प्रभाव बताया है।

शिशुओं के वस्त्र गर्माहट (Warmth) आराम (Comfort) और आरोग्य गुण (Hygienic Qualities) युक्त होना चाहिए। शिशुओं के वस्त्र नरम, रोयेंदार और जलन न करने वाले गरम, सादे अच्छे सिले होना चाहिए।

आवास :– बालक के पालन पोषण में भवन सरंचना Housing का महत्व है। ''ऑक्सफोर्ड शब्दकोष के अनुसार वह भवन संरचना जिसमें निवास किया जायें उसे आवास कहते हैं।''

परिवार की सुख सुविधाओं के अनुसार आवास का निर्माण होता है उसमें व्यक्तित्व का विकास होता हैं। मकान में उचित एवं पर्याप्त स्थान आवश्यक है क्योंकि बालक की बुनियादी व मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं की पूर्ति करना है जिससे उसकी समस्त क्रियायें विकासोन्मुख होती है।

टीकाकरण :– बालक के पालन–पोषण में टीकाकरण का भी अपना महत्व है। बच्चों को स्वस्थ, बीमारियों पर नियन्त्रण पाने के लिये जन्म से ही रंग निरोधक टीके लगाने की जरूरत है। जैसे– टिटनेस, तपेदिक, चेचक, काली खांसी, डिप्थीरिया, पोलियो, टाइफाइड आदि हैं जो भारत में शिशुओं को तीन महीने के अन्दर टीका लगवाना आवश्यक है। 19 नवम्बर 1985 को भारत में विश्वव्यापी/व्यापक टीकाकरण कार्यक्रम शुरू किया गया। जिसके अन्तर्गत छोटे बच्चों को छः होने वाले रोगों से बचाव तथा गर्भवती महिलाओं को टिटनेस से बचाव के लिये टीके लगाने की व्यवस्था की गई है। आज इस क्षेत्र में वृहद कार्यक्रम जारी है।

संस्कृति :– बालक के पालन–पोषण पर वहाँ की संस्कृति का भी प्रभाव पड़ता है। समाज के सदस्यों का आचरण कैसा होगा, यह उस समाज की संस्कृति पर निर्भर करता है। माता–पिता के लिये इस संस्कृति की रूपरेखा को अपनी संतान तक पहुँचाना एक कठिन दायित्व है।

बेनेडिक्ट (Benedict 1925) के अनुसार :– ''संस्कृति व जटिल समष्टि हैं जिसके समाज के सदस्य के रूप में मानव द्वारा अर्जित सभी आदतें रहती है।

लिण्टन (Linton 1936) के अनुसार :– ''संस्कृति उन सभी विचारों अनुकूलित संवेगात्मक अनुक्रियाओं तथा स्वभावगत व्यवहारों के प्रतिरूपों का योगफल है।''

संस्कृति से बाल–पोषण पद्धति निर्धारित होती जिससे किसी समूह के सभी बच्चे लगभग समान होते है।

बालक के पालन–पोषण में माता–पिता की अभिवृत्तियों अथवा बालक के प्रति उनका दृष्टिकोण भी बहुत कुछ प्रभावित करता है। जैसे– अतिसंरक्षण, अत्यासक्ति, अतिचिंता, बहिष्करण, शत्रुपरक, प्रतिद्वन्दिता, प्रताड़ित बच्चे आदि बच्चे से सम्पूर्ण व्यक्तित्व की नींव उसके पारिवारिक अनुभवों पर आधारित होती है।

बालक के पालन–पोषण पर सहोदर, दादा–दादी, नाना–नानी, रिश्तेदार, नौकर, मित्र, पड़ोसी आदि का भी प्रभाव पड़ता है।

शौच प्रशिक्षण :– शौच प्रशिक्षण भी आवश्यक हैं क्योंकि ''लगभग सभी अध्ययनों से स्पष्ट होता है कि बच्चों को कठोर शौध प्रशिक्षण से उसका व्यक्तित्व अस्तव्यस्त हो जाता है और यदि माँ को स्नेह भी कम रहा तो यह अस्तव्यस्तता और तीव्र हो जाती है।''

शारीरिक स्वच्छता की दृष्टि से प्रतिदिन स्नान आवश्यक है। स्नान के प्रति यदि बच्चों में भय, तनाव और असुरक्षा आ जाने पर उसे दूर करना चाहिये अन्यथा भय ग्रन्थि बन जायेगी। कोशिश की जानी चाहिये कि स्नान से बच्चा आनन्द व प्रसन्नता अनुभव करे।

बच्चों में नैतिक विकास के लिये माता–पिता अनुशासन एक तकनीक के रूप में प्रयोग करते हैं ताकि बच्चों में अच्छा व्यवहार करने की प्रवृत्ति बढ़े।

बेकर, पीटरसन, लूटिया, हेल्मर 1962 के अनुसार :– बच्चों के नैतिक विकास के लिये एक सीमा तक माता–पिता द्वारा नियन्त्रण आवश्यक माना गया है परन्तु उनके स्वयं के व्यवहारों एवं अभिव्यक्ति के तरीकों में परिमार्जन बहुत आवश्यक पाया गया।

शिक्षा :– बाल संगोपन में अभिभावकों की शिक्षा मुख्य रूप से प्रभावित करती हैं क्योंकि ''शिक्षा सतत् विकास की प्रक्रिया है जिसका सम्बन्ध मानव जीवन से है। शिक्षा राष्ट्र की प्रगति है, उत्पादन की वृद्धि, बदलते सामाजिक मूल्यों पर समायोजन का आधार है, बढ़ती जनसंख्या पर अंकुश है, समाज के स्वास्थ्य और स्वतन्त्रता की आधारभूत आत्मा है।'' व्यापक दृष्टि में शिक्षा बालक के उन सभी अनुभवों से है जिसका प्रभाव उसके ऊपर जन्म से लेकर मृत्यु तक पड़ता है।

महात्मा गांधी :– के अनुसार शिक्षा और मनुष्य के शरीर, मन तथा उसकी आत्मा के सर्वोत्तम को व्यक्त करना है।

रूसो का मत :– इन्होंने पारिवारिक शिक्षा को अत्यधिक महत्व दिया है। उन्होंने अपने पुत्र एमिल को बारह वर्ष की अवस्था तक शिक्षण संस्थाओं से पूर्णतः अलग रखा उनके अनुसार शिक्षा जन्म से प्रारम्भ होती है तथा माता उपयुक्त परिचारिका है।

पेस्टॉलाजी :– के अनुसार माता ही समस्त शिक्षा की स्त्रोत है तथा घर–प्रेम व स्नेह का केन्द्र बिन्दु है। शिक्षा के लिये सर्वोत्तम स्थान है और बालक के लिये प्रथम पाठशाला है।

सार जार्ज न्यूमैन :– के अनुसार प्रथम पाँच वर्षों में बालक शरीर और मन दोनों से बड़ा ही ग्रहणशील होता है।

एडलर :– के अनुसार पूरे जीवन का ढ़ाँचा शैशव में ही पड़ जाता है। अतः बचपन पर विशेष ध्यान देना चाहिये।

निष्कर्ष एवं सुझाव :– बालक का पालन–पोषण उचित वातावरण में होना चाहिये। बच्चों को माता–पिता का सान्निध्य, सांवेगिक माधुर्य उष्मा उन्हें मिलना ही चाहिये। जरूरत इस दृष्टिकोण से सोचने की और बच्चों के प्रति व्यवहार में कोई कमी है तो उसे सुधारने व स्वयं को बदलने की अतः सभी अभिभावकों को बाल संगोपन का ज्ञान एक मानवीय तकनीकी के रूप में करना चाहिये।

सन्दर्भ :

1. Hurlock B. Elizabeth - Tata Mc Grew Hill Publishing Company L.T.D. New Delhi (Fifth Edition)
2. Ghosh Shanti - You and your child – Voluntary Health Association of India 1989.
   Revised edition – 1991.
3. भाई योगेन्द्र जीत – बाल मनोविज्ञान, बाल विकास
   विनोद पुस्तक– मंदिर आगरा।
4. सिंह बृन्दा – मानव विकास एवं पारिवारिक सम्बन्ध, पंचशील प्रकाशन जयपुर।
5. कुप्पूरस्वामी बी0 – बाल व्यवहार और बाल विकास
   कोणार्क पब्लिशर्स प्रा0लि0–1975।
6. आरोन्देकर कुमारी कुसुम – बाल विकास– मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी।
7. व्होरा आशा रानी – शिशु पालन– हिन्द पाकेट बुक जी0टी0 रोड, शाहदरा दिल्ली–1978।
8. व्होरा आशा रीना – बेबी हैल्थ गाइड – पुस्तक महान–दिल्ली 1979।
9. खनूजा डा0 रीना – आहार एवं पोषण विज्ञान– अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा – 2।
10. सिंह डा0 श्याम बिहारी – बाल व्यवहार व्यतिक्रम, उ0प्र0 हिन्दी संस्थान लखनऊ– 1995।

***

समकालीन उदारवादी दर्शन एवं नारी विमर्श : एक विश्लेषण

*ज्योति यादव**

नारीवादी विमर्श स्त्रियों के अस्तित्व की समस्याओं को उनकी अनुभव की दृष्टि से समझने और उसे हल करने हेतु एक सिद्धांत, विचारधारा और आंदोलन के रूप में विकसित हुआ है। नारी विमर्श का केंद्र बिंदु जेंडर असमानता से जुड़ा है, जो स्त्रियों के सामाजिक जेंडर असमानता के सभी पहलुओं को समाहित करता है। लिंग और जेंडर विभाजन तथा इसका सिद्धांत विकास नारीवादी चिंतन का एक महत्वपूर्ण योगदान है। सेक्स शब्द स्त्री और पुरुष के जैविक अर्थ को बताता है, जबकि जेंडर का अर्थ उसके साथ गुथे सांस्कृतिक अर्थ से है। नारीवादी विमर्श के संदर्भ में इस तर्क को स्पष्ट करना महत्वपूर्ण है कि महिलाओं की अधीनता को उनके जैविक–अंतर के आधार पर सही ठहराया जाता है। ऐसे कई दार्शनिक तर्क हैं, जो इस तरह के उत्पीड़नों को प्राकृतिक कहकर उचित ठहराते हैं। इस तर्क के अनुसार जो प्राकृतिक है वह अपरिवर्तनीय भी है । ऐसे तर्क को जैविक निर्धारणवाद कहा जाता है। जैविक निर्धारणवाद ही महिला उत्पीड़न को सदियों से वैधता प्रदान करता रहा है, इसलिए इसको चुनौती देना नारीवादी राजनीति के महत्वपूर्ण मुद्दे रहे हैं। नारीवादियों का तर्क है कि सेक्स एवं जेंडर के आधार पर नारीत्व पुरुषत्व के गुणों को गढ़ा जाता है। अलग–अलग तरीके से समाजीकरण द्वारा उन्हें स्त्री और पुरुष की भूमिकाओं के लिए तैयार किया जाता है। उसी संदर्भ में सिमोन द बुआ ने कहा है 'औरत पैदा नहीं होती बना दी जाती है'। समकालीन नारीवादियों ने सेक्स और जेंडर विभाजन का सैद्धांतिक विकास किया, जो यह साबित करता है कि महिलाओं की सारी अधीनता कृत्रिम हैं।

नारीवादी विचारकों को द्वारा महिलाओं को अधीन करने वाली जटिल संरचना पितृसत्तात्मक व्यवस्था को पहचाना गया एवं उसके विशेष अर्थ को सामाजिक और राजनीतिक परिवेश में समझने की कोशिश की गई है। पितृसत्ता को एक अवस्था के रूप में देखना बहुत आवश्यक है, क्योंकि इससे पुरुष और स्त्री के बीच शक्ति एवं पद में असमानता के लिए जैविक निर्धारणवाद के मत को खंडित करने में सहायता मिलती है। साथ ही यह भी स्पष्ट होता है कि स्त्री पर पुरुष का वर्चस्व कोई व्यक्तिगत घटना नहीं है, बल्कि यह एक व्यापक संरचना का अंग है। इस प्रकार नारीवादियो के द्वारा जेंडर और सेक्स में अंतर तथा पित्तसत्तात्मक व्यवस्था के द्वारा महिलाओं के उत्पीड़न और शोषण को समझा गया। इसे सैद्धांतिक चिंतन के आधार के रुप में भी प्रस्तुत किया गया है। नारीवादियों का तर्क है कि पितृसत्तात्मक व्यवस्था के आधार पर ही सारी राजनीतिक और सामाजिक संस्थाएं लैंगिक असमानता के द्वारा परिभाषित की गई है, जिसके कारण महिलाएं सार्वजनिक क्षेत्रों से बहिष्कृत हो गई है। यह सार्वजनिक और निजी विभाजन स्वीकति के कारण हुआ है, जिसे नारीवादी चिंतन अस्वीकार करता हैं तथा इस विभाजन में निजी क्षेत्रों के अंतर्गत महिलाओं की सीमित स्थिति का विरोध किया गया और परिवार नामक संस्था को सार्वजनिक विषय बनाने की मांग की गई, क्योंकि उनके अनुसार यह संस्था हिंसा को वैधता प्रदान करता है तथा इसे सार्वजनिक व राजनीतिक विश्लेषण के विषयों में समाहित किया जाना चाहिए।

नारीवाद एक आंदोलन के रूप में 18वीं शताब्दी से प्रारंभ होता है। नारीवादी विचारक उदारवादी मूल्यों के दार्शनिक परंपराओं का अनुगमन करते हैं, जो पुनर्जागरण आंदोलन के परिणामस्वरूप प्राप्त हुआ। इन मूल्यों की मांग का उनका उद्देश्य स्त्रियों को एक व्यक्ति के रूप में देखना और स्थापित करना था परंतु बहुत ही कम समय में उन्होंने समझ लिया कि इन मूल्यों का आधार लैंगिक असमानता पर टिका है। नारीवादियों ने राजनीतिक सिद्धांत के परंपरागत समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय की उदारवादी संकल्पना को चुनौती दी है। उनके अनुसार न्याय को एक समूह के दृष्टिकोण से समझा जाना चाहिए। इसका कारण यह है कि न्याय को लेकर किसी व्यक्ति का नजरिया तय करने में समूह, समुदाय महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। नारीवादियों का मानना है कि न्याय के व्यक्तिवादी दृष्टिकोण पर आधारित सामाजिक या राजनीतिक

* शोध छात्रा, रानीति विज्ञान विभाग, का. हि. वि. वि.

संस्थाएं पूर्वाग्रह से भरी होती हैं, क्योंकि इन व्यवस्थाओं का निर्माण प्रभुत्वशाली पुरुष के द्वारा किया जाता है, जिसमें महिलाओं और हाशिए पर पड़े दूसरे समूहों के हितों की कोई महत्व नहीं दिया जाता है। समकालीन नारीवादी दर्शन में नारीवादी तर्कों को किस प्रकार समझने की कोशिश की गई है इसे समझने का प्रयास करेंगे।

परंपरागत राजनीतिक दर्शन से लेकर पुनर्जागरण काल तक समाज जैविक निर्धारणवाद के सिद्धांत आधारित था। इसे ही प्राकृतिक माना जाता था। संपूर्ण सामाजिक व्यवस्था राज्य निर्माण कार्य में समर्पित थी, जिसमें लैंगिक असमानता के विचारों को महत्वपूर्ण नहीं समझा गया। 17-18 वीं शताब्दी में पुनर्जागरण और धर्म सुधार आंदोलन के साथ ही उदारवादी दर्शन की शुरुआत मानी जाती है। उदारवादी दर्शन सार्वभौमिक मानवीय मूल्यों के साथ आधुनिक राजनीतिक चिंतन में प्रवेश करता है। यह इन मूल्यों को समान रूप से सभी व्यक्ति पर लागू करने का दावा करता है तथा एक स्वतंत्र और स्वायत्त उदारवादी व्यक्ति की स्थापना करना इसका उद्देश्य है। उदारवादी समाज व्यक्ति की स्वतंत्रता और उसके पूर्ण विकास के प्रति प्रतिबद्ध है। उदारवादी दर्शन एक व्यक्तिवादी विचारधारा होने के कारण व्यक्ति की स्वतंत्रता से घनिष्ठता से जुड़ा है। स्वतंत्रता से उसकी प्रतिबद्धता संपूर्ण उदारवादी दर्शन को एक सूत्र में बांधती है। प्रारंभिक उदारवादी दर्शन जिसे शास्त्रीय उदारवाद भी कहा जाता है उसमें व्यक्ति के नकारात्मक स्वतंत्रता और राज्य के सीमित स्वरूप को स्वीकार किया गया। शास्त्रीय उदारवाद व्यक्ति के आर्थिक और राजनीतिक स्वतंत्रता को ही प्रमुख मानता है तथा वह पूंजीवाद व व्यक्तिवाद के अवधारणाओं को दार्शनिक आधार प्रदान करता है। उदारवाद की इस शाखा का प्रभाव समकालीन उदारवादी शाखाओं पर भी पड़ा। शास्त्रीय उदारवादी विचारकों मे मुख्यत हॉब्स, लॉक रुसो का नाम शामिल है। जो व्यक्ति की स्वतंत्रता को सामाजिक समझौता सिद्धांत से सुरक्षित करते हैं। इस समझौते के पहले प्राकृतिक अवस्था में सभी व्यक्ति को समान रूप से स्वतंत्रता प्राप्त है, जिसमें स्त्री–पुरुष दोनों शामिल है, परंतु सामाजिक समझौते के उपरांत लैंगिक समानता का संदर्भ भी स्वत ही परिवर्तित दिखाई पड़ता है। शास्त्रीय उदारवादी राज्य में समाज पितृसत्तात्मक व्यवस्था पर आधारित प्रतीत होती है, जिसका कोई दार्शनिक आधार प्रस्तुत नहीं किया गया है। ऐसा लगता है कि लैंगिक असमानता उनके लिए कोई गंभीर मुद्दा नहीं है। वे उसी प्राचीन जैविक निर्धारणवाद के सिद्धांत को स्वीकार करते हैं जो पितृसत्ता व्यवस्था को प्राकृतिक बताता है। शास्त्रीय उदारवादी स्वतंत्रता की अवधारणा की सीमाएं बहुत ही सीमित है जिसमें स्त्रियों के लिए कोई स्थान नहीं है।

उदारवादी दर्शन में समयानुसार परिवर्तन और उसकी प्राथमिकताओं में बदलाव होते रहे हैं, यह इस परंपरा का अभिन्न भाग है और इसकी समृद्धि का कारण भी उदारवाद की उपयोगितावादी शाखा स्वतंत्रता को उपयोगिता से जोड़ती है। यह मनुष्य की मनोवृत्तियों को ज्यादा महत्व प्रदान करता है। सुख को बढ़ाने और दुख से बचने को शासन का ओचित्य स्वीकार करते हैं। इस शाखा का प्रतिनिधि विचारक जेरेमी बेंथम है, जो महिलाओं के मताधिकार का समर्थक है, परंतु लैंगिक असमानता का उसका भी उद्देश्य सीमित दिखाई पड़ता है। बेंथम वास्तव में लोकतंत्र की स्थापना करना चाहता है इसलिए उपयोगितावादी सिद्धांत के अंतर्गत संख्यात्मकता को ज्यादा महत्व देता है। उदारवादी दर्शन की उपयोगितावादी शाखा में संशोधन के साथ ही आधुनिक उदारवादी युग की शुरुआत होती है। इसका प्रमुख दार्शनिक जॉन स्टूअर्ट मिल है जो उपयोगितावादी दर्शन में संख्यात्मकता के स्थान पर गुणात्मकता को जोड़ता है क्योंकि वह व्यक्ति के गुणों को अत्यधिक महत्वपूर्ण मानता है आधुनिक उदारवाद के साथ ही तत्कालीन परिस्थितियों में अत्यधिक बदलाव दिखाई पड़ता है। आधुनिक उदारवादी राज्य का स्वरूप सकारात्मक हो जाता है, जो समाज के हाशिए पर पड़े उन तमाम समूहों की स्वतंत्रता के प्रति संवेदनशील है इसका कारण यह है कि तत्कालीन समाज मं महिलाओं और हाशिये पर गए तमाम समूहों के स्वतंत्रता संघर्ष चरम पर थे जिनमें स्त्रियों का प्रश्न सबसे महत्वपूर्ण था। नारीवादी आंदोलन की सामाजिक राजनीतिक स्वतंत्रता और समानता के अधिकार के संघर्ष के मुद्दे अत्यधिक ज्वलंत मुद्दे वह गए थे जिसे अनदेखा नहीं किया जा सकता था। मिल पर तत्कालीन सामाजिक समस्याओं का अत्यधिक प्रभाव पड़ा और उसने अपने स्वतंत्रता की अवधारणा में स्त्रियों को समान रूप से शामिल किया। मिल की स्वतंत्रता की अवधारणा का स्वरूप सकारात्मक है। आधुनिक उदारवादी राज्य का कल्याणकारी स्वरूप अपनाता है राज्य के इस स्वरूप से उन समूहों की अपेक्षाएं भी जुड़ जाती हैं जो शास्त्रीय उदारवादी राज्य में पीछे छूट गए थे।

जॉन स्टूअर्ट मिल उदारवादी दर्शन में स्त्री प्रश्न पर चर्चा करने वाले पहले विचारक हैं। उन्होंने अपने लेख 'The Subjection on Women' की शुरुआत सामाजिक राजनीतिक लैंगिक असमानता की आलोचना से किया है। स्त्रियों की पराधीनता को मिल दास प्रथा के साथ जोड़कर देखते हैं। उनका मानना है कि आधुनिक युग में उन सभी कानूनों व प्रथाओं पर तार्किक ढंग से विचार किया गया है और जो मानवीय हित में के प्रतिकूल थे। उनको अस्वीकार करके खत्म कर दिया गया है। जैसे–दास प्रथा को लगभग सभी देशों में अस्वीकार कर दिया गया है, परंतु केवल महिलाओं के संदर्भ में स्थिति बिल्कुल विपरीत है। इनकी स्थिति दासों से भी बदतर है। पितृसत्तात्मक व्यवस्था द्वारा जेंडर समानता की समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा उन्हें सामाजिक पराधीनता की स्थिति में रहने को विवश किया जाता है, जिसका प्रभाव उसके जीवन के सभी पक्षों पर पड़ता है। मिल के अनुसार आधुनिक उदारवादी युग में परिस्थितियां परिवर्तित हो गई हैं, इससे उनकी दासता ही एकमात्र सामाजिक वर्जना शेष है जिसे समाप्त हो जाना चाहिए क्योंकि इसका नकारात्मक प्रभाव न केवल स्त्रियों के चारित्रिक निर्माण पर पड़ेगा, बल्कि पुरुषों के व्यक्तित्व विकास भी बाधित होगा।

महिलाओं की प्रकृति व स्वभाव के संदर्भ मे ंमिलने अपने लेख में विस्तृत चर्चा की है। उनका मानना है कि समाज में प्रचलित स्त्री स्वभाव एक कृतिम सामाजिक व्यवस्था का परिणाम है, क्योंकि अब तक उपलब्ध इसके बारे में सारी जानकारी अपूर्ण एवं सत्य ही ज्ञात होती है। किसी भी व्यक्ति के बारे में उसका पूर्ण ज्ञान केवल वह व्यक्ति ही बता सकता है, अन्य लोगों के पास मात्र अपने निजी संबंधों के परिपेक्ष में ही वह ज्ञान हो सकता है तथा वह भी उस व्यक्ति के व्यवहार का एक ही भाग होगा अर्थात महिलाओं के जीवन के बारे में उनके स्वभाव के बारे में जानना और उससे जुड़े अनुभव केवल महिलाएं ही बता सकती हैं अगर अन्य कोई व्यक्ति है दावा करता है तो मैं उसे अस्वीकार करता हूं। अतः महिलाओं का उनके जीवन पर और उनके निर्णय हो पर केवल उनका ही अधिकार होना चाहिए।

विवाह के संदर्भ में मिल की मान्यता यह है कि पारंपरिक परिवार नामक संस्था महिलाओं के शोषण को कानूनी मान्यता प्रदान करता है, क्योंकि कानून सामाजिक संबंधों के आधार पर ही निर्मित किए जाते हैं परंतु आधुनिक युग में महिलाएं विवाह या व्यवसाय में से किसी एक का चुनाव अपनी इच्छा अनुसार करेंगी। यह व्यवस्था सहमति पर आधारित होगा यहां ऐसा लगता है कि मिल सार्वजनिक निजी विभाजन को स्वीकार करते हैं वह महिलाओं को विवाह या व्यवसाय में से किसी एक चुनाव का विकल्प देते हैं। समकालीन नारीवादियों ने मिलकर इन तर्कों की आलोचना की है। उन्होंने तर्क दिया है कि सार्वजनिक–निजी विभाजन ही महिलाओं की निजी जीवन की सीमितता को वैध बनाता है। इन्हीं बंधनों व नियंत्रण से स्त्रियों की स्वतंत्रता व स्वायत्तता नारीवादी चिंतन का उद्देश्य रहा है क्योंकि मिल स्त्रियों की पराधीनता को एक व्यवस्थित दार्शनिक आधार तो प्रदान करते हैं परंतु उनकी स्वतंत्रता की संकल्पना मात्र औपचारिक कोशिश मात्र ही है। मिल उदारवादी दर्शन में नारीवादी चिंतन के समायोजन की उदारवादी असमर्थता को स्पष्टतः प्रदर्शित करते हैं।

समकालीन नारीवाद अपने विषय वस्तु निष्कर्षों के दृष्टिकोण से विविधता से भरा हुआ है। पुरुषों के अधीनता के मुद्दे पर एकजुट दिखाई देती हैं। समकालीन नारीवादी अपने मुख्य दृष्टिकोणों को समानता, विभिन्नता एवं पहचान को समकालीन उदारवादी दर्शन में तर्कों के माध्यम से उसमें समायोजन की संभावनाएं खोजने की प्रयास करती हैं। समकालीन उदारवादी दर्शन लैंगिक असमानता के मुद्दों को स्वीकार करता है। उदारवादी समानता, स्वतंत्रता एवं न्याय की संकल्पना अब लैंगिक असमानता के मुद्दे को अनदेखा करने में असमर्थ है। समकालीन उदारवादी दर्शन की प्रवृत्ति नारीवादी मुद्दों के साथ समावेशी दिखाई पड़ती है।[1] उदारवादी समानता को समकालीन नारीवादी दृष्टिकोण की भेदमूलक और प्रभुत्वमूलक दृष्टिकोण से लैंगिक समानता के कानून की जेंडर तटस्थता के तर्कों को समझने का प्रयास किया गया है, जिससे महिलाओं के साथ किए गए भेदभाव तथा सार्वजनिक क्षेत्र में प्रवेश करने के साथ ही जेंडर के मनमाने प्रयोग के कारण उन्हें बहिष्कृत कर दिया जाता हैं। स्वतंत्रता के संदर्भ में नारीवादियों का तर्क है कि सार्वजनिक निजी विभाजन को उदारवाद में पारंपरिक रूप से स्वीकार किया गया है परंतु यह देखा गया है कि यह विभाजन उदारवाद से पहले से है। उदारवाद में राज्य और समाज का पारंपरिक विभाजन इसको अपने से अलग करता है तथा व्यक्तियों के निजी मामलों के प्रति सचेत दिखाई पड़ता है। यह प्रवृत्ति

व्यक्ति के अधिकारों के प्रति प्रतिबद्ध है, जिसमें महिलाएं भी शामिल है। समकालीन उदारवादी लोकतांत्रिक समाज में न्याय के सिद्धांत को नारीवादी परवाह के न्यायशास्त्र के तक से उसकी निष्पक्षता एवं अमूर्तता पर प्रश्न उठाए गए परंतु उदारवादी न्याय की तार्किकता में जिस प्रकार की अमूर्ता शामिल है यह जरूरी नहीं कि वह असंवेदनशील हो अमूर्त नियम दूसरों की बदलती इच्छाओं के संदर्भ में सुरक्षा भी उपलब्ध कराते हैं। समकालीन उदारवादी सिद्धांतों में यह पाया गया कि पारंपरिक उदारवादी अवधारणाओं की अपेक्षा समकालीन उदारवादी सिद्धांतों की परिधि नारीवादी तर्कों को समाहित करने में सक्षम है।

संदर्भ :

1. Mill J.S. and H.T.Mill (1970), "Essays on Sex Equality",A.Rossi (ed.),University of Chicago Press,Chicago.
2. Jaggar, Alison (1983),'Feminist Politics And Human Nature',Rowman and Allanheld,Totowa,New Jersey.
3. Catherine, Mackinnon (1991),"Reflection on Sex Equality Under the Law",Yale Law Journal,Vol.100.
4. Catherine, Mackinnon (1987),"Feminism Unmodified:Discourses on Life And Law", Harvard University Press,Cambridge, Massachusetts.
5. Carol Pateman (1987), "Feminst Critiques of the Public/Private Dichotomy", in A.Phillips (ed.) 'Feminism and Equality',Blackwell,Oxford.
6. Arruzza, Cinzia, Tithi Bahhattacharya, and Nancy Fraser, (2019), "*Feminism for the A Manifesto"*, London: Verso.
7. Baehr, Amy R., 1996, "Toward a New Feminist Liberalism: Okin, Rawls, and Habermas", *Hypatia*, 11(1): 49–66. Reprinted in *The Philosophy of Rawls: A Collection of Essays* (Volume 3), Henry S. Richardson and Paul J. Weithman (eds.), New York: Garland Publishing.
8. Benhabib, Seyla, (1992), *Situating the Self: Gender, Community and Postmodernism in Contemporary Ethics*, New York: Routledge.
9. Chambers, Clare, (2008), '*Sex, Culture, and Justice: The Limits of Choice'*, University Park: Pennsylvania State University Press.
10. Edmundson, William A., (2017), '*John Rawls: Reticent Socialist'*, New York: Cambridge University Press.
11. Nozick, Robert, (1974), '*Anarchy, State and Utopia'*, New York: Basic Books.
12. Okin , Susan Mollar, (1979),'Women in Western Political Thought', Princeton University Press, Princeton And Oxford.
13. Okin, Susan Mollar, (1989),'Justice Gender And The Family',Basic Books,Inc., Publishers, New York.
14. Frye, Marilyn (1983)'The Politics of Reality: Essays in Feminist Theory", Crossing Road, Trumansburg, New York.
15. Nussbaum, Martha C., (1999), '*Sex and Social Justice'*, New York: Oxford University Press.

***

मार्क्सवाद बनाम डॉ. अम्बेडकर

*बिन्दु वर्मा**
*डॉ. प्रिया कुमारी***

आर्थिक व्यवस्था जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। वह मानव प्राणियों की अनेक क्रियाओं का संचालन करती है, पर उसे ही जीवन की सर्वोपरि स्थिति मान लेना डॉ0 अम्बेडकर जैसे मनीषि के लिए संभव नहीं था। उन्होंने विश्व समुदाय को बहुत पहले ही सावधान कर दिया था कि आर्थिक सुधार की विचारधारा एवं प्रक्रिया कुछ भी हो, उदारीकरण हो या राष्ट्रीयकरण, निजी क्षेत्र हो अथवा सार्वजनिक क्षेत्र, आर्थिक विकास को मानव की गरिमा एवं प्रतिष्ठा से जोड़ा जाना चाहिए। निश्चय ही भारतीय अर्थव्यवस्था का मूल उद्देश्य उन नकारात्मक तत्वों की समाप्ति होना चाहिए, जो आर्थिक विकास एवं प्रगति के समान अवसरों को रोकते हैं। यदि हम ऐसा कर सकने में असफल रहते हैं, तो अमीर–गरीब के बीच खाई अधिक चौड़ी हो जायेगी। फलतः व्यापक निर्धनता का वातावरण उत्पन्न होगा, जो समूचे राष्ट्र के लिए एक विकट समस्या बन जायेगी। इसके लक्षण सम्भवतः दिखाई देने लगे हैं।

डॉ0 अम्बेडकर कॉर्ल मार्क्स द्वारा इतिहास की आर्थिक व्याख्या से पूर्णतः सहमत नहीं थे। मार्क्स ने कहा था कि ''इतिहास आर्थिक शक्तियों का प्रतिफल है।'' डॉ0 अम्बेडकर के अनुसार, मार्क्स के कथन में सत्यता तो है, पर उसका मत पूर्ण सत्य को निरूपित नहीं करता। उन्होंने कहा, ''यह मत बिल्कुल गलत है कि इतिहास के निर्माण में व्यक्ति से इतर शक्तियाँ ही सब कुछ होती हैं और व्यक्ति का उसे बनाने में कोई हाथ नहीं होता है। व्यक्ति से इतर शक्तियाँ एक निर्धारी कारक होती हैं, इससे इन्कार नहीं किया जा सकता। परन्तु यह बात भी स्वीकार की जानी चाहिए कि व्यक्ति से इतर शक्तियों का प्रभाव व्यक्ति पर निर्भर करता है। चकमक हर स्थान पर विद्यमान नहीं हो सकता, परन्तु जहाँ विद्यमान होता है, वहाँ अग्नि उत्पन्न करने के लिए चकमक से चकमक रगड़ने के लिए मनुष्य की आवश्यकता होती है। बीज सर्वत्र नहीं पाये जाते। परन्तु वे जहाँ पाये जाते हैं, वहाँ भी मनुष्य की आवश्यकता पड़ती है। उन्हें बोने के लिए जमीन को कमाना पड़ता है, जमीन को भुरभुरा करना पड़ता है। उसे अनुकूल बनाने के लिए खाद–पानी देना पड़ता है और इस तरह नींव पड़ती है, कृषि की। अनेक ऐसे क्षेत्र हैं जहाँ धातुएँ नहीं पाई जातीं, परन्तु जहाँ पाई जाती हैं वहाँ भी उनसे वे मशीनें तथा उपकरण बनाने के लिए मनुष्य की आवश्यकता पड़ती है, जो कि सभ्यता तथा संस्कृति के आधार स्तंम्भ हैं।''

उपर्युक्त कथन से स्पष्ट है कि डॉ0 अम्बेडकर भौतिक तत्वों को स्वयं में सर्वोपरि नहीं मानते। वह मनुष्य की बुद्धि एवं सामर्थ्य में अधिक विश्वास करते हैं। मनुष्य ही तो सभी प्रकार की शक्तियों का संचालन एवं नियंत्रण करता है, भले ही प्राकृतिक विपदाओं का यदा–कदा वह शिकार होता रहे। फिर भी, जैसा कि डॉ0 आम्बेडकर ने कहा, ''संकट–काल का मुकाबला नये तरीकों की खोज से किया जा सकता है। जब कोई नया मार्ग व तरीका नहीं मिलता तो समाज का पतन हो जाता है। समय संभावित नवीन मार्ग प्रस्तुत कर सकता है। परन्तु सही मार्ग पर चलना समय का काम नहीं है। यह काम मनुष्य का है। अतः मनुष्य इतिहास के निर्माण में एक साधन है और पर्यावरण संबंधी शक्तियाँ, चाहे दैविक हों या सामाजिक, भले ही सर्वप्रथम हों, पर वे अन्तिम चीज नहीं हैं,।'' इस प्रकार डॉ0 अम्बेडकर ने समय और भौतिक परिस्थितियों के प्रबल होने के बावजूद, मनुष्य के महत्व को प्रमुख स्थान दिया।

---

* शोध छात्रा, अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या
* एसोसिएट प्रोफेसर, अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग, डॉ. राम मनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या

यह बात निर्विवाद है कि मार्क्सवाद 'सामाजिक स्थिति' के गहन अध्ययन पर बल देता है और यह निष्कर्ष निकालता है कि जिस मानव समाज में निर्धनता, निरक्षरता, भुखमरी, दरिद्रता और शोषण का वातावरण पाया जाता है, वहाँ के आर्थिक संबंध विकृत होते हैं अर्थात् निजी सम्पत्ति के अधिकार से शोषक वर्ग, मजदूर वर्ग का आर्थिक शोषण एवं सामाजिक दमन करता है। निजी सम्पत्ति का अधिकार समस्त आर्थिक दुःखों का मूल कारण है। मार्क्सवाद के सम्पत्ति सिद्धान्त में यह स्पष्टतः माना गया है कि ''निजी सम्पत्ति के अधिकार का पूर्णतः उन्मूलन'' अनिवार्य है। निजी सम्पत्ति, विशेषकर पूँजी के रूप में, सभी प्रकार के शोषण एवं उत्पीड़न का कारण है। वर्ग–संघर्ष, भेदभाव, निर्धनता आदि उसी के कारण पैदा होते हैं। अतः मार्क्सवाद निजी सम्पत्ति के अधिकार के उन्मूलन को अपनी अर्थव्यवस्था का केन्द्र–बिन्दु मानता है। वह पूँजी, जिसे काम धंधों में लगाकर, श्रमिकों का शोषण किया जाता है, निजी सम्पत्ति कहलाती है। इसको समाप्त करने का एकमात्र उपाय है उत्पादन के समस्त साधनों का राष्ट्रीयकरण कर देना ताकि सभी लोगों तक आर्थिक लाभ पहुँचे। मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था में राज्य द्वारा प्रबंधित बड़े–बड़े कृषि फार्म, संचार व आवागमन के साधनों का राष्ट्रीयकरण, बड़े–बड़े कल–कारखाने और उद्योग–धन्धों पर राज्य का अधिपत्य आदि अनिवार्य है। साथ ही सभी प्राकृतिक संसाधनों का दोहन राज्य के उपक्रमों द्वारा होना चाहिए, न कि निजी संगठनों के माध्यम से। इन सब बातों को श्रमिक वर्ग के हितों और कल्याण की दृष्टि से अनिवार्य माना गया। मार्क्सवाद में पूँजीवादी अर्थव्यवस्था के उन्मूलन पर अत्यधिक बल दिया गया है। संक्षेप में, मार्क्स और उसके अनुयायियों का ध्येय ''किसी न किसी रूप में पूँजीवादी समाज को उखाड़ फेंकना था।''

क्या डॉ0 अम्बेडकर उक्त मार्क्सवादी आर्थिक व्यवस्था से सहमत थे? डॉ0 अम्बेडकर ने इसे पूर्णतः नकारा नहीं, और मार्क्स की इस बात को स्वीकार किया कि 'निजी सम्पत्ति' अनेक दुःखों अथवा शोषण प्रक्रियाओं का कारण है। निजी सम्पत्ति की लालसा ही आदमी को अन्य लोगों के शोषण और उत्पीड़न की ओर ले जाती है। वैसे डॉ0 अम्बेडकर चाहते थे कि स्त्री–पुरूष बुद्ध के सम्यक् आजीविका सिद्धान्त को अपनाएँ, परन्तु वह अतिवादी राष्ट्रीयकरण एवं समाजवादी कठोरता के पक्ष में नहीं थे। यदि कोई स्वेच्छा से अपनी धन–सम्पत्ति का त्याग समाज के हित में करता है, तो इसमें किसी तरह का ऐतराज नहीं है, पर राज्य के भय के कारण अथवा दमनकारी कानून के द्वारा ऐसा किया जाता है, तो यह मानव की गरिमा और व्यक्ति की स्वतन्त्रता पर कुठाराघात होगा। निश्चय ही मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था सामाजिक एवं आर्थिक न्याय पर बल देती है, किन्तु साथ ही वह व्यक्ति की स्वतन्त्रता और गरिमा का हनन करती है। यही अन्तर्विरोध डॉ0 अम्बेडकर को मार्क्सवादी दृष्टिकोण से अलग करता है। वह आर्थिक सुधार तो चाहते थे, पर व्यक्ति की स्वतन्त्रता और जनतांत्रिक अधिकारों की कीमत पर कतई नहीं।

जहाँ तक राष्ट्रीयकरण की नीति का प्रश्न है, डॉ0 अम्बेडकर इसे सर्वत्र लागू करना नहीं चाहते। वह मार्क्सवाद की अतिवादी राष्ट्रीयकरण की प्रक्रिया से सहमत नहीं थे। परन्तु बड़े–बड़े उद्योग–धन्धों अथवा मूल उद्योगों जैसे इस्पात, इंजीनियरिंग, खनन, संचार, परिवहन और अन्य उपकरणों के उत्पादन में राष्ट्रीयकरण की नीति को लागू करना चाहते थे ताकि इन उद्योगों को पूँजीपतियों के संरक्षण से अलग रखा जा सके, क्योंकि पूँजीपति वर्ग एक ओर अधिक मुनाफा कमाता है, तो दूसरी ओर वह मजदूरों का शोषण भी करता है। उनसे अधिक काम लेता है और कम दाम देता है। वैसे डॉ0 अम्बेडकर पूँजीपति वर्ग के विरूद्ध उस प्रकार नहीं थे, जिस प्रकार मार्क्स था। वह पूँजीपतियों को समूल नष्ट करना नहीं चाहते थे, अपितु उन्हें समाज के कमजोर तथा पद्दलित लोगों के हितों की सुरक्षा करने पर अधिक बल देते थे। इसी भावना को वह कृषि के क्षेत्र में प्रभावी बनाना चाहते थे। डॉ0 अम्बेडकर ने चाहा कि सरकार बड़े–बड़े कृषि फार्म स्थापित करे, जिनमें खेतिहर मजदूरों और कृषिहीन श्रमिकों को सहभागी बनाया जाए ताकि बड़े–बड़े जमींदारों का प्रभुत्व समाप्त हो। फिर भी डॉ0 अम्बेडकर निजी उद्यमियों और राष्ट्रीयकृत उद्योगों को प्राथमिकताओं के आधार पर प्रोत्साहित करना चाहते थे।

अंशतः डॉ0 अम्बेडकर ने मार्क्सवादियों की मूल भावना की प्रशंसा की, क्योंकि वे श्रमिक वर्ग के लिए आर्थिक न्याय चाहते थे, उनके हित में राष्ट्रीयकरण और समता पर आधारित समाज का निर्माण भी चाहते थे। परन्तु समस्या पद्धति की है। डॉ0 अम्बेडकर उन विधियों से सहमत नहीं थे, जिन्हें मार्क्सवादी अपनाते हैं। उन्होंने लिखा, ''वह साधन जिसे साम्यवादी, साम्यवाद की स्थापना में अपनाते हैं (इससे मेरा मतलब दुःख की मान्यता और निजी सम्पत्ति के उन्मूलन से है), वह हिंसा तथा विरोध की हिंसा पर

आधारित है। ..... निश्चय ही साम्यवादियों को शीघ्र परिणाम प्राप्त हो जाते हैं, क्योंकि जब वे आप लोगों को समाप्त करने का ढंग अपनाते हैं, तब आप उनका विरोध करने के लिए नहीं रहते।'' यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि डॉ0 अम्बेडकर भगवान् बुद्ध के मध्यम–मार्ग से प्रभावित थे। आदमी के मन को इतना सुधारा जाये कि वह परिवर्तन को स्वतः स्वीकार करके, उसका अनुसरण करे, बाध्यता से नहीं, अपितु आन्तरिक भावना से।

डॉ0 अम्बेडकर ने आगे लिखा, ''दो–तीन ऐसे प्रश्न हैं जिन्हें मैं अपने साम्यवादी मित्रों से पूछता हूँ और जिनका, मैं स्पष्टतः कह दूँ, वे उत्तर देने में समर्थ नहीं हुए हैं, जिसे वे सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद कहते हैं। उसे उन्होंने हिंसा द्वारा स्थापित किया है। वे उन लोगों को जिनके पास सम्पत्ति है, राजनीतिक अधिकारों से वंचित कर देते हैं। वे विधानसभा में अपना प्रतिनिधित्व नहीं कर सकते, उनको मत देने का अधिकार नहीं होता, उन्हें राज्य का द्वितीय श्रेणी का महान् नागरिक रहना पड़ता है, शासित के रूप में जिनका सत्ता में कोई हिस्सा नहीं होता। जब मैं उनसे पूछता हूँ 'क्या आप सहमत हैं कि अधिनायकवाद लोगों पर शासन करने का अच्छा ढंग है?' तब वे कहते हैं, 'नहीं, हम नहीं चाहते, हम अधिनायकवाद पसन्द नहीं करते।' फिर आप इसकी अनुमति क्यों देते हैं? उनका उत्तर है, अन्तरिम काल में अधिनायकवाद रहना चाहिये।'' लेकिन अन्तरिम काल की कोई सीमा नहीं है और सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद स्वतः समाप्त हो जाएगा। ऐसा साम्यवादी मानते हैं।

डॉ0 अम्बेडकर ने उस स्थिति की कल्पना की जब सर्वहारा वर्ग का अधिनायकवाद समाप्त हो जाएगा। क्या फिर किसी प्रकार की सरकार की आवश्यकता नहीं होगी? अथवा क्या अधिनायकवाद के अभाव में अराजकता के फैलने का भय होगा? इन प्रश्नों का उत्तर आसान नहीं है। लेकिन बाबा अम्बेडकर ने भगवान् बुद्ध के धम्म को लेकर, यही प्रश्न पूछा और उत्तर दिया, ''सबसे बड़ी बात जो बुद्ध ने की संसार को यह बतलाना है कि संसार को मनुष्य के मन और समाज के मन के सुधार के सिवाय अन्य किसी से नहीं सुधारा जा सकता है। यदि मन परिवर्तित हो जाता है, यदि मन साम्यवादी व्यवस्था को स्वीकार कर लेता है और उससे प्रेम करता है, और उसे आगे बढ़ाता है, तो वह स्थायी व्यवस्था होगी। उसमें फिर मनुष्य को अनुशासन में रखने के लिए, किसी सैनिक या पुलिस ऑफीसर को रखने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। क्यों? उत्तर है, बुद्ध ने आपकी अन्तरात्मा को स्वतः इतना ऊर्जित बना दिया है कि वह आपको अपने मार्ग पर रखने के लिए एक सन्तरी का कार्य कर रही है। जब मन परिवर्तित हो जाता है तब कोई कठिनाई नहीं रहती और व्यवस्था स्थायी बन जाती है।''

डॉ0 अम्बेडकर ने पाया कि मार्क्सवादी व्यवस्था 'शक्ति' पर आधारित है। यदि रूस में अधिनायकवाद विफल हो जाए तब फिर वहाँ क्या स्थिति होगी? ''जैसा कि मैं सोचता हूँ, राज्य की सम्पत्ति को हड़पने के लिए वहाँ रूसी लोगों में परस्पर रक्तिम लड़ाई होगी। उसका यही परिणाम होगा। क्यों? क्योंकि उन्होंने साम्यवादी व्यवस्था को स्वेच्छा से स्वीकार नहीं किया है। वे उसकी अनुपालना इस भय के कारण कर रहे हैं कि कहीं उन्हें फाँसी पर न लटका दिया जाए। ऐसी किसी व्यवस्था की जड़ नहीं जम पाती और इसलिए मेरे निर्णयानुसार, जब तक साम्यवादी इन प्रश्नों के उत्तर देने में सक्षम नहीं होते, उनकी व्यवस्था का क्या होगा? जब 'शक्ति' का दबाव न रहे तब उसके अनुकरण में कोई लाभ नहीं है। चूँकि मन परिवर्तित नहीं हुआ है, 'शक्ति' की सदैव आवश्यकता रहेगी और वही यह बात है जिसे मैं निष्कर्ष में कहना चाहता हूँ कि महानतम चीजों में से एक जो बुद्धिज्म में पाता हूँ वह यह है कि उसकी व्यवस्था एक जनतांत्रिक व्यवस्था है।''

निस्सन्देह डॉ0 अम्बेडकर मार्क्सवाद की कई बातों से सहमत एवं प्रभावित थे। लेकिन भारतीय परिस्थितियों में, उन्होंने बुद्ध के धम्म को ही उपयोगी समझा। डॉ0 साहेब को बुद्धिज्म एवं मार्क्सिज्म दोनों का मौलिक ज्ञान था और उनका विवेक व्यावहारिक था, न कि भावनात्मक। ''दोनों की तुलना करने के पश्चात्, मैं इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि संसार की सबसे बड़ी समस्या के सन्दर्भ में बुद्ध की सलाह अर्थात् दुःख है और दुःख का अन्त होना चाहिए उत्तम है। बुद्ध की पद्धति सुरक्षित एवं ठोस है।'' उसमें किसी सन्तरी की आवश्यकता नहीं है जो आपको निरन्तर भय दर्शाता रहे। यदि यह सुनिश्चित हो जाए कि बुद्ध का मार्ग शान्त एवं निर्भय है, तो उसके अनुकरण में कोई आशंका नहीं रहेगी, भले ही परिणाम धीरे–धीरे प्राप्त हों। मार्क्सवाद शीघ्र परिणामों पर बल देता है, किन्तु उसमें अनेक प्रकार के खतरे बने रहते हैं जो जीवनोपयोगी नहीं होते। इसलिए डॉ0 अम्बेडकर ने कहा कि ''यदि आप सुनिश्चित हो जाएँ कि वह मार्ग,

जिसे आप से अनुकरण के लिए कहा गया है, धीमा है, हो सकता है एकान्त तथा लम्बे घुमावों सहित हो, किन्तु फिर भी यदि वह आपको अन्ततः सुरक्षित पहुँचाता है, इतने ठोस आधार पर ले जाता है कि वे आदर्श, जिनका आप अनुसरण कर रहे हैं, आपकी सहायता के लिए तत्पर हैं, आपके जीवन को स्थायी रूप में बदल देते हैं तो निष्कर्षतः धीमे मार्ग का अनुकरण करना और एकान्त मार्ग पर दौड़ने तथा लघु पथों से भी कहीं अधिक उत्तम है। लघु–पथ जीवन में सदैव खतरनाक, बहुत असुरक्षित होते हैं।'' इस प्रकार बाबा साहेब ने एक ऐसे मार्ग के अनुसरण पर बल दिया जो सुनिश्चित एवं सुरक्षित हो, भले ही वह दुर्गम तथा दूरस्थ हो। उनका दृष्टिकोण भारतीय सन्दर्भ में बड़ा ही उपयोगी है। यहाँ की जीवनशैली सदैव लघु–पथों की अपेक्षा सुरक्षित एवं शान्तमय रूप में अग्रसर होने की रही है, चाहे उस प्रक्रिया में समय कितना ही समय क्यों न लगे।

डॉ0 अम्बेडकर ने अपनी आर्थिक विचारधारा में नैतिकता एवं धर्म को समुचित स्थान दिया, जिसका अर्थ है कि धर्म आदमी की आर्थिक क्रियाओं का मार्ग निर्देशन करता है, धर्म उसके समस्त व्यवहार को प्रभावित करता है, और धर्म द्वारा ही वह सम्प्रेरित होकर, लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक कल्याण की ओर मुड़ता है। मार्क्सवाद के अनुसार धर्म की कोई रचनात्मक भूमिका नहीं होती, उल्टे धर्म आर्थिक विकृतियाँ पैदा करता है, आदमी को आर्थिक यथार्थता एवं संघर्ष से विमुख करता है, क्योंकि धर्म आदमी को पारलौकिक जगत की खुशहाली की दिलासा देकर, मजदूरों के वर्ग–संघर्ष को कमजोर बनाता है। यही मौलिक मतभेद है, जिसे डॉ0 अम्बेडकर और मार्क्सवाद के बीच देखा जा सकता है। डॉ0 अम्बेडकर ने समस्त अर्थतंत्र को सदाचरण से जोड़ा। चूँकि उनकी बुद्ध के मार्ग में अटूट आस्था थी, इसलिए वह सम्यक् आजीविका के पूर्णतः समर्थक थे। सम्यक् आजीविका बुद्ध के अष्टांग–मार्ग का एक अंग है, जिसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी रोटी–रोजी नैतिक ढंग या सद्प्रयासों से कमानी चाहिए, न कि झूठ, चोरी, हिंसा, डकैती आदि साधनों से, और न ही वह आवश्यकता से अधिक धन–सम्पत्ति का संचय करेगा। यदि आदमी शीलाचरण के प्रति ईमानदार है, तो वह अन्य लोगों का शोषण नहीं करेगा, न ही वह आवश्यकता से अधिक धन सम्पत्ति का संचय करेगा। परन्तु मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था का संचालन पूर्णतः कानून तथा राज्य द्वारा होता है, जहाँ शीलाचरण के लिए कोई स्थान नहीं है। डॉ0 अम्बेडकर भी कानून तथा राज्य का सहारा लेने पर बल देते हैं, किन्तु उससे भी अधिक शीलाचरण पर ताकि कानून तथा राज्य की न्यूनतम आवश्यकता पड़े।

उक्त मौलिक बातों को यदि ध्यान में रखा जाये, तो यह बात भली–भाँति समझ में आ सकती है कि संयुक्त रूस का आर्थिक ढाँचा क्यों ध्वस्त हो गया। यह अचम्भे की घटना है कि जहाँ गत सात दशकों से एक ही पार्टी, एक ही आर्थिक विचारधारा, का निरन्तर शासन रहा हो, जहाँ कानून तथा राज्य द्वारा आर्थिक ढाँचा संचालित रहा हो, और पूँजीवादी व्यवस्था को उखाड़ फेंका गया हो, वहाँ क्यों कर साम्यवादी आर्थिक व्यवस्था असफल हो गई। आज वहाँ आर्थिक समस्याएँ आ खड़ी हुई हैं, जो एक पूँजीवादी देश में होती हैं।

डॉ0 अम्बेडकर की दृष्टि से यह कहा जा सकता है कि वहाँ का आर्थिक तथा राजनीतिक ढाँचा, नैतिकता तथा धर्म पर टिका हुआ नहीं था, बल्कि कानूनी–डण्डे के सहारे चल रहा था। जैसे ही वहाँ का अधिनायकवाद ढीला हुआ, साम्यवादी व्यवस्था ध्वस्त हो गई। शीलाधारित, नैतिकता एवं धर्म पर आधारित, आर्थिक व्यवस्था इस प्रकार नष्ट नहीं होगी, जिस प्रकार रूसी समाज में हुई, भले सम्यक् आजीविका का मार्ग कठिन हो। इसी कारण से डॉ0 अम्बेडकर ने मार्क्सवादी व्यवस्था को पूर्णतः अपनाने पर कभी जोर नहीं दिया। वह आर्थिक स्थायित्व के लिए कानून, नैतिकता एवं धर्म तीनों को आवश्यक मानते थे। आर्थिक व्यवस्था कोई एकल या निरपेक्ष व्यवस्था नहीं है। वह अनेक तत्वों से प्रभावित होती है। मार्क्सवाद तो आर्थिक ढाँचे को ही समाज का मूल आधार मानता है, अन्य सभी चीजें– कानून, शिक्षा, नैतिकता आदि, ऊपरी तत्व हैं, जिनका स्वरूप आर्थिक ढाँचा ही निश्चित करता है। डॉ0 अम्बेडकर ऐसा नहीं मानते, उनकी दृष्टि से समाज का मूल ढाँचा धार्मिक तथा नैतिक होता है, धार्मिक तथा नैतिक सद्गुण अन्य सभी चीजों– कानून, राजनीति, शिक्षा, अर्थ आदि का निर्धारण करते हैं। उनकी इसी मान्यता ने उन्हें मार्क्सवादी आर्थिक ढाँचे की ओर जाने से रोका। वह बुद्ध–मार्ग की ओर आकर्षित हो गए, क्योंकि उसमें सम्यक् आजीविका की बात पाई जाती है, जो एक अर्थ में धर्म तथा नैतिकता का ही अनुसरण है। साम्यवादी व्यवस्था के

ध्वस्त होने के पश्चात, अब रूसी समाज में वैसी ही अर्थव्यवस्था विकसित हो रही है जैसी कि भारत में उद्‌भूत होने लगी है।

डॉ0 अम्बेडकर द्वारा मार्क्सवादी अर्थव्यवस्था की समीक्षा उन मूल मान्यताओं पर आश्रित है, जिन्हें उन्होंने बुद्ध, कबीर तथा महात्मा फूले जैसे मनीषियों से ग्रहण किया। यहाँ उक्त समीक्षा के कुछ निष्कर्ष प्रस्तुत हैं–

1. किसी भी आर्थिक व्यवस्था में यदि आदमी की महत्ता और व्यक्ति की स्वतंत्रता सर्वोपरि मानी जाए, तो वहाँ समुचित आर्थिक विकास की अधिक सम्भावनाएँ बढ़ जाती हैं। साथ ही, आर्थिक समृद्धि के लिए समय एवं परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्तन होना एक सामाजिक एवं राजनीतिक अनिवार्यता है।
2. कमजोर एवं पिछड़े वर्गों की आर्थिक स्थिति सुधारने और आर्थिक शोषण समाप्त करने के लिए कुछ सीमा तक राष्ट्रीयकरण और राज्य के उद्योगों में सहयोगी एवं नियंत्रणकारी होना आवश्यक है ताकि निर्विघ्न पूँजीवाद की बुराईयों से बचा जा सके।
3. मानवीय व्यवस्था में, चाहे वह सामाजिक हो, राजनीतिक या फिर आर्थिक, धर्म का मूल स्थान है, समाज को विकसित करने एवं सुव्यवस्थित रखने में धर्म का अत्यंत महत्वपूर्ण स्थान है, जिसके द्वारा अन्य सारी व्यवस्थाएँ नियमपूर्वक धारण की जाती हों, वह धर्म है, और धर्म शीलाचरण के अलावा अन्य कुछ नहीं है।
4. धन सामाजिक जीवन का एक अनिवार्य अंग है, जिसके साथ समस्त समाज के कल्याण का भाव सन्निहित है। अतः राष्ट्रीय धन का वितरण उदारतापूर्वक अधिक से अधिक नागरिकों के हित के लिए होना चाहिए। सम्यक् आजीविका का आदर्श भी इस दिशा में ले जाने में सक्षम होगा।
5. आर्थिक तथा सामाजिक परिवर्तन के लिए, चाहे वह कितना ही अनिवार्य हो, हिंसा तथा हत्या की पद्धति, कभी हितकर नहीं होगी, मानव मन को परिवर्तित करना ही श्रेयस्कर है ताकि आर्थिक एवं अन्य प्रकार का स्थायित्व बना रहे। सांविधानिक पद्धतियों का अनुसरण करना एक सभ्य तथा आधुनिक समाज की पहचान है।
6. भारतीय समाज एवं राष्ट्र को आर्थिक दृष्टि से सशक्त एवं समृद्ध बनाने के लिए विशुद्ध घरेलू जीवन, धंधे व व्यापार में ईमानदारी, नैतिकता तथा लोकहित के उच्च स्तर, सादा जीवन, साहस, सच्चाई तथा निर्णय–प्रक्रियाओं में तर्क एवं उदारता का निश्चित पुट, जिसमें चरित्र और बौद्धिक प्रतिभा का समान योगदान हो, अनिवार्य है।

संदर्भ :

1. बाबा साहेब डॉ0 अम्बेडकर, सम्पूर्ण वाङ्मय, खण्ड 1, भारत सरकार प्रकाशन, नई दिल्ली, 1993, पृष्ठ–62 से 67
2. कम्युनिस्ट मेनिफेस्टो, फॉरेन लैंग्वेजेज पब्लिशिंग हाउस, मास्को, 1957
4. ट्रेवर लिंग : बुद्ध, मार्क्स एण्ड गॉड, टेम्पल स्मिथ, लंदन, 1968, पृष्ठ–168
5. डॉ0 डी0आर0 जाटव : डॉ0 अम्बेडकर और मार्क्सवाद, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1993
6. डॉ0 बी0आर0 अम्बेडकर : 'बुद्धिज्म एण्ड कम्युनिज्म', इण्टरनेशनल कांफ्रेंस, काठमाण्डू (नेपाल) में दिया गया व्याख्यान, दिनाँक 20 नवम्बर, 1956 ('डॉ0 अम्बेडकर एवं मार्क्सवाद' में उद्धृत)

***

''समकालीन भारतीय राष्ट्रवाद के समक्ष नई चुनौतियाँ''

*डॉ. कृष्णा नन्द चतुर्वेदी**

समकालीन भारतीय राष्ट्रवाद की जड़ें भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन से जुड़ी हुई हैं। जो अपने विस्तृत स्वरूप में समाज से जुड़ी थी। प्रकार हर भारतीय के चरित्र एवं निष्ठा का मूल परम्परागत समाज की देन था। स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही भाारत का अभ्युदय सम्प्रभु राज्य के रूप में हुआ जिसका कलेवर (स्वरूप) राष्ट्रीय चरित्र का था। नागरिक के रूप में समाज के सदस्यों ने नवीन मूल्यों को आत्मसात करने का प्रयास किया एवं शासन की प्रक्रिया का अभिन्न अंग बने। एकता का सूत्रपात हो चुका था जिसके धागों को मजबूती दिया जाना शेष था। संविधान निर्माण द्वारा उस प्रक्रिया को पूर्ण मान लिया गया। विकास एवं परिर्वतन की बयार ने भारतीय समाज को एक नवीन दिशा की तरफ उन्मुख किया। विभिन्न भाषाओं को संविधान में स्थान देने, नागरिकता की व्यवस्था करने, समानता एवं स्वतंत्रता का प्रावधान देने, नगरपालिका की व्यवस्था एवं भेदभाव रहित सार्वभौमिक वयस्क मताधिकार ने भारत के राष्ट्रीय चरित्र को आगे बढ़ाया। भारत के इस नवीन चरित्र के समक्ष जल्दी ही चुनौतियाँ उभरने लगीं।

भारत में **पहली समस्या स्थिरता एवं जनसमर्थन प्राप्ति की उभरी।** अस्थिरता का विशेष सन्दर्भ अकांक्षाओं की पूर्ति न होने से पैदा हुयी है। परिवर्तन का विरोध या उसकी प्रतिक्रिया से नहीं।[1] भारतीय सरकारों द्वारा राज्य के नीति निर्देशक तत्वों के क्रियान्वयन में देरी से भारतीय समाज के बीच राष्ट्रवाद को परिपुष्ट होने में देर लगी। नागरिक के रूप में व्यक्तिगत स्तर पर मूल अधिकार एवं स्वतंत्रता जैसी मूल्यगत अवस्थापनाएं प्राप्त हुयी, किन्तु जिस प्रकार का सामाजिक–सामूहिक समर्थन का परिवेश राष्ट्रवाद को पोषित करता, वैसा नहीं हुआ। DPSP के क्रियान्वयन से (अनु0 39, 40, 45) एक नवीन सामाजिक, राजनीतिक समाज की दृढ़ नींव पड़ सकती थी किन्तु ऐसा न हो सका या देरी से हो रहा है। परिणामतः परिवार एवं गांव जैसी संस्थाओं का उचित नवीन परिष्कार नहीं हो पाया।

भारतीय समाज एवं उसके राष्ट्रवाद में 'एकता में अनेकता' का सुसंगत विलय नहीं हुआ। इसके साथ ही भारत में ऐसे सामाजिक, धार्मिक आन्दोलन हुए जिससे एक विशिष्ट भारतीय परम्परा का निर्माण हुआ। जिसने फूट एवं पृथक्कता की अन्तर्निहित प्रवृत्तियों पर अंकुश रखा। भारतीय राजनीतिक व्यवस्था की संजीवनी सामाजिक रंग रोगन से सुशोभित थी।[2] अब यह सामाजिक रंग–बदरंग होता जा रहा है। (राज्य द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों की असमानता के कारण)। राष्ट्र के सामने यह समस्या है कि, विखंडित होती जा रही सामाजिक संस्थाओं (परिवार, ग्राम, धार्मिक मान्यताएं, सामाजिक नियंत्रण) की जगह कौन ले? नई सामाजिक संस्थाएं निर्मित नहीं हो रही। नये अवसर या नयी मान्यताओं और मूल्यों की स्थापना नहीं की गयी।

भारत में राष्ट्र के राजनीतिक (स्टेट हुड/नेशन हुड) विकास का स्वरूप यह रहा कि यह प्राचीन देश अपनी पुरानी परम्परा और विविधता को बनाये रखने का प्रबल पक्षधर रहा, साथ ही आधुनिक युग की सबसे अच्छी बातों को ग्रहण करने की कोशिश करता रहा।[3] लोकतंत्र के आदर्श को ग्रहण किया और राष्ट्रीय स्तर से लेकर स्थानीय स्तर तक संस्थाओं को विकसित किया। (संविधान का 73वां एवं 74वां संशोधन)। इसके समेकित परिणामों में एक यह था कि स्थानीय नवीन राजनैतिक नेतृत्व एवं सम्भ्रान्तता का अभ्युदय हुआ जिसने राजनीति को हथियार के रूप में इस्तेमाल किया जिससे राष्ट्रवादी मूल्यों का क्षरण प्रारम्भ हुआ।

भारत जो 'राज्यों का संघ' के रूप में उदित था, ने अपने राजनीतिक लक्ष्य के रूप में ''सबका भला'' (सर्वे भवनु सुखिनः) निर्धारित किया। सरकार के स्तर पर यह एक सशक्त राजनीतिक प्रयास या किन्तु भारतीय समाज अभी भी गैर राजनीतिक स्वरूप में था जो सरकारों के साथ कदम–दर कदम

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीतिशास्त्र, स्वामी सहजानन्द स्नातकोत्तर महाविद्यालय, गाजीपुर-२३३००१

सुसंगत नहीं हो पाया। उदाहरण के लिए (धार्मिक अस्पृश्यता, महिला सम्मान, श्रमजीवन का सम्मान, तीन तलाक, स्त्री शिक्षा, दहेज उन्मूलन आदि–आदि)। भारत में अभी भी भिन्न–भिन्न समाजों का बने रहना और विशेषकर उनके बीच घनघोर आर्थिक विषमता का पाया जाना, राष्ट्रवाद के समक्ष चुनौती से कम नहीं है।

यद्यपि भारतीय समाज का गैर राजनीतिक स्वरूप पश्चिमी राष्ट्रों के **'नेशन हुड'** की अवधारणा की विपरीत प्रतिक्रियाओं (विखण्डन एवं पुर्नसंयोजन) को संतुलित करने में सहायक रहा। उदाहरणार्थ–पश्चिमी राष्ट्रों में समाज का उर्ध्वाधर आर्थिक विभाजन (जो तीक्ष्ण भी था) ने 'नेशन हुड' की अवधारणा को हिलाकर रख दिया। पूर्व सोवियत संघ इसका ज्वलन्त उदाहरण है। यूरोप में यूरोपीय संघ का निर्मित होना इस तथ्य को पुष्ट करता है।

भारतीय राष्ट्रवाद का एक अनूठा स्वरूप उभरा। यहां हर काम में अनिश्चय, असमंजस और जरूरत से ज्यादा समझौते की प्रवृत्ति दिखाई पड़ती है।[4] योजना एवं गैर योजनागत कार्यों का बंटवारा, जनसंख्या नियंत्रण, नागरिकता, संशोधन, आरक्षण की स्थिति आदि इनके उदाहरण हैं जिनमें हम संघीय स्वरूप एवं राष्ट्रीय निष्ठा के प्रति मिल रही चुनौती को समझ सकते हैं। राजनैतिक जगत में यह 'लटकाने, अटकाने एवं भटकाने' के प्रयास के रूप में चर्चित रहा। सामाजिक और सांस्कृतिक परम्परा जनता में अभाव और गरीबी से उत्पन्न हाने वाले क्षोभ और लोकतन्त्र से उत्पन्न होने वाली आकांक्षाओं के विस्फोट को कितने समय तक विलंम्बित कर सकेगी।

समकालीन भारतीय समाज का इस प्रकार के परिवेश में तथ्यात्मक विश्लेषण ऐसा तथ्यगत निष्कर्ष प्रस्तुत कर सकेगा जो समरूप समाजों पर लागू होगा। दृश्यगत समरूपताओं को सैद्धान्तिक आधार दिया जा सकता है। यहां यह ध्यातब्य होगा कि, प्राचीन वैश्विक समाज चाहे मध्ययुगीन हो, अथवा 15वीं से 17वीं शताब्दी का हो, भारत से बिल्कुल पृथक था। वहां राज्य की सर्वोच्चता (सम्प्रभुता) मजबूत हुयी तो परिणाम गृहयुद्ध (1642–1649) भी रहे। फ्रांसीसी राज्य क्रान्ति हुयी। वोल्शेविक क्रांति ने नवीन प्रकार की राज्य अवधारणा स्थापित की। आज भी समकालीन भारतीय समाज अन्य वैश्विक समाजों से पृथक विशेषता रखता है। भारत सहित दुनिया के समस्त राज्यों ने'राष्ट्रवाद' को अपनाया एवं सामाजिक सरोकार तथा समस्याओं को हल करने की मंशा सरकारी स्तर पर प्रकट की। किन्तु उनका यह प्रयास पूर्णतः सफल नहीं दीख रहा। भारत की अत्यधिक आबादी ने इस प्रयास को और जटिल बना दिया है।[5] सरकारों द्वारा समस्याओं का चयन तथा न्यायस के लिए जवाबदेह संस्थाओं पर बढ़ते बोझ ने 'राष्ट्र की भावना' को कमजोर किया है। राजनीतिक नेतृत्व द्वारा 'वोट के प्रति उन्मुख दृष्टिकोण' ने इसमें 'घी डालने का काम' किया है। मध्यस्थ संस्थायें अधिकारविहीन एवं अप्रभावी हो गयी है और समाज का हर सदस्य जीवन निर्वाह में लगातार उदासीन होता गया है।[6]

भारतीय राष्ट्रवाद की राजनीतिक संवेदना एवं प्रक्रिया एक संवैधानिक ढांचे की स्थापना से शुरु होती है। जो राजनीतिक दलों के नेताओं के प्रयत्नों से समाज के विभिन्न स्तरों में प्रवेश करती है।[7] संवेदनाओं या समर्थन को सत्ता तक लाने के लिए जिन नये गठबन्धनों की व्यूह रचना की गयी वह परिवर्तन का माध्यम तो बनी किन्तु नयी शक्तियों की जन्मदाता भी बन गयी।[8] जिनको आगे बढ़ाने या निदान प्रस्तुत करने के लिए समाज के पास वैकल्पिक ढांचा नहीं था। परिणामतः 'भारत को खंडित करने के नारे' तक गूँजने लगे।

राष्ट्रवाद एक रचनात्मक शक्ति है।[9] ''राष्ट्रवाद'' पद–बन्ध का स्वरुप उसके आह्वान के आधार पर निर्मित होता रहा है। राजनीतिक मूल्य जो जीवन निर्वाह हेतु आवश्यक होते हैं, को गौरवपूर्ण बनाने में ''राष्ट्रवाद'' एक यन्त्र की भॉति प्रयुक्त होता है। भारतीय परिदृश्य में यह परिलक्षित भी होता है। किन्तु समकालीन समाज पूर्व में विभिन्न शासकीय प्रस्तरों से गुजरा है यथा मुगल शासन, हिन्दू शासन, ब्रिटिश शासन। किसी एक प्रस्तर का गौरवगान कभी–कभी दूसरे को नीचा दिखाने या अपमानित करने जैसा प्रतीत होने लगता है।[10] अतः गौरवगान का यह राष्ट्रवादी अभियान भारतीय (विविध/अनेक) समाज को उर्ध्वाधर बॉटता हुआ दिखाया जाने लगा है। राजनीतिक व्यवहार का यह प्रच्छन्न रुप इस समकालीन समाज में हमारे लिए चुनौती से कम नहीं है।

संदर्भ :

1. कोठारी रजनी : ''भारत में राजनीति'' ओरियन्ट लांगमैन लिमिटेड, नई दिल्ली।
2. कश्यप, सुभाष (सम्पादक) : भारतीय राजनीति और राजनीतिक दल, समस्यायें और सम्भावनाएँ', संविधानिक तथा संसदीय अध्ययन संस्थान, नई दिल्ली।
3. जोन्स मारिस : ''भारतीय शासन एवं राजनीति'' (हिन्दी रुपान्तर) छाबड़ा के0 हरिन्दर, सुरजीत पब्लिकेशन्स, जालन्धर, 1970
4. सईद, एस0एम0 : ''भारतीय राजनीतिक व्यवस्था'' सुलभ प्रकाशन, लखनऊ, 1997
5. सिंह, वीरेन्द्र प्रकाश (सम्पादित) : ''कान्ट्री पर्सपेसक्टिव इन क्लास एण्ड सोसायटी'', कामनवेल्थ पब्लिशर्स, नई दिल्ली, 1992
6. चतुर्वेदी के0एन0 : ''भारत में संघीय स्तर पर गठबन्धन सरकारें'', क्लासिकल पब्लिशिंग कम्पनी, न्यू दिल्ली, 2009
7. समाचार पत्र – पायनियर, लखनऊ।
8. समाचार पत्र – दैनिक जागरण, वाराणसी।
9. देखें सन्दर्भ – 1
10. देखें सन्दर्भ – 4

सारांश

भारतीय राष्ट्रवाद की राजनीतिक संवेदना एवं प्रक्रिया एक संवैधानिक ढांचे की स्थापना से शुरु होती है। जो राजनीतिक दलों के नेताओं के प्रयत्नों से समाज के विभिन्न स्तरों में प्रवेश करती है। संवेदनाओं या समर्थन को सत्ता तक लाने के लिए जिन नये गठबन्धनों की व्यूह रचना की गयी वह परिवर्तन का माध्यम तो बनी किन्तु नयी शक्तियों की जन्मदाता भी बन गयी। जिनको आगे बढ़ाने या निदान प्रस्तुत करने के लिए समाज के पास वैकल्पिक ढांचा नहीं था। परिणामतः 'भारत को खंडित करने के नारे' तक गूँजने लगे।

राष्ट्रवाद एक रचनात्मक शक्ति है। ''राष्ट्रवाद'' पद–बन्ध का स्वरुप उसके आह्वान के आधार पर निर्मित होता रहा है। राजनीतिक मूल्य जो जीवन निर्वाह हेतु आवश्यक होते हैं, को गौरवपूर्ण बनाने में ''राष्ट्रवाद'' एक यन्त्र की भाँति प्रयुक्त होता है। भारतीय परिदृश्य में यह परिलक्षित भी होता है। किन्तु समकालीन समाज पूर्व में विभिन्न शासकीय प्रस्तरों से गुजरा है यथा मुगल शासन, हिन्दू शासन, ब्रिटिश शासन। किसी एक प्रस्तर का गौरवगान कभी–कभी दूसरे को नीचा दिखाने या अपमानित करने जैसा प्रतीत होने लगता है। अतः गौरवगान का यह राष्ट्रवादी अभियान भारतीय (विविध/अनेक) समाज को उर्ध्वाधर बाँटता हुआ दिखाया जाने लगा है। राजनीतिक व्यवहार का यह प्रच्छन्न रुप इस समकालीन समाज में हमारे लिए चुनौती से कम नहीं है।

***

मौर्य साम्राज्य का पतन

*अंकित सिंह**

साम्राज्यों का उत्थान और पतन एक ऐतिहासिक सत्य है, लेकिन यह भी एक महत्वपूर्ण प्रश्न है कि क्या साम्राज्यों के पतन के कारणों का ज्ञान होने के बावजूद भी उनके पतन को कभी रोका जा सकता है. इसका अर्थ यह हुआ कि साम्राज्यों के अंत के कारणों का विश्लेषण इतिहासकार के अपनी दृष्टिकोण पर निर्भर करता है. फिर भी साम्राज्य के पतन के कारणों को जानने वस्तुनिष्ठ प्रयास तो होना ही चाहिए. मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए अशोक की नीतियों, साम्राज्य की केंद्रीकृत नौकरशाही पर आधारित व्यवस्था, प्रांतीय गवर्नरों की निरंकुशता, साम्राज्य का अखिल भारतीय स्वरूप और अत्यधिक विस्तार, अयोग्य और दुर्बल उत्तराधिकारी, आर्थिक या राजकोषीय संकट या फिर क्षेत्रीयता की भावना को माना जाता है.

1. उसकी ब्राह्मण–विरोधी नीतियाँ और मौर्य वंश के प्रति ब्राह्मणों की प्रतिक्रिया.
2. उसका युद्धविमुख होना और मौर्य सैन्य शक्ति का ह्रास
3. उसके समय में जिस प्रकार राज्य के व्यय में वृद्धि हुई उससे राजकोषीय संकट उत्पन्न होना.

तार्किक विश्लेषण के आधार पर अशोक को इन तीनो आरोपों से मुक्त किया जा सकता है.

अशोक ने अपने धम्म का प्रतिपादन करते हुए भी स्पष्टतः ब्राह्मणों के सम्मान का भी आग्रह किया था और धम्म यात्राओं के समय ब्राह्मणों को मुक्त–हस्त होकर उपहार भी प्रदान किये गये. जहाँ तक पशुबलि पर प्रतिबंध का प्रश्न है, यह प्रतिबंध मात्र जंगली पशु–पक्षियों के संदर्भ में था जिनकी सूची **दीर्घ स्तम्भ लेख पाँच** में दी गई है. वैसे पशुओं का वध, जोकि समाज की भोजन की आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए किया जाता था, प्रतिबंधित नही था

जिस प्रकार उसने दंड–समता और व्यवहार–समता जैसे सिद्धांतो का क्रियान्वयन करके विधि के शासन की स्थापना करने का प्रयास किया, उससे ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों के हनन के कारण उनमें स्वाभाविक ही आक्रोश उत्पन्न हुआ होगा. इस संदर्भ में यह प्रश्न महत्वपूर्ण है कि क्या ब्राह्मणों के विशेषाधिकारों ने उन्हें विशेषाधिकारों का दुरूपयोग करने वाला वर्ग बना दिया था? ऐसी संभावना को स्वीकार नही किया जा सकता. इसलिए क्या ब्राह्मण वर्ग उसके दंड–समता और व्यवहार–समता की नीति से प्रभावित हुआ? क्या ब्राह्मण प्रतिक्रियावादी थे? अशोक के समय ब्राह्मणों द्वारा विरोध/विद्रोह का साक्ष्य नहीं मिलता है. यद्यपि अंतिम मौर्य सम्राट् वृहद्रथ का वध ब्राह्मण सेनापति पुष्यमित्र शुंग ने किया. यह एक सेनापति के द्वारा सत्ता के अपहरण का उदाहरण है. साथ ही यह भी एक सच्चाई है कि यदि मौर्य ब्राह्मण विरोधी थे तो एक ब्राह्मण मौर्य सम्राट् का सेनापति कैसे बना. इससे स्पष्टतः प्रमाणित होता है कि मौर्य शासकों ने किसी प्रकार के भेदभाव की नीति का पालन नहीं किया और ब्राह्मणों की नियुक्ति उच्च पदों पर होती रही. यह तथ्य ध्यातव्य है कि ब्राह्मण शुंग वंश के अंतिम शासक देवभूति का वध करने वाला कण्व वंश का संस्थापक मंत्री वसुदेव भी एक ब्राह्मण था.

अशोक ने युद्ध की नीति परित्याग कर धम्म का प्रतिपादन करते हुए शान्ति–प्रिय शासक होने का परिचय अवश्य दिया. परन्तु वह प्रत्येक स्थिति में शांतिवादी नीति का वरण नहीं कर सकता था. उसने तक्षशिला के विद्रोह के दमन के लिए कुणाल के सेनापतित्व में विशाल सैन्य बल अभियान के लिए भेजा और उसने स्पष्टतः तेरहवें दीर्घ शिलालेख में उत्तर–पश्चिम की विद्रोही जनजातियों का दमन करने की स्पष्ट चेतावनी दी. शांतिप्रियता के कारण कोई भी सम्राट् साम्राज्य के विघटन को स्वीकार नहीं कर सकता. यही कारण है कि अशोक मौर्य साम्राज्य को अक्षुण्ण बनाए रखने के लिए,

*यू०जी०सी०–नेट, चकिया खखरेरू, फतेहपुर

सैन्य बल का प्रयोग कर सकता था. कलिंगयुद्ध–जनित के संताप और क्षोभ ने उसे न तो कलिंग को स्वतंत्र करने की प्रेरणा प्रदान की और न ही कलिंग के युद्ध–बंदियों को मुक्त करने की प्रेरणा.

अशोक अपने अभिलेखों में अपने द्वारा किये गये सभी श्रेष्ठ कार्यों और नीतियों का बार–बार उल्लेख करता है. लेकिन किसी भी अभिलेख में मौर्य सैन्य संख्या को कम करने का उल्लेख नहीं करता अर्थात् शान्ति काल में भी अशोक ने मौर्य सैन्य संगठन को सततता प्रदान की और सैन्य संख्या में कमी नहीं की. उसने मृत्युदंड का भी अंत नहीं किया. अपनी शांतिप्रियता के कारण अपने यर्थाथवादिता और वस्तुनिष्ठता का परित्याग नहीं करके एक सम्राट् के रूप में सदैव अपने कर्तव्य के प्रति जागरूकता का परिचय दिया.

अशोक के समय में भौतिक संस्कृति के संचारण की नीति, धम्म यात्राओं, मौर्यकला को प्रोत्साहन, हजारों स्तूपों के निर्माण, तृतीय बौद्ध संगीति के आयोजन, विदेशों में धम्म शिष्टमंडल प्रेषित किये जाने, उसकी उपहार प्रवृत्ति, सार्वजनिक कार्यों के सम्पन्न किये जाने, शांतिकाल में भी एक विशाल नौकरतंत्र और सैन्य शक्ति बनाए रखने के कारण निःसंदेह राज्य के व्यय में वृद्धि हुई होगी. लेकिन क्या व्यय में अतिशय वृद्धि से अशोक को किसी आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा? कलिंग युद्ध–बंदियों द्वारा बिहार की खानों में कार्य करने, जंगलों को साफ करने और अशोक द्वारा सघन जनसंख्या वाले क्षेत्रों से शूद्रों का नए उपनिवेशों में पुनःस्थापना द्वारा कृषि को प्रोत्साहन देने, कलिंग के संसाधनों के उपलब्ध होने, मध्य और पश्चिम एशिया या यवन राजाओं के साथ सांस्कृतिक–व्यापारिक सम्बन्ध स्थापित होने, मगध के बाह्य क्षेत्रों में भौतिक संसाधनों के विकास, लौह तकनीक के अधिकाधिक प्रयोग और सक्षम राजस्व व्यवस्था के कारण निःसंदेह राज्य की आय मे वृद्ध हुई होगी.

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि आय और व्यय में संतुलन बना रहा होगा. लेकिन किसी अल्पकालिक राजकोषीय संकट को नहीं नकारा जा सकता है. यह तथ्य ध्यातव्य है कि मौर्य काल के बाद पूरे भारत में आर्थिक समृद्धि, अनेकानेक नगरों का विकास, श्रेणी व्यवस्था का सुदृढ़ीकरण, रोमन स्वर्ण का भारत की ओर प्रवाह, सिल्क मार्ग पर अनेक राष्ट्रीयता वाले लोगों की सक्रियता, अनेक स्थलों पर कला के क्षेत्र में विकास की स्थिति यह सिद्ध करती है कि मौर्य काल में कोई आर्थिक संकट की स्थिति नहीं थी. मौर्य युग में ही मौर्योत्तर युगीन आर्थिक आधारशिला रखी गई.

क्या वास्तव मे मौर्य साम्राज्य की व्यवस्था अत्यधिक केंद्रीकृत थी? एक अत्यधिक विस्तृत साम्राज्य में उन्नत यातायात और संचार संसाधनों के अभाव में राजाज्ञाओं को सुदूर प्रान्तो/प्रदेशों में शीघ्रता के साथ प्रेषित करना असंभव होता है तो क्या ऐसी परिस्थिति में मौर्य साम्राज्य में एक अत्यधिक केंद्रीकृत व्यवस्था की स्थापना संभव थी? संभवतः यही कारण था कि अशोक ने अपने उच्च पदाधिकारी रज्जुकों को स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार प्रदान किया और इस प्रकार मौर्य साम्राज्य के अन्दर विकेंद्रीकरण की महत्ता को स्वीकार किया. यह भी महत्वपूर्ण तथ्य है कि प्रान्तों के गवर्नर कई बार निरंकुश और दमनकारी प्रवृत्ति अपनाते थे. इसी कारण तक्षशिला में दो बार विद्रोह हुए. इससे यह प्रमाणित होता है कि केंद्र का उनके ऊपर समग्र नियंत्रण नही था. गवर्नरों को भी स्वतंत्र निर्णय लेने का अधिकार था. अशोक ने धम्मनीति का प्रतिपादन करके राज्याधिकारियों को कर्तव्य संहिता प्रदान की और धम्म के सिद्धांतों को भारत के अनेकानेक मार्गों, सीमाओं और क्षेत्रों में शिलाखंडों तथा स्तम्भों पर अंकित करके राज्य पदाधिकारियों की निरंकुशता को नियंत्रित करने का प्रयास किया. अशोक के समय में मौर्य साम्राज्य नितांत सुरक्षित था. किसी विदेशी आक्रान्ता ने भारत पर आक्रमण का साहस नही किया. अशोक की मृत्यु के लगभग चार दशकों तक कोई भी बाह्य आक्रमणकारी भारत पर आक्रमण नही कर सका. यही अशोक की उपलब्धि थी. इसलिए अशोक को. मौर्य साम्राज्य के पतन के लिए उत्तरदायी ठहराना उचित नही होगा.

विशाल साम्राज्यों की अक्षुण्णता, एकता, आधुनिक प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अभाव में शासक की व्यक्तिगत योग्यता पर निर्भर करती थी. अशोक के बाद उसक सभी उत्तराधिकारी दुर्बल और अक्षम थे. साम्राज्य के विभाजन से मौर्य साम्राज्य के संसाधनों का विभाजन हुआ. इसका लाभ उठाकर मौर्य साम्राज्य के अनेक प्रांत स्वतंत्र हो गए. ऐसी परिस्थितियों में ही यूनानी आक्रमण आरम्भ हो गया. फिर

भी यह नहीं भूलना चाहिए कि पुष्यमित्र शुंग काल में यूनानी आक्रमणकारियों को शुंग सेना ने कई बार पराजित किया और उसने दो अश्वमेघ यज्ञ भी किये.

मौर्य साम्राज्य के पतन के कारण अत्यंत ही गूढ़ थे. अशोक जैसे महान् सम्राटों के प्रयासों के बावजूद सामाजिक/राष्ट्रीय एकीकरण संभव नहीं हो सका था. भारत के विभिन्न क्षेत्रों में विभिन्न भाषाई आधारों पर ऐसी संस्कृतियो का उदय हो रहा था जो अपने विकास के अलग–अलग धरातल पर थी. ऐसी परिस्थिति में राष्ट्रीय भावना का विकास संभव नही था. मगध के यत्थान का प्रमुख कारण था मगध की भौतिक संस्कृति का तीव्र और उन्नत विकास. मौर्य सम्राटों ने जिन क्षेत्रों पर विजय प्राप्त किया वे सभी क्षेत्र मगध के अपेक्षा अविकसित थे. यही कारण है कि कलिंग को छोड़कर मौर्य सेनाओं का सक्षम विरोध नही हुआ. लेकिन चन्द्रगुप्त मौर्य से लेकर अशोक के शासन के अंत होने तक लगभग 90 वर्ष के अंतराल में मगध की भौतिक संस्कृति का गैर–मगधीय क्षेत्रों में विकास हुआ. यहाँ तक कि सुदूर दक्षिण का जनजातीय समाज भी सभ्यता के महत्वूपर्ण चरण में प्रवेश करने लगा. भारत के मध्य एशिय, पश्चिमी एशिया, खाड़ी प्रदेश और भूमध्य सागर क्षेत्र से व्यापारिक सम्पर्क स्थापित हुए और नगरीकरण की प्रक्रिया और अधिक तीव्र हो गई. मगध के बाहर ऐसे अविकसित क्षेत्र, जिन्होनें मौर्यों की सत्ता को स्वीकार कर लिया था, अब मगध के समान ही भौतिक संस्कृति, लौह–तकनीक उपकरण के प्रयोग, पर्याप्त कृष जनित अतिरेक की उपलब्धि के बाद इतने सक्षम होने लगे कि वे किसी भी वंश के शासक के द्वारा उनके क्षेत्रों पर अधिकार के लिए किये गये प्रयास को विफल कर सकते थे. उत्तर–पश्चिम में भारतीय–यूनानियों का शासन स्थापित हुआ. तो कलिंग में नए राजवंशों की स्थापना हुई और खारवेल जैसे शासक का उदय हुआ.

निष्कर्ष

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि मौर्य शासको ने जिस भौतिक संस्कृति को समस्त भारत में सिंचित करने का प्रयास किया, उसी के फलस्वरूप सत्ता पर से मगध का एकाधिकार भी समाप्त हो गया.

***

ब्रिटिश सम्राट के शासन काल में भारतीय शिक्षा का विकास

*दीपिका**

मुस्लिम शासकों के बाद अंग्रेजी शासकों ने भारत पर लगभग 200 वर्ष तक शासन किया । इस लंबी अवधि में उन्होंनें अन्य विभिन्न आर्थिक, सामाजिक तथा राजनैतिक प्रणालियों की भाँति एक शैक्षिक प्रणाली का भी आविर्भाव तथा विकास किया जिसे भारतीय शिक्षा के इतिहास में प्रायः अंग्रेजी तकनीकी शिक्षा प्रणाली के नाम से संबोधित किया जाता है। इस शिक्षा प्रणाली का भारत तथा भारतवासियों पर गहरा प्रभाव पड़ा । अतः इसके पूर्व कि हम स्वतंत्र भारत में शिक्षा में हुई प्रगति का अध्ययन करें, हमारे लिये यह आवश्यक हो जाता है कि हम अंग्रेजी शासनकाल की शिक्षा का सिंहावलोकन कर लें । अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली के प्रभाव एवं उपयोगिता के संबंध में दो मत हैं । प्रथम मत अंग्रेजी शासकों एवं विद्वानों का है जिनके अनुसार अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली भारत के लिए एक ऐसा अनुपम वरदान है जो भारतीय शिक्षा के इतिहास में बेजोड़ है। द्वितीय मत भारतीय शिक्षा विशेषज्ञों एवं नेताओं का है जिनके अनुसार अंग्रेजी शिक्षा प्रणाली भारत के लिए सर्वथा अनुपयुक्त, अहितकर तथा अराष्ट्रीय है ।

कुंजिका : ब्रिटिश शासन भारतीय शिक्षा स्थिति एवं शैक्षणिक विकास ।

परिचयः जिस समय अंग्रेजों का भारत में आगमन हुआ था, भारत अपनी शिक्षा और विद्वता के लिए विश्व प्रसिद्ध था तथा अनके यूरोपीय देशों से आगे भी था। परन्तु अंधविश्वास और सामाजिक मान्यताओं के कारण शिक्षा व्यवस्था में निश्चित रूप से पिछड़ा हुआ था। प्रारम्भ में अंग्रेजों ने भारत में शिक्षा व्यवस्था में कोई अभिरूचि नहीं दिखाई। यद्यपि वारने हेस्टिंग्स ने 1781 ई0 में कलकत्ता में एक मदरसे की स्थापना1 की और सर जोनाथन डंकन में बनारस में एक संस्कृत कॉलेज की स्थापना की। शिक्षा क्षेत्र में महत्वपूर्ण योगदान एशियाई सोसायटी द्वारा दिया गया जिसकी स्थापना 1784 ई0 में सर विलियम जोन्स ने कलकत्ता में की थी। शिक्षा प्रसार में इसका उल्लखेनीय योगदान रहा। अंग्रेजी अधिकारियो द्वारा समय–समय पर अनके आयोग व अधिनियम लाकर भारतीय शिक्षा को गति प्रदान करने की कोशिश की गई।

अंग्रेजी शिक्षा चूँकि विदेशियों ने अपने स्वार्थ के लिए नियोजित की थी । अतः वह हमारे देश के वातावरण के प्रतिकूल सिद्ध हुई । अंग्रेजों ने कभी इस बात का प्रयास नहीं किया कि वे जिस शिक्षा का भारत में प्रचलन कर रहे हैं, वह यहाँ की सामाजिक, आर्थिक, नैतिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों के अनुकूल हो । ऐसी परिस्थिति में अंग्रेजी शिक्षा जो इंगलैण्ड के आदर्शों पर आधारित थी, भारत के लिए कैसे लाभप्रद हो सकती थी । इस तथ्य को सामने रखते हुए श्री परांजपे ने लिखा है, ''यह एक विदेशी पौधा था जो भारत की भूमि में उचित प्रकार से पल्लवित नहीं हो सकता था । अतः इसका अनियंत्रित रूप से विकास हुआ ।''

अति प्राचीनकाल से भारत अपनी प्राचीन संस्कृति एवं सभ्यता के लिए प्रसिद्ध रहा है। सदैव से भारतीय राष्ट्रीय जीवन एवं चरित्र की अपनी विशिष्ट विशेषताएँ रही हैं । अंग्रेजी ने इन सबको व्यर्थ ठहराकर पश्चात्य संस्कृति एवं सभ्यता को भारत पर लादने की बलात् चेष्टा की । इसके लिए उन्होंने अंग्रेजी को शिक्षा का माध्यम बनाया । उन्होंने अंग्रेजी शिक्षा का प्रसार कर भारत के लोगों में ही एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग तैयार कर दिया जो रंग और रूप में तो भारतीय था किन्तु विचारों, व्यवहारों तथा वेश भूषा में अंग्रेज था । इस प्रकार अंग्रेजी शिक्षा ने भारतीय राष्ट्रीय जीवन एवं चरित्र को दुर्बल कर राष्ट्रीय विशेषताओं को विनाश करने की चेष्टा

* शोध छात्रा, इतिहास, मगध विश्वविद्यालय, बोधगाय

की । श्री परांजपे ने ठीक ही लिखा है, ''अंग्रेजी शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य भारत की राष्ट्रीय विशेषताओं का विनाश करना और यहाँ के निवासियों को भारतीय होते हुए भी पसन्द, व्यवहार एवं विचारों में अंग्रेज बनाना था ।''

सन् 1835 में लार्ड मैकाले ने भारत में सर्वप्रथम शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा को बनाकर भारत के लोगों का बड़ा अनहित किया । श्री परांजपे ने ठीक ही लिखा है, ''शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी भाषा बना देने से भारतीय भाषाओं एवं भारतीय मस्तिष्क का विकास अवरुद्ध हो गया ।'' इसी प्रकार गाँधीजी ने अंग्रेजी भाषा के माध्यम के दुष्परिणामों पर प्रकाश डालते हुए लिखा है, ''विदेशी माध्यम ने राष्ट्र की शक्ति को क्षीण कर दिया है। इसने व्यक्तियों की आयु कम कर दी है, इसने उनको जनसाधारण से पृथक् कर दिया है इसने शिक्षा को अनावश्यक रूप से महँगा बना दिया है ।''

19वीं शताब्दी के प्रारंभ में संपूर्ण भारत में देशी शिक्षा संस्थाओं का जाल बिछा हुआ था, जो सुलभ तथा प्राचीन परंपराओं पर आधारित शिक्षा प्रदान करती थीं और जिससे जन . साधारण की शिक्षा की माँग की पूर्ति हो जाती थी । मुनरो एलिफिस्टन आदि अंग्रेज शासकों ने इन शिक्षण संस्थाओं के पुनरुत्थान की सिफारिश की किन्तु ब्रिटिश सरकार ने इनकी ओर कोई ध्यान न दिया । सरकार द्वारा संरक्षण तथा प्रोत्साहन प्राप्त न होने पर ये शिक्षण संस्थाएँ धीरे . धीरे अपनी श्वांस लेने लगीं । अंग्रेजों ने शिक्षण संस्थाओं के स्थान पर अंग्रेजी स्कूलों को बढ़ावा दिया जिसके कारण देशी शिक्षा संस्थाओं की महत्व या उपयोगिता घटने लगी और इनका पूर्ण विनाश हो गया।

भारत में जन साधारण की शिक्षा के लिए अंग्रेजी शासकों ने अधोगामी निस्पंदन सिद्धांत को अपनाया जिसके अनुसार जन साधारण की शिक्षा की अवहेलना कर अपना ध्यान केवल उच्च वर्ग की शिक्षा पर केन्द्रित किया । इस नीति को अपनाने का प्रथम कारण था कि ब्रिटिश सरकार उच्च वर्ग के थोड़े से लोगों को अंग्रेजी शिक्षा तथा पद प्रदान कर उन्हें ब्रिटिश सरकार को सुदृढ़ रखने के लिए राजभक्त बनाना चाहती थी । द्वितीय कारण यह था कि सरकार थोड़े से लोगों की शिक्षा व्यवस्था कर शिक्षा पर कम से कम धन खर्च करना चाहती थी । इसके परिणामस्वरूप देश में शिक्षा की प्रगति अति मंद गति से हुई । लगभग 200 वर्ष के ब्रिटिश शासनकाल में केवल 15 प्रतिशत भारतीय शिक्षित किये जा सके ।

अंग्रेजों ने दो शताब्दी तक भारत में शिक्षा के प्रसार के लिए अधिक प्रयास किये, किन्तु राजनैतिक स्वार्थों के कारण शिक्षा का कोई सुनिश्चित एवं स्थिर उद्देश्य निर्धारित न कर सके । उदाहरण के लिए 1813 के आज्ञा पत्र में भारतीय विद्वानों को प्रोत्साहन प्रदान करना था । किन्तु 1884 के वुड के शिक्षा घोषणा पत्र में, ''भारत में शिक्षा का उद्देश्य न केवल भारतीय लोगों का बौद्धिक नैतिक स्तर ऊँचा करना था बल्कि उसके साथ ऐसे व्यक्तियों को भी उत्पन्न करना था जो ब्रिटिश साम्राज्य को सुदृढ़ बना सके तथा जिन्हें विश्वास के साथ राजपदों पर नियुक्त किया जा सके ।'' इसी प्रकार सदैव जब भी कोई आयोग नियुक्त किया गया । शिक्षा के उद्देश्य में कुछ न कुछ परिवर्तन होते रहे । इसका मुख्य कारण यह था कि अंग्रेजों का उद्देश्य अपने स्थानों की पूर्ति करना था न कि भारतीयों में शिक्षा का प्रचार ।

शिक्षा के उद्देश्यों के समान ब्रिटिशकाल में भारतीयों के लिए अंग्रेजी शिक्षा को कोई सुनिश्चित न बना सके । जब भी कोई नया अंग्रेज शासक भारत का शासन सँभालता था, तब वह अपने शासनकाल में एक नयी शिक्षा योजना बनवाता था । इस प्रकार शासन के परिवर्तन होने के साथ .साथ शिक्षा योजना में भी परिवर्तन होता रहता था । इस प्रकार के परिवर्तन के कारण भारत में शिक्षा की प्रगति उपयुक्त रीति से न हो सकी । भारतीय शिक्षा के ब्रिटिशकाल

इतिहास में सन् 1944 की सार्जेण्ट योजना ही प्रथम एवं अंतिम शिक्षा योजना थी जिसे राष्ट्रीय शिक्षा योजना कहा जा सकता है, किन्तु यह योजना भी कागज पर ही लिखी रही । सन् 1947 में स्वतंत्रता मिलने के साथ .साथ ब्रिटिश शिक्षा प्रणाली दफन कर दी गयी ।

मैकाले का स्मरण–पत्र

- लॉर्ड मैकाले वर्ष 1834 में भारत आया तथा उसे गवर्नर जनरल की कार्यकारी परिषद के विधि सदस्य के तौर पर नियुक्त किया गया था। उसकी नियुक्ति सार्वजनिक शिक्षा समिति के अध्यक्ष पद पर कर दी गई जिसका कार्य प्राच्यवादी तथा पाश्चात्यवादी विवाद पर मध्यस्थता करना था।
- वर्ष 1835 में लॉर्ड मैकाले ने अपना प्रसिद्ध स्मरण–पत्र गवर्नर जनरल की परिषद के समक्ष प्रस्तुत किया जिसे लॉर्ड विलियम बैंटिक ने स्वीकार करते हुए अंग्रेजी शिक्षा अधिनियम, 1835 पारित किया।

जेम्स थॉमसन के प्रयास (1843–53)

- ब्रिटिश भारत के पश्चिमोत्तर प्रांत के लेफ्टिनेंट गवर्नर जेम्स थॉमसन ने स्थानीय भाषा में ग्रामीण शिक्षा के विकास हेतु एक व्यापक योजना लागू की।
- इसके तहत मुख्य रूप से प्रायोगिक विषयों जैसे– क्षेत्रमिति, कृषि विज्ञान आदि पढ़ाया जाता था।
- जेम्स थॉमसन के प्रयासों का मुख्य उद्देश्य नए स्थापित हुए राजस्व तथा लोक निर्माण विभाग हेतु कर्मचारियों की आवश्यकता को पूरा करना था।

वुड्स डिस्पैच, 1854

- चार्ल्स वुड ईस्ट इंडिया कंपनी के बोर्ड ऑफ कंट्रोल के अध्यक्ष थे। भारत में शिक्षा व्यवस्था में सुधार हेतु उन्होंने एक विस्तृत योजना तैयार की जिसे तत्कालीन गवर्नर जनरल लॉर्ड डलहौजी द्वारा लागू किया गया।
- इसके तहत प्रावधान किया गया कि जनसामान्य तक शिक्षा के प्रसार की जिम्मेदारी भारत सरकार की होगी। इसके माध्यम से अधोगामी निस्पंदन के सिद्धांत का विरोध किया गया।
- इसने देश में विद्यमान शिक्षा पद्धति को सुव्यवस्थित करते हुए प्राथमिक शिक्षा का माध्यम क्षेत्रीय भाषा को, माध्यमिक शिक्षा हेतु एंग्लो–वर्नाकुलर (अर्द्ध–अंग्रेजी) भाषा तथा उच्च शिक्षा हेतु अंग्रेजी को माध्यम बनाया।
- इसने पहली बार महिला शिक्षा हेतु प्रयास किया।
- इसके द्वारा व्यावसायिक शिक्षा तथा शिक्षकों के प्रशिक्षण हेतु प्रावधान किये गए।
- इसके द्वारा यह निर्धारित किया गया कि सरकारी संस्थानों में दी जाने वाली शिक्षा धर्म–निरपेक्ष हो।
- इसके तहत निजी विद्यालयों को प्रोत्साहन देने हेतु अनुदान का प्रावधान भी किया गया।
- इसके तहत भारत के सभी राज्यों में शिक्षा विभाग की स्थापना का निर्देश दिया गया।
- इस अधिनियम के परिणामस्वरूप देश के तीनों प्रेसीडेंसियों (बंगाल, मद्रास तथा बॉम्बे) में एक–एक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया।

हंटर आयोग, 1882–83

- हालाँकि वुड्स डिस्पैच ने देश के उच्च शिक्षा के लिये प्रयास किये लेकिन प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा के विकास पर कोई विशेष ध्यान नहीं दिया गया।
- प्रत्येक राज्य में शिक्षा विभाग की स्थापना से प्राथमिक तथा माध्यमिक शिक्षा की जिम्मेदारी भी राज्यों पर आ गई जिसके लिये उनके पास संसाधनों की कमी थी।
- वर्ष 1882 में सरकार ने डब्लूडब्लू हंटर की अध्यक्षता में एक आयोग का गठन किया जिसका कार्य वुड्स डिस्पैच के बाद देश में शिक्षा के क्षेत्र में हुई प्रगति का मूल्यांकन करना था।
- इसके माध्यम से तत्कालीन समय में महिला शिक्षा में विद्यमान अवसंरचनात्मक कमियों को उजागर किया गया तथा उसकी भरपाई हेतु व्यापक प्रयास के सुझाव प्रस्तुत किये गए।
- हंटर आयोग की सिफारिशों के लागू होने के बाद अगले दो दशक तक देश में शिक्षा का उल्लेखनीय विकास हुआ तथा पंजाब विश्वविद्यालय (1882) और इलाहाबाद विश्वविद्यालय (1887) की स्थापना हुई।

उद्देष्य

प्रारम्भ मे ंब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी का मुख्य उद्देश्य भारत का आर्थिक शोषण करके अधिक से अधिक मुनाफा कमाना था। जिसके कारण उन्होने लम्बे समय तक भारत की परम्परागत सांस्कृतिक और सामाजिक पद्धतियो ंमें हस्तक्षेप नहीं किया। यूरोपीयो ंके आगमन के समय भारत शिक्षा की दृष्टि से अनेक औपनिवेशिक देशों से आगे था परन्तु शिक्षा व्यवस्था मे ंनिश्चित रूप से पिछड़ा हुआ था। कुछ साहसी और परोपकारी अंग्रेजी अधिकारियों ने शिक्षा के क्षेत्र में सुधार हेतू प्रयत्न किए और कुछ भारतीय समाज सेवकों के सहयोग से अनके स्कूल और कॉलेज खोले गए जिनके कारण वर्ण व्यवस्था पर आधारित परम्परागत शिक्षा प्रणाली ने धीरे–धीरे आधुनिक शिक्षा व्यवस्था का रूप ले लिया। परन्तु शिक्षा का वास्तविक विकास भारत की स्वतन्त्रता उपरान्त ही हो पाया।

निष्कर्षः यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि भारत में सरकार ने 19वीं शताब्दी में अनिवार्य शिक्षा के सिद्धान्त को मुख्यतः इसलिए स्वीकार नहीं किया कि सरकार और जनता के बीच तादात्म्य नहीं था और अनिवार्यता न होने के कारण प्राथमिक शिक्षा की प्रगति असंतोषजनक रही। इस काल में प्राथमिक शिक्षा की प्रगति धीमी होने का दूसरा कारण इसे स्थानीय निकायों के नियंत्रण में अंतरित कर देना था। भारत में 1884 में प्राथमिक शिक्षा को स्थानीय निकायों के नियंत्रण में अंतरित किए जाने के लिए इंगलैंड के 1870 और 1876 के प्रारंभिक शिक्षा अधिनियमों से प्रेरणा मिली थी। गैर .सरकारी संस्थाओं ने, चाहे वे मिशनरियों की थी या भारतीयों की, माध्यमिक और महाविद्यालयी शिक्षा के अंतरण की माँग की थी परन्तु उनमें से कोई भी प्राथमिक विद्यालयों के संचालन का भार वहन करने के लिए तैयार नहीं था। अतः यदि सरकार प्राथमिक शिक्षा में सीधे उद्यम से हटना चाहती थी तो ऐसा करने का एकमात्र तरीका प्राथमिक शिक्षा को अर्धसरकारी निकायों को सौंप देना था। साथ ही इस काल में अंग्रेजी शासन के प्रति भारतीयों में असंतोश फैला था और स्वशासन की माँग धीरे .धीरे बढ़ती जा रही थी। इस माँग को भारतीयों को कुछ उत्तरदायित्व सौंप कर किसी प्रकार का स्वशासन प्रदान करके पूरा करना था।

संदर्भ :

1 . नुरूल्ला एण्ड नायक, हिस्ट्री ऑफ एजुकेशन इन इण्डिया डयूरिंग ब्रिटिश पीरियड, पृ0 . 358
2 . मित्तल, ए. के. भारत का राजनीतिक एवं सांस्कृतिक इतिहास, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2000, पृ0 .59
3 . एच0 जी0 रालिसंन, दि ब्रिटिश एचीवमेंट इन इण्डिया, पृ0 .241
4 . विपिन चंद्र, भारत का स्वतंत्र संघर्ष, हिन्दी माध्यम, कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, 1990, पृ0 .29
5 . बी0डी0 बसु, ईस्ट इंडिया कंपनी के नियम के तहत् भारत में शिक्षा का इतिहास, दिल्ली, पृ0 .24
6 . भारतीय प्रबंधों के अधीन 1,341 विद्यालय, 3,36,837 छात्र, थे जबकि अन्य प्रबंधो के अधीन 757 विद्यालय और 2,86,877 छात्र थे।
7. डा0 श्रीमती सत्या राय, भारत में उपनिवेशदव हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, पृ0 .84

***

अश्वघोष के महाकाव्यों में वर्णित योग की वर्तमान समय में प्रासंगिकता

*डॉ० स्मृति**

योग भारतीय चिन्तन परम्परा की अमूल्य निधि है। योग मनुष्य की आध्यात्मिक शक्ति का स्वरूप है। योग शब्द युज् धातु के बाद करण और भाववाच्य में घञ् प्रत्यय लगाने से बनता है। आचार्य पाणिनी के गणपाठ में तीन युज् धातु है। दिवादि गण के युज् धातु का अर्थ समाधि है। रुधादि में युज् धातु का अर्थ संयोग है तो चुरादिगण में युज् धातु का अर्थ संयमन है। यहाँ मैने योग धातु का अर्थ मुख्यतः संयोग और समाधि लिया है। योग का अर्थ जोड़, मिलन अथवा संयोग है। आत्मा का परमात्मा से, प्रकृति का पुरुष से, प्राण का अपान से, शिव का शक्ति से, व्यक्ति का ब्रह्माण्ड और मोक्ष से संयोग ही योग है। श्रीमद्भागवत्गीता में कहा गया है कि–'' योगः कर्मसु कौशलम्'' अर्थात् कर्मों में कुशलता ही योग है। यहाँ ज्ञान योग, कर्मयोग और भक्ति योग का वर्णन है। पातञ्जल योग दर्शन के अनुसार –''योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः''[1] अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध ही योग है।

बौद्ध दर्शन में अष्टाङ्गिक मार्ग को योग की संज्ञा दी जा सकती है क्योंकि ये मार्ग ही मनुष्य को चित्त वृत्ति निरोध की अवस्था तक पहुँचाते हैं। यह अष्टाङ्गिक मार्ग गीता के ज्ञानयोग और भक्तियोग का समन्वय है। यह मार्ग आठ प्रक्रियाओं का योग है जो मनुष्य को चित्तवृत्तिनिरोध तथा मोक्ष की अवस्था तक पहुँचाता है। महाकवि अश्वघोष ने अपने महाकाव्यों बुद्धचरितम् और सौन्दरनन्द में इस अष्टाङ्योग का वर्णन किया है। उन्होने बुद्धचरितम् में लिखा है कि–

''स एव मध्यमों मार्गस्त्वाष्टाङ्गिक इति स्मृतः।''[2]

भोगवाद तथा तपवाद की ऐकान्तिक अतियों का अतिक्रमण करते हुए सम्यक् सम्बुद्ध ने आर्य अष्टाङ्गिक मार्ग रूपी योग का स्थापन किया है।

आज यह सम्पूर्ण संसार तनाव ग्रस्त है जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति द्वेष, वैमनस्य और अनाचार की अग्नि में जल रहा है। इस मशीनी युग में मनुष्य यंत्रवत् होता जा रहा है अर्थात् संवेदनाहीन, भावनाशून्य और हृदयहीन होता जा रहा है ऐसी स्थिति में बुद्ध द्वारा उपदेशित अष्टाङ्ग योग मानव में आत्मीयता की भावना उत्पन्न करता है। यह मनुष्य में 'वसुधैव कुटुम्बकम्'' की भावना जागृत करता है। मनुष्य स्वभावतः शान्तिप्रिय प्राणी है। वह समाज में शान्ति की स्थापना करने के लिए प्रयत्न शील रहता है और यह शान्ति सम्यक् दृष्टि, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वाचा, सम्यक् कर्मान्त, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति और सम्यक् समाधि से ही स्थापित की जा सकती है।

1. **सम्यक् दृष्टि**– सम्यक् दृष्टि का अभिप्राय कुशल तथा अकुशल के यथार्थ ज्ञान से है। सम्यक् दृष्टि को सूर्य के समान मार्ग का प्रकाशक माना गया है।[3] आज का मानव यह भी नहीं सोच पाता है कि उसके लिए तथा समाज के लिए क्या कुशल है और क्या अकुशल है। सम्यक् दृष्टि के द्वारा वह कुशल और अकुशल का यथार्थ ज्ञान प्राप्त कर पाता है। अंगुत्तर निकाय में वर्णित है कि ''मिथ्या दृष्टि वाला विपरीत दर्शी होता है वह बहुत जनों को सद्धर्म की ओर से हटाकर असद्धर्म की ओर लगा देता है। मिथ्या दृष्टि सर्वाधिक दोषपूर्ण है। मिथ्यात्वी में अनुत्पन्न अकुशल धर्म पैदा होते है। मिथ्या दृष्टि से युक्त प्राणी शरीर छूटने पर मरने के बाद अपाय दुर्गति विशिष्ट पतन को प्राप्त है तथा नरक लोक में उत्पन्न होता है।''[4] इस प्रकार मिथ्या दृष्टि जनमानस को धर्मच्युत कर नरकगामी बना देती है। अश्वघोष ने बुद्धचरितम् में लिखा है कि–

मिथ्यादृष्टिर्निबन्धनाय सम्यग् दृष्टिर्विमुक्तये।
आत्मानं मन्यमानेन न सत्यमुपलभ्यते।।[5]

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग,पी० जी० कॉलेज गाजीपुर, उ०प्र०

मिथ्यादृष्टि सांसारिक मोह माया के बन्धनों में उलझाती है व सम्यक् दृष्टि मुक्त कराती है। भगवान के अनुसार मानव मात्र की दृष्टि व्यापक होनी चाहिए, उसमें सम्यकता होनी चाहिए। अतः केवल दृष्टि मात्र नहीं बल्कि दृष्टि की सम्यकता आवश्यक है। दृष्टि में तर्क की आवश्यकता है। दृष्टियों में तर्क के द्वारा ही मानव धर्म के सत्य और असत्य स्वरूप का ग्रहण कर पाएगा। ''दृष्टियों में तर्क लगाकर सत्य और असत्य इन दो धर्मो को बतलाते है।''[6]

मानव जब सम्यक् दृष्टि के द्वारा धर्म के यथार्थ स्वरूप का ज्ञान प्राप्त करता है तो उसके जीवन में मानवीय गुणों के पुष्प स्वयं ही खिल जाते है और वह इन पुष्पों की सुगन्ध से सम्पूर्ण मानव समाज को व्याप्त कर देता है। पुष्प अपनी सुगन्धि सर्वत्र बिखेरता है, वृक्ष का फल तथा नदी का जल सबकों समान रुप से तृप्त करते है। मनुष्य जब इन सब पर सम्यक् दृष्टि डालता है तो अन्दर भी छिपा हुआ मानवीय गुणों का बीज अंकुरित हो जाता है और वह इनकी सुगन्धि सर्वत्र बिखेरनें लगता है।

2. सम्यक् संकल्प – सम्यक् संकल्प का अर्थ है कि–दृढ़ निश्चय। जिस निर्वाण मार्ग को सम्यक् दृष्टि प्रकाशित करती है उस मार्ग पर सम्यक् संकल्प रुपी रथ तीव्रता से दौड़ता है । सम्यक् दृष्टि से कुशल तथा अकुशल के ज्ञान के पश्चात् कुशल कर्मों को करने का दृढ़ निश्चय लेना चाहिए। ललितविस्तर में कहा गया है– ''सम्यक् संकल्प धर्मालोक मुख है अर्थात् धर्म का प्रकाश द्वार है, उसके कारण सब कल्प (कल्पनाएँ) विकल्प (सन्देहमिश्रित विकल्पनाएँ) तथा परिकल्प (चारो ओर से टिकी हुई कल्पनाएँ) नष्ट हो जाया करती है।''[7] प्रतिस्पर्धा से युक्त वर्तमान समय में मनुष्य दृढ़ निश्चय नहीं ले पाता है। आज मानव मात्र का चित्त स्थिर नहीं है। सम्यक् संकल्प के दो अंग है– शुभ संकल्पों को ग्रहण करना तथा अशुभ संकल्पों का त्याग । अशुभ संकल्पों के त्याग के सम्बन्ध में तथागत कहते हैं–

मनः कर्मस्वविक्षेपमपि चाभ्यस्तुमर्हसि।
न त्वेवाकुशलं सौम्या वितर्कयितुमर्हसि ।।[8],,

मानसिक चिन्तनों में चित्त चंचल न हो, इसका भी अभ्यास करना चाहिए तथा अकुशल कर्मों का तो चिन्तन भी नही करना चाहिए।'

इस प्रकार सम्यक् संकल्प से मनुष्य अकुशल कर्मों को नहीं करता है और उसका चित्त स्थिर रहता है। यह हमें शिक्षा देता है कि यथार्थ ज्ञान मात्र से लाभ नहीं है जब तक उस ज्ञान के अनुसार जीवन व्यतीत करनें का दृढ़ निश्चय न लिया जाय। सम्यक् संकल्प द्वारा अकुशल कर्मों के चिन्तन से मुक्त व्यक्ति विषयों तथा कामनाओं से रहित होकर इन्द्रियों पर विजय प्राप्त करके तथा हिंसा और द्वेष से रहित होकर सभी प्रकार की चिन्ताओं से मुक्त रहता है तथा उषाकाल में प्रवाहित होनें वाली शीतल मन्द तथा सुगन्धित वायु के स्पर्श से झूम उठता है, पक्षियों के कलरव में उसे मधुर संगीत की धुन सुनायी पड़नें लगती है तथा नदी के शान्त जल में पड़ने वाली दिनकर के किरणों की लालिमा की शोभा से भी उसका मन मयूर आह्लादित हो जाता है।

3. सम्यक् वाचा – सम्यक् वाचा से अभिप्राय है कि मधुर, प्रिय और सत्य वाणी। सम्यक् दृष्टि से यथार्थ ज्ञान के पश्चात् , दृढ़ संकल्प तत्पश्चात् मधुर सत्य और प्रिय वाणी। आज तनाव से युक्त मानव की वाणी कटु होती जा रही है परिणमस्वरुप अनेक विवाद उत्पन्न होते है। अतः वर्तमान में सम्यक् वाणी आवश्यक है। आवश्यकसत्य भाषण से मन और शरीर का व्यापार परिशुद्ध रहता है अतएव जिन वचनों से दूसरें प्राणी को कष्ट हो उसका परित्याग करना आवश्यक है। तथागत ने नन्द को उपदेश देते हुए कहा है कि –

''तुम ऐसा करों जिससें तुम्हारें शरीर और वचन का कर्म पवित्र होकर स्पष्ट, प्रत्यक्ष, सुरक्षित और दोष रहित बन जाय–

प्रयोगः काय वचसोः शुद्धो भवति ते यथा ।
उत्तानो विवृतो गुप्तऽनवच्छिद्रस्तथा कुरु ।।[9]

विमल आशय वाला यह मार्ग सम्यक् वाणी में ही विश्राम करता है। जिन वचनों से दूसरों के हृदय को चोट पहुँचें, जो वचन कटु हो, दूसरों की निन्दा हो, व्यर्थ हो उन्हें कभी नहीं कहना चाहिए । वैर की शान्ति कटुवचनों से नहीं प्रयुक्त अवैर से ही होती है–

न ही वरेन वेरानि सम्मन्तीध कुदाचनं।
अवेरेन च सम्मन्ति एस धम्मों सनातनं।।[10]

इस प्रकार सम्यक् वाणी में ही मन को विश्राम मिलता है क्योंकि सम्यक्वाणी से मन शान्त तथा निर्मल होता है। शान्ति उत्पन्न करना ही वाणी का प्रधान लक्ष्य है जिस पद से इस उद्देश्य की सिद्धि नहीं होती उसका प्रयोग नितान्त अयुक्त है–

सहस्समपि ते वाचा अनत्थपदसंहिता।
एकं अत्थपदं सेय्यो यं सुत्वा उपसम्मति।।[11]

अतः विश्व शान्ति के लिए वाणी सम्यक् होनी चाहिए अर्थात् सत्य, मधुरता, ओज आदि गुणों से युक्त होनी चाहिए।

4. सम्यक् कर्मान्त – निन्दनीय कर्मों का त्याग ही सम्यक् कर्मान्त है। सम्यक् दृष्टि से यथार्थ ज्ञान के पश्चात् दृढ़ संकल्प से युक्त होकर मधुर सत्य और प्रिय बोलने वाले मानव को सम्यक् कर्मान्त के मार्ग पर अग्रसर होता है। हिंसा, अस्तेय और इन्द्रियनिग्रह का अभाव ये सभी निन्दनीय कर्म है। इनके विपरीत अहिंसा, अस्तेय आदि ही पुण्य कर्म हैं अतः पुण्य कर्मों का सम्पादन ही सम्यक् कर्मान्त है। सम्यक् कर्म बौद्ध धर्म का आधार है। आज का मानव अपने तुच्छ स्वार्थ की पूर्ति के लिए अनेक ऐसे कार्य करता है जो मानव मात्र के लिए घृणित है। अतः बुद्ध ने समाज के लिए सम्यक् कर्मान्त का उपदेश दिया है।

''सम्यक् कर्मान्त धर्मालोक मुख है अर्थात् धर्म का प्रकाश द्वार है, उसके कारण अकर्मता (कर्मबन्धन का अभाव) तथा अविपाकता (फलबन्धन का अभाव) होता है।''[12] विश्व की योजना में कर्म की ही प्रधानता है । कर्म ही प्राणियों का उद्धारक है। 'सत्कर्म प्राणी का मित्र पाप कर्म शत्रु कहा जाता है अतः जगत् का कर्म ज्ञान रहस्य सहित प्राप्त करिये।'

मित्रं लोकस्य सत्कर्म शत्रुश्चान्यत् प्रचक्ष्यते।
जगतः कर्मणो ज्ञानं सरहस्यंच चिन्तय।।[13]

सम्यक् कर्मान्त के मार्ग गमन करने वाले व्यक्ति का स्वभाव ही बन जाता है लोक कल्याण के लिए कार्य करना फिर तो वह दीन दुःखियों के लिए समर्पित हो जाता है। मन्त्र जाप की अपेक्षा दीन दुःखियों को दान देना श्रेयस्कर है। कौशल देश के सुदत्त नामक राजा से बुद्ध कहते है कि ''हे राजन् उत्तम दान करने से लोक में उज्ज्वल यश तथा परलोक में उत्तम फल मिलता है। ऐसा समझकर दुःखियों को धन दो'' ।

लोके यशः परत्रापि फलमुत्तमदानतः।
भवतीति परिज्ञाय धनं दीनाय दीयताम्।।[14]

व्रत पूजा तीर्थाटन की अपेक्षा सत्कर्म में संलग्न होना ही कल्याण का समीचीन मार्ग है। तीर्थो में स्नान करने से कोई पवित्र नहीं होता । यदि जल में स्नान करने से शुद्धि होती तो मछलियों की मुक्ति हो जाती यह तो केवल मन को संतुष्टि प्रदान करता है केवल स्नान करने से कोई पवित्र नहीं होता ।

तथैव ये कर्मविशुद्धहेतोः स्पृश्यन्त्यपस्तीर्थमिति प्रवृत्ता ।
तवापि तोषो हृदि केवलोऽयं न पावयिष्यन्ति हि पापमापः।।[15]

अतः सत्कर्म ही तीर्थ का सार है न कि जल । जल तो जल ही है। उससें पाप निवृत्ति नहीं हो सकती है।

'योगःकर्मसु कौशलम्' – कर्मों में कुशलता ही योग है। कर्मों के फल अवश्यम्भावी है इसलिए केवल दैव के अधीन आलस्य में पड़े लोग निम्नगामी होते हैं। कर्म किए बिना इह लोक में अथवा

परलोक में कोई फल भोग नहीं मिलता और जन्म मृत्यु का विनाश भी नहीं होता है। अतः तुम सत्कर्म करने वाले बनों।''

इहामुत्र फलं नास्ति कृतेन कर्मणा बिना।
न च जन्मविनाशः स्यात्तस्मात्सत्कर्मवान् भव।।[16]

इस प्रकार मानव के कर्म ऐसे होने चाहिए जिनसे आत्महित तथा समाजहित हो सके ।

5. सम्यक् आजीविका– जीविका निर्वाह के लिए उचित मार्ग का अनुसरण तथा निषिद्ध मार्ग का त्याग ही सम्यगाजीविका है। वर्तमान में आर्थिक रूप से पीड़ित मानव धर्म तथा अधर्मका चिन्तन किये बिना अनेक वैधानिक और अवैधानिक कार्य करता है जो भ्रष्टाचार का कारण है परन्तु सम्यक् दृष्टि से यथार्थ ज्ञान के पश्चात् दृढ़ संकल्प से युक्त, मधुर सत्य और प्रिय बोलने वाले मानव ,सम्यक् कर्मान्त के मार्ग पर अग्रसर होकर सम्यक् आजीविका का चयन करता है। जीविका का उपार्जन उचित मार्ग से होना चाहिए अनुचित मार्ग से नहीं। अनुचित मार्ग है–दूसरों को क्लेश देकर तथा दूसरों की हिंसा करके जीविकोपार्जन करना। मानव जीवन में सुख तभी प्राप्त कर सकता है जब कि उसकी आजीविका पवित्र हो ।'' सम्यगाजीविका की व्याख्या करते हुए महाकवि अश्वघोष ने लिखा है कि सम्यक् आजीविका ही इसका अनामय भोजन है–

सम्यगाजीविका त्वस्य भोजनं चाप्यनामयम्।[17]

आजीविका का साधन परहित को दृष्टि से भी श्रेष्ठ होना चाहिए। जो स्वार्थ के लिए धन करते है वे दुर्जन है। महापुरुषों का धन परमार्थ के लिए संचित होता है–

संचिन्वन्ति धनं ये वै स्वात्मार्थं ते हि दुर्जनाः।
महतां तु धनं नूनं परार्थायोपकल्पते।।[18]

तथागत नन्द को आजीविका के उचित आचरण को शुद्ध करने का उपदेश देते हुए कहते है कि – ''देह और वाणी की शुद्धि में तथा उनके सात कर्मों की पवित्रता में अपनी आजीविका के व्यवहार को पवित्र बनाओं। कपट आदि पाँच दोषों का परित्याग कर, सद्वृत्ति की हत्या करने वाले ज्योतिष, आयुर्वेदादि चार व्यवसायों का परित्याग करो।

जीवन, अन्न, धन आदि वर्जित वस्तुओं को अस्वीकार करके भिक्षावृत्ति के निश्चित नियमों का पालन करों।''

शरीरवचसो शुद्धौ सप्ताङ्गे चापि कर्मणि।
आजीवसमुदाचारं शौचात् संस्कर्तुमर्हसि।।
दोषाणां कुहनादीनां पंचानामनिषेवनात्।
त्यागाच्च ज्योतिषादीनां चतुर्णावृत्तिघातिनाम्।
प्राणिधान्यधनादीनां वर्ज्यानामप्रतिग्रहात्।
भैक्षाङ्गानां निसृष्टानां नियतानां प्रतिग्रहात् ।।[19]

इस प्रकार यदि सात्विक आजीविका का चयन किया जाये तो आपराधिक भावनाएँ स्वतः मिट जाती है । अतः तथागत ने सम्यक् आजीविका पर बल दिया।

6. सम्यक् व्यायाम– सम्यक् व्यायाम का अर्थ शोभन उद्योग है। सफल उद्योग से ही सिद्धि की प्राप्ति होती है। साध्य को प्राप्त करने के लिए उचित प्रयास । अपने लक्ष्य के प्रति सदैव प्रयत्नशील रहना। सम्यक् दृष्टि से यथार्थ ज्ञान के पश्चात् दृढ़ संकल्प से युक्त, मधुर सत्य और प्रिय बोलने वाले मानव ,सम्यक् कर्मान्त के मार्ग पर अग्रसर होकर सम्यक् आजीविका का चयन करके अपने लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील हो जाता है। आज व्यक्ति आलसी होता जा रहा है। आलस्य के कारण वह अपने लक्ष्य और मानवता के पथ पर दृढ़ता से नहीं चल पाता है।इस आलस्य का सबसे बड़ा कारण है–शारीरिक और मानसिक क्रियाओं का असंतुलन। सम्यक् व्यायाम शारीरिक और मानसिक क्रियाओं को संतुलित करके व्यक्ति को लक्ष्योन्मुख करता है। धर्म और मोक्ष मानव जीवन के शाश्वत मूल्य है। सम्यक् व्यायाम मानव जाति को स्वाभाविक रूप से इनकी ओर प्रवृत्त करता है। तथागत ने भी निर्वाण की अधिगति में व्यायाम या प्रयत्न को ही कारण माना है। सभी समृद्धियों का उदय वहीं होता है जहाँ

उत्तम व्यायाम (प्रयत्न) होता है। सौन्दरनन्द में कहा गया है कि ''उत्कृष्ट उद्योग ही कार्य की सफलता का मूल कारण है। उद्योग के बिना कोई भी सिद्धि नहीं होती है, उद्योग से ही सारी समृद्धियों का उदय होता है और जहाँ उद्योग नहीं है, वहाँ पाप ही पाप है।''

वीर्यं परं कार्यकृतौ हि मूलं वीर्यादृते काचन नास्ति सिद्धिः।
उदेति वीर्यादिह सर्वसम्पन्निर्वीर्यता चेत् सकलश्च पाप्मा।।[20]

''दुर्लभ कार्य तो विशेष उद्यम से सिद्ध होते है जल के बारम्बार प्रपात से शिला भी पतली पड़ जाती है।''

दुर्लभान्यपि कार्याणि सिद्धयन्ति प्रोद्यमेन वै।
शिलापि तनुतां याति प्रपातेनार्णसो मुहुः।।[21]

उद्योग को मित्र की तरह ग्रहण करना चाहिए । प्रमाद को शत्रु की तरह ;त्याग देना चाहिए। प्रमाद से क्षय होता है –

उद्यमो मित्रवत् ग्राह्यः प्रमादं शत्रुवत्त्यजेत् ।
उद्यमेन परा सिद्धिः प्रमादेन क्षयो भवेत्।।[22]

''उत्साह को न खाने वाला व्यक्ति यदि पृथ्वी को खोदता है तो जल प्राप्त करता हैए उद्योगपूर्वक लगातार मथने वाला व्यक्ति अरणि से अग्नि उत्पन्न करता है, योगसाधना में लगे हुए व्यक्ति निश्चय ही मत के फल को प्राप्त करते है, नित्य वेगपूर्वक बहती हुई नदियॉ निश्चय ही पर्वत को भी फोड़ती है।

अनिक्षिप्तोत्साहो यदि खनति गां वारि लभते,
प्रसक्तं व्यामथ्नन् ज्वलनमरणिभ्यां जनयति।
प्रयुक्ता योगे तु ध्रुवमुपलभ्यन्ते श्रमफलं
द्रुतं नित्यं यान्त्यो गिरिमपि हि भिन्दन्ति।।[23]

इस प्रकार सम्यक् व्यायाम ही **'उद्यमेन हि सिद्धयन्ति कार्याणि न मनोरथैः** ' इस मूल्य से आधुनिक मानव को ओत–प्रोत कर देता है।

7. सम्यक् स्मृति – ज्ञात विषयों का स्मरण ही सम्यक् स्मृति है। जिन विषयों का सम्यक् ज्ञान हो चुका है, उन्हे सतत् स्मरण करना चाहिए। वर्तमान में सभी व्यक्ति कुविचारों से ग्रस्त है अतः वह अपने लक्ष्य से भटक जाता है परन्तु सम्यक् दृष्टि से यथार्थ ज्ञान के पश्चात् दृढ़ संकल्प से युक्त, मधुर सत्य और प्रिय बोलने वाले मानव ,सम्यक् कर्मान्त के मार्ग पर अग्रसर होकर सम्यक् आजीविका का चयन करके , सम्यक् व्यायाम के द्वारा अपने लक्ष्य के प्रति प्रयत्नशील होकर , सम्यक् स्मृति के द्वारा अपने लक्ष्य का सदैव स्मरण करता रहता है।

''स्मृति अपने क्षेत्र में रहने वाले शील आदि सद्गुणों की रक्षा करती है जैसे ग्वाला बिखरी गायों का अनुगमन करता है।''

स्वभूमिषु गुणाः सर्वे ये च शीलादयः स्थिताः।
विकीर्णा इव गा गोपः स्मृतिस्ताननुगच्छति।।[24]

अतः प्रत्येक कार्य को करते समय अपनी स्मृति को जाग्रत रखना चाहिए। सुगत ने नन्द को उपदेश देते हुए कहा कि बैठते चलते खड़ा होते, देखते और एक से अन्य कार्यो को करते हुए अपनी स्मृति को जाग्रत रखों।

''अथासनगतस्थानप्रेक्षितव्याहृतादिषु।
सम्प्रजानन् क्रियाः सर्वाः स्मृतिमाधातुमर्हसि''।।[25]

सुगत ने इसे द्वारपाल के समान बताया है। ''दरवाजे पर नियुक्त द्वारपाल के समान जिसकी स्मृति स्थिर है,उस पर पापों का प्रहार नहीं होता है, ठीक उसी तरह जैसे सभी ओर से सुरक्षित नगर पर शत्रुओं का आक्रमण नहीं हो सकता है।

द्वाराध्यक्ष इव द्वारि यस्य प्रणिहिताः स्मृतिः।

धर्षयन्ति न तं दोषाः पुरं गुप्तमिवारयः।।[26]

सौन्दरनन्द में कहा गया है–कि ''लोग अनर्थों में आसक्त होते है, स्वार्थों से विमुख रहते है और भय के रहते उद्विग्न नहीं होते है, इसका कारण है–स्मृति का विनाश।

अनर्थेषु प्रसक्ताश्च स्वार्थेभ्यश्च पराङ्मुखाः।[27]

8. सम्यक् समाधि – सम्यक् समाधि का अर्थ है सम्यक् समाधान। बौद्ध धर्म में सम्यक् समाधि का सबसे अधिक महत्व बताया गया है। बौद्ध धर्म में सम्यक् समाधि के चार अंग हैं। ध्यान की प्रथम अवस्था में साधक एकागचित्त हो, बाह्य विषयों से ध्यान को हटाकर केवल अष्टाङ्ग योग पर ही चिन्तन करता है। विरक्ति तथा शुद्ध विचार के कारण वह अपूर्व आनन्द तथा शान्ति का अनुभव करता है। ध्यान की दूसरी अवस्था को प्राप्त हो जाने पर सभी प्रकार के सन्देह दूर हो जाते हैं , श्रद्धा का भाव बढ़ता है। इस अवस्था में प्रगाढ़ चिन्तन के कारण शान्ति तथा चिरस्थिता का उदय होता है। इस अवस्था में शान्ति तथा आनन्द का ज्ञान भी साथ साथ रहता है। ध्यान की तृतीय अवस्था में साधक का ध्यान आनन्द से भी हट जाता है तथा उसके मन में उपेक्षा भाव का उदय होता है परन्तु दैहिक सुख का भव रहता है। ध्यान की चौथी अवस्था में चित्तवृत्ति का निरोध हो जाता है। यह अवस्था पूर्ण शान्ति , पूर्ण विराग तथा पूर्ण निरोध की है। यह सुख और दुख से रहित अवस्था है। इस प्रकार सुख और दुख से रहित होकर व्यक्ति निर्वाण पद प्राप्त करता है। जिसका चित्त समाधि से निरुद्ध एवं भाव संशुद्ध हो गया है। ऐसे मन में मानसिक दुःख नहीं होता। सम्यक् समाधि अर्थात् ध्यान । सम्यक् समाधि से मन शान्त करना चाहिए। मन के शान्त होने पर सभी इन्द्रियाँ वश में होती है।

तिष्ठत्यनुशयस्तेषां छन्नोग्निरिव भस्मना।
स ते भावनया सौम्य! प्रशाम्योऽग्निरिवाम्बुना।।[28]

राख से ढकी हुई आग की तरह पूर्वोपभुक्त वासना का संस्कार रह ही जाता है। हे सौम्य! उसे उसी तरह सद्विचार से शान्त कर दो, जैसे पानी से आग।

मन को शान्त कर लेने पर या जीत लेने पर इन्द्रियाँ विजित हो जाती है–

तस्मिञ्जिते तु सर्वाणि चाक्षाणि विजितानि वै।[29]

इस प्रकार इन्द्रियों को वश में कर लेने के पश्चात् मानव में व्याप्त क्रोध, मोह, लोभ आदि दुर्गुण स्वतः नष्ट हो जाते है। इस प्रकार सम्यक् समाधि पूर्ण चित्तवृत्तिनिरोध अथवा योग की अवस्था है और इस अवस्था तक शेष सात मार्गों की सहायता से ही पहुँचा जा सकता है।

इस प्रकार ज्ञानयोग, कर्मयोग दोनों से युक्त तथागत द्वारा उपदेशित यह मार्ग संसार के कल्याण का सर्वोत्तम साधन है। उन्होने सर्वजन हिताय तथा सर्वजन सुखाय की अवधारणा से इस सर्वोत्तम योग की खोज करके सम्पूर्ण मानवता को लाभान्वित किया है। आज भौतिकवाद से पीड़ित सम्पूर्ण समाज अज्ञान, अन्याय और अनाचार के घेरे में भटक रहा है ऐसे में इस योग की उपादेयता और भी बढ़ जाती है। अश्वघोष विरचित बुद्धचरितम् में वर्णित यह एक ऐसी अमृतवर्षा है जिसका पान करके मानव शारीरिक तथा मानसिक कष्टों से मुक्ति से मुक्ति प्राप्त करके मानवजीवन के परम लक्ष्य को प्राप्त कर सकता है।

सन्दर्भ :

1. *बुद्धचरितम् भाग–1*, महन्त श्रीरामचन्द्र दास शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, चतुर्थ संस्करण 1998।
2. *बुद्धचरितम् भाग–2*, महन्त श्रीरामचन्द्र दास शास्त्री, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, संस्करण 2012।
3. *धम्मपद*, डॉ0 त्रिपिटकाचार्य, भिक्षु धर्म रक्षित, मास्टर खेलाड़ी लाल संकटा प्रसाद, प्रकाशन, संस्कृत पुस्तकालय, पोस्ट बाक्स नं0–97, कचौड़ी गली, वाराणसी। पंचम संस्करण, जनवरी 1987।

4. *सौन्दरनन्दं,* आचार्य जगदीश चन्द्र मिश्र, चौखम्बा सुर भारती प्रकाशन, वाराणसी, संस्करण, 2010।
5. *बुद्ध धर्म के मौलिक सिद्धान्त,* डा. महीपाल सिंह 'महीप',सम्यक् प्रकाशन, प्रथम संस्करण 2005
6. *बौद्ध–दर्शन–मीमांसा,* आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, पुनर्मुद्रित संस्करण 2011
7. *पातञ्जलयोगदर्शनम्,* सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन,पुनर्मुद्रित संस्करण 2008
8. *श्रीमद्भगवद्गीता,* गीताप्रेस गोरखपुर
9. *ललितविस्तर,* शान्ति भिक्षु शास्त्री,उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ,1992
10. *अंगुत्तरनिकाय ,* स्वामी द्वारिका दास शास्त्री,बौद्ध भारती प्रकाशन वाराणसी, 2002

---

1. पातञ्जलयोगदर्शनम्–समाधिपाद–2, पेज सं0–9
2. बुद्धचरितम्–15/53
3. बुद्धचरितम्–15.41
4. अंगुत्तर निकाय–1.16
5. बुद्धचरितम्–16.77
6. ललितविस्तर,चूळवियूह सुत्त (4:12) श्लोक–9 पृ0–235
7. ललितविस्तर धर्मालोकमुखपरिवर्त 75, पृ0–91
8. सौन्दरनन्दं 15.22
9. सौन्दरनन्दं–13.11
10. धम्मपद1.5
11. धम्मपद 8.1
12. ललितविस्तर धर्मालोकमुखपरिवर्त 75, पृ0–91
13. बुद्धचरितम् 19.22
14. बुद्धचरितम् 18.5
15. बुद्धचरितम् 7.30
16. बुद्धचरितम् 20.33
17. बुद्धचरितम् 15.43
18. बुद्धचरितम् 15.12
19. सौन्दरनन्दं 13.13–15
20. सौन्दरनन्दं 16.94
21. बुद्धचरितम् 26.63
22. बुद्धचरितम्–26.73
23. सौन्दरनन्दं–16.97
24. सौन्दरनन्दं 14.41
25. सौन्दरनन्दं 14.35
26. सौन्दरनन्दं–14.36
27. सौन्दरनन्दं–15.5
28. बुद्धचरितम्–26.40

खिलजी काल के कला, स्थापत्य एवं साहित्य पर देशज प्रभाव

नरेश कुमार *

सल्तनत कालीन कला, स्थापत्य एवं साहित्य पर शासकों के विचार धर्म एवं एवं जीवन शैली का प्रदर्शित होना स्वाभाविक है, किन्तु इसके साथ ही क्षेत्रीय एवं देशज तर्कों का समावेश स्वाभाविक है। शोध पत्र इस तथ्य को सामने लाने का प्रयास करता है कि इस्लामिक मूल तत्वों के साथ–साथ किन देशज तत्वों ने मिलकर इण्डो–इस्लामिक संस्कृति का निर्माण किया। समन्वय की इस प्रकिया को खिलजी काल मे एक नया आयाम मिला। अलाउद्दीन खिलजी ने राजनीति से लेकर आर्थिक एवं प्रशासनिक स्तर पर क्षेत्रीय संस्कृति पर जोर दिया जो कला एवं संस्कृति मे भी परिवर्तित होती है। उर्दु एवं हिन्दी का विकास इसी दौर मे आरम्भ हुआ जो उत्तरोत्तर परिमार्जित एवं परिस्कृत होता रहा। स्थापत्य मे नये प्रयोग किये गये जो इण्डो–इस्लामिक संस्कृति एवं स्थापत्य का मूल तत्व बने।

अलाउद्दीन खिलजी एक योग्य एवं महत्वाकांक्षी व्यक्ति और कुशल सैनिक था। उसने अपने सैन्य नतृत्व क्षमता का परिचय पहले ही मलिक छज्जू के विद्रोह को दबाकर तथा देवगिरी अभियान के दौरान वहॉ के खजाने को लूटकर दिखा दिया था। अमीर खुसरो ने अपनी पुस्तक खजाइनुल–फुतुह में अलाउद्दीन ने राज्यारोहण का वर्ष 1296 बताते है, परन्तु खुसरो जलालुद्दीन की हत्या की चर्चा नहीं करते वह लिखते है कि अलाउद्दीन अपनी राजनीतिक कुशलता कूटनीतिक क्षमताओं एवं धन का प्रलोभन देखकर दिल्ली के अमीरों को अपनी तरफ मिला लिया। जो उसके दिल्ली में साम्राज्य स्थापना में सहायक सिद्ध हुये। वृद्ध जलालुद्दीन खिलजी से उसकी नीतियों, उदारता से अप्रसन्न लोग, इनमें से कुछ मलिक छज्जू के वफादार भी थे, जो अपनी महत्वाकांक्षा को पूरा करना चाह रहे थे। ये अलाउद्दीन के पक्ष में हो गये और उसे दिल्ली का सिंहासन प्राप्त करने के लिए प्रेरित करने लगे। अमीर खुसरो आगे लिखता है कि अलाउद्दीन बिना किसी जल्दबाजी में आये धैर्यपूर्वक अपने अनुयायियों की संख्या बड़ाता रहा, भाई अलमास बेग के माध्यम से अपने पक्ष को दरबार में मजबूती से रखवाया। उसके भाई ने चाचा जलालुद्दीन को हमेशा, अलाउद्दीन को अपने पक्ष में बनाये रखा। उसने बहुत ही चतुराई पूर्ण ढंग से मालवा विजय की अनुमति सुल्तान से प्राप्त कर ली। आई0एच0 कुरैशी ने अपने शोध ग्रन्थ, द एडमिनिस्ट्रेशन आफ द सल्तनत आफ डेलही, सेकेण्ड एडिशन, लाहौर 1944 में बताया है कि 1292 में अलाउद्दीन ने मालवा पर चढ़ाई की और नगर भिलसा को लूटा, यहॉ से प्राप्त धन सम्पत्तियों ने उसे और भी अधिक महत्वाकांक्षी बनाया, अपने विश्वस्त लोगों में धन वितरित करके उसने उनके मन में अपने प्रति वफादारी में और भी अधिक वृद्धि कर ली। यहॉ से प्राप्त धन का एक हिस्सा उसने सुल्तान के पास भेज दिया। खुश होकर सुल्तान ने उसे अवध की सूबेदारी भी सौंप दी।

राजस्थान के मेवाड़ पर गुहिलौत राजवंश का शासन था। इसकी राजधानी चित्तौड़ थी। गुहिलौत राजवंश ने इससे पहले भी अपने युद्ध कौशल का परिचय इल्लुतमिश जैसे योग्य सुल्तानों को पराजित करके दे दिया था। डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड ने ए सार्ट हिस्ट्र ऑफ इण्डिया में बताया है कि सन् 1303 ई0 में अलाउद्दीन ने मेवाड विजय का निर्णय लिया। उसकी इस विजय योजना के बारे में बताते हुये डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड कहते है कि आलाउद्दीन खिलजी एक महत्वाकांक्षी शासक था सम्पूर्ण भारत को एक राष्ट्र बनाने उद्देश्य से प्रेरित होकर चित्तौड पर आक्रमण किया। वह चितौड़ आया चित्तौड़ पहाडी पर धेरा डाल दिया। काफी प्रयाशों के बाद भी किले को अपने कब्जे में नहीं कर पाया और घेरा लगभग 5 महिनों तक डाले रखा। राजपूतों ने वीरता एवं शौर्य का परिचय देते हुये कड़ी टक्कर दी, किन्तु इतनी विशाल सेना के आग लम्बे समय तक रूक पाना असम्भव था। इस प्रकार राणा रतन सिंह ने हथियार डाल दिये। स्त्रियों ने अपने सतीत्व की रक्षा के लिए जौहर को

* असि. प्रो. इतिहास, स.भ.सिंह राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, रूद्रपुर (उ.सिं.नगर) उत्तराखण्ड

अपनाया। अमीर खुसरो देहलवी कहता है कि अलाउद्दीन ने गुस्से में आकर नर संहार की आज्ञा दे दी जिसमें लगभग 30,000 राजपूत मारे गये।

जालौर उत्तर भारत का एक ऐसा राज्य था जिसे विजित करने के लिए अलाउद्दीन ने गुल–ए–बिहस्त (महिला) को भेजा। जालौर के राजा ने सुल्तान की अधीनता स्वीकार कर ली थी और सब कुछ ठीक ठाक चल रहा था। परन्तु राजा कनेर देव ने अपने असन्तुलित व्यवहार के कारण एक नया संकट मोल ले लिया। डब्ल्यू0 एच0 मोरलैण्ड ने अपनी पुस्तक ' ए सार्ट हिस्ट्री आफ इण्डिया' में बताया है कि राजा कनेर देव हमेशा कहा करता था कि मै हमेशा दिल्ली के सुल्तान से युद्ध के लिए तैयार रहता है और वह उससे डरता बिल्कुल नहीं है। मोरलैण्ड आगे बताता है यह बता अलाउद्दीन को पसन्द नही आयी और सुल्तान ने इस चुनौती को स्वीकार करते हुये अपनी नौकरानी गुल–ए–बिहस्त को भेजा। गुल–ए–बिहस्त ने जालौर पहुॅच कर धेरा डाल दिया, यह काफी समय तक चलता रहा। राजा कनेर देव पर इतना अधिक दबाव बनाया गया कि वह आत्मसमर्पण करने ही वाला था कि इसी दौरान गुल–ए–बिहिस्त की मृत्यु हो गयी। मौके का फायदा उठाते हुये राजपूतों ने उसके पुत्र को परास्त करके मार दिया। ठीक इसी समय दिल्ली के सुल्तान ने कमालुद्दीन के नेतृत्व में एक सेना भेजा, जिसने राजपूतों को परास्त किया। सुल्तान की सेना ने राजा के सभी सगे सम्बन्धियों को परास्त करके तलवार के धाट उतार दिया। अब यह क्षेत्र भी दिल्ली सल्तनत में सम्मिलित कर लिया गया।

प्रो0 आयंगर ने अलाउद्दीन के दक्षिण अभियान के उद्देश्य के विषय में बताते हुये कहते हैः

''अलाउद्दीन का उद्देश्य इन राज्यों को धन प्राप्ति के लिए कामधेनु बना देना था क्योकि आन्तरिक उपद्रवों को शान्त करने तथा मंगोलों के आक्रमणों का विरोध करने के लिए सुल्तान को विशाल सेना रखनी पडती थी जिसका खर्च चलाने के लिए उसे सदैव धन की आवश्यकता पड़ती थी''

बरंगल अभियान की सफलता के पश्चात मलिक काफूर वापस दिल्ली आता है। अब काफूर को दक्षिण प्रायद्विप की सम्पूर्ण राजनैतिक, आर्थिक एवं भौगोलिक स्थितियों की जानकारी प्राप्त हो चुकी थी। काफूर अपनी इन सफलताओं अनुभवों एवं सुल्तान के प्रोत्साहनों से प्रेरित होकर अब सम्पूर्ण दक्षिण राज्यों के विजय की योजनायें बनाने लगा था।

दक्षिण अभियान के दौरान ही उसे द्वार समुद्र की सम्पन्नता एवं वैभव की जानकारी मिली थी। उस समय इस समृद्धशाली राज्य का शासन वीर बल्लाल तृतीय के हाथों में था। डब्ल्यू0एच0 मोरलैण्ड ने इस क्षेत्र का विस्तृत विवेचन अपने ग्रन्थ द एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया लदंन 1920 में किया है। उनका मानना था कि यह क्षेत्र अत्यन्त ही सम्पन्न था। यहॉ की नगरीय व्यवस्था अत्यन्त ही सुव्यवस्थित थे। मोरलैण्ड ने बताया है कि नगर की साफ–सफाई, स्वास्थ्य इत्यिादि का विशेष ध्यान दिया जाता था। यहॉ पर शिल्पियों, कारीगरों, दस्तकारों एवं अन्य कर्मकारों के रहने की व्यवस्था शासन की देख रेख में की जाती थी। काफूर के आक्रमण के समय इस राज्य की भौगोलिक विस्तार काफी अधिक था। कांगू, कोकण और समस्त मैसूर राज्य इसी के शासन क्षेत्र के अन्तर्गत आता था। मोरलैण्ड ने आगे लिखते हुये बताया है कि होयसलों एवं यादवों के बीच धोर प्रतिद्वन्दिता था। ये हमेशा एक दूसरे के राज्यों को हड़पने का प्रयास करते रहते थे। ये एक दूसरे का विनाश करने की किसी भी कोशिश से पीछे नहीं हटते थे। अपने इन्ही कार्यो से दोनों ही शक्तिहीन हो गये थे। ऐसे में किसी तीसरी शक्ति का लाभ उठाना लाजमी था। जब काफूर ने यहॉ पर आक्रमण किया तब यहॉ का शासक अपना राज्य छोड़कर, पाण्ड्य राज्य के राज्य में गृह युद्ध में सहायता के लिए गया हुआ था। शायद उसे इस बात का अन्दाजा नहीं था कि दक्षिण में प्राप्त सफलताओं के कारण दिल्ली के सुल्तान अलाउद्दीन की महत्वाकांक्षाये बहुत बढ़ गयी थी। होयसल राज्य पर खिलजियॉ का आक्रमण इसी भावना से प्रेरित होकर किया गया था। कठिन एवं दुर्गम पहाडियों के बीच का रास्ता करते हुये काफूर लगभग महिनों पश्चात् होयसल पहुॅचा। देवगिरी के राजा रामचन्द्र देव ने हर प्रकार की सहायता मलिक काफूर को उपलब्ध करायी। इरफान हबीब ने अपनी किताब मध्यकालीन भारत में बताया है कि रामचन्द्र देव ने धन धान्य सहीत सभी संसाधनों से काफूर की होयसल अभियान में मदद की जहॉ पर आवश्यक हुआ नवीन मार्गो एवं सैनिक शिविरों को बनाया गया। बरनी एवं फरिशता, के विचार इरफान हबीब से थोड़ा अलग प्रतीत होते है इनका मानना है कि इस समय तक रामचन्द्र देव मर चुका था। उसके बेटे ने खिलजी सेना की सहायता की थी किन्तु अमीर ने अपनी पुस्तक खजाइन–उल–फुतूह में एवं इसामी ने फुतूह–उल–सलातीन में बताया है कि होयसल अभियान के

दौरान उसकी सहायता की थी ने कि उसके पुत्र ने। यह आक्रमण बहुत ही विध्वंसकारी थी। सुसरों कहता है कि मालिक काफूर ने मन्दिरों को लूटा एवं तोड़ा। नगरीय व्यवस्था पूर्ण रूप से समाप्त कर दिया गया।

बरनी ने अपनी पुस्तक तारीख–ए–फिरोजशाही में कहॉ है

''दक्षिण से प्राप्त सम्पत्ति इतनी थी कि मुसलमानों द्वारा दिल्ली पर अधिकार किये जाने के बाद कभी भी इतना कोष एकत्रित नहीं किया गया था।''

बरनी के अनुसार देवगिरी पर तीसरा आक्रमण 1312–13 ई0 के दौरान किया गया था। अब देवगिरी की स्थिति थोडी बदल गयी थी। बरनी बताता है कि अब तक रामचन्द्र देव की मृत्यु हो चुकी थी, जिसने ने केवल स्वयं सुल्तान की अधीनता स्वीकार की थी बल्कि सुल्तान के अन्य दक्षिणी अभियानों के दौरान भी एक महत्वपूर्ण मित्र/सहयोगी की भूमिका में रहा। कि अब स्थितियों पूर्णतः बदल गयी थी। रामचन्द्र देव का बड़ा पुत्र सिंहण अब देवगिरी पर राज्य कर रहा था। यह दक्षिण में तुर्को का प्रबल शत्रु था। देवल देवी को छीनकर खिज्र से विवाह किये जाने के कारण वह दुखी था। इसी द्वेष की भावना ने उसे तुर्को का व्यक्तिगत शत्रु बना दिया था। देवगिरी की गद्दी प्राप्त करने के पश्चात् उसने स्वयं को स्वतन्त्र धोषित किया। वह अब एक स्वतन्त्र राजा की भॉति व्यवहार करता था। फलतः अलाउद्दीन ने उसे समाप्त करने के लिए मलिक काफूर को दक्षिण भेजा वह सम्पूर्ण क्षेत्रों में लूट पाट करते हुये देवगिरी पहुचा। देवगिरी पहुॅचकर काफूर ने भयंकर उत्पात किया। सिधण मारा गया और सम्पूर्ण क्षेत्र. पर काफूर ने कब्जा कर लिया। देवगिरी को बुरी तरह से लूटा गया। इसके पश्चात् मल्कि काफूर ने तेलंगाना और होयसल के आस–पास के नगरों पर आक्रमण कर लूट पार की। मलिक नायब ने देवगिरी को अपना मुख्यालय बताया। वह कर्नाटक तथा तेलंगाना से कर वसूलकर राजधानी भेजता रहा। 1314 में मलिक नायब को दिल्ली बुलाकर उसके स्थान पर रामचन्द्र देव के दामाद हरपाल देव को देवगिरी का शासक नियुक्त किया।

बरीनी ने अपने ग्रन्थ तारीख–ए–फिरोजशाही में बताया है कि इन तमाम रक्षा उपायों के बावजूद मंगोल सेना अलीबेग के नेतृत्व में अमरोहा तक पहुॅच गयी। रास्ते में मंगोल सेना ने कई क्षेत्रों को लूटा था। मल्कि काफूर तथा गाजी मलिक को इस विद्रोह को दबाने की जिम्मेदारी सौपी गई उन्होने मंगोलो से युद्ध करके उनके दोनों नेताओं को गिरफ्तार किया और उन्हें हाथी से कुचलवा दिया। बरनी के अनुसार बन्दियों को सीरी के किले में चिनवा दिया गया। इस सफलता में महत्वपूर्ण योग दान देने वाले गाजी मलिक को पंजाब का सूबेदार बनाया गया।

अलाउद्दीन खिलजी की राजनैतिक एवं आर्थिक नीतियॉ उसके काल की एक महत्वपूर्ण उपलब्धि थी। किन्तु बड़े ही खेद का विषय है कि इन नीतियों एवं कार्यक्रमों को अधिक समय तक जारी न रखा जा सका। फिर भी उसकी इन नीतियों के महत्व को कम करके नहीं आंका जा सकता। उसकी बाजार नियंत्रण व्यवस्था का ही परिणाम था कि एक विशाल सेना को नियमित वेतन पर रखा गया। इन्ही सेनाओं के बल पर उसनक न केवल नये–नये राज्यों पर विजय हासिल की। बल्कि विजित प्रदेशों को भी इन्ही के द्वारा लम्बी समयावधी तक नियंन्त्रण में रखा जा सका।

वस्तुओं के मूल्य नियन्त्रण से हुये फायदों के बारे में मंथन करते हुये मोरलैण्ड ने अपनी पुस्तक द एग्रेरियन सिस्टम आफ मुस्लिम इण्डिया, लंदन, 1920 में बताया है कि यह निर्णय उसकी विशाल सेना के दृष्टिकोण से अत्यन्त ही क्रान्तिकारी साबित हुआ। अब वे अपना दैनिक खर्च कम करके भी बेहतर जीवन जी सकते थे।

एक विशाल किसी भी मध्यकालीन साम्राज्य की स्थिरता का सूचक थी। इसी विशाल के द्वारा ही साम्राज्य को समृद्धिशाली एवं स्थिर बनाया गया।

संदर्भ :

1. खुसरो, अमीर; किरान–उस–सादेन, अलीगढ़, 1918
2. सचाऊ, ई0सी0 (संपादन, अनुवाद) अलबरूनीज इंडिया, दिल्ली, 1993
3. बरनी, जियाउद्दीन, तारीख–ए–फिरोजशाही, कलकत्ता 1860–62 अंग्रेजी अनुवाद– मो0 हबीब तथा श्रीमती अफसर उमर सलीम खान, इलाहाबाद।
4. वतूता, इत्ने – द रहेला (अनुवाद मेंहदी हुसैन) बड़ौदा 1965

5. फोस्टर, डब्ल्यू (सं0) अली ट्रैवल्स इन इंडिया, लंदन, 1927
6. इसामी, ख्वाजा अब्दुल मलिक, फुतूह–अस सलातीन, मद्रास, 1948 अंग्रेजी अनुवाद– मेहंदी हुसैन, तीन भाग बंबई, 1967,76,77
7. Al-Kasani, Abu Bakr bin Ali Usman; Farsi Taryuma-i-kitab-ul-Saidna of al-Beruni, ed. M. Satudeh and Iraj Afshar, Bunyad-I Farhang-I Irah, Tehran, 1325 Shamsi.
8. Al-Baihaqi, Abul Fazl Muhammad; Tarikh-i-Masudi. Ed. W.H. Morley, Bibbothech Indica, Calcutta, 1862
9. Afif, Shams Siraj, Tarikh-I Firuz Shahi, ed. Wilayat Husain, Calcutta: Billiothea Indica, 1891.
10. अल बिन हामिद उल कुफी, फतहनामा–ए–सिंध (चचनामा) संपादित नवी वक्स बलोच, इस्लामाबाद इस्लामिक विश्वविद्यालय, 1983
11. आमिद लोएकी सुनामी, दीवान–ए– आमिद लोएकी, संपादित नाजिर अहमद, मजलिस–ए–तारकि–ए अदब, लाहौर, 1984
12. अज्ञात, सिरत–ए फिरोज शाही, प्रतिकृति, खुदा बख्श आरियन्टल पुस्तकालय, 1999, पटना।
13. अरबी, जियाद बद्र, ख्वान–ए–पुर मित, (मलफुजत, शेख शरफुद्दीन यहया मनेरी), मतबा–ए–अहमदी, पटना 1321 एच; ख्वान–ए–पुर नियत, अंग्रेजी अनुवाद– इदराह–ए–अदाबियत एवं पॉल जैक्सन दिल्ली, 1986
14. अवफी, सदीदुद्दीन मोहम्मद जवमी, अनुवाद (फारसी), किताब–उल–फराज बादुल स्विद्वा, इण्डिया आफिस लाइब्रेरी, लंदन,
15. बद्र चच, केसाइद–ए–बद्र–ए–चच, लखनऊः नवल किशोर, ए0एच0 1279
16. बरनी; जियाउद्दीन, फतवा–ए–जहॉदारी, संपादकः सलीम खान, पंजाब विश्वविद्यालय, लाहौद, 1972
17. बरनी; जियाउद्दीन, सहीफा–ए–नात–ए मुहम्मदी, एम0एस0, न0 तारीख 127, रजा पुस्तकालय, रामपुर
18. बिहमद खानी, मोहम्मद, तारीखे–ए–मुहम्मदी, एम0एस0 अथवा 137 ब्रिटिश पुस्तकालय, लंदन।
19. फख्रूद्दीन, मुबारक शाह, फरहंग–ए–कव्वास, संपादन– नाजिर अहमद, रामपुर, रजा पुस्तकालय, 1999
20. फैज–उलाह–बिनबानी–तारीखे–ए–सद्र–ए–जहॉ, संपादन–इक्तीदार हुसैन सिद्दकी, अलीगढ़ः अकादमिक बुक्स, 1988.
21. खुसरो, अमीरः (संपादक शेख अब्दुस रषीद); मस्नवी फतह–उल–पुतुह, इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, 1954, अलीगढ़।
22. खुसरो, अमीर (संपादक मो0 इस्माइल): मस्नवी किरेन–उस–सदैन, इन्स्टीट्यूट अलीगढ़ कालेज, 1918, अलीगढ़।
23. खुसरो, अमीर, मस्नवी, तुहस्फीर, अक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी (संपादक वाहिद मिर्जा) प्रेस कलकत्ता 1950,
24. खुसरो, अमीरः (संपादक वाहिद मिर्जा) प्रेस, कलकत्ता 1950
25. महरू, आइन मुल्क (अनुवादक संपादक श0 अब्दुल राषिद), इंषा–ए–महरू, लाहौर, रिषर्च सोसाइटी ऑफ पाकिस्तान, 1965

***

हिन्दी नाट्य साहितय में अभिव्यक्त वैयक्तिक त्रासदी का स्वरूप

*डॉ. सीमा शर्मा**

शोध सार:

आधुनिक युग मशीनी युग है। इस युग में मानवीय मूल्य,भावनाएं और आदर्श कहीं बहुत पीछे छूट गए हैं।आज व्यक्ति समाज से असंपृक्त और स्वयं से अजनबी है। वह अनेक तरह के दबाव और कुंठाओं में जीता है। मूल्यहंता परिस्थितियों में वह स्वयं आत्महंता हो उठता है। प्रस्तुत शोध लेख में हिन्दी नाट्य जगत् के कुछ महत्वपूर्ण नाटकों के माध्यम से मानवीय त्रासदी के इसी स्वरूप को दर्शाया गया है।

मानवीय त्रासदी का एक रूप व्यक्तिगत त्रासदी के रूप में परिलक्षित होता है।। यदि कोई व्यक्ति बहुत तनाव का अनुभव कर रहा है और किसी भी परिस्थिति में उसे खुशी अनुभव नहीं हो रही है और वह किसी भी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्त नहीं कर रहा है अथवा ऐसी प्रतिक्रिया व्यक्त कर रहा है जहाँ वह अपने परिवेश से असंपृक्त दिखाई दे रहा है, तो ऐसी परिस्थिति वैयक्तिक त्रासदी को दर्शाती है।

यह वह तनाव की पीड़ा है, जो भौतिकतावादी समाज का व्यक्ति एकाकी झेल रहा है और आत्महंता परिस्थितियों में जीने के लिए विवश है तथा मरने के लिए लालायित है। वैयक्तिक त्रासदी को चित्रित करते हुए जयशंकर प्रसाद ने कामायनी में लिखा है:

" विस्मृति आ अवसाद घेर ले,
नीरवते बस चुप कर दे।
चेतनता चल जा, जड़ता से,
आज शून्य मेरा भर दे।"

आधुनिक युग मशीनी युग है।मशीनी युग का प्रसार इतना अधिक हुआ है कि उसमें मनुष्य भी ' मशीन' बनकर रह गया है। मनुष्य के जीवन में आये इस परिवर्तन के कारण उसमें मानवीय भावनाओं और संवेदनाओं का अंत हुआ है। मानवीय भावनाओं का अंत होने से मनुष्य स्वयं को असहाय , बौना तथा आत्मनिर्वासित, अनुभव करता है।

"अस्तित्ववादी दर्शन के अनुसार शून्यता, निराशा, व्यथा , विसंगति, संत्रास, अपराध भावना, एकाकीपन आदि प्रत्यय मानवीय अस्तित्व के साथ अनिवार्य रुप से सम्बद्ध हैं। ... विसंगतियों से घिरी हुई मनुष्य की स्वतंत्रता कामी चेतना , वातावरण और परिवेश के प्रति स्वयं के अजनबी बोध को अस्तित्ववादियों ने ' आत्म - विस्मरण' का बोध कहा है।

मनुष्य की मानसिक त्रासदी का महत्वपूर्ण कारण उसकी यौनेच्छा, अन्तर्मन की घुटन, रिक्तता तथा मनोग्रंथियाँ भी हैं।फ्रॉयड ने मनुष्य के जीवन में ' लिबिडो ' अथवा काम- वृत्ति को महत्वपूर्ण माना है। उनके अनुसार मनुष्य के सभी कार्य ' लिबिडो' के कारण ही संचालित होते हैं।

---

* जानकी देवी मेमोरियल कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली

" लिबिडो या राग बिल्कुल क्षुधा की तरह है यह वह बल है जिसके द्वारा नैसर्गिक यौन वृत्ति वैसे ही अपनी अभिव्यक्ति करती है जैसे पोषण की निसर्ग वृत्ति भूख के द्वारा अपनी अभिव्यक्ति करती है।"

'कर्फ्यू' नाटक के पात्रों के व्यवहार के पीछे अतृप्त यौन वृत्ति कार्य कर रही है। नाटक के दम्पत्ति गौतम और कविता अपने दाम्पत्य जीवन से बुरी तरह ऊब चुके हैं। गौतम अपने व्यवसाय में इतना अधिक व्यस्त है कि उसे लगता है कि मशीनों के बीच कार्य करता -करता वह भी मशीन बन गया है। ऐसी मशीन ,जिसकी न तो आकांक्षाएं हैं न स्वप्न । जीवन का सहज उच्छलन एवं उल्लास उससे दूर हो गया है और वह नित्य- प्रति एक जैसी दिनचर्या के कारण उकता गया है।

गौतम: वही, जो रोज सोचता हूं रोज वही काम... वही फैक्ट्री...वही घर... वही पत्नी...

मनीषा: क्यों इतना डरता है आदमी एक-दूसरे से? क्यों हर समय उसे एक ऐसे खोल की जरूरत रहती है अपने को ढांकने के लिए जो सिर्फ दिखने में मजबूत लगता है। क्यों नहीं वो अपना 'इन्हीविशन्स' तोड़ कर बाहर आ जाता है?"

गौतम की पत्नी कविता भी अपने यांत्रिक जीवन तथा अनिच्छित वरण के कारण ऊब गयी है। उसे लगता है कि वह ऐसी मनुष्य नहीं जिसमें संवेदनाएं हैं बल्कि कक्ष के सजावटी समान की तरह वह भी एक समान ही है नाटक के अन्य पात्र मनीषा तथा संजय की भी यही विडम्बना है। सभी पात्रों का जीवन निरूद्देश्य बन गया है और वे यंत्र की भांति व्यवहार करने लगते हैं।

युवती: हमने प्यार किया है।

युवक: हमने क्यों किया प्यार?

युवती: किया...

युवक: क्यों ? किसलिए?

युवती: करना था।...

युवक: करना था? एक अदद प्यार... एक अदद शादी... दो अदद बच्चे..."

विडम्बना यह है कि नाटक के सभी पात्रों में अजनबीपन की भावना इतनी अधिक व्याप्त है कि ' घर' का कोई महत्व नहीं रह गया है।

गौतम: टेलीफोन कर लीजिए।

मनीषा: कहाँ?...

गौतम: अपने घर।

मनीषा: घर माने?

मनीषा: घ से घर। "

' देवयानी का कहना है' नाटक के देवयानी और साधन का जीवन भी निरूद्देश्यता के कारण ऊब और कुंठाओं से युक्त है। वे यौन तृप्ति के लिए 'लिविंग टुगैदर' के मार्ग पर चलते हुए साथ तो रहते हैं पर विडम्बना यह है कि उनके साथ रहने में परस्पर विश्वास तथा प्रेम की ऊष्मा नहीं है। परिणामस्वरूप उनका संबंध तीन रात्रियों के विविध प्रयोगों के साथ असफल और समाप्त हो जाता है।

साधन: यह भी कोई रहना हुआ कि आदमी को कभी बलात्कार करना पड़े, कभी ग्राहक की तरह अपने ही घर में खरीदारी करनी पड़े लानत है इसे... ऐसा लग रहा है कि हम चल नहीं रहे हैं हम अपने आपको ढो रहे हैं। "

'लहरों के राजहंस' नाटक में नंद और सुन्दरी के सम्बन्धों में अजनबीपन की भावना व्याप्त है। सुन्दरी और नंद दोनों को अनुभव होता है कि उनके जीवन के सहज श्रृंगारिक उल्लास में किसी ने अपना प्रभाव जमा लिया है। इसी कारण सुन्दरी लगातार बुद्ध के प्रभाव से आतंकित रहती है। उसे कभी छाया तथा कभी चील के रूप में ऐसा प्रतीत होता है कि उनके मधुर सम्बन्धों में

किसी तीसरी शक्ति का समावेश हो गया है। इसी कारण जितना वह नंद को अपनी ओर आकृष्ट करके खींचना चाहती है, उतना ही वह उससे दूर छिटकता जाता है। दोनों के मध्य अजनबीपन का चरम बिन्दु वहाँ प्रगट होता है,जहाँ दोनों के संवादों, क्रिया- व्यापारों तथा भावनाओं में कोई साम्य नहीं रह जाता।

सुन्दरी : लगता है बाहर जाकर किसी का कुछ खो गया है।.... आपने सुना है मैंने क्या कहा है?

नंद : क्या कहा है?

'पैर तले की जमीन' नाटक के दाम्पत्य संबंधों के मध्य यही तीसरी शक्ति कार्य कर रही है, जिसके कारण स्त्री -पुरूष संबंधों में परस्पर प्रेम और साहचर्य का स्थान ऊब एवं कुंठा ने ले

लिया है। अयूब को संदेह है कि उसकी पत्नी सलमा के अपने बचपन के मित्र से आत्मीय सम्बन्ध हैं। इसी कारण वह अपने अस्तित्व के नकार से कुंठित रहता है।

अयूब: कहने को सब कुछ है, घर है, बीवी है, दो बच्चे हैं, फिर भी मैं जानता हूं कि यह सारा ताना - बाना एक न चाहते हुए मन के चारों तरफ बुना गया है, हालांकि बुनने वाले सिर्फ़ दूसरे ही नहीं हैं,मैं भी हूं। बल्कि जब कभी ताना-बाना ढीला होता नज़र आया, मैंने खुद उसमें और धागे बुने हैं, खुद अपने को उन धागों में और जकड़ लेना चाहा है।ओर इसी से मन की छटपटाहट और बढ़ती गई।"

आपसी विश्वास और प्रेम की ऊष्मा के अभाव में सलमा की भी समस्त आकांक्षा मर चुकी है। वह भी स्वयं को रिक्त और आत्मनिर्वासित अनुभव करती है।

नियामत: आपकी कोई चीज़ अंदर हो तो...

सलमा: मेरे? अंदर कुछ भी तो नहीं है।

अब्दुल्ला: आपके वो?

सलमा: मेरे वो? मेरे वो कौन?"

'आधे-अधूरे' नाटक में आपसी साहचर्य और प्रेम की ऊष्मा के अभाव में नाटक का प्रत्येक पात्र आधा-अधूरा तथा जीवन के सहज भाव से विच्छिन्न अनुभव करता है। नाटक के सभी पात्रों को

लगता है जैसे जीवन एक अनचाहा भार है।जिसे किसी न किसी प्रकार ढोने के लिए विवश होना है। अनचाहे जीवन के इस चक्रव्यूह में फंसकर वे छटपटा तो सकते हैं। लेकिन उससे बाहर निकलने का कोई मार्ग उनके पास नहीं है।

बड़ी लड़की : पूछने में रखा भी क्या है ममा जिन्दगी किसी तरह कटती ही चलती है हर आदमी की।"

' आधे-अधूरे' नाटक में परिवार की बड़ी लड़की पति का घर छोड़कर आयी है। उसने ऐसा क्यों किया , के प्रश्न पर वह प्रदर्शित करती है कि कारण तो वह स्वयं भी नहीं जानती पर वास्तविकता यह है कि वह कारण जानती है, पर उसे स्वीकार करने का साहस उसमें नहीं है। इसी कारण अपने अलगाव का कारण बताते हुए कहती है कि " ' हवा' है जो हम दोनों के बीच से गुजरती है।"

".... दो आदमी जितना साथ रहें, एक हवा में सांस लें, उतना ही ज्यादा अपने को एक दूसरे से अजनबी महसूस करें।"

सावित्री और महेन्द्र नाथ के आपसी सम्बन्धों में भी अजनबीपन एवं कुंठा व्याप्त है। सावित्री के द्वारा अनेक पुरूषों से संबंध रखने पर महेन्द्र नाथ को अपना अस्तित्व निर्थक लगता है।इसी कारण वह स्वयं को कभी रबड़ स्टैम्प तो कभी काष्ठ- कीट समझता है।

पुरूष एक : मैं इस घर में एक रबड़ स्टैम्प भी नहीं, सिर्फ एक रबड़ का टुकड़ा हूं, बार-बार घिसा जाने वाला रबड़ का टुकड़ा। मुझे पता है कि मैं एक कीड़ा हूं जिसने अंदर ही अंदर इस घर को खा लिया है। पर अब पेट भर गया है मेरा । हमेशा के लिए भर गया है। "

'द्रौपदी' नाटक के मनमोहन और सुरेखा के जीवन में भी यांत्रिकता के कारण अजनबीपन का मोड़ आता है। मनमोहन ने स्वयं को अपने व्यवसाय में केन्द्रित कर दिया जिसके कारण अंततः वह स्वयं को भी 'मशीन' समझने लगा। उसके ' घर' से असंपृक्त होने के कारण उसकी पत्नी और बच्चों में भी अजनबीपन की भावना व्याप्त हो गयी। अपने बाह्य और आंतरिक अजनबीपन से जूझते हुए वह पूर्णतः आत्मनिर्वासित अनुभव करता है।

मनमोहन : कुछ था, जो अब नहीं रहा। कब से उसे ढूंढ रहा हूँ- हर जगह।- सारी अलमारियाँ खोल कर देख लीं । मेज़ों की एक-एक दराज़। कुर्सियों की गद्दियां, कारपेट की कहें, कपड़ों की जेबें। संदूक। संदूकों के नीचे। तस्वीरों के पीछे कोर्निश के ऊपर कमरों के कोने। रद्दी की टोकरी । लेकिन पता नहीं चलता। कुछ पता नहीं चलता।"

' पवन चतुर्वेदी की डायरी' का पवन अपनी भरपूर ईमानदारी एवं कर्तव्य निष्ठा की भावना के साथ भी निरन्तर असफल होता है। अपने व्यावहारिक जीवन में असफल रहने के कारण वह पिता ,बहन , पत्नी एवं संतान के द्वारा नकार दिया जाता है। अपने अस्तित्व के प्रति नकार के कारण वह आत्मनिर्वासित अनुभव करता है।

पवन : तुम्हारी इस मजबूती का कारण तुम्हारा चुनाव हो सकता है। लेकिन परिस्थितियों का क्या किया जाए? परिस्थितियां....। परिस्थितियां... एक बहुत बड़ा संग्रह जिसकी गति में आदमी की उंगलियां फँसीं हैं परिस्थितियों.... परिस्थितियां... परिस्थितियां... यही हैं परिस्थितियां और कुछ नहीं!"

अपने आत्मीय जनों के नकार से पवन स्वयं के जीवन को व्यर्थ और निर्थक समझता है। उसे प्रतीत होता है कि परिस्थितियों ने उसे ऐसा मनुष्य बनाकर रख दिया है जो किसी काम का नहीं है, जिसकी अपनी कोई आकांक्षा नहीं है और जिसके जीवन में कोई उल्लास शेष नहीं रह गया है।

पहला पाठक : बुरा न मानें, चतुर्वेदी जी आपकी लायब्रेरी में मलबा तो बहुत भरा है, पर काम की किताब एक भी नहीं।

पवन: मानता हूं। लेकिन जिंदगी में भी तो यही कुछ है।। सुबह से शाम तक इतना कुछ होता है, पर काम की घटना एक भी नहीं। "

यौन विकृतियाँ : भारतीय समाज में स्त्री और पुरुष के संबंधों को विवाह और नैतिकता के बंधनों में बांधकर मर्यादित करने का प्रयास किया है। किन्तु त्रासदी यह है कि वर्तमान अतृप्त , यांत्रिक और कुंठित जीवन में स्त्री- पुरुष सम्बन्धों में यौन विकृतियां समाहित हो गयी हैं। " कोमलता और क्रूरतम आचरण के विरोधी सीमांतों में बँधा औरत मर्द का रिश्ता और उसके काम संबंधों की समस्या मानव जाति की प्राचीनतम और आधुनिकतम जटिल समस्याओं में एक है।"

'किमिदम यक्षम्' नाटक में यौन कुंठा से उत्पन्न त्रासदी दिखाई गई है । पिता- पुत्री तथा भाई-बहन के संबंधों की यौन कुंठा अपनी अन्तिम परिणति में उन्हें आत्महत्या के मार्ग पर ला पटकती है।

धाय : मैंने चेता दिया था उसे।... पर वह...बेटे जैसे शिष्य को गुरु ने ही... और फिर पुत्री के साथ पिता ने... पागल हो गया तो आश्चर्य क्या... जाने कहां चला गया... कुछ ही दिन बाद तो खबर मिली थी उस लावारिस लाश की... आत्महत्या की , कहते हैं हुलिया मिलता था उस मूर्तिकार से ... क्या पता ..."

संत्रास: श्रमिक , कलाकार दिन-रात की अथक साधना के पश्चात् अपना अविष्कार करता है किन्तु जब उस अविष्कार का प्रतिफल मिलने का समय आता है तब उसका श्रेय अन्य सत्ताधारी व्यक्ति उठा ले जाते हैं। ऐसी स्थिति में वह स्वयं को ठगा हुआ सा अनुभव करता है। 'हानूश' नाटक का कलाकार ऐसे संत्रास से गुजरता है।वह सत्रह वर्ष की अथक साधना और भयंकर ग़रीबी से जूझते हुए घड़ी का निर्माण करता है किन्तु जब घड़ी बनकर तैयार हो जाती है तब उसका श्रेय व्यापारी संघ और पादरी ले जाते हैं। राजा द्वारा घड़ी का आविष्कार करने के पुरस्कार स्वरूप उसे राजदरबारी तो बनाया जाता है किन्तु उसकी आँखें निकलवा दी जाती हैं ताकि भविष्य में वह पहले से बेहतर घड़ी न बना सके । इस प्रकार उसके कलाकार व्यक्तित्व की हत्या कर दी जाती है। ऐसी जनक स्थिति में हानूश के मन में अपनी ही कलाकृति के प्रति तीव्र घृणा एवं लगाव का अंतर्विरोध उभरता है। उसके हृदय में घड़ी को लेकर घृणा इसलिए है क्योंकि वह उसी घड़ी के कारण और घड़ी बनाने से वंचित हो गया है तथा लगाव इस कारण है कि उसने वह घड़ी भयंकर कठिनाईयों को झेलते हुए तैयार की थी। हानूश की त्रासदी यह है कि वह घड़ी के प्रति घृणा एवं लगाव के अंतर्विरोध से जूझता हुआ बहुत छटपटाता है फिर भी घड़ी से दूर नहीं जाना चाहता।

कात्या : घड़ी को लेकर वह कुढ़ता है, मन ही मन छटपटाता है, उसे तोड़ने की कोशिश भी करता है।पर उसकी जान घड़ी में ही है। उसकी आवाज सुनकर वह जी रहा है।तुम उसे किसी दूसरी जगह ले जाओगे तो उसे लगेगा जैसे उसे अंधे कुएं में फेंक दिया गया है।"

इस प्रकार हम देखते हैं कि मशीनी युग में जीते-जीते मनुष्य की भावनाएं भी यांत्रिक हो गई है। वैयक्तिक त्रासदी के पीछे बहुत सी विपरीत परिस्थितियां और आकांक्षाओं का अन्तर्द्वन्द्व कार्य करता है।यह अन्तर्द्वन्द्व मनुष्य को अपनी वर्तमान परिवेश से असंपृक्त करता है। मानसिक द्वन्द्व की स्थिति में जीता हुआ व्यक्ति आत्महंता तक हो उठता है। हिन्दी नाट्य-जगत् में इसी वैयक्तिक त्रासदी की अनुगूंज स्पष्ट परिलक्षित होती है।

Key Words : त्रासदी ,अजनबीपन, आत्मनिर्वासन, ऊब, कुंठा, अंतर्विरोध, संत्रास, विडम्बना, विसंगति बोध, लिबिडो, लिविंग टुगैदर, अस्तित्व बोध, आत्महंता परिस्थितियां।

सन्दर्भ :

1. मनोविश्लेषण: सिग्मंड फ्रॉयड, अनुवादक - देवेन्द्र कुमार वेदालंकार
2. अस्तित्ववाद : दार्शनिक तथा साहित्यिक भूमिका-डॉ लाल चंद गुप्त 'मंगल'
3. कर्फ्यू-डॉ. लक्ष्मीनारायण लाल
4.देवयानी का कहना है- रमेश बक्षी
5. मोहन राकेश के संपूर्ण नाटक- संपादक नेमिचन्द्र जैन
6. आधे-अधूरे - मोहन राकेश
7. तीन नाटक - सुरेन्द्र वर्मा
8.पवन चतुर्वेदी की डायरी- डॉ. कुसुम कुमार
9. नया नाटक :उद्भव और विकास-डॉ नर नारायण राय
10. देहान्तर (किमिद्म यक्षम्)-नंदकिशोर आचार्य
11. हानूश- भीष्म साहनी

***

शास्त्रीय संगीत के शिक्षण में पं. विष्णु नारायण भातखण्डे जी द्वारा रचित सरगम एवं लक्षण गीतों का महत्व

श्रेयसी पावगी *
डॉ. शीतल मोरे **

सार-संक्षेप :-

भारतीय संगीत को सर्व समाज में प्रचारित करने की प्रवृत्ति की नींव डालने वाले संगीत मनीषि स्व. पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी अभिजात संगीत शिक्षण सुलभ कराने के लिए आजीवन संगीत के पुनरोद्धार और प्रचार - प्रसार में रत रहे | घरानों और रियासतों में सिमटी संगीत कला को जनमानस तक पहुँचाने के लिए उन्होंने एक शिक्षण पद्धति का विकास किया जो अंग्रेजी शिक्षण पद्धति से प्रभावित थी |

यह सीमित शिक्षण पद्धति समाज में कैसे प्रचलित होगी इस पर उन्होंने अनेक प्रयोग किये एवं शोध किया | यह संगीत शिक्षण, शास्त्र और क्रियात्मक दोनों रूपों में सभी लोगों को कैसे सुलभता से प्राप्त हो, इस पर विचार किया | इसके फलस्वरूप, नवीन शिक्षण पद्धति के अंतर्गत उन्होंने स्वयं रचित सरगम गीत, लक्षण गीत और बंदिशों के अतिरिक्त उन अनेकानेक संकलित बंदिशों का भी समावेश किया जो परम्परागत रूप से विभिन्न घरानों में प्रचलित थीं , जिससे संगीत सीखने वाले या संगीत में सुलभता प्राप्त करने के लिए वे रचनाएं उपयुक्त हों | शास्त्रीय संगीत का शास्त्र सुलभता से सबको समझ में आये और सबको उपलब्ध हो, इसका उन्होंने प्रयास किया |

पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी द्वारा रचित सरगम एवं लक्षण गीतों तथा उनके द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धति में सुलभता होने के कारण वे संस्थागत शिक्षण की दृष्टि से सर्वथा उपुक्त हैं | प्राथमिक स्तर के शिक्षण एवं जन सामान्य से शास्त्रीय संगीत का परिचय कराने हेतु, पं. भातखण्डे जी द्वारा निर्मित सरगम एवं लक्षण गीत बहुत उपयोगी हैं | सरगम तथा लक्षण गीतों द्वारा विद्यार्थियों को रागों की सम्पूर्ण जानकारी एवं चलन का अच्छा ज्ञान हो जाता है|

प्रस्तुत शोष पत्र में पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी रचित सरगम एवं लक्षण गीतों का राग गायन तथा संगीत शिक्षण में योगदान के विषय में विस्तृत अध्ययन प्रस्तुत किया गया है |

संकेत शब्द :- संगीत शिक्षण, सरगम गीत, लक्षण गीत

प्रस्तावना :-

भारत के जिस सबसे प्राचीन इतिहास का अभी तक पता चलता है वह है सिंधु सभ्यता के काल का इतिहास | यह सभ्यता वैदिक सभ्यता के पूर्व की है अथवा वैदिक है - इस प्रश्न पर विद्वानों में पर्याप्त मतभेद है |[1]

भारतीय संत का इतिहास नामक पुस्तक के लेखक और प्रसिद्द संगीत विद्वान ठाकुर जयदेव सिंह जी के अनुसार -

---

* पी.एच.डी. शोध छात्रा, संगीत विभाग एस.एन.डी.टी. महिला विद्यापीठ, पुणे
* मार्गदर्शिका सहयोगी प्राध्यापक

सिंधु सभ्यता आर्य थी या अनार्य, वैदिक थी या अवैदिक, इस विषय में विद्वानों में मतभेद है, किन्तु इस विषय में तो कोई विवाद हो ही नहीं सकता कि वह भारतीय थी | मोहनजोदड़ो की खुदाई में बाँसुरी, तंत्रीयुक्त वीणा, चमड़े के कई प्रकार के वाद्य-यंत्र, दो नर्तकियों की काँसे की मूर्तियाँ और नर्तक की पत्थर की भग्न मूर्ति इत्यादि संगीत सम्बन्धी सामग्री मिली है | इन सामग्रियों से यह पता चलता है कि ईसा से 5000 वर्ष पूर्व भारतीय संगीत में पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी |[2]

वैदिक काल में संगीत का विकास यज्ञ और मन्त्रों के आधार पर हुआ | सामवेद में अनेक स्थानों पर इस बात के प्रमाण मिलते हैं कि साम संगीत सम्प्रदाय अथवा गुरु-शिष्य परंपरा के अंतर्गत सीखा जाता था |[3]

उपरोक्त विवेचन ठाकुर जयदेव सिंह जी ने "भारतीय संगीत का इतिहास" में किया है जिसमें साम संगीत की शिक्षा का माध्यम सम्प्रदाय बताया गया है | सामवेद के समय से ही गाने की एक प्रणाली उत्पन्न हुई और गायन सामुदायिक होता था |

साम प्रशिक्षण का एक रूप गुरुकुल में जाकर गुरु से सामों का अध्ययन करना था | प्राचीन काल में विद्याध्ययन की गुरुकुल प्रणाली प्रचलित थी | दूर-दूर से विद्यार्थी अध्ययन करने के लिए गुरुकुल में आते थे | गुरुमुख से अध्ययन किये जाने के कारण वेद को 'अनुभव' भी कहा गया |[4]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में सामवेद के काल से ही संगीत किसी न किसी रूप में उपस्थित है | शिक्षण के क्षेत्र में भी संगीत, गुरु-शिष्य परंपरा में सिखाया जाता रहा है | यह एक मौखिक परंपरा रही है | वर्तमान समय में अब संगीत भी एक विभाग के रूप में विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में स्थापित हो चुका है | केवल संगीत के विश्वविद्यालय भी स्थापित हो चुके हैं | संगीत को भी अन्य विषयों की तरह मान्यता प्राप्त हो चुकी है | इतना ही नहीं, प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालयों में भी संगीत की शिक्षा दी जाने लगी है |

संगीत को जन सामान्य में मान्यता दिलाने के लिए कई महान संगीत शास्त्रियों, संगीतज्ञों का योगदान रहा है जिनमें मुख्य रूप से पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी का नाम लिया जाता है |पंडित विष्णु नारायण भातखण्डे जी एक महान संगीतज्ञ और शास्त्रकार थे | उनका मुख्य उद्देश्य जन सामान्य में शास्त्रीय संगीत की लोकप्रियता बढ़ाना था | जो अभिजात संगीत मध्यकाल तक दरबारों और घरानों में सीमित रह गया था, उसे उन्होंने जन साधारण तक पहुँचाने का सफल प्रयास किया | उन्होनें एक ऐसी स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया जो समझने में सरल थी, विशेषकर उनके लिए जिनकी संगीत की पृष्ठभूमि नहीं थी |

वैदिक काल में संगीत की शिक्षा प्रणाली कितनी सुव्यवस्थित थी इसका एक उदाहरण 'कचटपतयादि' जैसी स्वरलिपि पद्धति है | ठाकुर जयदेव सिंह जी ने लिखा है - लोगों की यह भ्रांत धारणा है कि भारतीय संगीत में पहले स्वरलिपि नहीं थी | जबकि साम में पहले कचटपतयादि पद्धति की स्वरलिपि थी और फिर अंकों द्वारा स्वर व्यक्त किये गए | साम की स्वरलिपि उस समय के संगीत के लिए सर्वथा पर्याप्त थी | [5]

मध्यकाल में भारत में मुग़ल शासकों की सत्ता होने के बावजूद भी संगीत शिक्षा की गुरु-शिष्य परंपरा कायम थी ,इसके अनेक प्रमाण मिलते हैं |यहाँ तक कि मुग़ल शासकों के अनेक दरबारी गायकों ने भी भारतीय परंपरा के अनुसार शिष्य बनाये और उन्हें रागदारी संगीत की तालीम दी |

मध्यकाल में भी मौलाबख्श तथा पंडित भातखण्डे जी के समकालीन महान गायक एवं संगीतज्ञ, पंडित विष्णु दिगंबर पलुस्कर ने भी अपनी-अपनी स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया, परन्तु वे समझने में क्लिष्ट थीं इसलिए उनका उपयोग अधिक नहीं हो सका | अधिकांश विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में संगीत की शिक्षा पंडित भातखण्डे द्वारा निर्मित स्वरलिपि पद्धति में ही दी जाती है | इसका कारण है कि सर्वप्रथम पंडित भातखण्डे जी ने जन सामान्य को ध्यान में रखकर एक सरल स्वरलिपि पद्धति का निर्माण किया |

जन सामान्य में अभिजात संगीत को लोकप्रिय करने के उद्देश्य से ही पंडित भातखण्डे जी ने संगीत संस्थाओं की स्थापना की जिससे घरानेदार संगीतज्ञों के अतिरिक्त अन्य लोगों को भी संगीत सीखने का अवसर मिल सके तथा शास्त्रीय संगीत से वे अनभिज्ञ न रहें | उन्होनें लखनऊ में "मैरिस कॉलेज ऑफ़ हिंदुस्तानी म्यूजिक" (अब भातखण्डे संगीत अभिमत विश्वविद्यालय) एवं ग्वालियर में माधव संगीत महाविद्यालय की स्थापना की | बड़ौदा के म्यूजिक कॉलेज का पुनरोद्धार किया |

भातखण्डे जी ने भारत भ्रमण करके अनेक दरबारी संगीतज्ञों एवं गुरुओं से अनेकों रागों की बंदिशें एकत्रित कीं | कई बार छुप के बंदिशों को हासिल किया, जिस समय गुरु अपने शिष्यों को संगीत की शिक्षा दे रहे होते थे | ये बंदिशें लिखित रूप में उपलब्ध नहीं थीं | सिर्फ सुनकर पंडित जी ने उन बंदिशों को स्मृति में रखा और स्वरलिपिबद्ध किया | बाद में उन्होंने इन बंदिशों को अपने ग्रन्थ "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका" के छः भागों में प्रकाशित किया | इन पुस्तकों में उन्होनें एकत्रित की हुई बंदिशों के साथ-साथ अपनी भी रचनाओं को शामिल किया |

शास्त्रीय संगीत को और अधिक सरल रूप से सिखाने के उद्देश्य से उन्होंने सरगम एवं लक्षण गीतों का निर्माण किया | इन रचनाओं को भी पंडित जी ने क्रमिक पुस्तक मालिका के सभी भागों में सम्मिलित किया |

पंडित भातखण्डे जी द्वारा रचित सरगम एवं लक्षण गीतों से विद्यार्थियों को शास्त्रीय संगीत सीखने और समझने में बहुत आसानी हुई है और सरल रूप से राग का विवरण भी याद रखने में सरगम एवं लक्षण गीतों से बहुत सहायता मिली है | इनके रियाज़ से सुर भी पक्के होते है | प्राथमिक शिक्षण के लिए पंडित भातखण्डे जी की शिक्षण प्रणाली सर्वथा उपयुक्त है | [6]

भातखण्डे जी द्वारा स्थापित संगीत संस्थाओं में विद्यार्थियों को रागों का परिचय कराते समय सर्वप्रथम प्रत्येक राग में ये सरगम एवं लक्षण गीत सिखाये जाते हैं जिससे उनको रागों की चलन एवं उनकी सम्पूर्ण जानकारी हो जाए, रागों की सूक्ष्म बातें ग्रहण करने में सुलभता हो |

सरगम गीत की परिभाषा एवं संगीत शिक्षण में प्रयोग :-

राग में अंतर्भूत स्वरों की एक तालबद्ध मनोरंजक रचना को 'सरगम' कहते हैं | सरगम भिन्न-भिन्न रागों एवं तालों में होती है | सरगमों का मुख्य उद्देश्य विद्यार्थियों को स्वर-ज्ञान के साथ-साथ रागों की पहचान कराना होता है |

रागबद्ध व तालबद्ध स्वर-रचना-विशेष को 'सरगम गीत' कहते हैं | इसमें किसी प्रकार की कविता नहीं होती; केवल स्वर ही होते हैं | सरगम-गीत भिन्न-भिन्न रागों व तालों में निबंध होते हैं | इनको गाने से विद्यार्थियों को स्वर-ज्ञान तथा राग-ज्ञान में बहुत सहायता मिलती है | [7]

पंडित भातखण्डे जी ने सरगम गीतों की रचना का कार्य प्राथमिक शिक्षण स्तर की दृष्टि से ही किया था जिससे प्रारम्भ से ही विद्यार्थियों को स्वर एवं राग-ज्ञान हो जाए | पंडित जी ने ख्याल गायकी में प्रचलित लगभग सभी रागों और तालों में सरगम गीत रचे हैं |

इन सरगम गीतों को पंडित जी ने प्राथमिक शिक्षण स्तर की दृष्टि से मध्यलय में ही रचा है, जिससे विद्यार्थियों को इन्हें गाने में सरलता हो | प्रत्येक राग में सरगम गीत रचकर भातखण्डे जी ने उस राग को स्वर और ताल में निबद्ध करके सरलता से समझाया है | इनका निरंतर अभ्यास करने से विद्यार्थियों में उस राग के प्रति स्पष्टता आ जाती है |

कई घरानों में उनकी गायकी के अनुसार, सरगम गीत रियाज़ की दृष्टि से निर्मित किये जाते थे | इसी से प्रेरणा लेकर एवं अनेक घरानों के गायकों से चर्चा कर,भातखण्डे जी ने प्राथमिक शिक्षण की दृष्टि से सरगम गीतों को सरल रूप में रचा, क्योंकि घरानों के अंतर्गत सिखाये जाने वाले सरगम गीत या स्वरमालिकाएँ क्लिष्ट होती थीं जो प्रारम्भिक शिक्षण के लिए अनुपयुक्त सिद्ध होतीं |

लक्षण गीत की परिभाषा एवं संगीत शिक्षण में प्रयोग :-

राग के नियम बताने वाले तालबद्ध गीत को जो उसी राग में बंधा हुआ होता है, 'लक्षण गीत' कहते हैं | इस गीत में राग में लगते हुए स्वर, उसकी जाति (औडव, षाडव अथवा सम्पूर्ण), उसका गायन समय, राग का नाम, उसके वादी, सम्वादी एवं विवादी स्वर इत्यादि राग की सब जानकारी समझायी हुई होती है |

जिस गीत में अपने राग का पूरा लक्षण हो, लक्षण गीत कहलाता है | इसका उद्देश्य यह है कि प्रारम्भिक विद्यार्थियों को गीत के सहारे राग का परिचय कण्ठस्थ हो जाए | लक्षण गीत में भी ख्याल के समान दो भाग होते हैं - स्थाई और अन्तरा | इसकी गायन शैली ख्याल की तरह होती है | यह अधिकतर उन्हीं तालों में होते हैं जिनमें छोटे ख्याल गाये जाते हैं | कभी-कभी ध्रुपद अंग के भी कुछ लक्षण गीत पाए जाते हैं | अतः यह किसी भी ताल में हो सकता है | [8]

जिस प्रकार पंडित भातखण्डे जी ने स्वर-ज्ञान कराने की दृष्टि से सरगम गीतों की रचना की, उसी प्रकार राग-ज्ञान कराने के लिए अनेक रागों में लक्षण गीतों की भी रचना की |पंडित भातखण्डे ने भी प्रारम्भिक संगीत शिक्षण की दृष्टि से ही लक्षण गीतों की रचना की | लक्षण गीतों का विचार उन्हें अपनी दक्षिण की यात्रा के दौरान आया, जिस समय वे संगीत में शोध की दृष्टि से भारत भ्रमण के लिए निकले थे| बंदिशें संकलित करने की योजना से एवं हर प्रांत का संगीत सुनने एवं उससे कुछ सीखने की दृष्टि से भी उन्होंने ये यात्राएं कीं |

दक्षिण भारत में पहले से ही लक्षण गीत गाने का प्रचलन था | इसी गीत प्रकार से प्रभावित होकर पंडित भातखण्डे जी ने यह विचार किया कि प्रारम्भिक शिक्षण के लिए उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी लक्षण गीत रचे जाने चाहिए | इस प्रकार उन्होंने लक्षण गीतों की अनेकों रागों और तालों में रचनायें कीं और उन्हें अपनी रचित "हिन्दुस्तानी संगीत पद्धति क्रमिक पुस्तक मालिका" के छः भागों में प्रकाशित भी किया|

पंडित जी का उद्देश्य था कि विद्यार्थियों को लक्षण गीतों के माध्यम से राग का की सम्पूर्ण जानकारी कंठस्थ हो जाए | इनका रियाज़ करने से विद्यार्थी को राग की चलन एवं स्वरुप के साथ-साथ प्रत्येक राग की जानकारी भी हो जाती है |

सरगम गीतों के समान ही पंडित जी ने प्राथमिक स्तर के रागों से लेकर उच्चस्तर के रागों में लक्षण गीत भी रचे | इनको भी स्तर की दृष्टि से प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्चस्तरीय रागों के लक्षण गीतों में विभाजित किया जा सकता है | जैसे- प्राथमिक स्तर हेतु राग मालकौंस, बिहाग, देस, यमन, भैरव इत्यादि में लक्षण गीत उपयुक्त हैं | माध्यमिक स्तर हेतु राग गौड़सारंग, छायानट, कामोद, रागेश्री, जयजयवंती इत्यादि उपयुक्त हैं | उच्चस्तरीय हेतु राग मुलतानी, सूरमल्हार, आभोगी, बसंतमुखारी इत्यादि उपयुक्त हैं |

भातखण्डे जी ने प्रचलित रागों के अलावा कई अप्रचलित तथा अनवट रागों में भी लक्षण गीत रचे हैं जैसे राग चंद्रकांत, खट, देवगंधार, पंचम, इत्यादि | कई कम प्रचलित तालों में भी लक्षण गीतों की रचनायें की हैं जैसे आड़ा चौताल, गजझम्पा, ब्रह्मताल, मत्त ताल इत्यादि |

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि पंडित भातखण्डे जी द्वारा रचित सरगम एवं लक्षण गीतों के माध्यम से संगीत के विद्यार्थियों को रागों को समझने और सीखने में बहुत सुलभता हुई है | आज जिन रागों में सरगम तथा लक्षण गीत उपलब्ध नहीं हैं, उन रागों में यह निर्मिति करने की आवश्यकता है जिससे विद्यार्थियों को अभिजात संगीत समझने में सरलता हो और सामूहिक अथवा संस्थागत संगीत शिक्षा प्रणाली में उन्हें घरानेदार शिक्षा जैसा प्रशिक्षण मिल सके |

सन्दर्भ :

1. सिंह, डॉ. जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ. 8, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
2. सिंह, डॉ. जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ. 13, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
3. सिंह, डॉ. जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ. 56, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
4. शर्मा, डॉ. पंकज माला, वैदिक युग में संगीत शिक्षा का महत्व, संगीत, जनवरी 1988, पृष्ठ. 9
5. सिंह, डॉ. जयदेव, भारतीय संगीत का इतिहास, पृष्ठ. 74, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी
6. साक्षात्कार, कोरटकर, डॉ. सुहासिनी, भेंडीबाज़ार घराने की ज्येष्ठ गायिका तथा बंदिशकार, (15-06-2017)
7. गर्ग, लक्ष्मीनारायण, पृष्ठ. 238, संगीत विशारद, हाथरस
8. श्रीवास्तव, प्रो. हरिश्चंद्र, राग परिचय भाग-2, पृष्ठ 201, संगीत सदन प्रकाशन

***

सामाजिक पर्यावरण व आधुनिकता के विविध पहलू : एक वैचारिक विमर्श

डॉ. विजय कुमार वर्मा *

इस लेख के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि अनियंत्रित प्रौद्योगिक होड़ व विकासवादी प्रवृत्ति के बढ़ने, से समाज में प्रतियोगिता में वृद्धि व संसाधनों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष बढ़ गया है। खाद्यान्न उत्पादन में हाइब्रिडीकरण के कारण वृद्धि तो अवश्यक हुयी है परन्तु उसका दुष्प्रभाव मानक स्वास्थ्य पर भी पड़ा है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन को मजबूर वर्ग "इन्वायरमेंटल रिफ्यूजीज" की समस्या आम तौर पर देखने को मिल रही है। पूर्व में भी नर्मदा बचाओ आन्दोलन, से सम्बन्धि मेधा पारेकर, व उत्तराखखंड में गौरा देवी के नेतृत्व में हुये चिपको आन्दोलन, व दक्षिण में अरिपको आन्दोलन इत्यादि के दुष्प्रभाव को ध्यान में रखते हुये विकास के आधुनिक वैश्विक मॉडल पर विचान करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। विस्थापन व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को सीधे तौर पर प्रभावित करता है।

शब्द–संकेत : उद्विकास, पारिस्थितिकीय, बुद्धिसंगतता, मैकडोनाल्डाइजेशन

पारिस्थितिकी, मानव जीवन को प्रभावित करती है। पर्यावरण व व्यक्ति मानसिक, शरीरिक, स्वास्थ्य के साथ एक सीधा सम्बन्ध देखने को मिलता है। इस लेख में पर्यावरण और व्यक्ति के जीवन के विभिन्न पक्षों के बीच सम्बन्धों को लेकर चर्चा करने का प्रयास किया गया है। यदि सामान्य तौर पर विश्लेषण कर देखने का प्रयास किया जाये। तो हमें देखने को मिलता है कि समाज में उपस्थित कई कारक मानवस्वास्थ्य/को प्राभावित करने का करने का कार्य करते है। मानवीय क्रियायें, गतिविधियों, सामाजिक पर्यावरण को प्रभावित व प्रदूषित भी करने का भी कार्य करती है जिसका सकारात्मक व नकारात्मक प्रभाव हमारे स्वास्थ्य के सम्बन्ध में देखा जा सकता है। प्रो0 राधाकमल मुखर्जी ने अपनी पुस्तक 'सोशल इकोलाजी' में पारिस्थितिकीय की विधिवत् चर्चा की है। व्यावहारिक व समुदाय आधारित पारिस्थितिकी को लेकर मानवीये क्रियाओं व गतिविधियों द्वारा पर्यावरण पर पड़ने वाले प्रभावों की बात प्रो0 मुखर्जी विधिवत किया है। डार्विन ने भी अपनी कृति 'ओरिजिन ऑफ स्पसीज' में जैविक उद्विकास द्वारा उद्विकासीय प्रक्रिया को समझाने का प्रयास किया है वही स्पेंसर ने भी सामाजिक संदर्भ में इनसे प्राभावित होते हुए सामाजिक उद्विकास की चर्चा की है। पर्यावरणीय प्रदूषण का, जलवायु परिवर्तन का, पारिस्थितिकीय क्षरण का और जैवविविधता को होने वाले खतरों के पीछे मानवीय सोच, मानवीय क्रियायें, मानवीय हित केन्द्रित गतिविधियां प्रौद्योगिक उन्मुखतावादी सोच, तात्कालिक लाभ की महत्त्वकांक्षा ने पर्यावरणीय मूल्यों के समक्ष एक प्रश्नवाचक चिन्ह लगाकर भविष्य में आने वाली पीढ़ियों के हितों को सुरक्षा प्रदान करने हेतु एक सतत् संपोषित निवर्हनीय विकास को अपनाने के लिए एक विमर्श प्रदान किया परिणामतः नव चिंतन का प्रादुर्भाव, पर्यावरणीय चिंतन को सशक्त वनाने का कार्य करेगा। आज का मानव रोबोरियन कार्यशैली व आर्थिक उत्पादन की मशीन बनकर जीवन को संयोजित करने का प्रयास कर रहा है। जोकि निश्चित रूप से बैकेनियन मॉडल ऑफ डेवलेपमेंट को परिलाक्षित करता हुआ देखा जा सकता है।

वर्तमान समसायिक परिदृश्य में पर्यावरणीय कारकों के अन्तर्गत वाह्य व आंतरिक कारकों ने मानव स्वास्थ्य व औसत आयु के सूचकांक को भी प्रभावित किया है। सामान्य हालात में पारिस्थितिकीय कारकों ने प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से मानव की निर्धारित आयु स्तर में कमी लाने का भी कार्य किया है। प्रक्रति के पर्यावरणीय वाह्य कारकों के अति उत्सर्जन जैसे– ध्वनि प्रदूषण, वायु प्रदूषण, पराबैगनीं व रेडियोधर्मी विकिरण जैसे अनेक तत्त्वों ने मानव जीवन के समक्ष एक सकर पैदा करने का कार्य किया है। बड़ी–बड़ी कारखानों से निकलने वाला जहरीला पदार्थ समुन्द्रें, नदियों के जल को जहरीला बनाने

* समाजशास्त्र, सामाजिक विज्ञान एवं समाजकार्य, डॉ. शकुन्तला मिश्रा राष्ट्रीय पुनर्वास विश्व विद्यालय लखनऊ

का कार्य किया है। जानवरों के प्रति, मानव प्रकृति प्रमियों के प्रति इस क्रिया ने मानव जगत् को ही चुनौती देने का कार्य किया है।

इस लेख के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया गया है कि अनियंत्रित प्रौद्योगिक होड़ व विकासवादी प्रवृत्ति के बढ़ने, से समाज में प्रतियोगिता में वृद्धि व संसाधनों को प्राप्त करने के लिए संघर्ष बढ़ गया है। खाद्यान्न उत्पादन में हाइबिडीकरण के कारण वृद्धि तो अवश्यक हुयी है परन्तु उसका दुष्प्रभाव मानक स्वास्थ्य पर भी पड़ा है। वर्तमान में विकास को आधुनिक वैश्विक मॉडल 'विस्थापन' को बड़े स्तर पर आयोजित कर रहा है। एक स्थान से दूसरे स्थान पर पलायन को मजबूर वर्ग "इन्वायरमेंटल रिफ्यूजीज" की समस्या आम तौर पर देखने को मिल रही है। पूर्व में भी नर्मदा बचाओ आन्दोलन, से सम्बन्धि मेधा पारेकर, व उत्तराखखंड में गौरा देवी के नेतृत्व में हुये चिपको आन्दोलन, व दक्षिण में अरिपको आन्दोलन इत्यादि के दुष्प्रभाव को ध्यान में रखते हुये विकास के आधुनिक वैश्विक मॉडल पर विचान करना प्रासंगिक प्रतीत होता है। विस्थापन व्यक्ति के मानसिक स्वास्थ्य को सीधे तौर पर प्रभावित करता है।

ऐसी दशा में हम सभी के साथ–साथ सरकार को भी एक वैश्विक मॉडल व क्षेत्रीय दृष्टिकोण विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। "सतत् विकास की संस्कृति" की प्रादुर्भव करने के लिए नवाचार के साथ–साथ प्राकृतिक जागरूकता के कार्यक्रमों को चलाकर समाज में पारिस्थिकीय पोषण की संस्कृति विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। पर्यावरण मित्र या पर्यावरण हितैषी जीवन शैली को विकसित करने का प्रयास करना चाहिए। इसके लिए हमें जल, जंगल, जमीन के रिश्ते अक्षुण्ण बनाते हुये अपनी क्रियाकलापों व आदतों में परिवर्तन करने का प्रयास करना चाहिए। जिससे पर्यावरणीय सुधार प्रतिबिबिंत हो सकें। "सतत् विकास" की संकल्पना को स्वीकार कर अपने जनजीवन व समाज में जागरूकता फैलाकर इसे स्वीकार करने का प्रयास करना चाहिए। मानव जीवन में 'जीयो और जीने दो' के साथ–साथ सहकार व सहअस्तित्व के मूल तत्वों को अपने जीवन का अभिन्न अंग मानकर मानवीय गतिविधियों का क्रियान्वन किया जाना चाहिए। प्रकृति तत्वों के साथ तादाम्य स्थापित कर, प्रकृति सामीयता के भाव को संजोकर ही प्रकृति के साथ हम सभी न्याय कर सकते है। वास्तव में हम सभी को अंधाधुंध प्रतियोगिता के स्तर में कमी लाकर "सम्पूर्ण का विचार" करने का प्रयास करना चाहिए। हमें प्रकृति प्रेमी बनने का प्रयत्न करना चाहिए। पर्यावरणीय/पारिस्थितिकीय संतुलन हेतु कई अन्य विचारकों जिनमें मोर्ज, बैंक, हैबरमास, आदि ने भी अपनी विचारों को प्रमुखता से रखा है। स्थानीय संस्कृति को ध्यान में रखते हुये विकास की वार्ता होनी चाहिए। स्ट्रेटजिक क्रियाओं द्रव हमें समाज के विकास में बारे में सतत् विकास की बात करनी चाहिए।

प्रो0 राधा कमल मुखर्जी ने सामाजिक परिस्थितिकी विज्ञान में व्यावहारिक पारिस्थितिकी और समुदाय पारिस्थितिकी का उल्लेख किया है। व्यावहारिक पारिस्थितिकी में जनसंख्या, प्राकृतिक साधनों, वनस्पति, पशुसंचार के पारिस्थिति गत संतुलन के साथ सामंजस्य करने हुये मानव के विकास के विभिन्न स्वरूपों का अध्ययन आता है, समुदाय पारिस्थिति में मानव भूगोल, मानव जीवशास्त्र, अर्थशास्त्र, तकनीकी के साथ परिस्थिति विज्ञान की अंतः क्रिया के कारण प्राप्त वैज्ञानिक दृष्टिकोण आता है। प्रो0 मुखर्जी की मानना है कि मानव व समुदाय दोनों को पारिस्थिति या पर्यावरण के कारण प्रभवित करते है। मुखर्जी ने वैयक्तिक व अन्तर्सम्बंधित होते है। समुदाय की पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया का प्रभाव व्यक्ति तथा व्यक्ति के पर्यावरण के प्रति प्रतिक्रिया का प्रभाव समुदाय पर पड़ता है। इन दोनों को पर्यावरण से अनुकूलन करना पड़ता है। मुखर्जी का मानना है कि "जीवन के जान से जटिल, बहुविध विस्तृत धागे जीवित संसार के विभिन्न अंशो को एक साथ बाँधते है इसलिए उन में सामंजस्य बनाये रहना बहुत आवश्यक है। 1926 में प्रो0 राधाकमल मुखर्जी ने अपनी किताब 'रीजनल सोशोलॉजी' में प्रादेशिक्ता पर विचार व्यक्त करते हुए कहा है कि एक प्रदेश विशेष की भौगोलिक विशेषताएं, वहां के निवासियों के कार्यों, संस्थाओं, मनावृत्तियों व्यवहारों व चरित्र को ढ़ालने में महत्वपूर्ण भूमिका निवादित करती है।

प्रसिद्ध जर्मन विचारक अलरिच बेक ने नयी शब्दावली के माध्यम से समाजविज्ञान को परिचित करने का प्रयास किया। रिस्क सोसायटी, सकैण्ड माडर्निटी, रिफलेक्तिव मोडर्नाइजेशन जैसे शब्दों ने समाज की परिस्थितिकी को समझने में मदद किया। आधुनिकता के स्वरूप व इसकी उपादेयता पर अलग–अलग अन्य समाजवैज्ञानिकों ने अपने विचार दिये है। जर्मन समाजवैज्ञानिक अलरिच बेक कहना है कि "आधुनिकता की संस्कृति खतरे की संस्कृति" है। यह समाज जोखिम भरा/जोखिम उन्मुख समाज है। उलरिच बेक ने इस संदर्भ में कुल तीन श्रेणियों में जोखिमों को दर्शाने का प्रयास किया है। पहला जोखिमम 'निर्माण का' दूसरा 'स्वास्थ्य का' तीसरा 'गैर बराबरी' का जोखिम।

विचारक बेक का मानना है कि परम्परागत समाजों में जोखिम प्राकृतिक होते थे परन्तु आधुनिक दौर में जोखिम, मानवकृत उद्योग व प्रौद्योगिकी से युक्त है। आधुनिकता के कारण प्रदुषित पर्यावरण, असमानता, विविध रोग, सामाजिक विघटन इत्यादि देखे जा सकते है। इसी क्रम में विचारक पारसंस का मत है कि "आधुनिकता मूल्यों की एक पोटली हैं।" समाज में ज्यों ज्यों संरचनात्मक विभेदीकरण बढ़ेगा त्यों त्यों समाज आधुनिक उन्मुखता की ओर अग्रसर होगा। पारसंस का सुझाव है कि अगर आधुनिक समाज को हम समझना चाहते है तो असे भावात्मक तटस्थता, सामूहिकता, सार्वभौमिकता और उपलब्धि के स्तर पर ही समझा जा सकता है। समाज वैज्ञानिक जे0 हैबरमास का मत है कि "आधुनिकता एक अधूरा प्रोजेक्ट है"। हैबरमास का मानना है पूंजीवाद का कोई विकल्प मौजूद नहीं है। आधुनिक समाज में संशोधित तंत्र के साथ–साथ सार्वजनिक क्षेत्र के लिये भी पर्याप्त अवसर होने चाहिये। 'बुद्धिसंगतता' की भी आधुनिक समाज के लिये एक आवश्यक दशा मानते है। आधुनिकता के अधूरे प्रोजेक्ट को पूर्ण करने के लिये हैबरमास बुद्धिसंगतता के एक प्रभावी मार्ग के रूप में स्वीकार करते है।

पर्यावरणीय व पारिस्थिकीय पर्यावरण के संदर्भ में सांचनाकरण के प्रणेता एंथोनी गिडिंग्स ने आधुनिकता को आड़े हाथों लेते हुये कहा कि "आधुनिकता एक प्रकार का ' भगोड़ा समाज' है"। आज का दौर भरोसेबंद दौर न होकर एक अनिश्चितता से लिया हुआ समाज है। अविश्वास, अनिश्चिता, स्वार्थपरता, व्यक्तिवादिता से युक्त यह समाज एक भगोड़े समाज के समान प्रतीत होता है। आधुनिकता के लिए चार प्रमुख संस्थाओं का जिक्र गिडिंग्स ने किया है प्रथम पंजीवाद, दूसरा उद्योगवाद, तीसरा निगरानी की क्षमता व चतुर्थ राष्ट्र राज्य। जार्ज रिट्जर का मत भी उल्लेखनीय है। बुद्धिसंगतता के आधार पर आधुनिकता को समझने का प्रयास किया है। आधुनिकता की अतिबुद्धिसंगतता और अमेरिकीकरण, मैक्डोनाल्डाइजेशन के आधार पर चर्चा करते है। रिट्जर ने जापानी समाज की अति बुद्धिसंगतता की चर्चा भी की है। मैक्डोनाल्डाइजेशन, अमेरिका का एक जलपान ग्रह है। यह लोगों के पास मिय की कमी के चलते कम समय में तत्काल फास्ट फूड उपलब्ध कराने का कार्य करता है। अतिबुद्धिसंगतता से आशय यह है कि उन फास्ट फूड भोज्य पदार्थों का भुगतान तुरन्त क्रेडिट कार्ड के जरिये सफलता से कर दिया जाता है, इसी तर्ज पर रिट्जर ने अधिनिकीकरण को फास्ट फूड, क्रेडिट कार्ड और आधुनिकता के संदर्भ में चर्चा कर बहतरी से विश्लेषित किया है।

विष्णु दत्त शर्मा ने अपनी कृति पर्यायवरण प्रदूषण में रेडियोधर्मिता की प्रतिदिन बढ़ोत्तरी की बात की है। अति सर्वत्र इमेल अर्थात अधिक मात्रा में रेडियोंधार्मिता अभी घातक स्तर से कई लाख गुनी कम है यही सोचकर शायद कुछ देय एक के बाद एक परमाणु परिक्षण करते जा रहे है। रेडियाधर्मिता की धरना सर्वप्रथम प्रकार के हेनीबैकरैल ने सन् 1896 ई0 में लगा 1897 ई0 में क्यूरी दंपति ने सर्वप्रथम रेडियोधर्मिता पदार्थ रेडियन का पता लगाया व रान्टजन ने एक्स किरण को ज्ञात किया।

निष्कर्ष

इस लेख में विचारकों के मत से यह बात स्पष्ट हो गयी है कि आधुनिकता का विवेचन, परिवर्तित हो रहे समाज के नवीन मूल्यों और आदर्शों के आधार पर प्रस्तुत किया है। सभी के विचारों में पर्याप्त अंतर देखा गया। शास्त्रीय विचारकों को सीमेल आदि व आधुनिक विचारा को उलरिच बेक, रिट्जर, हैबरमैस, गिडिंग्स आदि ने परिस्थितियों मूल्यों के समक्ष आधुनिकता के स्वेरूप का चित्रण

किया है। आधुनिक समाज तार्किकता व विवकेशीलता से जुड़कर हुआ समाज है और दुसरा प्रयोग यह किस संदर्भ में कर रहा है यह विद्वानों की वैचारिकी में भिन्न भिन्न है। आधुनिक समाज में परिस्थिकीय संकट उत्पन्न करने में जाया जाता है। स्थापित पर्यायवरणीय मूल्यों का क्षरण भी किया है वास्तव में आधुनिकता का प्रयोग, समाज व पर्यावरणीय मूल्यों को सुरक्षित, संरक्षित व सवंर्धित करने में स्थानीय संस्कृति मूल्यों को ध्यान में रखते हुए प्रयोग करना चाहिये। पारिणमतः एक स्वस्थ पारिस्थिकी का सृजन संभव हो सकेगा।

संदर्भ :

पाण्डेय, एस.एस., (2009), समाजशास्त्र, टाटा मैग्रा हिल, नई दिल्ली
दोषी, एस. एल. एवं जैन, (1996), उच्चतर समाजशास्त्रीय सिद्धान्त, रावत पब्लिकेशन, जयपुर
Guha, Ramachandra, (1994) Social Ecology, oxford University Press, New Delhi
Gadgil, M. Malhotra. K.C, (1982) Ecology of a Pastard
Caste : the gauli Dhangars of Peninsulas India. P-10
Sharma, B.L and bhardwaj, Palak, (2003) Man and Ennronment Malik and Cop. Pub, Jaipur
शर्मा, विष्णुदत्त, (1981) पर्यावरणीय हरिरयाणा साहित्य अकादमी चड़ीगढ़ पृ. 113
भरूचा, इराक, (2014) पर्यावरणीय अध्ययन, आरियंट स्लैक्सवान प्रा0 लि0, नई दिल्ली पृ. 201–208
यादव, रामगणेश, (2014) भारतीय समाजशास्त्र के अग्रणी चिंतक, ओरियंट स्लैक्सवान, नई दिल्ली पृ. 141–171

***

स्नातकात्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के संदर्भ में आत्मविश्वास एवं अभिवृत्ति के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन

*रीना पाटील**

प्रस्तुत शोध में स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के संदर्भ में आत्मविश्वास एवं अभिवृत्ति के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया गया है। शोध कार्य के लिये स्नातकोत्तर स्तर के स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के100–100 कुल 200 विद्यार्थियों को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है। प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा स्मिता भवालकर द्वारा निर्मित आत्मविश्वास प्रामाणिक मापनी का उपयोग किया गया है। इसमें कुल 23 आईटम है। अभिवृत्ति के लिये एस पी अहलुवालिया द्वारा निर्मित प्रामाणिक मापनी का उपयोग किया गया है, जिसमें 90 प्रश्न है। शोध परिणामों से प्राप्त निष्कर्ष में स्नातकोत्तर स्तर की छात्राओं का आत्मविश्वास छात्रों की तुलना में सतत एवं व्यापक प्रक्रिया के मूल्यांकन के संदर्भ में अधिक प्रभावी रहा। स्नातकोत्तर स्तर के छात्राओं एवं छात्रों की सतत एवं व्यापक प्रक्रिया के मूल्यांकन के प्रभाव के संदर्भ में अभिवृत्ति समान पायी गई।

प्रस्तावना

शिक्षा मानव सभ्यता का प्रथम सोपान है। आधुनिक युग में शिक्षा के बिना मानव के अस्तित्व की कल्पना करना कठिन है। इस युग में सभी क्षेत्रों में नवीनता का पदार्पण होने से सामाजिक बदलाव की गति तेज होती जा रही है और प्रजातन्त्रीय परिवेश में व्यक्ति के पीछे स्वतन्त्र एवं उन्मुक्त विचारों की अवधारणा प्रबल होती जा रही है। शिक्षा मानव को आत्म निर्भर बनाती है। शिक्षित व्यक्ति समाज के लिए भार नहीं होतां, वह अपने कार्यो को सफलतापूर्वक करता है। भारतीय पाश्चात्य उपभोक्ता संस्कृति ने व्यक्ति को पोषक बना दिया है। व्यक्ति ने अपने आकांक्षा के स्तर को बढ़ा लिया है। वह भौतिकता की दौड़ में अपने आपको उच्चकांक्षी महसूस करने लगा है। उसकी आकांक्षाओं ने उसे निस्तेज और निष्प्रभ कर दिया है तथा अच्छे बुरे का भेद छोड़कर वह उच्चकांक्षी बन गया है। शिक्षा मानव जीवन में आत्मविश्वास क्षमताओं और व्यक्तियों के गुणों का विकास करती है। शिक्षा मे विकास से व्यक्तियों में आत्मविश्वासबढ़ता है तथा शिक्षा के माध्यम से ही व्यक्ति अपने व्यक्तित्व के गुणों का विकास करता है। शिक्षा सर्वांगीण विकास की कुंजी है।

देश के सर्वांगीण विकास में महाविद्यालयों एवं शिक्षकों की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। विद्यार्थियों का सर्वांगीण विकास मूलतः महाविद्यालयों के माध्यम से शिक्षको पर निर्भर करता हैं इन महाविद्यालयों में अध्ययनरत विद्यार्थी अपने सर्वांगीण विकास में अपनी महती योगदान सुनिश्चित कर रहे हैं। भारतीय शिक्षा दर्शन में व्यक्ति के सर्वांगीण विकास की बात समाहित है यदि किसी देश को अपनी प्रगति की गति बढ़ानी है तो उसे अपने देश की शिक्षा प्रणाली में निरन्तर सुधार लाना होगा। शिक्षण व्यवस्था में समयानुकूल परिवर्तन लाना आवश्यक है। अतः शिक्षा के प्रचार–प्रसार के लिए सरकारी संस्थाओं के अलावा कई निजी महाविद्यालय भी हैं, जो शिक्षा के क्षेत्र में कार्य कर रहे है। स्नातकोत्तर स्तर में अध्ययनरत वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों के सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के संदर्भ में उनका आत्मविश्वास एवं अभिवृत्ति अलग–अलग होती हैं।

आत्मविश्वास– अर्थ

आत्मविश्वाससे आशय अपनी स्वयं की योग्यता में विश्वास करना है जो कि व्यक्ति को स्वआश्रित बनाती है। अपने स्वयं के निर्णय पर भरोसा करना, दब्बू न होना और व्यक्ति जो कार्य करना

* सहायक प्राध्यापक, ज्ञानोदय शिक्षा महाविद्यालय, इन्दौर, देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर

चाहता है उसे करने में उपयुक्तता अनुभव करने से संबंधित है। आत्मविश्वासव्यक्ति का एक पहलु है। किसी व्यक्ति की आत्मा, उसकी भवनाएं, विचार आशाएं, डर, मेहनत व कामनाओं से मिलकर बना होता है। इन सभी पहलुओं के साथ वह इस दुनिया को देखता है आत्मविश्वासव्यक्ति को स्वयं दुनिया में स्थापित करने की एक सकारात्मक अभिवृत्ति है। एक आत्मवि वासी व्यक्ति सामाजिक तौर पर सक्षम भावनात्मक, परिपक्व, बोद्धिक, यथेष्ट कार्य के लिए एक सफल संतुष्टि आशावादी, स्वालंबी, आत्मनिर्भर, निश्चयात्मक व्यक्ति होता है जिसमें नेतृत्व के गुण भी विद्यमान होते है।

गुड के अनुसार– "आत्मविश्वास से आशय किसी व्यक्ति के अपने स्वयं की योग्यता एवं क्षमता में विश्वास व्यक्त करना है।"

अभिवृत्ति

प्रत्येक व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण होता है, जिसके कारण वह अपना प्रत्यक्षीकरण करता है। व्यक्ति की विभिन्न वस्तुओं के प्रति इस धारणा को ही अभिवृति कहते हैं। प्रस्तुत शोध अध्ययन में स्नातकोत्तर स्तरों के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों के अध्ययन के दौरान सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के प्रति प्रशिक्षणार्थियोंकी प्रतिक्रियाओं को अभिवृत्ति माना गया है। दूसरे शब्दों में किसी व्यक्ति की विशिष्ट घटना के प्रति भावना तथा विश्वास को ही अभिवृति कहते हैं। अभिवृति व्यक्ति को उस दृष्टिकोण की ओर संकेत करती है, जिसके कारण वह किसी वस्तु परिस्थिति संस्था या व्यक्ति के प्रति विशिष्ट व्यवहार करता है। अभिवृति की परिभाषा व्यक्तित्व के समूह या किसी संस्था के प्रति सामान्यीकृत चित्तवृद्वि के रूप में की जाती है।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन

प्राचीनकाल से ही शिक्षा के साथ परीक्षा एवं मूल्यांकन जुड़ा रहा है । परीक्षा एवं मूल्यांकन के बिना शिक्षा अपूर्ण है। यदि हम कहें कि परीक्षा शिक्षा की आत्मा है एवं मूल्यांकन इसका फल है, तो अतिशयोक्ति नहीं होगी ।

आज की शिक्षा, परीक्षा एवं मूल्यांकन पर आश्रित हो गई है। परीक्षाओं में अच्छे अंक प्राप्त करना आज शिक्षा का महत्वपूर्ण उद्देश्य हो गया है। एक छात्र एक वर्ष के 365 दिन में जो भी ज्ञान अर्जित करता है उसका मूल्यांकन मात्र 3 घण्टे में हो जाता है। यह है हमारी वर्तमान परीक्षा पद्धति। परीक्षा पद्धति आज छात्रों के लिए जबर्दस्त तनाव का कारण बन गई है। वर्तमान में विद्यार्थियों के तनाव को कम करने के लिये शिक्षा विभाग ने सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रणाली का प्रयोग करने का निश्चय किया।

सतत एवं व्यापक मूल्यांकन के तहत बच्चों के शैक्षिक एवं सह–शैक्षिक पक्षों का मूल्यांकन दो प्रकार से किया जा सकता है। इसमें आमतौर पर परीक्षा की आवश्यकता नहीं होती है। सह शैक्षणिक रचनात्मक मूल्यांकन में बच्चें के व्यक्तिगत, सामाजिक गुणों, जीवन कौशलों अभिवृत्तियों, अभिरूचियों, कार्यानुभव, प्रदर्शन आदि में वांछनीय परिवर्तन का वर्णन व मापन किया जाता है। नृत्य, गायन, चित्रकला, खेलकूद व योग में प्रतिभाग करते समय बच्चों की हर गतिविधि पर नजर रखी जाती है। इस दौरान किसी भी विद्यार्थी को अनुत्तीर्ण करने का कोई प्रावधान नहीं है।

औचित्य

पूर्व में संचालित पाठ्यक्रमों की प्रभाविता एवं अध्ययन अध्यापन प्रक्रिया एवं मूल्यांकन प्रक्रिया पर तो शोध कार्य हुये है किन्तु वर्तमान में शिक्षा के क्षेत्र में स्नातकोत्तर स्तर में तीन वर्षीय पाठ्यक्रम को सेमेस्टर प्रणाली में किया गया। अशासकीय महाविद्यलयों में भी सेमेस्टर पद्वति को अपनाया है। मूल्यांकन हेतु सतत एवं व्यापक प्रक्रिया को अपनाया जा रहा है। परिवर्तित पाठ्यक्रम एवं मूल्यांकन की प्रक्रिया कोस्नातकोत्तर स्तर के द्वारा किस तरह अपनाया जा रहा है एवं इसका क्या प्रभाव पड रहा है, इसका अध्ययन किया जाना है। अतः शोधार्थी द्वारा शोध के लिये इस क्षेत्र का चयन किया गया।

समस्या कथन

''स्नातकोत्तर स्तर के विद्यार्थियों पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के संदर्भ में आत्मविश्वासएवं अभिवृत्ति के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन''

उद्देश्य

अध्ययन के निम्न उद्देश्य थे–

1. स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों मेंसतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों का अध्ययन निम्न के संदर्भ में करना–

अ) आत्मविश्वास एवं, ब) अभिवृत्ति।

परिकल्पनाएँ

अध्ययन की निम्न परिकल्पनाएँ थी–

1. स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों मेंआत्मविश्वासपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।
2. स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकोंमें कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।

न्यादर्श

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा न्यादर्श के रूप में स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला के विद्यार्थियों (100–100) कुल 250 विद्यार्थियों का यादृछिक विधि से न्यादर्श के रूप मे चयन किया गया।

उपकरण

प्रस्तुत शोध अध्ययन मेंस्नातकोत्तर के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास एवं अभिवृत्ति से संबंधित प्रदत्त एकत्रित किये गये। इन प्रदत्तों के संकलन के लिये शोधार्थी द्वारा स्मिता भवालकर द्वारा निर्मित आत्मविश्वास परीक्षण का उपयोग किया गया है। अभिवृत्ति के लिये प्रो. एस पी अहलुवालिया द्वारा निर्मित मापनी का उपयोग किया गया है।

प्रदत्तो का संकलन

प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए शोधार्थी द्वारा सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया।

शोधार्थी द्वारा प्रदत्तों के संकलन हेतु संबंधित पीजी महाविद्यालय के प्राचार्य से अनुमति प्राप्त कर वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों पर सोहार्द्रपूर्ण वातावरण में आत्मविश्वास एवं अभिवृत्ति मापनी प्रशासित की गई।

प्रदत्तों का विश्लेषण

प्रस्तुत अध्ययन में परिकल्पनाओं के परीक्षण हेतु संकलित प्रदत्तो का विश्लेषण **स्वतंत्र *t* टेस्ट** द्वारा किया गया।

परिणाम एवं विवेचनाः

तालिका 1: स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों में आत्मविश्वास पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

आत्मविश्वासपर प्रभाव	N	M	SD	't'value	df	Inference	Level of Sig.
वाणिज्य संकाय	100	37.29	6.58	2.153*	198	Significant at .05 level	.05
कला संकाय	100	35.85	6.75				

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों के आत्मविश्वासपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव का माध्य 37.29 एवं प्रमाणिक विचलन 6.58 है, एवं स्नातकोत्तर स्तर के कला संकाय के विद्यार्थियों के आत्मविश्वासपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव का माध्य35.85 एवं प्रमाणिक विचलन 6.75 है, तथा t का मान 2.153 है, जो df= 198 के सार्थकता के स्तर 0.05 पर सार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना, ''स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों में आत्मविश्वास पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।'' निरस्त की जाती है। अर्थात यह कहा जा सकता है कि स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों में आत्मविश्वासपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों में सार्थक अंतर होगा। स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों में आत्मविश्वासपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव, कला संकाय के विद्यार्थियों में आत्मविश्वास पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव की तुलना में अधिक है। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों का आत्मविश्वास, कला संकाय के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास की तुलना में सतत एवं व्यापक प्रक्रिया के मूल्यांकन के संदर्भ में अधिक प्रभावी रहा।

तालिका 2: स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों में अभिवृत्तिपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों का सारांश

अभिवृत्ति पर प्रभाव	N	M	SD	't' value	df	Inference	Level of Sig.
वाणिज्य संकाय	100	36.79	6.54	0.695	198	Not Significant	36.79
कला संकाय	100	36.35	6.86				36.35

उपरोक्त तालिका से पता चलता है कि स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य संकाय के विद्यार्थियों कीअभिवृत्तिपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव का माध्य 36.79 एवं प्रमाणिक विचलन 6.54 है, एवं स्नातकोत्तर स्तर के कला संकाय के विद्यार्थियों कीअभिवृत्तिपर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव का माध्य 36.35 एवं प्रमाणिक विचलन 6.86 है, तथा t का मान 0.695 है, जो df= 198 के सार्थकता के स्तर के सार्थकता के स्तर 0.01 या 0.05 पर सार्थक नहीं है। अतः शून्य परिकल्पना, ''स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों में कोई सार्थक अंतर नहीं होगा।'' स्वीकृत की जाती है। अर्थात यह कहा जा सकता है कि स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांकों में सार्थक अंतर नहीं होगा। स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति पर सतत एवं व्यापक मूल्यांकन की प्रक्रिया के प्रभाव के माध्य फलांक समान है। निष्कर्ष स्वरूप यह कहा जा सकता है कि स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति सतत एवं व्यापक प्रक्रिया के मूल्यांकन के प्रभाव में समान पायी गई।

निष्कर्ष

1. वाणिज्य संकाय के विद्यार्थिष्यों का आत्मविश्वास, कला संकाय के विद्यार्थियों के आत्मविश्वास की तुलना में सतत एवं व्यापक प्रक्रिया के मूल्यांकन के प्रभाव में अधिक प्रभावी रहा।
2. स्नातकोत्तर स्तर के वाणिज्य एवं कला संकाय के विद्यार्थियों की अभिवृत्ति सतत एवं व्यापक प्रक्रिया के मूल्यांकन के प्रभाव में समान पायी गई।

भविष्य में किए जाने वाले शोध कार्य

1. ग्रामीण व शहरी क्षेत्रों में बी.एड. अध्यापकों के प्रति अभिवृत्ति एवं आत्मविश्वास का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है। यही कार्य उच्च माध्यमिक स्तर एवं महाविद्यालय स्तर के विद्यार्थियों का न्यादर्श लेकर भी किया जा सकता हैं।
2. केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, मध्यप्रदेश माध्यमिक शिक्षा बोर्ड और अन्य किसी माध्यमिक शिक्षा बोर्ड से संबंधित विद्यालयों के विद्यार्थियों में सतत एवं व्यापक मूल्यांकन प्रक्रिया के प्रति अभिवृत्ति एवं आत्मविश्वास पर तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
3. विद्यालयों एवं महाविद्यालयों में प्रयुक्त विधियों एवं प्रविधियों का स्वतंत्र रूप से अध्ययन किया जा सकता है।

संदर्भ :

खान और गुल (2012), नजीर और अरशद अली शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान, पेशावर विश्वविद्यालय।

Shah, S.(2009), Mathematics Education Research Group, Vil.-1, Marga.

Matiba, Fortunatha Mathias(2009), युनिवर्सिटी ऑफ DavEs Salaam तंजानिया.

मैथ्या और मैथ्यु,(2005) जर्नल ऑफ एजुकेशनल पॉलिसी एण्ड इन्टर प्री.–रीसर्च (JEPER) Vol. 1 – 2.-

शर्मा, श्वेता,(2015) ''उच्चतर माध्यमिक स्तर पर ट्यूशन के प्रति अभिभावकों की अभिवृत्ति का अध्ययन'' अप्रकाशित एम.एड. लघु शोध अध्ययन, एम के कालिया शिक्षा अनुसंधान संस्थान युनिवर्सिटी रोहतक।.

***

हिन्दी कविता में आम आदमी

*आलोक रंजन**

भारतीय साहित्य में आम आदमी की चर्चा किसी न किसी रूप में प्राचीनकाल से ही होती रही है। आम आदमी जिसे अंग्रेजी में 'कॉमन मैन' या 'ऑर्डिनरी मैन' कहा जाता है, हिन्दी में उसे ही साधारणजन/सामान्यजन कहा जाता है। साहित्य में यह शब्द नितांत मामूली और जीवन में संघर्षरत विवश व्यक्ति का द्योतक है, जो साधारणतः अविशिष्ट है। प्रखर आलोचक और कहानीकार कमलेश्वर ने 'हिन्दी कहानी–1977' की भूमिका में आम आदमी की परिभाषा देते हुए लिखा है कि 'आम आदमी वह है जो कहीं भी, किसी भी क्षेत्र में नियंता नहीं है, पर हर कार्यक्षेत्र की आधारशिला है।'[1] अभिप्राय यह कि समाज का वह वर्ग जिसके पास कोई शक्ति नहीं है फिर भी अजस्र शक्ति का जो स्रोत है, आम आदमी है। इसके प्रतिनिधि वर्ग में संघर्षरत निम्न वर्ग, निम्न मध्यवर्ग, किसान, मजदूर, छोटे व्यापारी और कर्मचारी वर्ग शामिल हैं।

हिन्दी साहित्य के उद्‌भव काल में सिद्धों–नाथों के बाद अपवाद स्वरूप कुछ कवियों–लेखकों को छोड़ दें तो आम आदमी के पक्ष में खड़े होनेवाले कवि कबीर और रैदास हैं, जिनकी कृतियों में आम आदमी के प्रति सहज सहानुभूति दिखाई पड़ती है। उनके समय में समाज अस्थिर था और धर्म के नाम पर वाह्याडम्बर और कर्मकांड का बोलबाला था। आदमी और आदमी के बीच आम और खास का भेद था। ऐसी विषम स्थिति में कबीर ने आम आदमी का साथ दिया और बड़े ही स्पष्ट शब्दों में उनका आह्वान करते हुए कहा – 'कबीर खड़ा बाजार में, लिए लुकाठी हाथ। जो घर जारै आपना, चले हमारे साथ।।'

रैदास भी कहते हैं – 'ऐसा चाहूँ राज मैं, जहां मिले सबन को अन्न। छोट–बड़ सब सम दिखे, रैदास रहे प्रसन्न।।'

कबीर और रैदास के साथ ही साहित्य के क्षेत्र में सर्वाधिक सशक्त कवि तुलसीदास हुए। उनका रामचरितमानस हर भारतवासी का कंठहार है। रामचरितमानस में राम की कथा है, जो आम नहीं है, खास है। फिर भी, मानस में कई ऐसे महत्वपूर्ण चरित्र और प्रसंग हैं, जहां उन्होंने समाज के आम आदमी को महत्व दिया है। हनुमान, भील, निषादराज, शबरी जैसे महत्वपूर्ण चरित्र मानस में आम आदमी के ही प्रतीक–प्रतिनिधि हैं। कबीर, रैदास और तुलसी के अनन्तर लंबे समय तक आम आदमी साहित्य से गायब रहा। रीतिकाल वह दौर है जिसमें पूरी तरह भोग–विलास की कविताएँ लिखीं गईं तथा जिसमें आम आदमी की आंशिक छवि भी नहीं है।

आधुनिक युग की शुरुआत के साथ ही आम आदमी साहित्य में दिखाई पड़ने लगता है। भारतेन्दु और फिर मुखर रूप में राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त आम आदमी की हिमायत करते हुए साहित्य सृजन करते हैं। भारत–भारती की कविताएँ इसका जीवंत प्रमाण है, जिसमें किसान, मजदूर, श्रमिक, भिक्षुक यहां तक की सदियों उपेक्षित स्त्री भी काव्य–विषय बनकर प्रस्तुत हुई है। भारत–भारती की कई कविताओं में आम आदमी अपनी विषमताओं के साथ मौजूद है। गुप्त जी के समकालीन रचनाकारों ने राष्ट्रकवि को अपना रोल–मॉडल के रूप में स्वीकार किया। चाहे सियारामशरण गुप्त हों या रामनरेश त्रिपाठी या हों बालकृष्ण शर्मा नवीन– सभी ने गुप्त जी की परंपरा का पालन करते हुए कृषक, श्रमिक, नंगे–भिखमंगे प्रभृति आम आदमी की संचित पीड़ा का उल्लेख अपनी रचनाओं में किया है।

नवजागरण के क्रम में छायावादी–प्रगतिवादी रचनाकारों में पहली बार खुलकर आम आदमी की संवेदना व्यक्त हुई है। निराला, पंत आदि छायावादी–प्रगतिवादी कवि वहां आम–आदमी के वैतालिक की भूमिका में है। इसीलिए निराला जी की कृतियों पर विचार करते हुए आलोचक दूधनाथ

---

* एसोसिएट प्रोफेसर,, मारवाड़ी कॉलेज, भागलपुर, (बिहार)

सिंह का कथन है कि 'निराला के संपूर्ण काव्य में उपेक्षितों का उन्नयन और जनसाधारण की प्रतिष्ठा के प्रति गहरी आस्था के दर्शन होते हैं। उपेक्षित या जनसाधारण उनके लिए कोई अमूर्त विचार नहीं है। उनकी तेजस्वी मेधा ने भारतीय समाज के उस वर्ग को पहचाना, उसकी दुःख–गाथा को अभिव्यक्ति देने में कभी कोई भूल नहीं की।'[3] जब भी अवसर मिला है उन्होंने आम आदमी को आत्मबल प्रदान किया है। उनकी परिकल्पना में आम आदमी की मुक्ति ही देश की मुक्ति है, चाहे वह मुक्ति देह की हो, दासता की हो, या शोषण–उत्पीड़न से मुक्ति हो। इसीलिए वे ईश्वर से प्रार्थना करते हैं कि 'भले ही मुझे धूलि से भर दो, पर जो लोग धूल–धूसरित हैं उन्हें इच्छित वर दो।'[4] बाद में, प्रगतिवाद के दौर में रामधारी सिंह 'दिनकर' ने आम आदमी के पक्ष में सैकड़ों कविताएँ लिखीं। हुंकार हो या रेणुका या रश्मिरथी उसकी अनेक कविताएँ तो आम आदमी को केन्द्र में ही रखकर लिखी गई हैं, जिसमें आम आदमी का आत्म विश्वास झलकता है। रश्मिरथी तो पूरी तरह आम आदमी की संवेदनाओं को केन्द्र में रखकर लिखा गया खंडकाव्य है। यहां आम आदमी के गुणों को उन्होंने कर्ण के गुण, कर्म और श्रम के रूप में दिखलाया है। संकेत यह है कि कोई भी चाहे वह अभिजात्य हो या निम्न अपने पुरुषार्थ से लक्ष्य पा सकता है। रश्मिरथी में कर्ण भले ही छल–छद्म से मारा जाता है पर अपने पीछे वह आम आदमी के लिए विराट स्वप्न छोड़ जाता है। कर्ण के इसी विराट स्वप्न के कारण योगीराज कृष्ण को कहना पड़ा कि–

'तू कुरुपति का ही नहीं प्राण,
नरता का भी है भूषण महान।'[5]

दिनकर की तरह ही अन्य प्रगतिवादी या प्रगतिशील कवियों ने भी आम आदमी को अपनी–अपनी रचनाओं के केन्द्र में रखा है। वैसे कवियों में नागार्जुन, केदार, त्रिलोचन आदि मुख्य हैं। नागार्जुन, केदार और त्रिलोचन जैसे प्रगतिशील कवियों ने अपनी–अपनी कविताओं में आम आदमी के जो शब्द–चित्र खींचे है, वह प्रशंसनीय है। इन कवियों ने आम आदमी की छोटी–छोटी इच्छाओं को, सुखों को, मामूली से मामूली घटनाओं को सूक्ष्मता से निरीक्षण–परीक्षण करके अभिव्यक्ति दी है। नागार्जुन की कविताओं में प्रेत का बयान, खुरदुरे पैर, घिन तो नहीं आती है जैसी कविताओं में जो पीड़ा है, निराशा–हताशा है, उसमें आम आदमी के तल्ख और तीखे स्वर हैं। इस संबंध में श्री संतोष श्रेयांश ने लिखा है कि– 'नागार्जुन की कविताएँ एक आम आदमी की सामान्य–सी जीवन–यात्रा, उनके कार्य–कलापों के सूक्ष्म अवलोकन का बेबाक शब्द रूपांतरण है, जो सांसों की लय की तरह है, उतनी ही तरल, उतनी ही ठोस।'[6] आम आदमी के लिए अपनी प्रतिबद्धता दुहराते हुए अपनी एक कविता में वे कहते हैं –

प्रतिबद्ध हूँ, जी हां प्रतिबद्ध हूँ
बहुजन समाज की अनुपल प्रगति के निमित्त।'[7]

कवि की इन पंक्तियों से प्रतीति होती है कि वे आम–आदमी के पक्ष में लिखने के लिए प्रतिबद्ध हैं। वे सदैव इस ताक में रहते हैं कि उनके शब्द आम आदमी के शब्द बनें। यही कारण है अपनी कविताओं को उन्होंने पर्चे के रूप में लिखकर रेलों में, बसों में, चौक–चौराहों में बांटा है। हाट में, बाजार में, मेलों–ठेलों में काव्य–पाठ किया है। उन्होंने अनुभव किया कि– आम आदमी तक पहुंचने के लिए यह जरूरी है। प्रगतिशील कवियों में नागार्जुन की तरह ही त्रिलोचन हैं, जिन्हें साधारणजन या आम आदमी का कवि कहा जाता है। उनकी कविताओं में आम आदमी का जीवन–संघर्ष इतना गहरा है कि ऊपर से कुछ भी थोपा हुआ नहीं लगता। शायद इसी कारण ख्यात आलोचक नामवर सिंह ने लिखा है कि 'वे साधारण हैं। साधारण होने में ही उनकी असाधारणता है। उनका विशेष यही है।'[8] नगई महरा और चंपा काले अक्षर नहीं चीन्हती– जैसी कविताओं में आम आदमी का बिंब स्पष्ट देखा जा सकता है। इसी कड़ी में धूमिल और गोरख पांडे की चर्चा की जा सकती है। इन कवियों की कविताओं में भी आम आदमी के ढेर सारे ब्यौरे हैं। देश, समाज और आम आदमी की विसंगतिपूर्ण स्थिति को जितना धूमिल ने समझा है, साठोत्तरी प्रगतिशील कवियों में शायद ही कोई दूसरा कवि

होगा, जिसने उस विसंगति को समझा हो। आम आदमी की पीड़ा, दुःख, शोषण, भूख, रोटी, बेकारी और सत्ताधीशों के साजिश की सबसे अधिक चर्चा धूमिल ने ही की है। वे आम आदमी की भूख, रोटी, बेकारी, साजिश और भाषादि को संयोजित करते हैं तथा संतुलन बैठाने की कोशिश करते हुए कहते हैं–

तुम्हारी भूख और भाषा में
यदि सही दूरी नहीं है
तो अपने आपको आदमी मत कहो।'[9]

इसी के समानान्तर एक कविता में वे फिर कहते हैं–

एक आदमी रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है और न रोटी खाता है
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
मैं पूछता हूँ – वह तीसरा आदमी कौन है?
मेरे देश का संसद मौन है।'[10]

कवि की दृष्टि में इस देश का आम आदमी आजादी के इतने वर्षों बाद भी समझ नहीं पाया कि वह 'तीसरा आदमी' कौन है? कवि संकेत करता है कि पहला आदमी जो मेहनत करता है, उसे रोटी नहीं मिलती, दूसरा उसे अपने रुतबे से छीन लेता है और तीसरा जो रोटी से खेलता है, इस देश के नियम–कानून उसका कुछ बिगाड़ नहीं पाते। धूमिल की तरह ही गोरख पांडेय की कविताएँ आम आदमी के संघर्षपूर्ण जीवन को उकेरने में सफल है। काव्य संग्रह 'जागते रहो सोनेवालों' की कई कविताओं में उन्होंने आम आदमी को सोने से जगाने का प्रयास किया है। धूमिल की तरह ही भूख, रोटी और शोषण गोरख पांडे का काव्य–विषय अवश्य है, पर उसमें प्रतिरोध और प्रतिवाद का स्वर थोड़ा तल्ख है। उनकी एक कविता है 'जमींदार सोचता है' जिसका मुख्य पात्र तिलकू है। कवि ने स्पष्ट किया है कि हजारों वर्षों से तिलकू जैसे लोगों के दिलो–दिमाग में यह बात बिठा दी गई है कि जो गरीब हैं, पददलित हैं उनकी नियति–प्रारब्ध में ही शोषण लिखा हुआ है और विधि का यह लेखा ईश्वर प्रदत्त है। इस विधान का विरोध कवि करता है और तिलकू को प्रतिवादी बनाते हुए उसके माध्यम से कहता है–

'अब सिर उठाकर चलता है
मूँछ पर ताव देता है तिलकू
बँसखट झोपड़ी से बाहर खींच लाता है
ठाकुर–ब्राह्मण के सामने भी उस पर बैठता है
गाली सुनकर भौंह टेढ़ी करता है
पिटने पर डंडा थाम लेता है
अपने बेटे के लिए पेट काटकर कागज–कलम जुटाता है
उसे हाकिम बनाने के ख्वाब देखता है।'[11]

गोरख पांडेय का यह प्रतिवादी नायक जो आम आदमी का प्रतिबिंब है, आजादी के इतने दिनों बाद हजारों वर्षों से चले आ रहे शोषण के विरोध में खड़ा होने के लिए अब संकल्पबद्ध है। उसकी चेतना में परिवर्तन है और अतीत के यातनामय कोहरे से निकलने के लिए प्रयत्नशील भी। इस तरह लगभग सभी प्रगतिशील कवि आम आदमी के हक–हुकूक के लिए खड़े हैं। नागार्जुन, त्रिलोचन, धूमिल, गोरख पांडेय जैसे कवियों की कलम से कलम मिलाकर राजेश जोशी, विष्णु खरे, चंद्रकांत देवताले, लीलाधर जगूड़ी और आलोक धन्वा जैसे कवि–रचनाकारों की एक लंबी सूची है, जो आम आदमी के जीवन में बदलाव के लिए संघर्षरत हैं।

उत्तरशती की हिन्दी दलित कविता भी आम आदमी को केन्द्र में रखकर लिखी गई कविता है। इसमें सामाजिक और राजनीतिक यथार्थ से जुड़े संदर्भ हैं। कविता को आम आदमी के समीप लाने का उनका प्रयास प्रशंसनीय है। इसमें राजनीतिक और सामाजिक विसंगतियों का खाका मन को छीलता है। इसमें संवेदनाओं की धड़कने हैं और सामाजिक विसंगतियों की चर्चा इस कदर है कि उसने कवि के मन की रगों को मथकर रख दिया है। इस विद्रूपता को वह कई तरीके से प्रस्तुत करता है, कभी सीधे–सीधे तो कभी आक्रामक रुख अपना कर। श्यौराज सिंह बेचैन, ओमप्रकाश वाल्मीकि, जयप्रकाश कर्दम और सोहनपाल सुमनाक्षर जैसे दलित कवियों में यह आक्रामक रुख तीखे तेवर के साथ प्रस्तुत हुआ है। इन कवियों में आम आदमी के स्वर में समाज की हर व्यवस्था पर तीखे और तल्ख स्वर हैं। दलित कवि श्यौराज सिंह बेचैन ने 'क्रौंच हूं मैं' में क्रौंच के प्रतीक के माध्यम से आम आदमी का चित्र खींचने का प्रयास किया है। इसमें कवि की अवधारणा तीन प्रतीकों में समाहित है। वह लिखते हैं–

'क्रौंच हूं मैं
भुक्त–भोगी मैं, तुम्हारे तीर का
दर्द मेरा औ, मेरा संताप
दूसरे के पाप का मैं भोगता अभिशाप।
स्वयं पीड़ित
स्वयं ही हूं साक्ष्य।
प्रेक्षकों पर है नहीं विश्वास।
न्याय बेला आ रही है पास।'[12]

इसमें पहला प्रतीक वह वर्ग (आम आदमी) है, जो दूसरे वर्ग के लिये शिकारी है। दूसरा वर्ग संवेदनशील कारूणिक प्रेक्षक, जो आहत के प्रति रागात्मक संवेदन व्यवक्त करता है। यह आज का वाल्मीकि (आम आदमी) है आदिकविता का जनक नहीं और तीसरा वर्ग व्यवस्था का सीधा शिकार हुआ वर्ग क्रौंच (आम आदमी) है, जो स्वयं भोगी हुई आत्मानुभूति के लिये छटपटाता रहा है। इस प्रकार यहां आम आदमी हर प्रतीक में उभर कर आया है। इसी तरह अन्य दलित कवियों ने भी आम आदमी का जो चित्र खींचा है, वह सत्ता और व्यवस्था से छटपटाते हुए आदमी का है।

इस संक्षिप्त टिप्पणी से यह स्पष्ट होता है कि हिन्दी कविता के हजार वर्षों के इतिहास में आम आदमी अनेक रूपों में प्रस्तुत हुआ है और उसकी भरपूर चिंता की गई है। ये कवितायें राहत देती हैं और यह आभास दिलाती हैं कि आम आदमी की जीवन–प्रक्रिया अभी टूटी नहीं है।

संदर्भ :

1. हिन्दी कहानी–1977, सं० ऋषि कुमार चतुर्वेदी (भूमिका–कमलेश्वर), ग्रंथायन, अलीगढ़
2. निराला : आत्महंता आस्था, दूधनाथ सिंह, पृ० 196
3. निराला रचनावली, भाग–02, सं० नंदकिशोर नवल, पृ० 39
4. रश्मिरथी, दिनकर, पृ० 41
5. आजकल, जून–2011 (नागार्जुन विशेषांक), पृ० 42
6. वही, पृ० 33
7. त्रिलोचन के बारे में, नामवर सिंह, पृ० 93
8. संसद से सड़क तक, धूमिल, पृ० 114
9. आधुनिक काव्य विविधा, रोटी और संसद, धूमिल, पृ० 382
10. जागते रहो सोनेवालों, गोरख पांडेय, पृ० 90
11. क्रौच हूँ मैं, श्यौराज सिंह बेचैन, पृ० 09

***

भारत में महिला संरक्षण अधिनियम

धनराज कुमार *

यह विडंबना ही है कि मरदों को अपनी कोख से जननेवाली माँ जो वस्तुतः महिला ही है, इस आधुनिक और प्रगतिशील कहे जानेवाले विश्व में आज भी उपेक्षित है, प्रताड़ित, पीड़ित और शोषित है। राष्ट्रकवि मैथिलीशरण के शब्दों में–

अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी।
आँचल में है दूध और आँखों में पानी।।

क्यों नारी की यह पराधीनता कभी खत्म नहीं होती? बचपन में माँ–बाप के, जवानी में पति और बुढ़ापे में बेटों के अधीन, अंततः बंधन में यह अपनी पहचान ही खो देती है। अतीत से वर्तमान तक हम इतिहास के पन्नों को पलटें तो पाएँगे कि नारियों की स्थिति में सुधार की जगह उत्तरोतर गिरावट ही हुई है। 'यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता' का उद्घोष करनेवाले इस दृष्टि में आज दहेज रूपी दानव की बलिवेदी पर हजारों नवविवाहिताएँ कुरबान हो रही हैं। गार्गी, मैत्रेयी, अपाला, घोषा और लोपमुद्रा जैसी विदुषियों ने जहाँ वैदिक काल में पुरूषों के एकाधिकार को तोड़ा, शास्त्रार्थ में पराजित कर उनका मान–मर्दन किया, उसी समाज में आज उन्हें अपने अधिकारों के लिए हर कदम पर आवाज बुलंद करनी पड़ रही है।

विश्व भर के संविधानों ने नारी को समानता के अधिकार दिए हैं, लेकिन ये अधिकार केवल लिखित ही हैं। अलिखित कानून यही है कि सम्पूर्ण विश्व में नारी बचपन से लेकर बुढ़ापे तक पुरूष के जुल्मों का शिकार होती है, खासकर भारत में। भ्रूण हत्या, बाल–विवाह, दहेज, सती, देवदासी और विधवाओं के प्रति हेय–दृष्टि जैसी पुरातन परंपराओं के नाम पर नारी दासता के पन्नों पर हर रोज प्रताड़ना की नई कहानी लिखी जाती है। सिर्फ कानून बनाने से काम नहीं चलेगा, सम्पूर्ण समाज को जागृत करना होगा, तभी नारी के स्वाभिमान और सम्मान की रक्षा हो पाएगी। इसके लिए जरूरत है चेतना की, जागरूकता की, आत्मविश्वास की। इस सब का निदान है– नारी शिक्षा। नारी जब तक शिक्षित नहीं होगी तब तक उसकी अधीनता खत्म नहीं होगी और न ही उसका यह दोयम दर्जा। आज नारी को खुद ही साबित करना होगा कि भगवान ने उसे कोमल जरूर बनाया है, लेकिन वह कमजोर नहीं है। उसमें पन्नाधाय का त्याग है, रानी लक्ष्मीबाई का पौरूष है, इंदिरा गाँधी जैसी नेतृत्व क्षमता है, मदर टेरेसा की ममता है और कल्पना चावला एवं सुनीता विलियम्स की तरह अंतरिक्ष विजय का सपना है। आज जरूरत है इन उदाहरणों और विचारों को गली–मुहल्लों और गाँवों की चौपालों तक पहुँचाने की।

सिर्फ सम्मेलनों, भाषणों और सेमिनारों से कुछ नहीं होगा। बंद कमरों में होनेवाली बहसों की गूँज इन दीवारों में ही दम तोड़ देती है। किताबों और किस्सों–कहानियों में हमने नारी को नायिका बना दिया है, किंतु यथार्थ के धरातल पर इसे साकार करने की जरूरत सबसे ज्यादा है। महिला सशक्त तभी होगी जब वह साक्षर, स्वावलंबी एवं आत्मनिर्भर बनेगी।

पूरे देश में महिलाओं के समग्र एवं सार्थक विकास के संबंध में बहुआयामी महिला नीति बनाकर लागू करने की होड़ चल रही है। संस्थागत प्रजातांत्रिक ढाँचे में नारी को नारायणी बनाने के प्रयासों के फलस्वरूप एक–तिहाई सरपंच, जिला पंचायत अध्यक्ष, पार्षद, नगरपालिका अध्यक्ष एवं महापौर महिलाएँ हैं। महिला नीति में शिक्षा, सहकारिता, नौकरियों आदि महिलाओं के आरक्षण के साथ–साथ भूमि स्वामित्व में उनकी भागीदारी सुनिनिश्चत करने से नारी उत्थान के आर्थिक स्वावलंबन पक्ष को निश्चय ही मजबूती मिलेगी।

---

* शोध छात्र, राजनीतिशास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

लेकिन हर चमकीली चीज सोना नहीं होती है, इसका विकृत रूप भी सामने आ रहा है। पहले पूरे जिले में एक एस.पी. होता था; अब हर गाँव में एस.पी. मिल जाएगा। एस.पी. यानी सरपंच पति। हमने कभी नहीं सुना कि किसी सरपंच की पत्नी ने अपने पति के अधिकारों का प्रयोग किया हो। स्त्रियों से जुड़ा एक और पहलू झकझोर देनेवाला है। गो–हत्या के प्रति शास्त्रों का उदाहरण देनेवाला यह समाज बालिका शिशु की हत्या और कन्या भ्रूण हत्या पर क्यों खामोश है? बेटे के जन्म पर मंगल गीत गानेवालों को बच्चियों के जन्म पर खुशियाँ क्यों नहीं सुहाती? पंजाबी में कहावत है कि 'मुंडा सोणा कुड़ी चिंता' समाज की सोच को ही प्रतिबिंबित करती है। पंजाब, हरियाणा जैसे राज्यों में ही नहीं, चंडीगढ़ और दिल्ली जैसे आधुनिकतम महानगरों में भी पुरूष–स्त्री अनुपात का फासला कम होने के बावजूद बढ़ रहा है। यह एक चिंताजनक पहलू है? इसका जवाब हम सबको ढूँढ़ना होगा।

इंडियन मेडिकल एसोसिएशन के अनुसार, हिंदुस्तान में प्रतिवर्ष लगभग पचास लाख कन्या भ्रूण का गर्भपात या हत्या की जाती है। कहने को तो पी.एन.डी.टी. टेस्ट (प्रसव पूर्व निदान तकनीक) 1994 में लागू किया गया है, लेकिन यह केवल कागजों तक ही सीमित है। महाराष्ट्र में एक स्वयंसेवी संस्था के सर्वेक्षण में यह बात सामने आई थी कि भ्रूण परीक्षण के बाद जो 8,000 गर्भपात कराए गए थे, उनमें से 7,999 बालिकाएँ थीं।

दुनिया में तमाम असफलताएँ है, धनी और विकसित देश हैं, विकासशील और गरीब मुल्क भी। काले, गोरे लोग भी लंबे और बौने मानव भी। ठंढे और गरम क्षेत्र हैं तो कहीं मरूस्थल तो कहीं नखलिस्तान; लेकिन महिलाओं पर अत्याचार के मामले में सरहदें कोई अर्थ नहीं रखतीं। दुनिया की आधी आबादी का सच यही है कि वह जीवनदायिनी होकर भी शोषित है, अपमानित है, प्रताड़ित है, यहाँ तक कि दंडनीय भी।

महिलाओं के विरूद्ध अपराध चाहे शारीरिक हों या मानसिक; पूरे विश्व में आम हैं। अंतर्राष्ट्रीय मानवाधिकार की एक रिपोर्ट के अनुसार दुनिया में हर पंद्रह सेकेंड में एक महिला पिटाई या जुल्मों–सितम की शिकार होती है और इसी तरह हर वर्ष करीब सात लाख महिलाओं को बलात्कार जैसे घृणित अपराध से उपजी पीड़ा झेलनी पड़ती है। इस रिपोर्ट का सबसे दुःखद पहलू यह है कि 40 प्रतिशत भारतीय महिलाएँ अपने पति द्वारा प्रताड़ित की जाती हैं, ये आँकड़े भी सच्चाई बयां नहीं करते।

स्वतंत्र एजेंसी के सर्वेक्षण में यह बात सामने आई है कि घरेलू हिंसा और यौन शोषण के 50 प्रकरणों में से एक ही प्रकरण पुलिस में दर्ज होता है। अतः महिलाओं पर घटित अपराधों का स्वरूप बहुत व्यापक है। सिर्फ कानून बनाने से ये समस्याएँ हल नहीं होंगी। हमें समाज की सोच बदलनी होगी। दहेज प्रतिरोध अधिनियम और दहेज हत्या के प्रावधानों के बावजूद न तो दहेज लोलुपों की संख्या में कमी हुई है और न नवयौवनाओं के अग्निदाह में। ये चूल्हे, स्टोव, गैस, बर्नर और केरोसिन भी अजीत हैं केवल नई बहुओं को पहचानते हैं। सास और ननद को जानते तक नहीं। कोई विधवा शादी कर भी ले तब भी चारों तरफ तानों में कोई कमी नहीं आती और चार शादियाँ करने के बाद भी आदमी का कुछ नहीं बिगड़ता। यह स्वस्थ समाज की नहीं, बीमार और विकारग्रस्त समाज की तस्वीर है। यदि आधी आबादी उपेक्षा और अवहेलना के साये में जी रही है तो वह समाज और देश कैसे तरक्की कर सकता है? रथ के दो पहियों में यदि एक भी कमजोर रहा तो रथ कभी रफ्तार नहीं पकड़ पाएगा। इतिहास साक्षी है कि जब भी महिलाओं को अवसर मिला है उन्होंने अपनी श्रेष्ठता प्रमाणित की है। 21वीं सदी की नारी पुरूषों से किसी भी मामले में कमजोर नहीं है। पढ़ाई का क्षेत्र हो या प्रशासन का, बात चिकित्सा की हो या वकालत की, एवरेस्ट पर पहुँचने की ललक हो या अंतरिक्ष में उड़ने की, साहित्य का क्षेत्र हो या कला का आकाश, नारी पुरूषों से कहीं उन्नींस नहीं है।

आधुनिक युग में नारी को भी बाजार की एक वस्तु के रूप में देखा जा रहा है। समाचारों, अखबारों, इश्तहारों और पोस्टरों में उसे भोग की एक वस्तु के रूप में प्रचारित–प्रसारित किया जा रहा है। उपभोक्तावादी बाजारी होड़ में सौंदर्य प्रतियोगिताओं के माध्यम से नारी की नग्न छवि प्रस्तुत की जा रही है। कोई इन बेतुके विज्ञापन दिखाने वालों से पूछे कि कार के टायरों से स्त्री की देह का क्या संबंध है? नारी तो अर्धांगिनी है उसके बिना पुरूष अधूरा है। मान्यता है कि हर पुरूष की सफलता के

पीछे एक नारी होती है। मोहन राकेश के शब्दों में, नारी का आकर्षण पुरूष को पुरूष बनाता है और उसका अपकर्षण उसे गौतम बुद्ध बना देता है।

घरेलू हिंसा, यौन प्रताड़ना एवं महिलाओं के प्रति अन्य अपराधों में मीडिया की बहुत महत्त्वपूर्ण भूमिका है। चाहे जेसिका लाल या प्रियदर्शनी मट्टू की हत्या हो, मेरीन ड्राइव रेप केस हो या इमराना के साथ ससुर की हैवानियत या फिर नैना साहनी तंदूर कांड के लेकर आरूषि के तलवार के अनसुलझे कत्ल की गुत्थी के बहुचर्चित मामले; यह हल केवल महानगरों तक सीमित है, लेकिन देहात, गाँव, कस्बों एवं दूरस्थ स्थानों पर इन जैसे मसलों को उठानेवाला कोई नहीं है।

अखबारों एवं 24 घंटे के खबरिया चैनल भी प्रतिस्पर्धा की इन खबरों को केवल सनसनीखेज एवं मसालेदार बनाकर प्रस्तुत करने से मामले की गंभीरता को कम ही करते हैं। इन अनपेक्षित परिस्थितियों को उजली इबारत में बदलने के लिए न केवल पुलिस, प्रशासन, सामाजिक संगठनों एवं स्वयंसेवी संगठनों को अपना फर्ज निभाना होगा, वरन् हर संवेदनशील व्यक्ति को नारी के हक की बहाली हेतु भगीरथी प्रयास करने होंगे।

पिछले 15 वर्षों में यूँ तो केंद्र में तमाम सरकारों ने संसद और विधानसभाओं में महिलाओं का एक–तिहाई प्रतिनिधित्व सुनिश्चित करने के लिए महिला आरक्षण बिल लाने की केवल घोषणाएँ ही की हैं, लेकिन उसे अमली जामा पहनाना आज भी दूर की कौड़ी है। राजनीतिक दलों के चुनावी घोषणा–पत्रों में महिलाओं को अधिकार देने की बात तो की जाती है, लेकिन जब उसे मूर्त रूप देने का समय आता है तो यह पुरूष–प्रधान समाज अपने कदम पीछे खींच लेता है।

संयुक्त राष्ट्र ने महिलाओं के सशक्तीकरण के लिए 'यू.एन. वुमन' नामक संगठन बनाया है, वह बेहद महत्त्वपूर्ण है। आज अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर आम राय बन चुकी है कि महिलाओं की हालत में मूलभूत सुधार के बगैर डेवलपमेंट की तमाम कोशिशें अधूरी ही रहेंगी। इसलिए स्त्रियों के लिए व्यापक स्तर पर कदम उठाने की जरूरत है।

इसी को ध्यान में रखकर यू.एन. ने यह संगठन बनाया है। निश्चय ही यह विभिन्न देशों के उन प्रगतिशील तबकों की उपलब्धि है, जिन्हों विपरीत परिस्थितियों में, हर तरह के विरोध झेलते हुए भी महिलाओं को रोजी–रोटी, स्वास्थ्य और सम्मान दिलाने के लिए आवाज उठाई। उन्हीं के दबाव में उनके देशों की सरकारों ने महिलाओं की दशा में सुधार के लिए कई स्कीमें शुरू कीं, अनेक कानून बनाए। लेकिन इन स्कीमों और कानूनों के बावजूद दुनिया में खासतौर से विकासशील देशों में औरतों की स्थिति आज भी बेहद खराब है। करीब दो साल पहले स्पेन में आयोजित महिलाओं के एक अंतर्राष्ट्रीय सम्मेलन में 48 देशों की महिला प्रतिनिधियों ने जो बातें रखीं, उनसे पता चला कि आज विश्व के विभिन्न हिस्सों में स्त्रियाँ न जाने कितने मोर्चों पर जूझ रही हैं।

संदर्भ :

1. अवस्थी, डॉ० अमरेश्वर व अवस्थी, डॉ० आर. के. : भारतीय राजनीतिक चिंतन, रिसर्च पब्लिकेशन्स, जयपुर, 2004
2. आर्य, साधना निवेदिता मेनन, जिनी लोकनीता अंसारी, एम. ए. : नारीवादी राजनीति संघर्ष एवं मुद्दा, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 2006
3. अंसारी, एम० ए० : महिला और मानवाधिकार, ज्योति प्रकाशन, जयपुर, 2001
4. अंसारी, एम० ए० : नारी चेतना और अपराध, पंचशील प्रकाशन, फिल्म कॉलोनी, जयपुर, 1989
5. आप्टे, डॉ० प्रभा : भारतीय समाज में नारी, क्लासिक पब्लिशिंग हाऊस, जयपुर, 1996
6. अनामिका : स्त्रीत्व का मानचित्र, सारांश प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड, दिल्ली, 1999
7. अग्रवाल जे० सी० : भारत में नारी शिक्षा, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली
8. ओझा, एन० एन० : भारत की सामाजिक समस्याएं, क्रॉनिकल बुक्स, बी–7 एक्स/114–ए सफदरजंग, नई दिल्ली, 2005

***

सनातन कवि रेवा प्रसाद द्विवेदी का व्यक्तित्व एवं कृतित्व

सविता यादव *

जीवन वृत्त

प्रसिद्ध ऐतिहासिक ग्राम 'नादनेर', मध्य प्रदेश में पुण्यसलिला नर्मदाजी के तट पर स्थित है। यह साँची के स्तूप में उल्लिखित नन्दनगर से अभिन्न है। वर्तमान में भी नादनेर में विद्यमान ऐतिहासिक टीलों से इसकी नन्दनगर से अभिन्नता स्वतः प्रमाणित हो जाती है। नादनेर में नर्मदा जी के तट से लगे हुए सबसे ऊँचे टीले पर बना है, एक छोटा–सा भवन, जिसमें 22 अगस्त 1935 को कुमारविजयकार सनातन कवि रेवा प्रसाद द्विवेदी का जन्म हुआ। 'रेवा' नर्मदाजी का ही पर्यायवाची है। अतः नर्मदाजी के प्रसाद के रूप में अपने तृतीय पुत्र को प्राप्त कर महाकवि के माता–पिता हर्षित हुए और तदनुरूप ही इस पुत्र का नाम 'रेवा प्रसाद द्विवेदी' रखा। यही बालक आज सनातन कवि के रूप में ख्यातिलब्ध है।

महाकवि के पितामह का नाम श्री धन्नूलाल जी दुबे तथा पिताश्री का नाम आचार्य पंडित नर्मदा प्रसाद द्विवेदी था–

श्रीनर्मदाप्रसादस्य जगन्नाथात्मजस्य यः।
तृतीय सूनुरस्येष सनातनकविस्त्वहम्।।[1]

आपकी माता का नाम श्रीमती लक्ष्मी देवी था। सनातन कवि ने अपनी माता के वियोगजन्य दारिद्र्य का वर्णन स्वतः किया है–

नादनेराभिधे ग्राम नर्मदाम्बातटस्थिते।
लक्ष्मीमातुर्जनिं लेभे स एषोऽत्यन्तदुर्विधः।।[2]

आपके बड़े भाई का नाम श्री गौरी शंकर दुबे एवं आपके मझले भाई का नाम श्री रामनारायण दुबे है। आपकी सबसे बड़ी एक मात्र बहन का नाम चन्दा है –

गौरीशङ्करनामासीज्ज्येष्ठो भ्राताथ मध्यमः।
रामनारायणाभिख्यश्चन्दानाम्नी स्वसा च नः।।[3]

महाकवि रेवा प्रसाद द्विवेदी जी को आठ वर्ष की अल्पायु में ही माता–पिता का वियोग सहना पड़ा। माता–पिता के न रहने के कारण बचपन के सात वर्षों तक अपने ननिहाल में मामाओं के साथ रहना पड़ा–

हीनः पित्रोः प्रपेदेऽहं मातुलस्य तु यं गृहम्।
आसीत् तत्र व्यवस्थापि भोजनस्य सुदुर्लभा।।[4]
उषित्वा सप्त वर्षाणि मातुलस्य गृहेष्वहम्।
संपूर्णमध्यमां काश्यां परीक्षामुदतीतरम्।।[5]

आपके मझले मामाश्री शालिग्राम परसाई संस्कृतानुरागी थे, किन्तु उनके पास भी आपके भरण–पोषण की समुचित व्यवस्था न हो सकी। अन्ततः द्विवेदी जी 15 वर्ष की आयु में एकाकी काशी आ गये और अपने गुरुजनों के सान्निध्य में पूर्ण मनोयोग से अध्ययन करने लगे।

आपकी प्रारम्भिक शिक्षा–दीक्षा अपने पैतृक गाँव नादनेर में सम्पन्न हुई। आपके पिता जी संस्कृत के विद्वान तथा ज्योतिषी थे। उनको 'लीलावती' के गणित का विधिवत् ज्ञान था। वे कुण्डली के मर्मज्ञ थे तथा अपने सुन्दर अक्षरों के लिए प्रसिद्ध थे। द्विवेदी जी ने अपने विद्वान् पिता जी से संस्कृत की शिक्षा प्रारम्भ की। पण्डित नर्मदा प्रसाद द्विवेदी जी ने अपने कनिष्ठ पुत्र को 'विष्णुसहस्रनाम' का पाठ पढ़ाया तथा काशी जाकर संस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् बनने का आशीर्वाद भी

* शोध छात्रा, संस्कृत, स्नातकोत्तर महाविद्यालय मलिकपूरा, गाजीपुर

प्रदान किया। द्विवेदी जी के बाल मन में अपने स्वर्गीय पिता की इच्छा को पूर्ण करने की अभिलाषा जागृत हुई और उन्होंने संस्कृत वाङ्मय के अध्ययन में ही जीवन समर्पित कर दिया। द्विवेदी जी के मामा इलाहाबाद में रहते थे, जिनके पास रहते हुए आपने राजकीय संस्कृत महाविद्यालय जो अब सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय के रूप में प्रसिद्ध है। सन् 1948 में सम्पूर्ण मध्यमा की परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की तदनन्तर सन् 1950 में द्विवेदी जी काशी में रहकर अपनी शिक्षा को पूर्ण करने के उद्देश्य से एकाकी काशी आ गए तथा दशाश्वमेघ घाट के निकट रहने लगे। प्रथमतः यही वह समय था जब माता सरस्वती ने द्विवेदी जी को संस्कृत विद्या के प्रति एकान्तानुरागी बनाया। द्विवेदी जी के द्वारा बताई गई एक रोमांचक घटना से इस बात की सिद्धि हो जाती है– दशाश्वमेघ घाट पर रहते हुए द्विवेदी जी का किशोर मन गंगाजी के दर्शन करने के लिए व्याकुल हो उठा। एक दिन सायंकाल भ्रमण करते हुए आप 'मणिकर्णिका' नामक दाह–संस्कार हेतु निर्धारित घाट पर पहुँच गये। चिताओं की भस्म के बीच लगभग साठ वर्षीय श्वेतवस्त्रधारी गौरवर्ण के बाबा जी धुनी रमाए बैठे थे। उन्होंने किशोर वय द्विवेदी जी को बुलाया और अंगूठे से ललाट पर भस्म लगाकर मौन आशीर्वाद दिया तथा 'जा' कहकर प्रस्थान के लिए आदेशित किया। इस आशीर्वाद को पाकर द्विवेदी जी को मानो सरस्वती प्रस्फुटित हो गयी और उन्होंने पूर्ण मनोयोग से देववाणी की अनवरत साधना प्रारम्भ की। बाद में उस महात्मा जी के दर्शन हेतु द्विवेदी जी अनेकशः मणिकर्णिका घाट पर गये किन्तु दोबारा उस सिद्ध महात्मा के दर्शन नहीं हो सके।

द्विवेदी जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्राच्य विद्या धर्म संकाय नामक तत्कालीन संस्कृत महाविद्यालय के साहित्य विभाग में प्रवेश लिया। आपने यहाँ सन् 1953 में शास्त्री परीक्षा में प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान प्राप्त किया। इसी संकाय से आपने सन् 1956 में साहित्याचार्य परीक्षा भी प्रथम श्रेणी व प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की। इसके लिए आपको विश्वेश्वर नामक स्वर्णपदक भी प्रदान किया गया। यह पदक सभी विभागों को मिलाकर जिसके सर्वोच्च अंक होते हैं उसे प्रदान किया जाता था–

ततश्च परमस्माद्धि श्रुत्वा ग्रन्थानतीतरम्।
सर्वप्राथम्यतः कक्षां साहित्याचार्य–संज्ञिकाम्।।[6]
सुवर्णपदकेनास्मि संकायस्यास्य भूषितः।
आचार्यकक्षासामान्ये सर्वप्राथम्यभागहम्।।[7]

इसके पश्चात् द्विवेदी जी एक वर्ष तक जयपुर में वेद विज्ञान का अध्ययन किया और पुनः काशी लौट आये–

ततश्च वेदविज्ञानमधीत्य जयपत्तने।
वर्षमेकं समायातः काशीं पश्चादधीतये।।[8]

आपने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कला संकाय में स्नातकोत्तर (एम0 ए0) की परीक्षा सन् 1959 में प्रथम श्रेणी तथा प्रथम स्थान के साथ उत्तीर्ण की–

संस्कृतस्य कलासंकायस्थितस्य ततः परम्।
सर्वप्राथम्यतः स्नातकोत्तरां पदवीमगाम्।।[9]

आपने हेमाद्रि की रघुवंश टीका का सम्पादन करते हुए मध्यप्रदेश के रायपुर के रविशंकर विश्वविद्यालय से पी–एच0डी0 की उपाधि सन् 1965 में प्राप्त की। आपने 'अलंकारविमर्शिनी' सहित प्रकाशित 'अलंकारसर्वस्व' नामक ग्रन्थ पर सन् 1974 में डी0लिट् की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार आपकी शैक्षणिक योग्यता सम्पूर्ण हुई।

स्थिति काल

सनातन कवि श्रीरेवा प्रसाद द्विवेदी जी का जन्म ब्रिटिश शासन काल अर्थात् परतंत्र भारत में सन् 1935 ई0 हुआ जो सर्व विदित है। इसलिए इस विषय में विद्वानों में कोई मतभेद नहीं है। आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय वाराणसी के संस्कृतविद्याधर्मविज्ञान संकाय से संकायप्रमुख के रूप में सेवानिवृत्त हुए। सम्प्रति वहीं पर सन् 1993 से इमेरिटस प्रोफेसर हैं।

रचनाएँ

संस्कृत साहित्य का भण्डार अथाह है। इसमें अनगिनत रत्न विद्यमान हैं जिन्होंने अपनी आभा से समस्त संसार को प्रकाशित किया है। प्राचीन संस्कृत साहित्य के साथ–साथ अर्वाचीन संस्कृत साहित्य में भी अनेक रत्न हुए हैं। जिनकी द्युति साहित्य जगत में प्रसारित हो रही है। साहित्य समाज की मान्यताओं, धारणाओं, चिन्तन और दर्शन का यथार्थ चित्र स्थापित करता है। संस्कृत साहित्य न केवल भारत के अतीत का गौरवमय आदर्श है अपितु वर्तमान युग का भी रत्नजड़ित दर्पण है। अर्वाचीन संस्कृत साहित्य पुष्कल मात्रा में रचा गया है जो न केवल मात्रा की दृष्टि से अपितु श्रेष्ठता की दृष्टि से भी अनन्य है। इसी परम्परा में साहित्य के विविध ग्रन्थों के यशस्वी रचनाकर महामहोपाध्याय प्रो0 रेवा प्रसाद द्विवेदी का रचना संसार निम्नवत् है–

महाकाव्य : 1. उत्तरसीताचरितम्, 2. स्वातन्त्र्यसंभवम्, 3. कुमार विजयम्

खण्डकाव्य : 1. प्रमथः, 2. शतपत्रम्, 3. श्रीरेवाभद्रपीठम्, 4. संस्कृतहीरकम्
5. शकटारम्, 6. मतान्तरम्, 7. शरभम् , 8. सुगतो ब्रवीति
9. वृद्धकुमारी, 10. शरशय्या, 11. अवदानलतिका, 12. अमरीकावैभवम्
13. रामपरिसंख्या, 14. अहमस्म्यहमेव, 15. भोजराजस्तवः, 16. करपात्रस्तवः
17. अयिनीलनदि, 18. रत्नस्वरूपावदानकाव्यम्, 19. जयेन्द्र सरस्वतीपादावदानम्

नाटक : 1. यूथिका, 2. सप्तर्षिकांग्रेसम्

नवीनशास्त्ररचना : 1. नाट्यानुशासनम्, 2. काव्यालंकारकारिका, 3. अलंब्रह्म,
4. क्रमप×चाशिका, 5. सौन्दर्यप×चाशिका

समीक्षा : 1. कालिदास अपनी बात, 2. कालिदास भारती

इतिहास : 1. संस्कृत काव्यशास्त्र का आलोचनात्मक इतिहास, 2. शृगारप्रकाशः

कथा : 1. त्रिपदी, 2. कोऽसौ

हिन्दी भाष्य : 1. व्यक्ति विवेक, 2. अलंकार सर्वस्व, 3. अभिधावृत्तिमातृका,
4. शब्दव्यापारविचार, 5. काव्यालंकारकारिका, 6. नाट्यशास्त्र

सम्पादन : 1. रघुवंश दर्पण, 2. कालिदास ग्रन्थावली, 3. ऋतुसंहार, 4. रघुवंश
5. काव्य प्रकाश, 6. रसार्णवसुधाकर, 7. भारतीय काव्यमीमांसा
8. नाट्यशास्त्र, 9. सत्यनारायण व्रतकथा, 10. शिवमहिम्नस्तोत्र

सनातन कवि का आचार्यत्व

महाकवि ने अपने गुरुश्रेष्ठों का अत्यधिक आदरपूर्वक परिचय दिया है–

आसीदध्यापको यस्तु मध्यमायां स वै गुरोः

यस्यासीच्छात्र एषोऽभून् महादेवाभिधः सुधी।।[10]
कवितार्किकचक्रवर्त्तीत्येषकोऽस्य महामतेः।

विरुदः पण्डितैः सर्व्यैः काश्या निर्धारितः स्वतः।।[11]
गौडीमपि समाश्रित्य रीतिं स्वैरमुवाच यः।

गद्यं पद्यं च पाण्डित्यमेदुरं शास्त्रवित् कविः।।[12]
पत्रारुढ़ं स्म कुर्वन्ति शिष्यास्मस्यैव मादृशाः

महाप्राज्ञेन यत् तेन प्रोच्यते स्म सुमेधसा।।[13]

आपके गुरु जिनके शिष्य थे वे ही कुमारविजय के गुरु बने। आपके गुरु सुमेरु पीठाधीश्वर पं0 महादेवशास्त्री जी काशी के महानतम् विभति थे। वे प्रकाण्ड विद्वान् थे। काशी के सभी विद्वानों ने उनके लिए कवितार्किकचक्रवर्ती विरुद निश्चित किया था। आप महान् कवि होने के साथ ही शास्त्रों के भी प्रौढ़ विद्वान् थे। आपके पाण्डित्य का परिचय आपके द्वारा रचित गद्य एवं पद्य दोनों से स्वतः प्राप्त हो

जाता है। कुमार विजय ने अपने इन्हीं गुरुजी से पढ़कर साहित्य विषय में शास्त्री तथा साहित्याचार्य का सम्पूर्ण पाठ्यक्रम तैयार किया था। आप अपने गुरुजी के वैदुष्य की तुलना महाकवि भगवान महादेव की चन्द्रकला से करते हैं–

एतस्मादेव वैदुष्यशड् .ककलयाञ्चितात्।

श्रुत्वा महामहादेवात् साहित्यं शास्त्रितामगाम्।।[14]

पं0 महादेव शास्त्री काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय के अध्यक्ष रहे तथा बाद में इसी संकाय के प्रमुख पद से सेवा–निवृत्त हुए। जीवन के उत्तरार्द्ध में आपने संन्यास ग्रहण कर लिया और 'महेश्वरानन्द सरस्वती' नाम से विख्यात हुए। आपको काशीपीठ के जगद्गुरु शंकराचार्य के पद पर अभिषिक्त किया गया। सारस्वत साधना में संलग्न रहते हुए आपने अनेक शंकराचार्यों को अपना शिष्य बनाया और शास्त्रों का विधिवत पाठ भी पढ़ाया। अपने पूज्य गुरुदेव के प्रति कुमारविजयकार का हार्दिक आदरभाव निःसन्देह अनुकरणीय है।

स्पष्ट है महाकवि द्विवेदी जी में कारयित्री और भावयित्री उभयविध प्रतिभाओं का मंजुल सामंजस्य है। छात्र जीवन में ही आप अद्भुत काव्यप्रतिभा के धनी रहे। इसी समय आपने काशी में होने वाली संस्कृत श्लोक रचना, समस्यापूर्ति तथा संस्कृत वाद–विवाद प्रतियोगिताओं और शास्त्रार्थों में भाग लेते हुए अपनी प्रतिभा का प्रकाश किया। इनमें आपने सदैव पदक प्राप्त किये। आचार्य द्विवेदी में व्याकरण की विशिष्ट–क्रियाओं के साथ अत्यन्त ललित पदावली से युक्त उच्चकोटि की संस्कृत में धारा प्रवाह भाषण करने की अद्भुत क्षमता है। आपके द्वारा रचित 'काव्यालंकारकारिका' में साहित्यशास्त्र का अप्रतिम आचार्यत्व स्पष्ट परिलक्षित होता है जहाँ आपने कवि को एक समाधिस्थ योगी के सदृश प्रतिपादित किया है–

समाधौ योगलग्नानां हृदये विषयान्विता।

ज्योतिष्मति प्रवृत्तिर्या तत्त्वसा प्रतिभाकवेः।।[15]

सनातन कवि की विशिष्ट उपलब्धियाँ

कुमारविजयकार के कृतित्व को विद्वज्जगत ने सदैव अभिनन्दित किया है। आपको 15 अगस्त 1978 को भारत के राष्ट्रपति 'महामहिम' नीलम संजीव रेड्डी ने संस्कृत के क्षेत्र में उत्कृष्ट सेवा के लिए राष्ट्रपति पुरस्कार (सर्टिफिकेट ऑफ आनर) से अलंकृत किया। इसी अवधि में आपको मध्य प्रदेश के भोजमित्र आदि चार और उत्तर प्रदेश शासन के विभिन्न पुरस्कार प्राप्त हुए। 1984 में काव्यशास्त्र पर उल्लेखनीय कार्य के लिए आपको बम्बई की एशियाटिक सोसाइटी ने अपना सम्मानित फैलो भी चुना। 1990 में सेवानिवृत्त होने के उपरान्त विश्वविद्यालय आयोग ने आपको 2 वर्ष के लिए 'इमेरिटस फेलो' के रूप में नियुक्त किया। यद्यपि महाकवि का 1935 में जन्म हुआ था किन्तु बाल्यावस्था में ही माता–पिता के वियोग हो जाने से आपकी जन्मतिथि के सम्बन्ध में पुष्ट प्रमाण नहीं हो सके। फलतः आपके मामा ने मध्यमा परीक्षा में अनुमानित उम्र 5 वर्ष बढ़वाकर लिखवा दी जिसके दुष्परिणाम स्वरूप आपको 55 वर्ष की आयु में ही सेवानिवृत्त होना पड़ा। 1992 से 1995 तक काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने आपको प्रोफेसर पद पर पुनर्नियुक्ति प्रदान की। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ने आपको आजीवन 'इमेरिटस प्रोफेसर' के रूप में सम्मानित पद प्रदान कर आज भी स्व्यं से सम्बद्ध कर रखा है।

आपको उत्कृष्ट साहित्य सेवा हेतु साहित्य अकादमी के प्रतिष्ठित राष्ट्रीय सम्मान 'साहित्य अकादमी' पुरस्कार से 1990 में सम्मानित किया गया। के0 के0 बिड़ला फाउण्डेशन ने आपको प्रसिद्ध ''वाचस्पति पुरस्कार'' से सन् 1997 में सम्मानित किया। रामकृष्ण जयसवाल डामिया, श्री वाणी न्यास से आपको संस्कृत के सर्वोच्च सम्मान 'श्री वाणी' अलंकरण से सन् 2000 में सम्मानित किया गया। दक्षिण भारत के प्रसिद्ध विश्वविद्यालय, संस्कृत विद्यापीठ ने आपको 'महामहोपाध्याय' की मानद उपाधि से सन् 1999 में विभूषित किया। आपके अन्य पुरस्कारों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–पी0वीकाणे स्वर्णपदक 1983, विशिष्ट पुरस्कार उत्तर प्रदेश संस्कृत संस्थान 2003, मध्य प्रदेश शासन से 2 मित्र पुरस्कार, 1

भोज पुरस्कार तथा 1 व्यास पुरस्कार, उत्तर प्रदेश शासन से पाँच विभिन्न पुरस्कार। उत्तर प्रदेश संस्कृत अकादमी ने सन् 2005 में आपको अपने सर्वोच्च 'वाल्मीकि पुरस्कार' से भी सम्मानित किया है।

सनातन कवि के परिचय में उनकी स्वाभाविक विशेषता का ज्ञान नहीं हो पाता किन्तु कुमारविजयमहाकाव्य के दशम सर्ग में ईश्वर के प्रति उनकी अनन्यभक्ति एवं निरभिमानता की स्पष्टतः सूचना प्राप्त होती है। कवि दशम सर्ग के अनेक पद्यों में (41–55) ईश्वर से अनुकम्पा बनाये रखने की प्रार्थना करते हैं।

सन्दर्भ :

1. कुमारविजय महाकाव्यम्, कविपरिचयः / 1
2. वही, कविपरिचयः / 2
3. वही, कविपरिचयः / 3
4. वही, कविपरिचयः / 4
5. वही, कविपरिचयः / 5
6. वही, कविपरिचयः / 11
7. वही, कविपरिचयः / 12
8. वही, कविपरिचयः / 13
9. वही, कविपरिचयः / 14
10. वही, कविपरिचयः / 6
11. वही, कविपरिचयः / 7
12. वही, कविपरिचयः / 8
13. वही, कविपरिचयः / 9
14. वही, कविपरिचयः / 10
15. काव्यालंकारिका–3

***

मनुस्मृति में प्रतिपादित धर्म का स्वरूप

डॉ. शुभ्रा सिंह *

मनुस्मृति तद्युगीन जीवन की मानवसंहिता है, जिसमें धर्म का सम्यक् निरूपण है। आचार्य मनु ने मनुस्मृति में धर्म के तीन स्वरूपों–सामान्य धर्म, विशिष्ट धर्म और आपद्धर्म को प्रस्तुत किया है।

सामान्य धर्म को मानव धर्म भी कहा गया है, जिसका पालन करना सभी के लिए अपेक्षित है। नैतिक नियमों से अनुप्रमाणित यह मानव को मानवता का पाठ पढ़ाता है। आचार्य मनु के अनुसार सामान्य धर्म के दस लक्षण हैं।

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।

(मनु0 6/92)

धर्मपथ के पथिकों में इतनी धृति अर्थात् धैर्य होता है कि वे प्रतिकूल परिस्थिति में भी धर्म का साथ नहीं छोड़ते हैं। सांसारिक विषय उनमें किसी भी तरह का विकार उत्पन्न नहीं का पाता। अक्षम्य होने पर भी क्षमा कर देना ही क्षमा है।

विकारों के मध्य उपास्थित होते हुए भी मन को निर्विकार रखना दम कहलाता है। अनुचित विधि से किसी अन्य के धन को ग्रहण न करना ही अस्तेय है। शारीरिक तथा मानसिक पावनता को ही शौच कहा गया है– मनु ने इसे विशेष रूप से निर्दिष्ट किया है। विषय वासनाओं से इन्द्रियों को निवृत्त रखना इन्द्रियनिग्रह है, जिससे मानव का चारित्रिक उत्थान होता है। धी बुद्धि का वाचक है, जिसका दृष्टिकोण समीक्षात्मक होता है। शास्त्रों के मर्म को समझने में यह समर्थ होती है। विद्या व्यक्ति को षड्विकारों से मुक्ति देते हुए विवेक को जाग्रतकर मोक्ष प्रदान करती है। जैसा की आचार्य शंकर ने कहा है–

'सा विद्या या विमुक्तये।'

यथार्थ तथा हितकर वचन वस्तुतः धर्म का उत्स है, जिसके विषय में कहा गया है– 'सत्यमेव जयते नानृतम्।'

(मुण्डकोपनिषद 3/1/6)

मनु ने भी कहा है–

सत्यं बूयात्प्रियं बूयान्न बूयात्सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः।।

(मनुस्मृति 4/138)

क्रोध के कारण के उपस्थित होने पर भी क्रुद्ध न होना अक्रोध माना गया है। आचार्य मनु ने धर्म के इन दस लक्षणों से होने वाले लाभ के विषय में भी कहा है–

दशलक्षणानि धर्मस्य ये विप्राः समधीयते।
अधीय धानुवर्तन्ते ते यान्ति परमां गतिम्।।

(मनुस्मृति 6/93)

उपर्युक्त धर्म के दस लक्षणों के अतिरिक्त मनु ने धर्म के चार साक्षात् लक्षणों का भी निरूपण किया है, वे हैं– वेद, स्मृति, सदाचार तथा अपनी प्रिय आत्मा अर्थात् स्वयं में स्थित रहना। मनु विश्व की प्राचीनतम और पवित्रतम रचना वेद के प्रति अत्यन्त ही आस्थावान् तथा श्रद्धावान् है– 'वेदोऽखिलो धर्ममूलम।'

---

* असिस्टेंट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, हिन्दू पी.जी. कॉलेज ज़मानियाँ, गाज़ीपुर

स्मृमि अर्थात् धर्मशास्त्र धर्ममूलक है। शिष्टजनों का शास्त्रमूलक आचार सदाचार कहलाता है। मनुस्मृति में इस विषय में कहा गया है–

'तस्मिन्देशे च आचारः पारंपर्यक्रमागतः।
वर्णानां सान्तरालानां स सदाचार उच्यते।।'

(मनुस्मृति 2/18)

भारतीय संस्कृति में आचार के वाचक है– सदाचार, चरित्र, शील तथा वृत्त। मनु ने आचार को उन्नति तथा दुराचार को अवनति का कारण बताया है।

मनुस्मृति में वर्णित विशिष्ट धर्म स्वधर्म का द्योतक है। मनुकालीन भारतीय समाज चार वर्णों में विभाजित था– ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र। उपर्युक्त वर्णों के सामान्य धर्मों को स्पष्ट करते हुए कहा गया है –

'अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
एवं सामाजिकं धर्मं चातुर्वर्ण्येऽब्रवीन्मनुः।।

(मनुस्मृति 10/63)

मनुस्मृति में वर्णाश्रम धर्म तथा राजधर्म को विशिष्ट धर्म के अन्तर्गत माना गया है। इसमें उल्लिखित आश्रम तत्कालीन सामाजिक सांस्कृतिक और धार्मिक परम्पराओं के अनुकूल था। मानव जीवन के चार भागों में विभाजित होने के कारण जीवन के चार विश्रामस्थल अर्थात् आश्रम स्वीकार किये गये हैं– ब्रह्मचर्य, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम और सन्यास आश्रम। इनमें रहते हुए मानव का बौद्धिक, शारीरिक, नैतिक और आध्यात्मिक विकास होता है तथा वह धर्म अर्थ, काम और मोक्ष को प्राप्त होता है। जीवन के प्रथम आश्रम ब्रह्मचर्याश्रम में ब्रह्मचारी अर्थात् शिष्य उपनयन संस्कार के पश्चात् गुरूकुल में निवास करते हुए गुरू से विद्या सीखता है। आश्रमोचित परिधान धारणकर, मन को विकृत करने वाले भोज्य पदार्थों से दूर रहकर आश्रम के कार्यों को करता है। भिक्षाटन से जीवन निर्वाह करते हुए, प्रातः सायं समिधाओं से हवन कर, मन्त्र जाप करता है। गुरू में असीम श्रद्धा–भक्ति रखते हुए पूरे मनोयोग से शिक्षा ग्रहण कर, वेदाध्ययन की समाप्ति पर गुरूदक्षिणा देता है तथा समावर्तन संस्कार के पश्चात् गुरू की अनुमति से गृह लौटता है।

(मुस्मृति 2/174–नं222)

जीवन की द्वितीय अवस्था (25 से 50 वर्ष तक) गृहस्थाश्रम में ब्रह्मचारी का विवाह संस्कार होता है, जिसका उद्देश्य धार्मिक कार्यों का संपादन तथा वंशवृद्धि है। गृहस्थ प_चमहायज्ञों को संपादित करता है। –

'अध्ययनं महायज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम्।
होमो दैवो बलिर्भोतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम्।।

(मुस्मृति 3/70)

वह विभिन्न पारिवारिक सामाजिक तथा धार्मिक दायित्वों का सम्यक् निर्वाह करता है। चारों आश्रमों में गृहस्थाश्रम की सर्वाधिक महत्ता हैः यहशेष आश्रमों का कारक है।

(मुस्मृति 6/87–90)

तृतीय आश्रम वानप्रस्थाश्रम (50 वर्ष से 75 वर्ष तक) में गृहस्थ अपने पुत्र के पुत्रों को देखकर वन का आश्रय ग्रहण करता है, जहाँ वह संयेतेन्द्रिय होकर, सभी ऋतुओं में शारीरिक कष्टों को सहते हुए, मौनव्रत धारण कर जीवन निर्वह करता है।

(मुस्मृति 6/2–26)

वानप्रस्थी अवस्था के तृतीय भाग को व्यतीत करने के उपरान्त उसके चतुर्थ भाग सन्यासाश्रम में सभी प्रकार के भोगों को पूर्णरूप से त्यागकर सन्यासी बनता है।

वह स्थिर बुद्धि से मौनपूर्वक विशुद्धता से ब्रह्मचिन्तनरत होता है, सर्वत्र समभाव रखता है, हर्ष–विषाद से मुक्त होता है, योग से परमात्मा की सूक्ष्मता का अनुभव करता है, त्रुटिवश जीव हिंसा के पाप से विशुद्धि हेतु स्नान के पश्चात् छह प्राणायाम करता है। अन्ततः सम्पूर्ण सांसारिक आसक्तियों को क्रमशः त्यागकर और सभी कष्टों से विर्निमुक्त होकर ब्रह्मलीन हो जाता है अर्थात् मोक्ष को प्राप्त हो जाता है।

(मुस्मृति 6/33–43)

मनुस्मृति में राजधर्म का उदात्त वर्णन है, जहाँ इसका अभिप्राय है राजकीय कर्तव्य कर्म का राजा द्वारा निष्ठापूर्वक पालन। वह धर्मसिद्धि हेतु अनेक रूपों को अपनाते हुए साधु को इष्ट तथा असाधु को अनिष्ट धर्म निर्दिष्ट करता है। मनु ने दण्ड को वर्णाश्रम धर्म का प्रतिभू बताया है। उन्होंने इसके प्रभाव के विषय में लिखा है–दण्ड का प्रर्वतन करने वाला सत्यवादी, बुद्धिमान राजा राजधर्म का ज्ञाता होता है। वह न्यायपूर्वक शासन करते हुए तथा वर्णाश्रमों की रक्षा करते हुए काम से उत्पन्न अपनों को बड़े ही यत्न से त्याग करता है।

(मुस्मृति 7/18–47)

धर्म तथा राज्य का अन्योन्याश्रित संबन्ध है। सांसारिक जीवन में धर्म की महिमा सर्वोपरि है। अतः धर्म–पालन हेतु ही शासक का निर्वाचन हुआ है। (मनुस्मृति 1/81) राष्ट्ररक्षण से सुखी वह प्रजा के साथ पितृतुल्य व्यवहार करता है।

(मनुस्मृति 7/133–180)

स्मृतिग्रन्थों में आपातकाल में अपनाएं जाने वाले धर्म को आपद्धर्म कहा गया है, इस काल में मनुष्य अपने अस्तित्त्व की रक्षा के लिए स्वधर्म और स्वकर्म में आंशिक परिवर्तन कर लेता है। विपत्ति के समय चारों वर्णों की स्थिति ऐसी ही है। मनुस्मृति में बताया गया है कि विपत्ति के समय ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य की, क्षत्रिय वैश्य की, वैश्य–शूद्र की वृत्ति को अपनाकर तथा शूद्र कारीगरी करके अपना जीवन निर्वाह करते है। (मनुस्मृति 10/81–99) विपदाग्रस्त ब्राह्मण सबसे दान ले सकते है, पावन वस्तु अपावन वस्तु से दूषित नहीं होती है।

(मनुस्मति 10/102)

इस समय राजा अपनी प्रजा से अन्न का चौथा भाग लेकर शक्ति के अनुसार उसकी रक्षा करता है।

(मनुस्मृति 10/118)

आचार्य मनु ने धर्म के पुण्य पक्ष का समुद्घाटन किया गया है, उनके अनुसार मनुष्य को किसी भी प्राणी को दुःख न देते हुए परलोक सुधारने की कामना से स्व सामर्थ्य के अनुसार शनैः शनैः धर्म संचय करना चाहिए, क्योंकि परलोक में धर्म के अतिरिक्त कोई नहीं होता, मात्र धर्म ही उसका अनुगमन करता है।

(मनुस्मृति 4/238–241)

अतः मानव को स्वधर्म का परित्याग किसी भी अवस्था में नहीं करना चाहिए, अपने–अपने धर्म के पालन में ही सम्पूर्ण विश्व का कल्याण है।

***

प्राचीन भारत में तीर्थ यात्रा

*डॉ. शैलेन्द्र कुमार उपाध्याय**

परिवहन का एक विशिष्ट पक्ष तीर्थ यात्राओं से सम्बद्ध है। तीर्थ उन पवित्र स्थलों के प्रतीक है जिन्हें अत्यन्त ही दिव्य तथा पुण्यप्रद मानते हुय भारत के लोग उनकी यात्राओं पर जाते रहे हैं। ये तीर्थ पवित्र नदियों, पर्वतों, वनों, देवालयों, आदि अनेक रूपों में मान्य रहे हैं। महामहोपाध्याय काणे के अनुसार तीर्थ तीन कारणों से पवित्र माने जाते हैं। स्थल की कुछ आश्चर्य जनक प्राकृतिक विशेषताओं के कारण या किसी जलीय स्थल की अनोखी रमणीयता के कारण या किसी तपःपूत ऋषि या मुनि के वहाँ रहने के कारण अतः तीर्थ का अर्थ है वह स्थान या स्थल या जलयुक्त स्थान है जो अपने विलक्षण स्वरूप के कारण पुण्यार्जन की भावना को जागृत करें। कभी–कभी महापुरूषों के सामीप्य लाभ हेतु भी तीर्थ यात्रायें की जाती थी। स्कन्द पुराण के अनुसार जहाँ प्राचीन काल के सत्पुरूष पुण्यार्जन के लिए रहते थे वे स्थल तीर्थ हैं।

तीर्थ गमन का विचार वैदिक युग से ही क्रमशः पल्लवित होता हुआ मिलता है। ऋग्वेद के तीर्थ विषयक कतिपय सन्दर्भों में एक पवित्र स्थल का बोध होता है। यथा, ऋग्वेद 10.31.3 में ''तीर्थ न दस्ममुप यन्त्यूमाः'' के अर्न्तगत तीर्थ शब्द से एक पवित्र स्थल की अभिव्यक्ति होती है। ऐसे ही एक अन्य मन्त्र ''सुवास्तवा अधि तुग्वनि'' में ''सुवास्तु'' का आशय ''नदी'' से और ''तुग्वनि'' का तीर्थ से जुड़ता हुआ लगता है। तैत्तिरीय संहिता के एक सन्दर्भ में यजमान को ''तीर्थ'' पर स्नान करने का निर्देश दिया गया है। कतिपय संहिताओं में रूद्रों को तीर्थो में विचरण करते हुए वर्णित किया गया है। शांखायन ब्राह्मण के अनुसार रात एवं दिन समुद्र हैं जो सबको समाहित कर देते हैं और सन्ध्यायें (समुद्र के) अगाध तीर्थ हैं इसमें यज्ञीय स्थल से आने–जाने के लिए बनाये गये ''उत्कर'' एवं ''चात्वाल'' (गड्ढ़ा) के मध्यवर्ती मार्ग को भी ''तीर्थ'' कहा गया है।

ऋग्वेद में जल की पवित्रता का भाव स्पष्ट रीति से अंकित हुआ है। इस जल को धंरण करने वाली नदियाँ देवीय शक्ति से परिपूर्ण और पूजार्ह'' मानी गयी है। ऋग्वेद के सप्तम मण्डल के 49वें सूक्त में चार ऐसे मन्त्र आये हैं जिनमें ''ता आयो देवीरिह मामवन्तु'' का उल्लेख है। यहाँ पर जलों को ''पुनाना'' (पवित्र करने वाले) कहा गया है। ऋग्वेद में सप्त सिन्धुओं सहित लगभग बीस नदियों का आह्वान किया गया है। जिनका जल पवित्र माना जाता था। इनमें सरस्वती को नदियों और देवियों में श्रेष्ठतम् कहा गया है। इस सरस्वती के तट पर अनेक सत्र आयोजित किये जाते थे।

नदियों की तरह पर्वतों तथा पर्वत घाटियों को भी पवित्र माना जाता था। ऋग्वेद के कतिपय मन्त्रों में पर्वत का उल्लेख इन्द्र के साथ–साथ मिलता है। यथा, एक मन्त्र में कहा गया है–''हे इन्द्र एवं पर्वत आप हमारी बुद्धि को पवित्र कर दे। ''अन्यत्र'' इन्द्र एवं पर्वत से युद्ध में आगे होकर वज्र द्वारा शत्रुओं को मारने का सन्दर्भ अंकित किया गया है। अर्थववेद में हिमालय की ''त्रैककुट'' नामक चोटियों से निकलते हुये अंजन के सन्दर्भ में यह निवेदन किया गया है कि वह समस्त डाकिनियों को नष्ट कर दें। कतिपय धर्मसूत्रों में पर्वत, नदियों, पवित्र सरोवरों तीर्थस्थलों, ऋषि आवासों, गोशाला एवं देवालयों की गणना उन स्थानों के अन्तर्गत की गयी है जो पुनीत एवं पाप के नाशक है पुराणों के अनुसार हिमालय के सभी भाग पुनीत है, गंगा सभी में पुण्य दामिनी है, समुद्र में गिरने वाली नदियों पुण्य हैं, और समुद्र सर्वाधिक पवित्र है।

सूत्रों तथा प्रारम्भिक स्मृतियों में तीर्थो, के महत्व का अंकन नहीं है किन्तु महाभारत तथा पुराणों में तीर्थ महात्म्य विस्तारशः प्रतिपादित है। महाभारत के वन पर्व (82.13.17) में देव यज्ञों तथा तीर्थयात्राओं का तुलनात्मक विवेचन करते हुये तीर्थयात्रा, को यज्ञों से उत्तम बताया गया है, क्योंकि उनका सम्पादन निर्धनों, विधुरों, असहायों आदि के द्वारा भी संभव है। पर तीर्थ यात्रा के पुण्यों को प्राप्त

* प्राचार्य कनक त्रिपाठी डिग्री कॉलेज बरगदही भटहट गोरखपुर

करने के लिए उच्चकोटि के नैतिक तथा अध्यात्मिक गुणों, का विकास आवश्यक है। सुसंयत, जितेन्द्रिय, अक्रोधी, सत्यशील, दृढ़वती, अपने समान अन्य प्राणियों को मानने वाला व्यक्ति ही तीर्थ यात्राओं के पुण्य फल को प्राप्त करता है। वस्तुतः इन उल्लेखों के आधार पर ही आगे चलकर तीर्थ का एक अमूर्त तथा लाक्षणिक विवेचन मानस तीर्थ के रूप में प्रस्तुत किया जाने लगा। ऐसी अभिव्यक्तियाँ पुराणों में अनेकत्र हुयी हैं। उनके अनुसार सत्य, क्षमा, इन्द्रियसंयम, दया, ऋजुता, दान, आत्मनिग्रह, सन्तोष, ब्रह्मचर्य, मृदुवाणी, ज्ञान, धैर्य और तप तीर्थ हैं और सवोच्च तीर्थ मनः शुद्धि है।

पुराणों में पवित्र स्थलों तथा तीर्थो, की संख्या के साथ–साथ उनके नामों का उल्लेख किया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार तीर्थो, की संख्या 35 कोटि है जो आकाश, अन्तरिक्ष, तथा भूमि में पाये जाते हैं, पर गंगा मं ये सभी तीर्थ समाहित माने गये हैं। वामन पुराण (46.53) में 35 करोड़ लिंग बताये गये हैं। बह्म पुराण के अनुसार तीर्थो तथा पवित्र धार्मिक स्थलों की संख्या इतनी बड़ी है कि उन्हें सैकड़ों वर्षो में भी नहीं गिना जा सकता महाभारत के वन पर्व (83–202) में वर्णित है कि पृथ्वी पर नैमिष, एवं अन्तरिक्ष में पुष्कर सर्वश्रेष्ठ तीर्थ है, कुरूक्षेत्र तीनों लोको में विशिष्ठ तीर्थ है और दस सहस्त्र कोटि तीर्थ पुष्कर में पाये जाते हैं। स्पष्ट है कि समय–समय पर तीर्थो की संख्या में अभिवृद्धि होती रही, विशेषतः उन लोगों के द्वारा जो इन तीर्थो में पुरोहितों के रूप में कार्य करते हुये धन लाभ प्राप्त करते थे। परवर्ती कृतियों में वाराणसी, प्रयाग, पुष्कर, पृथूदक, कोकामुखं, बदरिकाश्रम, केदार, सेतुबन्ध, पुण्डरीक (आधुनिक पण्डरपुर) प्रभास आदि तीर्थो का मुख्यतः उल्लेख किया गया है। ब्रह्मपुराण में विन्ध्य के दक्षिण की 6 नदियाँ– गोदावरी, भीमरथी, तुंगभद्रा, वेणिका, तापी, पयोष्णी, तथा हिमालय से निर्गत 6 नदियाँ– भागीरथी, नर्मदा, यमुना, सरस्वती, विशोका, एवं वितस्ता देव तीर्थो में सर्वाधिक पवित्र मानी गयी है। इनद`व तीर्थो में काशी पुष्कर तथा प्रभास का भी उल्लेख है।

परवर्ती कृतियों में तीर्थ यात्रा हेतु अपनाये गये साधनों के आधार पर पुण्यांर्जन के परिमाण को निर्दिष्ट करने का प्रयास भी किया गया है। मत्स्य पुराण के अनुसार यदि कोई प्रयाग की तीर्थ यात्रा बैल पर सवार होकर करता है तो वह नरक में गिरता है और उसके पितर तीर्थ पर दिये गये जल तर्पण को ग्रहण नहीं करते हैं और यदि कोई व्यक्ति ऐश्वर्य या मोह वश यान पर यात्रा करता है तो उसके सारे प्रयत्न व्यर्थ हो जाते हैं। अतः तीर्थ यात्री को यान पर नहीं जाना चाहिए। कूर्म पुराण में कहा गया है कि जो लोग असमर्थता के कारण नरयान, अथवा घोड़ो अथवा खच्चरों से खीचे जाने वाले रथों का प्रयोग करते हैं, वे पाप या अपराध के भागी नहीं होते। विष्णु पुराण में यात्रा में जूता पहनकर, वर्षा एवं धूप में छाता का प्रयोग करके, रात मे अथवा वन में दण्ड लेकर चलने का निर्देश दिया गया है। विष्णु धर्मोत्तर (3.273.11.12) का कथन है कि पैदल तीर्थ यात्रा करने से सर्वोच्च तप का फल प्राप्त होता है। यदि यान के द्वारा यात्रा की जाती है तो केवल स्नान का फल प्राप्त होता है। तीर्थ प्रकाश में गंगा सागर जैसे तीर्थो में नौका के प्रयोग की अनुमति दी गयी है। क्योंकि वहाँ जाने के लिये अन्य कोई साधन नहीं है।

प्राचीन भारत में और, अभी भी, तीर्थो की मान्यता किसी सम्प्रदाय विशेष तक ही सीमित न रहकर प्रायः समस्त धार्मिक सम्प्रदायों में स्वीकार्य रही है। ब्राह्मण धर्मानयायियों की तरह बौद्ध जैन आदि ने भी अपने पवित्र धार्मिक स्थलों की कल्पना की है और उनकी यात्राओं पर भी जाते रहे हैं। बौद्ध धर्मानुयायियों में बुद्ध के जन्म (लुम्बिनी) सम्बोधि (बोधगया) धर्मचक्र, प्रवर्तन (सारनाथ) तथा महापरिनिर्वाण (कुशीनगर) से सम्बन्धित स्थल विशेष श्रद्धास्पद रहे हैं और उनकी चारिका के मुख्य केन्द्र भी रहे हैं। स्वयं सम्राट अशोक इन धार्मिक स्थलों की यात्रायें करने का उद्घोष अपने लेखों में करता है। यही नहीं उसने बिहार यात्राओं के स्थान पर ''धम्म'' यात्राओं का विचार भी प्रवर्तित किया है। बुद्ध से सम्बद्ध इन पवित्र स्थलों के अतिरिक्त वे स्थल जहाँ पर स्तूप, चैत्य, विहार आदि बनाये गये, बौद्धों की चारिका के केन्द्र बने। बौद्धों की तरह, जैनियों में भी श्रावणाबेल्गोला, बलभी आदि स्थलों की यात्रायें करने की प्रथा मिलती है।

इस प्रकार तीर्थ यात्राएँ धार्मिक जीवन से अभिन्न रूप से जुड़ी हुई थी। सूदूर अतीत मे विकसित तीर्थो का यह महात्म्य अद्यावधि विद्यमान है। इसका प्रतिफल यह रहा है कि भारतवर्ष

समय–समय पर चाहे कितने ही राज्यों में क्यों न विखण्डित रहा हो, इन तीर्थ यात्रियों के द्वारा एक अमूर्त सांस्कृतिक एकता का निर्माण सदैव किया गया। वाराणसी हो अथवा रामेश्वरम् द्वारिका हो अथवा गंगासागर ये सभी तीर्थ उत्तर अथवा दक्षिण, कही पर भी निवास करने वाले सभी हिन्दूओं के द्वारा समान रूप से पवित्र माने गये हैं। तीर्थ यात्रा करना एक ऐसा साधन था जो साधारण लोगों को स्वकेन्द्रित जीवन से दूर रखने में सहायक होता था और उन्हें उच्चतर, नैतिक एवं आध्यात्मिक जीवन मूल्यों के विषय में सोचने के लिए उत्तेजित करता रहता था।

यात्रा का शुभाशुभ विचार

प्राचीन काल में यात्रा के मार्ग प्रायः दुर्गम स्थलों से गुजरते थे जिनमें अनेक प्रकार की विघ्न बाधाओं की आशंका बनी रहती थी। अतः यात्रा को सकुशल सम्पन्न करने के लिए न केवल आराध्य देवों की स्तुतियाँ की जाती थी अपितु अनेक प्रकार के कर्मकाण्डों का सम्पादन मन्त्र जाप आदि भी किया जाता था। वैदिक युग के प्रारम्भ से ही ''पथों'' को निर्विघ्न करने की याचना देवों से की गयी है। एक ऐसा ही भाव ऋग्वेद में ''पूषण'' देव के सन्दर्भ में अभिव्यक्त मिलता है। पूषण को सम्बोधित प्रथम मण्डल के एक सूक्त में वर्णित है'' हे पूषा हमारा रास्ता पार कराओं, पतन से बचाने वाले देव, दुष्टों से छुड़ाओं और हमारे साथ आगे–आगे रहो। हे पूषा, जो दुष्ट और बदमाश हमारे ऊपर शासन चलाता है, उसे हमारे रास्ते से दूर करों। रास्ते में बाधा उत्पन्न करने वाले चोर या डाकू चाहे दूर हों या निकट उन्हें रास्ते से अलग हटाओं। वे पापी जो रात को चोरी और दिन में लूटपाट करते है, उनको पैरों से रौंद डालो यात्रा मे प्रस्थान करने के पूर्व देवस्मरण अथवा देव स्तुति का प्रचलित विचार इन्हीं प्रारम्भिक विचारों की देन है।

संदर्भ :

1. तीर्थ के अर्थ विवेचन हेतु देखे–
2. धर्मशास्त्र का इतिहास, भाग–3, पृ0 1301.
3. मुख्या पुरूष यात्रा हि तीर्थयात्रानुषंगतः।
4. सद्भिः समाश्रितो भूय भूमि भागस्तथोच्यते।
5. स्कन्द (1.2.13.10)
6. अप्सु स्नाति साक्षादेव दीक्षातपसी अवरून्धें तीर्थ स्नाति, तु0सं0 6.1.1.1–2.
7. तें0सं0 4.5.11.1–2; वां0सं0 16.16.
8. शंखायन ब्राह्मण 2.9
9. ऋ0 7.49.1
10. ऋ0 5.53.9; 10.75.5–6.
11. ''अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति, ऋ0 2.41.16.
12. ऐतरेय ब्राह्मण 8.1; ताण्ड्य ब्राह्मण 25.10.1; 15; 16; 21.
13. ऋ01.122.3.
14. ऋ0 1.132.6.
15. अथर्व0 4.9.9.
16. सर्व शिलोच्चयाः सर्वा स्रवन्त्यः पुण्या ह्दास्तीर्थायूषिनिवासा गोष्ठपरिस्कन्दा इति देशाः। गौतम धर्म सूत्र 14.14; वशिष्ठ धर्मसूत्र 22.12 बौ0 धर्मसूत्र 3.10.12.
17. सर्वपुण्यं हिमवतो गंगा पुण्या च सर्वतः। समुद्रणाः
18. समुद्राश्च सर्वे पुण्याःसमन्ततः। वायु0पु0–77.1.17;
19. तुलनीय कूर्मपु0 2.37.49–50; तीर्थ प्रकाश पृ0–14.
20. महाभारत, वनपर्व, 82.9.12; वायु, अग्नि, स्कन्द पुराणों में भी ऐसे ही भाव अंकित मिलते हैं।
21. सत्यं तीर्थ क्षम तीर्थ..... तीर्थामुत्तमे तीर्थ विशुद्धिर्मनसः पुनः, स्क0पु0, काशी मत्स्यपुराण (22.80) तथा वामन पुराण (43.25) में भी मिलते हैं।
22. मत्स्य पुराण, 110.7.

23. ब्रह्म पुराण– 25.7.8.
24. तीर्थो की विस्तृत सूची के लिये देखे–धर्मशास्त्र का इतिहास–भाग–तृतीय पृ0–1400–1505.
25. यहाँ पर हिमालय से निकलने वाली नदियों के अन्तर्गत नर्मदा का उल्लेख आश्चर्यजनक है। यह पुराण लेखक की भौगोलिक अज्ञानता का प्रतीक है।
26. ब्रह्मपुराण–175.31.32.
27. मत्स्य पुराण– 106.4.6.
28. दृष्टव्य–तीर्थ प्रकाश, पृ0 34.
29. विष्णुपुराण–3.12.38.
30. तीर्थ प्रकाश, पृ0–35.
31. द्र0– अशोक का अष्टम शिलालेख; रूम्मिनदेई स्तम्भ लेख।
32. ऋ0 1.42.1–4.

***

भारत–नेपाल सम्बन्ध एवं वर्तमान स्थिति

डॉ. अनूप कुमार श्रीवास्तव *

नेपाल भारतीय उपमहाद्वीप का ही एक भाग है तथा यह स्थलों से घिरा हुआ देश है। भारत की लगभग 1860 किमी0 सीमा नेपाल से सटी है। यह भारत एवं चीन के बीच स्थित है। हिमालय की गोद में बसे नेपाल की उत्तरी सीमा तिब्बत से मिलती है तथा इसकी पूर्वी, पश्चिमी और दक्षिणी सीमायें भारत से मिलती हैं। नेपाल दोनों तरफ विशाल देशों से भूबद्ध (Landlock) है। इसका क्षेत्रफल 1,48,000 किमी2 के लगभग है। इसकी जनसंख्या 3 करोड़ के लगभग है। सन् 1768 में पृथ्वी नारायण शाह ने काठमाण्डू पर फतह कर एकीकृत साम्राज्य की नींव डाली। सन् 1846 में नेपाल पर राजाओं का वर्चस्व हो गया, जिन्होंने सम्राट को शक्तिहीन कर नेपाल को विश्व से काट दिया। बाद में राजा और राणाओं के बीच एक समझौता हुआ जिसमें यह तय हुआ कि राजा को 'पांच सरकार' तथा राणा को 'तीन सरकार' कहा गया।

भारत–नेपाल संबंधों की पृष्ठभूमि

नेपाल भारत का एक महत्वपूर्ण पड़ोसी है और सदियों से चले आ रहे भौगोलिक, ऐतिहासिक, सांस्कृतिक एवं आर्थिक संबंधों के कारण वह हमारी विदेश नीति में भी विशेष महत्व रखता है। भारत और नेपाल हिंदू धर्म एवं बौद्ध धर्म के संदर्भ में समान संबंध साझा करते हैं, उल्लेखनीय है कि बुद्ध का जन्म स्थान लुंबिनी नेपाल में है और उसका निर्माण स्थान कुशीनगर भारत में स्थित है। वर्ष 1950 की भारत नेपाल शांति और मित्रता संधि दोनों देशों के बीच मौजूद विशेष संबंधों का आधार है। 1950 के उपरान्त की स्थिति सन् 1951 में राजा, नेपाली कांग्रेस के बीच समझौता हुआ तथा प्रथम बार संसद हेतु चुनाव हुए तथा नेपाली कांग्रेस के वी0पी0 कोइराला के नेतृत्व में सरकार का गठन किया गया। नेपाल में लोकतंत्र की स्थापना के लिए संघर्षरत नेपाली कांग्रेस के प्रायः वरिष्ठ नेताओं की शिक्षा–दीक्षा भारत में हुई। इन नेताओं ने अपने देश में निरंकुश राजाशाही का अन्त कराया। 30 जुलाई 1950 को भारत में नेपाल के मध्य ''भारत–नेपाल शान्ति व सहयोग'' की एक सन्धि की। न तो 1947 से पूर्व और न ही इसके बाद बिट्रेन अथवा भारत ने नेपाल के आन्तरिक मामलों में कभी भी हस्तक्षेप किया। भारत के प्रयास से नेपाल संयुक्त राष्ट्र संघ का सदस्य बना। 1956 में भारत के राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसादने नेपाल की यात्रा की। 1960 में नेपाल ने चीन के साथ ''मित्रता एवं सहयोग'' की सन्धि कर ली। फलतः 1961 में भारत एवं नेपाल के सम्बन्धों में कुछ दरार देखी गयी। 1962 में भारत–चीन युद्ध के समय नेपाल के साथ भारत के सम्बन्ध बहुत अच्छे नहीं थे। लाल बहादुर शास्त्री ने भारत–नेपाल सम्बन्धों में सुधार लाने का प्रयास किया। तथा 1965 में नेपाल नरेश ने भी भारत की यात्रा की इससे दोनों देश के बीच भ्रान्तियाँ दूर हुयी। श्रीमती इन्दिरा गाँधी के युग में दोनो देशों के मैत्रीपूर्ण सम्बन्धों को और मजबूत किया जा सका तथा नेपाल यह अनुभव करने लगा कि भारत की कोई साम्राज्यवादी आकांक्षाए नहीं है। उसे भारत की प्रभुसत्ता का आदर करना ही चाहिए। 13 अगस्त, 1971 को दोनों देशों के बीच एक पंचवर्षीय समझौता किया गया जिसके तहत भारत ने नेपाल के कच्चे माल के व्यापार की खुली छूट दे दी एवं उसे मार्ग सुविधायें भी प्रदान कर दी। नेपाल ने बांग्लादेश के अस्तित्व में आने पर उसे तत्काल मान्यता प्रदान कर दी परन्तु 1975 में सिक्किम के विलय के समय नेपाल नरेश वीरेन्द्र ने इसे विस्तारवादी कह डाला। उस समय इंदिरा गॉधी ने यह स्पष्ट कर दिया कि नेपाल को यह मानकर नहीं चलना चाहिए कि भारत की मैत्री सदैव बरकरार रहेगी तथा यह मैत्री एक तरफ से नहीं चल सकती। सन् 1977 में जनता पार्टी के सत्तारूढ़ती नजदीकी के रूप में देख रहा है। ऐसे में बड़ा सवाल है कि क्या भारत और नेपाल के बीच सदियों पुराने रिश्ते पर चीनी चाल भारी पड़ रही है? या फिर यह मान लिया जाए कि हालिया दिनों में नेपाल ज्यादा से ज्यादा महत्वाकांक्षी बन गया है

* असिस्टेंट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, महाविद्यालय भटवली बाजार उनवल, गोरखपुर

और भारत उसकी आकांक्षाओं पर खरा नहीं उतर रहा है। भारत नेपाल शांति और मित्रता संधि यह भारत और नेपाल के मध्य विपक्षी संधि है जिसका उद्देश्य दोनों दक्षिण एशियाई पड़ोसी देशों के बीच घनिष्ठ रणनीतिक संबंध स्थापित करना है। यह संधि दोनों देशों के बीच लोगों और वस्तुओं की मुक्त आवाजाही और रक्षा एवं विदेश मामलों के बीच घनिष्ठ संबंध तथा सहयोग की अनुमति देता है साथ ही यह संधि नेपाल को भारत से हथियार खरीदने की सुविधा भी देता हैं इस संधि के द्वारा नेपाल को एक भू–आबद्ध (Land-lock) देश होने के कारण कई विशेषाधिकार को प्राप्त करने में सक्षम बनाया है भारत नेपाल की खुली सीमा दोनों देशों के संबंधों की विशिष्टता है जिससे दोनों देशों के लोगों को आवागमन में सुगमता रहती है दोनों देशों के बीच 18 सो 50 किलोमीटर से अधिक लंबी साझा सीमा है जिससे भारत के 5 राज्य सिक्किम, पश्चिम बंगाल, बिहार उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड जुड़े हुए हैं। भारत और नेपाल के बीच सीमा को लेकर कोई बड़ा विवाद नहीं है लगभग 98 सीमा की पहचान बहुत के नक्शे पर सहमति बन चुकी है, कुछ क्षेत्रों को लेकर विवाद है जिसे बातचीत के माध्यम से सुलझा ने की प्रक्रिया चल रही है। सहयोग के विभिन्न क्षेत्र सांस्कृतिक व धार्मिक क्षेत्र नेपाल और भारत दुनिया के दो प्रमुख धर्म हिंदू और बौद्ध धर्म के विकास के आसपास एक सांस्कृतिक इतिहास साझा करते हैं। बुद्ध का जन्म वर्तमान नेपाल में स्थित लुंबिनी में हुआ था बाद में बुद्ध ज्ञान की खोज में वर्तमान भारतीय क्षेत्र बोध गया आए, जहां उन्हें आत्म ज्ञान प्राप्त हुआ। बोधगया से महात्मा बुध और उनके अनुयायियों ने विश्व के कोने–कोने तक बौद्ध धर्म का प्रसार किया। भारत व नेपाल दोनों ही देशों में हिंदू वह बौद्ध धर्म को मानने वाले लोग हैं। रामायण सर्किट की योजना दोनों देशों के मजबूत सांस्कृतिक व धार्मिक संबंधों का प्रतीक है। सामाजिक क्षेत्र भारत नेपाल की खुली सीमा दोनों देशों के संबंधों की विशेषता है, जिससे दोनों देशों के लोगों को आवागमन में सुगमता रहती है। दोनों देशों के नागरिकों के बीच आजीविका के साथ–साथ विवाह और पारिवारिक संबंधों की मजबूत नींव है। इस नींव़ को ही रोटी बेटी का रिश्ता नाम दिया गया है। आर्थिक क्षेत्र भारत नेपाल का सबसे बड़ा व्यापार भागीदार होने के साथ–साथ विदेशी निवेश का सबसे बड़ा स्रोत है। भारत नेपाल को अन्य देशों के साथ व्यापार करने के लिए पारगमन सुविधा भी प्रदान करता है। नेपाल अपने समुद्री व्यापार के लिए कोलकाता बंदरगाह का उपयोग करता है। भारतीय कंपनियां नेपाल में विभिन्न आर्थिक गतिविधियों में संलग्न है। इन कंपनियों की नेपाल में विनिर्माण बिजली पर्यटन और सेवा क्षेत्र में उपस्थिति है।

अवसंरचना विकास क्षेत्र

भारत सरकार नेपाल में जमीनी स्तर पर बुनियादी ढांचे के निर्माण पर ध्यान केंद्रित करते हुए समय–समय पर विकास सहायता प्रदान करती है। इसमें बुनियादी ढांचे में स्वास्थ्य जल संसाधन शिक्षा ग्रामीण और समुदाय विकास जैसे मुद्दे शामिल हैं।

आपदा प्रबंधन

नेपाल में अक्सर भूकंप भूस्खलन और हिमस्खलन बादल फटने और बाढ़ जैसी प्राकृतिक आपदाओं का खतरा रहता है ऐसा मुख्य रूप से भौगोलिक कारकों के कारण होता है क्योंकि नेपाल एक प्राकृतिक रूप से संवेदनशील क्षेत्र में स्थित है। भारत आपदा से संबंधित ऐसे किसी भी मामले में कर्मियों की सहायता के साथ–साथ तकनीकी और मानवीय सहायता भी प्रदान करता है।

संचार क्षेत्र

नेपाल एक भू–आबद्ध देश है। जो तीन तरफ से भारत से और एक तरफ तिब्बत से घिरा हुआ है। भारत–नेपाल ने अपने नागरिकों के मध्य संपर्क बढ़ाने और आर्थिक वृद्धि एवं विकास को बढ़ावा देने के लिए विभिन्न कनेक्टिविटी कार्यक्रम शुरू किए हैं। हाल ही में भारत के रक्सौल को काठमांडू से जोड़ने के लिए इलेक्ट्रिक रेल ट्रैक बिछाने हेतु दोनों सरकारों के बीच समझौते पर हस्ताक्षर किए गए थे।

वर्तमान विवाद के बिंदु–

भारत व नेपाल के मध्य हालिया विवाद का कारण उत्तराखंड के धारचूला को लिपुलेख दर्रा से जोड़ती एक सड़क है। नेपाल का दावा है कि कालापानी (Kalapani) के पास पढ़ने वाला यह क्षेत्र

नेपाल का हिस्सा है और भारत में नेपाल से वार्ता किए बिना इस क्षेत्र में सड़क निर्माण का कार्य किया है। नेपाल द्वारा आधिकारिक रूप से नेपाल का नवीन मानचित्र जारी किया गया जो उत्तराखंड के कालापानी (Kalapani), लिपियांधुरा (Limpiyadhura) और लिपुलेख (Lipulekh) को अपने संप्रभु क्षेत्र का हिस्सा मानता है। नेपाल ने इस संबंध में वर्ष 1816 में हुई सुगौली संधि (Sugauli treaty) का जिक्र किया है। नेपाल के विदेश मंत्रालय के अनुसार सुगौली संधि वर्ष 1816 के तहत काली (महाकाली) नदी के पूर्व के सभी क्षेत्र जिनमें लिंपियाधूरा, कालापानी और लिपुलेख शामिल है, नेपाल का अभिन्न अंग है। एंग्लो नेपाली युद्ध के पश्चात वर्षा 1816 में नेपाल और ब्रिटिश भारत द्वारा सुगौली की संधि हस्ताक्षरित की गई थी। उल्लेखनीय है कि सुगौली संधि में महाकाली नदी का नेपाल की पश्चिमी सीमा के रूप में परिभाषित किया गया है। नेपाल सरकार के अनुसार बीते वर्ष जम्मू कश्मीर के विभाजन के पश्चात भारत सरकार द्वारा प्रकाशित नए मानचित्र में भिन्नता से स्पष्ट था कि भारत द्वारा इस मानचित्रों में छेड़खानी की गई है।

क्या बिगड़ते रिश्ते में भारत की भूमिका है?

नवंबर 2019 को भारत में एक नवीन मानचित्र प्रकाशित किया था जो जम्मू कश्मीर और लद्दाख को केंद्र शासित प्रदेश के रूप में दर्शाता है इसी मानचित्र में काला पानी को भी भारतीय क्षेत्र के रूप में दर्शाया गया है। इस मानचित्र ने भारत नेपाल के बीच पुराने विवादों में नई जान डाल दी। भारतीय फिल्मों में नेपाली महिलाओं को लेकर की गई आपत्तिजनक टिप्पणी से भी नेपाल ने नाराजगी व्यक्त की। नेपाल वर्ष 2017 में चीन की वन बेल्ट वन रोड परियोजना में शामिल हुआ, परंतु भारत नेपाल पर इस परियोजना में शामिल न होने का दबाव डाल रहा था भारत द्वारा इस प्रकार दबाव डालना नेपाल को रास नहीं आया और इस घटना ने भारत की बिग ब्रदर वाली छवि को स्थापित किया। दोनों देशों के संबंधों में कड़वाहट तब आए जब सितंबर 2015 में नेपाली संविधान अस्तित्व में आया। लेकिन, भारत द्वारा नेपाल संविधान का उस रुप में स्वागत नहीं किया जिस रूप में नेपाल को आशा थी। इसी तरह नवंबर 2015 में जेनेवा में भारतीय प्रतिनिधित्व द्वारा नेपाल में राजनीतिक फेरबदल को प्रभावित करने के लिए मानवाधिकार परिषद के मंच का कठोरता पूर्वक उपयोग किया गया, जबकि इससे पहले तक नेपाल के आंतरिक मुद्दों को लेकर भारत द्वारा कभी भी खुलकर कोई टिप्पणी नहीं की गई थी। भारत का रूख मधेशियों को नेपाल में नागरिकता का अधिकार दिलाना था। इनमें लाखों मधेशियों ने वर्ष 2015 में नागरिकता को लेकर व्यापक आंदोलन चलाया था। नेपाल सरकार का ऐसा आरोप है कि मधेशियों के समर्थन में भारत सरकार ने उस समय नेपाल की आर्थिक घेराबंदी की थी।

नेपाल पर चीन का प्रभाव

गौरतलब है कि चीन का प्रभाव दक्षिण एशिया में लगातार बढ़ रहा है। नेपाल, श्रीलंका पाकिस्तान या बांग्लादेश हर जगह चीन की मौजूदगी बड़ी है। यह सभी देश चीन की बेल्ट एंड रोड इनीशिएटिव परियोजना में शामिल हो गए हैं। लेकिन भारत इस परियोजना के पक्ष में नहीं है। नेपाल में चीन के बढ़ते दखल के बाद पिछले कुछ समय से भारत नेपाल के बीच संबंधों में पहले जैसी गर्मजोशी देखने को नहीं मिल रही। चीन ने इसका पूरा पूरा लाभ उठाते हुए नेपाल में अपनी स्थिति को और मजबूत किया है। नेपाल के कई स्कूलों में चीनी भाषा मंदारिन को पढ़ाया भी अनिवार्य कर दिया गया है। नेपाल में इस भाषा को पढ़ाने वाले शिक्षकों के वेतन का खर्चा भी चीन की सरकार द्वारा उठाने के लिए तैयार है। चीन नेपाल में ऐसा बुनियादी ढांचा तैयार करने की परियोजना पर काम कर रहा है जिन पर भारी खर्च आता है।

भारत के लिए नेपाल का महत्व

नेपाल की अहमियत इस वजह से भी ज्यादा है कि पीएम मोदी के सत्ता में आने के बाद पहले पड़ोस की नीति के मद्देनजर नेपाल उनके शुरुआती विदेशी दौरों में से एक था। जबकि इससे पहले आखरी बार वर्ष 1997 में नेपाल के साथ भारत की कोई विपक्षी वार्ता हुई थी। मौजूदा सरकार ने नेपाल सरकार के साथ कई महत्वपूर्ण समझौते भी किए हैं। कृषि रेलवे संबंध और अंतर्देशीय जल मार्ग

विकास सहित कई विपक्षी समझौतों पर सहमति बनी है। इनमें बिहार के रक्सौल और काठमांडू के बीच सामरिक रेलवे लिंक का निर्माण किया जाएगा, ताकि लोगों के बीच संपर्क तथा बड़े पैमाने पर माल के आवागमन को सुविधाजनक बनाया जा सके। इसके अलावा मोतिहारी से नेपाल के अमेलखगंज तक दोनों देशों के बीच ऑयल पाइप लाइन बिछाने पर भी हाल ही में सहमति बनी है। नेपाल का दक्षिणी क्षेत्र भारत की उत्तरी सीमा से सटा है। भारत और नेपाल के बीच रोटी बेटी का रिश्ता माना जाता है। बिहार और पूर्वी उत्तर प्रदेश के साथ नेपाल के मधेशी समुदाय का सांस्कृतिक एवं नृजातीय संबंध रहा है। दोनों देशों की सीमाओं से यातायात पर कभी कोई विशेष प्रतिबंध नहीं रहा। सामाजिक और आर्थिक विनिमय बिना किसी गतिरोध के चलता रहता है। भारत–नेपाल की सीमा खुली हुई है और आवागमन के लिए किसी पासपोर्ट या वीजा की जरूरत नहीं पड़ती है। यह उदाहरण कई मायनों में भारत–नेपाल की नजदीकी को दर्शाता है।

आगे की राह

नेपाल सरकार ने स्पष्ट किया है कि वह दो देशों के मध्य घनिष्ठ और मैत्रीपूर्ण संबंधों की भावना को ध्यान में रखते हुए ऐतिहासिक संधि, दस्तावेजों, तथ्यों और नक्शों के आधार पर सीमा के मुद्दों का कूटनीतिक हल प्राप्त करने के लिए प्रतिबद्ध है। भारत को भी अपनी विदेश नीति की समीक्षा करने की जरूरत है। भारत को नेपाल के प्रति अपनी नीति दूरदर्शी बनानी होगी। जिस तरह से नेपाल में चीन का प्रभाव बढ़ रहा है उससे भारत को अपने पड़ोसी देशों में आर्थिक शक्ति का प्रदर्शन करने से पहले राजनीतिक लाभ हानि पर विचार करना होगा। भारत और चीन के साथ नेपाल एक आजाद सौदागर की तरह व्यवहार कर रहा है और चीनी निवेश के सामने भारत की चमक फीकी पड़ रही है। लिहाजा भारत को कूटनीतिक सूझबूझ का परिचय देना होगा।

संदर्भ :

1. पंत, हर्षवर्धन, भारतीय सुरक्षा एवं विदेश नीति, प्रभात प्रकाशन, नई दिल्ली– 2012 , पृष्ठ–147
2. भट्टाचार्य– 'चाईना इन रोडस इन टू नेपाल– इण्डिया कन्सर्न मई 18, 2010
3. वर्ल्ड फोकस जुलाई–2008
4. जे0एन0 दीक्षित, भारतीय विदेश नीति और इनके पड़ोसी, ज्ञान पब्लिसिंग हाउस दिल्ली।
5. एम0के0 सिंह – भारत के अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध एवं विश्व में प्रमुख संगठन, साहित्य, संचय, नई दिल्ली–2012

समाचार पत्र एवं पत्रिकाएँ

1. वर्ल्ड फोकस
2. सिविल टाइम्स
3. कानिकल

***

वर्णाश्रम धर्म का दर्शन और नैतिकता

डॉ. बासुकी नाथ चौधरी *

भूमिका

वर्णाश्रम मुख्यतया दो तथ्यों की ओर तत्काल हमारा ध्यान आकृष्ट करता है। पहला – यह पूरी तरह से भारतीय संस्कृति का अभिन्न प्राचीन दर्शन है। दूसरा – यह सामाजिक संगठन का विलक्षण स्वरूप प्रस्तुत करता है। परन्तु बदलते परिवेश, बदले समय और बदलते सामाजिक जीवन शैली के कारण ढेरों परिवर्तन हमारे जीवन में भी घटित हुआ। राजनैतिक विचारधारा, विज्ञान, तकनीकी खोज और भूमंडलीकरण ने हमारी विचारधारा को अद्‌भुत रूप से प्रभावित किया है। समाजवादी विचारधारा और उदारवादी प्रजातांत्रिक शासन व्यवस्था में पला–बढ़ा मनुष्य जब आधुनिक सभ्यता के चश्में से प्राचीन हिन्दू व्यवस्था को देखता है तो उसे ढेर सारी विसंगतियाँ नजर आती हैं। आर्यों का वर्णाश्रम तथा सभी आश्रमों के बीच का परस्पर स्तरण उसे कुछ अटपटा सा लगता है। इस हद तक अटपटा लगता है कि वह अपनी वाणी और लेखनी से इसकी जितनी भी भर्त्सना कर सकता है, करता है। दूसरी ओर यदि इसके पीछे छिपे दार्शनिक अवधारणाओं और नैतिक मूल्यों का अध्ययन किया जाए तो जातियों में बँटा यह समाज शायद उस समय की श्रेष्ठता का कायल हो जाए। इस शोध लेख का विषय और उद्देश्य भी वर्णाश्रम के दार्शनिक और नैतिक मूल्यों का अध्ययन, मूल्यांकन और विश्लेषण के आधार पर सार ढूँढ़ना है।

विषय–वस्तु

आधुनिक रचनाकारों की सबसे बड़ी समस्या यह है कि समसामयिक मनोवृत्ति से रंगी उनकी सोच प्राचीन साहित्य के विश्लेषण में अपनी निष्पक्षता खो बैठती है। यदि ऋग्वेद को ही सही परिप्रेक्ष्य में समझ लिया जाये तो हिन्दुआं में जो एकता थी, साहचर्य और समरसता था, उसका भान हो जायेगा। उदाहरण के लिए ऋग्वेद का निम्न सूक्त देखिए[1] :–

''समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः
समानामस्तु वो मनो यथा व सुसहासति''

अर्थात् – मनुष्यों की अहमन्यता एक जैसी हो, हृदय में संकल्पित व्यवहार एक जैसे हों, मान–सम्मान होना चाहिए। यह परस्पर सहयोग में आवश्यक है, मनुष्य का परस्पर सहयोग में रहना ही मानवता है, यह जानना चाहिए।

अब एक जैसी अहमन्यता, एक जैसा व्यवहार और पारस्परिक एकता पर बल दिया जा रहा हो तो कहाँ है वह स्तरण जो सभी श्रेणियों के बीच उच्च/निम्न का स्तरण आज हम देख रहे हैं।

प्राचीन संस्कृति की उदारता और विशालता की ओर नजर डालें, अथर्ववेद की इस सूक्ति से[2] :–

''विश्वमंरा वसुधानी प्रतिष्ठाहिरण्यवक्षा जगतो निवेशनी
वैश्वामरं विभ्रति भूमिरमिनयिन्द्र, ऋषभा द्रविणे नो दघात''

भावार्थ है – धरती माता का नमन जो विश्वम्भरा है, वह भोजन और दवा पैदा करने वाली वसुधा है, वही प्रतिष्ठा है, वही हिरण्यवक्ष है। उदात्त सोच उनकी भाषा से परिलक्षित होता है। गौर करें – 'मैं' की जगह 'हम' और विश्व जैसे शब्दों की सुन्दर प्रतिष्ठा है। पृथ्वी की अराधना उन्होंने ''विश्वम्भरा'' के रूप में की।

पूरे विश्व को ईश्वरमय समझकर भोग और त्याग के बीच के पारस्परिक संतुलन पर समाज रचना की नींव डाली हमारे ऋषियों ने। देखिए ईशोपनिषद की यह सूक्ति[3] :–

''ईशावास्या भिदम् सर्वम यत्किञ्च जगत्यां जगत,

---

* एसोसिएट प्रोफेसर पी.जी.डी.ए.वी. (सांध्य) कॉलेज दिल्ली विश्वविद्यालय

तेन व्यक्तेन मुञ्जीथा मा गृद्धा कस्यस्विद्धनम''

अर्थात् – इस जगत में जो कुछ भी है, वह सभी ईश्वर आच्छादित है। त्याग की भावना को ध्यान में रखकर किसी के धन पर गिद्ध दृष्टि डाले बिना व्यवहार करें।

अपने को पृथ्वी का संतान मानकर समाज के सदस्यों के बीच सहोदरत्व एवं भ्रातृत्व–भावना के विकास का एक अद्‌भुत नमूना पेश किया। अथर्ववेद के ही निम्न सूक्त को देखें :–

''यत्ते मध्य पृथिवि यच्च नभ्यं यास्त उर्जस्तन्वः संवभूव।
तासु ना धेद्याभिनः पवस्व माता भूमिः पुत्रो अहं पृथ्वियाः पर्यन्यः
पिता स उनः पिपर्तुः।।''

भावार्थ है – हे पृथ्वी! हे माँ, यह जो तुम्हारा मध्य भाग है और जो उभरा हुआ उर्ध्व भाग है, यह जो तुम्हारे शरीर के विभिन्न भाग ऊर्जा से भरे हुए हैं, हे मातः तुम मुझे अपने उसी शरीर से सजा लो और दुलारो। मैं तुम्हारे पुत्र जैसा हूँ, तुम मेरी माँ हो और पर्यन्य का हम पर पिता जैसा संरक्षण बना रहे।

इस प्रकार यदि समाज संघटन योजना का सही परिपेक्ष्य में विलक्षण करें तो ऐसा प्रतीत होता है कि एक ओर भौतिक अभिवृद्धि है तो दूसरी ओर आध्यात्मिक उत्कर्ष। इन दोनों लक्ष्यों की उत्कृष्टा को ध्यान में रखकर ही वर्णाश्रम का प्रावधान किया गया था। आर्य इस बात से भिज्ञ थे कि मानव जीवन में न तो बुद्धि की उपेक्षा की जा सकती थी न ही शरीर की। शारीरिक आवश्यकताओं की पूर्त्ति के लिए कृषि, पशुपालन, उद्योग, व्यवसाय को और बुद्धि से संतोष और सुख प्राप्त करने के लिए ज्ञान प्राप्ति को सुव्यवस्थित करना पड़ेगा। सामाजिक जीवन के इन सभी पहलुओं पर विचार करके ही प्राचीन आर्यों ने समाज को ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र – चार वर्णों में विभाजित किया। ब्राह्मण का कार्य ज्ञान अर्जन करना था, क्षत्रियों का कार्य सुरक्षा प्रदान करना था। आर्यों की सोच स्पष्ट थी कि समाज, सभ्यता और संस्कृति का विकास तभी संभव है जब समाज और राष्ट्र सुरक्षित हों। वैश्य कृषि, पशुपालन, शिल्प, व्यवसाय तथा शूद्र सेवा कार्य में थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ऐसा वर्गीकरण न केवल समयानुकूल था वरन् उनके वैज्ञानिक दृष्टिकोण को भी उजागर करता है।

वर्णाश्रम के व्यवस्थापक ऋषियों के हृदय में अपने समाज के प्रति कल्याण की भरपूर भावना थी। उदाहरणस्वरूप[5] :–

''यतोयतः समीहसे ततो नोऽअभयं कुरू।
शं न कुरू प्रजाभ्योऽमयं नः पशुम्यः।।''

भावार्थ है – हे परमेश्वर! आप जिस कारण सबमें अभिव्याप्त हैं, इससे हमको और दूसरों को सब कालों और सब देशों में सब प्राणियों से निर्भय कीजिए।

उनकी चाहत उसी वेद में आगे चलकर प्रकट होता है कि उनके समाज में प्रति व्यक्ति का मन उत्तम और संकल्पों से भरा हो।[6]

किन्तु इसके साथ ही उन्हें श्रम की महत्ता का भी ज्ञान था। वे केवल विद्वानों के ही सत्संग से सामाजिक हित का संभव होना नहीं मानते थे। वे परिश्रम के महत्व को भी जानते थे। महर्षि दयानन्द सरस्वती यजुर्वेद के प्रतिपाद्य विषय के सम्बन्ध में अपने भाष्य के प्रारम्भिक प्रकरण में लिखते हैं कि :–

''ईश्वर ने जीवों को गुण गुणी के विज्ञान के उपदेश के लिए ऋग्वेद में सब पदार्थों की व्याख्या करके यजुर्वेद में यह उपदेश किया कि उन पदार्थों से यथायोग्य उपकार ग्रहण करने के लिए कर्म किस प्रकार करने चाहिए। उसके लिए जो–जो अंग और जो–जो साधन अपेक्षित हैं, उन सबका प्रकाश यजुर्वेद में किया गया है। जब तक ज्ञान क्रियानिष्ठ नहीं होगा, तब तक उससे श्रेष्ठ सुख कभी नहीं हो सकता। विज्ञान क्रिया में निमित्त मात्र बनता है, प्रकाश कारक होता है, अविद्या की निवृत्ति करता है और धर्म तथा पुरुषार्थ का मेल कराता है। जो–जो कर्म विज्ञान निमित्तक होता है, वह–वह सुखजनक होता है। अतः मनुष्यों को चाहिए कि विज्ञानपूर्वक ही नित्य कर्मानुष्ठान करें। जीवन चेतन होने से बिना कर्म किये नहीं रह सकता है। कोई भी मनुष्य आत्मा, मन, प्राण और इन्द्रियों के संचालन के बिना क्षणभर भी नहीं रह सकता। तभी तो ''युजर्भि यजन्ति'' के प्रमाण से यजुर्वेद के मन्त्रों से यजन किया जाता है।''[7]

इस प्रकार वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रारम्भिक स्वरूप उदार एवं कल्याणकारी था। इस व्यवस्था ने भिन्न–भिन्न संस्कृति वाले आर्येत्तर व्यक्तित्व को एक सूत्र में गूँथ कर एक समसामयिक संस्कृति का विकास किया। इस व्यवस्था के निर्माता आर्य ऋषियों ने अपनी जिस उदार प्रवृत्ति और त्यागमयी बुद्धि से समाज के सभी वर्गों के बीच स्नेह एवं संतुलन की स्थापना की वह उनके समाज निर्माण की अप्रतिम योग्यता का प्रमाण है। एक ओर ब्राह्मणों द्वारा धन एकत्रित नहीं करने एवं संयमित तथा पूर्ण त्यागमय जीवन व्यतीत करने का व्रत लेना तथा स्वयमेव एतद् सम्बन्धी विधान बनाना और दूसरी ओर समाज द्वारा उन्हें नेता मानकर सर्वोच्च स्तर पर प्रतिष्ठापित एवं मर्यादित करना वर्णाश्रम की एक अनुपम विशेषता है। क्षत्रिय वर्ग के हाथों में शासन का सूत्र अवश्य था किन्तु वे तभी तक उसे धारण कर सकते थे जब तक उनसे सम्पूर्ण समाज का रक्षण कार्य सुचारू रूप से हो सकता था। वैश्य वर्ण अपार धन सम्पत्ति और उद्योग व्यवसाय का अधिकारी था किन्तु उनके जीवन की सार्थकता इस बात में निहित थी कि वे समाज के सदस्यों का पोषण उत्पादित सामग्रियों द्वारा करते रहे। शूद्र वर्ण सेवक था, शिल्पी था एवं सम्पूर्ण समाज का उत्पादनशील आधार था। पारस्परिक सहकारिता का अनुपम उदाहरण महाभारत की ''अमात्य परिषद'' है जिसमें चारों वर्णों के लोग सम्मिलित होते थे।

''आधुनिक विचारकों का वर्णाश्रमीय समाज व्यवस्था पर विशेष कर ब्राह्मणों पर यह दोषारोपण है कि शूद्र वर्ग के लिए वेदाध्ययनादि का निषेध कर उनके प्रति अत्यधिक अन्याय किया गया है। उनकी दृष्टि में यह भारतीय संस्कृति का अविस्मरणीय कलंक है।''[8]

आज की यह सामान्य धारणा सही संदर्भों में तथ्यों की जानकारी की कमी के कारण है। यह कौन नही जानता कि आधिभौतिक क्षेत्र जीवन के लिए सुखद और प्रिय होता हैं, जबकि आध्यात्मिक क्षेत्र कष्टप्रद परन्तु श्रेयस्कर। प्राचीन समय के अग्रणी ब्राह्मणों ने अपने लिए आध्यात्मिक क्षेत्र रखकर दूसरे वर्णों को आधिभौतिक क्षेत्र समर्पित किया। ब्राह्मणों के द्वारा इस त्यागमय जीवन और भिक्षुकवृत्ति के कारण ही समाज ने अपना अगुआ बनाया। ब्राह्मणों में यदि स्वार्थ और शोषण की चाहत होती तो अपने लिए वे प्रशासकीय एवं ऐश्वर्य सम्पन्न जीवन का चयन करते न कि त्याग और तपस्या का मार्ग चुनकर समाज के समक्ष आदर्श उपस्थित करने का जिम्मा लेते। सभी वर्गों की अपनी–अपनी मर्यादा थी। कोई भी व्यक्ति आधिभौतिक और आध्यात्मिक क्षेत्र दोनों एक साथ अपनाये, यह संभव नहीं था क्योंकि कोई व्यक्ति वेद, तप और कामेच्छा की तृप्ति एक साथ करे, यह नामुमकिन था। चाहे जिस भी नाम से पुकारें, समाज के लिए चार वर्ण आवश्यक थे। समाज के लिए जितना आवश्यक ब्राह्मण थे, उतना ही महत्वपूर्ण था शूद्र का अस्तित्व भी। सभी वर्गों का समागम ही एक स्वस्थ, बलशाली और पूर्ण समाज की स्थापना करता है।

यदि वर्तमान व्यवस्था का खुले दिमाग से अवलोकन करें तो व्यैक्तिक योग्यता और कार्यक्षमता के आधार पर प्राचीन सामाजिक संरचना के स्तरण स्वाभाविक दिखाई पड़ते हैं। आज तो स्थिति बदतर है। दर्जनों ग्रेड हैं और दो ग्रेडों के बीच अश्रद्धा की झलक भी दिखाई पड़ती है। प्राचीन संस्कृति में ऐसी अश्रद्धा का उदाहरण नहीं मिलता है।

जिसे आज का बुद्धिजीवी वर्ग कपोल कल्पना और ढ़कोसला समझता है, उसी ''मोक्ष'' की अवधारणा ही लक्ष्य था ब्राह्मणों का। ऐसा भी नहीं था कि अन्य वर्ण के लोग आध्यात्मिक आचरण नहीं कर सकते थे। अन्य वर्णों के लिए तो ''मोक्ष'' की प्राप्ति भी अतिसुविधाजनक थी। जहाँ ब्राह्मणों को अति कठोर जीवनयापन की विधि थी वहीं शूद्रों के लिए केवल ईश्वर के नाम का जाप करना ही काफी था। ऐसी स्थिति में ब्राह्मणों या वर्ण व्यवस्था को 'शोषक' या 'शोषण' का माध्यम से नवाजा जाए, कतई उचित नहीं है। पशु बलि या नर बलि जैसे हिंसा प्रधान कार्यों तथा आडम्बरपूर्ण याज्ञिक अनुष्ठानों के ऊपर गहराई से अध्ययन यह बताता है कि इस प्रकार के दुष्कर्मों से वर्णाश्रम धर्म का कोई मौलिक सम्बन्ध नहीं था।[9] ये तो उन आर्येत्तर जातियों के सांस्कृतिक प्रभाव थे जिन्होंने वर्णाश्रम को स्वीकार करने पर भी अपनी सांस्कृतिक परम्परा को भी अपने साथ बनाये रखा।[10] ऐतिहासिक तथ्यों को खंगोला जाए तो ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं कि समाज में शूद्र जाति के पास भी अतुल धनराशि थी जिसका उपयोग औद्योगिक कार्यों में होता था।[11] सुशिक्षा एवं सुबुद्धि के अभाव में ऐसा संभव ही नहीं हो सकता

था। इसलिए ऐसा निष्कर्ष निकालना उचित है कि शूद्र भी ज्ञानी होते थे।[12]

लेकिन वेद अध्ययन पर रोक इसलिए था क्योंकि अपरिग्रही होना ज्ञानियों का लक्षण और पहली शर्त्त थी। भौतिक सुख और ऐश्वर्य बिना परिग्रही बनाये छोड़ नहीं सकता। जबकि ब्राह्मण अपरिग्रही थे। यही कारण था कि सामाजिक आदर्शों और विद्वतजनों की मर्यादित जीवन के लिए ऐसा नैतिक विधान था कि उसे वेद अध्ययन का अधिकार नहीं होगा जो अधिभौतिक सुख में डूबा होगा। जैसे आज के प्रोफेसरों/अध्यापकों का किसी अन्य कार्य/व्यवसाय में शामिल होने पर रोक है, ठीक उसी तरह भौतिक व्यवसाय में लिप्तता वैदिक मर्यादाओं को अक्षुण्ण रख ही नहीं सकता। प्राचीन समाज शास्त्रियों को भय था कि वेद का अध्येता कृषि कार्य (यानी भौतिक सम्पदा हेतु कार्य/व्यवसाय) की उत्पादनशीलता को खत्म कर देगा या कृषि कार्य करने वाला व्यक्ति वेद की मर्यादा को समाप्त कर देगा।[13] इसीलिए जो व्यक्ति भौतिक सुख को छोड़कर त्यागी, अपरिग्रही एवं संयमी बनने के लिए तैयार नहीं था, उसके लिए वेद अध्ययन निषेध था। ऊँच–नीच का भेदभाव, अस्पृश्यता, याज्ञिक आडम्बर आदि अनेक विसंगतियाँ, जो कालान्तर में इस व्यवस्था से जुड़ गयी है, उन्हें समाप्त कर अगर पारस्परिक सहयोग, सहृदयता, समानता, गुण, योग्यता आदि के आधार पर इसे पुनर्गठित किया जाए तो यह व्यवस्था संभवतः आज भी ग्राह्य हो सकती है।

दुःख इस बात का है कि प्राचीन काल की सर्वमान्य व्यवस्थाएँ आज अतिउपेक्षित है। हिन्दू समाज अतीत की उपलब्धियों के विषय में प्रायः अनभिज्ञ और अन्यमनस्क है। आज वह जीवन के आत्मिक मूल्यों एवं धर्म के तात्विक प्रभावों की अपेक्षा बाह्य भौतिक सिद्धियों को अधिक महत्व प्रदान करता है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में आज विश्वास की जगह अनास्था, संतोष की जगह दुराकांक्षा, सरलता के बदले जटिलता, सौख्य की जगह दरिद्रता, शान्ति की जगह संघर्ष, प्रेम की जगह मतभेद, समानता की जगह विषमता, शिष्टता और मर्यादा की जगह अनुशासनहीनता एवं उदारता की जगह संकीर्णता और विद्वेष के भाव दृष्टिगोचर होते हैं। सर्वत्र आन्तरिक विद्रोह की भावना बलवती होती जा रही है। अहंकार, स्वार्थ, विषाद और व्यथा हिन्दू समाज के रग–रग में समाविष्ट है। आज की सामाजिक व्यवस्थाएँ ही अवसरवादिता, जातीय कट्टरता, धार्मिक पार्थक्य एवं वैचारिक पक्षपात का पाठ पढ़ा रही है। हिन्दुओं के सामाजिक जीवन में धर्मान्धता, अस्पृश्यता, भेदभाव, वैमनस्य, अशांति, नैतिक पतन आदि जिन विसंगतियों का प्रादुर्भाव हुआ है, उनके अनेक कारण हैं।

प्रगतिवादी और सुसभ्य कहलाने की आकांक्षा से हिन्दू समाज ''धर्म निरपेक्षता'' को गलत अर्थों में अपनाने के लिए प्रयत्नशील है। जिसके परिणामस्वरूप वह उस धर्म से दूर हट रहा है जो आत्मिक विकास के लिए जीवन पद्धति को सुनियोजित कर उसके हर कार्य/कदम में विश्वास का बल भरता है। धर्मनिरपेक्षता अधर्मी का कोई चारित्रिक लक्षण नहीं है। अगर वर्तमान काल में विभिन्न वादों–पूँजीवाद, समाजवाद, साम्यवाद आदि पर ध्यान दिया जाये तो सभी एक जीवन पद्धति को, एक धर्म को, एक मूल्य को और उसकी उपलब्धि को स्वीकार करते हैं। किन्तु हिन्दू समाज की यह विडम्बना है कि वह अपनी प्राचीन सांस्कृतिक मान्यताओं और धार्मिक विश्वास से दूर हटता जा रहा है।

आज की आधुनिक वैज्ञानिक उपलब्धियों एवं दिनानुदिन विकसित प्राद्यौगिक यन्त्रों के प्रभाव क्षेत्र में विकासोन्मुखी भारतीय समाज से वैयक्तिक वैशिष्ट्य एवं वर्णाश्रमीय जीवन पद्धति का प्रभाव शनैः शनैः समाप्त होता जा रहा है। चन्द्रतल पर भ्रमण करने वाला युग आत्मिक विकास द्वारा मोक्ष प्राप्ति की बात को कपोल कल्पित मानता है। भौतिक सुखोपलब्धि की लक्ष्यसिद्धि के समक्ष त्यागमय वर्णाश्रमीय जीवन शैली उसे निरर्थक प्रतीक होती है। हिन्दू समाज का कल्याण आज इस बात में निहित है कि वह वैज्ञानिक/उपलब्धियों के बीच भी अपनी अन्तरात्मा को सुसंस्कृत बनाने के लिए विशुद्ध भारतीय सांस्कृतिक परम्परा का वरण करें। यदि विवेक, सद्भाव और सहिष्णुता से काम नहीं लिया तो हिन्दू समाज को विनाश के कगार से बचा पाना असंभव प्रतीत होता है। अतएव, शान्ति के अग्रदूत भारत के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है कि वह आधुनिकतम वैज्ञानिक उपलब्धियों के साथ–साथ सर्वाधिक आदर्श, सुसंस्कृत और सभ्य समाज भी तैयार करने का प्रयास करे।

आज के बदलते संदर्भों में यदि आवश्यक हुआ तो अपने प्राचीन सांस्कृतिक मूल्यों को अपेक्षित संशोधनों के साथ स्वीकार करने में भी कोई संकोच नहीं होना चाहिए।

आज वर्णाश्रमीय जीवन शैली के आलोचकों को प्रभावित करने वाला प्रमुख तत्व है – मार्क्सवादी विचारधारा। (हालाँकि यह विचारधारा विश्व पटल के अधिकांश राष्ट्रों से और भारतीय राज्यों से विलुप्त हो गया है)। इसे वर्णाश्रमीय समाज का वर्गभेद पूर्णतः अमान्य है। इसे पारलौकिक शक्ति पर पूर्ण आस्था है। यह आध्यात्मिक मुक्ति की जगह आर्थिक मुक्ति का उपासक है। आज जातीय दंभ, अहंकार, अंधविश्वास, आडम्बर, कर्मकाण्ड आदि से ग्रस्त वर्णाश्रम व्यवस्था इस विचारधारा के आगे शिथिल है। इसका एक प्रमाण है हिन्दू समाज द्वारा आडम्बर युक्त याज्ञिक क्रियाओं को धर्म के रूप में स्वीकार करना। यथार्थ धर्म श्रेय और लोक कल्याण का पोषक होता है। मार्क्सवादी विचारधारा का भी यही लक्ष्य था। अतएव, हिन्दू समाज का यह पुनीत कर्त्तव्य है कि वह बुद्धिवादी युग में अपनी प्राचीन सामाजिक व्यवस्था को आज की आवश्यकताओं के अनुरूप अधिक सशक्त और व्यावहारिक बनाने के लिए आर्य ऋषियों के उन मन्त्रों पर बिना किसी पूर्वाग्रह के विवेकपूर्ण दृष्टि से विचार करे जिनमें उन्होंने सर्वभूतों से तादात्म्य तथा बन्धुत्व स्थापित कर आत्मोत्थान द्वारा लोक कल्याण का अमर संदेश दिया है। मानव जीवन को मर्यादित, श्रेयोन्मुख, आदर्शयुक्त, सहिष्णु और नैष्ठिक बनाने के महत्व को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है।

जब वर्णाश्रम व्यवस्था दंभ, द्वेष, पाखण्ड, रूढ़ियों और शोषण का पोषक नहीं होकर बन्धुत्व, करूणा, सहानुभूति, समता और मानवीय चरित्र की शुद्धि का साधन बन जायेगी, तब निःसन्ह वह संतप्त हिन्दू समाज का समुचित मार्गदर्शन कर उसे लोक कल्याणकारी सिद्धि तक पहुँचा सकती है। अतः आज के संदर्भ में भी वर्णाश्रम व्यवस्था की उपयोगिता कुछ कम नहीं प्रतीत होती है। समाज और राष्ट्र के उत्तरोत्तर विकास में इसकी महत्वपूर्ण भूमिका को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। वैदिक काल से लेकर आज तक भारत को उत्थान–पतन के अनेक दृश्य देखने पड़े। सांस्कृतिक संक्रमण, राजनैतिक परिवर्तन और विभिन्न धार्मिक आन्दोलन भरत भूमि को आन्दोलित करते रहे; परन्तु वर्णाश्रम की यह प्राचीन सामाजिक व्यवस्था आज भी पूर्णतः नष्ट नहीं हो सकी है, क्योंकि इसका आधार वैज्ञानिक और उद्देश्य समाज के अभ्युदय की पवित्र भावना से उत्प्रेरित है।

उपसंहार

इस व्यवस्था के दो प्रमुख अंग हैं : वर्ण और आश्रम। वर्ण जहाँ समाज को श्रम विभाजन का निश्चित आधार प्रदान करता है, वहीं आश्रम व्यक्ति के जीवन को सुनियोजित व्यष्ठि ढंग से विकसित होने का अवसर उपलब्ध कराता है। और समष्ठि में अन्योन्याश्रित सम्बन्ध होने के कारण प्राचीन समाजशास्त्रियों ने वर्ण और आश्रम दोनों के समान महत्व को स्वीकारा। फलतः वर्णाश्रम व्यवस्था हमारी जीवन पद्धति के रूप में उद्‌भुत हुई।

यदि आज के लोकतांत्रिक समाज की कार्य विधि और जीवन शैली की सूक्ष्म मीमांसा की जाए तो यह स्पष्ट परिलक्षित होगा कि यह प्राचीन सामाजिक व्यवस्था आज भी अपने परिवर्तित नाम रूपों में जीवित एवं क्रियाशील है। हमारे बीच का विशुद्ध बुद्धिवादी वर्ग हो या प्रशासनिक दृष्टि से नियोजित वर्ग हो, ब्राह्मण वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। आज का कार्यपालक वर्ग प्राचीन काल वाला क्षत्रिय वर्ण के स्थान पर प्रतिष्ठापित है। कृषि, व्यापार, उद्योग आदि में लगे लोग ही वैश्य वर्ण के नाम से प्राचीन भारत में विख्यात थे। और अन्त में आज के श्रमिक वर्ग के कार्यकलापों को देखने से यही प्रतीत होता है कि प्राचीन भारत के शूद्र वर्ण का यह परिवर्तित नाममात्र है। परन्तु कालक्रम में शूद्र शब्द की अर्थवत्ता में जो हीन भावना समाविष्ट हो गई है, उसे हटा देना और उसके स्थान पर श्रमिक शब्द का प्रयोग ही अधिक सार्थक होगा।

अब आइये आश्रम की ओर। आज भी हम जीवन के प्रारंभिक वर्षों में अध्ययन के द्वारा अपने को यथाशक्ति योग्य बनाने का प्रयास करते हैं। यही कार्य प्राचीन भारत के ब्रह्मचर्याश्रम में अतिकुशलता से किया जाता था।

पुनः गृहस्थाश्रम की तरह हम आज भी धनोपार्जन करते हुए परिवार के भरण–पोषण में तत्पर

रहते हैं। आज की पीढ़ी तो एक कदम और आगे हैं। वह तो वैवाहिक जीवन में प्रवेश की अपनी पहली शर्त्त रखता है, ''पहले सैटल तो हो जाऊँ''। तत्पश्चात धीरे–धीरे अपनी जिम्मेदारियों का निर्वहन करने के पश्चात अपनी सन्तान को कारोबार की जिम्मेदारी सौंप कर जीवन को शांति से व्यतीत करने का प्रयास करता है। अन्तर इतना ही है कि प्राचीन समय में वानप्रस्थ और संन्यास की अवधि में आत्मा या परमात्मा के चिन्तन के साथ–साथ समाज कल्याण में भी समय देने का विधान था जो सामाजिक उत्थान के लिए अत्यधिक महत्वपूर्ण माना जाता है।

आज भी, अतएव, वर्णाश्रम व्यवस्था की उपयोगिता वैसी ही है जैसी प्राचीन भारत में थी बल्कि आवश्यकता इस बात की है कि उसे और अधिक वैज्ञानिक आधार दिया जाए और उसकी विसंगतियों को उससे हटा कर अधिक व्यावहारिक और सामाजिक विकास के एक कारगर तत्व के रूप में स्वीकार किया जाए।

संदर्भ :

1. ऋग्वेद : मण्डल 10 सूक्त 191.
2. अथर्ववेद : पृथ्वीसूक्त, अनुवाक 12, सूक्त 1.
3. ईशोपनिषद, (शुक्ल यजुर्वेद का चालीसवाँ अध्याय, ऋचा 1)
4. अथर्ववेद : अनुवाक 12 सूक्त 12.
5. यजुर्वेद : 36/22 (सूक्त 36, ऋचा 22).
6. यजुर्वेद : 64/1 (सूक्त 64, ऋचा 1).
7. स्वामी दयानन्द सरस्वती, शुक्ल यजुर्वेद भाष्य, सत्यार्थ प्रकाश, अजमेर 1884.
8. भगवत शरण उपाध्याय : भारतीय समाज का ऐतिहासिक विश्लेषण : पी.पी. हाउस, नयी दिल्ली : 1973 पृष्ठ 91 और 98.
9. वही, पृ. 86.
10. डॉ. रामजी उपाध्याय; प्राचीन भारतीय साहित्य की सांस्कृतिक भूमिका, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1966, पृ. 39–40.
11. वही, पृ. 81–82.
12. शंकर भाष्य, 3/4/38.
13. बौधायन धर्मसूत्र, 1/5/1/1.

***

शिक्षण विधि के विभिन्न स्वरूप
(बौद्ध शिक्षा पद्धति के विशेष संदर्भ में)

श्वेता यादव *

बौद्ध शिक्षा पद्धति का प्रधान उद्देश्य भिक्षुओं को शुद्धाचरण में प्रशिक्षित तथा अभ्यस्त करना था। छात्रों के मानसिक उपलब्धि के प्रति इस शिक्षा पद्धति का उतना ध्यान नहीं था जितना कि ब्राह्मण शिक्षा–पद्धति का था। किन्तु आगे चलकर बौद्ध शिक्षा पद्धति में भी मानसिक विद्वता को भी प्रधानता मिलने लगी। प्रारम्भिक अवस्था में बौद्ध धर्म की शिक्षा प्रधानतः कुछ धार्मिक साहित्य से सम्बद्ध थी। सुत पिटक, विनय पिटक, अभिधम पिटक की शिक्षा छात्रों की अवस्था के अनुसार आयोजित की जाती थी। भिक्षुओं की प्रारम्भिक शिक्षा सम्भवतः 'सुतन्त' से ही शुरू होती थी। इस अवस्था में नव भिक्षुओं को सुतन्तों को रटने के अतिरिक्त अन्य धार्मिक विषयों को ग्रहण करना भी असम्भव था। सुतन्तों की शिक्षा समाप्त कर लेने के पर भिक्षु विनय पिटक शिक्षा ग्रहण करते थे। विनय पिटक की शिक्षा प्रधानतः प्रश्नोत्तर अथवा शंका–समाधान के रूप में होती थी। विनय पिटक के मनन के बाद ही भिक्षुओं को धर्म प्रचार के लिए प्रशिक्षित किया जाता था। इसके लिए बौद्ध ग्रन्थों में विभिन्न शिक्षण विधियों का उल्लेख मिलता है, जिसके आधार पर उसके विभिन्न भेद किया गया है। (1) पाठ विधि (2) प्रश्नोत्तर विधि (3) शास्त्रार्थ विधि (4) उपदेश विधि (5) उपमा विधि (6) प्रमाण विधि (7) स्वाध्याय विधि।

(1) पाठ विधि– पाठ–विधि के द्वारा बालक के शिक्षारम्भ की नींव डाली जाती थी। लेखन एवं वाचन के द्वारा अंक एवं वर्णमाला का अभ्यास करवाया जाता था। इस विधि में गुरु बालक को चन्दन की पट्टिका पर लिपि एवं वर्णमाला, अंक आदि लिखना सिखाते थे। नहनजहच्रयजा[1] में गौतम बुद्ध द्वारा चन्दन की पट्टिका पर संख्या, लिपि, गणना आदि सीखने का वर्णन आया है। इत्सिंग ने बतलाया है कि वर्णमाला में चालीस अक्षर हुआ करते थे।[2]

(2) प्रश्नोत्तर विधि– इस शिक्षण विधि के माध्यम से गुरु और शिष्य दोनों एक–दूसरे से प्रश्न करते थे तथा एक दूसरे के प्रश्नों का उत्तर देते थे। 'कथावत्थु' एवं 'मिलिन्दवन्ह' में इस विधि का विशेष रूप से प्रयोग हुआ है। बौद्ध साहित्य में चार प्रकार की प्रश्नोत्तर शैली का निरूपण किया गया है।[3]

(क) एकांशव्याकरणीय– जिस प्रश्न का उत्तर सरल रूप में दिया जाता है उसे एकांशव्याकरणीय प्रश्नोत्तर विधि कहा जाता है।

(ख) विभज्यव्याकरणीय– जिस प्रश्न का उत्तर विभक्त करके दिया जाता है उसे विभज्यव्याकरणीय प्रश्नोत्तर विधि कहा जाता है।

(ग) प्रतिपृच्छाव्याकरणीय– जिस प्रश्न का उत्तर एक दूसरा प्रश्न पूछकर दिया जात ळै उसे प्रतिपृच्छाव्याकरणीय प्रश्नोत्तर विधि कहा जाता है।

(घ) स्थापनीय– जिस प्रश्न का उत्तर बिल्कुल छोड़ देने से ही दिया जाता है उसे स्थापनीय प्रश्नोत्तर विधि कहा जाता है।

इन चारों प्रकार को जानने वाला दुर्विजय, गम्भीर, अनाक्रमणीय, अर्थ–अनर्थ का जानकार और पण्डित होता है।[4]

(3) शास्त्रार्थ विधि– इस विधि का प्रयोग प्राचीन काल से ही होता आ रहा है। वाद–विवाद, खण्डन–मनन इस विधि के अंग है। इस विधि में तथ्य एक ही होता है परन्तु उसकी प्राप्ति के लिए पूर्वपक्ष एवं उत्तरपक्ष विभिन्न तर्कों एवं युक्तियों का सहारा लेते हैं। विनयपिटक में चार प्रकार के अधिकरण का उल्लेख किया गया है।[5] जिससे शास्त्रार्थ का स्वरूप निर्धारित होता है।

---

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी

(क) **विवदाधिकरण–** विवादित विषय के सम्बन्ध में निर्णय करना विवादाधिकरण है।

(ख) **अनुवादाधिकरण–** शास्त्रार्थ के समय किसी विषय पर एक पक्ष द्वारा दूसरे पक्ष को नियम के उल्लंघन का दोषी ठहराना अनुवादाधिकरण है।

(ग) **आफ्ताधिकरण–** बौद्ध भिक्षु द्वारा आचार सम्बन्धी नियम का जानबूझ कर उल्लंघन करना आफ्ताधिकरण है।

(घ) **किच्चाधिकरण–** संघ सम्बन्धी नियम पर विचार करना किच्चाधिकरण कहलाता है।

बौद्ध ग्रंथ में किसी सिद्धांत को शास्त्रार्थ के निमित्त प्रतिपादित करने को अनुलोम तथा प्रतिपक्षी के उत्तर की संज्ञा को प्रतिकर्म (पटिकम्म) कहा गया है।[6] ह्वेनसांग ने कहा है कि इस विधि के माध्यम से विद्यार्थी कठिन से कठिन विषय को शीर्घ हृदयंगम कर लेते थे।[7] ओमप्रकाशजी ने इस विधि का समर्थन किया है। उनका कहना है कि अन्य धर्मावलम्बियों को बौद्ध बनाने के लिए यह आवश्यक था कि बौद्ध भिक्षु उनसे शास्त्रार्थ करके यह सिद्ध कर सके कि दूसरे के सिद्धांत गलत है और बौद्ध मतावलम्बियों के सिद्धांत सही है। इसलिए बौद्ध शिक्षा पद्धति में तर्क और न्याय की शिक्षा पर विशेष बल दिया जाता था।[8]

(4) उपदेश विधि– इस विधि से गुरु शिष्य को व्याख्यान द्वारा शिक्षा प्रदान करते थे। स्वयं भगवान बुद्ध ने उपदेश विधि के माध्यम से सारनाथ में अपने पांच शिष्यों को शिक्षा दी थी। विनयपिटक में कहा गया है कि शिष्य को उपदेश ग्रहण करना चाहिए या स्वयं उपदेश करे या दूसरे से इसके लिए प्रार्थना करे।[9]

(5) उपमा विधि– उपमा विधि को उदाहरण विधि कहा जाता है। गौतम बुद्ध तथा उनके अनुयायियों ने इस विधि का खुलकर प्रयोग किया था। 'मिलिन्दपह्' में नागसेन ने राजा मिलिन्द के उत्तर विभिन्न उपमाओं के माध्यम से दिया है।[10] इस विधि के द्वारा गुरु विषय को सरलतम ढंग से हृदयंगम करने योग्य तथा कर्णप्रिय बनाते थे।[11] जिससे शिक्षार्थी आसानी से तथ्य को समझ सकें।

(6) गणना विधि– अज्ञात अर्थों को प्रमाण विधि के द्वारा प्रकाशित किया जाता था। प्रमाण को परिभाषित करते हुए 'प्रमाणवार्तिक'[12] कहा गया है– प्रमाण वह ज्ञान है जो अज्ञात अर्थ को प्रकाशित करता है और वस्तुस्थिति के विरूद्ध कभी नहीं जाता, वह अविसंवादी होता है। प्रमाण तथा वस्तुस्थिति में किसी प्रकार विसंवाद/असामंजस्य नहीं होता है। जो ज्ञान कल्पना के ऊपर अवलम्बित रहता है वह विसंवादी होता है तथा जो ज्ञान अर्थ क्रिया के ऊपर अवलम्बित रहता है वह अविसंवादी होता है।[13] प्रमाण विधि के दो भेद हैं– (1) स्वलक्षण अर्थात प्रत्यक्ष (2) सामान्य लक्षण अर्थात अनुमान। प्रत्यक्ष एवं अनुमान दोनों ही ज्ञान अविसंवादक होने के प्रमाण है। अर्थक्रियासामर्थ्य से युक्त स्वलक्षण को विषय करने के कारण प्रत्यक्ष स्वतः अविसंवादक है, जबकि अनुमान की अविसंवादकता उसके द्वारा स्वलक्षण की प्राप्ति कराये जाने पर निर्भर करती है। यद्यपि धर्मकीर्ति ने अनुमान को भ्रान्तज्ञान माना है।[14] तथापि सामान्यलक्षणविषयक अनुमान से अर्थ क्रिया समर्थ स्वलक्षण की प्राप्ति होने से उसे अविसंवादक माना है। मणिप्रभा और दीपप्रभा का उदहारण देते हुए उन्होंने कहा है कि कोई व्यक्ति मणिप्रभा और दीपप्रथा को 'यह मणि है' मानकर उसकी ओर दौड़ता है किन्तु मणिप्रभा और दीपप्रथा दोनों ही मणि नहीं है, अतः उस व्यक्ति का ज्ञान भ्रान्त है। किन्तु भ्रान्त होने पर भी वह ज्ञान अविसंवादक है।[15]

(क) स्वलक्षण अर्थात प्रत्यक्ष विधि– वह ज्ञान जो कल्पना से रहित और निर्भान्त हो उसे प्रत्यक्ष विधि कहते हैं। प्रत्यक्ष विधि के चार भेद हैं– (1) इन्द्रिय प्रत्यक्ष (2) मानस प्रत्यक्ष (3) स्वसंवेदन प्रत्यक्ष (4) योगज प्रत्यक्ष।

(1) **इन्द्रिय प्रत्यक्ष विधि–** इन्द्रिय द्वारा जो कल्पनारहित और अभ्रान्त ज्ञान प्राप्त होता है वह इन्द्रिय प्रत्यक्ष विधि कहलाता है। धर्मकीर्ति ने कहा है, शान्त चित्त से युक्त पुरूष चक्षु से रूप को देखता है तब इन्द्रियजन प्रत्यक्ष ज्ञान होता है।[16]

(2) **मानस प्रत्यक्ष विधि–** इन्द्रिय ज्ञान के विषय को समनन्तर प्रत्यय बनाकर जो मन में उत्पन्न होता है वही मानस प्रत्यक्ष है।[17]

(3) **स्वसंवेदन प्रत्यक्ष विधि–** समस्त चित्त तथा चैत्त पदार्थों का आत्मसंवेदन या स्वसंवेदन प्रत्यक्ष होता है।[18]

(4) **योगज प्रत्यक्ष विधि–** यथार्थ या भूतार्थ का पुनः–पुनः चिन्तन करने से जो ज्ञान उत्पन्न होता है उसे योगज प्रत्यक्ष–विधि कहते हैं।[19]

(ख) सामान्य लक्षण अर्थात् अनुमान विधि– किसी सम्बन्धी धर्म से धर्म के विषय में जो ज्ञान होता है, वह अनुमान–विधि कहलाता है।[20] इस विधि के दो भेद हैं– (1) स्वार्थानुमान (2) परार्थानुमान।

(1) **स्वार्थानुमान विधि–** जिस अनुमान द्वारा प्रमाता स्वयं अनुमेय अर्थ का ज्ञान करता है, वह स्वार्थानुमान–विधि कहलाता है।[21]

(2) **परार्थानुमान विधि–** स्वार्थानुमान के द्वारा निश्चित अर्थ का जब हेतु एवं दृष्टांत के द्वारा अन्य की प्रतिपत्ति के लिए कथन किया जाता है तो वह परार्थानुमान कहलाता है।[22]

(7) स्वाध्याय विधि– बौद्ध शिक्षण–प्रणाली में स्वाध्याय विधि पर विशेष बल दिया गया है। स्वाध्याय का अर्थ होता है अत्मा के लिए हितकर शास्त्रों का अध्ययन करना। स्वाध्याय से चित्त शान्त रहता है, मन को सन्तोष प्राप्त होता है तथा ब्रह्म जगत में आदर और प्रतिष्ठा मिलती है। स्वाध्याय करने से मन की शान्ति के साथ–साथ इस दुःखमय संसार के प्रति वैराग्य की भावना उत्पन्न होती है। 'जातक' में एक आचार्य के बारे में वर्णन आया है कि पहले तो वे ब्रह्मचर्याश्रम में रहकर वेद पढ़ते और पढ़ाते थे। प्रथम आश्रम का त्याग करके गृहस्थाश्रम के चक्कर में फंसे। स्वाध्याय की गड़बड़ी पैदा हो गयी और वेदों का तत्त्वार्थ उन्हें अरूचिकर लगने लगा। वे भगवान बुद्ध की सेवा में अपनी व्यथा सुनाने आये। भगवान बुद्ध ने उन्हें फिर से अरण्यवासी होने की सलाह दी। गृहस्थाश्रम में रहते हुए वे स्वस्थ चित्त से वेदाध्ययन नहीं कर सकते थे और बिना स्वाध्याय किये तत्त्वार्थ का बोध असम्भव था।[23]

अतः स्वाध्याय अपने आप में एक तप है जिसके द्वारा इन्द्रियां संयमित रहती है तथा ज्ञान–विज्ञान का विकास होता है और शिक्षार्थी अपने कार्य पथ पर अग्रसर होता है।

इस प्रकार बौद्ध शिक्षा पद्धति में भिक्षुओं को अनेक शिक्षण–विधि के माध्यम से बौद्ध–शिक्षा के पाठ्यक्रमों का अध्ययन कराया जाता था, इस शिक्षण–विधि के माध्यम से अध्ययन करने के बाद छात्र अपने–अपने विषय क्षेत्र में निपुण होकर व्याति प्राप्त करते थे।

सन्दर्भ :

1. ललितविस्तर (हि.अनु.) अ. 10, पृ. 241 तथा लेफमैन, ललित विस्तर, 125/7
2. इत्सिंग रेकर्ड, पृ. 170, 174
3. बौद्ध दर्शन मीमांसा, पं. बलदेव उपाध्याय, पृ. 42
4. अंगुत्तर निकाय, उद्धृत 'जैन दर्शन और संस्कृति का इतिहास, पृ. 399–400
5. विनय पिटक खण्ड पंचम (डॉ. ओल्डनवर्ग संस्करण) के 9–13
6. बौद्धदर्शन मीमांसा, द्वितीय संस्करण, पं. बलदेव उपाध्याय, पृ. 318
7. हुएनसांग की भारत यात्रा (अनु.) पृ. 51
8. प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास, ओम प्रकाश, पृ. 231
9. विनय पिटक, राहुल सांकृत्यायन, पृ. 146
10. मिलिन्दपन्हपालि, ओपम्मकथापन्ह पृ. 256
11. मिलिन्दपन्ह, बहिरकबा, गाथा 3–4
12. प्रमाणवार्तिक, 2–1
13. प्रमाणवार्तिक 2–4

14. प्रमाणवार्तिक 2–54
15. प्रमाणवार्तिक 2–56
16. प्रमाणवार्तिक 2–124
17. न्यायबिन्दु, 1–9
18. न्यायबिन्दु, 1–10
19. Buddhist Logic, Vol II p. 31
20. प्रमाणवार्तिक 2–62
21. स्वस्यायिदं स्वार्थम् 'न्यायबिन्दु' (टीका) 2–2
22. प्रमाणसमुच्चय, उद्धृत द्वादशासयचक्र, भाग 1, परिशिष्ट पृ. 125
23. जातककालीन भारतीय संस्कृति, पृ. 100

***

प्राचीन बौद्ध धर्म में वर्णित भिक्षुओं के नियम और उपनियम का ऐतिहासिक विश्लेषण

सत्येन्द्र पासवान *

शोध सारांश : भगवान् बुद्ध ने भिक्षु संघ के संचालन के लिये जनतांत्रिक विचारधारा से अनुस्यूत होने के कारण उन्होनें धर्म को ही दायाद के रूप में छोड़ा था। किसी धर्म एवं शास्ता का नियोजन नहीं किया था। भगवान् बुद्ध के समय में पारम्परिक रूप से दूसरे परिव्राजक गणों में संचालक गुरु तथा शास्ता अपने पश्चात संघ के नेतृत्व के लिये अथवा सुचारू रूप से संघ के संचालन के लिये किसी उत्तराधिकारी को नियुक्त कर देते थें। लेकिन भगवान् बुद्ध ने इस पारस्परिक गुरुवाद का प्रत्याख्यान नहीं किया और धार्मानुशासन को ही भिक्षुओं के नेतृत्व के लिये उपयोगी बतलाया । आनन्द से अन्त में उन्होंने पूछा था–––भिक्षु संघ मुझसे क्या चाहता है? मैने धर्म का पूर्णतया उपदेश कर दिया है।'' मैं यह नहीं सोचता कि नये भिक्षु संघ का नेतृत्व एवं संचालन और भिक्षु संघ मेरा अनुगमन करें। तुमलोग आत्मद्वीप बन कर रहो, आत्म शरण, अनन्य शरण धर्मदीप, धर्म शरण अनन्य शरण.....।

प्रस्तावना : जिस समय भगवान् बुद्ध का अविर्भाव हुआ था उस समय भारतवर्ष में दो शासन प्रणालियाँ प्रचलित थीं–– प्रथम गणतंत्रात्मक और द्वितीय राज तंत्रात्मक। सम्बोधि लाभ से लेकर महा परिनिर्वाण पर्यन्त भगवान् बुद्ध ने संघ का संचालन किया और अन्त में महापरिनिर्वाण के क्षण में उन्होंने कहा–– ''वय धम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथा'' ति।[1] अर्थात है भिक्षुओं। संसार वयधर्मी है, अपने कार्य का अप्रमादपूर्वक सम्पादन करो।

भगवान् बुद्ध ने आनन्द से कहा था कि मैंने धर्म और विनय की जो देशना दी है, वही मेरे बाद शास्ता होगा। इससे यह अवगत होता है कि भगवान् बुद्ध को गुरुवाद में आस्था नहीं थी। भगवान् बुद्ध के संघ कि निर्माण तब हुआ था, जब विविध जनपदों और नाना दिशाओं से प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा ग्रहण करने के लिये लोग आते थें।[2] भगवान् बुद्ध स्वयं ही पहले प्रव्रज्या एवं उपसम्पदा देते थें लेकिन बाद में जैसे–जैसे उत्तरोत्तर संघ का विकास होता गया वैसे–वैसे प्रव्रज्या तथा उपसम्पदा का अधिकार उन्होंने अपने शिष्यों को दिया और इस तरह संघ का संगठन प्रारम्भ हुआ।

भिक्षु संघ के लिये पर्यायवाची शब्दों में सम्प्रदाय, समूह, झुंड, दल, मण्डली आदि शब्द प्रचलित हैं लेकिन इन शब्दों का विनियोग धर्मशास्ता भगवान् बुद्ध ने नहीं किया। इन पर्यायवाची शब्दों में अपने भिक्षुओं के समूह के लिये उन्होंने संघ शब्द का ही चयन किया और त्रिरत्नों में उसे मत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। वस्तुतः भगवान बुद्ध का संघ भिछुओं का ऐसा सुसंगठित संघ है जो सर्वग्रन्ध प्रमोचन (निवबार्ण सब्बगन्ध प्रमोचन) निर्वाण की प्राप्ति के लिये नैतिक अपचरणों से युक्त समान्य रूप से हिताहित की सामुदायिक पूर्ति के लिये संगठित था। संघ में अपूर्व शक्तिमता होती है।[3] एक व्यक्ति किसी काम का सम्पादन करने में सर्वथा अक्षम हो सकता है–– जैसे एक तिनके से हाथी को बाँधना अत्यन्त कठिन है किन्तु तिनकों से बंटी रस्सी के द्वारा मद्मत गजराज भी बांध दिये जाते हैं.....

बहनामात्व सराणां समवायो हि दुर्जयः।
तृणैरौवेष्ट्यते रज्जु बध्यन्ते मतदन्तिनः।।

जातक कथा में संघात्मक शक्ति का विशेष महत्व वर्णित है। जैसा महत्व इसमें संघ का वर्णित है वैसा अन्य वाड्मय में उपलब्ध नहीं है। कहीं वानरों की संघ शक्ति, कहीं वर्त्तिकाओं (बटेरों) की संघशक्ति और कहीं दूसरे जीवों की संघशक्ति का भव्य वर्णन हमें प्राप्त होता है।

संघ में रहनेवाले प्राणी विभिन्न आपदाओं से रक्षा पा सकता है। संघ के महत्व के सम्बन्ध में वृक्षों की कथा जातक में वर्णित है। प्रेमज्जन वृक्षों को उखाड़ने में समर्थ होता है। अकेला वृक्ष प्रभंजन के घात–प्रतिघातों को सहने में असमर्थ होता है।[4] परन्तु संघ में रहनेवाले वृक्षों को प्रभंजन भी उखाड़

* शोध छात्र, प्रा० भा० एवं ए० अध्ययन विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

नहीं पाता। अतः यह सिद्ध है कि संघ में ही अपूर्व शक्तिमत्ता निहित होती है और जातक की निम्न गाथा से इस तथ्य का प्रतिपादन होता है–––

साधु सम्बहुला जाती, अपि रूक्खा अरञजा।
वातो वहति एकठ्ठा, व्रहन्तमपि वनस्पति।।

वैदिक वांगमय में एकता तथा संघशक्ति की महत्ता का प्रतिपादन किया गया है, जिसमें यह कहा गया है कि तुम्हारा व्यवसाय एक हो, हृदय एक हो और तुम्हारा मन भी एक हो। तुमलोगों का पूर्ण रूप से संगठन हो। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि वैदिक काल में भी जनमानस की चेतना संघशक्ति में विश्वास करती थी और यही कारण था कि वैदिककालीन युग धर्म की चेतना शश्क्त थी।

वेदों में साथ–साथ एक दूसरे से रक्षण की, साथ–साथ भोजन की, साथ–साथ वीर्यसन्बंर्द्धन की ओर एक दूसरे से द्वेष न करने की भावना का सर्वत्रा निरूपण मिलता है।[5] यह सद्भावना भी संघ की भावना को जन्म देती है। वेदों में समान मनवाला होकर जागने की बात कही गई है–––

'उद्बुध्यध्वं सामनसः सखाय'।[6]

अन्य मंत्र में भी कहा गया है कि जीवन में श्रेष्ठता को प्राप्त करो, एक साथ संयुक्त रहो। कभी भी एक दूसरे से अलग न होकर एक दूसरे को प्रसन्न बनाओ और एक दूसरे के साथ मधुमित वाणी का प्रयोग करो। सायं प्रातः काल भी एक साथ सम्मिलित होकर बैठने का आदेश हमारे मंत्रा दृष्टा ऋृषियों ने दिया है–––

'सायं प्राप्तः सुसमितिवाँ अस्तु।'[7]

संघीय जीवन में विशेषता एकात्म चेतना रहती है और एक दूसरे के प्रति आत्मप्रियता की भावना बनी रहती है और पूर्णतः यह व बद्धमूल रहती है। प्रेम की बद्धमूलता के कारण ही गण जीवन या संघीय जीवन की परम्परा का विकास सम्भव है। बौद्धकालीन भिक्षु संघ और भिक्षुणी संघ इसी समान प्रेम भावना पर गठित हुआ और इसके लिये शान्त तथा समाहित मन की परम अपेक्षा होती है। बुद्ध ने अवैर भाव (मित्रामाव) से रहने की देशना दी थी और कहा था कि बैर से बैर का शमन नहीं होता। अवैर से ही वैर प्रशमित होता है।

नाहि धेरेन वेरानि सम्मन्ती धू कुदाचनं।
अवेरेन च सन्मन्ति एस धम्मो सनन्तो।।[8]

भगवान् बुद्ध ने यह भी कहा था कि जीवन के सभी संस्कार वयधर्मिता से युक्त है, अप्रमादपूर्वक जीवन के कारणीय कर्मों का सम्पादन करो––

'वयधम्मा संखारा अप्पमादेन सम्पादेथां ति।

बौद्ध शासन में अप्रमाद का अप्रतिम महत्व है। जो व्यक्ति अप्रमाद पूर्वक अर्थात् समाहित चेतना के साथ अपने कर्त्तव्य कर्मों का सम्पादन करता है वही जीवन में अप्राप्य का अधिगम करता है। संघीय जीवन के निर्माण में भी अप्रमाद की परमापेक्षा होती है। यदि कोई व्यक्ति स्वार्थ परायण होकर कर्मों का निष्पादन करेगा तो दूसरों का स्वार्थ विघटित हो जायेगा। परिमाणतः संघात्मक जीवन संवर्धन अकल्प्य हो जायेगा। संघीय जीवन के विकास के लिये अपने स्वार्थ को छोड़कर संघ मेंसमाविष्ट रहने वाले सभी व्यक्तियों के स्वार्थ की रक्षा करते हुए संघ का विकास करना होता है और इसका परिपालन तभी संभव है जब संघायक की अन्तश्चेता में अपमाद की भावना समाहित रहेगी। भगवान् बुद्ध ने धम्मपद में कहा है–––

अप्पमादो अमतपदं, पमादो मच्चुनो पदम्।

अर्थात् अप्रमाद अमृतका पद है और प्रमाद (असावधानी कर्त्तव्य कर्म के प्रतिपादन में अनवहित चेतना) मृत्यु का पद है। जब कभी बौद्ध संघ में प्रमाद की भावना का अन्तर्वेशन हुआ, संघ में विघटन विकास होने लगा था। भगवान् बुद्ध का संघ जो गठित हुआ था उसकी मूल चेतना में 'बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय' की भावना अनुस्यूत थी। भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को कहा था–––

'चरथ भिक्खवे, चारिकं बहुजन हिताय बहुजन सुखाय' लोकानुकम्पाय अत्धाय हिताय सुखाय देवमनुस्सनं।

इससे यह प्रतीत होता है कि बहुजन का हि था सुख साथ नही भगवान् बुद्ध को अभिप्रेत था। सर्वप्रथम बौद्ध संघ में सदाचार से युक्त और भव प्रपंच से विनिर्मुक्त होने के लिये व्यक्ति ही आये थें, लेकिन जैसे–जैसे संघ में विकास होता गया वैसे–वैसे संघ की सुख सुविधाओं को देखकर वैसे लोग भी संघ में प्रविष्ट होने लगे जो असमहित चित्त एवं दुर्विचार वाले थे और जिनकी चेतना लाभ, द्वेष और मोह से आपूरित थी।

भगवान् बुद्ध का संघ इसलिये और भी समुन्नत तथा पवित्रा हो सका क्योंकि उन्होंने तपोसाधना में निरत भिक्षुओं के लिये ही वैनयिक नियमों की प्रज्ञापना की थी। संघ के विकास में तत्कालीन राजाओं का प्रभूत योगदान रहा और राजाओं के इस योगदान को प्राप्त कर संघ का चतुरक्षत विकास हुआ।[9] भगवान् बुद्ध के समय में संघ इतना चिरमहिन्न बन चुका था कि राजा से भी श्रेष्ठ माने जाने लगा। सद्गुणों से विभूषित राजा को ही उस समय सम्मान प्राप्त था लेकिन जो दुराचार एवं कुरुतियों के उन्मूलन में समर्थ नहीं होता था वह जनता के द्वारा सम्मानित एवं संपूज्य नहीं होता था। दुवृंत राजाओं के प्रति तत्कालीन जनता का आक्रोश व्यक्त होता था। किन्तु संघ इतना पवित्रा एवं संयमित था कि उसके प्रति कहीं भी विरोध में अपभाषण सुनने को नहीं मिलता था।

निष्कर्ष : भगवान बुद्ध प्रतिपादित मार्ग पर अग्रसर हुए इन प्रव्रजितों का नाम भिक्षु हुआ। ये सभी विविध जनपदों के विभिन्न वर्ग एवं कुलों से आकर प्रव्रजित होकर यहाँ एक धरातल पर भिक्षु जीन व्यतीत करने लगे। वे परस्पर करूणा एवं मंत्रीा के सूत तथा धागा से आबद्ध ही विहार करने लगे। उनका यह परस्पर सहवास प्रज्ञप्त मार्ग पर प्रतिपन्न क्षिरोद की भाव से विहार करने वाले ऐसे भिक्षुओं के समुदाय का नाम भिक्षु संघ पड़ा और इसे बौद्ध संघ की संज्ञा प्रदान की गयी।

संदर्भ :

1. मनु0अ0 2, श्लोक–67
2. महा0, अनु0, अध्याय–12, श्लोक–16–21, 38–46 और 50 द्रष्टव्य।
3. महा0, आदिपर्व, अध्याय–83
4. विनयपिटक–राहुल सांकृत्यायन, पृ0–520।
5. वही, पृ0–520।
6. चुल्लवग्ग, 10/1/6, अंगुत्तरनिकाय, 4, पृ0–278
7. महावग्ग, 2/60।
8. राहुल सांकृत्यायन, विनयपिटक, पृ0–537।
9. बौद्धधर्म और बिहार, पृ0–143

***

राजा राममोहन राय द्वारा ब्रह्म समाज की स्थापना

प्रतिभा यादव *

19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में भारतीय इतिहास के सर्वाधिक क्लेशकर तथा निराशाजनक काल में सामाजिक अराजकता से ऊपर उठाने वाले तथा सुधार और प्रगति की ज्योति जगाने वाले प्रथम व्यक्ति राजा राममोहन राय थे। वे आधुनिक काल के प्रथम व्यक्ति थे जिन्होंने अपने देशवासियों को अपनी आध्यात्मिक विरासत सिद्धान्त के अनुसार अपना जीवन ढालने को कहा। आधुनिक भारतीय नवजागरण अथवा पुनर्जागरण का आरम्भ राजा राममोहन राय द्वारा धार्मिक, सामाजिक कुरीतियों, कुप्रथाओं को त्यागकर वेदान्त के एकेश्वरवाद की ओर उन्मुख होने के आव्हान से हुआ। राजा राममोहन राय ने भारत के सामाजिक एवं धार्मिक जीवन में सुधार को अपना प्रथम कर्तव्य निर्धारित किया। उन्होंने इस बात पर दु:ख व्यक्त किया कि हिन्दुओं में प्रचलित धर्म, सामाजिक एवं राजनैतिक हित साधन में सहायक नहीं था। इसलिये वह धर्म में परिवर्तन को आवश्यक मानते थे।

राजा राममोहन राय बहुमुखी प्रतिभा वाले व्यक्ति थे। वे अंग्रेजी, हिन्दी, उर्दू, अरबी, फारसी, हिब्रू, ग्रीक, लैटिन आदि भाषाओं के अध्ययन के साथ ही उन्होंने उपनिषदों और तन्त्रों, सूफी सन्तों की रचनाओं, 'ओल्ड' और 'न्यू टेस्टामेण्ट' का मूल रूप में अध्ययन किया। उनका अपने युग के प्राच्यविद्याविदों के अलावा फोर्ट विलियम कॉलेज और सदर दीवानी अदालत में कार्यरत विद्वजनों से भी सम्पर्क था।

1814-15 ई0 में कलकत्ता में बसने के उपरान्त धार्मिक-सामाजिक सुधारों में जुट गये। उसी वर्ष उन्होंने एकेश्वरवाद के प्रचार-प्रसार के उद्देश्य से 'आत्मीय सभा' की स्थापना की जो एक प्रकार से धर्म एवं दर्शन के विद्वजनों की एक गोष्ठी के समान थी जिसने सामाजिक कुरीतियों के निराकरण की ओर ध्यान दिया। 1820 ई0 में उन्होंने 'कलकत्ता यूनीटेरियन एसोसिएशन' की स्थापना की। 1819-1823 ई0 के बीच उन्होंने बांग्ला, हिन्दी और अंग्रेजी में कतिपय उपनिषदों का अनुवाद किया। राजा राममोहन राय यूनिटेरियन कमेटी की सभाओं में अक्सर अपने मित्रों के साथ जाते थे। 1826 ई0 के आसपास 'आत्मीय सभा' और 'यूनिटेरियन कमेटी' प्राय: एक दूसरे से मिल गयी। एक प्रस्ताव के तहत कमेटी का नाम बदल कर 'ब्रिटिश इण्डियन यूनिटेरियन एसोसियशन' रख दिया गया। इसका उद्देश्य समान विचार वाले एकेश्वरवादी अंग्रेजों और भारतीयों को एक ही धार्मिक मंच पर एक-दूसरे के निकट लाना।

1826 ई0 को डॉ0 टकरमैन को पत्र लिखते हुये पादरी एडम ने लिखा था कि राममोहन ईसाई और हिन्दू दोनों ही है। इसी पत्र में एडम साहब ने लिखा था कि राममोहन ने जिस आसानी से मूर्ति पूजा का त्याग किया है, इतनी सरलता से ईसाई धर्म ग्रहण करने के लिए तत्पर नहीं है। एडम साहब 'यूनिटेरियन कमेटी' को यूनिटेरियन क्रिश्चियन चर्च का रूप देने की कोशिश कर रहे थे। एडम साहब और टकरमैन को विश्वास होने लगा था कि राममोहन राय ईसाई एकेश्वरवाद के बहुत नजदीक पहुँच चुके हैं। 1827ई0 में यूनिटेरियन एसोसिएशन' को पुनर्जीवित किया गया एवं इसका शुभारम्भ एडम

* शोधार्थिनी (NET) इतिहास विभाग मडियाहूँ पी. जी. कॉलेज पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुा (उ. प्र)

साहब के द्वारा किया गया। राजा राममोहन को लगने लगा था कि एडम साहब सीधे-सीधे एकेश्वरवाद का नहीं बल्कि ईसाई धर्म के ढॉचे में रहते हुये एकेश्वरवाद के ईसाई संस्करण का ही प्रचार कर रहे थे।

राजा राममोहन राय का मानना था कि उनका एकेश्वरवाद धर्म विरोध के साथ चिन्हित नहीं होगा यह सम्पूर्ण रूप से धर्म निरपेक्ष और तर्कसंगत ब्रह्मज्ञान पर आधारित होगा। राजा राममोहन राय समझ गये थे कि प्रत्येक राष्ट्र को अपनी-अपनी भाषा और धर्मग्रन्थों के माध्यम से साधना का अपना-अपना पथ निर्माण करना पड़ता है। प्रत्येक राष्ट्र अपने इतिहास से सम्बद्ध है।

एक दिन राममोहन अपने मित्रों के साथ 'यूनिटेरियन एसोसिएशन' की प्रार्थना सभा से लौट रहे थे उसी समय उनके सहयोगी चन्द्रशेखर देव ने सुझाया कि हम लोग विदेशियों के प्रार्थना भवन में क्यों जाते हैं? हमें अपने भवन का निर्माण करना चाहिए। यही प्रस्ताव 'ब्रह्म समाज' की स्थापना का मूल सूत्र था। राजा राममोहन राय अपने निकट सहयोगियों जिनमें द्वारकानाथ ठाकुर, कालीनाथ मुंशी, प्रसन्न कुमार ठाकुर के साथ इस विषय पर अपने घर पर ही निर्णय लिया गया। कई प्रस्तावों के बाद तय किया गया कि कमल बसु का मकान किराये पर लेकर प्रार्थना भवन का शुभारम्भ किया जाये। 'आत्मीय सभा' की स्थापना के बाद लगभग तेरह वर्ष बाद 22 अगस्त, 1828 को ब्रह्म सभा की स्थापना की गयी, जिसे ब्रह्म समाज के नाम से जाना जाता है। सभा के सदस्यों के लिये एक छोटी सी पुस्तिका ब्रह्मोपासना प्रकाशित की गयी। आरम्भिक प्रयासों से स्पष्ट है कि राममोहन का पूरा व्यक्तित्व धार्मिक भावना से अनुप्राणित रहा। 'आत्मीय सभा' से शुरू होकर 'ब्रह्म समाज' तक सफर उसी धार्मिक भावना का विकसित रूप था।

राजा राममोहन राय और उनके सहयोगी मित्रों के बीच ब्रह्म समाज की स्थापना के बारे में जो फैसला लिया गया, उसका विवरण एडम साहब के एक पत्र में है, जो उन्होंने जनवरी, 1829 ई0 को डॉ0 टाकरमैन को लिखा था। इनके अनुरूप एक हिन्दू एकेश्वरवादी संस्था की स्थापना हुई है जिसका उद्देश्य सुनिश्चित रूप से हिन्दू धर्म से सम्बद्ध है न कि ईसाई धर्म। अर्थात् वेदों के ईश्वरीय सिद्धान्तों पर एकेश्वरवाद की शिक्षा और आचरण ईसाई धर्मशास्त्रों पर आधारित नहीं था। यह स्वाभाविक ही था कि 'ब्रह्म समाज' की स्थापना के बाद एडम साहब और दूसरे यूरोपीय मिशनरी बन्धुओं का पूरी तरह से मोह भंग हो गया था। वस्तुत: उनकी सारी आशाओं पर पानी फिर गया था।

ब्रह्म समाज के प्रथम उपदेश थे रामचन्द्र विद्यावागीश, जो राजा राममोहन राय के गुरू थे। पहले प्रवचन का विषय था-निराकार ईश्वर की आध्यात्मिक साधना का स्वरूप। वेद, उपनिषद और दूसरे हिन्दू धर्मशास्त्रों से उदाहरण और उद्धतियां देकर प्रवचन सम्पन्न किया गया और सभा का अन्त ब्रह्म संगीत के साथ हुआ। कलकत्ता के जॉन बुल अखबार में 13 अगस्त को इस संस्था की स्थापना का समाचार प्रकाशित हुआ। 1830 में ब्रह्म समाज का भवन निर्माण हुआ जहॉ न तो कोई प्रतिमा प्रतिष्ठित की गयी और न ही यज्ञादि किया जाना था। ब्रह्म समाज को एक सहिष्णु संस्था बनाया जाना था जो शूचिता, धर्मपरायणता, अच्छाई और परोपकारिता को अग्रसर करती। इसका उद्देश्य विभिन्न धर्मावलम्बियों के बीच एकता के सूत्रों को सुदृढ़ करना और इसके साथ ही धार्मिक सामाजिक सुधार आन्दोलनों का केन्द्रीकृत पथ प्रदर्शन भी था। राजा राममोहन राय द्वारा इस मानववादी, उदारवादी आन्दोलन का उद्देश्य समस्त धार्मिक आस्थाओं और सम्प्रदायों के अनुयायियों को एकता के सूत्रों को सुदृढ़ बनाना था। राजा राममोहन राय मानते थे कि 'ब्रह्म समाज' के सिद्धान्तों का पालन

करते हुये हिन्दू एक सच्चा हिन्दू,मुसलमान एक सच्चा मुसलमान और ईसाई एक सच्चा ईसाई बनने में समर्थ होगा।

राजा राममोहन राय एक श्रेष्ठ मानव, एक व्यवहारिक राजनेता, धार्मिक सामाजिक सुधारक, महान देशभक्त, स्वतंत्रता के रक्षक और मानवता के प्रेमी थे। साथ ही वे हिन्दू जाति की उपलब्धियों से गौरवान्वित अनुभव करने वाले, भारत के अतीत पर गर्व करने वाले और अपने पैतृक धर्म के समस्त श्रेष्ठ तत्वों के सम्पोषण के लिये आतुर एक उत्साही हिन्दू थे।

सन्दर्भ :

1. दत्ता, के0के0: सोशल हिस्ट्री ऑफ मॉडर्न इण्डिया
2. शास्त्री, पं0 शिवनाथ: हिस्ट्री ऑफ द ब्रह्म समाज
3. पांथरी, डॉ0 शैलेन्द्र: आधुनिक भारतीय नवजागरण
4. सिंह, प्रताप: आधुनिक भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास
5. झा, ममता: समाज सुधारक राजा राममोहन राय
6. ठाकुर, सौम्येन्द्र नाथ: राजा राममोहन राय

***

पूर्व मध्यकाल एवं उसके पूर्व नगरों की स्थिति

डॉ. सर्वेश कुमार मिश्र *

पूर्व मध्यकाल एवं उसके पूर्व में हुए आर्थिक परिवर्तनो का प्रत्यक्ष परिणाम भारत के आन्तरिक एवं बाह्य व्यापार में ह्रास था। व्यापार में ह्रास केवल विदेशी व्यापार तक सीमित न था। समुद्र तटीय नगरो तथा दूर–दराज के नगरो के बीच सम्पर्क कमजोर पड़ जाने के कारण आन्तरिक व्यापार का भी पतन हुआ और इसका प्रभाव ग्रामो और नगरो के बीच होने वाले व्यापार पर भी पड़ा। शहरो का पतन, शहरी उपभोग, उत्पादन में कमी आना तथा व्यापार का ह्रास, ये सब एक दूसरे से सम्बन्धित समस्याएँ थी।

व्यापार का ह्रास, सिक्को की कमी, सिक्को के साँचो तथा वाणिज्य मोहरो की अनुपस्थिति, आर्थिक ह्रास एवं निर्मित उत्पादो की माँग में कमी की ओर इशारा करते है। जो नगर उत्तर मौर्य काल में दस्तकारी उत्पादन के सक्रिय केन्द्र थे वे इस काल में निष्क्रिय एवं निर्जन्य हो गए। नगरीय केंन्द्रो के स्थलीय प्रसार तथा नागरिक सुविधाओ के दृष्टिकोण से ये नगर कुषाण युग की तुलना में नगण्य हैं।[1]

समकालीन साहित्य एवं अभिलेखों से भी भली–भाँति नगरों एवं शहरों का पतन प्रकट होता है। छठी सदी ई0 की रचना वृहत्–संहिता में दस्तकारी, नगरो, एवं व्यापार के ह्रास का उल्लेख हुआ है। उत्तरी भारत में बौद्ध नगरों के पतन का उल्लेख चीनी यात्री ह्वेनसांग ने अपने यात्रा विवरणों में किया है। वात्स्यायन के कामसूत्र में जिस नगरीय जीवन का सजीव एवं रोमांचक विवरण हुआ है, उत्तर गुप्त काल के साहित्य जैसे कि दामोदर गुप्त की रचना कुत्तानिमतम (सातवीं सदी में) इतना सजीव वर्णन नहीं है तथा वह मुख्यतः ग्रामीण जीवन का ही उल्लेख करती है।

नगरो के ह्रास के साहित्यिक और अभिलेखीय साक्ष्य पर्याप्त मात्रा में प्राप्त है। जिनसे नगरीय पतन के कई आयामो पर प्रकाश पड़ता है। पाँचवी शताब्दी के अंतिम चतुर्थांश और छठी शताब्दी के पूर्वाद्ध के काल के ज्योतिषी वराहमिहिर की वृहत्संहिता में की गई भविष्यवाणियों से गुप्तकालीन नगरो के पतन का अनुमान लगाया जा सकता है। वराहमिहिर नगरों, क्षेत्रों, इलाकों और विभिन्न लोगों के प्रखर पर्यवेक्षक थे। इन्होने उल्लेख किया है कि तक्षशिला, मथुरा, उज्जयिनी, काशी, राजगीर, ताम्रलिप्ति के बुरे दिन आएँगे। त्रिपुर, कर्नाटक, मिथिला और सिंहपुर का भी ऐसा ही भाग्य बतलाया गया है।[2] रघुवंश से पता चलता है कि राम की मृत्यु के बाद अयोध्या की सड़के, गलियाँ, महल, वाटिकाएँ और फलोद्यान उजड़ जाते हैं और नगर की देवी अपने भाग्य को रोती है[3] वायु पुराण में उस शाप की चर्चा है जिसने वाराणसी को उजाड़ दिया था।[4] ह्वेनसांग के विवरण से भी श्रावस्ती,रामग्राम, कपिलवस्तु और कुशीनगर जैसे नगरो के पतन की जानकारी मिलती है।[5] पुरातात्विक साक्ष्यों की बात करें तो नगरीय पतन विभिन्न केन्द्रों में परिलक्षित होता है। उत्तर भारत की खुदाइयाँ बताती है कि तक्षशिला में पाँचवीं सदी ई0 पूर्व से लेकर ईसवी सन की पाँचवीं सदी तक शहरी जीवन बरकरार रहा। मार्शल का मत है कि हूण आक्रमण के कारण बौद्ध स्तूपो और बिहारो का सम्पूर्ण विनाश पाँचवी शताब्दी की अंतिम चौथाई में हुआ। लेकिन वे इस तथ्य पर बल देते है कि तक्षशिला तीन बड़े–बड़े व्यापारिक मार्गो के संगम पर स्थित थी, जब विदेशों से व्यापारिक संपर्क अवरूद्ध हो गया, तब अंततः तक्षशिला का महत्व समाप्त हो गया।[6]

जम्मू और कश्मीर में किये गए अन्वेषणो के फलस्वरूप बहुसंख्यक कुषाणकालीन स्थल प्रकाश में आए हे, लेकिन इन स्थलो में कुषाण संस्कृति की पूर्ववर्ती अथवा अनुवर्ती कोई अन्य संस्कृति नहीं है।[7] लुधियाना जिले के सुनेत में ईसवी सन लगभग 300 ई0–600 ई0 के बीच के काल में कोई निर्माण कार्य नहीं हुआ। इसमें गुप्तकालीन लाल पॉलिशदार बर्तन और कुछ मिट्टी की मुहरे भी पायी

* असिस्टेंट प्रोफेसर, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ गंगापुर परिसर, वाराणसी

जाती है लेकिन कुल मिलाकर सुनेत में गुप्तकाल तीव्र ह्रास का चरण है।[8] रोपड़ में पाँचवीं–छठीं सदियो के अनेक मोहर छापे मिले है। इसके बाद दो सदियों का अन्तराल है। प्रायः नवीं सदी में यह स्थल फिर आबाद हुआ।[9] अंबाला जिले के बारा नामक स्थान से खुदाई में गुप्तकालीन परतों की सूचना प्राप्त नहीं होती।[10] कुरूक्षेत्र में भी उत्खननकर्ती 300 ई0 के बाढ़ के किसी पुरावशेष का उल्लेख नहीं करता है। अनेक उत्खननों से इसकी पुष्टि होती है कि यह स्थल परवर्ती मध्यकाल तक उजड़ा रहा।[11] मेरठ जिले के हस्तिनापुर में 300ई0–700ई0 के काल के पुरावशेष नहीं पाये गये है। यह स्थल ईसा के चौथी सदी में उजड़ गया और ग्यारहवीं सदी तक वैसा ही रहा।[12]

एटा जिले के अतरंजीखेड़ा में शुंग, कुषाणों और गुप्तों के समय के पुरावशेष पाए गए है। लेकिन गुप्तयुग की पुरावस्तु व्यवहारिक दृष्टि से नगण्य हैं।[13] यदि गंगा के मैदानों को गुप्त साम्राज्य का हृदय स्थल माना जाए तो इस दृष्टि से अहिच्छत्रा के गुप्तकालीन अवशेष अपर्याप्त हैं। गुप्तो के पहले के सिक्कों की तुलना में गुप्तकालीन सिक्कें बहुत कम हैं और ईसा की चौथी शताब्दी के मध्य के बाद इस स्थल की विशिष्टता को क्षति पहुँची।[14] मथुरा में खुदाई में गुप्तकालीन मृण्मय मूर्तियाँ पायी जाती है, पर इनमें ढ़ॉचे नही हैं, गुप्तकाल में आबादी की अवनति की पुष्टि अभिलेखो से होती है। पूर्ववर्ती कालों की अपेक्षा गुप्तकालीन अभिलेख बहुत कम हैं। 400–500 ई0 के बीच के काल में बहुत कम फर्श और ईंट की दीवारें हैं।[15]

यदि तक्षशिला को जो अब पाकिस्तान में है छोड़ दिया जाय तो यह स्पष्ट पता चलता है कि पंजाब, हरियाणा, दिल्ली और प0 उत्तर प्रदेश में शहरीकरण अपेक्षकृत थोड़े समय तक रहा। शहरी जीवन के अनेक तत्व अनेक स्थलों में ईसापूर्व पाँचवीं शताब्दी से चौथी शताब्दी के बीच प्रकट हुए और ईसवीं सन् की पहली तीन सदियों में चरम सीमा पर पहुँच गए। प्रायः इन स्थलों में गुप्तकाल में तीव्र ह्रास दिखाई पड़ता हैं। गुप्तकाल के बाद की तीन चार सदियों तक आबादी बहुत बढ़ जाती है। केवल रोपड़ और अहिच्छत्रा में गुप्तकालीन परतों में आबादी के स्पष्ट ह्रास का संकेत नहीं मिलता। ईसा की चौथी और छठी शताब्दी ई0 सन् के बीच पंजाब और हरियाणा की आबादियों से बहुत थोड़े शहरीकरण की जानकारी मिलती है। इन दोनों राज्यों के अनेक स्थलों पर कुषाणकालीन समृद्ध परतों के बाद एक प्रकार की रिक्तता आ जाती है जिसका अंत सल्तनतकाल में होता है।[16] मध्य गंगा और पूर्वी क्षेत्रों के अन्तर्गत लखनऊ जिले के हुलासखेड़ा में गुप्तकालीन इमारती सामग्री में ह्रास के चिन्ह दिखते हैं, क्योंकि किलो की दीवारो में ईंटो के रोड़ो का इस्तेमाल किया गया है। गुप्तो के शासन का अंत होने के पहले ही यह स्थल उजड़ गया।[17] सीतापुर जिले में स्थित मनवन कुषाणयुग के बाद हुए, सामान्य नगरीय ह्रास से थोड़ा भिन्न दिखाई देता हैं। आरम्भिक मध्य युग में यह स्थल फिर से आबाद हुआ जिसमें ठेठ मुस्लिम मृदभाण्ड आए। इससे संकेत मिलता है कि गुप्तकाल के बाद लगभग छः शताब्दियों तक इस स्थल पर कोई आबादी नहीं थी।[18]

गोंडा और बहराइच जिलों की सीमा पर स्थित श्रावस्ती को ईसा की पॉचवी सदी में फाहियान ने बुरी शक्ल में देखा था। सातवीं सदीं में ह्वेनसांग ने श्रावस्ती नगर को विनष्ट और उजाड़ पाया, यहॉ अधिकांशतः खण्डहर थे और कुछ ही निवासी थे।[19] इलाहाबाद के निकट भीटा में मार्शल महोदय को गुप्तकालीन ढाँचो के अवशेष इतने कम और विकृत मिले है कि इनका खाका तैयार नहीं किया जा सकता। गुप्तो का कोई सिक्का भी नहीं मिला है। दुकाने और शिल्पियों की मुहरें भी गायब हैं। परवर्ती गुप्तकाल के अवशेषों की विषमता से स्पष्ट है कि गुप्तकाल के बाद भीटा का शहरी जीवन समाप्त हो गया।[20] कौशाम्बी की खुदाई विस्तृत क्षेत्र में हुई है। यहॉ गुप्तकालीन अवशेष कम है। फाहियान यहॉ स्थित घोषितराम बिहार की ध्वस्तावस्था का उल्लेख करता है।[21] ह्वेनसांग भी लिखता है कि सभी दसों बिहार ध्वस्त और उजड़े हुए थे। संभवतः शहरी सहारें के अभाव में ऐसा हुआ होगा। इसके वृत्तान्त से पतनोन्मुख नगर की सामान्य धारणा बनती है। वाराणसी में राजघाट के उत्खनन से संकेत मिलता है कि गुप्तकाल तक आते–आते नगरीकरण की प्रक्रिया कमजोर पड़ चुकी थी। ईसा की तीसरी सदी के बाद पुरावशेषों के अभाव से व्यापारिक सम्पर्क की कमी का बोध होता है। गुप्तकाल से राजघाट का

अधिक से अधिक धार्मिक स्वरूप बनता गया। ढाँचों का अभाव मृदभाण्डों की कमी के साथ मेल खाता है।[22]

बस्ती जिले में स्थित पिपरहवा गुप्तकालीन अवशेषों का कोई उल्लेख नहीं करता हैं। पिपरहवा की शिनाख्त कपिलवस्तु से की जाती है। फाहियान उल्लेख करता है कि इस नगर में न राज्य है और न प्रजा; यह एक बड़े रेगिस्तान की तरह से है।[23] ह्वेनसांग लिखता है कि राजधानी कपिलवस्तु नष्ट हो चुकी है और खण्डहर बन गई हैं।[24] गोरखपुर के निकट स्थित कुशीनगर के सन्दर्भ में फाहियान लिखता है कि कुछ निवासियों को छोड़कर ऐसे हीं परिवार है जो बौद्ध भिक्षुओ के स्थानीय संघ से जुड़े है।[25] ह्वेनसांग ने इस नगर को भग्नावस्था में देखा और इसके गाँवों और शहरों को वीरान पाया।[26] बलिया जिले में स्थित खैराडीह का शहरी चरण संभवतः ईसा की चौथी शताब्दी तक जारी रहा परन्तु अब तक इस स्थल से किसी सुस्पष्ट गुप्तकालीन पुरावशेष के मिलने की सूचनाएँ नहीं है।[27] बिहार के सायण जिले में मॉझी और चिरॉद में भी ईसा की तीसरी सदी के बाद शहरी ह्रास दिखता है और वही सांस्कृतिक अनुक्रम पाया जाता है। उत्खननकर्ता टी.एन.राय बतलाते है कि गुप्तकाल में ''जो ऐतिहासिक दस्तावेजो के कारण सुविज्ञात है,'' इस स्थल पर आबादी बिल्कुल नहीं थी। चिरॉद में भी गुप्तकालीन आबादी के बहुत घटिया और नगण्य चिन्ह हैं।[28]

वैशाली जो 50 ई0 यू0 से 200 ई0 के बीच समृद्धि और कलात्मक गतिविधि के लिए विख्यात है। चौथी से पाँचवीं सदी में निगम की मोहरों से वैशाली में संगठित शिल्पीय और वाणिज्यिक गतिविधियों का संकेत मिलता हैं। पाँचवीं सदी के बाद इस तरह की गतिविधियॉ अत्यन्त कम होती जाती हैं। इमारतें घटियाँ दिखाई देती हैं, ढाँचे भी घटिया हैं। ह्वेनसांग भी इस नगर के पतन का उल्लेख करता हैं।[29] फाहियान के यात्रा विवरण से पता चलता है कि पाटलिपुत्र की अवस्था अच्छी थी। परन्तु ह्वेनसांग का कहना है कि विनष्ट संघारामों और देवमंदिरो की संख्या सैकड़ो में हैं, लेकिन केवल दो अथवा तीन अक्षुण्ण हैं।[30] गुप्तकाल तक राजगीर मुख्यतः धार्मिक स्थल बन चुका था। इस काल में इस नगर की कोई शहरी विशिष्टता न थी। फाहियान ने इस नगर को पतनावस्था में देखा था। वह लिखता है कि नगर के भीतर सब सूना है और यहॉ आबादियॉ नहीं है।[31]

उड़ीसा स्थित शिशुपालगढ़ में बड़े पैमाने पर किये गये उत्खननों से स्पष्ट है कि मैदानी इलाके में स्थित यह स्थल प्रायः 350 ई0 के बाद जनशून्य हो गया। ईसा की चौथी शताब्दी के मध्य के बाद की तिथि किसी पुरावशेष के बारें में पता नहीं है।[32] पं0 बंगाल में तामलुक जिसकी शिनाख्त प्राचीन बन्दरगाह ताम्रलिप्ति से की जाती है, तीसरी सदी के बाद लगभग उजड़ा सा लगता हैं। फाहियान अपने विवरण में इस बन्दरगाह –नगर के बारे में मौन हैं।[33]

ईसा की चौथी से छठी शताब्यिों के बीच कौशाम्बी, भीटा, राजघाट, वैशाली कुम्हार और चंपा में शहरीकरण का ह्रास दिखता हैं। श्रावस्ती, खैराडीह, मॉझी, चिरॉद और राजगीर में नगरीकरण में गुप्तकाल का प्रतिनिधित्व नही के बराबर हैं। उड़ीसा और पं0 बंगाल की प्राचीन बस्तियों में शहरीकरण की शुरूआत लगभग 300 ई0 पू0 में होती हैं और प्रायः 300 ई0 में समाप्त हो जाती हैं। यद्यपि गुप्तकाल और बाद में यहॉ नई बस्तियॉ बसती हैं।[34] पश्चिमी और मध्य भारत के नगरो का पुरातत्व, खासकर ईसा की तीसरी और इसके बाद की शताब्दियो में प्रायः सिंधु–गांगेय मैदान के पुरातत्व जैसा है। जयपुर में बैराट और रेढ़ की खुदाई से विदित होता है कि दूसरी शताब्दी के बाद यह स्थल स्पष्टतः विरान हो गया और फिर मध्ययुग में आबाद हुआ। यघपि गुपतकाल में थोड़ी सी आबादी के चिन्ह मिले हैं।[35] पुरातात्विक रिपोर्टो से मध्य और पूर्वी मध्यप्रदेश में अधिक संख्या में प्राचीन शहरी आबादियों के होने का पता नहीं चलता। जबलपुर जिले में तेवर, विलासपुर जिले में मल्हार, सागर जिले में एरण, रायसेन जिले में नांदुड़, विदिशा में बेसनगर, उज्जैन में कायथा, नामक स्थानों पर गुप्तकालीन संस्कृति के अवशेष ह्रासोन्मुख अवस्था में है और दसवीं सदीं तक यहाँ विकास का कोई संकेत नहीं मिलता हैं। जबकि मौर्योत्तर काल में व्यापक नगरीकरण के लक्षण दिखाईं पड़ते हैं।[36]

गुजरात के उत्खनित स्थलों से परवर्ती गुप्तकाल में वाणिज्य की निरन्तरता के बारें में अधिक साक्ष्य नहीं मिलता। ह्वेनसांग भड़ौच (भरूकच्छ) राज्य की राजधानी को पतनोन्मुख बताता हैं। सूरत

जिले में धतवा, सौराष्ट्र में द्वारका, बड़ौदा में कखन, मेहसाना में वाडनगर और जूनागढ़ के प्रभासपाटन में हुए उत्खनन गुप्तकाल में शहरी पतन का पर्याप्त संकेत देते हैं जिनमें सिक्कों की कमी, घटिया मृदभाण्ड, ढॉचो का अभाव, प्रमुख है। महाराष्ट्र में यवतमाल जिलें में अर्णि, वर्धा जिले में पौनार, अमरावती जिलें में कौडनपुर, भंडारा जिले में पौनी औरंगाबाद जिले में भोकर्दन, नासिक जिला और अहमदनगर के नेवासा में हुए उत्खनित स्थलों से वाणिज्यिक ह्रास, घटिया स्तर विन्यास, कम आबादी, घटियॉ मृदभाण्ड और सिक्कों की कमी परिलक्षित होती हैं जो कि शहरी प्रवृत्तियो के ह्रास को संकेतित करती हैं। स्पष्ट है कि इस क्षेत्र में गुप्त तथा परवर्ती गुप्तकाल में शहरी पतन की प्रक्रिया तीव्र थी।[37]

मध्य प्रदेश, राजस्थान और गुजरात में लगभग 300 ई0 पू0 में नगरीकरण शुरू हुआ और नगर, सातवाहनों तथा शक–क्षत्रपों के अधीन समृद्ध हुए। चौथी शताब्दी के अंत तक शहरी जीवन प्रायः समाप्त हो चुका था, यद्यपि गुजरात के एक–दो स्थलों में यह सातवीं आठवीं शताब्दियों तक बरकरार रहा। महाराष्ट्र में स्थिति थोड़ी भिन्न थी। यहॉ आरम्भिक काल में 200 ई0 पू0 के आस–पास अथवा इससे कुछ पहले नगरों का निर्माण हुआ और प्रकाश का छोड़कर सभी नगर ईसा की तीसरी शताब्दी में लुप्त हो गए।[38]

द0 भारत में सातवीं शताब्दी ईसवी में कर्नाटक के अनेक भागो में उजड़े नगर बिखरे पड़े थे। द्रविड़ देश से जिसकी राजधानी कॉची थी उत्तर की ओर बढ़ने पर ह्वेनसांग ने बीहड़ जंगल में प्रवेश किया, जहॉ उसने उजड़े शहरों का तांता अथवा छोटे–छोटे गॉव देखे।[39] रामशरण शर्मा का मत है कि नागार्जुन कोण्डा और कुछ अन्य स्थलों का छोड़कर प्रायद्वीपीय भारत में ईसा की तीसरी शताबदी में प्राचीन नगर विघटित होकर लुप्त हो गए।[40]

धान्यकटक देश के सम्बन्ध में ह्वेनसांग लिखता है कि इसका अधिकांश भाग निर्जन हैं और इसके शहरों में आबादी बहुत कम हैं।[41] एच सरकार के मतानुसार आर्थिक आधार अथवा वाणिज्यिक लाभ के अभाव में नागार्जुनकोडा की आबादी का धीरे–धीरे ह्रास होता गया। सरकार का यह भी कथन हैं कि वास्तविक उजाड़ के पूर्व अधिकतर पुरातात्विक स्थल क्रमिक ह्रास की अवस्था से गुजरें।[42] पुरातात्विक साक्ष्यों से विदित होता हैं कि लगभग 200 ई0 के बाद अरिकमेडु का जीवन सक्रिय नहीं रहा।[43] उरैयूर में बाढ़ और पानी के भराव के कारण ईसा की पॉचवी सदी में इसकी मुख्य आबादी का अंत हो गया। पॉचवीं और सॉतवी शताब्दियों के बीच के अवशेष के बारे में निश्चित रूप से कोई जानकारी नहीं है।[44] महाद्वीपीय भारत में उत्खनित स्थलों की कुछ विशेषताएॅ दिलचस्प हैं। केरल में आरम्भिक ऐतिहासिक काल में नगरीकरण का कोई साक्ष्य नहीं मिलता। कर्नाटक, आन्ध्रप्रदेश, तमिलनाडु में भी ईसा–पूर्व तीसरी– दूसरी शताब्दियों तक नगरो का विकास नहीं हुआ था।[45]

अधिकांश शहरी केन्द्र ईसा की तीसरी सदी में उजड़ गये। शहरी केन्द्रो का अन्त हिन्द–रोमी व्यापार और सातवाहनों के शासन के अंत के साथ–साथ हुआ। यही बात महाराष्ट्र में स्थित अन्य प्रायद्वीपीय नगरों पर लागू होती है। कुछ नगरों का अस्तित्व छठीं से आठवीं शताब्दियों में बना रहा। नवीं और दसवीं शताब्दी से यहॉ कई नगरों का आविर्भाव हुआ।

गुप्त और गुप्तोत्तरकाल में नगरों के ह्रास पर प्रकाश डालने वाला भारतीय साहित्यिक साक्ष्य सबल नहीं है। पर ध्यान देने का विषय है कि देशी साहित्य मुख्यतः दरबारी था जिसके कारण इसके लेखक आर्थिक और सामाजिक परिवर्तनो की बहुत कम चर्चा करते हैं। यद्यपि दूसरी ओर भारतीय ग्रन्थ नगरों के ह्रास सम्बन्धी प्रसंगो से एकदम खाली भी नहीं हैं। अधिक महत्वपूर्ण बात यह है कि अभिलेख और विदेशी विवरण उत्खननों के द्वारा उद्घाटित ह्रास की प्रक्रिया की पुष्टि करते हैं।

---

[1] UPRT0U,'प्राचीन मध्यकाल में संक्रमण पृ0, 7–8

[2] बृहत्संहिता,ग,–14,15, गप.56

[3] रघुवंश गअप–9–23

[4] डी0 आर0 पाटिल, ''कल्चरल हिस्ट्री फ्रॉम द वायु पुराण' पृ0329–330

[5] सी–यू–कि1,पृ073–74, वाटर्स''आन युवान चवांग्य ट्रैवेल्स1,पृ0, 187

[6] रामशण शर्मा,''भारत के प्राचीन नगरों का पतन,पृ028

[7] इण्डियन आर्कियोलाजिकल रिपोर्ट,1981–1982,पृ0, 18–19
[8] वही 1983–1984 पृ0, 69–70
[9] शर्मा, पूर्वोद्धत–पृ0, 32
[10] वहीं पृ0, 38
[11] इ.आ.रि. 1971–72, पृ0, 23–24
[12] शर्मा पूर्वोद्धत,पृ0, 36
[13] वहीं–1963–1964 पृ0, 34
[14] शर्मा पूर्वोद्धत,पृ0, 38
[15] इ.आ.रि. 1954–55,पृ0, 15–16
[16] शर्मा पूर्वोद्धत–पृ0, 43–45
[17] शर्मा पूर्वोद्धत–पृ0, ,49
[18] इ.आ.रि.1969–70,पृ0, 41
[19] सी–यू–कि–।। पृ0, 1–2
[20] शर्मा पूर्वोद्धत–पृ0, ,53
[21] शमौ पूर्वोद्धत–पृ0, 053
[22] सी यू कि –1 पृ0, 235
[23] शर्मा पुर्वोद्धत'पृ0, 57
[24] सी.यू.कि,पृ0 गपपअ
[25] सी.यू.कि–पप–पृ0, 13–14
[26] सी.यू.कि,पृ0, पपप
[27] शर्मा पूर्वोद्धत पृ0, 61
[28] शर्मी वही
[29] सी.यू.कि'पप पृ0, 206
[30] शर्मा वहीं –पृ0, 64
[31] सी.यू.कि–पृ0, 1पग
[32] शर्मा पूर्वोद्धत पृ0, 74
[33] वहीं
[34] वहीं,
[35] शर्मा पूर्वोद्धत, पृ0, 86–87
[36] शर्मा पूर्वोद्धत, पृ0, 89–93
[37] शर्मा पूर्वोद्धत, पृ0, 102–103
[38] शर्मा पूर्वोद्धत, पृ0, 107
[39] सी.यू.कि.ii,पृ0, 253–54
[40] शर्मा पूर्वोद्धत, पृ0, 123
[41] सी.यू.कि.ii,पृ0, 221
[42] शर्मा पूर्वोद्धत, पृ0, 127
[43] शर्मा वहीं,पृ0, 135
[44] वहीं।
[45] शर्मा पूर्वोद्धत, पृ0, 137

***

मूल्य : मानवीय आचार एवम् व्यवहार के संदर्भ में

विकास सिंह *

मूल्य (Value) शब्द को मूल रूप से लैटिन भाषा के (Vallere) शब्द से संबंधित माना जाता है जो मूल रूप से किसी भी वस्तु या सेवा के मूल्य, विशेषता, गुण या उपयोगिता को प्रदर्शित करता है। मूल्यों संदर्भ में अर्थशास्त्रीयों एवम् विद्वानों की अलग–अलग विवेचनाएँ है। इसके अनुसार मूल्य एक प्रकार के आचरणों की संहिता है। इसे यूँ भी कहा जा सकता है कि मूल्य सद्गुणों का समावेश है। जो आत्मसात करके कोई भी मनुष्य अपने सद्गुणों में अभिवृद्धि कर सकता है। इसके माध्यम से समाज में एक नये तरह का प्रभाव पैदा होता है। मूल्य में तरह–तरह की मानवीय धारणाओं, विचार, विश्वास, मनोवृत्ति एवं आस्था आदि सामाजिक–मनोवैज्ञानिक गुणों का समावेश होता है। जहाँ तक भारतीय धर्मग्रंथ का प्रश्न है, इसमें मूल्यों के लिए शील शब्द को प्रयुक्त किया गया है। लेकिन शील को मूल्य का पर्यायवाची कभी भी नहीं कहा जा सकता है, अपितु यह एक समीचीन शब्द है जो कि भारतीय दर्शन एवं संस्कृति का प्रतिनिधित्व करता है। साहित्य के अनुसार शील सर्वत्र आभूषण के रूप में वर्णित होता है। कहीं कहीं शील चरित्र को इंगित करने के लिए प्रयुक्त किया गया है।

मानवीय आचार एवम् व्यवहार को मूल्यों के मापदण्ड से ही समझा जा सकता है। हम जो भी अनुभव करते हैं, या हमारी जो भी परंपराएँ है, इनके आधार में मूल्य ही है। इस बात से इन्कार नहीं किया जा सकता है। विविध एवम् विभिन्न तरह की संस्कृतियाँ मूल्यों का ही प्रतिनिधित्व करती है। यदि समाज में मूल्य विकसित एवम् प्रवर्धित हैं तो इसका तात्पर्य है कि इसके समुचित विकास में अध्यात्मवाद, नियतिवाद एवम् परलोकवाद की भी कहीं न कहीं भूमिका हैं आज हम देखते हैं कि मूल्य तेजी से बदल रहे हैं और इसीलिए अवधारणाओं में भी बदलाव दिखने को मिल रहा है। आज हम जिस तरह के समाज में जी रहे है, वो प्राचीन भारत से काफी अलग है। क्योंकि पुराने मूल्यों का लोप रहा है। हमारी जिस तरह की मान्यताएँ एवं परम्पराएँ चली आ रही थी, वे सभी परिवर्तन की राह पर चल पड़ी हैं। आज अध्यात्मिकता पूरी तरह से उपेक्षित दिखाई दे रही हैं। केवल चारों तरफ पश्चिमी मूल्य, सभ्यताएँ एवम् विचारधाराएँ अपना प्रभुत्व जमाती जा रही है। इसी वजह से हमारे बीच मूल्यों का कोई मोल नहीं है। प्रसिद्ध अर्थशास्त्री ग्रेशन के अनुसार–खोटे सिक्के अच्छे सिक्कों को चलन से बाहर कर देते हैं। यह बात अक्षरशः सत्य है। इससे इन्कार नहीं किया जा सकता है। आज हिंदुस्तान का आय आदमी यही सोचता है कि हमारे जीवन में मूल्यों की कोई जगह नहीं है। इसके निम्न कारण है– यथा

1. आधुनिकता का असर
2. पश्चिमी सभ्यता के अनुगमन की प्रवृत्ति
3. भौतिक सभ्यता के प्रति अगाध आकर्षण
4. अनीश्वरवाद में आस्था
5. चिंतन में तर्कों को प्रधानता
6. वैज्ञानिक प्रवृत्ति का उन्नयन

लेकिन फिर भी मानवीय मूल्य नष्ट नहीं हो सके है। हो सकता है कि वे इस समय अप्रासंगिक हो चुके हैं। लेकिन उनकी अस्मिता अभी भी जीवित और अक्षुण्ण है। यूनान, मिस्र और रोम की संस्कृति की आयु थोड़ी ही सी थी। लेकिन भारत की सभ्यता अभी भी परम्पराओं को लेकर चेतन है। मानव–मानव के मध्य प्रेम शाश्वत है। इसके अतिरिक्त झूठ, धोखेबाजी और भ्रष्टाचार को अक्सर लोगों के द्वारा गलत करार दिया जाता है।

---

* प्रवक्ता- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

बालक की परिवार में कैसी और किस तरह परवरिश हो रही है। उसके परिवार से आखिर में उसमें कैसी प्रवृत्तियाँ जन्म ले रही है ? परिवार में लोगों के साथ और सहयोग से किन विचारों का अभ्युदय और विकास हो रहा है या किस तरह की आदतें जन्म ले रही है, इन्हें भविष्य में बदलना मुश्किल होता है। उनकी यही आदतें एवं प्रवृत्तियाँ मूल्यों की संरचना निर्मित करती है। इस प्रकार मूल्यों का विकास भी होता है। इसलिए यह कहा जा सकता है कि बालक के मूल्यों पर वातावरण का प्रभाव सर्वाधिक होता है। इसका तात्पर्य यह है कि परिवार के सकारात्मक और नकारात्मक प्रवृत्तियों का सीधा प्रभाव बालक के मस्तिष्क पर पड़ता है। इसी के परिप्रेक्ष्य कपूर ने सन् 2009 में सकारात्मक और नकारात्मक परिवेश में रहने वाले बालक और बालिकाओं के मूल्यों को अलग–अलग क्रम में जानकर इनके व्यक्तित्व में पनपने वाले मूल्यों के अंतर को क्रम से और विस्तार बतलाया।

कार्ने. जाने. जे के मुताबिक– ''मूल्यों को आदर्शों और विश्वास का मानक कहा जा सकता है जो समाज के अधिकतर सदस्यों के द्वारा स्वीकृत किया जाता है।''

मूल्यों का वर्गीकरण–

आदिमकाल से मनुष्यों के विकास के इतिहास पर दृष्टि डाली जायँ तो प्रारंभ में कई तरह के कठिनाइयों का सामना करना पड़ा था। उस समय केवल वे ही जीवित रह सकते थे, जो वाकई में शक्तिशाली थे। उस समय के मानवीय मूल्य केवल संघर्ष और शक्ति ही थे। धीरे–धीरे मनुष्यों में सामाजिकता की भावना मुखर हुई तथा इसके साथ ही उसके मूल्यों में भी भारी बदलाव दिखने को मिला। अब संघर्ष और शक्ति के स्थान पर दया, प्रेम, सहानुभूति और सहयोग जैसे सामाजिक मानवीय गुण दिखाई देने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि कमजोर या निर्बल वर्ग के लोगों ने भी आरामदेह एवम् सुखद जीवन जीना शुरू कर दिया।

अब सामाजिकता के लिए प्रेम, सहानुभूति एवम् सहयोग को अपरिहार्य नियम के रूप में देखा जाने लगा। इन्हें मूल्यों की संज्ञा या अस्मिता के रूप में कहा गया। लेकिन विकास के बढ़ते कदम के साथ ही साथ हमारे समाज में भी संश्लिष्टता आती गई। भिन्न–भिन्न आयामों में भी विस्तार एवम् विकास होते चले गए। अब मूल्य के विविध एवम् विभिन्न आयामों को सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवम् राजनैतिक आधार पर देखा जाने लगा। इसके आधार पर तत्संबंधित विश्वासों, आदर्शों, सिद्धांतों, नैतिकताओं एवं नियमों में भी विकास दृष्टिगोचर होता गया। सामान्यतः इन्हें मूल्य की संज्ञा के यप में देखा गया। प्रायः मूल्यों के वर्गीकरण इन्हीं आधार पर होने लगे। जहाँ तक मूल्यों के वर्गीकरण का प्रश्न है, यह कार्य प्रमुख रूप से मनोवैज्ञानिकों और समाजशास्त्रियों ने किया है। स्प्रेंगर ने मनोविज्ञान के क्षेत्र में मूल्यों का वर्गीकरण किया जो कि सर्वाधिक मान्य है। इसके अतिरिक्त आलपोर्ट, वर्नर एवम् अन्य प्रतिष्ठित मनोवैज्ञानिकों ने अपने अपने दृष्टिकोणों से मूल्य के वर्गीकरण स्थापित किए। स्प्रेंगर ने छः प्रकार के वर्गीकरण किए–

1. **सैद्धांतिक मूल्य**– तथ्यों में सत्य एवम् सर्वानिष्ठता का दर्शन करना।
2. **आर्थिक मूल्य**– उपयोगी एवम् व्यवहारिक विषयों में द्रव्य या मौद्रिक तरीके से विवेचन करना।
3. **सौन्दर्यात्मक मूल्य**– जीवन के कोमल पक्षों तथा सौंदर्यात्मक विषयों, कलात्मक आयामों एवम् साकारात्मक पक्षों में रूचि लेना।
4. **सामाजिक मूल्य**– सहयोग एवम् सहानुभूतिपरक विषयों में रूचि लेना
5. **धार्मिक मूल्य**– धर्म के विविध पक्षों एवम् क्रियाकलापों में रूचि लेना।
6. **राजनैतिक मूल्य**– राजनैतिक यानी राज्य के नीतियों के संबंध में रूचि लेना।

इस शोध प्रबंध में इन्हीं वर्गीकरण को ध्यान में रखते हुए एस. पी. अहलूवालिया के मूल्य परीक्षण का प्रयोग किया गया है, निम्नवत है–

1. **सैद्धांतिक मूल्य**– इस श्रेणी के तहत सत्य का अन्वेषण, रूचि, अनुभव एवं बौद्धिक दृष्टिकोण को प्रमुखता दी गई है।
2. **आर्थिक मूल्य**– इसमें व्यवहारिकता एवम् उपयोगिता पर विशेष जोर दिया गया है।

3. **सौंदर्यातमक मूल्य**– इस श्रेणी के अंतर्गत संगीत एवम् कला में अभिरूचियों वाले व्यक्तियों में विकसित मूल्यों को प्रधानता दी गई है।
4. **सामाजिक मूल्य**– व्यक्तियों के लिए प्रेम एवं सेवा जैसे मूल्यों पर जोर दिया गया है।
5. **धार्मिक मूल्य**– इस श्रेणी के अंतर्गत यह देखा गया कि मनुष्य जन्मजात रूप से भगवान में विश्वास, स्वयं के धर्म से संबंधित परम्पराएँ आदिभाव विकसित होते हैं।
6. **राजनैतिक मूल्य** –

राजनीति का क्षेत्र अत्यंत विस्तृत है। इसके अंतर्गत परिवार, समाज एवम् राष्ट्र प्रमुख रूप से आते हैं। समाज के अंतर्गत ही मनुष्यों में व्यवहारिक गुण विकसित होते है। इस श्रेणी में राजनीतिक परिधि को भी शामिल किया गया है। क्योंकि भावी पीढ़ी के कर्णधार ही चारित्रिक विकास के माध्यम से देश की व्यवस्था के सुचारू रूप से संचालन में अपना योगदान देते हैं।

अर्थशास्त्र के अनुसार मूल्यों को दो प्रकार से विभाजित किया गया है– (1) वाह्य मूल्य (2) आंतरिक मूल्य।

इसके अनुसार सारे मूल्य अपनी प्रकृति में आंतरिकता एवम् अमूर्तता को समाविष्ञ रखते हैं। इन्हीं से हमारे सारे आचार एवम् व्यवहार निर्देशित होते हैं इसलिए यह वर्गीकरण भी अतुंकान्त एवम् अतार्किक हैं। कुछ समाजशास्त्रीयों ने मूल्य का वर्गीकरण सकारात्मक और नकारात्मक रूप में किया है। लेकिन इन्होंने मूल्यों को केवल सकारात्मक रूप में ही स्वीकार किया और नकारात्मक रूप से मूल्यों को अवैध और अस्तित्वहीन करार दिया। वैसे समाजशास्त्रीयों ने यह भी कहा कि यदि कोई मूल्य किसी के लिए सकारात्मक है तो किसी और के लिए नकारात्मक भी हो सकता है। इसलिए यह वर्गीकरण भी अमान्य ही है। आज हमारे सामने स्थिति यह है कि मानवीय जीवन में जितने अधिक आयाम जुड़ते चले जा रहे हैं, उतनी ही तरह की मूल्यों में विविधता भी परिलाक्षित हो रही है। वास्तविकता यह है कि ये सारे वर्गीकरण भ्रामक और आंशिक है।

इस संबंध में राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान परिषद् ने भी तिरासी (83) मूल्यों को निम्न छः वर्गों में विभाजित किया। इनके अनुसार शिक्षा की प्रक्रिया के अंतर्गत इन मूल्यों को उचित स्थान दिया जाना चाहिए।

1. **सज्जनता या न्यायप्रियता** –

स्वच्छता, सत्यनिष्ठा, समाजकल्याण, सहयोग, साहस, अनुशासन, धैर्य, मित्रता, स्वामी भक्ति, शिष्टाचार, न्याय, आज्ञापालन, समय का सदुपयोग, पवित्रता, ज्ञान पिपासा, सादा जीवन, स्व सहायता, स्वाध्याय, आत्म निर्भरता, आत्म विश्वास, आत्म सम्मान, सहानुभूति, सत्य और असत्य अच्छाई एवम् बुराई में भेद करने की भावना, सहिष्णुता एवम् सच्चाई आदि।

2. **स्वानुशासन**–

आत्म नियंत्रण, समयबद्धता, नियमितता, ईमानदारी, भक्ति या निष्ठा, सत्यनिष्ठा, पहलकदमी, शुभचिन्ता साधन संपन्नता, जिज्ञासा, खोज प्रवृत्ति एवं भावी दृष्टिकोण आदि।

3. **मित्रतभाव**–

सहायता, दूसरे को सम्मान एवम् आदर, टीमभावना से कार्य, टीम भावना तथा परहित चिंतन आदि।

4. **मानवतावाद**–

व्यक्ति की गरिमा, शारीरिक श्रम को आदर सौजन्यता, समाज–सेवा, मानवता की सुदृढ़ता, सामाजिक दायित्व की भावना, खोज प्रवृत्ति तथा समानता की भावना आदि।

5. **लोकतंत्रीय भावना**–

नगरिकता, समानता, स्वतंत्रता, नेत्त्व, राष्ट्रीय एकता, राष्ट्रीय सजगता, देशभक्ति, सामाजिक न्याय, समाजवाद, राष्ट्रीय तथा नागरिक संपत्ति का महत्व और लोकतांत्रिक निर्णय आदि।

6. **अहिंसा**–

सांस्कृतिक मूल्यों की सुरक्षा, छूआछूत की समाप्ति, जीव दया, धर्म–निरेपेक्षता तथा सारे धर्मा को सम्मान, सार्वभौमिक मूल्यों में निष्ठा, सत्य, प्रेम, सुंदर तथा शिव।

संदर्भ :

1. Allport, G. W. (1961). *Pattern and growth in personality*. New York: Holt, Rinehart & Winston.
2. Alwin, D. F. (1984). Trends in parental socialization values: Detroit, 1958-1983. *American Journal of Sociology*, 90, 359-382.
3. Bakan, David. (1966). *The Duality of Human Existence*. Chicago: Rand McNally.
4. Bales, R. F., & Couch, A. (1969) The value profile: A factor analytic study of value statements. *Sociological Inquiry*, 39, 3-17.
5. Bardi, A. (2000). *Relations of values to behavior in everyday situations*. Unpublished doctoral dissertation. The Hebrew University.
6. Braithwaite, V. A., & Law, H. G. (1985). Structure of human values: Testing the adequacy of the Rokeach Value Survey. *Journal of Personality and Social Psychology*, 49, 250-263.

***

बौद्ध शिक्षा और इसका प्रमुख उद्देश्य

अरविन्द कुमार यादव *

बुद्धयुगीन समाज में अनेक विषयों की शिक्षा छात्रों को प्रदान की जाती थी। उनमे वेद, ब्राह्मण, साहित्य, उपनिषद, अर्थशास्त्र, शिल्प, वार्ता, व्यापकरण, दर्शन, पुराण, न्याय, धर्मशास्त्र काव्य, ज्योतिष और इतिहास की शिक्षा पर अधिक बल दिया जाता था। इन विषयों के अतिरिक्त लौकिक महत्त्व के भी अनेक विषय थे। जिनकी महत्ता दिन प्रतिदिन बढ़ती जा रही थी। चित्रकला और गृह निर्माण कला पर भी ध्याान दिया जाता था। लकड़ी और पत्थर पर खुदाई करने की शिल्प कला की भी शिक्षा दी जाती थी।[1]

बौद्ध शिक्षा निवृत्ति प्रधान थी। इसका प्रमुख उद्देश्य जीवन मे 'निर्वाण' की प्राप्ति था। अतः शिक्षा में बौद्ध धर्म के ज्ञान का बोलबाला था। अधिकांश 'सामनेर' बौद्ध धर्म शास्त्रों का अध्ययन करते थे। परन्तु यह अर्थ नहीं था। कि उस समय जीवनोपयोगी शिक्षा का अभाव था। मौर्यकाल तथा गुप्तकाल को तो भारत वर्ष के स्वर्णयुग के नाम से पुकारा जाता है। इन कार्यों में साहित्य, दर्शन, कला, व्यापार, कृषि, सैनिक आदि क्षेत्रों में भारत अपने सर्वोच्च शिखर पर आसीन था। वास्तव मे बौद्ध काल में शिक्षा दो भागों में विभक्त थी–प्रारम्भिक शिक्षा तथा उच्च शिक्षा। प्रारम्भिक शिक्षा के अन्तर्गत लिखना–पढ़ना तथा गणित सिखाया जाता था। उच्च शिक्षा के अन्तर्गत धर्म, दर्शन, आयुर्ववेद, शिल्पकला, सैनिक शिक्षा आदि का अध्ययन करया जाता था।

बौद्ध धर्म निवृत्तिवादी धर्म था जिसमें संसार के जीवन को दुःखमय और सांसारित भोगों को वंधनात्मक माना गया और इनसे मुक्ति ही जीवन का परम लक्ष्य स्वीकार किया गया। मुक्तावस्था को निर्वाण की संज्ञा दी गयी जिसका अर्थ है। 'बुझजाना'। यहाँ सम्भवतः तृष्णा के बुझाने अथवा शामित करने का भाव निहित है। बुद्ध ने संसार के दुःखों, उनके कारणों, उनके निरोध और निरोध के उपायों का व्याख्यान किया, और इसे ही उन्होने चार आर्य ग्रन्थों के रूप में प्रचारित किया जाता बौद्ध धर्म के मूलाधार है। ये चार आर्य सत्य बौद्ध शिक्षा के अनिवार्य अंग थे। बौद्धों की दृष्टि में चार आर्य सत्यों के अन्तर्गत ही बुद्ध का संमग्र धर्म–दर्शन समाहित है। उनके द्वारा उपदिष्ट यह धर्म बौद्ध दृष्टि से संसार के तट से निर्वाण के तट ले जाने वाला एक सेतु था[2] महात्मा बुद्ध ने कदाचित चार आर्य सत्यों का यह अवधारणा चिकित्साशास्त्र से ग्रहण की थी। जिसमें रोग–रोग, निदान आरोग्य और भैषज्य की चार अवस्थायें स्वीकृत हैं। उल्लेखनीय है कि तथागत की भिषग से तुलना की गयी है और चार आर्य सत्यों की वैधक के चार अंगों बौद्ध शिक्षा के मूल अंग थे, अतः श्रामणेरो एवं नवक भिक्षुओं को चार आर्य सत्यों की विशेष रूप से शिक्षा दी जाती थी। विनय और निकायों मे पहले सत्य के अन्तर्गत सांसारिक दुःखों को व्यापक अर्थ में ग्रहण किया गया है। दूसरे सत्य के अन्तर्गत प्रतीत्य समुत्पाद अथवा निदानों का उल्लेख है। तीसरे सत्य के अन्तर्गत निरोध का और चौथे सत्य के अन्तर्गत बोधिपाक्षित धर्मो का, विशेषतः आश्टांगिक मार्ग का वर्णन है। यहाँ प्रतीत्यसमुत्पाद और निर्वाण का किन्चित विवेचन आवश्यक है। क्योंकि प्रतीत्य समुत्पाद के अन्तर्गत संसार में व्याप्त दुःख के कारणों की तर्कसंगत व्याख्या की गयी है और निर्वाण मे मुक्तावस्था के स्वरूप का विवेचन है।[3]

प्रतीत्य समुत्पाद–:

बौद्ध शिक्षा के अन्तर्गतम समुत्पाद के ज्ञान पर विशेष बल दिया गया। प्रतीत्य समुत्पाद का मुख्य अभिप्राय दुःख की उत्पत्ति समझाना ओर इस प्रक्रिया में कार्य–कारण नियम का प्रतिपादन था। प्रायः ऐसा माना गया है कि चिंतन के इतिहास में प्रतीत्य समुत्पाद में कार्य–कारण भाव का व्यापक रूप से प्रतिपादन पहली बार हुआ। किन्तु जैसा कि पहले ही संकेत किया गया है कि कार्य कारण का सम्बन्ध चिकित्साशास्त्र में पहले से ही सुविदित था।[4] प्रारम्भ में दुःख के कारणों पर विचार

* प्रवक्ता- बी० एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

करते हुये इसका मूलाधार अविद्या को माना गया और फिर अविद्या से उत्पन्न तृष्णा और तृष्णजनित कर्मो को दुःख के कारणों में स्थान दिया गया हैं। इस प्रकार अविद्या, तृष्णा और तज्जनित कर्म दुःख के कारण माने गये। किन्तु क्रशः द्वादश निदानों की परिकल्पना विकसित हुयी और दुःख के कारणों को द्वादश निदानों की एक श्रृंखला के रूप में देखा गया। प्रतीत्यसमुत्पाद के अन्तर्गत द्वादश निदान इस प्रकार है–अविद्या, संस्कार, विज्ञान, नाम–रूप, षडायतन, स्पर्श, वेदना, तृष्णा, उपादान, भव, जाति और जरा–मरण। इन सबका व्यापक विवेचन यहाँ आवश्यक नहीं है। कालान्तर मे बौद्ध धर्म के विभिन्न सम्प्रदायों में प्रतीत्य समुत्पाद की अलग –अलग व्याख्याएं प्रस्तुत की गयीं। और उन सम्प्रदायों के अनुयायियों को उस सम्प्रदाय विशेष की दृष्टि से ही प्रतीत्यसमुत्पाद का उपदेश दिया जाता था।[5]

निर्वाण–:

बौद्ध शिक्षा के अन्तर्गत निर्वाण के स्वरूप का बोध भी शिक्षर्थियों को कराया जाता था। निर्वाण का स्वरूप ब्राह्मण धर्म के अन्तर्गत परिकल्पित मोक्ष से भिन्न था, क्योंकि बौद्ध धर्म में ब्रह्म अथवा आत्मा की सत्ता स्वीकृति नहीं थी। फिर भी निर्वाण के अतर्क्य और नित्य सत्य घोषित किया गया। इसे शान्त, ध्रुव अतर्कावचर और विरजपद बताया गया।[6] निर्वाण को निष्प्रपंच अथवा प्रपन्च व्युपशम की अवस्था भी कहा गया। इसे परम निःश्रेयस और परम सुख की अवस्था कहकर इसके महत्व का प्रतिपादन हुआ।[7] इस प्रकार निर्वाण मुक्ति की अवस्था का द्योतक है, जिसमें सभी तृष्णायें शान्त हो जाती हैं और परमशान्ति की स्थिति उत्पन्न होती है। प्रायः यह शंका व्यक्त की जाती है। कि बुद्ध ने आत्मा का निषेध किया और ऐसी स्थिति में निर्वाण उच्छेद का पर्याप्त हो जाता है। किन्तु इस सम्बन्ध में डॉ0 गोविन्द पाण्डेय का मत समीचीन प्रतीत होता हैं। डॉ0 पाण्डेय का कथन है कि तथागत ने अनेक प्रकार के प्रचलित आत्मवाद का खण्डन किया जो वस्तुतः विषयात्मवाद अथवा मूल अविद्या अथवा अध्यास का निराकरण हैं। इसी प्रयोजन से उन्होने देह और मन एवं उनके समस्त प्रपन्च को अनात्म भूत और हेय कहा। किन्तु साथ ही उन्होंने उच्छेदवाद का भी खण्डन किया।[8] डॉ0 पाण्डेय के अनुसार तथागत ने कहीं भी उपनिषदों में मूर्धन्यभूत, अनिर्चनीय, ब्रह्यत्मवाद का खण्डन नहीं किया। उनके अनुसार बुद्ध द्वारा नैरात्म्य का उपदेश आत्मा का सर्वथा निषेध नहीं है। वरन अनात्म वस्तुओं में ही अनात्मता का उपदेश है।[9]

बोधिपाक्षिक धर्म–:

महापरिनिर्वाण सूत्र में कहा गया है कि तथागत ने अपने अन्तिम समय में सैंतिस बोधिपाक्षिक धर्मो को अपने शिष्यों के लिये विरासत के रूप में छोड़ा था, किन्तु बोधिपाक्षिक धर्मो की यह विस्तृत संख्या अपेक्षाकृत बाद में विकसित हुई। पहले ये चतुष्क थे फिर पन्चक हुये और फिर अष्टक, किन्तु इनमें अष्टांग मार्ग अधिक लोकप्रिय हुआ। प्रायः अष्टांग मार्ग को तथागत के मूल देश का अंग माना जाता है। अष्टांग मार्ग में आचरण सम्बन्धी आठ विशेष नियमों का उल्लेख है। इनमें पहला सम्यक दृष्टि है जिसे प्रायः चार आर्य सत्यों का ज्ञान बताया गया है। सम्यक संकल्प राग–द्वेष वर्जित निष्काम विचार का सूचक है। सम्यक् वाक–मृषावाद, पैशुन्य, परूषता आदि से मुक्त वाणी का सूचक है। सन्यक् कर्मान्त प्राणतिपात, अदत्तादान और कामगत मिथ्याचार से विरति का सूचक है।[10] सम्यक् आजीव उचित आजीविका ग्रहण करने का निर्देश है। सम्यक् व्यापाक के अन्तर्गत अकुशल धर्मो से स्वयं को बचाया और कुशल धर्मो की भावना और अनुरक्षण उपदिष्ट था। सम्यक् स्मृति के अन्तर्गत ध्यान योग्य विषयों के निरन्तरण स्मरण पर बल दिया गया। वस्तुतः स्मृति के अभ्यास को निरन्तर आध्यात्मिक जागरूकता का साधन माना गया। स्मृतिचित्त को असत् के सन्यक् और असत् के प्रचार से बचाती है। स्मृति के लिये ध्यान को आवश्यक बताया गया है। निकायों में कायगता स्मृति, आनापान स्मृति एवं चार स्मृति प्रस्थानों का उल्लेख है। कायगता स्मृति से अपने और दूसरों के शरीर हाड़–मांस के पुतले मात्र प्रतीत होते है। और काया से वितृष्णा होती है। आनापान स्मृति एक प्रकार से बौद्धों को प्राणायाम है। इसमें श्वास की गति को निरन्तर लक्ष्य किया जाता है। चार स्मृति प्रस्थानों में कायानुपश्यना, वेदनानुपश्यना, चित्तानुपश्यना और धर्मानुपश्यना को स्थान दिया गया हैं। कायानुपश्यना में कायिक धर्मो का बोध विहित है। वेदनानुपश्यना में सुख–दुःख आदि वेदनाओं का यथार्थ बोध किया

जाता है। चित्तानुपश्यना चित्त की जागरूकता है। धर्मानुपश्यना नीवरण, स्कन्ध, आयतन, संयोजन बोध्यंग एवं चार आर्य सत्यों के बोध और रमरण से उत्पन्न होती है। संक्षेप में स्मृति का साधन तन और मन की स्थिति और गति के अनुसंधान के द्वारा किया जाता है।[11] समाधि चित्त के एकाग्रता की अवस्था है। इसके लिए ध्यान को आवश्यक बताया गया। ध्यान ही आगे चलकर समाधि को उत्पन्न करता है। इस प्रकार जब हम आष्टांगिक मार्ग पर विचार करते हैं। तो सारांशतः यह देखते है कि इसके अन्तर्गत संयम पुरूषार्थ, जागरूकता और एकाग्रता पर विशेष बल दिया गया। बौद्ध शिक्षा के अन्तर्गत ब्रह्मचर्य, अहिंसा, मैत्री, करूणा, सहानुभूति, सहिष्णुता आदि का भी प्रमुख स्थान था, क्योंकि ये बौद्ध शील के महत्वपूर्ण अंग थे।[12]

संदर्भ :

1. इलियट, सर चार्ल्स– हिन्दुइज्म एण्ड बुद्धिज्म, जिल्द–1, लन्दन 1962, पृ0–42।
2. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ0–72, 73।
3. खुद्दक निकाय– सम्पादित भिक्षु जगदीश कश्यप, नालन्दा देवनगरी संस्करण 1959, पृ0–174।
4. सिंह, डा0 अनिल कुमार –बौद्धकालीन शिक्षा पद्धति, पृ0–160।
5. द्र0 पाण्डेय, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ0–90–92।
6. इतिवुत्तक, सुत्त 43।
7. अंगुत्तर निकाय, जि0 3, पृ0 –354।
8. मज्झिम निकाय, जि0 1, 508।
9. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ0–105–107।
10. खुद्दक निकाय– सम्पादित भिक्षु जगदीश कश्यप, नालन्दा देवनगरी संस्करण 1959, पृ0–430।
11. पाण्डे, गोविन्द चन्द्र, बौद्ध धर्म का इतिहास, पृ0–105–121
12. विनय पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृ0– 150।

***

नारी शिक्षा : एक अध्ययन

डॉ. नागेन्द्र राम *

शिक्षा शब्द संस्कृत भाषा की शिक्ष् धातु में अ प्रत्यय लगने से बना है। शिक्षा का अर्थ होता है सीखना और सिखाना। इसलिये शिक्षा का अर्थ हुआ सीखने–सिखाने की क्रिया। अंग्रेजी भाषा के एजूकेशन शब्द लैटिन भाषा के एजूकेटम (Educatum) शब्द से बना है और एजूकेटम शब्द उसी भाषा ए (E) तथा ड्युको (Duco) दो शब्दों से मिलकर बना है। ए का अर्थ हुआ– बच्चे की आन्तरिक शक्तियों को बाहर की ओर प्रकट करना अर्थात् विद्यार्थी के अन्दर इस प्रकार की कुशलताएँ उत्पन्न की जाएँ कि वह अपनी सम्भावनाओं का पूर्ण रूप से प्रयोग कर सके। इसको इस प्रकार से भी कहते हैं कि जो कुछ वातावरण के द्वारा बालक को सम्भावनाएँ प्राप्त होती हैं, उनको शिक्षा के द्वारा बाहर की ओर निकाला जाये। व्यक्ति के जीवन को सकारात्मक, संस्कारयुक्त एवं सार्थक जीवन जीने का सम्बल देने के लिए शिक्षा ही एक ऐसा महत्वपूर्ण साधन है जो यह सब कुछ प्रदान कर सकती है, यही उसके मस्तिष्क को विकसित और कार्यशील बनाने के लिए और एक जागरूक एवं समझदार सामाजिक प्राणी बनाने में सहायक होती है। शिक्षा हमारा मानसिक विकास करती है और हमें एक सभ्य सामाजिक प्राणी रूप में जीने के लायक बनाती है। यह मनुष्य की आंतरिक क्षमता तथा उसके व्यक्तित्व को विकसित करने की प्रक्रिया है। यह उसे समाज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने के लिए समाजीकृत करती है और एक उत्तरदायी नागरिक एवं समाज का सक्रिय सदस्य बनाने के लिए उसे आवश्यक ज्ञान तथा कौशल उपलब्ध कराती है।

शिक्षा सभी के लिये आवश्यक है। इसका महत्व किसी से भी छिपा नहीं है किन्तु स्त्रियों के लिये तो शिक्षा का महत्व विशेष रूप से आवश्यक है। क्योंकि हमारे समाज की धुरी परिवार होते है और परिवार की सारी गतिविधयाँ परिवार की स्त्री के इर्द–गिर्द ही घूमती रहती हैं और जब स्त्री शिक्षित होगी तो निश्चित रूप से इसका लाभ पूरे परिवार को मिलेगा और जब परिवार को लाभ मिलेगा तो समाज को भी अवश्य मिलेगा। एक शिक्षित स्त्री कई स्तरों के माध्यम से समाज को आगे बढ़ाने का कार्य करती है। स्त्री के शिक्षित होने से कई प्रकार के परिवारों के विघटन को रोका जा सकता है। आबादी पर भी अंकुश लगाया जा सकता है। साथ ही परिवार से सम्बन्धित तमाम सामाजिक बुराइयाँ व कुरीतियाँ भी हटाई व झुठलाई जा सकती है। इस प्रकार स्त्रियों की शिक्षा किसी भी दृष्टि से पुरूषों की शिक्षा से कम महत्वपूर्ण नहीं है।

जीवन के समस्त पहलुओं के सर्वांगीण विकास का माध्यम शिक्षा है। प्राचीन भारतीय संस्कृति की ओर दृष्टिगत करने पर शिक्षा के क्षेत्र में नारी की स्थिति अत्यन्त संतोषजनक पाते हैं। जैसे ही नारी के धार्मिक अधिकारों का ह्रास होने लगा, उसके परिणामस्वरूप नारी शिक्षा का भी ह्रास होने लगा। कन्यायें भविष्य में योग्य माता बन सकें इसलिए उन्हें शिक्षा अनिवार्यतः दी जाती थी। लक्ष्मण मन्दिर में एक दृश्य अंकित है जिसमें एक माता अपने बच्चों को दीवाल पर कुछ लिखकर समझा रही है, इससे एक तो स्त्री शिक्षा की अनिवार्यता सिद्ध होती है। पुरातात्विक स्रोतों में स्त्री शिक्षा के प्रमाण होते हुए भी एक बात खटकती है कि इनमें कहीं भी स्त्रियों को प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा ग्रहण करते हुए नही दर्शाया गया है।

एक तरह से देखा जाय तो नारी शिक्षा बिल्कुल बेमायने हो चुकी थी। परिणामः अल्प संख्या में नारियाँ गुरूकुलों में जाती थी। क्योंकि यह सभी के वश की बात नहीं थी कि वो अपने परिवार में नारियों के लिए व्यक्तिगत अध्यापक की व्यवस्था सुनिश्चित करें। नारियों के लिए विशेष शिक्षा यथा संस्कृत और पालि साहित्य के साथ गृहविज्ञान और कला कौशल से संबंधी शिक्षा का प्रावधान था। ऐसा इसलिए किया गया ताकि उनका जीवन आरामदेह एवं सुखद के साथ लालित्य से परिपूर्ण हो।

---

* विभागाध्यक्ष- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

अभिजात्य परिवार की कन्याएँ सुशिक्षित एवम् सुसंस्कृति होने लगी। इनको काव्य, संगीत, नृत्य, वाद एवं कला में प्रवीणता हासिल थी।

सल्तनतकाल में महिलाएं शिक्षा से वंचित रही। शाही घराने की नारियॉ बेशक शिक्षा–दीक्षा से परिपूर्ण रही। लेकिन इनको शिक्षा महल की चारदीवारों के बीच ही प्रदान की जाती थी। उस समय हिन्दुओं और मुसलमानों के लिए क्रमशः विद्यालयों एवं मदरसे की व्यवस्था थी। मुस्लिम कन्याओं के लिए मकतब की व्यवस्था थी, जिसमें उनको प्राथमिक स्तर की शिक्षा मिलती थी। इसके बाद की शिक्षा उनको किसी विशेष संस्था से मुहैया कराई जाती थी। इनको धार्मिक शिक्षा इन्हीं के परिवार या समुदाय की बुजुर्ग महिलाओं के द्वारा प्रदान की जाती थी। इनको कुरान या हदीस कंठस्थ कराया जाता था। जहां तक स्त्रियों की शिक्षा में प्रगति का सवाल है, इस पर प्रगतिशील और सामंतवादी ताकतों का संरक्षण रहा। जो भी शासक शिक्षा के प्रति अभिरूचि रखते रहे, उन्होंने ढेर सारी कोशिशें की। हिंदू और मुस्लिम नारियों में धार्मिक पुस्तकों के सृजन में या इसके अध्ययन में गहरी रूचि ली। तुलनात्मक रूप से देखा जाय तो हिंदू नारियॉ यदा कदा ही दृष्टिगोचर होती रही क्योंकि इस समय बाल विवाह और पर्दा प्रथा चरम पर था।

12वीं सदी से लेकर 19 सदी के बीच मध्यकालीन भारत में साहित्य एवं कला महिलाओं द्वारा सराही गई और इसमें अप्रत्याशित वृद्धि हुई। इस काल की महिलाओं द्वारा बाग लगवाने, मंदिर बनवाने, कुएँ खुदवाने, गीतो को रचने और साहित्य–सृजन जैसी रचनात्मक गतिविधियाँ प्रस्तुत की गई। उन्नीसवीं शताब्दी पूरी तरह से धार्मिक सुधार आंदोलन के लिए ही जानी जाती है। इस शताब्दी में भारत ने नये युग में प्रवेश किया। यहाँ के चिंतकों का एकमात्र उद्देश्य भारत में सांस्कृतिक पुनर्जागरण ही लाना था। इसके नेपथ्य में महिला जगत में चेतना और जागरूकता का विकास भी सन्निहित था। लेकिन यह शिक्षित महिला के बिना कत्तई संभव नहीं था। इसके लिए कुछ सुधारवादी नेताओं और ईस्ट इंडिया कंपनी ने भी प्रयास किए। इस समय भारत में शिक्षा की स्थिति अत्यंत दयनीय रही। 18वीं और 19वीं शताब्दी में कुछ विदुषियाँ सामने आई जो ज्ञान का भंडार थी। ये वास्तव में नारी जगत में आदरणीय रही। इनमें विद्यालंकार, श्याम मोहनी देवी और द्रव्यकपी है। ईसाई मिशनरियों के द्वारा नारी शिक्षा के लिए वृहत स्तर पर कार्य किए गए। नारी शिक्षा के संदर्भ में मिशनरियों का प्रयास वास्तविक रूप से सराहनीय रहा है। ईसाई मिशनरियॉ इस मामले में पहले भी पहल करती रही है और बालिकाएं सतत शिक्षित होती रही है। 18वीं शताब्दी के समाप्त होते ही तीन शिक्षण संस्थाएँ आरंभ हो गई। कलकत्ता, मदरसा (1700) बनारस संस्कृत कॉलेज (1791 ई0) एवम् मद्रास फोर्ट विलियम कॉलेज (1800) ई0 में शुरू हो गए। इन कॉलेजों में नारियों के लिए शिक्षा व्यवस्था शुरू हो गई।

15 अगस्त 1947 ने भारतीय इतिहास में एक नए तथा गौरवपूर्ण युग का समारम्भ किया। गणतंत्र के सिद्धांतों और मान्यताओं की सम्यक् पूर्ति के लिए शिक्षा का प्रसार, राज्य का प्रथम उत्तरदायित्व हो गया। राज्य का यह उत्तरदायित्व हुआ कि वह देश के सभी बच्चों और बच्चियों को समान अधिकार और विकास के समान अवसर प्रस्तुत करें। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए यह आवश्यक हो गया कि भारतीय शिक्षा का पुनर्गठन, राष्ट्रीय हित के विचार से, शीघ्र किया जाए। यह भी आवश्यक हो गया कि देश के सभी स्कूली–अवस्था के बालक–बालिकाओं के लिए अनिवार्य शिक्षा, कम से कम अवधि में उपलब्ध करा दी जाए। स्वतंत्रता के तुरंत बाद माध्यमिक तथा उच्च शिक्षा के क्षेत्र में पुनर्गठन की आवश्यकता स्पष्ट दीख पड़ी और इनसे संबंधित वैज्ञानिक तथा तकनीकी शिक्षा का आयोजन भी आवश्यक हो गया था। संविधान के 'निर्देशन–तत्व' में शिक्षा सम्बन्धी उत्तरदायित्व भी स्पष्ट रूप से राज्य की जिम्मेदारी बन गये थे। संविधान निर्माताओं ने बालिका शिक्षा की जरूरत को भी समझा था लेकिन स्वतंत्रता के तुरंत बाद बालिका शिक्षा की दिशा में कोई ठोस काम नहीं किया जा सका क्योंकि भारत सरकार अधिनियम 1947 ने देश की स्वतंत्रता के साथ–साथ इसके विभाजन की भी व्यवस्था कर दी थी। भारत का विभाजन हुआ और इसी के साथ सारा देश साम्प्रदायिक दंगों की आग में झुलस उठा।

ऐसी ही प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वतंत्र भारत की शिक्षा के इतिहास का प्रथम अध्याय शुरू हुआ। स्पष्टतः इन प्रतिकूल परिस्थितियों में सरकार शिक्षा अथवा अन्य रचनात्मक कार्यों की ओर न तो पर्याप्त ध्यान दे सकती थी और न ही वह इस मद में पैसा खर्च कर सकती थी। यही कारण है कि स्वतंत्रता के बाद प्रथम चरण में भारतीय शिक्षा के क्षेत्र में वह प्रगति नहीं हो सकी जो कि अनुकूल परिस्थितियों में हो सकती थी। जनवरी 1948 में भारत सरकार के तत्वाधान में एक सम्मेलन बुलाया गया। सम्मेलन में सभी राज्यों के शिक्षा मंत्री, विश्वविद्यालयों के कुलपति और शिक्षाविद्ो को बुलाया गया। इस सम्मेलन में मुख्य रूप में इस बात पर चर्चा की गयी कि राज्य बच्चों के लिए बुनियादी शिक्षा का प्रबंध एवं व्यस्कों के लिए सामाजिक शिक्षा के प्रबन्ध को प्राथमिकता प्रदान करे। तथा राज्य ऐसी शिक्षा का आयोजन शीघ्र से शीघ्र प्रारम्भ करे साथ ही साथ सम्मेलन में यह भी कहा गया कि देश में वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा के प्रसार के लिए ठोस कदम उठाने जाये ताकि देश में कृषि एवं उद्योगों का विकास हो सके।

18 मार्च 1952 में आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में माध्यमिक शिक्षा पुनर्गठन समिति का गठन किया गया। इस मिति को अध्यक्ष के नाम से इसे द्वितीय आचार्य नरेन्द्र देव नाम दिया गया। समिति (Second Acharya Narendra Deo Committee) इस समिति ने स्त्री शिक्षा से सम्बन्धित अपने निम्न सुझाव दिये हैं।

1. स्त्री शिक्षा बाल विद्यालयों की वर्तमान स्थिति मे ंसुधार किया जाये।
2. स्त्रियों की शिक्षा से सम्बन्धित अन्य नये विद्यालय खोले जाये।
3. स्त्रियों की आवश्यकताएँ पुरूषों की अपेक्षा कुछ भिन्न होती हैं। उनकी शिक्षा की व्यवस्था अलग से की जाये।
4. गृह विज्ञान विषय की अलग से व्यवस्था की जाये।

विश्वविद्यालय शिक्षा आयोग के बाद भारत सरकार ने सन् 1952 में माध्यमिक शिक्षा आयोग का गठन किया ताकि माध्यमिक शिक्षा के स्तर पर आने वाली दिक्कतों को समझा जा सके। 1958 में श्रीमती दुर्गाबाई देशमुख की अध्यक्षता में भारत सरकार में एक समिति का गठन किया जिसका कार्य प्रथमिक और माध्यमिक स्तर पर–अध्ययनरत बालिकाओं की शिक्षा को बढ़ावा देने के बारे में था। इसी संदर्भ में सन् 1959 में केन्द्र सरकार ने एक परिषद् स्थापित की जिसे राष्ट्रीय स्त्री शिक्षा परिषद् कहा गया। सरकार ने सन् 1964 में एक शिक्षा का गठन किया। इस आयेाग का अध्यक्ष डा. डी.एस. कोठारी को नियुक्त किया गया था। इसलिए इसे कोठारी शिक्षा आयेाग या कोठारी आयेाग के नाम से भी जाना जाता है। कोठारी आयोग ने विभिन्न स्तरों पर शिक्षा के विकास से संबंधित अध्ययन किया और अपनी रिपोर्ट सरकार को सौंपी। आयोग ने बालिका शिक्षा पर भी विशद् अध्ययन किया था इसलिए उसकी बालिका शिक्षा संबंधी सिफारिशें काफी महत्वपूर्ण मानी जाती हैं। कोठारी आयेाग ने बालिका शिक्षा के महत्व को मानते हुए कहा था कि इस पर जितना ध्यान दिया जाए कम है। भारत ने राष्ट्रीय शिक्षा नीति की (1968) की घोषणा की इस नीति में 17 सूत्रीय कार्यक्रमों को शामिल किया गया था। इस राष्ट्रीय नीति का उद्देश्य था कि भारत में एक ऐसी शिक्षा प्रणाली को विकसित किया जाये जिसमें राष्ट्रीय सेवा के विभिन्न क्षेत्रों के लिये दृढ़ संकल्प उच्च चरित्र वाले योग्य लड़के–लड़कियाँ उत्पन्न हों। भारत सरकार द्वारा सन् 1986 ई0 में राष्ट्रीय शिक्षा नीति घोषित की गयी। इस राष्ट्रीय शिक्षा नीति में बालिका शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया था। शिक्षा नीति का भाग–4 तो लगभग पूरी तरह से बालिका शिक्षा को ही समर्पित है। इस भाग में बालिका शिक्षा के संदर्भ में निम्नलिखित बातें कहीं गयी हैं:

- महिलाओं की समानता हेतु शिक्षा –
- प्रौढ़ शिक्षा में महिलाएं –
- महिला निरक्षरता दूर करने को प्रयास –
- निरक्षरता उन्मूलन हेतु प्रतिबद्धता –

भारतीय महिलाओं ने आजादी के बाद से अनेकों भूमिकाएँ निभायी हैं और अनेक क्षेत्रों में उत्कृष्टता हासिल की है। महिलाएँ अपनी पहचान बनायें इस दृष्टि से प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में हुई कैबिनेट की आर्थिक मामलो की समिति ने 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओ' कार्यक्रम का विस्तार अखिल भारतीय स्तर पर देश के सभी 640 जिलों (2011 की जनगणना के अनुसार) में करने के प्रस्ताव का अनुमोदन किया। इसका उद्देश्य बच्चों के लिंग अनुपात पर गहन सकारात्मक प्रभाव डालना है। 'बेटी बचाओ बेटी पढ़ाओं' कार्यक्रम के विस्तार का अनुमोदन 161 जिलों में इस कार्यक्रम के सफल कार्यान्वयन के आधार पर किया गया।

संदर्भ :

1. डा0 अल्तेकार एस.ए.–पेजीशन ऑफ वू–मेन इन हिन्दू सिविलिजेशन मोतीलाल बनारसी दास, बनारस, द्वितीय संस्करण 1956
2. प्रो0 इन्द्र–स्टेट्स ऑफ वू–मेन इन एन्शियेन्ट इण्डिया लाहौर 1940
3. ईलियट एण्ड डाउसन–हिस्ट्री ऑफ इण्डिया एज टोल्ड हिज ओन हिस्टोरियन
4. डॉ0 उपाध्याय रामजी–प्राचीन भारत की सामाजिक संस्कृति रामनरायण लाल बेनी माधव, इलाहाबाद–2, सन् 1963
5. शुक्ल, सुरेशचन्द्र एवं कृष्ण कुमार : शिक्षा का समाजशास्त्रीय संदर्भ, ग्रंथ शिल्पी (इंडिया) प्रा0 लि0, लक्ष्मीनगर, दिल्ली, 2008।
6. यू0 एन0 डी0 पी0 : हयूमन डवलपमेन्ट रिपोर्ट (2017) http/www.undp.org.

***

राष्ट्र निर्माण में प्राथमिक शिक्षा रजनीश कुमार शुक्ल

रजनीश कुमार शुक्ल *

स्वतंत्रता प्राप्ति के 53 वर्ष बाद भारत सरकार ने आखिरकार शिक्षा को मौलिक अधिकारों में शामिल करने का फैसला किया है। सबके लिए प्राथमिक शिक्षा आजादी मिलने के समय से ही राष्ट्रीय लक्ष्य के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। हमारे संविधान निर्माताओं ने सबके लिए प्राथमिक शिक्षा को राष्ट्र निर्माण के लिए अनिवार्य घटक स्वीकार किया था। राज्य के नीति–निर्देशक तत्वों में कहा गया है कि राज्य 10 वर्ष के भीतर ऐसी व्यवस्था करेगा कि 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चो को निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा मिल सके। राष्ट्रीय शिक्षा नीतियों में संवैधानिक निर्देश को दोहराया जाता रहा है। 1968 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति में संकल्प व्यक्त किया गया था कि 21वीं सदी में 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों को संतोषजनक गुणवत्ता की निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा प्रदान की जायेगी। केन्द्र सरकार सन् 2005 तक सबके लिए शिक्षा का लक्ष्य पाने और पूरे राष्ट्र को साक्षर बनाने के प्रति वचनबद्ध है। सबके लिए प्राथमिक शिक्षा संरचनागत समायोजन नीतियों का उपकेन्द्र है, जो बच्चों, महिलाओं, गरीब और उपेक्षित लोगों के कल्याण उपायों में बढ़ोत्तरी के सामाजिक कार्यक्रम से जुड़ा हुआ है।

यह महत्वपूर्ण है कि प्राथमिक शिक्षा की स्थिति के बारे में राज्यों का स्पष्ट विश्लेषणक किया जाये और यह तय किया जाये कि सन् 2005 तक सबके लिए प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने की दिशा में क्या उपाय किए जाने चाहिए। 1947 में स्वतंत्रता प्राप्ति के पहले औपनिवेशिक शासन ने एक ऐसी शिक्षा प्रणाली की स्थापना की थी, जिसकी पहुंच सीमित थी और विस्तृत जन समुदाय उससे वंचित रह जाता था। यह शिक्षा पद्धति उस समय प्रचलित सामाजिक आर्थिक और राजनीतिक प्रणालियों के अनुरूप थी। इसके संस्थापक मैकाले ने साफ–साफ कहा था कि शिक्षा पद्धति का लक्ष्य भारतीयों की एक ऐसी नस्ल पैदा करना था जो तन से भारतीय लेकिन मन से अंग्रेज (काले अंग्रेज) हों। यही वजह थी कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन ने ब्रिटिश शिक्षा पद्धति की कड़ी आलोचना की। यह कहा गया कि शिक्षा प्रणाली केवल ''सीखने के कौशल'' पर बल देती है न कि ''जीवन कौशल'' पर और यह उन भारतीय परम्पराओं का सम्मान नहीं करती जिनमें सबके लिए शिक्षा की वैश्विक भावनाएं व्यक्त की गई है। गोपाल कृष्ण गोखले का अनिवार्य शिक्षा विधेयक भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन की भावनाओं का प्रकटीकरण था।

नया दृष्टिकोण –

साक्षरता और जनसंख्या का आकार राष्ट्रीय विकास के बुनियादी घटक हैं। संविधान के अनुच्छेद 41 और 45 में शिक्षा के बारे में राज्य नीति के निर्देशक सिद्धांतों को नई अवधारणा का आधार कहा जा सकता है। 12 राज्यों और 4 संघशाषित प्रदेशों ने निःशुल्क एवं अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा के लिए कानून बनाए है। सभी राज्यों ने उच्च प्राथमिक कक्षाओं तक ट्यूशन फीस से छूट प्रदान की है। किन्तु अनिवार्यता को सामाजिक–आर्थिक और राजनीतिक कारणों से लागू नहीं किया जा सकता है। प्राथमिक शिक्षा के सर्वव्यापीकरण में राज्य सरकारें अभी तक तीन पहलुओं पर बल देती रही है। ये हैं सबकी पहुंच, सर्वसाधारण और सार्वभौम उपलब्धि इन ोत्रों में किए गए एकजुट प्रयासों से देश में प्राथमिक शिक्षा का महत्वपूर्ण विस्तार हुआ है। प्राथमिक स्कूलों की संख्या 1950–51 में मात्र 2 लाख 11 हजार थी जो 1995–96 में बढ़कर 5 लाख 90 हजार हो गई। इस अवधि में उच्च प्राथमिक स्कूलों की संख्या 13,000 से बढ़कर 1 लाख 71 हजार पर पहुंच गई। इसी प्रकार 1950–51 में प्राथमिक स्तर पर कुल दाखिला अनुपात (जी0ई0आर0) 43 प्रतिशत था, जो 1995–96 में बढ़कर 104 प्रतिशत देश

* प्रवक्ता- बी० एड० विभाग, किसान पी० जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

की 95 प्रतिशत आबादी के लिए 1 किलोमीटर के दायरे में एक प्राथमिक स्कूल और 85 प्रतिशत आबादी के लिए तीन किलोमीटर के दायरे में एक उच्च प्राथमिक स्कूल उपलब्ध है। 15 करोड़ बच्चों और 30 लाख शिक्षकों के साथ हमारी प्राथमिक शिक्षा प्रणाली दुनिया की सबसे बड़ी प्राथमिक शिक्षा प्रणालियों में एक है। कक्षा 1 से 8 तक लड़कियों की संख्या और महिला शिक्षिकाओं की संख्या में लगातार वृद्धि हो रही है।

नीति और आयोजन प्रक्रिया –

पिछले पांच दशकों में खासकर पंचवर्षीय योजनाओं में देश ने शिक्षा सुविधाओं के विकास और प्रसार में उल्लेखनीय उपलब्धियां हासिल की है। आजादी के बाद के वर्षों में प्राथमिक शिक्षा प्रणाली में अतिरिक्त संसाधनों के आवंटन के माध्यम से प्राथमिक शिक्षा प्रणाली का विस्तार हुआ है। 1968 की प्रथम राष्ट्रीय शिक्षा नीति में निःशुल्क और अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा की सिफारिश की गई थी और लड़कियों तथा अ0जा0 और अ0ज0जा0 से सम्बद्ध बच्चों को शिक्षा के समान अवसर देने पर जोर दिया गया था। 1986 की राष्ट्रीय शिक्षा नीति और तत्संबंधी कार्ययोजना (1992) की घोषणा देश की शैक्षिक क्षमता की विस्तृत समीक्षा के बाद की गई थी। इस नीति में प्रस्ताव किया गया था कि सन् 2005 तक सबके लिए अनिवार्य प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य प्राप्त किया जायेगा।

हालांकि शिक्षा के लिए बजटीय आवंटन में बढ़ोत्तरी की गई है, फिर भी विभिन्न राज्यों में सरकार ने प्राथमिक शिक्षा के लिए आवंटन की निश्चित कार्यनीति पर स्पष्ट ध्यान केन्द्रित किए बिना कई शिक्षाओं से धन जुटाने की कोशिश की है। प्राथमिक शिक्षा के लिए योजनागत आवंटनों में सतत् वृद्धि हुई है फिर भी उसे संवैधानिक प्रतिबद्धताओं को पूरा करने के लिए पर्याप्त नहीं कहा जा सकता। आजादी मिलने के बाद की 50 वर्ष की अवधि में केन्द्र और राज्य सरकारों ने सभी को गुणवत्ता युक्त शिक्षा उपलब्ध कराने के लिए उत्तरोत्तर अधिक धन खर्च किया। स्कूलों में बेहतर बुनियादी सुविधाएं, अधिक संख्या में शिक्षक उपलब्ध कराना और उन्हें आकर्षक वेतन देना, क्षेत्रीय भाषाओं में निःशुल्क पाठ्यपुस्तकें समय पर उपलब्ध कराना, छात्रवृत्तियों, वर्दियों और स्कूल में दोपहर के भोजन की व्यवस्था करने जैसे उपायों पर राज्य सरकारों ने पर्याप्त ध्यान दिया है। जिनकी प्राथमिक शिक्षा उपलब्ध कराने में मुख्य भूमिका है। 'सबके लिए प्राथमिक शिक्षा' का लक्ष्य हासिल करने के लिए किए गए सभी उपायों के बावजूद यह काम पूरा नहीं हो पाया है और दाखिलों में कमी तथा शिक्षा अधूरी छोड़ने वालों की दर अभी भी ऊंची बनी हुई है। असमानता की समस्या हल करने, बच्चों को स्कूल में रोकने और प्राथमिक स्तर पर समानता लाने के लिए आठवीं पंचवर्षीय योजना में दो बड़े कार्यक्रम शुरू किए गए। जिला प्राथमिक शिक्षा कार्यक्रम (डी0पी0ई0पी0) और प्राथमिक शिक्षा पोषाहार सहायता (दोपहर का भोजन) कार्यक्रम। आठवीं योजना के दौरान लड़कियों और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के बच्चों के दाखिलों में कमी का रूझान देखा गया। किन्तु सार्वभौम प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य हासिल करने की दिशा में अभी बहुत कुछ किया जाना है। नौवीं पंचवर्षीय योजना में सन् 2005 तक समूचे राष्ट्र को साक्षर बनाने का लक्ष्य पाने का संकल्प व्यक्त किया गया है। दोपहर का भोजन देने के कार्यक्रम की शुरूआत सभी राज्यों में की जायेगी ताकि प्राथमिक और मिडिल स्कूलों में नियमित हाजिरी और बच्चों का ठहरना सुनिश्चित किया जा सके। अधिकाधिक युवाओं को नौकरी पाने और स्वरोजगार शुरू करने में कामयाब बनाने के लिए तकनीकी एवं व्यावसायिक कौशल और प्रशिक्षण की व्यवस्था पर अधिक धन खर्च किया जायेगा। राष्ट्रीय साक्षरता अभियान (एन0एल0एम0) के तहत औसतन एक करोड़ प्रौढ़ों को हर वर्ष साक्षर बनाने और विशेष साक्षरता के लिए प्रयास किए जाएंगे। ओपन लर्निंग सिस्टम (मुक्त शिक्षा प्रणाली) को मजबूत बनाया जायेगा ताकि पूर्ण कालिक संस्थागत प्रणाली से शिक्षा पाने में असमर्थ लोगों को प्राथमिक स्तर से लेकर उच्चतर स्तर तक शिक्षा प्राप्त करने की सुविधायें मुहैया कराई जा सकें।

प्राथमिक शिक्षा और बाहरी सहायता –

थाईलैंड के जोमिटिएन शहर में मार्च 1990 में 'सबके लिए शिक्षा के बारे में विश्व सम्मेलन' आयोजित किया गया था। इस सम्मेलन के बाद से बहुराष्ट्रीय और द्विपक्षीय सहायता एजेंसियों द्वारा

विकासशील देशों में प्राथमिक शिक्षा के लिए निवेश के बारे में प्रतिबद्धता और इच्छा शक्ति प्रदशित की गई। अंतर्राष्ट्रीय सहायता से एक बड़ा कार्यक्रम (डी0पी0ई0पी0) 1992 में शुरू किया गया। इसके लिए विश्व बैंक और यूरोपीय देशों ने सहायता प्रदान की। इस कार्यक्रम में जिला स्तर पर विकेन्द्रीकृत आयोजन और एकीकृत कार्यक्रम के जरिए प्राथमिक शिक्षा को बढ़ावा देने के लिए एक पूर्णतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाता है। 1997 में इस कार्यक्रम का विस्तार 14 राज्यों के 149 जिलों में किया जा चुका था। लोक जुम्बिश (एलजेपी) और शिक्षा कर्मी परियोजनाएं (एस0के0पी0) दो अन्य सफल अंतर्राष्ट्रीय परियोजनाएं हैं। लोक जुम्बिश का अर्थ है प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के लिए जन आंदोलन। इस कार्यक्रम में सबके लिए प्राथमिक शिक्षा का लक्ष्य पाने के मार्ग में आने वाली समस्याओं के बारे में पूर्णतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाता है, जिसके अंतर्गत स्थानीय समुदाय, शिक्षण व्यवसाय, शैक्षिक प्रशासन और विद्यार्थियों के बीच एक संवाद कायम किया जाता है। शिक्षा कर्मी परियोजना प्राथमिक शिक्षा के वितरण में एक मानक परिवर्तन पर बल देती है।

सामुदायिक भागीदारी –

विकेन्द्रीकरण की प्रक्रिया से प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण के हमारे प्रयासों को प्रोत्साहन मिलता है। 1986 की नई राष्ट्रीय शिक्षा नीति में प्राथमिक शिक्षा का प्रबंध ग्राम शिक्षा समितियों को सौंपे जाने की बात कही गई है। यह वास्तव में प्रत्यक्ष सामुदायिक भागीदारी बढ़ाने का प्रयास है। नई शिक्षा नीति के बारे में 1992 की कार्रवाई योजना में सूक्ष्य आयोजन पर बल दिया गया है, जो एक ऐसी प्रक्रिया है जिसमें प्रत्येक परिवार और प्रत्येक बच्चे के अनुसार शिक्षा की योजना तैयार की जाती है। इसके अंतर्गत प्रत्येक बच्चा नियमित रूप से किसी स्कूल अथवा अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र, या किसी अन्य उपर्युक्त स्थान पर शिक्षा प्राप्त करता है और कम से कम आठ वर्ष की स्कूली शिक्षा पूरी करता है अथवा इसके समकक्ष अनौपचारिक शिक्षा केन्द्र पर अध्ययन करता है।

प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण को कारगर ढंग से लागू करने के लिए सरकार ने संविधान (73वां संशोधन) अधिनियम, 1992 प्रावधानों को लागू किया ताकि समुदाय और शिक्षा के बीच अंतर कम किया जा सकें। राजस्थान में लोक जुम्बिश और शिक्षा कर्मी परियोजना की सफलता में समुदाय का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। लोक जुम्बिश परियोजना का चुने हुए स्थानीय जन प्रतिनिधियों के अधिकारों, खासकर ग्राम स्तर पर महिलाओं के अधिकारों पर रचनात्मक प्रभाव पड़ा है। महिलाएं आमतौर पर लोक जुम्बिश दलों और महिला समूहों की सक्रिय सदस्य होती है। लोक जुम्बिश में ग्राम शिक्षा समितियों का गठन सावधानीपूर्वक किया जाता है और उन्हें वातावरण निर्माण गतिविधियों के जरिए भलीभांति प्रशिक्षण दिया जाता है। ये समितियां स्कूल के मामलों में सक्रिय भागीदारी निभाती है। ग्राम शिक्षा समितियों का एक महत्वपूर्ण कार्य स्कूल भवन के निर्माण, रख–रखाव और समस्त के लिए संसाधन जुटाना है। ये समितियां स्थानीय समुदाय के परामर्श से स्कूल कैलेंडर और समय सारणी निर्धारित करने में भी मदद करती है।

गैर–सरकारी संगठनों की भूमिका –

वर्तमान में करीब 750 गैर–सरकारी संगठन 'सबके लिए प्राथमिक शिक्षा' का लक्ष्य हासिल करने के सरकारी प्रयासों में पूरक भूमिका निभा रहे हैं। ये संगठन सरकारी सहायता से अनौपचारिक शिक्षा में सहयोग करते हैं और संसाधन जुटाने में मदद करते है। प्राथमिक शिक्षा को सर्वव्यापक बनाने में गैर–सरकारी संगठन सरकार के प्रयासों में महत्वपूर्ण भागीदार के रूप में उभरे हैं। गैर–सरकारी संगठनों और सामुदायिक भागीदारी की बदौलत प्राथमिक स्कूलों की भौतिक स्थिति और वातावरण सुधारने तथा लड़कियों और अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों और कामकाजी बच्चों की शिक्षा को प्रोत्साहन देने में मदद मिली है।

राष्ट्र निर्माण की चुनौतियां –

शिक्षा प्रणाली को समूचे जन समुदाय के लिए लाभप्रद बनाने के लिए उसे नया रूप देने के काम में केन्द्र सरकार को सभी एजेंसियों के सहयोग की आवश्यकता है। पंचायती राज संस्थानों को पर्याप्त धन दिया जाना चाहिए ताकि पंचायतें ग्रामीण लोगों में साक्षरता के प्रति जागरूकता पैदा करके

लक्ष्य हासिल करने में गतिशील भूमिका का निर्वाह कर सकें। पिछले 50 वर्षों में राष्ट्र ने प्राथमिक शिक्षा के लिए एक राष्ट्रीय ढांचा विकसित करने में निश्चित रूप से सफलता प्राप्त की है। सभी राज्यों और केन्द्र शासित प्रदेशों में प्राथमिक शिक्षा अब मातृभाषा या क्षेत्रीय भाषा में दी जा रही है। प्राथमिक शिक्षा तक पहुंच में काफी बढ़ोत्तरी हुई। प्रक्रम पीढ़ी के सीखने वालों, लड़कियों और समाज के उपेक्षित वर्गों को आगे बढत्राने के बेजोड़ अवसर मिले है। देशभर में साक्षरता के स्तर में व्यापक सुधार हुआ है।

6–11 वर्ष की आयु के सभी बच्चों को सन् 2005 तक शिक्षित बनाने का लक्ष्य सरकार अकेले प्राप्त नहीं कर सकती, इसके लिए समुदाय की सक्रिय भागीदारी आवश्यक है। काफी सफलताओं के बावजूद 'सबके लिए प्राथमिक शिक्षा' का कार्य पूरा होने में अभी बहुत कसर है। स्कूलों और दाखिलों में निश्चित रूप से वृद्धि हुई है, लेकिन उसी अनुमान में स्कूल से बाहर रहने वाले बच्चों की संख्या भी बढ़ी है। भारत में आज निरक्षरों की संख्या दुनिया के किसी भी देश से ज्यादा है। प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण में जाति, लिंग, वर्ग और क्षेत्रीय असमानताएं हालांकि कम हुई हैं, लेकिन अभी भी प्रचंड रूप में विद्यमान है।

निष्कर्ष –

आज आवश्यकता इस बात की है कि इन सभी बिन्दुओं को खास लचीलेपन के साथ अमल में लाया जाये ताकि प्राथमिक शिक्षा के सार्वभौमिकरण का लक्ष्य प्राप्त करने में राज्य की मदद की जा सके। उम्मीद है कि एक स्पष्ट दृष्टिकोण, दृढ़ इच्छाशक्ति, अधिक निवेश, अधिक प्रतिबद्धता और लोगों की भागीदारी बढ़ाकर हम देश में सभी बच्चों को संतोषजनक गुणवत्तायुक्त शिक्षा देने का लक्ष्य प्राप्त कर सकेंगे, नई सहस्राब्दि की शुरूआत पर हमें बेहतर भविष्य के लिए नए ढंग से अवश्य सोचना होगा।

संदर्भ :

1. सद्गोपाल, अनिल : शिक्षा मे बदलाव का सवाल, ग्रंथ शिल्पी, लक्ष्मी नगर, नई दिल्ली, 2004।
2. सक्सेना, पी0 के0 : प्रारम्भिक शिक्षा के उभरते आयाम एवं शैक्षिक मूल्यांकन, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2001।
3. श्रीनिवास, एम0 एन0 : सोशल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया : ओरिनट लोगमन्स, नई दिल्ली।

***

लाला लाजपत राय के विचार : शिक्षा के संदर्भ में

राम विलास यादव *

1920–22 के विप्लव के शांत हो जाने के बाद राष्ट्रीय शिक्षा के आंदोलन को इस अर्थ में परिणामत्मक धक्का लगा कि उन शिक्षा संस्थाओं की संख्या में भारी कमी हो गई जो अपने को राष्ट्रीय कहती थी। लाल लाजपत राय पहले ही अपना यह मत व्यक्त कर चुके थे कि राष्ट्रीय शिक्षा पद्धति की व्यवस्था गैर–सरकारी उद्यम द्वारा नहीं वरन् केवल राष्ट्रीय सरकार द्वारा की जा सकती है। अतः शिक्षा के विकास के लिए स्वाधीनता प्राप्ति की प्रतीक्षा करनी होगी। इस मत को अधिकाधिक लोग स्वीकार करते चले गए और इसका परिणाम यह हुआ कि राष्ट्रीय शिक्षा कार्य अब प्रायोगिक आधार पर कुछ संस्थाओं की व्यवस्था करने तक ही सीमित रह गया। यह एक अच्छा परिवर्तन हुआ क्योंकि मनुष्यों एवं धन संबंधी सीमित साधनों को निचले स्तर पर सार्वजनिक कार्य में वितरित कर देने के बजाय अब नए विचारों और सम्प्रदायों के कार्य में लगाया जा सकता था। 1920 से 21 के बीच जो अनेक राष्ट्रीय विश्वविद्यालय अस्तित्व में आया उसका न्यूनाधिक बहुविध व्यवसाय था। गुजरात, बिहार और काशी के विद्यापीठ महत्वपूर्ण थे। परन्तु जामिया मिलिया इस्लामिया सक्रिय और उपयोगी कार्य करता रहा। प्रशासनिक कारणों से उसे 1925 में अलीगढ़ से दिल्ली स्थानान्तरित कर दिया गया। उसने सरकार से मान्यता लेना स्वीकार नहीं किया क्योंकि अपने प्रवर्तकों के शब्दों में वह एक स्थायी अनुदान की शक्तिहीन बनाने वाली ऐसी सुरक्षा के स्थान पर जो उसकी महानतम महत्वाकांक्षाओं को भंग कर देगी एक सम्मानप्रद स्वाधीनता के कष्टों एवं अग्नि परीक्षाओं को अधिमान्यता देता था। जामिया के पास स्थायी निधियां नहीं थी। इसे परम महामान्य निजाम तथा भोपाल की सरकारों से दिल्ली नगरपालिका से भी सारभूत सहायता मिलती थी परन्तु इसकी आय का सबसे बड़ा स्रोत हमदर्दाने जामिया कहलाने वाले इसके समर्थक थे जिनकी संख्या लगभग सात हजार थी और जो अपनी आय का एक भाग जामिया के अनुरक्षण के लिए देते थे।

एक अन्य अखिल भारतीय स्वरूप की संस्था विश्व भारती थी जिसकी सरकारी अनुदानों के बिना स्थापना की गई थी। इसे डॉ0 रविन्द्र नाथ टैगोर ने 6 मई, 1912 को स्थापित और दान किया था। यह संस्था सहशिक्षिय एवं आवासिक थी और इसमें न केवल भारत के प्रत्येक भाग से वरन् एशिया तथा यूरोप के दूरस्थ भागों से भी छात्र पढ़ने आते थे। कुछ ऐसे भी राष्ट्रीय शिक्षा संस्थान थे जो सरकारी पद्धति से अलग रहकर कार्य करती रही और प्राचीन हिन्दू अथवा मुस्लिम शिक्षा के आदर्शों को पुनर्जीवित करने का प्रयत्न करती रही। इस प्रकार के संस्थाओं में गुरूकुल विश्वविद्यालय, दारूल उलूम, देवबंध तथा लखनऊ में दारूल उलूम नदवातुल उलेमा, जो शिक्षा में मुस्लिम आदर्शों को पुनः जीवित करने का प्रयत्न करते थे। गुरूकुल विश्वविद्यालय की स्थापना आर्य प्रतिनिधि सभा, पंजाब ने 1902 में की थी। इसकी शुरूआत एक छोटे से प्रारंभिक विद्यालय के रूप में हुई थी और अब यह एक पूर्ण विश्वविद्यालय बन गया। आरंभ से ही यह विश्वविद्यालय सरकारी अनुदान लेने से मना करता रहा। अतः समस्त सरकारी प्रभाव एवं नियंत्रण से मुक्त रहा। 1924 में इसे कांगड़ी में अपने वर्तमान स्थान पर ले जाया गया जहां यह जंगल के एकान्तवास में नगरीय जीवन के अशैक्षिक प्रभावों से मुक्त रहकर कार्य करता था। दारूल–उलूम, देवबंध नामक संस्था 1864 में स्थापित हुई। यह एक मुस्लिम विश्वविद्यालय है जिसे कट्टरपंथी ढंग से चलाया जाता है। दारूल–उलूम पूर्णतया आवासिक विश्वविद्यालय है और अरबी, फारसी, तजवीद (पवित्र कुरान का पाठ) की शिक्षा दी जाती है। इस संस्था से पढ़कर निकलने पर इसके छात्र अपने नाम के आगे देवबंदी जोड़ देते हैं और उन्हें फाजिल उपाधि हो जाती है। इसमें छात्रों की संख्या 1600 थीं जिसमें 100 छात्र विदेशों के थे। दारूल–उलूम नदवातुल उलेमा नामक संस्थान लखनऊ में 1898 में स्थापित हुई थी और इनकी सैद्धांतिक देवबन्द के

* प्रवक्ता- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

कट्टरपंथी विश्वविद्यालय अथवा अलीगढ़ जैसे आधुनिक विश्वविद्यालय के बीच की है। इस संस्था से इस प्रकार के लोग पढ़कर निकलते हैं जिन्हें आधुनिक मौलवी[1] कहा जा सकता है। इसके भूतपूर्व छात्र अपने नाम के आगे नदवी जोड़ते हैं। इस काल में यहां पढ़ने वाले छात्रों की संख्या 300 थी। यह भी एक आवासिक संस्था है।

यह नहीं मान लेना चाहिए कि राष्ट्रीय शिक्षा का सम्प्रत्यय केवल अपने को राष्ट्रीय कहने वाले कुछ स्थानेां की चहारदीवारी तक ही सीमित था। इस सम्प्रदाय की कुछ बातें बहुत सामान्य होती जा रही थी। यहां तक कि सरकारी पद्धति में भी उन्हें अपनाया जा रहा था। उदाहरण के लिए इस काल में अधिकांश माध्यमिक विद्यालयों में आधुनिक भारतीय भाषाओं को शिक्षा माध्यम बनवाने में जो सफलता मिली थी, वह मुख्यतः राष्ट्रीय शिक्षा के संबंध में हुए संघर्ष के कारण ही मिली थी। इसी प्रकार, वे प्रयास भी राष्ट्रीय शिक्षा के अभ्युत्थान का ही परिणाम था जो राष्ट्रभाषा का विकास करने और उसे लोकप्रिय बनाने के लिए इस समय किए गए थे। यहां तक कि मान्यता प्राप्त विद्यालयों के वातावरण में भी भारी परिवर्तन होने लगा। कुछ तनावपूर्ण अवसरों को छोड़कर, अधिकांश विद्यालय सभाओं में बंदे मातरम अथवा अन्य राष्ट्रीय गीतों को गाया जाना एक आम बात हो गयी। अब माध्यमिक एवं महाविद्यालयी संस्थाओं में एक ऐसा वातावरण बनने लगा था जो देशभक्ति के विकास के लिए अधिक अनुकूल था। अतः कहा जा सकता है कि इस काल में राष्ट्रीय शिक्षा संस्थाओं की संख्या में कमी होने से जो हानि पहुंची थी उसे राष्ट्रीय शिक्षा इस प्रकार की अन्य सफलताओं को अच्छी तरह पूरा कर दिया।

इस काल में प्रौढ़ों के बीच साक्षरता फैलाने हेतु महत्वपूर्ण कार्य किया गया। भारत जैसे देश में जहां 1921 में जनगणना के अनुसार 93 प्रतिशत लोग निरक्षर थे, प्रौढ़ निरक्षरता को समाप्त करने के अभियान की परम आवश्यकता थी। भारतीय मंत्रियों को यह श्रेय प्राप्त है जिन्होंने इस दिशा में कुछ कदम उठाए। 1927 में भी प्रौढ़ों के लिए 11205 विद्यालय चल रहे थे जिसमें छात्रों की संख्या 290352 थी परन्तु आर्थिक मंदी के फलस्वरूप 1927 के उपरान्त हुए वित्तीय संकट के कारण पुनः इस समस्या के प्रति रूचि कम हो गई और अगले दशक में रात्रि पाठशालाओं अथवा प्रौढ़ कक्षाओं की संख्या काफी घट गई। 1936–37 में केवल 2027 विद्यालय रह गये जिनमें भर्ती प्रौढ़ों की संख्या 63637 थी। 1937 के पूर्व प्रौढ़ों में साक्षरता फैलाने के लिए जो कार्य किया गया था वह परिणामस्वरूप दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं था। परन्तु प्रारंभिक कार्य के रूप में उसकी यथेष्ट सैद्धांतिक सार्थकता एवं उपयोगिता है। इन्हीं प्रारंभिक प्रयासों विशेषकर 1917 और 1937 के बीच किए गए प्रयासों ने इस समस्या के प्रति जनरूचि पैदा की और उसे कायम रखा। इन्हीं प्रयासों से पहली बार ये विचार विकसित हुए कि मालिकों को अपने कर्मचारियों को साक्षर बनाने के लिए मजबूर किया जाए, साक्षरता आन्दोलन का विस्तार करने के लिए विद्यार्थियों की सेवा भावना का उपयोग किया जाय और साक्षरता शिक्षा का खर्च घटाने तथा इस कार्य में सहायता देने के लिए स्थानीय निकायों, सहकारी समितियों तथा अन्य अर्द्ध–सरकारी अभिकरणों को इसके पक्ष में किया जाए।

संदर्भ :

1. मुस्लिम ईयर बुक ऑफ इंडिया, 1948–49 पृ0 244
2. त्यागी, गुरूसरन दास : भारत मे शिक्षा का विकास, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 2002।
3. ठेकेदत्त, के0 के : एजुकेशन एट द टर्न ऑफ दा सेन्चुरी, नव कर्नाटका पब्लिकेशन्स प्रा0 लि0, 1999।

***

शिक्षा की आधुनिक अवधारणा

संजीव कुमार चतुर्वेदी *

शिक्षा की आधुनिक धारणा को समझने हेतु हमें शिक्षा की आधुनिक और प्राचीन दोनों धारणाओं का तुलनात्मक अध्ययन करना जरूरी है। अतएव निम्नलिखित पंक्तियों में हम शिक्षा के विभिन्न अंगों पर तुलनात्मक दृष्टि डाल रहे हैं, जिससे हमारे समक्ष आधुनिक शिक्षा का सच्चा चित्र अंकित किया जा सकता है–

1. शिक्षा का अर्थ –

शिक्षा शब्द की व्युत्पत्ति लैटिन भाषा के एडूकेटम (Educatum) शब्द से हुई है। एडूकेटम का अर्थ है शिक्षण की कला। ए (E) का अर्थ है अन्दर से और डूको (Duco) का अर्थ है– आगे बढ़ाना अथवा प्रगति करना। इस तरह आधुनिक धारणा के अनुरूप शिक्षा बालक के अन्दर छिपी हुई समस्त शक्तियों को सामाजिक वातावरण में विकसित करने की कला है। प्राचीन शिक्षा के तहत निर्देशन पर जोर दिया जाता था। अतएव शिक्षा का कार्य था–बालक के मस्तिष्क में पके ज्ञान को बलपूर्वक ठूंसना। आजकल मस्तिष्क 'एक खाली बर्तन' (An Empty Vessel) तथा 'एक कोरी प्लेट' (A Blank Plate) आदि प्राचीन धारणाओं का खण्डन करते हुए इस बात पर जोर दिया जाता है कि न तो मस्तिष्क एक खाली बर्तन के समान है, जिसको भरने हेतु निर्देशन के माध्यम से ज्ञान को बाहर से भरना या बलपूर्वक ठूंसना जरूरी है और न ही एक कोरी प्लेट है, जिस पर विषय–वस्तु को अंकित किया जाए। वस्तुस्थिति यह है कि मस्तिष्क जन्म से ही सक्रिय होता है और इसमें वातावरण से सम्बन्ध स्थापित करने की शक्ति होती है। यही नहीं, मस्तिष्क की विशेषता उस शक्ति से भी है जो बालक को वातावरण में क्रिया के माध्यम से सीखने हेतु प्रेरित करती है। अतएव आधुनिक शिक्षा, शिक्षण की तुलना में सीखने पर जोर देते हुए मार्गदर्शन, अभिवृद्धि और सामाजिक प्रगति के रूप में उपस्थित होती है।

2. शिक्षा के उद्देश्य –

प्राचीन शिक्षा बालक के मानसिक प्रगति पर जोर देती थी। जिसके अनुसार मात्र ज्ञानार्जन को ही शिक्षा का एकमात्र उद्देश्य माना जाता था। आधुनिक शिक्षाशास्त्री व्यक्ति की प्रकृति का अध्ययन करते हुए मानसिक प्रगति के साथ–साथ उसके शारीरिक, सामाजिक और आध्यात्मिक प्रगति पर जोर देते हैं। इस दृष्टि से आधुनिक शिक्षा का उद्देश्य है–बालक के व्यक्तित्व का सर्वांगीण प्रगति और उसमें सामाजिक कुशलता के गुणों की प्रगति करना।

3. पाठ्यक्रम –

प्राचीन धारणा के अनुरूप पाठ्यक्रम में मात्र उन विषयों को ही सम्मिलित किया जाता था, जिनके अध्ययन से बालक का मानसिक प्रगति हो जाए। इससे पाठ्यक्रम पूर्व निश्चित और स्थिर बन गया था। आधुनिक युग में बालक के सर्वांगीण प्रगति के लिए पाठ्यक्रम सम्बन्धी और सहगामी दोनों तरह की क्रियाओं एवं अनुभवों को सम्मिलित करके पाठ्यक्रम को लचीला और प्रगतिशील बनाने पर जोर दिया जाता है, जिससे अगर बालक अपनी–अपनी रूचियों और आवश्यकताओं` अनुरूप विकसित होकर समाज की यथाशक्ति सेवा करता रहे। संक्षेप में, आधुनिक पाठ्यक्रम के तहत ज्ञानार्जन सम्बन्धी विषयों की तुलना में सामाजिक अध्ययन पर जोर दिया जाता है।

4. शिक्षण पद्धतियाँ –

शिक्षा की प्राचीन धारणा पाठ्यक्रम के सभी विषयों को कंठस्थ करने पर जोर देती है। इस रटन–पद्धति (Memorization) के कारण शिक्षा निर्जीव और नीरस हो गई थी। आधुनिक धारणा के अनुरूप अब बालक के सर्वांगीण प्रगति के लिए रटन–पद्धति की तुलना में खेल विधि, करके सीखने

* प्रवक्ता- बी०एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

की विधि और योजना आदि शिक्षण–पद्धतियों का इस्तेमाल किया जाता है, जिससे अगर बालक अपनी–अपनी रूचियों और आवश्यकताओं के अनुरूप वास्तविक जीवन के अनुभव प्राप्त करके स्वयं विकसित होता रहे।

5. परीक्षा –

शिक्षक को बालक की शैक्षणिक प्रगति का पता लगाने हेतु परीक्षा का इस्तेमाल करना पड़ता है। अतएव परीक्षा के सम्बन्ध में प्राचीन धारणा ने निबन्धात्मक परीक्षाओं को जन्म दिया। जिससे बालक की रटन शक्ति का पता लग जाए। चूंकि उक्त परीक्षाओं में कई त्रुटियाँ हैं, इसलिए आधुनिक धारणा वस्तुनिष्ठ परीक्षाओं, प्रगति–पत्रों और वर्धनशील लिखित विवरण पर जोर देती है जिससे बालक की विभिन्न क्षेत्रों में होने वाली प्रगति की ठीक–ठीक पता चल जाए।

6. शिक्षा के साधन –

प्राचीन भाषा के अनुरूप शिक्षा का उत्तरदायित्व मात्र स्कूल पर ही समझा जाता था। परन्तु आधुनिक धारणा के अनुरूप यह उत्तरदायित्व स्कूल के साथ–साथ परिवार, समुदाय, धर्म और राज्य आदि सभी अनौपचारिक साधनों पर समझा जाता है। अतएव अब इस बात पर जोर दिया जाता है कि सभी अनौपचारिक साधनों को स्कूल रूपी अनौपचारिक साधन के साथ पूर्ण सहयोग प्रदान करना चाहिए।

7. शिक्षक –

प्राचीन धारणा के अनुरूप शिक्षा शिक्षक–प्रधान (Teacher-Centred) थी। अतएव शिक्षक का स्थान एक निर्देश या तानाशाह की भांति समझा जाता था। आधुनिक धारणा के अनुरूप शिक्षक एक मित्र, दार्शनिक और पथ–प्रदर्शक समझा जाता है। उससे यह आशा की जाती है कि वह बालकों के साथ सहानुभूतिपूर्ण और व्यक्तिगत संपर्क स्थापित करके उनमें सामाजिक रूचियों, आदतों और दृष्टिकोणों की प्रगति करें।

8. बालक –

प्राचीन धारणा के अनुरूप बालक को निष्क्रिय श्रोता के रूप में एक ही आसन से बैठकर शिक्षक के अनुदेशन को सुनने की आदत डाली जाती थी। आधुनिक धारणा के अनुरूप शिक्षा बालकेन्द्रित (Chiled Centred) हो गई है। अतएव अब इस बात पर जोर दिया जाता है कि बालक ज्यादा से ज्यादा सक्रिय रहकर पाठ के प्रगति में रूचि ले और शिक्षक तथा बालकों के बीच ज्यादा से ज्यादा अन्तःप्रक्रिया (Interaction) हो, जिससे अगर बाल का ज्यादा से ज्यादा प्रगति हो।

9. अनुशासन –

प्राचीन धारणा के अनुरूप अनुशासन हेतु कठोर दण्ड या मात्र डण्डे को ही शिक्षक की सहायक सामग्री समझा जाता है। पर आधुनिक धारणा दमन की तुलना में शिक्षक के प्रभाव और नियन्त्रित स्वतन्त्रता पर जोर देती है जिससे बालक में आत्म–अनुशासन (Self Discipline) की भावना विकसित हो जाए।

10. स्कूल –

प्राचीन धारणा के अनुरूप स्कूल को ऐसी दुकान समझा जाता था वहां पर ज्ञान के विक्रेता बालकों के डण्डे के भय से विभिन्न विषयों को रटाते थे, भले ही रटा हुआ ज्ञान उनके भावी जीवन में काम आए या नही। दूसरे शब्दों में प्राचीन धारणा के अनुरूप इस बात को जरूरी नहीं समझा जाता था कि शिक्षा में लगाई गई पूंजी या आदा (Input) के अनुपात से उत्पादन या प्रदा (Out-Put) भी हो। आधुनिक धारणा के अनुरूप स्कूल को समाज, का लघु रूप (Miniature of Society) माना जाता है। साथ ही शिक्षा को एक उद्योग और शिक्षक को इस शिक्षा रूपी उद्यो का व्यवस्थापक समझा जाता है, जो बालकों हेतु सीखने की व्यवस्था करता है तथा यह देखता है बालकों की शिक्षा में लगाई गई पूंजी या आदा (Input) के अनुपात में प्रक्रिया द्वारा योग्यता या प्रदा बढ़ी या नहीं।

11. शिक्षा एक अनुशासन के रूप –

प्राचीन धारणा के अनुरूप शिक्षा को एक प्रक्रिया और प्रशिक्षण के अर्थ में इस्तेमाल किया जाता था। आधुनिक धारणा के अनुरूप शिक्षा को एक प्रक्रिया और प्रशिक्षण के अलावा दूसरे विषयों की भांति अध्ययन का एक स्वतन्त्र विषय या अनुशासन माना जाता है। इसका कारण यह है कि अन्य विषयों की भांति शिक्षा में भी वे सभी विशेषताएं हैं, जो अगर विषय या अनुशासन में होती हैं। वे विशेषताएं हैं– (1) निजी पाठ्यवस्तु, (2) पाठ्यवस्तु की क्रिया से सम्बन्ध, (3) निजी विधियाँ, (4) शोध की निजी विधियाँ, (5) भिन्नता क्षेत्र और (6) पृथक संकाय।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शिक्षा दर्शन की आवश्यकता –

दर्शन क्या है, व्यक्ति की भौतिक और आध्यात्मिक विचारधाराओं को यह किस तरह प्रभावित करता है, इस विषय पर बहुत पहले से ही मनीषियों ने चिंतन करना प्रारंभ कर दिया था। जीवन और दर्शन की पारस्परिक संबद्धता आज भी बनी हुई है। दर्शन हमें जीवन के प्रति उपयुक्त दृष्टिकोण अपनाने का परामर्श देता है तो शिक्षा जीने की कला सीखलाती है। हमें वास्तविक जीवन में व्यक्ति का अपना दृष्टिकोण ही उसका जीवन दर्शन है।

सभ्यता के आदिकाल में शिक्षा और जीवन में भी कोई अन्तर नहीं था। जीवन–यापन के क्रम में ही शिक्षा भी मिलती जाती थी। पहले पेशा भी पैतृक होता था। जीवन–यापन के क्रम में ही पेशा कौशल भी सीखा जाता था। आज दोनों में अन्तर आ गया है। शिक्षालय जो कुछ सिखाता है जीवन में कभी–कभी वह काम ही नहीं आता है इसलिए अनेक प्रकार की समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं इन समस्याओं का समाधान शिक्षा दर्शन द्वारा प्रस्तुत किया जाता है। आज शिक्षा दर्शन का महत्व इसीलिए अधिक बढ़ गया है कि यहां शैक्षिक समस्याओं को वैज्ञानिक तरीके से प्रयोग एवं प्रमाण के आधार पर सुलझाने का अथक प्रयास किया जाता है। इस सन्दर्भ में हरबर्ट–स्पैन्सर ने शिक्षा प्रक्रिया को कुशलता से गतिमान बनाये रखने के लिए दर्शन को अनिवार्य माना।

शिक्षा को प्रभावी बनाने में दर्शन की अग्रणी भूमिका है क्योंकि इसी के सिद्धांतों की व्यवहारिकता पर शिक्षा प्रक्रिया गतिमान होती है। 'दर्शन' शिक्षा का एक प्रमुख आधार है। दर्शन द्वारा शिक्षा के उद्देश्य, पाठयक्रम, शिक्षण–विधि, विद्यालय–संगठन, अनुशासन आदि को एक निश्चित रूप प्रदान किया जाता है। अतः शिक्षा–योजना को सफल बनाने के लिए दर्शन आवश्यक है। बटलर का कथन है– ''दर्शन शिक्षा के प्रयोगों के लिए पथ–प्रदर्शक है। शिक्षा अनुसन्धान के क्षेत्र के रूप में दार्शनिक निर्णय के लिए निश्चित सामग्री को आधार के रूप में प्रदान करती है।''

संदर्भ :

1. श्रीनिवास, एम0 एन0 : सोशल चेन्ज इन मार्डन इण्डिया : ओरिनट लोगमन्स, नई दिल्ली।
2. पाण्डेय, वी0 सी0 : एजुकेशन : प्लानिंग एण्ड हयूमन डवलपमेन्ट, ईशा बुक्स, दिल्ली, 2003।
3. मोहंती, जे0 : प्रोस्पैक्ट्स ऑफ एजुकेशन इन 21 सेन्चुरी, एडुट्रैक्स, 1 (10), अगस्त 2002।
4. मुखर्जी, एस0 एन0 : एजुकेशन इन इंडिया : टुडे एण्ड टुमारो, आचार्य बुक डिपो, बडौदा, 1957।

***

द्वैध शासन के अन्तर्गत भारतीय शिक्षा

सुरेन्द्र कुमार रजक *

भारत सरकार अधिनियम, 1919 द्वारा लागू किया गया संविधान द्वैधशासन अथवा दो के शासन के नाम से प्रसिद्ध है। इस द्वैध शासन प्रणाली के अधीन प्रांतीय सरकार के क्रियाकलाप के क्षेत्र को दो भागों में बांट दिया गया, आरक्षित और अंतरित विभाग। राज्यपाल को, जो प्रांतीय सरकार का शासनाध्यक्ष था, कुछ कार्यकारी पार्षदों की सहायता से आरक्षित विभागों का प्रशासन करना था। उनके उचित प्रबंध के लिए भारतीय कार्य मंत्री के प्रति उत्तरदायी रहना था। इसके अतिरिक्त उसमें यह भी आशा की जाती थी कि वह अंतरित विभागों का उन मंत्रियों की सहायता से प्रशासन करेगा जो भारत मंत्री के प्रति उत्तरदायी नहीं, वरन् एक ऐसे प्रांतीय विधानमंडल के प्रति उत्तरदायी थे जिसमें निर्वाचित लोगों का भारी बहुमत था। प्रांतीय कार्यपालिका के प्रति उत्तरदायी थे जिसमें निर्वाचित लोगों का भारी बहुमत था। प्रांतीय कार्यपालिका के दो भागों में बंट जाने के कारण ही इस प्रणाली का नाम द्वैधशासन पड़ा। इसी असामान्य ढंग के राजनीतिक संविधान के कारण पहली बार भारतीयों का शिक्षा विभाग पर नियंत्रण हुआ।

द्वैधशासनात्मक प्रशासन में देश की शिक्षा सेवाओं पर भारतीय मंत्रियों का नियंत्रण बहुत सीमित था। 1921 में शिक्षा विभाग में अधिकांश प्रधान पदों पर भारतीय शिक्षा सेवा के सदस्य पदासीन थे। इस काल में अधिकांश समय, इन पदों पर वे ही लोग पदासीन रहे। शिक्षा को भारतीय नियंत्रण में अंतरित किए जाने के समय जो महत्वपूर्ण समस्याएं उठी थीं। उनमें से एक समस्या भारतीय शिक्ष सेवा के सदस्यों के भावी अधिकारों एवं विशेषाधिकारों के संबंध में थी। उस पर जोरदार विवाद छिड़ गया। अंततः जो निर्णय किए गए थे वे भारत में सुपीरियर सिविल सर्विस संबंधी राजकीय आयोग (1923–24) की सिफारिशो पर आधारित था। यह आयोग ली आयोग के नाम से प्रसिद्ध है। इस आयोग ने इस सिद्धांत को स्वीकार किया कि किसी विशेष विषय के प्रशासन के लिए जो प्राधिकार उत्तरदायी है उसी को वह अधिकार होना चाहिए कि अपने विषय के प्रशासन में नियोजित सेवाओं को उस रीति में गठित करें जिसे वह सबसे अच्छा समझे और इन सेवाओं में भर्ती करने तथा इस पर अंतिम नियंत्रण रखने का अधिकार भी उसी प्राधिकार को दिया जाना चाहिए। अतः+ आयोग ने यह सिफारिश की कि स्थानीय सरकारों के प्रयोजनार्थ, अंतरित क्षेत्रों में कार्य करने वाली अखिल भारतीय सेवाओं में और आगे भर्ती न की जाय। भविष्य में प्रशासन की इन शाखाओं के लिए अपेक्षित कर्मचारी वर्ग की भर्ती स्थानीय सरकार करें।[1] सरकार ने इस सिफारिश को स्वीकार कर लिया और 1924 में भारतीय शिक्षा सेवा के लिए भर्ती करना बन्द कर दिया।

भारतीय शिक्षा सेवा के विद्यमान अधिकारों एवं विशेषाधिकारों को प्रत्याभूत कर दिया गया। भारतीय शिक्षा सेवा के लिए अतीत में आरक्षित किसी भी पद पर तब तक किसी प्रांतीय अधिकारी की नियुक्ति नहीं की जानी थी जब तक भारतीय शिक्षा सेवा का कोई भी सदस्य उस पद को पाने की पात्रता रखता हो। भारतीय शिक्षा सेवा का कोई अधिकारी सपरिषद् मंत्री को छोड़कर अन्य किसी पदाधिकारी द्वारा अपनी सेवा से बर्खास्त नहीं किया जा सकता था। भारतीय शिक्षा सेवा के अधिकारी को उस दशा में परिषद् से अपील करने का अधिकार था यदि महत्वपूर्ण अनुशासनात्मक विषयों में उसके साथ प्रतिकूल व्यवहार किया गया हो। राज्यपाल की वैयक्तिक सहमति के बिना कोई ऐसा आदेश जारी नहीं किया जा सकता था जिससे भारतीय शिक्षा सेवा के अधिकारी की परिलब्धियों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता हो अथवा जिसमें उसकी निन्दा की गई हो। उसके वेतन और पेंशन तथा उसके आश्रितों के लिए देय धनराशि पर किसी विधानमण्डल में मतदान नहीं होता था। अखिल भारतीय सेवाओं के जो सदस्य पेंशन पर सेवानिवृत्त होने के लिए साधारणतः अपेक्षित सेवा पूरी करने से पहले

---

* प्रवक्ता- बी० एड० विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

ही सेवानिवृत्त होना चाहें उन्हें उसके लिए अनुमति देने की भी व्यवस्था की गई थी। ऐसी दशा में उनकी पेंशन के विषय में अनुकूल विचार किया जाता था। भारतीय शिक्षा सेवा के यूरोपीय सदस्यों को कुछ अतिरिक्त रियायतें भी दी गई थी। ये रियायतें अंशतः निर्वाह व्यय में वृद्धि हो जाने के कारण और अंशतः उन बदली हुई परिस्थितियों के कारण हुई हानि को पूरा करने के लि दी गई जिनमें उन्हें कार्य करना था।

द्वैधशासन प्रणाली के कारण शैक्षिक विस्तार और सुधार के मार्ग में कठिनाइयाँ पैदा हो गई क्योंकि केन्द्रिय सरकार से अचानक ही वित्तीय सहायता मिलनी बन्द हो गई। केन्द्रीय सरकार ने 1902 से 1918 के बीच शिक्षा के लिए भारी अनुदान दिये थे जिससे शिक्षा में काफी सुधार हुआ था। इस प्रकार के अनुदानों को इस काल में भी जारी रखना चाहिए था परन्तु दुर्भाग्यवश, द्वैधशासन की वित्तीय व्यवस्थाओं ने इस कार्य को असंभव बना दिया। केन्द्रीय सरकार ने न केवल प्रांतों को अपना अनुदान देना बन्द कर दिया वरन् प्रक्रिया को ही उलट दिया। उल्टे प्रांतों से अपेक्षा की जाती थी कि वे केन्द्रीय सरकार को अंशदान देगी। इसी प्रकार पूर्ववर्ती काल में केन्द्रीय सरकार ने शैक्षिक विषयों में जो गहरी रूचि दिखाई थी, द्वैधशासन के आरंभ होने के साथ वह अचानक समाप्त हो गई। यद्यपि 1870 से शिक्षा को प्रांतीय विषय माना जाता रहा था तथापि भारत सरकार तमाम शिक्षा नीतियों के लिए स्वयं को उत्तरदायी मानती रही थी। भारत सरकार अधिनियम 1919 के अनुसार शिक्षा न केवल एक प्रांतीय विषय बन गई वरन् अंतरित विषय भी बन गई। संवैधानिक रूप से केन्द्र का आंतरिक विभागों पर कोई नियंत्रण नहीं रहा। प्रांतीय सरकारों को विशेषज्ञ परामर्श देकर सहायता करने की दृष्टि से 1920 में एक केन्द्रिय शिक्षा सलाहकार बोर्ड का गठन किया गया। लेकिन 1923 में पुनः इसे समाप्त कर दिया गया। इन्हीं कारणों से भारत में शिक्षा विभाग का भी स्वतंत्र अस्तित्व समाप्त हो गया और उसे अन्य विभागों के साथ मिला दिया गया। हार्टोग आयोग[2] ने शिक्षा में केन्द्रीय अनुदानों एवं रूचि के अभाव को शिक्षा से भारत सरकार का दुर्भाग्यपूर्ण संबंध विच्छेद बताया। इस विषय पर समिति के विचार थे कि– ''हमारी राय है कि शिक्षा से भारत सरकार का संबंध विच्छेद होना एक दुर्भाग्यपूर्ण बात है। हम यह मानते हैं कि शिक्षा अनिवार्य रूप से एक राष्ट्रीय सेवा है। अतः हमारी राय है कि शिक्षा के साथ केन्द्रीय सरकार के संबंध के बारे में नए सिरे से विचार करने के लिए कदम उठाए जाए। हमने सुझाव दिया है कि भारत सरकार सम्पूर्ण भारत के लिए एक शैक्षिक सूचना केन्द्र और विभिन्न प्रांतों के शैक्षिक अनुभव को समन्वित करने के लिए एक साधन बने। परन्तु हम मानते हैं कि केन्द्रीय सरकार के कर्तव्य इससे भी अधिक है। यह मत हमें स्वीकार्य नहीं है कि केन्द्रीय सरकार को उन सब उत्तरदायित्वों से पूरी तरह मुक्त कर दिया जाए जो सार्वजनिक प्राथमिक शिक्षा की लक्ष्य प्राप्ति के संबंध में होने चाहिए। हो सकता है कि समस्त प्रयत्नों के बावजूद कुछ प्रांत इस प्रयोजन के लिए आवश्यक निधियों की व्यवस्था न कर सकें। अतः सम्पूर्ण भारत के हित में इस प्रकार की वित्तीय कमियों को पूरा करने के लिए भारत सरकार को संवैधानिक अधिकार देना चाहिए।''[3] इस सिफारिश के परिणामस्वरूप केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड को 1935 में पुनः जीवित कर दिया गया। इस प्रकार, इस काल की समाप्ति के समय स्थिति कुछ सुधर गई थी। परन्तु यह बात माननी होगी कि जहां तक इस काल के अधिकांश भाग का संबंध है, भारत सरकार ने शैक्षिक विषयों में कोई रूचि नहीं ली और उसने प्रांतों को उनके शैक्षिक कार्यक्रमों के लिए कोई भी वित्तीय सहायता नहीं दी।

1919 के भारत सरकार अधिनियम के अनुसार, संविधानिक सुधारों के संबंध में 1929 में एक शाही आयोग नियुक्त किया जाना था। चूंकि भारत में लगातार यह आंदोलन चल रहा था कि 1919 के सुधार असंतोषजनक है। अतः 1927 में एक शाही आयोग नियुक्त किया गया जिसके अध्यक्ष सर जॉन साइमन थे। 1919 के भारत सरकार अधिनियम की धारा 84ए (3) के अधीन इस आयोग से ब्रिटिश भारत में शिक्षा संवृद्धि के बारे में प्रतिवेदन देने को कहा गया था और इस प्रयोजन के लिए यदि आवश्यक हो तो एक सहायक समिति नियुक्त करने का भी प्राधिकार दिया गया था। तद्नुसार आयोग ने यह समिति नियुक्त की जिसके अध्यक्ष सर फिलिप हार्टोग थे। वे अनेक वर्षों तक भारत में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग के सदस्य और ढाका विश्वविद्यालय के कुलपति रह चुके थे। इस

समिति का प्रतिवेदन इस काल के सबसे महत्वपूर्ण दस्तावेजों में से है। इसने अपने प्रतिवेदन में कहा कि–

हमने शिक्षा की संवृद्धि के बारे में जो पुनरीक्षण किया है उसमें भारत के राजनीतिक भविष्य के संबंध में मूलभूत हित की नई बातों का चलन है। चूंकि प्राथमिक विद्यालयों की छात्र संख्या में भारी वृद्धि हो गई है अतः ज्ञात होता है कि जनता की पुरानी उदासीनता अब समाप्त हो रही है। भारत की महिलाओं में सामाजिक और राजनीतिक जागृति फैली है और उनकी ओर से शिक्षा एवं समाज सुधार की स्पष्ट मांग की गई है। शिक्षा पाने वाले मुसलमानों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। दलित वर्गों की दशा को सुधारने के लिए प्रयत्न किए गए हैं और उन प्रयत्नों का इन वर्गों पर प्रभाव पड़ना आरंभ हो गया है। वे शिक्षा पाने के अपने अधिकार को जताने लगे हैं। सभी ओर जननेताओं की यह इच्छा रही है कि शिक्षा की जटिल एवं कठिन समस्याओं को समझें और उनका हल निकालने का प्रयत्न करें। शिक्षा मंत्रियों ने अधिक अतिरिक्त व्यय किए जाने का प्रस्ताव रखा है तथा विधान परिषदों ने मतदान द्वारा इच्छापूर्वक स्वीकृति प्रदान कर दी है। यह तस्वीर का एक पहलू है, लेकिन दूसरा पहलू यह है कि सम्पूर्ण शिक्षा पद्धति में अपव्यय और अप्रभावित है। हमारे विचार से प्राथमिक पद्धति इस प्रकार की होनी चाहिए जिससे साक्षरता बढ़े और बुद्धिमतापूर्वक मतदान करने की क्षमता पैदा हो। परन्तु यहां प्राथमिक पद्धति में जो अपव्यय हो रहा है उसे देखकर स्तब्ध रह जाना पड़ता है। जहां तक हम समझ सकते हैं, प्राथमिक विद्यालयों की संख्या में भारी वृद्धि हो जाने पर भी साक्षरता में तदनुरूप वृद्धि नहीं हुई है क्योंकि प्राथमिक चरण के छात्रों में से बहुत कम अनुपात में छात्र चतुर्थ कक्षा तक पहुंचते हैं। लड़कों की अपेक्षा लड़कियों के मामले में अपव्यय और भी चिन्ताजनक है। माध्यमिक शिक्षा के क्षेत्र में कुछ पहलुओं में प्रगति हुई है। विशेषकर यह प्रगति अध्यापक समुदाय की औसत क्षमताओं में उनकी सेवा की सुधरी हुई शर्तों एवं प्रशिक्षण में और विद्यालय जीवन के सामान्य कार्यकलापों को व्यापक बनाने के प्रयास में दिखाई देती है। सम्पूर्ण माध्यमिक शिक्षा पद्धति में अब भै इस आदर्श को प्रमुखता दी जाती है कि माध्यमिक विद्यालय में जो भी छात्र प्रवेश करें उसे विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने की दृष्टि में तैयारी करनी चाहिए। मैट्रिक तथा विश्वविद्यालय परीक्षा में छात्रों की भारी संख्या में अनुतीर्ण होने से इस बात का पता चलता है कि सारे प्रयत्न बेकार जा रहे है। व्यावसायिक और औद्योगिक प्रशिक्षण देने के लिए जो प्रयास किए गए हैं उनका शिक्षा पद्धति के साथ कोई सम्पर्क नहीं है। अतः वे अधिकांशतः निष्फल ही हुए है। अनेक विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों की अध्यापन विधियों में और उनके द्वारा किए गए मौलिक कार्य के परिणाम में स्पष्ट सुधार दिखाई दे रहा है। उनमें से कुछ में निःसंदेह पहले की अपेक्षा अब समष्टि जीवन बिताने के लिए ज्यादा अच्छा प्रशिक्षण मिलता है। परन्तु भारत में अब भी इस सिद्धांत को बहुत बड़े पैमाने पर स्वीकार किया जाता है कि विश्वविद्यालय यदि पूर्णतया नही ंतो मुख्यतः विद्यार्थी को परीक्षाओं में उत्तीर्ण करने के लिए होता है। हम चाहते हैं कि इस बात के और अधिक संकेत मिले कि विश्वविद्यालय उदारमन, सहिष्णु और आत्मनिर्भर नागरिकों के प्रशिक्षण को अपना प्रमुख कार्य मानते हैं। उनके कार्य में इसलिए बाधा पड़ी है कि उनमें ऐसे विद्यार्थियों की भीड़ है जो विश्वविद्यालय शिक्षा पाने की क्षमता नहीं रखते तथा इनमें से बहुत से विद्यार्थी के अन्य व्यवसायों में सफल होने की संभावना अधिक है।

समिति ने आगे लिखा है कि इस बात में कोई संदेह नहीं है कि भारत के विधानमंडल शिक्षा के लिए, बड़ी खुशी से अधिकाधिक धनराशि निर्धारित करेंगे। परन्तु जैसा हम बता चुके हैं कि शिक्षा का सुधार एवं विस्तार केवल धन पर ही निर्भर नहीं करता है। निःसंदेह धन का होना आत्यावश्यक है परन्तु इससे भी अधिक आवश्यकता एक सुनिदेशित नीति की है जिसे ऐसे प्रभावी और सक्षम अभिकरण कार्यान्वित करे जो सभी प्रकार के अपव्यय को रोकने के लिए कृतसंकल्प हो। आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा व्यवस्था से संबंधित प्रायः सभी विषयों पर पुनर्विचार किया जाए और इस व्यवस्था को मजबूत बनाया जाए। इस बात की भी आवश्यकता है कि शिक्षा व्यवस्था के लिए उत्तरदायी निकायों के संबंधों का पुनः समायोजन किया जाए।[4]

स्पष्ट है कि इस प्रतिवेदन का मुख्य निष्कर्ष यह है कि गुण बलि देकर परिणाम को प्राप्त किया गया है। तात्कालिक आवश्यकता इस बात की है कि छात्र संख्या को और भी अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करने के बजाए गुण में सुधार किया जाए। सरकारी क्षेत्रों में इस जांच परिणाम का तुरंत हार्दिक स्वागत हुआ। वास्तव में इसका अर्थ यह था कि सरकार का वह गुणात्मक सुधार संबंधी दृष्टिकोण विजयी रहा जिसकी 1902 से 1921 के बीच प्रमुखता रही थी, जिसे 1922 से 1924 के बीच भारतीय मंत्रियों ने रद कर दिया था। लेकिन गैर–सरकारी क्षेत्रों में इस प्रतिवेदन की तीव्र आलोचना की गई क्योंकि इसमें शिक्षा के भारतीय नियंत्रण की निन्दा की गई है। भारतीय मत इस दृष्टिकोण को स्वीकार नहीं कर सकता है कि भारतीय मंत्रियों ने विस्तार की जो नीति अपनाई थी वह अविवेकपूर्ण थी। सामान्य भावना यह थी कि प्रशासन के द्वैधशासनात्मक स्वरूप में जो कठिनाइयां अंतर्निहित थी उनको देखते हुए यह आश्चर्य की बात है कि भारतीय मंत्रियों ने इसके बावजूद इतनी अधिक उपलब्धि प्राप्त की थी। पुनः भारतीय लोकमत अब भी यह समझता था कि वर्तमान स्थिति में पहली आवश्यकता इस बात की है कि शिक्षा का और अधिक विस्तार किया जाय तथा अनिवार्य शिक्षा आरंभ की जाय। वह गुणात्मक सुधारों के विरूद्ध नहीं था। परन्तु जिस प्रकार के सुधारों की मांग करता था, वे बिल्कुल भिन्न प्रकार के थे। यदि हर्टोंग प्रतिवेदन में अंग्रेजी का स्तर गिर जाने पर शोक प्रकट किया गया था तो गैर–सरकारी मत को यह शिकायत थी कि सम्पूर्ण विद्यालय एवं महाविद्यालय पाठ्यक्रम में अंग्रेजी ही प्रमुख है। उसका यह प्रस्ताव था कि अंग्रेजी को वैकल्पिक विषय के रूप में पढ़ाया जाए। यहां तक कि उसने यह भी सुझाव दिया कि अंग्रेजी के स्थान पर राष्ट्रभाषा के रूप में एक भारतीय भाषा का अध्ययन कराया जाय।

1921 से 1937 तक के 16 वर्षों में विश्वविद्यालय शिक्षा की भारी प्रगति हुई। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग ने इस बात पर बहुत जोर दिया कि भारतीय विश्वविद्यालयों के कार्य का समन्वय करने की आवश्यकता है। 1921 में साम्राज्य विश्वविद्यालय कांग्रेस से भी भारतीय प्रतिनिधियों ने इसी प्रकार की सिफारिश की। इंग्लैंड में भारतीय विद्यार्थियों में संबंधित लिटन समिति ने भी यह आशा व्यक्त की थी कि भारतीय विश्वविद्यालय भारत में अध्ययन के क्रमों को समन्वित करने के लिए और विदेशों में अपनी मान्यता में एकरूपता लाने के लिए शीघ्र ही एक अन्तर–विश्वविद्यालय बोर्ड का गठन करेंगे। इन तमाम सिफारिशों के परिणामस्वरूप भारतीय विश्वविद्यालयों का पहला भारतीय सम्मेलन 1924 में शिमला में हुआ। एक अन्तर–विश्वविद्यालय बोर्ड स्थापित किया गया। बोर्ड में सभी भारतीय विश्वविद्यालयों के प्रतिनिधि हैं और वह 1925 में विभिन्न विश्वविद्यालय केन्द्रों से अपनी वार्षिक बैठकें कराता रहा है। उसने कई दिशाओं में उपयोगी कार्य किया है। अब भारतीय विश्वविद्यालय व्यवस्था का एक अभिन्न अंग बन गया है।

21 फरवरी, 1913 के शिक्षा नीति संबंधी सरकारी संकल्पों में यह सिद्धांत निर्धारित किया गया था कि प्रत्येक प्रांत का अपना विश्वविद्यालय होना चाहिए और अधिक से अधिक केन्द्रों पर अध्यापन विश्वविद्यालय स्थापित किए जाने चाहिए। द्वैधशासन काल में इसी सिद्धांत के आधार पर विस्तार किया गया और पांच नए विश्वविद्यालय नियमित हुए। दिल्ली के केन्द्र प्रशासित प्रांत के लिए दिल्ली विश्वविद्यालय और मध्यप्रांत एवं बरार के एक नागपुर विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। मद्रास प्रेसीडेंसी के तेलगू भाषी क्षेत्रों के लिए आन्ध्र विश्वविद्यालय स्थापित किए गए। आगरा विश्वविद्यालय को संयुक्त प्रांत, मध्य भारत और ग्वालियर के लिए संबंधन विश्वविद्यालय के रूप में नियमित किया गया। सबसे अंत में मद्रास के प्रेसीडेंसी में चिदम्बरम् में एक एकारात्मक अध्यापन और अधिकांशतः मावासिक विश्वविद्यालय स्थापित किया गया और उसके दानशील दाता राजा सर अन्नामलाई चेट्टियार के नाम पर उसका नामकरण किया गया।

इस काल में भारत के बहुत से पुराने विश्वविद्यालयों में भी महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। मद्रास विश्वविद्यालय के संविधान में 1923 और 1929 के संशोधन अधिनियमों द्वारा यथेष्ट संशोधन कर दिया गया। बम्बई विश्वविद्यालयों के संविधान में 1928 के अधिनियम द्वारा और पटना विश्वविद्यालय के संविधान में 1932 के अधिनियम द्वारा संशोधन किया गया। इन सब अधिनियमों का उद्देश्य मुख्यतः

विश्वविद्यालयों के प्रशासन में सुधार करना और उन्हें उच्च शिक्षा तथा अनुसंधान को और अधिक सुविधा देने के लिए समर्थ बनाना था। इस काल में इलाहाबाद विश्वविद्यालय नितांत अध्यापन निकाय बन गया और कलकत्ता तथा पंजाब के विश्वविद्यालयों ने विस्तृत अध्यापन कार्य आरंभ कर दिया।

विश्वविद्यालयों के विभागों और घटक अथवा सम्बद्ध महाविद्यालयों की संख्या 1921–22 में 207 थी परन्तु वह 1936–37 में बढ़कर 446 हो गई। उनमें पढ़ने वाले विद्यार्थियों की संख्या 66,258 से बढ़कर 126228 हो गई। इसके अतिरिक्त बहुत से संकाय खोले गए और अनेक नए पाठ्यक्रमों के अध्यापन की व्यवस्था की गई। इस काल की एक प्रमुख विशेषता यह है कि भारतीय विश्वविद्यालयों में अनुसंधान के लिए विशेष व्यवस्था की गई। 1854–1902 के दौरान भारतीय विश्वविद्यालयों का मुख्य कार्य उच्च शिक्षा को प्रोत्साहन देने से भी अधिक यह था कि भारतीय मस्तिष्क को पुरानी दुनिया के विचारों से मुक्त कराया जाए और पश्चिम के जीवन, विचार और चरित्र में जो कुछ सर्वोच्च और सर्वोत्कृष्ट है उसे आत्मसात किया जाए।[5] 1920–21 के दौरान विश्वविद्यालयों ने शिक्षण और अनुसंधान की ओर ध्यान दिया यद्यपि इसकी वास्तविक उपलब्धियां यथेष्ट नहीं थी। 1921 से 37 के बीच की अवधि में विश्वविद्यालयों ने पहले की अपेक्षा अधिक बड़े पैमाने पर अनुसंधान कार्य की व्यवस्था की। यह व्यवस्था पुस्तकालयों और अनुसंधान विभागों का अनुरक्षण करके, अनुसंधान उपाधियों की संस्थापन करके, अनुसंधान के लिए छात्रवृत्तियां तथा अध्येतावृत्तियों की व्यवस्था करके और विश्वविद्यालयों के बुलेटिन अथवा प्रकाशनों द्वारा की गई। इस प्रकार ज्ञान की परिधि का विस्तार करने के लिए भारतीय विश्वविद्यालय पहले से ही युद्ध आरंभ कर चुके थे। यह आशा करने के लिए तमाम कारण मौजूद थे कि वे शीघ्र ही एक ऐसी भूमिका अदा करने लगेंगे जो इस देश की परम्पराओं के अनुरूप होगी।

इस काल की एक महत्वपूर्ण विशेषता यह थी कि अन्तर–महाविद्यालय खेलकूद तथा अन्य प्रतियोगिताओं का विकास हुआ। ये शीघ्र ही प्रायः सभी भारतीय विश्वविद्यालयों की विशेषता बन गयी। अन्तर–विश्वविद्यालय बोर्ड भी अन्तर–विश्वविद्यालय खेलकूद और खेल प्रतियोगिताएं कराने लगे। इन कार्यकलापों से देश के विभिन्न भागों में विश्वविद्यालयों के छात्रों एवं अध्यापकों के बीच सुरूचिपूर्ण सम्पर्क स्थापित हुआ और ये भारत के पल्लवित होते हुए राष्ट्रीय जीवन का एक महत्वपूर्ण पहलू बन गए। इसी काल में कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग की एक सबसे महत्वपूर्ण सिफारिश यह थी कि विद्यालय शिक्षा और विश्वविद्यालय शिक्षा के बीच विभाजन की रेखा मैट्रिक परीक्षा नहीं वरन् इंटर परीक्षा हो। आयोग का विचार था कि भारतीय विश्वविद्यालय की इंटर कक्षाएं वास्तव में उच्च विद्यालय पाठ्यक्रम का अंग है। इन कक्षाओं में विद्यार्थियों को उन प्रणालियों की अपेक्षा विद्यालय प्रणाली से ज्यादा प्रभावी रूप से पढ़ाया जा सकता है जिन्हें सामान्यतः विश्वविद्यालयों में अपनाया जाता है। अतः आयोग ने सिफारिश की कि विशिष्ट उच्च विद्यालयों में दो कक्षाएं और जोड़कर इंटरमीडिएट महाविद्यालय नामक कई प्रकार की संस्थाएं स्थापित की जाय। विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम इंटर परीक्षा के बाद आरंभ हो तथा दो वर्ष के बजाए तीन वर्ष का हो। इस लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए आयोग ने यह भी सिफारिश की कि एक माध्यमिक तथा इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड की स्थापना की जाए और इस बोर्ड का मुख्य उद्देश्य आयोग द्वारा चलाए गए आधारों पर उच्च विद्यालयों और इंटरमीडिएट शिक्षा को मान्यता देना हो।[6]

इन सिफारिश का भारतीय शैक्षिक विचारधारा पर भारी प्रभ्झाव पड़ा और कुछ समय तक ऐसा प्रतीत हुआ कि इस सिफारिश को व्यापक स्वीकृति मिल जाएगी। कलकत्ता विश्वविद्यालय आयोग का प्रतिवेदन आने के बाद अगले कुछ वर्षों में जो विश्वविद्यालय अधिनियम बने उनमें इंटरमीडिएट शिक्षा को विश्वविद्यालयों के क्षेत्र से या तो निकाल दिया गया या निकाल देने का प्रस्ताव रखा गया। इस प्रकार ढाका विश्वविद्यालय अधिनियम 1921 ने इंटरमीडिएट शिक्षा को अपने क्षेत्र से निकाल दिया और उसे बंगाल सरकार के प्राधिकार में एक गैर–विश्वविद्यालय बोर्ड को सौंप दिया। इसी प्रकार इलाहाबाद, लखनऊ और अलीगढ़ के विश्वविद्यालय अधिनियमों में इंटरमीडिएट शिक्षा को विश्वविद्यालयों के क्षेत्र से निकाल देने का उपबंध किया गया। इंटरमीडिएट शिक्षा को दो–माध्यमिक, तथा इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड को सौंप दिया। इनमें से एक बोर्ड इलाहाबाद और लखनऊ

विश्वविद्यालयों की क्षेत्रीय सीमाओं में कार्य करता था और दूसरा अलीगढ़ विश्वविद्यालय के अधिकार क्षेत्र में था। दिल्ली विश्वविद्यालय अधिनियम, 1922 में भी यह व्यवस्था कर दी गई कि विश्वविद्यालय अपनी स्थापना की तारीख से पांच वर्ष की अवधि तक अथवा आगे जिस तारीख तक सपरिषद् गवर्नर जनरल निर्देश दें, इंटरमीडिएट शिक्षा को नियंत्रित करें। इसी प्रकार 1923 के मद्रास विश्वविद्यालय अधिनियम में यह व्यवस्था की गई थी कि जैसे ही परीक्षार्थियों को इंटर परीक्षा के लिए तैयार करने वाली संस्थाओं के पर्यवेक्षण एवं नियंत्रण के लिए पर्याप्त व्यवस्था कर दी जाए, प्रांतीय सरकार इंटरमीडिएट शिक्षा को विश्वविद्यालय के क्षेत्र से निकाल सकती है।[7] परन्तु शीघ्र ही यह शैक्षिक मत बदलने लगा। इसका विरोध शुरू हो गया।

1922 से 26 के बीच इस प्रश्न पर जोरदार चर्चा छिड़ी और शैक्षिक मत धीरे–धीरे इस सुधार का अधिकाधिक विरोधी होता गया। इस बदलते हुए दृष्टिकोण का एक संकेत 1926 और उसके बाद बनाए गए विश्वविद्यालय अधिनियमों में मिलता है। 1926 के आंध्र विश्वविद्यालय अधिनियम, 1928 के बम्बई विश्वविद्यालय अधिनियम, 1920 के अन्नामलाई विश्वविद्यालय अधिनियम और 1932 के पटना विश्वविद्यालय अधिनियमों में विश्वविद्यालयों को इंटरमीडिएट शिक्षा को नियंत्रित करने की अनुमति दी गई। सामान्यतः इंटरमीडिएट शिक्षा पर दिल्ली विश्वविद्यालय को नियंत्रण 1927 में समाप्त हो जाना चाहिए था परन्तु उसके नियंत्रण की अवधि वर्षानुवर्ष बढ़ाई जाती रही। 1927 के आगरा विश्वविद्यालय अधिनियम ने विश्वविद्यालय से सम्बद्ध महाविद्यालयों में इंटरमीडिएट की कक्षा चलाने की अनुमति प्रदान कर दी। यद्यपि इस प्रकार की कक्षाओं को उच्च विद्यालय तथा इंटरमीडिएट शिक्षा बोर्ड नामक एक गैर– विश्वविद्यालय निकाय के नियंत्रण में रखा गया था।

ढाका विश्वविद्यालय और तीन प्रांतों अर्थात् संयुक्त प्रांत, पंजाब और बिहार ने इस सुझाव को स्वीकार किया। इस विश्वविद्यालय ने अपना कार्य इंटरमीडिएट चरण के बाद से शुरू किया। संयुक्त प्रांत ने एक उच्च विद्यालय तथा इंटरमीडिएट बोर्ड बनाया जिसका कार्य उच्च विद्यालय तथा इंटर परीक्षा लेना, उच्च विद्यालय तथा इंटरमीडिएट चरणों के लिए अध्ययनक्रम निहित करना, उच्च विद्यालयों तथा इंटरमीडिएट महाविद्यालयों के लिए मान्यता प्रदान करना तथा मान्यता प्राप्त संस्थाओं का आवधिक निरीक्षण करना इत्यादि था। इस प्रांत में भारी संख्या में इंटरमीडिएट महाविद्यालय खोले गए परन्तु आयोग की इस पूरक सिफारिश को स्वीकार नहीं किया गया कि अवधि पाठ्यक्रम को दो वर्ष से बढ़ाकर तीन वर्ष कर दिया जाए। पंजाब ने इंटरमीडिएट महाविद्यालयों की मुख्यतः इस दृष्टि से व्यवस्था की कि विद्यार्थियों को लाहौर में भीड़–भाड़ करने से रोका जाए। ऐसे मुफस्सिल स्थानों पर उच्च शिक्षा का अवसर प्रदान किया जाए जहां प्रथम श्रेणी का महाविद्यालय चलाना संभव न हो। बिहार ने प्रयोग के तौर पर कुछ महाविद्यालय खोले। परन्तु किसी भी प्रांत ने प्रथम उपाधि के लिए त्रिवर्षीय पाठ्यक्रम स्वीकार नहीं किया। 1931–32 के बिहार प्रतिवेदन में कहा गया कि इन संस्थानों के अधिक सफल होने की संभावना नहीं है क्योंकि अच्छे छात्र यदि दाखिल हो सकते हैं, तो सदैव प्रथम वर्षीय स्तर से ही प्रथम श्रेणी के महाविद्यालय में दाखिल लेंगे।[8] लेकिन 1936–'37 के प्रतिवेदन में कहा गया कि स्थित वैसी है जैसी कि पिछले पंचवर्षीय पुनरीक्षण में बताई गई थी, अर्थात् इन संस्थाओं के अधिक सफल होने की संभावना कतई नहीं है।[9] पंजाब के 1936–37 के प्रतिवेदन में कहा गया है कि इंटरमीडिएट महाविद्यालयों की लोकप्रियता कम हो गई है। चतुर्वार्षिक संस्थाओं के रूप में वे सफल नहीं हुए हैं। सरकार ऐसी संस्थाओं पर प्रत्येक वर्ष भारी धनराशि खर्च नहीं कर सकती है जो अपने अस्तित्व का औचित्य सिद्ध नहीं कर पाई है, विशेषकर ऐसी स्थिति में जबकि अन्य अधिक उपयुक्त एवं अधिक आवश्यक प्रयोजनों के लिए धन की अत्यधिक आवश्यकता है।[10] केवल संयुक्त प्रांत का प्रतिवेदन आशावादी है। उसमें कहा गया है कि उपाधि महाविद्यालयों से संलग्न इंटरमीडिएट कक्षाओं से पढ़ कर निकले विद्यार्थियों की अपेक्षा इंटरमीडिएट महाविद्यालयों से पढ़कर निकले छात्र अच्छी तरह शिक्षित और उच्च शिक्षा से लाभ्ज्ञ उठाने में अधिक समर्थ होते है।[11]

हार्टोग समिति ने इस विषय पर विचार तो किया परन्तु कोई निश्चयात्मक सिफारिश नहीं की। इस विषय पर अन्तर– विश्वविद्यालय बोर्ड ने भी विचार किया था। वह जिस परिणाम पर पहुंचा वह

इस सिफारिश के प्रतिकूल था। बाद में, इस विषय पर केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड ने विचार किया। उसने समझौते का एक रास्ता निकाला और सुझाव दिया कि अवर इंटरमीडिएट कक्षा विद्यालय का अंग बने। प्रवर इंटरमीडिएट कक्षा उपाधि कार्यक्रम का अंग बने। परन्तु द्वैधशासन काल में इस सुझाव को कहीं भी स्वीकार नहीं किया गया।

भाषा सम्बन्धी विचार–

द्वैधशासन काल में माध्यमिक चरण में आधुनिक भारतीय भाषाओं को बड़े पैमाने पर शिक्षा माध्यम के रूप में स्वीकार कर लिया गया। हालांकि अंग्रेजी प्रयोग को पूरी तरह से छोड़ा नहीं गया क्योंकि विद्यालयों के कई प्रबंधक अब भी अंग्रेजी को इस कारण से शिक्षा माध्यम बनाए रहे कि विश्वविद्यालय चरण में शिक्षा माध्यम के रूप में अंग्रेजी का ही प्रयोग किया जाता था। वे इस तथ्य को जानते थे। यद्यपि माध्यमिक पाठ्यक्रम को अपने में भरी पूरी इकाई होनी चाहिए तथापि विश्वविद्यालय पाठ्यक्रम का केवल एक उपांग है। माता–पिता और छात्र भी अंग्रेजी में प्रवीणता चाहते थे क्योंकि सरकारी प्रतियोगी परीक्षाओं में शिक्षा माध्यम अंग्रेजी ही था। जिस व्यक्ति का अंग्रेजी पर अच्छा अधिकार होता था उसके लिए ही सामान्यतः इस बात की अधिक संभावना रहती थी। वह परीक्षाओं में सफल हो जाएगा और सरकारी रोजगार प्राप्त कर लेगा। बहुभाषी क्षेत्रों में वित्तीय कारणों में यह संभव नहीं था कि सभी भाषाओं के माध्यम से शिक्षा दी जा सके। अतः वहां प्रायः अंग्रेजी को ही शिक्षा माध्यम स्वीकार कर लिया जाता था। साथ ही हिन्दी–उर्दू क्षेत्रों जैसे संयुक्त प्रांत में भाषा की कठिनाईयों की अपेक्षा लिपि की कठिनाइयों को अधिक महत्वपूर्ण पाया गया। उदाहरण के लिए संयुक्त प्रांत में एक विभागीय आदेश दिया गया था कि शिक्षण के लिए जिस भारतीय भाषा का प्रयोग किया जाए वह ऐसी होनी चाहिए जिसे हिन्दी भाषी और उर्दू भाषी छात्र समझ सकें। इस आदेश का पालन करने में लिपि संबंधी कठिनाइयां पैदा हुई और श्यामपट्ट पर कार्य देवनागरी और उर्दू अथवा रोमन लिपियों में करना पड़ा। निश्चित रूप से यह कहा जा सकता है कि माध्यमिक चरण में शिक्षा माध्यम की समस्या 1937 तक प्रायः समाप्त ही हो गई थी। हालांकि पूर्ण सफलता मिलने में अब भी कुछ कठिनाईयां थी। सबसे अधिक बाधा, विश्वविद्यालय में माध्यम के रूप में अंग्रेजी का प्रयोग किया जाना था। अतः अब शिक्षाविदों का ध्यान इस प्रकार की समस्याओं की ओर गया जैसे विश्वविद्यालय में शिक्षा माध्यम की समस्या, भारत के लिए एक राष्ट्रभाषा के विकास की समस्या और एकरूप वैज्ञानिक शब्दावली तैयार करने की समस्या।

संदर्भ :

1. क्विनक्वेनियस रिव्यू ऑफ दि प्रोग्रेस ऑफ एजुकेशन इन इंडिया, 192–27, खंड–1, पृ0 39
2. रिपोर्ट ऑफ दि हार्टोंग कमेटी, पृ0 325
3. रिपोर्ट ऑफ दि हार्टोंग कमेटी, पृ0 346
4. रिपोर्ट ऑफ दि हार्टोंग कमेटी, पृ0 345–46
5. गोखलेज स्पीचेज, 1920, पृ0 235
6. रिपोर्ट ऑफ दि कलकत्ता यूनिवर्सिटी कमीशन, अंक–4, अध्याय–31 एवं 32
7. मद्रास विश्वविद्यालय अधिनियम 1923, धारा 36 और 37
8. बिहार का प्रतिवेदन– 1931–32, पृ0 30
9. बिहार प्रतिवेदन– 1936–37, पृ0 38
10. गवर्नमेंट रेजोल्यूशन, पृ0 2
11. रिपोर्ट, 1936–37, पृ0 40

***

विदेश नीति निर्धारण में विचारधाराओं का स्वरूप : वर्तमान परिप्रेक्ष्य में

*डॉ अश्विनी कुमार पाण्डेय**

विदेश नीतियों को निर्धारित करने में विचारधाराओं का प्रमुख योगदान है। इसके अतिरिक्त सामाजिक व्यवहार, कार्य नैतिक शास्त्र, उत्पादन, उपभोग, संप्रभुत्व और प्रभाव में भी विचारधाराओं की प्रासंगिकता से इन्कार नहीं किया जा सकता है। विशिष्ट विचारधाराएँ विशिष्ट कार्य संस्कृति, कार्य नैतिकता, उत्पादन एवम् उपभोग से संबंधित होती है। पूर्व ज्ञान पर आधारित विचारधाराएँ समूचे विश्व समुदाय में विनाशात्मक प्रभाव रखती है। इसके अतिरिक्त एकपक्षीय मान्यताएँ, विश्वास एवम् विशिष्ट लक्ष्यों पर आधारित विचारों का विकास भी विश्व समुदाय पर प्रतिकूल प्रभाव डालता है। शीतयुद्ध के उपरांत पूरे विश्व में लगभग यही स्थिति मौजूद है। विचारधाराओं पर भी कई बार आरोप लगे कि इन्हीं की वजह से पूरी दुनियां को युद्ध की आग में झोंक दिया गया। जॉर्ज पी0 फ्लेचर ने अपनी पुस्तक 'रोमांटिक्स एट वार' में कहा कि ''हर जमाने में कोई न कोई दुश्मन होता है। पहले विश्वयुद्ध में फासिस्टों को सारी बुराई की जड़ समझा जाता था। लेकिन द्वितीय विश्वयुद्ध में कम्युनिस्टों को निशाना बनाया गया और उन्हें अपना दुश्मन माना गया। लेकिन आज शीतकाल के बाद के युग में आतंकवादियों को ही हिंसा का निर्माता माना गया।'' वैचारिकी की प्रतिस्पर्धा में आतंकवाद निश्चित रूप से पक्ष है और यह निश्चित रूप से एक विशिष्ट वैचारिकी है। सोवियत संघ के विघटन के पहले वैचारिकी सिर्फ दो महाशक्तियों के बीच एक साधन मात्र था जो तीसरी दुनियाँ को लुभाने के काम में प्रयोग किया जाता था। अमेरिका और रूस के बीच शीतयुद्ध वाकई में वैचारिक जंग ही था जो एशिया, अफ्रीका और लैटिन अमरीका के ऊपर वर्चस्व बिठाने के लिए इस्तेमाल किया जाता था। इस शीत युद्ध ने अंतहीन वैचारिक स्पर्धा छेड़ दी। इससे हथियारों की होड़ मच गई। नाटो (नॉर्थ अटलांटिक ट्रीटी ऑर्गेनाइजेशन) ने अमेरिका के नेतृत्व में पूंजीवादी विचारधारा का नेतृत्व किया। इसी तरह सीटो (CETO) और सेन्टो (CENTO) का भी गठन किया गया ताकि दक्षिण एशियाई देशों और केन्द्रीय एशियाई देशों में कम्युनिस्टों के बढ़ते प्रभाव को रोका जा सके। कम्युनिज्म, कम्युनिस्टवादी, फासिस्टवादी और लेनिन, स्टालिन और माओ के नेतृत्व में कम्युनिस्टवादी ताकतों ने विश्वयुद्ध के पहिले ही पूरी दुनियाँ को कई हिस्सों में बांटा गया।

मुसोलिनी और हिटलर ने भी दमन को एक वैचारिक हथियार के रूप में अपनाया। 24 अक्टूबर सन् 1945 को संयुक्त राष्ट्र संघ ने वैश्विक शांति, सुरक्षा और समृद्धि को निश्चिम करने के लिए सक्रियता के साथ कदम उठाए। 10 दिसंबर सन् 1948 को मानवाधिकार के मृद्दे पर एक वैश्विक घोषणा की गई और उसी साल गैट (जेनरल एग्रीमेंट आन ट्रेड एंड टैरिफ) का भी गठन किया गया। इसके ठीक पहले ब्रेटन वुड्स आर्गेनाइजेशन ने अंतर्राष्ट्रीय मुद्राकोष एवम् विश्व बैंक को भी स्थापित किया गया। जिसके माध्यम से पश्चिमी यूरोपीय देशों को आर्थिक सहायता पहुंचाई गई। सन् 1949 में यूरोपीय परिषद का गठन की स्थापना की गई जो यूरोपीय देशों को राजनीतिक सहयोग पहुँचाने की दिशा में मील का पत्थर समझा गया। सन् 1951 में यूरोपीय कोल एण्ड स्टील समुदाय भी अस्तित्व में आया। सन् 1957 में रोम की संधि के अनुसार यूरोपीय आर्थिक समुदाय भी अस्तित्व में आया। सन् 1957 में रोम की संधि के अनुसार यूरोपीय आर्थिक समुदाय भी धरातल पर दिखाई देने लगे। इसी तरह कई एक विविध एकीकृत ताकतें रही जिसने आर्थिक विकास और आर्थिक सुधार के लिए काम किया।

इसी संदर्भ में डेनियल बेल ने 'एण्ड ऑफ आईडियोलॉजी' नामक पुस्तक लिखी। अमेरिकी सामाजिक वैचारिकी में इसे मील का पत्थर माना गया।

---

* प्रवक्ता- रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, किसान पी०जी० कालेज रकसा, रतसड़, बलिया

डेनियल बेल ने स्पष्ट किया कि पुरानी मानववादी विचारधाराएँ उन्नीसवीं शताब्दी से शुरू हुई, लेकिन बीसवीं शताब्दी में विलुप्त हो गई। द्वितीय विश्वयुद्ध के उपरांत 'विचारधाराओं के लक्ष्य के बारे में सामाजिक वैज्ञानिकों ने घोषणा की। इन्होंने तर्क प्रस्तुत किया कि (अ) सामान्य नागरिकों के राजनीतिक दृष्टिकोणों में स्थिरता का अभाव है। (ब) वैचारिक संरचनाएँ यथा–उदारवाद और संरक्षणवाद जैसी विचारधाराओं में अभिप्रेरणात्मक क्षमता और व्यवहारिक उपयोगिताओं का नितान्त अभाव है। (स) उदारवादी और संरक्षणवादी दृष्टिकोणों के मध्य कोई खास अंतर नहीं है और (द) मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में कोई खास भिन्नता नहीं है जो उदारवादी और संरक्षणवाद संस्करणों को रेखांकित करती है।

विचारधारा और कूटनीति में संबंध–

कूटनीति एक कला है जो लोगों के संवेदनशील ढंग से और चातुर्यपूर्ण ढंग से निपटने के लिए व्यवहार में लाई जाती है। आजकल यह एक व्यवसाय हो गया है जिसके अंतर्गत अंतर्राष्ट्रीय संबंधों को कायम रखने और उनसे निपटने के लिए गतिविधियाँ एवम् विशेष कला कौशल व्यवहार में लाए जाते हैं। सोवियत संघ के बिखरने के बाद और शीतयुद्ध की समाप्ति के उपरांत जिस तरह के पृष्ठभूमि की निमित्ति हुई, उसके अनुसार एक ऐसी अंतर्राष्ट्रीय व्यवस्था सामने आई जिसमें देश या राज्य खुद ब खुद ही असामान्य संबंधों को व्यवस्थित करने के लिए सामने आने लगे। एक ऐसी बहुध्रुवीय व्यवस्था का निर्माण हुआ और इस तरह की बहुध्रुवीय दुनियाँ हमारे सामने आई जिसमें अवसरों की संख्या बढ़ी तथा एक समान विचार वाले देश या राज्य आपस में एकत्र होने लगे ताकि उनके परस्पर हितों में वृद्धि हो और किसी भी संभावित या आसन्न संकट का समाधान निकाला जा सकें। अतः जब भी किसी विचारधारा, राजनीति और कूटनीति की आपस में टकराहट होती है तो आपस में देशों के प्रतिनिधि मिलकर उस संभाव्य युद्ध की स्थिति को या तनाव की स्थिति को टालने की कोशिश करते है। यह व्यक्ति विशेष की क्षमता पर निर्भर करता है या राष्ट्र समूहों की क्षमता पर निर्भर करता है कि वो कैसे और किस तरह असमान्य या असहज स्थिति को टालने की कोशिश करते है।

एरिक बोगालिन (2011) अपनी बातों को सामने रखते हुए कहते हैं कि आजकल जिस तरीरके से आधुनिक तकनीक या प्रौद्योगिकी सामने आ रही है, उससे हमारा ध्यान पुनः एक बार राजनीति, और राजनीतिक हकीकत के अर्थों के प्रति केन्द्रित हो गया है।

हंस, जे0 मॉरगेथू (2005) ने वास्तविकतावाद की रक्षा में विचार प्रकट किया कि अंतर्राष्ट्रीय राजनीति के सिद्धांत के रूप में अमेरिका की विदेशनीति में एक तरह से समीक्षा की विचारधारा भी एक चातुर्यपूर्ण व्यवस्था के रूप में निहित रहती है जो सेफ्टी वॉल्व के रूप में इस्तेमाल की जाती है। इसके अतिरिक्त इन्होंने यह भी कहा कि आजकल की वैचारिकी वैज्ञानिक परीक्षणों के प्रतिबंधों से ही सिंचित एवं निर्मित होती है ताकि सकारात्मक, निरपेक्ष एवम् प्रगतिशील कार्य बिंदु निर्मित किए जा सके।

वैचारिकी एवम् राजनीति–

कोई भी राजनीतिक विचारधारा, चाहे वो मार्क्सवादी हों या उदारवादी, पूरी तरह से इस बात पर केन्द्रित होती है कि समाज मेमं सत्ता की शक्तियों का वितरण एवम् हस्तांतरण कैसे किए जॉय और किस हद तक सत्ता की ताकत का इस्तेमाल किया जायें। कभी–कभी ऐसा भी दिखने में आता है कि कुछेक पार्टियाँ ऐसी भी होती हैं जो किसी विशेष विचारधारा को लेकर सक्रिय एवम् कार्यशील रहती है, जबकि कुछेक दल किसी समूह विशेष की विचारधारा से प्रेरित एवम् अनुप्राणित होकर उन्हीं की अनुकरण एवम् अनुसरण करते हैं। किसी भी राजनीतिक विचारधारा में कुछ ऐसे ठोस एवम् निश्चित विचारधारा होती है जिसके आधार पर बेहतर तरीके से सरकारी मशीनरी का इस्तेमाल किया जा सकता है। ये सरकारी मशीनरियाँ लोकतंत्र, धर्मतंत्र, पूंजीवाद एवम् समाजवाद हो सकते है। इन शब्दों के प्रयोग एवम् अनुप्रयोग यदा कदा किसी भी विचारधारा को चिन्हित एवम् निर्मित करने के लिए भी किए जाते है। उदाहरण के लिए समाजवाद का प्रयोग किसी आर्थिक व्यवस्था का संज्ञान करने के लिए या चिन्हित करने के लिए किया जाता है जिसमें संपत्ति या सत्ता का समान वितरण होता है।

जब भी कोई राजनीतिक विचारधारा प्रभावी रूप से व्यापक हो जाती है तभी सरकारी एजेंसियाँ बेपरवाह और लापरवाह होने लगती है।

सन् 1991 के बाद कई सारे दार्शनिकों ने दावा किया कि हम विचारों की दुनियाँ से आगे की दुनिया में रह रहे हैं जिसमें कई सारी विचारधाराएं आपस में टकराकर असफल हुई जा रही हैं। ये सारी बातें और विचार फ्रांसीस फुकियामा के लेख 'एण्ड ऑफ हिस्ट्री' से परिलक्षित होती है। दूसरी तरफ स्लेवोज्जिवेक ने विचार व्यक्त किया कि किस तरह से विचारों से परे या विचारों की परिसीमा से परे कोई भी विचार किसी भी अन्धे विचार या अन्ध विश्वास को कितना सक्षम बना सकता है।

विचारधारा और राष्ट्रवाद–

आज राष्ट्रवाद समूचे देश में एक गंभीर ज्वलंत विषय है। क्योंकि राष्ट्रवाद की विचारधारा राष्ट्र के विचार का प्रयोग एवम् अनुप्रयोग करती है ताकि राजनीतिक लक्ष्यों की प्राप्ति संभव हो सकें। यहाँ यह भी उल्लेखनीय है कि राष्ट्रवाद की किस तरह की विचारधारा है। यहाँ पुर्नस्मरणीय है कि 'विचारधारा एक प्रतिस्पर्धी अवधारणा है।' (गैली 1956)। यह एक ऐसी अवधारणा है जिसको कई तरीके से समझा और अभिव्यक्त किया जा सकता है। मार्क्स और ऐंजेल्स ने राष्ट्रवाद की विचारधारा को अनुप्राणित करते हुए कहा कि कोई भी विचारधारा विचारों या मुक्तिसंगत विचारों की एक व्यवस्था है जो पूंजीवादी व्यवस्था के अंतर्गत कार्यरत श्रमिकों के भीतर छद्म चेतना का संचार करती है। विचारधारा के संबंध में एक दूसरी बात हमारे मन मस्तिष्क में संचरित होती है कि यह वामपंथी और दक्षिणपंथी विचारधाराओं की एक व्यवस्था है जो हमारे आज के राजनीतिक परिदृश्य में देखने सुनने को मिलती है। यह अधिकतर साम्यवाद, समाजवाद, उदारवाद और संरक्षणवाद के रूप में ही अस्तित्वमान रहती है। राष्ट्रवाद के बारे में कहा जा सकता है कि यह तीसरे तरह की विचारधारा के रूप में कार्यशील रहती है। इसका दक्षिण पंथी या वामपंथी के रूप में मापन करना कत्तई युक्तिसंगत या न्यायसंगत नहीं होगा। आज पूरे देश में राष्ट्रवादी विचारधारा ही हर जगह प्रतिध्वनिनत हो रही है। क्योंकि इसे ही देशभक्ति के नाम पर व्यवहार में लाया जाता है। इसका संबंध किसी ऐसी राजनीतिक इकाई के निर्माण से है जो दक्षिणपंथी और वामपंथी विचारधारा के मध्य कार्यशील और सक्रिय है और इसकी समीचीन भूमिका भी अत्यंत महत्वपूर्ण है। कोई भी व्यक्ति किसी भी विचारधारा, चाहे वो दक्षिणपंथी हो या वामपंथी, या फिर परम्परावादी, को अपनाने और प्रचार–प्रसार करने के लिए पूर्णरूप से स्वतंत्र है। इसके लिए कोई अनिवार्य नहीं कि इनका संबंध सरकार से या सरकारी व्यवस्था से हो। लेकिन प्रायः ये मौजूदा सरकार से उलझते रहते है। अतः यह स्पष्टतः कहा जा सकता है कि राष्ट्रवाद विशुद्धरूप से राजनीतिक विचारधारा है लेकिन इसके आचार और व्यवहार पूरी तरह से भिन्न एवम् गैर राजनीतिक है। यदि इसको व्यवहारगत ढंग से देखा जॉय तो ऐसा प्रतीत होता है कि कोई भी राष्ट्रवादी विचारधारा तभी सफल है जब वो दक्षिणपंथी या वामपंथी समेत किसी भी अन्य विचारधाराओं के हितों का संवर्धन करें।

प्रतिस्पर्धी विचारधाराओं पर वाद–विवाद का वर्तमान स्वरूप

हाल ही के समय में चीन के राष्ट्रपति ने मार्क्सवाद पर अपनी गहरी निष्ठा व्यक्त की और चीन के सामाजिक मूल्यों का केंद्रबिंदु बताया। कार्लमार्क्स के दिवंगत होने के 200 वर्षों बाद मार्क्सवाद एक बार फिर जीवित हो उठा, जब चीनी राष्ट्रपति ने सन् 2018 में एक नये प्रतिदर्श के आधार पर शासनतंत्र का आगाज किया। अधिकांश लोगों ने कहा कि मार्क्स अपने कब्र से निकल कर बाहर आ गए है जब चीन ने अत्यधिक उच्च स्तरीय तरीके से मार्क्स के 200 वीं वर्षगांठ पर राष्ट्रव्यापी अभियान चलाया तथा विधिवत तरीके से सन् 2018 में 'कम्युनिस्ट घोषणा पत्र' की 170वीं वर्षगांठ का उत्सव मनाया। यह वही कम्युनिस्ट घोषणा पत्र है जिसके साथ 'दास कैपिटल' ने कम्युनिस्टवाद के उन्नयन और उत्थान की आधारशिला रखी। इसके आधुनिक और उदात्त विचारों ने श्रम संबंध, वर्ग संघर्ष और राजनीतिक अर्थव्यवस्था के परिप्रेक्ष्य में नई परिभाषाओं और विचारधाराओं का सूत्रपात किया। चीन के राष्ट्रपति ने अपने संबोधन में कहा– ''आज के इस नये युग में चीनी कम्युनिस्टों को अभी भी कार्ल मार्क्स से बहुत कुछ सीखने की आवश्यकता है।'' यहाँ और अधिक महत्वपूर्ण बात यह रही कि मार्क्स

के पुनः प्रस्तुतीकरण वाकर्ठ में जिं के महत्वाकांक्षी योजनाओं के अटूट हिस्सा बन गए ताकि नये शासन तंत्र को आर्थिक प्रगति के ढेर सारे आयाम दिए जा सकें। यहाँ यह ध्यान देने की जरूरत है कि यह घटना ऐसे समय हुई जब पूरा विश्व राजनीतिक और आर्थिक हलचल से जूझ रहे हो। चीन ने अपनी राष्ट्रीय हितों और आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए एशियाई देशों से सांस्कृतिक संबद्धता कायम की। इसके निमित्त और इससे अलग भी ''सेफगार्डिंग द डाईवर्सिटी ऑफ एशियन सिविलाईजेशंस'' नाम कार्यक्रम चीन के शिक्षा मंत्रालय के तरफ से यूनेस्को के सौजन्य से आयोजित किया गया। यह कार्यक्रम 15 मई, सन् 2019 को आयोजित किया गया। इस कार्यक्रम की शुरूआत चीन के बीजिंग नाम के शहर में एशियन सिविलाइजेशंस एक्सचेंजेस एंड म्युचुयल अंडरस्टैंडिंग' विषय पर विमर्श के साथ हुई। इस सांस्कृतिक विमर्श के कार्यक्रम में एशियन कल्चरल कार्निवल, एशियन सिविलाइजेशन वीक एशियन फूड फेस्टिवल और अन्य गतिविधियाँ सुर्खियों में रही। पूरी दुनिया के लगभग हर हिस्से से 1500 कुशल प्रशिक्षित व्यक्तियों ने हिस्सा लिया जिसमें राज्यों और सरकारों के उच्च स्तरीय प्रतिनिधि भी शामिल थे। इन सभी लोगों ने अंर्तसांस्कृतिक वार्ता शुरू करने की हिमायत की। इसके लिए 'एशियन कम्युनिटी आवॅफ शेपर्ड फ्यूचर' जैसे कार्यक्रमों को आयोजित करने का सुझाव दिया। इस कार्यक्रम के हिस्से के रूप में चीन के शिक्षा मंत्रालय ने यूनेस्को के तालमेल के साथ 'सेफगार्डिंग द डाईवर्सिटी ऑफ एशियन सिविलाईजेशंस' जैसे कार्यक्रम भी आयोजित किए गए। इस कार्यक्रम में इन विषयों पर ध्यान केन्द्रित किया गया जो निम्न है–

- एशियाई सभ्यताओं की विविधता के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में,
- एशियाई जनता समेत व्यापारिक मार्ग के विरासत के मध्य सांस्कृतिक अंतः क्रिया,
- 'सर्वनिष्ठ एवम् साझा विरासत को पुर्नजीवित करने के संबंध में चुनौतियाँ, एवम् अन्य।

निष्कर्ष

इस प्रकार, विचारधारा एक ऐसा लेंस हैं जिसके माध्यम से कोई भी व्यक्ति दुनियाँ का साक्षात्कार कर पाता है, ताकि बेहतर समझदारी और ज्ञान तथा व्यवस्था के प्रति सही ढंग से प्रतिक्रिया व्यक्त कर सकें। समाजशास्त्र के क्षेत्र में, विचारधारा का संबंध व्यक्ति के मूल्य, विश्वास, मान्यताओं और प्रत्याशाओं से है।

विचारधारा समाज, परिवार, समूह या फिर लोगों के बीच में या इसके अंतर्गत ही कार्यरत एवम् सक्रिय होती है। ये हमारे विचारों, कार्यों और प्रतिक्रियाओं को आकार देती है। जब भी लोग विचारधाराओं की बात करते हैं तो इसका अर्थ है कि वे किसी विचार विशेष से जुड़ते है। उदाहरण के लिए कई सारे लोग ऐसे हैं या फिर मीडिया के ही कुछ लोग ऐसे होते हैं जो उग्रवादी या अतिशय विचारधाराओं का हवाला दे जाते हैं। आज देश के भीतर सामाजिक व्यवस्थाओं के राजनीतिकी की तरफ ज्यादे ध्यान दिया जा रहा है क्योंकि हर व्यक्ति कहीं न कहीं राष्ट्रीयता के विचारों से प्रभावित है। इस तरह समाज एक ढांचे में ढल जाता है जिसका इस्तेमाल राजनीतिक रूप से अभिप्रेरित संवर्ग ही करता है। प्रत्येक समाज में वैचारिकी के अस्तित्व पर भी ज्यादे ध्यान केन्द्रित किया जा रहा है। सारे राजनीतिक दल किसी न किसी प्रकार से विचारधाराओं का ही अनुप्रयोग कर रहे है। ये इन सारी चीजों को अमल में लाने के लिए जनता से विश्वसनीयता और वैधता प्राप्त करते हैं और सत्ता हासिल कर लेते है।

यदि व्यवहारिक रूप से देखा जाय तो विचारधारा या वैचारिकी की अवधारणा प्राकृतिक रूप से काफी व्यापक हैं और ये भी भी विशेष सोच को प्रभावित नहीं होती है। इस तरह से समाजशास्त्रियों ने विचारधारा या वैचारिकी को शाश्वत रूप में देखने की कोशिश की और अनुभव किया कि समाज में कई तरह की प्रतिस्पर्धी विचारधाराएँ हैं। इनमें कुछेक विचारधाराएँ अन्य विचारधाराओं पर प्रभावी है। इसकी वजह से समाज में फैशन परस्ती की प्रवृत्ति कायम होती है। लोगों में भी विचारधारा को लेकर एक दूसरे के प्रति 'हीन भावना' या 'श्रेष्ठ भावना' विकसित होती है। टेरी इगलेटन के शब्दों में ''विचारधारा या वैचारिकी दृष्टिकोणों या अवधारणाओं की व्यवस्था है जिससे दुनियाँ के बारे में विचार पनपते हैं और सामाजिक अभिरूचियाँ जटिल होती चली जाती है।''

अंततः वैचारिकी चीजों या अवधारणा के प्रति भाव पैदा करने में मदद करती है। इससे दुनियाँ के बारे में व्यवस्थित अवबोधन प्राप्त होता है।

यह मानवीय अनुभव से कहीं ज्यादे महत्वपूर्ण है और इसमें गहनता का पुट भी अधिक है। अतः विचारधारा या वैचारिकी सामाजिक व्यवस्था से ही उभर कर सामने आती है और इसका मूल मानवीय भागीदारी में निहित है।

संदर्भ :

1. End of ideology , Daniel Bell .
2. End of history , Francis Fukuyama.
3. Xi Jinping's take on communism offers alternative to decline of the West (south China morning Post article by Wang Xiangwei)
4. The revival of ideology in Russia by Evgenia Lezina.
5. https://www.oecd.org › newsroom
6. OECD countries agree to invite Colombia as 37th member.
7. What is Prosur ?Americas Society Council of the Americas (as coa.org)
8. Progressive capitalism is not oxymoron by Joseph stiglitz.
9. White power ideology: why el paso is part of a growing global threat by Lois Beckett and Jason Wilson .
10. Putin : Russian President says liberalism obsolete by BBC news

***

भारत में बढ़ता बाल अपराध कारण एवं निवारण

डॉ. संजय तिवारी *

निर्धारित आयु वर्ग के बच्चे द्वारा कोई कानून–विरोधी या समाज विरोधी कार्य किया जाता है तो उसे किशोर अपराध या बाल अपराध कहते हैं। कानूनी दृष्टिकोण से बाल अपराध 8 वर्ष से अधिक तथा 16 वर्ष से कम आया के बालक अथवा बालिका द्वारा किया गया कानूनी विरोधी कार्य है जिसे कानूनी कार्यवाही के लिये बाल न्यायालय के समक्ष उपस्थित किया जाता है। भारत में बाल न्याय अधिनियम 1986 (संशोधित 2000) के अनुसर 16 वर्ष तक की आयु के लड़कों एवं 18 वर्ष तक की आयु की लड़कियों के अपराध करने पर उसे बाल अपराधी की श्रेणी में सम्मिलित किया गया है। बाल अपराध की अधिकतम आयु सीमा अलग–अलग राज्यों में अलग–अलग है। इस आधार पर किसी भी राज्य द्वारा निर्धारित आयु सीमा के अन्तर्गत बालक द्वारा किया गया कानूनी विरोधी कार्य बाल अपराध है।

केवल आयु ही बाल अपराध को निर्धारित नहीं करती वरन् इसमें अपराध की गंभीरता भी महत्वपूर्ण पक्ष है। 7 से 16 वर्ष का लड़का तथा 7 से 18 वर्ष की लड़की द्वारा कोई भी ऐसा अपराध न किया गया हो जिसके लिए राज्य मृत्यु दण्ड अथवा आजीवन कारावास देता है जैसे हत्या, देशद्रोह, घातक आक्रमण आदि है तो वह बाल अपराधी नही माना जायेगा।

समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से बाल अपराध के लिये आयु को अधिक महत्व नहीं दिया जाता क्योंकि व्यक्ति की मानसिक एवं सामाजिक परिपक्वता सदा ही आयु से प्रभावित नहीं होती, अतः कुछ विद्धान, बालक द्वारा प्रकट व्यवहार प्रवृति को बाल अपराध के लिए आधार मानते हैं, जैसे आवारागर्दी करना, स्कूल से अनुपस्थित रहना, माता–पिता एवं संरक्षकों की आज्ञा न मानना, अश्लील भाषा का प्रयोग करना, चरित्राहीन व्यक्तियों से संपर्क रखना आदि। किन्तु जब तक कोई वैध तरीका सर्वसम्मिति से स्वीकार नहीं कर लिया जाता तब तक आयु को ही बाल अपराध का निर्धारक आधार माना जायेगा। गिलिन एवं गिलिन के अनुसार समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण से एक बाल अपराधी वह व्यक्ति है जिसके व्यवहार को समाज अपने लिए हानिकारक समझता है और इसलिए वह उसके द्वारा निषिद्ध होता है।

इस प्रकार बाल अपराध में बालको अथवा बालिकाओं के असामाजिक व्यवहारों को लिया जाता है अथवा बालकों के ऐसे व्यवहारा का जो लोक कल्याण की दृष्टि से अहितकर होते हैं, ऐसे कार्यों को करने वाला बाल अपराधी कहला ता है। रॉबिन्सन के अनुसार आवारागर्दी, भीख माँगना, निरूद्देश्य इधर–उदर घूमना, उदण्डता बाल अपराधी के प्रमुख लक्षण है।

उपर्युक्त परिभाषाओं के आधार पर कानून की अवज्ञा करने वाला एवं समाज विरोधी आचरण करने वाला बालक बाल अपराधी होता है जैसा कि न्यूमेयर का कहना है कि बाल अपराधी एक निश्चित आयु से कम वह व्यक्ति है जिसने समाज विराधी कार्य किया है तथा जिसका दुर्व्यवहार कानून को तोड़ने वाला है।

मनोवैज्ञानिक एवं समाजशास्त्रीय अध्ययनों द्वारा यह ज्ञात हुआ है कि मनुष्य में अपराधवृत्तियों का जन्म बचपन में ही हो जाता है। अंकेक्षणों (स्टैटिस्टिक्स) द्वारा यह तथ्य प्रकट हुआ है कि सबसे अधिक और गंभीर अपराध करनेवाले किशोरावस्था के ही बालक होते हैं। इस दृष्टि से कैशोर अपराध (जुवेनाइल डेलिंक्वेंसी) को एक महत्वपूर्ण कानूनी, सामाजिक, नैतिक एवं मनोवैज्ञानिक समस्या के रूप में देखा जाने लगा है।

---

* एम०ए०, एल-एल.बी., पी-एच०डी०, एसो० प्रो० एवं विभागाध्यक्ष समाजशास्त्र विभाग, डी० ए०वी० पी०जी०, कालेज, लखनऊ

बाल अपराध के कारण

बाल अपराध एक सामाजिक समस्या है, अतः इसके अधिकांश कारण भी समाज में ही विद्यमान हैं, इसके कारणों को निम्नलिखित श्रेणियों में विभाजित किया जा सकता है।

पारिवारिक कारण

परिवार बच्चों की प्रथम पाठशाला है, जहाँ वह अपने माता–पिता एवं भाई–बहनों के व्यवहारों से प्रभावित होता है। जब माता–पिता बच्चों के प्रति अपने दायित्वो का निर्वाह करने में असमर्थ रहते हैं, तो बच्चों से भी श्रेष्ठ नागरिक बनने की अपेक्षा नहीं की जा सकती है। परिवार से संबधित कई कारण बालक को अपराधी बनाने में उत्तरदायी है।

भौतिक वंशानुक्रमण

बच्चों के शरीर और स्वास्थ्य का संबध उसके वंशानुक्रमण से भी है जो कि उसकी शारीरिक और सामाजिक भूमिकाओं को प्रभावित करता है, इटली के अपराधाशास्त्राी लोम्ब्रोसो ने तो अपराधी प्रवृति को व्यक्ति की शारीरिक विशेषताओं से जनित ही माना था। गोडाई, रिचार्ड डुग्डेल एवं इस्टा बुक ने कालिकाक और ज्यूक परिवारों का अध्ययन करके पाया कि ये परिवार शारीरिक दृष्टि से क्षत थे तथा इन परिवारों की सभी पीढ़ियां अपराधी थी। भारत में भूतपूर्व अपराधी जनजातियों को भी वंशानुक्रमण के आधार पर अपराधी घोषित किया गया था, अपराधी को वंशानुक्रमण की देन मानने वाले विद्वान मेण्डल के वंशानुक्रमण के सिद्धान्त से प्रभावित थे।

किन्तु वर्तमान में अपराध शास्त्रा में इस अवधारणा का बहिष्कार किया गया। बर्ट ओर गिलिन ने अपने अध्ययनों में बाल अपराध को वंशानुक्रमण से संबधित नहीं पाया। भग्न परिवार निम्न दो प्रकार से टूट सकते हैं। भौतिक रूप से तथा मानसिक रूप से। भौतिक रूप से परिवार के टूटने का अर्थ है - परिवार के सदस्य की मृत्यु हो जाना, लम्बे समय तक अस्पताल, जेल, सेना आदि में रहने के कारण अथवा तलाक और पृथक्करण के कारण सदस्यों का परिवार में साथ–साथ नहीं रहना है। मानसिक रूप से परिवार के टूटने का अर्थ हैं : सदस्य एक साथ तो रहते हैं किन्तु उनमें मनमुटाव, मानसिक संघर्ष एवं तनाव पाया जाता है। हंसा सेठ, कार, बर्ट, बेजहोट, सुलेन्जर व ग्लूक आदि अनेक विद्वानों ने अपने अध्ययनों में पाया कि भग्न परिवार बाल अपराध के जनक है।

अपराधी भाई–बहन

बच्चे अनुकरणप्रिय होते हैं, वे हर अच्छे बुरे काम को बड़ो से अनुकरण के आधार पर सीखते हैं, यदि परिवार में बड़े भाई–बहिन अपराधी हैं और उनके साथ बुरा व्यवहार करते हैं तो बच्चों का व्यक्तित्व विकृत हो जाता है, उनमें विद्रोही भावना के स्वर मुखरित हो जाते हैं, वे दुषित वातावरण से बाहर रहने लगते हैं और गलतसंस्कार प्राप्त कर अपराधी बन जाते हैं, अथवा माता पिता बच्चें को समान रूप से स्नेह नहीं देते, तो ऐसी स्थिति में भी बच्चे अपने को परिवार से अलग कर लेते हैं और उनके मन में अपराध की भावना जागृत हो जाती हैं।

माता–पिता द्वारा तिरस्कार

माता–पिता द्वारा बच्चे के विकास और अन्तः करण पर सीधा प्रभाव डालते हैं। अंतविवेक की कमी होने के कारण शत्राुता की भावना के साथ मिलकर आक्रामकता को जन्म देती है, ऐण्ड्री (1960) ने भी माना है कि बाल अपराधी अपराधियों की अपेक्षा माता–पिता का प्यार कम पाते हैं।

इसी प्रकार दोषपूर्ण अनुशासन भी बाल अपराध के लिए जिम्मेदार कारक है, अनुशासन का प्रभुत्वपूर्ण दृष्टिकोण बच्चे के मित्रा समूह सम्बन्धों को भी प्रभावित करता है क्योंकि बच्चा अपने साथियों के साथ स्वतत्राता से व्यवहार नहीं कर पायेगा दूसरी और नम्र अनुशासन बच्चे के व्यवहार को निर्देशित करने के लिए आवश्यक नियंत्राण प्रदान नहीं करेगा, अनुचित या पक्षपातपूर्ण अनुशासन बच्चे में यथेष्ट अन्तः भावना का विकास करने में असफल रहता है।

परिवार की आर्थिक दशा

बच्चों की आवश्यकताओं को जुटा पाने में असमर्थ परिवार भी बच्चे में असुरक्षा पैदा कर सकता है ओर उस नियंत्राण की मात्राा को प्रभावित कर सकता है जो परिवार बच्चे पर डाल सकता है

क्योंकि वह भौतिक समर्थन तथा सुरक्षा परिवार के बाहर खोजता है। पीटरसन और बेकर ने बताया कि अपराधियों के परिवार प्रायः भौतिक रूप से कमजोर होते हैं, जो कि बाल अपराधी के स्वयं के प्रत्यक्षण को प्रभावित कर सकते हैं और उसको घर से भागने में सहायक हो सकते है।

भीड़–भाड़ युक्त परिवार

आधुनिक समाज में नगरीकरण के परिणामस्वरूप व्यक्ति को रहने का पर्याप्त स्थान नहीं मिल पाता, बड़े परिवार को भी बहुत छोटे स्थान में रहना पड़ता है। इसके कारण माता–पिता न तो बच्चों पर पूर्ण ध्यान दे पाते हैं, न ही कोई आन्तरिक सुरक्षा उन्हें मिल पाती है, मनोरंजन के साधन भी उपलब्ध नहीं होते हैं, अतः बच्चे अपराध की ओर प्रवृत हो जाते हैं, माता–पिता स्वंय ही उन्हें बाहर भेजना पंसद करते है, जहाँ बच्चे अपराधी बालकों की संगति प्राप्त करते हैं और स्वयं भी अपराधी बन जाते हैं।

व्यक्तिगत कारण

पारिवारिक कारणों के अतिरिक्त स्वंय व्यक्ति में ही ऐसी कमियां हो सकती है जिनसे कि वह अपराधी व्यवहार को प्रकट करें।

शारीरिक कारकः जब बालक किसी प्रकार की शारीरिक अक्षमता का शिकार होता है तो उसमें हीनता की भावना विकसित हो जाता है वे अपराध की ओर प्रवृत हो जाते है, सिरिल, बर्ट, हीले तथा ब्रोनर एवं ग्लूक आदि ने बाल अपराधियों के अध्ययन में ऐसा पाया, हट्टन ने अनेक प्रकार के शारीरिक दोषों जैस बहरापन, स्थाई रोग, शरीरिक अपंगता, बुद्धि की कमी को बाल अपराध का कारण माना है।

मनोवैज्ञानिक कारण

मनौवैज्ञानिकों ने मानसिक असमानताओं को भी बाल अपराध के लिए उत्तरदायी माना हैं, मानसिक कारणों में दो कारक महत्वपूर्ण हैं।

मानसिक अयोग्यता

गोडार्ड, हीले एवं ब्रोनर आदि ने अध्ययनो द्वारा यह पाया कि बाल अपराधी मानसिक रूप से पिछडे होते है, क्लेश एवं चासो ने कोलम्बिया विश्विद्यालय में सन् 1935 में अपना एक लेख "दी रिलेशन बिटविन मोरलिटी एण्ड इण्टलेक्ट" प्रकाशित किया जिसमें दर्शाया कि कमजोर मस्तिष्क वाले परिवारों का झुकाव अपराध की ओर अधिक था, मानसिक पिछड़ेपन के कारण उनमें तर्क शक्ति का अभाव होता है।

भावात्मक अस्थिरता और मानसिक संघर्ष

भावात्मक अस्थिरता के कारण भी बच्चे अपराधी हो जाते है, सिरिल बर्ट, हीले एवं ब्रोनर ने अध्ययनों में पाया कि प्रायः बाल अपराधी स्वयं को असुरक्षित अनुभव करते है एवं मानसिक संघर्ष से ग्रसित रहते हें, इसी कारण वे अपराधों की ओर प्रवृत होते हैं।

सामुदायिक कारण

जिस समुदाय में बच्चा रहता है यदि उसका वातावरण अनुपयुक्त है तो वह बालक को अपराधी बना सकता है, सामुदायिक कारकों में से कुछ प्रमुख का हम यहाँ उल्लेख करेंगे।

पड़ोस

पड़ोस का प्रभाव नगरीय क्षेत्रों में अधिक दिखाई देता है, परिवार के अलावा बच्चा अपना अधिकतर समय पड़ोस के बच्चों के साथ व्यतीत करता है, पड़ोस अपराध में व्यक्तित्व सम्बन्धी आवश्यकताओं में व्यवधान बनकर, संस्कृतिक–संघर्ष करके तथा असामाजिक मूल्यों को पोषित करने में सहायक हो सकता है, भीड–भाड़ वाले तथा अपर्याप्त मनोरंजन की सुविधाओं वाले पड़ोस बच्चों की खेल की प्राकृतिक प्रेरणाओं की उपेक्षा करता है और अपराधी समूहों के निर्माण को प्रोत्साहित करता है, पड़ोस में गृह सस्ते होटल, आदि भी अपराधिक गतिविधियाँ के जन्म स्थल होते हैं।

विद्यालय

विद्यालय के वातावरण का प्रभाव बच्चों पर अत्यधिक पड़ता है। अध्यापकों का व्यवहार, स्कूल के साथी छात्रों व अध्यापकों के साथ सम्बन्ध, पाठ्यक्रमों की कठोरता, मनोरंजन का अभाव, अयोग्य

छात्राों की पदोन्नति आदि कुछ ऐसे कारण है जो बच्चों के कोमल मस्तिष्क को प्रभावित करे उसे अपराधी बना देते हैं। कम अंक प्राप्त करने या फेल होने पर बच्चों को स्कुल छुड़वा दिया जाता है या अध्यापकों द्वारा उनका उत्पीड़न किया जाता है या छात्राों द्वारा मजाक उड़ाया जाता है इससे वे हीनता की भावना से ग्रसित होते हैं और अपराध की ओर प्रवृत हो जाते है।

चलचित्रा और अश्लील साहित्य

अनैतिकता, मद्यपान, धूम्रपान से भरे चलचित्रा और कामुक पुस्तकें बच्चों के मस्तिष्क पर गहरा प्रभाव छोड़ते हैं। कई बार वे अपराध के तरीके भी सीखते हैं, हमारे देश के कई भागों में चोरी, सेंधमारी और अपहरण आदि सिनेमा के तरीकों का प्रयोग करने के जुर्म में अनेक बालक पकड़े जाते हैं। वे दावा करते हैं कि उन्होंने सिनेमा से अपराध के तरीके सीखे थे। चलचित्रा सरलता से धन प्राप्त करने की इच्छा जागृत करके, इन उपलब्धियों के लिय विधियाँ सुझाकर और साहस की भावना भरकर, यौन भावनाएँ भड़का कर और दिवास्वप्न दिखाकर भी बच्चों में अपराधी व्यवहार की अभिरूचि का विकास करते हैं।

अपराधी क्षेत्र

अपराधी क्षेत्र में निवास का भी अपराधी प्रवृति से घनिष्ठ संबध है, वेश्याओं के अड्डे, जुआरियों, शराबियों के पास निवास स्थान होने पर बच्चों के अपराधी होने के अवसर अधिक रहते हैं क्योंकि बच्चों में अनुकरण एवं सुझाव –ग्रहणशीलता अधिक होने के कारण अपराधी प्रवृतियों के सीखने की संभावना रहती है, शॉ और मैनेंने ने यह बताया कि कई स्थान बच्चों को रखने की दृष्टि से सुरक्षित नहीं हैं, शहर केन्द्र एवं व्यापारी क्षेत्रा में अपराध अधिक होते हैं, ज्यों–ज्यों शहर के केन्द्र से परिधि की ओर जाते हैं अपराध की दर घटती जाती है, हीले एव। ब्रोनर की मान्यता है कि अपराध के प्रचलित प्रतिमानों से प्रभावित होकर गंदी बस्तियों के बच्चे अपराध करते हैं। उपर्युक्त कारकों के अतिक्तिक बाल अपराध के लिए कुछ अन्य कारक भी उत्तरदायी है जैसे मूल्यो के भ्रम, सांस्कारिक भिन्नता एवं संघर्ष, नैतिक पतन, स्वतंत्राता में वृद्धि, आर्थिक मन्दी आदि। स्पष्ट है कि बालकको अपराधी बनाने में किसी एक कारक का ही हाथ नहीं होता वरन् अनेक कारकों की सह–उपस्थितियों ही बालक को अपराधी बनाने में योग देती है।

बाल अपराधियों के उपचार की विधियाँ

मनोचिकित्सा

यह मनौवैज्ञानिक साधनों से संवेगात्मक और व्यक्तित्व संबधी समस्याओं का निदान करती है, यह बाल अपराधी के विगत जीवन में कुछ महत्वपूर्ण व्यक्तियों के विषय में भावनाओं की ओर अभिधारणाओं को बदलकर उपचार करती हैं। जब बच्चें के संबध प्रारम्भिक अवस्था में अपने माँ–बाप से अच्छे नहीं होते, तो उसका संवेगात्मक विकास अवरूद्ध हो जाता है, परिणामस्वरूप अपने परिवार के भीतर ही सामन्य तरीकों से संतुष्ट न होकर वह अपनी बाल आकांक्षाओं को संतुष्ट करने के प्रयत्न में अक्सर आवेगी हो जाता है। इन आकांक्षाओं एवं आवेगों की संतुष्टि असामाजिक व्यवहार का रूप धारण कर सकती है। मनोचिकित्सा के माध्यम से अपराधी को चिकित्सक द्वारा स्नेह और स्वीकृति के वातावरण में विचरण करने दिया जाता है।

यथार्थ चिकित्सा

यथार्थ चिकित्सा इस विचार पर आधारित है कि अपनी मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाने वाले व्यक्ति अनुत्तरदायित्वपूर्ण व्यवहार करते हैं, यथार्थ चिकित्सा का उद्देश्य अपराधी बालक के जिम्मेदारी से काम करने में सहायता प्रदान करना अर्थात् असामाहिक क्रियाओं से बचाना है। यह विधि व्यक्ति के वर्तमान व्य वहार का अध्ययन करती है।

व्यवहार चिकित्सा

इसमें नवीन सीखने की प्रक्रियाओं के विकास द्वारा बाल अपराधी के सीखे हुए व्यवहार में सुधार लाया जाता है। व्यवहार के पुरस्कार या दण्ड द्वार बदला जाता है, नकारातमक प्रबलन निषेधात्मक व्यवहार (अपराधी क्रियाओं) को कम करेगा जबकि सकरात्मक प्रबलन (जैसे पुरस्कार)

सकरात्मक व्यवहार को बनाए रखेगा। व्यवहार को बदलने में दोनों ही प्रकार के कारकों का प्रयोग किया जा सकता है।

क्रिया चिकित्सा

कई बच्चों में समूह स्थितियों में प्रभावी ढंग से मौखिक संवाद करने की क्षमता नहीं होती, क्रिया चिकित्सा विधि में बच्चों को उनमुक्त वातावरण में कुछ न कुछ कार्य करवाये जाते हैं। जहाँ वह अपनी आक्रामकता की भावना को रचनातमक कार्यों में, खेल या शैतानी में अभिव्यक्त कर सकता है।

परिवेश चिकित्सा विधि

यह ऐसा वातावरण पैदा करती है जो सुविधाजनक अर्थपूर्ण परिवर्तन तथा संजोषजनक समायोजन प्रदान करता है, यह उन लोगों के लिये प्रयोग किया जाता है, जिनका विचलित व्यवहार जीवन की विषम स्थितियों के प्रतिक्रियास्वरूप होता है।

उपर्युक्त विधियों के अतिरिक्ति बाल अपराधियों को उपचार में तीन और विधियों का प्रयोग भी किया जाता हैः

1. व्यक्तिगत समाज कार्य अर्थात् कुसमायोजित बच्चे को उसकी समस्याओं से निपटने में सहायता करता है। व्यक्तिगत समाजिक कार्यकर्ता परिवीक्षा अधिकारी कारगार सलाहकार हो सकता है।
2. व्यक्तिगत सलाह अथार्त अपराधी बालक को उसकी तत्काल स्थिति को समझना और अपनी समस्या का समाधान करने के लिये पुर्नशिक्षित करना।
3. व्यवसायिक सलाह अर्थात् बाल अपराधी को उसके भावी जीवन के चुनाव में सहायता करना है।

बाल अपराध को रोकने के उपाय

बाल अपराधों को रोकने के लिये वर्तमान में दो प्रकार के उपाय किये गए हैं प्रथम उनके लिए नए कानूनों का निर्माण किया गया है ओर द्वितीय सुधार संस्थाओं एव स्कूलों का निर्माण किया गया है जहॉ उन्हें रखने की सुविधाएँ हैं, यहाँ हम दोनों प्रकार के उपायों का उल्लेख करेंगे।

कानूनी उपाय

बाल अपराधियों को विशेष सुविधा देने ओर न्याय की उचित प्रणाली अपनाने के लिये बाल–अधिनियम और सुधारालय अधिनियम बनाए गए है। भारत में बच्चों की सुरक्षा के लिए 20वीं सदी की दूसरी दशाब्दी में कई कानून बनें सन् 1860 में भारतीय दण्ड संहिता के भाग 399 व 562 में बाल अपराधियों को जेल के स्थान पर सुधारगृह (रिफोमेट्रीज) में भेजने का प्रावधान किया गया। दण्ड विधान के इतिहास में पहली बार यह स्वीकार किया कि बच्चों को दण्ड देने के बजाय उनमें सुधार किया जाए एवं उन्हें युवा अपराधियों से पृथक रखा जाए।

संपूर्ण भारत के लिए सन् 1876 में सुधारालय स्कूल अधिनियम बना जिसमें 1897 में संशोधन किया गया, यह अधिनियम भारत के अन्य स्थानों पर 15 एवं बम्बई में 16 वर्ष के बच्चों पर लागू होता था, इस कानून में बाल–अपराधियों को औद्योगिक प्रशिक्षण देने की बात भी कही गयी थी, अखिल भारतीय स्तर के स्थान पर अलग–अलग प्रान्तों में बाल अधिनियम बने, सन् 1920 में मद्रास, बंगाल, बम्बई, दिल्ली, पंजाब में एवं 1949 में उत्तरप्रदेश में और 1970 में राजस्थान में बाल अधिनियम बने, बाल अधिनियमों में समाज विरोधी व्यवहार व्यक्त करने वाले बालकों को प्रशिक्षण देने तथा कुप्रभाव से बचाने के प्रयास किये गए, उनके लिये दण्ड के स्थानपर सुधार को स्वीकार किया गया। 1986 में बाल न्याय अधिनियम पारित किया गया जिसमें सारे देश में एक समान बाल अधिनियम लागू कर दिया गया। इस अधिनियम के अनुसार 16 वर्ष की आयु से कम के लड़के व 18 वर्ष की आयु से कम की लड़की द्वारा किए गए कानूनी विरोधी कार्यो को बाल अपराध की श्रेणी में रखा गया। इस अधिनियम में उपेक्षित बालकों तथा बाल अपराधियों को दूसरे अपराधियो के साथ जेल में रखने पर रोक लगा दी गई, उपेक्षित बालकों को बाल गृहों का अवलोकन गृहों में रखा जाएगा। उन्हें बाल कल्याण बोर्ड के समक्ष लाया जाएगा जबकि बाल अपराधियों को बाल न्यायलाय के समक्ष। इस अधिनियम में राज्यों को कहा गया कि वे बाल अपराधियों के कल्याण और पुनर्वास की व्यवस्था करेंगे।

बाल न्यायालय

भारत में 1960 के बाल अधिनियम के तहत बाल न्यायालय स्थापित किये गये है। सन् 1960 के बाल अधिनियम का स्थान बाल न्याय अधिनियम 1986 ने ले लिया है। इस समय भारत के सभी राज्यों में बाल न्यायालय है। बाल न्यायालय में एक प्रथम श्रेणी का मजिस्ट्रेट, अपराधी बालक, माता–पिता, प्रोबेशन अधिकारी, साधारण पोशक में पुलिस, कभी–कभी वकील भी उपस्थित रहते हैं, बाल न्यायालय का वातावरण इस प्रकार का होता है कि बच्चे के मस्तिष्क में कोर्ट का आंतक दूर हो जाए, ज्यों ही कोई बालक अपराध करता है तो पहले उसे रिमाण्ड क्षेत्र में भेजा जाता है और 24 घंटे के भीतर उसे बाल न्यायालय के सम्मुख प्रस्तुत किया जाता है, उसकी सुनवाई के समय उस व्यक्ति को भी बुलाया जाता है जिसके प्रति बालक ने अपराध किया। सुनवाई के बाद अपराधी बालकों को चेतवनी देकर, जुर्माना करके या माता–पिता से बॉण्ड भरवा कर उन्हें सौंप दिया जाता है अथवा उन्हें परिवीक्षा पर छोड़ दिया जाता है या किसी सुधार संस्था, मान्यता प्राप्त विद्यालय परिवीक्षा हॉस्टल में रख दिया जाता है।

सुधारात्मक संस्थाएँ

बाल अपराधियों को रोकने का दूसरा प्रयास सुधारात्मक संस्थाओं एवं सुधारालयों की स्थापना करने किया गया है जिनमें कुछ समय तक बाल अपराधियों को रखकर प्रशिक्षण दिया जाता है, हम यहाँ कुछ ऐसी संस्थाओं का उल्लेख करेंगें :

रिमाण्ड क्षेत्र या अवलोकन : जब बाल अपराधी पुलिस द्वारा पकड़ लिया जाता है तो उसे सुधारात्मक रखा जाता है। जब तक उस पर अदालती कार्यवाही चलती है, अपराधी इन्हीं सुधरालयों में रहता है। यहाँ पर परिवीक्षा अधिकारी बच्चे की शारीरिक व मानसिक स्थितियों का अध्ययन करता हैं तथा उन्हें मनोरंजन, शिक्षा एवं प्रशिक्षण आदि दिया जाता है ऐसे गृहों में बच्चें से सही सूचनाएँ प्राप्त की जाती हैं जो वे न्यायाधीश के सम्मुख देने से घबराते है। भारत में दिल्ली एवं अन्य 11 राज्यों में रिमाण्ड होम है। अब इनका स्थान सम्प्रेक्षण गृहों ने ले लिया है।

प्रमाणित या सुधारत्मक विद्यालय – प्रमाणित विद्यालय में बाल अपराधियों को सुधार हेतु रखा जाता है। इन विद्यालयों को सरकार से अनुदान प्राप्त ऐच्छिक संस्थाओं चलाती है। इन स्कूलों में बाल अपराधियों को कम से कम तीन वर्ष और अधिकतम सात वर्ष की अवधि के लिये रखे जाते है। 18 वर्ष की आयु के बाल अपराधी के बोस्टले स्कूल के स्थानान्तरित कर दिये जाते हैं। इन स्कूलों में सिलाई, खिलौने बनाने, चमड़े की वस्तुएँ बनाने और प्रशिक्षण दिया जाता है। प्रत्येक प्रशिक्षण कार्यक्रम दो वर्ष के लिए होता है, बच्चों को स्कूल से ही कच्चा माल प्राप्त होता है और उसके द्वारा निर्मित वस्तुओं को बाजार में बेच दिया जाता है और लाभ उसके खाते में जमा कर दिया जाता है। जमा की गई धनराशि एक निश्चित मात्रा तक पहुँचने के बाद स्कूल के बच्चें के केवल राज्य के उपयोग के लिए ही वस्तुओं का उत्पादन करना होता है। बच्चों के 5वें दर्जे तक की बुनियादी शिक्षा भी दी जाती है वर्ष के अन्त में उसको विद्यालय निरीक्षक द्वारा संचालित परीक्षा में भी भाग लेना होता हैं। यदि कोई बाल पाँचवी कक्षा के बाद भी पढ़ना चाहता है तो उसे बाहर के किसी विद्यालय में प्रवेश दिला दिया जाता है।

बोस्टल स्कूल इस प्रणाली के जन्मदाता एल्विन रेगिल्स ब्रदर्स थे, यहाँ उन्हीं बालको को रखा जाता है जिसकी आयु 15 से 21 वर्ष तक की होती है। उन्हें यहाँ प्रशिक्षण एवं निर्देशन दिये जाते हैं तथा अनुशासन में रखकर उसका सुधार किया जाता है। अवधि समाप्त होने, अच्छे आाचरण का आश्वासन देने एवं भविष्य में अपराध न करने का वचन देने पर अपराधी को इस विद्यालय से मुक्त किया जाता है। ये स्कूल अपराधी का समाज से पुनः सांमजस्य कराने में योग देते है।

परिवीक्षा होस्टल – यह बाल अपराधियों के परिवीक्षा अधिनिमय के अन्तर्गत् स्थापित उन बाल अपराधियों के आवासीय व्यवस्था एवं उपचार के लिए होते है जिन्हें परिवीक्षा अधिकारी की देखरेख में परिवीक्षा पर रिहा किया जाता है। परिवीक्षा हॉस्टल निवासियों को बाजार जाने की तथा अपनी इच्छा का काम चुनने की पूर्ण स्वंतत्राता होती है।

विभिन्न देशों की भाँति भारत में भी बाल अपराधियों को सुधारने के लिये प्रयास किये गये हैं और बाल अपराध की पुनरावृति में कमी आयी है फिर भी इन उपायों में अभी कुछ कमियाँ हैं जिन्हें दूर करना आवश्यक है। बालक अपराध की ओर प्रवेश नहीं हो, इसके लिए आवश्यक है कि बालकों को स्वस्थ मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराये जाये, अश्लील साहित्य एवं दोषपूर्ण चलचित्रों पर रोक लगायी जाए, बिगड़े हुए बच्चें को सुधारने में माता–पिता की मदद करने हेतु बाल सलाकार केन्द्र गठित किये जायें तथा सम्बन्धित कार्मिकों को उचित प्रशिक्षण दिया जाए, संक्षेप में बाल अपराध की रोकथाम के लिए सरकारी एजेन्सियों (जैसे समाज कल्याण विभाग) शैक्षिक संस्थाओं, पुलिस, न्यायपालिका, सामाजिक कार्यकताओं तथा स्वैच्छिक संगठनों के बीच तालमेल की आवश्यकता है।

संदर्भ :

1 लाम्ब्रोसो, सीजर, क्राइम इट्स काजेज एण्ड रेमेडीज, बोस्टनः लिटिल ब्राउन पब्लिकेशन, 1911.
2 गैरोफैलो, क्रिमीनोलाजी, बोस्टन : लिटिल ब्राऊन पब्लिकेशन, 1914..
3 हेकरवाल, डॉ0, इकनामिक एण्ड सोशल आसपेक्ट ऑफ क्राईम इन इण्डिया, लन्दन : आक्सफोर्ड यूनिर्वसिटी प्रेस, 1927.
4 डैरो, सी., क्राईम इट्स काजेज एण्ड पनिश्मेन्ट, न्यूयार्क : क्रोवेल, 1934.
5 मावरर, ई.आर., डिसआर्गनाईजेशन :– पर्सनल एण्ड सोशल, न्यूयार्क : मैकमिलन एण्ड कम्पनी, 1942.
6 इलियट एण्ड मैरिल, सोशल डिसआर्गनाईजेशन, न्यूयार्क : हार्पर एण्ड ब्रदर्स, 1950.
7 बेकारिया, सी., ऐसे ऑन क्राइम एण्ड पनिश्मेन्ट, न्यूयार्कः स्टीफेन गोल्ड, 1954.
8 सदरलैण्ड, प्रिन्सिपल ऑफ क्रिमिनोलॉजी, न्यूयार्क : जे0वी0 लिपिन एण्ड कम्पनी, 1960.
9 लेविस, आस्कर, द चिल्ड्रेन आफ सेन्चेज, न्यूर्याक : रेण्डम हाउस, 1961.
10 क्लिनार्ड, सोशियोलाजी ऑफ डेविएन्ट बिहैवियर, न्यूयार्क : होल्ट रेनेहाल्ट एण्ड विन्स्टन, 1963.
11 मौरीन, ई. केन, स्कूल ऑफ शोसल साइंसेज, बोस्टनः ब्रूनेल यूनिर्वसिटी, रोटलेज एण्ड केगन पाल, 1973.
12 शाह, गिरिराज, अपराध कारण और निवारण, वाराणसी : विश्वविद्यालय प्रकाशन, 1985.
13 मिश्र, रामनाथ, उत्तर प्रदेश पुलिस रेगुलेशन, इलाहाबादः हिन्द पब्लिशिंग हाउस, 1993.
14 तिवारी, डॉ0 संजय, भारत में अपराधशास्त्र एवं दण्डशास्त्र की अवधारणा, आई0एस0बी0एन0–978–93–83980–90–1, नयी दिल्ली : शिवांक प्रकाशन, 2017.

***

महिला सशक्तीकरण में पंचायती राज व्यवस्था का योगदान

किरन यादव *

यह एक सर्वमान्य तथ्य है कि सदियों से महिला की स्थिति दोयम दर्जे की रही है। उनकी योग्यता को दबाकर उन्हें एक वस्तु के रूप में उपयोग किया गया है। महिलाओं की यह स्थिति केवल भारत में ही नहीं वरन पूरी दुनिया में देखने को मिलती है। इस संबंध में दुनिया का ध्यान आकर्षित करने के लिए पहली बार 1975 में अन्तर्राष्ट्रीय महिला वर्ष मनाया गया। 8 मार्च को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के रूप में मनाया जाता है लेकिन वास्तविकता यह है कि ज्यादातर महिलाओं को यह भी पता नहीं है कि उनके लिए यह दिवस मनाया जाता है क्योंकि वह शिक्षा और जागरूकता में काफी पिछड़ी हुई है। उन्हें यह भी नहीं पता कि यह दिन अमेरिका की उन मजदूर औरतों के संघर्ष का यादगार दिन है जिन्होंने सौ साल पहले काम के घंटे, मजदूरी और काम की शर्तों को लेकर सिर्फ हड़ताल ही नहीं की थी, बल्कि अपनी मांगों के लिए पुलिस की लाठियां और गोलियां भी खायी थी।[1] इनकी एकता संघर्षशीलता और बहादुरी व दुनियां की महिलाओं के सामूहिक चिंतन का कभी न मिलने वाला हिस्सा और आदर्श बताते हुए अन्तर्राष्ट्रीय कम्यूनिस्ट महिला नेता क्लारा जेटकिंन ने उनके संघर्ष के पहले दिन को अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस घोषित किया था।[2]

प्रजातंत्र को यदि असरदार बनाना है तो उसे कल्याणकारी होना चाहिए। शक्ति का विकेन्द्रीकरण ही प्रजातांत्रिक राजनीति का सर्वमान्य तथ्य है क्योंकि आधुनिक परिप्रेक्ष्य में शक्ति को सर्वोच्च शिखर से निचले स्तरों तक पहुंचाना ही प्रजातंत्र है और इसी को हम विभिन्न रुप में प्रजातंत्र कहते हैं। जो लोगों के स्वयं के कल्याण में स्वंय की हिस्सेदारी के सिद्धान्त पर आधारित हैं। यह अधिक से अधिक लोगों को अपनी प्रकिया में समाहित करता है। जब तक हम इस स्थानीय स्वशासन या निचले स्तर के प्रजातंत्र में महिलाओं की वास्तविक स्थिति को नहीं समझते तब तक हम भारतीय प्रजातांत्रिक व्यवस्था, आर्थिक व सामाजिक विकास, सामाजिक न्याय तथा पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की वास्तविक स्थिति को नहीं समझ सकते।

यहां प्रश्न केवल महिलाओं की स्थिति सुधारने का नहीं है, बल्कि इस आधी आबादी को किस प्रकार इस स्थिति में लाया जाए जिससे महिला न सिर्फ आर्थिक रूप से अपने पैरों पर खड़ी हो सके, बल्कि वह अपना निर्णय लेने में स्वंय सक्षम और स्वतंत्र हो सके। गांधी जी के अनुसार प्राच्य काल में स्त्री को ''देवी मां और सहचरि''[3] कहकर सम्मान किया जाता था। पुरूष ने शनैःशनैः स्त्री के इन रूपों की उपेक्षा करके, उसे दासता की स्थिति में ढकेल दिया। गांधी जी के ही शब्दों में स्त्री को अबला कहना उसका अपमान करना है। पुरूष उसे अबला कहकर, उसके साथ अन्याय करता है। यदि शक्ति का अर्थ पाश्विक शक्ति है तो पुरूष की अपेक्षा स्त्री में निःसंदेह कम पशुता है, किन्तु यदि शक्ति का अर्थ–नैतिक शक्ति है तो पुरूष की अपेक्षा स्त्री निश्चित रूप से अधिक शक्तिशाली है।[4] इस शोध पत्र में इसी बात को ध्यान में रखते हुए इस बात का विश्लेषण किया गया है कि किस प्रकार और किस मात्रा में पंचायती राज व्यवस्था के माध्यम से महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थिति को सुदृढ़ और सबल बनाने का कार्य किया गया है। पंचायती राज व्यवस्था महिलाओं की वास्तविक स्थिति में परिवर्तन लाने में किस हद तक सफल रही है और अभी भी महिलाओं के सशक्तिकरण में कौन–कौन सी प्रमुख बाधायें विद्यमान हैं।

स्वतंत्रता के पश्चात महिलाओं को सशक्त बनाने के लिए बहुत सारे सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर कदम उठाये गये। इनकी स्थिति में वास्तविक रूप से परिवर्तन लाने के लिए संसद और राज्य विधान मण्डलों द्वारा विभिन्न अधिनियम पारित किये गये और आज भी किये जा रहे हैं। राजीव गांधी के शासन काल में इस बात की आवश्यकता महसूस की गई कि यदि वास्तव में महिलाओं की स्थिति

* शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, हण्डिया पी. जी. कॉलेज हण्डिया, प्रयागराज

में परिवर्तन लाना है तो तृतीय स्तर पर सरकार के रूप में जो पंचायती राज व्यवस्था नये सिरे से स्थापित की जा रही है उसमें एक तिहाई स्थान महिलाओं के लिए आरक्षित किया जाए।[5] बाद में 1992 में नरसिम्हाराव सरकार द्वारा पंचायती राज अधिनियम बनाते समय पंचायत के तीनों चरणों में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित कर दिया गया।[6] इसका उद्देश्य यह था कि सुशासन की स्थापना में इस आधी आबादी को भी शामिल किया जा सके और उनकी भागीदारी सुनिश्चित कर उनकी क्षमताओं का लाभ उठाया जा सके।

भारत में ग्रामीण विकास के लिए 2 अक्टूबर 1952 को सामुदायिक विकास कार्यक्रम की शुरूआत की गयी। भारत सरकार ने 1957 में बलवंत राय मेहता समिति का गठन किया। जनता सरकार ने 1977 में अशोक मेहता समिति का गठन किया गया। पुनः पंचायतों के बेहतर क्रियान्वयन के लिए राजीव गांधी सरकार द्वारा 1985 में डा० पी०के० राव समिति, 1986 में डा० एल०एम० सिंधवी समिति और 1988 में पी०के० थुगंन समिति का गठन किया। तत्पश्चात 1992 में 73वें संविधान संशोधन द्वारा पंचायतों को संवैधानिक दर्जा प्रदान कर दिया गया। जिसके तहत पंचायत के प्रत्येक चरण में महिलाओं के लिए एक तिहाई स्थान आरक्षित कर दिया गया।[7] इस अधिनियम को अनुच्छेद 243 के तहत 13 धाराओं के साथ स्थापित किया गया।

आज उत्तर प्रदेश जैसे परम्परागत सामाजिक संरचना तथा कम शिक्षित समाज में भी महिलाओं की आरक्षित सीट हेतु भावी राजनेत्री के लिए पुरूष वर्ग भी अपनी बहु–बेटियों को शिक्षित करने लगे हैं। इससे महिला शिक्षा का स्तर बढ़ेगा और शिक्षा के माध्यम से महिलायें न केवल राजनीति के क्षेत्र में वरन अन्य क्षेत्र में भी सशक्त होगी। आज महिला केवल दिखावे के लिए ही नहीं भागीदारी नहीं चाहती वरन इसके लिए सामाजिक एवं आर्थिक क्षेत्र में वास्तविक भागीदारी पर भी बल दे रही है। इस प्रकार राजनैतिक नेतृत्व, प्रशिक्षण, शिक्षा, आर्थिक स्वतंत्रता व व्यक्तिगत स्वतंत्रता के द्वारा वह अपने आप को पूरी तरह सशक्त बनाना चाहती है।[8] यदि आरक्षण मात्र महिलाओं को दिया गया होता तो ज्यादातर सवर्ण और सम्पन्न परिवार की महिलायें ही पंचायत संगठनों में दिखाई देती। इसलिए सामान्य वर्ग में ही नहीं अपितु पिछड़ी जातियों, अनुसूचित जातियों तथा अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित पदों पर भी इस वर्गों की महिलाओं को एक तिहाई स्थान आरक्षित किया गया। इस प्रकार इन विभिन्न प्रयासों के द्वारा पंचायत क्रांति को समाज के सभी वर्गों तक ले जाने की कोशिश की गयी है।[9]

महिलाओं के सशक्तिकरण में पंचायतों के माध्यम से आया बदलाव

- पंचायतों में महिलाओं की विगत वर्षों की भागीदारी से यह सिद्ध हो गया है कि जनसंख्या स्थिरीकरण तथा लैगिंक असंतुलन में सुधार महिलाओं के हितों को प्रोत्साहित करने का सबसे प्रभावशाली एवं संवेदनशील माध्यम है।
- समाज की जड़ता, धार्मिक अंधविश्वास, कुशासन तथा भ्रष्टाचार के उन्मूलन में महिलाओं ने पंचायतों के माध्यम से बढ़िया कार्य किया है।
- पंचायतों में महिलाओं की भागीदारी से ग्रामीण विकास एवं महिलाओं का विकास हुआ और एक नयी चेतना पैदा हुई।
- पंचायतों में महिलाओं के आरक्षण से संसद एवं राज्यों की विधायिकाओं में भी महिलाओं को आरक्षण देने का दबाव बढ़ता जा रहा है।
- आर्थिक तथा जीविका से जुड़े मुद्दो, सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों पर भी महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा

है। राजनीतिक प्रक्रिया और राजनीतिक संस्थाओं में महिलाओं की भागीदारी से शासन की गुणवत्ता में सुधार आया है।

- पंचायतों के द्वारा महिलाओं को प्राप्त राजनैतिक सशक्तिकरण की देन है कि विगत कुछ वर्षों में ही देश के अन्दर राजनैतिक बहस में महिलाओं को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त हुआ है ।
- पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी समाज के उन्नयन, खाद्य, उर्जा, सुरक्षा प्राकृतिक संसाधनों का प्रबंधन तथा पर्यावरण की सुरक्षा आदि जैसे स्वलंब मुद्दों पर होती है जिसका प्रत्यक्ष संबंध महिलाओं से है।[10]

महिला सशक्तिकरण में बाधायें

संविधान के द्वारा पंचायतों और अन्य संस्थाओं के माध्यम से महिलाओं के सशक्तिकरण का पूरा प्रयास किया गया है और इसमें काफी हद तक सफलता भी मिली है परन्तु अभी भी स्थिति शत–प्रतिशत सृदृढ़ नहीं हुई है। पंचायती राज में महिलाओं की भागीदारी का प्रयोग देश व प्रदेश के उन हिस्सों में ज्यादा सफल रहा है जहां पहले से ही स्त्रियों की स्थिति अपेक्षाकृत बेहतर रही है अथवा जहां राजनैतिक दलों ने इस कार्यक्रम को अपना पूर्ण समर्थन दिया है, लेकिन जहां स्थितियां अनुकूल नहीं है या राजनीतिक दलों का सकारात्मक सहयोग नहीं मिला है वहां महिलाओं अपने अधिकारों से आज भी वंचित है। जिसके पीछे कुछ समस्याएं है –

1. महिलाओं को केवल नाम मात्र का प्रतिनिधि बना देना – बहुत सी पंचायतें इस प्रकार की है जहां पुरूष ही महिला के नाम पर चुनाव लड़ते है। वह अपनी पत्नी या परिवार की किसी अन्य महिला सदस्य को प्रत्याशी बनाकर चुनाव लड़वाते हैं और जीत जाने पर उनके प्रतिनिधि के रूप में सारा कार्य स्वयं करते हैं।
2. कई महिला प्रतिनिधियों को विशेषकर कमजोर वर्ग की महिलाओं को वित्तीय समस्या के कारण अपने परिवार के पालन–पोषण के लिए कृषि कार्य व मजदूरी पर जाना पड़ता है इसका फायदा पुरूष सदस्य अप्रत्यक्ष रूप से उठाते रहते हैं।
3. जिन महिला प्रतिनिधियों के परिवार में 15–16सदस्य होते हैं वह परिवार की देखभाल करने और घर का कार्य करने के कारण पंचायत की बैठकों में अधिकांशतः भाग नहीं ले पाती हैं।
4. ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की सामाजिक व आर्थिक स्थिति दोयम दर्ज की होती है जिस कारण कोई महिला आगे बढ़कर कोई कार्य करती भी है तो समाज उसे सहर्ष स्वीकार नहीं करता है। समाज में व्याप्त पर्दा प्रथा, परम्परागत रीति–रिवाज, रूढ़िवादिता आज भी विद्यमान है जिससे कि महिलाएं विकास प्रक्रिया में पूर्ण भागीदारी नहीं कर पाती है।
5. कई गांवों में जातिवाद आज भी विद्यमान है। कुछ गांवों में जहां की महिला सरपंच अनुसूचित जाति या जनजाति की होती है, वहां सामान्य और पिछड़ी जातियों की महिला सदस्य पंचायत की बैठकों में नहीं जाती है क्योंकि वहां जाने से उनका अपमान होता है।
6. दो बच्चों के नियम का सबसे ज्यादा नुकसान महिलाओं को ही उठाना पड़ता है। महिला सदस्य या प्रतिनिधि यह स्वयं तय नहीं कर सकती कि उसको तीसरा बच्चा होगा या नहीं। यह निर्णय उसका पति करता है और तीसरे बच्चे के जन्म के साथ ही उसको मजबूरी में अपने इच्छा विपरीत समिति से त्याग–पत्र देना पड़ता है।
7. महिला प्रतिनिधियों को पंचायतों का सदस्य बनने से पूर्व या बाद में शिक्षण व प्रशिक्षण की आवश्यकता होती है जो सामान्यतः किसी भी पंचायत में नहीं दी जाती ।[11]

इन समस्त समस्याओं का तार्किक विश्लेषण करने पर यह पता चलता है कि यदि समाज

वास्तव में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक स्थिति में परिवर्तन लाना चाहता है तो पुरूषों को महिलाओं के प्रति परम्परागत रूढ़िवादी सोच का परित्याग करना पड़ेगा। महिलाओं के अन्दर व्याप्त, भय, संकोच, घबराहट हटाकर उनके अन्दर साहस का संचार करना होगा तथा महिलाओं कोभी अपनी आन्तरिक क्षमता एवं शक्ति पर भरोसा करना होगा। राजनीतिक माहौल में अपराधीकरण, कालाधन, चरित्र–लांक्षन जैसे दुर्गुण आज भी विद्यमान है जिनके कारण भी महिलायें अपने आप को राजनीति से अलग रखना उचित समझती है। अतः इन कमियों को भी दूर करना होगा। साथ ही साथ महिला भागीदारी को प्रोत्साहित करने के लिए चुने गये प्रतिनिधियों और अधिकारियों के मध्य सम्पर्क के माध्यम से निरंतर संवाद होते रहना चाहिए। निरंतर सभाओं और विचार विमर्श के द्वारा कार्य योजना को तैयार किया जाना चाहिए।[12]

लेकिन इनतमाम अवरोधों और समस्याओं के बावजूद यह कहा जा सकता है कि पंचायतों के माध्यम से महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक रूप से सशक्त बनाने की जो सार्थक पहल की गयी उसका सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। यह निःसंदेह कहा जा सकता है कि इस व्यवस्था से महिलाओं की स्थिति में क्रांतिकारी परिवर्तन आया है और उन्होंने अपनी शक्ति को पहचानना आरम्भ कर दिया है। उनमें राजनीतिक चेतना जगी है। आत्मविश्वास और आत्मसम्मान बढ़ा है। महिला सरपंचों का ज्ञान, प्रशासनिक कार्यों में भागीदारी एवं अन्य संस्थाओं से निरंतर सम्पर्क बढ़ा है। वह अब सामाजिक और राजनीतिक असमानता पर खुलकर बोलना आरम्भ कर दी है। इससे न सिर्फ पर्दा प्रथा समाप्त हो रही है वरन उनके अन्दर एक नयी राजनीतिक चेतना भी जागृत हो रही है। राष्ट्रीय स्तर के सामाजिक/आर्थिक और राजनीतिक विषयों का दायरा रसोईघर तक पहुंच गया है। विशेषकर शिक्षित महिलाओं में तो अब इन विषयों पर खुलकर बहस भी होने लगी है जो अभी तक सिर्फ पुरूषों और चौपालों तक ही समित थी।

अतः निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं के उत्थान के लिए जो भी प्रावधान किये गये है उनमें यह काफी हद तक सफल रहा है। सामाजिक हो या राजनीति या आर्थिक स्थिति में हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी सशक्त उपस्थिति दर्ज करायी है और जो भी उत्तरदायित्व उन्हें दिया जा रहा है वह उसका जिम्मेदारी के साथ निर्वहन कर रही है, जो थोड़ी बहुत समस्या है उनका भी समाधान निकाला जा रहा है भारत में महिलायें रसोई से निकलकर देश की सबसे बड़ी पंचायत संसद में भी अपनी भूमिका का निर्वाह कर रही है वास्तव में महिलाओं के लिए यह उपलब्धि किसी चमत्कार से कम नहीं हैं।

संदर्भ :

---

1 अली सुभाषिनि, 'महिला दिवस का असली अर्थ', दैनिक जागरण, लखनऊ, मार्च 21, 2002

2 वही

3 अवस्थी,ए०पी०, 'भारतीय राजनीतिक विचारक', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2005–06,पृष्ठ–229

4 वही

5 संशोधितवैश्य वत्ति निवारण अधिनियम–1956 तथा 1986

6 संशोधित पंचायती राज अधिनियम–1947,1994, 1998

7 जमादार एस०, 'ग्राम सभा इन द न्यू पंचायत सिस्टम कनसैप्ट एण्ड इश्यू'

[8] राजपूत पी०, वोमेन्स पॉलीटिक पार्टिसिपेशन इन इण्डिया पब्लिकेशन डिवीजन–गर्वनमेण्ट ऑफ इण्डिया, नई दिल्ली–2001

[9] समिति प्रतिवेदन, स्टेटस आफ वुमेन इन इण्डिया, मिनिस्ट्री ऑफ वुमेन एण्ड डवलपमेण्ट, नई दिल्ली–2001

[10] पटनायक, एस०के०,'रूलर वुमेन पंचायत राज एण्ड डवलपमेण्ट', एराइस पब्लिशर एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर, नई दिल्ली–1910

[11] समिति प्रतिवेदन, स्टेट्स आफ वुमेन, मिनिस्ट्री आफ वुमेन एण्ड चाइल्ड डवलपमेण्ट गर्वमेन्ट आफ इण्डिया, नई दिल्ली–2015

[12] कुरूक्षेत्र, जुलाई–2018

***

प्रमात्मक ज्ञान की भारतीय दृष्टि

डॉ. जयन्त उपाध्याय *

ज्ञान के मुख्यतः दो प्रभेदों "प्रमा" और "अप्रमा" के लिए न्यायसूत्रों में क्रमशः "तत्त्वज्ञान" और "मिथ्याज्ञान" शब्द मिलते हैं।[1] न्यायसूत्रों में प्रमा की परिभाषा नहीं दी गई है। भाष्यकार वात्स्यायन के मत में विद्यमान पदार्थ को विद्यमान समझना और अविद्यमान पदार्थ को अविद्यमान समझना तत्त्वज्ञान (प्रमा) है।[2] वार्तिककार ने भाष्यकार के ही मत का समर्थन किया है। यही स्थिति तात्पर्यटीकाकार वाचस्पति मिश्र के विषय में भी है। "प्रमाण" पद का एकदेश "प्रमा" पद, ज्ञान–विशेष का बोधक है ज्ञान–सामान्य का नहीं, क्योंकि आत्मा को जो भी विषय विषयक बुद्धि उत्पन्न होती है वह चाहे भ्रम हो या संशय, स्मृति हो या अनुभूति सभी ज्ञान पद से ग्रहणीय हैं।[3] किन्तु प्रमाण केवल यथार्थ ज्ञान का ही साधक होता है, अतः प्रमाण पद भी यथार्थज्ञान का बोधक है। संशय, भ्रम इत्यादि इसके अधिकार में नहीं आते हैं। यद्यपि प्रमा को यथार्थज्ञान मानने में किसी भी दार्शनिक को विप्रतिपत्ति नहीं होती है तथापि यथार्थता की व्याख्या के विषय में विभिन्न दार्शनिकों में मतभेद है। वेदान्त दार्शनिक स्मृति को भी प्रमा की कोटि में रखते हैं। मीमांसकों के अनुसार ज्ञान में यथार्थता तभी हो सकती है जब वह अज्ञात पदार्थ को विषय करती है। बौद्ध दार्शनिक भी प्रमा के अज्ञातज्ञापकत्व को स्वीकार करते हैं। इस प्रकार यथार्थता के स्वरूप में भिन्नता के कारण प्रमा के स्वरूप में भी भिन्नता है।

प्रमा' का अर्थ है–'यथार्थ' ज्ञान। वस्तु को उसी रूप में ग्रहण करना जिस रूप में वह है, ऐसा ज्ञान 'प्रमा' है। जब हम किसी वस्तु में ऐसे गुणों की कल्पना कर लेते हैं जिसका सम्बन्ध उस वस्तु से नहीं होता है तब वह ज्ञान 'अप्रमा' कहलाता है। विभिन्न दार्शनिकों ने प्रमा के स्वरूप व लक्षण को समझाने का प्रयास किया है। लेकिन उनमें पर्याप्त मतवैषम्यता है।

बौद्ध मत : बौद्ध के अनुसार जिससे किसी प्रकार के पुरुषार्थ की सिद्धि हो ऐसा वस्तु का प्रदर्शन ज्ञान प्रमा कहलाता है तथा अविसंवादित्व ही प्रमात्व है।[4] अर्थ–क्रिया–समर्थ वस्तु–ज्ञान को प्रमा मानने वाले बौद्धों की युक्ति है कि ज्ञान का पुनः ज्ञान पिष्टपेषण मात्र होने से किसी भी पुरुषार्थ की सिद्धि न कर सकने के कारण प्रमा की कोटि में नहीं आता। अतः प्रमा का अज्ञातज्ञापकत्व भी एक प्रमुख अंग है।

मीमांसक मत : मीमांसक भी प्रमा में अज्ञातज्ञापकत्व मानने में यही युक्ति प्रस्तुत करते हैं। उनके अनुसार भी ज्ञान बेकार है जो कुछ नवीनता प्रदान करता हो[5] व्यक्ति के जिज्ञासा की निवृत्ति नये–नये पदार्थों के ज्ञान के बाद ही होती है। प्रमा का प्रयोजन ही किसी पुरुषार्थ की सिद्धि करना है। एक बार प्रमित पदार्थ दूसरी बार किस पुरुषार्थ की सिद्धि करेगा, क्योंकि पुरुषार्थ रूप प्रयोजन तो पहले ही सिद्ध हो चुका है। अतः प्रमा में अज्ञातज्ञापकत्व मानना आवश्यक है।

सिद्धान्ती के अनुसार प्रमा सम्बन्धी ये सभी विचार भ्रान्त हैं, प्रमा में अज्ञातज्ञापकत्व[6] मानने वाले दार्शनिकों का यह आक्षेप की पुनः ज्ञान हमारे किसी भी पुरुषार्थ की सिद्धि न कर सकने के कारण प्रमा नहीं है, उचित प्रतीत होता क्योंकि यह बात लौकिक एवं व्यावहारिक दृष्टि से भी ठीक नहीं है। किसी पदार्थ को एक बार देखने से उसके संस्कार की छाप हमारे ऊपर पड़ जाती है और फिर जितनी बार उस पदार्थ को देखते हैं उतना ही उस पदार्थ का संस्कार दृढ़ होता जाता है।

इसके अतिरिक्त व्यक्ति स्वप्रिय वस्तु को बार–बार प्रमित करने की इच्छा करता है और बार–बार ज्ञान भी प्राप्त करता है।[7] जितनी बार भी वह उसे देखता है उसमें किसी प्रकार की नवीनता का अनुभव नहीं करता किन्तु फिर भी वह ज्ञान प्रमा ही होता है और यदि पुरुषार्थसिद्धिमात्र को ही दृष्टि में रखकर प्रमा में अज्ञातज्ञापकत्व स्वीकार किया जायेगा तब उदासीन विषयों जैसे, चन्द्रतारकादिज्ञान के तथा भूत ज्ञान को भी अप्रमा की कोटि में रखना होगा क्योंकि वे भी किसी प्रकार की पुरुषार्थसिद्धि न कर सकने के कारण उपेक्षणीय ही होते हैं। अतः प्रमा स्वसामर्थ्य से ही प्रमात्व से

---

* सहायक प्रोफेसर, दर्शन व संस्कृति विभाग, महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय, वर्धा

युक्त है। अज्ञातज्ञापकत्व अथवा अर्थ–क्रिया–सामर्थ्यादि उसके प्रयोजक नहीं हैं। प्रमा का यह स्वसामर्थ्य प्रत्युपन्न–कारण–जनितत्व तथा तथा भूतअर्थज्ञानत्व रूप है। अतः मीमांसकों और बौद्धों का प्रमाविषयक यह मत भ्रान्त है।

प्रमाण–विषयक–योग्यता ही प्रमात्व की नियामक होती है। पुरुषाकांक्षा या प्रमाता की अभिसन्धि नहीं प्रमित्सा केवल प्रमा की उत्पत्ति में सहायक हो सकती है उसके प्रमात्व अप्रमात्व की नियामक नहीं हो सकती। अतः प्रमा–विषय–योग्यता से युक्त किसी भी ज्ञान में अप्रमात्व सम्भव नहीं हो सकता, चाहे वह ज्ञान व्यक्ति को लगातार ही क्यों न हो रहा हो। इस प्रकार प्रमा में अज्ञातज्ञापकत्व मानने वाले बौद्धों और मीमांसकों का आक्षेप उचित नहीं है।

वेदान्त दार्शनिक "प्रमा" में स्मृति का अन्तर्भाव" मानते हैं। यह मत भी उचित नहीं है क्योंकि स्मृति अतीत विषयक होती है अतः वह यथावस्थित वस्तु को ही विषयक करेगी यह आवश्यक नहीं है। स्मृति कभी अयथार्थ भी हो सकती है अतः स्मृति में सदा प्रमात्व न होने के कारण वह प्रमाकोटि में नहीं आ सकती। इसके अतिरिक्त स्मृति को प्रमा के अन्तर्गत मानने पर सूत्रविहित प्रमाणचतुष्ट्व का व्याघात भी होगा क्योंकि सूत्रकार ने चार प्रकार के प्रमाणों का ही प्रतिपादन किया है।[8] प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान और शब्द रूप चार प्रमाणों से भिन्न स्मृतिजनसंस्कार का प्रामाण्य मानने पर उसे पंचम प्रमाण स्वीकार करना पड़ेगा। अतः शास्त्र के उल्लंघन रूप दोष के कारण भी स्मृति को प्रमा की कोटि में नहीं रखा जा सकता है।

'प्रमा' के स्वरूप के सम्बन्ध में न्याय–वैशेषिक, मीमांसा और वेदान्त आदि दर्शनों में पर्याप्त प्रकाश डाला गया है। न्याय–दर्शन के अनुसार, प्रमा की तीन विशेषताएँ हैं–

(i) **'अनुभवत्व'** या प्रतिनिधित्व। जैसे–मान लिया जाय कि हमें घड़े का साक्षात् अनुभव हो रहा है जो हमारे सामने विद्यमान है। इसलिए 'घड़ा' प्रमा है।

(ii) **'असंदिग्धत्व'** यदि किसी ज्ञान के विषय में हमें तनिक भी संशय हो तो हम उसे प्रमा नहीं मान सकते। संशय के कारणों का भली–भाँति परीक्षण करके उसके निराकरण करने के बाद ही ज्ञान को 'प्रमा' की कोटि में रखा जा सकता है।

(iii) **'यथार्थत्व'**–प्रमा का स्वरूप यथार्थता है, उपयोगिता या सफलप्रवृत्ति नहीं। चूँकि हमारे पास यथार्थता को जानने का साधना नहीं है। अतः न्याय ने व्यावहारिक कसौटी के रूप में सफलप्रवृत्ति या उपयोगिता (अर्थक्रिया सामर्थ्य) को अपनाया है। 'प्रमा' न्याय–मतानुसार चार प्रकार के हैं–प्रत्यक्ष, अनुमिति, शब्द और उपमिति। अप्रमा तीन प्रकार की होती है–संशय, विपर्यय और तर्क। प्रमा की उत्पत्ति जिस साधन द्वारा होती है उसे 'प्रमाण' कहा जाता है। सम्पूर्ण भारतीय दर्शनों में प्रमाण को लेकर मतभेद है। प्रमाणों की कुल संख्या छः मानी गयी है। प्रमा के तीन अंग है–(i) प्रमाता (knower)–प्रमा की उत्पत्ति के लिए प्रमाता (चेतन मानव) का रहना आवश्यक है। (ii) प्रमेय (Objects of the knower)– प्रमाता को ज्ञान की अनुभूति तभी होती है जब कोई–न–कोई विषय हो। ज्ञान के विषय को 'प्रमेय' कहा जाता है। प्रमेयों में सबसे पहला स्थान आत्मा का है। (ii) प्रमाण (Sources)– प्रमाता और प्रमेय के रहने के बावजूद ज्ञान की प्राप्ति तब तक नहीं हो सकती जब तक ज्ञान का कोई साधन नहीं हो। ज्ञान के साधन (कारण) को प्रमाण कहते हैं। (प्रमाकरणं प्रमाणम्)

वस्तुवादी होने के कारण मीमांसा दर्शन में भ्रम की समुचित व्याख्या असंभव है। प्रभाकर मीमांसक (अख्यातिवाद) अपने दर्शन के अनुकूल प्रतिपादित करते हैं कि 'वास्तव में सभी ज्ञान प्रमा रूप ही है।' उनके अनुसार ज्ञान इकाई रूप न होकर दो ज्ञानों का मिश्रित रूप होता है। 'यह सर्प है' इस ज्ञान में दो ज्ञानों का मिश्रण है। पहले ज्ञान का स्वरूप 'यह' तथा दूसरे का 'सर्प' होता है। 'यह' का ज्ञान सदैव 'यह' के आकार का ही होा है, इससे अन्यथा नहीं तथा 'सर्प' का ज्ञान भी सदैव 'सर्प रूप' ही होता है। इनमें अन्यथा कल्पना करना विरोधाभास है। प्रभाकर ने 'बृहती' में कहा है कि यह कैसे सम्भव है कि कोई भी ज्ञान किसी विषय को प्रकाशित भी करे तथा असत्य भी हो?' भ्रम कहलानेवाले स्थानों में 'यह सर्प है' इस उदाहरण में 'यह' तथा 'स्मृति' का। इन दोनों ज्ञानों में भेद न करना ही

'भ्रम' का कारण है। प्रभाकर के भाष्यकार शालिकनाथ का कहना है कि 'स्मृति' किसी अन्य अनुभूति से उत्पन्न होती है। अतः स्मृति को 'प्रमा' नहीं कहा जा सकता। न्याय दर्शन भी ऐसा ही मानता है। *''अनुभूतिः प्रमाणम् या स्मृतेरन्या स्मृतिः पुनः पूर्व विज्ञान संस्कारमात्रजनम् ज्ञानमुच्यते।''*[9] लेकिन, प्रभाकर मत में यहाँ अन्तर्विरोध है। प्रभाकर 'अख्यातिवाद' की व्याख्या में यह स्वीकार करते हैं कि 'यह' प्रत्यक्ष का विषय है जिसमें भेद के अग्रहण के कारण भ्रम उत्पन्न होता है। इस रूप में 'स्मृति' को भी प्रमा रूप ही स्वीकार किया गया है, लेकिन प्रभाकर जब अन्य स्थान पर स्मृति अतिरिक्त अन्य अनुभूति को 'प्रमा' कहते हैं तब 'स्मृति' को अप्रमा मान लेते हैं। यहाँ एक स्वाभाविक प्रश्न उठ रहा है–'जब हम किसी वस्तु को निरन्तर देख रहे होते हैं तब उस धारावाहिक ज्ञान में प्रथम क्षण के ज्ञान के पश्चात् अन्य क्षणों के ज्ञान को 'प्रमा' के अन्तर्गत माना जाय या 'अप्रमा' के अन्तर्गत? प्रभाकर मतानुसार यह कहा जा सकता है कि वास्तव में उस वस्तु की अनुभूति प्रथम क्षण में ही हुई थी। बाद के क्षणों में कोई नवीन ज्ञान प्राप्त नहीं हुआ। अतः उसे 'स्मृति' रूप मानकर अप्रमा ही मानना होगा। लेकिन ऐसा मान लेने पर हमारा अधिकांश ज्ञान 'अप्रमा' की कोटि में आ जायेगा जो असंगत है। इसके उत्तर में प्रभाकर भाष्यकार शालिकनाथ का कहना है कि वास्तव में धारावाहिक ज्ञान अप्रमा रूप न होकर प्रमा रूप ही है क्योंकि धारावाहिक ज्ञान में भी विषय का इन्द्रियों से निरन्तर सम्पर्क रहता है। इस दृष्टि से 'प्रत्यभिज्ञा' भी प्रमा रूप है क्योंकि यह पूर्णतया स्मृति पर आधारित नहीं है।

कुमारिल या भाट्ट मीमांसा में 'प्रभाकर' द्वारा दिए गए 'प्रमा' के स्वरूप को अस्वीकार किया गया है। उनका आक्षेप है कि 'प्रमा' की प्रभाकर की परिभाषा को स्वीकार कर लेने पर अनुमान (व्याप्तिजन्य ज्ञान) तथा व्याप्ति पूर्व अनुभूति संस्कार के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रहेगा। इस स्थिति में वह 'अप्रमा' हो जायेगा। इसी प्रकार, सविकल्प प्रत्यक्ष, भी निर्विकल्पक प्रत्यक्ष रूप प्राचीन अनुभूति से उत्पन्न होने के कारण 'अप्रमा' होना चाहिए। लेकिन, उपर्युक्त आलोचना असंगत है। प्रभाकर यह नहीं स्वीकार करते कि स्मृति की उपस्थिति मात्र से ही ज्ञान अप्रमा बन जाता है। प्रभाकर का आशय इतना ही है कि किसी भी ज्ञान को प्रमा रूप होने के लिए विषय का सन्निकर्ष अनिवार्य है। इसलिए 'प्रत्यभिज्ञा' को प्रभाकर मीमांसक प्रमा रूप मानते हैं, क्योंकि उसमें विषय का सन्निकर्ष होता है। कुमारिल ने श्लोकवार्तिक में प्रमा की विशेषताओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि विषय का वह निश्चित ज्ञान जिसके सम्वाद (प्रामाण्य) के लिए किसी अन्य ज्ञान की आवश्यकता नहीं रही रहती, 'प्रमा' होता है।

तस्मात् दृढ़म् यदुत्पन्नम् नाऽपि संबादमृच्छति।
ज्ञानान्तरेण विज्ञानम् तत्प्रमाणम् प्रतीयताम्।[10]

उम्बेक उक्त श्लोक की व्याख्या करते हुए कहते हैं कि 'दृढ़' पद संशय को प्रमा से अलग करता है तथा 'न सम्बादमृच्छति' इसका भ्रम से भेद करता है। इसी संदर्भ में सुचरित मिश्र का कहना है कि प्रमा में ज्ञान की अधिकता का होना आवश्यक है। पार्थसारथी के अनुसार, ''प्रमा वह ज्ञान है जो कारण दोषरहित, बाधक ज्ञानरहित तथा पहले से ज्ञात न हो।''

'कारणदोषबाधक ज्ञानरहितं अनूहीतग्राही ज्ञानम् प्रमाणम्[11]

मीमांसक 'प्रमा' का एक दूसरा लक्षण 'अनधिगता' (नवीनता) को मानते हैं। इस लक्षण द्वारा वे स्मृति को प्रमा से अलग करना चाहते हैं। धर्मराजाध्वनीन्द्र के अनुसार–अनधिगत और अबाधित विषय का ज्ञान ही 'प्रमा है। लेकिन, कुछ लोग स्मृति ज्ञान को भी प्रमा मानते हैं। इसलिए स्मृति और अनुभव इन दोनों ज्ञानों के लिए जो साधारण हो वह 'प्रमा' का दूसरा लक्षण है।

''अनधिगताबाधित–विषयाानत्वम्। स्मृति साधारणं तु अबाधितं विषयज्ञानत्वम''।[12]

अप्रमा : जो पदार्थ जैसा है उसको उसी रूप में ग्रहण करना यथार्थ ज्ञान अथवा प्रमा कहलाता है। उससे भिन्न रूप में ग्रहण करना अयथार्थ ज्ञान या अप्रमा कहलाता है। न्यायभाष्य, वार्तिक, तात्पर्यटीका परिशुद्धि आदि सभी ग्रन्थों में अप्रमा को मिथ्याज्ञान कहा गया है और उसे विपर्यय ज्ञान का ही पर्याय माना गया है। योगदर्शन में "विपर्ययों मिथ्याज्ञानमतदूपप्रतिष्ठम्" अर्थात् अतदूप में प्रतिष्ठित मिथ्या ज्ञान को विपर्यय कहते हैं ऐसा विपर्यय का लक्षण किया गया है। नैयायिकों ने इसी अतदूपप्रतिष्ठित अर्थ का

बोधन करने के लिए "तद्भाववति तत्प्रकारं ज्ञानप्रमा" कहा है। ज्ञान के मुख्य दो प्रमेदों–प्रमा और अप्रमा के लिए न्यायसूत्रों में क्रमशः "तत्त्वज्ञान" और "मिथ्याज्ञान" शब्द मिलते हैं।[13] भाष्यकार ने मिथ्याज्ञान के स्वरूप का परिचय देने के लिए अनेक उदाहरण दिये हैं जैसे, आत्मा के विषयक में "आत्मा का सत्ता नहीं है" यह समझना मिथ्याज्ञान है।[14] वार्तिककार ने उक्त ज्ञान को मिथ्याज्ञान मानने का कारण बतलाया है। प्रमाणों से आत्मा के अस्तित्व को सिद्धि होने के साथ ही साथ अस्तित्वान् आत्मा में अनस्तित्व रूप धर्म का आरोप किया जाता है। उद्योतक ने यहाँ मिथ्याज्ञान के प्रसंग में स्पष्टतः "विपर्येति" शब्द का प्रयोग किया है।[15] मिथ्या ज्ञान के स्वरूप को और अधिक स्पष्टत करते हुए वार्तिककार का कथन है कि शरीर को, जो कि आत्मा नहीं है, आत्मा समझना मिथ्याज्ञान है। इस मिथ्याज्ञान का कारण अहंकार है। अहंकार आत्मा का धर्म है, शरीर का नहीं किन्तु "मैं गोरा हूँ" यहाँ "मैं" यह अहंकार द्योतक पद आत्मा का वाचक है और गौरवर्ण शरीर का है। अतएव गौरवर्ण शरीर में "मै" ऐसा ज्ञान मिथ्याज्ञान है। विपर्यय की परिभाषा के अनुसार भी "मैं गोरा हूँ" यह ज्ञान विपर्यय ही है।[16] अतः मिथ्याज्ञान और विपर्यय ये शब्द पर्याय ही है। परवर्ती नैयायिकों ने प्रमा से अतिरिक्त ज्ञान को अप्रमा मान कर उनके प्रभेद बतलाये हैं। न्यायसूत्रों से ही तर्क, संशय आदि अप्रमा के प्रभेदों के सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण विवेचन प्रारम्भ हो जाता है। नैयायिकों की दृष्टि में अप्रमा के निम्नलिखित प्रभेद है–1. संशय, 2. तर्क, 3. विपर्यय एवं 4. स्मृति।

बौद्ध 'अनधिगतता' को 'प्रमा' का आवश्यक लक्षण मानते हैं तथा वे अधिगत ज्ञान (स्मृति) को 'प्रमा' मानने को तैयार नहीं हैं। न्याय भी अधिगत ज्ञान को प्रमा नहीं मानते, किन्तु नैयायिकों को स्मृति को प्रमा की कोटि से अलग करने के लिए प्रमा के लक्षण में अनधिगतता (नवीनता) को जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। जयन्त भट्ट ने न्यायमञ्जरी में कहा है कि भाट्ट जब अनधिगतता को प्रमा के लक्षण में सम्मिलित करते हैं तब उनकी परिभाषा अव्याप्त हो जाती है, क्योंकि धारावाहिक ज्ञान जो प्रमा रूप है, अनधिगत नहीं होने से इस परिभाषा के अन्तर्गत नहीं आता। वे प्रभाकर की भांति कहते हैं कि जो ज्ञान अर्थ अर्थात् विषय से उत्पन्न हो, (अर्थजन्योपलब्ध ज्ञानं) 'प्रमा' होता है। 'स्मृति' अप्रमा है क्योंकि वह पूर्व ज्ञान के संस्कारों से उत्पन्न होती है, अर्थोत्पन्न नहीं होती है। गंगेश (नव्य–न्याय) यथार्थता को प्रमा नहीं हो सकती। अनधिगतता भी प्रमा का लक्षण नहीं है। शंकराचार्य 'स्मृति' को 'अनुमान' मानते हैं। इसके प्रमाण के लिए अन्य प्रमाण की आवश्यकता पड़ती है। जाँन पाल डायसन के अनुसार, शंकर मानते हैं कि स्मृति प्रमाण के रूप में तभी तक सत्यहै जब तक वह श्रुति का समर्थन करती है और सम्यक् ज्ञान द्वारा उसे परिपूर्ण करती है, कदाचित् स्मृति का खण्डन भी हो जाता है। जैसे–आत्मा के प्रस्थान के संदर्भ में स्मृति के विचार इसलिए खण्डित किये जाते हैं कि वह श्रुति के विरूद्ध है। श्रीमद्भगवद्गीता में भी ऐसा ही कहा गया है–

यत्र काले त्वनावृत्तिमावृत्तिं चैव योगिनः।
प्रयाता यान्ति तं कालं वक्ष्यामि भरतर्षभ।।[17]

संदर्भ

1. न्याय सूत्र, 1.1.1.2.
2. सत्सदिति गृह्यमाणं यथाभूतमविपरीतं तत्त्वं भवति, असच्चासदिति गृह्यमाणं यथाभूतमविपरीतं तत्त्वं भवति।–न्याय भाष्य, 1.1.1. (प्रस्तावना)
3. बुद्धिरूपलाब्धिर्ज्ञानमित्यनर्थान्तरम्। न्याय सूत्र, 1.1.15.
4. अविसंवादकं ज्ञानं सम्यग्ज्ञानम्। न्यायबिन्दु, पृ0 4.
5. अधिगतमर्थमधिगमयता प्रमाणेन पिष्टं पिष्टं स्यात्।न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका, 1.1.1, पृ0 14.
6. न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका, 1.1.1, पृ0 14.
7. प्रियस्य वस्तुनोऽनेन भूयोभूयः प्रमित्सितत्त्वात्।–न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका, 1.1.1, पृ014.
8. उपलब्धिहेतुः प्रमाणम्। –न्यायवार्तिक, 1.1.1, पृ0 15.
9. कुमारिल, श्लोकवार्तिक 2/80
10. पार्थसारथि, शास्त्र दीपिका, पृ. 45

11. वेदान्त–परिभाषा, प्रत्यक्ष–परिच्छेद
12. न्यायमंजरी पृष्ठ–12
13. न्यायसूत्र, 1.1.1.2.
14. तत्रात्माद्यपवर्गपर्यन्त प्रमेये मिथ्याज्ञानमनेकप्रकारकं वर्तते। आत्मनि तावन्नास्तीति, अनात्मन्यात्मेति। –न्यायभाष्य, 1.1.2, पृ0 71.
15. सोऽमयसद्धर्मान् सत्यात्मन्यारोप्य विपर्येति नास्त्यात्मेति–न्यायवार्तिक, 1.1.2, पृ0 71.
16. कः पुनरयं विपर्ययः, अतस्मिंस्तदिति प्रत्ययः।–न्यायवार्तिक, 1.1.2, पृ0 72.
17. गीता 8/23

***

कर्म की अवधारणा वेदों और उपनिषदों के संदर्भ में

डॉ. रंजना त्रिपाठी *

प्राचीन भारतीय विचारधारा प्रारंभ से ही कर्मवाद की प्रबल समर्थक रही है। इसलिए वेदों और उपनिषदों में कर्म के ऊपर बहुत अधिक बल दिया गया है। कर्मण्यता को जीवन का आधार तथा अकर्मण्यता को मृत्यु के समान माना गया है। कर्म शब्द 'कृ' धातु से उत्पन्न हुआ है जिसका अर्थ होता है - करना। इसलिए 'करना' से संबंधित हमारी जितनी भी क्रियाएं है, वे सभी कर्म के अंतर्गत ही आती है। दुनिया में कोई भी मनुष्य बिना कर्म किए नहीं रह सकता है इसलिए तो कहा गया है, कर्म ही जीवन है।

ऋग्वेद में 'ऋत्' धातु का वर्णन पाया जाता है। ऋत् इस जगत में पाई जाने वाली नैतिक व्यवस्था का नाम है। नैतिक व्यवस्था का स्वरूप शाश्वत है, जो अनादि काल से चला आ रहा है। इस नैतिक व्यवस्था को मनुष्य ने नहीं बनाया है बल्कि यह अनादि और अनंत है। यह नैतिक व्यवस्था सार्वभौमिक है, आगे चलकर इसी नैतिक व्यवस्था से धर्म की सृष्टि होती है। वैदिक काल से लेकर आज तक सभी ने इस नैतिक व्यवस्था को स्वीकार किया है। इस नैतिक व्यवस्था को ऋग्वेद में जिसे ऋत् की संज्ञा दी गई है उसे मीमांसा दर्शन में 'अपूर्व' कहा गया है तथा न्याय और वैशेषिक दर्शन में 'अदृष्ट' की संज्ञा दी गई है। यही नैतिक व्यवस्था आगे चलकर कर्मवाद के रूप में स्वीकार किया गया है। प्रायः सभी भारतीय दर्शनों ने अपने.अपने ढंग से कर्मवाद का वर्णन किया है। कर्मवाद के अनुसार अच्छे और बुरे कर्मों के फल कभी भी नष्ट नहीं होते हैं। डेनमार्क के दार्शनिक हेराल्ड हाफडिंग का कहना है कि मनुष्य में अच्छे और बुरे कर्मों का फल कभी भी नष्ट नहीं होता है। इस प्रकार के विचारों में विश्वास करना ही धर्म है।

कर्म के तीन रूप माने जाते हैं. संचित कर्म, प्रारब्ध कर्म और संचीयमान कर्म। संचित कर्म हमारे पहले जीवन के कर्म होते है जो खत्म नहीं हुऐ होते हैं। प्रारब्ध कर्म की श्रेणी में हमारे वे कर्म आते हैं जिसका फल वर्तमान जीवन में हमारे द्वारा भोगा जा रहा होता है। संचीयमान कर्मों की श्रेणी में हमारे उन कर्मों को रखा गया है जो इस जीवन में जमा हो रहे हैं। पुनर्जन्म का आधार भी कर्म ही होता है। आचार्य शंकर ने अपने भाष्य में कहा है कि व्यक्ति जिन माता-पिता से और जिस परिवार और समाज में जन्म लेता है, वे सभी प्रारब्ध कर्मों के ही परिणाम होते हैं। भारतीय दर्शन में भाग्यवाद भी मूल रूप से कर्मवाद पर ही आधारित है। भाग्य व्यक्ति द्वारा पूर्वजन्म में अर्जित कर्मों का ही परिणाम होता है।

ऋग्वेद में 'ऋत्' को ईश्वर भी कहा गया है। इसके द्वारा ही सूर्य, चंद्रमा, ग्रह, तारे, नक्षत्र, ऋतुएं, दिन-रात सभी नियमित रूप से अपने. अपने कर्मों को करते हुए दिखते हैं। ऋत् के कारण नदियां चलायमान है और पर्वत अपने स्थान पर खड़ा है। इस जगत का सृष्टि, पालन और संहार भी ऋत् के द्वारा ही माना गया है। इस तरह ऋग्वेद में ऋत् को सर्वोच्च स्थान के रूप में स्वीकार किया गया है। धर्म भी इसी से निगमित हुआ है किन्तु थर्म

* (सहायक व्याख्याता), स्नातकोत्तर दर्शन विभाग, सिदो कान्हो मुर्मू विश्वविद्यालय, दुमका, (झारखंड)

का वास्तविक स्वरूप नैतिक है। एक अर्थ में ऋत् को उचित भी कहा गया है। उचित वह है जो नियम के अनुकूल है। हम पाते हैं कि विश्व की सभी घटनाएं नियम में बंधी हुई है। इसलिए ऋत् को विश्व का नियामक और व्यवस्थापक भी कहा गया है। इस विश्व के अंतर्गत मनुष्य भी आता है, इसके जीवन का आधार भी ऋत् ही है।

ऋत् के दो अर्थ हैं-

1. प्रकृति के नियम।
2. नैतिक नियम

विश्व की सभी घटनाएं एक समान गति से संचालित होती है। यदि सूरज पूरब में उगता है तो परिस्थिति आज के ही समान कल भी रही तो कल भी अवश्य ही सूरज पूरब में ही उगेगा। इस ऋत् को हम आधुनिक काल की प्रकृति की समरूपता का नियम भी कह सकते हैं । मनुष्य का जन्म-मरण प्रकृति के नियम के अनुसार ही होता है। इसी नियम के अनुसार वह कर्म भी करता है और मनुष्य का यह कर्म जिस नियम के अनुसार होता है वह भी ऋत् का ही नियम है किंतु इस नियम को नैतिक नियम कहा जाता है। मनुष्य का ऋत् के नियम के अनुसार कर्म करने को अच्छा कर्म तथा ऋत् के नियम के विपरीत कर्म करने को बुरा कर्म कहा जाता है।

ऋग्वेद में कहा गया है मनुष्य को सदैव सत्य, अहिंसा, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य का पालन करना चाहिए। दया, क्षमा, करुणा, परोपकार, तप आदि भी नैतिक गुण ही है जिससे मनुष्य मात्र का जीवन व्यवस्थित होता है। इसके विपरीत कर्म अनैतिक कर्म है जो जीवन को अव्यवस्थित करता है। अथर्ववेद[1] मैं कहा गया है- "कर्मशील व्यक्ति ही जीवन का मधु पाता है, वही सुस्वादु फल का आस्वादन करता है, सूर्य की ओर देखो, वह निरंतर कम रहता है, अतः कर्मशील बनो।" यहां भी यह देखा गया है कि अच्छे विचार से किए गए कर्म का परिणाम सदैव अच्छा पाया गया है। अथर्ववेद[2] में एक मनीषी यह कहता है कि- "मेरे दाहिने हाथ में पुरुषार्थ है और बाएं हाथ में सफलता रखी है। अतः अच्छे कर्म करने वाले सदैव पुरस्कृत होगें।" ऐसी कामना ऋग्वेद में भी देखने को मिलती है।

समयांतराल में कर्म के अंदर कर्मकांड की महत्ता काफी जोर पकड़ती चली गई। ब्राह्मण काल में तो कर्मकांड काफी बढ़ गया। पंडितों और पुरोहितों का बोलबाला बहुत हो गया। यज्ञ और बलि .प्रथा देखने को मिलने लगी। यज्ञ की पवित्रता निरंतर कम होती चली गई। जबकि यज्ञ का अर्थ हीं पवित्र कार्य होता है।ऐतरेय ब्राह्मण में भी 'चरैवेति' गीत का उद्घघोष किया गया है। यहां यह कहा गया है जो सदैव बैठा रहता है, उसका सौभाग्य भी बैठा रहता है, पड़े रहने वाले का सौभाग्य भी पड़ा रहता है, जब कोई खड़ा रहता है तो उसका सौभाग्य भी खड़ा होता है, चलने वाले का सौभाग्य भी चलने लगता है अतः कर्मशील बनो।

प्राचीन काल में विचारशील ऋषियों ने कर्मकांड का घोर विरोध किया है। इस विरोध में न केवल भौतिकवादी, वस्तु वादी चार्वाक दर्शन ही था बल्कि बौद्ध और जैन दर्शन भी इसमें शामिल थे। उपनिषदों में भी कर्मकांड का विरोध दिखाई देता है। किंतु उपनिषदों में कर्मकांड का विरोध तर्कपूर्ण ढंग से किया गया है। यहां कर्मकांड के हिमायतियों को आत्महता कहा गया है। मुंडकोपनिषद और कठोपनिषद में कर्मकांड की

तीव्र भर्त्सना देखने को मिलती है किंतु विशुद्ध कर्मवाद को उपनिषदों में हमेशा ही स्वीकार किया गया है। मुंडकोपनिषद[3] में यह घोषणा की गई है कि "कर्मकांड के द्वारा प्राप्त लोक नश्वर है इस बात को जानने से ही ब्राह्मण के ह्रदय में निर्वेद का उदय होता है।"

वृहदारण्यकोपनिषद्[4] में भी यह कहा गया है कि यह काममय पुरुष है, जैसे उसकी इच्छा होता है वैसा ही उसका कृत संकल्प होता है तथा संकल्प के द्वारा ही वह अपना कर्म करता है। इससे यह स्पष्ट होता है कि भारतीय वेद और उपनिषद में न केवल कर्म की महत्ता को स्वीकार किया गया है अपितु मनुष्य को कर्मशील रहने के लिए भी प्रेरित किया गया है।

संदर्भ -

1. अथर्ववेद :- 12/1/54
2. अथर्ववेद :- 7/52/8
3. मुंडकोपनिषद :- 1/2/12
4. वृहदारण्यकोपनिषद :- 4/4/5

***

जयप्रकाश नारायण की राजनीतिक विचारधारा : एक सिंहावलोकन

रूपक कुमार *

जयप्रकाश नारायण ने पूरा जीवन राष्ट्र की सेवा में अर्पित कर दिया। उन पर महान् व्यक्तियों के विचारों का काफी प्रभाव था, जैसेः कार्ल मार्क्स, लेनिन, महात्मा गांधी आदि। उनका शुरू में झुकाव मार्क्स के विचारों से प्रभावित होते हुए समाजवाद की तरफ रहा था। वे चाहते थे कि ऐसा समाज हो जिसमें शोषण न हो, सभी के साथ समानता का व्यवहार किया जाये। किसी के साथ अन्याय न होने पाये। उनका विश्वास समाजवाद में धीरे –धीरे कम होता गया और गांधी के सर्वोदय के प्रति अधिक हो गया।[1] जयप्रकाश के विचार भी समय के साथ–साथ बदलते रहे थे, परन्तु उनका ऐसा प्रयास रहा कि समाज में शोषण, भुखमरी, गरीबी, भ्रष्टाचार तथा अन्याय का अन्त हो और समानता, बन्धुत्व कायम हो। उसके लिए वे हमेशा अहिंसा पर जोर देते हुए देश की राजनीतिक परिस्थितियों को बदलने का प्रयास करते रहे। उनके राजनीतिक विचारों में सत्य, सहनशीलता, तटस्थता तथा तर्क शक्ति की विद्यमानता रहती थी।[2] जयप्रकाश नारायण का लोकतंत्र में पूर्ण विश्वास था। उनका मानना था कि इसमें प्रत्येक व्यक्ति की भागीदारी होनी चाहिए, ताकि मजबूत लोकतन्त्रा का निर्माण किया जा सके । उन्होंने लोकतन्त्र के लिये सत्य, अहिंसा, स्वतन्त्रता पर जो दिया तथा अत्याचार के विरूद्ध प्रतिकार किया। शक्ति, सहयोग, परमार्थ, सहनशीलता, उत्तरदायित्व की भावना, मानव समानता में निष्ठा एवं मानवीय प्रकृति शिक्षणीयता में विश्वास आदि गुणों तथा मानसिक दृष्टिकोणों को लोकतन्त्र के लिये आवश्यक बताया। लोकतन्त्र की सबसे बड़ी आवश्यकता है कि व्यक्ति राज्य पर कम से कम निर्भर रहे ।[3] उनके अनुसार, राजनीति का उद्देश्य केवल शक्ति प्राप्त करना नहीं होना चाहिए, क्योंकि शक्ति ही राजनीति का सार बन जाये तो भले – बुरे अर्थात् सभी प्रकार के साधनों का प्रयोग खुलकर किया जायेगा और राजनीति भ्रष्टाचार की पर्यायवाची बन जाएगी, ऐसे वातावरण में कोई भी दल समाप्त हो सकता है। उनका मानना था कि राजनीति को शक्ति का नहीं, जन–सेवा का साधक बनना चाहिए।[4] जयप्रकाश नारायण समाजवाद में विश्वास करते थे। उन्होंने अमेरिका में रहकर बहुत गहराई और तत्परता से मार्क्सवादी साहित्य का अध्ययन किया था। वे मार्क्स, एंजिल्स के साथ– साथ लेनिन से भी प्रभावित थे, कोमिटर्न ने माना कि भारत में कांग्रेस एक प्रतिक्रियावादी संस्था है और गांधीजी बुर्जवा लीडर हैं। भारत में राष्ट्रवादियों के मन में साम्यवादी की इस व्याख्या की तीव्र प्रतिक्रिया हुई।[5] उस काल के प्रायः अधिकांशतः पढ़े–लिखे भारतीय नवयुवक उस काल के प्रखर वामपंथी भारतीय चिन्तक एम. एन. राय के प्रारम्भिक विचारों से प्रभावित थे। उनके विचार बहुत अधिक क्रांतिकारी थे, जो नौजवानों की अकुशल मनोवृत्तियों और रूचि के सर्वथा अनुकूल पड़ते थे। जयप्रकाश नारायण का धीरे –धीरे समाजवाद से गांधीवाद की तरफ झुकाव हो गया था। इसका कारण यह था कि उन्होंने राष्ट्रवादियों के साथ काम करना शुरू कर दिया था।[6] जब लाहौर अधिवेशन (1929 ई0) में वह पं0 जवाहरलाल नेहरू एवं मदन मोहन मालवीय जैसे नेताओं से मिले तो राष्ट्रीय स्वतन्त्रता में शामिल होने की ज्यादा उत्सुकता दिखाई, जिस कारण वह गांधीजी से प्रति ज्यादा प्रभावित हुए। असहयोग आन्दोलन और सविनय अवज्ञा आन्दोलन की असफलता के कारण उन्हें निराशा हुई। उन्हें सितम्बर 1932 ई0 में मद्रास से गिरफ्तार कर 1933 ई0 के अन्त में रिहा किया गया ।[7] 17 मई 1934 ई0 के दिन पटना में समाजवादी विचारों में आस्था रखने वाले मित्रों की एक तदर्थ परिषद् आचार्य नरेन्द्र देव की अध्यक्षता में हुई तथा अक्टूबर 1934 ई0 में सम्पूर्णानन्द की अध्यक्षता में एक बड़ा सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन में कांग्रेस समाजवादी पार्टी की विधिवत् स्थापना हुई। आचार्य नरेन्द्र देव अध्यक्ष तथा जयप्रकाश को संगठन मंत्री की जिम्मेदारी सौंपी गई।

---

* शोध-प्रज्ञ, राजनीति विज्ञान विभाग, ललित नारायण मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

उन्होंने जिम्मेदारी संभालते ही पूरे देश में समाजवादी विचारों का प्रचार करना शुरू कर दिया।[8] जयप्रकाश नारायण कांग्रेस की ब्रिटिश साम्राज्यशाही से समझौते की नीति के विरूद्ध थे। उन्होंने कांग्रेस की कार्यशैली के खिलाफ अपना विरोध प्रकट किया । उनका मानना था कि राष्ट्रीय एकता ऊपर से थोपी नहीं जा सकती बल्कि राष्ट्रीय एकता का भाव नीचे से आना चाहिए जो संघर्ष से उत्पन्न हो सकता है। उन्होंने कैबिनेट मिशन योजना तथा लॉर्ड मांऊटबेटन योजना का विरोध किया। 14– 15 जून को लार्ड माऊंटबेटन योजना की स्वीकृति हेतु कांग्रेस कार्यकारिणी की बैठक हुई, जिसमें जयप्रकाश नारायण और पं0 जवाहर लाल नेहरू तथा पटेल में तीव्र विवाद हुआ, लेकिन गांधी इस वक्त विवाद नहीं चाहते थे। उन्होंने एकता पर बल दिया। फलस्वरूप समाजवादियों ने लार्ड मांऊटबेटन योजना पर मतदान में भाग नहीं लिया, दूसरी ओर कांग्रेस समझौतावादी नीति अपना रही थी। इधर अंग्रेजों ने मुस्लिम लीग से मिलकर देश में ऐसी साम्प्रदायिकता फैला दी कि देश का सारा जन–जीवन खून की होली खेलने लगा। एक ओर गांधी, लोहिया तथा जयप्रकाश नारायण देश में शांति स्थापना में लगे थे। दूसरी ओर अंग्रेजी सरकार ने माऊंटबेटन द्वारा देश विभाज्य का प्रस्ताव भेजकर स्वीकृत भी करवा दिया और अन्त में भारत तथा पाकिस्तान दो स्वतन्त्र देशों का उदय हुआ।[9]

जयप्रकाश नारायण स्वतन्त्रता के बाद राजसत्ता से दूर ही रहे । उनका प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू से मतभेद हो गया था। उनका मानना था कि कांग्रेस सरकार जैसा काम कर रही है, उससे ऐसा नहीं लगता कि कोई बदलाव होगा, क्योंकि कांग्रेस पार्टी में न तो इच्छाशक्ति है और न ही क्षमता है। 1952 ई0 के चुनाव में हार कारण ही किसान–मजदूर प्रजा पार्टी तथा सोशलिस्ट पार्टी का विलय होकर प्रजा सोशलिस्ट पार्टी का निर्माण किया।[10] इस समय तक जयप्रकाश नारायण भारतीय राजनीति में आरोप– प्रत्यारोप की राजनीति से ऊब चुके थे । उन्होंने बिनोबा भावे के साथ मिलकर सर्वोदय आन्दोलन को आगे बढ़ाने का कार्य किया।[11] जयप्रकाश नारायण सत्ता के विकेन्द्रीयकरण पर बल देते थे। उनका मत था कि सत्ता के केन्द्रित हो जाने में बड़ा खतरा है, इसलिए हमारा ध्यान अब तक उपेक्षित रही स्थानीय स्वायतशासी संस्थाओं की ओर जाना चाहिए। ग्राम प्रखण्ड और जिला –स्तर की ये स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाएँ ही हमारे लोकतन्त्र की बुनियाद को मजबूत बना सकेगी। सत्ता हथियाने, तानाशाही लादेन की वृत्ति के विरूद्ध ऐसी विकेन्द्रित व्यवस्था ही ढाल बन सकती है, इसलिए वे सत्ता के विकेन्द्रीयकरण पर जोर देते थे ।[12] जयप्रकाश नारायण का मानना था कि निचले स्तर पर लोगों को अधिकतम सता मिलनी चाहिए। उन्होंने 'ग्राम– राज्य' की एक नवीन कल्पना का चित्रण किया। उनके अनुसार, 'ग्राम –राज्य' में स्वयं एक खुद सरकार होगी। वह सिर्फ पंचायत नहीं बल्कि एक प्रजातन्त्र का आदर्श रूप होगी। इस प्रकार के ग्राम – राज्य की रचना ग्रामीणों को ही स्वयं अपनी शक्ति से करनी होगी, न कि सरकारी एजेन्सियों द्वारा। ये भारतीय प्रजातन्त्र के निर्माण में ईट का कार्य करेगी।[13] ग्राम राज्य की व्यवस्था के विकास हेतु उन्होंने कुछ कार्यो की चर्चा की है, जिनमें निम्नलिखित महत्त्वपूर्ण हैः (1) सदस्यों की भर्ती करना, प्रत्येक ग्रामीण को बालिग होने पर समितियों के सदस्य बनाने की कोशिश करना। (2) ऐसे सांस्कृतिक केन्द्र खोलने जाने चाहिए , जहाँ पर समाचार–पत्र इत्यादि तो पढ़े जायें ही, इसके अलावा उनके द्वारा अन्य प्रकार के सांस्कृतिक कार्य भी किये जायें । (3) अस्पृस्यता निवारण । (4) शराबबन्दी। (5) सामुदायिक मेल – मिलाप बढ़ाने की कोशिश करना। (6) जनता की शिकायत का निवारण। (7) साम्प्रदायिक सदभाव की स्थापना । (8)सहकारी बाजार– व्यवस्था।[14]

जयप्रकाश नारायण का मानना था कि ग्राम पंचायतों को भूमि और किसानों को आपसी मामलों को सुलझाने का अधिकार मिलना चाहिए। इसलिए उन्होंने 'सहकारी खेती' व 'सामूहिक कृषि' का समर्थन किया।[15] उन्होंने पंचायती राज्य की योजना विकास कार्यो में जन–सहयोग प्रोरित करने की युक्ति के रूप में स्वीकार की है। उन्होंने इस योजना में अपने वांछित रूप में एक क्रांतिकारी विचार की स्वीकृति, मौजूद देखी। अतः उन्होंने हृदय से 'पंचायती राज' की योजना

का समर्थन किया, परन्तु उसी क्रम में उन्होंने नेहरू के पंचायती राज की परिकल्पना रकते हुए कहा कि, ''उनका पंचायती राज लोकतंत्र के दो भिन्न सिद्धान्तों एवं प्रक्रिया का अनमोल मिश्रण था, जो व्यवहार में असम्भव था। उनकी कल्पना यह थी कि सामुदायिक समाज, सामुदायिक लोकतंत्र, सामुदायिक राज्यव्यवस्था के निर्माण के लिए बुनियादी शर्त्त यह थी कि गाँव एक समुदाय बने।'' जब गाँव के सभी हितों में समानता होगी तभी यह योजना सफल होगी।[16] वे संसदात्मक व्यवस्था के समर्थक थे परन्तु उन्होंने संसदीय शासक प्रणाली में कुछ कमियाँ पाई तथा उनको दूर करने का संकेत दिया। उनकी विशेष आपत्ति राजनीतिक दलीय प्रणाली तथा चुनाव व्यवस्था से थी । आज प्रशासन में जो भ्रष्टाचार व्याप्त है तथा राष्ट्रीय हितों की बलि चढ़ाई जा रही है। ये सब कार्य राजनीतिक दलों के हैं। राजनीतिक दल चुनाव जीतने के बाद सार्वजनिक हित के स्थान पर अपने स्वार्थ सिद्ध करते हैं।[17] उनके अनुसार, इन्हीं दलों के कारण व्यक्ति की स्वतन्त्रता नष्ट हो रही है। उन्होंने उनकी आलोचना करते हुए कहा कि ''48:40 मत पाने वाले सत्ता में आ जते हैं और 60 प्रतिशत मत व्यर्थ चले जाते हैं।''[18] इस अपूर्णता के करण ही उन्होंने दलविहीन लोकतंत्र की बात की। उनके अनुसार , वर्तमान चुनाव –प्रणाली को समाप्त कर इसके स्थान पर ग्राम सभा से लेकर सर्वोच्च स्तर तक उम्मीदवारों का जनता द्वारा प्रत्यक्ष मनोनयन होना चाहिए।[19] जयप्रकाश नारायण ने दलों और मतदान प्रणाली में सुधारों की व्याख्या भी की, ये निम्नलिखित हैं:

1. मतदान की उम्र 18 वर्ष होनी चाहिए। 2. निर्वाचन तिथियों की घोषणा के बाद शासन द्वारा जनता को लुभाने की दृष्टि से महत्त्वपूर्ण नीतियों की घोषणा नहीं करनी चाहिये, न उद्योगों की स्वीकृति देनी चाहिए और न ऐसे उद्योगों या प्रतिष्ठानों के शिलान्यास ही करने चाहिए । 3. निर्वाचन आयोग के सदस्यों की संख्या बढ़ाई जानी चाहिए। 4. निर्वाचन व्यय का विवरण राजनैतिक दलों को अनिवार्य रखना चाहिये। 5. सदस्यों द्वारा दाखिल व्यय विवरण में दलों या किसी दल द्वारा किये जाने वाले व्यय को भी शामिल किया जाना चाहिये। 6. संविधान में इस बात की व्यवस्था हो कि चुने सदस्यों को वापिस बुलाया जा सके। 7. शासकीय दल द्वारा शासकीय साधनों– रेडियो, टेलिविजन, हवाई जहाज का दलीय कार्यो ं के लिये प्रयोग वर्जित होना चाहिए। 8. मतदान से एक सप्ताह पूर्व शराबबन्दी लागू की जानी चाहिए । 9. मतदान के दिन निजी कारों सहित तमाम सवारी गाड़ियों के चलने पर प्रतिबन्ध होना चाहिये।[20]

जयप्रकाश नारायण का विचार था कि भारत में लोकतान्त्रिक समाजवाद के स्थापना के लिए लोकतान्त्रिक पद्धति को अपनाया जा सकता है और उनके दिमाग में वह लोकतन्त्र था, जिसका आधार नागरिक – शक्ति थी।[21] उन्होंने सहभागी लोकतंत्र के लिए सुझाव देते हुए कहा था कि जहां तक सम्भव हो उसकी पद्धति में कम से कम विभाजन होना चाहिए। ''मेरा आग्रह है कि विविध शिक्षणात्मक और वैधानिक उपायों का निर्वाचन परिशदों के एक स्थान के लिए एक से ज्यादा खड़े करने के लिए प्रोत्साहित ना किया जाये।''[22] उनका मानना था कि सत्ता का हस्तान्तरण वास्तविक होना चाहिए, दिखावटी नहीं । अगर इसमें सभी लोगों की भागीदारी होगी तो लोकतन्त्र की नींव मजबूत होगी।[23] लोकतन्त्र का मतलब केवल राजनीतिक अधिकार और शासन में जन– सहयोग नहीं है। लोकतन्त्र से अभिप्राय अधिकाधिक सामाजिक न्याय, अवसर की समानता और औद्योगिक लोकव्यवस्था से है। लोकतन्त्रात्मक प्रणाली में सभी का सहयोग जरूरी है ताकि व मिल–जुल कर अपनी समस्याओं का समाधान करें।[24] उनका मानना था कि सत्ता के केन्द्रीयकरण से लोकतन्त्र का पतन होता है। उन्होंने वैचारिक मान्यताओं के विपरीत हर सरकार के द्वारा केन्द्रीयकरण और बड़ी मात्रा में उत्पादन को महत्त्व दिया जाता है। यह युद्ध की दृष्टि से आवश्यक है और आर्थिक शक्ति तथा राजनैतिक शक्ति को उनके हाथों में केन्द्रित कर देती है । उनका मत था कि जात–पात और छुअछूत जैसी सामजिक प्रणालियां एवं मानसिक प्रवृत्तियाँ, जो समाज में मौजूद है जो लोकतन्त्र के मार्ग की सबसे बड़ी बाधाएँ हैं।[25] जिस समाज में मनुष्य जातिगत आधार पर ऊँच– नीच और अछूत समझ जाते हों, उसमें लोकतन्त्र नहीं चल सकता। लोकतन्त्र के

प्रति आस्था रखने वाले प्रत्येक भारतीय नागरिक को यह समझ लेना चाहिये कि इस देश में लोकतन्त्र के सबसे बड़े शत्रु जातिवाद और अस्पृश्यता ही है। उनका मानना था कि लोकतंत्र के इन शत्रुओं को राजनीति के हथियारों से नहीं बल्कि जन–संघर्ष से ही समाप्त किया जा सकता है।[26] उनका मानना था कि वर्तमान भारतीय लोकतन्त्र का विकास ब्रिटिश शासन की देन है। उन्होंने प्रचलित लोकतन्त्र की उपेक्षा सहभागी लोकतन्त्र द्वारा दोषों के परिमार्जन करने पर बल दिया है ।

जयप्रकाश नारायण राजनीतिक एवं आर्थिक केन्द्रीयकरण को लोकतन्त्र का शत्रु मानते थे। वे विकेन्द्रीयकरण के प्रबल समर्थक थे। उनके अनुसार, सता के विकेन्द्रीकरण में नीचे के स्तर में काम करने वाले समुदाय और सामुदायिक प्रतिनिधि संस्थाए निर्णायक प्रभाव डालती है। निर्वाचन करने वाली संस्थाएँ अपने द्वारा ऊपर भेजे गए प्रतिनिधियों पर लगातार नियन्त्रण रखती है। इसमें ग्राम सभा द्वारा पूरी जनता का सहयोग रहता है। इसमें हर व्यक्तियों को समस्याओं के बारे में पता होता है और सभी मिलकर इन समस्याओं को हल करने का प्रयत्न करते हैं तथा इसमें ही लोक स्वराज्य की स्थापना पड़ती है। उनका मत था कि स्वराज्य का निर्माण नीचे से ही हो सकता है न कि ऊपर सें। उनका मानना था कि ''स्वराज्य एक पवित्र शब्द है, यह एक वैदिक शब्द है, जिसका अर्थ आत्म–शासन और आत्म संयम है। '' उनके अनुसार, किसी भी देश में सही मायने में लोकतंत्र को कायम करना ही स्वराज्य है। स्वराज्य से ही देश का विकास संभव है। उनके अनुसार, समाजवाद के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए पूँजीवादी व्यवस्था का उन्मूलन करना तथा दलीय तानाशाही की स्थापना ही नहीं है बल्कि उसका उद्देश्य स्वतन्त्रता एवं समानता पर आधारित मानवीय एवं सामाजिक मूल्यों से युक्त एक शोषण विहीन समाज की स्थापना करना है। जयप्रकाश नारायण ने संसदीय प्रजातन्त्र में दलीय व्यवस्था की भी आलोचना की है। उनके अनुसार ''दलीय पद्धति '' ने आम जनता को भेड़ बना दिया। जिसका उद्देश्य गड़ेरिये का समय–समय पर चयन कना है जो उनके कल्याण की देखभाल करेंगे। अतः वे कन्द्रिय दलीय सरकार को समाप्त करने में विश्वास करते हैं। उन्होंने सामुदायिक प्रजातन्त्र का सिद्धान्त प्रतिपादित किया। उसमें छिट–पुट रूप से दलें पाई तो उनका राज्य में महत्त्व नहीं के बराबर रहेगा। साथ ही राजनीतिक दल अपने शारीरिक प्रभाव, धन, भ्रष्टाचार और धोखाधड़ी से जनतान्त्रिक चुनाव के अर्थ और महत्त्व को भी समाप्त कर रहे हैं। अतः जयप्रकाश नारायण वर्तमान प्रजातन्त्र को अपूर्ण मानते थे। उनकी सामुदायिक प्रजातन्त्र की अवधारणा सामुदायिक समाज के विचारों पर आधारित है। इस व्यवस्था में वे राजनीतिक विकेन्द्रीकरण के महत्त्व पर बल देते हुए सर्वोदय की ओर जाने पर बल देते है। जिसमें व्यक्ति और समुदाय के बीच सम्बन्ध ऐसा होगा कि व्यक्ति, समुदाय के लिए और समुदाय, व्यक्ति के लिए मर–मिटने को तैयार रहेगा। जिस अंश तक यह मनोभावना दोनों ओर विकसित होगी, उसी अंश तक व्यक्ति और समाज का विकास होगा।

इस प्रजातन्त्र की अवधारणा में शक्तियाँ नीचे से ऊपर की ओर संचालित होगी न कि ऊपर से नीचे की ओर। निम्न इकाई स्वावलम्बी होगी और केन्द्र का सहयोग आवश्यकता पड़ने पर ही लेगी। जयप्रकाश नारायण का मानना था कि जब तक हम जन–संघर्ष नहीं करेंगे तो ऐसे प्रजातन्त्र की स्थापना नहीं हो सकती। उनका मत था कि सामूहिक हितों की रक्षा सामूहिक चेतना से ही की जा सकती है। सामूहिक चेतना को जागृत करने के लिए वे अहिंसक एवं शान्तिपूर्ण आन्दोलन को आवश्यक मानते थे। जब गुजरात में भयंकर सुखे और फसलों के मर जाने के कारण 1973 ई0 में खाद्यान्नों और खाद्य तेलों की कीमतों में 100 प्रतिशत तक वृद्धि हो गई। इस मूल्य वृद्धि के लिए व्यापारियों, कालाबाजारियों और सत्ताधारी राजनीतिज्ञों के गठबन्धन को दोषी माना गया और और एक भयंकर हिंसक छात्र आन्दोलन की शुरूआत हुई। गुजरात में जब आन्दोलन अपने चरम पर था तो उसकी सफलता से प्रेरित होकर समान नीतियों और उद्देश्यों को लेकर 1974 ई0 में बिहार में भी छात्रों ने आन्दोलन शुरू किया। इस समय बिहार की आर्थिक स्थिति अत्यन्त पिछड़ी हुई थी और सरकार भी राजनीतिक रूप से भ्रष्ट थी। 21 जनवरी 1974 ई0 को मूल्यवृद्धि पर रोक को लेकर पूरे बिहार में गैर कांग्रेसी पार्टियों द्वारा 'बन्द' का आयोजन किया गया। पटना विश्वविद्यालय छात्र

संघ ने प्रदेश के महाविद्यालयों के 300 छात्र नेताओं का सम्मेलन आयोजित किया, जिसकी अध्यक्षता 'लालू प्रसाद यादव ने की। 18 फरवरी 1974 ई0 को बिहार छात्र संघर्ष समिति' का गठन किया। वामपंथी छात्रों ने 'बिहार छात्र नवजवान संघर्ष मोर्चे का गठन किया । इन दोनों छात्र संगठनों के नेतृत्व में छात्र आन्दोलन 28 फरवरी 1974 ई0 को शुरू हुआ। उस वक्त मन्त्रिमण्डल के त्याग– पत्र की मांग नहीं थी। उनकी मांग थी भ्रष्टाचार दूर करो, महंगाई दूर करो, बेकारी दूर करो, शिक्षा में आमूल परिवर्तन करो आदि। जयप्रकाश नारायण ने 30 मार्च को पटना में बिहार – मन्त्रिमण्डल से त्यागपत्र की मांग की , त्यागपत्र की मांग को स्वीकार न करने पर उन्होंने विद्यार्थियों, शान्ति सैनिकों एवं अन्य नागरिकों के जुलूस का नेतृत्व करने की घोषणा की । इसके बाद का घटना चक्र तीव्र गति से घूमने लगा। केन्द्रीय सरकार का संचार एवं प्रचार के सभी साधनों पर एकाधिकार था और केन्द्र सरकार ने जयप्रकाश नारायण पर आरोप लगाया कि वे वैध सरकार को गिराकर फासीवाद लाना चाहते हैं। जयप्रकाश नारायण ने 9 अप्रैल पटना में सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि यह एक शान्तिपूर्ण आन्दोलन की शुरूआत है ओर इसके आगे हमें सत्याग्रही की भूमिका में काम करना होगा। एक सरकार के जाने से और दूसरी सरकार के आने से काम नहीं चलेगा हमें तो व्यवस्था का परिवर्तन करना है। उन्होंने घोषणा की कि ''मेरा सारा जीवन देश की सेवा में बिता है और आज तक मैं देश की सेवा करता रहा हूँ। जब तक भी शरीर में शक्ति है, जब तक गिर नहीं जाऊँगा , सेवा ही करता रहूँगा।'' उन्होंने स्पष्ट घोषणा की कि सत्ता की राजनीति से अलग रहूँगा।'' जयप्रकाश नारायण ने 5 जून 1974 ई0 को पटना के गांधी मैदान में 'सम्पूर्ण क्रांति'' का नारा दिया। उन्होंने कहा कि 'यह आन्दोलन छात्र–संघर्ष समिति की मात्र 10–12 मांगों की पूर्ति के लिए नहीं, यह सम्पूर्ण क्रांति की शुरूआत है। उन्होंने कहा कि भारतीय लोकतन्त्र को वास्तविक तथा सुदृढ़ बनाना, शोषण का अन्त करना, नैतिक, सांस्कृतिक तथा शैक्षणिक क्रांति करना, नया बिहार बनाना और नया भारत बनाना है। उन्होंने कहा कि इसमें समाज और व्यक्ति का विकास हो, दोनों ऊँचे उठे, केवल शासन बदले इतना ही नहीं व्यक्ति और समाज भी बदले। इसलिए मैंने इसे सम्पूर्ण क्रांति कहा है। सम्पूर्ण क्रांति के लिए संघर्ष जरूरी है। उन्होंने सम्पूर्ण क्रांति के लिए हिंसात्मक साधनों की उपेक्षा अहिंसात्मक साधनों पर बल दिया।[27] उनका मानना था कि सम्पूर्ण क्रांति का अर्थ केवल समाज की बाह्य संरचना में परिवर्तन नहीं बल्कि आन्तरिक परिवर्तन भी शामिल है। वे प्रायः इस बात पर बल देते थे कि सम्पूर्ण क्रान्ति का लक्ष्य तब तक पूर्ण नहीं होगा जब तक इसमें सम्पूर्ण सामाजिक–राजनीतिक परिवर्तन न हो। उन्होंने कहा कि सम्पूर्ण क्रांति में व्यक्ति भी बदलेगा तथा व्यवस्था भी बदलेगी। ऐसी व्यवस्था में कोई आगे– पीछे नहीं चलेगा बल्कि सभी कदम मिलाकर साथ–साथ चलेंगे। ऐसी स्थिति में व्यक्ति के हित सम्पूर्ण समाज के हित होंगे। जयप्रकाश नारायण के सम्पूर्ण क्रान्ति के नारे से देश में वातावरण ही बदल गया था। उनकी सम्पूर्ण क्रांति से सम्बन्धित पक्ष निम्नलिखित हैंः सम्पूर्ण क्रान्ति का सामाजिक पक्षः जयप्रकाश की सम्पूर्ण क्रांति सम्बन्धी अवधारणाओं के परिप्रेक्ष्य के अन्तर्गत क्रांति का अर्थ आमूल अहिंसक बहुमुखी परिवर्तन से है । उनका मानना था समाज में प्रचलित रूढ़िवादी मान्यताएँ जो आज भारत के सन्दर्भ में अनूकूल नहीं है , उनके स्थान पर नवीन मान्यताओं को कायम किया जाना चाहिए।

संदर्भ :

1. जयप्रकाश नारायण, समाजवाद के सर्वोदय की ओर, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002
2. जयप्रकाश नारायण, समाजवाद, सर्वोदय और लोकतंत्र, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना,1973
3. जयप्रकाश नारायण, मेरी विचार–यात्रा, भाग–1, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2010
4. सतीश चतुर्वेदी, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, व्यक्ति और विचार, आविष्कार पब्लिशर्स, जयपुर, 2003
5. लक्ष्मी नारायण लाल, जयप्रकाश नारायण, मैकमिलन कम्पनी, दिल्ली, 1955

6. सुधाकर लाल श्रीवास्तव, राष्ट्रीय आन्दोलन और जयप्रकाश नारायण, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1991
7. ऐलन एण्ड वैंण्डी स्कार्फ, जयप्रकाश : एक जीवनी, राधाकृष्ण प्रकाशन, नई दिल्ली, 1987
8. नारायण ऐसाइ (सं0) कान्ति शाह, जयप्रकाश (स्मृति ग्रन्थ) अनुवादक, काशीनाथ त्रिवेदी, जयप्रकाश अमृतकोश, 223 उपाध्याय मार्ग, नई दिल्ली, 1982
9. सुनीलम प्रसाद, विनोद (संपादक) : समाजवादी आन्दोलन तनाव का दौर दस्तावेज (1952–54) प्रतिपक्ष प्रकाशन दिल्ली, 1986
10. जयप्रकाश नारायण, ग्रामदान और देश की समस्याएँ, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी,1965
11. जयप्रकाश नारायण, लोक स्वराज्य (विस्तृत अध्ययन), सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2004
12. जयप्रकाश नारायण, सामुदायिक समाज रूप और चिन्तन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2010
13. जयप्रकाश नारायण, टोटल रिवोल्युसन, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002
14. अंजनी कुमार जमदग्नि, जयप्रकाश नारायण, राजनैतिक और सामाजिक विचार, प्रिन्टवैल पब्लिशर्स , जयपुर, 1988
15. आचार्य राममूत्ति, जे0 पी0 की विरासत, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2010
16. ओम प्रकाश शर्मा, सर्वोदय और जयप्रकाश नारायण, राधा पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 1992
17. जयप्रकाश नारायण, लोक स्वराज्य, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2004
18. जयप्रकाश नारायण, भारतीय राज्य व्यवस्था की पुनर्रचना एक सुझा, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2010
19. यशवन्त सिन्हा (सम्पादक), स्वराज से लोकनायक, वाणी प्रकाशन, दिल्ली,2005 जयप्रकाश नारायण की राजनीतिक विचारधारा : एक अध्ययन, भो8, नं0 3 दिसम्बर, 2018
20. जयप्रकाश नारायण, सामुदायिक समाज रूप और चिन्तन, सर्व सेवा संघ प्रकाश्न, वाराणसी, 2010
21. जयप्रकाश नारायण, बिहार का आन्दोलन(सवाल और उनके जवाब), सघर्ष कार्यालय, कदम कुआँ, पटना, 1975
22. बिपनचन्द्र, लोकतन्त्र, आपातकाल और जयप्रकाश नारायण, अनामिका पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली, 2007
23. जयप्रकाश नारायण, सम्पूर्ण क्रांति, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2002
24. जयप्रकाश नारायण, मेरी विचार यात्रा भाग–2, सर्व सेवा संघ प्रकाशन, वाराणसी, 2010
25. आर0 सी0 गुप्ता, जे0 पी0 फ्रॉम मार्क्सिज्म टू टोटल रिवोल्यूसन, स्टर्लिग पब्लिकेश, नई दिल्ली, 1981
26. हिन्दुस्तान, 26 जून 1975, (जे0 एम0 एम0 एल0)
27. जगदीश चावला, लोकनायक जयप्रकाश नारायण, प्रेम प्रकाशन मन्दिर, दिल्ली, 1977

***

वेदे मनस्तत्त्वचिन्तनम्

डॉ० अमन्द मिश्र *

मानवबुद्धिनिर्मिते शास्त्रे मनोजगत् बहुधा व्याख्यातं विद्यते। परं येनापि मनीषिणा मनस्तत्त्वविचिन्तने या प्रतिभा प्रकटिता तन्मूले वेदविद्यैव विभासते। निखिलं जगत् चेतनाबद्ध दृश्यते। चेतनामेवाधारीकृत्य सर्वं ज्ञानं विज्ञानं च शब्दब्रह्मणा प्रकाश्यते। परमात्मना मानवाभ्युदयार्थं यदपेक्षितं ज्ञानं तदेव वेदमाध्यमेन प्रदत्तम्।

वेदेषु मनस्तत्त्वं यदाख्यातं तदेवाविकलतया सर्वांगत्वेन विकलतयैकांगत्वेन च अद्यत्वे वैज्ञानिके युगे मनोविज्ञानविद्भिर्मनोविषये प्रतिपाद्यते। मनोविज्ञानवेत्तारः सम्प्रति स्नायुमण्डलं, संवेदनां, ध्यानं, शिक्षणं, स्मरणं, विस्मरणं, कल्पनां, चिन्तनं, अनुभूतिं, संवेगं, प्रेरणां, चेतनां, स्वप्नं, बुद्धिं, योग्यतां, व्यक्तित्वं, वंशानुक्रमतां, सफलतां, विफलतां च मनोविज्ञानविद्यया ध्यायन्ति। एतत् सर्वं चिन्तनं वेदेषु पदे पदे मन्त्रेषु विलोक्यते। अथर्ववेदस्यैकस्मिन् मन्त्रे यज्ञकर्त्रा यजमानेन निगद्यते यद् यज्ञाग्नौ हव्यं प्रयच्छता मया मनसा मननशक्तिरवाप्यते, प्रेरणात्मकगुणोऽनुगृह्यते, धिया अवधानत्वमवाप्यते, आकूत्या संकल्पः संकल्प्यते, संवेगोऽभिवर्ध्यते, चित्तेन चिन्त्यते, स्मर्यते, विस्मर्यते, मत्या बुद्धिव्यापारो वितन्यते, ज्ञानशक्तिरूपधीयते, श्रुतेन श्रवणाध्ययनमभिवर्ध्यते, चक्षुषा परिवर्धनपुरःसरं प्रत्यक्षीकरणमनुभूयते। मन्त्रेऽस्मिन् मनसो विविधाः शक्तयः बहवश्च गुणा समाख्याता याथार्थ्यविधिना।

यथा–

मनसे चेतसे आकूतय उत चित्तये।
मत्यै श्रुताय चक्षसे विधेम हविषा वयम्।। (अथर्व ६।४१।१)

संकल्पशक्तीनां स्त्रोतो मनः–

मनुष्या मनसः प्रोद्भूतेन बलेन शुभे वा अशुभे वा कर्मणि भवन्ति प्रवृत्ताः। सत्संकल्पेन सत्कर्मनिपुणा असत्संकल्पेन चासत्कर्मनिपुणा भूत्वा सुखं वा दुःखं वा जनयन्ति। वेदे सत्संकल्पनाय मनुष्या दिव्यया वाचा निर्दिष्टाः यथा–

मनसा संकल्पयति तद् देवा अपि गच्छति।
अथोह ब्रह्माणो वशाम् उप प्रयन्ति याचितुम्।।[1]
मनसः काममाकूतिं वाचः सत्यमशीय।
पशूनाँ रूपमन्नस्य रसो यशः श्रीः श्रयतां मयि स्वाहा।।[2]

अनश्वरं विद्यते मनः–

अनश्वरं दिव्यं रूपम् अतित्वरया गत्या प्राप्तुं देवा यथा देवान् हविषा प्रीणयन्ति तथैव प्रसन्नेन मनसा मनुजा मनुष्यान् तुष्यन्ति। वयं सर्वे मनुष्या मनसः शक्त्या शक्तिमन्तो भवेम। यथा मनो नास्ति परिमितं तथैव मनः संसाध्य संसारे वयमप्यपरिमिता स्याम। मनुजः यत्–शक्त्या द्युलोकद्युतिं ज्ञाति, यत् शक्त्या व्योम विलोकयति, यत् शक्त्या पृथिवीप्रथितां पश्यति, येन मनोबलेन पुरूषो दूरस्थोऽप्यदूरस्थ इव अदूरस्थोऽपि दूरस्थ इव भवति, तन्मनोबलं दिव्यमनश्वरमेव। सर्वा दिव्यशक्तयः मनसि संस्थिताः। यथा–

यथा देवा देवान् हविषा यजन्त अमर्त्यान् मनसाऽमर्त्येन।
मदेम तत्र परमे व्योमन् पश्येम तदुदितौ सूर्यस्य।।[3]

अनेन ज्ञायते यत् शक्तीनां स्त्रोतो तु मन एव। मनस्विनो मनसि महान् वेगो भवति, अतएव महद्भिर्वेदविद्भिर्मनसो वेगवत्ता वायोरपि गरीयसीति कथितम्। लोके मनसो गतिरतितीव्रा, विचारैः सह मनो वा, मनसा सह विचारा वा दूराद्दूरं प्रयान्ति। केनापि यन्त्रेणास्य वायोर्वा गतिरनुमाप्यते परं मनसो गतिरननुमेयाऽननुमाप्या च कस्यचिदन्यस्य गतिरेकस्यां दिशि प्रभवति परं मनसो गतिर्विश्वव्यापिनी भवति क्षणांशेनापि कालेन यथा–

---

* अतिथि प्राध्यापक, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी

यथा मनो मनस्केतैः परापतत्याशुमत्।
एवा त्वं कासे प्रपत मनसोऽनुप्रवाच्यम्।। [4]
यत् ते दिवं पृथिवी मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आवर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे।। [5]
यत् ते विश्वमिदं जगद् मनो जगाम दूरकम्।
तत् आवर्तयामसि इह क्षयाय जीवसे।। [6]

सत्त्वगुणशालिभिर्मनीषिभिस्तपश्चर्यया सूक्ष्मतया मनसि वर्तमाना ज्ञानसत्ता संदृष्टा। ब्रह्मणः सत्तां मनस्यनुभूय तत्त्वविदा तपस्विना **"मनो देवः" "मनो वै प्रजापतिः" "मन एव सर्वम्" "अनन्तं वै मनः" "मनो वै ब्रह्म"** इत्यादीनि वाक्यानि प्रथितानि। शतपथब्राह्मणे मनसोऽग्निरूपमालोक्य **"मनो वै अग्निः"** इति निगद्य अग्निसत्तया सह मनो वर्णनं कृतम्। यथा अग्निः सर्वत्र गच्छति, सर्वं जीवयति, सर्वेषु प्राणं संचारयति तथैव मनुष्योऽपि मनसा आत्मसत्तां प्रसारयति, दुर्भावं मनोबलेन नाशयति, ऋतस्य सूक्ष्मतां मनसः सूक्ष्मशक्त्या पश्यति। विश्वधारका ये शाश्वतिका ऋतस्य तन्तवः सन्ति तान् ऋतस्य तन्तून् मनसा मिमाति। मनसि वर्तमानया चिन्तनशक्त्या भूतकाले यज्जातं तत्सर्वं ज्ञातुं प्रभवति। मनसः त्रिकालज्ञतायां मन्त्रः प्रस्तूयते। यथा–

अष्टधा युक्तो वह्निरूग्रः पिता देवानां जनिता मतीनाम्।
ऋतस्य तन्तुं मनसा मिमानः सर्वा दिशः पवते मातरिश्वा।। [7]
यत् ते भूतं च भव्यं च मनो जगाम दूरकम्।
तत् त आ वर्तयामसि इह क्षयाम जीवसे।।[8]

मनसि निर्देशनशक्तिः–

कदाचित् कर्त्तव्याकर्त्तव्यविषये पुरूषो न भवति निश्चलः। अतस्तस्य हृदयं दुःखावेष्टितं प्रभवति। हृदयगतं दुखं द्रोहं शत्रुतां विपन्नतां क्षीणतां दीनतां मध्ये मन एव सुखेन प्रेम्णा मैत्र्या सम्पन्नतया पूर्णतया साहसतया च परिणमयति। हर्षशोकचिन्ताक्षोभादिविषये यदा निर्देशनावश्यकता भवति तदा मन एव भवति निर्देशकम्। यस्मिन् काले पुरूष आत्मनं नाशयितुमिच्छति तस्मिन्नेव काले मनसः शक्तिमवाप्य जीवितुमिच्छति कदापि चिन्तयति यन्नष्टोऽहं जातः। कदापि चिन्तयति हृष्टोऽहं पुष्टोऽहं पूर्णोऽहमस्मि इत्यादिकमनुभूतिरपि निर्देशनशक्त्यैव भवति।

आ यन्मा वेना अरूहन्नृतस्य एकमासीनं हर्यतस्य पृष्ठे।
मनश्चिन्मे हृद आ प्रत्यवोचद् अचिक्रन्दन शिशुमन्तः सुखायः।।[9]

ऋग्वेदे एकस्मिन् मन्त्रे दृश्यते यत् मन एव अक्षय्यं ज्ञानं विभर्ति। परमात्मना ज्ञानमयेन तपसा मनसा वेदत्रयी धृता शरीरे वर्तमानः प्राणवायुरेव मनसा अभिहतेनाग्निना प्रेरितो भूत्वा भवति स्वरोत्पादकः। तेजस्विनं वाचं मनसि संस्थाप्य तपोबलेन तामुदीर्य जगत्कल्याणाय प्रवर्त्तन्ते महामनीषिणः।
यथा–

पतंगो वाचं मनसा बिभर्ति तां गन्धर्वोऽदद् गर्भेऽन्तः।
तं द्योतमानां स्वर्यं मनीषिणाम् ऋतस्य पदे कवयो नि पान्ति।।[10]

जाग्रतः पुरूषस्य यथा मनो सुदूरमपि समीपमपि गतिं करोति तथैव सुप्तस्यापि पार्श्ववर्तिं दूरवर्तिं च भवति। एतन्मनः सर्वेषां ज्योतिषां ज्योतिर्विद्यते एतद् विना नहि किमपि विचारयितुं प्रभवति। यथा–

यज्जाग्रतो दूरमुदैति दैवं तदु सुप्तस्य तथैवैति।
दूरंगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।[11]

येन मनसा श्रद्धया कर्मवीराः सात्त्विकवृत्त्या यज्ञं वितन्वन्ति वाचा वाचं योजयन्ति देवैर्देवानुदबोधयन्ति च तस्य मनसः शिवसंकल्पता समीहिता–

येन कर्माण्यपसो मनीषिणो यज्ञे कृण्वन्ति विदथेषु धीराः।
यदपूर्वं यक्षमन्तः प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।[12]

मानसिक्या शक्त्या यद् ज्ञानं प्राप्यते **"प्रज्ञानं मनः"** इति निगद्यते। ज्ञातस्य वस्तुनः स्मरणं मनसैव क्रियते अत एव स्मृतिकोशो मनः। मनसैव कर्म क्रियते, मनसा वागुच्यते, मनसा दृश्यते,

सुखदुःखयोः स्थली मन एव, मनसश्च हृदये वासः, मन एव प्रजापतेरपूर्वा तनूः। ज्योतिषाममरता मनस्येव यथा–

यत्प्रज्ञानमुत चेतो धृतिश्च यज्जोतिरन्तरमृतं प्रजासु।
यस्मान्न ऋते किंचन कर्म क्रियते तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।[13]
न ह्युक्तेन मनसा किंचन सम्प्रति शक्नोति कर्तुम्।[14]
मनसा ह्येव पश्यति मनसा श्रृणोति।[15]
येनेदं भूतं भुवनं भविष्यत् परिगृहीतममृतेन सर्वम्।
येन यज्ञस्तायते सप्त होता तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।[16]

ऋग्यजुस्सामाथर्वणः च प्रत्यक्षपदवाच्याः परोक्षपदवाच्या आध्यात्मिकवाच्याश्च मन्त्रास्तिष्ठन्ति। रथनाभौ यथा अरा आश्लिष्टास्तथैव मनसा भवन्ति समाश्लिष्टा सर्वे वेदाः। सर्वासां प्रजानां चित्तं चत्र सर्वथोतप्रोतं भवति तदैव मन इति निगद्यते। मनस एव शिवां सङ्कल्पशक्तिं प्रेरयितुं साधकस्तपस्वी प्रार्थयते सर्वज्ञं परमात्मानम्।

यस्मिन्नृचः साम यजूंषि यस्मिन् प्रतिष्ठिता रथनाभाविवाराः।
यस्मिंश्चित्तं सर्वमोतं प्रजानां तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।[17]
सुषारथिरश्वानिव यन्मनुष्यान् नेनीयते अभीशुभिर्वाजिन इव।
हृत् प्रतिष्ठं यदजिरं जविष्ठं तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु।।[18]

मनोनिग्रहेण सर्वत्र जयः–

मनसि वर्तमाना चंचलतैव मानवं पतनगर्ते पातयति। अनिष्टविनाशाय मनोनिग्रहो नूनमनिवार्यः। मनोनिग्रहेण पुरूषः सर्वं कर्तुमर्हति। निश्चलमनसां मानवानां किमपि नास्त्यसाध्यं भूतले, अतिचंचलमनसां पुरूषाणां मार्गे तु पदे–पदे भवति दुःखोपलब्धिः। त्रिविधतापतप्तः कश्चित् चंचलचित्तो नरः शान्त्यर्थम् आचार्यं गुरूं तपस्विनमुपदेष्टारं सम्यगुपेत्य स्वदुःखं विज्ञापयति। आचार्यस्तन्मनोव्यथाकारणं मनश्चांचल्यं विज्ञाय मनसः स्तम्भनायोपायमुपायान्तरं च निगद्य मनोव्यथामपहरति। मनोनिग्रहभेषजं निपीय पुरूषो बलवान् भवति संसारे तत्कृते किमप्यसम्भवं न भवति। चंचलचित्तं पुरूषं नकारात्मको भावो पुनः पुनर्मृत्युमुखे प्रक्षिपति। दुश्चिन्तनेन यन्मनो दूरं गत्वा नैराश्यमुत्पादयति तदेव मनः साधनया स्थिरतामुपेत्य मनुष्यं साधयति सततं कर्मकरणाय प्रेरयति दक्षतां च ददाति। वैदिक–चिन्तनानुसारं मनोनिग्रहः संजीवनीशक्तिरूपः सन् मानवजीवनं विकासयति। निग्रहवान् पुरूषो मनोबलेन पतितोऽपि उद्गतः उद्ग्रसितोऽप्युन्मुक्तः हीनोऽप्यहीनः दीनोऽप्यदीनः निष्क्रयोऽपि सक्रियः निर्बलोऽपि सबलः अक्षमोऽपि सक्षमः, अपण्डितोऽपि पण्डितो भवति, भवति च लोके प्रशस्यः।

यथा युगं वरत्रया नह्यन्ति धरणाय कम्।
एवा दधार ते मनो जीवातवे न मृत्यवे अथो अरिष्ट तातये।।[19]
मनसैवेदमवाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।।[20]

मनोबुद्धिसमन्वये जायते मनोनिग्रहोदयस्तेनैव सह सौख्यं सौमनस्यं सौभाग्यं दाक्ष्यं भद्रत्वं मांगल्यं च वर्धते।

त्वं धियं मनोयुजं सृजा न तन्यतुः।
त्वं वसूनि पार्थिवा दिव्या च सोम पुष्यसि।।[21]

मानवानां मनसि पापधारा पुण्यधारा च सदैव प्रवहति एकस्मिन्नेव काले द्वे धारे न प्रवहतः। कदाचित् मनः पापाश्लिष्ट। कदाचिच्च पुण्याश्लिष्टं जायते। अशुभचिन्तनान्विते मनसि प्राणानां गतिरसमा शुभचिन्तनान्विते च मनसि प्राणानां गतिः समा भवति प्राणानामसमत्वे रोगोत्पत्तिर्जायते, सति रोगे आयुरपि क्षीयते। येषां प्राणाः समाः प्रवहन्ति ते रोगरहिता दीर्घजीविनश्च भवन्ति। सत्कर्मव्यापृतं मनो न संस्पृशति दुर्विचारः। रिक्ते मनसि पापानां निवासः प्रवर्धते। यथा–

परोऽपेहि मनस्पाप किमशस्तानि शंससि।
परेहि न त्वा कामये वृक्षान् वनानि सं चर गृहेषु गोषु मे मनः।।[22]

अपेहि मनस्पतेऽपक्राम परश्चर।
परो निर्ऋत्या आचक्ष्व बहुधा जीवतो मनः।।[23]

मनोबलहीनानां पुरुषाणां मनसि प्रायो नैराश्यमुत्पद्यते, नैराश्यशमनाय मनोबलवर्धनाय च वेदमन्त्रो बलहीनान् सबलयितुं निर्दिशति यद् यदा नैराश्यमभिजायेत तदा पूर्वेषामृषीणां जीवनपद्धतिर्ग्राह्या, महापुरुषाणां जीवनचरितं पठनीयं महतां स्मरणं करणीयम्। यथा–

मनोन्वाह्वामहे नाराशंसेन स्तोमेन। पितृणां च मन्मभिः।।[24]

येषां पुरुषाणां मनसि बलवत्ता विराजते ते जगत्यां सर्वं कर्तुं क्षमन्ते। न केवलमेकं वस्तु ते लभन्तेऽपितु समग्रं विश्वमपि जेतुं शक्नुवन्ति। ते मनो बलेन दिग्विजयो विश्वविजयः च जायते। एतस्मादेव वेदे प्रार्थ्यते–

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सह चित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।[25]
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।।[26]

अतः प्रार्थ्यते यत् शिवसंकल्पावृतं भवत्वस्माकं मनः इति शम्।

सन्दर्भ :

1. अथर्व १२,४,३१.
2. यजु0 २१।४.
3. अथर्व ७।५।३.
4. अथर्व६।१०५।१.
5. ऋक् १०।५८।२.
6. ऋक् १०।५८।१०.
7. अथर्व १३।३।१६.
8. ऋक् १०।५८।१२.
9. ऋक् १०।५८। 3.
10. ऋग् १०।१७७।२.
11. यजु0 3४।१.
12. यजु ३४।२.
13. यजु ३४।३.
14. शतपथ0 ६,३,१,६१६.
15. शतपथ0 १४,३,१६.
16. यजु0 ३४।४.
17. यजु0 ३४।५.
18. यजु0 ३४।६.
19. ऋग् १०।६0।८.
20. कठोप 0२।४।११.
21. ऋग् ६।१00।३.
22. अर्थव0 ६।४५।।१.
23. अथर्व0 २0।६६।२४.
24. यजु0 ३।३५.
25. ऋग्. १०।१६१।३
26. ऋग्. १०।१६१।४.

***

अशोक स्तंभ, सारनाथ की कला एवं प्रतीकात्मक अर्थ

डॉ. इन्दुभूषण द्विवेदी *

मुख्य मंदिर से पश्चिम की ओर एक अशोक कालीन प्रस्तर–स्तंभ है जिसकी ऊँचाई प्रारंभ में 17.55 मी. (55 फुट) थी। वर्तमान समय में इसकी ऊँचाई केवल 2.03 मीटर (7 फुट 9 इंच) है। स्तंभ का ऊपरी सिरा अब सारनाथ संग्रहालय में है। नींव में खुदाई करते समय यह पता चला कि इसकी स्थापना 8 फुट × 16 फुट × 18 इंच आकार के बड़े पत्थर के चबूतरे पर हुई थी। इस स्तंभ पर तीन लेख उल्लिखित हैं। पहला लेख अशोक कालीन ब्राह्मी लिपि में है जिसमें सम्राट ने आदेश दिया है कि जो भिक्षु या भिक्षुणी संघ में फूट डालेंगे और संघ की निंदा करेंगे, उन्हें सफेद कपड़े पहनाकर संघ के बाहर निकाल दिया जाएगा। दूसरा लेख कुषाण–काल का है। तीसरा लेख गुप्त काल का है, जिसमें सम्मितिय शाखा के आचार्यो का उल्लेख किया गया है।

सारनाथ के पाषाण स्तम्भ की शीर्ष चौकी पर बनी हुई चार सिंह आकृतियाँ अपने कलात्मक लालित्य के लिए विश्व प्रसिद्ध हैं। पीठ से पीठ सटाकर बैठे हुए सिंह कलात्मक सौन्दर्य तथा भावाभिव्यक्ति की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। चारों सिंहों के शरीर के सभी अंगों के प्रदर्शन में पूर्ण सामंजस्य है। मूर्तिकला की तकनीक का पूर्ण विकसित रूप सारनाथ की सिंह मूर्तियों में दृष्टिगोचर होता है किन्तु सिंहों की छवि आडम्बरपूर्ण तथा रूढ़िबद्ध है। बलशाली सिंहों की शिराएँ उभरी हुई तथा माँसपेशियाँ खिंची हुई हैं। अयालों का अंकन सजीव न होकर आलंकारिक है। सिंहों के मुँह फाड़ने तथा मूँछों के ऐंठने का ढंग भी रूढ़िगत है। सिंहों के नीचे की वृत्तकार चौकी में सपरट दौड़ता घोड़ा, मुद्रित गवेन्द्र, मदमस्त गज और विक्रान्त सिंह उत्कीर्ण हैं। दो पशुओं के बीच में 24 आरे वाला एक चक्र बना हुआ है। इस प्रकार चार पशु तथा चार चक्र चौकी की सजावट के लिए बनाये गये हैं। भारत सरकार ने अशोक के सिंहों वाले सारनाथ के स्तम्भ–शीर्ष को राजचिन्ह के रूप में ग्रहण किया है। यह स्तम्भ–शीर्ष सारनाथ संग्रहालय में सुरक्षित है।

मौर्य काल की मूर्ति कला पर भी विदेशी प्रभाव–विशेषकर ईरान की मूर्ति कला का प्रभाव–कुछ विद्वान् मानते हैं। मौर्य कला के विकास में हेलेनिस्टिक कला का भी योगदान माना जाता है। स्तम्भों के शीर्ष को मंडित करने, वाले सिंहों की मूर्तियों के निर्माण में वैदेशिक प्रभाव विशेष रूप से परिलक्षित होता है। सिंहों की मूर्तियों की कल्पना, निर्माण शैली और तकनीक सभी नितान्त पेचीदी तथा परिष्कृत है। इन मूर्तियों में आदिम कला का रंचमात्र भी आभास नहीं मिलता है। अशोक के साँची तथा सारनाथ के सिंहों के प्रतिमांकन, आकार और सौन्दर्यबोध में रूढ़िबद्धता दिखलाई पड़ती है। अतः यह अनुमान किया जाता है कि इनके निर्माण की प्रेरणा का स्रोत कहीं विदेश में रहा होगा।

सिंहस्तम्भ की कला के विषय में मार्शल ने पुनः कहा है–''यद्यपि सारनाथ का सिंहस्तम्भ श्रेष्ठ कला का अविकल उदाहरण नहीं है। किंतु ईसवी शती पूर्व के संसार में इसके जैसी श्रेष्ठ कलाकृति कही नहीं मिलती। यह उस शिल्पी का बनाया हुआ है जिसके पूर्वजों मैं सैकड़ों वर्षो तक कलात्मक लक्षण का पुष्कल अभ्यास किया था। ऊपरी सिंहों में जैसी शक्ति का प्रदर्शन है, उनकी फूली नसों में जैसी प्राकृतिकता है और उनकी मांसपेशियों में जो तनाव है और उनके नीचे उकेरी आकृतियों में जो प्राणवन्न वास्तविकता है उसमें कहीं भी आरम्भकालीन कला की छाया नहीं है। शिल्पी से जिस प्राकृतिक रूप को अपना लक्ष्य बनाया था उसे उसकी पूरी मात्रा में प्रकृति से ही अपनाया और सिंहों के रूपों को प्राकृतिक सच्चाई से प्रकट किया। किंतु उसने इससे भी अधिक कार्य किया। उसने समझ–बूझ कर सिंहों के निर्माण में ऐसी गुणवत्ता भर दी है कि वे पूरे स्तम्भ का अविभाज्य या समन्वित अंग जान पड़ते है। उसकी उकेरी भी वैसी है। प्राचीन यूनानी कला में किसी आकृति की अग्र एवं पृष्ठ–भूमि के

---

*एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग कन्हैया लाल बसन्त लाल स्नातकोत्तर महाविद्यालय, मीरजापुर, उत्तर प्रदेश।

बीच में बाँधा जाता था। सारनाथ स्तम्भ पर ऐसी बात नहीं है। यहाँ पर पशुओं के प्रत्येक अंग को अपने ही अनुसार उभारा गया है और प्रत्येक का निर्माण एक दूसरे से पृथक है। इन आकृतियों से ज्ञात होता है कि कलाकार ने प्रत्येक रूप को चौमुख वर्णन का बना कर फिर उसका अगला भाग काट कर अंग की खोल चौकी पर चिपका दिया है।''

सारनाथ सिंह शीर्षक के प्रतीकात्मक अर्थ

यह कहना आवश्यक है कि सारनाथ कि सारनाथ स्तम्भ धर्म का महान् प्रतीत है जिसमें प्रत्येक भाग को जान–बूझकर स्थान दिया गया है।यह भी ज्ञात होता है कि प्रकट किया है। इस शीर्षक की कल्पना के विधाता सम्राट् स्वयं थे यह बात तीन बातों के अध्ययन से समुचित जान पड़ती है। पहला तथ्य अशोक का जन–सम्पर्क है जैसा उन्होंने लिखा है कि वे जानपद जन के दर्शन और धर्म–परिपृच्छा के लिए उनसे सम्पर्क रखते थे। इसके लिए वे स्वयं यात्रा करते और अपने अधिकारियों को यात्रा के लिए आदेश देते थे (जानपदजनस दसनं धम्मपलिपुछा धम्मानुसथि च)।

इस नीति का आरम्भ अशोक ने इस इच्छा से किया कि गाँव की जनता के साथ उनका सीधा सम्पर्क बन सके। वे धर्म के विषय में उनसे प्रश्न पूछते और अपने विचारों को प्रकट करते हुए उन्हें समझाते थे। इससे उनके मन में जनता के लिए एक नया सम्मान प्रकट होता है। देश के इतिहास में किसी राजा ने इस प्रकार नहीं सोचा।

चार चक्र और चार पशु इसी लोकव्यापी भावना के प्रतीक हैं, क्योंकि वे सामाजिक जनों की इकाई और उनके भेदों की सूचित करते है। अशोक के विषय में दूसरा तथ्य उनका महालक विजित या महान् साम्राज्य के अधिष्ठाता के रूप में चक्रवर्ती पद था। वे उसकी महती शक्ति से अवगत थे। उनका साम्राज्य वाह्लीक से मैसूर तक और सौराष्ट्र से कलिंग तक विस्तृत था। इसमें उनका अधिकार अप्रतिरथ था। उनका कोई विपक्षी न था जो राजादेश का उल्लंघन कर सके। उन्होंने जो कुछ किया वह साम्राज्य की लौकिक और धार्मिक शक्ति को अपने भीतर जानकर किया। वे बौद्ध धर्म के शुभचिंतक मित्र और संचालक दोनों थे। जो कुछ सम्राट् विचार करते या योजनानुसार कर्म करते थे, उन सब का प्रभाव उनकी महनीय शक्ति के कारण राज्य के अधिकारियों पर, धार्मिक आचार्यो और जनता पर पड़ता था।

अंडाकर चौकी के विषय में कई मत प्रकट किए गए हैं। इतिहासकारों के मत में ये चार देवता इन्द्र, शिव, सूर्य और सम्भवतः दुर्गा के प्रतीक हैं। ये पशु इन चार देवताओं के वाहन थे और शिल्पी का उद्देश्य था कि इन चार देवताओं को बुद्ध के वशपती दिखाया जाय। यह मत दिखावे भर का है, पर इसका समर्थन शक्य नहीं। फूशे ने उन्हे बुद्ध के जीवन की चार घटनाओं से संबंधित बतलाया था; वृष जन्म के लिए, हाथी अबक्रान्ति या मयादेवी के गर्भाधान के लिए जिसने स्वप्न में एक श्वेत हाथी देखा था, के लिए और सिंह शाक्यसिंह के रूप में स्वयं बुद्ध के लिए। दयाराम साहनी के मत में ये बौद्ध अनीतत सरोवर के चार द्वारों से संबंधित चार पशु थे। ये दोनों विशेषताएँ अशोक से पूर्व के और पीछे के राजाओं में भी थीं, किन्तु धर्म के विषय में क्रियाशील दृष्टिकोण अशोक की निजी देन थी। उनका हृदय रातदिन धर्म की भावना से आकुल रहता था। बुद्ध के समान दिग्दिगन्त में धर्मचक्र प्रवर्तन के लिए साम्राज्य की शक्ति का सदुपयोग अशोक के समान अन्यत्र नहीं देखा गया। यही अर्थ सारनाथ के स्तम्भ में अभिव्यक्त है। उनके कर्म की प्रेरणा क्रियाशील धम्म में थी। धम्मविजय के संबंध में लेखों में महता कंठेन अशोक की भावना को प्रकट किया गया है–''पराक्रम में मेरा विश्वास है और मैं चाहता हूँ कि सब लोक पराक्रम करें।''

कला के प्रतीक में इन तीनों भावनाओं की अभिव्यक्ति आवश्यक थी जैसी सारनाथ स्तम्भ के धर्मचक्र, सिंह चतुष्टय और अंडभाग के रूपों में देखी जाती है। सबसे ऊपर का धर्मचक्र उसके धार्मिक विश्वास का परिचायक था, चार सिंह उसकी दुधर्ष शक्ति के प्रतीत थे और अंड के चार छोटे चक्र, चार पशु विविध समाज और उसकी एकता के द्योतक थे। अंडभाग के ये रूप धम्म–विजय के विचार के साथ संगत थें चार पशु मानों एक ही सामाजिक देवता के चार रूप थे जो चार वर्णो में और उनके विविध आचारों में व्याप्त है; यही अनोतत्त सरोवर का लोक–प्रत्यक्ष रूप है। चार धर्मचक्र समाज के

चतुष्टय विधान में पिरोई हुई एकता के सूचक हैं। सम्राट् और प्रजा के जीवन की पारस्परिक एकता चार सिंहों, चार चक्रों और चार पशुओं से सूचित होती है। सम्राट् का प्रभविष्णु रूप और प्रजा का मृदुल रूप एक दूसरे के पूरक हैं। अशोक ने सिंहों के समान महाबलशाली होकर भी अपने आपको प्रजा के कल्याण के लिए समर्पित कर दिया था। उसके दोनों स्वरूपों का सर्वथा अविरोध था।

सारनाथ स्तम्भ पर एक साथ और अशोक के अन्य स्तम्भों पर पृथक्–पृथक् चार महापशुओं की कल्पना भारत में अशोक के युग के लिए बाहर से गृहीत या नई नहीं थी। उसका अस्तित्व सिन्धुघाटी में भी सिद्ध है। अशोक के बाद 19वीं शती तक उनका प्रचार रहा। इस प्रकार इन रूपों में बाहरी प्रभाव का कोई प्रश्न नहीं उठता।

सन्दर्भ :

1. चौधरी, सुमेर सिंह, भारतीय स्थापत्य कला, इलाहाबाद प्रकाशन वर्ष 2013, पुष्ठ–66
2. पाण्डेय जयनारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व प्राच्यविद्या संस्थान मुद्र0 निर्मल प्रेस वर्ष–1999 पृष्ठ–40
3. पाण्डेय जयनारायण, भारतीय कला एवं पुरातत्व प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 1999 पृष्ठ–40
4. अग्रवाल वासुदेव शरण, भारतीय कला, पृथ्वी प्रकाशन वाराणसी सन् 1966, पृष्ठ–116
5. श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र भारत की संस्कृति तथा कला, प्रकाशक–यूनाइटेड बुक डिपो इलाहाबाद, सन् 1999 पृष्ठ–314
6. श्रीवास्तव, कृष्ण चन्द्र, भारत की संस्कृति तथा कला, प्रकाशक–यूनाइटेड बुक डिपो इलाहाबाद, सन् 1999 पृष्ठ–314
7. अभिनव सत्यदेव, प्राचीन भारतीय कला, प्रकाशक भवदीय प्रकाशन, श्रृंगारहाट अयोध्य, सन् 1997, पृष्ठ–37

***

कबीर का दार्शनिक एवं रहस्यवादी चिन्तन

डॉ. राम कृष्ण *

कबीर का रहस्यवाद अपनी विशेषता लिए हुए है। वह एक ओर तो हिन्दुओं के अद्वैतवाद के क्रोड़ में पोषित है और दूसरी ओर मुसलमानों के सूफी–सिद्धान्तों को स्पर्श करता है। इसका विशेष कारण यही है कि कबीर हिन्दू और मुसलमान दोनों प्रकार के सन्तों के सत्संग में रहे और वे प्रारम्भ से ही यह चाहते थे कि दोनों धर्म वाले आपस में दूध–पानी की तरह मिल जायें। इसी विचार के वशीभूत होकर उन्होंने दोनों मतों से सम्बन्ध रखते हुए अपने अनुभवों का निरूपण किया। रहस्यवाद में भी उन्होंने अद्वैतवाद और सूफीमत की 'गंगा–जमुनी' साथ ही बहा दी।

रहस्यवाद

अद्वैतवाद ही मानो रहस्यवाद का प्राण है। शंकर के अद्वैतवाद में जो ईसा की 8वीं सदी में प्रादुर्भूत हुआ, आत्मा और परमात्मा की वस्तुतः एक ही सत्ता है। माया के कारण ही परमात्मा के नाम और रूप का अस्तित्व है। इस माया से छुटकारा पाना ही मानों आत्मा और परमात्मा की फिर एक बार एक ही सत्ता स्थापित करना है। आत्मा और परमात्मा एक ही शक्ति के दो भाग हैं जिन्हें माया के परदे ने अलग कर दिया है। जब उपासना या ज्ञानार्जन पर माया नष्ट हो जाती है तब दोनों भागों का पुनः ऐक्य हो जाता है। कबीर इसी बात को इस प्रकार लिखते हैं:–

जल में कुंभ, कुंभ में जल है, बाहिर भीतर पानी।
फूटा कूंभ जल जलहि समाना, यहु तत कथो गियानी।।

एक घड़ा जल में तैर रहा है। उस घड़े में थोड़ा पानी भी है। घड़े के भीतर जो पानी है वह घड़े के बाहर के पानी से किसी प्रकार भी भिन्न नहीं है। किन्तु वह इसलिए अलग है क्योंकि घड़े की पतली चादर उन दोनों अंशों को मिलने नहीं देती, जिस प्रकार माया ब्रह्म के दो स्वरूपों को अलग रखती है। कुंभ के फूटने पर पानी के दोनों भाग मिलकर एक हो जाते हैं, उसी प्रकार माया के आवरण के हटने पर आत्मा और परमात्मा का संयोग हो जाता है। यही अद्वैतवाद कबीर के रहस्यवाद का आधार है।

दूसरा आधार है मुसलमानों का सूफी मत। हम निश्चय रूप से यह नहीं कह सकते हैं कि उन्होंने सूफी मत के प्रतिपादन के लिए ही अपने 'शब्द' कहे हैं, पर यह निश्चय है कि मुसलमानी संस्कारों के कारण उनके विचारों में सूफी मत का तत्व मिलता है। इस विषय में कबीर की कविता का उदाहरण देना आवश्यक प्रतीत होता है।

परमात्मा की अनुभूति के लिए आत्मा प्रेम से परिपूर्ण होकर अग्रसर होती है। सांसारिकता का बहिष्कार कर दिव्य और अलौकिक वातावरण में उठती है। वह उस ईश्वर के समीप पहुँच जाती है जो इस विश्व का निर्माणकर्ता है। उस ईश्वर का नाम है सत्पुरुष। सत्पुरुष के संसर्ग से वह आत्मा उस दैवी शक्ति के कारण हतबुद्धि सी हो जाती है। वह समझ ही नहीं सकती कि परमात्मा क्या है, कैसा है, वह अवाक् रह जाती है। वह ईश्वरीय शक्ति अनुभव करती है पर उसे प्रकट नहीं कर सकती है। इसलिए 'गुँगे के गुड़' के समान वह स्वयं तो परमात्मानुभव करती है पर प्रकट में कुछ भी नहीं कह सकती। कुछ समय के बाद जब उसमें कुछ बुद्धि आती है और कुछ जबान खुलती है तो वह एकदम से पुकार उठती है।

कहहिं कबीर पुकार के, अद्भुत कहिए ताहि।

उस समय आत्मा में इतनी शक्ति ही नहीं होती कि वह परमात्मा की ज्योति का निरूपण करने में समर्थ हो। वह आश्चर्य और जिज्ञासा की दृष्टि से परमात्मा की ओर देखती रहती है। अन्त में बड़ी कठिनता से कहती है–

---

* एसो० प्रोफे०, हिन्दी विभाग, पं० दीनदयल उपाध्याय राजकीय बालिका, महाविद्यालय सेवापुरी वाराणसी (उ०प्र०)।

वर्णहुँ कौन रूप ओ रेखा,
दोसर कौन आहि जो देखा।
ओंकार आदि नहीं वेदा,
ताकर कहहु कौन कुल भेदा।।

x x x

नहिं जल, नहिं थल, नहिं थिर पवना
को धरै नाम हुकुम को बरना,
नहिं कछु होति दिवस औ राती।
ताकह कहहु कौन कुल जाती।।
शून्य सहज मन स्मृति ते प्रकट भई एक जोति।
ता पुरुष की बलिहारी, निरालंब जे होति।।

– रमैनी–6

यहाँ आत्मा सत्य पुरुष का रूप देखकर मुग्ध हो जाती है। धीरे–धीरे आत्मा–परमात्मा की ज्योति में लीन होकर विश्व की विशालता का अनुभव करती है और उस समय वह आनन्दातिरेक से परमात्मा के गुण वर्णन करने लगता है:–

जाहि कारण शिव अजहुँ वियोगी।
अंग विभूति लाई भे जोगी।।
शेष सहज मुख पार न पावैं।
सो अब खसम सहित समुझावैं।।

इतना सब कहने पर भी अन्त में यही शेष रह जाता है कि –

तहिया गुप्त स्थूल नहीं काया।
ताके शोक न ताके माया।।
कमल पत्र तरंग इक माहीं।
संग ही रहै लिप्त पै नाहीं।।
आस ओस अंडन में रहई।
अगनित अंडन कोई कहई।।
निराधार आधार लै जानी।
राम नाम लै उचरै बानी।।

x x x

भर्म क बाँघल ई जागत, कोई न करै विचार।
हरि की भक्ति जाने बिना, भव बूड़ि मुआ संसार।। – रमैनी 74

इसी प्रकार संसार के लोगों को उपदेश देती हुई आत्मा कहती है–

जिन यह चित्र बनाइया, साँचों सो सूरति हार।
कहहि कबीर ते जन भले, जे चित्रवंतहि लेहि बिचार।।

इस प्रेम की स्थिति बढ़ते–बढ़ते यहाँ तक पहुँचती है कि आत्मा स्वयं परमात्मा की स्त्री बनकर उसका एक भाग बन जाती है। यही इस प्रेम की उत्कृष्ट स्थिति है–

एक अंड उंकार ते, सब जग भया पसार।
कहहि कबीर सब नारी राम की, अविचल पुरुष भतार।। – रमैनी 27

और अन्त में आत्मा कहती है–

हरि मोर पीव माई, हरि मोर पीव।
हरि बिन रहि न सकै मोर जीव।।
हरि मोर पीव मैं राम की बहुरिया।
राम बड़े मैं छुटक लहुरिया।। – शब्द 117

और

जो पै पिय के मन महिं भाये।
तौ का परोसिन के दुलराये।।
का चूरा पाइल झमकाएँ
कहा भयो बिछुआ ठमकाएँ।।
का काजल सेंछुर कै दीये।
सोलह सिंगार कहा भयो कीये।।
अंजन मंजन करै ठगौरी।
क पचि मरै निगाड़ी बौरी
जो आपै पतिव्रता है नारी।
कैसे हो रहौ सो पियहिं पियारी।।
तन मन जोबन सौंपि सरीरा।
ताहि सुहागिन कहै कबीरा।।

इस रहस्यवाद की चरम सीमा उस समय पहुँच जाती है। जब आत्मा पूर्ण रूप से परमात्मा में सम्बद्ध हो जाती है। दोनों में कोई अंतर नहीं रह जाता। यहाँ आत्मा अपनी आकांक्षा पूर्ण कर लेती है और फिर आत्मा और परमात्मा की सत्ता एक हो जाती है। कबीर उस स्थिति का अनुभव करते हुए कहते हैं–

हरि मरि हैं तो हम हूँ मरि हैं।
हरि न मरै हम काहे को मरि हैं।।

आत्मा और परमात्मा में इस प्रकार मिलन हो जाता है कि एक के विनाश से दूसरे का विनाश और एक के अस्तित्व से दूसरे का अस्तित्व सार्थक होता है। फारसी में इसी विचार का एक बड़ा सुन्दर अवतरण है। निकल्सन ने उसका अंग्रेजी में अनुवाद कर दिया है, उसका तात्पर्य यही है –

जब वह (मेरा जीवन तत्त्व) 'दूसरा' नहीं कहलाता तो मेरे गुण उसके (प्रियतमा के) गुण हैं और जब हम दोनों एक हैं, तो उसका बाह्य रूप मेरा है। यदि वह बुलाई जाय तो मैं उत्तर देता हूँ और यदि मैं बुलाया जाता हूँ तो वह मेरे बुलाने वाले को उत्तर देती है और कह उठती है 'लब्बयक' (जो आज्ञा)।। वह बोलती है मानों मैं ही वार्तालाप कर रहा हूँ, उसी प्रकार यदि मैं कोई कथा कहता हूँ तो मानो वही उसे कहती है। हम लोगों के बीच में मध्यम पुरुष सर्वनाम ही उठ गया है और उसके न रहने से मैं विभिन्न करने वाले समाज से ऊपर उठ गया हूँ।

इस चरम सीमा को पाना ही कबीर के उपदेश का तत्व था। उनकी उल्टवाँसियों में इसी आत्मा और परमात्मा का रहस्य भरा हुआ है।

इस प्रकार रहस्यवाद की पूरी अभिव्यक्ति हम कबीर की कविता में पाते हैं।

कबीर दास के दार्शनिक मूल्यों का भी पता लगाते समय हमें कुछ कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। एक तो हमें उनकी ऐसी बातें किन्हीं विशेष स्थलों पर एकत्र की गई नहीं दीख पड़ती। हमें उनकी रचनाओं में बहुत कम ऐसे पद्य मिलते हैं जो केवल एक ही प्रकार के सिद्धान्तों की और मात्र उन्हीं की चर्चा करते हों। कभी–कभी ऐसे प्रसंग नितान्त अधूरे भी समझ पड़ते हैं। इसके सिवाय जहाँ कहीं एक ही विचारधारा को व्यक्त करने वाले एक से अधिक पद्य संग्रहीत हैं, वहाँ भी उनमें प्रायः सामंजस्य नहीं बैठता। फिर कबीर साहब की सर्वमान्य प्रामाणिक रचनाओं का अभी तक हमें कोई संस्करण भी उपलब्ध नहीं है। जिन 'आदिग्रन्थ' में संग्रहीत रचनाओं, 'कबीर ग्रन्थावली' अथवा 'कबीर–बीजक' को विश्वसनीय माना जाता है, उनमें भी सर्वत्र एकरूपता नहीं है। उनमें न केवल भाषा तथा शैलियों की भिन्नता है, अपितु एक की कतिपय बातें दूसरे की बातों का स्पष्ट समर्थन तक नहीं करती प्रतीत होती। कभी–कभी तो ऐसा लगता है कि उन संग्रहों में कुछ प्रक्षिप्त अंश भी सम्मिलित हो गये हैं। ऐसी दशा में कबीर साहब के दार्शनिक विचारों के विषय में कोई अंतिम निर्णय देना अथवा

उनकी अपनी साधना के स्वरूप तथा क्रियादि–सम्बन्ध में कोई निश्चित धारणा बना लेना युक्तिसंगत नहीं कहा जा सकता, क्योंकि ऐसे यत्नों में भूलों का रह जाना स्वाभाविक है।

कबीर साहब की उपलब्ध रचनाओं का अध्ययन करने पर पता चलता है कि वह किसी भी सिद्धान्त को निर्भ्रांत रूप से सर्वमान्य मानकर नहीं चलना चाहते, न इस विषय में उन्हें उसके आधारस्वरूप किसी धर्मग्रन्थ की प्रामाणिकता ही स्वीकार है। जितने भी सिद्धान्त प्रचलित हैं वे किसी न किसी के अनुभव तथा प्रयोगों पर ही आश्रित रहे होंगे। वेद, कुरान जैसे धर्मग्रन्थों द्वारा जिन मतों का उपदेश दिया गया है उनकी भी सार्थकता कभी किन्हीं महापुरुषों के अनुभवों में ही घटी होगी। किन्तु संभव है कि सभी व्यक्तियों के अनुभव एक समान न हो सके अथवा उनमें परिस्थिति तथा वातावरण के अनुसार कुछ न कुछ विशेषताएँ भी आ जाएँ, इसलिए ऐसे सभी किसी की परख निजी अनुभवों में भी कर लेना समीचीन होगा। इसके सिवाया किसी ऐसे सिद्धांत पर स्वयं विचारा करते समय किसी जिज्ञासु की अनुभूति अपने आप गहरी भी हो जा सकती है। जो परिणाम वह इस पद्धति के अनुसार निकाल पाता है। वह स्वभावतः उसके जीव का अंग भी बन जाता है। इसके विपरीत जो सिद्धान्त, किसी दूसरे के अनुभवों पर आश्रित मानकर स्वीकार कर लियें जाते हैं वे अपने जीवन के स्तर तक उत्तर नहीं पाते, न उनका हमसे कभी वास्तविक उपयोग ही हो पाता है। उनका आधार केवल अन्धविश्वास रहा करता है। इसी कारण उनकी स्वीकृति प्रायः अन्धानुसरण में ही परिणत हो जाती है। अतएव कबीर साहब ने ज्ञानी का लक्षण स्पष्ट कह दिया है।[1]

दार्शनिक मूल्य

कबीर साहब ने अपनी एक पंक्ति में कहा है कि ''मेरे स्वयं विचार करते–करते अपने मन–ही–मन सत्य का प्रकाश हो उठा और मुझे उसकी उपलब्धि भी हो गई।[2] उन्होंने इसी बात को अन्यत्र इस प्रकार भी बतलाया है,'' मेरे धीरे–धीरे चिन्तन करते–करते ही उस निर्मल जल की प्राप्ति गई। जिसका वर्णन मैं अपने शब्दों में करने जा रहा हूँ।''[3] इस जल का नाम उन्होंने रामजलु भी दिया है। इसी के द्वारा उन्होंने अपनी जिज्ञासा रूपी पिपासा की तृप्ति भी बतलाई है।[4] फिर भी वह उस जल के किसी ऐसे स्वरूप का वर्णन नहीं कर पाते जो सर्वसाधारण के लिए बोधगम्य हो सके। वह स्वयं उसे अकथनीय समझ कर कहते हैं,''वह जैसा कहा जाता है वैसा ही उसका पूर्ण रूप में भी होना सम्भव नहीं, वह जैसा है वैसा ही है।''[5] उनका यह भी कहना है कि ''मेरे सद्गुरु ने मुझे उस तत्व की ओर विचारपूर्वक संकेत कर दिया था, किन्तु मैं उसे अपने अनुभव के अनुसार की ग्रहण कर पाया।''[6] ''मैं अपने अनुमान के आधार पर ही स्मरण करते–करते 'राम' को कुछ हद तक जान पाया।''[7] उनका कहना है '' अपनी स्वप्न जैसी स्थिति में ही मैंने उस निधि का जो 'यत्किंचित्' पाया उसकी शोभा किसी प्रकार गोपनीय न थी, वह अपार थी। अपने हृदय में वो समा नहीं रही थी और उसके आगे मेरी सारी कुप्रवृत्तियाँ अपने आप नष्ट हो गईं।''[8]

इस प्रकार कबीर साहब का यह 'रामजलु' नामक परमतत्व अकथनीय बनकर गुणातीत का रूप भी ग्रहण कर लेता है। यह उसे अत्यन्त अलख, निरंजन, निरभै, निराकार, शून्य तथा स्थूल से भिन्न अथवा दृश्य और अदृश्य से विलक्षणी भी ठहराना चाहते हैं।[9] वह कहते हैं कि ''उस 'अवगति' की गति का क्या परिचय दूँ जिसके नाम–ग्रामादि का भी कोई ठिकाना नहीं। उस 'गुनबिहून' को देखा ही कैसें जा सकता है अथवा उसका नाम ही क्या दिया जा सकता?''[10] वह इसलिए उसे तत, परमतत, अनूप तत, निज तत, आप, सबद, परमपद, निजपद, अभैपद, सहज, सुनि, सति, ग्यान, अनन्त, उनमन, गगन, सीव, ब्रह्म आदि कई नाम देना चाहते हैं। किन्तु वास्तव में उन्हें इनमें से किसी भी नाम अथवा उसके किसी पर्याय से भी तृप्ति होती नहीं जान पड़ती। इस प्रकार के नामों की लम्बी सूची से ही स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने इस अपूर्व वस्तु के रहस्य को व्यक्त करने के लिए कितने प्रकार की चेष्टाएँ की हैं। किन्तु फिर भी उन्हें कदाचित् अपनी असफलता का ही बोध हुआ। इस कारण वह अन्यत्र उसे कोई सगुण तथा साकार रूप देकर उसके विषय में सृष्टिकर्ता होने की भी कल्पना करने लग जाते हैं और कहते हैं– ''उसने स्वयं कर्ता बनकर कुम्भार की भाँति विविध प्रकार की सृष्टि रच डाली है। उनके भीतर से प्रतिबिम्बित होता हुआ उनके पालन में लग गया है।''[11]

''वही गढ़ने वाला है, सुधारने वाला तथा नष्ट करने वाला भी है।''[12] उसी को विराट रूप में देखते हुए वह बतलाते हैं, '' करोड़ों सूर्य वहाँ प्रकाश करते हैं, करोड़ों महादेव अपने कैलाश के साथ वहाँ विद्यमान हैं, करोड़ों दुर्गाएँ उनकी सेवा करती हैं, करोड़ों ब्रह्मा वेदों का उच्चारण करते हैं। नवग्रह के करोड़ों समूह उसके दरबार में खड़े हैं किन्तु फिर भी उस ब्रह्म का अन्त नहीं मिलता।''[13] कबीर साहब ने कहीं–कहीं उसे विष्णु,[14] नरसिंह[15] अथवा कृष्णावतार[16] के रूप में भी प्रकट किया हैं किन्तु उनका यह भी कहना है कि ''यदि सातों समुद्र में स्याही घोल दे, जंगलों की लेखनी बना लें और सारी पृथ्वी के कागज पर लिखे, फिर भी उसकी गुणावली नहीं लिखी जा सकती।''[17]

परन्तु कबीर साहब के उपर्युक्त वर्णनों के कारण यह समझ लेना भूल होगी कि वह उस तत्व को निर्गुण अथवा सगुण कहते हैं। वास्तव में इस प्रकार के वर्णन उनके उन यत्नों का परिणाम मात्र ही कहे जा सकते हैं जो वह अपनी उस तत्व–विषयक निजी अनूभूति का स्पष्टीकरण करते समय विवश होकर करने लग जाते हैं। वह यर्थाथतः न तो निगुर्णवादी है न सगुणवादी ही। उनके अनुसार वह परमतत्व निगुर्ण तथा सगुण इन दोनों से परे की वस्तु है और वह अनुभव में आने पर भी अनिर्वचनीय है। ''उसे किसी भी उक्त वर्ग का मानकर अपना मत निर्धारित करना वास्तविक मार्ग को त्यागकर भटकना और धोखा खाना ही कहा जाएगा। उसे लोग अजर–अमर कह देते हैं, किन्तु वास्तव में वह 'अलख' है जिसके विषय में कुछ भी कहा नहीं कहा जा सकता। वह तो बिना रूप या वर्ण का होकर ही सर्वत्र विद्यमान है। जब उसका आदि तथा अन्त कुछ भी नहीं, तो उसे पिण्ड या ब्रह्माण्ड को छोड़कर सबके परे के सम्बन्ध में वर्णन किया जाय तो उस दशा में हम 'हरि' के स्वरूप का कुछ परिचय दे सकते हैं।''[18] यह स्वभावतः उक्त प्रकार के किसी भी वर्ग में नहीं रखा जा सकता। वह सत्य इसी कारण, सबसे निरपेक्ष है और उसे कोई भी नाम देना सम्भव नहीं है।

कबीर साहब ने उस तत्व के लिए कतिपय नामों के प्रयोग केवल सुविधा की दृष्टि से कर दिये हैं। ऐसे नाम कुछ नये नहीं है। ये प्रायः वही हैं जिनका प्रयोग उनके समय में हिन्दू, मुस्लिम, बौद्ध, जैन, वेदान्ती या नाथ–पन्थी करते आ रहे थे, जो भली–भाँति प्रचलित थे। कबीर साहब ने उनका प्रयोग करते समय उनके व्युत्पत्तिमूलक अर्थ की ओर कदाचित् कभी ध्यान नहीं दिया। उन्होंने उस तत्व को इन्द्रियातीत बतलाते हुए भी कहा कि '' मैंन इस जगत् में उसे अपने दो–दो नेत्रों से देखने की चेष्टा की और यहाँ मैंने 'हरि' के अतिरिक्त अन्य किसी भी वस्तु को नहीं पाया। मेरे ये नेत्र उसी के अनुराग में लाल हो गए और मुझसें अब उसके सिवाय और कुछ भी नहीं कहा जा सकता। जिस प्रकार कोई बाजीगर ढ़ोल पीटकर तमाशे आरम्भ कर देता है, सभी लोग उसे देखने, जुट जाते हैं और फिर वह अपने सारे स्वाँग को सकेल भी लेता है, उसी प्रकार इस जगत् की सृष्टि या प्रलय का रहस्य भी जान लेना चाहिए। उस हरि ने ब्रह्माण्ड के रूप में अपनी लीला का विस्तार कर रखा है, जिसे सकेलकर वह फिर अपने रंग में रमण करने लग जाता हैं।''[19] ''यह सारा संसार केवल कहने–सुनने मात्र का ही है। उसने इसी में अपने को छिपा रखा है जिस कारण उसे कोई पहचान नहीं पाता।''[20] दृष्टिकर्ता में ही सृष्टि और सृष्टि में सृष्टिकर्त्ता ओत–प्रोत है।''[21]

संदर्भ :

1. कथता बकता सुरता सोई। आप विचारै सो ग्यानी होई।।
– कबीर ग्रन्थावली, का0ना0प्र0 सभा, पद 42, पृ0 102
2. करत विचार मन ही मन उपजी, ना कहीं गया न आया। – वही पद 23, पृ0 96
3. चेतत–चेतत निकसिओ नीरु! सो जलु निरमलु कथत कबीरु।।
– 'आदिग्रन्थ', राग गउड़ी, पद 24
4. वही पद।
5. जस कथिये तस होत नहीं, जस है जैसा सोइ।
– कबीर ग्रन्थावली, रमैनी 3, पृ0 230
6. सत गुर तत कह्यौ विचार, मूल गह्यौ अनभै विस्तार।
– वही, पद 386, पृ0 216

7. सुमिरत हूँ अपनै उनमाना, क्यंचित जोग राम मैं जाना।
– वही रमैनी 4, पृ0 235
8. क्यंचिति ह्वै सुपिनै निधि पाई। नहीं सोभा कौं धरौं लुकाई।।
– कबीर ग्रन्थावली, पृ0 234
9. अलखनिरंजल लखै न कोई। निरभै निराकार है मोई।
सुनि असथूल रूप नहीं रेखा। द्रिष्ट अद्रिष्ट छिप्यौ नहीं पेखा।।
– वही रमैनी 3, पृ0 230
10. वही रमैनी 5, पृ0 238
11. कबीर ग्रन्थावली, रमैनी 5, पृ0 240
12. वही, पद 273, पृ0 181
13. आदि ग्रन्थ, राग भैरउ, पद 20
14. कबीर ग्रन्थावली, पद 390, पृ0 218
15. वही, पद 279, पृ0 214
16. वही, साखी 1, पृ0 57
17. कबीर ग्रन्थावली, साखी 5, पृ0 62
18. कबीर ग्रन्थावली, का0ना0प्र0 सभा, पृ0 149
19. दुइ दुइ लोचन पेखा। तउ हरि बिनु अउर न देखा।।
नैन रहै रँगु लाई। अब बेगल कहनु न जाई।।
....
बाजीगर डंग बजाई। सब खलक तमासे आई।।
बाजीगर स्वाँग अकेला। अपने रँग रवै अकेला।।
–आ0 ग्र0 रागु सोरठि, 4
20. कहन सुनन कौं जिहि जग कीन्हा। जग भुलाँन सो किनहूँ न चीन्हाँ।
सत रज तन थैं कीन्हीं माया। आपण माँझैं आप छिपाया।।
– क0ग्र0, रमैणी 2, पृ0 225
21. खालिकु खलक महि खालिकु, पूरि रह्यो सब ठाई।।
– आ0ग्र0, राग विभास, प्रभाती, पद 3

***

महिला सशक्तिकरण : चुनौतियां (भारत के विशेष सन्दर्भ में)

*डॉ. स्मिता पाण्डेय**

महिलाओं को सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्र में शक्तिशाली बनाना ही सशक्तिकरण है, जिससे वह सभी प्रकार की परिस्थितियों में निर्णय लेने में आत्मनिर्भर हो। इतिहास के विभिन्न कालखण्डों में महिलाओं की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में उसकी भूमिकाएं भिन्न–भिन्न रही हैं और उस पर बंदिशों का रूप भी भिन्न–भिन्न रहा है। किसी भी देश में नारी की स्थिति, सम्मान और भूमिका के विषय में सर्वपल्ली राधाकृष्ण लिखते हैं कि –

"किसी भी देश की महिला की वास्तविक स्थिति का अनुमान उस देश की सांस्कृतिक और आध्यात्मिक सारिणी को देखकर लगाया जा सकता है।"[1]

महिलाओं की स्वप्रेरणा एवं शासकीय प्रयत्नों से समय–समय पर महिलाओं की भूमिका में बदलाव आया है। यहां मुख्य बिन्दु यह है कि आधुनिक काल की वे कौन सी चुनौतियां हैं जो महिलाओं को सशक्त बनने से रोक रही हैं या उन्हें बाधित कर रही हैं।

किसी भी देश की संस्कृति न केवल उस देश की आत्मा होती हैं बल्कि उसके सशक्तिकरण की नींव भी होती हैं। यह आधार या नींव स्त्री–पुरुष के जीवनशैली, आचार–विचार, मूल्य एवं कार्यशैली को भी प्रभावित करती है। संस्कृति के महत्वपूर्ण अंग धर्म, परम्परायें, रूढ़ियाँ, आस्था, विश्वास एवं मान्यताएं व्यक्ति के जीवन का मुख्य भाग हैं। इन अंगो से इतर किसी भी समाज की कल्पना संभव नहीं है। इसी सामाजिक व्यवस्था के अनुरूप स्त्री–पुरुष में अनेक असमानताएँ भी हैं, दोनों के पालन–पोषण एवं कर्तव्य क्षेत्र में भी ये भिन्नताएँ देखने को मिलती हैं। लैंगिग असमानता एवं विभेद के मानकों के कारण स्त्री को इन अंगो (धर्म, परम्परायें, रूढ़ियाँ आदि) से समय–समय पर चुनौतियां मिलती रहीं हैं और मिलती रहेंगी। अनेक तरह की सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक परिवर्तनों के बावजूद भी आज की नारी को अनेक चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है। प्रस्तुत लेख में हम उन्हीं चुनौतियों में से कुछ चुनौतियों पर विचार करेंगे।

भारत की सांस्कृतिक विशालता एवं व्यापकता भारत के विभिन्न राज्यों में देखने को मिलती है। विविधता होते हुए भी उनमें भारतीय मिट्टी की सोंधी सुगन्ध विद्यमान है। भारत में परिवार के मुख्यतः दो रूप देखने को मिलते हैं :–

(1) पितृसत्तात्मक परिवार
(2) मातृ सत्तात्मक परिवार

मातृ सत्तात्मक परिवार अब भी कुछ कबिलाई संस्कृतिक में जीवित है, परन्तु पितृ सत्तात्मक परिवार पूरे देश में देखे जाते हैं, जहां परिवार पर पुरुष का ही आधिपत्य होता है।

जहां तक संयुक्त परिवार का प्रश्न है वहां अनेक लोग एक ही छत के नीचे साथ रहते हैं, साथ–साथ खाते हैं तथा सम्पत्ति भी संयुक्त होती है। घर के मुखिया के आदेशों का पालन सभी करते हैं। ऐसे परिवार में स्त्री प्रातः काल से देर रात्रि तक गृह के कार्यों को सम्पन्न करने में लिप्त रहती है, उसका अस्तित्व एक मशीन से ज्यादा नहीं होता है, जिसके कर्तव्य तो हैं, परन्तु अधिकार नहीं। इस परिवार से सबसे बड़ी चुनौती नारी को मिली, कि वह अपना विकास कैसे करें, घुटन भरी यातनाओं के जीवन से मुक्त कैसे हो, ऐसे संयुक्त परिवार में नारी के साथ तरह–तरह के दुर्व्यवहार एवं अत्याचार होते हैं और यदि उस परिवार में विधवा हो तो उसका जीवन और भी नारकीय हो जाता है। कुछ परिवारों में तो आज भी सुबह विधवा का मुँह देखना अपशगुन माना जाता है। सामन्ती संस्कृति में महिलायें ज्यादातर सामन्तों की रखैल हुआ करती थीं, ऐसी स्थिति में उनसे जन्में औलाद भी नाजायज थे। यदि वह औलाद लड़की हो तो उसका विवाह होना भी मुश्किल था। लड़की का ऐसे परिवार में

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, पं.दी.द.उ.रा.म.पी.जी. कॉ. राजाजीपुरम लखनऊ

जन्म ही तमाम विवशताओं और चुनौतियों को जन्म देता है। महिला हर युग में ठगी जाती है। तलाकशुदा परिवार की स्थिति तो और भी दयनीय है। आज भी भारतीय जनमानस तलाकशुदा महिला को अच्छी नजरों से नहीं देखा है। उसे स्वयं से, समाज तथा अपने बच्चों से लड़ना होता है। एक सशक्त औरत इन सभी मोर्चों पर लड़ती है, संघर्ष करती है और जूझती है, वह भी अकेले। वह स्वयं को संवारती है तथा अपने व्यक्तित्व को एक नई दिशा देती है। फिर भी उसे वह आदर और सम्मान नहीं प्राप्त होता है, कुछ अपवादों को छोड़कर।

एलविन टॉफर ने बड़े परिवार के लिये एक्सटेन्डेड फैमिली शब्द का प्रयोग किया है जो खेतिहर समाज के लिए उपयुक्त है। इस परिवार का दबाव और चुनौतियाँ ऐसी थीं जिसने कालान्तर से एकाकी परिवार को जन्म दिया है।[2]

निश्चित ही, एकाकी परिवार में महिलाओं को विभिन्न चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। टॉफर की दूसरी महत्वपूर्ण पुस्तक Third wave में उन्होंने एकाकी परिवार की पुरजोर वकालत की है। औद्योगिक क्रान्ति के फलस्वरूप एकाकी परिवार अस्तित्व में आयें।[3]

भारतीय समाज के एकाकी परिवार और पाश्चात्य देशों के एकाकी परिवारों की संस्कृति में जमीन आसमान का अंतर है। भले ही कुछ वैयक्तिक मजबूरियों और आवश्यकताओं ने एकाकी परिवार को पति–पत्नी और बच्चों तक सीमित किया है, परन्तु इस परिवार से भी जिम्मेदारियों के रूप में महिलाओं को चुनौतियां मिलती रहती हैं। घरेलू महिला और कामकाजी महिलाओं के चुनौतियों में काफी अंतर है। साथ ही निम्न और उच्च वर्ग की महिलाओं की स्तर की भिन्नता के साथ ही चुनौतियों में भी भिन्नताएं आ जाती हैं। निर्धन घरेलू महिला घर का काम ही नहीं करती बल्कि परिवार के पोषण हेतु छोटे–मोटे धनार्जन से सम्बन्धित कार्य में भागीदारीं निभाती है। वहीं दूसरी ओर कामकाजी महिला घर की जिम्मेदारियों को पूरा करने के साथ ही कार्यस्थल पर भी सामंजस्य बैठाती हैं। बेरोजगारी ने महिलाओं के सामने दाम्पत्य जीवन को साथ जीने के लिये भी एक चुनौती उत्पन्न की है। जहाँ पति एक स्थान और पत्नी दूसरे स्थान पर कार्यरत होती हैं। हद तो तब हो जाता है जब उनके बच्चे शिक्षा ग्रहण हेतु किसी तीसरे स्थान पर रहते हैं। इन सब स्थितियों को देखते हुये एलविन टॉफर कहते हैं कि क्या वर्षों तक हमारी संतान अलग रहेंगी।[4] खैर, ये चुनौतियाँ महिला और पुरुष दोनों के लिये हैं। निःसंदेह एकाकी परिवार प्रतिदिन महिलाओं के लिये नई चुनौतियाँ पैदा कर रहा है, जिससे आज की नारी हर दिन मजबूती से जूझते हुये दिखाई दे रही है।

आधुनिक समय में धर्म ने भी महिलाओं के समक्ष चुनौतियां उपस्थित की है। धर्म के नाम पर वह पारिवारिक जिम्मेदारियों का निर्वहन करती है। अपवाद स्वरूप कुछ नारियों को छोड़ दिया जाय। धर्म ने नारी को कर्तव्य ही दिये हैं, अधिकार नहीं। जैसा कि मनुस्मृति में अनेक स्थानों पर वर्णित है कि पति और परिवार की सेवा ही स्त्री का धर्म है और इसी से उसे स्वर्ग की प्राप्ति होती है।[5] जब तक धर्म से जुड़ी मान्यताएं रूढ़ियां परम्परायें समाप्त नहीं होंगी तब तक नारी पूर्ण रूप से सशक्त नहीं हो सकती है।

जाति, महिलाओं के सशक्तिकरण की अगली चुनौती के रूप में सामने प्रस्तुत होती है। भारत में जातियों के संस्तरण ने आदिकाल से महिलाओं को अनेक चुनौतियां दी हैं। जाति के आधार पर नर–नारी को अलग किया जाता रहा है। भारतीय परिवेश में निम्न जाति की महिला की स्थिति उच्च जाति की महिला से भिन्न है। भारत में जाति व्यवस्था बहुत जटिल है। जातियों के प्रति पढ़े–लिखे का व्यवहार आज भी पूर्वाग्रहों पर आधारित है। आज भी निम्न जातियों को तिरस्कार की दृष्टि से देखा जाता है।[6] आज भी उच्च जाति एवं वर्गों में ऑनरकिलिंग जैसी घटनायें इस सत्य को प्रमाणित कर रही है। महिला की अस्मिता, उसकी स्वतन्त्र इच्छा उसकी स्वच्छन्दता आज कोई मायने नहीं रखते हैं।

जहाँ तक भारत की संवैधानिक व्यवस्था की बात है, संविधान निर्माताओं को पूर्व सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक स्थिति का भलीभांति ज्ञान था। इसे दृष्टिगत रखते हुये संविधान में ही महिलाओं को सशक्त बनाने हेतु अनेक प्रावधान किये ये। संविधान में वर्णित मूल अधिकार मूल कर्तव्य एवं 73वाँ, 74वाँ संवैधानिक संशोधन इसे यथार्थ रूप देने में हमेशा से ही सक्षम रहा है।

महिला की चुनौतियों के बारे में सुधा अरोड़ा ने अपने लेख के माध्यम से अनेक ज्वलन्त बिन्दुओं को रेखांकित किया है।[8]

महिलाओं के स्थितियों के सम्बन्ध में नासिरा शर्मा लिखती हैं कि "मुझे इस सत्य को स्वीकार करना पड़ रहा है कि 80 प्रतिशत महिलाओं में 20 प्रतिशत महिलायें ऐसी हैं जो पुरुषों का जमकर शोषण करती हैं।"[9]

अलका आर्य अपने लेख सौ साल की आधी अधूरी तस्वीर में लिखती हैं कि–

"अन्तर्राष्ट्रीय महिला दिवस के सौ साल पूरे हो चुके हैं और इन सौ सालों में स्त्री की दुनिया कितनी बदली है इसका जवाब सपाट नहीं हो सकता है..... यह सच है कि स्त्रियां जिस बराबरी की हकदार हैं उससे वे 21वीं सदी में भी वंचित हैं, हां अन्तर्राष्ट्रीय मंचो पर गाहे–बगाहे इसकी चर्चा होती रहती है। दरअसल पुरुषवादी मानसिकता सौ साल बाद भी मौजूद है और इसके खिलाफ संघर्ष जारी है।"[10]

अन्ततः स्थिति इतनी दयनीय भी नहीं है। यदि तुलनात्मक दृष्टि से देखा जाय तो महिलाओं ने विगत कुछ वर्षों में, चाहे वह परिवेश ग्रामीण हो या शहरी अत्यधिक सशक्त हुई हैं। उदाहरण के लिये देश की कुल पंचायतों में लगभग 163000 महिलायें विभिन्न पदों पर कार्यरत हैं। भारत में आधे से ज्यादा 54 प्रतिशत महिलायें C.E.O. बैंकिंग और वित्तीय सेवा क्षेत्र में हैं।[11] नगरों में महिलाओं में अपने अधिकारों एवं स्थिति को लेकर जागरूकता पहले से ज्यादा बढ़ी है। स्वावलम्बी बनने की प्रवृत्ति में भी वृद्धि हुई है। उच्च शिक्षा और तकनीकि शिक्षा में महिलाओं का प्रवेश बढ़ा है। ये सभी उदाहरण महिलाओं के सशक्तिकरण के ही रूप हैं और यदि महिलाओं के इन बढ़ते कदमों में पुरुष भी साथ मिलकर चले तो परिवार, देश और समाज निःसंदेह प्रगति के पथ पर अग्रसर होगा और तभी महिला सशक्तिकरण का सपना वास्तव में आकार ले पायेगा।

सन्दर्भ :

1. सर्वपल्ली राधाकृष्णन : ग्रेट वीमेन ऑफ इंडिया, सं. माधवनन्दन अद्वैत आश्रम, दिल्ली 2008 पृ. XIX.
2. एलविन टॉफर : फ्यूचर शॉक, वाडलेहेड, ग्रेट ब्रिटेन 1978 पृ. 219.
3. एलविन टॉफर : थर्ड वेव, मैकमिलन इण्डिया प्रेस मद्रास 1980 पृ. 226.
4. एलविन टॉफर : वही पृ. 232.
5. मनुस्मृति : 9–15.
6. जगजीवन राम : भारत में जातिवाद और हरिजन समस्या, राजपाल एण्ड सन्स, दिल्ली 1981 पृ. 15.
7. भारत का संविधान : 01 फरवरी 1990 पृष्ठ–प्रथम, भाग–3 पृ. 5.
8. सुधा अरोड़ा : आम औरत जिन्दा सवाल, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 209 पृ. 91.
9. नासिरा शर्मा : औरत के लिये औरत, सामयिक प्रकाशन, नई दिल्ली 2010 पृष्ठ–7
10. अलका आर्य : राष्ट्रीय सहारा, 08 मार्च 2011
11. रूपायन : अमर उजाला से 04 मार्च 2011

***

भारतीय जीवन पर कोरोना काल का प्रभाव

डॉ. दयाशंकर सिंह यादव *

वर्तमान में चल रहा कोरोना वायरस महामारी से पूरे विश्व की अर्थव्यवस्था एवं मानव जीवन गम्भीर रूप से प्रभावित है। कोरोना वायरस की पहचान मध्य चीन के हुब्रेई प्रान्त की राजधानी वुहान से हुई थी। कोविड–19 महामारी से जो भी परिवर्तन होंगे, लेकिन जब ये काल शांत होगा तब हम यह देखेंगे कि यह परिवर्तन एक शाश्वत नियम है, वही यह तथ्य भी उतना ही ठोस है, कि बुनियादी पहलू कभी नहीं बदलते। वहीं कोविड–19 की वजह से भविष्य की दुनिया अब पहले जैसी नहीं होगी यह भी डर लोगों में बना हुआ है। मानव ने अपने अस्तित्व के साथ ही अनेकों आपदाओं का सामना किया और उसके क्रमिक विकास की प्रक्रिया कभी बाधित नहीं हुई। यहाँ डार्विन की बात उल्लेखनीय है जिन्होंने कहा था **''सबसे तंदुरुस्त या सबसे बुद्धिमान नहीं, बल्कि सबसे लचीला व्यक्ति ही अपना अस्तित्व बचाए रखेगा।''** इन दो बातों में ही शायद हमारे भविष्य की राह निहित है। कोविड की वजह से मानव जीवन की स्थिति और आर्थिक गतिविधियों में व्यापक स्तर पर प्रभाव पड़ा है, आज चाहे शहर से गाँव की ओर श्रमिक वर्ग का पलायन हो या फिर गाँवों में कृषि क्षेत्र में बढ़ता दबाव, अन्तर्राष्ट्रीय श्रम संगठन (आई.एल.ओ.) की एक रिपोर्ट के अनुसार वर्तमान परिस्थितियों में भारत में अनौपचारिक क्षेत्र में लगभग 40 करोड़ कामगार गरीबी में और गरीबी में चले जायेंगे। भारतीय अर्थव्यवस्था का आधार कृषि क्षेत्र में लगभग वर्तमान में 60 फीसदी लोगों की आजीविका आश्रित है वहीं देश की सकल घरेलू उत्पाद (जी.डी.पी.) में 17 फीसदी योगदान देती है। वहीं दूसरी तरफ अर्थव्यवस्था को मजबूती प्रदान करने के लिए आत्मनिर्भर भरत जैसे– 1. इरादा (इंटेंट), 2. समावेश (इन्क्लूजन) 3. निवेश (इन्वेस्टमेंट) 4. आधारभूत ढांचा (इन्फ्रास्ट्रक्चर) 5. नवप्रवर्तन (इनोवेशन) से मंद पड़ी अर्थव्यवस्था को गति मिलेगी। दूसरी तरफ लॉकडाउन से पर्यावरण में कुछ सुधार के संकेत मिले हैं, लेकिन पृथ्वी विज्ञान मंत्रालय की रिपोर्ट के अनुसार ''जलवायु परिवर्तन का देश पर प्रभाव'' में बताया गया कि शादी के अंत तक भारत में औसतन तापमान में 4.4 डिग्री सेन्टीग्रेट की बढ़ोत्तरी होने के साथ ही लू की तीव्रता में 3–4 गुना बढ़ जाने का पूर्वानुमान है। जिसका प्रभाव प्रत्यक्ष/अप्रत्यक्ष रूप से कृषि, शिक्षा, रोजगार, आर्थिक गतिविधियों पर पड़ेगा जिसका अंदाजा हम वर्तमान में उष्णकटिबंधीय चक्रवातों की बढ़ती आवृत्ति से लगाया जा सकता है कि मानव जीवन की गतिविधियाँ कितनी गम्भीर रूप से प्रभावित हुई हैं।

कोविड–19 की वजह से आज पूरे विश्व की मानव स्थिति बदल रही है, यदि हम विश्व इतिहास पर नजर डालें तो हम देखते हैं कि परिवर्तन प्रकृति का नियम है, जो मुख्य रूप से दो रूपों में होता है प्रथम सतत परिवर्तन दूसरा आकस्मिक परिवर्तन।

वर्तमान में जो परिवर्तन हो रहा है वह आकस्मिक परिवर्तन है, इन परिवर्तनों से क्षणिक समय में ही चीजें बदल जाती है कोविड से जो पूरे वैश्वीकरण का परिदृश्य बदला है इसकी परिकल्पना शायद ही किसी ने पहले की हो, लेकिन यह सत्य है कि जब मानव प्रजाति ने प्रकृति एवं उसके संसाधनों का अंधाधुंध तरीके से शोषण किया जिसका परिणाम हमारे सामने है, और आने वाले समय में भी इसका मूल्य हमें चुकाना पड़ेगा। आज भले ही कोरोना वायरस चीन के वुहान से पूरे विश्व में फैला हो, लेकिन यह मानव को संकेत है कि जिस प्रकार से प्रकृति के विरुद्ध जाकर सम्भववाद की धारा का समर्थन किया और प्रकृति पर अपना वर्चस्व स्थापित किया, उसने पूरे परितंत्र को खतरे में डाला है। आज न तो पूरी तरह से प्रकृतिवाद को लागू कर सकते हैं और न ही व्लास महोदय द्वारा स्थापित सम्भववाद को। इन दोनों के बीच की कड़ी ग्रिफिथ टेलर महोदय ने नव निश्चयवाद का रास्ता निकाला जिसमें उन्होंने बताया कि हम न तो पूरी तरह से प्रकृतिवाद को लागू कर सकते हैं और न ही सम्भववाद को और मानव को एक ट्रैफिक पुलिस के समान माना जो दोनों ओर की परिस्थितियों को

* एसोसिएट प्रोफेसर समाजशास्त्र, सकलडीहा पी जी कालेज सकलडीहा चंदौली

देखकर सोच समझकर आगे बढ़ता है। कोविड–19 की वजह से हुए बदलाव को देखते हुए भविष्य के निर्णय सोच समझकर ही करने होंगे, जिस प्रकार से आज शहरों से गाँवों की ओर प्रवास हुआ है। लुइस ममफोर्ड महोदय के (1938) शहरी विकास मॉडल जो 6 स्टेजों में (1. Eopolis, 2. polis, 3. metropolis, 4. megalopolis, 5. tyronopolis, 6. nekropolis) से पंचम अवस्था टैरोनोपोलिस आज समय से पहले प्राप्त होती दिखाई दे रही है, जिसमें उन्होंने बताया कि पंचम अवस्था में शहरों का पतन शुरू हो जाता है और प्रवास शहरों से गाँव की तरफ बढ़ता है। आज कोरोना संकट इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। अतः वर्तमान में जो भी परिवर्तन होंगे वह भविष्य की दिशा निश्चित करेंगे। कोविड काल में लॉकडाउन से पर्यावरण को अधिक लाभ पहुँचा। कल–कल करती नदियाँ ये बयां कर रही हैं कि प्रकृति के विरुद्ध की गयी मानवीय गतिविधियों को स्वीकार नहीं करेगी।

वहीं दूसरी तरफ भारत के संदर्भ में कृषि, शिक्षा, रोजगार, चिकित्सा सुविधा एवं आर्थिक क्षेत्रों में भी परिवर्तन होंगे। कृषि क्षेत्रों में बढ़ता दबाव, इसकी पहले से ही लचर व्यवस्था को और प्रभावित करेगा नयी तकनीकी एवं निवेश से इसके आधारभूत ढांचे को और मजबूत करना होगा। वही मानव संसाधन की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी शिक्षा व्वस्था आज कोविड के चलते परम्परागत कक्षाओं से ऑनलाइन के माध्यम से चल रही है, जिसमें मानव संसाधन विकास मंत्रालय द्वारा स्वयं, स्वयंप्रभा के 32 चैनलों में से स्कूलों के लिए 12 नए चैनलों को शुरू किया गया, पीएम ई–विधा से वन क्लास वन चैनल योजना, कक्षा 1–12 तक प्रत्येक क्लास के लिए एक चैनल होगा, मूक्स, दीक्षा पोर्टल आदि प्लेटफार्म से वर्तमान शिक्षा प्रणाली वर्चुअल कक्षाओं में बदल रही है। लेकिन ग्रामीण क्षेत्रों में बढ़ती इण्टरनेट की समस्या, स्मार्टफोन, लैपटाप जैसी मूलभूत सुविधायें उपलब्ध नहीं हो पा रही हैं। इन सुविधाओं की भी व्यवस्था करने की आवश्यकता है। ऑनलाइन शिक्षा व्यवस्था पर आज साहबर सुरक्षा का भी बड़ा सबल है। 19 जून 2020 को समाचार पत्र में प्रकाशित न्यूज में खुलेआम बिक रहा छात्रों का डाटा में बताया कि सीबीएसई, एनईईटी, जेईई एडवांस आदि के ऑनलाइन आवेदन फार्म के डाटा खुले आम बेचे जा रहे हैं एक आंकड़े के अनुसार मात्र 1000 रूपये में किसी भी जिले का, 10000 रूपये में किसी भी राज्य का और 20000 रूपये में देश भर के छात्रों का डाटा बेचा जा रहा है। जिससे छात्रों की निजता भी खतरे में है। इस दिशा में कोई ठोस कदम उठाने होंगे। वहीं दूसरी तरफ यह भी देखना कि रोजगार के नए अवसरों को बढ़ाया जाए चाहे कौशलयुक्त हो या अकौशलयुक्त हर स्तर पर उनकी योग्यता के आधार पर रोजगार को बढ़ाकर आत्मनिर्भरता की ओर बढ़ सकते हैं। कोविड–19 संकट काल में अर्थव्यवस्था को गति देने और 5 ट्रिलियन डॉलर वाली अर्थव्यवस्था के लक्ष्य को पूरा करने और भारत को दुनिया का प्रोडक्शन हब बनाने में राष्ट्रीय स्तर पर सभी पहलुओं का दीर्घकाल तक ध्यान रखनें होंगे। जैसे–

1. भारत भर में काम करने वाले कुशल और अकुशल कामगारों का एक राष्ट्रीय रजिसटर तैयार किया जाए।
2. आयुष्मान भारत की योजना की तर्ज पर प्रत्येक प्रवासी मजदूर के लिए सरकार और उद्यमियों की ओर से जीवन, स्वास्थ्य, और दुर्घटना बीमा की व्यवस्था की जाए जो किसी भी संकट काल में सहायता दे सके।
3. देश भर के उद्योग, व्यापार और सेवाओं का एक प्लेटफार्म बनाया जाये।
4. ऐसी टेक्नोलॉजी विकास केन्द्र शुरू किया जाए जिनमें उद्योगों और व्यक्तिगत हस्तकलाओं में उपयोग होने वाले परम्परागत औजारों को बेहतर बनाने, कारीगरी की कुशलता और उत्पादकता बढ़ाने तथा हाथ से काम करने वाली प्रणालियों के मशीनीकरण और ऑटोमेशन का प्रशिक्षण देने वाले शोध केन्द्र एवं विकास प्रोजेक्ट चलाए जायें।

ये सभी कदम जहाँ एक तरफ रोजगार और मूलभूत व्यावसायिक ढांचा को मजबूत करेंगे और सामाजिक एवं आर्थिक प्रगति को सुरक्षा प्रदान करेंगे।

आज विश्व जिस कोरोना नामक महामारी का शिकार हो रहा है उसका मूल कारण मानव द्वारा प्रकृति के साथ की छेड़छाड़ ही है। अपने स्वार्थ के लिए मानव ने जल, हवा को जहां प्रदूषित किया

वहीं पृथ्वी का दोहन इतना किया कि उसकी क्षमता भी कमजोर हो गई। मानव की लाभ और लालसा का परिणाम है कि जल, थल, आकाश सब प्रभावित हो चुके हैं। कोरोना महामारी इंसान को स्पष्ट संदेश दे रही है कि अगर अब भी मानव ने प्रकृति के साथ छेड़छाड़ जारी रखी तो उसका व उसकी भावी पीढियों का भविष्य अंधकारमय ही होगा।हवा और पानी के बिना जीवन के बारे कोई कल्पना भी नहीं कर सकता और कटु सत्य यही है कि जल और हवा दोनों प्रदूषित हो चुके हैं।

अब लॉकडाउन के दौरान जो तथ्य सामने आ रहे हैं वह यही संकेत दे रहे हैं कि हवा और पानी शुद्ध रह सकते हैं, अगर मानव चाहे तो। लॉकडाउन से पहले हवा की क्वालिटी इंडक्स 300 से लेकर 400 तक चला जाता था। आज लॉकडाउन के कारण हवा की क्वालिटी इतनी बेहतर हो गई है कि वैज्ञानिकों का कहना है कि कम तीव्रता वाले भूकंप की पहचान होने लगी है। वैज्ञानिकों ने कहा है कि भूकंप का शोर जमीन का एक अपेक्षाकृत लगातार होने वाला कंपन है जो आमतौर पर सिस्मोमीटर द्वारा दर्ज संकेतों का एक अवांछित घटक है। इससे पहले के अध्ययनों में कहा गया था कि सभी तरह की मानव गतिविधियां ऐसे कंपन पैदा करती हैं जो अच्छे भूकंप उपकरणों से की गई पैमाइश को विकृत कर देती हैं। दुनिया के अनेक हिस्सों में जारी बंद की वजह से इन विकृतियों में कमी आई है और 'भारतीय विज्ञान शिक्षा एवं अनुसंधान संस्थान' कोलकाता के एक प्रोफेसर सुप्रिय मित्रा समेत भूकंप वैज्ञानिकों का मानना है कि यह कहना गलत होगा कि धरती की सतह में अब 'कंपन धीरे' हो रहा है । बेल्जियम में आंकड़े दर्शाते हैं कि ब्रसेल्स में कोविड–19 के प्रसार को रोकने के लिए अपनाए गए बंद की वजह से मानव जनित भूकंपीय शोर में करीब 30 प्रतिशत की कमी आई है। वैज्ञानिकों ने कहा कि इस शांति का मतलब यह है कि सतह पर भूकंप को मापने के पैमाने के आंकड़े उतने ही स्पष्ट हैं जितना कि उसी उपकरण को पहले धरती की सतह में गहराई पर रखने से मिलते थे। उन्होंने कहा कि मानवजनित गतिविधियों के कारण सांस्कृतिक व परिवेशीय शोर एक हट्र्ज या उससे ऊपर है– और एक हट्र्ज वह मानक आवृत्ति है जिस पर भूकंप की ऊर्जा आती है। मित्रा ने कहा इसलिए अगर शोर ज्यादा है तो आम तौर पर भूकंपों का पता कम चलता है। बंद के फलस्वरूप क्या हुआ, वह बताते हैं कि गाडियों की आवाजाही और मानव गतिविधियां कम हुईं जिसकी वजह से परिवेशीय शोर कम हुआ। उन्होंने कहा भूकंप का पता लगाने की सीमा कम हो गई है। इसलिए छोटे भूकंपों का भी ज्यादा पता चल रहा है। पंजाब में सतलुज और ब्यास का पानी पहले से काफी साफ हो गया है। इस कारण हरिके पत्तन में डाल्फिन मछलियां खेलती देखी जा रही हैं। गंगा में लोग न तो फूल डाल रहे हैं और न ही पूजा का सामान डाल रहे हैं। मोटर कारें लोगों के गैराज में बंद पड़ी हैं जिससे गंगा तट के इन शहरों की आबोहवा तरोताजा हो गई है और प्रदूषण बहुत कम हुआ है जिसका अच्छा असर पर्यावरण पर पड़ा है। देश के सभी उद्योग बंद पड़े हैं। जिन उद्योगों का रसायन युक्त गंदा पानी पहले गंगा में जाता था, अब नहीं जा रहा है। एक अध्ययन के अनुसार पूर्ण बंदी के चलते 12 दिनों में एक अध्ययन के अनुसार गंगा जल उत्तरकाशी से लेकर हरिद्वार तक से 40 से 50 फीसदी तक साफ हुआ है। इतना ही नहीं गंगा जल के और स्वच्छ होने से यहां बड़ी संख्या में प्रवासी पक्षियों ने भी डेरा डाल दिया है। गंगा के तटों पर इन पक्षियों को आसानी से बड़े–बड़े समूह में देखा जा सकता है।

यही स्थिति यमुना सहित देश की अन्य नदियों की है। कोरोना वायरस बेशक लोगों की जानें ले रहा है और सारा विश्व इस महामारी से भयग्रस्त है। इसी कारण लॉकडाउन न हटाने की बात पर भी विचार हो रहा है। इस लॉकडाउन के कारण आर्थिक संकट भी आ गया है। लेकिन तस्वीर का दूसरा पहलू यह है कि जब इंसान धन के लिए व भौतिक सुख–सुविधा के लिए हवा और जल को प्रदूषित कर रहा था और पृथ्वी का आवश्यकता से अधिक दोहन कर रहा था मोटर, गाड़ी और बैंक बैलेंस सब कुछ इंसान के पास है, लेकिन वह इस्तेमाल नहीं कर सकता। विश्व का सबसे विकसित देश अमेरिका जो सैनिक, वैज्ञानिक व आर्थिक दृष्टि से सबसे मजबूत है आज प्रकृति के आगे बेबस है।

हमारे पूर्वजों ने तो शुरू से हमें समझाया था कि प्रकृति से तालमेल कर चलने वाला सुखी है। प्रकृति परमार्थ की प्रतीक है, इंसान परमार्थ को भूलकर स्वार्थसिद्धि को लग गया है। प्रकृति ने एक ही झटके में समझा दिया है कि स्वार्थ की राह आत्मघाती है, परमार्थ ही जीवन का आधार है। कोरोना का

हमारे जीवन पर एक सकारात्मक प्रभाव हो सकता है, अगर मानव समझ ले। मानव ने अगर अब भी जल, हवा, जंगल से खिलवाड़ जारी रखा और पृथ्वी का दोहन अपने स्वार्थ के लिए करता रहा तो फिर आने वाला कल अंधकारमय ही होगा और हमारी भावी पीढियां हमें इसके लिए कभी माफ नहीं करेंगी।

दुनिया की 7.8 बिलियन की आबादी में से एक तिहाई से अधिक आबादी इस समय इस महामारी के कारण एक तरह से अपने घरों में बंद रहने को मजबूर है। कोरोना वायरस की महामारी के कारण वैश्विक स्वास्थ्य संकट गहराता जा रहा है अब यह धारणा तेजी से बन रही है कि आने वाले समय में जब तक कोरोना वायरस खत्म होगा तब तक दुनिया की सूरत हमेशा–हमेशा के लिए बदल जाएगी। आज इस बात को लेकर आम सहमति है कि अगले डेढ़ से दो साल तक पूरी दुनिया किसी न किसी रूप से संभवतः कोविड–19 के तात्कालिक खतरे से ही जूझती रहेगी और उसके बाद भी पुनर्निर्माण और इसके स्थाई प्रभाव निःसंदेह कई वर्षों तक महसूस किए जाते रहेंगे। वर्तमान में, कई लोगों को यह पता नहीं है कि यह संकट किस रूप में सामने आएगा। आज की सर्वोच्च प्राथमिकता जीवन बचाना है (जान है तो जान है)। और जीवन बचाने का यह उद्देश्य भविष्य की सफलता है। लेकिन भविष्य में सफल होने के लिए, दुनिया भर के देशों को इसके लिए योजना बनानी चाहिए

निष्कर्ष : कोविड–19 संकट के बाद देशों द्वारा अपनाई गई स्वास्थ्य, मानवीय और सामाजिक– आर्थिक स्थिति की गतिविधियाँ भविष्य में शक्ति और गति निर्धारित करेंगी।मानव जीवन की सामाजिक–आर्थिक स्थिति पर कोविड–19 के प्रभाव का आकलन पर्यावरण में सुधार के संकेत मिले हैं, एवं कृषि क्षेत्र में नयी प्रौद्योगिकीय से रोजगार एवं उत्पादन को बढ़ाने की आवश्यकता है और तकनीकी ज्ञान शिक्षा प्रणाली में ऑनलाइन को और अधिक प्रशिक्षण देने एवं मजबूत और ठोस ढांचा तैयार करने की जरूरत है। स्वास्थ्य क्षेत्र में अधिक ध्यान देने और आर्थिक आत्मनिर्भरता को बढ़ाकर संतुलित एवं सतत् विकास को बढ़ावा देना है।

सन्दर्भ :

1. सोमपाल शास्त्री (2020) : कृषि है जीवन का आधार, (दैनिक जागरण)।
2. तरुण गुप्ता (2020) : कोरोना के बाद की दुनिया (दैनिक जागरण)।
3. संजय गुप्ता (2020) : अवसर को भुमाने का सही तरीका (दैनिक जागरण)।
4. जगमोहन सिंह (2020) : स्कूलों से ही निकलेगी आत्मनिर्भरता की राह (दैनिक जागरण)।
5. रमेश पोखरियाल (2020) : दैनिक जागरण के संपादक मंडल के साथ निशक ने नयी शिक्षा नीति भविष्य के रोड मैप को लेकर हुई बातचीत का एक अंश।
6. गौरव दुबे (2020) : खुलेआम बिक रहा छात्रों का डाटा (दैनिक जागरण)।
7. विजय क्रान्ति (2020) : प्रवासी कामगार नीति के मूलमंत्र (दैनिक जागरण)।
8. रमन कांति त्यागी (2020) : सहेजनी होगी बरिस की हर बूंद (दैनिक जागरण)।
9. इरविन खन्ना, मुख्य संपादक, दैनिक उत्तम हिन्दू।
10. जे.सी. चौधरी : मैनेजिंग डायरेक्टर, आकाश इंस्टिट्यूट

***

यू० पी० ए० सरकार और भारत-बांग्लादेश संबंध

डा. मनोज कुमार मिश्र *
अंकुर कुमार सिंह **

भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस की रहनुमाई में यू0पी0ए0 सरकार ने 9 सालों तक अपने कर्त्तव्यों एवम् दायित्वों का निर्वहन किया। इस अवधि में कई एक मुद्दों का समाधान प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह के नेतृत्व में किया गया। शेख हसीना के बंगलादेश में सत्ता संभालने के बाद बांग्लादेश के बांग्लादेश राईफल्स की तरफ विभिन्न एवम् भीषण विद्रोह का सामना करना पड़ा। इससे सत्तारूढ़ दल को झटका लगा और शेख हसीना की सरकार मुश्किल में पड़ गई।

भारत ने यहाँ शेख हसीना सरकार की हरसंभव सहायता की और उसे संकट से छुटकारा दिलाया। इसके एक वर्ष के भीतर ही बांग्लादेश आधारित उल्फा के नेता अरविंद राजखोवा, राजू बरूआ, चित्रवन हजारिका और साशा चौधरी को भारत को सौंप दिया गया। सन् 2010 में भारत और बांगलादेश के मध्य कई प्रमुख समझौतों के प्रपत्र पर हस्ताक्षर किए गए, जब शेख हसीना ने भारत की राजकीय यात्रा की। इन समझौतों में अंतर्राष्ट्रीय आतंकवाद से संघर्ष, संगठित अपराध और अवैध नशीले पदार्थ का व्यापार एवम् अन्य पारस्परिक विषय शामिल थे।[1]

इन सभी में खास बात यह रही कि शेख हसीना ने सार्वजनिक तौर पर घोषणा की कि भारत के खिलाफ आतंक की किसी भी तरह की गतिविधि को बंगलादेश की धरती पर छूट नहीं दी जाएगी। सन् 2010 में ही भारत की नेशनल थर्मल पॉवर कॉरपोरेशन और बांग्लादेश पावर डेवलपमेंट बोर्ड के मध्य करार हुए।[2]

भारतीय प्रधानमंत्री श्रीमती इंदिरा गांधी और बंगबंधु शेख मुजीबुर्रहमान के बीच एक समझौता किया गया था कि भारत को बांगलादेश को तीन बीघा भूमि सौंप देनी थी। इसके बदले में बंगलादेश को भी दक्षिण बेरूबारी की संप्रभुता भारत को सिपुर्द करनी थी। इसके माध्यम से दाहाग्राम–अगरटोला एन्क्लेव और दक्षिण बेरूबारी के निकट स्थित भारतीय एन्क्लेव को अनुमति प्रदान करनी थी। बंगलादेश ने तो तत्काल सन् 1974 में ही दक्षिण बेरूबारी की संप्रभुता भारत को सौंप दी लेकिन भारत ने तीन बीघा बंगलादेश के सिपुर्द नहीं किया। इसके लिए संविधान में संशोधन की आवश्यकता थी लेकिन भारत के सामने राजनीतिक कठिनाईयाँ मुँह बाये खड़ी थी।[3]

बंगलादेश के पुरजोर विरोध के पश्चात भारत ने संप्रभुता को सौंपने के बजाय सन् 2011 में बंगलादेश सरकार के समक्ष अनुरोध किया कि तीन बीघा और अधिक कुछ समय के लिए लीज पर दिए जायँ और यह भी कि दक्षिण बेरूबारी भारत का एक हिस्सा बना रहें।[4]

दोनों देश इस बात पर भी रजामंद रहे कि 162 एन्क्लेव के लोगों को अपना देश चुनने की छूट दी जायँ। इस समझौते के अंतर्गत भारत को 71 एन्क्लेव में से 51 एन्क्लेव ही हासिल हो पाए जो भारत की परिसीमा के भीतर थे, जबकि बंगलादेश को 103 एन्क्लेव में से 95 से 101 एन्क्लेव तक प्राप्त हुए, जो बंगलादेश की परिसीमा के भीतर थे। इन परस्पर आदान–प्रदान की प्रक्रिया के फलस्वरूप लगभग 10 हजार एकड़ जमीन बंगलादेश को स्थानांतरित हो गई। जुलाई में परस्पर रूप से जनगणना की गई जिसके मुताबिक यह पता चला कि भारत में बंगलादेश एन्क्लेव में 14215 लोग रहते हैं, जबकि बंगलादेश में स्थित भारतीय एन्क्लेव में 37269 लोग रहते हैं। भारत की राज्यसभा में 119वाँ संविधान संशोधन विधेयक 18 दिसंबर, सन् 2013 को प्रस्तुत गया जो 6 मई, सन् 2015 को पारित किया गया। इसी दिन लोकसभा में भी स्वीकृति की मुहर लग गई।[5]

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एव स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी जौनपुर
** शोध छात्र, रक्षा एव स्त्रातजिक अध्ययन विभाग, श्री गणेश राय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, डोभी जौनपुर

दोनों देश ने काफी कोशिश की कि विवादों का निपटारा, तीस्ता नदी के जल का बँटवारा और मणिपुर में तिपाईमुख बाँध के निर्माण हो। ऐसे मुद्दे हल करने के लिए जरूरी कदम उठाने के लिए फैसले भी लिए गए। जब भारत के प्रधानमंत्री श्री मनमोहन सिंह ने सन् 2011 में बंगलादेश की यात्रा की तो व्यापक तरीके से सहयोग संवृद्धि के लिए ढाँचागत क्षेत्रों के विकास पर ध्यान देते हुए समझौते किए। इस समझौते में व्यापार संवृद्धि, निवेश और आर्थिक सहयोग, संपर्क, पानी, प्राकृतिक आपदा प्रबंधन, बिजली के उत्पादन और वितरण जैसे प्रमुख विषय शामिल थे।

सन् 2012 में बंगलादेश ने भारत के ओ.एन.जी. सी. को दक्षिण त्रिपुरा स्थित पलाटना पॉवर प्रोजेक्ट के लिए आशुगंज के माध्यम से टरबाईन जैसी भारी मशीनों के व्यापार के लिए आवाजाही की छूट दी। सन् 2013 में बंगलादेश को भारत के द्वारा प्रतिदनि 500 मेगावाट बिजली 35 सालों तक निर्यात करने की शुरूआत की गई। भारत और बंगलादेश के प्रधानमंत्रियों ने 5 अक्टूबर, सन् 2013 को मेरमारा पर भारत–बंगलादेश विद्युत संचालन केन्द्र (बी0बी0वी0 एस0 के0) का उद्घाटन किया। यू0पी0ए0 की सरकार ने ढेरसारी पहल की शुरूआत करते हुए इसे लगातार मजबूत रखने की प्रक्रिया जारी रखी।[6]

भारत और बंगलादेश के बीच व्यापार संतुलन एक खास मायने रखता है। इसीलिए शेख हसीना ने जब भारत का दौरा किया तो दोनों देशों के नेताओं ने इस विषय पर विमर्श किया कि व्यापार में अंतर कैसे और किस तरह परिलक्षित होता है। लेकिन इसका कोई ठोस निष्कर्ष नहीं निकल पाया। भारत और बंगलादेश के बीच व्यापार लाभ का सौदा नहीं हो पाया।

वैसे यह प्रतीत होता है कि व्यापार में अंतर के पीछे एक प्रमुख कारण औपचारिक व्यापार के बजाय अनौपचारिक व्यापार का अधिक होना रहा। इसके अतिरिक्त अधिकांश व्यापारिक उत्पादों को तस्करी के जरिये बंगलादेश भी लाया जाता रहा है। इसका परिणाम यह रहा कि बंगला देश के राजस्व में घाटा दर्ज होता रहा क्योंकि अनौपचारिक व्यापार पर कर नहीं लग पाता है। पारस्परिक निवेश को प्रोत्साहित करने के लिए भारत के द्वारा कुछ वर्षों पहले बंगलादेश के सामने द्विपक्षीय मुक्त व्यापार समझौते का विचार किया गया। लेकिन इस दिशा में कोई सार्थक परिणाम निकल कर सामने नहीं आया। वैसे भी बंगलादेश को भारत के साथ व्यापार में भारी घाटा की खबरें आती रहती हैं। तत्कालीन वित्तमंत्री श्री प्रणवमुखर्जी ने ऐलान किया कि 'भारत बंगलादेश देश के सारे उत्पादों को चुंगी कर से छूट दे रहा है। केवल अल्कोहल युक्त उत्पाद की प्रतिबंधित रहेंगे।

भारतीय वित्तमंत्री श्री मुखर्जी के प्रत्युत्तर में ढाका ने भारत में निवेश को प्रोत्साहित करने की बात कही।

इसके अतिरिक्त दोनों देशों में इस बात पर भी सहमति बनी कि कुछ समय के पश्चात व्यापार के आवर्त को बढ़ाने के लिए युक्त व्यापार समझौते पर हस्ताक्षर किया जाएगा। सन् 1972 में दोनों देशों के मध्य व्यापार समझौते के प्रपत्र पर हस्ताक्षर किया गया था, जिसका पुनश्च सन् 2012 में नवीनीकरण किया गया।[7]

भारत और बंगलादेश के बीच जो व्यापार सन् 2005–06 में सिर्फ 2.2 बिलियन डालर का था, वो आगे चलकर सन् 2010–11 में सीधे दुगुने से भी अधिक 5 बिलियन डालर का हो गया। शेख हसीना के भारत दौरे से एक फायदा हुआ कि प्रत्यक्षतः भूटान और नेपाल के लिए ट्रांजिट सुविधाएँ मिलनी शुरू हो गई थी। बंगलादेश की भी काफी पहले से इच्छा रही थी कि नेपाल और भूटान तक रेलवे की सुविधा उपलब्ध हो जायँ। भारत ने इस महती इच्छा को यथार्थ में बदल दिया। इसके अतिरिक्त इस बात पर भी रजामंदी कायम हो गई कि बंगलादेश में आशुगंज और भारत में सिलघाट, (त्रिपुरा) में पॉवर प्लांट स्थापित करने के लिए आवश्यक सामानों की ढुलाई नदी पर बने बंदरगाह से होनी चाहिए।

इस पहल के माध्यम से भारत की भी चाहत थी कि सात उत्तर पूर्वी राज्यों से उसकी सम्बद्धता कायम हो ताकि इलाके में चीन की बढ़ती लोकप्रियता को न्यूनतम किया जा सकें।

प्राकृतिक आपदाओं के समय भी भारत और बंगलादेश के मध्य सहज स्वाभाविक तरीके से सहायता का आदान प्रदान महसूस किया गया। इसी संदर्भ में ढाका और कोलकाता के बीच मैत्री एक्सप्रेस शुरू की गई। बंगलादेश के आधारभूत परिसंरचनाओं के द्रुत विकास के लिए भारत के द्वारा हर संभव प्रयास के तहत 1 बिलियन डालर सुलभ कराए गए। भारत और बंगलादेश के बीच सभी तरह के साधनों एवं संसाधनों की सुलभता है, लेकिन अन्यान्य विकल्पों की तलाश भी तेजी के साथ शुरू है। बंगलादेश के प्रमुख शहर भारत के प्रमुख शहरों से वायुमार्ग के द्वारा जुड़े हुए हैं। इसके अलावे सरकारी और निजी वाहनों की सुलभता और संबद्धता भी कोई छिपी हुई बात नहीं है।

भारत और बंगलादेश के इतिहास में परस्पर काफी साभ्यता है। इनके साझी परम्पराओं को एक सूत्र में पिरोते हुए रेलवे का नेटवर्क काफी सघनता से एक देश को दूसरे देश से जोड़ता है।[8]

वर्तमान काल में तीन नेटवर्क की भूमिका काफी मायने रखती है। इसमें पेट्रोपोल (भारत)– वेनापोल बंगलादेश तो खास तौर से शामिल है। नई रेल लाईन बिछाने के लिए भी दोनों देशों के मध्य सन् 2013 में ढाका में समझौता के प्रपत्र पर मुहर लगाई गई थी।

दोनों देशों के मध्य सहयोग संवर्धन को विकसित करने के लिए सन् 2010 में इंदिरा गाँधी सांस्कृतिक केंद्र (आई सी सी आर) को स्थापित किया गया था। इसका ध्येय खास तौर पर भारतीय कलाकारों के सौजन्य से कार्यक्रमों को आयोजित करना था। इसी परिप्रेक्ष्य में बंगलादेश के दूरदर्शन और भारतीय दूरदर्शन के बीच ढाका में सन् 2011 में दोनों देशों के दूरदर्शन के प्रतिनिधियों के मध्य समझौते के प्रपत्र पर हस्ताक्षर किया गया। इस समझौते के अंतर्गत यह तय किया गया कि दोनों देशों के सरकारी चैनल पारस्परिक रूप से समाचारों, सांस्कृतिक एवं शैक्षणिक कार्यक्रमों के सजीव प्रसारण किया करेंगे।

जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय एवम् ढाका विश्व विद्यालय के कुलपतियों के बीच भी सन् 2011 में एक सहयोग पत्र पर हस्ताक्षर किया गया था ताकि पारस्परिक रूप में शैक्षणिक सहयोग को गति दी जा सकें। वर्तमान में विशेष रूप से दिल्ली में स्थित जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय (जे0 एन0 यू0) में बंगलादेश के छात्र एवम् छाताएँ अध्ययन अर्जित कर रहे हैं।

संदर्भ :

[1] Tridib Chakraborti, "Sheikh Hasina's India Mission : From Distance to Proximity", World Focus, Vol. 31, No.2, February 2010. pp. 3-4

[2] Dholabhai, Nishit, "24/7 access for Bangla via corridor". The Telegraph, 21 July, 2011

[3] Tridib Chakraborti, "India and Bangladesh under UPA Phase II : Crests, Trough and the Way Ahead", World Focus, Vol. 33, No. 2, February 2012, p. 3

[4] "No transit deal with India : Bangladesh", The Times of India, 29 August 2011

[5] "The Constitution-119th Amendment Bill, 2013", PRS India (accessed 10 May 2015)

[6] Habib, Haroon, "India begins power export to Bangladesh". The Hindu, 6 October, 2013

[7] Tridib Chakraborti, "India and Bangladesh under UPA Phase II : Crests, Trough and the Way Ahead", World Focus, Vol. 33, No.2, February 2012, pp. 4-7

[8] Smruti. S. Pattanaik, Notun Projonmo-Nayi Disha in India-Bangladesh Relations, www.idsa.in>idsacomments>Notunprojonmonayidisha, June 11, 2015 (accessed on 22 July 2015)

***

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक-आर्थिक स्थिति तथा शैक्षिक उपलब्धि में सम्बन्ध का अध्ययन

बृजेन्द्र बहादुर सिंह *

प्रस्तुत अध्ययन माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक आर्थिक स्थिति तथा शैक्षिक उपलब्धि को मापने हेतु किया गया जो सर्वेक्षणात्मक प्रकार का अध्ययन है जिसके लिए रीवा जिले की समष्टि कक्षा 9 व 10 के 200 विद्यार्थियों पर किया गया था आँकड़ों के संकलन हेतु मानकीकृत उपकरण प्रयुक्त हुए तथा विश्लेषण के लिए काई वर्ग (X^2) तकनीकी का प्रयोग किया गया। जिससे निष्कर्ष प्राप्त हुआ कि शैक्षिक निष्पादन और सामाजिक आर्थिक स्थिति में प्रभाव डालने वाले सम्बन्ध नहीं होते हैं।

भूमिका :

आधुनिक युग में संसाधनों के विकास में मनुष्य की भूमिका महत्वपूर्ण मानी जाती है। किसी भी राष्ट्र के समग्र विकास में प्रगतिशील, संरचनाशील व प्रबुद्ध व्यक्ति जितना सहयोग दे सकता है उतनी मात्रा में अन्य साधन प्रभावी नहीं माने जाते हैं। व्यक्ति की क्षमता एवं उसमें निहित विकास की सम्भावनाएँ कैसे बढ़ाई जा सकती है इसके लिए उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति, अकांक्षा स्तर, अभिवृत्ति, घर-परिवार व आस-पास का वातावरण व रूचि प्रमुख योगदान देते हैं। उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाला व्यक्ति अच्छी उपलब्धि प्राप्त कर सकता है परन्तु निश्चित सीमा तक ही। आज शिक्षा के क्षेत्र में बहुचर्चित विषय है कि व्यक्ति का व्यवहार कैसा बनाया जाय कि वह भौतिक युग में अधिक सफलता हासिल करे जैसे मानवता के लिए न्याय स्वतन्त्रता और शांति के लिए संस्कृति उसी तरह शैक्षिक उपलब्धि के लिए सामाजिक आर्थिक स्थिति आकांक्षा स्तर आवश्यक होती है। जो विद्यार्थी उच्च आकांक्षा एवं सामाजिक आर्थिक स्तर वाला होता है उसकी उपलब्धि उतनी ही अच्छी होती है। भारतीय परिस्थिति में टूटते हुए परिवारों की वजह से विद्यार्थियों की मानसिक परेशानियाँ बढ़ती जा रही है जिसमें समायोजन विद्यार्थी आसानी से नहीं कर पाता है। इस तरह के समायोजन को बनाये रखने में सामाजिक आर्थिक स्थिति, आकांक्षा स्तर एवं विद्यालयी वातावरण अच्छी भूमिका अदा करते है। माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि लिंग व क्षेत्र के आधार पर अलग-अलग होती है क्योंकि उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति एवं आकांक्षा स्तर भी अलग-अलग होते हैं। आज जहाँ विशेष रूप से छात्र एवं छात्राएँ एक ऐसी परिस्थिति से गुजर रहे हैं जहाँ से भविष्य के लिए कोई निश्चित निर्देशक रेखा स्पष्ट नहीं है। ऐसी स्थिति में संघर्ष, निराशा, मानसिक द्वन्द्व तथा अन्य सामाजिक आर्थिक परेशानियाँ बढ़ती जा रही है। किसी भी परिस्थिति का सामना करने के लिए मनुष्य की एक व्यक्तिगत क्षमता होती है। एक ही परिस्थिति में एक व्यक्ति विक्षिप्त हो सकता है जबकि दूसरा व्यक्ति सफलतापूर्वक उस स्थिति का सामना कर सकता है। जिसके कारण हर व्यक्ति के व्यवहार में अन्तर पाया जाता है। छात्र-छात्राओं में विशेष रूप से यह व्यवहारिक अन्तर देखने को पाया जाता है कि वे अध्ययन व शैक्षणिक उपलब्धि में बहुत ही आगे होते हैं लेकिन उनका समाज के साथ समायोजन ठीक

* शोधार्थी (शिक्षाशास्त्र) अवधेश प्रताप सिंह विश्वविद्यालय, रीवा म० प्र०

ढंग से नहीं हो पाता है क्योंकि वे छात्र छात्राएँ जो शैक्षणिक उपलब्धि में अच्छे होते हैं वे उच्च सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले होते हैं। इस प्रकार विद्यार्थियों के सामाजिक आर्थिक स्थिति उनकी उपलब्धियों से संबंधित होते हैं।

प्रायः ऐसा देखा गया है कि कुछ विद्यार्थी अच्छा अध्ययन करते हैं अध्ययन के लिए पर्याप्त समय देते हैं उनके अध्ययन करने में रूचि भी होती है परन्तु उनकी उपलब्धि प्राप्तांकों में असंतोषजनक गिरावट होती है कुछ छात्र ऐसे भी देखे गये हैं कि वे अध्ययन कम करते हैं उनकी अध्ययन करने में रूचि भी कम होती है फिर भी वे छात्र उपलब्धि प्राप्तांकों में श्रेष्ठता हासिल करते हैं। जिसके लिए उनकी सामाजिक आर्थिक स्थिति प्रमुख रूप से उत्तरदायी कारक होता है।

पहले शिक्षा केवल दर्शन पर ही आधारित थी लेकिन आज शिक्षा मनोवैज्ञानिक व सामाजिक आधार पर भी आधारित है। मनोवैज्ञानिक कारक व सामाजिक कारक दोनों शैक्षिक उपलब्धि को पूरी तरह प्रभावित करती है क्योंकि वे विद्यार्थी जो उच्च सामाजिक आर्थिक स्तर वाले होते हैं इनकी शैक्षिक उपलब्धि भी लगभग उतना ही अधिक होती है छात्र एवं छात्राओं में संवेदनशील, अप्रसन्नता, अज्ञानुकूलता, चिंता, सहनशीलता, प्रसन्नता व प्रभावपूर्णता तथा चिंतारहित कारक पूरी तरह से शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। लिंग का प्रभाव शैक्षणिक उपलब्धि की मात्रा को प्रभावित करता है तथा क्षेत्रीय कारक जैसे ग्रामीण व शहरी भी शैक्षणिक उपलब्धि को प्रभावित करते हैं। भारतीय परिवेश में कुछ कार्य लिंग के आधार पर बंटे होते थे जिसके लिए केवल विशिष्ट वर्ग ही प्रशिक्षित किया जाता था। जैसे– युद्ध कौशल, सुरक्षा पाकशास्त्र गृह–विज्ञान से संबंधित कार्य परन्तु आधुनिक युग में ऐसा कुछ भी नहीं है कोई भी कार्य छात्र या छात्रा दोनों में से किसी को भी करने की स्वतंत्रता है जिसके लिए सामाजिक आर्थिक स्थिति पूरी तरह से उत्तरदायी कारक माना जाता हैं।

उद्देश्य :

माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन पर उनके सामाजिक, आर्थिक स्थिति पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।

परिकल्पना :

उच्च तथा निम्न सामाजिक, आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि द्वारा सम्पादित किया गया है।

जनसंख्या :

प्रस्तुत अध्ययन की जनसंख्या रीवां जिले के समस्त कक्षा 9 व 10 की छात्र व छात्रायें थी।

न्यादर्श : प्रस्तुत अध्ययन में कुल 800 विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श प्रतिचयन प्रविधि की लाटरी प्रणाली के द्वारा किया गया है।

शोध उपकरण : प्रस्तुत अध्ययन में माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की सामाजिक– आर्थिक स्थिति ज्ञात करने हेतु राजीव लोचन भारद्वाज द्वारा निर्मित सामाजिक–आर्थिक स्थिति मापनी का प्रयोग किया गया है।

1. Social Economics Status Scale (Rajeev Bhardwaj)
2. शैक्षिक निष्पादन (कक्षा 9 में अर्जित सम्पूर्ण प्राप्तांक)

सांख्यिकीय तकनीक :

आंकड़ों के विश्लेषण हेतु काई वर्ग (x^2) परीक्षण की गणना की गई है।

विश्लेषण तथा व्याख्या :

प्रस्तुत अध्ययन के उद्देश्य ''विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन पर उनके सामाजिक आर्थिक स्तर के पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन करना।'' के सापेक्ष निर्मित शून्य परिकल्पना ''उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थियों के शैक्षिक निष्पादन के मध्य सार्थक अन्तर नहीं है'' परीक्षण हेतु निम्नलिखित रूप में विश्लेषण किया गया है–

तालिका

उच्च तथा निम्न सामाजिक तथा आर्थिक स्थिति वाले विद्यार्थियों की क्षेत्र व लिंग के संदर्भ में शैक्षिक निष्पादन की x^2 विश्लेषण तालिका

समूह	क्षेत्र आधारित		लिंग आधारित	
	ग्रा0 विद्यार्थी	श0 विद्यार्थी	छात्र	छात्राएँ
उच्च समूह	18	82	68	32
निम्न समूह	45	55	49	51
X^2	0.082		0.0003	
df(1) at .05 level of significant 3.841				

उपरोक्त विश्लेषण तालिका से स्पष्ट है कि उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति वाले ग्रामीण विद्यार्थी शैक्षिक निष्पादन में औसत से ऊपर क्रमशः कुल 62 तथा 41 थे। जबकि शहरी विद्यार्थियों की संख्या 89 और 74 थी। जिनसे अभिकलित काई वर्ग का मान 0.082 प्राप्त हुआ ठीक इसी प्रकार उच्च सामाजिक आर्थिक समूह के छात्र 68 और छात्राएँ 71 थी जबकि निम्न समूह के छात्र 49 और छात्राएं 51 जिनमें काई वर्ग का मान 0.0003 प्राप्त हुआ काई वर्ग के मान 0. 05 सार्थकता स्तर df(1) के 3.841 से कम थे जिनके आधार पर शून्य परिकल्पना स्थापित हो जाती है और यह स्पष्ट हो जाता है कि सामाजिक आर्थिक स्तर क्षेत्र तथा लिंग का कोई प्रभाव औसत शैक्षिक निष्पादन से ऊपर के विद्यार्थियों पर नहीं पड़ता है। ऐसा ही अध्ययन श्रीवास्तव (2007) तथा सिंह (2007) ने किया था जो प्रस्तुत अध्ययन का समर्थन करते हैं। इस परिणाम से यह स्पष्ट होता है कि शैक्षिक निष्पादन बुद्धि से प्रभावित होने वाला कारक है।

निष्कर्ष :

उच्च तथा निम्न सामाजिक आर्थिक स्थिति के विद्यार्थियों की शैक्षिक निष्पादन एक समान पाया गया। अर्थात माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके शैक्षिक उपलब्धि पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के सामाजिक–आर्थिक स्तर का उनके शैक्षिक निष्पादन पर लैंगिक आधार पर अन्तर नहीं पाया गया।

सन्दर्भ :

1. अग्रवाल, आर.एन. और अस्थाना : ''मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन'' विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा 1987.

2. आलपोर्ट, जी0डब्लू0 : पर्सनालिटी ए साइकोलोजिकल इन्टरप्रेटेशन हाल्ट एण्ड कम्पनी, न्यूयार्क 1937.
3. आनन्द, सी0एल0 (1973) : ''मैसूर राज्य में बालकों की मानसिक योग्यता तथा शैक्षिक उपलब्धियों पर सामाजिक–आर्थिक वातावरण के प्रभाव का एक अध्ययन'' पी–एच0डी0 मैसूर विश्वविद्यालय, 1973 पेज 341.
4. तिवारी, उमेश चन्द्र (2005) : सामान्य बी0टी0सी0 एवं विशिष्ट बी0टी0सी0 प्रशिक्षित अध्यापकों के कार्य सन्तुष्टि पर उनके सामाजिक–आर्थिक स्तर एवं व्यक्तित्व के प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन'' पी–एच0डी0 वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर, 2005.
5. पंडित के0एम0 : ''द एडजस्टमेंट प्राब्लम्स ऑफ द गिफ्टेड चिलड्रेन एण्ड देयर रिपेक्शन टू फ्रस्ट्रेशन पी–एच0डी0 साइको एम0एस0यू0 1973.
6. पाण्डेय राम कैलाश : ''अनुसूचित जाति तथा सामान्य जाति के छात्रों की अधिगम शैलियों एवं उपलब्धियों का तुलनात्मक अध्ययन एम0एड0 लघु शोधप्रबन्ध इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद 1988.

***

भारत के गन्ना और चीनी उद्योग में सुधार एवं समीक्षा

धनंजय कुमार सिंह *

भारत दुनिया में चीनी का सबसे बड़ा उपभोक्ता है। गन्ना और चीनी देश की अर्थव्यवस्था में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। चीनी देश का दूसरा सबसे बड़ा कृषि आधारित उद्योग है, जो लगभग 5 करोड़ गन्ना किसानों और उनके परिवार के सदस्यों तथा काफी संख्या में खेतिहर मजदूर गन्ने की खेती, कटाई एवं संबंधित गतिविधियों में लगे हैं, जो ग्रामीण जनसंख्या का **7.5** प्रतिशत है और लगभग 5 लाख कर्मचारियों / श्रमिकों को सीधे प्रभावित करता है। देश में 700 से अधिक स्थापित चीनी कारखाने हैं, जिनमें लगभग 340 लाख मीट्रिक टन चीनी की पेड़ाई क्षमता और लगभग 80,000 करोड़ रुपए का वार्षिक कारोबार होता है।

गन्ने की चीनी का सुधार पूर्व निर्धारित कई बार बारीकी से विश्लेषण किया गया है। यह समझने के साथ की वर्तमान चुनौतियों के समान स्थितियों से बचने के लिए पूरे क्षेत्र में महत्वपूर्ण परिवर्तनों की आवश्यकता थी, कई समितियों को नियुक्त किया गया था जिन्होंने कई प्रकार की सिफारिशें की जो केवल कभी–कभी और अलग–अलग कार्यान्वित की गईं।

भारत सरकार की चीनी उद्योग की समस्याओं से निपटने के लिए पिछली समितियां

I. चीनी उद्योग के सामने कई समस्याएं हैं। इन समस्याओं से निपटने के लिए, भारत सरकार ने यह सुनिश्चित करने के लिए कई कदम उठाए थे कि चीनी उद्योग सुचारू रूप से कार्य करे। चीनी उद्योग की समस्याओं का अध्ययन करने और उनकी कठिनाइयों को दूर करने के लिए उपयुक्त सिफारिशें करने के लिए केंद्र सरकार ने समय–समय पर विभिन्न समितियों / कार्यकारी समूहों का गठन किया था। पिछले 25 – 26 वर्षों में निम्नलिखित समितियों / समूहों की स्थापना की गई थी

II. तालिका (Table) 1: – पिछली चीनी समितियां

क्रम संख्या	समिति / समूह	वर्ष	अध्यक्ष का नाम
1	चीनी उद्योग पर उच्चाधिकार प्राप्त समिति	1996	Shri. B. B. Mahajan, सेवानिवृत्त खाद्य सचिव
2	चीनी उद्योग के पुनरुद्धार पर समिति	2004	Shri S. K. Tuteja, तत्कालीन खाद्य सचिव
3	चीनी पर विशेषज्ञों के समूह	2007	Dr. Y. S. P. Thorat, सेवानिवृत्त अध्यक्ष NABARD
4	सहकारी समितियों पर उच्चाधिकार प्राप्त समिति	2009	Shri Shivajirao G. Patil
5	भारत में चीनी के विनियमन पर समिति	2012	Dr. C. Rangrajan, तत्कालीन अध्यक्ष EAC-PM
6	देश में गन्ना उत्पादकता और चीनी वसूली पर कार्य समूह	2013	Shri. T. Jacob, तत्कालीन J.S. – Food,

II. सामान्य तौर पर सभी समितियों की व्यापक सिफारिशों में निम्नलिखित शामिल हैः – (i) चीनी के लिए मूल्य निर्धारण और वितरण तंत्र; (ii) नए कारखानों की स्थापना; (iii) चीनी उद्योग के संबंध में विभिन्न कानूनों में संशोधन; (iv) चीनी उद्योग की बढ़ती उत्पादकता; (v) गन्ना क्षेत्र आरक्षण के संबंध में

* शोधार्थी वाणिज्य विभाग, जयप्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा, सह व्याख्याता, वाणिज्य विभाग, डी बी एस डी डिग्री कॉलेज, रामपुर (कदना), गरखा, सारण, बिहार

मुद्दों; (vi) चीनी का विनियंत्रण (decontrol)((vii) प्रदूषण का शमन; (viii) बिजली की खपत के मामले में उद्योग की दक्षता में सुधार; (ix) इथेनॉल के लिए गन्ने का वैकल्पिक प्रयोग; (x) निर्यात में सुधार; (xi) चीनी मिलों को अधिक लाभदायक होने के लिए आवश्यक समर्थन, आदि।

III. इस रिपोर्ट के लिए विशेष रूप से प्रासंगिक तथा तत्कालीन अध्यक्ष, EPC-PM की अध्यक्षता में समिति की सिफारिशें हैं। यह 2011 में चीनी उद्योग में अविनियमन (deregulation) के सभी मुद्दों पर गौर करने के लिए तैयार किया गया था। रंगराजन समिति ने 8 व्यापक सिफारिशों के साथ अपनी रिपोर्ट अक्टूबर 2012 में सरकार को सौंप दी। वह थे : – (i) लेवी चीनी को हटाने; (ii) गैर लेवी चीनी के विनियामक रिलीज तंत्र का वितरण; (iii) गन्ना क्षेत्र आरक्षण प्रणाली और बंधन का उन्मूलन; (iv) चीनी मिलों की न्यूनतम दूरी मानदंडों के साथ दूर करना; (v) चीनी व्यापार का उदारीकरण; (vi) बिना किसी निर्धारित अंत–उपयोग आवंटन के साथ उपोत्पादों (byproducts) की कीमतों का बाजार निर्धारण; (vii) गन्ना मूल्य निर्धारण का युक्तिकरण, और (viii) जूट पैकेजिंग सामग्री अधिनियम, 1987 के दायरे से चीनी को बाहर निकालना।

सिफारिशों का विवरण और कार्यान्वयन की स्थिति निम्न तालिका में दी गई है: –

तालिका (Table) 2: – **रंगराजन समिति की सिफारिशें और स्थिति**

क्रम संख्या	मुद्दे	सिफारिश	स्थिति
1	गन्ना क्षेत्र का आरक्षण	समय के साथ–साथ राज्यों को बाजार आधारित दीर्घावधिक व्यवस्थाओं संविदात्मक व्यवस्थाओं के विकास को प्रोत्साहित करना चाहिए और गन्ना आरक्षण क्षेत्र तथा बॉडिंग को समाप्त करना चाहिए। इस बीच वर्तमान प्रणाली जारी रखी जा सकती है।	राज्यों से इन सिफारिशों, जिन्हें वे उचित समझें, को कार्यान्वित करने पर विचार करने का अनुरोध किया गया है। अब तक, किसी राज्य ने कोई कार्यवाही नहीं की है, अतः मौजूदा व्यवस्था जारी है। महाराष्ट्र में क्षेत्रों का कोई आरक्षण नहीं है।
2	न्यूनतम दूरी का मानदंड	यह गन्ना किसानो अथवा चीनी क्षेत्र के विकास के हित में नहीं है तथा गन्ना आरक्षण क्षेत्र एवं बॉडिंग को समाप्त किए जाने के साथ–साथ इसे भी समाप्त कर दिया जाए।	राज्यों से इन सिफारिशों, जिन्हें वे उचित समझें, को कार्यान्वित करने पर विचार करने का अनुरोध किया गया है। अब तक, किसी राज्य ने कोई कार्यवाही नहीं की है, अतः मौजूदा व्यवस्था जारी है।
3	गन्ना मूल्य राजस्व साझाकरण	उपोत्पाद (गुड़ / Bagasse / co-generation) के लिए उपलब्ध आंकड़ों के विश्लेषण के आधार पर, राजस्व हिस्सेदारी अनुपात अकेले पूर्व–मिल चीनी की कीमत का लगभग 75 प्रतिशत होने का अनुमान लगाया है।	राज्यों से अनुरोध किया गया है कि सिफारिश पर विचार किया जाए। इस सिफारिश को लागू करने के लिए अभी तक केवल कर्नाटक और महाराष्ट्र ने ही राज्य अधिनियम को पारित किया है।
4	लेवी चीनी	लेवी चीनी को समाप्त किया जाए। जो राज्य पीडीएस के अंतर्गत चीनी उपलब्ध कराना चाहते हैं, वे अब से अपनी आवश्यकतानुसार चीनी सीधे बाजार से खरीदें और निर्गम मूल्य भी स्वयं तय करें। तथापि, चूंकि वर्तमान में लेवी के एक अंतर्निहित	केंद्र सरकार ने 1 अक्टूबर 2012 से उत्पादित चीनी से लेवी समाप्त कर दी है। सार्वजनिक वितरण प्रणाली के प्रचलनों के लिए राज्यों / संघ राज्य क्षेत्रों द्वारा खरीद खुले बाजार से की जा रही है और सरकार केवल ए.ए. वाई. परिवारों को सीमित कवरेज के

		क्रॉस–सब्सिडी है, इस संबंध में व्यय की गई लागत को पूरा करने के लिए संक्रमण अवधि हेतु राज्यों को कुछ हद तक केंद्रीय सहायता दी जा सकती है।	लिए 18.50 रुपए प्रति किलोग्राम की निश्चित सब्सिडी दे रही है। इन परिवारों को 1 किलोग्राम चीनी प्रति परिवार प्रति माह उपलब्ध कराई जाएगी
5	विनियमित रिलीज व्यवस्था	यह व्यवस्था किसी भी उपयोगी उद्देश्यों की पूर्ति नहीं कर रही है, तथा इसे समाप्त किया जा सकता है।	रिलीज तंत्र समाप्त कर दिया गया है।
6	व्यापार नीति	समिति के अनुसार, चीनी संबंधी व्यापार नीतियां स्थिर होनी चाहिए। उचित टैरिफ साधनों जैसे एक मध्यम निर्यात शुल्क, जो सामान्यतः मात्रात्मक प्रतिबंधों के विपरीत 5 फीसदी से अधिक नहीं हो, का प्रयोग चीनी की घरेलू आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए आर्थिक रूप से कुशल पद्धति से किया जाना चाहिए।	चीनी का आयात और निर्यात मुक्त है इसमें कोई मात्रात्मक प्रतिबंध नहीं है, लेकिन यह सीमा शुल्क की प्रचलित दर के अध्याधीन है। आयात शुल्क को दिनांक 29/04/2015 से 25 प्रतिशत से बढ़ाकर 40 प्रतिशत और दिनांक 10/07/2017 से 50 प्रतिशत कर दिया गया है, जिसे अब दिनांक 06/02/2018 से और बढ़ाकर 100 प्रतिशत कर दिया गया है। राजस्व विभाग की दिनांक 10/06/2016 की अधिसूचना द्वारा चीनी के निर्यात पर 20 प्रतिशत की दर से सीमा शुल्क लगा दिया गया है। चीनी के उत्पादन, स्टॉक स्थिति और बाजार में मूल्य रुझान को ध्यान में रखते हुए भारत सरकार ने दिनांक 20/03/2018 की अधिसूचना द्वारा चीनी के निर्यात पर से सीमा शुल्क वापस ले लिया है।
7	सह–उत्पाद / उपोत्पाद	शीरा/गुड़ और इथेनॉल जैसे सह–उत्पादों पर कोई मात्रात्मक या संचालनात्मक प्रतिबंध नहीं है। उप–उत्पादों की कीमतें बाजार द्वारा तय हो जिसमें कोई निर्धारित अंतिम उपयोग आवंटन नहीं हो। चीनी मिलों द्वारा किसी भी उपभोक्ता को अपने अधिशेष बेचने से रोकने वाली कोई विनियात्मक बाधा न हो।	पेय अल्कोहल / शराब पर उत्पाद शुल्क राज्य सरकारों के लिए राजस्व का एक प्रमुख स्रोत है। इथेनॉल के संचलन पर राज्य सरकारों द्वारा प्रतिबंध और इस पर कर एवं शुल्क लगाना इथेनॉल ब्लेंडिंग के सफल कार्यान्वयन में बाधा बनी हुई है। औद्योगिक नीति और संवर्धन विभाग ने वर्ष 2016 की अधिसूचना संख्या 27 दिनांक 14/05/2016 द्वारा आई (डी एंड आर) अधिनियम, 1951 में अब संशोधन कर दिया है। इस संशोधन से राज्य केवल मानवीय

			उपभोग के लिए आशयित शराब के बारे में कानून बना सकते हैं, नियंत्रण कर सकते हैं, और/अथवा कर एवं शुल्क लगा सकते हैं। इसे छोड़कर अर्थात डी–नेचर्ड इथेनॉल, जो मानवीय उपभोग के लिए नहीं होता है, उस पर नियंत्रण केवल केंद्र सरकार द्वारा किया जाएगा। आई (डी एंड आर) अधिनियम, 1951 में संशोधन से ईंधन ग्रेड के इथेनॉल का संचलन न केवल सुचारू होगा, बल्कि यह उद्योग इथेनॉल के अधिक उत्पादन हेतु प्रोत्साहित होगा जिससे पेट्रोल के साथ ब्लेंडिंग के प्रतिशत में वृद्धि होगी।
8	अनिवार्य जूट पैकेजिंग	अनिवार्य जूट पैकेजिंग को समाप्त किया जाए।	जूट की बोरियों में चीनी की अनिवार्य पैकेजिंग में और छूट दी गई है और उत्पादन के केवल 20 प्रतिशत की पैकेजिंग अनिवार्यतः जूट की बोरियों में की जानी है।

IV. यह देखा जा सकता है कि जहॉ रंगराजन समिति की कुछ प्रमुख सिफारिशें लागू की गई है, वहीं कुछ अन्य को निर्णय लेने के लिए राज्यों पर छोड़ दिया गया। 2012 के बाद घटनाक्रम बताते हैं कि गन्ना क्षेत्र आरक्षण, न्यूनतम दूरी मानदंडों आदि के उन्मूलन के संदर्भ में राज्य आमतौर पर सुधार करने के लिए अनिच्छुक रहे हैं, इसके अलावा, सभी राज्यों ने SAP (State advised price) की अवधारणा के साथ दूर नहीं किया है। इसके अलावा, गन्ने के मूल्य निर्धारण से जुड़ी एक बड़ी सिफारिश चीनी के मूल्य और उपोत्पादों के 70 प्रतिशत या चीनी के पूर्व मिल मूल्य का 75 प्रतिशत लागू नहीं की गई है। राज्य सरकारों के साथ निरंतर बातचीत के लिए एक आवश्यकता है जो अभी तक प्रमुख सुधार उपायों को लागू करने के लिए है।

Refenences:

- भारतीय राज्य व्यवस्था – एस चंद एंड कंपनी लिमिटेड – रूद्र दत्त।
- भारत सरकार का खाद्य और सार्वजनिक वितरण विभाग (पत्र सूचना कार्यालय)।
- नीति आयोग वार्षिक रिपोर्ट 2019 – 2020।
- www.indianfarmer.org
- Department of Food and Public Distribution, Annual Report 2018-19.
- https://www.researchgate.net
- Indian Sugar Industry – Deep and Deep Publication – Sinha R.V.

***

आदिवासी समाज का यथार्थ
(वाल्टर भेंगर 'तरूण' की कहानी 'जंगल की ललकार' के विशेष सन्दर्भ में)

सुनील कुमार वर्मा *

आदिवासी समाज का जीवन वनों पर आश्रित रहता है | आदिवासी लोग भोजन, ईंधन, लकड़ी, घरेलू सामग्री और पशुओं का चारा आदि दैनिक जरूरतों को जंगल से पूरा करते हैं | प्राचीन काल से ही आदिवासी लोग पूरी स्वतंत्रता से वन संसाधन का उपयोग करते थे | वास्तविक रूप से वे वनों के मालिक थे | अंग्रेजों द्वारा सन् 1894 ई. में वनों के लिए पहली राष्ट्रीय नीति बनाई गई थी | इस नीति में वनों पर राज्य का नियन्त्रण प्रस्तुत किया गया था | जिसके परिणाम स्वरूप वन सम्पदा पर आदिवासी लोगों के अधिकार सीमित हो गये | भारत सरकारभी समय-समय पर वन आधारित नीति बनाती रही जो अंग्रेजो से भिन्न नहीं थी | कानूनी तौर पर आदिवासी लोग जंगल का उपयोग स्वतन्त्रता पूर्वक नहीं कर सकते थे | जंगल के संसाधनों के उपयोग पर उन्हें कानूनी कारवाईयों से गुजरना पड़ता | कानून का सहारा लेकर पुलिस इन्हें शोषित एवं प्रताड़ित करती रही है | "आज की एक प्रमुख हकीकत यह है कि झारखंड के जेलों में बड़ी संख्या में ऐसे निर्दोष बंद हैं या उनपर मुकदमा चल रहा है जो तथा कथित वन कानूनों के उल्लंघन के दोषी माने गये हैं |"[1]

वाल्टर भेंगर ' तरूण' की कहानी ' जंगल की ललकार' में आदिवासियों के शोषण एवं उत्पीड़न के यथार्थ को संदर्भित किया गया है | कहानी में आदिवासी ' बुदु मुण्डा' और उसका पुत्र ' पांडु' मेहनत से आंगन में लकड़ियों का ढेर इकट्ठा किये थे | "बुदु इसलिए खुश था कि इस बार बरसात के दिनों में पास के शहर में जाकर अच्छे दाम पर लकड़ियाँ बेचकर अच्छी आमदनी कर लेगा | पैसा जमा हो जाने पर अगहन में वह अपनी बेटी ' मंगरी' की धूमधाम से शादी करायेगा |"[2]लेकिन ' बुदु' का सपना पूरा नहीं हो पाता | 'तिरेगन' लिए सिपाही उसके घर में पहुँच जाते हैं | "लकड़ी का ढेर देखकर उनमें से एक बुदु की ओर देखते हुए चिल्लाया, 'यह लकड़ी कहाँ से काट कर लाये हो ?.....बाप का जंगल समझा है क्या ? निकालों जुर्माना पांच सौ रूपये, नहीं तो थाना चलों |"[3]

बुदु पैसे देने में असमर्थ है | वह पुलिस के सामने हाथ जोड़ लेता है | उसकी पत्नी उसे छोड़ने के लिए रोती-विलखती है लेकिन पुलिस वाले बुदु को छोड़ते नहीं हैं, 'पैसा नहीं है तो थाने चलों पूरा जंगल साफ कर दिया और अब कहता है कि रूपयां कहा से लावेंगे | थाना में सब रूपया निकल जायेंगे |"[4]बुदु को तीन माह का कारावास हो जाता है | अंग्रेजी सरकार ने आदिवासियों के जंगल के संसाधनों के उपयोग पर बंदिशें लगाई थी और आजाद भारत की सरकारें उन्हीं की नीतियों का अनुसरण करती रही |

पुलिस, कानूनी दांव-पेंच के सहारे आदिवासियों के उत्पीड़न के अनेक रास्ते अख्तियार कर लिए हैं | पुलिस वाले आदिवासियों के पशुओं को भी लेकर चले जाते हैं | पशुधन आदिवासियों के जीवन का मुख्य अंग होते हैं | पशुओं के सहारे इनकी जीवन की गाड़ी चलती है | इस कहानी में पुलिस द्वारा बुदु के एक बकरे को ले जाने की घटना घटती है | "दरवाजे पर बंधी एक खस्सी था | एक सिपाही उसे भी खोलकर अपने साथ लेता गया | गाँव के अन्य लोग दूर-दूर से यह सब कुछ सहमे-सहमे देख रहे थे |"[5] बुदु की बेटी

---

* (शोध छात्र), गुजरात केन्द्रीय विश्वविद्यालय गाँधी नगर, गुजरात

मंगरी खस्सी को पालती-पोषती थी वह खस्सी को छुड़ाने के लिए हाथ में तेज हथियार तराउड़ी लेकर चल पड़ती है और एक सिपाही को घायल कर देती है लेकिन अंत में उसकी लाश कच्ची सड़क के किनारे पड़ी मिलती है | आदिवासी युवतियों की साहसी कदम की अनेक घटनाएँ मिलती है | ऐसी साहसी युवतियों पर पुलिस द्वारा जुल्म किया जाता है | एक 'हिड़में' नामक साहसी आदिवासी युवती पर पुलिस जुल्म का उल्लेख मिलता है | "भयानक यातनाओं से हिड़में की हालत मरने जैसी हो गयी थी | पुलिस वालों ने कहा यह थाने में ही न मर जाए इसलिए अब इसे जेल में डाल दो | इस इलाके में आदिवासी लड़कियों को महीनों इस तरह रौद कर नक्सली कह कर जेल में डालने का धंधा जोर शोर से चल रहा था |"[6]

पुलिस द्वारा आदिवासियों के जंगल काटे जाने के जुल्म में प्रताड़ित किया जाता है जबकि इन जंगल के लकड़ियों और पेड़ों को सेठ, ठेकेदार द्वारा काटा जाता है | जंगल को उजाड़ने में इन्ही जैसे लोग होते हैं | "वैसे सभी को पता है, जंगल की मोटी लकड़ियों और पेड़ काट कर कौन ले जाता है | शहर से शम्भु सेठ ट्रक लेकर आता है और रातों-रात उस पर लकड़ी लादकर वापस चला जाता है | उस समय कोई भी फोरेस्ट गार्ड जंगल में नहीं आता |"[7] आदिवासी अपने रोजमर्रा के जीवन की आवश्यकता पूरी करने के लिए जंगल की सूखी लकड़ियों का उपयोग करते हैं लेकिन उनपर जंगल काटने का आरोप लगा दिया जाता है जबकि जंगल काटने में ठेकेदार, पुलिस, नेता और माफिया की अहम भूमिका है | जंगल के लिए सरकार की वर्तमान नीति, जिसके तहत जंगल एक व्यापारिक वस्तु है, ही सारी समस्याओं की जड़ है | इसी के तहत जंगल में आदिवासी प्रवेश के निषेध का कानून बना |"[8]

सन् 1970-80 के दशक में छोटानागपुर में आदिवासियों द्वारा जल, जंगल और जमीन के लिए आन्दोलन हुआ | इस आन्दोलन में सिपाही सूखी लकड़ियों को भी गीला करार देकर आदिवासियों पर दंड लगाते थे या उन्हें गिरफ्तार कर जेल भेज देते थे | इस प्रकार सरकार के गलत नीतियों ने आदिवासियों को भूखमरी के कगार पर ला खड़ा किया |

कहानी में बुदु मुण्डा जेल से तीन महीने बाद घर आता है उसके अनुपस्थिति में खेत की फसल अच्छी नहीं हो पाती है वह भूखमरी के कगार पर पहुँच जाता है | वह अपनी जीविका के लिए शराब निकालने का कार्य करने लगता है हालाँकि पांडु उसे इस कार्य करने से मना करता है लेकिन उनके पास कोई जीविका का साधन नहीं था |विपरीत परिस्थितियाँ बुदु को इस अनैतिक कार्य करने को मजबूर कर देती है | बुदु के शराब बेचने की खबर गोपनीय तरीके से फैल जाती है | "बुदु शराब बेचकर अपनी हालत सुधारने लगा | जितनी शराब वह बनाता, वह जल्दी ही बिक जाती | पहले थोड़ी शराब बनाता था | मांग बढ़ने पर वह दो-तीन अन्य स्थानों पर भी दारू चुलाई का काम करने लगा |"[9] आदिवासी समाज में शराब की नशाखोरी उनकी आर्थिक विपन्नता का एक प्रमुख कारण है | आदिवासी क्षेत्रों में शराब की व्यापारिक विक्री ने आदिवासी अर्थव्यवस्था को गहरी क्षति पहुँचाई है जिसके कारण वह आर्थिक दरिद्रता का शिकार बन गया है | "खेदजनक स्थिति यह है कि कोई भी राजनीतिक पार्टी झारखंडी नेता, संस्था उन्हें शराब से मुक्त करने के लिए प्रयत्नशील नहीं[10] सरकार की मनसा उनकी इसी नशा खोरी में जीने देने की है ताकि विरोध करने की स्थिति में न रहें | "सत्ता पाने के लिए सरकार ने आदिवासी संस्कृति के रक्षा के नाम पर आज से 33 वर्ष पहले, शराब जैसी बुरी लत को प्रोत्साहन करने हेतु ऐसे सभी राज्यों में छूट दे दी, जो 'पाँचवीं व छठवीं अनुसूची' के अंतर्गत 'विशेष क्षेत्र' का दर्जा प्राप्त थे | सरकार ने ऐसे क्षेत्रों में आदिवासियों को प्रतिदिन शराब बनाकर पीने का ऐसा अधिकार दिया, जो उनके लिए यमराज बन गया | इसके चलते यह समाज न सिर्फ कुपोषित हुआ, बल्कि मानसिक तौर पर प्रभावित हुआ | इसका सीधा अर्थ हुआ- 'पियो

और मरों', शराब में डूबे रहो, मत बोलो |"[11] सरकार द्वारा आदिवासी क्षेत्रों में विकास और रोजगार कार्यों की प्राथमिकता न देकर वहाँ के संसाधनों के दोहन को ही बढ़ावा दिया |

कहानी में 'लोको मुण्डा' के घर गार्ड बाबू, रेंजर बाबू तथा उनके पीछे दो बंदूकधारी सिपाही पहुँच गये | इस बार लोको ने जंगल की लकड़ी का ढेर लगा रखा था | जंगल की लकड़ी काटने के जुल्म में लोको मुण्डा को थाने ले जाना चाहते हैं लेकिन लोको की अनुपस्थिति में उनकी बेटी 'चानों' को ले जाना चाह रहे थे | इस घटना को देखकर पांडु का खून खौल गया | वह रेंजर बाबू की जीप को सड़क के किनारे खाई में गिरा देता है और उनपर तीर-धनुष तान देता है | "मैं कहता हूँ चानों को छोड़ दो | नहीं तो हम रेंजर बाबू की छाती चीर देगा पांडु गरजकर कहा |"[12] पुलिस वाले चानो को छोड़ देते हैं | पांडु, चानो को लेकर जंगल में चला जाता है | पांडु में अपने बहन की हत्या की प्रतिशोध की ज्वाला धधक रही थी | वह पुलिस को देखते ही सबको सूचित करने अपने बस्ती में चला जाता है और सभी को सतर्क कर देता है |

निष्कर्षतः आदिवासी लोगों का जीवन शोषित एवं उत्पीड़ित है | सरकार के गलत नीतियों के कारण पुलिस अधिकारी, ठेकेदार, साहूकार इनका शोषण करते हैं | जंगल की लकड़ियों के उपयोग पर पुलिस इन्हें आर्थिक एवं शारीरिक शोषण करती है | आदिवासी युवतियों के साथ बलात्कार किया जाता है | आदिवासी असंतोष को निर्ममता से दबा दिया जाता है | आर्थिक रूप से विपन्न आदिवासी मादक पदार्थों का कारोबार करने के लिए विवश हैं | आदिवासियों की वर्षों से चली आ रही जल, जँगल और जमीन पर निर्भरता से बेदखल किया जा रहा है |

सन्दर्भ :

1. कुमार, विनोद, *आदिवासी संघर्ष गाथा*, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ 61
2. मीणा, (सं.)केदार प्रसाद, *आदिवासी कहानियाँ*, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 84
3. वही, पृष्ठ 84
4. वही, पृष्ठ 85
5. वही, पृष्ठ 85
6. सं. अपूर्वानन्द, *आलोचना,* अंक-54, अप्रैल-जून 2015, 1 बी नेताजी सुभाष मार्ग, दरियागंज, नई दिल्ली पृष्ठ 3
7. मीणा, (सं.)केदार प्रसाद, *आदिवासी कहानियाँ*, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 85
8. गुप्ता, रमणिका, *आदिवासी अस्मिता का संकट*, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 38
9. मीणा, (सं.)केदार प्रसाद, *आदिवासी कहानियाँ,* अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 86
10. कुमार, विनोद, *आदिवासी संघर्ष गाथा*, प्रकाशन संस्थान नई दिल्ली, प्रथम संस्करण 2005, पृष्ठ 83
11. गुप्ता, रमणिका, *आदिवासी अस्मिता का संकट*, सामयिक प्रकाशन नई दिल्ली, संस्करण 2014, पृष्ठ 18
12. मीणा, (सं.)केदार प्रसाद, *आदिवासी कहानियाँ*, अलख प्रकाशन, जयपुर, प्रथम संस्करण 2013, पृष्ठ 86

***

महाकविकालिदासस्य भाषा-शैली छन्दोविधानञ्च

श्री गणेश गिरिः *

सत्स्वपि बहुलेषु काव्येषु तत्प्रणायकेषु च प्रसादगुणगुम्फितस्य वेदर्भीरीति–नियन्त्रितस्याद्यरसरञ्जितस्य कविकुलगौरव रविणा कालिदासेनाभिहितस्य केरल कामिन्याः कुन्तलस्येवाभिज्ञानशाकुन्तलस्य वैशिष्ट्यं कस्य मनो नाह्लादयति। यस्यकिल कवित्वरसेन प्लुतमानसा मनीषिणः सहसा कमपि भावभेदमाप्नुवन्तः कठोरदुःखेष्वपि अतुलां चित्तशान्तिमुपगच्छन्तो भारतीदेव्या नवीनमिव भावं प्रत्यक्षीकुर्वन्तः स्वकर्तव्येषु रसाभिभवेन प्रमाद्यन्ति। काव्यनिस्यूतमलौकिकं भावजातं चक्षुषेण पश्यन्ति। यस्य च शृङ्गाररससलिलावगाहनेन वृद्धोऽपि क्षणं तरुणायते। परुषमपि ब्रह्मचारि जनहृदयं शृङ्गारैकतानं प्रियवस्तु प्रवणतामवलम्बते च। तमेव कविकुलगुरुं संस्मरन् आहुश्च केचन रसिकाः–

कालिदासकवितां नवं वयो माहिषं दधि सशर्करं पयः।
एणिमांसमबला सुकोमला सम्भवन्तु मम जन्मनि जन्मनि।।

यस्य च कवेः करुणरसप्रयोगनैपुण्येन मुहूर्त्तमपि जन्मावधि करुणभावमविजानतो नितरां कठोरमप्यन्तः करणं करुणरसमयकूपे निमज्जति। प्रकाश्यते एवास्य कवेः करुणरसवर्णनचातुरी शकुन्तलायाः प्रस्थान कौतुकेऽभिज्ञानस्य तुरीयाङ्के।

शृङ्गारचातुरी तु कवेः सर्वत्र परिस्फुटैवेति। कविरयमुपमाप्रिय इति के वा न जानन्ति। कथयन्ति च तद्वेदिनः–

उपमा कालिदासस्य भारवेरर्थगौरवम्।
दण्डिनः पदलालित्यं माघे सन्ति त्रयो गुणाः।।

महाकवेः भाषाशैलीछन्दोविधानञ्चाद्वितीयो स्तः। अनयोर्द्वयोरपि सामञ्जस्यं कुर्वाणः कालिदासो व्यतिरेकविधया पार्वतीमुखं चित्रयति–

चन्द्रं गता पद्मगुणान् न भुङ्क्ते,
पद्माश्रिता चान्द्रमसीमभिख्याम्।
उमामुखं तु प्रतिपद्य लोला
द्विसंश्रयां प्रीतिमवाप लक्ष्मीः।।[1]

पद्मौपम्येन मुखगत सौरभमपि व्यज्यते पद्मिनीत्व व्यञ्जकम्, व्यज्यते च कपालकपोलचिबुकाक्षिनासिकानामपि सुश्लिष्टता, शोभनाकृतिव्यञ्जिका। किन्तु एतत्सर्वमपि गौणमेव, प्रधानमत्र द्वयमेव, एकं कान्तिमत्त्वम्, अपरञ्च प्रसादसुभगत्वम्। अत एव

तथातितप्तं सवितुर्गभस्तिभिर्मुखं तदीयं कमलश्रियं दधौ।।[2]
मुखेन सा पद्म सुगन्धिना निशि प्रवेपमानाधरपत्रशोभिना।
तुषारवृष्टिक्षतपद्मसम्पदां सरोजसन्धानमिवाकरोदपाम्।।[3]

कुमारसंभववस्तुवर्णनस्य दृष्ट्या उच्चकोट्याः महाकाव्यम् वर्तते। यथा–

कण्ठस्य तस्याः स्तनबन्धुरस्य मुक्ताकलापस्य च निस्तलस्य।
अन्योन्यशोभाजननाद् बभूव साधारणो भूषणभूष्यभावः।।[4]

अस्मिन् श्लोके अनुपमा भाषाशैली अस्ति। स्तनाभ्यां बन्धुरस्योन्नतस्य तस्याः पार्वत्याः कण्ठस्य गलस्य निस्तलस्य वर्तुलस्य मुक्ताकलापस्य मुक्ताभूषणस्य च। "वर्तुलं त्रिस्तलं वृत्तंबन्धुरंतुन्नतातम्"। कलापो भूषणे बर्हे तूणीरे संहतावपि' इति चामरः।

---

* गवेषकः बौद्ध दर्शन विभागः सम्पूर्णानन्द-संस्कृत-विश्वविद्यालयः,वाराणसी

अन्योन्यशोभाजननाद् भूषणभूष्यभावोऽलङ्कारालङ्कार्यभावः साधारणः समानो बभूव। उभावप्यन्योन्य भूष्यौ भूषणे च बभूवतुरित्यर्थः। अत्र कण्ठमुक्ताकलापयोः शोभाक्रियाद्वारेणान्योन्यभूषाजनकत्वादन्योन्यालङ्कारः। तदुक्तम्– **"परस्परं क्रियाजननमन्योन्यम्"** इति।

अभिजातवाचि मधुरभाषिण्यां तस्यां पार्वत्याममृतस्रुतामृतस्राविणेव। स्वरेण नादेन प्रजल्पितायामालपन्त्याम्। अन्यैः काकादिभिः पुष्टान्यपुष्टा कोकिलापि।

प्रभूतवातस्थले यन्नीलोत्पलं ततो निर्विशेषं निर्भेदम्। अधीर विप्रेक्षितं चकितविलोकितमायताक्ष्या विशालमेत्रया तया पार्वत्या मृगाङ्गनाभ्यो हरिणीभ्यो गृहीतमम्यस्तं नु। अथवा मृगाङ्गनाभिस्ततस्तस्याः पार्वत्याः। यथा–

स्वरेण तस्याममृतस्रुतेव प्रजल्पितायामभिजातवाचि।
अप्यन्यपुष्टा प्रतिकूलशब्दा श्रोतुर्वितन्त्रीरिवताड्यमाना।।
प्रवातनीलोत्पल निर्विशेषमधीरविप्रेक्षितमायताक्ष्या।
तया गृहीतं नु मृगाङ्गनाभ्यस्ततो गृहीतं नु मृगाङ्गनाभिः।।[5]

महाकवेः प्रकृतिप्रेम विश्वविश्रुतमस्ति। विश्वसाहित्ये कालिदासस्य सदृशो कोऽपि कविर्नोपलभ्यते। महाकवेः दृष्ट्या प्रकृतिः केवलोद्दीपनविभावरूपा नास्ति बल्कि प्रकृतिः प्रेमस्वरूपाऽस्ति। कालिदासस्य दृष्ट्यां मानवीयसौन्दर्यस्य मापदण्डः प्राकृतिकसौन्दर्यरेवास्ति।

कालिदासस्य प्रसादगुणपूर्णललितपदावलीमण्डिता परिष्कृतशैली तस्य– वैदर्भीरीत्याः सर्वथाऽनुरूपाऽस्ति।

महाकवेः कालिदासस्य सुकुमारकुल्पनाऽपि मधुरभावानाम् अभिव्यञ्जनायां पूर्णसमर्था अस्ति।

कालिदासस्य भाषाशैली सर्वथा अभिनवाऽस्ति। संस्कृतसाहित्ये कालिदासरतुलनीयोऽस्ति कालिदासस्य भाषा अतीव सरस–सजीव। प्राञ्जल– परिमार्जित–प्रवाहमयी च वर्तते।

कुमारसंभवमहाकाव्यस्य सर्वातिशायिनी विलक्षणताऽस्ति– प्रणयस्य गंभीरगहनता। अस्मिन् प्रणये रूपं पर्यवसितं भवति, वासना दग्धा भवति तत्पश्चात् यद् नवनीतं प्राप्तं भवति तद् सामान्यं भूत्वाऽपि सामान्यं न भवति, अपितु युग–युगपर्यन्तं विशुद्ध–पवित्रमङ्गलानाञ्च प्रतीकरूपे स्थिरं भवति। विश्ववन्द्यकवेः रवीन्द्रस्य शब्देषु कालिदासः अनाहूतप्रणयस्योन्मत्तसौन्दर्यस्य नोपेक्षा कृतवान् बल्कि तम् तरुणलावष्यस्य समुज्ज्वलवर्णिभिः चित्रितं कृतवान्।

कालिदासस्य छन्दोविधानञ्चाद्वितीयोऽस्ति। विषयवस्तोः अनुरूपछन्दचयनम् कालिदासस्यछन्दविधाने सर्वत्र प्राप्नोति। मेघदूतस्य सन्दर्भे मन्दाक्रान्ता– छन्दस्योपादेयतायाम् महाकवेः अतिविशिष्टता वर्तते।

कश्चित्कान्ताविरहगुरुणा स्वाधिकारात्प्रमत्तः।
शापेनास्तङ्गमित महिता वर्षभोग्येण भर्तुः।।
यक्षश्चक्रेक जनकतनया स्नानपुण्योदकेषु।
स्निग्धच्छायातरुषु वसतिं रामगिर्याश्रमेषु।।[6]

वर्णवस्तूनां सहजाभिव्यक्तेः प्रवाहस्य निर्भरतायै उपजातिछन्दः महाकवेः विशेषानुक्तिः–

प्रचण्डसूर्यः स्पृहणीयचन्द्रमाः सदावगाहक्षतवारि सञ्चयः।
दिनान्तरम्योऽभ्युपशान्तमन्मथो निदाघकालोऽयमुपागतः प्रिये।।[7]

कुमारसंभवमहाकाव्ये षष्ठमाङ्के अनुष्टुपछन्दस्य सुनियोजितवर्णनं भवतिस्म–

ते प्रभामण्डलैर्व्योम द्योतयन्तस्तपोधनाः
सारुन्धतीकाः सपदि प्रादुरासन्पुरः प्रभोः।।[8]

मेघदूतस्यातिरिक्तं त्रिषुकाव्येषु महाकविः सर्गान्ते छन्दपरिवर्तनस्य विधानं कृतवान्। यस्मात् कारणात् छन्दोविधाने विविधता रुचिरताञ्चोत्पन्ना भवतः। मालिनीछन्देन सर्गान्ते वृत्तपरिवर्तनं विशेषप्रियमस्ति।

यथा–

बहुगुणरमणीयः कामिनीचित्तहारी।
तरुविटपलतानां बान्धवो निर्विकारः।।
जलद्समयएषः प्राणिनां प्राणभूतो।
दिशतु तव हितानि प्रायशो वाञ्छितानि।।[9]

कुमारसंभवमहाकाव्यस्य तृतीयसर्गे वसन्ततिलकावृत्तस्य प्रयोगाकर्षकोऽस्ति–

कयासि कामिन्! सुरतापराधात्पादानता कोपनयाऽवधूतः।
तस्याः करिष्यामि दृढानुतापं प्रवालशय्याशरणं शरीरम्।।[10]

अतः महाकवेः रचनासृष्टिषु भाषाशैली छन्दोविधानञ्च अतिभावानुक्तेन सहज– सरस–मनोहरञ्च सन्ति।

---

1. कुमार 1.43
2. कुमार 5.21
3. कुमार 5.27
4. कुमार 4.42
5. कुमारसंभवे– 1–45, 46
6. मेघदूत पूर्वमेघः–1
7. ऋतुसंहारे 1.1
8. कुमारसंभवे 6.4
9. ऋतुसंहारे 2.29
10. कुमारसंभवे– 3.8

***

बिहार में नक्सलवाद : एक विश्लेषण

पप्पु ठाकुर *

1960–70 के काल में बिहार के चंपारण, मुजफ्फरपुर, दरभंगा, सहरसा, पुर्णिया, मुंगेर तथा संथाल परगना जिलों में हजारों नक्सलियों ने आतंक का साम्राज्य स्थापित किया। नवम्बर 1969 में पहली बार गांव में नक्सली आतंक का अनुभव किया गया। जब कुछ आततायियों ने एक घनी किसान के घर पर बमों से आक्रमण किया, जिसमें किसान तथा उसका पुत्र मारा गया। इसी समय एक पखवारे के अंदर एक दर्जन से अधिक आंदोलनकारी नेताओं को बंदी बनाया तथा परिस्थिति पर नियंत्रण स्थापित किया। लगभग उसी समय (1969) बिहार के मुजफ्फरपुर जिला के मुशहरी प्रखण्ड के नरसिंहपुर गांव के नक्सलवादियों के एक दल द्वारा दो भाई मारे गए।[1] यहीं दल बिहार के लंगट सिंह महाविद्यालय के परिसर में स्थित महात्मा गाँधी की प्रतिमा को अंग–भंग करने के लिये जिम्मेदार पाया गया।

मुजफ्फरपुर को ''बिहार का नक्सलबाड़ी'' कहा जा सकता है। 29 नवम्बर 1968 को तात्कालीन गृहमंत्री श्री चौहान ने लोकसभा के अपने उद्‌बोधन में नक्सली हिंसा का उल्लेख किया है।[2] 8 दिसम्बर 1968 को रमनियां गांव (उत्तरी बंगाल, बिहार सीमा के पास) में एक बड़ी भीड़ ने लूटपाट (धान–अनाज संबंधी) तथा आगजनी जैसी घटनाओं को अंजाम दिया। 70 के दशक में नक्सलवादी मुख्यतः पश्चिम बंगाल, आंध्रप्रदेश, केरल, बिहार तथा तमिलनाडू में आतंक फैलाए हुए थे।

आपातकाल के बाद जनता शासन काल में निरोधक नजरबंदी कानून के तहत बंदी बनाए गए अनेक सक्रिय नक्सली कार्यकर्ताओं की रिहाई के बाद आतंकवाद को पुनर्जीवन मिला कानू सान्याल तथा अन्य दो को 1976 में मृत्युदण्ड देने के बावजुद 1979 में मुक्त कर आजीवन कारावास दिया गया। नक्सली गुप्त बैंठके आयोजित करने तथा गुरिल्ला युद्ध की शिक्षा देने के साथ ही पूर्वी भारत में Puratchi Kanal (क्रांति की मशाल) नामक एक साप्ताहिक का भी प्रकाशन करते हैं, तथा संसद और राज्यसभा को समाजवाद के नाम पर धोखा के रूप में प्रचारित करते हैं। उनके अनुसार ''हिंसा बिना क्रांति'' संभव नहीं है। यों तो नक्सलवादी आंदोलन की शुरूआत मुजफ्फरपुर के मुशहरी प्रखंड से हुई थी, जिसे लोकनायक श्री जय प्रकाश नारायण ने आकर रचनात्मक मोड़ दिया। फिर बनारस के आसपास से शुरू होकर पटना तक के कई ईलाकों में नक्सलवादी बन गए जिनमें से रोहतास, भोजपुर, गया और अब पटना विशेष रूप से उभरकर आए हैं। इसी सिलसिले में मुशहर और उसका साथी रघुनंदन मारा गया, देवकूली में 1975 में 5 भूपति मारे गए।[3]

1975 में ही पुनपुन थाने में नक्सली कार्यकर्ता सुश्री निर्मला चटर्जी गिरफ्तार की गई और यह सिलसिला चलता रहा। पटना जिले के धनरूआ, मसौढ़ी, पुनपुन, विक्रम और नौबतपूर प्रखंडों के वे गांव जहां आवागमन या सवारी का पहुँच पाना असंभव है, नक्सलवादियों के कार्यकलापों का अड्‌डा बन गया है। कहा जाता है कि नक्सलियों के संघर्ष का पुनरांभ 1981 में हुआ।

बिहार में संघर्ष का मुद्‌दा न्यूनतम मजदूरी एक्ट से आरंभ हुआ। (1975) जो कई वर्षों बाद भी लागू नहीं किया जा सका है। जानकारों के अनुसार ''किसान सभा'' द्वारा संचालित है। यह संघर्ष ''चारू मजूमदार'' के सिद्धांतों पर चलने वाला है।

बिहार में नक्सलवाद की स्थितियाँ अनेक तथ्यों से प्रभावित होती रही हैं। राज्य में पिछले चार–पाँच दशकों से भू–सुधार की कोई प्रभावी रणनीति अपनाई गई हो ऐसा जमीनी हालात से नहीं लगता। राज्य में माओवादियों का आंदोलन जाति के भेद–भाव से प्रभावित रहा है। फिर दो दशक पहले दलितों एवं पिछड़ों का राजनीतिक एवं सामाजिक सशक्तिकरण हुआ है तो वर्तमान में राज्य के देहाती एवं दूर–दराज के इलाकों में विकास की गति अपेक्षाकृत संतोषजनक है।

---

* शोध छात्र (इतिहास), वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

बिहार में सबसे ज्यादा हिंसक घटनाएं भारत की कम्युनिस्ट पार्टी (माओवादी) द्वारा की गई हैं। पार्टी ने अपनी इकाइयों को दक्षिणी बिहार तथा उत्तर प्रदेश से सटे क्षेत्रों में काफी मजबूत किया है। हालांकि विलय से पहले के माओवादी कम्युनिस्ट सेंटर ऑफ इंडिया तथा पीपुल्स वार ग्रुप की अंतर्कलह अभी भी है। बिहार, माकपा (माओवादी) के पूर्वी रीजनल ब्यूरो (Eastern Regional Bureau) की कमान में आता है तथा इसमें दो इकाइयाँ बिहार झारखंड, उत्तरी छत्तीसगढ़ स्पेशल एरिया समिति (BJNCSAC) और उत्तरांचल, उत्तर प्रदेश तथा उत्तर बिहार स्पेशल एरिया समिति (USAC) है। USAC नार्थन रीजनल ब्यूरो (Northen Regional Bureau) के अधीन है। बिहार में नक्सलियों की एक कंपनी तथा 17 प्लाटूनें सक्रिय हैं तथा लगभग 1200 हथियारबंद कैडर हैं। लोगों को संगठित करने का मुख्य मुद्दा कोशी–गंगा सिंचाई योजना, भूमि–सुधार, सरकार में भ्रष्टाचार, जेल में कैदियों के हालात तथा किसानों की समस्याएं रही हैं।[4]

नक्सलवाद की जड़ में सामाजिक भेदभाव के अलावा आर्थिक कारक अधिक प्रभावशाली है। सरकार द्वारा आर्थिक समानता और सामाजिक न्याय का सपना दिखाकर इनका शोषण किया गया। इन्हें मौलिक अधिकारों से वंचित किया गया। नक्सलवाद का निराकरण सता की बन्दूकें नहीं कर सकती। सत्ता की नेकनीयती और इच्छा शक्ति ही इसकी भरपाई कर सकती है। केन्द्र सरकार एवं राज्य सरकारों को संयुक्त रूप से इसका समाधान करना चाहिए। वैसे क्षेत्रों में पेयजल, शिक्षा चिकित्सा, सड़क, परिवहन आदि सुविधाओं की व्यवस्था होनी चाहिए जहाँ इसकी कमी है। इसके अलावा गरीबी निवारण और रोजगार सृजन की नीति अपनानी चाहिए जिससे भूमिहीन मजदूर आत्मनिर्भर हो सके और आत्म सम्मान के साथ जी सके। उन्हें सरकार और व्यवस्था में विश्वास हो। भूमिहीन मजदूरों, दबे कुचले लोगों को लगे की यह देश अपना है, लोग अपने हैं। ऐसा करके ही हम समाज के अन्तिम व्यक्ति को खुशहाल कर पायेंगे और नक्सलवाद जैसी गम्भीर समस्या का सम्मानजनक हल ढूँढ पायेंगे। पहले की गलतियों में सुधार और नक्सली गतिविधियों में लगे समुदायों की बुनियादी चिंताओं पर ध्यान दिये बिना हम नक्सलवाद को समूल नष्ट नहीं कर सकते है।

वर्तमान में ये नक्सली संगठन राजनीति से काफी घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित हो गए हैं। अपराध एवं राजनीति का एक–दूसरे से पूरक सम्बन्ध स्थापित हो गया है। राजनीतिक हिंसा की बढ़ोतरी चुनाव की घोषणा के साथ ही काफी बढ़ जाती है। लोग चुनाव में विजय पाने के लिए अपने राजनीतिक विरोधियों की हत्या तक करवा देते हैं। छठे दशक के उत्तरार्द्ध व सातवें दशक के प्रारम्भिक वर्षों में पश्चिम बंगाल, आन्ध्र प्रदेश, बिहार व उड़ीसा आदि राज्यों में क्रान्तिकारी वामपंथी विचारधारा से प्रेरित होकर नक्सलवादियों ने भूमिहीन कृषक मजदूरों को संगठित कर भूमि सम्बन्धों में क्रान्तिकारी परिवर्तन लाने तथा वर्तमान शोषण को समाप्त करने हेतु हिंसक आतंकवादी कार्यशैली को अपनाया। जिसके परिणामस्वरूप इन भागों में नक्सलवादी आतंकवाद एक भीषण एवं हिंसक चेहरा बन गया। सन् 1972–73 तक नक्सलवादी आतंक का प्रारम्भिक दौर शिथिल पड़ने लगा तथा इस आन्दोलन पर काबू पा लिया गया। इन आन्दोलन में बिखराव भी देखने को मिला। परन्तु बाद में ये भूमिगत नक्सवादी तत्व आन्ध्र प्रदेश, बिहार, महाराष्ट्र, पंजाब, मध्य–प्रदेश आदि राज्यों में विभिन्न स्थानीय जन–संगठनों के माध्यम से ग्रामीण एवं आदिवासी क्षेत्रों में सक्रिय होने लगे। इन नक्सलवादियों द्वारा 'इण्डियन पीपुल्स फ्रंट', पीपुल्स वार ग्रुप तथा माओवादी कम्युनिष्ट सेन्टर जैसे नक्सलवादी संगठनों के माध्यम से बिहार व आन्ध्र प्रदेश राज्यों में आदिवासियां एवं ग्रामीण भूमिहीन कृषक मजदूरों को संगठित कर भूमि सम्बन्धों में परिवर्तन लाने के उद्देश्य से भू–स्वामियों व जमींदारों के विरूद्ध हिंसक संघर्ष का मार्ग अपनाया गया तथा कई बार उनके द्वारा राजनीतिक साधन अपनाकर भी अपने उद्देश्यों को पूर्ति करने का प्रयास किया गया। इन नक्सलवादी संगठनों की कार्यशैली मूल रूप से हिंसा व आतंक पर ही आधारित है।

नक्सलवाद केवल कानून व्यवस्था की समस्या नहीं है यह मूल रूप से एक सामाजिक–आर्थिक समस्या है, जिससे निबटनें के लिए सरकार एवं समाज को एक बहुआयामी रणनीति बनानी चाहिए जबकि सरकार इससे कानून व्यवस्था की समस्या के रूप में निबटाने का प्रयास करती रही है। वस्तुतः

इसके लिए एक पारदर्शी, जवाबदेह एवं संवदेनशील सुशासन की जरूरत है जो नक्सल प्रभावित क्षेत्रों में शोषण, अन्याय, अत्याचार एवं सामाजिक आर्थिक विषमता को समाप्त करने की दिशा में सतर्क प्रयास करे। कानून व्यवस्था की स्थिति में आमूलचूल सुधार करें जमीन सम्बन्धी विवादों का त्वरित निबटारा करे, भूमि सुधार काननू को अक्षरशः लागू करें जन शिकायतों का त्वरित एवं प्रभावी निबटारा करनें के लिए विशेष अदालतों का संगठन करें और सर्वाधिक महत्वपूर्ण रोजगार के अवसरों में वृद्धि कर इन क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक विकास को गति प्रदान करें। नक्सलवादियों के आधारभूत ढांचे एवं कार्यप्रणाली के विरुद्ध एक समन्वित पुलिस कार्यवाही की जानी चाहिए। इस हेतु आन्ध्र–प्रदेश के तर्ज पर विशेष पुलिस बलों का गठन होना चाहिए तथा विभिन्न प्रभावित राज्यों की संयुक्त टास्क फोर्स बनानी, चौथे पुलिस बल के आधुनिकीकरण के लिए विशेष प्रयास किये जाने चाहिये क्योंकि नक्सलियों के पास न केवल आधुनिक हथियारों का जखीरा है बल्कि उनकी संरचना एवं सूचना प्रणाली भी आधुनिकतम यंत्रों से लैस हो चुकी है, पुलिस एवं अर्धसैनिक बलों के बीच कारगर समन्वय बनाना चाहिए। जहाँ तक हो सके इस समस्या से निबटने के लिए सेना की भूमिका को कम से कम किया जाना चाहिए। प्रायः यह देखा गया है कि नक्सलवाद की समस्या से जूझ रहे राज्यों में इस समस्या से निबटने की कार्यप्रणाली में एकरूपता और समन्वय का अभाव है। इसके लिए केन्द्र सरकार को पहल करते हुए एक समन्वित एवं एकरूप कार्यप्रणाली विकसित करनी चाहिए इसके अतिरिक्त नक्सली गुटों के साथ शांतिवार्ताओं का आयोजन भी होना चाहिये किन्तु इस शर्त पर कि वे हथियार एवं हिंसा का रास्ता छाड़ने के लिए तैयार हों। साथ ही शांतिवार्ता के दौरान अत्यधिक सावधान रहनें की भी जरूरत है कि कहीं इस समय का उपयोग नक्सलवादी अपनी सैन्य एवं कार्मिक शक्ति को बढ़ाने के लिए तो नहीं कर रहे हैं क्योंकि प्राय शांति वार्ताओं के दौरान पुलिस एवं सेना के अभियान स्थगित कर दिये जाते हैं। इसके लिए सरकारी अधिसूचना को तंत्र विशेष रूप से सजग रहने की आवश्यकता है।

नक्सलवाद के सामाजिक आर्थिक कारणों से निबटने की कुंजी सुशासन और विकास कार्यक्रमों के प्रभावी क्रियान्वन में निहित है। इस आन्दोलन की प्रकृति और शैली में आ रहे परिवर्तनों की पहचान करनी होगी क्योंकि उनका सैन्यकरन बढ़ रहा है और वे उन्नत सैन्य संगठनों में तब्दील हो रहे हैं इसलिए स्थानीय पुलिस व्यवस्था और खुफियों का तंत्र मजबूत बनाना जरूरी हो गया है। इसके लिए नक्सल प्रभावित जिलों में सक्षम अधिकारियों की तैनाती तथा उन्हें स्थिरता प्रदान करना आवश्यक है, स्थानीय लोगों का विश्वास जीतना एक दूसरा महत्त्वपूर्ण पहलु है। सरकार को कानून व्यवस्था के साथ–साथ सामाजिक एवं आर्थिक विकास पर ध्यान देना होगा तभी हम देश की वर्तमान में सबसे गंभीर समस्या से निबट सकते है।

संदर्भ :

1. अभय कुमार दूबे, क्रांति का आत्मसंघर्ष, नक्सलवादी आंदोलन के बदलते चेहरे का अध्ययन, विनय प्रकाशन, दिल्ली, 1991
2. पाण्डेय सच्चिदानन्द, नक्सल वायलेंस : एसोसियो – पॉलिटिकल स्टडी, दिल्ली : चाणक्य प्रकाशन, 1985.
3. मुखर्जी कल्याण एवं यादव राजेन्द्र सिंह, भोजपुर : बिहार में नक्सलवादी आन्दोलन, नई दिल्ली : राधाकृष्ण प्रकाशन, 1980.
4. गुप्ता विप्लव दास, द नक्सलाइट मूवमेंट, न्यू दिल्ली : एलाएड पब्लिशर्स, 1974
5. सेन, समर, पंडा, डी. लहरी, आशीष (सम्पादित) नक्सलवाड़ी एण्ड आफ्टर : ए फ्रांटियर ऑथोलॉजी, कलकता : कथा शिल्प, 1978.
6. सुमंत बनर्जी, इंडियाज सिमरिंग रिवोल्यूशन–नक्सलाइट अपराइजिंग, सिलेक्टिड सर्विस सिंडीकेट, कलकत्ता, 1984.

***

पशु अधिकार : एक नैतिक विमर्श

नितीश कुमार *

पर्यावरण का निर्माण जिन घटकों से मिलकर होता है, उनमें पशु, वनस्पति, जल और वायु के साथ-ही-साथ परिस्थितियों का भी महत्वपूर्ण योगदान होता है। इसे बनाने और बिगाड़ने में मानव का अत्याधिक योगदान होता है। यदि एलडॉस हक्सले के शब्दों में कहा जाय तो 'प्रारंभिक परिस्थितिकी हमें सीधे-सीधे बौद्ध धर्म की ओर ले जाता है।[1] क्योंकि यहाँ केवल संघीय एकता है वैयक्तिकता और विशिष्टता नहीं। मानव सृष्टि के द्वारा पशु, वनस्पति और पदार्थ के साथ अद्वितीय ढ़ंग से जुड़ा हुआ है। मानव सृष्टि का स्वामी नहीं एक हिस्सा है। यदि पवित्रता और शुद्धता शब्द के अर्थ है तो प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में ही ये महत्वपूर्ण हो सकते हैं। यदि वैदिक मंत्रों पर दृष्टिपात किया जाय तो यद्यपि उनमें अनेक व्याघातक तथ्य है, फिर भी जल, पृथ्वी और वनस्पति की स्तूतियों में अनेक मंत्र भरे पड़े हैं। पृथ्वी को वैदिक ऋषियों ने सभी जीवों का आधार स्वीकार किया है। पशु-पक्षी, आकाश, वनस्पति, अग्नि आदि का आधार धरती ही है।[2] पाश्चात्य दर्शन में सुकरात, प्लेटो और अरस्तू की बौद्धिकता ने सत्ता को प्रकृति से अलग किया और देकार्त ने मन शरीर संबंध पर एक ऐसा सिद्धांत निर्मित किया जिसने पशु अत्याचार को बढ़ावा दिया। वैदिक कर्मकांडों में भी बलि प्रथा का अनुशंसा की गयी है। इसलिए जौन एस्पिनल जैसे प्रकृतिवादी कहते हैं 'उजाड़ ही वह बैंक हैं जहाँ ये सभी चेक आहरण होते है।[3]

वर्तमान समय में पशुओं की संख्या निरंतर घटती जा रही है, तो इसका परिणाम क्या होंगे? मांस के लिए पशु वध होते हैं और बौद्ध एवं जैन धर्म को छोड़कर शायद ही कोई धर्म है, जिनमें पशुवध को किसी न किसी रूप में विहित नहीं किया गया हो। हिन्दुओं में बलि, इस्लाम में कुर्बानी तो ईसाई में शारीरिक पौष्टिकता और स्वाद के लिए पशु वध प्राचीनकाल से व्यवहार में है। यह भी सही है कि यदि खस्सी का मांस नहीं खपत हो तो उसकी संख्या इतनी बढ़ जायेगी की चारा और उसे रखने की समस्या उत्पन्न हो जायेगी। उसी तरह मछली को न मारा जाय तो जल में केवल मछलियाँ ही मछलियाँ हो जायेगी। परन्तु क्या हाथी और बाघ को मांस के लिए मारा जाता है अथवा कुत्ते, बन्दर, बिल्लियाँ और चूहों को क्यों मारा जाता है ? हाथी का दाँत कीमती है, अमीर लोग सजावट और शौक पूरा करने के लिए इसे खरीदते हैं। बाघ का छाल लोग बैठकखाने में टाँगते हैं

* शोधार्थी, स्नातकोत्तर दर्शनशास्त्र विभाग, मगध विश्वविद्यालय, बोधगया

कि वे बड़े आदमी है। क्या दिखावटी शान के लिए इन्हें मारना उचित है? मृग्छाल और मांस के लिए हिरण जैसे निर्दोष जीव को मारना आवश्यक है? दूध के लिए गाय, भैंस को टॉक्सिन की सुई देना आवश्यक है? क्योंकि इन्हीं पशुओं के मृत शरीर को खाने से आज चील और गिद्ध विनष्ट हो रहे हैं, जिनका पर्यावरण स्वच्छता में महत्वपूर्ण योगदान है। मृत चूहों, मृत पशुओं के अलावे भोजन के अवशेषों को सड़ान्ध से बचाने के लिए इसका भक्षण चील, कौए कर जाते हैं। अंधाधुंध शिकारों ने आज पक्षियों की संख्या में भारी कमी ला दी है। पशुओं को सर्वाधिक हानि वैज्ञानिक प्रयोगों से हो रहा है। बन्दर, बिल्ली, चूहों और अनेक पशु इस क्रम में मर जाते हैं। मानव हित में दवाई का इजाद उचित है, परन्तु किसी के प्राण को हरण करके ऐसा करना जीवन सिद्धांत के मूल्य और न्याय सिद्धांत का उल्लंघन है। अकेले अमेरिका के कृषि वैज्ञानिक अनुसंधान केन्द्रों पर प्रत्येक वर्ष लगभग 140,000 कुत्ते तथा 42,000 बिल्लियाँ मारी जाती है और कम या अधिक मात्रा में यह प्रयाग सभी विकसित राष्ट्रों में किये जाते हैं।[4] यह प्रयोग केवल कुत्तों या बिल्लियों पर ही नहीं बल्कि गाय, बैल, सूअर, भेड़, बकरे, मुर्गे आदि पर भी किये जाते हैं। जिन पशुओं का पालन-पोषण ही मांस के लिए हुआ है। जैसे-बकरा, भेड़, मुर्गा और मछलियाँ, उनका वध कुछ हद तक उचित माना जा सकता है, परन्तु जिनका पालन-पोषण इस उद्देश्य के लिए नहीं हुआ है, उसका वध किसी भी दृष्टिकोण से उचित नहीं है।

वध किसी भी प्रकार का क्यों न हो उसके साथ जीवन-सिद्धांत का मूल्य जुड़ जाता है। परंतु जब कभी-कभी शुभत्व और न्याय का सिद्धांत दाँव पर लग जाय तो मानव हत्या तक को भी उचित माना गया है। अत: यदि हाथी पागल होकर लोगों को कुचलने लगे अथवा बाघ आदमखोर हो जाय तो वैसी अवस्था में उसका वध करना उचित है, परन्तु दाँत और छाल के लिए वध अनुचित है। इसी तरह यदि जंगलों से सूअर और मृग आकर फसल को बर्बाद कर रहे हो और रोकने का कोई उपाय न हो तो उसका वध उचित है। अर्थात् यदि हमारे पास पशुवध का पर्याप्त औचित्य हो तभी उसकी हत्या हो अन्यथा नहीं। परन्तु यहाँ युक्ति दी जा सकती है कि पशु नैतिक कर्त्ता नहीं हो सकता है, क्योंकि उसमें विवेक का सर्वथा अभाव है। अत: समानता का प्रत्यय मानव के परिप्रेक्ष्य में ही अर्थपूर्ण है, अन्य के संदर्भ में नहीं। यहाँ हम अन्त:स्थ मूल्य को बीच में लोकर बतला सकते हैं कि जो आपको कहीं से भी हानि नहीं पहुँचा रहा हो और पर्यावरण संतुलन की दृष्टि से महत्वपूर्ण हो उसका मूल्य अपने-आप में होता है जिसे नैसर्गिक मूल्य भी कहा जा सकता है। अत: मानव होने के नाते हम सबों का यह कर्तव्य है कि अन्त:स्थ मूल्य की दृष्टि से मानव जीवन को ही स्वस्थ

रखने के लिए पर्यावरण संरक्षण हेतु पशु को संरक्षित रखें। यदि इसी समस्या पर फलवादी नैतिक दृष्टि से भी विचार किया जाय तो वहाँ भी यही उत्तर मिलेगा कि जिन चीजों के द्वारा अधिक-से-अधिक अन्त:स्थ शुभ उत्पन्न हो उसे हानि नहीं पहुँचाया जाना चाहिए।

इस दृष्टि से पशुवध तब तक नहीं होना चाहिए जबतक वह मानव को हानि नहीं पहुँचाता है। परंपरागत फलवादी विचारकों के अनुसार, विशेषकर उपयोगितावादी दृष्टि के अनुसार भी जिन चीजों के द्वारा आनंद की वृद्धि हो उसका अन्त:स्थ मूल्य होता है। यदि पशु का विनाश होता है तो पर्यावरण में असंतुलन पैदा होगा जो अंतत: मानव स्वास्थ्य के लिए हानिकर होगा। स्वस्थ मानवा की आनंद का उपयोग कर सकता है। अत: इस दृष्टि से भी पशु संरक्षा आवश्यक है। यदि हम वन्य प्रकृति की संरक्षा नहीं करते हैं तो अधिकतम अन्त:स्थ मूल्य में ह्रास होगा और अन्त:स्थ मूल्य आनंद है। अत: संरक्षा हमारा उत्तरदायित्व है।[5]

प्रश्न उठता है कि जीवन सिद्धांत का मूल्य मानव और पशु के संदर्भ में किसका अधिक है? नि:संदेह जब पशु और मानव के बीच जीवन संरक्षा का चयन करना हो तो मनुष्य का पलड़ा भारी होगा क्योंकि जिस पर्यावरण का निर्माण मनुष्य कर सकता है, उसका पशु एक अंग हैं जो किसी भी तरह पर्यावरण का निर्माण नहीं कर सकता है। परन्तु इस आधार पर भी मनुष्य अपने निजी उपयोग के लिए पशुवध नहीं कर सकता है और उसे नहीं करना चाहिए। पुन: प्रश्न उठाया जा सकता है कि क्या पशु की हत्या पशु के जीने के अधिकार का हनन नहीं? नहीं क्योंकि अधिकार का महत्व इच्छा के संदर्भ में ही समीचीन है, अन्य मामल में नहीं। पशु में इच्छा (Will) का सर्वथा अभाव पाया जाता है, फिर भी जहाँ तक अधिकार का प्रश्न है तो हम देखते हैं कि एक नवजात शिशु की देखरेख उसके माता-पिता बिना कहे करते हैं और नवजात शिशु का यह अधिकार भी है, परन्तु वह अपने अधिकार के प्रति सजग नहीं है, तो क्या उसकी उपेक्षा कर दी जाय? नहीं। पर्यावरण की दृष्टि से सभी जीवों का अपना मूल्य है उसे विनष्ट कर देने का हमें अधिकार नहीं है।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में देखा जाय तो मीमांसा में पाँच महायज्ञों को अत्यंत महत्वपूर्ण माना गया है जिसमें एक यज्ञ भूत यज्ञ है। इसमें भिन्न-भिन्न जीव-जंतुओं के साथ-ही-साथ वृक्षों को भी तख:समस्ता कहकर अन्न अर्पित किया गया है। आज पशु प्रेम पर बल दिया जा रहा है। वैदिक वाक्य है 'जीवों जीवस्य भोजनम्' जिसका कतिपय लोग गलत व्याख्या करके यह सिद्ध करने का प्रयास करते हैं कि वैदिक ग्रंथों मं ही मांसाहारी होने के विषय में सलाह दी गयी है। परन्तु इसका तात्पर्य है 'जीवित चीजों का प्रयोग अधिक-से-अधिक आहार में करें जबकि मांसाहारी होने में मृत

चीजों का प्रयोग आहार में किया जाता है। मांस, मछली और अण्डा मृत चीज है। जीवित चीज का तात्पर्य है- अंकुरित अनाज, साग-सब्जी और फल। आज चिकित्सा विज्ञान भी निरोग और स्वस्थ रहने के लिए इन्हीं चीजों का खाध पदार्थ के रूप में अपनाने पर बल दे रहा है। इस तरह भारतीय नीतिशास्त्र में पशुओं के प्रति प्रेम प्रारंभ से ही प्रदर्शित की गयी है। पंच महायज्ञ में बतलाया गया है कि मानव के ऊपर पशु का भी उपकार है, क्योंकि ये पशु से दूध और श्रम लेते हैं। अत: उस उपकार के बदले उसे आहार प्रदान किया जाना चाहिए। सभी जीवों एवं ब्रह्माण्ड के प्रति अपने कर्तव्य का पालन करना निहित है। अत: पशुओं को आहार देना और उसका अच्छा रख-रखाव करना नैतिक दृष्टि से अनिवार्य है। पशुओं छोटे-छोटे कीड़ों-मकोड़ों को भोजन देना पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने का प्रयास है।[6] साँप दूध नहीं पीता है, फिर भी नागपंचमी को उसे पूजा जाता है। इस पूजा के माध्यम से सर्प रक्षा का संदेश दिया जाता है।

योग-दशन में मन और शरीर को शुद्ध करने के अनेक उपाय बतलाये गये हैं, जिन्हें यम और नियम कहा जाता है। इन दोनों का साक्षात् संबंध शारीरिक और मानसिक स्वास्थ्य के साथ है। यम पाँच हैं- अहिंसा, सत्य, अस्तेय, अपरिग्रह और ब्रह्मचर्य। इन पाँचों के पालन से आत्मसंयम संभव हो पाता है। अहिंसा के द्वारा आत्मसंयम को प्राप्त करना आसान है। इस तरह जब तक मानव का स्वयं रूपांतरण नहीं हो जाता वह पशुओं के प्रति दयाभाव नहीं रख सकता। जब मानव का चरित्र उज्जवल होगा तो वह प्रत्येक क्रिया का संपादन सोच-विचार कर करेगा।

जैन दर्शन के अनुसार चरित्र का निर्माण गर्भावस्था से ही शुरू हो जाता है।[7] जैन मत के अनुसार मानव जीवन भौतिक जगत से परे संभव नहीं है, क्योंकि उनकी उतरजीविता पेड़-पौधों, नदियों, पर्वतों और पशुओं के ऊपर पूर्णरूपेण निर्भर है। उनके बीच पारस्परिक और आनुपातिक सहयोग का संबंध है। इन्हीं संबंधों एवं सहयोगों के चलते पारिस्थितिकीय संतुलन स्थापित हो पाता है। आज लोग इतने क्रूर हो गए हैं कि अपने स्वार्थ के लिए पशुओं का दोहन कर रहे हैं। इसलिए जैन विचारक ने अर्हत, तीर्थकर से लेकर आम आदमी के ऊपर इस संबंध में एक ही प्रकार के नैतिक आचरण की अनुशंसा की है 'किसी भी जीव की हत्या मत करें, किसी भी जीव के प्रति हिंसा भाव न रखें।' उनका कहना है 'पाना भूया गिवा सता'।[8] अन्य जीवों के प्रति क्रूर रहकर कोई भी मनुष्य सुख से नहीं रह सकता है, निक्खिता दण्डा।[9]

भारत सरकार द्वारा पशु अधिकार की संरक्षा के लिए कई संवैधानिक प्रावधान किए गए हैं और समय-समय पर इससे संबंधित कई कानून बनाए गए हैं। संविधान के भाग चार में राज्य के

नीति-निर्देशक सिद्धांतों का वर्णन है। इसी का अनुच्छेद 48(क) कहता है कि 'राज्य का यह प्रयास होगा कि वह पर्यावरण की रक्षा और सुधार करें तथा वनों एवं वन्य जीवों का संरक्षण प्रदान करें।[10] नागरिकों के मौलिक कर्तव्यों के तहत अनुच्छेद 51(क) कहता है कि प्रत्येक नागरिक को जंगल, झीलें नदियों व वन्य जीवों सहित प्राकृतिक पर्यावरण का संरक्षण व सुधार करना चाहिए और प्रत्येक जीव के प्रति करुणा रखनी चाहिए।[11] भारतीय संविधान के भाग 3 में मौलिक अधिकार की बात की गयी है। इसके तहत अनुच्छेद 21 जैव विविधता संरक्षण का पर्यावरण संरक्षण की दिशा में एक प्रभावशाली हथियार साबित हुआ है। सर्वोच्च न्यायालय ने भी इस अनुच्छेद की व्याख्या में कई बार कहा है कि मात्र श्वास चलते रहने का नाम जीवन नहीं है बल्कि जीवन का अर्थ स्वस्थ जीवन जिससे मनुष्य सुख से जी सकें और अपना भरण-पोषण के काबिल रहे।

संवैधानिक प्रावधानों के साथ-साथ वन्य जीवों एवं पशुओं के लिए कई विधिक उपाय किए गए हैं। सन् 1976 के पहले वन हमारे संविधान की राज्य सूची का विषय था अर्थात् इसका प्रबंधन और प्रशासन राज्यों के हाथ में था, किन्तु अनियंत्रित निर्वनीकरण को देखते हुए हमारी संसद ने 42वें संविधान संशोधन अधिनियम 1976 के द्वारा वनों को संविधान की समवर्ती सूची में डाल दिया,[12] जिससे कि केन्द्र सरकार और राज्य सरकारें दोनों मिलकर वनों के संरक्षण व संवर्द्धन का कार्य कर सकें। वन संरक्षण अधिनियम 1980 के माध्यम से केन्द्र सरकार विभिन्न राज्यों में स्थित वन भूमियों का नियंत्रण रखती है और सुनिश्चित करती है कि वन भूमि का हस्तांतरण अन्य उद्देश्य के लिए न हो। क्योंकि वन जीव-जंतुओं का प्राकृतिक आवास होता है साथ ही पर्यावरण संरक्षण के लिए अतिमहत्वपूर्ण है। इस अधिनियम के लागू हो जाने से वन भूमि का विलोपन बहुत हद तक रूक गया है। 1988 में इस अधिनियम को और अधिक कठोर बना दिया।

निष्कर्ष : पशु अधिकार को लेकर सरकार द्वारा अनेकों नियम बनाये गए हैं लेकिन व्यवहार में इसका उपयोग नहीं हो रहा है। जिससे पशुओं का शोषण हो रहा है। अत: पशुओं की सुरक्षा एवं संरक्षण के लिए बनाए गए नियमों को व्यवहार में लाने की आवश्यकता है।

संदर्भ सूची

1. पशधन रिपोर्ट, भारत सरकार - 2005
2. Elementary Ecology, leads straight to elementary Budhism, Aldous Huxley, Island, Penguin, Edn. pp.-19-20
3. तैतरीय संहिता - 10/63

4. John Astrinall 'Wilderness is the bank on which all cheques are drawn' The Hindu, Sept. 1998 p. 16 (Folio date)
5. पिटर सिंगर, प्रैक्टिकल इथिक्स, कैम्ब्रिज यूनिवर्सिटी प्रेस, 2000, पृ.-19
6. Eliot, Robert, Ibid, p. 50
7. Dr. M.P. Chourasia, 'Bioethical and Ecological Teachings of Jainism', National Seminar on Teachings of Mahavira in face of Modern Challenges : Some Problems of Applied Ethics, March 15-17, 2005, B.R.A. Bihar University, Muzaffarpur
8. मैक्समूलर, जैन सूत्र, पुस्तक-2, सूत्रकृतांग - 3
9. वही पुस्तक, अकारांगसूत्र, 1
10. सुभाष कश्यप, हमारा संविधान
11. वही
12. एन.एन. ओझा, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, पृ.-11.-114

❑

Covid-19 एवं आदिवासी आजीविका चुनौतियां एवं प्रभाव

डॉ. श्वेता सेवते *

covid-19 महामारी ने 2020 में विश्व स्तर पर लोगों के जीवन को बदल दिया है और अन्य मंचो तरह यह माना जाता है, कि यह सभी वर्गों के लोगों को समान रूप से प्रभावित करता है, लेकिन वास्तव में इसने सामाजिक, आर्थिक और भौगोलिक स्थितियों के आधार पर लोगों को अलग तरह से प्रभावित किया है।

इस वैश्विक महामारी के दौरान स्वदेशी लोगों को और भी कमजोर होते देखा जा रहा है। चूकि ये लोग सामाजिक, आर्थिक हासिए पर एक उच्च स्तर का अनुभव करते है और प्रभावी निगरानी और पूर्व चेतावनी प्रणाली, और पर्याप्त स्वास्थ्य और सामाजिक सेवाओं तक उनकी पहुंच की कमी जैसे कारको के सार्वजनिक स्वास्थ्य आपात स्थितियों में अनुपात ही जोखिम में है।

आदिवासी आवास अब तक वायरस मुक्त है। लेकिन आदिवासी प्रवासियों के घर पहुंचने पर उनके साथ क्या होता है यह एक बड़ी चिंता का विषय है। क्योंकि इन क्षेत्रों में स्वाथ्य का बुनियादी ढांचा बेहद खराब है। उनके पास घर लौटने के अलावा कोई विकल्प नहीं बचा था। प्रवासियों ने पैदल याा किसी अन्य उपल्बध माध्यम से घर वापस जाने की पूरी कोशिश की क्योंकि उनके पास नगरों में जीविका की कोई उम्मीद नहीं बची थी।

शब्द संकेत *– covid-19, जनजातीय समुदाय, चुनौतियां, प्रभाव।*

प्रस्तावना–

किसी सामाजिक परिवर्तन के लिए उत्तरदायी कारकों में, प्राकृतिक आपदा महत्वपूर्ण कारक है। कोविड–19, जिसे विश्व स्वस्थ्य संगठन (WHO) द्वारा वैश्विक महामारी (Pandmic) घोषित किया गया, यह एक ऐसी आपदा है जिसने सम्पूर्ण मानवता के समक्ष अस्तित्व का संकट प्रस्तुत कर दिया है। अपने प्रारंभिक चरण में, जब यह (Aepidamic) के रूप में, एक ही समय में बहुत से लोगों को प्रभावित कर, फैल रही थी, तब से आज इसके पेनडेमिक होने तक, जहां एक तरफ सभी राष्ट्र अपने जनसमुदाय के बचाव हेतु जागरूकता एहतियाती उपाय, उपचार एवं प्रबंधन जैसे कार्य कर रहे है, जिसे हम अधोसंरचनात्मक (Sub Structural) परिवर्तन के रूप में देख सकते हैं, वहीं दूसरी ओर इन नई व्यवस्थाओं से समाज में अधिसंरचनात्मक (Super Structural) परिवर्तन भी दृष्टिगत हो रहे हैं। निश्चित तौर पर कोरोना विषाणु जनित, कोविड– 19 के परिणामस्वरूप सम्पूर्ण विश्व, नकारात्मक रूप से प्रभावित हुआ हैं, परंतु इन नवीन व्यवस्थाओं के परोक्ष प्रभावों में कुछ सकारात्मक भी हैं, या हो रहा है, पर्यावरण प्रदूषण का कम होना, ऐसा ही प्रभाव है। इन सब बातों से इतर, यदि इस परिस्थिति को समाजशास्त्र के संरचनात्मक– प्रकार्यात्मक उपागम (Structural-Functional Approach) जो कि किसी भी सामाजिक तथ्य या प्रक्रिया के सकारात्मक पक्ष पर बल देता है, इमाइल दुर्खीम, टॉककॉट पारसंस, राबर्ट.के.मर्टन, किंग्सले डेविस एवं मूरे इस उपागम के प्रमुख समर्थक कहे जा सकते हैं। इस उपागम के आधार पर देखे तो हम पाते है कि समाज में व्यक्ति का व्यक्तित्व, परिवार,समुदाय और राष्ट्र के परिपेक्ष्य में दृष्टिकोण स्वतः परिर्माजित ओर विकसित हो रहा है।

एक व्यक्ति परिवार के सदस्य के रूप में, अन्य सदस्यों के साथ अपने व्यवहार में अधिक जिम्मेदार और संवेदनशील हुआ है, आस–पास रहने वाले व्यक्तियों या परिवारों के संदर्भ में Caring attitude के साथ ही समुदाय के अंदर 'हम की भावना'(We Feeling) अधिक स्पष्ट रूप से दिखाई देने लगी है। इन तथ्यों से अधिक महत्वपूर्ण यह बात है कि सामाजिक प्रणाली (Social Order) तथा सामाजिक व्यवस्था (Social System) में, सामाजिक अनुरूपता (Social Conformity) एवं सामाजिक नियंत्रण (Social Control) के कार्य में प्रत्यक्ष रूप से संलग्न पद और उनकी भूमिका के निर्वाहन में

* समाजशास्त्र एवं समाज कार्य विभाग डॉ. हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय सागर (म. प्र.)

संलग्न व्यक्ति, दोनों स्तरों पर न सिर्फ कर्तव्यबोध अधिक सशक्त हुआ है, बल्कि कर्तव्य निर्वाहन भी आर्दशतम स्थिति में पहुचां हैं, उदाहरण के तौर पर इस समय स्वस्थ्य एवं पुलिस विभाग की महती भूमिका को हम दिन प्रतिदिन अधिक मुखर होते देखते हैं। किसी समाज में सामाजिक प्रस्थिति (पद) एवं उनसे संबद्ध भूमिकाओं के सांमजस्य को, सामाजशास्त्र की भाषा में सामाजिक अनुरूपता की स्थिति कहा जाता हैं, और सतप्रतिशत सामाजिक अनुरूपता, प्रायः सैंद्धातिक स्थिति होती है, व्यवहारिक नहीं, परंतु कुछ विशेष परिस्थितियों में अपवाद स्वरूप यह स्थिति देखी जा सकती हैं, जिसके उत्तदायी कारक, अलग–अलग समाजों, परिस्थितियों एवं समय में अलग हो सकते है।

वर्तमान में, हमारे डॉक्टर, नर्स, अन्य स्वास्थ्य कर्मी, पुलिस अधिकारी एवं पुलिस बल, प्रत्यक्ष रूप से, महामारी के नियंत्रण में अपना योगदान दे रहे हैं, वे अपने ड्यूटी के समय की सीमाओं से हटकर अधिकतम समय घर से बाहर, समाज और देश के लिये काम कर रहें हैं,रास्ते में फंसे लोगों को खाना, सुरक्षा उपलब्ध कराना, अकेले रह रहे बुजुर्गों की सहायता करना, घर से बाहर पढ़ रहे ऐसे छात्र–छात्राओं की मदद करना जो किसी कारणवश लॉकडाउन में फंस गये हैं, घर नहीं जा सके, और दूसरे स्टेज होल्डर जैसे वेंडर, छोटे व्यापारी एवं जरूरी सामग्री घरों तक पहुंचाने वाले व्यक्तियों तथा संगठनों को परामर्श देना आदि ऐसे अनेक काम हैं, जो शायद उनकी ड्यूटी के दायरे में नहीं आते। इन सकारात्मक परिस्थितियों को एक सामाजिक तथ्य के रूप में देखें तो हम पाते हैं, कि समाज द्वारा इस प्रकार के कार्यों का सम्मान (Appriciation & Recognition) वह उत्तरदायी कारक है, जो किसी पद या व्यक्ति से श्रेष्ठतम् कार्य करवाता है।

इसके विपरीत यदि किसी व्यवस्था में इन कारकों का अस्तित्व नही है तो वह अलगाव (Alienation) की समस्या का सामना करती है, कार्ल मार्क्स इसे दो प्रकारों में देखते हैं, कार्य के प्रति अलगाव (Alienation From Work) एवं स्वयं के प्रति अलगाव (Alienation From Self), और यह दोनों ही परिस्थितियां किसी भी समाज के लिये हानिकारक है।

फ्रांस के विद्वान इमाइल दुर्खीम का सामूहिक चेतना का सिद्धांत भी यहां प्रासंगिक है, जिसके अनुसार आदिम या सरल प्रकृति के समाज (जो अपेक्षाकृत Homogenious थे) एवं आधुनिक या जटिल प्रकृति के समाज (जो अपेक्षाकृत Heterogenious हैं) दोनों में एकरुपता(Solidarity) का महत्वपूर्ण स्थान है, इसकी प्रकृति दोनों समाजों में अलग–अलग है। इस प्रकार वह दो प्रकार की एकरुपता की बात करते हैं यांत्रिक एकरुपता (Machenical Solidarity) एवं सावयवी एकरुपता (Organic Solidarity) सामूहिक चेतना (Collective Consciousness) इस एकरुपता को बनाये रखने के लिये महत्वपूर्ण एवं उत्तरदायी कारक है, इस चेतना को विचारों, विश्वास एवं मूल्यों के एक योग के रुप में समझा जा सकता है, जिसे किसी एक समाज के अधिकतम व्यक्ति साझा करते हैं। इस प्रकार समाज के लिये 'व्यक्ति' से अधिक महत्वपूर्ण सामूहिक चेतना है, यद्यपि यह सामूहिक चेतना व्यक्तियों मे ही निहित है। सरल समाज, जहां प्रजाति, वर्ग, व्यवसाय आदि के आधार पर बहुत कम विविधता या वर्गीकरण या, वहां एक समान विश्वास एवं मूल्यों के पालन में यह चेतना दिखाई देती हैं, जिसका आधार धर्म है। आधुनिक या जटिल समाज में, उपरोक्त आधारो पर बहुत विविधता है, श्रम विभाजन की श्रेणियां, व्यवसायों की संख्या, स्थिति एवं प्रकार अधिक हैं, अर्थात अलग–अलग विचारों, एवं विश्वासों के साथ एक समान मूल्यों के पालन में यह चेतना दिखाई देती हैं, इस समाज में धर्म के अतिरिक्त राजनीति, अर्थव्यवस्था, शिक्षा संस्थान एवं मीडिया आदि भी सामूहिक चेतना का आधार हैं।

यह सामूहिक चेतना, समकालीन कोविड –19, जन्य परिस्थितियों जैसी विषम परिस्थितियों से समाज को उबारने और उसकी निरंतरता सुनिश्चित करने में महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। विगत दिनों में जिस प्रकार से हम सभी देशवासियों ने ताली/थाली आदि बजाकर चिकित्सकों का सम्मान किया, लॉकडाउन का पालन एवं दीपक/मोमबत्ती या टार्च की रोशनी जलाकर कोविड–19 की चुनौती के सम्मुख अपना आत्मबल प्रदर्शित किया, ये सभी सामूहिक चेतना को प्रतिविंबत करने वाले क्रिया–कलाप हैं।

हमने राष्ट्र के समक्ष इस चुनौती को सभी अक्षों से रोकने, और समाज को यथासंभव सामान्य बनाये रखने के प्रयास किये हैं, समाजकार्य के परिप्रेक्ष्य में भी हमारे प्रयास अच्छे कहे जा सकते हैं, पंरतु इन सब प्रयासों में हमारी अधोसंरचनात्मक विशेषताओं को पहचानकर उनका उपयोग कर और अधिक सटीक कदम उठाये जा सकते थे, उदाहरण के तौर पर हम कई आयोजनों के लिये अस्थाई तौर पर पृथक शहर या गांव बसाकर, आयोजन करते हैं, कुम्भ मेले के लिये या राष्ट्रमंडल खेलों के लिये एक बड़े क्षेत्र को इस प्रकार से विकसित किया जाता हैं, ताकि वह इन आयोजनों में व्यवस्थित ढंग से उपयोग हो। हमारे नागरिक, जो अधिक संक्रमित देशों से लौटकर स्वदेश आ रहे थे, उनके लिये, एक या एक से अधिक स्थानों में इस प्रकार के अस्थाई, (Isolation Village) या City बनाये जा सकते थे, जहाँ दूसरे देश से आने वाले हर व्यक्ति को, एक निश्चित समयावधि (जो विशेषश बताये) तक इन जगहों में रखा जाता एवं उनका पर्याप्त स्वास्थ्य परीक्षण कर उनको घरों में भेजा जाता। लोकडाउन के पूर्व प्रथामिकता के आधार पर, व्यवस्थाओं को और अधिक नियोजित किये जाने एवं आम नागरिकों को आश्वस्त किये जाने की भी आवश्यकता थी। कि, वे जिस जगह पर हैं वहां सुरक्षित हैं, और उनकी मौलिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहेगी। समाजकार्य में संलग्न व्यक्तियों, इकाइयों, एवं संगठनों का उनकी विशेषताओं के आधार पर और अधिक बेहतर उपयोग भी किया जा सकता है। इन सबसे अधिक महत्वपूर्ण समाज का वह वर्ग, जो प्रतिदिन की आजीविका के लिये उस दिन के काम पर निर्भर करता हैं, जिसे हम Hand to Mouth, Livelihood कह सकते हैं, उनकी आजीविका को न सिर्फ सुनिश्चित किये जाने वरन्, वह सुनिश्चित है। इस बात का भरोसा दिलाये जाने की भी आवश्यकता है, ताकि यह भी वर्ग व्यवस्था में अपना पूरा सहयोग दे सके।

इस प्रकार समाज या राष्ट्र विशेष की अधोसंरचनात्मक विशेषताओं का उपयोग, सामाजिक नियंत्रण के, पुरूस्कार एवं दण्ड के सिद्धांत से अधिक प्रसंशा एवं अभिप्रेरण (Appreciation and Motivation) का उपयोग, सामूहिक चेतना का अधिकतम सकारात्मक उपयोग आदि वह सामाजिक तथ्य हैं,जो कोविड–19 जैसी विषम परिस्थितियों में सामाजिक अनुरुपता को बनाये रखने में, एवं इस प्रकार की विषम परिस्थितियों के नियंत्रण के लिये अनुकूल सामाजिक पर्यावरण बनाने में सक्षम हैं।

निष्कर्ष–

प्रत्येक आदिवासी समूह की अपनी भौगोलिक स्थिति , जातियता, भाषा और सामाजिक, आर्थिक निर्वाद के आधार पर अपनी विशिष्ट पहचान होती है। लेकिन पूंजीवाद के विकास, वैश्वीकरण और विकास प्रक्रिया ने भारत में आदिवासी लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक आर्थिक जीवन और पहचान को प्रभावित किया है। इसमें उन्हें कम वेतन पर अनौपचारिक क्षेत्र में काम करने के लिए शहरी और औद्योगिक क्षेत्रों की ओर धकेल दिया।

स्वतंत्रता के बाद जनजाति कल्याण और विकास के लिए नीतियों और कार्यक्रमों के संबंध में तीन महत्वपूर्ण दृष्टिकोण पेश किए गए, अर्थात् आत्मसात, अलगाव, और एकीकरण भारतीय समाजशास्त्रीय जी.एम.घुर्ये ने एक अलगावादी दृष्टिकोण से सुझाव दिया कि आत्मसात करने की प्रक्रिया आदिवासी समुदाय को मुख्य धारा के समाज में समाहित करने में मदद करेगी लेकिन आदिवासी लोगों को भेदभाव और शोषण के साथ छोड़ दिया जाता है। प्रमुख मनोविज्ञानी वेरियर एल्विन ने अलगावादी दृष्टिकोण की वकालत की लेकिन मुख्य धारा के समाज ने समुदाय के मामलों में बाधा डाली और हस्तक्षेप किया उन्हें पूर्ण स्वतंत्रता के साथ शांतिपूर्वक अपना जीवन जीने की अनुमति नही दी जवाहर लाल नेहरू ने एकीकरण सिद्धांत को जिम्मेदार ठहराया और जनजातियों को राष्ट्रीय मुख्य धारा में एकीकृत करने के लिए एक सुरक्षात्मक और प्रचार उपाय के रूप में पांच मौलिक सिद्धांतों "पंचशील" को पेश किया।

परंतु इस महामारी की स्थिति ने साबित कर दिया है, कि आदिवासी आबादी को केवल पूंजी और वैश्विक बाजार की आवश्यकता के लिए माना जाता था। लॉकडाउन के दौरान उन्हें समाज की मुख्य धारा से बाहर कर दिया गया।

मुख्य धारा के समाज द्वारा उठाए गए इन सभी उपायों की विफलता के दुष्परिणाम जनजातियों को भुगतना पड़ रहा है। covid-19 अलगाव ने आदिवासी लोगों को अधिक असुरक्षित बना दिया है और उन्हें सरकारी सुविधाओं और समर्थन के बिना छोड़ दिया है।

संदर्भ :

1. https://www.epw.in/engage/article/covid-19-pandemic-and-tribal-women-namded-district. date-3.9.2021
2. https://www.epw.in/journal/commetary/livelihood-vulne rabilities-tribals-during-covid-19:html.time 8:24PM Date 25.8.2021
3. https://www.cdc.gov/corronavirus/2019com/community/tribal/about-covid19-vaccienes:html. time 10:57 Date:12.8.2021
4. https://www.youthkiawaaz.com/2020/06/impactof-covid19-onthetribals-across-thehtml.time:10:55pm Date-12.8.2021
5. जनजातीय भारत–नदीम हसनैन प्रकाशक रवि मजूमदार जवाहर पब्लिशर्स ऐंड डिस्ट्रब्टिर्स नई दिल्ली–110016 IBN-81-7361-035-5 ,संस्करण –20क

***

पंचायती राज व्यवस्था : स्वशासन की अवधारणा

जितेन्द्र कुमार *

भारत के प्रारम्भिक इतिहास से यह विदित होता है कि यह एक ग्राम प्रधान देश होने के साथ–साथ कृषि प्रधान देश भी है। इसकी अधिकांश जनसंख्या गाँवों में निवास करती है, जिस पर ही भारत की उन्नति और प्रगति निर्भर करती है। इस संदर्भ में गांधी जी का कथन है–''यदि गाँव नष्ट होते हैं तो भारत नष्ट हो जायेगा''। हमारे संविधान में निर्देश दिया गया है कि राज्य पंचायतों के लिए कदम उठायेगा और उन्हें इतनी शक्ति और अधिकार प्रदान करेगा जिससे कि ग्राम पंचायतें स्वशासन की इकाई के रूप में कार्य कर सकें। भारत में जनतंत्र का भविष्य इस बात पर निर्भर करता है कि ग्रामीण जनों का शासन से कितना अधिक प्रत्यक्ष और सजीव सम्पर्क स्थापित हो पाता है। गांधी जी कहते हैं कि–''भारत का हृदय कलकत्ता की गलियों में और बम्बई की गगनचुम्बी इमारतों में नहीं उसका हृदय देहात में है, किसान की टूटी–फूटी झोपड़ियों में है।''

भारत में पंचायतों का प्रचलन प्राचीन काल से रहा है जो जनकल्याण की भावना से ओत–प्रोत थी। विकास तथा मानव कल्याण के साथ ही साथ ये ग्रामीण समुदाय के न्याय का काम भी करती थीं। पंचायत जिन्हें ग्रामीण स्थानीय प्रशासन की सबसे लोकप्रिय इकाई माना जाता है, बहुत पुरानी संस्थाएँ हैं जो अपने आप में स्थानीय स्वशासन की समर्थ इकाईयाँ हुआ करती थीं। प्राचीन काल में इसी पंचायत व्यवस्था के कारण प्रत्येक ग्रामीण समाज अपने आप में एक छोटा–राज्य था और भारत की जनता को एकता के सूत्र में बहुत अच्छी तरह बाँध कर रखा था। स्थानीय शासन प्रक्रिया का विकास ग्राम शासन व्यवस्था के कारण हुआ है। कार्य की दृष्टि से ग्राम पंचायत का महत्वपूर्ण उत्तरदायित्व था। अकाल या विपत्ति के समय राज्य लगान (कर) में कुछ सीमा तक राहत प्रदान कर सकती थी, ऊसर भूमि पर भी पंचायत का ही स्वामित्व था। दीवानी मामलों में पंचायतों के अधिकार की सीमा निश्चित नहीं थी। हजारों रूपये के झगड़ों को वह हल कर सकती थी। राज्य ग्रामों में विभाजित थे तथा ग्राम ही तत्कालीन स्थानीय राजनीति में राज्य सम्बन्धी संगठन के प्रमुख भाग थे। स्थानीय संस्थाएँ केन्द्रीय सरकार से पूर्णतः स्वतंत्र थीं। कार्य के अनुसार उनकी स्वायत्तता रहती थी। स्थानीय ग्राम शासन चलता रहता था। केन्द्र में चाहे जो भी शासन या शासक हो उससे उस पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता था।

प्राचीन काल में ग्राम समुदायों का स्वरूप छोटे गणतन्त्र के रूप में था और उस समय सामान्य लोगों की इच्छा का आदर किया जाता था। कर, रक्षा, आक्रमण आदि बातों के अतिरिक्त केन्द्रीय शासन किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करता था। बल्कि राज्य एक सामान्य नियन्ता मात्र था। केन्द्रीय शासन ने अपने बहुत से अधिकार स्थानीय संस्थाओं को दे दिया था। बहुत से माल और फौजदारी के मुकदमें उनके अधिकार क्षेत्र में थे। उन समस्त स्थानीय मामलों का चाहे वे सामाजिक हो या आर्थिक, नैतिक हो या न्यायिक ग्राम पंचायतें ही उनका प्रबन्ध करती थी।

हर्षदेव मालवीय के अनुसार ''भारत में पंचायतों का उद्‌भव प्राचीन था क्योंकि हमारी संस्कृति को विकसित तथा समृद्धिशाली बनाने में पंचायतों ने प्रकार्यात्मक दृष्टि से शक्तिशाली आधार प्रदान किया है। यह कहना अतिशयोक्ति नहीं होगा कि भारत

---

* प्रवक्ता, नागरिक शास्त्र, श्री गांधी इण्टर कॉलेज, ढोटारी, गाजीपुर

विश्व का प्रथम देश था जहाँ पंचायत के सदस्यों को पंच–परमेश्वर कहा जाता था। गाँव के किसी झगड़े या विवाद को हल करने के लिए पंचायत होती थी और उसमें पाँच व्यक्तियों के प्रतिनिधिमण्डल की एक समिति गठित होती थी जो दोनों तरफ के वाद–विवाद को सुनने के बाद अपने फैसले को सुनाती थी जिसे सबको मानना पड़ता था।''[1]

भारत ग्रामों में पंचायतों का प्रचलन प्राचीन काल से ही रहा है। तत्कालीन भारत के लोग स्वयं की विभिन्न समस्याओं का निराकरण सामूहिक दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर करते थे। लोगों में सामूहिक, सामान्य एवं राष्ट्रीय चेतना थी[2] जो प्रायः सभी वर्गों के लोगों में पायी जाती थी। निःसन्देह पंचायत प्रथा की प्राचीनता भारत भूमि की एक अटूट प्राचीन विशेषता है। वैदिक साहित्य में उसे 'सभा' या 'समिति' की संज्ञा दी जाती थी। इसी तथ्य की ओर संकेत करते हुए डॉ0 काशी प्रसाद जयसवाल ने लिखा है, ''आरम्भिक काल में राष्ट्रीय जीवन और उसकी गतिविधियों का उल्लेख तत्कालीन लोकप्रिय सभा और समितियों के माध्यम से प्राप्त होता है।'' उस समय छोटे–छोटे राज्य 'जन' या 'जनपद' कहलाते थे। प्रत्येक जनपद में अनेक 'विश' होते थे जिनका मुखिया 'विशपति' कहलाता था जो ग्राम के श्रेष्ठ और वयोवृद्ध लोगों से सलाह करके अपना काम करता था और यही ग्राम पंचायत का आदिम रूप था। उस समय ग्राम सबसे छोटी इकाई थी और प्रत्येक विश में अनेक ग्राम होते थे और इनका मुखिया ग्रामीण कहलाता था। वैदिक साहित्य में ग्राम से सम्बन्धित मुख्य व्यक्ति ग्रामीण(ग्राम प्रमुख या मुखिया) का उल्लेख हुआ है।[3]

ग्राम का मुखिया 'ग्रामीण' ग्रामाधिपति, ग्रामिक आदि कहलाता था। ग्रामीण का जिस रूप में परिचय प्राप्त होता है वह महत्वपूर्ण है। ग्रामीण की गणना रत्नियों में होती थी। साधारणतया मुखिया ब्राह्मणेत्तर जाति का होता था और सम्भवतः वैदिक काल में क्षत्रिय तथा कभी–कभी महत्वाकांक्षी वैश्य भी मुखिया होता था।[4] आगे चलकर वह केवल ग्राम का प्रभावशाली व्यक्ति रह गया था। मुखिया(ग्राम नेता) को डाकुओं, चोरों एवं राज्य कर्मचारियों से ग्रामवासियों को पिता के समान रक्षा करनी पड़ती थी। ग्राम मुखिया लोगों पर अर्थदण्ड भी लगा सकता था।

रामायण एवं महाभारत काल के साहित्य में भी इस प्रकार की सभाओं एवं समितियों का उल्लेख मिलता है। शासन के केन्द्रीय स्तर पर तत्कालीन समय में बड़े–बड़े साम्राज्यों का वर्णन मिलता है फिर भी प्रशासन की सुविधा की दृष्टि से बड़े–बड़े साम्राज्यों को विभिन्न इकाईयों में विभक्त किया गया था। सबसे छोटी इकाई ग्राम था। जिसके दस ग्राम, विशतिग्राम, शत ग्राम, सहस्रग्राम तथा राज्य थे। इन इकाईयों के अधिकारियों को क्रमशः ग्रामिक, विशतिय, अधिपति व राजा कहते थे इन पदाधिकारियों का कर्तव्य लगान वसूल करना, अपराधियों को दण्डित करना व अपने क्षेत्र में शान्ति बनाये रखना था। आय का प्रमुख साधन प्रजा से वसूल किया जाने वाला कर था।

बौद्धकालीन पंचायत सभाओं के विषय में वर्णन करते हुए डॉ0 डी0 डी0 शुक्ल ने भी लिखा है कि ''बौद्धकालीन गणराज्यों में भी सभा का महत्व कम नहीं था सभा के कार्य बहुमत से होते थे। इस काल में राज्यों में महामात्य, ब्यवहारिक, सूत्रधार, अष्ठकुल, सेनापति, उपराजा आदि पदाधिकारियों का उल्लेख मिलता है और ये पदाधिकारी न्याय व प्रशासनिक दोनों प्रकार के कार्य करते थे।''

पचायतों के महत्व के बारे में प्रो0 अल्तेकर का कहना है कि प्राचीन भारत के गाँवों को जो ये महत्व प्राप्त हुआ उसका कारण संभवतः उस संगठित एकता को माना

जा सकता है जो कि पंचायत संस्थाओं के माध्यम से स्थापित की गयी थी। गाँव के निवासी न्याय, ईमानदारी एवं कार्यकुशलता के साथ इन पंचायतों का संचालन करते थे और बदले में राज्य द्वारा ग्रामीण संस्थाओं को गाँव से सम्बन्धित कार्यों पर पूरी शक्ति प्रदान की जाती थी।

मौर्यकाल में स्थानीय स्वशासन काफी विकसित था। शासन की सुविधा के लिए प्रान्तों के उपविभाग किये गये थे, जो कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के अनुसार इस प्रकार थे। जनपद, द्रोण मुख, स्वार्वतिक, संग्राम तथा ग्राम/जनपद का अधिकारी मुखिया स्थानिक कहलाता था तथा ग्राम का अधिकारी ग्रामिक कहलाता था। इस संदर्भ में डॉ0 सत्यकेतु विद्यालंकार ने लिखा है कि यद्यपि सम्राट गुप्त ने भारत में बहुत बड़ा साम्राज्य पाया था और उसने भारत में एक केन्द्रीय सरकार की स्थापना की परन्तु ग्राम समाज के प्रति अहस्तक्षेप की नीति का पालन किया।

गुप्तकाल में भी स्थानीय प्रशासन प्रायः मौर्यकाल जैसा ही प्रचलित था। हर्ष के शासन काल के बाद विदेशियों ने भारत पर आक्रमण करना प्रारम्भ कर दिया। भारत पर यूनानी, ईरानी, तुर्क, शक, हूण, डच, तुगलक, लोदी, खिलजी, गुलाम और मुगलों के आक्रमण हुए। मुगल और मुसलमान शासन का देश के प्रशासनिक ढाँचे पर अधिक प्रभाव पड़ा। यहाँ की शिक्षा–दीक्षा, आचार–विचार, रहन–सहन और राज्य कार्य पद्धति में परिवर्तन हो गया। प्रान्त जिले व गाँवों को केन्द्र द्वारा नियुक्त सूबेदार, अमील गुजार, मुकादम और पटवारियों के अन्तर्गत रखा जाता था।[5]

राजपूतों के काल में ग्राम पंचायतों का महत्व कम हो गया। उन पर भी सीमान्तों की अधिकार सत्ता छा गयी। सामन्तगण न केवल स्थानीय शासन को ही कम महत्व देते थे बल्कि वे केन्द्रीय शासन से नियंत्रण मुक्त होने का प्रयत्न भी करते रहते थे। ग्राम शासन दक्षिण भारत में जितना संगठित था, उत्तर भारत में उतना नहीं। तत्कालीन शासन(राज्य के विशाल होने पर) प्रान्तों, जिलों, अधिष्ठानों और ग्रामों में विभक्त होता था।

राजपूतों के शासन काल के पश्चात् सल्तनत काल में राज्य की सबसे छोटी इकाई गाँव थी। गाँवों के प्रबन्ध का भार लम्बरदारों, पंचायतों आदि पर था। लम्बरदार शान्ति व्यवस्था बनाये रखता था और भूमिकर एकत्रित करने में सहायता देता था। गाँवों को अपने मामले में काफी स्वतंत्रता मिली हुई थी। भारतीय शासन के मुगलकालीन इतिहास से यह स्पष्ट है कि इस काल में भी देश में स्थानीय शासन विद्यमान था। मुगल साम्राज्य में गाँव शासन की सबसे छोटी इकाई थी, परगने गाँवों में विभाजित थे और गाँव का प्रबन्ध पंचायतें करती थीं।[6] यद्यपि मुसलमान शासकों ने इन पंचायतों के क्षेत्र या अधिकार में किसी प्रकार की वृद्धि नहीं की, फिर भी उन्हें कम करने या नष्ट करने का भी प्रयत्न नहीं किया।

हालांकि स्थानीय स्वशासन भारत वर्ष में अति प्राचीन काल से किसी न किसी रूप में विद्यमान रहा है, फिर भी संगठन कार्यप्रणाली के दृष्टि से उसका व्यवस्थित प्रादुर्भाव ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही हुआ था। स्थानीय शासन की इकाईयों को निर्वाचित स्वरूप देना, उसे करारोपण की विस्तृत शक्तियाँ देना और प्रजातन्त्र की पाठशाला के रूप में विकसित करने का कार्य ब्रिटिश शासन काल में ही हुआ। ग्रामों के विकास की ओर सर्वप्रथम ध्यान 1863 ई0 के 'राजकीय स्वच्छता आयोग' की रिपोर्ट के बाद दिया गया। इस रिपोर्ट में भारतीय गाँवों की साफ–सफाई सम्बन्धी दुर्दशा के बारे में बताया गया था और कहा गया था कि स्वच्छता की ओर ध्यान देना आवश्यक है। इसके पश्चात् विभिन्न राज्यों में ग्रामीण स्वच्छता अधिनियम पारित किये गये।

1870 ई0 में स्थानीय स्वायत्त शासन के विकास में एक महत्वपूर्ण प्रगति हुई। इस वर्ष लार्ड मेयो के विकेन्द्रीकरण प्रस्ताव में इस बात पर बल दिया गया कि भारतीयों को प्रशासनिक कार्यों में अधिकतम सहभागिता देने की दृष्टि से स्थानीय प्रशासन की इकाईयों का विकास किया जाय। उसका मूल उद्देश्य साम्राज्यीय वित्तीय भार को हल्का करना था। 1882 के लार्ड रिपन के प्रस्ताव में भारतीय शासन को वास्तविकता एवं व्यावहारिकता के निकट लाने का प्रयास किया गया।

सन् 1919 में मान्टेस्क्यू चेम्सफोर्ड द्वारा भारतीय शासन अधिनियम बनाकर स्थानीय शासन को प्रजातांत्रिक पद्धति के और निकट लाने के प्रयास में स्थानीय शासन को प्रान्तों के निर्वाचित मंत्रियों के अधीन कर दिया गया। आगे चलकर 1935 में भारत सरकार अधिनियम के पारित होने के बाद प्रान्तीय स्वायत्तता की स्थापना हुई। यह अधिनियम 1937 में लागू हुआ जिससे प्रान्तों में लोकतंत्रीय मन्त्रिमण्डलों का निर्माण हुआ तथा देहाती क्षेत्रों में पंचायतों का निर्माण होने लगा और स्थानीय स्वशासन की संस्थाओं को अधिकाधिक लोकतंत्रीय बनाये जाने की चेष्टा की गयी।

1947 में ही स्वतंत्रता प्राप्ति के पश्चात् भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का नवयुग प्रारम्भ हुआ। पुरानी पंचायतों को नये सिरे से पुनर्जीवित करने के कार्य प्रारम्भ किये गये। संविधान निर्मात्री सभा के अनुभव के अनुसार देश के पचास लाख सैंतीस हजार गाँवों का शासन दिल्ली से कर पाना संभव नहीं था। क्योंकि सत्ता कुछ हाथों में या फिर एक ही हाथों में केन्द्रित हो जाने पर जो स्वेच्छाचारिता पनपती उससे लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था का गला घूँट जाता और लोगों की इच्छाओं का हनन होता।

संविधान निर्माता इस तथ्य से भली–भाँति अवगत थे कि चूँकि देश की ज्यादातर जनता गाँवों में निवास करती है। इसलिए ग्रामीण स्थानीय संस्थाओं के बारे में संविधान के नीति निर्देशक तत्वों में विशेष चर्चा की गयी है। संविधान के इस भाग में कहा गया है कि राज्य ग्राम्य पंचायतों का गठन करेगा और उन्हें इस प्रकार की शक्तियाँ देगा कि वे स्थानीय स्वायत्त शासन की इकाईयों के रूप में अच्छी प्रकार काम कर सकें। स्वतंत्र भारत में स्थानीय स्वायत्त शासन का जो ढाँचा अपनाया गया है उसे मूल रूप से ब्रिटिश शासन की देन या विरासत माना जा सकता है।[7]

पंचायती राज के क्षेत्र में विशेष प्रगति 1952 के सामुदायिक विकास कार्यक्रम से प्रारम्भ हुई। इस कार्यक्रम के अधीन ग्रामीणों के सहयोग से सरकार ने विकास योजनाएँ बनायी थी। इससे उत्तरदायित्व की भावना का विकास तथा लोगों के उचित दिशा में काम करने की योजना को बल मिला। 1953 में राष्ट्रीय प्रसार सेवा को प्रारम्भ किया गया। सामुदायिक विकास के प्रशासन का उत्तरदायित्व नियमित रूप से नौकरशाही को ही सौंप दिया गया था। परन्तु संगठनात्मक ढाँचे में हेर–फेर कर दिया गया। इस बात को ध्यान में रखा गया कि ग्राम स्तरीय कायकर्ता और खण्ड विकास अधिकारी दोनों का नीति निर्धारण में समन्वय बना रहे। नागरिकों के भी साझेदारी की व्यवस्था थी।

सन् 1956 में भारत सरकार ने पंचायती राज व्यवस्था में सुधार को संज्ञान में रखते हुए बलवन्त राय मेहता की अध्यक्षता में एक समिति नियुक्त की। इस समिति की स्थापना आयोजक परियोजना समिति(कमेटी ऑन प्लान प्रोजेक्ट) में सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय प्रसार सेवा का अध्ययन करके प्रतिवेदन प्रस्तुत करने के लिए की गयी थी। इसलिए इसका पूरा नाम 'सामुदायिक परियोजनाओं तथा राष्ट्रीय विकास सेवा का अध्ययन दल' है। मेहता समिति ने देश भर के चुने हुए ब्लाकों, स्थानीय जनता, स्थानीय अधिकारियों, जिला स्तरीय अधिकारियों, प्रतिनिधियात्मक संगठनों के प्रति प्रतिनिधियों, विभागों के अध्यक्षों और विकास विभाग के सरकारी सचिवों से

बातचीत की और सुझाव दिया कि जनसाधारण से सक्रिय तथा लगातार योगदान एवं नौकरशाही तथा स्थानीय शासन का नियंत्रण रखने के उद्देश्य से लोकतांत्रिक संस्थाओं के विकेन्द्रीकरण पर विशेष बल दिया जाय जिससे जनता स्वयं निर्णय ले सके। और इसको प्राप्त करने की दिशा में त्रिस्तरीय व्यवस्था का सुझाव दिया जो ग्राम स्तर, ब्लाक स्तर तथा जिला स्तर पर पूर्ण रूप से निर्वाचित इकाइयाँ होनी चाहिए।

किन्तु मेहता समिति के प्रतिवेदन के बाद भी पंचायती राज व्यवस्था को वह आयाम नहीं प्राप्त हो सका जिसकी प्राप्ति हेतु उक्त समिति ने अपनी आख्या प्रस्तुत की थी क्योंकि पंचायती राज व्यवस्था को राज्यों ने अपनाया तो जरूर किन्तु इसकी सीमाओं के बारे में अन्तर थे जहाँ अधिकांश राज्यों ने त्रिस्तरीय व्यवस्था अपनायी वहीं जम्मू–काश्मीर, मध्य प्रदेश तथा उड़ीसा ने द्विस्तरीय व्यवस्था अपनायी तथा केरल ने मात्र एक स्तर(ग्राम स्तर) पर ही पंचायत राज व्यवस्था को अपनाया। इसी प्रकार पंचायत संस्थाओं के नामों में भी अन्तर थे। कुछ राज्यों ने ग्राम, खण्ड तथा जनपद स्तर इकाइयों को क्रमशः ग्राम पंचायत, पंचायत समिति तथा जिला परिषद कहा जबकि अन्य राज्यों जैसे गुजरात में खण्ड स्तर संस्थाओं को ताल्लुक पंचायत कहा गया। जम्मू तथा काश्मीर में खण्ड प्रचायत बोर्ड, कर्नाटक में ताल्लुक विकास बोर्ड़, मध्य प्रदेश में जनपद पंचायत तथा तमिलनाडु में पंचायत संघ इत्यादि।

अगर कार्यकाल की दृष्टि से देखा जाय तो उसमें भी विभिन्न राज्यों में भिन्नताएँ थीं। जहाँ कुछ राज्यों ने 5 वर्ष का कार्यकाल अपनाया वहीं असम, कर्नाटक, पंश्चिम बंगाल ने 4 वर्ष का कार्यकाल रखा जबकि बिहार ने केवल 3 वर्ष का। इस प्रकार हम कह सकते हैं कि भारत सरकार ने पंचायतों के विकास को ध्यान में रखकर जो समिति गठित किया वह बहुत सार्थक नहीं रही। चूँकि तत्कालीन राजनीतिज्ञों तथा सरकार में भागीदार लोगों को इस बात का विश्वास था कि सुदृढ़ और सबल भारत के निर्माण में स्थानीय स्वशासन का बहुत महत्वपूर्ण योगदान है।

समय–समय पर इस संदर्भ में गठित विभिन्न समितियों ने अपनी सिफारिश केन्द्र सरकार को सौंपी जिसमें पंचायती राज व्यवस्था के विकास के लिए विभिन्न सुझाव दिये जैसे अशोक मेहता समिति ने पंचायतों को और अधिकार देने की बात कहते हुए राज्यों को द्विस्तरीय पंचायती व्यवस्था अपनाने की सलाह दी तथा राव समिति और सिंघवी समिति ने पंचायती संस्थाओं के प्रतिनिधि स्वरूप में सुधार करते हुए उसे संवैधानिक मान्यता प्रदान करने की बात की। किन्तु इन समितियों के प्रतिवेदन का अगर भौतिक सत्यापन किया जाय तो कहा जा सकता है कि किसी भी समिति ने पंचायती राज व्यवस्था के सभी पहलुओं का अध्ययन नहीं किया किन्तु इतना अवश्य ही कहा जायेगा कि इनके सुझावों ने संविधान में संशोधन की एक आधारशिला तैयार की जिसके फलतः भारतीय संविधान में 73वाँ संवैधानिक संशोधन 1990 पारित किया गया जिसने भारत में पंचायती राज व्यवस्था को एक नया स्वरूप प्रदान करते हुए उन्हें स्थानीय स्तर पर एक मजबूत, लोकोपयोगी, संस्था बनकर उभरने का अवसर प्रदान किया। इस संशोधन ने पंचायतों को उनके गठन, कार्यकाल, अधिकार, निर्वाचन, वित्तीय स्रोतों की स्पष्ट व्यवस्था की।

73वें संशोधन के पूर्व पंचायतों की प्रमुख समस्या यह थी कि उनके पास कार्य तो थे लेकिन उनको करने के लिए धन के स्रोत बहुत कम थे। जिसको 73वें संशोधन द्वारा बहुत हद तक दूर करते हुए करों, शुल्कों, मार्ग कर तथा फीस आरोपित करने, एकत्र करने तथा विनियोजित करने की शक्ति प्रदान कर दी गयी है। साथ ही अनु0 243 एच के तहत राज्यों के संचित कोष से पंचायतों को सहायक अनुदान देने की व्यवस्था भी की गयी है।

वर्तमान में पंचायती राज व्यवस्था को संवैधानिक मान्यता प्राप्त है। पूरे देश में कुछ अपवादों को छोड़कर वह भी उन राज्यों को जिनकी जनसंख्या 20 लाख से कम है, पंचायतों का त्रिस्तरीय स्वरूप अपनाया गया है तथा पंचायतों का लोकतंत्रीकरण करते हुए इसके गठन में होने वाले निर्वाचन में सभी स्तरों पर सीधे जनता द्वारा वयस्क मताधिकारों की व्यवस्था की गई है साथ ही पूरे देश में पंचायतों के कार्यकाल की सुरक्षा एवं निरन्तरता की व्यवस्था करते हुए पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष निर्धारित कर दिया गया है। कार्यकाल के पूर्ण होने से पूर्व ही नये निर्वाचन का उपबन्ध भी संविधान में उल्लेखित कर दिया गया है। यदि कोई पंचायत राज संस्था अपने निर्धारित अवधि से पूर्व विघटित कर दी जाती है तो 6 माह के भीतर नये निर्वाचन कराना आवश्यक है। इसके अतिरिक्त दुर्बल वर्ग के लोगों एवं महिलाओं को पंचायती संस्थाओं में स्थान देने के उद्देश्य से उनके आरक्षण का प्रबन्ध भी भारतीय संविधान में समाहित किया गया है।

जनतंत्र की सफलता स्थानीय संस्थाओं की प्रगति तथा सफल संचालन पर निर्भर होती है, ''प्रजातंत्रीय सरकार जनता की होती हैं, जनता के लिए होती हैं, और जनता के द्वारा ही चुनी जाती हैं'' यह आदर्श सही मायने में स्थानीय शासन के माध्यम से ही साकार रूप धारण करता है। वास्तव में स्थानीय निकायों का जन साधारण के जीवन से इतना घनिष्ट सम्बन्ध रहता है कि वे जीवन की प्रमुख आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सदैव प्रयासशील रहती हैं। प्रारम्भिक शिक्षा, स्वास्थ्य, सफाई, पानी, बिजली का प्रबन्ध तथा स्थानीय सड़कों का निर्माण एवं उनकी देख–भाल इन संस्थाओं का मुख्य कार्य होता है। प्रजातंत्रीय स्वशासन तथा प्रशासन कला एवं जन साधारण में नागरिकता की भावना पैदा करने की स्थानीय निकायें प्रशिक्षण केन्द्र होती हैं अर्थात स्थानीय निकायें ही वह प्राथमिक पाठशालाएँ हैं, जिससे एक आम नागरिक भारतीय राजनैतिक, प्रशासनिक स्वरूप को देखकर अपने आपको इस व्यवस्था का हिस्सा बनाता है।

यदि हम नगरीय परिदृश्य में चल रही स्थानीय निकायों की व्यवस्था को देखें तो यह स्पष्ट रूप में दिखाई देता है कि आज का स्थानीय निकायों का प्रशासन पुराने काल से आया है। प्राचीन भारत में विभिन्न प्रकार की स्थानीय नगर स्तरीय नगरपालिका सरकारें व ग्राम स्तरीय पंचायत सरकारें शासन कर रही थीं। उस समय ये छोटे गणराज्यों के समान कार्य करती थीं। उनके अधिकारों की प्रकृति अत्यधिक विस्तृत थी, जिनके अन्तर्गत औद्योगिक, वाणिज्यिक, प्रशासनिक, सामाजिक तथा यहाँ तक कि धार्मिक क्रियाकलाप भी आते थे।

इसलिए अगर भारत में पंचायती राज व्यवस्था अर्थात् स्वशासन के बारे में निष्कर्ष रूप में कहा जाय तो यह कहा जा सकता है कि वर्तमान समय में पंचायती राज संस्थाओं एवं स्थानीय निकायों को समुचित अधिकार प्रदान करके इन्हें अपने अधिकार क्षेत्र में रहने वाली भारत की ग्रामीण एवं नगरीय जनसंख्या के हितों की रक्षा करते हुए जनमानस को राष्ट्र के प्रति कर्तव्यों एवं दायित्वों के लिए जागरूक करने का पूरा अवसर उपलब्ध कराने की शक्ति दी गयी है जिससे विश्व में भारत की एक मजबूत, शक्तिशाली, सक्षम राष्ट्र की छवि निर्मित हो सके।

सन्दर्भ :

1. अवस्थी एवं महेश्वरी :लोकप्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2008
2. डॉ0 बी0 एल0 फाड़िया : भारतीय लोकप्रशासन, साहित्य भवन पब्लिकेशन, आगरा, 2009

3. डॉ0 के0 पी0 जायसवाल, हिन्दू राजनीति–हिन्दुओं के समय में भारत का संवैधानिक इतिहास, बंगलौर ।
4. डॉ0 के0 पी0 जायसवाल, हिन्दू राजनीति–हिन्दुओं के समय में भारत का संवैधानिक इतिहास, बंगलौर।
5. अशोक शर्मा : भारत में स्थानीय प्रशासन, आर0 वी0 एस0 ए0 पब्लिशर्स, जयपुर
6. अवस्थी एवं महेश्वरी :लोकप्रशासन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 2008
7. अशोक शर्मा : भारत में स्थानीय प्रशासन, आर0 वी0 एस0 ए0 पब्लिशर्स, जयपुर

***

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में गांधी शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता और नई शिक्षा नीति-2020

संजय कुमार भारती *

शिक्षा का जन्म मानव के साथ हुआ। मानव ने वातावरण के प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अनेक अनुभव प्राप्त किये तथा बाद में उन अनुभवों को व्यवहार के कुछ सामान्य सिद्धान्तों में परिवर्तित कर आने वाली पीढ़ी को सौंप दिया। इस प्रकार औपचारिक शिक्षा का जन्म हुआ, जिसे मानव अपने परिवार के सदस्यों के साथ रहकर प्राप्त करता था। उस समय जीवन अत्यन्त सरल था। अतः शिक्षा भी जटिल नहीं थे, लेकिन धीरे–धीरे ज्ञान और जनसंख्या में वृद्धि होने के साथ–साथ मानव का वातावरण जटिल होता गया। शिक्षा ने आज औद्योगिक विकास, आर्थिक संरचना, राजनीतिक जीवन, सामाजिक पुर्ननिर्माण और व्यक्तित्व के विकास को एक दूसरे से इस तरह सम्बद्ध कर दिया है कि कुछ समय पहले तक इसकी कल्पना भी नहीं की जा सकती थी। किन्तु कोई भी शिक्षा राष्ट्र की परंपरा एवं प्रतिभा के अनुकूल होनी चाहिए। जिसका निर्धारण उस समाज की आवश्यकता एवं जीवन दर्शन के आलोक में किया जाना चाहिए। इस अध्याय में शिक्षा की संकल्पना क्या है। शिक्षा तथा दर्शन का सम्बन्ध क्या है तथा समाज से शिक्षा कैसे प्रभावित होता है, भारत में शिक्षा का विकास क्रम प्रस्तुत किया जा रहा है।

शिक्षा एक मानवीय प्रयास है। इसका सम्बन्ध मानवीय व्यक्तित्व के विभिन्न पक्षों–बुद्धि, भावना और विवेक से तो है ही, साथ ही यह मनुष्य को इस योग्य भी बनाती है कि वह समाज में चिरकाल से पोषित परम्पराओं से अपना सामंजस्य स्थापित कर सके ।

शिक्षा एक गतिशील प्रक्रिया है। प्रगतिशील दृष्टिकोण वाला कोई भी समाज उस शिक्षा पद्धति को स्वीकार नहीं कर सकता जो समय के साथ बंधी हो। शिक्षा को जीवन के साथ जोड़कर ही देखा समझा जा सकता है। शिक्षा व्यवसाय को समाज के इस योग्य बनाना होगा कि आवश्यकता पड़ने पर वह सामाजिक तथा आर्थिक असुरक्षा को कम कर सके और व्यावसायिक गतिशिलता को सु.ढ़ कर सके। शिक्षा को अवसर प्रशस्त करने का मार्ग समझा जाता है, फिर भी यदि शिक्षा को एक प्रक्रिया मान लिया जाय तो इसके तीन प्रमुख कार्य होंगे। प्रथम इसे विश्वव्यापी होना पड़ेगा जिसमें सभी प्रकार सभी स्तर की शिक्षा आ सके। दूसरे सामाजिक प्रगति के समय प्रयास में मानव संसाधन विकास के एक पूंजी निवेश के रूप में अन्य सामाजिक आर्थिक विकास में "एकीकृत" होना होगा। तीसरे इसे "आजीवन" बनाना होगा, अर्थात् हर आयु में तथा सभी स्थितियों और परिस्थितियों में इसे कार्य व्यवहार में लाना होगा। शिक्षा का एक प्रमुख गुण विकास है, अर्थात् मानव व्यक्तित्व का विकास जिसमें तीन बातें प्रमुख हैं। प्रमुख शिक्षा का निम्नतम स्तर के अध्ययन से उच्चतम स्तर के अध्ययन तक सैद्धान्तिक, प्रौद्योगिक, व्यावहारिक और शारीरिक श्रमयुक्त होना चाहिए जिससे जीवन के सभी चरणों पर सामाजिक योगदान में व्यक्ति की क्षमता बनी रहे। दूसरे, शिक्षा का राष्ट्रीय विकास के अभिन्न अंग के रूप में देश की सामाजिक एवं आर्थिक वृद्धि लाने में भारी महत्व है। तीसरे प्रत्येक राष्ट्र को शिक्षा के माध्यम से मानव सम्बन्ध विज्ञान को आगे बढ़ाना चाहिए ताकि सभी देशों के लोग शांति, सौहार्द्र तथा धैयपूर्वक इस दुनिया में एक साथ रहने तथा मिल–जुल कर काम करने के योग्य बन सकें।

---

* प्रवक्ता, हिन्दी, श्री गांधी इण्टर कॉलेज, ढोटारी, गाजीपुर

शिक्षा की चौथी विशेषता, जिसका मानव विकास का निकट सम्बन्ध है अर्थात् शिक्षा के एजेन्ट को मानव विकास के लिए क्रिया प्रदान करनी चाहिए। "वस्तुतः शिक्षा वह साधन है जिससे मनुष्य से विशेष रूप धारण करता है। शिक्षा से ही मानव सुसंस्कृत बनता है, जीवन पथ को सुगम बनाने में शिक्षा सु.ढ़ सोपान है। इसी के आधार पर हमारा लौकिक तथा पारलौकिक जीवन समुन्नत एवं समृद्ध हो सकता है। शिक्षा के द्वारा मनुष्य का विवेक जागृत होता है और तब कहीं वह गुण व दोष का भेद सुबोध कर पाता है। विवेक के आलोक में अपनी शक्ति का सदुपयोग करना ही शिक्षा का परम उद्देश्य है।

गांधीजी का शिक्षा दर्शन :

हमारे राष्ट्रपिता महात्मा गांधी को बीसवीं सदी का युगपुरुष भी कहा जाता है। उनका जीवन आदर्शों एवं मूल्यों पर पूर्ण रूप से आधारित था, वे प्रयोजनवाद के विचारों से गहरे प्रभावित थे। दुनिया भर में आज गांधीजी को महान नेता एवं समाज सुधारक के साथ साथ शिक्षा दार्शनिक के रूप में भी जाना जाता है। उनका मानना था कि समाज की उन्नति में शिक्षा की महत्वपूर्ण भूमिका है।

शिक्षा के प्रति इनकी विशेष सोच थी, जो कालान्तर में गांधीजी के शिक्षा दर्शन के रूप में जानी जाती है। वे शिक्षा के माध्यम से शोषणविहीन समाज का निर्माण करना चाहते थे। जहाँ किसी तरह जाति, वर्ग, लिंग का भेद न हो, सभी समरसता के साथ जी सके। उनका मानना था कि समाज के प्रत्येक सदस्य का शिक्षित होना जरुरी है, शिक्षा के बगैर एक आधुनिक समाज का सपना असम्भव ही है।

गांधीजी का शिक्षा दर्शन बेहद व्यापक एवं जीवनोपयोगी है। उन्होंने शिक्षा के मुख्य सिद्धातों, उद्देश्यों तथा शिक्षा की योजना को मूर्त रूप देने का प्रयत्न किया। गांधीजी का आधुनिक शिक्षा दर्शन उन्हें समाज में एक शिक्षाशास्त्री का दर्जा दिलवाता है। उन्होंने बुनियादी शिक्षा के क्षेत्र में जो योगदान दिया, वह अद्वितीय था।

भारत में शिक्षा को स्वावलंबी बनाने की दिशा में उन्होंने 3H की अवधारणा प्रस्तुत की, गांधी जी का मानना था कि बच्चों को हार्ट, हैण्ड और हेड (भावात्मक, गत्यात्मक और बौद्धिक) शिक्षण कराया जाना चाहिए। जिसमें ये तीनों अंग सक्रिय हों। देश को मजबूत और आत्मनिर्भर बनाने में शिक्षा एक महत्वपूर्ण साधन है जिसकी मदद से हम देश को स्वावलम्बी बना सकते हैं।

गांधीजी ने लम्बे समय तक भारतीय शिक्षा का अध्ययन किया और अंत में इस परिणाम पर पहुँचे कि शिक्षा समाज आधारित हो चुकी है, जिसमें सरकार की कोई भागीदारी नहीं रही है। वे भारतीय शिक्षा को एक सुंदर वृक्ष (ब्यूटीफुल ट्री) की संज्ञा देते थे।

डॉक्टर धर्मपाल प्रसिद्ध गांधीवादी शोधकर्ता रहे हैं जिन्होंने गांधीजी द्वारा भारतीय शिक्षा को लेकर कहे गये 'द ब्यूटीफुल ट्री' को लेकर अपना शोध आरम्भ किया। उन्होंने अंग्रेजी दौर और उससे पूर्व के शिक्षा से जुड़े दस्तावेजों को खंगाला। वे भारत व ब्रिटेन में भारतीय संग्रहालयों और ग्रंथालयों से ब्रिटिशकालीन शिक्षा से जुड़े स्रोत खोजते रहे। उनके शोध का निष्कर्ष यह था, ब्रिटिश सरकार ने भारत को न केवल औद्योगिक बल्कि साहित्यिक, नैतिक, सांस्कृतिक और आध्यात्मिक रूप से भी खोखला बना दिया था। मैकाले की शिक्षा पद्धति ने गोरी मानसिकता के गुलामों को जन्म दिया, अंग्रेजी शिक्षा के चलते ही यहाँ कुछ घराने भारत के भाग्य निर्माता बन पाए।

महात्मा गांधी का शिक्षा दर्शन में गांधी जी ने शिक्षा को 3R और 3H की संज्ञा दी थी 3R से उनका आशय Reading, Writing, Arithmetic से था, अर्थात (अंको का

ज्ञान)और 3H से उनका आशय Hand, Head, Heart से था अर्थात उनके अनुसार शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जो बालक का शारीरिक, मानसिक और बौद्धिक विकास करें।

गांधी शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता

प्रायः पाठशालाओं को ही समाज का लघु रूप माना जाता है। समाज पाठशालाओं के माध्यम से अपनी संस्कृति को सुरक्षित रखता है। अतः शिक्षा का स्वरूप ऐसा होना चाहिए जिससे राष्ट्रीय ध्येय प्राप्त किये जा सके। गांधी जी का कहना था कि समस्त ज्ञान का उद्देश्य होना चाहिए– चरित्र निर्माण अर्थात् बालक की शारीरिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक शक्तियों का सामंजस्यपूर्ण विकास करना।

किसी देश के विकास के लिए उस देश में रहने वाले व्यक्तियों का चरित्र अच्छा होना चाहिए तथा उनमें आत्म चिन्तन की भावना होनी चाहिए तभी वह नैतिकता की बात कर सकते हैं और राष्ट्र के बारे में सकारात्मक चिन्तन कर सकते हैं। आज का मनुष्य दिग्भ्रमित हो गया है। इसलिए उसे ऐसी शिक्षा की आवश्यकता है जो उन्हें आत्मबल प्रदान कर सके।

समाज में फिर से सत्य, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, अस्वाद, अपरिग्रह और निर्भयता आदि गुणों का संचार करना आवश्यक हो गया है जिससे वे अपनी पुरानी संस्कृति को भावी पीढ़ी तक पहुँचा सकें । शिक्षा का उद्देश्य जीविकोपार्जन होना चाहिए। यह गांधी के विचार आज भी ध्रुव सत्य है। बल्कि प्रत्येक देश में शिक्षा का स्वरूप ऐसा बनाया जाना चाहिए कि वह इस बुनियादी समस्या से निजात पा सके।

गांधी जी पाठ्यक्रम में साहित्यिक, वैज्ञानिक, कलात्मक तथा रचनात्मक विषयों को पढ़ाये जाने के पक्ष में थे। प्रस्तुत विज्ञान के विषय में उनका कहना था कि इसका उद्देश्य रचनात्मक होना चाहिए न कि ध्वंसात्मक। आज पूरा मानव समाज जहाँ विज्ञान के प्रयोग से एक तरफ विकसित, सुव्यवस्थित, अत्याधुनिकतम भौतिक वस्तुओं का उपभोग कर अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त कर रहा है वहीं विज्ञान का एक दूसरा पक्ष मानव सभ्यता के लिए अभिशाप बना हुआ है, जिसका ज्वलन्त उदाहरण हिरोशिमा व नाकाशाकी है।

गांधी जी की दृष्टि से अध्यापक को समाज का आदर्श व्यक्ति, ज्ञान का पुंज और सत्य आचरण करने वाला होना चाहिए। आज शिक्षा को एक उद्योग की दृष्टि से देखा जा रहा है, जहाँ शिक्षक व प्रबन्धक का मुख्य ध्येय अर्थ प्राप्त करना हो गया है। सबसे ज्वलन्त समस्या पाठ्यशालाओं में दोहरी शिक्षण व्यवस्था की है। बालक आधुनिक शिक्षण व्यवस्था द्वारा निर्मित भव्य गृहों और कृत्रिम पर्यावरण में शिक्षा प्राप्त कर रहे हैं।

विद्यालय ऐसी शालायें होनी चाहिए, जहाँ अध्यापक सेवा भाव से पूर्ण निष्ठा के साथ शिक्षण कार्य करें और विद्यार्थियों को इस योग्य बना दें जिससे वे आर्थिक दृष्टि से आत्म निर्भर हो सकें। ऐसी भावना से ही रचनात्मक व रोजगारोन्मुखी शिक्षा के लक्ष्य को प्राप्त किया जा सकता है। सरकार को चाहिए कि सबके लिए समान शिक्षण की व्यवस्था करें जिससे छात्रों में हीनता का भाव पैदा न हो तथा शिक्षण व्यवस्था के अभाव में उनकी मौलिकता तथा नैसर्गिकता का लोप न हो सके।

किसी भी उद्देश्य की प्राप्ति आत्म अनुशासन व आत्म नियंत्रण के बगैर नहीं हो सकती। आज के बालक को अच्छे अनुकरण द्वारा ही उच्च आदर्श एवं उच्च आचरण को सिखाया जा सकता है। गांधी जी शारीरिक दण्ड के विरूद्ध थे ।

आज के युग में नारी शक्ति एक महान शक्ति के रूप में उभर रही है। इन्हें यदि समान रूप से शिक्षा प्राप्त हुई तो समाज को एक नई दिशा दे सकती है। स्त्रियों को अपने जीवन में कई भूमिका निभानी पड़ती है। अतः इन्हें शिक्षित करना प्रत्येक समाज का आज प्रथम कर्तव्य हो गया है, यह बात गांधी जी ने पांच दशक पहले ही कही थी ।

अधिकांश विकसित देशों में शिक्षा का माध्यम मातृ भाषा ही रहा है क्योंकि इससे राष्ट्रीयता की भावना जहाँ एक तरफ मजबूत होती है वहीं एक क्षेत्र व समाज का, दूसरे क्षेत्र व समाज को समझने में आसानी रहती है साथ ही साथ परोपकार की भावना का भी विकास होता है। हमारे देश में हमेशा एक ऐसी भाषा की आवश्यकता रही है जो विभिन्न क्षेत्रों, समुदायों और संस्कृतियों को एक धागे में बांध सके। गांधी जी शिक्षा का माध्यम मातृभाषा (हिन्दी) को बनाने की वकालत कर चुके हैं जो हमारे लिए अपरिहार्य बन चुका है। नई शिक्षा नीति में इस पर विशेष ध्यान दिया गया है।

नई शिक्षा नीति 2020

स्वतन्त्रता मिलने के साथ ही हमारे ऊपर नए उद्देश्य, नई मांगें और नए दायित्व आ गए। स्वतंत्रता के पूर्व देश के सामने सबसे बड़ी चुनौती व्यापक निरक्षरता की थी। जिसके लिए प्रारम्भिक शिक्षा के सार्वजनीकरण पर बल दिया गया, जिसका अर्थ है विद्यालय जाने वाले आयु के सभी बच्चों को उनकी सामाजिक–आर्थिक परिस्थितियों अथवा भौगोलिक निवास स्थानों का विचार किए बिना प्रारम्भिक शिक्षा उपलब्ध कराना। इसके साथ ही भारत के संविधान में 14 वर्ष तक की आयु के सभी बच्चों के लिए निःशुल्क और अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है। भारत में शिक्षा के गुणात्मक एवं मात्रात्मक सुधार के लिए समय–समय पर अनेक अयोगों की स्थापना की गई। जिसमें राधाकृष्णन आयोग 1948–49 (उच्च शिक्षा) मुदालियर आयोग 1952–53 (माध्यमिक शिक्षा), कोठारी आयोग 1964–66 (शिक्षा आयोग), नई शिक्षा नीति (1986), राममूर्ति समिति 1990, यशपाल समिति 1992–93 इन समितियों की स्थापना शिक्षा में सुधार करने के लिए गठित किया गया। सुधार की दृष्टि से नई शिक्षा नीति 2020 को लागू किया गया है।

नई शिक्षा नीति, 2020 के तहत 3 साल से 18 साल तक के बच्चों को शिक्षा का अधिकार कानून, 2009 के अंतर्गत रखा गया है। 34 वर्षों पश्चात् आई इस नई शिक्षा नीति का उद्देश्य सभी छात्रों को उच्च शिक्षा प्रदान करना है जिसका लक्ष्य 2025 तक पूर्व–प्राथमिक शिक्षा (3–6 वर्ष की आयु सीमा) को सार्वभौमिक बनाना है।

शिक्षा देश की विकास प्रक्रिया का अभिन्न अंग है। इसलिए इसे उच्च प्राथमिकता दी गई है। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद Scanned with CamScanner प्रयासों से साक्षरों की संख्या में कई गुनी वृद्धि हुई है। इस दौरान विद्यालयों की संख्या में निरन्तर वृद्धि हुई है। शैक्षिक सुविधाओं में संख्यात्मक वृद्धि के साथ–साथ अब गुणात्मक सुधार पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है । 1976 के पहले शिक्षा पूरी तरह राज्य सरकारों की जिम्मेदारी थी। केन्द्र सरकार केवल तकनीकी तथा उच्च शिक्षा के मामले में ताल–मेल तथा स्तर निर्धारण आदि विशेष क्षेत्रों को देखती थी। सन् 1976 में संविधान में संशोधन करके, शिक्षा को केन्द्र और राज्य दोनों की जिम्मेदारी का विषय बना दिया गया है।

विभिन्न योजनाओं के माध्यम से शैक्षिक गतिविधियों के स्तर और श्रेष्ठता में सुधार लाने का प्रयास किया गया ताकि विज्ञान और टेक्नोलॉजी नए–नए क्षेत्रों की चुनौतियों का सामना किया जा सके। विभिन्न अवसरों पर व्यावसायिक शिक्षा के अवसर व्यापक किए जा सके और देश के अधिकाधिक लोगों को ऐसे अवसर जुटाने के लिए शैक्षिक ढाँचे को नया स्वरूप दिया जाए।

आपरेशन ब्लैक बोर्ड नाम का कार्यक्रम पहले ही चलाया जा रहा है जिसका उद्देश्य प्राथमिक विद्यालयों में बुनियादी सुविधाएँ जुटाना और एक ही अध्यापक वाले विद्यालयों में दूसरे अध्यापक की व्यवस्था करना है। बीच में विद्यालय छोड़ देने वाले कामकाजी बच्चों और स्कूल न जा पाने वाले बच्चों के लिए चलाए गए अनौपचारिक शिक्षा कार्यक्रम का विस्तार किया गया है। हर स्तर पर खुली शिक्षण प्रणालियों को

बढ़ावा दिया जा रहा है। महिलाओं की शिक्षा विशेष महत्व का क्षेत्र है और इसके साथ ही अनुसूचित जातियों, जनजातियों तथा पहाड़ी इलाकों के लोग की शिक्षा को खासतौर से बढ़ावा दिया जा रहा है। व्यावसायिक शिक्षा को और आकर्षक बनाने के लिए आवश्यक सुधार किए जायेंगे जहाँ डिग्री की विशेष जरूरत नहीं है, वहाँ उसे रोजगार की पूर्व शर्त या अनिवार्य योग्यता मानने पर जोर नहीं दिया जायेगा ।

लेकिन हमारे देश में अभी भी बड़ी संख्या में लोग निरक्षर है। 2011 के जनगणना के अनुसार 74.04 प्रतिशत साक्षरता है, जबकि 2001 में साक्षरता प्रतिशत था; इसकी तुलना करने पर हम चैन की सांस ले सकते हैं।

गांधी के शिक्षा दर्शन की सम्यक विश्लेषण यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि गांधी ने "शिक्षा" और व्यक्ति के "जीवन" की "गुणात्मक" को एक दूसरे का पर्याय माना है। गांधी का मानव महात्मा का प्रतिनिधि था। तात्पर्य यह है कि गांधी ने व्यक्ति की सर्वोच्च नैतिकता के विकास की उपकरण के रूप में शिक्षा को स्वीकार किया था। इसके साथ ही साथ यह भी सत्य है कि गांधी के प्रतिमान का मानव नैतिकता के श्रेष्ठतम मूल्यों का सहज एवं नैसर्गिक प्रक्रियाओं के माध्यम से प्राप्त कर सकता है। स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि स्वावलंबी, सच्चरित्र, विनयशील, करुणायुक्त, दयावान, अहिंसक, सह–अस्तित्ववादी, सहकार माप परमार्थी, लोक कल्याणकारी आदि गुणों से युक्त मानव का निर्माण शिक्षा ही कर सकती है, जिसका सर्वाधिक प्रयोग गांधी के व्याख्यानों, लेखों, टीकाओं आदि में मिलता है।

गांधी के प्रतिमान के अनुसार मानव के निर्माण में सांस्कृतिक परिवेश के साथ ही साथ अतीत की अन्य महत्वपूर्ण सामाजिक, दार्शनिक, राजनैतिक परम्पराओं को उपयुक्त महत्व देना था। इसी कारणवश गांधी ने अपने शिक्षा दर्शन में "श्रम एवं बुद्धि को युग्मित किया था अर्थात् मन और हृदय को एक दूसरे के करीब लाने का पूरा प्रयास किया था।

संदर्भ :

1. एस०के० अग्रवाल – शिक्षा के तात्विक सिद्धान्त, राजेश पब्लिशिंग हाउस, मेरठ, 1998.
2. कृपलानी, जीवन राय, भगवान दास – महात्मा गाँधी जीवन और चिन्तन सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, 1978.
3. एस०पी० चौबे – ग्रेट इंडिया एजूकेशन फिलासफर, विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा, 1987.
4. यशपाल जैन – गाँधी चिंतन, सस्ता सा० मण्डल, नई दिल्ली – 1987
5. रविकांता चोपड़ा– उभरते भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा, एन०सी०आर०टी०, नई दिल्ली, 1991.
6. कमला द्विवेदी – गाँधी जी का शिक्षा दर्शन–श्री पब्लिशिंग हाउस, नई दिल्ली, 1986.
7. बी. आर. नन्दा – महात्मा गाँधी एक जीवनी, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1958.
8. जे0पी0 पाण्डेय – बुनियादी शिक्षा का स्वरूप, किताब महल इलाहाबाद, 1964

***

शास्त्राीय संगीत का उदगम एवं आयाम का विश्लेष्णात्मक अध्ययन

नेहा कुमारी *

सारांश : *संगीत में भी गीति शैलियों के विभिन्न प्रकार समय–समय पर प्रचलित होते रहे है। संगीत मानव की भावनाओं तथा संवेदनाओं से सम्बन्धित कला है, भावनाओं संवेदनाओं को विकसित कर मानवीय गुण वृद्धि करने में सहायक सिद्ध होती है। कलाओं द्वारा मनुष्य भावुक बनता है। मानव जीवन के विकास का अध्ययन सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक दृष्टिकोण से करने पर हम देखते हैं कि, मानव के धर्म तथा संस्कृति के विकास में संगीत की अहम् भूमिका रही है। शास्त्रीय संगीत वह संगीत है जो शास्त्राों पर आधारित तथा विशेष नियमों में बँधा हुआ हैं। जो संगीत स्वर, ताल एवं लय आदि नियमो में बँधकर आकर्षक रीति से, उसके शास्त्र नियमों का पालन करते हुये गाया बजाया जाता है, वह शास्त्रीय संगीत कहलाता हैं। अतः मेरा यह अध्ययन शास्त्रीय संगीत का उदगम एवं आयाम का विश्लेष्णात्मक अध्ययन है। अध्ययन का उद्देश्य शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदगमों व आयामों का विश्लेषण कर तुलनात्मक अध्ययन करना एवं शास्त्रीय संगीत के विभिन्न पहलुओं पर विश्लेषण करना था। उपर्युक्त तथ्यों को देखते हुए पता चलता है अभी शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदर्ग जिसमें ध्रुपद शैली संगीत, ख्याल, ठुमरी, निबद्ध आदि ध्रुपद शैली गीत के अर्न्तगत आते है। उसमें ध्रुपद शैली में गोबरहार वाणी, खंडार वाणी, डागुर वाणी, एवं नौहार वाणी, स्वर और लय को अलंकृत करना ही एकमात्र उद्देश्य है। इसके अतिरीक्त वही रजवाड़ों के गायकी में धमार, ख्याल, सादरा गायन, ठुमरी तराना टप्पा एवं चतुरंग इत्यादि विभिन्न उदर्ग का विश्लेषण इस प्रकार प्रदर्शित करता है।*

विशिष्ट शब्द : *संगीत, शास्त्रीय संगीत, ध्रुपद शैली, ख्याल, ठुमरी एवं निबद्ध इत्यादि।*

परिचय : संगीत का इतिहास बहुत पुराना है। जिस प्रकार आदिम युग में प्रागैतिहासिक, ऋग्वैदिक, वैदिक, मध्य, वर्तमान इत्यादि सभी युगों में मानव सभ्यता के क्रम–विकास का इतिहास अंकित है। जिस प्रकार किसी मनुष्य के जीवन का मूल्यांकन अर्थात जीवनकथा, उसकी बाल्यावस्था के विषय में कुछ प्रकाश न डालने से अपूर्ण रह जाती है। उसी प्रकार संगीत का इतिहास भी उसके मूल को जाने बिना अधूरा ही है। विश्वकवि रविन्द्रनाथ ने कहा है कि ''आरम्भ का भी आरम्भ होता है।'' इतिहास के आधार पर हम जानते हैं कि अति प्राचीन काल से अर्थात् आदिम प्रागैतिहासिक काल से ही संगीत का प्रचलन था। मोहनजोदड़ो, हड़प्पा इत्यादि विभिन्न स्थलों के खनन कार्य से प्राप्त बहु विचित्र वाद्ययंत्रों जैसे–बांसुरी, मृदंग, विभिन्न संख्यक तन्त्रीयुक्त वीणा, ब्रोंज–निर्मित नृत्यशील नारी मूर्ति इत्यादि सामग्री हमें प्रमाण के रूप में प्राप्त होते हैं। कुछ लोगों की गंवेषणानुसार तत्कालीन संगीत में जन्म, मृत्यु, विवाह, युद्ध, खाद्य, रोग, पूजा इत्यादि के लिए विभिन्न श्रेणी विभाग थे। कुछ लोगों का यह भी कहना है, कि उस समय संगीत के प्रभाव से वे लोग विविध आलौकिक कार्य कर सकते थे। अतः निष्कर्षतः हम कह सकते हैं, कि आदिम युग से ही भारतीय संगीत की जययात्रा आरम्भ हुई थी। प्राचीन वैदिक युग की ओम्कार ध्वनि की सहायता से ही वह परिशुद्ध होकर परिपूर्ण संगीत कला के रूप में विकसित हुई।[1] अतः हम कह सकते हैं कि भारतीय संगीत इतना प्राचीन है।

भारतीय संगीत की जन्म की कहानी खोजी ही नहीं जा सकती। इसकी प्राचीनता को देखते हुए ही विद्वानों में इसके जन्म के विषय में अनेक विलक्षण एवं पौराणिक गाथाएं प्रचलित हैं। भारतीय संगीत के जन्म का इतिहास खोजने के लिए हमें इन पौराणिक गाथाओं तथा पूर्वकाल के अवशेष जो भी प्राप्त हो सके, उन्हीं का आश्रय लेना होगा।[1]

"गीत वांध तथा नृत्यं त्रयं संगीतमुच्यते।

संगीत एक अन्विति है, जिसमें गीत, वाद्य तथा नृत्य तीनों का समावेश है।[2] प्राचीन संस्कृत वाङ्मय में 'सम्यक् गीतम्' के रूप में संगीत की व्याख्या की गयी है। **'सम्'** उपसर्ग संपूर्णता का भी

* एम.ए. संगीत विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

बोधक है। गीत तभी संपूर्ण रूप से प्रभावदायक होता है, जब उसके साथ उसके अन्य अंगो का भी प्रयोग होगा। **'गी'** क्रिया में **'क्त'** प्रत्यय लगाने पर गीत की उत्पत्ति होती है। ''किसी भी पद को मंजुल स्वरों के साथ गाना गायन कहलाता है।'' Music is defined as the art of singing dancing and playing on instruments.[3] प्राचीन काल से वर्तमान काल तक संगीत को जिन शब्दों में परिभाषित किया है। वह निम्न है। वैदिक काल के संहिताओं, ब्राह्मण ग्रन्थों, प्रतिशाख्यों, व्याकरण और पुराणादि के द्वारा संगीत विषयक सामग्री मिलती है। संगीत के गायन–वादन के माध्यम से देवताओं की आराधना की जाती थी, एवं मोक्ष प्राप्ति का माध्यम माना जाता था।[4] परन्तु धीरे–धीरे संगीत को केवल मोक्ष का साधन न मानकर उसे जीवन की प्रगति का माध्यम भी समझा जाने लगा। पौराणिक काल के उपनिषदों में भी संगीत का आभास मिलता है। तेत्तिरीय उपनिषद्, ऐतरेय उपनिषद, शतपथ ब्राह्मण आदि में संगीत का यथेष्ट दर्शन होता है। हरिवंश पुराण में सप्त–स्वर, ग्राम–राग, तीन स्थान, मूर्च्छना, नृत्य नाट्य तथा विभिन्न वाद्ययन्त्रों का वर्णन प्राप्त होता है। मत्स्यप ुराण में उल्लेख मिलता है कि वृष्णि–वंशज राजातैत्रिरि ने अपनी पुत्री को संगीत तथा नृत्य कला की शिक्षा दिलाई थी। मार्कण्डेय तथा वायु–पुराणों में स्वरों, तीन ग्रामों, मूर्च्छनाओं के अतिरिक्त प्रणव, मृदंग, पुष्कर, दादुर, वीणा तथा देव–दुन्दुभि आदि से ईश्वर का सामीप्य प्राप्त करने के लिए वाद्य–वादन किये जाने का उल्लेख प्राप्त होता है। 'विष्णु पुराण' में साम–गायन की महत्ता स्वीकार करते हुए लिखा गया है कि साम में प्रयुक्त होने वाली प्रत्येक ध्वनि साक्षात् ईश्वर का एक भाग है। इन पुराणों में अनेक नर्तकियों का वर्णन मिलता है। जो नृत्य द्वारा देवताओं की आराधना किया करती थी।[5]

संगीत की उत्पत्ति सृष्टि के साथ हुई। सत्, चित्त, आनन्द स्वरूप ब्रह्मा ने अपने त्रिगुणात्मिका प्रकृति के द्वारा इस संसार की रचना की। भारतीय परम्परानुसार संगीत का संबंध वेदों से मान्य है। वेद का बीज मंत्र 'ओउम्' है। ओउम् में तीन अक्षर **अ, उ** और **म** तीन ईश्वरीय शक्ति के द्योतक है।

अ– ब्रह्मा की शक्ति का द्योतक है।
उ– विष्णु की शक्ति का द्योतक है।
म– महेश की शक्ति का द्योतक है। ब्रह्म आनंद स्वरूप है।[6]

इस आनन्द तत्व से ही संगीत शब्द की उत्पत्ति हुई। ब्रह्मजी ने सर्वप्रथम अपने को तीनों रूपों में प्रकट किया। ब्रह्माजी, विष्णुजी और महेशजी,। इन तीनों ने क्रमशः सरस्वती, लक्ष्मी व काली इन शक्तियों से इस सत्, चित्त, आनंदमय विश्व की उत्पत्ति की। इन तीन अक्षरों के संयोग से 'ओउम्' शब्द निर्मित हुआ है। शब्द और स्वर की उत्पत्ति ओउम् के गर्भ से हुई है। 'ओउम्' शब्द ही संगीत का जनक है। समस्त कलाएं 'ओउम्' में ही निहित है। तीन शक्तियों के आधार पर ही 'ओउम्' शब्द में स्वर लय और ताल का समावेश है, जो कि हमारे संपूर्ण संगीत का आधार है। ब्रह्माजी के चार मुख है। चारों मुखों से उन्होंने चार वेदों की उत्पत्ति की– ऋग्वेद, यजुर्वेद, अथर्ववेद और सामवेद।[7]

संगीत विभिन्न ध्वनियों को मिलाने वाली वह कला है, जिसके द्वारा मनोभावों के प्रदर्शन में रोचकता, माधुर्य एवं सुन्दरता आती है। संगीत की परिभाषा केवल मानवीय गायन तक ही सीमित नहीं वरन् इसके अन्तर्गत पशुओं की विविध बोलियाँ, पंक्षियों की चहचहाहट तथा वायु की सनसनाहट आदि भी सम्मिलित की जाती है। इसके द्वारा मानव, पशु–पक्षियों की विभिन्न बोलियों के अतिरिक्त किसी प्रदेश के प्राकृतिक वातावरण की मनोरम छटा का भी प्रतिबिम्ब दिखाई देता है। यदि हम किसी छोटी नदी के तट पर कुछ देर ठहरें तो हमारे कानों में विविध प्रकार की ध्वनियों का संचार सुनायी पड़ता है। यदि सरिता के जल की ओर अपना ध्यान आकर्षित करें तो उसका तेज गति से बहता हुआ जल अपने प्रवाह–मार्ग के पानी के आघात–प्रतिघातों से चोट खाता हुआ और घिसे–पिटे पत्थर के टुकड़ों से चक्कर लगाता, भंवर बनाता हुआ, कल–कल ध्वनि में आगे बहता चला जाता है। यह कल–कल ध्वनि, घाटियों, पहाड़ियों और जंगलों में प्रतिध्वनित होकर संगीत का रूप धारण कर लेती है, और कानों के द्वारा मनुष्य के मस्तिष्क और हृदय को स्पर्श करती है। जिसमें संगीत का उद्गम पशु–पक्षियों की ध्वनियों से हुआ है।

षडजं वदिर मयूर त्रषभं चातकोक् वदेत ।।
अजा वदति गांधारं क्रांयचों वदति मध्यमम ।।
पुष्पसाधारणे काले कोकिलः पंचमो वदेत ।
प्रावृटकाले तु सम्प्राप्ते धवंत दर्दुरो वदेत ।।
सर्वदा च तथा देवि निषाद वदेत गजः ।।[8]

पशु तथा प्रकृति की विभिन्न ध्वनियों को सुनकर तथा उनकी मंजुलता को अनुभूत कर स्वयं ऐसी ही ध्वनियों को गाने की प्रेरणा–आदि मानव को हुई हो। नृत्य तथा वाद्य के सदृश कण्ठ–संगीत की प्रेरणा आदि मानव को प्रकृति से उपलब्ध हुई, ऐसी कल्पना की जा सकती है। यही से ध्वनि मूलक उपादानों को ग्रहण कर परिष्कृत संगीत का निर्माण मानवकण्ठ से सम्पन्न हुआ। मानव का कण्ठ स्वयं एक वाद्य है, जो स्वर की सूक्ष्मताओं को आत्मसात् करने की क्षमता रखता है। प्रकृति के चिरन्तन स्रोत से ऐसी शरीर वीणा के माध्यम से संगीत का सम्पूर्ण विकास हो गया हो, यह कल्पना तर्कसंगत प्रतीत होती है। अतः मानव–मन के विकास के साथ ही इस संगीत कला का विकास हुआ है। मानव का जैसे ही नेत्रोन्मीलन हुआ, उसके कण्ठ से ध्वनि निःसृत हुई। रुंदन तथा गान इसी सहज ध्वनि के रूपान्तर है। कण्ठ मानव की सहज एवं स्वाभाविक विभूति है, जो उसके गीत तथा वाद्य के स्वर–क्षेत्र को निर्धारित करती है। आदिम जाति का गान तथा वाद्य सीमित स्वरों से युक्त होता है, इसका रहस्य यही है। उनके नृत्य में अभिनय की मात्रा कम और स्थूल अंगसंचालन की मात्रा अधिक लक्षित होती है। प्रबल भावावेग से स्वतः उद्भूत होने वाले इसी प्रकार के अङ्गसंचालन तथा अव्यक्त शब्द–ध्वनि में नृत्य की आदिम गाथा र्निहित है। आदिम जातियों के संगीत में परिष्कार की अपेक्षाकृत न्यूनता पाई जाती है। इसका मूल उनकी संस्कृति की अविकसित अवस्था में खोजा जा सकता है। संगीत के उदगम–काल में स्वर–क्षेत्र की परिमितता तथा स्वर संयोजन की अपरिष्कृतता की ही कल्पना सम्भाव्य है। परिष्कृत एवं श्रेणीबद्ध संगीत सदैव प्रोढ़ मस्तिष्क तथा विकसित सभ्यता का सहचर रहा है।[9]

प्राचीन काल में संगीत के दो रूप मिलते हैः मार्गी संगीत (गान्धर्व संगीत), देशी संगीत (लोक संगीत)। परन्तु आधुनिक काल में संगीत की अनेक शाखाएँ उत्पन्न हो गयी है। शास्त्रीय संगीत के अन्तर्गत शास्त्रीय, उपशास्त्रीय, लोक संगीत, सुगम संगीत, चित्रपट संगीत, रवीन्द्र संगीत, एवं नजरुल संगीत आदि। संगीत ईश्वरीय सौन्दर्य, आनन्द एवं प्रसाद का प्रतीक है। संगीत सांसारिक दुःखों से मुक्ति प्रदान कराने और ब्रह्मा तक मानव मन को ले जाने वाला मार्ग है।[10] संगीत स्वयं में पूर्ण है, इसी कारण इसे ललित कलाओं में श्रेष्ठ स्थान प्राप्त है। संगीत का सम्बन्ध मस्तिष्क, मन, आत्मा व अन्तः करण से है, और यह मानव की शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक व बौद्धिक प्रवृत्तियों से जुड़ा है। इन्हीं कारणों से संगीत सामान्य तथा वैज्ञानिक विषयों से कहीं न कहीं सम्बन्धित है।

शास्त्रीय संगीत : 'शास्त्रीय संगीत' वह संगीत है जो शास्त्रों और नियमों के बंधन में बंधा है। जो संगीत स्वर, लय ताल आदि नियमों में बाँध कर आकर्षक रीति से गाया अथवा बजाया जाता है वह शास्त्रीय संगीत कहलाता है। शास्त्रीय संगीत का एक नियमित शास्त्रा होता है तथा शास्त्रा के अनुसार ही गायन अथवा वादन होता है। शास्त्रीय संगीत पहले मन्दिरों, गिरिजा घरों, राजा महाराजाओं के दरबारों यो छोटी–छोटी महफिलों के सीमित दायरे में बंधा हुआ था।[11] जिसके कारण जनसाधारण संगीत से दूर होता जा रहा था तथा उस समय कलाकारों की प्रस्तुति को सुरक्षित एवं संरक्षित रखने का कोई साधन भी नहीं था। जिससे पुनः कलाकारों के साथ ही उनकी कला का भी अन्त हो जाता था। शास्त्रीयता का अभिप्राय अभी तक यही लगाया जाता रहा है कि ऐसा संगीत 'जिसमें शास्त्रीय विधि–निषेधों का आँख बन्द करके प्रयोग किया गया हो 'भले ही वह स्वर–ताल की दृष्टि से हमारी अनूभूतियों को स्पर्श करने में सक्षम न हो। शास्त्रीय संगीत शब्द ब्रह्म एवं नाद की सशक्त अभिव्यक्ति की विधा है।[12]

शास्त्रीय संगीत वह संगीत है, जो शास्त्रीय नियमों के अन्तर्गत बँधा है।[13] शास्त्रीय संगीत में स्वर, ताल और लय की साधना के लिए अथक परिश्रम अपेक्षित हैं एवं शास्त्रीय संगीत में स्वर लय ताल इन तीनों का संयमन होना आवश्यक है। 'संगीत' से पूर्व 'शास्त्रीय' शब्द लग जाने से एक बात

यह भी स्पष्ट होती है कि ऐसा संगीत जो शास्त्रा की दृष्टि से पूर्णतः निर्दोष हो, किंतु आंतरिक लोक–रंजन की दृष्टि से वह पर्याप्त सक्षम हो। इस प्रकार शास्त्रीय संगीत में कल्पना चातुर्य तथा क्लिष्ट स्वर योजना के प्रदर्शन पर विशेष बल दिया जाता है। अतः शास्त्रीय संगीत को संगीत शास्त्रा के अनुसार गाया जाने वाला संगीत कहा जाता है। संगीत शास्त्र में केवल रागो का वर्णन है और भारतीय संगीत का आधार राग हैं। शास्त्र राग के संबन्ध में कहता है।

'योऽयं ध्वनि विशेषस्तु स्वर वर्ण विभूषितः।
रंजको जनचित्तानां स रागः कथितो बुधैः।[14]

शास्त्रीय संगीत की विशिष्ट भौतिकेतर अलौकिक अवधारणा 'नाद ब्रह्म अनायास साकार हो उठती है। जिसकी 'रसो वैसः' अथवा 'अनहत नाद' कहकर व्याख्या की गयी है।

''षडजे वदति मयूरो गाभो रंभति चर्षभः।
अजा वदति गांधारो क्रौचनादस्तु मध्यमे।।
पुष्पसाधरणेकाने कोकिलः पंचम स्वरे।
अश्वस्तु धैवते प्राह कुंजरस्तु निषादवान''।। [15]

भारतीय शास्त्रीय संगीत हमारी संस्कृति और सभ्यता का उपादान हैं। शास्त्रीय संगीत के क्रमिक विकास का रूप हमें ब्राह्मण साहित्य शिक्षा ग्रन्थ, प्रातिशाख्य में मिलता हैं। किन्तु इसके पूर्व सरल, सहज प्रार्थना–आवेदन में ही संगीतरूपायित था। और स्तोभ गान, उद्गान, गाथा ही संगीत के रूप थे। यज्ञ के समय आहुति–दान के साथ ही विविध वाद्यों के साथ गान होता था।

वैदिक युग में सातो स्वरों का विकास हो चुका था। आर्चिक (एक स्वर), गाथिक (दो स्वर) सामिक (तीन स्वर) स्वरान्तर (चार स्वर) औडव (पाँच स्वर) षाडव (छः स्वर) और सम्पूर्ण (सात स्वर)[16] इस युग में संगीत का पूर्ण विकास था।[17] यद्यपि उस समय संगीत के स्थान पर गान, उद्गान, उद्गीति, एवं स्तोत्रों जैसे शब्दों का व्यवहार होता था। इन सबका प्रमाण हमें वेदों में मिलता है। प्राचीन आचार्यों के अनुसार वेद वाङमय ईकाई है। जिसके अन्तर्गत विनियोग भेद के कारण ऋक, यजु, साम तथा अथर्व का पृथक संहिता के रूप में निर्माण हुआ। गायन का प्रतिनिधित्व ''साम गायन'' करता है। यज्ञादि अवसरों पर साम गायन आवश्यक माना जाता था। साम का छन्दोबद्ध गीतों से गायन होता था। साम को विभिन्न स्तोभो द्वारा गाया जाता था। इन स्तोभो को वैदिक गायन का अलंकार कहा गया है। स्तोभो से युक्त व रहित दोनों प्रकार से साम गाया जाता था।[18] साम का गायक उद्धाता कहलाता था। साम गायन स्तुति रूप में होता था। जैसे सूर्य अग्नि की स्तुति साम स्रोतों द्वारा की जाती थी। साम गायन में दैवी शक्ति का निवास माना जाता था। यज्ञ समाप्ति भी साम गायन के साथ होता था। इस प्रकार वैदिक काल में साम गायन पर्याप्त प्रचलित था, अर्थात् वेदों में सामवेद को ही संगीत का मूल स्रोत माना जाता था और उसमें संगीत के उपकरण भी मिलते हैं। सामगान में प्रयुक्त स्वरों के नाम थे। जैसे क्रुष्ट (मन्द्र पंचम), मन्द्र (मन्द धैवत), अतिस्वार्य (मन्द्र निषाद), चतुर्थ (षडज), तृतीय (ऋषभ), द्वितीय (गांधार) एवं प्रथम (मध्यम)। यह गान अवरोहात्मक था। इनके लिए चिन्ह शीर्ष आदि लगाये जाते थे। सामगान की तीन शाखायें थीं। कौथुम, राणायनीय और जैमिनीय। वैदिक काल के पश्चात हमारे सांगीतिक पथप्रदर्शक हैं। शिक्षा ग्रन्थ यथाः पाणिनी शिक्षा, याज्ञवल्क्य शिक्षा, माण्डूकी शिक्षा, वर्णरत्नप्रदीपिका शिक्षा और नारदी शिक्षा। शिक्षा ग्रन्थों के बाद हमारा पौराणिक संगीत आता है।

प्राचीनकाल संगीत के अन्तर्गत रामायण कालीन संगीत महाभारत कालीन संगीत, बौद्ध तथा जैन ग्रन्थों के संगीत तथा कालीदास कालीन संगीत आते हैं।

ग्यारहवीं शती से मध्यकाल का आविर्भाव होता है। इस काल के प्रारम्भ में उत्तरी तथा दक्षिणी संगीत पद्धतियाँ पृथक होने लगी थी। मध्यकाल के पूर्व तक ग्राम, राग और जातियाँ प्रचलित थीं। पर मध्यकाल में राग गायन का प्रचलन हो गया। ध्रुपद और ख्याल भी प्रचलित हुए। आक्रमणकारियों के श्रृंगारिक एवं भोग विलासपूर्ण वातावरण का समावेश भारतीय संगीत में होने लगा। मुस्लिम शासकों ने भारतीय संस्कृति के ग्रन्थों को नष्ट–भ्रष्ट कर दिया। उन्होंने प्रलोभन देकर भारतीय विद्वानों से ऐसे

ग्रन्थों की रचना कराई जिसमें मुस्लिम संस्कृति एवं सभ्यता की प्रशंसा वर्णित थी। अलाउद्दीन खिलजी के दरबार में संगीतज्ञ अमीर खुसरो ने समृद्धि पाई। अमीर खुसरो ने सर्वप्रथम भारतीय संगीत में कव्वाली रीति को अपनाया। इस काल में मुसलमान संगीतज्ञों द्वारा कई नये राग जैसे– साजगिरी, यमन, सरपर्दा, पूर्वी, तोड़ी, जौनपुरी, सिंदूरा तथा तालों मेंः सवारी, फरोदस्त, पश्तो, सूलताल, झूमरा एवं आड़ा चारताल एवं वाद्यों में तबला एवं सितार प्रचलित हुए।[19]

इसके अलावा गायन शैलियों के प्रकार जैसे–ख्याल, तराना, खमसा, गज़ल, टप्पा तथा कव्वाली आदि इसी समय से प्रचार में आये। इसी काल में संगीत विद्वानों ने अनेक उत्कृष्ट ग्रन्थों की रचना जिनमें से कुछ के नाम इस प्रकार हैं।

वैदिक काल में अक् पाणिका और गाथा जैसे गीतो के पश्चात् मद्रक अपरांतक इत्यादि गायन शैलियों का प्रचलन भरतमुनि के पूर्व हो चुका था। ये गीत वर्ण तथा ताल विशिष्ट क्रम पर आधारित थे। गीत गायन की मुखक्रिया से पूर्व 'उपोहन' नामक अंग का प्रदर्शन होता था। भरत काल में 'ध्रुवा' गीतो का सर्वाधिक महत्व था। मतंग काल के (ई0 800 तक) देशी संगीत में असंख्या प्रबन्धों का निर्माण हो चुका था।[20] पं0 शारंगदेव ने अपने पूर्व के पचहत्तर प्रबन्धों और उनके भेदों का विवरण दिया है। इन प्रबन्धों में राग का रूप विशिष्ट तालों में निबद्ध रहता था। शारंगदेव के पश्चात् भारतीय संगीत में ध्रुपद, धमार, ख्याल जैसी विधाओ का प्रादुर्भाव हुआ।[21] ये गीत विधायें संगीत के विभिन्न घरानों के गायकों द्वारा आज भी सुरक्षित है। फकिरूल्ला शास्त्रीय संगीत में ध्रुपद के घराने बनाम चार वाणियाँ, संगीत घराना।[22] अतः यह अध्ययन शास्त्रीय संगीत का उदर्ग एवं आयाम का विश्लेष्णात्मक एक अध्ययन है।

उद्देश्य :

1. शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदर्गों व आयामों का विश्लेषण कर तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. शास्त्रीय संगीत के विभिन्न पहलुओं पर विश्लेषण करना।

निष्कर्ष : उपर्युक्त शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदर्गों व आयामों को देखते हुए पता चलता है अभी शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदगम जिसमें ध्रुपद शैली संगीत, ख्याल, ठुमरी, आदि निबद्ध गीत के अर्न्तगत आते है उसमें ध्रुपद शैली में गोबरहार वाणी, खंडार वाणी, डागुर वाणी, एवं नौहार वाणी, स्वर और लय को अलंकृत करना ही एकमात्रा उद्देश्य है। इसके अतिरीक्त वही रजवाड़ों के गायकी में धमार, ख्याल, सादरा गायन, ठुमरी तराना टप्पा एवं चतुरंग इत्यादि विभिन्न उदगम का विश्लेषण इस प्रकार प्रदर्शित करता है।

1. शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदर्ग व आयामः

ध्रुपद : ध्रुपद शैली वह गीत, जिसमें पद या शब्द भली भाँति एक विशेष रूप में स्थित हो वह ध्रुपद है। इस गायन शैली का उद्भव प्रबन्ध गीत से हुआ है। स्थूल रूप से प्रबन्ध गीत दो भागों निबद्ध और अनिबद्ध में विभक्त थे। आधुनिक काल में आलाप गायन के अलावा अन्य सभी गीत निबद्ध के अर्न्तगत आते हैं। ध्रुपद मूलतः शब्द प्रधान गीत शैली है और इसमें शब्दों के स्पष्ट उच्चारण का विशेष महत्व है। ताल में बद्ध ध्रुपद की बंदिश का स्वरूप भिन्न–भिन्न लयकारियाँ करते हुए भी अपने मूल अवस्था में स्थिर रहता है। ध्रुपद में चौताल, आड़ाचौताल, सूलताल, ब्रह्मताल, रूद्रताल आदि तालों का प्रयोग किया जाता है। ध्रुपद गायक को ध्रुपदिया' कहते हैं।

गोबरहार वाणी : गोबरहार वाणी गायन शैली गमक युक्त और वीररस से पूर्ण हैं। ये वाणी शुद्ध गीत से मिलती जुलती है, गोबरहार वाणी का सम्बन्ध ग्वालियर से था तथा इसके प्रवर्तक तानसेन थे।

खंडहरहार वाणी : खंडहरहार वाणी के प्रवर्तक समोखन सिंह थे तथा उन्हें ''खंडहर'' प्रदेश का निवासी बताया गया है। ये वाणी जोरदार आवाज खण्डार बानी का मुख्य लक्षण माना गया। ख्याल के रामपुर घराने से इसका सम्बन्ध बताया जाता है।

डागुर वाणी : डागुर वाणी भिन्न–भिन्न गीत से मिलती जुलती है, इसमें मींड एक विशेष ढंग से लगाई जाती हैं और गमक का भी बहुत सुन्दर और कलात्मक प्रयोग किया जाता है। इस वाणी में ध्रुपदिया बड़े सुन्दर इस वाणी का सम्बन्ध कुछ लोग जयपुर घराने से जोड़ते हैं।

नौहार वाणी : नौहार वाणी का सम्बन्ध राजपूताने के एक स्थान से है। नौहार वाणी का मुख्य लक्षण 2–3 स्वरो का लंघन कर परवर्ती स्वर पर पहुँचना है। इसमें गमक के साथ–साथ द्रुत लय का भी प्रयोग होता है। इसमें अधिकतर मध्य और द्रुत लय की बंदिशें ही मिलती हैं। अधिकांश रचनाओं में अद्‌भुत रस है।

उपसंहार :

शास्त्रीय संगीत का भी अपना लम्बा इतिहास है जिसमें इसके विकास के विश्लेषण की रोचक कथायें है। जो विभिन्न तत्वों का दिग्दर्शन कराते हुए यह स्पष्ट करती है कि शास्त्रीय संगीत एवं उससे सम्बन्धित परम्परा विभिन्न परिवर्तनों एवं प्रभावों के बीच से होकर गुजरी हो और इसी प्रकार शास्त्रीय संगीत और इसके निर्देशों की संरचना व संसार में इसकी प्रतिस्थपना हुई।

आज शास्त्रीय संगीत का जो रूप हमारे समक्ष है उसका अपना एक क्रमिक विकास है जिसका प्रत्येक युग के सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक मूल्यों के अन्तर्गत विश्लेषण किया जा सकता है। भारतीय सांस्कृतिक परम्पराओं में परिवर्तन तो यवनों के आगमन से ही प्रारम्भ हो गये थे और शास्त्रीय संगीत इससे अत्यधिक प्रभावित रहा। हिन्दू मुस्लिम संस्कृति के समन्वय से जिन नयी शैलियों का शास्त्रीय संगीत में पदार्पण हुआ उसने विपरीत परिस्थितियों में भी संगीत को नयी दिशा दी।

विभिन्न समयों में हमारी सामाजिक परिस्थितियों ने हमारी संस्कृति को प्रभावित किया। जिस कारण शास्त्रीय संगीत के ढंग में भी परिवर्तन आया। सृष्टि के परिवर्तन का मूल कारण है। पुरातन का लोप व नये का आगमन इसी कारण शास्त्रीय संगीत में भी काल सापेक्ष परिवर्तन व प्रत्यावर्तन होते रहे विकासवादी सिद्धान्त के अनुसार प्राक् वैदिक कालीन संगीत वैदिक काल तक आते आते व्यवस्थित होता गया। वैदिक काल की सर्वोपरि उपलब्धि थी। जिसमें निहित आध्यात्मिक तत्व जो भारतीय दर्शन का अपरिहार्य अंग बन गया। नाद का संबद्ध ब्रहमा से स्थापित कर संगीत की ओजस्वनी शक्ति का तात्विक एवं सैद्धान्तिक विश्लेषण किया गया। भारतीय शास्त्रीय संगीत का विकास आज या कल की बात नहीं अपितु एक लम्बे इतिहास क्रम को व्यक्त करता है जो अनेक संगीत शैलियों, युग प्रवृतियों तथा रचयिता, संगीतज्ञों के एक क्रमिक एवं व्यापक फलक से जुड़ा हुआ है। आज जिस रूप में शास्त्रीय संगीत उपलब्ध है। वह अनेक युगों की गायन शैलियों पर आधारित है जो शास्त्रीय संगीत को विविध आयामी विकास प्रदान करती रही है।

उपर्युक्त शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदर्गों व आयामों को देखते हुए पता चलता है की शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदर्ग जिसमें ध्रुपद शैली संगीत, ख्याल, ठुमरी, आदि निबद्ध गीत के अर्न्तगत आते है उसमें ध्रुपद शैली में उपरोक्त चारों वाणियों को देखने के पश्चात् यह बात स्पष्ट होती है कि प्रत्येक वाणी का अंश किसी न किसी घराने में दृष्टिगोचर होता है। ध्रुपद गायन की तानसेन की परम्परा अठारहवीं सदी के पूर्वार्द्ध तक बराबर चलती रही। आज के ध्रुपद गायन का अर्थ जटिल आलापचारी और विकट लयकारी के धुआँधार प्रदर्शन तक ही सीमित हो गया है। अतः शास्त्रीय संगीत के विभिन्न उदर्ग का विश्लेषण को प्रदर्शित करता है।

सन्दर्भ :

1. अमल कुमार दाश शर्मा (2010), 'विश्व संगीत का इतिहास' पृ0 1,
2. डॉ0 स्वाति शर्मा, (2008), भारतीय संगीत का इतिहासः ''मूल तत्व एंव सिद्धान्त'' पृ0 148
3. सुभद्रा चौधरी (2011), संगीत रत्नाकर, प्रथम खण्ड, पृ0 12
4. डॉ0 स्वाति शर्मा (2003), भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 1
5. डॉ0 स्वाति शर्मा (2003), भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 152
6. डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजये (2009), भारतीय संगीत इतिहास, पृ0 41
7. हरि किशन गोस्वामी (1996), भारतीय संगीत की परम्परा वंशानुक्रम एवं वातावरण, पृ0 1, 2
8. डॉ0 शरच्चन्द्र श्रीधर परांजपे (2003), भारतीय संगीत का इतिहास,: वैदिक काल से गुप्तकाल तक पृ0 7, 10

9. राम अवतार वीर (1983), भारतीय संगीत का इतिहास प्रथम भाग, पृ0 18, 19
10. डॉ. सुनिता शर्मा (2014), 'आध्यात्मिक एवं दार्शनिक' भारतीय संगीत का इतिहास, पृ0 219
11. अमल कुमार दाश शर्मा (2015), विश्व संगीत का इतिहास, पृ0 1.
12. रवीन्द्र नाथ बहोरे (1976) 'भारतीय संगीत विमर्श' पृ0 9.11.
13. शान्ति गोवर्धन संगीत शास्त्रा द0प्रण पृ0 4.
14. संगीत मैगजीन जनवरी 1973 पृ0 7.
15. रवीन्द्र नाथ बहारे (1976) भारतीय संगीत विमर्श पृ0 114.
16. डंतबी (1960), संगीत मैगजीन पृ0 103.
17. लक्ष्मीनारायन शर्मा (1981) निबन्ध संगीत पृ0 86.
18. डॉ0 पूनम मिश्रा, (1997) ''ऋगवेद से उद्धृत'' प्राचीन भारत में संगीत पृ0 9.6.
19. रवीन्द्र नाथ बहोरे (1976) 'भारतीय संगीत विमर्श' पृ0 9.16.
20. लक्ष्मीनाराण गर्ग (1976), निबन्ध संगीत' पृ0 127.
21. डॉ0 स्वतन्त्रा शर्मा (2001), पाश्चात्य स्वरलिपि पद्धति एवं भारतीय संगीत, पृ0 232.
22. शिवकुमार मिश्र (1960), ध्रुपद के घराने बनाम चार वाणियाँ, संगीत घराना अंग श्रंद 1982 पृ0 80

***

मिथिला में पर्यटन की समस्याएँ एवं सम्भावनाएँ

उपेन्द्र मेहतर *

प्रस्तुत कार्य मिथिला में पर्यटन की समस्याएँ एवं सम्भावनाएँ से संबंधित है। जो पर्यटन आज विश्व का सबसे तीव्रगति से विकसित होने वाला उद्योग है। आज पर्यटन मात्र मौज–मस्ती, घूमना–फिरना, प्राकृतिक या सांस्कृतिक पर्यावरण के भूदृश्यों को देखना, फोटो खीचने का नाम नहीं है, अपितु सांस्कृतिक विचारों के आदान–प्रदान के साथ–साथ विदेशी मुद्रा अर्जन का मुख्य साधन बन गया है। परिणामस्वरूप पर्यटन किसी क्षेत्र/प्रदेश की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव के माध्यम के रूप में विकसित हो रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा घोषित अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण वर्ष के अवसर पर भारत सरकार के द्वारा मई 2002 में नई पर्यावरण पर्यटन नीति की घोषणा से पर्यटन का संपूर्ण आशय ही परिवर्तित हो गया है। वर्त्तमान समय में पर्यटन केन्द्रों को इस तरह से विकसित किया जा रहा है कि पर्यटकों को न केवल संपूर्ण आनंद प्राप्त हो सके अपितु पर्यटक अपने आपको शारीरिक रूप से स्फूर्त्त, मानसिक रूप से तरूण, सांस्कृतिक रूप से समृद्ध एवं अंतर्मन से पर्यटन केन्द्रों को देखने के साथ–साथ महसूस भी कर सके। पर्यटन से व्यापक स्तर पर रोजगार के अवसरों के सृजित होने के कारण क्षेत्र के आर्थिक विकास में पर्यटन उद्योग की भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं तथ्यों को विश्लेषित करने का प्रयास है। पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने 1982 में विस्तृत पर्यटन नीति तैयार कर 1991 में स्वतंत्र पर्यटन मंत्रालय की सथापना की है। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य पर्यटकों की संख्या में वृद्धि, स्थानीय स्तर पर रोजगार का सृजन एवं विदेशी मुद्रा का अर्जन करना है।

वैश्विक आर्थिक संकट ने 2008–09 में पर्यटन के विकास पर विपरीत प्रभाव डाला। हालांकि मंदी से निपटने के लिए प्रोत्साहन के अनेक उपाय भी किए गए। चिन्हित परिपथों तथा स्थानों के लिए विश्वस्तरीय पर्यटन अधिसंरचना के विकास हेतु केन्द्र की वित्तीय सहायता से अनेक पहलकदमियाँ की गई। राज्य में पर्यटन के विकास की जबर्दस्त संभावना है और राज्य सरकार इसका अधिकतम उपयोग करने के लिए कृतसंकल्प है। मिथिला की अर्थव्यवस्था के लिए पर्यटन के महत्त्व को देखते हुए राज्य सरकार ने इस क्षेत्र को उद्योग का दर्जा दिया है। पर्यटन विभाग में दो प्रकार की गतिविधियाँ चल रही हैं–विकासमूलक और व्यावसायिक। व्यावसायिक गतिविधियाँ मिथिला राज्य पर्यटन विकास निगम के जरिए चलाई जा रही हैं जबकि विकासमूलक गतिविधियाँ केन्द्रीय लोकनिर्माण विभाग, मिथिला राज्य पर्यअन विकास निगम, भवन निर्माण विभाग, जल संसाधन विभाग और संबंधित जिलाधिकारियों जैसे विभिन्न अभिकरणों के जरिए चलाई जा रही हैं।

प्रस्तावना :

प्रस्तुत कार्य मिथिला में पर्यटन की समस्याएँ एवं सम्भावनाएँ से संबंधित है। जो पर्यटन आज विश्व का सबसे तीव्रगति से विकसित होने वाला उद्योग है। आज पर्यटन मात्र मौज–मस्ती, घूमना–फिरना, प्राकृतिक या सांस्कृतिक पर्यावरण के भूदृश्यों को देखना, फोटो खीचने का नाम नहीं है, अपितु सांस्कृतिक विचारों के आदान–प्रदान के साथ–साथ विदेशी मुद्रा अर्जन का मुख्य साधन बन गया है। परिणामस्वरूप पर्यटन किसी क्षेत्र/प्रदेश की सामाजिक आर्थिक स्थिति में सकारात्मक बदलाव के माध्यम के रूप में विकसित हो रहा है।

संयुक्त राष्ट्र संघ के द्वारा घोषित अंतर्राष्ट्रीय पर्यावरण वर्ष के अवसर पर भारत सरकार के द्वारा मई 2002 में नई पर्यावरण पर्यटन नीति की घोषणा से पर्यटन का संपूर्ण आशय ही परिवर्तित हो गया है। वर्त्तमान समय में पर्यटन केन्द्रों को इस तरह से विकसित किया जा रहा है कि पर्यटकों को न

* शोध छात्र, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा, गाम +पो०+थाना-देवधा, भाया-जयनगर, जिला-मधुबनी (बिहार)

केवल संपूर्ण आनंद प्राप्त हो सके अपितु पर्यटक अपने आपको शारीरिक रूप से स्फूर्त्त, मानसिक रूप से तरूण, सांस्कृतिक रूप से समृद्ध एवं अंतर्मन से पर्यटन केन्द्रों को देखने के साथ–साथ महसूस भी कर सके। पर्यटन से व्यापक स्तर पर रोजगार के अवसरों के सृजित होने के कारण क्षेत्र के आर्थिक विकास में पर्यटन उद्योग की भूमिका निरंतर बढ़ती जा रही है। प्रस्तुत लेख में इन्हीं तथ्यों को विश्लेषित करने का प्रयास है। पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए भारत सरकार ने 1982 में विस्तृत पर्यटन नीति तैयार कर 1991 में स्वतंत्र पर्यटन मंत्रालय की सथापना की है। इस प्रक्रिया का मूल उद्देश्य पर्यटकों की संख्या में वृद्धि, स्थानीय स्तर पर रोजगार का सृजन एवं विदेशी मुद्रा का अर्जन करना है।

वैश्विक आर्थिक संकट ने 2008–09 में पर्यटन के विकास पर विपरीत प्रभाव डाला। हालांकि मंदी से निपटने के लिए प्रोत्साहन के अनेक उपाय भी किए गए। चिन्हित परिपथों तथा स्थानों के लिए विश्वस्तरीय पर्यटन अधिसंरचना के विकास हेतु केन्द्र की वित्तीय सहायता से अनेक पहलकदमियाँ की गई। राज्य में पर्यटन के विकास की जबर्दस्त संभावना है और राज्य सरकार इसका अधिकतम उपयोग करने के लिए कृतसंकल्प है। मिथिला की अर्थव्यवस्था के लिए पर्यटन के महत्त्व को देखते हुए राज्य सरकार ने इस क्षेत्र को उद्योग का दर्जा दिया है। पर्यटन विभाग में दो प्रकार की गतिविधियाँ चल रही हैं–विकासमूलक और व्यावसायिक। व्यावसायिक गतिविधियाँ मिथिला राज्य पर्यटन विकास निगम के जरिए चलाई जा रही हैं जबकि विकासमूलक गतिविधियाँ केन्द्रीय लोकनिर्माण विभाग, मिथिला राज्य पर्यअन विकास निगम, भवन निर्माण विभाग, जल संसाधन विभाग और संबंधित जिलाधिकारियों जैसे विभिन्न अभिकरणों के जरिए चलाई जा रही हैं।

पर्यटन विभाग ने राज्य में पर्यटन के विकास हेतु अनेक योजनाएँ आरंभ की हैं। विभाग का अनुमोदित योजना बजट 2005–06 के 7.43 करोड़ रु. से बढ़कर 2006–07 में 18.30 करोड़ रु. तथा 2013–14 में 143.04 करोड़ रु. हो गया। योजना परिव्यय में गुणात्मक छलांग राज्य में पर्यटन के विकास हेतु राज्य सरकार की चिंता का सूचक है। जहाँ 2000–01 में अनुमोदित बजट का मात्रा 34 प्रतिशत के आसपास ही खर्च किया जा सका था, वहीं 2007–08, 2008–09 और 2009–10 में पूरी बजट राशि का उपयोग किया गया था। राज्य सरकार और केन्द्र सरकार के वित्त–पोषण से राज्य में पर्यटन विकास से संबंधित अनेक योजनाओं का क्रियान्वयन किया। राज्य सरकार के धन से किए गए महत्वपूर्ण कार्यों में नव नालंदा सांस्कृतिक ग्राम के निर्माण हेतु 11.94 एकड़ और वैशाली में पर्यटन के सहयोग के लिए 10.50 एकड़ जमीन का अधिग्रहण शामिल है। गंगा नदी में 48 सीट वाले तैरते जलपान–गृह का निर्माण पूरा हो गया और इसके लिए गांधी घाट में एक कैफेटेरिया तैयार है। पटना सिटी में मंगल तालाब परिसर में एक स्टेडियम, मुक्ताकाश मंच, कैफे प्लाजा, पार्किंग स्थल आदि का निर्माण पूरा हो गया है। इसके अलावा, चामुण्डेश्वरी मंदिर (कैमूर), जानकी स्थान, पुनौरा, आदि के जीर्णोद्धार तथा पटना में गंगा घाटों के सौंदर्यीकरण सहित अनेक अन्य काम भी शुरू किए गए हैं। इसी प्रकार केन्द्रीय राशि से औरंगाबाद के देव में पर्यटन संकुल, बोधगया में ट्रफिक इंटरचेंज नोड 1 और 2, कांवरिया पर्यटकों के लिए यात्री निवास, बोधगया में सड़कों का जीर्णोद्धार, क्लोज सर्किट टीवी लगाने आदि का काम पूरा हो गया। ग्रामीण पर्यटन के विकास हेतु सॉफ्टवेयर और हार्डवेयर की दो छोटी योजनाएँ नालंदा जिले के नेपुरा गाँव में क्रियान्वित की गई। इसी प्रकार जहानाबाद के टेहटा, औरंगाबाद के ओबरा तथा भागलपुर के पुरैनी और नाथनगर को ग्रामीण पर्यटन के अंतर्गत चुना गया है और परियोजना प्रस्ताव तैयार किए गये।[1]

मिथिला में पर्यटन विकास के विविध प्रयासों के परिणामस्वरूप राज्य पर्यटकों का पसंदीदा स्थल बन रहा है। वर्ष 2005 के बाद से देशी–विदेशी पर्यटकों की संख्या लगातार बढ़ रही है। वर्ष 2006 में घरेलू और विदेशी पर्यटकों की संख्या क्रमशः 10,670 हजार और 94 हजार थी जो 2009 में बढ़कर क्रमशः 15,518 हजार और 423 हजार हो गई है जो कुल देशी–विदेशी पर्यटकों की संख्या में 30 प्रतिशत की वृद्धि दर्शाती है।

जिलों के बीच देशी–विदेशी पर्यटकों का सर्वाधिक प्रवाह गया में दर्ज किया गया और उसके बाद पटना में। घरेलू पर्यटकों के लिए अन्य आकर्षणों में सोनपुर मेला और भागलपुर के सुल्तानगंज में

श्रावणी मेला थे। राज्य सरकार पर्यअन के विकास के प्रति बहुत उत्सुक है और इसे नई ऊँचाइयों तक ले जाना चाहती है। इस लिहाज से इसने निम्नलिखित कदम उठाए हैं।

पर्यटन नीति का सूत्रीकरण :

बिहार सरकार ने पहली बार मिथिला पर्यटन नीति सूत्रबद्ध की है। मानव संसाधन विकास : राज्य सरकार ने गाइड, पर्यटन एवं यात्रा आयोजक, मेहमानवाजी, होटल प्रबंधन तथा आहार प्रबंधन जैसी पर्यटन संबंधी कार्यों में अल्पकालिलक प्रशिक्षण देने की योजनाएँ शुरू की हैं। हाजीपुर में होटल प्रबंधन संस्थान शुरू हो गया है और बोधगया में इस वर्ष शुरू होने वाला है। मुजफ्फरपुर में पाक् कला संस्थान सम्मलित है। पर्यटन सुरक्षा बल सुरक्षा तथा मित्रावत् सेवा सुनिश्चित करने के लिए पर्यटन सुरक्षा बल की नियुक्ति को स्वीकृति प्रदान कर दी गई है। पहले चरण में सुरक्षा बलों की नियुक्ति गया, बोधगया, राजगीर, नालंदा और वैशाली जैसे महत्वपूर्ण पर्यटन स्थलों पर की जाएगी। जब तक नियमित बल का गठन नहीं हो जाता, तब तक अभी उपलब्ध पुलिस बल को चिन्हित किया जाएगा और पदस्थापना के पहले प्रशिक्षित किया जाएगा। मिथिला पर्यटन के लोगों और टैगलाइन अभियानों के जरिए ब्राण्ड स्थापित करने के लिए अहमदाबाद के राष्ट्रीय डिजाइन इंस्टीट्यूट से मिथिला पर्यटन का नया लोगों डिजाइन कराया गया है जिसे राज्य सरकार ने स्वीकार कर लिया है। एक नया टैगलाइन 'ब्लिसफुल मिथिला' (आनंददायी मिथिला) भी आरंभ किया गया है। भारतीय पुरातत्त्व सर्वेक्षण के साथ समझौता : मिथिला सरकार ने केसरिया, मनेरशरीफ और शेरशाह के मकबरे के विकास के लिए भारतीय पुरातत्व सर्वेक्षण के साथ एक समझौता–पत्र हस्ताक्षरित किया है। पर्यटन पैकेज : विभिन्न स्थानों पर पर्यटकों को आकर्षित करने के लिए पर्यटन पैकेज आरंभ किए जाने वाले हैं। निर्णित पर्यटन पैकेजों को व्यापक रूप से प्रचारित किया जाएगा। मीडिया तथा विपणन : पर्यटन विभाग द्वारा 2008 में एक मीडिया एवं विपणन योजना तैयार की गई है। मिथिला पर्यटन के लिए इंटरनेट के जरिये भी विपणन किया जाएगा। इसके विज्ञापनों को सभी वायु सेवाओं के स्थानों पर दिखाया जायगा। सामाजिक जागरूकता अभियानों के जरिए हितधरियों का पर्यटन के महत्व के संबंध में संवेदनीकरण तथा विभिन्न गंतव्य–स्थलों/पर्यटन उत्पादों आदि के बारे में जागरूकता बढ़ाने के प्रयास किया जाएगा। बौद्ध समागम भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय के साथ मिलकर नालंद में एक बौद्ध समागम आयोजित किया गया है।[2]

पर्यटन के कारण अध्ययन क्षेत्र का संपूर्ण आर्थिक परिदृश्य परिवर्तित हो गया है। इस क्षेत्र में कला उद्योग, होटल व्यवसाय, यातायात के साधन, बुनियादी वस्तुओं की उपलब्धता हेतु संचालित व्यावसायिक प्रतिष्ठान पर्यटक गाइड के रूप में लगभग 10000 व्यक्तियों को न केवल प्रत्यक्ष रूप से रोजगार प्राप्त हो रहा है अपितु अप्रत्यक्ष रूप से भी लाखों व्यक्ति पर्यटन उद्योग से आय प्राप्त कर रहे हैं। परिणामस्वरूप पर्यटन उद्योग क्षेत्र के आर्थिक परिदृश्य में गुणवत्तापूर्ण बदलाव आया है।

पूर्व अध्ययनों की समीक्षा :

अनेक विद्वानों ने पर्यटन संबंधी अपने विचार दिये है, जो निम्नवत् है–

मिश्रा एवं उनके सहयोगी (1981) ने भारत में पर्यटन के प्रभाव और भूमिका के संबंध में विचार करने के साथ–साथ 42 देशों के भिन्न–भिन्न आर्थिक प्रकारों का भी जिक्र किया है। वे इस विचार से सहमत थे कि पर्यटन भारत के एक महत्वपूर्ण क्रिया है। पर्यटन का बढ़ता हुआ महत्त्व यह सिद्ध करता है कि दुनिया के प्रत्येक भाग से पर्यटकों के अधिकाधिक अवस्थापनाएँ आधुनिक है। देश में पर्यटन विकास के स्तर को बेहतर करने हेतु बहुत–सी एजेंसियाँ कार्यरत है। भारत के पर्यटन दक्षता प्रतिवर्ष पर्यटकों की संख्या में बढ़ोत्तरी के आकर्षण हेतु कृत संकल्प है।[3]

नेगी (1990) ने विकासशील देशों में पर्यटन सामाजिक आर्थिक वा भू–पर्यावरणीय प्रभाव का अध्ययन किया। इन्होंने स्पष्ट किया कि एक आर्थिक तथा औद्योगिक क्रियाविधि है जिसमें बहुत सारी स्वतंत्र कार्यशालाएँ, निगम तथा संगठन एवं संस्थाएँ कार्यरत हैं तथा जो एक–दूसरे से प्रत्यक्ष रूप से संबंधित हैं। यह आर्थिक दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण है क्योंकि यह आय के स्रोत का एक साधन है।

इससे यातायात के साधन उन्नत अवस्था को प्राप्त होते हैं तथा क्षेत्रीय विकास में सहयोग प्रदान करते हैं।[4]

गुप्ता (1987) ने बताया कि पर्यटन का विकास तेजी से सुनियोजित ढंग से हुआ है। पुरानी यादगारें या संस्मरण या संस्मरण चिनहों का रख–रखाव समुचित तरीके से किया जाय। उनका मौलिक आकार बरकरार रखना चाहिए। बहुत से पिकनिक स्थल स्थापित किये गये और उन्हें सजाया संवारा गया, जिससे पर्यटक आकर्षित हो सकें तथा तत्कालीन समय की सही जानकारी हासिल कर सके। इस तरफ विभिन्न राज्यों के पर्यटकों की सुविधा हेतु अत्यधिक मात्रा में पैसा भी खर्च किया है। इसके लिए उन्होंने अनेक स्थानों पर होटल, हाट, बंगला, विश्राम घर आदि का निर्माण किया। यातायात व्यवस्था का भी विस्तार किया गया।[5]

मनीत कुमार (1992) का विचार है कि आर्थिक क्रियाएँ विदेशी विनमय को अर्जित करने के मुख्य साधन है। इन्होंने बताया कि पर्यटन, सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास रोजगार का उत्पादक एवं उन्नायक तथा सद्भावना एवं मित्रता का माध्यम है। भारतीय पर्यटन की एक सशक्त शुरूआत है जिसे भारत सरकार प्राथमिकता दे रही है प्रोत्साहन की तालिका बिल्कुल विचाराधीन है जैसे–होटलों तथा इससे संबंधित सेवाओं में निजी क्षेत्र का प्रवेश एवं इन्हें प्रोत्साहन, वाहन चालक अधिनियम में संशोधन, होटल आदि के निर्माण में प्रवासी भारतीयों के प्रोत्साहन, आयकर में छूट, स्थानीज तीज त्योहार एवं मेलो लोककला, लोकनृत्य आदि के आयोजन पर बल वा इनका वृहद स्तर पर प्रचार–प्रसार आदि। इसका परिणाम यह होगा कि भारतीय पर्यटन अन्तर्राष्ट्रीय पर्यटक के समक्ष पहुँच सकेगा तथा इसका भविष्य उज्ज्वल हो सकेगा।[6]

कौल (1985) ने प्रदेश, राष्ट्र और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर पर्यटन को बढ़ावा देने के लिए बहुत सारी क्रियाविधि का उल्लेख किया है। इन्होंने अपनी पुस्तक में प्रदेश स्तर पर पर्यटन व विकास के स्वरूप की बात कही है। इसके अलावा इन्होंने अपनी एक अन्य पुस्तक में विभिन्न दृष्टिकोण से पर्यटन के क्षेत्र वा विस्तार में आवास की भूमिका का मूल्यांकन किया है।[7]

इस प्रकार पर्यटन पर किये गये अभी तक के अध्ययन में मिथिला में पर्यटन की प्रमुख समस्याओं तथा सम्भावनाओं का अध्ययन नहीं किया गया है, अभी तक पर्यटन के समस्याओं तथा इसके निदान का अध्ययन तो किया गया है लेकिन मिथिला में पर्यटन की संभावनाओं पर अध्ययन नहीं किया गया है।[8] अतः इन्हीं सम्भावनाओं को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत आलेख का विषय मिथिला में पर्यटन की समस्याएँ एवं सम्भावनाएँ रखा गया है।

अध्ययन का उद्देश्य :

आलेख को सामान्यतः निम्नांकित उद्देश्यों के रूप में अध्ययन कर प्रस्तुत गया है –

1. पर्यटन के आकर्षण के कारणों का विश्लेषण।
2. पर्यटकों की संख्या में वृद्धि के तथ्यों का विश्लेषण।
3. पर्यटन केन्द्र के कारण क्षेत्र की अर्थव्यवस्था पर पड़ रहे प्रभावों का अध्ययन।
4. पर्यटन क्षेत्र की समस्याओं का अध्ययन एवं समस्याओं को कम करने के व्यावहारिक उपायों का विश्लेषण।[9]
5. अध्ययन क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों की विशेषताओं व महत्त्व को जानना।
6. मिथिला के भौगोलिक स्वरूप का विश्लेषणणत्मक अध्ययन।
7. सामाजिक–आर्थिक व सांस्कृतिक क्षेत्र में पर्यटन के प्रभावों की समीक्षा।

परिकल्पना :

प्रस्तुत अध्ययन प्ररूप निम्न अध्ययन की परिकल्पनाओं को सत्यापित करेगी–

1. पर्यटन के द्वारा व्यापार, ज्ञान, शिलप मनोरंजन को और अधिक बढ़ावा मिलता है।
2. पर्यटन उद्योग से रोजगार के स्तर सुधारते हैं।
3. पर्यटन राष्ट्रीय आय एवं विदेशी मुद्रा में वृद्धि का प्रमुख स्रोत होता है।
4. उचित एवं उपयुक्त प्रबंध के द्वारा सांस्कृतिक एवं पर्यटन स्थलों को सुरक्षित रखा जाता है।

5. मिथिला के पर्यटन अवस्थापनाओं में सहायक बनेगा।[10]
6. अध्ययन क्षेत्र के दर्शनीय स्थलों का महत्व एवं विशेषता को समझने में सहायक बनेगा।

पर्यटन का महत्त्व :

पर्यटन की आवश्यकता पर विचार करते हुये यह स्पष्ट हुआ कि विभिन्न दृष्टिकोणों से पर्यटन का अतिमहत्त्व है।[11] प्रारंभिक चरण में यात्राएँ उल्लिखित आवश्यकताओं के संदर्भ में ही की गई किन्तु समय के साथ–साथ पर्यटन के स्वरूप एवं संरचना में निरंतर परिवर्त्तन होता गया और वर्त्तमान समय में यह अपनी आवश्यकता हुये एक उद्योग के रूप में वृद्धि एवं विकास पर अग्रसर है।[12]

अध्ययन पद्धति एवं स्रोत :

प्रस्तुत अध्ययन कार्य को संपादित करने के लिए विश्लेषणात्मक अध्ययन पद्धति का सहारा लिया गया है। इसके अन्तर्गत विभिन्न माध्यम से प्राप्त तथ्यों, सरकार द्वारा प्रकाशित प्रतिवेदनों, सरकार द्वारा निर्धारित विभिन्न नीतियों, रिजर्व बैंक का बुलेटिन, तत्संबंधी अन्य प्रकाशित साहित्य, पत्र–पत्रिकायें, संसद की कार्यवाही, कार्य योजना आदि का अवलोकन किया गया है । अध्ययन की विश्वसनीयता, उद्देश्य एवं प्राक्कल्पनाओं के सत्यापन के लिए द्वैतियक स्रोतों से प्राप्त तथ्यों का सहारा लिया गया है ।

संदर्भ :

1. वार्षिक रिपोर्ट, 2012–13, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 130
2. आर्थिक सर्वेक्षण, 2007–08, भारत सरकार, नई दिल्ली, पृ. 118–120
3. मिश्रा, आर.पी.; शर्मा, एस.एस. एवं आचार्या, राम (1981) वर्ल्ड टुरिज्म, डेल्ट इन्टरनेशनल, जयपुर।
4. नेगी, जगमोहन (1990), टुरिज्म एवं ट्रेवल : कॉनसेप्ट ऑफ टुरिज्म, गीतांजली पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
5. गुप्ता, वी.के. (1987), टुरिज्म इन इंडिया, ज्ञान पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
6. मनीत कुमार (1992), टुरिज्म टुडे, एन इंडियन प्रोस्पेक्टिव, कृष्णा पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली
7. कौल, आर.एन. (1985), डायनामिक्स ऑफ टुरिज्म : ट्राइलोजी, वाल्यूम–1, फेनोमेनन वॉल्यूम–2 एकमोडेशन, वाल्यूम–3 ट्रान्सपोटेशन एण्ड मार्केटिंग, स्टेरलिंग पब्लिशर्स, नई दिल्ली
8. कुमार, कपिल (2007), पर्यटकों एवं मेजबानों को समझना, प्रकाशक : इग्नू, नई दिल्ली
9. रावत, ताज (2004), पर्यटन एवं यात्रा के सिद्धांत, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
10. नेगी जगमोहन (2007), पर्यटन का प्रभाव एवं प्रबंधन, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली
11. राजन, धर्म एवं सेठ (1994), भारत में पर्यटन, एच.पी.एच. पब्लिकेशन, नई दिल्ली
12. चोपड़ा, सुचिता (1992), भारत में पर्यटन का विकास, एच.पी.एच. पब्लिकेशन, नई दिल्ली

***

मधुबनी जिला में कृषि विकास : एक भौगोलिक अध्ययन

डॉ. रामशरण यादव *

कृषि विकास से तात्पर्य केवल उत्पादकता में वृद्धि से नहीं है, यह कृषि के सम्पूर्ण अंगों के विकास से सम्बन्धित है । कृषि के आर्थिक क्रिया होने के कारण इसे विकसित करने हेतु भूमि, श्रम, पूँजी निवेशक और संठन की कुाल व्यवस्था होना आवश्यक है। कृषि के क्षेत्र में नये तकनीकी ज्ञान का विस्तार सेवाओं के माध्यम से कृषकों के बीच प्रचार प्रसार और उनका अपनाया जाना है । कृषक चाहे किसी भी वर्ग का हो उसकी जीवन–शैली और विचारधारा लगभग एक सी होती है। कृषि विकास मूलतः एक सांस्कृतिक अवधारणा है जिसे ग्रामीण कृषक समाज ने शताब्दियों के परिश्रम और अनुभवों से विकसित किया है। पिछली एक शताब्दी से कृषि वैज्ञानिक और अर्थशास्त्रियों ने इसे आधुनिक स्वरूप प्रदान किया है ।

की वर्ड – *कृषि उत्पादकता, कृषि वैज्ञानिक, अनुकूलतम, पशुशक्ति, छद्मवेशी आदि*

प्रस्तावना :

कृषि उत्पादकता में वृद्धि हेतु अनेक साधनों की आवश्यकता होती है। भूमि की स्थिति और जलवायु के अनुसार जहाँ उसके अनुकूलतम उपयोग करने की आवश्यकता है वहाँ उसका विविध प्रकार से उपयोग किया जाना चाहिए ताकि उससे निरन्तर अधिकतम उत्पादन और लाभ प्राप्त हो सके । भूमि प्रबन्ध के लक्ष्य उपरोक्त उद्देश्यों की पूर्ति करने से सम्बन्धित होते हैं। श्रम से तात्पर्य न केवल मानवीय श्रम के कार्य दिवस से है वरन उसकी कुशलता से भी है। यंत्रीकरण केवल मानवीय श्रम का ही विसापन नहीं करता वरन पशुशक्ति निवेश को भी कम करता है जिससे कृषि कार्य ने केवल शीध्रता से सम्पन्न होते हैं वरन कृषक को अनेक अन्य कठिनाईयों से मुक्त करते हैं।[1]

अधिक उत्पादन देने वाले बीजों का प्रयोग सिंचाई की व्यवस्था , उर्वरकों की पूति कीटनाशक दवाओं का उपयोग , पशु शक्ति अथवा यांत्रिक शक्ति निवेश हेतु पूँजी की आवश्यकता होती है । पूँधी निवेश कम होने पर उत्पादन भी कम होती है जिससे बचत कम और अगली फसल के लिये पुनः पूँजी निवेश कम होती है। बड़े पैमाने पर कृषि विकास हेतु कृषकों को संगठनात्मक सहयोग की आवश्यकता होती है। ग्रीमण कृषक समाज के अतिरिक्त सहकारी संस्थाएं तथा बैंक कृषि यंत्रों और उर्वरकों के कारखानें, सिंचाई एवं कृषि विभाग, भारतीय खाद्य निगम आदि अनेक संगठन कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति में संलग्न रहते हैं ।[2]

डॉ० जे० कोस्ट्रोविकी ने कृषि विकास को प्रभावित करने वाले विविध कारको को दो प्रमुख वर्गो में वर्गीकृत किया है–

1. **वाह्य कारक**– कृषि विकास को प्रभावित करने वाले वाह्य कारको में (1) भौतिक कारक जैसे धरातलीय रचना, मिट्टियाँ, (2) जलवायु की दशाएं जैसे तापमान, वर्षा, मौसम आदि (3) अन्य वाह्य कारकों में कृषि का स्थानीयकरण, यातायात के साधन, बाजार की परिस्थितियाँ, कृषि उत्पादन की कीमतें, माँग–पूर्ति कृषि साख आदि है।[3]
2. **आन्तरिक कारक**– कृषि विकास को प्रभावित करने वाले आंतरिक कारकों के अनतर्गत (1) कृषि की सामाजिक और स्वामित्व सम्बन्धी दशाएं जैसे जोत का आकार स्वामित्व का स्वरूप, (2) कृषि की तकनीकी एवं संगठनात्मक दशाएं जैसे सिंचाई, उर्वरकों की पूर्ति, श्रम निवेश, पशु शक्ति निवेश, यांत्रिक शक्ति निवेश, कृषि भूमि उपयोग की दक्षता, (3) कृषि की उत्पादन सम्बन्धी दशाएं जैसे भू–उत्पादकता, श्रम उत्पादकता, निवेश उत्पादन अनुपात, व्यापारीकरण मी मात्रा तथा स्तर,

* रिसर्च स्कॉलर, स्नातकोत्तर भूगोल विभाग, ल. ना. मिथिला विश्वविद्यालय, दरभंगा

(4) कृषि की संरचनात्मक दशाएं जैसे शस्य स्वरूप (E.S.I), समूह की फसलों के अन्तर्गत क्षेत्र प्रादेशिक विशिष्टीकरण की मात्रा आदि।

भौतिक कारकों का कृषि पर प्रभाव प्रायः छद्मवेशी होता है और इस प्रभाव को बिलगित (Isolate) कर पाना कठिन होता है। भौतिक कारकों ने एक दिये गये प्रदेश की कृषि के ऐतिहासिक विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है पर कृषि प्रदेशों या प्रकारों के निर्धारण में इन्हें वरों के रूप में सम्मिलित नहीं किया जाना चाहिए इन्हें विशिष्ट प्रादेशिक स्वरूप के स्पष्टीकरण के रूप में छोड़ देना चाहिए। दूसरी ओर आंतरिक कारक कृषि विकास की वर्तमान अवस्था को प्रकट करते हैं। आंतरिक और उत्पत्तिजन्य होने के कारण इनके आधार पर निर्धारित एवं सीमांकित कृषि प्रदेश या कृषि प्रकार अधिक वैज्ञानिक और तर्कसंगत हैं। इसीलिये वर्तमान अध्ययन में आंतरिक विशेषताओं पर आधारित कृषि विकास के प्रदेशों का निर्धारण एवं सीमांकन किया गया है।[4]

कृषि विकास के प्रदेश–कृषि प्रदेशों की तरह कृषि विकास प्रदेश भी क्षैतिज विस्तार वाला एक बहुलाक्षणिक और कर्मोपलक्षी (Functional) प्रदेश होता है। एक कृषि विकास प्रदेश के विभिन्न भागों में कृषिगत दशाओं और उत्पादन संबंधी विषेताओं की समांगता (Homogenelty) पाई जाती है। प्रदेश सम्बन्धी अध्ययन एक स्थानिक एवं प्रादेशिक विचारधारा से है।[5] कृषि विकाास का प्रदेश एक ऐसा धरातलीय खण्ड होता है जिसकी निश्चित सीमाओं के भीतर निवेश एवं उत्पादन सम्बन्धी दशाएं इस तरह संश्लिष्ट एवं सुसंबद्ध होती है कि वह एक विशिश्ट पहचान का क्षेत्र बन जाता है जो संलग्न प्रदेश से भिन्न होता है। यह प्रमुख रूप से इकाइयों की कृषि सम्बन्धी कारकों की भिन्नताओं पर आधारित समष्टिगत तथा क्षेत्रिय संकल्पना है। एक कृषि विकास प्रदेश कृषिगत दशाओं एवं विशेषताओं में अन्य कृषि विकास प्रदेशों से भिन्न होता है। कृषि विकास के प्रदेश क्षैतिज विस्तार में छोटा अथवा बड़े आकार के हो सकते हैं।[6]

कृषि विकास के स्तर संबंधी अवधारणा एक पदानुक्रमीय विचारधारा भी है। कृषि की दृष्टि से एक निम्न विकसित प्रदेश को उच्चत्तम श्रेणी के विकसित प्रदेश से पृथक धरातल एवं मानचित्र पर उसकी पहचान दी जा सकती है। अतः कृषि विकास के स्तरों की पदानुक्रमता से कृषि की ऊर्ध्वाधर की विशेषता स्पष्ट होती है जिसे प्रदेशों के बीच निम्न, मध्यम और उच्च श्रेणी का मापन आसानी से किय जा सकता है।[7]

कृषि विकास के प्रदेश समय के अनुसार परिवर्तनशील होते है। एक निम्न कृषि विकास के प्रदेश को सिंचाई, उर्वरकों, अधिक उत्पादन देने वाले बीजों और यांत्रिक शक्ति आदि के अधिकाधिक निवेश से उच्च उत्पादकता प्राप्त कर उच्च स्तर के कृषि प्रदेश में बदला जा सकता है। आवश्यकतानुसार वैकल्पिक शस्य स्वरूप अपनाकर और उसे अधिक लाभप्रद बनाकर न केवल उसके मूल स्वरूप को बदला जा सकता है वरन उसके स्तर में भी वृद्धि की जा सकती है।[8] अतः कृषि विकास प्रदेश किसी बड़े भू–भाग के स्थायी लक्षण नहीं है, वे केवल वर्तमान स्थिति के द्योतक है। एच. इंशिदा के अनुसार जैसे–जैसे मनुष्य के संसाधन उपयोग, तकनीक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक संबंधों के दृष्टिकोण में परिवर्तन होते हैं वैसे–वैसेस कृषि विकास के प्रदेशों में भी संशोधन किया जा सकता है।[9]

कृषि विकास के प्रदेशों का अध्ययन कृषि के नियोजन में बहुत महत्वपूर्ण होता है। कृषि विकास के नियोजन में केवल निवेशों की पूर्ति में वृद्धि अथवा फसलों की उत्पादकता में वृद्धि का ही लक्ष्य नहीं होना चाहिए वरन कृषि भूमि उपयोग का संतुलित, विविध प्रकार के उपयोग और अधिक लाभप्रदता का दृष्टिकोण भी होना चाहिएं इसके अतिरिक्त देश की आवश्यकताओं के अनुरूप शस्य स्वरूप में परिवर्तनशीलता भी नियोजन का आवश्यक अंग है। खाद्यान्न एवं व्यापारिक फसलों के बीच आवश्यक संतुलन होना आवश्यक है। कृषि विकास के नियोजन में केवल अनाज की फसलों में उच्च उत्पादकता प्राप्त करने का लक्ष्य नहीं होना चाहिए वरन देश की आवश्यकताओं के अनुरूप दालें, तिलहन तथा अन्य व्यापारिक फसलों में भी उच्चतम उत्पादकता प्राप्त करने का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि कृषि एक लाभप्रद व्यवसाय हो सके। कृषकों की दशा में सुधार हो सके, इसके अतिरिक्त

दी गई कृषि जलवायु दशाओं में जो भी वैकल्पिक फसल चक्र अधिक लाभप्रद और संभव हो उसे अपनाने का प्रयास होना चाहिए। इस तरह कृषि विकास के प्रदेशों का अध्ययन कृषि नियोजन में भी बहुत सहायक होता है। कृषि प्रदेशों के निर्धारण हेतु चरों का चुनाव कृषि की आंतरिक विशेषताओं के आधार पर किया गया है। आंतरिक विशेषताओं में उत्पादन संबंधी दशाऐं एवं संरचना आधार सम्मिलित है। आंतरिक विशेषताओं के आधार पर निर्मित कृषि विकास के प्रदेश वैज्ञानिक वं तर्कसंगत है, तथा इसमें स्थायित्व भी अधिक होता है।[10]

मधुबनी जिले की कृषि उत्पादकता प्रदेशों के निर्धारण हेतु निम्नलिखित बारह चरों का चयन किया गया है–

1. श्रम निवेश
2. जोत का औसत आकार
3. पशु शक्ति निवेश
4. यांत्रिक शक्ति निवेश
5. रासायनिक उर्वरकों का उपयोग
6. अधिक उत्पादन देनेवाले बीजों के क्षेत्र का कुल बोई गई भूमि से प्रतिशत
7. निरा सिंचित क्षेत्रफल का प्रतिशत
8. श्म्श समूह की फसलों का प्रतिशत
9. भू–उत्पादकता
10. श्रम उत्पादकता
11. वाणिज्यीकरण की मात्रा
12. वाणिज्यीकरण का स्तर।

कृषि विकास प्रदेश वस्तुतः कृषि प्रदेश होत हैं जिनमें विकास के कारकों पर अधिक बल दिया जाता है ताकि कृषि विकास के स्तरों का निर्धारण किया जा सके। चयनित चरों में न केवल उत्पादन संबंधी दशाओं को नापने वाले चरों को आधार बनाया गया है वरन् कृषि उत्पादकता को प्रभावित करनेवाले कारकों को भी चरों के रूप में सम्मिलित किया गया है।

कृषि के सामाजिक एवं स्वामित्व संबंधी दशाओं के अन्तर्गत जोतों के औसत आकार को सम्मिलित किया गया है। श्रम निवेश, पशु शक्ति निवेश, यांत्रिक शक्ति निवेश, सिंचाई, उर्वरकों के उपयोग तथा अधिक उत्पादन देनेवाले बीजों के क्षेत्र संबंधी चर, कृषि की तकनीकी एवं संगठनात्मक दशाओं के अन्तर्गत आते हैं और कृषि उत्पादकता को प्रभावित करते हैं। कृषि की संरचनात्मक दशाओं में निष्कर्षण फसल समूह श्म्श के क्षेत्र के प्रतिशत को आधार बनाया गया है। उत्पादन संबंधी दशाओं में भू–उत्पादकता, श्रम उत्पादकता, वाणिज्यीकरण की मात्रा तथा स्तर उत्पादकता के स्वयं के गुण है। ये उत्पादन की विशेषताओं को प्रकट करते है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि कृषि विकास के सभी आयामों को विकास प्रदेशों में संश्लेषित किया गया है। अर्थशास्त्र की दृष्टि से भी उत्पादन के चरों जैसे– भूमि, श्रम, पूँजी तथा संगठन इन चरों में सम्मिलित है। अतः कृषि विकास के प्रदेशों का आधार व्यापक है।

संदर्भ :

1. ज्ञानेन्द्र, कुमार एवं सूर्यमणि मिश्रः भूमि उपयोग माचित्रण, राष्ट्रीय एटलस एण्ड थिमेटिक मैपिंग आर्गनाइजेशन, कलकत्ता, 1986, पेज–113–117।
2. मिश्रा, एस. एस. (1984) : विद्यालय संस्थान और स्वास्थ्य शिक्षा, रस्तोगी प्रकाशन, मेरठ।
3. निर्मला श्यामलाल(2000) : अस्पृश्यता निवारण अधिनियम की क्रियात्मकता एवं प्रभावशीलता वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।
4. शफी, एम.(1960) : मेजरमेन्ट ऑफ एग्रीकल्चर इफीसीएन्सी इन उत्तर प्रदेश, इकोनोमिक ज्योग्राफी, वॉल 36 (4), पृ0 296–305
5. त्रिपाठी, आर0 डी0 (1999) : जनांकिकी और जनसंख्या अध्ययन, वसुन्धरा प्रकाशन, गोरखपुर।

6. सिंह, जी0 बी0(1979) : ट्रान्सफॉर्मेशन ऑफ एग्रीकल्चर, ए केस स्टडी ऑफ पंजाब, विशाल पब्लिकेशन्स, कुरूक्षेत्र, पृ0 67
7. रंधवा, एम0 एस0 (1958) : एग्रीकल्चर एण्ड एनीमल हसबैण्ड्री इन इंडिया, पब्लिकेशन डिविजन, आईसीआर, न्यू दिल्ली, पृ0 157
8. सिंह, जसबीर और एस0 एस0 डिल्लन (1984): एग्रीकल्चर ज्योग्राफी, टाटा मैकग्रो हील, कॉ0 नई दिल्ली, पृ0 57
9. वही,
10. सेन,ए0 के0: एग्रीकल्चर एटलस ऑफ राजस्थान, आईसीएआर, नई दिल्ली, 1972,पृ0 33

***

संस्कृत साहित्य में साहित्य दर्पण एवं काव्य प्रकाशन का तुलनात्मक एवं समीक्षात्मक अध्ययन

प्रो. जनार्दन प्रसाद पाण्डेय *
रामधन **

संस्कृत वांगमये साहित्य दर्पण काव्य प्रकाशयोश्च तुलनात्मक समीक्षात्मकंच अध्ययनम्

भूमिका :–काव्यशास्त्र को ही साहित्यशास्त्र काव्यालङ्कारशास्त्र, अलङ्कारशासत्र एवं क्रियाकल्प इत्यादि विविधनामों से जाना जाता है। काव्यशास्त्र समाज का चित्र माना जाता है। अतः काव्य के मर्म को समझने के लिए काव्याशास्त्र का ज्ञान होना अनिवार्य है।

साहित्यदर्पणः–13–14वीं शती के प्रख्यात उत्कल (उद्दीक्षा) के निवासी विश्वनाथ कविराज का साहित्यदर्पण साहितयशास्त्र का अत्यन्त लोकप्रिय ग्रन्थ है। सहित्यदर्पण अपनी सुबोधत से सहृदययों को अपनी ओर आकर्षित कर लेता है। प्राचीन आचार्यो का अनुकरण करते हुए आचाय विश्वनाथ ने साहित्यदर्पण को 10 परिच्छेदों में विभक्त किया है। उनमें कारिका, वृतित और उदाहरण मुख्य है। कारिका और वृत्ति स्वयं विश्वनाथ की है और उदाहरण काव्य से संकलित है।

काव्य की परिभाषा–आचार्य विश्वनाथ कविराज ने काव्य को परिभाषित करते हुए लिखा है ''वाक्यं रसात्मकं काव्यम्।''[1] (सा. दर्पण प्रथम परिच्छेदः) अर्थात् रसात्मक वाक्य को ही काव्य कहते हैं। इस परिभाषा में समन्वित 'रस' तथा 'काव्य' दोनों का विवेचन निम्नलिखित है–

रसात्मकम्–रसात्मक का अभिप्राय है–'रस एवात्मा सार रूपतया जीवनधायकों यस्य'' अर्थात् रस ही है आत्मा जिसकी एवं ऐसा वाक्य जिसका प्राणभूत (आत्मा) रस है, उस वाक्य को रसात्मक कहते है। यहाँ पर रस का अभिप्राय है–'रस्यते इति रसः' अर्थात् जो आस्वादित होता है, उन सबको रस कहते हैं। इसमें रस, रसाभास, भाव एवं भावाभास का भी ग्रहण होता है। तद्यथा–

रसस्वरूपं निरूपयिष्यामः। रस एवात्मा साररूपतया जीवन बाधायको यस्य। तेन बिना तस्य व्युत्पत्तियोगाद् भावतदाभासादयोऽपि गृहन्ते।

तत्र रसो यथा–

शून्यं वासगृहं विलोक्य **शयनादुत्थाय किचिच्छनै**
र्निद्राव्याजमुपागतस्य सुचिरं निर्वर्ण्य पत्युर्मुखम्।
विस्रब्धं परिचुम्ब्य जातपुलकामालोक्य गण्डस्थलीं
लज्जानम्रमुखी प्रियेण हसता वाला चिरं चुम्बिता।। सा.दर्पण प्रथम परिच्छेद
अत्र हि संभोगशृङ्गाराख्यो रसः।

भाव 'भागवद्विषया रतिर्भाकः अर्थात देवादि विषयक रति और संचारीभाव यदि व्यज्जित हो तो उसे भाव कहते है–

तद्यथा महापात्रराघवानन्दसान्धिविग्रहिकाणाम्–
'यस्याली यत शल्कसीग्नि जलधिः पृष्ठे जमन्मण्डलं
दंष्ट्रायां धरणी, नखे दिति सुताधीशः, पदे रोदसी।
क्रोधे क्षत्रगणः शरे दशमुखः पाणौ प्रलम्बासुरो।
ध्याने विश्वमसावधर्मिककुलं कस्मैचिदस्मै नमः।।

रसाभासः– तिर्यमिषयत्वाद्ररसाभासः अर्थात् अनौचित्य से प्रकृत तथा पशु–पक्षी विषयक रस (श्रृंगार) को रसाभास कहते है–

---

* शोध निर्देशक (मणि), राष्ट्रीय संस्कृति संस्थान गंगा नाथ झा परिसर प्रयागराज केन्द्रीय संस्कृत विश्वविद्यालय, देलही
** शोध छात्र,एम.ए., एम.एड., नेट जे.आर.एफ पी.एच.डी.

यथा

मधु द्विरेफः कुसुमैकपात्रे पपौ प्रियां स्वामनुर्वमानः।

श्रृंगेणच स्पर्शनिमीलिताक्षी, मृगीतकण्डूयत कृष्णसारः।

अतः आचार्य सामान्यतः इसे 'भाव' ही मानते रहे है–

यथा–रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाब्जितः, भावः प्रेक्तः काव्य प्रकाश 4/35।[2]

वाक्यम्–वाक्य का लक्षण है–'वाक्यं स्याद्योग्यताकांक्षासत्ति युक्तः पदोच्चयः।' अर्थात् योग्यता, आकांक्षा, आसत्ति से युक्त पद समूह को वाक्य कहते हैं यहाँ पर–

पदार्थानां परस्परसम्बन्धे बाधाभावः योग्यता पदोच्चयस्यैतदभावेऽपि वाक्यत्वे वहिनना सिंजति इत्याद्यपि वाक्य स्यात्।

आकांक्षा प्रतीतिपर्यवसान विरहः। स च श्रोतुर्जिज्ञासारूपः। निराकांक्षस्य वाक्यत्वे गौरश्वः पुरुषो हस्ती इत्यादीनामपि वाक्यत्वं स्यात्।

आसत्तिर्बुध्यविच्छेदः। बुद्धिविच्छेदेऽपि वाक्यत्वे इदानीमुच्चसित्य देवदत्तशब्दस्य दिनान्तरोच्चरितेन गच्छतीति पदेन संगति स्यात्। अत्राऽकांक्षायोग्यतयोरात्मार्थधर्मत्वेऽपि पदोच्चय धर्मत्वमुपचारात्।

इस प्रकार विश्वनाथ की दृष्टि से 'रस' अर्थात् लोकोत्तर आनन्द जिस वाक्य में प्राप्त हो, उसी को काव्य कहते है। 'वाक्यम्' के द्वारा कविता के कलापक्ष और 'रसात्मकम' के द्वारा भावपक्ष की समानता को स्वीकार करके कविता के दोनों की पक्षों के अभेद की स्वीकार किया है। अतः रसात्मक वाक्य ही काव्य है।

काव्य की अन्य परिभाषाओं का खण्डन–आचार्य विश्वनाथ द्वारा प्रतिपादित वाक्य रसात्मकं काव्य काव्यस्वरूप का विवेचन करते हुए आचार्य मम्मट, आचार्य कुन्तक, तथा भोजराज के काव्य लक्षणों का विस्तारपूर्वक खण्डन किया गया है। काव्य की आत्मा ध्वनि मानने वाले ध्वनिकार आनन्दवर्धन क काव्य यात्मा ध्वनि तथा काव्य की आत्मा रीति मानने वाले आचार्य वामन के 'रीतिरातमकाव्यस्य' काव्य लक्षण का भी खण्डन किया है, जिनका संक्षिप्त विवरण निम्नलिखित है–

आचार्य मम्मट तददोषौ शब्दार्थौ, सगुणवनलंकृती पुनः क्वापि काव्य प्रकाशः का 4 सूत्र 1

अर्थात् दो षरहित, गुणसहित तथा अलङ्कारों से युक्त शब्द एवं अर्ी का काव्य कहते है, किन्तु यदि कहीं अलङ्कार स्फुट न हो तो भी कोई हानि नहीं होती है।

आचार्य विश्वनाथ, आचार्य मम्मट की इस परिभाषा का खण्डन करते हुए तर्क देते है कि–''काव्य में किसी दोष की उपस्थिति से इा काव्य का मूल्य (कोटि) भले ही कम हो जाए, परन्तु उसका काव्यतव नष्ट नहीं होता है, जैसे कीटानुविद्ध रत्ना का रत्नत्व नहीं होता है–

कीटीनुविद्धरत्नानि साधरव्येन काव्यता।
दुष्टष्वपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुतः।।

इसकेअतिरिक्त 'शब्दार्थौ' का 'सगुणो' विशेषण उचित नहीं है, क्योंकि गुण केवल रस में ही रहते हैं, शब्द और अर्थ है नहीं–

''ये रसस्यांगिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।
उत्कर्षहेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।

का. प्रकाशः का. 66 सूत्र–86

'अनलङ्कृति पुनः क्वापि' काव्यरूपी पुरूष के लिए अलङ्कार कटक–कुण्डलादि की तरह है। जिस प्रकार काव्यपुरुष के रुपक में अलङ्कार कटक कुण्डल के समान कहे गय है, उसी प्रकार अलङ्कारयुक्त शब्द और अर्थ भी काव्य में उत्कर्षमात्र का आधान करने वाले होते है स्वरूप का आधान करने वाले नहीं। अतः काव्य के लक्षण में अनलङ्कृती पुनः क्वापि को अलङ्कारों के स्वरूपसाधक न होने के कारण ग्रहण नही करना चाहिए।

आचार्य कुन्तक वक्रोक्तिः काव्यजीवितम्[3] अर्थात् वक्रोक्ति ही काव्य है। आचार्य कुन्तक की इस परिभाषा का खण्डन करते हु विश्वनाथ जी कहते है वक्रोक्ति तो एक अलङ्कार मात्र है, जो काव्य के

एक अंग अलङ्कार का एक उपविभाग है। इसके अतिरिक्त अलङ्कार काव्य का स्वरूप नहीं होता है, अपितु काव्य में केवल उत्कर्ष पैदा करता है अतः यह लक्षण भी खण्डित हो जाता है।
आचार्य भोज

अद्रोषं गुणवत्काव्यम् अलङ्कारैरलङ्कृतम्
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिं च विन्दति।।

सरस्वती महाकाव्यभरणम्।[4]

अर्थात् 'दोष रहित, गुण सहित अलङ्कारों से विभूषित तथा रस से युक्त काव्य को बनाता हुए कवि कीर्ति और प्रीति का पात्र बनता है।' विश्वनाथ, आचार्य भोज के इस लक्षण का खण्डन करते हुए कहते है कि दोष गुणादिकों का स्वरूप में निवेश नहीं हो सकताः

आचार्य आनन्दवर्धनः–काव्यस्यात्मा ध्वनिः।[5] इक्थालोक

अर्थात् ध्वनि ही काव्य की आत्मा है। इस परिभाषा के खण्डन में आचार्य विश्वनाथ कहते हैं कि ''यदि वस्तुमात्र के व्यंगय होने पर काव्यत्व मानने लगेंगे तो राजा देवदत्त गाँव को जाता है इत्यादि वाक्य भी काव्य हो जायेंगे, क्योंकि इस काव्य में देवदत्त के मृत्य का पीछे–पीछे जाना ध्वनित हो रहा है।''

आचार्य विश्वनाथ रसादि ध्वनि को स्वीकार करते है, लेकिन वस्तु ध्वनि और अलङ्कार ध्वनि को नहीं। इस प्रकार आचार्य विश्वनाथ द्वारा स्वीकृत रसादि ध्वनि से भिन्न ध्वनि का खण्डन समझना चाहिए।

आचार्यवामन ''रीतिरातमका काव्यस्य'' अर्थात् काव्य की आत्मा रीति है। इस परिभाषा के खण्डन में विश्वनाथ कहते है कि वामन का यह कथन ठीक नहीं है, क्योंकि रीति तो संघटना (रचना) रूप है। वह आत्मा नहीं हो सकती। आत्मा तो शरीर से भिन्न होती है। अतः आचार्य विश्वनाथ के काव्य लक्षण की स्थापना करते हुए कहा जा सकता है कि उपर्युक्त विद्वानों द्वारा प्रतिपादित काव्य लक्षण सदोष होने के कारण वाक्यं रसात्मकं काव्यं है।

काव्य प्रकाशः काव्य प्रकाशकार आचार्य मम्मट का प्रमुख काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ काव्य प्रकाश है। भोजराज के वाद आचार्य मम्मट का काल आता है। यह ग्यारहवीं शताब्दी में कश्मीर में जन्म लिए थें

संस्कृतसाहित्यस्य अभ्यासिषु कश्मीरदेशनिवासिनः आचार्यस्य मम्मटस्य निर्मितः काव्यप्रकाशः काव्य शास्त्रस्य की मांसाया प्रौढो ग्रन्थोऽस्ति। संस्कृतसाहित्यस्य प्रत्येक प्रौढत्र विद्यार्थी एक : प्रधान : पाढ्यग्रन्थोऽस्ति। विक्रमस्य द्वादशशताब्द्यां सरस्वत्याः धामस्वरूपे कश्मीरे देशेऽस्य रचनाऽभवत्। अल्पवर्षेष्वैव ग्रन्थोऽयं भारतस्य सर्वेषु प्रसिद्ध शिक्षा केन्द्रेषु महदादरपात्रमभजत्। सर्वत्रास्य पठन–पाठनपारभोऽभवत्। अस्य ग्रन्थस्य हृदयङ्गत्रमनुभूय अस्योषदि भिन्न देशस्य भिन्न–भिन्न निर्मिताः। यस्याः प्रवाहः निरन्तरमद्यावधि प्रचलित। न जाने, अद्याव्यधि कियन्त विद्वांसः अस्मिन् कियन्तः व्याख्याः अलिखन् तत्र न जाने, आसु कियन्त्यः लुप्ताः संजाता। महाराष्ट्रीयः विद्वान् महामहोपाध्यायः वामनझलकीकरः एतादृशीनामनेकसां प्राचीनव्याख्यानां समालोऽनं विधाय यां एकां विशदां नूतनां च व्याख्यां निर्मितवान तस्याः प्रस्तावनायां अस्मिन् ग्रन्थे लिखितानां व्याख्यानां प्रसिद्धानां सूचीं अददात्।[7] तस्याः अब लोक नेन अस्य ग्रन्थस्य व्याख्यात्मिकीनां रचनायां संख्यादि विषये काचित् कल्पना भवितुं शक्नोहित। काव्यप्रकाश खण्डन पृ. 35–40 काव्य प्रकाश की 'सु धा सु धा सा गर' टीका के निर्माता मीमसेन ने मम्मट के परिचय के रूप में कुछ पद्य लिखे है, उनसे यह प्रतीत होता है कि मम्मट कश्मीर देशीय जैयट के पुत्र थे। उन्होंने कारण सी में जाकर विद्याध्यपन किया था। पतंजलि प्रणीत 'महाभाष्य' के टीकाकार कैयट तथा यजुव्रेद भाष्यकार उक्त दोनों मम्मट के छोटे भाई थे। इस भाव का वर्णक भीमसेन ने अपने श्लोकों में निम्नलिखित प्रकार किया है–

शब्दब्रह्मा सतानतं न विदितं शास्त्रैः क्वचित् के नचित्
तद्वे हि सरस्वती सवभूत् काश्मीरे देशे पुमान।
श्री मज्जैयटगेहिनी सुजठरजन्माप्य युम्मानुजः
श्री मन्मम्मटसंज्ञया रितनुं सार स्वतीं सूचयन्।।

मर्यादां किल पालयन् शिवपुरी गत्वा प्रपठ्यादरात्
शास्त्रं सर्वजनोपकार रसिकः साहित्यसूत्रं व्यधात्।
तत्वृत्तिं च विरच्य गूढ़मककरोत् काव्यप्रकाशस्फुटं
वैदग्ध्यैकनिदानमर्थिषु चतुर्वर्गप्रदं से वनात्।।
कस्तस्य स्तुतिमा चरे त् कविरहो को वा गुणान् वेदितुं
शक्तः स्यात् किल मम्मटस्य भुवने वाग्देवतारूपिणः।
श्रीमान् कैयट औव्वटौ ह्यवरजौ यच्छात्रताभगतौ।
भाष्याब्धिं निगमं यथा क्रममकु व्याख्याय सिद्धि गतौ।।

काव्य प्रकाशकार मम्मट ने परिकरालंकार तक ही काव्यप्रकाश लिखे थे ऐसा काव्यप्रकसनिदर्शना नामक टीका के टीकाकार राजानक आनन्द ने (1685) में बताया है।

कृतः श्रीमम्मटाचार्यवर्यैः परिकरावधि का.प्र.
ग्रन्थः सम्पूरितः शेषं विधायाल्लटसूरिणा।।[4]

कावय प्रकाशकार मम्मट ने अपने काव्य प्रकाश में काव्य लक्षण दिया है।

तद्दोषौ शब्दार्थो समुणावनलंकृती पुनः क्वापि।

दो षगुणालंकारा वक्ष्यन्ते। क्वापीत्यनेनैतदाह यत् सर्वभ सालङ्कारौ क्वचित्तु स्फुटालंकारविरहेऽपि न काव्यत्वहानि।

यथा

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्र क्षपा–
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढ़ाः दम्बानिलाः।
सा चैवास्मितथापि तत्र सुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरूतले चेतः समुत्कण्ठते।।1।।

अत्र स्फुटो न कश्चिदलंकारः। रसस्य च प्राधान्यान्नालं कारता।

साहित्यदर्पणकार विश्वनाथ को उपर्युक्त उदाहरण में विभावना एवं विशेषक्ति अलंकार निकालने का प्रत्यन किया है किन्तु ये दोनों अलंकार परस्पर विरोधी है–

विभावना तु विना हेतुं कार्योत्पत्तिर्यदुच्यते।
सति हेतौ फलाभावो विशेषोक्तिस्ततो द्विधा।

आचार्य विश्वनाथ मम्मट के काव्य लक्षण सगुणौ, अलिङ्कृती तीनों पदों को खण्डित करके अपने काव्य लक्ष्ण काव्यं रसात्मकं वाक्यं को ही वास्तविक लक्षण मानते है। जबकि आचार्य ममम्ट कहते है कि यदि दोष रहित शब्दार्थ को ही काव्य माना जाय तो इस प्रकार का नितान्त दोषरहित काव्य संसार में मिल सकता ही कठिन है। इसलिए ''एवं काव्यं प्रविरल विषयं निर्विषयं वा स्यात्'' अर्थात् ऐसी दशा में काव्य या तो संसार में मिलेगा ही नहीं या तो बहुत कम मिलेगा। इसके अतिरिक्त आचार्य विश्वनाथ के उत्तम काव्य के उदाहरण स्वरूप अंकित श्लोक यक्कारो ह्यमेवयदरयः में विधेय विमर्श दो होने के कारण काव्य ही नहीं का जायेगा। ''यत्रांशे दोषः सोऽकाव्यत्वप्रयोजक, यत्र ध्वनिः स उत्तम काव्यत्वप्रयोजकः इत्यंशाभ्यामुभयत्र आकृष्यमाणमिदं काव्य मकाव्यं वा किमपिन स्यात्।

मम्मट के कहने का अभिप्राय यह है कि किंचित दोष समायुक्त भी काव्य कहा जायेगा।

सगुणौ आचार्य विश्वनाथ ने समुणौ पद भी अभिप्रेत नहीं है। उनका कना है कि मुन तो रस के धर्म होते है अर्थ के धर्म नहीं शब्द या अर्थ में हीं रह लिये है। ऐसी दशा में इस ही 'समुण' कहा जा सकता है। शब्दार्थ को सगुण नहीं कहा जा सकता है। इसके खण्डन में आचार्य मम्मट ने लिखा है–

गुण वृत्या पुनस्तेषां वृत्तिः शब्दार्थयोर्मता।

का.प्रकाशन 8 अष्टम उल्लास

गौणी वृत्ति से शब्द और अर्थ के साथ भी गुणों के सम्बन्ध का प्रतिपाद किया है और उसी दृष्टि से यहाँ शब्दार्थौ के विशेषक 'समुणौ' पद खण्ड–

समीक्षा–आचार्य विश्वनाथ एवं आचार्य वाग्देवाकार मम्मट दोनों के काव्य लक्षणों का अध्ययन कर चुकने पर हम यह निष्कर्ष निकालते है कि दोनों विद्वान् अपने–अपने स्थान पर सही है। किन्तु मम्मट का काव्य लक्षण पूरे संस्कृत काव्याशास्त्रीय ग्रन्थों में समादरणीय और आज भी इस को आधार मानकर सहित्यिक वर्ग अपने–अपने काव्यों की रचना करते है जोकि विद्वविद् समाज में एवं भारत देश के लगभग सभी विश्वाविद्यालयों में पठन–पाठन का यह अभिन्न अंग बन चुका है। यद्यपि कि आचार्य विश्वनाथ ने काव्य प्रकाश कर खण्डन किया है किन्तु मेरे मत से खण्डन का कोई औचित्य नहीं है केवल विद्वता प्रदिर्शत करने के उद्देश्य से आचार्य विश्वनाथ ने इसका (काव्यप्रकाश) का खण्डन किया दर्पण का कार्य ही है प्रकाश का पटाक्षेप करना। अतएव आचार्य विश्वनाथ का सहित्यदर्पण काव्य प्रकाश के खण्डन में प्रवृत्त हुआ है जो कि खण्डनीय नहीं है।

सन्दर्भ :

1. वाग्देवताकार आचार्य मम्मट कृत काव्य प्रकाश उल्लखस (1–10)
2. आचार्य विश्वनाथ कृत साहित्यदर्पण।
3. भोजदेव कृत सरस्वती कण्ठाभरण।
4. आनन्दवर्धन कृत ध्वन्या लोक प्रथम उद्योत।
5. आचार्य कुन्तक कृत वक्रोक्ति का व्यजीवितम्।
6. भरतमुनि कृत नाट्यशास्त्र
7. कपिल देव द्विवेदी कृत संस्कृत साहित्य का इतिहास।
8. आचार्य बल्देव उपाध्याय कृत संस्कृत साहित्य का समीक्षात्मक अध्ययन।
9. आचार्य दण्डी कृत काव्यादर्श।
10. अभिनवगुप्त कृत अभिनवभारती टीका।

***

स्त्री अस्मिता-विमर्श के संदर्भ में शांति सुमन के गीतों का अध्ययन

मोहन कुमार *

वर्तमान समय में अलग–अलग सामाजिक और साहित्यिक अस्मिताओं में व्यापक और अभूतपूर्व रचना,त्मक चेतना का समावेश हुआ है। किसी व्यक्ति, जाति, वर्ग, क्षेत्र आदि की अस्मिता को प्राप्त करने याठ ये करवाने के लिए किये जाने वाले विमर्श को अस्मितामूलक विमर्श कहा जाता है। वास्तव में यह अस्मितामूलक विमर्श एक सामाजिक और साहित्यिक आंदोलन है जिसके द्वारा उपेक्षित और वंचित व्यक्ति, जाति, वर्ग, क्षेत्र आदि को पहचान दिलाने का प्रयास किया जाता है। अस्मितामूलक विमर्श के भीतर उपेक्षित और वंचितों को समाज की मुख्यधारा के समक्ष खड़ा करने और उसके साथ चलने के लिए सक्षम और समर्थ बनाने का उद्देश्य निहित होता है। इसके द्वारा सामाजिक व्यवस्था में निचले पायदान पर खड़े लोगों के भीतर उनके अस्तित्व का बोध होता है और व्यवस्था के नियामक तत्वों को भी वंचितों के प्रति अपने कर्तव्यों का ज्ञान होता है। समाज में प्रत्येक व्यक्ति को बिना किसी भेदभाव के जीने, रहने और प्रगति करने का अधिकार प्राप्त है। एक न्यायपूर्ण, समानता पर आधारित और मानवीय गरिमापूर्ण साहित्य की वैचारिकी ही अस्मितामूलक विमर्श की वैचारिकी कहलाती है। पिछले एक युग के हिंदी साहित्य पर गौर करें तो हम पाते हैं कि इस दौरान साहित्य निरंतर मनुष्य की अस्मिता पर हो रहे अनेक प्रकार के चोट और प्रहारों से टकराता हुआ उसके प्रतिपक्ष में विमर्श का नया संसार रचता है।

उत्तर आधुनिकतावाद या उत्तर आधुनिकता बीसवीं शताब्दी के उत्तरार्ध में शुरू हुआ एक सैद्धांतिक आंदोलन है जो विशुद्ध साहित्यिक आंदोलन न होकर कला के कई रूपों से जुड़ा हुआ आंदोलन था। इसका उद्‌भव वृद्ध पूंजीवाद की कोख से हुआ और इसकी शिनाख्त नव पूंजीवाद रूप में भी की जाती है। इसने पुराने सिद्धांतों पर पुनः विचार करने की आवश्यकता पर बल दिया। आधुनिकता की विसंगतियों और उसकी सीमाओं से उपजे संकटों को प्रश्नांकित करते हुए इसने हाशिए की आवाज को प्रधानता दी। आधुनिकता के कारण प्रकृति और समाज का एक बड़ा हिस्सा हाशिए पर चला गया था। उत्तर आधुनिकता ने हाशिए की आवाज को केंद्र में लाने का कार्य किया। उत्तर आधुनिकता के कारण हिंदी साहित्य में स्त्री विमर्श, दलित विमर्श, आदिवासी विमर्श, पर्यावरण विमर्श आदि विमर्शों का उभार और विकास हुआ। इन विमर्शों ने कला, साहित्य और समाज को कई स्तरों पर प्रभावित किया और नयी चेतना प्रदान की। उत्तर आधुनिकता ऐसे समाज और व्यवस्था की खोज और स्थापना पर बल देता है जो अदमनकारी हो। उत्तर आधुनिकता के प्रभाव में मनुष्य के सामाजिक और व्यक्तिगत जीवन में भी परिवर्तन लक्षित किए गए। उत्तर आधुनिक युग के इस नव पूंजीवादी दौर में स्त्रियों, दलितों, पिछड़ों, आदिवासियों, अल्पसंख्यकों, ट्रांसजेंडरों आदि की जो विषम स्थिति रही है वह किसी से छिपी नहीं है। ऐसे में साहित्य की प्रयोजनशीलता यह है कि वह इस सत्य को समाज के समक्ष प्रस्तुत करे।

अस्मिता का संबंध पहचान से जुड़ा है। अस्मिता को किसी प्रकार से नकारा नहीं जा सकता। कोई व्यक्ति या समुदाय खुद को क्या समझती है इसका संबंध अस्मिताबोध से है। अस्मिता शब्द से जहां एक तरफ निजत्व का बोध होता है, वहीं दूसरी तरफ इससे जीवन के उन दूसरे पहलुओं का भी बोध होता है जो समय–समय पर अपने रूप को बदलते रहते हैं। विश्व भर में व्यक्ति और समुदाय अपने–अपने तरीके से अपनी–अपनी अस्मिता को प्राप्त करने के लिए लगातार संघर्ष करते रहे हैं। क्योंकि अस्मिताबोध के कारण ही व्यक्ति और समुदाय भटकावग्रस्त और दिशाहीन होने से स्वयं को बचाती है। हिंदी में अस्मिता शब्द पश्चिम के प्रभाव के कारण बहुत बाद में आया। डॉ नामवर सिंह के अनुसार "मेरी जानकारी में हिंदी में 1950 के आसपास अज्ञेय जी ने आईडेंटिटी के अर्थ में 'अस्मिता'

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, काशी हिंदू विश्वविद्यालय वाराणसी

चलाया"।[1] डॉ नामवर सिंह व्यक्ति की एक अस्मिता के बजाय अनेक अस्मिताओं के होने की बात करते हैं। अस्मिता पर संकट आ जाने से मांगने पर भी पहचान और अधिकार प्राप्त नहीं होता है। "अस्मिता अपनी पहचान के साथ–साथ क्षेत्र और समाज की पहचान भी है जो हमारे संदर्भ तय करते हैं। ये संदर्भ जाति, रंग, वर्ग, नस्ल, क्षेत्र, भाषा, जेंडर, पेशे इत्यादि के रूप में हमारे अंतरंग (साईकी) के हिस्से हैं।[2]

मानक हिंदी कोश के अनुसार 'विमर्श' शब्द का अर्थ है– विचारण, आलोचना, क्षोभ और उद्वेग।[3] अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश के अनुसार विमर्श का अर्थ है– भाषण, प्रवचन, प्रबंध आदि।[4] ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी कोश में 'डिस्कोर्स' शब्द का अर्थ दिया गया है– 'भाषण' या 'बातचीत'।[5] अर्थात उपरोक्त सभी शब्द विमर्श के समानार्थी हैं। विमर्श शब्द का अर्थ एक प्रकार की बातचीत या विचार विवेचन से जुड़ा हुआ है। साहित्यिक रूप में विमर्श शब्द का अर्थ 'किसी गंभीर विषय का गहन विवेचन–विश्लेषण और अंततः तर्कसंगत निर्णय पर पहुंचने का प्रयत्न' करने से है। अर्थात उपरोक्त सभी शब्द विमर्श के समानार्थी हैं। विमर्श शब्द का अर्थ एक प्रकार की बातचीत या विचार विवेचन से जुड़ा हुआ है। साहित्य रूप में भी विमर्श का अर्थ है किसी गंभीर विषय का गहन विवेचन विश्लेषण और अंततः तर्कसंगत निष्कर्ष पर पहुंचने का प्रयास।

अस्मिता–विमर्श' पदबंध का प्रयोग जब संयुक्त रूप से किया जाता है तो इसका अर्थ होता है किसी वर्ग, व्यक्ति, समुदाय, जाति, क्षेत्र, आदि की अस्मिता को प्राप्त करने या करवाने के लिए किया जाने वाला विचार–विश्लेषण और तर्कसंगत निर्णय पर पहुंचने के लिए क्या जाने वाला प्रयत्न। और इसका मकसद होता है कि सामाजिक व्यवस्था और विकास की प्रक्रिया में पीछे छूटे, वंचित, शोषित और न्यूनतम मानवीय अधिकारों से वंचित इकाई अथवा समुदाय अपने हक–हुकूक के लिए बोलें, लिखें और प्रयत्न करें। यही कारण है कि अस्मिता विमर्श आज हमारे सामाजिक, राजनीति, आर्थिक और साहित्यिक परिदृश्य का सर्वाधिक मुखर और प्रमुख स्वर है। "वंचित की हैसियत से अपनी पहचान के साथ बड़ा मोह होता है। पूरे समाज और इतिहास के अन्याय के खिलाफ खड़े होने का ख्याल ऊर्जा और प्रतिरोध की आपूर्ति का अक्षय स्रोत साबित होता है।"[6]

वर्तमान में अस्मिता विमर्श के कई रूप प्रचलित हैं। लेकिन प्रारंभ में आदिवासी–विमर्श, दलित–विमर्श और स्त्री–विमर्श ही अस्मिता विमर्श के मुख्य रूप थे। आगे अल्पसंख्यक विमर्श, पिछड़ा वर्ग विमर्श, किन्नर विमर्श, वृद्ध विमर्श, बाल विमर्श, युवा विमर्श, पर्यावरण विमर्श, किसान विमर्श, निर्धन विमर्श, श्रमिक विमर्श, भाषा विमर्श, विस्थापन विमर्श और लोक संस्कृति विमर्श जैसे अस्मितामूलक विमर्श के विविध आयाम विकसित हुए। इन विविध आयामों में विकसित होकर अस्मितामूलक विमर्श ने अपने क्षेत्र और परिधि का और अधिक विस्तार और विकास किया। नारी विमर्श या स्त्री विमर्श अस्मिता–विमर्श इसका एक प्रधान आयाम है। स्त्रियां परिवार निर्माण के लिए एक आवश्यक इकाई हैं। स्त्रियों के बिना परिवार, समाज और संसार की कल्पना नहीं की जा सकती है। प्राचीन समय में हमारे देश में स्त्रियों की स्थिति सिद्धांत के रूप में उच्चतम थी। विदेशी आक्रमणों के कारण स्त्रियों को प्रतिकूल परिस्थितियों और स्थितियों का सामना करना पड़ा। औपनिवेशिक भारत में स्त्रियों की स्थिति सामाजिक कुरीतियों और जड़–परंपराओं, मान्यताओं के कारण बेहद चिंताजनक थी। स्वाधीनता प्राप्ति के बाद नारियों की स्थिति में अभूतपूर्व बदलाव हुआ। भारतीय संविधान के द्वारा महिलाओं को स्वतंत्रता और समानता का अधिकार प्राप्त हुआ। इन सबके बावजूद हमारे देश में स्त्रियों की जितनी बेहतर स्थिति होनी चाहिए थी, उतनी नहीं हो सकी। आज भी देश के विभिन्न हिस्सों में स्त्रियों से संबंधित प्रतिकूल और अप्रिय सूचनाएं प्राप्त होती रहती हैं। ऐसी स्थिति में 'स्त्री अस्मिता–विमर्श' की आवश्यकता तथा महत्ता और भी अधिक बढ़ जाती है। स्त्री विमर्श (फेमिनिज्म/फेमिनिस्ट डिसकोर्स) का प्रारंभ कब हुआ, इसके संबंध में विद्वानों में सुनिश्चित एकमतता नहीं है। कुछ लोगों के अनुसार इसका प्रारंभ 19वीं शताब्दी में हुआ, जब पश्चिम में स्त्रियों के मताधिकार और पश्चात्य संस्कृति में स्त्रियों के योगदान पर चर्चा होने लगी थी। लेकिन वास्तविकता यह है कि स्त्री विमर्श बीसवीं शताब्दी की देन है। बीसवीं शताब्दी में भी कुछ लोग इसका प्रारंभ फ्रांसीसी लेखक सिमोन द बुआ की पुस्तक 'द सेकेंड

सेक्स' (1968) के प्रकाशन वर्ष से मानते हैं और कुछ मैरी जर्मन की पुस्तक 'थिंकिंग एबाउट वीमेन' (1968) के प्रकाशन वर्ष से।[7] लेकिन बीसवीं शताब्दी में ही इससे पहले भी स्त्री की अलग पहचान, उसकी स्वतंत्र अस्तित्व और उसके अधिकारों की समस्याओं को उठाया जाने लगा था। सन् 1929 में ही वर्जिनिया वूल्फ की पुस्तक 'ए रूम आफ वंस ओन' आ चुकी थी जिसने यूरोप और अमेरिका के स्त्री विमर्श को ही नहीं अपितु भारतीय स्त्री विमर्श को भी प्रभावित करने का कार्य किया। हिंदी में स्त्री विमर्श प्रमुखता से स्वाधीनता के बाद आया और बीसवीं शताब्दी के लगभग अंत में इसने जोर पकड़ा और कविता, कहानी, उपन्यास, गीत, आत्मकथा, संस्मरण आदि विधाओं में स्त्री जीवन के यथार्थ, उसकी विसंगति और उसकी विद्रूपताओं का चित्रण प्रमुखता से होने लगा। हिंदी गीतों में स्त्री के जीवन संघर्ष, उसकी जिजीविषा, कर्मठता, उसके श्रम के सौंदर्य, प्रेम और ममत्व को डॉ शांति सुमन ने बहुत ही रचनात्मक प्रतिबद्धता के साथ अभिव्यक्त किया है। शांति सुमन के नवगीत हों या जनगीत, स्त्री अस्मिता की पक्षधरता उनके गीतों की एक प्रमुख विशेषता है। गीत का संबंध वैसे भी स्त्रियों से अधिक रहा है। स्त्रियां गीतों की संरक्षिका और उसकी संवाहिका होती हैं। लोकगीतों की परंपरा को बचाए और बनाए रखने में स्त्रियों का विशेष अवदान है। स्वयं एक स्त्री होने के कारण शांति सुमन अपने गीतों में एक सजग और सचेत दृष्टि से भारतीय नारी के जनजीवन और उसके सामाजिक यथार्थ को देखती हैं। इस समाज में नारी तरह–तरह के शोषण और उत्पीड़न का शिकार रही है इसलिए शोषित और उत्पीड़ित जन से गीतकत्री की सहज और स्वाभाविक एकता है। शांति सुमन के गीतों में स्त्री अस्मिता विमर्श का एक नया और परिष्कृत रूप उभरता है। उनके गीतों में श्घर के तुलसी चौरा की खातिर गांव नहीं छोड़ने वाली स्त्रियां भी हैं तो धीरे पांव धरकर पिता गृह को धन्य करती और सिंदूरी नमन करती स्त्रियां भी। कथरी ओढ़े तालमखाने चुनती शकुंतला भी है तो पहली बार ट्रेन में बैठकर शहर आई कोसी के कछेर की लड़की भी। आटे सी पिसती हुई मां भी है तो खिलखिलाती–हॅसती हुई गांव की लड़की भी।श ग्रामीण जीवन से लेकर आधुनिक शहरी परिवेश तक में स्त्रियों के जीवन–संघर्ष के सौंदर्य और उसकी चुनौतियों का वर्णन शांति सुमन के गीतों में हुआ है। शांति सुमन के गीतों के विषय में डॉ शिवकुमार मिश्र लिखते हैं "इन गीतों से होकर गुजरना जनधर्मी अनुभव–संवेदनों की एक बहुरंगी, बहुआयामी, बेहद समृद्ध दुनिया से होकर गुजरना है, साधारण में असाधारणता के, हाशिए की जिंदगी जीते हुए छोटे लोगों के जीवन–संदर्भों में महाकाव्यों के वृत्तान्त पढ़ना है।[8]"

डॉ शांति सुमन हिंदी की वरिष्ठ और प्रतिष्ठित गीतकत्री हैं। उन्होंने गीत–रचना की एक सुंदर सुदीर्घ यात्रा पूरी की है। उनके गीत हिंदी गीत काव्य की अमूल्य निधि हैं। उन्होंने गीत से आरंभ कर नवगीत और जनगीत तक की सफल और सार्थक काव्य यात्रा संपन्न की है। आधुनिक हिंदी गीतों की दुनिया में शांति सुमन के गीतों को महादेवी वर्मा और सुभद्रा कुमारी चौहान के गीतों की अगली और विकसित कड़ी के रूप में रखा जा सकता है। शांति सुमन के गीतों की दुनिया व्यापक और समृद्ध है। विविधता उनके गीतों की प्रमुख विशेषता है। स्त्री जीवन के विविध पक्ष, उनके संघर्ष, प्रेम, त्याग, साहस, ममता और महत्ता का बेहद मार्मिक और गीतात्मक वर्णन शांति सुमन के गीतों में हुआ है। गांव से लेकर शहर तक मेहनत और संघर्ष करती स्त्रियों, पिता–पति और बच्चों के लिए खुद को खपाती स्त्रियां और समाज में व्याप्त अंधेर की व्यवस्था तथा शोषण के खिलाफ क्रांति की बिगुल बजाती स्त्रियां शांति सुमन के गीतों में लगातार सामने आती हैं। शांति सुमन के गीतों में एक आदर्श भारतीय गृहणी, ममतामयी मां, दादी, काकी, भाभी, बहन, बेटी से लेकर कल–कारखानों–खदानों में मेहनत करती युवती तथा सामाजिक–सांस्कृतिक आंदोलनों और परिवर्तनों में पुरुषों के साथ कदमताल करती स्त्रियों तक स्त्री जीवन के विविध और व्यापक चित्र उपस्थित हैं।

प्राचीन सभ्यता से लेकर आधुनिक सामाजिक व्यवस्था तक में स्त्रियां परिवार और समाज की एक अनिवार्य इकाई रही हैं। परंतु यह भी सत्य है कि दुनिया के प्रत्येक समाज में स्त्रियों पर तमाम तरह की पाबंदियां और बंदिशें लगाई जाती रही हैं। समय के साथ स्थितियां काफी बेहतर हुई हैं और लगातार हो रही हैं। महिलाओं को तमाम सारे अधिकार प्राप्त हुए हैं। भारतीय लोकतांत्रिक व्यवस्था में

स्त्री और पुरुष को प्रारंभ से ही समान महत्व दिया गया है परंतु सामाजिक रूढ़ियों और प्रतिगामी पारंपरिक सोच के कारण स्त्रियां अपेक्षित रूप में आगे नहीं बढ़ पाईं। भारतीय समाज में स्त्रियों ने ही घर–परिवार के लिए सर्वाधिक संघर्ष किए हैं। स्त्रियों ने अपनी हंसी–खुशी, दुःख–दर्द, आशा–आकांक्षा का सहर्ष त्याग कर घर–परिवार की जरूरतों को पूरा किया है। दुनिया के चकाचौंध से दूर घर की रसोई में मग्न एक सामान्य भारतीय गृहणी का चित्र शांति सुमन जी के इस गीत में उपस्थित हुआ है–

मेला तो हर साल लगा
नहीं कभी भी वह आई
घर, चूल्हा–चौका, बर्तन
वासन में ही रही समाई [9]

आधुनिक समय में शहरों में साधन और रोजगार की व्यापक उपलब्धता के कारण गांवों से लोगों का पलायन शहर की ओर बहुत तेजी से हुआ। इससे जहां एक तरफ गांव से शहर गई स्त्रियां अपने पतियों के ऑफिस जाने के बाद अपार्टमेंट्स के कमरों में कैद–सी होकर रहने लगीं, वहीं दूसरी तरफ अभाव के कारण गांवों में आपसी संबंधों में भी दरारें पड़ने लगी जिसका परिणाम अलगाव और बंटवारे की शक्ल में सामने आया। शांति सुमन के गीतों में पति के ऑफिस से आने का इंतजार करती अकेली, बेचौन और उदास स्त्रियां भी हैं और गांव में पारिवारिक बंटवारे और अलगाव के कारण कम साधनों में गुजारा करने की तरकीबें जानती स्त्रियां भी –

देर हुई,
नहीं लौटे ऑफिस से भैया
भाभी टंगी हुई दोपहरी–सी दरवाजे पर
बेचौनी मन की गिलहरी सी दरवाजे पर [10]
कोई बात नहीं अब घर का
यह बंटवारा भी हो
मां को पता है कि कैसे कम में
अब सही गुजारा हो [11]

संबंधों के बिखराव और पारिवारिक बंटवारे और अलगाव का सबसे अधिक खराब प्रभाव स्त्रियों और बच्चों पर पड़ता है। इसलिए संयुक्त परिवार, मानवीय रिश्ते की संवेदना को बचाने और पारिवारिक एकता को बनाए रखने की पक्षधरता शांति सुमन के गीतों में पूरी स्पष्टता के साथ व्यक्त हुई है। उनके गीत संग्रह 'धूप रंगे दिन' का एक गीत है– 'निम्न मध्यवर्ग का गीत'। मानवीय संबंधों के लगातार कमजोर होते जाने के कारण टूटते पारिवारिक ढांचे का दर्द इस गीत में पूरी मार्मिकता के साथ व्यक्त हुआ है–

सारा घर आंगन लिखबा लो
भाभी यह दलान लिखबा लो
पर अपने हिस्से का प्यार नहीं दूंगा
इस आंगन में बनने दीवार नहीं दूंगा [12]

भारतीय समाज में बच्चों को अच्छे संस्कार देना माता–पिता का कर्तव्य माना जाता है। मां को बच्चे का प्रथम गुरु और घर को प्रथम पाठशाला कहा गया है। बच्चे मां के साथ सरलता, सहजता और तेजी से बातों को सीखते हैं। यह एक महती जिम्मेदारी है जिसका निर्वहन स्त्रियां करती आ रही हैं। शांति सुमन के गीत 'मजदूर मां की लोरी' में एक मजदूर मां अपने बच्चे को पढ–लिख कर शोषण और अन्याय की व्यवस्था को खत्म करने और अपना हक हासिल करने की शिक्षा देती है:

लिख मेरे बेटे एक दो तीन
लिख–पढ़ के पहचानेगा जमीन
तेरी कमाई न ले जाय छीन
लिख मेरे बेटे एक दो तीन [13]

पुरुष प्रधान भारतीय समाज में बेटों के जन्म पर जहां उत्सव मनाया जाता है वही बेटियों के जन्म पर उदासी छा जाती है। आज भी भारतीय समाज में स्थित इस संबंध में बहुत बेहतर नहीं कही जा सकती है। शांति सुमन जी ने बेटी के जन्म पर 'हसिया हाथ में' जैसे सोहर लिखकर समाज में क्रांतिकारी बदलाव लाने का महत्वपूर्ण कार्य किया। उनकी गीत–दृष्टि बेटियों को बोझ नहीं बल्कि कुल को बढ़ाने वाला सौभाग्य मानती है–

इधर गजर का बोल
उधर मुनिया जनमे
ललना रे बेटी का भाग अमोल
बढ़े दो–दो कुल रे [14]

शांति सुमन जी के गीतों मैं मिथिलांचल को गंभीर रचनात्मक प्रतिनिधित्व मिला है। उनके गीतों में जातों पर अनाज पिसती, गीत गाती मिथिलांचल की स्त्रियों के चित्र हैं तो 'चंपा के पेड़ नहीं बाबा, महुआ के पेड़ उगाना' की जिद करती आदिवासी बालिका का चित्र और गांव से निकलकर पहली बार शहर पहुंची कोसी के कछेर की लड़की का चित्र भी जो अपनी आंखों में अपना गांव–घर भर लाई लाई है –

पहली बार ट्रेन में बैठी
पहली बार शहर आई
कोसी के कछेर का अपना
घर आंखों में भर लाई [15]

हमारे समाज में महिलाओं की एक बड़ी आबादी कृषि कार्यों, कारखानों, खदानों आदि में कायम करती है। अभावग्रस्त जीवन जीती, मेहनत–संघर्ष करती इन महिलाओं के कठिन श्रम तथा उससे जनित श्रम के सौंदर्य की पहचान शांति सुमन के गीतों में प्रमुखता से हुई है। उनके गीत संग्रह नागकेसर हवा का एक गीत है 'इसी शहर में' । इस गीत में घर से भागी और कोयले की खदान में काम करने वाली एक स्त्री के संघर्ष और शोषण का बेहद मार्मिक वर्णन है जिसमें दिन भर काम करने के बाद भी एक स्त्री भरपेट भोजन नहीं प्राप्त कर पाती है। यह गीत संघर्ष और शोषण के चक्रव्यूह में फंसी हुई स्त्रियों के संघर्ष और उनकी अदम्य जिजीविषा का रचनात्मक प्रतिनिधित्व करती है। हमारे देश की फैक्ट्री और खदानों में ऐसी अनेक महिलाएं दिखाई पड़ जाएंगी जिन्होंने अपने संघर्ष से समाज और मनुष्य मात्र के भीतर आग अर्थात् प्रतिरोध को बचाए और बनाये रखने का काम कर रही हैं:

पेट नहीं भर सका रोज के रोज दिहाड़ी से
सोचता मन चढ़कर गिर जाए ऊंच पहाड़ी से
लोग कहेंगे क्या यह भी तो गुनती है बाबू
आग बचाने खातिर कोयला चुनती है बाबू [16]

शांति सुमन के गीतों की यह एक अन्यय विशेषता है कि उनके यहां स्त्री जीवन के संघर्षों का, उनके श्रम के सौंदर्य का जितना अद्भूत वर्णन हुआ है उतना ही सुंदर वर्णन उनके प्रेम के सौंदर्य का भी हुआ है। उनके गीत संग्रह 'परछाई टूटती' के गीत 'सुआपंखिया शाम' का यह अंश स्त्री जीवन में प्रेम की उपस्थिति, उसके सौंदर्य और उसकी महत्ता को रेखांकित करता हैरू

केसर रंग रंगा मन मेरा
सुआपंखिया शाम है
बड़े प्यार से सात रंग में
लिखा तुम्हारा नाम है [17]

डॉ. शांति सुमन ने हिंदी गीत, नवगीत और जनवादी गीतकाव्य को एक नई ऊंचाई और सार्थकता प्रदान की है। उनके गीतों में स्त्री के संवेदनशील मन की व्यापक अभिव्यक्ति हुई है। शांति सुमन के गीत स्त्रियों के लिए न्याय, समानता और प्रेम से भरे संसार के निर्माण का स्वप्न देखने वाले गीत हैं। दुनिया भर की संघर्षरत–मेहनतकश स्त्रियों के विजय और मुक्ति की आकांक्षा संजोये शांति

सुमन के गीत कहीं से भी नीरस और बोझिल प्रतीत नहीं होते बल्कि उनके गीत लोकचेतना से संपन्न, कलात्मक व साहित्यिक हैं, जिनका लोक से भी गहरा संबंध है। स्त्री जीवन के विविध रंगों का ठोस, वास्तविक और ज्यादा यथार्थपरक रूप शांति सुमन के गीतों में दिखाई पड़ता है। वात्सल, प्रेम, ममता, करुणा और शोषण के विरुद्ध संघर्ष से भरे स्त्री जीवन के विविध चित्र शांति सुमन के गीतों में दिखाई पड़ते हैं। गांव और स्त्रियों की चिंता शांति सुमन के गीतों में स्वाभाविक रूप से दर्ज हुई है। घर–आंगन और उससे जुड़े प्रत्येक वस्तु से स्त्रियों का कितना गहरा और स्वाभाविक लगाव होता है इसका सुंदर वर्णन शांति सुमन के गीत श्गांव नहीं छोड़ाश की इन पंक्तियों में *हुआ है :*

दरवाजे का आम आंवला
घर का तुलसी चौरा
इसलिए अम्मा ने
अपना गांव नहीं छोड़ा [18]

शांति सुमन के गीतों में वर्णित स्त्री जीवन के विविध पक्षों की महत्ता बताते हुए डॉ विश्वनाथ प्रसाद लिखते हैं कि "नवगीतकारों में शांति सुमन कई दृष्टियों से उल्लेखनीय हैं। पहली बात यह कि उनके गीतों में वैविध्य है। नारी संवेदना की गहरी पकड़ उनके गीतों में है। उनमें प्रेम और श्रम के कई संदर्भ उभरते हैं। गांव से लेकर शहर तक के बीच दबी–पिसी नारी की अपनी अस्मिता की पहचान के लिए छटपटाती चेतना शांति सुमन के गीतों में है।"[19] शांति सुमन अकेली महिला नवगीतकार हैं जिनके गीतों में गांव की नारी की व्यथा को सीधे–सीधे ढंग से व्यक्त किया है तो मध्यवर्गीय नारी का स्वरूप भी बहुत ही स्वाभाविक रूप से उभरा है। घर गृहस्थी के कार्यों में व्यस्त स्त्री की चिंता 'दाई आई नहीं खाना नहीं हुआ/चाय का प्याला बिना धोये रहा' से लेकर खाली समय में क्रोशिया काढ़ती स्त्रियां तक शांति सुमन के गीतों की परिधि में शामिल हैं। शांति सुमन के गीतों में व्यक्त स्त्री संवेदना और उसकी व्यापक चिंता बनावटी और आयातित नहीं है बल्कि जीवन के गहरे यथार्थ और व्यापक अनुभव से उत्पन्न है। मध्यवर्ग के स्त्रियों के जीवन की विवशता और पल–पल घुटती हुई जिंदगी के बीच उनके संघर्ष, त्याग और साहस की शिनाख्त शांति सुमन के गीतों में आरंभ से ही हुई है। नई कविता के दौर में भी स्त्री–जीवन और उसके विविध पक्षों पर लिखा गया परंतु स्वयं स्त्री होने के कारण शांति सुमन के गीतों में अधिक व्यापकता और गहराई दिखाई पड़ती है। शांति सुमन के गीतों में स्त्रियों की दारुण व्यथा का ही चित्रण भर नहीं है बल्कि उनकी शक्ति और सामर्थ की पहचान और उसका उद्घोष भी है। इतिहास के प्रत्येक कालखंड में स्त्रियों ने अपनी शक्ति और अपने सामर्थ्य का परिचय दिया है। औपनिवेशिक सत्ता से लड़ाई हो क्या स्वाधीनता संघर्ष या आधुनिक लोकतांत्रिक व्यवस्था में अपने अधिकारों की लड़ाई, स्त्रियां संघर्ष के प्रत्येक मोर्चे पर पहली पंक्ति में शामिल रही हैं। पूंजीवाद और बाजारवाद का दुष्प्रभाव हमारे समाज के प्रत्येक अंग पर विशेषकर स्त्रियों के जीवन पर भी व्यापक रूप से पड़ा है। पूंजी की महत्ता और बाजार के जाल ने छोटे–छोटे बच्चों और स्त्रियों को भी अपनी गिरफ्त में ले लिया है। कचरा चुनते बच्चों की टोली और शहरों में स्त्री देह के सौंदर्य का प्रदर्शन करते बड़े बड़े पोस्टर इसके गवाह हैं। आए दिन स्त्रियों और लड़कियों के साथ होने वाले दुर्व्यवहार की जो खबरें आती हैं वह मन में गहरी टीस, दुख और बेचौनी पैदा करती हैं। गांव हो या शहर प्रत्येक जगह स्त्रियों को श्रम भी करना पड़ता है और खुद को सुरक्षित भी रखना पड़ता है। इस तरह दोहरी चुनौती का सामना करना हमारे समाज की स्त्रियों की नियति बन गई है। शांति सुमन अपने गीतों में इस दोहरी चुनौती का सामना कर रही लड़कियों–स्त्रियों की शिनाख्त करती हैं:

एक लड़की सुबह उठती
धूप की गठरी उठाये
निकलती घर से
समझाती नदी, चिड़िया धूप को
बिचड़े रोपे धान के रूप को
देह की दुनिया बचाये निकलती घर से।[20]

शांति सुमन के स्त्री संबंधी संवेदना के केंद्र में भारत के गांवों की वे स्त्रियां हैं जो अशिक्षित हैं और शोषण के चक्रव्यूह में फंस कर अपने अधिकारों से वंचित हैं और कठिन श्रम करने के बावजूद रोजमर्रा के जीवन की न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति करने में असमर्थ हैं। परंतु उनके पास संस्कृति और संस्कार की अमूल्य पूंजी है जिसे वे धरोहर की तरह संजोयी हैं। लोक संस्कृति, लोक संस्कार, लोक चेतना और लोकगीतों की व्यापक और विस्तृत समझ स्त्रियों को होती है। वे ही उनकी सच्ची संरक्षक और वाहक होती हैं। इनके धीरे–धीरे गायब होते जाने की चिंता शांति सुमन के गीतों में व्यक्त हुई है

दादी की विमल पराती
और नचारी वाली भोर
नहीं गूंजता कानों में
अब तो श्कखन हरब दुख मोर [21]

शांति सुमन के गीतों में स्त्री जीवन के जो विविध रंग उपस्थित हुए हैं वे उनके जीवन के रोज–ब–रोज के संघर्षों की उपज हैं। उनमें स्त्रियों के जीवन की गहरी व्यथा की पहचान भी है और उनके समाधान हेतु किये जाने वाले श्रम और संघर्ष के लिए आवश्यक साहस प्रदान करने की प्रेरणा भी। शांति सुमन के गीत स्त्री अस्मिता–विमर्श के सहारे सस्ती लोकप्रियता अर्जित नहीं करती हैं बल्कि स्त्री अस्मिता–विमर्श के संदर्भ में विस्तृत विवेचन–विश्लेषण की मांग करती हैं। स्त्रियों के जीवन में फैले अंधेरे के खिलाफ रोशनी की जीत के लिए नये सूर्य का निकलना आवश्यक है लेकिन यह सूर्य तब तक नहीं निकल सकता है जबतक कि समाज में स्त्रियों की स्थिति में अपेक्षित सकारात्मक परिवर्तन न हो और उन्हें समानता, न्याय और लोकतांत्रिक अधिकार हासिल न हो। शांति सुमन के गीत स्त्रियों को अपने इन अधिकारों के लिए लड़ने और उन्हें प्राप्त कर गरिमापूर्ण मानवीय जीवन जीने की प्रेरणा देने वाले गीत हैं।

संदर्भ :

1. संपादक, समीक्षा ठाकुर, बात–बात में बात, पृष्ठ 281
2. हंस, जून 2003, पृष्ठ 09
3. मानक हिंदी कोश, पृष्ठ 903
4. अंग्रेजी हिंदी शब्दकोश, पृष्ठ 218
5. ऑक्सफोर्ड अंग्रेजी कोश, पृष्ठ 156
6. अर्चना वर्मा, अस्मिता विमर्श का स्त्री स्वर, पृष्ठ 33
7. संपादक, डॉ नगेंद्र, हरदयाल, हिंदी साहित्य का इतिहास, मयूर पेपरबैक्स, संस्करण 2013, पृष्ठ 432
8. दिनेश्वर प्रसाद सिंह शदिनेशश(संपादक),शांति सुमन की गीत–रचना और दृष्टि, सुमन भारती प्रकाशन, जमशेदपुर–01,प्रथम संस्करण, 2009,पृष्ठ 31
9. शांति सुमन, लाल टहनी पर अड़हुल, समीक्षा प्रकाशन मुजफ्फरपुर (बिहार)–842001, प्रथम संस्करण, 2016
10. वही, पृष्ठ–61
11. वही, पृष्ठ–85
12. शांति सुमन, धूप रंगे दिन, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर बिहार, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ–62
13. वही, पृष्ठ–31
14. शांति सुमन, एक सूर्य रोटी पर, अभिधा प्रकाशन, रामदयालु नगर मुजफ्फरपुर–2, प्रथम संस्करण, 2006, पृष्ठ–91
15. शांति सुमन, धूप रंगे दिन, अभिधा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर बिहार, प्रथम संस्करण, 2007, पृष्ठ–11
16. शांति सुमन, नागकेसर हवा, ईशान प्रकाशन, मीठनपुरा क्लब रोड रमना मुजफ्फरपुर–2, प्रथम संस्करण, 2011, पृष्ठ–102

17. शांति सुमन, परछाई टूटती, ईशान प्रकाशन, मीठनपुरा क्लब रोड रामना मुजफ्फरपुर–2, द्वितीय संस्करण, 2010, पृष्ठ–75
18. शांति सुमन, भीतर–भीतर आग, समीक्षा प्रकाशन,मुजफ्फरपुर–01, प्रथम संस्करण, 2002, पृष्ठ–89
19. डॉ विश्वनाथ प्रसाद, आधुनिक हिंदी गीतिकाव्य, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी, प्रथम संस्करण, 2011, पृष्ठ–252
20. शांति सुमन, लय हरापन की, समीक्षा प्रकाशन, मुजफ्फरपुर–01, प्रथम संस्करण, 2015, पृष्ठ–84
21. वही, पृष्ठ–136

***

स्निग्ध की नजर में नक्षत्र मालाकार

शशि सुधा कुमारी *

सामाजिक न्याय के लिए बिहार की धरती पर कई आंदोलन हुए। कुछ धार्मिक सुधार के माध्यम से संचालित हुए, तो कुछ विद्रोह के माध्यम से। पहली धारा के तहत महात्मा बुद्ध और महावीर जैन ने जहां धार्मिक सुधार के माध्यम से सामाजिक न्याय प्रदान करने का कार्य किया, वहीं दूसरी धारा के तहत किसान आन्दोलनकर्ता और नक्सलवाड़ी आन्दोलनकर्ता ने विद्रोह के माध्यम से सामाजिक गैर बराबरी को मिटने का प्रयास किया। कोसी प्रदेश में दूसरी धारा की महत्वपूर्ण कड़ी के रुप में नक्षत्र मालाकार का नाम अग्रगण्य है। विडम्बना यह है कि कोसी प्रदेश ही नहीं, पूरे बिहार में साम्राज्यवाद और सामंतवाद का विरोध करने वाला सबसे बड़ा नायक नक्षत्र मालाकार का साहसी जीवन–वृत्त गुमनामी के अँधेरे में खो गया है। इतिहास और साहित्य दोनो इस योद्धा पर मौन साधे हुए है। अंग्रेजी और देशी राज्य की फाइलों में उन्हें ''ए नटोरियस कम्युनिस्ट डकैत'' के रुप में चिन्हित किया गया है। साहित्य में फणीश्वर नाथ रेणु ने अपने उपन्यास 'मैला आँचल' में उनके चरित्र को 'चलित्तर कर्मकार' नामक पात्र के रुप में प्रस्तुत किया है, किन्तु उनके कुख्यात रुप पर ही अधिक बल दिया है। बिहार के प्रेमचंद कहे जाने वाले अनुप लाल मंडल ने भी अपने उपन्यास 'तूफान और तिनके' में नक्षत्र मालाकार पर प्रकाश तो डाला है किन्तु उनके सामाजिक न्याय के पक्ष को पूर्ण रुप से उद्घाटित नहीं किया है। सुरेंद्र स्निग्ध द्वारा कोसी क्षेत्र पर लिखा गया उपन्यास 'छाड़न' पहला उपन्यास है, जिसमें नक्षत्र मालाकार के चरित्र को गरीब–गुरबा किसान मजदूर के मसीहा के रुप में चित्रित किया गया है।

'छाड़न' उपन्यास के आरंभ अर्थात 1925 ई० से लेकर 1980 के विधान सभा चुनाव एवं अस्सी के दशक तक नक्षत्र मालाकार के जीवन–वृत्त को उपन्यास में स्थान दिया गया है। नक्षत्र मालाकार बचपन से ही सामाजिक गैर बराबरी के खिलाफ विद्रोही स्वभाव के थे। दस वर्ष की अवस्था में ही दरभंगा महाराज के अमले द्वारा अपने पिता की पिटाई होते देख उस अमले पर टूट पड़े थे। आरम्भ में नक्षत्र मालाकार उस क्षेत्र के प्रसिद्ध कांग्रेस नेता वैद्यनाथ चौधरी के प्रभाव में कांग्रेस पार्टी से जुड़ गए, लेकिन जैसा 'छाड़न' में उद्धृत है – ''1925 ई०। महात्मा गाँधी का तूफानी दौरा पूर्णिया में चल रहा था। ..... भवानीपुर से सटे बिसनपुर में गाँधी के आह्वान पर समुद्र की लहरों की तरह दौर पड़े थे इलाके के लोग।'' वे आगे लिखते है –''कौन नहीं जानता नक्षत्र मालाकार को। उसने महात्मा गाँधी की सभा के लिए हजारों गरीबों को गोलबंद किया था और बिसनपुर की सभा में उन्हें भेजा था। खुद नक्षत्र नहीं गया था सभा में। ..... महात्मा गाँधी के सत्य–अहिंसा में रत्तीभर विश्वास नहीं था उसको। वह अपने ढंग से लड़ाई विकसित कर रहा था अंग्रेज सत्ता के खिलाफ और उसके दलालों के खिलाफ।''

नक्षत्र मालाकार ने गाँधी जी के दांडी मार्च के आलोक में नमक आंदोलन में बढ़–चढ़ कर हिस्सा लिया था और इसी आंदोलन के दौरान वे सत्याग्रही के रुप में पहली बार गिरफ्तार हुए और उन्हें आरा जेल भेजा गया। खराब भोजन के खिलाफ भूख हड़ताल कर उन्होंने अपने संघर्षशील व्यक्तित्व और नेतृत्व क्षमता का परिचय दिया। उन्होंने आरंभ में चरखा का प्रशिक्षण भी लिया और

* शोधार्थी, हिंदी विभाग, पटना विश्वविद्यालय, पटना

टीकापट्टी आश्रम में चरखा के प्रशिक्षक भी बने। विदेशी वस्त्रों की होली जलाने एवं शराबबंदी के खिलाफ पिकेटिंग के कारण उन्हें पुनः 6–6 माह की जेल हुई। नक्षत्र मालाकार को यह समझते देर न लगी कि कोसी क्षेत्र में गांधीवाद का प्रभाव तो बहुत अधिक है, लेकिन कोंग्रेसी नेतृत्व की कमान उन्ही वर्चस्ववादी सामंतों और जमींदारों के हाथों में है जो गरीब किसानों और मजदूरों का शोषण और उनकी बहु–बेटियों का उत्पीड़न करते हैं। उस क्षेत्र में कांग्रेस के इस प्रतिगामी चरित्र के कारण ही धीरे–धीरे नक्षत्र मालाकार स्वामी सहजानंद के प्रभाव में समाजवादी पार्टी से जुड़ गए। लेकिन 'समर स्कूल ऑफ पॉलिटिक्स' में नेताओं एवं कार्यकर्ताओं के लिए भोजन की दोहरी व्यवस्था देख कर समाजवादी पार्टी से भी उनका मोह भंग हो गया। उन्हें महसूस हुआ की सभी पार्टी सिर्फ अपने स्वार्थ–सिद्धि में लगा हुआ है।उन्होंने शोषितों और पीड़ितों को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए अपना न्याय–विधान एवं दंड–विधान जारी रखा, क्योंकि दबे–कुचले लोगों को न्याय दिलाना उनका चिरकालिक लक्ष्य था।

उनके संघर्ष का तरीका एवं दंड–विधान बिल्कुल अलग था। बिहार में साम्राजयवाद एवं सामंतवाद विरोध के सबसे बड़े प्रतीक के रुप में नक्षत्र मालाकार को स्निग्ध जी ने छाड़न में भी उद्धृत किया है। वे लिखते है –''अंग्रेज अफसर उसका नाम सुनते ही काँपने लगते थे पीपल के पुराने पत्तों की तरह। काँपने लगते थे छोटे–बड़े सेठ साहूकार। कांपने लगते थे भूमिपति और जमींदार।''स्पष्ट है कि छोटे–बड़े सेठ साहूकार, भूमिपति और जमींदार जो शोषक थे, वही नक्षत्र मालाकार से डरते थे। वे लोग ही नक्षत्र मालाकार को डाकू के रुप में प्रचारित कर रहे थे, ताकि आमजन के मन में नक्षत्र मालाकार के खिलाफ दुर्भावना पैदा हो सके और नक्षत्र मालाकार को रास्ते से हटाया जा सके। इससे शोषणमूलक शक्तियों का हितपोषण हो रहा था। छाड़न में कुर्सेला स्टेट के हरिवंश सिंह, विशनपुर के मौजी सिंह, सेठ सागरमल्ल,रमजन मरड़, सोनदीप के जग्गन सिंह आदि जमींदार तथा अंग्रेजों के दलाल नक्षत्र के खिलाफ अंग्रेजों की मदद कर रहे थे। आमजन तो उन्हें अपना रखवाला और मसीहा समझते थे क्योंकि नक्षत्र मालाकार ने हरपुर के गरीब रैय्यत की पिटाई,पांचू और कुताय की मौत और बिजली के शीलभंग का बदला अंग्रेज कारिंदे का नाक–कान काट कर, रामजन मरड़ तथा सागरमल्ल की हत्या कर लिया था। स्पष्ट है कि नक्षत्र मालाकार दीन–हीन के नायक थे।

अंग्रेजी कारिंदे के शोषणमूलक प्रवृतियों के कारण नक्षत्र मालाकार उनकी भी पिटाई अथवा हत्या कर देते थे अथवा उनका नाक–कान काट देते थे। स्निग्ध जी ने छाड़न में इन घटनाओं का विस्तृत वर्णन किया है। उन्होने लिखा है ''जिस दिन से अंग्रेज सिपाही को बड़ी गद्दी से सरेआम अगवा कर लिया था नछत्तरा के लोगों ने, उसी दिन से तरह–तरह की आशंकाएं और डर पसर रहे थे बड़ी गद्दी की हवा में। .... पूर्णिया से अंग्रेज सिपाही की पूरी पलटन सर्किल में कैम्प कर रही थी।'' पुरे इलाके के बड़े किसानों को सर्किल में बुलाया गया था और वार्निंग दे रहे थे कि ''अगर दो दिनों के अंदर आप लोगों ने नछत्तरा को हाजिर नहीं किया तो हमारे सिपाही आपके पूरे इलाके को तहस नहस कर देंगे। शमशान बन जायेगा पूरा इलाका।'' इस वार्निंग के बावजूद नक्षत्र मालाकार को कोई गिरफ्तार नहीं कर पाया। चिराग अखबार की खबर से स्पस्ट है कि उसे गिरफ्तार करने के लिए डेढ़ दर्जन सिपाहियों ने सिंघियान गांव को घेर लिया, लेकिन गांव में एक भी पुरुष नहीं मिला। महिलाओं ने सिपाही की ठुकाई मिट्टी की हांड़ी से कर दी और उनके चहरे कालिख, बासी बचे साग और दाल के रंग से बदरंग हो गया। सिपाही उल्टे पांव लौट गए। ये थी नक्षत्र मालाकार की मास अपील। लोग मार खा लेते, पुलिस की यातना सह लेते लेकिन नक्षत्र का सुराग नहीं बतलाते।

नक्षत्र मालाकार अपने समय में ही किंवदंती बन गए थे। नक्षत्र मालाकार के विषय में जिस किंवदंती की चर्चा पोठिया निवासी मेरी दादी स्व० सुमित्रा देवी ने की थी, उसकी सम्पुष्टि स्निग्ध जी के छाड़न उपन्यास से भी होती है। वे लिखते है ''नछत्तर कुछ ही दिनों में कथा बन गया था। तरह–तरह की कथाएं, पूरे इलाके में, आँधियों की तरह दौड़ती–फिरती थी उन दिनों–

''वह जिस घोड़े पर चलता है– वह हवा से भी तेज दौड़ता है।
नछत्तर एक मिनट में पूर्णिया से भवानीपुर और भवानीपुर से कुर्सेला की दूरी तय कर लेता है।
वह घोड़े की पीठ पर सोता है। ...

नछत्तर आततताइयों के लिए खौफ है।
नछत्तर गरीबों और मजलूमों का भगवान है।''

यहाँ तक कि छाड़न का उत्पीड़क वर्ग जग्गन सिंह एवं रमजन मरड़ भी यह मानता है कि उसमे कोई दैवी शक्ति है। जब विरोधी शक्ति भी यह मानता हो कि उसमे दैवी शक्ति है और जिसका जनाधार इतना विस्तृत हो तो निश्चय ही ऐसा व्यक्ति मामूली डकैत नहीं, रॉबिनहुड ही हो सकता है।

स्निग्ध जी ने नक्षत्र मालाकार को बयालीस क्रांति के गुरिल्ला दस्ते का नायक भी बताया है। यह सर्वविदित है कि उन्होंने सशस्त्र आंदोलन का भी नेतृत्व किया था। जन्मभूमि समेली एवं आरंभिक कर्मभूमि टीकापट्टी में हथियार बनाने का उनका कारखाना था। जयप्रकाश जी एवं लोहिया जी ने जब आजाद दस्ता का गठन कर सशस्त्र क्रांति का निर्णय लिया तो नक्षत्र मालाकार ने अपने आस–पास के हर गांव से सहयोग प्राप्त कर गुरिल्ला अंदाज में सशस्त्र क्रांति को आगे बढ़ाया। रुपौली थाना को उड़ाने के आरोप में नक्षत्र मालाकार सहित 36 क्रांतिकारियों को नामजद बनाया गया था। नक्षत्र मालाकार ने ही रुपौली कांड के सरकारी गवाह को समझा बुझाकर अथवा भय दिखा कर गवाही से रोका, अन्यथा कई क्रांतिकारियों को फांसी की सजा होती। उनके नेतृत्व में ही जयप्रकाश जी एवं डॉ लोहिया को हनुमान नगर जेल से छुड़ाया गया। परन्तु विडम्बना यह है कि नक्षत्र मालाकार के योगदान से आज की पीढ़ी अनजान है।

1947 ई० के आस–पास इलाके में अकाल का प्रभाव था। लोग दाने–दाने को मोहताज थे, लेकिन जमींदारों, व्यापारियों और सूदखोरों ने अनाज छिपा दिया था। नक्षत्र ने पार्टी के लोगों से अनाज दिलवाने की अपील की, लेकिन पार्टी ने इस दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं किया। नक्षत्र मालाकार अन्याय के विरूद्ध हाथ पर हाथ रखकर बैठने वालों में से नहीं थे। उन्होंने पहले जमींदारों सूदखोरों से दरख्वास्त की। जब वे नहीं माने तो भूखी जनता के साथ अन्न का गोदाम लूटने की घटना को अंजाम दिया। यह कोई कुकृत्य नहीं था। वे अमीरों को लूटते थे और गरीबों में बांटते थे, लेकिन इस आरोप में उन पर सैकड़ों फर्जी मुकदमा दायर किया गया। स्निग्ध जी ने छाड़न में उनके इस रुप को करिया मुर्मु के प्रसंग में उजागर किया है। करिया मुर्मु अपनी बेटी बंतो के विवाह के लिए चिंतित है –

''कौन करेगा बंतो से शादी ?
कैसे बचेगी बंतो बबुआनों की गिद्ध दृष्टि से ?..... ''

उसकी चिंता को दूर करता है नछत्तर। उसके भय से ही फलका का मदन मारवाड़ी बैलगाड़ी पर ढेर सारा सामान– तेल, डालडा, आटा, सब्जियां, कपड़ा–लत्ता और न जाने क्या–क्या लिए हुए आदिवासी बस्ती में घुसता है।

नक्षत्र मालाकार किसी पार्टी से जुड़ कर उसी पार्टी के अनुसार कार्य करे यह उन्हें मंजूर नहीं था। उनका तो अपना विधान था–अन्याय का बदला लेना। वे नैसर्गिक न्याय के पक्षधर थे। अंग्रेजों ने तो उन्हें 'नटोरियस कम्युनिस्ट डकैत की संज्ञा दी ही थी, लेकिन अफसोस तो यह है कि आजाद भारत के स्वार्थी तत्वों ने भी 1952 में उन्हें फर्जी मुकदमे में आजीवन कारावास की सजा सुना दी। इसलिए आजादी के बाद से 1966 ई० तक उनकी गतिविधियों की कोई चर्चा छाड़न में नहीं मिलती है।

60 के दशक में बिहार में मजदूरों और किसानों का राजनीतिकरण हो चुका था। वे अब और शोषण बर्दाश्त करने के पक्ष में नहीं थे। नक्सलवाड़ी की हवा सम्पूर्ण भारतीय राजनीति में एक नया तूफान पैदा कर रही थी। 60 के दशक के अंतिम वर्षों में बिहार में भूमि हड़प आंदोलन की शुरुआत हो गई थी। समाजवाद से मोह भंग होने के बाद नक्षत्र मालाकार भी मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी में शामिल हो गए थे एवं आंदोलन को गति प्रदान कर रहे थे। स्निग्ध जी ने छाड़न में 1971 में घटित बिहार का पहला नरसंहार– चंदवा रुपसपुर नरसंहार का विस्तृत वर्णन करते हुए नक्षत्र मालाकार का भी जिक्र किया है। चंदवा रुपसपुर के पशुपति सिंह अपने भाई एवं कांग्रेस के एम० एल० ए० रुपनारायण सिंह से कहता है–''आपको तो यह भी पता होना चाहिए कि नछत्तरा आजकल इसी सौतरी में डेरा डाले हुए है। बूढ़ा हो गया है साला नछत्तरा, लेकिन जवानी का जोश अभी खत्म नहीं हुआ है। इस कलिकासिंह के साथ–साथ नछत्तरा को भी उसकी औकात बताने का समय आ गया है।''

जेल से छूटने के बाद नक्षत्र मालाकार की पूर्व की गतिविधियों में कमी आई थी जिसकी झलक छाड़न में भी मिलती है। स्निग्ध जी लिखते है–''अब थोड़ा–थोड़ा भयमुक्त हो गया था बुटना। .... नछत्तर मालाकार अब पार्टी पोलटिक्स का आदमी हो गया था। हथौड़ा छाप कमनिस्ट पार्टी का आदमी। ''स्निग्ध जी ने छाड़न में लिखा है कि ''रुपौली विधान सभा से मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रुप में उतरे थे बयालीस के क्रांति के गुरिल्ला दस्ते के नायक नछत्तर मालाकार।'' किन्तु ऐतिहासिक तथ्य है कि नक्षत्र मालाकार मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार के रुप में 1980 ई० में फारबिसगंज विधान सभा क्षेत्र से चुनाव मैदान में उतरे थे, लेकिन कांग्रेस के सरयू मिश्र से लगभग 750 मतों से हार गए। उनकी हार की पड़ताल करते हुए स्निग्ध जी ने लिखा है कि– ''इस चुनाव में नछत्तर मालाकार के मुख्य विरोधी थे भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के लोग। इलाके के बचे–खुचे जमींदार और भवानीपुर, रुपौली के सेठ–साहूकारों ने भी विरोध में भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी का साथ दिया था।'' वे आगे लिखते हैं कि किसान सभा ने वोट का वहिष्कार किया था। वोट का बहिष्कार करने वाले सारे के सारे वोटर नछत्तर मालाकार के ही वोटर थे। भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी के उम्मीदवार ने बुटना डकैत के सहयोग से बूथ लूटे थे। स्निग्ध जी के वर्णन से स्पष्ट है कि संदूक और बंदूक ने बिहार के चुनाव में नया काला अध्याय जोड़ दिया और नक्षत्र मालाकार की पहली जनपरजय हुई।

नक्षत्र मालाकार के न्याय दण्ड–विधान के सम्बन्ध में यह प्रचलित है कि वे दोषियों को नाक–कान काटकर सजा देते थे। रेणु जी ने तो दिनमान के संपादक से बातचीत के क्रम में यहाँ तक कह दिया कि–''अभी भी 2–3 दर्जन लोग बिना नाक–कान वाले है।'' स्निग्ध जी ने भी छाड़न में लिखा है कि लगान चुकाने में देर होने पर हरपुर के गरीब रैय्यत की पिटाई कर जान से मार देने के कारण नछत्तर मालाकार ने अंग्रेज कारिंदे का नाक–कान काटकर बैहार में छोड़ दिया था। किन्तु प्रतीत होता है कि नाक–कान काटने की सजा अपवादस्वरुप ही की गई है। संभव है कि इस दंड विधान के पीछे उनकी मान्यता होगी कि इस प्रकार का स्थायी दंड मिलने तथा समाज में स्थायी रुप से उपहास तथा निंदा का पात्र बनने की संभावना मात्र से लोग गरीबों का उत्पीड़न एवं बहु बेटियों का बलात्कार करने के पहले हजार बार सोचेंगे। सिर मुड़वाकर अथवा मुंह पर कालिख पोतकर गांव में घूमाने जैसे सामाजिक बहिष्कार का दंड विधान तो सदियों से चली आ रही है। पर यह दंड विधान लोगों को अस्थायी रुप से ही भयभीत कर पाती है, जबकि नक्षत्र मालाकर त्वरित और स्थायी सजा के पक्षधर थे।

निष्कर्षतः नक्षत्र मालाकार, जिसे बिहार के इतिहासकारों और अकादमिक जगत ने गुमनामी के अंधेरे में छोड़ दिया था,उसके जीवन वृत्त पर प्रकाश डालने का महती कार्य स्निग्ध जी ने अपने उपन्यास छाड़न में किया है। नक्षत्र मालाकार 20वीं सदी के तीसरे दशक से सातवें दशक तक कोसी क्षेत्र की गरीब और पीड़ित जनता को सामाजिक न्याय दिलाने के लिए वर्चस्ववादी शक्तियों से लोहा लेते रहे। उन्होंने जो लूट–पाट की घटना को अंजाम दिया अथवा पुलिस, मुखबिरों या बलात्कारियों के नाक–कान काटे, वो सब उन्होंने व्यक्तिगत लाभ के लिए नहीं बल्कि समुदाय के हित के लिए किया। जो व्यक्ति स्वार्थ को त्याग कर जनहित के लिए कार्य करता है वही सच्चा जननायक होता है। लोकतान्त्रिक समाज में उनके द्वारा अपनाये गए साधन को भले ही पवित्र न माना जाय, किन्तु सामाजिक विषमता को दूर करने एवं सामाजिक न्याय दिलाने का उनका साध्य सबके लिए अनुकरणीय है।

सन्दर्भ :

1. सुरेंद्र स्निग्ध : छाड़न
2. फणीश्वरनाथ रेणु : मैला आंचल
3. रेणु रचनावली : भारत यायावर
4. https://en.m.wikipedia,org/
5. https://www.forwardpress.in

***

कृष्णा सोबती की नारी दृष्टि : विहंगावलोकन

सुनन्दा कुमारी *

स्वातंत्र्योत्तर काल के कथाकारों में नारी विमर्श को लेकर कृष्णा सोबती का पदार्पण हिन्दी कथा–साहित्य में अपूर्व है। कम लिखकर भी इन्होंने बहुत प्रसिद्धि पायी है।

अपनी रचनाओं के माध्यम से सोबती जी ने नारी के मनोभावों, समस्याओं तथा संघर्ष का व्यापक चित्रण किया है। इनकी रचनाओं की सबसे बड़ी खासियत यह है कि इन्होंने अपनी कहानियों या स्त्रीप्रधान उपन्यासों में नारी की शारीरिक तथा मानसिक समस्याओं का जिक्र करते हुए उन कारकों पर भी प्रकाश डाला है जो इनके लिए उत्तरदायी हैं। फिर वह इन समस्याओं के हल का रास्ता भी सुझाती है।

समकालीन महिला लेखिकाओं ने चाँद–तारों की काल्पनिक दुनिया और रूप–सौंदर्य की मनोहारी छटा से निकलकर खुद को देखने की कोशिश की और स्त्री–जीवन के आंतरिक और बाह्य पक्ष को अपनी लेखनीं में उतारा। इन समकालीन महिला कथाकारों में कृष्णा सोबती स्त्री लेखन पर अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। कहानी संग्रह 'बादलों के घेरे' से लेकर 'उपन्यास चन्ना' तक इन्होंने जो सफर तय किया है वह अत्यंत विशिष्ट है।

सोबती जी का लेखन उन सच्चाईयों का पर्दाफाश करता है जिसे गोपनीय विषय मानकर समाज छुपाकर रखना चाहता है। सच्चाई तो यह है कि नारी को व्यक्ति नहीं, वस्तु रूप में देखा जाता है अतः उसके जीवन की निजता और वैयक्तिक सवाल को महत्व नहीं दिया जाता। किन्तु सोबती जी अपने पात्रों के माध्यम से सामाजिक प्रपंचों पर धारदार चोट करती नजर आती हैं। मानसिक या शारीरिक आवश्यकताओं की मांग करने वाली ये नायिकाएँ परंपरागत तरीके से भलें ही मान्य और आदर्श न हो पर प्राणवान् अवश्य हैं।

स्त्री को लेकर सोबती जी का दृष्टिकोण बड़ा ही स्पष्ट है – " हमें स्त्री और पुरूष में समानताएँ देखने का आदी होना चाहिए जिस तरह की सामाजिक, आर्थिक और विकासशील जीवन शैली मानव समाज के सामने उधड़ रही हैं – उस भाषा को जीने, समझने के लिए हमें अपने को तैयार करना चाहिए।"[1]

स्त्री–पुरूष समानता और स्त्री की स्वतंत्रता को लेकर सोबती जी की लेखनी काफी सशक्त रही है। इनके स्त्री पात्र पहले अपने व्यक्तित्व को प्रमाणित करते हैं स्त्री रूप बाद में।

सोबती जी का रचना–संसार प्रेम, दाम्पत्य, अर्थ और अपनी निजता को लेकर काफी सजग है। इनकी नारियाँ जीवन में संघर्ष करती हुई आगे बढ़ती है तथा अपने अस्तित्व का प्रमाण देती है। चाहे वह 'मित्रों मरजानी' की 'मित्रों' हो या फिर 'दिलोदानिश' की 'महक बानो'। ये स्त्रियाँ मुखर है और सही वक्त पर सही फैसले करती हैं। सोबती की नारियाँ निजीविषा से भरपूर स्त्रियाँ हैं चाहे वह मृत्यु शैय्या पर पड़ी वृद्धा 'अम्मू' हो या 'समय–सरगम' की बुजुर्ग 'आरण्या'। 'सूरजमुखी अंधेरे के' की रत्ती अपने फटे बचपन को लेकर क्षुब्ध तो है लेकिन जीवन की तरंगे अपने अंदर पाले हुए है। निर्मता जैन लिखती है –"नये के आह्वान के लिए रत्ती ने अंगीठी के सामने बैठे–बैठे मन के पुराने कोनों को बुहाता तस्वीरों की चौखटों को झाड़ा और कैलेंडर की तारीख पलट डाली।"[2]

सोबती की नारियाँ अदम्य उत्साह और विश्वास के साथ जीवन सफर में बढ़ती जाती है और अगर कहीं भटकने पर आती है तो सही मार्ग भी स्वयं तलाश कर लेती है। इनकी नारियाँ किसी की दया की मोहताज होकर नहीं, बल्कि अपने दम पर जीना चाहती है। सोबती जी की दृष्टि में स्त्री का आत्मनिर्भर होना बेहद जरूरी है। तभी तो वह वृद्धा अम्मू के माध्यम से बेटी को अपनी जीविका खुद कमाने की सलाह देती है। सोबती के नारी पात्र अर्थ–प्राप्ति को लेकर काफी सजग हैं और सही वक्त

* शोधार्थी हिन्दी विभाग पटना विश्वविद्यालय, पटना

पर इसे प्राप्त करने को उद्यत भी। तभी तो 'दिलादानिश' की 'महक बानों' अपने को चारो तरफ से निराश पाकर अर्थप्राप्ति को लेकर सजग हो जाती है और वकील साहब से अपने जेवरात मांग लेती है।

कृष्णा सोबती का स्त्री विषयक दृष्टिकोण काफी व्यापक रहा है। सामाजिक बुराईयों पर कुठाराघात करती इनकी नायिकाएं जीवन रूपी बयार की सुगंध को पाना चाहती है और जीवन को एक उत्सव के रूप में देखती है। वकील साहब की विधवा बहन छुन्ना 'जो युवावस्था में ही वैधव्य को प्राप्त हो गई थी' पर परिवार में तरह–तरह के प्रतिबंध लगाए जाते है, यहाँ तक कि हँसने–बोलते, पहनने–ओढ़ने या किसी शुभ मुहूर्त पर उसकी उपस्थिति को अशुभ माना जाता है। उससे उम्मीद की जाती है कि वह सादे कपड़े पहने किसी उत्सव में भाग न ले, पूजा–तीर्थाटन में मन लगाए। भारतीय समाज में विधवा स्त्रियों की स्थिति और दुर्दशा का वर्णन छुन्ना की स्थिति से स्पष्ट होता है। इन्ही सामाजिक बुराईयों की तरफ संकेत करती सोबती जी स्त्रियों को अपनी अस्मिता की पहचान करने पर बल देती है। छुन्ना सास द्वारा रंगीन कपड़े पहनने पर बंदिश लगाने पर प्रतिरोध करती हुई कहती हैं – "अम्मा, इन रिवाजों में क्या रखा है? हम ऐसी दुश्मनी अपने पर कभी न लादेंगे।"[3] पढ़ी–लिखी छुन्ना इन सड़ी–गली मान्यताओं में विश्वास नहीं करती। वह उच्च शिक्षा प्राप्त कर नौकरी करती है तथा भुवन नामक युवक से पुनर्विवाह करती है और जीवन को नये सिरे से जीती है।

भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति दोयम दर्जे की रही है। बचपन में पिता, युवावस्था में पति और वृद्धावस्था में पुत्र के अधीन रहना ही उसकी नियति है। इससे आगे सोचने या कदम बढ़ाने के लिए उसे पग–पग पर संघर्षो का सामना करना पड़ता है। खासकर वृद्धावस्था में स्त्रियाँ अपने जीवन को बोझस्वरूप मानने लगती है और जीवन के हर्षोल्लास से विमुख हो जाती है किंतु सोबती जी इस वृत्ति को परले सिरे से नकारती नजर आती है। 'समय सरगम' की आरण्या सत्तर साल की होने के बावजूद अपनी चाल–ढाल, बोल–चाल, पहनावा आदि के मामले में युवाओं के लिए प्रेरणास्त्रोत है। वह उम्र को अपने ऊपर हावी नहीं होने देती। उसका अस्तित्ववादी दृष्टिकोण उसके शब्दों से झलकता है –"हाँ! अगर कहूँ कि मैं अपनी खुद की निकटता में, सोहबत में, कभी उदास नहीं होती तो ज्यादा सही होगा।"[4]

कृष्णा सोबती के कथा साहित्य में स्त्री–जीवन के अत्यंत प्रभावशाली और सजीव चित्र देखने को मिलते हैं। इनकी नायिकाएं पाशों, मित्रों, जया, रत्ती, शाहनी, अम्मू, महकबानों, छुन्ना एवं आरण्या आदि नवीन विचारों वाली नारी के रूप में अवतरित हुई हैं। ये स्त्रियाँ सिर्फ भावना से भरी हुई कोमलता और आदर्श की प्रतिमाएँ नहीं, बल्कि अपने निजी सुख और 'स्व' की पहचान के लिए आदर्शो का परित्याग करने वाली आधुनिकाएँ हैं जो समाज को नई दिशा दिखाकर सड़ी–गली अनुपयोगी परंपराओं को छोड़ स्वस्थ और संतुलित सामाजिक व्यवस्था की पैरोकार है। सोबती के शब्दों में –"भारतीय चिंतन में अर्द्धनारीश्वर की एक अद्‌भुत अवधारणा है, एक ईकाई जिसमें स्त्री और पुरूष दोनों समाहित हैं। ... संविधान से हमें वही अधिकार मिले हैं जो पुरूष के पास हैं।"[5]

स्त्री स्वतंत्रता की प्रबल समर्थक कृष्णा सोबती स्त्री जीवन की जटिलताओं को पूरी ईमानदारी के साथ अपनी रचनाओं में प्रस्तुत करती हैं। स्त्री जीवन के ऐसे वर्जित क्षेत्रों को भी इन्होंने स्पर्श किया है जो समाज में अछूते माने जाते है। उन विषयों पर भी इन्होंने बेधड़क अपनी लेखनी चलाई जिसे गोपनीय विषय समझा जाता था। अपने कथा–पात्रों के आत्मकथ्य पर वे गंभीर हो सोचने लगती है – "प्रेम, सेक्स और मृत्यु इस ग्रह की पारिभाषिक सच्चाईयाँ हैं। मैने हमेशा कोशिश की है कि उनके लिए मेरे पाठ में जगह रहे।"[6]

समकालीन भारतीय समाज में जो बुराईयाँ प्रचलित थी उसमें महिलाएँ घुट–पिस रही थी। धर्म, परंपरा और नैतिकता के नाम पर स्त्रियों के ऊपर जो अत्याचार हो रहे थे वह अमानवीय थे। बाल–विवाह, बहुपत्नी–प्रथा, विधवा पुनर्विवाह पर रोक, सत्ती–प्रथा, दहेज–प्रथा जैसी, सामाजिक बुराईयाँ भारतीय समाज में इस कदर अपना दुष्प्रभाव डाल रही थी कि संपूर्ण सामाजिक ढाँचा एकरतफा हो गया था और आधी आबादी, नारकीय जीवन जीने को विवश थी। किंतु स्वतंत्रता आंदोलन

तथा समाज सुधारकों के प्रयास से परिवर्तन आरंभ हुआ और लोगों को ध्यान इस तरफ गया। धीरे–धीरे स्त्रियों की स्थिति में भी सुधार होने लगे। परिणामतः साहित्य भी इससे अछूता नहीं रहा। साहित्यकारों ने भी इस दिशा में अपनी लेखनी को गति दी। कृष्णा सोबती ने भी इस विषय को मुख्य मुद्दा बनाया। स्त्री समस्याओं पर उनकी लेखनी भी धड़ल्ले से चली।

स्त्री जीवन को लेकर कृष्णा सोबती के विचार विद्रोहात्मक या आक्रोशात्मक नहीं है अपितु वे स्त्री–पुरूष समानता पर पुरजोर बल देती हैं। उनका मानना है कि स्त्री को पुरूष की दया का मोहताज बनकर नहीं बल्कि स्वावलंबी बनकर जीना चाहिए। अनुपयोगी सामाजिक परंपराओं को ढोते रहने से कोई लाभ नहीं, अपितु, स्वस्थ और समाजोपयोगी नियम बनाये जाए जिसमें कोई शोषक और कोई शोषित न हो।

सोबती की नारियाँ बेजान गुड़िया नहीं बल्कि हाड–माँस की सजीव प्रतिमा है जिनकी अपनी आकांक्षाएँ हैं, जो जिदंगी को अपने ढंग से जीना चाहती है। अपने अधिकारों के लिए ये स्त्रियाँ मुखर है और समय पर जुबान चलाना, अधिकार प्राप्त करना भी जानती है। ये स्त्रियाँ बेहद आत्मसम्मान एवं आत्मगौरव की भावना से भरी है। अपने अस्तित्व और अस्मिता की तलाश ही इनके जीवन का मुख्य ध्येय हैं।

यूँ तो कृष्णा सोबती ने जीवन के विविध पक्षों का स्पर्श किया, किंतु मुख्य रूप से इनकी लेखनी स्त्री–समस्याओं पर ही चली है। पुरूषप्रधान सामाजिक व्यवस्था और उस व्यवस्था में दोयम दर्जे का जीवन जीती स्त्री का यथार्थ चित्रण ही इनके लेखन का मुख्य उद्देश्य रहा है। स्त्री मन की गांठो को खोलने में सोबती जी को अपूर्व सफलता हासिल हुई है। एक नारी होने के नाते इन्होंने नारी की दृष्टि से स्त्री समस्याओं को देखा–समझा और परखा तथा लेखनी में स्थान दिया। –"तथाकथित नैतिकता और धर्म के चौखटों के बाहर इनसान की जिंदगी का एक बहुत बड़ा हिस्सा फैला पड़ा है। इसकी उम्मीदें आस्थाएँ, उसकी कमजोरियाँ, प्यार और आर्थिक संघर्ष, इन सबको किसी एक के नाम पर छांट देना, उन्हें किसी दायरे से बाहर कर उन पर फैसले देना मुनासिब नहीं।"[7]

निष्कर्ष :

व्यक्ति तथा समाज के पारस्परिक संबंधों की कुशल व्याख्या सोबती जी ने अपनी लेखनी में की है। स्त्री जीवन के विभिन्न पहलुओं पर इन्होंने अपनी लेखनी चलाई है। स्त्री–पुरूष को शरीर के नाम पर अलग–अलग खेंमें मे बांटने की प्रबल विरोधी सोबती जी अपनी लेखनी में आधुनिकता का परिचय देती हैं। ये स्त्रियों को अधिकार प्राप्ति के लिए शिक्षा, अर्थोपार्जन तथा विवेकसम्मत निर्णय लेने का पुरजोर समर्थन करती है। परंपरा और आधुनिकता, संस्कार एवं शिक्षा के बीच जो सुगम सेतु हैं सोबती जी उसे अपनाने पर बल देती है। इनकी मानसिकता समाज को तोड़ने की नहीं, अपितु स्वस्थ समाज के निर्माण और विकास में सहायक के रूप में है जिसमें स्वतंत्रता, समानता और सभी के अधिकार सुरक्षित हो। नई पीढ़ी को अपने पात्रों के माध्यम से सोबती जी यही संदेश देना चाहती है।

संदर्भ :

1. निरंजन देव शर्मा : शब्द परस्पर, राजकमल प्र० 2015, पृ०सं०–19–20
2. निर्मला जैनः कथा समय में तीन हमसफर, राजकमल प्र० 2011, पृ०सं०–122
3. कृष्णा सोबती : दिलोदानिश, राजकमल प्र० 1993 (5वां संस्करण 2018), पृ०सं०–111
4. कृष्णा सोबती : समयसरगम, राजकमल प्र० 2000 (पहला संस्करण 2008), पृ०सं०–65
5. कृष्णा सोबती : लेखक का जनतंत्र, राजकमल प्र० 2018, पृ०सं०–198–99
6. वही, पृ०सं०–199
7. कृष्णा सोबती : हम हशमत भाग–1, राजकमल प्र० 1977 (6ठां संस्करण 2016), पृ०सं०–259

***

आर्थिक विकास में महिलाओं का योगदान : एक समाजशास्त्रीय विश्लेषण

डॉ. सुमन कुमारी *

आज के आर्थिक युग में महिलाएँ अधिक स्वावलंबी हुई हैं। उनमें आत्मविश्वास और मनोबल भी बड़ा है। अपने अधिकारों के प्रति वे सचेत हुई हैं मगर महिलाओं में आर्थिक क्रसन्ति की लहर अधिकतर शहरों में ही देखने को मिलती है। यह नहीं कि ग्रामीण महिला कामकाजी नहीं हैं परन्तु फिर भी वे आत्मनिर्भर नहीं हैं। उसका सबसे बड़ा कारण है उनका असंगठित होना। ग्रामीण महिला अधिकतर असंगठित क्षेत्र में कार्य करती है। इसलिए उन्हें बहुत मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। असुरक्षात्मक माहौल में कठोर श्रम के बावजूद उन्हें बहुत कम मजदूरी मिलती है और उन्हें दूसरी कोई सुविधाओं से वंचित रखा जाता है।

स्वतंत्रता के पूर्व ही महिलाओं की दयनीय स्थिति को हृदय से स्वीकार किया गया। उन्हें सबल बनाने की संकल्पना की गई। यह तय किया गया कि हर हाल में महिलाओं को सशक्त किया जाए। उन्हें राष्ट्रीय विकास की मुख्य धारा से जोड़ा जाए। इसका मुख्य कारण यह है कि घर–परिवार, समाज, राष्ट्र की संरचना में महिलाओं की भूमिका सर्वोपरि है। यह कहा जाए कि महिलाएँ ही परिवार की धुरी हैं। यदि महिलाओं को यथोचित स्थान नहीं दिया गया तो परिवार खंडित हो जाएगा। यदि परिवार खंडित होगा तो समाज खंडित होगा और समाज खंडित होगा तो राष्ट्र विखंडित हो जाएगा। इसलिए महिलाओं की स्थिति सुदृढ़ करना एक अपरिहार्य कर्त्तव्य हो गया।

भारत, चूँकि, एक लोकतांत्रिक गणराज्य है, इसलिए यह इसकी पहली शर्त है कि इससे प्रत्येक नागरिक की भूमिका राष्ट्र के परिप्रेक्ष्य में सुनिश्चित की जाए। कोई नागरिक उपेक्षित, और कमजोर न रहे। सभी स्वतंत्र रूप से अपने उन्नयन के लिए प्रयास करें। सभी आत्मनिर्भर बनें। सभी मिलकर राष्ट्र को संचालित करें। लेकिन, लोकतंत्रात्मक पद्धति में, राष्ट्र सुचारू रूप से कार्य करें, संचालित हो और इसके विकास में इसके सभी नागरिकों की भूमिका सुनिश्चित हो, इसके लिए एक आचार संहिता की बात सामने आई और संविधान की रचना की गई। जिसमें नागरिकों के अधिकार, सरकार के गठन की व्यवस्था, उसके संचालन की प्रक्रिया की व्याख्या की गई। भारत एक लोक कल्याणकारी राष्ट्र है। अतः उपेक्षित, दलित, पिछड़े तथा असहाय नागरिकों के कल्याण एवं उनके उन्नयन के लिए विशेष प्रावधान किए गए। सभी नागरिकों की वैयक्तितक स्वतंत्रता सुनिश्चित हो, इसके लिए राष्ट्र को धर्म निरपेक्ष घोषित किया गया।

आर्थिक उत्पादन के क्षेत्र में महिलाओं को प्रवेश से अनेक प्रश्न उपस्थित होता है – महिलाओं के कितना काम लेना चाहिए, महिलाओं का वेतन किस आधार पर निर्धारित करना चाहिए आदि। महिलाओं को विशष सुविधाएँ देने के लिए अनेक कानून बने हैं। संविधान ने महिलाओं के काम करने के अधिकार को मान्य किया है और इसी प्रकार कानून महिलाओं के लिए रोजगार, स्व–रोजगार एवं व्यवसायों के द्वार खोले हैं। श्रीमती पश्चिनी सेन गुप्ता ने अपनी पुस्तक वीमेन वर्कर्स ऑफ इंडिया (भारत की कार्यरत महिला) में करीब दस बारह प्रकार के कार्यों की सूची का विवरण दिया है जो महिलाओं के आर्थिक स्थिति को सुदृढ़ करता है। ये कार्य इस प्रकार हैं[1] :–

1. कारखाना – कारखाने में कार्यरत महिलाएँ और खास कर कपड़े, तम्बाकू, आटा मिलें, तेल तथा काजू के कारखाने, इंजीनियरिंग से सम्बन्धित कार्य तथा ऐसे अनेक क्षेत्रों में बड़ी संख्या में काम करती है।

2. खान – बहुत सी महिलाएँ, कोयला, इस्पात, पत्थर, अभ्रक, मैंगनीज इत्यादि की खानों में काम करती है।

3. बगीचे – चाय, काफी और रबर के बगीचों में महिलाएँ काम करती है।

---

* पीएच० डी० (समाजशास्त्र) बी० आर० ए० बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

4. कृषि – कृषि सम्बन्धी विभिन्न कार्यो में महिलाएँ हाथ बटाती हैं, जैसे– जोताई, बोआई, खाद डालना, फसल काटना, पानी देना इत्यादि। इसके उपरांत पशुओं की सेवा–पानी, सेवा शुश्रुषा महिलाएँ ही करती हैं। डेयरी दूध दुहना, छाछ बनाना इत्यादि का कार्य महिलाएँ ही करती हैं। सब्जी–तरकारी उगाने का काम तो प्रायः महिलाओं का ही होता है।

5. सार्वजनिक निर्माण विभाग – महिलाओं के श्रम का उपयोग नए रास्तों के निर्माण में, नदी योजनाओं में बाँध के निर्माण में किया जाता है। गोद में नन्हा–सा बच्चा और सिर पर रोटियों की पोटली लिए कुछ रुपये की मजदूरी प्राप्त करने के लिए जाती महिलाओं का दृश्य कहीं भी दिखाई पड़ जाता है।

6. गृह कार्य – भारत में औद्योगिक विकास की गति धमी होने के कारण तथा कृषि पर अधिक दबाव होने के कारण अन्य विकसित देशों की तुलना में आज भी हमारे देश में घरेलू नौकर मिलते हैं। जिनकी संख्या अब शनै शनैः कम होती जा रही है। घरेलू नौकर अधिकाशंतः पुरुष ही होते हैं, किन्तु रसोई पकाने, कपड़े धोने, बर्तन मांजने तथा बच्चों की देखभाल के लिए प्रायः महिलाएँ ही आया के रूप में रखी जाती है जिनकी संख्या आज बढ़ती जा रही है।

7. लघु व्यवसाय – मछली पकड़ने का धंधा, बीड़ी बनाने, रंगाई और छपाई का काम, खिलौने बनाने का काम, ऐसे अनेक छोटे व्यवसायों में जो घर में ही किए जा सकते हैं तथा जिसमें मशीन या बिजली उपयोग की आवश्यकता नहीं पड़ती, महिलाएँ काम ममें जुटी हुई दिखाई पड़ती हैं। चूँकि ऐसे काम अकितर घर में ही किए जा सकते हैं अतएव अनेक महिलाएँ इसमें लगी रहती हैं। कितनी ही महिलाएँ घर बैंठे कागज के थैले तथा लिफाफे बनाती हैं या मिल के बने थानों को काटती हैं। बहुत–सी महिलाएँ पापड़, आचार बनाती है, सब्जी या सूखा मेवा बेचने बैठती हैं या फिर पान की दूकान चलाती हैं। ऐसे अनेकानेक छोटी–बड़ी गतिविधियों में महिलाएँ लगी रहती है।

8. दूकानों, दफ्तरों, वितरण केन्द्रों में अब अधिसंख्या में महिलाएँ कार्यरत दिखाई पड़ती हैं। रिसेप्शनिस्ट, सहायक, टाइपिस्ट, टेलीफोन आपरेटर के पद पर महिलाएँ ही अधिक दिखाई पड़ती है। बहुत सी महिलाएँ अपनी सिलाई की दूकान खोलती है, प्रसाधन कक्ष चलाती हैं या ब्यूटी पार्लर अथवा बाल संवारने – सजाने के केन्द्र खोलती है।

9. रेलवे में, गोदी तथा विमान में महिलाएँ काम करती हैं। विमान परिचारिका के रूप में, महिला पुलिस, महिला निरीक्षक के रूप में अनेकानेक महिलाएँ काम करती है।

10. नए कल्याणकारी राज्य में, खास करके सामुदायिक योजना के कारण महिलाओं के लिए ग्राम सेविकाओं के व्यवसाय का मार्ग खोला गया है और गाँव ही उसका मुख्य कार्य क्षेत्र है। इसके अलावा सामाजिक कार्यकर्ताओं के रूप में जनसंपर्क अधिकारियों के सहायक के रूप में महिलाएँ काम करती हैं। अस्पताल में रोगियों को राहत देने का, कारखाने में मजदूर और मालिक के बीच समझौता करवाने में या व्यापार में ग्राहकों को संतोश हो ऐसा व्यवहार करने के निमित महिलाओं की सेवाओं का उपयोग किया जाता है।

11. शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षिका, प्रोफेसर, इंस्पेक्टर या मुख्य आचार्य के पद पर महिलाएँ बहुत संख्या में कार्यरत है।

12. शिक्षा क्षेत्र की भांति स्वास्थ्य विभाग में विभिन्न स्तरों पर महिलाएँ कार्यरत दिखाई पड़ती है। यथा – दाई, परिचारिका, स्वास्थ्य निरीक्षक, सामान्य डॉक्टर या चिकित्सक या विशषज्ञ डॉक्टर के रूप में महिलाओं की संख्या उल्लेखनीय है।

13. कला के विभिन्न क्षेत्र महिलाओं के लिए खोल दिय गए हैं। गुजरे जमाने में नृत्य करने वाली कन्या या गीत गाती बालिका की आलोचना हुआ करती थी क्योंकि माना जाता था कि यह व्यवसाय मात्रा बारांगनाएँ कर सकती हैं, किन्तु कालांतर में धीरे–धीरे नृत्य, संगीत, चित्रकला इत्यादि का सामाजिक महत्व बढ़ने लगा और साथ–ही–साथ इन कलाओं में पारंगत महिलाएँ दिखाई पड़ने लगीं। यहीं पत्रकारिता के क्षेत्र. में महिलाओं का प्रवेश उल्लेखनीय है। आज किसी सुस्थापित समाचार–पत्र के दफ्तर में प्रुफ संशोधन करने वाली महिला तथा महिला संवाददाता दिखाई पड़ती है।

14. आधुनिक युग में भारतीय महिला वकील, बैरिस्टर या न्यायाधीश भी दिखाई पड़ती हैं। इसके अलावा न्यायाधीश तथा आयुक्त जैसे उच्च पदों पर भी आसीन महिलाएँ ध्यान आकृष्ट करती हैं। विदेश विभाग या भारतीय दूतावास में महिलाएँ काम करती है। नगर निगम में महिला मेयर का पद सुशोभित कर रही है।
15. राज्यपाल, राजदूत, हाईकमिश्नर या मंत्रीपद जैसे राजनीतिक पदों के लिए अब महिलाएँ योग्य मानी जाती है।

इस प्रकार अनेक प्रकार के रोजगार और व्यवसायों में महिलाएँ दिखाई पड़ती है। प्रत्येक रोजगार या व्यवसाय में महिलाएँ कितने अनुपात में हैं। यह जानना महत्वपूर्ण है, क्योंकि इससे हमारी महिलाओं की आर्थिक उपलब्धियों का चित्र सामने आ सकेगा तथा यह स्पष्ट हो पायेगा आर्थिक विकास में महिलाओं का क्या योगदान है।

सरकारी स्तर पर भी महिलाओं की व्यावसायिक गतिविधियों की ओर हमारा ध्यान जाता है। जिस समाज में कुछ वर्ष पूर्व ही निर्धारित समय के बाद घर से निकलने पर प्रतिबंध था, अपने निकट से सगे–सम्बन्धियों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों से किसी प्रकार का मेल–जोल नहीं रखा जा सकता था और बालकों की देखभाल तथा गृहस्थी का कार्य करने में ही महिलाओं का कार्यक्षेत्र सीमित था और यही कार्यक्षेत्र मध्यमवर्ग की महिलाओं के लिए आदर्श माना जाता था। ऐसी पृष्ठभूमि में विविध रोजगार में महिलाओं को कार्य करते देखकर आश्चर्य ही होता है। इसका पति–पत्नी के पारस्परिक सम्बन्ध पर असर पड़े बिना नहीं रह सकता। इस प्रभाव के स्वरूपों का अध्ययन करने के पूर्व, भारत में महिलाओं के व्यावसायिक प्रवेश के कारण कैसा चित्र उपस्थित होता है यह देखने का प्रयत्न करें।

समूचे विश्व सहित भारत में भी महिलाओं की स्थिति में तेजी से परिवर्तन हो रहा है। जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में महिलाएं बढ़–चढ़ कर हिस्सा ले रही हैं और सफल भी हो रही हैं। बात चाहे हम राजनीति की करें या व्यवसाय की, बात मीडिया की हो या भारी उद्योग, इंजीनियरिंग, चिकित्सा, अंतरिक्ष और वैज्ञानिक शोध की, हर क्षेत्र में महिलाओं ने अपनी योग्यता और दक्षता साबित की है। जीवन का कोई भी क्षेत्र ऐसा नहीं है जहां महिलाओं की प्रभावी उपस्थित न हो।

किसी भी देश की सामाजिक, आर्थिक प्रगति को जानने के लिए वहां की महिलाओं की स्थिति एवं स्तर का आकलन करना अति आवश्यक है। समाज में महिलाओं की भूमिका महत्वपूर्ण होती है। महिलाओं को विकास की मुख्यधारा में जोड़े बिना किसी समाज, राज्य एवं देश के आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक विकास की कल्पना भी नहीं की जा सकती है। भारत एक कृषि प्रधान देश है, जिसकी 72 प्रतिशत जनसंख्या गांवों में निवास करती है। यह जनसंख्या कृषि, कुटीर उद्योग, हथकरघा जैसे कार्यों से जुड़ी हुई है। देश के आर्थिक विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान है। कृषि क्षेत्र में महिला श्रमिकों द्वारा किए जाने वाले कार्य बुवाई, निदाई–गुड़ाई, चारे की कटाई, अनाज निकलवाने आदि तक सीमित है। इसके अतिरिक्त महिलाएँ मुर्गीपालन, पशुपालन और मधुमक्खी पालन के कार्य भी करती हैं।

भारत सरकार ने ग्रामीण विकास में महिला रोजगार की भागीदारी बढ़ाने के लिए समय–समय पर नीतियों का निर्माण किया है। महिलाओं और बच्चों के समग्र विकास को वांछित गति प्रदान करने के लिए 1985 में मानव संसाधन विकास मंत्रालय के अधीन महिला और बाल विकास विभाग गठित किया गया है। 2006 से इसे स्वतंत्र मंत्रालय का दर्जा दे दिया गया है। महिला और बाल विकास मंत्रालय महिलाओं के विकास की देखरेख करने वाली प्रमुख एजेंसी के रूप में योजनाएं, नीतियां और कार्यक्रम तैयार करता है, महिलाओं के बारे में कानून बनाता है और उनमें संशाधन करता है और महिलाओं को विकास के क्षेत्र में काम करने वाले सरकारी और गैर–सरकारी दोनों तरह के संगठनों के प्रयासों का दिशा–निर्देशन और समन्वय करता है। इसके अलावा विभाग महिलाओं के लिए कुछ अभिनव कार्यक्रमों को भी लागू करता है। ये कार्यक्रम प्रशिक्षण और क्षमता निर्माण, रोजगार और आमदनी बढ़ाने, कल्याण और सहायक सेवाओं तथा जागरूकता पैदा करने और महिलाओं में चेतना जगाने के क्षेत्र में होते हैं। इन सब कार्यक्रमों का अंतिम उद्देश्य महिलाओं को आत्मनिर्भर और सक्षम

बनाना है। भारत में ग्रामीण विकास, रोजगार संवर्द्धन व विभिन्न क्षेत्रों की समस्याओं को हल करने के लिए तथा महिला के विकास के लिए कई योजनाओं का क्रियान्वयन किया जा रहा है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि यदि महिलाओं से संबंधित विभिन्न कार्यक्रमों को सही ढंग से लागू की जाय तो महिलाओं को आर्थिक रूप से सशक्त होने का अवसर प्रदान होगा जिसके परिणामस्वरूप हमें यह देखने को मिलेगा कि महिलाओं की स्थिति हरेक क्षेत्र में प्रगति की ओर होगा। महिलायें भी आज घर से बाहर निकलना चाह रही है, राजनीति से लेकर शिक्षा तथा नौकरियों में भी अपना परचम लहराना चाह रहीं हैं। विभिन्न संवैधानिक प्रावधानों व महिलाओं की स्थिति में सुधार लाने के लिये बनाये गये कानूनों और विभिन्न कल्याणकारी योजनाओं के बदौलत आज महिलाओं की स्थिति में काफी हद तक सुधार आया है।

संदर्भ :

1. आधुनिकता एवं नारी सशक्तिकरण, वी० एन० सिंह एवं जनमेजय सिंह, रावत पब्लिकेशन, जयपुर, 2010.
2. ओमेन एण्ड डेवलपमेण्ट : दी चेंजिंग सिनरियो – स्वाती ठाकुर जोशी, मित्तल पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2001
3. ''इकोनॉमिक वेलफेयर ऑफ वीकर सेक्शन्स – प्रिक्यूसर टू सोशल जस्टिस'', राम० जी० एस०, विवेक प्रकाशन, दिल्ली, 2001.
4. कर्मशील महिलाएँ एवं भारतीय समाज – डॉ० सुभाषचन्द्र गुप्ता, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2004ण
5. भारतीय महिला सामाजिक एवं सांस्कृतिक अध्ययन – डॉ० राजकुमार, अर्जुन पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण – 2003
6. भारतीय महिलाएँ : दशा एवं दिशा – सुभाष शर्मा, शताब्दी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2000

***

माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन

सैदा हुसैन *
डॉ. आसिफ कमाल **

शिक्षा के स्तरीकृत सामाजिक प्रक्रिया है जो बालक के जीवन के विकास क्रम के अनुसार व्यवस्थित होती है। शिक्षा के विभिन्न स्तरों में मुख्यतः प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च एवं व्यावसायिक स्तरों में विभाजन किया जाता है। प्राथमिक स्तर को आधारभूत, माध्यमिक स्तर को निर्माण काल, उच्च स्तर को प्रबुद्ध चिन्तन एवं व्यावसायिक स्तर को आजीविका प्राप्ति का स्तर माना जाता है। व्यक्ति या बालक में विभिन्न गुणों के विकास की नींव शिक्षा के प्राथमिक स्तर पर पड़ती है। शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर सामाजिक एवं नैतिक गुणों का विकास होता है जो जीवन का अत्यन्त महत्वपूर्ण पक्ष माना जाता है। नैतिक गुणों के अन्तर्गत विभिन्न मूल्यों का अन्तर्भाव होने के कारण माध्यमिक शिक्षा को अत्यन्त महत्व प्रदान किया जाता है। मूल्यों के प्रभाव में व्यक्ति किसी लक्ष्य या कार्य के प्रति अधिक सक्रिय या उत्साहित होता है। अतः माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों में जीवन मूल्यों का विकास एवं उसको जीवन के विभिन्न पक्षों से जोड़ना अत्यन्त उपयोगी माना जाता है।

बालक में मूल्यों का विकास करने के लिए अनेक माध्यमों का प्रयोग किया जाता है। प्रायः देखा जाता है कि व्यक्ति जिन चीजों के सम्पर्क में अधिक समय तक रहता है या जिन वस्तुओं में अधिक रूचि लेता है। उनका उसके जीवन पर गहरा प्रभाव पड़ता है। आधुनिक संचार माध्यमों का व्यक्ति के जीवन पर घनिश्ठ प्रभाव पड़ा है। इनमें टी0वी0, रेडियो, समाचार पत्र, सिनेमा, इन्टरनेट आदि के द्वार बालक के जीवन को एक नयी ऊँचाई प्राप्त होती है। आज बालक इन माध्यमों के प्रयोग से पूरे विश्व की घटित जानकारी को अत्यल्प प्रयास प्राप्त कर सकता है। कोविड जैसी विशम परिस्थतियों में भी इन आधुनिक संचार माध्यमों ने जागरूकता के साथ–साथ सूचना संग्रह एवं नवीन ज्ञान के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराये हैं। टेलीविजन पर विभिन्न शैक्षिक एवं जागरूकता कार्यक्रमों का प्रसारण कर बालकों के ज्ञान का विस्तार किया जा रहा है। शिक्षा का माध्यमिक स्तर बालकों के लिए नयी अपेक्षाओं एवं नवीन चुनौतियों का काल होता है। इस समय उनमें ऊँची अभिलाषाएँ एवं मानसिक अस्थिरता अधिक होती है वे जो भी चीजें आकर्षक एवं अच्छी देखते हैं उन्हें पाने के लिए उत्साहित होने लगते है। टेलीविजन पर वर्तमान में अनेक कार्यक्रम प्रसारित होते रहते हैं जिनका जीवन से न तो कोई सरोकार होता है और न ही उसका कोई निहितार्थ ही होता है। किन्तु वर्तमान युवा पीढ़ी इसके पीछे हमेशा उसी का अनुसरण कर रही है जिस कारण उनमें अच्छे गुणों के साथ कई नकारात्मक प्रवृत्तियों के बढ़ने की भी संभावना बनी रहती है। वर्तमान में माध्यमिक शिक्षा प्राप्त कर रहे विद्यार्थियों में विभिन्न टेलीविजन कार्यक्रमों के कारण सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अध्ययन शोधार्थी द्वारा प्रस्तुत शोध प्रपत्र में किया गया है। क्योंकि इसके आधार पर उनमें सकारात्मक जीवन मूल्यों के विकास के साथ–साथ वर्तमान में प्रसारित टेलीविजन कार्यक्रमों को भी अनुकूल बनाने में सहायता प्राप्त हो सकता है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव की तुलना करना।
2. राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव की तुलना करना।

---

* शोधार्थी शिक्षा संकाय, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)
* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, सिब्ली नेशनल पी. जी. कालेज, आजमगढ़ (उ. प्र.)

परिकल्पनाएँ :

1. माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभाव में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि :

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण प्रविधि पर आधारित है जनसंख्या के रूप में बस्ती जनपद के राजकीय विद्यालयों में अध्ययनरत छात्र–छात्राओं को लिया गया है। न्यादर्श के रूप में इन विद्यालयों के 100–100 कुल 200 छात्र– छात्राओं का चयन यादृच्छिक न्यादर्श प्रतिचयन विधि से किया गया है। चयनित न्यादर्श से प्रतिक्रिया प्राप्त करने हेतु स्वनिर्मित टेलीविजन कार्यक्रम का जीवन मूल्यों पर प्रभावशीलता मापनी का प्रयोग किया गया है। संकलित प्रदत्तों के विश्लेषण में मध्यमान मानक विचलन एवं क्रान्तिक अनुपात परीक्षण का प्रयोग किया गया है।

प्रदत्त विश्लेषण :

सारणी संख्या–1

माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों की प्रभावशीलता की तुलना

चर	N	M	SD	D	σD	CR	सार्थकता
माध्यमिक स्तर के छात्र	100	99.44	11.44	1.25	0.93	1.34	0.01 स्तर 2.59 पर असार्थक
माध्यमिक स्तर की छात्र	100	100.69	11.26				

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के छात्रों के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभावशीलता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 99.44 तथा मानक विचलन 11.44 है जबकि माध्यमिक स्तर की छात्राओं का जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभावशीलता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 100.69 तथा मानक विचलन 11.26 है। परिगणित क्रान्तिक अनुपात 1.34 है जो स्वतंत्रयांश 198 के लिये सार्थकता स्तर 0.01 पर क्रान्तिक अनुपात सारणीमान 2.59 से कम है जो असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाता है को स्वीकृत कर लिया गया अर्थात् टेलीविजन कार्यक्रमों का छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। जिसका सम्भावित कारण वर्तमान में छात्र–छात्राओं का अपने शैक्षिक पाठ्यक्रमों के प्रति अधिक जुड़ा होना, उन्हें टेलीविजन कार्यक्रम के लिये पर्याप्त समय न मिलना, छात्र–छात्राओं को विभिन्न नये मोबाइल कार्यक्रमों से जुड़े होने के नाते टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रति अधिक रूझान न होना आदि हो सकते हैं।

आरेखीय स्पष्टीकरण : माध्यमिक स्तर के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभावशीलता को निम्नलिखित आरेख से स्पष्ट किया जा सकता है–

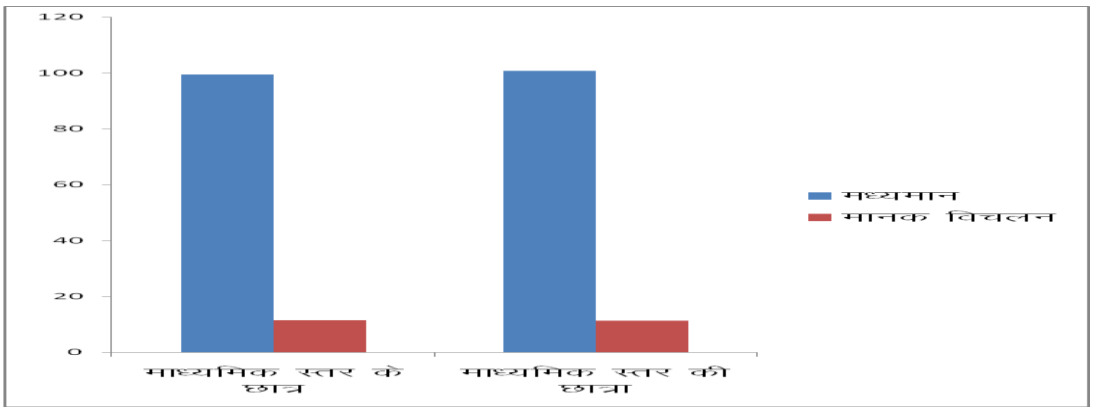

सारणी संख्या–2
राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रम की प्रभावशीलता की तुलना

चर	N	M	SD	D	σD	CR	सार्थकता
राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र	100	101.60	12.28	0.37	1.63	0.22	0.01 स्तर 2.59 पर असार्थक
राजकीय माध्यमिक विद्यालयों की छात्रा	100	101.97	10.75				

उक्त सारणी से स्पष्ट है कि राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्रों के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभावशीलता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 101.60 तथा मानक विचलन 12.28 है जबकि राजकीय माध्यमिक विद्यालयों की छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभावशीलता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 101.97 तथा मानक विचलन 10.77 है। परिगणित क्रान्तिक अनुपात 0.22 है जो स्वतंत्रयांश 198 के लिये सार्थकता स्तर 0.01 पर क्रान्तिक अनुपात सारणीमान 2. 60 से कम है जो असार्थक है। अतः शून्य परिकल्पना राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों का कोई सार्थक प्रभाव नहीं पाया जाता है को स्वीकृत कर लिया गया अर्थात् टेलीविजन कार्यक्रमों का राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया। जिसका सम्भावित कारण वर्तमान में छात्र–छात्राओं का अपने शैक्षिक पाठ्यक्रमों के प्रति अधिक जुड़ा होना, उन्हें टेलीविजन कार्यक्रम के लिये पर्याप्त समय न मिलना, छात्र–छात्राओं को विभिन्न नये मोबाइल कार्यक्रमों से जुड़े होने के नाते टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रति अधिक रूझान न होना, राजकीय विद्यालयों में शैक्षिक वातावरण एवं विद्यार्थियों के लिये अधिगम परिस्थितियों की समानता आदि हो सकते हैं।

आरेखीय स्पष्टीकरण : राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रभावशीलता को निम्नलिखित आरेख से स्पष्ट किया जा सकता है–

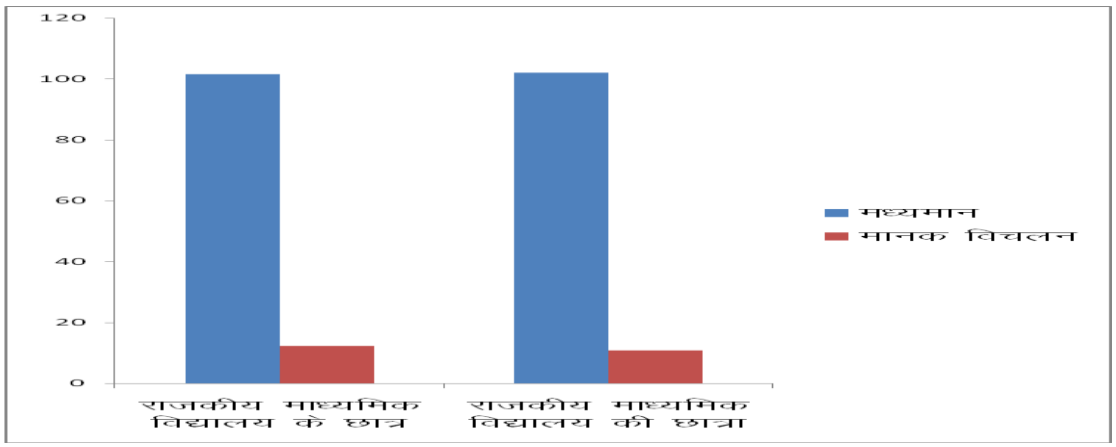

निष्कर्ष :

1. टेलीविजन कार्यक्रमों का राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।
2. टेलीविजन कार्यक्रमों का राजकीय माध्यमिक विद्यालयों के छात्र–छात्राओं के जीवन मूल्यों पर सार्थक प्रभाव नहीं पाया गया।

शैक्षिक उपयोगिता :

प्रस्तुत शोध प्रपत्र के माध्यम से माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों के जीवन मूल्यों पर टेलीविजन कार्यक्रमों के सकारात्मक एवं नकारात्मक प्रभावों का अनुशीलन किया गया जिसके आधार पर उनमें टेलीविजन कार्यक्रमों के प्रति बढ़ती रूचि, उनमें विभिन्न टेलीविजन कार्यक्रमों को देखने एवं उनके प्रति आदतों का निर्माण करने तथा इसका उनकी शैक्षिक गतिविधियों एवं शैक्षिक रूचियों पर पड़ने वाले प्रभावों का मापन कर उनको सकारात्मक एवं शिक्षा के प्रति अभिमुख करने में सहायता प्राप्त हो सकती है। विद्यार्थियों में शैक्षिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, मानसिक एवं संवेगात्मक गुणों के विकास हेतु विभिन्न कार्यक्रमों को देखने के प्रति अभिप्रेरणा तथा उन पर नकारात्मक प्रभाव डालने वाले कार्यक्रमों को रोकने हेतु प्रस्तुत अध्ययन उपयोगी है। अध्ययन के आधार पर विद्यार्थियों की विभिन्न गतिविधियों का आकलन कर उनमें सकारात्मक गुणों के विकास हेतु प्रयास किया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. डॉ0 संजीव भानावत (2018) इलेक्ट्रानिक मीडिया (रेडियो, टीवी एवं फिल्म माध्यमों का दिग्दर्शन) राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
2. डॉ0 संजीव भावनावत (2016) संचार शोध प्रविधियाँ, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
3. नरेन्द्र सिंह यादव (2018) विज्ञान तकनीकि एवं सिद्धान्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर.
4. गुरसरनदास त्यागी (2002) शिक्षा का परिदृश्य, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.
5. डॉ0 एस0पी0 गुप्ता एवं डॉ0 अलका गुप्ता (2016) भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज.
6. जी0सी0 भट्टाचार्य (2010) अध्यापक शिक्षा विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी.
7. एस0पी0 रूहेला (2011) विकासोन्मुख भारतीय समाज में शिक्षक और शिक्षा, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा.
8. एस0एस0 माथुर (2002) शिक्षण कला एवं शैक्षिक तकनीकि, विनोद पुस्तक मन्दिर आगरा.

***

जाति प्रथा के अध्ययन से सम्बन्धित पमुख समाजशास्त्रीय सिद्धान्त

डॉ. देवेश कुमार सिंह *

हिन्दू समाज की सबसे स्पष्ट विशेषता यह थी कि वह जातियों में बँटा हुआ था इसलिए पाश्चात्य विद्वानों, मिशनरियों, प्रशासक–इतिहासकारों तथा प्रजाति वैज्ञानिकों ने न केवल इसके सम्बन्ध में आँखों देखी वस्तुस्थिति को लिपिबद्ध किया बल्कि जिन बातों को वे इस प्रथा के सबसे महत्वपूर्ण तत्व मानते थे, उनकी पहचान करके उन्होंने इसके उद्‌भव की तलाश करने की कोशिश भी की। उदाहरण के लिए नेसफील्ड के अनुसार[1] जाति प्रथा का मूल कारण किसी खास पेशे में पीढ़ी–दर–पीढ़ी महारत हासिल करना था, श्रेणियों (गिल्डों) ने जातियों का सोपानबद्ध रूप ले लिया। जो पेशा जितना असंस्कृत और आदिकालीन था, उसमें लगे लोगों को उतना ही निम्न स्थान प्राप्त हुआ। दूसरी ओर रिजले ने जाति को मुख्यतः नस्ल से संबद्ध माना[2] और दावा किया कि जातिगत दर्जे का सीधा संबंध जाति विशेष के सदस्यों की नाक की बनावट से है। फिर सेनार्ट ने भी जाति के उद्‌भव में पेशागत तत्वों पर जोर दिया लेकिन उनका मुख्य योगदान इस तथ्य में निहित है कि उन्होंने वर्ण और जाति को एक–दूसरे से स्पष्ट रूप से अलग बताया और वर्ण की व्याख्या 'वर्ग' के रूप में की। उनके अनुसार वर्ण और जाति की संस्थाएं तत्वतः एक–दूसरे से स्वतंत्र थीं लेकिन बाद में आपस में मिश्रित हो गईं। अपनी श्रेष्ठता कायम रखने के लिए ब्राह्मणों ने जातियों को वर्णों में जड़ दिया लेकिन वर्ण योजना में कभी भी समाज के वर्गीकरण की वास्तविक स्थिति प्रतिबिंबित नहीं हुई। उसका कहना था कि जातियों का मूल, रोमन 'जेनो' से मिलते–जुलते भारोपीय बंधुसमूहों (किनग्रुप्स) में ढूँढ़ना चाहिए। सेनार्ट के परवर्ती समाजशास्त्रियों ने जाति का संबंध भारोपीय बंधुप्रणाली से बताने के सेनार्ट के प्रयत्नों की काफी आलोचना की लेकिन उसकी उस दलील को, जो वर्ण की वास्तविकता को काल्पनिक मानती थी, आगे बढ़ाया।

भारतीय जातिप्रथा के एक अन्य प्रारंभिक विवेचक थे सेलेस्टिन बूले[2]। उनका कहना है कि चातुर्वर्ण्य हमेशा एक आदर्श मात्र रहा। उसके विचार से असली समूह जातियां थीं, जो खास पेशे पर वंशानुगत रूप से प्राप्त विशेषज्ञता, सोपानबद्धता तथा एक समूह के दूसरे समूह से विकर्षण और अलगाव, इन तीन बुनियादी सिद्धान्तों पर आधारित एक प्रणाली का अंग थी। ये तीनों सिद्धान्त केवल भारत में एक–दूसरे से संबद्ध दिखाई देते हैं, और इसलिए जाति व्यवस्था भारत की अपनी एक अलग विशेषता है। बूले की परिभाषा में इन तीनों विशेषताओं के साथ–साथ काम करने पर जोर दिया गया, और उन्होंने अठारहवीं सदी की उस 'कृत्रिमतावादी' भूल की आलोचना की जिसके अनुसार जातिप्रथा पुरोहितों द्वारा जान–बूझकर बनाई गई एक योजना की उपज थी। उन्होंने कहा कि हमें 'हिन्दू सभ्यता पर धर्म की सता को अतिरंजित रूप में' नहीं देखना चाहिए और यदि हम उन शक्तियों की तलाश करना चाहते हैं जिन्होंने हिन्दू जीवनस्थि को हाड़–मांस से पूरित किया', तो हमें उनके आर्थिक जीवन का अध्ययन करना चाहिए। लेकिन साथ ही उन्होंने यह भी बताया कि जाति के विभिन्न सोपानों का निर्धारण पेशों की उपयोगिता या उनके कठिन स्वरूप की अपेक्षा उनमें निहित शौच और अशौच के तत्वों पर अधिक निर्भर था[4]। जातिप्रथा में निहित पृथकत्व के मूल में नस्लगत भेदों के बजाए शौच और अशौच की धारणा थी। इस विचार पर केतकर ने और भी जोर दिया[5]। इसके पूर्व इबेट्‌सन ने जातियों के उद्‌भव में श्रेणियों (गिल्डों) की भूमिका और ब्राह्मणों द्वारा धार्मिक शोषण के महत्व को तो स्वीकार किया था किन्तु जातियों के जनजातीय मूल पर बहुत अधिक जोर दिया था। पूर्ववर्ती विद्वानों द्वारा प्रस्तुत जातिसंबंधी सिद्धांतों की अपनी समीक्षा के अंत में हटन ने कहा कि हालाँकि इनमें से अधिकांश सिद्धान्तों ने इस विषय की व्याख्या में महत्वपूर्ण योगदान किया है लेकिन आमतौर पर उनमें 'जातिप्रथा के उद्‌भव के कारणों के बजाए' स्वयं इस प्रथा की वास्तविकताओं पर जोर दिया गया है।' शरतचन्द्र

* असिस्टेंट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, प्रताप बहादुर पी. जी. कालेज प्रतापगढ़

राय को छोड़कर किसी ने भी जातिप्रथा की सृष्टि में निषेध, माना और आत्मतत्व की आदिकालीन अवधारणाओं की भूमिका को यथेष्ट महत्व नहीं दिया है। स्वयं हटन ने 'जातिप्रथा के उदय और विकास में योग देने वाले मोटे तौर पर पंद्रह से अधिक स्पष्ट कारण गिनाए हैं, जैसे पारिस्थितिकीय अलगाव, कतिपय शिल्पों के बारे में जादुई विश्वास, 'किसी खास प्रकार की खाद्य वस्तु की व्यक्ति में खास–खास खूबियां भर देने की शक्ति' के संबन्ध में आदिम मान्यताएं, निषेध, माना, आत्मतत्व की जनजातीय अवधारणाएं, टोटमवाद, अशौच, आनुष्ठानिक शौच, कर्म के सिद्धान्त में विश्वास, नस्लों का टकराव और रंगभेद तथा किसी खास सोपान पर स्थित लोगों द्वारा नियोजित ढंग से किया जाने वाला शोषण।[6]

हटन प्रशासक –इतिहासकारों की परंपरा के अंतिम प्रतिनिधि थे। द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद प्रमुख सामाजिक मानव वैज्ञानिकों ने उनकी जातिविषयक अवधारणा की तीव्र आलोचना की है । इन आलोचकों का कहना है कि जाति को अनेक सांस्कृतिक तथा आचार–व्यवहारगत प्रवृत्तियों के सन्दर्भ में परिभाषित करने और इसकी मूल सांस्कृतिक विशेषताओं को अलग करके दर्शाने के प्रयास में हटन ने इस तथ्य को नजरअंदाज कर दिया कि जाति मुख्यतः ऐसे अंतर्संबद्ध समूहों की प्रणाली है जिनमें आर्थिक तथा राजनीतिक सत्ता के विवरण सम्बन्धी विभेदों की अभिव्यक्ति सांस्कृतिक भाषा में होती है। मसलन रोटी–बेटी व्यवहार सम्बन्धी प्रतिबंधी प्रतिबंधों में। पोकाक की दृष्टि में उनकी कृति उन्नीसवीं सदी के विकासवाद और प्रजातिशास्त्र((एथनोग्राफी) पर आधारित है और वह 'तथ्यों का एक बेतरतीब पुलिंदा' है, जिसमें किसी भी मार्गदर्शक सिद्धान्त का अभाव ड्यूमों उनकी आलोचना इसलिए करते हैं कि उनकी राय में हटन ने जाति के सम्बन्ध में 'आण्विक'(एटि्मस्टिक)दृष्टि अपनाते हुये उस प्रणाली का अध्ययन की अपेक्षा अनुभववादी (एंपिरिकल) अर्थ में नहीं बल्कि विचारधारात्मक अर्थ में की जबकि जाति सबसे बढ़कर विचारों तथा मूल्यों की एक प्रणाली है। 'हटन के आलोचकों के इस दोषारोपण से सहमत होना कठिन है कि केवल एक तत्व को ही, चाहे वह विचारधारात्मक हो या आनुभविक, प्रधानता देने के कारण हटन जाति के किसी संपूर्ण सिद्धांत की सृष्टि करने में विफल रहे।' क्योंकि उन्होंने अपनी पुस्तक में यह भलीभाँति दर्शाया है कि जाति कोई आकस्मिक या कृत्रिम सृष्टि नहीं बल्कि एक ऐसी संघटना है जो अनेकानेक कारणों से क्रमिक रूप में विकसित हुई। यद्यपि हटन जातिप्रथा को 'एक–दूसरे से स्वतंत्र रूप में काम करने वाली अनेक कोशिकाओं की सामासिक इकाई' मानते हैं और इस प्रकार उन सामाजिक–आर्थिक तथा सांस्कृतिक बंधनों के महत्व को अकारण ही कम करके आंकते हैं जो इस प्रथा को शक्ति प्रदान करते हैं इसे एक सम्पूर्ण सांघटिक संरचना बनाते है फिर भी उनका अध्ययन जातिप्रथा के उद्भव, स्वरूप और क्रियात्मक रूप के स्थायी महत्व की एक गवेषणा है।

बाद के समाजशास्त्रियों ने जाति उद्भव के कारणों की तलाश से अपना ध्यान हटाकर क्षेत्रीय पर्यवेक्षणों पर आधारित सहकालिक घटनाओं के विवरणों के अध्ययन (सिक्रानिक स्टडीज) पर केन्द्रित किया। ये समाजशास्त्री जाति के उद्भव की तलाश को 'अटकलबाजी' मानते हैं। किन्तु हाल के वर्षों में लुई द्यूमों ने भारतविद्या तथा भारत के सामाजिक मानवविज्ञान के बीच परस्पर निर्भरता की जरूरत पर पुनः बल दिया, और यद्यपि जाति पर अपनी महत्वपूर्ण कृति 'होमो हाइरार्किकस' के फ्रांसीसी संस्करण की प्रस्तावाना में उन्होंने स्पष्ट कहा है कि वह 'जातिप्रथा का कोई इतिहास नहीं प्रस्तुत' करने जा रहे हैं । किंतु अपनी बात को सिद्ध करने के लिए उन्होंने ऐतिहासिक तथ्यों का खूब इस्तेमाल किया। जाति के स्वरूप के विषय में, जो दरअसल प्रचीन भारत के इतिहासकार के लिए बुनियादी महत्व की समस्याएं हैं, कई दावे भी पेश किए हैं। सच तो यह है कि द्यूमों का मुख्य उद्देश्य जाति के आनुष्ठानिक श्रेणीविन्यास का प्रमुख भावना से युक्त एक ऐसा नमूना तैयार करना था जिससे वे यह दिखा सकें कि जातिप्रथा 'समतावादी' मूल्यों पर आधारित मानी जाने वाली पाश्चात्य विश्वदृष्टि से कितनी भिन्न है। इस प्रयोजन से उन्होंने इस प्रथा के अन्य सभी पहलुओं को, चाहे वे इसके संघटन और कार्यात्मकता के लिए कितने ही महत्वपूर्ण क्यों न रहे हों, गौण बना दिया है। यदि द्यूमों के उक्त प्रयोजन को ध्यान में न रखा जाए तो उन्होंने प्राचीन भारतीय इतिहास से प्राप्त साक्ष्यों की जैसी व्याख्या की है, वह ऐसे व्यक्ति के लिए बहुत भ्रामक साबित हो सकती है जो भारत के अतीत की

सही तस्वीर गढ़ना और उसकी व्याख्या करना चाहता हैं । आजकल ऐतिहासिक समस्याओं के प्रति विद्या की विभिन्न शाखाओं के मेल से बना दृष्टिकोण अपनाने की जरूरत बड़ी शिद्दत से महसूस हो रही है। इस हालत में इस बात को ध्यान में रखना आवश्यक है कि इतिहास, समाजशास्त्र तथा सामाजिक मानवविज्ञान की अध्ययन पद्धतियाँ एक दृ दूसरे से कुछ भिन्न हैं और उनकी अपनी मर्यादाएं भी है । ई0 जे0 हाब्सबाम ने बताया है कि समाजशास्त्रियों तथा सामाजिक मानव वैज्ञानिकों के नमूनों तथा विश्लेषणात्मक ढाँचों को 'ऐतिहासिक परिवर्तन से पृथक कर बहुत विधिपूर्वक और अत्यन्त उपयोगी रूप से विकसित किया गया है',लेकिन यदि कोई 'इतिहास के किसी लम्बे दौर के सामाजिक–आर्थिक रूपान्तरण का अध्ययन करना चाहे तो उसके लिए ये किसी काम के नहीं हैं। अगर हम यह मानते है कि 'इतिहास के किसी लम्बे दौर के सामाजिक–आर्थिक रूपान्तरण का अध्ययन करना चाहे तो उसके लिए ये किसी काम के नहीं है। अगर हम यह मानते हैं कि 'इतिहास मूल तत्व परिवर्तन है,गति है[7], तो इस तरह की विश्लेषणात्मक धारणायेँ या नमूने विद्वता के दिलचस्प प्रयोग तो हो सकते हैं, किन्तु सामाजिक संरचनाओं की ऐतिहासिक असलियत को समझने में हमारी कोई मदद नहीं कर सकते ।

द्यूमों, शुरूआत इस आरंभिक मान्यता से करते हैं कि 'विचारधारा संपूर्ण सामाजिक वास्तविकता का केंद्रीय तत्व है।' फिर वे जातिप्रथा की वास्तविकता की व्याख्या उसे श्रेणी विन्यास (हाइरार्की) की अवधारणा से उद्भूत मानकर करने की कोशिश करते हैं। श्रेणीविन्यास की परिभाषा वे 'ऐसे सिद्धान्त' के रूप में करते हैं। 'जिसके द्वारा समष्टि के घटकों के स्थान समष्टि से उनके संबंध के अनुसार तय होते हैं।' इस प्रकार उनकी दृष्टि में जाति श्रेणीविन्यास संबंधों का एक संगठन है। वे इसे ऐसा ढाँचा बताते हैं कि जिसमें शामिल घटकों कि अंतरनिर्भरता इतनी प्रबल है कि इसके बिना यह प्रथा जीवित नहीं रह सकती। इसी प्रकार जाती की 'आण्विक' अवधारणा के मुकाबले समष्टि की बुनियादी एकता पर जोर दिया गया है और यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया गया है कि श्रेणीविन्यस्त समाज व्यक्तिवादिता विरोधी है क्योंकि यह श्रेणी निर्धारण की स्पर्धारहित प्रणाली है जो एक उच्चतर कोटि की एकता कि खातिर व्यक्ति को पहल की सुविधा से वंचित रखती है चूँकि ड्यूमों के अनुसार श्रेणीविन्यास शौच–अशौच के द्वंद्व पर आधारित एक धार्मिक सिद्धान्त है और इसी को जाति प्रथा की बुनियाद माना गया है इसलिए उनके निष्कर्ष पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए कि द्वन्द्वात्मक दृ ष्टिकोण से यह श्रेणिविन्यस्त नमूना,अर्थात भारतीय समाज,तमाम युगों के दौरान एक गतिहीन समाज रहा है। यह श्रेणीविन्यास सभी अंतर्विरोधों या 'संपूरकों' को अपने अंदर समेत लेता है। इसलिए इस समाज में 'द्वन्द्वात्मक अर्थ में कोई विकास नहीं हो सकता क्योंकि द्वन्द्वात्मक प्रवृत्ति जिस चीज को उत्पन्न कर सकती है वह तो पहले से ही मौजूद थी और उसमें हर चीज सदा के लिए समाहित है'। यह ठेठ तर्कबद्ध ढाँचा वेदोत्तर काल से लेकर आज तक के सुदीर्घ काल के दौरान भारतीय इतिहास के विकास में वर्गीय अंतर्विरोधों में आए महत्वपूर्ण परिवर्तनों की तलाश की जरूरत को बड़ी सफाई से नकार देता है क्योंकि जातियाँ तो आज भी मौजूद है और अश्पृश्यता अब भी प्रभावी है, तकनीकी–आर्थिक परिवर्तनों से पूरे ढांचों में कोई परिवर्तन नहीं आया है।

जहाँ तक आधुनिक समाजशास्त्रियों का संबंध है, वे उत्पादन की पूंजीवादी पद्धति के अंतर्गत जाति की आर्थिक तथा राजनीतिक भूमिका में आ रहे बदलावों का अध्ययन अवश्य कर रहे हैं और आम तौर पर उनकी राय यह है कि पूंजीवादी उत्पादन पद्धति ने जाति को स्पर्धाविहीन श्रेणीविन्यास प्रणाली के बजाय सामाजिक स्तरीकरण की ऐसी प्रणाली बना दिया है जिसको हर जाति का अभिजन (एलीट) समुदाय दूसरे अभिजन समुदायों के मुकाबले अधिक से अधिक आर्थिक तथा राजनीतिक लाभ उठाने के लिए उपयोग में लाता है और बढ़ावा देता है । लेकिन उन्होने जाति विभाजन को जारी रखने के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार सजातीय विवाह के कायम रहने के कारणों की ओर यथेष्ट ध्यान नहीं दिया है । आम तौर पर लोग यह नहीं समझते हैं कि पारंपरिक जातिप्रथा न केवल उच्चतर जातियों द्वारा निम्नतर जातियों पर, बल्कि सामान्यतः स्त्रियों पर भी आधिपत्य जमाने और उनका शोषण करने की अनुमति देती है। इस प्रथा के अधीन स्त्रियां इस प्रकार 'दान' में दे दी जाती हैं जिससे जाति

संबंध के कायम रहने में मदद मिलती है। आखिरकार जातिप्रथा के जो पहलू पूंजीवादी सामाजिक संघटन के विरूद्ध नहीं हैं, वे उसके प्रभाव से भला क्यों बदलने लगे? और फिर साजातीय विवाह निजी संपत्ति की पूंजीवादी धारणाओं से सर्वथा संगत है। सामाजिक उत्पादन में पुरूषों के समान स्त्रियों की निर्बाध भागीदारी से ही जाति की पारंपरिक बंदिशों से मुक्त लैंगिक स्वतंत्रता की परिस्थितियां पैदा हो सकती हैं और तभी जाति प्रथा पूरी तरह से मिट सकती है। जाति के इस पहलू को ज्यादा गहरी छानबीन करने से पता चलेगा कि सजातीय विवाह इसलिए कायम नहीं है कि उसे बल देने वाले कतिपय बेतुके धार्मिक मूल्य आज भी जारी हैं बल्कि वह इसलिए कायम है कि स्त्रियों की सामाजिक–आर्थिक पराधीनता अभी भी जारी है। इस पराधीनता के कारण वे परावलंबन और अलगाव की हालत में जीती हैं और उन पर परिवार द्वारा पारंपरिक तौर–तरीकों से तय किए जाने वाले विवाहों की पद्धति थोप दी जाती है। प्रगतिशील शहरी अभिजनों के बीच, जहां स्त्रियां स्वतंत्र रूप से अपना व्यवसाय चुनती और अपनाती हैं अंतर्जातीय विवाह विरल नहीं है और ऐसे विवाहों से नई जातियों की सृष्टि नहीं होती, जैसा धर्मशास्त्रों के वर्णसंकर सिद्धान्त की कल्पना है बल्कि उलटे कुछ खास हलकों में जातिप्रथा मिट जाती है।

किंतु अपनी आरंभिक मान्यताओं और सीमाओं के कारण लुई द्यूमों जातिप्रथा के जारी रहने का कारण बता भी नहीं सकते। उनकी राय में 'श्रेणी विन्यास एक सर्वव्यापी आवश्यकता है'। समाज में विद्यमान परस्पर विरोधी आदर्शों के संदर्भ में वह किसी न किसी रूप में व्यक्त अवश्य होगा चाहे प्रच्छन्न रूप में हो या दोष अथवा व्याधि के रूप में।' उदाहरण के लिए द्यूमों संयुक्त राज्य अमरीका के (बुर्जुआ) लोकतंत्र का उल्लेख करते हैं, जिसमें दासप्रथा के उन्मूलन के बाद नस्लवाद का उदय हुआ और इस प्रकार श्रेणीविन्यास के सिद्धांत का वर्चस्व फिर कायम हो गया। सचमुच समतावादी और वर्गविहीन समाज की कल्पना करना द्यूमों के लिए असंभव है और चूंकि नैतिक तथा राजनीतिक समाजवाद में विश्वास की दुहाई देने के बावजूद पश्चिमी दुनिया असमानता को मिटाने में बुरी तरह विफल रही है, इसलिए द्यूमों के अनुसार असमानता के भारतीय संस्करण को ज्यादा हमदर्दी और समझ की निगाह से देखने की जरूरत है। लुई द्मूमों की रचना में जातिप्रथा के कुछ हद तक आदर्शीकरण का रूझान साफ झलकता है। गैराल्ड डी0 बेरेमन ने द्यूमों के सिद्धांत को 'जाति का ब्राह्मणवादी दृष्टिकोण' कहा है, वह बिल्कुल सटीक हैं इसकी तुलना पांडुरंग वामन काणे की राय से की जा सकती है, जिन्होंने जातिप्रथा के आलोचकों की खबर लेते हुए कहा कि उन्होंने यह नहीं बताया कि जाति के स्थान पर 'किस सामाजिक संगठन को और कैसे स्थापित करना है।' काणे का विचार था कि जातिप्रथा के अधिकांश आलोचकों के ध्यान में 'संपत्ति तथा औद्योगिक क्रांति पर आधारित पाश्चात्य समाज व्यवस्था', अर्थात पूंजीवादी सामाजिक संरचना थी। उन्होंने चेतावनी दी कि वह 'समाजव्यवस्था' उतनी ही बल्कि शायद उससे भी ज्यादा बुरी है जितनी कि आधुनिक जातिप्रथा[8]।

बहुधा दो बातों को इस प्रथा के सही होने का सबूत माना जाता है। पहली बात वर्णव्यवस्था का दीर्घकाल से लगातार बने रहना और दूसरी बात ब्राह्मणों की उच्च प्रस्थिति की परंपरागत स्वीकृति। पी0ए0 सोरोकिन का कहना है कि यदि वर्णव्यवस्था में व्यक्तियों का संतोषजनक 'सामाजिक वितरण' न होता तो यह दो हजार साल तक कायम नहीं रहती। ये प्रशंसात्मक मूल्यांकन भी उसी दृष्टिकोण पर आधारित है जिसमें जाति अपरिवर्तनशील है और उसके धार्मिक पहलू के कायम रहने की बात को बहुत ज्यादा महत्व दिया है। यह दृष्टिकोण इस व्यवस्था के समग्र स्वरूप और संक्रिया में, और साथ ही इसके संघटक तत्वों में इसके लंबे इतिहास के दौरान आए परिवर्तनों को नजरअंदाज करता है।

लेकिन निर्मल कुमार बोस ने एक अलग दृष्टिकोण से जातिप्रथा की शक्ति का मर्म बताने की कोशिश की9। उनके अनुसार जाति बुनियादी तौर पर एक स्पर्धारहित उत्पादन पद्धति थी जिससे अलग–अलग व्यवसायों पर (इजारेदाराना) वंशानुगत अधिकारों को संरक्षण मिलता था। यह भी आंशिक स्पष्टीकरण है जो जातिप्रथा पर समग्रता में विचार नहीं करता। इसमें संदेह नहीं कि यह प्रथा उन लोगों को व्यवसाय पर निश्चित एकस्व प्रदान करती थी जिन्होंने वंशानुगत रूप से विशेष कौशल प्राप्त किए थे। यह दलील भी दी जा सकती है कि जाति अपने सदस्यों को सुरक्षा की भावना प्रदान करती

थी। अकसर निम्न जातियां उच्च जातियों की अपेक्षा जाति के नियमों का पालन ज्यादा पुरजोशी से करती हैं। किंतु असुरक्षा की भावना तथा शोषण के अतिरिक्त दो और भी ऐसे तत्वों की ओर ध्यान देना चाहिए जो जातीय ऐक्यबद्धता को बढ़ावा देते हैं। इनमें से एक तो यह है कि निम्न जातियों का व्यापक जातिसमाज या वर्गसमाज में समेकन बहुत कम हुआ है और अधिकतर मामलों में उन्होंने जातीय ऐक्यबद्धता की प्रबल भावना, एकांतिकता तथा जनजातीय अतीत से विरासत में मिली वर्जनाओं को कायम रखा है। दूसरा यह है कि इन जातियों को समाज में जो निम्न स्थान दिया है उसमें सुधार लाने के लिए उनमें ऊपरी जातियों की शौच–अशौच की अवधारणाओं की नकल करने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। शायद यही कारण हो कि उत्तर प्रदेश में अछूत भी धोबी को अछूत मानते हैं। अछूतों को धोबी की सेवा की जरूरत शायद ही होती हो, इसलिए उनके इस रवैए को जनजातीय अवशेष नहीं माना जा सकता। लेकिन जातिप्रथा को उसकी समग्रता में देखने पर हम पाते हैं कि इसका मुख्य प्रयोजन ऊँची जातियों को शिल्पियों की सेवा और खेतिहर मजदूरों का श्रम सुलभ कराते रहना है, जिसके लिए किसी विशेषज्ञता की जरूरत नहीं है। और यह काम वह शारीरिक श्रम करने वाली जातियों के लिए जाति–सोपान में ऊठने का रास्ता बंद रखकर करती है।

सन्दर्भ :

1. जे0सी0 नेसफील्ड, ए ब्रीफ व्यू ऑफ द कास्ट सिस्टम, इलाहाबाद, 1885.
2. एच0 एच0 रिजले, दि पीपुल ऑफ इण्डिया, लंदन, 1908.
3. सैलेस्टिन बूले, एसेज ऑन दि कॉस्ट सिस्टम, अनु0 डी0 एफ0 पोकाक, लंदन, 1971.
4. वही, पृ0 38.
5. एस0एन0 केतकर, हिस्ट्री ऑफ कॉस्ट इन इण्डिया, लंदन, 1911.
6. जे0एच0 हटन, कास्ट इन इण्डिया, कैम्ब्रिज, 1946, पृ0 164.
7. ई0एच0 कार, व्हाट इज हिस्ट्री, 1971, पृ0 132.
8. पी0वी0 काणे, हिस्ट्री ऑफ धर्मशास्त्र, II दक भाग 1, पुणे, 1941, पृ0 22.
9. निर्मल कुमार बोस, कल्चर एण्ड सोसाइटी इन इण्डिया, लंदन, 1967, पृ0 400.

***

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्श

मनीष कुमार यादव *

सामान्य तौर पर हिन्दी जगत पहले–पहल आदिवासी जगत से परिचित हुआ। फणीश्वरनाथ रेणु के उपन्यास 'मैला आँचल' से, जब उसने अपनी जमीनी हक से वंचित संथालों को अपने स्वत्व और अपने अधिकारों के लिए संघर्ष करते देखा। यही उसका परिचय आदिवासियों की जिजीविषा और जीवटता से भी हुआ और उसने देखा कि प्रशासन की बेरूखी और जुल्म का शिकार होने के बावजूद मॉदर एवं डिग्गे की आवाज बन्द नहीं हो पायी है। लेकिन एक सच्चे हमदर्द की तरह पीड़ित संथालों के प्रति सहानूभूति के बावजूद यह संघर्ष तार्किक परिणति तक नहीं पहुँचा पाता, फलतः उनके जीवन में बदलावों को ला पाने में असमर्थ रहता है। रेणु की समाजवादी, यथार्थवादी चेतना और उनका यथार्थवादी आग्रह उन्हें इस समस्या का काल्पनिक एवं आदर्शपरक समाधान देने से रोक देता है। ऐसा नहीं है कि मैला आंचल के बाद आदिवासी जीवन को लेकर रचनाएं नहीं आईं, पर उनमें विशेषकर बस्तर जैसे अंचलों को लेकर लिखी गई रचनाओं में लेखक की दिलचस्पी स्वच्छन्द प्रेम की घोटुल प्रथा जैसे अतिरेकवादी तत्वों को लेकर कहीं ज्यादा थी। आगे चलकर महाश्वेता देवी के उपन्यास 'हजार चौरासी की माँ एक सशक्त एवं प्रभावी हस्तक्षेप के साथ अपनी उपस्थिति दर्ज कराई और नक्सलवाद को लेकर एक नये नजरिये से हिन्दी जगत को रूबरू करवाया। उन्होंने यह बतलाने की कोशिश की है कि नक्सली हिंसा ऐतिहासिक परिस्थितियों और एक लम्बे समय से चले आ रहे ऐतिहासिक अन्याय की उपज है।

आदिवासी, उपन्यासों के सम्बन्ध में डॉ0 प्रणीता पी0 लिखती हैं, ''हिन्दी में आदिवासी जीवन से सम्बन्धित बहुत से उपन्यास लिखे गए हैं। इन्हीं में से कईयों में आंशिक रूप से आदिवासी जीवन का चित्रण है, तो कुछ एक में पूर्णरूप से या मुख्य विषय के रूप में। आदिवासी नारी जीवन का चित्रण करने वाले उपन्यास संख्या में बहुत कम है। आदिवासी समाजों में अधिकांश महिला प्रधान समाज थीं जिन पर सारी जिम्मेदारी महिलाओं की होती थी और वहीं परिवार की कर्ता–धर्ता हुआ करती थी। हाट बाजार से लेकर सामाजिक व्यवहार आदि में उन्हीं का वर्चस्व था। अधिकांश आदिवासी समाज मातृसत्तात्मक व्यवस्था से संचालित थे। कुछ समय से आदिवासी समाज भी तेजी से बदल रहा है और उनकी संस्कृति पर भी अपसंस्कृति का प्रभाव पढ़ रहा है। ऐसे में स्त्रियों का संघर्ष भी बढ़ता जा रहा है।[1]

औपन्यासिक धरातल पर आदिवासी विमर्श की परम्परा 1980 के दश कमें शुरू होते देखा जा सकता है। हेराल्ड एस0 टोपन्नो के अधूरे (प्रकाशित) उपन्यास को पढ़ते हुए एक विस्फोटक सम्भावना से भेंट होती है। आठवें दशक में वॉल्टर मेंगरा ने झारखण्ड अंचल और वहाँ के जीवन को केन्द्र में रखते हुए सुबह की शाम उपन्यास लिखा जो आदिवासियों द्वारा लिखा गया पहला हिन्दी उपन्यास है। इसके साथ ही तीन उपन्यास 'तलाश', 'गैंगलीडर' और 'कच्ची कली' प्रकाशित हुए जिनमें आदिवासी विमर्श देखा जा सकता है।

आदिवासी विमर्शों के क्रम में हिन्दी साहित्य में आदिवासी उपन्यासकार रणेन्द्र के उपन्यासक ग्लोबल गाँव के देवता और गायब होता देश काफी चर्चित और प्रासंगिक रहे हैं। इन उपन्यासों में रचनाकार ने भूमण्डलीकरण के प्रभाव को आदिवासी जीवन में एक हलचल के रूप में प्रस्तुत किया है। ग्लोबल गाँव के देवता सिर्फ आग और धातु की खोज करने वाली और धातु पिघलाकर उसे आकार देने वाली कारीगर असुर जाति के ''जीवन का संतप्त सारांश', है क्योंकि उसे सभ्यता, संस्कृति, मिथक और मनुष्यता सबने मारा है। इस उपन्यास की शुरूआत ''बदहाल जिन्दगी गुजारती संस्कृति विहीन, भाषाविहीन, धर्मविहीन, असुर जनजाति के लिए इस पीड़ा से होती है। छाती ठोंक ठोंककर अपने को

* शोध छात्र, जी. एफ. कॉलेज, शाहजहाँपुर, उ. प्र.

अत्यन्त सहिष्णु और उदार करने वाली हिन्दुस्तानी संस्कृति ने असुरों के लिए इतनी जगह भी नहीं छोड़ी थी। वे उनके लिए बस मिथकों में शेष थे। कोई साहित्य नहीं, कोई इतिहास नहीं, कोई अजायबघर नहीं। विनाश की कहानियों के कहीं कोई संकेत मात्र भी नहीं।'' वहीं उपन्यास अपने आधर में जिस प्रश्न पर आकर अटकता है वह प्रश्न असुर संसा का लोप कुछ इस भाव भंगिमा के साथ करता है– ''क्या मृत्यु का भी कोई आकर्षण है या नियति पराजय भी आमंत्रिक करती है? मैं सोचता रहता। फिर क्यों न केवल कीकट प्रदेश के लटवे जिले में बल्कि देश के कई राज्यों में हाशिये पर पड़े समुदाय संघर्षरत थे। क्या सभी अपने अपूर्ण मृत्यु की और बढ़ रहे थे? मेरे अखबार, पत्र–पत्रिकाएँ इस तरह की कई खबरें मुझ तक पहुँच रही थीं।''[2] गायब होता देश में रणेन्द्र ने भारत को अपने मूल संस्कृति से परे आयातित संस्कृति से युक्त होने की समस्या का यथार्थरूप में प्रस्तुत किया है।

आदिवासी नारी अस्मिता को ध्यान में रखते हुए 'रमणिका गुप्ता के ''मौसी'' उपन्यास में कहा गया है, ''मौसी तो आदिवासी समाज की मुक्त महिला थी। जबान उसके लिए अहम थी। मूल्यों का आदर ही उसकी सादगी का परिचायक है। यही आदिवासी समाज को दूसरों से अलग करता था।''[3] मौसी के अनुसार औरत की जिन्दगी मुर्गी की तरह है। पुरुष उसे भोग की दृष्टि से देखता है। अपनी शारीरिक भूख की तुष्टि और अपनी सुख–सुविधा के लिए पुरुष औरत की मुर्गी का शोरबा और पकवान समझता है। मौसी ने भगवन बाबू के लिए मुर्गी पकाई है। वह अपने साथ खाना खाते समय सोचती है– ''इस मुर्गी से, जिसे आपने अभी तक काटकर रखा था, क्या फर्क है। कोई न कोई मर्द हर औरत की मुण्डी मुर्गों की तरह ही मरोड़ने को तैयार रहता है। पंख नोचता है कि उड़े नहीं। बोटी–बोटी काटता है– पकाता है कि खाया जा सके। अपने में कुछ नहीं है औरत। बस दूसरों के खाने के लिए बनी है वह स्वयं कुछ नहीं है शायद। मर्द के हाथों की कठपुतली है।''[4] इस उपन्यास में आदिवासी संस्कृति का चित्रण बारीकि से हुआ है। उनके गाँव, पंचायत, रहन–सहन, शादी–विवाह इत्यादि की झलकें मिलती हैं। इस उपन्यास के पात्र भगवान बाबू आदिवासियों के चरित्र के बारे में कहते हैं– ''आदिवासी स्त्रियाँ वफादार ज्यादा होती हैं। वे लोग या तो आयेंगी ही नहीं, आएंगी तो सेवा खूब करती हैं। अपने ही साफ–सुथरी रही हैं, जो गछवाना हो पहले गछवा लेती हैं बाद में लूटपाट के मायके का घर नहीं भरतीं। ज्यादा इधर–उधर भी नजर नहीं दौड़ातीं।''[5]

मौसी उपन्यास के सम्बन्ध में डॉ0 परिणीता पी0 एल0 लिखती हैं– ''यह उपन्यास उस आदिवासी अंचलों का है जो विकसित होकर एक नए औद्योगिक परिवेश में बदल रही हैं, जहाँ आदिवासी संस्कृति नष्ट–भ्रष्ट हो रही है। अपने जीवन यापन के लिए जंगल पर आश्रित रहने की अपनी पारंपरिक जीवन शैली को छोड़कर कोयला खाद्यानों की संस्कृति में जीवन संघर्ष करने को बाध्य कर दिये गये हैं। उपन्यास में लेखिका ने आदिवासी जीवन शैली का बारीक चित्रण किया है। खोरखा और हिन्दी मिश्रित आदिवासी बोली का प्रयोग किया है। संक्षेप में कहें तो यह उपन्यास आदिवासी संस्कृति से छिटककर रोजी–रोटी के लिए कोथलांचलों में भटकती हुई आदिवासी जीवन का जीवन्त दस्तावेज है।''[6]

आदिवासी हमारे देश के मूल निवासी हैं लेकिन समकालीन दौर में शोषकों की व्यवस्था आदिवासियों की जिन्दगी में आयाचित घुसपैठ कर रही है। इनके जिन्दा रहने के आधारभूत संसाधनों को छीनकर उनके अस्तित्व को चुनौती दी जा रही है। इस वजह से आदिवासियों के जीवन मूल्यों में विहास हो रहा है और उन्हें अपनी पहचान को बनाये रखने के लिए अनवरत संघर्ष करना पड़ता है। ऐसे में आदिवासी जनजीवन को विसंगतियों को उनके मुक्ति संघर्ष की व्यापक रचनात्मक अभिव्यक्ति देना और आदिवासी हितों की रक्षा करना जन पक्षधर साहित्यकारों का पक्ष है। डॉ0 पीटर पॉल एक्का के 'मौन घाटी' और वाल्टर भेंगरा 'तरूण' के 'लौटते हुए' में आदिवासी जीवन की छटपटाहट, शोषण के बहुआयामी सन्दर्भों को व्यापक अभिव्यक्ति मिली है। मौन घाटी उपन्यास में पहाड़ी अंचल का जनजातीय जीवन केन्द्र में है तो लौटते हुए में रोजी–रोटी की तलाश में महानगरों की ओर पलायन करती आदिवासी युवतियों की त्रासदी दर्ज करता है। शोषक शक्तियों का अनुचित हस्तक्षेप प्राकृतिक

संपदाओं के विनाश का कारण बनता है जिससे आदिवासियों की जीवनधारा के विविध स्रोत मिटते हुए परिलक्षित होते हैं।

'मौन घाटी' उपन्यास में अचूक निशानेबाज आदिवासी युवक कोंदा की मृत्यु का संकेत है– ''कोंदा पेड़ काटते दबकर मर गया था। कोंदा का तीर निशाने पर लगता था। एक दिन जुलुस सहते तीन चलाने की धमकी फारेस्ट गार्ड को दे गया था इस काम में लगाए लोगों को पाँच–पाँच रूपया मिला था।[7] वाल्टर भेंगरा तरूण के उपन्यास लौटते हुए में स्त्री पात्र सलोनी कथित सभ्य समाज के बहुमुखी शोषण तन्त्र के चंगुल में फँसकर अनजाने शहरों में अपनी जिन्दगी गँवाने के लिए आदिवासी लड़कियों की प्रतिनिधि है। इस उपन्यास में एक स्थान पर उपन्यासकार लिखता है– ''लौटते हुए उसके पास बहुत सारा सामान जमा हो गया था लेकिन उसके पास जो कीमती वस्तु थी अब उसके पास नहीं रह चुकी थी। वह लुट चुकी थी। वह लौटर रही थी। इस महानगर को छोड़कर सदा के लिए।''[8]

हरिराम मीणा का उपन्यास 'धूणीतपे तीर' दक्षिणी राजस्थान के ऐतिहासिक घटनाओं पर आधारित है। इसका समय ब्रिटिश उपनिवेश का है। ''उपन्यास ऐतिहासिक, सामाजिक शक्तियों के संघर्ष और गतिशीलता में से निःसृत मनुष्य की नियति का अनेकवाची साहित्यिक रूप है। ऐसे में उपन्यास का अपना एक देश होता है और अपना एक काल होता है। इस देशकाल के लोगों (चरित्रों) की रचना उपन्यासकार सामाजिक और ऐतिहासिक संदर्भों और जरूरतों के अनुकूल करता है।''[9] इस उपन्यास में आदिवासी जीवन की त्रासदी को यथार्थपरक रूप में प्रस्तुत किया गया है। इनकी मूल आजीविका खेती–बाड़ी ही है जो प्राकृतिक आपदाओं और जमींदारों–अंग्रेजों द्वारा नष्ट कर दी जाती है। परिणामतः वह समाज अपनी नियति समझकर विभिन्न प्रकार के कष्टों को सहता है। ओले से हुए फसल की बर्बादी ने वहाँ के लोगों को कैसे दुःख दिया है इसका चित्रण उपन्यास में इस प्रकार है– ''गाँव के आदिवासी खेतों में ओलों की बरसात से चौपट हुई फसलों को देख–देखकर माथा पीट रहे थे। फसल नष्ट होने की गमी किसी प्रियजन को मौत से बड़ी पीड़ा थी उनके लिए।''[10]

इस प्रकार की भीषण दशा मे भी आदिवासियों की स्थिति को अनदेखा करते हुए देश के राजा या अधिकारी लोग अंग्रेजों के साथ आदिवासियों के शोषण पर खूब सहयोग देते रहे। आदिवासी इलाकों में अनेक प्रकार की अमानवीय ब्रिटिश नीति चालू की थी। इन लोगों को जंगल से अधिकार विहीन करके और इन्हें अनुशासित प्रजा के रूप में ढालकर ही अंग्रेज लोगों ने जंगल का अपना कब्जा बनाया था। उपन्यास में इसका चित्रण है– ''यह वह दौर था जब ब्रिटिश सरकार नए–नए कानून कायदे बनाकर अपने हस्तक्षेप की रणनीति तैयार किये जा रही थी ताकि ऐसी रियासतों में इनकी दखलंदाजी मजबूत होती जाए। बनोपत्र पर पाबन्दी, बन्दोबस्त व कृषि कर में वृद्धि, आबकारी नीति, नमक के स्वतंत्र उत्पाद व व्यापार पर नियन्त्रण आदि ऐसे मामले थे जिनका आदिवासी जनविरोध किये जा रहे थे।''[11]

आदिवासियों की समस्याओं को अनदेखा किये जाने वाले शासकों की अमानवीयता को गोविन्द गुरु ने अपने साथियों को समझाने का प्रयास किया है– ''बनिया खेती बाड़ी नहीं करता न ही जंगलों से कोई उपयोगी चीज इकट्ठा कर बेचता है फिर भी उसके पास घन कैसे आता है? राजा के आदमियों के घर में पगार से ज्यादा सम्पत्ति कैसे इकट्ठी हो जाती है? राजा, जागीरदार और अन्य ठिकानेदार जो कानून का फायदा उठाते हैं वे किसके हक में है? शास्त्रों और पुरखों के वचनों में कहा गया है कि मेहनत का फल मिलता है। फिर आदिवासी जो बेगारी करते हैं उसका फल क्यों नहीं मिलता? पैदावार न होने पर भी हमसे खेती का लगान क्यों वसूला जाता है? कहा गया है कि परजा राजा की संतान की तरह है फिर भी राजा के ही ओहरेदार या ठिकानेदार व उनके आदमी हमारी बहू–बेटियों की आबरू पर आए दिन हाथ क्यों डालते हैं।[12]

आदिवासी केन्द्रित हिन्दी उपन्यासों में समाज एक महत्वपूर्ण मुद्दा है। सामाजिक जीवन का चित्रण करने वालों में सर्वप्रथम नाम देवेन्द्र सत्यार्थी का है। उन्होंने 'रथ के पहिए' (1952) उपन्यास में पहली बार आदिवासी जीवन को केन्द्र बनाया। इसमें गोड़ जनजाति का सामाजिक रूप मिलता है।

इसमें गोंड जनजाति के जीवन का यथार्थ प्रामाणिक चित्रण किया गया है। रांगेय राघव ने कब तक पुकारूँ (1958) में राजस्थान के वन प्रदेश की सीमा पर स्थित वैर क्षेत्र के करनट आदिवासियों के सामाजिक–सांस्कृतिक परिवेश का यथार्थ चित्रण किया है। इसमें उत्पीड़ित एवं शोषित, नटों की व्यथा, नैतिक मान्यता, दुःखपूर्ण जीवन, वर्ग–संघर्ष आदि अंकित है। उसी तरह राजेन्द्र अवस्थी के जंगल के फूल (1960) में आदिवासियों की उस भूमिका को बताया गया है जो उन्होंने गदर में निभाई थी। घटनास्थल मध्य प्रदेश का बस्तर जिला है। यह वनों से भरा है। यहाँ गोंड आदिवासी पाए जाते हैं। ऐतिहासिक गदर में इस जनजाति की मान्यता, जीवन, योगदान, प्राकृतिक एवं लोकसंस्कृति उल्लेखनीय है। इस उपन्यास में गोंड जनजाति का जो चित्रण हुआ है वैसा कहीं नहीं हुआ है।

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी विमर्शों को प्रस्तुत करने के बाद एक सर्वमान्य तथ्य उभरकर सामने आता है कि आदिवासी जीवन की विभीषिका को आदिवासी उपन्यासकारों ने आदिवासी संस्कृति के विघटन के क्रम में विविध प्रकार के विध्वंशों को प्रस्तुत किया है जो तथाकथित सभ्य समाज के लोगों द्वारा जबरन कराया जाता रहा है। प्राकृतिक सभ्यताओं एवं संस्कृतियों से बंधे हुए आदिवासी समय की प्रतिकूलता के कारण त्रिशंकु जैसे विकास की मुख्यधारा के बीचो–बीच में फँसे हुए हैं जहाँ से वे न तो अपनी पुरातन संस्कृति की तरह बढ़ सकते हैं जो जीवनदायिनी थी और न ही विकास की मुख्य धारा से ही जुड़ पाने की क्षमता विकसित कर सकते हैं।

हिन्दी उपन्यासों में आदिवासी कथाकारों ने आदिवासियों के इस द्वन्द्व को ढूँढने और निदान करने का प्रयास किया है जहाँ आदिवासी संस्कृति अपने अधिकार बोधों के साथ अपनी खोई हुई अस्मिता को पुनः प्रापत कर सके और सभ्य समाज के समानान्तर अपनी सामाजिक स्थिति को स्थापित कर सके।

संदर्भ :

1. डॉ0 अनीता पी0 एल0, हिन्दी साहित्य एवं विमर्श, पृ0 145
2. वही, पृ0 146
3. रमणिका गुप्ता, मौसी (उपन्यास), पृ0 27
4. डॉ0 अनीता पी0 एल0, हिन्दी साहित्य एवं विमर्श, पृ0 149
5. डॉ0 फा0 पीटर पौल एक्का, मौन घाटी, पृ0 43
6. वाल्टर मेंगरा, तरूण, लौटते हुए, पृ0 48
7. उपन्यास : कला और सिद्धान्त, सं0 विनोद तिवारी, पृ0 12
8. हरिराम मीणा, धूणी तपेतरि (उपन्यास), पृ0 37
9. वही, पृ0 48
10. वही, पृ0 215
11. डॉ0 अनीता पी0 एल0, हिन्दी साहित्य एवं विमर्श, पृ0 235
12. डॉ0 शहेनाज शेख बेगम अहमद, आदिवासी साहित्य : स्वरूप एवं विश्लेषण, पृ0 30

***

बुद्ध के जातक कथाओं में पर्यावरण के तत्व

संजय सिंह *

बौद्ध धर्म में जातक कथाओं का विशेष महत्व है। ये वे कथाएं हैं जो वास्तविक तौर पर बौद्ध धर्म को प्रदर्शित करती है तथा बौद्ध धर्म का प्रतिनिधित्व करती है। जातक कथाएं विशेष रूप से बुद्ध की जीवन से जुड़ी कथाओं के साथ–समकालीन समाज, शासन व्यावस्था तथा प्राकृतिक परिवेश का भी वर्णन है। इसके अलावा जातक कथाएं बुद्ध के काल बाद भी लिखे गये। इसमें बौद्ध धर्म के प्रसार तथा उनकी समस्त गतिविधियों से जुड़े हुए तत्व छिपे हैं। समस्त बौद्ध साहित्य को हम त्रिपटक के अतंर्गत हीं समेट का रख सकते है। त्रिपटक मूल बौद्ध ग्रंथ है जिनमें तीन ग्रंथ अंते है...1. सूत पिटक 2. विनय पिटक एवं 3. अविधम्म पिटक।

सूत पिटक में बुद्ध के उपदेशों का शंकलन है। वहीं विनप पिटक में बुद्ध के द्वारा बताए गये बौद्ध धर्म के नियमों का शंकलन है, इसके साथ–साथ इसमें बौद्ध कालीन सामाजिक, धार्मिक एवं राजनैतिक अवस्थाओं से जुड़ें नियमों का वर्णन है। जबकी तीसरे भाग अर्थात् अविधमम पिटक में बौद्ध दर्शन का वर्णन है। जहाँ तक जातक कथाओं का प्रश्न है तो जातक कथाएं मुख्य रूप से सूतपिटक के हीं एक भाग खुद्दनिकाय का 10वां भाग है। जातक कथाओं की संख्या 600 के आस–पास बतायी जाती है। इसमें बुद्ध के काल के अलावा बौद्ध धर्म में विकास से जुड़ी कहानीयाँ, समकालीन समाज से जुड़ी कहानियाँ तथा छठी शताब्दीं ई०पू० से तीसरी शताब्दी ई०पूं० तक की कहानियाँ मिलती है।

जैसा कि पूर्व उल्लेखित है कि जातक कथाएं सूत पिटक का हीं एक भाग है। ऐसे में यह स्पष्ट हो जाता है कि जातक कथाओं का स्वरूप उददेशात्मक हीं होगा। स्पष्ट शब्दों में कहा जाय तो जातक कथाएं एक प्रकार का उपदेश ही है और यह उपदेश कहानियों के रूप में मनोरंजन के माध्यम से समाज को नीति तथा धर्म समझाते का प्रयास है। बुद्ध ने हमेशा हीं अपने उपदेशों में लोगों को तृष्णा त्यागने की सलाह दी है। बुद्ध बताते है कि तृष्णा (अशीम अंनत इच्छाएं) हीं मानव के समस्त दुःखों का मूल कारण है। इसमें अलावा बुद्ध अपने उपदेशों में शाकाहार का प्रयोग करने, जीव हत्या रोकने का उपदेश देते हैं। यह सभी पर्यावर्णिक उपदेश जातक कथाओं में भी वर्णित है।

उत्तर वैदिक काल के अंतिम चरण की बात की जाय तो इसमें यज्ञ तथा बली प्रथा अपने चरम पर पहुँच चुकी थी। यज्ञ तथा बली प्रथा के कारण उस समय क समाज में पारिस्थितिकी संतुलन बिगरने लगा था जिसे बेहतर बनाने के लिए बुद्ध ने पर्यावरण के संरक्षण से संबधित उपदेश दिये। यहीं सभी उपदेश कथा के रूप में जातक में समाहित हो गये। यदि हम बुद्ध काल के तथा बुद्ध के बाद के काल में बौद्ध धर्म के प्रचार–प्रसार के तरीकों पर गौर करें तो हम पाते है कि बौद्ध धर्म के प्रचारक तथा स्वंय बुद्ध भी वर्ष के आठ माह धर्म के प्रचार–प्रसार में लगे रहते थे जबकि चार मास जो वर्षा ऋतु का होता था उसमें स्थिर होकर मठ बनाकर या पहले से बने मठ में रह कर बौद्ध धर्म का प्रचार–प्रसार करते थे। इन्हीं प्रचार–प्रसार के दौरान बुद्ध जब भी कहीं भ्रमण करते थे तो बुद्ध से जुड़ी चमत्कार की कहानियाँ अपने आप हीं बन जाती थी। ये कहानियाँ भी जातक कथाओं में शंकलित हो जाती थी।

जातक कथाओं को पांच भागों में बांटा जाता है :–

पच्चुपन्नुवत्थु–बुद्ध के काल की कथा।
अतीतवत्थु – बुद्ध के पूर्व की कथा।
गाथा – सामान्य कथा।
वैय्याकरण – गाथाएं व्याख्यायित की गयी।
समोजन – इसमें अतीत के पात्रों का बुद्ध के जीवन काल के पात्रों का संबंध बताया गया है।

---

* नेट, जे. आर. एफ. शोध छात्र, प्राचीन इतिहास बीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

जातक कथाओं के स पच्चुपन्तुवत्थु, अतीत वत्थु तथा गाथा में पर्यावरण के भरपूर तत्व मैजूद है। बुद्ध कालीन जातक कथा 'रूरू मृदा' के कथा में जहाँ राजा देव दत्त द्वारा मृग के शिकार तथा उस शिकार के बाद उस पर आने वाली विपत्ती का वर्णन किया गया ह। दो हंसो की कथा भी जातक कथा है। जिसमें बताया गया है कि हंस भी आम आदमी की तरह सोचते है तथा उनका भी जीवन के प्रति दृष्टिकोण होता है। यहाँ हम इन दोनों जातक कथाओं के सार तत्व को समझने का प्रयास करें तो हम पाते हैं कि ये दोनों कथा स्पष्ट तौर पर हमें यह बताने का प्रयास करती है कि यदि किसी जीव की हत्या की गयी तो प्रत्यक्ष तथा परोक्ष दोनों तरह के परिणाम हमें भुगतने होगें। वहीं बौद्ध धर्म ने इन कथाओं के माध्यम से समाज को यह सीख भी देने का प्रयास किया कि ये जीव भी पर्यावरण के एक तत्व हीं है। यदि इनका विनाश किया गया तो हम भी सुखी नहीं रह सकते।

चाँद तथा खरगोश की जातक कथा में चित्रण है कि खरगोश माशांहारी पशुओं से छोटे जीव को बचाने के लिए स्वंय आग में कूद गया। यह अपने आप में एक तरह से चमत्कार हीं था कि खरगोश नहीं जला। वहीं छद्दन्द हाथी की कहानी में दर्साया गया है कि हाथी तथा मानव की मित्रता किस प्रकार की थी। इस कथा में वर्णन है कि रानी को आपने हाथों से इस प्रकार का प्रेम था कि हाथी के मृत्यु के उपरांत रानी भी अपना प्राण त्याग देती है। ये दोंनों जातक कहानियाँ हमें सीख देती है कि हम खरगोश की भांति अपने मानव जाती के साथ–साथ दूसरे जीव के जीवन की रक्षा के लिए भी तैयार रहें हम इस प्रकार का त्याग करें की हमारा जीवन मानवता के साथ आ सके। इस दोनों जातक कहानियों के माध्यम से यह भी समझाने का प्रयास किया गया है कि हम अपने लोभ लालच में ने केवल जीवों का विनाश कर रहें है अपितु पर्यावरण का भी नाश कर रहें है।

जातकों में बात की जाय तो 60 ऐसे जातक हैं जो हर प्रकार जीवों की रक्षा तथा जीवों के संरक्षण की सीधे वकालत करती है। इनमें सिंह एवं सियार की कथा। महायपि की कथा, सोने के हंश की कथा, संत भैंसा एवं नटखट बंदर की कथा, महान मत्स्य की कथा, नंदी विलास की कथा, संत भैंसा एवं नटखर बंद की कथा आदि प्रमुख है। इन सभी कथाओं के सार की तरफ ध्यान दिया जाय तो हम पाते है कि ये कथाएं स्पष्ट तौर पर कहना चाह रही है कि मानव हीं वहीं हर जीव में उसी प्रकार का जीवन है जैसा कि मानव में है उनमें भी वही संवेदना है, जो हम मानव में है अतः हम मानव को इस प्रकार का आचरण करना चाहिए कि हम उन जीवों को भी दया तथा करूणा से अपने समान समझों। सरल शब्दों में कहें तो ये कथाएं बुद्ध के परम अहिंसा की नीति को दर्शाते हैं जो पर्यावरण में जीवन, पर्यावरण की विविधता तथा परिस्थिकी तंत्र के बचे रहने के लिए परम आवश्यक है।

बौद्ध धर्म जातक कथाएं केवल अंहिसा की नीति पर हीं बल नहीं देती अपितु इसमें जीव–जंतु के साथ–साथ पेड़–पौधों के भी संरक्षण की बात की गयी है। बौद्ध धर्म में पीपल के पेड़ की अति महानता बतायी गयी है। पीपल के पेड़ को बुद्ध के ज्ञान का प्रतीक माना गया है। इस लिए हर एक जातक में इस पेड़ का वर्णन किसी–न–किसी रूप में किया गया है। पर्यावरण की दृष्टि से देखें तो पीपल उन कुछ चुनिंदा पौधों में से एक है जो हमेशा कार्बन डाइआक्साईड लेते है तथा ऑक्सीजन छोड़ते हैं। यह पर्यावरण का सबसे हितैशी भी है, क्योंकि यह अन्य पेड़ों की तुलना में अधिक विशाल होता है। अतः बौद्ध जातक कथा एवं बौद्ध धर्म, निश्चित तौर पर मानव जीवन के संरक्षण में वायु की शुद्धता के प्रति पूर्ण रूप से सजग था।

बुद्ध अपने उपदेशों में पीपल के पेड़ के अलावा हमेशा हीं अन्य पेड़ की रक्ष की वकालत करते थे। उनके इन्हीं उपदेशों से जुड़ी वृक्ष रक्षा की कथाएं जातक कथाओं में भी अवतरित हो कर आने लगी। इसमें अलावा वन की चर्चा भी जातक कथाओ में खूब हुई है। जिसका उदाहरण आरामदूषक जातक, गुण जातक, विरोजन जातक, वेकुल जातक, बक जातक, तिन्तर जातक, सम्मोदयान जातक आदि प्रमुख है। ये सभी जातक अपने आप में इसलिए विशेष है क्योंकि इन जातकों में पेड़–पौधों की रक्षा का विशेष महत्व बताने के साथ–साथ वन का भी विशेष महत बताया गया है।

बौद्ध धर्म जातक कथाओं में प्राण–वायु के अलावा पर्यावरण के अन्य क्षेत्रकों को भी शुद्ध तथा बेहतर रहने की सीख दी गयी है। इसमें भौतिकवाद से बचने तथा सामान्य जीवन जीने की अद्भुत

सीख दी गयी है। जातक कथाएं हमें शैयमशील, त्यागी तथा उत्तम विचार वाला बने रहने की सीख देती है। व्यवाहारिक जीवन में हम देखें तो हमारे आस–पास के पर्यावरण का संरक्षण तथा देखभाल तभी हो सकता है जब हमारा विचार बेहतर तथा उत्तम बने।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि मानव जीवन को बेहतर बनाने तथा पर्यावरण की सनरक्षा में जातक कथाओं का अमूल्य योगदान रहा है। जातक कथाएं बुद्ध के उद्देशात्मक शिक्षा या बौद्ध धर्म के उपदेशात्मक शिक्षा का हीं एक अंग है जिसमें महात्मा बुद्ध द्वारा जीवन जीने की उत्तम कला को दर्शाया गया है। जातक कथाओं में पर्यावरण से जुड़े हर तत्व मौजूद हैं जो हर प्रकार से हमारे पर्यावरण संरक्षण की वकालत करते है। इनमें वैसी कथाएं है जो पेड़–पौधें के संरक्षण, अहिंसा की नीति तथा हमारे आस–पास के परिवेश को स्वच्छ रखने की हमें सीख देते है। वास्तविक तौर पर देखा जाय तो ये सभी सीख पर्यावरण के संरक्षण के सीख है।

संदर्भ :

1. अग्रवाल, वाशुदेवशरण–भारतीय कला एवं संस्कृति, साहित्य भवन प्रयागराज, 1960।
2. कैवेल, इ०वी०, जातक भाग–1 एवं 11, लंदन, 1895
3. झा, आदित्य चंद्र, प्राचीन भारत का इतिहास, दीपगंगा प्रकाशन, पटना, 2013।
4. झा, द्विजेन्द्र नारायण एवं श्रीमाली, कृष्णमोहन, प्राचीन भारत का इतिहास (संपादित), हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली, 2001।
5. डेविड, रायस, बुद्धिष्ट इंडिया, लंदन, 1896
6. पाण्डे, वे० : हिस्ट्री ऑफ बुद्धिस्ट, याट, पूना 1930
7. वाशम, ए०एल०, अद्भुत भारत, शिवलाल अग्रवाल कम्पनी, दिल्ली 1976।
8. विंटरनिज, मोरिण–हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर, भाग–1, मोतीलाल, बनारसी दास प्रकाशन, नई दिल्ली, 1996।

***

भारत में ग्रामीण सिंचाई का मूल्यांकन और इसका कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता पर प्रभाव

डॉ. प्रिया कुमारी *
रवि शंकर **

भारत एक कृषि प्रधान देश है। प्रथम विश्व युद्ध के समय भारत के राष्ट्रीय आय का लगभग दा तिहाई कृषि से प्राप्त होता था। स्वतंत्रता के बाद विशेष तौर पर योजनाओं के लागू करने क बाद द्वितीयक या तृतीयक क्षेत्रों के विकास के कारण कृषि का हिस्सा कमहोता गया है।1950–51में साधन लागत पर सकल घरेलू उत्पाद में कृषि व सहायक गतिविधियों का हिस्सा 51.1 प्रतिशत था जो कम होते–होते 1990–91 में 29.6 प्रतिशत तथा 2013–14 में 13.9 प्रतिशत (2004–05 कीमतों पर) रह गया। 2011–12 को आधार श्रृंखला मानकर मूल कीमतों पर सकल वर्धित मूल्य में कृषि व सहायक गतिविधियों का हिस्सा 2014–15 में 16.5 प्रतिशत तथा 2015–16 में 15.4 प्रतिशत था। इसी प्रकार रोजगार की दृष्टि से 1972–73 में कार्यकारी जनसंख्या का 73.09 प्रतिशत कृषि एवं सम्बद्ध व्यवसायों में लगा हुआ था। यह 1993–94 में गिरकर 64.8 प्रतिशत तथा 2011–12 में 48.9 प्रतिशत कृषि क्षेत्रों में लगा हुआ है। वर्ष 2011 से 2014 की अवधि में पुरुष श्रम शक्ति का 43 प्रतिशत तथा स्त्री श्रम शक्ति का 60 प्रतिशत कृषि कार्यो में लगा हुआ था।

कृषि उत्पादकता को प्रभावित करने वाले तत्वों में सिंचाई का विशेष महत्व है। पानी मिलने पर, उर्वरकों अच्छे बीजों और नयी कृषि विधियों के प्रयोग से उत्पादकता को सहज ही बढ़ाया जा सकता है। योजना आयोग के अनुसार सिंचित भूमि पर असिंचित भूमि की तुलना में उत्पादकता दुगुनी है। बी0डी0 धवन के अनुसार 1983–84 में सिंचित भूमि पर उत्पादकता लगभग 22 क्विंटल प्रति फसल हेक्टेयर थी, जबकि असिंचित भूमि पर यह मात्र 9 क्विंटल प्रति फसल हेक्टेयर थी। सी0एच0 हनुमंत राव ने अनुमान लगाया है कि 1980 के दशक के उत्तरार्द्ध में सिंचित भूमि पर प्रति हेक्टेयर उत्पादकता, असिंचित भूमि की अपेक्षा 2 से 6 गुना अधिक थी। इसके अलावा कुछ राज्यों के सिंचित क्षेत्रों में खाद्यान्नों की उत्पादकता में औसतन 1.6 से 2.6 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि हुई जबकि असिंचित क्षेत्रों में यह उत्पादकता लगभग स्थिर थी अथवा उसमें मुश्किल से 1 प्रतिशत प्रतिवर्ष वृद्धि हो पायी। हाल में प्रकाशित एक अध्ययन के अनुसार, फसलों के कुल उत्पादन में 1970 के दशक के पूर्वार्द्ध से लेकर 1990 के दशक के पूर्वार्द्ध तक जो वृद्धि हुई है उसमें तीन चौथाई वृद्धि का कारण सिंचित क्षेत्र मे प्रसार तथा सिंचित क्षेत्र में प्रति हेक्टेयर उत्पादकता में वृद्धि थी। इन तथ्यों से यह सिद्ध होता है कि सिंचाई सुविधाओं के प्रसार के द्वारा कृषि उत्पादन और उत्पादकता में काफी वृद्धि की जा सकती है।

सिंचाई के उद्देश्य :

- ग्रामीण सिंचाई का प्रमुख उद्देश्य कृषि उत्पादन में वृद्धि करना।
- ग्रामीण सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराकर फसल निरन्तरता को बनाये रखना है।
- सिंचाई का प्रयोग करके शस्य गहनता में वृद्धि करना।
- कृषकों की आय मे निरन्तरता को बनाये रखना है।
- सिंचाई की सुविधा उपलब्ध कराकर सूखा के प्रभाव को कम करना है।
- ग्रामीण क्षेत्रों में जायद की फसलों के उत्पादन को बढ़ावा देना।
- हरी खादों के उत्पादन में वृद्धि करना।
- सिंचाई की सुविधा उपलब्ध करके भूमि सुधार कार्यक्रम को सफल बनाना।

---

* (एसोसिएट प्रोफेसर) (अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग) डॉ. राममनाहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ. प्र.)
** शोधार्थी(अर्थशास्त्र एवं ग्रामीण विकास विभाग) डॉ. राममनोहर लोहिया अवध विश्वविद्यालय, अयोध्या (उ. प्र.)

- सिंचाई की सुविधा ग्रामीण क्षेत्रों उपलब्ध कराकर कृषकों को मानसून पर पूर्ण निर्भरता से बचाना है।
- ग्रामीण सिंचाई की व्यवस्था करके कृषि उत्पादकता में वृद्धि करना है।

शोध प्राविधिकी :

ग्रामीण सिंचाई का प्रमुख उद्देश्य कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में वृद्धि करना है। इससे कृषकों की आय में वृद्धि होगी। जिससे गरीबी एवं बेरोजगारी में कमी होगी। यह शोध प्रपत्र प्राथमिक एवं द्वितीयक आँकड़ों पर आधारित है। यह द्वितीयक आंकड़े मुख्यतः आर्थिक सर्वेक्षण, योजना, खाद्य एवं कृषि संगठन सेलिया गया है। इसमें कार्य कारण प्रभाव का विश्लेषण आगमन विधि द्वारा किया गया है।

प्राथमिक स्रोतों में ऐसे आकड़े शामिल है जिन्हे शोधार्थी ने सीधे अध्ययन क्षेत्र में प्रश्नावली, व्यक्तिगत साक्षात्कार तथा प्रेक्षणों के द्वारा स्वयं एकत्र किया गया है। प्राथमिक आकड़ों का मूल आधार क्षेत्र सर्वेक्षण होता है।

योजनाओं के दौरान ग्रामीण सिंचाई का प्रतिरुप या माडल :

पहली पंचवर्षीय योजना से ही ग्रामीण सिंचाई को प्राथमिकता क्रम में रखा गया था। 1950–51 में आयोजन शुरु होने पर सिंचाई योजनाओं को तीन वर्गो में बांटा गया–

1. बड़ी सिंचाई परियोजनाएं जिन पर 5 करोड़ से अधिक व्यय करना होता है।
2. मझोंली परियोजनाएं जिनकी लागत 10 लाख रुपये से 5 करोड रुपये के बीच है।
3. लघु सिंचाई परियोजनाएं जिनकी लागत 10 लाख रुपये से कम है।

नहरों के निर्माण से सम्बन्धित अधिकांश परियोजनाएं बड़ी अथवा मझोंली होती हैं। लघु परियोजनाएं में तालाबों नलकूपों तथा कुओं द्वारा सिंचाई हैं। इनमें थोडा निवेश होता है। और इनकी व्यवस्था अल्पकाल में ही हो जाती है। परन्तु सूखे की स्थिति में सिंचाई के ये साधन उपलब्ध नहीं होते है, क्योंकि इनमें जल का अभाव हो जाता है। इसके अतिरिक्त इनके रखरखाव पर भी बराबर व्यय करना होता है। अप्रैल 1978 में परियोजनाओं का नया वर्गीकरण अपनाया गया इसके अतिरिक्त बड़ी परियोजनाएं वे है जिनका नहरी कृषि क्षेत्र 10000 हेक्टेयर से ज्यादा है, मझोंली परियोजनाएं वे है। जिनकी नहरी कृषि क्षेत्र में 2000 से 10000 हेक्टेयर के बीच है तथा लघु परियोजनाएं वे है जिनकी नहरी कृषि क्षेत्र 2000 हेक्टेयर से कम है।

पाँचवी पंचवर्षीय योजना में कमाण्ड क्षेत्र विकास कार्यक्रम (1974–75) में चालू किया गया। इसका प्रमुख उद्देश्य चुनें हुये वृहत तथा मध्यम सिंचाई परियोजनाएं की सिंचाई क्षमता का तीव्र तथा उत्तम प्रयोग करना है। इसके अन्तर्गत फार्म पर किये जाने वाले अनेक विकास कार्यक्रम आते हैं जैसे खेतों पर नहर तथा नालियों का निर्माण, पानी की आवर्ती पूर्ति कीव्यवस्था करना आदि।

त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम :

त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम 1996–97 में केन्द्रीय ऋण सहायता के द्वारा अपूर्ण सिंचाईपरियोजनाओं तथा कार्यक्रमों को पूरा करने के लिए राज्यों को प्रोत्साहित करने के लिए शुरु कियागयाथा।इस समय यह अवरुद्ध निवेशों में से लाभों को तेज करने में मदद कर रहा है। त्वरित सिंचाई लाभ कार्यक्रम के तहतफरवरी 2002 में शुरु किये गये फास्ट ट्रैक कार्यक्रम को अप्रैल 2004 सेसंशोधितकियागया है। ताकि इसके अन्तर्गत आने वाली परियोजनाओं के लिए गैर विशेष श्रेणी के राज्यों के लिए 70प्रतिशत ऋण तथा 30 प्रतिशत अनुदान तथा विशेष श्रेणी राज्सों के लिए 10 प्रतिशत ऋण तथा 90प्रतिशत अनुदान दिया जा सके तथा परियोजनाओं को यथाशीघ्र पूरा किया जा सके।

कमाण्ड क्षेत्र विकास तथा जल प्रबन्ध कार्यक्रम :

कमाण्ड क्षेत्र विकास तथा जल प्रबन्ध कार्यक्रम को अप्रैल 2004 से प्रारम्भ किया गया इस कार्यक्रम का प्रमुख उद्देश्य बेहतर जल प्रबन्धन पद्धतियॉ तैयार करना तथा सिंचाई एवं जल का कुशल प्रयोग करना है, जिससे अन्य बातों के साथ–साथ एक ओर तो सुपुर्दगी प्रणालियों की कमियों

में सुधार हो तथा दूसरी ओर निर्माण कार्यो की लागत बाटने में जल उपयोकर्ता की भागीदारी सुनिश्चित हो।

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली :

सूक्ष्म सिंचाई प्रणाली को ड्रिप सिंचाई प्रणाली के नाम से भी जाना जाता है। ड्रिप सिंचाई के अन्तर्गत सिंचाई की जाने वाली भूमि के ऊपर पाइपों का एक नेटवर्क बिछा दिया जाता है और सिंचाई खेत की निचली सतह से न होकर, जैसा सिंचाई के परम्परागत तरीकों में होता है, ऊपर से छिड़काव के द्वारा होती है। इस पद्धति में पानी की बचत होती है साथ ही प्रति हेक्टेयर उपज भी अधिक प्राप्त होती है। ड्रिप सिंचाई का प्रयोग बागानों तथा ऐसे क्षेत्रों में किया जाता है जहॉ वृक्षों की संख्या सीमित होती है इसके अन्तर्गत पूरे क्षेत्र में पाइपों का जाल बिछाकर प्रत्येक पौधों की जड़ों में सिंचाई की व्यवस्था इस प्रकार की जाती है जिससे कि प्रत्येक पौधों को बूंद–बूंद पानी मिलता रहे। इसमें पानी का कोई अंश बेकार नहीं जाता है।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना :

01 जुलाई 2015 को प्रधानमंत्रीनरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में आर्थिक मामलों पर मंत्रिमण्डलीय समिति (CCEA)द्वारा कृषि क्षेत्र में सिंचाई सुविधाओं में वृद्धि हेतु नई योजना के रुप में प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना को स्वीकृति प्रदान की गयी। इस योजना को प्रारम्भ किये जाने की घोषणा केन्द्रीय वित्तमंत्री अरुण जेटली ने संघीय बजट 2015–16 में की थी। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के तहत कृषि जलवायु की दशाओं और पानी की उपलब्धता के आधार पर जिला और राज्य स्तरीय योजनाएं बनायी जायेंगी। इस योजना के तहत पांच वर्षो (2015–16से 2019–20) हेतु कुल 50000 करोड़ रुपये रखा गया है। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के प्रमुख उद्देश्य निम्नलिखित है–

1. क्षेत्र स्तर पर सिंचाई में निवेशों को अभिसरित करना–
2. सुनिश्चित सिंचाई व्यवस्था के तहत कृषि योग्य क्षेत्र का विस्तार करना ताकि हर खेत को पानी मिल सके।
3. खेतों में ही जल उपयोग दक्षता में सुधार लाना ताकि पानी का अपव्यय कम से कम हो।
4. प्रति बूंद अधिक फसल के तहत परिशुद्ध सिंचाई एवं अन्य जल बचत करने वाली तकनीकी को अपनाना।
5. सतत जल संरक्षण प्राविधियों एवं जलवादी स्तरों के रिचार्ज के उन्नयन के साथ परिशुद्ध सिंचाई प्रणाली में अधिक निवेश आकर्षित करना।
6. इस योजना में सम्पूर्ण जल चक्र को ध्यान में रखने और सभी क्षेत्रों (परिवार, कृषि, उद्योग) के लिए समुचित जल बजटिंग करने के व्यापक दृष्टिकोण के साथ जल के सृजन/उपयोग/पुर्नचक्रण आदि में संलग्न सभी शोध एवं वित्तीय संस्थानों, एजेंसियों, विभागों एवं मंत्रालयों को एक सामान्य प्लेटफार्म उपलब्ध कराये जानेपर भी बल दिया गया है।
7. इस योजना के तहत बागवानी, कृषि एवं गन्ना फसलों में ड्रिप एवं स्प्रिंकलर सिंचाई अपनाने के लिए अनुदान दिये जा रहे हैं। जिसमें लघु एवं सीमांत कृषकों को इकाई लागत का 90 प्रतिशत व अन्य कृषकों को इकाई लागत 80 प्रतिशत अनुदान दिया जाता है।
8. बजट 2018–19 में इस योजना हेतु 4000 करोड रुपयों का आवंटन किया गया है।

नीरांचल : राष्ट्रीय जलसभंर प्रबन्धन परियोजना :

7 अक्टूबर 2015 को प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की अध्यक्षता में सम्पन्न आर्थिक मामलों पर मंत्रिमंण्डलीय समिति की बैठक में विश्व बैंक से सहायता प्राप्त राष्ट्रीय जल संभर प्रबन्धन परियोजना नीरांचल को 2142.30 करोड रु0 के परिव्यय के साथ स्वीकृति प्रदान की गई थी। इस परियोजना में केन्द्र एवं विश्व बैंक की भागीदारी 50:50 के अनुपात में होगा।

प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के जल संभर घटक के लिए नीरांचल परियोजना पूर्ववर्ती एकीकृत जलसंभर प्रबन्धन कार्यक्रम के स्थान पर लायी गयी है। यह परियोजना राष्ट्रीय स्तर के साथ–साथ नौराज्यों, आन्ध्र प्रदेश, छत्तीसगढ, गुजरात, झारखण्ड, मध्यप्रदेश, महाराष्ट्र, उड़ीसा,

राजस्थान और तेलांगना में क्रियान्वित की जायेगी। प्रधानमंत्री कृषि सिंचाई योजना के जलसंभर घटक के प्रमुख लक्ष्यों को प्राप्त करने, हर खेत को पानी सुनिश्चित करने तथा जल के प्रभावी उपयोग के लिए नीरांचल परियोजना को विशेष रुप से प्रारुपित किया गया है जिससे निम्नलिखित लाभ होगें।

1. उससे भारत में जलसंभर और वर्षा सिंचित कृषि प्रबन्धन के तौर तरीको में संस्थागत बदलाव आयेगा।
2. इससे ऐसी विशेष प्रणालियों सृजित की जा सकेगी जो जलसंभर कार्यक्रमों तथा वर्षा सिंचित सिंचाई प्रबन्धन के तौर तरीकों और बेहतर केन्द्रित एवं अधिक समन्वित कर मापन योग्य परिणाम उपलब्ध कराने में सहायक सिद्ध होगी।
3. इससे कार्यक्रम क्षेत्रों में उन्नत जलसंभर प्रबन्धन तौर तरीकों की सततता (जो कि परियोजना समर्थन हटाये जाने के बाद भी जारी रहे) के लिए रणनीतियां तैयार करने में भी मदद मिलेगी।
4. जलसंभर संलग्न उपागम के माध्यम से समावेशन और स्थानीय भागीदारी के मंच पर भावी लीकेज के द्वारा उन्नत सहभागिता आजीविकाओं एवं आय को समर्थन प्राप्त होगा।

निष्कर्ष एवं सुझाव :

स्वतंत्रता के बाद भारत ने सिंचाई संभाव्य को बढ़ाने में काफी सफलता प्राप्त की है। 1950–51में सिंचाई संभाव्य 2.26 करोड़ हेक्टेयर था जो 2011–12 तक बढाकर 11.32 करोड़ हेक्टेयर हो गया। उपयोग में भी लगभग चार गुना वृद्धि हुई (2.26 करोड हेक्टेयर से 8.99 करोड़ हेक्टेयर) परन्तु भारत में कुल सिंचाई संभाव्य 13.99 करोड हेक्टेयर है जबकि 2011–12 में सिंचाई उपयोग केवल 8.99 करोड़ हेक्टेयर था जो कुल संभाव्य का 63.3 प्रतिशत है। इससे यह सिद्ध होता है कि बेहतर आयोजन और प्रयासो से सिंचाई अधीन क्षेत्र में काफी वृद्धि की जा सकती है।

ग्रामीण सिंचाई के विस्तार से कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में भी तेजी से वृद्धि हुई है। जहां तक खाद्यान्न उत्पादन का सम्बन्ध है कुल उत्पादन 1950–51 में 508 लााख टन था तो आठवी योजना में बढकर 1890 लााख टन (वार्षिक औसत) तथा नौवी योजना में 20289 लाख टन (वार्षिक औसत) हो गया। ग्यारहवी पंचवर्षीय योजना में खाद्यान्नों का उत्पादन 2374 लाख टन(वार्षिक औसत)था 2015–16 में खाद्यान्नों का उत्पादन 25.22 लााख टन था। 2016–17 में खाद्यान्नों का रिकार्ड 2720 लाख टन उत्पादन अनुमानित है।

ग्रामीण सिंचाई सुविधाओं में विस्तार से कृषि उत्पादन तथा उत्पादकता में काफी वृद्धि हुयी है लेकिन सुधार अवधि में सार्वजनिक निवेश में गिरावट के साथ–साथ सिंचाई व्यवस्था में भी गुणात्मक गिरावट दिखायी देती है विद्यमान सिंचाई प्रणालियों द्वारा जल आपूर्ति पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है। इसके अलावा देश के बहुत से भागों में जल स्तर बहुत नीचे चला गया है। जिससे सिंचाई के लिए उपयुक्त मात्रा में जल प्राप्त नही हो पा रहा है। कई बार बहुत गहराई से पम्पोंद्वारा पानी खीचना पड़ता है जिससे उत्पादन लागत बहुत बढ़ जाती है।

रिजर्व बैंक की रिपोर्ट आन करेंसी एण्ड फाइनेंस 2001–02 के अनुसार विभिन्न राज्यों तथा विभिन्न फसलों के बीच सिंचाई की उपलब्धि में बहुत ज्यादा अन्तर है। जहाँ तक विभिन्न राज्यों का सम्बन्ध है, जहॉ 2012–13 में पंजाब में सब फसलों के अधीन 98.7 प्रतिशत क्षेत्र पर सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध थी, वहीं महाराष्ट्र में सब फसलों के अधीन केवल 16.2 प्रतिशत क्षेत्र पर सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध थी। लिहनों के अधीन केवल 28.3 प्रतिशत क्षेत्र पर सिंचाई सुविधाएं उपलब्ध थी। जैसे जैसे नई प्रौद्योगिकी का प्रसार वर्षा–आश्रित क्षेत्रों में तथा नयी फसलों में हुआ है वैसे–वैसे भारतीय कृषि की वर्षा पर निर्भरता बढती चली गयी है। वर्षा पर इस निर्भरता से भारतीय कृषि के उत्पादन में 1990 के दशक के उत्तरार्द्ध में उतार– चढाव हुए जब वर्षा का विभिन्न क्षेत्रों में वितरण अत्यन्त असमान था। इसलिए यदि मानसून नहीं आता या वर्षा की कमी होती है तो खाद्यान्नों के उत्पादन में तेज गिरावट होती है। ग्रामीण सिंचाई सुविधाओं में विस्तार करके मानसून पर निर्भरता को कम किया जा सकता है। इसके लिए प्रमुख सुझाव निम्नलिखित है–

1. भारत में कृषि के अधीन कुल क्षेत्र के केवल 47.6 प्रतिशत पर सिंचाई की व्यवस्था है और लगभग 52 प्रतिशत भूमि पूर्ण रुप से वर्षा पर आश्रित है। सरकार द्वारा सिंचाई के कार्यक्रमों में समन्वय करके सिंचाई सुविधाओं में विस्तार करना चाहिए।
2. ग्रामीण सिंचाई के पद्धति एवं समय पर सिंचाई के बारे में लोगों को जागरुक करना चाहिए।

सन्दर्भ :

एस0एन0लाल : भारतीय अर्थव्यवस्था, सर्वेक्षण तथा विश्लेषण, शिव पब्लिशिंग, दिल्ली, 2004

सिंह, विजयेन्द्र : कृषि अर्थव्यवस्था, एस0 चन्द एण्ड कम्पनी, रामनगर, नई दिल्ली, 1999

पाल एवं एस0 रामेश्वर : नई दिल्ली, 1999

सिंह, बी0एन0पी0 : इण्डियन इकोनामी टुडे : चेंजिंग कान्टूउर्स, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन हाउस, नई दिल्ली, 2005

दत्त, बी0 : प्लानिंग फार रुरल बैंक, इकोनामिक एण्ड पोलिटिकल वीकली, 197 XII (35) पेज 1545, 47

आयंगर, डी0 कृष्ण : प्राब्लम्स ऑफ रुरल क्रेडिट, इण्डियन जर्नल ऑफ एग्रीकल्चर इकोनामिक्स 1947, वाल्यूम–2, पृष्ठ 96, 102

गोखल, ए0डी0 : चेयरमैन, आल इण्डिया रुरल क्रेडिट सर्वे कमेटी रिपोर्ट (2)1951–54, पृष्ठ 106

***

दक्षिण एशिया का भौगोलिक, भौतिक, सांस्कृतिक, भू-स्त्रातजिक, राजनीतिक स्वरूप तथा क्षेत्रीय राष्ट्रों के साथ बढ़ रहे चीन के सामरिक संबंध

डॉ. रजनीश कुँवर *

भौगोलिक स्वरूप–:

इतिहास इस बात का प्रत्यक्ष गवाह है कि, प्राचीन काल से ही, अपनी भौगोलिक सांस्कृतिक, सामरिक व राजनीतिक विशेषताओं के कारण, दक्षिण एशिया विदेशी शक्तियों के आकर्षण का क्षेत्र रहा। जहो एक तरफ तो हिमालय की ऊंची–ऊंची पर्वतमालाएं इस सम्पूर्ण महाद्वीप को उत्तर, उत्तर–पश्चिम तथा उत्तर पूर्व में एशिया के अन्य क्षेत्रों से पृथक करती है। जबकि दूसरी तरफ ''सात समुद्रों की कुंजी के रूप मे सुविख्यात हिन्द महासागर इस क्षेत्र की व्यापारिक व सामरिक महत्ता मे निर्णायक भूमिका अदा करता है। लगभग 20 ऐसे देश है जिनके तटों का प्रक्षालन और उनकी जीवन चर्या बहुत कुछ इस महासागर की नियति से जुड़ी है। इतना ही नहीं, अनेक ऐसे भी देश है, जो वस्तुतः इसके किनारे पर नही है, फिर भी वे इस सम्पूर्ण क्षेत्र के साथ एक अटूट बन्धन मे बधे है। दक्षिण एशिया एक विशिष्ट भौगोलिक व्यक्तित्व व सांस्कृतिक समन्वय की दृष्टि से महत्वपूर्ण तो है ही साथ ही दक्षिण पूर्वी एशिया के सांस्कृतिक विकास मे तो प्राचीन काल से इसकी भूमिका महत्वपूर्ण रही है। यद्यपि इस क्षेत्र में भौगोलिक व राजनीतिक दृष्टि से भारत, पाकिस्तान, बांग्लादेश, नेपाल, भूटान, श्रीलंका व मालदीव सम्मिलित है।

किन्तु पश्चिमी (विशेषकर अमेरिकी–विज्ञान) इस क्षेत्र मे अफगानिस्तान व म्यांमार (वर्मा) को भी सम्मिलित करते है। दक्षिण से उत्तर तक फैला आसेतु हिमालय प्रदेश हिमालय की गोद से प्रारम्भ होकर हिन्द महासागर तक तिकोने रूप में घसता चला गया है। पूर्वी तथा पश्चिम पार्श्वो पर क्रमशः बंगाल की खाडी व अरब सागर फैले हुए है। हिमालय की पूर्वांचल श्रेणियों के पार म्यांमार के अराकान योमा द्वारा यह क्षेत्र महाद्वीपीय दक्षिण पूर्वी एशिया से तथा समुन्द्र में निकोबार द्वीप द्वारा सामुन्द्रिक दक्षिण पूर्वी एशिया से पृथक होता है।

हिमालय की पर्वतमालाएं तथा हिंद महासागरीय समुद्रोन्मुखता इस क्षेत्र के भौगोलिक–सांस्कृतिक विशिष्टता के प्रमुख कारक हैं। दक्षिण एशिया के भौगोलिक स्वरूप पर प्रकाश डालते हुए डॉ0 के0 एन0 सिंह ने लिखा है कि, 'मध्य–पूर्व'' मध्य एशिया तथा उच्च एशिया तथा दक्षिण पूर्व एशिया से उच्च पर्वत श्रेणियों द्वारा अलग और शेष दिशाओं मे हिंद महासागर में धंसा बढ़ा लिपटा यह प्रदेश एक विलग प्रदेश बन जाता है। इस भौगोलिक स्थिति ने इसके इतिहास, संस्कृति और भू–राजनीतिक परिवेश को प्रचुर रूप से प्रभावित किया है।[1]

सांस्कृतिक स्वरूप –:

लगभग 44,68000 वर्ग किलोमीटर मे विस्तृत यह क्षेत्र भौगोलिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनीतिक विविधाओं से परिपूर्ण है। भारत–चीन सांस्कृतिक सहयोग की व्यापक संरचना का प्रावधान सांस्कृतिक सहयोग के समझौते मे है। जिस पर हस्ताक्षर मई 1988 में किए गए थे जो एक कार्यपालक सांस्कृतिक आदान–प्रदान कार्यक्रम (सीईपी) क्रियान्वयन के लिए प्रदान करता है।

जून 2003 मे पेकिंग विश्वविद्यालय मे एक भारतीय अध्ययन केंद्र का उद्घाटन किया गया था। केंद्र मे हिदी के एक अतिथि आचार्य आईसीसीआर, के प्रतिनियुक्ति पर है।

अप्रैल 2005, में दोनो देशो के बीच एक संयुक्त विज्ञाप्ति को अंतिम रूप दिया गया था और भारत ने भारतीय शैली के एक बौद्ध मंदिर का निर्माण हेनान प्रान्त के लियोयांग मे श्वेत अश्व मंदिर के पश्चिम छोर पर अंतरराष्ट्रीय उद्यन मे निर्माण के लिए वचन दिया था।

फरवरी, 2007 मे नांलदा (भारत) में झुआंगजैंक स्मारक सभागार का उद्घाटन किया गया था।

---

* एसेसिएट प्रोफेसर रक्षा एवं स्त्रातजिक अध्ययन विभाग सकलडीहा पी. जी. कालेज, सकलडीहा, चन्दौली

वर्ष 2008 को चीन के लिए भारतीय चिकित्सा मिशन मे 70वें वर्षगांठ को मनाने के लिए दोनों देशों भारत और चीन ने संयुक्त चिकित्सा मिशन का आयोजन किया था। प्रधानमंत्री डॉ0 मनमोहन सिंह की यात्रा जनवरी 2008 की अवधि मे मिशन को हरी झंडी देकर रवाना किया गया था। भारतीय संस्कृति संबंध परिषद (आई सीसीआर) और विदेशों के साथ चीनी मैंत्री लोक संघ (सीपीएएफएफसी) के बीच एक संयुक्त विज्ञाप्ति के अंतर्गत 10 चिकित्सक भारत से चीनी की यात्रा पर जनवरी 2008 मे और चीनी चिकित्सकों का एक दल भारत की यात्रा पर वर्ष के उत्तरार्ध मे भारत आया था। इसी के द्वितीय संस्करण का आदान–प्रदान वर्ष 2010 मे हुआ था।

मिशन के नए संस्कृति और सूचना ने अपना कार्य संचालन जून 2008 से शुरू कर दिया है, आईसीसीआर के प्रतिनियुक्ति पर एक कत्थक नृत्य का आचार्य छात्रों के लिए नृत्य कक्षाओं के आयोजन हेतु मिशन मे पहुंच गया है। ये प्रभाग भारतीय संस्कृति और धरोहर को समेटते हुए, प्रत्येक माह अन्य आयोजनो का संचालन करता है, जिसमे व्याख्यान, फिल्म/वृत्तचित्र प्रदर्शन, पुस्तक वार्ता एवं अन्य प्रदर्शन इत्यादि सम्मिलित हैं प्रभाग में भारत पर लगभग 3000 संदर्भ पुस्तको के साथ एक मुक्त पुस्तकालय भी है।

भारत और चीन सरकारों द्वारा वर्ष 2010 की अवधि में चीन में भारत पर्व और भारत मे ंचीन पूर्व के आयोजन हेतु एक संयुक्त विज्ञाप्ति पर हस्ताक्षर बिजिंग मे दिसम्बर 2009 मे किए गए थे। दो पबो मे आयोजन का निर्णय, दोनो सरकार द्वारा महामहिम श्री हू जिताऊ, राष्ट्रपति लोक गणराज्य चीन की भारत यात्रा नवंबर 2006 के समय लिए गए थे। चीन ने अप्रैल से अक्टूबर 2010 की अवधि मे आयोजित होने वाले भारत पर्व के एक हिस्से के रूप में 11 भारतीय प्रदर्शनों समूहों ने संपूर्ण चीन के 40 शहरों में अपने प्रदर्शन किए थे। पर्व मे तीन शहरों मे भारतीय सप्ताह तीन शहरो मे एक व्यापक स्तर पर प्रदर्शनी आदि सम्मिलित थे, बिजिंग अंतर्राष्ट्रीय पुस्तक मेला 2010 मे मानवीय अतिथि देश के रूप मे भारत की भागीदारी आहार पर्व की एक श्रृंखला और भारतीय विषय पर चीनी कलाकार द्वारा एक चित्रकला प्रदर्शनी इत्यादि भी सम्मिलित थे।

ताजे सीईपी, पर हस्ताक्षर चीनी प्रधानमंत्री वेन जियाबाऊ, की भारत यात्रा दिसंबर, 2010 क अवधि मे किए गए थे, जिसमे भारत सांस्कृतिक क्षेत्र के एक समूह मे सहयोग के लिए प्रावधान है। जिसमे प्रदर्शनीय, कलाकारो, अधिकारियों, लेखको अभिलेखाध्क्षों और पुरातत्वविदों, सांस्कृतिक पर्बो के आयोजन, फिल्म महोत्सव तथा जनसंचार माध्यमो, युवा कार्य और, खेल आदि क्षेत्रों के आदान–प्रदान सम्मिलित है।[2]

भौतिक राजनीति–:

दक्षिण एशिया के केन्द्र में स्थित भारत के जम्मू–कश्मीर राज्य मे पाकिस्तान, रूस, (अब ताजिकिस्तान) चीन व अफगानिस्तान की अंतर्राष्ट्रीय सीमाएं मिलने के कारण सामरिक दृष्टि से यह (दक्षिण एशिय) सर्वाधिक संवेदनशील क्षेत्र है। भारत के उत्तर मे हिमालयी राज्य के रूप मे विख्यात नेपाल व भूटान स्थित है जिनमे भूटान तो पूर्णतः दुर्गम पहाड़ी क्षेत्र है किंतु नेपाल के दक्षिणी भाग का तराई क्षेत्र भारत के विशाल मैदान का ही अंश है। 1947 मे भारत से ही पृथक हुई राजनीतिक ईकाइयों के रूप मे पश्चिम में पाकिस्तान व पूर्व में बांग्लादेश स्थित है। भारत व पाकिस्तान दोनो की अधिकांश आबादी विस्तृत मैदानी भागो मे मिलती है जबकि बांग्लादेश तो पूर्णतः नदियों से आच्छादित है। श्रीलंका का अधिकांश क्षेत्र मैदानी है उसके दक्षिण मध्य भाग में कृषि की जाती है। हिमालय की गोद मे स्थित राज्य अधिकांशतः पहाड़ी, दुर्गम, वनाच्छादित व कृषि के लिए अनुपयुक्त हैं जबकि पाकिस्तान का अधिकांश क्षेत्र पहाड़ी व पर्वतीय, दुर्गम व कृषि के लिए अनुपयुक्त तथा अधिकांशतः मरू है किंतु बांग्लादेश का अधिकांश क्षेत्र उपजाऊ हे। इसी तरह 3200 किलोमीटर लंबे व 3000 किलोमीटर चौडे क्षेत्र मे विस्तृत भारत क्षेत्रफल की दृष्टि से विश्व में सांतवा, जनसंख्या की दृष्टि से द्वितीय तथा कृषि की दृष्टि से तृतीय स्थान रखता है। प्राकृतिक, आर्थिक सामाजिक, धार्मिक व सांस्कृतिक दृष्टि से भारत दक्षिण एशिया मे अदृभुत स्थान रखता है।

दक्षिण एशिया का प्रमुख व्यवसाय कृषि है जिसमें लगभग 65 प्रतिशत लोग लगे हुए है। इस क्षेत्र मे प्रकृति ने आधुनिक औद्योगिकीकरण हेतु अपेक्षित कृषि, पशु–प्राप्त व कच्चे पदार्थो के अतिरिक्त लोहा, कोयला, अभ्रक व मैगनीज आदि खनिज–पदार्थो को उपलब्ध तो कराया ही है साथ ही रेल, सडक, नदी मार्ग, समुद्री मार्गो व बंदरगाहो की उपलब्धता एवं सघन जनसंख्या के कारण इसे विश्व के बड़े बाजार का दर्जा दिया है। यह औद्योगिक इकाई संबंद्ध रूप से सभी संसाधनों व यातायात सुविधा की दृष्टि से आत्मनिर्भर है फिर भी विभिन्न राजनैतिक ईकाइयों के पारस्परिक विवाद इस क्षेत्र के विकास मे बाधक बने हुए है। सांस्कृतिक रूप से यह संपूर्ण क्षेत्र सुसंबद्ध है तथा पाकिस्तान, नेपाल, बांग्लादेश व भूटान आदि देशों की मुस्लिम व बौद्ध–ईसाई जनता भारतीय रीति–रिवाज, जीवन–वृत्त व समन्वयवादी दर्शन से काफी हद तक प्रभावित है। भाषा, धर्म व सामाजिक मान्यताओं आदि की दृष्टि से भी दक्षिण एशिया के सभी देशों मे पारस्परिक संबद्धता दिखाई पड़ती है।

दक्षिण एशियाई क्षेत्रीय सहयोग संगठन इस क्षेत्र का प्रमुख आर्थिक सहयोग संगठन है जिसमें इस समय अफगानिस्तान सहित (2006 में सम्मिलित) आठ सदस्य देश है। काठमाडू मे सार्क का सचिवालय स्थित है। साफ्टा के द्वारा सभी क्षेत्रीय राष्ट्र व्यापार को बढ़ावा देकर विकास व समृद्धि हेतु प्रयत्नशील है। इस क्षेत्र को दक्षिण एशिया के अतिरिक्त[3] भारतीय उपमहाद्वीप दक्षिण एशियाई उपमहाद्वीप[4] अथवा भारत–पाक उपमहाद्वीप की संज्ञा दी जाती है।

नृजातीय तत्व, भाषा व धर्म आदि की दृष्टि से संपूर्ण दक्षिण की विविधता भी पर्याप्त जटिल हैं। इस क्षेत्र मे जहां एक ओर 2000 जातीय समूह निवास करते हैं वहीं हिंदी, उर्दू, बंगाली, द्रविण, इंडोआर्यन, इंडोईरानियम, इंडो–यूरोनियम भाषाएं इस क्षेत्र मे बोली जाती है। हिंदुस्तानी (हिंदी, उर्दू) व बंगाली भाषा क्रमशः यहां के 422 मिलियन व 210 मिलियन व्यक्तियों द्वारा बोली जाती है। हिंदू, इस्लाम, बौद्ध यहां के प्रमुख धर्म हैं। इस क्षेत्र के धार्मिक सरंचना का स्वरूप निम्नवत है–

अफगानिस्तान–: मुस्लिम 99 प्रतिशत, अन्य 1 प्रतिशत।

बांग्लादेश –: मुस्लिम 90 प्रतिशत, हिंदू 9 प्रतिशत, ईसाई 0.5 प्रतिशत बौद्ध 0.5 प्रतिशत, आदिवासी 0.
1 प्रतिशत।

भूटान–: बौद्ध 75 प्रतिशत, हिंदू 25 प्रतिशत

भारत –: हिंदू 80.5 प्रतिशत, मुस्लिम 13.4 प्रतिशत, ईसाई 4 प्रतिशत सिक्ख, 1.9 प्रतिशत, बौद्ध 0.
0.8 प्रतिशत, जैन 0.4 प्रतिशत, अन्य 0.6 प्रतिशत।

मालद्वीव –: सुन्नी मुस्लिम 100 प्रतिशत।

नेपाल –: हिंदू 80.6 प्रतिशत, बौद्ध 10.7 प्रतिशत, किरात 3.6 प्रतिशत ।

पाकिस्तान –: मुस्लिम 96.28 प्रतिशत हिंदू 1.85 प्रतिशत, ईसाई 1.59 प्रतिशत, अहमदी 0.22 प्रतिशत।

श्रीलंका–: बौद्ध 70.42 प्रतिशत, हिंदू 10.89 प्रतिशत मुस्लिम 8.79 प्रतिशत, कैथोलिक 7.77 प्रतिशत, अन्य, ईसाई 1.96 प्रतिशत, अन्य 0.13 प्रतिशत।

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के आधार पर दक्षिण एशिया की 70 प्रतिशत

विश्व बैंक की एक रिपोर्ट के आधार पर दक्षिण एशिया की 70 प्रतिशत आबादी गरीब है तथा ग्रामीण क्षेत्रों मे निवास करती है। UNICEF 2008 की रिपोर्ट से यह प्रकाशित हुआ है, कि यहां शिशुमृत्यु दर अधिक है तथा 2.1 मिलियन बच्चे चिकित्सा असुविधा व कुपोषण के परिणामस्वरूप मृत्यु हो जाते है। इस क्षेत्र की लगभग 40 प्रतिशत जनसंख्या अंतर्राष्ट्रीय गरीबी रेखा (1.25 डालर प्रतिदिन) से नीचे हैं। श्रीलंका का जी0डी0पी0 सर्वाधिक तथा नेपाल का न्यून है। भारत यहां की सबसे बड़ी अर्थव्यवस्था है तथा दक्षिण एशिया मे उसका अंश लगभग 82 प्रतिशत है। मात्र भारत की ही आबादी इस क्षेत्र के अन्य देशी से तीन गुनी है तथा यह विश्व का सबसे अधिक जनसंख्या वाला प्रजातंत्रिक देश है।

क्षेत्रीय सुरक्षा आयाम–:

विशाल बाजार की संभावनाएं, विपुल जनसंख्या, महत्वपूर्ण सामरिक–विन्यास तथा विशाल बाजार की संभावनाएं, विपुल जनसंख्या, महत्वपूर्ण सामारिक–विन्यास तथा प्रमुख सामुद्रिक व्यापारिक मार्गो का केन्द्र होने के कारण प्रारंभ से ही यह क्षेत्र बड़ी शक्तियों–विशेषकर ब्रिटेन, अमेरिका व पूर्व सोवियम संघ के आकर्षण का क्षेत्र रहा है। द्विराष्ट्र–सिद्धांत को आधार बनाकर ब्रिटेन ने जहां एक ओर भारतीर विभाजन की अपनी चिरप्रतीक्षित महत्वकांक्षा को साकार करके पाकिस्तान व बांग्लादेश (पूर्व पूवी पाकिस्तान) के निर्माण का पथ प्रशस्त किया वहीं हिंद महासागर में उत्पन्न शक्ति–रिक्तता की पूर्ति हेतु अमेरिका व सोवियत संघ को यहां व्यापक घुसपैठ का सुअवसर प्रदान किया। उधर, भारतीय विभाजन के समय ब्रिटेन द्वारा भारतीय रियासतों के हस्तगत अधिकारो को पुनः रियासतो को सौंप देने से संपूर्ण भारत मे विखंड –प्रक्रिया को भी बढ़ाया मिला। यद्यपि तत्कालीन भारतीय गृह मंत्री सरदार पटेल की दूरदर्शिता व स्पष्ट नीतियों के फलस्वरूप जूनागढ़ व हैदराबाद की समस्याएं तो येनकेन प्रकारेण सुलझा ली गयी किंतु कश्मीर संदर्भ में भारत द्वारा उठाए गए विभिन्न अविवेकपूर्ण कदमो से यह अंतर्राष्ट्रीय समस्या बन गयी। कश्मीर–संकट की आड़ मे पाक के समर्थन मे संयुक्त राष्ट्र संघ व अन्य मंचों पर अमेरिका द्वारा उठाए गए विभिन्न कदमो से दक्षिण एशिया ने केवल शीतयुद्ध के चपेट मे आया अपितु संपूर्ण क्षेत्र तनावग्रस्त हो गया। वस्तुतः तत्कालीन शीतयुद्ध के वातावरण मे पूर्व सोवियत संघ के विस्तार पर अंकुश लगाने तथा इस कार्य को मूर्त रूप देने हेतु क्षेत्रीय मित्रों की तलाश करनें की अमेरिकी जिज्ञासा अथवा विवशता ने उसे दक्षिण एशिया मे व्यापक रूचि लेने हेतु प्रोत्साहित किया।[5] इस अमेरिकी प्रक्रिया के प्रतिक्रियास्वरूप न केवल इस क्षेत्र में सोवियत हस्तक्षेप मे वृद्धि हुई अपितु इस क्षेत्र के सामरिक व आर्थिक जटिलता मे शनैः शनै वृद्धि होने लगी। 'विश्वसनीय मित्रों की तलाश' की अमेरिकी नीति का ही यह परिणाम था। कि अमेरिका ने पाकिस्तान के भू–सामरिक व भू–राजनैतिक अवस्थिति को दृष्टिकोण रखते हुए ही उसे आर्थिक, सैनिक व कूटनीतिक सहायता देकर दक्षिण एशिया मे पूर्व सोवियत–प्रचार पर अंकुश लगाने तथा अपने प्रभुत्व क्षेत्र को स्थाई बनाय रखने हेतु अपने दक्षिण एशियाई नीति का पूरक सहयोगी बनाया। Andrew Roth के शब्दों में–

Pakistan is unquestionably worthy of attention, for it is situated just where the anglo-american and soviet orbits touch in the strategic central asian theatre,[6]

यही कारण है कि अमेरिका ने अपनी एशियाई प्रतिरक्षा नीति मे भारत की तुलना मे पाकिस्तान को महत्वपूर्ण मानने के अतिरिक्त फारस की खाड़ी की प्रमुख शक्ति के रूप मे स्वीकार कर उसे अपनी शक्ति–राजनीति मे विशेष स्थान दिया क्योकि अमेरिका का मत था कि कराची, रावलपिण्डी तथा लाहौर आदि क्षेत्रों में हवाई अड्डो की स्थापना करके पूर्व सोवियत रूस के यूराल क्षेत्र के प्रमुख औद्योगिक प्रतिष्ठानो को आसानी के साथ भेदनीय बनाया जा सकता है। पाकिस्तान की भूस्त्रातेजिक अवस्थिति को दृष्टिगत रखते हुए ने लिखा है, कि मध्यपूर्व की प्रतिरक्षा परिधि के अचंल पर स्थित होने के कारण भारत मध्यपूर्व की रक्षा व्यवस्था मे महत्वहीन है जबकि पाकिस्तान दक्षिणी–पश्चिमी एशियाई समुदाय के मध्य स्थित होने के कारण अत्यन्त ही महत्वपूर्ण है।[7]

फलतः, सोवियत रूस के साम्यवादी आंदोलनो के प्रसार से भयभीत होकर अमेरिकी राष्ट्रपति टूमैन ने व्यापक रूचि लेकर पाकिस्तान को पर्याप्त सहायता देने का संकल्प दोहराया जिसके प्रत्युत्तर मे अक्टूबर 1947 मे पाकिस्तान ने अमेरिकी तेल कंपनियों को बलूचिस्तान व कलात क्षेत्रों मे सुविधाएं प्रदान करके दक्षिणी–पश्चिमी सीमांत प्रांत मे खनिज उत्खनन, पाइप लाइन बिछाने व सिंचाई परियोजनाओं पर पारस्परिक सहयोग विकास–कार्यक्रम प्रारंम्भ किया।

सन् 1950 मे पूर्व सोवियत रूस मे परमाणु बम विस्फोट, चीन मे साम्यवादी सरकार की स्थापना तथा जून 1950 मे कोरियाई युद्ध आंरम्भ हो जाने से अमेरिका की अंतर्राष्ट्रीय छवि को गहरा आघात तो लगा ही साथ ही भारतीय प्रधानमंत्री पं0 नेहरू द्वारा चीन को, संयुक्त राष्ट्रसंघ का सदस्य बनाने की अपील व कोरियाई समस्या के समाधान हेतु अनुकूल अंतर्राष्ट्रीय वातावरण के सृजन हेतु किए जा रहे प्रयासो से अमेरिका व पाकिस्तान के संबंधों मे प्रगाढ़ता उत्पन्न हो गयी। संभवतः यही कारण है कि कोरियाई युद्ध मे पाकिस्तान ने संयुक्त राष्ट्र संघ मे प्रस्तुत प्रत्येक अमेरिकी प्रस्तावों का

प्रबल समर्थन देने के अतिरिक्त अमेरिका व जापान के मध्य संपन्न शांति–संधि को उचित ठहराया। शीतयुद्ध की समाप्ति के उपरांत इस क्षेत्र में प्रारम्भ नाभिकीय स्पर्धा एवं चीन की सामरिक उत्सुकता मे निरंतर हुई वृद्धि के फलस्वरूप जहां एक ओर अमेरिका के साथ उसकी क्षेत्रीय प्रतिद्धंद्विता प्रारंभ हुई वहीं भारत–केन्द्रित उसकी दक्षिण एशियाई रणनीति से यह 21वीं शताब्दी का सबसे अस्थिर व अशांत क्षेत्र बनता जा रहा है।

चीन व दक्षिण एशिया–:

चीन व दक्षिण एशिया के अन्य राष्ट्रों के मध्य सम्बन्धों के विवरण से पूर्व चीन की भारत के प्रति क्यों नीति व विचारधारा है, इसकी व्याख्या बहुत आवश्यक है क्योंकि इनके सम्बन्धों का असर पूरे दक्षिण के सुरक्षा वातावरण पर पड़ता है। यह सर्वाविदत है कि सीमा विवाद ही पड़ौसी देशों मध्य खतरा व आशंका महसूस करने का मूलभूत कारण है।

1– चीन द्वारा एशिया के अन्य देशों के साथ सीमा विवाद सुलझा लिए गये, लेकिन भारत के साथ सीमा विवाद ज्वंलत व अनसुलझा होने के कारण इन छोटे देशों का महत्व नई दिल्ली व बीजिंग की नजर मे बढ़ जाता है।

2– चीन के दक्षिण एशिया के सैन्य शासकों से खास रिश्तों के संदर्भ मे चीन व पाकिस्तान के आपसी सम्बन्धों का अनूठा उदाहरण है। इसमें एक परमाणु सक्षम देश दूसरे परमाणु सक्षम देशों को पूरा सहयोग देकर उसे परमाणु व मिसाइल कार्यक्रमों मे सक्षम व मजबूत बना रहा है। चीन की यह नीति दक्षिण एशिया के अन्य देशों के साथ लागू करने में कुछ ही सफल रही है क्योंकि अन्य किसी देश के साथ कोई औपचारिक सैन्य समझौता नही किया गया।

3– विचारधारा मे मेल या कोई सैन्य समझौता न होने के बावजूद भी चीन ने भारत पर दबाव बनाने के लिए एशिया के अधिकतर राष्ट्रों के साथ मैत्रीपूर्ण रिश्तों को बढ़ावा दिया। 1956 से 1973 के दौरान जब भारत–चीन रिश्तों के मध्य तनाव अधिक था तब चीन के द्वारा दी जाने वाली विश्व के अन्य राष्ट्रों को सहायता राशि का लगभग 20% हिस्सा इन्हीं राष्ट्रों को सहायतार्थ जाता था इसमें 13.1% पाक को, श्रीलंका 3.5% तथा 2.9% नेपाल को दिया गया था।[8]

4– चीन, तिब्बत के प्रति बहुत भावुक हैं, और इसे अपनी कमजोरी मानता है। चीन की दक्षिण एशिया नीति का मुख्य पहलू अपनी सुरक्षा है। विशेषकर, बाहरी ताकतों के दखल का अंदेशा ही चीन का एशिया मे प्रभुत्व स्थापित करने की नीति का मुख्य कारण है।

5– बांग्लादेश जिसका 1971 से पहले कोई अस्तित्व भी नहीं था, तथा जिसकी सीमा भी चीन के साथ नही लगती है वह भी चीन के लिए महत्वपूर्ण बन गया है। इसका कारण है कि चीन बांग्लादेश की मदद से हिन्द महासागर में पहुंचने का रास्ता तलाश रहा है। यही स्थिति म्यामांर की भी है, क्योंकि चीन भारत पर सुरक्षा दबाव डालने हेतु म्यामांर की मदद लेता है।

5– बांग्लादेश जिसका 1971 से पहले कोई अस्तित्व भी नहीं था, तथा जिसकी सीमा भी चीन के साथ नही लगती है वह भी चीन के लिए महत्वपूर्ण बन गया है। इसका कारण है कि चीन बांग्लादेश की मदद से हिन्द महासागर में पहुंचने का रास्ता तलाश रहा है। यहीं स्थिति म्यांमार की भी हैं, क्योंकि चीन भारत पर सुरक्षा दबाव डालने हेतु म्यामांर की मदद लेता है।

चीन 1990 के दशक मे, पाकिस्तान, श्रीलंका, बांग्लादेश व म्यांमार को सैन्य सामग्री की आपूर्ति करने वाला सबसे बड़ा देश बन गया था। क्योंकि वह इन देशों को सुरक्षा हेतु अपने ऊपर निर्भर रखना चाहता था।

इस दृष्टिकोण से समझना चाहिए कि चीन एशिया की एक सबसे शक्तिशाली ताकत के रूप मे उभरना चाहता है, इस नीति का दक्षिण एशिया के सुरक्षा वातावरण पर सीधा असर पड़ता हैं। इस सम्बन्ध मे एक उदाहरण यह भी है कि नवम्बर 1985 में चीन के एक 3000 टन के मिसाइल नाशक जहाज ने इस्लामाबाद व कोलम्बो की 'मित्रता यात्रा'' की मगर पड़ोस के सबसे बडे देश भारत के बन्दरगाहों को नजर अन्दाज कर दिया।[9] यह घटना उस समय हुई जब 1962 के युद्ध की कड़वाहट दूर होकर भारत–चीन रिश्तों मे सुधार आ चुका था। अंततः चीन का दक्षिण एशियाई देशों मे मामूली

दबदबा होने के बावजूद यह अपनी नीतियो मे बदलाव अपने सुरक्षा हितों की रक्षा हेतु ही करता है। उदाहरण के तौर पर चीन जब छोटे पड़ोसी देशो को अपना मोहरा नही बना सका तो उसने उनको यह राय देनी शुरू की कि वह अपनी नीतियां स्वतंत्र रूप से तय करे। इससे चीन का आशय यह था कि उन पर नई दिल्ली का प्रभाव कम से कम रहें। इन राष्ट्रों के समक्ष भी कभी–कभी चीन ने अपने आपको एक नैतिक व राजनैतिक ताकत के रूप मे भी पेश किया जिससे वह भारत के प्रभाव व प्रलोभनों से बच सकें तथा दक्षिण एशियाई देश चीन की नीतियों के अनुसार चल सकें। मगर 1980 के बाद भारत–चीन के रिश्तों मे सुधार के बाद चीन ने अपनी नीतियों में भारत के साथ अपने सम्बन्ध सुधारने के विषय मे रूचि ली।[10]

चीन की दक्षिण एशिया के प्रति नीतियों मे एक आधारभूत बदलाव के अन्तर्गत चीन ने आर्थिक व्यापार पर ध्यान केन्द्रित किया तथा दक्षिण एशिया की स्थानीय समस्याओं के प्रति तटस्थ रूख अपना लिया। दक्षिण एशियाई सम्बन्धी नीतियों के अलावा बीजिंग, तिब्बत व जिनजेंग इलाको के कब्जे की समस्याओं से भी जूझ रहा था। दोनों ही इलाको के चीन के दक्षिण एशियाई पड़ोसी देशों के साथ बहुत करीबी सम्बन्ध बने थे। तिब्बत व जिनजेंग के विलय के साथ ही चीन को विरासत मे विवादित व गैर अकित सीमाए में मिली, जो कि बाद में समस्याओं का मुख्य कारण बनी, इससे चीन द्वारा तिब्बत अधिग्रहण के कारण दक्षिण एशियाई देशों की समस्यायें उत्पन्न हो गई है। जिससे चीन को मुख्यता हिमालय के देश नेपाल, भूटान व सिक्किम के जबरदस्त विरोधस का सामना करना पड़ा। इन देशों के तिब्बत के साथ आर्थिक, सामाजिक व सांस्कृतिक रिश्ते थे, इस समस्या के साथ–साथ चीन को तिब्बत मे बढ़ते हुए विवाद का भी सामना करना पड़ा। चीन की इन सब सुरक्षा की मजबूरियों के कारण चीन को दक्षिण एशियाई देशो की ओर दोस्ती का हाथ बढ़ाना पड़ा।

फलस्वरूप चीन की आरम्भिक दक्षिण एशियाई नीति, भारत के साथ सिर्फ दिखावा मात्रा थी। कोरिया युद्ध मे फंसे होने के कारण यही नीति चीन के हक मे थी। मगर भारत–चीन के 1950 के दशक के दोस्ताना सम्बन्ध, आपस में गहरे अविश्वास के कारण खराब होने ही थे। इसके बाद चीन ने भारत के छोटे पडोसी देशो के साथ सम्बन्ध बढाये तथा उनको उकसाया जिससे कि भारत दक्षिण एशिया की समस्याओं मे ही उलझा रहे। 1990 के आरम्भ मे चीन एशिया की एक बड़ी शक्ति के रूप मे उभरा तब बीजिंग अपनी प्रभुसत्ता व राजनीतिक पहचान के विषय मे निश्चिंत हो गया तथा दक्षिण एशिया के साथ स्थिर रिश्ते बनाने आरम्भ किये। इस बार दक्षिण एशिया मे हर देश से अलग–अलग तौर पर रिश्ते बनाये। इस सच्चाई को देखते हुए कि पश्चिमी ताकतों के दक्षिण एशियाई देशों से अच्छे सम्बन्ध व दबाव भी है, चीन की यह धारणा बन गई कि यह पश्चिमी ताकते दक्षिण एशियाई देशों की मदद से चीन के साम्यवादी आन्दोलन को विफल करने का प्रयास करेगीं। इस माहौल के कारण चीन ने कोशिश की, कि उसके दक्षिण एशियाई पड़ोसी चीन विरोधी बाहरी ताकतो के दबाव मे न आये। उस समय पाकिस्तान, पश्चिमी सैन्य गठजोड़ से सीटो–सैन्टो से जुड़ गया व भारत कामनवैल्थ व उदारवादी गणतंत्र संस्थानों से जुड़ गया था। 1950 के दशक के अन्त मे दलाई लामा भारत आ गये, इन्ही सब कारणों से चीन बहुत आशांकित हो गया। उपरोक्त कारण भी भारत–चीन के मध्य हुये 1962 के युद्ध का कारण बने। इसके बाद दोनों देशों के राजनयिक स्तर के सम्बन्ध एक दशक तक समाप्त हो गये। चीन ने उस समय अपनी नीति के अन्तर्गत भारत के छोटे पड़ोसी देशों को एक ढाल के रूप मे प्रयोग किया।

दक्षिण एशिया के विषय मे चीन की जो सुरक्षा केन्द्रित नीति थी उसका मुख्य कारण चीन के शासको की कठोर नीतियां थी। जिसका उनकी आजादी के बाद भी दक्षिण एशिया की नीति तय करने पर बहुत प्रभाव रहा। इस सम्बन्ध में निम्नलिखित दृष्टिकोण विचारणीय है–

1– दक्षिण एशिया मे अधिकतर देश वह थे, जिन्हें हाल ही मे अंग्रेजों से आजादी मिली थी, जैसे कि भारत, पाकिस्तान व श्रीलंका,। ये देश अभी अंग्रेजों द्वारा स्थापित संस्थागत ढांचे व नीतियों पर ही चल रहे थे। मार्क्सवादी दृष्टिकोण के अन्तर्गत चीन ने इन देशों मे भी साम्यवादी आन्दोलन आरम्भ किये

जिससे कि इनको भी साम्यवादी देश बनाया जा सके। यह भी एक कारण था जिसकी वजह से चीन व दक्षिण एशियाई देशों मे गलतफहमी पैदा हुई तथा दूरियां बढ़ी।

2– 1950 मे तिब्बत की आजादी के बाद चीन मे उसका विलय पूरी तरह नही हो सका था, इसलिये तिब्बत की सुरक्षा बढ़ाने के लिये चीन ने हिमालय क्षेत्र के सभी मंगोलवादी समाज को भी आजाद करने का विचार बनाया तथा कम्युनिस्ट पार्टी के कुछ नेताओं ने यह भी विचार रखें कि बीजिंग के शासन मे इनकी एक 'हिमालय संघ'' बना दी जाये।[11] इस सम्बन्ध मे 1930 में माओ के उस ब्यान की याद ताजा हो गई, जब उन्होने कहा था कि नेपाल, लद्दाख, भूटान, सिक्किम तथा भारत का नेफा क्षेत्र, यह तिब्बत की पांच उंगलिया है, तथा तिब्बत स्वयं चीन की हथेली है। इस दुष्प्रचार से प्रभावित होकर दक्षिण एशिया के छोटे देशों ने 1940 व 1950 के दौरान भारत के साथ आपसी सुरक्षा की संधिया कर ली थी।

3– 1950 के दशक के अन्त मे अमेरिकी राय के अनुसार पाकिस्तान ने भारत के साथ ''उत्तर से खतरे'' को भापंते हुए एक संयुक्त सुरक्षा का प्रस्ताव रखा। यह खतरा चीन से ही था क्योंकि चीन इस समय अपनी दक्षिणी एशिया, नीति पर कवायद कर रहा था, यह सब 1950 के दशक के मध्य मे दक्षिण एशिया मे सामरिक चर्चा का विषय बना हुआ था।[12] लेकिन इन दोनो देशों के तिब्बत व जिनजेंग के साथ एकीकृत के रिश्ते थे, इस प्रकार जिनजेंग मे असुरक्षा के कारण चीन को पाकिस्तान के साथ सम्बन्ध बनाने पडे। बाद मे भारतीय दबाव के कारण चीन ने हमेशा के लिए पाक से दोस्ती के सम्बन्ध बना लिये। 1971 मे भारत–पाक युद्ध के पश्चात् बांग्लादेश अस्तित्व में आया।

बंग्लादेश के निर्माण मे भारत का बहुत सहयोग था अतः बंग्लादेश व भारत मे सहयोग नीति स्थापित की गई। इस घटना के पश्चात् चीन ने पाकिस्तान के साथ 'खास रिश्तों' को और मजबूत किया, इस प्रकार चीन 1980 व 1990 के दशको मे दक्षिण–एशिया के मामलो मे एक महत्वपूर्ण कड़ी बन गया।

उपरोक्त दर्शाये गये घटनाक्रम के अलावा चीन का दक्षिण एशिया के वातावरण पर क्या प्रभाव रहा? इस विषय पर दक्षिण एशियाई देशो का विविध राजनैतिक व सामरिक इतिहास उनके आकार व स्थान के साथ उनकी क्षमता व ताकत अलग–अलग होने के कारण बहुत सारे विषय उत्पन्न हो जाते है जिन पर एक साथ विचार नही किया जा सकता है। इसलिये इन देशों का चीन के साथ किस प्रकार से सुरक्षा प्रबन्ध है। इससे चीन का पूरे दक्षिण एशिया के सुरक्षा वातावरण पर क्या असर है? इसका क्रमबद्ध तरीके से विश्लेषण अग्रांकित है–

चीन की भारत केन्द्रित दक्षिण एशियाई नीति–:

पाकिस्तान की स्थापना होने के बाद कई मायनो मे चीन का सुरक्षा केन्द्रित रूख दक्षिण एशिया के विषय मे भारत पर केन्द्रित हो गया। आगे भी चीन, दक्षिण एशिया सम्बन्धी कोई भी नीति तय करने से पूर्व यह सोचता रहा कि भारत पर इसका क्या प्रभाव होगा। आरम्भ से ही चीन दक्षिण एशिया के अन्य छोटे राष्ट्रों मे अधिक रूचि लेता था। जब भारत के साथ उसके थोड़े समय के मधुर सम्बन्ध समाप्त होते हुए नजर आने लगे तो उसके दक्षिण एशिया में अपना प्रभाव बढ़ाने के लिये अन्य छोटे राष्ट्रों के साथ इस प्रकार से सम्बन्ध स्थापित किये कि जिससे भारत पर दबाव बनाये रखा जा सके। ऐसा इसलिये किया जा रहा था क्योंकि चाऊ एन लाई साम्यवाद के कट्टर अनुयायी थे, और नेहरू जी पर उन्होने कभी भी विश्वास नही किया। चाऊ एन लाई का विश्वास था कि नेहरू ''पश्चिमी ताकतो के पिट्ठू है अतएव उनसे दोस्ती नही रखी जा सकेगी मगर 1950 मे जब कोरिया युद्ध के समय नेहरू ने चीन को सहयोग दिया, तो उसका प्रतिफल यह निकला कि चीन ने बाडुंग सम्मेलन मे भाग लिया तथा उसके साथ ही भारत केन्द्रित व दक्षिण एशिया की सुरक्षा केन्द्रित एक दूसरा अध्याय प्रारम्भ हो गया। चीन ने फिर भारत के पड़ोसी देशों पर भी अपना ध्यान केन्द्रित करना प्रारम्भ कर दिया। बाडुंग सम्मेलन के पश्चात् प्रधानमंत्री चाऊ एन लाई ने दक्षिण एशियाई देशों का दौरा किया। वे म्यामांर, नेपाल व पाकिस्तान भी गये थे। यद्यपि पाकिस्तान उस समय ''अमेरिका का प्रमुख सहयोगी'' माना जाता था। उनके इस दौर का उद्देश्य चीन के प्रति एक अच्छा रूख बनाना था।[13]

चीन तिब्बत पर अपनी प्रभुसत्ता से सन्तुष्ट था, हालांकि चीन ने इसके बदले मे नई दिल्ली के नेपाल, भूटान व सिक्किम के साथ 'खास रिश्तों' को स्वीकार कर लिया[14] इसके अतिरिक्त एक अन्य कारण बीजिंग के 'एक चीन' अभियान के लिये सहयोग प्राप्त करना जिसका अधिकतर पश्चिमी देश विरोध कर रहे थे। इसका नतीजा यह था कि चीन ने दक्षिण एशिया की नीति मे बदलाव लाने पर विचार किया जिससे कुछ समय के लिए नई दिल्ली व बीजिंग के बीच हिन्दी–चीनी भाई–भाई का वातावरण भी बना। इस समय चीन का ध्यान दक्षिण एशियाई देशो से हट गया था। लेकिन 1962 मे भारत–चीन युद्ध के पश्चात् चीन ने दक्षिण एशिया के छोटे–छोटे देशो से सम्बन्ध बनाने आरम्भ कर दिये जो कि चीन की भारत केन्द्रित नीति के अगले चरण का आरम्भ था। चीन की भारत केन्द्रित दक्षिण एशिया के तीसरे चरण की नीति के अन्तर्गत बीजिंग ने 1960 के दशक मे पाकिस्तान नेपाल व म्यामांर (बर्मा) के साथ अपने सीमा विवाद बहुत उदारता के साथ सुलझा लिये व भूटान के साथ सीमा विवाद हेतु अलग तौर से वार्ता करने पर जोर दिया, जबकि सीमा विवाद के कारण भारत–चीन युद्ध हुआ। चीन ने इन अन्य दक्षिण एशियाई देशों की खुले रूप से मदद की तथा आर्थिक व्यापार भी बहुत आसान शर्तो पर शुरू कर दिया। यह सांस्कृतिक क्रांति का समय था। जिसके दौरान चीन ने उच्च स्वर में भारत विरोधी प्रचार किया, जिसके अन्तर्गत उसने कश्मीर मे आजादी की लड़ाई को उचित ठहराया तथा कश्मीर समस्या पर खुले तौर पर पाकिस्तान का समर्थन किया। इस विचार धारा के अन्तर्गत 1970 के दशक के आरम्भ मे चीन ने दक्षिण एशिया के छोटे देशों मे कई छोटी योजनाओं को पूरा किया।

मगर इस दौरान चीन की जो सबसे बड़ी उपलब्धि थी, वह थी पाकिस्तान के साथ 'खास रिश्ता' जो कि अपने आप मे अलग ही था, यह सम्बन्ध चीन के लिये दक्षिण एशिया की इस नीति का सबसे बड़ा व महत्वपूर्ण कार्य माना गया जो कि आगे भी बना रहा।[15] चीन की भारत केन्द्रित नीति का चौथा चरण तब आरम्भ हुआ जब डेंग जियाओ पिंग सत्ता मे आये। इस युग मे यथार्थवाद व राष्ट्रीय हित को ही सर्वोपरि माना गया तथा पुरानी नीतियों का अन्त हो गया, डेंग के शासन काल मे भारत –चीन–रिश्तों मे आश्चर्यजनक सुधार आया हालांकि यह कार्य 1970 के आरम्भ से ही शुरू हो गया था। बीजिंग व नई दिल्ली मे आपसी विश्वास बढ़ने रहने के कारण चीन ने 1970 के दशक के अन्त से दक्षिण एशिया के छोटे देशों से धीरे–धीरे दूरी बढ़ानी आरम्भ कर दी। यह सोचते हुए कि इस दूरी का इन देशों पर बुरा प्रभाव न पड़े चीन ने यह कार्य यदा कदा किया साथ ही साथ चीन इन देशों को यह भी भरोसा दिलाता रहा कि वह उनकी पूरी तरह उपेक्षा नही कर रहा है। इस प्रकार चीन धीरे–धीरे एक व्यापारी की तरह आर्थिक व्यापार पर ज्यादा जोर देने लगा तथा भारत केन्द्रित व सुरक्षा केन्द्रित नीतियों मे कमी कर दी। इस प्रकार चीन ने दक्षिण एशिया की स्थानीय समस्याओं व आपसी गठजोड़ पर तटस्थ रूख अपना लिया।

लेकिन वर्तमान समय में हथियारों के आपसी व्यापार और प्रतिस्पर्धा की वजह से भारतीय सेनाओं के समक्ष चुनौतियां काफी बढ़ रही है। और उसी हिसाब से उनकी जरूरते भी। ऐसे मे ज्यादा सजग होने की आवश्यकता है। इस सजगता की आवश्यकता तब तक बनी रहेगी जब तक दक्षिण एशिया में भारत के प्रमुख प्रतिद्वंद्वी पडोसी देशों चीन व पाकिस्तान द्वारा हथियारों की प्रतिस्पर्धा समाप्त नही होती अथवा इन देशों के साथ भारत के संबंध मधुर नही बनते। चीन भारत को अपना प्रमुख प्रतिस्पर्धा मानता है। इसीलिए पाकिस्तान, बांग्लादेश, म्यांमार तथा श्रीलंका मे अपने सैनिक अड्डे स्थापित कर भारत की घेराबंदी करने मे लगा है। पाक अधिकृत कश्मीर के गिलगित व बाल्टिस्तान क्षेत्र पर चीन ने अपना प्रभाव बढ़ा लिया है। चीन इन क्षेत्रों तक अपने देश को रेल व सड़क मार्गो से जोड़ रहा है। इससे चीन वहां तक 48 घंटे मे सैन्य सामग्री पहुंचने मे सक्षम होगा।

चीन की सैन्य तैयारी–:

चीन ने सीमा से लगे लिपुलेख व कराकोरम जैसे सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण स्थानों तक सड़के, तिब्बत के ल्हासा तक रेलमार्ग व लगभग 18 हवाई अड्डे एक सोची–समझी रणनीति के तहत विकसित किए है। चीन ने अरूणाचल प्रदेश से लेकर लद्दाख, हिमाचल प्रदेश व उत्तराखंड से सटी

अंतर्राष्ट्रीय सीमा तक अपनी सैन्य तैयारी बढ़ा दी है। इन सबकी मदद से चीन कभी भी सीमा पर मात्र दो–तीन घंटे मे अपनी चार लाख से ज्यादा सेना अर्थात् 30 डिविजन उतार सकता है। उसकी वायु सेना जे–6, जे–7, एवं जे0एफ0–17 जैसे आधुनिक विमानों से लैस है। इसके अलावा उसके पास नवीनतम मिसाइले भी हैं। अतः सीमा पर निगरानी बढ़ाना भारत की सामरिक जरूरत है।

रेल नेटवर्क का विकास–:

चीन ने भारत के विरूद्ध अपना सामरिक शिकंजा काफी पहले से ही कसना शुरू कर दिया था। अब वह अपना रेल नेटवर्क सिक्किम तक पहुंचाना चाहता है। इसके लिए उसने एक योजना तैयार की है। इस रेल योजना के तहत चीन सिक्किम के नजदीक चुंबा घाटी तक अपना रेल नेटवर्क बढ़ाने को तैयार है। चीन के रेल मंत्रालय के रेलवे नेटवर्क प्लान के नक्शे मे इस योजना का जिक्र है। ताजा रेल नक्शे मे ल्हासा से जम्मू तक नेपाल की सीमा से सटे इलाके मे रेल नेटवर्क बढ़ाया जाना है जो बाद में नेपाल की राजधानी काठमांडू तक जाएगा। योजना के मुतबिक जम्मू तक जाने वाली लाइन से शिगत्से नाम की जगह पर ही एक अन्य रेल लाइन जोड़ी जाएगी जो पूर्व मे यादोंग तक जाएगी। यह चुंबा घाटी के पास है। यादोंग सिकिक्म से नाथूला दर्रे से जुड़ा हुआ है और भारत, चीन, व भूटान की सीमा से सटा हुआ है। यह कस्बा सामरिक तौर पर काफी महत्वपूर्ण है।

चीन अब तेजी से अपनी रेल लाइनों को नेपाल की सीमा तक ले जा रहा है। और इन कार्यो के लिए नेपाल सरकार की स्वीकृति भी मिल गई है। नेपाल तक रेल लाइन बिछाने का सीधा असर भारत की सुरक्षा पर पडेगा और किसी भी घटना के घटित होने पर चीनी सेना को नेपाल की तराई मे भारत की सीमा तक पहुंचने मे कोई परेशानी नही होगी।

सड़को का विस्तार–:

भारत के अरूणाचल प्रदेश से सटी सीमा के नजदीक चीन ने सामरिक रूप से महत्वपूर्ण राजमार्गो को अपने सैन्य ठिकानो से जोड़ दिया है। भारत–चीन सीमा स्थित वास्तवित नियंत्रण रेखा पर मौजूद इन राजमार्गो को छोटी–छोटी सड़को द्वारा सीधे चीन से सैनिक ठिकानो से जोड़ा जाना भारत के लिए चिंता का विषय भारत से लगती सीमा पर चीन ने दो लेन का राजमार्ग बनाया है। जिसे अन्य छोटी–छोटी सड़को से जोड़ा गया है। भारतीय रक्षा मंत्रालय की ताजा रिपोर्ट के मुताबिक चीन ने पश्चिमी चीन ने पश्चिमी सेक्टर मे 8, पूर्वी सेक्टर मे 37 तथा केन्द्रीय सेक्टर में 4 ऐसी सड़को का निर्माण किया है। जो अरूणाचल प्रदेश में भारतीय सीमा तक पहुंचती है।

24 मार्च, 2011 के संसद मे पेश की गई रक्षा मामलों की संसदीय समिति की रिपोर्ट मे इन बातों की पुष्टि की गई और कहा गया कि भारत से सटी सीमा के नजदीक सड़के बिछा देने से चीनी फौजें बेहद कम समय में भारत मे दाखिल हो सकती है। समिति ने चीन से लगती सीमा पर जारी निर्माण कार्यो से देश की सुरक्षा को गंभीर चुनौती बताते हुए रक्षा मंत्रालय को कड़ी फटकार लगाई और और इस तरफ ध्यान देने को कहा है। इसके अलावा चीन दक्षिण इलाके मे बसे यूनान प्रांत मे कुनमिंग से भारत–म्यांमार सीमा पर पांगसाउ दर्रे के जरिए असम को जोड़ने वाले 1739 किमी0 लंबे स्टीलवेल रोड को विकसित करने में दिलचस्पी ले रहा है।

पाक अधिकृत कश्मीर मे चीनी सेना–:

अप्रैल, 2011 की शुरूआत मे भारत की उत्तरी कमान के मुखिया लेफ्टिनेंट जनरल के0टी0 पटनायक ने जम्मू के एक सेमिनार मे बोलते हुए कहा कि पाक अधिकृत कश्मीर के गिलगित व बाल्टिस्तान क्षेत्र मे चीनी सैनिको की संख्या लगातार बढ़ रही है और इन क्षेत्रों में ढांचागत निर्माण परियोजनाओं चीन की बढ़ती भागेदारी भारतीय सुरक्षा हितों को प्रभावित करेगी।

विदित हो कि गिलगित व बाल्टिस्तान क्षेत्र मे चीनी सेना के लगभग 10000 सैनिक तैनात है। ये सैनिक इन इलाको मे बडे पैमाने पर सड़के, पुल व पन बिजली परियोजनाओं के निर्माण कार्य मे लगे है। वे पाक सेना के साथ सैनिक आधारभूत ढांचे को चुस्त–दुरूस्त करते हुए कराकोरम दर्रे से पाकिस्तान को चीन से जोड़ते हेतु कराकोरम नेशनल हाईवे को तैयार कर रहे है। इसके अलावा चीन जिनजियांग प्रांत के शहर 'खासघर' से पाकिस्तान के ग्वादर बंदरगाह तक रेलवे लाइन बिछा रहा है।

यह बंदरगाह भी चीन द्वारा विकसित किया गया है। अरब सागर स्थित इस बंदरगाह को चीन अपनी सेना का बेस बना रहा है।

विशाल सैन्य ताकत–:

चीन की सैन्य ताकत पर नजर डाली जाए तो इस समय उसके पास सक्रिय सेना 34,40,000 आरक्षित सेना 12,00,000 वायु सेना 4,00000 एवं नौ सेना 2,55,000 है। इसी तरह अत्याधुनिक हथियारों व मिसाइलो के बारे मे चीन काफी आगे है। उसके पास मजबूत बैलिस्टिक प्रक्षेपास्त क्षमता है जिसे बीते दो दशको में विकसित किया गया है। स्वदेशी तकनीक के विकास मे चीन सभी देशो के पीछे छोड़ रहा है। उसका नवीनतम एयरक्राफ्ट कैरियर वारयाग समुद्री परीक्षणों के लिए तैयार है।

चीन ने समुद्र मे तेजी से गश्त लगाने मे माहिर और राडार से बच निकलने की आधुनिक क्षमताओं से संपन्न पांचवीं पीढ़ी के स्टील्थ विमान जे–20 के टेक ऑफ व लैंडिग का अप्रैल 2011 के दूसरें पखवाड़े मे सफल परीक्षण किया। इससे पहले जनवरी 2011 मे स्टील्थ फाइटर प्लेन ने सफल परीक्षण उड़ान भरी थी। इस सफलताओं के साथ चीन अब अमेरिका व रूस के विशिष्ट क्लब मे शामिल हो गया हैं। रूस को पहले से दूसरे परीक्षण मे एक साल का समय लगा था जबकि चीन ने यह कारनामा चार माह मे कर दिखाया है। इससे यह स्पष्ट होता है कि उसने स्टील्थ फाइटर प्लेट के उत्पादन की प्रक्रिया तेज कर दी है।

बढ़ता रक्षा बजट–:

शायद इसीलिए चीन अपना रक्षा बजट लगातार बढ़ा रहा है। चीन का वर्ष 2012 का रक्षा बजट 601 अरब युआन (91.5 अरब डॉलर) की निर्धारित था। यह पहले की तुलना 12.7 प्रतिशत बढ़ाया गया था। चीन ने पिछले साल लगभग 77 अरब डॉलर रक्षा पर खर्च किए थे उल्लेखनीय है कि चीन की सेना अंतरिक्ष मिसाइलों, विमान वाहन और परमाणु पनडुब्बी की नई रेंज जैसे नवीनतम हथियारों के विकास पर काम कर रहा है। चीन का यह तथ्य सर्वाविदित है कि वह अपने ज्यादा–से–ज्यादा हथियार खुद बनाता है मार्च 2011 की शुरूआत मे रक्षा बजट बढाने की घोषणा के बाद चीन की संसद के वार्षिक सत्र के प्रवक्ता ली झाओजिंग ने कहा था कि रक्षा साजो–सामान को उन्नत और आधुनिक बनाने, सैन्य प्रशिक्षण, मानव संसाधन विकास और सैनिको के जीवन–स्तर मे सुधार के लिए रक्षा बजट बढाया जा रहा है।

पाकिस्तान की बढ़ती ताकत–:

पाकिस्तान को इस मामले मे कम आंकना भारी भूल होगी। उसने अमेरिका के साथ–साथ चीन से हथियार लेकर अपनी ताकत इतनी ज्यादा बढ़ा ली है कि वह वायु सैन्य संतुलन मे भारत के बराबर आ गया है जबकि एक समय ऐसा था कि भारत पाकिस्तान पर दोगुना भारी था। आज भारत सवा गुना ही भारी होगा। पाकिस्तान चीन से जिया श्रेणी के लड़ाकू विमान पहले ही खरीद चुका है। वर्ष 2009 मे उसने चीन से आठ जे0एफ–17 थंडर लड़ाकू विमान खरीदे। पाकिस्तान ने चीन की सहायता से 42 जे0एफ0 –17 थंडर लड़ाकू विमान बनाने का समझौता मार्च 2009 मे किया था। थंडर लडाकू विमानो की इस परियोजना पर पाकिस्तान 30 अरब रूपए खर्च कर रहा है। पाकिस्तानी वायु सेना की योजना आगामी पांच सालो मे 250 जे0एफ0–17 थंडर लडाकू विमान हासिल करने की है।

पाकिस्तान चीन से जे–10 श्रेणी के 36 लडाकू विमान खरीद रहा है। इसके लिए दोनो देशों के बीच 1.4 अरब डॉलर का अनुबंध नवंबर 2009 मे हुआ था। इस अनुबंध के तहत चीन 36 विमानो की आपूर्ति करेगा। ये विमान अमेरिकी एफ–16 विमानो के समकक्ष बताए जाते है। उल्लेखनीय है कि चीन पिछले दशक से पाकिस्तान को लड़ाकू विमानो की आपूर्ति कर रहा है। चीन अपनी उन्नत तकनीक को पाकिस्तान के साथ साझा करके विश्व को यह संदेश दे रहा है कि चीन अपनी तथा पाकिस्तान की रक्षा क्षमता मे बहुत तेजी से वृद्धि कर रहा है। पाकिस्तानी वायु सेना वर्तमान मे चीन निर्मित जे0एफ0–17 के अलावा कारकोम आठ (के–8) प्रशिक्षु विमानो के साथ ही एफ–7, 7–पीजी व ए–5 लड़ाकू विमानों का इस्तेमाल कर रही है।[16]

पाकिस्तान ने हवाई खतरों का सामना करने मे सक्षम अवाक्स तकनीक से लैस पहला विमान स्वीडन से लेकर दिसंबर, 2009 मे वायु सेना के बेड़े मे शामिल किया। यह विमान ने सिर्फ हवाई खतरो की पूर्व चेतावनी देने मे सक्षम है बल्कि बड़ी कुशलता से दुश्मन को मुहतोड़ जवाब दे सकता है साब –2000 एरी' नामक ये अवाक्स (एयरबोर्स अर्ली वानिंग एंड कंट्रोल एयरक्राफ्ट) विमान 300 से 350 किमी0 के दायरे मे किसी भी संभावित खतरे की पहचान कर करते हैं। इनमे डॉलर तकनीक पर आधरित राडार लगे है। जिनकी मदद से पाकिस्तानी वायु सेना अपनी सीमा मे प्रवेश करने वाले सभी तरह के विमानो का पता लगा सकती हैं। ये राडार विमानो की ऊंचाई, हथियार प्रणाली तथा उनका वायु पथ भी बता देगे। यह अन्य प्रणालियां व हमला होने की दशा मे पूर्व सूचना देने मे सक्षम है। पाकिस्तान स्वीडन से ऐसे तीन अवाक्स विमान और खरीद रहा है।

अमेरिकी मदद–:

अमेरिकी अखबार वाल स्ट्रीट जनरल ने मार्च 2010 के प्रारंभ मे यह तथ्य उजागर किया था, कि ओबामा प्रशासन आंतकवाद के खिलाफ सहयोग के नाम पर पाकिस्तान को जल्द ही लेजर गाइडेड बम किट, अमेरिका निर्मित 12 टोही विमान और 18 उन्नत किस्म के एफ–16 लड़ाकू विमान दे रहा है। इसके अलावा अमेरिका से पाकिस्तान को ऐसे औजार भी मिलेगे जो एक पारंपरिक बमो को स्मार्ट बमों में बदल देगे। पाक को 500 पाउंड के पारंपरिक बमों को स्मार्ट बमो मे बदलने वाली 700 किट मिलेंगीं। इसके अलावा दो हजार पाउंड के बमो को स्मार्ट बमों मे बदलने वाली 300 किट प्राप्त होगी। ये बम लक्ष्यों पर सटीक निशाने के लिए जाने जाते हैं।

नवीनतम श्रेणी के 18 एफ–16 लड़ाकू विमानो के मिलने से पाक वायु सेना की मारक क्षमता मे जबर्दस्त इजाफा होगा। इनमे से चार आधुनिक एफ–16 लड़ाकू विमान जून 2010 मे प्राप्त हों चुके है जिन्हे शाहबाज एयरबेस पर तैंनात कर दिया गया है। पाकिस्तान के पास एफ–16 श्रेणी के 45 विमान पहले से है। ये विमान प्रत्येक प्रकार के मौसम मे आसमान ऐ युद्धक सामग्री को सटीक व निर्दिष्ट स्थान पर गिरने मे सक्षम है। इन लडाकू विमानो मे गतिमान लक्ष्यों पर सटीक हमला करने की क्षमता है। अत्याधुनिक एफ–16 लडाकू विमानो मे ऐसी आधुनिक प्रणलियां लगी हुई है जो जमीन पर गतिमान लक्ष्य के सभी आंकडे लेकर उसे लक्ष्य बनाने वाले हथियार को हमले के दौरान नए निर्देश आंकडे लेकर उसे लक्ष्य बनाने वाले हथियार को हमले के दौरान नए निर्देश प्रदान करती हैं। ये विमान अपनी भूमिका मे बदलाव करके उसे उप–परंपरागत से परंपरागत युद्ध मे बदल सकते हैं। यहां तक कि हवा में उड़ान भरने के दौरान भी ऐसा करना संभव है। इनके अलावा अमेरिका पाकिस्तान को अत्याधुनिक हेलीकॉप्टर, नाइटविजन चश्में व अन्य साजों–सम्मान देने की घोषणा कर चुकी है। अमेरिकी वित्तीय वर्ष 2010 में 70 करोड़ अमेरिकी डॉलर व सन् 2012 में 1.2 अरब डॉलर की सैन्य मदद दिया था।

नौ सेना की ताकत–:

अपनी नौ सेना की ताकत बढ़ाने के लिए पाकिस्तान ने अमेरिका से 6.5 करोड़ डॉलर मैक्लनेरली युद्धपोत खरीदा है जिसमें पनडुब्बी को नष्ट करने की क्षमता उसने चीन से भी एफ–22 श्रेणी के चार युद्धपोत खरीदे हैं। इसके अलावा वह छः अत्याधुनिक परिवहन विमान सी–130 ई, समुद्री निगरानी के लिए पी–3 सी ओरायन विमान व एंटीशिप हारपून मिसाइलों तथा थल सेना को ताकतवर बनाने के लिए सेल्फ प्रोपेल्ड होवित्जर तोपें व एंटी टैंक मिसाइलों की खरीद अमेरिकी से कर रहा है। चीन के सहयोग से सन् 1960 में पाकिस्तान के इस्लामाबाद मे उड्डयन संयंत्र विकसित किया गया था, जहां अब टैंको, बख्तरबंद वाहनों एवं लड़ाकू विमानो की मरम्मत की जाती है। चीन पाकिस्तान को छः अत्याधुनिक पनडुब्बियां दे रही है जिनमें ए आई पी उपकरण लगा है। यह उपकरण पनडुब्बियों को बहुत समय तक पानी मे डूबे रहने मे सहायता देता है। गौारतलब है कि ताकत भारत के पास नही है।

परमाणु ताकत–:

चीन पाकिस्तान को भारत के खिलाफ एक मोहरे की तरह इस्तेमाल कर रहा है। इसीलिए पाकिस्तानी सेना के लड़ाकू विमानों, प्रक्षेपास्त्रों व टैकों के अलावा परमाणु बम भी चीन के सहयोग से

तैयार हो रहे हैं। पाकिस्तान के पहले परमाणु रिएक्टर का खुशाब मे संचालन सन् 1998 मे, दूसरे का सन् 2002 में एवं तीसरे का सन् 2006 मे शुरू किया गया था। फरवरी 2011 मे इंस्टीट्यूट फॉर साइंस एंड इंटरनेशनल सिक्यूरिटी ने जानकारी दी थी कि उसके द्वारा उपग्रह से ली गई तस्वीरों से पता चलता है कि चौथे रिएक्टर का निर्माण खुशाब में चालू हो गया है। डेविड अलब्राइट व पाल ब्रनान ने अपनी रिपोर्ट मे बताया कि इस नए रिएक्टर का निर्माण दूसरे व तीसरे रिएक्टर से सैकड़ों मीटर दूर दक्षिण मे चल रहा है। इससे एक माह पहले यह खबर आई थी कि पाकिस्तान के पास 100–110 परमाणु हथियार है और वह भारत व ब्रिटेन को पीछे कर रहा है।

चीन–पाक संबंध तथा भारत की प्रतिक्रिया–:

चीन के साथ सैन्य रिश्तों पर अभी सुधार की गुंजाइश नजर नहीं आ रही है। जुलाई, 2010 मे उत्तरी कमान के तत्कालीन मुखिया लेफ्टिनेंट जनरल बी0एस0 जसवाल को जम्मू कश्मीर में तैनाती के कारण वीजा दिए जाने से इनकार के बाद सैन्य आदान–प्रदान पर रोक लगा दी गई थी। तब से सैन्य प्रतिनिधि मंडलों की आवाजाही बंद है। सैन्य रिश्तों में आई खटास के कारण ही दोनो देशो के बीच दो साल मे हुए एयर अभ्यास बराबर टल रहा है। फरवरी 2011 मे बेंगलुरू मे हुए एयर इंडिया शो के लिए भारत–चीन को निमंत्रण नही दिया था। अभी कुछ दिन पहले चीन की सेना द्वारा श्वेत पत्र जारी किया गया जिससे भारत के साथ सैन्य संबंध मजबूत करने पर जोर दिया गया। दरअसल ऐसा करके चीन हमारी सैन्य तैयारी की थाह लेना चाहता है।

भारत की सामरिक ताकत–:

चीन व पाकिस्तान से मिलने वाली सामरिक चुनौतियों के मद्देनरज भारत की सामरिक स्थिति व रक्षा तैयारी बहुत अच्छी नही है क्योंकि हम दिनो–दिन कमजोर हो रहे है। भारतीय सेना में जो सुधार कारगिल संघर्ष के बाद पारित किए गए थे वे अभी तक पूरे तरीके से लागू नही हुए है। चीफ आफ डिफेंस का पद अभी तक स्थापित नहीं किया गया है। सीमा क्षेत्रों मे सड़को के बनाए जाने का काम धीमी गति से चल रहा है। यह स्थिति हथियारों के विकास की है। हथियार की खरीददारी भी तेज गति से नहीं हो पा रही है, विमानों, टैंको, तोपों, पनडुब्बियों व युद्धपोतों के मामले मे हम पीछे हैं। भारत की सक्रिय सेना 14,14,000 है। भारत के पास आरक्षित सेना 1,20,000 टेरिटोरियल आर्मी, 2,00,000 वायु सेना 1,70,000 तथा नौ सेना 56,000 है।

सड़को के निर्माण की तैयारियां–:

पिछले दशक में चीन ने भारतीय सीमा से लगे तीन प्रमुख हाईवें बनाए हैं जिनकी कुल लंबाई लगभग 6000 किमी है। इसके अलावा उसने भारतीय सीमा के साथ 66 अन्य सड़के बनाई हैं। इन्हे फिलहाल युद्ध के दौरान सैन्य तैयारी का माध्यम समझा जा रहा है। इनसे निपटने के लिए भारत, चीन व पाकिस्तान से लगती सीमा के निकट 558 नई सडके बनाएगा जिनकी कुल लंबाई 27986 किमी0 होगी। इनको बनाने मे 500 करोड़ रूपए की लागत आएगी। यह परियोजना दो चरणो मे पूरी होगी और चीन व पाकिस्तान की सड़क योजनाओं का जवाब होगी। परियोजना के पहले चरण में 248.86 अरब रूपए की लागत से 13,100 किमी0 लंबाई अर्थात् 277 सड़के बनेगी। दूसरे चरण मे 14,886 किमी0 लम्बाई अर्थात् 281 सड़के 252.68 अरब रूपए की लागत से बनेगी।

नौ–सैनिक –तैयारी–:

चीन ने नापाक इरादो को देखते हुए नौ सेना पूर्वी तट पर अपनी ताकत बढ़ा रही है। यहां नए आधुनिक जंगी जहाज, युद्धक विमान और जासूसी करने वाले ड्रोन तैयार किए जा रहे है। इसके अलावा नए फारवर्ड आपरेटिंग बेस तूतीकोरिन व पाराद्वीप मे तैयार किए जा रहे है। आई0एन0एस0 शिवालिक व आई0एन0एस0 जलाश्व वहां तैनात किए जा चुके है। आई0एन0एस0 शक्ति तथा पी–81 पोखिडान आने वाले दिनों मे पूर्वी कमांड का हिस्सा बनेगे। तटीय क्षेत्रों में पड़ोसी देशों की गतिविधियों पर निगाह रखने के लिए राजाली में पी–81 एयरक्राफ्ट, तमिलनाडु को पारूंडु एयर स्टेशन, कोच्चि, पोरबंदर व पोर्टब्लेयर पर ड्रोन तैनात किए जाने की योजना है।

हवाई पट्टियों का विकास–:

चीन से मिलने वाली चुनौती के मद्देनजर नियोमा, दौलतीबेग ओल्दी व फुकचे हवाई पट्टियों को खोला जा चुका है। असम मे तेजपुर एवं अडंमान निकोबार की ट्राई सर्विस कमान के निकोबार एयरफोर्स स्टेशन पर जॉबाज लड़ाकू विमानों की संख्या बढ़ाई जा रही है। इसी तरह अरूणाचल प्रदेश मे आठ एडवांस लैंडिग ग्राउंड तैयार किए जा चुके है। वायु सेना की आधुनिकीकरण योजना के तहत पश्चिमी मोर्चे पर वायु सैनिक अड्डों को आधारभूत संरचना और नए लडाकू विमानो से लैस किया जा रहा है। इन सभी स्थानों के लिए बड़ी संख्या मे विमानो की आवश्यकता है जिसकी पूर्ति के लिए वायु सेना अपने विमान बेड़ो की संख्या 45 स्क्वाइन करने की तैयार मे है।

थल सेना की सुस्त तैयारी–:

अगर थल सेना की तरफ ध्यान दिया जाय तो पूर्वोत्तर मे स्थापित होने वाली दो पर्वतीय डिवीजन पूर्ण तरीके से गठित नही हो सके है। तोपों की आधुनिकीकरण प्रक्रिया 26 वर्षो से लंबित है। इसे इस वर्ष शुरू किए गया है। जिसके तहत 625 तोपें खरीदी जाएगी मगर इनके प्राप्त होने मे तीन–चार वर्ष का समय लग जाएगा। सेना को लेजर उपकरणों से युक्त टैंक भारी संख्या मे चाहिए तथा 197 नए हेलीकॉप्टर की जरूरत है। शत्रु की किसी भी स्थिति से निपटने के लिए इंटीग्रेटिड रैपिड एक्शन फोर्स का गठन, साइबर व इलेक्ट्रॉनिक युद्ध की तैयारी, निगरानी व संदेश व्यवस्था मजबूत करने के लिए सैटेलाइट्स व अंतरिक्ष टेक्नोलॉजी की आधुनिक तैयारी होनी चाहिए। इसके अलावा जमीनी ढांचा इस तरह से विकसित हो कि थोड़े समय की सूचना पर फौज मोर्चो संभालने पहुंच सके, लेकिन इन सबकी पूर्ण तैयारी मे अभी समय लगेगा।[17]

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि चीन से मिलने वाली सामरिक चुनौतियां को देखते हुए रक्षा तैयारियां तेज करने की आवश्यकता है। शायद इसीलिए भारत का रक्षा बजट बढ़ाकर 1,64,415 करोड़ रूपए किया गया है। लेकिन इससे सारी जरूरतें पूरी होती दिखाई नही पड़ती।

---

[1] K. N. Singh , Regional Grography of Asia P 94.

[2] वर्ल्ड फोकस, फरवरी –मार्च, 2012, पृ0–69।

[3] Sugata Bose & Ayesha Jalal : modem South Asia Routledge,2004. P 3.

[4] Lucian W. PYe and mary W. pye. Asian Power and Politics, Harvard University Press, 1985.P. 133.

[5] Mark Juergenmeyer the oxford Handbook of Global Religion. Oxford University , Press. U.S. 2006,P. 465.

[6] The Single most important consideration for the U.S. Was to contain the Soviet power in its search of dominance of the west. This needed friends and allies .Strategic Analysis Vol. XVI. No. 9 Dec. 1993. P. 121.

[7] Cited inJ. Sinha, Pakistan and U. S. Relations, P. 112.

[8] Jayant Dhanpal-china and the trird world {New Delhi Vikas Pub House 1985} P. 115.

[9] Beats gill, Curbing Beijing's arms sole' orbis {Fennsye Vania Summer 1992 reproduced in straefic degest {new delhi} no. 1992. P. 14. 18-46.

[10] Swarn Singh, china- South Asian Pub Lancers Book, New Delhi Year 2003. P. 329.

[11] Hemen Roy, China's Strategy in Nepal new Delhi Radiant Publishers-1983. p. 3-4.

[12] Dilara Choudhary, Bangladesh and the South Asian International System. {Dhaka Academic Pub 1992} P. 148-149.

[13] Swarn Singh, China-South Asia, Pub Lancer book new Delhi 2003.P. 334.

[14] T. R. Globle, China-Nepal relation and India, {Bombay Deep & Deep Pub 1996} P . 42.

[15] 'China and South Asia in the 21st century' Spotight on regional affairs {IsIaambad Institute of Regional Studies {Vol XVIII} No. 10 October 1999. P. 2.

[16] डा0 वीरेन्द्र सिंह 'बघेल' भारत का रक्षा परिदृश्य – आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 2013, पृ0–133

[17] डा0 वीरेन्द्र सिंह 'बघेल' भारत का रक्षा परिदृश्य – आत्माराम एण्ड सन्स, दिल्ली, 2013, पृ0–140।

***

''भारतीय योग परम्परा का अध्ययन''

डॉ. संजय कुमार *

योग शब्द संस्कृत के 'युज्' से बना है। संस्कृत व्याकरण में दो युज धातुओं का उल्लेख है, जिसमें एक का अर्थ है– 'जोड़ना' या संयोजित करना है तथा दूसरे का अर्थ 'समाधि' मन स्थिरता है। अर्थात् समान्य रीति से योग का अर्थ सम्बन्ध करना तथा मानसिक स्थिरता करना है। इस प्रकार लक्ष्य तथा साधन के रूप में दोनों ही योग हैं। इस शब्द का उपयोग भारतीय योग दर्शन में दोनों अर्थों में हुआ है। योग शब्द का सम्बन्ध 'युज्' शब्द से भी है जिसका अर्थ जोड़ना होता है और जो अनेक स्थलों पर इसी अर्थ में वैदिक साहित्य में उपयुक्त है। 'युज्' शब्द प्राचीन आर्य शब्द का प्रतिनिधित्व करता है। यह जर्मन के जो (श्रवबा), ऐंग्लो–सैक्सन (।दहसवैंगवद), के गेओक (ळमवब), इउक (प्नब), इओक (ि), लैटिन के इउगम (प्नहनउ), तथा ग्रीक जुगोन (श्रनहवद), की समकक्षता या समानार्थकता में देखा जा सकता है। गणितशास्त्र में दो या दो से अधिक संख्याओं के जोड़ को योग कहा गया है। योग का उद्देश्य है ''आत्मा के यथार्थ स्वरूप की प्राप्त परन्तु यह स्वरूप तभी प्राप्त हो सकता है जब सभी प्रकार की चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाए, इसी कारण योग को चित्तवृत्तियों का निरोध कहा गया है।

भारतीय परम्परा में योगशास्त्र को सभी दार्शनिक सम्प्रदायों ने अपने–अपने ढंग से विकसित किया है। इस योग परम्परा के विकास को तीन भागों में बाँटकर प्रस्तुत किया जा सकता है, ये निम्न हैं–

1. वैदिक योग परम्परा।

2. अवैदिक योग परम्परा।

1. वैदिक योग परम्परा–

वेद मंत्र रहस्मय विचारों से भरे हुए हैं। उन मंत्रों पर गहराई से विचार करने पर पता चलता है कि उनमें योगपरक सामगी बहुत है। ऋग्वेद का प्रत्येक शब्द प्रतिकात्मक है। प्रायः अग्नि, इन्द्र सोम आदि का वर्णन प्राप्त होता है, परन्तु इस वर्णन के पीछे आध्यात्मिक अनुभव का मूल है जो उस सन्दर्भ में लक्षित अर्थ को लगाने पर ही समझ में आता है। इस तरह देखा जाए तो वैदिक काल से ही योग परम्परा प्रारम्भ हो जाती है जो योग माया नाम से व्यवहृत है। इतना ही नहीं मोहन–जोदड़ो से प्राप्त एक मुद्रा पर अंकित चित्र में त्रिशूल, मुकुटविन्यास, नग्नता, कार्योत्सर्गेमुद्रा, नासागृदृष्टि, योगाचर्या, बैल का चिन्ह आदि है, जिससे सिद्ध होता है कि मूर्ति किसी योगी के अतिरिक्त और किसी का नहीं है। मोहन जोदड़ो की सभ्यता का काल अनुमानतः ई0 पू0 3250–2750 है जो करीब वैदिक काल ही है। इस आधार पर भी कहा जा सकता है कि योग का स्थान भारतीय संस्कृति में प्राचीन काल से ही रहा है।

इस प्रकार वेदों में योग प्रणाली का अस्तित्व किसी व किसी प्रकार अवश्य रहा है। कहा गया है कि विद्वानों का भी कोई यक्षकर्म बिना योग के सिद्ध नहीं होता है। इस कथन से योग की महत्ता सिद्ध है। योगाभ्यास तथा योग द्वारा प्राप्त विवेक ख्याति के लिए प्रार्थना की गयी है कि ईश्वर की कृपा से हमें योग सिद्धि होकर विवेक ख्याति तथा ऋतम्भरा प्रज्ञा प्राप्त हो और वही ईश्वर अणिमा आदि सिद्धियों सहित हमारी तरफ आवें।

प्रार्थना के ही क्रम में कहा गया है कि हम (साधक् लोग) हर योग में, मुसीबत में परम ऐश्वर्यवान इन्द्र का आह्वान करें। दीर्घतमा ऋषि के कथन से भी योग की सार्थकता एवं महानता लक्षित होती है। उनका कथन है कि मैनें प्राण का साक्षात्कार किया है जो सभी इन्द्रियों का त्राता है और

* शारीरिक शिक्षा विभाग, श्री महंथ रामाश्रय दास स्ना. महाविद्यालय भुड़कुड़ा, गाजीपुर

कभी नष्ट नहीं होना वाला है। वह भिन्न–भिन्न नाड़ियों के द्वारा अन्दर–बाहर आता जाता है तथा यह अध्यात्मक रूप में वायु, आधि देव रूप से सूर्य है।

ऋग्देव में लिखा है कि सर्वप्रथम हिरणयगर्भ ही उत्पन्न हुए जो सम्पूर्ण विश्व के एकमात्र पति हैं, जिन्होंने अंतरिक्ष, स्वर्ग और पृथ्वी सबको धारण किया। उन प्रजापति देव का हम वहन द्वारा पूजन करते हैं।

इस कथन से ज्ञात होता है कि सृष्टि–क्रम में सर्वप्रथम हिरणयगर्भ उत्पन्न हुए और यह प्राचीनतम् पुरूष योशास्त्र के प्रथम वक्ता हैं, अतः योगशास्त्र भी प्राचीनतम् है। इस तरह वेदों में योग का निरूपण भले ही परिभाषिक शब्दों में क्रम से न हुआ हो, परन्तु मत्र वाक्यों, प्राकृतिक वस्तुओं तथा अन्य प्रतीकों के आधार पर योग जो वर्णित हुआ है, वह स्पष्ट ही योगाभ्यास का दर्शन है।

उपनिषद् काल योग साधना की अच्छी भूमि रही है क्योंकि वेदों में अंकुरित बीज का विकास एवं पल्लवन इस काल में पर्याप्त हुआ है। वैदिक काल में अध्यात्मवाद उन्मुख हुआ, उसका सर्वांगीण विकास उपनिषद् काल में ही हुआ है।

इक्कीस उपनिषदों में योग की पर्याप्त चर्चा उपलब्ध है। श्वेताश्वतर में योग का स्पष्ट एवं विस्तृत विवेचन है। इसके दूसरे अध्याय में विशिष्टता के साथ योग की साधना, उसका परिणाम आदि के बारे में स्पष्टतया वर्णन है जो योगदर्शन के बारे में एक नया ही सन्दर्भ प्रस्तुत करता है।

उपनिषदों में प्रयुक्त 'योग' शब्द आध्यात्मिक अर्थ को संवलित करता है, क्योंकि योग, ध्यान, तप आदि शब्द समाधि के अर्थ में ही प्रयुक्त हुए हैं आध्यात्मिक आर्थ में प्रयुक्त करने के कारण योग को मोक्ष प्राप्ति हेतु माना गया है। यह मोक्ष की धारणा कपिल मुनि के सांख्य दर्शन (शास्त्र) पर आधारित है, इस मोक्ष को समझाते हुए कपिल मुनि जी कहते हैं कि प्रकृति और पुरूष अथवा ऊर्जा और चेतना तो साथ ही रहेगी। इनका विच्छेदन संभव नहीं है। यह प्रकृत हमारे लिए दःखद तब बनती है जब हम इसे भोग्या मान बैठते हैं, और असंयमपूर्वक इसका भोग करते है। इन दुःख से छुटकारा पाने के लिए यम–नियमों का पालन करते हुए, दःखों से मुक्ति पाने के लिए ज्ञानार्जन करते हैं और आत्मसाक्षात्कार तथा ईश्वर साक्षत्कार इस ज्ञान के परिधि में आता है, जहां हमें सभी दुःखों से मुक्ति मिलती है और जीवन–मरण से छुटकारा पा लेते हैं।

महाभारत भारतीय संस्कृति का अनमोल ग्रंथ है, जिसमें आचारमी मांसा, नीति, कर्म आदि के संदर्भ में अनेक प्रकार के वैदिक कर्तव्यों का निर्देश हैं। इसी क्रम में कई जगहो पर योग का निरूपड़ किया गया है। बताया गया है कि सर्वप्रथम इन्द्रियों को जीतना चाहिए, क्योंकि वे ही चंचल, अस्थिर तथा अनेक प्रकार के कष्टों की जड़ है।

श्रीमदभागवत गीता में किंकर्तव्यविमूढ़ हुए अर्जुन को अपने कर्तव्य का ज्ञान कराते हुए श्री कृष्ण ने योगोपदेश देते हुए कहा है–

योगस्थः कुरूकर्माणि सग्डत्यक्वा धनंजयः।
सिद्धयसिद्धयोंः समोभूत्वा समत्वा योग उच्यते।।

अर्थात् हे भरत! श्रेष्ठ तू आसक्ति को त्यागकर तथा सिद्धि और असिद्धि में समान बुद्धि वाला होकर योग में स्थित होकर कर्तव्य कर्मों को कर, क्योंकि यह महत्व ही योग कहलाता है।

श्री कृष्ण कर्म की कुशलता का वर्णन करते हुए कहते है–

बुद्धियुक्तो जहातीह उभे सुकृतदृष्कते।
तस्माधोगाय पुज्यस्व योगः कर्मसु कौशलम्

अर्थात् समबुद्धि युक्त पुरूष पुण्य और पाप दोनों को इसी लोक में त्याग देता है अर्थात् उनसे युक्त हो जाता है। इससे तू समत्व रूप योग में लग जा। यह समत्व रूप योग ही कर्म में कुशलता है। अर्थात् कर्म बन्धन से छूटने का उपाय है। जिस उपाय से कर्म सहज, सुन्दर एवं स्वाभाविक रूप से इष्ट हो सके उसे ही निष्काम कर्म योग कहते है।

ब्रह्म उपलब्धि के लिए योगमार्ग का निर्देश है, जिसमें योग का अर्थ ''जीव और ब्रह्म का संयोग'' करते हुए कहा है कि जीव और ब्रह्म में अभेद का ज्ञान प्राप्त करने के लिए मोक्ष की प्राप्ति

होती है। साथ ही कर्मयोग, भक्तियोग तथा ज्ञनयोज्ञ पदों में योग शब्द का प्रयोग परम पुरूषार्थ की प्राप्ति के उपाय के अर्थ में हुआ है। गीता में आत्मविशुद्धि के उपाय के रूप में भी योग को स्वीकार किया गया है।

गीता में विभिन्न योग पद्धतियों का समन्वय देखे तो पता चलता है कि उनका उद्देश्य एक ही है। इसमें कर्मयोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, समत्वयोग, ध्यानयोग आदि के उल्लेख हैं। इनके मुख्य तीन उद्देश्य हैं–

1. जीवात्मक का सात्क्षत्कार
2. विश्वात्मा का साक्षात्कार तथा
3. ईश्वर साक्षात्कार।

गीता में विभिन्न योगों के चर्चा के साथ–साथ योग के कुछ सामान्य लक्षणों का भी निर्देश है, जिन्हे योग के तटस्थ या व्यवहारिक लक्षण कहा जा सकता है। व्यावहारिक योग के लक्षण विभिन्न अध्यायों में विभिन्न प्रकार के हैं, जैसे कर्मफल की इच्छा का न होना।[19]

संक्षेप में गीता एक कल्पना पद्धति है और जीवन का विधान भी है। यह बुद्धि के द्वारा सत्य का अनुसंधान है और सत्य को मनुष्य की आत्मा के अन्दर क्रियात्मक शक्ति देने का प्रयत्न भी है। योगशास्त्र के इतिहास के दृष्टि से भागवद् पुराण का स्थान औपनिषदिक योग तथा पतंजलि योग के बीच के काल में है। इसमें भक्तियोग के साथ अष्टांग योग का भी विवेचन है। इसमें कथाओं के माध्यम से यौगिक क्रियाओं एवं साधनाओं की विस्तृत चर्चा है। जिसमें योग सम्बन्धि शब्दों के अनेक संकेत प्राप्त होते है। यथा मनः प्राणिधान, आसन आदि के द्वारा भगवान ने अपना मन भक्तिपूर्वक लगाना, मनवचन एवं दृष्टि की वृत्तियों से अपनी आत्मा को एकाग्र करके अन्तः श्वास लेना तथा शान्त होना, अन्तिम बार श्वास को भीतर खींचकर ब्रह्मरन्ध्र से प्राण त्याग करना आदि इस सन्दर्भ में उल्लेखनीय है और समाधि द्वारा ही कपिलमुनि की माता ने अपनी देह त्यागी थी।

यौगिक क्रियाओं के आदर्श विभिन्न आध्यात्मिक शास्त्रों में भिन्न–भिन्न हैं। जैसा कि उपनिषदों में योग का प्रतिपादन ब्रह्म के साक्षात्कार के रूप में हुआ है। पतंजलि के योग सूत्र में इसका अर्थ सत्य का अन्तर्वेक्षण और बौद्ध धर्म में इसकी संज्ञा बोधित्व की प्राप्ति अथवा जगत की निःसारता का ज्ञान प्राप्त करना है। बौद्ध धर्म में भी तत्वाज्ञान के लिए योग का प्रयोजन स्वीकृत है। निर्वाण की प्राप्ति के साधन में योग की अनिवार्यता स्वीकार की है, जैसा कि मोक्ष–प्राप्ति के साधन के रूप में योग की पहचान जीन ग्रंथों में प्रतिवादित है। यही कारण है कि बुद्ध ने बोधिसत्व की प्राप्ति होने के पहले साधरणता द्वारा ग्रंथों में प्रतिपादित है। यही कारण है कि बुद्ध ने बोधिसत्व की प्राप्ति होने के पहले साधारणता द्वारा श्वासोच्छवास के निरोध का प्रयत्न किया था। और इसी साधन के द्वारा वे बोधि प्राप्त करना चाहते थे, परन्तु इसमें सफलता नहीं मिली। फलतः हठयोग–पद्धति का निषेध करके उन्होंने अष्टांग मार्ग की प्रतिष्ठा की। उल्लेखनीय है कि प्रत्याहार, ध्यान, प्राणायाम, धारणा, अनुस्मृति एवं समाधि योग के इन छः अंगों में प्राणायाम को महत्व दिया गया है।

बौद्ध योग में समाधि का महत्वपूर्ण स्थान है। इसको प्राप्त करने के लिए ध्यान का प्रतिपादन किया गया है, जो इस प्रकार है।

1. वितर्क विचार प्रीति सुख एकाग्रता सहित
2. प्रीतिसुख एकाग्रता सहित
3. सुख एकाग्रता सहित एवं
4. एकाग्रता सहित।

ध्यान के एकाग्रता के लिए योगी को आचार–विचार एवं नीति–नियमों का सम्यकरूपेण पालन करना चाहिए, क्योंकि संयम के बिना ध्यान अथवा समाधि लगाना वैसे ही निरर्थक है, जैसे – फूट घड़े में पानी भरना व्यर्थ है। चित्तवृत्तियों की पूर्ण शान्ति एवं एकाग्रता के लिए भी संयमी तथा सदाचारी रहना वांछनीय है। इन सारे आचार–विचार का विस्तृत वर्णन सुत्तपिटकों में हुआ है। इसमें प्राणायाम की विधि के उपयोग की सार्थकता के बारे में कहा गया है कि चित्त स्थिर रखने के लिए साधक को

चाहिए कि वह शरीर को स्थिर करके श्वासोच्छवास ले। यदि इस पर भी साधक का चित्त शान्त नहीं होता है तो साधक को चाहिए कि वह गणना, अनुबन्धा, स्पर्श स्थापना का उपयोग करें।

बौध योग में नैतिक जीवन के सिद्धान्त इस प्रकार माने गये हैं – दान, वीर्य, शील, शान्ति, धर्य, ध्यान और प्रज्ञा। क्योंकि इनके द्वारा व्यक्ति में उच्च भावों का विकास होता है तथा तृष्टि क्षिति का विस्तार होता है। बौद्ध योग–साधना में 4 स्मृतियाँ अर्थात्–

1. कायानुपश्यना
2. वेदना नुपरयना
3. वित्तानुपश्यना और
4. चित्तानुपश्यना और
5. धर्मानुपश्यना।

आदि महत्वपूर्ण हैं। इन स्मृतियों के अन्तर्गत ही इन्द्रियों संयम, चार आर्य सत्य, अष्टांगिक मार्ग, सप्त बौद्धगम्य, चार ध्यान तथा अनास्मवाद आते हैं। इस प्रकार शरीर को निश्चल करने का मार्ग बतलाकर संसार के चार कारणों अर्थात् चार आर्य सत्यों का उल्लेख किया गया है, जो इस प्रकार है – 1. दुःख, 2. दुःख समुदाय, 3. दुःख निरोध और 4. दुःख निरोध के उपाय।

इस सन्दर्भ में दुःख निरोध मार्ग का चर्चा करते हुए बुद्ध ने बुद्ध के मध्यम प्रतिपक्ष का मार्ग बतलाया है। जो अष्टांगमार्ग से भी जाना जाता है। यह अष्टांगमार्ग इस प्रकार है –

1.	सम्यग्दृष्टि	2.	सम्यक संकल्प
3.	सम्यक वचन	4.	सम्यक कर्मान्त
5.	सम्यक आजीव	6.	सम्यक व्यायाम
7.	सम्यक स्मृति	8.	सम्यक समाधि

उक्त (इन) मार्गों के सम्यक् सेवन से प्रज्ञा का उदय होता है एवं निर्वाण प्राप्त होता है। सम्यक–ज्ञान की प्राप्ति के तीन साधन बतलाए गये हैं – 1. शील, 2. समाधि और 3. प्रज्ञा।

शील अर्थात् सात्विक कर्म जिनका भिक्षु–भिक्षुणी एवं श्रावकों के लिए अनिवार्य है। अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य तथा व्यसन–निरोध को पंचशील कहा गया है। ये पंचशील आचार–विचार को

नियन्त्रित एवं शुद्ध करते हैं जो बोधि–लाभ करने वाले साधक के लिए आवश्यक हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण आचार–विचार की अनिवार्यता प्रतिपादित करते हुए बुद्ध ने शील, समाधि एवं प्रज्ञा की विधान किया है जो योग के ही श्रोत हैं।

वैदिक एवं बौद्ध योग की ही भांति जैन योग में भी तप, समाधि, ध्यान आदि द्वारा अनेक प्रकार की उपलब्धियाँ प्राप्त करने का वर्णन मिलता है। योग साधना का मूल उद्देश्य कर्म एवं कष्ट आदि को कम करके सम्यक् दर्शन ज्ञान तथा सिद्धि रूप में मोक्ष प्राप्त करना है। जैनयोग में मोक्ष का स्थान सर्वाधिक महत्वपूर्ण माना गया है।

तान्त्रिक योग परम्परा :

तान्त्रिक योग परम्परा में हठयोग प्रदीपिका की अग्र उल्लेखित चर्चा की जा चुकी है। शेष हठयोग की सिद्धान्त की चर्चा योगतत्वोपनिषद् तथा शाण्डिल्योपनिषद् में है। इस हठयोग के अवान्तर भेद भी है। शिव हठयोग के आदि प्रवर्तक माने जाते हैं। हठयोग का अर्थ है – चन्द्र–सूर्य, इडा–पिंगला, प्राण–अपान का मिलन। अर्थात् ह त्र सूर्य, ठ त्र चन्द्र, अर्थात् सूर्य और चन्द्र का संयोग। हठयोग का उद्देश्य शारीरिक एवं मानसिक उन्नति है। यह योग सर्वप्रथम शारीरिक विकास या उन्नति की ओर विशेष ध्यान देता है, क्योंकि शरीर की सुदृढ़ता और स्वस्थता से ही इच्छाओं पर नियन्त्रण होता है और मन शान्त अवस्था को प्राप्त होता है जो योग धारण के लिए परमावश्यक है। हठयोग में सात अंग प्रमुख हैं – षटकर्म, प्राणायाम, आसन, मुद्रा, प्रत्याहार, ध्यान और समाधि।

इसमें आसन, मुद्रा एवं प्राणायाम का विशेष महत्व दृष्टिगोचर होता है। इन प्राणायाम आदि यौगिक क्रियाओं के द्वारा शरीर हल्का करने और भारी बनाने की लब्धि प्राप्ति होती है, लेकिन इन लब्धियों की प्राप्ति ही अंतिम लक्ष्य नहीं है। उसका उद्देश्य आंतरिक देह की शुद्धि करके राजयोग की

ओर जाना है। अतः हठयोग के बिना राजयोग ओर राजयोग के बिना हठयोग असम्भव है। मुद्राओं तथा प्राणायामों द्वारा नाड़ियों को शुद्ध किया जाता है। जिन पर हठयोग आधृत है। हठयोग का सम्बंन्ध शरीर से अधिक तथा मन तथा आत्मा से कम है। ऐसे स्थिति में मन निरोधावस्था में पहुँचता है, जहाँ से राजयोग का प्रारम्भ होता है।

राजयोग (मंत्र योग, हठयोग और लययोग) तीनों योगों की चरम सीमा है। राजयोग का सम्बंध मन और मनः शक्ति से है। महर्षि पतंजलि द्वारा लिखा गया 'पतंजलि योग सूत्र' राजयोग कहलाता है। जो सबसे प्राचीन ग्रंथ माना जाता है। राजयोग को अष्टांगयोग भी कहा जाता है क्योंकि इसके 8 अंग है – यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, धारणा, ध्यान और समाधि है। राजयोग में ज्ञान और भक्ति का समावेश है। राजयोग में शरीर, मन और आत्मा का ज्ञान प्राप्त करके इस शरीर पर राज का मालिक बनकर, अन्तरिन्द्रिय और बहिरिन्द्रय तथा शरीर पर अधिकार प्राप्त करके, इन सबको अपने–अपने कार्य में भगवान की इच्छा पूरी करने में लगाकर मुक्त राजा के समान राज्य करते हैं। आत्मनिष्ठा, ब्रह्मनिष्ठा, राजविद्या, राजगुह्य, महायोग, अस्पर्शयोग, सांख्य योग, अध्यात्म योग, ज्ञानयोग आदि राजयोग के ही अनेक नाम हैं। कुछ विद्वानों के अनुसार कर्मयोग और भक्तियोग भी राजयोग के ही अंग है।

योग के अंग

सर्वप्रथम महर्षि पातंजलि रचित 'योगसूत्र' नामक ग्रेथ में अष्टांगयोग की चर्चा हम पाते हैं। अष्टांगयोग का प्रथम प्रवर्तक पतंजलि को ही माना जाता है। पतंजलि के बाद ही अष्टांगयोग का सरल व जन सामान्य की भाषा में निरूपण स्वामी चरणदास ने ही किया। महर्षि पतंजलि ने अष्टांगयोग के बारे में निम्नलिखित उपदेश दिये हैं–

''यमनियमासनप्राणायामप्रत्याहारधारणाध्यानसमाधयोअष्टागग्डानि।''

इस उपदेश में यम, नियम प्रधानतः आचार सम्बंधि अभ्यास है, इसके बाद के दो अंग, आसन और प्राणायाम से शरीर को भौतिक रूप से योगाभ्यास योग्य बनाने के उपाय हैं। पाँचवाँ अंग प्रत्याहार प्रधानतः इन्द्रिनिग्रह का उपाय है और उसके बद ही शेष तीन अंग (धारणा, और समाधि) पूर्ण रूप से मानसिक तथा आध्यत्मिक नियमन की साधनाएँ हैं। आज महर्षि पातंजलि याग परम्परा ही भारतीय योग परम्परा का सैद्धांतिक पक्ष के रूप में अपनाया जाता है, लेकिन वर्तमान समय में महर्षि बाबा रामदेव ने भारतीय योग परम्परा के व्यवहारिक रूप को भारतवर्ष में जन–जन तक पहुचानें का कार्य किया है, जो भारतीय योग परम्परा की रीढ़ साबित हो रही है। अब योग चेतना, जागरूकता के कारण भारतवर्ष के स्कूलों, कालेजों और विश्वविद्यालयों में योग एक विशेष पाठ्क्रम के रूप में चलाया जा रहा है। जो योग का प्रचार–प्रसार में सहायक सिद्ध हो रहें हैं और लोग योग को अपनाकर शरीर को स्वस्थ व निरोग भी बना रहें है।

संदर्भ :

1. योजयी योग। हेमचन्द्र, धातुमाला, गण 6.
2. योगश्वि समाधौ। हेमचन्द्र, धातुमाला, गण 4.
3. दर्शन और चिन्तन, प्रथमखण्ड, पृ0 230
4. योग फिलासोफी, पृ0 43.
5. योगश्वित्तवृत्तिनिरोधः योगसूत्र 1:2.
6. अथ सैषा योगमायामहिमा परम्परास्मांक वेदेग्य आरम्भ। वैदिक योग सूत्र, पृ0 22.
7. मोहन जोदड़ो एण्ड दी हिन्दूज सिविलाइजेशन, वो 1, पृ0 53.
8. यस्मादृते न सिध्यति यज्ञौ विपश्चितश्न। स धीनां योगामिन्वति। ऋग्देव 1:18:71
9. सामवेद 301, 210, 3,. अर्थर्ववेद 20,691, ऋग्वेद 1,5,31
10. योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखाय इन्द्रभूतये। ऋग्वेद, 1,30,7.
11. अपश्यं गोपामनिद्यूमानमा च परा च पथिभिश्चरन्तम। स सध्रीचीः स विषूचासर्वसान आवरीवर्ती भुवनेष्वन्तः ।। ऋग्वेद 1,164,31, 10,177,3.

12. हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्यजातः पतिरेक असीत्।
13. दी कान्सट्रेक्टिव सर्वे ऑफ दी उपनिषद् फिलॉसोफी, पृ0 338.
14. तैत्तिरियोपनिषद् 2:4, छान्दोग्योपनिषद् 7.6.1ए श्वेताश्वतरोपनिषद् 2.11.61
15. चतुर्वेदी खेमचन्द्र : साधना आधुनिक परिप्रेक्ष्य में' , विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 20074, पृ0 6–7.
16. महाभारत, अनुशासन पर्व, 96.28–30 दृ
17. गुप्ता, ब्रजेश कुमार : 'योगाभ्यास के विविध आयाम', पकाश बल डिपो, कड़ा बाजार, बरेली, 2006, पृ0 6–7
18. तत्रैकाग्रम मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रियक्रियः।
उपविश्यासने गुज्ज्याद् योगमात्मन्द्रियक्रियः ।
19. कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन्।
मा कर्मफल हेतुर्भूर्मा ने संगोस्त्वकर्माणि ।। (गीता 2.47 तथा 4.20, 5.12)
20. राय, विजय कुमार : 'योग के क्रियापक्ष की खेलों में उपयोगिता एक दार्शनिक एवं प्रायोगिक अध्ययन', श्याजी राव गैवर्ड पुस्तकालय (केन्द्रय पुस्तकालय) , का0हि0 विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1994, पृ0 23–25.
21. राधाकृष्णन्, भारतीय दर्शन, भाग–1 पृ0 392.
22. कुशल चित्तेकग्गता समाधि । विशुद्धिमार्ग, 3.1।
23. योगशास्त्र : एक परिशीलन, पृ0 30.
24. प्रत्याहारस्तथा ध्यानं प्राणायामों धारणा।
अनुस्मृतिः ध्यानं प्राणायामों धारणा।
25. दीर्घनिकाय, 1.2, 28–29.
26. विशुद्धिमार्ग, भाग–1, परिच्छेद–8.
27. राय, विजय कुमार : 'योग के क्रियापक्ष की खेलों में उपयोगिता : एक दार्शनिक एवं प्रायोगिक अध्ययन', श्याजी राव गैवर्ड पुस्तकालय (केन्द्रय पुस्तालय), का0हि0 विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1994, पृ0 33,34,36–37.
28. हठयोगप्रदीपिका, 1.1
29. षट्कर्मणा शोधनं च आसनेन भवेद्ढ़म्।
मुद्रया स्थिरता चैव प्रत्याहारेण धीरता।।
प्राणायाम मल्लाघवं च ध्यानप्रत्याक्षमात्मनि।
समाधिना निर्लिप्तश्य मुक्तिरेव न संयामः।। (घेरण्ड संहिता, 1.10–11)
30. संतमत का सरभंग सम्प्रदाय, पृ0 66–68
31. आरन्द कु0 अरूणाः 'प्रयोगिक योग शिक्षा', आनन्द प्रकाशन, नौरोजी नगर, नई दिल्ली, 1982, पृ0 35–36.
32. झा, पीताम्बरः 'योगपरिचय' रामेश्वर दास गुप्ता प्रकाशन, नई दिल्ली, 1999, पृ0 73–74.
33. पतंजलि योग सूत्र, 2/29 या 2.29.
34. सिंह, रामहर्षः योग एवं यौगिक चिकित्सा', चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली, (2006) पृ0 25.

***

कोरोना, असंगठित क्षेत्र और पलायन

डॉ. वरुण कुमार *

दिन मंगलवार, 24 मार्च से जब शाम आठ बजे, प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने कहा"आज रात 12 बजे से संपूर्ण देश में संपूर्ण लॉकडाउन होने जा रहा है. हिंदुस्तान को बचाने के लिए, हिंदुस्तान के हर नागरिक को बचाने के लिए, आपको बचाने के लिए, आपके परिवार को बचाने के लिए, आज रात 12 बजे से, घरों से बाहर निकलने पर पूरी तरह पाबंदी लगाई जा रही है.आप इस समय देश में जहां भी हैं, वहीं रहें. अभी के हालात को देखते हुए देश में ये लॉकडाउन 21 दिन का होगा. इस दौरान घर में रहें, घर में रहें और सिर्फ घर में ही रहें."प्रधानमंत्री मोदी ने इस ऐलान में कहा कि जो जहां है, वहीं रहे, और लोग घर में ही रहें.लेकिन प्रधानमंत्री मोदी ने देश की आबादी के उस वर्ग के बारे में कुछ भी नहीं कहा जो बहुमंज़िली इमारतों के निर्माण में कंस्ट्रक्शन मज़दूर के तौर पर काम करता है और झुग्गियों या फुटपाथ पर चटाई बिछाकर सो जाता है.अगले 21 दिन तक समाज का ये वर्ग अपना गुजर–बसर कैसे करेगा, इस बारे में सोचना शायद उस वक़्त कोरोना महामारी को फैलने से रोकने की चिंता से ज़्यादा ज़रूरी नहीं लगा होगा.

आदिकालीन मानवीय सभ्यता से लेकर आज की आधुनिक कालीन मानवीय सभ्यता में एक बात सामान रही है. वह है मनुष्य का अपनी इयत्ता को बनाये रखने के लिए प्रकृति के साथ जदोजहद करना. मानव सभ्यता के पहले पायदान पर मनुष्य प्रकृति के बहुत करीब था या ऐसे कह लें कि मनुष्य अपनी सभी मानवीय आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए प्रकृति पर निर्भर था. आदिकालीन मानव जंगल में निवास करते हुए पेड़ो पर रहता था तथा भोजन के रूप में जंगल में उगने वाले कंदमूल खा कर अपना जीवन यापन करते हुए लम्बे समय तक उसी अवस्था में था. फिर विकास क्रम में मनुष्य जंगल से बाहर निकल कर कई अवस्थाओं से गुजरते हुए आज के आधुनिक मानव के रूप में हम सभी अपना जीवन यापन कर रहे हैं. जीवन यापन करने के क्रम में जो मनुष्य प्रकृति के ऊपर अपनी आवश्यकताओं के लिए निर्भर था आज वह अपने स्वार्थ तथा आराम के लिए उस प्रकृति का दोहन करने लगा है. जिसके फलस्वरूप प्राकृतिक असंतुलन की स्थिति पैदा हो गई है जिसे हम कभी भूकंप कभी बाढ़ तो कभी शुखा या तूफ़ान के रूप में देखते और सुनते हैं. कोरोना से पूर्व हमने 1991 में बांग्लादेश में आए तूफान,2003 में यूरोप की गर्म हवाओं,2004 में एशिया की सुनामी,2005 के कैटरीना तूफान तथा 2005 के मुंबई बाढ़ के अनुभवों को बहुत करीब से महसूस किया है। किसी भी समाज में आने वाली प्राकृतिक आपदाओं, विपदाओं तथा महामारियों का उस समाज के प्रत्येक हिस्से पर एक जैसा ही असर हो, यह आवश्यक नहीं है।

भारत में असमान आर्थिक–सामाजिक संरचना के कारण किसी भी मानव निर्मित अथवा प्राकृतिक आपदाओं का शिकार अमीर–गरीब दलित और स्त्रियां अलग–अलग स्तरों पर होते हैं। उनमें भी गरीब, दलित तथा महिलाओं पर इसका ज्यादा गहरा और दूरगामी असर पड़ता है।महामारी या प्राकृतिक आपदा अपने साथ स्वास्थ्यगत समस्याओं के साथ सामाजिक समस्याओं की चुनौतियां भी सामने लाती हैं।2019 के आखिरी महीने में शुरू हुए कोरोना महामारी को भी इसी क्रम में देखा और समझा जाना चाहिए. चीन से शुरू हुए इस महामारी ने देखते देखते पूरी दुनिया को अपनी चपेट में ले लिया. महामारी के तात्कालिक प्रभाव के रूप में हमारे सामने पलायन की तस्वीर उभर कर आई. हम सभी ने देखा की कैसे रातो रात कोरोना महामारी के दौरान भारतीय प्रवासी कामगारों को कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। देश में लगाए गए लॉकडाउन के कारण कारखाने और कार्यस्थल बंद होने के कारण, लाखों प्रवासी कामगारों को आय की हानि, भोजन की कमी और अपने भविष्य के बारे में अनिश्चितता से जूझना पड़ा। कोरोना महामारी ने कई देशों, विशेष रूप से विकासशील देशों में गंभीर

---

*

प्रभाव डाला है। 2021 के मध्य तक इस वैश्विक संकट ने "गरीबी और देश के भीतर असमानता को और कई अर्थव्यवस्थाओं में आय असमानता को स्पष्ट रूप से और खराब कर दिया है", और यह उम्मीद की जाती है कि "गरीबी पर प्रगति को उलटते हुए श्रम बाजारों पर लंबे समय तक चलने वाले निशान छोड़ देगा" ।" इस अर्थ में भारत का संदर्भ जटिल है। कोरोना संकट ने दुनिया भर की सरकारों के लिए अभूतपूर्व आर्थिक चुनौतियों का सामना किया है और कुछ क्षेत्र इस महामारी की चपेट में आ रहे हैं। तालाबंदी के दौरान भारत में प्रवासी मजदूरों की दुर्दशा ने न केवल अर्थव्यवस्था में बल्कि समाज में भी दोष रेखाएँ दिखाई हैं। महामारी ने भारत में प्रवासियों और खास कर महिलाओं की स्थिति को और खराब कर दिया है क्योंकि इसने गरीबी उन्मूलन कार्यक्रमों और किसानों की आय बढ़ाने के लिए गंभीर चुनौतियों का सामना किया है।महामारी कोरोना के अचानक प्रकोप ने समकालीन दुनिया में पर्यटन क्षेत्र को पूरी तरह से पंगु बनाने, परस्पर जुड़े वैश्विक बाजार की आपूर्ति श्रृंखला को बाधित करने से लेकर हमें अपनी सुरक्षा चिंताओं पर पुनर्विचार करने और पुनर्मूल्यांकन करने के लिए मजबूर करने के लिए बहुत अधिक दोष दिखाया है। इस महामारी में दुनिया भर की सरकारों ने अभूतपूर्व आर्थिक चुनौतियों का सामना किया है और कुछ क्षेत्र अभी भी इस महामारी की चपेट में आ रहे हैं। दुनिया में सबसे अधिक आबादी वाले देशों में एक भारत में , क्रमशः बढ़ते और उभरते हुए, दशकों से प्रभावशाली विकास दर देख रहे थे, अचानक उनके सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में गिरावट का सामना करना पड़ रहा है। इन सबका असर बड़े पैमाने पर और प्रत्यक्ष तौर पर असंगठित क्षेत्र पर पड़ा. इसे समझने के लिए हमें आकड़ो की मदद लेनी पड़ेगी.

असंगठित क्षेत्र के आकड़ो पर एक नजर – भारत का आर्थिक सर्वेक्षण (2017) चीन के उच्च आर्थिक विकास दर के लिए ग्रामीण इलाकों से शहरी क्षेत्रों में बड़े पैमाने पर प्रवासन का श्रेय देता है। इसी तर्ज पर भारत का आर्थिक सर्वेक्षण (2017) भारत में भी चीनी अनुभव को दोहराने का सुझाव देता है। ऐसा करने में, सर्वेक्षण से पता चलता है कि 2001 और 2011 के बीच सालाना अंतर–राज्य श्रम गतिशीलता औसतन 5–6 मिलियन लोगों की थी। अध्ययन से पता चलता है कि सर्वेक्षण आर्थिक विकास के संकेत के रूप में बढ़ते प्रवासन को बढ़ा–चढ़ाकर पेश करता है तथा भारत और चीन में प्रवासन की प्रकृति में अंतर करने में विफल रहता है। चीनी सख्त हुकू (घरेलू पंजीकरण) प्रणाली प्रवासियों को अपनी किसान पहचान से बांधती है जबकि भारत में प्रवासी कुछ पहाड़ी और आदिवासी क्षेत्रों को छोड़कर कहीं भी निवास प्राप्त करने के लिए स्वतंत्र हैं।

श्रम मंत्री बंडारू दत्तात्रेय ने एक लिखित उत्तर में राज्यसभा (भारतीय संसद का ऊपरी सदन) को बताया कि 2001 की जनगणना के अनुसार भारत में भूमिहीन कृषि श्रमिकों की संख्या 10.67 करोड़ थी, जो 2011 जनगणना में, बढ़कर 14.43 करोड़ हो गई। इस प्रकार भूमिहीन कृषि श्रमिकों की संख्या में एक दशक में 35 प्रतिशत की वृद्धि हुई।

संयुक्त राष्ट्र द्वारा किये गए 2011 की सामाजिक–आर्थिक और जाति जनगणना, कुल ग्रामीण परिवारों या 10 करोड़ परिवारों के 56.41 प्रतिशत को 'बिना भूमि वाले परिवारों' के रूप में दर्शाती है। जनगणना के अनुसार प्रति परिवार 4.8 लोग का आकार लेती है. अर्थात कुल 48.48 करोड़ (484.8 मिलियन) लोग भूमिहीन हैं (संयुक्त राष्ट्र 2017)।

उपरोक्त आंकड़ों से स्पष्ट है कि अधिकतर भूमिहीन मजदूर नौकरी की तलाश में हैं और शहरों की ओर पलायन कर रहे हैं। भूमिहीन और प्रवासी मजदूरों के बीच घनिष्ठ संबंध है। प्रवासी मजदूरों का एक और समूह छोटे जोत वाले किसान का है जो अपनी आय बढ़ाने के लिए शहरों की तरफ पलायन करते हैं.

इस महामारी ने दुनिया भर में आर्थिक विषमता की खाई को और बड़ा करने का काम किया है जिसका सबसे ज्यादा प्रभाव तीसरी दुनिया के देशों में साफ तौर पर देखने को मिलता है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन की रिपोर्ट के मुताबिक तकरीबन 40 करोड़ लोग गरीबी रेखा के नीचे जा सकते हैं। दुनिया में केवल 35 प्रतिशत बच्चों के पास सामाजिक सुरक्षा है और लगभग दो तिहाई बच्चे सामाजिक सुरक्षा से वंचित हैं। जिसमें से अधिकांश अफ्रीका और एशिया में रहते हैं।दुनिया में केवल

21.8 प्रतिशत कर्मचारियों को बेरोजगारी भत्ता मिलता है, जबकि 152 मिलियन कर्मचारी ऐसी सुविधाओं से वंचित हैं। दुनिया के बहुत कम देशों में दिव्यांगों को सामाजिक सुरक्षा हासिल है। अधिकांश देशों में दिव्यांग सामाजिक सुरक्षा से वंचित हैं। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन (2017) के आंकड़े दिखाते हैं कि दुनिया भर में गंभीर रूप से दिव्यांगों में से केवल केवल 27.8 प्रतिशत को ही विकलांगता का लाभ मिलता है। महामारी ने समाज के इन तबकों को किस तरह से प्रभावित किया होगा इसे समझा जा सकता है।

अंतरराष्ट्रीय संस्था ऑक्सफेम की 'इनइक्यूलिटी वाइरस– ग्लोबल रिपोर्ट'(2021) के मुताबिक , कोविड–19 महामारी के दौरान नस्लवाद, आर्थिक विषमता, नवउदारवाद का तीसरी दुनिया पर प्रभाव एवं लैंगिक प्रश्नों पर बेहद महत्वपूर्ण तथ्यों को सामने लाने का काम किया है। इस रिपोर्ट में बताया गया है कि पूरी दुनिया में 740 मिलियन महिलाएं अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत हैं और कोविड के प्रथम माह में उनकी आय में 60 प्रतिशत तक की गिरावट हुई। जो कि लगभग 360 बिलियन के आस–पास थी। लॉकडाउन और सामाजिक दूरी ने सबसे ज्यादा सेवा क्षेत्र और पर्यटन को प्रभावित किया है। मैक्सिको में 21 प्रतिशत महिलाएं अनौपचारिक क्षेत्र में थीं और वह काम से बाहर हो गई. वहीं तकरीबन 15 प्रतिशत पुरुष जो कि अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत थे, काम से बाहर हो गए।

भारतीय समाज में मौजूद विषमताएं यहाँ के श्रम बाज़ार में भी दिखाई पड़ती हैं। यहाँ के श्रम बाज़ार में जाति, वर्ग के साथ–साथ पितृसत्ता के वायरस को भी आसानी के साथ देखा जा सकता है। भारत में भी तालाबंदी ने हर तरह की आर्थिक गातिविधि को प्रभावित किया एवं सभी आर्थिक गतिविधियों के बंद होने से श्रम बाज़ार पर विनाशकारी प्रभाव पड़ा। जिसका सबसे ज्यादा खामियाजा हाशिये पर रहने वाले लोगों को उठाना पड़ा और जिसके परिणामस्वरूप बेरोजगारी कई गुना बढ़ गई। शिने चक्रवर्ती (2020) अपने लेख में लिखती हैं कि 'सेंटर फॉर मौनिटरिंग इंडियन इकॉनमी' के उपभोक्ता पिरामिड घरेलू सर्वेक्षण के अनुसार अप्रैल और मई में भारत में बेरोजगारी दर 23 प्रतिशत से अधिक थी, जो पिछले वर्ष से तीन गुना अधिक थी। सभी आर्थिक गतिविधियों के खत्म हो जाने के परिणामस्वरूप अनौपचारिक क्षेत्र के श्रमिकों के काम में लंबे समय तक गिरावट रहेगी।

नव–उदारवाद की आर्थिक प्रक्रिया ने तीसरी दुनिया के देशों में श्रम के अनौपचारिकरण को बढ़ावा दिया है। भारत में भी 90 के दशक से शुरू हुए संरचनात्मक समायोजन के कार्यक्रम के चलते औपचारिक क्षेत्र काफी सीमित हो गया है। यहाँ पर भी मेहनतकश आबादी का अधिकांश हिस्सा अनौपचारिक क्षेत्र में कार्यरत है। अंतरराष्ट्रीय श्रम संगठन के द्वारा 2020 में जारी की गई रिपोर्ट से संकेत मिलता है कि कोविड–19 महामारी के बाद से भारत में अनौपचारिक क्षेत्र के अनुमानित 400 मिलियन श्रमिकों को घोर गरीबी का खतरा है। महिलाओं को नौकरी अथवा काम छूटने का सबसे अधिक खामियाजा भुगतना पड़ता है। क्योंकि उनका अधिकांश काम अदृश्य एवं अनौपचारिक क्षेत्र में होता है। इसके साथ–साथ कार्य में भागीदारी दर, मजदूरी में अंतर जो कि लॉकडाउन से पहले से मौजूद थे उनके और तेज होने की संभावना बढ़ गयी है। इसके साथ–साथ भारत दुनिया का एक ऐसा देश भी है जहां पर घर के काम–काज में सबसे ज्यादा लैंगिक भेदभाव नज़र आता है। मोनिका बनर्जी (2019) लिखती हैं कि नेशनल टाइम यूज सर्वे (1998–99) के अनुसार महिलाएं प्रत्यक्ष देखभाल कार्य पर प्रति सप्ताह लगभग 4.47 घंटे खर्च करती हैं। (बच्चों, बुजुर्गों, बीमारों और विकलांगों की देखभाल करना), जबकि पुरुषों ने देखभाल कार्य पर प्रति सप्ताह केवल 0.88 घंटे खर्च किए।

वैश्विक स्तर पर महिलाएं अवैतनिक देखभाल कार्यों काअधिकांश हिस्सा करती हैं। कोविड महामारी के समय यह कार्य और भी ज्यादा महत्वपूर्ण हो गया और जिसकी अधिकांश जिम्मेदारी महिलाओंके ऊपर आ गई। लेकिन इसके बावजूद यह कार्य अभी भी अवैतनिक और अमूल्यवान ही बना हुआ है। शिने चक्रवर्ती (2020) लिखती हैं कि ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में 2018–19 में घरेलू और इससे संबन्धित अन्य गतिविधियों में स्त्रियों की हिस्सेदारी 57.5 प्रतिशत और 60 प्रतिशत थी। वहीं दूसरी ओर पुरुषों की हिस्सेदारी मात्र 0.5 और 0.6 प्रतिशत थी। इस बात के भी प्रमाण हैं कि डब्लूपीआर घर में छोटे बच्चों की उपस्थिति से नकारात्मक रूप से जुड़ी हुई हैऔर समय के साथ

भारत में बच्चों के पालन पोषण का बोझ बढ़ गया है। 2011–12 के दौरान छोटे बच्चों वाली केवल 33 प्रतिशत विवाहित महिलाओं ने नौकरी के बाज़ार में भाग लिया, जबकि 2018–19 में यह घटकर 24 प्रतिशत रह गई। कोविड–19 महामारी के बाद महिलाओं के द्वारा किए जा रहे बच्चों के देखभाल व अन्य देखभाल के कामों के बढ़ने की संभावना और बढ़ गई है।

कोविड महामारी के बाद से महिलाओं के द्वारा किए जा रहे अवैतनिक देखभाल कार्य, घरेलू कार्य में वृद्धि एवं श्रम बाज़ार से महिलाओं की छंटनी, वेतन में कटौती उनकी स्थिति को और ज्यादा खराब कर सकती है। भारत में कई तरह की आर्थिक गतिविधियों में महिलाओं के द्वारा किए जाने वाले श्रम के अवमूल्यन एवं सामाजिक पुनरुत्पादन में उनकी भूमिका की अस्वीकृति के कारण पुरुषों को श्रम बाज़ार में एक छिपा हुआ लाभ होता है और उन्हें घरेलू कामों का बोझ साझा नहीं करना पड़ता है।

भारत की बहुसंख्यक आबादी अभी भी गाँव में रहती है और गाँव की अर्थव्यवस्था में महिलाओं की महत्वपूर्ण भूमिका है। गाँव में महिलाओं के द्वारा किया जाने वाला अधिकांश श्रम अदृश्य रहता है। शिने चक्रवर्ती (2020) अपने लेख में लिखती हैं किभारत में कृषि क्षेत्र ज़्यादातर अनौपचारिक है और इस उद्योग में महिला श्रमिकों में भूमिहीन मजदूरों का सबसे बड़ा समूह शामिल है। 2018–19 में लगभग14 प्रतिशत महिलाएं विनिर्माण उद्योग में शामिल थीं और इस क्षेत्र को भारी नुकसान हुआ है। यह क्षेत्र श्रम प्रधान है और अक्सर कम वेतन वाली अकुशल महिला श्रमिकों को रोजगार देता है।अश्विनी देशपांडे (2020) लिखती हैं कि पिछले वर्ष के दौरान काम करने वाली हर दस महिलाओं में से चार ने तालाबंदी के दौरान अपनी नौकरी खो दी। जबकि ग्रामीण महिलाओं को इसकी सबसे ज्यादा कीमत अदा करनी पड़ी।

भारत में श्रमिक महिलाओं बड़ा हिस्सा स्वरोजगार एवं कृषि संबंधी कार्यों में संलग्न है। तालाबंदी ने महिलाओं के द्वारा किए जाने वाले स्वरोजगारको बुरी तरह से प्रभावित किया है। इसी के साथ–साथ शहरों एवं ग्रामीण भारत में महामारी का अलग–अलग प्रभाव देखने में आता है। अश्विनी देशपांडे (2020) के अनुसार जुलाई 2020 से शुरू होने वाली भारतीय अर्थव्यवस्था के अनलॉक होने की अवधि के दौरान श्रम बाज़ार की गतिशीलता का महिला और पुरुष श्रमिकों के रोजगार पर अलग–अलग प्रभाव पड़ा है। यदि हम ग्रामीण और शहरी 1.1 करोड़ नौकरियों के जाने की बात करते हैं तो शहरी क्षेत्रों में अधिकांश स्वरोजगार और ग्रामीण क्षेत्रों में अधिकांश आकस्मिक श्रमिकों ने अपना सब कुछ खो दिया है,जिनमें मुख्य रूप से महिलाएं हैं।

निर्माण कार्य में शामिल महिलाओं की बड़ी आबादी कार्यरत है लेकिन इसके बावजूद उन्हें मजदूर नहीं माना जाता है। इस वजह से निर्माण कार्य में शामिल महिलाओं को मजदूर होने के बावजूद मजदूर के रूप में मिलने वाली सुविधाओं से वंचित होना पड़ता है। विभूति पटेल (2021) लिखती हैं कि कृषि और निर्माण कार्य में जोड़ी (युगल) प्रणाली के कारण जहां श्रमिकों को एक जोड़े (एक पुरुष और एक महिला) के रूप में काम पर रखा जाता है और केवल पुरुष को मजदूर के रूप में पहचाना जाता हैमहिला अदृश्य होती है। जोड़ी प्रणाली में एक महिला मजदूर को अर्ध कोइता (मराठी शब्द) के रूप में माना जाता है। इस प्रकार वह सामाजिक सुरक्षा, दुर्घटनाओं के खिलाफ बीमा और महिलाओं के काम के लिए महत्वपूर्ण सुविधाओं से वंचित रहती है।

वर्तमान में डॉक्टर, नर्स, स्वास्थ्य कार्यकर्ता (आशा), एएनम, स्कूल शिक्षक, स्वास्थ्य और सामाजिक क्षेत्र में महिलाओं का बड़ा हिस्सा फ्रंट–लाइन कार्यकर्ता के रूप में सक्रिय है। लेकिन इनमें से अधिकांश के द्वारा किया जा रहा काम अदृश्य रहता है। स्क्रोलडॉटइन (2020) में छपी खबर में सांख्यिकी और कार्यान्वयन मंत्रालय द्वारा टाइम यूस सर्वे में दिखाया गया है कि 2019 के दौरान अवैतनिक गतिविधियों में भारत की समग्र भागीदारी दर 63.6 प्रतिशत थी और उस पर एक व्यक्ति के द्वारा बिताया गया औसत समय 289 मिनट का था। ग्रामीण महिलाओं की अवैतनिक गतिविधियों में भागीदारी दर 85 प्रतिशत थी। जबकि शहरी महिलाओं की 81.7 प्रतिशत थी। इसी श्रेणी में ग्रामीण पुरुषों की भागीदारी दर 47.8 प्रतिशत थी जबकि शहरी पुरुषों के लिए यह 35.1 प्रतिशत थी।

विभूति पटेल (2021) लिखती हैं कि एक औसत भारतीय महिला हर दिन अपने समय का लगभग पाँचवाँ हिस्सा अवैतनिक कार्यों में बिताती है जिसमें पुरुष द्वारा खर्च किए गए केवल 2.5 प्रतिशत समय की तुलना में घर का काम और देखभाल शामिल है। वे पुरुषों की तुलना में तीन गुना अधिक बच्चों की देखभाल भी करती हैं। कोविड–19 महामारी के कारण महिलाओं का अवैतनिक देखभाल का काम बढ़ गया है। क्योंकि आईसीडीएस केन्द्रों के स्कूल, बालवाड़ी, आंगनबाड़ी बंद कर दिये गए हैं। इसने उनके भुगतान और नियमित अवैतनिक कार्य को भी प्रभावित किया है जिसके परिणामस्वरूप बहुत अधिक शारीरिक और भावनात्मक तनाव और घेरलू हिंसा हुई है।

घरेलू हिंसा की घटनाओं में इजाफा सिर्फ भारत में ही नहीं हुआ है बल्कि फ्रांस में यह मामले 32 प्रतिशत तथा इटली में 36 प्रतिशत तक बढ़ गए हैं (पूनम शर्मा, 2020)। भारत में राष्ट्रीय महिलाआयोग ने भी इस बात की पुष्टि की है कि तालाबंदी के दौरान घरेलू हिंसा कीघटनाओं में इजाफा हुआ है। राष्ट्रीय महिला आयोग (2020) के अनुसार, 27 फरवरी 2020 से लेकर 22 मार्च 2020 तक आयोग को महिला अपराधों से जुड़ी 396 शिकायतें प्राप्त हुयी थीं, जिनमें 123 मामले घरेलू हिंसा से संबंधित थे। लेकिन 23 मार्च 2020 से 16 अप्रैल 2020 के मध्य आयोग को महिला अपराधों से जुड़ी 587 शिकायतें प्राप्त हुई, जिनमें से 239 शिकायतें घरेलू हिंसा से जुड़ी थीं। यानि सामान्य समय के मुक़ाबले लॉकडाउन के पहले 25 दिन और लॉकडाउन लगने बाद के 25 दिनों में महिलाओं के खिलाफ हिंसा के 182 मामले ज्यादा थे। महिला पुलिसकर्मी जो अक्सर हेल्प डेस्क पर घरेलू हिंसा से जुड़े मामलों की कॉल को रिसीव करती हैं, उनका मानना है कि फिलहाल पुरुषों के घर पर ही रहने के कारण घरेलू हिंसा के मामलों की शिकायत महिलाएं कम कर पा रही हैं. शहरों में रहने वाली महिलाएं ज्यादातर मेल से या फिर किसी पड़ोसी की मदद से अपनी शिकायतें दर्ज़ करा पा रही हैं। (संध्या द्विवेदी, 2020)

अब सवाल यह है कि आखिर यह नौबत क्यों आई? ऐसा क्या हुआ जिसके कारण सालों से एक जगह रह कर कमाने वाले तमाम मजदूरों को एक साथ अपने गृह निवास लौटने पर मजबूर होना पड़ा? वापस लौटने की बेचैनी ऐसी की हजारों मिल का सफर पैदल ही तय करने एक साथ निकल पड़े। उस यात्रा में महिलाएं एवं बच्चे भी शामिल थे। हम सबने देखा कि कैसे सड़कों पर महिलाओं ने बच्चों को गोद में लिए हजारों मिल का सफर पैदल ही तय किया। इसके लिए प्रत्यक्ष तौर पर फ़ेक न्यूज़ और सोशल मीडिया को जिम्मेदार ठहराया जाना चाहिए। दुनिया में कोविड बिस्फोट के बाद सोशल मीडिया के माध्यम से तमाम तरह की भ्रामक खबरें फैलाई जा रही थी और सरकार का इसके प्रति उदासीन रवैया के परिणाम स्वरूप लोगों में पर्याप्त भाय एवं अनिश्चितता का माहौल कायम हो चुका था। लॉकडाउन की अवधि के बारे में फ़र्ज़ी समाचारों से उत्पन्न भय के कारण बड़ी संख्या में प्रवासी कामगार का प्रवासन शुरू हो गया था और लोग, विशेषकर प्रवासी कामगार, भोजन, पेयजल, स्वास्थ्य सेवाओं और आश्रय जैसी मलूभूत आवश्यकताओं की पर्याप्त आपूर्ति के बारे में चिंतित थे. तथापि, केंद्र सरकार इस बात के प्रति सजग थी और उसने यह सुनिश्चित करने के लिए सभी आवश्यक उपाय किए कि अपरिहार्य लॉकडाउन की अवधि के दौरान कोई भी नागरिक भोजन, पेयजल, चिकित्सा सुविधाओं आदि की मूलभूत सुविधाओं से वंचित न हो." कोरोना महामारी के फैलाव और लॉकडाउन की लंबी अवधियों के बीच भारत में श्रमिकों के हालात और अर्थव्यवस्था में उनके योगदान और श्रम रोजगार से जुड़ी राजनीतिक आर्थिकी के कुछ अनछुए और अनदेखे अध्याय भी खुल गए हैं. पहली बार श्रम शक्ति की मुश्किलें ही नहीं, राज्यवार उससे जुड़ी पेचीदगियां भी खुलकर दिखी हैं. एक साथ बड़े पैमाने पर प्रवासी मजदूरों का अपने घरों को लौटने के असाधारण फैसले के जवाब में राज्य सरकारों और केंद्र सरकार के पास कोई ठोस कार्रवाई या राहत प्लान नहीं दिखा, जिससे समय रहते हालात सामान्य हो पाते. प्रवासी मजदूरों के बीच जान बचाने और अपने घरों को लौट जाने की देशव्यापी दहशत के बीच सरकारों की मशीनरी भी असहाय सी दिखी.

गुजरात, पंजाब और तमिलनाडु जैसे राज्य भले ही विकास के कई पैमानों पर अव्वल राज्यों में आते हों लेकिन अपने अपने घरों को बेतहाशा लौटते मजदूरों को रोके रखने के उपाय करने में वे भी

पीछे ही रहे. हालांकि ये भी एक सच्चाई है कि भारत में प्रवासी मजदूरों की स्थिति विभिन्न राज्यों के असमान विकास के साथ जुड़ी हुई है. मजदूरों की मनोदशा के अलावा उन्हें काम देने वाले उद्यमों की जरूरत को भी समझने की जरूरत है. सच्चाई ये भी है कि सरकारें सहानुभूति दिखा सकती हैं लेकिन खर्च वही कर सकती हैं जो उनके पास है. राज्यों को इस तरह का विकास करने की जरूरत है कि उनके पास जरूरी कुशल मजदूर रहें, उन्हें उचित मजदूरी मिले और मजदूरों का कल्याण भी हो.

राष्ट्रीय सैंपल सर्वे कार्यालय के आंकड़ों के मुताबिक भारत में श्रम शक्ति भागीदारी दर करीब आधा रह गयी है. यानी पहली बार ऐसा हुआ है कि 15 साल से ऊपर काम करने वाली भारत की आधी आबादी, किसी भी आर्थिक गतिविधि में योगदान नहीं दे पा रही है. दिसंबर 2019 में श्रम शक्ति भागीदारी दर गिरकर 49.3 प्रतिशत हो गई. 2018 में ये 49.4 प्रतिशत आंकी गयी थी. इस साल मार्च में भारत की आबादी एक अरब 31 करोड़ से ज्यादा हो गई है. और सेंटर फॉर मॉनिटरिंग इंडियन इकोनमी (सीएमआईई) के ताजा आंकडों के मुताबिक अप्रैल माह तक भारत में बेरोजगारी की दर 27 प्रतिशत की डरावनी ऊंचाई पर जा चुकी है.

भारत की लोकतांत्रिक जटिलता, भौगोलिक विस्तार और विविधता और विकास नीति की एक अव्यवस्थित और अस्तव्यस्त सी प्रकृति रही है. औद्योगिकीकरण और वृद्धि के आगे राजनीति और संरक्षण ने भी रोड़े अटकाए हैं. विकास और स्थायित्व से जुड़े साक्षरता, गरीबी और गैरबराबरी जैसे पहलुओं को भी नजरअंदाज किया जाता रहा. समावेशी विकास की रणनीति से अभी भी ऐसे परहेज किया जा रहा है मानो इसे छू लेने भर से तरक्की का ग्राफ भरभराकर नीचे आ गिरेगा. राज्यों को न सिर्फ कौशल आधारित उद्योगों को प्रोत्साहन देना होगा बल्कि उन्हें अर्थव्यवस्था की मुख्यधारा से भी जोड़ना भी होगा ताकि कामगारों के पास नकदी का अभाव न रहे, उनके सामने वेतन और पगार का संकट न रहे और उन्हें काम पर रखने वाले उद्योगों के पास उन्हें देने के लिए पर्याप्त धनराशि बनी रहे और खपत के लिए एक बाजार भी बना रहे. ऐसे उत्पाद कृषि और बागवानी के अलावा खाद्य सेक्टरों से तलाशे जा सकते हैं. प्रकाशन, मनोरंजन, मीडिया, प्रसाधन, प्रबंधन, होटल और पर्यटन जैसे सेवा सेक्टरों में भी अपार विस्तार की संभावनाएं हैं. पूंजी निवेश की एक सुनियोजित व्यवस्था तो राज्यों को बनानी ही होगी.

वित्तीय सुरक्षा की जिम्मेदारी नियोक्ताओं की भी है और सरकारों की भी. और उनके हालात पर भी गौर करना चाहिए जो स्वरोजगार से जुड़े हैं. ये प्लम्बर, मैकेनिक, रेहड़ी चलाने वाले, फल सब्जी विक्रेता से लेकर नाई, धोबी, रिक्शा चलाने वाले, कूड़ा बीनने वाले और दिहाड़ी मजदूर और यौनकर्मी तक कुछ भी हो सकते हैं. ये श्रम बाजार के लगभग अदृश्य लेकिन उपयोगी और उपेक्षित समुदायों में आते हैं. कोरोना संकट के दौरान हुए हाल के अध्ययनों के मुताबिक असंगठित क्षेत्र में सिर्फ 17 प्रतिशत कामगार ऐसे हैं जिनके नियोक्ता पहचाने जा सकते हैं. शेष 83 प्रतिशत कामगारों का नियोक्ता कौन है, कोई नहीं जानता, फिर उनकी आमदनी या आय कैसे सुरक्षित रह पाएगी. उन्हें काम पर रखा जाएगा या नहीं, ये कैसे सुनिश्चित हो पाएगा. गांव से शहर, फिर शहर से वापस गांव या गांव से अन्य गांवों की ओर पलायन करने वाले लोगों की संख्या करीब 10 करोड़ आंकी गयी है, कमोबेश हर दस भारतीयों में एक. सर्कुलर माइग्रेशन करने वाले ये लोग शहरी इलाकों में अंसगठित कामगारों का बड़ा हिस्सा हैं, जो श्रम बाजार की सबसे कम आमदनी या सबसे न्यूनतम वेतन वाली जरूरतों में खपा दिए जाते हैं.

कोरोना संकट के दौर में ये भी एक सबक है कि असंगठित क्षेत्र के इस स्वरूप को बदलने के नीतिगत फैसले होने चाहिए. उसपर असुरक्षित, अस्थायी, गारंटीविहीन या सामाजिक सुरक्षा विहीन होने का जो ठप्पा लगा है, उसे मिटाना होगा. कुशल या अकुशल मजदूरों के पलायन को रोकने और आर्थिक विकास का मजबूत आधार बनाने के लिए हर राज्य में वहां की परिस्थितियों के अनुरूप प्रयास जरूरी है. नौकरी की तलाश में वही लोग निकलते हैं जिन्हें अपने यहां कोई संमभावना नहीं दिखती. आर्थिक विकास और सामाजिक कल्याण में राज्यों के बीच एक स्वस्थ प्रतिस्पर्धा भी होनी चाहिए.

अर्थव्यवस्था को गति देने के लिए, केंद्र सरकार खुद को राज्यों के साथ सहयोग वाले मॉडल का पक्षधर बताती है लेकिन अब कोरोना पश्चात के समय में ये दिखना भी चाहिए.

संदर्भ :

1. Banerjee, Monika (2019), What Work Choices Are Indian Women Making and Why? In thewire.in.
2. Chakraborty, Shiney (2020) 'COVID-19 and Women Informal Sector Workers in India' in Economic & Political Weekly, Mumbai.
3. Patel, vibhuti (2021), Gendered Experiences of COVID-19: Women, Labour, and Informal Sector, in economic & political weekly, Vol. 56, Issue No. 11, 13 Mar, 2021, Mumbai.
4. जायसवाल, शरद (2021) कोविड–19 महामारी का स्त्री श्रम पर प्रभाव
5. http://mospi.nic.in/
6. https://www.dw.com/hi
7. https://www.bbc.com/hindi/india-54214404
8. https://economictimes.indiatimes.com/hindi/news/covid19-lockdown-migrants-can-go-home-more-curbs-to-be-eased-after-may-3/articleshow/75483528.cms
9. https://navbharattimes.indiatimes.com/opinion/editorial/coronavirus-double-disaster/articleshow/74905765.cms
10. https://freedomhouse.org/article/pandemics-global-challenge-democracy-should-be-met-global-response
11. https://www.uscirf.gov/sites/default/files/2020%20Factsheet%20Covid-19%20and%20FoRB.pdf
12. https://economictimes.indiatimes.com/news/politics-and-nation
13. https://www.thehindubusinessline.com/news/national/survey-finds-smaller-towns-unprepared-to-handle-fastspreading-covid-19/article32392618.ece

***

मानव विकास और आर्थिक विकास

डॉ. अमूल्य कुमार सिंह *

मानव विकास आर्थिक विकास का महत्वपूर्ण अंग है । मानव विकास में सुधार या कमी स्वास्थ्य, शिक्षा और आमदनी में बदलाव से ही होती । जन्म के समय जीवन की संभावना विश्व भर में लगभग 7 वर्ष बढ़ी है और स्वास्थ्य में यह उल्लेखनीय सुधार के संकेत है । सब सहारन अफ्रीका और दक्षिण एशिया में यह प्रगति सबसे अधिक हुई है । जहाँ 1990 से लेकर इन दोनों ही क्षेत्रों में करीब 11 वर्षों की वृद्धि देखने को मिली है । 1990 की तुलना में स्कूल आयु के बच्चों के लिए आज 4 वर्ष अधिक स्कूल में रहने की संभावना है । जबकि भारत में 1990 और 2017 के बीच भारत में भी जन्म के समय जीवन की संभावना करीब 11 वर्ष बढ़ी है और 1990 की तुलना में स्कूल आयु के बच्चे 4.7 वर्ष अधिक स्कूल में पढ़ने की संभावना बढ़ी है । वहीं मानव विकास सूचकांक के ताजा अनुक्रम के अनुसार, 189 देशों में से भारत एक पायदान ऊपर चढ़कर 130 पर पहुँच गया है । नार्वे, स्विटजरलैण्ड, आस्ट्रेलिया, आयरलैंड और जर्मनी सबसे ऊपर है, वहीं बांग्लादेश 136 वें स्थान पर व पाकिस्तान 150 वें स्थान पर है ।

स्वन्त्रता के पश्चात मानव विकास के बिंदु-------

★मानव विकास और स्वास्थ्य

★मानव विकास और शिक्षा

★मानव विकास और रोजगार

★मानव विकास और आमदनी

★मानव विकास और सामाजिक सुरक्षा

मानव विकास और स्वास्थ्य :-

मानव विकास में निवेश खासतौर पर स्वास्थ्य व शिक्षा के क्षेत्र में अत्यंत आवश्यक है और महिलाओं व माताओं पर फोकस के परिणाम दीर्घकालिक हो सकते हैं । बांग्लादेश दशकों से गरीबी के दुष्चक्र में फंसा था लेकिन जन स्वास्थ्य और कौशल एवं स्वास्थ्य व सार्वजनिक आधारभूत ढांचे के क्षेत्र में सही कदम उठाकर उसने इस कुचक्र से मुक्ति पा ली । महिलाओं और सामाजिक सुविधाओं पर अधिक ध्यान देकर विभिन्न सामाजिक सूचकांकों पर बांग्लादेश भारत से बेहतर प्रदर्शन कर रहा है । भारत का स्वास्थ्य तंत्र सार्वजनिक एवं निजी स्वास्थ्य से मिलकर बना है । आयुष्मान भारत स्वास्थ्य बीमा योजना गरीबों तक स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच बेहतर बनाती है , लेकिन बहुत से मुद्दे स्वास्थ्य तंत्र को नुकसान पहुंचाते हैं जैसे चिकित्सा कर्मियों का योग्यता के मुकाबले कम वेतन और ग्रामीण क्षेत्रों में चिकित्सकों की कमी । स्वास्थ्य क्षेत्र के इन मूलभूत रोगों के प्राथमिक उपचार पर अधिक खर्च

* विभागाध्यक्ष, अर्थशास्त्र विभाग, राकीय पी. जी. कॉलेज, ओबरा, सोनभद्र

की जरूरत है । भारत सरकार जीडीपी का 1% स्वास्थ्य पर खर्च करती है , जो जी-20 समूह के देशों में सबसे कम है चीन जीडीपी का 3% और ब्राजील जीडीपी का 4% स्वास्थ्य पर खर्च करता है । भारत में केंद्र व राज्यों को स्वास्थ्य के लिए बड़ा बजट आवंटित कर तुरंत जन स्वास्थ्य खर्च में निवेश दो गुना कर देना चाहिए । " मिलाप " जैसी ऑनलाइन क्राउडफंडिंग वेबसाइट पर ऐसे माता-पिता की गुहार की भरमार है जो अपने बीमार बच्चे के इलाज के लिए वित्तीय मदद मांग रहे हैं । हम स्वास्थ्य तंत्र को कई अन्य तंत्र के रूप में देख सकते हैं और आम बजट को बेहतर ढंग से खर्च कर सकते हैं । स्वास्थ्य सेवा के तीन विशिष्ट तंत्र को विभिन्न प्रकार की दक्षता की आवश्यकता है । एक - रोग निवारक एवं कल्याण संबंधी स्वास्थ्य सेवाएं जो हर व्यक्ति की पहुंच में हो । इस क्षेत्र में निजी क्षेत्र के लिए व्यापक संभावनाएं हैं ।सरकार निम्न आय वर्ग के परिवारों को सालाना चेकअप वाउचर देकर संपूर्ण राष्ट्र के लिए सालाना चेकअप अनिवार्य कर सकती है । दो - अस्पताल की स्वास्थ्य सेवाएं इसमें निजी एवं सार्वजनिक दोनों संस्थाओं के लिए अवसर हैं । अस्पताल सेवाओं तक गरीबों की पहुंच में सहायक आयुष्मान भारत योजना का दायरा बढ़ाकर इसमें 18 वर्ष से कम उम्र के बच्चों को शामिल किया जा सकता है । यह थोड़ा महंगा कदम हो सकता है लेकिन इसमें बच्चों एवं उनके परिवारों की सेहत सुरक्षित हो सकेगी । तीन - दुर्लभ रोग एवं आपातकालीन स्वास्थ्य सेवाएं , हालांकि इसके लिए विशेषज्ञता एवं परिष्कृत सेवाओं की जरूरत है बहुत ही कम लोग इसके तहत स्वास्थ्य सेवाओं का लाभ लेते हैं और इसकी कीमत अत्यधिक है सबके द्वारा देय एवं सबको लाभान्वित करने वाली राष्ट्रीय स्वास्थ्य बीमा योजना के माध्यम से आपातकालीन सेवाओं की लागत सरकार वहन कर सकती है । ध्यान देना होगा कि जनता के स्वास्थ्य की अनदेखी कर कोई देश तरक्की नहीं कर सकता और भारत ने लंबे अरसे से साधक मानव विकास की अनदेखी की है यही वजह है कि उत्कृष्ट परिणाम नहीं मिल पाए हैं । अतः सरकार को चाहिए कि स्वास्थ्य सेवाओं पर खर्च बढ़ाये ,जिससे स्वास्थ्य असमानता काम हो सके ।

★मानव विकास और शिक्षा :-

" महात्मा गांधी ने कहा है; शिक्षा से अभिप्राय व्यक्ति के शारीरिक , मानसिक एवं आध्यात्मिक विकास की प्रक्रिया के से है"। शिक्षा एक सोद्देश्यपूर्ण सतत गतिशील तथा सामाजिक प्रक्रिया है , जिसके द्वारा मनुष्य की जन्मजात एवं अंतर्निहित शक्तियों का विकास किया जाता है और जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति अपने वाह्य वातावरण से सामंजस्य स्थापित करने में सफल हो जाता है शिक्षा व्यक्ति व समाज दोनों के लिए समान रूप से आवश्यक है । शिक्षा को हम अत्यंत सरल रूप में व्यवहार का परिमार्जन भी कर सकते हैं परिमार्जन शब्द सदैव ही सकारात्मक अथवा वांछनीय दिशा की ओर होने का संकेत करता है ।

आर्थिक विकास के प्रत्येक अंग उत्पादन , वितरण , संगठन, प्रशासन एवं अनुसंधान से मनुष्य का घनिष्ठ संबंध है वही विभिन्न प्रक्रियाओं को संचालित करता है तथा विकास को गति एवं दिशा देता है । इसलिए इसमें माननीय साधनों का इतना महत्व प्राप्त है । मनुष्य की क्षमता , योग्यता तथा निपुणता को जितना अधिक बढ़ाया जाएगा उतना ही उत्तम प्रभाव आर्थिक विकास पर होगा ।

मनुष्य की इन शक्तियों को उन्नत बनाने का कार्य शिक्षा का है । शिक्षा और आर्थिक विकास में निकट का संबंध है । शिक्षा लोगों की तकनीकी ज्ञान विवेक एवं साहस में वृद्धि करती है जिससे आर्थिक क्रियाओं का विस्तार होता है, साधनों का विवेकपूर्ण उपयोग संभव बनता है तथा बचत का उत्पादक निवेश किया जाता है । विज्ञान तथा अनुसंधान द्वारा उत्पादन तकनीकों और नए परिवर्तनों का विकास होता है जिससे उत्पादकता में वृद्धि होती है और देश की आर्थिक वृद्धि की दर बढ़ती है । विकासशील देशों में आर्थिक विकास करने के लिए शिक्षा का विकास पहले करना पड़ता है । शिक्षा एक उत्प्रेरक शक्ति के रूप में कार्य करती है और आर्थिक तथा सामाजिक विकास की गति को बढ़ाती है, ऐसे देशों की परंपरागत अर्थव्यवस्था के विकास के अवरोधक अनेक धार्मिक सांस्कृतिक समाजशास्त्री और मनोवैज्ञानिक कारक होते हैं । अज्ञान और निरक्षरता इन अवरोधकों के मूल में होती है । अतएव शिक्षा परिवर्तन के अभिकर्ता की भूमिका निभानी पड़ती, शिक्षा जनता के पिछड़ेपन को कम करके उसकी गतिशीलता और उत्पादकता बढ़ाकर तथा नवाचारों की सूझ पैदा कर विकास के अवरोधकों को कमजोर कर देती है ।

★मानव विकास और रोजगार :- रोजगार मानव विकास से प्रत्यक्ष रूप से शिक्षा से जुड़ा है अगर कोई व्यक्ति रोजगार कमाना चाहता है तो उसको शिक्षित होना जरूरी है उसे उस क्षेत्र का ज्ञान होना चाहिए जिसमें वह कार्य करता है । सरकार ने लोगों को रोजगार के लिए प्रशिक्षण देना भी शुरू किया है ताकि वह कौशल बन सके और रोजगार कमा सके सबसे पहले सरकार द्वारा ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना शुरू की गई थी जिसमें गरीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवार में से किसी एक वयस्क सदस्य को साल के 50 से 100 दिन गांव के आसपास रोजगार निश्चित रूप से दिलाया जाता है। हमारी वर्तमान सरकार ने भी प्रधानमंत्री रोजगार योजना को शुरू किया है जिसके अंदर लोगों को कम दर पर ब्याज दिया जाता है ताकि लोग बैंकों से पैसा लेकर अपना कोई छोटा उद्योग या व्यवसाय शुरू करके रोजगार कमा सकें । सरकार ने मेक इन इंडिया जैसी कई योजनाएं शुरू की हैं जिससे उन्होंने उन लोगों को अपने काम शुरू करने की मदद की ताकि वह अपने साथ साथ औरों को भी रोजगार दिला सके साथ ही विदेशी कंपनियों को भी भारत में निवेश करना शुरू किया है और रोजगार के अवसरों में वृद्धि हुई है बेरोजगारी को खत्म करने का सबसे कारगर उपाय स्वरोजगार ही है भारत जैसे देश में जनसंख्या ज्यादा होने के कारण बेरोजगारी बढ़ी है और देश की अर्थव्यवस्था को खराब कर रहे हैं । रोजगार न मिलने के कारण लोग अपनी जीविका चलाने के लिए गलत कामों का सहारा लेते हैं जिससे कि अपराध बढ़ते हैं हमें और सरकार को मिलकर रोजगार को बढ़ावा देने के लिए प्रयास करने होंगे लोगों को शिक्षा की तरफ ध्यान देना होगा ताकि वह अपनी शिक्षा के बल पर रोजगार प्राप्त कर सकें ।

★मानव विकास और आमदनी :- विकास के मापदंड के रूप में प्रति व्यक्ति राष्ट्रीय आय में वृद्धि की दर को ही प्रयुक्त किया जाता है और राष्ट्र इसी में वृद्धि को अधिकतम बनाने के लक्ष्य को लेकर अपने आर्थिक नीतियां बनाते हैं परंतु नोबेल पुरस्कार विजेता अर्थशास्त्री अमर्त्य सेन के अनुसार मात्र प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि से यह तय नहीं होता कि इससे व्यक्तियों की कार्य क्षमता मे समुचित वृद्धि हो पा रही

है । प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि के साथ-साथ लोगों को शिक्षा और स्वास्थ्य के स्तर में वृद्धि की दर भी समुचित हो तभी जाकर व्यक्ति की विभिन्न लक्ष्यों में से समुचित लक्ष्य का चुनाव कर उसे प्राप्त करने की क्षमता में वृद्धि हो सकेगी । नीतियों को दृष्टिगत रखते हुए प्रोफेसर अमर्त्य सेन के विचारों से प्रभावित होकर पाकिस्तानी अर्थशास्त्री प्रोफेसर महबूब-उल-हक ने विकास के बेहतर मापदंड के रूप में सन 1990 में मानव विकास सूचकांक की अवधारणा प्रस्तुत की । मानव विकास सूचकांक की गणना में प्रति व्यक्ति आय के साथ-साथ शैक्षणिक और स्वास्थ्य स्तर में बेहतरी को भी शामिल किया जाता है और इन तीनों को समान महत्व प्रदान किया जाता है इस सूचकांक का अधिकतम मूल्य 1 हो सकता है ।

संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम से 1990 से ही प्रति वर्ष विभिन्न मानव विकास सूचकांक की रिपोर्ट प्रकाशित करता आ रहा है और सन 2015 की रिपोर्ट सन 2014 के आंकड़ों पर आधारित है । यह इसकी 25 वीं रिपोर्ट है । इस रिपोर्ट में प्रदत्त भारत संबंधी आंकड़ों से स्पष्ट हो जाता है कि इन वर्षों में विश्वव्यापी मंदी की पृष्ठभूमि में भी अपनी राष्ट्रीय आय की ऊंची दर को बनाए रखने में सफल भारत अपनी त्रुटिपूर्ण विकास नीतियों के कारण एक ओर तो वह आय के वितरण में बढ़ती विषमता को रोकने में विफल रहा है । दूसरी ओर उसकी आय वृद्धि सामाजिक विकास और शिक्षा एवं स्वास्थ्य सेवाओं के बेहतर स्तर के रूप में पंडित नहीं हो सकी हैं । शिक्षा और स्वास्थ्य के क्षेत्र इंसानी सेवाओं का संक्षिप्त विस्तार ना होने से देश की आबादी के एक बड़े हिस्से को बहुआयामी गरीबी की जकड़न से भी मुक्ति नहीं दिलाई जा सकी है । लैंगिक समता और महिलाओं के सशक्तिकरण की दृष्टि से भारत अपने पड़ोसी देशों जैसे बांग्लादेश और पाकिस्तान की तुलना में ही पिछड़ रहा है हमारे नेता भले ही इंडिया शाइनिंग या आने वाले वर्षों में भारत को विश्व की अर्थव्यवस्था को गतिमान बनाने वाला राष्ट्र कहते रहे । यह मानव सूचकांक की दृष्टि से तो पिछड़ता जा रहा है । सन 2014 में मानव विकास सूचकांक के क्रम में कि राष्ट्रों में भारत का स्थान 130 वां है जो उसकी प्रति व्यक्ति आय के क्रम से 4 अंक नीचे है ।

★मानव विकास और सामाजिक सुरक्षा :- सामाजिक सुरक्षा सामाजिक परिवर्तन और प्रगति के लिए एक साधन है" । सामाजिक सुरक्षा वह सुरक्षा है जिसे समाज उचित संगठन के माध्यम से प्रस्तुत करता है जिसके जोखिम उसके सदस्यों के सामने आते हैं जोखिम अनिवार्य रूप से आकस्मिक है जिनके खिलाफ छोटे साधनों का व्यक्ति अपनी क्षमता या दूरदर्शिता से या यहां तक कि निजी संगति में अपनी संगति के साथ प्रभावी ढंग से प्रदान नहीं कर सकता । ब्लूम के अनुसार " प्रतिकूल परिस्थितियों के माध्यम से लोगों की मदद करने के तरीके के रूप में देखा गया था जो अनिवार्य रूप से कमजोर श्रमिकों और गरीब लोगों को धनी वर्ग की तुलना में अधिक विनाशकारी रूप से प्रभावित करेगा"। सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रम एक सुनियोजित योजना के अंतर्गत पाँच दानवों के विरुद्ध अभियान है । सामाजिक उन्नति के लिए अभाव, अज्ञानता , मलीनता, सुस्ती और बीमारी इन पाँच दानवों से लड़ना सामाजिक सुरक्षा है । जिसके लिए सामाजिक बीमा तथा सामाजिक सहायता कार्यक्रम एवं बीमा योजनाएं बनायी एवं क्रियान्वित की जाती हैं सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों के अंतर्गत तीन

मूलभूत मान्यताएं हैं । नियोजन का उचित स्वास्थ्य सेवा बच्चों के भत्ते की योजना इस प्रकार सामाजिक सुरक्षा कारणों से यह है कि उसे व्यक्ति को जीवन में कुछ जोखिमों तथा आकस्मिक घटनाओं के भार से सुरक्षा मिलती है जो स्वयं वहन करने में असमर्थ होता है सामाजिक सुरक्षा योजना के माध्यम से वहन कर सकता है । हानि की मात्रा एक प्रकार से समाज के कई लोगों में बंट जाती है । सामान्य तौर से सामाजिक सुरक्षा कार्यक्रमों में निजी स्तर पर किए गए सुरक्षा कार्य सम्मिलित नहीं किए जाते ।

किसी भी देश की प्रगति का वास्तविक पैमाना उसकी अर्थव्यवस्था के विकास के साथ-साथ मानव विकास में प्रगति होना भी आवश्यक है । यह आवश्यक नहीं कि जिस देश का आर्थिक विकास तेज गति से हो रहा हो वह मानव विकास में भी उतना ही प्रगति करें । आज हमारा देश दुनिया की सबसे प्रगतिशील अर्थव्यवस्थाओं में है लेकिन माना विकास सूचकांक में आज भी हम पिछड़े देशों में शामिल होते हैं । संयुक्त राष्ट्र विकास कार्यक्रम (यूएनडीपी) द्वारा जारी मानव विकास सूचकांक 2016 में भारत एक 188 देशों में 131वें स्थान पर रहा है यह मानव विकास लोगों को उपलब्ध शिक्षा तथा स्वास्थ्य जैसी सुविधाओं व उनके जीवन स्तर के मापदंडों पर तैयार किया जाता है ।

संदर्भ :

- आर्थिक समीक्षा
- योजना
- भारतीय अर्थव्यवस्था – रूद्र दत्त सुंदरम
- इंटरनेट व समाचार पत्र इत्यादि ।

***

''प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि तथा शिक्षकों की अभिवृत्ति पर विद्यालयीय दशाओं के प्रभाव का अध्ययन''

मुकेश कुमार मखीजा *
डॉ. ऋषिकेश मिश्रा **

प्रस्तावना :

प्रत्येक शोधकार्य का मुख्य उद्देश्य किसी अनुसन्धान समस्या का समाधान करना होता है। इसलिए प्रत्येक शोध में तथ्यों का एकत्रीकरण कर उनका विश्लेषण एवं व्याख्या की जाती है। तथ्यों के आधार पर शोधकार्य को अंतिम स्वरूप प्रदान करने के लिए निष्कर्ष व परिणाम प्राप्त किये जाते हैं। किसी भी कार्य का सार्थक परिणाम उसका निष्कर्ष होता है इसके अभाव में कार्य का प्रभाव दृष्टिगोचर नहीं होता है।

प्रस्तुत शोधकार्य में **''प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि तथा शिक्षकों की अभिवृत्ति पर विद्यालयीय दशाओं के प्रभाव का अध्ययन''** किया गया है। अध्ययन के निर्धारित उद्देश्य व परिकल्पनाओं के सत्यापन हेतु संकलित दत्त विश्लेषण एवं निर्वाचन की प्रक्रिया के पश्चात उनके निष्कर्ष निकाले गए हैं।

शोध का औचित्य :–

विद्यालय एक ऐसा विशिष्ट स्थान है, जहां जीवन के निश्चित गुण और कुछ विशेष प्रकार की क्रियाओं और व्यावसायों की शिक्षा इस उद्देश्य से दी जाती है कि बालक का विकास वांछित दिशा में हो। शिक्षा प्रक्रिया निश्चित व्यक्तियों, अध्यापकों और निश्चित बच्चों के बीच चलती है। यह समयबद्ध होती है, अतः इसका समयबद्ध पाठ्यक्रम होता है। विद्यालय वातावरण के अन्तर्गत बच्चों को शारीरिक, मानसिक, चारित्रिक, नैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आध्यात्मिक विकास होता है।

राष्ट्रीय शिक्षा नीति (POA - 1992) में गुणात्मक शिक्षण में स्थायी सुधार के लिए अधिगम मानक स्तर प्राप्त करने की आवश्यकता के महत्व को बताया गया है। प्राथमिक व उच्च प्राथमिक स्तर पर न्यूनतम अधिगम के महत्व को भी 1992 में स्वीकार किया है।

हनुमानगढ़ जिले में 1994 में कक्षा 1 का व 2001 में कक्षा 8 का नामांकन के आधार पर ठहराव 20.64 प्रतिशत पाया गया है। इसके लिए आवश्यक है कि प्राथमिक विद्यालय 1 किमी. से 1.5 किमी. दूरी पर होना चाहिए, जिससे छात्र आसानी से विद्यालय में पहुंच सकें।

शिक्षण रोचक व आनन्ददायी बनाने हेतु प्राथमिक कक्षाओं में समस्त अध्यापकों को विषयगत प्रशिक्षण दिये गये हैं। प्राथमिक शिक्षा के सार्वजनीकरण के लक्ष्य को प्राप्त करने के लिए परियोजना में वैकल्पिक विद्यालयों, मदरसों व पूर्व प्रारम्भिक शिक्षा केन्द्रों की स्थापना की गई है।

राजस्थान में वंचित वर्गों की श्रेणी में महिला वर्ग भी एक बहुत बड़ा वर्ग शिक्षा से वंचित वर्ग है। आज महिला सशक्तिकरण के लिए डी.पी.ई.पी. द्वारा ब्रिज कोर्स के माध्यम से बालिकाओं को जोड़ा जा रहा है। इसी प्रकार घुमन्तू जाति के बच्चों, विशेषकर लड़कियों के लिए भी आवासीय व्यवस्था इस कार्यक्रम के माध्यम से की जाती है। प्राथमिक स्तर पर गुणात्मक शिक्षा की उपलब्धि जानने हेतु शोध कार्य करने पर भी बल दिया है। शिक्षण को जीवनोपयोगी बनाया जाना वर्तमान समय की आवश्यकता बन गई है।

शिक्षा के सार्वभौमिकरण एवं गुणवत्ता बढ़ाने हेतु सरकार द्वारा नई–नई योजनाएँ लाने के बावजूद भी बालक–बालिकाओं का विद्यालय में नामांकन व ठहराव प्रतिशत अपेक्षा के अनुरूप नहीं हो पाया है। वर्तमान में सरकार छात्रों को पका हुआ भोजन (पोषाहार) एवं निःशुल्क शिक्षा प्रदान कर रही

---

* शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, जयपुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय
** प्रोफेसर, दर्शनशास्त्र विभाग, जयपुर राष्ट्रीय विश्वविद्यालय

है। पांचवी तक निःशुल्क पाठ्य–पुस्तकें उपलब्ध करवा रही है। शिक्षा की स्थिति में उत्थान हेतु अनेक योजनाएँ यथा शुल्क मुक्ति, वस्त्र – पुस्तकादि का निःशुल्क वितरण, छात्रवृत्तियाँ, भत्ते आदि प्रस्तुत की गई हैं। इन प्रयासों के बाद विद्यालयों में शैक्षिक स्थिति का अध्ययन करना नितान्त आवश्यक समझा गया है। अतः इन्हीं बिन्दुओं को मध्यनजर रखते हुए **''प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि तथा शिक्षकों की अभिवृत्ति पर विद्यालयी दशाओं के प्रभाव का अध्ययन''** विषय पर शोधकार्य किया गया है।

समास्या कथन :–

समस्या का अभिकथन सुस्पष्ट तथा लक्ष्योन्मुखी होना चाहिए। प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में समस्या का अभिकथन इस प्रकार हैं :–

''प्राथमिक विद्यालय के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि तथा शिक्षकों की अभिवृत्ति पर विद्यालयी दशाओं के प्रभाव का अध्ययन।''

समस्या में प्रयुक्त चर :–

प्राथमिक विद्यालय (कक्षा 1 से 5) :–

वह विद्यालय जहाँ विद्यार्थी अपने विद्यालयी जीवन की शुरुआत करता है। यहां विद्यार्थी को कक्षा 1 से 5 तक शिक्षा प्रदान की जाती है तथा जिसमें 6 से 14 वर्ष की आयु के बालक/बालिकाओं को शिक्षा प्रदान की जाती है। ऐसे विद्यालय प्राथमिक विद्यालय के अन्तर्गत आते हैं।

विद्यालय :–

विद्यालय शब्द ' विद्या + आलय' से मिलकर बना हैं। इसका शाब्दिक अर्थ है कि **'विद्या का आलय' या 'विद्या का घर'** अर्थात वह स्थान जहाँ विद्या या ज्ञान प्रदान किया जाता है, वही विद्यालय है।

राजकीय विद्यालय :–

राजकीय विद्यालय से तात्पर्य है जिसका समस्त शैक्षिक तथा वितीय प्रशासन राज्य सरकार के नियंत्रण में होता है तथा सरकारी नियमों द्वारा ही राजकीय विद्यालयों की समस्त गति विधियों का सचांलन होता है।

गैर–राजकीय विद्यालय :–

जैसा कि नाम ही स्पष्ट होता है कि गैर–राजकीय विद्यालय अर्थात ऐसे विद्यालय जिनकी समस्त गतिविधियों का निर्धारण किसी निजी संस्थान या संगठन द्वारा होता है। गैर–राजकीय विद्यालय ऐसे विद्यालय होते हैं, जिसमें यद्यपि नियम तो राज्य सरकार के ही लागू होते हैं, लेकिन सचांलन किसी निजी सगंठन द्वारा अपने तरीकों से किया जाता है तथा ऐसे गैर–राजकीय विद्यालयों में समस्त शैक्षिक वित्तीय नियत्रण निजी व्यक्ति के के हाथ में होता है।

शैक्षिक उपलब्धि :–

शैक्षिक उपलब्धि का तात्पर्य किसी विषय या पाठ में छात्र द्वारा अर्जित ज्ञान या कुशलता से है।

चैपलिन (1975) के अनुसार :–

''शैक्षिक उपलब्धि का तात्पर्य शैक्षिक कार्य में शिक्षकों द्वारा मानकीकृत परीक्षणों द्वारा या इन दोनों के संयोग द्वारा मूल्यांकित उपलब्धि या प्रवीणता के विशिष्ट स्तर से है।''

अभिवृत्ति :–

अभिवृत्ति से तात्पर्य व्यक्ति के उस दृष्टिकोण से है जो किसी व्यक्ति, वस्तु, संस्था अथवा स्थिति के प्रति किसी विशेष प्रकार के व्यवहार को इंगित करता है। अभिवृत्ति एक परिकल्पनात्मक तथ्य है क्योंकि अभिवृत्ति को प्रत्यक्ष रूप से देखा नहीं जा सकता है, लेकिन इनके व्यवहारों को अनुभव किया जा सकता है।

अभिवृत्ति शब्द की उत्पत्ति Aptus शब्द से हुई है। Aptus शब्द लैटिन भाषा का शब्द है, जिसका अर्थ योग्यता या सुविधा है। अभिवृत्ति एक परिकल्पनात्मक तथ्य है क्योंकि अभिवृत्ति को प्रत्यक्ष

रूप से देखा नहीं जा सकता है, लेकिन इनके प्रभावों को अनुभव किया जा सकता है। अभिवृत्ति एक परिकल्पनात्मक तथ्य होते हुए भी मनोवैज्ञानिकों के लिये बहुत महत्वपूर्ण रही है, क्योंकि अभिवृत्ति का सम्बंध अनुभव और व्यवहार के संगठन से है।

विद्यार्थी :–

प्रस्तुत शोध अध्ययन हेतु चयनित समस्या में प्रयुक्त शब्द विद्यार्थी का आशय ऐसे बालकों से है जो किसी भी राजकीय अथवा अराजकीय विद्यालय में शिक्षा प्राप्त कराने के उद्देश्य से प्रवेश लेकर उस विद्यालय के प्रवेश रजिस्टर में अपना नाम दर्ज करवाता है तथा उस विद्यालय के नियमों के अनुसार उस विद्यालय में नियमित अथवा अनियमित रूप से शिक्षा प्राप्त करता है।

विद्यालयीय दशाएँ : –

विद्यालयीय दशाओं का अध्ययन करने के लिए विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया जो कि निम्न प्रकार से है –

1. उच्च स्तर के विद्यालय
2. औसत स्तर के विद्यालय
3. निम्न स्तर के विद्यालय

शोध के उद्देश्य :–

किसी कार्य को करने से पूर्व उसे करने का कारण निर्धारण कर लेना ही उस अनुसंधान का उद्देश्य कहलाता है। अनुसंधान का उद्देश्य ही निश्चित उद्देश्य को लेकर आगे अग्रसर होता है। अपने अनुसंधान कार्य में संलग्न होते समय अनुसंधानकर्त्ता के मन में भी निश्चित रूप से कोई न कोई लक्ष्य या उद्देश्य अवश्य रहता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए प्रस्तुत शोध के निम्न उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं :–

1. प्राथमिक शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन।
2. प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध विद्यालयीय दशाओं (सुविधाओं) का अध्ययन करना।
3. उच्च स्तर की विद्यालय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा औसत स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।
4. औसत स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा निम्न स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।
5. उच्च स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा निम्न स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।
6. उच्च स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले राजकीय तथा गैर–राजकीय विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।
7. औसत स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले राजकीय तथा गैर–राजकीय विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।
8. निम्न स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले राजकीय तथा गैर–राजकीय विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन।

शोध की परिकल्पनाएँ :–

अनुसंधान के लिए आवश्यक है कि अनुसंधान को निश्चित दिशा देने के लिए अपनी कल्पना, अनुभव या अन्य स्त्रोतों के आधार पर एक सामान्य तर्क वाक्य का निर्माण करें। जिसका अनुसंधान के दौरान परीक्षण किया जा सकें। ऐसा तर्क वाक्य परिकल्पना कहलाता है। अर्थात् परिकल्पना शोध समस्या के समाधान की आवश्यकता होती है, जिसकी पुष्टि करने का प्रयास शोधकर्त्ता द्वारा किया जाता है।

उपर्युक्त दिए गए शोध विषय के आधार पर निम्नलिखित परिकल्पनाएँ परिलक्षित होती हैं :–

1. प्राथमिक शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का स्तर सामान्य है।
2. प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध विद्यालयीय दशाओं (सुविधाओं) का स्तर सामान्य है।
3. उच्च स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा औसत स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई अन्तर नहीं है।
4. औसत स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा निम्न स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
5. उच्च स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा निम्न स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
6. उच्च स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले राजकीय तथा गैर–राजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
7. औसत स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले राजकीय तथा गैर–राजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
8. निम्न स्तर की विद्यालयीय सुविधाओं वाले राजकीय तथा गैर–राजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

न्यादर्श :–

प्रस्तुत शोध में शोधकर्त्ता ने श्रीगंगानगर जिले का सर्वेक्षण किया है, जिसमें राजकीय विद्यालय तथा गैर–राजकीय प्राथमिक विद्यालयों का चयन किया गया है। विद्यालयों के नाम निम्न लिखित हैं :–

राजकीय विद्यालय :–

(1) राजकीय माध्यमिक विद्यालय, राजपुरा पिपेरन, सूरतगढ़
(2) राजकीय माध्यमिक विद्यालय, 8 एन.एन.ए., पदमपुर
(3) राजकीय उच्च प्राथमिक विद्यालय, 26 बी.बी., पदमपुर

गैर–राजकीय विद्यालय :–

(4) सरस्वती उच्च माध्यमिक विद्यालय, पदमपुर (श्रीगंगानगर)
(5) जी.टी.बी. पब्लिक स्कूल, पदमपुर (श्रीगंगानगर)
(6) हॉपकिन्स एलीमैन्ट्री सी. सैं. स्कूल, पदमपुर (श्रीगंगानगर)

जनसंख्या :–

शोधकर्त्ता ने शोधकार्य के लिए श्रीगंगानगर जिले के प्राथमिक विद्यालयों के 270 छात्रों को चुना है।

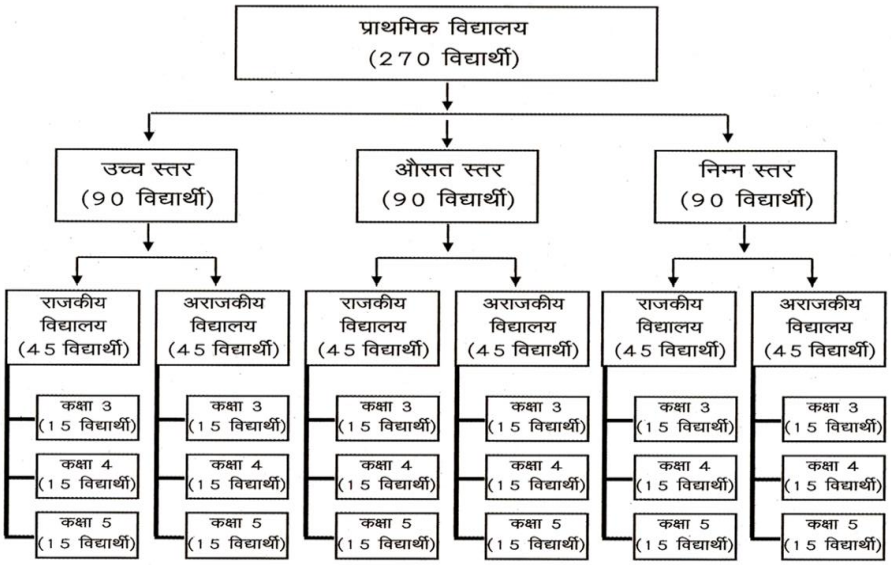

शोधकार्य में प्रयुक्त उपकरण :–

इनका विवरण निम्नलिखित है–

(1) प्राथमिक विद्यालय – शिक्षा अभिवृत्ति मापनी (उम्मे कुलसुम) :–

शोधकर्त्ता ने प्रयुक्त अभिवृत्ति मापनी में 50 कथनों को लिया है तथा इस कथन का प्रारूप प्राथमिक विद्यालय के स्तर का बनाया गया है। प्रत्येक कथन के लिये 5 विकल्प दिये गये हैं (पूर्णतः सहमत, सहमत, अनिश्चित, असहमत, पूर्णतः असहमत)। इन विकल्पों में से किसी एक का चयन किया जाना चाहिए। जो विकल्प सर्वाधिक उपयुक्त हो उसके सामने बने खाने में (✓) का निशान लगाना है।

(2) शैक्षिक संसाधन सूची (के.एस. मिश्रा) :–

शोधकर्त्ता ने प्रयुक्त प्रश्नावली में 30 कथनों को लिया है तथा कथन का प्रारूप प्राथमिक विद्यालय की कक्षा 3, कक्षा 4, कक्षा 5 के स्तर का बनाया गया है। सभी कथनों के उत्तर हाँ या नहीं में देने होंगें तथा प्रत्येक कथन के लिए 2 अंक का निर्धारण किया गया है। इस प्रकार कुल अंक भार 60 हुआ। प्रत्येक कथन का हाँ में जवाब देने पर 2 अंक प्राप्त होंगें तथा यदि उत्तर नहीं में दिया गया तो इनके शून्य ;0द्ध अंक प्रदान किया जायेगा।

(3) शैक्षिक उपलब्धि परीक्षण (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली) :–

शोधकर्त्ता ने राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण परिषद्, नई दिल्ली द्वारा निर्मित मानकीकृत परीक्षण का उपयोग किया, जिसमें 40 प्रश्नों के परीक्षण का उपयोग किया तथा समस्त प्रश्न वस्तुनिष्ठ लिये गये तथा प्राथमिक विद्यालय की कक्षा–3, कक्षा–4, तथा कक्षा–5, सभी के लिए अलग –अलग प्रश्न–पत्र बनाये गये है तथा विद्यार्थियों को सही उत्तर को कोष्ठक में भरना होगा।

इस प्रकार से शोधकर्त्ता ने विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर विद्यालयीय दशाओं के प्रभाव का पता लगाया।

प्रस्तुत शोध कार्य में अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि को अपनाया गया है तथा विद्यालयों के चयन में यादृच्छिक लाटरी विधि का प्रयोग किया गया है।

शोध में प्रयुक्त सांख्यिकी :–

सांख्यिकी की महत्ताः एवं अति आवश्यकता को ध्यान में रखते हुए अनुसंधानकर्त्ता ने प्रस्तुत अनुसंधान कार्य में निम्न सांख्यिकी विधियों का प्रयोग किया है।

मध्यमान (Mean) :–

मध्यमान प्राप्ताकों का केन्द्रवर्ती मान होता है। जो अन्य सभी प्रदत्तों का प्रतिनिधित्व करता है। यह एक औसत मूल्य है, जो पद मूल्यों के क्षेत्र में उसकी सांख्या का भाग देने पर प्राप्त होता है।

मध्यमान ज्ञात करने के लिए निम्नलिखित सूत्र का प्रयोग किया गया है –

$$\text{मध्यमान} = \frac{\Sigma X}{N}$$

X = श्रेणी का मध्यमान
$\sum X$ = दिये गये समंकों का योग
N = कुल आंकड़े

मानक विचलन (Standard Deviation) :–

मानक विचलन या प्रमाप विचलन में पद–मूल्यों के वर्गों के योग के माध्य (x) का वर्ग घटाकर प्राप्त मूल्य का वर्गमूल निकाला जाता है। यही मानक विचलन कहलाता है।

मानक विचलन ज्ञात करने का सूत्र निम्न प्रकार है :–

$$\text{मानक विचलन (SD)} = \sqrt{\frac{\Sigma dx^2}{N} - \left[\frac{\Sigma dx}{N}\right]^2}$$

$\sum dx^2$ = समान्तर माध्य से ज्ञात किये गये विचलनों का वर्ग
$\sum dx$ = समान्तर माध्य से ज्ञात किये गये विचलन
N = प्रदत्तों की संख्या

टी–परीक्षण (T-Test) :–

किसी न्यादर्श के मध्यमानों की परस्पर विभिन्नता की सार्थकता का परीक्षण करने हेतु टी–परीक्षण का प्रयोग करते है।

टी–परीक्षण ज्ञात करने का सूत्र निम्न प्रकार है :–

$$t = \frac{X_1 - X_2}{S\sqrt{\frac{1}{N_1} + \frac{1}{N_2}}}$$

इस सूत्र में :–

X_1 व X_2 = संकेताक्षर दो प्रतिदर्शों के माध्यों के लिए।
S = संकेताक्षर दो प्रतिदर्शों के मध्य अन्तर के मानक विचलन के लिए।
N_1 व N_2 = संकेताक्षर दो प्रतिदर्शों में पदों की संख्या के लिए प्रयुक्त किए गए हैं।

S का मान निम्न सूत्र द्वारा परिकलित (Calculated) किया जाता है :–

$$S = \sqrt{\frac{\Sigma (X_1 - X_1)^2 + \Sigma (X_2 - X_2)^2}{N_1 + N_2 - 2}}$$

शोध अध्ययन में निष्कर्षों का महत्व :–

प्रतिवेदन में शोध निष्कर्षो का समावेश अनिवार्य है क्योंकि ये हमें शोध अध्ययन के उन निष्कर्षो के बारे में बताते हैं जो कि संकलित दत्त उनके विश्लेषण एवं व्याख्या आदि से प्राप्त होते हैं। निष्कर्ष एवं सुझाव का शोधकार्य में अद्वितीय स्थान है।

1. निष्कर्ष द्वारा ही किसी समस्या का परिणाम ज्ञात होता है और इस परिणाम के बारे में सुझाव दिया जा सकता है।
2. निष्कर्ष ही किसी समस्या को वैध एवं विश्वसनीय ठहरा सकते हैं। अध्ययन में रही त्रुटियों को दूर करने का सुझाव दिया जा सकता है।
3. निष्कर्ष द्वारा ही किसी समस्या का प्रमापीकरण किया जा सकता है एवं सुझाव दिये जा सकते हैं।
4. निष्कर्ष द्वारा ही किसी समस्या को मापा जा सकता है और मापन के आधार पर विभिन्ना सुझाव दिये जा सकते हैं।
5. निकर्ष द्वारा ही किसी समस्या का मूल्यांकन किया जा सकता है। अतः निष्कर्ष एवं सुझावों का शोधकार्य में महत्वपूर्ण स्थान है।

प्रस्तुत अध्याय में इस अध्ययन के शोध परिणाम, निष्कर्ष एवं सुझाव संविष्ट है। शोध परिणाम, उद्देश्यों परिकल्पनाओं एवं सम्बन्धित शोध अध्ययनों के परिणामों के तुलनात्मक संदर्भ में प्रस्तुत किये गये हैं और अंत में इस क्षेत्र से सम्बन्धित भावी शोध अध्ययनों के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

निष्कर्ष :–

परिकल्पनाओं का परीक्षण करने के पश्चात् साम्प्राप्तियों के आधार पर जो निष्कर्ष निकाले गये वे निम्न प्रकार से प्रस्तुत किये गये हैं –

परिकल्पना संख्या (1) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित प्रथम परिकल्पना यह थी **''प्राथमिक शिक्षा के प्रति शिक्षकों की अभिवृत्ति का अध्ययन''**

अधिकतर शिक्षकों (50 प्रतिशत) प्राथमिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति अनुकूल स्तर की है। 42 प्रतिशत शिक्षकों की प्राथमिक शिक्षा के प्रति अभिवृत्ति अत्यधिक अनुकूल है। केवल 6 प्रतिशत शिक्षक प्राथमिक शिक्षा के प्रति तटस्थ अभिवृत्ति रखते हैं। प्राथमिक शिक्षा के प्रति प्रतिकूल अभिवृत्ति रखने वाले शिक्षकों का प्रतिशत केवल 2 है।

परिकल्पना संख्या (2) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित द्वितीय परिकल्पना यह थी **''प्राथमिक विद्यालयों में उपलब्ध विद्यालयीय दशाओं का अध्ययन करना।''**

इस निर्धारित परिकल्पना के अनुसार विद्यालयीय दशाओं का अध्ययन करने के लिए विद्यालयों में उपलब्ध सुविधाओं के आधार पर उनका वर्गीकरण किया गया जिसके उपरान्त यह प्राप्त हुआ कि 50 प्रतिशत विद्यालयों में सुविधाएं निम्न स्तर की थी अर्थात इन विद्यालयों में विद्यालय के भवन, फर्नीचर तथा कक्षा कक्ष आदि कम पाये गये। सुविधाओं की दृष्टि से 20 प्रतिशत विद्यालय औसत स्तर की सुविधा वाले प्राप्त हुए, इन विद्यालयों में भौतिक दृष्टि से कई हद तक सुविधाएं उपलब्ध थी तथा 30 प्रतिशत विद्यालय उच्च स्तर की सुविधा वाले थे। ऐसे विद्यालयों में शिक्षण एवं अधिगम से सम्बन्धित समस्त प्रकार की सुविधाएं देखी गई। इस विद्यालयों में मुख्य रूप से फर्नीचर, पाठ्य सामग्री, कक्षा कक्ष, ब्लैक बोर्ड तथा पीने के पानी की सुविधाएं उपलब्ध थी जो कि छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को मूलतः मुख्य रूप से प्रभावित करती है।

परिकल्पना संख्या (3) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित तृतीय परिकल्पना यह थी **''उच्च स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा औसत स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि मे सार्थक अन्तर नहीं है।''**

इस निर्धारित परिकल्पना की सांख्यिकी गणना के द्वारा परीक्षण करने पर टी मान 3.75 प्राप्त हुआ है तथा स्वतन्त्रता के अंश 178 का विश्वास के स्तर पर 0.05 व 0.01 पर टी मान 1.97 व 2.60 दिया हुआ है, जो कि ज्ञात टी मान से कम है। अतः यहाँ पर निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है। उच्च तथा औसत स्तर के विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान में भी अन्तर प्राप्त हुआ है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उच्च व औसत स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया जाता है। औसत स्तर की अपेक्षा उच्च स्तर के विद्यालयों की दशाएं अधिक अच्छी हैं।

परिकल्पना संख्या (4) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित चतुर्थ परिकल्पना यह थी **''औसत स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा निम्न स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।''**

इस निर्धारित परिकल्पना की सांख्यिकी गणना के द्वारा परीक्षण करने पर टी मान 4.18 प्राप्त हुआ है तथा स्वतन्त्रता के अंश 178 का विश्वास के स्तर पर 0.05 व 0.01 पर टी मान 1.97 व 2.60 दिया हुआ है, जो कि ज्ञात टी मान से कम है। अतः यहां पर निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है। औसत तथा निम्न स्तर के विद्यालय के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि के मध्यमान में भी अन्तर प्राप्त हुआ है। इन विद्यालयो में विद्यालयीय दशाओं में काफी अन्तर पाया गया।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि औसत व निम्न स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया जाता है। अतः यहाँ पर छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को काफी हद तक विद्यालयीय दशाएँ प्रभावित करती हैं।

परिकल्पना (5) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित पंचम् परिकल्पना यह थी **''उच्च स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि तथा निम्न स्तर की विद्यालयीय दशाओं वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।''**

इस निर्धारित परिकल्पना की सांख्यिकी गणना के द्वारा परीक्षण करने पर टी मान 8.81 प्राप्त हुआ है तथा स्वतन्त्रता के अंश 178 का विश्वास के स्तर पर 0.05 व 0.01 पर टी मान 1.97 व 2.60 दिया हुआ है, जो कि ज्ञात टी मान से कम है। अतः यहाँ पर निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है।

निष्कर्षत यह कहा जा सकता है कि उच्च स्तर तथा निम्न स्तर की सुविधाओं वाले विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में ज्यादा अन्तर है। अतः अगर सुविधाएं औसत या उच्च होती तो छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि पर उतना प्रभाव नहीं पड़ता जितना की निम्न स्तर की सुविधाएँ होने से पड़ता है। अतः विद्यालयों की विद्यालयीय दशाएँ भी छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करती है।

परिकल्पना (6) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित षष्ठम् परिकल्पना यह थी – **''उच्च स्तर के विद्यालयीय दशाओं वाले राजकीय तथा अराजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।''**

इस निर्धारित परिकल्पना की सांख्यिकी गणना के द्वारा परीक्षण करने पर टी मान 4.36 प्राप्त हुआ है तथा स्वतन्त्रता के अंश 88 का विश्वास के स्तर पर 0.05 व 0.01 पर टी मान 1.99 व 2.63 दिया हुआ है, जो कि ज्ञात टी मान से कम है। अतः यहाँ पर निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि उच्च स्तर के राजकीय व अराजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया जाता है। अर्थात अराजकीय विद्यालयों में विद्यालयी दशाएँ राजकीय विद्यालय की अपेक्षा काफी अच्छी हैं।

परिकल्पना (7) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित सप्तम् परिकल्पना यह थी – **''औसत स्तर के विद्यालयीय दशाओं वाले राजकीय व अराजकीय विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।''**

इन निर्धारित परिकल्पना की सांख्यिकी गणना के द्वारा परीक्षण करने पर टी मान 5.48 प्राप्त हुआ है तथा स्वतन्त्रता के अंश 88 का विश्वास के स्तर पर 0.05 व 0.01 पर टी मान 1.99 व 2.63 दिया हुआ है, जो कि ज्ञात टी मान से कम है। अतः यहाँ पर निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि औसत स्तर के राजकीय व अराजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

परिकल्पना (8) :–

शोधकर्त्ता द्वारा निर्मित अष्ठम् परिकल्पना यह थी – **''निम्न स्तर के विद्यालयीय दशाओं वाले राजकीय तथा अराजकीय विद्यालयों में विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर नहीं है।''**

इस निर्धारित परिकल्पना की सांख्यिकी गणना के द्वारा परीक्षण करने पर टी मान 5.89 प्राप्त हुआ है तथा स्वतन्त्रता के अंश 88 का विश्वास के स्तर पर 0.05 व 0.01 पर टी मान 1.99 व 2.63 दिया हुआ है, जो कि ज्ञात टी मान से कम है। अतः यहाँ पर निर्धारित परिकल्पना अस्वीकृत हो जाती है।

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि निम्न स्तर के राजकीय व अराजकीय विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में सार्थक अन्तर पाया जाता है।

अतः विद्यालयी सुविधाओं के समस्त पदों को देखते हुए पाया गया कि जिन विद्यालयों में निम्न स्तर की सुविधाएं उपलब्ध थी, वहाँ के छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि भी निम्न स्तर की थी एवं जिन विद्यालयों में औसत स्तर की पायी गई, वहाँ के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि औसत स्तर की, जहाँ पर सुविधाएँ अपेक्षाकृत उच्च स्तर की थी उन विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि अधिकतर उच्च व औसत देखी गयी। इस प्रकार स्पष्ट है कि प्राथमिक विद्यालयों की विद्यालयीय दशाओं एवं छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि में बहुत गहरा सम्बन्ध है जो छात्रों की शैक्षिक उपलब्धि को कई हद तक प्रभावित करता है।

प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि स्तर को उन्नत करने हेतु सुझाव :–

1. वर्तमान शोधकार्य केवल एक जिले के विद्यार्थियों पर ही किया
1. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में अध्यापकों की कमी को दूर करके विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।
2. अध्यापकों को अतिरिक्त कार्यभार से मुक्त कर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।
3. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों द्वारा कक्षा में शिक्षण सहायक सामग्री का प्रयोग करके विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।
4. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों द्वारा कक्षा में प्रभावशाली शिक्षण, उपयुक्त शिक्षण विधि तथा शिक्षण तकनीकी का प्रयोग करके विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।
5. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापक अगर अपने कर्त्तव्यों का जानल ईमानदारी पूर्वक करें, तो विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में भी वृ(की जा सकती है।
6. सरकारी एवं गैर सरकारी प्राथमिक स्तर पर शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन बड़े न्यादर्श पर किया जा सकता है।

7. सरकारी एवं गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
8. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों की शैक्षिक उपलब्धि को प्रभावित करने वाले कारकों का अध्ययन किया जा सकता है।
9. सरकारी एवं गैर सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के पाठ्यक्रम का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
10. माध्यमिक स्तर पर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन किया जा सकता है। प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि का अध्ययन देश के दूसरे भागों में किया जा सकता है।
11. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों में मध्याहन् भोजन योजना कार्यक्रम का विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि पर पड़ने वाले प्रभाव का अध्ययन किया जा सकता है।
12. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि से सम्बन्धित अध्ययन राज्य के विभिन्न जिलों में किया जा सकता है।
13. अध्यापक कक्षा में विद्यार्थियों की सहभागिता को बढ़ाकर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करा सकते हैं।
14. सरकारी प्राथमिक विद्यालयों के अध्यापकों द्वारा विद्यार्थियों को प्रतिदिन गृह कार्य देकर विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि करा सकते हैं।
15. अध्यापकों द्वारा कक्षा में पाठ्यवस्तु को रूचिकर ढंग से प्रस्तुत करके विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।
16. अभिभावकों द्वारा अपने बच्चों पर ध्यान देकर उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाया जा सकता है।
17. सरकार द्वारा प्रत्येक माह के अन्त में विद्यार्थियों का मूल्यांकन करने के लिए परीक्षा की व्यवस्था करनी चाहिए, जिससे विद्यार्थियों की शैक्षिक उपब्धि सम्बन्धी जानकारी प्राप्त हो सकें।
18. अध्यापकों को मध्याह्न भोजन पर ज्यादा ध्यान देकर शिक्षण कार्य पर ध्यान देने से विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि में वृद्धि की जा सकती है।

शैक्षिक निहितार्थ :–

प्रत्येक शोधकर्त्ता की शोध के सन्दर्भ में निश्चित समय एवं सीमा होती है। तद्नुसार यह अपने शोध निष्कर्षो को शिक्षा जगत में समाज के सम्मुख प्रस्तुत करता है। परन्तु इससे शोध का क्षेत्र पूर्ण नहीं हो जाता बल्कि अनेक सम्भावनाएँ एवं अनेक क्षेत्र भावी शोध शोधार्थी के सामने प्रकट होते हैं। इसी तथ्य को दृष्टिगत रखते हुए प्रस्तुत शोध के शैक्षिक निहितार्थ निम्न प्रकार हैं–

1. वर्तमान शोधकार्य केवल एक जिले के विद्यार्थियों पर ही किया गया है। शोधकार्य को अच्छी प्रकार से समझने व उसके चरों से अच्छा निष्कर्ष निकालने के लिए इसे बड़े स्तर पर किया जा सकता है।
2. प्राथमिक विद्यालयों एवं माध्यमिक विद्यालयों के संस्थागत वातावरण का तुलनात्मक अध्ययन किया जा सकता है।
3. बच्चों के सर्वांगीण विकास हेतु पाठ्यगामी क्रियाओं के शोध पाठ्य सहगामी क्रियाओं को भी संचालित करना आवश्यक है। पाठ्य सहगामी क्रियाओं में खेलों का विशेष महत्व है। खेलों के द्वारा विद्यार्थी में एक समूह में कार्य करने की भावना का विकास हो सकता है।
4. प्राथमिक शिक्षा में समुदाय के भाग लेने से प्राथमिक शिक्षा में पंचायती राज संस्थाओं व शहरी स्थानीय निकायों के कार्य को आसान किया जा सकता है। गाँव शिक्षा समिति, अभिभावक अध्यापक संघ की गाँवों में विद्यालय प्रबन्ध में महत्वपूर्ण भूमिका हो सकती है। कठिनाई से विद्यालय पहुंचने वाले व नहीं पहुंचने वाले बच्चों को विद्यालय तक लाने हेतु विशेष कार्य योजना बनाकर वंचित वर्ग के बच्चों को भी इस सर्व शिक्षा अभियान में सम्मिलित किया जा सकता है।

5. विद्यालय का वातावरण शिक्षाप्रद आकर्षक व गरिमामय बनाने में भौतिक संसाधनों जैसे – कक्षा कक्ष, स्टाफ कक्ष, सहायक सामग्री कक्ष, फर्नीचर, खेल का मैदान, खेल सामग्री, पुस्तकें व पुस्तकाल्य कक्ष आदि का बहुत बड़ा योगदान है।
6. विद्यालय में शैक्षिक वातावरण के निर्माण में भौतिक, मानवीय व मूलभूत संसाधनों के अलावा नवीन तकनीकी के साधन जैसे – टीवी, कम्प्यूटर व प्रोजेक्टर आदि होने पर सहायता मिल सकती है।
7. विद्यालय का वातावरण और विद्यार्थियों का शैक्षिक स्तर उन्नात बनाने में भौतिक संसाधनों के साथ साथ मानवीय संसाधनों का योगदान भी होता है। अतः विद्यालय में दोनों के होने से शैक्षिक स्तर में सुधार हो सकता है।
8. Neuro Learing System के द्वारा अध्यापन इस तंत्र के माध्यम से कमजोर बच्चों को भी स्मरण करने की शक्ति दी जा सकती है तथा अधिगम में आसानी हो जाती है। एक अध्यापक द्वारा इस प्रकार के तंत्र को अपनाने से छात्रों में विषय वस्तु के रहने पर अकुंश लगेगा तथा छात्र विषयवस्तु को भी प्रभावशाली ढंग से समझ सकेगें जिससे शैक्षिक स्तर में सुधार हो सकेगा।
9. विद्यालय में अच्छे शिक्षण हेतु मूलभूत सुविधाओं, जैसे – पानी, शौचालय, बिजली, आवागमन के साधन, मनोरंजन हेतु साधनों का होने पर विद्यार्थियों के शैक्षिक स्तर में वृद्धि हो सकती है।
10. पाठ्यक्रम के लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति की ओर बालकों की प्रगति की जानकारी मिलती है। पाठ्यक्रम की लक्ष्यों व उद्देश्यों की प्राप्ति एवं बालकों की प्रगति की जानकारी लेकर हम पाठ्यक्रम को ओर अधिक सरल बना सकते हैं तथा छात्रों के विकास के अनुरूप उसमें बदलाव कर सकते हैं।
11. शैक्षिक उपलब्धि के द्वारा हम विद्यार्थियों का वर्गीकरण, श्रेणी विभाजन कर सकते हैं, जिसमें उन्हें शिक्षण के लिये अपने मानसिक स्तरों के अनुकूल शिक्षा दी जा सकती है।

सारांश :–

शोध प्रबन्ध के इस अध्याय में शोधकर्त्ता द्वारा शोध से सम्बन्धित निष्कर्ष दिए गए हैं तथा इस क्षेत्र से सम्बन्धित भावी शोध अध्ययनों के लिए सुझाव प्रस्तुत किये गये हैं।

सन्दर्भ :

* सिंह आर. आर. एवं नामदेव एच. (2014) : भारत में समावेशी शिक्षा की दशा व दिशा, परिप्रेक्ष्य संस्करण 21, अंक
* जोशी एम.सी. एवं व्यास, ओम प्रकाश (1997) : परिवार वातावरण मापनी, रूपा साइकोलॉजी सेन्टर, वाराणसी।
* जैन, पूर्वा एवं सिंह, मधु (2014) : सृजनात्मक चिन्तन परीक्षण, आगरा साइकोलोजिकल रिसर्च, सेल, आगरा।
* अस्थाना, विपिन (2008) : मनोविज्ञान और शिक्षा में मापन एवं मूल्यांकन, आगरा : अग्रवाल पब्लिकेशन्स, पृ. सं. 538
* शर्मा : आर.ए. (2011) : शिक्षा अनुसंधान के मूल तत्व एवं शोध प्रक्रिया, मेरठ, आर. लाल बुक डिपो, पृ. सं. 367
* नागर, कैलाश नाथ (1996) : सांख्यिकी के मूल तत्व, मेरठ ' मीनाक्षी प्रकाशन, पृष्ठ सं. 263–272
* बुच, एम.बी. (1992) : सर्वे ऑफ रिसर्च इन एज्यूकेशन, न्यू दिल्ली : एनसीईआरटी
* गिरी, एम. दत्त (1995) : इफेक्ट आंग्जाइटी इन्टेलिजेन्स एण्ड सोसियो इकानॉमिक्स स्टेट्स अनएकेडमिक एचीवमेन्ट ऑफ प्राईमरी स्कूल चिल्ड्रन (अप्रकाशित), बी.एच.यू., वाराणसी
* गुप्ता, एस.पी. (2004) : उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान, इलाहाबाद : शारदा पुस्तक भवन

* पाण्डेय, बैजनाथ ;2007द्ध : पूर्ण साक्षरता के लिए वरदान मिड डे मिल कार्यक्रम, कुरूक्षेत्र, अंक 11, पृष्ठ 10–12
* पाठक, आर.पी. (2010) : ''आधुनिक भारतीय शिक्षा, समस्याएँ एवं समाधान'', नई दिल्ली : कनिष्क पब्लिशर्स
* त्रिपाठी, कुमुद (2004) : ''माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की उपलब्धि प्रेरणा का शैक्षिक उपलब्धि पर प्रभाव : एक अध्ययन'', भारतीय शिक्षा शोध पत्रिका, वर्ष 23 अंक 1, जनवरी–जून 2004
* कॉल, लोकेशन (1998) : शैक्षिक अनुसंधान की कार्य प्रणाली, विकास पब्लिशिंग हाऊस प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली
* शेखर, डॉ. वी. (1997) : राजस्थान में शिक्षा अनुसंधान, सम्प्राप्तियाँ एवं संभावनाएँ – 3, शिक्षा विभाग, राजस्थान, बीकानेर
* त्रिवेदी, डॉ. आर.एन. और शुक्ला, डॉ. डी.पी. (1999) : रिसर्च मैथडोलॉजी, कॉलेज बुक डिपो, जयपुर
* वर्मा डॉ. आर.पी. ;1999द्ध : शिक्षा संकाय, काशी विश्वविद्यालय, वाराणसी, पृ. 219–220
* व्यास हरिशचन्द्र शर्मा – शिक्षा एवं भारतीय समाज, राज. हिन्दी ग्रंथ अकादमी, जयपुर, पेज नं. 8
* रविन्द्र नाथ ठाकुर – शिक्षा के विविध आयाम रविन्द्र नाथ का शिक्षा 1999, अरूण प्रकाशन, ई–54 मानसरोवर पार्क दिल्ली, पेज 35
* रसेल बट्रैण्ड : शिक्षा की रूपरेखा, दिल्ली राजकमल प्रकाशन, 1963 पेज 16
* शिविरा पत्रिका : ''शिक्षा तंत्र, गुणवत्ता और परीक्षा'' सितम्बर, 2000, पेज. 23
* शिविरा पत्रिका : ''शिक्षा का सार्वजनीकरण'' जुलाई, 2006, पेज 3, 32, 34
* शिविरा पत्रिका : ''शिक्षा नाद योजना'' ;बालकों को विद्यालय लाने की योजना का प्रारूपद्ध अक्टूबर, 2007, पेज 20–21
* राजस्थान पत्रिका : ''इनरोलमेंट बढ़ने से नहीं मिलेगा सबको प्राईमरी एजूकेशन'', 31 मार्च, 2015
* दैनिक भास्कर : ''स्कूलों में जरूरी सुविधाएं नहीं, न मॉनीटरिंग की पर्याप्त व्यवस्था'', एज्यूकेशन भास्कर, स्कूल एजूकेशन, 8 अप्रैल, 2015, पेज 5
* एच.सी. सिन्ध : ''शैक्षिक अनुसंधान'', विकास पब्लिशिंग हाउस, 1919, पेज 56–58
* शैक्षिक विद्यालय प्रबंधन, राज. राज शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर (राज.), प्रकाशक माध्यमिक शिक्षा बोर्ड, राज., जनवरी 2014, पेज 66–72
* शैक्षिक विद्यालय प्रबंधन, राज. राज्य शैक्षिक अनुसंधान एवं प्रशिक्षण संस्थान, उदयपुर (राज.) प्रकाशक – माध्यमिक शिक्षा बोर्ड राजस्थान, जनवरी 2014, पेज 55–60

***

मम्मटोक्तकाव्यलक्षणविमर्शः

अभिषेकचतुर्वेदी *

प्राक्कथनम् –

तत्र तावात् जानन्त्येव भवन्तो यत् काव्यस्वरूपविषये नैकस्थलेषु दरिदृश्यते आचार्याणां तथाहि – 'शब्दार्थौ सहितौ काव्यं गद्यं च पद्यं च तत् द्विधा'इति आचार्यभामहाः प्रतिपादयन्ति, 'काव्यशब्दोऽयं गुणालङ्कार संस्कृत्योः शब्दार्थयोर्वर्तते' इति वामनाचार्याः प्रतिपादयन्तिः 'शब्दार्थौ काव्यम्' रुद्रटाचार्याः इति काव्यलक्षणं प्रतिपादयन्ति, 'अदोषौ सगुणौ सालंकारौ च शब्दार्थौ काव्यम्' इति हेमचन्द्राचार्याः काव्यलक्षणं प्रतिपादयन्ति, 'शब्दार्थौ निर्दोषो सालंकारौ सगुणौ च काव्यम्' इति वाग्भट्टाचार्याः काव्यस्य लक्षणं प्रतिपादयन्ति, 'रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्' इति आचार्याः पण्डितराजजगन्नाथाः काव्यलक्षणं प्रतिपादयन्ति, 'वाक्यं रसात्मकं काव्यम्' विश्वनाथाचार्याः काव्यस्य लक्षणं प्रतिपादयन्ति। अस्मिन् निबन्धे मम्मटोक्तं काव्यलक्षणं समीक्ष्यते तथा चोक्तं श्रीमता मम्मटेन -

''तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि''[1] इति।

प्रकृतकाव्यलक्षणे वाग्देवतावतारः आचार्यमम्मटः शब्दार्थयुगलमेव काव्यं प्रतिपादयति। आस्वाद्यव्यञ्जकत्वस्योभयत्राप्यविशेषात् । कीदृशं काव्यं तदुच्यते शब्दार्थौ अदोषो,सगुणौ क्वचिच्चस्फुटालङ्कार विरऽहेऽपि न काव्यत्वहानिः।

''तददोषौ शब्दार्थौ इत्यादिषु प्रदर्शितानां दोषाभावगुणालङ्काराणाय काव्यसामान्यलक्षणोद्देश्यतावच्छेदककोटिप्रवेशो नास्त्येव,तथापि कविकतृकरसविषयोपाधिकसामग्रीसंघटनाविषयकज्ञानवत्वं शब्दार्थयोरनुगतं काव्यत्वम् ''

''एतनाचार्यमम्मटस्य काव्यलक्षणे स्पष्टरूपेण ज्ञायते'' यत् ''शब्दार्थौ'' इत्यस्य त्रीणि विशेषणानि सन्ति-

1. अदोषो
2. सगुणौ
3. अनलङ्कृती पुनः क्वापि

काव्यलक्षणे ''अदोषौ'' इत्यनेन गृह्यते यत् काव्यत्वविघटका येच्युतसंस्कारादयः प्रबलदोषास्तदरहितावित्यर्थः यथा-

''मुख्यार्थहतिर्दोषो रसश्च मुख्यः''[1]

इत्थं रसापकर्षाः ये दोषाः ते एव त्याज्याः। सति दोषे गुणादेरप्यकिञ्चितकरत्वात् । यदाह- स्याद्वपुः सुन्दरमपि श्वित्रेणैकेन पश्यति'' अन्यत्राप्युक्तम्- यथा-

निर्दोषं गुणवत् काव्यमलङ्कारैरलङ्कृतम् ।
रसान्वितं कविः कुर्वन् कीर्तिं प्रीतिञ्च विन्दति॥[2]

सगुणौ इत्यनेन काव्ये रसस्य येऽङ्गिनः माधुर्यौजप्रसादाख्यगुणास्ते आत्मनः शौर्यादयः धर्मा इव अचलं भूत्वा रसमुप कुर्वन्ति यथा-

ये रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः।

---

* शोधच्छात्रः, दर्शनविभागः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः,वाराणसी

उत्कर्ष हेतवस्ते स्युरचलस्थितयो गुणाः।।

एवं काव्ये अनुप्रासोपमादयःअलङ्कारा अपि शब्दार्थद्वारेण जातुचित् शरीरे हारादिवत् तं भूषयन्ति यथा-

उपकुर्वन्ति तं सन्तं येऽङ्गद्वारेण जातुचित्।
हारादिवदलङ्कारास्तेऽनुप्रासोपमादयः।।[3]

आचार्यमम्मटः काव्ये अलङ्कारस्यानिवार्यतां न वदति। सत्यलङ्कारे काव्यस्योत्कर्षता दृश्यते किन्तु क्वचित् स्फुटालङ्कारविरहेऽपि न काव्यत्वहानि यथा-

यः कौमारहरः स एव हि वरस्ता एव चैत्रक्षपा
स्ते चोन्मीलितमालतीसुरभयः प्रौढाः कदम्बानिलाः।
सा चैवास्मि तथापि तत्रसुरतव्यापारलीलाविधौ
रेवारोधसि वेतसीतरूतले चेतः समुत्कण्ठ्यते।।[4]

इत्यत्र ''हरो''वर इत्यादिषु शब्देषु ''र'' वर्णस्यसाम्यत्वादनुप्रासालङ्कारस्य प्रतीते सत्यपि प्रकृतशृङ्गारस्य प्रतिकूलवर्णत्वात् नालङ्कार रूपे गणितम् । एवं कारणमवर्तमानेऽपि कार्योत्पत्तिकथनरूपत्वादत्र ''विभावना'' अलङ्कारस्य प्रतीतिर्जायते, लक्षणं यथा-

''विभावना वना हेतुं कार्योत्पत्ति र्यदुच्यते''

इत्थमत्र सर्वमुपभुक्तावपि पुनरूत्कण्ठारूपकार्यस्य यत् प्रजीतिर्दृश्यते सोऽपि स्पष्टतया न प्रतिभाति पुनरूद्दीपनादिकारणे सत्यपि सम्भोगरूपकार्याभावत्वादत्र''विशेषोक्ति'' अलङ्कारस्य स्पष्टता गोचरीभवति,तथाऽपि नञ् आदिशब्दानामुपादाने कृते सत्येवोक्तालङ्कारयोः स्फुटतास्वक्रीयते नार्थतया प्रतीतौ अतएवोभयोरलङ्कारयोः कस्यचिदेकस्य स्फुटता न सति प्रकृत- काव्यम्स्फुटालङ्कारस्योदाहरणम् । विप्रलम्भशृंङ्गाररसत्वादत्र रसवदलङ्कार इति चेत् तन्न रसस्यप्राधान्यान्नालङ्कारता इति। परकीयाः केचनाचार्याः मम्मटस्य काव्यलक्षणे अदोषावित्याद्यंशे अरुचिं प्रकटयन्ति। विश्वनाथजगन्नाथौ मम्मटोक्तानि त्रीणि विशेषणानि नैव स्वीकुरुतः। जयदेवः ''अनलङ्कृती पुनः क्वापि'' इतीदं नैवाङ्गीकरोति। जगन्नाथः ''शब्दार्थौ'' इति विशेष्यमपि नैव स्वीकरोति।

विश्वनाथमते अदोषावित्यंशस्य निरुपादेयता :-

''अदोषौ'' इत्यस्य सम्बन्धे आक्षेपाः सन्ति- ''एवं काव्यं प्रविरल विषय निर्विषयं वा स्यात्'' तत् किं स्वरूपं तावत् काव्यमित्यपेक्षायां कश्चिदाह-

''तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि''

इति। एतच्चिन्त्यम् – तथाहि यदि दोषरहितस्यैवकाव्यत्वाङ्गीकारस्तदाऽस्य – ''यः कौमार हरः स एव हि वरः'' इति श्लोकस्य विधेयाविमर्शदोषदुष्टतया काव्यत्वं न स्यात् प्रत्युत् ध्वनित्वेनोत्तमकाव्यता अस्याङ्गीकृता। तस्मादतिव्याप्तिलक्षण- दोषः।

ननु कश्चिदेवांशोऽत्र दुष्टो न पुनः सर्वोऽपीति चेत् तर्हि यत्रांशे दोषः सोऽकाव्यत्वप्रयोजकः,यत्र ध्वनिः स उत्तमकाव्यस्य प्रयोजक इत्यंशाभ्यामुभयतः आकृष्यमाणमिदं काव्यमकाव्यं वा किमपि न स्यात् । न च कश्चिदेवांश काव्यस्य दूषयन्तः श्रुतिदुष्टादयो दोषाः किं तर्हि सर्वमेव काव्यम् ? तथाहि काव्यात्मभूतस्य रसस्यानपकर्षकत्वे तेषां दोषत्वमपि नाङ्गीक्रियते। अन्यथा नित्यदोषानित्यदोषत्वव्यवस्थापि न स्यात् ।

सति संभवे ईषद् दोषाविति चेद् एतदपि काव्यलक्षणेऽवाच्यम्रत्नादिलक्षणे कीटानुवेधादिपरिहारवत् नहि कीटानुवेधादयो रत्नस्य रत्नत्वं व्याहन्तुमीशाः, किन्तूपादेयतारम्यमेव कर्तुमीशाः। तावदत्र श्रुतिदुष्टायोऽपि काव्यस्य। उक्तञ्च-

कीटानुविद्धरत्नादि साधारण्येन काव्यता।
दुष्टेवपि मता यत्र रसाद्यनुगमः स्फुटः ।।[5]

दोषस्य स्थितिः रसापकर्षोपरि निर्भरा वर्तते। अतः ''अदोषौ'' इति विशेषणं नोचितम्।

एवमाचार्यविश्वनाथस्याक्षेपाः सूक्ष्माः सन्ति परन्तु हठधर्मितायुक्ताः प्रतीयन्ते। मम्मटः काव्यस्य प्रमुखतत्त्वं रसं मत्वा तस्य विघातकं तत्वं दोषनाम्ना कथयति। अतस्तस्य दोषनिरूपणं रसापकर्षतायामाधृतमस्ति। यदि दोषयुक्तकाव्येऽपि रसापकर्षो न भवति,तर्हि तद्दोषपूर्णं नैव कथितुं कोऽपि शक्नोति।

''सगुणौ'' इत्यंशे निरपादेयता-

शब्दार्थयोः सगुणत्वविशेषणमनुपपन्नम्, गुणानां रसैकधर्मत्वस्य रसस्याङ्गिनो धर्माः शौर्यादय इवात्मनः इत्यादिना तेनैव प्रतिपादित्वात् ।

रसाभिव्यञ्जकत्वनोपचाराद् उपपद्यते इति चेत्,तथाप्ययुक्तम् । तथाहि तयोः काव्यस्वरूपेणाभिमतयोः शब्दार्थयोः रसोऽस्ति न वा? नास्ति चेत् गुणवत्वमपि नास्ति। गुणानां तदन्वयव्यतिरेकानुविधायित्वात् । अस्ति चेत् , कथं नोक्तं रसवन्ताविति विशेषणम् । गुणवत्त्यान्यथानुपपत्यै तल्लभ्यते इति चेत् , तर्हि सरसावित्वेन वक्तुं युक्तम् न सगुणाविति। ननु शब्दार्थौ सगुणौ इत्यनेन गुणाभिव्यञ्जकौ शब्दार्थौ काव्ये प्रयोज्यावित्यभिप्राय इति चेत् न। गुणाविभव्यञ्जकशब्दार्थवत्वस्य काव्यस्योत्कर्षमात्राधायकत्वं न तु स्वरूपाधायकत्वम् ।

''अनलङ्कृतिः पुनः क्वापि'' इत्यस्य निरूपादेयता :-

विशेषणेऽस्मिन् प्रथमं प्रहारं जयदेवः करोति यथा-

अङ्गीकरोति यः काव्यं शब्दार्थावनलङ.कृति।
असौ न मन्यते कस्मादनुष्णमनलं कृति॥ [6]

अर्थात् शब्दार्थयोरलङ्काररहितं यदि मन्यते तर्हि तत् तथैव प्रतिभाति यथा अग्नेः उष्णताराहित्यं कश्चिद् वदेत् । एतेन प्रतीयते यत् जयदेवः मम्मटसम्मतालङ्कारस्य तथा रसस्य पारस्परिकसम्बन्धप्रतीतिशब्दस्य''अस्फुट'' इत्यस्यावहेलनां करोति। मम्मटस्य मते ''अनलङ्कृति'' इत्यस्यार्थोऽस्ति- स्फुटालङ्कारविरहः अर्थात् यत्र शब्दार्थयोः अलङ्कारः स्फुटरूपेण न भवेत् न त्वलङ्कारस्याभाव इति।

विश्वनाथस्याक्षेपो वर्तते- गुणानुरूपमलङ्कारोऽपि काव्यस्योत्कर्षाधायक आस्ते, तस्मिन् काव्य स्वरूपस्य निर्धारणक्षमता नास्ति अनलङ्कृती पुनः क्वापि इत्यस्यायमर्थः स्वीकृतोऽस्ति यत् काव्यरचनायाम् अलङ्कारः स्फुटरूपेण यदि न भवेत् तथापि तत्र काव्यं भवति।

मम्मटस्य काव्यलक्षणे पण्डितराज-जगन्नाथस्याक्षेपः-

शब्दस्यार्थस्य च पृथक्तवेन काव्यत्वेऽप्रमाण्यं स्यात् शब्दमात्रस्य काव्यत्वे काव्यमुच्चैर्यदा पठ्यते तदा काव्यं श्रुतम् अर्थो न ज्ञातः इत्यादिलोकव्यवहार एव प्रमाणम् शब्दस्यैव पाठश्रवणविषयतासम्भवात् ।

यद्यपि ''शब्दार्थौ काव्यम्'' इति मम्मटोक्तिरेव केवलं शब्दार्थयो काव्यत्वे प्रमाणमिति वक्तुं शक्यते,तथापि केषाञ्चिदत्र वैमत्येन तस्याश्रद्धेयत्वात् प्रमाणाभावः।

यदि आस्वादोद्बोधकं काव्यं भवेत् आस्वादोद्बोधकत्वं तावत् शब्देऽर्थे च समानम् । अतः ''शब्दार्थौ काव्यम्'' इत्युच्यते चेत् तदा गीतवाद्यभिनयानां नाट्याङ्गानां सर्वेषामास्वादव्यञ्जकत्वं सर्वैः आनन्दवर्धनप्रभृतिभिरालङ्कारिकैः स्वीकृतमिति तेषामपि काव्यत्वप्रसक्तिर्दुवारा स्यात् ।

शब्दार्थयोः काव्यत्वादिभिः काव्यत्वं शब्दार्थयोः व्यासज्यवृत्या स्वीक्रियते, उतप्रत्येकपर्याप्त्या?

इत्थं पण्डितराजः मम्मटस्य काव्यलक्षणे तत्वार्थबोधायानेकानेकः प्रश्नोपस्थापितः वस्तुतः सोऽपि उत्तमोत्तमकाव्यलक्षणे ''शब्दार्थयोः'' वर्णनं कृतः यथा-

''शब्दार्थौ यत्र गुणीभावितात्मानौ कमप्यर्थमभिव्यङ्क्तस्तदाद्यम''[7]

म0म0 गङ्गाधरशास्त्रिणोऽपि मम्मटस्य काव्यलक्षणं प्रति स्वकीयाभिमतं प्रस्तौति यथा- ''तददोषौ शब्दार्थौ'' अदोषं गुणवत् काव्यम् इत्यादिषु प्रदर्शितानां दोषाभावगुणालङ्काराणां काव्यसामान्यलक्षणोद्देश्यताऽवच्छेककोटि

प्रवेशो नास्त्येव। उद्देश्यता पुनः शब्दार्थयोरेव न तु शब्दमात्रे, शब्दमात्रे कवि संरम्भ गोचरत्वायोगेन लोकोत्तरवर्णनानिपुणकविकर्मताया उभयत्राप्यविशेषात् ,काव्यमुच्चारणकर्मतायाः शब्दे, कविसमवेतरसबोधौपयिक सामग्रीसङ्घटनविषयकज्ञानकर्मतायाः अर्थे सत्वात् ।

इत्थं च कविकृतकरसविषयकज्ञानोपयिकसामग्रीसङ्घटनविषयकज्ञानविषयत्वं शब्दार्थयोरनुगतं काव्यत्वम् , अर्थस्य व्यञ्जकत्वे शब्दस्य सहकारिता, शब्दस्य व्यञ्जकत्वे अर्थस्य सहकारिता मतः। तथा च विनिगमनाविरहादर्थविशेषावरूद्धः शब्द इव शब्दविशेषावरूद्धोकाव्यमित्युभयोः प्राधान्येन निर्देश इति।

वस्तुतः काव्ये सर्वत्र लोकदृष्टान्तो नोपयोगी मन्यते लोके भयशोकादयो दुःख जनकतया प्रसिद्धाः, परं काव्ये भयानककरुणरसादयः स्थायिभावतया ते रसनिष्पत्तौ निरतिशयानन्दजनका एव। एषां मते दुःखसंवलितानन्दप्रतीतिः करूणादौ जायते,तेषामपि लोकविलक्षणानन्द प्रतीतिः सिद्धैव। वस्तुतस्तूभयमतप्रदर्शनेन प्राक्तानाचार्याणां मतसमालोचनेन च कतरद्युक्तमिति विचिकित्सायां ''शब्दार्थौ काव्यम् '' इत्येव निर्दुष्टमित्यवलोक्यते। परन्तु विचारणीयमेव यत् कीदृशौ शब्दार्थौ काव्यम् ?

अदोषौ,सगुणौ सालङ्कारोऽपि क्वचित् स्फुटालङ्कार विरहेऽपि न काव्यत्वापत्तिः इति सम्यक्समालोचनपुरमिदमेव निश्चियते यत् –

''तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृतीपुनः क्वापि'' इति।

ध्वनिस्फोटयोः स्वरूपम् :-

काव्यलक्षणप्रतिपादनान्तरम् आचार्य मम्मटः उत्तम-मध्यम-अवरञ्चेति काव्यस्य त्रयो भेाः प्रतिपादिताः। तत्र च व्यङ्गय (ध्वनि) प्राधान्ये उत्तमकाव्यं व्यङ्गस्याप्राधान्ये मध्यम काव्यं तथा व्यङ्गयरहितमवरकाव्यं भवति।

उत्तमकाव्यस्य लक्षणं यथा-

''इदमुत्तममतिशायिनि व्यङ्ग्ये वाच्याद् ध्वनिर्वुधैः कथितः''[8]

वाच्यादतिशायिनी व्यङ्गये बुधैःध्वनिः कथितः वुधैः वैयाकरणैः प्रधानभूतस्फोटरूपव्यङ्ग् यव्यञ्जकस्य शब्दस्य ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः। ततस्तन्मतानुसारिभिरन्यैरपि न्यग्भावितवाच्यव्यङ्गयव्यञ्जनक्षमस्व शब्दार्थयुगलस्य।

अयं भावः ''बुधै'' रिति पदैराचार्यमम्मटः वैयाकरणैरिति दृष्टान्तः प्रदत्तः। यतोहि- ''प्रथमो हि विद्वांशः वैयाकरणाः''ध्वन्यालोके ध्वनिकारानन्दवर्धनेनोल्लिखितः।मम्मटोऽपि तस्यानुयाय्यतो व्यंग्यप्रतिष्ठापने वैयाकरणस्य''स्फोट'' सिद्धान्ते साम्यं प्रदर्शितः वैयाकरणाः मुख्यरूपेण ''स्फोट'' स्फुटति प्रकाशयति अर्थमिति स्फोटः रूपं यः व्यङ्गयार्थः तस्याभिव्यक्तेः कारयितुं शब्दं ध्वनिरिति व्यवहारः कृतः। तेषां मतावलम्बिनामानन्दवर्धनादिप्रमुखाचार्यः वाच्यार्थगुणीभूतं कुर्वन् व्यङ्गयार्थस्याभिव्यक्तौ शब्दार्थयुगलमुत्तमं काव्यं ध्वनिरिति संज्ञा व्यवह्रतः।

अयं ध्वनिः बहुधा निरूप्यते। तद्यथा-

1 ध्वनति यः स व्यञ्जकशब्दः ध्वनिः
2 ध्वनति ध्वनयति वा व्यञ्जकोऽर्थः ध्वनिः
3 ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः - इत्यनेन रसालङ्कार वस्तुरूपं व्यङ्.ग्यत्रयं गृह्यते
4 ध्वन्यते अनेन इति ध्वनिः- इत्यनेन व्यञ्जनाव्यापारः गृह्यते
5 ध्वन्यतेऽस्मिन्निति ध्वनिः - इत्यनेनध्वनि प्रधानकाव्यं गृह्यते।

एवञ्च काव्यस्य 'ध्वनि' पदार्थः व्याकरणस्य ध्वनिपदार्थात् भिन्नमस्ति। वैयाकरणाः केवलं शब्दमेव ध्वनिमामनन्ति किन्त्वलङ्कारिकाः शब्दार्थरूपं काव्यं ध्वनिः स्वीकृताः सन्ति इत्थं व्यङ्गयव्यञ्जनक्षमस्व ''शब्दार्थौ'' ध्वन्यालोककारेण महाकवेः शब्दार्थरूपे मन्यते यथा-

सोऽर्थस्तद् व्यक्ति सामर्थ्य,योगी शब्दश्च कश्चन।
यत्नतः प्रत्यभिज्ञेयौ,तौ शब्दार्थौ महाकवेः॥[9]

काव्ये शब्दार्थयोः महत्वं महाकवि कालिदासोऽपि वदति यथा-

वागर्थाविव सम्पृक्तौ वागर्थ प्रतिपत्तये
जगतः पितरौ वन्दे, पार्वती परमेश्वरौ॥[10]

एवं शब्दार्थैः काव्यस्य वपुप्रकर्षात् काव्यस्य प्राणशरीरं ध्वनिप्रधानरूपं काव्यं कथ्यते। किं तावत् ध्वनिरित्युच्यते यथा-

यत्रार्थः शब्दो वा तमर्थमुपसर्जनीकृतस्वार्थौ।
व्यङ्क्तः काव्यविशेषः स ध्वनिरिति सूरिभिः कथितः॥[11]

यत्र शब्दार्थौ स्वार्थौ गौणीकृत्य काव्यविशेषः व्यङ्क्तः स विद्वद्भिः ध्वनिरिति कथितः। इमामेव कारिकामाश्रित्याचार्यमम्मटः काव्यप्रकाशे ''इदमुत्तममतिशयिनि'' इत्युत्तमकाव्यस्य लक्षणं प्रतिपादितम् ।

---

1 काव्य प्रकाश, प्र0उ0, कारिका संख्या - 1

1 काव्यप्रकाश प्र0उ0,कारिका संख्या-71

2 साहित्य दर्पण, प0 पृष्ठ संख्या-18

3 काव्यप्रकाश,8 उ0, कारिका संख्या-88

4 काव्य प्रकाश, 1 उव,उ0सं0- 1

5 साहित्य दर्पण, प्र0प0, पृष्ठ संख्या-13

6 शन्द्रालोक, 1 मयूख-1

7 रसगङ्गाधर,च0टी0, पृष्ठ संख्या-21

8 काव्यप्रकाश ,1 – उ0, कारिका संख्या-2

9 ध्वन्यालोक,1 उद्योत, कां0 सं0 -8

10 रघुवंशमहाकाव्यम् , 1 सर्ग श्लोक संख्या-1

11 ध्वन्यालोक, 1 उद्योत, कारिका संख्या-13

***

प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था के उद्देश्यों का अनुशीलन

*शिखा मिश्रा **
*डॉ. गयानन्द उपाध्याय ***

वैदिक शिक्षा से तात्पर्य उस शिक्षा से है जिसका विवरण वेदों तथा वैदिक साहित्य में मिलता है। वैदिक शिक्षा के आदर्शों, सिद्धान्तों तथा विभिन्न पक्षों की सामग्री कहीं इकट्ठी और व्यवस्थित नहीं मिलती बल्कि वेद, उपनिषद, धर्मसूत्र, स्मृति, सुभाषित संग्रह, ब्राम्हण ग्रन्थ, महाकाव्य आदि साहित्य में तथा जन सामान्य में प्रचलित सुक्तियों पर इस विषय पर सामग्री मिलती है। वैदिक शिक्षा में छात्रों के सर्वांगीण विकास पर बल दिया जाता था।

वैदिक साहित्य में शिक्षा शब्द का प्रयोग अनेक अभिप्रायों में हुआ है, यथा– ज्ञान, बोध एवं विद्या। वैदिक काल में भी आधुनिक काल के समान ही शिक्षा को विस्तृत और संकुचित दोनों ही अर्थो में लिया गया था। अपने विस्तृत अर्थो में शिक्षा को जीवन भर चलने वाली प्रक्रिया तथा मोक्ष प्राप्ति का साधन माना गया है और संकुचित अर्थो में शिक्षा वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा बालक को जीवन संघर्ष के लिये तैयार किया जाता है।

उस काल में शिक्षा को एक अत्यधिक महत्वपूर्ण प्रक्रिया भी माना गया था। भर्तहरि के अनुार, ''शिक्षा–हीन मनुष्य पशु के समान है।'' एक अन्य वैदिक विचार ने कहा है कि एक मनुष्य दूसरे मनुष्य से अतिरिक्त आँख या हाथ के कारण नहीं वरन् अपनी शिक्षा के कारण श्रेष्ठ होता है। ब्राम्हण भी बिना शिक्षा शूद्र ही रहता है। इस प्रकार प्राचीन ऋषियों का विश्वास था कि शिक्षा ही मानव प्रकृति को पूर्णता प्रदान करती है।

वैदिक शिक्षा के उद्देश्य :

वैदिक शिक्षा के अपने कुछ विशिष्ट उद्देश्य थे जिन्हें अनेक शिक्षाशास्त्रियों ने शिक्षा के आदर्श उद्देश्य माना है। यह शिक्षा एक ओर तो बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करती थी और दूसरी ओर उसे सामाजिकता का प्रशिक्षण देती थी। प्रो0 अल्तेकर ने वैदिक शिक्षा के उद्देश्यों का वर्गीकरण इस प्रकार किया है– ''ईश्वर भक्ति एवं धार्मिक भावना का विकास, चरित्र निर्माण, व्यक्तित्व का विकास, नागरिक तथा सामाजिक कर्तव्य पालन की शिक्षा, सामाजिक कुशलता में वृद्धि तथा राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार, प्राचीन भारतीय शिक्षा के मुख्य उद्देश्य कहे जा सकते हैं।''

1. ईश्वरभक्ति तथा धार्मिकता का विकास : आध्यात्मिक वातावरण में धार्मिकता का विकास प्राचीन भारतीय शिक्षा का सर्वप्रमुख और सर्वप्रथम उद्देश्य था। शिक्षा द्वारा नयी पीढ़ी को आत्मा की अमरता तथा श्रेष्ठता का आभास कराया जाता था। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए बालक में धार्मिक आस्था एवं भावना का विकास किया जाता था। धार्मिकता से तात्पर्य किसी

* शोधार्थिनी शिक्षाशास्त्र विभाग, राजा श्री कृष्णदत्त पी. जी. कालेज, जौनपुर, उ. प्र.
** एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षाशास्त्र विभाग, राजा श्री कृष्णदत्त पी. जी. कालेज, जौनपुर, उ. प्र.

विशिष्ट पूजा पद्धति या विश्वास से नहीं था। जीवन का चरम लक्ष्य ब्रम्ह प्राप्ति माना जाता था। धर्म द्वारा ब्रम्ह प्राप्ति औरसद् शिक्षा द्वारा ब्रम्ज्ञान माना जाता था। जैसा कि वेदों के तत्वज्ञान को समन्वित करने वाले गीता में वर्णित है– **'सा विद्या या विमुक्तये।'** अर्थात् विद्या वही है जो मनुष्य को मुक्ति प्रदान करती हो। शिक्षा का उद्देश्य जीवन मूल्यों अर्थात् सत्यं शिवं और सुन्दरम् की प्राप्ति करना था। धार्मिकता का विकास करने के लिये शिक्षा में अनेक व्यवस्थाएँ थीं जिनमें प्रमुख निम्नलिखित हैं–

- प्रातः काल उठने पर विद्यार्थी–ईश्वर स्मरण करते थे। उसी प्रकार सोने के पहले भी ईश्वर स्मरण किया जाता था।
- प्रातः, मध्यान्ह एवं सायंकाल विद्यार्थी सन्ध्योपासना करते थे।
- समय–समय पर धार्मिक व्रतों का पालन विद्यार्थियों को सामर्थ्यानुसार करना पड़ता था।
- धार्मिक अनुष्ठान एवं धार्मिक उत्सव समय–समय पर किये जाते थे।

2. उत्तम आचरण का विकास : वैदिक शिक्षा का दूसरा उद्देश्य था बालक की मूलप्रवृत्ति को परिवर्तित एवं परिवर्धित करके उनमें नैतिक भावना का विकास करना और इस प्रकार उसके चरित्र का निर्माण करना। उस काल में उच्च चरित्र को ज्ञान से भी अधिक महत्व दिया जाता था। ऐसी धारणाएँ प्रचलित थीं कि वेदों के ज्ञाता किन्तु चरित्रहीन ब्राम्हण से अज्ञानी किन्तु चरित्रवान व्यक्ति अधिक श्रेष्ठ हैं। सम्पूर्ण मानव में विकास क्रम में सच्चरित्रता एक अपरिहार्य अंश है। बालक में ऐसी सद्प्रवृत्तियों को जागृत करना जिससे वह सद्चरित्र और मानरहित रह सके सच्चरित्रता की अनिवार्य शर्त है। चरित्रविहीन शारीरिक या बौद्धिक विकास को व्यर्थ माना जाता था। ब्रम्हचर्य, सत्यभाषण, गुरूसेवा, बड़ों का सम्मान एवं पराई वस्तु को न ग्रहण करना आदि सच्चरित्रता के लक्षण माने जाते थे। सच्चरित्रता के विकास के लिये प्रमुख व्यवस्थाएँ निम्नलिखित थीं–

- गुरू सच्चरित्रता का आदर्श अपने जीवन द्वारा विद्यार्थियों के समक्ष रखते थे। गुरूकुलों में विद्याथ्रियों की संख्या कम होने के कारण गुरू स्वतः प्रत्येक विद्यार्थी के चरित्र पर ध्यान रख सकते थे।
- विद्यालय प्रायः नगरों से दूर शान्त स्थान पर हुआ करते थे। बस्तियों से विद्यार्थियों का सम्पर्क कम रहता था। इसके परिणामस्वरूप समाज के ऐसे व्यक्ति के सम्पर्क से विद्यार्थी प्रायः दूर रहते थे जिनका चरित्र अभीष्ट स्तर से निम्न है।
- ब्रम्हचर्य व्रत पालन में जो वस्तुएँ बाधक हो सकती थीं उनसे विद्यालय को मुक्त रखा जाता था। ब्रम्हचारियों को स्त्री से सम्पर्क की मनाही थी। सभी उत्तेज वस्तुयें ब्रम्हचारी को वर्जित थीं। विद्यार्थी को केवल सात्विक भोजन करने एवं सात्विक वस्त्र पहनने की आज्ञा थी।
- चरित्र निर्माण पर उपदेश दिये जाते थे। विद्यार्थी बहुत से ऐसे ग्रन्थ पढ़ा करते थे जिनसे चरित्र निर्माण हो।

- दुश्चरित्रता पर कठोर दण्ड दिया जाता था।

3. व्यक्तित्व का विकास : शारीरिक, बौद्धिक, मानसिक एवं आध्यात्मिक सभी पक्षों के सन्तुलित विकास द्वारा बालक के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास करना वैदिक शिक्षा का तीसरा उद्देश्य था। व्यक्तित्व का अभिप्राय बाहरी वेशभूषा एवं शरीर की सजावट से न होकर मानवीय गुणों का विकास था। व्यक्तित्व के प्रमुख तत्व निम्नलिखित थे–

(क) आत्म सम्मान : विद्यार्थियों को नम्र एवं शालीन होने के उपदेश दिये जाते थे। शिष्टाचार का विद्यार्थी जीवन में विशिष्ट महत्व था। परन्तु इन सबका उद्देश्य विद्यार्थी में आत्महीनता के भाव न भरकर उसके आत्म सम्मान को जागृत करना था।

(ख) आत्म विश्वास : ज्ञान के आदान–प्रदान एवं नवीन अनुसंधान के लिये आत्म विश्वास आवश्यक है। प्राचीन भारतीयों ने भी इस तथ्य को स्वीकार किया था। अतएव हर सम्भव प्रयास द्वारा वे छात्र में आत्म विश्वास उत्पन्न करते थे। इसके लिये प्रतियोगिताएँ, शास्त्रार्थ एवं परीक्षाओं का आयोजन किया जाता था।

(ग) आत्म नियंत्रण : आत्म सम्मान एवं आत्म विश्वास उत्पन्न करने के लिये आत्म नियंत्रण आवश्यक है। आत्म नियंत्रण के लिये विद्यार्थी को कठोर जीवनयापन करना पड़ता था। इसके लिये उसे अनेक प्रकार के शारीरिक व्यायाम, योग आदि करना पड़ता था।

(घ) चित्तवृत्तियों का निरोध : वैदिक काल में शिक्षा का आधार बालकों की चित्त वृत्तियों का निरोध करना था, उस समय शरीर की अपेक्षा आत्मा को अधिक महत्व दिया जाता था क्योंकि शरीर नश्वर है और आत्म अमर है। अतः आत्मा के उत्थान के लिए जप, तप और योग पर विशेष बल दिया जाता था।ये कार्य चित्त की वृत्तियों का निरोध करके अर्थात् मन पर नियंत्रण करके ही सम्भव थे। इसलिए बालकों को विभिन्न प्रकार के अभ्यासों द्वारा अपने चित्तवृत्तियों का निरोध करने का प्रशिक्षण दिया जाता था, ताकि उनका मन इधर–उधर भटक कर उनकी मोक्ष प्राप्ति में, जिसे जीवन का चरम लक्ष्य समझा जाता था, बाधा उपस्थित न करें।'' इस प्रकार हम डॉ0 आर0के0 मुखर्जी के शब्दों में कह सकते हैं– ''शिक्षा का उद्देश्य वित्त वृत्ति निरोध अर्थात् मन से उन कार्यो का निषेध था, जिनके कारण वह भौतिक संसार में उलझ जाता था।''

(ड.) सामाजिक कर्तव्यों का पालन : शिक्षा द्वारा बालक को भावी जीवन के लिये तैयार किया जाता था। इसके लिये यह आवश्यक था कि बालक को सामाजिक कर्तव्यों का ज्ञान कराया जाय और इन कर्तव्यों के पालन के लिये प्रेरित किया जाय। अतिथि का सत्कारकरना सबका कर्तव्य था। बिना किसी प्रतिग्रह की आशा किये रोगी का उपचार करना चिकित्सक का कर्तव्य था। परोपकार को उत्कृष्ट एवं परपीड़न को हेय माना जाता था। गुरूगृह में उक्त प्रकार का जीवन बालक को वस्तुतः बिताना पड़ता था इससे उसमें कर्तव्य पालन की क्षमता उत्पन्न होती थी।

(च) व्यावसायिक कुशलता का उन्नयन : प्राचीन भारतीय व्यवस्था वर्ण पर आधारित थी। प्रत्येक वर्ण के व्यावसायिक कार्य सुनिश्चित थे। (प्रारम्भ में व्यवसाय के आधार पर व्यक्ति के वर्ण का निश्चय होता था। बाद में वर्ण जन्मना माना जाने लगा।) बालक अपने व्यावसायिक कार्य में यथासम्भव दक्षता प्राप्त करे इस बात का प्रयास माता–पिता एवं गुरू करते थे। यदि बालक की योग्यता एवं रूचि परिवारसे भिन्न व्यवसाय में दक्षता प्राप्त करने की है तो उसे उसकी योग्यता के आधार पर शिक्षा दी जाती थी। जो शिक्षा के लिये अनुपयुक्त थे उन्हें शिक्षा नहीं दी जाती थी।

(छ) राष्ट्रीय संस्कृति का संरक्षण एवं विकास : अपनी संस्कृति का संरक्षण एवं विकास प्रत्येक समाज का उद्देश्य होता है। शिक्षा के माध्यम से संस्कृति का हस्तान्तरण आगामी पीढ़ियों को होता है। प्राचीन भारत में शिक्षा प्रायः सभी को सुलभ थी। पहले तो सभी बालक–बालिकाओं की शिक्षा प्राप्त करने का अधिकार था। बाद में ऐसा प्रतीत होता है कि शिक्षा के कठोर नियमों के पालन करने में असमर्थ होने के कारण शूद्र एवं स्त्रियों की शिक्षा प्राप्ति के अधिकार में अन्य लोगों के समकक्ष नहीं रखा जा सका फिर भी पारिवारिक शिक्षा तो सभी को मिलती थी। इसी का परिणाम था कि बहुत से अलिखित पुस्तकें एवं परम्परायें सैकड़ों वर्षो तक प्राचीन भारत में अक्षुण्ण बनी रही।

(ज) ज्ञान व अनुभूति पर बल : वैदिक कालीन शिक्षा का उद्देश्य ज्ञान और अनुभूति पर बल देना था। उस समय छात्रों की मानसिक योग्यता का मापदण्ड उनके द्वारा प्राप्त किये जाने वाले अंक, प्रमाणपत्र या उपाधिपत्र नहीं थे, इनके स्थान पर उनकी योग्यता का मापदण्ड था उनके द्वारा अर्जित किया गया ज्ञान, जिसका प्रमाण वे विद्वत परिषद् में शास्त्रार्थ करके देते थे।

बौद्धकालीन शिक्षा के उद्देश्य :

बौद्धकालीन शिक्षा का प्रादुर्भाव वैदिक शिक्षा में बढ़ते कर्मकाण्ड एवं जनसामान्य की उपेक्षा एवं अवहेलना के कारण हुआ था। यद्यपि बौद्धकाल में भी धर्म का प्रभाव सर्वाधिक था। गौतमबुद्ध ने बौद्ध धर्म के प्रचार एवं प्रसार हेतु बौद्ध दर्शन एवं चिन्तन की शिक्षा प्रदान करने पर बल दिया साथ ही जीवन के चरम लक्ष्य निर्वाण हेतु ज्ञान को आवश्यक माना। बौद्धकालीन शिक्षा के निम्नलिखित उद्देश्य थे–

1. धार्मिकता का विकास : बौद्ध मत के अनुसार निर्वाण प्राप्ति के बिना दुःखों से छुटकारा नहीं मिल सकता। निर्वाण ज्ञान एवं धर्म से प्राप्त होता था। अतएव शिक्षा में धार्मिकता को महत्व दिया गया। बौद्ध शिक्षा संघों में दी जाती थी। श्रमणों का शिक्षा देने में विशेष योगदान था। संघों का वातावरण धर्ममय था और श्रमण का जीवन तो आदर्श धार्मिक जीवन कहा जा सकता है। संघ एवं श्रमणों के प्रभाव के कारण शिक्षा धर्म प्रधान रही और शिक्षार्थी में धार्मिकता का विकास होता था।

2. चरित्र निर्माण पर बल : महात्मा बुद्ध ने सदाचार पर बल दिया। अतएव बौद्ध शिक्षा प्रणाली में सात्विक जीवन एवं शुद्ध विचार छात्र जीवन का आदर्श था। प्राचीन काल की भांति

ही इस काल में भी 'ब्रम्हचर्य' का विद्यार्थी जीवन में परम महत्व था। अध्यापक अपनेचरित्र द्वारा सच्चरित्रता का आदर्श विद्यार्थियों के समकक्ष रखते थे। अध्यापक विद्यार्थियों के पर ध्यान रखते थे। संघों को प्रायः उन सभी वस्तुओं से मुक्त रखा जाता था जिनका प्रभाव चरित्र निर्माण पर प्रतिकूल पड़े। सात्विक भोजन, सात्विक वस्त्रों का प्रयोग एवं उत्तेज पदार्थों का त्याग अध्यापक और विद्यार्थी दोनों के लिये आवश्यक था। नियमों के पालन में त्रुटि होनेपर प्रायश्चित करना पड़ता था।

3. व्यक्तित्व और सामाजिकता का समन्वित विकास : बौद्ध संघ और विहारों में जनतांत्रिक व्यवस्था हुआ करती थी। इस व्यवस्था में प्रत्येक विद्यार्थी को अपने व्यक्तित्व के पूर्ण विकास का अवसर मिलता था। बौद्ध धर्म अन्य श्रद्धा में विश्वास नहीं करता था। अतः प्रत्येक व्यक्ति को विस्तृत ज्ञान देकर उसके विवेक का विकास किया जाता था। अतः विद्यार्थी में विनय और आत्मानुशासन का विकास किया जाता था तथा बहुमत का आदर करने का प्रशिक्षण दिया जाता था। इस प्रकार बौद्ध शिक्षा द्वारा विद्यार्थी के व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ उसमें सामाजिक गुणों का विकास भी किया जाता था।

4. बौद्ध धर्म एवं भारतीय संस्कृति का संरक्षण एवं प्रसार : राष्ट्र की संस्कृति का संरक्षण, विकास एवं प्रसार भी शिक्षा का उद्देश्य था। बौद्ध शिक्षा केन्द्रों में बहुत बड़ी मात्रा में साहित्य रचना की गई। साथ ही समस्त पुस्तकों की प्रतिलिपियाँ तैयार करते थे। इस प्रकार भारतीय संस्कृति चिरकाल तक सुरक्षित रही। बौद्ध शिक्षा प्रणाली में देशाटन शिक्षा का एक अनिवार्य अंग था। उस काल में बौद्ध भिक्षुक देश के बाहर दूर-दूर तक धर्म प्रचार हेतु जाते थे और अनजाने ही भारतीय संस्कृति का प्रचार भी करते थे। बौद्ध भिक्षुओं ने दूर-दूर तक भारतीय संस्कृति का प्रसार किया था।

5. सामाजिक कुशलता में वृद्धि : प्रारम्भ में बौद्ध शिक्षा केवल भिक्षुकों के लिये थी किन्तु बाद में सांसारिक शिक्षा भी प्रारम्भ हो गई थी। अतः विद्यार्थियों को विभिन्न व्यवसायों की शिक्षा दी जाती थी। इस काल में कला-कौशलों और उद्योगों का अपूर्व विकास हुआ था और समाज अत्यधिक सम्पन्न था। अतः बौद्ध शिक्षा सामाजिक कुशलता में वृद्धि करने में सफल रही।

6. व्यावसायिक कुशलता का उन्नयन : शिक्षा का उद्देश्य व्यावसायिक कुशलता का उन्नयन एवं कला कौशल का विकास करना था। इसके लिये आवश्यक विषयों का समावेश शिक्षा में किया गया था। परिणामस्वरूप इस काल में कला, कौशल एवं व्यवसायों की पर्याप्त उन्नति हुई।

निष्कर्ष :

इस प्रकार प्राचीन भारतीय शिक्षा व्यवस्था धर्म, संस्कृति एवं मानवीय मूल्यों से जुड़ी हुई थी इसमें आध्यत्मिक एवं लौकिक जगत से जुड़े विभिन्न पक्षों का चिन्तन किया गया था। प्राचीन शिक्षा का उद्देश्य मानव जीवन को मुक्ति दिलाना था। इसके लिए उसके विभिन्न करणीय एवं अकरणीय कार्यो का ज्ञान एवं अवबोध विकसित करने हेतु शिक्षा की अनिवार्यता

स्वीकार की गयी थी। वैदिककालीन शिक्षा में आध्यात्मिक शिक्षा को अधिक महत्व दिया गया था। चरित्र एवं शुद्धता को आधार माना गया था तथा दैहिक जरूरतों को द्वितीय स्थान प्राप्त था। बौद्धकालीन शिक्षा व्यवस्था में बौद्ध धर्म एवं दर्शन के प्रचार–प्रसार के साथ जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को पूरा करना मनुष्य का प्रमुख लक्ष्य माना गया है। इसके साथ ही इसमें धार्मिक एवं लौकिक जीवन की आवश्यकताओं के मध्य समन्वय स्थापित किया गया है। यह शिक्षा जनसामान्य की जरूरतों के अनुरूप उनकी भाषा एवं रूचि के अनुरूप चयन को महत्व देने के कारण अधिक लोकप्रिय हुई। यद्यपि प्राचीन शिक्षा व्यवस्था में दोनों पद्धतियाँ साथ–साथ प्रचारित एवं प्रसारित हुई। वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में भी इन शैक्षिक उद्देश्यों की ग्रहणीयता एवं उपादेयता सर्वमान्य है।

सन्दर्भ :

1. सारस्वत, मालती एवं गौतम, एस0एल0 (2008) : भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, आलोक प्रकाशन, लखनऊ.
2. लाल, रमन बिहारी (2014–15) : शिक्षा के दार्शनिक व समाजशास्त्रीय आधार, आर0 लाल बुक डिपो, मेरठ।
3. गुप्ता, एस0पी0 एवं गुप्ता, अलका (2012–13) : भारतीय शिक्षा का इतिहास, विकास एवं समस्याएँ, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज.
4. मिश्रा, के0एस0 एवं उपाध्याय, प्रतिभा (1996) : शिक्षा में उदीयमान चुनौतियाँ, लोकहित प्रकाशन, प्रयागराज.
5. पाठक, पी0डी0 (2004) भारतीय शिक्षा का इतिहास एवं समस्याएँ, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा।
6. भारतीय आधुनिक शिक्षा, जनवरी 2002 (राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद)

***

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में महिलाओं की दशा और दिशा

दिग्विजय सिंह *

हमारे देश भारत में प्राचीन काल से आज तक हर समय चर्चा रही है कि स्त्री देवी का रूप है। पूजनीय है कि यह मुस्लिम काल के अलावा हर शासन काल या वर्तमान सरकारों में भी देखा जाय तो यह स्पष्ट होता है कि इनकी प्रशंसा होती रही है लेकिन न जाने क्यों इनके साथ यह देखा गया है कि प्राच्च काल से आज तक भी इनका जो समाज में स्थान होना चाहिए वह आज तक नही मिल पाया है जबकि कोई भी वेद पुराण या कोई धर्म ग्रन्थ भी पढ़ा जाय तो उसमें महिलाओं की प्रशंसा की गयी है। जिस स्थान पर नारियों की पूजा होती है वहॉ देवता निवास करते है जैसा कि –

यंत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता

साथ ही यह भी कहॉ गया है कि –

यत्रैतास्तु न पूज्यन्ते सर्वास्तत्राफलः क्रिया।।

अर्थात जिस स्थान पर महिलायें की पूजा नही होती है, उनका सम्मान नही होता वहॉ पर समस्त अच्छे कार्य निष्फल हो जाते है। आज बदलते परिवेश में देखा जाय तो प्राचीन काल की अपेखा आज काफी इनके स्तर मे सुधार हुआ है आज चाहे उनको शिक्षा के क्षेत्र या राजनैतिक क्षेत्र या सरकारी सेवाओं में या योग्यता कुशलता में उनके क्षेत्र में प्रगति निश्चित रूप से हुई है लेकिन इनके साथ सबसे बड़ी समस्या सुरक्षा की बनी हुई है। इसके बारे में सभी लोग परिचित हैं कि निर्भया जैसी घटनायें आये दिन घटती रहती हैं और इसके अलावा भी देखा जाय तो यह तो आम महिला है जबकि हम देख रहे हैं कि आज हमारे समाज में महिला पुलिस महिला कर्मचारी और अधीकारी भी सुरक्षित नही हैं तो हम साधारण महिलाओं की सुरक्षा के संदर्भ में क्या उम्मीद कर सकते हैं जबकि वर्तमान सरकारें आये दिन विभिनन प्रकार के कानून उनके हित में बनाते रहते हैं। फिरभी जो भी महिलाएं जहां पर हैं उनके आसपास के लोग उनकी परिस्थितियों का लाभ उठाकर शोषण करते रहते हैं और वह शोषण का शिकार बनी रहती है।

जबकि देखा जाय तो प्राचीन काल में महिलाओं की स्थिति बहुत अच्छी थी बिना महिला के पुरुष अधूरा माना जाता था कोई भी धार्मिक कर्मकाण्ड बिना महिला के संभव नही होता था। "हमारे धार्मिक ग्रन्थ रामायण काल में भी सटीक प्रमाण है कि अश्वमेघ यज्ञ में राम के साथ सीता का पूरा महत्व दिया गया। जैसा कि सीता की स्वर्ण प्रतिमा की स्थापना करके'' इससे स्पष्ट होता है कि नारियों का विशेष स्थान रहा है।

आज वर्तमान भारत 12वीं सदी के पड़ाव पर है फिर भी स्त्रिओं की शिक्षा व्यवस्था पर्याप्त नही दे पा रहा है हमारा समाज। जबकि आज हमारे देश में सामाजिक, राजनैतिक वैज्ञानिक प्रगति बहुत तेजी से होने के बाद भी आज स्त्री शिक्षा पर लापरवाही बरतती है। जबकि आज वर्तमान भारत की महिलायें देश से विदेश तक व धरती से अंतरिक्ष तक हमारे देश की महिलाओं ने नाम रोशन किया है फिर भी आज महिलाएं पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नही हैं। जबकि हमारे देश की महिलाओं ने देश का नाम रोशन किया है फिर भी महलाओं के लिए स्वच्छ वातावरण की कल्पना नही की गयी। आज भी महिलाओं की प्रगति के असुरक्षा की भावना महिलाओं की प्रगति को रोकती है। महिलाएं किसी भी कार्यालय या किसी भी संस्थान में कार्य करती हैं लेकिन वह अपने आप को पूर्ण सुरक्षत नही समझती हैं। जब तक हमारे समाज में पुरुषों के बराबर दर्जा महिलाओं को नही दिया जायोगा तब तक प्रगति संभव नही है।

जैसा कि राजनैतिक दार्शनिक प्लेटो ने कहा है कि ''जब तक समाज की आधी आबादी घर की चहार दीवारी मे बंद रहेगी तब तक वह सम्पूर्ण समाज पूर्ण उन्नति नही कर सकता।''

---

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, महार्षि शान्डिल्य प्रशिक्षण संस्थान, गौरीगंज, अमेठी

प्लोटो दि रिपब्लिक वर्तमान काल में किसी भी संस्थान में रहे लेकिन किसी न किसी तरीके से उनका शोषण होता रहता है, उनको हर समय किसी न किसी रूप में असुरक्षा की स्थिति बनी रहती है इस स्थिति को हम आधुनिकता कैसे कह सकते हे जबकि हम यह देख रहे है, कि हमारे देश की महिलाएं किसी भी क्षेत्र में पुरूषों से कम नही है योग्यता कुशलता उनमें भी पुरूषों के समान है जैसे स्पष्ट करता है कि चाहे देश की आजादी हो या फिर और किसी विकास या वैलानिक या चिकित्सा क्षेत्र में देखा जाये लेकिन ये किसी भी क्षेत्र में किसी से योग्यता कुशलता में कम नही है, इन्ही परिस्थितियों को देखते हुए एक कवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी कविता में चन्द पंक्तियॉ दी है–

'' अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहॉनी।
ऑचल में है दूध,और ऑखों में पानी।।''

यह चन्द लाइने कवि ने उस काल में लिखी है जब आज के वर्तमान भी नही की जा सकती थी जबकि आधुनिक काल में देश के बहुत से लोगों ने व बहुत सी संस्थाओं और समाज सुधार को ने ी बहुत प्रयास किये इनकी स्थिति के सुधार के लिए सरकारी अधिनियम भी बनाये गये लेकिन आज भी महिलाओं की स्थिति में सुधार नही हो पाया है अतः आज समाज के जिम्मेदार कही न कही से अपने कार्यो में असफल सिद्ध हो रहे है चाहे वह वर्तमान सरकारें हो या नेता हो या समाज सुधार सभी अपने जिम्मेदारियों का सही से निर्वहन नही कर पा रहे है इससे जाहिर है कि वर्तमान समाज में महिलाएं आज भी अपने आप को असुरक्षित मान रही है।

प्राच्य काल से लेकर आज तक हमारे देश में विभिन्न क्षेत्रों में देखा गया कि महिलाओं के साथ विभिन्न प्रकार से अन्याय होता रहा चाहे वह भूण हत्या कन्या बध सती प्रथा और भी विभिन्न प्रकार की कुप्रथाएं थी जिनकी वजह से इनक स्थिति में सुधार में रूदिवादी विचार धारा बनी रही।

जबकि इनकी स्थिति के सुधार के लिए 19वी व 20वी शताब्दी में राजाराम मोहन राय, ईश्वर चन्द, विद्या सागर, केशवचन्द्र सेन, एम0जी0 रानाडे, सर सैय्यद अहमद खॉ, दयानन्द सरस्वती, मालावरी, महात्मा गॉधी, रवीन्द्र नाथ टैगोर, श्रीमती एनीबेसेन्ट, लाल बहादुर शास्त्री, जवाहर लाल नेहरू, सरोजनी नायडू, कमला देवी, आदि महान व्यक्तित्व हुए इन लोगों ने व्यवस्था को सुधारने व पूरी कोशिश की इसके अलावा विभिन्न प्रकार की संस्थाओं ने भी काम किया जैसे – ब्रम्ह समाज, आर्य समाज, तथा थियो सोफिकल सोसाइटी जैसी संस्थाओं ने महिलाओं के स्तर को ऊॅचा उठाने का प्रयास किया।

इन संस्थाओं समाज सुधारको के प्रसार प्रचार से प्रभावित होकर सरकार ने भी प्रयास करना प्रारम्भ किया और राजा राममहोन के प्रयासो के फल स्वरूप तत्कालीन ब्रिटिश भारत के गर्वनर जनरल लार्ड विलियम बैटिंक द्वारा 4 दिसम्बर 1829 को सती प्रथा को गैर कानूनी घोषित कर दिया।

उसके बाद विधवाओं की स्थिति बिगड़ती जा रही भी उनकी स्थिति सुधरने का नाम नही ले रही थी इनको अपमान जनक जीवन व्ययतीत करना पड़ रहा था इस समस्या को लेकर ईश्वर चन्द्र विद्या सागर के पुर्नविवाह के संदर्भ में आन्दोलन शुरू किया इससे प्रभावित होकर वर्तमान सरकार ने 16 जुलाई 1856 को 'विधवा' पुर्न विवाह एक्ट पास कर दिया जिसकी वजह से उनको खुशहाल जीवन मिल सके लेकिन फिर भी लोग जागरूक नही हो रहे थे उनको विधवाओं की स्थिति सुधारने के संदर्भ में ईश्वर चन्द्र विद्या सागर, ने स्वयं अपने लड़के का विवाह विधवा से करवाया। इसीप्रकार से और प्रोत्साहन दिया जा रहा था लेकिन आज भी महिलाओं की समस्याएं बनी हुई है। डॉ0 ए0के0 मित्तल, भारतीय इतिहास इसी समय और भी समस्याएं बनी हुई थी।

सरकार इनके सुधार के लिए बराबर प्रयास करती रही जैसे स्कूल कॉलजो विश्वविद्यालयों क स्थापना करती रही जिससे कि इनकी स्थिति में सुधार किया जा सके।

सन्दर्भ :

1. वासुदेव साहसी, महिला सशक्तीकरण दशा और दिशा, Journal of Reviews and Research in Social Sciences, online Journal.
2. www. Campus chronicle. in

3. शोध मंथन शोध पत्रिका।
4. योगेन्द्र शर्मा – महिला सशक्तीकरण दशा और दिशा, लोक भारती प्रकाशन, नई दिल्ली – 2018
5. मनोज कुमार – महिला सशक्तीकरण दशा और दिशा, पाण्डुलिय प्रकाशन, 2020।
6. राकेश कुमार आर्य महिला सशक्तीकरण और भारत, डाईमण्ड बुक प्रकाशन, 2020।

***

वेदों में नारीवाद का अस्तित्व : एक विवेचन

भावना राव *

भारतीय परम्परा में नारी को पूजनीय एवं वन्दनीय माना गया है। भारतीय संस्कृति ऐसी रही है कि यहाँ नारी को अत्यन्त ही उच्चकोटि का स्थान प्राप्त है। नारी को विभिन्न नामों– लक्ष्मी, उषा, देवी, सरस्वती, दुर्गा, महिषि इत्यादि नाम से जाना जाता था। वेदों में नारी का स्थान सुनहरे रत्न की भाँति था। इसी कारण नारी के अस्तित्व को सम्मान की दृष्टि से देखा जाता था। ऐसी मान्यता रही है कि वेदों के समय में समाज को उच्च स्तर का समाज माना जाता था, क्योंकि उस समय वेदों में नारी को ससम्मान स्थिति प्राप्त थी। नारी पुरुष के समकक्ष अपनी गरिमा को बनाये रखती थी एवं पुरुषों के द्वारा किये जाने वाले प्रत्येक कार्य में सहायिका होती थी। नारी के अस्तित्व के सन्दर्भ में वेदों में नारी की जो विचारधारा मिलती है, वह बहुत ही गुणकारी, प्रभावशील एवं सुन्दर प्रतीत होती है। इसी सन्दर्भ में मनु स्मृति में कहा गया है कि ''यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते तत्र रमन्ते देवता''[1] अर्थात् जहाँ नारी की पूजा होती है एवं सम्मान होता है, उस स्थान एवं परिवार में देवताओं का वास होता है।

मुख्य शब्द– वेद, नारी, सभ्यता, संस्कृति, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, ऋचायें इत्यादि।

साहित्यावलोकन– मैंने लघुशोध हेतु जिन साहित्य की सहायता ली है उनमें मनुस्मृति, ऋग्वेद, पं0 श्रीराम शर्मा आचार्य, प्रकाशक संस्कृति संस्थान बरेली द्वारा। सामवेद, पंडिता राकेश रानी प्रकाशक, दयानन्द संस्थान द्वारा एवं कुछ अन्य पुस्तकों द्वारा संग्रह कर लधुशोध में सहायता ली है।

प्रस्तावना– भारतीय इतिहास में प्राचीन सभ्यता नारी समाज में सर्वोच्च स्थान माता को प्राप्त होता है। क्योंकि समाज की उन्नति से वैदिक काल में भी पुत्र–प्राप्ति की कामना अवश्य की जाती थी। क्योंकि नारी का सम्मान देश की प्रगति एवं उत्थान में अत्यन्त महत्वपूर्ण सिद्ध होती है। ऋग्वेद और अथर्ववेद में कहा गया है कि नारी के सम्मान की रक्षा करना राष्ट्रीय कर्तव्य है। वेद विश्व का प्राचीन ग्रन्थ है जिसमें नारी के स्वरूप का विविध चित्रण दिखाई पड़ता है। भारतीय संस्कृति एवं समाज के लए यह अद्भुत एवं अविस्मरणीय प्रतीत होता है। जिसमें नारी के विविध नाम का वर्णन है– इन्द्राणी, गोधा, घोषा, कक्षीवती, दक्षिणा, लोपा मुद्रा, अदिति इत्यादि। वेद में वर्णित नारी की यह स्थिति को भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता में स्पष्ट करती है। वेद के चारों भाग में नारी के सम्बन्ध में अपना विशिष्ट महत्व है। इस आधार पर कर्मकाण्ड एवं धार्मिक अनुष्ठान प्रत्यक्ष रूप से जुड़ जाते हैं। अतः वेद में मनुष्य के जीवन का सम्पूर्ण आधार निहित है। नारी के बिना धार्मिक उपदेश या कर्मकाण्ड पूर्ण नहीं हो सकते इसलिए स्त्री और पुरुष का सम्बन्ध धार्मिक कर्मकाण्ड में अत्यन्त आवश्यक है। इस आधार पर वेदों में नारी के अस्तित्व को बहुत ही प्रभावशाली एवं विस्तृत रूप में स्पष्ट किया गया है।

उद्देश्य– वेदों में नारी की स्थित की परिचर्चा करते हुए यह उद्देश्य निर्धारित किया जा सकता है कि वैदिक कालीन नारियाँ बहुत ही प्रभावशाली सर्वगुण सम्पन्न एवं ख्याति युक्त होती थीं लेकिन आधुनिक समय में नारियों की जिस दशा का वर्णन परिलक्षित हो रहा है, वह समाज के निम्न कोटि के विचारधारा को इंगित करता है। जो भारतीय संस्कृति और सभ्यता के लिए निराशाजनक है। अतः आज की परिस्थिति को देखते हुए नारियों की स्थिति में हर संभव सुधार का प्रयास किया जाना चाहिए ताकि नारियाँ स्वतन्त्र होकर प्रत्येक क्षेत्र में अपने कर्तव्य का उचित निर्वहन कर सकें।

ऋग्वेद में नारी का अस्तित्व–

ऋग्वेद का कालखण्ड हजारों वर्षों का है। इस कालखण्ड में विभिन्न प्रकार के परिवर्तन देखने को मिलते हैं। वर्तमान समय में ऋग्वेद में कालखण्ड का विभाजन किया जाए तो ऐसा प्रतीत होता है कि ऋग्वैदिक काल में नारी की स्थिति, उसके अस्तित्व एवं उसके जीवन में गम्भीर परिवर्तन से परिचित कराती है। ऋग्वेद काल में नारी को समाज और परिवार द्वारा सम्मान जनक स्थिति प्राप्त थी।

* शोध छात्रा, राजकीय महिला पी. जी. कॉलेज, गाजीपुर, उ. प्र.

इसी सम्बन्ध में ऋग्वेद में कहा गया है ''स्त्री ही ब्रह्म भूविध'' अर्थात् ऋग्वेद में वर्णन है कि स्त्री ही ब्रह्मा है। पालन पोषण कर्त्री है तथा ज्ञानदात्री होने के कारण स्त्री को ब्रह्म के समान माना गया है। ब्रह्म के समान प्राप्त आदर और सम्मान उसे दिया जाता है।[2] वह परिवार की स्वामिनी कही जाती थी। कृषि कार्य नारियों की मुख्य देन थी। जब कभी भी कृषि कार्य में रूकावट आती थी तो परिवार एक स्थान पर विकास करने लगता था। इससे स्पष्ट परिलक्षित होता है कि आरम्भ में मातृ सत्तात्मक परिवार की सत्ता थी। जहाँ परिवार की केन्द्रिय भूमिका में स्त्री, पत्नी या माँ होती थी। नारी की स्थिति उस समय अधिकारों से सम्पन्न थी। उस समय नारी को देवी के रूप में समझा जाता था। इसलिए नारी को उस समाज में उत्कृष्ट स्थान प्राप्त था। उस कालखण्ड में अर्धनारीश्वर की कल्पना नारी के सम्मान को बढ़ाती थी। उसे शिक्षा का अधिकार भी प्राप्त था एवं उस समय की नारियाँ चिन्तनशील प्रगति की होती थीं। जिसके लिए वेदों में अनेक ऋचाएँ लिखी गयी हैं। इसलिए आज भी गार्गी, मैत्री, लोपा, मुद्रा इत्यादि को प्रतिभा एवं सर्वगुण सम्पन्न माना जाता है। ऋग्वैदिक कालखण्ड में नारी को सम्मान पूर्वक देखा जाता था इसी संदर्भ में ऋग्वेद में कहा गया है–

साम्राज्ञी श्वसुरे भव, साम्राज्ञी श्वश्रवा भव।
ननान्दरि साम्राज्ञी भव, साम्राज्ञी अपिदेववृषु।।[3]

अर्थात् ऋग्वेद में कहा गया है कि 'हे वधू! तू ससुर, सास, ननद और देवरों के साथ गृहस्वामिनी के रूप में रहो।

इस प्रकार ऋग्वेद कालखण्ड में नारी की स्थिति को दर्शाते हुए नारी के अस्तित्व एवं उसे सम्मान को स्पष्ट किया गया है तथा वेद के आधार पर नारी के अस्तित्व की विवेचना की गयी है।

अथर्ववेद में नारी का अस्तित्व–

अथर्ववेद में मानवीय सम्बन्ध केवल नारी और पुरुष के संबंध तक न होकर बल्कि जीवन के अनेक पहलू से भी जुड़ती है। यहाँ केवल धार्मिक कर्मकाण्ड या उपदेश इत्यादि तक सीमित न होकर बल्कि मंत्र, विधि, जादू–टोना एवं अनेकों प्रकार के हिंसक जीव जंतुओं एवं रोगों से बचने के प्रार्थना और मंत्र निहित है। अथर्ववेद वेदों का अंतिम वेद माना जाता है। तीन वेदों के पश्चात् इसका स्थान आता है। वास्तव में यह वेद और ब्राह्मण का संधिस्थल है। अथर्ववेद में नारी को घर, बाहर, सभा इत्यादि में प्रतिभाग हेतु प्रोत्साहित किया जाता था। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि अथर्ववेद के समय में नारियाँ धार्मिक एवं सांस्कारिक प्रवृत्ति की होती थीं। उनको बाहरी कार्यों में पूर्ण स्वतंत्रता प्राप्त थी।

अथर्ववेद में नारी को गर्भवती होने पर बहुत ही महत्व एवं सम्मान दिया जाता था। गर्भावस्था के दौरान नारी के स्वास्थ्य को लेकर दिशा निर्देश दिया जाता था। उस समय तक नारी के शारीरिक और मानसिक अवस्था का विशेष ध्यान रखा जाता था। यह इसलिए कि गर्भावस्था के दौरान नारी यदि प्रसन्न मुद्रा और सुखी रहती है तो नारी से उत्पन्न होने वाला बालक भी सुखी एवं प्रसन्न मुद्रा में रहेगा। इसलिए नारी के देख–रेख हेतु देश–काल को पहले से सुनिश्चित किया जाता था। गृहस्थ जीवन में सुख और शांति का अनुभव कैसे प्राप्त हो इसका भी अथर्ववेद में विस्तृत विवरण मिलता है। एक विवाहित स्त्री का गृहस्थ जीवन में किस प्रकार के उत्तरदायित्व का निर्वहन करना चाहिए। दहेज के स्वरूप का विवरण अथर्ववेद में प्रचलित दिखाई पड़ता था। उस कालखण्ड में लेन देन का प्रचलन नहीं था और न ही विवाह पूर्व दहेज की राशि को तय किया जाता था। फिर भी अथर्ववेद में इसे दहेज प्रथा का एक स्वरूप माना गया है।

यजुर्वेद में नारी का अस्तित्व–

यजुर्वेद के अध्ययन से ज्ञात होता है कि इसमें यज्ञ होम इत्यादि की चर्चा की गयी है। यजुर्वेद में नारी के अस्तित्व के सम्बन्ध में व्याख्या प्रस्तुत की गयी है। इस वेद में स्त्री और पुरुष के कर्तव्य जहाँ इसमें स्त्री पुरुष के जीवन के उत्तरदायित्व का परिचय मिलता है। वहीं उनकी स्थिति को भी दर्शाया है।[4]

यजुर्वेद में बुद्धिमान नारियों का बहुत सम्मान किया जाता था। बुद्धिमान नारियों का यह दायित्व था कि नयी कन्याओं को ब्रह्मचर्य एवं धर्म सम्बन्धी कार्य में प्रशिक्षित कर सके जिससे वे

जिम्मेदार गृहिणी बन सके एवं समाज में रहकर अपने दायित्वों का निर्वहन करते हैं।[5] नारी का यह दायित्व रहता था कि वह अपने पति को अच्छे कार्य करने हेतु प्रेरित कर सके। नारी को इस दृष्टिकोण से देखने पर नारी को कई स्थितयाँ प्रत्यक्षरूप से परिलक्षित होती है। प्रथमतः तो वह अपने प्रति उत्तरदायित्व का निर्वहन करे। जिसके द्वारा वह योग शिक्षित और साहसी बन सके। शिक्षित वह बुद्धिमान नारी ही समाज के प्रति उत्तरदायित्व का निर्वहन कर सकती है और गृहस्थ आश्रम के प्रति भी उत्तरदायित्व का निर्वहन करती थी। अतः स्पष्ट है कि यजुर्वेद में शिक्षित बुद्धिमान साहसी नारी का बहुत ही सम्मान और महत्व था।

इसी सन्दर्भ में कहा गया है–

'स्त्रियस्तुष्टः श्रियः साक्षाद् रुष्टाश्चदुष्टदेवताः।
वर्धयन्ति कुलं तुष्टा, नाशयन्त्यपमानितुः।।'[6]

अर्थात् स्त्रियाँ ही सन्तुष्ट होने पर लक्ष्मी है, रुष्ट होने पर कुल का नाश करती है।

इसी सन्दर्भ में कहा गया है–

''कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः स्योन सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसनो गृणन्तु इमा ब्रह्म पीपिहि सौभगाय।।''[7]

अर्थात् हे स्त्री! तुम सुन्दर घर वाली, घृत आदि से युक्त और परिवार का पालन करने वाली होकर पृथ्वी के सुखद स्थानों में निवास करो।

इसी सन्दर्भ में कहा गया है–

गृहं च गृहिणीमाहुः।[8]

अर्थात् नारी ही घर है।

प्रजापति स्मृति में कहा गया है कि–

''न गृहं गृहमित्याहुर्गृहणी गृहमुच्यते।''[9]

अर्थात् गृहिणी से सुशोभित घर को ही घर कहते हैं।

नारी के उत्तरदायित्व को देखकर अनुमान लगाया जा सकता है कि उस समय की वैवाहिक स्थिति कितनी सुदृढ़ थी। जिसके द्वारा गृहस्थ आश्रम में भी सुख और शांति बनी रहती थी।

सामवेद में नारी का अस्तित्व– हिन्दू धर्म में वेदों का अपना महत्व है लेकिन सामवेद की अन्य वेदों की तुलना में अपनी अलग पहचान है क्योंकि सामवेद में गाये जाने वाले मन्त्रों का उच्चारण है। देवताओं के लिए यज्ञ कर उन्हें आमंत्रित किया जाना एवं उच्च स्वर में देवताओं के लिए मन्त्र की स्तुति करना इस वेद की विशिष्ट पहचान है। सामवेद में नारी की स्थिति की भी चर्चा की गयी है। जिसके अन्तर्गत नारी का परिवार समाज एवं धर्म में क्या स्थिति है, तथा उसके क्या उत्तरदायित्व हैं। इसी सन्दर्भ में सामवेद में नारी के लिए कहा गया है– ''हे धन आदि का संचय करने वाली उषा के तुल्य पंक्ति आचरण युक्त स्त्री तू हमें सौभाग्य दे जिससे कि हम पुत्र और पौत्र को भी धारण कर सकें।'' फिर कहा गया है कि–

उवस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं काजिनी।
येनतोक च तनयं च धाम हे।।[10]

अर्थात् इसी तरह उषा के समान देवी से प्रार्थना है कि– हे गौ तथा अश्व आदि से युक्त उत्तम प्रभाव वाली तथा सत्य ज्ञान की स्वामिनी विदुषी देवी, तू हमें धन धान्य से सम्पन्न करती हुई अज्ञानान्धकार से दूर रख। अतः सामवेद में नारी में नारी की स्थिति का उत्तम वर्णन मिलता है। इसलिए सामवेद में ईश्वर की उपासना भक्ति साधना व प्रार्थना की अपनी एक विशिष्टता है। सामवेद में नारियाँ भी भक्ति, अराधना, प्रार्थना करने के लिए स्वतन्त्र थीं। जिसके कारण उसका परिवार सुखी और सम्पन्न रहता था। उस समय की नारियाँ अपने कर्तव्यों का निर्वहन बहुत ही कुशलता के साथ करती थीं। इस प्रकार सामवेद में नारी की विशिष्ट गुणों की व्याख्या मिलती है।

महत्व– वेदोंमें नारी को अत्यन्त ही ससम्मानपूर्ण, उच्चकोटि एवं गरिमा युक्त स्थान प्राप्त है। वेदों में नारी की शिक्षा–दीक्षा का सुन्दर वर्णन पाया जाता है। जिसे सामाजिक भूमिका में गुण कर्तव्य अधिकार

इत्यादि के स्वरूप में देखा जा सकता है। इस प्रकार की शिक्षा–दीक्षा किसी अन्य ग्रन्थों में नहीं मिलती है। वेदों के महत्व को स्पष्ट करते हुए बताया जा सकता है कि नारी को यज्ञ का अधिकार प्राप्त था तथा पुरुषों के समकक्ष युद्ध में भी जाने का अधिकार प्राप्त था। वैदिक शिक्षा में नारियों पर किसी भी प्रकार का प्रतिबन्ध नहीं रहता था। नारी को प्रत्येक प्रकार की स्वतन्त्रता प्राप्त थी उनके प्रत्येक कार्य को प्रोत्साहित किया जाता था। अतः हम यह कह सकते हैं कि वर्तमान में नारी की जो स्थिति है वैसी स्थिति वेदों में प्रचलित नहीं थी।

समीक्षा–

समीक्षात्मक रूप से कहा जा सकता है कि ऐसी विचारों की पवित्र धारा जो चारों वेदों की ऋचाओं के अन्दर ही अन्दर बहती है। जहाँ स्त्री–पुरुषों के कर्त्तव्यों की बात है वही उनके उत्तरदायित्व भी हैं। क्योंकि धार्मिक उपदेश स्त्री–पुरुष के जीवन को तराशते हैं, जैसे– पूजा, हवन की पद्धतियाँ वैदिक काल में स्त्रियों का व्यक्तित्व बहुत प्रभावशाली और विशाल रूप से सामाजिक–धार्मिक, पारिवारिक कर्त्तव्यों व प्रतिष्ठा के प्रति स्त्री को गृह की संज्ञा दी गयी। क्योंकि उसके अभाव में परिवार की उन्नति सम्भव नहीं है। वैदिक काल में स्त्री की स्थिति में बदलाव आया यह वह समय था जब वर्ण और आश्रम व्यवस्था स्थापित स्त्री परिवार के घर में बंदी होने लगी, इसी तरह एक पुरुष प्रधान समाज की नींव पड़ गयी और स्त्री धीरे–धीरे पुरुषों के अधीन होती चली गयी। वेद में ऐसी अनेक ऋषिकाएँ हैं जिन्हें नारी होने का गौरव प्राप्त है। ये विदुषी और चिन्तक थीं जैसे– देवसाम्राज्ञी, शची, वाचकत्तवी, गार्गी, अपाला, घोषा इत्यादि ये ऋषिकाएँ ऋचाओं की लेखिका भी है और पत्नी भी, अपवाद स्वरूप ही सही स्त्री पति के साथ युद्धस्थल पर भी जाती थीं। यहाँ स्त्री की वीरता व साहस की गाथा है, यह कटु सत्य है।

जहाँ तक स्त्री की आर्थिक, सामाजिक स्थिति की बात है ऐसी भी नहीं मिलती है कि स्त्री बहुत बड़ी भूमि की स्वामिनी हो अथवा उसके पास हजारों गाय हो अथवा उसके खेतों में हजारों श्रमिक काम करते हों जबकि कृषि की उत्पत्ति स्त्री के द्वारा ही हुई है। स्त्री आर्थिक रूप से पीछे हो गई। धार्मिक अंधविश्वासों के घेरे में स्त्री जकड़ती गई। सती–प्रथा, बाल–विवाह, बहुपत्नी विवाह, अनुलोम विवाह, इत्यादि शिक्षित व सभ्य समाज की देन है व पुरुष ऋग्वेद जैसी महान धार्मिक पुस्तक हो वहाँ स्त्री के साथ पशुओं सा व्यवहार किया जाए इसलिए वैदिक काल तक आते–आते पुरुष समाज के अधीन हो गयी और घर की शोभा बनकर रह गयी व स्त्री का सम्मान मुँह के बल ढेर हो गया।

संदर्भ :

1. मनुस्मृति, अध्याय 3, पृ0 56–60
2. ऋग्वेद, 8.33.19
3. वही, 10.85, 46, अथर्ववेद, 14.1.44
4. यजुर्वेद, 14.2
5. बृहत्पराशर स्मृति, 6.45
6. वही, 5.115, 671
7. प्रजापति स्मृति, 55
8. सामवेद, पंडिता राकेश रानी, प्रकाशक दयानन्द संस्थान, संवत् 2030, पृ0 164
9. वही

***

श्रीरंजन सूरिदेव का आलोचना साहित्य : एक अध्ययन

वर्षा रानी *

सारांश

हिन्दी–आलोचना आज एक स्वतंत्र और समृद्ध गद्य के रूप में स्वीकृत है । अन्य गद्यविधाओं की तरह 'आलोचना' का विकास भी आधुनिक काल में भारतेन्दु–युग से ही माना जाता है । इसका यह अर्थ यह नहीं कि भारतीय आचार्य काव्य–सौन्दर्य के विधायक तत्त्वों का निरूपण नहीं कर सके थे । वस्तुतः भारतीय आचार्य ने काव्य के सौन्दर्य के विधायक तत्त्वों को लक्षित और परिभाषित करने के प्रयत्न में स्वतंत्र सिद्धान्त ग्रंथों की रचना की थी । वे काव्य–शास्त्र निर्माता थे । कवि–विशेष या कृति–विशेष के रचना–सौष्ठव के विश्लेषण में उनकी रूचि नहीं थी । उन्होंने रस, अलंकार, रीति, वक्रोक्ति, औचित्य और ध्वनि सिद्धान्तों की मीमांसा करते हुए काव्य के बाह्य और आन्तरिक सौन्दर्य के आधारभूत तत्वों का स्वरूप निर्दिष्ट किया था । अतः हिन्दी–आलोचना के स्वरूप को निर्दिष्ट करने के लिए हमें इसी युग से अपनी विचार–यात्रा आरम्भ करनी होगी ।

कुंजिका : आलोचना, काव्य, भारतेन्दु–युग, साहित्य, सामाजिक, धार्मिक आदि।

परिचयः हिन्दी आलोचना की शुरूआत उन्नसवीं सदी के उतरार्ध में भरतेन्दु युग से ही मानी जाती है। आलोचना का शाब्दिक अर्थ होता है– 'अच्छी तरह देखना' व्यक्तिगत रूचि के आधार पर किसी कृति की निन्दा या प्रशंसा करना आलोचना का धर्म नहीं है। भारतेन्दु–युग में हिन्दी–आलोचना का आरम्भ पत्र–पत्रिकाओं के माध्यम से हुआ, किन्तु आधुनिक आलोचना का उत्कृष्ट उदाहरण इस काल में नहीं मिलता ।[1] 'हिन्दी–प्रदीप' (1877–1910) ही एक ऐसा पत्र था जो अपेक्षाकृत गम्भीर आलोचनायें प्रकाशित करता था। पत्र–पत्रिकाओं में पुस्तक समीक्षा के रूप में प्रकाशित होने वाली आलोचनाओं के अतिरिक्त इस युग में तीन प्रकार की आलोचनाओं का अस्तित्व भी स्वीकार किया जा सकता है –

1. रीतिकालीन लक्षण–ग्रन्थों की परम्परा में लिखित सैद्धान्तिक आलोचना ।
2. ब्रजभाषा एवं खड़ी बोली गद्य में लिखी गयी टीकाओं के रूप में प्रचलित आलोचना ।
3. इतिहास–ग्रन्थों में कवि परिचय के रूप में लिखी गयी आलोचना ।

प्रथम वर्ग के अन्तर्गत पिंगल, अलंकार, रस, नाटक तथा सम्पूर्ण काव्यशास्त्र इन सभी विषयों पर लक्षण ग्रंथों की रचना की गयी ।

सामाजिक, धार्मिक और राजनीतिक परिस्थितियाँ जन जीवन की दशा और दिशा बदलती रही है। नियामक (नियम या व्यवस्था करने वाला) की भूमिका के कारण ही इसका प्रभाव अभिव्यक्ति के सभी रूपों पर पड़ना स्वाभाविक है।[2] रचना से आलोचना तक का संसार, समाज, धर्म और राजनीति के शक्ति का गवाह बनता हैं। इसका बिंब प्रति बिम्ब और गूँज–साहित्य में दृष्टिगोचर होता आया है। सच तो यही है कि इसी में परिवर्तन के कारण साहित्य के रूपों में भी परिवर्तन होता आया है।

रचना (सर्चना) की पीड़ा और उल्लास के जिन क्षणों में रचनाकार जीता है, उस अनुभूति का साक्षात्कार आलोचना में होता है। तभी जाकर समालोचक रचना मूल भाव और विचार को जमीन पर उतरता है। रचना के मूल भााव और विचार रचनाकार का आतंरिक ज्ञान होता है और फिर मीमांसा (विचार)। रचना की मूल चेतना–भावना को अच्छी तरह से तैयार करना ही आलोचना का मतलब होता है। आलोचक रचना के रस का बखान करता है उससे रचना का सौन्दर्य बढ़ जाता है। जिसके कारण पाठकों में रूचि या जिज्ञासा पैदा होती है। एक अच्छे आलोचक होने के लिए प्रतिभा और शास्त्रज्ञता होने के साथ–साथ रचना कौशल की दक्षता होना अतिआवश्यक है। डॉ0 सूरिदेव ऐसे ही आलोचकों में आते हैं।

---

* शोधार्थी हिन्दी विभाग मगध विश्वविद्यालय

डॉ0 श्री रंजन सूरिदेव प्रखर आलोचक के रूप में मान्य और प्रसिद्ध हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय की परम्परा को आगे या निर्वहण करने वाले पुरूष व्यक्तित्व के रूप में अनकी अलग पहचान हैं । डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव की आलोचना खण्ड पुस्तक पढ़ने के बाद ऐसा लगता है मानो बीसवीं शताब्दी पुस्तक है। आलोचना खण्ड पुस्तक डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव को एक आलोचक सिद्ध करती है। प्राकृत–साहित्य में गीति काव्य पर भी इन्होंने अपना मक्तव्य दिया है। प्राकृत–साहित्य के गीतिकाव्य के पर्याप्त समृद्ध देखा जा सकता है। गीति काव्य को ही मुख्य रूप से मुक्तक काव्य कहा जाता है। काव्य शास्त्रियों द्वारा इसे 'काव्य विशेष' भी कहा गया है। जीवन की अनुभूति की घनिष्ठता गीतिकाव्य की निजता है। यानि गतिकाव्य को जीवन की अनुभूति के नजदीक माना जाता है। गीतिकाव्य का शिष्ट साहित्य में वही स्थान है, जो स्थान जन–साहित्य में लोक गीतों का है। विकासवादी विद्वानों का ऐसा मानना है कि लोकगीत ही गीतिकाव्य की उद्‌भव भूमि है।[3] गीत ही गीतिकाव्य का मूल तत्व है और मुक्तकता (स्वच्छंद) इसका रचना विशेष हैं इसलिए, गीतिकाव्य को इसकी योगता और मुक्तकता की दृष्टि से गीति–मुक्तकाव्य या गीतिकाव्य कहना गलत नहीं होगा।

इनके अनुसार मुक्तकाल काव्य दो रूप में दृष्टिगत होते हैं–मुक्तक और गीतिमुक्तक। ऋग्वेद, रामायण और महाभारत में समाहित गीतों की गणना वाट्यमुक्तक में की जा सकती है। ऋग्वेद, के गीतों में गीतिमुक्तक के तत्व प्रचुरता से प्राप्त है, परन्तु उनकी वाध्यमुक्तका गीतिमुक्तकता से अधिक प्रभावशाली हो अतः गीति–मुक्तक ही गीति काव्य हैं।

प्राकृत में मुक्तक गीतिकाव्यों का उद्‌गम् 'छान्दस या वैदिक मुक्तक काव्शैली से माना जाता है। लेकिन इनका विकास आगम–साहित्य की सरस प्रधात्मक उपदेश–प्रवचन शैली से माना जाता है। श्रृंगार के साथ–साथ शान्त और वेद रस की अनिवार्यता के अतिरिक्त प्राकृतिक सौन्दर्य का रूचि एवं तरल सुन्दर भाषा–शिल्प गीति–मुक्तकों के लिए अनिवार्य है। यानि समृद्ध कल्पना एवं भावात्मक तन्मयता ही मुक्त गीति काव्य का प्राण बिन्दु है। मुक्तक–गीतिकाव्य का आंतरिक सौन्दर्य वृद्धि का मूल कारण अनुभूति की तीव्रता, अलंकृत अभिव्यक्ति, विम्ब (छाया) एवं स्फूर्ति को रूपयित करने का आग्रह है। वर्ण्य विषय और भाव–विनियोग की दृष्टि से अगर विवेचन करते हैं तो यह स्पष्ट होता हैं कि प्राकृत में निबद्ध गीतिकाव्य (ताल और स्वर का विशेष ध्यान) संस्कृत–काव्यों की परम्परा से बिल्कुल नजदीक है। वैसे रचना–शैली के दृष्टि से प्राकृत के गीति काव्य की अपनी मौलिकता है।

प्राकृत–मुक्तक गीतिकाव्यों की परम्परा गाथासप्तषी (गाहासतसई) से मानी जाती है। प्राकृत–मुक्तक गीतिकाव्यों की धारा स्त्रोत्रात्मक भक्तिकाव्य एवं रसेत्तर नीतिकाव्य के रूप में भी प्रभावित हुई है।[4] धार्मिक पृष्ठभूमि के कारण बहुकोणिय विधा–वृतियों के अनुकूल होने के कारण प्राकृत के मुक्तक–गीतिकाव्यों में जीवन की विविधताएँ, कर्पूरमंजरी, रत्नावली आदि प्राकृत काव्यों से अलंकृत है।

प्राकृत–मुक्तक–गीतिकाव्यों की परम्परा का व्यापक विकास मूलतः धर्म और सिद्धान्त के आग्रह पर हुआ है। जिसके कारण प्राकृत–मुक्तक गीतिकाव्य के विस्तार के अनेक नवीन गीत उद्‌घाटित हुए, साथ ही साथ साहित्य की स्वीकृति के कारण श्रृंगार की विविध भव्य परिकल्पनाएँ भी की गई।

'गाथासतसई' राजा हाल सातवाहन ईसवीं प्रथम शती द्वारा रचित सात सौ प्राकृत–गाथाओं का संकलन ग्रंथ है। यह ग्रंथ प्राकृत के मनोरम गीतिकाव्यों में अपना प्रमुख स्थान रखता है। इस ग्रंथ को प्राकृत का आदि गीति काव्य भी है। इस गीतिमुक्तक काव्य में प्राकृत के प्रतिनिधि कवियों और कवयित्रियों की लिखित सात सौ छंद संग्रहीत है। 'गाथासप्तशती' की छंद अलंकृत एवं व्यंग्य प्रधान है साथ ही महाराष्ट्री प्राकृत में आर्या छंद में लिखित है।

काव्य शास्त्र में भक्ति को भी एक रस ही माना गया है। इसलिए भक्त्यात्मक स्त्रोत गीति काव्य को भी रसात्मक एया रसानुगामी काव्य कह सकते हैं। गीतिकाव्य के अन्तर्गत मनोरम शिल्प (कला) की समृद्धि का संकेत हम भक्तिपूर्ण स्त्रोत या प्रार्थना के माध्यम से देते हैं। भक्तिरूपी स्त्रोत गीतिकाव्य में प्राकृत–काव्य विधा को सैद्वान्तिक और शास्त्रीय अनुशासन प्रदान किया है। जिसके कारण प्राकृत–काव्य शास्त्र ने एक नया शांत उज्जवल गति और स्फूर्ति उर्जा अर्जित की है।

प्राकृत–काल में भक्ति की जो रसमयी धारा मुक्तक–गीतिकाव्य के रूप में प्रवाहित हुई, उसमें साथ–साथ सरसता, विषाद, विवशता, मुक्ति आदि की भी उपधाराएँ गतिशील हुई है।

श्रीरंजन सूरिदेव ने प्राकृत औपदेशिक कथा–साहित्य की आलोचना भी अपने शब्दों में किए हैं। इनके अनुसार औपदेशिक कथा–साहित्य में 'उपदेशमाला' की लम्बी रचना–परम्परा देखने को मिलती है। ईसवीं–सन् की चौथी–पाँचवीं शती के विद्धान कथाकार धर्मदास गणी द्वारा रचित 'उपदेशमाला' की कथाओं की तुलना आज के कथाओं से की जा सकती है। यह पुस्तक सन् 1915 ई0 में जैन धर्म प्रसारक सभा के द्वारा प्रकाशित की गई थी। इस महत्वपूर्ण कथाग्रन्थ पर अनेक विद्वानों ने टीकाओं की रचना की है। धर्मदासगणी की 'उपदेशमाला' में कथाओं ने प्राकृत जैन परम्परा का एक ऐसा इतिहास प्रस्तुत किया है, जिसमें साहित्य, धर्मनीति और संस्कृति से संबंधित कथा चेतना विभिन्न आयामों में मुखरित हुई हैं।

'उपदेशमाला' की विषय–वस्तु का पल्लवन चार भागों में हुआ है। प्रथम विश्राम में रणसिंह, चन्दनवाला, प्रसन्नचन्द्र, भरत, ब्रहमदत, भवदेव, कुबेरदत्त, मकरद्रंष्टा, वेश्या, भौताचार्य, चिलातिपुत्र, वलुदेव आदि की कथाएँ लिखित है। तीसरे भाग में शालिभद्र, प्रदेशी राजा सागर चन्द, चाणक्य आदि की कथाओं के साथ ही चार प्रत्येक बुद्ध की भी कथाएँ है। चतुर्थ विश्राम में शलेकाचार्य पुण्डरीक–कण्डरीक आदि की कथाएँ हैं। इन कथाओं में संवाद–कथाएँ भी हैं। सबसे अधिक रेखांकित करने योग्य विषय–वस्तु यह है कि इन उपदेश–कथाओं में जैन और बौद्ध के समन्वय बिन्दु का भी उल्लेख किया गया है। इन कथाओं का मूल स्वर है विनय। शासन में विनय को मूल्य कथाओं का मूल दिया गया है, जिसकी महत्ता आज भी प्रासंगिक है। उपदेशमाला कथासाहित्य में कुल 542 प्राकृत–गाथाएँ है।

साहित्य आचार्य हरिभद्र द्वारा रचित उपदेशपद, कथा साहित्य भारतीय जीवन और संस्कृति की वृहत्कथा है। इसमें चर्चित कथाएँ अनेक कथा रूढ़ियों और मिथक–प्रतीकों से उद्धित है।

'धर्मोपदेशमाला' ई0 सन् 1858 में जय सिंह सूरि द्वारा रची गई है। यह कथा ग्रन्थ सिन्धी जैन ग्रंथमाला द्वारा सन् 1949 में प्रकाशित है। इस कथाकृति में 98 गाथाएँ और 156 कथाएँ समाकलित है। इस कथाकृति के रचयिता जयसिंह सूरिजी अलंकार शास्त्र के महान् पण्डित थे। श्रीरंजन सूरिदेव औपदेशिक कथा साहित्य पर भी अपना विचार, दिए हैं आलोचना करते हुए यह कहते हैं कि औपदेशिक कथा–साहित्य के अन्तर्गत हेमचन्द्रसूरि की अन्य रचना 'उपदेशमाला प्रकरण है। यह कथा–साहित्य इन्दौर से 1936 ई0 में प्रकाशित की गई थी।[5] इसमें 505 गाथाएँ है जो बीस भागों में विभक्त है। उपदेशमाला को कथाकार ने अपने मन्तव्य के अनुसार वचन रूप उपवन से सुन्दर उपदेश–रूप पुष्पों का चयन कर इस 'उपदेशमाला' या 'पुष्पमाला' की रचना की है। कथाकार हेमचन्द्र सूरि ने अपनी इस कथाकृति के बीस प्रकरणों के माध्यम से जीवन के सर्वोतक उदय का सन्देश दिया है।

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आलोचना

ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक आलोचना आलोच्य–कृति का मूल्यांकन इतिहास एवं संस्कृति के व्यापक परिप्रेक्ष्य में करना चाहती है । वर्तमान की किसी गम्भीर जटिल एवं उलझनपूर्ण समस्या का कारण कभी–कभी सुदूर अतीतवर्ती किसी महान् ऐतिहासिक घटना में ढूँढ़ा जा सकता है । इसलिए युग–विशेष के साहित्य को समझने के लिए हमें पूरे ऐतिहासिक एवं सांस्कृतिक परम्परा का अनुशीलन करना होगा । किसी भी साहित्य को शाश्वत न मानकर उसकी देश–काल बद्धता को रेखांकित करने वाली समीक्षा ऐतिहासिक ही मानी जायेगी ।

उद्देश्य

1. काव्य, भाषिक संरचना मात्र है, इसलिए भाषा के सर्जनात्मक तत्वों का विश्लेषण ही समीक्षा का मुख्य धर्म का होना ।
2. ऐतिहासिक, समाजशास्त्रीय, दार्शनिक एवं मनोविश्लेषणवादी समीक्षाएँ अनावश्यक एवं अप्रासंगिक होना ।

3. रचना की आन्तरिक संगति और संश्लिष्ट विधान के विवेचन विश्लेषण के लिए उसका गहन पाठ नितान्त आवश्य होना ।
4. सम्प्रेषण और आस्वाद के प्रश्न पर विचार तथा मूल्यांकन का प्रयत्न आवश्यक होना ।

शोध प्रविधि : प्रस्तुत शोध–लेख में द्वितीयक स्रोतों के माध्यम से ऐतिहासिक, सैद्धांतिक विश्लेषणात्मक, तुल्यनातम्क, सामाजिक एंव नवीन व्यवहारिक पद्धतियों को अपनाते हुए शोध–लेख को मौलिकता प्रदान करने का प्रयास किया गया है । इस शोध कार्य हेतु आवश्यक सामाग्री श्रीरंजन सूरिदेव का आलोचना साहित्य से संबंधित पुस्तकालयों इंटरनेट एंव शोध संस्थानों आदि में उपलब्ध साधनों के अलावा आधुनिक संदर्भ–ग्रंथों से एकत्र किया गया है । इन संदर्भ पर आधारित पुस्तकों के अलावा विभिन्न आयोगों के प्रकाशनों आत्मलेखो, समाचार पत्र–पत्रिकाओं, इत्यादि के लेखन सामाग्री संग्रहित कर विश्लेषणात्मक अध्ययन प्रस्तुत है।

निष्कर्षः– हम कह सकते हैं कि डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव प्रखर आलोचक हैं। आचार्य शिवपूजन सहाय की परंपरा को आगे करने वाले व्यक्ति के रूप में इनकी अलग पहचान है। एक अच्छे आलोचक होने के लिए तेज प्रतिभा और शास्त्र ज्ञाता होने के साथ–साथ रचना कौशल की दक्षता परम आवश्यक है। डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव ऐसे ही आलोचकों में आते हैं। इनका आलोचना खण्ड पुस्तक पढ़ने के बाद ऐसा लगता है मानों बीसवीं शताब्दी की पुस्तक है। इनके द्वारा लिखित वासुदेव हिंदी : भारतीय जीवन और संस्कृति की वृहत्तकथा नामक आलोचनात्मक शोध प्रबंध इन्हें एक प्रसिद्ध एवं कुशल आलोचक सिद्ध करती है।

संदर्भ :

1. आलोचना और साक्षात्कार : डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव आलोचना साहित्य प्रकाशक : धारिका पब्लिकेशन, दिल्ली 85, प्रथम संस्करण 2008, पृ0 78
2. वही, पृ0 81
3. सारस्वत पुरूष डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव, सम्पादक श्री वेदप्रताप गर्ग, प्रकाशक, डॉ0 श्रीरंजन सूरिदेव अमृत पर्व समिति, पटना, संस्करण 2003, पृ0 16
4. वही, पृ0 23
5. डॉ० सुरेन्द्र प्रसाद जमुआर, सम्पादक, बिहार के रचना कर्मियों की साहित्यिक–यात्रा, प्रकाशक मेधा बुक्स, दिल्ली–संस्करण 2005, पृ०–123

***

भारतीय दर्शन के अध्ययन की अनिवार्यता : सभ्यता व संस्कृति के सन्दर्भ में

अनिता यादव *

भारतीय दर्शन के अध्ययन की अनिवार्यता आज के समाज का अपरिहार्य पहलू है, क्योंकि जिस समस्या से समाज आज जूझ रहा है, जैसे– आतंकवाद, अनैतिकता, कुसंस्कृति, आत्महत्या, हिंसात्मक समाज इत्यादि का कारण मानव को अपनी अन्तर्मन को न समझ पाने व जीवन का दर्शन न समझ पाने के कारण है।

जिसमें समाज को एक बेहतर दिशा देने व विकासोन्मुखी दिशा में अग्रसर करने का प्रमुख कारण संस्कृति है और आज उसी का रूप कुरूप होता जा रहा है। अर्थात् सभ्यता व संस्कृति का मूल स्त्रोत दर्शन की गोद है, जिससे धर्म, सभ्यता व संस्कृति का उदय हुआ है और एक बेहतर समाज, देश व राष्ट्र के निर्माण में धर्म, सभ्यता व संस्कृति की प्रमुख भूमिका होती है। यदि दर्शन की प्रतिष्ठा को समाप्त कर दिया जाय और समाज से उसके अस्तित्व को मिटा दिया जाय जो एक बेहतर समाज निर्माण का आधार हो तो फिर उस समाज की दशा क्या होगी, जो आज समाज की स्थिति व दशा है, जिसमें सभ्यता का विकास तो चरमसीमा पर है, परन्तु संस्कृति कहीं कालकोठरी में लुप्त हो गयी है, जिस कारण समाज अनेक व्याधियों से ग्रसित है। जैसे– हिंसात्मक विचार की गति में वृद्धि तेजी से हो रही है, जिस कारण आतंकवाद अपना पैर समाज में वृहद रूप से पसार, चुका है, मानव में नैतिकता का अभाव दिन–प्रतिदिन तेजी से बढ़ रहा है, मनुष्य विवेकशील होते हुए भी संकुचित बुद्धि का होता जा रहा है, जिस कारण आत्महत्या जैसी समस्याएँ भी समाज को दूषित कर रही है। **''क्योंकि समाज में संस्कृति की सिमाओं का उल्लंघन किया जा रहा है और जो सभ्यता व संस्कृति की उत्पत्ति कार कारण 'दर्शन' है, इस विषय को तो समाज में मार दिया गया है, तो फिर समाज का स्वरूप तो विध्वंसात्मक होना स्वभाविक है।''**

भारतीय दर्शन के अध्ययन की अनिवार्यता क्यों है? यदि इसके कारण को देखा जाय तो अनेकों कारण हैं। जैसे–

- सभ्यता व संस्कृति के आधार पर
- भौतिकता व आध्यात्मिकता का समन्वय
- सामान्य जिज्ञासा के आधार पर
- लोककल्याण के सन्दर्भ में
- मानवता के सन्दर्भ में

आदि कारणों के आधार पर किसी भी देश, समाज व राष्ट्र जो अनेक व्याधियों जैसे– घृणा, असन्तोष की भावना, आत्महत्या, अमानवीकण, आतंकवाद, अनैतिकता, बेरोजगारी, हिंसात्मक प्रवृत्ति, प्रकृति का दोहन, मानवतावाद का अभाव इत्यादि से ग्रसित है, जिससे निजात पाने का भाव दर्शनशास्त्र में निहित है, जो भारतीय दर्शन के अध्ययन की आवश्यकता को अपरिहार्य रूप से सिद्ध करता है। यदि उपरोक्त कारणों में से 'सामान्य जिज्ञासाओं के उपचार' को छायांकित किया जाय तो यह सम्पूर्ण संसार के विवेकशील प्राणियों का मूल प्रश्न है, जो सभी के अन्तर्मन में प्रागनुभविक रूप से निहित होता है और विशेष परिस्थितियों में मानव हृदय को उद्वेलित करता इन प्रश्नों के हल हेतु, जैसे मृत्यु क्या है? ईश्वर है या नहीं? आत्मा क्या है? संसार नियन्ता कौन है? इत्यादि प्रश्नों के निदान हेतु दर्शनशास्त्र का अध्ययन अनिवार्य है, जो सभी के मन में सामान्य जिज्ञासाओं की तरह उठती रहती है।

परन्तु समस्त कारणों में दर्शनशास्त्र के अध्ययन की अनिवार्यता हेतु 'सभ्यता व संस्कृति' एक सर्वप्रमुख कारण है, जो किसी भी देश की अमूल्य संपत्ति में से एक है और किसी भी देश के विकास की आधारभूत स्तम्भ है। **अर्थात् सभ्यता व संस्कृति एक उत्तम समाज, उत्तम देश व उत्तम राष्ट्र निर्माण**

---

* शोध छात्रा (बी.एच.यू.)

का आधार व नींव है। सभ्यता व संस्कृति का जन्म दर्शनशास्त्र के गर्भ से हुआ है। अर्थात् धर्म, सभ्यता व संस्कृति के साथ–साथ समस्त विषयों की जननी दर्शनशास्त्र को माना जाता है। **आगमन विधि व निगमन विधि का भी स्त्रोत दर्शनशास्त्र ही है, जिसका प्रयोग शोध कार्यों में किया जाना अपरिहार्य है, यहि कारण है, जिसके आधार पर किसी भी विषय से Ph.D करने पर भी 'Doctorate of Philosophy' की उपाधि दी जाती है।** धर्म, सभ्यता व संस्कृति के आधार पर ही किसी देश की समस्त क्रियाविधि आधारित होती है और उस देश के विकास की गति निर्धारित होती है। अतः ''शान्तिपूर्ण राष्ट्र निर्माण के लिए दर्शनशास्त्र का अस्तित्व अनिवार्य प्रतीत होता है।''

''पाश्चात्य दार्शनिक प्लेटो तथा राष्ट्रपिता महात्मा गांधी जी की यह मान्यता थी कि एक शान्तिप्रिय राज्य का निर्माण तभी हो सकता है, जब उस राज्य का शासक एक दार्शनिक हो या एक दार्शनिक उस राज्य का शासक होगा।''

सभ्यता –

सभ्यता व संस्कृति दोनों शब्द प्रायः पर्याय के रूप में प्रयोग किये जाते हैं। फिर भी दोनों शब्दों में मौलिक भिन्नता है। ''जिस प्रकार एक सिक्के के दो पहलु होते हैं, फिर भी दोनों पक्षों की अपनी एक विशिष्टता होती है, उसी प्रकार एक समृद्ध समाज के सभ्यता व संस्कृति दो पक्ष है, परन्तु दोनों की अपनी विशिष्टता है।'' अर्थात् सभ्यता का अभिप्राय ''एक बेहतर जीवन जीने की शैली है।'' यदि सभ्यता के विकास को छायांकित किया जाय तो प्राचीन से अबतक सभ्यता की प्रगति आकाश को छू रही है, क्योंकि आरम्भिक काल का मानव कच्चा भोजन करता था, उसे वस्त्रों का ज्ञान नहीं था, यात्रा के साधन का अभाव था, आदि परन्तु आजज का मानव धीरे–धीरे इतना विकसित हो गया है कि वह प्रकृति को भी नियन्त्रित कर रहा है। अर्थात् प्रकृति का दोहन अत्यधिक होने लगा है, जो आज समाज में पनपती सभी समस्याओं का कारण है। ''क्योंकि वैज्ञानिक प्रगति की रफ्तार में मानव एक–दूसरे से अत्यधिक सभ्य व सफल होने की भूख में मानव समाज अपनी संस्कृति से कोशों दूर होते नजर आ रहा है।''

सभ्यता किसी भी समाज–देश–राष्ट्र व मानवता के बाह्य आवरण है, परन्तु संस्कृति उसकी आन्तरिकता में समाहित है। अतः ''भारतीय दर्शन में सभ्यता को समाज का शरीर तथा संस्कृति को उसकी आत्मा का स्वरूप स्वीकार किया गया है।'' अर्थात् संस्कृति की नींव पर सभ्यता का भवनर टिका होता है और यदि उस देश की संस्कृति ही बिखर जाय तो सभ्यता का महल तो बिखरना स्वाभाविक है।

संस्कृति –

संस्कृति का तात्पर्य सम्यक् कृति से समझा जाता है। अर्थात् संस्कृति 'कृ' धातु से बना है, जिसका तात्पर्य 'करना' है, परन्तु 'कृ' धातु के तीन अभिप्राय होते हैं –

● संस्कृति ● प्रकृति ● विकृति

यदि इन तीनों को समाजिक तराजू पर रख कर देखा जाय तो इनका अभिप्राय इस प्रकार दिखता है, कि ''दूसरों के अधिकारों का हनन करना अर्थात् दूसरे का छिनकर खाना 'विकृति' है, अपना–अपना खाना 'प्रकृति' है, परन्तु स्व के साथ परार्थ की भावना रखना अर्थात् स्व के साथ–साथ अन्य लोगों का पेट भरा है, या नहीं यह भावना ही 'संस्कृति' है।'' जिसकी आवश्यकता आज समाज में अपरिहार्य है और इस प्रकार के भावना की उत्पत्ति का स्रोत दर्शनशास्त्र ही है, क्योंकि भारतीय शास्त्रों में परार्थ की भावना निहित है तथा भारतीय संस्कृति परार्थ की पीड़ा की तद्नुभूति का सन्देश सदियों से सम्पूर्ण विश्व को सीखाना चाहती है। जैसे–

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं, श्रुत्वा चाप्यवर्धायतम्।

''आत्मानः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।'' (पद्मपुराण)

अर्थात् धर्म का सर्वस्व जिसमें समाया है, ऐसे धर्म का सार सुनिए और सुनकर हृदय में उतारिये तथा अपनी आत्मा को जो दुःखदायी लगे, वैसा आचरण दूसरों के साथ मत करिए।

इसी प्रकार श्रीरामचरिमानस उत्तरकाण्ड में –

''परहित सरिस धर्म नहीं भाई,
पर पीड़ा सम नहि अधमाई।।''

अर्थात् दूसरों के भलाई के समान कोई धर्म नहीं है और दूसरों को दुःख पहुँचाने के समान कोई पान नहीं है।

अर्थात् भारत की संस्कृति ही ऐसी है, जो सम्पूर्ण विश्व को मानवता का शिक्षा देती है। अतः भारत के शास्त्रों, पुराणों की आधारशिला ही दर्शनशास्त्र है, जिसकी महत्ता को प्राचीनकाल में यहाँ के महान ऋषि महर्षि के द्वारा स्थापित किया गया था। जिस कारण सदियों से भारत की धरती संस्कृति का अमूल्य सम्पत्ति लिए सम्पूर्ण विश्व को अपनी संस्कृति की ओर आकर्षित करती रही है।

परन्तु आज समाज के आधुनिकरण के युग में संस्कृति का स्तर दिन–प्रतिदिन गिरता ही जा रहा है, क्योंकि परम्परा और आधुनिकता में संघर्ष का युग चल रहा है, जिसके परिणामस्वरूप मानव के समाजिक जीवन में अत्यधिक बदलाव आया है, जिससे तकनीकी का स्तर ऊपर उठा तो वही मानवतावाद का स्तर नीचे गिरता जा रहा है। **''जिस काण परिवार का ढांचा टूट रहा है, पीढ़ीयों की संवादहीनता बढ़ रही है और नैतिक मर्यादाएँ शिथिल हो रही हैं और ये आज के विकसित व सभ्य समाज का गम्भीर प्रश्न है।''**

चूँकि सभ्यता व संस्कृति ही सौन्दर्यपूर्ण व विवेकशील समाज की आधारशिला है, जिसकी जननी दर्शनशास्त्र है, फिर भी आज समाज में दर्शनशास्त्र की स्थिति व प्रतिष्ठा शर्मसार हो रही है तो फिर आज समाज का स्वरूप कुरुप होना स्वभाविक है, क्योंकि किसी भी राष्ट्र को सुदृढ़ व सशक्त बनाने के लिए सभ्यता व संस्कृति का स्वरूप शुद्ध, सरल, विकासोन्मुखी व मानवतावादी होना अनिवार्य है, क्योंकि सभ्यता व संस्कृति उस देश की बाह्य व आन्तरिक दोनों पक्षों को साथ–साथ निखारती है। सभ्यता भौतिक पक्ष तथा संस्कृति आध्यात्मिक पक्ष को महत्व देती है। इस प्रकार भारतीय दर्शन भौतिकता व आध्यात्मिकता का एक सुन्दर समिश्रण व समन्वय है। किसी भी राष्ट्र के बाह्य पक्षों के साथ–साथ आन्तरिक पक्षों का विकास अपरिहार्य है।

''जिस कारण मानवतावाद, राष्ट्रीयबन्धुत्व, विश्व धर्म की भावना का उदय होता है। ऐसी दिव्य सृष्टि की भावना मात्र भारत की मिट्टी में ही सुगन्धित होती है, जो सर्वधर्म समन्वय तथा वसुधैव कुटुम्बकम् की बात करता है। जो एक शान्तिपूर्ण राष्ट्र का निर्माण करता है। अर्थात् **''सभ्यता समृद्ध समाज का शरीर है, तो संस्कृति उसकी आत्मा।''**

भारतीय सभ्यता व संस्कृति –

किसी भी देश की प्रतिष्ठा सम्पूर्ण विश्व में उस देश की सभ्यता व संस्कृति के कारण ही स्थापित होती है, क्योंकि यह परम्परागत चिन्तन के कारण धीरे–धीरे विकसित होता है और उस देश के सुप्रगति का प्रमुख कारण संस्कृति ही होती है। भारत की संस्कृति भी परम्परागत विकसित हुयी है और सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड में भारत सभ्यता व संस्कृति का परचम लहरा रहा है, जिसका मूल कारण 'दर्शन' है, जो लौकिक व अलौकिक शक्ति का एक भण्डार है। जहाँ पर भौतिक तथा अध्यात्म दोनों को समान सम्मासन प्राप्त है, जिस कारण भारत को सभ्यता व संस्कृति के लिए विश्व में 'जगत् गुरु' का सम्मान प्राप्त हुआ है।

''भारतीय संस्कृति विश्व की प्राचीनतम संस्कृतियों में से एक है और केवल सबसे प्राचीन संस्कृति ही नहीं विश्व की सभी संस्कृतियों में सर्वश्रेष्ठ भी है।''

''भारतीय संस्कृति एक ऐसी सरिता है, जिसके जल से व्यक्तित्व, समाज व राष्ट्र का सिंचन कर एक समृद्ध व एक संस्कारवान देश का निर्माण होता है।''

भारतीय संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है, जिस पर अनकों धर्म, सभ्यता व संस्कृतियों का आक्रमण हुआ परन्तु भारतीय सभ्यता व संस्कृति के अस्तित्व मिटा नहीं पाये परन्तु स्वयं ही भारतीय सभ्यता व संस्कृति में समाहित हो गये। अर्थात् यह संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है, जो परम्परागत सदियों से युग–युगान्तर तक अनवरत रूप में प्रवाहित होती रहेगी। अर्थात् भारत की धरती पर अनकों धर्मोदय होंगे और हुये भी परन्तु भारत की अपनी मूल संस्कृति अमर व अजर है। इस कारण ''अनेकता

में एकता'' भारत की सर्वोपरि विशेषता है, क्योंकि भारतीय संस्कृति का विकास धर्म के साथ–साथ हुआ है, जिस कारण भारतीय संस्कृति में दृढ़ता है। क्योंकि यहाँ पर भौतिकता के साथ–साथ आध्यात्मिकता की भी प्रमुखता है और भारतीय दर्शन में सभी कार्यों का अन्तिम लक्ष्य आध्यात्मिकता अर्थात् मोक्ष है, जिस कारण यहाँ कर्मवाद सिद्धान्त के आधार पर नैतिकता को समाज में सुरक्षित रख गया है।

भारतीय सभ्यता व संस्कृति की विशेषताएँ –

किसी भी संस्कृति का चिरस्थायी होना इस बात पर निर्भर है, कि वह संस्कृति कितनी विकासोन्मुखी है और समय की आवश्यक मांगों के अनुसार परिवर्तित होती हो परन्तु अपने मौलिक स्वरूप की रक्षा करते हुये। अतः इस धरती पर भी अनेक धर्म का उदय होने के बाद भी भारत की अपनी मूल संस्कृति पर कोई आँच नहीं पड़ा और यही विशेषता ''अनेकता में एकता'' के कारण विश्व संस्कृतियों में भारत की संस्कृति सर्वश्रेष्ठ संस्कृति है, क्योंकि भारत की धरती माँ अपने गर्भ में अनेक धर्मों को समाहित किये हुए अपनी सभ्यता व संस्कृति की सदियों से रक्षा कर रही है।

जबकि अन्य देशों की संस्कृतियाँ देश काल परिस्थिति के अनुसार नष्ट होती रही है।

भारतीय संस्कृति की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं –

- **समन्वयवादी संस्कृति :–**

भारतीय दर्शन में आध्यात्मिकता एवं भौतिकता के दोनों पक्षों को प्रमुख स्थान प्राप्त होने के साथ अध्यात्म व भौतिकता में समन्वय भी पाया जाता है और लोककल्याण हेतु समस्त कार्यों का अन्तिम लक्ष्य अध्यात्मवाद को ही माना गया है। ''जिस कारण कर्मवाद का सिद्धान्त समाज में नैतिकता की रक्षा करता है। पूनर्जन्म का सिद्धान्त भी मानव समाज को अच्छे कर्म के लिए प्रेरित करता है। वही पाश्चात्य में केवल सुख व सुविधाओं पर विशेष ध्यान दिया गया है, परन्तु भारत की धरती पर भौतिकता व अध्यात्म दोनों पर विशेष बल देने के साथ–साथ मानव के आन्तरिकता का विकास भी महत्त्वपूर्ण माना गया है और एक नैतिक व शान्तिमय समाज व राष्ट्र निर्माण हेतु पंचशील, अष्टांगिक मार्ग अष्टांगयोग इत्यादि सिद्धान्त भरतीय दर्शन में समाहित है, जो सम्पूर्ण विश्व को शान्ति का पाठ पढ़ाता है, त्याग, बलिदान, सन्तोष, संयम आदि को आचरण में लाने के लिए सम्पूर्ण समाज को सन्देश देता है।''

- **पर्यावरण संरक्षण के आधार पर भारतीय दर्शन की अनिवार्यता :–**

भारतीय दर्शन एक ऐसा दर्शन है, जिसकी संस्कृति में जड़वस्तुओं अर्थात् भौतिकता को भी महत्व प्रदान है।

मीमांसा दर्शन में कर्मकाण्ड की विशेष प्रमुखता है। मीमांसा दार्शनिक कुमारिल द्वारा विशेष प्रमुखता है और मीमांसक दार्शनिक कुमारिल द्वारा कर्मकाण्ड को समाज में एक प्रमुख स्थान प्राप्त है, जो आज भी भारत को सम्पूर्ण विश्व की विशेषताओं में विशिष्टता प्राप्त है, जैसे ''भारत ही एक मात्र ऐसा देश है जहाँ विवाह की परम्परा समस्त राष्ट्रों से भिन्न व उत्सवपूर्ण होती है, जिससमें हजारों रश्मे निभाई जाती हैं, जैसे मिट्टी, पत्थर, जल, हल, बांस, हवा इत्यादि की उपासना श्रद्धापूर्वक होती है, जो समाज को भौतिक पर्यावरण की सम्मान व आदर करने के लिए प्रोत्साहित करती है और प्रकृति से प्रेम व स्नेह को भी बढ़ावा देती है।''

भारत की धरती ही एक ऐसी धरती है, जिस पर प्रकृति की संरक्षण हेतु अत्यधिक प्राकृतिक पदार्थों का मानवीकरण हमारे शास्त्रों व पुराणों में व्याख्यायित है जैसे ''पवन देवता, समुद्र देवता, धरती माँ, इन्द्र देवता इत्यादि सिद्धान्तों का वर्णन है, जिसमें प्रकृति के प्रति मानव समाज में एक आदर व सम्मान का भाव उत्पन्न हो और पर्यावरण सुरक्षित रहे।'' उसी प्रकार **''महान दार्शनिक श्री अरविन्द के द्वारा भी जड़ में चेतना को स्वीकार किया गया है, जगदीशचन्द्र बसु द्वारा पौधों, पेड़ों में भी जीवन होता है, सिद्ध किया गया तथा सुन्दर लाल बहुगुणा द्वारा प्रकृति की रक्षा हेतु 'चिपकोआन्दोलन' को लाना''** ये सभी सिद्धान्त अत्यधिक संवेदनशील तथा भावों का समन्दर लिये मानव समाज को भावुक कर देते हैं, प्रकृति के प्रति स्नेह व प्यार न्यौछावर करने के लिए। अर्थात् भारत माँ की धरती एकमात्र ऐसी धरती है, जहाँ जड़, पशु, पक्षि, पेड़–पौधे, प्राणी सभी के प्रति आदर का भाव प्रवाहित होता है।

- **वसुधैव कुटुम्बकम् की भावना के आधार पर भारतीय दर्शन की अनिवार्यता :–**

''वसुधैव कुटुम्बकम्।
अयं निजः परो वेति गणना लघुचेतसाम्।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम्।।''

अर्थात् यह मेरा है, यह तेरा है, का भाव संकुचित ह्रदय वाले करते हैं, परन्तु भरतीय संस्कृति में सम्पूर्ण धरा को ही अपना परिवार अर्थात् कुटुम्ब माना जाता है, इसलिए समस्त ब्रह्माण्ड हेतु लोककल्याण की भावना हमारी संस्कृति मे निहित है, क्योंकि **''भारतीय दर्शन में सभी जड़, चेतन एक ही ब्रह्म के अंश रूप माने जाते हैं, इसलिए सभी ब्रह्म हैं, सभी एकसमान हैं, तो कल्याणकारी कार्य भी समस्त संसार की पशु–पक्षी, प्राणी के लिए प्रोत्साहित किये जाते हैं। यह विशेषता भरतीय संस्कृति को विश्वविख्यात करती है।''**

विश्व बन्धुत्व व भाईचारे की भावना भारतीय संस्कृति की पहचान है, क्योंकि जब स्वामी विवेकानन्द जी का सम्मेलन शिकागो में हुआ था तो जब उन्होंने अपना भाषण आरम्भ किया तो ''भाईयों एवं बहनों'' से सम्बोधित करते हुये किया जिस कारण पाश्चात्य के समाज में यह कौतुहल का विषय बन गया कि भारत धरती की संस्कृति में कितना आदर्श समाहित है, जिससे विश्व स्तर पर भाईचारे का भाव प्रवाहित होने का सन्देश मिला।

- **अनेकता में एकता का भाव :–**

''भारत की संस्कृति एक ऐसी संस्कृति है, जहाँ भारत माँ की गोद में अनेकों धर्म का संगम है। यही हमारी संस्कृति की प्रमुख्श विशेषता है, जो सभी राष्ट्रों के अच्छाईयों को ग्रहण कर लेती है, परन्तु अपने मूल स्वरूप की रक्षा करते हुये।''

''अनेकों सभ्यता व संस्कृतियों का भारत पर आक्रमण हुआ परन्तु भारतीय संस्कृति का बाल भी बांका न कर सके।'' और स्वयं भारत माँ की गोद में समाहित हो गये। जिस कारण इस धरमी पर भिन्न–भिन्न धर्मों का उदय हुआ और आज भी भारत विभिन्नता में एकता लिए सम्पूर्ण विश्व को उदार ह्रदय का प्रतीक देती है।

- **मानवतावाद के आधार :–**

मानवतावाद का लक्ष्य मानव में निहित नैतिक गुणों का विकास करना है तथा सम्पूर्ण समाज में भातृभाव को जाग्रत करना है। भारत की संस्कृति परम्परागत विकसित होने के कारण परस्पर आने वाली पीढ़ियों में स्थानान्तरित होती रहती है, जिस कारण भारत की संस्कृति अजर व अमर है और विश्व स्तर पर सभ्यता व संस्कृति की शिक्षा का आधार है। **''भारतीय संस्कृति मानव समाज को ऐसी शिक्षा का अनुभव कराती है, जो मानवता को बर्बरता से दूर रखता है और मानव अस्तित्व ही भारतीय दर्शन की प्रधानता है, जो उसकी संस्कृति में व्यवहारों के द्वारा झलकती है, क्योंकि व्यवहार ही श्रेष्ठता का लक्ष्य है।''** मानवतावाद नैतिकमूल्यों पर विशेष बल देता है।

''भारतीय दर्शन में आस्तिक हो या नास्तिक सभी दार्शनिकों ने मानव अस्तित्व को सर्वोपरि स्वीकार किया है।''

जिस प्रकार महात्मा गौतम बुद्ध **''आत्मः दिपो भवः''** का मन्त्र समस्त मानव समाज को प्रत्येक मनुष्य की विशिष्टता पहचानने हेतु दिया है, उसमें निहित अनन्त ऊर्जा को प्रकाशित करने के लिए उत्साहित किया है। उसी प्रकार पाश्चात्य दर्शन में सुकरात द्वारा ''स्वयं को जानो'' की शिक्षा दि जाती है, जो मानवतावाद को प्रोत्साहित करता है।

पं0 जवाहर लाल रेहरू के अनुसार ''आज का जिज्ञासु वैज्ञानिक पुराने युग के दार्शनिक और धार्मिक व्यक्तियों की ही प्रतिमूर्ति है।'' अतः इस कथन से स्पष्ट होता है कि भारतीय संस्कृति केवल अध्यात्म पर ही नहीं समय की मांग के अनुसार विकासोन्मुखी होने के कारण विज्ञान पर भी बल देती है, परन्तु मानव हित को सर्वोपरि रखते हुए।

नेहरू जी अपनी पुस्तक 'मेरी कहानी' में कहते हैं कि ''हमारा अन्तिम ध्येय तो यही हो सकता है, कि एक वर्गहीन समाज स्थापित हो जिसमें सबको समान न्याय और समान सुविधा प्राप्त हो।'' (मेरी कहानि, पृ0 769)

हमें अपनी सभ्यता तथा संस्कृति के संरक्षण हेतु निम्न बातों को आचरण में लाना अपरिहार्य है।

- परम्परागत धरोहर व विरासत की रक्षा करके।
- अपनी धार्मिकक परम्पराओं को जानना होगा तथा आगे आने वाली पिढ़ीयों को सौपना होगा।
- धार्मिक ग्रन्थों, शास्त्रों, पुराणों को समाज के समक्ष प्रस्तुत करना होगा जो आज के युग के विकास का मूल मन्त्र शास्त्रों में प्राचीन काल से ही निहित है।
- हमें अपनी संस्कृति पर गौरव करना होगा और अपने आचरण में उतारना होगा तथा इसकी उत्पत्ति का स्रोत दर्शनशास्त्र की प्रतिष्ठा को स्थापित करना होगा।
- आज हम सभी को अपने भारतीय संस्कृति के भविष्य को उज्ज्वल रखने के लिए दर्शन की शक्ति को समाज में नैतिकता के रूप में स्कूलों, विद्यालयों, विश्वविद्यालयों में स्थापित करना अपरिहार्य है।

निष्कर्ष :

जिस दर्शन के कारण भारत को विश्व में संस्कृति की पाठशाला का प्रमुख गुरु माना गया है, उसी भारत की धरती पर आज दर्शन की प्रतिष्ठा को तार–तार किया जा रहा है, दर्शन के अस्तित्व को समाप्त किया जा रहा, जिसके कारण आज इसके सम्मान हेतु मुहिम चलायी जा रही है।

यह चर्चा का विषय होने के साथ–साथ चिंता का भी विषय है, क्योंकि जिस देश में सभ्यता व संस्कृति के आधार पर उसकी शक्ति विश्वविख्यात हो उसी विषय को आज समाज में स्थान प्राप्त न हो तो उस देश की प्रगति किस दिशा में होगी यह विचारणीय है, क्योंकि सभ्यता व संस्कृति का असन्तुलन सामाजिक विघटन को जन्म देता है।

निष्कर्षतः यदि दर्शनशास्त्र के अस्तित्व हेतु विचार करना है, तो यह समझना अनिवार्य है, कि इसके पहचान या अस्तित्व के लिए चिन्तन मनन करे या ना करे जन्म से मृत्यु पर्यन्त प्रत्येक मानव में दर्शनभाव निहित है, क्योंकि यह ब्रह्माण्ड की जीवनशैली है, अर्थात् यदि हम इसको इसके क्षेत्र विस्तार पर भी ध्यान दें, तो भी यह एक अथाह सागर के समान है, क्योंकि ''संसार में उत्पन्न समस्याओं के समाधान हेतु जब विचार किया जाता है, तो प्रत्येक समस्या के विषयानुरूप उसके मूल में अध्ययन किया जाता है, अर्थात् उस विषय के दर्शन को समझना या अध्ययन करना अनिवार्य हो जाता है, जैसे– जब समाज का स्वरूप दूषित होने लगा है, तो समाज दर्शन का अध्ययन राजीतिक में पनपते असभ्यता व अपसंस्कृति से बचने के लिए राजनीतिक दर्शन, विज्ञान की तरक्की के रेस में उत्पन्न समस्याओं से निदान हेतु प्रकृति के दर्शन को समझना अनिवार्य है। इसी प्रकार सभी विषयों में उत्पन्न समस्या के निदान हेतु उसके दर्शन की समझ आवश्यक हो जाती है, तो फिर स्वयं दर्शनशास्त्र की महत्ता को क्यों समाज में अबतक अनदेखा किया जाता रहा है? क्यों इस विषय को माध्यमिक स्तर पर नहीं रखा गया? जिस विषय में समाज को एक दिव्य जीवन देने की शक्ति है तथा वसुधैव कुटुम्बकम की भावना से ओत–प्रोत है, उसी विषय को आज समाज में जिन्दा रखने के लिए मुहिम चलायी जा रही है, यह उस विषय के लिए शर्म की बात है साथ ही दुःख की भी बात है, क्योंकि जो विषय सम्पूर्ण समाज को शान्तिप्रिय व न्यायप्रिय जीवन जीने का पाठ देता है, उसी के साथ अन्याय हो रहा है, इससे बड़ा अन्याय क्या होगा। इसलिए न्यायप्रिय, शान्तिप्रिय व विश्व बन्धुत्व समाज, देश व राष्ट्र के निर्माण की आवश्यकता के लिए दर्शनशास्त्र को माध्यमिक स्तर पर लाना अपरिहार्य है, क्योंकि समाज की सही दिशा दिखाने के लिए उसकी सबसे छोटी इकाई शिक्षा है और शिक्षा ही उसी समाज में विकास के कारण रूप में उसकी सबसे बड़ी ईकाई भी है। चूँकि सभी जाने–अनजाने से ही अपने जीवनशैली में दर्शन का समावेशन पाते हैं और प्रत्येक मानव मन में समाहित मानवता की भावना दर्शन की ही देन है, इसलिए समाज का प्रत्येक जन दर्शन का ऋणी है और इस ऋण का हक चुकाने के लिए इस विषय के साथ न्याय करना होगा। समाज में इसकी पहचान स्थापित करना अनिवार्य है। इस समस्या का हल ही **'नवभारत'** के उदय का कारण बनेगा।

***

भारतीय संस्कृति एवं उसकी विशेषताएँ

डॉ. उमेश कुमार सिंह *

संस्कृति और सभ्यता दोनों एक ही वस्तु के दो पहलू हैं। संस्कृति आत्मा है तो सभ्यता शरीर। सभ्यता, उसकी स्थूल और आविष्कार की दिशा की ओर तो संस्कृति उस विकार के चिन्तन, सूक्ष्म शालीन, सुन्दर तत्व की ओर संकेत करता है– दोनों मनुष्य की सामूहिक प्रेरणा और विजय के परिणाम हैं जो आनन्द प्राप्ति की दिशा में सतत की जा रही है। इसी को और स्पष्ट करते हुए रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में कहा जा सकता है– 'संस्कृति ऐसी चीज है जिसे लक्षणों से तो हम जान सकते हैं किन्तु उसकी परिभाषा नहीं दे सकते। कुछ अंशों में यह सभ्यता से भिन्न गुण है। अंगरेजी में कहावत है कि सभ्यता वह चीज है जो हमारे पास है, संस्कृति वह गुण है जो हममे व्याप्त है।'' मोटर, महल, सड़क, हवाई जहाज, पोशाक और अच्छा भोजन तथा इनके समान सारी स्थूल वस्तुएँ संस्कृति नही सभ्यता के समान है। परन्तु पोषाक पहनने और भोजन करने की जो कला है वह संस्कृति की चीज है।[1]

1. संस्कृति का स्वरूप

संस्कृति शब्द 'सम्' उपसर्गपूर्वक 'कृ' धातु में 'क्तिन्' प्रत्यय लगने से निर्मित होता है जिसका शाब्दिक अर्थ है– परिष्कृत अथवा संस्कारित क्रिया–कलाप। संस्कृति शब्द अपेक्षाकृत परवर्ती है। उसके पूर्व इसी अर्थ में 'कृष्टि' शब्द का प्रयोग मिलता है जो 'कृष्' धातु से व्युत्पन्न है। यह कर्षण अथवा अन्नोत्पादन का पर्याय है। इस अर्थ में यह 'कल्चर' (Culture) के अत्यन्त सन्निकट है जो लैटिन शब्द 'क्लटरे' से निष्पन्न है जिसका अर्थ है– कर्षण, उत्पादन, संवर्धन आदि। उल्लेखनीय है कि संस्कृति, कृष्टि एवं कल्चर को पूर्णतया पर्याय मान लेना उचित नहीं प्रतीत होता।[2] प्रसिद्ध समाजशास्त्री सोरोकिन ने विशिष्ट प्रतिभा एवं मानव की नैतिक, बौद्धिक एवं आध्यात्मिक उपलब्धियों के समुच्चय को 'संस्कृति' कहा है। टाइलरकृत संस्कृति की सुप्रसिद्ध परिभाषा है, 'संस्कृति अथवा सभ्यता वह इकाई है जिसमें ज्ञान, विश्वास, कला, नैतिकता, कानून, रीतिरिवाज एवं समाज के सदस्य के रूप में मनुष्य के द्वार अर्जित सभी योग्यताएँ सम्मिलित हैं।[3] इस परिभाषा में टाइलर ने संस्कृति और संस्कृति के अभिव्यक्तिकरण के सभी पक्षों को समाहित कर लिया है। प्रो. गोविन्दचन्द्र पाण्डे ने संस्कृति को तत्त्वतः एक मूल्य व्यवस्था के रूप में स्वीकार किया है जिसका ज्ञान संकेतगोचर (आत्मबोध या आदर्शबोध) के विवेचन से होता है। यह संकेतगोचर अथवा आदर्शबोध अपने अभिव्यक्तिकरण के लिए जिन माध्यमों का आश्रय ग्रहण करता है, वही सभ्यता के अंग बन जाते हैं। इसीलिए गोविन्द चन्द्र पाण्डे ने संस्कृति के दो पक्षों की ओर इंगित किया है– सामाजिक परम्परा के रूप में संस्कृति में स्थूल ऐतिहासिकता होती है और अनन्त मूल्यानुसंधान को व्यक्त करने के लिए उसमें परमार्थ की ओर एक क्रमबद्ध उपसर्पण के सनातन इतिहास का संकेत प्राप्त होता है।'[4] गोविन्द चन्द्र पाण्डे ने संस्कृति में इसी दूसरे पक्ष को ही प्रमुख तत्त्व माना है। उनके शब्दों में, 'देवशक्ति की ओर उन्मुख भाव से त्यागपूर्वक कार्यसम्पादन ही सम्यक् कृति या संस्कृति है।' प्रो. पाण्डे की इस संक्षिप्त किन्तु अर्थगर्भित परिभाषा में ईशोपनिषद् के 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' से लेकर गीता के 'निष्काम कर्मयोग' तक की यात्रा के सभी तत्त्वों का समावेश मिलता है। अधिकांश विचारक मूल्यों को संस्कृति में अंतर्भूत करते हैं,[5] मैकाइवर ने संस्कृति के विषय में यह विचार किया है कि 'जो हम हैं वह संस्कृति है और जो हमारा है वह सभ्यता है।'[6] इस कथन में मैकाइवर ने

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन भारतीय इतिहास, पुरातत्व एवं संस्कृति विभाग, देवेन्द्र पी.जी. कॉलेज, बिल्थरा रोड, बलिया

भारतीय विचारकों की भाँति परम सत्ता की खोज एवं प्राप्ति को ही संस्कृति माना है क्योंकि 'हम' का अस्तित्व उस परमसत्ता के बिना नहीं हो सकता। 'हमारा' से तात्पर्य इस भौतिक जगत से है, यद्यपि भारतीय परम्परा में 'हमारा' को 'ईशावास्यमिदं सर्वम्' के रूप में परिभाषित करके संस्कृति के उच्चतम स्तर की कामना की गयी है।

3. भारतीय संस्कृति

विश्व की प्रत्येक संस्कृति विशिष्ट भौगोलिक परिस्थितियों की पैदाइस होती है और उसमें विकसित सांस्कृतिक आदर्श एवं जीवनमूल्य उसकी आवश्यकता और प्राथमिकता हुआ करते हैं। तात्पर्य यह है कि विश्व की विभिन्न संस्कृतियाँ भिन्न–भिन्न भौगोलिक परिवेश में उत्पन्न होती हैं और उन भौगोलिक परिवेशों की प्राथमिकता और आवश्यकता उसमें परिलक्षित होती है। पुनः देश–काल–परिस्थिति सापेक्ष प्राथमिकताएँ बदलने पर उनके जीवन मूल्यों में भी परिवर्तन आते हैं। भारतीय संस्कृति भी इसका अपवाद नहीं है। भारत एक विशाल देश है। इसका भौगोलिक परिवेश वैविधयपूर्ण है। यदि यह उत्तर में हिमालय की उत्तुंग चोटियों से घिरा है तो पूर्व, दक्षिण एवं पश्चिम में समुद्र से घिरा है। यह भौगोलिक परिवेश विश्व मानचित्र पर इसे एक विशिष्ट पहचान देता है। पुनः इसका आन्तरिक भू–भाग भी वैविध्यपूर्ण है। उत्तर–पश्चिम, उत्तर एवं उत्तर–पूर्व में ऊँची श्रेणियाँ हैं तो मध्य भाग में विन्ध्य, अरावली और सतपुड़ा की पहाड़ियाँ हैं। पश्चिमी एवं पूर्वी किनारे पर पश्चिमी घाट एवं पूर्वी घाट की पर्वतमालाएँ हैं। इसके मध्य भाग में कहीं रेगिस्तानी मैदान है तो गंगा–यमुना, कृष्णा–कावेरी, गोदावरी–नर्मदा के हरे भरे मैदान भी हैं। इस वैविध्यपूर्ण भौगोलिक परिवेश में वैविध्य–पूर्ण जीवन–पद्धतियाँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। नस्लीय, जातीय, भाषायी एवं धार्मिक विविधताएँ अन्य महत्वपूर्ण तथ्य हैं। उपरोक्त विशिष्ट परिवेश में 'वसुधैव कुटुम्बकम' की अवधारणा से प्रभावित भारतीय संस्कृति का आविर्भाव हुआ। निस्सन्देह, उदारता, सहिष्णुता और अहिंसा से प्रभावित हिन्दू जीवन–पद्धति ने वर्तमान भारत का निर्माण किया। इस पर यहूदी, पारसीक, इस्लाम, ईसाइयत धर्मों के साथ पाश्चात्य समाज की जीवन–पद्धति जैसी बाह्य शक्तियों का भी प्रभाव पड़ता है। यह प्राचीन काल से लेकर अद्यावधि पर्यन्त, समय–समय पर परिवर्तित हुए जीवन–मूल्यों को आत्मसात कर संबल लेती रही है और कदाचित् भावी परिवर्तनों को भी आत्मसात् कर स्वस्थ और समृद्ध होती रहेगी। भारतीय संस्कृति में ऐसे अनेक जीवन–मूल्यों को प्रतिष्ठा मिली जिसने इसमें उत्तरजीविता, जिजीविषा और स्थायित्व को बढ़ावा दिया।

यह ध्यातव्य है कि भारतीय विचारक महान दूर द्रष्टा रहे हैं। उनके लिए दार्शनिक चिन्तन मात्र बुद्धि–विलास या बाल की खाल निकालना नहीं रहा है। उनके बौद्धिक चिन्तन का लक्ष्य जीवन की समस्याओं का समाधान करना एवं अच्छे जीवन की रूपरेखा तय करना रहा है। इसी परिप्रेक्ष्य में उन्होंने मानव जीवन का साध्य भी सुनिश्चित किया और उसकी प्राप्ति की कार्य–योजना और क्रियाविधि भी निर्धारित किया। उनकी दृष्टि में जीवन का साध्य है– पुरुषार्थ–सिद्धि अर्थात् जीवन में धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष की उपलब्धि। इन्हें मानव जीवन का चार स्तम्भ (Four pillars) कह सकते हैं। इस चतुवर्ग–व्यवस्था में मोक्ष सर्वोच्च पुरुषार्थ (Summum Bonum) है जो व्यक्ति को दुःखों से मुक्ति का आश्वासन देता है। शेष तीन पुरुषार्थ (धर्म, अर्थ और काम), जो 'त्रिवर्ग' के रूप में आख्यात हैं, व्यक्ति के समक्ष आदर्श लौकिक जीवन का मानदण्ड रखते हैं। इससे जहाँ एक ओर व्यक्ति की नैतिक एवं आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त होता है वहीं समाज में अनायास एक आदर्श सामाजिक व्यवस्था का मार्ग प्रशस्त होता है त्रिवर्ग में अर्थ और काम सांसारिक एवं मानसिक प्रवृत्तियाँ हैं। काम संसार की मूलभूत और प्रथम प्रवृत्ति है। अर्थ इस प्रवृत्ति की सिद्धि का साधन है। धर्म के द्वारा अर्थ और

काम का नियंत्रण होता है। इसके द्वारा इन प्रवृत्तियों के अनुशासित एवं मर्यादित अनुशासन पर बल है। त्रिवर्ग का सन्तुलन सेवन अभ्युदय की सिद्धि का साधन है।

भारतीय मनीषियों ने पुरुषार्थ–सिद्धि के लिए प्रस्तावित कार्य–योजना एवं क्रिया–विधि के अन्तर्गत आश्रम–व्यवस्था एवं वर्ण–व्यवस्था का विधान किया। स्पष्ट है कि भारतीय विचारकों की दृष्टि में व्यक्तिगत जीवन एवं सामाजिक जीवन में अवियोज्य सम्बन्ध है। यद्यपि आश्रम–धर्म वैयक्तिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है और वर्ण–धर्म सामाजिक दृष्टि से, किन्तु इनमें पूर्ण अलगाव नहीं है। आश्रम–व्यवस्था के द्वारा व्यक्ति के साथ उसकी वैयक्तिक उन्नति की व्यवस्था की गयी है और एक स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था के निर्माण पर बल दिया गया। वर्णव्यवथा द्वारा मूलतः सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा तय की गयी जिसमें प्रत्येक व्यक्ति की पात्रता और योग्यता के आधार पर कार्य विभाजन किया गया। इसके द्वारा ऐसी सामाजिक व्यवस्था की रूपरेखा तैयार की गयी जिसमें व्यक्ति की वैयक्तिक उन्नति के साथ स्वस्थ सामाजिक व्यवस्था की स्थापना होती है।

भारतीय समाज अनेकता में एकता की अवधारणा पर आधारित है जो भारतीय संस्कृति में प्राथमिक मूल्य बन कर उभरा। भारत में प्राचीन काल में महात्मा बुद्ध, महावीर स्वामी, आचार्य शंकर और रामानुजाचार्य से लेकर मध्य युग में कबीर, तुलसी, सूफी सन्तों ने आधुनिक युग में महात्मा गांधी, विवेकानन्द, श्री अरविन्दो, एम.एन. राय तथा स्वतंत्रता सेनानियों ने समय–समय पर इसी जीवन–पद्धति को मान्यता दिया है। कदाचित् भारतीय संविधान निर्माताओं ने इसी जीवन–मूल्य के आलोक में समान नागरिक संहिता (Uniform Civil Code) बनाने का प्रस्ताव किया है। भारतीय संविधान के प्रत्येक महत्वपूर्ण अनुच्छेद में उपरोक्त अवधारणा प्रतिबिम्बित होती है। इसका परिणाम यह हुआ कि भारतीय समाज का एक समावेशी चेहरा उभरा जिसके आधारभूत तत्व हैं– शांतिपूर्ण सह–अस्तित्व, सहिष्णुता और उदारता का भाव।

विदित हो कि भारत का एक वैविध्यपूर्ण भौगोलिक परिवेश है। परिणामतः भारत में एक वैविध्यपूर्ण समाज अस्तित्व में आया। भारत में सामाजिक जीवन के विविध पक्षों में विविधता दिखाई देती है। 'भिन्नरूचिर्हि लोकः', भारतीय समाज इस जीवन दर्शन को स्वीकार करता है। भारतीय संस्कृति निरन्तर प्रवाहमान जीवन दर्शन है, इसीलिए इसे 'सनातन संस्कृति' के रूप में पहचाना जाता है। भारत में आर्यों के आगमन के साथ आर्येतर जातियों के मिलन से जो संस्कृति उत्पन्न हुई वही भारत की बुनियादी संस्कृति बनी। यह संस्कृति प्रारम्भ से ही सामासिक और समन्वयशील रही है और इसका क्रमशः विकास हुआ है। इस संस्कृति में समन्वयन तथा नये उपकरणों को पचाकर आत्मसात् करने की अद्भुत योग्यता रही है। इसी प्रवृत्ति ने भारतीय संस्कृति को जीवन्त एवं गतिशील बनाए रखा। इसने सातत्य को बनाये रखते हुए भी परिवर्तन को अंगीकार किया, य़द्यपि सातत्य एवं परिवर्तन परस्पर विरोधी प्रवृत्तियाँ हैं। इसी प्रवृत्ति ने भारतीय संस्कृति में उत्तरजीविता पैदा किया। अपनी सर्वसमावेशी प्रकृति के कारण इसने बाह्य प्रभावों के प्रासंगिक तत्वों को भी स्वीकार करने में संकोच नहीं किया। इतिहास गवाह है कि भारत अति प्राचीन काल से एक सांस्कृतिक इकाई अवश्य रहा है, यद्यपि यह एक राजनीतिक इकाई कभी–कभी रहा है। भारत में भौगोलिक, धार्मिक, भाषायी, नस्लीय, जातीय विविधता अवश्य है, इसके बावजूद इस विविधता की पृष्ठभूमि में सांस्कृतिक एकता है। प्राचीन काल में यातायात एवं दूर–संचार की असुविधा के बावजूद भारतीय मनीषियों के विचारों ने विविधता में निहित एकता को सुदृढ़ किया है। आस्तिक एवं नास्तिक दोनों वर्गों के विचारकों ने इस एकता को मूर्त रूप देने का प्रयास किया है।

भारतीय संस्कृति अनुशासित जीवन दर्शन को स्वीकार करती है। इसने कर्मवाद एवं आत्मसंयम का मूलमंत्र स्वीकार करके जीवन में संयम पर बल दिया। इसने इस बात पर बल दिया कि मनुष्य बुद्धि एवं वासनाओं का एक पुतला है। जीवन की सार्थकता वासनात्मक जीवन जीने या वासनाओं की आत्यन्तिक तृप्ति में नहीं है, बल्कि बुद्धि के नियंत्रण में वासनाओं की तृप्ति या विवेकपूर्ण जीवन जीने में है। भारतीय मनीषियों ने कर्मवाद और आत्मसंयम पर बल देकर व्यक्ति से संयमी जीवन जीने की, सन्मार्ग पर चलने की अपेक्षा किया। उल्लेखनीय है कि भारतीय संस्कृति ऐहिक जगत् को एकमात्र वास्तविकता नहीं मानती है। यह ऐहिक जगत् के अतिक्रमण (परे) पर बल देती है। इसी परिप्रेक्ष्य में इसने जीवन के आधार पर जगत् के अतिक्रमण और आत्म स्वरूप के वास्तविक ज्ञान पर बल दिया।

भारतीय संस्कृति में उपरोक्त आदर्शों एवं जीवन–मूल्यों में स्थायित्व पैदा किया। भारतीय संस्कृति की धारा अक्षुण्ण है और यह मानव सभ्यता के उषः काल से ही देश–काल–परिस्थिति–आवश्यकता के अनुरूप नवीन तत्त्वों को समेटते हुए निर्बाध रूप से आगे बढ़ रही है। उल्लेखनीय है कि विश्व की अनेक परवर्ती संस्कृतियाँ (असीरियन, सुमेरियन, बेबीलोनियन, रोमन आदि) आज इतिहास की वस्तु और अतीत की कथामात्र होकर रह गयी हैं। किन्तु अनेक विपरीत झंझावातों, विदेशी आक्रमणों–प्रत्याक्रमणों के बावजूद यदि भारतीय संस्कृति में स्थायित्व है तो इसका कारण उपरोक्त जीवन–मूल्यों की स्वीकृति ही है।

भारतीय संस्कृति की विशेषताएँ

भारतीय संस्कृति मूलतः हिन्दू संस्कृति है, या यूँ कहें कि वैदिक संस्कृति है जो मूलतः सिन्धु संस्कृति है। इस पर अनेक संस्कृतियों के आघात प्रघात हुए। अनेक आघातों एवं प्रत्याघातों को सहन करने के पश्चात भी भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषताएँ ज्यों की त्यों है। इस पर अनेक संस्कृतियों का प्रभाव भी पड़ा है। इसका समन्वयक रूप उपेक्षणीय नहीं है, फिर भी मूल आत्मा तो भारतीय ही है। इसे गंगा–जमुनी संस्कृति का नाम भी दिया जाता है जिस प्रकार गंगा अपने मूल प्रवाह के साथ–साथ अन्य नदियों को भी अपने में समेट लेती है उसी प्रकार यह संस्कृति समय के साथ अन्य संस्कृतियों को भी अपने में समाहित कर एक नया स्वरूप प्रदान करती है जो अपने मूल स्वरूप को बचाये रखते हुए अन्य संस्कृतियों के उत्कृष्ट तत्वों को शामिल कर लेती है।

भारतीय संस्कृति के ऊपर अनेक आघात हुए, फिर भी यह संस्कृति अपने मूल रूप में अवश्यमेव विद्यमान रही है। अनेक विद्वानों ने इस पर अपने विचार व्यक्त किये हैं, मुख्य रूप से देखा गया तो भारतीय संस्कृति में निम्न लिखित विशेषताएँ हैं।

1. अमरता– यह संस्कृति देश के उत्थान–पतन, उसकी आंतरिक उथल–पुथल, विदेशियों के प्रबल आक्रमण, विभिन्न राजनीतिक एवं पराजय क्रांतियों के मार्ग से प्रभावित रहने पर भी अपने मूलरूप में विद्यमान है। भारत देश में बाहर से अनेक जातियाँ आयी तथा सबने इस देश के ऊपर अपना–अपना प्रभाव छोड़ा है और वे सभी जातियाँ भारत देश की संस्कृति से प्रभावित रही है। इतने आघातों के पश्चात्य भी भारतीय संस्कृति अविकल रूप में तथा अपने मूल रूप में ज्यों की त्यों रही है। उसमें परिवर्तन भी आया, तो वह परिवर्तन नहीं रहा, वह उसका एक अंग बन गया है। अपने मूल तत्व को न छोड़ना इसमें ही उसकी अमरता दृष्टिगत होती है।

2. सार्वजनिकता– भारतीय संस्कृति में अनेक संस्कृतियों का योग होने से सबके द्वारा प्रशंसनीय है। इस संस्कृति को आसानी से ग्रहण किया जा सकता है। भारतीय संस्कृति में वैदिक कालीन संस्कृति, रामायण कालीन संस्कृति, महाभारतकालीन संस्कृति, बौद्धकालीन संस्कृति, जैन कालीन संस्कृति, मुगलकालीन संस्कृति, अंग्रेज कालीन संस्कृति आदि का योग है। भारतीय संस्कृति ने

इन सभी को अपनाया है। इन सभी को अपनाने से ही वह सबके द्वारा प्रशासनीय है। इसलिए भारतीय संस्कृति को आसानी से ग्रहण किया जा सकता है।

3. सर्वांगीणता– भारतीय संस्कृति का निर्माण करने में सभी वर्गों और आश्रमों के लोगों का योगदान रहा है। इसमें जीवन के चारों वर्गों, धर्म–अर्थ, काम और मोक्ष का सफल समन्वय है। इस प्रकार भारतीय संस्कृति में आशावादिता दृष्टिगत होती है। अनेक संस्कृतियों एवं जातियों के मिलन से भारतीय संस्कृति में जो एक विश्वसनीयता उत्पन्न हुई है, वह संसार के लिए सचमुच वरदान है। पूरा संसार भारतीय संस्कृति का प्रशंसक रहा है।

4. आध्यात्मिकता– भारतीय संस्कृति आध्यात्मिक रही है। आत्मा के द्वारा परमात्मा का आनन्द प्राप्त करना आध्यात्मिकता का लक्ष्य होता है। ऐसे अध्यात्मपरायण लोगों के सामने राजा भी नतमस्तक होता था। मोक्ष की प्राप्ति हो जाने पर सांसारिक व्याधियों से मुक्ति मिल जाती है। इस संसार में पुनः आकर जीव को भोगना नहीं पड़ता है। सम्पूर्ण जीवनभर अपनी शक्ति एवं ज्ञान का सदुपयोग करते हुए मानव मोक्ष को कैसे प्राप्त करता है, यह भारतीय संस्कृति का आध्यात्मिक पक्ष है। क्योंकि मोक्ष मानव का अंतिम लक्ष्य है।

5. धर्मप्रधानता– 'धर्म' शब्द का अर्थ 'धृ' धातु से बना है और इसका शाब्दिक अर्थ है– वह जो किसी को धारण करे अतः प्रत्येक वस्तु, मनुष्य और समाज जिन नियमों पर आधारित कर्म करते हैं, उनको धर्म कहा जा सकता है। साधारणतः धर्म–पालन का अर्थ कर्तव्य पालन माना जाता है। भारत में भौतिक और आध्यत्मिक दोनों पक्षों का सुन्दर मेल किया गया है। इस मेल को मिलानेवाला धर्म है। इसी कारण यहाँ धर्म में कट्टरता का अभाव पाया जाता है।

6. प्राचीनता– इस संस्कृति के कई विशिष्ट एवं प्रमुख अंगों का विकास– ई.सा.से. कई शताब्दी पूर्व हो गया था। दूसरे देशों में जब बर्बरता व्याप्त थी, उस समय इस देश में संस्कृति प्रखर रूप में व्याप्त थी। इराक की सबसे पुरानी जाति पर वैदिक सभ्यता और संस्कृति का प्रभाव है। वैसे तो मिश्र, यूनान और बेबीलेन की सभ्यताओं को प्राचीन मानते हैं, परन्तु वैदिक सभ्यता उससे भी प्राचीन है। इस प्रकार की भारतीय संस्कृति का प्राचीनतम रूप न सिर्फ विद्यमान है अपितु वह फल फूल भी रही है और अपने प्राचीन स्वरूप को वर्तमान के साथ समायोजित करते हुए अक्षुण्ण है।

7. सर्व व्यापकता– भारतीय संस्कृति में भारत में ही नहीं बल्कि फारस, चीन, साइबेरिया क्षेत्र से लावा और बोर्नियों के द्वीपों तक और प्रशान्त सागरीय द्वीपों तक अपने विश्वासों, कथाओं आदि का प्रचार एवं प्रसार किया है। संस्कृति का एक दूसरे के ऊपर बहुत असर पड़ता है। परिणाम स्वरूप भारतीय संस्कृति का चीन, तिब्बत, लंका, जापान, बर्मा, नेपाल, युरोप आदि स्थानों में प्रभाव पड़ा हुआ है।

8. त्याग– मानव जीवन की सफलता त्याग के द्वारा हो सकती है, भोग के द्वारा नहीं। पाश्चात्य संस्कृति की तरह भोग का उपदेश न देकर योग का उपदेश भारतीय संस्कृति देती है। त्याग एक महामंत्र है। गीता में निस्वार्थ कर्म का विधान है। त्याग से ही सभी सुखी रह सकते हैं। इसलिए आज भी समस्त विश्व में योग साधना का प्रभाव भारतीय संस्कृति के कारण ही है। जैन धर्म बौद्ध धर्म यहाँ तक कि गांधीवाद भी त्याग की महानता पर बल देता है। हमारे देश में त्यागियों को विशेष श्रद्धा के साथ याद किया जाता है।

9. तपोवन– भारतीय संस्कृति में तपोवन का स्थान इसलिए अधिक है क्योंकि जन–कोलाहल से दूर शान्त एवं रमणीय स्थान आत्मिक उन्नति के लिए आवश्यक हैं। यह भारतीय संस्कृति की अपनी विशेष विशेषता है। कोलाहल से दूर रहकर शांत एवं रमणीय स्थान में ही गौतम बुद्ध को आत्मिक उन्नति एवं ज्ञान की प्राप्ति हुई थी। इसलिए तपोवन का होना जरूरी है। यह एक

तरफ तो पर्यावरण एवं प्रकृति की रक्षा से मानव को जोड़ता है तो दूसरी ओर उसकी आध्यात्मिक उन्नति का मार्ग प्रशस्त करता है।

10. चिंतन की स्वतंत्रता– चिंतन की स्वतंत्रता के कारण देश में श्रुति, स्मृति, बौद्ध, दर्शन, चार्वाक–दर्शन, अद्वैत–दर्शन, विशिष्ट–द्वैत–दर्शन, शुद्ध द्वैत–दर्शन, द्वैता–दर्शन आदि कितने दर्शनों एवं मत–मतांतरों का जन्म हुआ। भारतीय संस्कृति की यह अन्यतम विशेषता है जो अपने विरोधियों को भी फलने–फूलने का मौका देती है यहाँ तक कि नास्तिक विचारकों को भी सहृदयता से भी सुनती है और उनका आदर भी करती है। भारत के प्रत्येक नर–नारी को चिंतन का अधिकार प्राप्त हुआ और मनमुटाव का परित्याग कर आत्म–विश्वास में लीनता की भावना आई। स्वतंत्रता मनुष्य का जन्म सिद्ध अधिकार है, हमारे मनुष्य इसे भली–भाँति जानते थे। इसलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति में इसका विधान किया है।

11. परलोक तथा पुनर्जन्म में विश्वास– भारतीय संस्कृति की इस विशेषता के फलस्वरूप बहुत से लोगों ने गलत काम करने से अपने को रोका है क्योंकि कर्मफल और उसके परिणाम व्यक्ति को जन्म–जन्मान्तर तक भोगने पड़ते हैं। स्वाभाविक रूप से प्रत्येक व्यक्ति इस कर्मफल से मुक्ति के लिए सद्कर्मों की ओर उन्मुख होता है। किसी भी व्यक्ति के ऊपर नियंत्रण के अभाव होने पर वह उच्छृंखल हो जाता है। इसलिए यह परलोक तथा पुनर्जन्म की भावना लोगों को उचित मार्ग की ओर उत्प्रेरित करती है। परलोक तथा पुनर्जन्म में विश्वास के फलस्वरूप बहुत लोगों ने गलत काम से अपने को रोका है। यह भारतीय संस्कृति की अपनी विशेषता है।

12. आश्रम व्यवस्था– भारतीय संस्कृति में आश्रम व्यवस्था की स्थापना की गई है। मनुष्य की आयु को 100 वर्ष मानकर उसे चार भागों में विभक्त किया गया है। पच्चीस वर्ष तक की अवस्था को ब्रह्मचर्य, पचास वर्ष तक की अवस्था 'गृहस्थ' पचहत्तर वर्ष तक की अवस्था को 'वानप्रस्थ' और 75 से 100 तक संन्यास के अंतर्गत रखा गया है। इस प्रकार ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शुद्र वर्गों में सामाजिक कर्मों को विभक्त करके अपनी रुचि के अनुसार अपने व्यक्तित्व के विकास का अवसर जन–समुदाय को प्रदान किया गया है।

13. समन्वयवादिता– भारतीय संस्कृति सभी संस्कृतियों का समन्वय रूप प्रस्तुत करती है। भारतीय संस्कृति की पचन शक्ति बड़ी प्रबल है। इसने सबको अपने में पचा लिया है। वेद का पवित्र उद्देश्य है कि, हे मानव! तुम दूसरे मानवों के साथ मिलकर चलो। तुम्हारा भाषण, तुम्हारा मनन और चिंतन मिलकर ही दूसरों की भावनाओं के साथ अपनी भावनाओं को मिलाते हुए तुम संसार के अनेक पदार्थों का उपयोग करो। इसमें सभी धर्म या सभी जाति का समानता से आदर किया गया है।

14. देवपारायणता– यहाँ के लोग अपने से अलग ईश्वर की सत्ता में विश्वास करते रहे हैं। धर्म का सच्चा रूप ईश्वर को किसी रूप में भी मानने को तैयार है। भारतीय धारणा के अनुसार ब्रह्म (सर्व देवमयम) सर्वोच्च सत्य है। जिस ब्रह्मा से मनुष्य उत्पन्न हुआ है उसी में उसे लय होना है। भारतीय महामानवों ने इसी सत्य को 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के रूप में स्वीकार किया है; और' 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की यह धारणा इसी देव परायणता के बलपर पनपी और प्रबल हुई है।

15. सहिष्णुता– इसी गुण के कारण यह संस्कृति अब तक जीवित है। ऋग्वेद में एक सद् विप्रा बहुधा वदान्ति का वर्णन किया गया है। गीता में श्री कृष्ण ने भी इस पर जोर दिया है। जैन–धर्म तथा बौद्ध धर्म भी इस सिद्धान्त को मानते है। सम्राट अशोक अपने 'द्वादश शिला–अभिलेख' में इसे सुगम और सुन्दर रूप में लोगों के सम्मुख प्रस्तुत किया है। भारत के ही नहीं बल्कि विदेश के भी विवादग्रस्त लोग भारत में शरण लेते रहे हैं।

भारतीय संस्कृति विश्व की एक प्रतिष्ठित एवं वैशिष्ट्यपरक संस्कृति है। इसे सनातन संस्कृति (चिर–नवीन संस्कृति) के रूप में पहचान प्राप्त है। प्राचीन काल से ही अनेक बाह्य जातियाँ भारतीय समाज में घुल–मिल गयीं तथा आर्य एवं आर्येतर जातियों के मिलन से अस्तित्व में आयी भारतीय संस्कृति का हिस्सा बन गयी। यदि इसके पीछे कोई कारण है तो वह है भारतीय संस्कृति का उदार, उदात्त, सहिष्णु एवं सर्वसमावेशी चेहरा। कालान्तर में इस्लाम एवं ईसाई धर्म के अनुयायी भी आये और वे भी भारतीय संस्कृति के अंग बन गये। वास्तव में भारतीय संस्कृति अपनी सहिष्णुता के लिए आख्यात रही है। इसमें परस्पर विरोधी तत्त्वों, सिद्धान्तों और वृत्तियों को समेट कर एक सूत्र में गूँथने का प्रयास दिखाई देता है। विपरीत विश्वासों, रीतिरिवासों, साधनाओं, उपासना–पद्धतियों एवं सामाजिक प्रबन्धनों को इसमें स्थान प्राप्त है। उल्लेखनीय है कि भारत एक भौगोलिक क्षेत्र ही नहीं है। बल्कि यह विभिन्न सोच, विचारधाराओं और संस्कृतियों का मिलन है। विभिन्न संस्कृतियों, धर्मों, विश्वासों, भाषाओं, और नस्लीय जातियों ने इसे खास बनाया है। सहिष्णुता हमें ताकत देती है। हम किसी से सहमत हों या असहमत, भारतीय संस्कृति के बहुलवादी स्वरूप को नकार नहीं सकते। असहिष्णुता समाज में बिखराव, टकराव, भय एवं अविश्वास को बढ़ाती है और समाज की प्रगति में बाधक बनती है। भारत की आत्मा बहुलवाद और सहिष्णुता में बसती है। इतनी व्यापकता एवं विविधता से भारतीय संस्कृति का एक विशेष चित्र हमारे मन में बनता है।

सन्दर्भ :

1. रामधारी सिंह दिनकर– संस्कृति के चार अध्याय, पृ. 651–652.
2. शिवशंकर त्रिपाठी, राष्ट्र चिन्तन : सांस्कृतिक इतिहास दृष्टि, पृ. 7.
3. सोराकिन पृ. 5–6.
4. गोविन्द चन्द्र पाण्डेय : वैदिक संस्कृति, पृ. 120.
5. वही, पृ. 129.
6. बाटमोर, सोशियोलॉजी, पृ. 129, पाद टिप्पणी 2 पर उद्धृत।

***

वैश्विक महामारी में बदलती मानसिकता

डॉ. आशा *

कोरोना वायरस कोविड 19 एक ऐसी समस्या है जिसने पूरे विश्व को एक साथ प्रभावित किया है। न केवल देश, शहर बल्कि पूरा विष्व आज लॉक डाउन जैसी गंभीर समस्या से जूझ रहा है। लोग घरों में बन्द हैं। अभी तक इसका कोई सटीक उपचार नहीं मिला है। अनगिनत लोग इससे संक्रमित हैं और असंख्य लोगों की जानें जा चुकी हैं। ये ऐसा अदृष्य दुश्मन है जिसके सामने सर्वशक्तिमान देशों ने भी घुटने टेक दिये हैं। ये एक ऐसी समस्या के रुप में हमारे सामने आया है जिसने हमारे जीवन के अर्थ एवं मानवीय मूल्यों को ही बदल दिया है। हम वसुधैव कुटुम्बकम् का अर्थ तो समझते हैं लेकिन कभी भी किसी सकारात्मक विचार से हम एकमत नहीं हो पाये। आज जब सभी देश एक जैसी समस्या से घिरे हुए हैं तो इस नकारात्मक स्थिति में एक होकर इस संक्रमण से लड़ने के लिए वसुधैव कुटुम्बकम् की संकल्पना को चरितार्थ कर रहे हैं। कोरोना के संक्रमण ने हमें जीवन को एक नये नजरिये से देखने के लिए प्रेरित किया है। जब शुरुआती दिनों में लॉक डाउन हुआ तो लोगों ने मिली–जुली प्रतिक्रिया व्यक्त की। लेकिन धीरे– धीरे सभी के जीवन में एक ठहराव आया जिसने लोगों की सोच को काफी बदल दिया है। संक्रामक रोगों का सभी पर एक गहरा मनोवैज्ञानिक प्रभाव पड़ता है, उन पर भी जो वायरस से प्रभावित नहीं हैं। इन बीमारियों को लेकर हमारी प्रतिक्रिया मेडिकल ज्ञान पर आधारित न होकर हमारी सामाजिक समझ से भी संचालित होती है।

वैसे तो इस समस्या के प्रारम्भ होने से पहले से ही काफी लोग अवसाद के शिकार होते रहे हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन की रिपोर्ट के अनुसार आज विश्व में लगभग 30 करोण लोग अवसाद के शिकार हैं। जिसमें से 5 करोण अकेले भारतीय हैं। अवसाद का अर्थ मनोविज्ञान के क्षेत्र में मनोभावों सम्बन्धी दुख से होता है डिप्रेशन या अवसाद वह अवस्था है, जिसमें इन्सान दुःख, हानि, व्यर्थता और अक्षमता की सर्वव्यापी भावना का अनुभव करता है। व्यक्ति को जिन विषयों में पहले रुचि रही हो, उसमें भी उसका मन नहीं लगता और आत्महत्या जैसे ख्याल आते हैं। व्यक्ति अपने आस–पास के वातावरण के प्रति उदासीन हो जाता है। सुस्ती, अनिद्रा, थकान, निष्क्रियता, भूख में बदलाव, ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई तथा असहायता की भावना उत्पन्न होने लगती है। मनोविश्लेषकों के अनुसार प्राकृतिक तौर पर महिलायें पुरुषों की अपेक्षा अवसाद का शिकार अधिक बनती हैं। मोटे अनुमान के अनुसार 10 प्रतिशत पुरुष और 50 प्रतिशत महिलायें इस बीमारी से ग्रस्त हो सकती हैं।

कोरोना वायरस के संक्रमण की वजह से जारी देशव्यापी लॉकडाउन के दौरान मानसिक अवसाद के मामले तेजी से बढ़ने लगे हैं। जरुरतों के पूरा न होने से, काम–काज ठप्प होने, भविष्य की चिन्ता के कारण तथा लगातार सामाजिक दूरी के कारण आत्महत्या जैसी घटनायें तेजी से बढ़ने लगी हैं। इस समय लोग कोरोनाफोबिया से भी ग्रसित होने लगे हैं। बार–बार अनावश्यक हाथ धोना, छींक आते ही डर जाना, सोशल मीडिया पर फैलने वाली अफवाहों को सच मान लेना, सृष्टि के खत्म होने का भय सताना इत्यादि। मनोचिकित्सकों के अनुसार लोगों को एक दूसरे से डर लगने लगा है। दिल्ली के सर गंगाराम अस्पताल में इंस्टीट्यूट ऑफ साइकियाट्री एण्ड बिहैविरल साइंस के डॉ0 का कहना है कि कोविड–19 के बारे में सूचनाओं की बाढ़ ने बड़े पैमाने पर आतंक फैलाया है। लोगों को हमेशा संक्रमण का खतरा सताता है, क्वारंटीन केन्द्रों को जेल और संक्रमित लोगों को सामाजिक कलंक के रुप में लोग देखने लगे हैं।

लॉकडाउन की वजह से मानसिक अवसाद के मामले तेजी से बढ़े रहे हैं, कुछ लोगों का कहना है कि यह लॉकडाउन उनके जीवन का सबसे अँधेरा दौर है। विश्व स्वास्थ्य संगठन के अनुसार भारत में लगभग 9 करोण लोग किसी न किसी किस्म के मानसिक अवसाद की चपेट में हैं। जो लोग

---

* एसो. प्रो. पं. दी. द. उ. रा. बा. महा. सेवापुरी, वाराणसी

कोरोना वायरस की गम्भीरता को समझ रहे हैं, वे काफी चिंतित हैं। उनकी चिंता कब घबराहट में और घबराहट कब अवसाद में बदल जायेगा, यह कहा नहीं जा सकता। मनोवैज्ञानिकों का कहना है कि लोगों के लिए घरों में रहना इसलिए भी मुश्किल हो रहा है क्योंकि अब ज्यादातर लोग एकाकी परिवार में रहते हैं। जहाँ सदस्यों की संख्या सीमित होती है। आमतौर पर लोगों का समय ऑफिस में हंसी–मजाक और काम करते हुए निकल जाता है। वहीं अब वे बाहरी दुनिया से कट कर मनोरंजन से भी घबराने लगते हैं।

वर्तमान समय में जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कोरोना वायरस के संक्रमण तथा लॉकडाउन का व्यापक प्रभाव पड़ा है–

1. **स्वास्थ्य एवं सफाई सम्बन्धी जागरुकता–**आज लोगों को यह बात समझ में आ गयी है कि योग एवं व्यायाम प्रतिरक्षा प्रणाली को मजबूत बनाते हैं। जिससे शरीर के विषाक्त एवं व्यर्थ पदार्थ शरीर से निष्कासित हो जाते हैं तथा शरीर के विभिन्न हिस्सों में पर्याप्त ऑक्सीजन पहुँचता है और व्यक्ति स्वस्थ रहता है। यद्यपि स्वास्थ्य एवं सफाई सम्बन्धी जागरुकता लोगों मे कोरोना संक्रमण से पहले ही काफी लोगों में आ चुकी थी लेकिन जब इस संक्रमण काल में लोगों को यह ज्ञात हुआ कि जिसकी प्रतिरक्षा प्रणाली मजबूत है वही इस संक्रमण से बच सकता है या संक्रमण के पश्चात अपने जीवन को बचाया सकता है तो लोग स्वास्थ्य के प्रति ज्यादा जागरुक हुए। सफाई के सन्दर्भ में तो ये कहा जा सकता है कि जो लोग पहले खाना खाने से पहले भी हाथ धोने में आलस करते थे वे भी अब इससे बचने के लिए खाना बनाने से पहले, खाना खाने से पहले, नाक साफ करने के बाद, छींकने, खाँसने के बाद, किसी का इलाज करने के बाद, बीमार व्यक्ति के सम्पर्क में आने के बाद, वाशरुम का प्रयोग करने के बाद, पालतू जानवर के सम्पर्क में आने के बाद, सफाई के बाद, कचरे के सम्पर्क में आने के बाद हाथों को अच्छी तरह से धोने लगे हैं।
2. **भोजन सम्बन्धी आदतों में बदलाव–**जब से लोगों को यह पता चला है कि कोरोना का कोई उपचार नहीं है, केवल शरीर में रोग प्रतिरोधकता उत्पन्न करके ही इससे बचा जा सकता है, तब से लोग भोजन के प्रति भी काफी सतर्क हो गये हैं। लोग सोशल मीडिया द्वारा उपलब्ध जानकारी एवं उपायों का भी प्रयोग करने लगे हैं। जैसे–

गर्म पानी का सेवन–1 दिन में कम से कम 4 गिलास गर्म पानी
विटामिन सी युक्त फलों का सेवन–संतरा, नींबू, अनानास, नारंगी, पपीता
प्रोटीन युक्त पदार्थ–सोयाबीन, अंकुरित चना, अरहर की दाल, दही, बादाम
तुलसी अदरक गुड़ वाली चाय, हल्दीयुक्त दूध का सेवन, नारियल पानी, लहसुन का पानी, चीनी के स्थान पर शहद का प्रयोग, ग्रीन टी का प्रयोग आदि।

3.**जीवन के प्रति दृष्टिकोण–**कोविड 19 के प्रभाव तथा लॉकडाउन की स्थिति ने लोगों का जीवन के प्रति दृष्टिकोण परिवर्तित किया है। आज लोग यह समझने लगे हैं कि भौतिकतावादी संसाधनों की अपेक्षा जीवनरक्षक संसाधन ज्यादा आवश्यक हैं। आज यह महसूस किया जाने लगा है कि देश और दुनिया को खत्म करने वाले परमाणु हथियारों की अपेक्षा मानव एवं अन्य जीवों की रक्षा करने वाले साधनों एवं कुशलता की आवश्यकता है। शस्त्रों वाली सेना की नहीं बल्कि उपचार करने वाली सेना की आवश्यकता है जो ऐसे कठिन दौर मे मानवता की रक्षा कर सके।

4. **धन के प्रति परिवर्तित सोच–**यद्यपि आज हमारी जरुरतें कम हो गयी हैं, लेकिन अनिवार्य आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए भी धन की आवश्यकता होती है। जो लोग अपने व्यवसाय या किसी प्राइवेट फर्म से जुड़े हुए है उन्हें मंदी का डर सताने लगा है।सुरक्षा के लिए लगाया गया लॉकडाउन देश की अर्थव्यवस्था के साथ–साथ लोगों की सोच को भी प्रभावित कर रहा है। भविष्य को लेकर लोग अनिश्चितता की स्थिति का अनुभव करने लगे हैं।

5. **सोशल मीडिया–**यद्यपि इस बात से इंकार नहीं किया नहीं किया जा सकता कि सोशल मीडिया सामाजिक जागरुकता को बढ़ाता है लेकिन यह भी सत्य है कि सोशल मीडिया सूचनाओं और जानकारियों का ऐसा तूफान उत्पन्न करता है, जिसमें से सत्य को खोजना मुश्किल हो जाता है,

क्योंकि ये एक ऐसा प्लेटफॉर्म है जहाँ हर कोई अपनी राय रखने लगता है। ऐसी परिस्थिति के कारण लोगों में डर एवं भगदड़ की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इसीलिए विश्व स्वास्थ्य संगठन तथा भारत सरकार ने यह सिफारिश की है कि लोग फर्जी जानकारियों से बचने का प्रयास करें तथा विश्वसनीय स्वास्थ्य कर्मियों की बातों को सुनें। दरअसल घबराहट से जूझ रहे लोगों को पहले से ही स्वास्थ्य सम्बन्धी समस्यायें होती हैं ऐसे में सोशल मीडिया द्वारा जारी सूचनायें मानसिक बीमारियों को बढ़ा देती हैं। हम सभी यह जानते हैं कि लोग सोशल मीडिया का उपयोग अपने इमोशन को शेयर करने के लिए करते हैं वहीं आजकल इसके द्वारा लॉकडाउन के नियमों का पालन करने एवं जरुरतमंदों की सहायता करने की अपील के लिए भी किया जा रहा है।

6. **संग्रहण**–ऐसी स्वास्थ्य समस्याओं का मनो–आर्थिक प्रभाव भी पड़ता है, जो उपभोक्तावादी स्वभाव के रुप में दिखता है। जब हम भोजन, मास्क, सैनेटाजर्स, दवायें इत्यादि ज्यादा से ज्यादा जमा कर लेना चाहते हैं। इसके पीछे जो मानसिकता है वो जीवन को अपने नियन्त्रण में रखने से सम्बन्धित है। लोगों को यह समझने की आवश्यकता है कि महामारी के समय स्वास्थ्य व्यक्तिगत मामला नहीं होता बल्कि यह बड़े जन समुदाय से सम्बन्धित होता है। लॉकडाउन के प्रारम्भिक समय में लोगों में इस बात की घबराहट थी कि बाजार से सामान खत्म हो जायेगा तो उनका क्या होगा, लेकिन धीरे–धीरे लोग समझने लगे कि सरकार जीवन की अनिवार्यता से सम्बन्धित सामानों की कमी नहीं होने देगी।
7. **नवाचार** – स्वास्थ्य, सुरक्षा, सफाई, शिक्षा, मनोरंजन आदि सभी क्षेत्रों में नये–नये प्रयोग होने लगे हैं। तकनीक का अधिकतम उपयोग होने लगा है। ऑनलाइन मीटिंग, ऑनलाइन स्टडी, ऑनलाइन ऑफिशियल वर्क, ऑनलाइन पेमेण्ट, ऑनलाइन बैंकिंगइत्यादि। वैज्ञानिक, इन्जीनियर, डॉक्टर सभी नये–नये विचारों एवं आइडिया पर काम करने लगे हैं। आवश्यकता आविष्कार की जननी है, और आज आवश्यकता इस बात की है कि किस प्रकार सुरक्षित तरीके से हम जीवन यापन कर पायें।
8. **स्वदेशी उत्पादों को अपनाने की प्रेरणा** – जब से लोगों को कोरोना जैसी महामारी के लिए चीन की जिम्मेदारी का पता चला है तब से लोग स्वदेशी अपनाने पर जोर देने लगे हैं। यद्यपि यह 100 प्रतिशत सम्भव नहीं है फिर भी लोगों की सोच बदलने लगी है और यदि सोच बदलने लगी है तो इस पर सरकार तथा उद्यमियों दोनों को मिलकर कार्य करने की जरुरत है ताकि किसी आवश्यकता के लिए हमें विदेशी उत्पादों पर निर्भर न रहना पड़े।
9. **आध्यात्मिक भावना** – यद्यपि आज के समय में सभी धार्मिक स्थल बन्द हैं लेकिन लोगों के मन में यह विश्वास हो गया है कि इस अदृश्य समस्या से केवल ईश्वर जैसी सर्वशक्तिमान शक्ति ही बचा सकती है। लोग प्रार्थना तथा सेवा में अपना वक्त एवं पैसा व्यय करने लगे हैं।
10. **मनोरंजन** – आज के समय में व्यक्ति टी0वी0, मोबाइल, तथा कम्प्यूटर का प्रयोग करके इतना थक गया है कि मनोरंजन के नये तरीके ढूढने लगा है। आज वे घर ज्यादा अच्छे लगते हैं जहाँ सदस्यों की अधिक संख्या है। लोग मनोरंजन से भी घबराने लगे हैं। उनमें उत्साह एवं ऊर्जा की कमी तथा निराशा दिखाई देने लगी है।
11. **पर्यावरण** – आज लोगों को यह महसूस होने लगा है कि यह पर्यावरणीय असन्तुलन के कारण उत्पन्न भयानक स्थिति है, जिसका जिम्मेदार सम्पूर्ण मानव समाज है। लोग इस बात को समझने लगे हैं कि यदि उन्होंने प्रकृति का सम्मान नहीं किया तो स्थिति और भयानक रुप धारण कर सकती है। इसलिए लोग प्रकृति के प्रति अपने कर्त्तव्यों का निर्वहन करने लगे हैं और भविष्य में भी पर्यावरण सन्तुलन के लिए वचनबद्ध हो रहें हैं।
12. **सामाजिक दूरी बनाम अविश्वास** – इस समस्या के कारण लोगों में अविश्वास की भावना बढ़ी है। वास्तव में सामाजिक दूरी का अर्थ संवेदनाओं की भी दूरी है। हमें सामाजिक दूरी नहीं बल्कि शारीरिक दूरी बनाकर इस समस्या से छुटकारा पाना है।
13. **नारी की बदलती भूमिका** – आज सोशल मीडिया पर सूचनाओं के प्रवाह, लोगों की बढ़ती उपभोक्तावादी प्रवृत्ति तथा भविष्य की अनिश्चितता के कारण उत्पन्न अवसाद ने सभी की भूमिका

और कार्यशैली के प्रभावित किया है। ऐसे समय में नारी की भूमिका बदल गयी है, विस्तृत हो गयी है। ये अलग बात है कि नारी की भूमिका और कार्यशैली को लेकर सोशल मीडिया में काफी मजाक चल रहा है। आज नारी को जिन चुनौतियों का सामना करना पड़ रहा है, वे हैं–

1. परिवार के सदस्यों की स्वास्थ्य रक्षा
2. प्रतिरोधक क्षमता को विकसित करने का प्रयास
3. हेल्पिंग हैन्ड के बिना घर सम्भालना
4. जंक फूड की मांग को घर के व्यंजनों से पूरा करने की कोशिश
5. वर्क फ्रॉम होम
6. सोशल मीडिया पर सूचनाओं की बाढ़ से परिवार के लिए सही जानकारी चुनना
7. सदस्यों द्वारा इण्टरनेट के सही प्रयोग पर नजर रखना
8. अवसाद जैसी मानसिक समस्याओं से अपनी तथा अपने परिवार की रक्षा करना

बढ़ती नकारात्मकता से बचाव के उपाय

1. नकारात्मक चिंतन की प्रवृत्ति से संघर्ष करना
2. अज्ञानता को दूर करने के लिए जानकारी प्राप्त करना
3. आशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न करना
4. आत्मविश्वास उत्पन्न करना
5. परिवार के साथ सकारात्मक वक्त बिताना
6. परिस्थितियों को स्वीकार करना
7. शौक पूरे करना, इनडोर गेम्स खेलना, पर्याप्त नींद लेना, मनोरंजन, मधुर संगीत सुनना, योगा एवं व्यायाम करना
8. जीवन के लक्ष्य निर्धारित करना
9. पेडिंग वर्क की लिस्ट बनाना
10. वातावरण खुशनुमा बनाना
11. बातें शेयर करना
12. दूसरों से सलाह लेना
13. योगा एवं व्यायाम करना
14. अपनी बातों को लिखने का प्रयास करना
15. सन्तुलित आहार लेना विशेषरुप से कैल्शियम एवं विटामिन डी। क्योंकि ये मस्तिष्क की कार्यक्षमता और विकास को बढ़ाने वाले जीन को सक्रिय बनाता है।

***

लक्षणामूलाव्यञ्जनावृत्तिविवेचनम्

डॉ. विष्णु दत्त तिवारी *

भारतीयकाव्यशास्त्रे तिस्रः शब्दशक्तयः स्वीकृताः सन्ति । तद्यथा– अभिधालक्षणा व्यञ्जना चेति । यद्यपि भामहवामनादिभिः पूर्वाचार्यैः स्फुटरूपेण व्यञ्जनावृत्तिः न स्वीकृता तथापि अलङ्कारप्रसङ्गे सवैरेव सर्वप्रथमं काव्यस्यात्मरूपेण ध्वनेः प्रतिष्ठानप्रसङ्गे ध्वन्यालोककारेण आनन्दर्धनेनैव तृतीयशक्तिरूपेण व्यञ्जनावृतिः स्वीकृता । अनन्तरञ्च अभिनवगुप्तपादाचार्यमम्मट–विश्वनाथादिभिराचार्यः आनन्दवर्धनमनुसृत्य तिस्रः वृत्तयः स्वीकृताः सन्ति । काव्यप्रकाशे आचार्यमम्मटेन विस्तरेण द्वितीयोल्लासे तिसृणां वृत्तीनां चर्चा कृता वर्तते । 'तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित' इति उक्त्वा अभिहितान्वयवादान्विताभिधानवादिनां मतयोः संक्षिप्तविवेचन कृतम् । तत्र प्रथम शब्दविवेचनं मम्मटेन कृतम् ।

स्याद्वाचको लाक्षणिकः शब्दोत्र व्यञ्जकस्त्रिधा ।
वाच्यादयस्तदर्थाः स्युः तात्पर्यार्थोऽपि केषुचित् ।। का.प्र. 6

शब्दा : त्रिविधा भवन्ति । वाचको लाक्षणिकः व्यञ्जकश्चेति । तेषां च वाच्यलक्ष्यव्यंग्यार्थाऽपि भवन्ति । मीमांसकाः तात्पर्यनाम्नी चतुर्थी शब्दशक्ति स्वीकुर्वन्ति । परन्तु ते व्यञ्जनावृत्ति न मन्यते अतएव इयं तृतीया एवास्ति ।

अर्थप्रतीत्यर्थ वाचकादिभिः शब्दैः क्रमशः अभिधा – लक्षणा – व्यञ्जनश्चेति त्रिविधाः शब्दशक्तयः स्वीकृताः सन्ति। अभिधाशक्तिविवेचने मम्मटेन सर्वप्रथमं वाचकशब्दः स्पष्टी कृत : साक्षात्संकेतितं योऽर्थमभिधत्ते स : वाचकः । वृत्त्यां मम्मटेन स्पष्टं कृतं यत् येन शब्देन अथवा वस्तुना अव्यवधानेन संकेतग्रहणं क्रियते सः तस्य अर्थस्य वाचकः भवति ।

मुख्यार्थबाधे, मुख्यार्थेन सह अन्यार्थसम्बन्धेन च रूढि अथवा प्रयोजनवशात् यया वृत्त्या अन्यार्थस्य प्रतीतिः भवति सा आरोपिता वृत्तिः लक्षणा भवति। मम्मटेन वृत्त्यां उदाहरणैः लक्षणशक्तिः स्पष्टी कृता।

अभिधालक्षणयोः विवेचनानन्तरं मम्मटेन व्यञ्जनास्वरूपं स्पष्टीकृतम्। मम्मटेन लाक्षणिकशब्दात् व्यंग्यार्थप्रकटनाय स्वीकृतः तद्भूः लाक्षणिकः, तत्र व्यापारो व्यञ्जनात्मकः। एतद् किमर्थं ? अस्मिन् विषये मम्मटस्य मतमस्ति यस्य प्रयोजनप्रतीतये लक्षणाशब्दप्रयोगो भवति तत्र अनुमानादिना प्रयोजनप्रतीतिर्नभवति, अपितु फलप्रतीतये एकमात्रलाक्षणिकशब्दस्य विषयः व्यञ्जनाव्यापारः अस्ति ।

यस्य प्रतीतिमाधातुं लक्षणा समुपास्यते ।। का.प्र. का. 14
फलेशब्दैकगम्येऽत्र व्यञ्जनान्नापरा क्रिया ।। का.प्र. का. 15

प्रयोजनप्रतीतये संकेतग्रहस्याभावात् अत्र अभिधायाः अवसरो नास्ति नाभिधा समयाभावात् हेतुत्रयस्याभावात् लक्षणापि न समर्था हेत्वाभावान्न लक्षणा। लक्षणावृत्या प्रयोजनप्रतीतिरपि असम्भवा ।

लक्ष्यं न मुख्यं नाप्यत्र बाधो योगः फलेन नो ।
न प्रयोजनमेतस्मिन् न च शब्दस्स्खलद्गतिः । । का.प्र. का. 16

प्रयोजनेन सहितं शैत्यपावनत्वादिविशिष्टं तटमपि लक्ष्यार्थः न उचित : ज्ञानसम्बन्धि – सामान्यनियमस्य खण्डनात् ।

प्रयोजनेन सहित लक्षणीयं न युज्यते ।। का.प्र. का. 17
ज्ञानस्य विषयो ह्यन्य : फलमन्यदुदाहृतम् ।। का.प्र. का. 18

मम्मटेन स्पष्टीकृतं यत् प्रयोजनप्रतीतये अभिधालक्षणाभ्यामतिरिक्तस्याविशिष्टवृत्येरावश्यकता भवति तटादेः पावनत्वादिविशेष : अभिधालक्षणातात्पर्याभ्यो व्यापारान्तरेण गम्यः, एतदेव व्यञ्जन , ध्वनन,

---

* संस्कृताध्यापकः, राजकीय-बाल-वरिष्ठ-माध्यमिक-विद्यालयः, नवदेहली

द्योतनादि शब्दैर्वाच्यः व्यञ्जनाव्यापारः। टीकाकाराः स्वीकृताः यत् व्यङ्ग्यार्थः अभिधादिव्यापारैः प्रमाणैश्च बोध्यो नास्ति । अत : तस्य कृते व्यञ्जनध्वननादि व्यापारस्यावश्यकत्वम्।

व्यञ्जना शाब्दी आर्थीभेदेन द्विधा भवति । शाब्दीव्यञ्जनाऽपि अभिधामूलालक्षणामूलाभेदेन द्विधा । यद्यपि अभिधाया प्राथम्यात् प्राधान्यात् च तस्य विवेचनं प्रथमं भवति किन्तु ग्रन्थकारेण लक्षणामूलव्यञ्जनाया प्रकृतत्वात् अधिकप्रसिद्धत्वात् च तस्य विवेचनं प्रथमं कृतम् । तत्र अद्यप्यभिधायाः प्राथम्यादुपजीव्यत्वाच्च तन्मूला प्रथम निरूपयितुमुचिता। तथापि सुप्रसिद्धत्वाल्लक्षणायाः प्रकृत्वाच्च तन्मूलामेव प्रथम निरूपयति।

दीपिकाकारः **'यस्य प्रतीतिः'** इति कारिकायाः विवेचने लिखति यत् यस्य गंगादिपदमुपनीते तटादिफलप्रतीतये लक्षणा उपस्थिता भवति तद्बोधने शब्दमात्रं न पर्याप्तम् अतः तस्यैव कृते अस्माभिः ध्वनिवादिभिः व्यञ्जनानाम्ना व्यवहारः कृतः अतएव ग्रन्थकारेण व्यञ्जना अपक्रिया इत्यादौ समुपास्यते पदस्याभिप्रायं विना प्रसिद्धया काङ्क्षितं करोति। अत्र 'समयाभावात् नाभिधा' 'हेत्वाभावान्नल्लक्षणा' अनयोः विवेचनं टीकाकारैः मम्मटानुसारमेव कृतम्। 'लक्ष्यं न मुख्यं नाप्यत्र बाधो' इत्यादि मम्मटोक्त कारिकायाः व्याख्यायां दीपिकाकारस्य मतमस्ति यत् अत्र प्रतीतपर्यवसानमूलायाः लक्षणायाः उज्जीवनमङ्गीक्रियते। पावनत्वादि प्रतीतिस्तु शक्त्यन्तरेणैव सम्भवः। अभिधायाः स्वरूपमत्र मीलिततमेवप्रतीयते।

"यदि पावनत्वादिविशिष्टतटमेव लक्षणया लक्ष्यते तदा व्यञ्जनाया : अवसर एव नास्ति?" इत्यस्योत्तरे मम्मटस्य कथनमस्ति यत् 'प्रयोजनेन सहितं लक्षणीयं न युज्यते।' अत्र तात्पर्यमस्ति यत् गङ्गातादात्म्यात् तटे शैत्यादिप्रतीतिरेव कार्यः न तु तदर्थे विशिष्टज्ञानं च विशेषणविशेष्यपूर्वकं भवति स च ' गङ्गातटे इत्यादौ असम्भवः विशेष्यतटस्य च सर्वथैव लक्षणया बोध्यत्वात् ।

"गङ्गतादात्म्यप्रतीतेः कार्य एव तटे पावनत्वशैत्यादिप्रत्ययो न त तदर्थे विशिष्टज्ञानं हि विशेषणविशेष्यज्ञानपूर्वकं भवति च चावं सम्भवति, विशेषणस्य शैत्यादेः सरिल्लीनतयाऽभिधया स्मारित्वान् विशेष्यस्य तटस्य च सर्वथा पूर्वमनुपनीतत्वात्।" प्रयोजनसहितं लक्ष्यपदं किमर्थं न प्रयुज्यते ? अस्योत्तरे मम्मटकथनमस्ति – **ज्ञानस्य विषयो ह्यन्यः फलमन्यदुदाहृतम् ।** वस्तुतः सरिदभेद एव संकेतविषयः न तु शैत्यादयः । न हि धर्मिणि गङ्गातटादौ स संकेतग्रहे तत्सल्लग्नशैत्यपावनत्वादयः संकेत्यः । तस्मात् शैत्यादयानां फलप्रतीतौ तटस्य प्रतीतौ च भिन्नकालात् भिन्नव्यापारमेव समीचीनम् । ज्ञानस्य विषयः शैत्यादयः बुद्धिव्यतिरिक्तः । तस्मात् शैत्यादयाऽपि तटादेरन्यदुदाहृतम् । वस्तुतस्तु सरिभेद एव सङ्केतस्मृत्योर्विशेषग्राह्यो न शैत्यादिः न हि धर्मिणिसङ्केत्ये संलग्नः सर्व एव गुणादिः सङ्केत्यः । मा मूछेत्यादिगङ्गापदसङ्केत्यः । तस्माद्धेतुफलयोस्तट फलप्रतितीत्योर्भिन्नकालत्वेनाभिन्नव्यापारविषयत्वमसमीचीनमेवेति सर्वथा दुर्वारो लक्षणाऽङ्गीकारः। **"ज्ञानस्य वस्तुपरिच्छेदमात्रपर्यवसाने शैत्यादिविषयकोपेक्षाबुद्धिव्यतिरिक्तस्य । हीति यस्मादेव तस्मादप्यत्राप्येवं युक्तमिति भावः । ''**

'ज्ञानस्य विषयो' इत्यस्याः कारिकायाः व्याख्यायां सर्वप्रथमं विषयफल युक्ते इति अस्य मतस्य खण्डनं कृतम् । एतन्मतानुसारं फलजन्यः जन्यप्रतीतिविषयोर्वा फलस्य जन्ये पावनत्वादौ तस्याभावजन्यप्रतीतिविषयेस्तु प्रत्यक्षादेर्नीलादिविषयः फलं तु प्रकटता संवित्तिर्वा' गोविन्दठक्कुरेण अस्य मतस्य खण्डनं कृतम् । स्पष्टीकृतं च कार्यकारणता विषयः तस्य फलं च पृथक् अस्ति । "ननु विषफलयोर्भेद इति सूत्रार्थः चायुक्तः फलत्वं हि जन्यत्वं वा जन्यप्रतीतिविषयं वा । आद्ये पावनत्वादौ तद्भावः । तज्ज्ञाने विषयादभेदः एवं । अन्त्ये प्रत्यक्षादेनीलादिविषयः फलं तु प्रकटता संवित्तिर्वा इति वृत्तिविरोधः। प्रकटताज्ञानस्य प्रत्यक्षजन्यत्वाभावात्। न च जन्यज्ञाप्यसाधारणमेक साध्यत्वमस्तीति।'' **'विशिष्टे लक्षणा नैवम्** । विशेषास्युस्तु लक्षिते।' तटादेप्रतीतिः लक्षणया भवति विशेषा : शैत्यपावनत्वादयस्तु गोस्वामिह्रदयङ्गमाः भवन्ति । ते च अभिधादिव्यापारान्तरेण व्यापारेण गम्या भवन्ति तस्मात् ध्वननादिशब्देभ्यः तेषामवबोधः भवति । न च ते अर्थापत्ति अनुमानादिबोध्याऽपि । 'अत्र ग्रन्थकारेण फलमानं विवक्षितम् ज्ञेयगतम् वा आद्ये अर्थात् फले गोस्वामिगतप्रतीतिः अन्त्ये च प्रयोजनज्ञान एवाव्यभिचारः। तेन गोस्वामिसंतोषमात्रमुतपाद्यते तस्मात् भिन्नव्यापारत्वेन भिनव्यापारत्वेन च व्यञ्जनासिद्धिरसमीचीनम्। एतत् चण्डीदासकथनं च अबबोधविजृम्भितं मन्यते । अन्त्ये गोविन्दठक्कुरेण

मम्मटानुसारमेव स्पष्टीकृतं यत् लक्षणया विशिष्टतटस्य प्रतीतिः नैव भवति केवलं तटस्यैव प्रतीतिः भवति शैत्यपावनत्वादेर्शानं च तटप्रतीतेरनन्तरं भवति । ते च प्रसिद्धातिरिक्तव्यापारागम्या सैव व्यापारो व्यञ्जनध्वननादिपदवाच्यः । **"तटादौ लक्षिते सति पावनत्वादौ विशेषाः प्रतीतिविषयाः स्युः । ते च प्रसिद्धातिरिक्तव्यापारगम्या एव । स च व्यापारो व्यञ्जनध्वननादिशब्दवाच्योऽवश्यमेषितव्यम् ।"**

***

जौनपुर के वर्तमान औद्योगिक विकास में संघृत विकास का महत्व

प्रसेनजीत सिंह *

जौनपुर जनपद उत्तर प्रदेश का कृषि प्रधान जनपद है। यह जनपद वाराणसी के प्रमंडल में आता है तथा इसकी सीमाएं वाराणसी, संत रविदास नगर, प्रयागराज, जौनपुर, सुल्तानपुर ,आजमगढ़ तथा गाजीपुर से मिलती है। जौनपुर जनपद मिलने वाले सभी जनपदों पर गौर करें तो हम पाते हैं कि, प्रयागराज एवं वाराणसी जनपद को छोड़ दिया जाए तो सभी जनपद मुख्य रूप से कृषि प्रधान जनपद है। यहां की मुख्य आर्थिक व्यवस्था कृषि पर ही निर्भर है। इसी तरह जौनपुर जनपद भी मुख्य रूप से कृषि प्रधान जनपद है। इन जनपदों के कृषि प्रधान होने का एक कारण यह है कि, उत्तर प्रदेश में पर्याप्त मात्रा में खनिज का अभाव है। इस अभाव के कारण उत्तर प्रदेश में वृहत उद्योग उतने नहीं है जितने की खनिज प्रधान राज्य में है। इसी प्रतिरूप के तहत बड़े उद्योग केवल उन्हीं जनपदों में विकसित हो पा रहे हैं जो कि पहले से विकसित है। अर्थात हम यदि गौर करें तो हम आते हैं कि उत्तर प्रदेश के वाराणसी, प्रयागराज, गोरखपुर ,लखनऊ ,कानपुर, मुरादाबाद ,अलीगढ़ ,आगरा ,इटावा, गौतम बुद्ध नगर गाजियाबाद आदि ऐसे जनपद है, जहां पहले से बेहतर नगरीकरण था अतः इन क्षेत्रों में उद्योग का विकास काफी तेजी से हुआ। यह नगरीकरण मध्यकाल में भी था तथा जब भारत में औपनिवेशिक शासन का आगमन हुआ तो, उन्होंने उपरोक्त नगरों का विकास आधुनिक नगर के रूप में किया। अतः इन क्षेत्रों में धीरे–धीरे उद्योग विकसित होने लगे।

1990 के दशक से पूर्व भारत के सामान्य जनपदों या ऐसे जनपद में जिस में नगरीय आबादी कम है , वहां पर औद्योगिक विकास ना के बराबर हुआ। क्योंकि उद्योग के विकास के लिए पर्याप्त मात्रा में नगर का विकसित होना आवश्यक था। भारत कब आजाद हुआ तब से लेकर 1990 तक भारत में बंद अर्थव्यवस्था का प्रचलन रहा यह ऐसी अर्थव्यवस्था थी , जिसमें भारत में ही भारतीयों द्वारा उद्योग का विकास किया जा सकता था। लेकिन 1991 ईस्वी में जब भारत में उदारीकरण तथा वैश्वीकरण का नया दौर प्रारंभ हुआ तो ऐसी परिस्थिति में उद्योग नगर उतरी पहुंचने लगे जहां पर पहले उद्योग लगने की संभावना ना के बराबर थी क्योंकि ऐसे क्षेत्रों में केवल कुटीर उद्योग या बेहद छोटे उद्योग ही चल पा रहे थे। इसी अवस्था में जौनपुर जनपद में भी आधुनिक उद्योग का विकास नहीं हो पाया। लेकिन जब भारत में वैश्वीकरण का दौर प्रारंभ हुआ तो ऐसी परिस्थिति में उद्योग का प्रसार बड़े नगरों के साथ– साथ छोटे नगरों की तरफ होने लगा तथा जौनपुर जनपद में भी अब धीरे –धीरे कर औद्योगिक इकाई आने लगे इससे पूर्व जौनपुर में मडियाहू का क्षेत्र कालीन एवं दरी के अलावा शिल्प उद्योग के लिए प्रसिद्ध था।

वर्तमान जौनपुर पर गौर किया जाए तो हम पाते हैं कि जौनपुर में सीडा बोर्ड की स्थापना तत्कालीन प्रधानमंत्री राजीव गांधी ने 28 जून 1989 में की थी। स्थापना के बाद दो–तीन साल के भीतर सैकड़ों फैक्ट्रियां लग गई। पहले एक दशक के अंत तक 172 फैक्ट्रियां स्थापित हो गई लेकिन दूसरा दशक पलायन का युग बना। धीरे–धीरे फैक्ट्रियों का पलायन शुरू हो गया। इस समय चौधराना स्टील, विंध्यवासिनी स्टील, जौनपुर टेक्सटाइल, सुमन टेक्सटाइल, रघुवंशी टायर, अमित आयल सहित कुल 80 फैक्ट्रियां बंद पड़ी है। 2009 में बंद हुई पेप्सिको कंपनी 2013 में नए कलेवर में आरंभ हो गई, जिससे सीडा में बढ़ रही वीरानगी में एकबार फिर रौनकलौट ने लगी तथा वर्तमान जौनपुर जनपद में कई नए उद्योग स्थापित होने लगे जिनमें सतहरिया में भी एम/एस राजा का मैदा मिल है। पेप्सिको इंडिया होल्डिंग्स, होक्किंस कुकर लिमिटेड, अमित ऑयल एंड वेगेताब्ल्ले, चौधराना स्टील लि., सुर्या एल्यूमीनियम की तरह 85 औद्योगिक इकाइयों चल रहे हैं।

---

* भूगोल,वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल , विश्वविद्यालय जौनपुर

अब ऐसे में प्रश्न यह उठता है कि क्या वास्तविक तौर पर जौनपुर अपने औद्योगिक विकास को पर्यावरण के अनुकूल विकास या सतत् विकास या धारणीय विकास की अवधारणा तक ले जा रहा है? तो जवाब होगा नहीं। क्योंकि सतत विकास की अवधारणा ऐसे विकास को प्रसारित करती है या समर्थन करती है। जिसमें पर्यावरण के संपूर्ण मानकों का पालन किया गया हो तथा यह विकास वर्तमान पीढ़ी के लिए ही नहीं अपितु , भविष्य की पीढ़ी के लिए भी प्रासंगिक हो। लेकिन वर्तमान उद्योग में बढ़ते हुए प्रदूषण के कारण हम यह पूर्ण रूप से नहीं कह सकते कि जौनपुर का यह औद्योगिक विकास उसका संधृत विकास होगा। क्योंकि मनुष्य नवीन भौतिकता बाद में जीवित रहने वाला प्राणी है तथा मनुष्य की इसी सोच व विचारधारा ने उसे पंख प्रदान कर दिए हैं। वह निरंतर नवीन अनुसंधान व आविष्कार करता रहा है। सफलताओं ने उसके साहस व उत्साह को चौगुना कर दिया है। आज वैज्ञानिक प्रगति के कारण औद्योगीकरण की प्रक्रिया इतनी तीव्र हो गई है कि उसे वातावरणीय सामंजस्य वनाए रखने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ रहा है।

बढ़ते औद्योगीकरण से वातावरण में प्रदूषण की मात्रा इतनी बढ़ गई है कि पर्यावरण के संतुलन का खतरा मँडराने लगा है। औद्योगीक विकास का सबसे अधिक प्रभाव महानगरों एवं अन्य घनी आबादी वाले शहरों में देखने को मिलता है। शहरों व महानगरों में जनसंख्या घनत्व अधिक होने से मोटर वाहनों, गाड़ियों व दुपहिया वाहनों आदि की संख्या में बहुत तेजी से वृद्धि हुई है। यदि ऐसा ही विकास जौनपुर में हुआ तो, वह भी प्रदूषण तथा उद्योग जनित समस्याओं से इस तरह ग्रस्त हो जाएगा कि उसका भी विकास धीरे–धीरे विनाश की तरफ बढ़ने लगेगा। यह विनाश हमें दिखता नहीं है अपितु धीरे–धीरे हमारे अस्तित्व को समाप्त करता चला जाता है। इसी के कारण आज वैश्विक भू तापन की समस्या आम हुई है तथा इन्हीं समस्याओं से जनित बीमारियां भी बड़ी है। यदि जौनपुर में औद्योगिक विकास की गति इसी तरह बढ़ती रही तो उसे भी इन समस्याओं का सामना करना पड़ेगा क्योंकि जौनपुर ,वाराणसी, प्रयागराज , लखनऊ तथा गोरखपुर के केंद्र में स्थापित है। ऐसी परिस्थिति में अपार संभावना बन जाती है कि जौनपुर में औद्योगिक विकास तेज होगा। यहां समतल मैदान है तथा जन घनत्व भी पर्याप्त है जिससे उद्योग को पर्याप्त मात्रा में मजदूर मिल सकेंगे। वही इन क्षेत्रों से पहले ही पलायन होता था जब भी है तथा व्यापक उद्योग पर्यावरण के मानकों का अनदेखी कर स्थापित हो जाएंगे तो, ऐसी परिस्थिति में इसका नकारात्मक प्रभाव निश्चित रूप से संपूर्ण जौनपुर पर दिखेगा।

वर्तमान दौर में जौनपुर के लिए ऐसे विकास की आवश्यकता है, जिसमें वृहद उद्योग की जगह लघु उद्योग का विकास हो। क्योंकि इसी से वास्तविक तौर पर जौनपुर की कृषि भूमि के साथ–साथ वहां के औद्योगिक स्थिति के बीच सामंजस्य स्थापित किया जा सकता है। वर्तमान दौर मैं कालीन, दरी जैसे कई हस्तशिल्प उद्योग है जिसे जौनपुर में स्थापित किया जा सकता है तथा इसकी पहचान को संपूर्ण भारत तक पहुंचाया जाता है । यह ऐसे उपाय हैं है जो ना केवल पर्यावरण का संरक्षण करेंगे अपितु इससे क्षेत्र की आर्थिक आत्मनिर्भरता के साथ–साथ आर्थिक विकास के अवसर भी बढ़ेंगे। सरकार को यह चाहिए कि वह अपने वर्तमान एक जनपद एक वस्तु किस सिद्धांत को और अधिक तत्परता से तथा व्यवहारिक तौर पर लागू करें ताकि जौनपुर जनपद की हस्तशिल्प को पर्याप्त स्थान मिल सके ।यदि हम ऐसा करते हैं तो ऐसी परिस्थिति में निश्चित तौर पर पर्यावरण से जौनपुर को सुरक्षित कर पाएंगे तथा जौनपुर में आर्थिक विचार की गति भी तेज हो एवं पर्यावरण संरक्षण होगा।

निष्कर्ष : कहा जा सकता है कि ,जौनपुर जनपद उत्तर प्रदेश का घनी आबादी वाला बसा एक जनपद। जिसमें पर्याप्त कृषि की संभावनाएं हैं। इस जनपद में उद्योग के लिए भी पर्याप्त स्थान है लेकिन जौनपुर जनपद की भौगोलिक बनावट तथा उद्योग के लिए उपयुक्त अवस्था को यदि हम ध्यान में रखते हैं तो, हम पाते हैं कि जौनपुर जनपद में वृहद उपयोग का कोई स्थान नहीं है। यदि इस क्षेत्र में उद्योग लगते हैं तो इस पर व्यापक पैमाने पर अप्रत्यक्ष पर्यावरण नुकसान उठाना पड़ सकता है । क्योंकि उद्योग के लगने से सामान्यतः पर्यावरण का नुकसान तो होगा ही आप हम ऐसा विकास नहीं कर पाएंगे जो पर्यावरण के अनुकूल है। ऐसी परिस्थिति में हमें जौनपुर में बृहद उद्योग की जगह

लघु एवं मध्यम उद्योग की लगाने चाहिए। इसके अलावा पहले से चली आ रही परंपरात हस्तशिल्प उद्योग का विकास करना चाहिए, जिसमें मड़ियाहूं तथा उसके आसपास वस्त्र उद्योग एवं हस्तशिल्प उद्योग प्रमुख है। यदि हम विशेष परिस्थिति में कोई उद्योग लगाते भी है तो हमें उसमें पर्यावरण के मानकों का पूर्ण ध्यान रखना चाहिए ,ताकि इन उद्योगों से उन क्षेत्रों के पर्यावरण को कोई नुकसान नही नहीं हो। यदि हम पर्यावरण को नुकसान पहुंचाए उद्योग लगाते हैं तो सही मायने में यही जौनपुर का उत्तम विकास होगा या सतत पोषणीय विकास होगा तथा आने वाली पीढ़ी के साथ–साथ संपूर्ण मानव जाति इससे सुरक्षित रहेगी।

संदर्भ :

1. दूबे, सत्यनारायण , जौनपुर का गौरवशाली इतिहास 2013, शारदा पुस्तक भवन, प्रयागराज।
2. मामोरिया, डॉ. चतुर्भुज, डॉ. एम एस सिसौदियारू आर्थिक भूगोल, 2009, साहित्य पब्लिकेशन हाउस, आगरा।
3. जनपद सांख्यिकीय पत्रिका जौनपुर 2017–18, तालिका संख्या 35
4. जनपद सांख्यिकीय पत्रिका जौनपुर जनपद 2017–18, तालिका संख्या 37
5. ग्रामोदय संकल्प पत्रिका अक्टूबर मई 2018, पृष्ठ सं 2
6. ग्रामोदय संकल्प पत्रिका नई दिल्ली अक्टूबर–मई 2018, पृष्ठ सं0 5
7. मौर्य ,एस. डी.: अधिवास भूगोल 2017, शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद पृष्ठ।

***

पश्चिम चम्पारण जिला की भूमि उपयोगिता औश्र प्रवासन

डॉ. अशोक सहनी *

पश्चिम चम्पारण जिला के भूमि उपयोग में काफी भिन्नता मिलती है। यहाँ भूमि उपयोग नियोजित ढ़ंग से नहीं किया गया है। वास्तव में भौतिक विषमताएँ, मिट्टी का वितरण, उफनती नदियों का ताण्डव, जनसंख्या का दबाव तथा अन्य भौगोलिक कारणों से भूमि उपयोग में क्षेत्रीय विषमताएँ मिलती हैं। हालांकि प्राचीन काल की तुलना में आधुनिक समय में मानवीय तथा तकनीक विकास के कारण भूमि उपयेाग में भी परिवर्तन हुआ है। जिला का विशाल मैदान लगभग समतल तथा उपजाऊ हैं। इस भाग में कृषि के लिए सारी भौगोलिक सुविधाएँ प्राप्त हैं। मानवीय आवश्यकताओं के अनुरूप भूमि का उपयोग होता आया है। इसका उपयोग ग्रामीण तथा शहरी क्षेत्रों में निवास, उद्योग, परिवहन, कृषि, जलाशय, मनोरंजन, धार्मिक स्थल के रूप में किया जाता है। इसमें कृषि में संलग्न भूमि का विशेष महत्त्व है। इसका कारण यह हैं कि यहाँ के लोगों की निर्भरता कृषि पर अधिक है।

पश्चिम चम्पारण जिला में भूमि उपयोग

भूमि उपयोग	मैदानी भाग में कुल क्षेत्रफल का प्रतिशत
(i) शुद्ध कृषि क्षेत्र	57.46 प्रतिशत
(ii) चालू परती (1 वर्ष के लिए)	1.25 प्रतिशत
(iii) अन्य परती (2 से 5 वर्ष के लिए)	0.65 प्रतिशत
(iv) बाग–बगीचा	1.25 प्रतिशत
(v) कृषि योग्य बंजर भूमि	0.29 प्रतिशत
(vi) गैर कृषि कार्यों में लगी भूमि	19.30 प्रतिशत
(vii) वन	18.94 प्रतिशत
(viiii) बंजर भूमि	0.62 प्रतिशत
(ix) चारागाह	0.24 प्रतिशत
कुल क्षेत्रफल	100.00 प्रतिशत

***स्रोत :* जिला सांख्यिकी विभाग, पश्चिम चम्पारण, 2011**

(i) शुद्ध कृषि क्षेत्रः– इस प्रकार की भूमि के अन्तर्गत कृषित क्षेत्र आता है और इस तरह की भूमि बिहार के विभिन्न भागों में भिन्न–भिन्न अनुपात में है। पश्चिम चम्पारण जिला में शुद्ध बोये गये क्षेत्र के अन्तर्गत 57.46 प्रतिशत भूमि पड़ता है।

(ii) चालू परती भूमिः– जिस भूमि पर चालू वर्ष में कृषि कार्य नहीं होता उसे चालू परती भूमि कहते हैं। पश्चिम चम्पारण जिला के मैदानी भाग के कुल क्षेत्रफल का 1.25 प्रतिशत चालू परती भूमि है। विभिन्न वर्षों में चालू परती भूमि के क्षेत्र में वर्षा की कमी, बीज का अभाव, श्रमिकों की कमी या लापरवाही जैसे कारणों से परिवर्तन होता रहता है। इस श्रेणी की भूमि को कम उर्वरता के कारण उर्वरता ग्रहण करने हेतु विश्राम देने की आवश्यकता होती है।

(iii) अन्य परती भूमिः– यह सीमांत भूमि है, जिसे अनुकूल मौसम वाले वर्षों में आवश्यकतानुसार कृषि के अन्तर्गत लाया जाता हैं। जिले के मैदानी भाग के कुल क्षेत्रफल का 0.65 प्रतिशत अन्य परती भूमि है। इस भूमि में सिंचाई, उर्वरक और अच्छी जुताई की व्यवस्था कर इस पर स्थायी कृषि की जा सकती है। ऐसी भूमि की मात्रा गण्डक के बाढ़ के क्षेत्रों में ज्यादा है। अन्य परती भूमि उसे कहते हैं, जहाँ एक वर्ष से पाँच वर्ष तक कृषि कार्य नहीं होता।

* भूगोल विभाग, बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

(iv) बाग–बगीचाः– जिला के मैदानी भाग के कुल क्षेत्रफल का 1.25 प्रतिशत पर बाग–बगीचा लगा हुआ है। ये बाग–बगीचे जिला के बाजारों में रसदार फलों की आपूर्ति में महत्वपूर्ण भूमिका अपनाते हैं। जिला में कृषि योग्य भूमि की मांग का बुरा प्रभाव बाग–बगीचे वाली भूमि पर पड़ता है। फलस्वरूप मैदानी भागों में पुराने बगानों को काटकर खेत बनाने की प्रवृति से बागवानी कृषि को विशेष हानि हुआ है।

(v) कृषि योग्य बंजर भूमिः– कृषि योग्य बंजर भूमि को सिंचाई उर्वरक और बेहतर मृदा संरक्षण विधियों का प्रयोग कर कृषि के क्षेत्र के अंदर लाया जा सकता है। यह जिले के मैदानी भाग के कुल क्षेत्रफल का 0.29 प्रतिशत है। इसे उपजाऊ बनाकर शुद्ध कृषि क्षेत्र को बढ़ाया जा सकता है।

(vi) गैर कृषि कार्यो में लगी भूमिः– जिले के मैदानी भाग के कुल क्षेत्रफल का 19.30 प्रतिशत भूमि गैर कृषि कार्य में लगी है। मैदानी भाग में अधिक जनसंख्या होने के कारण शहरों और गांवों के अधिवासों तथा मार्गों की मात्रा अधिक होने से कृषि योग्य भूमि में कमी हुई है।

(vii) वनः– पश्चिम चम्पारण जिला में मात्रा 18.94 प्रतिशत वन है। वनों के आर्थिक महत्व एवं राज्य के संतुलित आर्थिक विकास की दृष्टि से वन विकास की अधिक आवश्यकता है। किसी भी राज्य में पर्यावरणीय दृष्टिकोण से 33 प्रतिशत क्षेत्र में वन होना चाहिए। उत्तर के पहाड़ी तथा तराई क्षेत्र में वन भूमियाँ पायी जाती है।

(viii) बंजर भूमिः– जिले के मैदानी भाग के कुछ क्षेत्रफल का 0.63 प्रतिशत से अधिक क्षेत्र उसर बंजर भूमि का है। यह भूमि कृषि की दृष्टि से अनुपयुक्त, पथरीली और रेहवाली है।

(ix) चारागाहः– पश्चिम चम्पारण जिला के मैदानी भाग के कुल क्षेत्रफल का 0.24 प्रतिशत क्षेत्र में चारागाह है। चारागाह के लिए भूमि कम होने से पशुधन से बेहतर उत्पाद प्राप्त करने में असुविधा होती है। अतः जिले में चारागाह की भूमि को बढ़ाने का प्रयास करना चाहिए।

पश्चिम चम्पारण जिले में विभिन्न फसलों की स्थिति (2011–12)

फसल का नाम	उत्पादन लाख मीट्रिक टन में	कुल उत्पादन (प्रतिशत में)	कुल क्षेत्रफल (लाख हे0 में)	कुल क्षेत्रफल (प्रतिशत में)	उत्पादन प्रति हे0 (कि0ल0में)
1. चावल	3.49	6.29	1.71	4.75	2.049
2. गेहू IV	2.07	4.57	0.82	3.94	2.536
3. मक्का XVII	0.30	2.10	0.14	2.19	2.084
4. तिलहन I	9.026	7.89	4.86	3.15	977
5. दलहन XIII	15,556	2.52	18,740	2.63	982
6. गन्ना I	55.05	47.87	1,15,276	45.23	47.52

स्रोतः– जिला कृषि एवं सांख्यिकी विभाग, पश्चिम चम्पारण–2014

पश्चिम चम्पारण जिले के भूमि की उपयोगिता के विश्लेषणसे ज्ञात होता है कि पश्चिम चम्पारण में कृषि योग्य भूमि निरंतर कम होती जा रही है। भूमि की उत्पादन क्षमता अत्यधिक होने के बावजूद भी कृषि कार्य आर्थिक जरूरतों को पुरा करने में अक्षम हो गया है। इसकी मुख्य वजट है जनसंख्या घनत्व का अधिक होना और एक निश्चित क्षेत्र पर ज्यादा लोगों का निर्भर होना। ऐसे में यहाँ के लोगों की आर्थिक जरूरतें पुरी नहीं हो पाती है। इसमें कोई सन्देह नहींकि यहाँ कृषि आधारित उद्योग की अपार संभावनाएँ हैं। परन्तु सरकार के उदासिन रवैये से अभी तक कृषि आधारित उद्योगों को विकासित नहीं किया जा सका है। ऐसे में आर्थिक जरूरतों को पुरा करने के लिए पलायन स्वभाविक हो जाता है।

संदर्भ :

1. Agrawala, S.N.: India's Population Problem, Tata McGraw Hill Publishing Company Ltd. New Delhi, 1978.
2. Agrawala, S.N.: 'Populatin' National Book Trust of India, New Delhi, 1967
3. Bhende, Asha, A and Kanitkar: Principle's of Population studies, Himalaya Publishing House, New Delhi, 1978.
4. Bogue, D: 'Principle of Demography', Wiley, New York, 1969.
5. Mccoy, J.I. : "Rural Poverty in three Southern Regions, Ozark, 1970.
6. चौधरी, पी.सी.राय, ''बिहार डिस्ट्रिक्ट गजेटियर, पश्चिम चम्पारण', सुपरिन्टेंडेंट सेक्रेटियेट प्रेस, बिहार, पटना, पृ. 1, 1958
7. चौहान और गौतम, ''भारत का भूगोल'', रस्तोगी पब्लिकेशन, मेरठ, पृ0 123, 1992ण
8. अताउल्लह, मो0 एवं मुसलीमुद्धीन मो0, ''बिहार का आधुनिक भूगोल'', ब्रिलियन्ट प्रकाशन, पटना, पृ0 69–70, 2002
9. कुमार, अशोक, ''जनसंख्या : एक समाज वैज्ञानिक अध्ययन'', उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, पृ0 53, 1978
10. सिंह, टी.डी., ''स्पेटियल पैटर्नस ऑफ पोपुलेशन, इन सीरीज ऑफ यू.पी.'', भारत तारा बुक एजेन्सी, वाराणसी, पृ० 86, 1985

***

कमलेश्वर के उपन्यास 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' का समीक्षात्मक अध्ययन

बलिराम यादव *

इस उपन्यास में निम्न मध्यवर्गीय समाज के सामाजिक, आर्थिक तथा वैयक्तिक जीवन की सजीव चित्रण किया गया है। इसमें भी महानगरीय जीवन के बिखराव और टूटन को अभिव्यक्त किया है। यह उपन्यास यथार्थवादी शैली में लिखा गया एक प्रतीकात्मक उपन्यास है। 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' में कमलेश्वर ने घर को जहाज की संज्ञा से अभिहित किया है और भाषा बहुत महत्वपूर्ण होकर सांकेतिकता, रूपकधर्मिता, प्रतीकात्मकता आदि गुणों को अभिव्यक्त करती है।

इसके प्रमुख पात्रों में श्यामलाल हैं, जो बुकिंग क्लर्क के रूप में दिल्ली अपने परिवार के साथ आये। जर्जर आर्थिक दशा में परिवर्तन लाने के लिए नया भविष्य खोजते हुए इलाहाबाद से वह दिल्ली आ जाते हैं। बीमार पत्नी रम्मी, तारा और समीरा दो जवान लड़कियाँ तथा सोलह वर्ष का लड़का वीरेन्द्र इन सभी का भविष्य अजमाने तथा आर्थिक विपन्नता से छुटकारा पाने हेतु अपने कस्बे से महानगर में आये थे। अपना कस्बा छोड़ते समय श्यामलाल बाबू ने यह कभी नहीं सोचा था कि दिल्ली पहुँचने के एक साल के भीतर उन्हें नौकरी से अलग कर दिया जाएगा। फिर इतने कंगाल हो जाएँगे कि न अपने कस्बे लोट पायेंगे और न यहाँ ही पैर जमा पायेंगे। सिन्धी ट्रांसपोर्ट कम्पनी की ब्रांच जब दिल्ली में खुली तब श्यामलाल बुकिंग क्लर्क होकर चले आये थे। उन्होंने सोचा था कि क्रमशः ब्रांच मैनेजर हो जाएँगे, लेकिन व मुमकिन नहीं हुआ। श्यामलाल बाबू तरह–तरह के धन्धे ढूँढ़ते हैं, परन्तु उन्हें सफलता नहीं मिलती। उन्हीं दिनों घर में हरबंश का आना जाना शुरू होता है। हरबंश की छोटी सी दुकान है, जहाँ वह गलीचों, चादरों, पेटीकोट, ब्लाउजों तथा साड़ियों आदि पर फूल–पत्तियाँ ट्रस करके देता है। श्यामलाल को हरबंश ने घर–घर जाकर आर्डर बुक करने का काम दे दिया है। इस काम में श्यामलाल को हरबंश कमीशन देता है। कुछ समय बाद एक घड़ी वाले की आधी दुकान में उसने अपना 'पैंटर्न हाउस' खोल दिया। हरबंश के मदद के लिए तारा और समीरा आस–पास के घरों में कढ़े हुए कपड़े माँग लातीं और हरबंश के लिए नये–नये नमूने उतरवा देती। इसीलिए, परिवार का खर्च चलाने में उनकी मदद होती है।

घर में श्यामलाल बाबू का अपना कोई अधिकार नहीं रह जाता। सारा अधिकार हरबंश और तारा का ही है। श्यामलाल बाबू को आभास होता है कि....."वह सिर्फ फालतू चीज की तरह रह गये हैं, जिसे फेंका नहीं जा सकता, सिर्फ बर्दाश्त किया जाता है, जिसे सहेजा भी नहीं जा सकता, सिर्फ होने को महसूस किया जाता है। श्यामलाल की सारी आशाएँ वीरेन्द्र पर ही टिकी हुई हैं। वीरेन्द्र एक समझदार लड़का है। वह कभी अपने पिता को किसी चीज के लिए परेशान नहीं करता। वह जानता है कि बाबू जी दिक्कतों में हैं और घर भी मुश्किल से चल रहा है। श्यामलाल अपना पेट काट कर वीरेन्द्र को पढ़ा रहे हैं। सबकी आँखों में खामोश सपना पल रहा था–वीरेन्द्र के भविष्य का सपना। वीरेन्द्र एक दिन आकर बताता है कि–नौसेना में उसे चुन लिया गया है, तब घर में खुशी की लहर दौड़ती है। वीरेन्द्र नौसेना की नौकरी में चला जाता है। वह हर महीने पिता के नाम मनी आर्डर करता है। कुछ समय बाद वीरेन्द्र का एक खत आता है कि शायद तीन महीने के बाद छुट्टी मिले और वह दिल्ली आएगा, लेकिन एक दिन चरनजीत वीरेन्द्र के समुद्र में खो जाने की खबर देता हैं। सरकार की ओर से भी पुष्टि मिलती है। वीरेन्द्र का समुद्र में खो जाना जैसे परिवार रूपी जहाज के कप्तान का खो जाना है। परिवार रूपी जहाज तहस–नहस को जाता है और परिवार के सदस्य कहीं–कहीं बिखर जाते हैं।"[1]

---

* ग्राम-विसईपुर, पोस्ट- युधिष्ठिर पट्टी जिला-आजमगढ़, पिन-२२३२१

'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में वैसे तो श्यामलाल, वीरेन्द्र, उनकी दो बहने–तारा आदि, हरबंश, चरनजीत आदि बहुतेरे पात्र हैं, किन्तु, श्यामलाल का चरित्र–परिस्थितियों के कारण टूट चुका हैं। इससे यह प्रमाणित होता है कि मनुष्य परिस्थितियों का दास होता है। जितना वह सोचता है, करना चाहता है, वह हो नहीं पाता है। सभी ईश्वर की इच्छा पर निर्भर होता है। फिर भी मनुष्य अपना प्रयास करता रहता है।[2]

प्रस्तुत उपन्यास के चरित्रों में श्यामलाल जी का चरित्र अनुकरणीय है। परिस्थितियों में घिरा हुआ व्यक्ति होते हुए, अपने को कुछ तुच्छ समझते हुए भी परिस्थितियों से टक्कर लेने का प्रयास करता है। वीरेन्द्र बेटे के सागर में खो जाने के बाद एक परिवार किस तरह बिखर जाता है, यही औपन्यासिक चरित्रों की विशेषता है कि संघटन कर चलना ही श्रेयष्कर है।

कमलेश्वर ने 'समुद्र में खोया हुआ आदमी' उपन्यास में सांकेतिक माध्यम से संवेदनात्मक अनुभूति को बहुत ही सफलता से व्यक्त किया है। श्यामलाल जी, रम्मी, तारा, समीरा और हरबंश के साथ ही नमिता का चरित्र बहुत ही स्वाभाविक ढंग से प्रस्तुत किया गया है। पुलिस, हलवाई, मकान–मालिक, मजदूर और मिल का वातावरण कहानी के यथार्थ का धरातल है।[3]

कमलेश्वर का 'आगाामी अतीत' एक बहुचर्चित नवीनतम उपन्यास है, जो पुस्तक के रूप में छपने से पूर्व 'धर्मयुग' साप्ताहिक में धारावाहिक के रूप में प्रकाशित हुआ था। लेखक ने 'काली आँधी' उपन्यास की भाँति 'आगामी अतीत' में भी दो या तीन व्यक्तियों के आजकल के सम्बन्धों की परिणति किस प्रकार होती है, इसका मार्मिक चित्रण किया है।

'आगामी अतीत' में कमलेश्वर ने कस्बे की वेश्याओं की जिन्दगी को बहुत ही सूक्ष्मता तथा सहजता से लिया है। लेखक ने चाँदनी जैसे जीवित एवं जीवट नारी चरित्र को सशक्त रूप में प्रस्तुत किया है। वस्तुतः 'चाँदनी' का चरित्र एक ऐसा चरित्र है, जो अन्य किसी उपन्यास में मिलना कठिन है। कमलेश्वर ने वेश्या चाँदनी जैसे चरित्र को अपने अभिव्यक्ति कौशल से नितांत सजीव रूप में चित्रित किया है।[4]

इस उपन्यास में चन्दा, हरकरन, कमलबोस, निरूपमा, चंदा आदि प्रसिद्ध चरित्र हैं, जिनमें वेश्या चाँदनी एक उदाहरण है। चाँदनी ने वेश्या जीवन की अनुभूतियों तथा प्रक्रियाओं को जो शब्द रूप दिया है, वह तो हिन्दी–साहित्य में बेजोड़ है। हरामजादा, साला, खूँसट जैसी गलियाँ चाँदनी के लिए मामूली थी। उसके प्रत्येक शब्द में जीवन की यथार्थता का निचोड़ मिलता है। नारी की मर्यादाओं को उसने तोड़ दिया है।

मानवीय तथा स्वाभाविक दृष्टि से चाँदनी का चरित्र अद्वितीय है। चाँदनी के वाणी से कृत्रिमता का आवरण हट गया है और उससे जीवन की विकट वास्तविकता व्यक्त हुई है। कमल बोस से जब रहस्य खुल जाता है, चाँदनी जान जाती है कि अपनी अम्मा का जीवन बर्बाद करने वाला और अपने को भी इस जीवन में ढकेलने वाला यही डाक्टर है। डॉ0 कमल बोस चाँदनी से विनती करता है, तुम मेरा साथ दो, मेरी बच्ची बनकर जीवन व्यतीत करो। यही समझ लो कि मैं तुम्हारी पिता की तरह, तुम्हें तुमसे माँग रहा हूँ। कमल बोस प्रायश्चित करने के लिए चाँदनी को अपने पास रहने का आह्वान करता है। चाँदनी जब कमल बोस का रहस्य जानती है, उसका आह्वान सुनती है, तब वह कुछ समझ नहीं पाती है। उसके नजरों के सामने सन्नाटा होता है। फिर एकाएक कहती है....''अब इसमें क्या रखा है। चाँदनी के जीवन का यथार्थ संघर्ष है।[5]

वह समाज के नकली तथा ढोंगी मान्यताओं से नफरत करती है। वह कमल बोस के प्रस्ताव को स्वीकार नहीं करती। चाहती तो अपना शेष जीवन सम्पन्नता में बिता सकती थी, लेकिन उसे यह मंजूर नहीं है कि अपनी माँ और उसका जीवन बर्बाद करने वाले से ही समझौता करें। चाँदनी के क्रंदन में नारी के करुण गाथा की पुकार है। चाँदनी वापस नहीं लौट पायी और कमल बोस के लिए छोड़ गई जीवन पर्यन्त का पश्चाताप।

कमलेश्वर के जो भी उपन्यास हैं, उनमें कस्बाई, ग्रामीण जीवन एवं नगरीय जीवन से संबंधित चरित्रों का चरित्रांकन किया गया है। कमलेश्वर के सभी चरित्र चाहे वे पुरुष चरित्र हों

या नारी चरित्र दोनों के जीवन में संघर्ष की गाथा है, जो यथार्थपरक और वास्तविक जीवन की झाँकी प्रस्तुत करते हैं। संघर्षों में जूझते हुए भी कमलेश्वर के पात्र कभी जीवन से हार नहीं मानते और सदा सही जीवन के लिए प्रयत्नशील दिखते हैं। 'अबला जीवन हाय तुम्हारी यही कहानी' के आधार पर इस बात की पुष्टि होती है कि पुरुष ने नारी को सहयोगिनी न मानकर केवल मनोरंजन का साधन मानने का प्रयास किया है, जो पुरुष पात्रों की भूल है। सभी चरित्रों में गत्यात्मकता देखने को मिलती है।

सन्दर्भ :

1. कमलेश्वर– समुद्र में खोया हुआ आदमी (उपन्यास) पृ0 61.
2. डॉ0 रेखा शर्मा– कमलेश्वर के उपन्यासों में मनोविज्ञान, पृ0 81.
3. वही, पृ0 82.
4. वही, पृ0 87.
5. वही, पृ0 89.

***

मोहन राकेश की कहानियों में 'आधुनिकता बोध'

संदीप कुमार मौर्य *

मोहन राकेश जी की कहानियों का यथार्थ–यत्र–तत्र यद्यपि अन्तर्मुखी लगता है, पर वस्तुतः वह सामाजिक यथार्थ की अपेक्षा वैयक्तिक स्तर पर आंतरिक यथार्थ ही दृष्टिगोचर होता है। न इन कहानियों में पलायनवादी व्यक्ति केन्द्रित कुंठा है, न आदमी को परिवेश से काटकर अकेलेपन के सागर में गोते लगाने को बाध्य करने वाली अहंमन्यता, इन कहानियों का आन्तरिक प्रतिफलन बाहरी क्रियाओं की प्रतिक्रियाएँ हैं–कुछ न कर पाने, होते परिवर्तनों में भाग न ले पाने की विवशता है, टूटन है–पर इनमें निषेध का या पलायन का स्वर नहीं, संघर्ष का स्वर स्वर ही प्रमुख है–जैसे 'परमात्मा का कुत्ता' यहाँ लेखक ने सारी व्यवस्था के विरुद्ध एक अकेले निहायत असहाय आदमी को लड़ते–भिड़ते एवं जीतते दिखाया है। अतः राकेश जी की कहानियाँ असामाजिक नहीं, तीव्र सामाजिक प्रतिक्रियाओं से जन्मी हैं। 'युग के सामाजिक यथार्थ और वस्तु सत्य के संदर्भ में, इन कहानियों में जीवन की बहुत तीव्र और तलख प्रतिक्रिया बदलते हुए विश्वासों को गति देती चेतना और संक्रमण शक्ति भी मिलती है।

जानवर और जानवर कथा संग्रह की कहानियों का प्रमुख स्वर आर्थिक विपन्नता मध्य तथा निम्न वर्ग की पीड़ा आत्मवंचना और लाचारी का है। इन कहानियों में व्यक्ति जीवन की अनचाही स्थितियों में जीने तथा उन्हें भोगने को विवश है–वह छटपटाता है,–पर चाहकर भी उनसे उबर कर बाहर नहीं आ पाता। राकेश की उच्च वर्गीय पात्रों में सम्बन्ध में लिखी कहानियाँ यथा 'सेफ्टीपिन' 'आखिरी सामान' आदि पात्रों के खोलले सम्बन्धों की एक–रसता, गहन औपचारिकता एवं वैभव के बाहरी आडम्बर के भीतर की छटपटाहट एवं स्वाभाविक जीवन न जी पाने की विवशता को व्यक्त करती हैं। राकेश की कथा यात्रा नयी कहानी की भी कथा यात्रा है। राकेश की कहानियाँ निश्चित कथानक, पात्रों के चित्रण के स्थूल चौखट से प्रारम्भ होकर जीव की गहराइयों में प्रवेश करती ह। धीरे–धीरे कहानियों का पूर्व निर्मित फार्म टूटता जाता है। धीरे–धीरे लेखक, व्यक्ति, घटना एवं परिस्थितियों को एक व्यापक संदर्भ में पहचान कर, जीवन के द्वन्द्वों को एक नवीन शैली में प्रस्तुत करती हैं, जो कहानी की अपेक्षा 'कथन' अधिक है। स्टोरी नहीं, मात्र स्थितियों का नरेशन। सुहागिनें, मिसपाल, एक और जिन्दगी, आदि कुछ ऐसी कहानियाँ हैं। यहाँ लेखक शब्दों के माध्यम से स्थितियों, रंगों–ध्वनियों के बिम्बों को इतने सूक्ष्म सांकेतित ढंग से उभारता है कि सारी कहानी, कहानी के बदले एक 'परसेप्शन' बन जाती है, गहन अनुभूति बन जाती है। ऐसी कहानियाँ, अपने सारे अपेक्षित प्रभावों के साथ सीधे लेखक से पाठक तथा संप्रेषित या कम्युनिकेट होती है। कलात्मकता की दृष्टि से हिन्दी कहानियों में राकेश जी की यह सबसे बड़ी देन है। सारी कहानी सांकेतित बनकर अपेक्षित प्रभाव छोड़ जाती है–जैसे 'एक और जिन्दगी' तथा अपनी अव्यक्त पीड़ा कोहरे और धुंध–सा अनुभूत करा देती हैं। यह राकेश की सर्वाधिक सक्षम कहानी है।

अपनी परवर्ती कहानियों में राकेश पुनः फार्म विच्छिन्न करते हैं। कहानी सीधी सपाट बयानी से चलकर सूक्ष्मतर संवेदनों और अनुभवों के अन्तर्विरोधी ताने–बानों को मुखरित करती है, यहाँ आकर कथानक, पात्र परिस्थितियाँ, घटनाएँ आदि सभी कुछ चूक जाता है, अनुभूति के गहन क्षणों के उभार के अलावा अन्य सभी कुछ निःशेष हो जाता है।

फार्महीन ये कहानियाँ–हिन्दी कहानियों के कलात्मक विकास का चरम रूप हैं। सम्भवतः अधिकांश हिन्दी पाठकों और आलोचकों की भी संवेदनशीलता अभी तक इतनी विकसित नहीं हुई कि वे इन कहानियों के सूक्ष्म संवेदन सूत्रों को पकड़ सकें–अतः अक्सर ये कहानियाँ उनकी समक्ष

* शोधार्थी हिन्दी विभाग, रामबचन सिंह राजकीय महिला महाविद्यालय, बगली, पिंजरा मउ उत्तर प्रदेश

को भारी पड़ती हैं। वे बौखलाहट में इसे कहानी स्वीकार करने से भी कतराते दिखाई देते हैं। पर राकेश की ये कहानियाँ किसी भी भारतीय भाषा से हिन्दी कहानी को आगे की सीढ़ी पर ला खड़ा करती हैं, यह कोई कम गौरव की बात नहीं है। राकेश ने इन फार्महीन कहानियों के रूप में एक नयी कलात्मकता का संस्पर्श किया है–फिर भी जीवन के यथार्थ को वे पकड़े हुए हैं, कहीं भी वे स्वार्थ की भूमि छोड़कर, उन्मुक्त गगन में नहीं उड़ते। इधर की कहानियों में यह सब गौण हो जाता है, प्रधान होता है– अनुभव उसके कुछ उत्तप्त क्षण उन पर व्याप्त किसी मनःस्थिति की वर्तुलाकार गति और वे सूक्ष्मतर सूत्र को एक व्यापक परिदृश्य से जुड़कर उस क्षण और उस मनःस्थिति को सार्थक बनाते हैं। भावात्मक सम्बन्धों की एकरसता उससे निष्कृति की आकांक्षा लिए अपने आस–पास के निर्जीव वातावरण से निरर्थक टकराहट, एक निश्चल जीवन का धुंध भरा ठहराव, लकड़ी के चौखटों में जड़ी–बड़ी–बड़ी सलाखों की तरह ठंडे और निर्जीव पारिवारिक सम्बन्ध, उनसे उपजे अन्धेरे में अपने को ही न पहचानने की विवशता एक रूटीन और बार–बार अपने को दुहराती हुई एक ऊब भरी जिन्दगी, बेहद औपचारिक, फौलाद की तरह ठंडे औ जड़ दाम्पत्य, सम्बन्ध, उस दर्द को प्रगाढ़ करने वाला अतीत का कोई चमकता–दमकता हुआ आत्मीय क्षण, परिचय के बीच अपरिचय की तैरती हुई छाया आत्मीयजनों के बीच भी बेगाना होने की यंत्रणा, अकेलापन और निर्वासन, भय और संदेह, असुरक्षा और आतंक की मनःस्थिति और अस्थिरता का लोप, जो आज के जीवन के अविभाज्य अंग बनते जा रहे हैं, इन कहानियों के अतः स्वर हैं।

इस प्रकार राकेश जी हिन्दी कहानी को प्रेमचन्द और यशपाल के सामाजिक यथार्थ की पृष्ठभूमि से, पर साथ ही निश्चित फार्म वाले स्वरूप से उठाकर उसे मांझकर, परिमार्जित कर, संवेदना के कई स्तरों को उसके साथ जोड़तें, शब्दों की सांकेतिकता और बिम्बात्मकता को तराशते कलात्मकता के सर्वोच्च सोपान पर पहुँचाते हैं। स्वातन्त्र्योत्तर हिन्दी कथा विकास की मोहन राकेश की सर्वोच्च पूर्ण विकसित मंजिल है।

मिस पाल

एक ऐसी नारी है जो निराशा में जी रही है। उसे स्थान–स्थान पर, पल–पल अपने जीवन की व्यर्थता का बोध सालता रहता है– ''सुबह उठती हूँ, दफ्तर चली जाती हूँ। वहाँ सात–आठ घण्टे खराब करके घर आती हूँ, खाना खाती हूँ और सो जाती हूँ। यह सारा– सिलसिला मुझे बिल्कुल बेमतलब लगता है।[1] वह अपने आन्तरिक अकेलेपन के बोध से इतनी ज्यादा ग्रस्त है कि स्वयं को किसी भी सामाजिक वातावरण आफिस हो या परिवार में 'फिट' नहीं पाती। वह 'मिस–फिट' की भावना से बुरी तरह से ग्रस्त हैं।–दिल्ली में भी उसका जीवन काफी अकेला था, क्योंकि दफ्तर के ज्यादातर लोगों से उसका मन–मुटाव था और बाहर के लोगों से वह मिलती बहुत कम थी। दफ्तर का वातावरण उसे अपने अनुकूल नहीं लगता था। वह वहाँ एक–एक दिन जैसे गिनकर काटती थी। उसे हर एक से शिकायत थी कि वह घटिया किस्म का आदमी जिसके साथ उसका उठना–बैठना नहीं हो सकता।

स्वयं राकेश जी के शब्दों में–''मिसपाल एक ऐसी ही मनःस्थिति की कहानी है जो उसी पतन से उत्पन्न हुई है जिसकी चर्चा अभी हमने की है। उसका दफ्तर उसके लिए प्रतीक मात्र था। वह औरत हर समय पलायन करना चाहती थी, लेकिन साथ ही साथ यह भी जानती थी, वह अपने से तथा अपनी आवश्यकताओं से नहीं भाग सकती। वह अपने जीवन की सार्थकता को समझाने की कोशिश करती है लेकिन वह व्यर्थ लगता है। उसका संघर्ष ईमानदार होकर जीने वाला संघर्ष है; जहाँ आप अपने पूर्ण स्वरूप के साथ जीना चाहते हैं, लेकिन आपके आस–पास की परिस्थितियाँ आपके इस प्रकार के जीने में आड़े आती हैं।''[2]

खाली

'खाली' एक ग्रहस्थ नारी के जीवन के खालीपन या व्यग्रता को उजागर करने वाली कहानी है। तोषी के लिए घर में करने को कुछ अधिक नहीं पर उसका मन अकेलेपन के बोझ से भारी है। वह अपने पति की ठंडी उपस्थिति, उसकी अनुपस्थिति में भी महसूस करती है–'जुगल का बालों से

लदा दुबला शरीर सामने रहने पर उसे उतना परेशान नहीं करता था जितना परे रहने पर। वह उसे उसके वास्तविक आकार में ही देखती थी, पर परे रहने पर वह आकार जैसे काफी बड़ा होकर उसे चारों तरफ से घेर लेता था।'[3] उसके पति जुगल का स्वभाव कुछ अलग था–'जुगल के साथ रहते हुए उसकी जिन्दगी बाहर की दुनियाँ से–उत्तरोत्तर कटती गयी थी। जुगल को उसके मायके के लोगों से चिढ़ थी, अपने घर के लोगों से चिढ़ थी, पास–पड़ोस के लोगों से चिढ थी, हर आने–जाने वाले से चिढ़ थी। कभी–कभी तो लगता था कि उस आदमी को सिवाय अपने, हर एक से चिढ़ है, बल्कि अपने आप से भी चिढ़ है।''[4] पति–पत्नी में अकसर लड़ाई होती और लड़ाई के बाद को ठंडी खामोशी सारे घर को सालती रहती। पति–पत्नी के एक दूसरे को जबर्दस्ती सहे जाने की स्थिति का चित्रा ही शायद लेखक का अभिप्रेत है।

सीमाएँ

एक 'टीनएजर' लड़की उमा की कहानी है जिसके जीवन का सबसे बड़ा अभाव है– उसका असुन्दर होने का भाव। इस अभाव को कोई चीज पूरा नहीं कर पाती। वह घर के पुराने संस्कारों और आधुनिता के बीच अनिर्णय की स्थिति में पेंडुलम सी झूलती है। अन्ततः मन्दिर में किसी के स्पर्श की सुहानी अनुभूति से प्रसन्न हो जाती है, पर तब तक उसके गले की सोने की जंजीर चली गई थी। संस्कारों के बीच स्वीकार्य अस्वीकार्य के बीच जीती लड़की की मनोदशा का लेखक ने इस कहानी में यथार्थ किया है।

आर्द्रा

राकेश जी की एक सशक्त कहानी है। बूढ़ी माँ वचन अपने बेरोजगार, लापरवाह लड़के बिन्नी के साथ उसे रोटी बना देने के लिए रहती है। बिन्नी माँ के प्रति अपना प्रेम कभी शब्दों में व्यक्त नहीं करता। माँ कुछ दिनों के लिए अपने बड़े लड़के के घर आती है, जहाँ सम्पन्नता है, सब कुछ है, पर औपचारिक प्यार के सिवा कुछ भी नहीं है। ''कुसुम जिस शिष्टता और कोमलता से बात करती थी, उससे वचन को लगता था कि वह उस घर में केवल मेहमान है। दिन भर उसके करने के लिए वहाँ कोई काम नहीं होता थ्झा। खाना बनाने के लिए एक नौकर था, ऊपर का कम करने के लिए दूसरा। उनके काम की देख–भाल करने के लिए कुसुम थी। वचन जब भी कोई करने के लिए कहती, तो कुसुम झट उसे मना कर देती–नौकर के रहते अपने हाथ से काम से काम करने की क्या जरूरत है? यही बात लाली भी कह देता था–मां, तू काम करेगी, तो घर में दो–दो नौकर किसलिए हैं?''[5] अन्ततः वह अपने बेरोजगार लड़के के पास लौटने के लिए–उसी जीवन क्रम को फिर से स्वीकार करने के लिए चल पड़ती है। जीवन की विरोधी स्थितियों के बीच अपने और बेगानेपन की अनुभूति को लेखक ने आर्द्रा कहानी में अत्यन्त सूक्ष्मता से उभारा है।

ग्लास टैंक

एक ऐसी महिला की कहानी है जो सुभाष नामक एक लड़के से भावनात्मक स्तर पर जुड़ी हैं। विभाजन के समय एक सुभाष को छोड़कर उनका सारा खानदान नष्ट हो गया था–सुभाष को माँ अपने घर ले आई थी। घर से दूर चले जाने के बावजूद माँ सुभाष के बारे में सोचा करती। सुभाष ने शादी की–नौकरी की–पर वह मानसिक रूप से परेशान रहा और उसने आत्महत्या की चेष्टा भी की पर बच गया। कई वर्षों बाद सुभाष कए दिन के लिए घर आया–उसके आने और चले जाने की माँ–बेटी पर हुई प्रतिक्रिया का लेखक ने कहानी में सूक्ष्मता से अंकन किया है।

संदर्भ :

1. मोहन राकेश–मिसपाल (कहानी).
2. वही, भूमिका.
3. मोहन राकेश–खाली (कहानी).
4. वही.
5. मोहन राकेश–आर्द्रा (कहानी).

***

उषा प्रियंवदा के उपन्यासों में यौन स्वच्छंदता

प्रियंका कुमारी *

समकालीन नारी चेतना का समग्र अंकन करने वाली सशक्त लेखिका के रूप में उषा प्रियंवदा प्रसिद्ध हैं। नारी विषयक यथार्थ स्थितियों का मनोवैज्ञानिक उद्‌घाटन इनके साहित्य की विशेषता है। उषा जी ने नारी पात्रों की वैयक्तिक चेतना को वाणी दी है। इनके कथा साहित्य में नारी पुरूष के समान ही यौन (काम) स्वच्छंदता की आकांक्षिणी हैं।

मनोवैज्ञानिकों का यह मानना है कि मनुष्य की मूल प्रवृत्तियों में सर्वप्रधान प्रवृत्ति उसकी यौन अर्थात काम प्रवृत्ति है। जैसे भूख लगने पर भोजन और प्यास लगने पर पानी पीना आवश्यक है, ठीक वैसे ही हर जीव में यौन संतुष्टि भी आवश्यक है। परन्तु यौन के संदर्भ में भारतीय सभ्यता–संस्कृति के नाम पर सदियों से स्त्री के शरीर और शरीर से जन्म लेने वाली इच्छाओं को बांधा गया है।

यौन अर्थात योनि संबंधी और स्वच्छंदता अर्थात स्वतंत्रता इसका तात्पर्य यह है कि योनि संबंधी स्वतन्त्रता ही यौन स्वच्छंदता है। यौन स्वच्छंदता पर पौराणिक काल से ही लेखनी चली है। यौन स्वच्छंदता को लेकर भारतीय समाज दोहरी मानसिकता अपनाता रहा है। एक तरफ भारतीयों के लिए प्रेम और सेक्स एक वर्जित छिपाऊ और निन्दनीय शब्द है। दूसरी तरफ यह समाज लगभग दो हजार वर्ष पूर्व रचित वात्स्यायन ऋषि की लोकप्रिय कृति 'कामसूत्र' पर सैद्धांतिक रूप से गर्व करता है। यौन स्वच्छंदता का एक और उदाहरण 'मनुस्मृति' के श्लोक 3.32 में देखा जा सकता है। वैदिक युग में भी नारी की स्वच्छंदता का स्पष्ट उदाहरण हम 'अथर्ववेद में मंत्र सं. 2.36 में देख सकते हैं। इस तरह से प्राचीन रचनाओं में भी यौन स्वच्छंदता का उदाहरण हमें मिलते हैं।

आज जब हम स्त्री स्वतंत्रता की बातें करते हैं तो यह कहते हैं कि आज की स्त्रियाँ अत्यधिक स्वतंत्र हैं। किन्तु पुराने युग पर जब हम खोजबीन करेंगे तो यह बात बहुत ही हास्यास्पद लगती है।

आज की आधुनिक नारी कार्यक्षेत्र में पुरूष के साथ कंधे से कंधा मिलाकर चल रही है। परिणामस्वरूप उसके पुरूष मित्र बनना स्वाभाविक है और यही संबंध प्रेम संबंध में या दैहिक आकर्षण में बदल जाता है। आज नारी की सामाजिक और आर्थिक स्थिति में परिवर्तन दिखाई देता है। नारी प्रेम के मामले में मुक्त ही नहीं है बल्कि यौन संबंधों को भी सहजता से स्वीकार करती है। यौन स्वच्छंदता को कुछ रचनाकार सही तो कुछ अनैतिक भी मानते हैं। लेकिन कानून भी यौन स्वच्छंदता को मंजूरी देता है।

शिक्षा एवं आत्मनिर्भरता के कारण आज की नारी की मानसिकता बदली है। उषा प्रियंवदा की रचनाएँ नारी प्रधान है। उषा जी की नारियाँ स्वतंत्र, सबल, स्वाभिमानी तथा आत्मनिर्भर बन कर रहना चाहती हैं। पुरूष प्रधान समाज में अकेले नारी से ही यौन शुचिता की माँग की जाती है और पुरूष स्वच्छंदता है। इसी दो तरफी मानसिकता को उषा जी ने तोड़ा है। इनकी रचनाओं में यह स्वच्छंदता स्पष्ट परिलक्षित होती है। यह सत्य है कि आज की स्त्रियों ने यौन संबंधी वर्जनाओं को तोड़ना प्रारंभ कर दिया है। लेखिका ने अपने कथा साहित्य में ऐसे ही नारी पात्रों को अंकित किया है। उषा जी की नायिकाएँ पाश्चात्य संस्कारों से प्रभावित हैं जो ऐसे विचारों में स्वतंत्र दिखाई देती हैं।

'पचपन खम्भे लाल दीवारें' की मुख्य नायिका सुषमा को मन ही मन यह पता था कि शायद वह कभी नील से शादी नहीं कर पायेगी लेकिन फिर भी वह समाज की परवाह न करते हुए अपना सर्वस्व नील पर न्यौछावर कर देती है। नील की जिस बाँह ने सुषमा को घेर लिया था, उससे उसे बड़ा सहारा सा मिला। कितनी सबल थी वह बाँह! नील का भीगा सा स्वर बस छत्र बन उसके ऊपर छा गया था। सुषमा ने सयास अपने को संयत किया, साड़ी के छोर से आँखे पोछीं और थरथराते स्वर

---

* शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, वीर कुँवर सिंह विश्वविद्यालय आरा

में प्रश्न किया,– ''तुमने कभी ये भी सोचा नील कि मैं तैंतीस साल के बाद भी अछूती और बेदाग तुम्हारी बाँहों में कैसे आई?''[1]

सुषमा की स्वाति नाम की सह अध्यापिका जो कुँवारी माँ बनने वाली है, स्टाफ रूम में जब सह अध्यापिकाएँ उसके बारे में बहुत ही भला–बुरा कहती हैं तब सुषमा से यह सहन नहीं हो पाता। वह सबका विरोधा करती है और कहती है– ''आपके सामाजिक मापदण्ड यह कहते हैं कि आप सबके सामने किसी के व्यक्तिगत जीवन की धज्जियाँ उड़ा दीजिए? हरेक का जीवन एक ऐसा अनुलंघनीय टुर्ग है जिसका अतिक्रमण करना किसी का अधिकार नहीं है।''[2]

'रूकोगी नहीं राधिका' की राधिका के जीवन में तीन–तीन पुरूषों का आना यौन स्वच्छंदता का ही उदाहरण है। राधिका के जीवन में पहले डैन आता है। फिर अक्षय से संबंध जोड़ती है लेकिन अक्षय जब उसे शादी की बात करता है तो वह भाववेश में ऐसा निर्णय लेने से उसे रोकती है। दूसरी तरफ उससे यौन संबंध भी जोड़ती है। जबकि उसे मालूम था कि वह कभी अक्षय के साथ जाने वाली नहीं है। राधिका के जीवन में एक और पुरूष मनीष आता है। इसके बावजूद वह अपने पिता की तरफ आकर्षित है क्योंकि वह इलेक्ट्राग्रथि से पीड़ित है।

उषा प्रियंवदा द्वारा रचित 'शेषयात्रा' उपन्यास की नायिका अनु पति द्वारा त्यागे जाने के उपरान्त फिर से दुबारा जीना चाहती है। वह अपने पति प्रणव को भूलकर जीवन में आगे बढ़ती है। और दीपांकर नामक युवक से पुनः विवाह कर लेती है। यहां पर लेखिका ने अपनी नायिका को सशक्त रूप में दिखाया है अनु का प्रणव से विवाह फिर संबंध–विच्छेद और दुबारा दीपांकर से विवाह आज के आधुनिक परिवेश में पुनः विवाह या प्रेम विवाह के बदलते स्वरूप को ही उजागर करता है।

''भया कबीर उदास'' शीर्षक उपन्यास में उषा जी ने विवाह पूर्व यौन संबंध को दिखाया है। कैन्सर से पीड़ित नायिका अपना तन शेषेन्द्र को सौंप देती है और यौन संतुष्टि प्राप्त करती है। उषा जी लिखती हैं– ''वह पूर्ण रूप से देह का सुख भोगना चाहती है; अपने को समर्पित भी करना चाहती है और शेषेन्द्र का सामीप्य–सुख भी बटोरना चाहती है। यह जानते हुए कि यह शुरू जैसे भी हुआ हो, अब केवल देह का संबंध नहीं रहा है, अल्प समय में ही गहराई से बिंधता जा रहा है। क्या शेषेन्द्र को भी ऐसा लगता होगा, वह हल्के–हल्के उनका चेहरा छूते हुए सोचती है।''[3] इस तरह हम देखते हैं कि स्वस्थ्य हो या अस्वस्थ्य, हर शरीर को यौन इच्छा होती है, जिसको उनकी नायिका स्वीकार करती हैं और यौन इच्छा पूर्ण भी करती हैं। अर्थात लेखिका यौन स्वच्छंदता को सही मानती हैं।

आज विवाह पूर्व यौन संबंधों का होना भी आप बात मानी जाती है। फ्रायड जैसे मनोवैज्ञानिकों ने भी काम को पुरूष व स्त्री दोनों के लिए समान महत्व का विषय माना है। इनका मानना है कि सुखी दाम्पत्य जीवन के लिए पति–पत्नी दोनों के काम का साधारणीकरण अति आवश्यक है।

भारतीय पुरूष प्रधान समाज में पहले जहाँ पुरूष के लिए सारे भोग–विलास थी, वहीं स्त्रियों के लिए दैहिक पवित्रता, मर्यादा, जैसे नैतिक मूल्य इत्यादि। लेकिन उषा जी की नारियां इन दोहरे मापदण्डों का विद्रोह करना शुरू कर दीं। लेखिका की एक नायिका राधिका इस संबंध में विद्रोही दिखाई देती हैं। आज जीवन में प्रेम या विवाह में एक बार असफल होने पर अन्य किसी से संबंध जोड़ना बुरा नहीं माना जाता। आज की नारी अपने परंपरागत रूप से बाहर निकल आई है और स्वयं के साथ हो रहे अन्याय से लड़ रही है। इन्हीं बातों की पक्षधर लेखिका उषा भी हैं।

वरिष्ठ कथाकार 'विष्णु प्रभाकर' का मत है कि–''काम और यौन के प्रति भारतीय दृष्टिकोण सदा बदलता रहा है। प्रारंभ में आर्य बहुत उदार और संतुलित विचारों के थे, परन्तु बाद में भारतीय मानस कई कारणों से नारियों के प्रति अनुदार होता चला गया। पुरूष के सभी पाप क्षम्य थे, पर नारी से आशा की जाती रही यौन शुचिता की और सतीत्व की। सतीत्व की इस कठोर होती गई धारणा ने नारीत्व को ही नष्ट कर दिया। यह सब पुरूष प्रधान समाज के कारण था, जो एक ओर तो नारी को भोग्या मानता रहा, दूसरी ओर से उससे आशा करता रहा सतीत्व की और इन दो परस्पर विरोधी कारणों के बीच नारीत्व कराहता रहा। औद्योगिक उपभोक्ता संस्कृति के कारण हो या पश्चिमी प्रभाव के कारण, नारी आज पूर्ण मुक्ति चाहती है।''[4]

निष्कर्षतः हम यह कह सकते हैं कि भारतीय संस्कृति में मर्यादा, लज्जा, शुचिता जैसे शब्द नारी के साथ इस तरह से जोड़ दिये गये कि उसके बाहर नारी की कल्पना करना पापमय लगने लगता है। लेकिन यह निर्विवाद है कि नारी अब इन बंधनों को चटका रही है। जिस स्त्री को पुरूष समाज वर्षों से भोग्या समझकर भोगता रहा है। अब वह अपने प्रति सचेत हो रही है। उषा जी की रचनाओं में भारतीय मान्यताओं के प्रति अनूठा आग्रह तथा नवीन के प्रति व्यामोह का सुन्दर संयोग उनके साहित्य को विशिष्ट बनाता है।

सन्दर्भ :

1. उषा प्रियंवदा 'पचपन खम्भें लाल दीवारें– पृ. सं.– 72–73, राजकमल प्रकाशन।
2. उषा प्रियंवदा 'पचपन खम्भे लाल दीवारें'– पृ. सं.–36, राजकमल प्रकाशन।
3. उषा प्रियंवदा 'भया कबीर उदास', पृ. सं.–55, राजकमल प्रकाशन।
4. सं. डॉ0 राजकुमार 'नारी शोषण समस्याएँ एवं समाधान'।

***

साहित्यकार राजेन्द्र यादव की दृष्टि में महिला कथाकार

हरिओम यादव *

सातवें दशक के कहानी आन्दोलन के संदर्भ को लेकर राजेन्द्र यादव का कहना हैं कि इससे लेखकों की सृजनात्मकता में थोड़ी डैमेज ही हुई है। यही वजह है कि महिलाएँ जो इस तरह की लन्द–फन्द में नहीं रहती। उनके लिए लिखना ज्यादा निष्ठा की चीज है। इधर जो हिन्दी की महिला लेखिकाएँ हैं– चाहे मृणाल पाण्डेय हों, मृदुला गर्ग हों, मालती जोशी हों, कृष्णा सोबती हों, ममता कालिया हों, ये लेखिकाएँ ज्यादा ईमानदारी से लिख रही हैं, ज्यादा निष्ठा के साथ लिख रही हैं। उनके लेखनों के साथ वह "कैल्कुलेशन्स नहीं है, जो प्रायः पुरुष लेखकों के आसपास दिखाई देती हैं। पुरुष–लेखकों को लिखने के साथ–साथ उसके इस्तेमाल की भी चिंता सताती रहती है। इसमें बहुत सारे हिसाब लगाते हैं और हिसाब चुकाते हैं। दोनों को एक साथ निभाते हुए उनकी ईमानदारी बँट जाती है।

पुरुष–लेखक आन्दोलनों में झंडा गाड़ने या पुरस्कार हासिल करने, अभिनंदन कराने के जरिए.. ... इसके तरीके अख्तियार करके अपने लेखन को भुनाना चाहता है, जबकि महिलाओं में इस मामले में एक खास तरह का रिजर्वेशन या शालीनता, या अपने में सिमट जाने की प्रक्रिया के कारण वे बहुत ही जिम्मेदारी के साथ लिख रही हैं। इसके साथ ही धनात्मक अंश यह है कि वे अच्छी भी लिख रही हैं।

उन पर एकाएक किसी भी तरह की प्रतिक्रिया देना संभव नहीं है। पहले यह देखना होगा कि वे किस सीमा तक जाती हैं, क्योंकि उसका सीधा सम्बन्ध उनकी अनुभव–सीमा से है, पर उसके भी सामाजिक कारण हैं, उनके अपने सामाजिक बन्धन हैं, उसके अपने दायरे हैं। यहाँ वे यूरोपीय लेखिकाओं की तरह सीमाओं से ऊपर भी नहीं है। महिला लेखिकाओं का 'थीमैटिक कैनवास भी बड़ा नहीं है। बड़ा हो भी नहीं पायेगा, क्योंकि उनके अनुभव उतने विस्तृत नहीं हैं।

इसका कारण इतना ही है कि लेखन अधिक सुरक्षित दायरों से लिखा नहीं जाता। उसके लिए बहुत सारे खतरे लेने पड़ते हैं। सही लेखन के लिए खतरनाक ढंग से जीने की हिम्मत नहीं है, वह सशक्त लेखन कर ही नहीं सकता । सशक्त लेखन के लिए तो 'अनकन्फार्मिस्ट' होना निहायत जरूरी है।

महिलाओं की आरंभिक लेखन कला के बारे में 'शह और मात' उपन्यास में उदय के द्वारा यादवजी कहलवाते हैं – "हमारे यहाँ महिला लेखिकाएँ नहीं हैं और जो हैं वे किस प्रकार सतही लेखन कार्य करती हैं, जैसे वे सब ऊपर हवा में तैर रही हैं। मजबूरी यह है कि प्रेम के सिवा किसी और विषय पर बेचारी लिख नहीं सकतीं और उसे भी बड़े डरते–डरते छूती हैं कि कहीं कुछ अति न हो जाए....."[1]

मन्नू भंडारी की लेखन – कला के बारे में यादवजी का मंतव्य इस प्रकार है– ''वह मेरी अपेक्षा अधिक सहज है, किसी प्रकार की कृत्रिमता, बनावटीपन से मुक्त। अनुभव को भी वह सीधा पकड़ती है। मेरी तरह टेढ़े–मेढ़े तिरछे रास्ते नहीं अपनाती।"[2] मन्नू भंडारी में अनुभवों के अर्थों की तलाश बहुत कम है। वस्तुओं को जैसे हैं, वैसे ही मानकर चलने की आदत उनकी है। वस्तुओं को खोलकर–टटोलकर पुनर्निरीक्षण करने की कोशिश वह नहीं करती हैं।

"परिणामतः हिन्दी की लोकप्रिय लेखिकाएँ वही सब लिखती हैं जो हमें चाहिए। प्रेम और सपनों में डूबी हई नायिकाएँ – यातनाओं के बीच आत्मबलिदान और त्याग की मूर्तियाँ, ममतामयी माँए, गलतफहमियों के बीच मरती–जीतीं अनसमझी मासूम आत्माएँ..... समाज के अत्याचारों का शिकार, गलत जगह जीनेवाली देवियाँ..... आत्मधिक्कार के काँटों की शैय्या पर शहीद। इसका अच्छा उदाहरण है अमृता प्रीतम ।"[3]

---

* शोधार्थी हिन्दी विभाग, रामबचन सिंह राजकीय महिला महाविद्यालय, बगली, पिंजरा मउ उत्तर प्रदेश

कृष्णा सोबती पर टिप्पणी करते हुए वे बताते हैं कि उनकी सारी कथा यात्रा औरत के वस्तु से प्राणी और व्यक्ति बनने की कहानी है। वैसे उसका बीजारोपण महादेवी वर्मा के समय में ही आरंभ हआ था। धीरे–धीरे कथाकारों के आगे आने से स्त्री की भावनाएँ मानवीय स्तर पर उभरकर आ सकती है। दूसरे महायुद्ध के सन्दर्भ तक तो मध्यवर्गीय समाज में लगभग यही प्रश्न रहा कि आखिर स्त्री कि असली दुनिया कहाँ है ? घर के अंदर या घर के बाहर ? अंदर और बाहर की दुनिया के कशमकश को विडंबनात्मक रूप में प्रतिबिंबित करने के लिए यादवजी ने रघुवीर सहाय की कविता का उल्लेख किया है –

"पढ़िये गीता। बनिये सीता।
फिर इन सबमें लगा पलीता निज घर–बार बसाइए।
होंए कटीली। लकड़ी सीली। आँखें गीली।
घर की सबसे बड़ी पतीली।
भर–भर के भात पकाइए।"[4]

इक्कीसवीं सदी के उत्तरार्द्ध में भी स्त्री के तथाकथित रूप में ज्यादा कुछ अंतर नहीं हुआ है। स्त्री–कथाकारों के खुद सामने आकर अपनी आपबीती दर्ज करने तक परिस्थितियों में फेर–बदल होने की कोई संभावना नहीं है।

कृष्णा सोबती ने करीब पच्चीस वर्षों में कुल मिलाकर चार सौ पन्नों से अधिक नहीं लिखे होंगे। यादवजी कहते हैं कि "इतना–सा लिखकर उन्होंने जो प्रतिष्ठा पायी है, वह सचमुच ईर्ष्या की चीज है। वे निर्विवाद रूप से हिन्दी की सबसे चर्चित लेखिका हैं और जैसा उन्होंने लिखा है, उसे अंग्रेजी में कहते हैं 'फुल ब्लडेड' लेखन।"[5]

कृष्णा सोबती की कहानियों का प्रमुख स्वर नारी मुक्ति है। खासकर महादेवी वर्मा ने जिस प्रकार स्त्री को वस्तु से व्यक्ति की गरिमा पहुँचायी थी. उसी का स्पष्ट रूप कृष्णा सोबती में मुखरित हुआ है। 'मित्रो मरजानी' में जो मित्रो का चित्रण हुआ है, उसे यादव जी हिन्दी साहित्य का एकमेव नारी पात्र मानते हैं, जो अपनी जरूरत को अपनी जबान में कहती हैं, अपनी भाषा में अपने होने की घोषणा करती है। "मुझे मित्रो हिन्दी की अकेली ऐसी कथा–नारी लगती है जो सदियों से नारी पर लादे गये संस्कारों –सम्बन्धों, सुन्दर – सुन्दर उपमाओं को ललकारती, मुँह चिढ़ाती और उन्हें झुठलाती हुई अपनी मूलभूत जरूरत और जबान के साथ हमारे सामने आ खड़ी हुई हो.... "[6]

'यारों के यार' को यादवजी गालियों और चुनौतियों की भीषण कहानी मानते हैं, साथ ही उसकी लेखिका को स्त्री अस्मिता की सबसे प्रामाणिक आवाज उठानेवाली मानते हैं।

राजी सेठ की कहानियों के बारे में भी यादवजी ने बहुत सी आरोग्यपूर्ण प्रतिक्रिया व्यक्त की है। उनकी कथा रचनाएँ पुरुष द्वारा स्थापित नैतिक मान्यताओं और लक्ष्मण–रेखाओं को चुनौती देने से प्रायः कतराती हैं और उसी दिए गये स्पेस में अपनी सार्थकता तलाश करती हैं – दार्शनिकीकरण की मुद्रा में। "सब मिलाकर आपकी कहानियों से गुजरना, उनमें होना बहुत अच्छा, नया और ताजा लगा है।"[7]

राजी सेठ की नायिकाओं की तुलना में नासिरा शर्मा की नायिकाएँ शुरू में मुठभेड़ के तेवर जरूर अपनाती हैं, मगर बाद में पुरुष–निर्मित दुनिया में शहीदी भाव से लौट आती हैं, मानो लौट आना ही उनका विद्रोह हो..... असल में उनकी ग्रँथि धार्मिक है – 'दुनिया और समय कोई भी हो, इस्लाम में हर समस्या का समाधान है' का विश्वास उन्हें अंततः वहीं खींच लाता है । मगर यही मुठभेड़ मृदुला गर्ग में बहस के स्तर पर और ममता कालिया में स्थितियों की पहचान के रूप में, स्त्री की छटपटाहट और दिशा खोजने की बेचैनी बनकर उभरी है।

मृणाल पाण्डेय के बारे में यादव जी बताते हैं कि "वह मूलतः रूपवादी होने के कारण भाषा, लहजे और मुहावरे को ही अपना एकमात्र सरोकार बनाये रखने का आग्रह करती हैं। मगर उसमें एक अजीब सी ताजगी और खिलन्दड़ापन है, जो संजीदा सभा में किसी निहायत ही जीवन्त व्यक्तित्व से

आ जाने वाला 'खुलाव' या 'खिलाव' देता है। बेहद ही पैने और बारीक औजारों से वह कहानी तराशती है। इसीलिए उसके भाषा–प्रयोग कभी चकित–चमत्कृत करते हैं तो कभी मुग्ध।

'विमेन–लिब' आन्दोलन को झूठा और नकली मानते हुए नये दबावों से उत्पन्न स्थिति को 'नारी–चेतना' का नाम देने वाली मृदुला गर्ग के बारे में यादव जी बताते हैं कि ''उनकी कहानियों में जिन्दगी का नकार साफ झलकता है। यह बता पाना मुश्किल है कि यह जिंदगी से निकला हआ अपना बोध या वे संस्कार है जो हमें जाने–अनजाने बाहर से मिलते हैं और कालान्तर में अपने ही लगने लगते हैं।"[8]

कृष्णा सोबती. मन्नू भंडारी, मृदुला गर्ग ने स्त्री के लिए जिस बृहत्तर दुनिया के दरवाजे खोले थे, वह भी कहीं–न–कहीं पुरुष–क्षेत्र में हस्तक्षेप था और पुरुष के संरक्षण–सम्मोहन के पार जाना था।

संदर्भ :

1. राजेन्द्र यादव के साथ, संदर्शन – हंस कार्यालय में – दिनांक 3–10–2000
2. कहानी : स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव – पृ सं. 162
3. कहानी : स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव – पृ. सं. 168
4. कहानी . स्वरूप और संवेदना – राजेन्द्र यादव – पृ. सं. 102
5. यहाँ तक–राजेन्द्र यादव की कहानियाँ–पड़ाव –2 राजेन्द्र यादव–पृ.सं. 9–10
6. कहानी : अनुभव और अभिव्यक्ति – राजेन्द्र यादव – पृ. सं. 185
7. मेरे साक्षात्कार – राजेन्द्र यादव –पृ. सं. 235
8. मेरे साक्षात्कार – राजेन्द्र यादव – पृ. सं. 171

***

भारत में नारी की ऐतिहासिक प्रस्थिति

प्रशान्त कुमार शुक्ल *

आधुनिक समाज आज जिन बिन्दुओं पर सबसे अधिक विमर्श कर रहा है और चिन्तामग्न हो रहा है वे विषय है। पर्यावरण का असन्तुलन और आधी आबादी का घटता अनुपात। वैश्वीकरण के इस दौर में जहाँ पर दुनिया सिमट कर छोटी रह गई है, विज्ञान ने असीमित उपलब्धियाँ प्राप्त कर ली हैं, वहीं आज भी औरत हाशिए पर खड़ी दृष्टिगत होती है। उसकी स्थिति को सुदृढ़ करने के असंख्यविध प्रयास किए गए और आज भी हो रहे हैं, फिर भी नारी की स्थिति में बहुत सकारात्मक बदलाव नहीं आया है। हमारे पास अपार भौतिक सम्पदा आ गई है किन्तु हमारा मनस् और भी अधिक संकुचित होता जा रहा है। हमारी इस विकृत सोच ने आधी आबादी कहीं जाने वाली नारी को जन्म लेने के अधिकार से भी वंचित कर दिया है। इसके मूल में कई कारक है। इसके लिए हम भारतीय समाज में सदियों से चली आ रही पितृसत्तात्मक व्यवस्था को भी एक महत्त्वपूर्ण कारण मान सकते हैं। भारत में नारी की क्या प्रस्थिति है, इसे स्पष्ट करने के लिए वैदिक संस्कृति से अद्यतन उसमें स्वरूप को स्पष्ट करना होगा।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी का चित्रण स्वरूप–

वैदिक समाज नारियों के सम्बन्ध में उदारवादी सोच रखता था। उन्हें अपने आत्मविश्वास के कुछ अवसर कभी प्रदान करता था यथाविध शैक्षिक सामाजिक, आर्थिक एवं सांस्कृतिक वैदिक साहित्य में ऐसे उद्धरण अवश्य प्राप्त होते हैं, जहाँ पर नारी की दो कोटियाँ मानी गई है– ब्रह्मवादिनी और सद्योवधू। कई स्थलों पर नारी के लिए 'अमाजु' शब्द प्रयुक्त हुआ है। ब्रह्मवादिनी स्त्रियाँ अविवाहित रहकर शिक्षा के उच्चतर सोपान पर विराजमान थीं, ये आजीवन धर्मचिन्तन में रत रहती थीं। सद्योवधू विवाह करके गृहस्थ आश्रम में प्रवेश करती थी। इन स्फुट उद्धरणों से हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि वैदिक समाज नारियों के प्रति संवेदनशील था।

सिन्धु सभ्यता के समाज से लेकर वर्तमान तक नारियों को प्राप्त होने वाले सम्पत्ति के अधिकारों को व्याख्यायित किया गया है सिन्धु–लिपि का अपनी एक सर्वमान्य वाचन नहीं हो सका है। अतः यह स्पष्ट कर पाना कठिन है कि सिन्धु सभ्यता में समाज में नारी की क्या स्थिति थी और इसे क्या साम्पत्तिक अधिकार प्राप्त थे? मोहनजोदड़ों की खुदाई से प्राप्त मूर्तियों एवं खिलौनों से उस समय की वेश–भूषा के विषय में ज्ञान होता है।[1] उस समय स्त्रियाँ हार, कर्णफूल, कण्ठहार, बाजूबन्द, करधनी, पायजेब, अंगूठी का प्रयोग करती थीं आभूषण सोना, चाँदी, रत्न, हाथी दाँत, ताबा, घोघा, हड्डी तथा पकी मिट्टी के होते थे।[2] इन उद्धरणों से ऐसा प्रतीत होता है कि तत्कालीन भारतीय नारी को आभूषण के रूप में प्रचुर नारी धन प्राप्त था।

भारतीय परिप्रेक्ष्य में नारी का चित्रण अनेक माध्यमों से प्रगट होता है, जो कि उसकी विविधात्मक स्वरूपों का बोध कराता है। नारी के चित्रण के निम्नांकित आधार माने जा सकते हैं। प्रथम, शानारीय ग्रंथ–इसके अन्तर्गत विभिन्न प्रकार के शानारीय ग्रन्थ में नारी के प्रति प्रस्तुत कथनों के माध्यम से, समाज का उसके प्रति दृष्टिकोण अभिव्यक्त होता है ये शानारीय ग्रंथ समरूप नहीं होकर के विविधता लिये हुए है। धार्मिक ग्रन्थ में नारी के चित्रण की विविधता दृष्टिगोचर होती है। अतिवादिता के एक दौर पर नारी को दैविक स्वरूप में प्रस्तुत किया गया है, उसे शक्ति (काली), ज्ञान (सरस्वती), समृद्धि (लक्ष्मी) के रूप में प्रस्तुत कर उपासित माना गया है। दूसरी ओर नारी को मोक्ष व परमात्मा के साक्षात्कार में प्रमुख बाधक के रूप में प्रस्तुत किया गया है। इन ग्रन्थों में नारी की रति सम्बन्धी छवि को उजागर करके श्रृंगार रस के माध्यम से शारीरिक छवि की प्रधानता की प्रस्तुति हुई है। इस छवि में

* शोध-छात्र, राजनीतिविज्ञान विभाग, मड़ियाहूँ पी.जी. कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर (उ.प्र.), सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

नारी को भोग्या के रूप में प्रस्तुत कर उस पर अधिकार एवं नियंत्रण की सीमा रेखाओं से बाँधा गया है।

ऐतिहासिक पात्रों के रूप में नारी की छवि निर्माण की प्रक्रिया किया गया है, जहाँ वह साहस, अदम्य शक्ति व शौर्य की धनी है एवं युद्ध संचालन की क्षमता रखते हुये शत्रु का विनाश करने के लिये कटिबद्ध है, तो दूसरी ओर उसे क्षमाशील, कोमल, चंचल, कमजोर व लज्जाशील माना गया है। नारी की इन दोनों छवियों को समाज ने सहजरुपेण स्वीकारोक्ति प्रदान की है। नारी की विकृत स्वरूपों में ऐसे अनेक ऐतिहासिक व पौराणिक पात्र प्रस्तुत हुये हैं जिनके माध्यम से उसे कुलटा चरित्रहीन इत्यादि अवगुणों के माध्यम से निर्मित किया गया है। वीरांगना के रूप में रानी लक्ष्मीबाई दुर्गावती, रजिया बेगम इत्यादि नाम लोकप्रिय रहे हैं। मीरा का नाम मात्र भक्तिन के रूप में नहीं अपितु सार्वजनिक क्षेत्र में नारी के शक्तिकरण की पहल के रूप में देखा गया है।

एक ओर जहाँ विश्व की प्राचीन संस्कृतियों में नारी सम्बन्धी विचारों में संकीर्णता के अनेक उदाहरण मिलते हैं वही दूसरी ओर भारतीय परम्परा की प्रारम्भिक शताब्दियों में नारी की मर्यादा एवं प्रतिष्ठा के प्रति संतुलित एवं सहिष्णु दृष्टिकोण को प्रमाणित करता है। यह अलग बात है कि भारतीय परम्परा के दीर्घकालीन इतिहास में नारी की छवि सदैव एक जैसी नहीं रहीं और उसमें उतार–चढ़ाव आते रहे। यह भी सही है कि उनकी मर्यादापूर्ण स्थिति में एक बार जब विकृतियों का क्रम प्रारम्भ हुआ तो उसकी गति तीव्र और उसका स्वरूप उत्तरोत्तर वीभत्स होता चला गया। किन्तु यह आक्षेप कि भारतीय समाज में नारियों का स्थान निरन्तर निम्नतर रहा है. भारतीय संस्कृति और समाज के स्वरूप की अनभिज्ञता का ही परिचायक कहा जा सकता है।

भारतीय चिन्तन की मूलभूत मान्यताओं में एक अवधारणा को प्रारम्भ में ही विद्यमान रही है अनुसार जो आत्मा पुरुष में है वही नारी में भी अवस्थित है। जब एक ही अमात्य पुरुष और नारी दोनों में है तो मूलतः दोनों एक ही है। ऋग्वेद के सुप्रसिद्ध पुरुष सूक्त में समाज की कल्पना एक विराट पुरुष के रूप में की गयी और उसके अवययों को समाज को चार वर्णों के रूप में देखा गया है किन्तु यहाँ पुरुष और नारी का कोई भेद नहीं किया गया है।[3] बृहदारण्यक उपनिषद् में कहा गया है कि अद्वितीय परमात्मा को दो होने की इच्छा हुई, वह ऐसा हो गया जैसे नारी और पुरुष सम्यक रूप से सम्पृक्त हो उसे अपने इस स्वरूप को दो कर ढाला जिससे पति और पत्नी हुए।[4] इसी प्रकार सुबालोपनिषद[5] में प्रतिपादित किया गया है कि सृष्टि के आरम्भ में प्रजापति ने आत्मा–स्वरूप के आधे अंश से पुरुष और आधे अंश से नारी को उत्पन्न किया शतपथ ब्राह्मण में नारी को पुरुष की अर्धांगिनी कहा गया है।[6] रामायण के अनुसार वेदों और विभिन्न शास्त्रों का निष्कर्ष यही है कि नारी का मूल रूप पुरुष से भिन्न नहीं है।[7] महाभारत में नारी को धर्म, अर्थ और काम का मूल कहा गया है।[8] वैदिक यज्ञों तथा हिन्दुओं के धार्मिक अनुष्ठानों में पति के बांये आसन पाने की जो प्रथा प्रचलित हुई उसका आधार यही सिद्धान्त है कि नारी आत्मतत्व के वाम भाग में उत्पन्न हुई है और इसीलिए उसे वामांगना कहते हैं। हर प्रकार के धार्मिक एवं पारिवारिक कार्य में उसका पति के साथ रहना आवश्यक समझा जाता था।

मनु के अनुसार जहाँ स्त्रियों पूजी जाती है वहाँ देवता रमण करते हैं (यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः) और जिस कुल में स्त्रियाँ अपमानित होती है वह कुल विनाश को प्राप्त होता है। मनु के अनुसार पिता का पद 100 आचार्य पद के बराबर होता है और माता का पद 100 पिता से भी श्रेष्ठ होता है। महाभारत के शान्तिपर्व में माता की प्रकोष्ठा देवी के रूप में की गयी है और उसे सबसे बड़ा गुरु माना गया है। माता कुन्ती के प्रति पाण्डव पुत्रों की भक्ति इसी प्रकार की थी। रघुवंश में अपनी प्रिय पत्नी इन्दुमती के आकस्मिक निधन पर अपनी वेदना व्यक्त करते हुए राजा अज कहते है कि "तू मेरी गृहिणी, सचिव व ललित कला सीखने में प्रिय शिष्या थी।[9]

भारतीय समाज व्यवस्था के आरम्भिक काल से ही इस धारणा का उदय हो गया था कि स्त्रियाँ किसी भी परिस्थिति में बाध्य नहीं है।[10] ताड़का वध के लिए उद्यत होने के पूर्व राम का मन बहुत उद्वेलित हुआ था किन्तु यज्ञ और ऋषियों की रक्षा के लिए उसका वध करने के अतिरिक्त और

कोई विकल्प भी नहीं था। महाभारत में वर्णित असुर बक के प्रसंग से ऐसा लगता है असुरों से भी नारी का वध अनपेक्षित था। इसी तरह लंका में प्रवेश करते समय हनुमान का मार्ग रोकने वाली नगर देवी का आख्यान यह स्पष्ट करता है कि उन्होंने उसके प्राण न लेकर उसे केवल मूर्छित करके छोड़ दिया था। निकट संरक्षकों के अभाव में नारियों को सुरक्षा प्रदान करना और उनकी सुविधा का ध्यान रखना शासन का आवश्यक कर्तव्य माना जाता था जिन अपराधों के लिए पुरुषों को कठोर दण्ड दिये जाते थे उन्हीं के लिए स्त्रियाँ साधारण दण्ड पाकर ही मुक्त हो जाती थीं। नारियों को समूह तथा भीड़ के बीच तथा मार्गों पर पहले जाने की सुविधा देना लोगों का कर्तव्य समझा जाता था। यात्रा में किसी नारी को कष्ट में देखकर उसकी रक्षा करना लोग अपना नैतिक दायित्व समझते थे स्त्रियां घाट की चुंगी देने से भी मुक्त मानी जाती थी।

यहाँ यह भी विचारणीय है कि प्राचीन भारतीय समाज में नारी की स्थिति का निरूपण करने में समस्त वैदिक अथवा लौकिक वाड्मय में केवल प्रशंसात्मक विवरण ही नहीं मिलते। हमें उस विपरीत पक्ष की ओर भी ध्यान देना चाहिए जिनमें ऐसे आख्यानों और प्रसंगों की संख्या अत्यल्प नहीं है जो नारी स्वभाव की कटु आलोचना करते हैं और उनके प्रति असम्मानजनक दृष्टिकोण को परिलक्षित करते हैं किन्तु साथ ही इस महत्त्वपूर्ण तथ्य को भी ध्यान में रखना आवश्यक है कि साहित्यिक साक्ष्यों में नारी सम्बन्धी असम्मानजनक विवरण की सम्यक् विवेचना उसके संदर्भों और पात्रों के अन्तर्भाव के प्रसंगों को समझे बिना नहीं की जा सकती।

प्राचीन भारत के स्मृतिकारों ने नारी को समाज का प्रमुख ईकाई माना है, नारी की सभी प्रकार की इच्छाओं को सम्मान देते हुये उसे परिवार के संरक्षण का महत्त्वपूर्ण दायित्व दिया गया है। उसकी गरिमामयी स्थिति, कार्यकुशलता, बुद्धिमता आदि को देखते हुए उसे पुरुष का सर्वश्रेष्ठ सहचर स्वीकार किया है। सामाजिक व्यवस्था को बनाये रखने के लिए, यह आवश्यक समझा गया कि नारी समाज की प्रेरणा शक्ति एवं संरक्षिका है। परिवार की जननी है। अतः यह ध्यान रखा जाए कि उसका किसी भी प्रकार अहित न हो अन्यथा सामाजिक व्यवस्था के सम्मुख वाधा उत्पन्न हो सकती है।

---

[1] व्हीलर, द इण्डस सिविलाइजेशन, पृ० 64.

[2] एनुअल रिपोर्ट आर्कियालाजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया वर्ष 1927–31, पृ. 247

[3] ऋग्वेद 10:90

[4] बृहदारण्यक उपनिषद, 1.4.3. स द्वितीयमैच्छत्। स हैतावानास यथा स्त्रीपुमांऽसौ सम्परिष्वक्तो स इममेवात्मानं द्वेधापातयत्ततः पतिश्च पत्नी चाभवतां–

[5] आत्मान द्विधाकरोदर्येन स्त्री अर्धन पुरुष सुबालोपनिषद, खण्ड 2

[6] अर्धो ह वा एष आत्मनो शतपथ ब्राह्मण, 5.21.10

[7] रामायण, किष्किन्धा काण्ड, 24.38 शास्त्रेप्रयोगाद विविधाच्च वेदाद नन्यरूपाः पुरुषस्य दारा.....

[8] "भार्या मूलं त्रिवर्गस्य", महाभारत, आदिपूर्व 74–40

[9] "गृहिणी सचिवः सखी मिथः प्रियशिष्या ललिते कलाविधी, रघुवंश, 8.87

[10] स्त्री वैषा यच्छीनं वै स्त्रियं घ्नन्ति शतपथ ब्राह्मण, 114.32

***

भारतीय नारीवादी आन्दोलन का दार्शनिक आधार

जगतम्बा *

भारत में अवधारणा के रूप में नारीवाद जैसी कोई चीज नहीं है। हाँ, इतना अवश्य है कि नारी–अधिकार को लेकर यहाँ कई आन्दोलन हुए और हो रहे हैं। इन आन्दोलन में नारी का पुरूष से मुक्ति नहीं वरन् पुरूष के समान अधिकार पर बल दिया गया है। यहाँ यह स्पष्ट कर देना आवश्यक होगा कि 'नारी मुक्ति' शब्दावली भारत में पुरूष– विरोधी नारी आन्दोलन की अभिव्यक्ति नहीं है बल्कि अपने सार रूप में नारी– पुरूष को समान अवसर देने का एक ठोस कदम है।

भारतीय नारीवादी लेखिका आशारानी व्होरा ने स्पष्ट किया है कि भारत में पश्चिम के तर्ज पर कोई नारी मुक्ति आन्दोलन नहीं शुरू हुआ। यदि शुरू भी होता तो सफलता न प्राप्त हो पाती, क्योंकि यहाँ की नारी अपने जातीय अधिकारो के लिए लड़ी और आज भी लड़ रही हैं। उन्हीं के शब्दों में 'यहाँ की नारी पुरूष की प्रतिद्वन्दी न होकर सहयोगी के रूप में उसके कंधे से कंधा मिलाते हुए देश की आजादी को बनाये रखने, राष्ट्र की मुक्ति के लड़ी, पर पुरूषो से बदला लेने की भावना से प्रेरित होकर या हर उचित– अनुचित तरीके से उसके समकक्ष आने के लिए किये जाने वाली अतिवादी तथा कथित पाश्चात्य ' नारी मुक्ति आन्दोलन' के साथ हमारा कभी मेल नहीं बैठा। न ही भारतीय महिलाओं ने उसका कभी समर्थन किया।'

'अखिल भारतीय महिला कान्फ्रेस भवन' देश को समर्पित किये जाने के अवसर पर श्रीमती इन्दिरा गाँधी ने कहा था कि '' भारत में नारी–मुक्ति (स्वतंत्र नारी) का अर्थ पुरूष से वैमनस्य नहीं होना चाहिए, बल्कि अपनी क्षमताओं के सन्दर्भ में होना चाहिए। नारी–मुक्ति के लिए चलाया जाने वाला आन्दोलन घर समाज को तोड़ने वाला नहीं, बल्कि जोड़ने वाले होने चाहिए। महिलाओं की माँगों में ईर्ष्याजनित आक्रोश या हीन–मनोवृत्ति की परिचायक बदले की भावना न होकर उसका काम रचनात्मक और कल्याणकारी होना ही श्रेयस्कर है।''[1]

अनेक विद्वानो का मत है कि भारत में नारीवादी संघर्ष का जन्म तब हुआ जब लोकतान्त्रिक अधिकारो के प्रति चेतना जागृत हुई। विशेषतः उन्नीसवीं तथा आरम्भिक बीसवीं शताब्दी में विदेशी शासन और सामन्ती शासकों की निरंकुशता के विरूद्ध उठ खड़े हुए आन्दोलनों के दौरान नारीवादी धारणा को बल मिला। इस युग में स्त्री अधीनता के विरूद्ध उठी। आवाजों ने अनेक माँगों का रूप ले लिया जैसे कि विधवाओं के पुनर्विवाह की सम्भावना, बहुविवाह प्रथा, सती प्रथा व पर्दा प्रथा पर रोक तथा स्त्रियों के लिए शिक्षा व कानूनी या संवैधानिक स्वतंत्रता।[2]

भारत में नारी–अधिकार की बात सर्वप्रथम पुरूषों द्वारा उठायी गयी। यह भारतीय नारी–आन्दोलन की एक महत्वपूर्ण विशेषता है। राजाराम मोहन राय, दयानन्द सरस्वती, केशवचन्द्र सेन, रानाडे, विवेकानन्द महात्मा गाँधी, जवाहर लाल नेहरू, डॉ0 भीम राव अम्बेडकर आदि महापुरूषों ने महिला न्याय के लिए समस्त कुरीतियों का विरोध किया तथा नारी शिक्षा व विधवा विवाह के समर्थन में अभियान चलाये साथ ही आवश्यक कानूनों को बनाने के लिए सरकार पर दबाव डाला।[3]

नारी–मुक्ति अवधारणा को व्यक्त करते हुए गाँधी जी का मानना था कि स्त्री स्वतंत्रता का अर्थ पुरूष विरोधी होना नहीं है। उनकी दृष्टि में ऐसी राजनीति की निन्दा की जानी चाहिए, जो समानता लाने की आड़ में एक समूची पीढ़ी में दुश्मनी पैदा कर रही है। स्त्री की वर्तमान दशा के लिए वे न पुरूष वर्ग को दोषी मानते हैं और न स्त्री वर्ग को। उनके अनुसार दोषी है मनोवृत्ति, जो न पुलिंग

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान (विभाग), मड़ियाहूँ, पी.जी.कालेज, मड़ियाहूँ, जौनपुर, सम्बद्ध-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर

होती है और न ही स्त्रीलिंग। इस तरह स्पष्ट है कि गाँधी जी नारी–मुक्ति के लिए अतिवादी ध्रुवों से मुक्ति की बात पर जोर देते हैं।[4]

भारतीय नारी–मुक्ति आन्दोलन के संघर्ष में जिन महिलाओं ने अपनी भूमिका निभाई वे थीं– पंडिता रमाबाई, एनीबेसेन्ट, सरलादेवी चौधरानी, हीरा बाई टाटा, एस. मथ्युलक्ष्मी रेड्डी, दुर्गाबाई देशमुख, राजकुमारी अमृतकौर, विजय लक्ष्मी पण्डित, कमला देवी चट्टोपाध्याय, सरोजनी नायडू, मारग्रेट कजिन्स आदि। इन महिलाओं ने नारी के पक्ष में लड़ते हुए सर्वप्रथम 1917 में मताधिकार को प्राप्त करने में सफलता प्राप्त की।

चूँकि भारत धर्म प्रधान देश है, अतः यहाँ के सभी विचार, राजनीति, समाज, आचार–व्यवहार, धर्म से जुड़े हैं। वेद, पुराण, उपनिषद, स्मृति, गीता आदि इनकी व्याख्या करते हैं। जहाँ तक समाज में स्त्री– पुरूष समानता की बात है इसकी अवधारणा पौराणिक आख्यान 'अर्धनारीश्वर' में मिलती है। ' अर्धनारीश्वर' की धारणा शिव महापुराण में मिलती है, जिसकी यदि तात्विक दृष्टि से व्याख्या की जाय तो कहा जा सकता है कि 'पुरूष में स्त्रीत्व के होते हुए भी पुरूषत्व का प्राधान्य और स्त्री में पुरूषत्व के विद्यमान होते हुए भी स्त्रीत्व की प्रधानता है।'[5] अर्धनारीश्वर की कथा[6] से तो यही सिद्ध होता है कि लिंग भेद होते हुए भी अभेद है। एक में ही दोनों हैं। किसे पुरूष कहें, किसे नारी? कोई विभाजक रेखा नहीं है, एक ही के दो या एक ही में दो हैं।[7] इसी अद्वैत में द्वैत की व्याख्या विष्णु प्रभाकर रचित उपन्यास 'अर्धनारीश्वर' में भी मिलती है। '' नर–नारी को न तो एक दूसरे की दासता करनी है, न एक दूसरे में खो जाना है। बस अपना–अपना स्वतन्त्र अस्तित्व बनाये रखते हुए एक– दूसरे से जुड़ना है, अर्धनारीश्वर की तरह।''[8] उन्हीं के शब्दों में 'नारी' की स्वतंत्र सत्ता का, नारी की सेक्स–इमेज से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसका अर्थ है समान अधिकार समान दायित्व, एक स्वस्थ्य समाज के निर्माण में दोनों समान रूप से भागीदार हैं। 'अर्धनारीश्वर' का प्रतीक इस कल्पना का साकार रूप है, एक दूसरे से विसर्जित नहीं, एक दूसरे से स्वतंत्र, फिर भी जुड़े हुए हैं।[9]

इसी तरह सांख्य दर्शन में 'पुरूष–प्रकृति' का सिद्धान्त नारी– पुरूष समानता को व्यक्त करता है। इस दर्शन की मान्यता है कि दोनों एकमेव हैं। द्वैत में भी अद्वैत है। नारी–पुरूष है और पुरूष नारी। इन्हे अलग करके नहीं देखा जा सकता। सांख्य दर्शन के अनुसार एक तरफ निर्गुण उपाधि रहित स्थिर पुरूष तो उधर सत्व, रजस, तमों गुणों से आच्छादित प्रकृति। यह प्रकृति स्वरूपाकार होती है। पुरूष के संसर्ग से और पुरूष आन्दोलित, परिचालित और आच्छादित 'संसार' होता है स्त्री (प्रकृति) शक्ति द्वारा।''[10]

भारतीय दर्शन के अनुसार आत्मा का कोई लिंग नहीं होता। अद्वैत वेदान्त के अनुसार चूँकि सत्ता अद्वितीय है, अतः वह भेद रहित है आत्मा परम सत्ता है, उसमें कोई भेद नहीं है। मेरी–तेरी सब की आत्मा उस परमब्रह्म का ही अंश है। सत्ता के विषय में कहा गया है कि 'वह जाति, नीति, कुल और गोत्र से परे है। नाम, रूप, गुण और दोष से रहित है तथा देश, काल और वस्तु से भी पृथक है।'[11]

'विवेक चूड़ामणि' मे कहा गया है कि '' मैं असंग हूँ, अशरीर हूँ, अलिंग हूँ, और अक्षय हूँ तथा अत्यन्त शान्त, अनन्त, अतान्त (निरीह) और पुरातन हूँ।''[12] इन उद्धरणों से यही सिद्ध होता है कि स्त्री– पुरूष में विभेद नहीं है। दोनों में समानता इस आधार पर है कि दोनों एक ही सत्ता के दो अंश हैं। एक होते हुए भी दो हैं और दो होते हुए भी तात्विक दृष्टि से एक ही हैं।

उपनिषद में भी इसी तात्विक दृष्टि से स्त्री–पुरूष की एकता अथवा लिंग समानता का उदाहरण मिलता है। (वृहदारण्यकोपनिषद 1/4/3) में अर्धनारीश्वर की अवधारणा की तरह ही कहा गया है कि ,'' जब प्रजापति ने देखा कि अकेले रहने में दुःख है, तब दूसरे के प्राप्ति की इच्छा की और अपने को इतना बड़ा परिमाण वाला बनाया जितना कि स्त्री– पुरूष दोनों मिलकर होते हैं, और

फिर उसी प्रजापति ने अपने शरीर को दो भागों में स्त्री और पुरूष के रूप में विभक्त कर दिया। उसी शरीर के विभाग होने पर पति और पत्नी हुए। फिर मैथुन से मनुष्य की सृष्टि उत्पन्न हुई।''

इसी अर्धनारीश्वर की अवधारणा 'मनुस्मृति' में भी मिलती है, जिसके अनुसार–

'द्विधा कृत्वात्मनों देहमर्धेन पुरूषोऽभवत्।
अर्धेन नारी तस्यां स विराजम सृजन्प्रभु।।(1/32)

अर्थात् स्वयं प्रभु (ईश्वर) ने अपने देह के भाग किये और आधे से पुरूष तथा आधे से स्त्री होकर उस स्त्री में विराट पुरूष का सृजन किया।

इस तरह स्पष्ट है कि भारतीय नारीवादी आन्दोलन का आधार दार्शनिक है। ' अर्धनारीश्वर' की धारणा न तो पुरूष विरोधी है और न ही अमानवीय , बल्कि समाज के सुस्थिर संचालन में सहायक एक ऐसी धारणा है जो संसार में वर्षों के विवाद को शांत कर सकता है।

सन्दर्भ :

1. नवभारत टाइम्स, 27 मार्च 1980
2. S. Natrajan: A Centeury of Social Reforms in India, Asia Publishing House, Bombay, 1959, P.6.
3. B.B. Majumdar: History of Social and Political Ideas from Rammohan to Dayanand, Calcutta 1967,P,100.1
4. वामा (मासिक पत्रिका), मार्च 1984, पृ. 23, वेनेट कोलमैन एण्ड क.लि., नई दिल्ली
5. हंस, जून 1994, पृ. 64 के प्रभा खेतान के लेख से उद्धृत
6. अर्धनारीश्वर कथा के अनुसार ब्रह्मा जी सृष्टिकर्ता हैं। उन्होने अमैथुनी सृष्टि की ,जो पूर्णता को प्राप्त नहीं कर रही थी। ब्रह्मा संतुष्ट नहीं हुए, विचार के बाद उन्होने आदि शक्ति के अनेक नामों को लेकर तपस्या की। आदि शक्ति ने प्रसन्न होकर आंशिक रूप से प्रवेश करके अर्धनारी और अर्ध पुरूष का रूप पकड़ा। शंकर जी का एक नाम 'अर्धनारीश्वर' हुआ। फिर सृष्टि पुरूष और नारी के मिलन से मैथुनी (सृष्टि) हुई तभी सृष्टि पूर्ण हुई।
7. डॉ हृदय नारायण मिश्र, समाजिक राजनीतिक दर्शन के नये आयाम पृष्ठ सं0 262.
8. विष्णु प्रभाकर, अर्धनारीश्वर, पृ0 64
9. वहीं पृ0. 32.
10. हंस पृ0. 64
11. विवेक चूड़ामणि, पृ0 255
    जाति नीति कुल गोत्र दुरंग, नाम रूप गुण दोष वर्जितम्।
    देशकाल विषयातिवर्ति पद, ब्रह्म तत्वमसि भावयात्मिन।।
12. विवेक चूड़ामणि– पृ0.490
    असंगोऽहम नंगोऽम लिंगोऽम भंगुरः।
    प्रशान्तोऽहम नन्तोऽहमतान्तोऽहं चिरन्तनः।।

***

''भारतीय राजनीति में महिलाओं की भूमिका बनाम यान शोषण व आपराधिक घटनाएं''

डॉ. सविता शाही *

प्रतिवर्ष 8 मार्च को अर्न्तराष्ट्रीय महिला दिवस बडे शहरों और महानगरों में सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर विभिन्न आयोजनों सेमिनारों व गोष्ठियों में महिला उत्थान व महिला विकास से सम्बन्धित बडे–बडे वायदों व घोषणाओं के साथ सम्पन्न होता है। आज के दौर महिलाओं के प्रगति व विकास के नाम पर महिला संगठन, स्वंय सेवी संस्थाओं तथा आन्दोलनों की बाढ़ आ गयी है जो विभिन्न मदों से अरबो खरबो रूपये की वित्तीय मदद लेकर महिलाओं के उत्थान के कार्य में विधिवत लगी हुई है लेकिन इन सबके बाउजूद महिलाओं की सामाजिक सुरक्षा, यौन शोषण व अपराधिक घटनाओ के मुद्दे पर महिलाओं की स्थिति बद से बदतर होती जा रही है। हिंसा, यौन शोषण दमन, अत्याचार व आपराधिक घटनाओं के विशेष सन्दर्भ में महिलाओ की स्थिति का आकलन किया जाता है तो एक तथ्य यह उभर कर आता है कि सामाजिक सुरक्षा के मामले में आज भी महिलाओं की स्थिति मध्ययुगीन मटिलाओं की स्थिति के समान ही दबी, सहमी और लोकलाज के चलते गूंगी तथा अन्दर ही अन्दर घुटन वाली ही स्थिति है सिर्फ परिस्थिति व शोषण के तरीके बदल गये है। आज समाज सभ्य होने का दावा तो जरूर करता है लेकिन महिलाओं के प्रति हिंसा, अत्याचार और यौन शोषण बढ़ता ही जा रहा है।

महिलाओं के खिलाफ अपराध रोकने के लिए कानून और उसके तहत की जाने वाली कार्यवाही की बात है तो केन्द्रीय तथा राज्य सरकार ने जो कुछ महिलाओं की सुरक्षा के लिए प्रयास किये हे वह कम नही है लेकिन आजादी के छः दशकों के उपरान्त भी महिलाओं के प्रति कार्यस्थल पर यौन शोषण हिंसा बलात्कार व मानसिक उत्पीड़न कम होने के बजाय दिन प्रतिदिन बढ़ते जा रहे है और इस प्रकार के जघन्य अपराध पुरूषों की कुत्सित मानसिकता का परिचायक है। साथ ही साथ यह भी स्पष्ट मनोवृत्ति है कि महिला का तात्पर्य केवल दैहिक सुख से है। व्यवहारिक जीवन में हर पुरूष के दिमाग में महिलाओं के भोग्या वाली मनोवृत्ति सदैव ही हावी रहती है और इस सोच मानसिकता व मनोवृत्ति के प्रभाव ने पुरूष समाज का यह हालत बना दी है कि वह सदैव ही महिलाओं को भोग्यवस्तु के रूप में ही देखता है और इस तरह की यौन अपराध की घटनाएं घटित होती ही रहती है यदि आज पुरूषों को कानून या सामाजिक अपमान का भय न होता तो ज्यादातर पुरूष बलात्कार करने का अवसर अपने हाथ से जाने नहीं देते। 21 वीं सदी में मनुषय शिक्षा ज्ञान विज्ञान की दुहाई देने के बाउजूद हम उस पशुता से उबर नहीं पाये है जो मानव को पशु से अलग करती है। किसी वर्ग के खिलाफ होने वाले अपराध उस वर्ग विशेष की प्रगति व विकास के मार्ग को अवरूद्ध कर विकास की गति को धीमा कर देते है। महिलाओं की प्रगति के साथ ऐसा ही हो रहा है। महिलाओं के साथ होने वाले यौन शोषण, अपराध, उत्पीड़न, बलात्कार, ब्लैकमेलिंग, हत्या, अपहरण, अश्लील टिप्पणी आदि इतनी तेजी से बढ़ रहे है कि महिलाएं अपनी अस्मिता बचाने के अलावा कुछ और सोच ही नहीं पाती है। समाज तथा पुरूषों की इस आपराधिक मानसिकता का सीधा प्रभाव महिलाओं के सामाजिक, आर्थिक व राजनीतिक विकास पर पड़ता है। शोध व सर्वेक्षण कहते है कि दुनिया भर में जितने भी अपराध होते है उनमें से अधिकांश अपराध महिलाओं के खिलाफ ही होते है। एक ओर तो कामकाजी महिलाओं की संख्या में दिन प्रतिदिन वृद्धि हो रही है यह एक शुभ संकेत है लेकिन इस शुभ संकेत के पीछे स्याह हकीकत यह है कि उतनी ही तेजी से कार्यस्थल पर उनके साथ होने वाले दुव्यर्वहार का भी अनुपात बढ़ रहा है। यह एक चिन्तनीय विषय है। प्रस्तुत शोध पत्र में भारतीय राजनीति में महिलाओं के प्रति यौन शोषण व आपराधिक घटनाओं की बढ़ती बाढ़ के पीछे क्या कारण है तथा

* एसोसिएट प्रोफेसर राजनीतिशास्त्र, डी.ए.वी.पी.जी. कालेज, लखनऊ

राजनीति में महिलाओं के शोषण और उत्पीड़न को रोकने के लिए क्या–क्या उपाय अपनाने चाहिए इनका विस्तार से समीक्षात्मक अध्ययन किया जायेगा।

स्वतन्त्रता से पूर्व भारतीय राष्ट्रीय काग्रेंस ध्येयवादी समर्पित नेतृत्व द्वारा संचालित एक राष्ट्रीय आन्दोलन था मात्र राजनीतिक दल नहीं। राजनीतिक दल का रूप इसने स्वतन्त्रता के बाद ग्रहण किया तथा साथ ही साथ राजनीतिक पटल पर अन्य राजनीतिक दल भी उभरे। राजनीति धीरे–धीरे देशहित के बजाय राजनीतिज्ञों की महत्वाकांक्षा पूर्ति का साधन बनती गई, स्वार्थ उभरता गया और सेवा भावना गौण होती गयी तथा अब राजनीति एक घृणित खेल बन कर रह गई है जो महिला संस्कारिता के अनुकूल नहीं कही जा सकती है। ''राजनीति में गिरते हुए चारित्रिक व नैतिक मूल्यों के कारण भारतीय संस्कृति में पली नारी इस क्षेत्र के प्रति उदासीन होती चली गयी अन्यथा क्या कारण है कि आजादी की लड़ाई में पुरूष के कंधे से कंधा मिलाकर लड़ने वाली इस देश की महिलायें आज राष्ट्र निर्माण, नीति निर्धारण व जन निर्देशन के महत्वपूर्ण कार्य से मुख क्यों मोड़ती।''[1]

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात विभिन्न प्रकार की विकृतियों भारतीय राजनीति मे प्रविष्ट होने लगी जिसे सम्पूर्ण वातावरण दूषित होने लगा।''[2] आज जिस तरह के लोग विधानसभाओं और संसद में चुनकर आ रहे है उससे भी आम लोगों के बीच इन संस्थाओं की गरिमा गिरी है। जब संसद में मन्त्रियों के हाथों से विधेयक लेकर फाड़ दिये जाते है, विधानसभाओं में विधायक एक दूसरे पर माइको से हमला व मारपीट की घटनाएं घटित होती रहती है, हमारे माननीय मंत्रीगण सरेआम हवाई जहाजों में एयर होस्टजों से छेड़खानी, सवालों का सौदा, सांसद निधि का दुरूप्रयोग, भष्ट्राचार, सांसदो व विधायको का बोली लगाना ''अपराधियों, असामाजिक तत्वों, पाखडियों व स्वार्थियों की गिरफ्त में आती जा रही चुनाव व्यवस्था, हंगामें, बहिष्कार व धरनों के अड़डे बनती जा रही विधायिका, घोटालो षड़यन्त्रों, तिकडम बाजी, बयान बाजी, थोथे दौरो में व्यस्त रहने वाले राजनेताओं की राजनीति, परिवारवाद व जाति पर आधारित दलीय व्यवस्था तथा धर्मान्माद, प्रतिशोध, आडम्बर, कटटर पंथ को बढ़ाने वाली धर्म निरपेक्षता, तथा असामाजिक तत्वों से मेल जोल रखने वाली पुलिस व्यवस्था।''[3] प्रचार के लिए विधान मण्डलों में गतिरोध की राजनीति, वोट व समर्थन प्राप्त करने के लिए अल्पकालिक राजनीतिक निर्णय, व्यक्ति विन्यासित दलों का उदभव आदि इस घृणित राजनीति के कुछ पहलू है।''[4]

''जब कोई पुरूष महिलाओं के व्यक्तित्व के सामने स्वंय को बौना महसूस करने लगता है तथा जब उसे सम्बन्धित महिला की कार्यप्रणाली, व्यक्तित्व, व्यवहार में काफी छिद्रान्वेषण करने के पश्चात् भी कोई दोष नजर नहीं आता है तो उसकी सधी हुई उॅगली उस महिला के चरित्र की ओर उठती है।''[5] और बिना प्रमाण, गवाही, सत्यता व सफाई के बिना ही वह महिला सवालों के जंजाल में उलझ जाती है। यह रास्ता पुरूष राजनीतिज्ञों द्वारा को अपने विरोधी महिला राजनीति के विरूद्ध सर्वाधिक सटीक व घातक हथियार के रुप में प्रयुक्त किया जाता है। एक पुरूष की तुलना में उन्हें दोगुनी समस्या का सामना करना पड़ता है यहाँ तक कि ऐसी महिलाओं को भी जो पुरूष की तुलना में दोगुनी योग्य होती है। स्पष्ट है कि वर्तमान राजनीति की तस्वीर बेहद घिनौनी हो चुकी है। सुषमा सिंह का मगरमच्छकांड, नयना साहनी का तदूरकांड, शिवाजी जर्डेजा कांड, मधुमिता हत्याकांड आदि गिरते राजनीतिक मूल्य यह सोचने के लिए बाध्य करते है कि नारी सत्ता की मृग मरीचिका के पीछे न दौडें।

विगत कुछ वर्षो में महिलाओं के जीवन शैली में रेखाकिंत योग्य बदलाव आये है जिससे उनके व्यवहार, मूल्य, संवेदनाओं तथा प्रेरणा शक्ति ही प्रभावित नहीं हुई है वरन आज वे जीवन के प्रत्येक कार्यक्षेत्र में पुरूषों के साथ कंधे से कंधे मिलाकर न केवल स्वंय की प्रगति कर रही हैं वरन् साथ ही साथ देश की प्रगति व विकास में महत्वपूर्ण योग्दान दे रही है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक परिवर्तन के घूमते चक्र के कारण महिलाओं को अपने परम्परागत रूढ़िवादी भूमिका से कुछ मायनों में मुक्ति मिल गयी है हालांकि इस प्रक्रिया में संवैधानिक प्रावधानों, कानूनों तथा विभिन्न योजनाओं की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। महिलाओं का एक छोटा सा हिस्सा ही सही वह पहले की तुलना में सशक्त हुआ है। वर्तमान में महानगरों तथा शहरी क्षेत्रों में महिलाएं उच्च पदों पर काबिज होकर धर्नाजन भी कर रही है लेकिन इस सच्चाई का दूसरा पहलू यह है कि महिलाएं जब तक पुरूष व बाजार का साथ

देती है और पुरूष सत्ता के खिलाफ नहीं खड़ी होती है, वहीं तक उनको आगे बढ़ने दिया जाता है लेकिन जहॉ वे अपनी स्वतन्त्र व सशक्त उपस्थिति दर्ज कराती है, वहीं से उनके साथ हत्या, बालात्कार, यौन उत्पीड़न, मानसिक प्रताड़ना और घरेलू हिंसा जैसे कार्य प्रारम्भ हेतु हो जाते है। पंचायत स्तर पर भी जिन महिला पदाधिकारियों ने सक्रिय भूमिका लेने की कोशिश की है, उन्हें विरोध का सामना करना पड़ा है।

महिलाओं को अधिकतर कार्यस्थल कार्यालयों, व्यवसायिक परिसरों, उद्योगों और स्कूल–कालेजों में यौन उत्पीड़न का शिकार होना पड़ता है। यौन उत्पीड़न व शोषण के अन्तर्गत पुरूषों द्वारा महिला के प्रति अशोभनीय व्यवहार, अश्लील शब्दों का प्रयोग, यौन संकेत, यौन सूचक टिप्पणियाँ का प्रयोग, यौन सम्बन्धों के लिए प्रयास, एवं बाध्य करना और अश्लील तस्वीर मैसेज करना तथा अश्लील साहित्य दिखाना आदि शामिल है। यौन उत्पीड़न एक प्रकार की मनोवैज्ञानिक समस्या या मनोवृत्ति होती है इसमें पुरूष अपनी महिला सहकर्मी, महिला बॉस तथा महिला नियोक्ता के साथ अशोभनीय व्यवहार तथा कमेन्ट करता है। अधिकांश महिलाओं को कार्यस्थल तथा राजनीतिक कार्यस्थल पर विभिन्न प्रकार के यौन शोषण का सामना करना पड़ता है और दुर्भाग्य का विषय है कि राजनीति सहित विभिन्न कार्यस्थलों पर महिलाएं अधिकाशतः यौन शोषण व उत्पीड़न को चुपचाप सहन कर लेती है। उनका मन आहत होता है लेकिन तमाम मजबूरियों के कारण व कार्यस्थल के शोषण व उप्पीड़न का प्रभावी विरोध नहीं कर पाती है।

कामकाजी महिलाओं के साथ होने वाले यौन शोषण उत्पीड़न व दुर्व्यवहार के सम्बन्ध में 'अवाग' (अहमदाबाद वुमेन्स एक्शन गुप) नामक एक गैर सरकारी स्वैच्छिक संस्था ने सन् 2004 में एक वृहतकारी सर्वे किया। सर्वे का मुख्य निष्कर्ष यह रहा कि ''आज भी कार्यस्थल पर महिलाओं का शोषण होता है। इस सर्वेक्षण के मुताबिक लगभग 48 फीसदी महिलाओं को कार्यस्थल पर मौखिक, शारीरिक और मानसिक शोषण का हमला झेलना पड़ता है और यह हमला करते है उनके अपने ही सहकर्मी।''[6] संस्था के रिपोर्ट के अनुसार कामकाजी महिलाऐ सामाजिक बदलामी और काम छिनने के डर से यौन शोषण की शिकायत ही दर्ज नहीं कराती है। ''अवाग की प्रमुख इला पटनायक का कहना है कि निजी क्षेत्र के साथ–साथ सरकारी क्षेत्र में भी महिलाओं का यौन शोषण होता है।''[7]

उत्तर प्रदेश की मुख्यमंत्री मायावती जी को तो कुर्सी ही इस वायदे पर मिली थी कि सत्ता में आते वे गुंडाराज को खत्म करे और महिला सुरक्षा के लिए ठोस कदम उठायेगी। भारत में राष्ट्रीय महिला आयोग के आंकड़ो की बात करते है तो पूरे भारत में महिला के प्रति अपराधों की कुल संख्या में आधा हिस्सा उत्तर प्रदेश का है। पहले उत्तर प्रदेश महिलाओं के प्रति अपराध के मामले में मध्यप्रदेश के बाद दूसरे नम्बर पर आता था लेकिन अब पहले नम्बर पर आ गया है। 'सन् 2006 में उत्तर प्रदेश में महिला अपराधों की संख्या 2155, 2007 में यह संख्या 4218 हुई तभी उत्तर प्रदेश के सत्ता शीर्ष पर सुनहरे वादों के साथ मायावती जी का प्रवेश ' होता है तो यह संख्या सन् 2008 में उछलकर 4712 हो जाती है तथा 2009 में महिलाओं के प्रति अपराध की संख्या 8179 है।''[8] जो लगभग पौने दो गुनी हो गई है। विगत कुछ वषों में कन्या भ्रूण हत्या में भी तेजी आई है ''लखनऊ जिले का लिंग अनुपात की स्थिति 1991 की जनगणना में 948 थी जबकि 2001 की जनगणना में यह घटकर 915 है।''[9]

राजनीति में नीचे से लेकर ऊपर तक नेताओं का चरित्र किस प्रकार विकृत हो चुका है, यह किसी से छिपा नहीं है। हमारी लोकतान्त्रिक व्यवस्था कुछ इस प्रकार की है कि बिना राजनीतिक पृष्ठभूमि के संसद तक पहुॅचना किसी भी आम नेता के लिए काफी मुश्किल होता है।'' किसी राष्ट्रीय दल का टिकट पाने के लिए टिकटार्थी को जिला समिति से लेकर राष्ट्रीय चुनाव समिति के सदस्यों तक चाटुकारिता करनी पड़ती है और यदि टिकटार्थी कोई महिला है तो चयन समिति के सदस्यों की मांग भी बदल जाती है। वे टिकटार्थी से कुछ अनेपक्षित अपेक्षाएं रखने लगते है।''[10] इस प्रकार का व्यभिचार क्षेत्रीय और राज्य स्तरीय राजनीति में स्पष्ट देखा जा सकता है। इतिहास गवाह है कि कई महिला राजनीतिज्ञ हम पर सिर्फ इसलिए थोप दी गई क्यों कि वे किसी न किसी राजनेता से जुड़ी हुई

थी। ऐसे एक नहीं कई उदाहरण है जिनमें महिलाओं से उन्हें राजनैतिक ताकत देने के बदले दैहिक सुख के रूप में प्रयोग किया गया, जिन महिलाओं ने इस विकल्प को फायदे का सौदा समझा वह राजनीति में सफल हो गयी तथा बाकी की महिलाएं राजनीति से किनारे कर दी गयी।

सामाजिक व आर्थिक विकास के कार्यो के लिए गाँवो मे काम करने वाली महिलाओं का अधिकारियों ने ही नहीं, खुद मन्त्रियों व राजनेताओं तक ने यौन शोषण किया। ''ग्राम सेविका और समाज सेविका साठ–सत्तर के दशक में ऐसे बदनाम शब्द से जिन्हें अपने आपको इज्जतदार समझने वाला कोई व्यक्ति सार्वजनिक रूप से लेना नहीं चाहता था''(11) इसका नतीजा यह हुआ कि गांव में महिला चाहकर भी घर से बाहर निकलने की हिम्मत नहीं कर पायी। इस तरह जो ग्रामीण स्तर पर महिला के राजनीतिकरण की जो जमीन तैयार हो सकती थी उसे लम्पट संस्कृति ने नेस्तनाबूद कर दिया।

''संजय गांधी के सत्ता पर हावी होने के साथ महिलाओं श्रेणी जिसमें अभी तक पत्नी, पुत्री, रानियाँ, राजकुमारी का बोलबाला था, एक नयी श्रेणी 'गर्लफेडस' की आई थी''(12) जिस यौन शोषण की राजनीति जिसका चेहरा अभी तक ढका हुआ था वह अपना खुला खेल खेलने लगी। इन सबके चलते महिलाएं ही नहीं राजनीतिक दलों से वे पुरूष भी पृष्ठभूमि में चले गये या कर दिये गये जो राजनीतिक मूल्यों की बात करते थे। राजनीतिक दलों के भीतर भी पुरूषों ने महिलाओं को हमेशा हीन व हेय नीची नजर से ही देखा। इन सभी का नतीजा यह था कि महिलायें अराजनीतिकरण की ओर चली गयी। दलों के भीतर व बाहर वही महिला टिक पाई और आगे बढ़ सकी जिसने पुरूष के कन्धे का प्रयोग किया या फिर वह किसी न किसी राजनेताओं से जुडी हुई थी। यह जुड़ाव पारिवारिक या परिवार के बाहर कहीं भी हो सकता था।

उत्तर प्रदेश में ऐसे सैकड़ों विधायक है जिनके ऊपर महिलाओं के शोषण के आरोप लगे हुए है। उत्तर प्रदेश की वर्तमान में सत्ताधारी दल का एक विधायक लड़की के अपहरण और शारीरिक शोषण के अपराध मे पार्टी से निलम्बित चल रहा है। उत्तर प्रदेश में कई मन्त्रियों के खिलाफ भी इस तरह के आपराधिक मुकदमे चल रहे है। मुलायम सिंह सरकार में मन्त्री रहे एक नेता ने भी एक कवियत्री की हत्या कर दी। नेता बिरादरी अपनी सारी बहादुरी महिलाओं को अपमानित करने या शोषण करने में ही क्यों दिखाते है। इन अपराधी लोगों को दण्डित किया जाना चाहिए तथा इसके साथ सामाजिक बहिष्कार भी किया जाना चाहिए। राजनेताओं द्वारा महिलाओं के लिए अश्लील टिप्पणियाँ करना तो आम बात है। संजय दत्त द्वारा मुख्यमंत्री मायावती पर की गई अश्लील टिप्पणी इसका उदाहरण है तो आम राजनीतिक नेत्रियों की क्या स्थिति हो सकती है। जब देश के कानून निर्माता अर्थात सांसद और विधायकों के खिलाफ यौन शोषण के मामले में देश भर में 42 ऐसे विधायक है जिन पर महिलाओं के खिलाफ अपराध के मामले दर्ज है छः ऐसे आरोपी है जिन पर बलात्कार के मामले दर्ज है। लगभग सभी राजनीतिक दल चाहे वह काग्रेंस, भाजपा, बसपा तथा सपा सभी ऐसे विधायकों को टिकट प्रदान कर रही जिन पर बलात्कार तक के मामले दर्ज है बाकी 36 विधायको के नाम महिलाओं के यौन उत्पीडन से सम्बधित है। ''राजनीति मे महिलाओं के शोषण, उत्पीड़न तथा चरित्र हनन का अस्वच्छ वातावरण विगत कुछ वर्षो में निरन्तर बढ़ रहा है।''(13)

''विभिन्न क्षेत्रों में सक्रिय होने, आर्थिक स्वालम्बन तथा अन्य अनेक क्षमताएं प्राप्त कर लेने के बाद भी महिलाओं की शारीरिक दुर्बलता का लाभ उठाने और उन्हें कामेच्छा की पूर्ति का शिकार बनाने की पुरूष की सांमती प्रवृत्ति घटने की बजाय बढ़ी दिखाई दे रही है।''(14) राष्ट्रीय अपराध रिकार्ड ब्यूरों के आंकड़े फिर गवाह है कि देश में अपराध अत्याचार बढ़ रहें हैं। कुछ महीनों की बच्चियों से लेकर वृद्ध महिलाओं तक के साथ बलात्कार, लड़कियों से क्रूरता की हद तक की जाने वाली छेड़छाड़, दफ्तरों और काम के अन्य स्थानों पर यौन शोषण से कुत्सित प्रयास, दहेज उत्पीड़न, अपहरण, हत्या, कन्या भूणहत्या, आदि में वृद्धि यह दर्शाती है कि जहॉ कानून इन्हें रोकने में असफल हो रहे है वही महिलाओं के प्रति समाज के नजरिये में अपेक्षित सकारात्मक व रचनात्मक बदलाव नहीं आया है। यह सही है कि अब पहले से कही अधिक महिलाएं इन ज्यादतियों का विरोध कर रही है। औरत के साथ

किये गये यौन सम्बन्धी अपराधों का सामाजिक व राजनीतिक कलंक परम्परागत रुप से औरत को ही झेलना पड़ता है। समाज की इस सोच में परिवर्तन अति आवाश्यक है। इस परिवर्तन के फल स्वरूप ही महिलाओं को सदैव कमजोर व हीन बनाये रखने की परम्परागत ग्रन्थि ढीली करनी व तोड़नी होगी। जब तक सेक्स से जुड़ी ज्यादतियों का सम्बन्ध औरत की इज्जत, शील व चरित्र से जोड़ा जाता रहेगा, तब तक राजनीतिक सशक्तीकरण, विकास व समानता का सपना सही अर्थो में पूरा नहीं हो सकेगा। भारत ने चहुँमुखी प्रगति की है लेकिन आधी आबादी ही अपने आपको असुरक्षित महसूस करें तो पता चलता है कि यह तरक्की कितनी ओछी व खोखली है।

''महिलाओं के प्रति होने वाली हिंसा व अपराधों को रोकने हेतु विधालयो में छात्राओं के शिक्षण के साथ जूडो कराटे का प्रशिक्षण, कानूनी अधिकारों की जानकारी, यौन उत्पीड़न रोकने मे सर्वोच्च न्यायालय द्वारा दिये गये निर्देषों का सख्ती से पालन, शोषण, उत्पीड़न सम्बन्धी मामलों का जल्दी निराकरण , महिला मामलों में पुलिस की पूरी सजगता व सक्रियता, महिलाओं के लिए पृथक थानों की स्थापना आदि शोषण व उत्पीड़न रोकने के लिए आवाश्यक है।''(15)

यौन उत्पीड़न के मामलों को रोकने के लिए समय समय पर सर्वोच्च न्यायालय ने भी महत्वपूर्ण व कड़े निर्णय सुनाये है तथा सर्वोच्च न्यायालय द्वारा एक आचार संहिता का भी निर्माण किया गया है लेकिन व्यवहारिक स्थिति यह है कि इस आचार संहिता का भी पूरी तरह से पालन नहीं हो पा रहा है और जिसका परिणाम यह है कि कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न के मामले कम होने के बजाय लगातार बढ़ते ही जा रहे है। इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय महिला आयोग द्वारा भी कार्यस्थल पर होने वाले यौन उत्पीड़न को रोकने के लिए एक आचार संहिता का निर्माण किया है। यौन उत्पीड़न एक ऐसी समस्या है जिसका निराकरण सिर्फ कानूनों के माध्यम से नहीं किया जा सकता है। आवाश्यकता इस बात की है कि यौन उत्पीड़न के मामले में समाज में जन जागरूकता की आवाश्यकता है। समाज का एक तबका यह मानता है कि कार्य स्थल पर यौन उत्पीड़न करने वाले सहकर्मियों, अधिकारियों आदि को सख्त से सख्त सजा देने वाला कानून बनाया जाय लेकिन वास्तव में आज आवाश्यकता मानसिकता में बदलाव के साथ जन जागरूकता और कानूनों का सही मायनों में क्रियान्वयन ज्यादा महत्वपूर्ण है।

पुरूषों के द्वारा महिलाओं पर अमानवीय आचरण व बलात्कार आदि ज्यादतियों के प्रति पुलिस के उदासीन और उपेक्षापूर्ण रवैये को बदलना भी एक चुनौती है। ''पुलिस व कानून बड़ें जोर शोर से महिलाओं की रक्षा का ठिठोरा पीटते है लेकिन तमाम तरह के कानूनी और दिखावों से घिरे इन तबकों के भीतर महिलाओं के लिए घड़ियाली ऑसुओं के सिवा कुछ नहीं है।''(16) जिस पुलिस महकमें पर कानून पालन करवाने की जिम्मेदारी है, वह कई मामलो में महिलाओं की शिकायतें तक दर्ज नहीं करता। ''पुलिस कर्मी महिलाओं के साथ बलात्कार, छेड़खानी, आत्महत्या और उनकी असामान्य मृत्यु से जुडें मामलों की तहकीकात में बुरी तरह से असफल रहे हैं। अक्सर उनके द्वारा की गई जॉच पड़ताल और एकत्र किये गये सतही सबूतों के परिणाम स्वरूप अभियुक्त रिहा हो जाते है।''(17) महिला पुलिस कर्मियों की संख्या पुलिस बल में कम है इसमें बढोत्तरी की पहल करनी आवाश्यक है।''(18) महिला पुलिस कर्मियों की संख्या अधिक होने पर व्यवहारिक ढ़ग से महिला सुरक्षा सुनिश्चित करना संभव है। दूसरी बात दोषियों को सजा दिलाने में नाकामी के चलते अपराधियों के हौसले बढ़ जाते है। भुक्त भोगी महिला को समय पर न्याय प्राप्त न होना, उसके साथ पूर्व में हुए अन्याय के समान ही एक अपराध है। पुरूष प्रधान व्यवस्था का लाभ न्यायिक ढ़ॉचे में पुरूषों को ही मिलता है। हमारी न्याय प्रक्रिया लम्बी, जटिल व सुस्त है इसलिए महिला सुरक्षा के दृष्टिकोण सें इस और प्रक्रियात्मक सुधार आवाश्यक है।

महिला उत्पीडन और शोषण से भारतीय राजनीति भी अछूती नहीं है। संसद व विधानसभाओं में सांसद व विधायक एक दूसरे पर माइकों से हमला करते है। हमारे माननीय मंत्रीगण सरे आम हवाई जहाजों में एयर होस्टेजों से छेड़खानी करते है। आये दिन कोई न कोई विधायक या मन्त्रीगण बलात्कार व छेड़खानी के मामले मे पकड़ें जाते है। राजनीति में नीचे से लेकर ऊपर तक नेताओं का

चरित्र व व्यक्तित्व जिस प्रकार गन्दा हो चुका है यह किसी छिपा नही है। ऐसी स्थिति महिलाओं को राजनीतिक सहभागिता व भागी दारी को कम करती है। जिस देश जिस प्रदेश में महिलायें सड़कों व कार्यस्थलों पर सुरक्षित नहीं है तो वह राष्ट्र निर्माण व विकास मे अपनी सशक्त उपस्थिति कैसे दर्ज करा सकती है। इस असुरक्षित माहौल में बहुत ही महिलाएं 'स्टेट्स को ' की स्थिति में बने रहना चाहती है तथा अपने घर गृहस्थी में ही सुखी व आन्नादित रहती है। महिलाएं अपनी इच्छा व योग्यता होने के बाउजूद राजनीतिक क्षेत्र में प्रवेश करने से कतराती है क्योंकि उन्हें असुरक्षा, सामाजिक अप्रतिष्ठा, हिंसा, धमकियॉ और अनुचित चरित्र हनन का भय रहता है। इस अस्वच्छ व दूषित राजनीतिक वातावरण में महिलाएं अपने आप को असहज व असहाय महसूस करती है जिससे उनकी राजनीतिक सहभागिता को भी ठेस पहुॅचती है। भारत सरकार व भारतीय राजनीति के कर्णधारों को ईमानदारी से सोचने व निर्णय लेने के लिए तत्पर होना चाहिए। जनसंख्या के 50 प्रतिशत भाग के प्रति समानता की संवैधानिक घोषणा का व्यवहारिक तथा वास्तविक क्रियान्वयन ही हमारी पुरूष प्रधान विधयिका का मानवीय व नैतिक दायित्व है। अतः जब महिलाएं अपने परिवार समाज व राजनीति मे अपने आप को सुरक्षित महसूस करेगी तभी निःसकोच वह राजनीतिक गतिविधियों व सक्रिय राजनीति में भाग ले पायेगी। ऐसे विपरीत माहौल और प्रतिकूल परिस्थितियों में कोई महिला अपने विकास के विषय में सोच भी नहीं सकती है। यदि समाज महिलाओं को सुरक्षा का आश्वासन नहीं दे सकता और उन्हें अपना विकास करने के लिए सभी अवसर समान रूप से बिना किसी भी प्रकार के भय के उपलब्ध नहीं करा सकता तो इस समाज को सभ्य कहलाने का अधिकार नहीं है। यदि हम वास्तव में महिलाओं तथा इस समाज व देश की प्रगति व विकास चाहते है तो सर्वप्रथम घर के साथ–साथ कार्य स्थल पर भी एक सुरक्षित माहौल उपलब्ध होना चाहिए क्योंकि अपराध और विकास एक साथ नहीं चल सकते इसलिए कार्यस्थल पर महिलाओं के साथ होने वाले यौन शोषण व उत्पीड़न पर प्रभावी रोक की आवाश्यकता है तभी इस देश की आधी आबादी के विकास के साथ देश का भी सर्वोतम विकास होगा। जब महिलाएं अपने परिवार, समाज व राजनीति में अपने आप को सुरक्षित महसूस करेगी तभी निःसंकोच वह राजनीति गतिविधियों व सक्रिय राजनीति में भाग ले पायेगी।

सन्दर्भ :

1. व्होरा आशा रानी : औरत कल आज और कल, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ–44
2. पाण्डेय रामकुमार : भारत में चुनाव आचार संहिता, सिविल सर्विसज क्रानिकल, अप्रैल 2009, पृष्ठ–14
3. प्रो0 खण्डेला मानचन्द्र : भारतीय राजनीति सिद्धान्त एंव व्यवहार, पोइन्टर पब्लिकेशन, जयपुर, 2001, पृष्ठ–19
4. डॉ0 मोदी महावीर प्रसाद व डॉ मोदी सरोज : भारतीय राजनीति की प्रवृत्तियॉ, कालेज बुक डिपो, जयपुर, 2009, पृष्ठ–48
5. कटारिया कमलेश : नारी जीवन वैदिक काल से आजतक, यूनिक ट्रेडर्स पब्लिकेशन, जयपुर, 2003, पृष्ठ–130
6. प्रो0 त्रिपाठी सधुसूदन : महिला विकास एक मूल्यांकन ओमेगा पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2010, पृष्ठ–127
7. वहीं
8. शालिनी बाजपेई : उत्त्रप्रदेश में महिलाओं पर बढ़ती हिंसा, समकालीन जनमत, इण्डियन प्रेस लिमिटेड, इलाहाबाद, मार्च, 2010, पृष्ठ–21
9. जैदी रजंन : आधी आबादी का सच, श्री नटराजन प्रकाशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ–88
10. डॉ0 सिंह निशांत : महिला राजनीति और आरक्षण, ओमेगा पब्लिकेशन, दिल्ली, 2010, पृष्ठ–157

11. गुप्ता नीलम : चुनावी नारे का खामियाजा तो भुगतना पडेगा, सम्पादित पांडे मृणाल व शर्मा क्षमा : बन्द गलियों के विरूद्ध महिला पत्रकारिता की यात्रा, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 2001, पृष्ठ–119
12. वहीं पृष्ठ–121
13. सेतिया सुभाष : स्त्री अस्मिता के प्रश्न, कल्याणी शिक्षा परिषद, नई दिल्ली, 2006, पृष्ठ–127
14. वहीं
15. कुमार संगीता : अर्थव्यवस्था में महिलाओं की स्थिति, समाचार पत्रिका, योजना, वर्ष–53, अंक–10, अक्टुबर, 2008, पृष्ठ–21
16. शर्मा कुमुद : स्त्री घोष, प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 2002.
17. विश्नोई ओम राज सिंह : सामाजिक परिपेक्ष्य में महिलाएं, अरावली बुक्स इंटरनेशनल, नई दिल्ली, 2000, पृष्ठ–55
18. डॉ0 शुक्ल प्रवीण : महिला सशक्तीकरण : बाधाएं व संकल्प, आर0 के0 पब्लिशर्स व डिस्ट्रीब्यूटर्स, दिल्ली, 2009, पृष्ठ–83

***

धर्म निरपेक्षता और दीनदयाल उपाध्याय का राष्ट्रवादी चिन्तन

दुर्गेश बंहादुर सिंह *

पिछले कई दशको से अगर किसी शब्द ने भारतीय समाज में सबसे अधिक भ्रम की स्थिति पैदा किया है या विवाद का विषय बना है तो वह है धर्मनिरपेक्षता हॉलाकि स्वत़ंत्रता के पश्चात भारत को एक धर्म निरपेक्ष देश घोषित किया गया लेकिन विधिवत रूप से 42 वा संवैधानिक संसोधन 1976 में संविधान की प्रस्तावना में सैकुलर शब्द को जोड़ा गया। तब से लेकर आज तक धर्म निरपेक्षता ने परस्पर विवाद की स्थिति पैदा की है, प्रत्येक व्यक्ति इसे अपने तरह से परिभाषित करता है। प्रश्न यह है कि इसकी आवश्यकता क्यो थी भारत की सनातन संस्कृति सदा से समावेशी रही है यहॉ हर तरह के विचारो का सम्मान रहा है। पंडित दीनदयाल उपाध्याय ने सेकुलर राज्य के विषय में कहते है कि आज भारतवर्ष के नेतागण यद्यपि पश्चिमी आदर्शो को अपनाकर भावी भारत की रचना करना चाहते है। उसके अनुसार पश्चिम के अर्थ में सैकुलर स्टेट का अर्थ लौकिक राज्य ही लगाया जा सकता है किन्तु भारतीय जनता धर्मराज्य की भूखी है और वह केवल एंकागी उन्नति से नही हो सकती क्योकि हमने लौकिक और परलौकिक उन्नति को एक दूसरे का पूरक ही नही तो एक दूसरे से अभिन्न माना है । किन्तु पारलौकिक उन्नति के क्षेत्र में राज्य की ओर से किसी एक मत की कल्पना अनुचित होगी अत: उसके द्वारा ऐसा वातावरण उत्पन्न करना होगा कि जिसमें सभी मत बढ सके तथा एक सदविप्रा बहुध वदन्ति के सिद्धान्त का पालन कर सके।

सत्य यह है कि भारत कभी धर्मनिरपेक्ष नही रहा, पाश्चात जगत में धर्म को रिलीजन नाम से सम्बोधित करते है, जबकि हमारे यहॉ रिलीजन का तात्पर्य नाम मत से है, जैसे अनेक छोटे–छोटे धार्मिक मत है शैव, वैष्णव इत्यादि। यहॉ रिलीजन का तात्पर्य धर्म नही हो सकता हिन्दू धर्म शास्त्रों मे,

''परहित सरिस धर्म नहि भाई।
परपीड़ा सम नहि अधिमाई ।।''

दूसरो की भलाई के समान कोई धर्म नही है, तथा दूसरो को दूख पहुचाने के समान कोई अधर्म भी नही है। जहॉ का समाज ऐसी दृष्टि रखता है क्या वह धर्मनिरपेक्ष हो सकता है हमारा समाज सेकुलर राज्य का पर्याय नही हो सकता। धर्म शब्द की उपर्युक्त परिभाषा एवं धारणा धर्म मित्याहु धर्मोधारयते प्रजा आदि परिभाषाओ के अनुसार यह शब्द अंग्रेजी के रिलीजन का पर्यायवाची न होकर उससे भिन्न है तथा व्यापक अर्थ वाला है। हमारे यहॉ बिना धर्म के तो किसी के भाव की उसके अस्तित्व की ही कल्पना कठिन है। फलत हम समझते है कि हमारा राज्य धर्म को तिलांजलि नही दे सकता अत अधार्मिक धर्म निरपेक्ष कर्मरहित धर्महीन, धर्मविरत आदि सभी शब्द न तो हमारे राज्य के आदर्श को ही प्रकट करते है और न सेकुलर स्टेट के ठीक पर्याय हो सकते है।

उपाध्याय अपने एकात्म मानव दर्शन के अर्न्तगत धर्म राज्य का उल्लेख किया है। कहते है धर्म की प्रभुत्ता होने के कारण राज्य का आदर्श धर्म राज्य है लेकिन धर्मराज्य में किसी पुरोहीततंत्र या मजहबी राज्य की कल्पना नही करते है जैसा कि पाश्चात संस्कृति में होता है। वहा प्राय सभी अधिकार किसी खास मतावलम्बीयो के पास होता है और सभी अन्य मत दास होते थे। और इसी प्रकार का विभाजन पाकिस्तान और बंगलादेश के परिप्रेक्ष में भी था ये दोनो अपने को इस्लामी राज्य मानते है बाकी अन्य दूसरे दर्जे के नागरिक है।

उपाध्याय का मत था कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने अन्तकरण के अनुसार उपसना का अधिकार मिलना चाहिए चाहे वह किसी भी मजहब का क्यो न हो। धर्मराज्य किसी व्यक्ति या संस्था को सर्वशक्तिशाली नही मानता बल्कि सभी नियमों एवं कर्तव्यो से बधे हुए है इसी प्रकार पं दीनदयाल उपाध्याय यूरोप के राष्ट्रवादी चिंतन को भी स्वीकार नही करते है वह यूरोप के राष्ट्रवाद को मानव अस्तित्व के लिए खतरा मानते है। उनका मानना था कि पाश्चात राष्ट्रवादी विचार मानव के समन्वयवादी संस्कृति का परिणाम नही है अपितू वह संघर्ष का परिणाम है। और पाश्चात राष्टवाद से भारतीय राष्ट्रवाद की तुलना गलत होगा, भारत का राष्ट्रवाद कोई 100 या 200 वर्ष पूराना नही है बल्कि यह हजारो वर्ष से विद्यमान है। और इसका जन्म हमारी सनातन सस्कृति के समन्वयकारी विचारधारा से हुआ है। इसलिए पाश्चात्य राष्ट्रवाद एवं भारतीय की तुलना करना ठीक नही है और कई बार तो ऐसा भी कहा जाता है कि भारत में राष्ट्रीय चेतना

---

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, मड़ियाहुँ पी. जी. कालेज जौनपुर

का विकास ही यूरोप से हुआ है यह दुर्भाग्यपूर्ण है। पश्चिम ने द्वैत के आधार पर संघर्ष का नगाड़ा बजाया और भारत ने अद्वैत के आधार पर एकात्मता की बासुरी बजायी। दोनो वाद्य होते हुए भी दोनो की स्वरलहरियो में भारी अन्तर है। इस भेद को समझ कर हमें अपने राष्ट्र के संगठन का विचार करना चाहिए। यूरोप के देशो में राष्ट्रवाद के कारण विनाश हुआ इसलिए भारत के राष्ट्रवाद को भी विनाशकारी कहना दूध का जला छाछ को भी फूंक–फूंक कर पीता है। वाली कहावत चरितार्थ करनी पढेगी। हालाकि भारत में इस प्रकार का कोई संघर्ष की कल्पना उचित नहीं है। भारत की परम्परा समतावादी रही है हमारे यहा एक उदार दर्शन का विकास हुआ है। भारतीय दर्शन में मानव मात्र के कल्याण का विचार ही निहित है विश्वबन्धुत्व वसुदैव कुटुम्बकम जैसे उपनीषदीय सूत्र राष्ट्र के आत्मा का अंग है। सत्य अंहिसा अस्तेय क्षमा की महिमा गायी गई है। सम्पूर्ण विश्व में एकामात्र भारत है जो विश्व की मंगलकामना करता है। इसलिए पाश्चात राष्ट्रवाद का भीषण प्रविद्धवदिता विद्धष संघर्ष से भारत की सांस्कृतिक राष्ट्रवाद की धारणा श्रेष्ट है। अत भारत के सशक्त राष्ट्रवाद को संगठित करके सक्षम बनाने के विश्व शान्ति का मार्ग दिखाया जा सकता है। यही एकमात्र मार्ग है।

सन्दर्भ :

1. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रजीवन की दिशा लोकहित प्रकाशन राजेन्द्र नगर लखनउ 2014
2. डॉ महेश चन्द्र शर्मा पं. दीनदयाल उपाध्याय कर्तव्य एवं विचार प्रभात प्रकाशन नई दिल्ली 2018
3. दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रजीवन की दिशा स शमशंकर अग्निहोत्री भानुप्रताप शुक्ल लोकहित प्रकाशन लखनउ 2008

***

हर्ष कालीन बौद्ध धर्म

अरविन्द कुमार *

धर्म के प्रति अनुराग सम्राट हर्ष के साथ अत्यन्त निकट से जुड़ी हुई है। विशेष रूप से दो घटनाओं का उल्लेख अत्यन्त महत्वपूर्ण है। प्रथम कन्नौज की धर्म सभा तथा द्वितीय प्रयागराज का पंचवर्षिय दान महोत्सव। यद्यपि हर्ष का व्यक्तिगत धर्म क्या था इसमें विद्वानो का प्रयाप्त मतभेद है। ''धर्म चरित्र में पूस्यभूति को परम शैव प्रभाकरवर्धन का आदित्य का उपासक तथा हर्ष को माहेश्वर कहा गया है। अनेक स्थानों पर इन्हें शिव की पूजा करते हुए दिखाया गया है। हर्ष को इनके लेखों तथा मुहरों में परममाहेश्वर की उपाधि दी गई है। पर चीनी यात्री के विवरणों से ज्ञात होता है कि बौद्ध धर्म के प्रति इनकी अनन्य आस्था थी। इस आधार पर स्मिथ चटर्जी, त्रिपाठी, एम0 एल0 जोशी, पी0वी0 वपट, बी0 एन0 शर्मा, आर0 के0 मुखर्जी आदि विद्वान मानते हैं कि हर्ष बौद्ध था। एस0 आर0 गोयल इससे सहमत नहीं हैं कि वह बौद्ध था। इनके अनुसार हर्ष के व्यक्तिगत जीवन में कभी भी हर्ष हनियान या महायान धर्म नहीं अपनाया। चीनी यात्री के सम्पर्क में आने के बाद उसकी इस धर्म में आस्था बढ़ी। उन्होंने इसका आदर किया परन्तु इसे कभी अपनाया नहीं। परन्तु विद्वान लेखक के मत को मानना उचित नहीं है। प्रारम्भ में वह निःसन्देह ये परमशैव थे, परन्तु 641 ई0 के आस–पास इन्होने बौद्ध धर्म स्वीकार कर लिया। ऐसा सम्भवतः वह ह्वेनसांग और राजश्री के सम्पर्क में आने के बाद किया ।'' **(1)**

हर्ष का व्यक्तिगत धर्म चाहे जो भी हो एक बात तो स्पष्ट है कि वह वैचारिक रूप से सर्वधर्म सम्भाव वाली निति का पालन करता था। वह वैष्णव धर्म के प्रति भी अनुरागी रहा तो बौद्ध धर्म के प्रति उसकी आस्था घनिष्ठ थी, बौद्ध धर्म के प्रति उसकी निष्ठा का पता इसी बात से चलता है कि उसके शासनकाल में अनेक बौद्ध विहारों का निर्माण हुआ तथा भिक्षुओं के प्रति वह विशेष आदर भाव रखता था। बौद्ध अनुयायी चीनी यात्री ह्वेनसांग को तो वह अपना गुरू मानता था। इसी सन्दर्भ में ''कन्नौज धर्म सभा के आयोजक की योजना हर्ष ने ह्वेनसांग से कजुघिर में प्रथम मुलाकात के बाद बना ली थी और इस आशय के सन्देश पहले ही कन्नौज में भिजवा दिए गए थे कि सभी धर्म व सम्प्रदाय के अनुयायी राजधानी में एकत्रित हों तथा चीनी यात्री द्वारा प्रस्तुत धर्म की व्याख्या पर विचार विमर्श करें। इस संदेश के बाद महाराज हर्ष ने अपने धर्म गुरू ह्वेनसांग तथा कामरूप का शासक भाष्कर वर्मा के साथ कन्नौज के लिए प्रस्थान किया तथा 90 दिन चलकर कन्नौज पहुँचे। हर्ष के आदेशानुसार इनके पहुँचने के पहले ही सभा की सभी तैयारियाँ पूरी कर ली गई थी। सभा भवन के समीप घास–फूस से निर्मित दो भवन बना लिए गए थे। प्रत्येक में 1000 आदमियों के बैठने का स्थान था। राज भवन में एक सिंहासन स्थापित था। जिस पर बुद्ध की मुर्ति प्रतिस्थापित की जाती थी। सिन्यू–की के अनुसार सभा के लिए गंगा नदी के पश्चिम की ओर एक विशाल संघाराम और पूर्वी ओर 30 मीटर (100) फुट ऊंची एक मीनार निर्मित करवायी गयी। इसके बीच भगवान बुद्ध की उतनी ऊंची जितना वह स्वयं था प्रतिमा बनवा कर स्थापित कर दी थी। '' **(2)**

यद्यापि कुछ विद्वानों द्वारा यह आक्षेप किया जाता है कि हर्ष की यह धर्म सभा का रूप एक पक्षीय था। अथवा केवल बौद्धधर्म के लिए एक प्रचार मात्र था। क्योंकि कई विद्वानों नें इस धर्म सभा में हिस्सा लेते हुए भी अपने विचारों को नहीं प्रस्तुत कर पाये। कारण चाहे जो भी हो लेकिन एक बात स्पष्ट हो जाती है कि हर्ष ने बौद्ध धर्म दर्शन के प्रचार और राजकीय संरक्षण देने में कोई कोताही नहीं किया।

हर्ष काल के साम्राज्य में सम्पन्नता थी। इसकी पुष्टि चीनी यात्री ह्वेनसांग के यात्रा विवरण से स्पष्ट हो जाता है। जिसमें वे अपने यात्रा काल में अनेक स्वर्ण निर्मित बौद्ध प्रतिमाओं को देखा था। बौद्ध विहारों के निर्माण में आम जन सहायता देते थे। जहाँ कहीं भी ह्वेनसांग गया लोगों ने उसका स्वागत उत्साह पूर्वक किया। उसे भेंट उपहार आदि दिए। लेकिन सिद्धान्तवादी भिक्षु ने दान लेने से सदा इन्कार

* शोध छात्र, प्राचीन इतिहास विभाग, बयालसी पी. जी. कालेज, जलालपुर, जौनपुर

किया। ह्वेनसांग के विवरण से पता चलता है कि प्रत्येक नगर में हिन्दू मंदिर तथा बौद्ध विहार था। इन मन्दिरों, मठों का धार्मिक, सामाजिक, शैक्षिक महत्व था। इन संस्थापनों का महत्व बढ़ रहा था तथा ये अधिक सम्पन्न होते जा रहे थे। ह्वेनसांग के पचास वर्ष बाद एक अन्य चीनी पर्यटक इत्सिंग भारत आया था। उसने लिखा है कि एक मठ के लिये यह अनुचित प्रतीत होता है कि यह काफी धन, सड़े–गले अनाज से भरा गोदाम, अनेक स्त्री–पुरुष सेवक तथा धन–धान्य से परिपूर्ण कोष रखे गये जिनका यहाँ कोई उपयोग नहीं करता।''(3)

ह्वेनसांग इत्यादि यात्रियों के विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि हर्ष का साम्राज्य सभी प्रकार के धन–धान्य से परिपूर्ण था। और बौद्ध विहारों तथा मन्दिरों में भी धन–सम्पदा की कोई कमी नहीं थी। हर्ष ने बौद्ध धर्म के उत्कर्ष में विशेष योगदान दिया तथा भूदान आदि से सहायता की। भूमिदान को अंकित करने वाले अनेक अभिलेख भी प्राप्त होते है। हर्ष कालीन चार अभिलेख प्राप्त होते हैं। भूमिदान पर अंकित करने वाले ताम्र पत्रों पर दो अभिलेख संस्कृत भाषा में उत्कीर्ण हैं। शेष दो अभिलेख मोहरों पर पाये गये हैं। इन चारों में पहला अभिलेख बामखेड़ा का ताम्रपाषाणिक लेख है। 1894 ई0 में उत्तर प्रदेश के शाहजहाँपुर में यह अभिलेख मिला था। इसके अनुसार राजा हर्ष ने आरिघभुक्ति के अंगीदिया का भक्तिसागर नामक गाँव सभी करों एवं अन्य भारों से मुक्त कर भारद्वाज गोत्रीय ब्रामहण बालचन्द्र और भट्ट स्वामी को दान किया। इस अभिलेख में हर्षवर्धन के मूल पुरुष पुण्यभूमि की चर्चा नहीं हैं । लेकिन नरवर्धन से लेकर राज्यवर्धन तक की सम्पूर्ण वंश परम्परा राजमाताओं के नाम के साथ मिलती है। प्रशासनिक इकाईयों के नाम अधिकारियों के पद और दान वाले गाँव पर लगाए जाने वाले राजकीय कार्यों की की चर्चा इस अभिलेख में है। मालवा के राजा देवगुप्त तथा अन्य राजाओं को राज्यवर्धन ने हराया और उनका वध कर दिया। हर्ष के पूर्व शासकों के विभिन्न आराध्य देवताओं और उनके धार्मिक विश्वासों की चर्चा भी इसी अभिलेख में हैं।

एक अन्य अभिलेख उत्तर प्रदेश के मऊ जनपद के मधुबन नामक स्थान से प्राप्त होता है। यह अभिलेख तथ्यात्मक रूप से बासखेड़ा अभिलेख की प्रतिकृति है। तथा नालन्दा से प्राप्त मुहर अभिलेख हर्षवर्धन से सम्बन्धित विशेष जानकारी नहीं देता है। चौथा अभिलेख अर्थात दुसरा मुहर दिल्ली के निकट सोनीपत से प्राप्त हुआ है। तत्कालीन ऐतिहासिक सामग्री की दृष्टि से यह स्त्रोत भी उपयोगी नहीं है। ये दोनों मुहरे गोलाकार तांबे की हैं । सम्भवतः दोनो मुहरें ताम्रफलकों के साथ लगी थी। लेकिन फलक अभी तक नहीं मिला है।

सोनीपत मुहर के ऊपर राज्यवर्धन से हर्षवर्धन तक की वंशावली अंकित है। इस पर सभी राजाओं के रानीयों के नाम भी अंकित हैं। (5)

कुछ अभिलेख समकालीन शासकों के भी प्राप्त होते हैं। जहाँ से हर्ष के विषय में जानकारी प्राप्त होती है परन्तु बौद्ध धर्म के सिद्धान्तों एवं दर्शन की दृष्टि से इन अभिलेखों का कोई महत्व नहीं है। धर्म और दर्शन से इन अभिलेखों का कोई लेना देना नहीं है। यद्यपि हर्षरचित रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका से समाज और धर्म की जानकारी प्राप्त होती है। तथा बौद्ध धर्म ग्रन्थ 'आर्यमंजूश्रीमूलकल्प' कुषाणों से लेकर नौवी शताब्दी तक की स्थित का पता चलता है। काशी प्रसाद जायसवाल ने इसे हर्ष कालीन कुछ बातों का स्रोत बताया है।

सन्दर्भ :

1. डॉ0 आर0 एन0 पाण्डेय, गुप्तोत्र भारत का राजनीतिक इतिहास एवं प्रमुख अभिलेख, प्रवालिका पब्लिकेशन, इलहाबाद 2018ए पृष्ठ– 32
2. वही, पृष्ठ – 33
3. डॉ0 सुरेन्द्र मिश्रा सम्राट हर्षवर्धन किताब महल, अशोक नगर, इलहाबाद, 2016, पृष्ठ–112 विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 2014, पृष्ठ–193
4. डॉ0 प्रशान्त गौरव पूर्व मध्यकालीन भारत, राजकमल प्रकाशन, दरियागंज, नई दिल्ली, 2016 पृष्ठ – 102
5. वही, पृष्ठ – 102

***

स्वतंत्रता पूर्व कथा-साहित्य में प्रतिबिम्बित भारतीय संस्कृति और ग्राम्य जीवन

डॉ. रेनू दुग्गल *

भारतीय संस्कृति के यथार्थ रूप का दर्शन हमें गांवो के जीवन में ही प्राप्त होता हैं। क्योंकि भारतीय आत्मा गांवों में निवास करती है। भारत के बहुआयामी रूप और आन्तरिक एकता को उसके ग्रामीण जीवन के बुनियादी गहराई के आधार पर जाना जा सकता हैं। भारती संस्कृति कृषि प्रधान संस्कृति है अतः स्वयतंत्रता पूर्व ग्राम ही सांस्कृतिक ईकाई थी। लेकिन औद्यौगिकरण के कारण दो वर्गो में विभाजित हो गई। ग्रामीण संस्कृति और शहरी संस्कृति। शहरी संस्कृति चमक–धमक और आधुनिक सुख सुविधाओं से परिपूर्ण थी, इसलिए वह ग्रामीण संस्कृति पर विशेष प्रभाव डालने लगी और ग्राम्य संस्कृति नष्ट होने लगी। रचनाकारों विशेषतः प्रेमचन्द्र जी के काल में रचनाकारों ने ग्राम्य संस्कृति की रक्षा का भरपूर प्रयास किया है। 'प्रेमाश्रय' तथा 'रंगभूमि' में यह स्पष्ट दिखता है। लेकिन आगे के उपन्यासों में रचनाकारों ने प्रगतिशील संसकृति चिन्तक बनकर शहरी संस्कृति का समर्थन किया है। दोनों ही संस्कृतियों में अतिवादी विचार समाविष्ट थे, पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण करने के कारण तथा पाश्चात्य संस्कृति शासक वर्ग की संस्कृति होने के कारण भारतीयों ने आंरभिक दौर में शहरी संस्कृति के प्रति निषेध की प्रवृत्ति अपनाई।

स्वतंत्रता के पूर्व जिन समाजिक, राजनैतिक और धार्मिक परिस्थितियों के बीच हिन्दी कथा–साहित्य ने अपना ताना–बाना बुनना आरम्भ किया उनमें वैचारिक प्रौढता के लिए समय नहीं था। प्रारम्भिक युग के कथाकारों के लिए जो मुख्य लक्ष्य थ, वह था हिन्दी कथा–साहित्य के लिए पाठक वर्ग का निर्माण करना, जिसके लिए आवश्यक था। उनकी रूचि के अनुरूप कथा–साहित्य का निर्माण। जिसमें देवकीनन्दन खत्री जैसे रचनाकारों ने सशक्त भूमिका निभाई और उनका उपन्यास 'चन्द्रकान्ता संतति' ने हिन्दी कथा–साहित्य को पढने के लिए प्ररित किया तथा बहुतो ने इसको पढने के लिए हिन्दी सीखी थी। इस दौर में इनका साथ किशोरीलाल गोस्वामी, गोपाल सिंह गहमरी ने प्रमुखता से दिया। साथ ही ब्रजनन्दन सहाय का 'लालचीन' तथा मिश्र बंधुओं का 'वीरमणि' आदि रचनाएं भी इस समय में प्रकाशित हुई। लेकिन उनमें सांस्कृतिक वातावरण या संस्कृति के बारे में किसी प्रकार का मौलिक चिन्तन दिखाई नहीं पड़ता।

हिन्दी भाषा के प्रचार के लिए आर्य समाजियों ने भी बड़ा उद्योग किया था। स्वतंत्रता पूर्व के कथाकारों की रचनाओं में भारतीय संस्कृति का वही रूप दिखाई पडता है, जो अठरहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी तक अपने तमाम विरोधाभासों के उपरान्त बना था। भारत प्रारम्भ में केवल हिन्दुओं का देश था। किन्तु अपने प्रारम्भिक रूप में हिन्दू इतना व्यापक था कि उसे धर्म न कहकर एक समाज की संज्ञा दी जा सकती हैं। इसी कारण हिन्दू धर्म के शुरूआती दौर में विकृति नहीं आयी और जो विदेशी आये, वे इससे प्रभावित हुऐ बिना नहीं रहे। भारतीय संस्कृति की भमिका डां0 देवराज ने लिखा है कि–इस देश की धरती पर किसी दुसरे धर्म ने जीवन के सम्बन्ध में उतना पूर्ण और व्यवस्थित चिंतन नहीं किया, जैसा कि हिन्दू धर्म ने, किसी दूसरे धर्म में जीवन की, हिन्दू धर्म से होड़ लेने लायक व्यापक व्यवस्था एवं अभिव्यक्ति भी नहीं हो सकी।[1]

उन्नीसवी शताब्दी के अन्त में भारतीय समाज के सामने वैज्ञानिक प्रगति के परिणामस्वरूप पश्चिमी आविष्कार का पदार्पण हुआ जिसे उन लोगों ने विस्मयपूर्ण ढंग से देखा। जिसका परिचय देते हुए 'पनचक्की', धुँआचक्की, सूत काटने के कल, वस्त्र बुनने की कल, लोहा ढालने की कल आदि का वर्णन श्रीनिवरसदास ने किया है। उन्नीसवीं शताब्दी में जो सांस्कृतिक क्रान्ति हुई उसमें 'मैक्समूलर' के कार्यो को नहीं भुलाया जा सकता जिसने भारत की प्राचीन गरिमा की अभूतपूर्व वृद्धि की। जिसके साथ भारतीय लेखकों ने भी प्राचीन भारत के महत्व को उद्घाटित, व्याख्यायित और विश्लेषित किया जिसमें

* सह-आचार्य, हिन्दी-विभाग, श्री गुरू नानक देव खालसा कॉलेज, देव नगर करोल बाग, दिल्ली, दिल्ली विश्वविद्यालय

राष्ट्र का गौरव और बढा। जिसके कारण किसी उच्चतर सभ्यता और संस्कृति के वंशज कहलाने का हक प्राप्त हुआ।

प्रेमचन्द्र जी के कथा–साहित्य में ग्रामीण समाज के धार्मिक एवं सांस्कृतिक जीवन की विचित्रता में एकता की उस समग्र भावना की सहज अभिव्यक्ति हुई है–जैसा कि दिनकर ने कहा है–भारतीय संस्कृति अनेक संस्कृतियों के योग से बना मधु है और उसके ऊपर आर्यो का प्रभाव बहुत स्पष्ट है, किन्तु आर्यो का महत्व उतना ही है जितना मघु निर्माण में मधुमक्खियों का।[2] प्रेमचन्द्र ने बीसवीं सदी के पूर्वाद्ध की भारतीय ग्रामीण संस्कृति और धार्मिक आस्था का सम्पूर्ण चित्र अपने उपन्यासों और कहानियों में किया है। प्रेमचन्द्र ने अपने जीवन काल में गांवों में घोर अंधविश्वास, अशिक्षा और निर्धनता का विराट रूप देखा था, साथ ही परम्परावाद, जातिवाद, ब्राह्मणवाद, छुआछूत, बाल–विवाह, ग्रामीण सभ्यता में हावी कुप्रथाओं का नग्न तांडव देखा। परोपजीवी सामन्त और पारस्परिक पूज्य पंडितो के बीच घुट–घुट कर मरता विशाल जन–समूह को देखा जो मुट्ठी भर चबेना खाकर विवश, पाराधीन और पदद्लित जीवन जीने को बाध्य है। इन दृश्यों का मूर्तरूप उनकी रचनाओं में दिखाई पडता है। 'वरदान' और 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द्र ने धर्म और संस्कृति की जड़ता व गतिहीनता को समाप्त कर धर्म के शाश्वत, शीतल और जीवनदायक स्वरूप को दिखाने का प्रयत्न किया है, जिसमें ग्रामीण जन उलझकर छटपटा रहे है। 'वरदान' में निरंजन द्वारा लिखे गये पत्रों में उस दूसरे संसार के सदस्यों का उद्घाटन किया, जहां भूतों का साम्राज्य है (ढोगियों और पाखंडियों का साम्राज्य) जहां इसकी एक गरीब पात्र तुलसा, संतोष का प्रसाद पाकर संतुष्ट हैं, वही महाजन रामदीन तथा पंडित जी जैसे आमानव भी जो महज बीस रूपये के लिए ठीक होली के दिन उसके पति को जेल भिजवा देते हैं। इसी उपन्यास में जमींदार के कारिदों की क्रूर कहानी का वर्णन करते हुए प्रेमचन्द्र कहते है कि–एक ओर अनर्थकारी दुर्दैव की विनाशलीला के चलते पूरी खेती नष्ट–भष्ट हो चुकी है और दूसरी ओर लगान उगाहने के क्रम में मार–पीट, गाली–गलौज, धर–पकड़ के द्वारा किसानों को आतंकित करते है। वे गाय को खूंटे से खोलकर और उन्हें कसाइयों के हाथ बेचकर कटवा देने में भी कतई नहीं डरते हैं। विश्वास नहीं होता कि ये भी उसी हिन्दू समाज के लोंग हैं जहां गाय को माता का पवित्र स्थान दिया गया है।[3]

प्रेमचन्द्र के कथा–साहित्य में ग्राम्य जीवन का जो रूप उभरकर सामने आता है, उसमें उस समय की समाजिक परिस्थितियां मुख्य रूप से शामिल थी। आर्थिक स्थिति और महाजनी सभ्यता को केन्द्र बनाकर उन्होंने 'प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि' और 'गोदान' जैसी रचनाऐ लिखी जो 'कर्मभूमि' में आर्थिक मंदी का विवरण दिया है। 'डामूल का कैदी' में मजदूर के जागरण का संकेत मिलता है। 'पंच–परमेश्वर' जैसी कहानियों भारतीय ग्राम व्यवस्था के गौरव को प्रकट करती है। रंग–भूमि गांव के छिन्न–भिन्न होकर औद्योकि सभ्यता के आगमन की सूचना देता है और 'गोदान' पूँजीवादी सभ्यता के सारे कलंक को प्रकट करता है। 'मंगलसूत्र' साम्यवाद के आगमन की सूचना देता है।

प्रेमचन्द्र ने अपनी कहानियों में समाज के निम्न वर्ग की अनेक समस्याओं, जीवन के विविध रूपों आदि को प्रस्तुत करते हुए अपने आदर्शवादी दृष्टिकोण का संकेत दिये है। उन्होंने समाज के हर वर्ग तांगे वाला, किसान, श्रमिक, विद्यार्थी, वकील, महाजन, सामंत, अधिकारी आदि के विभिन्न रूपों को अपनी कहानियों के माध्यम से सफलतापूर्वक चित्रित किया है। उनकी प्रसिद्ध कहानियों में 'पंच–परमेश्वर', 'बडे घर की बेटी', 'ईदगाह', 'नमक का दरोगा', 'पूस की रात,' 'कफन', आदि का नाम है। 'ईदगाह' में प्रेमचन्द्र ने माता–पिता के उत्तरदायित्वहीनता, भारतीय शिक्षा और भारतीय घर का सच्चा चित्रण किया है। 'पूस की रात' और 'बलिदान' नामक कहानियों में ग्रामीण सजा और निर्धन कृषक के चहमुखी शोषण का चित्रण प्रस्तुत किया है। 'कफन' कहानी मं अर्थ दबाव, पति–पत्नि, पिता–पुत्र के भावनात्मक संबंधों को तोडता हुआ समाज में व्याप्त नैतिकतावादी धारणाओं की खिल्ली उड़ाता है।

प्रेमचन्द्र का विशाल कहानी साहित्य मानव–प्रकृति, मानव–इतिहास तथा मानवीयता के हृदयस्वर्शी एवं कलापूर्ण चित्रों से परिपूर्ण हैं। संस्कृतिक उन्नयन, राष्ट्र सेवा, आत्म गौरव आदि के सजीव चित्र के साथ–साथ मानव के वास्तविक स्वरूप को उभारने में उन्हे प्रसिद्धि हासिल की।

ग्राम्य–जीवन में कृषि का अपना बहुत महत्व है क्योंकि गांव की अस्सी फीसदी आबादी इसी पर निर्भर होती हैं। लेकिन भारतीय कृषि अधिकांशतः प्रकृति पर आधारित थी। भारतीय कृषक के लहलहाते फसल को देखकर मन में उठे आह्लाद का वर्णन करते हुऐ प्रेमचन्द्र कहते है 'सिपाही को अपनी लाल पगडी पर, सुन्दरी को गहने पर और वैद्य को अपने सामने बैठे हुऐ रोगियों पर घमंड होता है, वही किसान को अपनी खेतों को लहलहाते देखकर होता है।4 भारतीय किसानों की हालत बहुत दयनीय थी। उनकी कृषि और कृषि उत्पाद दोनों पर महाजनों का आधिपत्य थां 'कर्मभूमि' और 'प्रेमाश्रय' में लगान उगाहने में किसानों के साथ किये जाने वाले अत्याचारों का विस्तृतवर्णन किया गया है। टूटते हुऐ संयुक्त परिवार, समाज और धार्मिक मान्यतायें, अशिक्षा, ग्रामीण रहन–सहन और खान–पान, उत्सव, अतिथि सत्कार, पशुओं के प्रति अनुराग आदि विषयों पर उन्होंने अपनी सहज दृष्टि डाली है। सम्बन्धित समस्याओं को भी उठाया है और समाधान प्रस्तुत करने का कहीं–कहीं प्रत्यन्न भी किया है। इसलिए उन्हें ग्राम्य जीवन का श्रेष्ठ चित्रकार कहना अनुचित नहीं होगा।

जयशंकर प्रसाद जी के उपन्यास 'कंकाल' और तितली दोनों में भारतीय संस्कृति की समाजिक दुर्दशाओं को दूर करने का प्रयत्न दृष्टिगोचर होता है। इसमें 'तितली' उपन्यास में भारतीय आदर्शो तथा संस्कृतियों से समलित तितली की गौरवमयी भूमिका प्रस्तुत की है। इसमें प्रसाद जी हिन्दू धर्म और हिन्दू संस्कृति के अन्तर को स्पष्ट करते है। जिसमें तितली शैला को समझाते हुए कहती हैं 'तुम धर्म के बाहर आवरण से अपने को ढक कर हिन्दू स्त्री बन गयी हो, किन्तु उसकी संस्कृति की मूल शिक्षा को भूल रही हो। हिन्दू स्त्री का श्रद्धापूर्ण समर्पण उसकी साधना का प्राण हैं। इस मानसिक परिवर्तन को स्वीकार करो।[5] यहां वास्तव में मानसिक परिवर्तन से प्रसाद जी का तात्पर्य भारतीय संस्कृति को आत्मसात् करने से है। पाश्चात्य एवं भारतीय संस्कृति (शैला और तितली) के अन्तर को स्पष्ट करते हुऐ बताते हैं, कि पश्चिमी संस्कृति जहां व्यक्तिपरक हैं, वही भारतीय संस्कृति समाजपरक। जहां प्रसाद जी स्पष्ट करते है–तितली वास्तव में महीयसी है, गरिमामयी, है। शैला वह अपने लिए सब कुछ कर लेगी किन्तु स्त्री का दूसरा पक्ष पति ! उसके न रहने पर भी उसकी भावना को पूरी करते रहना शैला से न हो सकेगा। वह अपने पैरों पर खडी हो सकती है, किन्तु दूसरों को अवलम्ब नहीं दे सकती।[6] तितली को आत्मसंयम एवं साहस, पवित्र प्रेम की आस्था और नैतिक दृढता को लेकर नियति और समाज से संघर्ष करते हुए, कठोरतम कष्टो को झेलकर आदर्श भारतीय नारी के रूप में प्रस्तुत किया है। जिसके साथ गांव से संबद्ध अनेक विषम परिस्थितियां, जमींदार व तहसीलदार की चतुराई, ग्रामीण जनता की निर्धनता और सरलता स्वार्थपरता और दुर्बलता पर भी यथेष्ट प्रकाश पड़ा है।[7]

विश्वम्भरनाथ शर्मा कौशिक की रचनाओं में मां के वात्सल्य और स्नेह के चित्रण के साथ–साथ त्याग की गहरायी भी समाहित है, जो केवल भारतीय संस्कृति में ही मिलती है। उनके उपन्यास में 'मां' और –भिखारिणी' दोनों समाजिक उपन्यास है। 'भिखारिणी में जस्से के त्यागपूर्ण, वासनारहित प्रेम और नागरिक युवक रामनाथ के प्रेम के अस्थिरूप को प्रस्तुत किया है। इस कहानी में जस्से भिक्षावृत्ति को बुरा समझती है किन्तु अन्त में अपना सारा संपति दान कर देती है और भिक्षावृत्ति को पुनः स्वीकार कर लेता है। इस प्रकार हम समझ पाते है कि शैली जी की दृष्टि ग्रामीण कला कुशलता और समाज का दृष्टिकोण पर उनका स्थान उच्च है।

भगवतीशरण वर्मा ने भी स्वतंत्रतापूर्व 'आखिरी दांव' और 'भूले बिसरे चित्र' में ग्रामीण जीवन शैली को प्रस्तुत किया है। 'आखरी दांव' में वर्मा जी ने गांवों में कृषि और लघु उद्योग के असंतुलन से उत्पन्न निर्धनता और धन की पिपासा को चित्रण किया है। यहां लेखक ने ग्रामीण युवक रामेश्वर को धनलोलुप और ग्रामीण नारी चमेली को ग्राम्य संस्कार से संस्कारित दिखाया हैं चमेली शहर में रहने के बाद भी सरलता शेष है। इसलिए वह रामेश्वर की हर संभव मदद करती है और अतंतः गोली की शिकार होकर प्राण त्याग देती है।

सियारामशरण गुप्त ने भी 'गोद', 'अंन्तिम आकांक्षा', और 'नारी' तीनो उपन्यास ग्रामीण जीवन शैली पर आधारित है। 'गोद' उपन्यास में विधवा कौशल्या की पुत्री मेले में खो जाने और एक दिन स्वयंसेवक द्वारा घर पहुंचाना। समाज के लिए अभिश्राप बन जाता है। लेकिन इस घटना के बाद लोंग निन्दा के शोभाराम (किशोरी के मंगेतर) का सरल स्वभाव बडा भाई दयाराम विवाह सम्बन्ध नहीं करता है । बाद में शोभाराम साहस करके किशोरी से विवाह करता है किन्तु अपना घर छोड़कर मुखिया के घर रहने लगता है। मुखिया के कहने पर आधी संपत्ति पर मुकदमा दायर कर देता है। लेकिन अन्त में अपराध बोध होने पर पुनः अपने भाई दयाराम के पास लौट जाता है। इस उपन्यास में गुप्त जी ने ग्रामीण समाज की नैतिक भावना के क्षीण आधार का चित्रण किया है। सदाचार के विषय में ग्रामीण समाज कितना कठोर है, इस बात का प्रमाण इससे होता है कि तनिक से संदेह पर किशोरी के जीवन की बलि देने में भी उसे आपत्ति नही। इस उपन्यास में उसके बडे भाई दयाराम के सरल–स्वभाव का आभास शोभाराम के इस कथन से मिलता है–'अपराध' तो मैंने बहुत बडा किया है परन्तु जिस प्रकार मेरी प्रकृति दादा के निकट अपराध करने की हो गई है उसी प्रकार निरन्तर क्षमा करते–करते उनकी प्रकृति भी क्षमाशील हो गई है।8

शिवपूजन सहाय जो खुद भी ग्रामीण क्षेत्र से हैं जिसके बारे में वे स्वयं कहते हैं 'मैं ऐसे ठेठ देहात का रहने वाला हूँ जहां इस युग की नई सभ्यता का बहुत ही धुंधला प्रकाश पहुंचा है। वहां केवल दो ही चीजे पर्याप्त देखने में आती है, अज्ञानता का घोर अंधकार और दरिद्रता का तांडव नृत्य। वहीं पर मैने जो कुछ देखा, सुना उसे यथैव अंकित कर दिया।9 शिवपूजन सहाय के उपन्यास 'देहाती दुनियां' में विभिन्न वर्गो के लोगों के स्वभाव, जीवन और क्रिया–कलाप का चित्रण किया गया है। ग्रामीण जन जीवन में व्याप्त अशिक्षा और दरिद्रता का चित्र भी प्रमुख रूप से उभरा है। इसमें भोलानाथ जमींदार रामटहल सिंह, पुजारी पशुपति पाण्डेय आदि जैसे मध्यवर्गीय पात्र के अलावा खेदु कहार, विधिया, सूरदास, पल्टू चमार जैसे निम्न वर्गीय पात्र भी हैं जिन्होंने चरित्रिक विशेषताओं और क्रियाओं के द्वारा अपना एक अलग स्थान बनाया है। इसके अलावा जमींदारों के अत्याचार पुत्र के प्रति माता का वात्सल्य भाव छोटी जाति की सित्रियों का यौंन–शोषण, बेटी बेचकर जीविका चलाने की रीति, पुजारी के ढकोसले, सित्रियों के छद्म–चित्रण, अधिकारियों का भ्रष्टाचार और वेश्याओं का शरीर व्यापार आदि का वर्णन व चित्रण ढीले–ढाले ढंग से किया है। शिवपूजन सहाय ने देहाती जीवन के समाजिक तथा सांस्कृतिक पक्ष का यर्थाथ चित्र इसमें प्रस्तुत किया है। किसानो का आपसी वैमनस्य, खलिहान जलाने की घटना, भिखारियों का जीवन, मुसलमान विधवा चित्रण, भेष–भूषा, रहन–सहन, रीति–रिवाज, आदि का विसतार से वर्णन किया है। मां की वात्सल्यमयी प्रेम का भी चित्रण हुआ है, जब मां कहती है 'मेरा बेटा बिना पढे ही रहेगा। जीता बचेगा तो बहुत पढेगा। हमें उसकी जिन्दगी की भूख है, कमाई की नहीं।10 लेकिन पिता द्वारा इसका विरोध किया जाता है। ग्रामीण विश्वास का एक चित्र भोलानाथ के माता–पिता के क्रिया–कलाप में मिलता है। जब अपने पुत्र की मंगलकामना हेतु मां मनौती मांगती है और पिता पूजा–पाठ करता है। इस प्रकार शिवपूजन सहाय के उपन्यासों में ग्राम्य जीवन की समाजिक तथा धार्मिक चित्रण मिलता है।

सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' जी ने भी इस दौर में हिन्दी कथा–साहित्य को 'कुल्ली भांट' और बिल्लेसूर' जैसे उपन्यासों तथा ग्राम कथा के क्षेत्र में प्रेमचन्द्र परम्परा में 'देवी' और 'चतुरीचमार' नामक महत्वपूर्ण कहानी लिखि है। इसके अलावा 'अप्सरा' 'अलका' एवं 'प्रभावती' जैसे उपन्यासों की रचना भी इन्होंने की है। जिसमें भारतीय परिवार की पवित्रता का सार्थक भाव दिखाइ पढ़ता है। निराला जी द्वारा रचित उपन्यास 'बिल्लेसुर' बकरिहा' में बैसवाडे के कुलीन ब्राह्मण पुत्र विल्वेश्वर सुकुल के जीवन, हठ, उपराजेयता, कर्मठता, दिखावा, जीवनभर अपनी वास्तविकता के प्रति भ्रम का निर्वाह, दरिद्रता, कमाई के लिए प्रदेश गमन आदि अनेक विशेषताओं तथा घटनाओं से होकर तमाम असंगतियों, कठिनाईयों और समस्याओं से जूझते ठेठ देहाती व्यक्ति का चित्रण है। इस उपन्यास में निराला जी ने गांव के मनोविज्ञान, व्यवहार और आपसी संबंध पर व्यंग किया है। ठेठ देहाती के गंवार, चाहें ऊँची जाति के हो या नीचि जाति के, प्रजा वर्ग के हो या जमींदार वर्ग के, सभी आर्थिक आधार पर अपने संबंधों की

बुनियादी कायम रखते है। इस उपन्यास की रचना के पीछे लेखक की मंशा पिछड़े कृषक वर्ग की मानसिकता, निर्धन व्यक्ति के संस्कार, विश्वास और व्यवहार का यथार्थवादी चित्रण करते हुऐ आम आदमी के मुढाग्रहों का कच्च–चिट्ठा खेलना ही जान पडता है।

निष्कर्ष रूप में कहा जा कसता है कि स्वतंत्रता के पूर्व हिन्दी कथा–साहितय में जीवन के हर क्षेत्र का कोना स्पर्श किया है। समाज में होने वाले हर परिवर्तन तथा संघर्ष की ओर जीवन में उठने वाली प्रत्येक समस्याओं को समाज की हर गतिविधियों को, मनुष्यों की मन की हर पीडा व दर्द को अपनी संवेदना देकर उसे मूर्तिर्मता प्रदान की है। इन कहानियों में कहीं जीवन की नवीन गति की सूचना मिलती है, तो कही भारती संस्कृति की ऐतिहासिक, समाजिक चेतना के दर्शन होते है। कोई प्रेमचन्द्र परम्परा का लेखन समाज और जीवन का सर्वागीर्ण चित्रण किया है, तो कहीं प्रेमचन्द्र स्वयं पाठकों को समाज के हर वर्ग की स्थिति एवं क्रियाकलाप से रू–ब–रू कराते हैं इस समय के कथाकार इस युग की विभूति है।

संदर्भ :

1. डॉ0 देवराज, भारतीय संस्कृति, पृ0 19
2. रामधारी सिंह दिनकर, संस्कृति के चार अध्याय, पृ0 240
3. प्रेमचन्द्र, वरदान, पृ0 24
4. प्रेमचन्द्र, मुक्ति मार्ग मानसरोवर भाग–3, पृ0 235
5. जयशंकर प्रसाद, तितली, पृ0 267
6. वही, पृ0 257
7. वही, पृ0 91
8. सियाराम शरण गुप्त, गोद, पृ0 143
9. शिवपूजन सहाय, देहाती दुनिया, पृ0 55
10. वही, पृ0 56

***

'न्यायदर्शनानुसारेण बन्धमोक्षयोः स्वरूपम्'

डॉ. जया मिश्रा *

इह खलु भारतीयदार्शनिकैर्धमार्थकाममोक्षारव्येषु चतुर्विधपुरुषार्थेषु मोक्ष एव परमपुरुषार्थ इत्यभ्युपगम्यते। अयं च अपवर्गः, निर्वाणम् , निःश्रेयसम् , मुक्तिः, कैवल्यं इत्यादि अनेकनामभाग् भवति।

मुक्तिः कैवल्यनिर्वामश्रेयोनिःश्रेयसामृतम्।
मोक्षोऽपवर्गोऽथाज्ञानमविद्याहंमतिः स्त्रियाम्।।

(अमरकोशः 1/5/6–7)

तत्र ''अपकृष्टा वर्गा धर्मार्थकामा यस्मात् स अपवर्गः'', ''निर्गतो वाणस्तापो यस्मात् तन्निर्वाणम्'', नास्ति श्रेयो यस्मादधिकं तन्निःश्रेयसम्'', यद्वा ''निश्चितं श्रेयो निःश्रेयसम्'', ''मुच्यते सर्वेदुःखबन्धनैर्यत्र स मोक्षः'', ''केवलस्य भावः कैवल्यम्'' इत्यादिपर्यायनामधेयानां व्युत्पत्त्या मोक्षस्य परमपुरुषार्थत्वं ध्वन्यते। अतएव भगवता कृष्णद्वैपायनेन –

''इति संसारदुःखार्क–ताप–तापित–चेतसाम्।
विमुक्तिपादपच्छायामृते कुत्र सुखं नृणाम्।।

(विष्णु पुराण 6/5/57)

इति मोक्षस्योत्कृष्टता प्रदर्शिता।

इह खलु सर्वाव्यपि दर्शनानि चरमलक्ष्याय मोक्षाय प्रवर्तमानान्येव दरीदृश्यन्ते। तत्स्वरूपं तत्प्राप्त्युपायं च सर्वे दार्शनिकाः स्वस्वमत्यनुसारं विवेचयन्ति। तत्र महर्षिणा गौतमेन – **''तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः''** (न्यायसूत्र 1/1/22) इति सूत्रेण दुःखानां दुःखसाधनानां चात्यन्तिकी निवृतिर्मोक्ष इति तत्स्वरूपम्, ''प्रमाण–प्रमेय–संशय–
प्रयोजन–दृष्टान्त–सिद्धान्त–अवयव–तर्क–निर्णय–वाद–जल्प–वितण्डा–हेत्वाभास– च्छल–जाति–निग्रहस्थानानां तत्त्वज्ञानान्निः श्रेयसाधिगमः। (न्यायसूत्र 1/1/1)।

''दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तराभावादपवर्गः।'' (न्यायसूत्र 1/1/2)। इति सूत्रद्वयेन षोडशविधपदार्थानां तत्त्वज्ञानेन क्रमशः सर्वेषां दुःखप्रवृत्त्यादीनामात्यन्तिकी निवृतिः, ततश्चापवर्ग इति तत्प्राप्त्युपायश्च प्रतिपादितः।

बन्धस्वरूपम्

मिथ्याज्ञान–दोष–प्रवृत्ति–जन्म–दुःखानां निवृत्तिरेवापवर्ग इति स्वीकारान्मिथ्या–ज्ञानादिदुःखान्तप्रमेयमेव बन्ध इत्युच्यते। तत्रापि मिथ्याज्ञानस्यैव सर्वानर्थहेतु– भूतत्वान्मिथ्याज्ञानमेव मुख्यो बन्ध इति वक्तुं शक्यते। मिथ्याज्ञानं नाम तत्त्वज्ञानविपरीतमतस्मिन् तद्बुद्धिरूपम्। तदुक्तं वार्तिककारेण – **''अस्तित्वेनाधिगते नास्तीति विज्ञानं मिथ्याप्रत्ययः''** इति। (न्यायसूत्र वा. 1/1/2)

यथाऽऽत्माऽहङ्कारस्य विषयस्तथा शरीरेन्द्रियाण्यपि 'गौरोऽहम्', 'काणोऽहम्' इत्यादिरूपेणाहङ्कारविषयाणि भवन्ति। एवात्मानात्मनोरहङ्कारविषयत्वस्य सारूप्यात् सम्भवत्येवानात्मन्यात्मेति विपर्ययः। भाष्यकृता वात्स्यायनेनापि तत्त्वज्ञानविपरीतस्य मिथ्याज्ञानस्यानेकविधत्वं प्रदर्शितम्। तथाहि – **''आत्मनि तावन्नास्तीति, अनात्मन्यात्मेति दुःखे सुखमिति, अनित्ये नित्यमिति, अत्राणे त्राणमिति, सभये निर्भयमिति, जुगुप्सितेऽभिमतमिति, हातव्येऽप्रतिहातव्यमिति''** इति। (न्या0सू0भा0 1/1/2)

उक्तेन मिथ्याज्ञानेन हि दोषाः सम्भवन्ति। दोषत्वं नाम ''प्रवर्तनलक्षणा दोषाः'' (न्या0सू0 1/1/18) इति सूत्रलक्षितप्रवृत्तिप्रयोजकरूपत्वम्। प्रवर्तना प्रवृत्तिः, सा लक्षणमेतेषामिति प्रवृत्तिलक्षणा दोषाः। दोषवतामेव पुंसां पुण्यपापादिषु प्रवृत्तिर्दृश्यते। तेषां दोषाणां त्रयो राशयो भवन्ति– रागो द्वेषो मोह इति। यद्यपि तृष्णाऽसुयाऽमर्षादयोऽनेक दोषाः सम्भवन्ति, अथापि ते सर्वे त्रिष्वेवान्तर्भवन्ति। तदुक्तं महर्षिणा गौतमेन – **''त्रैराश्यं रागद्वेषमोहार्थान्तरभावात्''**। (न्या0सू0 4/1/3) इति। दोषान्तराणां त्रैराश्यान्तर्भावः

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

श्रीजयन्तभट्टेन एवं प्रदर्शितः– **"कामो मत्सरः स्पृहा तृष्णा लोभ इति पञ्चप्रकारो रागपक्षः।"** स्त्रीसंभोगेच्छा कामः, यदन्यस्मै निवेद्यमानमपि वस्तु धनवन्नं क्षीयते तदपरित्यागेच्छा मत्सरः, अनात्मीयवस्त्वादित्सा स्पृहा, पुनर्भवप्रतिसन्धानहेतुभूतेच्छा तृष्णा, निषिद्धद्रव्यग्रहणेच्छा लोभ इत्यभिलाषप्रकारभेदाद् रागपक्ष एवायम्।

द्वेषपक्षोऽपि पञ्चविधः – क्रोधेर्ष्यासूयाद्रोहोऽमर्ष इति। अक्षिभ्वादिविकारहेतुः प्रज्वलनात्मकः क्रोधः, साधारणेऽपि वस्तुनि परस्य दर्शनाद्यसहनमीर्ष्या, परगुणेष्वक्षमाऽसूया, परोपकारो द्रोह, अदर्शितमुखादिविकारः परं प्रति मन्युरमर्ष इत्यसहनप्रकारभेदादेवः द्वेषपक्षः।

मोहपक्षस्तु चतुर्विधः – मिथ्याज्ञानम्, विचिकित्सा, मानः, प्रमाद इति। अतस्मिंस्तदिति ज्ञानं मिथ्याज्ञानम्, किंस्विदिति विमर्शो विचिकित्सा, असद्गुणाध्यारोपेण स्वोत्कर्षबुद्धिर्मानः, कियदेतदित्यवज्ञया कर्तव्याकरणं प्रमादः, स एव मद इत्याख्यायते। सोऽयं तत्त्वापरिज्ञानप्रकार भेदान्मोहपक्षः" इति।

अत्र बन्धरूपेषु दुःखादिषु पञ्चसु तत्त्वज्ञानेनोत्तरोत्तराणामभावे सति तदव्यवहितपूर्वपूर्वाणामभावेस्ततश्चापवर्ग इति नैय्यायिकाः प्रतिपादयन्ति।

तत्त्वज्ञानस्वरूपम् – तत्त्वज्ञानान्निःश्रेयसाधिगम इति सूचितम्। किमिदं तत्त्वज्ञानं नामेत्याकाङ्क्षायामुक्तं भगवता वात्स्यायेन – **"तत्त्वज्ञानं तु खलु मिथ्याज्ञानविपर्ययेण व्याख्यातम्। आत्मनि तावदस्तीति, अनात्मन्यनात्मेति, एवं दुःखे, अनित्ये, अत्राणे, सभये, जुगुप्सिते, हातव्ये च यथाविषयं वेदितव्यम्"** – (न्या0सू0भा0 1/1/2) इति। किञ्च – **"अस्य तु तत्त्वज्ञानादवर्गो मिथ्याज्ञानात् संसारः"** (न्या0सू0भा0 1/1/9) इति प्रमेयसूत्रस्य भाष्ये वात्स्यायनेन सकलप्रमेयज्ञानस्यैव मुक्तिहेतुत्वं सूचितम्। इदं हि तत्त्वज्ञानम् – **"श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासनम्" इति श्रुत्यनुसारेण श्रोत्रियब्रह्मनिष्ठ– गुरुमुखात् – अविनाशी वा अरेऽयमात्माऽनुच्छित्तिधर्मा"** (वृ0उ0 3/4/10) **"न जायते म्रियते वा विपश्चित् (कठो0 2/1/180), अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो ....."** (भ0गी0 2/20,24) इत्यादिश्रुतिवाक्यरूपम्। सूत्रकारो भगवान् गौतमः – **"समाधिविशेषाभ्यासात् (4/2/38) "अरण्यगुहापुलिनादिषु योगाभ्यासोपदेशः"** (4/2/42), तदर्थ यमनियमाभ्यामात्संस्कारो योगाच्चाध्यात्मविध्युपायैः" (4/2/46) इत्यादिश्रुतेः केवलं पुस्तकीयज्ञानं नापवर्गहेतुः किन्तु साक्षात्कारात्मकम्। अत आपातत उत्पन्नज्ञानः पुरुषोऽरण्य –पर्वत–गुहा–नदीपुलिनादिनिर्जनैकान्तप्रदेशेषूपविश्य यम–नियम–आसन–प्राणायम–प्रत्याहार–धारणा–ध्यान–समाधिरूपैराष्टाङ्गैः पूर्वोत्पन्नमदृढं तत्त्वज्ञानं दृढीकर्त्तव्यमिति धिया मुक्तये तत्त्वज्ञानेन साकं तत्प्रवृद्धिकारकं योगाभ्यासमप्यवश्यं कुर्यादिति प्रतिपादितवान्। वस्तुतस्तु न्यायदर्शने तत्त्वज्ञानादेव मोक्षसिद्धिः योगाङ्गानि परशिवभक्त्यादिकं च तत्त्वज्ञानोत्पत्तौ सहायकानीति पर्यवस्यति।

मोक्षस्वरूपम् –

किं पुनः तत्त्वज्ञानप्राप्योऽयमवर्गः किं स्वरूपः? कीदृशी च मुक्तस्य स्थितिः ? इति जिज्ञासायामुक्तं महर्षिणा गौतमेन – 'तदत्यन्तविमोक्षोऽपवर्गः (1/1/22) इति। शरीरादिभेदभिन्नस्य दुःखस्यात्यन्तिकी निवृत्तिमोक्ष इति सूत्रार्थः। अत्र क्रमशस्तत्त्वज्ञानेन मिथ्याज्ञानस्य नाशः, तेन रागादिदोषाणां नाशः, तेन प्रवृत्तेरनुत्पादः, तेन जन्मानुपादः, तेन च शरीराद्यकविंशतिदुःखानुत्पाद इति। तदुक्तं सूत्रकारेण –

''दुःखजन्मप्रवृत्तिदोषमिथ्याज्ञानानामुत्तरोत्तरापाये तदनन्तरापायादपवर्गः(1/1/2) इति।

मुक्तिस्वरूपनिरूपणावसरे सूत्र–भाष्यकारा दुःखानामत्यन्तोच्छेदमात्रं मोक्षं मन्यते। नित्यसंवेद्यमानेन सुखेन विशिष्टाऽत्यन्तिकी दुःखनिवृत्तिरिति कथनाद् भासर्वज्ञस्य विकासात्मकोऽयमभिप्रायो यद्यपि सुचारू प्रतिभाति, अथापि विचारोऽयं प्राक्तननैय्यायिकैर्न स्वीकारार्हो वर्तते। यतो हि न्यायनये ज्ञानमानन्दो वा आत्मन आकस्मिको गुणः। जीवन्मुक्ति विदेहमुक्तिविषये न्यायदर्शने सञ्चितकर्मणो भोगेनैव क्षय इति स्वीकारात् तत्त्वज्ञानेन साकं योगसिद्धिरप्यावश्यकी। केचित्तु **"क्षीयन्ते चास्य कर्माणि तस्मिन् दृष्टे परावरे"** (मुण्ड0 2/2/8), **"ज्ञानाग्निः सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुते तथा"** (भ0गी0 4/37) इति श्रुति श्रुति–स्मृतिप्रमाणेन सञ्चितकर्मणः क्षयस्तत्त्वज्ञानेनैव सम्भवतीति प्रतिपादयन्ति। **"नाभुक्तं क्षीयते कर्म"** इत्यस्य त्वकृतप्रायश्चित्तस्यातत्त्वज्ञस्य च पुरुषस्य कर्मक्षयो भोगं विनैव न सम्भवतीति, यद्वा प्रारब्धकर्मणां क्षयो भोगमन्तराऽसम्भव इत्यर्थं व्यवस्थापयन्ति।

तदेवं जीवात्मानो यदा सद्गुरूपदेशतः समस्तपदार्थतत्त्वज्ञानं प्राप्य निषिद्धकर्मवर्जं निष्कामभावेन शुभकर्मणामनुष्ठानं विदधते, तदा नवीनसुखदुःखबीजानुत्पत्तेः पूर्वसञ्चितपापपुण्ययोर्भञ्जूषायाश्च तत्त्वज्ञानेन भोगेन वा रिक्तत्त्वाद् जीवस्यादृष्टकारितं मनःसम्बन्धरूपं बन्धनं त्रुट्यति, जीवश्च मुक्तो भवति। मनोऽपि तस्मिन् समये जडतां धारयति। न तस्मिन्नात्मना सह कार्यकरणे काचिच्छक्तिरवशिष्यते। एवमात्मनो मनसश्चपाषाणवज्जडरूपतापत्तिरेव मोक्ष इति नैय्यायिकानामैदम्पर्यम्।

***

'रेणु' के समकालीन कहानीकार तथा 'रेणु' के कथाशिल्प का वैशिष्ट्य : एक तुलनात्मक अध्ययन

उमाकान्त कुमार *
प्रो. डॉ. राम नरेश राय **

सारांश :

साहित्य की अन्य विधाओं की तरह ही कहानी का मूल्यांकन भी उसकी शिल्पगत सफलता के आधार पर ही नहीं, बल्कि उसकी सार्थकता के संदर्भ में भी होना चाहिए। फणीश्वरनाथ 'रेणु' ने कथा–शिल्प में कुछ ऐसे ही प्रयोग किए हैं, जो उनकी कहानियों को अभूतपूर्व कलात्मकता और वैशिष्टता प्रदान की है। यह बात अपनी जगह महत्वपूर्ण होते हुए भी इत्यलम् नहीं हो सकती है। 'रेणु' की कहानियों के सही मूल्यांकन के लिए आवश्यक है कि बात उनकी शिल्पगत सफलता पर ही समाप्त न की जाय, बल्कि वर्तमान वास्तविकता के आलोक में उनकी सार्थकता की भी परीक्षण की जानी चाहिए। 'रेणु' की कहानियों के अध्ययन से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वे एक कुशल तथा सफल कलाकार हीं नहीं, बल्कि एक सचेत और प्रतिबद्ध रचनाकार भी थे। कुछ अन्तर्विरोधों के बावजूद 'रेणु' के कथा–साहित्य में सार्थकता, अर्थवत्ता और सोद्देश्यता मिलती है। उनकी कहानियों में जहाँ यथार्थ की गहरी चेतना और वर्तमान विसंगतियों का तीव्र बोध मिलता है, वहाँ मानव के मंगलमय भविष्य के लिए एक बलवती इच्छा भी दृष्टिगोचर होती है। यह दूसरी बात है कि अपने कुछ पूर्वाग्रहों के करण वे वर्तमान विसंगतियों को कहीं–कहीं उनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने में असमर्थ रहे हैं। फिर भी रेणु की कहानियाँ हिन्दी की यथार्थवादी कथा–परम्परा और जनवादी साहित्य का उत्कृष्ट उदाहरण हैं।

परिचय :

फणीश्वरनाथ 'रेणु ' का जन्म बिहार के पूर्णियां जिले के औराही हिंगना नामक गाँव में हुआ था। वे 1953 ई॰ में साहित्य–सृजन के क्षेत्र में आए और उन्होंने कहानी, उपन्यास तथा निबन्ध आदि विविध साहित्यिक विधाओं में लेखन कार्य किया। 'रेणु' हिन्दी के आंचलिक कथाकार हैं। उन्होंने अंचल–विशेष को अपनी रचनाओं का आधार बनाकर, आंचलित शब्दावली और मुहावरों का सहारा लेते हुए, वहाँ के जीवन और वातावरण का चित्रण किया है। अपनी गहरी मानवीय संवेदना के कारण वे अभावग्रस्त जनता की बेबसी और पीड़ा को वे जैसे स्वयं भोगते –से लगते हैं। इस संवेदनशीलता के साथ उनका यह विश्वास भी जुड़ा है कि आज के त्रस्त मनुष्य के भीतर अपनी जीवन–दशा को बदल देने की अकूत ताकत छिपी हुई है।

उनके प्रसिद्ध कहानी–संग्रह हैं– 'ठुमरी', 'अगिनखोर', 'आदिम रात्रि की महक', 'तीसरी कमसम', 'उर्फ मारे गए गुलफाम' कहानी पर फिल्म भी बन चुकी है। 'मैला आँचल' और 'परती परिकथा' उनके उल्लेखनीय उपन्यास हैं। फणीश्वरनाथ रेणु स्वतंत्र भारत के प्रख्यात कथाकार हैं। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा प्रेमचन्द्र की विरासत को नयी पहचान और भंगिमा प्रदान की है। इनकी कला सजग आँखें, गहरी मानवीय संवेदना और बदलते सामाजिक यथार्थ की पकड़ अपनी अलग पहचान रखते हैं। रेणु ने 'मैला आंचल', 'परती परिकथा' जैसे अनेक महत्वपूर्ण उपनयासों के साथ अपने शिल्प और आस्वाद में भिन्न हिन्दी कथा–नई परंपरा को जन्म दिया। आधुनिकतावादी फैशन से दूर ग्रामीण समाज रेणु की कलम से इतना रससिक्त, प्राणवान और नया आयाम ग्रहण कर सका है कि नगर एवं ग्राम के विवादों से अलग उसे नयी सांस्कृतिक गरिमा प्राप्त हुई। रेणु की कहानियों में आंचलिक शब्दों के प्रयोग से लोकजीवन के मार्मिक स्थलों की पहचान हुई है। उनकी भाषा संवेदनशील, संप्रेषणीय एवं भाव प्रधान है। मर्मांतक पीड़ा और भावनाओं के द्वंद्व को उभारने में लेखक की भाषा अंतरमन को छू लेती है।

---

* शोध छात्र, हिन्दी विभाग, जय प्रकाश विश्वविद्यालय, छपरा
** विभागाध्यक्ष, हिन्दी विभाग, जगदम कॉलेज, छपरा (बिहार)

फणिश्वरनाथ 'रेणु' और उनके समकालीन कहानीकार ताराशंकर बंद्योपाध्याय हिन्दी एवं बंग्ला साहित्य में एक विशिष्ट कथायुग के निर्माण कर्ता हैं, जिन्होंने हिन्दी साहित्य के विकास में उनकी जो झलक मिलती है वह प्रेमचंद, यशपाल, शिवकुमार आदि के कहानियों में एक सी परम्परा नजर आती है। 'रेणु' एवं ताराशंकर बंद्योपाध्याय जैसे समकालीन कहानिकारों की कहानियों में ग्रामीण जीवन के वर्णन के साथ–साथ नारी की स्थिति का चित्रण किया गया है। उसी का विकसित रूप ताराशंकर बंद्योपाध्याय की कहानियों में देखनें को मिलती है। दोनों कथाकार अपने–अपने ग्रामीण परिवेश से जुड़ी समस्याओं यथा–शोषण, उत्पीड़न, रंगभेद, वर्णभेद, गरीबी, जहालत, ऋण, बेकारी, देहाती और शहरी संस्कृति के मध्य संघर्ष, ग्राम–संस्कृति का विघटन, साम्प्रदायिकता, राजनीतिक तथा अन्य प्रकार का भ्रष्टाचार, महाजनी सभ्यता की विकृतियां आदि सामाजिक और धार्मिक समस्याओं को केन्द्रबिन्दु बनाकर अथवा इसी का कच्चे माल से ही अपनी–अपनी कथा–स्थितियां बुनी हैं और अधिकांश कहानियों में इन समस्याओं को उन्होंने इनके सही परिप्रेक्ष्य में देखने की कोशिश की है ठीक वही स्थिति समकालीन रहे कथाकार ताराकांत बंद्योपाध्याय की हिन्दी एवं बंग्ला साहित्य में प्रस्फुटित होती है।

'रेणु' ने एक तरफ अपनी कथा में नारी को शोषित और प्रताड़ित होते हुए दिखाया है तो दूसरी तरफ नारी का सबसे मोहक रूप यानि प्रेमिका के रूप में वर्णन किया हे। इन कहानियों में 'परती परिकथा' की ताजमनी और 'मैलाआंचल' में ममता इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। ममता ताजमनी, इरावती मुक्तवर्ग की सोच रखते हैं। ममता का प्रेम स्वाभाविक, स्वच्छ एवं समाज अनुमोदित है वही लक्ष्मी और ताजमनी का प्रेम समाज विरोधी है।

वही सकालीन कथाकार ताराशंकर के उपन्यासों में भी ग्रामीण समाज की कथा कही गई है। इसलिए ग्रामीण नारियों की परिकल्पना स्वाभाविक है। इनके भी नारी पात्र दलित वर्ग के हैं जो अशिक्षित, मेहनती, सहज और सरल स्वभाव के हैं लेकिन उन्होंने इन सबके बावजूद नारी के आत्म स्वाभिमान एवं उनके अस्मिता को बनाए रखने की भरसक कोशिश की है। 'हाँसूली बांक'' की नायिका (मुख्य पात्र) पाखी अन्त तक 'कराली' का साथ देती है और 'कराली' के अनुपस्थिति में अकेले ही जीवन–यापन करती है, जीविका उपार्जन करती है। सिर्फ 'पाखी' ही नहीं दलित स्त्रियाँ और संथालिने भी अपनी जीविका स्वयं उपार्जित करती है। कहार लोग सूरज उगने से बहुत पहले ही जग जाते हैं। उस समय पूरब क्षितिज पर महज आभा का आभास मात्र ही होता है, पूरब–दक्षिण कोने में 'भुरुकवा' यानी शक्रतारा चमकता रहता है उसी भोर में उठते हैं। अपना–अपना प्रात कृत्य करके स्त्रियाँ घर आँगन में पानी के छीटे देती हैं, माडली देती है, रात के जूठे जो थोड़े बरतन धरे होते हैं उन्हें मांजती है। गाय–बकरियों को निकाल कर जगह पर बांधती है। बत्तखों, मुर्गियों को खोल देती है, वे कचरों की ढेरों को, गोबर–गढ़े की ओर दौड़ पड़ती है। मर्द नित्यक्रिया खत्म करके उसी सबेरे कुदाली लेकर मिट्ट के काम –काज कर लेते हैं, मिट्टी का कुछ न कुछ काम रहता है।

ताराकांत की रचनाएँ आजादी के पहले दौर की है अर्थात् आधुनिक युग के प्रारम्भिक काल। उस समय स्वाधीनता आंदोलन चरम पर था। स्वाधीनता केवल एकांगी नहीं बल्कि सर्वांगीण बहुआयामी थी। उस समय की श्रमजीवी स्त्री अपनी एक प्रतिष्ठा कार्य को गति देने में व्यस्त थी जिनको इन्होंने अपनी कहानियों में लिखा है। देखा, समझा और परखा है। लेकिन काल और परिवेश के अनुरूप नारी की स्थिति उतनी प्रभावशाली नहीं दिखती है। महाजन, जमींदार और उच्चवर्ग के समक्ष दमित और शोषित स्थिति में रहती है।

दोनों रचनाकारों ने स्त्री–पुरुष के संबंधों को समाज में प्रतिष्ठित रूप मं नहीं बल्कि उपेक्षित, अनैतिक और रूग्न अवस्था में दिखाया है। ''मैलाआँचल' शीर्षक की प्रासंगिकता गांव की स्त्री–पुरुषों के अनैतिक शारीरिक संबंधों से बनी रहती है। उनके संबधों में अशिक्षा, कुंठा संस्कार विहिनता और मजबूरी लक्षित होता है। इसका वास्तविक कारण जर्तीत आर्थिक अव्यवस्था दिखाई पड़ती है। इसमें डॉ॰ प्रशांत का ममता से विवाह एवं उसके गर्भ में पल रहे बच्चे को अपनाना समाज का साकारात्मक पक्ष है। जो अनैतिक प्रवृत्ति से कुछ हद तक निजात दिलाता है।

ठीक उसी प्रकार ताराशंकर के 'गणदेवता' कहानी में देबू की पत्नी 'बिल्लू', पद्यबहू आदि साकारात्मकता को बनाये रखते हैं इसलिए दुर्गा के चाहने पर भी देबू पंडित उसे स्वच्छ रूप में देखता है जिससे दुर्गा के मन में देबू के प्रति सम्मान बढ़ जाता है। लेकिन संघर्षरत 'पाखी' आत्महत्या कर लेती है

जब कराली सुवासी से विवाह कर लेता है। लेकिन उसमें भी प्रतिवाद की हल्की झलक जरूर दिखाई पड़ती है लेकिन अन्ततंततः बसंत को मालिक के धर जूठा–कुठा खाकर ही जीना पड़ता है। तभी तो पाखी– ''शाम को रोना–धोना छोड़कर कराली से लड़ पड़ी। एक कटार उठाकर अपने माथे पर मारने गयी कि अचानक उसके मन में आया, अकेली क्यों मरूँ मैं?'' 'रेणु' की तरह ताराशंकर ने भी स्त्री–पुरुष के रूग्न और अनैतिक संबंधों को सामने लाया है।

सन् 1954 में ''मैला–आँचल'' उपन्यास के प्रकाशन के साथ ही हिन्दी साहित्य–गगन में फणीश्वरनाथ रेणु का उदय एक धूमकेतु की तरह हुआ। रेणु ने अपने साहित्यिक जीव का आरंभ सन् 1940 के आस–पास कविताओं से किया था और वे कविताएं पूर्णिया नगर से उस समय निकलने वाली पत्र–पत्रिकाओं में छपती रहती थी। परन्तु सन् 1942–43 में अपने साहित्यिक गुरु बंगला के सतीनाथ गादुड़ी के सुझाने पर 'रेणु' कविता छोड़कर कहानियाँ लिखने लगे। कहा जाता है कि 'वट बाबा' नाम से रेणु की पहली कहानी सन् 1945 में मासिक 'विश्वमित्र' (कलकत्ता) से छपी। 'विश्वमित्र' में ही अगले वर्ष उनकी दो और कहानियां छपी– 'रसूल मिसतिरी' (फरवरी 1946 अंक) तथा 'मीबारों की दुनिया में (दिसम्बर 1946 अंक)। उनकी उन कहानियों में तेजी से बदलते यथार्थ को तदनुकूल भाषा और शिल्प के माध्यम से अभिव्यक्ति करने की आतुरता मिलती है। परन्तु इसके बावजूद वे काफी समय तक ''मैला आंचल'' के प्रकाशन के कुछ समय बाद तक भी, हिन्दी के नये कथा–आन्दोलन से कटे रहे।

जैसा कि पहले इस बात को कहा जा चुका है, ग्राम–कथा या आंचलिक कहानी नयी कहानी की एक प्रमुख प्रवृत्ति है और यह बात निर्विवाद है कि रेणु इस प्रवृत्ति के सर्वश्रेष्ठ कथाकार हैं। रेणु ने कुछ अन्य आंचलिक कथाकारों की तरह अछूते अंचलों और जीवन–क्षेत्रों का चयन पाठकों को चमत्कृत करने के लिए नहीं किया है। और फिर रेणु का कथा–आंचल उस दृष्टि से अछूता भी नहीं है। रेणु की कथा–भूमि बिहार के पूर्णिया जिले के गांव ही नहीं, आधुनिक भारतीय इतिहास का वह काल–खण्ड है जहां सामन्तवाद के प्रतीक गांव में पूंजीवाद का प्रतीक नगर घुस रहा है।

निष्कर्ष :

रेणु की कहानियां हिन्दी की यथार्थवादी कथा–परम्परा की एक शक्तिशाली कड़ी है। कुछेक अन्तर्विरोधों के बावजूद रेणु का कथा–साहित्य जनवादी साहित्य का उत्कृष्टम उदाहरण है। जब छठे दशक के कतिपय कहानीकार तथा सातवें दशक के अधिकांश कथाकार कुछ भ्रमवश, कुछ फैशनवश महानगर के संत्रास, व्यक्ति के अकेलेपन, जीवन की अर्थहीनता की कहानियां लिखकर वायुमण्डल को दूषित कर रहे थे, 'रेणु' की कहानियाँ स्वच्छ वायु के झोंको की तरह जनमत को राहत दे रही थी। फणीश्वरनाथ 'रेणु' की स्वस्थ सामाजिक दृष्टि ही, भारत में हीं नहीं, अपितु रूस तथा अन्य समाजवादी देशों में भी उनकी लोकप्रियता का कारण है।

संदर्भ :

1. नागार्जून, 'फणीश्वरनाथ रेणु', रेणु संस्मरण और श्रद्धांजलि, सम्पादक–प्रो॰ रामबुझावन सिंह, डॉ॰ रामवचन राय, नवनीता प्रकाशन, पटना, मार्च, 1978
2. कमलेश्वर, 'मेरा हमदम : मेरा दोस्त : फणीश्वरनाथ रेणु, नयी कहानिया, मार्च 1964
3. हाँसुली बाँकेर उपकथा, रचनावली : ताराशंकर बन्द्योपाध्याय, मित्र घोष पब्लिसर्श प्रा॰ लि॰, कलकत्ता, प्रथम संस्करण बैशाख, 1380
4. तीसरी कसम अर्थात् मारे गए गुलफाम, 'अच्छे आदमी', 'दसगज्जा के इस पार और उस पार'
5. 'बकलम खुद'
6. राजेन्द्र यादव, 'कहानी : स्वरूप और संवेदना'
7. गणदेवता, रचनावली : ताराकाशंकर बन्द्योपाध्याय, मित्र एण्ड घोष पब्लिसर्श प्रा॰ लि॰, कलकत्ता, प्रथम संस्करण बैशाख 1980
8. वही
9. मैला आंचल, रेणु रचनावली, भारत यायावर, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, 1995
10. नारीवादी सिद्धांत और व्यवहार, शुभ्रा परमार, ओरियंट ब्लैक स्वान, प्रथम संस्करण, नई दिल्ली, 2015

***

बिहार में प्रथम कांग्रेस मंत्रिमण्डल के गठन की समस्यायें एवं चुनौतियाँ

डॉ. निकेता सिंह *

1937 ई० के चुनाव में 6 प्रांतों में अभूतपूर्व चुनावी सफलता के बाद कांग्रेस पार्टी के समक्ष सबसे बड़ी समस्या यह थी कि कांग्रेस सत्ता में हिस्सेदारी करे अथवा नहीं; पद स्वीकार किया जाये अथवा नहीं; अगर स्वीकार किया जाय तो किन शर्तों पर; इत्यादि इस सम्बन्ध में कांग्रेस पार्टी ने लखनऊ एवं फैजपुर 1936 के अधिवेशनों में कोई निर्णय नहीं लिया था। गाँधीजी इस पद स्वीकारने की बात पर अड़े रहे। उन्होने साफ कर दिया कि उनके मत में मंत्रिपद न लेना बड़ी भूल होगी; पर उससे भी बढ़कर यह भूल होगी कि मंत्री पद बिना इस शर्त के लिए जाए। अन्त में यही बात मंजूर हुई। कांग्रेसी मेम्बरों को आदेश दिया गया कि वे अपने नेता चुन ले, जब नेता को गर्वनर मंत्रिमण्डल बनाने के लिए बुलावें तो वहीं यह शर्त पेश करें आरै कहें कि गवर्नर यदि अपने विशेष अधिकारों को व्यवहार में न लाने का वादा करें तो वह मंत्रिमण्डल बनाने के लिए तैयार हैं अन्यथा नहीं। अतः गाँधीजी के दबाव पर कांग्रेस सशर्त्त पद स्वीकार करने पर राजी हो गई। एक बार पुनः कांग्रेसी सदस्यों में मतभेद उभरकर सामने आये। इसके अलावा प्रांतीय कांग्रेस कमिटियों में भी पार्टी के प्रमुख नेता के चयन को लेकर विवाद भी एक प्रमुख समस्या थी।

नये संविधान के अन्तर्गत पदग्रहण के जटिल प्रश्न पर अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी ने 17–18 मार्च 1937 की दिल्ली की अपनी बैठक में राजेन्द्र प्रसाद ने पद के सशर्त स्वीकार करने का एक प्रस्ताव रखा जिस पर निर्णय लिया गया कि अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी उन प्रान्तों में जहाँ कांग्रेस को बहुमत मिला है, पदग्रहण करने की अनुमति देती है। पर यदि कांग्रेस विधान मण्डल पार्टी का नेता इस बात से संतुष्ट नहीं होता कि गर्वनर अपने विशेषाधिकार का प्रयोग नहीं करेगा या संवैधानिक कार्रवाइयों के संदर्भ में मन्त्रियों की सलाह की अवमानना नहीं करेगा, तब तक मंत्रिमण्डल बनाने का अनुमोदन नहीं किया जाएगा। फिर एक बार पद स्वीकारने के सम्बन्ध में विवाद उभरकर सामने आया। गठन के पक्षधर का मानना था कि इसके माध्यम से कांग्रेस किसान और मजदूरों को कुछ राहत दे सकेगी। लेकिन इस सम्मेलन में उपस्थित समाजवादी पार्टी एवं किसान सभा के नेताओं जयप्रकाश नारायण, एन० जी० रंगा, सहजानन्द सरस्वती, इंदुलाल याज्ञनिक ने पद स्वीकार करने को साम्राज्यवाद के साथ असहयोग की अपना मूल नीति से पीछ हटना बताया। स्वामी सहजानन्द सरस्वती ने महसूस किया कि पद स्वीकारने वाले किसानों का बहाना लेकर बचने की कोशिश रहे हैं और जैसा कि बल्लभ भाई पटेल ने स्पष्ट किया – संसदीय मानसिकता लोगों में घर करने लगी थी। पं० नेहरु ने फैजपुर में कहा था कि कांग्रेस की नीति की तार्किक परिणति केवल यह है कि उसे पद एवं मंत्रिमण्डल से कुछ लेना देना नहीं है लेकिन इस नीति से अलग हटने का मतलब होगा भारतीय जनता के शोषण में ब्रिटिश साम्राज्यवाद का सहभागी होना।

बिहार में एसेम्बली के प्रमुख नेता श्री कृष्ण सिह एवं अनुग्रह नारायण सिंह ने गाँधी जी के इस प्रस्ताव पर कतिपय आपत्ति थी लेकिन गाँधी जी से वार्ता के बाद वे भी सशर्त पद ग्रहण करने पर राजी हो गये। पर जो लोग मंत्रिमण्डल बनने के विरोधी थे, वे खुश थे; क्योंकि वे भी समझते थे कि ब्रिटिश सरकार इस शर्त को नहीं मानेगी और इस तरह मंत्रिमण्डल नहीं बनेगा। 1 अप्रैल 1937 से नये विधान के अनुसार मंत्रिमण्डल बन जाने चाहिए थे। उसी दिन सभी सूबों का शासन भी उस विधान के अनुसार आरम्भ हो जाना चाहिए था। कांग्रेस के इस निश्चिय के बाद, गवर्नरों को आरै उनको आदेश देने वाले वायसराय को अब सोचना पड़ा कि वे क्या करे। विधान के अनुसार उन्हें उस दल के नेता को, जो सबसे बड़ा वहाँ की असेम्बली में था, कह देना था कि वह मंत्रिमण्डल बनावें। असेम्बली के

* पीएच. डी. (इतिहास), बी. आर. ए. बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर

पार्टी–मेम्बरों को भी अपना नेता चुन लेना था इस लिए सबसे पहले सभी सूबों के मेम्बरों के लिए यह आवश्यक था कि अपने–अपने स्थान पर एक बार मिलकर नेता चुन लें।

इन दिशा निर्देशों के बाद बिहार में मंत्रिमण्डल गठन की गतिविधियों एवं पार्टी नेता को लेकर सरगर्मी तेज हो गई। चुनावी विजय के बाद पटना स्थित सदाकत आश्रम पुनः राजनीतिक गतिविधियों का मुख्य केन्द्र बन गया। बिहार विधानसभा में कांग्रेसी सरकार के नेता को लेकर संशय का मामला उठ खड़ा हुआ। क्योंकि पार्टी इस सम्बन्ध में पूर्व में कोई निर्णय नहीं ले पाई थी।

काँग्रेसियों द्वारा मंत्रिमण्डल गठन सम्बन्धी शर्त रखने एवं शर्त के आधार पर ही मंत्रिमण्डल गठित किये जाने की जिद पर वायसराय एवं गवर्नर ने विधान लागू करने की अपनी नीति एवं मंत्रिमण्डल गठित करने का फैसला किया। लेकिन यह बात वायसराय गवर्नर, नवगठित मंत्रिमण्डल एवं कांग्रेस भी जानती थी कि यह शासन चंदरोज का तमाशा है एवं अधिक से अधिक छह माह का ही मेहमान है। साम्राज्यवादी ताकत एवं नवगठित मंत्रिमण्डल को विश्वास था कि किसी भी तरह दलों में तोड़फोड़ करके कोई नया रास्ता निकाल लेगें, अगर नहीं भी निकला तो कांग्रेस के साथ मेल करने का कोई रास्ता निकाल ही लेगें।

कांग्रेस में जो लोग मंत्रिमण्डल बनाने के विरोधी थे, खुश थे कि किसी तरह कांग्रेस इसमें न पड़े एवं उसकी अड़ंगा नीति चलती रही। जो लोग मंत्रिमण्डल बनाने के पक्ष में थे, वे यह समझते थे कि आज नहीं तो चंद दिनों बाद कांग्रेसी मंत्री होगे ही आरै जब होगें तब गवर्नर के विशेषाधिकारों को स्थगित करा के ही दम लेगें। इसलिए इस सम्बन्ध मे, कांग्रेसी निश्िंचत थे। बिहार में मंत्रिमण्डल गठन के पूर्व मंत्रियों के चयन का मामला भी एक वैधानिक कठिनाई था।

मंत्रियों को चुनना कठिन समस्या थी। पहली बात तो यह थी कि कितने मंत्री हो। इसके पहले चार आदमी थे, जो शासन के सारे काम को संभालते थे और जो सभी विभागों की निगरानी कर लिया करते थे। इनमें दो तो गवर्नर के एकजिक्यूटिव–कौन्सिल–मेम्बर हुआ करते थे और दो मंत्री होते थे। इसलिए कांग्रेस चार मंत्रियों के माध्यम से काम संभालने की सोच रही थी। कांग्रेस पार्टी का मानना था कि अधिक मंत्री बनाने से खर्च अधिक होगा और कुछ ऐसा मालूम होगा कि ये लोग अपने लिए पद पाने की अभिलाषा से आये हैं। जहां–जहां मत्रिमण्डल पक्के तौर पर बना था, मंत्रियो की संख्या अधिक रखी गई थी। इसके अलावा कांग्रेस के मंत्रियो के लिए अखिल भारतीय कमिटी ने मकान और सवारी के अलावा पांच सौ रुपये मासिक नियत कर दिया था।

अन्त मे, मंत्रिमण्डल गठन के पूर्व एक और कठिनाई सुलझानी पड़ी। हरिजनों में दो प्रमुख कांग्रेसी थे – एक श्री जगलाल चौधरी, जो 1920 ई० में कलकत्ता–मेडिकल कालेज के अन्तिम दर्जे में पढ़ रहे थे आरै कुछ महीनों में ही एम०बी०बी०एस० पास करके डाक्टर हो जाने वाले थे। वह कांग्रेस की पुकार पर परीक्षा छोड़कर, बराबर एकचित हो कांग्रेस की सेवा में विशेषतः रचनात्मक काम में लगे रहे–वह सत्याग्रह में भी भाग लेकर जेल यात्रा कर आये थे, दूसरे थे श्री जगजीवनराम, जो बड़े उत्साही आरै सुयोग्य कार्यकर्ता थे, थोड़े दिनों से ही कांग्रेस का काम करने पर भी काफी प्रभाव रखते थे और मि० यूनुस की दी हुई मंत्री पद ठुकरा चुके थे। सब बातों पर बहुत सोचने के बाद हमने श्री जगलाल चौधरी को मंत्री और श्री जगजीवनराम को पार्लियामेण्टरी सेक्रेटरी बनाने का निश्चय किया।

बिहार कांग्रेस मंत्रिमण्डल ने अपने 28 माह के कार्यकाल में चुनावी घोषणा–पत्रों, जो राष्ट्रीयता की विचारधाराओं को बढ़ाने वाले थे के अनुसार कार्य करना आरम्भ किया। इनमें सबसे बड़ा कार्यक्रम किसानों एवं कृषि सम्बन्धी समस्याओं के संतोषजनक समाधान का था चूँकि कांग्रेस किसानों की समस्याओं से 1920 के दौरान ही जुड़ी थी एवं 1930 आते–आते किसान राष्ट्रीय आन्दोलन के जनवादी स्वरुप के एक प्रमुख अंग बन गये थे। प्रान्तीय किसान सभा के नेताओं द्वारा किसानों की समस्याओं के सम्बन्ध में तमाम आन्दोलनों ने इसे एक नई दिशा दी थी। चुनावी घोषणा पत्रों में कृषक माँगों को रखना एवं किसान सभा के सहयोग ने ही कांग्रेसी विजय के लिए नया आधार तैयार किया था। अतः इसके समस्याओं के समाधान में मंत्रिमण्डल को कदम उठाना लाजमी था। कांग्रेस ने अपने 28 माह के कार्यकाल में 24 महिना कृषक एवं कृषि सम्बन्धी समस्याओं के समाधान में लगाया जो इनकी महत्ता

को उद्घाटित करती है। यद्यपि इस कार्य का अनुभव कांग्रेसी मंत्रिमण्डल के लिए खट्टा एवं मिट्ठा भी रहा। इसके अलावा कांग्रेसी मंत्रिमण्डल द्वारा बिहार के ग्रामीण एवं नगरों में किए गए रचनात्मक एवं सुधारात्मक कार्यों ने आगे के भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में राष्ट्रीयता के विकास में उल्लेखनीय भूमिका निभाई।

सन्दर्भ :

1. द सर्चलाईट, 27 फरवरी, 1937.
2. दत्त, के0 के0, ''बिहार में स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास'', बिहार हिन्दी माध्यम कार्यालय, पटना भाग – 2, पटना 1957.
3. इण्डियन नेशन, 20 मार्च 1937.
4. आम्बसठा, जी0 एस0 पी0, ''कांग्रेस गवर्नमेन्ट इन बिहार'' क्लासिकल पब्लिकेशन, नई दिल्ली.
5. सरस्वती स्वामी सहजानन्द, ''मेरा जीवन संघर्ष'' बिहटा आश्रम, पटना, 1952.
6. चन्द्र, विपिन, ''भारत का स्वतंत्रता संघर्ष'', हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 1994.
7. डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद, ''आत्मकथा'' एडिटेड बाई वाल्मीकि चौधरी, पुराना संस्करण, एशिया पब्लिशिंग हाऊस, 1961
8. बारिक, आर0 के0, ''लैंड एण्ड कास्ट पॉलिटिक्स इन बिहार'', सिप्रा पब्लिकेशन, न्यू दिल्ली, 2006.
9. रामाश्रय राय, 'इन्द्रा पार्टी कनफ्लिक्ट इन बिहार कॉंग्रेस', एशिया सर्वे, भा० 6, नं० 12, दिसम्बर 1966.
10. रामाश्रय राय, 'डायनेमिक्स ऑफ वन पार्टी डोमिनेन्स इन इंडियन स्टेट', एशियन सर्वे, भा० 8, 7 जुलाई, 1968.

***

न्यायिक पुनविलोकन एवं राजनीतिक प्रश्न

डॉ. पंकज कुमार सिंह *

सांविधानिक विधि का अमेरिकी विधिशास्त्र न्यायिक पुर्नविलोकन की प्रक्रिया में राजनीतिक पहलू वाले प्रश्नों पर न्यायपालिका की भूमिका को विरत रखने का पक्षपाती रहा है। न्यायपालिका की यह मान्यता रही है कि ऐसे प्रश्न जिनका विधिक या सांविधानिक अधिकारों के विनश्चयीकरण से सम्बन्ध नहीं है, न्यायालय को उनसे अपने को दूर रखना चाहिए। राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त को स्पष्ट करते हुए न्यायमूर्ति 'फ्रैंक फर्टर' ने *कोलग्रेव बनाम ग्रीन*[1] में कहा है कि इस सिद्धान्त का सीधा तात्पर्य यह है कि यह प्रश्न अपने स्वरूप के अनुसार ही, न्यायपालिका द्वारा विचारणीय नहीं है क्योंकि न्यायपालिका इस पर विचार करने के लिए अक्षम है। सन्दर्भतः ऐसे प्रश्न जिनका सांविधानिक प्रावधानों में उल्लेख है, उनका प्रवर्तन न्यायालय नहीं करा सकते और यदि कार्यपालिका ऐसे सांविधानिक प्रावधानों का उल्लघंन करती हैं या उनका अनुपालन नहीं करती तो जनता के लिए उपचार न्यायालय न होकर राजनीतिक मंच होंगे। अपनी बात को स्पष्ट करते हुए विद्वान न्यायधीश ने यह कहा कि 'संविधान में बहुत से ऐसे समादेश है जो न्यायालय द्वारा प्रवर्तनीय नहीं है क्योंकि वे स्पष्टतः उन परिस्थितियों और दशाओं से बाहर है जिनमें न्यायालीय कार्य होते हैं। संविधान ने अनेक कर्तव्य के निर्वहन का भार विधायिका एवं कार्यपालिका पर छोड़ा है और इस पर अपने राजनीतिक अधिकारों का प्रयोग करने वाली जनता सतर्कतापूर्ण नज़र रखे हुए हैं। अतः राजनीतिक प्रश्न का तात्पर्य यह नहीं है कि संविधान के ऐसे प्रावधानों का महत्व ही नहीं है या वे प्रवर्तन योग्य नहीं है इसका तात्पर्य यही है कि न्यायालय पूर्णतः ऐसे प्रश्नों को अपने क्षेत्राधिकार से बाहर रखेंगे। उदाहरण के लिए अमेरिकी सांविधानिक व्यवस्था में सीनेट का निर्वाचन या निर्वाचन कराने के लिए आदेश देने का कार्य एक राजनीतिक प्रश्न माना गया है और उसे न्यायिक अधिकार क्षेत्र से बाहर का प्रश्न स्वीकार कर लिया गया है।[2]

अतः इन बातों से यह स्पष्ट है कि सांविधानिक निर्वन के इतिहास में एक ऐसा युग भी अवतरित हुआ है जहां न्यायपालिका द्वारा राजनीतिक प्रश्न के विनिश्चयीकरण को अछूत माना जाता रहा है। इस प्रश्न पर विचार करते समय हमें यह नहीं भूलना चाहिए कि जब न्यायपालिका सांविधानिक उपबन्धों का निर्वचन कर रही है तो राजनीतिक प्रश्न को अछूत बना देना सांविधानवाद का अतिक्रमण करना है। संविधान मूलतः शक्ति सम्बन्धों की एक आत्मकथा है।[3]

अतः जब शक्ति सम्बन्धों का विश्लेषण होगा, निर्वचन का कार्य प्रारम्भ होगा तो अन्य प्रश्नों पर विनियमित विधानों के साथ–साथ राजनीतिक प्रश्नों पर विचारण न्यायापालिका को करना होगा। ऐसी परिस्थिति में, जैसा कि प्रोफेसर फाइनर ने कहा है, इन सन्दर्भों में राजनीतिक प्रश्नों से दूर रहना सम्भव नहीं होगा। क्योंकि न्यायपालिका केवल सांविधानिक प्रश्नों से ही नहीं जुड़ी है, परन्तु ऐसे सभी मामले भी जुड़ी हैं जिसमें राज्य, व्यक्ति, निगम, जनता सबके विवाद के विषय हैं। दूसरे शब्दों में सभी प्रकार के अधिकार एवं दावों का निस्तारण न्यायपालिका को करना है। ऐसे विषयों में तो न्यायपालिका की भूमिका और महत्वपूर्ण हो जाती है जहाँ राजनीतिक नेता अपने वोट बैंक को समृद्ध करने के लिए विधिक आविधिक सभी प्रकार के अस्त्रों का प्रयोग करते हैं।[4]

अतः इस प्रश्न को हमें संविधान और संविधानवाद इन दो सन्दर्भों में देखना होगा। संविधान सामान्यतया उन नियमों का एक निकाय होता है जो किसी भी निगमित संगठन के ढांचा, गठन और प्रक्रियाओं का संचालन करते हैं। हम यहां संविधान की परिभाषाओं में नहीं जाना चाहते, यहां इतना ही कहना पर्याप्त है कि संविधान किसी भी प्रजातांत्रिक देश के सुशासन का अंतिम स्रोत है और प्रोफेसर केल्सन के शब्दों में वह सभी विधियों का 'मूल मानक' है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, हरिशचन्द्र पी.जी. कॉलेज, वाराणसी

दूसरी तरफ सांविधानवाद का स्पष्ट अर्थ है सांविधान द्वारा नियंत्रित सरकार यदि हम 17वीं एवं 18वीं सदी के प्रमुख राजनीतिक विचारकों का अध्ययन करे जिसमें हाब्स, लॉक, मांटेस्क्यू, एवं अमेरिकी संविधान के प्रारम्भिक निर्माता सम्मिलित हैं वे सभी के सभी संविधानवादी प्रतीत होते हैं और उनकी राजनीतिक दर्शन की यात्रा दो प्रश्नों के आस–पास ठहरती दिखती है। पहला दृष्टिकोण यह है कि किसी भी सरकार को नियंत्रित करने के लिए एक संविधान का होना आवश्यक है और दूसरा यदि सहमति की सरकार बननी है तो भी संविधान ही उसका मात्र सुगमपथ है अतः संविधान का मूल तात्पर्य निरंकुशता पर नियन्त्रण और प्रजातांत्रिकता के संरक्षण की प्रक्रिया से है।

अतः संविधान और संविधानवाद एक दूसरे के पूरक होते हुए भी अपने अपने उद्देश्यों में अलग है। संविधान एक ढाँचा खड़ा करता है, संविधानवाद उस ढाँचे को चलने का मार्ग दिखाता है। यदि संविधानवाद निरंकुशता पर नियंत्रण का एक साधन है तो राजनीतिक प्रश्न को निवर्चन की प्रक्रिया से अलग करना भी निरंकुशता को बढ़ावा देना है।

वस्तुतः बहुत पहले जस्टिस होम्स ने यह उद्‌गार व्यक्त किया था कि राजनीतिक प्रश्न शब्दों के खेल से अधिक कुछ भी नहीं है।[5] जहां न्यायधीश किसी प्रश्न पर निर्णय नहीं देना चाहते वहां वे राजनीतिक प्रश्न का स्वरूप उपस्थित कर देते हैं। अपनी पुस्तक 'दी जुडिशियल प्रोसेस'[6] में प्रोफेसर अब्राहम ने यह कहा है कि सिद्धान्तः राजनीतिक प्रश्न कितना ही आकर्षक नारा क्यों न हो इसका समर्थन करना अत्यन्त खतरनाक है यह एक गोलाकार वृत्त है क्योंकि उच्चतम न्यायालय इस पर इसलिए निर्णय नहीं देगा क्योंकि यह राजनीतिक प्रश्न है और यह राजनीतिक प्रश्न तब हो जाता जब उच्चतम न्यायालय उस पर निर्णय नहीं देती है।

भारतीय सांविधानिक विधिशास्त्र :

संविधान के विवेचन में बाह्य श्रोत भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं अतः राजनीतिक प्रश्न के सन्दर्भ अमेरिकी सांविधानिक विधिशास्त्र का भारतीय सांविधानिक विधि के निर्वचन की प्रक्रिया पर प्रभाव न पड़े यह नहीं कहा जा सकता। इसलिए हमारी न्यायपालिका ने भी अमेरिकी उच्चतम न्यायालय के निर्णयों को ध्यान में रखते हुए ऐसे अधिकारों को जो राजनीतिक प्रश्नों से सम्बद्ध हो या जो विशुद्ध नीतिगत मामले हो उन पर न्यायिक पुनर्विलोकन करने में संकोच का अनुभव किया है। इस सन्दर्भ में संविधान के अनुच्छेद 352 में 'राष्ट्रपति की संतुष्टि' शब्द का प्रयोग किया गया है। इसी तरह अनुच्छेद 123 में अध्यादेश जारी करने की राष्ट्रपति की शक्ति का उल्लेख है। अनुच्छेद 356 में राज्यों में सांविधानिक तन्त्र की विफलता और राष्ट्रपति शासन लगाने के प्रावधान है। वहां भी 'राष्ट्रपति की संतुष्टि' शब्द का प्रयोग किया गया है। इन प्रश्नों पर भारतीय न्यायपालिका समयानुकूल परवर्तित दृष्टिकोण अपनाती रही है।

भूतनाथ बनाम् पश्चिम बंगाल राज्य[7] में उच्चतम न्यायालय ने अनुच्छेद 352 के अन्तर्गत जारी आपातकालीन उद्‌घोषणा के प्रश्न को न्यायिक पुनर्विलोकन का विषय नहीं माना और इस बात को रेखांकित किया कि यह प्रश्न राजनीतिक प्रश्न है न्यायालय द्वारा पोषणीय नहीं है इस विषय पर अपील इस न्यायालय में न होकर जनता के न्यायालय में होनी चाहिए।

जब हम भारतीय संविधान का विश्लेषण करते हैं तो यह स्पष्ट होता है कि हमारे संविधान में ऐसा कोई प्रावधान नहीं है जिसके द्वारा राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त का औचित्य सिद्ध किया जा सके। क्योंकि स्वयं संविधान में ही और अधिकांश न्यायलीय निर्णयों ने ही अनेक विषयों को न्यायालयीय पोषणीयता से बाहर कर दिया है।

संविधान का भाग 4, अनुच्छेद 350ए, 351, 335, 71(1), 71(4), 74(2), 77(2), 166(2), 122, 212 एवं अन्य ऐसे ही अनुच्छेद है जो न्यायालय द्वारा विचार के लिए पोषणीय नहीं है। संविधान के 38वें संशोधन द्वारा अनुच्छेद 356 में खण्ड 5 जोड़ा गया था जिसे भूतलक्षी प्रभाव दिया गया था और जिसमें यह स्पष्ट कहा गया था कि 356(i) में राष्ट्रपति की जिस सन्तुष्टि की बात की गयी है वह अन्तिम होगी और उस पर किसी भी न्यायालय द्वारा विचार नहीं किया जायेगा (संविधान के 44वें संशोधन द्वारा इस खण्ड को समाप्त कर दिया गया)।

इस प्रकार स्पष्ट है कि भारत के संविधान में स्पष्टतः कुछ विषय न्यायिक पुनर्विलोकन की सीमा क्षेत्र से बाहर कर दिये गये और न्यायपालिका भी स्वनियंत्रण के सिद्धान्त का पालन करते हुए इससे अपने को दूर ही रखी रही। यहां एक विचारणीय प्रश्न और भी है जिसे न्यायपालिका ने *माधवराव सिंधिया बनाम् भारत संघ*[8] जिसे 'प्रिवीपर्स केस' भी कहा जाता है, में उठाया था। वहां उच्चतम न्यायालय ने राजनीतिक प्रश्न को राजनीतिक शक्ति से अलग किया था और इसे रेखांकित किया था कि भारत के संविधान में भारत के राष्ट्रपति को राजनीतिक शक्ति (पोलेटिकल पॉवर) नहीं दिया गया। राजनीतिक शक्ति का विषय न्यायालय द्वारा पोषणीय नहीं है इससे भी यह बात तो सिद्ध हो ही जाती है कि भारतीय न्यायपालिका की दृष्टि मे कुछ विषय ऐसे हैं जो न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र से बाहर है।

बदलते राजनीतिक परिवेश, गठबन्धन–सरकारों का अस्तित्व, भ्रष्टाचार की चरम सीमा, और न्यायालीय सक्रियता ने न्यायालयों द्वारा विचारणीय और अविचारणीय विषयों के बीच की विभाजन रेखा अत्यन्त क्षीण कर दी है।

सर्वप्रथम हम राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त के महत्व को रेखांकित करने वाले *राजस्थान राज्य बनाम् भारत संघ*[9] पर विचार करेंगे। इस वाद में नयी जनता पार्टी सरकार द्वारा सत्ता में आने के पश्चात् 9 राज्यों में गठित कांगेस पार्टी की सरकारों को अनुच्छेद 356 के अन्तर्गत सांविधानिक तंत्र की विफलता का आरोप लगाकर कर बर्खास्त किये जाने का मामला था। राजस्थान सरकार भी उस आदेश से प्रभावित हुयी भी और उसने इस आदेश के विरूद्ध उच्चतम न्यायालय में याचिका की थी। उच्चतम न्यायालय के विद्वान न्यायाधीशों ने इस प्रश्न के अनेक पहलुओं पर गम्भीरतापूर्वक विचार किया था और इस निर्णय का गहन विश्लेषण यह स्पष्ट करता है कि अनुच्छेद 356;पद्ध में जिस 'स्थिति' (सिचुएशन) शब्द का प्रयोग किया गया है, उसके ऑकलन का प्रश्न विशुद्धतः राजनीतिक है, यह कार्यपालिका का नीतिगत विषय है, तथा जब तक संविधान के किसी प्रावधान का राष्ट्रपति द्वारा उल्लघंन न किया गया हो तब तक ऐसे सन्दर्भों में न्यायालय हस्तक्षेप नहीं कर सकते। राष्ट्रपति की सन्तुष्टि पूर्णतः विषयनिष्ठ है और उसका मुल्यांकन किसी वस्तुनिष्ठ कसौटी से नहीं किया जा सकता। किन परिस्थितियों और तथ्यों पर राष्ट्रपति की सन्तुष्टि आधारित है उनकी पर्याप्तता या विशुद्धता पर न्यायालय विचार नहीं कर सकते। न्यायालय का यह भी मत था कि यदि राष्ट्रपति की सन्तुष्टि दुराशय से युक्त हो, बाह्य एवं असंगत आधारों पर आधारित हो तो उस स्थिति में न्यायालय विचार करेगा क्योंकि ऐसी परिस्थिति में संतुष्टि वास्तव में संतुष्टि नहीं है।

संविधान के शाब्दिक निर्वचन के सिद्धान्त का अवलम्बन लेते हुए न्यायालय ने 356;5द्ध का निर्वचन किया और यह अवधारित किया कि इस खण्ड में राष्ट्रपति की संतुष्टि अन्तिम व स्वयं में प्रमाण मानी गयी है और किसी भी अन्य आधारों पर न्यायालय द्वारा पोषणीय नहीं है। परन्तु यह खण्ड तभी लागू होता है जहां यह प्रश्न उपस्थापित किया गया हो कि राष्ट्रपति की संतुष्टि अनुपयुक्त और अनौचित्यपूर्ण तो नहीं है। परन्तु वह सही अर्थों में वह वास्तविक संतुष्टि नहीं है वहां पर स्वयं संतुष्टि के अस्तित्व को चुनौती दी जाती है और वहां न्यायालय हस्तक्षेप कर सकते हैं।

जहां तक राजनीतिक प्रश्न का सन्दर्भ है माननीय मुख्य न्यायाधीपति एम.एच. बैग[10] के अनुसार उच्चतम न्यायालय ने सरकार के सभी अंगों द्वारा सम्पादित किये गये कार्यों की संवैधानिकता के अन्तिम निर्णायक की भूमिका का कभी भी परित्याग नहीं किया है। परन्तु ऐसा करते समय न्यायपालिका संविधान द्वारा प्रदत्त राज्य के अन्य अंगों का कार्य स्वयं नहीं कर सकती। संविधान के संरक्षक के रूप में न्यायालय का यह कर्तव्य है कि वह संविधान द्वारा प्रदत्त अपनी अधिकार क्षेत्र सीमा का अतिक्रमण न करें। राजनीतिक बौद्धिकता या कार्यपालिका की नीतिगत कार्यपद्धति न्यायालीय नियंत्रण के विषय नहीं है। यदि ये कार्य अपनी संविधानिक सीमा में सम्पादित हो रहे हैं तो वे न्यायलीय हस्तक्षेप की सीमा से बाहर है।

माननीय न्यायाधीपति पी.एन. भगवती एवं माननीय न्यायाधीपति ए.सी. गुप्ता[11] के अनुसार यदि न्यायपालिका राष्ट्रपति के संतुष्टि की विशुद्धता या पर्याप्तता या तथ्यों की पर्याप्त उपस्थिति पर विचार

करती है जिन पर सन्तुष्टि आधारित है तो यह एक खतरनाक कार्य होगा। क्योंकि प्रथमतः इस प्रकार के प्रश्नों के निर्धारण के लिए न्यायपालिका उपयुक्त तन्त्र नहीं है और दूसरी बात यह है कि यदि न्यायपालिका ऐसा करती है तो वह केन्द्रीय सरकार के कार्य का अधिग्रहण करती है ऐसा करते समय वह उस 'राजनीतिक झुरमुट' (पोलेटिकल थिकेट) में प्रवेश करती है जिसमें उसका प्रवेश वर्जित है। यदि जनता के बीच अपनी विश्वसनीयता को बनाये रखना है तो न्यायपालिका को इन प्रश्नों से अपने को बचाना होगा। हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि यदि न्यायालय के सम्मुख ऐसा प्रश्न विनिर्णयन के लिए उपस्थापित किया गया है जो विशुद्धताः राजनीति प्रश्न है जिसका किसी विधिक या संविधानिक प्रश्न के विनिर्णयन से कोई सम्बन्ध नहीं है वह न्यायालीय विचारण का प्रश्न नहीं है क्योंकि न्यायालय का मुख्य कार्य विधिक अधिकार एवं दायित्वों का विनिर्णयन करना है।

माननीय न्यायाधीपति गोस्वामी[12] ने भी इस आशय का मत व्यक्त करते हुए अभिनिर्धारित किया है कि इस बात निर्णय कि वास्तव में 356(i) में वर्णित परिस्थिति उपस्थिति है कि नहीं, गलत या सही हो सकता है परन्तु यह एक राजनीतिक बिन्दू है और न्यायालय का अधिकार क्षेत्र राजनीतिक न होकर न्यायियक है। किसी राज्य का मंत्रिमण्डल अपने राजनीतिक सम्प्रभु अर्थात् जनता का बहुमत खो चुका है या नहीं। यह उच्चस्तरीय राजनीतिक मामला है जिसका राज्य के विधिक अधिकार से कोई सम्बन्ध नहीं है। केन्द्र सरकार को राजनीतिक निर्णय लेने का अधिकार है।

माननीय न्यायाधीपति उटवालियां[13] के अनुसार यह प्रश्न निःसन्देह एक राजनीतिक क्षेत्र का है और आवश्यक रूप से न्यायालय द्वारा पोषणीय नहीं है यह अत्यन्त समीचीन होगा कि ऐसे क्षेत्रों को न्यायालय के लिए अपवर्जित मान लिया जाए। जहां न तो न्यायालय को प्रवेश की अनुमति है न ही न्यायालय के लिए यह वांछनीय है कि वह ऐसे खतरनाक कार्य को अपने ऊपर ले। 356 में केन्द्रीय मंत्रिमण्डल द्वारा दिय गये परामर्श के आधार पर निर्णय लेने का एक मात्र निर्णायक राष्ट्रपति को ही रहने देना चाहिए। 356 खण्ड 5 के जुड़ जाने के बाद परिवर्जित क्षेत्र में प्रवेश करने का न्यायलीय रास्ता बन्द हो गया है और अनेक मामलों में स्थिति के ऑकलन के प्रश्न पर न्यायालय ने मौन रहना ही उचित समझा है।

प्रजातांत्रिक व्यवस्था में जनमत और मतदान की स्थिति सत्ता पक्ष या विपक्ष के जहाज़ को एक या दूसरे किनारे पर पहुंचा सकते हैं। न्यायालय का कार्य एक स्तम्भ के रूप में सभी नाविकों के मार्ग का दिग्दर्शन करना है। वह दिग्दर्शन समान भाव से करना है। बिना किसी धारा में बहे और बिना इस तथ्य की चिंता किये कि कौन जहाज़ समुद्र के किस किनारे पर है।

इसके पूर्व 1969 में *मगन भाई बनाम् भारत संघ*[14] में उच्चतम न्यायालय ने भारतीय भूभाग के किसी क्षेत्र को पाकिस्तान को दिय जाने वाले मामले को भी न्यायलीय हस्तक्षेप के विषय से बाहर का बताया। संविधान के लागू होने के पहले के भी मामलों में न्यायालय अपने लिए वर्जित क्षेत्र में प्रवेश करने से हिचकते रहे हैं।

भगत सिंह बनाम् द किंग,[15] *किंग इम्परर बनाम् बनवारी लाल शर्मा,*[16] *लक्ष्मी नारायण दास बनाम् बिहार प्रान्त,*[17] *एस.के.जी. सुगर लिमिटेड बनाम् बिहार राज्य,*[18] *होचेस्ट फार्मास्यूटिकल्स बनाम् बिहार राज्य*[19] इत्यादि मामलों में न्यायालयों ने राजनीतिक मामलों से अपने को दूर रखने का प्रयास किया है।

राजनीतिक प्रश्न न्यायपालिका को वर्जित नहीं करता :

राजस्थान बनाम् भारत संघ[20] के मामले के पहले *माधवराव सिंधिया बनाम् भारत संघ*[21] में माननीय न्यायाधीपति 'साह' ने यह अभिनिर्धारित किया है कि एक प्रजातांत्रिक व्यवस्था में सांविधानिकतन्त्र ऐसी किसी स्थिति की कल्पना नहीं करता, जहां जनता के अधिकारों का प्रश्न हो और उसे राजनीतिक प्रश्न करार कर दिया जाये। और ऐसे अधिकार का प्रयोग कर जारी किये आदेश को न्यायालय द्वारा अपोषणीय बता दिया जाये। इसी बात का समर्थन करते हुए माननीय न्यायाधीपति हेगड़े ने यह राय व्यक्त किया कि हमारे संविधान के अन्तर्गत किसी प्रकार का राजनीतिक अधिकार या शक्ति नहीं है जिसे जनता और कार्यपालिका के सम्बन्धों के बीच में आने दिया जाये। इस प्रकार इस

मामले में राजनीतिक प्रश्न के अस्तित्व को एक तरह से नकार दिया गया है। स्वयं अमेरिका में भी जहां राजनीतिक प्रश्न न्यायालय के लिए बरसों तक अछूत माने जाते रहे हैं। *ब्राउन बनाम् बोर्ड ऑफ एजुकेशन*[22] में रंगभेद के आधार पर विद्यालयों में प्रवेश का मामला एक राजनीतिक स्वरूप का मामला था और न्यायालय ने इसी मामले में 'जो अलग है वह समान नहीं हो सकता' का निर्णय दिया था और *गोमिलियन बनाम् लाइटफुट*[23] में मतदान की प्रक्रिया में रंगभेद की नीति वाले विषय पर निर्णय दिया था। अतः अपने उद्भव स्थल में ही अब राजनीतिक प्रश्न महत्वहीन हो गया है। 1982 में *ए.के. राय बनाम् भारत संघ*[24] में माननीय मुख्य न्यायाधीपति चन्द्रचूड़ ने राजनीतिक प्रश्न के पहलू को पूर्णता नकार दिया है। माननीय न्यायाधीपति के अनुसार अनुच्छेद 123 के अन्तर्गत राष्ट्रपति द्वारा अध्यादेश जारी करने की परिस्थितियां थी या नहीं यह विशुद्धत राजनीतिक प्रश्न नहीं है। राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त का विकास संयुक्त राज्य अमेरिका में हुआ था जहां शक्ति के पृथक्करण का सिद्धान्त कठोर रूप से लागू है परन्तु हमारे यहां इस सिद्धान्त के परिपालन में कठोरता नहीं है। *बेकर बनाम् कार*[25] में माननीय न्यायाधीपति 'ब्रिनान' ने यह स्पष्ट कहा है कि राजनीतिक प्रश्न का सिद्धान्त मूलतः शक्ति के पृथ्थककरण का सिद्धान्त है अमेरिकी राष्ट्रपति और भारत के राष्ट्रपति के अधिकार और प्रास्थिति में पर्याप्त अन्तर है, अमेरिका में राष्ट्रपति कार्यपालक अधिकारों का प्रयोग स्वयं करते हैं। जबकि भारत में राष्ट्रपति मंत्रिमण्डल की सलाह एवं सहायता से करते हैं। अतः राष्ट्रपति की संतुष्टि मूलतः मंत्रिमण्डल की संतुष्टि है। और मंत्रिमण्डल में ही वास्तविक कार्यपालिका शक्ति निहित है इसके साथ हमें यह भी स्मरण रखना है कि स्वयं अमेरिका में भी राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त पर कोहरा छा गया है और इसकी चतुर्दिक आलोचना हुयी है अब वहां यह कहा जाने लगा है कि राजनीतिक प्रश्न का अर्थ मात्र इतना ही है कि न्यायिक पुनरीक्षण के अधिकार का प्रयोग करते समय न्यायपालिका को अत्यन्त बुद्धिमत्तापूर्ण दृष्टिकोण अपनाना चाहिए और इसका तात्पर्य यह है कि न्यायपालिका को ऐसे प्रश्नों पर विचार करते समय अत्यन्त सावधानी बरतनी चाहिए जहां न्यायपालिका की प्रतिष्ठा इन प्रश्नों का समाधान करने में न गिरे। दूसरे शब्दों में राजनीतिक प्रश्न मात्र शब्दों का खेल है राजस्थान के मामले की चर्चा करते हुए मुख्य न्यायाधीपति ने यह कहा कि उस समय अनुच्छेद 356 में खण्ड 5 बना हुआ था अब 44वें संशोधन द्वारा उसे निरसित कर दिया गया है। अतः इस खण्ड पर आधारित निर्णय अब सुसंगत नहीं रह गये। और 44वें संशोधन के बाद अब इस बात में सन्देह नहीं है कि राष्ट्रपति की संतुष्टि भी न्यायलीय विनिर्णयन का विषय हो गया है।[26]

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि भारत में राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त संविधान की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। प्रसिद्ध संविधान वेत्ता 'सिखई'[27] के अनुसार हमारे संविधान में राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त का कोई स्थान नहीं है। विद्वान लेखक के अनुसार अमेरिका में यह सिद्धान्त शक्ति के पृथक्करण के सिद्धान्त पर आधारित है जबकि हमारे यहां शक्ति के पृथक्करण का सिद्धान्त कठोर रूप से लागू नहीं है। दोनों देशों के राष्ट्रपतियों के अधिकार एवं प्रस्थितियों में अन्तर है और हमारे यहां मत्रियों और विधायिका में शक्ति के पृथक्करण का सिद्धान्त लागू नहीं होता। जब संयुक्त राज्य अमेरिका में ही यह सिद्धान्त अवमुल्यित हो गया तो भारत में इसके फलने फूलने का प्रश्न ही नहीं उठता। अनुच्छेद 355 और 356 मिलकर एक ऐसा प्रश्न उठाते हैं जो न्यायालय द्वारा आवश्यक रूप से विचारणीय है वह प्रश्न यह है कि राज्यों को अपने निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा प्रशासित होने का विधिक अधिकार प्राप्त है और उन्हें इससे वंचित करने का नीतिगत निर्णय लिया जाता है तो न्यायालय को उस पर अवश्य विचार करना चाहिए कि क्या एक बुद्धिमान व्यक्ति ऐसा निर्णय ले सकता था? क्या यह निर्णय सद्भावनापूर्ण है? और दुराशय या दुर्भावना पर तो आधारित नहीं है? इन्हीं आधारों पर भारतीय संविधान में इस सिद्धान्त को स्थान नहीं दिया गया है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि आज की सांविधानिक व्यवस्था में राजनीतिक प्रश्न का सिद्धान्त मात्र शब्दों का खेल बनकर रह गया है ऊपर यह स्पष्ट किया जा चुका है कि संविधान का निर्वचन एक व्यापक वटवृक्ष है जिसकी शाखा प्रशाखा कहीं न कहीं से राजनीतिक प्रश्न को भी समेटे हुए हैं। अतः मात्र इसलिए कि प्रश्नगत विषय राजनीतिक स्वरूप का है न्यायालय उस पर विचार करने

से मना नहीं कर सकते। माननीय न्यायाधीपति भगवती[28] ने राजस्थान के मामले में यह बहुत उपयुक्त बात कही है कि प्रत्येक सांविधानिक प्रश्न में सरकार के अधिकारों के आवंटन और उनके प्रयोग की बात आती है। अतः कोई भी ऐसा सांविधानिक प्रश्न नहीं हो सकता जो राजनीतिक स्वरूप न धारण किये हो। संविधान तो वस्तुतः विशुद्ध राजनीति का विषय वस्तु है जिसमें अधिकारों का ढांचा खड़ा होता है।

अतः यह कहना कि सांविधानिक विधि के निर्वचन राजनीतिक प्रश्न के पहलू पर न्यायपालिका को अलग रहना चाहिए उचित नहीं है। मात्र राजनीतिक रंग धारण कर लेने से न्यायालय हताशा में अपने दोनों हाथों को बन्द कर ले और उस प्रश्न से अपने को अलग कर ले यह समीचीन नहीं है। इससे यह स्पष्ट है कि जहां कहीं संविधान के अन्तर्गत किसी पदाधिकारी को अधिकार प्रदान किया गया हो तो उसने सांविधानिक सीमाओं के अन्तर्गत उसका प्रयोग किया है कि नहीं न्यायालय उस पर अवश्य ही विचार करेगें क्योंकि संविधान न्यायालय पर ऐसा करने का दायित्व अधिरोपित करता है। संविधान से ऊपर सरकार का कोई अंग नहीं है। हमारे संविधान में न्यायपालिका को संविधानिक मूल्यों के अन्तिम संरक्षक के रूप में मान्यता दी गयी है। वही संविधान के शब्दों का अन्तिम व्याख्याता है। इस प्रकार स्पष्ट है कि राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त को जिस तत्परता से सांविधानिक विधि के महत्वपूर्ण सिद्धान्त के रूप में मान्यता दी गयी बदले परिवेश में और राजनीतिज्ञों की अधिकार पिपासा ने उसे कमजोर करने का प्रयास किया। आज न्यायिक सक्रियता एक नये न्यायिक अस्त्र के रूप में सांविधानिक विधि के भावभूमि पर अवतरित हो चुकी है। अतः सैद्धान्तिक रूप से कुछ प्रश्न भले ही न्यायपालिका द्वारा पोषणीय न हो, न्यायिक स्वनियंत्रण की भावना भले ही न्यायपालिका को कुछ प्रश्नों के मूल में जाने से रोके, परन्तु आज न्यायपालिका अपने को राजनीतिक प्रश्न के सैद्धान्तिक पिजड़े में बंद कर सांविधानिक निर्वचन के संविधान प्रदात्त अपने अधिकार का परित्यजन नहीं कर सकती। इसलिए राजनीतिक प्रश्न का सिद्धान्त अब एक शाब्दिक क्रीड़ा मात्र बनकर रह गया है।

नवम्बर 2009 में लिंगदोह समिति के अनुसार छात्रसंघ के चुनाव को सम्पन्न कराने का प्रश्न शक्ति के पृथ्थककरण के सिद्धान्त से जुड़ा है कि नहीं इस पर उच्चतम न्यायालय के दो माननीय न्यायधीपतियों, न्यायमूर्ति मार्कंडेय काटजू एवं न्यायमूर्ति ए.के. गांगुली के बीच गहरे मतभेद उजागर हुये हैं। ज्ञातव्य है कि लिंगदोह समिति के अनुसार विश्वविद्यालयों एवं महाविद्यालयों में छात्रसंघों के निर्वाचन को सम्पन्न करने के लिए उच्चतम न्यायालय के न्यायमूर्ति अजीत पसायत की अध्यक्षता वाली न्यायपीठ ने 2006 में निर्देश दिया था और इस सन्दर्भ में अनेक नियमों का निर्माण भी किया था।

इसी सन्दर्भ में प्रस्तुत याचिका का विनिर्णयन उच्चतम न्यायालय को करना था चूंकि दोनों न्यायाधीपतियों में मतैक्य नहीं था। इसलिए इस प्रश्न को पांच सदस्यों सांविधानिक पीठ को अन्तिम विनिर्णयन के लिए सौंप दिया गया है कि क्या ऐसे सन्दर्भों में जहां विधायिका ने किसी विधि का निर्माण नहीं किया है वहां विधि की शून्यता को भरने के लिए न्यायपालिका विधि का निर्माण कर सकती है ?

इस सन्दर्भ में न्यायाधीपति मार्कण्डेय काटजू ने कहा था कि हमारे संविधान के अन्तर्गत शक्ति के पृथ्यक्करण के सिद्धान्त की व्यापक योजना है, अतः राज्य के एक अंग को दूसरे अंग के अधिकार क्षेत्र में अतिक्रमण नहीं करना चाहिए और न्यायपालिका को कार्यपालिका या विधायिका की भूमिका निर्वाह नहीं करना चाहिए। उनका मूल प्रश्न जिसे सांविधानिक पीठ को सौंपा गया है। यह है कि न्यायपालिका द्वारा विधायन की सीमा क्या है? और यदि न्यायपालिका कानून बनाती है तो क्या वह संविधान द्वारा खींची गयी शक्ति के पृथ्यक्करण के सिद्धान्त की लक्ष्मण रेखा का उल्लघंन नहीं करती? क्या न्यायपालिका ऐसे अत्यावश्यक सामाजिक प्रश्नों पर जिसमें जनहित स्पष्ट रूप से जुड़ा है कानून बना सकती है?

दूसरे शब्दों में न्यायधीपति मार्कण्डेय काटजू स्पष्टतः नाम भले ही न ले रहे हो वे अमेरिकी शक्ति के पृथ्यककरण के सिद्धान्त की अवधारणा के पूर्णता समर्थक है और अपने निर्णय में उन्होंने इस

सिद्धान्त को स्पष्ट रूप से सांविधानिक भावभूमि प्रदान कर दी है और स्पष्टतः इंगित किया है कि राजनीतिक प्रश्न न्यायपालिका के अधिकार क्षेत्र से बाहर हैं।

दूसरी तरफ न्यायाधिपति गांगुली शक्ति पृथ्यककरण के सिद्धान्त की नयी व्याख्या करते हैं उनके अनुसार शक्ति के पृथ्यक्करण के सिद्धान्त की मुख्यत तार्किकता यह है कि उसके द्वारा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता और विधि के शासन की रक्षा हो, यदि सभी अधिकार एक ही अभिकरण में निहित कर दिये जायें तो इससे तानाशाही झलकने लगेगी। अतः शक्ति के पृथ्यककरण के सिद्धान्त का मुल्यांकन संविधानवाद की कसौटी पर होना चाहिए और संविधानवाद संविधान द्वारा निर्दिष्ट न्याय की प्राप्ति का लक्ष्य मुख्य रूप से रेखांकित करता है। शक्ति के पृथ्यककरण का सिद्धान्त न्यायाधीपति गांगुली के अनुसार एक ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसके द्वारा हमारे संविधान निर्माता तीनों अंगों को एक दूसरे से अछू बनाकर या अलग–अलग करके रखना चाहते थे। उन्होंने *विशाखा बनामा राजस्थान राज्य*[29] एवं भारतीय बच्चों को विदेशियों द्वारा गोद लिये जाने की प्रक्रिया के सन्दर्भ में न्यायालय द्वारा जारी किये गये अनेक निर्देर्शों का उल्लेख किया है। विशाखा में जहां उच्चतम न्यायालय ने सार्वजनिक कार्यस्थल पर महिलाओं के लैंगिंग उत्पीड़न को रोकने के लिए अनेक निर्देश जारी किये वहीं लक्ष्मीकांत पाण्डेय[30] के मामले में विदेशी गोद लेने वाले अभिभावकों द्वारा भारतीय बच्चों के गोद लिए जाने के सन्दर्भ में प्रक्रिया से सन्दर्भित अनेक निर्देश जारी किये हैं और जहां विधायन की शून्यता रही है वहां उच्चतम न्यायालय के निर्देशों ने न्याय का हित साधन किया है। उन्होंने न्यायाधीपति सुब्बाराव को उद्धरित किया जहां उन्होंने कहा है कि उच्चतम न्यायालय द्वारा घोषित विधि पूरे देश की विधि है और बीते दिनों तथा प्रचलन से बाहर हो चुके सिद्धान्त के आधार पर यह कहना कि न्यायपालिका कानून नहीं बनाती न्यायपालिका के हाथों से न्याय के अत्यन्त सशक्त हथियार को छीन लेना है।

उन्होंने इस सन्दर्भ में स्पष्टतः अनुच्छेद 141, 142 का उल्लेख किया है और कहा कि इन अनुच्छेदों ने उच्चतम न्यायालय को अधिकार सौंपा है वह भारतीय विधिशास्त्र की अनुपम देन है और अन्य किसी विधि शास्त्र में ऐसा अधिकार न्यायपालिका को नहीं दिया गया है।[31]

अतः न्यायाधिपति गांगुली भी राजनीतिक प्रश्न के सिद्धान्त को न्यायपालिका से बाहर रखने के पक्षपाती नहीं है।

सन्दर्भ :

1. (1946) 328 U.S. 539
2. पुतनम बनाम नारब्लाड, 239 p. 946
3. दी थ्योरी एण्ड प्रेक्टिस ऑफ मार्डन गवर्मेन्ट, एच. फाइनर, भारतीय संस्करण, 1977, p. 117.
4. वही।
5. निक्सन बनाम् एण्डरसन 273 U.S. 536.
6. प्रो. अब्राहम : दी जुडिशियल प्रोसेस, p. 369.
7. AIR 1974 SC 806
8. AIR 1971, SC, 530.
9. AIR 1977, SC 1361.
10. AIR 1977 SC 1377.
11. AIR 1977 SC 1412, 13, 1414, 15.
12. AIR 1977 SC 1417, 18.
13. AIR 1977 SC 1421, 22.
14. AIR 1969 SC 783.
15. AIr 1931 P.C. 111.
16. AIR 1945 P.C. 48.
17. AIR 1950 FC 69.
18. AIR 1974 SC 1533.
19. AIR 1983 SC 1019.
20. AIR 1977 SC 1361.

21. AIR 1971 SC 530.
22. (1953) 347 U.S. 483.
23. (1960) 364 U.S. 339.
24. AIR 1982 SC 710.
25. (1962) 369 US 186
26. AIR 1982 SC 719, 720.
27. Constitutional Law of India, Vol. II, 1984, p. 2205.
28. AIR 1977 SC 1413
29. (1997) 65 SCC 241
30. (1984) 2 SCC 244
31. द हिन्दू 19 नवम्बर 2009, पृ. 3

***

कुमाऊँ पर गोरखा शासन का अन्त और ईस्ट इंडिया कम्पनी का आधिपत्य

डॉ. ज्योति साह *

उन्नीसवीं सदी के दूसरे दशक में कुमाँऊ क्षेत्र से गोरखा शासन का अन्त और ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार करने को आधुनिक कुमाँऊ के इतिहास की सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटना के रूप में संज्ञानित किया जा सकता है। यह कहना अन्यथा न होगा कि ईस्ट इंडिया कम्पनी के अधिकार में आने के पश्चात ही कुमाँऊ सही मायने में राष्ट्र की मुख्यधारा में आया। राष्ट्रीय इतिहासकारों की नजर में यह एक सामान्य घटना हो सकती है परन्तु कुमाँऊ के इतिहास की दृष्टि में यह एक युगान्तकारी घटना थी। प्रश्न महत्पूर्ण है कि कुमाँऊ में गोरखाओं को पराजित कर ईस्ट इंडिया कम्पनी का अधिकार एक अप्रत्याशित घटना थी या फिर कम्पनी ने कोई विशेष नीति के तहत कुमाँऊ पर अधिकार किया था। इस शोधपत्र के माध्यम से वर्णित प्रश्न को विवेचित करने तथा कम्पनी शासन के अधिकार की पृष्ठभूमि को उदघाटित करने का प्रयास किया गया है।

सन् 1757 के प्लासी के युद्ध के पश्चात ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अपने को मुख्यतः एक व्यापारिक कम्पनी के साथ–साथ राजनैतिक शक्ति के रुप में भी स्थापित कर लिया था। तत्क्रम में शीघ्र ही बंगाल पर अधिकार करके उसने भारत के अन्य क्षेत्रों को अधिकृत करने के प्रयास भी प्रारम्भ कर दिये। इसी क्रम में लार्ड वेलेजली ने साम्राज्यवादी नीति के तहत अवध के नबाब सआदत अली पर दबाव डालकर अवध से सन् 1802 में गोरखपुर की तराई और रुहेलखण्ड के प्रान्त प्राप्त किये।[1] इससे कुमाऊँ का तराई का क्षेत्र भी स्वतः कम्पनी के अधीन हो गया। इससे अंग्रेज सीमा का विस्तार कुमाऊँ की तलहटी तक हो गया, जिससे कम्पनी का कुमाऊँ के पर्वतीय क्षेत्र के समीप पहुँचने और तत्संबध में जानकारी प्राप्त करने का मार्ग खुल गया।

कुमाऊँ (पर्वतीय क्षेत्र) के विषय में सूचनाएँ 17वीं शताब्दी से ही प्राप्त होने लगीं थीं, जब जैसुइट पादरियों ने इस क्षेत्र में ईसाई धर्मप्रचार हेतु यात्राएँ कीं। उनके द्वारा ही हिमालय का प्रारम्भिक सर्वेक्षण यूरोपवासियों के समक्ष प्रस्तुत किया गया था।[2] 18वीं शताब्दी में कम्पनी ने जब भारत में राजनैतिक सत्ता के रुप में अपने पैर जमा लिए तो उसके द्वारा पर्वतीय क्षेत्र को अधिक गहनता से जानने के लिए सार्थक प्रयास प्रारम्भ किए गये। कम्पनी को प्रारम्भ में नेपोलियन से और बाद में रूस से भय था कि तिब्बत पर अधिकार करके भारत में उसके एकछत्र साम्राज्य के लिए खतरा न बन जाएं। महत्वपूर्ण है कि कर्नाटक युद्धों में फ्रांस को पराजित कर कम्पनी भारत में एकछत्र यूरोपीय शक्ति के रूप में स्थापित हुयी थी, अब वह पुनः किसी भी दशा में फ्रांसिसियों अथवा उनके समर्थकों की भारत पर नज़र को बर्दाश्त नहीं कर सकती थी। इसके दृष्टिगत वारेन हेस्टिंग्स ने बोगले (1774) तथा टर्नर (1783) को तिब्बत पर अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए भूटान के मार्ग से तिब्बत भेजा। इनके द्वारा किए गये क्षेत्रीय भ्रमण के मध्य पर्वतीय व्यापार, जो तिब्बत, चीन, साइबेरिया, कश्मीर तथा उत्तराखण्ड के मध्य किया जाता था से सम्बन्धित जानकारी कम्पनी को मिली।[3] इसके फलस्वरूप कम्पनी की व्यापारिक साम्राज्यवाद की सोच को पर्वतीय व्यापार पर अधिकार करने तथा तिब्बत के मार्ग से चीन तक पहुँचने की एक नई दिशा मिल गयी ।

ईस्ट इंडिया कम्पनी ने अब कुमाऊँ पर अधिकार कर सीमान्त को सुरक्षित करने तथा साथ ही कुमाऊँ के मार्ग से तिब्बत पहुँचने का मार्ग तलाशने का प्रयास पुरजोर तरीके से प्रारम्भ कर दिया। हिमालय के अन्य क्षेत्रों की अपेक्षा कुमाऊँ के मार्ग से तिब्बत पहुँचना अधिक सुगम था।[4] 1802 में लार्ड वेलेजली द्वारा गाट नामक अधिकारी को कुमाऊँ के विषय में जानकारी प्राप्त करने हेतु कुमाऊँ भेजा गया, तत्पश्चात 1808 में रेपर तथा वैब, 1812 में मूरक्राफ्ट और हियरसे और फिर फ्रेजर तथा गार्डनर ने यहाँ की यात्रा की।[5] इनके द्वारा भेजी गयीं विस्तृत रिपोर्टों से कम्पनी को उत्तराखण्ड के इस

* एसोसियेट प्रोफेसर, 'इतिहास', दीन दयाल उपाध्याय राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सीतापुर

सामरिक, आर्थिक तथा नैसर्गिक महत्व के विषय में महत्वपूर्ण सूचनाएँ प्राप्त हुयीं, जो भविष्य में कुमाऊँ के विषय में कम्पनी द्वारा क्षेत्र विशेष के परिप्रेक्ष्य में प्रस्तावित की गयी नीति के निर्धारण में सहायक हुयीं। यह भी कहा जाता है कि मारक्विज आफ हेस्टिंग्स स्वयं यहाँ आए तथा इस क्षेत्र की नैसर्गिक सौन्दर्य से प्रभावित हो कर लिखा था कि ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि वह दिन जल्दी आए जब हम इस सुन्दर देश पर अधिकार कर लें।[6] कहा जाता है कि इस क्षेत्र की अनुकूल जलवायु ने अंग्रेजों को प्रभावित किया था और इसमें वह अपने गृहदेश की छवि के दृष्टिगत इसे *छोटे इंग्लैण्ड* के रूप में विकसित करने का सपना देखने लगे थे।

कुमाऊँ के तराई क्षेत्र पर अधिकार हो जाने के पश्चात कम्पनी द्वारा काशीपुर में भांग को प्रक्रियाकृत करने की फैक्ट्री स्थापित की। इस फैक्ट्री के संचालन के लिए कच्चा माल (भांग) पर्वतीय क्षेत्र से ही प्राप्त होता था, जिस कारण यह क्षेत्र निरन्तर कम्पनी के सम्पर्क में था।[7] कुमाऊँ की वन सम्पदा की जानकारी प्राप्त करने के उपरान्त कम्पनी ने नेपाल के शासक को 1809 में पत्र लिखा कि कुमाऊँ तथा डोटी के जंगलों से बड़ी मात्रा में लीसा निकाला जा सकता है, जिसके व्यापार से कम्पनी तथा नेपाल सरकार को लाभ होगा। तत्क्रम में नेपाल सरकार द्वारा प्रदत्त की गयी अनुमति से कम्पनी के काशीपुर स्थित भांग कम्पनी के प्रबन्धक रदरफोर्ड को यहाँ के जंगलों से लीसा निकालने की सुविधा प्राप्त हो गयी।[8] शीघ्र ही भांग के रेशे, भंगेला, चरस, लीसे तथा अन्य वन उत्पादों के सिलसिले में रदरफोर्ड द्वारा स्थानीय प्रभावशाली लोगों को मित्र बनाने की रणनीति को अमल में लाया गया, जो ईस्ट इंडिया कम्पनी के कुमाऊँ में नियोजित घुसपैठ की कोशिश को सफल बनाने में सहायक रही। कुमाऊँ की राजनैतिक स्थिति भी इस समय उनके अनुकूल थी।

18वीं शताब्दी में कुमाऊँ में राजनैतिक अस्थिरता का माहौल था। यहाँ कुमाऊँ में चन्द वंश तथा गढ़वाल में परमार वंश का राज्य था। चन्दों ने सामन्तशाही व्यवस्था के अन्तर्गत सन 700 से 1790 ई0 तक सम्पूर्ण कुमाऊँ और गढ़वाल के कुछ हिस्सों पर शासन किया। जिस समय ईस्ट इंडिया कम्पनी प्लासी तथा बक्सर के युद्ध जीतकर भारत में अपना कदम जमाने की कोशिश कर रही थी, कुमाऊँ में चन्द वंश का अवसान हो रहा था। सामन्तों के झगड़ों ने चन्दों की सत्ता को हिलाकर रख दिया था। राजा दीपचन्द को गद्दी से हटाने तथा उसके समर्थक जोशियों के प्रभाव को खत्म करने के षडयन्त्र के साथ कुटिल चालों के रूप में अमल में लायी गयी कूटनीति, गुप्त बैठकों और धोखाधड़ी के माहौल ने स्थानीय राजनैतिक स्थिति को राजा दीपचन्द के उपरान्त भी जारी रखा। अन्ततः इसकी परिणति कुमाऊँ में नेपाल के गोरखा शासकों के आधिपत्य के रूप में परिलक्षित हुयी।

चन्द राज के बख्शी मोहन सिंह, नन्द कुमार और हरगोविन्द ने चन्द शासन के विरूद्ध षड़यन्त्र का सूत्रपात तराई भाबर में किया, जिसका मुख्य उद्देश्य कुमाऊँ के राजा दीपचन्द, उनके पुत्रों तथा उनके सहयोगियों जयनारायण एवं हर्षदेव जोशी को सत्ता से हटाकर चन्द राज्य को हथियाना था। राजा की हत्या के पहले दस वर्षों 1767 से 1777 तक बख्शी मोहन सिंह, नन्द कुमार और हरगोविन्द ने षड़यन्त्र कर राजाके विश्वसनीय व्यक्तियों और सहयोगियों की निर्मम हत्याएं करायीं। अन्ततः राजा, रानी, उनके पुत्र तथा सहयोगी जयकृष्ण और लक्ष्मीपति जोशी को एक–एक कर मौत के घाट उतार दिया गया तथा हर्षदेव जोशी को कारावास में डाल दिया गया। इसके फलस्वरूप कुमाऊँ का शासन मोहन सिंह के अधीन हो गया। यद्धपि उसे अपने सहयोगी नन्दराम के तथाकथित षड़यन्त्र तथा गढ़वाल एवं डोटी के आक्रमणों का सामना करना पड़ा। गढ़वाल आक्रमण के विरुद्ध सहायतार्थ उसने हर्षदेव जोशी को कारागार से रिहा कर दिया और समस्त अधिकार देने का आश्वासन दिया। किन्तु हर्षदेव ने इसे प्रतिशोध लेने का समुचित अवसर समझा व उसकी सहायता से गढ़वाल की सेना ने मोहन सिंह को पराजित कर दिया।[9] तत्क्रम में हर्षदेव की सहायता से गढ़वाल के शासक ललित शाह के पुत्र प्रद्युम्न शाह को प्रद्युम्न चंद के नाम से चंद वंश का नवीन शासक बनाया गया। गढ़वाल के शासक ललित शाह की मृत्यु के पश्चात प्रद्युम्न चंद द्वारा गढ़वाल की राजनीति में अधिक रूचि लेने से तथा उसके अपने भाइयों के मध्य आपसी कलह तथा मोहन सिंह और लालसिंह द्वारा कुमाऊँ की राजगद्दी को हथियाने के प्रयासों ने पुनः स्थिति गम्भीर कर दी। तत्समय प्रद्युम्न चंद की सत्ता को

बनाये रखने के समर्थक हर्षदेव जोशी को नन्दराम, मोहन सिंह, लालसिंह तथा पराक्रम शाह की संयुक्त सेना ने पराजित कर दिया। कालान्तर में सात वर्ष पश्चात 1786 में पुनः कुमाऊँ पर मोहन सिंह का अधिकार हो गया। 1788 में हर्षदेव ने उसे पराजित कर प्राणदण्ड दे दिया। इसके प्रतिशोध में लालसिंह ने रोहिला सैनिकों की सहायता से अल्मोड़ा पर अधिकार करके मोहनसिंह के पुत्र महेन्द्र चंद को कुमाऊँ का शासक बना दिया।[10] इस प्रकार एक के बाद एक प्रतिशोधात्मक युद्धों ने कुमाऊँ में अराजकता का माहौल बना दिया, जिसका तात्कालिक लाभ उठाते हुए गोरखों ने 1000 वर्ष पुराने चंदो के शासन को समाप्त कर 1790 में कुमाऊँ पर अपना अधिकार कर लिया।

गोरखों ने कुमाऊँ में पच्चीस वर्ष राज्य किया। छोटे–छोटे राज्यों में विभक्त नेपाल राज्य को गोरखा नरेश पृथ्वीनारायण शाह ने 1769 तक एकीकृत कर दिया।[11] नेपाल राज्य को कुमाऊँ की अस्थिर राजनैतिक स्थिति की जानकारी थी। कुमाऊँ के अवसानग्रस्त चंद राज्य पर गोरखाओं द्वारा 1790 में आक्रमण किया गया। हर्षदेव जोशी से गोरखाओं का पत्र व्यवहार था। लालसिंह और उसके भतीजे महेन्द्र सिंह के विरुद्ध उन्होंने गोरखों का सहयोग किया। काली कुमाऊँ की ओर से गोरखा सेना ने चर्तुथ बहादुर शाह, काजी जगजीत पांडे, अमर सिंह थापा और सूर सिंह थापा के नेतृत्व में कुमाऊँ पर आक्रमण कर दिया। एक भयानक युद्ध के पश्चात गोरखा विजयी रहे। 1790 मई में कुमाऊँ की राजधानी अल्मोड़ा पर उनका अधिकार हो गया।[12] 1792 में सिक्किम उनके अधिकार में आ गया।[13] 1804 में गढ़वाल को अपने अधीन करने के पश्चात पंजाब की छोटी–छोटी रियासतों को हस्तगत करते हुए गोरखों ने कांगड़ा को भी जीत लिया। कालान्तर में नहान, देहरादून, जौनसार भाबर, बिहार का उत्तरी भाग और साथ ही साथ दार्जिलिंग भी उनके अधीन आ गया।[14] शीघ्र ही गोरखाओं ने मध्य हिमालय के बहुत बड़े क्षेत्र पर अपने साम्राज्य का विस्तार कर लिया था। उत्तर में तिब्बत में असफल होने के पश्चात गोरखों ने दक्षिण में अपने साम्राज्य का विस्तार करना प्रारम्भ किया। 1802 में जब ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा गोरखपुर तथा कुमाऊँ के तराई क्षेत्र में अपना आधिपत्य स्थापित कर लिया गया तो दोनों राज्यों की सीमायें एक हो गयीं।

गोरखों ने कुमाऊँ में 25 वर्ष तथा गढ़वाल में 12 वर्ष के उनके द्वारा किए गये सैनिक शासन काल के दौरान अत्याचारों की हद पार कर ली थी। प्रमाण है कि प्रारम्भिक दौर में गोरखा सैनिकों ने यहाँ काफी लूटपाट की। गोरखा शासन के दौरान कुमाऊँ आये अंग्रेजों ने इस क्षेत्र के विषय में जो सूचनाएँ दीं उनमें गोरखा शासन की क्रूरता तथा उसके विरूद्ध स्थानीय असन्तोष का जिक्र किया गया था।[15] हियरसे की डायरी में कहा गया है कि इस क्षेत्र की जनता गोरखा शासन की क्रूरता से विद्रोह को तत्पर थी।[16] दास–दासियों के विक्रय, असामान्य दण्ड प्रणाली, कठोर कर प्रणाली, नारी अपहरण तथा डूबती अर्थव्यवस्था[17] ने यहाँ के निवासियों में अत्यन्त रोष उत्पन्न कर दिया था। ईस्ट इंडिया कम्पनी ने इस अनुकूल स्थिति का लाभ उठाकर स्थानीय प्रभावशाली लोगों को अपने प्रभाव में लेने की जोड़ तोड़ शुरू कर दी। तत्समय काशीपुर भांग फैक्ट्री के प्रबन्धक रदरफोर्ड द्वारा इस सम्बन्ध में महत्वपूर्ण कार्य किया। नेपाल सरकार ने इसी समय भांग को बाहर ले जाकर बेचने पर प्रतिबन्ध लगा दिया[18], जिसने आग में घी का काम किया। इसके दृष्टिगत कम्पनी ने इस क्षेत्र को पूर्ण रुप से अपनी अधीनता में लेने का मन बना लिया।

1814 तक कम्पनी तथा नेपाल के सम्बन्ध बहुत बिगड़ गये थे। गोरखों ने 1787 से लेकर 1812 के मध्य कम्पनी के अधिकार क्षेत्र के लगभग 200 गांवों पर कब्जा कर लिया था।[19] बंगाल और अवध की अनिश्चित सीमा का लाभ उठाकर वह दक्षिण की ओर बढ़ रहे थे। सही मायने में 1804 में कम्पनी तथा गोरखों के मध्य पहला झगड़ा तब शुरू हुआ, जब गोरखों ने बस्ती के उत्तर में बटवाल तथा उसके पूर्व में शिवराज जिलों पर अधिकार कर लिया। हेस्टिंग्स ने इन जिलों को कम्पनी के राज्य में मिलाने की आज्ञा जारी कर अप्रैल, 1814 में बटवाल पर अधिकार कर लिया।[20] गोरखों ने वर्णित प्रक्रिया को आक्रमण माना तथा मई, 1814 में बटवाल जिले की तीन पुलिस चौकियों पर आक्रमण कर दिया। तत्क्रम में हेस्टिंग्स ने तुरन्त युद्ध की घोषणा कर दी। सतलज से कोसी नदी के मध्य चार स्थानों से आक्रमण की योजना बनाई गयी। मेजर जनरल मारले के नेतृत्व में पहली सेना को काठमांडू,

दूसरी सेना को गोरखपुर की ओर से, तीसरी सेना जनरल गिलिसपाई के नेतृत्व में देहरादून की ओर से, तथा चौथी सेना जनरल आक्टरलोनी के नेतृत्व में सतलज और यमुना के मध्य के क्षेत्र से भेजी गयी। इतने वृहद स्तर पर संचालित यह अभियान पूर्णतः असफल रहा, जिससे अंग्रेजों की प्रतिष्ठा को धक्का लगा।[21]

पुनः ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा कुमाऊँ की ओर से आक्रमण की योजना बनाई गयी। प्रारम्भ में कूटनीतिक चालों के माध्यम से कुमाऊँ में नेपाल के प्रतिनिधि शासक बमशाह को अपनी ओर मिलाने का प्रयास किया गया, जो असफल रहा। कुमाऊँ की राजनीति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते रहे हर्षदेव जोशी तथा अन्य प्रभावशाली लोगों को अपनी ओर मिलाने के लिए अपील की, कि जनता को गोरखों के क्रूर शासन से बचाने के लिए वह अंग्रेज सेना की सहायता करें। अक्टूबर 1814 में गढ़वाल में कैप्टन हियरसे के नेतृत्व में अंग्रेज सेना भेजी गयी।[22] परिणाम स्वरूप दून घाटी पर कम्पनी का अधिकार हो गया। दिसम्बर में सिरमौर भी उसके अधीन आ गया। तत्पश्चात ले. जनरल गार्डनर ने 3000 रोहिला सैनिकों के साथ काशीपुर की ओर से युद्ध प्रारम्भ किया।[23] 26 अप्रैल 1815 को अल्मोड़ा नगर पर विजय प्राप्त कर ली गयी और कुमाऊँ के समझौते पर हस्ताक्षर किए गए।[24] 3 मई, 1815 को कुमाऊँ में कम्पनी के अधिकार की घोषणा की गयी तथा बमशाह ने काली नदी पार डोटी चले जाना स्वीकार किया। मई, 1815 में जनरल आक्टरलोनी ने अमर सिंह थापा से मालाओं को विजित कर लिया।[25] दोनों पक्षों के मध्य शान्ति वार्ता चली, जो अंग्रेजों द्वारा की गयी दृढ. मांगों के कारण असफल रही। 1816 में जनरल आक्टरलोनी ने मकबनपुर के स्थान पर नेपाली सेना को करारी मात दी। अन्ततः शान्ति वार्ता चली और सिगौली की सन्धि के साथ युद्ध समाप्त हुआ।[26]

4 मार्च, 1816 को सिगौली की सन्धि के अनुसार एक विस्तृत क्षेत्र नेपाल के गोरखा शासकों के हाथ से निकल गया। उत्तराखण्ड के कुमाऊँ, गढ़वाल और सम्पूर्ण तराई के क्षेत्र पर भी नेपाल को अपना दावा छोड़ना पड़ा। साथ ही गोरखाओं द्वारा काठमांडू में एक ब्रिटिश रेजीडेंट को रखा जाना भी स्वीकार किया गया। सिक्किम भी नेपाल से लेकर वहाँ के राजा को दे दिया गया। कालान्तर में कम्पनी सरकार ने तराई का कुछ हिस्सा नेपाल को वापस कर दिया तथा कुछ हिस्सा अवध के नबाव को उनके द्वारा युद्ध के दौरान दी गयी आर्थिक सहायता के एवज में दे दिया गया। महत्वपूर्ण है कि मेछी नदी को नेपाल की पूर्वी सीमा तथा काली नदी को पश्चिमी सीमा तय कर दिया गया।[27] सीमाओं पर पक्के खम्भे लगा दिए गए। इसके दृष्टिगत कम्पनी की सीमाएं उत्तरी तथा उत्तर पश्चिम हिमालय तक पहुँच गयीं। दून घाटी, रवाँई और अलकनन्दा की पूर्वी घाटी को छोड़ गढ़वाल राज्य का क्षेत्र सुदर्शन शाह के लिए रखा गया।[28]

उपरोक्तानुसार प्रस्तुत विवेचनात्मक तथ्यों से स्पष्ट है कि कुमाऊँ किसी व्यापक संघर्ष के बिना ही औपनिवेशिक शासन के अधीन आ गया। इसने कुमाऊँ की राजनैतिक स्थिति में ही बदलाव नहीं किया, वरन् यहाँ के समाज, संस्कृति तथा अर्थव्यवस्था को भी गहनता से प्रभावित किया। ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा सर्व प्रथम अपने राज्य विस्तार हेतु यहाँ की सैन्य शक्ति का उपयोग किया गया। वास्तव में युद्ध समाप्त होने से पूर्व ही ऑक्टरलोनी ने गोरखों की तीन टुकड़ियाँ अंग्रेज सेना में भरती कर लीं थी।[29] इनको सिरमूर बटालियन तथा नसीरी बटालियन कहा गया। 1815 में कुमाऊँ बटालियन बनाई गयी।[30] इसने प्रवास की प्रवृत्ति को भी जन्म दिया। अधिकांश युवा वर्ग सेना में भर्ती होने लगा।

कालान्तर में कुमाऊँ कमिश्नर की नियुक्ति होते ही 1816 में इस क्षेत्र का व्यापक सर्वेक्षण करके इसे पेशकारी तथा तहसीलों में विभक्त किया गया। साथ ही यहाँ की प्राकृतिक सम्पदा का दोहन प्रारम्भ हो गया। खेती की भूमि व्यक्तिगत स्वामित्व पर दी गयी परन्तु वन और चारागाह सरकारी नियन्त्रण में आते गये।[31] हिमालय में सैनिक छावनियां, पर्यटक नगर तथा आवश्यकतानुरूप सैनिक छावनियों की स्थापना की गयी। सड़कों एवं नगरों के विकास ने बीसवीं सदी तक क्षेत्र विशेष में सामाजिक परिवर्तन को एक नई दिशा दी। कम्पनी तथा अंग्रेज साम्राज्य के 200 वर्षों के शासन काल के मध्य कुमाऊँ का जो परिवर्तन हुआ वह पिछले 2000 वर्षों में भी नहीं हुआ था।

[1] . मिश्र, नित्यानंद –पंडित हर्षदेव जोशी , पहाड़ 9,पृष्ठ 203
[2] . इआन,कैमरून – माउन्टेन्स आफ द गॉड ,पृष्ठ ,54 तथा पाठक, शेखर –हिमालय के द्वारो का खुलना , पहाड़ 9,पृष्ठ 16,17
[3] . पाठक, शेखर –हिमालय के द्वारो का खुलना , पहाड़ 9, पृष्ठ 21–22
[4] . पाण्डे, बद्रीदत्त – कुमाऊँ का इतिहास , पृष्ठ 443
[5] . पाण्डे– उपरोक्त तथा पाठक, शेखर – उत्तराखण्ड एक समग्र जन इतिहास का ताना बाना , पृष्ठ 67
[6] .. पाण्डे, बद्रीदत्त – कुमाऊँ का इतिहास , पृष्ठ 443
[7] .उपरोक्त
[8] . पाठक, शेखर –हिमालय के द्वारो का खुलना , पहाड़ 9, पृष्ठ 25
[9] . मिश्र, नित्यानंद –पंडित हर्षदेव जोशी , पहाड़ 9,पृष्ठ 194–206
[10] . पाण्डे, बद्रीदत्त – कुमाऊँ का इतिहास , पृष्ठ 367
[11] . स्टिलर , लुडविग एफ – द राईज आफ द हाउस आफ गोरखा ,
[12] . उपरोक्त
[13] . रतूड़ी , हरिकृष्ण – गढ़वाल का इतिहास, पृष्ठ 201–202
[14] . रतूड़ी , हरिकृष्ण – गढ़वाल का इतिहास, पृष्ठ 212 तथा चौधरी, रमाकान्त –एंग्लो नेपालीज़ रिलेशन्स, पृष्ठ 65
[15] . ट्रेल – स्टेटिसटिकल स्केच ऑफ कुमाऊँ , एशियाटिक रिसर्चेज –6,155 तथा पण्डे, बद्रीदत्त – पूर्वोक्त , पृष्ठ 400–401
[16] . पाठक, शेखर –हिमालय के द्वारो का खुलना , पहाड़ 9, पृष्ठ 24
[17] . वाल्टन , एच.जी – अल्मोड़ा गजेटियर, पृष्ठ 95
[18] . पाठक, शेखर –हिमालय के द्वारो का खुलना , पहाड़ 9, पृष्ठ 25
[19] . पण्डे, बद्रीदत्त – पूर्वोक्त ,, पृष्ठ 405
[20] . प्रिम्बेल, जॉन –द इन्वेशन ऑफ नेपाल, जॉन कम्पनी एट वॉर ,1971
[21] . टुकी ,सैण्ड्रो – गुरखाज़ , पृष्ठ 11–12
[22] . सक्सेना, बनारसी प्रसाद – हिस्टोरिकल पेपर्स रिलेटिंग टू कुमाऊँ , पत्र 11,पृष्ठ 44–45
[23] . उपरोक्त , पत्र 15 , पृष्ठ 47–48
[24] ., उपरोक्त, पत्र 38, पृष्ठ 84
[25] . पण्डे, बद्रीदत्त – पूर्वोक्त , पृष्ठ 431
[26] . पण्डे, बद्रीदत्त – पूर्वोक्त , पृष्ठ 431
[27] . कार , एच . सी .– मिलेट्री हिस्ट्री ऑफ इंडिया ,पृष्ठ 450
[28] . . पण्डे, बद्रीदत्त – पूर्वोक्त , पृष्ठ 433
[29] . लैन्डन ,पर्सीवल –नेपाल ,पृष्ठ 97
[30] . चैण्ट ,क्रिस्टोफर– द इलस्ट्रेटेड हिस्ट्री ऑफ एन एलाइट फाइटिंग फोर्स ,128
[31] . गुहा ,रामचन्द्र –द अनक्वाइट वुड

***

दलित अस्पृश्यता : हिन्दू समाज का अमानुशिक विधान

बबिता कुमारी *

प्राक् ब्रिटिश काल के हिंदू समाज में कई बड़े क्रूर और अजनतांत्रिक तत्त्व थे। कुछ हिंदुओं का अछूतों के रूप में पृथक्करण अत्यंत अमानुशिक सामाजिक अत्याचार था। अछुतों को मंदिरों में जाने का या सार्वजनिक कुओं और तलाबों के इस्तेमाल का अधिकार नहीं था, और उनके स्पर्श मात्र से ऊंची जातियों के लोग अपवित्र हो जाते थे। हिंदू समाज के अंग होते हुए भी अछूत इस समाज से बहिष्कृत जैसे थे।

अस्पृश्यता आर्यों की भारत विजय का सामाजिक परिणाम है। सामाजिक बात व्यवहार के फलस्परूप पराजित जाति के भी बहुत सारे लोग आर्यों के प्रभाव में आए। आर्यों की समाज व्यवस्था में समाविष्ट होने वालों में जो सबसे अधिक पिछड़े हुए या सबसे अधिक तिरस्कृत थे, उन्हीं से अछूतों की पुश्तैनी जाति का निर्माण हुआ।

हिंदू समाज में सदियों से अस्पृश्यता का प्रचलन रहा है। बुद्ध, रामानुज, रामानंद, चैतन्य, कबीर, नानक, तुकाराम और अन्य लोगों द्वारा चलाए गए व्यापक और अधार–भूत मानवीय एवं धार्मिक सुधार आंदोलनों का भी युगों की पुरानी इस अमानुशिक प्रथा पर कोई प्रभाव नहीं पड़ा। परंपरासम्मत, धर्मपूत यह प्रथा अपनी संपूर्ण बर्बर शक्ति के साथ सदियों तक जीवित रही।

विभिन्न राष्ट्रों और विभिन्न युगों में कई प्रकार के पदानुक्रमित मानव समाजो का उद्‌भव हुआ है। ये समाज वैमस्य और विशेषाधिकार की नींव पर बने थे लेकिन किसी भी अन्य समाज में हिंदू समाज जैसा आत्यंतिक श्रेणीकरण और अधिकार वैषम्य नहीं था। हिंदू समाज में अछूतों के साथ जैसा हुआ, वैसा शारीरिक पृथक्करण शायद ही किसी अन्य समाज में रहा हो। अछूत का स्पर्श मात्र जघन्य पाप और जुगुप्सा का कारण था।

हिंदू समाज में हलखोर, मुर्दा जानवर हटाने वालों और इस तरह के अन्य लोगों के कार्य पुश्तैनी अछूतों के जिम्मे होते थे। विधि और समाज के अनुसार कोई भी दूसरा उनके लिए वर्जित था। दुस्सह परिस्थिति के विरूद्ध विद्रोह करने वाले अछूतों को सजा देने के लिए हिंदू राज्य ने बहुत तरह के कानून बनाए। उन्हें पठन–पाठन या मंदिर में प्रवेश का अधिकार नहीं था। गांव या शहर में उन्हें बस्ती से बाहर अलग इलाके में रहना पड़ता था। जिन सार्वजनिक कुओं और तलाबों का उपयोग ऊँची जातियों के हिंदू किया करते थे, उनके इस्तेमाल का अछूतों का कोई अधिकार नहीं था। गांव की पंचायत, जिसमें अधिकांश कुलीन हिंदू ही होते थे, और हिंदू एक ही अपराध के लिए अछूत को ऊंची जाति के हिंदूओं से अपेक्षाकृत अधिक कठोर दंड दिया करते थे। अछूतों का यह सामाजिक उत्पीड़न धर्मसम्मत था और इसलिए इसकी जड़ें बहुत गहरी थीं। किसी भी अन्य विधान में आदमी इतना अधिक अपमानित और दलित नहीं हुआ। इस व्यवस्था में मानव व्यक्तित्व और प्रतिष्ठा के साथ चरम अत्याचार हुआ।

अस्पृष्यता जैसे क्रूर सामाजिक तत्व का उन्मूलन भारत के सभी समाज सुधार आंदोलनों का प्रमुख लक्ष्य था और ऐसा होना स्वाभाविक ही था। समाज सुधारकों के विभिन्न दल विभिन्न कारणों से अस्पृश्यता निवारण की तरफ झुके, लेकिन इसकी आवश्यकता सबों ने महसूस की। यह सच है कि भारतीय समाज के पोंगापंथियों ने, जो बहुत बड़ी तदाद में थे, अस्पृश्यता निवारण और दलित जातियों की अशक्तता के उन्मूलन का घोर विरोध किया। फिर भी समाज इन विषमताओं को समाप्त करने की दिशा में ही अग्रसर हो रहा था।

1931 के जनगणना प्रतिवेदन के अनुसार सारे भारत में पद दलित वर्गों की संख्या 50,192,000 थी। उत्तरप्रदेश में वे सारी आबादी के 23 प्रतिशत थे। इस तरह सामाजिक तौर पर निकृष्ट ये सारी

* शोध छात्रा, इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

हिंदू आबादी के पाँचवे भाग थे। इसलिए राष्ट्रीय आजादी और सामाजिक नवनिर्माण की किसी भी योजना में अछूतोद्धार का बहुत बड़ा महत्व था।

पददलित जातियों में भी सामाजिक श्रेणियां थीं। सामाजिक अन्याय के शिकार इन वर्गों में भी सामाजिक तौर पर उच्चतर और निम्नतर जातियां थीं। इसलिए यह समस्या और कठिन एवं जटिल होती गईं। अस्पृश्यता और सामाजिक अशक्तता के अन्य रूपों की व्यापकता के विषय में क्षेत्रगत विभिन्नताएं भी थीं। फिर भी पददलित जातियां उच्चकुलीन हिंदुओं से भिन्न थीं, क्योंकि वे समान सामाजिक अन्याय से उत्पीड़ित थीं।

अस्पृश्यता और दलित वर्गों की सामाजिक अपंगता के अन्य रूपों का उन्मूलन उन सारे सामाजिक धार्मिक सुधार आंदोलनों का लक्ष्य था जो अंग्रेजी शासनकाल में उदित हुए।

संदर्भ :

1. *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,* ओमप्रकाश वाल्मीकि, राधाकृष्ण प्रकाशन नई दिल्ली.
2. *स्वर्ग पर धावा, बिहार में दलित आन्दोलन,* प्रसन्न कुमार चौधरी और श्रीकान्त.
3. *भारत में जाति भेद,* आचार्य क्षितिमोहन सेन, साहित्य भवन, प्रा. लि, इलाहाबाद.
4. *दलित देवो भवः,* किशोर कुणाल, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मन्त्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली.
5. *मंजिल से ज्यादा सफर,* विश्वनाथ प्रताप सिंह, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली.
6. *भारत के सामाजिक क्रान्तिकारी,* देवेन्द्र कुमार बेसन्त्री, दलित साहित्य प्रकाशन संस्था, नई दिल्ली.
7. *दलित साहित्य का सौन्दर्यशास्त्र,* शरण कुमार लिम्बाले, अनुवादः रमणिका गुप्ता. वाणी प्रकाशन, नयी दिल्ली.

***

1885 से 1905 तक का उदारवादी युग

मनोरमा कुमारी *

1885 से लेकर 1905 ई० तक कांग्रेस का नेतृत्व उदारवादियों के हाथ में था। उदारवादियों को अपने उद्देश्यों की पूर्ति में यद्यपि सफलताएँ नहीं मिली परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि 1885 से 1905 तक का कांग्रेस का बीस वर्ष का उदारवादी युग निरर्थक रहा। यह बात ठीक है कि उदारवादी नेता ब्रिटिश सभ्यता और संस्कृति के पुजारी थे और अंग्रेजों की ईमानदारी में पूर्ण आस्था रखते थे, जनता से इनका कोई संपर्क नहीं था और बंद कमरे में आराम–कुर्सियों पर बैठकर भारतीय समस्याओं का सांविधानिक निराकरण खोजते थे, परन्तु इसके बावजूद तात्कालिक परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए हम उनकी सफलताओं और भारतीय राजनीति में उनके योगदान की अनसुनी नहीं कर सकते। नरमपंथियों का सबसे महत्वपूर्ण राजनीतिक योगदान यह था कि उन्होंने उपनिवेशवाद की एक आर्थिक समालोचना पेश की। यह आर्थिक राष्ट्रवाद, जिसे अकसर इसी नाम से पेश किया जाता है,एक प्रमुख विषय बन गया, जिसे राष्ट्रवादी आंदोलन के बाद के काल में और आगे विकसित किया गया और एक बड़ी हद तक इसने स्वतंत्र भारत की कांग्रेस सरकार की नीतियों को भी प्रभावित किया। इस बारे में तीन नाम स्मरणीय है : सफल व्यापारी दादाभाई नौरोजी, न्यायमूर्ति महादेव गोविंद रानाडे और सेवानिवृत आई.सी.एस अधिकारी रोमेशचंद्र दत्त, जिन्होंने दो खंडो (1901–03) में म्बवदवउपब भ्पेजवतल व ि्पदकपं का प्रकाशन कराया था। इस आर्थिक राष्ट्रवाद का खास जोर भारत की गरीबी पर था और इसे मुक्त व्यापार के क्लासिकी आर्थिक सिद्धांत के व्यवहार ने पैदा किया था। इन राष्ट्रवादियों का मुख्य तर्क यह था कि लूट, खिराज और वणिकवाद के माध्यम से अधिशेष की वसूली के पुराने और प्रत्यक्ष तरीकों को नष्ट करके और उनकी जगह मुक्त व्यापार और विदेशी पूंजी के निवेश के रूप में शोषण के अधिक परिष्कृत और अल्पगोचर तरीकों को प्रचलित करके ब्रिटिश उपनिवेशवाद ने उन्नीसवीं सदी में अपने आपको परिवर्तित कर लिया था। इसके कारण भारत खेतिहर कच्चें मालों और खाद्य पदार्थों की आपूर्ति का स्त्रोत और स्वामी (उपनिवेशक) देश ब्रिटेन के तैयार मालों का उपभोक्ता बन गया था। इस तरह भारत का दर्जा गिरागर उसे एक निर्भर खेतिहर देश और ब्रिटिश पूँजी निवेश का ठिकाना बना दिया गया। भारतीय पूँजी से उद्योगीकरण भारत के विकास की कुंजी था, जबकि विदेशी पूँजी के निवेश का अर्थ मुनाफ़ों के रूप में दौलत का देश से बाहर जाना था। यह ''दोहन सिद्धांत'' वास्तव में इस आर्थिक राष्ट्रवाद का बुनियादी विषय था। तर्क दिया गया कि घरेलू खर्चों, फौजी खर्चों और रेलों में हुए निवेश पर जमानतशुदा ब्याज का ब्रिटेन को भुगतान धन का सीधे–सीधे दोहन कर रहा था। 1890 के दशक में रूपए के गिरते विनिमय दर के कारण यह बोझ और भी बढ़ गया तथा बजट घाटो, बढ़े करों और फौजी खर्चों ने इसे और बोझल बना दिया। नौरोजी का हिसाब था कि यह भारी दोहन सलाना 1.2 करोड़ पाउंड के बराबर था, जबकि विलियम डिग्वी की गणना इसे 3 करोड़ के बराबर बताती थी। औसतन यह ब्रिटिश भारत की सरकार के कुल राजस्व का कम से कम आधा था। इससे भारत में सीधे–सीधे निर्धनता आती थी और पूँजी–निर्माण की प्रक्रिया बाधित होती थी। मालगुजारी की भारी दरों के कारण किसान बेजमीन और गरीब होते चले गए, जबकि ब्रिटिश उद्योगपतियों के हित–साधन के लिए सुरक्षात्मक तटकर न लगाए जाने के कारण भारत के उद्योगीकरण में बाधा आई और हस्तशिल्प उद्योग नष्ट हो गए। इसके कारण कृषि पर बोझ पड़ा और गरीबी में और भी वृद्धि हुई; यह चक्र इसी तरह से पूरा हुआ। नौरोजी की गणना के अनुसानर भारतवासियों की प्रति व्यक्ति आय 20 रूपए थी, जबकि डिग्वी के अनुसार यह 1899 में 18 रूपए थी। सरकार ने इस गणना को स्वीकार नहीं किया; रिपन के वित्त सचिव ने इसे 27 रूपए बतलाया, जबकि 1901 में लॉर्ड कर्जन के हिसाब से यह 30 रूपए थी। मगर इस काल के अकालों और महामारियों से

* शोध छात्रा., इतिहास विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा

एक और ही कहानी सामने आती थी। दादाभाई नौरोजी के ही शब्दों में ''भौतिक दृष्टि से'' ब्रिटिश राज ने केवल ''गरीबी'' पैदा की; यह मानो ''चीनी का बना चाक हो। मतलब यह कि कोई जुल्म नहीं हो रहा था; सब कुछ चिकना और मीठा था, पर फिर भी वह चाकू नहीं था।''

इसलिए इस स्थिति में सुधार के लिए नरमपंथी अगर कुछ चाहते थे तो आर्थिक नीतियों में बदलाव चाहते थे। व्यय और करों में कमी, सैन्य व्यय का पुर्ननिर्धारण, भारतीय उद्योगों की सुरक्षा के लिए एक संरक्षणवादी नीति, मालगुजारी की दरों में कमी, रैयतवारी और महलवारी क्षेत्रों में स्थायी बंदोबस्त का विस्तार तथा कुटीर उद्योगों और दस्तकारियों को बढ़ावा, उनकी सिफारिशों में शामिल थे। पर इनमें से कोई भी माँग पूरी नहीं हुई। 1870 के दशक में समाप्त किया जा चुका आयकर 1886 में दोबारा लगाया गया; नमक कर 2 रूपए से बढ़ाकर 2.5 रूपए कर दिया गया; एक सीमा शुल्क लगाया गया, पर फिर 1894 में एक जवाबी आबकारी लगाकर उसका तोड़ निकाला गया, पर उसे 1896 में घटकर 3.5 प्रतिशत कर दिया गया। फाउलर आयोग ने मनमाने ढंग से रूपए के विनिमय मूल्य को 1 शिलिंग 4 पेंस की भारी दर पर निर्धारित किया। कृषि क्षेत्र में भी कोई बुनियादी परिवर्तन नहीं आया, क्योंकि अल्फ्रेड लायल जैसे उपनिवेशी विशेषज्ञों का विश्वास था कि भारतीय कृषि ठहराव के चरण से पहले ही आगे बढ़कर संवृद्धि के आधुनिक चरण में पहुँच चुकी है और इसलिए मंदी से अधिक प्रगति के चिन्ह दिखाई दे रहे हैं। इस तरह नरमपंथियों के संवैधानिक या प्रशासनिक एजेंडे की तरह उनका आर्थिक एजेंडा भी बड़ी सीमा तक अधूरा रहा।

संदर्भ :

1. श्रीवास्तव, शशि प्रभा (2009), स्वतंत्रता आन्दोलन का इतिहास, राधाकृष्णन प्रकाशन, नई दिल्ली.
2. सिंह, हीरालाल (1976), भारत में ब्रिटिश राज की समस्याएँ और नीतियाँ, मैकमिलन, दिल्ली.
3. मॉर्क्स एण्ड ऐंगेन्स (1985), भारत का प्रथम स्वतंत्रता संग्राम, 1857–59, पीपुल पब्लिकेशन हाऊस, दिल्ली.
4. मजूमदार, आर० सी० (1978), हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑफ इंडियन पीपुल, स्ट्रगल फॉर फ्रीडम, भारतीय विद्या भवन, बम्बई.
5. मिने, आर० जे० (2000), इंडियाज ब्रिटिश एरा, श्री पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली.
6. खान, के० के० (1988), हिस्ट्री ऑफ़ ब्रिटिश इंडिया, श्री पब्लिशर्स एण्ड डिस्ट्रीब्यूटर्स, नई दिल्ली.
7. कुमार रवीन्द्रनाथ (2009), समकालीन विश्व राजनीति, स्टूडेंट्स फ्रेंड्स, पटना.

***

समसामयिक परिप्रेक्ष्य में 'एक कंठ विषपायी'

अनूप कुमार सिंह *

साहित्यकार दुष्यंत कुमार समकालीन और नई कविता के पूर्णतः समर्थ कवि हैं। दुष्यन्त कुमार समय के साथ चलने वाले रचनाकार हैं। उनकी कविताएँ, ग़ज़ल, नाटक और उपन्यास तथा अन्य गद्य लेखन आधुनिक काव्य–धारा की अति विशिष्ट पहचानों को प्रस्तुत करने वाली है। इससे उनकी कुशलता, अभियोजना, दूरदर्शिता और प्रवाहमयता का सहज स्वरूप दिखाई देता है। उनका रचा हुआ काव्य–संसार युग और काव्य की दृष्टि न केवल सर्वथा नवीन है, अपितु पूर्णतः स्वस्थ और परिपक्व भी है। इन्होंने पुराने कथानक को लेकर नये भाव–बोध को प्रस्तुत किया है।

दुष्यंत कुमार के सृजन–संसार में समसामयिक जीवन और उसकी समस्याओं का व्यापक रूप दिखाई पड़ता है। उनके हृदय में आरम्भ से ही अन्याय, अत्याचार, असमानता आदि देखकर विक्षोभ उत्पन्न होता रहा है । आम जन की पीड़ा, उत्तेजना, अभाव, बेबसी, घुटन को दुष्यंत कुमार करीब से देखते ही नहीं अपितु उनके साथ तादात्म्य स्थापित करते हैं। उनकी पीड़ा को वे करीब से महसूस करते हैं और पाते हैं कि समाज का रवैया आम–जन के प्रति अत्यंत क्रूर है। उन्होंने अपनी रचनाओं के माध्यम से सामाजिक और राजनीतिक जीवन में व्याप्त भ्रष्टाचार एवं शोषण को उजागर किया है ।

इनका काव्य–नाटक 'एक कंठ विषपायी' की कथावस्तु का आधार 'श्रीमद्भागवतपुराण' है। इस गीतिनाट्य में शिव के मोह–प्रसंग को आधार बनाकर जर्जर रूढ़ियों और परम्परागत शव से चिपटे हुए लोगों की प्रतीकात्मक प्रस्तुति की गई है। इस नाटक में शिव के प्रति दक्ष की भावना का मूल किंचित परिवर्तित रूप में परिलक्षित होता है। मिथक काव्य दृष्टि से इसकी मूल संवेदना पुरातन के प्रति नवीन की चुनौती के रूप में प्रस्तुत हुई है। नाटककार ने इसमें परम्परित शिव की कथा को समकालीन संदर्भों में प्रतिपादित करते हुए आधुनिक बोध को प्रकाशित करने का प्रयास किया है। साहित्य जगत में अपनी उपस्थिति दर्ज करने वाले दुष्यंत कुमार ने अपने जीवन की यथार्थता को कविता के साथ–साथ नाटक के द्वारा अपनी संपूर्ण ऊर्जा और उष्णता के साथ सीधे पाठकों के सम्मुख खोलकर रख दिया है, जो सीधे पाठकों के हृदय तक पहुँचती है और जिसे महसूस करते हुए पाठक अनायास ही उनका सहयात्री बन जाता है। आधुनिक जीवन की विसंगतियाँ जिनमें भूख, गरीबी, दीनता, दरिद्रता आदि मौजूद है, को दुष्यंत कुमार ने अपने प्रसिद्ध काव्य–नाटक 'एक कंठ विषपायी' के माध्यम से व्यक्त किया है।

वास्तव में दुष्यंत जी का साहित्य अधिक फैलाव में एक विशिष्टता का प्रतिनिधित्व करता है। दुष्यंत कुमार की कृति 'एक कंठ विषपायी' पौराणिक प्रसंग पर आधारित श्रेष्ठ काव्य–नाटक है। पीढ़ियों से चली आ रही जीर्ण–शीर्ण और सडांधभरी परंपराओं से मुक्त पाने की चाहत ही इस गीति नाट्य की मूल समस्या है। यह रचना वर्तमान की बुराइयों पर कड़ा प्रहार करती है और परंपरा से मुक्त रहकर नए मूल्यों को स्थापित कर मनुष्य को एक नया संदेश देती है।

'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक का प्रकाशन 1964 ई. में हुआ। इस नाटक के प्रमुख पात्र–सर्वहत, शंकर ब्रह्मा, विष्णु, इंद्र, दक्ष, वीरिणी, वरूण, कुबेर, शेष, द्वारपाल, अनुचर, एक सिपाही, दूसरा सिपाही। चार दृश्यों में विभाजित 'एक कंठ विषपायी' का प्रत्येक दृश्य अपने आप में महत्त्वपूर्ण स्थान रखता है। यह नाटक आधुनिक बोध को उजागर करने वाला एक सशक्त काव्य–नाटक है, जिसमें दुष्यन्त ने लघु मानव की पीड़ा और यातना को नाटक के मुख्य पात्र सर्वहत के माध्यम से प्रस्तुत किया है। प्रकाशन के पहले यह काव्य–नाटक मात्र तीन दृश्यों में था, पर ''इसी बीच पंजाबी के प्रसिद्ध नाटककार भाई परितोष गार्गी भोपाल आए और नाटक सुनकर उन्होंने मंच की दृष्टि से कुछ

* शोधार्थी (हिन्दी तथा आधुनिक भाषा विभाग), लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

ऐसे महत्त्वपूर्ण सुझाव दिये जिनके कारण मुझे पूरा नाटक (तीसरे अंक को छोड़कर) फिर से लिखना पड़ा। परिणामस्वरूप नाटक तीन से चार अंकों का हो गया और उसमें राज–लिप्सा तथा युद्ध–मनोवृति का मारा हुआ, सर्वहत नाम का, एक नया पात्र समाविष्ट हुआ जो अनायास ही उभरकर आधुनिक प्रजा का प्रतीक बन गया।''[1]

काव्य–नाटक 'एक कंठ विषपायी' में दुष्यन्त कुमार ने आधुनिक व्यक्ति एवं उसके मनोविज्ञान तथा आधुनिक परिवार की अनेक समस्याओं को अपमान की भावना या प्रेम की भावना के माध्यम से प्रकट किया है। जिस प्रकार आज हर व्यक्ति अपने अपमान का प्रतिशोध लेना चाहता है, उसी प्रकार 'एक कंठ विषपायी' के पात्र दक्ष, शंकर, इन्द्र, सुलभ आदि प्रतिशोध का अवसर चाहते हैं। इसी तरह पारिवारिक व्यक्तियों के पारस्परिक सम्बन्ध एवं प्रेमभाव आदि का स्पष्ट चित्रण भी नाटक में प्रस्तुत हुआ है। दक्ष–वारिणी का वार्तालाप, शंकर–सती का प्रेम आदि दाम्पत्य जीवन के जीवन्त उदाहरण है। नाटककार आज की कई प्रमुख समस्याओं को नाटक के माध्यम से प्रस्तुत करता है। आज के जन–प्रतिनिधियों के परिवार–जनों के माध्यम से जिस प्रकार आम–जन शोषित होता है, उसे नाटक में दक्ष पुत्र सुलभ के अत्याचारों के माध्यम से दिखाया गया है। जिस प्रकार राजकुमार सुलभ के अत्याचारों पर दक्ष वात्सल्य– भाव के कारण प्रतिबन्ध नहीं लगाते और मनमानी करने के लिए बढ़ावा देते हैं, वैसे ही एक शासक आज अपने पुत्र को स्वतंत्रता देता है, इसी संदर्भ में दक्ष कहते हैं–

''बिलकुल ठीक कर रहा है वह
एक तनिक से बालक को
प्रसन्न रखने में अक्षम
तुम सब दंडनीय हो।''[2]

दुष्यन्त कुमार के इस काव्य नाटक में सामाजिकता का व्यापक स्वरूप दिखाई देता है। 'एक कंठ विषपायी' नाटक में आधुनिक जन–जीवन का सजीव चित्र प्रस्तुत हुआ है। नाटक के प्रमुख पात्र सर्वहत के माध्यम से दुष्यंत कुमार ने प्रजा की मनःस्थिति का सही विश्लेषण कराया है। आम जन अपना जीवन आज शासन और प्रशासन के भय और अनेक प्रकार की विसंगतियों के मध्य व्यतीत कर रहा है। शासक अपनी सुविधा के अनुसार नियमों में जब–तब परिवर्तन कर लेते हैं और प्रजा देखती रह जाती है–

''अरे हम प्रजा थे,
हमने उफ तलक नहीं की,
शासन के गलत–सलत झोंकों के आगे भी,
फसलों से विनयी हम बिछे रहे निर्विवाद।''[3]

इतना ही नहीं नाटककार ने आधुनिक प्रजातांत्रिक संसदीय प्रणाली के स्वरूप पर भी नाटक के माध्यम से प्रकाश डाला है। आज भी देश पर युद्ध संकट आ पड़ने पर नेता लोग स्थिति नहीं संभाल पाते, फलस्वरूप, जनता को इसका ख़ामियाजा भुगतना पड़ता है।

वर्तमानयुग में मानव की भूख को लगातार नज़र–अंदाज किया जा रहा है । पेट की भूख मिटाने के लिए उसे जगह–जगह भटकना पड़ता है। प्रजा को दो वक्त की रोटी पाने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है, लेकिन शासकों के पास इस समस्या को सुलझाने के लिए वक्त नहीं है। उन्हें फ़िक्र है तो बस अपनी प्रतिष्ठा की। इन लोगों को मान प्रतिष्ठा, पद और अहम् की भूख होती है, जिसकी रक्षा के लिए ये नेतागण सर्वनाश करने पर तुले हुए नजर आते हैं। सर्वहत देवताओं से दो घूँट रक्त माँगता हुआ कहता है–

''आप लोग शासक हैं,
और शासकों को कहीं
रक्त की कमी हुआ करती है।
आप लोग चाहें तो मेरे लिए
रक्त का समुंदर भर सकते हैं।''[4]

सर्वहत के माध्यम से दुष्यंत कुमार द्वारा कही गई उपर्युक्त पंक्तियों में वर्तमान शासकों के प्रति व्यंग्य साफ नजर आता है।

ये नेता जनता का खून हर सूरत में बहा डालते हैं और जब प्रजा रोटी मांगती है तो ये उन्हें बदले में देते हैं– बन्दूक की गोली। वर्तमान की इस विषमता का निरूपण 'एक कंठ विषपायी' में सार्थक रूप से हमारे सम्मुख आता है। दुष्यन्त कुमार सर्वहत के माध्यम से कहते हैं कि शासकों की भूलों का परिणाम जनता को भुगतना पड़ता है। उनके अत्याचारों से विवश, असहाय व दीन–हीन, शोषित और पीड़ित जनता की यह विडम्बना ही है कि वह शासक जनों की भूलों का भी परिणाम झेलती है–

''क्यों कि यह
विधाता के नियमों की विडम्बना है।
चाहे न चाहे
किन्तु
शासक की भूलों का उत्तरदायित्व
प्रजा को वहन करना पड़ता है,
उसे गलित मूल्यों का दंड भरना पड़ता है।''[5]

सर्वहत के इस कथन में प्रजा की विवशता के दर्शन होते हैं। वर्तमान शासन प्रणाली के गलत तौर–तरीकों के प्रति दुष्यन्त कुमार व्यंग्य करते है। विडम्बना तो ये है कि आम जनता का खून भी राजनीति का विषय बना लिया जाता है, हमदर्दी का नहीं।

दुष्यन्त कुमार सर्वहत के माध्यम से कहते हैं कि संसार में सब भूखे होते हैं और उनकी यह भूख बढ़ती ही जाती है। किसी को सत्ता की भूख होती है तो किसी को मान–प्रतिष्ठा या पद की भूख होती है, लेकिन जीवन की भूख बहुत कम लोगों में होती है। पर सच ये है कि जीवन की बदहाली जो लोग सहते हैं, वे ही जीवन की भूख के बारे में जानते हैं–

''किन्तु बन्धु
जीवन की भूख
बहुत कम लोगों में होती है
बहोत कम (बहोऽऽत कम में)
तुम
जीवन की भूख का मतलब समझते हो।''[6]

उपर्युक्त पंक्तियों में वर्तमान शासकों के प्रति व्यंग्य साफ नजर आता है। उन संघर्षों के अन्तर्गत किस तरह मनुष्य की जिजीविषा समाप्त होने लगती है।

उपर्युक्त विवेचन में हमने देखा कि दुष्यन्त कुमार ने अपने नाटकों में जन–जीवन की दशा, सामाजिक परम्पराओं व विश्वास, दलित–शोषितजन, नारी की स्थिति, व्यक्ति और परिवार आदि माध्यमों से अनेक सामाजिक सरोकारों का वर्णन किया है लेकिन इनसे हटकर कुछ सामाजिक सरोकार हैं, जिनको दुष्यन्त कुमार अपने नाटकों में चित्रित करते है।

निष्कर्षतः कह सकते हैं कि नाटककार दुष्यंत कुमार के 'एक कंठ विषपायी' व्यंग्य धारदार और सार्थक है। उन्होंने अपने व्यंग्य के माध्यम से सामाजिक यथार्थ को अनावृत कर, हमें समसामयिक परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों से ही परिचित ही नहीं कराया, अपितु भविष्य के लिए भी दूरदृष्टि प्रदान करते हैं। प्रत्येक जन रचनाकार का सामान्यजन के लिए एक बेहतर भविष्य और मूलभूत जरूरतों की पूर्णता का सपना होता है। कवि और नाटककार दुष्यंत कुमार का भी सपना है कि समाज से विषमता और विसंगतियां समाप्त हो जाए तथा व्यक्ति एक सुखद जीवन का उपभोग करे। उनका काव्य नाटक इसी कामना को पूर्ण करने के लिए प्रतिबद्ध है। दुष्यंत कुमार का 'एक कंठ विषपायी' काव्य नाटक न केवल राजनीतिक, आर्थिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक विसंगति और विद्रूपताओं को उद्घाटित करता है, बल्कि हमें जगाकर समाज के नव निर्माण हेतु प्रेरित भी करता है। सार्थक व्यंग्य के कारण दुष्यंत

कुमार की रचनाएँ अपनी सामाजिक उपयोगिता की कसौटी पर पूरी तरह से खरी उतरती है। दुष्यंत कुमार के नाटकों के अध्ययन से पता चलता है कि व्यंग्य के तीखे धार द्वारा सामाजिक यथार्थ को चित्रित करने में कवि पूरी तरह सक्षम है। उन्होंने अपने नाटक में अनेक दबावों, तनावों, आदि स्थितियों का यथार्थपूर्ण चित्रण किया है।

यह सत्य है कि हिन्दी साहित्य में अब तक दुष्यंत कुमार जैसे संवेदनशील साहित्यकारों का सही मूल्यांकन अब तक नहीं किया गया है। इनकी कृतियों को समय–सीमा के दायरे में समेटा जाना गलत होगा, क्योंकि वह केवल समकालीन उपयोगिता की चीज नहीं, बल्कि वर्तमान से भी आगे जाकर भविष्य की नवागत पीढ़ी के लिए उसकी महत्ता और उपयोगिता रहेगी। हिन्दी साहित्य में श्रेष्ठ साहित्यकारों की कभी कमी नहीं रही और उन साहित्यकारों की अग्रिम पंक्ति में खड़े दुष्यंत कुमार की अलग पहचान है। उनकी कोई भी कृति, चाहे वह कविता हो, नाटक हो, उपन्यास या ग़ज़ल हो–सभी में उनका विशिष्ट व्यक्तित्व दिखाई देता है। दुष्यंत कुमार के नाटकों में ऐसा भावबोध है जो उनके पाठकों के मध्य आत्मीयता को बनाते रखता है। एक प्रखर नाटककार, कवि, उपन्यासकार और गज़लकार के रूप में भारत का साहित्य संसार उनके प्रदेय को श्रद्धापूर्वक स्मरण करता रहेगा।

संदर्भ :

[1]दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ. 5

[2]दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ.20-21

[3]दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ.21

[4]दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ. 113

[5]दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ.- 49

[6]दुष्यंत कुमार, एक कंठ विषपायी, पृ.- 65

***

मानव मूल्यों के विकास में संस्कृत वाङ्.मय का योगदान

डॉ. अनीता कुमारी *

मानव विधाता की सर्वोत्तम रचना है। सृष्टिकर्ता ब्रह्मा जी ने मानव को इस योग्य बनाया है कि वह अपने कल्याण का मार्ग स्वयं चयन करे। जीवन की सार्थकता भी इसी में है कि हम पूर्णत्व को प्राप्त कर सकें। इस बात को ध्यान में रखकर प्राचीन ऋषिगणों ने आश्रम व्यवस्था और पुरुषार्थ चतुष्टय को बनाया जो निम्न है– धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष। इसमें धर्म सर्वप्रधान है और मोक्ष अन्तिम चरम लक्ष्य, जिसको प्राप्त कर मनुष्य इस संसार को आवागमन के चक्र से मुक्त हो जाता है।धर्म, मध्य अर्थ और काम पुरुषार्थ जीवन और समाज के लिए अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इनकी प्राप्ति से जीवन भौतिक सुख सुविधाओं की प्राप्ति, पितृ ऋण, देव ऋण और अतिथि ऋण से मुक्ति एवं आन्तरिक रूप से संतुष्ट बनता है। किन्तु धर्म से मर्यादित रहने पर ये (अर्थ और काम) मानव के लिए शुभ व कल्याणकारी रहते , अन्यथा मानव को मुख्य लक्ष्य मोक्ष से विमुख कर पतन का कारण बनते हैं। गीता में कहा गया है–

धर्मविरुद्धो लोकेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ!

महाभारत में भी कहा गया है–

धर्मादर्थश्च कामश्च स किमर्थं न सेव्यते।

अतः सत्य एवं संस्कार युक्त समाज के लिए मानव एक अनिवार्य अंग है। मानवीय मूल्यों से युक्त व्यक्तियों का समूह ही सभ्य समाज का निर्माण करता है और व्यक्तियों का आचार–विचार, व्यवहार ही उस समाज का आँकलन प्रस्तुत करता है–

महाभारत में कहा गया है दृ

आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः।

अर्थात् आचारहीन व्यक्ति को वेद भी पवित्र नहीं कर सकता। वर्तमान समय में अर्थ और काम की प्रधानता होने के कारण मानव श्रेय मार्ग से विमुख हो गया है। परिणाम स्वरूप भौतिकवादी प्रवृत्ति के कारण मानवीय मूल्यों में गिरावट आयी है। प्राचीन समाज वर्तमान समाज की अपेक्षा कहीं अधिक नैतिक एवं चारित्रिक रूप से सुदृढ़ था। संस्कृत वांड्मय से दूर होकर पाश्चात्य संस्कृति की ओर अन्धाधुंध झुकाव से भारतीय संस्कृति पतनोन्मुख हो रही है। आज समाज में व्यक्ति धर्म, चरित्र, नैतिकता, आध्यात्मिकता को गौण कर अर्थ और काम के प्रति अति लोलुप हो गया है। आज अर्थ ही व्यक्ति की श्रेष्ठता का मापक हो गया है। नीतिशतकम् में कहा गया है–

यस्यास्ति वित्तं स नरः कुलीनः स पण्डितः स श्रुतवान्गुणज्ञः।
स एव वक्ता स च दर्शनीयः सर्वे गुणाः काञ्चनमाशयन्ते।।[1]

मोह व्यक्ति को कहाँ से कहाँ ले जा रहा है, शायद यह व्यक्ति को स्वयं भी नहीं पता। पारिवारिक एवं सामाजिक कर्तव्यों के पालन के लिए धनोपार्जन करना गलत नहीं है, किन्तु धनी बनने के चक्कर में अनुचित तरीके से धनोपार्जन करना जैसे–घूसखोरी, झूठबोलना, धोखा देना, कालाबाजारी, विभिन्न घोटाले, दूसरे की हत्या करना आदि कार्य धनप्राप्ति के लिए करना अनुचित है। आज भारतवर्ष ही नहीं, अपितु सम्पूर्ण विश्व इस रोग से ग्रसित है।

भारतीय संस्कृति सदा से त्याग, दया, दान, गुरूजनों की सेवा, सत्य, अहिंसा, परोपकार, सदाचार, आदि मानवीय मूल्यों से विभूषित रही है। श्रीमद्भागवतगीता में इन्हें दैवी सम्पदा कहा गया है। संस्कृत वाड्.मय में वर्णित समन्वयवादी भाव उन कठिन दुर्गम मार्गों को सरल करने में पूर्ण सम्बल प्रदान कर रहे हैं–

यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानुपश्यति।

---

* एसो. प्रो. संस्कृत विभाग, राजकीय महिला पी. जी. कॉलेज, गाजीपुर

सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।[2]

अर्थात् जो सभी प्राणियों को अपने समान देखता है वह कभी किसी से द्वेष नहीं करना है तथा समासता का भाव रखता है। मानव में मानवीय मूल्यों के प्रति प्रतिबद्धता हो। सभी मानवों में एकत्व की भावना हो। हमारा गमन, वचन, मति, संकल्प एक हो, तभी समाज में सुख और शान्ति होगी–

संगच्छध्वं सं वदध्वं सं वो मनांसि जानताम।
देवा भागं यथापूर्वे सञ्जनानां उपासते।।[3]

प्रसिद्ध कथा ग्रन्थ 'हितोपदेश' में सम्पूर्ण वसुधा को परिवार मानने की शिक्षा दी है। इसका अनुसरण करने पर आपसी कलह, ईर्ष्या और वैमनस्य समाप्त होगा।

अयं निज परो वेत्ति गणना लघुचेतसाम।
उदारचरितानां तु वसुधैव कुटुम्बकम।।[4]

अर्थात् अपने पराये की गणना क्षुद्र हृदय वाले व्यक्ति करते हैं। उदारमना व्यक्ति सम्पूर्ण वसुधा को अपना परिवार मानते हैं। इस भावना की अभिव्यक्ति इससे सुन्दर शब्दों में नहीं की जा सकता है।

'लोभः पापस्य कारणम्' अर्थात् लोभ पाप का कारण है। इसलिए संस्कृत वाङ्.मय हमें लाभ से दूर रहने की प्रेरणा देता है। ईश्वर प्रदत्त सभी पदार्थों का त्याग भाव के साथ उपभोग करना चाहिए। इस संदर्भ में ''ईशावास्योपनिषद' की यह पंक्तियाँ अत्यन्त महत्वपूर्ण है–

ईशावास्यमिदं सर्वं यत् किञ्चजगत्यां जगत।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथाः मा गृध कस्यस्विद् धनम।।[5]

कवि भर्तृहरि ने नीतिशतकम् में कहा है–

तृष्णां छिन्धि भजक्षमा जहि मदं पापे रतिं मा कृथा।[6]

अतः मनुष्य का उद्देश्य धन एकत्रीकरण नहीं बल्कि विहित कर्मो को कहते हुए सौ वर्षों तक जीवन की कामना करनी चाहिए–

कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजिविषेच्छतं समाः।
एवं त्वयि नान्यथतोऽस्ति न कर्मलिप्यते नरे।।[7]

लोभ से दूर रहने पर अनैतिक कार्य स्वतः बन्द हो जायेंगे और देश की आर्थिक स्थिति सुदृढ़ होगी।

आज अधिकांश लोग अपने माता–पिता का सम्मान एवं सेवासुश्रुषा करने में संकोच कर रहे हैं, जिससे वृद्धाश्रम की संख्या में बढ़ोत्तरी हो रही है। जो चिन्ता का विषय है। यदि हमारे माता–पिता, गुरुजन आदि हमारे तनाव में हैं तो हमारा जीवन निरर्थक है। मनुस्मृति में गुरुजनों की सेवा का फल इस प्रकार बताया गया है।

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्यायशोबलम।।[8]

प्रत्येक मानव अपने माता–पिता, गुरुजनों के प्रति अपने अधिकार के स्थान पर कर्तव्यों का पालन करने लगे तो वृद्धावस्था की चिन्ता काफी हद तक दूर हो सकती है, क्योंकि हम माता–पिता के ऋण का बदला सैकड़ों वर्षों से भी नहीं चुका सकते–

यं माता–पितरौ क्लेशं सहते सम्भवे नृणाम।
न तस्य निष्कृतिः शक्त्या कर्तुं वर्ष शतैरपि।।[9]

आज मनुष्य काम के जाल में फँसकर अनेक दुष्परिणामों से ग्रसित हो रहा है। भारतीय संस्कृति जो संयम आदि गुणों के कारण अनुकरणीय था। आज वहाँ एड्स जैसे रोगों की वृद्धि हो रही है। संस्कृत वाङ्.मय में अनेक ऐसे सन्देश हैं, जिसका अनुकरण कर मानव इस रोग से छुटकारा पा सकता है। 'नीतिशतकम्' में मनुष्य को एक पत्नीव्रत की सलाह दी गयी है–

एका भार्या सुन्दरी व दरी वा।

'हितोपदेश' में भी स्त्री से दूर रहने की शिक्षा दी गयी है।

वरं क्लैव्यं पुसां मा न च परकलत्राभिगमनम।[10]

आज भारतीय संस्कृति बलात्कार आदि घटनाओं से अपनी छवि का विनाश कर रही है। यदि हमारा मन, आचार–विचार, संकल्प पवित्र हो तो हम पुनः अपनी प्रतिष्ठा प्राप्त करने में सफल होंगे। कहा गया है–

मातृवम् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत।
आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः।।[11]

अर्थात् जो स्त्री को माता के समान। दूसरे की सम्पत्ति को मिट्टी के समान और सभी प्राणियों को अपने समान देखता है। वही ज्ञानी है।

संस्कृत वाड्.मय में परोपकार की प्रशंसा की गयी है। प्राण और धन के द्वारा भी परोपकार करना चाहिए। पुण्य क्या है? पाप क्या है? इसे स्पष्ट करते हुए कहा गया है–

अष्टादश पुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम।
परोपकार पुण्याय, पापाय परपीडनम।।

अर्थात् अट्ठारह पुराणों का सार तत्व यही है कि परोपकार पुण्य है और दूसरों को पीड़ा पहुँचाना पाप है।

इस भौतिकवादी युग में मनुष्य अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए किसी को भी प्राण लेने के लिए तैयार रहता है। हमारे धर्मग्रन्थों में 'अहिंसा परमो धर्मः' अर्थात् अहिंसा को परम धर्म माना गया है। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने दैवीय शक्ति के वर्णन में अहिंसा को प्रधानता दी है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जो मनुष्य अपने सुख के लिए प्राणियों का वध करता है, वह न इस जीवन में सुख पाता है और न मृत्यु के पश्चात–

योऽहिंसकानि भूतानि हिनास्तियान्च सुखेच्छया।
स जीवश्च मृतश्चौव न क्वचित् सुखमेधत।।[12]

इन मानवीय मूल्यों का एक दार्शनिक पक्ष भी है। विश्व के समस्त जीव उसी परमपिता की सन्तान हैं। ऐसी स्थिति में उनमें विश्वबन्धुत्व की भावना प्रस्फुटित हो, यही अद्वैत सिद्धान्त भारतीय संस्कृति की आधारशिला है। संस्कृत वाड्.मय में इस भावना का विशद रूप से वर्णन मिलता है। कहा गया है–

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवं।
कामये दुःख तप्तानां प्राणिनामर्ति नाशनम।।

आज भी प्रत्येक धार्मिक अनुष्ठान की समाप्ति पर साधक पुरुष अपना मनोभाव इस प्रकार प्रकट करता है–

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत।।

अन्ततः कहा जा सकता है कि आधुनिक विश्व में जो नैतिक एवं चारित्रिक संकट है, उसे दूर किये बिना मानव–मूल्यों जैसे सहिष्णुता, उदारणा, दया, दान, परोपकार, मातृत्व, विश्वबन्धुत्व, धर्म, सद्भाव, समरसता आदि गुणों की स्थापना नहीं हो सकती। आज ऐसे आध्यात्मिक वातावरण की अपेक्षा है, जिससे मानवीय मूल्य व्यक्ति के हृदय में सहजता से स्थापित हो सके। ऐसे वातावरण के सृजन में संस्कृत वाड्.मय पूर्णतः सक्षम है। उपनिषदों में ''सत्यं वद, धर्मंचर। स्वाध्यायान्या प्रमदः। मातृदेवो भव, पितृदेवो भव। आचार्य देवो भव। तेन त्यक्तेन भुञ्जीधा। मा गृधः कस्यस्विद् धनम'' ये आर्ष वाक्य डंके की चोट पर मानवीय गुणों का ही दिव्य सन्देश प्रसारित कर रहे हैं। आज आवश्यकता है उसके चिन्तन, मनन एवं अनुशीलन की, जिससे मानव अपने जीवन का अन्तिम लक्ष्य परम स्थान मोक्ष को प्राप्त कर सके।

संदर्भ :

1. कवि भर्तृहरिः नीतिशतकम, 33वाँ श्लोक
2. ईशावास्योपनिषद, छठा मन्त्र
3. ऋग्वेद 10/191/2

4. नारायण पंडितः हितोपदेश 1/69
5. ईशावास्योपनिषद प्रथम मन्त्र
6. कवि भर्तृहरिः नीतिशतकम् 78 वाँ श्लोक
7. श्रीमद्भागवत्गीता 3ध्8
8. मनुस्मृति 2/121
9. वही, 2/227
10. नीतिशतकम् 69 वाँ श्लोक
11. मनुस्मृति 2/14
12. वही 5/42

***

वैश्विक आर्थिक संकट और समाधान के कदम

आदित्य विक्रम देव *

विश्व अर्थव्यवस्था 2008–09 में अनेक संकटों से घिरी हुई है। इस वर्ष के प्रारंभ में खाद्यान्न संकट को लेकर हायतौबा मची खाद्यान्न संकट के लिए विकसित देशों ने भारत और चीन को उत्तरदायी ठहराया, जबकि हकीकत में विकसित देश ही इसके लिए अधिक जिम्मेदार है। प्रति व्यक्ति खाद्यान्न उपभोग विकसित देशों में ज्यादा है। इसके अलावा अन्तरराष्ट्रीय बाजार में खनिज तेल की कीमतें जुलाई 2008 में 146 डालर प्रति बैरल पहुंची तो विकसित देशों ने खनिज तेल के स्थान पर बायोफ्यूल का उत्पादन बढ़ाने पर जोर दिया। विकासशील देशों ने भी इस दिशा में कदम बढ़ाने शुरू किये। इन सब का परिणाम यह हुआ कि खाद्यान्न फसलों का उपयोग बायोफ्यूल उत्पादन में अधिक होने लगा। अनेक कृषि प्रधान अर्थव्यवस्थाओं के खाद्यान्न कृषि क्षेत्र में बायोफ्यूल उत्पादन वाली फसलों का क्षेत्र बढ़ने लगा। इससे विश्व स्तर पर खाद्यान्न संकट गहरा गया। अनेक देशों में भूखमरी की स्थिति पैदा हो गई। सितम्बर–अक्टूबर 2008 और बाद के महीनों में जब अन्तरराष्ट्रीय बाजार में खनिज तेल की कीमतों में भारी गिरावट हुई तब जाकर बायोफ्यूल का बवाल थमा। इस बीच भारत और अमरीका के मध्य 3 अक्टूबर 2008 को परमाणु करार हुआ। इससे भारत को उर्जा संकट से निपटने में मदद मिलेगी। इस प्रकार विश्व अर्थव्यवस्था में एक के बाद एक बड़े संकट गहराए। एक संकट घटता नहीं कि दूसरा संकट विकट रूप ले लेता। इतना जरूर है इन संकटों से कुछ ही देश अधिक प्रभावित हुए। विश्व अर्थव्यवस्था पर इन संकटों का अधिक प्रभाव नहीं दिखा।

मगर अक्टूबर 2008 के आर्थिक संकट ने विश्व अर्थव्यवस्था को हिलाकर रख दिया। कुछ सप्ताहों में यह संकट इतना गहरा गया कि इसके रूप भी तेजी से बदलें। सबसे पहले यह सबप्राइम संकट के नाम से अंकुरित हुआ फिर औद्योगिक मंदी के रूप में बढ़ने लगा। इसके बाद यह अमरीकी वित्तीय संकट के रूप में दिखा फिर वैश्विक महामंदी और अब यह आर्थिक संकट के रूप में फैल चुका है। आर्थिक संकट ने विश्व अर्थव्यवस्था की रीढ़ को कमजोर कर दी है। आर्थिक संकट के पीछे कारणों में झांके तो इसके लिए अमरीका के सबप्राइम संकट को उत्तरदायीं ठहराया जा रहा है। सबप्राइम संकट के कारण अमरीका में वित्तीय संकट पनपा। वहां इस संकट की शुरूआत में इस पर समाधान की कोशिश नहीं की गई। जब अमरीका का सबसे बड़ा सिटी बैंक संकटग्रस्त हुआ तब भारतीय मूल के विक्रम पंडित को बैंक का प्रबंध निदेशक बनाया मगर अमरीका में उस समय तक सबप्राइम संकट जड़े जमा चुका था। वहां के प्रायः सभी बैंकों ने आसान शर्तों पर लोगों को बड़े पैमाने पर आवास ऋण मुहैया कराये। बैंकों ने ऋण बांटते समय लोगों की ऋणअदायगी क्षमता को नजरअंदाज किया। जब अमरीका में पहले से ही चल रहीं औद्योगिक मंदी के कारण बड़े पैमाने पर बेरोजगारी फैली तो अमरीकियों द्वारा बैंकों को ऋण नहीं चुका पाने के कारण बैंकों के दिवालिए होने की घटनाओं ने श्रृंखला का रूप धारण कर लिया। अमरीका में बैंकों के बाद में बीमा कंपनियां और अन्य वित्तीय संस्थाएं भी संकट की शिकार हुई। इन सबके परिणामस्वरूप अमरीकी अर्थव्यवस्था वित्तीय संकट में जकड़ गई। अमरीका में बरसों पुरानी लीमन ब्रदर्स 15 सितम्बर 2008 को दिवालिया हो गई। इसके एक दिन बाद 16 सितम्बर 2008 को वित्तीय प्रबंध की दिग्गज मेरिल लिंच ने स्वयं को बैंक ऑफ अमरीका को बेचा। इसके बाद 18 सितम्बर 2008 को अमरीका फेडरल बैंक ने अमरीका इन्टरनेशनल ग्रुप (एआईजी) को 85 अरब डालर का ऋण मुहैया कराकर संकट से बचाया। अमरीका में बैंकों और वित्तीय संस्थाओं के फैल हो जाने का सिलसिला यहीं नहीं थमा। अमरीका का तीसरा सबसे बड़ा बैंक फंकलिन बैंक 7 नवम्बर 2008 को डूब गया। इस दिन लॉस एंजिल्स के सिक्योरिटी पैसिफिक बैंक को भी बंद कर दिया गया। अमरीका में 6 नवम्बर 2008 तक 19 बैंक डूब चुके थे।

---

* शोध छात्र, अर्थशास्त्र विभाग, वीर कुंवर सिंह विश्वविद्यालय, आरा (बिहार)

विश्वव्यापी आर्थिक संकट के पीछे अमरीकी सबप्राइम संकट के अलावा धीमी विकास दर भी एक बड़ा कारण है। अंतरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने अमरीका की विकास दर 2007 में 2.2 प्रतिशत के मुकाबले 2008 में 0.5 प्रतिशत आंकलित की है। एशियन विकास बैंक के अनुसार एशिया की विकास दर 2008 में 7.5 प्रतिशत रहने की उम्मीद है। विश्व में सबसे तेज गति से दौड़ने वाली चीन और भारत की अर्थव्यवस्था की गति धीमी पड़ने लग गई है। चीन की विकास दर 2008–09 की पहली तिमाही में दहाई अंक से नीचे आ गई है। इधर भारत के रिजर्व बैंक ने मौद्रिक नीति 2008–09 की 24 अक्टूबर 2008 की छमाही समीक्षा में सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि दर 2008–09 के लिए 7.5 प्रतिशत से 8 के बीच प्रतिशत आंकलित की है। अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष ने विश्व अर्थव्यवस्था की विकास दर 2008 में 3.7 प्रतिशत तथा 2009 में 3. 8 प्रतिशत आंकलित की है। इससे पूर्व विश्व अर्थव्यवस्था 2007 में 49 प्रतिशत की विकास दर से बढ़ी थी। सकल घरेलू उत्पाद के घटने का विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ा है। रोजगार सृजन के लिए विकास दर में वृद्धि आवश्यक होती है। वैश्विक आर्थिक संकट के दौर में विकास दर के घटने से बेरोजगारी बढ़ रहीं है। लोगों की क्रय शक्ति के घटने से औद्योगिक मंदी वैश्विक महामंदी के रूप में बदल चुकी है। अगर इस पर शीघ्र काबू नहीं पाया गया तो यह 1930 की विश्वव्यापी मंदी से भी अधिक भयावह सिद्ध होगी।

वैश्विक आर्थिक संकट की मार अमरीका के साथ पश्चिमी यूरोप के देश, जी–8 और एशियाई देशों पर अधिक पड़ रहीं है। आइसलैण्ड की अर्थव्यवस्था ध्वस्त हो चुकी है। यूरोप के वित्तीय संस्थान आर्थिक संकट की चपेट में आ गये हैं। बारीकी से देखा जाए तो आर्थिक संकट से अमरीका के बाद सबसे ज्यादा ब्रिटेन प्रभावित हुआ है। ब्रिटेन के अनेक बैंक मंदी से ग्रसित हो चुके हैं। वहां के चार बड़े बैंक रॉयल स्कॉटलैण्ड बैंक, हेलीफैक्स बैंक ऑफ स्कॉटलैण्ड, लॉयड्स टीएसबी और वार्कलैस नकदी की कमी से जूझ रहे हैं। ब्रिटेन के इन बड़े बैंकों की वित्तीय स्थिति बिगड़ने का बड़ा कारण इनका अमरीकी सबप्राइम मार्गेज संकट से प्रभावित होना है। ब्रिटेन की सरकार ने 13 अक्टूबर 2008 को तीन बैंकों रॉयल बैंक ऑफ स्कॉटलैण्ड, हैलीफैक्स बैंक ऑफ स्कॉटलैण्ड तथा लॉयड्स टीएसबी को 64 अरब डालर का पैकेज देने की घोषणा की। आर्थिक संकट की मार से साम्यवादी रूस भी नहीं बच सका। वहां 8 अक्टूबर 2008 को मास्को इण्टरबैंक करेंसी एक्सचेंज (एमआईसीईएक्स) ने सूचकांक के 10 प्रतिशत से अधिक की गिरावट आने के बाद कारोबार 9 अक्टूबर 2008 तक बंद कर दिया था। आर्थिक संकट के शिकजे में एशिया की आर्थिक ताकत चीन की कई कंपनियां दिवालिया होने के कगार पर खड़ी है। जनवरी 2009 तक दक्षिणी चीन और हांगकांग में लाखों में लोगों को नौकरियां गंवानी पड़ सकती है। फैडरेशन ऑफ हांगकांग इण्डस्ट्रीज के अनुसार हांगकांग में बड़ी संख्या में छोटे और मझौले व्यवसायी दिवालिया हो सकते हैं। जापान में 10 अक्टूबर 2008 को यामोटा लाइफ इंश्यारेस कम्पनी दिवालिया हो गई।

आर्थिक संकट की मार से जब बड़ी–बड़ी अर्थव्यवस्थाएं ही धराशार्थी हो गई तब भारत की अर्थव्यवस्था प्रभावित हुए बिना कैसे रह सकती है। भारत में निजी क्षेत्र के साथ सार्वजनिक क्षेत्र में भी नौकरियां का खतरा पैदा हो गया है। निजी क्षेत्र की टाटा मोटर्स ने लगभग 300 अस्थाई कर्मियों को काम से हटाने का निर्णय लिया। इसके अलावा जेट एयरवेज कम्पनी 15 अक्टूबर 2008 तक 1900 कर्मचारियों का निकाल चुकी है। सार्वजनिक क्षेत्र की कम्पनी एयर इंडिया ने भारी संख्या में कर्मचारियों को अवैतनिक छुट्टी पर भेजने के प्रस्ताव पर विचार किया। छुट्टी का निर्णय स्वैच्छिक होगा अनिवार्य नहीं। छंटनी से लेकर उठे विवाद को देखते हुए कम्पनी ने कदम पीछे खींच लिए। इनके विपरीत वैश्विक मंदी को ठेंगा बताते हुए इंफोसिस के संस्थापक एन. आर. नारायणमूर्ति ने वैश्विक आर्थिक संकट के बावजूद आईटी क्षेत्र में नौकरियों में कटौती नहीं करने की बात की। इधर टाटा स्टील ने वैश्विक आर्थिक संकट और इस्पात क्षेत्र में छाई मंदी को धता बताते हुए कामगारों के वेतन में बढ़ोतरी की। इन सबके बावजूद आर्थिक संकट के कारण विकास दर के घटने से रोजगार के अवसर कम होंगे। अगर वित्त वर्ष 2008–09 में विकास दर 7 प्रतिशत तक भी रहती है तब भी कमजोर वैश्विक परिप्रेक्ष्य को देखते हुए बहुत ज्यादा चिंता की बात नहीं है। आर्थिक संकट के कारण रोजगारों पर

गाज भारत पर ही नहीं गिरी बल्कि दुनियाभर में छंटनी का दौर है। ब्रिटेन के न्यायिक मंत्रालय, अमरीका की पेप्सिको, फोर्ड की आस्ट्रेलियन इकाई, आयरलैण्ड की वाइथमेडिका, कनाड़ा की नायलॉन, न्यजीलैण्ड की कैटरहोल्ट, अमरीका की कींग काउंटी आदि ने सेकड़ों कर्मचारियों का हटा दिया।

आर्थिक संकट से विश्व के शेयर बाजारों में भारी गिरावट आयीं। एशिया–प्रशांत क्षेत्र में 10 अक्टूबर 2008 को चीन का शंघाई कम्पोजिट 3.57 प्रतिशत, जापान का निक्की 9.62 प्रतिशत, हांगकांग का हेंगसेंग 7.19 प्रतिशत, सिंगापुर का स्ट्रेट टाइम्स 734 प्रतिशत गिरे। इनके अलावा अमरीका का डॉजोन्स 4.35 प्रतिशत और नास्डेक 3.65 प्रतिशत गिरे। इस दिन भारत के सेंसेक्स में डेढ़ सौ वर्ष के इतिहास में 800.51 अंक की छठी बड़ी गिरावट आयीं। सेंसेक्स 10527.85 अंक पर बंद हुआ। सेंसेक्स अभी संभल भी नहीं पाया कि बिकवाली की आंधी में 24 अक्टूबर 2008 को 1070.63 अंक लुढक कर पिछले 35 माह के न्यूनतम स्तर 8701.07 अंक तक जा गिरा। सेंसेक्स 24 नवम्बर 2005 को 8744.04 अंक था आर्थिक संकट के कारण भारत के शीर्ष दस व्यापारिक संस्थानों को केवल अक्टूबर 2008 में ही लगभग 3 लाख करोड़ रुपए का नुकसान हुआ भारतीय औद्योगिक घरानों को 11 जनवरी 2008 से लेकर 10 अक्टूबर 2008 तक नौ माह में 131 अरब डालर का नुकसान हो चुका है। इस समयावधि मुकेश अंबानी को 22.6 अरब डालर, रतन टाटा को 13.6 अरब डालर, अनिल अंबानी को 30.4 अरब डालर, सुनील मित्तल को 4.5 अरब डालर, के.पी. सिंह को 28.2 अरब डालर, अजीम प्रेमजी को 5.3 अरब डालर, अनिल अग्रवाल को 1.3 अरब डालर, ओ.पी. जिंदल को 5 अरब डालर तथा रमेश चंद को 10.8 अरब डालर का नुकसान हुआ। आर्थिक संकट को विश्व स्तर पर देंखे तो अन्तरराष्ट्रीय मुद्रा कोष के प्रबंध निदेशक डॉमिनिक स्टॉस काहन ने 24 सितम्बर 2008 को अनुमान व्यक्त किया कि वित्तीय संकट पहले के 4600 अरब डालर के अनुमान के मुकाबले वित्तीय संकट 6000 अरब डालर तक जा पहुंचा है। दुनिया का आर्थिक ढांचा ठहने के कगार पर है। आईएमएफ के मुख्य अर्थशास्त्री ओलिवियर ब्लैन्कार्ड के अनुसार 6–12 अक्टूबर 2008 एक सप्ताह में विभिन्न शेयर बाजार 20 प्रतिशत की गिरावट झेल चुके हैं। उनके अनुसार अभी 20 प्रतिशत की गिरावट और आ सकती है।

वैश्विक आर्थिक संकट बैंक और वित्तीय संस्थाओं के दिवालिएपन तथा शेयर बाजारों में भारी गिरावट के रूप प्रकट हुआ है। उल्लेखनीय है 1930 की महामंदी में भी बैंकों की विफलता और शेयर बाजारों में भारी गिरावट की घटनाएं हुई थी। इस दृष्टि से 2008 का आर्थिक संकट 1930 की महामंदी जैसा ही है। बारीकी से देखें तो ताजा आर्थिक संकट 1930 की विश्वव्यापी मंदी से अधिक भयावह है। इसके पीछे कारण यह है कि 1930 की महामंदी का आत्मनिर्भर फांस और पूंजीवादी शक्तियों से दूर सोवियत संघ पर बहुत कम असर पड़ा था। किंतु इस बार तो कोई भी देश आर्थिक संकट की पीड़ा से अछूता नजर नहीं आ रहा है। मौजूदा आर्थिक संकट से पीड़ित देशों ने संकट से उबरने के लिए कदम तो उठाए, किंतु आर्थिक संकट के अधिक गहरा जाने से वे समाधान में सहायक सिद्ध नहीं हो सके।

संदर्भ :

1. डॉ० ओ. पी. शर्मा, वैश्विक आर्थिक संकट और भारतीय अर्थव्यवस्था, जयपुर, 2009.
2. विमल जालान, भारत की अर्थनीति : 21वीं सदी की ओर.
3. कुमुद शर्मा, भारत का भूमण्डलीकरण.
4. डॉ० मुकेश कुमार, सुधांशुकुमार, भूमण्डलीकरण और लोकतंत्र.
5. सच्चिदानन्द सिन्हा, भूमण्डलीकरण की चुनौतियां.
6. एम. एल. झिंगन, अंतर्राष्ट्रीय अर्थशास्त्र, नई दिल्ली, 2004.

***

भारत में दलित एवं अस्पृश्यता के स्वरूप में परिवर्तन की स्थिति

डॉ. राजेश कुमार सिंह *

भूमिका :

भारत आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, धार्मिक एवं राजनैतिक विविधताओं एवं विशिष्टताओं वाला देश है। यहां पर वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था, कर्म काण्ड एवं अनेक विभेदनकारी व्यवस्थाएं प्राचीन काल से विद्यमान रही है। समाज का स्तरीकृत विभाजन, ऊच–नीच, छुआछूत आदि अनेक विसंगतियां देश में प्राचीन काल से दृष्टिगत होती रही है। दलित एवं अस्पृश्यता की समस्या तत्समय से विद्यमान है जब से वर्ण व्यवस्था, जाति व्यवस्था के रूप में परिवर्तित हुई व शूद्रों को निम्नतम कार्य दिया जाने लगा एवं उनके निम्न कार्यों को दृष्टि में रखते हुए उनके प्रति समाज के उच्च जातियों में छुआछूत जैसी घृणित भावना घर करती गई तथा एक समय ऐसा भी आया कि सवर्ण या उच्च जातियों की नजरों में इन्हें अत्यन्त निकृष्ट समझा जाने लगा किन्तु परिवर्तन समाज का शाश्वत सत्य है। अतः दलितों की जागरूकता एवं संविधान में बनाये गए नियमों को कठोरता से लागू किये जाने के कारण अब दलितों एवं इनके लिए अश्पृश्यता के जो भाव लोगों के मन में थी उसमें कमी अवश्य आती जा रही है परन्तु अभी भी दलितों का यह उत्थान आशानुरूप व पर्याप्त नहीं है।

प्राचीन भारतीय सामाजिक संरचना के एक प्रमुख अंग के रूप में जाति व्यवस्था को माना जाता है। इस जाति व्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर शूदों या दलितों को रखा गया। दलित एक ऐसा शब्द है जिसे सुनते ही लोगों के मन में एक ऐसे मानव का स्वरूप प्रकट होता है जो अत्यन्त दयनीय एवं निम्न स्थिति को ग्रहण किये हुए घृणा के पात्र के रूप में दिखाई पड़ता है। यह भावना सद्भावना से नहीं वरन दुर्भावना से ग्रसित दिखाई देती है। सामान्यतः वे हिन्दू जातियाँ जिनके सम्पर्क में आने पर उच्च जाति के हिन्दुओं को शुद्धिकरण करना पड़े दलित कहलाते है एवं हिन्दू समाज में जाति व्यवस्था के सबसे निचले स्तर पर अवस्थित हैं। 'दलित' एक मराठी शब्द है जिसका शाब्दिक अर्थ है 'धरती' का ''टूटा हुआ खंड' इसे सबसे पहले महाराष्ट्र में दलित पैन्थर्स द्वारा प्रचलन में लाया गया जिसका अर्थ था– अनुसूचित जाति। दलित शब्द केवल अनुसूचित जातियों से सन्दर्भित हैं। दलितों को उन जातियों की श्रेणी में रखा गया जिन्हें अछूत माना जाता था एवं जो हिन्दू वर्ण व्यवस्था में सबसे निचले पायदान पर थी साथ ही जिन्हें अशुद्ध समझा जाता था। इन्हें जाति संस्तरण में अत्यन्त न्यून स्थान प्राप्त था। भारत में दलितों की आबादी कुल जनसंख्या का 16.6 प्रतिशत है। प्रत्येक छः भारतीय में एक भारतीय दलित है। इनकी स्थिति भारतीय समाज में अत्यन्त निम्नतर है एवं ये सामाजिक व आर्थिक रूप से अत्यन्त पिछड़े हुए हैं। परम्परागत भारतीय समाज में दलितों के साथ कई निर्योग्यताएँ जुड़ी हुई थी एवंउन्हें अत्यन्त हेय दृष्टि से उन्हें देखा जाता था।देश में अंग्रेजी शासन काल में आधुनिकता का प्रारम्भ हुआ एवं धर्म का प्रभाव कमजोर पडने लगा। फलतः दलित अपने हितो एवं समाज में ससम्मान जीने के प्रति जागरूक हुए व उनकी स्वयं की जागरूकता व भारतीय समाज सुधारकों के अथाह प्रयास से दलितों के लिए कानूनी प्रावधान बनाये गए साथ ही इन्हें समता मूलक स्थिति प्रदान करने की कोशिश की गई। वर्तमान समय में अस्पृश्यता की जड़ें कमजोर हो रही हैं व जीवन के सभी क्षेत्रों में इनको एवं इनकी स्थिति सुदृढ़ हुई है।

भारतीय समाज का बहुत बड़ा भाग एक लंबे समय से न केवल उपेक्षित एवं तिरष्कृत रहा है बल्कि उत्पीड़न का शिकार भी रहा है। साथ ही लांछित, वंचित व अमानवीय जीवन जीने के लिए मजबूर भी रहा है। दलितों को समय–समय पर विभिन्न नामों से बुलाया गया कभी इन्हें दास, अस्पृश्य जाति, बाहरी जाति या अछूत, कहा गया तो कभी भग्न पुरूष, हरिजन, शूद्र व पंचम जैसे शब्दों का प्रयोग किया गया। दलित शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई और किस वर्ग को दलित कहा गया इसका कोई

* एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातंजिक अध्ययन विभाग, राश्ट्रीय पी.जी. कालेज, जमुहाई, जौनुपर

निश्चित प्रमाण जुटा पाना संभव नहीं है। परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि दलित शब्द आधुनिक है। इस नए नामकरण में समाज के सबसे नीचे के तल की कुछ जातियों को दलित कहा गया है। भारतीय वर्ण व्यवस्था ने जब जातियों का रूप धारण किया तब शूदों में से एक वर्ग को अछूत कहा गया जिसके कारण इस वर्ग की स्थिति दयनीय हो गई। मानक हिन्दी शब्दकोश में ''दलित का अर्थ दलिद्दर, दरिद, गया बीता और बहुत निम्न कोटि का कहा गया हैं। ''

डॉ. मजूमदार के अनुसार ''दलित व अश्पृश्य जातियाँ वे हैं जो अनेक सामाजिक और राजनैतिक निर्योग्यताओं का शिकार है। इनमें से अनेक निर्योग्यताएँ उच्च जातियों द्वारा परम्परागत तौर पर निर्धारित और सामाजिक तौर पर लागू की गई है। सन् 1929 ई0 में साइमन कमीशन ने दलितों और हरिजनों के लिए अनुसूचित जाति शब्द प्रस्तावित किया, जिसे भारतीय संविधान ने भी मान्यता प्रदान की है। सन् 1935ई0 के विधान में दलित वर्ग के लोगों को विशेष सुविधाएँ प्रदान करने के लिए एक विशेष अनुसूची तैयार की गई इस अनुसूची के आधार पर वैधानिक दृष्टिकोण से इन जातियों के लिए अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग किया गया। अनुसूचित जनजाति के लोगों के समान अनुसूचित जाति शब्द की भी कोई निश्चित परिभाषा संविधान में नहीं दी गई है। किसी भी जाति को अनुसूचित जाति घोषित करने का अधिकारअनुच्छेद–341 के तहत राष्ट्रपति को दिया गया है।

प्राचीन भारत में दलितों की स्थिति :

परम्परागत भारतीय समाज में दलितों के लिए बनाए गए विधान इतनी क्रूरता से इन पर लागू किये गए थे कि इनका पालन करने के लिए न केवल ये बाध्य थे वरन् दलितों की मनः स्थिति भी ऐसी हो गई थी कि वे उन सभी नियमों को जो उन्हें बहिष्कृत व तिरस्कृत की श्रेणी में खड़ा करते थे, का पालन सहर्ष करते थे व वे उन्हें ही अपना भाग्य समझते थे। हालांकि वे भी उस समाज के अभिन्न अंग थे जहाँ पर उच्च जाति का वर्चस्व था किन्तु फिर भी वे अलग–थलग समझे जाते थे। तत्कालीन समाज में दलितों के साथ अनेकों निर्योग्यताओं को थोपा गया था एवं नकारात्मक नजरिये से इन्हें देखा जाता था। इन्हें नगर से बाहर रहना होता था तथा सूर्यास्त के बाद नगर में प्रवेश वर्जित था। मंदिर, सार्वजनिक कुओं, तालाबों, बावड़ियों आदि के उपयोग करने की अनुमति नहीं थी। यहाँ तक कि ये स्वर्णाभूषणों का प्रयोग तक नहीं कर सकते थे। मिट्टी के बर्तनों में भोज्य पदार्थों का सेवन करने की अनुमति थी। इन सभी निर्योग्यताओं को समाप्त करने के लिए आजादी के बाद इनकी ओर विशेष ध्यान दिया गया एवं विशिष्ट उपबंधों का निर्माण किया गया। संविधान के अनुच्छेद 341 (1) और 342 (2) में ऐसी जातियों को सूचीबद्ध करने के पश्चात् उन्हें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के रूप में संबोधित किया गया तथा सरकार को यह संवैधानिक अधिकार भी दिया गया कि वे इन जातियों के लोगों के कल्याण हेतु योजनाओं का सृजन करें।'

वर्तमान में दलितोत्थान के लिए उपबन्ध :

आधुनिक भारत की 20वीं सदी के विशेष समाज सुधारको में गांधी जी एवं बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर जी का नाम मुख्य रूप से लिया जाता है। इनमें से जहाँ एक राष्ट्रपिता हैं वही दूसरे संविधान निर्माता हैं। दोनों ने ही देश के लिए सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक परिप्रेक्ष्य में विशेष योगदान दिया है। जहाँ गाँधी जी के हृदय में देश की गरीब जनता व अत्यधिक पिछड़े हुए लोगों के लिए विशेष स्थान था वहीं डॉ. अम्बेडकर ने भी भारतीय संविधान में जातिभेद, धर्मभेद व लिंगभेद रहित विधानों का निर्माण करते हुए दलितों व विकास मार्ग पर पीछे रह गये लोगों के लिए स्वतंत्रता व समानता के अधिकार प्रदान किये।गाँधी जी ने दलितों को एक नया नाम दिया 'हरिजन' अर्थात् जो ईश्वर का जन है। साथ ही कहा है कि यदि मेरा पुनर्जन्म हो तो मैं हरिजन बनकर जन्म लेना चाहूँगा।

अनुसूचित जातियों की निर्योग्यताएँ–

अनुसूचित जातियों या दलितों को लेकर भारतीय समाज में बहुत सी निर्योग्यताएँ थी उनमें से कुछ संवैधानिक नियमों के कठोरता से लागू किये जाने के कारण अब समाप्ति के कगार पर हैं किन्तु कुछ ने अभी भी अपनी पकड़ बनाए रखी है। कुछ विशेष निर्योग्यताएँ जिनके कारण वे विकास की मुख्य धारा से नहीं जुड़ पाए निम्नांकित हैं–

धार्मिक निर्योग्यताएँ–इसके अन्तर्गत दलितों को धार्मिक स्थलों एवं पवित्र स्थानों पर जाने की मनाही थीं। दलितों को धर्मग्रन्थों के अध्ययन अध्यापन पर प्रतिबन्ध था, पूजा–पाठ, भजन–कीर्तन आदि का अधिकार प्राप्त नहीं था एवं इन्हें जन्म से ही अश्पृश्य अर्थात् अछूत माना गया। कुछ हिन्दू संस्कारों की व्यवस्था इनके लिए निषिद्ध थी, ब्राम्हण इनके घर पूजा–पाठ कराने नहीं जाते थे यदि जाते भी थे तो बिना इन्हें छुए गौशाला में बैठकर धार्मिक अनुष्ठान सम्पन्न कराते थे।

सामाजिक निर्योग्यताएँ– दलितों को भारतीय सामाजिक व्यवस्था में निम्न स्थिति प्रदान की गई थी व सवर्णों के साथ उनके रहन–सहन में प्रतिबन्ध भी लगाया गया था उन्हें अछूत माना गया एवं सवर्ण इन्हें घृणा की दृष्टि से देखतेथे। पूर्व में इन्हें समान शिक्षा प्राप्त करने से भी वंचित रखा गया था कहीं कहीं तोआज भी ये घृणास्पद मनः स्थिति शिक्षकों में भी देखने को मिल जाती है।साथ ही सार्वजनिक स्थानों में इनके जाने पर विशेष प्रतिबंध लगाया जाता था। इनका निवास स्थान सवर्णों में दूर, अलग होता था, अर्थात सामान्यतः ये बस्ती से दूर अपना अलग मोहल्ला या टोला बनाकर रहते थे। दलितों को जजमानी व्यवस्था का लाभ नहीं मिलता था अर्थात उन्हें सेवाएँ प्राप्त करने का अधिकार नहीं था। विभिन्न सक्षमताओं के बावजूद दलितों को समाज में द्वितीयक स्थान दिया जाता था।

आर्थिक निर्योग्यताएँ– दलित जातियों को अपने परम्परागत व्यवसाय करने के अलावा उच्च जातियों के द्वारा किये जाने वाले व्यवसाय का चयन करने का अधिकार प्राप्त नहीं था। दलितों को साफ–सफाई, मल–मूत्र उठाना एवं चमड़े से संबन्धित कार्य करके अपना जीवन चलाने का अधिकार मात्र प्राप्त था। ये भूमि पर अधिकार नहीं रख सकते थे। अस्पृश्यता के कारण उन्हें उच्च पद पर कार्य करने से वंचित रखा गया परन्तु आज परिस्थितियाँ बदल चुकी हैं। फिर भी लोगों के मन से अछूतपन की भावना पूर्णतया समाप्त नहीं की जा सकी है। दलित उत्पीडन तथा उनके प्रति घृणित भाव यदाकदा दृष्टिगत होते रहते हैं।

भारत में निवास करने वाले दलितों की आधी संख्या केवल देश के चार प्रान्तों में ही रहती है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार उत्तर प्रदेश में 20.5 प्रतिशत, पश्चिम बंगाल में 10.7 प्रतिशत, बिहार में 8.2 प्रतिशत एवं तमिलनाडु में 7.2 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। सन् 2011 की जनगणना के अनुसार करीब 20.14 करोड़ अनुसूचित जाति के लोग देश में निवासरत है। इनमें बहुत सारे दलित परिवार भूमिहीनएवं सम्पत्तिहीन है। अतः देश की कुल जनसंख्या में इतनी जनसंख्या होने के बावजूद भी दलितों का वर्चस्व न के बराबर ही देखने को मिलता है।इसका प्रमुख कारण– पीढ़ियों से उनका होता हुआ शोषण, प्रत्येक युग में दलितों के प्रति नकारात्मक रवैये का होना एवं उन्हें भारतीय जनमानस का अंग होते हुए भी निम्नता की दृष्टि से देखते रहना आदि है। अतएव इतनी शताब्दियों से दासता का जीवन व्यतीत करने वाले दलितों के लिए भी यकायक उठ खड़े हो पाना कठिन व असंभव है। खासकर अस्पृश्यता जैसे जहरीले डंक के आघात से मुक्ति हो पाना और भी दुष्कर है क्योंकि प्राचीन काल से ही जिनको अछूतों की संज्ञा दे दी गई है एवं निरन्तर उच्च जातियों के द्वारा निम्न जातियों के प्रति भेदभाव किया जाता रहा हो। यह आत्मा पर सीधे–सीधे प्रहार करने जैसा रहा है अर्थात् न केवल उच्च जातियों के द्वारा निम्न जातियों के प्रति भेदभाव का व्यवहार किया जाता रहा बल्कि निम्न जातियों में भी यही प्रवृत्ति पाई जाने लगी। इसलिए अस्पृश्यता की मनोवृत्ति जाति से नहीं बल्कि परम्परागत घृणा और पिछड़ेपन के दृष्टिकोण से भी संबद्ध है।यद्यपि समाज में अस्पृष्यता की स्थिति शताब्दियों से रही है किन्तु उनके उद्धार के लिए प्राचीनकाल से ही समाज में आवाज उठती रही है। राजा राममोहन राय, दयानंद सरस्वती, जस्टिस एम. जी. रानाडे., स्वामी विवेकानन्द, श्रीनारायण, ज्योतिबा फुले, गाँधी जी, भीमराव अम्बेडकर आदि समाज सुधारकों ने आवाज उठाई है।' ज्योतिबा फुले जाति प्रथा और अस्पृश्यता के घोर विरोधी थे।वे एक ऐसे समाज की रचना करना चाहते थे जिसमें सभी लोगों को समान मानवीय अधिकार प्राप्त हो। वे मानवाधिकारों के प्रबल समर्थक थे।वे दलितों को ऐसी शिक्षा देना चाहते थे, जिससे दलित लोग समान अधिकारों एवं अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष कर सके। महात्मा ज्योतिबा फुले महाराष्ट्र के प्रथम व्यक्ति थे, जो समाज की दलित जातियों के उत्थान के लिए प्रयत्नशील रहे। वर्तमान समय में अस्पृश्यता एवं दलितों से संबन्धित

निर्योग्यताओं को समाप्त किया जा चुका हैं।दलित चेतना के परिणामस्वरूप निम्न तथ्यों को देखा जा सकता है–

* देश के विभिन्न भागों में दलित जातियाँ संगठित समूहों के रूप में उदित हुई और प्रौद्योगिक उन्नयन की दिशा में संगठित एवं सामूहिक प्रयास प्रारम्भ हुए फलतः प्रौद्योगिक सुधार संभव हुआ। स्कूल कॉलेजों में साथ–साथ पढ़ने से लोगों में समानता की भावना का संचार हुआ आर्थिक समानता की ओर बढ़ाये गए कदमों में दलितों को अन्य समुदायों की तरह समर्थ बनाया। राजनीतिक समानता की भावना ने अधिकारों के स्तर पर समानता उत्पन्न की।
* शैक्षणिक समानता के अवसरो ने आधुनिक मूल्यों के रूप में स्वतंत्रता, समानता एवं बन्धुत्व के मूल्यों का विस्तार किया। इससे सामाजिक गतिशीलता के अवसरों में वृद्धि हुई है जिससे दलितों कोभी अपनी स्थिति सुधारने के अवसर प्राप्त हुए।
* दलित चेतना आधुनिकीकरण एवं सामाजिक विकास में सहायक एक समतामूलक समाज की स्थापना करने में सहायक हुई है।
* लोकतन्त्र की सफलता में सहायक के रूप में दलित चेतना महत्वपूर्ण है।

इस प्रकार से दलितों में स्वयं को लेकर जागृत चेतना के कारण उनके लिए विकास के पथ खुल गए है एवं वे अपने हितों को लेकर इतने जागरूक हो गए है कि सामान्य तरीकों के साथ–साथ जन आंदोलनों की मदद भी ले रहे है। भारत जैसे धर्म सम्मत एवं विकासशील राष्ट्र में जहां जाति व्यवस्था, समाज व्यवस्था का पर्याय थी, वहीं अब उसका दुरूह स्वरूप भी देखने को मिल रहा है। यह शोषण राजतन्त्र और सामन्तवाद के युग में भले ही सामाजिक व्यवस्था के लिए इतना विषम न समझा जाता रहा हो लेकिन प्रजातन्त्र, समाजवाद और धर्म निरपेक्षता के युग में इसे किसी भी प्रकार से न्यायपूर्ण और तर्कसंगत नहीं कहा जा सकता कोई भी प्रजातन्त्र करोड़ों व्यक्तियों को चेतनाहीन तथा शोषित वर्ग के रूप में विकसितकरके सुरक्षित नहीं रह सकता।

अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन जातियों हेतु संविधान में विशेष सुरक्षा का प्रावधान किया गया है ताकि उनके शैक्षिक एवं आर्थिक हितों का विकास किया जा सके जो संक्षिप्त में निम्नानुसार है :–

* संविधान की धारा–17 के अनुसार–अस्पृश्यता का उन्मूलन एवं किसी भी रूप में इसके अभ्यास पर प्रतिबन्ध लग गया।
* संविधान की धारा–46 के अनुसार दलितों की शैक्षिक व आर्थिक हितों की उन्नति एवं सामाजिक अन्याय व शोषण के सभी रूपों से उनकी सुरक्षा सुनिश्चित किया गया।
* संविधान की धारा–45इ के अनुसार हिन्दू धार्मिक संस्थाओं को हिन्दुओं के सभी वर्गों एवं श्रेणियों के लिए खोलदिया गया।
* संविधान की धारा–15(2) के अनुसार दुकानों, जन भोजनालयों, रेस्टोरेन्टो एवं सार्वजनिक मनोरंजन के स्थानों, कुओं, तालाबों, स्नान घाटो, सड़को एवं सार्वजनिक विश्राम स्थानों जो पूर्णतया अथवा आशिक रूप में राज्य कोष की सहायता प्राप्त करते है अथवा जन प्रयोग के लिए समर्पित कर दिये है, के प्रयोग के बारे में किसी अयोग्यता, बाधा अथवा शर्त की समाप्ति कर दी गयी।
* संविधान की धारा–19(5) के अनुसार अनुसूचित जातियों के हित में सभी नागरिकों को स्वतन्त्रतापूर्वक घूमने, बसने अथवा सम्पत्ति प्राप्त करने के सामान्य अधिकार पर कानून द्वारा उपबन्ध किया गया।
* संविधान की धारा–16 एवं 335 के अनुसार राज्य द्वारा चलाये गए अथवा राज्य कोष से सहायता अनुदान प्राप्त करने वाली शिक्षण संस्थाओं में प्रवेश से वंचित करने पर रोक, लोक सेवाओं में नियुक्ति के बारे में अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचितजनजातियों के दावों पर विचार करने के आदेश देना।

* संविधान की धारा–330, 332 एवं 334 के अनुसार लोकसभा एवं राज्य विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों तथा जनजातियोंके लिए स्थान सुरक्षित किया गया।
* संविधान की धारा–23 के अनुसार मानव व्यापार एवं बंधुआ श्रम पर प्रतिबन्धित कर दिया गया।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः दलितोत्थान एवं अस्पृश्यता उन्मूलन हेतु अनेक सुधार, संवैधानित प्रावधान एवं कानूनी प्रयास किये गये है जिसके परिणामस्वरूप दलितों की स्थिति में व्यापक बदलाव आया है किन्तु आज भी यदा–कदा दलित एवं अस्पृश्यता की समस्या आज भी विद्यमान है एवं उनके निम्न कार्यों को दृष्टि में रखते हुए उनके प्रति समाज के उच्च जातियों में छुआछूत की भावना बनी रहती है।कुछ सवर्ण या उच्च जातियों की नजरों में इन्हें आज भी अत्यन्त निकृष्ट समझा जाता है। किन्तु यह सर्वविदित है परिवर्तन समाज का शाश्वत सत्य है। अतः दलित जातियों की स्वयं की जागरूकता एवं संविधान में बनाये गए नियमों को कठोरता से लागू किये जाने के कारण अब दलितों एवं इनके लिए अस्पृश्यता के जो भाव थे, लोगों के मन में उनमें कमी अवश्य आती जा रही है परन्तु अभी भी दलितों का यह उत्थान आशानुरूप व पर्याप्त नहीं है। अभी भी अधिकांश गन्दगी की साफ–सफाई एवंसमाज में सेवा के कार्या दलित जातियाँ ही करती हैं। अतः छुआछूत का व्यवहार बहुत मात्रा में न सही फिर भी कुछ मात्रा में दिखाई दे ही जाता है। यद्यपि स्थिति पूर्व की भाँति भयंकर एवं गंभीर नहीं है जो थोड़ी बहुत लोगों के मन में भेदभाव के कण हैं निश्चित ही आगामी पीढ़ी तक पूर्णतया समाप्त हो सकता है। किन्तु इसके लिए शिक्षा व समानता के उद्देश्य को लेकर यदि लोगों की मन स्थिति पर प्रभावी रूप से कार्य किया जाय तो इस अस्पृश्यता रूपी विकास विरोधी विकार को दूर किया जा सकता है।

संदर्भ :

1. वर्मा, रामचन्द्र (1964) : मानक हिन्दी कोश, प्रयाग हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयागराज पृ0सं0–32.
2. गुप्ता, प्रवीण कुमार (1998) : समाजशास्त्र नोट्स, पुणेका पब्लिकेशन्स, खजूरी बाजारा इन्दौर।
3. वसु, दुर्गादास (1998) : भारतीय संविधान का परिचय, प्रिंटिस हाल ऑफ इंडिया, नई दिल्ली। पृ0सं0– 382.
4. शिवकुमार बी. हॉफ ऑफ इंडिया दलित पॉपुलेशन लोय इन फोर स्टेट (द टाइम्स ऑफ इंडिया टाइम्स इन्टरनेट लिमिटेड, 2 मई 2013)
5. सिंह रामगोपाल :भारतीय दलित समस्याएँ व समाधान मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थअकादमी, भोपाल।
6. पूरणमल, दलित संघर्ष और सामाजिक न्याय, पृ0सं0. 2–7
7. नेमा जी.पी. एवं शर्मा के. के. : मानवाधिकार : सिद्धान्त एवं व्यवहार, कॉलेज बुक डिपो,जयपुर।
8. पाण्डेय, एस. एस. (2009) : समाजशास्त्र, मैकग्राहिल एजुकेशन प्राइवेट लिमिटेड नईदिल्ली।
9. गुप्ता, आर0 (2012): समाजशास्त्र, रमेश पब्लिक हाउस, नई दिल्ली।
10. सचदेव डी. आर. (2008): भारत में समाज कल्याण प्रशासन, किताब महल पब्लिकेशन्स, इलाहाबाद।

***

भारत-पाकिस्तान सम्बन्धों के बीच जम्मू कश्मीर का मुद्दा

डॉ. शैलेन्द्र नाथ सिंह *

निष्कर्ष :

भारत पाकिस्तान सम्बन्ध हमेशा से अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में महत्वपूर्ण विषय रहा है क्योंकि दोनों के सम्बन्धों में इतनी अधिक जटिलताएँ हैं जिनका सहज समाधान निकालना बहुत मुश्किल है। आजादी के समय से ही दोनों देशों के मध्य शत्रुतापूर्वक सम्बन्ध स्थापित हुए हैं वह स्वाधीनता के 68 वर्ष बाद भी न केवल बने हुए हैं बल्कि उनमें उत्तरोत्तर विकास हो रहा है। दोनों के बीच अविश्वास की बाई इतनी गहरी है कि इसे पाटना बहुत मुश्किल लगता है। खासकर कश्मीर समस्या दोनों राष्ट्रों के सौहाद्रपूर्ण सम्बन्ध के मध्य एक स्थायी अवरोध बना दिया है। अन्तर्राष्ट्रीय राजनीतिक विश्लेषकों के अनुसार कश्मीर मुद्दे को लेकर दोनों देशों के मध्य कभी भी संघर्ष उत्पन्न हो सकता है जिससे न केवल दक्षिण एशिया के लिये बल्कि पूरे विश्व के लिये खतरा उत्पन्न हो सकता है। विशेष रूप से दोनों देशों के परमाणु सम्पन्न होने से खतरा और बढ़ गया है। कश्मीर को भारत कभी पाक–सम्बन्धों के बीच नहीं रखत है क्योंकि यह भारत का अभिन्न अंग है किन्तु पाकिस्तान जम्मू कश्मीर को लेकर हमेशा नापाक कोशिशे करता रहता है। भारत पाक–सम्बन्धों को मजबूत करने तथा दोनों देशों में अमन शान्ति हेतु कश्मीर को लेकर पाकिस्तान को अपना नजरिया बदलने की जरूरत है।

भूमिका :

भारत पाकिस्तान के सम्बन्धों में शत्रुता के बीज अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति ने बोये, उन्होंने कूटिनीतिक रणनीति द्वारा भारत और पाकिस्तान का घंटवारा किया। देशी रियासतों के सम्बन्ध में उनकी नीति अस्पष्ट थी। उन्होंने रियासतों को यह विकल्प दिया था कि वे चाहे तो भारत अथवा पाकिस्तान में से किसी में शामिल हो जायें और चाहें तो स्वतंत्र रहें, जो कि सम्भव नहीं था। अपनी भौगोलिक एवं धार्मिक स्थिति के अनुसार 562 में से 5 रियासतों ने पाकिस्तान में शामिल होना मंजूर किया तथा हैदराबाद, जूनागढ़ और कश्मीर को छोड़कर शेष रियासतें भारत में शमिल हो गयीं। हैदराबाद और जूनागढ़ रियासतें सरदार पटेल की बुद्धिमत्ता एवं चतुराई भरी रणनीति की वजह से भारत में शामिल कर ली गयीं, किन्तु कश्मीर रियासत का मामला पं0 नेहरू ने अपने हाथ में ले लिया जिससेयहां की स्थिति बिगड़ गयी ''नेहरू परिवार भारत का सबसे अधिक प्रतिष्ठित कश्मीरी हिंदू परिवार था और जवाहरलाल नेहरू की व्यक्तिगत भावनाएँ राज्य के भविष्य में महत्वपूर्ण निर्धारक थी। पाकिस्तान के सेवानिवृत्त होने वाले कमाण्डर–इन–चीफ, जनरल फ्रैंक मेस्सव फरवरी, 1948 में नेहरू से निजी बातचीत के बाद कहा, 'नेहरू ने कहा किवे मेरे (कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करने के पक्ष में दिये गए) तर्को की प्रशंसा करते हैं लेकिन जैसे कैले क्वीन मैरी के दिल पर लिखा था, वैसे ही कश्मीर उनके दिल पर लिखा है। दूसरे शब्दों में उनकी भावना तर्क पर हावी हो गयी। पं0 नेहरू ने कश्मीर को भारत में शामिल करने का कोई प्रत्यक्ष प्रयास तब तक नहीं किया जब तक स्थिति नियंत्रण से बाहर नहीं हो गयी।

कश्मीर का मुद्दा :

भारत वर्ष की स्वाधीनता के मात्र दो माह बाद ही पाकिस्तान ने कबायिलियों के वेश में हरी सिंह की रियासत पर हमला कर दिया। महाराजा हरी सिंह कश्मीर को स्विट्जरलैण्ड की तरह स्वतंत्र देश बनाना चाहते थे जबकि माउन्टबेटेन ने उन्हें समझाया था कि ऐसा करना सम्भव नहीं है क्योंकि उनकी रियासत की सीमा भारत और पाकिस्तान दोनों से मिलती है। द्विराष्ट्र सिद्धान्त के समर्थक जिन बहुसंख्यक मुस्लिम आबादी की वजह से कश्मीर को पाकिस्तान में शामिल करना चाहते थे, ये हमला उसी का नतीजा था। इतिहासकार डोमिनिक लॉपिएर और लैरी कॉलिन्स का मानना है कि ''अचानक

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातंजिक अध्ययन विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनुपर

इतनी बेरहमी से किये गए इस आक्रमण की वास्तविक जड़ जिन्ना की वह मामूली सी प्रार्थना थी, जो उन्होंने दो महीने पहले 24 अगस्त को शुक्रवार के दिन अपने अंग्रेज मिलिट्री सेक्रेटरी से की थी। उन्होंने अपने सेक्रेटरी कर्नल विलियम बिनी से कहा था कि वह कश्मीर जाकर सितम्बर के मध्य में दो सप्ताह तक उनके वहाँ ठहरने और आराम करने का प्रबन्ध करा दें। छुट्टी मनाने के लिये कश्मीर को चुनना उनके लिये स्वाभाविक ही था। अपने अधिकतर देशवासियों की तरह ही जिन्ना भी इस बात की कल्पना तक नहीं कर सकते थे कि कश्मीर, जिसकी तीन चौथाई से अधिक आबादी मुसलमान थी, पाकिस्तान का हिस्सा बनने के अलावा और भी कुछ बन सकता है। लेकिन वह अंग्रेज अफसर पाँच दिन बाद जो उत्तर लेकर लौटा उसे सुनकर जिन्ना दंग रह गए। महाराज हरी सिंह नहीं चाहते थे कि जिन्ना छुट्टी बिताने के लिये भी उनके क्षेत्र में कदम रखें। उनके उत्तर से पाकिस्तान के शासक को पहली बार यह संकेत मिला कि कश्मीर का घटनाक्रम उस तरह नहीं चल रहा है, जैसा वह अपने मन में सोच बैठे थे।...हरी सिंह का कोई इरादा अपनी रियासत को पाकिस्तान में शामिल करने का नहीं था। पाकिस्तान की नींव रखने वाले लोग यह बर्दाश्त नहीं कर सकते थे। 20 अक्टूबर, 1947 को यह हमला हुआ तब महाराजा हरी सिंह ने हमले से निपटने में अपनी असमर्थता को देखकर भारत की तरफ मदद के लिये हाथ बढ़ाया। पं. नेहरू ने गृह मंत्रालय के सचिव श्री वी.पी. मेनन को स्थिति का अवलोकन करने हेतु कश्मीर भेजा जिन्होंने 26 अक्टूबर को प्रतिरक्षा समिति के समक्ष अपनी रिपोर्ट प्रस्तुत की। प्रतिरक्षा समिति ने राय दी कि जब तक हरी सिंह कश्मीर रियासत के भारत में विलय पत्र पर हस्ताक्षर न कर दें उन्हें सहायता न दी जाये क्योंकि ऐसा करना संयुक्त राष्ट्र संघ के सिद्धान्तों के प्रतिकूल होगा। इधर महाराजा हरी सिंह अपने पूरे लाव–लश्कर के साथ जम्मू आ गए। उन्होंने सोने से पहले अपने ए.डी.सी. को बुलाकर आदेश दिया, ''वी.पी. मेनन दिल्ली से लौटकर आए तभी मुझे जगाया जाए। उनके लौटने का अर्थ होगा कि भारत ने हमारी सहायता करने का निर्णय ले लिया है। यदि वह सुबह से पहले वापस न आएं, तो मुझे मेरे पिस्तौल से सोते में गोली मार दी जाए। अगर वह नहीं आए तो इसका अर्थ होगा कि सारा खेल समाप्त हो गया है। '' पर ऐसी नौबत नहीं आयी और कश्मीर के भारत में विलय की शर्तों के साथ भारत ने सहायता देना मंजूर कर लिया। 27 अक्टूबर को भारतीय सेनाएँ कश्मीर पहुँच गई और उन्होंने आक्रमणकारियों को पीछे ढकेल दिया। जिन्ना इससे आग–बगूला हो गए और उन्होंने अपनी नियमित पाकिस्तानी सेनाएँ युद्ध के लिये कश्मीर भेज दीं। इस प्रकार स्वाधीनता के मात्र 2 माह पश्चात् भारत पाकिस्तान की सेनाएँ एक दूसरे के आमने–सामने थीं और वजह था– कश्मीर। तब से लेकर दोनों देश चार बार युद्ध के मैदान में आमने–सामने आ चुके हैं पर कश्मीर समस्या आज भी ज्यों कि त्यों बनी हुई है।

कश्मीर समस्या इतनी गम्भीर स्थित तक कैसे पहुँची?इसके अन्तर्राष्ट्रीयकरण के पीछे क्या कारण है? इसकी वजह जितनी पाकिस्तान की कपटपूर्ण नीति है उसके ज्यादा गलती हमारी उदासीनता भी है। पहली गलती तो यह हुई कि बिना पाकिस्तानी सेना को पूरी तरह से खदेड़े हमें सुयंक्त राष्ट्र संघ से हस्तक्षेप को नहीं कहना चाहिए था पर इस सम्बन्ध में नेहरू माउन्टबेटेन की सलाह को मान बैठे और कश्मीर के सम्बन्ध में प्रस्ताव को सयुंक्त राष्ट्र संघ की परिषद के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। दूसरी गलती यह हुई कि भारत ने संयुक्त राष्ट्र संघ की धारा 35 के अन्तर्गत विरोध दर्ज किया जो कि विवादों के शान्तिपूर्ण निपटारे से सम्बन्धित था और जिसकी वजह से कश्मीर भारत और पाकिस्तान के मध्य विवाद का विषय बन गया। इस सम्बन्ध में विदेश सेवा में कार्यरत रहे श्री जे. एन. दीक्षित का मानना है कि ''भारत को संभवतः प्रपत्र की धारा 6 और 7 के तहत भी मुद्दा सुरक्षा परिषद की जानकारी में लाना चाहिए था, जिसमें भारत का अभिन्न हिस्सा बन चुके राज्य या क्षेत्र के विरुद्ध पाकिस्तान की हिंसक गतिविधियों को महत्व दिया जाता। '' इसके अतिरिक्त, ''विदेशी विशेषज्ञों ने भी टिप्पणी की कि भारत ने राजनीतिक, कानूनी व संवैधानिक स्तर पर इस मुद्दे को सुरक्षा परिषद में प्रभावी ढंग से प्रस्तुत नहीं किया।'' सुरक्षा परिषद, जिसकी ज्यादा चिंता इस बात पर थी कि भारत–पाकिस्तान के मध्य युद्ध विराम हो न कि इस बात पर कि भारत की पाकिस्तान के विरुद्ध शिकायतों पर गौर किया जाये, ने हस्तक्षेप करके 1 जनवरी, 1948 को दोनों पक्षों के मध्य युद्ध विराम

करा दिया। युद्ध विराम तक कश्मीर का 53 हजार वर्ग मील हिस्सा भारत ने बचा लिया किन्तु तब तक 32 हजार वर्ग मील हिस्सा पाकिस्तान के कब्जे में जा चुका था, अर्थात् पाकिस्तान कश्मीर हड़पने के अपने मंसूबे में आंशिक रूप से कामयाब रहा।

संविधान विशेषज्ञ नेहरू की एक और गलती की ओर इशारा करते हैं। वह यह कि जब हरी सिंह बिना शर्त कश्मीर के भारत में घामिल करने पर राजी हो गए थे तो संविधान में अलग से धारा 370 जोड़ने की आवश्यकता हुई। इसके पीछे नेहरू के हठ को उत्तरदायी ठहराया जा सकता है। इस सम्बन्ध में नेहरू अपने परम मित्र शेख अब्दुल्ला, जो कश्मीर की राजनीति में महत्वपूर्ण स्थान रखते थे, की यह सलाह मान बैठे कि सुरक्षा व विदेश नीति को छोड़कर कश्मीर को पूर्ण स्वायत्तता का दर्जा दिया जाये। नेहरू ने जब यह प्रस्ताव डॉ. अम्बेडकर के समक्ष रखा, तो उन्होंने इसे भारत के हितों के विरुद्ध समझते हुए अस्वीकार कर दिया पर तब नेहरू ने जी.एस. अयंगर की मार्फत यह प्रस्ताव सविधान सभा के समक्ष प्रस्तुत किया। तत्पश्चात् धारा 370 अस्थायी उपवन्ध के रूप में संविधान का अंग बन गयी अनुच्छेद 370 ने भारत और जम्मू–कश्मीर के मध्य एक अदृश्य दीवार खड़ी कर दी। भारत के शेष राज्यों से अलग वहाँ का पृथक संविधान है, पृथक झण्डा है, पृथक अस्तित्व है। एक आम भारतीय वहाँ पर्यटक बनके धूम फिर तो सकता है किन्तु वहाँ सम्पत्ति नहीं खरीद सकता। जम्मू कश्मीर के तत्कालीन प्रधानमंत्री शेख अब्दुला ने पाकिस्तान से सांठ–गांठ कर ली। नेहरू को जब यह लगा कि शेख अब्दुल्ला धारा 370 को निष्प्रभावी बनाना चाहते है तो उन्होंने तत्कालीन सद्र–ए–रियासत डॉ. कर्ण सिंह की मार्फत उन्हें बर्खास्त कर दिया और जेल में डाल दिया। उनके स्थान पर बख्शी गुलाम मुहम्मद को प्रधानमंत्री बनाया गया। अपने जीवनकाल में शेख अब्दुल्ला का रवैया ढुलमुल ही रहा। नेहरू ने ऐसे व्यक्ति पर भरोसा करके बहुत बड़ी गलती की जिसने हमेशा भारतीय हितों की अपेक्षा अपने स्वार्थ को तरजीह दी।

कश्मीर के प्रति पाकिस्तान की नीति :

1947–48 के युद्ध के 17 वर्ष बाद तक पाकिस्तान की हिम्मत भारत से उलझने की नहीं हुई किन्तु 1962ई0 में चीन द्वारा भारत की परायज के बाद उसे लगने लगा कि भारत कमजोर पड़ गया है, उसका मनोबल टूटा हुआ है अतः कश्मीर को हड़पने का यही मौका है। 5 अगस्त, 1965 की आधी रात को उसने कश्मीर पर हमला कर दिया। उसने इस दुस्साहस को ऑपरेशन जिब्राल्टर का नाम दिया, जिसका लक्ष्य था जम्मू कश्मीर को भारतीय संघ से अलग करना और कश्मीर मसले का अन्तर्राष्ट्रीयकरण करना था। उसका अनुमान था कि नेहरू की मृत्यु के बाद लाल बहादुर शास्त्री अपेक्षाकृत कमजोर प्रधानमंत्री साबित होंगे। इसलिये वह पाकिस्तानी आक्रमण का जबाव या तो देंगे नहीं और अगर देंगे तो उनकी प्रतिक्रिया भी नेहरू की तरह आक्रामक नहीं होगी, पर पाकिस्तान का यह अनुमान गलत साबित हुआ। भारतीय सेना के अदम्य साहस ने पाकिस्तानी सेना के छक्के छुड़ा दिये। एक और चूक पाकिस्तान के रणनीतिकारों से हुई वह ये कि उसे लगा चीन, जिसे पाकिस्तान कश्मीर की अपने हिस्से की 2 हजार वर्गमील भूमि 1963 में सौंप दी थी ताकि करीबी हासिल हो सके, इस युद्ध में दूसरा मोर्चा खोलकर भारत पर दबाव बनायेगा किन्तु उसने ऐसा नहीं किया। सोवियत प्रधानमंत्री को–सी–जिन के आमंत्रण पर 4–10 जनवरी, 1966 को ताशकंद में दोनों शासनाध्यक्ष मिले और उनके मध्य एक समझौता हुआ जो 'ताशकन्द समझौता' के नाम से जाना जाता है। इस समझौते के अनुसार दोनों पक्ष एक दूसरे के विरुद्ध बल प्रयोग नहीं करेंगे, एक–दूसरे के आन्तरिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेंगे, एक–दूसरे की जीती हुई भूमि व सम्पत्ति वापस कर देंगे तथा भविष्य में विवादों का समाधान शान्तपूर्ण तरीके से करेंगे दुर्भाग्य से ताशकन्द में प्रधानमंत्री शास्त्री जी का निधन हो गया और प्रधानमंत्री की कमान श्रीमती इंदिरा गाँधी ने संभाल लिया।

ताशकन्द समझौते के पश्चात् यह आशा बंधी थी कि दोनों देशों के मध्य सम्बन्ध पुनः पटरी पर आ जायेंगे पर यह आशा निर्मूल सिद्ध हुई। इंदिरा गाँधी के प्रधानमंत्रित्व काल में भी भारत पाकिस्तान के मध्य सम्बन्ध खराब ही रहे। भारत पाक के मध्य कड़वाहट तब और बढ़ गई जब 2 फरवरी, 1971 को इण्डियन एयरलाइन्स के एक विमान को अपहरणकर्ता कराची ले गए और उसे बम

से उड़ा दिया। इसी बीच पाकिस्तान के अंदरूनी हालात तेजी से बदले। शेख मुजीबुर्रहमान के नेतृत्व में पूर्वी पाकिस्तान ने पश्चिमी पाकिस्तान के अत्याचारी शासन के विरुद्ध बगावत का बिगुल बजा दिया शेख मुजीब को गिरफ्तार कर लिया गया, पाकिस्तान में गृह युद्ध छिड़ गया और लाखों की संख्या में शरणार्थी भारत आने लगे। अचानक 3 दिसम्बर, 1971 को पाकिस्तान ने भारत पर भीषण हमला कर दिया। यह लड़ाई 14 दिनों तक चली और 93 हजार पाकिस्तानी सैनिकों के आत्मसमर्पण के साथ खत्म हुई।

यद्यपि इस युद्ध का सीधा सम्बन्ध कश्मीर से नही था परन्तु इसके बाद हुए शिमला समझौते में कश्मीर की छाया देखने की मिलती है। इतनी बड़ी संख्या में युद्धबन्दी होने से लगने लगा था कि भारत के पास इस समय कश्मीर समस्या के समाधान का अच्छा अवसर है, पर ऐसा नहीं हो सका। ''भुट्टो श्रीमती गाँधी को यह समझाने में सफल हो गए कि इस समझौते में ऐसा खण्ड भी रखा जाये जिसके तहत जम्मू और कश्मीर को 'विवादाम्पद मुद्दा' मान लिया जाय और इसे परस्पर मिलकर सुलझाया जाय। जम्मू कश्मीर को विवाद का मुद्दा स्वीकार करना भारत की विदेश नीति की विफलता है।'' 31 जुलाई, 1972 को लोकसभा में दिये भाषण के दौरान श्री अटल बिहारी बाजपेयी का भी यह मत था। उन्होंने सदन को सम्बोधित करते हुए कहा कि, ''उपाध्यक्ष जी, तीन लड़ाइयाँ हुई हैं। हर युद्ध में हम जीते हैं, हर शान्ति में हम हारे हैं। हम मैदान में जीते हैं, हम मेज पर हारे हैं। हम रणनीति में जीते हैं, हम कूटनीति में हारे हैं। हम समझते थे, 1971 के बाद शिमला में नया इतिहास लिखा जायेगा लेकिन जो लिखा गया, वह लज्जाजनक इतिहास है। यह जवानों के बलिदानों पर पानी फेरने वाला इतिहास है। यह शिमला समझौता भारत के राष्ट्रीय हितों के साथ विश्वासघात करने वाला समझौता है। 19 मई, 1974 को भारत द्वारा पोखरण में किये गए भूमिगत परमाणु परीक्षण से पाकिस्तान का भारत के प्रति अविश्वास और गहरा हो गया।

भारत के प्रति पाकिस्तान की नीति :

पाकिस्तान की दीर्घकालीन नीति भारत को विखण्डित करने की रही है। उसकी 1947–48, 1965 व 1971ई0 का युद्ध इसी रणनीति का परिणाम है। कश्मीर तो बहाना है। द्विराष्ट्र के सिद्धान्त पर गठित पाकिस्तान को भारत की धर्मनिरपेक्ष, बहुरंगी संस्कृति एवं लोकतांत्रिक शासन व्यवस्था बर्दाश्त नहीं होती। इसलिये वह भारत पर बार–बार हमला करके उसे हजारों घाव देना चाहता था। जब पाकिस्तान को यह अहसास हुआ कि सीधे युद्ध में भारत से नहीं जीत सकता तो उसने छद्म युद्ध का सहारा लिया और पंजाब तथा कश्मीर में अलगाववादियों को प्रोत्साहन देने लगा। पंजाब में फैले आतंकवाद की आग ने इंदिरा गाँधी की बलि ले ली। उनकी मृत्यु के बाद उनके पुत्र राजीव गाँधी प्रधानमंत्री बने जो कि अपनी माँ की अपेक्षा अपने नाना पं0 नेहरू के आदर्शवादी विचारों से अधिक प्रभावित थे। वे अपने सभी पड़ोसियों की तरह पाकिस्तान से भी बेहतर सम्बन्ध चाहते थे पर राष्ट्रीय हितों की कीमत पर नहीं। वी0पी0 सिंह, इन्द्र कुमार गुजराल, चन्द्रशेखर, नरसिंहाराव जैसे प्रधानमंत्रियों ने बेशक पाकिस्तान के साथ बेहतर सम्बन्धों को तरजीह दी पर पाकिस्तान के भारत विरोधी रवैये ने हमेशा सम्बन्धों को नुकसान पहुंचाया। 12 मार्च 1993 को मुंबई में हुए 13 सीरियल ब्लॉस्ट इसका उदाहरण है। अटल बिहारी बाजपेयी के नेतृत्व वाली सरकार ने जब 11 एवं 13 मई, 1998 को पोखरन में भूमिगत परमाणु परीक्षण किया तो पाकिस्तान ने भी 21 एवं 28 मई को परमाणु परीक्षण करके इसका जवाब दिया।

पाकिस्तान के मन में भारत के प्रति शत्रुता की भावना इतनी दृढ़ता से विद्यमान है कि वह आसानी से जाने वाली नहीं है। वहाँ के सैन्य प्रतिष्ठान और आई. एस. आई. को भारत से पाकिस्तान की दोस्ती कतई मंजूर नहीं। पाकिस्तान कश्मीर मुद्दे का अन्तर्राष्ट्रीय करने में काफी हद तक कामयाब रहा है। भारत पाकिस्तान के मध्य परमाणु युद्ध के खतरे को देखते हुए अमेरिकी राष्ट्रपति बिल क्लिंटन ने प्रधानमंत्री नवाज शरीफ को अमेरिका बुलाकर चेतावनी दी कि पाकिस्तान तुरन्त अपनी सेनाएँ वहाँ से वापस बुला ले। अमेरिका को आखिरकार कश्मीर मुद्दे को लेकर भारत पाकिस्तान के मध्य हस्तक्षेप करने का मौका मिल गया।

भारत के तत्कालीन सेनाध्यक्ष जनरल वी.पी. मालिक इसके लिये मीडिया को भी जिम्मेदार मानते हैं। उनका मानना है कि ''परमाणु खतरे का मीडिया कवरेज काल्पनिक था और इसे बढ़ा चढ़ाकर पेश किया गया था। विनाशकाल की भविष्यवाणी' पश्चिमी देशों के परमाणु अप्रसार नीति के अनुकूल थी और 4 जुलाई, 1999 के बाद राष्ट्रपति क्लिंटन के इस संकट में निजी हस्तक्षेप करने में बहुत सफल रही, जितने हस्तक्षेप के वे हकदार नहीं थे उससे अधिक हस्तक्षेप कर सके। अमेरिकी हस्तक्षेप का भी पाकिस्तान पर ज्यादा दिन तक असर नहीं रहा उसने भारत पर अपरोक्ष हमला जारी रखा। 24 दिसम्बर, 1999 को हिजबुल मुजाहीदीन नामक संगठन ने भारतीय विमान का अपहरण कर लिया और उसे तालिवान शासित देश अफगानिस्तान ले गए। उसने विमान यात्रियों को तभी रिहा किया जब भारत ने मुश्ताक अहमद जरगर, अहमद उमर सईद शेख तथा मौलाना मसूद अजहर को रिहा नहीं कर दिया। इन सभी को पाकिस्तान ने शरण दी।

13 दिसम्बर, 2001 को संसद पर 5 अज्ञात हमलावरों ने हमला कर दिया। यद्यपि वे सभी मार गिराये गए पर ये पाकिस्तान की बहुत बड़ी गुस्ताखी थी जिसकी गम्भीर प्रतिक्रिया भारत ने व्यक्त की। भारत ने न केवल अपने उच्चायुक्त को पाकिस्तान से वापस बुला लिया, समझौता एक्सप्रेस भी रद्द कर दी और पाकिस्तानी विमानों की भारतीय सीमाओं में उड़ान पर पाबन्दी लगा दी। यही नहीं ऑपरेशन पराक्रम के तहत पाकिस्तानी सीमाओं पर भारतीय फौज तैनात कर दी। अक्सर ये अनुमान लगाया जाता है कि संसद पर हमले की वजह जुलाई, 2001 में प्रधानमंत्री बाजपेयी और राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ के मध्य आगरा शिखर वार्ता' की विफलता है। मुशर्रफ अपना ऐजेण्डा लेकर आगरा पहुंचे थे जब उनका एजेण्डा विफल हो गया तो उन्होंने संसद पर हमले के द्वारा अपनी खीज निकाली। वे आश्वस्त दिख रहे थे कि भारत को वे अपनी शर्तों पर सन्धि पर हस्ताक्षर करने हेतुतैयार कर लेंगे।

सन् 2003 में भारत ने बड़प्पन दिखाते हुए पुनः पाकिस्तान के साथ बातचीत की प्रक्रिया शुरू की। 2004 में डॉ. मनमोहन सिंह के प्रधानमंत्री बनने के बाद भी यह प्रक्रिया जारी रही। इसक्रम में विदेश मंत्री नटवर सिंह ने फरवरी, 2005 को पाकिस्तान की यात्रा भी की किन्तु पाकिस्तान की ओर से कभी सकारात्मक प्रतिक्रिया देखने को नहीं मिली। उसने कभी भारत के साथ शान्तीपूर्ण सम्बन्धों को महत्व नहीं दिया। 26 नवम्बर, 2008 को मुंबई में हुआ आतंकी हमला उसके इसी वैमनस्य का परिचायक है। होटल ताज, ट्राइडेन्ट कैफे, नरीमन प्वाइन्ट और छत्रपति शिवाजी रेलवे स्टेशन पर पाक समर्थक आतंकवादियों ने कत्लेआम मचा दिया। आतंकी कसाब जिंदा पकड़ा गया जिसे काफी ना–नुकुर के बाद पाकिस्तान ने अपना नागरिक होना कबूल किया। सन् 1999 में कारगिल युद्ध के दौरान भी भारत ने कश्मीर सीमा से बाहर जाकर पाकिस्तान पर हमला नहीं किया। तत्कालीन प्रधानमंत्री अटल बिहारी बाजपेयी इस युद्ध को इतना नहीं बढ़ाना चाहते थे कि परमाणु हमले की नौबत आ जाये। पाकिस्तान में भारत के पूर्व उच्चायुक्त जी पार्थसारथी कहते है कि प्रधानमंत्री के मन में पाकिस्तान को लेकर एक भ्रमित अवधारणा है। उनमें से कुछ का असलियत से कोई लेना देना नहीं है। वे परस्पर विरोधी बयान देते हैं और हमारी पाकिस्तान नीति एकदम गड़बड़ा गयी है।

भारत लगातार यह मांग करता रहता है कि पाकिस्तान 26/11 के गुनहगारों को सजा दे पर सजा देना तो दूर ये आतंकी खुलेआम पाकिस्तान में घूम रहे हैं। 26/11 का मास्टर माइन्ड हाफिस सईद खुले आम पाकिस्तान में रैलियाँ करता है और कहने को तो लश्कर कमाण्डर लखवी जेल में है, पर उसे वहाँ वी0आई0पी0 सुविधाएं हासिल है। हम भले ही कसाब, अफजल गुरू या याकूब मेनन को फांसी पर चढ़ाकर अपनी पीठ ढोक लें पर पाकिस्तान पर इसका कोई असर नहीं हुआ है। वो आज भी सीज फायर का उल्लंघन करता रहता है। 8 जनवरी 2013 को सीमा पर तैनात 2 भारतीय जवानों की नृशंश हत्या, 22 वर्ष से पाकिस्तान की जेल में बंद भारतीय कैदी सरबजीत की हत्या, पठानकोट, उधमपुर तथा उरी में हुआ आतंकी हमला उसकी बदनीयती का उदाहरण है। मुंबई सीरियल ब्लास्ट, संसद पर हमले और 26/11 के गुनहगार आज भी वहाँ आराम से रह रहे हैं। पाकिस्तान कश्मीर मुद्दे के अन्तर्राष्ट्रीयकरण का कोई भी मौका हाथ से जाने नहीं देता। चाहे वह संयुक्त राष्ट्र संघ का मंच हो, गुटनिरपेक्ष सम्मेलन हो, सार्क सम्मेलन हो या राष्ट्रमण्डल सम्मेलन हर जगह उसका कश्मीर राग शुरू

हो जाता है। जम्मू कश्मीर संयुक्त राष्ट्र के एजेण्डा में है और यह 1947 से अनसुलझा विवाद है। पाकिस्तान चाहता है कि किसी भी तरह अन्तर्राष्ट्रीय समुदाय का ध्यान कश्मीर समस्या के प्रति आकृष्ट हो।

कश्मीर मुद्दे का भारत पाक–सम्बन्धों पर असर :

कश्मीर समस्या ने भारत–पाकिस्तान सम्बन्धों पर बड़ा ही नकारात्मक प्रभाव डाला है। दक्षिण एशिया के ये दो पड़ोसी कभी अपने सम्बन्धों के मध्य विभाजन की कड़वाहट को नहीं भुला सके। जहाँ कश्मीर का भारत का अंग बने रहना उसकी धर्मनिरपेक्ष स्वरूप की पहचान है वहीं यह पाकिस्तान की ईस्लामिक राष्ट्र की पहचान पर प्रश्न चिन्ह है। वह विशेष रूप से दक्षिण एशिया में मुसलमानों का एकमात्र प्रतिनिधि बने रहना चाहता है पर उसकी इस उम्मीद को न केवल कश्मीर के भारत में विलय ने झटका दिया बल्कि 1971 के पाकिस्तान के विभाजन ने इसे और बढ़ा दिया ''पाकिस्तान की टूट ने यह सिद्ध कर दिया कि धर्म की बुनियाद पर आधुनिक राष्ट्र की इमारत खड़ी नहीं रह सकती और न ही विदेशी सैनिक सहायता की वैशाखी पर खड़ी तानाशाही जनतांत्रिक अरमानों को कुचल सकती है। इस सम्बन्ध में मौलाना अबुल कलाम आजाद की भविष्यवाणी सही साबित हुई जिन्होंने ''विभाजन को 'एक भटकाव का नाम दिया। उन्होंने दूरदर्शितापूर्वक पूर्वानुमान लगाया कि केवल इस्लाम एक राष्ट्रीय पहचान का आधार नहीं हो सकता है। पाकिस्तान या तो गहन ऐतिहासिक और सांस्कृतिक समानताओं के कारण पुनः भारत में मिल जायेगा या जाति व भाषा सम्बन्धी अनेकताओं के कारण टूट जायेगा, क्योंकि इस्लाम आधारित राष्ट्रीय पहचान के सिद्धान्त द्वारा इन विविधताओं पर विजय प्राप्त नहीं की जा सकती है।'' युद्ध में भारत द्वारा बार–बार पराजित होने के बाद पाकिस्तान ने छदम युद्ध और आतंकवाद का सहारा लेकर कश्मीर को हड़पने की नीति अपनाई 80 के दशक में कश्मीर में अलगावाद की जो चिरंगारी उठी 90 के दशक तक आते–आते यो चिंगारी आग में बदल गयी। आज कश्मीर जल रहा है, अक्सर वहाँ भारतीय ध्वज जलाया जाता है, भारत विरोधी नारे लगाये जाते हैं और पाक समर्थित नारे लगाये जाते हैं, सुरक्षा बलों पर हमले होते हैं। अब तो खतरनाक आतंकी संगठन आई एस. के झण्डे भी घाटी में लहराये जाते हैं। आतंकवाद कश्मीर में ही नहीं पूरे भारत को चोट पहुंचा रहा है। दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरू, अयोध्या, वाराणमी, पुणे देश का कोई भी हिस्सा इससे अछूता नहीं है। ''लश्कर ए तोयबा के प्रमुख मुहम्मद हाफिज सईद ने 31 जुलाई, 2000 को कहा कि जब तक कश्मीर पाकिस्तान का हिस्सा नहीं बन जाता, भारत के खिलाफ जेहाद जारी रहेगा।

कश्मीर का हवाला देकर पाकिस्तान ने ईस्लाममिक राष्ट्रों के मध्य भारत की हमेशा नकारात्क छवि प्रस्तुत की जिसमें काफी हद तक वो कामयाब भी रहा है। भारत की कमजोर विदेश नीति उसके दुष्प्रचार का जवाब देने में नाकाम रहीं। पाकिस्तान हर सम्भव प्रयास करता है कि सार्क देशों में भारत की दादागिरी दिखाने वाले देश की छवि प्रस्तुत करे। उसने चीन को कश्मीर का अपने हिस्से में से 2000 वर्गमील भूमि देकर भारत के खिलाफ एशिया में धुरी बना ली है। दोनों देशों के मध्य परमाणु हथियारों की होड़ भी कश्मीर समस्या का साइड इफेक्ट है। कारगिल युद्ध के दौरान और उसके बाद पाकिस्तान सदैव भारत की परमाणु युद्ध के लिये ललकारता रहता है। इसी वजह से अमेरिका और पश्चिमी शक्तियां बार–बार भारत और पाकिस्तान पर बातचीत के लिये दबाव डालती है। श्यामा प्रसाद मुखर्जी की शहादत के बाद कश्मीर में हिन्दू मुसलमान वोटों का जो ध्रुवीकरण शुरू हुआ वह 2014 के लोकसभा चुनाव में भी देखने को मिला। इस चुनाव में जहाँ जम्मू की सभी सीटे बीजेपी को मिली वही कश्मीर घाटी में उसे एक भी सीट नहीं मिली, यही हाल पी.डी.पी. का भी रहा। सैमुअल हटिंगटन ने अपनी पुस्तक 'द क्लेश ऑफ सिविलाइजेशन में सभ्यताओं के संघर्ष की जो रूपरेखा प्रस्तुत की थी वह भारत पाकिस्तान के सम्बन्ध में बिल्कुल फिट बैठती है। इसके अलावा ''अमेरिकी प्रोफेसर किस्टीन फेयर ने अपनी पुस्तक 'फाइटिंग टू द एण्ड द पाकिस्तानीज वे ऑफ वार में लिखा है कि पाकिस्तान सेना लम्बे समय से खुद को पाकिस्तान के इस्लामिक विचारधारा के संरक्षक के तौर पर देखती रही है और भारत के साथ जारी छदम युद्ध को वह सभ्यताओं के संघर्ष के तौर पर देखती मानती है। वास्तविकता तो यह है कि पाकिस्तान कभी नहीं चाहता है कि कश्मीर विवाद का वास्तव में निपटरा हो

जाये और भारतीय आपसंख्यकों के आक्रोश को भड़काने का यह मुद्दा गंवा दिया जाये। कश्मीर का पर्यटन उद्योग चौपट हो चुका है। दोनों देशों के बीच होने वाली व्यापारिक गतिविधियाँ भी इससे प्रभावित हुई है। **समस्या का निदान :**

भारत और पाकिस्तान के मध्य धर्म, भाषा, संस्कृति में इतनी समानता के बावजूद दोनों देशोंमें इतनी कटुता के क्या कारण है यह एक चिन्तन का विषय है।एम0जे0 अकबर का मानना है कि 'भारत और पाकिस्तान केवल सीमाओं से ही अलग–अलग नहीं, बल्कि मूलरूप से हो परस्पर विपरीत विचारधारा से बने हैं। भारत एक धर्मनिरपेक्ष राष्ट्र में विश्वास करता है जहाँ सभी धर्म समान है, पाकिस्तान धर्म के आधार पर राष्ट्र की बुनियाद को मजबूत करना चाहता है। कुलदीप नैय्यर इन्हें दूर के पड़ोसी कहते हैं। दक्षिण एशिया के दोनों देशों को अपने मतभेद भुलाकर एक–दूसरे के अस्तित्व को स्वीकार करने की जरूरत है। भारत ने तो विभाजन को स्थायी मानकर इसे स्वीकार कर लिया है पर पाकिस्तान आज भी विभाजन को अपूर्ण कार्य मानता है। उसकी जिद है कि कश्मीर के बिना पाकिस्तान अधूरा है। पाकिस्तान अपनी जिंद पर कायम है पर भारत को अपनी ओर से भी कुछ प्रयास करने होंगे। इस क्रम में भारत ने संविधान से धारा 370 को हटाकर इसका स्पष्ट संदेश दे दिया है क्योंकि इसी धारा की वजह से भारतीय संसद के अधिकार वहाँ सीमिति थे। भारत के पूर्व प्रधानमंत्री स्व0 अटल बिहारी बाजपेयी ने 30 अगस्त, 1968 को लोकसभा में भाषण देते हुए यह प्रश्न या था कि ''जम्मू–कश्मीर और शेष भारत के बीच में यह द्वैत कब तक चलेगा? यह दुविधा कब तक चलेगी? जहाँ द्वैत है, यहाँ दुविधा है, जहाँ दुविधा है यहाँ है, अलगाव है। उनका यह अंदेशा सही साबित हुआ आज कश्मीर में अलगाववाद, आतंकवाद चरम पर है। उन्होंने सुझाव दिया कि, ''भारत के संविधान को पूरी तरह से जम्मू–कश्मीर में लागू किया जाना चाहिए। जम्मू–कश्मीर भारत का एक अटूट भाग है, हम उसके साथ भेदभाव नहीं कर सकते, हम वहाँ के नागरिकों को भारतीय संविधान के मूल अधिकारों से भारतीय नागरिकता की गौरव गरिमा से वंचित नहीं रख सकते। उन नागरिकों को समान अधिकार देने के लिये आवश्यक है कि यह मनोवैज्ञानिक दीवार हटा दी जाय और भारतीय संविधान को पूरी तरह से जम्मू–कश्मीर में लागू कर दिया जाये

पाकिस्तान कश्मीर को हथियाने के लिये आतंकवाद की राह पर चल पड़ा है। किन्तु आतंकवाद किसी भी लक्ष्य को हासिल करने का साधन नहीं हो सकता है। आज आतंकवाद का दानव खुद पाकिस्तान को निगलने को तैयार है। पेशावर के आर्मी स्कूल में हुआ हमला आतंकवाद का सबसे बदसूरत चेहरा है पर उसे अभी भी अक्ल नहीं आयी है। भारत को भी अमेरिका या पाकिस्तान के भरोसे बैठकर आतंकवाद के खत्म होने का इंतजार नहीं करना चाहिए। उसे स्वयं कई कदम उठाने होंगे आतंक के खिलाफ एक सशक्त रणनीति बनानी होगी, उनके आर्थिक स्रोत पर अंकुश लगाना होगा, सुरक्षा बलों को बेहतर प्रशिक्षण देना होगा और उन्हें अत्याधुनिक हथियार और संचार उपकरण उपलब्ध कराने होंगे। पाकिस्तान की आतंकियों को मदद पहुँचाने की नीति का भी विश्व बिरादरी के समक्ष पर्दाफाश करना होगा। जनरल परवेज मुशर्रफ कहते है कि ''वह हिंसा और आतंकवाद का विरोध करते हैं, लेकिन जम्मू–कश्मीर में अलगाववादी हिंसा को आतंकवाद नहीं मानते। उनके दृष्टिकोण में वह आत्मनिर्णय के लिये एक हिंसक संघर्ष है और कश्मीर में जेहाद न्यायोचित है। वह एक स्वतंत्रता संघर्ष है जिसका राजनीतिक, नैतिक और कूटनीतिक रूप से समर्थन पाकिस्तान करता है। भारत को बेहतर कूटनीतिक क्षमता का इस्तेमाल करके पाकिस्तान की इस चाल में दुनिया को परिचित कराना होगा, उसे यह भी कोशिश करनी होगी कि कश्मीर मामलों में दुनिया की सहानुभूति हमारे साथ रहे। अमेरिका में पाकिस्तान के पूर्व राजदूत खुद मानते हैं कि पाकिस्तान कश्मीर मुद्दे पर अन्तर्राष्ट्रीय समर्थन खो चुका है। कश्मीर में अमन बहाली इसलिये भी बहुत जरूरी है ताकि कश्मीरी पण्डित वापस कश्मीर में आकर बस सकें। कश्मीरियों के मन को भी समझना आवश्यक है। शासक वर्ग की उदासीनता, अशिक्षा, बेरोजगारी, भ्रष्टाचार ने कश्मीरियों के मन को आहत किया है और युवा वर्ग को आतंक की राह पर चलने को मजबूर किया है। हमें उनकी समस्याओं को सुनना और हल करना

होगा। केन्द्र और राज्य सरकारों को कश्मीरियों को भावात्मक रूप से जोड़ने का भी प्रयास करने की जरूरत है।

भाजपा नेता श्री लाल कृष्ण अडवानी कहते है कि, ''जम्मू और कश्मीर की समस्या हिंदू बनाम मुसलमानों की नहीं है न ही यह जम्मू बनाम घाटी की समस्या है, निश्चित रूप से यह राष्ट्रवादियों बनाम अलगाववादियों की समस्या है। पैट्रिक फँच के अनुसार, ''कश्मीर एक कूटनीतिक मोहरा बन गया है जिसका दोनों ही पक्ष आंतरिक तौर पर राजनीतिक उद्देश्यों के लिये इस्तेमाल करते रहते हैं, जबकि कश्मीर के लोगों की असली इच्छा को आमतौर पर दरकिनार कर दिया जाता है। एक तरफ तो जम्मू कश्मीर के लोगों को मुख्यधारा में लाने का प्रयास करना होगा दूसरी ओर परमाणु युद्ध के खतरे को ध्यान में रखते हुए पाकिस्तान के साथ बातचीत का रास्ता भी खुला रखना होगा क्योंकि स्थायी शान्त बातचीत से ही आ सकती है। इस मुद्दे पर दोनों ही देश अन्तर्राष्ट्रीय दबाव झेल रहे हैं फिर बातचीत से परहेज क्यों हमने 1965 और 1971 में कश्मीर समस्या को हल करने का मौका हाथ से जाने दिया। बातचीत के माध्यम से हो हम व्यवहारिक एवं स्वीकार्य समाधान तक पहुँच सकेंगे। जिसमें से एक यह है कि दोनों देश वास्तविक नियंत्रण रेखा को ही अन्तर्राष्ट्रीय सीमा मान लें। आखिरकार भारत पाकिस्तान की भावी पीढ़ी शान्त और विकास चाहती है, युद्ध यातनाव नहीं।

संदर्भ :

1. फ्रेंच, पैटिक (2012) : आजादी या मौत आजादी से विभाजन की ओर यात्रा बुक्स पेंगुइनबुक्स पृ०सं0–489।
2. लोपियर डॉमिनीक कॉलिन्स, लैरो (2012) : आजादी आधी रात को, हिन्द पॉकेट बुक्स, नईदिल्ली पृ०–378–379।
3. वही पृ0सं0–389–390।
4. दीक्षित, जे.एन. (2003): भारत–पाक सम्बन्ध : युद्ध और शान्ति में, प्रभात प्रकाशन, दिल्ली पृ० सं0 129।
5. दीक्षित, जे.एन. भारतीय विदेश नीति' प्रभात प्रकाशन, दिल्ली, पृ0सं0 113–114।
6. बाजपेयी अटल बिहारी (2007): कुछ लेख कुछ भाषण, किताब घर प्रकाशन,नई दिल्ली,पृ0सं0–140.
7. मलिक, जनरल वी.पी. (2012) :कारगिल एक अभूतपूर्व विजय, राजपाल एण्ड सन्स,नई दिल्ली, पृ0सं0–138.
8. इण्डिया टुडे 17 दिसम्बर 2008 (हिन्दी संस्करण), पृ0सं0– 24
9. इण्डिया टुडे, 5 अगस्त, 2009 (हिन्दी संस्करण), पृ.सं0 12.
10. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण), 10 फरवरी, 2010.
11. इण्डिया टुडे, 5 अगस्त, 2009 (हिन्दी संस्करण), पृ. 16.
12. दैनिक जागरण (कानपुर संस्करण). 12 फरवरी, 2015
13. पंत, पुष्पेश (2008): 21वीं शताब्दी में अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध, टाटा मैकग्राहिल पब्लिसिंग कम्पनी लि0 नई दिल्ली पृ0सं0–48 भाग–5

***

भारत की सुरक्षा के लिए बांग्लादेश में सक्रिय आई.एस.आई. की भूमिका

डॉ. उपेन्द्र कुमार सिंह *

भूमिका : भारत दीर्घकाल से अनेक विखण्डनकारी, विभाजनकारी, विभेदनकारी और विनाशकारी चुनौतियों एवं समस्याओं का सामना कर रहा है किन्तु इसकी संगठित सैन्य शक्ति, एकीकृत समाज शक्ति एवं राष्ट्रवादी जनमानस की विचार शक्ति के कारण से विध्वंशक प्रवृत्तियां सफल नही हो पा रही है। भारत न केवल अपनी स्वतन्त्रता एवं गरिमा को अक्षुण्ण रखने हेतु प्रयत्न करता है बल्कि पड़ोसी देशों के साथ भी समानता, न्याय भाईचारे तथा सहयोग की भावना से कार्य करता है तथा उनकी मदद के लिए हमेशा आगे आता है किन्तु उसके कुछ पड़ोसी देश उसकी इस उदारता को उसकी कमजोरी या मजबूरी मानते हुए उसके खिलाफ आतंकी गतिविधियां चलाते है। इसे एक विडंबना ही कहा जायेगा कि जिस देश को स्वतंत्रता दिलाने के लिए भारत ने बहुत बड़ी कुर्बानी दी तथा जिसके समाज की खुशी को भारत विजय दिवस के रूप में मनाता है, वही बांग्लादेश आज पूर्वोत्तर भारत के उग्रवादियों के लिए आरामगाह बन गया है। उल्फा और बोडों आतंकवादियों को बांग्लादेश के चटगांव के पहाड़ी क्षेत्रों में शरण मिलती हैं। जहां आई0एस0आई0 उन्हें प्रशिक्षण, हथियार और धन उपलब्ध कराती हैं। बांग्लादेश में शरण लेने के उपरान्त उल्फा उग्रवादी के आंदोलन के तरीकों में परिवर्तन हो गया है। पहले उल्फा का आंदोलन बांग्लादेशी घुसपैठियों के खिलाफ था पर अब ऐसा नही है। उल्फा व आई0एस0आई0 ने बांग्लादेश में अपना मजबूत आधार कायम कर रखा है। आई0एस0आई0 को वहां के जमाते इस्लामी तथा अन्य इस्लामी कट्टरपंथियों का पूरा सहयोग मिल रहा है। इंटर सर्विस इंटेलीजेंस (आई0एस0आई0) पाकिस्तान की सबसे बड़ी गुप्तचर सेवा है। 1950ई0 में पूरे पाकिस्तान की आन्तरिक और वाह्य सुरक्षा की जिम्मेदारी आई0एस0आई0 को सौपी गयी। इसमें सेना के तीनों अंगों के अधिकारी मिलकर आई0एस0आई0 के लिए काम करते हैं। पहले इसका मुख्यालय रावलपिंडी में था। वर्तमान में आई0एस0आई0 का मुख्यालय इस्लामाबाद में है। वर्तमान में इसके स्फाफ में करीब 25 हजार लोग काम कर रहे हैं। 1947ई0 में पाकिस्तान में दो मुख्य गुप्तचर संस्थाएं थीं, इंटेलिजेंस ब्यूरों और मिलिट्री इंटेलिजेंस। लेकिन 1947 में हुए भारत पाक युद्ध में पाकिस्तानी–मिलिट्री इंटेलिजेंस सेना के तीनों अंगों नौ सेना, स्थल और वायु सेना के बीच सूचनाओं और व्यवस्थाओं के आदान प्रदान में एकदम विफल रही। इस असफलता से एक नई एजेंसी की जरूरत महसूस हुई। नतीजतन 1948ई0 में आई0एस0आई0 का गठन किया गया। आई0एस0आई0 की नींव आस्ट्रेलियाई मूल के ब्रिटिश आर्मी ऑफिसर मेजर जनरल आर0 कैथोग ने रखी थी जो उस समय पाकिस्तानी आर्मी स्टाफ के मुख्य थे।

बांग्लादेश में आई0एस0आई के उद्देश्य :

1. पाकिस्तान की आन्तरिक व वाह्य सुरक्षा का जिम्मा अन्य देशों में हो रहे सेना व राजनीतिक बदलावों व विकास पर नजर रखना है जिसका सीधा प्रभाव पाकिस्तान की राष्ट्रीय सुरक्षा व्यवस्था पर पड़ता हो।
2. दूसरे देशों की गुप्त जानकारियां इकट्ठा कर देश की सुरक्षा व्यवस्था में उचित बदलाव करना। गुप्तचर विभाग और सेना के तीनों अंगों के बीच सामंजस्य स्थापित करना। राजनीतिक गतिविधियों, मीड़िया की खबरों व समाज की अन्य महत्वपूर्ण गतिविधियों पर नजर रखना।
3. विदेशी कूटनीतिज्ञों व विदेश में कार्यरत पाकिस्तानी कूटनीतिज्ञों पर नजर रखना।

आई0एस0आई0 ने पूर्वोत्तर भारत के उग्रवादी गुटों से मिलकर यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ सेवेन सिस्टर्स (अज्फास) का गठन किया है। इसे बांग्लादेश की कट्टरपंथी पार्टियों जैसे हरकत–उल–जिहाद–अल–इस्लामी (हूजी) का समर्थन हासिल है। हरकत–उल–मुजाहिदीन,

* एसोसिएट प्रोफेसर, रक्षा एवं स्त्रातंजिक अध्ययन विभाग, प्रताप बहादुर स्नातकोत्तर महाविद्यालय, प्रतापगढ़ सिटी, प्रतापगढ़

नेशनल फ्रंट ऑफ बोडों लैड, यूनाइटेड लिबरेशन फ्रंट ऑफ आसाम (उल्फा), मुस्लिम यूनाइटेड लिबरेशन टाइगर्स ऑफ असाम (मुल्टा) पीपुल्स लिबरेशन आर्मी, मुस्लिम वालंटियर फोर्स, नेशनल लिबरेशन फ्रंट ऑफ त्रिपुरा, इस्लामिक लिबरेशन आर्मी ऑफ आसाम व अल जेहादी जैसे कई संगठन अल्फास के साथ हो गये है। इन सभी का उद्देश्य पूर्वोत्तर भारत को शेष भारत से अलग करना है। इन संगठनों के उग्रवादियों को आई0एस0आई0 द्वारा नियुक्त सैन्य अधिकारी प्रशिक्षण रहे हैं। इसके अतिरिक्त वह बांग्लादेश की खुफिया एजेन्सी डायरेक्टर जनरल ऑफ फील्ड इंटेलीजेंस (डी.जी. एफ.आई) के साथ मिलकर पूर्वोत्तर भारत में व्यापक पैमाने पर गड़बड़ी फैलाने और इस समूचे क्षेत्र को अलग करने की खतरनाक साजिश पर आई0एस0आई0 काम कर रही है जो भारत की आन्तरिक सुरक्षा के लिए गम्भीर चुनौती बना हुआ है।

आई0एस0आई0 के प्रति भारतीय खुफिया रिपोर्ट :

भारतीय खुफिया एजेंसियों का मानना है कि भारी मात्रा में छोटे हथियार बांग्लादेश के जरिये भारत में आतंकवादी गुटों के हाथ लग रहे है। अमरीकी खुफिया एजेसी (सी0आई0ए0) ने इसकी पुष्टि करते आगाह किया कि बांग्लादेश की दक्षिण तटीय सीमा, भारत से लगी उत्तरी सीमा पूरी तरह कानून विहीन है और हथियारों का धंधा करने वाले गिरोहों का अड्डा बना हुआ है। बांग्लादेश के अधिकार क्षेत्र के दो द्वीप कुतुबदिया और सोनादिया एक तरह से आतंकवादियों के कब्जे में है। इनके अलावा बांग्लादेश में करीब 5 हजार ऐसे अवैध कारखाने है जहाँ विदेशी कल पुर्जे से अत्याधुनिक हथियार बनाए और बेचे जा रहे हैं। इनमें पिस्तौलों और एसाल्ट राइफलों के साथ–साथ ग्रेनेड व राकेट लांचर तक बन रहे हैं। भारत का पूर्वोत्तर भाग सदैव से भारतीय सीमा का एक संवेदनशील भाग रहा है। इसका कारण भारत से वैमश्यता रखने वाले अनेक संगठनों का यहां सक्रियहोना है। यह एक ऐसा क्षेत्र है जहाँ पर बांग्लादेशी घुसपैठिएं अधिकाधिक मात्रा में आकर बसते गये हैं। आई0एस0आई0 की देशद्रोही गतिविधियों के कारण स्थिति और बदतर होती गई। आई0एस0आई0 पूर्वोत्तर राज्यों में तीन तरह की गतिविधियांसंचालित कर रही है–

1. बांग्लादेशी घुसपैठियों का भारत में प्रवेश कराने में सुविधा प्रदान कर रही है। साथ ही भारत के संवेदनशील क्षेत्रों में लोगों कोराष्ट्र विरोधी गतिविधियों के लिए उकसाती रहती है।
2. भारत विरोधी विभिन्न गुटों को आर्थिक मदद, प्रशिक्षण, गोला–बारूद तथा शस्त्रास्त्र देकर राष्ट्र विरोधी गतिविधियों के लिए उनका मार्गदर्शन करती है। एन.एस.सी.एम. सचिव खायों घूरे से पूछताछ के दौरान इस रहस्य का पता चला कि उसने बांग्लादेश स्थित पाक उच्चायोग से 10 लाख टका प्राप्त किया था जिसका प्रयोग भारत में आतंकवादी गतिविधियों का संचालन में किया जाना था।
3. आई0एस0आई0 रूढ़िवादी मुस्लिम संगठनों के माध्यम से धार्मिक उन्माद को बढ़ावा देने का कार्य करती है। उसने इन्स्टीट्यूट फॉर स्ट्रैटजिक प्लान के द्वारा सीमान्त का सिद्धात विकसित किया जिसका उद्देश्य भारत से लगी सीमाओं का इस्लामीकरण करना है और आतंकवादियों को भारत में प्रविष्ट कराना है। पाकिस्तान ने असम को मुस्लिम बहुल राज्य में बदलने का प्रयास किया था। एक समय पाकिस्तान के भूर्तपूर्व प्रधानमंत्री जुल्फिकार अली भुट्टो ने असम पर अपना अधिकार तक व्यक्त कर दिया था।

पाकिस्तान की इंटर सर्विसेज इंटेलिजेंस (आई0एस0आई0) भारत के पूर्वोत्तर में एक सक्रिय इस्लामी राष्ट्र बनाने के लिए बांग्लादेश सरकार के कट्टरपंथी ताकतों की मदद से अपनी आतकी गतिविधियां फैला रहा है। भारत के गृहमंत्रालय के अनुसार बांग्लादेश में आई0एस0आई0 के बढ़ते प्रभाव से भारत सरकार चिंतित है। बांग्लादेश राइफल के कुछ बड़े अधिकारियों का मौन समर्थन भी उन्हें हासिल है। बाग्लादेश में आई.एस.आई. के प्रभाव की शुरूआत पाकिस्तान के राष्ट्रपति जनरल परवेज मुशर्रफ की जुलाई 2002 में बांग्लादेश की यात्रा के बाद ढाका स्थित पाकिस्तानी दूतावास में आई0एस0आई0 के अतिरिक्त कर्मियों की तैनाती से हुई।अक्टूबर 2001 में खालिदा जिया की सरकार पाकिस्तान समर्थक कट्टरपंथी दलों की मदद से बनी। जिसने सरकार में आई0एस0 आई0 की पहुंच हो

गयी। इससे आई0एस0आई0 को सरकारी मदद से अपने भारत के विखण्डन एवं आतंकवादी गतिविधि संचालित करने की पूरी आजादी मिलने लगी।

केन्द्रीय सुरक्षा एजेंसी द्वारा तैयार की गयी रिर्पोट में कहा गया है कि ढाका स्थित पाकिस्तानी उच्चायोग के माधम से आई.एस.आई. भारतीय उग्रवादी संगठनों, इस्लामी कट्टरपंथियों और बांग्लादेश में आपराधिक तत्वों से अपने संबंध विकसित कर रहा है। इन संगठनों को आई.एस.आई. हर प्रकार की सहायता मुहैया करा रहा है, जैसे हथियारों की खरीद, गोला बारूद और विस्फोटकों की व्यवस्था कराना आदि। आई.एस.आई. बांग्लादेश की स्थानीय मीडिया का भी उपयोग भारत विरोधी भावनाओं को भड़काने में कर रही है। बाग्लादेशी समाचार पत्रों के संपादक आई.एस.आई. के करीब माने जाते हैं। आई.एस.आई. सोची समझी रणनीति के तहत बांग्लादेश के मदरसों में पाकिस्तानी नागरिकों की नियुक्ति करा रहा है। विशेष रूप से वे मदरसें जो भारतीय सीमा के पास में है। इन मदरसों से भारत विरोधी गतिविधियों को बढ़ावा दिया जाता है।

पूर्वोत्तर भारत के उग्रवादियों ने बांग्लादेशी सुरक्षा एजेंसियों के माध्यम से आई.एस.आई. के साथ भी घनिष्ठ संबंध बना रखे हैं जिसमें उल्फा के परेश बरूवा, त्रिपुरा नेशनल लिबरेशन फ्रंट के विश्वमोहन और आल त्रिपुरा टाइगर फोर्स के रंजीत के संबंध आई.एस.आई. से प्रमाणित हो चुके हैं। आल त्रिपुरा लिवरेशन फ्रंट के तीन सदस्यों को अक्टूबर 2002 में बांग्लादेश से आई.एस.आई. की मदद से अफगानिस्तान के कंधार में 6 महीनें प्रशिक्षण के लिए भेजे गये। बोड़ों लैंड के धीरेन बोडो और गोविन्दा वासुमित्र को दिसंबर 2002 और जनवरी 2003 में गिरफ्तार किया गया जिनसे पूछ–ताछ के दौरान पता चला कि यह पाकिस्तान के गुलाम कश्मीर में प्रशिक्षण के लिए गए थे। साथ ही साथ उल्फा कार्यकताओं को ढाका से आई.एस.आई. द्वारा प्रायोजित प्रशिक्षण के लिए भेजा गया।

असगर अजी नलगोंडा आंध्रप्रदेश का निवासी गुजरात के पूर्व गृहमंत्री हरेन पांड्या की हत्या के लिए जिम्मेदार माना जाता है उससे पता चला कि 8 भारतीय मुसलमानों को बांग्लादेश के माध्यम से दिसंबर–2002 में प्रशिक्षण के लिए पाकिस्तान ले जाया गया। कारी सलीम आई0एस0आई0 द्वारा समर्थित हिजबुलमुजाहिदीन संगठन के कार्यकर्ता को 1999 में गुवाहाटी से गिरफ्तार किया गया जिससे पता चला कि वह बांग्लादेश के रास्ते से भारत आया है। जिसके घुसपैठ की जिम्मेदारी बाग्लादेश सरकार एवं आई0एस0आई0 के द्वारा सुनिश्चित की गयी।

ढाका में पाकिस्तान के गुप्तचर अधिकारी तेजी से भारत के विरूद्धजासूसी में सक्रिय हो रहे है। इस कार्य में कुछ स्थानीय लोग भी इनकी मदद कर रहे है। जियाउल अहमद बिस्वास जो मुर्शिदाबाद पं0 बंगाल का निवासी है उसको 17 नवम्बर 2002 में गिरफ्तार किया गया उसके पास से गुप्त दस्तावेजों के साथ संवेदनशील रक्षा संस्थानों की तस्वीरें थी जो एक बड़ी वारदात को अजाम देना चाहता था। लखनऊ दिसंबर 2002 में मोहम्मद रशीद जो बांग्लादेशी है आई.एस.आई. की मदद से नकली दस्तावेजों के आधार पर भारत में रह रहा था जिसका उद्देश्य भारत में मुस्लिम युवकों को भड़काकर भारत के विरूद्धखड़ा करना था। बांग्लादेश की पूर्व प्रधानमंत्री खालिदा जिया ने आतंकियों को स्वतंत्रता सेनानी कहा था। इसमें दोनों के संबंधों में खटास आ गयी। बांग्लादेश की गुप्तचर संस्था (डी.जी.एफ.आई.) आतंकियों को सहायता प्रदान कर रही है, साथ ही पूर्वोत्तर भारत में आतंकी गतिविधियों को प्रश्रय भी दे रही है। इन आतंकियों को धन और प्रशिक्षण आई.एस. आई. डी०जी०एफ०आई० द्वारा दिया जा रहा है और इसकी पूरी जानकारी बांग्लादेश राइफल्स को है। आवामी लीग भारत का मित्र माना जाता है वो भी भारत में कार्य कर रहे उग्रवादियों के खिलाफ किये जाने क्रियाकलापों को रोकने में अक्षम रही है। इन लोगों को बांग्लादेश में सभी तरह की सुख–सुविधायें प्रदान की जा रही है। यह बात चकित करने वाली है कि यदि राज्य उनके विरूद्धकार्य करे तो बांग्लादेश चाह कर भीकुछ नहीं कर सकता है।

आतंकी संगठन उल्फा आई.एस.आई. के समर्थन कारण पूर्वोत्तर राज्यों में सक्रिय रूप से कार्य कर रहा है। उदहरणार्थ 8 सितंबर 2008 को आई0एस0आई0 के एक एजेंट को उल्फा आतंकी के साथ तीन किग्रा विस्फोटक के साथ पकड़ा गया। उल्फा के जरूरत की बंग्लादेश खातिरदारी करता है।

उदाहरणार्थ उल्फा के परेश बरूआ और अरविन्द राजखोआ ने सिर्फ वहाँ की सरकार के संरक्षण में रहते है वरन् उन्हें हर प्रकार सहायता भी दी जा रही है वह भी आई.एस.आई. के इशारे पर।बंग्लादेश के एक मंत्री ने बताया है कि खालिदा जिया के शासन के दौरान पाकिस्तान के पूर्व राष्ट्रपति परवेज मुशर्रफ ने जेल में बंद उल्फा नेता अनूप चेतिया से गोपनीय मुलाकात की थी। इस्लाम का यह वक्तव्य ऐसे समय आया है, जब बंग्लादेश केजांचकर्ता ने पूर्वोत्तर भारत के बगावती समूहों और पाकिस्तानी खुफिया एजेंसी आई0एस0आई0 के बीच सम्बन्धों का खुलासा किया है भारत लम्बे समय से कहता आया है कि पूर्वोत्तर के अलगाववादी संगठन भारत में अपनी गतिविधियों के लिए बांग्लादेश की भूमि का उपयोग कर रहे हैं। यह पहली बार हुआ है कि बांग्लादेश सरकार के किसी मंत्री ने ऐसा खुलासा किया है। ''

सत्ताधारी आदामी लीग के महासचिव इसलाग ने एक साक्षात्कार में बताया कि गुशर्रफ की ढाका यात्रा के वक्त अनूप घेतिया ढाका सेंट्रल जेल में था। उसे राष्ट्रपति से मुलाकात के लिए शेरेटन होटल ले जाया गया था, जहाँ मुशर्रफ ठहरे थे। दोनों की मुलाकात आधे घंटे तक चली थी। हालांकि उन्होंने मुलाकात की तारीख नही बताई बांग्लादेश के खुफिया जाँचकर्ता 2004 में जब्त हथियारों के अब तक सबसे बड़े जखीरे की जांच में पता चला कि जब्त 10 ट्रक हथियार पूर्वोत्तर भारत में उल्फा के ठिकानों के लिए भेजे जा रहे थे उससे पूर्व बोगरा से एक लाख गोलियां बरामद हुई थी. जिन्हें भारत भेजा जा रहा था। बांग्लादेश की मुख्य खुफिया एजेंसी नेशनल सिक्योरिटी इंटेलिजेंस कि दो पूर्व आला अधिकारी भी इस जब्ती से जुड़े होने के कारण जेल में है। एक रिपोर्ट के अनुसार गिरफ्तार अधिकारियों ने बताया है कि हथियारों की तस्करी में दुबई का एक व्यवसायिक समूह और आई.एस. आई शामिल है। आई.एस.आई द्वारा बांग्लादेश में प्रायोजित आतंकवाद भारत के लिए एक गम्भीर समस्या बन रहा है।

सन्दर्भ :

1. Changes in the army high Command: Profiles of Yahya and Yaqub Khan" British High Commission, 5 May 1966.
2. Raman, B," PAKISTAN'S INTER-SERVICES INTELLIGENCE (ISD) Archived from the original on 2006-04-12
3. Sarmila Bose Anartomy of Violence Analysis of Civil War in East Pakistan in 1971. Military Action:Operation Searchlight Economic and Political Weekly Special, Special Articles, 8 October 2005.
4. Matthew White,s Death Tolls for the Major Wars and Atrocities of the Twentieth Century Virtual Bangladesh: History: The Bangali Genocide- 1971.
5. "Situation in the Indian Subcontinent" www.mofa.go.ji. 19723
6. http:/www-eexpressindia.com/new/fullstory-php?newsid=1903.
7. http://bangladeshwatchdog-blogspot-com/2010/08isi-backed-let establishing-junction inhtml 10
8. http://news.rediff.com/report/2010jan/30/pak-intel-agencies-behind-fake –currency-racketbangladesh-htm-
9. Frontlice Pakistan: The Struggle With Militant Islam By Zahid Hussain, Columbai University Press, 2008n p-27
10. http://www.mofa.go.jp/policy/other/bluebook/1972/1972/9htm- Retrieved 2008-05-28.

जनपद–जौनपुर में पंचायत चुनाव 2015 के निर्विरोध क्षेत्र पंचायत अध्यक्षों का स्थानीय विश्लेषण

डॉ. श्रीमती पुष्पा सिंह *
निशा निषाद **

प्रस्तावना :

पंचायत शब्द पंच तथा आयत से मिलकर बना है पंच का अर्थ पांच जनप्रतिनिधियों से होता है, जबकि आयत का अर्थ है विस्तार। इस प्रकार स्पष्ट रूप से पंचायत का अर्थ जनप्रतिनिधियों का संगठन है। जो व्यापक रूप से गाँव के स्थानीय व्यवस्था तथा विकास के लिए अस्तित्व में आया है। प्रस्तुत शोधपत्र में क्षेत्र पंचायत का अर्थ उत्तर–प्रदेश क्षेत्र पंचायत तथा जिला पंचायत अधिनियम 1961 के अधीन स्थापित क्षेत्र पंचायत से है। प्रस्तुत शोधपत्र के अध्ययन का उद्देश्य जनपद जौनपुर में पंचायत चुनाव 2015 के निर्विरोध क्षेत्र पंचायत अध्यक्षों का बहुआयामी अध्ययन करना है।

अध्ययन क्षेत्र :

जनपद जौनपुर उत्तर–प्रदेश राज्य के पूर्वी भाग में मध्य गंगा मैदान में गंगा एवं घाघरा के दोआव में अवस्थित है। अध्ययन क्षेत्र का अक्षांशीय विस्तार 24°. 24′ उत्तरीय से 26°. 12′.उत्तरीय अक्षांश तक और देशान्तरीय विस्तार 82°. 70′. पूर्वी देशान्तर से 83°. 50. पूर्वी देशान्तर के मध्य है। प्रशासनिक दृष्टिकोण से इस जनपद को 6 तहसीलों में विभक्त किया गया है। बदलापुर जौनपुर (सदर) मछलीशहर, केराकत, मड़ियाहूँ, शाहगंज (सोधी) तथा इस जनपद को 21 विकास खण्डो में बॉटा गया है–बदलापुर, बक्शा, बरसठी, धर्मापुर, डोभी, जलालपुर, करंजाकला, रामनगर, रामपुर, शाहगंज, (सोधी) सिकरारा, सिरकोनी, सुइथाकला, सुजानगंज और महाराजगंज, केराकत, खुटहन, मछलीशहर,मड़ियाहूँ मुफ्तीगंज, मुंगराबादशाहपुर, जनपद जौनपुर में कुल ग्राम पंचायतो की संख्या 1779 तथा क्षेत्र पंचायत सदस्यों की संख्या 2077, जिला पंचायत सदस्यों की संख्या 83 है।

जौनपर जिले की वास्तविक जनसंख्या 4476072 (भारतीय जनगणना 2011) है। जिसमें 2217635 पुरूष तथा 2258437 महिलाएं है। जनपद का जनसंख्या घनत्व 1113 व्यक्ति प्रतिकिलो मीटर है। 2001 से 2011 के बीच जौनपुर जिले की जनसंख्या 14.89% बढ़ी है, तथा साक्षरता दर में भी वृद्धि दर्ज की गयी है ′

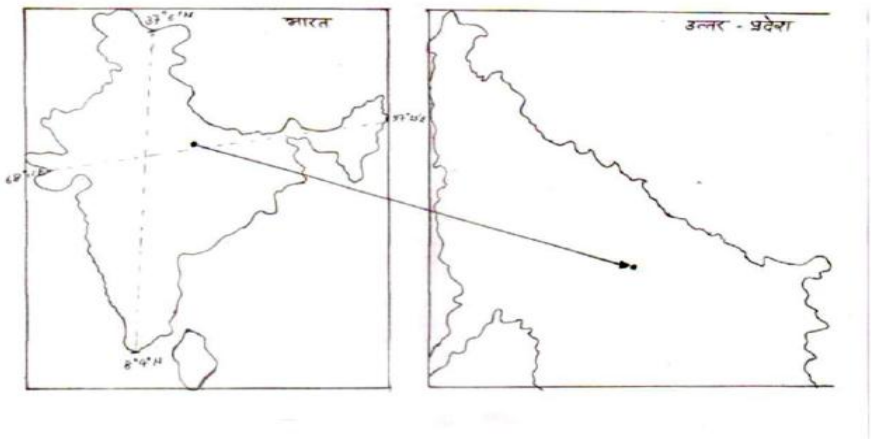

* अवकाश प्राप्त एसो. प्रोफेसर, भूगोल विभाग, राजा हरपाल सिंह पी. जी. कालेज, सिंगरामऊ
** जौनपुर शोध छात्रा, भूगोल विभाग, राजा हरपाल सिंह पी. जी. कालेज, सिंगरामऊ, जौनपुर

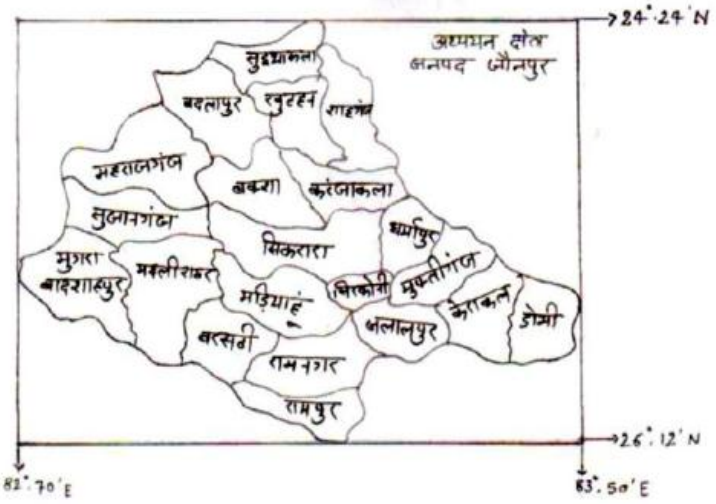

जो कि 2001 की तुलना में 59.84: से बढ़कर 73.66: (भारतीय जनगणना 2011 के अनुसार) 2011 में 86.06: पुरूष तथा 61.70:महिलाएँ साक्षर है। जिले का आर्थिक विकास मुख्य रूप से कृषि पर आधारित है।

आकड़ा तथा विधि तंत्र :

प्रस्तुत शोधपत्र क्षेत्रीय सर्वेक्षण से प्राप्त द्वितीयक स्रोत पर आधारित है। भौगोलिक निर्वाचन के शोध में किसी भी परीक्षण में सांख्यिकीय विधियों के प्रयोग हेतु आंकड़े संग्रह किये जाते है। सांख्यिकीय आंकडो के अभाव में सांख्यिकीय विश्लेषण नहीं किया जा सकता है। द्वितीयक ऑकड़े दूसरों के द्वारा संग्रहित होते हैं और सामान्यतः पत्र–पत्रिकाओं और अनुसंसाधन प्रकाशनों में उपलब्ध होते है। द्वितीयक ऑकड़ा पंचायत चुनाव में कितने वोट पड़े कितने पुरूष और महिला मतदाता है। कितने प्रतिशत वोट पड़े कितने वोट रद्द हुए है। और कितने वोटों से प्रत्याशी जीता हुआ है, इन सबका आंकड़ा उत्तर–प्रदेश चुनाव आयोग द्वारा जारी किया जाता है।

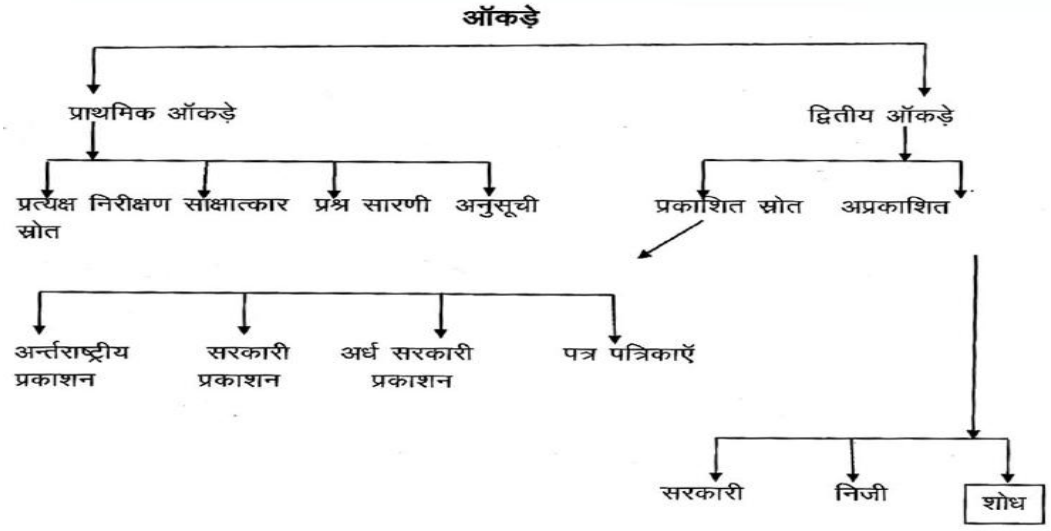

विगत् वर्षों का क्षेत्र पंचायत प्रमुख के निर्विरोध चुनाव का विवरण सारणी–अ वर्ष 2015

क्र0सं0	विकास खण्ड	पद की आरक्षण श्रेणी	निर्वाचन का प्रकार
11	केराकत	अनारक्षित महिला	निर्विरोध
13	सिरकोनी	अनुसूचित जाति महिला	निर्विरोध
14	खुटहन	अनारक्षित महिला	निर्विरोध
15	बरसठी	अन्य पिछड़ा वर्ग महिला	निर्विरोध
16	रामनगर	अनारक्षित	निर्विरोध
18	करंजाकला	अनुसूचित जाति	निर्विरोध
19	मछलीशहर	अनारक्षित	निर्विरोध
20	मुंगरा बादशाहपुर	अन्य पिछड़ा वर्ग	निर्विरोध

पंचायत चुनाव 2015 में क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष (ब्लाक प्रमुख) के चुनाव निर्विरोध रूप से जीतने वालो की संख्या कुल विकास खण्ड की लगभग 43% है। निर्विरोध रूप से चयनित क्षेत्र पंचायत अध्यक्षों की संख्या 9 है। इसमें केराकत, सिरकोनी, खुटहन,बरसठी, रामनगर, करंजाकला, मछलीशहर, मुंगरा बादशाहपुर,और शाहगंज (सोधी) विकास खण्ड सम्मिलित है।

सारणी–ब

वर्ष–2010

जनपद जौनपुर पंचायत चुनाव 2010 में 2 विकास खण्ड सिकरारा एवं सिरकोनी क्षेत्र पंचायत प्रमुख (ब्लाक प्रमुख) का चुनाव निर्विरोध हुआ था

क्र0सं0	**विकास खण्ड**	**पद की आरक्षण श्रेणी**	**निर्वाचन का प्रकार**
7	सिकरारा	अनुसूचित जाति महिला	निर्विरोध
13	सिरकोनी	अनारक्षित	निर्विरोध

सारणी–स

वर्ष–2006

पंचायत चुनाव 2006 में मात्र मुंगराबादशाहपुर विकास खण्ड में बिना निर्वाचन कराए ही क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष (ब्लाक प्रमुख) का चयन कर लिया गया। इस विकास खण्ड में आरक्षण के आधार पर प्रमुख का पद अनुसूचित जाति महिला होने के कारण सिर्फ एक महिला ने पर्चा दाखिल किया था और इसके बाद किसी ने दावेदारी नही प्रस्तुत किया जिसके कारण उस उम्मीदवार का चुनाव निर्विरोध कर लिया गया।

क्र0 सं0	विकास खण्ड	पद की आरक्षण श्रेणी	निर्वाचन का प्रकार
20	मुंगराबादशाहपुर	अनुसूचित जाति महिला	निर्विरोध

क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष का कार्य–

समाज में व्यक्ति की एक स्थिति होती है, और उस स्थिति से सम्बद्ध व्यक्ति का कुछ कार्य होता है। समाज व्यक्ति से उसकी ऋ स्थिति के अनुरूप कुछ कार्य करने की अपेक्षा करता है, जब व्यक्ति उन कार्यो को करता है तो उसे उस व्यक्ति का कार्य कहाँ जाता है। क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष का कार्य निम्न है।

1. भूमि विकास, भूमि सुधार और भूमि संरक्षण
2. लघु वन उत्पादन का विकास
3. ग्रामीण स्वच्छता एवं स्वास्थ कार्यक्रमों का कार्यान्वयन
4. वृद्धावस्था पेंशन और विधवा पेंशन योजनाओं का अनुश्रवण कराना
5. ग्राम पंचायतो का पर्यावेक्षण अनुदान का वितरण
6. गाँव के बाहर सड़को पुलियाँ, का निर्माण और अनुरक्षण
7. ग्रामीण विद्युतीकरण की प्रोन्नति।
8. परिवार कल्याण और स्वास्थ कार्यक्रमों की प्रोन्नति
9. क्षेत्र निधि संचालन का कार्य
10. खेलकूद एवं सांस्कृतिक कार्य

सुझाव :

1. क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष के निर्वाचन के लिए मतदाताओं की संख्या बहुत ही सीमित है जिसके कारण अधिकांश आर्थिक रूप से सम्पन्न व्यक्ति अपनी अर्धशाक्ति के कारण इस पद पर चुने जाते है। इसके अतिरिक्त प्रमुख के निर्वाचन में शक्तिबल एवं जातिवाद का बोलबाला रहता है। अतः इन दुर्वलताओं से बचने के लिए क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष (ब्लाक प्रमुख) का चुनाव खण्ड विकास के सभी मतदाताओं द्वारा कराने की आवश्यकता है।
2. पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत पंचायतों को ग्राम विकास की योजनाओं के निर्माण एवं कार्यान्वयन में बहुत सीमित अधिकार दिये गये है आवश्यकता इस बात की है उनके अधिकारों में इस प्रकार की वृद्धि की जाये कि वे ग्राम विकास की योजनाओं के निर्माण का पहल कर सके।
3. क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष (ब्लाक प्रमुख) का चुनाव क्षेत्र पंचायत के निर्वाचित सदस्यों के द्वारा होता है। इसलिए इनके खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव भी अधिक आते है। जिसके कारण क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष अपना कार्यकाल पूरा नही कर पाते है। विगत वर्षों में क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष के खिलाफ आया अविश्वास प्रस्ताव निम्न है। (वर्ष 2012 में 50) (वर्ष 2013 में 25) (वर्ष 2014 में 23) (वर्ष 2015 में 2) (वर्ष 2017 में 17) (वर्ष 2018 में 71) तथा (वर्ष 2019 में 11) क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष के खिलाफ अविश्वास प्रस्ताव आया।

निष्कर्ष :

निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि क्षेत्र पंचायत अध्यक्ष (ब्लाक प्रमुख) के निर्विरोध निर्वाचन में व्यक्ति का अपना व्यक्तित्व बहुत ही महत्वपूर्ण स्थान रखता है इसके अतिरिक्त धनबल एंवम सत्ताधारी पार्टी से सम्बन्ध का विशेष महत्व है।

संन्दर्भ :

1. निर्वाचन कार्यालय, जौनपुर–उत्तर प्रदेश राज्य चुनाव 2017
2. दूबे, एस० के०, मिश्रा संजय (1995) पंचायतीराज संस्थाओ के लिए आयोजन और वित्त व्यवस्था, कुरुक्षेत्र पृष्ट 16.
3. कार्यालय जिला पंचायतीराज अधिकारी,जौनपुर–पंचायत निर्वाचन, 2006, 2010, 2015.
4. सांख्यिकीय पत्रिका,जनपद जौनपुर 2014, 2015 अर्थ एवं संख्या विभाग, राज्य नियोजन संस्थान, उत्तर प्रदेश
5. अग्रवाल, प्रमोदकुमार, भारत के पंचायतीराज, ज्ञान गंगा पब्लिकेशन नई दिल्ली 2003
6. दीक्षित,देवव्रत,भारत मे पंचायतीराज का क्रमिक विकास पृ० १२ /
7. फाडिया बी. एल. भारत मे लोक प्रशासन (आगरा 1995) पृष्ट 71/72 8– भारतीय जनगणना 2011

***

संत कबीर के राम

सरयू प्रसाद साहू *

'राम' भारतीय संस्कृति का बड़ा ही प्यारा नाम है। भारतीय वाङ्मय में राम शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में हुआ है। अवतारवादी 'राम'शब्द का प्रयोग अनंत ब्रह्माण्ड नायक परब्रह्म परमेश्वर के मर्यादा पुरुषोत्तम अवतार के रूप में करते हैं, तो योगीजन मन–बुद्धि से अगोचर परमात्मा के रूप में–जिसमें वे रमण करना चाहते हैं– ''रमन्ते योगिनों यस्मिन्तित रामः।''[1] ब्रह्मवादी राम शब्द का प्रयोग सर्वत्र परिपूर्ण सचराचर व्यापक ब्रह्म के अर्थ में करते हैं तथा विद्ववज्जन एक आदर्श मानव के रूप में। संत कबीर के वाणियों में भी राम शब्द का प्रयोग बहुलता से हुआ है।

संत कबीर भी अपने दर्शन में ब्रह्म को निर्गुण ब्रह्म या निर्गुण राम से ही सम्बोधित करते हैं। यहाँ पर निर्गुण कहने का तात्पर्य अस्तित्व का निषेध नहीं वरन् सत्, रज एवं तम इन गुणों से रहित है। इसीलिए कबीर ''विषय विकारों को छोड़कर निर्गुण ब्रह्म को भजने की बात करते हैं।''[2] इसे स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि 'राम निर्गुण है और उसका जप करना चाहिए, वह अविगति के समान है, जिसकी गति को कोई देख नहीं सकता है।''[3] फिर कबीर यह मानते हैं कि मैं जिस राम का बात कह रहा हूँ वह 'राम का नाम अविनाशी है।''[4] नाम को अविनाशी कहने का तात्पर्य यह है कि जैसे राम एक नाम है। जिसे किसी व्यक्ति विशेष की पहचान के लिए उस पर आरोपित करते हैं। कालान्तर में हम देखते हैं कि 'राम' नाम से अभिहित व्यक्ति का अस्तित्व खत्म हो जाता है, पर उसका नाम 'राम' शेष रह जाता है और वही अविनाशी है, जिसका अस्तित्व निरन्तर बना रहता है।

'रामानन्द के राम' से 'सन्त कबीर के राम' भिन्न हैं। कबीर जिस राम की ओर इंगित कर रहे हैं वह 'निर्गुण राम' ही है। मन में किसी प्रकार की शंका न हो इसके लिए वे कहते हैं कि ''मैं जिस राम का कथन करता हूँ वह दशरथ के राम नहीं। क्योंकि वह न किसी कुल में पैदा होता है न ही किसी का संहार करता है।''[5] अर्थात् सन्त कबीर का उपास्य राम, दशरथनंदन महाराज श्रीराम भी नहीं है, जिन्हें श्रद्धालु जन किसी अखिल ब्रह्माण्ड नायक परमात्मा के अवतार मानते हैं। सन्त कबीर की दृष्टि में अयोध्या नरेश महाराज श्रीराम हमारे पूर्वज हैं तथा उनके कुछ आदर्श ग्रहणीय है। परन्तु वे उपास्य देव कथमपि नहीं हो सकते। जो उत्पन्न और नष्ट होता है वह परमतत्त्व हो ही नहीं सकता।

सन्त कबीर कहते हैं– ''उस सद्गुरु–स्वामी के साथ लगो, जिनके संग से सारे दुःखों को मिटाकर कृतार्थ हो जाओ। परन्तु वह श्रेष्ठ सद्गुरु, दशरथ के घर जन्म लेकर नहीं आया और न उन्होंने जनकनंदनी सीता से विवाह ही किया, न तो वह समुद्र पर पत्थरों का पुल ही बंधवाये। फिर जो लोग दशरथ नन्दन महाराज श्रीराम को जगतकर्ता मानकर उनकी उपासना करते हैं, वे विवेक को दूर कर दिये हैं।[6] ''दशरथ सुवन श्रीराम को तो संसार के सब लोग जानते हैं, परन्तु राम नाम का अर्थ कुछ और ही है (घट–घट में रमन करने वाला राम ही वास्तविक राम है, जो महाराज श्रीराम के हृदय में भी विराजमान था)।''[7]

इन सभी प्रकार की समस्याओं का समाधान करने के लिए संत कबीर ने चार प्रकार के राम को स्वीकार करके प्रश्नोत्तर शैली में इसका समाधान किया है। वे राम के विचार को रखते हुए कहते हैं ''एक राम वे हैं, जो दशरथ के घर में पैदा हुए, एक राम वे हैं, जो सबके घट–घट में बोलते हैं, एक राम वे हैं, जिनका यह सम्पूर्ण संसार प्रसार मात्र है तथा एक राम वे हैं, जो त्रिगुण अर्थात् सत् रज एवं तम से न्यारे हैं, निर्गुण हैं।''[8] राम केइस स्थापना के बाद स्वयं कबीर प्रश्न करते हुए कहते हैं कि ''वह कौन राम है, जिसने दशरथ के घर में जन्म लिया, वह कौन राम है, जो सबके घट–घट में निवास करते हैं किस राम का इस सारे संसार में पसारा है तथा वह कौन राम है, जो तीनों गुणों से न्यारा है।''[9]

---

* शोध छात्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

इसका उत्तर देते हुए सन्त कबीर कहते हैं कि ''जो राम दशरथ के घर में पैदा हुआ वह 'आकार राम' है तथा घट–घट में बसने वाला निराकार राम है, बिन्दू राम अर्थात् सृष्टि करने वाले का यह सकल पसारा है, परन्तु जो निरालम्ब है वह सबसे न्यारा है''[10] और यही निरालम्ब राम ही संत कबीर का कथ्य है। बाह्य दृष्टि से भले ही संत कबीर का कथन सगुण का स्थापक प्रतीत होता हो परन्तु उसका भी मूल लक्ष्य निर्गुण, निरालम्ब ब्रह्म (राम) की स्थापना करना ही है। अतः संत कबीर निर्गुण राम को मानने से उनके ब्रह्म के निराकार तथा अनिर्वचनीय स्वरूप पर किसी तरह की आँच नहीं आती। उन्होंने अपने 'निर्गुण राम' के प्रति एक शूर के आदर्श को अपनाते हुए 'सती–भाव' से निःशेष आत्मसमर्पण अवश्य किया– ***''एक समसेर इकसार बजती रहै, खेल कोई सूरमा सन्त झेलै।''***[11] मृत्यु से निर्भय होकर, प्रारब्ध को पछाड़ने वाला सन्त ही शूरवीर है।

एक आलोचक के मतानुसार ''वस्तुतः भारतीय और विशेषतः उत्तर भारतीय भक्ति जगत् में राम के नाम का प्रचार इतना अधिक हो चुका था कि संत कबीर, दादू आदि सन्तों ने उसे अपनाने की बाध्यता का अनुभव किया। इसके अतिरिक्त राम को अपनाकर उसी के माध्यम से वे बहुसंख्यक हिन्दूओं का हृदय–प्रांगण तक पहुँच सकते थे। इन्हीं परिस्थितियों से प्रेरित होकर सन्त कबीर ने राम की भक्ति का प्रचार किया, परन्तु उनकी सतत् यह चेष्टा रही कि राम–भक्ति के साथ निरर्थक कर्मकाण्ड, मूर्ति–पूजा आदि को रूढ़ियाँ और अन्ध विश्वास सम्बद्ध हो गये हैं, उनसे असम्पृक्त रखें।''[12]

चाहे अवतारवादी हो, चाहे योगी और चाहे ब्रह्मवादी सभी एक स्वर से कहते हैं कि मनुष्य का चरम लक्ष्य राम की प्राप्ति या राम में स्थित होना है। बिना राम की प्राप्ति हुए या राम में स्थिति हुए बिना मनुष्य को परम शांति की प्राप्ति कथमपि संभव नहीं। सन्त कबीर भी इस बात को पूर्णतः स्वीकारते हैं। परन्तु सन्त कबीर औरअन्य मत वालों में इतना अंतर है कि जहाँ कबीर राम को जानकर उसमें स्थित होने को कहते हैं, वहाँ अन्य लोग केवल मानकर। यह अन्तर इसलिए है कि इनमें एक विवेकवादी है तो दूसरा विश्वासवादी।

इस विभिन्नता भरे संसार में सदैव दो विचारधारा के लोग रहे हैं, जिनमें से एक को हम विवेकवादी कह सकते हैं तथा दूसरे को विश्वासवादी। विवेकावादी विचारधारा के व्यक्ति किसी भी वस्तु या विचार को आँख मूंदकर स्वतः प्रमाण स्वीकार नहीं करते, प्रत्युत हर वस्तु या विचार को पूर्वाग्रह रहित होकर तात्विक दृष्टि से समझने का प्रयास करते हैं। परन्तु विश्वासवादी विचारधारा के लोग पूर्व परम्परा से चली आ रही तमाम प्रकार की बातों को बिना किसी सोचे समझे स्वीकार कर लेते हैं। पूर्व परम्परा से चली आई बातों पर तर्क करने विचार मात्र से ही भयभीत हो जाते हैं। इस दो प्रकार के विचारधारा में पर्याप्त अंतर विद्यमान है। सन्त कबीर विवेकवादी विचारधारा के समर्थक हैं। वे हर वस्तु का तथ्यात्मक विश्लेषण करते हैं। इसीलिए वे कहते हैं– ***''तू कहता कागद की लेखी। मैं कहता आंखिन की देखी।''***[13]

सन्त कबीर ने अपने दार्शनिक चिंतन में राम शब्द का प्रयोग दो अर्थों में किया है– कहीं विधिपरक तो कहीं निषेधपरक। यदि राम शब्द का प्रयोग घट–घट में विराजमान चेतन के अर्थ में हुआ है तो वह विधेयात्मक है और यदि सर्वत्र परिपूर्ण या किसी लोक–लोकान्तर में निवास करने वाले ईश्वर के अर्थ में है तो निषेधात्मक है, जो लोग यह कहते हैं कि राम शब्द का प्रयोग सन्त कबीर की वाणियों में सर्वत्र निषेधात्मक है वे कबीर के इन वचनों पर विचार कर लें– ***''दिल में खोजि दिलहिमा खोजो, इहै करीमा रामा।''***[14], ***''हृदय बसै तेहि राम न जाना।''***[15], ***''राम नाम बिनु राम नाम बिनु, मिथ्या जन्म गमायो हो।''***[16] इसी प्रकार जो लोग यह मानते हैं कि सन्त कबीर राम का निषेध कर ही नहीं सकते तो वे भी कबीर के इस कथन को समझे– ***''समुझि न परलि राम की कहानी। निरबक दूध की सरबक पानी।''***[17]

अर्थात् राम (ईश्वर) की कहानी किसी की समझ में नहीं आई कि वह बिल्कुल दूध (सार) है या केवल पानी (कल्पित असार) है। परन्तु भूले लोगों ने कल्पित राम (ईश्वर) का पल्ला पकड़ रखा है, अन्ततः उन्हें पछताकर ही इस संसार से प्रयाण करना होगा। ''इन लोगों की समझ में नहीं आया कि राम बड़ा होता है कि राम का जानने वाला।''[18] अर्थात् कल्पित ईश्वर बड़ा नहीं है किन्तु उसको

जानने–मानने वाला चेतन बड़ा है। वस्तुतः कई शब्दों के अनेक अर्थ होते हैं। कहाँ पर उसका क्या अर्थ होना चाहिए, वह प्रसंग देखकर ही कहा जा सकता है।

दुःखों से छुटकारा पाने का उपाय संत कबीर एकमात्र राम का सुमरन, जाप, ध्यान को ही मानते हैं। वे मनुष्यों को समझाते हुए कहते हैं कि ''दुखदायी प्राणी–पदार्थों की आशा छोड़कर राम में स्मरण करो। नहीं तो वासनायें तुम्हे जन्म–मरण के चक्कर में उसी प्रकार पीसेगी, जिस प्रकार कोल्हू में पड़ा हुआ सरसों पीसा जाता है।''[19] काल ने केश को पकड़ रखा है, न जाने क्या घर क्या परदेश वह कब मार डाले। सावधान होकर मन में देखो और राम का बारंबार चिन्तन करो।''[20] सन्त कबीर जिस राम का भजन (स्मरण) करने को कहते हैं वह राम आकाशीय नहीं, किन्तु घट–घट में विराजमान रमैया राम है।

सन्त कबीर हृदय निवासी रमैया राम का स्मरण करने की बात करते हैं। वे कहते हैं कि ''हिन्दूओं के मान्यतानुसार पूर्व दिशा में हरि निवास करते हैं तथा मुसलमानों के मान्यतानुसार पश्चिम में अल्ला–ताला का मकान है। परन्तु ऐ लोगों! मैं बारंबार पुकार कर कहता हूँ कि हृदय में खोजो, राम और करीम यहीं हैं।''[21] किन्तु लोग हृदय निवासी राम को जानते नहीं। उसे बाहर खोजते हैं। उदाहरण देकर सन्त कबीर समझाते हुए कहते हैं– ''जिस प्रकार कस्तूरी मृगा की नाभि में होते हुए भी मृगा उसे बाहर खोजता फिरता है, उसी प्रकार राम घट–घट में स्थित है, परन्तु लोग उसे न जानकर बाहर खोजते हैं। जिस परमतत्त्व का खोज करते–करते कई युग बीत जाते हैं, वह मूल तत्त्व तो घट ही में विराजमान हैं।

इसलिए सन्त कबीर राम को जानने को कहते हैं, केवल मान लेने को नहीं। यदि हम किसी वस्तु का परीक्षण किये बिना उसे मान लेते हैं तो अक्सर हमें धोखा खाना पड़ता है, क्योंकि किसी वस्तु को एक बार स्वीकार कर लेने के पश्चात् हम उसकी वास्तविकता जानने का प्रयास नहीं करते कि यह वस्तु कितनी खरी है व कितनी खोटी और जब उस वास्तविकता को जान लेते हैं तो उसका असली स्वरूप सामने आ जाता है तब हमारी सारी दौड़ व खोज समाप्त होकर परमसत्ता की प्राप्ति हो जाती है, इसलिए कबीर सर्वत्र राम को जानने की बात करते हैं।

प्रस्तुत लेख से स्पष्ट है कि सन्त कबीर किसी भी वस्तु को विचारपूर्वक ही ग्रहण करने को कहते हैं तथा उस विचारधारा के प्रति क्रांति की आवाज बुलंद करते हैं जहाँ पर सबकुछ श्रद्धा–विश्वास संबलित है, विवेक के लिए जहाँ कोई स्थान नहीं है। यदि हम केवल विश्वास का आधार छोड़कर विवेक का अनुसरण करते हुए जीवन के प्रत्येक पहलू–व्यावहारिक पारमार्थिक, धार्मिक, आध्यात्मिक आदि में घुसे हुए अंधविश्वास मिथ्या महिमा, चमत्कार व समस्त दुर्गुण–दुराचारों का परित्याग कर केवल सत्य को धारण करें तो हमारा यह जीवन मंगलमय हो सकता है और सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की प्राप्ति इसी जीवन में हो जायेगी। 'राम' तो व्यक्ति का अपना आत्मस्वरूप चेतन ही है। आत्मा राम ही है।

सन्दर्भ :

1. यथार्थ गीता : स्वामी अड़गड़ानंद, पृ0 394
2. ''भजिये निरगुण ब्रह्म को तजिये विषय विकार।''
   – पारसनाथ तिवारी : बीजक, रमैनी 61
3. निरगुण राम, निरगुणराम जपहु रे भाई।
   अविगति की गति लखी न जाई।।
   – डॉ0 श्याम सुन्दर दास : कबीर ग्रंथावली, पद 49, पृ0 81
4. अब कहु राम नाम अविनासी।
   हरि छोड़ि जियरा कतहूँ न जासी।।
   –पंथश्री हजूर प्रकाशमणीनाम साहेब, बीजक, रमैनी 20, पृ0 57
5. दसरथ कुल औतरि नहिं आया।
   नहिं लंका के राउ सताया।।–वही, बीजक, रमैनी 75, पृ0 137

6. सिर्जनहार न ब्याही सीता, जल पाषाण नहिं बंधा।
वै रघुनाथ एक कै सुमिरै, जो सुमिरै सो अंधा।।
—वही, बीजक, शब्द 8, पृ0 169
7. दशरथ सुत तिहुँ लोकहिं जाना।
राम नाम का मर्म है आना।।—वही, बीजक, शब्द 109, पृ0 356
8. एक राम दसरथ घर डोले, एक राम घर–घर में बोले।
एक राम का सकल पसारा, एक राम तिरगुन से न्यारा।।
— पारसनाथ तिवारी : कबीर ग्रंथावली, पृ0 173
9. कौन राम दसरथ घर डोले, कौन राम घर–घर बोले।
कौन राम का सकल पसारा, कौन राम तिरगुन ते न्यारा।।
— पारसनाथ तिवारी : कबीर ग्रंथावली, पृ0 173
10. आकार राम दसरथ घर डोले, निराकार घर–घर में बोले।
बिन्दू राम का सकल पसारा, निरालम्ब सबही ते न्यारा।।
— पारसनाथ तिवारी : कबीर ग्रंथावली, पृ0 173
11. शब्दावली कबीर साहब की — बेल्वेडियर प्रेस, पृ0 106
12. उर्वशी सूरती : कबीर, जीवन और दर्शन, पृ0 71
13. राघव दास जी महाराज : साखी ग्रंथ।
14. पंथश्री हजूर प्रकाश मणि नाम साहेब : बीजक, शब्द 97, पृ0 334
15. वही, बीजक, रमैनी 41, पृ0 86
16. वही, बीजक, कहरा 6, पृ0 412
17. वही, बीजक, शब्द 84, पृ0 311
18. ''राम बड़ा कि रामहि जाना।'' —वही, बीजक, शब्द 112, पृ0 363
19. सुमिरन करहु राम का, छाड़हु दुःख की आश।
वर ऊपर धैर चापिहैं, जस कोल्हू कोटिपिचास।।
—वही, बीजक, रमैनी 17, पृ0 53
20. सुमिरन करहु राम का, काल गहे हैं केश।
ना जानों कब मारि हैं क्या घर क्या परदेश।।
—वही, बीजक, रमैनी 19, पृ0 56
21. पूरब दिशा हरी को बासा, पश्चिम अल्लह मुकामा।
दिल में खोजि दिलहिमा खोजो इहै करीमा रामा।
—वही, बीजक, शब्द 97, पृ0 334
22. कस्तूरी कुण्डल बसै, मृग ढूढै बन मांहि।
ऐसे घर–घर राम है, दुनिया जानत नाहिं।।
—वही, बीजक, साखी 246, पृ0

***

'मानव अधिकारों के संरक्षण में नागरिको की प्रतिबद्धता'

डा. अनुपम शाही *
डा. अनुराधा राय **

जहाँ तक मानवाधिकार की बात है तो इसकी अवधारणा मानव जाति जितनी पुरानी है उतनी ही पुरानी है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होता है और समाज में रहने के कारण उसके एक ओर कुछ कर्त्तव्य बनते हैं तो दूसरी ओर कुछ अधिकार भी मिलते हैं और समाज के प्रत्येक प्राणी को यदि जीवन जीने का अधिकार है तो समाज के हर प्राणी का कर्त्तव्य भी है कि किसी के जीवन में बाधक न बनें। इस प्रकार मानवाधिकार की बात है तो उससे तात्पर्य – लिंग, धर्म, जाति, सम्प्रदाय, देश, आर्थिक स्थिति आदि जैसे भेदभाव मूलक विचारों को त्यागकर – मानव मात्र के समुचित विकास, संरक्षण और ससम्मान जीवन जीने का वह अधिकार – जो उसे जन्म लेने से मिल जाता है; मतलब कि मानवाधिकार जन्मना होते हैं। दरअसल अधिकार एक ऐसी व्यवस्था है जिसके बिना सामान्यतः कोई व्यक्ति अपने व्यक्तित्व का पूर्ण विकास कर ही नहीं सकता और मानवाधिकार का महत्व इसी बात पर टिका हुआ है। इस प्रकार हम यह भी कह सकते हैं कि मानवाधिकार मानव को भयमुक्त और भूखमुक्त जीवन की सुनिश्चितता में भी सहायक होते हैं, लेकिन जब हम मानवाधिकार की बात करते हैं तो हम केवल जैविक आवश्यकता (biological needs) की बात नहीं करते अपितु जीवन की उन दशाओं की भी बात करते हैं, जो हमें इस योग्य बना सकें कि हम अपना सम्पूर्ण विकास कर सकें। इस प्रकार एक वाक्य में कहें तो मानवाधिकार प्रत्येक व्यक्ति का नैसर्गिक अधिकार है, जिसके दायरे में जीवन, स्वतंत्रता, बराबरी और सम्मान का अधिकार आता है। साथ ही गरिमामय जीवन जीने का अधिकार राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक अधिकार भी इसी में शामिल हैं।

आज दुनियाभर में मानवाधिकारों की जो स्थिति है वह व्यक्ति के राज्य की निरंकुश शक्ति के विरुद्ध सदियों के संघर्ष का परिणाम है, जिसे हम 13वीं शताब्दी के मैग्नाकार्टा या 17वीं शताब्दी के बिल ऑफ राइट्स या 1776 की अमरीकी क्रांति और 1789 की फ्रांस की क्रांति से चलकर यहाँ तक आयी है। द्वितीय विश्वयुद्ध मानव इतिहास का अब तक का सबसे वीभत्स युद्ध कहा जा सकता है, इस युद्ध में जितनी अमानवीय घटनाएँ हुईं उनकी भर्त्सना करते हुए तत्कालीन राष्ट्रपति रूजवेल्ट ने 1946 में एलोनोर रूजवेल्ट की अध्यक्षता में एक 'मानवाधिकार आयोग' गठित किया। बाद में U.N.O. के महासभा ने इसी आयोग के प्रारूप को स्वीकृत कर इसकी घोषणा कर दी। बाद में दुनिया के देशों ने अपने–अपने संविधानों में स्थान देकर इस विधिक स्वरूप प्रदान कर दिया। इस प्रकार 10 दिसम्बर 1948 का वह दिन था, जब U.N.O. ने मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की। वर्तमान समय में विश्व में 'मानवाधिकार' का मुख्य स्रोत इसी घोषणा और इससे ही सम्बन्धित संधियों तथा अभिसमयों को माना जाता है, जिनमें मुख्य रूप से देखें तो पहला है –

1. **नागरिक और राजनीतिक अधिकार** – जिसके अन्तर्गत प्रत्येक व्यक्ति को विचार अभिव्यक्ति शांतिपूर्ण तरीके से सभा या सम्मेलन करने का, देश की राजनीतिक गतिविधियों में भाग लेने का तथा अपने देश की लोकसेवाओं मे समान रूप से पहुँच के अधिकार को शामिल किया जा सकता है।
2. **दूसरा है, सामाजिक अधिकार –** जिसमें अल्पसंख्यकों एवं महिलाओं के साथ समानता का व्यवहार, उचित वेतन, सुरक्षित कार्य परिस्थितियाँ, सामाजिक सुरक्षा, उचित जीवन स्तर तथा स्वास्थ्य और शिक्षा को रखा गया है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर (राजनीति विज्ञान), हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी
* एसोसिएट प्रोफेसर (शिक्षा संकाय), हरिश्चन्द्र स्नातकोत्तर महाविद्यालय, वाराणसी

3. **तीसरा है – अल्पसंख्यकों से सम्बन्धित अधिकार** – जिसका उल्लेख इस घोषणा पत्र में विशेष रूप से किया गया है और U.N.O. द्वारा कई ऐसी संधियां हैं जिनके द्वारा इनके अधिकारों को संरक्षित करने का प्रयास किया गया है और यह देखा भी गया है कि अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर अल्पसंख्यक वर्ग हमेशा हिंसा का शिकार होता रहा है और द्वितीय वर्ल्ड वार के बाद इस पर नियंत्रण लगाने के लिए मानवाधिकार से सम्बन्धित जो पहली संधि हुई वह नरसंहार अधिनियम 1948 थी, Genocide Convention 1948) इसी के साथ एक और अधिकार जिसे हम पर्यावरण से सम्बन्धित अधिकार कहते हैं, वो भी है। चूँकि प्रत्येक मनुष्य प्रकृति से जुड़ा है, अतः उसके पर्यावरणीय अधिकारों को भी 'मानवाधिकार' की श्रेणी में रखा जाता है।

इस प्रकार आज U.N.O. से जुड़कर हर सदस्य देश किसी ना किसी मानवाधिकार संधि से अवश्य जुड़ा है चाहे वो – 1948 का नरसंहार अधिनियम हो, 1966 का आर्थिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन हो, 1979 का महिलाओं के विरुद्ध सभी प्रकार के भेदभाव की समाप्ति का कन्वेन्शन या 1990 का प्रवासी कामगारों एवं उनके परिवार के सदस्यों के अधिकारों के संरक्षण पर अन्तर्राष्ट्रीय कन्वेन्शन। इन संधियों के अलावा भी U.N.O. की कुछ सहायक संस्थाएं भी हैं जो मानवाधिकारों के संवर्धन का कार्य कर रही हैं, जिनमें H.R.C. प्रमुख है। इन सभी के अतिरिक्त मानवाधिकार के क्षेत्र में कुछ और सरकारी संगठन भी इस क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। जिनमे 1– एमनेस्टी इण्टरनेशनल, 2– ह्यूमन राइट्स वाच, 3– डाक्टर्स विदाउट बार्डर आदि प्रमुख हैं। इस प्रकार U.N.O. द्वारा लगातार मानव अधिकारों की अभिवृद्धि एवं संरक्षण के प्रयास जारी हैं, चाहे वो दुनिया के लोगों को मानवाधिकार तथा मूलभूत स्वतंत्रताओं के प्रति जागरूकता लाने की बात हो या मानव अधिकार विधि के संहिताकरण के प्रयास स्वरूप – महिलाओं, बच्चों, प्रवासी कार्मिकों, शरणार्थियों जैसे सभी वर्गों के लिए संधियां बनाना तथा विभिन्न अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं को संहिताबद्ध किया गया है। साथ ही नरसंहार, रंगभेद जैसे तमाम अमानवीय कृत्यों के प्रतिषेध हेतु अन्तर्राष्ट्रीय विधि का नियमन भी किया गया है। इसके अतिरिक्त Special Reporters व्यवस्था के तहत U.N.O. ने मॉनिटरिंग के लिए दुनिया के अनेक देशों जैसे – ग्वाटेमाला, अल्सल्वाडोर, कम्बोडिया, हैती, रवाण्डा आदि में मानवाधिकारों की बहाली का कार्य किया है।

15 मार्च 2006 में जेनेवा में 'मानवाधिकार परिषद' का गठन दुनियाभर में मानवाधिकारों के संरक्षण की एक महत्वपूर्ण कड़ी है, और इसी क्रम में महासभा द्वारा 20 दिसम्बर 1993 को 'संयुक्त राष्ट्र मानवाधिकार उच्चायुक्त' पद का सृजन और उच्चायुक्त द्वारा 'मानवाधिकार हॉटलाईन' की स्थापना जो कि मानवाधिकार पीड़ितों, उनसे सम्बन्धित गैर सरकारी संगठनों सभी के लिए 24 घण्टे सुलभ है। अब यदि हम भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु किये गये प्रयासों की बात करें तो – भारत में तो मानवाधिकार की संस्कृति बहुत ही प्राचीन है, हमारे वैदिक साहित्य, संस्कृत, पालि, प्राकृत के सभी साहित्य सहअस्तित्व की भावना से ही रचे गये हैं। ये भी याद रखने की बात है कि जब 1948 में U.N.O. द्वारा मानवाधिकारों की सार्वभौमिक घोषणा की गयी थी और ये वही समय था जब भारत में संविधान बनाने की प्रक्रिया शुरू थी और – संविधान सभा ने अपने दौर का सबसे प्रगतिशील संविधान निर्मित कर – उस गैर बराबरी पर आधारित सामाजिक ढांचे को नष्ट करके एक समतामूलक समाज की स्थापना का स्वप्न साकार किया और विश्व के लोकतंत्र एवं मानवाधिकार और उदारवादी मूल्यों को अपनाया। तो इस प्रकार देखा जाय तो – भारत के संविधान में मानवाधिकारों को उच्च स्थान देते हुए उसे मौलिक अधिकारों के अन्तर्गत न स्थान दिया गया है बल्कि उनके रक्षा की जिम्मेदारी न्यायपालिका को सौंपकर इन्हें गारंटीकृत भी किया गया है। इस प्रकार भारतीय संविधान में मौलिक अधिकार के साथ–साथ नीति निर्देशक तत्वों को भी शामिल किया गया है, जिसमें – सामाजिक सुरक्षा का अधिकार, कार्य का अधिकार, रोजगार के चयन का अधिकार, बेरोजगारी के खिलाफ काम की सुरक्षा; समान कार्य समान वेतन, मुफ्त और अनिवार्य शिक्षा का अधिकार आदि अनेक बातों को शामिल किया गया है। इन उपबन्धों के परिणामस्वरूप प्रत्येक भारतवासी का मानवाधिकार अब सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक दृष्टि से मौलिक रूप से प्रतिष्ठित हो गया है जैसे –

1. किसी भी व्यक्ति को श्रम की अनुचित परिस्थितियों के अधीन ना रहने का अधिकार
2. पुनर्वास का अधिकार
3. आजीविका का अधिकार
4. गरिमापूर्ण वातावरण और आजीविका का अधिकार
5. अच्छी सेहत का अधिकार
6. शिक्षा का अधिकार
7. निजता का, सूचना का अधिकार आदि अनेक अधिकार प्राप्त हैं जिनका संरक्षण सर्वोच्च न्यायालय द्वारा किया जाता है।

15 अप्रैल 2014 को सर्वोच्च न्यायालय द्वारा ट्रांसजेंडर लोगों को थर्ड जेंडर घोषित किया गया, इसे हम भारत में लैंगिग समानता की दिशा में महत्वपूर्ण कदम कह सकते हैं।

इस प्रकार यह निर्विवाद रूप से कहा जा सकता है कि – भारत विश्व में मानवाधिकारों की रक्षा का सबसे बड़ा पक्षधर है। लेकिन 1993 तक भारत में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु कोई औपचारिक संस्था नहीं बनी थी और 1990 के दशक में भारत के कई राज्यों जैसे – जम्मू कश्मीर, नार्थ ईस्ट, आन्ध्रा और पंजाब में बहुत ज्यादा उथल–पुथल मची हुई थी और दुनिया के तमाम देश कुछ दबी और कुछ खुली जुबान में तत्कालीन परिस्थितियों की आलोचना करते हुए मानवाधिकार हनन के आरोप भारत पर लगाने लगे थे, तो तत्कालीन राष्ट्रपति डा0 शंकर दयाल शर्मा जी द्वारा एक अध्यादेश लाकर मानव अधिकार संरक्षण अध्यादेश के द्वारा – 12 अक्टूबर 1993 – 'राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग' की स्थापना कर दी गयी और इसकी प्रस्तावना में ही कहा गया कि – यह अधिनियम मानवाधिकारों के बेहतर संरक्षण हेतु राष्ट्रीय मानवाधिकार आयोग तथा राज्यों में मानवाधिकार आयोगों तथा मानवाधिकार न्यायालयों की स्थापना तथा उनसे सम्बन्धित मामलों के लिए पारित किया गया है। इस प्रकार वर्तमान में भारत के 23 राज्यों में मानवाधिकार आयोग की स्थापना हो चुकी है। (राज्य सूची) इस सबके अतिरिक्त केन्द्र सरकार द्वारा मानवाधिकारों के संरक्षण की दिशा में कुछ और ठोस उपाय किये गये हैं जिनमें – मनरेगा, खाद्य सुरक्षा कानून, शिक्षा का अधिकार अधिनियम, राष्ट्रीय पिछड़ा वर्ग आयोग की स्थापना, अनुसूचित जाति आयोग, अल्पसंख्यक आयोग, कार्यस्थल पर यौन उत्पीड़न रोकने हेतु अधिनियम आदि का गठन भी एक सकारात्मक कदम है। ये सभी मानवाधिकारों के संरक्षण के सांस्थानिक प्रयास लेकिन सवाल यह है कि इन तमाम प्रयासों के बावजूद दुनिया भर में मानवाधिकारों की स्थिति संतोषजनक नहीं है जैसे जीने का अधिकार तो मनुष्य का सबसे महत्वपूर्ण अधिकार है ना लेकिन आज विश्व में लगभग 800–900 मिलियन लोग (कोविड के प्रभाव से) भुखमरी के शिकार हैं और इस अधिकार से भी वंचित ही हैं। कई अफ्रीकी देशों जैसे – सूडान, इथोपिया, सोमालिया के अकाल और भूख या तमाम विकासशील देशों की गरीबी और अनेक देशों में लगातार चल रही गृहयुद्ध की स्थिति ने मानवाधिकारों को तहस–नहस ही तो किया है ? हम कैसे भूल सकते हैं कि अकेले रुआण्डा का गृहयुद्ध जहाँ हुतु और तुत्सी जनजातियों के विद्वेष ने 5 लाख से ज्यादा लोगों का संहार किया। एक दिन में 8 हजार से ज्यादा लोग मारे गये। इसी प्रकार देखें तो – यूगोस्लाविया के गृहयुद्ध में कितना व्यापक नरसंहार हुआ दुनिया से छिपा है क्या ? कम्पूचिया में राजनीतिक विद्रोह के दौरान अकेले वालपोट की सरकार द्वारा 30 लाख लोगों की हत्या को हम क्या कहें ?

तो देखा जाय तो एक तरफ मनुष्य जीने के अधिकार से वंचित है तो दूसरी ओर दुनिया की तानाशाही ताकतें गरीब देशों पर अपनी धौंस जमाने हेतु नाभिकीय हथियारों के निर्माण और प्रसार में संलग्न हैं और इसी के परिणामस्वरूप विकासशील और गरीब देश भी अपने देश में व्याप्त गरीबी, भुखमरी आदि समस्याओं को नजरअंदाज कर आणविक हथियारों का आविष्कार किये जा रहा है, तो ऐसे देशों के नागरिकों को मानवाधिकार की लम्बी–चौड़ी बातों से क्या लेना–देना ? वे तो केवल शांति, सम्मान और भूख के विरुद्ध रोटी के मानवीय अधिकार ही चाह रहे हैं जो अभी भी उन्हें मुहैया नहीं है।

एमनेस्टी इंटरनेशनल की रिपोर्ट है कि दुनिया के 100 से भी ज्यादा देशों में 10 लाख से भी ज्यादा लोग धार्मिक अथवा राजनीतिक आधारों पर जेल में पड़े हुए हैं और यातनाएं भुगत रहे हैं, इनमें ज्यादातर वही लोग हैं – जिन्होंने न्याय, समानता और मानवाधिकारों की बात उठाई है। नोबेल पुरस्कार विजेता रिगोवार्टा मैथ्यू का देश निकाला या नोबेल पुरस्कार विजेता आंग सांग सू की को म्यांमार की फौजी हुकूमत द्वारा नजरबंदी को हम क्या कहें ? बालश्रम अभी दुनियाभर में जारी है जिनकी संख्या लगभग 25 करोड़ है। इसी तरह महिलाओं–बच्चों की खरीद–फरोख्त, मानवतस्करी सब तो हो ही रहा है। ये तो कुछ उदाहरण हैं। असली तस्वीर तो और भयावह है। संसार का कोई भी देश ऐसा नहीं है जिसके नागरिकों को वो सभी अधिकार प्राप्त हैं, जिनका उल्लेख U.N.O. के घोषणापत्र में किया गया है। तो ऐसी स्थितियों में 'मानवाधिकार' का संरक्षण एक बहुत ही अहम मुद्दा है। जिसमें सरकारों की भूमिका तो सर्वाधिक है ही लेकिन एक नागरिक के तौर पर भी हमारी जिम्मेदारियां हैं, चाहे वो एन.जी.ओ. के माध्यम से, मीडिया के माध्यम से या एक सामाजिक नागरिक के तौर पर कम से कम राष्ट्रीय स्तर पर हम मानवाधिकारों के संरक्षण, उसके उल्लंघन के रोकथाम हेतु दृढ़ता से खड़े हों और दूसरों के अधिकारों की रक्षा करना अपना कर्त्तव्य समझें। हम अभी भी उस चीज का विकास नहीं कर पाये हैं जिसे – 'सिविक कल्चर' या नागरिक संस्कृति कहते हैं, और यदि हम अपने देश की बात करें तो हम बहुभाषायी, बहुधार्मिक, बहुसांस्कृतिक देश हैं और अभी भी गरीबी, निरक्षरता, पलायन, जातिवाद, अपराधीकरण, आतंकवाद, पर्यावरण संरक्षण और कुपोषण से जूझ रहे हैं तो ऐसे में हम नागरिकों के लिए आवश्यकता इस बात की है कि – हम अपने उत्तरदायित्व समझें और अपने साथ दूसरों के अधिकारों की रक्षा करना अपना कर्तव्य समझे – क्योंकि मानवाधिकारों का संरक्षण किसी एक की जिम्मेदारी न होकर एक सामूहिक जिम्मेदारी है।

हमारी भारतीय संस्कृति तथा सभी ग्रन्थों और शास्त्रकारों ने तो हमेशा ही अधिकार की अपेक्षा त्याग, तपस्या, सहयोग, परोपकार और सद्गुणों के आधार पर कर्त्तव्यों को अति महत्वपूर्ण बताया गया है। आज वैश्विक स्तर पर हम मानवीय संवेदना में कमी महसूस कर रहे हैं, अतः हमें 'सर्वे भवन्तु सुखिनः' की संस्कृति को आत्मसात करना होगा और मानवतावादी विचारों, मूल्यों के प्रति अपनी समझ विकसित कर उन तत्वों को पहचानना होगा जो मानव को मानवाधिकार से वंचित करते हैं या उसे कर्त्तव्यों के प्रति अनुत्तरदायी बनाते हैं। आज हम सूचनाक्रांति के दौर में जी रहे हैं और विश्व में घटित सभी घटनाओं का हमारे जीवन पर व्यापक प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है, इन प्रभावों को भी ध्यान में रखना जरूरी है और परस्पर समझ, सहयोग, बेहतर प्रबंधन एवं संसाधनों का संरक्षण, समाज के सभी वर्गों का विकास आदि हमारे अनेक ऐसे कर्त्तव्य हैं जो आज के विश्व परिदृश्य में मानवाधिकारों के संरक्षण हेतु बेहद जरूरी हैं, इसलिए सम्पूर्ण मानव जाति को उसके अधिकार दिलाने के लिए प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कर्त्तव्यों के प्रति बरती जाने वाली उदासीनता का क्रम तोड़ना होगा – और कानून को अपने हाथ में ले लेना, विध्वंसक गतिविधियों को अंजाम देने की प्रवृत्ति का बढ़ना, आये दिन किसी ना किसी मुद्दे पर बंद का आयोजन करना, आवश्यक सेवाएं ठप कर देना, बात–बात में हड़ताल, तोड़–फोड़ ये सब क्या है ? मानवाधिकारों का हनन ही तो है, इनसे बचना होगा और जन सामान्य को मानवाधिकारों के प्रति जागरूक करते रहना होगा, और इसमें प्रबुद्ध वर्ग की जिम्मेदारी सबसे ज्यादा है। और हमें विकास और मानवता के आपसी रिश्तों को रेखांकित करना होगा। विकास अपेक्षित है, लेकिन मानवाधिकारों की कीमत पर नहीं।

हमें यह समझना बेहद महत्वपूर्ण होगा कि – अधिकारों की बेहतर सुरक्षा तभी होती है, जब हम दायित्वों का पालन करते हैं। आज की उपभोक्तावादी संस्कृति और सूचना प्रौद्योगिकी के युग की त्रासदी है कि इसने – विकास की अवधारणा को स्थूल रूप से तो बढ़ाया है और हमारी क्रय शक्ति को तो बढ़ाया लेकिन हमारी चेतना को अवरुद्ध किया है। आज हम मूल्यों के धरातल पर नीचे की ओर ही खिसकते जा रहे हैं।

इस प्रकार देखा जाय तो आज की ये उपभोक्तावादी संस्कृति ने पूरी तरह से धर्म, सत्ता और पूंजी के गठजोड़ के साथ हमारी चेतना पर लगातार हमला किये जा रही है। इसलिए हमें चैतन्य

होकर अपने अन्दर मानवीय मूल्यों को बनाये रखना होगा, तभी मानवाधिकारों की सहज प्राप्ति संभव हो सकेगी। अतः मानवाधिकार के संवर्धन और संरक्षण हेतु हममें कर्त्तव्यबोध का भाव होना सबसे आवश्यक है – रही बात सरकार की तो सरकार की प्रतिबद्धता तो 'मानवाधिकार दिवस' पर प्रधानमंत्री जी के वक्तव्य से स्पष्ट ही है। उन्होंने कहा था कि – हमारी प्रतिबद्धता है कि – 'सबको पढ़ाई, सबको कमाई, सबको दवाई और सबकी सुनवाई' और कोविड वैक्सिन का अपने पड़ोसी देशों सहित 15 देशों में भारत का वैक्सिन सप्लाई करना और 25 के करीब देश लाईन में लगे हैं, कुछ पड़ोसी देशों को बिल्कुल मुफ्त में भेजा।

कर्त्तव्यबोध के क्रम में महात्मा गांधी के एक कथन को उद्धृत करना जरूरी है – ''मैंने अपनी निरक्षर लेकिन समझदार माँ से सीखा है कि सभी अधिकारों की हकदारी और संरक्षण अच्छी तरह निभाये गये कर्त्तव्य से ही संभव होता है।

संदर्भ :

1. मानव अधिकार : डा0 एच0ओ0 अग्रवाल सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद
2. मानव अधिकार : डा0 एस0के0 कपूर सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद
3. ह्यूमन राइट्स : जे0जे0 उपाध्याय सेन्ट्रल लॉ पब्लिकेशन, इलाहाबाद
4. राम आहूजा : राइट्स आफ वीमेन : ए कम्युनिस्ट पर्सपेक्टिव रावत पब्लिकेशन, जयपुर
5. अभय कुमार दूबे : आधुनिकता के आईने में दलित, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली
6. दैनिक जागरण समाचार पत्र
7. परीक्षा मंथन, इलाहाबाद

***

श्रीमद्भगवद्गीता में योग और उसकी साधनानुशंसा

*अभिनव कुमार पाण्डेय**

त्रिगुणाकार भगवत्पाद् श्रीकृष्ण की साक्षात् अमृतरस रूपी वाणी 'गीता' योगसाधना शिक्षा लोकव्यवहार का अन्यतम व्याख्यान है।

आत्मसाक्षात्कार की साधना परम्परा में जहाँ उपनिषदें श्रवणात्मक और ब्रह्मसूत्र मननात्मक है, वहीं गीता प्रस्थानत्रयी का निदिध्यासनात्मक सद्शास्त्र है, जिसमें वेद–शास्त्रों से भली–भाँति निश्चित किया हुआ ब्रह्मज्ञान विद्यमान है–

गीतासारमिदं शास्त्रं सर्वशास्त्र सुनिश्चितम्।
यत्र स्थितं ब्रह्मज्ञानं वेदशास्त्र सुनिश्चितम्।।[1]

महर्षि वेदव्यासरचित महाभारत के भीष्मपर्व का पच्चीसवाँ अध्याय ही स्वतन्त्र रूप से श्रीमद्भगवद्गीता के रूप में प्रसिद्ध है, अतः महाभारतरूपी समुद्रमन्थन से प्रकट गीता का वैशिष्ट्य तो स्वतः प्रकाशित है। वस्तुतः गीता सर्वशास्त्रमयी ही नहीं वरन् स्वयं सर्वशास्त्रसाररूप योगशास्त्र है, जो उसके प्रत्येक अध्याय की समाप्ति वेदव्यास ने गीता के अट्ठारहों अध्यायों को किसी न किसी योगनाम से अभिहित करते हुए गीता को उपनिषद् और ब्रह्मविद्या का साक्षात् 'योगशास्त्र' कहा है–

ॐ तत्सदिति श्रीमद्भगवद्गीतासूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे
श्रीकृष्णार्जुनसंवादे..... योगनाम..... अध्यायः।[2]

'अर्जुनविषादयोगोनामप्रथमोध्यायः' से प्रारम्भ 'सांख्ययोग', 'कर्मयोग', 'ज्ञानकर्म', 'कर्मसन्यासयोग', 'आत्मसंयमयोग', 'ज्ञान–विज्ञानयोग', 'अक्षर–ब्रह्मयोग', 'राजविद्या राजगुह्ययोग', 'विभूतियोग', 'विश्वरूपदर्शनयोग', 'भक्तियोग', 'क्षेत्र–क्षेत्रज्ञयोग', 'गुणत्रयविभागयोग', 'पुरुषोत्तमयोग', 'देवासुरसम्पद–योग', 'श्रद्धात्रय–विभागयोग' एवं 'मोक्षसन्यासयोगोनामाष्टादशोध्यायः', की पूर्णता पर भगवद्पादश्रीकृष्ण को 'योगेश्वर' और 'योग' का उपदेष्टा कहकर वेदव्यास ने गीताशास्त्र की 'योग' प्रतिपाद्यता स्वयं स्पष्ट कर दी है।

योगं योगेश्वरात्कृष्णात्साक्षात्कथयतः स्वयम्।।[3]

यद्यपि गीता में जीवन के अनेक भावों के अनुरूप अनेक प्रकारों से 'योग' को व्याख्यायित किया गया है, किन्तु उसका मूल आशय परम्परा से चले आ रहे उसी सनातन अव्यय योग की प्रतिष्ठा से है।

इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहम् व्ययम्।
स एवायं मया तेऽद्य योगः प्रोक्तः पुरातनः। (गी0 4/3)

जिससे संसारदुःख के संयोग का सर्वधा वियोग हो जाता है।

तं विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम्।[4]

और योगी अपनी आत्मा के दिव्य स्वरूप को प्राप्त कर स्थितप्रज्ञतारूपी ब्राह्मी स्थिति को उपलब्ध हो जाता है– एषा ब्राह्मी स्थितिः पार्थ नैनां प्राप्य विमुध्यति।[5]

कारण भगवान् ने योगसाधना की सारी पद्धतियें को सांख्य और योग की दो निष्ठाओं में समाहित करते हुए भी अन्तिमरूप से साधना के पथभेद से पृथक्–पृथक् कही जाने वाली उन दोनों निष्ठाओं को एक ही कहकर योगसिद्धिरूप परम निष्ठा की ही पुष्टि की है।

सांख्ययोगौ पृथग्बालाः प्रवदन्ति न पण्डिताः।
एकमप्यास्थितः सम्यगुभयोर्विन्दते फलम्।।[6]

---

* शोधच्छात्र, वैदिक दर्शन विभाग, संस्कृतविद्याधर्मविज्ञान संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

भगवद्पाद् का वचन है– 'यं संन्यासमिति प्राहुर्योगं तं विद्धि पाण्डव' हे अर्जुन। जिसको सन्यास ऐसा कहते हैं, उसी को तू योग जान। क्योंकि जो पुरुष कर्मफल का आश्रय न लेकर करने योग्य कर्म करता है वही संन्यासी तथा वही योगी है। केवल अग्नि का त्याग करने वाला न तो सन्यासी है और न केवल क्रियाओं का त्यागकर अक्रिय (निष्क्रिय) हो जाने वाला ही योगी।

अनाश्रितं कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः।
स सयासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः।।[7]

भगवत्पाद ने इस योग को ही **'समत्वं योग उच्यते' 'योगः कर्मसु कौशलम' 'समाधावचलाबुद्धिस्तदा योगमवाप्स्यसि' 'निः स्पृहः सर्वकामेभ्यो युक्त इत्युच्यते तदा'** इत्यादि रूपों में परिभाषित करते हुए अर्जुन को सर्वकालो में सदा 'योगयुक्त' होने की प्रेरणा की है–

तस्मात्सर्वेषु कालेषु योगयुक्तो भवार्जुन्।[8]

योगी तपस्वियों से श्रेष्ठ है, शास्त्रज्ञानियों से भी श्रेष्ठ माना गया है और सकाम कर्म करने वालों से भी योगी श्रेष्ठ।

इससे यह नितान्त सिद्ध है कि श्रीमद्भगवद्गीता का सर्वोच्च आदेश 'योगसाधना' ही है। किन्तु साधन पद्धति के रूप में 'योग' का अर्थ केवल राजयोग के अन्तर्गत आसन, प्राणायाम, के विधानों से ही नहीं अपितु उस व्यापक 'योग' से है, जिसमें व्यावहारिक जीवन के प्रत्येक अंग समाहित है।

वस्तुतः गीता की दृष्टि में 'योग' समग्र जीवन के ही आध्यात्मिक रूपान्तरण की कला है अतः गीता ने जैसे जीवन की सर्वांग स्वीकृति की है वैसे अपनी साधना में भी योग की समस्त संभावित साधना–पद्धतियों का अपूर्व समन्वय किया है।

वस्तुतः गीता की दृष्टि में योग समग्र जीवन के ही आध्यात्मिक रूपान्तरण की कला है अतः गीता ने जैसे जीवन की सर्वांग स्वीकृति की है वैसे अपनी साधना में भी योग की समस्त संभावित साधन–पद्धतियों का अपूर्व समन्वय किया है।

'योग समन्वय' ही गीता की महत्ता है, जिसकी पृष्ठभूमि पर भगवान् श्रीकृष्ण ने मानव व्यक्तित्व की सर्वांग पूर्णता के लिये 'ज्ञानयोग', 'कर्मयोग', 'भक्तियोग' और 'राजयोग' के सभी साधना–पथों का पृथक्–पृथक् करते हुए मानवमन की योग सम्बन्धी समस्त जिज्ञासाओं का समाधान किया है–

'न बुद्धिभेदं जनयेदज्ञानां कर्मसंगिनाम्'।[9]

अपनी योग्यता और आस्था के अनुरूप साधनापद्धति को स्वीकार कर कर्त्तव्य कर्मरूपी स्वधर्म का पालन करते हुए योग की परम सिद्धि को प्राप्त कर सके।

स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानवः।[10]

सन्दर्भ :

1. स्कन्दपुराण गीता महात्म्य – गी0म0, पृ0 36
2. श्रीमद्भगवद्गीता – पृ0 73
3. श्रीमद्भगवद्गीता – अ0 पृ0 18/75
4. श्रीमद्भगवद्गीता – अ0 पृ0 6/1
5. श्रीमद्भगवद्गीता – अ0 पृ0 8/27
6. श्रीमद्भगवद्गीता – अ0 पृ0 3/26
7. श्रीमद्भगवद्गीता – अ0 पृ0 18/46
8. श्रीमद्भगवद्गीता – अ0 पृ0 18/61
9. Encyclopedia of Indian Philosophy – Rom Shankar Bhattacharya, Valume-XII.
10. योगदर्शनम् – Vyas Prakashan, Varanasi (U.P.)

---

[1] स्कन्धपु0 गी0 महात्म्य, गी0, पृ0 36

[2] पृ0 73

[3] गी0 18/75
[4] गी0 6/23
[5] गी0 2/72
[6] गी0 5/4
[7] गी0 6/1
[8] गी0 8/27
[9] गी0 3/26
[10] गी0 18/46

***

रघुवीर सहाय के काव्य का समीक्षात्मक अध्ययन

विपिन कुमार मिश्र *

मनुष्य एक चिन्तनशील प्राणी है वह जिस समाज में रहता है उसका प्रभाव उस पर पड़ता है और उस समाज में हो रही गतिविधियों पर अपने विचार व्यक्त करता है। समाज में अनेक स्वभाव के व्यक्ति होते है जो प्रायः एक दूसरे से भिन्न होते है। प्रत्येक व्यक्ति की अपनी कुछ विशेषता होती है। व्यक्ति समाज में जो कुछ भी नया होता है वह उसे देखता है, सुनता है, अनुभव करता है और उसके संबंध में अपनी सोच निर्धारित करता है जो उसके व्यक्तित्त्व के निर्माण में सहायता करते है। अपने व्यक्तित्त्व के विभिन्न पहलुओं का विकास करते हुए व्यक्ति अपनी विशिष्ट पहचान बना लेता है। और अगर वह व्यक्ति साहित्यकार हो तो उसके द्वारा लिखित साहित्य में उसके व्यक्तित्त्व की स्पष्ट छाप देखने को मिलती है। इसलिए उसके साहित्य के साथ–साथ उसके व्यक्तित्त्व का अध्ययन करना भी महत्त्वपूर्ण हो जाता है। बहुमुखी प्रतिभा के धनी रघुवीर सहाय हिंदी साहित्य के इतिहास जगत् में अपनी मौलिक प्रतिभा के आधार पर महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। साहित्यकार के साहित्य का अध्ययन उसके व्यक्तित्त्व से जुड़ा होता है और व्यक्तित्त्व व्यक्ति के आंतरिक जीवन का प्रकाशन है। साहित्यकार जिस परिवेश में रहता है उसका प्रभाव उसके व्यक्तित्त्व पर अवश्य पड़ता है और फिर तदनुरूप उनके व्यक्तित्त्व को आकार मिलता है और इन दोनों के समन्वय से सृजन होता हैं। व्यक्ति के व्यक्तित्त्व की पहचान उसके आचरण और चिंतन से होती है। रघुवीर सहाय का काव्य उनके साहित्यिक, सामाजिक चिंतन और प्रतिबद्धता का प्रमाण है। जब कोई प्रतिभाशाली साहित्यकार अपने मन–मस्तिष्क में उपजे अपने विचारों को भाषा के माध्यम से अभिव्यक्त करता है तब उसका सशक्त माध्यम साहित्यसृजन होता है, जिसका अध्ययन करने से ही पता चलता है कि यह साहित्यकार और उसका सृजनात्मक कार्य समाज के लिए कितना उपयोगी हैं।

रघुवीर सहाय का जन्म लखनऊ के माडल हाऊस मोहल्ले में हुआ। बाल्यकाल से ही वे मातृविहीन होने के कारण सौतेली माँ की छाया में रहे। आर्थिक संकटों का सामना करने के लिए पत्रकारिता से जुड़ गये। काव्यलेखन, पत्रकारिता और शिक्षा–दीक्षा एक साथ करते रहे। अपने पारिवारिक जीवन एवं बाह्य परिवेश से प्राप्त अनुभवों ने उन्हें संवेदनशील व्यक्तित्त्व प्रदान किया। सहाय जी ने अपने संघर्षपूर्ण जीवन में हमेशा आशावादी बनकर परिस्थितियों पर विजय हासिल की थी। सहाय जी ईमानदार, परोपकारी, मिलनसार, संवेदनशील व्यक्ति थे। पशु–पक्षियों के प्रति लगाव सहाय जी के व्यक्तित्त्व की एक विशेषता रही है जो उनके साहित्य में भी स्थान–स्थान पर अभिव्यक्त हुई है। रघुवीर सहाय पत्रकारिता, दूरदर्शन, रेडियों, रंगमंच आदि संचार माध्यमों में कार्यरत रहकर अपने कविकर्म में लगे रहे। इसके लिए उन्हें अपने परिवार, समाज, मित्रों आदि से प्रेरणा मिली। उन्होंने हरिवंशराय बच्चन, अज्ञेय, गिरिजाकुमार माथुर, यशपाल, अमृतलाल नागर, भगवतीचरण वर्मा, श्रीनारायण चतुर्वेदी आदि साहित्यकारों से प्रेरणा ग्रहण कर अपना साहित्यिक मार्ग प्रशस्त किया।

सहाय जी केवल भारतीय परिवेश से ही प्रभावित नहीं थे, वरन् उन पर विदेशी साहित्यकारों का भी प्रभाव पड़ा है। वे यात्रा करने के बड़े शौकीन थे। यात्रा के दौरान उनकी अनेक देशी–विदेशी लोगों से मित्रता हुई जिनसे वे पर्याप्त रूप से प्रभावित हुए। सहाय जी जयप्रकाश नारायण, डॉ. राम मनोहर लोहिया, आचार्य नरेंद्र देव इन समाजवादी चिंतकों के चिंतन से प्रभावित थे। इनके विचारों से प्रभावित होकर उन्होंने समाज में समाजवाद लाने के लिए निरंतर संघर्ष किया। वे समाज में व्याप्त वर्गविषमता का हमेशा विरोध करते रहे। रघुवीर सहाय ने समाज में व्याप्त विसंगतियों, विडंबनाओं को अपने साहित्य में आवाज़ दी है। उनकी रचनाओं का प्रमुख केंद्रबिंदु आम आदमी है, जो समकालीन

* शोधछात्र, लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

समय में राजनीतिक, आर्थिक,सामाजिक समस्याओं से लड़ रहा है। सहाय जी के साहित्य में सामाजिक, राजनीतिक स्थितियों का यथार्थ चित्रण हुआ है। उनकी कृतियों को समय समय पर सम्मानित एवं पुरस्कृत किया गया जो उनके श्रेष्ठ साहित्यिक व्यक्तित्व का प्रमाण है।

रघुवीर सहाय ने हिंदी साहित्य की अनेक विधाओं में साहित्यसृजन कर बहुत बड़ा योगदान दिया है। वे एक श्रेष्ठ कवि तो थे ही, साथ ही कहानीकार, निबंधकार, नाटककार तथा उपन्यासकार भी रहे हैं। सहाय जी ने धर्मयुग में 1960 से 1963 तक सुंदरलाल के नाम से 'दिल्ली की डायरी' शीर्षक से स्तंभलेखन किया। उन्होंने बालसाहित्य, डायरी तथा यात्रावृत्तांत भी लिखे है। उन्होंने टी.वी.फिल्मों की पटकथा भी लिखी है। अनुवाद के क्षेत्र में तो उनका कार्य अत्यंत ही महत्त्वपूर्ण रहा है। उन्होंने अनेक विदेशी साहित्यकारों के काव्यों, नाटकों तथा उपन्यासों के सफल अनुवाद किये है, जिसके लिए उन्हें अनेक पुरस्कार भी मिलें। सहाय जी कविगोष्ठियों, परिसंवादों, पुस्तक–विमोचन, काव्यमंचन आदि कार्यक्रमों में हमेशा सहभागी होते थे। कविता का काव्यपाठ किया जाना चाहिए वे इस बात के आग्रही थे। उन्होंने नई कविता को लोकप्रिय बनाने के लिए वाचकों का एक संगठन भी बनाया था। उनका कहना था कि कविता को विशिष्ट स्वर और बलाघात द्वारा वाचन कर सही रूप में समझा जा सकता है।

सहाय जी प्रगतिशील लेखक संघ, साहित्यिक गतिविधियों की संस्था 'इप्टा', 'लखनऊ लेखक संघ' तथा 'नाटयसंघ' से जुडे हुए थे। वे एशिया थिएटर इन्स्टीटयूट (नेशनल स्कूल ऑफ ड्रामा) में रिसर्च ऑफिसर के रूप में कार्यरत रहे। वे स्वयं नाटकों में अभिनय भी करते थे। नाटक ने रघुवीर सहाय को कलात्मक अभिव्यक्ति की प्रशस्त भूमि प्रदान की। उन्होंने राष्ट्रीय तथा अंतर्राष्ट्रीय कई कार्यक्रमों की अभिनव कल्पना और प्रस्तुति में ऐतिहासिक योगदान दिया है। उनकी कविताओं में नाटकीयता का जो रूप दृष्टिगत होता है, उसका मूलबिंदु राष्ट्रीय नाट्यविद्यालय, दिल्ली की गतिविधियाँ है। सहाय जी पत्र–पत्रिकाओं से निरंतर जुड़े रहे। एक कुशल पत्रकार एवं सफल संपादक के रूप में भी सहाय जी का महत्त्वपूर्ण स्थान है। उन्होंने समसामयिक घटनाओं एवं समस्याओं को अपने लेखों, स्तंभों में भी वाणी दी हैं। इस प्रकार उनके साहित्य से एक बहुआयामी साहित्यकार की प्रतिभा, उनके चिंतन की नई मौलिक धारा परिलक्षित होती है।

रघुवीर सहाय ने गद्य साहित्य भी प्रचुर मात्रा में लिखा है। उनकी कहानियाँ समाज के कटु यथार्थ को वास्तविकता के धरातल पर चित्रित करती है। इन कहानियों में मानव व पशु के मनोविज्ञान की सूक्ष्मता से खोज सहाय जी ने की है। उनकी प्रत्येक कहानी किसी न किसी सामाजिक संघर्ष को व्यक्त करती है।

रघुवीर सहाय ने अपने जीवन की शुरूआत एक संवाददाता के रूप में की थी। वे बड़े ही निर्भीक संपादक थे। निडर होकर लिखते थे। जहाँ भी आम आदमी पर अन्याय होता देखते, वहाँ अपनी कलम का एक हथियार के रूप में प्रयोग करते थे। अन्याय–अत्याचार की घटनाएँ उन्हें मनुष्य के साथ गहराई से जोड़ती थी। उनका पत्रकार मन–मस्तिष्क हमेशा सचेत रहता था। निर्भीकता, स्वतंत्रता एवं तार्किक चिंतन की प्रस्तुति और पारदर्शिता उनकी अपनी विशेषता रही है। वे संवाददाता, उपसंपादक, कार्यकारी संपादक, संपादक आदि पदों पर कार्य करते हुए एक जुझारू पत्रकार के रूप में प्रतिष्ठित हुए हैं। प्रतीक, दिनमान, नवभारत टाइम्स, कल्पना, धर्मयुग आदि प्रसिद्ध पत्र–पत्रिकाओं में उनका लेखनकार्य निरंतर चलता रहा। उन्होंने अपने लेखों में राजनीति और सांप्रदायिकता पर तीव्र प्रहार किये है। सामाजिक न्याय, समता तथा स्वतंत्रता की धारणा प्रस्तुत करने की दृष्टि से सहाय जी के लेख अत्यंत महत्त्वपूर्ण हैं।

रघुवीर सहाय के काव्य–जीवन की शुरूआत अज्ञेय जी द्वारा संपादित 'दूसरा सप्तक' से हुई। इसके पहले भी उनकी कविताएँ पत्र–पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। सहाय जी की प्रारंभिक कविताओं में प्रेम, प्रकृति और स्त्री संबंधी कविताएँ अधिक है, लेकिन इनकी प्रेम और प्रकृति संबंधी कविताएँ छायावादी कविताओं से कहीं अलग, समसामयिक संदर्भों के यथार्थ को स्पष्ट करती नजर आती है। स्त्री, प्रकृति व सामान्य–सी दिखने वाली चीजों का इस्तेमाल भी वे समय के क्रूर यथार्थ को

व्यक्त करने के लिए करते है। रघुवीर सहाय जी की कविताओं में राजनीति को कविता का विषय बनाकर देश में व्याप्त विसंगतियों, विद्रूपताओं को बड़ी निडरता से व्यक्त किया गया है। स्वतंत्रता–प्राप्ति के बाद भारतीय सामाजिक जीवन में राजनीतिक हस्तक्षेप का जितना गहरा साक्षात्कार रघुवीर सहाय की कविताओं में दिखाई देता है उतना शायद ही किसी और कवि में होगा। उन्होंने सत्ताधारी नेताओं के ओढ़े नकाब को खोल दिया है। नेताओं के दोहरे चरित्र को, उनकी स्वार्थलिप्सा तथा चारित्रिक विद्रूपता को सहाय जी ने अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है।

आजादी के बाद भारतवासियों ने स्वतंत्रता के सुनहले सपने संजोये। वे सोचते थे भारत में जहाँ लोकतंत्र है, वहाँ एक बेहतर समाज विकसित होगा, लोककल्याणकारी शासन व्यवस्था होगी, लेकिन ऐसा कुछ न हुआ और लोगों का मोहभंग हुआ। लोगों के मन में एक प्रकार की निराशा एवं कुंठा का भाव समाने लगा। सहाय जी ने मोहभंग की स्थिति को देखा, भोगा और महसूस किया। सहाय जी ने अपने समसामयिक परिस्थितियों में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक स्थितियों का, उनकी समस्याओं का यथार्थ चित्रण करते हुए उनका हल ढूँढने के लिए संघर्ष किया है।

समाज में टूटते हुए मानवीय मूल्यों को देखकर सहाय जी का कविमन क्षुब्ध हो उठता है, वे तिलमिलाते हुए आक्रोश भरे स्वर में विसंगतियों का विरोध करते हुए अपनी लेखनी चलाते हैं। उनका काव्यानुभव विस्तृत एवं व्यापक है, जो 'दूसरा सप्तक' से लेकर 'एक समय था' तक फैला हुआ है। सहाय जी का काव्य–अनुभव समय तथा उम्र के साथ–साथ प्रौढ़ से प्रौढ़तर होता गया। उनकी नई कविता के बीच अपनी एक विशिष्ट पहचान है। सहाय जी कविता को जीवन से जोड़ने के आकांक्षी हैं। 'दूसरा सप्तक' काव्यसंग्रह में प्रकृति तथा प्रेमसंबंधी कविताओं के साथ–साथ ग्राम्य जीवन के सौंदर्य का यथार्थ चित्रण हुआ है। उनकी प्रारंभिक कविताओं में अंतर्मन का द्वंद्व उभरकर आता है। 'दूसरा सप्तक' में संकलित कविताएँ काव्य–विकास की दृष्टि से आरंम्भ की कविताएँ है। सहाय जी ने जीवन की छोटी– छोटी घटनाओं को भी अपने काव्य का विषय बनाया है।

'दूसरा सप्तक' की संकलित कविताओं के बाद सहाय जी का प्रथम संग्रह 'सीढ़ियों पर धूप में' जिसमें कवि के काव्यानुभव के अनेक आयाम खुलते है। 'सीढ़ियों पर धूप में' संग्रह के अंतर्गत सहाय जी की कहानियाँ, कविताएँ तथा लेख संकलित है। इस संकलन की रचनाओं में सहाय जी की सोच की परिपक्वता तथा गंभीरता के दर्शन होते है। इस संग्रह की कविताएँ विषय–वैविध्य की दृष्टि से बहुत समृद्ध हैं। इस संग्रह में प्रकृति, धूप, पेड़, फूल, वसंत, माँ, गौरैया, प्रेम, सौंदर्य, स्त्री संबंधी कविताओं के साथ और भी अन्य विषयों की कविताएँ है। इस संग्रह में प्रकृति से संबंधित कविताएँ बड़ी ही सशक्त है, उनमें कवि मानव और प्रकृति को एक साथ जोड़कर देखते है। इस संग्रह में बसंत पर चार कविताएँ है। लेकिन इन प्रकृतिपरक कविताओं में कवि प्रकृति के रूप सौष्ठव का वर्णन न करते हुए उसे जीवन की समस्याओं से जोड़ते है। इस संग्रह में नारी से संबंधित कविताओं में नारी–जीवन की पीड़ा यथार्थ रूप में अभिव्यक्त हुई है। सहाय जी ने अपने 'सीढियों पर धूप में' संग्रह के अंतर्गत युगजीवन की सामान्य परिचित परिस्थितियों एवं मनःस्थितियों का यथार्थ अंकन किया है।

'आत्महत्या के विरुद्ध' यह काव्य संग्रह रघुवीर सहाय के काव्यविकास की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण काव्य संग्रह कहा जा सकता है। इस संग्रह में भी प्रकृति, प्रेम और स्त्री संबंधी कविताएँ है, मगर इस संग्रह की कविताओं का मुख्य विषय भारतीय लोकतंत्र की पतनोन्मुख स्थिति और सामान्य जनता की असहाय निरीह अवस्था का चित्रण है। कवि इस संग्रह में समाज में व्याप्त सामाजिक, राजनीतिक विसंगतियों के विरोध में आक्रोश व्यक्त करते हैं, जिसमें समकालीन राजनीतिक परिवेश उभरकर आया है। 'आत्महत्या के विरूद्ध' काव्य संग्रह सन् 1967 में प्रकाशित हुआ। तब तक देश को आजाद हुए बीस वर्ष हो चुके थे। इन बीस वर्षों में सत्ताधारियों ने अपने स्वार्थपूर्ति हेतु अपने खोखले नारों और झूठे आश्वासनों से आम जनता को ठगा है। इस संग्रह में भारतीय राजनीति के विघटनशील मूल्यों एवं तत्त्वों के प्रति निराशा और गहरा अंसतोष व्यक्त हुआ है।

'हँसो हँसो जल्दी हँसो' काव्य संग्रह की कविताओं में साधारण आम आदमी के अभावग्रस्त जीवन, उनकी पीड़ा, शोषित जनता की त्रासद स्थिति का यथार्थ चित्रण हुआ है। स्वार्थलिप्त,

सत्तापिपासु नेता, आम जनता का शोषण करते है और जनता को उनके हक से वंचित रखते है। 'हँसों हँसों जल्दी हँसों' काव्य संग्रह का मुख्य विषय राजनीति है। इस संग्रह में भी कुछ कविताएँ नारी, प्रेम और प्रकृति से संबंधित है। इस संग्रह में आम आदमी की लाचारी, अकेलापन, भय,दहशत का चित्र दृष्टिगत होता है। नारी, लड़के, लड़कियाँ, आम आदमी की बेबसी का स्वर इस संग्रह की कविताओं में मिलता है। इस संग्रह का मुख्य स्वर व्यंग्यात्मक है। सहाय जी ने हँसी के विभिन्न प्रसंगों द्वारा अछूते अनुभवों और संवेदनाओं की सृष्टि की है। इन कविताओं में सिर्फ शोषित जनता की विडंबनापूर्ण हँसी ही नहीं, शोषक वर्ग के प्रतिनिधियों की अश्लील और भयावह हँसी भी सुनाई देती है। इस संग्रह में नेता, साधारण जनता और लोकतंत्रात्मक व्यवस्था का यथार्थ वर्णन प्रस्तुत हुआ है।

साहित्य अकादमी से पुरस्कृत 'लोग भूल गये है' काव्य संग्रह की कविताएँ राजनीतिक चेतना और सामाजिक यथार्थ को बखूबी व्यक्त करती है। इस संग्रह में कवि लोगों को भूले हुए मानवीय मूल्यों की याद दिलाना चाहते है। लोग अपने ऊपर हुए अत्याचार, शोषण को भी भूल जाते है, सब मौन होकर अत्याचार, अन्याय सहते हुए चुपचाप देखते रहते है कि शासक हिंसा के रास्ते पर जा रहा है, ऐसी मृतवत्, संवेदनाहीन जिंदगी जीनेवालों में कवि एक जागृति लाना चाहते है। भ्रष्ट शासनव्यवस्था में कमजोर की सीधे–सीधे हत्या की जाती है। और सभी चुप्पी साधे देखते रहते हैं। इस संग्रह में कवि ने नारी के दुःख–दर्द को भी वाणी दी है। इस संग्रह में लगभग पंद्रह कविताएँ नारी जीवन से संबंधित है। प्रस्तुत संग्रह की कविताएँ राजनीतिक विचारधारा, सामाजिक विषमता के बीच पिसता हुआ जनसाधारण मतदाता के जीवन की त्रासदी को प्रस्तुत करती है।

रघुवीर सहाय के जीवनकाल में प्रकाशित उनका अंतिम काव्यसंग्रह 'कुछ पते कुछ चिट्ठियाँ' हैं। यह संग्रह सहाय जी के अपने पहले वाले काव्य संग्रहों की ही अगली कड़ी है। इसमें भी वही भावसंवेदनाएँ है। जो पहले के संग्रहों में दिखाई देती है। इस संग्रह की कविताओं में कवि मानवीय रिश्तों की खोज में संघर्ष करते दिखाई देते है। कवि अपनी रचनाओं द्वारा जनता व पाठकों को संदेश पहुँचाना चाहते है। इन कविताओं में सहाय जी का सामाजिक यथार्थ अपने अधिक प्रखर राजनीतिक सामाजिक चेतना में बदल गया है। सहाय जी के निधन के पश्चात् सुरेश शर्मा ने उनकी 144 कविताओं का संकलन 'प्रतिनिधि कविता' शीर्षक से किया। इसी प्रकार 'एक समय था' काव्यसंग्रह में भी उनकी कविताएँ संकलित है, जिसके भी संपादक एवं संकलनकर्ता सुरेश शर्मा ही है। सुरेश शर्मा ने रघुवीर सहाय के पूरे साहित्य को 'रघुवीर सहाय रचनावली' में संकलित किया है, जिसके छह खंड है।

रघुवीर सहाय का कवि–व्यक्तित्त्व उनके काव्य–संग्रहों में मुखरित हो उठा है। उनकी कविताएँ समसामयिक सामाजिक–राजनीतिक स्थितियों का आईना ही है, जिसमें देश का पूरा का पूरा अक्स उभर आया है। आजादी के बाद देश की जो अवस्था हो गयी है, आम आदमी की दैनंदिन अवस्था बिगड़ती जा रही है, स्वार्थलोलुप नेता कुर्सी के मोह और स्वार्थों के लिए जनता से खिलवाड़ करते हैं इन सभी घटनाओं, समस्याओं का यथार्थ चित्रण सहाय जी की कविताओं में द्रष्टव्य हैं। इन चित्रणों में घर–परिवार से लेकर संस्था, शासन–व्यवस्था, नेता, संघ, दलों, राष्ट्रीय–अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं और समस्याओं का समावेश है।

समसामयिक व्यवस्था के प्रति खीझ, आक्रोश का स्वर सहाय जी की कविताओं में दिखाई देता है। सामाजिक विसंगतियों में पिसते हुए नन्हे लड़के–लड़कियों तथा स्त्रियों के मार्मिक प्रसंग स्थान–स्थान पर हर संग्रह की कविताओं में दिखाई पड़ते है। नारी–जीवन की समूची विडंबना, उसका दुःख–दर्द सहाय जी की कविताओं में छलक पड़ता है। कमजोर, असहाय वर्ग के प्रति सहाय जी के मन में असीम करूणा का भाव है। उनकी स्थितियों में सुधार होने की अपेक्षा रखते हुए, सहाय जी उच्चवर्गीय पूँजीवादियों को उनकी हालत के लिए जिम्मेदार मानते है जो अपने सुख के लिए कमजोर लोगों का इस्तेमाल करते है। सहाय जी मानव–मानव में अमीरी–गरीबी की बनी खाई को मिटाकर समानता से जीने के आग्रही है। सहाय जी की कविता में जो खीझ, चिंता और समाज में व्याप्त विसंगतियों की अनुभूति का जो आर्त स्वर सुनाई देता है उतना दूसरे कवियों में नहीं मिलता। एक पत्रकार होने के नाते उनके लेखन का केंद्रबिंदु सामान्य जन हैं। सहाय जी लोकतंत्रात्मक

शासन–व्यवस्था एवं समाजवाद के पक्षधर थे, लेकिन आजादी के बाद लोकतंत्र सिर्फ कुछ लोंगो के हाथ की कठपुतली बनकर रह गया। लोकतंत्र पर प्रश्नवाचक चिह्न लग गया कि क्या यही लोकतंत्र है? जिसमें जनसामान्य अपने आपकों सुरक्षित महसूस नहीं कर पा रहा है। लोकतांत्रिक व्यवस्था को कवि सहाय भीड़ की संज्ञा देते है। लोकतांत्रिक व्यवस्था में जरूरी है कि प्रत्येक नागरिक जागरूक होकर अपने कर्तव्यों का पालन करे, क्योंकि देश की सत्ता की बागडोर चुने हुए जनप्रतिनिधियों के हाथों में ही होती है। लेकिन सहाय जी देखते है और महसूस भी करते हैं कि देश में लोकतंत्र एक मजाक बन कर रह गया है। देश के कर्णधार नेता ही भ्रष्ट एवं दायित्वहीन है। भ्रष्टाचार में आकंठ डूबे है और जनता चुप्पी साधे मृतवत् पड़ी है, जिसे सहाय जी 'कफन ढँके चेहरे' कहते है। रघुवीर सहाय की कविताओं में कहीं शासक वर्ग द्वारा जनता के शोषण का चित्र है, कहीं नेताओं द्वारा दिये गये झूठे आश्वासनों पर व्यंग्य है तो कहीं राजनीतिक दल–बदल, भष्टाचार एवं चुनावों की निरर्थकता पर व्यंग्य करते है। एक सजग पत्रकार एवं सहृदय कवि सहाय जी अपनी रचनाओं द्वारा पूरे हिंदुस्तान का चित्र उपस्थित कर देते है। भारतीय परिवेश को उनकी कविताएँ घनीभूत रूप से व्यक्त करती है।

काव्यभाषा के स्तर पर भी रघुवीर सहाय अपने समकालीन रचनाकारों में महत्त्वपूर्ण स्थान रखते है। वे अपने शिल्प के प्रति अत्यंत सजग है। बोलचाल की सरल भाषा में सहज करूणा और जिंदगी की अनुभूतियों का यथार्थ अभिव्यक्तीकरण उनकी विशिष्टता है। सहाय जी अपनी रचनाओं में सामाजिकता के साथ–साथ शब्द, भाषा और शिल्प के मोर्चों पर जागरूक प्रहरी बनकर खड़े हैं उनके लिए अनुभूति की प्रामाणिकता और शिल्प के प्रति सजगता दोनों अनिवार्य हैं। वे सामाजिक यथार्थ को रूपायित करने के लिए अपनी भाषा और मुहावरों को विस्तृत आधार देते हैं।

रघुवीर सहाय प्रतीकों, बिंबों एवं मिथकों का कम से कम प्रयोग करते हैं। प्रतीक, बिंब उनकी कविताओं में सहज रूप में आये हैं। साधारण बोलचाल की भाषा में असाधारण अर्थवत्ता भर देना रघुवीर सहाय की खूबी है। रघुवीर सहाय का काव्य–शिल्प उनके समकालीनों से बिल्कुल भिन्न प्रकार का और विशिष्ट है। सहाय जी ने समकालीन परिस्थितियों की विसंगति और विडंबनाओं पर व्यंग्यात्मक शैली में तीखे प्रहार किये हैं। ऐसे व्यंग्य–प्रहारों का तीक्ष्ण काव्य–भाषारूप किसी अन्य कवि में दिखाई नहीं पड़ता। सपाटबयानी, बोलचाल की भाषा, विंबात्मकता, व्यंग्यधर्मिता, नाटकीयता इत्यादि काव्यभाषा के तत्त्व उन्हें काव्यभाषा की दृष्टि से अधिक सबल कवि बनाते हैं। नाटकों की गतिविधियों से अन्यान्य क्षेत्रों में निरंतर जुड़े रहने के कारण उनकी काव्यभाषा में नाटकीय गुणों का समावेश है। काव्यभाषा को बोलचाल के गद्य के नजदीक लाने वाले रचनाकारों में सहाय जी अग्रणी रचनाकार हैं। दैनिक जीवन में प्रचलित शब्दों को कविता में पुनः संभव बनाने का महत्त्वपूर्ण कार्य सहाय जी ने किया है। संस्कारित, सार्थक और शुद्ध भाषा के प्रयोग का प्रयास सहाय जी का वैशिष्ट्य है। उनकी हर बात को अपने ढंग से कहने की खासियत है।

रघुवीर सहाय को संगीत का भी अच्छा खासा ज्ञान था। उनकी कविताओं में लयात्मकता एवं छंदविधान के सुंदर प्रयोग द्रष्टव्य हैं। तुकबंदी एवं लय के साथ–साथ भावात्मक अर्थलय भी इनकी कविताओं की विशेषता है। कवि ने नये उपमानों तथा प्रतीकों का प्रयोग कर अपनी काव्यशैली को एक नयी भावभंगिमा प्रदान की है। सहाय जी कविता में लादे गये अलंकारों को भावबोध में बाधा मानते हैं। बोलचाल की भाषा में प्रयुक्त लोकोक्तियों एवं मुहावरों का भी सहाय जी ने अपनी रचनाओं में सहज और सटीक ढंग से प्रयोग किया है। उन्होंने नये उपमानों की रचना कर भाषा को और अधिक समृद्ध बनाया है। वे भाषा के साथ खिलवाड़ करने के अत्यंत विरोधी हैं। उनका मत है कि अपनी बात को बिना लाग–लपेट के सीधे शब्दों में ऐसे प्रयुक्त किया जाना चाहिए जिससे अर्थबोध में किसी तरह की बाधा न हो। सहाय जी ने अपनी कविताओं, लेखों, निबंधों तथा साक्षात्कारों के योगदान भी अपनी काव्यभाषागत विचारों को यथास्थान व्यक्त किया है।

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि रघुवीर सहाय ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा द्वारा आधुनिक साहित्य में अपना निश्चित स्थान प्राप्त किया है। नई कविता की परंपरा में उनका स्थान अग्रणी है। सहाय जी अपनी उम्र के 61 वर्षों में हिंदी साहित्य की महत्त्वपूर्ण सेवा की है। वे एक कुशल कवि होने

के साथ ही सजग पत्रकार, संपादक, कहानीकार, निबंधकार एवं अनुवादक भी रहे हैं। इन रूपों में उनका अत्यधिक महत्त्वपूर्ण रूप कवि और पत्रकार का रहा है। अपनी कविताओं के माध्यम से उन्होंने जनसाधारण की विविध समस्याओं को संवेदनशील होकर साहित्य के फलक पर अंकित किया है। स्वतंत्रता, समानता, मानवीयता, जनतंत्र, सामाजिक न्याय, हक और अधिकार आदि मूल्यों को सहाय जी ने लोहियावादी चिंतन से सजाकर अपनी कविताओं में अभिव्यक्त किया है। उनकी कविताएँ समाजवादी विचारधारा का अक्षय स्त्रोत कही जा सकती हैं। समाजवादी संस्कारों ने उनकी साहित्य को प्रभावित किया है। कवि और पत्रकार व्यक्तित्त्व के धारक रघुवीर सहाय अपने सांस्कृतिक रुचिसंपन्न व्यक्तित्त्व की चमक से प्रकाशित हैं। वे राष्ट्रभाषा हिन्दी के प्रबल समर्थक है। उन्हें राष्ट्रभाषा हिंदी आंदोलन के प्रखर योद्धा के रूप में भी देखा जा सकता है।

आधुनिक हिंदी साहित्य में रघुवीर सहाय जी की प्रतिभा अपने आप में वैशिष्ट्यपूर्ण है। उनका काव्य–साहित्य उच्च कोटि का एवं मौलिक है। सहाय जी की कविताएँ व्यापक , विविधांगी और मानवीय का दस्तावेज हैं। सामाजिक यथार्थ, न्याय, समता, अधिकार, मानवीय मूल्य, लोकतांत्रिक मूल्य आदि के लिए उनकी कविताएँ संघर्ष करती प्रतीत होती हैं, जो सामाजिक यथार्थ को उजागर करने में सक्षम हैं। इसीलिए उनका काव्य अपने आप में श्रेष्ठ है। समकालीन हिंदी कविता के परिप्रेक्ष्य में रघुवीर सहाय अपने ढंग के अकेले कवि हैं। सहाय जी के काव्य का भाव पक्ष व्यापकता लिये हुए हैं। उसमें सामाजिक चेतना अपने यथार्थ रूप में प्रस्फुटित हुई है। सामाजिक विसंगतियों की शिकार नारी की दुर्दशा, बच्चों के अधिकार और उनकी भावनाओं को कुचला जाना इन सब से उत्पन्न दुःख–व्यथा तथा पीड़ा के साथ ही प्रेम और प्रकृति का यथार्थ चित्रण तथा मानवीकरण और पशु–पक्षियों से मानवीय रिश्ता बनाती हुई सहाय जी की कविताएँ हैं। इसी के साथ ही समाज, लोग, हत्याएँ, चेहरे, भीड़, हँसी, अकेलापन, मृत्यु का आभास देने वाली कविताएँ संवेदनशील अभिव्यक्ति हैं।

वर्तमान समय में जीवन के हर पहलू में राजनीति का हस्तक्षेप होने के कारण आम आदमी पर दहशत और आतंक की छाया है। कहने को लोकतंत्र है, मगर हमेशा ही हत्याओं का डर बना हुआ है। ऐसे इस माहौल में भी कवि की कविताएँ संघर्ष करती हुई राष्ट्रीय चेतना से युक्त हैं और जनजागृति का संदेश देती हैं। राष्ट्रभाषा और राजभाषा के संघर्ष में कवि अपने आपको हिंदी के प्रबल समर्थन के पक्ष में अडिग खड़ा करते हैं। अंग्रेजी की दासता से हिंदी को मुक्त करने के लिए उनकी कविताओं में निरंतर प्रयास दिखाई देता है। एक जागरूक सजग पत्रकार कविह्रदय होने के कारण उनकी कविताओं में एक तरह का खबरधर्मिता का गुण दिखाई देता है जो उनका अपना एक खास वैशिष्ट्य है।

कवि सहाय ने हँसी के इतने विभिन्न रूपों को उनकी प्रासंगिकता के अनुकूल व्यक्त किया है उतना शायद आज तक किसी अन्य कवि ने नहीं किया है। उनकी हँसी बनावटी, कृत्रिम नहीं है। वह दिल पर चोट करती हुई हँसी है, जिसमें भय, आतंक, डर है, तीखा और तिलमिला देनेवाला तीक्ष्ण व्यंग्य है, जो सीधे वार करके दिलोदिमाग को झकझोर कर सोचने पर विवश कर देता है। इस प्रकार सहाय जी की कविताएँ नई कविताओं की प्रमुख कृतियों में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान रखती हैं। सहाय जी की कविताएँ बोलचाल की भाषा में लिखी गयी हैं। सरल, सहज, बोधगम्य, बोलचाल की भाषा में काव्यसर्जना की है यही उनकी भाषा का लालित्य है, आकर्षण है, लगाव है।

कलापक्ष की दृष्टि से भी रघुवीर सहाय की कविताएँ श्रेष्ठ हैं उनकी कविताओं में शब्दभंडार, छंद, बिंब, प्रतीक, अलंकार आदि के प्रयोग नई अर्थ–छवियाँ प्रस्तुत करते हैं। सहाय जी ने अपनी नई भाषा को गढ़ा है। वे शब्दों की फिजूलखर्ची के खिलाफ थे। उन्होंने अंग्रेजी, उर्दू–फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है। सहाय जी शिल्प के प्रति अत्यंत सजग कवि हैं। उन्होंने गीत और गज़ल शैली को भी अपनाया है। उनकी काव्यभाषा कविता के कथ्य को अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सक्षम है, जिसके प्रयोग में नये मुहावरों और लोकोक्तियों के सुंदर प्रयोग समन्वित हैं। सहाय जी कविताओं के लिए नये विषयों की तलाश करके उनके अनुरूप नई भाषा में उसे व्यक्त करते हैं। यह उनका ऐतिहासिक योगदान माना जा सकता है। कवि एवं पत्रकार के रूप में उनका साहित्य हिंदी साहित्य को एक मौलिक देन है। उनके व्यक्तित्त्व में कवि और पत्रकार एकाकार हो गये हैं। सहाय जी ने कभी भी अतिशयोक्तिपूर्ण

बातें नहीं लिखीं। उन्होंने जो भी लिखा यथार्थ से युक्त, तर्कपूर्ण, निष्पक्ष और निर्भीकता से लिखा। हिंदी साहित्य जगत् के वे अत्यंत प्रतिष्ठित एवं प्रसिद्ध साहित्यकार हैं।

रघुवीर सहाय जी बहुमुखी प्रतिभासंपन्न कवि–लेखक थे। उन्होंने कविताओं के साथ ही साहित्य की अन्यान्य विधाओं में भी बहुत ही सक्षमता से अपनी लेखनी चलायी है। सहाय जी की चिंताएँ, उनकी जीवनदृष्टि और समाजविरोधी शक्तियों के विरुद्ध उनकी संघर्षशीलता उनकी कविताओं में परिलक्षित होती हैं।

रघुवीर सहाय ने अपने संपूर्ण जीवन में एक साहित्यकार के दायित्व को पूरी ईमानदारी के साथ निभाया है। उन्होंने अपना जीवन साहित्य के माध्यम से समता, न्याय, हक, बराबरी, मानवीयता, लोकतांत्रिक मूल्यों और सामाजिक प्रतिबद्धता को स्थापित करने में ही लगाया। हिंदी साहित्य में गद्य और पद्य दोनों ही विधाओं में समान अधिकार से लिखने वाले कवि सहाय जी शीर्षस्थ साहित्यकार का स्थान प्राप्त करने की क्षमता रखते हैं। निरंतर संघर्षशील जीवन में भी अंतर्निहित शक्ति के प्रति विश्वस्त रहकर वे निरंतर काव्य–साधना करते रहे। वे सचमुच अद्वितीय रचनाकार थे। रघुवीर सहाय का काव्य हिंदी साहित्य में नया आयाम प्रस्तुत करेगा। उनका काव्य–हिंदी साहित्य में प्रेरणास्त्रोत और अमूल्य निधि बनकर नई पीढ़ी को मार्गदर्शन करेगा। दीपस्तंभ बनकर भविष्य को प्रेरित करता रहेगा। निःसंदेह ही रघुवीर सहाय का कवि–कर्म उन्हें हिंदी काव्यसाहित्य का सशक्त कवि प्रमाणित करता है।

सन्दर्भ :

1. शर्मा सुरेश : रघुवीर सहाय का कविकर्म, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली, 2002
2. त्रिखा डॉ० चन्द्र (सं0) : प्रतिनिधि आधुनिक कवि, हरियाणा साहित्य अकादमी, पंचकूला, 2003
3. कृष्ण कुमार (सं0) : संचयिता, रघुवीर सहाय, प्रथम संस्करण, 2003
4. सहाय रघुवीर : सीढ़ियों पर धूप में, 1960 ई.
5. शर्मा डॉ० सुरेश : रघुवीर सहाय रचनावली, खण्ड–2, पृष्ठ–16
6. सहाय रघुवीर : लोग भूल गए हैं, 1982 ई.
7. गंभीर डॉ० एस : साठोत्तरी हिंदी काव्य में राजनीतिक चेतना–पृ०35
8. शर्मा डॉ० सुरेश : रघुवीर सहाय रचनावली, पृ० 426–27
9. शर्मा सुरेशचन्द्र (सं0) : आजकल, मार्च 1991, पृ०12
10. सहाय रघुवीर : आत्महत्या के विरुद्ध, रघुवीर सहाय रचनावली, भाग–1, पृ0138

उच्च शिक्षा में अनुसन्धान एवं नवाचार नये आयाम

डॉ. हरीश कुमार *

स्वतंत्रता के बाद उच्च शिक्षा में गुणात्मक वृद्धि हुई है। विश्व में अपनी तरह का एक नवीन पद्धति बनकर उभरा है। विश्वविद्यालयीय शिक्षा में जो महत्वपूर्ण आयाम जुड़े हैं उन आयामों को फिर से एक नवीन दृष्टि से देखा जाना चाहिए। जैसे–वित्त, प्रबन्धन, सार्थकता, स्वास्थ्य, मानक, नैतिक आदर्श ये सभी आवश्यक होने चाहिए। इक्कीसवीं शताब्दी का भारत सूचना–आधारित देश बनेगा तो उसे उन आयामों पर भी फोकस करना होगा।[1]

मूलभूत तथ्यों पर अगर देश का निर्माण करना है, तो विश्वविद्यालय को विभिन्न प्रकार की भूमिकाओं में रहना होगा। वह ज्ञान नई क्षमताओं को बढ़ाना, शोध परक शिक्षा को महत्व देना एवं समाज को उच्च शिक्षा में जोड़ना भी आवश्यक है। उच्च शिक्षा में कौशल विकास को प्रोत्साहित करना, समावेशी शिक्षा को सक्षम बनाना, अनुसूचित जाति, जनजाति, अल्पसंख्यकों और विशेष आवश्यकताओं के साथ शिक्षा को जोड़ना चाहिए। क्षेत्रीय असमानता, लैंगिक असमानता, सामाजिक असमानता को दूरन करना, समाज की आवश्यकता के आधार पर उच्च शिक्षा को निर्मित करना ऐसा उद्देश्य होना चाहिए।[2]

वैश्विक आवश्यकता और वर्तमान में हमारे देश की अनिवार्य माँग के आधार पर शोध को हम लोगों ने अपने प्रयास के द्वारा संख्यात्मक सफलता प्राप्त कर ली है, लेकिन गुणात्मक लाभ प्राप्त नहीं हो सका है। सामान्यीकरण, अन्तर्राष्ट्रीयकरण और व्यवसायीकरण के द्वारा हम शिक्षा एवं शोध के स्तर को बढ़ा सकते हैं। प्रयास यह होना चाहिए कि शोध केन्द्रीय भूमिका में हो और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का हो। भारतीय शिक्षा और शोध की प्रमुख कमजोरी विश्वविद्यालय द्वारा निभायी गयी अपनी अल्पभूमिका है। विश्वविद्यालय की स्थापना मूल रूप से शोध और शोध पर आधारित सामाजिक लाभ के लिए की जानी चाहिए। विश्वविद्यालय के विश्व स्तरीय जर्नल छपवाया जाना चाहिए जिसमें स्तरीय शोध प्रबन्धों को स्थान दिया जाना चाहिए। रिसर्च में लेबोरेटरी, रिसर्च प्रविधि, एक अच्छे निष्पादन की भी अपेक्षा होनी चाहिए। विज्ञान और मानविकी इन दो महत्वपूर्ण विषयों में अन्तर्वैषयिक सम्बन्ध होना चाहिए।[3]

विश्वविद्यालय की स्थापना काल से वर्तमान तक कुछ विश्वविद्यालयों को छोड़कर सुविधा के नाम पर मात्र की सेवायें शोध के लिए है। मुख्यरूप से धन की भारी कमी अनुसंधान के क्षेत्र में आती है। यह धन अगर शोधार्थी को मिल जाय तो उसके शोध की गुणवत्ता अच्छी हो सकती है। स्नातक में इण्टर 2010–11 में 16975000 नामांकित थे तो उसमें से केवल 2 प्रतिशत शोध के लिए आगे आते हैं। शोध भारत में रोजगार के साथ जुड़ा हुआ नहीं है जिससे अनिश्चित्ता का समय रहता है। अगर वैल्यूवेस्ट शोध हो तो उसके केन्द्र खोले जाने चाहिए। सरकार को लोगों की सृजनात्मक क्षमता को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। रिसर्च एण्ड डवलपमेंट विंग को बढ़ावा मिलना चाहिए। विश्व के बड़े–बड़े विश्वविद्यालय और रिसर्च केन्द्र से इनका सम्पर्क होना चाहिए जिससे हमारे रिसर्च को दुनिया के देशों से मान्यता मिले। यह भी प्रयास होना चाहिए कि भारत की प्राचीन गौरवशाली इतिहास है। वह इतिहास भी शोध के द्वारा लोगों के समक्ष जाए। आयुर्वेद और ज्योतिष इस क्षेत्र में असीम सम्भावनाएं दे सकता है। आयुर्वेद के बड़े–बड़े केन्द्र खोले जाने चाहिए। उनकी दवाएँ सस्ती होनी चाहिए। आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों को फिर से लिपिबद्ध किया जाना चाहिए और अन्तर्राष्ट्रीय बाजार में उस शोध को लेकर जाना चाहिए। भारत के प्रमुख विश्वविद्यालयों में योग एक प्रमुख विषय के रूप में होना चाहिए। योग के द्वारा लोगों की जीवनशैली प्रभावित होगी। यह भी शोध के एक नये आयाम हो सकते हैं। भारतीय जीवन–शैली अपने मौलिक रूप में होने चाहिए। तभी भारतीय लोग अपने सीमित संसाधनों में अपने जीवन–शैली को ठीक कर सकते हैं। पेट्रोलियम और मिनिरल्स के क्षेत्र में असीमित सम्भावनाएं

* एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास, राजकीय महाविद्यालय, सलेमपुर, देवरिया

शोध की हे। शोध के द्वारा हमें वैकल्पिक ऊर्जा के समावेशी विकास पर ध्यान देना चाहिए। अनुसन्धान एवं नवाचार के लिए मानव संसाधन विकास मंत्रालय में एक अलग विभाग होना चाहिए जो लचीले नियम के द्वारा धन आवंटित कर दे।[4]

आज के वैश्विक अर्थव्यवस्था में अनेक परिवर्तन हुए हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी ने भी अपना स्थान बदल दिया है। मीडिया और अन्तर्राष्ट्रीयकरण में शैक्षणिक पृष्ठभूमि को ही बदल दिया है। इसलिए देशी शिक्षा वैश्विक शिक्षा हो गयी है। जो शिखा कभी कुछ के लिए थी वह सर्व शिक्षा अभियान हो गयी है जो शिक्षा अध्यापन केन्द्रित शिक्षा थी वह विद्यार्थी केन्द्रित हो गयी। वैश्विक अर्थव्यवस्था ने उच्च शिक्षा की नयी भूमिका को परिभाषित किया है। कौशल विकास को हर स्तर पर महत्व दिया गया जिससे सामाजिक और आर्थिक देश की आवश्यकता को पूरी की जा सके। भारत पूरे देश में उच्च सामाजिक, आर्थिक एवं राजनैतिक आवश्यकताओं के आधार पर उच्च शिक्षा को बढ़ावा दिया जाना चाहिए। विश्वविद्यालय में सूचना का अधिकार को अवश्य स्थापित किया जाना चाहिए। शोध इस अत्याधुनिक सुविधाओं से लैस होना चाहिए। शिक्षकों को कन्वेन्शन, कॉन्फ्रेन्स, सेमिनार इत्यादि में भाग लेने के लिए प्रोत्साहित अवश्य करना चाहिए बड़े विश्वविद्यालयों में भारतीय विश्वविद्यालय का एक स्थायी समझौता होना चाहिए। पाठ्यक्रम का निर्माण होते समय सभी सम्भावित ग्रुप को शामिल किया जाना चाहिए। आडियो विजुअल और इण्टरनेट को अपने यहाँ विकसित करना चाहिए।[5]

अनुसन्धान की आवश्यकता स्थानीय स्तर पर एवं व्यापक स्तर पर होने चाहिए और सरकार के द्वारा अच्छे शोध को प्रोत्साहित भी किया जाना चाहिए।

सन्दर्भ :

1. क्वालिटी इन हायर एजूकेशन एण्ड रिसर्च, डॉ0 बी0 एस0 भार्गव
2. हायर एजूकेशन इन इण्डिया इश्यू कन्सर्न एण्ड न्यू डायरेक्शन, दिसम्बर 2003
3. डॉ0 मो0 रैवी, एजूकेशन एण्ड सोशल ट्रान्सफॉरमेशन
4. पूनम बत्रा, एजूकेशन फॉर सोशल ट्रान्सफॉरमेशन
5. बीना देशमुख, ए केस स्टडी ऑफ ऑनलाइन बैचलर ई एजुकेशन

***

उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता का उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में अध्ययन

डॉ. चंद्रावती जोशी *
शांति **

सार -

प्रस्तुत शोध अध्ययन से शोद्यार्थी के द्वारा यह ज्ञात करने का प्रयास किया कि क्या विभिन्न पारिवारिक पृष्ठभूमि वाले विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता में भिनन्ता होती है? प्रत्येक विद्यार्थी का पालन पोषण अलग-अलग तरह के पारिवारिक वातावरण में होता है। परिवार बालक के समाजीकरण का आधार है। परिवार में रहकर ही बालक में सांस्कृतिक मूल्य, नैतिक मूल्य एवं जीवन कौशल का विकास होता है। वर्तमान दौर में विद्यार्थियों में बढ़ती अनुशासनहीनता, मनो शारीरिक रूप से समस्याग्रस्त होना, शैक्षिक उपलब्धि का कम होना, और विशेष रूप से संवेगात्मक रूप से अपरिपक्व होना आदि ऐसी अनेक समस्याये है, जो पारिवारिक वातावरण के सकारात्मक न होने के कारण दृष्टिगोचर हो रही है। बालको के सर्वांगीण विकास करने के लिए यह जानना आवश्यक है कि किस तरह की पारिवारिक पृष्ठ भूमि बालकों को सांवेगिक रूप से परिपक्वबनाने में अपना योगदान दे सकती है। सांवेगिक रूप से परिपक्व बालक ही अनूकूल एवं प्रतिकूल परिस्थितियों में स्वयं को समायोजित कर सकता है। इन महत्वपूर्ण बातों को ध्यान में रखते हुए शोधार्थी के द्वारा अपने शोध अध्ययन के लिए उच्च माध्यमिक स्तर पर अध्ययनरत् विद्यार्थियों को चुना और शोध विषय के रूप में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता का उनके पारिवारिक पृष्ठभूमि के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन किया। इस के हेतु शोधार्थी के द्वारा नैनीताल जनपद के हल्द्वानी तहसील के अन्तगत राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालयों के इन्टरमीडिएट स्तर के सत्र 2018-19 में अध्ययनरत विद्यार्थियों को चुना गया। तथा शोध विधि के अंतर्गत सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया। इस शोध अध्ययन में उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता के मध्य सार्थक अन्तर ज्ञात करने के लिए **टी-परीक्षण** का प्रयोग किया गया। शोध अध्ययन के परिणामों में पाया गया कि छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक परिपवक्ता में सार्थक अन्तर नहीं है। शहरी एवं ग्रामीण परिवेश के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अन्तर नही होता है। पारिवारिक पृष्ठभूमि के आधारपर बच्चों की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अन्तर नही पाया गया।

प्रस्तावना -

मनुष्य को वातावरण में सामंजस्यपूर्वक समायोजन करने सम्मानपूर्वक जीविकोपार्जन करने तथा जीवन की सुरक्षा एवं संरक्षा करने के लिए भोजन वस्त्र एवं आवास जैसी मूलभूत आवश्यकताओं को पूर्ण करना आवश्यक है। भोजन, वस्त्र एवं आवास से मनुष्य के शारीरिक सुरक्षा एवं विकास तो संभव है परंतु मनुष्य के समुचित जीवन संचालन में सारे विकास के साथ-साथ मानसिक, सामाजिक एवं संवेगात्मक विकास आवश्यक है जो केवलशिक्षा के माध्यम से संभव है।**डॉ एस राधाकृष्णन के अनुसार:-** "शिक्षा केवल जीविकोपार्जन का साधन नहीं हैए न यह के विचारों की समर्थन स्थली है और न ही नागरिकता की पाठशाला है यह आत्म प्रशिक्षण है। इस प्रकार शिक्षा मानव के सर्वांगीण विकास का आधार है।

संवेगात्मक परिपक्वता का प्रभाव मानव के संपूर्ण जीवन पर उसके व्यवहार को एक सही दिशा एवं व्यवस्था देनेके रूप में पड़ता है। सांवेगिकरूप से परिपक्व व्यक्ति अपने आत्मविश्वास, सुरक्षा की भावना एवं आत्मसम्मान द्वारा नकेवल अपने संवेगों पर नियन्त्रण करने में सक्षम होता है, अपितु इस प्रकार की परिस्थितियां उत्पन्न होने पर किन्ही दूसरेव्यक्तियों को निर्देशित करने के लिए पूर्णरूप से योग्य होता है।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर बी.एड विभाग ऍम. बी राजकीय पी जी महाविद्यालय हल्द्वानी जिला नैनीताल (उत्तराखंड)
** एम. बी. राजकीय पी. जी. महाविद्यालय, हल्द्वानी जिला, नैनीताल (उत्तराखंड)

वर्तमान परिवेश में जीवन शैली में आधुनिकीकरण के फलस्वरुप भारी बदलाव के कारण एवं पारिवारिक वातावरण के सकारात्मक न होने से येशारीरिक, मानसिक एवं सांबेगिक रूप से कमजोर होते जा रहे हैं, जिसके फलस्वरूप ये भावी युवा घर परिवार समाज स्वयं को समायोजित नहीं कर पा रहे हैं और नकारात्मक संवेगों के उत्पन्न होने से नशीली दवाओं का अधिक प्रयोग जघन्य अपराध, शराब का सेवन एवं घिनोने कृत्य को अंजाम दे रहे हैं। ऐसे उदहारण हमारे आसपास दिखाए दे रहे है दिल्ली का निर्भया कांड हो या हैदराबाद का नीलम रेड्डी कांड या फिर अलीगढ़ की घटनाआदि । इन जहान्य कृत्यों को अंजाम इन्हीं 12 से 23 वर्ष के युवाओं के द्वारा कियाजा रहा है। इन युवाओं के इन निन्दनीय कार्यों में संलिप्त रहने के पीछे अभिभावकों का आर्थिक स्तर कमजोर होना, शिक्षा का अभाव, माता-पिता के संबंधों का अच्छा न होना सामाजिक परिवेश का उचित न होना एवं दोस्तों की गलत संगति का असर आदि हैं। येयुवा ऐसी परिवारिक एवं सामाजिक पृष्ठभूमि से निकलकर आते हैं कि इनकी मानसिकता में नकारात्मक संवेगों ववविचारों का दबाव बना रहता है। पूर्व में किए गए शोध अध्ययन जिनमें मुख्य रूप से तिवारी रीना (2001) ने अपने अध्ययन में पाया कि शहरी क्षेत्र के उच्च एवं निम्न सांवेगिक परिपक्वता वाले विद्यार्थियों की शैक्षिक उपलब्धि असमान थी। जबकि ग्रामीण क्षेत्रों की उच्च सांवेगिक परिपक्वता वाली छात्राओं की शैक्षिक उपलब्धि बेहतर थी। गुलाटी के. सी.(1980) ने बालकों के सवेगात्मक विकास में परिवार की भूमिका के ऊपर अध्ययन किया और पाया कि परिवार का वातावरण बालकों के संवेगात्मक विकास पर प्रभाव डालता है। परिवार का वातावरण शांत, सुलभ एवं रागात्मक संबंधों से युक्त होता है, तो बालक के संवेगात्मक विकास पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। कौर (2001) ने अपने अध्ययन में पाया कि लड़के एवं लड़कियों तथा ग्रामीण व शहरी विद्यार्थी की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है।

पूर्व में किये गये शोध के निष्कर्ष दर्शाते हैं कि उच्च संवेगात्मक एवं निम्न संवेगात्मक परिपक्वता का होना पारिवारिक वातावरण के सकारात्मक व नकारात्मक होने से प्रभावित होती है। अतः जीवन में सफल होने के लिए सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक रूप से परिपक्व होना आवश्यक है। इसलिए आज आवश्यकता इस बात की है कि हमें इन किशोरों को व्यवहारगत एवं जीवन की जटिलताओं से बाहर निकालने के लिए प्रयास किये जाने की आवश्यकता है।

समस्या कथन में आए चरों की क्रियात्मक परिभाषा -

संवेगात्मक परिपक्वता -संवेगात्मक परिपक्वता से तात्पर्य है कि बालक द्वारा जीवन में आने वाली अनुकूल तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में अपनी क्षमता के अनुसार समाज के साथ सफलतापूर्वक अनुकूलन स्थापित करना।

प्रस्तुत लघु शोध में संवगात्मक परिपकत्ता के स्तर को ज्ञात करने के लिए डा० तारा समापति द्वारा निर्मित संवेगात्मक परिपक्वता मापनी का प्रयोग किया जाएगा। जिसके अन्तर्गत संवेगात्मक परिपक्वता के मुख्य बिन्दु जैसे आत्म ज्ञान, आत्मविश्वास वास्तविकता को स्वीकरने की क्षमता, आत्म नियन्त्रण, सामाजिक समस्य संगति के आधार पर संवेगात्मक परिपक्वता को परिभाषित किया गया है।

पारिवारिक पृष्ठभूमि - प्रस्तुत लघुशोध में पारिवारिक पृष्ठभूमि से तात्पर्य उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की विभिन्न-भिन्न प्रकार की पारिवारिक पृष्ठभूमि से है। जिसके अन्तर्गत मुख्य रूप से लिंग निवास स्थान, अभिभावकों का शैक्षिक स्तर अभिभावकों का व्यवसाय, अभिभावकों की आय परिवार का आकार को सम्मिलित किया गया है।

उद्देश्य -

1. उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता की तुलना करना।
2. पारिवारिक पृष्ठभूमि निवास स्थान अभिभावकों शैक्षिक स्तर के आधार पर संवेगात्मक परिपक्वता की तुलना करना।

परिकल्पनाएं -

1. उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है।
2. शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है।
3. उच्च शिक्षित एवं निम्न शिक्षित अभिभावकों के बच्चों की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है।

शोध अध्ययन का परिसीमन -

1. प्रस्तुत शोध अध्ययन के लिए नैनीताल जनपद के हल्द्वानी तहसील को चुना गया है।
2. राजकीय उच्च माध्यमिक स्तर के शहरी एवं ग्रामीण विद्यालयों को शोध अध्ययन हेतु चुना गया है।
3. शोध अध्ययन में कक्षा 11 के 120 छात्र एवं छात्राओं को न्यादर्श के रूप में चयनित किया गया है।

शोध विधि–

इस शोध अध्ययन के लिए वर्णात्मक सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया।

न्यादर्श-

इस शोध अध्ययन के अंतर्गत नैनीताल जनपद के हल्द्वानी तहसील के राजकीय उच्च माध्यमिक विद्यालय के इन्टरमीडिएट स्तर पर अध्ययन कर रहे विद्यार्थियों को चुना गया। इसमें शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों का चयन यादृच्छिक न्यादर्श विधि द्वारा किया गया। जिसमें 60 (छात्र/छात्रायें) शहरी एवं 60 छात्र/छात्रायें) ग्रामीण विद्यार्थियों का किया गया। अतः न्यादर्श के रूप में कुल 120 विद्यार्थियों का चयन किया गया था।

उपकरण -

इस शोध अध्ययन में डा. तारा सभापति द्वारा निर्मित "संवेगात्मक परिपक्वता मापनी का प्रयोग किया गया। विद्यार्थियों के पारिवारिक पृष्ठभूमि को जानने के लिए शोद्यार्थी के द्वारा पारिवारिक पृष्ठभूमि प्रपत्र तैयार किया गया जिसमें निवास स्थान, अभिभावकों का शैक्षिक स्तर को सम्मिलित किया गया।

प्रदत्तों का संकलन -

प्रस्तुत शोध हेतु प्रदत्तों के संकलन हेतु शोधार्थी द्वारा चुने हुए विद्यालयों के प्रधानाध्यापको को शोध अध्ययन से अवगत कराया गया साथ ही प्रदत्त संकलन के लिए अनुमति प्राप्त की गयी। इसके पश्चात् शोद्यार्थी द्वारा विद्यार्थियों से परस्पर तादात्मय स्थापित किया गया। तत्पश्चात विद्यार्थियों को उपकरण को भरने से सम्बंधित दिशा निर्देश दिये गये एवं संवेगात्मक परिपक्वता प्रपत्र एवं पारिवारिक पृष्ठभूमि प्रपत्र प्रशासित किये गये एवं पूर्ण रूप भरने के पश्चात् उपकरणें को एकत्रित कियागया।

सांख्यिकी तकनीक –

इस शोध अध्ययन के विश्लेषण हेतु टी परीक्षण विधि का प्रयोग संवेगात्मक परिपक्वता के सार्थकअन्तर ज्ञात करने के लिए किया गया है।

प्रदत विश्लेषण एवं व्याख्या-संवेगात्मक परिपक्वता मापनी से एवं परिवारिक पृष्ठभूमि से प्राप्त आंकड़े का विश्लेषण करनेके लिए विद्यार्थियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि एवं संवेगात्मक परिपक्वता की सार्थकता की जांच मानक विचलन तथा टीपरीक्षण करने के उपरांत प्राप्त परिणामों की व्याख्या इस प्रकार की गई है।

परिकल्पना : 1 -

उच्च माध्यमिक स्तर छात्र एवं छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका : 1

उच्च माध्यमिक स्तर के छात्र एवं छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वताकी तुलना हेतुटी अनुपात :-

लिंग	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी – अनुपात	परिणाम
छात्र	60	135.03	9.93	0.80	असार्थक
छात्राएं	60	133.35	13.05		

0.05 * सार्थकता स्तर

सारणी-1 स्पष्ट होता है कि छात्र एवं छात्राओं की संवेगात्मक परिकल्पना का टी परीक्षण का मान 0.80 स्वतंत्रता अंश 118 पर प्राप्त हुआ जो कि 0.05 सार्थक स्तर के सारणी मान से कम है, सार्थक नहीं है। अतः शून्य

परिकल्पना उच्च माध्यमिक स्तर के विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिकल्पना में सार्थक अन्तर नहीं है। स्वीकृत की जाती है।

इससे यह निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि छात्र एवं छात्राओं की संवेगात्मक परिपक्वता केमध्यमान में कोई सार्थक अंतर नहीं है अर्थात छात्र और छात्रओं के संवेगात्मक परिपक्वता लगभग समान है। इसका मुख्य रूप से कारण पारिवारिक सदस्यों का छात्र एवं छात्राओं में कोई भेद न रखते हुए सकारात्मक दृष्टिकोण रखना हो सकता है।

परिकल्पना : 2 -

शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिकल्पना में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 2

शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिकल्पना की तुलना हेतु टी- अनुपात :-

निवास	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी – अनुपात	परिणाम
शहरी	60	133.18	12.73	0.95	असार्थक
ग्रामीण	60	135.20	10.30		

0.05* सार्थकता स्तर

सारणी -2 से स्पष्ट होता है कि शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता टी परीक्षण का मान 0095 स्वतंत्रता अंश118 परप्राप्त हुआ है जो कि 0005 सार्थकता स्तर पर सार्थक नहीं है। शून्य परिकल्पना शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है, स्वीकृति की जाती है। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संवेगात्मक परिपक्वता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। पारिवारिक पृष्ठभूमि में भिन्नता के बावजूद उसका कारण यह हो सकता है कि शहरी एवं ग्रामीण दोनों ही परिवेश में माता-पिता बच्चों को समान रूप से स्नेह, प्यार एवं सुख सुविधाओं प्रदान करते हैं, जिससे उनका संवेगात्मक विकास भी समान होता है।

परिकल्पना : 3–

उच्च व निम्न शिक्षित अभिभावकों के बच्चों की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है।

तालिका 3

उच्च व निम्न शिक्षित अभिभावकों के बच्चों की संवेगात्मक परिपक्वता हेतु टी- अनुपात :-

अभिभावकों का शैक्षिक स्तर	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	टी – अनुपात	परिणाम
उच्च शिक्षित	50	136.42	12.07	1.77	असार्थक
निम्न शिक्षित	70	132.60	11.02		

0.05 * सार्थकता स्तर

सारणी 3 में स्पष्ट होता है कि उच्च शिक्षित एवं निम्न शिक्षित अभिभावकों के बच्चों की संवेगात्मक परिपक्वता टी परीक्षण का मान 1.77स्वतंत्रता अंश पर 11 8परप्राप्त हुआ है जो कि 0.05पर सार्थक नहीं है। शून्य परिकल्पना उच्च शिक्षित एवं निम्न शिक्षित अभिभावकों के बच्चों की संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अंतर नहीं है। स्वीकृति की जाती है। इससे निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि संवेगात्मक परिपक्वता में कोई सार्थक अंतर नहीं है। अर्थात उच्च शिक्षित एवं निम्न शिक्षित अभिभावकों के बच्चों के संवेगात्मक परिपक्वता समान है, इसका मुख्य कारण यह हो सकता है कि अभिभावक की शिक्षा हाई स्कूल हो या इंटरमीडिएट स्तर की हो या स्नातक व स्नातकोत्तर दोनों ही प्रकार के अभिभावक बच्चों के व्यक्तित्व विकास के लिए जागरूक हैं, वे अपने अनुभवों व सीमित ज्ञान आधार पर बच्चों की संस्कारित शिक्षा प्रदान करने को तत्पर रहते हैं।

निष्कर्ष :

शोध अध्ययन से प्राप्त परिणामों का विश्लेषण करने के पश्चात निष्कर्ष रूप से कहा जा सकता है कि छात्र एवं छात्राओं के संवेगात्मक परिपक्वता शहरी एवं ग्रामीण विद्यार्थियों के संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अन्तर नहीं है। परिवारिक पृष्ठभूमि के आधार पर उच्च शिक्षित एवं निम्न शिक्षित अभिभावकों के बच्चों की संवेगात्मक परिपक्वता संवेगात्मक परिपक्वता में सार्थक अन्तर नहीं है

शैक्षिक उपादेयता -

शोध अध्ययन की शैक्षिक उपादेयता अभिभावकों के लिए सहायक सिद्ध होंगे। परिवार बच्चे की प्रथम पाठशाला' होती है। बच्चों के सांवेगिक विकास में अभिभावकों की अहम भूमिका होती है। प्रायः यह देखा गया है कि उन बच्चों की सांवेगिक परिपक्वता अधिक होती है, जिनको अपने माता-पिता का प्यार, उचित लालन-पोषण और खुले विचारों का माहौल मिला होता है, जबकि दूसरी ओर कठोर नियन्त्रण एवं अनुशासन दण्ड गन्दी भाषा का प्रयोग, धोखा देने सम्बन्धी माहौल में रहने वाले बच्चों का सावेगिक परिपक्वता निम्न स्तर की होती है। अतः अभिभावका को पारिवारिक पृष्ठभूमि को ध्यान में रखते हुए आवश्यकता से कम संसाधनों में ही अपने किशारों को उचित मार्गदर्शन करना चाहिए। साथ ही उनकी संवेगात्मक विकास की ओर विशेष ध्यान देना चाहिए।

शिक्षकों को एवं विद्यालय प्रशासन को इन विद्यार्थियों के सन्तुलित विकास के लिए पर्याप्त अवसर उपलब्ध कराने चाहिए। शिक्षकों के द्वारा इनके प्रति परस्पर मैत्री एवं सहयोग की भावना का माहौल दिया जाना चाहिए। विद्यालय स्तर पर विभिन्न प्रकार की पाठ्य सहगामी गतिविधियाँ के द्वारा इन विद्यार्थियों में सामाजिक कौशल को दृढ़ बनाया जाना चाहिए, जिससे वे अपने अभिभावकों, शिक्षकों एवं समाज के नागरिकों के साथ सौहार्दपूर्ण सम्बन्ध स्थापित कर सकें।

यह अध्ययन शिक्षकों एवं समाज के नागरिकों के साथ परामर्शदाताओं के लिए भी उपयोगी सिद्ध जिससे कि वे सांवेगिक रूप से अपरिपक्व किशोरों के मजबूत एवं कमजोर पक्ष को समझकर परामर्श दे सकें। विभिन्न पारिवारिक पृष्ठभूमि के अभिभावकों को जागरूक कर सकें।

सन्दर्भ :

- पाठक, पुष्पेश 2008 पिथौरागढ़ के अंतर्गत माध्यमिक स्कूलों में पढ़ने वाले एकल परिवार व संयुक्त परिवार से सम्बन्धितविद्यार्थियों की भावात्मक परिपक्वता का तुलनात्मक अध्ययन।
- सिंह, अरुणकुमार, 2009. शिक्षा मनोविज्ञान भारती भवन पब्लिशर्स एंड डिस्ट्रीब्यूटर्स, पटना, बिहार
- त्रिपाठी, रीना. 2001. पीएचडी शोध प्रबंध सी०एस० जे० एम० विश्वविद्यालय। कौर, 2001. "ए स्टडी आफ साइकोलारिकल चेनजेज इन चिल्ड्रन न्यू टू इमोशन', रिसर्च इन एजुकेशन ।
- पाठक, पी.डी. 1995, भारतीय शिक्षा और उनकी समस्यायें, विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा
- पाठी. जे. 1989. द होम एन्वायरान्मेन्ट, पैरेन्ट चाइल्ड रिलेषनशिप एण्ड चिल्ड्रन्ज काम्पीटेम्स, डेयरिंग एडोललसेन्टस,उड़ीसा
- गुलाटी. के.सी. 1980. द रोल आफ फेमिली इन प्रमोटिंग व इमोनषल डेवलपमेन्ट, पी.एच.डी. इन एजुकेषन, दिल्ली विश्वविद्यालय दिल्ली
- डॉ. एस. राधाकृष्णन यूनिवर्सिटी एजुकेशन आयोग 1948.

***

बंगाल के लोक संगीत की प्रमुख विधाओं का अध्ययन

डॉ. प्रमिति चौधरी *

भारतीय संस्कृति का मुख्य आधार लोक संस्कृति है। वैदिक काल के संगीत का सिंहावलोकन करने पर भी हमें संगीत की दो धाराएं दिखाई पड़ती हैं जोकि मार्गी और देशी के नाम से जानी जाती हैं। देसी संगीत को लोक संगीत का पर्याय कहा जा सकता है। लोक संगीत का मुख्य तत्व आकर्षण है, हम बंगाल के लोक संगीत पर विचार करें तो पाते हैं कि बंगाल का लोक संगीत वहां की उर्वरक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि में पलकर लोक विधाओं में अग्रणी स्थान रखता है। यहां के लोकगीत जैसे कीर्तन,बाउल,भटियाली,चटका, गंभीरा,गाजन,भवइयाइत्यादि विश्व विख्यात है। इसके अतिरिक्त सारी, जारी, झूमर, पटुआगीत, बोलान, भाशानगीत, बारोमाशी, आगोमोनीगीत इत्यादि विभिन्न क्षेत्र जातिसंप्रदायों में प्रचलित है ।

इस लेख में कुछ प्रमुख लोकगीत जैसे भटियाली बाउल चटका भवइया को ही रेखांकित करने का प्रयास किया गया है।

भटियाली : भटियाली बंगाल के लोकगीतों का मूल है। अधिकतर लोकगीत समूह में गाए जाते हैं एवं उनमें लय की प्रधानता रहती है परंतु भटियाली अकेला व्यक्ति गाता है यह सुरप्रधान है और सुरोंका लगाव मन को झकझोर देता है। यह पुरुष प्रधान लोकधुन है जो अधिकतर बिलावल तथा कभी-कभी खमाज थाट पर आधारित होती है| भटियाली शब्द ज्वार भाटा से जुड़ा है। अर्थात जैसे जैसे पानी घटते हुए नदी के गर्भ की ओर समा जाता है ठीक वैसे ही इसमें स्वर ऊंचे से क्रमशः नीचे की ओर आते हैं । इसमें मुख्य रूप से संगति के लिए 'दो तारे' का प्रयोग होता है । कभी-कभी हम देखते हैं कि कलाकारchord का बखूबी प्रयोग करते हैं जैसे 'दोतारे' में यदिग प स बज रहा है तो गायकसर रे, स स ग प़में गा रहा होता है। भटियाली में प्रकृति तत्व की प्रधानता है । यह मुख्य रूप से नाविकों के द्वारा नदी पार करते समय गाया जाता है। बंगाल को नादियो ने समृद्ध किया है। कुछ स्थान तो ऐसे हैंजो वर्ष के 6 महीने जल मग्न रहते हैं ।वहां यातायात का मुख्य साधन नाव ही होता है ।ऐसे में मल्लाह के पास नाव खेते हुए अंत हीन आकाश और विस्तृत फैले पानी की पृष्ठभूमि में कुछ दार्शनिक विचार स्वयं ही पनपने लगते हैं जैसे मैं कौन ? कहां से आया हूं ? कहाँ जाना है आदि । कईबार उनके गीत के बोलों में प्रयुक्त 'नदी' शब्द जीवन रूपी नदी का रूप ले लेती है और नाव को खेने वाला नाविक परम ब्रह्म हो जाता है, और नाव संभवतः एक शरीर का रूप ले लेता है।इस तरह के सरल शब्दों से एक परिपक्व दार्शनिक चिंतन प्रायः ही भटियाली गीतों में पाया जाता है जो इस लोक शैली को अलग ऊंचाइयों पर ले जाता है।

प्रायः ऐसा लगता है कि तार सप्तक के स्वरों के माध्यम से मन के भावों को दूर किसी के उद्देश्य में पहुंचाया जा रहा है,जो इस शैली को और भी रोमांचक बना देती है। प्रारम्भिक दौर में पांच प्रकार के भटियाली प्रचलित थे। मुर्शिदी एवं बिच्छेदी भी इसी के प्रकार थे। भादू नामक भटियाली शास्त्रीय संगीत पर आधारित होता था। जिसमें सप्तक के बारहों स्वर प्रयुक्त होते थे जो किसी भी लोक

* एसोसिएट प्रोफेसर संगीत, प्रयाग महिला विद्यापीठ डिग्री कॉलेज, प्रयागराज

संगीत में दुर्लभ है। भटियाली मुख्यतः पूर्वी बंगाल, मैमनसिंह सिलेट से होते हुए पूरे बंगाल में फैला। इस विधा के मुख्य कलाकार हैं' मिर्जा अली, उकीली मुंशी, अब्बासउद्दीन, मलय गांगुली, निर्मलेन्दु चौधरी आदि ।

बाउलः– बंगाल में 'बाउल' एक सम्प्रदाय का नाम है। इसी अधार पर इनके गाए गीतों का नाम 'बाउल' पड़ा । बौद्ध धर्म के कारण आरम्भ में, बाउल ईश्वरवादी नहीं थे। बौद्ध धर्म के अवसान केबाद सिद्धयोगियों का सहजिया सम्प्रदाय विकसति हुआ। ये तन्त्र-मन्त्र की कला जानते थे। बाउल सहलिया दर्शन का ही रूप है । बाउल गीतों में आत्मसिद्धि की अवस्थाओं का बहुतायत से वर्णन मिलता है। इनके गीतों के दो भावार्थ होते हैं- एक समान्य अर्थ, दूसरा आध्यात्मिक । इनमें हिन्दू भक्ति एवं सूफियाना भाव दोनों का सम्मिश्रण पाया जाता है। इन्होंने देह तत्व को बहुत प्रधानता दिया है। ये इन्सान के अन्दर ही ईश्वर को खोजते हैं। ये इसनश्वर संसार को अनासक्त भाव से जीते हैं। इन्होंने मानव शरीर को मन्दिर तथा संगीत को सर्वशक्तिमान तक पहुंचने का मार्ग माना है। बाउल सम्प्रदाय में दो पंथ पाए जाते हैं- एक हैं जो पारिवारिक जीवन से परे एक सन्यासी का जीवन जीते हैं और दूसरे हैं जो अपने परिवार के साथ रहते है ।

यह सम्प्रदाय एक अखाड़े से दूसरे अखाड़े में घूमना है, इनका निश्चित ड्डिकाना नहीं होता है। इनका वस्त्र सफेद लुंगी और लम्बा अंगरखा होता है। औरतें सफेद साड़ी पहनती है, इनको 'बोष्टमी'कहा जाता है। ये एकतारा घुंधरूओं पर नाचते हुए गाते हैं। इनकी आंखे शून्य में गड़ी होती हैं। 'बाउल' शब्द का अर्थ कुछ लोग व्याकुल बताते हैं, ये आत्मसिद्धि में प्रयासरत होते हैं। कई बार बाउल वाद्यों के समूह के साथ भी गाते-बजाते हैं जैसे-भोन, दोतारा, गोपीयन्त, नूपुर, घुंघरू, ढोल, खोल, करताल, खमक, मंजीरा, बंसी इत्यादि । बाउल संगीत में कभी-कभी राग भेरवी का स्वरूप भी सुनाई पड़ता है। इनके गीत उत्तरांग प्रधान हैं ।

भवइयाः भवइया शब्द की उत्तत्ति भाव शब्द से हुई है। दूसरे मतानुसार 'भौआ' शब्द का अर्थ है चारागाह तथा बाओ शब्द का अर्थ है हवा के माध्यम से संगीत का बहना या दूर तक जाना। यह नारी प्रधान गीत है परन्तु इनके रचयिता पुरुष ही होते है। कुछ लोगों का मानना है कि यह बैरागियों का गाना है, यथार्थ पर आधारित होने के कारण इनके शब्द और स्वर हृदय को छू जाते है। भवइया गीत के कई प्रकार है:- एक प्रकार है 'सितान भवइया' यह ताल प्रधान गीत स्वरों के उतरते क्रम में गाए जाते है जिसमें नायिका अपनी है। पीड़ा कहती है । उसे 'गदान भवइया' कहते है, पशुओं को चराते समय उनके पदचाप के लय में जो गए जाते है उन्हें 'मइसाली भवइया' कहते है। इनके अतिरिक्त इनके प्रकार है जिन्हें शिरोल भवइया, गड़ान तथा दरिया-ओ-दिघल नासा भवइया कहते है। इन गीतों में प्रायः कोमल नि का प्रयोग होता है। ये गीत पहाड़ी, झिंझोटी इत्यादि रागों पर आधारित होते है। इसमें खेमटा ताल के विविध रूपदेखे जा सकते हैं। कुछ भवइया गीत बिना ताल के या अति विलम्बित लय में गाए जाते है। गायक गीत के बोलों के अनुरूप तालों का प्रयोग करते है। इस गायन शैली में दोतारे का प्रयोग होता है। इस शैली का जन्म स्थान कूच बिहार माना जाता है। यह नृत्य रहित गीत है और अधिकतर भवइया गायक समुद्र तट पर रहते हैं ।

चटकाः-इसे भवइया का ही एक प्रकार माना जाता है भवइया गाने के बाद चटका गाया जाता है। यह गानशैली उत्तरी बंगाल से आसाम तक लोकप्रिय है। इस शैली में व्यंगात्मक रूप में सामाजिक कुप्रथाओं

पर गीत बांधे जाते है। सामाजिक बुराईयों पर सर्वसाधारण के समक्ष कुठाराघात का यह एक सशक्त माध्यम है। दोतारे के संगति से यह भुतलय में गाया जाता है। दो चरित्र के बीच संवाद के रूप में भी यह गाया जाता हैं इन गीतों को अवधि निश्चित नहीं होती यह लम्बे समय तक चल सकता है। वैष्णव सम्प्रदाय का प्रभाव होने केकारण इनमें राधा कृष्ण की लीलाओं का मनोरंजक वर्णन होता है। ये गीत अधिकतर गद्यात्मक होते है अशालीन भाषा शैली के कारण ये गीत सभ्य समाज में अधिक लोकप्रिय नहीं है। अतः संगीत के सशक्त माध्यम, ये लोकसंगीत आज भी फिल्मों में एवं रिमिक्स इत्यादि के रूप में बहुप्रचलित है। बंगाल के लोकसंगीत कवि संगीतकार, चित्रकार, नाटक, जात्रा आदि सभी शाखओं के लिए प्रेरणा स्रोत है। शास्त्रीय संगीत सदैव से ही भारत देश की गरिमा का श्रोत रहा है संगीत के तीन अंग माने गये गायन वादन और नृत्य । संगीत रत्नाकर में भी कहा गया है।

सन्दर्भ :

1. ***संगीत विशारद वसंत***
2. ***भाटिर देशे भटियाली, मुस्तफा ज़मान अब्बासी***

***

मोदी युग में विदेश नीति का उभरता यथार्थवादी परिप्रेक्ष्य

डॉ. जयकुमार मिश्र *

स्वतंत्रता के बाद से यदि भारतीय विदेश नीति का सम्यक विश्लेषण किया जाय तो ज्ञात होगा कि भारत की विदेश नीति राष्ट्रीय हितों को प्राप्त करने के लिए आदर्शवादी साधनों[1] पर बल देती रही है लेकिन जैसे ही राष्ट्रीय हितों का तालमेल आदर्शवादी साधनों के साथ बिगड़ने लगता था वैसे ही भारत के नेतृत्व–कर्त्ता समय की आवश्यकता और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों को भाँपकर यथार्थवादी विदेश नीति का रास्ता अपनाने से नहीं चूके। इंदिराजी द्वारा प्रथम परमाणु परीक्षण और बांग्लादेश का निर्माण हो या हो या राजीव गाँधी द्वारा श्रीलंका में भारतीय सेना भेजना हो या नरसिंह राव की लुक ईस्ट पॉलिसी हो या बाजपेयी जी का न्यूक्लियर–डॉक्ट्रिन हो या नरेन्द्र मोदी जी की 'पड़ोसी प्रथम' की नीति हो– इन सभी में यथार्थवादिता के दर्शन किए जा सकते हैं।

प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी की विदेश नीति को अन्य प्रधानमंत्रियों की विदेश नीति से अलग इसलिए रखा जा सकता है कि, इन्होंने भारत के ऊपर लगे 'सॉफ्ट नेशन' के लोगो को हटाने का सफल प्रयास किया है। आतंकवाद के प्रति 'जीरो टॉलरेंस' की नीति को क्रियान्वित करते हुए म्यॉनमा में स्थित आतंकवादी ठिकानों को तबाह किया गया। वस्तुतः 4 जून, 2015 को मणिपुर के चन्देल जिले में नेशनल सोशलिस्ट काउंसिल ऑफ नागालैण्ड–खापलिंग गुट के आतंकवादियों ने भारतीय सेना के 6 डोगरा रेजीमेंट के जवानों पर घात लगाकर हमला किया, इसमें 18 जवान शहीद हुए, आतंकवादी इसके बाद पड़ोसी राज्य म्यॉनमा की सीमा मे चले गए। कारगिल युद्ध के बाद से यह भारत की सेना पर हुआ सबसे बड़ा हमला था। इसी रेजीमेंट की स्पेशल फोर्स ने 9 जून, 2015 को म्यॉनमा की सीमा में प्रवेश करके इस गुट के विरुद्ध कार्रवाई करते हुए 35 से अधिक आतंकवादियों को मार दिया[2] और इसी प्रकार 2–2 बार पाकिस्तान में घुसकर 'सर्जिकल स्ट्राइक'[3] करके यथार्थवादी विदेश नीति का स्पष्ट सन्देश दिया गया। यद्यपि सामान्य दृष्टि से देखने पर यह प्रतीत होता है कि, भारत ने अपने पंचशील के घोषित सिद्धान्त के विपरीत व्यवहार (अनाक्रमण और अहस्तक्षेप) किया है लेकिन लम्बे समय से निरन्तर घात लगाने वाले शत्रुओं से निबटने एवं राष्ट्रीय हितों के रक्षार्थ यह एक आवश्यक और सामयिक कदम था। मोदी ने आदर्शवादिता के मुखौटे को हटाकर यथार्थवादिता पर आधारित नए भारत की विदेश नीति को राष्ट्रीय हितों की प्राप्ति का साधन बना दिया है। मोदी के प्रयासों का ही परिणाम है कि, इस्लामिक देशों के संगठन ओ. आइ. सी. ने 1–2 मार्च, 2019 को सम्पन्न अपने सम्मेलन में भारत को पहली बार विशेष आमंत्रित सदस्य के रूप में बुलाया। इस सम्मेलन में शामिल सभी इस्लामिक देशों के प्रतिनिधियों के समक्ष बोलते हुए तत्कालीन भारतीय विदेश मंत्री सुषमा स्वराज जी ने 'धर्म प्ररित आतंकवाद' की निन्दा की और पूरी मानवता के लिए इसे अभिशाप बताया। इस सम्मेलन में किसी गैर–मुस्लिम देश के रूप में भारत ने पहली बार सहभागिता करके मुस्लिम देशों में अपनी स्वीकार्यता बढ़ने का प्रमाण दे दिया है। भारत को इस बैठक में बुलाए जाने से पाकिस्तान इतना नाराज हुआ कि उसने इस्लामिक देशों की बैठक में शामिल होने से ही इनकार कर दिया। इस्लामिक और अरब देशों के साथ सम्बन्धों को महत्वपूर्ण मानते हुए भी भारत ने 11 जून, 2019 को संयुक्त राष्ट्र की सामाजिक और आर्थिक परिषद (ECOSOC) में फिलिस्तीनी गैर सरकारी संगठन 'शहीद' को सलाहकार का दर्जा देने में इजराइल की आपत्ति के पक्ष में मतदान किया था क्योंकि इस संगठन ने इस्लामिक चरमपंथी संगठन हमास और हिजबुल्ला के साथ अपने सम्बन्धों के बारे में कोई भी स्पष्टीकरण देने से इनकार कर दिया था। आतंकवाद के प्रति भारत की 'जीरो टॉलरेंस' की नीति को अब विश्व के अन्य देश भी अपनी विदेश नीति के रूप में मानने लगे हैं, इसीलिए अमेरिका ने पुलवामा हमले के बाद भारत द्वारा किए गए सर्जिकल स्ट्राइक को 'काउन्टर–टेररिज्म–ऐक्शन' कहा। श्रीलंका[4]

* एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान, राजा हरपाल सिंह महाविद्यालय, सिंगरामऊ, जौनपुर (उ.प्र.)

और मालदीव[5] में भारत ने इसके पूर्व भी सैन्य हस्तक्षेप किया था लेकिन म्यानमॉ और पाकिस्तान में हुए सर्जिकल स्ट्राइक को महाशक्तियों द्वारा जिस सकारात्मक रूप में स्वीकार किया गया, उसे मोदी की विदेश नीति की स्वीकार्यता और भारत की बढ़ती क्षमता एवं आत्मविश्वास का प्रतीक है। आतंकवाद और घुसपैठ को निरन्तर प्रोत्साहन देने की अपनी नीति के बावजूद भी भारत ने पाकिस्तान के साथ करतारपुर कोरीडोर पर सफलतापूर्वक काम करके अपने सभी पड़ोसियों को मित्रता का स्पष्ट सन्देश दे दिया है। भारत ने महाशक्तियों के साथ अपने सम्बन्धों को एक नयी ऊँचाई देने के बाद भी 'बिग ब्रदर' की भूमिका निभाने का कोई भी प्रयास नहीं किया। पड़ोसियों के साथ अपने सम्बन्धों को पुनर्परिभाषित करने के लिए ही BIMSTEC को अधिक उपयोगी और व्यावहारिक बनाते हुए उसे पारस्परिक सहयोग के एक नए आधार के रूप में स्थापित किया है। 7–8 नवम्बर, 2019 को विशाखापत्तनम में इस संगठन के देशों के सम्मेलन में भारत ने संगठन के 'लैण्ड लॉक्ड' देशों को अपने बन्दरगाह की सुविधा देने का निर्णय किया। सदस्य देशों के बीच मुक्त व्यापार क्षेत्र स्थापित करने, सड़क एवं जल परिवहन बढ़ाने, इण्टर–कनेक्टेड पॉवर ग्रिड का निर्माण करने और रिजनल डिजास्टर मॉनीटरिंग एण्ड वार्निंग स्स्टिम का विकास करने के लिए भारत प्रयत्नशील है।

चीन की **'स्ट्रिंज ऑफ पर्ल्स'**[6] की नीति का भारत जिस रणनीतिक रूप से उत्तर तैयार कर रहा है वह भी भारतीय विदेश नीति में आयी एक नयी यथार्थवादिता का ही प्रमाण है। प्रायः अपने सभी अन्तर्राष्ट्रीय भाषणों में नरेन्द्र मोदी नें टेक्नोलॉजी जनित नव उपनिवेशवाद और कर्ज आधारित उपनिवेशवाद (जैसा कि चीन ने श्रीलंका के हम्बनटोटा बन्दरगाह और पाकिस्तान के साथ 'वन बेल्ट वन रोड पॉलिसी' के मामले में किया या अफ्रीकी महाद्वीप के देशों को भारी कर्ज देकर उनकी आर्थिक और सामरिक दृष्टि से महत्वपूर्ण खदानों को पट्टे पर लेकर कर रहा है) का सदैव विरोध करते रहे हैं। भारत अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों को न्यायसंगत और सम्मानपूर्ण ढंग से बनाए रखने के प्रति संवैधानिक रूप से वचनबद्ध है (भारतीय संविधान का अनु. 51 ख), इसीलिए चीन की इस नीति के प्रति विश्व के देशों को जागरूक बनाने और अफ्रीकी देशों को भारत के करीब लाने के लिए ही भारत ने प्रथम बार सभी अफ्रीकी देशों का शिखर सम्मेलन दिल्ली में आयोजित किया और अफ्रीका के अत्यंत गरीब देशों को कर्ज देने की सीमा 50 मिलियन डालर की कर दी, भारत ने 20 अफ्रीकी देशों में अपनी मदद से कन्वेंशन सेंटर बनाने की भी घोषणा की। मोदी के प्रथम कार्यकाल (2014–19) में भारत के राष्ट्रपति, उप राष्ट्रपति और प्रधानमंत्री ने कुल मिलाकर 29 बार अफ्रीकी देशों का दौरा किया। मोदी के इन प्रयासों का ही परिणाम है कि भारत आज अफ्रीका में 5वॉ सबसे बड़ा निवेशक और अफ्रीका तीसरा सबसे बड़ा निर्यातक क्षेत्र बन गया है। मोदी के काल में भारत ने अफ्रीकी देशों के साथ सम्प्रभुता, समानता, सम्मान और उत्तरदायित्व पर आधारित एक नयी सहभागिता प्रारम्भ की है। इससे अफ्रीकी देशों के सामने चीन की सच्चाई भी उजागर हुई है। तंजानिया द्वारा चीन के 10 अरब डॉलर की एक बन्दरगाह परियोजना को शोषणमूलक कहते हुए निरस्त करना और सिएरालियोन द्वारा एक हवाईअड्डा परियोजना का निरस्तीकरण इसका प्रमाण है।[7] चीन को काउन्टर करने के लिए ही भारत ने ईरान के चाबहार में पोर्ट का निर्माण किया और म्यानमॉ के सितवे में 'विशेष आर्थिक क्षेत्र' की स्थापना की पहल की। **भारत–म्यानमॉ–थाइलैंड त्रिपक्षीय अन्तर्राष्ट्रीय राजमार्ग (1400 किमी.) का निर्माण चाइना–पाक–इकोनामिक–कोरीडोर का ही भारतीय प्रत्युत्तर है।** इसी प्रकार दक्षिण कोरिया और आस्ट्रेलिया के साथ होने वाली भारत की रणनीतिक वार्ताएं और जापान एवं अमेरिका के साथ होने वाली **2+2 वार्ताएं** (इसके अन्तर्गत भारत के विदेश और रक्षा मंत्री अमेरिका, आस्ट्रेलिया एवं जापान के अपने–अपने समकक्षों के साथ सामरिक मुद्दों पर बैठक करते हैं)[8] **इण्डो–पैसिफिक–रीजन में चीन को घेरने की भारत की नीति (एक नवीन शक्ति–संरचना तैयार करना) का ही हिस्सा है।** इस रीजन के अनेक देशों के साथ भारत ने सैन्य सम्बन्धों को मजबूत किया है और सैन्य युद्धाभ्यास प्रारंभ किए हैं। सियाम–2017 (18–24 मई 2017) और एक्सरसाइज मैत्री–2019 (भारत और थाइलैंड की सेनाओं के बीच युद्धाभ्यास, 16–19 सितंबर, 2019), सिम्बेक्स–2017 (भारत और सिंगापुर की सेनाओं के बीच युद्धाभ्यास, 18–24 मई, 2017), सीटमेक्स–2019 (भारत, सिंगापुर और थाइलैण्ड की सेनाओं के बीच

युद्धाभ्यास, 16–20 सितंबर 2019), आसिनडैक्स–2019 (2–16 अप्रैल, 2019 के बीच भारत और आस्ट्रेलिया के बीच सम्पन्न प्रथम युद्धाभ्यास), नोमैडिक एलीफैण्ट–2019 (भारत और मंगोलिया की सेनाओं के बीच होने वाला वार्षिक युद्धाभ्यास, 5–18 अक्टूबर, 2019), काजिंद–2019 (भारत और कजाकिस्तान की सेनाओं के बीच होने वाला युद्धाभ्यास, 3–15 अक्टूबर, 2019), एक्युवरिन–2019 (भारत और मालदीव के बीच होने वाला युद्धाभ्यास, 7–20 अक्टूबर, 2019), समूद्र शक्ति–2019 (भारत और इण्डोनेशिया की सेनाओं के बीच होने वाला युद्धाभ्यास), मालाबार श्रृंखला (भारत, जापान और अमेरिका की सेनाओं के बीच प्रतिवर्ष होने वाला सैन्य युद्धाभ्यास), मित्रशक्ति श्रृंखला (भारत और श्रीलंका के बीच प्रतिवर्ष होने वाला सैन्य युद्धाभ्यास) आदि इसके प्रमाण हैं। डोकलाम में चीन का जिस प्रकार भारत ने सामना किया है और दक्षिण चीन सागर में चीन के बढ़ते दबदबे को रोकने के लिए जिस प्रकार जापान, दक्षिण कोरिया और अमेरिका (ये तीनो देश चीन के साथ नहीं हैं) के साथ अपने रणनीतिक सम्बन्ध मजबूत किए हैं, नागरिकता संशोधन बिल को लेकर मलेशिया के प्रधानमंत्री की टिप्पणी का भारत ने जिस प्रकार प्रत्युत्तर दिया है उससे आज पूरे विश्व में भारत की छवि एक सशक्त और सक्षम राष्ट्र के रूप में उभरी है। इससे विश्व की महाशक्तियाँ **भारत को चीन को रोकने वाली एक स्वाभाविक ताकत के रूप में देख रही हैं।** इस बात का प्रमाण **जी–7** की वायरिट्ज बैठक (फ्रांस, 24–26 अगस्त, 2019) में भारत को प्रथम बार **'वार्ता–भागीदार'** के रूप में शामिल होने के लिए मिला आमंत्रण है।

2017 में कजाकिस्तान की राजधानी अस्ताना में **'शंघायी सहयोग संगठन'** (S.C.O.) **के सदस्य के रूप मे भारत को शामिल किया जाना भारत की वैश्विक शक्ति के रूप में चीन की स्वीकार्यता है** और यह मोदी कालीन भारतीय विदेश नीति की उपलब्धि है। 17 सितम्बर, 2021 को शंघाई सहयोग संगठन के राष्ट्राध्यक्षों की परिषद की 21वीं बैठक ताजिकिस्तान की राजधानी दुशांबे में हाइब्रिड रूप में सम्पन्न हुई जिसमें भारत के विदेशमंत्री एस. जयशंकर ने भारत का प्रतिनिधित्व किया जबकि प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने एक विडियो लिंक के माध्यम से शिखर सम्मेलन को सम्बोधित किया। उन्होनें एस. सी.ओ. के व्यापक क्षेत्र में बढते कट्टरपंथ और उग्रवाद के कारण उत्पन्न होने वाली उन समस्याओं पर प्रकाश डाला जो इस क्षेत्र की उदारवादी और प्रगतिशील संस्कृतियों एवं मूल्यों वाले समाज की परम्पराओं के प्रतिकूल हैं। उन्होनें संयमित दृष्टिकोंण के साथ वैज्ञानिक तथा तर्कसंगत चिंतन को बढ़ावा देने के लिए एस.सी.ओ. से एक सार्थक एजेंडे पर काम करने का आह्वान भी किया।

9 सितंबर, 2021 का भारत की मेजबानी में 'ब्रिक्स' देशों के 13 वें शिखर सम्मेलन की ऑनलाइन बैठक में प्रधानमंत्री श्री मोदी ने आतंकवाद के सभी प्रतिरूपों के प्रति असहयोग की बात कही। BRICS, BIMSTEC, ASEAN, शंघायी सहयोग संगठन और पूर्वी एशियाई देशों के सम्मेलन के माध्यम से भारत दक्षिण– दक्षिण सहयोग का एक नया अध्याय तैयार कर रहा है। 25 सितंबर, 2021 को संयुक्त राष्ट्र महासभा को सम्बोधित करते हुए श्री मादी ने हिन्द–प्रशान्त क्षेत्र में सैन्य दखल बढ़ा रहे चीन को संकेत करते हुए महासागरों को मानवजाति की 'साझी धरोहर' बताया। समुद्री संसाधनों का दुरूपयोग रोकने का आह्वान करते हुए उन्होंने कहा कि, समुद्रों को सभी प्रकार के विस्तारवाद और सभी प्रकार के रोक–टोक से बचाने के लिए सभी देशों को आगे आना होगा। इसी क्रम में उन्होनें यू.एन.ओ के विस्तार की भी बात कही।

'ब्रिक्स', 'आसियान', और 'शंधाई सहयोग संगठन' जैसे मंचों को चीन के साथ साझा करने के बावजूद भी भारत चीन की विस्तारवादी नीतियों के प्रति पूरी तरह चौकन्ना है, इसका प्रमाण 'क्वाड' में भारत की उपस्थिति है। भारत की बढती आर्थिक–राजनीतिक–सामरिक शक्ति के कारण चीन को हिन्द–प्रशान्त क्षेत्र में घेरने की किसी भी रणनीति में अमेरिका या किसी भी देश के लिए भारत को साथ में लेना अपरिहार्य बन गया है। 24 सितंबर, 2021 को वाशिंगटन में सम्पन्न 'क्वाड' की प्रथम बैठक (जिसमें अमेरिका, भारत, जापान और आस्ट्रेलिया के शसनाघ्यक्ष शामिल थे) में भारत ने हिन्द–प्रशान्त क्षेत्र में शांति स्थापना के प्रयासों को अपना प्रबल समर्थन देकर चीन को संकेत दिया कि, वह उस क्षेत्र में विस्तारवाद की प्रवृत्तियों को बढ़ावा न दे। चीन द्वारा 'क्वाड' को 'एशियाई नाटो'

कहने का उत्तर देते हुए भारत के विदेश मंत्री एस. जयशंकर ने कहा कि, 'क्वाड' एक ऐसा मंच है जहाँ चार देश अपने लाभ एवं विश्व की भलाई के लिए पारस्परिक सहयोग करने के लिए आए हैं। यह मंच पूर्वी एशिया शिखर सम्मेलन एवं आसियान जैसे क्षेत्रीय मंच के साथ मिलकर काम करने का एक अभिनव अवसर है और 'क्वाड' और 'नाटो' के बीच समानता ढूँढना बेबुनियाद है। अमेरिका का 'स्वाभाविक रणनीतिक साझीदार' भारत अमेरिका की नाराजगी की परवाह किए बिना रूस से एस.–400 मिसाइल प्रणाली खरीदता है और न तो अमेरिका तुर्की की तरह भारत पर कोई प्रतिबंध लगाता है[9] और न रूस ने ही चीन की मित्रता का इस सम्बन्ध में कोई घ्यान रखा। यह घटनाक्रम बताता है कि, भारत–रूस के सम्बन्धों में अब अमेरिका कोई 'फैक्टर' नही है, ये सम्बन्ध किसी दबाव से संचालित नही होते। वस्तुतः मोदी कालीन विदेश नीति की एक बड़ी उपलब्धि भारत की पूरे विश्व में सर्वस्वीकार्यता है, इसी ताकत के बल पर भारत आज एक यथार्थवादी और दूरगामी परिप्रेक्ष्य वाली विदेशनीति के मार्ग पर आगे बढ़ रहा हैं। इसका प्रमाण उपरोक्त वर्णित दृष्टांत है।

2021 में भारत के विदेश नीति की असली परीक्षा अफगानिस्तान के मुद्दे पर हुई। अगस्त में अमेरिका व सहयोगी देशों की सेनाओं की वापसी के बाद सत्ता अब तालिबान के हाथों में आ चुकी है। 7 सितंबर, 2021 को गठित अंतरिम सरकार के सभी मंत्री सक्रिय आतंकवादी पृष्ठभूमि के हैं, ऐसे में आतंकवाद के प्रति अपनी 'जीरो टॉलरेंस' की नीति और अफगानिस्तान के पुनर्निर्माण के प्रति भारत की वचनबद्धता और उसे पुनः वैश्विक आतंकवाद की नर्सरी बनने से रोकने की प्रतिबद्धता भारत कैसे निभाएगा? यह एक जटिल प्रश्न है। इन प्रश्नों के उत्तर पर ही भारत की सुरक्षा निर्भर है। अगस्त के बाद जितने भी अन्तर्राष्ट्रीय शिखर सम्मेलन हुए उन सभी में भारत ने अफगानिस्तान का मुद्दा सफलतापूर्वक उठाया है। 9 सितंबर, 2021 को ब्रिक्स देशों की ऑनलाइन बैठक की अध्यक्षता करते हुए प्रधानमंत्री श्री नरेन्द्र मोदी ने कहा कि अफगानिस्तान की स्थिरता, शान्ति एवं प्रगति पूरे क्षेत्र के लिए महत्वपूर्ण है। मोदी जी के प्रयासो का ही परिणाम है कि, ब्रिक्स ने अपने घोषणापत्र में भारत की चिन्ता को स्वीकृति प्रदान करते हुए अफगानिस्तान में आतंकवाद के विरूद्ध लड़ाई को प्राथमिकता देने, अफगानी महिलाओं ,बच्चों एवं अल्पसंख्यकों के मानवाधिकारों की रक्षा करने और अफगानिस्तान को नशीले पदार्थों की तस्करी के केन्द्र में बदलने से रोकने के लिए पारस्परिक सहयोग की बात कही। 17 सितंबर, 2021 को दुशांबे में आयोजित 'शंघाई सहयोग संगठन' की अफगानिस्तान के मुद्दे पर आयोजित एक आउटरीच बैठक में श्री मोदी ने यह सुझाव दिया कि, इस क्षेत्र में आतंकवाद के प्रति 'शून्य सहिष्णुता' एवं 'आचारसंहिता' का विकास करने की तत्काल आवश्यकता है। उन्होने अफगानिस्तान में ड्रग्स, हथियारों एवं मानव तस्करी के साथ वहाँ संभावित मानवीय संकट का उल्लेख करते हुए अफगान लोगों के साथ भारत की एकजुटता के प्रयासों के प्रति वचनबद्धता का भी उल्लेख किया। 24 सितंबर, 2021 को 'क्वाड' की बैठक में भी प्रधानमंत्री श्री मोदी जी ने अफगानिस्तान एवं दक्षिण एशिया और भारत–प्रशान्त क्षेत्र की स्थिति पर अपने विचारों को स्पष्टता के साथ सामने रखा। इसी का परिणाम था कि, अपने सम्मेलन के अंत में 'क्वाड' के सभी चारो नेताओं ने तालिबान से अपील की कि, वह संयुक्त राष्ट्र सुरक्षा परिषद के प्रस्ताव संख्या 2593 का पालन करे, परदे के पीछे छिपकर आतंकवाद का प्रयोग न करे और सीमापार से किए जाने वाले हमलों सहित सभी प्रकार के आतंकी हमलों को करने वाले या करने की योजना बनाने वाले आतंकी समूहों को किसी प्रकार की वित्तीय, रसद या सैन्य मदद न करे। इससे पता चलता है कि, अफगानिस्तान के मुद्दे पर भारत का दृष्टिकोंण पूरी तरह स्पष्ट, पारदर्शी और वैश्विक हितों के परिप्रेक्ष्य में है। भारत तालिबान के शासन में भी वहाँ की जनता को मानवीय आधार पर मदद देने के प्रति वचनबद्ध है। इसे तालिबान शासन को समझना होगा और भारत की सुरक्षा चिन्ताओं के प्रति संवेदनशील बनना होगा।

1991 में तत्कालीन नरसिंह राव सरकार द्वारा घोषित 'लुक ईस्ट पॉलिसी' को मोदी सरकार ने 2014 में **'ऐक्ट ईस्ट पॉलिसी'** में बदलकर इस क्षेत्र के देशों के साथ सांस्कृतिक और व्यापारिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाने का निर्णय लिया। 2018 में आसियान देशों के साथ हुई बैठक में मोदी ने इस संगठन के सभी देशों के साथ भूमि, जल और डिजिटल कनेक्टिविटी पर बल दिया। आसियान के देश

भारत की भू–राजनीतिक दृष्टि में कितने महत्वपूर्ण हैं, इसका पता इस बात से चलता है कि, 2019 में गणतंत्र दिवस के अवसर पर मोदी सरकार ने आसियान के सभी 10 देशों के शासनाध्यक्ष/राष्ट्राध्यक्ष को मुख्य अतिथि के रूप में सम्मानित किया। मोदी ने R.C.E.P.(Regional Comprehensive Economic Partenership) को स्वीकार करने का आह्वान 2018 के आसियान के सिंगापुर सम्मेलन में किया था और इसे एशिया–प्रशान्त क्षेत्र की सुरक्षा, सम्पन्नता, व्यापार और निवेश के असीमित संभावनाओं के द्वार खोलने के लिए और क्षेत्र की बेरोजगारी दूर करने के लिए आवश्यक बताया। भारत ने तब इस पहल का स्वागत किया था कि, आशियान के 10 देशों तथा उनके वार्ता–भागीदार 6 राष्ट्रों (चीन, जापान, दक्षिण कोरिया, भारत, आस्ट्रेलिया और न्यूजीलैण्ड) सहित 16 देशों के बीच होने वाले इस प्रस्तावित समझौते का लक्ष्य विश्व का सबसे बड़ा स्वतंत्र व्यापार क्षेत्र बनाना है लेकिन 2019 के अन्त तक भारत की यह समझ में आ गया कि, इस समझौते में शामिल होने से भारत के आर्थिक हित प्रभावित होंगे क्योंकि इस नए आर्थिक संगठन के अधिकांश देशों के साथ भारत का आयात उसके निर्यात की तुलना में बहुत अधिक है जिससे भारत के व्यापार घाटे में भारी वृद्धि होगी, फलतः भारत ने अपनी शंकाओं के निराकरण होने तक इसमें शामिल होनें से इनकार कर दिया। यह मोदी की दृढ़ता का परिचायक है कि **भारत अपने 'मार्मिक राष्ट्रीय हितों' के साथ कोई भी समझौता करने से साफ मना कर दिया।**

मोदी कालीन विदेश नीति की एक बड़ी विशेषता यह है कि, **'सहभागी मूल्यों की संकल्पना'**। पर्यावरण संरक्षण, प्रदूषण संकट, कृषि–उत्पादन में वृद्धि, प्रति व्यक्ति आय को बढाना, आरगैनिक खेती और ब्ल्यू इकोनॉमी को प्रोत्साहन देना, डिजिटल डिवाइड को पाटना, ग्रीन एनर्जी, ग्रीन पर्यटन और कोविड–19 के टीकों की वैश्विक उपलब्धता सुनिश्चित करना आदि जैसे मुद्दे आज भारत की अन्तर्राष्ट्रीय प्राथमिकता में आ गए हैं। वैश्विक संगठनों का मंच हो या दो देशों के बीच होने वाली शिखर–वार्ताएं, भारत की प्राथमिकता राजनीतिक–कूटनीतिक या आर्थिक–सैनिक मुद्दों के साथ–साथ सामाजिक जीवन को बेहतर बनाने वाले पहलुओं पर अधिक केन्द्रित रही है, इससे अलग–अलग देशों की जनता को परस्पर एक–दूसरे के नजदीक लाने और अनौपचारिक सम्बन्धों को प्रगाढ करने में मदद मिली है। **ट्रैक–2 डिप्लोमेसी** को मोदी ने एक नयी धार देकर विदेश नीति को अभिनव आयाम दिया है, इसीलिए विदेशों में बसे भारतीयों का हित प्रमुख एजेंडे में आ गया है क्योंकि विदेशों में बसे अप्रवासी भारतीय और भारतीय मूल के विदेशी नागरिक अपने–अपने देश की सरकारों से भारत को अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर कूटनीतिक और रणनीतिक समर्थन दिलाने की दृष्टि से अत्यंत महत्वपूर्ण हो सकते हैं। मोदी के अनुसार ये अप्रवासी भारतीय विदेशो में भारत के सांस्कृतिक प्रतिनिधि हैं और इनके कार्य–व्यवहार और दृष्टिकोंण से भारत की नीतियों के प्रति एक स्वीकारात्मक वातावरण तैयार करने में मदद मिली है। मोदी की विदेश यात्राओं में भारत–वंशियों से मिलना और उनके हृदय में भारत के प्रति पल रहे सम्मान व प्यार का भारतीय विदेश नीति के लक्ष्यों को प्राप्त करने में सकारात्मक रूप से प्रयोग करना मोदी कालीन विदेश नीति का हिस्सा बन चुका है।

विदेश नीति के निर्धारण में एक संघात्मक और लोकतांत्रिक देश की सोच का समावेश करना नरेन्द्र मोदी की एक बड़ी उपलब्धि है। इकाई राज्यों को साथ लेकर उनके राज्य की सीमा से लगती अन्तर्राष्ट्रीय सीमा को पड़ोसी देश से व्यापार और सहयोग की लाइन के रूप में स्वीकार करना, सीमावर्ती राज्यों एवं पड़ोसी देशों के बीच सड़क, रेल और व्यापारिक सम्पर्क बढ़ाना और अन्तर्राष्ट्रीय नीतियाँ बनाते समय राज्यों के महत्वपूर्ण हितों को प्राथमिकता देना **(पैरा–डिप्लोमेसी)** मोदी कालीन विदेश नीति का महत्वपूर्ण पक्ष है। अनेक अन्तर्राष्ट्रीय बैठकों का आयोजन और शिखर वार्ताएं अब राज्यों में भी की जाने लगी हैं, विदेशी पूँजी निवेश को आकर्षित करने में राज्यों की भूमिका को भारत सरकार स्वीकार करने लगी है।[10] इससे भारत की विदेश नीति को अधिक यथार्थवादी बनाने में मदद मिली है।

सन्दर्भ :

1. स्वतंत्रता के बाद भारत ने विदेश नीति के निर्धारण में भी उन्हीं मूल्यों को अपना आधार बनाया जिन मूल्यों को लेकर वह अपने राष्ट्रीय आन्दोलन को खड़ा किया था। सभी राष्ट्रों के साथ समानता और न्याय पर आधारित सम्बन्धों का विकास करना, उपनिवेशों के स्वतंत्रता आन्दोलनों का समर्थन करते हुए भी किसी राष्ट्र के आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप न करना, शीत युद्ध और महाशक्तियों की प्रतिस्पर्द्धा से दूर रहकर गुटनिरपेक्षता के रास्ते पर चलना और अन्तर्राष्ट्रीय विवादों का मध्यस्थता द्वारा निर्धारण आदि नेहरू कालीन भारतीय विदेश नीति के आदर्श थे।
2. आतंकवादियों का पीछा करते हुए दूसरे देश में घुसकर कार्रवाई करने की यह प्रथम घटना है।
3. पाक प्रशिक्षित आतंकवादियों द्वारा किए गए उड़ी हमलें के प्रत्युत्तर में 28–29 सितम्बर, 2016 को पहली बार और पुलवामा हमले के बाद 26 फरवरी, 2019 को दूसरी बार भारत ने पाकिस्तान के विरूद्ध सर्जिकल स्ट्राइक किया था।
4. भारतीय शान्ति सेना 1987–90 तक श्रीलंका रहकर तमिल पृथकतावादी गुटों के विरूद्ध कार्रवाई करती रही और 1990 में राष्ट्रपति प्रेमदासा के आग्रह पर भारतीय प्रधानमंत्री वी.पी. सिंह ने उसे वापस बुला लिया।
5. 1988 मे मालदीव के राष्ट्रपति की तख्ता पलटने की कार्रवाई को भारतीय सेना नें सैन्य हस्तक्षेप करके विफल कर दिया।
6. अमेरिका के बूज एलेन हैमिल्टन ने 2004 में यह संकल्पना प्रस्तुत की थी जिसमें यह बताया गया कि, चीन हिन्द महासागर से लगे तटवर्ती देशों में सैन्य ठिकाने, आधारभूत ढाँचा, आर्थिक गलियारे, बन्दरगाहों का प्रबंधन करने जैसी नीतियों के सहारे पूर्वी एशिया से लेकर पश्चिमी एशिया तक अपना प्रभाव क्षेत्र बढ़ा रहा है। इससे इस क्षेत्र की शान्ति, सुरक्षा और स्थिरता को एक नया खतरा पैदा हो गया है।
7. दीपांजन रॉय चौधरी, 'इण्डिया एक्सटेंड्स डॉलर 50 मिलियन पैकेज टू होस्ट अफ्रीकन यूनियन सम्मिट', इकोनॉमिक टाइम्स, 12 जुलाई, 2019.
8. अमेरिका के साथ इस प्रकार की वार्ता सर्वप्रथम सितंबर 2018 में, जापान के साथ नवंबर 2019 में और ऑस्ट्रेलिया के साथ नवंबर 2021 में प्रारम्भ हुई हैं।
9. एस.400 मिसाइल प्रणाली रूस से लेने के कारण ही अमेरिका ने अपने नाटो सहयोगी तुर्की पर विभिन्न प्रतिबंध लगा दिए थे, पर भारत पर नहीं लगाया।
10. ओब्जा हजारिका, 'इवॉलविंग डाइनेमिक्स ऑफ फेडरलिज्म एण्ड फॉरेन पॉलिसी', इण्डियन फॉरेन अफेयर जर्नल, वॉल्युम 9, नं. 1, जनवरी–मार्च 2014, पृ. 33–45.

***

एकात्म मानववाद : पं. दीनदयाल उपाध्याय जी के राजनीतिक विचारों की समीक्षा

डॉ. सरिता सिंह *

पं. दीनदयाल उपाध्याय उन आदर्श पुरुषों में से एक थे जिन्होंने, शुक्र, वृहस्पति और चाणक्य की भाँति आधुनिक राजनीति को शुचि और शुद्धता के धरातल पर खड़ा करने की प्रेरणा दी है। उनकी इस महानता को उनकी मृत्यु के बाद समर्थकों और विरोधियों दोनों ने समान रूप से स्वीकार किये हैं।

पं. दीनदयाल उपाध्याय का जन्म 25 सितम्बर 1916 को उत्तर प्रदेश, मथुरा जिला के नगला चंद्रभान गाँव में हुआ था। बचपन से ही उनके जीवन में विपत्तियों का पहाड़ टूट पड़ा था। ढाई साल की ही उम्र में उनके पिता भगवती प्रसाद का स्वर्गवास हो जाने से, पिता का छाया उनके जीवन से हट गया। उसके कुछ वर्षों के उपरान्त उनकी माताजी का भी देहान्त हो गया, तब उनकी उम्र महज 7 वर्ष थी, वह अपने नाना के यहाँ चले गये लेकिन 2 वर्ष के उपरांत नाना का भी देहान्त हो गया। जीवन के अठ्ठारहवें पड़ाव में वह 9वी कक्षा में अध्ययन कर थे तब उनके छोटे भाई भी रोगग्रस्त हो गये पर ईश्वर को कुछ और मंजूर था उनके भाई की मृत्यु हो जाती है और वह अकेला पड़ जाते हैं। लेकिन पं0 दीनदयाल अपने हौसले को कमजोर नहीं पड़ने देते और विपरीत परिस्थितियों में भी वे पूरे उत्साह से आगे बढ़ते रहें।

पंडित दीनदयाल उपाध्याय की यह मान्यता रही है कि व्यक्ति के सर्वांगीण विकास के लिए उसका संगठित और समग्र विकास होना चाहिए तभी उसका विकास संभव है। लेकिन यदि व्यक्ति के विभिन्न पहलू संगठित नहीं हैं तब व्यक्ति भी संगठित नहीं हो सकता है। यदि समाज संगठित नहीं है तब राष्ट्र भी संगठित नहीं हो सकता है इस संगठित आधार पर ही अपने यहां व्यक्ति से परिवार, समाज, राष्ट्र, मानवता और चराचर सृष्टि का विचार किया गया है। इन सभी इकाईयों की परस्पर निर्भरता उनके संगठित और पूर्ण विकास की दिशा को तय करते हैं। यही एकात्म मानव दर्शन है। ''ऐसी स्थिति में सभी इकाइयाँ एक साथ एकात्म होते हुए चल रही हैं। जहां तक मानव समाज रचना का प्रश्न है इसका अन्तिम अनुक्रम यहीं हो सकता है कि क्रमशः व्यक्ति, परिवार, इसी में आगे बढ़ते–बढ़ते राष्ट्र का राष्ट्रीय शासन और फिर इसी एकात्म मानव दर्शन के आधार पर विश्व राज्य का आविष्कार होगा।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय की सम्पूर्ण चेतना का आदि एवं अन्त राष्ट्र और राष्ट्रीयता से परिपूर्ण था। वह व्यक्ति से परिवार, परिवार से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से मानवता की जिस श्रृंखला में एकात्म मानवतावाद का स्वर गुंजरित करते हैं उसमें राष्ट्र की कल्पना मूर्त–अमूर्त कल्पना और भावनाओं के शीर्ष पर थी, यही कारण है कि राष्ट्र का अस्तित्व उनके जीवन का ध्येयभूत भाव है। उनकी दृष्टि में राष्ट्र एक जीवित और गतिशील संगठित चेतना है जो व्यक्ति के साथ तादात्म्य स्थापित करके उसकी प्रगति के अवसर तय करती है। जब एक मानव समुदाय के समक्ष एक मिशन, विचार या आदर्श रहता है और वह समुदाय किसी भूमि विशेष से मातृ भाव से देखता है जो वह राष्ट्र कहलाता है। इनमें से एक का भी अभाव रहा तो राष्ट्र नहीं बनेगा। इस दृष्टि से व्यक्ति निश्चित भू–भाग तथा मिशन या आध्यात्मिक लगाव के बीच राष्ट्र की अनुभूति जन्म लेती है। यह अनुभूति ही राष्ट्र है। यह दार्शनिक अभिव्यक्ति उसी अनुभूति से विकसित है जिसमें राष्ट्र मातृभूमि का अमिट भाव अन्तर्निहित है।[1]

दीनदयाल उपाध्याय ने भी राष्ट्र क्या है, इस संबंध में अपने विचार बताये हैं कि– विश्व में आज समष्टि की सबसे बड़ी इकाई'राष्ट्र' है। अतः राष्ट्र की दृष्टि से अगर विचार करें तो राष्ट्र के लिए चार बातों की आवश्यकता होती है– प्रथम आवश्यकता है– देश। देश, भूमि और जन दोनों को मिलाकर बनता है। केवल भूमि ही देश नहीं। किसी भूमि पर एक जन (समाज) रहता हो और वह उस

* असिस्टेंट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, डी.ए.बी. (पी.जी.) कॉलेज, देहरादुन

भूमि को मां के रूप में पूज्य समझें, तभी वह देश कहलाता है। दूसरी आवश्यकता है सबकी इच्छाशक्ति, यानि सामूहिक जीवन का संकल्प। तीसरी एक व्यवस्था जिसे नियम या संविधान कह सकते हैं, इसके लिए हमारे यहां सबसे अच्छा शब्द प्रयुक्त होता है 'धर्म'। चौथी आवश्यकता जीवन आदर्श अर्थात संस्कृति। इन चारों का समुच्चय यानि राष्ट्र।[2]

दीन दयाल उपाध्याय अपनी स्नातक की पढ़ाई करने के लिए कानपुर गए, वहीं उनका संपर्क 1937 में अपने सहपाठी बालूजी महाशब्दे के माध्यम से राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ से हुआ। कानपुर में संघ संस्थापक डा0 हेडगेवार से भी उनकी मुलाकात हुई । कानपुर के इस विद्यार्थी जीवन से ही दीनदयाल उपाध्याय का सार्वजनिक जीवन प्रारंभ हो जाता है। सन 1937 के बाद 1941 तक छात्र रहे। सन् 1939 में उन्होंने संघ का 40 दिन का प्रशिक्षण वर्ग प्रथम वर्ष और सन् 1942 मे द्वितीय वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त किया। अपनी पढ़ाई पूर्ण करने तथा द्वितीय वर्ष का प्रशिक्षण प्राप्त करने के बाद पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रचारक बन गए। वे आजीवन संघ के प्रचारक ही रहे। संघ के माध्यम से ही वे राजनीति में गए, भारतीय जन संघ के महामंत्री तथा अध्यक्ष रहेऔर एक संपूर्ण राजनीतिक विचार के प्रणेता बने।

जनसंघ में प्रवेश

स्वतंत्रता उपरान्त भारत कई प्रकार की समस्याओं से भी घिरा हुआ था, देश किस दिशा में आगे बड़े और किस तरह से अग्रणी देशों की श्रेणी में अपने को ला कर खड़ा करे, यह बहस होना स्वाभाविक था। देश में कांग्रेस का एकतरफा जनाधार था और एक शक्तिशाली राजनीतिक दल के नाते भी भारत में कार्य कर रही थी। स्वतंत्रता के उदेश्य से ही कांग्रेस का निर्माण हुआ था और अपनी भूमिका भारत को आजाद करवाने के लिए बखूबी निभाई। अब भारत आजाद हो गया था औरकांग्रेस एक मजबूत राजनीतिक दल बन कर कार्य कर रहा था, पर स्वतंत्र भारत मे किस विचार को लेकर आगे बढ़ रही थी तब उस समयकांग्रेस का कोई बेहतर और मजबूत विकल्प भी नहीं दिख रहा था। कांग्रेस में कुछ नेता ऐसे भी थे जो भारत की परिस्थितियों को भली भांति समझते थे और राष्ट्रहित में कार्य कर रहे थे और कुछ ऐसे भी थे, जो अपने निजी स्वार्थो कोलेकर साथ चलते थे और राष्ट्र के विकास और प्रगति को दरकिनार कर अपना प्रभुत्व दिखा रहे थे। हम सरदार पटेल के प्रयासों और प्रयत्नों को नहीं भुला सकते, जिन्होंने अपनी बौद्धिक क्षमता तथा कुशल रणनीति का परिचय देते हुए विभिन्न स्वतंत्र रियासतों का भारत में विलय करवाया। डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी जो नेहरू सरकार में भारत के पहले उद्योग मंत्री थे, परंतु जब नेहरू लियाकत समझौता हुआ, उसके वो पक्षधर नहीं थे और उन्होंने मंत्रीमंडल से इस्तीफा दे दिया। डा0 श्यामा प्रसाद मुखर्जी के नेतृत्व में ही 21 अक्टूबर 1951 को अखिल भारतीय जनसंघ की स्थापना हुई। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ की शक्ति एवं डा0 मुखर्जी के नेतृत्व में अन्य हिंदू राष्ट्रवादी समुदायों को साथ लेकर भारतीय जनसंघ को विकसित करने की योजना बनी, लेकिन नियति इस योजना के अनुकूल नहीं थी। जनसंघ की स्थापना के 21 महीने के बाद ही कश्मीर आंदोलन के तहत श्रीनगर की जेल में 23 जून 1953 को डा0 मुखर्जी की मृत्यु हो गई ।[3] राष्ट्रवादी भारतीय राजनीति जिसका प्रतिनिधित्व जनसंघ को करना था, के नेतृत्व का भार अब पूरी तौर पर संघ द्वारा राजनीति में भेजे कार्यकर्ताओं पर आ गया था। पंडित दीन दयाल उपाध्याय ने प्रत्यक्षतः यह कार्य संभाला। सरसंघचालक मा0स0गोलवलकर इन नवीन राजनीतिक कार्यकर्ताओं के प्रेरणास्त्रोत व मार्गदर्शक बने।

भारत में जिस समय जनसंघ की स्थापना हुई, उस समय देश विपरीत परिस्थितियों से गुजर रहा था। कांग्रेस देश की परिस्थितियों को नहीं समझ पा रही थी और बिना किसी उद्देश्य तथा लक्ष्य से देश में कार्य कर रही थी। कांग्रेस के नेताओं में दूरदर्शिता की कमी साफ झलक रही थी। जन संघ का उद्देश्य साफ था और वह अखंड भारत की कल्पना कर कार्य करने वाला था। वह भारत को खंडित भारत करने के पक्ष में नहीं थे। जन संघ का स्पष्ट मानना था कि भारत एक शक्तिशाली राष्ट्र के रूप में दुनिया के सामने आएगा। दीनदयाल उपाध्याय के अनुसार अखंड भारत देश की भौगोलिक एकता का ही परिचायक नहीं है, अपितु जीवन के भारतीय दृष्टिकोण का द्योतक है, जो अनेकता में

एकता का दर्शन कराता है। अतः हमारे लिए अखंड भारत कोई राजनीतिक नारा नहीं है बल्कि यह तो हमारे संपूर्ण जीवनदर्शन का मूलाधार है।[4] स्वतंत्रता उपरांत कश्मीर भारत के लिए एक अनसुलझी सी पहेली बन कर सामने आया है। धारा 370 के तहत कश्मीर को विशेष राज्य का दर्जा प्रदान किया गया है। कश्मीर के अलगाववादी नेता कश्मीर को भारत का अभिन्न अंग न मानते हुए अपने राजनीतिक स्वार्थ को राष्ट्र के हित के आगे विशेष प्राथमिकता देते रहेहै।कश्मीर भारत का अभिन्न अंग होते हुए भी भारत के लिए एक बहुत बड़ी समस्या बना हुआ है। भारतीय जनसंघ की स्थापना के पश्चात ही कश्मीर को भारत में विलय करने के लिए आंदोलनरत है। कश्मीर आंदोलन के प्रसिद्ध तीन नारे थेः एक देश में दो विधान नहीं चलेंगे, एक देश में दो निशान नहीं चलेंगे, एक देशमें दो प्रधान नहीं चलेंगे। दीन दयाल उपाध्याय भी अपने एक लेख में लिखते है ः आज कश्मीर कसौटी बन गया है, भारत की पंथनिरपेक्ष राष्ट्रीयता की, नेशनल कांग्रेस के नेताओं की राष्ट्र निष्ठा की और संयुक्त राष्ट्र संघ की न्यायप्रियता की।[5] जिस कश्मीर के लिए भारतीय जनसंघ के प्रथम अध्यक्ष श्यामा प्रसाद मुखर्जी ने अपने प्राण न्यौछावर कर दिए और वर्तमान भारतीय जनता पार्टी के प्रेरणास्त्रोत दीन दयाल उपाध्याय अपने जीवन में कश्मीर के लिए आंदोलन लड़ते रहे, आज उसी भारतीय जनता पार्टी की सरकार केंद्र में है। वर्तमान समय में भारतीय जनता पार्टी प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के नेतृत्व में कार्य कर रही हैऔर धारा 370 को राष्ट्र की अखंडता में बाधा देखते हुए कश्मीर समस्या का समाधान 'कश्मीर' का पूरी तरह से भारत में विलय करके किया है। यह उसी चिंतन का परिणाम दिखता है, जिसके लिए जनसंघ के दोनो नेताओं ने अपने राजनीतिक जीवन में राष्ट्र की अखंडता और एकता के लिए अपने प्राण तक न्यौछावर कर दिए।

राजनीतिकदलों की भूमिका

भारत दुनिया का सबसे बड़ा लोकतांत्रिक देश है। एक स्वस्थ लोकतंत्र में राजनीतिक दलों की भूमिका अहम हो जाती है। भारत में काफी राजनीतिक दल सक्रिय हैं, कुछ क्षेत्रीय दल तथा कुछ राष्ट्रीय स्तर पर कार्य कर रहे है। सभी राजनीतिक दल अपने अपने विचार को लेकर तथा लक्ष्य लेकर कार्य कर रहे हैं। राष्ट्र के विकास तथा उन्नति को गति देने के लिए राजनीतिक दलों की भूमिका भी अहम हो जाती है। राजनीतिक दलों के बारे में दीन दयाल उपाध्याय अपनी राय रखते हैं और कहते हैं, कि एक श्रेष्ठ दल जो सत्ता पर अधिकार प्राप्त करने के इच्छुक व्यक्तियों का झुंड न होकर, एक जीवमान संगठन हो, जिसका सत्ता प्राप्त करने के अतिरिक्त अपना अलग वैशिष्टय हो।[6] वर्तमान समय में हम देखते हैं कि अधिकतर राजनीतिक दल स्वार्थ और एक दूसरे राजनीतिक दलों को नीचा दिखाने की राजनीति ज्यादा कर रहे हैं, जो कि देश के विकास में भी बाधक है। चुनावी संग्राम में हम देखते हैं कि किस तरह से राजनीतिक दलों द्वारा जातिगत समीकरण बिठाए जाते हैं, बाहुबल और धनबल का प्रयोग किया जाता है, जो कि एक स्वस्थ लोकतंत्र का परिचायक नहीं है। जातिवादी राजनीति वर्तमान समय में भारतीय लोकतंत्र में घातक बीमारी है। पं0 दीनदयाल उपाध्याय की आस्था हैकि मतदाता की बुद्धिमता ही इसका इलाज है, ये सब ऐसे तथ्य हैं कि जो देश की राजनीति को गलत दिशा में ले जा रहे हैं। राजनीतिक दलोंको जो देश की राजनीति में प्रमुख दल के रूप में विकसित होना चाहते हैं, इन खतरों से सचेत रह कर अपने सिद्धांत की हत्या नहीं करनी चाहिए। इसी भांति जनता का यह कर्तव्य है कि वह जागरूक रहकर बुद्धिमता के साथ अपने विवेक का परिचय दें, जिससे राजनीतिक दलोंके गलत दृष्टिकोण को सुधारा जा सके।[7]

भारतीय जनता पार्टी दीनदयाल उपाध्याय को अपना आदर्श तथा प्रेरणास्त्रोत मान कर कार्य कर तो रही है, पर कहीं न कहीं चुनावी संग्राम में जातिवादी समीकरण बिठाने के लिए जातिगत राजनीति का शिकार हो जाती है। उपाध्याय जितनी अधिक श्रद्धा भक्ति राष्ट्र के प्रति रखते थे, उतनी ही उनकी आस्था एवं श्रद्धा लोकतांत्रिक मूल्यों के प्रति थी। उन्होंने अपने संपूर्ण राजनीतिक जीवन में लोकतांत्रिक मूल्यों को गतिशीलता प्रदान की।

पं0 दीनदयाल उपाध्याय राष्ट्रहित में राजनीति करने वाले राजनीतिज्ञ थे। अपने भारतीय वीरों से, जिन्होंने भारत को स्वतंत्र करवाने के लिए अपने जीवन की आहुति स्वतंत्रता रूपी यज्ञ में

हंसते–हंसते डाल दी, उन्हीं से प्रेरणा लेकर ही दीन दयाल उपाध्याय राष्ट्रहित के लिए ही राजनीति में आए। उनका पूरा प्रयत्न जनसंघ को राष्ट्रनीति में कार्य करने वाला राजनीतिक दल बनाना था। इसका उदाहरण हम देख सकते हैं, जब चीन द्वारा भारत पर आक्रमण किया गया, उस समय भारतीय जनसंघ का उत्तर प्रदेश में किसान आंदोलन चला हुआ था। पं0 दीनदयाल उपाध्याय की राजनीति चाल सीधी थी, टेढ़ी नहीं। राष्ट्रीय संकट की घड़ी में भी सरकार को कठिनाई में डालकर अपने दल का स्वार्थ साधना उनकी राजनीति में नहीं बैठता था। इसलिए उन्होंने इस संकट की घड़ी में तुरंत अपने किसान आंदोलन को बिना किसी शर्त स्थगित कर दिया।[8]

संदर्भ :

1. एकात्म मानववाद, दीनदयाल उपाध्याय, जागृति प्रकाशन नोएडा, 2004
2. समर्थ भारत, सांस्कृतिक राष्ट्रवाद का अर्थ (प्रो0 बाल आपटे)
3. काश्मीर आंदोलन व मुखर्जी की मृत्यु के संदर्भ में निम्न पुस्तकें पठनीय है। उमाप्रसाद मुखर्जी, ए मुखर्जी, श्यामाप्रसाद मुखर्जी हिज डेथ इन डिटेंसन,' ए केस फार इन्क्वारी, कलकता सेकेंड एडीसन 1953, कश्मीर समस्या और जम्मू सत्याग्रह, भारतीय जनसंघ प्रकाशन, दिल्ली
4. दीनदयाल उपाध्याय, राष्ट्र चिंतन, (6) अखंड भारतः साध्य और साधन, राष्ट्रधर्म पुस्तक प्रकाशन, लखनऊ, पृ0: 33
5. पांच्चजन्य, कश्मीर अंक, (दीपावली, 2019) 28 अक्टूबर, 1962, पृ 167
6. दीनदयाल उपाध्याय,' मताधिकार कागज का टुकड़ा नहीं, लोकाज्ञा है', पाच्चजन्य, 21 जनवरी 1962 (चुनाव विशेषांक पृ0 40)
7. दीनदयाल उपाध्याय,' मताधिकार कागज का टुकड़ा नहीं, लोकाज्ञा है', पाच्चजन्य, 21 जनवरी 1962 (चुनाव विशेषांक पृ0 41)
8. पंडित दीन दयाल उपाध्याय, विचार दर्शन

***

पालिशब्दानुशासने पाणिनेः प्रभावः

श्रवण दास स्वामी *

पालिव्याकरणं यद्यपि संस्कृतव्याकरणवद् अतिप्राक्तनं, सुव्यवस्थितं, सुविशालं, वैज्ञानिकं नास्ति तथापि तत्र यावच्छक्यं पाणिनीयानुशासनानुरोधः पालितो दृश्यते। अत्रत्यः सन्धिभागः, नामपदसिद्धि व्यवस्था (सुबन्तप्रकरणम्), क्रियापदसिद्धिविभागः (तिङन्तम्), कारक प्रकरणम्, समासप्रकरणम्, अव्ययनिपातादिव्यवस्था, धातुपाठः, कृदन्तविधिः, तद्धितविधिश्चेति सर्वोऽपि प्रक्रियाप्रपञ्चः पाणिनिनानुगृहीत इव प्रतिभाति।

कारकनियमोपरि पाणिनीयप्रभावः– कच्चायन–मोग्गल्लान–व्याकरणयोः कारकनियमाः पूर्णतया पाणिनिनियमानां प्राकृतं संस्करणमेव प्रतिभान्ति। अत्र कानिचित् सूत्राणि त्रयाणां व्याकरणानां प्रदर्श्यन्ते, येषामाधारेणावगमः पुष्टः स्यात्–

पढमात्थमत्ते[1] लिंगत्थे पठमा[2] आमन्तणे[3] आल्पने च[4] इति सूत्राणि प्रातिपदिकार्थनिर्देशकानि सन्ति। पाणिनिना च **प्रातिपदिकार्थलिंगपरिमाण– वचनमात्रे प्रथमा[5]** इति व्यवस्थापितम्। एवमेव **कम्मे दुतिया[6] कर्मणि द्वितीया[7] कम्मत्थे दुतिया[8]** कालहानमच्चन्त संयोगे[9] कालाध्वनोरत्यन्त संयोगे[10] गति बुद्धि भुजपठ हरकर सायादीनं कारिते वा[11] गतिबुद्धि प्रत्यवसानार्थशब्द– कर्माकर्मकाणामणि कर्ता स णौ[12] इत्यादि कर्मकारकनियमाः सन्ति।

एवमेवान्यसूत्राणि अपि सन्ति, यथा सत्तम्याधारे[13] यतो निद्धारणं[14] छठ्ठी चानादरे,[15] यब्भावो भावलक्खणं[16] अपादाने पञ्चमी[17] अपपरीहि वज्जने[18] रिते दुतिया च[19] नमो योगादिस्वपि च[20] एवमेवान्येऽपि कारकनियमा बहुशः पाणिनीयं व्याकरणानुशासनमनुकुर्वन्ति, अस्मादिदं प्रत्येतव्यं यत् पालिव्याकरणस्य कारकनियमेषु पाणिनीय व्याकरणस्य महान् प्रभावोऽस्ति। पालिव्याकरणे समासनियमा अपि पाणिनिपरतन्त्रा एवावलोक्यन्ते। समासस्य मूलतश्चत्वारो भेदा अत्र गृहीताः अव्ययीभावः, तत्पुरुषः, बहुब्रीहिः, द्वन्द्वश्च। तत्पुरुषसमास्य प्रभेदः कर्मधारयस्तथाकर्मधारयस्य प्रभेदो द्विगुरस्ति द्वन्द्वस्य समाहारद्वन्द्वः, इतरेतरद्वन्द्वश्चेति द्वौ प्रकारौ भवतः। एते एव समासाः पाणिनिनाअपि समर्थिताः। मोग्गल्लायनेन समासार्थं स्यादि स्यादिनेकत्थम्[21] इति सूत्रं कल्पितम्। अस्यवृत्तौ स्याद्यन्ते स्याद्यन्तेन सहेकस्यं होतीति इदमधिकतं वेदितब्बं सो च भिन्नत्थानमेकत्थीभावो समासोति वुच्यते।"[22] एवमेव कच्चायनेनापि 'नामानं समासो युत्तत्थो'[23] अथ च वृत्तिकृता "ते सं नामानं पयुञ्जमानपद मत्थानं यो युत्तत्थो सो समाससंञ्ञो होति।" इति निरधारि।[24] इदं हि मतं पाणिनिमतस्यानुवादमात्रं प्रतिभाति। 'समर्थः पदविधिः'[25] 'सहसुपा'[26] इति सूत्राभ्यामुपर्युक्ताशयः प्रागेव पाणिनिना निरधारि।

बालमनोरमाकारेण सामर्थ्यस्य द्वैविध्यं परिगीतम्– "सामर्थ्यं द्विविधं व्यपेक्षालक्षणमेकार्थी भावलक्षणञ्च। तत्र स्वार्थपर्यवसायिनां पदानामाकांक्षादिवसाद् यः परस्परान्वयः, तद् व्यपेक्षाभिधं सामर्थ्यम्।

एकार्थी भावलक्षणसामर्थ्यं तु प्रक्रियादशायां प्रत्येकमर्थवत्त्वेन पृथग् गृहीतानां पदानां समुदायशक्त्या विशिष्टैकार्थप्रतिपादकतारूपम्।"[27] मोगलान्न व्याकरणे अस्यसिद्धान्तस्य स्वीकृतिर्दृश्यते। समासभेदानाञ्चातुर्विध्यमुभयत्र अभीष्टमस्ति। अव्ययीभावविधायकसूत्रस्य 'अव्ययं विभक्ति–समीपसमृद्धि'[28] प्रभृतेरूपान्तरं यथा 'अव्ययं विभति सम्पत्ति समीप साकल्यभावयथा– पच्छाययुगत्थे[29] इति सूत्र द्वारा मोग्गल्लायनेन प्रस्तुतम्। एवमेव उदाहरणान्यपि कुम्भस्स समीपमुपकुम्भम्। केसाकेसि, दंडादंडि, ओरेगंगं उपरिसिखरं इत्यादीनि संस्कृतव्याकरणमनुकुर्वन्ति।

तिङन्तप्रकरणेऽपि बहूनि सादृश्यानि अनुवर्तितानि च विलोक्यन्ते अद्यतनमनद्यतनमित्याख्यं भूतकाल–भविष्यत्कालयोः रूपद्वयम्, सामान्यभूत– कालः बहव्यस्तादृश्याः क्रियाः, बहवो धातवः, धातुरूपाणि च पाणिनेरनुकारं घोषयन्ति।

एवमेव तद्धितस्य ये नियमास्तेष्वपि पाणिनेः प्रभावो वीक्ष्यते। पाणिनिरिव कच्चायनमोग्गलायनादिभिरपि भाववाचकाः, देवतावाचकाः, अपच्चत्थक– अपत्यार्थकाः, निवासाद्यर्थकास्तद्धित प्रत्ययाः कल्पिता स्तथा

---

* गवेषकः, बौद्धदर्शनविभागः, सम्पूर्णानन्दसंस्कृतविश्वविद्यालयः, वाराणसी

पदरूपाण्यपि पानिनिच्छायामयानीव कल्पितानि। पुल्लिंगनामसु प्रत्ययविधानं कृत्वा स्त्रीरूपाणि अपि एतैर्वैयाकरणैः कल्पितानि। तानि च स्त्रीप्रत्ययान्तशब्दानामनुकरणमात्रं प्रतिभान्ति। एते प्रत्ययाः इनी, नी, आनी प्रभृतयः सन्ति, येभ्यः यक्षाद् यक्षिणी, नागान्नागिनी, दण्डाद् दण्डिनी, भिक्षोर्भिक्षुणी, स्वत्त्बन्धोः खत्तबन्धुनी प्रभृतयः शब्दा निष्पद्यन्ते। पाणिनिसम्प्रदाये आदृतः उणादिविधिरपि बौद्धवैयाकरणैरदत्तः। णिम्, आनि, तु, यु, ण्वु, णु, दु, ण प्रभृतय उणादि प्रत्यया एतैः परिकल्पितास्तथा तदाधारेण रेणु अण, सेतु, केतु, धातु, नगरकारो, भोगदायो, सिन्धुपायो प्रभृतिरूपाणि निष्पादितानि।

पालिव्याकरणानां धातवोऽपि बहुषु स्थलेषु पाणिनेरनुकारा इव भान्ति। अत्र चान्द्रवैयाकरणानामपि महान् प्रभावो वीक्ष्यते। स च वैयाकरण सम्प्रदायोऽपि संस्कृत भाषाया एव। गमनार्थकः अटधातुः, अच्च (अर्च) पूजार्थकोधातुः, भक्खणार्थकः अदधातुरेवमेवान्येऽपि धातवोऽत्र संस्कृतनिष्ठाः प्रतिष्ठामाप्नुवन्ति। पालिभाषायाः कृदन्तप्रकरणानुशासनमपि पाणिन्यादि संस्कृतशाब्दिकाभिप्रेरितमिवाभाति। क्त्वा, ल्तु, आवी, ण्वु, णन्, अक, अण, रू, णी, घन, द्यण प्रभृतयः कृत्प्रत्यय। अत्र यथावंदगीकृताः पालिभाषा संस्कारसमन्विताः। अव्ययनिपातादीनामपि यादृशी स्वीकृतिः पालिभाषायामवलोक्यते, तदवेक्ष्यास्या भाषायाः संस्कृतवासनान्वितत्वे न कोऽपि संशीतिलेशो विद्यते। उपर्युक्त नानाविधप्रमाणाधारेणेदं वक्तुं शक्यं यत् पालिभाषा प्रकारान्तरेण संस्कृतभाषाया एव सर्वजनगम्यं शोभनं रूपान्तरं वर्तते, यत्र पदे पदे संस्कृतच्छाया निदर्शनीयेतिदिक्।

---

1. मोग्ग0 2/39
2. कच्चा0 2/6/14
3. मोग्ग0 2/40
4. कच्चा0 2/6/15
5. पा0सू0 2/3/46
6. मोग्ग0 2/2
7. पा0सू0 2/3/2
8. कच्चा0 2/6/27
9. मोग्ग0 2/3
10. पा0सू0 2/3/5
11. कच्चा0 2/6/30
12. पा0सू0 1/4/52
13. मोग्ग0 2/34
14. मोग्ग0 2/38
15. मोग्ग0 2/37
16. मोग्ग0 2/36
17. कच्चा0 2/6/25
18. मोग्ग0 2/29
19. मोग्ग0 2/31
20. कच्चा0 2/6/24
21. मोग्ग0 3/1
22. मोग्ग0 वृत्ति0 3/1
23. कच्चा0 2/7/1
24. कच्चा0 वृत्ति0 2/7/1
25. पा0सू0 2/1/1
26. पा0सू0 2/1/4
27. वै0सि0कौ0 बालमनोरमा, पृ0–1
28. पा0सू0 2/1/6
29. मोग्ग0 3/2

***

विभिन्न वर्गों की शहरी व ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. हरीश चन्द्र *

शोध सार :

विकास के बहुआयामी क्षेत्रों में महिलाओं की बढ़ती हुयी उपलब्धियों और सहभागिता के बावजूद भी आज अखबारों की सुर्खियाँ उन पर हो रहे अत्याचारों व विषय विभिन्न घटनाओं से भरी पड़ी हैं, ऐसा क्यों हो रहा है? इस विचार को दृष्टिगत रखकर प्रस्तुत शोध किया गया है।

शोध हेतु चयनित समस्या का प्रमुख उद्देश्य विभिन्न वर्गों (सामान्य, अ0पि0वर्ग, अनु0 जाति एवं अनु0जनजाति) की शहरी व ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना है जहाँ शोध की प्रमुख परिकल्पना स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी व ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर जानना है। इसके लिए जालौन जिले के 6 महाविद्यालयों का यादृच्छिक प्रतिचयन विधि द्वारा चयन किया गया एवं इन 6 महाविद्यालयों से न्यादर्श के रूप में 180 छात्राओं का चयन किया गया, जिनका चयन शहरी, ग्रामीण, सामान्य वर्ग पिछड़ी जाति, अनुसूचित जाति व जनजाति के वर्गीकरण को ध्यान में रखकर किया गया। अध्ययन की प्रकृति को देखकर अध्ययन के लिए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। आँकड़ों के संग्रहण के लिए डॉ0 देवेन्द्र सिंह सिसौदिया व अल्पना सिंह द्वारा निर्मित ''एडोलसेन्स गर्ल्स इम्प्रूवमेन्ट'' मापनी का प्रयोग किया गया है टी–परीक्षण का प्रयोग करते हुए सार्थकता स्तर 0.05 व 0.01 के मान से तुलना की गयी है जिसके आधार पर यह पाया गया कि शहरी व ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है, और न ही सामान्य वर्ग व पिछड़ी जाति अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है। लेकिन पिछड़ी जाति और अनुसूचित जाति/ जनजाति की शहरी और ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर पाया गया है।

शब्द कुंजी : विभिन्न वर्ग, महिला सशक्तिकरण, जागरूकता।

प्रस्तावना :

''यत्र नार्यस्तु पूजयन्ते रमन्ते तत्र देवता।''

उक्त श्लोक से स्पष्ट है कि किसी भी समाज की खुशहाली का आधार समाज में महिलाओं के स्तर व उन्हें प्राप्त सम्मान से आँका जा सकता है। भारत में महिलाओं का सम्मानजनक स्थान सुनिश्चित कराने के उद्देश्य से कई अधिनियम व योजनाऐं आरम्भ की गई, जिनमें बाल विवाह अधिनियम, दहेज विरोधी अधिनियम पंचवर्षीय योजनाऐं, महिला कल्याण योजनाऐं, स्वास्थ्य योजनाऐं, मातृ शिशु कल्याण बोर्ड स्वयं सिद्ध योजनाऐं, महिला रोजगार प्रशिक्षण कार्यक्रम, राष्ट्रीय महिला आयोग का गठन इत्यादि है।

चौथे विश्व महिला सम्मेलन में महिला सशक्तिकरण के प्रति भारत में एक राष्ट्र नीति महिलाओं के हितों को दृष्टिगत रखकर बनाई गयी। प्राचीन स्थिति पर विचार करें तो मिलता है कि स्त्रियों को देवी माना जाता था और आधा अंग समझा जाता था। परन्तु मध्य युग तक आते–आते बाल विवाह, सती प्रथाख जौहर प्रथा, परदा प्रथा आदि कुरीतियों के कारण उनकी दशा अधिक चिन्तनीय हो गई। ब्रिटिश काल में कई समाज सुधारक हुए जिनके प्रयासों के फलस्वरूप स्त्रियों की दशा में काफी सुधार हुआ। तभी से स्त्रियों को शिक्षित कर जीवन में आगे बढ़कर अपने अस्तित्व को बनाऐ रखने की

* असि. प्रोफेसर, शिक्षा विभाग, आर.बी.एस. कॉलेज, आगरा

शुरूआत हुई। जो वर्तमान परिदृश्य तक आते–आते महिला सशक्तिकरण के रूप में उभर कर सामने आयी है।

अध्ययन की आवश्यकता :

यह दुर्भाग्य की बात है कि महिला सशक्तिकरण के इस युग में भी समाचार पत्रों की सुर्खियाँ नारी के प्रति दिनों–दिन बढ़ती हिंसा, बलात्कार, दहेज हत्याओं की दिल दहला देने वाली खबरों से भरी रहती है। स्त्री चाहे जितनी शिक्षित हो जाऐ लेकिन आज भी उसे पारिवारिक शोषण व पुरुष वर्चस्व को सहन करना पड़ता है। समाज में कई ऐसे पुरातन रीति रिवाज व रूढ़िया विद्यमान हैं जो स्वतन्त्रता के बाद भी महिलाओं को आज भी स्वतन्त्रता व अपने अस्तित्व का अनुभव नहीं होने देती है। वर्ष 2011 में न केवल छेड़छाड़ व बलात्कार की लगभग 653 घटनाऐं घटी बल्कि साथ ही साथ भारत में घरेलू हिंसा में मरने वाली महिलाओं की संख्या 8383 रही।

कुल मिलाकर स्थिति यह है कि तमाम योजनाओं के बाद भी नारी सशक्त होने की बजाय अशक्त आंतकित व वेवश नजर आती है। जरूरत है तो जागरूकता लाने की। अपने इसी उद्देश्य के तहत इस समस्या पर अध्ययन की आवश्यकता अनुभव की गयी।

अध्ययन के उद्देश्य :

विभिन्न वर्गों की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का अध्ययन किया लिखित उद्देश्य को दृष्टिगत रखकर किया गया है–

- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य एवं अन्य पिछड़ा वर्ग की छात्राओं के महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग एवं अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- स्नातक स्तर पर पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- स्नातक स्तर पर सामान्य वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- स्नातक स्तर पर पिछड़ा वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।
- स्नातक तक पर अनुसूचित जाति/जनजाति की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन करना।

शोध अध्ययन की परिकल्पनाऐं :

शोध उद्देश्यों को दृष्टिगत रखते हुए निम्नांकित शोध परिकल्पनाओं का अध्ययन किया गया है–

- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग एवं पिछड़ा वर्ग की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत सामान्य वर्ग एवं अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग की शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।

- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।
- स्नातक स्तर पर अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर है।

शोध समस्या से सम्बन्धित साहित्य का सर्वेक्षण :

भसीन अनीश (2009) ''विश्व में महिला अधिकारों की स्थिति'' प्रकरण पर अध्ययन किया और पाया कि महिलाओं को सभी तरह के अधिकार दिए जाने के बावजूद भी महिलाऐं अपने ही घर में सुरक्षित नहीं हैं। **त्रिपाठी एण्ड वाजपेयी (2010)** ''महिला सशक्तिकरण'' प्रकरण पर अध्ययन किया और पाया कि महिला सशक्तिकरण के लिए 5 स्तरों को समझना आवश्यक है। कल्याण, संसाधन तक पहुँच जागरूकता, गतिशीलता और नियंत्रण महिला सशक्तीकरण तभी होगा जब उनके नियन्त्रण करने की शक्ति व निर्णय लेने की भागीदारी बढ़ेगी। **उपाध्याय (2011)** ''वूमेन इम्प्रूमेन्ट थॉट हाइहर एजूकेशन प्रकारण पर अध्ययन किया और पाया कि महिलाओं को समाज में प्रत्येक दशा में गर्व महसूस करना चाहिए जब वे उच्च शिक्षा प्राप्त कर रही हो क्योंकि वह अपने राष्ट्र की उन्नति को प्रस्तुत कर रही है एवं सहयोग दे रही है। यदि हम महिला सशक्तीकरण को जानना चाहते हैं तो पहले हमें स्त्री पुरुषों के समानता की नीति अपनानी होगी।

प्रदीप एवं दांडा (2011) ''स्त्री विमर्श की अवधारणा व स्वरूप'' प्रकरण पर अध्ययन किया गया और पाया कि महिलाओं की सहभागिता बढ़ रही है। उनकी सहभागिता को मजबूती प्रदान करने में महिला संगठनों, शिक्षा संस्थानों स्वयंसेवी संस्थाओं, बुद्धिजीवियों तथा मीडिया का बहुत बड़ा हाथ है। इसलिए आज पीड़ित स्त्री अपने को छिपाने की कोशिश नहीं करती न वह समाज और लांछनों से डरती है। **राम (2011)** ''भारत में महिलाओं की बदलती स्थिति'' प्रकरण पर अध्ययन किया और पाया कि महिलाओं की स्थिति विभिन्न समयों में अलग–अलग रही है। साथ ही यह भी सत्य है कि स्वतन्त्रता के बाद महिलाओं की स्थिति में सुधार हुआ है और महिलाओं में काफी जागरूकता आयी है। **गिरोलकर (2011)** ''विवाहित कामकाजी महिलाओं की भूमिका'' प्रकरण पर अध्ययन किया गया और पाया कि जीवन स्तर के बढ़ते आयामों के कारण स्त्री का नौकरी करना अपरिहार्य हो गया है। परम्परागत प्रभुसत्ता में आमूल परिवर्तन तब आते है जब शिक्षा के कारण स्त्रियों के आत्म सम्मान एवं आत्म विश्वास में वृद्धि होती है। पौरुषीय प्रभुसत्ता समाज में स्त्रियों को ही हर क्षेत्र में सामंजस्य करना पड़ता है। **बहुगुणा (2012)** ने ''महिलाओं की सामाजिक–आर्थिक एवं राजनीतिक सशक्तीकरण की प्रगति प्रकरण पर अध्ययन किया ओर पाया बदलती हुई परिस्थितियाँ, महिलाओं की आधी दुनियाँ– आधी आबादी तथा भूमण्डलीकरण की नई व्यवस्था में महिलाओं की भूमिका में युगान्तकारी परिवर्तन की अपेक्षा की जा रही है। स्त्री विमर्श, सशक्तीकरण संघर्ष तथा सर्वोपरि सत्ताओं में भागीदारी पुनर्जागरण आवश्यक है। **भारद्वाज (2010)** ''भारत में बालिका शिक्षा'' : दशा और दिशा'' प्रकरण पर अध्ययन किया और पाया कि स्वतन्त्र भारत में महिलाओं संवैधानिक तौर पर पुरुषों के बराबरी का दर्जा प्राप्त किए जाने के बावजूद पढ़ाई– लिखाई तथा ज्ञानार्जन के मामले में बालिकाओं को बालकों से पीछे रहना लोक कल्याणकारी राज्य की समग्रता पर ही प्रश्नचिन्ह लगा देता है।

अनुसंधान विधि :

प्रस्तुत शोध अध्ययन की विषय वस्तु को देखते हुए ने सर्वेक्षण विधि का चयन किया है।

अध्ययन की जनसंख्या, न्यादर्श एवं न्यादर्शन तकनीक :

प्रस्तुत शोध अध्ययन में जनसंख्या क रूप में जालौन जिले के समस्त वित्तपोषित स्ववित्तपोषित महाविद्यालयों को चुना गया है। यादृच्छिक विधि का प्रयोग करते हुए 6 महाविद्यालयों से 180 छात्राओं का चयन किया गया है। जिसमें प्रत्येक महाविद्यालय से 30 छात्राओं को चुना गया है।

शोध उपकरण :

चयनित समस्या के लिए निर्धारण मापनी देवेन्द्र सिंह सिसौदिया और अल्पना सिंह द्वारा निर्मित ऐडोलसेन्स गर्ल्स इमप्रूवमेन्ट स्केल का प्रयोग किया गया है।

सांख्यिकीय विश्लेषण :

विभिन्न वर्गों की शहरी व ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता का तुलनात्मक अध्ययन हेतु आँकड़ों का विश्लेषण करने के लिए मध्यमान, मानक विचलन एवं टी–परीक्षण का प्रयोग किया गया है–

परिकल्पनाओं का परीक्षण एवं विश्लेषण :

H_{01}- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिक संख्या 1– स्नातक स्तर पर अध्ययनरत शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व ज मान

क्र. सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	मुक्तांश	टी–मान	सार्थकता स्तर
1	स्नातक स्तर पर शहरी अध्ययनरत् छात्राऐं	90	200.72	17.60	0.66	2.67	178	0.247	.05 असार्थक
2	स्नातक स्तर पर ग्रामीण अध्ययनरत् छात्राऐं	90	200.06	18.2					

उपर्युक्त तालिका संख्या 1 के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का परिकलित मान 0.247 है। जो मुक्तांश (df) 178 पर द्विपक्षीय परीक्षण के लिए .05 सार्थकता स्तर पर आवश्यक मान 1.96 से कम है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{01} स्वीकृत होती है।

H_{02} स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग एवं पिछड़ा वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या–2 स्नातक स्तर पर अध्ययनरत सामान्य वर्ग एवं पिछड़ा वर्ग की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन t मान

क्र. सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	मुक्तांश	टी–मान	सार्थकता स्तर
1	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग की छात्राऐं	18	200.5	17.60	2.67	3.06	118	0.87	.05 पर असार्थक
2	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग की छात्राऐं	18	203.17	15.9					

उपर्युक्त तालिका संख्या 2 के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का परिकलित मान 0.87 है। जो मुक्तांश (df) 118 पर द्विपक्षीय परीक्षण के लिए .05 सार्थकता स्तर पर आवश्यक मान 1.96 से कम है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{02} स्वीकृत होती है।

H_{03} स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तिकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या–3 : स्नातक स्तर पर अध्ययनरत सामान्य वर्ग एवं अनुसूचित जाति/ जनजाति वर्ग की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व ज मान

क्र. सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	मुक्तांश	टी–मान	सार्थकता स्तर
1	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग की छात्राऐं	60	200.5	17.60	3.00	3.27	118	0.92	.05 पर असार्थक
2	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् अनुसूचित जाति/ जनजाति वर्ग की छात्राऐं	60	197.5	18.40					

उपर्युक्त तालिका संख्या 3 के अवलोकन से स्पष्ट है कि t का परिकलित मान 0.92 है। जो मुक्तांश (df) 118 पर द्विपक्षीय ज परीक्षण के लिए .05 सार्थकता स्तर पर आवश्यक मान 1.96 से कम है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना (H_{03}) स्वीकृत होती है।

H_{04} स्नातक स्तर पर अध्ययनरत पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या 4– स्नातक स्तर पर अध्ययनरत पिछड़ा वर्ग एवं अनुसूचित जाति/ जनजाति वर्ग की छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व t मान

क्र. सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	मुक्तांश	टी–मान	सार्थकता स्तर
1	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग की छात्राऐं	60	203.17	15.9	5.67	3.13	118	1.81	.05 पर असार्थक
2	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् अनुसूचित जाति/ जनजाति वर्ग की छात्राऐं	60	197.5	18.40					

उपर्युक्त तालिका संख्या 4 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ज का परिकलित मान 1.81 है। जो मुक्तांश (df) 118 पर द्विपक्षीय ज परीक्षण के लिए .05 सार्थकता स्तर पर आवश्यक मान 1.96 से कम है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{04} स्वीकृत होती है।

H_{05} स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या 5– स्नातक स्तर पर अध्ययनरत सामान्य वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व t मान

क्र. सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	मुक्तांश	टी–मान	सार्थकता स्तर
1	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग की शहरी छात्राऐं	30	202.17	15.7	3.33	2.87	58	1.16	.05 पर असार्थक
2	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग की ग्रामीण छात्राऐं	30	198.84	21					

उपर्युक्त तालिका संख्या 5 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ज का परिकलित मान 1.16 है। जो मुक्तांश (df) 58 पर द्विपक्षीय ज परीक्षण के लिए .05 सार्थकता स्तर पर आवश्यक मान 2.00 से कम है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{05} स्वीकृत होती है।

H_{06} स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या 6– स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग एवं शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व t मान

क्र. सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	मुक्तांश	टी–मान	सार्थकता स्तर
1	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग की शहरी छात्राऐं	30	200.84	17.7	4.66	0.68	58	6.85	.01 पर सार्थक
2	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग की ग्रामीण छात्राऐं	30	205.5	17.3					

उपर्युक्त तालिका संख्या 6 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ज का परिकलित मान 6.85 है। जो मुक्तांश (df) 58 पर द्विपक्षीय ज परीक्षण के लिए .01 सार्थकता स्तर पर आवश्यक मान 2.66 से अधिक है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{06} अस्वीकृत होती है।

H_{07} स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

तालिका संख्या 7– स्नातक स्तर पर अध्ययनरत अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान, मानक विचलन व t मान

क्र. सं.	प्रतिदर्श	संख्या	मध्यमान	मानक विचलन	मध्यमानों का अन्तर	मानक त्रुटि	मुक्तांश	टी–मान	सार्थकता स्तर
1	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् अनु0जाति/ जनजाति की शहरी	30	199.17	21.3	3.33	1.06	58	3. 14	0.01 पर सार्थक

	छात्राऐं								
2	स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् अनु0जाति/जनजाति वर्ग की ग्रामीण छात्राऐं	30	195.84	20.5					

उपर्युक्त तालिका संख्या 7 के अवलोकन से स्पष्ट है कि ज का परिकलित मान 3.14 है। जो मुक्तांश (df) 58 पर द्विपक्षीय ज परीक्षण के लिए .01 सार्थकता स्तर पर आवश्यक मान 2.66 से अधिक है। अतः हमारी शून्य परिकल्पना H_{07} अस्वीकृत होती है।

अध्ययन के निष्कर्ष :

- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् शहरी व ग्रामीण छात्राओं के महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग व पिछड़ा वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग व अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछड़ा वर्ग व अनुसूचित जाति/जनजाति की छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् सामान्य वर्ग व शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर नहीं पाया गया है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् पिछडा वर्ग की शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर पाया गया है।
- स्नातक स्तर पर अध्ययनरत् अनुसूचित जाति/जनजाति वर्ग की शहरी एवं ग्रामीण छात्राओं में महिला सशक्तीकरण के प्रति जागरूकता में सार्थक अन्तर पाया गया है।

सन्दर्भ :

- श्रीवास्तव डी.एन. (2005), ''अनुसंधान विधियाँ'', साहित्य प्रकाशन, आगरा, पेज 449।
- शर्मा, आर.ए. (2006). ''शिक्षा अनुसंधान'', आर. लाल बुक डिपो, मेरठ।
- पाण्डेय रामशकल एवं मिश्र (2007), ''मानवाधिकार एवं मूल्य शिक्षण'', अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- कपिल एच.के. (2008). ''अनुसंधान विधियाँ'', भार्गव बुक डिपो, कचहरी घाट, आगरा।
- योजना मासिक पत्रिका (अक्टूबर 2008), ''स्त्री अधिकारिता 538'' योजना भवन, नई दिल्ली–110001।
- राय पारसनाथ (2008), ''अनुसंधान परिचय'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल पब्लिकेशन, आगरा।
- राय पी.के. (2008), ''शिक्षा में मापन मूल्यांकन एवं सांख्यिकीय'', युनिवर्सिटी पब्लिकेशन, नई दिल्ली।
- सशक्त स्त्री सशक्त देश (16 फरवरी 2008), ''डॉ0 प्रतिभा देवी सिंह पाटिल के भाषण से उद्धत।
- शैरी, जे.पी. एवं शुक्ला सी.एस. (2009), ''हैल्थ एजुकेशन'', विनोद बुक्स, श्री मन्दिर, आगरा, पेज 245–255।
- गुप्ता, एस.पी. (2010). ''उच्चतर शिक्षा मनोविज्ञान'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद।
- राय, पी.एन. (2010–11). ''अनुसंधान परिचय'', लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा।
- मदन, जी.आर. (2011). लघु शोध प्रबन्ध, एम.एड. उपाधि सम्बद्ध बुन्देलखण्ड वि0वि0, झांसी।

- शर्मा, आर.ए. (2011), ''शिक्षा अनुसंधान'', आर.लाल बुक डिपो, मेरठ।
- सिंह, शिव भानु (2011), ''समाज दर्शन का सर्वेक्षण'', शारदा पुस्तक भवन, इलाहाबाद, पेज 464–467।
- सिंह अरूण कुमार (2011). ''मनोविज्ञान समाजशास्त्र तथा शिक्षा में शोध विधियाँ'', मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, दिल्ली
- बुच. एम.बी., ''फोर्थ सर्वे ऑफ रिसर्च इन एजूकेशन'', एनसीईआरटी, नई दिल्ली।
- योजना मासिक पत्रिका (जून 2012), ''स्त्री सशक्तीकरण 538'' योजना भवन, नई दिल्ली 110001।
- त्रिपाठी गोपाल कृष्णमूर्ति (फरवरी 2013) ''महिला समाख्या'', प्रतियोगिता दर्पण, नई दिल्ली।

जनरल

- एडुसर्च (जनरल ऑफ एजुकेशनल) Vol. 2, No. 1, April 2011, रिसर्चस आरगेनाइजेशन विलासपुर (छत्तीसगढ़)
- रिसर्च लिंग Vol. 10, March 2010-11, वर्द्धमान अपार्टमेन्ट, ओल्ड पलासिया, इन्दौर।
- भारतीय आधुनिक शिक्षा एन.सी.ई.आर.टी. कैंपस, नई दिल्ली।
- युनिवर्सिटी न्यूज, AIU-Delhi, एम.जी. रोड, गोवा–403001।
- प्रतियोगिता दर्पण, 2/11 ए स्वदेशी बीमा नगर, आगरा।
- योजना मासिका पत्रिका, 538 योजना भवन, नई दिल्ली।
- इण्टरनेशनल जरनल, लक्ष्मीबाई नेशनल इन्स्टीट्यूट ऑफ फिजीकल एजुकेशन, शक्ति नगर, ग्वालियर।
- Journal of Indian, Vol. 25, No. 3.
- A.E.S. Journal of Educational Studies (Feb. 2013) Vol. 92, No.1.
- University News January 28, Feb. 03, 2013, Association of Indian University, New Delhi, Vol. 51, No. 04.

बेवसाइट :

www.eric.com
www.ugc.nic.in
http://www.aluweb.org
www.ncert.nic.in
www.gctetvee.com
www.google.com
www.wikepidia.com
www.beicsjeu.com
www.yojana.gov.in

***

पूर्व मध्यकालीन सिक्कों पर विदेशी प्रभाव : प्रतिहारों के विशेष संदर्भ में

अमित कुमार दूबे *

पूर्व मध्यकालीन शासकों के सिक्कों में प्रतिहारों के स्वर्ण सिक्के बहुत कम मिलते हैं। केवल कल्चुरि शासकों के सिक्के स्वर्ण धातुओं से निर्मित अधिक मात्रा में मिलते हैं।

प्रतिहारों के सिक्कों के निर्माण में स्वर्ण की कमी का निम्न कारण हो सकता है। उस समय अरबों का सिन्ध और पंजाब के क्षेत्रों पर अधिकार हो गया था जिससे इनका पश्चिमी देशों में व्यापार अवरूद्ध हुआ जिसके परिणाम स्वरूप इनके क्षेत्रों में स्वर्ण धातुओं की कमी हो गई।

प्रतिहार शासकों ने सासानी शासकों द्वारा प्रभावित होकर रजत सिक्कों को चलाया तथा हूणों शासकों द्वारा लुटे गए इरानी कोश के साथ–साथ वहाँ के सासानी शासकों के सिक्के बनाने की तकनीक को भी भारत लाया। जिसका प्रभाव प्रतिहार शासकों के सिक्कों पर देखने को मिलता है।

अरबों की सिन्ध विजय के पश्चात् मुहम्मद बिन–कासिम के गवर्नरों ने भारत में इस्लामी सिक्के तैयार कराये जो बगदाद के खलीफा की शैली के आधार पर तैयार किए गए थे। उन पर टकसाल तथा गवर्नर का नाम तथा धार्मिक वाक्य खुदे थे पर इसका प्रभाव सिन्ध तथा मुल्तान के अतिरिक्त बाहर के देशों में न फैल सका।

पूर्व मध्यकाल में गधिया सिक्के भी मिलते हैं जिसे बी0ए0 स्मिथ ने भारतीय सासानी सिक्का कहा है। इसी सन्दर्भ में मजूमदार और कनिंघम ने बताया है कि उन सिक्कों को पालवंशीय विग्रहपाल प्रथम ने चलाया था।

लल्लन जी गोपाल महोदय इसका खंडन करते हुए वर्णन करते हैं कि विग्रहपाल प्रथम ने केवल तीन या चार वर्षों तक शासन किया था जबकि ये सिक्के विहार और उत्तर प्रदेश के बड़े भागों से प्राप्त हुए हैं। अतः विग्रहपाल नामांकित सिक्के गुर्जर प्रतिहार वंश के किसी शासन ने चलाए थे।

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि ''श्री मदा दिवराह'' और ''श्री विनायकपाल देव लेख वाले सिक्के प्रतिहार राजा भोज प्रथम और विनायकपाल देव ने जारी किए थे। ग्वालियर अभिलेख में भी मिहिरभोज (840–890 ई0) की उपाधि आदिवराह मिलती है। उसने आदिवराह विरुद को धारण किया था। वह वराह अवतार की तरह भारतभूमि को म्लेच्छो (अरबों) से मुक्त कराना अपना परम धर्म समझता था। वह अपने को विष्णु का अवतार मानता था। उसके सूर्य और चक्र दोनों चिन्ह चक्रवर्तीत्व के द्योतक हैं। ठक्कुर फेरू के ग्रन्थ द्रव्य परीक्षा में इक्कीस गुर्जरी मुद्रा के अन्तर्गत 'वराहमुद्रा' और 'विनायकमुद्रा' का उल्लेख हुआ था।

अतः यह संकेत होता है कि गुर्जर–प्रतिहार वंश के भोज प्रथम और विनायकपाल ने ही अपने नाम वाले सिक्के चलाये थे। गुर्जरों के हूणों से सम्बन्ध थे, अतः उन्होंने हूणों के हिन्द–सासानी प्रकार के सिक्कों का अनुकरण किया होगा। मिहिरभोज के चाँदी में श्री मदा दिवराह नाम अंकित मिलता है। इसी के संदर्भ में ओझा अपना मत देते हैं कि छठीं शताब्दी में हूणों ने ईरान का खजाना लूटा और वे वहाँ के सासानियन राजाओं के चाँदी के सिक्के हिन्दुस्तान में ले आए। वे ही सिक्के राजपूताना, काठियावाड़, मालवा आदि प्रदेशों में चलने लग गए। आगे चलकर उन्हीं की भद्दी नकलें यहाँ भी बनने लग गई। जिनकी कारीगरी और आकार में न्यूनता आते–आते अंत में उन पर राजा के चेहरे की आकृति ऐसी बन गई कि जो पहचान योग्य नहीं थी। यद्यपि गधिया का नामकरण क्यों हुआ, प्रश्न अभी भी संदिग्ध है। कनिंघम के अनुसार– इन सिक्कों के पृष्ठ भाग पर गद्दी (आसन) का चित्रण हुआ है इसलिए इसे गधिया सिक्के कहते हैं। जी0पी0 टेलर गधिया शब्द की उत्पत्ति संस्कृत शब्द 'गर्दभीया' से बताया है। उनके अनुसार इस शब्द का तात्पर्य सासानी शासकों से है। उनका यह नाम जंगली

---

* शोध छात्र, प्राचीन भारतीय इतिहास संस्कृति एव पुरातत्त्व विभाग, आर्य महिला पी. जी. कॉलेज, चेतगंज, वाराणसी, सम्बद्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

गधों का पीछा करने के कारण पड़ा। सासानियों से शत्रुता के कारण हूणों ने उनके सिक्कों को गधा सिक्का (ऐस मनी) कहा। गधिया सिक्के मूलतः चाँदी एवं ताँबे के बनाए गए थे।

इस काल के जो सिक्के हैं उनमें से अधिकांश में मौलिकता का अभाव है। प्रतिहार शासित क्षेत्र के विभिन्न भागों में विभिन्न धातुओं का प्रयोग देखने को मिलता है। यही नहीं किसी भी क्षेत्र में किसी धातु का निश्चित और नियमित प्रयोग भी नहीं मिलता।

इस काल में हूणों के सासानी ढंग के सिक्कों के सीधे अनुकरण पर बने दरब (खोट मिली चाँदी) के सिक्के बड़ी मात्रा में राजस्थान, गुजरात, मालवा, उत्तर प्रदेश और बिहार में पाए जाते हैं। ये सिक्के भार में 60 ग्रेन के हैं और इन्हें द्रम्म कहा गया है।

निष्कर्ष :

पूर्व मध्यकालीन प्रतिहार शासकों द्वारा चलाए गए सिक्कों में स्वर्ण की कमी तथा सासानी शासकों की अनुकृति के अलावा यह भी हो सकता है कि इस काल में मुस्लिम शासकों का प्रभाव बढ़ गया जिसके परिणामस्वरूप कई समस्याएँ खड़ी हुईं– (1) महमूद गजनवी की लूट, (2) छोटे–छोटे राज्यों का होना, (3) व्यापार में असुरक्षा, (4) बहुमूल्य धातुओं के गहने तथा बर्तनों का प्रचलन, (5) सेना पर बहुत अधिक व्यय।

वस्तुओं के सस्ते होने से दैनिक जीवन में सोने के सिक्कों की आवश्यकता नहीं रह गई परिणामस्वरूप सोने का अभाव हो गया और स्वर्ण सिक्कों के प्रचलन में भारी कमी आई तथा चाँदी के सिक्कों के प्रचलन के साथ–साथ ताँबे के सिक्के का प्रचलन भी हुआ।

इस समय बड़े पैमाने पर गधैया सिक्के चलन में आते हैं जो सासानी शासकों की अनुकृति में जारी किए गए क्योंकि चाँदी एवं तांबा इस समय प्रचुर मात्रा में मौजूद थी।

संदर्भ :

1. उपाध्याय, वासुदेव, प्राचीन भारतीय मुद्राएँ, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 2016, पृ0 164–168
2. गोपाल, लल्लनजी, अर्ली मेडिवल कॉएन–टाइव्स ऑफ नार्दन इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, वाराणसी, 1966, पृ0 15
3. वाजपेयी, सन्तोष कुमार, ऐतिहासिक भारतीय सिक्के, इस्टर्न बुक लिंकर्स, दिल्ली, 1997, पृ0 269
4. वही, पृ0 269
5. सिंह, ओंकारनाथ, गुप्तोत्तर कालीन उत्तर भारतीय मुद्राएँ, विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, 1997, पृ0 27–33
6. सहाय, शिवस्वरूप, प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक इतिहास, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, दिल्ली, 1998, पृ0 433
7. गोपाल, लल्लनजी, द इकोनामिक लाइफ इन नार्दन इण्डिया, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिकेशन, वाराणसी, 1989, पृ0 222

***

सामाजिक वर्ग एवं मूल्य-विन्यास के सन्दर्भ में लखनऊ विश्वविद्यालय के विभिन्न शैक्षिक वर्ग के विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति-आवश्यकता' का तुलनात्मक अध्ययन

डॉ. गीता रानी *

शोध सार

प्रस्तुत शोध का उद्देश्य सामाजिक वर्ग एवं मूल्य–विन्यास के सन्दर्भ में ल0वि0वि0 के विभिन्न शैक्षिक वर्ग के विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति–आवश्यकता' का तुलनात्मक अध्ययन करना था। अध्ययन के लिए निम्नांकित उपकरणों यथा 'सामाजिक वर्ग अनुसूची' एवं 'निष्पत्ति–आवश्यकता' मापन हेतु (T.P.P.S-1973) पर आधारित स्वानिर्मित–लघु, अनुसूची' का प्रयोग किया गया। मूल्य–विन्यास के लिए रॉकी (1973) द्वारा निर्मित Value Survey डॉ0 कुमार, डॉ0 सुबोध द्वारा हिन्दी में रूपान्तरित उपकरण का प्रयोग कर सही व उपयुक्त पाये गये 506 प्रतिदर्श को अकस्मिक व स्तरीकृत प्रतिदर्श विधि द्वारा चयनित किया गया। शोध का उद्देश्य विभिन्न समूहों की निष्पत्ति–आवश्यकता' स्तर की अन्तरों की सार्थकता का निर्धारण करना निश्चित था। इसलिए टी0मान, मानक विचलन इत्यदि सांरव्यकीय विधियों का प्रयोग किया गया और प्रत्येक सामाजिक वर्ग के मूल्य–विन्यास हेतु ब्बउचवेपजम त्ंदा प्रदान कर (मध्यांक मानों को संयुक्त कर) प्रत्येक मूल्यों का मध्यांक मान सबसे कम था उसे प्रथम उससे अधिक को द्वितीय तथा इसी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुये मध्यांक मानों को 18 तक की श्रेणिया प्रदान की गयी। शोधार्थी द्वारा प्रत्येक सामाजिक वर्ग एवं शैक्षिक वर्ग समूहों, लिंगों, पर आधारित समूहों के केवल प्रथम पाँच एवं अंतिम पाँच वरीयता क्रम प्रदत्त मूल्यों का विश्लेषण किया गया। निष्कर्षित तथ्यों के रूप मे पाया गया कि शोध परिकल्पना 1.1 'सामाजिक वर्ग' के विद्यार्थी समूह के परिणाम केवल आंशिक रूप से ही सामर्थित है, परन्तु उच्च और मध्यम वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में कहा जा सकता है। कि इनके सन्दर्भ में विभक्त विभिन्न 'निष्पत्ति–आवश्यकता' स्तर के विद्यार्थियों के उच्चतम और निम्नतम मूल्य एक दूसरे के अधिक समान हैं और वे शोध परिकल्पना 1.1 का समर्थन अधिक नहीं करते है। मूल्यों के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि किसी एक सामाजिक वर्ग के किसी एक विशिष्ट 'निष्पत्ति–आवश्यकता' स्तर के छात्र और छात्राओं के मूल्य समान है। परिकल्पना 2 समार्थित कहीं जा सकती है।''

प्रस्तुत अध्ययन वर्तमान परिस्थितियों और दशाओं को देखते हुए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विभिन्न सामाजिक एवं शैक्षिक वर्गों में विभक्त विद्यार्थियों को बांटकर उनके 'निष्पत्ति–आवश्यकता' स्तरों के सन्दर्भ में किए गये मूल्यों के अध्ययन ने स्पष्ट किया कि सुखमय जीवन, परिवारिक सुरक्षा, बौद्धिक शान्तिमय संसार तथा महत्वाकांक्षा, योग्य, साहसी सभी समाजिक वर्ग शैक्षिक वर्ग के विद्यार्थियों ने उच्चतम वरीयता प्रदान कर उन्हें अपने महत्वपूर्ण मूल्यों में स्थान दिया। जो उनके भावी जीवन को दिशा–निर्देशित करते हैं।

मूल्य विकास की प्रक्रिया एक सहज और अधिगम क्रिया की तुलना में बहुत अधिक गूढ़, प्रच्छन और परोक्ष रूप से सम्पन्न होने वाली प्रक्रिया है। व्यक्ति के स्वयं के प्रयास व रूझान, निर्धारित मानदण्ड, उसकी अपनी इच्छाएँ, मान्यताएँ, महत्त्वाकांक्षाएँ और जीवन की अभिलाषाओं और अपेक्षाओं आदि के साथ–साथ कुछ विशिष्ट हासिल कर पाने की तमन्ना, समाज के आदरणीय और अनुकरणीय व्यवहार मानदण्डों और व्यक्ति के दृष्टांत, मूल्यों को पोषित करने वाले, बढ़ावा देने वाले वातावरण और परिवेश का सृजन इस परिवेश से मूल्यों को विद्यार्थी द्वारा सहज और सामान्य रूप से आत्मसात और ग्रहण कर अपने व्यक्तित्व का स्थाई अंश बना लेने हेतु शिक्षकों द्वारा शिक्षण के दौरान सृजित उपयुक्त परिस्थितियों एवं उनका चयन सभी वे अनन्य कारक और निवेश हैं जो 'मूल्य–विकास–प्रक्रिया' के साध्य हैं। इसीलिए मूल्य–विकास के लिए शिक्षा प्रक्रिया शिक्षक और शैक्षिक परिस्थितियों के

* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा शास्त्र विभाग, बी.एस.एन.वी.पी.जी. कॉलेज, लखनऊ

साथ–साथ व्यक्ति की सक्रिय भागीदारी, उसकी स्वयं की इच्छाशक्ति और 'उपलब्धि–आवश्यकता या निष्पत्ति आवश्यकता' बहुत ही आवश्यक और महत्त्वपूर्ण तत्व प्रतीत होते हैं। इसलिए ऐसा सोचना कि व्यक्ति की 'निष्पत्ति आवश्यकता' उसके 'शैक्षिक उपलब्धि' स्तर को बढ़ाने के साथ–साथ उसमें अपेक्षित मूल्यों के विकास की प्रक्रिया को आकांक्षित और वांछित दिशा प्रदान करने में भी सशक्त और महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकता है। यह कहना गलत नहीं होगा।

उपरोक्त कथित तथ्यों की पृष्ठभूमि में प्रस्तुत शोध समस्या की संकल्पना की गयी ताकि ऐसे प्रश्नों के भी उत्तर प्राप्त किए जा सकें जो यह स्पष्ट कर सकें कि क्या विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति आवश्यकता' में उनके 'मूल्य विन्यास' सामाजिक वर्ग, विभिन्न पाठ्यक्रम जिनका वे अनुगमन कर रहे हैं, उनकी लैंगिक भिन्नता आदि के भिन्न होने के परिणाम स्वरूप क्रमिक रूप से भिन्नता होती है या नहीं? कोई सम्बन्ध होता है या नहीं उनके मूल्यों का 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्वर पर क्या प्रभाव पड़ता है? आनुभविक तथ्यों एवं प्रमाणों के आधार पर ही ऐसे प्रमाण जुटाये जा सकते हैं जो वैज्ञानिक एवं अविवादित होंगे। इसीलिए उपरोक्त कथित प्रश्नों, विवादों, समस्याओं के सन्दर्भ में प्रस्तुत शोध हेतु जिस समस्या को उसे शोधकत्री ने निम्नांकित शब्दों में निरूपित किया है– "सामाजिक वर्ग एवं मूल्य विन्यास के सन्दर्भ में लखनऊ विश्वविद्यालय के विभिन्न शैक्षिक वर्ग के विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति आवश्यकता' का तुलनात्मक अध्ययन।"

शोध का उद्देश्य :

1. लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययनरत प्रत्येक शैक्षिक वर्गों के विभिन्न सामाजिक वर्ग के भिन्न–भिन्न 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के स्नातकों के 'मूल्य विन्यास' में प्रदर्शित उच्चतम पाँच एवं निम्नतम पाँच वरीयता प्राप्त मूल्यों के सन्दीर्ा में तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. लखनऊ विश्वविद्यालय के सभी शैक्षिक वर्गों में अध्ययनरत प्रत्येक सामाजिक वर्ग भिन्न–भिन्न 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के स्नातकों के 'मूल्य विन्यास' में प्रदर्शित उच्चतम पाँच एवं निम्नतम पाँच वरीयता प्राप्त मूल्यों का उनकी लैंगिक भिन्नता के सन्दर्भ में तुलनात्मक अध्ययन करना।

सीमाएँ :

- आश्रित चर के रूप में केवल 'Need Achievment' ही शोध में शामिल किए गए।
- शोध का उद्देश्य इतनी जिज्ञासा शान्त करना था कि क्या 'उच्च निष्पत्ति स्वर के विभिन्न सामाजिक वर्ग के विद्यार्थियों के मूल्य अपने निम्न 'निष्पत्ति स्वर के साथियों से क्रमिक रूप से भिन्न होते हैं या नहीं ताकि मूल्यों के विकास हेतु भावी शैक्षिक योजनाएँ निर्धारित करने की दिश में कुछ प्रभावी कार्य हो सकें। इसलिए विवरणात्मक शोध–स्वरूप की सीमाओं में ही इस कार्य को सम्पन्न करने का निश्चय किया गया।
- शोध हेतु आकस्मिक प्रतिचयन विधि से कला, विज्ञान एवं वाणिज्य के विद्यार्थियों को ही प्रतिदर्श में शामिल करने का निश्चय शोधार्थी ने समय व धन जैसे सीमित साधनों को देखते हुए किया।
- शोध में शामिल आश्रित चर यथा– विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति आवश्यकता' का उनके 'सामाजिक वर्ग' लिंग, शैक्षिक वर्ग द्वारा उच्चतम वरीयता प्राप्त पाँच एवं निम्नतम वरीयता प्राप्त पाँच मूल्यों जैसे स्वतंत्र चरों के सन्दर्भ में ही अध्ययन करने का निश्चय किया गया।
- लखनऊ विश्वविद्यालय के केवल तीन संकायों यथा– कला, विज्ञान एवं वाणिज्य में संचालित पाठ्यक्रमों में अध्ययनरत स्नातक स्तर के विद्यार्थियों को ही शोध प्रतिदर्श में सम्मिलत करने का निर्णय लिया गया।

शोध परिकल्पनाँए :

1.1. लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययनरत प्रत्येक सामाजिक वर्ग के विद्यार्थी समूह के 'मूल्य विन्यास' में प्रदर्शित उच्चतम पाँच एवं निम्नतम पाँच वरीयता क्रम प्राप्त मूल्यों में उनकी 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर की भिन्नता के सन्दर्भ में स्पष्ट अंतर होता है।

1.2. लखनऊ विश्वविद्यालय में अध्ययनरत भिन्न–भिन्न 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के सभी शैक्षिक धाराओं के विद्यार्थी समूहों के 'मूल्य विन्यास' में प्रदर्शित उच्चतम पाँच एवं निम्नतम पाँच वरीयता क्रम प्राप्त मूल्यों में उनके सामाजिक वर्ग की भिन्नता के सन्दर्भ में स्पष्ट अन्तर होता है।

2. लखनऊ विश्वविद्यालय के विभिन्न शैक्षिक धाराओं में अध्ययनरत उच्च, मध्यम और निम्न सभी सामाजिक वर्गों के भिन्न–भिन्न 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्वरों में विभक्त स्त्री विद्यार्थी समूहों के 'मूल्य विन्यास' के उच्चतम पाँच एवं निम्नतम पाँच वरीयता क्रम प्राप्त मूल्य अपने समकक्ष पुरुष विद्यार्थी समूहों के उच्चतम एवं निम्नतम पाँच श्रेणियाँ प्रदान मूल्यों से सर्वथा भिन्न होते हैं।

प्रतिदर्श : शोध उद्देश्यों की प्राप्ति हेतु लखनऊ विश्वविद्यालय के विभिन्न शैक्षिक धाराओं यथा कला, विज्ञान, वाणिज्य में अध्ययनरत स्नातकों के समूह में से आकस्मिक प्रतिचयन विधि का प्रयोग करते हुए 506 विद्यार्थियों का एक प्रतिदर्श चयनित किया गया।

सारिणी– 1

लखनऊ विश्वविद्यालय के विभिन्न सामाजिक एवं शैक्षिक वर्ग एवं लिंग के स्नातक स्तरीय विद्यार्थियों के प्रतिदर्श का प्रदर्शन :

शैक्षिक वर्ग	कला वर्ग		विज्ञान वर्ग		वाणिज्य वर्ग		विद्यार्थियों का कुल योग
सामाजिक श्रेणियाँ	छत्र176		छत्र166		छत्र164		
	छात्र छात्र90	छात्राएं छात्रा86	छात्र छात्र80	छात्राएं छात्रा86	छात्र छात्र86	छात्राएं छात्रा78	
उच्च वर्ग	16	20	16	18	20	18	108
मध्यम वर्ग	46	46	40	42	38	38	250
निम्न वर्ग	28	20	24	26	28	22	148
कुल योग	90	86	80	86	86	78	506

उपकरण :

इस अध्ययन के उद्देश्यों को ध्यान में रखते हुए निम्नांकित तीन उपकरणों का प्रयोग किया गया–

- सामाजिक वर्ग अनुसूची का प्रयोग कर प्रतिदर्श को तीन सामाजिक वर्ग यथा– उच्च, मध्यम तथा निम्न स्तरों में वर्गीकृत किया गया।
- मूल्यों के अध्ययन हेतु रॉकी (1973) द्वारा निर्मित Value Survey (मूल्य–सर्वे) उपकरण को कुमार डॉ0 सुबोध द्वारा हिन्दी में रूपांतरित उपकरण मूल्य सम्बन्धी आँकड़ों के संकलन में उपयुक्त माना गया। इसमें 18 टर्मिनल और 18 नैमित्तिक मूल्यों को शामिल किया गया।
- 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर मापने हेतु टी0पी0पी0एस0 त्रिपाठी पर्सनल प्रिफ्रेन्स शेड्यूल नाम के परीक्षण में से 'निष्पत्ति आवश्यकता' एकांशों' को शामिल कर एक नयी 'लघु अनुसूची' निर्मित की गयी।

उपकरणों का प्रशासन एवं आँकड़ों का संकलन :

लखनऊ विश्वविद्यालय के भिन्न–भिन्न शैक्षिक धाराओं में अध्ययनरत भिन्न–भिन्न लिंग के विभिन्न सामाजिक, आर्थिक प्रस्थिति के विद्यार्थी लगभग समान संख्या प्रतिदर्श में सम्मिलित हो सकें, इसका ध्यान रखते हुए भिन्न–भिन्न शैक्षिक धाराओं के भिन्न विषयों के छात्र एवं छात्राओं के पूरे 800 विद्यार्थियों पर सामाजिक वर्ग अनुसूची, निष्पत्ति आवश्यकता अनुसूची एवं मूल्य सर्वे प्रपत्र तीनों ही को एक साथ प्रशासित कर उनके सन्दर्भ में आँकड़े संकलित किए गए। बाद में गहरी जाँच के बाद कुछ 506 प्रपत्र ही सही, पूर्ण और स्पष्ट सूचना व्यक्त करते हुए पाए गए और इन्हीं 506 विद्यार्थियों को ही शोध में सम्मिलित प्रतिदर्श के रूप में स्वीकार किया गया।

सांख्यकीय प्रक्रिया एवं विश्लेषण :

'मूल्य सर्वे' के 18 टर्मिनल एवं 18 नैमित्तिक मूल्यों को विद्यार्थियों द्वारा दी गयी प्राथमिकताओं के सन्दर्भ में प्रदान की गयी वरीयता क्रम की आवृत्तियों की संख्या ज्ञात कर हर 'मूल्य' के लिए मध्यांक मान संगठित किए गए। इस सांख्यकीय प्रक्रिया से प्रत्येक मूल्य के मध्यांक मानों को संयुक्त (Composite Rank) क्रम प्रदान किया गया। जिन मूल्यों का मध्यांक मान सबसे कम था उसे प्रथम (I) उससे अधिक को (II) तथा इसी प्रक्रिया का अनुसरण करते हुए मध्यांक मानों को अट्ठारह तक की श्रेणियाँ प्रदान की गयीं। जिन मूल्यों के मध्यांक मानों में ज्ंससल थी। उनके सन्दर्भ में ब्वउचवेपजम त्ंदा प्रदान करने के लिए उनके ब्वउचवेपजम त्ंदा का औसत ज्ञात कर ज्ंससल की संख्या से भाग देकर प्राप्त संख्या से उसकी श्रेणी को प्रदर्शित किया गया है। शोधार्थी द्वारा प्रत्येक सामाजिक वर्ग एवं शैक्षिक वर्ग समूहों, लिंगों पर आधारित समूहों के केवल प्रथम पाँच एवं पाँच अंतिम वरीयता क्रम प्रदत्त मूल्यों की विश्लेषण किया गया है।

निष्पत्ति आवश्यकता के सन्दर्भ में :

'निष्पत्ति आवश्यकता' के सन्दर्भ प्राप्तांकों को परीक्षण निर्देशिका (Mannual) की पृष्ठ संख्या (7) पर अंकित सारणी (4) एवं (4ए) (क्रमशः छात्र एवं छात्राओं) की सहायता से शतांक मानों में परिवर्तित कर लिया गया। इस प्रकार प्राप्त शतांक मानों के आधार पर शोध की आवश्यकतानुसार समूह के उत्तरदाताओं को विभिन्न श्रेणी के समूहों में परिवर्तित किया गया– (1) 3rd Quartile से उच्च, (2) Between 2nd and 3rd Quartile (3) Between I^{s}t and 2nd Quartile, (4) Below the Ist Quartile. समूहों में वर्गीकृत करके इन श्रेणीकृत परीक्षार्थियों की आवृत्तियाँ गिनकर प्रत्येक श्रेणी के समूहों के प्रतिशत भी प्राप्त किए गए। इतना ही नहीं शोध का उद्देश्य विभिन्न समूहों के 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर की अन्तरों की सार्थकता का निर्धारण करना भी निश्चित था। इसलिए टी0 मान मध्यमान, मानक विचलन आदि सांख्यकीय विधियों का प्रयोग किया गया। चूंकि प्रस्तुत शोध के सन्दर्भ में प्रस्तावित सभी परिकल्पनाओं के सम्बन्ध में मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता सुनिश्चित करने हेतु द्विपुच्छीय परीक्षण ही उपयुक्त था। इसलिए सभी विभिन्न प्रकार के विभक्त समूहों की 'निष्पत्ति आवश्यकता' के मध्यमानों के अन्तर की सार्थकता का स्तर ज्ञात करने हेतु उनके t/c.r. मानों की गणना की गयी। तत्पश्चात् इस गणना किए गए टी0 मानों की तुलना टी0 अनुपात, सारिणी में प्रदर्शित सन्दर्भित मुक्तांश (Degree of Freedom) के अन्तर्गत .05 तथा .01 सार्थकता स्तर के नीचे प्रदर्शित टी0 मानों से (Two tailed test) से तुलना की गयी। यदि गणना किए गए t/C.R. मान सारिणी में दिए गए .01 या .05 सार्थकता मानों से उच्च थे तो परीक्षण की जा रही शोध परिकल्पना से सम्बन्धित शून्य परिकल्पना की अस्वीकृति मानते हुए शोध परिकल्पना को स्वीकृत कर लिया गया।

निष्कर्ष :

शोध के परिणामों के आधार पर निष्कर्षित तथ्यों को इस अध्ययन में संक्षेप में प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है। विभिन्न निष्कर्षित तथ्य निम्नवत् हैं–

1. अंतिम मूल्यों के सन्दर्भ में प्राप्त परिणाम 1.1 की केवल आंशिक पुष्टि करते हैं क्योंकि उच्च सामाजिक वर्ग के विभिन्न 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के समूहों में पाँच उच्चतम मूल्यों के सन्दर्भ में काफी समानता है, हालांकि पाँच निम्नतम मूल्यों के सन्दर्भ में ये समूह एक दूसरे से काफी भिन्न हैं।
2. मध्यम सामाजिक वर्ग के विभिन्न 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तरों में विभक्त समूहों के 'मूल्य विन्यास' के सन्दर्भ में भी परिकल्पना 1.1 केवल आंशिक रूप से ही स्वीकृत होती है। उच्च तथा निम्न दोनों ही सामाजिक वर्गों के सन्दर्भ में स्पष्ट रूप से यह भी कहा जा सकता है कि चारों समूहों के 'मूल्य विन्यासों में उनके पाँच निम्नतम वरीयता प्रदान मूल्यों के सन्दर्भ में भिन्नता उच्चतम वरीयता प्राप्त मूल्यों की अपेक्षा अधिक स्पष्ट है।
3. उच्च तथा मध्यम सामाजिक वर्ग के विभिन्न (चार) 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के विद्यार्थियों के पाँच उच्चतम वरीयता प्रदान और पाँच निम्नतम वरीयता प्रदान मूल्यों के सन्दर्भ में किए गए

परस्पर तुलनात्मक अध्ययन की भाँति 'निम्न सामाजिक वर्ग' के विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति आवश्यकता' प्रतिशतांक मानों के आधार पर विभक्त चारों समूहों के 'मूल्य विन्यास' का भी अध्ययन परिकल्पना 1.1 से ही सम्बन्धित कार्य है।

4. शोध परिकल्पना 1.1 'सामाजिक वर्ग' के विद्यार्थी समूह के परिणाम केवल आंशिक रूप से ही समर्थित हैं, परन्तु उच्च और मध्यम वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में कहा जा सकता है कि इनके सन्दर्भ में विभक्त विभिन्न 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के विद्यार्थियों के उच्चतम और निम्नतम मूल्य एक दूसरे के अधिक समान हैं और वे शोध परिकल्पना 1.1 का समर्थन अधिक नहीं करते हैं।
5. नैमित्तिक मूल्यों के सन्दर्भ में प्राप्त परिणामों से स्पष्ट है कि चारों 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर समूहों के उच्चतम वरीयता प्राप्त मूल्यों में महत्त्वाकांक्षी को सभी सामाजिक वर्गों ने महत्ता दी है, निम्नतम क्रम के मूल्य के रूप में 'तर्कसंगत' (निम्न सामाजिक वर्ग के सबसे उच्च 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर समूहों को छोड़कर) सभी ने निम्न कोटि पर रखा है। इन सभी सामाजिक वर्ग के चारों समूहों के उच्चतम तथा निम्नतम वरीयता प्राप्त मूल्यों में भिन्नता को देखा जा सकता है।
6. मूल्यों के सन्दर्भ में यह स्पष्ट है कि किसी एक सामाजिक वर्ग के किसी एक विशिष्ट 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के छात्र और छात्राओं के मूल्य समान हैं तो वहीं दूसरे सामाजिक वर्ग के किसी दूसरी 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के सन्दर्भ में दोनों लिंगों के मूल्य समान देखे जा सकते हैं। दूसरे शब्दों में अपने पाँच उच्चतम स्थान प्रदान मूल्यों के सन्दर्भ में सभी सामाजिक वर्ग के छात्रों और छात्राओं के मूल्यों में परस्पर स्पष्ट समानता नहीं है। परिकल्पना 2 समर्थित कही जा सकती है।

शैक्षिक महत्त्व :

प्रस्तुत अध्ययन वर्तमान परिस्थितियों और दशाओं को देखते हुए अत्यन्त उपयोगी सिद्ध हो सकता है। विभिन्न सामाजिक एवं शैक्षिक वर्गों में विभक्त विद्यार्थियों को बांटकर उनके 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तरों के सन्दर्भ में किए गए मूल्यों के अध्ययन ने स्पष्ट किया कि 'सुखमय जीवन', पारिवारिक सुरक्षा, बौद्धिक, शांतिमय संसार (सभी अन्तिम मूल्यों की श्रेणी के मूल्य) तथा महत्त्वाकांक्षी, योग्य, साहसी सभी नैमित्तिक मूल्यों की श्रेणी में इत्यादि मूल्यों को सभी सामाजिक वर्ग (यथा उच्च, मध्यम तथा निम्न) और शैक्षिक धारा (कला, विज्ञान एवं वाणिज्य) के छात्र ओर छात्राओं ने उच्चतम वरीयता प्रदान कर उन्हें अपने महत्त्वपूर्ण मूल्यों में स्थान दिया है। विद्यार्थियों के इन मूल्यों को देखकर हम अपने भावी पीढ़ी के मूल्यों के सम्बन्ध में (आज की वर्तमान स्थिति को देखते हुए) जो नकारात्मक सोच बनाए हुए, उससे मुक्ति पा सकते हें और देश की भावी उन्नति और समृद्धि सम्भावित है इसके प्रति आशावान हो सकते हैं।

शोध (अध्ययन) के परिणाम की उच्च वर्ग के विद्यार्थियों की 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर निम्न सामाजिक वर्ग के विद्यार्थियों की तुलना में औसतन अधिक उच्च होती है, हमें यह जानने की प्रेरणा देती है कि हम निम्न सामाजिक वर्गों के विद्यार्थियों से सम्बन्धित उन कार्य कारकों को पहचानने का प्रयास करें और उन्हें दूर करें ताकि समाज के हर वर्ग की उच्च शैक्षिक सम्प्राप्ति निश्चित की जा सकें।

छात्र और छात्राओं की 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तरों और मूल्यों में विद्यमान और दृष्टिगत अंतर भी शिक्षा व्यवस्था द्वारा दोनों लिंग के विद्यार्थियों से की जाने वाली भिन्नात्मक अपेक्षाओं/बाधाओं का प्रतीक है। इस सन्दर्भ में शिक्षा व्यवस्था से जुड़े लोगों को सजग होना पड़ेगा और 'सुनिश्चित करना' होगा कि दोनों ही लिंग के विद्यार्थी बराबर से प्रेरित और प्रभावित हो कंधे से कंधा मिलाकर, उच्च स्तर के शैक्षिक दायित्वों से लैस होकर कार्य क्षेत्र और जीवन के युद्ध क्षेत्र में उतरे, ताकि समाज, राष्ट्र की उन्नति और विकास की प्रक्रिया संतुलित रूप से सम्पन्न होती रहे।

सुझाव :

1. सुझाव है कि भविष्य में इस समस्या से सम्बन्धित शोधकार्य व्यापक रूप से चयनित प्रतिदर्श (लखनऊ विश्वविद्यालय के अतिरिक्त अन्य को शामिल कर अधिक संख्या में विद्यार्थियों को चयनित कर) पर सम्पन्न किया जाए।
2. इस शोधकार्य द्वारा प्राप्त परिणामों के आधार पर 'मूल्य विन्यास' और 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के आपसी सम्बन्धों/कुछ विशेष सम्बन्ध है भी या नहीं इसके सम्बन्ध में कोई स्पष्ट दिशा या संकेत नहीं मिल सके। अतः इन दोनों चरों के सन्दर्भ में सह–सम्बन्धात्मक अध्ययन किए जाने चाहिए।
3. भविष्य के शोध कार्यों में इसके अतिरिक्त सांख्यकीय विधियों जैसे– ज्तमदक ंदंसलेपे या क्पेबतपउपदंजपवद निदबजपवद ंदंसलेपे आदि को प्रयुक्त कर यदि आँकड़ों का विश्लेषण किया जाए तो सम्भवतः मूल्यों और उच्च 'निष्पत्ति आवश्यकता' स्तर के आपसी सम्बन्धों के बारे में कुछ ठोस आधार प्राप्त हो सकें।

सन्दर्भ :

1. At Kinson, J.W. (1996). An Introdution to Motivation. New Delhi, Affiated east-west press pvt.ltd.
2. Agarwal, G.K. (1996). Human Society. Agara, Book Store Publication.
3. Biddle, J. (2001). Social Class. Poverty and Education-Policy and Practice. New York Published by Routledge Falmer, 29 west, 35th street.
4. Brubacher, J.S. (1950). Modern Philosophies of Education. New York Toranto, London, MCGRAW, Hill Book Company INC, 95-98
5. Bala & Bajpai & shukla (2000). Fundamental Eements of Education Allahbad., Alok Prakashan.
6. Best, W & Khan (2000) Research In Education. 7th Edition, Delhi, Prentice Hall& India pvt.ltd.
7. Bantock, G.H. (1965). Education and Value. London Pub. Tober & Faber.
8. Chanber, H.T. (1983). The Achievement of Education, New York, Harper & Row Publication, Linc.
9. Rokech, M. (1973). The Nature of Human Values, New york, The free press.

***

महात्मा गाँधी : स्वराज

अब्दुल कलाम अंसारी *

प्रस्तावना

विश्व इतिहास का क्षेत्र बहुत ही वृहत है। इस क्षेत्र में बहुत ही कम ऐसे महानुभाव (महान अनुभवों वाले व्यक्ति) हुए हैं जिन्होने मानवता पर अपनी अमिट छाप छोड़ी हैं। कुछ ने शांति का संदेश दिया, तो कुछ महानुभावों ने आदर, सम्मान व सहिष्णुता का समर्थन किया। कुछ ने इन मूल्यों को अपने सामाजिक कार्यों में दर्शाया, कुछ महानुभवों ने मानव अधिकारों व मानवीय गरिमा के लिए कार्य किए और कुछ महानुभावों ने राष्ट्रीय संप्रभुता को अपने कार्य का आधार बनाया। परंतु कुछ गिने चुने महानुभावों ने ही इन मूल्यों व विचारों को एक साथ करके अपने दर्शन व व्यक्तित्त्व में उतारा और उनको एक एकीकृत व समन्वित दृष्टिकोण के रुप में प्रस्तुत किया। इन्होने जीवन को एक घटक माना। इन महानुभावों में महात्मा गांधी मुख्य व अग्रणीय व्यक्तित्त्व है। गांधी जी ने निडरता से सत्य को हमारे सामने रखा तथा गांधी जी ने संसार के सन्निकट आ रही बहुत–सी समस्याओं जैसे हिंसा मे वृद्धि, सांप्रदायिक झगड़ा व मनमुटाव, आर्थिक समसयाएं, सामाजिक असमानताओं, पर्यावरण का ह्रास और सांस्कृतिक गिरावट का पहले से ही अनुमान ही नही बल्कि इनके समाधान हेतु विकल्प भी सुझायें थे। जैसे– तीव्र औद्योगिकरण के स्थान पर मानवीय श्रम पर बल एवं प्रकृति की रक्षा हेतु संपोषणीय पर्यावरण एवं समावेशी विकास के लिए "इस पृथ्वी पर सभी मनुष्यों के आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए सबकुछ है परंतु किसी एक व्यक्ति के लालच के लिए यह पृथ्वी कम है। "ये समस्याएं 21वी सताब्दी मे एक बड़ी चुनौती के रुप मे उभरी है अब दुनिया, गांधी जी के दर्शन को व्यवहार में लाने का प्रयास कर इस बात को दोहरा रही है किवह एक युगदृष्टा थे। वे नैतिकता की चलती फिरती मूर्ति थे। उनका जीवन बड़ा ही सरल, सादा, परंतु कठोर नियमों से बंधा हुआ था। उनकी पद्धति अहिंसक थी, उनका दर्शन नैतिक था, उनकी मजबूती थी– सत्य व अहिंसा। विभिन्न धर्मो के ग्रंथों ने उनके विचार व दर्शन को प्रभावित किया और एक सर्वोच्च शक्ति ईश्वर में उनका विश्वास दृढ़ होता चला गया। गांधी जी ने सत्य व अहिंसा के अतिरिक्त किसी अन्य विचार या कार्य का समर्थन नहीं किया ।

महात्मा गाँधी : ग्राम स्वराज

स्वराज का शाब्दिक अर्थ स्वशासन या अपना राज्य है। भारतीय राष्ट्रीय स्वतंत्रता संग्राम के दौरान प्रचलित यह शब्द आत्म–निर्णय तथा स्वाधीनता की मांग पर बल देता था। स्वराज शब्द का पहला प्रयोग स्वामी दयानंद सरस्वती ने किया था। प्रारंभिक राष्ट्रवादियों ने स्वाधीनता को दूरगामी लक्ष्य मानते हुए स्वशासन के स्थान पर अच्छी सरकार के लक्ष्य को वरीयता दी। उसके बाद उग्रवादी काल में यह शब्द लोकप्रिय हुआ तथा इसके बाद इस शब्द का प्रयोग गोपाल कृष्ण गोखले ने 1905 ई0 मे किया। पहली बार आधिकारिक रुप से इसे दादाभाई नौराजी ने 1906 ई0 में कांग्रेस के कलकत्ता अधिवेशन में मांग रखी। यह तब और प्रसिद्ध हुआ जब बालगंगाधर तिलक ने 1916 ई0 मे होमरूल लीग की स्थापना के समय यह ऐलान किया कि **"स्वराज मेरा जन्मसिद्ध अधिकार है और मैं इसे लेकर रहूँगा।"**

महात्मा गांधी ने सबसे पहले 1920 ई0 में कहा कि **"मेरा स्वराज भारत के लिए संसदीय शासनकी मांग है, जो वयस्क मताधिकार पर आधारित होगा।"**गांधी जी के अनुसार जनप्रतिनिधियों द्वारा संचालित ऐसी व्यवस्था जो लोगों की जरूरतों और लोगों की आकांक्षाओं के अनुरूप हो। वस्तुतः गांधी जी का स्वराज सम्बंधी विचार ब्रिटेन के राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक, ब्यूरोक्रेसी, कानूनी, सैनिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं का बहिष्कार करने का आंदोलन था।

---

* शोध छात्र, राजनीति विज्ञान विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय

गांधी जी के स्वराज का अर्थ केवल राजनीतिक स्तर पर विदेशी शासन से स्वाधीनता हासिल करना नही था, बल्कि इसमें सांस्कृतिक व नैतिक स्वाधीनता का विचार भी निहित है। महात्मा गांधी ने मानव की स्वतंत्रता पर गहरा विचार किया उनके स्वराज की परिकल्पना दूसरों से बिल्कुल अलग हैं। उन्होनें जो जीवन जीने का सलीका बताया उसे वे खुद भी अपने आचरण में रचाया–बसाया। गांधी जी की सोच देश के लिए हमेशा ही सकारत्मक रही। गांधी ने अपनी पुस्तक **'हिन्द स्वराज**' में अपने स्वराज की विस्तृत विवेचना की है, जो पश्चिमी विचारधारा से बिल्कुल अलग हैं शासन के स्तर पर यह सच्चे लोकतंत्र का पर्याय हैं गांधी जी का स्वराज निर्धन का स्वराज है, जो दीन–दुखियों के उद्धार के लिए प्रेरित करता हैं यह आत्म–संयम ,ग्राम – राज्य व सत्ता के विकेन्द्रीकरण पर बल देता है।

गांधी जी ने बताया कि मेरे स्वराज का तात्पर्य आत्म–शासन और आत्मसंयम तो है ही लेकिन इसके चार प्रमुख स्तम्भ– अश्पृश्यता का निवारण, सूती वस्त्रों का निर्माण, हिन्दू–मुस्लिम एकता का निर्माण और सदैव अहिंसा का दामन पकड़े रहना।

गांधी जी ने किसी नये विचारधारा का सूत्रपात नही किया, बल्कि गांधीवाद तो भारत की उस भाषा–परक आध्यात्मिक जीवन दृष्टि तथा सांस्कृतिक परम्परा का आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल परिवर्द्धित एवं संशोधित रुप है, जो प्राचीन काल से सत्य , अहिंसा, सेवा, प्रेम, त्याग, सहिष्णुता, अस्तेय, अपरिग्रह, आत्मसंयम आदि वेदों में वर्णित, महावीर जैन और गौतम बुद्ध की शिक्षाओं से साम्य रखती है।

महात्मा गांधी ने खुद इस बात को मानते हुए बताया है कि सत्याग्रह का सिद्धांत अपने आपमें बहुत ही प्राचीन हैं गांधी जी के अनुसार मानव सभ्यता का इतिहास आज भी सत्य और अहिंसा पर जोर देता है। नैतिक नियमों के आधार पर विविध सामाजिक, राजनीतिक और आर्थिक प्रवृत्तियों से जुड़ी समस्याओं का इतना बड़े स्तर पर विश्लेषण करते हैं और अपने मूल सिद्धांतों को कुछ इस प्रकार प्रस्तुत करते है–

सत्य :–सत्य की अवधारणा गांधी जी के विचारों की बुनियाद है, जिसे गोपीनाथ धवन "गांधी जी के जीवन–दर्शन का ध्रुवतारा की संज्ञा देते है। गांधी का सत्य सिर्फ भाषण नहीं है, बल्कि एक जीवन–व्यापी सिद्धांत है जिसका अर्थ– वाणी ही नही विचार एवं आचरण द्वारा भी सत्य की साधना है। गांधी जी के अनुसार सत्य अंतिम साध्य भी है। गांधी जी का दृढ़ विश्वास था अन्ततः सत्य की ही जीत होगी चाहे परिस्थितियां कितनी ही प्रतिकूल क्यों न हो। असत्य,सत्यके सामने कुछ समय के लिए विजयी हो सकता है परंतु अंतिम रुप से नही। कोई भी असत्य का रास्ता अपना कर कामयाबी का परचम लहराने की कल्पना मात्र कर सकता। क्योंकि सत्य का अर्थ है 'अस्तित्त्वान' अर्थात् 'जो है' और असत्य का अर्थ है 'अनस्तित्व' अर्थात् 'जो नही है'। गांधी जी सत्य को ईश्वर मानते थे। सत्य उनके लिए सर्वोपरी सिद्धांत था। वे वचन और चिंतन तथा कर्म में सत्य की स्थापना का प्रयत्न करतें थे।

अहिंसा :–महात्मा गांधी ने मूल रुप से इस सिद्धांत का प्रतिपादन नहीं किया, लेकिन व्यापक पैमाने पर इसे राजनैतिक क्षेत्र में प्रयोग करने वाले पहले व्यक्ति माने जा सकते है। अहिंसा का भारतीय इतिहास में एक लम्बा सफर रहा है, जैसे– सनातन, जैन एवं बौद्ध आदि के दर्शनों में अहिंसा के सिद्धान्त को बड़े ही गम्भीरता से रेखांकित किया गया है। गांधी जी अपनी आत्मकथा **'सत्य के साथ मेरे प्रयोग'** में कहतें है कि 'जब मैं निराश होता हूँ तब मैं याद करता हूँ कि इतिहास सत्य का मार्ग होता है, किन्तु प्रेम सदैव जीत लेता है। यहाँ अत्याचारी और हत्यारे भी हुए हैं और कुछ समय के लिए वे अपराजय लगते थे किन्तु अंत में उनका पतन ही होता हैं इसका सदैव विचार करे।' उन्होने आगे कहा कि "मृतकों, अनाथ तथा बेघरों के लिए इससे क्या फर्क पड़ता है कि स्वतंत्रता और लोकतंत्र के पवित्र नाम के नीचे सम्पूर्णवाद का पागल विनाश छिपा है। एक आँख के लिए दूसरी आँख पूरी दुनियां को अंधा बना देगी। मरने के लिए मेरे पास बहुत से कारण हैं लेकिन मेरे पास किसी को मारने का कोई कारण नहीं है।"

गांधी जी के अहिंसा को प्रायः हिंसा का अभाव मान लिया जाता है, लेकिन वास्तव में वह एक भावनात्मक प्रक्रिया और शक्ति है, जो हमें प्राणी मात्र से प्रेम करने के लिए प्रेरित करती है। गांधीवाद में अहिंसा और प्रेम एक ही अर्थ के द्योतक हैं। गांधीवादी किसी भी प्राणी को किसी प्रकार का कष्ट या हानि न पहुँचाना ही काफी नहीं समझता और न हीवह चीटियों को आटा डालकर संतुष्ट हो जाता है।

गांधी जी के अहिंसा को कायरता से बिल्कुल अलग रखना चाहिए। अहिंसा और कायरता में उतना ही अंतर है जितना उत्तरी ध्रुव व दक्षिणी ध्रुव में। महात्मा गांधी का विश्वास था कि एक हिंसक और अत्याचारी मनुष्य जीवन के किसी भी मोड़ पर अहिंसा का पुजारी बन सकता है, लेकिन कायर कभी नहीं बन सकता है। वे मानते थे कि अहिंसा वीरों का अलंकार है कायरों का नही। गांधी जी ने एक बार स्वयं कहा था कि "मैं मानता हूँ जहां कायरता और हिंसा में से किसी एक को चुनना हो तो मैं हिंसा के पक्ष में अपनी राय दूंगा।" इन्ही सब बातों से प्रभावित होकर उस समय के महान वैज्ञानिक **अल्बर्ट आइंस्टीन** ने गांधी जी के बारे में कहा था कि **"भविष्य की पीढ़ियों को इस बात पर विश्वास करने में मुश्किल होगी कि हाड़–मास से बना ऐसा भी कोई व्यक्ति कभी धरती पर था।"**

सत्याग्रह :–सत्याग्रह का शाब्दिक अर्थ सत्य के प्रति आग्रह करना है। साध्य (सत्य) और साधन (अहिंसा) पर विचार करने के बाद गांधी जी के विचारों का अगला चरण स्वभावतः उसके कर्म पद अर्थात् सत्याग्रह होगा। महात्मा गांधी ने शुरुआती दौर में अपने आंदोलन को **"निष्क्रिय प्रतिरोध"** के नाम से उजागर किया। इसके बाद गांधी जी ने अपने द्वारा 1904 ई0 में शुरू किया गया **इण्डियन ओपिनियन** अखबार (जिसके प्रथम संपादक मंनसुखलाल नजर थे) में **'निष्क्रिय प्रतिरोध'** के स्थान पर नये नाम के लिए अवाम सवे सुझाव मांगे। तमाम सुझावों में **मगनलाल गांधी ने 'सदाग्रह' शब्द** को सुझाव दिया। अंततः गांधी जी ने **सद्** के जगह पर **सत्** करके इसे **सत्याग्रह** बना दिया। गांधी जी अपनी आत्मकथा **"सत्य के साथ मेरे प्रयोग"** में अपने प्रतिरोध के तरीके का नाम सत्याग्रह दिया और कहा कि "सत्य के प्रति आग्रह करना ही सत्याग्रह है।" महात्मा गांधी आगे बताते हैं कि "प्रेम और अहिंसा पर आधारित होने के कारण सत्याग्रह में अविनय के लिए कोई स्थान नहीं है, क्योंकि अविनय के साथ हिंसा का प्रवेश निश्चित हैं। सत्याग्रही का आग्रह अर्थात् उसके द्वारा अत्याचारी का विरोध उसकी सत्यनिष्ठा को प्रेरित करता है।"

अमेरिकी **दार्शनिक थोरो** ने जिस **सिविल डिसओबिडिएंस की तकनीकी** का वर्णन किया है, महात्मा गांधी का सत्याग्रह शब्द उस प्रक्रिया से मिलता जुलता था। सत्याग्रह का मूल अर्थ है अहिंसा का पालन करते हुए सत्य का दामन पकड़े रहना और सत्य का बोलबाला बढ़ाने के लिए लोगों को प्रेरित करना। अन्याय का सदैव विरोध करते हुए अन्यायी के प्रति कोई बैरभाव न रखना ही सत्याग्रह का मूल लक्षण हैं।हमें सत्य का पालन करते हुए मृत्यु से कभी डरना नहीं चाहिए और मरते–मरते भी जिसके विरूद्ध सत्याग्रह कर रहे हैं उसके प्रति कोई द्वेषभाव या क्रोध या शत्रुता की भावना नहीं आने देना चाहिए। सत्याग्रह में अपने विरोधी के प्रति कोई भी हिंसात्मक व्यवहार अमान्य हैं। बड़े ही धैर्य से अपने विरोधी को उसकी गलती से मुक्त करना चाहिए। क्योंकि जो किसी एक के नजर में सही है तो वहीं दूसरे के नजर मे वे गलत भी हो सकता है। यहां धैर्य का तात्पर्य कष्टसहन से हैं इसलिए इस सिद्धान्त का अर्थ "विरोधी को बिना कष्ट दिए स्वयं कष्ट उठाकर सत्य की रक्षा करना है।"

गांधी जी ने **लार्ड इंटर से बात–चीत के** दौरान कहा "यह ऐसा आंदोलन है जो पूरी तरह सच्चाई पर कायम है और हिंसा के उपायों के एवज में चलाया जा रहा है।" अहिंसा सत्याग्रह दर्शन का सबसे महत्वपूर्ण तत्व है, क्योंकि सत्य तक पहुँचने और उस पर टिके रहने का एकमात्र उपाय अहिंसा ही है। गांधी जी ने आगे कहा कि "अहिंसा किसी को चोट पहुँचाने की नाकारात्मक वृत्तिमात्र नहीं है बल्कि वह सक्रिय प्रेम की विधायक वृत्ति है।" गांधी जी ने यह भी कहा कि 'सत्याग्रह में एक मध्यम पद प्रेम भी मौजूद है जिसका लोप हैं सत्याग्रह यानी सत्य के लिए प्रेम पूर्वक आग्रह।'

सत्याग्रह में साध्य के साथ साधनों की नैतिकता पर ध्याान देना अति आवश्यक है। साधन और साध्य की एकता ही गांधी–दर्शन की धूरी है। आजकल पूरे समाज में आर्थिक, राजनीतिक,

सामाजिक और सांस्कृतिक समस्याएं अपने विकराल रुप को पहुँच गयी हैं और हम इनमें से किसी भी समस्या का समाधान महात्मा गांधी के बताए रास्तों पर चलकर कर सकते हैं, जो कि अहिंसा और पूर्णरुपेण नैतिकता की अवधारणा पर आधारित है।

ध्यान देने योग्य यह बात है कि गांधी जी जब तक जीवित रहे वे अपने स्वराज के बारें में सबकों बताते रहे। भारत के संदर्भ में वे जिस स्वराज की बात की है उसके केन्द्र में गाँवों की स्वायत्तता थी जिसे उन्होनें ग्राम स्वराज्य कहा जो मूल रुप से लोतांत्रिक पद्धति पर आधारित है जिसके केन्द्र मे छोटे समूह मे रहने वाले मानव है जो अपने अधिकतम भौतिक आवश्यकताओं की पूर्ति पर्यावरण को बिना हानि पहुँचाये ही एवं पशुपालन तथा लघु वाणिज्य पर आधारित स्वशासन है जो पूरी तरह से गणतांत्रिक थी। उनके विचार में गाँव की सम्पन्नता में ही देश की सम्पन्नता तथा गाँवों की स्वतंत्रत पंचायती व्यवस्था में ही देश की सच्ची प्रजातांत्रिक छवि छिपी हुई है। उनका मानना था कि भारत गाँवों में बसता है न की शहरों में। और इसी सोच के अनुसार उन्होने किसानों को राष्ट्रीय आंदोलन में बड़े पैमाने पर शामिल होने की इजाजत दे रखी थी।

महात्मा गांधी जब देश की स्वाधीनता संग्राम के मुख्य धारा से जुड़े तो उनके लिए सबसे महत्वपूर्ण मुद्दा गाँवों के पुर्ननिर्माण एवं उनमें छिपी आर्थिक असमानता के कारण सामाजिक भेदभाव था। यही कारण था कि गांधी जी ने देश को आजाद कराने के साथ–साथ गाँवों में छोटे–छोटे उद्योगों को विकसित करना, तथा भारतीय उत्पादों का बढ़ावा देना, ग्राम स्वराज जैसी योजनाओं को अपनी रचनात्मक कार्यक्रमों में शामिल किया।

गांधी जी अपनी पुस्तक **"हिंद स्वराज"**में अपने ग्राम स्वराज की रुपरेखा बड़े ही सरल अंदाज में प्रस्तुत किया है। गांधी जी ने हरिजन सेवक के 2 अगस्त 1942 के अंक में ग्राम स्वराज की चर्चा करते हुए लिखा कि "ग्राम स्वराज की मेरी कल्पना यह है किवह एक ऐसा प्रजातंत्र होगा, जो अपनी अहम जरुरतों के लिए अपने पड़ोसी पर भी निर्भर नहीं रहेगा और फिर भी बहुतरी दूसरी जरुरतों के लिए.....जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा..... वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। इस तरह हर एक गाँव का पहला काम यह होगा किवह अपनी जरुरत की पूर्ति हेतु आवश्यक अनाज और कपड़ो के लिए कपास स्वयं पैदा कर लें...पानी के लिए उसका अपना इंतजाम होगा...वाटर वर्क्स होंगे....जिसमे गाँव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिलेगा। कुँओ और तालाबों पर गाँव का पूरा नियंत्रण रख कर यह काम किया जा सकता है। बुनियादी शिक्षा के आखरी दर्जे तक शिक्षा सबके लिए आवश्यक होगी। जहां तक हो सकेगाा, गाँव के सारे काम सहयोग के आधार पर किए जायेंगे। जाति–पात का एवं अश्पृस्यता के तत्व जैसे आज हमारे समाज में पाए जाते हैं, वैसे ग्राम समाज मे बिल्कुल ही नहीं रहेगें।

इसी लेख मे वों आगे लिखते है कि "सत्याग्रह और सहयोग के शस्त्र के साथ अहिंसा की सत्ता ही ग्रामीण समाज का शासनबल होगा... इस ग्राम शासन में व्यक्तिगत स्वतंत्रता पर आधार रखनेवाला सम्पूर्ण प्रजातंत्र काम करेगा।

महात्मा गांधी ने**'हरिजन सेवक'** के 10 नवम्बर 1946 के अंक में लिखा है कि "देहात वालों में ऐसाी कला और कारीगरी का विकास होना चाहिए, जिससे बाहर उनकी उत्पादित चीजों की अच्छी कीमत मिल सके। जब गाँव का पूरा–पूरा विकास हो जाएगा, तो देहातियों की बुद्धि और आत्मा को संतुष्ट करने वाली कला–कारीगरी के धनी स्त्री–पुरूषों की गाँवों मे कमी नही रहेगी। गाँव में कवि होंगे, चित्रकार भी होगें, शिल्पी, भाषा के विद्वान और शोध करने वाले लोग भी होंगे। थोड़े से जिंदगी की ऐसी कोई चीज न होगी जो गाँव में न मिले। आज हमारे गाँव उजड़े हुए और कुड़े–कचरें के ढेर बने हुए है। कल वहीं सुंदर बगीचे होंगे और ग्रामवासियों को ठगना या उनका शोषण करना असम्भव हो जाएगा।"

इसमें दो राय नहीं है किइस मशीनीकरण के दौर में खेती को सुविधाजनक बनाया, पर इसका दूसरा पहलू जो सामने उभरकर आया वह यह है कि इसके कारण खेतिहर मजदूरो के लिए रोजगार के अवसर कम हो गये। यही नहीं इसे पशु–धन पर भी संकट आ बना। खेती के काम आने वाले पशुओं की उपयोगिता क्षीण होती जा रही हैं दुधारू मवेशियों की भी संख्या कम होती जा रही है,

क्योंकि इन मवेशियों को पालने में सिर्फ नौकरी के लिए आकुल–व्याकुल पीढ़ी की दिलचस्पी नही ले रही है।जो पंचायत व्यवस्था गाँवों मे सौहार्द कायम रखने की भूमिका निभाती आयी थी, उसमें भी अब चुनावी राजनीति के कीटाणु घुसपैठ करते जा रहे है।

एलविन ट्राफलर, **जॉर्ज केन्नान और जॉन जर्जन** जैसे चिंतक भी मशीनीकरण पर अंकुश लगाने की बात करते हुए शारीरिक श्रम आधारित पुराने उद्योगों के साथ तालमेल की वकालत कर रहे है। यही बात गांधी जी भी अपने **'हिंद स्वराज'** से लेकर जीवनपर्यंत कहते रहे। स्पष्टतः गाँव में बसने वाले भारत की समस्याओं का समाधान गांधी परिकल्पित ग्राम स्वराज को मूर्त करके ही हो सकता है।

महात्मा गांधी अपने अनुयायियों से एक अवसर पर कहा कि "भारत का स्वराज बहुसख्यकों अर्थात् हिंदुओं का शासन होगा। इससे बड़ी भ्रांति और कोई नहीं हो सकती । यदि ऐसा हो तो मैं उसे स्वराज मानने से इनकार कर दूंगा और अपनी पूरी ताकत के साथ उसका विरोध करूंगा.....क्योंकि मेरी दृष्टि मे स्वराज का अर्थ सब लोगों का शासन, न्यायका शासन है। इस शासन में मंत्री चाहे हिंदू हो, मुसलमान हो या सिक्ख हो और विधानसभाआं के सदस्य चाहे केवल हिंदू हो, केवल मुसलमान हो अथवा किसी अन्य समुदाय का हो। सबकों निष्पक्ष न्याय करना होगा। आज हमारे मन विभ्रांत हैं, हम अज्ञानतावश एक दूसरे से लड़ रहे है और अपने भाइयों के साथ दंगा–फसाद कर रहे है। ऐसे लोगों के लिए न मोक्ष है, न स्वराज। स्वराज की पहली शर्त आत्मानुशासन है।

आगे उन्होनें कहा कि "हमारे जैसे विशाल देश में, सभी सम्प्रदायों के लिए ईमानदारीपूर्ण विचार होना चाहिए। इसीलिए हमारा अपने प्रति और दूसरों के प्रति कम से कम एक दायित्व अवश्य है कि हम अपने विरोधी के दृष्टिकोण को समझने का प्रयास करें। यदि हम उसे स्वीकार न कर पांए तो उसका उसी प्रकार पूरी तरह सम्मान करें, जिस प्रकार हम चाहतें हैं किवह हमारे दृष्टिकोण का करें। यह स्वरुप सार्वजनिक जीवन की एक अपरिहार्य कसौटी है और इसलिए स्वराज के लिए भी आवश्यक है।..."**वाणी और लेखनी की स्वतंत्रता स्वराज की आधारशिला हैं अगर यह खतरे में है तो तुम्हें अपनी सम्पूर्ण शक्ति लगा कर इसकी रक्षा करनी चाहिए।**"

अंततः महात्मा गांधी अपनी पुस्तक '**हिंद स्वराज**'में अंतिम रुप से कहते हैं कि अपने मन का राज्य स्वराजय हैं उसकी कुंजी सत्याग्रह , आत्मबल या करूणाबल है। उस बल को आजमाने के लिए स्वदेशी को पूरी तरह अपनाने की जरुरत हैं हम जो करना चाहते हैं वह अंग्रेजों के लिए (हमारे मन में) द्वेष है इसलिए या उन्हें सजा देने के लिए नहीं करें, बल्कि इसलिए करें कि ऐसा करना हमारा कर्तव्य है। मतलब यह है कि अंग्रेज अगर नमक महसूल रद कर दे, लिया हुआ धन वापस कर दे, सब हिन्दुस्तानियों को बड़े–बड़े ओहदे दे दें और अंग्रेजी सेना हटा लें, तो हम उनकी मिलों का कपड़ा पहनेगेंया अंग्रेजी भाषा काम में लाएंगे या उनकी हुनर का उपयोग करेगेंसो बात नही हैं हमें यह समझना चाहिए किवह सब दरअसल नहीं करने जैसा है, इसलिए हम उसे नहीं करेगे।

मैने जो कुछ कहा है वह अंग्रेजों के लिए द्वेष होने के कारण नहीं, बल्कि उनकी सभ्यता के लिए द्वेष होने के कारण कहा है। मुझे लगता है कि हमने स्वराज को जैसा समझा है वैसा यहां बताने की कोशिश की है। मेरा मन गवाही देता है कि ऐसा स्वराज पाने के लिए मेरा यह शरीर समर्पित है।

संदर्भ :

1. हिंद स्वराज : मोहन दास करमचन्द गाँधी
2. गाँधी : सिद्धांत और व्यवहार, : डॉ0 अनिल दत्त मिश्र
3. लेख, जनसत्ता , 30 जनवरी 2017 , : भगवान सिंह
4. लेख, शब्द– ब्रह्म मैगजीन, : डॉ0 रीता तिवारी
5. लेख वर्ल्ड फोकस , अक्टूबर 2011, : भगवान प्रसाद नंदा

***

हिन्दी दलित उपन्यासों में सामाजिक प्रतिरोध का स्वरूप

डॉ. अभिमन्यु कुमार *

हिन्दी उपन्यासों में दलितों की पीड़ा का बड़ा ही मुक्कमल चित्राण प्रेमचन्द से दिखाई देने लगता है। दलित जीवन का यर्थाथ चित्राण उनके कथा साहित्य में देखने को मिलता है। कथा साहित्य के ये पात्रा कभी समाज की नियति के शिकार होते हैं तो उनमें से कुछ व्यवस्था से लड़ते हुए दिखाई देते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में दलित पात्राों की उपस्थिति विमर्श का विषय तो हैं ही। 'रंगभूमि' में सूरदास उपन्यास का नायक है जो दलित पृष्ठभूमि से आता है। इसी प्रकार प्रेमचन्द के प्रमुख उपन्यास 'गोदान' में 'सिलिया–मातादीन' प्रसंग मिलता है जिसमें गाँव के चमार जाति के लोग एकजुट होकर मातादीन से बदला लेते हैं। 'कर्मभूमि' में उन्होंने दलितों के मंदिर–प्रवेश की समस्या को उठाया है तो 'प्रेमाश्रम' और 'कायाकल्प' में अछूतों से बेगार लिये जाने की समस्या को उद्घाटित किया है। वहीं 'ग़बन' उपन्यास में वे देवीदीन खटीक नामक पात्रा के माध्यम से राष्ट्रीय आंदोलन में दलितों के योगदान को रेखांकित करते हैं। इसी तरह नागार्जुन का 'बलचनमा', रामदरश मिश्र का 'पानी के प्राचीर' और 'जल टूटता हुआ', अमृतलाल नागर का 'नाच्यौ बहुत गोपाल', मुधुकर सिंह का 'सहदेवराम का इस्तीपफा', रांगेय राघव का 'कब तक पुकारूँ', शिवप्रसाद सिंह का 'अलग–अलग वैतरणी', जगदीशचन्द्र का 'धरती धन न अपना', कृष्ण अग्निहोत्राी का 'टपरे वाले', हिमांशु जोशी का 'कगार की आग', मन्नू भंडारी का 'महाभोज', गिरिराज किशोर का 'परिशिष्ट' आदि हिन्दी उपन्यासों में दलित समस्या को उठाया गया है। लेकिन गंभीरतापूर्वक देखा जाए तो हिन्दी के दलित उपन्यासों में अस्मिता और मुक्ति के गंभीर सरोकार मौजूद हैं। क्योंकि दलित रचनाकारों ने स्वयं के अनुभव को इन उपन्यासों में चित्रित किया है। 'दलित अस्मिता और हिन्दी उपन्यास' नामक अपने लिखे गये लंबे लेख में डॉ0 पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी लिखते हैं– फ्अतः स्पष्ट है कि दलित अस्मिता की दृष्टि से हिन्दी उपन्यासों का सृजन तो हुआ है, किन्तु आलोचकों द्वारा दलित मनुष्य की सामाजिक प्रतिष्ठा एवं अस्मिता की दृष्टि से उनका मूल्यांकन नहीं किया, तथाकथितवादी दृष्टि से उनका विश्लेषण किया है। आज के समय की सच्चाई यह है कि समीक्षकों–आलोचकों को संवैधनिक मानवाधिकारों एवं दलितों की मानवीय अस्मिता को रेखांकित करते हुए हिन्दी के सृजित उपन्यासों का पुनर्मूल्यांकन करना होगा, तभी फ्आँखन देखीय का सत्य उजागर हो सकेगा।

हिन्दी उपन्यासों के बरक्स अगर हम दलित उपन्यासों को रखकर देखते हैं तो हमें इसमें स्वतंत्राता, समानता, भाईचारा और सामाजिक न्याय जैसी मांगे दिखाई देती हैं। दलित समाज अपने अध्किार के प्रति जागरूक दिखाई पड़ता है। वे अब दया की नहीं अध्किार की बात करते हैं। ब्राह्मणवादी ताकतों से दलित अब प्रतिरोध् करते हैं। उनमें भविष्य का समाज रचने की ललक दिखाई देती है। वे अब ऐसे समाज के निर्माण के लिए तत्पर दिखाई देते हें जिसमें स्वतंत्राता, समानता और बंध्ुत्व की भावना हो। बाबासाहब के आंदोलन के पफलस्वरूप जो चेतना दलितों के अंदर पैदा हुई उसका प्रभाव दलित उपन्यासों में देखा जा सकता है। हिंदी में दलित उपन्यासों की रचना कापफी मात्राा में हुई है। रूपनारायण सोनकर का 'डंक', विपिन बिहारी का 'एक स्वप्नदर्शी की मौत', कावेरी की 'मिस रमिया', जय प्रकाश नवेंदु का 'दोहन', नवल वियोग का 'दूसरी जिदंगी', रघुवीर सिंह का 'आक्रोश', एस0 के0 पंचम का 'दलित दहन', कमल तेजस का 'गवाह तथागत', देवी दयाल सेन का 'मानव की परख' डी.पी. वरूण का 'अमर ज्योति', सत्य प्रकाश का 'जस तस भईसवेर'प्रेम कपाड़िया का 'मिट्टी की सौगंध्', डॉ0 धर्मवीर का 'पहला खत', जयप्रकाश कर्दम का 'छप्पर', मोहनदासनैमिशराय का 'मुक्तिपर्व', उमराव सिंह जाटव का 'थमेगा नहीं विद्रोह', अजय नावरिया का 'उधर के लोग' आदि ऐसे

---

* महाराज लक्ष्मीश्वर सिंह महाविद्यालय, सरिसब-पाही, मधुबनी (बिहार) के हिन्दी विभाग में सहायक प्राध्यापक के पद पर कार्यरत

उपन्यास हैं जिसमें दलितों के अतीत और वर्तमान को भविष्य के साथ जोड़कर देखने की कोशिश की गई है। शोध कार्य की दृष्टि से सभी उपन्यासों को देखना संभव नहीं है इसलिए प्रमुख उपन्यासों पर दृष्टिपात करना ही उपर्युक्त होगा।

डी0पी0 वरूण द्वारा लिखित उपन्यास 'अमर–ज्योति' 1982 में प्रकाशित हुआ था। ईश्वरवाद, पुनर्जन्म और धर्म के प्रति विद्रोह का भाव उपन्यास में मौजूद है। लेखक ने शुरू से अंत तक व्यवस्था के विरोध को उपन्यास का केंद्रीय भाव बनाये रखा है। उपन्यास में आचार्य जी के प्रवचनों द्वारा भारतीय समाज में व्याप्त कुरूतियों का पर्दापफाश किया गया है– फ्एक प्राणी दूसरे प्राणी से जन्म के आधर पर छुआछूत करता है। एक प्राणी भंगी परिवार में जन्म लेता है। उसको इसी आधर पर अछूत मानते हैं। चाहे वह पढ़–लिखकर कार्यालय में बाबू हो जाय। एक ब्राह्मण चाहे अंध हो, कोढ़ी हो, वह अछूत नहीं हो सकता। क्योंकि वह जन्मजात ब्राह्मण है और पूज्य है। क्या ढ़कोसला है, कैसी सामाजिक विंडबना है। जो अछूत है।जिसके स्पर्श से कोढ़ दूसरे को लग सकता है। वह अछूत नहीं है। परंतु ह्रष्टपुष्ट व निरोग व्यक्ति अछूत है। यह कैसे किसी दैविक शक्ति का सृजन हो सकता है, कैसे ईश्वर ऐसा कर सकता है तालियां बजाकर आचार्य जी के भाषण का समर्थन करते हुए सभा के बीच आवाज आई फ्बोलिए और बोलिए, पाखंडियों की पोल खोलिए।[2] भारतीय जाति–व्यवस्था पर तर्क पूर्ण ढंग से प्रहार किया गया है। ब्राह्मणवाद की लेखक ने पोल ही नहीं खोली है अपितु जाति–व्यवस्था पर प्रश्नचिन्ह भी लगा दिया हैं। जन्म से कोई कैसे अछूत या ब्राह्मण हो सकता है? जाति–व्यवस्था मानव सभ्यता की सबसे घृणित चीज है। यह न सिपर्फ व्यक्ति को जाति के नाम पर बाँटता है बल्कि मानव के विकास को भी अवरू(करता है। मनुष्य को जाति के आधर पर बांटने का काम ईश्वर ने नहीं किया। इसलिए जाति–व्यवस्था को ईश्वर द्वारा निर्मित नहीं कहा जा सकता। इसका निर्माण अतीत काल में स्वार्थी मनुष्यों ने किया था। लेखक ने उपन्यास में सापफतौर पर दिखाया है कि कोई भी जाति–व्यवस्था को ईश्वर का विधन बताकर जायज नहीं ठहरा सकता। उपन्यासकार ने ईश्वर के अस्तित्व पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया है। फ्ईश्वर तो सर्वव्यापी है। सृष्टि मेंजो कुछ हो रहा है वह सब ईश्वर की मर्जी से हो रहा है। यह सपफेद झूठ है, धेखा है कि ईश्वर सर्वव्यापी है। पिफर ईश्वर के सर्वव्यापी होते हुए ईश्वर भक्तों पर अपराध कैसे होते हैं।[3] उपन्यास में भाग्यवाद के खिलापफ भी आवाज उठायी गयी है। भाग्यवाद में विश्वास करने के बजाए लेखक ने कर्म करने की प्रेरणा दी है। फ्भाइयों, अब समय आ गया है कि आप संभल जाइये। समाज के दुश्मनों से खबरदार हो जाइये। अब इनके भुलावे में न आइये। जो भी आप कार्य करेंगे, उसी का पफल मिलेगा, भाग्य में लिखा कुछ नहीं है, जो कुछ है आपके हाथ में है।[4] समतामूलक समाज की स्थापना ही दलितों का लक्ष्य होना चाहिए। इसके साथ ही नियतिवाद में विश्वास करने की बजाए उन्हें सामाजिक परिवर्तन के लिए हमेशा तैयार रहना होगा। उपन्यास की खासियत इस बात में भी है कि इसमें दलितों को ईश्वर की दैविक शक्ति पर विश्वास करने की अपेक्षा तर्कपूर्ण ढंग से कार्य करने की प्रेरणा दी गई है। लेखक ने गैरदलित पात्राों के आपसी संवाद के माध्यम से भी हिंदू समाज के अंतर्विरोधें, रूढ़ियों एवं अंधविश्वास पर चोट की हैं। प्रदीप शुक्ला नामक पात्रा जो स्वभाव से ही जातिवाद का समर्थक है, को समझाते हुए उसका मित्रा राजीव शर्मा कहता है कि, हिंदू समाज के पतन के लिए तुम जैसे लोग ही जिम्मेदार हो। विचारों से प्रगतिशील राजीव शर्मा, प्रदीप शुक्ला को रूढ़िवाद और अंधविश्वास को त्यागने के लिए कहता है। राजीव अपनेमित्रा प्रदीप शुक्ला को कहता है कि हिंदू धर्म के पतन का कारण समाज में पफैली असमानता है। अमर और राजीव के विचारों का प्रदीप पर ऐसा प्रभाव पड़ता है कि वह हिंदू धर्म त्यागकर बौ(धर्म के प्रचार में लग जाता है। अंततः लेखक ने आशा व्यक्त की है कि आपसी संवाद के माध्यम से गैरदलितों में भी हृदय परिवर्तन हो सकता है।

डॉ० जयप्रकाश कर्दम दलित आंदोलन के एक सक्रिय कार्यकर्ता रहे हैं। उन्होंने भारतीय समाज का बारीकी से अध्ययन–मनन किया हैं। 'छप्पर' के माध्यम से भी उन्होंने भारतीय समाज व्यवस्था और मानसिकता की जांच की है। उपन्यास की विशेषता यह है कि, लेखक दलित जीवन के प्रश्नों के साथ–साथ उत्तर भी देते हैं। दलित अपनी यातनामय जिंदगी से बाहर आये, यही इच्छा उपन्यासकार की है। सवर्ण मानसिकता के प्रति लोगों में आक्रोश है और साथ ही बदलाव का तूपफान भी है। उपन्यास में चित्रित एक मातापुर गांव है जो पश्चिमी उत्तर प्रदेश में आता है। भारतीय गांवों में आज भी जातिवाद और

विषमता की खाई कितनी गहरी है इसका परिचय मातापुर में मिलता हैं। भारत में विषमता और वर्णव्यवस्था के कारण गांव का समाज भी बंटा हुआ है– गांव के उफंचे स्थान पर सवर्ण रहते हैं और निचले स्थान पर दलित। यह सच्चाई है। गांवों में ब्राह्मण, ठाकुर, पुरोहित प्रमुख होते हैं। वे समाज में अपना स्थान यथावत बनाए रखने के लिए धर्मशास्त्राों का सहारा लेते हैं। आर्थिक रूप से संपन्न होने के कारण भी ये दलितों का शोषण करते हैं। दलितों को भी मजबूरी में उनके नियम–कायदे को स्वीकार करना पड़ता है। लेकिन डॉ० अम्बेडकर के विचारों ने दलितों में जागृति लाने का कार्य किया है। अब दलित भी अपने मान–सम्मान के लिए व्यवस्था के परिवर्तन की मांग करने लगे हैं। उनमें आई चेतना से ही वे भी पढ़ाई के महत्त्व को समझने लगे हैं। मातापुर गांव के एक दलित सुक्खा का बेटा चंदन जब शहर पढ़ाई के लिए चला गया तब गांव के ब्राह्मण, ठाकुर सब के कान खड़े हो गए। सुक्खा चमार का बेटा शहर पढ़ने चला गया था जिसके कारण ब्राह्मण और ठाकुरों के आन को ध्क्का लगा था। चंदन के शहर जाने के पश्चात् गांव की पंचायत बुलाई जाती है। पंचायत में निर्णय होता है कि दलितों का शहर जाकर पढ़ना धर्मशास्त्रा के विरू(है। पर सुक्खा नहीं मानता है जिसके कारण गांव में उसके बहिष्कार का निर्णय होता है। शहर में भी हरिया नामक दलित पात्रा चंदन की पढ़ाई में हरसंभव मदद करता है। पफलस्वरूप तमाम परेशानियों को झेलते हुए भी चंदन एम.ए. करता है और पीएच.डी. के लिए पंजीकरण कराता है। भारतीय समाज की ब्राह्मणवादी मानसिकता के कारण ही हाशिये के लोग अपनी मूलभूत आवश्यकताओं से वंचित होते रहे हैं। उपन्यास की खासियत इसी में है कि हाशिये के लोग अपने अध्किार की मांग करते हुए दिखाए गए हैं। हाशिये के लोग भी अब व्यवस्था में परिवर्तन चाहते हैं। लेखक पुफले, अम्बेडकर के साथ गांधीवादी विचारधरा से परिवर्तन का हिमायती है। चंदन गांव में आकर लोगों को समझाता है कि–फ्हम व्यवस्था के विरोधि हैं व्यक्ति के नहीं। हमारी लड़ाई व्यवस्था के खिलापफ है, किसी व्यक्ति से कोई द्वेष नहीं है हमें। यदि कोई व्यक्ति इसमें बाध्क होगा तो उसका विरोध् अवश्य किया जाएगा, पिफर वह चाहे कोई भी हो।ः[5] चंदन हिंसा से नही अपितु शांतिपूर्ण तरीके से व्यवस्था में परिवर्तन चाहता है। ठाकुर का ह्रदय–परिवर्तन इसी बात का संकेत है। उपन्यास का केन्द्रीय भाव यही है कि दलितों को अहिंसात्मक साध्नों का सहारा लेकर भारतीय समाज व्यवस्था को बदलने का प्रयत्न करना चाहिए।

अंग्रेजों से भारत की आजादी के बाद भी दलित भारतीय समाज व्यवस्था में अपने को जकड़ा हुआ महसूस करते रहे हैं। भारतीय समाज में जाति की पकड़ इतनी मजबूत है कि उसको तोड़ना दलितों के लिए आसान काम नहीं हैं। देश तो आजाद हो गया लेकिन दलित आज भी ब्राह्मणवादी व्यवस्था से आजादी की लड़ाई लड़ रहे हैं। बाबासाहब ने आजादी के बाद स्वतंत्रा भारत में दलितों के अध्किार के लिए संविधन में कुछ प्रावधन बनाये थे। लेकिन भारतीय समाज के अंदर व्याप्त ब्राह्मणवादी संरचनाओं ने उन्हें आज भी अपने मूलभूत अध्किारों से वंचित रखा हुआ है। मुक्तिपर्व उपन्यास में मोहनदास नैमिशराय ने आजाद भारत में दलितों की मुक्ति के प्रश्न को बड़े ही तर्कपूर्ण ढंग से उठाया है। उपन्यास की भूमिका में वे लिखते हैं–फ्हम मुक्ति पर्व किसे कहें..? जब देश आजाद हुआ उसे या जब किसी जाति या कुछ जातियों को आजादी मिली उसे। मुक्ति से आखिर तात्पर्य क्या है, एक आदमी की मुक्ति या एक विशेष जाति की? यह सवाल पाठकों के मन में बार–बार उठेगा। यही सवाल आजादी के बाद से लेकर अब तक दलितों के भीतर उठता रहा है, जो उनकी भावनाओं को समय–समय पर उद्वेलित करता रहा हैंः[6] लेखक के मुताबिक, क्या दलितों के लिए आजादी के वही मायने हैं, जो आम भारतीयों के लिए हैं। जाहिर तौर पर, आजादी के बाद भी दलित व्यवस्था के अंदर अपने आपको जकड़ा हुआ महसूस करते हैं। हाँ, वे व्यवस्था परिवर्तन के लिए संघर्ष जरूर कर रहें हैं। व्यवस्था में परिवर्तन की झलक हमें नैमिशराय के उक्त उपन्यास में भी दिखाई देती है। उपन्यास में एक दलित बस्ती की कहानी है, जहां के मर्द–औरत सभी कमेरे हैं। वे सुबह ही घर से निकल पड़ते हैं मेहनत –मजदूरी करने के लिए और थके–हारे घर लौटकर दो वक्त की रोटी जुटा पाते हैं। आजादी के बाद दलितों के अंदर भी परिवर्तन की लहर दौड़ने लगी है। उपन्यास में इसका प्रतीक बंसी नामक दलित पात्रा है जो एक नवाब साहब की हवेली पर काम करता है। बंसी को नवाब साहब एक जगह गुस्से में कहते हैं– फ्तुम गुलाम थे गुलाम हो, गुलाम रहोगे।ः[7] जवाब में बंसी ने भी भड़कते हुए कहा– फ्जनाबे अली, हम न गुलाम थे, न गुलाम हैं और न गुलाम रहेंगे।ः[8] यहाँ पर भाषा के माध्यम से लेखक ने आक्रोश को सार्थकता प्रदान की है। सहज रूप से ही भाषा के द्वारा परिवर्तन का संकेत किया गया है। दलित भी अब शिक्षा के महत्त्व को समझने लगे हैं। इसलिए बंसी भी

अपने बेटे सुनीत को पढ़ा–लिखाकर अध्यापक बनाता है । ताकि वह ज्ञान रूपी ज्योति बनकर बस्ती के और बच्चों में ज्ञान की रोशनी पफैला सके। कंवल भारती 'आजादी का सवेरा और दलित अनुभूतियाँ' नामक लेख में लिखते हैं– फदरअसल यह उपन्यास दलितों में शिक्षा के महत्त्व को रेखांकित करता है शिक्षा ही दलित जातियों के उत्थान की चाबी है, उसी से उनकी मुक्ति का द्वार खुलता है इस शिक्षा को हासिल करने के लिए दलितों को बहुत कुछ बरदाश्त करना पड़ा था।[9] सुनीत को भी शिक्षा को हासिल करने में अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। लेकिन वह शिक्षा प्राप्त करने के बाद अपफसर बनने के बजाय अध्यापक बनकर वापस अपने बस्ती के स्कूल में लौट आता है और दलित बच्चों को शिक्षित करने में जुट जाता है। लेखक ने उपन्यास के माध्यम से संदेश देने की कोशिश की है कि, दलितों में जो लोग शिक्षित हैं उन्हे निरक्षर और असहायों के लिए आगे आना चाहिए। तभी जाकर आजादी का मतलब सार्थक होगा और समाज में समता आएगी।

भारतीय समाज के विकृत चेहरे को बहुत कम रचनाएं ही सही ढंग से चित्रित कर पाई हैं। उमराव सिंह जाटव का उपन्यास 'थमेगा नहीं विद्रोह' एक ऐसी ही रचना है जिसमें समाज की विकृत मानसिकता को विभिन्न स्तरों पर देखा और परखा गया है। आजादी के बाद भारत के संविधन में जिस लोकतांत्रिक–समाजवादी ढांचे के निर्माण की बातें कही गई थीं उसे लागू करने में हमारी सरकारें पूर्ण रूप से विपफल रही है। जिस कारण सामाजिक न्याय की मांगे अधूरी रह गईं। सामाजिक आंदोलनों के पफलस्वरूप आई चेतना ने हाशिये के लोगों को अपनी आवाज मुखर करने का अवसर प्रदान किया है। वे अब सरकारों द्वारा संविधन को समुचित रूप से लागू न करने पर सवाल खड़ा कर रहें हैं। समाज के वंचित तबकों की आवाजें इस उपन्यास में अत्यंत ही जुझारू रूप में अभिव्यक्त हुई हैं। सामाजिक प्रतिरोध की प्रक्रिया को स्वभाविक रूप में दिखाना ही इस उपन्यास का लक्ष्य रहा है। उपन्यास की कथानक का क्षेत्रा है दरियापुर गांव, जिसमें सामंती व्यवस्था अपनी गहरी जड़े जमाये हुए हैं। दलितों में पैदा हुई चेतना ने अत्याचारी व्यवस्था के खिलापफ प्रतिरोध करना सीख लिया है। गांव के गुजरों ने जब दलितों को पानी के मूलभूत अध्किार से वंचित करना चाहा तो उन्होंने भी इसका जमकर विरोध किया। वे कुएं का मामला लेकर बुलंदशहर की अदालत में गए और गुजरों पर मुकद्मा किया। दलितों को थाने और कचहरी का चक्कर लगाता देखकर गुजर भौंचक्के रह गये। अंततः न्यायालय के हस्तक्षेप से जाटवों की जीत हुई। जिससे सामाजिक, आर्थिक रूप से संपन्न भूपतियों को मुंह की खानी पड़ी और वंचितों में आपसी एकता के साथ ही आत्मविश्वास भी पैदा हुआ। कथा के अंदर सामंती ढांचे में पंफसी दारूण स्त्राी का भी चित्राण लेखक ने यथार्थवादी ढंग से किया है। 'चावली' और 'भागवंती' नामक पात्रा स्त्राी की विवशता का जीवंत प्रतीक है। किसी भी पुरुष समाज में स्त्राी स्वतंत्रा नहीं है। दलितों के अंदर भी स्त्राी के प्रति पुरुष मानसिकता को देखा जा सकता है। भागवंती जिसे लोग 'भागो' के नाम से जानते हैं, का विवाह तपेदिक के एक मरीज से तय हो जाता है। उसकी माँ 'सोना' जब इस बेमेल विवाह पर सवाल खड़ा करती हैं तब 'हेतराम' जो भागो का पिता है, सोना की पिटाई करते हुए कहता है– फ्लौंडिया ही लौंडियान की लैन लगा दी जन जन कै, जब ना सोची ही यू बात, कै इनकौ ब्याह भी करनौ पड़ैगौ। चुप्प हरामजादी जो एक बी सबद मुं सू लिकाड़ौ तौ।[10] बेटी पैदा होने का दोष पुरुष आज भी स्त्राी को देता है। पुरुष समाज में स्त्राी की यातना को लेखक ने बड़े ही मार्मिक ढंग से दिखाया है। कभी–कभी कुछ दलितों के अंदर ध्र्मभीरूता भी देखने को मिल जाती है। मंदिर और देवी–देवताओं के चक्कर में पड़कर अपनी बर्बादी को वे स्वयं बुलावा देते हैं। कथाकार ने तुलाराम भगत जैसे चरित्रा की रचना कर दिखाया है कि, कैसे वह अपनी ध्र्मभीरूता के कारण स्वयं को बर्बाद कर लेता है। लेखक का मानना है कि दलित समाज से जो लोग पढ़–लिखकर आगे जा चुके हैं, उन्हें वंचितों के लिए आगे आना चाहिए। उपन्यास के कथानक के माध्यम से ऐसा संदेश देकर उन्होंने समामूलक समाज की स्थापना के लिए मार्ग प्रशस्त किया हैं।

अजय नावरिया के उपन्यास उधर के लोग की मुख्य कथा आज के शिक्षित हो चुके दलित वर्ग से संबंधित है जो आरक्षण का लाभ लेकर समाज में एक नये मध्यम वर्ग की नींव रख चुका है। दलित समाज के अंदर उभरे अंतर्विरोधें को लेखक ने बहुत ही सटीक ढंग से उठाया है। बहुसंख्यक और अल्पसंख्यक का भाव दलितों के अंदर भी पैदा हो गया है। रोजगार के अवसर ने उनके अंदर इस तरह की भावना को और ज्यादा मजबूत किया है। जाति से वाल्मीकि होने के कारण सुशील पंडितों के साथ ही जाटवों से भी नपफरत करता है। उसके अनुसार जाटव भी वाल्मीकियों से छूतछात करते हैं। उपन्यास में एक स्थान पर

सुशील अपने दोस्तों से कहता है– ''मैंने कब कहा कि जाटवजाति से मैं चिढ़ता हूँ। मुझे उन जाटव लोगों से चिढ़ है, जो हमारे लोगों से छूत–छात करते हैं....ृ[11] भारत में जाति की संरचनाओं को देखकर आश्चर्य तो होता ही है। उपन्यास की कथा में असलम नाम का पात्रा एक जगह व्यंग्यात्मक लहजे में कहता है– फ्भाईजान, हिन्दुओं को तो उनकी जात ले बैठी। जात–में–जात, जात–में–जात, ज्यों केलन के पात।ृ[12] आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि भारतीय समाज में हर एक जाति अपने से निम्न एक दूसरी जाति ढूंढ ही लेती है। भारतीय जाति–व्यवस्था में आश्यर्चजनक तरीक से वर्णक्रम को बरकरार रखा गया है। दलितों में भी उफँच–नीच का भेद–भाव व्याप्त है जिसका पफायदा ब्राह्मणवाद के समर्थक उठाते हैं। इस बिखराव के कारण दलित आंदोलन को आगे नहीं बढ़ाया जा सकता । ब्राह्मणवादी व्यवस्था से टक्कर लेने के लिए दलितों में आपसी सामंजस्य बहुत जरूरी है। सामान्यता देखा जाए तो दलितों के बीच रोटी–बेटी का संबंध नहीं है। आपस में ही उँच–नीच के पफर्क के कारण दलित समाज आज भी हाशिये पर बना हुआ है। स्वतंत्राता के पश्चात भी सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से दलित वंचित हैं। आवश्यकता इस बात की है कि आरक्षण का लाभ दलितों में जिस तबके को मिला है, उन्हें समाज में पिछड़ गये तबकों के लिए आगे आना चाहिए। इसके पश्चात ही स्वस्थ और सुंदर भारत का निर्माण किया जा सकता है। प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने उपयुक्त बातों की ओर संकेत करने का सार्थक प्रयास किया है। इसके अलावा उपन्यास में बाजारवाद के दुष्परिणाम, वेश्यावृत्ति, यौन–विकार, प्रेम–विवाह और तालक पर भी खुलकर बात हुई है। उपन्यासकार की सबसे बड़ी विशेषता यथार्थ को रोचक ढंग से प्रस्तुत करने में है। यह सब उन्होंने नायक की जीवन–कथा के माध्यम से कुशलतापूर्वक किया है। शिल्प, संरचना और वैचारिक दृष्टि से भी यह उपन्यास बेजोड़ है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि दलित उपन्यासों में मुक्ति और स्वतंत्राता के गंभीर सरोकार विद्यमान हैं। शिल्प और संरचना की दृष्टि से कुछ कमियां अवश्य हो सकती हैं। लेकिन वैचारिक दृष्टि से पुफले औरअम्बेडकर के प्रति जबरदस्त प्रतिब(ता दिखाई देती है। सामाजिक न्याय की मांग, वैज्ञानिक दृष्टिबोध, अनीश्वश्वाद, वर्णव्यवस्था का विरोध, सामंतवाद का विरोध, पूंजीवाद का विरोध, ब्राह्माणवाद का विरोध, सांप्रदायिकता का विरोध,कर्मकांड का विरोध, जैसे सवाल दलित उपन्यासों में मौजूद है। अतः स्पष्ट है कि दलित साहित्य के विकास में दलित उपन्यासों का महत्त्वपूर्ण योगदान है।

संदर्भ :

1. दलित अस्मिता और हिन्दी उपन्यास, डॉ. पुरूषोत्तम सत्यप्रेमी, वसुध, अंक–58, जुलाई–सितम्बर, 2003, भोपाल, पृष्ठ 192.
2. अमर ज्योति, डी.पी. वरूण, पृष्ठ 8.
3. वही, पृष्ठ 7.
4. वही, पृष्ठ 30.
5. छप्पर, जयप्रकाश कर्दम, पृष्ठ 109.
6. मुक्ति पर्व, मोहनदास नैमिशराय, पृष्ठ 5.
7. वही, पृष्ठ 28.
8. वही, पृष्ठ 28.
9. आजादी का सवेरा और दलित अनुभूतियाँ, कंवल भारती, अपेक्षा, अंक 30–31, जनवरी–जून, 2010, दिल्ली, पृष्ठ 17.
10. थमेगा नहीं विद्रोह, उमराव सिंह जाटव, पृष्ठ 114.
11. उधर के लोग, अजय नावरिया, पृष्ठ 55.
12. वही, पृष्ठ 59.

***

पिछड़े दलितों के उत्थान का गलियारा : समवादी सत्ता

*आशुतोष यादव**

समाज में विभिन्न प्रकार के आन्दोलन तथा नये वादों का प्रचलन तेजी से उभरकर समाज के सम्मुख आ रहा ळे, जिसका कारण नयी–नयी विचारधारा के लोग है, जो समाज के सम्मुख अपनी नयी विचारधारा के साथ खड़े होते है, और उस विचारधारा के पीछे हमेशा से उपेक्षित वर्ग ही रहा है, जो आर्थिक, सामाजिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक आदि रूपों से पिछड़ा है। वही लोग अपने वर्ग के लोगों को जागरूक कर समाज में समता के भाव को स्थापित करने के लिए अपनी विचारधारा के साथ आन्दोलन करते है, और वही आन्दोलन समाज में एक नया वाद खड़ा करता है। जो उपेक्षित वर्ग का प्रतिनिधित्व करता है। इसी प्रकार संत शिरोमणि रैदास, बाबा साहेब भीमराव अम्बेडकर तथा डॉ0 राममनोहर लोहिया जैसे लोगों ने अपनी विचारधारा के तहत आन्दोलन किया तथा समाज में समवाद, समाजवाद जैसे वादों को उपेक्षित वर्ग के प्रतिनिधित्व के लिए खड़ा किया तथा दूसरी तरफ साहित्यकार भी अपनी लेखनी के माध्यम से उपेक्षित वर्ग के समस्याओं का चित्रण अपने साहित्य में किया जिसके परिणामस्वरूप साहित्य में दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श आदि नये विमर्श अस्तित्व में आये।

यदि साहित्य और साहित्यकार की बात करे तो, साहित्यकार की 'कृति' बड़ी होती है न की साहित्यकार तथा साहित्य में उसी कृति को स्थान दिया जाता है, जो वर्तमान समय के परिस्थितियों में व्याप्त शोषण के विरूद्ध प्रश्न खड़ा करती हो तथा तीनों कालों (भूत, वर्तमान और भविष्य) का संधान एक साथ करती हो वही श्रेष्ठ साहित्य है।

श्रेष्ठ साहित्य के सन्दर्भ में डॉ0 शिवप्रसाद सिंह लिखते है ''समय के प्रति लेखक की प्रतिबद्धता युग–बोध के प्रति सचेत अभिज्ञान में निहित है। समय का छन्द सचेत द्रष्टा या लेखक की रचनाओं में अपने आप झंकृत होता है। हमारे जीवन का कोई भी ऐसा अंश नही है, जो समय से आबद्ध न हो जीवन के प्रति साक्षी होने का भाव समय के प्रति साक्षी होना ही है।''[1]

तथा 'प्रोफेसर सुरेशचन्द्र' साहित्य के सन्दर्भ में लिखते है–''भाषा साधन है साध्य नही और साहित्य साधना है संसाधन नही।''[2]

हिन्दी साहित्य में गद्य विधा के लेखन की बात करे तो भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पिता गिरधरदास के 'नहुष' नाटक से माना जाता है जो हिन्दी खड़ी बोली का प्रथम नाटक भी माना गया है। भारतेन्दु यगु में 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' ने इस परम्परा को आगे बढ़ाया। उस समय के नाटक का आधार अंग्रेजी हुकुमत का अत्याचार रहा किन्तु आगे चलकर जयशंकर प्रसाद, भीष्म साहनी आदि नाटककारों ने समाज के उपेक्षित वर्गों का चित्रांकन किया। कुछ इसी प्रकार का साहित्य 'प्रोफेसर सुरेशचन्द्र' जी का भी है। जिन्होंने 'संत शिरोमणि संत रैदास', डॉ0 भीमराव अम्बेडकर जैसे लोगों द्वारा बनायी गयी समवाद की पृष्ठभूमि को आधार मानकर 'समवादी सत्ता' नाटक की रचना की, जिसमें कुल छः अंक तथा 20 दृश्य है जो सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक आदि रूपों से समृद्ध है। इस नाटक की भाषा हिन्दी तथा सजीवता प्रदान करने के लिए सन्तोष कश्यप के परिवार की भाषा का प्रयोग ज्यों का त्यों किया गया है। पात्र संयोजन, संवाद, कथानक तथा वैचारिकी में समता मूल्यों का विशेष ध्यान दिया गया है जो नाटक की परिपाटी पर खरे उतरते है। यदि सामाजिक रूप से इस नाटक मूल्यांकन करें तो–प्रथम अंक से यही उद्धृत होता है कि, समाज में फैले बुद्धजीवी, आर्थिक, सांस्कृतिक, राजनैतिक, सामाजिक रूप से पिछड़े दलित बहुसंख्यक लोगों के सम्वेदनाओं का हनन करके बुद्धजीवी वर्ग अपनी सत्ता बनाने के लिए जाल बिछाते है। कुछ ऐसा ही संवाद नाटक में बुद्धजीवी खगेन्द्र सिंह और उनकी

* जन्मः 07.07.1992, माता-पिताः- श्रीमती मीरा देवी, श्री सूरत यादव, शिक्षा- स्नातक/परास्नातक-वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय जौनपुर,

पुत्री मृदुला सिंह के बीच होता है– ''खगेन्द्र सिंहः बेटी!.....दलितों के आदर्श व्यक्तियों, जैसे रैदास, डॉ0 अम्बेडकर के जन्म दिवसों पर आयोजन कराओं। मुझे पुरा विश्वास है कि शीघ्र ही तुम शहर में प्रगतिशील और जनसेवा का पर्याय बन जाओगी अपने वर्ण, अपनी विचारधारा के लोगों के साथ–साथ दलित और पिछड़े समाज के लोग तुम्हे अपना नेता मान लेगे। तुम परिस्थितियों का दोहन अपने पक्ष में जितना अधिक करोगी, उतना ही आगे बढ़ोगी।''[3]

इसी अंक में एक तरफ संतोष कश्यप और उनकी पत्नी भगवान देवी दोनों खगेन्द्र सिंह के परिवार के प्रति मानवीय संवेदना की प्रतिष्ठा करते है तो दूसरी तरफ उन्हीं के समक्ष अपने स्वाभिमान की रक्षा भी करते है।

अर्थात् पिछड़े दलित बहुसंख्यक यदि बुद्धजीवियों के समक्ष यदि अपने स्वाभिमान को अडिग नही होने देंगे तो वो उनके विकास की प्रथम सीढ़ी होगी।

अंक दो में कुल तीन दृश्य है जिसमें बुद्धजीवी मृदुला सिंह द्वारा दलित पिछड़ों के लिए आवाम कोचिंग का अनावरण होता है, जिसका मुख्य उद्देश्य दलितों के पति दिखावटी सम्वेदना तथा नये धनाड्य जो पिछड़े दलित है उनसे धर्नाजन करना। दूसरे दृश्य में समवाद का विचार देने वाले संत शिरोमणि रविदास जी की जयन्ती पर रामदेव भास्कर, दलित छात्र, शेर सिंह रैदास के कर्म मूल्यों को उपस्थित जन के समक्ष प्रस्तुत करे है समवाद की कल्पना करते हुए 'संत रैदास' ने लिखा है–

''रविदास इक ही नर ते, जिमि उपख्यों संसार
ऊँच–नीच किह विध भये, ब्राम्हण अरू चमार
सभ महिं एक ही जोती है. सम घट एक समान
जात–पात के फेर महि, उरझि रहन सभ लोग
मानुषता को खात हइ, रविदास जात का रोग
जन्म जात कू छाड़ि करि, करनि जात प्रधान
इह्वो वेद का धरम है, करै रविदास बखान
रविदास के जन्म के कारण, होत न कोऊ नीच
नर कूँ नीच कर डारि हैं, ओछे करम की कीच।''[4]

जात–पात, ऊँच–नीच की भावना में लोग उलझकर मानवता को नष्ट करते है जिससे समाज में विद्रुपताओं का जन्म होता है। समाज में व्यक्ति का कर्म उसको महान बनता है, जिसका कर्म ओछा होगा वही नीच होता है।

समवादी राज्य की कल्पना करते हुए रैदास जी लिखते है–

''ऐसा चाहू राज्य में जहॉ मिलै सवन को अन्न
छोट बढ़ो सभ सम बसै रैदास रहे प्रसन्न।''[5]

अंक तीन में सन्तोष कश्यप और भगवान देवी के बीच शिक्षा को लेकर चर्चा होती है जिसमें भगवान देवी अपने न पढ़ पाने की वजह बताते हुए कहती है– हमारे गॉव में पाठशाला नही थी, बड़ी होकर स्कूल जाने की सोची लेकिन, बड़ी जाति के लोगों को छेड़खानी की वजह से नही गयी और सबसे बड़ा कारण नदी पर पुल नहीं था जिसे पार कर उस पार जाकर पढ़ सके। सन्तोष कश्यप अपनी बात रखते हुए कहते है कि, माँ बड़े लोगों के काम के लिए साथ ले जाती, जहॉ काम के बदले खाना मिलता और बड़े लोग कहते भी थे, काम करावो, पढ़–लिख कर जज–कलैक्टर थोड़ी बनेगा, काम करेगा तो पैसा मिलेगा।

अर्थात् दोनों के संवादों से प्रतीत होता है कि बुद्धजीवी लोग मजदूरों और पिछड़े दलितों को शिक्षा से वंचित कर अपने मन–मुताबिक शोषण करना उनका मुख्य उद्देश्य होता है तथा दूसरी तरफ इसी अंक में भगवान देवी शिक्षित होकर ज्योतिबा फुले को आदर्श मानकर सन्तोष कश्यप को शिक्षित करने का संकल्प लेती है।

चौथे अंक में कुल चार अंक है जो राजनीतिक आधार पर महत्वपूर्ण है। मृदुला सिंह बहुसंख्यक समाज की नेता बनना चाहती है जिसके लिए रैदास और अम्बेडकर जयन्ती का समारोह अपने आवाम कोचिंग पर कराती है, लेकिन उनके विचारों के दर्शन को नही जानती है। इस बात पर आश्चर्य करते हुए

'महेन्द्रशबर' ने अम्बेडकर जी के सिद्धान्त त्रयी (शिक्षा–संघटन–संघर्ष) तथा 'रैदास' जी के समवाद को बताते हुए कहते है– ''समवाद यानी समाज में भेद रहित समजीवन का सिद्धान्त''[6] अगले दृश्य में सुदर्शन कांत (गैर दलित बुद्धजीवी) तथा कर्मानन्द में संवाद होता है तभी मृदुला सिंह वहाँ पहुचती है तब कर्मानन्द जी कैमरा वाली पेन वही मेज पर छोड़ कर चले जाते है उसके बाद चुनाव में महेन्द्रशबर को पराजित करने के लिए मृदुला सिंह और सुदर्शनकान्त के बीच संवाद होता है–

सुदर्शनकान्तः तुमको यह पता ही है कि भारत अंग्रेजों का उपनिवेश रहा है।

मृदुला सिंहः हाँ!

सुदर्शनकान्तः जानती हो इसका क्या कारण था?

मृदुला सिंहः अंग्रेजों की बांटो और राज्य करो नीति।

सुदर्शनकान्तः अंग्रेजों की! (हँसते है) अंग्रेजों की नही आर्यों की। और स्पष्ट कर दूँ ब्राम्हणों की। अंग्रेजों ने समाज को बांटने का ढ़ंग ब्राम्हणों से सीखा। ब्राम्हण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र ये सब किसने किया। ब्राम्हणों ने.....तुम्हे समझना है कि जैसे अंग्रेजों का उपनिवेश भारत था वैसे ही आवामवादियों का उपनिवेश आदिवासियों एवं दलितों का वंचित समाज है, तुम आदिवासियों और दलितों में हमारे उपनिवेश को अधिक से अधिक मजबूत करने का उपक्रम करो! तुम्हारा राजनीतिक भविष्य स्वतः संवरता चला जायेगा।''[7]

मार्क्सवादी विचारधारा के सुदर्शनकान्त के विचारों से मृदुला सिंह प्रसन्न होकर गुरू दक्षिणा के रूप में अपने जिस्म को सुदर्शनकान्त के हवाले करती है।

दूसरी तरफ शेर सिंह को 'कर्मानन्द' जी अपने आफिस बुलाते है वहाँ चुनाव की बात होती है जिसमें 'कर्मानन्द' जी शेरसिंह को बुद्धजीवियों द्वारा किये जाने वाले षड़यन्त्र से अवगत कराते है।

पाँचे अंक में महेन्द्रशवर के खिलाफ होने के लिए शेर सिंह को नकाबपोश गुण्डो द्वारा डराया–धमकाया जाता है लेकिन निडर–निर्भीक संघर्षशील शेरसिंह, डॉ0 अम्बेडकर और रैदास के सिद्धान्तों पर चलने वाला नवयुवक है जो अपने मित्र महेन्द्रशवर के प्रति अडिग रहता है तथा दूसरे दृश्य में शेर सिंह के आवास पर मुकेश यादव महेन्द्रशवर की वार्ता होती है फिर सुदर्शनकान्त के कर्मों का फल दिलाने के लिए तहरीर दर्ज कराते है तथा अगले अंक में चुनाव जितने के बाद कालेज से ही 'समवादी सेवा दल' का प्रचार– प्रसार तथा पिछड़े दलितों के उत्थान के लिए देश में समवादी सत्ता कायम करते है जिसमें भगवान देवी प्रधानमंत्री तथा महेन्द्रशवर उपप्रधानमंत्री के रूप में स्थापित होते है।

निष्कर्षतः यह कहना भी गलत नहीं होगा कि बुद्धजीवियों के खिलाफ उनके द्वारा बनायी गयी, सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, सांस्कृतिक नीतियों का खंडन करके उपेक्षित वंचित बहुसंख्यक वर्ग के लोगों को समवाद की राह पर संघर्ष करके अपनी सत्ता कायम कर समानता का अधिकार मिल सकता है।

इस नाटक के माध्यम से 'प्रोफेसर सुरेशचन्द्र जी' ने समाज के उपेक्षित वर्ग को जागृत करने का सफल प्रयास किया है जिससे वे एकजुट होकर अपनी सत्ता कायम कर समाज में अपने अस्मिता एवं स्वाभिमान को स्थापित कर सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. मेरी जवाबदेही– डॉ0 शिवप्रसाद सिंह, पृ0–07.
2. साहित्य और मानवीय सरोकार–डॉ0 सुरेशचन्द्र, आकांक्षा पब्लिशिंग हाऊस, नई दिल्ली, प्रथम संस्करण, पृ0–23.
3. समवादी सत्ता– डॉ0 सुरेशचन्द्र, अमन प्रकाशन कानपुर, उ0प्र0, प्रथम संस्करण, 2019. पृ0–19.
4. राजेश कुमार पासवान–''दलित अस्मिता और रैदास का काव्य'', पृ0–40–41.
5. संत सुरिन्दर दास बाबा, जगतगुरू रविदास अमृतवाणी एवं संक्षिप्त जीवन, पृ0–177.
6. समवादी सत्ता– डॉ0 सुरेशचन्द्र, अमन प्रकाशन कानपुर, उ0प्र0, प्रथम संस्करण, 2019, पृ0–67.
7. वही, पृ0–74.

***

भारत-पाकिस्तान संबंध : अविश्वास एवं आशा की गाथा

डॉ. अमित कुमार सिंह *

"हर दक्षिण एशियाई जानता है कि घर में लड़ते-झगड़ते रहने वाला कोई परिवार खुश नहीं रह सकता और झगड़ालू पड़ोसियों के रहते कोई समुदाय समृध्द नहीं हो सकता। हमें यह भी मालूम है कि अलग-थलग रहने वाले पड़ोसियों के बीच कोई समृध्द भी हो तो उसकी समृध्दि बहुत देर तक नही बनी रह सकती। वैश्वीकृत हो रही दुनिया में सिकुड़ते स्थानऔर समय के कारण कई बार टकराव होते हैं जो अक्सर झगड़ो में बदल जाते हैं। ऐसे में पारस्परिक संवाद और विचार-विमर्श अपरिहार्य हैं"।

थिम्पू दक्षेस सम्मलेन में ***भूटान के प्रधानमन्त्री जिग्मी वाई. थिनले*** का बयान,

भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध न केवल दक्षिण-एशिया बल्कि समूचे अंतर्राष्ट्रीय राजनीति की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण, संवेदनशील एवं रोचक विषय रहा है। भारत और पाकिस्तान का इतिहास, इसकी साझी-संस्कृति, भू-राजनीति, सत्ता-संरचना की आन्तरिक-बनावट, राष्ट्र-निर्माण के इसके प्रयास, उनका सामाजिक-मनोविज्ञान और दोनों देशों में धर्म की भूमिका एक-दुसरे से सर्वथा भिन्न है। इसके परिणामस्वरूप दोनों ही देशों का चाल-चिंतन और चरित्र परस्पर विरोधाभासी मालूम पड़ता है।

इतिहास के गर्भ में, पाकिस्तान एक एक्सिडेंटल-चाइल्ड है। भारत से अलग पाकिस्तान का अपना कोई इतिहास नहीं है। इसलिए वह पहचान के संकट से जूझता है। विश्व-पटल पर वह क्या चाहता है? इसका उसे इल्म भी नहीं है। इस कारण पाकिस्तानी-अवचेतन सदा असुरक्षा और उथल-पुथल का शिकार रहता है। पाकिस्तानी सत्ता-संरचना इसका लाभ उठाता है। यही नहीं, भारत से वर्ष 1947, 1965, 1971 और 1999 की युध्द-पराजय पाकिस्तानी मन में हिस्टीरिया पैदा करता है। ऐसे में, भारत-विरोध पाकिस्तानी प्राणवायु के लिए संजीवनी का काम करता है। इसका लाभ पाकिस्तान का सत्ता-वर्ग, सैनिक-तंत्र, ख़ुफ़िया-तंत्र, राजनीतिक-दल, मीडिया और नॉन-स्टेट एक्टर, विशेषकर जिहादी संगठन उठाते हैं। दूसरी और, भारत विश्व का सबसे बड़ा और परिपक्व लोकतंत्र, तेजी से आर्थिक विकास करता हुआ एक प्रगतिशील राष्ट्र और दक्षिण-एशिया का सबसे शक्तिशाली देश है। इस पृष्ठभूमि में, यह समझना आसान होगा कि भारत-पाकिस्तान सम्बन्ध सतत तनाव, संघर्ष और संघर्ष-निवारण के प्रयासों का एक रोचक पटकथा है।

भारत के पास दक्षिण एशिया का करीब 73 प्रतिशत भूमि क्षेत्रफल, 77 प्रतिशत आबादी तथा सकल राष्ट्रीय उत्पाद का 77 प्रतिशत हिस्सा हुआ करता था। इस भारी-अंतर का दुष्परिणाम यह हुआ कि वर्ष 1947 के बाद ही कश्मीर में दोनों देशों के मध्य एक संघर्ष का सूत्रपात हो गया। 22 अक्टूबर 1947 को पाकिस्तान के कबालियों ने जम्मू-कश्मीर में आक्रमण कर दिया। इस समय, जम्मू-कश्मीर एक स्वतंत्र रियासत था। यह कबायली आक्रमण बहुत निर्मम एवं क्रूर था। इस संकट कि घडी में, जम्मू-कश्मीर के महाराजा हरि सिंह ने भारत से सहायता की पेशकश की। भारत ने सहयता के लिए जम्मू-कश्मीर के समक्ष विलय का प्रस्ताव रखा। 26 अक्टूबर 1947 को राजा हरि सिंह ने विलय के पत्र पर हस्ताक्षर कर दिया। 27 अक्टूबर 1947 को भारतीय गवर्नर जनरल ने इसे स्वीकृति प्रदान कर

* विभागाध्यक्ष एवं एसोसिएट प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, आर.एस.एम.पी.जी. कॉलेज धामपुर बिजनौर, (उ.प्र.)

दी और साथ ही साथ कश्मीर में सहायता के लिए अपनी सेनाएं भेज दी। भारत ने अपने प्रयास से कबायली आक्रमण को धराशायी कर दिया।

पाकिस्तान सदैव भारत में जम्मू-कश्मीर के इस विलय को अस्वीकार करता है जबकि ऐतिहासिक तथ्य पाकिस्तान के इस दावे का खंडन करते हैं। कालांतर में, पाकिस्तान धार्मिक आधार पर कश्मीर में अपने दावे को दोहराता रहा है, जबकि सत्य एवं तथ्य यह है कि कश्मीर भारत का एक अभिन्न अंग है, इस आशय का प्रस्ताव भारतीय संसद में पारित हो चुका है। यद्यपि पाकिस्तान मुस्लिम जनसंख्या के आधार पर कश्मीर में अपने अतिरंजित एवं प्रतिक्रियवादी दावे को दोहराता है लेकिन विभाजन के उपरांत भी, भारत में करीब 4 करोड मुस्लिम जनसंख्या स्थाई रूप से रह रहे थें। बहरहाल, कश्मीर आज तक भारत और पाकिस्तान के आंतरिक राजनीति की विफलता और भारत द्वारा बांग्लादेशी मुक्ति संघर्ष की सहायता से जब वर्ष 1971 में बांग्लादेश का अभ्युदय हुआ, उसके बाद से पाकिस्तान भारत से बदले की बात बार-बार दोहराता है। यही नहीं, पाकिस्तान कश्मीर में सीमा-पार आतंकवाद की गतिविधियों को आयोजित, प्रायोजित और संचालित करता है। यद्पि, वर्ष 2014 में भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी के शासन में सत्तारूढ होने के बाद भारत दो बार सीमा पर सर्जिकल-स्ट्राइक को अंजाम दे चुके हैं। यही नहीं, 2019 में कश्मीर में धारा- 370 की समाप्ति के साथ ही कश्मीर के संबंध में एक नवीन दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया है।

यद्यपि, कश्मीर भारत-पाकिस्तान संबंध का सबसे विवादित बिंदु है लेकिन इसके अतिरिक्त भी भारत-पाकिस्तान संबंध कि गतिशीलता के अन्य कई महत्वपूर्ण आयाम हैं। अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से, भारत-पकिस्तान सम्बंधों को दो भागों में विभाजित किया जा सकता है-

(1) शीतयुध्दकालीन संबंध और,

(2) शीतयुध्दोत्तर संबंध

शीतयुध्दकालीन संबंध-: भारत शीतयुध्द के दौरान, समूचे विश्व में भारत गुट-निरपेक्ष आंदोलन की अगुवाई कर रहा था। विदित है कि गुट-निरपेक्ष आन्दोलन, शीतयुध्द में अमेरिका और सोवियत-संघ के वैचारिक संघर्ष से कोसों दूर रहकर मुद्दों के आधार पर एशिया और अफ्रीका के नवोदित राष्ट्रों को एक वैकल्पिक मार्ग का दिशा-निर्देश दे रहा था। इसी समय पाकिस्तान शीतयुध्द के अगुआ अमेरिका द्वारा प्रायोजित सैन्य गठबंधन सीएटो (SEATO) एवं सेंटो (CENTO) का सदस्य बन चुका था। चूंकि भारत विरोधी पाकिस्तान की विदेश-नीति का एक अनिवार्य अंग रहा है, ऐसे में जब वर्ष 1962 में भारत अपनी रणनीतिक- भूलों, सैन्य तैयारी की कमी और चीन के गलत आकलन के कारण जब पराजित हुआ, इस समय पाकिस्तान भारत पर सैन्य दवाब डालकर कश्मीर के संबंध में अपनी रणनीतिक कुंठाओं को हवा दे रहा था। फलतः पंडित जवाहरलाल नेहरू की मृत्यु चीन से भारतीय-पराजय और अमेरिकी नेतृत्व के शह से प्रभावित होकर पाकिस्तान ने वर्ष 1965 में भारत पर आक्रमण कर दिया। पाकिस्तान इस युध्द में बुरी तरह पराजित हुआ। इस युध्द के पश्चात, वर्ष 1966 में भारत और पाकिस्तान के मध्य ताशकंद समझौता हुआ। **ताशकंद समझौता** के प्रावधान निम्नलिखित हैं--

(1) भारत और पाकिस्तान के बीच अच्छे पडोसियों का संबंध कायम करने के लिये संयुक्त राष्ट्र के घोषणा पत्र के अनुसार पूरे प्रयत्न किए जायेंगे।

(2) भारत और पाकिस्तान दोनों ही एक दूसरे के आंतरिक मामलों में कोई दखल नहीं देंगें।

(3) भारत और पाकिस्तान के बीच पुनः आर्थिक, व्यापारिक और सांस्कृतिक संबंध स्थापित होगा।
(4) युध्द-बंदियों की अदला-बदली की जाएगी इत्यादि।

आश्चर्यजनक एवं अफ़सोसजनक रूप से, ताशकंद समझौते में किया गया वादा पाकिस्तान लम्बे समय तक नहीं निभा पाया| कुछ ही दिनों बाद, फरक्का बांध को लेकर भारत और पाकिस्तान में विवाद आरम्भ हो गया| दूसरी और, पाकिस्तान के आतंरिक राजनीति-संरचना में उथल-पुथल आरम्भ हो गया| वर्ष 1969 में एक सैनिक विद्रोह के अंतर्गत जनरल याहया खान ने फील्ड मार्शल को सत्ता से हटा दिया, जो वर्ष 1958 से पाकिस्तान में शासन कर रहे थें। वर्ष 1970 में याहया खान ने पाकिस्तान में चुनाव की घोषणा की। इस चुनाव में मुजिबुर्रहमान को पूर्वी पाकिस्तान में ज़बरदस्त चुनावी सफलता मिली। पश्चिमी-पाकिस्तान में लोकतंत्र बहाली की मांग करने वाले ज़ुल्फिकार भुट्टो ने याहया खान से हाथ मिला लिया। यहया खान ने पूर्वी पाकिस्तान के विरुध्द बर्बर हिंसा का सहारा लिया। इस बर्बरता से घबराकर बडी संख्या में पाकिस्तान से बंगाली जनसंख्या भारत आने लगे, जिससे भारत की आंतरिक सुरक्षा चरमराने लगी। पाकिस्तान ने मुज़िबुर्रह्मान के आंदोलन को हिंसा से दबाने का काम किया। यह काम आग में घी डालने जैसा था। दिसम्बर 1971 में पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण कर दिया। भारत ने भी जबाबी कार्यवाही की। इस युध्द मे एक बार फिर, पाकिस्तान पराजित हुआ। उधर पाकिस्तान से अलग होकर बांग्लादेश नाम का एक स्वतंत्र देश अस्तित्व में आया।

1971 के युध्द के बाद, पाकिस्तान के ज़ुल्फिकार अली भुट्टो और इंदिरा गांधी के मध्य शिमला समझौता हुआ। वर्ष 1972 के **शिमला समझौते** के उद्देश्य निम्नलिखित थे-

- भारत एवं पाकिस्तान के अधीन पाकिस्तानी युध्द-बंदियों को मुक्त कराना।
- बांग्लादेश को मान्यता देना।

शिमला समझौते के अनुसार, यह तय किया गया कि 17 सितम्बर, 1971 की युध्द विराम रेखा को नियंत्रण रेखा (एल.ओ.सी.) की मान्यता दी जायेगी। दोनों देशों के मध्य इस बात पर भी सहमति स्थापित हुई कि भारत और पाकिस्तान की सेनायें अपने-अपने क्षेत्रों में वापस हो जायेंगी।

शिमला समझौते के पश्चात, भारतीय प्रधानमंत्री इंदिरा गांधी की दूरदर्शिता को पाकिस्तानी प्रधानमंत्री ज़ुल्फिकार भुट्टो ने उनकी कमजोरी मानी और पाकिस्तान में लोकतंत्र बहाली के लिये कोइ ईमानदार कोशिश नहीं की। दूसरी और, पाकिस्तान ने इस्लामिक देशों और अमेरिका कि सहायता से परमाणु बम बनाने का निर्णय लिया। वर्ष 1978 में पाकिस्तान में पुनः सैनिक शासन स्थापित हो गया और जनरल जिया-उल-हक पाकिस्तान के नए राष्ट्रपति बने। उन्होंने पाकिस्तान में इस्लामीकरण की नीतियों को हवा दी। शीतयुध्द के दौरान, 1979 में सोवियत-संघ की सेना अफगानिस्तान में प्रवेश की। इस दौरान, अफगनिस्तान शीत युध्द का नया केंद्र बन गया। अमेरिका ने अफगानिस्तान में सोवियत-संघ के हस्तक्षेप को रोकने के लिये पाकिस्तान से अपनी मैत्री बनाई। पाकिस्तान ने इसी समय प्रशिक्षित आतंकवदियों को कश्मीर में आतंकवाद को बढाने के लिये प्रेरित किया। यहीं से, सीमा-पार प्रायोजित आतंकवाद भारत-पाकिस्तान के मध्य एक महत्वपूर्ण विवादित मुद्दा बना हुआ है। वर्ष 1988 मे सोवियत-संघ की सेनायें अफगानिस्तान से लौट गई तथा वर्ष 1991 में सोवियत-संघ के विघटन के साथ विश्व में शीतयुध्द की समाप्ति हो गई लेकिन भारत-पाकिस्तान के मध्य शीत-युध्द का तनाव आगे भी जारी रहा।

6 दिसम्बर 1992 में अयोध्या में विवादित मस्जिद के गिराये जाने, उसके बाद साम्प्रादायिक दंगे और 12 मार्च 1993 को मुम्बई में हुए बम धमाकों के कारण भारत-पाकिस्तान संबंध में गतिरोध आ गया। यह गतिरोध भारत मे इंद्र कुमार गुजराल के सत्ता सम्भालने के बाद समाप्त हुआ। उन्होनें 20 मार्च 1997 को एकतरफा

रियायतों की घोषणा की। इसके बाद वर्ष 1998 में पहले भारत और फिर पाकिस्तान द्वारा परमाणु परिक्षण किये जाने से दोनों देशों के रिश्तों में नाटकीय परिवर्तन आया। इसी बीच दोनों देशों के मध्य जुलाई 1998 में सार्क के कोलम्बो शिखर सम्मेलन और सितम्बर में दक्षिण अफ्रीका के डरबन में आयोजित गुट-निरपेक्ष सम्मेलन में वार्त्ता जारी रही, इसका सकारात्मक प्रभाव वर्ष 1999 में देखा गया। तत्कालीन पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ ने भारतीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी को लाहौर आने का न्योता दिया। 20 फरवरी 1999 को अटल बिहारी वाजपेयी ने बस द्वारा लाहौर की यात्रा की। दोंनों प्रधानमंत्रियों ने आपसी सहयोग हेतु लाहौर समझौते पर हस्ताक्षर किये।

लाहौर समझौते में यह प्रतिबध्दत्ता दोहराई गई कि दोनों देश:-

- परस्पर शांति व स्थायित्व को बढायेंगें तथा लोगों के विकास व समृध्दि हेतु कार्य करेंगे,
- स्थायी शांति व सुखद सम्बंधों के लिये काम करेंगे,
- सयुंक्त राष्ट्र के चार्टर का पालन करेंगे,
- शिमला समझौते की भावना का पालन करेंगे,
- परमाणु सम्पन्न राष्ट्र होने के बाद और अधिक उत्तरदायित्व का पालन करेंगे।

लाहौर भावना के परिणाम आने से पहले ही पाकिस्तानी घुसपैठियों द्वारा कारगिल में घुसपैठ ने भारत-पाकिस्तान संबंध को वैमनस्यपूर्ण बना दिया और इसके बाद भारत और पाकिस्तान के मध्य वर्ष 1999 को एक और युध्द लडा गया। इस घटनाक्रम में भारत-पाकिस्तान संबंध में यह धारणा फिर से स्थापित कर दी कि दोनों देशों के मध्य संघर्ष से शान्ति और शांति से संघर्ष ही होता है। इसके बाद पाकिस्तान में परवेज़ मुशर्रफ ने सत्ता सम्भाली। वर्ष 2001 में भारतीय प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी और पाकिस्तानी राष्ट्रपति परवेज़ मुशर्रफ के मध्य आगरा में सम्मेलन हुआ जो बेनतीजा साबित हुआ। इस दौरान, सीमा पर भारत द्वारा फौज़ की तैनाती से दोनों देशों के मध्य युध्द जैसी स्थिति बन गई जो बडी मुश्किल से टला। वर्ष 2002 और 2003 में भी भारत-पाकिस्तान संबंध तनावग्रस्त रहा। वर्ष 2004 में भारतीय प्रधानमंत्री ने 12 वीं सार्क सम्मेलन में भाग लेने हेतु 6 जनवरी, 2004 को इस्लामाबाद की यात्रा की। इस दौरन दोनों देशों द्वारा प्रेस में एक संयुक्त बयान भी जारी किया गया। इस प्रयास का सकारात्मक परिणाम वर्ष 2005 में देखा गया। 7 अप्रैल, 2005 को श्रीनगर-मुजफ्फराबाद बस सेवा आरंभ हुई।

वर्ष 2006 में मुम्बई में बम विस्फोटों के कारण दोनों देशों के बीच तनाव पसरने लगा। इसी बीच, दोनों देशों ने नबम्वर में पुनः बातचीत आरम्भ करने का निर्णय लिया। इसी की देन था- दोनों देशों के मध्य वर्ष 2006 का हवाना संयुक्त घोषणा पत्र। इसमें एक बार फिर शांति, सहयोग, आतंकवाद और कश्मीर जैसे सभी विषयों पर साकारात्मक बातचीत हुई।

वर्ष 2006 से 2008 पाकिस्तान की आंतरिक राजनीतिक उथल-पुथल की शिकार रही। वर्ष 2007 में पूर्व पाकिस्तानी प्रधानमंत्री बेनज़ीर भुट्टो की पाकिस्तान में हत्या कर दी गई। वर्ष 2008 में पाकिस्तान में लोकतांत्रिक चुनाव आयोजित हुआ। इस चुनाव में पाकिस्तानी पीपुल्स पार्टी और पाकिस्तानी मुस्लिम लीग की विजय हुई। अगस्त, 2008 में पाकिस्तानी राष्ट्रपति परवेज़ मुशर्रफ ने त्यागपत्र दे दिया। बहरहाल, पाकिस्तान में लोकतंत्र-बहाली से उपजी आशावाद को उस समय गहरा झटका लगा जब 26 नवम्वर 2008 को मुम्बई के ताज होटल में आतंकवादी हमला हुआ। इस हमले में भारत ने लश्कर-ए-तैयबा का हाथ था, जो पाक प्रायोजित और गैर-सरकारी आतंकवाद था। 28 अप्रैल 2010 को भूटान की राजधानी थिम्पू में सम्पन्न हुए सार्क के 16 वें शिखर

सम्मेलन को भारत-पाकिस्तान संबंध के इतिहास में उच्च बिंदु के रूप में दर्ज़ किया जायेगा। इस सम्मेलन में, मुम्बई पर आतंकवादी हमले के बाद भी भारत-पाकिस्तान संबंध में तल्खी दूर करने का साकारात्मक प्रयस किया गया और इसमें आशाजनक सफलता भी मिली।

वर्ष 2010 से 2014 के मध्य कुछ घटनायें भारत-पाकिस्तान संबंध में उल्लेखनीय रहीं। 11 मई, 2010 को पाकिस्तानी विदेश-मंत्री महमूद कुरैशी तथा भारतीय विदेश- मंत्री एस. एम. कृष्णा के बीच नई दिल्ली में वार्त्ता आरम्भ हुई। इसी दौरान, डेविड हेडली के कबूलनामे ने भारत-पाकिस्तान संबंध को तनावग्रस्त बना दिया। डेविड हेडली ने अपने कबूलनामे में यह स्वीकार किया कि पाकिस्तान की इंटर सर्विसेज इंटेलीजेंस (आइ.एस.आइ.) और लश्कर-ए-तैयबा की सांठगांठ है और ये हर हमले की योजना को मिलकर अंज़ाम देते हैं। हेडली का यह भी मानना था कि आइ.एस.आइ. ने जैश-ए-मौहम्मद, लश्कर-ए-तैयबा और हिजबुल मुजाहिद्दिन जैसे आतंकी संगठनों को वित्तीय, सैन्य प्रशिक्षण, साजो-सामान और जज्बाती मदद मुहैया करवाई। इसके बाद, दोनों ही देशों में तनाव बढता गया। जनवरी, 2013 में पाकिस्तानी सेना द्वारा जम्मू-कश्मीर के पुंछ सेक्टर में दो भारतीय जवानों के सिर काट लिये जाने के बाद भारत और पाकिस्तान में तनाव बढ गया। यह भारतीय राजनीति में 16 वें लोकसभा चुनाव से पहले की घटना थी, फलतः भारत की आंतरिक राजनीति में विशेषकर, चुनाव-प्रचार में पाकिस्तान एक महत्वपूर्ण मुद्दा बना रहा। बर्ष 2014 भारत में सत्ता परिवर्तन की दृष्टि से एक महत्वपूर्ण वर्ष था।

वर्ष 2014, पडोसी-प्रथम की मोदी-नीति: वर्ष 2014 में भारत में भाजपा और उसके गठबंधन की पूर्ण-बहुमत वाली सरकार के सत्तासीन होते ही ऐसा आभास होने लगा कि भारतीय विदेश-नीति अब एक नई दिशा की ओर अग्रसर होगी और ऐसा हुआ भी।

26 मई, 2014 को भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने अपने शपथ ग्रहण समारोह में दक्षिण-एशिया के अन्य राष्ट्राध्यक्षों के साथ पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ को भी बुलाया। यह पहल विदेश-नीति में क्रांतिकारी परिवर्तन का सूत्रपात था। इस नई नीति का सार पडोसी देशों को विदेश नीति में पहली प्राथमिकता और वरीयता देने का नवीन नीतिगत-निर्णय था। प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी की यह पहल उनके पारम्परिक छवि के विपरीत एवं चौंकाने वाला था। इस दौरान भारतीय प्रधानमंत्री मोदी द्वारा कई सकारात्मक प्रयासों का सिलसिला जारी रहा। 10 जुलाई, 2015 को भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी और पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ की रूस के **शहर उफा** में मुलाकात हुई और आतंकवाद के विरोध में एक संयुक्त बयान भी जारी किया गया। इसी वर्ष, प्रधानमंत्री मोदी 25 दिसम्बर को अचानक लाहौर पहुंचकर शरीफ की पोती की शादी में शामिल होकर सदाशयता का परिचय दिया और पडोसी पाकिस्तान के विरुध्द एक नए शुरुआत का संकेत दिया। मोदी की इस आशाजनक और उत्साहजनक शुरुआत को वर्ष 2016 में गहरा धक्का पहुंचा।

2 जनवरी, 2016 को जैश के आतंकियों ने भारत स्थित पठानकोट एयरबेस पर हमला कर दिया। यह हमला भारतीय सत्ता प्रतिष्ठान की प्रतिष्ठा पर सीधा हमला था। यह हमला भारतीय प्रधानमंत्री की सदाशयी नीति के लिये गहरा धक्का था। इसी बीच, कश्मीर में हिज़बुल मुज़ाहिद्दीन कमांडर बुरहान वानी को भारतीय सुरक्षा बलों ने जवाबी हमले में मार गिराया। कश्मीर घाटी में, बुरहान वानी के शव-यात्रा में भारी संख्या में लोगों ने भाग लिया। यह विशुध्द रूप से भारत का आंतरिक मामला था, लेकिन पाकिस्तानी प्रधानमंत्री नवाज़ शरीफ ने हस्तक्षेप करते हुए हिजबुल मुज़ाहिद्दीन कमांडर बुरहान वानी को शहीद बताया और कहा कि कश्मीरियों के प्रति एकजुटता दिखाना ज़रूरी है। यहीं से भारतीय दृष्टिकोण पाकिस्तान के विरुध्द परिवर्तित हो गया। राष्ट्रीय हित के दृष्टि से यह भारत के लिये एक स्वभाविक प्रतिक्रिया थी।

अपनी नई-नीति के अनुसार, भारतीय प्रधानमंत्री मोदी आक्रामक हुए। उन्होंने 15 अगस्त, 2016 को अपने लाल किला के भाषण में गिलगित-बाल्टिस्तान और ब्लूचिस्तान के लोगों का आह्वान किया। कश्मीर में पाकिस्तान प्रायोजित आतंकवाद का सिलसिला जारी रहा। 18 सितम्बर, 2016 को 4 आतंकियों ने कश्मीर के उरी में सैनिक कैम्प पर हमला कर दिया। इस हमले में 17 सैनिक शहीद और 19 घायल हुए। इसकी फौरी प्रतिक्रिया करते हुए, 26 सितम्बर, 2016 को भारत ने पाकिस्तान से हुई सिंधु नदी जल समझौते को निलम्बित कर दिया। ज्ञातव्य है कि सिंधु नदी जल समझौता भारत-पाकिस्तान के मध्य विश्व-बैंक की मध्यस्थता में वर्ष 1960 में सम्पन्न हुआ था। इस दौरान भारत ने पाकिस्तान से अपने संबंध को स्थगित कर दिया। 29 दिसम्बर, 2016 को भारत ने एल.ओ.सी. के उस पार मौजूद आतंकवादियों के लान्च पैड को निशाना बनाकर सर्जिकल स्ट्राइक की। भारत के साहसिक प्रयास ने पाकिस्तान के सत्ता प्रतिष्ठान को आवाक कर दिया। वर्ष 2017 में भी भारत-पाकिस्तान के मध्य तनाव जारी रहा। इस वर्ष दो-तीन घटनाएं उल्लेखनीय रहीं। 10 अप्रैल, 2017 को पाकिस्तान की सैन्य अदालत ने भारतीय नौसेना के पूर्व अधिकारी कुलभूषण जाधव को फांसी की सज़ा सुनाई। जाधव पर पाकिस्तानी सरकार भारतीय जासूस होने का आरोप लगाती रही है। इसके प्रतिक्रियास्वरूप, 14 अप्रैल, 2017 को भारत ने पाकिस्तान के साथ सभी तरह के द्विपक्षीय आदान-प्रदान रोकने का निर्णय लिया। तनाव के बाद भी 8 जून, 2017 को कज़ाकिस्तान में शंघाई सहयोग संगठन सम्मेलन के अवसर पर मोदी और शरीफ की मुलाकात हुई, जो महज़ एक राजनयिक शिष्टाचार साबित हुई।

भारत-पाकिस्तान संबंध में वर्ष 2019 में एक नाटकीय परिवर्तन देखा गया। 14 फरवरी, 2019 को कश्मीर में केंद्रीय रिजर्व पुलिस बल के काफिले पर जैश-ए-मोहम्मद ने हमला कर दिया। इस आत्मघाती बम हमले में, सी.आर.पी.एफ. के 40 जवान मारे गये। यह मोदी के कार्यकाल में की गई सबसे बडी आतंकी हमला था। यह मोदी के पाकिस्तान से अच्छे संबंध बनाने की सारी कवायदों को असफल सिध्द करने के लिये पर्याप्त था। इस घटना से, समूचा भारत शोकग्रस्त हो गया। इस अवसर पर भारतीय प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी ने बयान दिया - ***" मैं आतंकी संगठनों और सरपरस्तों को बताना चाहता हूं कि वे बहुत बडी गलती कर चुके हैं। उन्हें अपनी करतूत की बहुत महंगी कीमत चुकानी होगी। मैं देश को आश्वस्त कर दूं कि इस हमले को अंज़ाम देने वालों को दंडित किया जायेगा।"*** दूसरी ओर, पाकिस्तान के विदेश मंत्री शाह महमूद कुरैशी ने कहा कि वह इसकी निंदा करते हैं और हिंसा उनके देश का रास्ता नहीं है। बहरहाल, पाकिस्तान के सत्ता-प्रतिष्ठान के भीतर छिपे तत्वों का ज़िहादी गुटों को समर्थन देना कोई नई बात नहीं है। यह पाकिस्तानी सत्ता चरित्र का स्थायी स्वभाव है।

पाकिस्तान के इस नापाक मंसूबे का भारतीय प्रधानमंत्री ने कडा उत्तर दिया। जम्मू-कश्मीर के पुलवामा में 14 फरवरी को जैश-ए-मोहम्मद के आतंकी हमले के 12 दिन बाद 26 फरवरी को भारतीय वायुसेना ने जवाबी कार्रवाई करते हुए पाकिस्तान में जैश के ट्रेनिंग सैंटर को ध्वस्त कर दिया और करीब 300 आतंकी मार गिराए।

वर्ष 2019 में भारत में लोकसभा चुनाव आयोजित हुए। लोकसभा में प्रचंड बहुमत से भाजपा और उसके सहयोगी गठबंधन सत्ता पर काबिज़ हुए। नरेंद्र मोदी एक बार फिर, भारत के प्रधानमंत्री चुनें गये। इस बीच नरेंद्र मोदी के द्वारा प्रधानमंत्री बनने पर पाकिस्तानी प्रधानमंत्री इमरान खान, जो वर्ष 2017 में पाकिस्तान के नए प्रधानमंत्री बने थे, ने भारत-पाकिस्तान संबंध को सकारात्मक दिशा में ले जाने की कई बार पेशकश की, लेकिन इसका कोई अच्छा परिणाम दिखाई नहीं दिया। पाकिस्तानी सत्ता-मनोविज्ञान में भारत-विरोध सनक के स्तर तक हावी है। पाकिस्तानी सत्ता-संरचना में आर्मी का दखल और आर्मी का ज़िहादी ताकतों को अपरोक्ष समर्थन ऐसे कारण रहें हैं जो भारतीय सत्ता-प्रतिष्ठान को पाकिस्तान के साथ विश्वासपूर्ण संघर्ष-निवारणों के सद्भावपूर्ण

प्रयास को आशंकित और बाधित करता है। वर्ष 2020 कोरोना की चपेट में रहा। इस वैश्विक महामारी के संकटकाल में भारत-पाकिस्तान संबंध भी 'गतिरोध पूर्ण स्थिरता' का समय रहा। इस बीच, 5 अगस्त, 2019 को भारत ने अभुतपूर्व निर्णय लेते हुए कश्मीर में धारा 370 को समाप्त कर दिया। भारत-सरकार ने जम्मू-कश्मीर पुनर्गठन अधिनियम 2019 के द्वारा जम्मू-कश्मीर एवं लद्दाख को दो केंद्र शासित क्षेत्रों में बांट दिया है। भारत के इस कदम से पाकिस्तान के कश्मीर नीति को पक्षाघात हुआ है। वर्ष 2020 के बाद भारत-पाकिस्तान सम्बंधों की गतिशीलता में भी नए आयाम उभर-कर सामने आयेंगे, ऐसी उम्मीद की जा सकती है।

भारत-पाकिस्तान संबंधों में सुधार के लिये भारत को कई नए प्रयास करने होंगे-

(1) दूरदर्शी और दूरगामी संबंध -: भारत सदैव पाकिस्तान के सम्बन्ध में 'कभी शोला, कभी शबनम' वाला दृष्टिकोण अपनाता है। भारत कभी पाकिस्तान से कभी अत्यधिक कठोरता, कभी अत्यधिक भावुकता और आदर्शवादी रवैया अपनाता है। भारतीय दृष्टिकोण में, निरंतरता का अभाव रहा है। यह सदैव अनिश्चितता का शिकार होता है। अंतरराष्ट्रीय परिदृश्य के परिवर्तन से भारत-पाकिस्तान संबंध अनवरत रूप से होता ही है, साथ ही साथ आंतरिक राजनीति की बाध्यता व विवशता भी भारत-पाकिस्तान संबंध को उध्देलित करता है। इसमें राष्ट्रीय-हित के सन्दर्भ में, भारत-पाकिस्तान के संबंध में एक दूरदर्शी और दूरगामी नीति बनानी चाहिए, जिसमें आंतरिक राजनीतिक-परिवर्तनों का लेशमात्र भी प्रभाव न पडे।

(2) आर्थिक विकास की रणनीति -: भारत एशिया का एक उभरता हुआ देश है जो चीन के साथ धीरे-धीरे एक ग्लोबल पावर बनता जा रहा है। भारतीय लोकतंत्र में परिपक्वता, मज़बूती, विश्वसनीयता और निरंतरता है। दूसरी ओर पाकिस्तान आर्थिक रूप से कमजोर और लोकतंत्र की दृष्टि से अस्थिर है। वह राष्ट्रीय पहचान के संकट से भी जूझ रहा है। उसके सत्ता-संरचना में आर्मी और जम्हूरियत के बीच निरंतर संघर्ष चलता रहता है। इस पृष्ठभूमि में, भारत को पाकिस्तान के साथ तनाव, टकराव और संघर्ष में फंसने के बजाए अपने आर्थिक विकास में समूचा ध्यान केंद्रित करना चाहिए। भारत का आर्थिक-विकास पाकिस्तानी कूटनीतिक दावों, चालाकी और कुटिलताओं को विफल करने में भी महत्वपूर्ण सहायता प्रदान कर सकता है।

पाकिस्तान के साथ आर्थिक संबंधों को समाप्त करने के अतिवादिता से हमें बचना चाहिये। राजनीतिक मतभेदों और विवाद के बाद भी, आर्थिक संबंध बनाए रखे जा सकते हैं। इस संदर्भ में, अमेरिका और चीन का आर्थिक संबंध एक आदर्श उदाहरण सिध्द हो सकता है।

(3) संघर्ष निवारण- प्रयासों में निरंतरता -: यह ऐतिहासिक सच्चाई है कि पाकिस्तान निरंतर भारत को संघर्षों में उलझकर रखना चाहता है। सीमा-पार का प्रयोजित आतंकवाद की सुनियोजित षडयंत्र हो या फिर, क्षेत्रीय या वैश्विक मंच से भारत के विरुध्द निरंतर चलने वाली अनर्गल पाकिस्तानी दुष्प्रचार, पाकिस्तान के चाल-चिंतन व चरित्र को समझते हुए भी भारत को संघर्ष-निवारण प्रयासों की पूर्णतया अनदेखी नहीं करनी चाहिए। संघर्ष-निवारण के प्रयासों में निरंतरता संघर्ष का फौरन नियंत्रण करने में सफलता न हो सके लेकिन इससे संघर्ष की तीव्रता कम होती है और स्थायी-समाधान का मार्ग भी प्रशस्त होता है। उदाहरण के लिए, भारत सीमा-विवाद के बाद भी, चीन से निरंतर-संवाद करता रहता है। इसके परिणामस्वरूप, भारत-चीन के मध्य आर्थिक, वित्त और व्यापारिक संबंधों में एक निरंतरता बनी रहती है।

(4) जन आधारित संबंध -: भारत और पाकिस्तान राजनीतिक स्तर पर संघर्षशील दिखाई देते हैं लेकिन उनके मध्य गहरे सांस्कृतिक-सम्बंधों का लम्बा इतिहास है। आज भी भारत में पाकिस्तानी गज़ल गायक पसंद किए जाते हैं, वहीं पाकिस्तान में अमिताभ बच्चन, सलमान खान जैसे बालीवुड कलाकार जनमानस में अत्यंत

लोकप्रिय हैं। संस्कृति के साथ-साथ कल, चिकित्सा, विज्ञान, खेल जैसी गतिविधियों भारत-पाकिस्तान के मध्य जारी रहनी चाहिये क्योंकि भारत और पाकिस्तान के मध्य जनता के स्तर का संबंध पाकिस्तान के उन कट्टरपंथियों को कमज़ोर करेगा, जो अपने निहित स्वार्थों के कारण भारत-पाकिस्तान संबंध में संघर्षों को हवा देने का काम करते हैं।

निष्कर्ष के तौर पर हम यह कह सकते हैं कि वर्ष 1947 से 2020 के लम्बे कालखंड में, भारत-पाकिस्तान संबंध एक कठिन, जटिल, पेंचीदा, सनसनीखेज, रोचक और अनिश्चितता का शिकार है।

संदर्भ :

1. सुमित गांगुली (2002), कनफ्लिक्ट अनएंडिंग: इंडिया-पाकिस्तान टैंशंस सिंस 1947 (नई दिल्ली: ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)
2. स्टीफेन पी. कोहेन (2005), द आइडिया ऑफ पाकिस्तान (नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)
3. इंटरनेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ़ स्ट्रेटजिक स्टडीज (1999), द मिलिट्री बैलेंस, 1999-2000 (ऑक्सफ़ोर्ड: ऑक्सफ़ोर्ड युनिवर्सिटी प्रेस)
4. सुमित गांगुली तथा डेविन टी. हैगर्टी (2005), फीयरफुल सिमेट्री: इंडिया-पाकिस्तान क्राईसिस इन द शैडो ऑफ़ न्यूक्लियर विपन्स (नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)
5. ब्रूस रीडेल (2002), अमेरिकन डिप्लोमसी एंड द 1999 कारगिल समिट एट ब्लेयर हाउस (फिलाडेल्फिया, पेनसिलवेनिया: यूनिवर्सिटी ऑफ़ पेनसिलवेनिया, सेंटर फॉर द एडवांस्ड स्टडी ऑफ़ इंडिया)
6. 6.जे.एन.दीक्षित (1998), एक्रोस बॉर्डर: 50 ईयर्स ऑफ़ इंडियास फॉरेन पोलिसी, (नई दिल्ली: पिक्स बुक्स)
7. शिशिर गुप्ता (1967), ए स्टडी इन इंडो-पाक रिलेशंस, (नई दिल्ली: मानस पब्लिकेशन)
8. पुष्पेश पंत (2016), भारत की विदेश नीति, (नई दिल्ली: मैक ग्रव हील)
9. सुमित गांगुली (2018), भारत की विदेश नीति, (नई दिल्ली: ऑक्सफ़ोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस)
10. जे.एन.दीक्षित (2018), भारत की विदेश नीति, (नई दिल्ली: प्रभात पेपरबैक्स)
11. वी.पी.दत्त (2003), बदलती दुनिया में भारत की विदेश नीति, (नई दिल्ली: हिन्दी माध्यम कार्यांवय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय)
12. राजकिशोर (2000), भारत-पाक संघर्ष, (नई दिल्ली: प्रकाशन संस्थान)

***

पंचतन्त्र विमर्शः

डॉ. हेमन्त मिश्र *

पञ्चतन्त्रं कश्चन कथाग्रन्थः विद्यते। अस्य ग्रन्थस्य कर्ता अस्ति विष्णुशर्मा। महिलारोप्यस्य राज्ञः अमरशक्तेः बहुशक्तिः रुद्रशक्तिः अनन्तशक्तिः इत्येतान् त्रीन् पुत्रान् षड्भिः मासैः राजनीतिनिपुणान् कर्तुं विष्णुशर्मा पञ्चतन्त्रग्रन्थं रचितवान् इति श्रूयते। पञ्चतन्त्रे गद्यं पद्यं चापि अस्ति। प्रायः कथाभागं निरूपयति गद्यम्। पद्यं च नीतिं निरूपयति।

प्राचीनकाले वेदपाई-नामकेन ब्राह्मणेन 'करकटदमनक'-नामकस्य नीतिग्रन्थस्य रचना कृता आसीत्। तस्य विस्तृतग्रन्थस्य आधारं स्वीकृत्य 'पञ्चतन्त्र'स्य रचना अभवत् इति मन्यते। पञ्चतन्त्राद् विश्वस्य अनेके ग्रन्थाः प्रभाविताः सन्ति। पञ्चतन्त्रं तु वैदिकपरम्परायाः प्रभावितः ग्रन्थः। भारतीयपरम्परायां बहुत्र प्राणिकथाः प्राप्यन्ते। ऋग्वेदे देवानां कुक्कुरी वणिजम् उपदिशयति यत्, धनादीनां दानं करोतु इति। उपनिषत्सु छान्दोग्योपनिषदि प्रदर्शितम् अस्ति यत्, हंसः, मद्गुः (कश्चन चलचरः प्राणी) च जाबालपुत्राय सत्यकामाय ब्रह्मविद्यायाः ज्ञानं यच्छतः इति। एतादृश्यः पशुकथाः एव पञ्चतन्त्रस्य मूलं बीजं वा विद्यते।

पञ्चतन्त्रम् अनेकान् भारतीय-वैदेशिक-लेखकान् योग्यम्, ऐतिहासिकं, सांस्कृतिकं च साहित्यं लेखितुं प्रैरयत्। पञ्चतन्त्रस्य प्रसिद्धिः न केवलं भारतीयसंस्कृतौ अपि तु युरोपियन्, अरेबियन् इत्यादिसंस्कृतिषु अपि अस्ति। 'हेरी पॉटर्', 'अरेबियन् नाइट्स्' इत्यादिषु समकालीनकथासु अपि पञ्चतन्त्रस्य प्रभावः बहुधा दरीदृश्यते। पञ्चतन्त्रग्रन्थः आङ्ग्लभाषायाः अनेकेषाम् उपन्यासानाम्, अरबी-भाषायाः उपन्यासानां च पिता अस्ति। ब्रिटिश-लेखकानां, पश्चिमीसभ्यतायाः लेखकानाम्, अरबी-सभ्यातायाः लेखकानाम् उपरि रचनात्मकोदाहरणानां, रचनात्मकप्रभावस्य श्रेयः पञ्चतन्त्रग्रन्थाय गच्छति। सम्पूर्णे विश्वे प्रप्रथमबालसाहित्यत्वेन पञ्चतन्त्रस्य आकर्षणं सर्वदा वर्धते। पञ्चतन्त्रस्य अनुवादाः विश्वस्य अनेकासु भाषासु प्राप्यन्ते। तेषाम् अनुवादानाम् आधारेण अनेके लेखकाः स्वपुस्तकानि अलिखन्। तेषु लेखकेषु जेम्स् अट्किन्सन्, एड्वर्ड् लेन्, विलियम्स् गिब्ब्, रिचर्ड् बर्टन्, गोड्फ्रेरे पिग्गिन्स् च अन्तर्भवन्ति। तैः सर्वैः प्रत्यक्षाप्रत्यक्षरीत्या पञ्चतन्त्रसंस्कृतेः गहनाध्ययनं कृत्वा पञ्चतन्त्रसंस्कृतेः प्रचारः कृतः।

पञ्चतन्त्रस्य विदेशीयबालसाहित्ये प्रभावः

जर्मनी-देशीयः विद्वान् जोहानिस हर्टेल (Johannes Hertel)-महोदयः स्वपुस्तके पञ्चतन्त्रात् प्रेरितानां रचनानाम् आवलिं निर्मितवान्। तस्याः आवल्याः अनुसारं स्पष्टं भवति यत्, क्रिष्टाब्दं १९१४ यावत् अखिले विश्वे अनेके रचयितारः पञ्चतन्त्रात् प्रेरणां प्राप्य द्विशताधिकाः स्वरचनाः कृतवन्तः इति। ताः रचनाः विभिन्नासु पञ्चाशत् भाषासु आसन्। तासु पञ्चाशत् भाषासु चतुर्थांशप्रतिशत (द्वादश उत त्रयोदश भाषाः) भाषाः अभारतीयाः आसन्। एकादश्याः शताब्द्याः (१६०० ई. पू.) प्रागेव युरोपमहाद्वीपस्य ग्रिक-स्पेनिष्-इटालियन्-जर्मन्-आङ्ग्ल-पुरातनस्लेवोनिक्-चेक(czech)भाषासु पञ्चतन्त्रस्य उत

---

* प्राचार्यः आकाशदीप शिक्षक प्रशिक्षण महाविद्यालय, हर्ष रोड़, साँवली, सीकर

पञ्चतन्त्रादनूदितरचनायाः च अनुवादं जातम् आसीत्। ततः जावा-तः आइस्लैण्ड-पर्यन्तम् अपि पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः अभवत्।

पञ्चतन्त्रस्य अनुवादाः

पञ्चतन्त्रस्य मानवतावादिदृष्टिकोणः अस्ति, अत एव पञ्चतन्त्रस्य लोकप्रियता सर्वाधिका अस्ति। प्राचीनकाले एव पञ्चतन्त्रस्य कथाः देशविदेशेषु प्रसिद्धाः आसन्। येषु देशेषु लिखितसाहित्यं नासीत्, तत्र परम्परायाः माध्यमेन पञ्चतन्त्रस्य कथाः तु आसन् एव। बाइबल्-ग्रन्थं विहाय पञ्चतन्त्रस्य विश्वस्य सर्वाधिकासु भाषासु अनुवादः अभवत्। परन्तु पञ्चतन्त्रस्य अनुवादपृष्ठे धर्मप्रचारस्य भावना नासीत्। पञ्चतन्त्रस्य द्विशताधिकाः (२००) अनुवादाः उपलभ्यन्ते।

पहलवी-भाषायाम् अनुवादः

पञ्चतन्त्रस्य प्रप्रथमवारं पहलवी-भाषायाम् अनुवादः अभवत्। पहलवी-भाषा प्राचीनफारसीभाषा इति प्रसिद्धा। सा प्राचीनफारसीभाषा संस्कृतात् प्रभाविता। पहलवी-भाषायां पञ्चतन्त्रस्य यः अनुवादः अभवत्, तस्य काचित् कथा प्रचलिता अस्ति। ईरान-प्रदेशस्य राजा 'शाह खुसरो' इत्येषः (५३१-५७९)। तस्य 'अनूशीरवाँ', 'खुसरो प्रथम' इत्यादीनि नामान्तराणि। सः ईरानराजः कुत्रचिद् अपठत् यत्, भारतस्य कस्मिंश्चित् पर्वते काचित् ओषधिः लभ्यते। तस्याः ओषध्याः सेवनेन मृतः मनुष्यः अपि जीवितः भवति इति। अतः ईरान-राजः 'बजीर बुर्जुए' इत्याख्यं राजवैद्यं ताम् ओषधिं स्वीकर्तुं भारतं प्रैषयत्। सः 'बजीर बुर्जुए' इत्याख्यः ईरान-राजवैद्यः भारतस्य विभिन्नेषु पर्वतस्थलेषु अटन् तस्याः ओषध्याः अन्वेषणं कुर्वन् आसीत्। परन्तु सः तस्मिन् अन्वेषणकार्ये विफलः अभवत्। ततः सः कञ्चन भारतीयविद्वांसं तस्याः ओषधेः विषये अपृच्छत्। सः विद्वान् उदतरत् यत्, भवान् सुष्ठु अशृणोत्। विद्वान् एव पर्वतः अस्ति, यस्मिन् ज्ञानरूपी सञ्जीवनी उत्पद्यते। तस्याः सेवनेन अज्ञानी, मूर्खः च नवजीवनं प्राप्नोति इति। सा सञ्जीवनी इत्युक्ते 'पञ्चतन्त्रम्' इति।

पञ्चतन्त्रस्य एकां प्रतिं नीत्वा 'बुर्जुए' इत्येषः ईरान्-प्रदेशं प्रत्यगच्छत्। ईरान-राजस्य आज्ञानुसारं सः तस्य ग्रन्थस्य पहलवीभाषायाम् अनुवादम् अपि अकरोत्। पञ्चतन्त्रस्य कथाः श्रुत्वा ईरान्-राजः अत्यन्तः प्रफुल्लितः अभवत्। सः पञ्चतन्त्रस्य अनूदितायै प्रत्यै विशेषं कक्षं निर्मापितवान्। पहलवी-भाषायाम् एव पञ्चतन्त्रस्य प्रप्रथमवारम् अनुवादः अभवत्। ततः अनेके अनुवादकाः एतस्माद् अनुवादात् स्वस्य भाषायाम् अनुवादम् अकुर्वन्।

सीरियाई-भाषायम् अनुवादः

पहलवी-भाषायाम् अनूदितात् पञ्चतन्त्रात् सर्वप्रथमवारम् अपरः अनुवादः सीरियाई-भाषायाम् अभवत्। ५७० ई. समीपे पहलवी-तः सीरियाई-भाषायाम् अनुवादः अभवदिति एकविंशेऽब्दे जर्मनदेशस्य विद्वद्भिः अन्विष्टम्।

अरबी-भाषायाम् अनुवादः

कदाचित् द्विशतं वर्षानन्तरं पहलवी-भाषायाः पञ्चतन्तस्य द्वितीयः अनुवादः अरबी-भाषायाम् अभवत्। अरबी-भाषायाम् इब्न्-उल्-मुकफ्फा इत्याख्यः जनः अनुवादम् अकरोत्। मुकफ्फा इत्येषः मूलतः ईरान-देशीयः एव आसीत्। परन्तु ईरान-देशस्योपरि मुस्लिमशासनत्वात् सः मुस्लिमधर्मम् अङ्ग्यकरोत्। पञ्चतन्त्रस्य प्रथमतन्त्रस्य प्रमुखौ पात्रौ करटकः, दमनकश्च स्तः। तयोः नाम्ना एव मुकफ्फा इत्येषः 'कलीला-व-दिमना' इति स्वस्य अनुवादस्य नामकरणम् अकरोत्।

अरबी-भाषायां पञ्चतन्त्रस्य अनुवादस्य पृष्ठे मुकफ्फा इत्यस्य उद्देशः प्रशासनिकाधिकारिभ्यः शिक्षादानस्य आसीत्। परन्तु सः अनुवादः जनसामान्येषु अपि लोकप्रियः अभवत्। इतिहासविदां मते पञ्चतन्त्रस्य एषः अनुवादः अतीव महत्त्वपूर्णः इति। किञ्च एतस्य अनुवादस्य अनन्तरमेव पञ्चतन्त्रस्य कथाः मुस्लिम-जगतः लोकसाहित्यस्य अङ्गम् अभवत्। ततोधिकम् एतस्य अनुवादस्य आधारेण एव यूरोप-देशीयासु भाषासु पञ्चतन्त्रस्य अनुवादकार्यम् अभवत्।

यूनानी-भाषायाम् अनुवादः

एकादशेऽब्दे अरबी-भाषायाः पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः यूनानी-भाषायाम् अभवत्। यूरोप-देशीयभाषासु एषः प्रप्रथमः पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः आसीत्। यूनानी-भाषायां पञ्चतन्त्रस्य अनुवादोत्तरं विभिन्नासु यूरोप-देशीयभाषासु पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः स्पर्धात्मकः अभवत्।

रूसी-भाषायां, स्लावा-भाषायां च अनुवादः

यूनानी-भाषायाः पञ्चतन्त्रात् रूसी-भाषायां, स्लावा-भाषायां च अनेके अनुवादाः अभूवन्। पश्चिमयूरोप-देशस्य अनेके भाषातज्ज्ञाः एतयोः भाषयोः पञ्चतन्त्रस्य अनुवादेन प्रभाविताः। तस्य परिणामस्वरूपं लैटिन्, इतालवी, जर्मन इत्यादिषु भाषासु पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः अभवत्।

हिब्रू-स्पैनिश-भाषयोः अनुवादः

त्रयोदशेऽब्दे अरबी-भाषायाः पञ्चतन्त्रस्य प्राचीनस्पैनिश-भाषायाम् अनुवादः अभवत्। परन्तु एतस्माद् अनुवादात् प्रागेव कश्चन अज्ञातः कविः पञ्चतन्त्रस्य अरबीभाषायाः हिब्रू-भाषायाम् अनुवादम् असाधयत्। हिब्रू-भाषायाः पञ्चतन्त्रस्य यः अनुवादः अस्ति, सः अपि अतीव महत्त्वपूर्णः मन्यते। यतो हि तस्य अनुवादस्य आधारेण एव सर्वेषां ज्ञानम् अभवत् यत्, लैटिन-भाषायाम् अपि पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः जातः इति।

लैटिन-भाषायाम् अनुवादः

लैटिन-भाषायां पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः हिब्रू-भाषायाः अनुवादोत्तरमेव प्रकाशं लब्धः। १२६० तमे दशके कपुआ-नामकस्य नगरस्य जॉन्-आख्यः यहूदी-नागरिकः लैटिनभाषायां पञ्चतन्त्रस्य अनुवादम् अकरोत्। तस्य लैटिन्-अनुवादस्य नाम 'कलीला-व-दिमना – मानवजीवनस्य ज्ञानकोषः' इति। मध्यकाले यूरोपदेशे लैटिन-भाषायाः पञ्चतन्त्रस्य अतीव प्रसिद्धिः अभवत्। ततः यूरोपस्य अनेकासु भाषासु अपि लैटिन-भाषायाः पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः वेगवान् अभत्। लैटिन-भाषायाः अनुवादादेव स्पेनी, चेक, इतालवी इत्यादिषु भाषासु पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः अभवत्। १५५२ तमाद् वर्षाद् उत्तरं मुद्रणयन्त्रस्य आविष्कारत्वात् इटली-देशे इतालवी-भाषायां पञ्चतन्त्रस्य प्रकाशनम् अभवत्। इतालवीभाषायां लैटिन्-भाषातः अनुवादः कृतः आसीत्। तस्य अनुवादस्य नाम 'ल मॉरेल् फिलॉसॉफिका' अर्थात् नैतिकदर्शनम् इति आसीत्। तस्य पुस्तकस्य अनुवादकः 'दोनी' इत्याख्यः आसीत्। एतस्य पुस्तकस्य आधारेण १५७० तमे वर्षे थॉमस् नॉर्थ् इत्याख्येन पञ्चतन्त्रस्य आङ्ग्लसंस्करणं सम्पादितम्। तस्य अनुवादस्य नाम 'मॉरल् फिलॉसॉफिका ऑफ् दोनी' इति आसीत्। अर्थात् दोनी इत्यस्य नैतिकदर्शनम्। एवं सिद्ध्यति यत्, शेक्सपियर् इत्यस्य कालेऽपि संस्कृतसाहित्यस्य वज्रः पञ्चतन्त्रम् उपलब्धम् आसीद् इति।

भाषायाम् अनुवादः

१४८० तमे दशके लैटिन-भाषायाः पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः जर्मन-भाषायाम् अभवत्। सः अनुवादः अतीव लोकप्रियः अभवत्। तस्मात् जर्मन-अनुवादाद् एव डेनमार्क्, हॉलैण्ड, आइसलैण्ड इत्यादीनां देशानां भाषासु अपि पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः अभवत्।

नवदशेऽब्दे यदा यूरोपीयन-देशेषु संस्कृताध्ययनं चरमसीमायाम् आसीत्, तदा पञ्चतन्त्रस्य सर्वाधिकानुवादाः जर्मन-भाषायाम् अभूवन्। १८०२ तमे वर्षे वेबर-कृतः अनुवादः, १८०३ तमे वर्षे वोलग्राफ्-कृतः अनुवादः, १८२९ तमे वर्षे मथाई-कृतः अनुवादः, १८३५ तमे वर्षे जेड-कृतः अनुवादः च प्रकाशितः। १८५९ तमे वर्षे जर्मनी-देशस्य प्रसिद्धः संस्कृतविद्वान् थियोडोर बेनफी (Theodor Benfey) इत्येषः पञ्चतन्त्रस्य कश्मीरिपाठस्य मूलसंस्कृतात् जर्मनभाषायाम् अनुवादम् अकरोत्। संस्कृतभाषातः साक्षात् अनुवादौ द्वौ एव मन्येते। प्रथमः पहलीभाषायाः अनुवादः, द्वितीयः थियोडोर-महोदयस्य जर्मनीभाषायाः अनुवादः।

फारसी-भाषायम् अनुवादः

अरबी-तः यूनानी-भाषायाम् अनुवादोत्तरं यूरोपीय-देशेषु यथा पञ्चतन्त्रस्य प्रसिद्धिः अभवत्, तथैव अरबी-तः अन्ये अनुवादाः अपि यूरोप-देशात् बहिः जायमानाः आसन्। अरबी-भाषायाः 'कलीला-व-दिमना' इत्याख्यात् अनुवादात् फारसीभाषायां पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः अभवत्। ११२१ तमे वर्षे नसरुल्ला इत्याख्यः कश्चन फारसी-गद्यस्वरूपेण पञ्चतन्त्रस्य अनुवादम् अकरोत्। त्रयोदशेऽब्दे कानिल इत्येषः पञ्चतन्त्रस्य फासरी-काव्यानुवादम् अकरोत्। पुनः पञ्चदशेऽब्दे हुसेन इब्न् अली इत्याख्यः अरबीभाषायां पञ्चतन्त्रस्य अनुवादम् अकरोत्। तस्य अनुवादस्य नाम 'अनवार सुलेही' इति। सः अनुवादः अपि 'कलीला-व-दिमना' इतिवत् प्रसिद्धः अभवत्।

तूर्की-भाषायाम् अनुवादः

षोडशेऽब्दे 'अनवार सुलेही' इत्यस्मात् पञ्चतन्त्रानुवादात् तूर्कीभाषायां 'हुमायूँनामा' इत्याख्यः पञ्चतन्त्रानुवादः जातः।

फ्रांसीसी-भाषायाम् अनुवादः

१६४४ तमे वर्षे फारसी-भाषायाः 'अनवरी सुहेली' इत्यस्माद् अनुवादादेव फ्रेंच-भाषायां पञ्चतन्त्रानुवादः अभवत्। तस्य अनुवादस्य नाम 'पिलपई' इति आसीत्। अद्यापि सः अनुवादः पिलपई-महोदयस्य कथाः इति प्रसिद्धः।[1] विकिपीडिया-जालेऽपि अनेन नाम्ना पुनर्निर्देशनं प्रदत्तम् अस्ति।

आङ्ग्लानुवादाः

१८५४ तमे वर्षे ईस्ट विक-कृतः अनुवादः, १८७७ तमे वर्षे वॉस्टन्-कृतः अनुवादः अपि प्रकाशितः। तौ अनुवादौ आङ्ग्लभाषायाम् आस्ताम्। 'लोइट्स् ऑफ् कैनोपस्' इति तयोः अनुवादयोः शीर्षकम् आसीत्। विंशेऽब्दे आङ्ग्लभाषायां द्वौ उल्लेखनीयौ अनुवादौ प्रकाशितौ। १९२४ तमे वर्षे स्टैनली राईस्-कृतः, १९२५ तमे वर्षे आर्थर् डब्ल्यू राइडर्-कृतश्च अनुवादः प्रकाशितः।[८] आर्थर् इत्येषः अमेरिका-देशस्य प्रसिद्धः प्राच्यवादी आसीत्। तस्य अनुवादः अधिकां प्रसिद्धिं प्रापत्। एतस्य अनुवादस्य वैशिष्ट्यम् आसीद् यत्, पञ्चतन्त्रे यथा गद्यस्य, पद्यस्य च उपयोगः कृतः अस्ति, तथैव आर्थर् इत्यनेन आङ्ग्लानुवादे गद्यपद्ययोः तादात्म्यं साधितम् अस्ति। १५७० तमे वर्षे थॉमस् नॉर्थ् इत्याख्येन पञ्चतन्त्रस्य आङ्ग्लसंस्करणं सम्पादितम् इति पुरा उक्तम्।

अन्ये अनुवादाः

१६५४ तमे वर्षे ब्रूती इत्याख्यस्य स्पेनी-भाषायाम् अनुवादः प्रकाशितः। १७२४ तमे वर्षे तूर्की-भाषायाः अनुवादात् (हुमायुँनामा इत्यस्मात्) फ्रेंच-भाषायाम् अनुवादः अभवत्। तस्य नाम 'बिदपई' इति आसीत्। वैदेशिकपाठशालासु अपि उक्तेन नाम्ना तस्य प्रसिद्धिः। तस्य विस्तृतं नाम 'विदपई इत्यस्य भारतीयकथाः' इति। अष्टादशेऽब्दे यूरोपीय-भाषासु पञ्चतन्त्रस्य अनेके अनुवादाः प्रकाशिताः। १७४५ तमे वर्षे वाइल्ट इत्यस्य स्वीडिश-भाषायाम् अनुवादः, १७४५ तमे वर्षे एव अज्ञातकविना जर्मन-भाषायाम् अनुवादः कृतः। १७६२ तमस्य वर्षस्य र्यूबेंस् इत्यस्य स्वीडिश-भाषायाम् अनुवादः प्राप्यते। १७७० तमे वर्षे अज्ञातकविना पोलिश-भाषायाम् अनुवादः कृतः। १७८१ तमे वर्षे स्पोंडेल-भाषातः डच-भाषायाम् अपि पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः प्रकाशितः। १७८१ तमे वर्षे हंगापियाई-भाषायां, यूनानी-भाषायां च पञ्चतन्त्रानुवादः जातः।

एवं पञ्चतन्त्रस्य अनुवादपरम्परा पहलवी-तः अरबी, अरबीतः हिब्रू, हिब्रूतः लैटिन् ततः इटालवी अन्ते आङ्गलं यावत् अचलत्। सा अनुवादपरम्परा अद्यापि अविरता अस्ति। कदाचित् अस्मिन् समये विश्वस्य कश्चन सम्पादकः, लेखकः उत अनुवादकः पञ्चतन्त्रस्य प्रकाशनाय सज्जः भवेत्। एतावता ये पञ्चतन्त्रस्य अनुवादाः अभारतीयाभाषासु अभूवन्, तेषु द्वौ पहलीभाषायाः, जर्मनी-देशीयविदुषः थियोडोर-महोदयस्य जर्मनभाषायाः अनुवादौ साक्षात् संकृतात् अभवताम्। अधिकतमाः अनुवादाः तु अनुवादस्य अनुवादाः आसन्। तेषु मुख्यतया पहलीभाषायाः अनुवादाः अधिकाः आसन्। विभिन्नानां संस्कृतीनाम् अनुरूपं पञ्चतन्त्रस्य कथायाः कायाकल्पः जातः स्यात्।

पञ्चतन्त्रस्य भारतीयबालसाहित्ये प्रभावः

विश्वस्य अधिकतमभाषासु संस्कृतस्य प्रभावः इति सर्वविदितम्।एवमेव विविधासु भाषासु यत् बालसाहित्यम् उपलभ्यते, तस्मिन् पञ्चतन्त्रस्य प्रभावः अस्त्येव। पञ्चतन्त्रस्य २०० अधिकाः अनुवादाः अद्यत्वे समग्रे विश्वे सन्ति। एतेषु अनुवादेषु प्रमुखः प्रभावः तदा प्रत्यक्षः भवति यत्, स्रोतोभाषायाः मूलग्रन्थानुसारमेव लक्ष्यभाषायां पद्यगद्ययोः सम्मेलनेन अनुवादकार्यं भवति इति। यथा यदि संस्कृतभाषायां कोऽपि विषयः श्लोकमाध्यमेन उपस्थापितः, तर्हि अनूद्यमानायां भाषायाम् अपि पद्यमाध्यमेन एव तस्य विषयस्य उपस्थापनं भवति। आङ्ग्लानाम् आगमनोत्तरं भारतवर्षे महत्तमस्य बालसाहित्यस्य रचना शालाशिक्षणस्य हेतुं साधयितुम् एव अभवत्। तेषु हिन्दी, बंगाली, कनडा, तमीळ इत्यादयः भाषाः अन्तर्भवन्ति।

हिन्दीभाषा

भारतस्य स्वातन्त्र्योत्तरं हिन्दीभाषायाः बालसाहित्येषु पुरावत् स्थितिः दृश्यते। यतो हि भारतीयशिक्षापद्धत्यां हिन्द्याः समावेशः राजभाषात्वेन अभवत्, तथा च अनिवार्या भाषा इति अभवत्। राज्यसर्वकाराः, केन्द्रसर्वकारश्च हिन्दीसाहित्यस्य कृते पर्याप्तम् अनुदानम् अपि यच्छन्ति स्म। एवं हिन्दीभाषायां साहित्यनिर्माणे स्वाभाविकतया एव वेगः सम्प्राप्तः। तस्मिन् साहित्ये बालसाहित्यस्य निर्माणम् आधिक्येन अभवत्। यतो हि शालायां हिन्द्याः प्राथमिकज्ञानाय पाठ्यपुस्कानि आवश्यकानि आसन्। तस्मिन् काले पञ्चतन्त्रस्य कथाः, हितोपदेशस्य कथाः, ध्रुवचरितं, प्रह्लादचरितं, हरिश्चन्द्रचरितम् इत्यादीनां संस्कृताख्यानानां बालभोग्यरीत्या अनुवादः अभवत्। अद्यत्वे बालसाहित्यस्य रचना न केवलं धर्मप्रचारस्य कार्यम्, अपि तु व्यवसायकार्यम् अपि

अभवत्। इ. १८७४ तः १९०० पर्यन्तं हिन्दीसाहित्यस्य कालः भारतेन्दुः इति प्रसिद्धः। तस्मिन् काले यस्य बालसाहित्यस्य रचना अभवत्, तस्य पारम्परिकतया रचना नाभवत्। अतः तस्मिन् साहित्ये उपदेशेन सह मनोरञ्जनस्यापि समावेशः अभवत्। ततः हिन्दीबालसाहित्ये वैज्ञानिकपुस्तकानां प्रसिद्धिः अवर्धत। तस्याः प्रसिद्धेः पृष्ठे 'बालविनोद', 'शिशु', 'बालसखा', 'बालभारती', 'नन्दन', 'पराग' इत्यादीनां सामयिकानां मुख्यं योगदानम् आसीत्।

वङ्गभाषा

इ. १८०२ तमे वर्षे 'बत्रीश सिंहासन', १८०८ तमे वर्षे 'हितोपदेश' इत्येतयोः ग्रन्थयोः वङ्गभाषायाम् अनुवादः अभवत्। ततः १८४७ तमे वर्षे ईश्वरचन्द्रः विद्यासागरः 'वेतालपञ्चविंशतिः' इत्यस्मात् कथाग्रन्थात् वेतालकथानां वङ्गभाषायां भाषान्तरम् अकरोत्। वङ्गभाषायां रवीन्द्रनाथठाकुरस्य योगदानम् अद्वितीयम्। तेन अनेकधा वङ्गबालसाहित्यं समृद्धं कृतम्। ठाकुरमार झूली-ग्रन्थस्य रचयिता दक्षिणारञ्जनः इत्याख्यस्य वङ्गप्रदेशस्य स्थानीयकथानां सङ्ग्रहणं कृतवान् अस्ति। वङ्गप्रेदशस्य प्रसिद्धस्य बालसाहित्यकारस्य विषये प्रसिद्धिः अस्ति यत्, बालाकाः यं ज्ञात्वा पठितुं प्रभवन्ति, तादृशः एकः लेखकः सत्यजितरायः एव इति।

असमियाभाषा

संस्कृतभाषायां रचितानां पौराणिकाख्यानानाम् आधारेण असमियाभाषायां बालसाहित्यस्य आरम्भः अभवत् इति स्पष्टम् अस्ति। अस्यां भाषायां शिशुविज्ञानकोषः अपि उपलभ्यते।

उडियाभाषा

उडियाभाषायां बालसाहित्यस्य आरम्भः केशव कोईली इत्याख्यस्य कवेः गीतात्मककवितया अभवत् इति मन्यते। तस्यां कवितायां हितोपदेशस्य साक्षात् प्रभावः दृश्यते।

कन्नडभाषा

कथासाहित्यस्य कन्नडभाषायां बाहुल्यम् अस्ति। एतस्यां भाषायां साक्षात् संस्कृतभाषायाः अनूदिताः कथाः उपलभ्यन्ते। तथा च तस्यानुवादस्य आधारेण नवीनाः रचनाः अपि अभूवन्। कन्नडभाषायां बालसाहित्यस्य उपलब्ध्यै पञ्जे मङ्गेशराव, श्रीमती आर् कल्याणम्मा, शिवराम कारन्त इत्यादीनां मुख्यतया उल्लेखः भवति। डॉ. कारन्त इत्यनेन रचितः 'बाळप्रपञ्च' इत्याख्यः बालविश्वकोषः बालेषु विद्यमानानां विविधानां जिज्ञासानाम् उपशमनं करोति।

सिन्धीभाषा

अन्यभाषावत् सिन्धीभाषायां बालसाहित्यस्य आरम्भः अनूदितात् साहित्यादेव अभवत्। सिन्धीबालसाहित्यस्य विकासाय 'श्रेष्ठ साहित्यमाला' इत्याख्यायाः प्रकाशकस्य अधिकं योगदानं दृश्यते।

मराठीभाषा

मराठीभाषायां बालसाहित्यस्य प्रारम्भः आङ्ग्लविरुद्धं प्रचारस्य उद्देशेन अभवत् इति इतिहासे प्रत्यक्षम् अस्ति। १८२२ तमे वर्षे 'बोम्बे नेटिव एज्युकेशन् सोसाइटी' इत्याख्यायाः संस्थायाः आरम्भः अभवत्। तस्याः संस्थायाः परिश्रमेण संस्कृतात् अनेके ग्रन्थाः मराठीभाषायाम् अनूदिताः। तेषु ग्रन्थेषु मुख्यतया नीतिग्रन्थानां, नीतिकथानां च बाहुल्यम् आसीत्। उक्तायाः संस्थायाः स्थापनायाः प्रागेव तया संस्थया अनेकेषां संस्कृतग्रन्थानाम् अनुवादकार्यम् आरब्धम् आसीत्। यतो हि १८१५ तमे वर्षे वैजनाथशास्त्रिणा अनूदिते 'पञ्चतन्त्रः', 'हितोपदेशः' च पुस्तके उपलभ्येते। ततः १९०६ तमे वर्षे आरब्धेन

'आनन्द' इत्याख्येन बालसामयिकेन मराठीबालेभ्यः बालसाहित्यस्य भण्डारः उद्घाटितः। तस्य बालसामयिकस्य सम्पादकः वासुदेव गोविन्द आप्टे इत्याख्यः साहित्यकारः आसीत्। १९२० इ. पश्चात् मराठीभाषायाः बालसाहित्ये मौलिकरचनानाम्, अनूदितग्रन्थानां च प्रकाशने वेगः दृश्यते। गतद्वादशवर्षेषु 'अरगडे-आणि-कुलकर्णी'-प्रकाशन-संस्थया त्रिंशदधिकानि (३००) बालपुस्तकानि प्रकाशितानि।

गुजरातीभाषा[सम्पादयतु]

गुजरातीभाषायाः बालसाहित्यं मुख्यत्वे विभागद्वये विभक्तम् अस्ति।

१) मध्यकालीनं बालसाहित्यम् (१८५० पर्यन्तम्),

२) अर्वाचीनकालीनं बालसाहित्यम् (१८५१ तः) इति।

मध्यकाले धर्मकथानां, दृष्टान्तकथानां, नीतिकथानां, संसारकथानां च माध्यमेन संस्कारसिञ्चनस्य, मनोरञ्जनस्य च साधनत्वेन बालसाहित्यस्य रचना अभवत्। तस्मिन् समये केवलं मौखिककथायाः एव प्रचलनम् आसीत्। तासु कथासु जातककथायाः, बृहत्कथायाः, कथासरित्सागरस्य, तरङ्गवत्याः, तरङ्गलोलायाः, वसुदेवहिण्डायाः, दश कुमारचरितस्य, सिंहासनद्वात्रिंशिकायाः, वैतालपञ्चविशंत्याः, शुकसप्तत्याः, पञ्चतन्त्रस्य, हितोपदेशस्य, भोजप्रबन्धस्य च प्रभावः दरीदृश्यते। संस्कृत-प्राकृत-अपभ्रंशभाषासु विद्यमानस्य कथाभण्डारस्य मध्यकालीनसाहित्ये सुलभप्रचारः अभवत्। अर्वाचीकालेऽपि पञ्चतन्त्रादीनां पद्यकथानामेव अवलम्बनं कृत्वा बालभोग्यसाहित्यस्य रचना जाता।

अत्र बोध्यं यत् मध्यकाले यावतः साहित्यस्य रचना अभवत्, तावति साहित्ये स्वल्पं साहित्यं बालसाहित्ये अन्तर्भवति इति उचितम् अस्ति। परन्तु तस्य साहित्यस्य रचना बालम् उद्देशीकृत्य अभवत् इति वक्तुं न शक्नुमः। यतो हि नरसिंहमहेता इत्यस्य महाकवेः रचनाः बालेभ्यः आनन्ददायिन्यः आसन्, परन्तु तासां रचनानाम् उद्देश्यं बालरञ्जनं नासीत्। तस्मिन् साहित्ये बालानां रुचित्वादेव तत् बालसाहित्येषु अन्तर्भवति। स्वातन्त्र्योत्तरं तु बालसाहित्यस्य निर्माणं शिक्षणानुगुणम् एव अभवत्। रामायण-महाभारत-पञ्चतन्त्र-हितोपदेश-विक्रमादित्य-भोजादीनां कथाः पौनःपुन्येन लेखकैः लिखिताः। परन्तु तासु कथासु सर्वैः अनुवादकैः, लेखकैः, सम्पादकैश्च बोधपाठः पृथग्रीत्या उक्तः।

पञ्चतन्त्रस्य गुर्जरभाषायां विविधानि नामानि सन्ति। यथा – पञ्चाख्यान, पञ्चोपाख्यान, पञ्चोपाखीयान इत्यादीनि। १८२४ तमे वर्षे 'मुम्बई समाचार प्रेस' इत्यनया संस्थया प्रकाशिते 'पञ्चोपाखीयान' इत्यस्मिन् ग्रन्थे पञ्चतन्त्रस्य सर्वेषां तन्त्राणाम् अनुवादः उपलभ्यते। स एव ग्रन्थः १८४४ तमे वर्षे 'मुम्बई नेटिव एज्युकेशन सोसाइटी' इत्यस्मादपि प्रकाशितः। १८७८ तमे वर्षे 'सखाराम भीकशेटे' इत्याख्येन चित्रैः सह 'पञ्चोपाखीयान' इत्यस्य ग्रन्थस्य सम्पूर्णतया गद्यात्मकतया प्रकाशनं कृतम्। १८९८ तमे वर्षे प्राणजीवनशास्त्रिणा पञ्चतन्त्रस्य सरलभाषायाम् अनुवादः कृतः आसीत्। १८९८ तमे वर्षे एव छोटालाल नरभेराम भट्ट-महोदयेन पञ्चतन्त्रस्य अनुवादः गुजरातीभाषायां कृतः। तस्मिन् अनुवादे विशेषता आसीत् यत्, पञ्चतन्त्रे यत्र गद्यत्वेन वर्णनम् अस्ति, तस्य अनुवादेऽपि गद्यत्वेन अनुवादः कृतः। तथैव यस्य पद्यत्वेन विषयोपस्थापनम् अस्ति, तस्य पद्यत्वेन एव गुर्जरभाषायाम् अनुवादः कृतः। १८९४ वर्षात् प्रागेव मणिशङ्करभट्टेन रचितं 'पञ्चोपाख्यानम्' अपि अन्यततम्। शिलाछाप-मुद्रणकेन्द्रेण प्रकाशिते पञ्चतन्त्रस्य द्वे पुस्तके उपलभ्येते। एतेषु सर्वेषु अनुवादेषु बालभोग्यता अस्ति इति वक्तुं न शक्नुमः। परन्तु एतैः अनुवादैः बालभोग्यकथानां विशालसमुदायः जनितः इति

निश्चितम् अस्ति। १९३९ तः १९४३ पर्यन्तं 'कुमार' इत्याख्ये बालसामयिके श्रीवालदी गोविन्दजी देसाई-महोयेन 'પંચતન્ત્રની વાર્તાઓ' इति क्रमशः अङ्कः प्रकाशितः। तस्य प्रकाशनेन पञ्चतन्त्रस्य गुर्जरप्रदेशे प्रभावः प्रबलः अभवत्। गुजरातराज्यस्य प्रसिद्धप्रकाशनेन 'सस्तु साहित्य' इत्यनेन तेषाम् अङ्कानां सङ्कलनं कृत्वा 'तन्त्रकथा' इतिनाम्ना पुस्तिकात्वेन प्रकाशनं कृतम्।

पञ्जाबी, मलयालम, काश्मीरी, तेलुगु इत्यादिषु भाषासु बालसाहित्यस्य विकासः विलम्बेन अभवत्। तासु अधिकतमासु भाषासु भारतस्वातन्त्र्योत्तरमेव बालसाहित्यस्य क्षेत्रे विकासः अभवत्। उपर्यक्तासु सर्वासु भाषासु प्राप्तसूचनायाः आधारेण प्रत्यक्षम् अस्ति यत्, भारतवर्षस्य राजभाषासु काश्चिदेव राजभाषाः एकोनविंशेऽब्दे बालसाहित्येषु विकासं साधितवत्यः। विंशेऽब्दे तथा च स्वातन्त्रोत्तरं सर्वासु भाषासु बालसाहित्यक्षेत्रे उल्लेखनीयः विकासः अभवत्। भारतीयभाषासु बालसाहित्यक्षेत्रे यः स्वल्पः वा अधिकः विकासः साधितः, तत्र सर्वाधिकमहत्त्वपूर्णः विषयः अस्ति यत्, तासु सर्वासु भाषासु बालसाहित्यस्य आरम्भः कथासाहित्यस्य रचनया अभवत्। तस्य कथासाहित्यस्य आधारः पञ्चतन्त्रं, हितोपदेशः, पौराणिककथाः च आसन्। तेषाम् अनुवादं कृत्वा एव भारतीयभाषासु बालसाहित्यं विपुलातां प्रापत्।

पञ्चतन्त्रस्य शाखाभेदः

दक्षिणापथप्रथिते, नेपालदेशीये च पञ्चतन्त्रे पञ्चतन्त्रमिति नाम समानम्। अतो मूलभूतं पुस्तकं पञ्चतन्त्रनामकमासीदिति वक्तुं सुशकम्। तन्त्रपदेन अध्याया उच्यन्ते, 'तन्त्रैः पञ्चभिरेतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम्' इति स्मरणात्।

पञ्चतन्त्रं नाम नैकं पुस्तकमपि तु शास्त्रमिदम्। अत्र शास्त्रे समानाभिधेयाः, समानोद्देश्यानि, समानबहुलांशाश्च बहवः ग्रन्थाः सन्ति। पञ्चतन्त्रस्य शाखा बहुविस्तरा। तत्र अर्धाधिकः भागः विदेशेषु प्रसिध्दः।

1. नेपालीयं पञ्चतन्त्रम्- नेपालीयपञ्चतन्त्रस्य अनेकानि हस्तलिखितपुस्तकानि अधिगतानि। एषां मध्ये एकस्मिन् पद्यभागमात्रं विद्यते, अपरस्मिन् पद्यभागेन समं गद्य भागोऽपि। अत्र कालिदासीयमेकं पद्यमुद्धृतमिति कालिदासात् अर्वाग्भवत्वम् अस्य प्रतीयते। इतोऽधिकमस्य रचनाकालसम्बन्धे कथयितुं न शक्यते। नेपाले हितोपदेशस्यैकं १३७३ क्रैष्टलिखितं पुस्तकं प्राप्तम्। भट्टारकवारशब्दप्रयोगात् ९०० क्रैष्ट-तः अर्वाऽवग्भवमायाति। माघात् कामन्दकीयनीतिसाराच्च। बहुविषयादानात्ततोऽर्वाग्भवत्वमायति। तदेवं सकलवस्तु पर्यालोचनयाऽस्य कालः १००० क्रैष्टमितः प्रत्ययो भवति।
2. दक्षिणापथीयं पञ्चतन्त्रम्- अत्रापि कालिदासीयमेकं पद्यमुदधृतमिति ततोऽर्वाग्भवत्वमस्य सिद्ध्यति। अस्मिन् यावान् मौलिकपञ्चतन्त्रांशः न तावान् सरलग्रन्थे तन्त्राख्यायिकायां वा। अस्मिन् बहवः कथाः प्रक्षिप्ता अपि सन्ति।
3. हितोपदेशः – नारायणनामकेन केनापि पण्डितेनायं सङ्ग्रहः कृतः। अत्र स्वयमुक्तं – 'पञ्चतन्त्रात्तयान्यस्माद् ग्रन्थादाकृष्य लिख्यते ' इति। तेनास्य पञ्चतन्त्ररुपान्तरत्वमुक्तं भवति। आचारशिक्षाऽस्य ग्रन्थस्य मुख्यमुद्देश्यम्। अत्रत्याः कथाः नानाग्रन्थेभ्यो गृहीताः, यथा-मुनिमूषिककथा महाभारतात् गृहीता, चतुरमतिस्त्रीकथा शुकसप्ततितो गृहीता, वीरवरकथा वेतालपञ्चविंशतिकातो गृहीता।

4. बृहत्कथान्तर्गतं पञ्चचन्त्रम् –बृहत्कथायां तस्य पञ्चतन्त्रस्य यद्रव्यमासीत्तदेव काश्मीरेषु समुपचितं सद् बृहत्कथामञ्जर्यां कथासरित्सागरे चावर्ण्यत क्षेमेन्द्रेण । मञ्जर्यां सोमदेवेन कथासरित्सागरे चास्यैव पञ्चतन्त्रस्य कथाभागो वर्णित इति विदुषामाशयः। अत्र क्वचित् सङ्क्षिप्तत्वं क्वचिद् रुपान्तरितत्वमपि दृश्यते।
5. तन्त्राख्यायिका – पञ्चतन्त्रस्यैव रूपविशेषः तन्त्राख्यायिकानाम्ना प्रसिध्दः। काश्मीरदेशे शार्दालप्यामस्यैकमेव पुस्तकमधुनावधि प्राप्तम्। तन्त्राख्यायिकायामाद्य पञ्चतन्त्रस्य यावानंशः सुरक्षितो विद्यते तावानंशो नान्यत्र। अत्र बहव्यः कथाः प्रक्षिप्ताः अपि सन्ति, यथा - नीलशृगालस्य, चतुरजम्बुकस्य, सोमिलकतन्तुवायस्य, कुटिलकुट्टिन्याः, नृपशिवेः, वृध्दहंसस्य, लशुनचौरस्य, वीरवेषधारिणश्च कथाः। अस्य रचनाकालो निश्चित्य वक्तुमशक्यः।
6. सरलग्रन्थः – अयमपि पञ्चतन्त्राधारकस्तद्रूपान्तरभूतो वा ग्रन्थः। अस्य तन्त्राख्यायिकया सह महत्साम्यं वर्तते। अत्र वैदिकमुनीनां नामानि नोपलभ्यन्ते, जैनमतप्रसिध्दानां दिगम्बरनग्नकक्षपणकधर्मं देशनानप्रभृतीनां शब्दानां प्रयोगस्य दर्शनेन "जैनः कश्चिदस्य ग्रन्थस्य रचयितेति तर्कयन्ति कतिपये। अत्रमाघकाव्यात् पद्यानि उद्धृतानि पूर्णभद्रश्चामुं स्मरति, तदयं ग्रन्थः क्रैष्टीयैकादशशतकसम्भवः स्यादिति विश्वसन्ति।
7. पूर्णभद्रस्य पञ्चतन्त्रम् (पञ्चाख्यानकम्)- पञ्चाख्यानकनाम्ना प्रसिध्दः पूर्णभद्रकृतोऽयं ग्रन्थः तन्त्राख्यायिकान् अन्यानपि च तद्विषयकग्रन्थान् विलोक्य कृतः प्रतीयते। सोमाख्यस्य कस्यचिन्मन्त्रिणः प्रसन्नतायै पूर्णभद्रेणा ११९९ तमे क्रैष्टीये ग्रन्थोऽयं लिखितः।

मूलपञ्चतन्त्रप्रणेता

पञ्चतन्त्रस्य रचयिता कः इत्यस्य सामान्यप्रश्नस्य उत्तरम् अस्ति यत्, "पण्डितः <u>विष्णुशर्मा</u>" इति पञ्चतन्त्रे एव स्पष्टं भवति। श्लोको यथा –

सकलार्थशास्त्रसारं जगति समालोक्य विष्णुशर्मेदम् ।
तन्त्रैः पञ्चभिरैतच्चकार सुमनोहरं शास्त्रम् ॥

गद्येपि वष्णुशर्मा एव पञ्चतन्त्रस्य रचयिता उक्तः। तस्य वयः अशीतिः आसीत्, यदा तेन एतस्य ग्रन्थस्य रचना कृता। परन्तु एततु केवलं प्राथमिकं ज्ञानं मन्यते। वास्तव्येन पञ्चतन्त्रस्य रचयितुः विषये अनेके तर्काः सन्ति। यतो हि आचार्यचाणक्यस्यापि विष्णुशर्मा इति नाम प्रसिद्धम् आसीत्, अतः केचन आचार्यचाणक्यमेव एतस्य ग्रन्थस्य रचयितृत्वेन आमनन्ति। परन्तु पञ्चतन्त्रस्य प्रस्तावनायामेव विष्णुशर्मा आचार्यचाण्यक्यं स्मृत्वा नमस्करोति। अतः विभिन्नाः विद्वांसः तर्कयन्ति यत्, वस्तुतः पञ्चतन्त्राख्यस्यास्य मूलग्रन्थस्य रचना तु आचार्यचाणक्येनैव कृता स्यात्, परन्तु ततः केनचित् आचार्य<u>चाणक्य</u>स्य स्तुत्यकः श्लोकः निक्षेपितः स्यादिति। ते स्वतर्के योजयन्ति यत्, एतादृशस्य ज्ञानगहनस्य ग्रन्थस्य रचनां केवलम् आचार्यचाणक्यसदृशः विद्वान् एव कर्तुं प्रभवतीति। पञ्चतन्त्रस्य प्रस्तावनास्तुत्यां यद्यपि आचार्यचाणक्यस्य उल्लेखः अस्ति, तथापि उक्तस्य तर्कस्य समर्थकाः अनेके सन्ति। आचार्यचाणक्यमेव पञ्चतन्त्रस्य रचयितृत्वेन ये विद्वांसः तर्कयन्तः सन्ति, तेषु आर्थर् कीथ (Arthur Keith), फ्रेङ्कलिन् एजरटन् (Franklin Edgerton) (एषः भ्रमितः सन् हर्टेल् इत्यस्यैवान्धानुकरणं कुर्वन् अस्ति।) इत्यादयाः प्रमुखाः।

डॉ जायसवाल-महोदयस्य मतानुसारं तु डॉ कीथ इत्यस्य प्रयासः आसीत् यत्, पञ्चतन्त्रग्रन्थस्य रचनाकालः क्रीष्टाब्द्योत्तरम् उपस्थापनीयः इति। तस्य पृष्ठे कीथ इत्यस्य कः उद्देशः आसीत् इति तु स्पष्टतया ज्ञातुं न शक्यते। परन्तु डॉ कीथ पञ्चतन्त्रस्य पुरातत्वं खण्डयितुं प्रयासम् अवश्यम् अकरोत्। प्रत्युत डॉ. जायसवाल-महोदयः तस्य विरुद्धम् अनेकान् तर्कान् उपस्थाप्य डॉ कीथ इत्यस्य तर्काणां खण्डनं कृतवान्। डॉ कीथ इत्यस्य मतानुसारं तु "कौटिलीयम् अर्थशास्त्रम्" इत्येषः महान् ग्रन्थः आचार्यचाणक्येन न लिखितः। सः ग्रन्थः तु मिथ्या अस्ति इति। परन्तु डॉ. जायसवाल-महोदयेन तस्य सर्वेषां तर्काणां खण्डनं कृतम् अस्ति। डॉ. कीथ इत्यस्य वचनानां श्रीजयचन्दः विद्यालङ्कारः अपि खण्डनं करोति। 'भारतीय इतिहास की रूपरेखा' इत्याख्ये स्वग्रन्थे विस्तारेण तर्कान् दत्तवान् सः।

केचन तु प्रस्तावनायाम् आचार्यचाणक्यस्य उल्लेखे सति विष्णुशर्माणम् आचार्यचाणक्यात् भिन्नम् एव कथयन्ति। एतेषु जोहानिस हर्टेल (Johannes Hertel), डॉ. जायसवाल, श्रीजयचन्दः विद्यालङ्कारः इत्यादयाः प्रमुखाः।

हस्त्यश्वादियानसाधनं विहायात्रोष्ट्राऽसकृद्वर्णित इति काश्मीरदेश्योऽयं विष्णुशर्मा सम्भाव्यते।

रचनाकालः

एतावता पञ्चतन्त्रस्य निश्चितं कालं तु ज्ञातुं कोऽपि न शक्तवान्। एतस्य ग्रन्थस्य प्राचीनतायाः विषये अनेकेषाम् इतिहासविदां विभिन्नानि मतानि सन्ति। पञ्चतन्त्रस्य रचनाकालः तृतीयशताब्दी (BC), रचनाप्रदेशः काश्मीरश्च मन्यते।गुणाढ्यरचिते 'बृहत्कथा'-ग्रन्थे पञ्चन्त्रस्य पाठः लभ्यते। बृहत्कथायाः रचनाकालः ७८ ई. मन्यते। अतः अनेकेषां विदुषां मते पञ्चन्त्रस्य रचकालः ३०० ई.पू. अस्ति। केचन २०० ई.पू. अपि स्वीकुर्वन्ति। यदि एतस्य ग्रन्थस्य रचयिता आचार्यचाणक्यः अस्ति, तर्हि तेन स्वस्य वृद्धावस्थायामेव एतस्य ग्रन्थस्य रचना कृता स्यादिति अनेकैः अनुमीयते।

उद्देशः

बालसाहित्ये सर्वं विस्तृतं, विस्मयपूर्णं च आवश्यकम्। देशकालयोः प्रवाहग्रस्तं बालसाहित्यं सततं परिवर्तनशीलं भवति। परन्तु कालक्रमे तेषां प्रयोजने अन्तरं न भवति। बालसाहित्यस्य मुख्यप्रयोजनेषु बालानन्दः, भाषाविकासः, मूल्यविकासः, संस्कारसिञ्चनं, नीतिविवेकश्च मुख्यतया स्मर्यन्ते। तेषु मुख्यतमं तु आनन्दः एव कथ्यते। यतो हि आनन्दस्य माध्यमेनैव बालेभ्यः अन्यप्रयोजनानां सिद्धिः शक्यते। पञ्चतन्त्रस्य कथामुख एव विष्णुशर्मा स्वग्रन्थस्य उद्देशं सिंहनादेन सह उद्घोषयति। राजा अमरशक्तिः यदा स्वपुत्रान् पाठयितुं विष्णुशर्मणे साग्रहं निवेदयति, तदा विष्णुशर्मा सरस्वतीविनोदः, न्यायशास्त्रज्ञानदानम् इत्येतौ उद्देशौ कथयति।[२६] विष्णशर्मणः उद्देशयोः बालसाहित्यस्य कार्यं प्रत्यक्षं भवति। बालकानां जीवने बालसाहित्यं विनोदसाधनं, मार्गदर्शकं, कल्पनाशक्तौ निमज्जनसाधनम्, आकाशे स्वतन्त्रतया डयितुं विमानं च भवति। साहित्यं प्रति आकर्षिताः बालाः सानन्दं स्वविकासस्य आधारशीलायाः रचनां कुर्वन्ति।पञ्चतन्त्रस्य प्रमुखः उद्देशः बालकेषु नैतिक-व्यावहारिकशिक्षायाः सिञ्चनम् आसीत्। एतस्य कृते एव रचनाकारः कथायां पशुपक्षिणां माध्यमेन नयरूपसिद्धान्तान् वदति। पञ्चतन्त्रे याः कथाः सन्ति, तेषु लेखकस्य उद्देशः स्पष्टः भवति। पञ्चतन्त्रस्य सर्वासु कथासु वाग्व्यवहारः, करणीयाकरणीययोः उपदेशः, कर्तव्यपालनं, मित्ररक्षा, वचनपालनम् इत्यादयः गुणाः वर्णिताः सन्ति। लेखकः कथायाः माध्यमेन बालेषु न केवलं व्यवाहरबुद्धिं सम्पादयितुम् इच्छति, अपि तु समाजे व्याप्तानां

दोषाणां प्रति अपि ज्ञानबुद्धिं सम्पादयितुं प्रयतते। अत एव पञ्चतन्त्रस्य कथासु छल-कपट-अहङ्कार-छद्मपूर्णव्यवहारादीनां दोषाणाम् अपि वर्णनं प्राप्यते।

भाषा, शैली च

पञ्चतन्त्रस्य रचना गद्यपद्यमिश्रतया जाता अस्ति। अत्र नैतिकोपदेशात्मकः भावः पद्यमाध्यमेन, तथा च कथाभागः गद्यमाध्यमेन उपस्थापितः अस्ति। कुत्रचित् पद्यमाध्यमेनापि कथाभागस्य दर्शनं भवति। पञ्चतन्त्रे पद्यानां यः उपयोगः अभवत्, तेन ग्रन्थकारस्य नयरूपसिद्धान्ताः सूर्यवत् दरीदृश्यन्ते। पञ्चतन्त्रस्य भाषा सूक्तिभिः परिपूर्णा वर्तते। हासपरिहासपूर्णा, ललिता, हृदयग्राह्या च पञ्चतन्त्रस्य भाषा। वाक्यविन्यासः अपि सरलः सुबोध्यः एवास्ति। कुत्रापि क्लिष्टशब्दानां, दुर्बोधशब्दानां च उपयोगः न जातः अस्ति। विषयस्य उपस्थापनरूपिणी या भाषा आवश्यकी भवति, तादृश्यां शैल्याम् एव विषयोपस्थापनम् अपि जातम् अस्ति।

नयशास्त्रे व्यङ्ग्यस्य उपयोगः सामान्यः मन्यते। परन्तु अस्मिन् नयशास्त्रे तु व्यङ्ग्यात्मपाठैः सह आलङ्कारिकशैल्याः अपि बहुधा प्रयोगः विद्यते। ब्राह्मणानाम् आडम्बरः, भृत्यानां कपटपूर्णव्यवहारः, राज्ञां विवेकहीनता, स्त्रीणां चरित्रभङ्गः इत्यादयः विषयाः व्यङ्ग्यशैल्याम् आलङ्कारिकतया प्रदर्शिताः। बहुत्र लघुवाक्यानि वार्तालापशैल्यापि निबद्धानि सन्ति।

विवरणम्

१. मित्रभेदः

२. मित्रसम्प्राप्तिः

३. काकोलूकीयम्

४. लब्धप्रणाशः

५. अपरीक्षितकारकम्

पञ्चतन्त्रस्य रचना उक्तेषु पञ्चतन्त्रेषु विभक्ता अस्ति। एतेषां तन्त्राणाम् आरम्भाय कश्चित् कथामुखः अपि विद्यते। सः कथामुखः पञ्चतन्त्रस्य रचनायाः पूर्वपीठिकाम् उपस्थापयति।

प्रतितन्त्रम् एका प्रधानकथा भवति। नीतिबोधनार्थं पुनः तत्र बह्व्यः उपकथाः भवन्ति। पञ्चतन्त्रस्य शैली अतीव सरला। कासुचित् कथासु लघुहास्यम् अपि दृश्यते। भारतीयसंस्कृतिः सर्वासु कथासु स्फुटतया दृश्यते। अयं ग्रन्थः काश्मीरलिप्या लिखितः अस्ति। अस्य प्राचीनप्रतिकृतिषु 'तन्त्राख्यायिका' इति नाम दृश्यते। इदं गुप्तशासनकाले लिखितमिति श्रूयते। अयं ग्रन्थः नवरसैः युक्तः चमत्कारगर्भितः लोकानुभवपूर्णश्च अस्ति।

कथामुखः

शास्त्रज्ञानशून्येभ्यः, विवेकहीनेभ्यः, दुर्व्यसनेभ्यः च स्वमूर्खपुत्रेभ्यः दुःखिनः राज्ञः अमरशक्तेः कथा अस्ति। सः राजा विष्णुशर्मणे स्वबालकानां शिक्षायाः उत्तरदायित्वं यच्छति। यतो हि विष्णुशर्मा प्रतिज्ञां करोति यत्, अहं षण्मासेषु एव भवतः पुत्रान् राजनीतिशास्त्रे एवं नीतिशास्त्रे पारङ्गतान् करिष्ये इति।

मित्रभेदः

एतस्मिन् तन्त्रे एका प्रमुखा कथा अस्ति। तस्याः प्रमुखायाः कथायाः उपकथात्वेन त्रयोविंशतिः कथाः सन्ति। मुख्यकथायाः अन्तर्गततया पिङ्गलक-नामकः वनराजः सिंहः आपत्तिकाले स्वस्वामिना परित्यक्तस्य सञ्जीवक-नामकस्य वृषभस्य रक्षां करोति। सः वनराजः सिंहः स्वस्य विश्वस्तमन्त्रिणोः

इच्छाविरुद्धं तं सञ्जीवकं स्वस्य मित्रत्वेन घोषयति। तयोः मन्त्रिणोः नाम क्रमेण करटकः, दमनकश्च। तौ मन्त्रिणौ शृगालौ आस्ताम्। ततः तौ उभौ शृगालौ छलं, प्रपञ्चं च कुर्वन्तौ अनेकानि उपाख्यानानि वदतः। तेषाम् उपाख्यानानाम् आधारेण तौ सिंहवृषभयोः मध्ये अविश्वासभावं जनयतः। अर्थात् तयोः मित्रयोः मध्ये भेदं जनयतः। तत्पश्चात् ताभ्यां प्रेरितः सिंहः वृषभस्य हत्यां करोति। किन्तु दमनाख्यः शृगालः युक्तिभिः सिंहाय सान्त्वनां दत्त्वा स्वस्य प्रधानमन्त्रिपदे सुस्थिरो भवति।

मित्रयोः भेदोपस्थापनम् एव एतस्य तन्त्रस्य उद्देश्यम् अस्ति। तयोः शृगालयोः माध्यमेन याः उपकथाः सन्ति, तासु पशु-पक्षिणां मनोहारि, नीतिप्रदं, हृदयाह्लाददायकं च वर्णनं विद्यते।

मित्रसम्प्राप्तिः

एतस्मिन् तन्त्रे एका मुख्यकथा अस्ति। तस्याः मुख्यकथायाः सप्त उपकथाः सन्ति। चित्रग्रीव-नामकः कपोतराजः व्याधस्य जाले बद्धस्य स्वदलस्य अन्यान् कपोतान् जालेन सह डयितुं कथयति। सः स्वदलेन सह डयित्वा स्वस्य प्रियमित्रस्य हिरण्यक-आख्यस्य मूषकस्य गृहं गच्छति। एवं सः कपोतराजः मूषकैः स्वदलं जालात् मोचयति। यदा हिरण्यकः चित्रग्रीवं बन्धनाद् विमोचयितुं स्वदलेन सह प्रस्तुतः अभवत्, तदा चित्रग्रीवः तं कथयति यत्, हे मूषकराज ! पूर्वं मे अनुचरान् बन्धनात् मोचयतु इति।

मूषकेन कपोताः बन्धनमुक्ताः अभूवन्। ततः लघुपतनक-नामकस्य काकस्य मूषकराजेन हिरण्यकेन सह, मन्थरक-नामकेन कूर्मेण सह च मित्रता भवति। मूषकराजः हिरण्यकः स्वस्य पूर्वतनस्य गृहस्य त्यागस्य कथां कथयति। सः कथयति यत्, कश्चन ताम्रचूड-नामकः सन्न्यासी आसीत्। सः मूषकेभ्यः स्वभिक्षान्नं रक्षितुम् अविरतं प्रयासं करोति स्म। तथापि अहं तस्य भिक्षान्नं खादामि स्म। संन्यासिनः किञ्चन मित्रं तम् अकथयद् यत्, निश्चयेन मूषकस्य पार्श्वे एतस्य बलस्य कारणं स्यात् इति। ततः सन्न्यासी मूषकस्य बलकारणम् अन्विष्यति। सन्न्यासी स्वस्य संशोधने प्राप्तवान् यत्, मूषकस्य बलं सञ्चितः स्वर्णभण्डारः अस्ति इति। स्वर्णभण्डारे अपाकृते मूषकः दूर्बलः भवति। ततः स्वसेवकानां पोषणं, संरक्षणं च कर्तुम् असमर्थः मूषकराजः स्वसेवकैः परित्यक्तः भवति।

ततः चित्राङ्गाख्यः कश्चन मृगः मूषकस्य मित्रं भवति। एकदा विचरन् मृगः एकस्मिन् जाले बद्धः। तत्पश्चात् मुक्तेः दीर्घकालं यावत् प्रतीक्षां कुर्वन् सः स्वस्य मित्राणां साहाय्येन येन केन प्रकारेण मुक्तः भवति। तस्य मित्राणि इत्युक्ते कपोतः, मूषकः, काकः, कच्छपश्च। परन्तु तस्मिन् एव काले व्याधः तत्र सम्प्राप्नोति। व्याधं दृष्ट्वा कच्छपः बिभेति। एवं मृगः युक्त्या मृतवत् भवति। उचितं समयं दृष्ट्वा मृगः मुक्तः सन् कच्छपम् अपि मोचयति।

एतस्मिन् तन्त्रे कपोतः, मूषकः, कच्छपः, काकः, हरिणः इत्येतेषां परस्परं मित्रभावः आसीत्। एकस्मिन् सदस्ये आपतितायां विपत्त्यां सत्यां परस्परस्य साहाय्येन विपत्तेः विमुक्ताः अभूवन्। अत एव एतस्य तन्त्रस्य मित्रसम्प्राप्तिः इति अन्वर्था सञ्ज्ञा। अन्ततः मित्रस्य माहात्म्येन तन्त्रस्यास्य समाप्तिः भवति।

काकोलूकीयम्

एतस्मिन् तन्त्रे एका मुख्यकथा अस्ति। तस्याः मुख्यकथायाः सप्तदश उपकथाः सन्ति। एतस्मिन् तन्त्रे विग्रहस्य (युद्धस्य) तथा सन्धेः वर्णनम् अस्ति। एतस्मिन् मुख्यकथा मेघवर्ण-नामकस्य काकराजस्य, अरिमर्दन-नामकस्य उलूकराजस्य च अस्ति। एकस्मिन् वटवृक्षे काकानां राजा मेघवर्णः स्वदलेन सह निवसति स्म। समीपस्थायाः गिरिकायाः गुहायां उलूकानां राजा अरिमर्दनः स्वदलेन सह

निवसति स्म। प्रतिदिनं रात्रिकाले दिवान्धः उलूकराजः वटवृक्षं परितः डयित्वा चञ्च्वाघातेन कस्यचित् एकस्य काकस्य प्राणान् हरति स्म एव। उलूकानाम् आक्रमणेभ्यः त्रस्तः मेघवर्णः स्वमित्रैः सह विमर्शं करोति। सः कथयति यत्, एते उलूकाः किमर्थम् अकारणमेव अस्माभिः सह वैरभावं पालयन्ति? तेषां प्रतीकाराय अस्माभिः अपि साम-दानादिषु उपायेषु कस्यचिद् उपायस्य अनुपालनं करणीयम्? इति। तस्यां सभायाम् उपस्थितः स्थिरजीवी इत्याख्यः काकमन्त्री उलूकानाम् अकराणेन आक्रमणस्य कारणं वदति। सः कथयति यत्, पूर्वकाले पक्षिणां राजपदाय निर्वाचनम् आसीत्। तस्मिन् निर्वाचने यदा सर्वसम्मत्या उलूकः पक्षिराजः भवेत् इति प्रस्तावः अभवत्, तदा काकः उलूकस्य भयावहत्वं सिद्धयित्वा उलूकानां पक्षिराजत्वेन विरोधं अकरोत्। एवं सर्वान् पक्षिणः सः काकः स्वपक्षे कृत्वा उलूकस्य राज्याभिषेकम् अस्थगयत्। तदा उलूकः काकविरुद्धं प्रतिशोधस्य सङ्कल्पं अकरोत् इति। तस्याः घटनायाः अनन्तरम् अस्माभिः सह उलूकानां वंशपरम्परागतः वैरभावः उद्भूतः अस्ति इति उक्त्वा स्थिरजीवी व्यरमत्।

तत्पश्चात् स्थिरजीवी उलूकानां सम्मुखं शरणागतत्वेन उपस्थातुं युक्तिं करोति। यदा राज्ञः मेघवर्णात् तस्याः युक्तेः कार्यान्वयाय अनुमतिः प्राप्यते, तदा स्थिरजीवी मेघवर्णेन सह कृत्रिमं युद्धं कृत्वा आत्मानं रक्तरञ्जितं करोति। ततः स्वराज्ञः, अन्यकाकानां च तस्मात् आश्रयस्थलात् अन्यत्र स्थानान्तरणोत्तरं स्थिरजीवी उलूकराजस्य शरणम् अगच्छत्। स्थिरजीवी युक्त्या एवं बुद्ध्या तस्य उलूकस्य विश्वासम् आर्जयत्। तत्पश्चात् गुहायां स्वस्मै नीडस्य निर्माणाय अनुमतिं प्राप्नोत्। नीडनिर्माणस्य स्वाङ्गं कृत्वा स्थिरजीवी तृणसमूहम् एकत्र्यकरोत्। ततः अवसरं प्राप्य तं तृणसमूहम् अग्निमयं कृत्वा उलूकानां (शत्रूणां) गृहस्य अनुचरसहितं नाशम् अकरोत्। काकराजः अपि स्वस्य मन्त्रिणे अनेकानि पुरस्काराणि दत्त्वा स्वस्य वटवृक्षरूपरी गृहे निश्चिन्ततया दीर्घकालं यावद् अवसत्। अनेकेषां नीतिप्रदक्ष्लोकानाम् उपस्थापनोत्तरम् एतस्य तन्त्रस्य समाप्तिः भवति।

लब्धप्रणाशः

एतस्मिन् तन्त्रे एका प्रधानकथा अस्ति। तस्याः प्रधानकथायाः एकादश उपकथाः सन्ति। एतस्य तन्त्रस्य प्रधानकथा करालमुख-नामकस्य मकरस्य, रक्तमुख-नामकस्य वानरस्य च अस्ति। वानरः प्रतिदिनं मकराय जम्बूफलं यच्छति स्म। मकरोऽपि तानि जम्बूफलानि भुक्त्वा दीर्घकालं यावत् वानरेण सह वार्तालापं करोति स्म। ततः मकरः अवशिष्टानि जम्बूफलानि स्वस्य गृहं नीत्वा पत्न्यै अपि यच्छति स्म। वानरमकरयोः प्रगाढं मैत्रीं दृष्ट्वा मकरी एकदा अवदत् यत्, हे नाथ! यः सदैव एतादृशानि अमृततुल्यानि फलानि खादति, तस्य हृदयम् अपि अमृततुल्यम् एव भवेत्। अतः यदि त्वं मां स्वपत्नीत्वेन अङ्गीकरोषि, तर्हि तस्य वानरस्य हृदयम् आनीय मह्यं दद। तेन जरामरणयोः पाशात् विमुक्ता अहं त्वया सह दीर्घकालं यावद् उपभोगं कर्तुं शक्नुयाम् इति। मकरः प्रत्युत्तरति यत्, हे प्रिये! वानरे अहं मे भ्रातरं पश्यामि। सः तुभ्यं फलं दत्त्वा त्वयि उपकरोति एव। अतः अहं तं मारयितुम् असमर्थः इति। परन्तु मकरस्य विधर्मिणी पत्नी तस्य वचनं नाङ्ग्यकरोत्। स्त्रीहठं कृत्वा सा आत्महत्यायाः विभिषीकाम् अपि प्रादर्शयत्। विवशः मकरः दुःखम् अनुभवन् वानरस्य समीपम् अगच्छत्। अनेकैः नीतिवाक्यैः सः वानरं स्वगृहम् आगन्तुम् आमन्त्रयत्। वानरः अपि तेन सह गन्तुं सज्जः अभवत्। ततः वानरः मकरस्य पृष्ठभागे स्थितवान्। परन्तु मध्यपथि एव वानरः मकरस्य योजनाम् अजानत्। तदा प्रत्युत्पन्नमतिः वानरः मकरं कथयति यत्, अहं जम्बूवृक्षस्य एकस्मिन् स्थाने मे हृदयं सुरक्षिततया स्थापयामि। मकरः अपि सानन्दं

वानरं पुनः जम्बूवृक्षं प्रति प्रापयति। तत्र प्राप्य वानरः दीर्घलङ्घनेन जम्बूवृक्षम् आरोहति। ततः सः अचिन्तयत्, भयवशात् मे प्राणरक्षणं तु अभवदिति। मकरः पुनः तस्मात् हृदयं याचते। परन्तु वानरः हसन् भर्त्सनापूर्वकं प्रत्युतरति यत्, मूर्ख! विश्वासघातिन्! त्वां धिक्कारः अस्ति। किं कस्यापि पार्श्वे द्वे हृदये भवतः खलु? एतस्माद् वृक्षाद् अधस्तात् गच्छ। पुनः कदापि अत्र नागच्छ इति।

मकरः वानरेण सह पुनः मैत्रीं साधयितुं प्रयतते। परन्तु वानरः अनेकैः उपाख्यानैः, नीतवाक्यैः च मकरं धिक्कारयति। अन्ततो गत्वा पुरुषार्थजन्याः लक्ष्म्याः माहात्म्येन सह तन्त्रस्य समाप्तिः भवति।

अपरीक्षितकारकम्

एतस्य तन्त्रस्य अन्तर्गततया एका मुख्यकथा, चतुर्दश उपकथाः च सन्ति। मुख्यकथायाः माध्यमेन विचारपूर्वकं सुपरीक्षितकार्यं कर्तुं नीतेः एव चर्चा अस्ति। योग्यतया विचारम् अकृत्वा एवमेव दृष्टम् उत श्रुतं कार्यं ये कुर्वन्ति, तेषाम् असफलतायाः वर्णनम् अस्ति। अविचार्य कार्ये कृते सति कष्टयुक्ता स्थितिः उद्भवति।

स्वदरिद्रतायाः दुःखी, चिन्तातुरः मणिभद्राख्यः कश्चन वणिक् रात्रौ स्वप्नं पश्यति। तस्मिन् स्वप्ने सः आदेशं प्राप्नोति यत्, श्वः प्रातः तव समीपं यः जैनसन्न्यासी आगमिष्यति, तस्य वधं करोतु इति। सः संन्यासी तव पूर्वजैः सञ्चितधनम् एव अस्ति। मरणोत्तरं सः स्वर्णराशित्वेन परिणतः भविष्यति इति। अपरस्मिन् दिने मणिभद्रस्य स्त्री स्वस्य ग्रामस्य नापितारं पादप्रक्षालनाय आहूतवती। तस्मिन् एव काले स्वप्ने दृष्टः सन्न्यासी तत्र प्रकटितः। मणिभद्रोऽपि हर्षितः सन् समीपस्थेन दण्डेन सन्न्यासिनः शिरसि आघातम् अकरोत्। सः सन्न्यासी अपि स्वर्णराशिः सन् भूमौ अपतत्। एषा घटना नापितुः सम्मुखम् एव जाता आसीत्। अतः सः स्वस्य गृहं गत्वा जैनसन्न्यासिनः वधस्य युक्तिं पुनरावर्तयति। परिणामस्वरूपं तेन मारितः जैनसन्न्यासी स्वर्णराशिः तु न भवति। प्रत्युत सः नापिता क्रुद्धात् न्यायाधीशात् मृत्युदण्डं प्राप्नोति। ततः एतस्मिन् तन्त्रे अनेकाः नीतियुक्ताः, व्यवहारिकाः उपकथाः सन्ति। अन्तिमे श्लोके मानवमात्रेभ्यः शिक्षा उल्लिखिता अस्ति यत्,

मन्त्रे तीर्थे द्विजे देवे, दैवज्ञे भेषजे गुरौ ।
यादृशी भावना यस्य, सिद्धिर्भवति तादृशी ।।

1. छान्दोग्योपनिषद्, ४.५,७,८
2. Das Pancatantra, page - 451
3. The Fables of Bidpai, Introduction
4. Kalilah and Dimnah; or, The fables of Bidpai; being an account of their literary history, Introduction, p. xiv
5. History of the Migration of Panchatantra, Vijay Bedekar, Institute for Oriental Study, Thane, Saturday, the 27th December 2008
6. Tales Within Tales – adapted from the fables of Pilpai पुस्तकनाम्ना एव ज्ञायते
7. Harvard Oriental Series. Department of Sanskrit and Indian Studies, Harvard University, 2009
8. The Fables of Pilpay, Introduction
9. A Curriculum for English, Page – 109
10. The Sanskrit language (in Norwegian),
11. ભારતીય ભાષાઓમાં બાળસાહિત્ય, પૃ. ૧૬૪
12. हिन्दी बालसाहित्य – एक अध्ययन, डॉ. हरिकृष्ण देवसरे, इ. १९६९
13. ભારતીય ભાષાઓમાં બાળસાહિત્ય, પૃ. ૧૬૨

***

कौशल विकास योजना एक संक्षिप्त परिचय

*महेन्द्र प्रसाद**

प्रस्तावना –

शिक्षा एवं उचित प्रशिक्षण से कौशल विकास संभव है। कौशल विकास से ही आत्मनिर्भरता संभव है। वर्तमान युग की जरूरतों को देखते हुए शिक्षा पद्धति में रोजगारोन्मुखी बदलाव की जरूरत है, जिससे पढ़ाई के दौरान ही विद्यार्थी इतना कुशल एवं कौशल प्राप्त कर ले कि वह आत्मनिर्भर बन सके। उसे रोजगार की तलाश में दर–दर भटकना न पड़े। देखा जाये तो कौशल विकास हमारे देश के लिए नया नहीं है। परन्तु हमारे देश के कौशल पर ग्रहण लग चुका है। देश में कौशल पूर्णतः विकसित था उदाहरण के लिए मिट्टी के बर्तन, काष्ठ कारीगरी, हथकरघा, चर्मकला, दोनों पत्तलों के निर्माण, ग्रामीण स्तर पर खेल, खिलौनों का निर्माण, कृषि एवं कृषि उपज, पशु पालन आधारित ग्रामीण रोजगार आदि ये कौशल वंशानुगत हुआ करते थे, समय के बदलाव के साथ इन्हें हेय दृष्टि से देखा जाने लगा, जो धीरे–धीरे खत्म होने की कगार पर है। अब इन कुटीर उद्योगों से युवा जुड़ना पहीं चाहते यदि चाहे भी तो उन्हें उचित प्रशिक्षण देने वाले नहीं मिलेंगे क्योंकि ग्रामीण कला/तकनीकी ज्ञान तो किताबों में मिलने से रहा। ग्रामीण स्तर पर गेंहूँ के डंठल एवं धान के पुआल से ऐसे उपयोगी सामान बनाये जाते थे, जो कला के उत्कृष्ट नमूने तो थे जीवन में उपयोगी भी थे परन्तु आज खोजने पर नहीं मिलेंगे, उनकी बाजारी कीमत तब से अब तक बहुत अधिक होगी पर कला निपुण लोग नहीं मिल सकते। इन हुनरों के संरक्षण की जरूरत थी पर नहीं हुआ, जो बहुत बड़ी क्षति हैं।

वर्तमान तो विज्ञान का युग है। दूरसंचार क्रांति का युग है। वर्तमान युग और जरूरतों को देखते हुए कौशल विकसित करने की जरूरत है। इस कौशल विकास के लिए उचित प्रशिक्षण की जरूरत है। प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षित की जरूरत है। प्रशिक्षण देने के लिए प्रशिक्षित प्रशिक्षकों की जरूरत है, साथ ही मानव संसाधन विकास केन्द्रो की जरूरत होगी, जहाँ युवाओं को आत्मनिर्भर बनाने के लिए प्रशिक्षित किया जा सके। वर्तमान तकनीकी युग में युवाओं को तकनीकी ज्ञान प्रदान कर कौशल विकसित कर आत्मनिर्भरता बनाया जा रहा है। पढ़ाई का अर्थ सिर्फ शिक्षित भर होना नहीं है, शिक्षित होने का सीधा सा अर्थ है, आत्म निर्भरता परंतु दुर्भाग्यवश ऐसा नहीं है। बेरोजगारी की पड़ताल की जाए तो सर्वाधिक शिक्षित एवं उच्च शिक्षित बेरोजगार मिलेंगे। ये कैसी शिक्षा है जो बेरोजगारों की संख्या, बढ़ा रही है, शिक्षा का अर्थ तो आत्म निर्भरता से होता है। आज की शिक्षा से आत्म निर्भरता नहीं आ रही है, शिक्षा तो ऐसी होनी चाहिए कि वह शिक्षार्थी को खुद के पॉव पर खड़ा होने लायक बना सके। शिक्षा का लक्ष्य कौशल विकास नहीं रह गया है, बस प्रमाणपत्र जारी कर कर्तव्य की इतिश्री भर कर लेना रह गया है।

भारत देश बड़ा है, चुनौतियॉ बड़ी है, जनसंख्या अत्यधिक है, इस विशाल जनसंख्या का उपयोगी कौशल विकास के माध्यम से राष्ट्रनिर्माण एवं राष्ट्र विकास में किया जा सकता है। इसके

---

* शोधछात्र, समाजशास्त्र विभाग, काशी नरेश राजकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय ज्ञानपुर भदोही (उ.प्र.) (सम्बद्ध- महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ वाराणसी)

लिए जरूरी होगा कि समान शिक्षा पद्धति हो और युवाओं को कौशल विकास आधारित रोजगारोन्मुखी शिक्षा दी जाय। इस कौशल आधारित शिक्षा से बेरोजगारी की संख्या पर काफी हद तक विराम लग सकता है। दुर्भाग्य की बात है कि देश में साल दर साल असमान शिक्षा महंगी होती जा रही है इसके बाद भी कौशल विकास की दृष्टि से अनुपयोगी साबित हो रही है। बेरोजगारी की संख्या बढ़ रही है। जरूरत है ऐसी कौशल आधारित शिक्षा की जिससे युवा रोजगार की लाइन से हटकर रोजगार देने का लाइन बनाए।

कौशल विकास से यह तात्पर्य नहीं होना चाहिए कि कौशल विकास के नाम पर प्रमाण पत्र थमा दिया जाए, यह काफी नहीं है, कौशल विकास का अर्थ बेरोजगारी उन्मूलन होना चाहिए। सरकारी नीति एवं शिक्षा नीति में भी उपयुक्त प्रावधान किये जाने चाहिए, जिससे युवा सहजता से कौशल विकास संबंधित शिक्षा प्राप्त कर पाँव जमा सके, इतना ही नहीं औरों को भी रीजगार प्रदान करने में सक्षम हो सके, सही मायने में कौशल विकास आधारित शिक्षा का यही अर्थ है। ऐसा नहीं होना चाहिए कि कौशल विकास के नाम पर प्रमाण पत्र बाँट दिये जाय, इससे तो नयी समस्या खड़ी हो जायेगी।

इस जरूरतों को पूरा करने के लिए यू0पी0ए0 सरकार ने अपने भारत के केन्द्रीय वित्तमंत्री मनमोहन सिंह ने पहली बार अपने बजट भाषण में (2008–09) में राष्ट्रीय कौशल विकास निगम की घोषणा की थी। जिसका लक्ष्य 2022 तक 500 मिलियन भारतीयों में कौशल विकास करने के लक्ष्य को रखा था। जो 20 अलग–अलग मंत्रालयों द्वारा संचालित किया जाता था। विभिन्न मंत्रालयों के समायोजन न हो पाने के कारण यह योजना विफल रही।

कुशल श्रमिकों की आवश्यकता को देखते हुए प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी जी द्वारा इसे पुनर्गठित किया गया जो 20 अलग–अलग मंत्रालयों द्वारा संचालित किया जाता था, उसे एक करके, कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय से जोड़ दिया गया। प्रधानमंत्री नरेन्द्र मोदी द्वारा 20 मार्च 2015 को मंजूरी प्राप्त हुई। 15 जून 2015 को इसका शुभारम्भ हुआ। इस पहल में इसकी कार्यात्मक हथियारों – राष्ट्रीय कौशल विकास एजेंसी (NSDA), राष्ट्रीय कौशल विकास निगम (NSDC), राष्ट्रीय कौशल विकास कोष (NSDF) और 33 क्षेत्र कौशल परिषदों, (SSC), के साथ–साथ 187 प्रशिक्षण भागीदारों के साथ पंजीकृत इन पहलुओं में सहायता प्राप्त है। NSDC मंत्रालय भी क्षेत्र में कौशल विकास केन्द्रों विश्वविद्यालयों और अन्य गठजोड़ के मौजूदा नेटवर्क के साथ काम करना चाहता है। इसके अलावा प्रासंगिक केन्द्रीय मंत्रालयों, राष्ट्र सरकारों, अन्तराष्ट्रीय संगठनों उद्योग और गैरसरकारी संगठनों के साथ सहयोग बहु–स्तर की भागीदारी और कौशल विकास के प्रयासों के अधिक प्रभावशाली कार्यान्वयन के लिए शुरू किया गया है। इसे 2 वर्षीय (2016–2020) तक के लिए 40 करोड़ लोगों को कौशल प्रशिक्षण देने का लक्ष्य रखा गया है।

संगठन के चार्ट –

कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय –

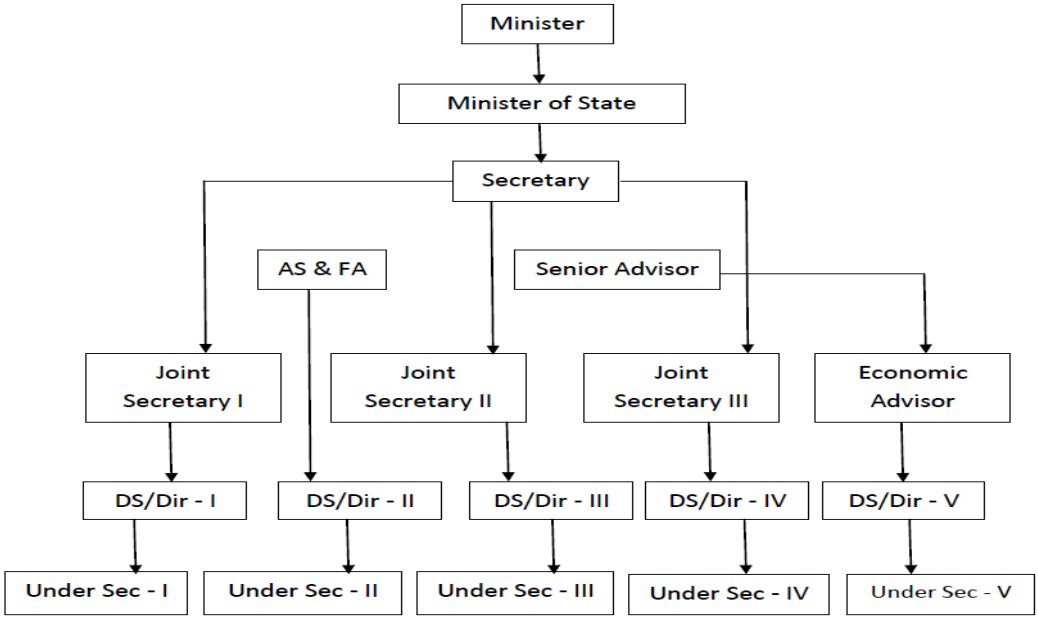

कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय का नीतिगत ढांचा

कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय का रणनीतिक ढ़ाचा पॉच मुख्य खंभे पर आधारित है। 5C जो कौशल विकास के समग्र दृष्टिकोण के लिए आवश्यक तत्वों की रूपरेखा तैयार करता है। हीरा उद्योग अपने पत्थरों की गुणवत्ता का आकलन करने के लिए 5C मानदंडों का भी उपयोग करता है। इसी तरह से यह ढ़ाचा हमारी रणनीति की गुणवत्ता सुनिश्चित करने में हमारी सहायता करता है। मौजूदा और नियोजित संस्थानों में दीर्घकालीन प्रशिक्षण वाले व्यक्तियों की संख्या में वृद्धि के बारे में है। कुछ मौजूदा कार्य अनुभवों के साथ उन लोगों को अपनाने के बारे में सुधार मुख्य रूप से अनौपचारिक सेगमेंट के भरतर उन्हें विकास के अवसरों तक पहुंचने में सक्षम बनाता है। प्रमाणन कौशल परिदृश्य में मौजूदा मानदंडों और ढांचे को संरेखित करने के बारे में है, कनेक्ट में कौशल की आवश्यकताओं की मांग और आपूर्ति गतिशीलता के साथ–साथ व्यावहारिक रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों को देश/दुनिया में कहीं भी नौकरियों के साथ मिलकर समझने की आवश्यकता होती है। इसके पॉच मुख्य आधार निम्न हैं –

1. मांग के साथ आपूर्ति करें –

अपने प्रयासों को प्रभावी बनाने के लिए, MOSDI कौशल आवश्यकताओं की मांग और आपूर्ति गतिशीलता के साथ–साथ व्यावहारिक रूप से प्रशिक्षित व्यक्तियों को देश/दुनिया में कहीं भी नौकरियों के लिए समझने पर ध्यान केन्द्रित करेगा। पॉलिसी रिसर्च इंस्टीट्यूट पर विचार किया गया है कि सूचना आधार को मजबूत करने के लिए जिस पर भविष्य के लिए कौशल विकास नीतियॉ तैयार की जायेगी। यह भी समझा जा सकता है कि वैश्वीकरण तेजी से रोजगार की गतिशीलता को बदल रहा है। वैश्विक परिवर्तनों को ध्यान में रखते हुए MOSDI वैश्विक भारतीय कार्यबल की मांगों को पूरा करने के लिए अन्तर्राष्ट्रीय साझेदारी तैयार करने के लिए तैयार होगा।

2. स्किलिंग/रीस्कलिंग द्वारा मांग के लिए आपूर्ति को सही और संरेखित–

NSDC के साथ एम ओ एस डी ई की लीड कार्यान्वयन एजेंसी के रूप में, एम ओ एस डी ई के पास अल्पावधि कौशल विकास कार्यक्रमों को स्केल करने पर एक विशिष्ट फोकस है। ये अल्पकालिक योग्यता वाले व्यक्तियों पर लक्षित अल्प अवधि के पाठ्यक्रम है, जो अनौपचारिक सेगमेंट और बेरोजगार है। केन्द्रीय, राज्य और निजी पहलों के माध्यम से एम ओ एस डी ई का प्रयास 3 स्तरों पर किया जायेगा।

अ. केन्द्रीय – पहल प्रयासों को प्रोत्साहित करने के लिए यहॉ पहल उपयुक्त पारिस्थितिकी तंत्र बनाने पर केन्द्रित है।

ब. राज्य स्तर – इस स्तर पर एम ओ एस डी ई का उद्देश्य प्रोत्साहनों और अन्य नरम समर्थकों के माध्यम से अपने कौशल मिशन स्थापित करने औश्र चलाने में राज्यों की सहायता करना है जो उनके प्रयासों की प्रभावकारिता को बढ़ाते हैं।

स. निजी – निजी प्रावधान को एक केन्द्रित तरीके से स्केल करें जो उद्योग की मांग के साथ गठबंधन है।

एम ओ एस0डी0ई0 का यह भी मानना है कि इसके प्रयासों से स्वच्छ भारत, मेक इन इंडिया, डिजिटल इंडिया और हमारे सौर मिशन जैसे देश के प्रमुख कार्यक्रमों के साथ गठबंधन किया जाना चाहिए। यह भी मानता है कि रलवे स्टेशनों और डाकघरों जैसे मौजूदा बुनियादी ढांचे, जो डिजिटल कनेक्टिविटी के साथ अप्रयुक्त स्थान प्रदान करते हैं, का उपयोग इसके पहलों के पैमाने और पहुॅच को बढ़ाने के लिए किया जा सकता है।

3. कुशल लोगों को पाइप लाइन बनाएं –

कुशल श्रमिकों की एक पाइप लाइन का निर्माण भारत की विकास योजनाओं के लिए एक आवश्यक इनपुट है। MoSDBisfocus मौजूदा शैक्षणिक संस्थानों, आई टी आई और सर्वोत्तम श्रेणी के व्यावसायिक शिक्षा का प्रतिनिधित्व करने वाले समर्पित संस्थानों के एक नए सेट क माध्यम से कौशल प्रशिक्षण की मात्रा और गुणवत्ता को चलाने के लिए है। यह सुनिश्चित किया जायेगा कि इन संस्थानों को उद्योग और व्यापार के मानकों और आवश्यकताओं के साथ बेहतर ढंग से गठबंधन किया गया है। एम0ओ0एस0डी0ई0 भी इन संस्थानों के माध्यम से कौशल के लिए युवाओं के बीच कम अपील के मुद्दे को संबोधित करने का लक्ष्य रखता है।

4. कुशल लोगों के लिए मांग उत्प्रेरित करें–

यह समझा जाना है कि किसी भी अर्थव्यवस्था में संगठित क्षेत्र की नौकरियों में अपने कर्मचारियों को अवशोषित करने की सीमित क्षमता है। एमओएसडीई मान्यता देता है कि इसका जनादेश न केवल भारत की अर्थव्यवस्था को मौजूदा क्षमता को पूरा करने के लिए बल्कि संभावित क्षमता को बढ़ाने के लिए भी ध्यान केन्द्रित करना चाहिए। यह उद्यमशीलता को चलाने के लिए लगातार प्रयासों द्वारा हासिल किया जा सकता है। व्यक्तियों के विचारों का आगे बढ़ाने के आत्मविश्वास को बढ़ाने के लिए फोकस की आवश्यकता है। उन्हें समर्थन दे क्योंकि वे इन्हें वास्तविकता में बदल देते हैं और फिर उन्हें व्यावहारिक व्यावसायों में स्केल करने के लिए आवश्यक टूल और ज्ञान प्रदान करते हैं। यह विश्वविद्यालयों और स्कूलों में उद्यमिता शिक्षा को जोड़ने, उद्यमिता के लिए समर्पित ऊष्मायन और समर्थन केन्द्र स्थापित करने और उद्यमियों को क्रेडिट प्रदान करने के द्वारा किया जायेगा।

5. प्रमाणन और आकलन –

कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय के कार्यबल ने कुशल श्रमिकों के अनुपात में वृद्धि के MoSDE के प्रयासों के साथ, एम ओ एस डी ई प्रशिक्षण की गुणवत्ता और प्रासंगिकता सुनिश्चित की जानी चाहिए। यह 3 स्तरों पर आवश्यक है : नेशलन स्किल्स क्वालिफिकेशन फ्रेमवर्क (NSQF) गुणवत्ता आकलन और प्रमाणन के साथ औपचारिक योग्यता के संरेखण के माध्यम से और व्यक्तियों को अपस्किल करने के लिए उपयुक्त आरपीएल ढांचे की स्थापना।

योजना –

भारत में 25 वर्ष की आयु के 54 फीसद की आबादी की यह युवा बेहतर भविष्य के लिए बेहतर नौकरियां एवं उच्च आय की तलास कर रही है। जो कि अकुशल होने के कारण यहॉ वहॉ भटकते रहते हैं, इसी को ध्यान में रखते भारत सरकार ने इस जनादेश को कुशल बनाने के लिए कई योजनाऍ चलाई हुई हैं जो निम्न लिखित है–

प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना (पी0एम0के0वी0वाई0) प्रधान मंत्री कौशल विकास योजना, कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय की एक प्रमुख योजना है। इस योजना उद्देश्य बड़ी संख्या में भारतीय युवाओं को उद्योग–प्रासंगिक कौशल प्रशिक्षण लेने में सक्षम बनाना है जो बेहतर आजीविका हासिल करने में मदद करेगा। पूर्व अनुभव या कौशल वाले व्यक्तियों का भी मूल्यांकन और प्राथमिक शिक्षा (आरपीएल) की पहचान के तहत प्रमाणिक किया जायेगा। इस योजना के तहत प्रशिक्षण और आकलन शुल्क पूरी तरह से सरकार द्वारा भुगतान किया जाता है। कौशल प्रशिक्षण पूरा करने पर उन्हें सहायता राशि भी दी जाती हैं।

SANKALP -

लाइवलीवुड प्रमोशन (SANKALP) परियोजना के लिए कौशल अधिग्रहण और ज्ञान की जागरूकता राष्ट्रीय कौशल विकास मिशन (एन0एस0डी0एम0) के जनादेश को लागू करना है। यह योजना कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय के द्वारा उप–मिशन के रूप में 15 जुलाई को लांच किया गया। यह परियोजना विश्व बैंक के समर्थन के माध्यम से मिशन मोड में लागू की जायेगी और एनएसडीएम के समस्त उद्देश्यों के साथ गठबंधन किया गया है। इस परियोजना का प्रमुख उएद्देश्य पूल बनाने के लिए राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर पर संस्थागत तंत्र को मजबूत करना, राज्य स्तर पर सभी कौशल प्रशिक्षण गतिविधियों में अभिषरण पैदा करना, कौशल प्रशिक्षण कार्यक्रमों के लिए मजबूत निगरानी और मूल्यांकन, प्रणाली की स्थापना, वंचित वर्गों और सबसे अधिक जरूरतमंद लोगों के लिए कौशल अवसरों तक पहुंच प्रदान करना।

उड़ान –

उदय भारत के निगमों और गृह मंत्रालय के बीच साझेदारी की प्रकृति में जम्मू–कश्मीर के लिए एक विशेष उद्योग पहल है और राष्ट्रीय कौशल विकास निगम द्वारा कार्यान्वित किया गया है। कार्यक्रम का उद्देश्य कौशल प्रशिक्षण प्रदान करना और जम्मू–कश्मीर बेरोजगार युवाओं की नियोक्तायाता में वृद्धि करना है। इस योजना में स्नातक, स्नातकोत्तर और तीन साल के इंजीनियरिंग डिप्लोमा धारक शामिल है। इसमें दो उद्देश्य है –

अ. बेरोजगार स्नातकों को कॉर्पोरेट इंडिया के सर्वश्रेष्ठ एक एक्सपोजर प्रदान करना।

ब. कॉर्पोरेट भारत प्रदान करने के लिए, राज्य में उपलब्ध समृद्ध प्रतिभा पूल का संपर्क।

मानक प्रशिक्षण आकलन और पुरस्कार (स्तर) योजना –

राष्ट्रीय कौशल प्रमाणन और मौद्रिक पुरस्कार योजना, जिसे स्टार (मानक प्रशिक्षण आकलन और पुरस्कार) के नाम से जाना जाता है। यह योजना अगस्त 2013 और सितम्बर 2014 के बीच परिचालित थी। एन0एस0डी0सी0 योजना की नामित कार्यान्वयन एजेंसी है और विभिन्न क्षेत्र कौशल परिषदों (एस0एस0सी0) प्रशिक्षण प्रदान (टीपी) और स्वतंत्र आकलन एजेंसियों के माध्यम से काम कर रही है।

कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय के कुछ और भिन्न प्रकरण की योजनाएं चलाई जा रही है। कौशल विकास और उद्यमिता मंत्रालय देश भर में सभी कौशल विकास प्रयासों को समन्वयित करने के लिए 9 नवम्बर 2014 को स्थापित भारत सरकार का एक मंत्रालय है। 16 अप्रैल 2015 को इस नवनिर्मित मंत्रालय को श्रम और रोजगार मंत्रालय से औद्योगिक, शिक्षुता और अन्य कौशल विकास जिम्मेदारियों को स्थानांतरित कर दिया गया था। इसका उद्देश्य कुशल जनशक्ति की मांग और आपूर्ति के बीच डिस्कनेक्ट को हटाना है। न केवल मौजूदा नौकरियों के लिए बल्कि नौकरियों के लिए नए कौशल और अभिनव सोच का निर्माण करें। कौशल विकास के लिए 2018–19 के बजट में 3400 करोड़ राशि प्रदान की गयी है। इसके माध्यम से निम्न विषयों में कौशल प्रशिक्षण का लाभ लिया जा सकता है–

- कृषि, मोटर वाहन, पृथ्वी मूविंग एवं इन्फ्रास्ट्रक्चर सुविधा का निर्माण, वस्त्र और हथकरघा (10)
- खेल, पैन्ट और कोटिंग (1)
- फर्नीचर और फिटिंग (2)
- दूरसंचार, रबर, पाइपलाइन (3)
- घरेलू कार्य करने वाला (4)
- जीव विज्ञान, ग्रीन जॉब, फूड प्रोसेसिंग (5)
- खुदरा, विजली उद्योग, चमड़ा आइटी और आईटीईएस, पूँजीगत वस्तुएँ, बीएफएस आई। (6)
- निर्माण कार्य, सौन्दर्य और कल्याण (7)
- मीडिया और इंटरटेनमेंट, लेजिस्टिक, स्वस्थ देखभाल (8)
- पर्यटन, सुरक्षा सेवा, खनिज, आयरन और स्टील संबंधित, रत्न और ज्वेलरी, इलेक्ट्रानिक्स और हार्डवेयर, घर सज्जा (9)

इत्यादि विषयों में कौशल प्राप्त करने के लिए कौशल विकास एवं उद्यमिता मंत्रालय के प्रमुख योजना प्रधानमंत्री कौशल विकास योजना के तहत प्रत्येक जनपदों में प्रशिक्षण देने के सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थान खोले गये हैं। इन संस्थानों में अपनी पसन्द के अनुसार निशुल्क कौशल प्रशिक्षण लिया जा सकता है। यह कोर्स 3, 6 और 12 माह के लिए उपलब्ध है। कोर्स पूरा करने पर एक प्रमाण पत्र और 8000 की राशि भी प्रदान की जाती है।

सन्दर्भ :

1. ए0 सृधर, ग्रामीण युवाओं के लिए कौशल विकास और रोजगार, कुरूक्षेत्र, जून 2018
2. संजय रोकड़े, कौशल विकास योजना के सबक, दैनिक समाचार पत्र जनसत्ता, 15 / 07 / 2017 ।
3. http: // pmky.org
4. www. skilldevelopment.gov
5. एस0 एस0 मंथा, कौशल : भारत की प्रगति का अनिवार्य घटक, योजना, अक्टूबर 2015
6. तरूण कुमार शर्मा, कौशल विकास में चुनौतियां एवं उद्यमिता, योजना, अंक अक्टूबर, 2015

***

न्याय प्रमाणों की वैज्ञानिकता

रवि सागर *

न्याय दर्शन एक ज्ञानमीमांसीय दर्शन है उसमें ज्ञानमीमांसा को सर्वाधिक महत्व दिया गया है तथा ज्ञानमीमांसा में प्रमाण विचार एक केन्द्रीय विषय के रूप में उपस्थित होता है। यह समस्या मूलतः ज्ञान के प्रामाण्य से संबंधित है। इस विषय से संबंधित मूल प्रश्न यह है कि किस ज्ञान को और किस आधार पर और 'क्यों' प्रामाणिक अथवा अप्रामाणिक घोषित किया जाय?

भारतीय दर्शन में ज्ञान के प्रामाण्य की समस्या वेदों की प्रामाणिकता के प्रश्न से संयुक्त होकर उठती है। भारतीय संस्कृति में आदिकाल से ज्ञान और दर्शन की दो धाराएँ बही– **ब्राह्मण विचारधारा** और **श्रमण विचारधारा।** इनमें ब्राह्मण परम्परा के पोषक वेद को ही समस्त ज्ञान विज्ञान का आधार मानते थे जबकि श्रमण परम्परा वेदाधारित नहीं थी। ब्राह्मण परम्परा में एक ऐसा काल भी आया जब भारतीय समाज में कर्मकाण्ड प्रमुख हो उठे। मनुष्य का अभिष्ट स्वर्ग–मात्र माना जाने लगा जिसके निमित्त बहुविध यज्ञों के विधान ब्राह्मणों ने किए। इन यज्ञों में होने वाली पशुबलि तथा अन्य व्यापक घोर–अघोर कर्मकाण्डों के कारण जैन–बौद्ध आदि श्रमणों ने इनका विरोध किया। इसी समय न्याय–वैशेषिक और मीमांसा ने इन यज्ञ–यज्ञों का बहुविध समर्थन करते हुए इन समस्त कर्मों को वेद–विहित घोषित किया। यज्ञादि का स्वरूप और यज्ञादि से स्वार्गादि अभिष्ट–फल सिद्धि के प्रमाणीकरण इन्द्रिय प्रत्यक्ष से अथवा प्रत्यक्षाधारित अन्य प्रमाणों से संभव नहीं था, अतएव इस ज्ञान का स्रोत प्रमाण वेद ही स्वीकार किए गए। मीमांसकों ने इन वेदों को अपौरूषेय और देश काल से परे भी घोषित किया।

दूसरी ओर श्रमणों ने इन कर्मकाण्डों और यज्ञादि की बहुविध निंदा करते हुए इन्हें अमानुषिक करार दिया। स्वभावतः ऐसी स्थिति में श्रमणों के लिए वेदों का खंडन आवश्यक हुआ। इसके लिए श्रमण विचारकों ने वेदों की प्रामाणिकता पर ही प्रश्न उपस्थित कर दिए। दूसरी तरफ मीमांसक (जो घोर कर्मकांडी थे) ने वेदों को 'अपौरूषेय' कहते हुए इन्हें **'स्वतः प्रामाण्य'** (अर्थात प्रमाणिकता–अप्रामाणिकता के प्रश्न से परे) घोषित किया। श्रमणों ने वेदों को न तो अप्रामाणिकता के प्रश्नों से मुक्त किया न ही इन्हें 'अपौरूषेय' स्वीकार किया। उनके अनुसार वेदों की प्रामाणिकता और उनके वाक्यों की सत्यता–असत्यता के निर्धारण की कसौटी स्वयं वेद नहीं, वरन वेदों के अतिरिक्त मनुष्य का सहज–स्वाभाविक जीवन, मानवीय प्रकृति तथा व्यवहारिक विश्व का यह संपूर्ण नैतिक जगत ही है। इस प्रकार श्रमण परंपरा में वेद स्वतः प्रामण्य न होकर परतः प्रामाण्य हुए। इस प्रकार भारतीय दर्शन में प्रामाण्य की समस्या का जन्म हुआ। कालान्तर में इस विषय से संबंधित अनेक सिद्धान्त विचारधारा के क्षेत्र में उदित हुए। प्रामाण्य से संबंधित इन समस्त सिद्धान्तों को 'प्रामाण्यवाद' का नाम दिया गया है।

न्यायदर्शन का प्रारंभ ही ज्ञानमीमांसा एवं तर्कशास्त्र के साथ होता है। इस सम्प्रदाय का प्रारंभ **गौतम** के न्याय रूप से माना जाता है। परवर्ती काल (300 ई0) में वात्स्यायन ने इस पर भाष्य लिखा। इस ग्रंथ में प्रमा और प्रमाण विषयक गूढ़ विवेचन पाये जाते हैं किन्तु ज्ञान के प्रामाण्य की चर्चा यहां भी उपेक्षित है। न्याय दर्शन में प्रमाण विचार का बीज रूप उल्लेख सर्वप्रथम **उद्योतकर** ने छठी शताब्दी के लगभग किया। **'प्रमाणोऽर्थप्रतिपत्तौ'** इत्यादि भाष्य वचन की व्याख्या करते हुए उद्योतकर ने कहा कि जब कोई प्रमाता प्रमाण से अर्थ जब प्रमाणाभास्य के द्वारा अर्थ का निश्चय करके व्यक्ति प्रवृत होता है तब यह प्रवृति असफल होती है। 9वीं शताब्दी में वाचस्पति मिश्र ने उद्योतकर के न्यायवार्तिक पर **न्यायवार्तिकतात्पर्य** टीका में न्यायभाष्य और न्यायवार्तिक के उपरोक्त अंश की व्याख्या करते हुए ज्ञान

* पीएच.डी. शोध छात्र, दर्शनशास्त्र विभाग, राँची विश्वविद्यालय, राँची

के प्रामाण्य–अप्रामाण्य का अपेक्षाकृत स्पष्ट विवेचन किया। परवर्ती काल में जयन्त भट्ट ने न्यायमंजरी में प्रमाण विचार का अत्यंत विस्तृत विवेचन किया है।

नैयायिकों ने प्रमाण का अर्थ प्रमा के करण के अर्थ में प्रयोग किया है। उनके अनुसार प्रमाण चार प्रकार के होते हैं – **प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द। प्रत्यक्ष**– शाब्दिक दृष्टि से संकीर्ण अर्थ में प्रत्यक्ष से तात्पर्य है– आँखों के सामने एवं व्यापक अर्थ में प्रत्यक्ष से तात्पर्य है ज्ञानेन्द्रियों द्वारा प्राप्त ज्ञान। नैयायिकों ने प्रत्यक्ष की परिभाषा– ''इन्द्रियार्थ सन्निकर्ष जन्य ज्ञानं प्रत्यक्षम्'' के रूप में परिभाषित किया है। अर्थात् इन्द्रिय और अर्थ के सन्निकर्ष से उत्पन्न ज्ञान को प्रत्यक्ष कहा जाता है। इन्द्रियों के साथ पदार्थ का ज्ञान छः प्रकार से होता है –

1. संयोग – किसी विशेष इन्द्रियों का किसी वस्तु विशेष से सन्निकर्ष होना।
2. संयुक्त समवाय–दो पदार्थों का ऐसा संबंध जो टूट नहीं सकता।
3. संयुक्त समवेत समवाय– यहाँ इन्द्रिय का वस्तु से संबंध दो माध्यमों के द्वारा होता है।
4. समवाय–इन्द्रिय से किसी वस्तु का ऐसा सम्पर्क जो स्वयं उस इन्द्रिय में ही गुण के रूप में उपस्थित रहता है।
5. समवेत समवाय–शब्द में उसकी जाति (शब्दत्व) समवेत रहता है। ज्यों ही हम कोई शब्द सुनते हैं त्यों ही यह जाती शब्दत्व भी प्रत्यक्ष होता है।
6. विशेष्य विशेषण भाव–इन्द्रिय और पदार्थ का संबंध, विशेष्य विशेषण का भाव है।

नैयायिकों ने प्रत्यक्ष को दो वर्गों में रखा है– लौकिक प्रत्यक्ष और अलौकिक प्रत्यक्ष। लौकिक प्रत्यक्ष में वस्तु का इन्द्रिय से साधारण सम्पर्क होता है और अलौकिक प्रत्यक्ष में इन्द्रिय का सम्पर्क वस्तु या विषय से असाधारण ढंग से होता है। लौकिक प्रत्यक्ष के भी दो भेद बतलाए गए हैं, बाह्य और मानस। बाह्य प्रत्यक्ष पांच ज्ञानेन्द्रिय द्वारा होता है तथा मानस प्रत्यक्ष मन के द्वारा होता है। लौकिक प्रत्यक्ष के एक ओर वर्गीकरण दुसरे दृष्टिकोण से किया गया, वह है – निर्विकल्प प्रत्यक्ष, सविकल्पक प्रत्यक्ष, प्रत्यभिज्ञा। निर्विकल्पक प्रत्यक्ष में केवल वस्तुमात्र का ज्ञान होता है उसके विशेष गुणों का नहीं। सविकल्पक प्रत्यक्ष में प्रकारता (विशेषण–विशेष्य) का ज्ञान होता है। प्रत्यभिज्ञा का अर्थ है पहचानना। अतीत में देखी हुई चीजें वर्तमान में देखते ही पहचान जाना प्रत्यभिज्ञा है।

नैयायिकों ने लौकिक प्रत्यक्ष को तीन भेद किये हैं– सामान्य लक्षण, ज्ञान लक्षण और योगज। जिस प्रत्यक्ष से जाति का प्रत्यक्ष होता है उसे प्रत्यक्ष को सामान्य लक्षण प्रत्यक्ष कहते हैं। ज्ञान लक्षण प्रत्यक्ष अलौकिक प्रत्यक्ष का वह भेद है जिसके द्वारा इन्द्रिय अपने–अपने विषय से भिन्न विषय का ज्ञान भी ग्रहण करती है। आसाधारण व्यक्तियों में योगज ज्ञान पाया जाता हैं जिसके द्वारा वे भूत, वर्तमान, भविष्य में सभी प्रकार की वस्तुओं का अनुभव करने लगते हैं।

अनुमान :

न्याय दर्शन में अनुमान को यथार्थ ज्ञान प्राप्ति के साधन के रूप में स्वीकार किया गया है। नैयायिकों के अनुसार अनुमान की परिभाषा न्यायसूत्र में **'तत्पूर्वकमनुमानम्'** कहकर की गई है। इसका अर्थ यह होता है – अनुमान ऐसा ज्ञान हैं जिसके पूर्व कई ज्ञान आता है। अनुमान के पहले हमें दो चीजों का प्रत्यक्ष होता है एक लिंग प्रत्यक्ष अर्थात् हेतु या साधन दूसरा लिंग – लिंगी संबंध प्रत्यक्ष अर्थात् व्याप्ति। इसके आधार पर हमें जो ज्ञान होता है उसे अनुमान कहा जाता है। अनुमान के करण के रूप में प्राचीन नैयायिक 'व्याप्ति' को स्वीकार करते हैं तथा नव्य नैयायिक के अनुसार व्याप्ति विशिष्ट पक्ष धर्मता ज्ञान करण है।

नैयायिकों ने अनुमान (स्वार्थानुमान) के तीन अवयव या अंग बतलाते हैं – पक्ष, साध्य और हेतु जिसके संबंध में अनुमान किया जाता है वह पक्ष है, पक्ष के संबंध में जो कुछ सिद्ध किया जाता है उसे साध्य कहा जाता है और जिसके द्वारा पक्ष में साध्य का होना बतलाया जाता है यह हेतु कहलाता है। लेकिन परार्थानुमान अर्थात् जब दूसरों के सामने किसी तथ्य को प्रमाणित करने के लिए भी अनुमान का सहारा लेना पड़ता है तब इसे पांच क्रमबद्ध वाक्यों में प्रकाशित किया जाता है। उदाहरण के लिए –

1. पर्वत पर आग है – प्रतिज्ञा।
2. क्योंकि इसमें धुआँ हैं – हेतु।
3. जहाँ–जहाँ धुआँ होता है वहाँ–वहाँ आग होती है, जैसे रसोई घर में उदाहरण साहित व्याप्ति वाक्य।
4. पहाड़ पर धुआँ – उपनय।
5. इसलिए पहाड़ पर आग है – निगमन ।

नैयायिक के अनुमान का वर्गीकरण में तीन आधार परिलक्षित होते हैं –

(क) प्रयोजन भेद के अनुसार – i) स्वार्था अनुमान ii) परार्था अनुमान

(ख) प्राचीन न्याय के अनुसार – i) पूर्ववत् ii) शेषवत् iii) सामान्यतोदृष्ट

(ग) नव्य न्याय के अनुसार– i) केवलान्वयी ii) केवल व्यातिरेकी iii) अन्वय

इस प्रकार नैयायिक द्वारा अनुमान का जो व्याख्या प्रस्तुत की गयी है इससे स्पष्ट होता है कि अनुमान अपनी उत्पति के लिए प्रत्यक्ष पर आश्रित है। लेकिन अनुमान का क्षेत्र प्रत्यक्ष के क्षेत्र से वृहत्तर हैं क्योंकि प्रत्यक्ष ज्ञान केवल वर्तमान तक सीमित है लेकिन अनुमान से भुत और भविष्य का भी ज्ञान होता है।

उपमान :

नैयायिकों ने उपमान को एक स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकार करते हैं सादृश्यता के प्रत्यक्ष से नाम (संज्ञा) और नामी (संज्ञी) के सम्बंध का ज्ञान कराने वाले प्रमाण को उपमान कहा गया है उदाहरणार्थ– हमे नाम का ज्ञान हो गया या तो कहीं पढ़ने से या सुनने से। माना हमे नीलगाय का ज्ञान हो गया की वह पशु है जो गाय जैसी होती है, किन्तु अभी हमे नीलगाय का प्रत्यक्ष रूप में ज्ञान नहीं है कि वह कैसी होती है। हमने अभी सिर्फ उसके बारे में सुन रखा है कि वह गाय जैसी होती है। हम जंगल में गए वहाँ हमे गाय की तरह एक पशु दिखाई दिया और हमे ज्ञान हो गया कि यह नीलगाय है अर्थात् अब हमे नाम और नामी का ज्ञान हो गया। यह ज्ञान कैसे हुआ? हमने नीलगाय और गाय में सादृश्यता या समानता का प्रत्यक्ष किया फलतः हमें ज्ञात हो गया कि वह गाय की तरह दिखने वाला पशु नीलगाय है। महर्षि गौतम के अनुसार–प्रसिद्ध वस्तु (गाय) के साधर्म्य से अप्रसिद्ध वस्तु (गवय) का ज्ञान उपमिति है और इसका करण या साधन उपमान है।

नैयायिकों के अनुसार उपमान के चार चरण या घटक होते हैं –

1. अतिदेश वाक्य – किसी विश्वसनीय व्यक्ति द्वारा दिया गया प्रामाणिक कथन को अतिदेशवाक्य कहते हैं।
2. सादृश्य – अतिदेशक द्वारा जिज्ञासु को दिया गया साधर्म्य अथवा वैधर्म्य का बोध ही सादृश्य है।
3. वाक्यार्थ स्मृति – अतिदेशक द्वारा दिया गया कथन का याद आना वाक्यार्थ स्मृति है।
4. उपमिति – उपरोक्त तीनों चरणों से गुजरने के बाद यह संज्ञा–संज्ञी ज्ञान उत्पन्न होता है कि 'यह गवय' है इसे ही उपमिति कहते हैं। उपमिति अनुमान का फल है।

उपमान के करण के रूप में प्राचीन नैयायिक अतिदेशवाक्य को ही मान्यता है लेकिन नव्य नैयायिक और अन्नम्भट्ट सादृश्य को उपमान का करण माना है।

शब्द प्रमाण :

शब्द को न्याय शास्त्र में एक स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकारा गया है। भारतीय दर्शन में बौद्ध, चार्वाक और वैशेषिक को छोड़ सभी दार्शनिकों ने शब्द को स्वतंत्र प्रमाण के रूप में स्वीकार किया है। महर्षि गौतम का कहना है – ''**आप्तोपदेशः शब्दः।**'' अर्थात् आप्त का उपदेश ही शब्द है। लेकिन आप्त पुरूष किसे माना जाये इसे लेकर मतभेद तथा एक समस्या था और बाद के नव्य नैयायिक इससे बचने के लिए शब्द प्रमाण की परिभाषा इस प्रकार करते हैं – ''ऐसे पदों का समुह शब्द प्रमाण होता है जो यथार्थ उपदेश करने वाले पुरूष से उच्चारित, परस्परसाकाड.क्ष परस्पर अन्वय–योग्य अर्थों के प्रतिपादक और परस्परसन्निहित होते हैं।'' इस परिभाषा से स्पष्ट होता है कि शब्द प्रमाण के लिए वाक्य का विवेचन आवश्यक है। वाक्य के सार्थक होने के लिए चार शर्तों का पालन आवश्यक माना गया है – 1.

आकांक्षा 2. योग्यता 3. सन्निधि 4. तात्पर्य। सामान्यतः एक पद से पूरा–पूरा अर्थ बोध नहीं हो सकता है, जब तक कि दूसरे पद से सम्बन्ध स्थापित न हों। एक पद की अन्य पदों की अपेक्षा रहती है। यही आकांक्षा है। वाक्यों के पदों के अर्थों में पारस्परिक विरोध का अभाव ही योग्यता है। सन्निधि का तात्पर्य यह है कि कथित या लिखित शब्दों में क्रमशः स्थान अथवा समय की समीपता रहना चाहिए। तात्पर्य का अर्थ है – कथन करने वाले या लिखने वाले का अभिप्राय क्या है? यह जानना चाहिए।

इस प्रकार स्पष्ट होता है कि न्याय–दर्शन के प्रमाण विचार का भातीय दर्शन में उच्च स्थान है। प्रमाण विचार पर ही उसका दार्शनिक मत अवलंबित है। भारतीय दर्शन के विरूद्ध एक प्रधान आक्षेप यह है कि यह आप्त–वचनों पर अवलंबित है और यह युक्ति प्रधान नहीं है। लेकिन न्याय दर्शन के प्रमाण–शास्त्र इस आक्षेप का निराकरण करता है। न्याय का प्रमाण–शास्त्र केवल न्याय–दर्शन का ही आधार नहीं है बल्कि भारतीय तर्क–शास्त्र का आधार माना जाता है। इसका सत्ता संबंधी विचार उतना मान्य नहीं है। जितना इसका तर्कशास्त्र।

संदर्भ :

1. वाचस्पति मिश्र : न्यायवार्तिक
2. जयन्त भट्ट : न्यायमंजरी, 1 चौखम्भा संस्कृत सीरिज
3. प्रमाणवार्तिक
4. डॉ. राधाकृष्णन : भारतीय दर्शन
5. डॉ. चक्रधर विजल्वान : भारतीय न्यायशास्त्र
6. डॉ. बद्रीनाथ सिंह : प्रमाण–मीमांसा
7. उदयन : न्याय कुसुमांजलि
8. डॉ. विश्वनाथ प्रसाद वर्मा : भारतीय दर्शन

***

अनुसूचित जाति के अन्तर्गत लोनाचमार जाति का एक समाजशस्त्रीय अध्ययन (अम्बेडकरनगर जनपद के विशेष संदर्भ में)

*डॉ. दिलीप कुमार**

भारत एक धनी देश है, यहाँ के निवासी निर्धन हैं। निर्धनता मानव जीवन का अभिशाप है। निर्धनता सभी समस्याओं की जननी है। प्राचीन भारत में वर्ण व्यवस्था जो कर्म पर अधारित थी, जाति व्यवस्था में बदल गयी। इसका अधार जन्म एवं वंश परम्परा पर आधारित है समाज द्वारा प्रत्येक जाति के लिए एक निश्चित व्यवसाय को स्थाई बना दिया गया। जाति को चिर स्थायी बनाने के लिए विवाह को अपनी ही जाति में अनिवार्य कर दिया। खानपान एवं सहवास पर विभिन्न जातियों पर प्रतिबन्ध लगा दिया। विदेशियों द्वारा भारत पर आक्रमण किया गया। कुछ लोगों ने धन सम्पदा के लिए तथा कुछ ने राज्य स्थापित करने का उद्देश्य तथा कुछ व्यापार के उद्देश्य से जैसे अंग्रेजों द्वारा (1857 से 1947 तक) भारत पर 190 वर्ष तक स्थाई रूप से शासन किया गया।

सन् 1947 ई0 के पूर्व भारत में या एशिया महाद्वीप में दलित वर्ग में भावनात्मक जुड़ाव की कमी थी। आज भी परिस्थितियाँ बदल चुकी है। शिक्षा-सभ्यता, वैज्ञानिक चेतना, राजनीतिक चेतना एवं आर्थिक स्वार्थ में बेतहासा वृद्धि ने दलित राष्ट्रवाद को बहुत मजबूत कर दिया है। आज सारे विश्व का दलित भारत में एक पृथक राज्य के पक्ष में है। सारे दलित एक नस्ल सैंधव, शिवालिक, हिमगिरि, नर्मदा, लोहित और सतपुड़ा इन्डियन नस्ल के है। सभी मूल भारतीय हैं। सबकी 90 प्रतिशत प्रवृत्तियाँ एक हैं। धर्म, भाषा, मिथक, इतिहास, परम्परा, शोषण, उत्पीड़न विचार एवं भावनाएं एक हैं। सिर्फ सरकार और सम्प्रभुता की कमी है, पृथक राज्य बनते ही सरकार एवं सम्प्रभुता क्षण भर में बन जायेगी। यही नहीं सिर्फ धनी-निर्धन की असमानता को छोड़कर सब कुछ दृढ़ हो जायेगा। सब कुछ उत्तम ही नहीं सर्वोत्तम हो जायेगा।

अन्वेषक अध्ययन क्षेत्र के रूप में उत्तर प्रदेश राज्य में स्थित अम्बेडकर नगर जनपद में निवास करने वाली अनुसूचित जाति के अन्तर्गत लोना चामार उपजति को अपने अध्ययन का आधार बनाया है। जिसके जाति प्रमाण-पत्र में संवैधानिक रूप में उपजाति चमार ही दर्शाया गया है। आम बोल चाल की भाषा में इन्हे लोग चमरमंगता, कंकाली, लोनाचमार के नाम से भी पुकारते हैं। वर्तमान समय में अन्य अनुसचित जातियों की तुलना में इनका अर्थिक, सामाजिक, शैक्षिक तथा सांस्कृतिक जीवन बहुत ही निम्न स्तर का है। ये लोग विकास की मुख्यधारा से बहुत दूर हैं। इन्हें भी विकास के मुख्य धारा से जोड़ने के उद्देश्य से अन्वेषक अपने अध्ययन का आधार बनाया है। क्योंकि सामाजिक विकास की प्रक्रिया में समाज का कोई एक पहलू छूट रहा हो तो समाज का सम्पूर्ण विकास नहीं कहलायेगा। इसलिए पिछड़ों शोषितों को विकास की मुख्यधारा से जोडना भारत देश के लिए एक चुनौती है।

लोनाचमार जाति का इतिहास–

भारत में जबसे जाति व्यवस्था का निर्माण हुआ जातियाँ ऊँचे एवं नीचे के क्रम में विभक्त हो गई। जिसमें निम्न जातियाँ हमेशा उत्पीड़न शोषण तथा उपेक्षित एवं अमानवीय जीवन जीने के लिए समाज के उच्च जातियों द्वारा मजबूर किया गया। इसी के अन्तर्गत आने वाली लोना चमार चमरमंगता तथा कंकाली उपजाति के रूप में रखा जा सकता है जो अनुसूचित जातियों का अभिन्न अंग है।

लोना का अर्थ सलोना, सुंदर, नमकीन, नमक आदि है। इस प्रकार एक कल्पित स्त्री जो चमार जाति से सम्बन्धित है। जो जादू टोने में बहुत प्रवीण कही जाती है। जिसे लोना चमारिन के रूप में भी जाना जाता है। दूसरा लोना का अर्थ दीवार पर लगाने वाला गीली मिट्टी का टुकड़ा है। लोना एक सुन्दर स्त्री का नाम है जो अनुसूचित जाति के अन्तर्गत चमार जाति में जन्मी थी। लोना चमारिन समाज की एक प्रसिद्ध जादूगरनी एवं तंत्रिक के रूप में जानी जाती है लोना चमारिन कई प्रकार की हैं-एक लोना चामारिन जो चमार जाति की है पंजाब की रहने वाली मन्त्रों को गति देती थी। दूसरी जिला सुल्तानपुर के ठाकुर जी की पत्नी थी। पति से झगड़े के बाद नदी में डूब मरी। उनकी अंतिम क्रिया में लोगों ने खाना खाया उसके नमक खाने के कारण लोग लोना-लोना कहने लगे। तीसरी लोना चमारिन

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, समाजशास्त्र विभाग, भानमती स्मारक पी.जी. कालेज अकबरपुर, अम्बेडकरनगर

अमृतसर से सम्बन्धित है कामरूप कामाख्या की हैं जो सबसे लोकप्रिय थी। इन्हें ब्राह्मण भी अपना गुरू मानते थे। लोना तांत्रिक क्रिया में प्रवीण थी। लोना को नमक के बराबर का महत्व मानते हैं इन्हें इस्माइल योगी एवं गोरखनाथ की शिष्या माना जाता है। उपजाति चमार के जो लोग लोना नामक जादूकरनी की धार्मिक रूप से उसकी जादुई विद्या तथा जीवन जीने की क्रियाओं में आस्था एवं विश्वास रखकर उसकी मान्यताओं के अनुसार जीवन संचालित करते हैं वे भारतीय समाज के लोना चमार कहे जाते हैं।

कामरूप कामाख्या की लोनाचमारिन सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। चमार जाति के जिन लोगों ने इनकी साधना, तंत्र-मंत्र, जादू, टोना एवं मान्यताओं के आधार पर जीवन संचालित करते है। उन्ही को लोना चमार कहते हैं जो अनुसूचित जाति के अंतर्गत उपजाति चमार के अन्तर्गत आते है तथा चमार जाति का प्रमाण-पत्र बनावाते हैं। ये लोग घुमक्कड़ी जीवन व्यतीत करते हैं तथा जादू-टोना, झाड़-फूंक, तंत्र-मंत्र के साथ सर्कस भी दिखाते हैं।

लोना चमार जाति के लोगों के पूर्वज परम्परागत रुप में खानाबदोश जीवन व्यतीत करते थे इनके पास ना तो आवास योग्य भूमि भी और ना ही खेती करने के योग भूमि थी। इस स्थिति में जीवन के लिए खाना एवं पानी की आवश्यकता निश्चित है। ये लोग अपने भरण-पोषण के लिए एक स्थान से दूसरे स्थान तक घूमा करते थे। जिन्हें हम आदिवासियों की तरह घुमन्तू जातियाँ भी कह सकते हैं। जगह-जगह किसी भी गाँव के बाहर बंजर भूमि रहती थी या किसी बाग में जाकर यह लोग डेरा डालकर रहते थे तथा पास-पड़ोस के गाँवों में जाकर इनके घर की महिलाएं एवं बच्चे भीख मांगना, पालतू कुत्तों को साथ में लेकर शिकार करना, (शिकार सियार, बंसहर, उद्बिलाव आदि जानवरों का करते थे) पुरुषों द्वारा पण्डा, पुजारी, फकीर तथा बाबा बनकर गाँव से सहयोग के रूप में अनाज या राशन लिया जाता था। कुछ पुरुष एवं महिलाएं गाँवों में घूम-घूम कर कान से खूट निकालने, कान, नाक छेदने तथा गोदना गोदने का काम करते थे। कुछ पुरुष जंगली जड़ी बूटियों से दर्द निवारक तेल बना करके शरीर के गांठ एवं जोड़ों के दर्द निवारक दवा का का निर्माण कर बेचते थे। इनके पूर्वजों के कुछ समाज विरोधी कार्य भी सामने आये हैं जैसे राहगीर का चलते हुए सामान छीन लेना, चोरी एवं डकैती, करना स्त्रियों एवं पुरुषों का शराब पीना तथा अन्य मादक द्रव्यों का सेवन करना।

परिवर्तन प्रकृति का शाश्वत नियम है। समय-समय पर परिवर्तन होता रहता है तथा परिवर्तन होना आवश्यक भी है। प्राचीन कहावत है की आवश्यकता एवं समस्याएं आविष्कार की जननी होती है। किसी भी समाज में परिवर्तन की प्रक्रिया को समझने के लिए समाज को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में देखने की आवश्यकता है, इसलिए परिवर्तन के स्वरूप को निश्चित करने के लिए समय एक प्रमुख सर्तों में से है। वर्तमान समय में लोना चमार जातियों में भी परिवर्तन आया है जहां इनके पास आवास के लिए भूमि नहीं था। खानाबदोश जीवन जीते थे, वही अब इनके द्वारा कई लोग मिलकर जमीन खरीद कर आवास बना लिए हैं। कुछ लोगों का मकान पक्के ईटों का है लेकिन ऊपर छत नहीं है। खरपतरवार के छप्पर या फिर पालीथिन की पल्ली से मकान बनाकर रहते हैं। जीवन स्तर निम्न है। शिक्षा एवं जागरूकता का अभाव है। उच्च शिक्षा का स्तर शून्य के बराबर है। इनकी बस्तियों में सरकारी योजना द्वारा न ही रास्ते का निर्माण है। न ही नाली बना है, इनके जो भी मकान बने है नियोजित तरके से नहीं है।

वर्तमान समय में लोना चमार जातियों में जो परिवर्तन आया है वह जहाँ मजदूरी नहीं करते थे। अब मजदूरी करते दिखाई देते हैं। बच्चों एवं महिलाओं द्वारा अभी भी जिस गांव में स्थाई रूप से रहने लगे हैं उस गांव से दूर जाकर भीख मांगने का प्रचलन अभी है पुरुष भी पण्डा, पुजारी, फकीर, बाबा, ओझा तांत्रिक बनकर हाथ की रेखायें देख कर भविष्य बताना, शहर में कहीं दूर जाकर अपनी जाति को बदल लेना तथा नवीन व्यवसाय को अपनाने का मामला सामने आया है। जो पुरुष घर पर रहते हैं, भैंस के बच्चे पड़वा एवं बाँझ गाय एवं भैंस खरीद कर बेंचते है। शिक्षा की दृष्टि से अब सभी लोना चमार जाति के लोगों द्वारा ऐसा प्रतीत होता है कि अपने बच्चों को पढ़ाने का मन बनाये हैं। चाहे वह सार्थक हो या ना हो, स्त्री-पुरूष दोनों का शराब पीना तथा मादक द्रव्यों का सेवन करना अनिवार्य आवश्यकता है।

लोनाचमार जाति के लोगों का सामाजिक एवं सांस्कृतिक जीवन–

मानव एक प्राणी होने के साथ-साथ एक सामाजिक प्राणी भी है यह पृथ्वी का सबसे श्रेष्ठ जीव है। लोना चमार जाति में भी पितृसत्तात्मक सामाजिक व्यवस्था पाई जाती है। गांव के अवलोकन से स्पष्ट होता है कि एक दंपत्ति द्वारा 7 से 10 बच्चों की संख्या में जन्म दिया जाता है। यहां परिवार नियोजन का अभाव है यहां के बच्चे संस्कारित

नहीं हैं इनकी बस्तियों में अक्सर छोटे-छोटे तमाम बच्चें नंग्गे टहलते हैं। इनके मकान का स्वरूप कच्चा, पक्का तथा झोपड़ी के रूप में हैं। इनकी बस्तियों में गन्दगी दिखाई पड़ती है फिर भी पहले की अपेक्षा इनके पहनावा, बोली, भाषा तथा व्यवहार में परिवर्तन आया है। इस प्रकार गाँव की सामाजिक एवं सांस्कृतिक स्थिति में इनका निम्न स्थान है। इस जाति में स्त्री पुरूष दोनों शराब का सेवन करते हैं। किसी की मृत्यु हो जाने पर चहकारी के रूप में उसे बिरादरी के लोग जो जाते हैं उन्हें शराब पिलाना पड़ता है। विवाह के लिए लड़के के पक्ष वालों द्वारा लड़की पक्ष के लोगों को पैसा देना पड़ता है इस जति के लोग पूर्णतया मांसाहारी है।

लोनाचमार जाति के लोगों का आर्थिक जीवन–

मानव एक सामाजिक प्राणी है। साथ-साथ एक आर्थिक प्राणी भी है। इसे अपने जीवन को सही ढंग से संचालित करने के लिए धन की अति अवश्यकता होती है। तभी उसका कल्याण सम्भव है। इस जाति के लोग अभी भी परम्परागत व्यवसाय करते हैं। इनका परम्परागत व्यवयाय भीख माँगना, कान से खूट निकालना, नाक कान छेदना, एड़ी से गन्दे खून निकालना, गठिया एवं जोड़ों के दर्द की दवाई बेचना, झाड़-फूक करना, फकीर बनना, पण्डा-पुजारी बनना, ओझा बनना, कम संख्या में मुर्गी पालना, बकरी पालना, सुअर पालना, मजदूरी करना, सकर्स दिखाना आदि है। यहाँ विशेष बात है कि पैसा कमाने के लिए बाहर जाकर अपनी जाति भी बदल लेते है। जो लोग घर पर रहते है। भैंस एवं उनका बच्चा पड़वा खरीदकर बेचने का काम करते हैं। अर्थिक दृष्टि से लोना चमार जाति के लोग गाँव के सबसे गरीब लोग हैं। इन समुदायों में सरकारी नौकरी करने वाला कोई व्यक्ति नहीं मिला।

लोनाचमार जाति के लोगों का शैक्षणिक जीवन–

शिक्षा मानव जीवन का एक ऐसा पहलू है जो उसके जीवन में कभी भी क्रांतिकारी परिवर्तन ला सकता है हमारे समाज के बुजुर्गों द्वारा एक कहावत पुरानी हो चुकी है कि ''शिक्षा उस शेरनी का दूध है, जिसने पीया वही गुर्राया'' कहने का आशय कि दुनिया में आज तक के इतिहास में जिसने भी शिक्षा ग्रहण किया है वह आत्मसम्मान एवं स्वाभिमान से जीना चाहा है। इस जाति के लोगों में शिक्षा का स्तर बहुत निम्न है। यह अपने बच्चों को वर्तमान माहौल में लाने का प्रयास कर रहे हैं। स्नातक एवं स्नातकोत्तर स्तर की शिक्षा ग्रहण करने वाले गिनने में नहीं मिलते। अब समय परिवर्तन के साथ-साथ अपने बच्चों को शिक्षा ग्रहण कराने के लिए इस समाज के अधिकांश लोग इच्छुक हैं। गाँव के अन्य जातियों की तुलना में इनका शैक्षणिक स्तर बहुत ही निम्न है।

लोनाचमार जाति के लोगों का धार्मिक जीवन–

धर्म मानव जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। धर्म के बिना मानव का नियोजित, व्यवस्थित तथा नैतिकता परक होकर जीवन जीना असंभव है। यह मूलतः हिन्दू धर्म से सम्बन्धित है। ये हिन्दू धर्म के सभी त्योहारों को मानते हैं तथा विवाह भी हिन्दू रीति-रिवाजों द्वारा होता है। ये लोग मुसलमानों के देवताओं में विश्वास करते हैं यह लोग मरे हुए लोगों को दफनाते हैं, या तो जल प्रवाह करते हैं। इनके दूर के एवं स्थानीय देवी-देवता भी हैं, जिसमें यह विश्वास करते हैं जैसे चमरिया माई, विन्ध्याचल की माई, बहराईच के दर्शन में विश्वास, कामरूप कामाख्या की लोना चमारिन की जादुई एवं तांत्रिक शक्तियों में विश्वास तथा आदि शक्तियों में भी विश्वास करते हैं। हिन्दू सामाजिक संरचना में यह पिछड़ें हैं। भारत की आदिम जातियाँ सभ्य समाजों से दूर रहने के कारण पिछड़े हिन्दू है, लेकिन लोनाचमार जाति के लोग सभ्य समाजों में ही रहकर पिछड़े हिन्दू हैं। धार्मिक विश्वास के रूप में लोना नामक जादूगरनी के योग साधना तथा तंत्र विद्या को अपने लिए उपयोगी मानते हैं। उनमें अपना आस्था एवं विश्वास करते है।

कामरूप कामाख्या की जादूगरनी लोनाचमारिन तंत्र विद्या में प्रवीण थी। लोनाचमार जाति के लोग इसमे अपना विश्वास रखते हैं तथा अपने सफल जीवन संचालन में सहयोगी मानते है। अनुसूचित जाति के अंतर्गत लोनाचमार जो चमार जाति के अंतर्गत हैं वैसे तो लोना चमारिन भारत के विभिन्न क्षेत्रों में तांत्रिक एवं जादूगरनी हुई है, लेकिन ये लोग जिसमें विश्वास करते हैं वह कामरूप कामाख्या की कामयाब तांत्रिक एवं जादूगरनी जो तंत्र विद्या में प्रवीण मानी जाती थी। इनके तंत्र विद्या के सामने बड़े-बड़े तांत्रिकों का दिमाग फेल हो जाता था। कामरुप कामाख्या की जादूगरनी सबसे ज्यादा लोकप्रिय है। इन्हें इस्माइल योगी तथा बाबा गोरखनाथ की शिष्या माना जाता है।

लोनाचमार हिन्दू धर्म से सम्बन्धित है लेकिन कुछ मान्यताएं इस्लाम तथा कुछ हिन्दू से सम्बन्धित है इसके यहां व्यक्ति की मृत्यु के बाद चहकारी जाने वाले को एक शीशी शराब दिया जाता है तथा विवाह के अवसर पर लड़का पक्ष लड़की को रुपया देता है।

लोनाचमार जाति के लोगों का राजनैतिक जीवन–

मानव एक सामाजिक प्राणी एवं एक अर्थिक प्राणी होने के साथ-साथ एक राजनैतिक प्राणी भी है। मनुष्य समूह एवं समुदाय में रहकर अपनी प्रभावशीलता लोगों के सामने जाहिर करना चाहता है। अपनी नेतृत्व क्षमता का स्पष्टीकरण करना चाहता है। राज्य द्वारा समाज में नियन्त्रण बनाये रखने के लिए राजनैतिक दलों का निर्माण किया गया। है जिससे स्वेच्छाचारिता एवं तानाशाही का अन्त होकर स्वस्थ्य समाज निर्मित हो सके तथा जनता अपना शासक स्वयं बना सके।

लोनाचमार जाति के लोगों में ऐसा दिखाई पड़ता है कि कोई राजनीति के क्षेत्र में नेतृत्व नहीं करता है। इस समुदाय से कोई कभी भी ग्राम प्रधान, बी0डी0सी0, जिला पंचायत सदस्य आदि पदों का दावेदारी कर चुनाव में भी खड़े नहीं हुए है। इस प्रकार इनका राजनैतिक जीवन पिछड़ा प्रतीत होता है।

अध्ययन क्षेत्र–

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य के अंबेडकरनगर जनपद के दो गाँव रामडीह सराय एवं मिर्जापुर कोड़रा के क्रमशः 53 घर जहां की कुल जनसंख्या 434 वोटरों की संख्या 209 है तथा मिर्जापुर कोड़रा (अटिका पुरवा) कुल 32 घर वहां की कुल जनसंख्या 225 है वोटरों की संख्या 160 है। जिसे अन्वेषक अपने अध्ययन का आधार बनाया है।

अध्ययन का उद्देश्य–

प्रस्तुत अध्ययन हेतु उद्देश्य को निर्धारित करना आवश्यक है अध्ययन क्षेत्र में लोना चमार जाति के लोगों का शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक सांस्कृतिक तथा राजनीतिक जीवन पिछड़ा है। और ये लोग विकास की मुख्यधारा से बहुत दूर है। इसमें कुछ सुधार किया जाय तथा किस तरह का सुधार किया जाय, सुझाव जाहिर करना। जिसमें नीति निर्देशकों एवं सरकार द्वारा चलाई जा रही योजनाओं के निर्माण में इस विचारधारा का समावेशन किया जा सके।

अध्ययन उपकल्पना–

किसी ज्ञान को विज्ञान बनाने के लिए हम उपकल्पनाओं का सहारा लेते हैं अध्ययन क्षेत्र से सम्बन्धित उपकल्पनाओं में कहा जाता है कि यह लोनाचमार जाति के लोग शैक्षणिक, आर्थिक, सामाजिक, सांस्कृतिक तथा राजनीतिक रूप से अभी पिछड़े है। उपर्युक्त सभी स्तर का स्वरूप निम्न है। विकास की मुख्यधारा से अभी भी नहीं जुड़े हैं।

समग्र-

प्रस्तुत अध्ययन उत्तर प्रदेश राज्य के अंबेडकरनगर जनपद के दो गाँवों पर आधारित है। अध्ययन क्षेत्र के रामडीह सराय गाँव में लोनाचमार जाति के वोटरों की संख्या 209 तथा मिर्जापुर कोड़रा में लोनाचमार जाति के वोटरों की संख्या 160 है कुल मिलाकर अध्ययन के समग्र 369 है।

प्रतिदर्श–

अध्ययन का समग्र 369 है जिसमें से एक प्रतिदर्श के रूप में हमने 40 व्ययस्क उत्तरदाताओं एवं उत्तरदात्रियों जिनकी उम्र 18 वर्ष से लेकर 60 वर्ष तक है अपने अध्ययन में शामिल किया है।

अध्ययन विधि–

प्रस्तुत अध्ययन में तथ्यात्मक सर्वेक्षण विधि, अन्वेषणात्मक, विवेचनात्मक, अनुसंधान अभिकल्प का प्रयोग किया गया है। इसमें स्वनिर्मित साक्षात्कार अनुसूची के माध्यम से सम्बन्धित विचारों एवं अन्तर्सूझों की गवेषणा की गयी है।

सारीणी संख्या-01

लिंग के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

क्र0सं0	लिंग	संख्या	प्रतिशत
1	स्त्री	10	25.00
2	पुरूष	30	75.00
	योग	40	100.00

उपरर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में 25 प्रतिशत स्त्रियाँ एवं 75 प्रतिशत पुरूष उत्तरदाता है।

अतः स्पष्ट है कि अधिकांश उत्तरदाता पुरूष है जिनकी संख्या 75 प्रतिशत है।

सारीणी संख्या-02

शैक्षणिक स्तर के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

क्र0सं0	शिक्षा का स्तर	संख्या	प्रतिशत
1	निरक्षर	30	75
2	कक्षा पांच पास	08	20
3	कक्षा आठ पास	01	2.5
4	हाईस्कूल, इण्टर पास	01	2.5
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 75 प्रतिशत निरक्षर है। पाँचवी कक्षा पास लोगों का प्रतिशत 20 है। कक्षा आठ, दस तथा बारहवीं कक्षा पास लोगों की संख्या सबसे कम 02.5 प्रतिशत है।

अतः स्पष्ट है कि इन जातियों में निरक्षरता का स्तर उच्चतर है ये लोग अपनी प्राथमिक अवश्यकताओं को पूरा करने चक्कर में बच्चों के शिक्षा स्तर पर ध्यान नहीं देते।

सारीणी संख्या-03

आय के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

क्र0सं0	आय प्रतिमाह	संख्या	प्रतिशत
1	0 -1000	04	10.00
2	100 -2000	23	57.50
3	2100 -3000	11	27.50
4	3100 से अधिक	02	05.00
	योग	40	100.00

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 1100-2000 रूपये तक आय वाले 57.5 प्रतिशत उत्तरदाता है। जबकि सबसे अधिक आय वाले (3100 से अधिक) उत्तरदाताओं की संख्या सबसे कम 05 प्रतिशत है।

अतः अध्ययन क्षेत्र में अधिकांश लोगों का आय 1100 से 2000 रूपये के मध्य है।

सारीणी संख्या-04

परिवार के स्वरूप के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

क्र0सं0	परिवार का स्वरूप	संख्या	प्रतिशत
1	एकाकी	28	70
2	संयुक्त	12	30
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है अध्यन क्षेत्र में सर्वाधिक 70 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार से सम्बन्धित है।

सारीणी संख्या-05

वर्तमान समय में कार्य के आधार पर उत्तरदाताओं का वर्गीकरण

क्र0सं0	कार्य करना	संख्या	प्रतिशत
1	भीख मागना	10	25
2	मजदूरी करना	20	50
3	सरकारी नौकरी	06	15
	अपना कार्य	04	10
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक उत्तरदाता मजदूरी करके अपना जीवन यापन करते है। जिसकी सर्वाधिक संख्या 50 प्रतिशत है।

सारीणी संख्या-06

अपने काम से संतुष्टता सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्र0सं0	संतुष्टता	संख्या	प्रतिशत
01	हाँ	08	20
02	नहीं	32	80
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 80 प्रतिशत उत्तरदाता अपने काम से संतुष्ट नहीं हैं। जबकि 20 प्रतिशत लोग अपने काम से संतुष्ट है।

सारीणी संख्या-07

नशीली वस्तुओं के प्रयोग सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्र0सं0	संतुष्टता	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	36	90
2	नही	04	10
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 90 प्रतिशत लोग नशीली वस्तुओं का उपयोग करते है, जैसे शराब, गाँजा, बीड़ी सिगरेट, तम्बाकू आदि।

सारीणी संख्या-08

डेरा डालकर रहने सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्र0सं0	डेरा डालकर रहना	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	00	00
2	नही	40	100
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों से स्पष्ट होता है उत्तरदाताओं के पूर्वजों द्वारा लगभग सभी 100 प्रतिशत लोग जगह-जगह डेरा डालकर रहते थे तथा अगल-बगल की बस्तियों से भिक्षा माँगते थे तथा जंगली जानवरों का शिकार करके अपना जीवन यापन करते थे।

सारीणी संख्या-09

आधुनिक सुविधाओं के सम्बन्ध में उत्तरदाताओं के दृष्टिकोण

क्र0सं0	आधुनिक सुविधाएं	संख्या	प्रतिशत
1	बिजली	11	27.5
2	मोबाइल	13	32.5
3	टेलीविजन	09	22.5
4	मोटरसाइकिल	07	17.5
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आंकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि आधुनिक सुविधाओं से उपयोग संबंधी विचार के स्पष्ट है कि सार्वधिक 32.5 प्रतिशत लोग मोबाइल का प्रयोग करते हैं 27.5 प्रतिशत लोग बिजली, 22.5 प्रतिशत लोग टेलीविजन तथा 17.5 प्रतिशत लोग मोटरसाइकिल का भी प्रयोग करते हैं । अतः अध्ययन क्षेत्र के लोग धीरे-धीरे आधुनिक सुविधाओं का उपयोग कर रहे है।

सारीणी संख्या-10

बैंक में खाता होने सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्र0सं0	बैंक खाता होना	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	16	40
2	नहीं	24	60
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि अधिकांश 60 प्रतिशत उत्तरदाताओं के पास बैंक में खाता नहीं है। अतः इससे स्पष्ट है कि लोग सरकारी योजनाओं का लाभ प्राप्त करने में पीछे है।

सारीणी संख्या-11

बच्चों को स्कूल भेजने सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्र0सं0	बच्चो को स्कूल भेजने	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	14	35
2	नहीं	26	65
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी के विशेष विशेषण से स्पष्ट है कि सर्वाधिक 65 प्रतिशत उत्तरदाता अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते जबकि 35 प्रतिशत लोग अपने बच्चों को शिक्षा के प्रति जागरुक है।

सारीणी संख्या-12

शिकारी कुत्तों को पालने सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्र0सं0	शिकारी कुत्तों को पालना	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	26	65
	नहीं	14	35
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी में अन्तर्निहित आकड़ों के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि 65 प्रतिशत लोग शिकारी कुत्तों को पालते हैं। 35 लोग शिकारी कुत्ते नहीं पालते है।

सारीणी संख्या-13

सर्कस दिखाने सम्बन्धी उत्तरदाताओं के विचार

क्र0सं0	सर्कस दिखाना	संख्या	प्रतिशत
1	हाँ	04	10
2	नहीं	36	90
	योग	40	100

उपर्युक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट होता है कि सर्वाधिक 90 प्रतिशत उत्तरदाता सर्कस नहीं दिखात है लेकिन 10 प्रतिशत लोग अभी भी सर्कस दिखाते है।

निष्कर्ष :

प्रस्तुत शोध में एक उपकरण के रूप में साक्षात्कार अनुसूची का निर्माण करके आंकड़ों का संकलन किया गया। इसके माध्यम से अध्ययन क्षेत्र से सम्बन्धित महत्वपूर्ण पक्षों को जानने का प्रयास किया गया। सूचना संकलन के बाद विभिन्न तथ्यों के आधार पर विभिन्न सारणियों का निर्माण तथा वर्गीकरण किया गया। इसमें सभी सूचनाएं प्राथमिक स्रोतों द्वारा प्राप्त किए गए हैं। सारणियों के विश्लेषण से जो निष्कर्ष एवं परिमाण प्राप्त होते हैं वे निम्नलिखित है-

लिंग के आधार पर उत्तरदाताओं के वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि न्यूनतम 25 प्रतिशत स्त्रियाँ तथा 75 प्रतिशत पुरूष उत्तरदाता हैं। शैक्षणिक स्तर के आधार पर उत्तरदाताओं के वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र के लोगों का शिक्षा का स्तर बहुत ही निम्न है जिसमें निरक्षरता का स्तर सर्वाधिक 75 प्रतिशत है। अध्ययन क्षेत्रों में उच्च शिक्षा का स्तर शून्य के बराबर है। लोग अपने बच्चों को शिक्षा ग्रहण कराने पर ध्यान नहीं देते हैं। आय के आधार पर उत्तरदाताओं के वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि अध्ययन क्षेत्र में अधिकांश लोगों का मासिक आय 1100 से 2000 रूपये के मध्य है जिससे आर्थिक स्तर निम्न प्रतीत होता है। परिवार के स्वरूप के आधार पर अधिकांश 70 प्रतिशत उत्तरदाता एकाकी परिवार से तथा 30 प्रतिशत उत्तरदाता संयुक्त परिवर से सम्बन्धित है। कार्य के आधर पर उत्तरदाताओं के वर्गीकरण से स्पष्ट होता है कि मजदूरी करके जीवन यापन करने वालों की सर्वाधिक संख्या 50 प्रतिशत है वर्तमान में अध्ययन क्षेत्र के जो लोग अपने व्यवसाय के रूप में काम कर रहे हैं। उससे 80 प्रतिशत लोग असंतुष्ट हैं तथा 20 प्रतिशत लोग सन्तुष्ट हैं। नशीली वस्तुओं के प्रयोग सम्बन्धी विचारों में 90 प्रतिशत लोग नशीले पदार्थों का प्रयोग करते हैं। 10 प्रतिशत लोग नहीं करते हैं। इसके पूर्वज लगभग 100 प्रतिशत लोग डेरा डाल के रहते थे। अध्ययन क्षेत्र में 32.5 प्रतिशत लोग मोबाइल, 27.5 प्रतिशत लोग बिजली, 22.5 प्रतिशत लोग टेलीविजन तथा 17.5 प्रतिशत लोग मोटरसाइकिल का उपयोग आधुनिक सुविधओं के रूप में करते हैं। अध्ययन क्षेत्र में सर्वाधिक 60 प्रतिशत लोगों के पास बैंक में खाता नहीं हैं तथा 40 प्रतिशत लोगों के पास है। 65 प्रतिशत लोग अपने बच्चों को स्कूल नहीं भेजते तथा 35 प्रतिशत लोगों में जागरूकता आई है, वे अपने बच्चों को स्कूल भेजते हैं। अध्ययन क्षेत्र में 65 प्रतिशत लोग शिकारी कुत्तों को पालते हैं तथा 35 प्रतिशत लोग नहीं पालते है। अध्ययन क्षेत्र में अधिकांश 90 प्रतिशत लोग सर्कस नहीं दिखाते तथा 10 प्रतिशत उत्तरदाता सर्कस दिखाने का काम करते हैं।

अध्ययन की समस्या का सुझाव :

लोनाचमार जाति के लोग अर्थिक, सामाजकि, शैक्षिक, राजनैतिक तथा सांस्कृतिक रूप से पिछड़े हैं। विकास की मुख्यधारा से जोड़कर इनके सभी स्तर को ऊँचा उठाने की अवश्यकता है। जिन्हें निम्न विन्दुओं के माध्यम से स्पष्ट किया गया है-

1. लोनाचमार जाति के बच्चों को शिक्षा ग्रहण करने के प्रति जागरूकता पैदा किया जाय।
2. सरकारी योजनओं के लाभ को लोना चमार जाति के लोगों तक पहुँचाया जाय।
3. मादक पदार्थों के सेवन से हनियों को अवगत कराया जाय। इसके लिए विभिन्न जागरूकता कार्यक्रम आयोजित करने की अवश्यकता है।
4. सरकारी योजनओं के द्वारा इन्हे रोजगार मुहैया कराया जाय। जिससे इनकी आर्थिक स्थिति में सुधार हो सके।
5. लोनाचमार जाति के लोगों के प्रति विभिन्न कार्यक्रमों के द्वारा जनजागरूकता का माहौल पैदा किया जाय।

संदर्भ :

1. पंचम, एस0 के0, शूद्रो का प्राचीन्तम इतिहास, दिब्यांश पब्लिकेशन्स, लखनऊ 2011, पृष्ठ -404।
2. सिंह, जे0पी0, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, PHI Learning Private Limited नई दिल्ली-2010, पृष्ठ-139
3. सिंह, योगेन्द्र, अनु0 अग्रवाल, अरविन्द कुमार, भारतीय परम्परा का अधुनिकीकरण, रावत पब्लिकेशन्स, जयपुर एवं नई दिल्ली, 2006 पृ0-314-315
4. दूबे, श्यामाचरण अनु0 अटल, योगेश, भारतीय ग्राम, वाणी प्रकाशन नई दिल्ली, 2000, पृ0-223
5. श्रीनिवास,एम0एन0, आधुनिक भारत में सामाजिक परिवर्तन, राजकमल प्रकाशन नई दिल्ली, 2009, पृ0-86

***

कोरोना त्रासदी में गाँधी चिंतन की प्रासंगिकता

*डॉ. सुषमा दयाल**

वैश्विक स्तर पर व्याप्त कोरोना त्रासदी मानव सभ्यता के लिए चुनौती बनती जा रही है। कोरोना संक्रमण ने जहाँ अघोषित मृत्यु का ताण्डव तो किया ही है साथ में असहज वातावरण भी उत्पन्न किया है जिसमें मानवीय मूल्यों में कमी, डर और दहशत का वातावरण, बेचारी, निर्धनता, रोजगार के ऊपर संकट तथा बेरोजगारी की समस्या यक्ष प्रश्न है। कोरोना महामारी ने विश्व में विकास के पहिए को तो जाम किया ही है उसे अवसाद ग्रस्त तथा निकम्मा बनाने पर भी तुला हुआ है। वैश्विक स्तर पर स्थापित पूर्ण तथा आंशिक लाकडाउन दोधारी तलवार की तरह है जिससे एक तरफ महामारी पर नियंत्रण में सहायता मिल रही है तो दूसरी तरफ रोजी–रोजगार के चौपट होने के गम्भीर संकट से जूझना पड़ रहा है। कोविड–19 ने विश्व को अस्थिरता के दौर, लोगों को हताश और बेहाल तो किया ही है वही दूसरी ओर इसके आर्थिक परिणाम भी लोगों को भविष्य के प्रति आशंकित किऐ हुए हैं। सम्पूर्ण विश्व का बाजारवाद की दौड़ में सम्मिलित होना तथा लालच के महत्वाकांक्षा को युद्ध की सीमा तक ले जाना कोरोना की विभीषिका को सम्बल दे रहा है जबकि जरूरत इस बात की है कि त्याग और सहयोग पर आधारित सामंजस्यपूर्ण विश्व व्यवस्था की रचना की जाए तथा वैश्विक तथा स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भर तथा स्वावलम्बी समाज की रचना की जाए जिससे कोरोना की त्रासदी पर अंकुश लगाया जा सके।

विश्व की वैचारिक विरासत में गांधीवादी चिन्तन की महत्ता जगजाहिर है। विश्व व्यवस्था को निर्धारित करने तथा मानवहितों के अनुरूप सामंजस्यपूर्ण करने में गांधी चिन्तन प्रेरणादायी रहा है। मानवमूल्य तथा मानवता को स्थापित करने में गांधी विचार विश्व के लिए प्रभावशाली रहा है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय आन्दोलन के समानान्तर सामाजिक तथा आर्थिक समरसता के साथ–साथ पर्यावरणीय समरसता के संकल्प को साधते रहे हैं तथा सृजनात्मक तथा रचनात्मक कार्यक्रमों के द्वारा मानव सभ्यता को सरल, सहज तथा सामंजस्यपूर्ण बनाने में दृढ़ संकल्पित रहे हैं। वर्तमान समय के कोरोना की त्रासदी में यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि समाज के संहारक कोरोना रूपी व्याधि में गांधीवाद कितना प्रासंगिक है यह एक विचारणीय प्रश्न है। गांधी विचार विश्व परिवार का पर्याय मानता है तथा सबकी सुउन्नति स्वालम्बी तथा आत्मनिर्भर स्वरूप को प्राप्त करना चाहता है। वह किसी भी शोषण का अहिंसक प्रतिरोध, सबसे पहले दूसरों की सेवा, संचय के पहले त्याग, झूठ के स्थान पर सच, अपने बजाय देश और समाज की रक्षा तथा चिन्ता करना सम्बन्धित आदर्श कहीं न कहीं इस विपदा की घड़ी में विश्व में व्याप्त असत्य अवसरवाद, धोखा, चालाकी, लालच, स्वार्थपरता तथा संसाधनों के दोहन तथा पर्यावरण प्रदूषण पर रोक लगा सकती है ऐसी स्थिति में गांधीवादी चिन्तन की प्रासंगिकता वैश्विक महामारी में प्रभावी हो सकती है बशर्ते गांधी चिन्तन को ईमानदारी को स्थापित करने से है।

वैश्विक महामारी कोरोना के सामने आज सम्पूर्ण विश्व का धर्म विज्ञान, अर्थ व्यवस्था, जनजीवन तथा राजनीतिक नेतृत्व नतमस्तक हो रहा है ऐसे में महात्मा गांधी के विचार विश्व समुदाय और सरकार को राह दिखा सकती है। कोरोना की भयानकता में स्वास्थ्य, रोजगार, शिक्षा, पलायन, आत्मनिर्भरता, मानसिक अवसाद, प्रेरणा का अभाव, अपनापन की कमी, स्वार्थपरता, आपदा प्रबन्धन संसाधनों का दोहन तथा पर्यावरण प्रदूषण चपेटे में आ गया है जिसके लिए सामंजस्यपूर्ण समाज की रचना तथा आत्मनिर्भर समाज एवं जनभागीदारी युक्त प्रबन्धन की आवश्यकता है जिससे सामाजिक न्याय एवं समरस समाज की स्थापना हो सके, इसके लिए गांधी विचार एक सार्थक पहल हो सकता है।

---

* इतिहास विभाग, शिक्षिका, मा. वि. कुसहा (मयुरवा) त्रिवेणीगंज, सुपौल

कोरोना संक्रमण पूरे विश्व में स्पेनिश फ्लू के बाद सबसे अधिक लोगों को मृत्यु का कारण तो बना ही साथ में लोगों को जटिल बीमारियों से भी ग्रसित किया है। स्पेनिश फ्लू के गाँधी जी स्वयं भुक्तभोगी थे तथा अपने परिवार के सदस्यों को खोने के साथ ही करोड़ों की संख्या में लोगों को मृत्यु का वरण करते हुए देखा था। ऐसी स्थिति में स्वास्थ्य के प्रति काफी जागरूक थे। उनका मानना था कि परहेज जी नियामत है तथा शिक्षा का आधार व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक तथा आध्यात्मिक विकास है जिसकी प्राप्ति शरीर अनुशासन, व्यायाम, साफ–सफाई, स्वच्छ पर्यावरण जिसमें शुद्ध वायु, शुद्ध जल, शुद्ध भोजन (शाकाहार), शिक्षा के साथ–साथ आयुर्वेद का ज्ञान, प्राकृतिक चिकित्सा पद्धति तथा धार्मिक प्रार्थना के द्वारा करना चाहते हैं। यही नहीं ग्राम स्वराज की अवधारणा में सभी के लिए कायिक श्रम की महत्ता पर बल देते हैं। गांधीजी यह मानते थे कि शरीर श्रम न करने वाले को खाने का अधिकार कैसे हो सकता है? अतः प्रत्येक स्त्री–पुरुष जिंदा रहने के लिए शरीर–श्रम करें। इसका स्वास्थ्य पर चमत्कारी असर होगा। इससे व्यक्ति में परम शान्ति के साथ–साथ सेवा शक्ति बढ़ती है तथा तुदुरूस्ती भी बढ़ती है। शारीरिक श्रम मानसिक अवसाद के उपचार की कुंजी है। कोरोना काल में देखा जा रहा है कि संक्रमण से बचने के लिए जो सरल और साधारण उपाय है जिसमें–शरीर की साफ–सफाई, सामाजिक दूरी तथा मास्क पहनना शारीरिक सुख के लिए नहीं मान रहे हैं, जो सामुदायिक स्वास्थ्य तथा शरीर अनुशासन के खिलाफ है और महामारी के संक्रमण को प्रश्रय दे रहा है। गांधी चिन्तन में ऐसी स्थित को परे से नकारा गया है। हिन्द स्वराज में इसी अनुशासनहीनता के चलते डॉक्टर की आलोचना करते हैं और कहते हैं कि डॉक्टर अपनी व्यर्थ सेवा के माध्यम से लोगों के स्वास्थ्य को चौपट कर रहे हैं क्योंकि उनको पता है कि वे शरीर अनुशासन (असंतुलित खान–पान) का पालन नहीं भी करेंगे तो डॉक्टर उसे इस विकार से मुक्त कर देगा, जो कहीं न कही शरीर धर्म के विपरीत है। कोरोना संक्रमण के समय यह देखा गया कि जिन व्यक्तियों ने अपने जीवन काल में शारीरिक श्रम, व्यायाम व कसरत, मनोबल तथा संतुलित खान–पान को अपनाया था, उनमें रोग प्रतिरोधक क्षमता अधिक होने के चलते अपनी तथा सामुदायिक स्वास्थ्य की रक्षा कर सके। गांधी समाज के सामर्थ्य से परिचित थे अतः वे चाहते थे कि निर्बल व गरीब लोग शरीर अनुशासन तथा साफ–सफाई के माध्यम से ही अपनी स्वास्थ्य की रक्षा कर सकते हैं जो कोरोना संक्रमण के दौरान देखने को मिला।

मानव इतिहास में किसी अन्य युग की अपेक्षा वर्तमान युग में मानव की सम्पूर्ण क्रियाएँ उसकी आर्थिक गतिविधियों से प्रभावित होती है। कोरोना संक्रमण ने व्यक्ति की आर्थिक गतिविधियों को सीमा से परे जाकर प्रभावित कर रहा है। रोजगार सृजन की बात ही मत करिये सारे उद्योग धन्धे चौपट हो रहे हैं। इस आपदा की घडी में स्वार्थपरता तथा अपनापन के अभाव के चलते अप्रवासी मजदूरों की बद से बदतर स्थिति हो गयी है। इनकी अन्तिम आशा की किरण गाँव–गिराँव ही रहा। पूरे समाज से औद्योगिकरण एवं नगरीकरण की यह महत्वाकांक्षा ध्वस्त होने लगी। गलत नीतियों पर आधारित समाज का आत्मनिर्भर स्वरूप तार–तार होने लगा तब नीति निर्माताओं को सतत एवं टिकाऊ विकास और स्थानीय आत्मनिर्भरता तथा स्वावलम्बन का मार्ग याद आने लगा जिसका आगाज महात्मा गांधी ने आठ दशक पहले ही कर लिया था तथा ग्राम स्वराज की अवधारणा से सुखी सम्पन्न समुन्नत समाज की व्यूह रचना तैयार की थी।

ग्राम स्वराज की मेरी कल्पना यह है कि वह एक ऐसा पूर्ण प्रजातन्त होगा जो अपनी महत्व की जरूरतों के लिए अपने पड़ोसी पर निर्भर नहीं रहेगा और फिर भी बहुतेरी दूसरी जरूरतों के लिए जिनमें दूसरों का सहयोग अनिवार्य होगा वह परस्पर सहयोग से काम लेगा। प्रत्येक गांव अपनी जरूरत का तमाम अनाज ओर कपड़े के लिए कपास खुद पैदा करेगा। प्रत्येक गांव में चारागाह तथा बच्चों के लिए खेल का मैदान होगा एवं मनोरंजन के लिए नाट्यशाला होगा। पानी के लिए वाटरवर्क्स होंगे जिससे गाँव के सभी लोगों को शुद्ध पानी मिला करेगा। कुओं और तालाबों पर गांव का पूरा नियंत्रण होगा। बुनियादी तालीम के आखिरी दर्जे तक शिक्षा सभी के लिए आवश्यक होगा। विकेन्द्रित प्रशासन के तहत पंचायत राज होगा तथा अपने विवादों का निपटारा न्याय पंचायतों में होगी। गांव के सारे

काम सहयोग के आधार पर किये जायेंगे। जात–पात और क्रमागत अस्पृश्यता के जैसे भेद हमारे समाज में पाये जाते हैं, वैसे इन ग्राम समाज में बिल्कुल न रहेंगे। ग्राम इस तरह से बनाया जायेगा कि घरों में स्वच्छता की पूरी व्यवस्था रहे। घरों में पर्याप्त प्रकाश और हवा का प्रबन्ध होगा इन झोपड़ियों में आंगन या खुली जगह होगी तथा खुली जगह में साग–भाजियाँ स्वयं पैदा कर सकेंगे तथा उसे बेचकर आर्थिक लाभ उठा सकेंगे, लेकिन गांजा, भांग, तम्बाकू तथा अफीम वगैरह का उत्पादन कदापि नहीं करेंगे। गांव में वे सभी सुविधायें होगी जो एक स्वावलम्बी ग्राम के विकास के लिए अनिवार्य होगी। उनका मानना था कि गांवों में स्वास्थ्य सुविधाएँ न के बराबर है तथा अधिसंख्य जनता कुपोषण एवं बीमारियों की शिकार है। निर्धनता के कारण मृत्युदर अधिक है तथा वे महंगी डाक्टरी चिकित्सा पद्धति से अपना इलाज कराने में सक्षम नहीं है। इसलिए गांधी जी प्राकृतिक चिकित्सा अथवा कुदरती इलाज की बात करते हैं। गांव में साग–सब्जी, फल–दूध आदि पैदा करना तथा उसका प्रयोग करना एवं शारीरिक श्रम तथा करसत से अपने अन्दर रोग प्रतिरोधक क्षमता पैदा करना कुदरती इलाज की बुनियाद है। गाँधी जी अपनी पुस्तक 'आरोग्य की कुंजी' में कुदरती इलाज से तात्पर्य पंच महाभूतों–पृथ्वी अर्थात मिट्टी, पानी, आकाश, प्रकाश एवं वायु के प्रयोग द्वार शारीरिक बीमारियों के निदान से है जिससे शरीर का निर्माण हुआ है से है। गांधी ग्राम स्वराज के माध्यम से भारत में स्वावलम्बन तथा आत्मनिर्भर लाना चाहते थे। वे समग्र भारत का विकास करना चाहते थे। केवल नगरों और शहरों का नहीं इसलिये वे ओद्योगीकरण एवं मशीनवाद का विरोध करते हैं ये लघु एवं कुटीर उद्योग धन्धों का कब्रगाह है जो भारत का भविष्य चौपट कर रहे हैं।

गांधी का मानाना था कि यदि ग्रामोद्योग का लोप हो गया तो भारत के सात लाख गांवों का सर्वनाश हो जायेगा। अगर गांवों का नाश होता है तो भारत का भी नाश हो जायेगा। गांधी ग्राम स्वराज के चिन्तन से इसी भारत को बचाना चाहते हैं।

भारत के नीति निर्माता गांधी के ग्राज स्वराज की अवधारणा से सीख लिये होते तो दूसरा भारत जो नगरों में रहता है उसका निर्माण नहीं हुआ होता न तो अप्रवासी मजदूर (गिरमिटियाँ समाज) जन्म लेते तथा कोरोना संक्रमण का विस्तार तथा प्रभाव एवं दुष्परिणाम आर्थिक बदहाली के रूप में नहीं हो पाता। आज पूरा विश्व कोरोना संक्रमण के समय गांधीवादी चिन्तन को निहार रहा है।

कोरोना संकट के समय गांधी विचार व्यक्ति में आत्मचिन्तन करने और प्रकृति के साथ मानव के बिगड़ते रिश्ते की वजहों को समझाने का प्रयास करते हैं। आवश्यकताओं और इच्छाओं के बीच फर्क करने का सलाह देते हैं। पर्यावरण तथा समूची मानव चेतना में इसके प्रति जागरूकता फैलाते हैं कि धरती पर हमारी जरूरत के लिए सब कुछ उपलब्ध है, पर लोभ के लिए पर्याप्त नहीं है। वे देह के अलावा मन, बुद्धि और आत्मा के स्वस्थ रहने की आवश्यकता पर बल देते हें। वे लालच पर नियंत्रण रखने की सलाह देते हैं। मानसिक अवसाद के लिए ईश्वर की प्रार्थना पर बल देते हैं। कोरोना संक्रमण समाज में ढेर सारी विकृतियां पैदा की है। सम्बन्धों में संवेदनहीनता, स्वार्थ लोलुपता भ्रष्टाचार से संग्रह, भोगवाद, पारस्परिक द्वेष, अनाचार तथा सामंजस्य का अभाव संकुचित किया है, ऐसी स्थिति में गांधी के सिद्धान्तों को अमल में लाना होगा। जनमानस में आत्मविश्वास तथा जन प्रेरणा के साथ–साथ भाईचारा, सद्भाव, सहिष्णुता, संवेदना, उदारता, कर्मनिष्ठा, कर्मठता तथा उपभोग की जगह त्याग का पुनर्भाव जागृत करना होगा।

गाँधी के चिन्तन में सामाजिक आर्थिक व्यवस्था करूणा, प्रेम धार्मिकता व ईश्वरीय भावना पर आधारित है। उन्होंने नर सेवा नारायण सेवा की मान्यता स्थापित की है। वे शोषण मुक्त, समतामुक्त, ममतामय, परस्पर स्वावलम्बी, परस्पर पूरक व परस्पर पोषक समाज तथा निरोग तथा निडर तथा उत्साही समाज के प्रबल हिमायती थे। कोरोना काल में संक्रमित लोगों के साथ समाज और परिवार अछूत जैसा व्यवहार कर रहे हैं तथा डर के कारण अपने भी बेगान जैसे हो गये हैं, ऐसी स्थिति में गांधी लोगों को निडर होने की सलाह देते हैं और सेवा का संकल्प लेने को कहते हैं तथा महामारी को लेकर हौवा खड़ा करने वालों के साथ सख्ती से पेश आने की सलाह देते हैं। दरअसल रोगियों की सेवा गांधी चिन्तन की सहज प्रवृत्ति है। वे परिवार के सदस्यों तथा पड़ोसियों से मरीजों के प्रति सेवा

भावना तथा उनके दुःखों को कम करने के साथ–साथ उनके मनोबल को बढ़ाने के उत्तरदायित्व का वहन कराना तो चाहते ही हैं साथ ही रोगियों को एवं अपने कमरे की सफाई–कपड़ा धोना, शौचालय साफ करना तथा बीमारी अनुशासन को बनाये रखने की प्रेरणा भी मरीजों को देते हैं जो कोरोना काल में होम क्वारंटाइन के समय देखने को मिला।

कोरोनो महामारी ने हमको वास्तविकताओं से परिचित कराया है कि शहर और शहरी संस्कृति की अपेक्षा ग्रामणी समाज और ग्रामीण संस्कृति काफी सुरक्षित है। औद्योगिक एवं शहर आधृत विकास मॉडल मौलिक रूप में कितना गलत है। मुट्ठी भर शहर का विकास हमारी आर्थिक समस्याओं का हल नहीं हो सकता। इसलिए गाँवों के आर्थिक विकास पर ध्यान केन्द्रित करना होगा तथा बड़े पैमाने पर उत्पादन की बजाय छोटे पैमाने पर उत्पादन को अपनाना पड़ेगा अर्थात् लघु कुटीर उद्योग धन्धों की फैलाव तभी लोग अपने गांव अपनी जमीन तथा अपने शिल्प कला को समझेंगे तथा लोग यत्रवाद के चक्रव्यू तथा पूंजीवादी दासता से मुक्त होंगे। कोरोना संक्रमण के दौरान प्रवासी श्रमिकों की दुर्दशा तथा उनके साथ अमानवीय व्यवहार जग–जाहिर है।

आज समूची दुनिया गांधी विचार को कोरोना त्रासदी में प्रेरणा के रूप मे ंदेख रही है। जब समूची दुनिया में धर्म, विज्ञान, अर्थव्यवस्था, जनजीवन और राजनीतिक नेतृत्व कोरोना के सामने घूटने टेक रहे हैं तो महात्मा गांधी के विचार विश्व समाज को राह दिखा रही है। गांधी ने जिस ग्राम स्वराज और स्वावलंबन के विचार दिये थे वह अब अर्थव्यवस्था को पटरी पर लाने और आपदा प्रबन्धन में आम नागरिकों के लिये अनिवार्यता बन रही है। कोरोना संक्रमण के समय विश्व की अर्थव्यवस्था चौपट हो रही थी तो गांधी चिन्तन ''लोकल के लिए वोकल होना' भारतीय अर्थव्यवस्था का सम्बल बन सकता है। गांधी अपने चिन्तन के माध्यम से गांवों और ग्रामीणों की दुर्दशा में सुधार करना चाहते हैं तथा नीति निर्माताओं को संदेश देते हैं कि दिल्ली भारत नहीं है। अपितु असली भारत गांवों में है इसलिये भारत में राजनीतिक व्यवस्था और आर्थिक विकास का केन्द्र गाँव को बनाना होगा। यह तभी सम्भव होगा जब गांवा में स्वावलम्बन और विकास के लिए सत्ता के विकेन्द्रीकरण कर ग्राम सरकार की स्थापना की जाए। गांधी का अर्थशास्त्र स्वदेशी, ग्रामीण आत्मनिर्भरता, बड़े उद्योगों की अपेक्षा कुटीर व छोटे उद्योगों को बढ़ावा तथा उद्योग के मशीनों की अपेक्षा श्रम का इस्तेमाल था।

कोरोना संक्रमण की त्रासदी बड़ी ही भयावह है। स्वास्थ्य से लेकर आर्थिक जीवन तक सभी पहलू भयाक्रान्त है ऐसी स्थिति में समाज का स्थानीय स्तर पर आत्मनिर्भर होने के साथ लोगों को अपनापन तथा स्वार्थ की जगह परमार्थ एवं अनुशासित व्यवहार तथा निस्वार्थ भाव से कर्मयोगी तथा सेवा की भावना और समाज का निडर स्वरूप तथा प्रेरणदायी नेतृत्व व पर्यावरणनुकूल व्यवहार इसमें सम्बल हो सकता है जिसके लिए गांधी चिन्तन से प्रेरणा लिया जा सकता है।

सन्दर्भ :

1. प्रो0 बी0एम0 शर्मा, डॉ0 रामकृष्ण दत्त शर्मा, डॉ0 सविता शर्मा, गांधी दर्शन के विविध आयाम, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, जयपुर, 2019, पृ0सं0 243–45
2. महात्मा गाँधी, कुदरती उपचार, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2000, पृ0सं0 15–16
3. महात्मा गाँधी, आरोग्य की कुंजी, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 2000, पृ0सं0 20–21
4. महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज्य, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1958–84
5. महात्मा गांधी, सर्वोदय, सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली, 1996, पृ0सं0 74–75
6. महात्मा गांधी, रचनात्मक कार्यक्रम, नवजीवन प्रकाशन मन्दिर, अहमदाबाद, 1951, पृ0सं0 10–11
7. रामजी सिंह, गांधी दर्शन मीमांसा, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, पटना, 1973, पृ0सं0 184
8. गांधी जी के साथ पच्चीस वर्ष, सम्पादक चन्दु भाई गंगुभाई दलाल, अनुवादक रामनारायण चौधरी, खण्ड–7, सर्व सेवा संध–प्रकाशन, राजघाट, वाराणसी, 1969, पृ0सं0 29
9. यंग इण्डिया, 20 अक्टूबर 1927
10. यंग इण्डिया, 26 सितम्बर 1929

11. महात्मा गांधी, हिन्द स्वराज, अनुवादक–अमृतलाल ठाकेरदास, नवजीवन मुद्रणालय, अहमदाबाद, 1949, पृ0सं0 71
12. डॉ0 बी0एल0 फाड़िया, भारतीय राजनीतिक चिंतन, साहित्य भवन प्रकाशन, आगरा, 2015, पृ0सं0 288
13. डॉ0 बी0के0 श्रीवास्तव एवं डॉ0 वी0पी0 राय, पर्यावरणीय एवं पारिस्थितिकी, ओरियन्ट पब्लिशिंग कम्पनी, नई दिल्ली, 1998, पृ0सं0 124
14. डॉ0 पी0पी0 वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, लक्ष्मी नारायण अग्रवाल प्रकाशन, आगरा, 1971, पृ0सं0 404
15. कृष्ण गोपाल व्यास, गांधी का प्रकृति चिन्तन, सस्ता साहित्य मण्डल प्रकाशन, पृ0सं0 88

***

संस्कृति और शिक्षा

*डॉ. उमाशंकर सिंह**

किसी समाज की पहचान उसकी संस्कृति होती है। यह उसके रहन–सहन एवं खान–पान की विधियां, व्यवहारिक प्रतिमानों, रीति–रिवाजों, कला–कौशल, संगीत, नृत्य, भाषा साहित्य, धर्म–दर्शन और मूल्यों के रूप में जीवित रहती है। शिक्षा पर संस्कृति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। यह देखा जाता है कि जिस समाज की संस्कृति अध्यात्म प्रधान होती है, उस समाज में शिक्षा स्थूल की अपेक्ष सूक्ष्म होती है। दूसरी तरफ हम शिक्ष के माध्यम से ही संस्कृति को सुरक्षित रखते हैं। संस्कृति और शिक्षा का गहरा संबंध हेाता है। और यह एक दूसरे को प्रभावित करते हैं। संस्कृति एक व्यापक सम्प्रत्यय है और यह किसी समाज की सम्पूर्ण जीवन शैली की द्योतक है। समाज अपने आने वाली पीढ़ी को अपनी संस्कृति और शिक्षा से समाज अपने आने वाली पीढ़ी को अपनी संस्कृति और शिक्षा से प्रशिक्षित करता है। प्रायः यह देखा जाता है कि धर्म प्रधान संस्कृतियों के समाज की शिक्षा में चारित्रिक एवं नैतिक विकास पर अधिक बल दिया जाता है। और भौतिक प्रधान संस्कृतियों के समाज में व्यवसायिक विकास पर बल दिया जाता है। इस प्रकार यह स्पष्ट होता है कि किसी समाज की संस्कृति उस समाज की शिक्षा को प्रभावित करती है।

किसी समाज की संस्कृति से अर्थ समाज की सम्पूर्ण जीवन पद्धति से होता है। The Culture of a society means the total way of life of he society संस्कृति हमारे रहन की विधियों और विचारों हमारे दैनिक कार्य, कला साहित्य धर्म और आमोद–प्रमोद के साधनों में हमारी संस्कृतियों की पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी में हस्तांतरित करती है और उसे सुरक्षित रखती है और उसमें विकास करती है। आज अन्तर्राष्ट्रीयता का युग है आज सभी प्रगतिशील समाज अपने बच्चों में सांस्कृतिक उदारता का विकास करने के लिए प्रयत्नशील है और यह कार्य वह शिक्षा के द्वारा ही कर रहे है। अतः हम निष्कर्ष के रूप में यह कह सकते हैं कि किसी समाज की संस्कृति और शिक्षा किसी न किसी रूप और मात्रा में एक दूसरे को प्रभावित करते है, और ये एक ऐसा चक्र है जो सदैव से चलता आ रहा है और सदैव चलता रहेगा।

संस्कृति में यह सब कुछ शामिल है जो कुछ मनुष्य समाज में दिखता है। जैसे ज्ञान, धार्मिक विश्वास, कला, कानून, नैतिकता, रीति–रिवाज, व्यवहार के तौर तरीके, साहित्य संगीत आदि। ए0डब्ल्यू ग्रीन के शब्दों में संस्कृति ज्ञान, व्यवहार विकास की उन आदर्श पद्धतियों को तथा ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न हुये साधनों की व्यवस्था, विकास की उन आदर्ष पद्धतियों तथा ज्ञान और व्यवहार से उत्पन्न हुए साधनों की व्यवस्था को कहते हैं। जो सामाजिक रूप से एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी जाती है। संस्कृति को दो भागों मे विभाजित किया जाता है। 1. भौतिक संस्कृति, 2. अभौतिक संस्कृति।

(1) भौतिक संस्कृति :

भौतिक संस्कृति इसमें भौतिक या पार्थिव वस्तुएं आती है। जो मनुष्य व्यवहार में आती है। जैसे रहने का मकान, घरों का सामान, विविध प्रकार के उपकरण औजार, हथियार, आवागमन के साधन इत्यादि।

(2) अभौतिक संस्कृति :

अभौतिक संस्कृति इसमें अमूर्त वस्तुएं शामिल है। जैसे समाज के विभिन्न रीति–रिवाज, रूढ़ियां, कलाएं ज्ञान और धर्म आदि संस्कृति के विभिन्न अंगों की शिक्षा से मनुष्य को क्या लाभ होता है? संक्षेप में कार्य अथवा उसके योगदान का निरूपण निम्नलिखित रूपों में किया जाता है।

बालक को सांस्कृतिक शिक्षा सबसे पहले उनके परिवार से प्रारम्भ होती है। परिवार में ही व्यक्ति नैतिक मूल्यों और धार्मिक व्यवहार के प्रतिमानों को सीखता है। आजकल अन्य कार्यो के

* एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षा संकाय, के.एन.आई., सुलतानपुर, उ.प्र.।

समान संस्कृति की शिक्षा देने का कार्य परिवार से अधिक विद्यालय मे भी हो रहा है। भिन्न–भिन्न देशों विद्यालयों में देश की संस्कृति के अनुरूप बालकों को शिक्षा दी जाती है। आज पुस्तकों के माध्यम से उनको समूह के विचारों आदर्शों और मूल्यों आदि से परिचित कराया जाता है। हमारी संस्कृति हमें सहिष्णुता की शिक्षा देती है। भारत की संस्कृति परोपकाराय सताम्विभूतयः वसुधैव–कुटुम्बकम, सत्य अहिंसा, त्याग एवं बलिदान की शिक्षा देती है। याज्ञवल्य ऋषि के अनुसार मनुष्य को चरित्रवान और संसार के लिए उपयोगी होना चाहिए।

शंकराचार्य ने शिक्षा की परिभाषा करते हुए लिखा है सा विद्या या विमुक्तये अर्थात् जिससे मुक्ति मिले वही विद्या है। विवेकानन्द के अनुसार– मनुष्य की आंतरिक पूर्णता को अभिव्यक्त करना ही शिक्षा है। गांधी क अनुसार जो मुक्ति के योग्य बनाये वही शिक्षा है। रवीन्द्रनाथ टैगोर के अनुसार शिक्षा मनुष्य को अंतिम सत्य खोजन के योग्य बनाती है जो सत्य हमें पार्थिवः बन्धनों से मुक्त करता है और हमें वह धन देता है जो सांसारिक वस्तु नहीं है, बल्कि आन्तरिक प्रकाश है, जो शक्ति नहीं है, बल्कि प्रेम है और कारण मानव उस सत्य को अपना बल लेता है और उसे ढंग से पकट करता है।

श्री अरविन्द के अनुसार– जो शिक्षा केवल ज्ञान प्रदान करने तक ही सीमित है, वह शिक्षा नहीं है, सच्ची शिक्षा वह है जो मानव का आध्यात्मिक विकास करती है। व्यक्ति को परमसत्ता से योग कराती है। अतः शिक्षा एवं संस्कृति के द्वारा व्यक्ति का शारीरिक, मानसिक, आध्यात्मिक, व्यक्तिगत, संवेगात्मक तथा सामाजिक आदि का सर्वांगीण विकास किया जा सकता है।

संस्कृति के संरक्षण और विकास के लिये शिक्षा :

शिक्षा के द्वारा बालक के स्वाभाविक शक्तियों का विकास किया जा सकता है। चरित्र निर्माण में भी शिक्षा की अहम भूमिका होती है। अच्छे नैतिक चरित्र का विकास शिक्षा के द्वारा ही किया जा सकता है। व्यक्तित्व के विकास में भी शिक्षा की अहम भूमिका होती है, वयस्क जीवन की तैयारी एवम् जीविकोपार्जन के कार्य को सफल बनाने में भी सांस्कृतिक शिक्षा का विशेष योगदान होता है। प्रत्येक प्राणी जन्म से ही कुछ मूल प्रवृत्तियों को लेकर संसार में उत्पन्न होता है।ये मूल प्रवृत्तियां प्रत्येक मानव प्राणी में भिन्न–भिन्न रूपों में पायी जाती है। शिक्षा के द्वारा योग्य नागरिकों का निर्माण किया जा सकता है। संस्कृति और सभ्यता के विकास एवं संरक्षण में शिक्षा एवं संस्कृति की विशेष भूमिका होती है। तथा इसके द्वारा सामाजिक भावना तथा राष्ट्रीय भावना को विकसित किया जा सकता है। हम अपने देश को शिक्षा एवं संस्कृति के द्वारा भावात्मक एकता सर्वधर्मो की समानता कर्तव्यों के प्रति सजगता आदि शिक्षा के द्वारा सीखते हैं। अंत में हम निष्कर्ष के रूप में कह सकते हैं कि संस्कृति और शिक्षा हमारे देश का प्राण है। हमारी पहचान हमारी संस्कृति और शिक्षा है। अन्तर्राष्ट्रीय देशों में हमारी संस्कृति से लोग ज्ञान, सुख शांति की अनुभूति करते हैं। तथा इसके महत्ता को हृदय से स्वीकार करते हैं। हमारी संस्कृति एवं शिक्षा भौतिक ज्ञान के साथ–साथ हमें आध्यात्मिक ज्ञान से आच्छादित करती है।

संदर्भ ग्रन्थ सूची :

1. शिक्षा के आधार (दार्शनिक, समाजशास्त्री एवम् आर्थिक) डॉ0 सूर्य पाल सिंह।
2. भारत की संस्कृति तथा कला, के.जी. श्रीवास्तव।
3. शिक्षा के मूल सिद्धान्त, डॉ0 सतनाम सिंह।

***

अम्बेडकर नगर जनपद में प्राथमिक शिक्ष की स्थिति एवं समस्याओं का एक अध्ययन

*डॉ. विभा सिंह**

प्रस्तुत अध्ययन में अम्बेडकर नगर जनपद के केवल जलालपुर विकास खण्ड के 100 अभिभावक, 95 शिक्षक तथा 5 शिक्षा अधिकारियों को शामिल किया गया था। इसके लिए ऐतिहासिक विवरण को आधार बनाते हुए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया। आंकड़ों के विश्लेषण हेतु प्रतिशत मात्रा की गणना की गयी। निष्कर्ष यह प्राप्त हुआ कि सरकार के लाख प्रयत्नों के पश्चात भी प्राथमिक शिक्षा की स्थिति ज्यों कि त्यों बनी हुई है।

प्रस्तावना :

किसी भी राष्ट्र की प्रगति एवं उसके नागरिकों के व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास में शिक्षा का महत्वपूर्ण स्थान होता है। इसलिए सभी राष्ट्र अपने देश के नागरिकों के लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था करने का प्रयास करते हैं। भारतवर्ष में शिक्षा का प्रारम्भ आज से लगभग 4000 वर्ष पूर्व ही हो चुका था। प्राचीन भारत में मुनियों एवं महर्षियों ने कहा कि ज्ञान से श्रेष्ठतर और कुछ नहीं है– न ही ज्ञानेन सदृशं पवित्र भिह। इस प्रकार भारत वर्ष में प्राचीन वैदिक युग से लेकर अद्यावधि तक शिक्षा का ज्योति कलश देदीप्यमान रहा है, किन्तु शिक्षा जहाँ एक ओर सामाजिक परिवर्तन की प्रक्रिया हैं, वहीं दूसरी ओर परिवर्तित सामाजिक–राजनैतिक व्यवस्थायें, शिक्षा के उद्देश्य, शैक्षिक–संरचना तथा शैक्षिक लक्ष्यों को स्थापित व प्रभावित करती है। भारतीय शिक्षा का इतिहास इस तथ्य का जीवन्त साक्षी है, जो विभिन्न कालावधियों से गुजरते हुए वर्तमान स्वरूप को प्राप्त किया है।

शिक्षा व्यवस्था में बालक के अनुरूप निर्धारित विभिन्न स्तरों की शिक्षा में प्राथमिक–शिक्षा, का स्थान प्रमुख है, क्योंकि यह बालक की शिक्षा की आधारशिला है। इस पर ही माध्यमिक व उच्च शिक्षा निर्भर करती है। प्राथमिक–शिक्षा के इसी महत्व को देखते हुए सरकारें प्रारम्भ से ही इस ओर विशेष ध्यान देती आ रही हैं, लेकिन पाँच दशक बीत जाने और शिक्षा आयोजना व्यय में प्राथमिक–शिक्षा पर खर्च पूर्व की अपेक्षा अधिक होने पर तथा विभिन्न योजनाओं (मिड–डे–मील, छात्रवृत्ति, निःशुल्क पाठ्य पुस्तक एवं ड्रेस वितरण इत्यादि) के क्रियान्वयन के पश्चात भी लगभग 35 प्रतिशत स्कूली बच्चों के लिए शुरूआती पढ़ाई अब भी खट्टे अंगूर है। लेकिन सरकार है कि बुलन्दी के गीत गा रही है। राष्ट्रीय शैक्षिक योजना एवं प्रशासन विश्वविद्यलाय (न्यूपा) की रिपोर्ट खुलासा करती है कि प्राइमरी में दाखिला लेने वाले 9.5 प्रतिशत बच्चे 5 वीं कक्षा पास करने के पहले बीच में ही पढ़ाई छोड़ देते हैं। मानव–संसाधन– विकास–मंत्रालय के सूत्र भी बुनियादी शिक्षा के इस नकारात्मक संकेतक को स्वीकार करते हैं। प्राथमिक–शिक्ष सरकार की नीतियों की प्रयोगशाला मात्र बनकर रह गई है जिससे इस शिक्षा के मार्ग की समस्यायें यथावत विद्यमान हैं। इन्ही सब बिन्दुओं को ध्यान में रखकर शोधकर्ता प्रस्तुत अध्ययन करने के लिए चुनौतीबद्ध हुआ। **अध्ययन के उद्देश्य :** प्रस्तुत अध्ययन का उद्देश्य था – 'अम्बेड़कर नगर जनपद में प्राथमिक शिक्षा की स्थिति एवं समस्याओं का एक अध्ययन''।

अध्ययन की विधि : प्रस्तुत अध्ययन में ऐतिहासिक विवरण को आधार बनाते हुए सर्वेक्षण विधि का प्रयोग किया गया था।

शोध समष्टि : प्रस्तुत अध्ययन में अम्बेडकर नगर जनपद के केवल जलालपुर विकास खण्ड को शामिल किया गया था।

शोध न्यादर्श : प्रस्तुत अध्ययन में अम्बेडकर नगर जनपद के केवल जलालपुर विकास खण्ड को शामिल किया गया था।

---

* विभागाध्यक्ष श्री वासुदेव प्राथमिक शिक्षण, प्रशिक्षण संस्थान गुतवन, जलालपुर, जौनपुर।

शोध उपकरण : प्रस्तुत शोध अध्ययन में आँकड़ों के संकलन हेतु शोध उपकरण के रूप में प्रत्यक्ष निरीक्षण तथा साक्षात्कार प्रविधि का प्रयोग किया गया था।

विश्लेषण प्रविधि : प्रस्तुत शोध अध्ययन में आँकड़ों के विश्लेषण के लिए प्रतिशत मात्रा की गणना की गई थी, जिसके आधार पर परिणामों को व्यक्त करने का प्रयास किया गया था। **अध्ययन की सीमाएं :** अम्बेडकर नगर जनपद के जलालपुर विकास खण्ड के 100 अभिभावक, 95 शिक्षकों तथा 5 शिक्षाधिकारियों को प्रस्तुत अध्ययन में शामिल किया गया था।

विश्लेषण : प्रस्तुत अध्ययन के समय शोधकर्ता ने निम्नलिखित समस्याओं को इंगित किया था, जिसका विवरण निम्नलिखित है– **प्राथमिक–शिक्षा की समस्याओं से सम्बन्धित तालिका**

क्र. सं.	प्राथमिक शिक्षा की समस्याएं	अभिभावकों का मत प्रतिशत	शिक्षकों का मत प्रतिशत	शिक्षाधिकारियों का मत प्रतिशत
1.	प्राथमिक विद्यालयों की उपलब्धता	10	10	2
2.	अध्यापकों की कमी	80	94	30
3.	अध्यापकों का समय से न आना	60	10	15
4.	अध्यापकों का अन्य शिक्षणेत्तर कार्य करना	75	95	88
5.	पाठयक्रम का अव्यवहारिक होना	65	80	60
6.	परम्परागत अध्यापन विधि का प्रयोग	80	45	70
7.	भौतिक संसाधनों का अभाव	70	60	10
8.	एकल विद्यालयों का होना	65	70	20
9.	नामांकन में असमानता	60	70	50
10.	अभिभावकों की अशिक्षा	55	90	70
11.	बालिका शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण	50	70	45
12.	सरकार की दोषपूर्ण नीतियाँ	90	65	55
13.	मिड–डे मील का उचित क्रियान्वयन न होना।	95	70	20

तालिका से स्पष्ट है कि प्राथमिक विद्यालयों की अनुपलब्धता के सम्बन्ध में 10 प्रतिशत अभिभावक एवं 10 प्रतिशत शिक्षकों तथा 2 प्रतिशत शिक्षा अधिकारियों का मत है कि विद्यालयों की कमी है। अध्यापकों की कमी के सन्दर्भ में 80 प्रतिशत अभिभावक एवं 94 प्रतिशत शिक्षकों तथा 30 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मानना है कि विद्यालयों में शिक्षकों की कमी है। 60 प्रतिशत अभिभावकों का मत है कि शिक्षक विद्यालय समय से नहीं आते, वहीं 10 प्रतिशत शिक्षक ही इससे अपनी सहमति व्यक्त करते हैं। 15 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मत है कि शिक्षक समय से विद्यालय नहीं आते। अध्यापकों के अन्य शिक्षणेत्तर कार्य करने के सम्बन्ध में 75 प्रतिशत अभिभावक, 95 प्रतिशत शिक्षक और 88 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मत हैं कि उन्हें ऐसे कार्यो में नहीं लगाना चाहिये। 65 प्रतिशत अभिभावक, 80 प्रतिशत शिक्षक व 60 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मत है कि प्राथमिक–शिक्षा का पाठ्यक्रम अव्यवहारिक है। परम्परागत अध्यापन विधियों के प्रयोग के सन्दर्भ में 80 प्रतिशत अभिभावक,

45 प्रतिशत शिक्षक तथा 70 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मत है कि ऐसा होता है। विद्यालयों में भौतिक संसाधनों के अभाव के सम्बन्ध में 70 प्रतिशत अभिभावक, 60 प्रतिशत शिक्षक तथा 10 प्रतिशत शिक्षाधिकारी ही इससे सहमति व्यक्त करते हैं। एकल विद्यालय होने के सम्बन्ध में 65 प्रतिशत अभिभावक, 70 प्रतिशत शिक्षक, 20 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मत है कि गाँवों में स्थापित अनेक विद्यालय ऐसे हैं जहाँ एक ही शिक्षक के भरोसे शिक्षा व्यवस्था छोड़ दी गयी है। 60 प्रतिशत अभिभावक, 70 प्रतिशत शिक्षक, 50 प्रतिशत शिक्षा अधिकारी नामांकन में असमानता का समर्थन करते हैं। 55 प्रतिशत अभिभावक, 90 प्रतिशत शिक्षक, 70 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मत है कि अभिभावकों की अशिक्षा भी प्राथमिक–शिक्षा की सर्व सुलभता में बाधक हैं। बालिका शिक्षा के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण पर 50 प्रतिशत अभिभावक, 70 प्रतिशत शिक्षक व 45 प्रतिशत शिक्षाधिकारियों का मत है कि प्राथमिक–शिक्षा की एक महत्वपूर्ण समस्या के रूप में बालिका शिक्षा के प्रति लोगों का नकारात्मक दृष्टिकोण भी है। सरकार की दोषपूर्ण नीतियों के सन्दर्भ में 90 प्रतिशत अभिभावक, 65 प्रतिशत शिक्षक, 55 प्रतिशत शिक्षाधिकारी अपनी सहमति व्यक्त करते हैं। मिड–डे–मील के उचित क्रियान्वयन न होने के सम्बन्ध में 95 प्रतिशत अभिभावक, 70 प्रतिशत शिक्षक तथा 20 प्रतिशत शिक्षाधिकारी अपनी सहमति व्यक्त करते हैं।

निष्कर्ष :

उपरोक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि प्राथमिक–शिक्षा की स्थिति ज्यों की त्यों बनी हुई है। कारण है कि समाज का कोई भी वर्ग अब इसे अच्छी नजर से नहीं देख रहा है। पूर्वाग्रह से ग्रस्त अभिभावकों का एक वर्ग सरकार के लाख प्रयत्नों के पश्चात भी अपने पाल्यों को वहाँ नामांकित नहीं कराना चाहता। वक्त है संभलने का कि हम अपनी थाती को कैसे सुरक्षित रखें, अगर इस पर गम्भीरतापूर्वक विचार नहीं किया गया तो हम विकसित राष्ट्र के लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

सुझाव :

प्राथमिक–शिक्षा, शिक्षा का आधार स्तम्भ होती है। इसी पर उच्च शिक्षा का राज प्रासाद तैयार किया जाता है। अतः जब हमारी शिक्षा की नींव कमजोर होगी, तब हम विकसित राष्ट्र की कल्पना मात्र कर सकते हैं। इसलिए हमें चाहिए कि प्रत्येक नागरिक जो अभिभावक भी है, शिक्षक भी है, शिक्षाधिकारी भी है और सरकारी मशीनरी में उच्च पदों पर बैठा हुआ है, को अपने दायित्वों को समझना होगा तथा उसे पूर्ण ईमानदारी के साथ क्रियान्वित भी करना होगा तभी हम जाकर प्राथमिक–शिक्षा की समस्याओं का समाधान कर सकते हैं और विकसित भारत के निर्माण में अपना योगदान दे सकते हैं।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. **बाजपेई डॉ0 एल0बी0 –** भारतीय शिक्षा का विकास एवं सम सामाजिक प्रवृत्तियां, आलोक प्रकाशन, अमीनाबाद, लखनऊ, (2008)
2. **सिन्हा डॉ0 नीता –** भारतीय शिक्षा की सम सामयिक समस्यायें– प्रो0 मदन, न्यू कैलाश प्रकाशन, इलाहाबाद, (2008)
3. **गुप्ता अखिलेश –** आजमगढ़ की प्राथमिक शिक्षा, शोध प्रबन्ध, शिक्षा संकाय, वीर बहादुर सिंह पूर्वान्चल, विश्वविद्यालय, जौनपुर (2006)
4. **शुक्ला गोपाल –** आजमगढ़ की प्राथमिक शिक्षा, शोध प्रबन्ध, शिक्षा संकाय, वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल, विश्वविद्यालय, जौनपुर (2007)
5. **दैनिक जागरण –** 24 जनवरी, 2008 लखनऊ संस्करण
6. **जायसवाल सीताराम–** भारतीय शिक्षा का इतिहास, प्रकाशन केन्द्र लखनऊ, (1970)

***

अक्षमताग्रस्त बच्चों की देख-भाल में माता-पिता की भूमिका

*डॉ. प्रमोद कुमार**

बच्चे के सम्पूर्ण विकास में माता–पिता का महत्वपूर्ण योगदान होता है, चाहे वह विकास जन्मपूर्व हो या फिर जन्म के पश्चात्। जन्मपूर्व अवस्था (गर्भावस्था) के दौरान गर्भवती स्त्री का बच्चे के विकास पर खान–पान, स्वास्थ्य, आयु, विभिन्न दवाओं या मादक पदार्थो का सेवन तथा परिवार के विभिन्न सदस्यों द्वारा उसके प्रति प्रदर्शित व्यवहार, इत्यादि कारकों का प्रभाव पड़ता है। जन्म के पश्चात इन सभी के अलावा माता–पिता की विभिन्न भूमिकाओं का बच्चे पर सकारात्मक/नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

शिशु का जन्म सम्पूर्ण परिवार, विशेषकर माता–पिता के लिए एक सुखद अनुभव होता है। जिस प्रकार नया खिलौना या वस्तु को प्राप्त कर बच्चा फूले नहीं समाता, ठीक उसी प्रकार शिशु के जन्मोपरान्त माता–पिता की खुशी का ठिकाना नहीं रहता है। नवजात शिशु से अन्तः क्रिया करने का माता–पिता एवं परिवार के अन्य सदस्यों के द्वारा हर तरह से प्रयास किया जाता है। परन्तु

यदि शिशु की ओर से उनकी इस अन्तः क्रिया का उत्तर नहीं मिल पाता है, तो माता–पिता पर इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। वे चिन्तित, चिड़चिड़े एवं परेशान हो जाते हैं। शिशु की इस वर्तमान असामान्य अवस्था का कारण वह स्वयं नहीं होता, इसलिए माता–पिता को शिशु के प्रति अपने व्यवहार को कभी भी परिवर्तित नहीं करना चाहिए। जिस प्रकार एक बाग के प्रत्येक पुष्प समान रूप से विकसित नहीं होते, कुछ कम खिलते हैं और कुछ ज्यादा खिलते हैं, कुछ जल्दी तो कुछ देर से खिलते हैं। ऐसी अवस्था में यह माली का परम्कर्तव्य होता है कि वह समस्त पुष्प का समान रूप से देख–भाल करें, सम्भव है कि कुछ पुष्प देर से ही सही परन्तु खिल जाएं। एक बच्चे के प्रति माता–पिता की भूमिका ठीक एक बाग के माली की तरह ही होती है। वे जिस प्रकार का सहयोग, सुरक्षा इत्यादि बच्चे को देंगे या बच्चे के प्रति जिस प्रकार की भावना/सोच प्रदर्शित करेंगे, ठीक उसी प्रकार उसमें विकास होगा।

बच्चा सामान्य है या असमान्य, इसकी पहचान स्वयं माता–पिता या किसी विशेषज्ञ/चिकित्सक द्वारा किया जाता है। एक बार यदि बच्चे की अक्षमता की पहचान हो जाती है, तो माता–पिता की बच्चे के प्रति जिम्मेदारी और भी पढ़ जाती है। ऐसे में माता–पिता को अपने अक्षम बच्चे के प्रति निम्नलिखित सकारात्मक कदम उठाने की आवश्यकता होती है।

1. अक्षमता की पहचान :

कुछ अक्षमताएँ प्रत्यक्ष रूप से पहचानी जा सकती हैं और कुछ अक्षमताओं के लिए चिकित्सकीय/अन्य प्रमाण का होना अतियावश्यक माना जाता है। उसके बिना किसी बच्चे को अक्षम की संज्ञा नहीं दी जा सकती है। इसलिए यदि जन्म लिया शिशु कुछ असामान्य अनुक्रियाएँ करता है या उम्र के अनुसार उसमें कुछ विकास प्रत्यक्ष नहीं प्रदर्शित होते हैं, तो माता–पिता को किसी बाल–चिकित्सक या विशेषज्ञ से अवश्य सम्पर्क करना चाहिए। इससे माता–पिता की बच्चे के विकास या व्यवहार से सम्बन्धित कुछ आशंकाएँ दूर हो सकती हैं या उनकी सही रूप से पहचान हो सकती है। समस्याओं की सही पहचान से उसका उपचार एवं प्रबन्धन किया जाना आसान हो जाता है।

2. सकारात्मक सोच :

यदि बच्चा चिकित्सीय प्रमाण या अन्य विशेषज्ञों द्वारा अक्षम घोषित कर दिया जाता है, तो माता–पिता को उस बच्चे के प्रति सोच को नकारात्मक नहीं करना चाहिए। नकारात्मक सोच से बच्चे की अवस्था में सुधार तो नहीं होगा, परन्तु इस सोच के कारण बच्चे की अवस्था और गम्भीर अवश्य हो सकती है। सामान्य बच्चे के प्रति भी यदि माता–पिता की सोच सकारात्मक न रहे, तो उस पर

* प्राचार्य, राधाकृष्णन कॉलेज ऑफ एजुकेशन, साहपुर विक्रम पटना

इसका नकारात्मक प्रभाव पड़ सकता है। अतः यदि बच्चे की अक्षमता का प्रमाण माता–पिता के समक्ष प्रस्तुत हो जाता है, तो माता–पिता को बच्चे के प्रति पूर्ववत् सकारात्मक सोच बनाए रखना चाहिए।

1. विशेष सहायता/सहयोग :

बच्चा जब तक वयस्कावस्था को प्राप्त नहीं होता, तब तक उसको माता–पिता द्वारा उसकी उम्र, लक्ष्य, लिंग, जरूरतइत्यादि के अनुरूप सहयोग किये जाने की आवश्यकता पड़ती है। यदि बच्चा अक्षमता से ग्रसित हो जाता है, तो उसकी विशेष सहायता के रूप में माता–पिता को अक्षमता के प्रकार एवं स्तर के आधार पर विभिन्न चिकित्सकीय या गैर–चिकित्सकीय सहयोग जैसे– विशेष शिक्षा, विशेष प्रशिक्षण, वाणी चिकित्सा, भाषा चिकित्सा, भौतिक चिकित्सा, व्यवसायिक चिकित्सा, औषधि चिकित्सा इत्यादि प्रदान किया जाना चाहिए। इस समस्त सहयोग को यदि बच्चे को सही समय एवं सही मात्रा में प्रदान किया जाय, तो बच्चे की वर्तमान अक्षमता की अवस्था में सुधार लाया जा सकता है।

2. सम्प्रेषण :

सम्प्रेषण का सामान्य अर्थ अपने भाव एवं विचारों को दूसरे के समक्ष प्रस्तुत करना या उनके विचारों को सुनना एवं समझना होता है। अर्थात् माता–पिता को एक अच्छा वक्ता होने के साथ–साथ एक अच्छा श्रोता भी होना चाहिए। जब बच्चा अक्षमता से ग्रसित हो जाता है और माता–पिता उसकी अवस्था से पूरी तरह परिचित हो जाते हैं, तो ऐसी स्थिति में वे अपने बहुत से भावों एवं विचारों को बच्चे के समक्ष प्रस्तुत भी करते हैं, जिनमें से अधिकांशतः नकारात्मक भाव होते हैं। यदि बच्चा अपनी अक्षमता से सुपरिचित हो जाता है, तो उसके हृदय में भी बहुत से भाव होते हैं जिन्हें जब वह प्रत्यक्ष व अप्रत्यक्ष रूप से माता–पिता के सामाने व्यक्त करता है, तभी सम्प्रेषणका अर्थ सही रूप से पूरा होता है।

3. उचित अवसर :

जब परिवार में अक्षम बच्चे के अलावा अन्य सामान्य बच्चे भी होते हैं, तो ऐसी अवस्था में माता–पिता प्रायः किसी भी कार्य के लिए अक्षम बच्चे को बहुत ही कम या कोई भी अवसर प्रदान नहीं करते हैं। इससे बच्चे के मानसिक विकास पर गहरा आघात लगता है। अतः माता–पिता द्वारा उस बच्चे को उसकी अक्षमता के आधार पर उचित अवसर अवश्य प्रदान करना चाहिए, जिससे उसका आत्मविश्वास बढ़ से, क्योंकि उचित अवसर एवं आत्मविश्वास में सकारात्मक सम्बन्ध होता है। उस बच्चे को जितने ही अधिक से अधिक अवसर प्राप्त होगें उतना ही उसका आत्मविश्वास बढ़ेगा और उसका मानसिक विकास सुदृढ़ होगा।

4. खाली समय का सदुपयोग :

माता–पिता की सबसे प्रमुख समस्या समय के उपयोग की होती है। अक्सर खाली समय में वे आराम करना एवं विभिन्न संसाधनों जैसे–टी.वी., अखबार, कम्प्यूटर इत्यादि पर अपना समय व्यतीत करते हैं। जबकि उन्हें खाली समय को ज्यादा–से–ज्यादा अपने बच्चों के लिए उपयोग करना चाहिए। बच्चा सामान्य होने की अवस्था में माता–पिता का साथ चाहता है। उसे बहुत सी अनभिज्ञ वस्तुओं, व्यक्तियों के विषय में माता–पिता के माध्यम से ही जानकारी मिलती है। परन्तु जब बच्चा अक्षम होता है, तो उसे अपेक्षाकृत माता–पिता की अत्यधिक आवश्यकता होती है। वह ज्यादा से ज्यादा समय माता–पिता के साथ बिताना चाहता है, क्योंकि बाहरी दुनिया या लोगों के विषय में उसे भी अधिकतर जानकारी अपने माता–पिता से प्राप्त होती है। इसलिए माता–पिता को अक्षम बच्चे के साथ अधिक–से–अधिक समय व्यतीत करना चाहिए।

1. बृहद सामाजिक दायरा :

प्रायः ऐसा देखा जाता है कि जब एक बच्चा अक्षमता से ग्रसित हो जाता है, तो उसे माता–पिता समाज के समक्ष नहीं लाना चाहते हैं अथवा अन्य बाहरी व्यक्तियों से उसे नहीं मिलने देते हैं जिससे उनका सामाजिक दायरा सीमित हो जाता है। ऐसी अवस्था में बच्चे पर बुरा प्रभाव पड़ सकता है। क्योंकि जब तक बच्चा परिवार के अलावा अन्य लोगों से नहीं मिलेगा या बात नहीं करेगा, तब तक उसके मानसिक विकास का विस्तार नहीं होगा। इसलिए माता–पिता को अपने अक्षम बच्चे

को विभिन्न समारोहों या कार्यक्रमों से साथ ले जाना चाहिए तथा उसे बाहरी लोगों से भी मिलने का अवसर प्रदान करना चाहिए, जिससे उसका संज्ञानात्मक विकास हो सके।

2. सहायक संसाधन :

अक्षम बच्चे को केवल शाब्दिक सहयोग की ही नहीं बल्कि कुछ सहायक संसाधनों का भी सहयोग अपेक्षित होता है, जैसे– कम्प्यूटर, टी.वी., रेड़ियों, किताबें इत्यादि। ये ऐसी आवश्यक सहायक सामग्रियाँ हैं, जो बच्चे के मनोरंजन के साथ–साथ उसके मानसिक विकास में सहयोग प्रदान करती हैं। टेलीविजन में बच्चों के मानसिक विकास से सम्बन्धित बहुत से कार्यक्रम आते हैं, जिसके माध्यम से उनको आनन्द की प्राप्ति होती है। इसी प्रकार कम्प्यूटर/लैपटाप पर विभिन्न माध्यमों से उसकी रचनात्मक शक्ति का विकास होता है। उसी प्रकार रेड़ियों एवं किताबों के माध्यम से उसे स्वयं के सम्बन्ध में तथा अन्यों के विषय में बहुत सारी जानकारियाँ प्राप्त होती हैं।

1. पालन–पोषण में विशेष तकनीकि सहयोग :

बच्चे में विभिन्नता के आधार पर उनके पालन–पोषण की तकनीकियाँ भी भिन्न हो जाती हैं। अर्थात् एक बच्चे को अक्षमता से ग्रसित हो जाने पर उसके लिए पालन–पोषण के तरीके विशेष हो जाया करते हैं। इन बच्चों को उनकी शारीरिक आवश्यकताओं के अनुसार भोज्य पदार्थ एवं औषधि सहयोग प्रदान करना चाहिए, जिससे अक्षमता के शारीरिक प्रभाव पर नियंत्रण किया जा सके। उनके खान–पान के अलावा पहनावा, दैनिक क्रिया–कलापों में सहयोग, नैतिकता से परिचित कराना, इत्यादि से सम्बन्धित आवश्यकता का भी ध्यान रखना चाहिए।

2. पुनर्बलन :

पुनर्बलन एक ऐसा बाह्य अभिप्रेरक होता है जो किसी आयु, लिंग, जाति/प्रजाति से सम्बन्धित नहीं है। हममें से हर किसी को अपने कार्य के प्रति पुनर्बलन की आशा होती है। पुनर्बलन एक ऐसा वातावरण का निर्माण करता है जिससे प्रत्येक व्यक्ति में अधिगम का प्रसार होता है। विशेष/अक्षम बच्चे को भी पुनर्बलन की आवश्यकता होती है। विशेषकर वे पुनर्बलन जो प्रत्यक्ष होते हैं, जैसे– कोई मेडल/शील्ड, प्रमाण–पत्र इत्यादि। 'प्रत्यक्ष पुनर्बलन' पुनर्बलन का वह प्रकार होता है जिसे हम सब 'प्रेक्षण' कर सकते हैं। यद्यपि पुनर्बलन कार्य में उन्नति के आधार पर प्रदान किये जाते हैं, परन्तु सामान्य तौर पर किसी क्रिया में बच्चे की संलग्नता एवं सहयोग के लिए भी पुनर्बलन का विशेष महत्व होता है। चूँकि अक्षम बच्चों में कार्यात्मक उपलब्धि काफी कम या न के बराबर होती है ऐसी अवस्था में किसी भी कार्य की इच्छा/रूचि इन बच्चों में रह नहीं पाती अथवा बहुत कम होती है। इसलिए इन बच्चों को कार्य में उपलब्धि के आधार पर नहीं बल्कि कार्य में उनकी उपस्थिति के आधार पर भी पुनर्बलन प्रदान करना चाहिए। इस प्रकार पुनर्बलन उनके कार्य में उपलब्धि के लिए सकारात्मक स्थल का निर्माण कर सकता है।

3. माता–पिता एवं परिवार के सदस्यों का परस्पर सम्बन्ध :

बच्चे के साथ अच्छा व्यवहार करने से उसका मानसिक विकास बहुत ही बेहतर होता है, परन्तु यदि माता–पिता एवं पिरवार के अन्य सदस्यों का आपसी सम्बन्ध खराब होता है, तो उसका परस्पर बुरा ही प्रभाव पड़ता है। इससे बच्चे को पूरी तरह सहयोग नहीं मिल पाता अर्थात् बच्चे के साथ तो माता–पिता का अच्छा व्यवहार रहता है, परन्तु अन्य लोगों से परस्पर सम्बन्ध अच्छा नहीं होता है। इससे बच्चे को माता–पिता द्वारा उसके प्रति अभिव्यक्त व्यवहार में कृत्रिमता नजर आने लगती है और बच्चे पर माता–पिता का सकारात्मक सहयोग कम प्रभावशाली बन जाता है। इसलिए अक्षम बच्चे के साथ अच्छा व्यवहार करने के साथ–साथ माता–पिता को स्वयं एवं परिवार के अन्य सदस्यों के साथ भी अच्छा व्यवहार करना चाहिए।

अतः स्पष्ट है कि बच्चे के अक्षम हो जाने पर माता–पिता की भूमिकाएँ विशेष हो जाती हैं। उपर्युक्त वर्णित भूमिकाओं के अलावा भी कई ऐसी भूमिकाएँ हो सकती हैं जो बच्चे को अक्षमता के आधार पर निर्मित हो सकती हैं। वास्तव में लोगों तथा उनकी सोच से अनभिज्ञ रहता है। उसे इस सबकी बहुत ही धीमी गति से जानकारी होती है। सत्य ही कहा गया है कि बच्चे का मस्तिष्क एक खाली स्लेट

की तरह होता है, उस पर जिस प्रकार की बातें माता–पिता लिखना चाहें, लिख सकते हैं और बच्चा सर्वप्रथम वही सारी बातें ही सीखता है। अतः विशेष/अक्षम बच्चे के प्रति माता–पिता की भूमिकाएँ विशेष अर्थ वाली होती चाहिए, जिससे वे भी अन्य बच्चों की तरह समान रूप से आत्मनिर्भर बन सके।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1 जोसेफ डा० आर० ए० (2007) व्यव्हार परिमार्जनः एक परिद्रश्य समाकलन पब्लिशर्स, वाराणसी 221005(उ०प्र०)

2 Huddr asmita, more rekha etc (2006, 2011), Kanishka publishers, distributors New delhi 110002

3 sharma Dr. M.K(2013) linguistics an introduction to language and communications, kumud publications delhi 110002(india) पाल, हंशराज, पाल आशा(2008)

4 अधिगम निर्योग्यो की शिक्षा, शिप्रा पब्लिकेशन दिल्ली 110002(भारत)

5 मूरजानी डा० जानकी, गरयानी डा० ममता(2012) विशिष्ट बालक, अविष्कार पब्लिशर्स,डिस्ट्रीव्युटरस जयपुर 302003(राजस्थान)

6 दूबे डा० संदीप कुमार (2012) द्रष्टिबाधा और आवश्यक कौशल, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीव्युटरस नई दिल्ली 110002

7 भनोट सुमन (2009) श्रवण- क्षतियुक्त बालक: कारण पहचान एवं उपचार कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीव्युटरस नई दिल्ली 110002

8 शर्मा योगेन्द्र कुमार,(2012) प्रतिभा संपन्न एवं स्रजनात्मक बालक: पहचान प्रकार एवं विशेषताएं, कनिष्क पब्लिशर्स, डिस्ट्रीव्युटरस नई दिल्ली 110002

9 Balsara Maitreya (2012) Hearing Impairment and deafness (Symptoms, Types and prevention Strategies) Kanishka publishers, distributors New delhi 110002

10 Reddy Dr. G. lokanadha (2007) Special Education Teachers, Discovery Publishing House new delhi-110002

***

भक्तिकाल : समता और सहअस्तित्व का काल

*डॉ. शिखा तिवारी**

संस्कृतियों के समुच्चय का उदाहरण भारतीय समाज है। शायद की विश्व की कोई सभ्यता और संस्कृति हो जिसके निशान भारत में ना मिलें। भारतीय समाज का ताना–बाना बहुरंगी और बहुआयामी है। भारतीय समाज में सहअस्तित्व की चेतना बराबर बनी हुई है। भारत की सोच सदा–सर्वदा वैश्विक रही है अर्थात् हममे हमेशा 'वसुधैव कुटुम्बकम्' की भावना रही है। भारतीयों में यह भावना ऐसे नहीं आई यह प्राचीन भारत के ऋषियों की तपस्या और साधना का परिणाम था और भारतीय राष्ट्रीय जागरण की पृष्ठभूमि तैयार करने में भक्तिकालीन संतो–भक्त कवियों की महनीय भूमिका रही है। भारतभूमि ही वह पुण्यस्थल है, जहाँ लोगों ने ईश्वर की खोज, ईश्वर–सामीप्य, ईश्वर–प्राप्ति, ईश्वर–लाभ आदि को ही मानव जीवन का लक्ष्य या उद्देश्य बताया है और उसी लक्ष्य की प्राप्ति हेतु मानव प्रवृत्ति और स्वभाव के अनुकूल तरह–तरह के मार्ग और सम्प्रदाय विकसित हुए जो एक ही लक्ष्य तक पहुँचाते हैं। यह भक्ति एक आन्दोलन का रूप ले लेती है जो पूरे भारत में फैल जाती है। पहली बार मानव को जाति से अलग एक मनुष्य के रूप में देखा जाता है। पहली बार भक्ति आन्दोलन के माध्यम से भारत में आधुनिकता का प्रवेश होता है। पहली बार भारत में उत्तर से दक्षिण तक के सभी संतो के मत एक होते हैं, चाहे निर्गुण हों या सगुण, चाहे उड़ीसा का पंचसखा सम्प्रदाय हो या महाराष्ट्र का वारकरी, चाहे रामानंदी वैरागी हो चाहे निरंजनी सम्प्रदाय वाले, चाहे जोगमनी संप्रदाय के लोग हों या गोरख के मत वाले। कुछ बिन्दुओं पर भारत के सभी सन्त–भक्त एक थे। इसी कारण भक्तिकाल में आधुनिकता के सारे लक्षण मिलते हैं।

डॉ. बच्चन सिंह ने लिखा है– ''यह पहला नवजागरण था जो कश्मीर से कन्याकुमारी और गुजरात से असम तक फैला हुआ था।''[1] यह भी सच है कि मुस्लिम आक्रमणकारियों ने मन्दिर तोड़े, हिन्दुओं पर अत्याचार किए और लोगों को बलात् मुसलमान भी बनाया। इस सम्बन्ध में शुक्ल जी का मत भी हम सबको विदित है कि भक्ति आन्दोलन मुस्लिम आक्रमणकारियों के कारण अस्तित्व में आया, परन्तु आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी जी की यह बात ही पूर्ण सत्य है कि ''अगर इस्लाम न भी आया होता तो भी हिन्दी साहित्य का बारह आना वैसा ही होता जैसा आज है।''[2]

भारत पर आक्रमणकारियों की निगाह तो पड़ ही चुकी थी। सर्वत्र बिखराव, टूटन, नैराश्य, विषाद और अवसाद का माहौल था। ऐसे में भक्ति काल के सन्त कवियों ने अपने समय से आगे बढ़कर सम्पूर्ण भारत में भक्ति आन्दोलन जैसा व्यापक जन–आन्दोलन खड़ा किया, जिसने पहली बार मानव–मानव की समता का सन्देश दिया। यह समूचे अर्थ में व्यापक जनआन्दोलन बन गया। जैसा कि आलोचक डॉ. बच्चन सिंह स्वीकार करते हैं कि दीन–हीन हिन्दू जनता में अपनी भक्ति और काव्य संजीवनी से नया जीवन, नयी आशा और नया विहान आया। भक्ति आन्दोलन व्यापक सांस्कृतिक आन्दोलन था जिसकी अभिव्यक्ति दर्शन, स्थापत्य, धर्म, कला, साहित्य, भाषा और संस्कृति के दूसरे रूपों में दिखाई देती है। इसकी सजीव और सार्थक परम्पराएँ भारतीय जनजीवन में घुली–मिली हैं। यह केवल कविता का ही आन्दोलन नहीं है, बल्कि यह एक अखिल भारतीय समग्र साहित्यिक सांस्कृतिक आन्दोलन है जिसमें पहले की संस्कृति, परम्परा और विकास की महत्वपूर्ण भूमिका है। भक्तिकालीन कविता जनता के जीवन में रमी हुई कविता है, परम्परा और संस्कृति भी है।

पिछले कुछ वर्षों में भारत में अनेक जनान्दोलन हुए हैं। उन आन्दोलनों में भक्त कवियों की याद आती रही है। भक्ति आन्दोलन को आचार्य रामचन्द्र शुक्ल 'लोकधर्म की अभिव्यक्ति', डॉ. रामविलास शर्मा 'लोकजागरण का काव्य', आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी लोकधर्म को भक्ति आन्दोलन

* एसोसिएट प्रोफेसर (हिन्दी), डी.सी.एस.के.पी.जी.कालेज, मऊ

की जन्मभूमि मानते हैं और डॉ. श्याम सुन्दर दास और जार्ज ग्रियर्सन जी ने भक्तिकाल को 'हिन्दी साहित्य का स्वर्णयुग' माना है।[3]

भक्ति आन्दोलन सीधे–सीधे 'लोक' या 'जन' से जुड़ा है। जन भावनाएँ, जन समस्याएँ, जनेच्छा, जनकल्याण ही इसका प्राण है। ''भक्ति साहित्य ने सौन्दर्यशास्त्र को नया आयाम दिया है। इसमें 'लोकप्रिय जातीय संस्कृति' की जो छवि दिखाई पड़ती है, वह फिर नहीं दिखाई पड़ी। कलात्मकता और ऐतिहासिकता का इतना रोचक और रसात्मक संवाद पुनः नहीं सुनाई पड़ा। साहित्य संगीत और कला के रंगारंग का इतना पवित्र संगम फिर नहीं परिलक्षित हुआ। वर्ग–संघर्ष और वर्ग–सहयोग का द्वन्द्वात्मक दृश्य फिर नहीं दृष्टिगोचर हुआ। एक अत्यन्त महत्वपूर्ण बात और हुई, वह यह कि भक्ति आन्दोलन ने अपभ्रंश और संस्कृत को छोड़कर नव्य आर्यभाषा का प्रयोग किया, वो हिन्दी जाति के गठन का मूल आधार है।''[4]

यह सारी चेष्टा काव्य को जनता से 'लोक' से जोड़ने के लिए ही है। पूरे भक्ति आन्दोलन का लक्ष्य 'मानुष सत्य की खोज' 'मनुष्यत्व की रक्षा और उसका विकास' है।[5]

सम्पूर्ण भक्तिकाल इसी लक्ष्य की ओर उन्मुख है। राष्ट्रीय जागरण में भक्ति आन्दोलन का प्रभाव महात्मा गांधी और रवीन्द्रनाथ टैगोर पर दिखाई पड़ता है। मोटा–मोटी भक्तिकाल का देय इस प्रकार है –

- पहली चीज तो यह है कि इन भक्त कवियों ने मानव को ऊँच–नीच, छोटा–बड़ा, छूत–अछूत की भावना से मुक्त करने की कोशिश की है। भारतीय समाज आज तक इस भावना से मुक्त नहीं हो पाया है। उस काल में इतनी दूरदर्शिता और इतनी आधुनिकता सामान्य बात नहीं है।
- भक्तिकाल में कवियों ने सामाजिक बुराइयों पर जिस निर्भीकता से चोट की है, वह किसी अन्य युग में नहीं मिल सकता। समाज के गरीब तबके हाशिये के समाज के हक और अधिकार की बात उसी समय संत भक्तों ने उठाई जैसे– जाति व्यवस्था की समस्या, स्त्री की समस्या, अस्पृश्यता की समस्या आदि। ''यह अन्याय के विरोध में मुखरित संघर्षधर्मी कविता है।''[6]
- मातृभाषा में रचना करके मध्यकालीन संतों ने उसको अपना दर्जा और सम्मान फिर से दिलाया। यह भी एक अपूर्व घटना है।
- ''देश भर के संत और भक्त कवि सामंतवादी विरोधी थे। वे चाहे हिन्दी के कबीर हों या मराठी के ज्ञानेश्वर और तुकाराम हों या कश्मीर की ललद्यद।''[7]
- संत कवि 'आचरण की पवित्रता' और 'हृदय की निश्छलता' के साथ 'आत्मशुद्धि' पर बल देते हैं। उनका कहना है कि 'संत का स्वभाव' ग्रहण कर लेने पर 'ईश्वरलाभ' में देर नहीं लगती। संत का स्वभाव बताते हुए गोस्वामी तुलसीदास का प्रसिद्ध पद है–

कबहुँक हौं यही रहिन रहौंगो
श्री रघुनाथ कृपाल कृपा ते, संत–स्वभाव गहौंगो
जथालाभ संतोष सदा, काहू सो कछु न चहौंगो
परहित निरत निरन्तर, मन, क्रम, वचन, नेम निबहौंगो
परूष वचन अति दुसह स्रवन सुनि, तेहि पावक न दहौंगो
विगत मान सम शीतल मन, पर गुन नहीं, दोष कहौंगो।
परिहरि देह जनित चिन्ता, दुख, सुख, समबुद्धि सहौंगो।
तुलसीदास प्रभु यहि पथगहि, अविचल हरि भक्ति लहौंगो।।[8]

इस पद का अर्थ यह है कि कभी तो मैं साधु–स्वभाव ग्रहण करूँगा। जो मिल जाए उसी में संतोष करूँगा, परहित में संलग्न रहूँगा, पुरूष वचन नहीं बोलूँगा, अहंकार समाप्त करके समदर्शी मन कर लूँगा, पर दोष चिन्तन नहीं करूँगा। दुख सुख को समबुद्धि से ग्रहण करूँगा और इस प्रकार ईश्वर की अविचल भक्ति ग्रहण करूँगा। भक्ति को ईश्वर प्रदान करती ही है।

- अब भक्ति क्या है? नारद भक्तिसूत्र के अनुसार –

सा त्वस्मिन् परमप्रेमरूपा। अमृत स्वरूपा च।।
यल्लब्ध्वा पुमान सिद्धो भवति, अमृतो भवति, तृप्तो भवति।
यत्प्राप्य न किञ्चिदाञ्छति, न शोचति, न द्वेष्टि,
न रमते नोत्साही भवति।।

अर्थात् भक्ति ईश्वर के प्रति परम प्रेमरूपा है और अमृतस्वरूपा है। जिसको पाकर मनुष्य सिद्ध हो जाता है, अमर हो जाता है और तृप्त हो जाता है, फिर उसके मन में न इच्छा–कामना रहती है, न शोक, न द्वेष न आसक्ति और न ही विषय–भोगों की प्राप्ति में उत्साह ही रहता है। यह भक्ति भी शास्त्रों में 'नवधाभक्ति' के रूप में आई है। यथा–

श्रवणं कीर्तन विष्णोः स्मरणं पादसेवनम्।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम्।।[9]

अर्थात् ईश्वर की लीला, कथा, महत्व, शक्ति, स्रोत आदि को परम श्रद्धा सहित अतृप्त मन से सुनना, ईश्वर के गुण, चरित्र, नाम आदि का आनन्द और उत्साह से कीर्तन, ईश्वर का
अनन्य भाव से स्मरण, उन्हीं के चरणों का आश्रय, मन, वचन और कर्म से पवित्र सामग्री द्वारा ईश्वर के चरणों का पूजन, उनका वन्दन, ईश्वर को स्वामी और स्वयं को दास समझकर सेवा करना, ईश्वर को अपना परम मित्र समझना और उनके चरणों में सदा के लिए अपने आप को समर्पित करके शरणागति ग्रहण करना सर्वोत्तम भक्ति है। ऐसा करने पर क्या होता है 'ब्रह्मसंहिता' में आया है –

प्रेमाञ्जनच्छुरित भक्ति विलोचने।
संतः सदैव हृदयेषु विलोकयन्ति।।[10]

संत स्वभाव ग्रहण करके भक्ति करके ईश्वर का दर्शन होता है। यद्यपि ज्ञानमार्ग और कर्ममार्ग भी ईश्वर तक ही ले जाते हैं, किन्तु भक्ति को सरल और जल्दी सफल होने वाली माना जाता है।

- भक्त कवियों ने वैरागियों की तरह इस लोक को **'झूठ'** नहीं माना है। उन्होंने जन समस्याओं पर चर्चा की है और उसके समाधान का प्रयास भी किया है।
- ''भक्ति आंदोलन वेदान्त और बौद्ध धर्म के बाद भारतीय जीवन का तीसरा महान क्रान्तिकारी उन्मेष था। बौद्ध धर्मावलंबी वैदिक और सनातन हिन्दू व्यवस्था से विद्रोह करके बाहर निकल गए थे, जबकि भक्त कवियों ने भीतर रहकर सुधार चाहा। वे उच्छेदवादी की जगह संरक्षणशील उदारवादी थे। इनसाइड क्रिटिक थे।''[11]
- हमारे भारतवर्ष में विरोधियों, भिन्न मन वालों और समाज की बुराइयाँ दूर करने के लिए रोकने–टोकने वालों की आवाज कभी दबाने की कोशिश नहीं की गई न ही उन्हें चुप करया गया, बल्कि सदा उनका सम्मान किया गया है, इसी कारण कबीर आदि सन्तों का आज तक बहुत सम्मान है।
- इस युग में स्त्री को सीता, राधा, दुर्गा आदि रूपों में (देवी के रूप में) बहुत सम्मान प्राप्त हुआ। स्त्री–पराधीनता के दर्द को महसूस किया गया।
- इस काल में पहली बार वर्ण–व्यवस्था, अस्पृश्यता और जातिभेद पर चोट की गई। कबीर ने कहा –

जाति न पूछो साधु की, पूछ लीजिए ज्ञान।
x x x
मानहु एक भगति का नाता।

- निर्गुण–सगुण के मतभेद को न केवल मिटाने की कोशिश की गई, बल्कि सगुण–निर्गुण से परे जाने की भी कोशिश इस काल में हुई।

सरगुण की सेवा करो, निर्गुण को करो ध्यान।
सरगुण–निर्गुण से परे, तहाँ हमारा ज्ञान।। –कबीरदास

- पहली बार भारत में हिन्दू–मुस्लिम, ब्राह्मण–शूद्र, क्षत्रिय, सामंत, वैश्य, व्यापारी आपस में करीब आए। सूफी कवियों की चेतना की भावभूमि व्यापक थी। ''हम भारत की जिस गंगा–जमुनी'' संस्कृति को दुनिया के सामने धर्मनिरपेक्ष आधुनिक भारत की उपलब्धि बनाकर पेश करते हैं, उनकी आधारशिला भक्तिकाल में ही पड़ी। भक्त कवियों ने इसके विकास में बेहद महत्वपूर्ण

भूमिका निभाई। इसलिए प्रारम्भिक आधुनिकता के युग में, स्वाधीनता आन्दोलन के युग में और आज भूमंडलीकरण या उत्तर भूमंडलीकरण के युग में उस संस्कृति का महत्व असंदिग्ध है।''[12]

- भक्तों ने जनपदीय सीमाओं को तोड़ा और उस समय में उन सार्वभौम मूल्यों को आत्मसात् किया जिसे 'वैश्विक संस्कृति' कह सकते हैं।
- ''भक्त कवियों में 'आधुनिकता के मूल्य' विकसित हो रहे थे। कबीर का 'सत्य' तुलसी का 'विवेक', 'मीरा का अनुभव' यह सब धार्मिक पदावली के भीतर व्यक्ति की महत्ता का प्रतिपादन है।''[13]

तू मोहि देखै, हौं तोहि देखौं
प्रीति परस्पर होई।
तू मोहि देखै, तोहि न देखौं
यही मति बुधि सब खोई।। —कबीर

अर्थात् ईश्वर और मनुष्य की परस्पर प्रीति के लिए जरूरी है कि दोनों एक–दूसरे को देखें।

यह बात बाकी कवियों–भक्तों से अलग है कबीर के यहाँ दोनों तरफ की बातचीत है। सच भी तो है – प्रेम तो दोनों तरफ बराबरी माँगता है।

- मैनेजर पाण्डेय जी 'भक्ति के हृदय का धर्म' मानते हैं, वे कहते हैं– ''हृदय के धर्मों में सर्वाधिक व्यापक, उदात्त और मानवीय धर्म है – प्रेम। वही भक्ति का मूल भाव और भक्ति काव्य का बीज है। वह मनुष्य को कुल, जाति, धर्म, सम्प्रदाय की सीमाओं से ऊपर उठाता है और हर तरह की सत्ता से भय मुक्त करता है। यह सही है कि भक्त कवियों के प्रेम का रूप एक जैसा नहीं है। कबीर, जायसी, सूर, तुलसी और मीरा के प्रेम में अंतर है लेकिन इन सबकी भावना एक सी है।''[14]
- भक्ति आन्दोलन के विकास में तीन सहायक तत्व हैं – उस काल के सामाजिक जीवन के नये परिवर्तन, आचार्यों का दार्शनिक चिन्तन और भक्त कवियों की सृजनशीलता।

भक्ति आन्दोलन के नेतृत्व के लिए उस काल के आचार्य आगे आये। उन आचार्यों का भी कम बड़ा योगदान नहीं है। जैसे– रामानुजाचार्य, आचार्य रामानन्द, बल्लभाचार्य, विट्ठलनाथ, निम्बार्काचार्य, स्वामी हितहरिवंश, रूप गोस्वामी, जीव गोस्वामी और सनातन गोस्वामी जी और भी कितने ज्ञात अज्ञात नाम हैं। यश से दूर, धन से दूर, नाम से दूर, ये सन्त जीव के उद्धार के लिए सदा तत्पर, जीव को ईश्वर से मिलाने का प्रयत्न करते रहते हैं। भारत की पुण्य भूमि इन सन्तों से धनी है। भारत भूमि पर वैसे भी गुरू की बड़ी महिमा है। गुरू को गोविन्द से भी बड़ा कहा गया है यह केवल भारत में ही सम्भव है क्योंकि पहले तो सतगुरू ही मिलते हैं और वही ईश्वर तक पहुँचने का रास्ता बनते हैं। वे 'ज्ञान' प्रदान करते हैं। ज्ञान से मोह–माया दूर हो जाती है, आत्मा को उसके अमरत्व की पहचान हो जाती है।

''भक्तकवियों और विचारकों को भारतीय आधुनिकता का प्रारम्भिक प्रस्तोता मानना चाहिए। वे भारतीय ढंग के पहले आधुनिक हैं। इन्हें प्राक्–आधुनिक अर्ली मॉडर्न या मॉडर्न कहने की तुलना में भारतीय ढंग का आधुनिक कहना चाहिए।''[15] भक्ति में भावना तो है साथ ही तर्क भी है। स्त्रीवादी आन्दोलनों में भक्त कवयित्रियाँ– ''मीराबाई, आण्डाल, अक्क महादेवी और ललद्य को 'आईकान' की तरह महत्व दिया गया है। वही नहीं श्रीसहजोबाई, श्रीजनाबाई, श्री दमाबाई, लालीजी, श्रीनीरा जी, श्री खीचनी जी, श्री केशीबाई जी, श्रीबाँदर रानी जी, श्री गंगाजमुनाबाई जी।''[16] आदि अनेक भक्तिनें इस काल में हुई हैं, जिन्होंने स्त्री जाति को गौरवान्वित किया है।

भक्त कवि सुख, समृद्धि, ऐश्वर्य, नाम, यश, प्रसिद्धि राजनीति इन सबके लिए भक्त नहीं बने थे। वे तो आत्म परिष्कार कर ईश्वर से अनन्य होने की एकमात्र इच्छा रखते थे। इसीलिए वे धर्म का सही अर्थ ढूँढने में सफल हो पाए। इनके लिए धर्म अफीम नहीं (मार्क्स) जीने का कारण और आचरण का नियम है।

इन भक्त कवियों का जितना भाव–पक्ष मजबूत है, उतना ही कलापक्ष भी। रस की सबके महत्वपूर्ण विशेषता 'साधारणीकरण' भक्ति काव्य में विद्यमान है। उन्हें न तो रस–निष्पत्ति की चिन्ता है न अलंकारों की किन्तु कौन–सा अलंकार उनके यहाँ नहीं, कौन–सा रस या कौन–सा छन्द भक्ति काव्य में नहीं है, भक्ति और वात्सल्य रस को उज्ज्वल रस बनाकर 'शान्त रस' में विश्रान्ति भक्तों की विशेष उपलब्धि है। प्रबन्ध से लेकर मुक्तक तक अनेक सम्प्रदाय, अनेक धाराओं और अनेक विचारों को लेकर आज भी भक्तिकाव्य भारतीय जनता का हार है और अनन्त काल तक रहेगा।

भक्ति के लिए 'गुरू' और 'सत्संग' दोनों बहुत आवश्यक हैं।

भक्ति स्वतन्त्र सकल गुण खानि
बिनु सतसंग न पावे प्राणी

x x x

रे मन ! हंसा मोती चुनना

कितनी तरह से ये भक्त कवि अपने मन को प्रबोधन देते हैं कि कहीं ऐसा न हो जाए कि मन विषयों की ओर भाग जाए। इसीलिए मन को तरह–तरह से समझाया गया है और जब भक्तिरस की आदत लग गई, भक्त छक गया, उसको मजा आ गया तब उसे सांसारिक सुख–भोग वमन से ज्यादा नहीं मालूम होंगे। भक्तगण तो यहाँ तक कहते हैं कि–

सुख के माथे सिल पड़े जो हरि देत भुलाय।
ताते तो ये दुख भला। पल पल नाम रटाय।।

महारानी कुन्ती की यही प्रार्थना है भगवान कृष्ण से कि जब–जब दुख पड़ा आप हमारे साथ रहे तो ये दुख ही हमें मिले ताकि आप हमारे साथ रहें। ये भाव भला अन्य किसी साहित्य में कहाँ से मिल पाएगा। 'समर्पण' 'शरणागति' (प्रपत्ति) ये सारे अनूठे भाव भक्ति कालीन संतों की देन हैं। अंत में हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता।

यस्याः श्रेयस्करं नास्ति यया निवृतिमाप्नुयात्
या साधयति मामेव भक्तिं तामेव साधयेत्।

अर्थात् जिससे श्रेयस्कर कुछ नहीं और जो मुझे प्राप्त करा दे वह भक्ति है।

सन्दर्भ :

1. भक्ति आन्दोलन : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. सं. 1996, पृ. 75
2. हिन्दी साहित्य का इतिहास : डॉ. नगेन्द्र : मयूर पेपरबैक्स, प्र. सं. 1973, पृ. 88
3. वही, पृ. 88
4. भक्ति आन्दोलन : हिन्दी साहित्य का दूसरा इतिहास – डॉ. बच्चन सिंह, राधाकृष्ण प्रकाशन, प्र. सं. 1996, पृ. 81
5. भूमिका : भक्ति आन्दोलन और सूर का काव्य : मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, 21–ए, दरियागंज, नई दिल्ली।
6. वागर्थ : मार्च 2018, नन्द किशोर आचार्य का लेख – 'निर्गुण–सगुण का भेद आज अधिक महत्वपूर्ण नहीं है।', पृ. 64
7. 'भक्त कवि सामंतवाद विरोधी थे' : मैनेजर पाण्डेय : वागर्थ पत्रिका : अंक 272, मार्च 2018, भारतीय भाषा परिषद्, पृ. सं. 65
8. तुलसीदास : विनयपत्रिका
9. नवधा भक्ति : नारद भक्ति सूत्र
10. ब्रह्म संहिता : श्लोक 38 : पृ. 63 : भक्ति वेदान्तबुक ट्रस्ट
11. संपादकीय : वागर्थ : शंभुनाथ, अंक 272, मार्च 2018
12. वागर्थ : अजय तिवारी जी का लेख – 'सामन्ती मूल्यों के विरोध में सगुण संतों की भी एक बड़ी भूमिका थी।' , पृ. 70
13. भूमिका : भक्ति आन्दोलन और सूरदास का काव्य, मैनेजर पाण्डेय, वाणी प्रकाशन, प्र. सं. 1993
14. वही, पृ. 21
15. आशीष त्रिपाठी जी का लेख, संस्थानीकरण ने भक्ति को धर्म तंत्र में सीमित किया, पृ. सं. 89, वागर्थ
16. भक्तमाल : अनुक्रमणिका।

***

पंचायती राज का समग्र मूल्यांकन

*डॉ. राकेश यादव**

भारतीय राजव्यवस्था में पंचायती राज की अवधारणा महात्मा गांधी के साथ जुड़ी है। गांधी जी कहा करते थे कि ''भारत गाँवों में बसता है।'' यह सत्य है कि आजादी के बाद भी हमारे देश की 2/3 आबादी गाँव में बसती है। गाँधी जी का सपना ऐसे गाँव का था, जहाँ स्वराज सुराज (अच्छे शासन) में परिवर्तित हो जाये। 1937 में हरिजन के एक अंक में गांधी जी के आदर्श गाँव का खाका खींचा था– जहाँ स्वच्छता हो, गली सड़के धूल–धक्कड़ से मुक्त हो, चारागाह हो, सरकारी डेयरी हो और स्कूल हो जिनमें आद्योगिक शिक्षा पर बल दिया जाए। लड़ाई–झगड़े पंचायत के माध्यम से सुलझाए जाए। आजादी के पश्चात भारतीय संविधान के अनुच्छेद 40 में राज्य के नीति निदेशक तत्व के अन्तर्गत पंचायतों के गठन एवं अधिकार तथा शक्तियाँ प्रदान करने का कार्य राज्य को सौंपा गया। इतना ही नहीं समय–समय पर अनेक समितियों और संवैधानिक संशोधनों के माध्यम से स्थानीय स्वशासन को सशक्त बनाने का प्रयास किया गया है। इनमें बलवन्तराय मेहता समिति (1957), अशोक मेहता (1977), जी.के.वी. राव समिति (1988), 64वाँ संवैधानिक संशोधन विधेयक (1989), 73वाँ संवैधानिक संशोधन (1992) और 110वाँ संवैधानिक संशोधन विधेयक (2009) प्रमुख है। 73वें संवैधानिक संशोधन द्वारा पंचायतों को संवैधानिक आधार प्रदान किया गया। संविधान में भाग–9 जोड़ा गया। इस भाग में 16 नए अनुच्छेद (243 अ से 243ब) तथा ग्यारहवी अनुसूची जोड़ी गयी।

पंचायत व्यवस्था के सम्बन्ध में भाग–9 के अनुच्छेदों में निम्नलिखित प्रावधान किये गये हैं–

1. पंचायत व्यवस्था के अन्तर्गत सबसे निचले स्तर पर ग्राम सभा होनी चाहिए, इसमें एक या एक से अधिक गाँव शामिल किये जा सकते हैं। ग्राम सभा की शक्तियों के सम्बन्ध में राज्य विकास मंडल द्वारा कानून बनाया जायेगा।
2. जिन राज्यों की जनसंख्या 28 लाख से कम है उनमें द्विस्तरीय पंचायत अर्थात जिला स्तर और गाँव स्तर पर गठन किया जायेगा और 20 लाख से अधिक जनसंख्या के राज्यों में त्रिस्तरीय पंचायती राज की स्थापना अर्थात, मध्यवर्ती तथा जिलास्तर पर की जायेगी।
3. सभी स्तर के पंचायतों के सभी सदस्यों का चुनाव वयस्क मतदाताओं द्वारा प्रत्येक 5 वर्ष के लिए किया जायेगा। मध्यवर्ती पंचायत एवं जिला स्तर के पंचायत अध्यक्षों का चुनाव अप्रत्यक्ष रूप से किया जायेगा।
4. पंचायत के सभी स्तरों पर अनुसूचित जाति/जनजाति के सदस्यों को उनकी संख्या के अनुपात में आरक्षण प्रदान किया जायेगा तथा महिलाओं के लिए 30 प्रतिशत आरक्षण होगा।
5. सभी स्तरों पर पंचायतों का कार्यकाल 5 वर्ष होगा। लेकिन इनका विघटन वर्ष से पहले किया जा सकता है। परन्तु विघटन की दशा में 6 माह के अन्दर चुनाव कराना आवश्यक होगा।
6. पंचायतों की वित्तीय व्यवस्था की जाँच करने के लिए प्रतिवर्ष वित्तीय आयोग का गठन किया जायेगा जो राज्यपाल को अपनी रिपोर्ट सौंपेंगे। पंचायतों को प्राप्त होने वाली शक्तियाँ और उन्हें प्रदान किये गये उत्तरदायित्व का वर्णन 11वीं अनुसूची में किया गया है। इस सूची में पंचायतों के कार्य निर्धारण के लिए 29 कार्यक्षेत्रों को चिन्हित किया गया है। चिन्हित किये गये कार्यों का निर्धारण निम्नलिखित है– कृषि, भूमि सुधार, लघु सिंचाई, पशुपालन, सामाजिक वनोद्योग, लघुउद्योग, खादी ग्राम तथा कुटीर उद्योग सड़के एवं पुलिया, ग्रामीण विद्युतीकरण एवं विद्युत वितरण, गैर पारम्परिक उर्जा स्रोत, गरीबी उपशमन कार्यक्रम, शिक्षा प्राथमिक एवं माध्यमिक विद्यालय, तकनीकी प्रशिक्षण और व्यवसायिक शिक्षा, प्रौढ़ एवं अनौपचारिक शिक्षा, संस्कृति क्रियाकलाप, स्वास्थ्य एवं स्वच्छता, महिला और कमजोर वर्गों का कल्याण, मत्स्य उद्योग, लघु वन उत्पाद, ग्रामीण आवास, पेयजल, ईधन और चारा, पुस्तकालय, बाजार और मेले, परिवार कल्याण।

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, समाजशास्त्र, डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, आजमगढ़ (उ.प्र.)

पंचायतों में नए कानून के अनुसार गाँव के विकास के लिए बनने वाली योजनाओं में ग्राम सभा के माध्यम से लोगों की भागीदारी जरूरी होगी। ग्राम पंचायतों को निम्न बातों को ध्यान रखना जरूरी है–

1. ग्राम पंचायत और ग्राम सभा की बैठक नियमित रूप से समय पर होनी चाहिए।
2. ग्राम सभा में ग्रामवासियों की पर्याप्त उपस्थिति और भागीदारी हो तथा निर्णय यथासंभव आम सहमति से लिए जाय।
3. ग्राम पंचायत तथा ग्राम सभा की प्रत्येक कार्यवाही/अभिलेख ग्रामवासियों के अवलोकन के लिए उपबन्ध होना चाहिए।
4. संविधान के अनुच्छेद 243 (क) के अनुसार ग्राम सभा एक संवैधानिक निकाय है। प्रत्येक गाँव में ग्राम सभा होनी चाहिए। गाँव के सभी वयस्क व्यक्ति ग्राम सभा के सदस्य होते हैं।
5. गाँव के उपबन्ध प्राकृतिक सामुदायिक संसाधनों प्रबन्ध ग्राम सभा के निर्णय के आधार पर किया जाये।
6. ग्राम सभा में कराये गये निर्माण एवं विकास कार्यों का सोशल आडिट ग्रामसभा की बैठक में है।
7. सरकारी योजनाओं के लाभार्थियों का चयन करने का अधिकार ग्राम सभा में होना चाहिए।

केन्द्रीय पंचायतीराज मंत्रालय ने 73वें संवैधानिक संशोधन के वास्तविक क्रियान्वयन हेतु मंडल पंचायत एवं ग्राम स्वराज अधिनियम का प्रारूप तैयार किया है जिसमें मई 2009 में विभिन्न राज्य सरकारों को क्रियान्वयन हेतु आग्रह किया गया। प्रारूप की विशेषताएँ निम्न हैं।

1. पंचायतों के सम्बन्ध में नागरिकों के अधिकारों एवं कर्त्तव्यों की व्यवस्था करना।
2. 3 एफ (F) फंड फंक्शन के विकेन्द्रीकरण पर कार्यवाही।
3. ग्राम सभा की केन्द्रीय भूमिका के माध्यम से पंचायतों का उत्तरदायित्व सुनिश्चित करना। सोशल लेखन व लेखन परीक्षण से सम्बन्धित प्रावधानों को स्पष्ट करना।
4. राज्य चुनाव आयोग और राज्य वित्त आयोग के लिए आदर्श ढाँचा उपलब्ध करना।
5. ग्रामीण नीतियाँ, जन्म, आवास प्रमाण पत्र से जुड़े हुए मुद्दे से सम्बन्धित विनियामकीय शक्तियों से पंचायतों को प्रदान करना।
6. पंचायत वित्त योजना, बजट एवं संसाधनों के विभिन्न पहलूओं की व्यवस्था करना।

पंचायतों को राज्य स्तर से अधिकार एवं शक्तियों का कितना हस्तान्तरण हुआ है इसके लिए पंचायती राज मंत्रालय ने भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा एक अध्ययन करवा कर यह जानने का प्रयास किया है कि कहाँ तक पंचायतों को अधिकार एवं शक्तियाँ दी गयी है। संस्थान द्वारा विभिन्न आयामों के आधार पर संयुक्त हस्तांतरित सूचकांक तैयार किया गया है। इस सूचकांक के 6 आयाम हैं।

प्रथम 'फ्रेमवर्क'– के अन्तर्गत 73वें संविधान संशोधन के अनिवार्य पहलूओं जैसे राज्य वित्त आयोग का गठन, जिला नियोजन समितियों का गठन, महिलाओं एवं SC/ST का आरक्षण इसके अन्तर्गत आते हैं।

द्वितीय, पंचायतों को कार्यों का हस्तान्तरण अर्थात कितने कार्य एवं शक्तियाँ पंचायतों को हस्तान्तरित की गयी हैं।

तृतीय, पंचायतों को कितने वित्तीय संसाधन हस्तान्तरित किए हैं।

चतुर्थ, पंचायत कर्मियों की क्या स्थिति है।

पंचम– पंचायतों का क्षमतावर्धन अर्थात उनको किस स्तर तक प्रशिक्षण दिया गया है एवं प्रशिक्षण संरचना की क्या स्थिति है।

छँठा– जवाबदेही है। इसके अंतर्गत ग्राम सभा की बैठकों का होना, वित्तीय एवं सामाजिक आडिट है।

अन्ततः इन सभी को शामिल करके संयुक्त सूचकांक तैयार किया है ताकि यह पता लगाया जा सके कि विकेन्द्रीकरण राज्य से पंचायतों को कितना हुआ है। निम्न तालिका–1 में इन सभी सूचकांकों को राज्यवार दिया गया है–

तालिका– राज्यवार हस्तान्तरित सूचकांक

रैंक	राज्य	फ्रेमवर्क (डी2)	कार्य (डी2)	वित्त (डी3)	कर्मी (डी4)	क्षमतावर्धन (डी5)	जवाबदेही (डी6)	(डी)
1	महाराष्ट्र	48.95	56.31	55.5	75.37	75	76.64	64.00
2	कर्नाटक	67.55	57.96	49.97	63.12	79.04	69.73	62.2
3	केरल	41.34	52.86	48.52	68.55	58.77	64.64	55.4
4	राजस्थान	68.33	52.97	35.61	40.90	79.43	57.25	52.1
5	तमिलनाडु	69.84	52.33	46.26	39.23	63.4	52.97	52.1
6	पश्चिम बंगाल	56.84	50.57	35.41	37.67	81.18	53.96	49.8
7	मध्य प्रदेश	60.37	52.61	34.44	39.45	51.41	62.50	47.3
8	छत्तीसगढ़	53.75	37.53	31.77	33.68	78.52	48.27	44.6
9	हरियाणा	70.39	31.14	36.91	50.19	42.68	46.09	43.6
10	गुजरात	54.58	38.92	26.55	53.18	46.61	43.76	40.8
11	ओडीशा	66.5	51.46	35.11	28.55	19.14	53.04	40.0
12	उत्तराखंड	54.0	53.9	27.23	32.02	43.24	52.85	39.4
13	उत्तर प्रदेश	60.02	41.04	26.17	28.57	45.88	41.06	37.3
14	असम	44.69	42.76	23.13	21.66	67.84	37.65	36.9
15	हिमाचल प्रदेश	56.19	22.43	34.92	35.35	36.15	44.32	36.8
16	गोवा	50.7	17.78	18.69	48.23	32.87	41.72	31.8
17	पंजाब	60.24	24.25	17.37	23.64	38.67	46.74	31.2
18	बिहार	49.78	39.44	19.40	24.29	42.01	21.60	29.9
19	जम्मू एवं कश्मीर	15.38	15.28	28.01	23.98	51.61	35.15	28.9
20	झारखंड	55.01	18.97	13.95	23.52	46.11	28.48	27.3
पूर्वोत्तर राज्य								
1	त्रिपुरा	48.1	46.03	28.37	53.34	29.71	46.91	39.7
2	सिक्किम	68.56	45.07	31.37	29.25	41.72	36.30	39.1
3	मणिपुर	29.52	12.22	24.0	20.41	45.13	27.27	25.9
4	अरुणाचल प्रदेश	30.88	17.22	25.17	10.14	34.67	24.85	23.7
केन्द्र शासित प्रदेश								
1	लक्षद्वीप	48.89	20.79	7.33	39.82	30.95	28.29	25.1
2	दमन एवं दीव	56.04	3.43	8.03	33.56	0	30.11	18.1
3	दादर एवं नगर हवेली	28.6	1.11	0.78	39.17	20.85	32.22	17.3
4	चंडीगढ़	24.16	7.22	25.86	18.8	0	8.14	15.3
5	राष्ट्रीय औसत	51.4	34.06	29.45	36.99	49.33	43.33	38.5

स्रोत : भारत में पंचायतों का सशक्तिकरण, राज्यवार हस्तांतरित सूचकांक अनुभाविक मूल्यांकन 2012–13, अप्रैल, 2013 भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली।

कार्यों का हस्तांतरण (डी2) की स्थिति निराशाजनक है। राष्ट्रीय स्तर पर इस घटक का स्कोर मात्र 34006 है। इसका यह अर्थ हुआ कि जितने कार्य पंचायतों को हस्तान्तरित करने थे उनका मात्र 1/3 ही पंचायतों को हस्तान्तरित हुआ है। राज्यवार स्थिति में कर्नाटक (5790) सबसे उपर और मणिपुर (12. 22) सबसे नीचे है। सबसे महत्वपूर्ण मत यह है कि पंचायतों को कार्य ही नही दिये जायेंगे तो अन्य अधिकार तो बाद की बात है क्योंकि कार्यों से ही सम्बन्धित वित्त एवं कर्मियों का प्रावधान होगा।

वित्तीय संसाधनों का हस्तान्तरण (डी 3)– राष्ट्रीय स्तर पर इसका स्कोर मात्र (29.45) है। इससे निष्कर्ष निकलता है कि कुल प्रस्तावित वित्तीय हस्तान्तरण का मात्र 1/3 पंचायतों को हस्तांतरित हुआ है। राज्यों में सूचकांक का सबसे अधिक स्कोर महाराष्ट्र (55) तथा सबसे कम पंजाब (17.37) में है।

यहाँ इसका उल्लेख करना जरूरी है कि पंचायतों को स्वायत्त शासन की संस्थाएँ बनाने के लिए यह भी महत्वपूर्ण है कि ये संस्थाएँ स्वयं की वित्तीय संसाधनों का व्यवस्था करें। लेकिन यह निराशाजनक है पंचायतों ने अपने स्तर से संसाधन जुटाने का कोई प्रयास नही किया है।

कर्मियों का हस्तान्तरण (डी4)– पंचायतों को अपने कार्यों का निष्पादन करने के लिए पर्याप्त कर्मियों का होना आवश्यक है। राष्ट्रीय स्तर पर इस घटक का स्कोर मात्र है। राष्ट्रीय स्तर पर इस घटक का स्कोर मात्र 37 है। राज्यवार सबसे ज्यादा स्कोर महाराष्ट्र (75.37) का है।

संयुक्त स्कोर के डी2 डी3 एवं डी4 घटक बहुत महत्वपूर्ण है क्योंकि ये तीनों घटक कार्यों, वित्त एवं कर्मियों के हस्तान्तरण को राज्य स्तर से पंचायतों को दर्शाते हैं। लेकिन इन तीनों की स्थिति बड़ी निराशाजनक है जिसके कारण सम्पूर्ण पंचायती राज व्यवस्था की स्थिति ही दयनीय हो जाती है।

क्षमतावर्धन डी5– पंचायत एवं पंचायतकर्मियों दोनों का क्षमतावर्धन जरूरी है। पंचायतों के पास आधारभूत संरचना नही होगी तथा प्रतिनिधियों को यह नहीं पता होगा कि उनका कार्य क्या है तब जमीनी स्तर पर कार्य कैसे होगा। यहाँ यह जानना जरूरी है कि 28 प्रतिशत पंचायतों के पास अपनी आफिस नही है। राष्ट्रीय स्तर पर क्षमतावर्धन का कार्य मात्र 49.33 प्रतिशत पूरा हो पाया है। राज्यवार पश्चिम बंगाल सबसे उपर है।

जवाबदेही डी6– पंचायतों को सशक्त बनाने के लिए आम लोगों को इन संस्थाओं में भागीदारी व विश्वास बढ़ाने के लिए ग्राम सभाओं की बैठक प्रभावी रूप से होना जरूरी है। इसका राष्ट्रीय स्कोर मात्र 43.33 है। राज्यवार महाराष्ट्र सबसे आगे है तो बिहार सबसे पीछे है।

समग्र रैंक (डी)– राष्ट्रीय स्तर पर रैंक का स्कोर 38.52 प्रतिशत है। इसका अर्थ है कि कुल हस्तान्तरित उम्मीद का 40 प्रतिशत भी हस्तान्तरित नही हुआ है। राज्य के स्तर पर महाराष्ट्र (64.04) सबसे आगे एवं झारखण्ड (27.25) सबसे पीछे है।

उपरोक्त अध्ययन इस बात का प्रमाण है कि पंचायतों को स्वायत्त बनाने में सभी स्तरों पर केन्द्र एवं राज्यों के स्तर पर राजनीतिक इच्छाशक्ति की कमी है जिससे जमीनी लोकतंत्र की स्थापना नही हो पा रही है।

पंचायती राज व्यवस्था में महिलाओं की भागीदारी– संविधान के अनुच्छेद 243डी में शामिल प्रावधानों के अनुसार पंचायती राज संस्थाओं के सभी स्तरों के अध्यक्षों का 1/3 भाग और संविधान के भाग–9 द्वारा शामिल पंचायती राज संस्थाओं के सभी स्तरों पर 1/3 महिलाओं के लिए आरक्षित है। पूरे देश में महिला आरक्षण की स्थिति अग्र लिखित हैं–

- आन्ध्र प्रदेश, बिहार, छत्तीसगढ़, झारखण्ड, केरल, महाराष्ट्र, उड़ीसा, राजस्थान, त्रिपुरा और उत्तराखण्ड ऐसे राज्य हैं जिन्होंने महिला सदस्यों और सरपंचों के लिए 50 प्रतिशत आरक्षण के वैधानिक प्रावधान किये हैं।
- केन्द्र सरकार ने 27 अगस्त 2009 को पंचायती राज संस्थाओं में महिलाओं के आरक्षण को 50 प्रतिशत करने हेतु एक संविधान संशोधन विधेयक संसद में पेश किया है।
- पंचायत स्थिति रिपोर्ट के अनुसार 2010 में निर्वाचित महिला प्रतिनिधियों का सर्वाधिक अनुपात कर्नाटक 43.19 प्रतिशत तथा पश्चिम बंगाल 42.99 प्रतिशत में था।

- वर्ष 2010 में महिला प्रतिनिधियों का न्यूनतम 33 प्रतिशत आन्ध्र प्रदेश, गुजरात एवं पंजाब, महाराष्ट्र में था।
- वर्तमान में लगभग 20 लाख निर्वाचित पंचायत प्रतिनिधियों में 10 लाख में 10 लाख के लगभग महिलाएँ हैं। महिलाओं की पंचायत में बढ़ती हुई भागीदारी को पहचानते हुए पंचायती राज संस्थाओं की महिला प्रतिनिधियों की भागीदारी, प्रतिनिधित्व तथा कार्य निष्पादन को और बढ़ाने के लिए पंचायती राज मंत्रालय एक केन्द्रीय क्षेत्रीय योजना पंचायत महिला एवं युवा शक्ति अभियान को वर्ष 2007–08 से क्रियान्वित कर रहा है। महिलाओं की पंचायतों में बढ़ती हिस्सेदारी महिला सशक्तीकरण के साथ–साथ महिलाओं का तेजी से सामाजिक एवं आर्थिक समावेशन भी कर रहा है।

ग्राम सभा वर्ष– ग्राम सभा सहभागी प्रजातंत्र और विकेन्द्रीयकरण के लिए सबसे महत्वपूर्ण एवं सशक्त संस्था है। गांधी के सुराज (सुशासन) की अवधारणा के अनुरूप इसको तैयार करने के लिए सरकार अनवरत प्रयास कर रही है। भारत सरकार ने वर्ष 1999–2000 को ग्राम सभा वर्ष में मनाने का निर्णय लिया था। इसका उद्देश्य निम्नलिखित सात सूत्रीय पैकेज के अनुरूप ग्राम सभा को सशक्त बनाना था–

1. ग्राम सभा और ग्राम पंचायत के बीच वही सम्बन्ध है जो विधायिका तथा कार्यपालिका के बीच है।
2. पंचायत स्पष्टतः ग्राम सभा के प्रति उत्तरदायी है।
3. ग्राम पंचायत सदस्य तभी तक पदासीन रहेंगे जब तक उन्हें ग्राम सभा का विश्वास मत हासिल हो।
4. ग्राम सभा के पास बजट का अनुमोदन की पूरी शक्ति होनी चाहिए।
5. किसी भी प्राधिकरण द्वारा भूमि, जल, वन सहित प्राकृतिक संसाधनों का प्रबन्धन ग्राम सभा की सहमति से होना चाहिए।
6. ग्राम सभा चाहे तो पूर्ण मद्यनिषेध कार्यक्रम लागू कर सकती है।
7. SC/ST तथा महिलाओं की ग्राम सभा भागीदारी अनिवार्य बनायी जानी चाहिए तथा ग्राम सभा के पास प्राकृतिक न्याय के अनुसार अपनी शक्तियों का निष्पादन करने के लिए स्वयं प्रक्रिया बनाने की शक्ति होनी चाहिए।

ई–पंचायत– सुशासन के महत्वपूर्ण साधनों में ई गवर्नेंस प्रमुख है। ई–गवर्नेंस के साधनों का प्रयोग करने के लिए ई–पंचायत मिशन मोड नामक एक परियोजना 2007 में शुरू की गयी है। ई–पंचायत योजना के निम्न उद्देश्य हैं–

1. सूचना प्रौद्योगिकी के माध्यम से नागरिकों को बेहतर सेवाएँ उपलब्ध कराना।
2. पंचायतों के क्रियाकलाप को पारदर्शी बनाना।
3. पंचायतों में आन्तरिक प्रबन्धन और निर्णय लेने की प्रक्रियाओं में सुधार करना।

उपर्युक्त सभी विवेचनाओं एवं विश्लेषण का प्रमुख उद्देश्य इस मत का पड़ताल एवं मूल्यांकन करना है कि भारत सरकार एवं राज्य सरकारें संवैधानिक प्रावधानों एवं नीतिगत उपायों का निरन्तर प्रयोग करने पंचायतों को दिन–प्रतिदिन सशक्त करने का प्रयास कर रही है। इस संदर्भ में वर्तमान प्रधानमंत्री का प्रयास निश्चित रूप से सराहनीय है। महात्मा गांधी के सुराज सुशासन के विचार से प्रभावित होकर गाँवों के विकास का अनूठा माडल 11 अक्टूबर 2014 को आरम्भ किया गया जिसे सांसद आदर्श ग्राम योजना के नाम से जाना जाता है। इस योजना को लांच करते समय प्रधानमंत्री ने कहा था कि 'हमारे विकास माडल की एक बड़ी समस्या है कि यह आपूर्ति आधारित है।

योजनाएँ दिल्ली, लखनऊ या गांधी नगर में बनती हैं फिर उन्हें लोगों पर थोप दिया जाता है। हम इसे बदलवाना चाहते हैं– आदर्श ग्रामों के जरिये योजनाओं को आपूर्ति के बजाय मांग आधारित बनाना चाहते हैं। खुद गाँव से ही विकास की मांग उठनी चाहिए।

अन्य योजनाओं की तरह सांसद आदर्श ग्राम योजना (SAGY) लोगों को लाभार्थी व सरकार को दाता नहीं बनाती। बल्कि यह सरकार और लोगों को साथ लाती है मिलकर विकास करने के लिए। आदर्श ग्राम योजना की रूप रेखा सांसद योजना का मूलाधार है तथा पंचायत एक इकाई है। सांसद अपने निर्वाचन क्षेत्र से एक गाँव यदि क्षेत्र शहरी है तो दूसरे निर्वाचन क्षेत्र का गाँव गोद हो सकता है। इसमें लक्ष्य यह है कि 2016 के आखिर तक हर सांसद एक गाँव का विकास करे और मार्च

2019 तक दो गाँव उसके बाद अगले पाँच वर्षों 2024 तक हर साल एक गाँव का विकास किया जायेगा। इस तरह यदि हर सांसद तीन गाँवों का विकास करे तो 2019 तक 2379 आदर्श गाँव बन जायेंगे जो कि बाकी गाँव के लिए प्रेरणा का कार्य करेंगे।

सांसद आदर्श ग्राम योजना के लिए अलग से फंडिंग का कोई प्रावधान नही है। इसमें विकास कार्यों के लिए धन निम्न प्रकार से जुटाया जायेगा–

1. ग्राम पंचायत का अपना राजस्व।
2. केन्द्र व राज्य वित्त आयोग से मिला अनुदान।
3. केन्द्र व राज्य सरकारों द्वारा चलायी जा रही विभिन्न योजनाओं का धन जैसे इन्दिरा आवास योजना, मनरेगा, प्रधानमंत्री ग्राम सड़क योजना आदि।
4. सांसद 'स्थानीय विकास निधि' का धन।
5. कार्पोरेट सोशल जिम्मेदारी से मिला धन।

सांसद आदर्श ग्राम योजना के जरिये गाँव का वैयक्तिक, मानवीय, आर्थिक एवं सामाजिक विकास किया जायेगा। इसमें स्मार्ट स्कूल होंगे, सबको चिकित्सा, पक्के घर, आधार कार्ड, ई– गवर्नेंस, शौचालय, स्वच्छता, बिजली, पानी, सड़क और ब्राडबैण्ड होगा। गाँव में सामुदायिक विकास की भावना सर्वोपरि होगी। नशाखोरी और महिलाओं के साथ भेदभाव जैसी सामाजिक कुरीतियों के उन्मूलन का प्रयास किया जायेगा।

सांसद आदर्श गाँव में समग्र विकास को निम्न तरीके से प्रदर्शित किया जा सकता है–

वैयक्तिक विकास के अन्तर्गत व्यक्तिगत नैतिक मूल्य, साफ–सफाई, सांस्कृतिक विरासत का संरक्षण, मनोवृत्ति में परिवर्तन।

मानव विकास के अंतर्गत शिक्षा, स्वास्थ्य, पोषण एवं सामाजिक सुरक्षा को शामिल किया जा सकता है। सामाजिक विकास के अंतर्गत स्वयं सेवा, सामाजिक न्याय एवं सुशासन को सम्मिलित किया जा सकता है।

आर्थिक विकास के अंतर्गत आजीविका, कौशल विकास, वित्तीय समावेशन एवं बुनियादी सेवाओं को सम्मिलित किया जा सकता है।

यदि सांसद आदर्श ग्राम योजना की समीक्षा की जाय तो हम यह पाते हैं कि सांसदों की अनिच्छा, जानकारी का अभाव, राजनीति प्रेरित मनोवृत्ति के कारण यह योजना अपने लक्ष्य को प्राप्त नहीं कर पा रही है। लेकिन यदि गाँव विकास के मानक को ध्यान में रखा जाय तो निश्चित रूप से यह फलदायी है।

अन्त में पंचायतीराज व्यवस्था के सभी संवैधानिक, नीतिगत तथा परियोजनागत पक्षों का विश्लेषण करने से यह पता चलता है कि सभी सरकारें बदलते समय के साथ पंचायतों को सशक्त बनाने का निरन्तर प्रयास कर रही है लेकिन इस क्षेत्र में अभी काफी कुछ करना शेष है। पंचायतों को राज्य स्तर से अधिकारों एवं शक्तियों का कितना हस्तान्तरण हुआ है इसके लिए पंचायती राज मंत्रालय ने भारतीय लोक प्रशासन संस्थान, नई दिल्ली द्वारा एक अध्ययन करवा कर यह जानने का प्रयास किया है कि कहाँ तक पंचायतों को अधिकार एवं शक्तियाँ प्रदान की गई है। हालाँकि रिपोर्ट संतोषजनक नही है फिर भी पंचायती राज के गर्भ में कई संभावनाएँ विद्यमान हैं। इसके माध्यम से हम पूरे सामाजिक ढाँचे को बदल सकते हैं। भारत का भविष्य सच्चे लोकतंत्र का भविष्य हो, इसके लिए हर व्यक्ति को अपने स्तर से प्रयास करना होगा। क्योंकि सतत जागरुकता ही प्रजातंत्र की कीमत होती है।

सन्दर्भ :

1. भारत का संविधान–एक परिचय, डी.डी. बसु, प्रेन्टिस हॉल ऑफ इंडिया, पब्लिकेशन्स, कलकत्ता।
2. भारत में स्थानीय शासन– एस.आर. माहेश्वरी, लक्ष्मीनारायन, अमृथल प्रकाशन, आगरा, 2009.
3. पंचायती राज– चुनौतियाँ एवं संभावनाएँ, नेशनल बुक ट्रस्ट इंडिया, 2006.
4. कुरुक्षेत्र जनवरी 2014, प्रकाशन विभाग, नई दिल्ली।

***

योग एवं संगीत

*डॉ. शशि शुक्ला**

योग एवं साहित्य के परस्पर सम्बन्धों की चर्चा करने से पहले योग क्या है और इसका लक्ष्य क्या है ? इस पर चर्चा करना अधिक उचित होगा।

प्रत्येक योग का चरम लक्ष्य इस शरीर में मेरूदण्ड स्थित चक्रों को जागृत कर मूलाधार चक्र में सुप्त कुंडलिनी शक्ति को जागृत करना है ओर उस परम तत्व में लीन होकर परमानन्द की प्राप्ति करना है। योग साधक अपनी अनवरत साधना से इन चक्रों को जागृत करता है। मूलाधार चक्र में पड़ी कुडलिनी देवी जागृत होकर प्रत्येक चक्रों से होती हुई उर्ध्वगामी होकर सुषुम्ना नाड़ी के पथ से होती हुई कपाल में स्थापित सहस्त्राधार चक्र में स्थित शिव (महा योगी) से मिलकर एकाकार होती है। यही शिव शक्ति, जीव और ब्रह्म, आत्मा और परमात्मा का मिलन है जिसको प्राप्त करने के लिए योगी निरन्तर साधनरत् रहता है। यह बात अलग है कि विरले योगी ही इस चरम लक्ष्य को प्राप्त करने में सफल होते हैं।

योगाभ्यास में यौगिक क्रियाओं आसन आदि मेरूदण्ड के चक्रों को प्रभावित करती है और सतत् साधना से जागृत होती है और प्राणायाम शरीर में प्रवाहित इडा पिंगला और सुषुम्ना निाड़ियों को शुद्ध करते हुए ऊपर चढ़ने के पथ को आसान करता है। यह सात चक्र शरीर के महत्वपूर्ण स्थानों में स्थापित है। प्रथम चक्र मूलाधार चक्र के रूप में जिस स्थान पर सिद्धासन में बांये पैर की ऐडी दबाव डालती है ठीक उसी स्थान पर स्थापित है, दूसरा चक्र स्वाधिष्ठान चक्र जहाँ से मेरूदण्ड स्थापित होता है, ठीक मेरूदण्ड के अन्तिम सिरे पर स्थापित होता है, तृतीय चक्र मणिपुर चक्र ठीक नाभि के पीछे मेरूदण्ड में स्थापित है, चतुर्थ चक्र हृदय स्थल पर जहाँ छाती के बीचों बीच गड्ढा होता है उसके पीछे मेरूदण्ड पर, पंचम चक्र विशुद्धि चक्र जहाँ गर्दन प्रारम्भ होती है उसके ठीक पीछे मेरूदण्ड पर स्थित है, छठा आज्ञा चक्र दोनों भृकुटियों के बीच है, इसके पश्चात एक स्थान विशेष है जो बिंदु विसर्ग के नाम से जाना जाता है। इसे अमृत कुंड के नाम से भी जानते है। यह वह स्थान है जहाँ ब्राह्मण सिर पर चोटी रखते थे। सप्तम चक्र के रूप में सहस्त्राधार चक्र है जो कपाल में स्थित है जहाँ बचपन में कोमल स्थान होता है।

अब संगीत में यदि देखें तो मतंग के स्वर निर्णय प्रकरण में कोहल के उद्धरण दिये गये हैं जिनमें योगतंत्र के अनुसार स्वरों की उत्पत्ति बताई है। वृहद्देशी में भी मतंग ने योग दर्शन की चर्चा की है और नाद तत्व की विवेचना की है। उन्होनें ध्वनि, ध्वनि के बिंदु, बिन्दु से नाद, नाद से द्विविध मात्र (स्वर व्यंजना) तथा षहजादि स्वर, इस क्रम में स्वरों की उत्पत्ति बताई है। ध्वनि, बिंदु, नाद मात्रा आदि सभी संज्ञायें योग दर्शन से ही ली गयी हैं।

संगीत का मुख्य उपकरण स्वर आहत नाद से उत्पन्न है। नाद की उत्पत्ति प्राण और अग्नि के संयोग से है। सृष्टि की उत्पत्ति, वर्धन, संहार का कारण ब्रह्मा, विष्णु, महेश जो नाद रूप हैं इनकी पराशक्ति को योग मे चित्रि शक्ति कहा जाता है। नाद की उत्पत्ति, धारण एवं विलय का आधार शरीर है। नाद के 22 भेद जो सुने जाने के कारण श्रुति कहलाते हैं। हृदय और सुषुम्ना से संलग्न 22 नाड़ियाँ है जिनके भीतर आद्यात होने से श्रुतियाँ उत्पन्न होती है। अतः संगीत में 22 श्रुतियाँ माने जाने का आधार अत्यन्त सूक्ष्म है जो आज वैज्ञानिक युग में उपकरणों की सहायता से तथा कठिन प्रयोगों के बाद भी सिद्ध नहीं हो पा रहे हैं जबकि हमारे योगियों ने अन्तः प्रेरणा के आधार पर यौगिक क्रियाओं द्वारा सहस्त्रों वर्ष पूर्व सिद्ध कर दिया था। संगीत (ध्वनि, नाद) योग दर्शन से प्रभावित है और संगीत एवं योग वैदिक परम्परा से ही एक दूसरे से प्रभावित रहा है। योग और संगीत दोनों ही विधाओं का साधन यह पिंड शरीर है जिसमें आत्मा निवास करती है। दोनों ही विधाओं का लक्ष्य परमात्मा की

* एसो. प्रोफेसर, सा.रा.म.महाविद्यालय, बरेली।

प्राप्ति है, दोनों का प्रयोजन आत्मानुभूति है आत्मावलोकन है और जिसमें ओज प्रसाद माधुर्य गुणों की प्रचुरता मुखरित हो उठती है। दोनों ही साधना से चित्तवृत्तियों का निरोध अभ्यास द्वारा सरलतापूर्वक किया जाता है। चित्त का आत्मा की ओर झुकाव और वृत्तियों में निरोध हो जाने पर आत्मा का महान तेजस्वी स्वरूप स्थिर रूप से भासित होने लगता है। योग एवं संगीत दोनों से ही मानव का मन उस उच्चतर सूक्ष्म नाद का अनुभव करने योग्य बन जाता है। योगियों ने संगीत को शक्तियों का उर्ध्वगामी बनाने के सहायक माना है। एक प्रकार से कहें तो यह कहना अनुचित नहीं होगा कि यौगिक भाषा में संगीत एक नाद योग है।

अब हम यह कह सकते है कि सम्पूर्ण विश्व में व्याप्त नाद का मूल स्रोत संगीत के सात स्वर है। संगीत के सप्त स्वर उक्त वर्णित चक्रों तथा बिंदु विसर्ग स्थान को झंकृत करते हुए निकलते है जो इस प्रकार हैं :–

1.	षड्ज सा	मूलाधार चक्र
2.	ऋषभ	स्वाधिष्ठान चक्र
3.	गांधार	मणिपुर चक्र
4.	मध्यम	अनाहत चक्र
5.	पंचम	विशुद्धि चक्र
6.	धैवत	आज्ञा चक्र
7.	निषाद	बिंदु विसर्ग
8.	तारषड्ज	सहस्त्राधार चक्र

इन प्रत्येक चक्रों के स्थान, रंग, आकार को ध्यान में रखकर संगीत का अभ्यास करने पर मेरूदण्ड झंकृत होता सा प्रतीत होगा। जिसे प्राप्त करने के लिए योग साधक, आसन, प्राणायाम तथा हठयोग क्रियाएं करता है उसी को संगीत साधक अपनी स्वर साधना से योग का चरम लक्ष्य प्राप्त कर लेता है। स्वरों की योगशास्त्रानुमोदित पद्धति से तथा गुरू के द्वारा उपदिष्ट परम्परा से किये गये अभ्यास से ये चक्र जागृत हो उठते हैं जिससे चित्त में एकाग्रता, मानसिक संतुलन बनाये रखने में सहायता मिलती है। प्रायः यह देखा गया है कि मानसिक तनाव बढ़ने से शरीर में नर्वस सिस्टम असंतुलित होता है और परिणाम स्वरूप मनुष्य अनेक व्याधियों का शिकार हो जाता है। अतः स्वस्थ शरीर के लिए स्वस्थ मन एक आवश्यक अंग है। संगीत के स्वरों का मानव मन पर अमूतपूर्व असर पड़ता है। जिस मनुष्य का मन बिगड़ता है उसका स्वभाव बिगड़ जाता है। असंयम, असत्य, अभिमान, ईर्ष्या, दंभ, क्रोध, हिंसा, कष्ट आदि विकास मानस से सम्बन्ध रखते है ये सूक्ष्म रोग है जो परमानन्द की प्राप्ति में बाधक है। इन सूक्ष्म रोगों से ही मनुष्य इन्द्रियों के तेज और शक्ति खोकर अपने शरीर को रोगी बना बैठता है।

गान्धर्व वेद (संगीत शास्त्र) में स्वर सात बताये गये हैं इन्हीं सात स्वरों के मिश्रण से सभी रागरागनियों का स्वरूप निर्धारित हुआ है। स्वर साधना तथा यौगिक क्रियाओं से नादानुसंधान के विविध प्रयोग हमारे शास्त्रों में निर्दिष्ट है जिनमें शरीर, स्वास्थ्य को बल मिलता है। जो निम्न प्रकार है :–

षडज : नासिका, कंठ, उर, तालु, जिह्वा, दांत इन छः स्थानों के सहयोग से यह स्वर उत्पन्न होता है यह स्वर पित्तज रोगों का शमन करता है।

ऋषभ : नाभि से उठता हुआ वायु कंठ और शीर्ष से टकराकर ध्वनि करता हुआ यह स्वर कफ एवं पित्त प्रधान रोगों का शमन करता है।

गान्धार : नाभि से उठती हुआ वायु कंठ और शीर्ष से टकराकर नासिका की गंध से युक्त होकर निकलता है और पित्तज रोगों का शमन करता है।

मध्यम : नाभि से उठ वायु उर प्रदेश और हृदय से टकराकर, मध्यमान में नाद उत्पन्न करता है यह बात ओर कफ रोगों का शमन करता है।

पंचम : नाभि, उर, हृदय, कंठ और शीर्ष पाँच स्थानों का स्पर्श करता हुआ यह स्वयं पंचम कहलाया। यह कफ प्रधान रोगों का शमन करता है।

धैवत : पूर्व के समान पाँच स्वरों का अनुसंधान करने वाले स्वर भी प्रकृति, चित्त को प्रसन्न और उदासीन दोनों ही बनाती है और यह स्वर पित्तज रोगों का शमन करता है।

निषाद : यह स्वर अपनी तीव्रता से अभी स्वरों को दबा देता है। इस स्वर का स्थान नासिक है और यह वातज रोगों का शमन करता है।

संगीत में बद्धता के साथ जब अभ्यास किया जाता है तो वह योग के ही स्वरूप में आ जाता है परिणामतः मानसिक शक्ति एकाग्रता और तनाव मुक्त करने में सहायक होता है जो कि योग का भी मुख्य सिद्धांत है। योग की टेकनिक जैसे सांसों का नियंत्रण और मानसिक एकाग्रता मुख्यतः गायन संगीत से विशेष सम्बन्ध रखती है। मानव कंठ एक संगीत वाद्य है, मानव को शारीरी वीणा भी कहा जाता है। सम्पूर्ण शरीर के साथ नाभि, हृदय, कंठ और मुख अर्थात रसना और नासिका नाद की उत्पत्ति में सहायक होते हैं। योग एवं संगीत दोनों ही मुनष्य के अन्तर्मन पर व्यापक प्रभाव डालते हैं। विशेषकर कंठ संगीत के प्रशिक्षण से विद्यार्थी का शारीरिक बौद्धिक तथा नैतिक तीनों प्रकार से विकास होता है। योग एवं संगीत दोनों का उद्देश्य अनुशासन का पाठ देना है। मनुष्य का व्यवहार जब सुनियंत्रित होगा तब अपने ही आप जटिलता कम हो जाती है। यह जो आत्मज्ञान की प्राप्ति है उसके लिए संगीत ओर योग दोनों सहायभूत है। मनुष्य परमतत्व की खोज में लीन रहता है उसके लिए वह इन नादयोग का उपयोग कर सकता है, संगीत एक नादयोग है और इस योग की विशेषता यह है कि इसकी साधना भी आनन्ददायी है कष्टप्रद नहीं ।

सामान्यतया योग में प्राणायाम श्वासोच्छ्वास की एक व्यायाम पद्धति है जिससे फेफड़े बलिष्ठ होते है, रक्त संचार की व्यवस्था सुधरने से समग्र आरोग्य एवं दीर्घायु का लाभ मिलता है। शरीर विज्ञान के अनुसार मानव के दोनों फेफड़े सांस को अपने भीतर भरने का यंत्र है जिनमें भरी हुई वायु समस्त शरीर में पहुँचकर ऑक्सीजन प्रदान करती है और विभिन्न अवयवों से उत्पन्न मलिनता (कार्बोनिक गैस) को बाहर निकालने में सहायक होती हैं इस प्रकार निरन्तर रक्त शोधन का कार्य चलता रहता है। संगीत की स्वर साधना इसी प्रकार की यौगिक क्रिया है। स्वर अभ्यास में श्वास को नियंत्रित कर स्वर साधना और पुनः बाहर निष्कासित करना इस प्रकार निरंतर यही क्रिया के साथ दोहरान प्राणायाम ही है। इसी के साथ स्वरों अर्थात् ध्वनि की आवृत्ति और शारीरिक परिस्थिति के परस्पर संबधों के गूढ़ शब्द हमारे वेदों में भी दिये गये हैं। संगीत के स्वर मानस को और मानस सम्पूर्ण शरीर को प्रभावित करता है विभिन्न आवृत्तियों के नाद और अनुनाद शरीर की सभी कोशिकाओं पर अलग–अलग प्रभाव डालते है और जहाँ का संतुलन बिगड़ा होता है उसे वापस लाने में सहयोग करते है। यह एक उच्च स्तरीय योग विज्ञान है जिसका सम्बन्ध ध्वनि विज्ञान से है और नारद के समकालनी तुम्बारू ऋषि गन्धर्व वेद के विशेषज्ञ थे जिन्होनें ध्वनि की आवृत्ति से पड़ने वाले असर का विशद अध्ययन किया। उनके अनुसार ऊँची और असमान आवृत्ति का वात पर, मोटी स्थिर और गम्भीर आवृत्ति का पित्त पर और कोमल तथा मृदु आवृत्ति का कफ के गुणों पर असर पड़ता है और ऐसी आवृत्ति जिसमें तीन गुण हों उसका त्रिदोष पर असर पड़ता है और ऐसी आवृत्ति सन्निपातज कहलाती है। संगीत योग के ही समान हृदय की अस्वथता, उच्च व घटता हुआ रक्तचाप ओर श्वांस संबंधी विकार आदि सभी रोगों में अनुरूपता एवं स्वास्थता प्रदान करता है तथा शरीर के सातों चक्रों में एक लय उत्पन्न करता है जिससे शरीर में नयी शक्ति का जन्म होता है और इसी नई शक्ति और ऊर्जा की चरमावस्था परमानन्द की प्राप्ति है। जिसमें मानव मन उच्चतम सूक्ष्म नाद का अनुभव कर लक्ष्य को प्राप्त करता है।

संगीत साधना योग साधना की भाँति परमपिता परमात्मा की उपासना है एक संगीत साधक को अपनी साधना के दौरान उसी यम नियमों का पालन करना आवश्यक हो जाता है जैसा कि योग साधक को। योग साधक एवं संगीत साधक दोनों के लिए दैनिक साधना करना आवश्यक है।

आधुनिक परिप्रेक्ष्य में भी संगीत एवं योग के परस्पर समन्वय से अनेकानेक प्रयोग किये जा रहे हैं और जो सफल भी हो रहे है। देशकाल और समय के सापेक्ष प्रयोगों को इसी प्रकार परखते रहना होगा तब कही जाकर सर्वेसन्तु निरामयाः के उद्देश्य की पूर्ति हो पायेगी जो आज के भाग दौड़ एवं तनावग्रस्त जीवन के लिए बहुत ही आवश्यक है। संगीत और योग दोनों ही इस देश की धरोहर है समूची मानवता का इसमें योगदान अपेक्षित है और सभी संगीतज्ञों एवं योगियों को अपने–अपने ज्ञान से सींच कर इसे वैश्वीकरण के शीर्ष पर लाकर खड़ा करना होगा।

सन्दर्भ ग्रन्थ :

1. गर्ग लक्ष्मी नारायण – संगीत मासिक पत्रिका 1996
2. दास संजय – यौगिक एवं संगीत चिकित्सा
3. Ganguli, Anil Barah - Fine Art in Ancient India (1997)
4. कल्याण (आरोग्य अंक) 2001 गीताप्रेस गोरखपुर

***

"उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के समायोजन का अध्ययन"

*विकास सिंह**
*डॉ. रीता सिंह***

प्रस्तावना

प्राचीन काल से लेकर आधुनिक काल तक सदैव शिक्षा को सामाजिक तथा राष्ट्रीय विकास की दृष्टि से एक सम्मानजनक स्थान दिया जाता रहा है। वर्तमान समय में प्रयोगों, परीक्षणों, सूचना एवं संचार तकनीकी, नवीनतम अनुसंधानों तथा मनोवैज्ञानिक प्रवृत्तियों के विकास से शिक्षा में नई क्रांति आयी है तथा शिक्षा के स्वरूप में परिवर्तन हो जाने से सम्पूर्ण शैक्षिक आयोजन विद्यार्थियों को ही ध्यान में रखकर आयोजित किया जाता है। इसी के परिणामस्वरूप छात्रों की मानसिक क्षमता, रूचि, योग्यता का मापन कर उसके अनुरूप शिक्षा की व्यवस्था संचालित की जाने लगी है।

शिक्षा से मनुष्य में ज्ञान का उदय होता है। इसलिए ज्ञानोद्भव का आधार–तत्त्व शास्त्र और विवेक माना गया है। ज्ञान अथवा विद्या से मुक्ति प्राप्त होती है तथा मनुष्य शिल्प में निपुणता प्राप्त करता है।[1] शिक्षा एक विकास सम्बन्धी प्रक्रिया है।[2] शिक्षा से व्यावसायिक कार्यक्षमता की वृद्धि होती थी और विद्यार्थी आत्मनिर्भर बनता था।[3] आधुनिक संदर्भ में शिक्षा की वास्तविक भूमिका है :– 1. जिज्ञासा का विकास 2. उचित रूचियों, दृष्टिकोणों एवं मूल्यों का विकास 3. स्वतंत्र अध्ययन चिन्तन योग्यता एवं निर्णय करने की योग्यता का विकास 4. शिक्षण विधियों एवं अध्यापक प्रशिक्षण में क्रांतिकारी परिवर्तन।[4]

सफल शिक्षक होने के लिए शिक्षक को केवल अपने विषय का ही नहीं वरन् बालक की प्रवृत्तियों और मनोवृत्तियों तथा समाज की आवश्यकताओं का भी ज्ञान होना चाहिए। बिना इस ज्ञान के वह अपने उत्तरदायित्व को सफलतापूर्वक नहीं निभा सकता। इसलिए शिक्षा को अब दो 'ध्रुवीय प्रक्रिया' कहते हैं, जिसका एक ध्रुव 'विद्यार्थी' और दूसरा ध्रुव 'विषय' कहलाता है। शिक्षक के द्वारा इन दोनों के बीच आदान–प्रदान होता रहता है, इसलिए शिक्षक को विद्यार्थी और विषय दोनों का ज्ञान होना चाहिए।

अविनाश कुमार शुक्ल (2010)[5] का "बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन" इलाहाबाद मण्डल के प्राथमिक विद्यालयों में कार्यरत बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों के समायोजन की तुलना से सम्बन्धित है, जो विवरणात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि पर आधारित है। यह अध्ययन यादृच्छिक–पुंज न्यादर्शन विधि द्वारा चयनित 500 शिक्षिकों पर किया गया हैं आंकड़ों के संकलन हेतु डॉ. एस.के. मंगल द्वारा निर्मित एवं मानकीकृत 'मंगल शिक्षक समायोजन अनुसूचित' का प्रयोग किया गया है। इस अध्ययन में पाया गया कि लिंग भेद के आधार पर शिक्षकों के समायोजन में अन्तर है और शिक्षकों की अपेक्षा शिक्षिकाएँ उच्च समायोजन प्रदर्शित करती हैं।

समस्या का कथन

वर्तमान अनुसंधान में समस्या से सम्बन्धित कथन **"उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के समायोजन का अध्ययन"** है।

शोध कार्य के उद्देश्य

1. उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के समायोजन का अध्ययन करना।
2. उच्च शिक्षा में सेवारत ग्रामीण–शहरी शिक्षकों के समायोजन का अध्ययन करना।

समायोजन

* शोधछात्र, शिक्षक शिक्षा विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर
** निर्देशक, एसोसिएट प्रोफेसर, शिक्षक शिक्षा विभाग, तिलकधारी स्नातकोत्तर महाविद्यालय, जौनपुर

समायोजन एक महत्वपूर्ण मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा एक जीवित प्राणी अपनी आवश्यकताओं और इन आवश्यकताओं की पूर्ति को प्रभावित करने वाली परिस्थितियों में संतुलन बनाए रखता है। समायोजन को जानने के पहले इसके अर्थ को जानना आवश्यक है। 'समायोजन अर्थात् – सम् + आयोजन।' इस प्रकार समायोजन का शाब्दिक अर्थ हुआ सम् = अच्छी प्रकार से, आयोजन = व्यवस्था करना अर्थात् 'अच्छे ढंग से परिस्थितियों को अपने अनुकूल बनाने की प्रक्रिया' जिससे कि व्यक्ति की आवश्यकताएँ पूरी हो जाएं और मानसिक तनाव या द्वन्द्व और चिन्ताएँ न उत्पन्न होने पाएं। यदि जीवन में व्यक्ति अपनी इच्छाओं या आवश्यकताओं की पूर्ति में सफल हो जाता है तो वह अपनी परिस्थिति या वातावरण से 'समायोजन' कर लेता है। इसके विपरीत यदि व्यक्ति अपनी इच्छा या आवश्यकता (लक्ष्य) की पूर्ति में असफल रह जाता है तो वह 'कुसमायोजित' हो जाता है अर्थात् वह परिस्थिति या वातावरण में समायोजित नहीं हो पाता है।

शोध–विधि

अध्ययन सर्वेक्षण विधि पर आधारित है।

समग्र एवं न्यादर्श

अध्ययन का समग्र वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध राजकीय एवं अनुदानित महाविद्यालयों में सेवारत शिक्षक एवं शिक्षिकाएँ हैं। न्यादर्श में वीर बहादुर सिंह पूर्वांचल विश्वविद्यालय, जौनपुर से सम्बद्ध राजकीय एवं अनुदानित महाविद्यालयों में सेवारत ग्रामीण शिक्षक 200 एवं शहरी शिक्षक 200, कुल 400 शिक्षकों का चयन दैवनिदर्शन की यादृच्छिक विधि के अन्तर्गत स्तरीकृत विधि से किया गया है।

उपकरण

व्यावसायिक समायोजन को ज्ञात करने के लिए डॉ. ए.एच. रिजवी का टीचर्स प्रोफेशनल एडजेस्टमेंट इन्वेंटरी का प्रयोग किया गया है।

आंकड़ा विश्लेषण, परिणाम एवं व्याख्या

सारणी सं. 1

उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों का समायोजन

शिक्षण दक्षता	आवृत्ति	प्रतिशत
अत्यधिक निम्न	11	2.8
निम्न	15	3.8
औसत से कम	6	1.5
औसत	103	25.8
औसत से ऊपर	171	42.8
उच्च	81	20.2
अत्यधिक उच्च	13	3.2
योग	**400**	**100.00**

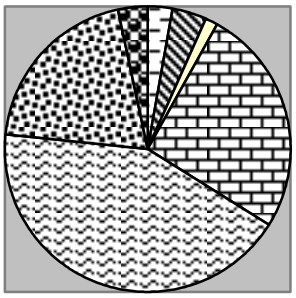

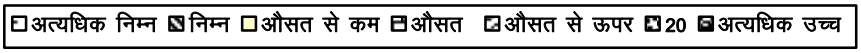

सारणी–ग्राफ 1 में उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के समायोजन को दर्शाया गया है। 2.8 प्रतिशत शिक्षकों की शिक्षण दक्षता अत्यधिक निम्न, 3.8 प्रतिशत की निम्न, 1.5 प्रतिशत की औसत से कम, 25.8 प्रतिशत की औसत, 42.8 प्रतिशत की औसत से ऊपर, 20.2 प्रतिशत का उच्च एवं 3.2 प्रतिशत का अत्यधिक उच्च है। अधिकांश उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों का समायोजन औसत से ऊपर है।

सारणी सं. 2
ग्रामीण–शहरी उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों का समायोजन

समायोजन	**ग्रामीण शिक्षक**	**शहरी शिक्षक**
अत्यधिक निम्न	3 (1.50)	5 (2.50)
निम्न	10 (5.00)	4 (2.00)
औसत से कम	16 (8.00)	16 (8.00)
औसत	54 (27.00)	45 (22.50)
औसत से ऊपर	58 (29.00)	56 (28.00)
उच्च	45 (22.50)	59 (29.50)
बेहतर	14 (7.00)	15 (7.50)
योग	**200 (100.00)**	**200 (100.00)**

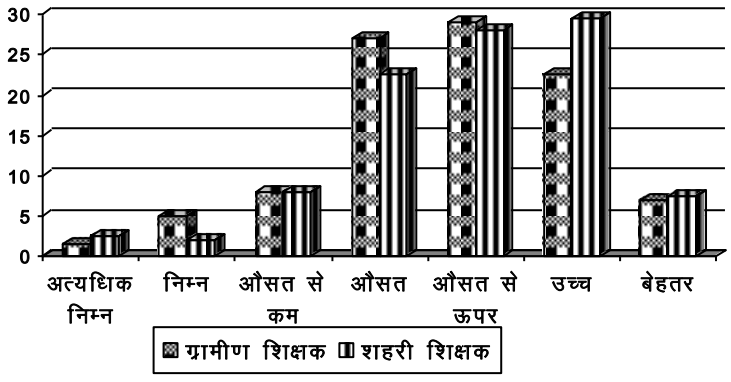

सारणी–ग्राफ 2 में ग्रामीण–शहरी उच्च शिक्षा में सेवारत शिक्षकों के समायोजन को दर्शाया गया है। ग्रामीण शिक्षकों में 1.50 प्रतिशत की अत्यधिक निम्न, 5.00 की निम्न, 8.00 प्रतिशत की औसत

से कम, 27.00 प्रतिशत की औसत, 29.00 प्रतिशत की औसत से ऊपर, 22.50 प्रतिशत की उच्च एवं 7. 00 प्रतिशत की बेहतर है। अधिकांश उच्च शिक्षा में सेवारत ग्रामीण शिक्षकों का समायोजन औसत से ऊपर है।

शहरी शिक्षकों में 2.50 प्रतिशत की अत्यधिक निम्न, 2.00 की निम्न, 8.00 प्रतिशत की औसत से कम, 22.50 प्रतिशत की औसत, 28.00 प्रतिशत की औसत से ऊपर, 29.50 प्रतिशत की उच्च एवं 7. 50 प्रतिशत की बेहतर है। अधिकांश उच्च शिक्षा में सेवारत शहरी शिक्षकों का समायोजन उच्च है।

निष्कर्ष

1. उच्च शिक्षा में सेवारत अधिकांश शिक्षकों का समायोजन औसत से ऊपर है।
2. उच्च शिक्षा में सेवारत अधिकांश ग्रामीण शिक्षकों का समायोजन औसत से ऊपर है।
3. उच्च शिक्षा में सेवारत अधिकांश शहरी शिक्षकों का समायोजन उच्च है।

सन्दर्भ

1 आगमोत्थं विवेकाच्च द्विधा ज्ञानं तद्च्यते।
—विष्णुपुराण, 6.5.61;
सा विद्या या विमुक्तये। विद्यान्या शिल्पनैपुण्यम्।
—विष्णु पुराण, 1.19.41.

2 पाण्डेय, रामशकल (1986), शिक्षा की दार्शनिक एवं समाजशास्त्रीय पृष्ठभूमि, आगरा, पृ. 10—13.

3 अल्तेकर, अनन्त सदाशिव (1955), प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति, नन्द किशोर एण्ड ब्रदर्स, वाराणसी, पृ.10.

4 लता, प्रवेश (2011), भारतीय शिक्षा आयोग (1964—66) एवं आधुनिकीकरण, वा. 2, इशू 24, सितम्बर, रिसर्च एनालिसिस एण्ड इवेल्यूशन, पृ. 4.

5 शुक्ला, अविनाश कुमार (2010) : बी.टी.सी. एवं विशिष्ट बी.टी.सी. प्रशिक्षित शिक्षकों के समायोजन का तुलनात्मक अध्ययन, इण्डो इण्डियन जर्नल ऑफ सोशल साइंस रिसर्चस, वा. 6, नं.2, नवम्बर, पृ. 15—17.

***

इन्दिरा गाँधी की आर्थिक परिकल्पना

*प्रमोद कुमार**

भारत की प्रथम महिला प्रधानमंत्री श्रीमती इन्दिरा गाँधी का नाम स्वर्णाच्क्षरों में अंकित है। वह आधुनिक भारत की निर्माता एवं युग प्रवर्तक महिला थी। देश के विकास में उनका अत्यन्त महत्वपूर्ण योगदान था। इन्दिरा गाँधी अपनी कुशल राजनीतिक प्रतिभा एवं दृढ़ता के लिए जानी जाती थी। 1966 में वह प्रथम बार भारत की प्रधानमंत्री बनी और तीन बार उन्होंने प्रधानमंत्री का पद संभाला। 1969 में उन्होंने बैंको का राष्ट्रीयकरण किया। 1971 ई0 में बांग्लादेशी शरणार्थी समस्या को हल करने के लिए पाकिस्तान के विरूद्ध युद्ध की घोषणा कर दिया। उनकी विदेश नीति बहुत महत्वपूर्ण थी। उनके समय की सबसे महत्वपूर्ण वैज्ञानिक घटना 1974 में भारत का सफलतापूर्वक राजस्थान के पोखरन में भूमिगत परमाणु परीक्षण का किया जाना था। शांतिपूर्ण उद्देश्यों के लिए किये गये इस परीक्षण के पश्चात् भारत दुनिया का सबसे नवीनतम परमाणु शक्ति बन गया।

इन्दिरा गाँधी की आर्थिक विचारधारा बहुत अर्थों में महात्मा गाँधी की विचारधारा से अभिप्रेरित थी। वे अर्थशास्त्री नहीं थी, फिर भी अर्थव्यवस्था के सम्बन्ध में उन्होंने जो विचार व्यक्त किये, वे अत्यन्त मूल्यवान हैं। महात्मा गाँधी के समान उनका भी विचार था कि वास्तविक आर्थिक स्वतंत्रता तो स्वदेशी वस्तुओं को अपनाने से ही मिलेगी। आर्थिक विकास के लिए ही उन्होंने 1960 के दशक में विशेषीकृत अभिनव कृषि कार्यक्रम और सरकार प्रदत्त अतिरिक्त समर्थन लागू होने पर अन्ततः भारत में हमेशा से चले आ रहे खाद्यान्न की कमी को मूलतः गेहूँ, चावल, कपास और दूध के सन्दर्भ में, अतिरिक्त उत्पादन में बदल दिया।[1] देश एक खाद्य निर्यातक बन गया। उस उपलब्धि को अपने वाणिज्यिक फसल उत्पादन के विविधीकरण के साथ हरित क्रांति के नाम से जाना जाता है। इसी समय दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में वृद्धि हुई, जिसे श्वेत क्रांति के नाम से जाना गया। इससे बच्चों के बीच बढ़ते कुपोषण की समस्या से निबटने में मदद मिली।[2]

1960 के शुरूआत में संगठित हरितक्रांति गहन कृषि जिला कार्यक्रम का अनौपचारिक नाम था, जिसके तहत शहरों में रहने वाले लोगों के लिए प्रचुर मात्रा में सस्ते अनाज की निश्चयता मिली।[3] इस कार्यक्रम के अन्तर्गत नई किस्म के बीजों की उपलब्धता, उर्बरको, कीटनाशकों, घास–फूस निवारको इत्यादि रसायनीकरण की स्वीकृति, नई एवं अच्छी बीज के किस्मों को विकसित करने के लिए राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय सहकारी अनुसंधान की प्रतिबद्धता पर बल दिया गया।

भारत में कुटीर उद्योगों के अभाव में किसानों का भविष्य अन्धकारमय है। उसके लिए एक अनुपूरक उद्योग जरूरी है। भूमि की उपज पर ही उसका सुधार नहीं हो सकता। कताई, बुनाई ही उसके लिए सबसे सस्ता, सुलभ और सर्वोत्तम उद्योग है। मीलों की संख्या बढ़ाने से समस्या हल नहीं होगी। जो पैसा देश से बाहर जाता है, उसकी पूर्ति करने में उनको काफी अधिक समय लग जायेगा और वे हमारे घरों के लिए 60 करोड़ रूपये की राशि सुलभ नहीं बना सकेगी। वे तो चन्द उद्योगपतियों के हाथों में ही धन और श्रम को केन्द्रित कर देंगी और उससे समस्या और भी विकराल रूप धारण कर लेगी।[4] मैं चाहती हूँ कि ऐसी छोटी–छोटी सुन्दर सी मीलें देश के घर–घर में दिखने लगे, परन्तु देश में कृषि के किसी एक अनुपूरक उद्योग के बिना किसानों का काम नहीं चल सकता और भारत में तो कृषि का दारोमदार ही अनुकूल वर्षा पर होती है। इस प्रकार यह आन्दोलन भारत के गाँवों और जन–जन को आर्थिक रूप से मजबूती और आर्थिक स्वतंत्रता प्रदान करेगी।[5]

इन्दिरा जी ने एक ऐसे आदर्श ग्राम की कल्पना की जिसमें जीवन की न्यूनतम आवश्यकताये, जैसे– भोजन, पेयजल, वस्त्र, आवास, औपचारिक शिक्षा, स्वास्थ्य, स्वच्छता इत्यादि की पूर्ति हो। इन्दिरा गाँधी ने ग्राम आत्मनिर्भरता के लक्ष्य के रूप में खादी एवं ग्रामोद्योग पर निर्भरता की वकालत

* असिस्टेन्ट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, गो०ब०पं०पी०जी० कालेज, प्रतापगंज, जौनपुर।

की, क्योंकि ये न केवल आर्थिक स्वतंत्रता एवं समानता को बढ़ाते है, वरन रोजगार उत्पन्न करते हैं तथा गरीबी दूर करते हैं। एक ऐसे देश में जहाँ 74 प्रतिशत जनसंख्या गाँवों में निवास करती हो, इन विचारों की उपेक्षा नहीं की जा सकती।[6]

आर्थिक समानता से मेरा आशय यह नही है कि सब व्यक्तियों के पास बिल्कुल एक बराबर पैसा होगा। इसका आशय केवल यह है कि प्रत्येक व्यक्ति के पास अपनी जरूरतों के लायक पैसा होना चाहिए। आर्थिक समानता का वास्तविक अर्थ है– 'प्रत्येक को उसकी आवश्यकता के अनुसार'। यही मार्क्स की परिभाषा है। अगर अकेला आदमी भी उतने की माँग करे जितना कि चार बच्चों वाला विवाहित व्यक्ति करे तो आर्थिक समानता का उल्लंघन होगा।[7] मेरी योजना के तहत् राज्य का कर्तव्य होगा कि वह जनता की इच्छा को कार्यान्वित करे यह नहीं कि जनता पर हुकुम चलाये या उससे बलपूर्वक अपनी इच्छा का पालन कराये। मैं घृणा के स्थान पर प्रेम की शक्तियों का इस्तेमाल करते हुए लोगों को अपनी दृष्टि से सहमत करूँगा और इस प्रकार नैतिकता के आधार पर आर्थिक समानता लाऊँगी। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि अगर स्वयं मेरे पास ही पचास मोटरकारें या दस बीघा जमीन हो तो मैं देश में आर्थिक समानता लाने की आशा नहीं कर सकती। इसके लिए मुझे अपने आप को देश के निर्धनतम व्यक्ति के स्तर तक उतरना होगा।[8]

आज घोर आर्थिक असमानता विद्यमान है। समाजवाद का आधार आर्थिक समानता है। अन्याय पूर्ण असमानताओं की इस वर्तमान स्थिति में मुट्ठी भर लोग ऐश्वर्य भोग रहे हैं और आम आदमी के पास पेट भरने तक का पैसा नहीं है। इन्दिा गाँधी के आर्थिक विचारों का आधार विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था का सिद्धान्त है। उनका विश्वास था कि केन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था की नींव हिंसा पर आधारित है। अतः विकेन्द्रीकृत अर्थव्यवस्था को वे लोकतंत्र का जीवन रक्त समझती थीं।[9] उनका मानना था कि आर्थिक समृद्धि के लिए यह आवश्यक है कि इसकी बागडोर गाँवों के अधीन होनी चाहिए। यदि गाँव समृद्ध लोगों से परिपूर्ण होगा तो देश स्वयं ही समृद्ध हो जायेगा। यदि हम अपनी राष्ट्रीय शक्ति को संगठित करना चाहते हैं तो उत्पादन की सर्वोत्तम विधि को ही नहीं, बल्कि उत्पादन और वितरण दोनों की सर्वोत्तम विधि को अपनाकर ही किया जा सकता है।

इन्दिरा गाँधी के जिन आर्थिक विचारों का हमने अवलोकन किया है यदि हम देखें तो उनका आत्मनिर्भरता, कृषि को प्राथमिकता देने, कुटीर एवं लघु उद्योगों का विकास, मानव–श्रम को महत्व देने, उत्पादन एवं वितरण प्रणाली को कुछ हाथो में केन्द्रित न होने देने का विचार, सभी गाँवों को आत्मनिर्भर इकाई के रूप में विकसित करने, ऐसे विचार बिन्दू हैं, जिसे कोई भी ऐसा व्यक्ति जो भारतीय परिवेश एवं विकास के आभास को समझना होगा, इन्कार नहीं करेगा।

भौतिकता, विदेशी तकनीकी, भोग–विलास युक्त उपभोक्ता संस्कृति में पड़कर हम विकास के लक्ष्य को झुठलाकर न जाने किस भौतिक मकड़जाल में जा रहे हैं, अंधी विकास की दौड़ में हमने इन्दिरा जी को भुला दिया। हमारे राष्ट्र के कर्णधार, जो इन्दिरा गाँधी जी के बलिदान की बदौलत राज सुख भोग रहे हैं, उनके चिन्तन एवं विचारों से प्रेरणा लेकर उन्हे कुछ करना चाहिए। नहीं तो इन्दिरा गाँधी चिन्तन मात्र संगोठियों तक ही सीमित होकर रह जायेगीं।

सन्दर्भ सूची :

1. गाँधी इन्दिरा, 1982, माई ट्रूथ/मेरी सच्चाई।
2. गाँधी वाङमय, 2001, खण्ड 19, पृ0–179।
3. इंदिरा : इंदिरा नेहरू गाँधी की जीवनी–केथरीन फ्रंक्स 2002, पृ0–177।
4. फ्रैंक : केथरीन, 2001, इंदिरा : इंदिरा नेहरू गाँधी की जीवनी, पृ0–186।
5. गाँधी वाङमय, 2001, खण्ड 18, पृ0–421।
6. यंग इण्डिया, 28–07–1927, पृ0–86।
7. किसान, बी0एच0 'हरित क्रांति' के परिप्रेक्ष्य में आधुनिक एशियाई अध्ययन, पृ0–177।
8. रामचन्द्र गुहा, गाँधी के बाद भारत, पृ0–563।
9. वही, पृ0–154।

***

।। आत्मज्ञानार्थ योग दर्शन व सांख्य दर्शन की सार्थकता।।

*डॉ. नमिता अग्रवाल**
*प्रीती शर्मा***

'योग' शब्द 'समाध्यर्थक' 'युज्' धातु (युज समाधौ) से निकला है। अतः योग का अर्थ – समाधि माना गया है। पतञ्जलि योग का लक्षण है – **योगश्चित्तवृत्ति निरोधः** अर्थात् चित्त की वृत्तियों को रोकना। गीता के अनुसार –

"योगस्थः कुरु कर्माणि सङ्गं त्यक्त्वा धनञ्जय।
सिद्धयसिद्धयोः समो भूत्वा समत्वं योग उच्यते।।"[1]

अर्थात् 'योग' में स्थित हुआ कर्म फल का त्यागकर और सिद्धि असिद्धि में सम होकर तू कर्मों को कर, यह समता ही योग है।' गीता में अन्यत्र भी कहा है –**"योगः कर्मसु कौशलम्"**[2]

योग दर्शन के अनुसार **"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।"**[3] अर्थात् चित्त की वृत्तियों का निरोध योग है। निर्मल सत्त्वप्रधान सत्य की जो अङ्गाङ्गीभाव से परिणत वृत्तियाँ है, उनका निरोध अर्थात् जो बाहर को चित्तवृत्तियाँ जाती है उन बहिर्मुख वृत्तियों को सांसारिक विषयों से हटाकर उससे उल्टा अर्थात् अन्तर्मुख करके अपने कारण चित्त में लीन कर देना योग है। इसी विषय में भगवान श्रीकृष्ण श्रीमद्भगवद्गीता में कहते हैं–

"इमं विवस्वते योगं प्रोक्तवानहमव्ययम्।
विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्।।
एवं परम्पराप्राप्तमिमं राजर्षयो बिदुः।
स कालेनेह हता योगो नष्टः परन्तपः।।" [4]

अर्थात् 'मैने सर्वप्रथम इस अविनाशी योग को विवस्वान के प्रति उपदेश किया। विवस्वान ने (अपने पुत्र) मनु से कहा और मनु ने पुत्र इक्ष्वाकु से कहा।' इस प्रकार परम्परा से प्राप्त यह योग राजर्षियों द्वारा जाना गया, किन्तु इसके बाद यह लुप्त प्राय हो गया। तू मेरा प्रिय भक्त व सखा है, इसलिए वही, पुरातन योग आज मैंने तुझे बताया है क्योंकि यह बहुत उत्तम रहस्य है।

परमात्मा के दर्शन का बहुत बड़ा फल है। जो पुरुष जानता है कि सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा ही मेरा स्वरूप है वह अमर हो जाता है।

एवं यः सर्वभूतेषु आत्मानमनुपश्यति।
अन्यत्रान्यत्र युक्तेषु स किं शोचेत् ततः परम्।।[5]

सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा अरूप होने के कारण अतीन्द्रिय है, इन्द्रिय–ग्राह्य नहीं है। अन्तः करण शुद्ध होने पर उसे अपने हृदय में ज्ञान दृष्टि से देखा जा सकता हैं। अपने इस सर्वात्मभाव का अनुभवकर्ता पुरुष कोई पश्चात्ताप नहीं करता।

तात्पर्य यह है कि ज्ञानी पुरुष समस्त भौतिक व्याधियों से मुक्त हो जाता है। ईशावास्योपनिषद् की श्रुति भी ऐसा ही कहती है –**''यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मेवाभूत विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।''**[6] उस अवस्था में अपने आत्मा को ही सब प्राणियों में अनुगत देखने वाले पुरुष को क्या मोह और क्या शोक हो सकता है ?

यथोदपाने महति सर्वतः सम्प्लुतोदके।
एवं सर्वेषु भूतेषु आत्मानमनुजानतः ।।[7]

---

* एसो.प्रो. (संस्कृत), अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा, बांदा (उ.प्र.)
** (शोधच्छात्रा, संस्कृत), अतर्रा पी.जी. कॉलेज, अतर्रा, बांदा (उ.प्र.)

जैसे सब ओर जल से परिपूर्ण बड़े जलाशय के प्राप्त होने पर जल के लिए अन्यत्र जाने की आवश्यकता नहीं होती, उसी प्रकार आत्मज्ञानी के लिए सम्पूर्ण देशों में कुछ भी प्राप्त करने योग्य शेष नहीं रहता।

ब्रह्मनिष्ठ पुरुष समस्त प्राणियों में अपने को ही देखने वाला होता है। इसी के साथ उसे पूर्णता प्राप्त हो जाती है। उसे परमानन्द, अमृतत्व, अभय आदि सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

अर्थात् वेद रूपी कल्प वृक्ष के फल इस योग शास्त्र का सेवन करो जिसकी शाखा मुनिजनों से सेवित है और यह संसार के तीन प्रकार के ताप को शमन करता है।

"योगात्सम्प्राप्यते ज्ञानं योगाद्धर्मस्य लक्षणम्।
योगः परं तपो ज्ञेयः तथायुक्तः समभ्यसेत्।।"[8]

योग साधन से ही वास्तविक ज्ञान की प्राप्ति होती है, योग ही धर्म का लक्षण है, योग ही परम तप है। इसलिए योग का सदा अभ्यास करना चाहिए।

संक्षेप में यदि कहा जाए तो जीवात्मा का विराट चेतना से सम्पर्क जोड़कर दिव्य मार्ग खोल देना ही योग अध्ययन, योग साधना का मुख्य उद्देश्य है।

सांख्य दर्शन भारत का अर्वाचीन दर्शन है। इसकी प्राचीनता का प्रमाण हमारे उपनिषद् हैं। श्वेताश्वतर, कठ. उपनिषदों में सांख्य के त्रिगुण, पुरुष, प्रकृति, अण्डाकार, तन्मात्रा आदि का वर्णन है। सांख्य दर्शन के प्रणेता महर्षि कपिल को माना गया है जिन्होंने सांख्य दर्शन का प्रणयन किया है। भगवद्गीता में कपिल को कृष्ण ने अपनी विभूति माना है। **'सिद्धेषु कपिलो मुनिः'** अर्थात् मैं सिद्धों में कपिल मुनि हूँ।

सांख्य–दर्शन में 25 तत्त्वों का वर्णन है सांख्य मानता है कि उत्पत्ति से पूर्व कार्य कारण में अव्यक्त रूप से रहता है। कार्य की अव्यक्तावस्था का नाम कारण है कारण की व्यक्तावस्था का नाम कार्य है। इस सिद्धान्त को ही सत्कार्यवाद कहते हैं। सत्कार्यवाद के 2 रूप हैं – 1. परिणामवाद और 2. विवर्तवाद। 1. परिणामवाद – कार्यों को वास्तविक सच्चे रूप से बतलाने वाले सिद्धान्त का नाम परिणामवाद है। 2. विवर्तवाद– यह अद्वैत वेदान्त का मत है इसका मतलब होता है कारण से कार्य का असत्य रूपान्तर होना है। अद्वैत के अनुसार यह जगत उत्पन्न होता है, परन्तु जगत् असत्य है। ब्रह्म की ही एक मात्र सत्ता है। जगत की प्रतीति होती है, वह सच्चा नहीं होता।

सांख्य के मूलतत्त्व प्रकृति और पुरुष दोनों है। पुरुष की सत्ता स्वयं सिद्ध और स्वयं प्रकाश्य होती है। प्रकृति से पुरुष भिन्नतत्त्व है। आत्मा शुद्ध चैतन्यमय, निष्क्रिय, उदासीन है। वह अविकारी सत्ता है। यह परिणाम चक्र से बाहर है। अतः आत्मा स्वतः सिद्ध है।

अर्थात् ज्ञान का प्रकाश पड़ने पर चित्त ब्रह्म में एकाग्र हो जाता है, जिससे जीव का ब्रह्म में मिलन हो जाता है। ब्रह्म में चित्त की यह एकाग्रता ही योग है।

ब्रह्म सत्य है, विश्व असत्य है। सत्य का परिवर्तन असत्य में कैसे हो सकता है? ब्रह्म एक है परन्तु विश्व अनेकता से परिपूर्ण है। ब्रह्म अपरिवर्तनशील है, किन्तु विश्व परिवर्तनशील है अतः शंकर ने जगत को ब्रह्म का विवर्त माना है। यही मत 'ब्रह्म विवर्तवाद' कहा जाता है। विवर्तवाद साँप (कार्य) को रस्सी (कारण) का अवास्तविक परिवर्तन मानता है। विवर्तवाद में कारण को सत्य माना गया है, कार्य को पूर्णतः असत्य मानता है।

पुरुष के अस्तित्त्व के प्रमाण –

"संघातपरार्थत्वात् त्रिगुणादिविपर्ययादधिष्ठनात्
पुरुषाऽस्ति भोक्तृभावात् कैवल्यार्थं प्रवृत्तेश्च।।"[9]

1. **संघातपरार्थत्वात् –** सावयव वस्तुओं को संघातमय कहते हैं। अर्थात् वस्तुओं का वह स्वरूप जो दूसरों के उद्देश्य के लिए निर्मित हो। मन, इन्द्रियाँ, शरीर, अहंकार, बुद्धि आदि संघातमय पदार्थ है। जैसे– चारपाई–शयन करने वाले के लिये है। प्रकृति स्वयं पुरुष के प्रयोजन की पूर्ति में सहायक है। प्रकृति विभिन्न वस्तुओं का विकास पुरुष के उद्देश्य पूर्ति हेतु करती है।

2. **त्रिगुणादिविपर्ययात्** – विश्व की वस्तुओं में सुख, दुःख उदासीनता उत्पन्न करने की शक्ति के कारण वे त्रिगुणात्मक हैं। पुरुष त्रिगुण गुणों का साक्षी तो है परन्तु वह स्वयं इनसे परे है।
3. **अधिष्ठानात्** – विश्व के समस्त भौतिक पदार्थ अचेतन हैं। चेतन सत्ता के रूप में अचेतन वस्तु अपनी क्रियाओं का प्रदर्शन करती है। पुरुष समस्त विषयों का अधिष्ठाता है। वह चेतन तत्त्व पुरुष है जो प्रकृति, महत्, अहंकार, मन आदि अचेतन पदार्थों का पथ प्रदर्शक है।
4. **भोक्तृभावात्** – प्रकृति से संसार की समस्त वस्तुओं का विकास होता है। प्रकृति एवं समस्त वस्तुएँ भोग्य हैं। इन समस्त वस्तुओं का भोक्ता चेतन सत्ता ही है। पुरुष ही वह चेतन सत्ता है जो सुख–दुःख, उदासीनता का अनुभव कर अपना अस्तित्त्व प्रकट करता है।
5. **कैवल्यार्थप्रवृत्ते–** विश्व के कुछ मानव दुःखों का नाश करने हेतु मोक्ष पाने को प्रयत्नशील रहते हैं। सांख्य पुरुष की संख्या अनेक मानते हैं, जितने जीव हैं उतनी ही आत्माएँ हैं। सभी आत्माएँ चैतन्य स्वरूप है।

सांख्यदर्शन और योगदर्शन ये दोनों ही मनुष्य के दुःखों के मूल कारणों को खोजकर उनका समाधान देते हैं। अथर्ववेद में एक मंत्र है – **'अन्ति सन्तं न अहात्यन्ति सन्तं न पश्यति**[10] अर्थात् निकट में बैठे हुए को छोड़ता नहीं तथा पास में बैठे हुए को देखता नहीं। तात्पर्य है कि जीव प्रकृति से संश्लिष्ट है उसे नहीं छोड़ता तथा पास में स्थित अन्य सभी परमात्मा को नहीं देख पाता। सांख्य व योग दर्शन में इसी विषय पर विचार किया गया है।

सांख्य और योग में मूलभूत अन्तर यही है, जिन दुःखों से जीव दुःखी रहता है योगदर्शन उसे पंच क्लेश नाम देता है। 1. अवस्था, 2. अस्मिता, 3. राग, 4. द्वेष 5. अभिनिवेश। इन क्लेशों से छूटने का व्यावहारिक रूप योगदर्शन है। इसमें प्रत्यक्ष अनुभूति का प्रकार भी बतलाया गया है। यही विशेषता 'योगदर्शन' को सर्वोत्कृष्ट बनाती है। यही विशेषतायें योग को विज्ञान का रूप देती है। सभी दर्शन 'योग' को मोक्ष का साधन बताते हैं।

योग सांख्य का क्रिया रूप है। गीता में भी कुछ इस प्रकार है– **एकं सांख्यं च योगं च यः पश्यति स पश्यति**[11] । योग सम्प्रदायों– मन–मतांतरों के विवादों से सार्वभौम धर्म है जो स्वयं के अनुभव से तत्त्व का ज्ञान देता है और अंतिम लक्ष्य प्राप्त करता है।

आत्मसाक्षात्कर्ता पुरुष के लिए भोग और अपवर्ग को सिद्धकर गुण(सत्त्व–रजस्–तमस्) कृतकार्य हो जाते हैं। **'तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्**[12]**'**

अब आत्मा केवल स्वरूप में अवस्थित है, गुणों के साथ इसका कोई सम्पर्क नहीं। इसी कारण आत्मा की इस अवस्था को 'कैवल्य' कहा जाता है तब आत्मा अपने नैसर्गिक सामर्थ्य से जो योग–समाधि द्वारा अभिव्यक्त हो गया है– आनन्दस्वरूप परमात्मा में सम्बद्ध होकर उस दिव्य आनन्द का अनुभव किया करता है।

आत्मज्ञान में ही मानव–जन्म की सार्थकता –

ज्ञानी जन पूर्णानन्द स्वरूप परमात्मा को पाकर तृप्त हो जाते हैं।

उभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति तदा हुतं चाहुतमग्निहोत्रम्।
मा ते ब्राह्मी लघुतामादधीत प्रज्ञानं स्यान्नाम धीरा लभन्ते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम् ।।[13]

ज्ञानी पुरुष ब्रह्मविद्या के द्वारा इस लोक और परलोक दोनों के तत्त्व को जानकर ब्रह्मभाव को प्राप्त होता है। उस समय उसके द्वारा यदि अग्निहोत्र आदि कर्म न भी हुए हो तो भी वे पूर्ण समझे जाते हैं। राजन्! यह ब्रह्मविद्या तुम में लघुता न आने दे तथा इसके द्वारा तुम्हें वह ब्रह्मज्ञान प्राप्त हो, जिसे धीर पुरुष ही प्राप्त करते हैं। उसी ब्रह्मविद्या के द्वारा ही योगी लोग उस सनातन परमात्मा का साक्षात्कार करते हैं।

ब्रह्मविद्या की इस महिमा का कारण यह है कि **"उभौ लोकौ विद्यया व्याप्य याति"** ब्रह्म दोनों लोकों को ज्ञान से व्याप्त कर जाता है। यह लोक और परलोक दोनों को पूर्णानन्दस्वरूपब्रह्म ब्रह्मविद्या

से व्याप्त कर जाता है। इसलिए ब्रह्मविद्या के बल से ही अग्निहोत्र आदि समस्त पुण्य कर्मों का फल प्राप्त हो जाता है।

एवं रूपो महात्मा स पावकं पुरुषो गिरन्।
यो वै तं पुरुषं वेद तस्येहात्मा न रिष्यते।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।[14]

जो महात्मा पुरुष हैं, वह जीव भाव को अपने में ही विलीन करके उस पूर्ण परमेश्वर को जान लेता है, इस लोक में उसकी आत्मा नष्ट नहीं होती उस सनातन परमात्मा का योगी लोग साक्षात्कार करते हैं।

इस प्रकार परमात्मा को आत्मभाव से जानने वाला महानात्मा ब्रह्मस्वरूप ही हो जाता है। वह जीवरूप अग्नि को अपने में ही लीन कर लेता है। आत्मज्ञानी का जीवभाव समाप्त हो जाता है। उसी के साथ कारण सहित सम्पूर्ण कार्यवर्ग का उसमें उपसंहार हो जाता है। इसलिए अपने को साक्षात् रूप से ब्रह्म जानने वाला पुरुष पुनर्जन्म को प्राप्त नहीं होता।

जीव का पुनर्जन्म ही उसका नाश है। श्रुति भी कहती है कि ज्ञानी के प्राण उत्क्रमण नहीं करते – **"अत्रैव समवलीयन्ते न तस्य प्राणा उत्क्रामन्ति, ब्रह्मैव सन् ब्रह्माप्येति य एवं वेद"**[15]– उसके प्राण यहीं लीन हो जाते हैं, वे उत्क्रमण नहीं करते, जो ऐसा जानता है, वह ब्रह्मस्वरूप हुआ ही ब्रह्म में लीन हो जाता है। इसी श्रुति वचन का अनुवाद भगवान् सनत्सुजात ने इस श्लोक में किया है।

तस्मात्सदा सत्कृतः स्यात् न मृत्युरमृतं कुतः।
सत्यानृते सत्यसमानबन्धे सतश्च योनिरसतश्चैक एव।
योगिनस्तं प्रपश्यन्ति भगवन्तं सनातनम्।।[16]

अतएव निरन्तर सत्स्वरूप आत्मा में ही स्थित रहे। ऐसी स्थिति में जब मृत्यु ही नहीं तो अमरता का क्या प्रश्न है ? सत्य और असत्य सब कुछ सनातन समब्रह्म में स्थित है। एकमात्र वही सत् और असत् की उत्पत्ति का स्थान है। उस सनातन परमात्मा का योगीजन साक्षात्कार करते हैं।

अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो महात्मा न दृश्यते सौहृदि सन्निविष्टः।
अजश्चरो दिवारात्रमतन्द्रितश्च स तं मत्वा कविरास्ते प्रसन्नः।।[17]

यह अंगुष्ठ मात्र अन्तर्यामी परमात्मा सबसे हृदय के भीतर स्थित है, किन्तु सबको दिखायी नहीं देता। वह अजन्मा, चराचर स्वरूप और दिन–रात सावधान रहने वाला है जो उसे जान लेता है, वह ज्ञानी परमानन्द में निमग्न हो जाता है।

पहले कह आये है कि अन्तरात्मा पूर्ण पुरुष लिंग देह की उपाधि से अंगुठमात्र परिमाण का हुआ है। परमात्मा ने अपनी माया शक्ति से आकाशादि अपंचीकृत और पंचीकृत पंचभूतों की रचना कर सूक्ष्म और स्थूल शरीरों की रचना की। फिर सूक्ष्म शरीरों में जीवभाव से प्रविष्ट हो गया। यह जीव अंगुष्ठ मात्र है। इस जीव को अपने हृदय में सन्निविष्ट सच्चिदानन्दस्वरूप परमात्मा नहीं दिखाई देता।

यह जीव दिन–रात सावधान होकर परमात्मा की खोज में लगा रहे तो वह उसे शास्त्रयुक्ति से पा सकता है। पंचकोश–विवेक अवस्था–त्रय विवेक आदि अनेक ऐसी युक्तियां हैं जिनसे परमात्मा को अपरोक्ष रूप से पाया जा सकता है। परमात्मा को पाकर विद्वान् प्रसन्न हो जाता है। वह संसार–चक्र से उपराम होकर कृतार्थ हो जाता है।

तस्माच्च वायुरायातस्तस्मिंश्च प्रलयस्तथा।
तस्मादग्निश्च सोमश्च तस्मिंश्च प्राण आगतः।।[18]

उस पूर्ण ब्रह्म से ही वायु का आविर्भाव हुआ है और उसी में वह लीन हो जाता है। उसी से अग्नि और सोम की उत्पत्ति हुई तथा उसी से यह प्राण उत्पन्न हुआ है।

तत्प्रतिष्ठा तदमृतं लोकास्तद् ब्रह्म तद्यशः।
भूतानि जज्ञिरे तस्मात् प्रलयं यान्ति तत्र च।।[19]

वह अमृत है, वह ब्रह्म है, और वही यशस्वरूप है। उसी से समस्त भूत उत्पन्न हुए हैं और उसी में वे लीन हो जाते हैं।

'तदमृतं तद्ब्रह्म तद्यशः'—वह अमृत है, वह ब्रह्म है और वही यशस्वरूप है। ये परमात्मा के स्वरूप लक्षण हैं। अमृत होने के कारण वह सत्स्वरूप है, वृहत्तम ब्रह्म होने के कारण वह अनन्त है और यशस्वरूप होने के कारण वह चेतन सत्ता है। परमात्मा के ये सब लक्षण अपने हृदय में देखे जा सकते हैं।

ईशावास्योपनिषद् की श्रुति भी ऐसा ही कहती है —**''यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्मेवाभूत विजानतः। तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः।।''**[20] उस अवस्था में अपने आत्मा को ही सब प्राणियों में अनुगत देखने वाले पुरुष को क्या मोह और क्या शोक हो सकता है ?

यथोदपाने महति सर्वतः सम्प्लुतोदके।
एवं सर्वेषु भूतेषु आत्मानमनुजानतः ।।[21]

ब्रह्मनिष्ठ पुरुष समस्त प्राणियों में अपने को ही देखने वाला होता है। इसी के साथ उसे पूर्णता प्राप्त हो जाती है। उसे परमानन्द, अमृतत्व, अभय आदि सब कुछ प्राप्त हो जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. श्रीमद्भगवगीता— वेदव्यास कृत
2. अथर्ववेद—
3. ईशावास्योपनिषद्
4. सांख्यकारिका —ईश्वरकृष्णविरचिता
5. पातंजलयोगर्दान —महर्षि पतंजलि कृत
6. ईशावास्योपनिषद्
7. ब्रह्मसूत्र — वेदव्यास कृत
8. सनत्सुजातीयम् — स्वामी शंकरानन्द

---

[1] श्रीमद्भगवद्गीता ।। 2/48।।
[2] श्रीमद्भगवद्गीता (2/50)
[3] योगसूत्र 1/2
[4] श्रीमद्भगवद्गीता 4/1—2
[5] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/26 (स्वामी शंकरानन्द)
[6] ईशावास्योपनिषद्
[7] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/27 (स्वामी शंकरानन्द)
[8] अग्निसंहिता
[9] सांख्यकारिका /17
[10] अथर्ववेद 10/8/32
[11] श्रीमद्भगवद्गीता 5/5
[12] पातञ्जल योगदर्षन समाधिपाद सूत्र 1/3
[13] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/17 (स्वामी शंकरानन्द)
[14] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/18 (स्वामी शंकरानन्द)
[15] ब्रह्मसूत्र
[16] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/19 (स्वामी शंकरानन्द)
[17] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/20 (स्वामी शंकरानन्द)
[18] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/21 (स्वामी शंकरानन्द)
[19] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/22 (स्वामी शंकरानन्द)
[20] ईशावास्योपनिषद्
[21] सनत्सुजातीयम् श्लोक 05/27 (स्वामी शंकरानन्द)

***

बिहार के पूर्वी लोकगीतों में महेन्द्र मिसिर का योगदान

*पल्लवी जोशी एवं प्रो. शर्मिला टेलर**

जब भी पूरबी गीत, लोकगीत और लोक साहित्य की बात होगी तो सबसे पहला नाम महेन्द्र मिश्र का ही लिया जाएगा। महेन्द्र मिश्र पूरबी गीतों क जरिए पूरबियों की आवाज उठाते रहे थे। हालांकि वे खुद को महेन्द्र मिश्र की जगह महेन्द्र मिसिर कहलाना गौरव की बात समझते थे। गांव में कुश्ती खेलने में मग्न रहने वाले महेन्द्र मिश्र पूरबी साहित्य के पुरोधा बन गए। ऐसे तो महेन्द्र मिश्र का गीत आम लोगों के जुबां पर आज भी मौजूद है लेकिन उनकी कुछ चुनिंदा रचनाएं तो सर्वव्यापी है। महेन्द्र मिश्र इसलिए भी चर्चित हुए कि वे ही उस वक्त के एकमात्र कथाकार हुए जिन्होंने अपने गीतों को भोजपुरी और हिन्दी में सृजन किया। राज दरबार में अपने गीतों की बदौलत महेन्द्र मिश्र का एक छत्र राज कायम था। महेन्द्र मिश्र भोजपुर इलाके में गाए जाने वाली गीत झूमर, जतेसार आदि के समानांतर लोकप्रिय लोकधुन में सिंगर परक, संजोग–वियोग से भरे हुए गीत रस की लाइन खींच दी। जिसने। जो इन्हें जन कवि के साथ–साथ पुरबी गीतों का पुरोधा बना दिया। महेन्द्र मिश्र भोजपुरी क्षेत्र के भारतेन्दु कहे जाने वाले भिखारी ठाकुर के साथ समकालीन कवि के रूप में उभरकर आए। हालांकि महेन्द्र मिश्र लोग संगीत की दुनिया में बेताज बादशाह कहलाते थे। यह विदित है कि भोजपुरी भाषा के लोक गायिकी शख़्सियतों में महेन्द्र मिश्र का नाम अग्रणी में रहेगा। बताया जाता है कि सिर्फ पुरबी क्षेत्र तक ही नहीं बल्कि बिहार व उत्तर प्रदेश में भी महेन्द्र मिश्र अपनी लोकगीतों की गायकी से अपनी अलग पहचान बनाए हुए थे। महेन्द्र मिश्र की सबसे बड़ी ख़ासियत यह थी कि उन्होंने कभी किसी दूसरे का लिखा हुआ गीत नहीं गाया। वे खुद गीतों की रचना करते थे और गांवों के चौपालों व कीर्तन घट में गाते थे।

गाँव में पहलवानी करते–करते हष्ट–पुष्ट शरीर वाले एक शख्स जिनके ललाट (कपाट) से तेज की आभा की चमक दूर तक दिखाई देती थी। धोती और कुर्ता पहनकर, गले में चैन और मुख लाल। मुख लाल इसलिए कि हर वक्त मुंह में पान, यही सब थी महेन्द्र मिश्र की पहचान। महेन्द्र मिश्र विलक्षण प्रतिभा के भी धनी कहलाते थे। अपनी रचनाओं की बदौलत और पुरबी गीतों से यू.पी. व बिहार में प्रमुख जाने–माने वाले महेन्द्र मिश्र स्वभाव से बड़े उदार थे।

महेन्द्र मिश्र का जन्म बिहार राज्य के आरम्भ जिला के अंतर्गत छपटा के मिश्रवलिया गांव में 16 मार्च 1986 को हुआ था। यह गांव उत्तर जलालपुर प्रखंड में आता था जो छपटा शहर में 12 किलोमीटर उत्तर में था। महेन्द्र मिश्र के पिता का नाम शिवशंकर मिसिर और माता का नाम गायत्री देवी था। महेन्द्र मिसिर का बचपन बहुत ही लाड़–प्यार में बीता। महेन्द्र मिसिरकी शिक्षा–दीक्षा और शैक्षणिक योग्यता से जुड़ी बातों की जानकारी सही रूप से नहीं मिल पाई।

महेन्द्र मिसिर सिर्फ उत्तर भारत में ही नहीं मिली, बल्कि विदेशों में भी वे खूब चर्चित हुए। आज भी दुनिया के कई कोने–कोने में जहां उत्तर भारतीय या पुरबी क्षेत्र के लोग हैं वहां महेन्द्र मिसिर के गीतों को लोग गुनगुनाते हैं। दुनिया के अन्य देश जैसे मॉरीशस, ब्रिटेन, गुवाना, हॉलैंड, नीदरलैंड, ट्रीनीनाड, नेपाल आदि देशों में बसे 22 करोड़ से अधिक लोगों के मन में महेन्द्र मिसिर बसे हुए हैं और उनकी जुबां पर महेन्द्र मिसिर रचित गीतों के बोल हैं। हालांकि महेन्द्र मिश्र भी विवादों से घिरे। कुछ कोठा पर नाचने वाली के लिए गीत लिखने और अंग्रेजों से नोट छापने की मशीन लेकर उस मशीन से नोट छापकर अंग्रेजों के विरूद्ध ही उपयोग करने और इसी अरोप में गिरफ्तारी को लेकर वे विवादों में रहे।

---

* मंच कला विभाग, बनस्थली विद्यापीठ (राजस्थान)

अवध क्षेत्र का पूर्वांचल हिस्सा, जिसे पुरबिया क्षेत्र भी कहा जाता था। पुरबियों की अस्मिता को बचाने के लिए लोक गीतों के कथाकार, रचनाकार ने लेखनी, गीत के जरिए शुरू से ही प्रयास किया। आज के समाज में लोक–गीत से जुड़े साहित्यकार नहीं के बराबर मिलते हैं। अगर कहीं हैं भी तो ऊँचे शोहरत हासिल करने जैसा कुछ मालूम नहीं है। लोक गीतों में पूरबी का प्रचलन तब बढ़ता गया जब देश में साम्राज्यवाद के बाद औपनिवेशवाद का दौर चला। हम अब तक समझ चुके हैं कि महेन्द्र मिश्र ने लोक गीतों के माध्यम से हमें यह बताने का प्रयास किया है कि पूरबी क्षेत्र दो भागों में जाना जाता था। एक क्षेत्र अवध था जो भगवान राम का माना जाता था और दूसरा क्षेत्र ब्रज, जो श्रीकृष्ण का कहलाता था। इसका जिक्र महेन्द्र मिश्र के गीतों में भी उपलब्ध है। हालांकि अवध क्षेत्र के मानचित्र में किसी क्षेत्र को न तो पश्चिम दिशा में कुछ दर्शाया गया और न पूरब वाले क्षेत्र में कुछ कहा गया। बस अवध को अवध के रूप में लोग जानने लगे थे। लेकिन इस इलाके को पुरबिया के रूप में कैसे जाना गया और कैसे पूरबिया इलाका कहा जाने लगा। महेन्द्र मिश्र की गीतों व रचनाओं से ही पूर्वी गीत लोग जानने लगे थे। भोजपुरी भाषा में स्थानीय बातों, समस्याओं, दुःख का जिक्र कर गीत तैयार करने में महेन्द्र मिश्र को महारथ हासिल था। कई साहित्यकारों ने कहा है कि अगर भिखारी ठाकुर भोजपुरी साहित्य के 'शेक्सपियर' थे तो महेन्द्र मिश्र भी 'विलियम बर्डबर्थ' थे। पंडित महेन्द्र मिश्र आज भी पूर्वी गीतों में जिंदा है।

1. अंगूलि में डसले बिया नगिनिया रे,
   हाय ननदी सैयां के जागा द्
2. सासु मोरो मारे रामा
   बांस के फेवकिया की ननदिया मोटा रे
   सुसुका पनिया के जाय
3. आधी–आधी रति बुहुके कोयलिया,
   राम बैरनिया मइली न
   मोरा अँखियाँ के निनिया
   राम बैरनिया मइलीना।

ऐसे एक–दो नहीं दर्जनों नहीं सैंकड़ों गीत आज भी समाज की महिलाएँ गुनगुनाती है या फिर बात–बात पर दोहा के रूप में, मुहावरा के रूप में प्रयोग करती हैं। महेन्द्र मिश्र के समय में कलकत्ता जूट की सबसे बड़ी मंडी थी और ट्रेन भी कुछ क्षेत्रों में चलता था। पूर्वी क्षेत्र से पलायन करने वाले अधिक लोग, कलकत्ता ही जाते हैं। इस पलयान और ट्रेन की सवारी पर महेन्द्र मिश्र की कई रचनाएं हैं।

महेन्द्र मिश्र की अधिकांश गीत स्त्री आधारित हैं फिर यूं कहें कि गीत का केन्द्र बिन्दु स्त्री ही होती थी। पति के परदेस जाने पर एक पत्नी का विरह और पक्षी के जरिए संदेश भेजने का जिक्र गीतों में किया गया। कुछ चीजें तो आज भी मौखिक परम्परा के अनुसार चलती हैं। महेन्द्र मिश्र की इस रचना को देखें –

''देखऊ रे कगवा, पुफा भात दोनिया हो रामा ।
खबर ना ला दे बलम, परदेसिया को रामा ।।''

पैसे कमाने के लिए परदेस गए पति के इंतजार में एक पत्नी किस तरह एक कौए को अपने सजन का संदेश लाने को कहती है। पुरबियों ने अपनी पूरबी अस्मिता को बचाने के लिए 70 के दशक के बाद सक्रियता दिखाई थी। हालांकि पूरबिया लोक संस्कृति को बचाने के लिए कई साहित्यकार अपनी–अपनी किताबों में महेन्द्र मिश्र के रचनाओं का विवरण जरूर कर रहे हैं। जूट मंडी कलकत्ता थी। व्यापार केन्द्र को हटाकर अन्य राज्यों में कर दिया गया। उसी वक्त देश में औद्योगिक क्रांति भी जोर पकड़ रही थी। जूट का व्यापार तब लगभग समाप्त ही हो गया था तो अचानक से व्यापार करने का केन्द्र कलकत्ता से हटाकर गुजरात, महाराष्ट्र आदि राज्यों व बड़े

शहरों में बन गया था। लिहाजा पैसे कमाने के लिए जो लोग पहले कलकत्ता जाते थे, तो उनका रास्ता बदल गया था। पलायन करने वाले लोग अधिक पूरबी क्षेत्र के थे तो पश्चिमी क्षेत्र में पहुंचने पर इन सबों को पुरबिया लोग की संज्ञा ही दी जाती थी। पूरबिया साहित्य, लोक गीत और इस क्षेत्र के लोगों ने उस वक्त भारतीय रेलगाड़ी को सौत तक नाम दे डाला था। महिलाएं इसलिए रेल को सौत कहती थीं कि उनके पति उसी पर चढ़कर पदरेस जाते थे। इसको लेकर कई पूरबी गीत आज गाया और सुना जाता है।

गीत के बोल –

रेलिया बैरन पिया को लिए जाए रे
जौन टिकसवा से बलम मोरे जइहँ
पानी बरसे टिकस गल जाए रे .....

जन्म से मरने तक के विषयों पर महेन्द्र मिश्र अपने दम पर पूरबियों के लिए आवाज उठाते रहे। साथ ही पूरबी गीतों की रचना करते रहे। साटम (कपड़ा) के गांव मिसरवलिया में जन्में महेन्द्र मिश्र ही एक ऐसा रचनाकार हुए जिन्हें कहा तो गया पूरबिया का पुरोफा पर उनके चाहने वाले कोने–कोने में है। कई क्षेत्र में कुछ गायक यह सोच कर महेन्द्र मिश्र की पूर्वी गीतों को इसलिए भी पूरबिया तान पर गाते हैं कि अगर संगीत ठीक से नहीं भी मिला तो वह यह गीत जरूर गा लेंगे। तभी तो कई फिल्मकारों ने भी लगभग आठ–नौ साल पहले महेन्द्र मिश्र के आधा दर्जन गीतों का चयन किया था। हालांकि इसकी पुष्टि नहीं हो पाई लेकिन महेन्द्र मिश्र की जीवनी पर उनके पूरबिया तान पर फिल्म बनाने की सोच पनप रही है।

दरअसल महेन्द्र मिश्र के गुजरे 75 साल से भी अधिक समय गुजर गया पर पूरबी सम्राट के पूरबी गीतों का न सिर्फ जादू बरकरार है बल्कि अभी भी दायरा बढ़ता ही जा रहा है। तभी तो गांव में आज भी महिलाएं पूर्वी गीतों की पक्तियां गुनगुनाती रहती हैं। यही ताकत है महेन्द्र मिश्र के गीतों में।

पूरबी गीतों के भाव, बोल, जुन से हम कह सकते हैं कि महेन्द्र मिश्र सिर्फ गायक ही नहीं थे। सिर्फ गीतों के रचनाकार नहीं थे, बल्कि वे तो खुद गीतकार भी थे और संगीतकार का हुनर भी उनके पास था। ऐसा इसलिए कि महेन्द्र मिश्र के गीतों, रचनाओं का अध्ययन करने से पता चलता है कि वह खुद को एक स्त्री मानकर ही गीतों की रचना करते थे। तभी तो प्रायः गीतों में उन्होंने गांव के स्त्रियों की वेदना, पीड़ा, और उनके समक्ष सामाजिक ताना–बाना को गीत के जरिए ही पेश किया। या हम ऐसे कह सकते हैं कि वे स्त्री प्रधान रचनाकार थे और अधिकांश गीत स्त्री के मन की आवाज थी। लेकिन ऐसा कर पाना आसान नहीं था। यह कठिन ही होगा कि महेन्द्र मिश्र पुरूष होकर भी स्त्री के मन में चल रहे कौतुहलता, प्रेम–विरह मन की बातों को सामने लाते वक्त पता नहीं किस दुनिया में और कितनी गहराई में डूबते होंगे। मतलब यों कहे कि महेन्द्र मिश्र जब गीत लिखते होंगे तो निश्चित रूप से खुद को न सिर्फ स्त्री मानते होंगे बल्कि स्त्री ही बन जाते होंगे।

पूरबी सम्राट महेन्द्र पिसिर द्वारा रचित कई नाटक, लोकगीत, कविता आदि उपलब्ध है लेकिन महेन्द्र मिसिर को ख़्याति और प्रसिद्धि पूर्वी गीतों की वजह से मिला। महेन्द्र मिसिर को ही पूर्वी गीत का जन्मदाता कहा जाता है। इनके पूर्वी को सुनने के बाद ही मोहम्मद महान गायक उभरकर सामने आए, जिनको सुनकर आज के सभी नवोदित कलाकार महेन्द्र मिसिर के गीतों को आधार मानकर ही लोक गायिकी कर पाते हैं।

28 सितंबर 1946 को महेन्द्र मिसिर की मौत हुई। लेकिन वे इन दौरान मात्र आठ दिन ही बीमार रहे। बीमारी अवस्था में आंखों की रोशनी कम होने के बावजूद सामने बैठे लोगों को पहचानने की क्षमता और लोक गीत का असर कम नहीं हुआ था। कुल मिलाकर महेन्द्र मिश्र पूर्वी के उस्ताद कहे जाते थे। उनकी रचनाओं में अलग पूरबी धार देखने को मिलती थी। उनकी रचनाओं में देशानुराग, भक्ति और वियोग से लेकर कई बात देखने को मिलती हैं। लोक साहित्य में कोई बिरला ही होता है कि जो एक साथ साहित्य, शास्त्रीय संगीत और वादन की समझ एक साथ रखत हो। महेन्द्र मिश्र राजनीतिक, सामाजिक ज्ञान रखते थे। इसी कारण से महेन्द्र मिश्र को भोजपुरी का भारतेन्दु कहा जाता है। महेन्द्र मिश्र पूर्वी गीतों में आज भी जिंदा है।

***

संस्कृत रूपग्राम

गणेश शंकर पाण्डेय *

भाषा यादृच्छिक, वाचिक, ध्वनि संकेतों की वह पद्धति है, जिसके द्वारा मानव परस्पर विचारों का आदान प्रदान करता है। मानव अपने भावों की अभिव्यक्ति के लिए जिस व्यक्त वाणी का उपयोग करता है, उसे भाषा कहते हैं। भाषा विज्ञान जिस भाषा का ग्रहण है, वह सांकेतिक आदि से भिन्न मानवीय व्यक्त वाणी है। भाषा शब्द की व्युत्पत्ति पर ध्यान देने से इस अर्थ की पुष्टि होती है कि भाषा शब्द संस्कृत की भाष् धातु से बना है। भाष् धातु का अर्थ है– भाष् व्यक्तायां वाचि' अर्थात् व्यक्त वाणी 'भाष्यते व्यक्तवाग्रुपेण अभिव्यंज्यते इति भाषा' अर्थात् व्यक्त वाणी के रूप में जिसकी अभिव्यक्ति की जाती है, उसे 'भाषा' कहते हैं। मुख्य रूप से भाषा शब्द से मानवीय व्यक्त वाणी का ही ग्रहण होता है क्योंकि इस व्यक्त भाषा के द्वारा सूक्ष्मातिसूक्ष्म मानवीय भावों को प्रकट किया जा सकता है। इस प्रकार भाषा एक परिष्कृत रूप है जो सर्वप्रथम बोली से प्रारम्भ होकर विभाषा और पुनः भाषा रूप को प्राप्त करती है। बोली भाषा की छोटी इकाई है। उसका सम्बन्ध ग्राम या मण्डल से रहता है। इसमें व्यक्तिगत बोली की प्रधानता रहती है। इसमें घरेलू शब्द तथा देशज शब्दों का भी प्रभाव रहता है। यह मुख्य रूप से बोल–चाल की भाषा होती है। इसमें साहित्यिक रचना आदि का अभाव रहता है। पुनः बोली की अपेक्षा विस्तृत होती है। यह एक प्रान्त या उप–प्रान्त में प्रचलित रहती है। इसमें साहित्यिक रचनायें भी प्राप्त होती है। जैसे संस्कृत की विभाषा पाली–प्राकृत आदि हिन्दी की विभाषा अवधी भोजपुरी ब्रजभाषा आदि। विभाषा से भी परिष्कृत एवं परिनिष्ठित रूप भाषा का होता है। इसको राष्ट्रभाषा कहते हैं। विभिन्न विभाषाओं में कोई एक विभाषा अपने गुण–गौरव, साहित्यिक अभिवृद्धि, जनसामान्य में अधिक प्रचलन एवं राजाश्रय आदि के आधार पर राजकार्य के लिए चुन ली जाती है और उसको राष्ट्रभाषा या राजभाषा के रूप में घोषित कर लिया जाता है। प्राचीन काल में संस्कृत तथा आधुनिक काल में हिन्दी राष्ट्रभाषा के रूप में सम्मान प्राप्त भाषायें हैं। संक्षेप में कहा जा सकता है कि बोली स्थानीय भाषा है। इसका क्षेत्र सीमित है। विभाषा का क्षेत्र इससे बड़ा है। यह प्रान्तीय भाषा के रूप में व्यवहृत होता है। राजभाषा या राष्ट्रभाषा के लिये भाषा शब्द का प्रयोग उचित है। भाषा सर्वशक्ति सम्पन्न होती है। भाषा में वह शक्ति हे जो निष्प्राण समाज में चेतना फूंक देती है और हत प्रभ में क्रान्ति ला देती है। ऋग्वेद में इसको वायु की सर्वगामी शक्ति बताया गया है– 'अहमेव वात इव प्रवामि'[1], 'वागेव विश्वा भुवनानि जज्ञे'[2]। ऋग्वेद में इस बात का उल्लेख मिलता है कि भाषाओं की अनेकरुपता है और अलग–अलग इनकी स्थिति है। भाषा जनजीवन में समाविष्ट होकर जीवित रहती है– 'तां मा देवा व्यदधुःपुरुत्रा, भूरिस्थात्रां भूर्यावेशयन्तीम'[3]। भाषा व्यापक है। मानव के प्रत्येक कार्य भाषा द्वारा संचालित हैं। आचार्य भतृहरि ने सभी लौकिक कार्यों का आधार भाषा को माना है। भाषा से ही ज्ञान होता है। ज्ञान से ही सब काम होता है। अतः भाषा सर्वत्र अनुस्यूत है– 'इति कर्तव्यता लोके सर्वा शब्दव्यापक्षया'[4]। भाषा मानव की अक्षय निधि है। यही मानवता की पूँजी है। मानव समाज का चिर संचित कोश है, जिसको लेकर भावी पीढ़ी अपना काम चलाती है। ऋग्वेद ने भाषा को अमृत की नाभि (केन्द्र) और देवों को जिह्वा कहा है– जिह्वा देवानाममृतस्य नाभिः।[5]

प्रत्येक भाषा की अपनी संरचना होती है, जैसे शब्दावली, व्याकरण, उच्चारण, शब्द रूप, धातु रूप, वाक्य प्रयोग, आदि, संस्कृत में तीन वचन है। अन्य हिन्दी आदि में दो वचन है।

भाषा में सर्वप्रथम ध्वनि का विशेष महत्व है। ध्वनि→वर्ण→शब्द→पद→वाक्य का क्रम व्याकरण अनुरुप होता है। ध्वनि अत्यन्त महत्वपूर्ण है, जिससे ध्वनि विज्ञान, ध्वनि ग्राम का विकास

* सहायक आचार्य, स्नातकोत्तर संस्कृत विभाग, डी.ए.वी. पी.जी. कालेज, आजमगढ़।

हुआ। अलंकार शास्त्रियों ने ध्वनि को विशेष महत्व देते हुए ध्वनि पर शास्त्रों की रचना कर दिये, जिससे ध्वनि के विशेष महत्व को दर्शाया गया। इस सन्दर्भ में ध्वन्यालोक एक महत्वपूर्ण ग्रन्थ है। ध्वन्यालोक के रचनाकार आनन्द वर्धनाचार्य ने उत्तम काव्य की रचना के लिए ध्वनि को आधार माना है। ध्वनि से ध्वनि ग्राम का विकास हुआ। ध्वनि शब्द निर्माण का आधार है। शब्दों से पदों की रचना होती है, जिससे रूपग्राम का विकास होता है। रूपग्राम विज्ञान की देन मुख्यतः भारतीय भाषाशास्त्रियों में पाणिनि को है। प्रो0 आर0एच0 राविन्स ने लिखा है कि भाषाशास्त्र में रूप–ग्राम के अध्ययन का महत्व भारतीय वैयाकरणों की देना है। पाणिनि ने जिस प्रकार संस्कृत भाषा के पद–विज्ञान का सूक्ष्मातिसूक्ष्म अध्ययन अष्टाध्यायी में उपस्थित किया है। वह विश्व के भाषा शास्त्रियों के लिये आदर्श है। ऐसा सर्वांगीण अध्ययन आज तक किसी भाषा में प्रस्तुत नहीं किया गया। रूपग्राम विज्ञान का आधार रूप या पद, इसमें प्रत्येक भाषा में प्रयुक्त पदो के सार्थक अवयवों का विभाजन करके रूप–ग्राम और संरूप का निर्धारण किया जाता है। इसका आधार अर्थ और वितरण होता है। यह रूपग्राम सामान्य तथा चार रूपों में प्राप्त होता है– (1) स्वतंत्र रूपग्राम, (2) बद्ध रूपग्राम, (3) संयुक्त रूपग्राम, (4) मिश्रित या समस्त रूपग्राम। एक ही रूपग्राम के समानार्थक विभिन्न रूपों को संरूप कहते हैं। संरूपों में जो अधिक प्रचलित या प्रयुक्त होता है, उसे रूपग्राम माना जाता है। शेष का संरूप कहते हैं। संयुक्त एवं मिश्रित रूपग्रामों में पद संघटना में कुछ ध्वन्यात्मक परिवर्तन भी होते हैं। उनका अध्ययन रूपग्राम विज्ञान के अन्तर्गत किया जाता है।

रूपग्राम के अन्तर्गत भाषा की पद रचना, पद विकास तथा पद के विकास के कारणों पर विचार किया जाता है। भाषा का चरम अवयव वाक्य है। वाक्य ध्वनियों के समूह का नाम है। इस ध्वनि समूह में भी उच्चारण की सुविधा तथा अर्थव्यंजकता के आधार पर होते–होते ध्वनि समूहों का निर्माण होता है। उच्चारणगत ध्वनि समूहों का अध्ययन ध्वनि विज्ञान का विषय है। अर्थव्यंजकतागत समूह का अध्ययन पद रचना विज्ञान में होता है। द्वितीय श्रेणी के समूह का नाम पद या शब्द है। भाषा विाान में 'पद उस ध्वनि समूह को कहते हैं, जिसका वाक्य में भाषा की परंपरा के अनुसार सम्बन्ध तत्व अर्थतत्व अथवा उन दोनों के अर्थ का बोध कराने के लिए प्रयोग होता है। यदि ध्वनि समूह है तो एकत्र और कभी–कभी अनेकत्र भी उनके अंशों की स्थिति है।[6] शब्दों के साथ जो प्रत्यय जुड़कर उन्हें वाक्य में प्रयुक्त होने के योग्य बनाते हैं, उन्हीं को रूप कहा जाता है। इन्हीं रूपों के वैज्ञानिक विश्वलोक को रूपग्राम कहा जाता है। वाक्य के अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले शब्दों का विश्लेषण करने पर हमें उसमें दो तत्व मिलते हैं। एक मूल शब्द, जिसे अर्थ तत्व भी कहते हैं। दूसरे उन अर्थ तत्वों से सम्बद्ध होकर अर्थ व्यक्त करने वाले सम्बन्ध सूचक शब्द, विभक्तियां, प्रत्यय आदि। रूपग्राम और ध्वनिग्राम में अन्तर यह है कि ध्वनिग्राम का सार्थक होना अनिवार्य नहीं है। जबकि रूपग्राम का सार्थक होना अनिवार्य है। जैसे नाम में क् + आ + म् + अ = 4 ध्वनिग्राम हैं। ये चारों निरर्थक हैं। परन्तु नाम–रूपग्राम एक सार्थक इकाई है। यह एक रूपग्राम है क्योंकि यह सार्थक है। प्रत्येक रूपग्राम को दो रूपों में देखा जा सकता है। रचना की दृष्टि से रूपग्राम को बांटने पर दो तत्व मिलते हैं– धातु या प्राति पदिक। इसे संस्कृत भाषा में अंग कहते हैं। इसमें ही सुप्, तिङ्, कृत, तद्धित आदि प्रत्यय जुड़ते हैं। मूल धातु या प्राति पदिक अंग को अंग रूपग्राम कहते हैं। इनमें लगने वाले प्रत्ययों को प्रत्यय रूपग्राम कहते हैं। इस प्रकार रचना की दृष्टि से दो प्रकार के रूपग्राम होते हैं। अंग रूपग्राम एवं प्रत्यय रुप ग्राम।

(अ) अंग रुप ग्राम– अंग रूपिम मुक्त और बद्ध प्रकार के हो सकते हैं।

1. **मुक्त रूपग्राम–** जो रूपग्राम स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त हो सकता है। उन्हें मुक्त रूपग्राम कहते हैं। संस्कृत भाषा में इति, एव, अपि, परं आदि रचना और प्रयोग की दृष्टि से यह एक अविभाज्य अंग है। यह सार्थक सूक्ष्मतम रूप है। कभी–कभी दो स्वतंत्र शब्दों का प्रयोग भी एक ही सम्बन्ध तत्व के लिये होता है, जैसे यदि–तो, यद्यपि–तथापि।
2. **बद्ध रूपग्राम–**जो रूपग्राम स्वतंत्र रूप से प्रयुक्त न होकर किसी अंग (धातु, प्रकृति) के साथ मिलकर ही प्रयुक्त होते हैं। उन्हें बद्ध रूपिम कहते हैं। जैसे धातु से पूर्व लगने वाले निपात उपसर्ग आदि तथा अंक के बाद में लगने वाले सुप, तिङ्, कृत, तद्धित आदि प्रत्यय, स्त्रीप्रत्यय यह

धातु या शब्द के साथ मिलकर ही प्रयोग में आते हैं। जैसे बालकः, पचति, कृतम्, वायुदेवः, रमा, सुपुत्री आदि।

3. **मुक्त बद्ध रूपग्राम**– इन्हें अर्धमुक्त, अर्धबद्ध, बद्धमुक्त, रूपग्राम कहा जाता है। जैसे राजपुरूषः, घनश्यामः, गृहस्वामी आदि समस्त पद, समासयुक्त पदों में दो या अधिक अवयव होते है। समस्त पद में वे एक पद में बद्ध हैं। इसीलिये वे बद्ध रूपिम है।[7] यस्मात प्रत्यय विधिस्तदादिऽंगम (अष्टा 1–3–13) राजपुरुष में राजन् और पुरुष का अलग प्रयोग नहीं कर सकते हैं। राजपुरुषः समस्त पद राजकीय कर्मचारी अर्थ बताता है। उपर्युक्त उदाहरणों में गृह, राजन, धन, स्वामी, पुरुष आदि का स्वतंत्र भी प्रयोग होता है। अतः ये शब्द मुक्त रूपग्राम भी है। अतः इन्हें मुक्त बद्ध रूपग्राम भी कहा जाता है।
4. **मिश्र रूपग्राम–** मिश्र रूपग्राम उसे कहते हैं। जहाँ मुक्त एवं बद्ध रूपग्राम मिलकर प्रयुक्त होते हैं। संस्कृत में प्रायः सभी सुबन्त, तिगन्त, कृदन्त और तद्धित प्रत्ययान्त पद मिश्र रूपिम सुबन्त होते हैं। जैसे बालकः = बालक + सु, पचति = पच् + अति, कृतम् = कृ + त + अम्, सुन्दरता = सुन्दर + ता में प्रकृति एवं प्रत्यय मिलकर पद बने हैं। अतः यह मिश्र रूपग्राम है।
5. **संयुक्त रूपग्राम–** इसको समस्त रूपग्राम भी कहते हैं। जहाँ पर दो या अधिक शब्द मिलकर एक समासयुक्त पद बन जाते हैं। वहा पर दो अंग रूपग्राम के मिलनेसे एक स्वतंत्रत शब्द बनता है। अतः वह संयुक्त रूपग्राम होता है। जैसे राजन् + पुरुषः = राजपुरुष, दश + आननः = दशाननः, नीलोत्पन्नः = नील + उत्पन्नः, कृष्ण + सर्पः = कृष्णसर्पः। इनमें एक से अधिक अंग रूपग्राम है। अतः इन्हें संयुक्त रूपग्राम कहते हैं।

(ब) प्रत्यय उपसर्ग रूपग्राम– इनका प्रयोग शब्द के आदि, मध्य और अन्त में कहीं भी हो सकता है। उदाहरणार्थ संस्कृत भाषा में लंग और लुंग लकार में 'अ' आदि प्रत्यय का प्रयोग 'अगच्छत्, अगमत्) आदि भूतकालिक क्रिया का सूचक है। उसी प्रकार अगम्य, अनाथ, अपाणिपाद का 'अ' निषेध सूचक है। संस्कृत में प्र, प्य, अप, सं, अनु, वि, आंग, नी आदि उपसर्गों का आदि में प्रयोग होता है। परिणाम स्वरूप अनेक पदों की रचना हो जाती है। मध्य प्रत्यय संस्कृत में गम्यते, हस्यते, चौर्यते, यहां 'च' प्रत्यय भाव वाचक है। प्रेरणार्थक, स्नायति, कारयति, अन्त प्रत्यय स्य, अस्मिन रामस्य तथा सर्वस्मिन् 'षु' रामेषु आदि विभक्त्यर्थ शतृ क्त (गच्छत् गवः) आदि क्रिया के काल भाव आदि के सूचक प्रत्यय हैं।

वाक्य अन्तर्गत प्रयुक्त होने वाले शब्दों का विश्लेषण करने पर हमें उसमें दो तत्व मिलते हैं। एक मूल शब्द जिसे अर्थ तत्व भी कहते हैं। दूसरे उन अर्थ तत्वों से सम्बद्ध होकर अर्थ व्यक्त करने वाले सम्बन्ध सूचक शब्द विभक्तियाँ प्रत्यय आदि इस प्रकार इन दोनों तत्वों को क्रमशः अर्थतत्व और सम्बन्ध तत्व कहते हैं।

1. **अर्थतत्व या अर्थदर्शी रूपग्राम–** अर्थ तत्व का अभिप्राय भाषा के उन अंशों से है, जो अर्थ तत्व द्वारा व्यक्ति किये हुए विचारों के परस्पर सम्बन्ध की सूचना देते हैं।[8] यथा– गृहंगच्छामि, इस वाक्य में दो तत्व हैं– गृहं (घर) और गम् (जाना) किन्तु 'गृहं' 'गम्' इन दोनों का ही केवल वाक्य में प्रयोग सम्भव नहीं है। इसलिए संज्ञा शब्द में कारक विभक्ति तथा क्रिया से धातु रूपों का प्रयोग नितान्त अपरिहार्य है। इन शब्दों के साथ उन तत्वों के योग के पश्चात् ही गृहं और गम् क्रमशः गृहं और गच्छामि इन रूपों को धारण करते हैं।

इस प्रकार उपयुक्त विवेचन के पश्चात् यह निष्कर्ष सहज ही निकल जाता है कि शब्द असिद्ध प्रयोग है, और पद सिद्ध प्रयोग। किन्तु यह बात विश्व की समस्त भाषाओं पर समान रूप से घटित नहीं होती है। क्योंकि विश्व की चीनी आदि एकाक्षर परिवार की भाषाओं में वाक्य और पद में अन्तर नहीं है। सम्बन्ध तत्व की भी उन भाषाओं में सत्ता नहीं है। इन भाषाओं के शब्द के स्थान से ही शब्द का सम्बन्ध तत्व ज्ञात होता है। स्थान परिवर्तन से अर्थ परिवर्तन हो जाता है। अर्थतत्व रूपग्राम केवल अर्थ का बोध कराता है। यह मनुष्य के विचारों का साक्षात् प्रतिनिधित्व करता है। यही संज्ञा (मोहन, बालक, पुस्तक आदि) क्रिया (भू, गम, पठ् आदि) विशेषण (सुन्दर, पटु, मृदु आदि) सर्वनाम (सर्व, उल् आदि) होते हैं। प्रत्येक भाषा में इनकी संख्या हजारों में है। मुक्त रूपग्राम के रूप में अर्थतत्व

रूपग्राम जैसे– मणि, बाल, बाला, भू, पठ आदि तथा बुद्धरूपग्राम के रूप में जैसे– हन् + तृ = हन्ता, पठ् + अक् = पाठक, भुज् + अन् = भोजन्, युज् + अ = योग, भूत + इक = भौतिक आदि आते हैं।

सम्बन्ध तत्व या सम्बन्ध दर्शी रूपग्राम– भाषा वैज्ञानिकों ने विविध भाषाओं का अध्ययन कर विभिन्न प्रकार के सम्बन्ध तत्व रूपग्राम का निर्देश किया है, जो मुख्यतः अग्रांकित है–

1. ध्वनि परिवर्तन रूप– अर्थतत्व की ध्वनियों के स्वल्प परिवर्तन से भी सम्बन्ध तत्व का ज्ञान आदि कराया जा सकता है जैसे श्रृंग से शांग, पुत्र से पौत्र।

2. ध्वनि गुण– (बलाघात्, स्वराघात या सुर) अर्थतत्व की ध्वनियों में ध्वनिमूल के परिवर्तन से भी सम्बन्ध तत्व का निर्माण हो जाता है।

3. शब्द स्थान– कभी–कभी शब्दों का स्थानान्तर भी सम्बन्ध तत्व का कार्य करता है। विशेषकर संस्कृत समास में शब्द के स्थान पर सम्पूर्ण भाव निर्भर रहता है। जैसे मल्लस्य ग्रामः, मल्लग्राम, ग्राम मल्लः, राजपुत्र, पुत्रराज। इन उदाहरणों में स्थान ही सम्बन्ध तत्व का सूचक है। इसके अतिरिक्त सम्बन्ध तत्व के दो भेद किये जा सकते हैं– शब्द साधक रूपग्राम और रूप साधक रूपग्राम।

(अ) शब्द साधक रूपग्राम– ये रूपग्राम अंग, रूपग्राम के साथ जुड़कर शब्द या धातु बनाते हैं। ऐसे बने शब्दों के या धातुओं की धातुज, व्युत्पन्न या यौगिक शब्द कहते हैं। कृत, तद्धित, णिच्, सन् आदि प्रत्यय इसी प्रकार के हैं। ये शब्द साधक रूपग्राम है। इनके लगाने से शब्द प्रतिपदिक बनते हैं। इनमें प्रकृति और प्रत्यय को पृथक किया जा सकता है। प्रत्ययों का स्वतंत्र प्रयोग नहीं हो सकता है। अतः यह सब बद्ध रूपग्राम हैं। इनसे बने शब्द मिश्र रूपग्राम होते हैं। जैसे कृ+अक = कारक, देव + इक = दैविक, लोक + इक = लौकिक, पठ् + णिच् = पाठ्य (पढ़ाना), कृ + सन् = चिकीर्ष, चिकीर्ण, चिकीर्षु करने का इच्छा वाला आदि।

(ब) रूप साधक रूपग्राम– ये रूपग्राम धातु या शब्द से लगते हैं। इनके लगने से शब्द रूप और धातुरूप बनते हैं। ये सदा बद्ध रूपग्राम है। इनसे बने रूपों की पद (सुबन्त या तिगन्त) कहते हैं। ये रूपग्राम– सुप्, तिंग आदि ता, गा, आ, था, ओं आदि जैसे राम + अम् = रामम्, पठ + अति = पठति आदि।

इसके अतिरिक्त प्रत्यय रूपग्राम का अत्यन्त महत्व है। प्रातिपदिक और धातु के अन्त में लगने वाले सुप् (सु, औ, जस, अम्, औट् शस् आदि) और (तिङ् तिप्, तस्, झि आदि) प्रत्यय रूपग्राम है। इसी प्रत्यय कृत (त, तवत्, ति, तत्य आदि) और तद्धित (अ्, वत्, मत्, तर्, तम्, त्व, ता आदि) प्रत्यय भी प्रत्यय रूपिम है। इनका स्वतंत्र प्रयोग नहीं हो सकता है। ये अंग के साथ मिलकर प्रयुक्त होते हैं। रामः, पचति, पठति, गच्छति, कृतम्, वासुदेवः आदि। रूपग्राम के अन्य भेद भी हो सकते हैं। जैसे खंडीकरण के आधार पर भी रूपग्राम के दो भेद किये जा सकते हैं– खंड रूपग्राम और अखंड रूपग्राम।

(क) खंड रूपग्राम– खंड रूपग्राम उसे कहते हैं, जिसमें रूपग्राम को तोड़कर पृथक किया जा सके और ऊपर के उदाहरणों में सुप्, तिंङ्, कृत, तद्धित, स्त्री, प्रत्यय आदि।

(ख) अंखड रूपग्राम– अखंड रूपग्राम उसे कहते हैं जिसे तोड़कर पृथक न किया जा सके। जैसे बलाघात, सुर, सुरलहरी आदि ध्वनिग्राम विज्ञान में भी यह उल्लिखित है। उसी प्रकार रूपग्राम विज्ञान में भी इन्हें स्वीकार किया गया है।

विशेष– रूपग्राम विज्ञान में रूप या पद का विभिन्न दृष्टियों से अध्ययन किया जाता है। वर्णनात्मक रूप विज्ञान में किसी भाषा या बोली के किसी एक समय के रूप या पद का अध्ययन होता है। ऐतिहासिक में उसके विभिन्न कालों के रूपों का अध्ययन कर उसमें रूप रचना का इतिहास या विकास प्रस्तुत किया जाता है और तुलनात्मक रूप विज्ञान में दो या अधिक भाषाओं के रूपों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। रूपग्राम का स्वरूप स्पष्ट करने के लिये सर्वप्रथम भाषा को वाक्यों में तोड़ा जा सकता है। उसी प्रकार वाक्य के खंड शब्द होते हैं और शब्द की ध्वनियां, एक ध्वनि या एक से अधिक ध्वनियों से शब्द बनता है। यहां 'शब्द' शब्द का सामान्य या शिथिल प्रयोग है। थोड़ी गहराई में

उतरकर देखा जाय तो कोष में दिये गये सामान्य शब्द तथा वाक्य में प्रयुक्त शब्द एक नहीं है। वाक्य में प्रयुक्त शब्द में कुछ ऐसा भी होता है, जिसके आधार पर वह अन्य शब्दों से अपना सम्बन्ध दिखला सके या अपने को बाँध सके। लेकिन कोष में दिये गये शब्दों में ऐसा कुछ नहीं होता। यदि वाक्य के शब्द एक दूसरे से अपना सम्बन्ध दिखला सके तो वाक्य बन ही नहीं सकता। इसका आशय है कि शब्दों के दो रूप हैं। पहला तो शुद्ध रूप या मूल रूप है, जो कोष में मिलता है और दूसरा वह रूप है जो किसी प्रकार के सम्बन्ध तत्व से युक्त होता है। यह दूसरा वाक्य प्रयोग के योग्य रूप ही रूपग्राम कहलाता है। संस्कृत में शब्द या मूल रूप के लिये जोड़े जाने वाले तत्व को प्रत्यय। महाभाष्यकार पतंजलि कहते हैं– "नापि केवला प्रकृतिः प्रयोवक्तव्या नापि केवल प्रत्ययः" अर्थात् वाक्य में न तो केवल प्रकृति का प्रयोग हो सकता और न ही केवल प्रत्यय का दोनों मिलकर प्रयुक्त होते हैं। दोनों के मिलने से जो बनता है वही रूपग्राम है। पाणिनि के 'सुप्तिङन्तं पदं' सुप् और तिङ् जिसके अन्त में हैं उन्हें पद या रूप कहते हैं। यह प्रत्यय या विभक्ति को सुप और तिङ् (सुप तिङौ विभक्ति संज्ञोस्तः) कहा गया है। यथा पत्र एक शब्द मात्र है। संस्कृत के किसी वाक्य में हम इसका प्रयोग करना चाहें तो इसी रूप में हम दूसरा प्रयोग नहीं कर सकते। वैसा करने के लिए इसमें कोई सम्बन्ध सूचक विभक्ति जोड़नी होगी जैसे– पत्रं पतित अर्थात् पत्ता गिरता है। अब यहाँ हम स्पष्ट देख रहे है कि शुद्ध शब्द तो पत्र हैं और वाक्य में प्रयोग करने के लिये उसे पत्र का रूप धारण करना पड़ा अर्थात् पत्र शब्द है तथा पत्र पद या रूप है, इसे ही रूपग्राम कहते हैं। उपरोक्त विवेचन से स्पष्ट हो जाता है कि शब्द एवं रूप या रूपग्राम में अन्तर है। सर्वप्रथम ध्वनियों से ध्वनिग्राम तथा ध्वनिग्राम से शब्द तथा शब्द से रूपग्राम बनता है।

निष्कर्ष– रूपग्राम भाषा विज्ञान की महत्वपूर्ण अध्ययन कड़ी है, जो सर्वप्रामि ध्वनियों के समूह से ध्वनिग्राम एवं उससे शब्द का निर्माण होता है। पुनः प्रत्यय, उपसर्ग आदि के योग से पद या रूपग्राम का निर्माण होता है। रूपग्राम भाषा विज्ञान की सबसे छोटी सार्थक इकाई है। रूपग्राम तक पहुचने में शब्दों को प्रत्यय आदि से जुड़ना होता है और वह प्रत्यय आदि वाक्य के अर्थ को प्रकटीकृत करने के लिए अर्थतत्व एवं सम्बन्ध तत्व का मुख्य रूप से सहारा लेते हैं। रूपग्राम सार्थक अर्थात् अर्थ से युक्त हैं और वाक्य को पूर्ण करने में उसका सम्बन्ध भी होता है। यह सम्बन्ध स्वतंत्र रूप में या बद्ध रूप में या ध्वनि परिवर्तन रूप में या ध्वनि गुण रूप में या शब्द स्थान रूप में या शब्द साधक रूप में या रूप साधक रूप में होते हैं।

संक्षेप में कहा जा सकता है कि रूपग्राम किसी भी सार्थक वाक्य का मुख्य आधार है।

सन्दर्भ :

1. ऋग्वेद (10–125–8)
2. वाक्य पदीय (1–121)
3. ऋग्वेद (10–125–3)
4. वाक्य पदीय (1–122)
5. ऋग्वेद (4–58–1)
6. सामान्य भाषा विज्ञान – बाबूराम सक्सेना, पृ0 67
7. हिन्दी भाषा का वैज्ञानिक अध्ययन – ऋषि गोपाल, पृ0 129
8. सामान्य भाषा विज्ञान – बाबूराम सक्सेना, पृ0 64

***

''जनवादी कविता के बेजोड़ कवि'' नागार्जुन

*डॉ. रेखा गुप्ता**

नागार्जुन हिन्दी कविता–धारा के उन प्रमुख स्तम्भों में से हैं जिन्होंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि उसका जिया भी है। उनकी प्रखर सामाजिक चेतना यर्थाथ से सीधा साक्षात्कार करती हैं और जन जीवन से सीधे जाकर जुड़ती हैं उन्होंने स्वयं को तरल आवेगों द्वारा हृदय धर्मी जन कवि कहा है। उनके काव्य में सामाजिक विषमता के स्थान पर एक ऐसे समाज की रचना पर बल दिया गया है जहाँ सभी अपना पूरा अधिकार पा सकें और शोषणकारी ताकतों का खात्मा हो। आजादी के बाद सामाजिक स्थितियों में कितनी तेजी के साथ बदलाव आया और आजादी के अर्थ को कुछ जननायकों ने किस तरह उलट दिया है। उसे देखकर नागार्जुन बेचैन हो उठते हैं और दाने दाने के लिए तरसते पीड़ित वर्ग के खाली पेटकी आवाज बुलंद करते हैं।

''खाली है हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है प्लेट''

कवि की सामाजिक यर्थाथवादी सोच ने भारतीय जनता के दुःख दर्द से सने हुए खाली हाथ को ही नहीं देखा बल्कि इन हाथों में एक ऐसी मशाल दे दी है जो निर्बल मानव के घट–घट को आलोकित कर दें। जनता की चेतना को नई आशा, विश्वास और संकल्प देकर प्रगति के पथ पर चलने के लिए कवि ने प्रोत्साहित किया है।

नागार्जुन की राष्ट्रीयता की भावना इस देश की जनता के प्रति सच्चा लगाव रखती है। उनकी क्रान्ति की भावना के पीछे भी राष्ट्रीयता छुपी हुई है। अपनी निष्ठा और राष्ट्र रक्षा के लिए कवि दुश्मन का मुकबला करने के लिए सजग और तत्पर रहता है। नागार्जुन सही अर्थों में जनता से जुड़े हुए कवि हैं। उनकी आँखें केवल जनहित की तलाश करती हैं। जनता के प्रश्न, संघर्ष, समस्याएं, वास्तविकता यह कब उनके अपने थे और इन सभी का वे समाधान चाहते थे। नागार्जुन को केवल जनवादी कविता का लेबल नहीं चिपकाना था बल्कि सच्चे मन से लोगों के दर्द को जानना और हल करना उनकी कविता का उद्देश्य था। इसलिए दीन–दुखियों की मानसिकता को वे जानते थे इसीलिए वे वर्तमान देश की व्यवस्था से दर–दर की ठोकरें खाती हुई सामान्य जनता को देखकर क्षुब्ध और व्यथित होते हैं। और उनकी कलम ऐसे लोगों का साथ देती हुई चलती है। सचमुच नागार्जुन इस देश की मिट्टी के कवि हैं।

संकेत शब्द : नागार्जुन, समाज, राष्ट्रीय, पूंजीवाद, शासक, शोषक, भारतीय, लोकतंत्र आदि।

लोक धर्मी यायावर कवि नागार्जुन हिन्दी में अकेले ऐसे कवि हैं जिन्होंने पूरे भारतवर्ष के दलित आदिवासी जनजातियों के जीवन संघर्ष पर सार्थक कविताएँ लिखी हैं। डॉ0 नामवर सिंह ने नागार्जुन होने के अर्थ को विस्तार देते हुए कहा है कि.....

1.''नागार्जुन न होते तो हिन्दी कविता क्या होती हिन्दी कविता नदी के द्वीप होती। ''इन्द्रधनु रौंदे हुए होती और हिन्दी कविता में 'असाध्य वीणा'' लगती। बहुत सुन्दर–सुन्दर चीजें होती परन्तु ''शासन की बन्दूक'' को चुनौती देने वाली कोकिला की आवाज नहीं होती।''

2.''हमारे समाज में हुक्मरानों द्वारा आवाम को इक्कीसवीं शताब्दी में प्रवेश करा दिये जाने पर बार–बार दावा किया जा रहा है, मंदी के इस दौर में व्रद्ध पूंजीवाद का सहारा देने के लिए सूचना तंत्र की

* एसोसिएट प्रोफंसर, हिन्दी, अवध गर्ल्स डिग्री कॉलेज, लखनऊ

वैशाखी का अंधाधुंध इस्तेमाल काबिले गौर है, बीसवीं सदी के अंतिम चरण में गाँधी के सपने को साकार करने वाली कांग्रेस पार्टी द्वारा ''मनमोहनिमिन्स'' के तहत जब राष्ट्रीय हितों को ताक पर रख कर विश्व बैंक ''अन्तर्राष्ट्रीय मुद्रा कोष'', वाशिंगटन आम राय एवं विश्व व्यापार संगठन'' की नीतियों का तत्परता के साथ अनुपालन करते हुए कर्ज पर आधारित अर्थव्यवस्था और विदेशी पूंजी निवेश के लिए कालीन विछाई जाने लगी तो नागार्जुन ने उसका मखौल उड़ाते हुए लिखा था।''

3''हम तो ठहरे घीसू माधव की औलाद
क्या रहेगा याद, क्यों रहेगा याद
मिलता रहे कर्ज बढ़ता रहे मर्ज
छुट्टियाँ मनेंगी टापू में।
फर्क नहीं रह जायेगा
बा और बापू में''

आजादी के ठीक बाद राष्ट्रीय पूंजीपतियों एवं उनके राजनीतिक प्रतिनिधियों के विरूद्ध मुखालफत का अत्यन्त मुखर स्वर सुनाई पड़ता है। 25 सितम्बर 1949में इलाहाबाद में आयोजित युक्त प्रान्त के प्रगतिशील लेखकों के सम्मेलन में अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण में नागार्जुन कहते हैं कि–

4''हम शासक शोषक वर्ग के पिछलगुआ जी हजूर चाटुकार लेखक नहीं है। हम नेहरू और पटेल की थाप पर थिरकने ठुमकने वाले अर्टिस्ट नहीं है। सर्वसाधारण जनता को ही हम अपनी अधि स्वमिनी समझते हैं। हमारी सारी प्रेरणाओं और कल्पनाओं का स्त्रोत वहीं है।''

डा0 विजय बहादुर सिंह को लिखित अपने पत्र में भी नागार्जुन ने स्पष्ट शब्दों में इस तथ्य को स्वीकार किया है।

5''सर्वाधिक परवाह जिस तत्व की मैं करता हूँ, वह कोई और तत्व है। जिससे शान्ति से मैं ऊर्जा हासिल करता हूँ, वह कोई और शक्ति है। जो मुझे संघर्षशील जनता केविपुल बहुलांश की शक्ति प्रदान करता है। कोटि कोटि भारतीयों के वे निरीह, पिछड़े हुए, अंकिंचन, दुर्बल समुदाय जो चाहने पर भी अपने मत पत्र नहीं डाल पाये, मेरी चेतना उनकी विवशताओं से ऊर्जा हासिल करेंगीं।

''कवि अपनी प्रतिभा, विशिष्ट बौद्धिक शक्ति और सूक्ष्म संवेदना यंत्र द्वारा समाज में व्याप्त धड़कनों को पहचाने वाला आला होता है। जो आने वाले भूकंप को, अंधड़ और तूफान को पहले से भाँप लेता है। अपनी व्यापक और गहन संवेदना के बल पर कवि मौसम का हाल बताने वाला आला होता है।''

नागार्जुन हिन्दी कविता–धारा के उन प्रमुख स्तम्भों में से हैं जिन्होंने कविता को रचा ही नहीं बल्कि उसको जिया भी है। उनकी प्रखर सामाजिक चेतना यर्थाथ से सीधा साक्षात्कार करती हैं और जन जीवन से सीधे जाकर जुड़ती हैं उन्होंने स्वयं को तरल आवेगों द्वारा हृदय धर्मी जन कवि कहा है। उनके काव्य में सामाजिक विषमता के स्थान पर एक ऐसे समाज की रचना पर बल दिया गया है जहाँ सभी अपना पूरा अधिकार पा सकें और शोषणकारी ताकतों का खात्मा हो। आजादी के बाद सामाजिक स्थितियों में कितनी तेजी के साथ बदलाव आया और आजादी के अर्थ को कुछ जननायकों ने किस तरह उलट दिया है। उसे देखकर नागार्जुन बेचैन हो उठते हैं और दाने दाने के लिए तरसते पीड़ित वर्ग के खाली पेटकी आवाज बुलंद करते हैं।

''खाली है हाथ, खाली है पेट
खाली है थाली, खाली है प्लेट''

कवि की सामाजिक यर्थाथवादी भारतीय जनता के दुःख दर्द से सने हुए खाली हाथ को ही नहीं देखा बल्कि इन हाथों में एक ऐसी मशाल दे दी है जो निर्बल मानव के घट–घट को आलोकित कर दें। जनता की चेतना को नई आशा, विश्वास और संकल्प देकर प्रगति के पथ पर चलने के लिए कवि ने प्रोत्साहित किया है।

3''उपेक्षित वर्ग के प्रति सहानुभूति तथा उनकी शक्ति को उभारने और उसकी अंतिम विजय में विश्वास प्रकट करने वाली बहुत सी कविताएं हैं, जिनमें कवि ने अपनी प्रतिभा का पूर्ण उपयोग किया है।''

नागार्जुन की राष्ट्रभक्ति कोरी भक्ति नहीं है केवल भाषण और कलम चलाने तकवह सीमित नहीं है बल्कि उनके काव्य में समग्र रूप से राष्ट्रीय चेतना का अंकन हुआ है। अपनी राष्ट्रीय गरिमा के प्रति कवि का सिर हिमालय की भाँति गर्वोन्नत होता है। भारत के चारों कोनों में कवि प्रेम, भक्ति और निष्ठा को देखता है। कवि के शब्दों में

6''है सिन्धु, देख तब अमिटधार
गद गद होता हूँ, बार–बार
तुम आए कल–कल छल–छलकर
उस मानसरोवर से चल कर
पश्चिम हठ कर फिर उत्तर से
हिम गिरि के वक्ष स्थल पर से''

नागार्जुन की राष्ट्रीयता की भावना इस देश की जनता के प्रति सच्चा लगाव रखती है। उनकी क्रान्ति की भावना के पीछे भी राष्ट्रीयता छुपी हुई है। अपनी निष्ठा और राष्ट्र रक्षा के लिए कवि दुश्मन का मुकबला करने के लिए सजग और तत्पर रहता है।

7''आज तो मैं हूँ दुश्मन तुम्हारा
पुत्र हूँ भारत माता का
और कुछ नहीं हिन्दुस्तानी हूँ महज
प्राणोंसे भी प्यारे हैं, मुझे अपने लोग
प्राणोंसे भी प्यारी है मुझे अपनी भूमि''

कवि के देश भक्ति एवं देश निष्ठा के सम्बन्ध डॉ0 प्रभा दीक्षित लिखती हैं। देश की जनता और देश की धरती उनके लिए कभी अलग नहीं रही, उन्होंने उनके हर्ष, विषाद, सुख–दुख, आशाएँ, आकाक्षाएं उनके स्वप्न एवं संघर्ष सबको अपनी अभिव्यक्ति का विषय बनाया है। नगर, गाँव सबही उनकी परिधि में आते हैं। नागार्जुन सामाजिक विषमता मिटाने के लिए लोकतंत्र में विश्वास करते हैं। स्वाधीन भारत के आशावादी लोकतंत्र को व्यक्त करते हुए लिखते हैं।

8''खेत मजूरों और किसानों में जमीन बंट जायेगी
नहीं किसी कामगर के सर पर बेबसी मंडरायेगी
नौकरशाही का यह रद्दी ढ़ाचा होगा चूरमचूर
सुजला सुफला के गीत गायेंगे फिर प्रसन्न किसान मजूर

नागार्जुन ने पराधीनता और स्वाधीनता दोनों को अपनी आँखों से देखा था उन्हें ऐसा लोकतंत्र पसंद नहीं था जिसकी नींव विषमता पर टिकी हुई है। उन्हें तो ऐसा लोकतंत्र अपेक्षित था जिसमें जन हित और राष्ट्र का विकास हो। लोकतंत्र का विध्वंस करने वालों पर कवि कड़ा व्यंग्य करते हुए लिखते हैं।

9''आओ, आओ
इस दंगल में हाथ बटाओ
'' '' ''
प्रजातंत्र की वेदी पर
कालनेमि की लाश हटाओ

कवि नागार्जुन आशावादी है। परतन्त्रता से मुक्त होने के बाद स्वतंत्र देश में अनेक योजनायें बनायीं परन्तु आजाद भारत में प्रजातंत्र के अनुकूल कहीं कोई परिवर्तन नहीं हुआ बल्कि देश का लोकतंत्र भ्रष्टाचारी बन गया।

10''बदला सत्य अहिंसा बदली लाठी गोली डण्डे हैं।
कानूनों की खड़ी लाश पर प्रजातंत्र के झण्डे हैं।
निश्चय राज्य बदलना होगा शासक नेताशाही का
पदलोलुपता दलबन्दी का भ्रष्टाचार तबाही का''

नागार्जुन स्वस्थ लोकतंत्र की स्थापना के लिए अपनी कविता का अस्त्र के रूप में प्रयोग करते हैं। उनकी कविता राष्ट्रीयता और जनजाग्रति का सशक्त माध्यम है। वे समाज–सेवी, राष्ट्रभक्त और कर्मनिष्ठ व्यक्ति को ही अपनी नेता (अगुवा) स्वीकार करना चाहते हैं।

11''वोट देंगे हम उनके नाम
करेंगे जो जनता का काम
भले हों रहित, भलें हो राम
न मांगे कुर्बानी का दाम
साथ दे सुबह, साथ दे शाम
साथ हो जिनके पब्लिक आम''

नागार्जुन सही अर्थों में जनता से जुड़े हुए कवि हैं। उनकी आँखें केवल जनहित की तलाश करती हैं। जनता के प्रश्न, संघर्ष, समस्याएं, वास्तविकता यह कब उनके अपने थे। और इन सभी का वे समाधान चाहते थे।

12'विष्णु चंद्र शर्मा'

''नागार्जुन के नथुनों में इसी जनता की महामुक्ति की अग्निगंध भरी हुई थी। वह जेल में केवल कविता का सजीव नाटक देखें (1976) या चंदू को अपने सपने की बात बताएं (1976) । वह जन इम्तिहान के सच्चे कवि थे।

वह कोरे हमदर्द शहरी कवि नहीं थे। ''शालवनों के निविड टापू में (1975) जनवाद की खोज करने वाले वह आदिवासियों के दोस्त कवि थे। 'हरिजन गाथा'' लिखकर नागार्जुन ने अपनी लंबी जीवन यात्रा से जन कविता की कसौटी तैयार की है। जनवादी निरीह के वह बेजाड़ कवि है और रहेंगे।''

नागार्जुन को केवल जनवादी कविता का लेबल नहीं चिपकाना था बल्कि सच्चे मन से लोगों के दर्द को जानना और हल करना उनकी कविता का उद्देश्य था इसलिए दीन–दुखियों की मानसिकता को वे जानते थे इसीलिए वे वर्तमान देश की व्यवस्था से दर–दर की ठोकरें खाती हुई सामान्य जनता को देखकर क्षुब्ध और व्यथित होते हैं। और उनकी कलम ऐसे लोगों का साथ देती हुई चलती है। सचमुच नागार्जुन इस देश की मिट्टी के कवि हैं।

सन्दर्भ :

1. समकालीन काव्य परिदृश्य और नागार्जुन का काव्य (कबर पेज)
2. जनता की रोटी से काम
3. जनता की रोटी से काम
4. जनता की रोटी से काम
5. समकालीन काव्य परिदृश्य और नागार्जुन का काव्य पृ0 2 (एम. हसीन खान)
6. समकालीन काव्य परिदृश्य और नागार्जुन का काव्य पृ0 21 (एम. हसीन खान)
7. नागार्जुन, पुरानी जूतियों का कोरस, दिनं सं. 1955 पृ0 99
8. सुखपाल (प्रकाशक) आधुनिक कवि पृ0 170
9. डॉ0 प्रभा दीक्षित, मुक्तिबोध एवं नागार्जुन का काव्य दर्शन, पृ. सं. 2003 संख्या 17
10. सुखपाल (प्रकाशक, आधुनिक कवि छठा सं 1989 पृ0 169
11. नागार्जुन, इस गुब्बारे की छाया में) सं 1998 पृ0 78
12. विष्णु चंद्र शर्मा (नागार्जुन एक लम्बी जिरह प्र.सं 2001 पृष्ठ 86

***

चरितग्रन्थ हर्षचरित

डॉ. जया कुमारी आर्यन *

हर्षचरित बाणभट्ट का एक ऐतिहासिक महाकाव्य है। बाणभट्ट द्वारा रचित हर्षचरित के साथ भारतीय इतिहास लेखन का एक ऐसा युग प्रारम्भ हुआ, जिसमें चरित नामक अनेक ऐतिहासिक ग्रन्थ लिखे गये। जयनायक भट्ट कृत पृथ्वीराज विजय विक्रमार्जुनाभ्युदय काव्य जैसे कुछ विजय काव्य भी इसी श्रेणी में आते हैं। इनकी रचनाओं के उद्देश्य आश्रयदाता राजाओं को राजनीतिक,सांस्कृतिक और व्यक्तिगत क्रियाकलापों के वर्णन थे।1

अभिलेखों से ज्ञात होता है कि राजागण इन कवियों और लेखकों का बहुत ही आदर सम्मान करते थे। प्रायःसभी राजदरबारों द्वारा ऐसे ब्राह्मण लेखक बाहर से बुलाकर अपने–अपने क्षेत्रों में प्रभुत भूमि दान देकर बसाये जाते थे। वे राज्य के बड़े–बड़े पदों जैसे सान्धिविग्रहिक, लेखाधिकारिन और राजपण्डित जैसे पदों पर आसीन कर दिये जाते थे।2 सरकारी कामकाज में उनका महत्वपूर्णयोगदान रहता था। इन्हीं कवियों और लेखकों ने राजाओं के व्यक्तिवृत्तों को लिखने का कार्य किया। इन ग्रन्थों में बाणभट्ट का हर्षचरित, वाक्पति रचित गउडवहो (8वीं शती ई0) पद्मगुप्त परिमल रचित नवसाहसांकचरित (11वीं शती ई0), संध्याकरनन्दी कृत रामचरित (11वीं –12वीं शती ई0), विल्हणकृत विक्रमांकदेव चरित, हेमचन्द्राचार्यकृत कुमार पाल चरित आदि महत्वपूर्ण है।3

चरित ग्रन्थों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बाणभट्ट कृत हर्षचरित है। हर्षचरित में कुल आठ उच्छवास हैं। साहित्यदर्पण और काव्यप्रकाश और साहित्यशास्त्र निरूपक ग्रन्थ हर्षचरित को आख्यायिका की संज्ञा देते हैं और बाणभट्ट की दूसरी कृति कादम्बरी कथा से उसका भेद दर्शाते हैं। चरित और कथा का वास्तविक भेद यह था कि चरित ग्रन्थों कानायक कोई वर्तमान अथवा सद्याभूत शासक होता था और उस शासक के कार्य और जीवनवृत्त ही उस चरित ग्रन्थ के वर्ण विषय होते थे, वही कथा की सारी पृष्ठभूमि कल्पना पर आधारित होती थी।4

हर्षचरित में पुष्यभूति वंश के शासक हर्षवर्द्धन के जीवनवृत्तों का वर्णन किया गया है। हर्षचरित में कुल आठ अध्याय अथवा खण्ड है। इन्हें 'उच्छ्वास' कहा जाता है।हर्षचरित में प्रथम उच्छवास का ऐतिहासिक दृष्टि से कोई विशेष महत्व नहीं है किन्तु द्वितीय और तृतीय उच्छवास में बाणभट्ट की पूरी पारिवारिक पृष्ठभूमि, उसके जन्म स्थान, निवास, पारिवारिक परिवेश, उसके परिवार में व्याप्त वैदिक याज्ञिक और शैक्षिक परम्पराओं की जानकारी, उसके बचपन के औद्धत्यपूर्ण जीवन, पुनः उस प्रकार के जीवन से उसका परावर्तन तथा अन्ततः हर्ष के दरबार में उसका प्रवेश आदि महत्वपूर्ण सूचनाओं का विवरण दिया गया है। तीसरे उच्छवास में बाण ने हर्ष के पैतृक राज्य श्रीकण्ठ जनपद और उसकी राजधानी थाणुवीश्वर (थानेश्वर) का मनोरम विवरण देते हुए वहाँ उस समय प्रचलित शैव धर्म के फैलाव का विवरण दिया है। उसी संदर्भ में वहॉ के प्रसिद्ध शैव सन्यासी भैरवाचार्य के आश्रम, उनकी शिष्य परम्परा और हर्ष के पूर्वपुरुष पुष्यभूति नामक प्रथम शासक की भैरवाचार्य के प्रति भक्ति और शिवधर्म में अटूट विश्वास का उल्लेख किया है किन्तु पुष्यभूति के अतिरिक्त बाणभट्ट हर्षबर्धन के अन्य पूर्वज, प्रभाकरबर्धन के पूर्व के राजाओं का उल्लेख नहीं किया है।5

चौथे उच्छवास में वह सीधे प्रभाकरबर्धन का वर्णन किया है किन्तु उसके विजयों आदि का विवरण इतने समासबहुल, अस्पष्ट और अत्यल्प है कि उस समय की उभरती हुई मध्यदेशीय राजनीति का उसमें कोई साफ विवरण नहीं दिया है। इस उच्छवास में राज्यवर्धन, हर्षबर्धन और राज्यश्री के जन्म लेने तथा राज्यश्री का कन्नौजराज ग्रहवर्मा से विवाह का विवरण उल्लेखनीय है।

राज्यबर्धन और हर्षबर्धन कालीन राजनीतिक इतिहास का प्रारम्भ हर्षचरित में पंचम उच्छवास से ही होता है। इसमें उत्तर पश्चिम में हूणों के उपद्रवों के विवरण है, जिन्हें दबाने हेतु राज्यबर्धन भेजा

* इतिहास विभाग, महात्मा गांधी काशी विद्यापीठ, वाराणसी।

जाता है और उसकी सेनाओं के पीछे–पीछे हर्षबर्धन भी चला जाता है। उसी में प्रभाकर बर्धन की बिमारी और मृत्यु तथा रानी यशोमति के सती हो जाने के विवरण दिये गये हैं।7

छठें उच्छवास में राज्यवर्घन और हर्षबर्धन के राजधानी पहुॅचने, शोकाकुल राज्यबर्धन द्वारा भिक्षुधर्म अपना लेने की इच्छा ग्रहवर्मा के मारे जाने का समाचार, उस विशेष परिस्थिति में राज्यवर्घन द्वारा राजपाट छोड़कर बौद्ध भिक्षु बन जाने की इच्छा का त्याग, उसके द्वारा शत्रुओं के विरूद्ध प्रयाण और मालवराज को पराजित कर चुकने के बाद गौड़राजा द्वारा छलपूर्वक राज्यबर्धन का वध आदि के अलंकार युक्त और महत्वपूर्ण साहित्यिक विवरण दिये गये हैं।8 जो इतिहास लेखन हेतु महत्वपूर्ण खिलाफ हैं।

सातवें उच्छवास में हर्षबर्धन के सैन्य अभियान, कामरूप के राजा भास्कर वर्मा के राजपूत हंसवेग द्वारा हर्षबर्धन के सामने अपने स्वामी की मैत्री प्रस्ताव स्वीकार किये जाने का विवरण दिया गया है। आठवाँ और अंतिम उच्छवास यात्रा मार्ग में ही हर्षबर्धन को प्राप्त होने वाली इस सूचना का वर्णन करता है कि किस प्रकार कन्नौज में ग्रहवर्मा के मारे जाने बाद राज्यश्री वहाँ की जेल में डाल दी गयी और पुनः वह किसी कुलपुरुष द्वारा मुक्त कर दी गयी। अन्ततोगत्वा हर्ष की भेंट उन्हीं जंगलों में अपने बहनोई के मित्र और अब भिक्षु बन चुके दिवाकर मित्र से होने के विवरण है जिनकें शिष्यों की सहायता से वह राज्यश्री को सती होने से बचाता है। इन्हीं विवरणों के साथ हर्षचरित का विवरण अचानक समाप्त हो जाता है।9

इस प्रकार हर्षचरित के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि बाणभट्ट ने हर्ष के प्रारम्भिक जीवन अथवा कन्नौज साम्राज्य की राजगद्दी को प्राप्त कर लेने के बाद की किसी भी घटना का कोई उल्लेख नहीं किया है। ऐसा उसने किस कारण किया, इसकी कोई भी जानकारी नहीं मिलती है। हर्षचरित के आठ उच्छवासों में जो इतिवृत्त वर्णित है, वह हर्ष के जीवन से सम्बन्ध सभी इतिवृत्तों का एक खण्ड मात्र है।

बाणभट्ट ने हर्षचरित में अपने नायक की वंश परम्परा और कुलोत्पत्ति का कोई भी विवरण नहीं दिया है। उसकी यह कमी विल्हण, पद्मगुप्त परिमल तथा जयानक भट्ट जैसे अनेक चरित लेखकों से भिन्न हैं जो अपनी कृतियों में क्रमशः चालुक्यों, परमारों और चाहमानों का पूर्ण वंश परिचय और उनके वंशों की उत्पत्ति का विवरण दिया है। हर्षचरित में वंश की उत्पत्ति के विषय में बाणभट्ट द्वारा कोई विवरण न देने का सम्भवतः यह कारण माना जाता है कि उत्पत्ति की दृष्टि से यह वैश्य वर्ण वाला वंश था। इस तथ्य के प्रमाण ह्वेनसांग के सियूकी और आर्यमंजूश्रीमूलकल्प नामक ग्रन्थों से प्राप्त होते हैं। ह्वेनसांग ने हर्ष को वैश्य जाति का बताया है।10 जिसका समर्थन आर्यमंजूश्रीमूलकल्प से भी होता है।11 राजपद हेतु वैश्यकुलोपत्ति प्राचीन भारतीय परम्परा में बहुत मान्य नहीं स्वीकार की जाती है। अतः वैदिक परम्परा में ब्राह्मण कुलोत्पन्न बाणभट्ट ने अपने नायक की उस हीन कुलोत्पत्ति पर चुप रहना ही उचित माना।

बाणभट्ट ने चौथे उच्छवास में सीधे–सीधे पुष्यभूति नामक वंश के प्रथम शासक से ही अपना विवरण देना प्रारम्भ किया है। पुष्यभूति के इस नाममात्र के उल्लेख के साथ बाणभट्ट सीधे प्रभाकर बर्धन से सम्बन्ध विवरणों को दिया है। लेकिन बीच के उन अनेक शासकों में किसी का भी उल्लेख नहीं किया है। जिनके विवरण हमें हर्ष द्वारा प्रकाशित मधुवन और बसखेड़ा के अभिलेखों में प्राप्त होते हैं ये दोनो ही अभिलेख उस बीच के राजाओं के नाम, उनके धार्मिक विश्वासों के उल्लेखों का विवरण देते हैं। इसीप्रकार बाणभट्ट ने हर्षचरित में मालवा के शासक देवगुप्त के नाम का कहीं उल्लेख नहीं किया है। सर्वत्र उसे 'मालवाराज' मात्र से उल्लिखित किया है। किन्तु उपर्युक्त दोनों ही अभिलेख स्पष्टरूप से मालवराज देवगुप्त का उल्लेख करते हैं। इसी प्रकार बाणभट्ट हर्ष की विजय यात्रा एवं तत्कालीन राज्यों की विजय का वर्णन भी अस्पष्ट अर्थों में किया गया है।12

बाणभट्ट की इतिहास लेखन की शैली इतनी समासबहुल अलंकार बोझिल और बड़े–बडे वाक्यों से युक्त है कि उसमें कृत्रिमता का दोष दिखाई देता है। फलतः उसके कथनों का तो कहीं–कहीं स्पष्ट अर्थ भी नहीं निकलता। प्रभाकर बर्धन के राजनीतिक और सैनिक प्रभाव क्षेत्र का

वर्णन करते हुए वह कहता है कि वह हूण हरिण केशरी था, सिन्धु देश के राजा के लिए एक ज्वर के समान था, गुर्जरराज की निद्रा को समाप्त कर देने वाला था गंधार देश के राजारूपी मदगन्ध हाथी के लिए उत्पातक प्लेग वे समान था, लाट देश की पटुता को समाप्त कर देने वाला था और मालवदेश की राज्यलक्ष्मी रूपी लता के लिए एक कुल्हाड़ी के समान था।13 इस वाक्यांशों का सही सही अर्थ निकालना कठिन है और इनके आधार पर नहीं निश्चित किया जा सकता कि वास्तव में इन समकालिक राज्यों/राजवंशों से प्रभाकर बर्धन के लिए किस प्रकार के क्या और कैसे सम्बन्ध थे।

इस प्रकार हर्षचरित में दिये गये विवरणों से स्पष्ट है कि इतिहास लेखन में बाणभट्ट की रूचि भाषा के अलंकार में अधिक थी, ऐतिहासिक ब्यौरों के उल्लेख में कम थी। इस विजय योजना के विवरण को केवल एक गद्यकाव्य का साहित्यिक आच्छादमात्र कहा जा सकता है। इससे सैनिक अथवा राजनीतिक तथ्यों की कोई विशेष जानकारी नहीं होती है। फिर भी समसामयिक राजनीति के आधार पर इन विवरणें के कुछ तथ्यों की जानकारी की जा सकती है।

संदर्भ :

1. विशुद्धानन्द पाठक, उत्तर प्राचीन भारतीय इतिहास लेखन, लखनऊ, 2007, पृष्ठ–12.
2. विश्वम्भर शरण पाठक, एन्शियन्ट हिस्टोरियन्स ऑफ इण्डिया, पृष्ठ–57
3. विशुद्धानन्द पाठक, पूर्व निर्दिष्ट पृष्ठ–13
4. बलदेव उपाध्याय, संस्कृत साहित्य का इतिहास, पृष्ठ–392
5. विशुद्धानन्द पाठक, पूर्व निर्दिष्ट पृष्ठ–18
6. वहीं पृष्ठ–18
7. वहीं पृष्ठ–18
8. वहीं पृष्ठ–19
9. वहीं पृष्ठ–19
10. वहीं पृष्ठ–19
11. आर्यमंजूश्रीमूलकल्प श्लोक–719, 722
12. विशुद्धानन्द पाठक, पूर्व निर्दिष्ट पृष्ठ–19; हर्षचरित, निर्णय सागर प्रेस, 1912 पृष्ठ–120, 214
13. हर्षचरित, पृष्ठ–120

***

माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के दायित्वबोध की तुलना

*योगेश कुमार सिंह**

भूमिका :

शिक्षा का माध्यमिक स्तर छात्रों की दृष्टि से महत्वपूर्ण होने के साथ साथ शिक्षकों के लिये भी चुनौतीपूर्ण होता है क्योंकि माध्यमिक स्तर पर छात्रों में अपनी शिक्षा व्यवसाय एवं भावी जीवन के लिए अनेक योजनाएं एवं कल्पनाएं होती हैं। साथ ही उनमें शारीरिक, मानसिक एवं संवेगात्मक परिवर्तन और अपरिपक्वता के कारण अनेक समस्यायें दृष्टिगत होती हैं। अतः इस स्तर के शिक्षकों को नियमित एवं अनुशासित रहने, उन्हें अपने उत्तरदायित्व के प्रति सचेत रहने तथा उनके नैतिक, चारित्रिक एवं सामाजिक गुणों के आधार पर छात्रों में इसका विकास करने तथा उनके शैक्षिक निष्पादन स्तर को बढ़ाने की आवश्यकता है। इसके लिये शिक्षकों को विद्यालय में ऐसा वातावरण निर्मित करने की चुनौती होती है जो विद्यार्थी की रूचि एवं आर्कषण का केन्द्र हो, साथ ही उनमें विद्यालय, शिक्षक एवं अपने विषय के प्रति लगाव उत्पन्न कर सके। शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर छात्रों का मानसिक स्तर अपरिपक्व होता है इससे शिक्षकों के समक्ष एक बड़ी चुनौती छात्रों की मनोवृत्तियों की समझ विकसित करने की होती है, क्योंकि इसके अनुरूप शिक्षा प्रदान कर ही वह अपने कार्य का समुचित निष्पादन कर सकता है।

वर्तमान शिक्षा व्यवस्था में माध्यमिक स्तर पर अनेक समस्याएं उभरकर सामने आयी हैं जिसमें शिक्षकों का अपने शिक्षण दायित्व से विमुख होना भी प्रमुख कारण है। आज माध्यमिक शिक्षा में शैक्षिक गुणवत्ता में कमी दिखाई पड़ती है। स्वतंत्रता के उपरान्त माध्यमिक शिक्षा के संख्यात्मक विकास पर ही अधिक बल दिया गया। फलतः उसकी गुणवत्ता में सतत् ह्रास होता रहा। माध्यमिक शिक्षा हमारी अपेक्षाओं के अनुकूल नहीं रही, उसका बालक के भावी जीवन से कोई विशेष सम्बन्ध नही है। वर्तमान माध्यमिक शिक्षा पुस्तकों के भार एवं परीक्षाओं की जटिलता एवं व्यक्तिनिष्ठता से ग्रसित है। अतः जब तक इस समस्या का निराकरण नहीं किया जाता और इसे समाजोपयोगी नहीं बनाया जाता तब तक न तो छात्रों की स्थिति में कोई सुधार हो सकता है, और न ही यह शिक्षा संरचना की एक उपयोगी कड़ी बन सकती है। अतः वर्तमान माध्यमिक शिक्षा की प्रमुख समस्याओं का विवेचन करना एवं उनका समाधान प्रस्तुत करना आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है।

दायित्वबोध का सम्प्रत्यय :

दायित्वबोध एक वैयक्तिक प्रक्रिया है जो व्यक्ति को आत्म मूल्यांकन के लिए आधार प्रदान करती है। सकारात्मक आत्म–मूल्यांकन, दायित्वबोध को प्रासंगिक बना देता है, जबकि नकारात्मक आत्म–मूल्यांकन, व्यक्ति को दायित्वों से विमुख कर देता है। दायित्वबोध के अन्तर्गत व्यक्ति एवं संस्था दोनों को सम्मिलित किया जाता है, जो एक समय अन्तराल के पश्चात किये गये कार्यों का मूल्यांकन कर उसे प्रभावी बनाते हैं। जिस प्रकार निर्वाचित सरकार प्रजातंत्र में सामूहिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करती है या औद्योगिक जगत में प्रबंधतंत्र अंशधारकों के प्रति जिस प्रकार उत्तरदायी होता है, उसी प्रकार शिक्षा प्रणाली भी कुछ विशेष प्रकार के दायित्वबोध का निर्वाहन करती है। विगत वर्षो में अभिभावकों के लिए भी दायित्वबोध को निर्धारित किये जाने पर बल दिया जा रहा है। यथा–संस्था में अपने पाल्य का प्रवेश, शुल्क जमा करने, विद्यालय की मौलिकता को प्रासंगिक बनाने अथवा शक्ति सम्पन्न शिक्षण संस्थाओं के प्रति निष्ठावान होना आदि अभिभावकों का दायित्वबोध है।

शिक्षा में दायित्वबोध एक महत्वपूर्ण अभिकरण है। इसका उद्देश्य शिक्षा व्यवस्था, उसके स्तर व स्थायित्व में सुधार तथा शैक्षिक गुणवत्ता में वृद्धि हेतु इच्छा शक्ति का विकास करना है। दायित्वबोध वर्तमान में शिक्षा के प्राथमिक, माध्यमिक एवं उच्च स्तर की व्यवस्था हेतु अत्यन्त महत्वपूर्ण माना जाता

* सहायक अध्यापक (अंग्रेजी), एम.ए. (शिक्षाशास्त्र, अंगेजी) बी.एड्., भद्रेश्वर इण्टरमीडिएट कालेज, डेरवा, प्रतापगढ़।

है। दायित्वबोध का सम्बन्ध विद्यार्थी के ज्ञान की वृद्धि, सृजनात्मकता, कौशल विकास, मूल्यों का उन्नयन एवं उसकी शैक्षिक उपलब्धि आदि के प्रति अध्यापक के उत्तरदायित्व होता है।

शिक्षा के माध्यमिक स्तर पर शिक्षकों का उत्तरदायित्व अत्यन्त महत्वपूर्ण होता है। क्योंकि इस स्तर के शिक्षकों को राष्ट्र एवं समाज के लिए उपयोगी नागरिक तैयार करने के साथ–साथ, व्यावसायिक प्रतिस्पर्धा के अनुरूप छात्रों को तैयार करने हेतु प्रबुद्ध एवं सभ्यता व संस्कृति के वाहक तथा आर्थिक, सामाजिक, नैतिक एवं राष्ट्रीय मूल्यों के अनुरूप छात्रों को ढालने हेतु कार्य के प्रति निष्ठावान, अनुशासित, चरित्रवान एवं प्रबुद्ध नागरिकों का निर्माण करने की दृष्टि से प्रस्तुत शोध कार्य अत्यन्त आवश्यक एवं महत्वपूर्ण है। प्रस्तुत अध्ययन के द्वारा माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के दायित्वबोध को छात्रों के अनुकूल निर्मित करने में सहायता प्राप्त हो सकती है तथा उनकी शैक्षिक उपलब्धि को बढ़ाने में सहायता प्राप्त हो सकती है।

अध्ययन के उद्देश्य :

1. माध्यमिक स्तर के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के दायित्वबोध का तुलनात्मक अध्ययन करना।
2. माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के दायित्वबोध पर अधिवास एवं विषय वर्ग सम्बन्धी कारकों का तुलनात्मक अध्ययन करना।

परिकल्पनाएं :

1. माध्यमिक स्तर के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के दायित्वबोध में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।
2. माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों के दायित्वबोध में कोई सार्थक अन्तर नहीं है।

शोध विधि :

प्रस्तुत अध्ययन वर्णनात्मक अनुसंधान की सर्वेक्षण विधि पर आधारित है। जिनमें न्यादर्श के रूप में प्रतापगढ़ जनपद के माध्यमिक स्तर के विद्यालयों के 100 शिक्षकों एवं 100 शिक्षिकाओं का चयन यादृच्छिक न्यादर्श प्रतिचयन विधि से किया गया है। प्रदत्तों के संकलन हेतु डॉ0 निशिकान्त पाण्डेय एवं डॉ0 कल्पलता पाण्डेय द्वारा निर्मित शिक्षक दायित्वबोध मापनी का प्रयोग किया गया है। प्रदत्तों के विश्लेषण हेतु मध्यमान, मानक विचलन, सी–आर0 अनुपात ज्ञात किया गया है।

प्रदत्तों का विश्लेषण

सारणी–1

माध्यमिक स्तर के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं के दायित्वबोध का सांख्यिकीय विश्लेषण

क्र0सं0	चर	M_1	M_2	S_1	S_2	D	σD	CR
1.	शिक्षकों का छात्रो के प्रति दायित्वबोध	22.07	21.36	3.58	3.68	0.71	0.36	1.97''
2.	शिक्षकों का अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध	19.88	18.82	4.05	4.33	1.06	0.42	2.52''
3.	शिक्षकों का विद्यालय के प्रति दायित्वबोध	21.37	20.91	4.13	3.75	0.46	0.39	1.18
4.	शिक्षकों का समाज के प्रति दायित्वबोध	19.21	18.38	3.81	3.51	0.83	0.36	2.30''

विश्लेषण एवं व्याख्या :

1. शिक्षकों का छात्रों के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के छात्रों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 22.07 तथा मानक विचलन 3.58 है जबकि माध्यमिक स्तर की शिक्षिकाओं के छात्रों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 21.36 तथा मानक विचलन 3.68 है। परिगणित सी.आर अनुपात 1.97 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से अधिक है जो सार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के शिक्षकों का छात्रों के प्रति दायित्वबोध शिक्षिकाओं से उच्च है।

2. शिक्षकों का अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 19.88 तथा मानक विचलन 4.05 है जबकि माध्यमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 18.82 तथा मानक विचलन 4. 33 है। परिगणित सी.आर अनुपात 2.52 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से अधिक है जो सार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के शिक्षकों का अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध शिक्षिकाओं से उच्च है।

3. शिक्षकों का विद्यालय के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के विद्यालय के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 21.37 तथा मानक विचलन 4.13 है जबकि माध्यमिक स्तर की शिक्षिकाओं के अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 20.91 तथा मानक विचलन 3. 75 है। परिगणित सी.आर अनुपात 1.18 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से कम है जो असार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के शिक्षक एवं शिक्षिकाओं का विद्यालय के प्रति दायित्वबोध समान है।

4. शिक्षकों का समाज के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों के समाज के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 19.21 तथा मानक विचलन 3.81 है जबकि माध्यमिक स्तर की शिक्षिकाओं के समाज के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 18.38 तथा मानक विचलन 3.51 है। परिगणित सी.आर अनुपात 2.30 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से अधिक है जो सार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के शिक्षकों का समाज के प्रति दायित्वबोध शिक्षिकाओं से उच्च है।

उक्त सारणी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों एवं शिक्षिकाओं के दायित्वबोध सम्बन्धी दक्षताओं में अन्तर है। जहां पर शिक्षकों में छात्रों, अभिभावकों एवं समाज के प्रति दायित्वबोध शिक्षिकाओं से उच्च है, वहीं पर उनके विद्यालय सम्बन्धी उत्तरदायित्व समान है। इससे यह निष्कर्ष प्राप्त होता है कि शिक्षक एवं शिक्षिकाएं विद्यालय के प्रति समान दायित्वबोध रखती है, किन्तु छात्रों, अभिभावकों एवं समाज के प्रति उनका दायित्वबोध न्यून है। इसका सम्बन्धित कारण शिक्षिकाओं का अपने विद्यालय तक ही सीमित होना, उनका छात्रों के साथ विशेष रूप से न जुड़ पाना, अभिभावकों का नियमित सम्मेलन न कराना व समाज के प्रति अधिक सक्रिय न होना आदि तथा शिक्षकों का छात्रों के साथ–साथ उनके अभिभावकों एवं सामाजिक गतिविधियों में अधिक सहभाग करने के कारण दायित्वबोध उच्च पाया जाता है।

सारणी–2

माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों के दायित्वबोध का सांख्यिकीय विश्लेषण

क्र0सं0	चर	M_1	M_2	S_1	S_2	D	σD	CR
1.	शिक्षकों का छात्रो के प्रति दायित्वबोध	21.51	21.91	3.64	3.65	0.40	0.36	1.11
2.	शिक्षकों का अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध	19.25	19.65	3.63	3.84	0.40	0.37	1.08
3.	शिक्षकों का विद्यालय के प्रति दायित्वबोध	21.04	21.24	3.92	3.99	0.20	0.39	0.51
4.	शिक्षकों का समाज के प्रति दायित्वबोध	18.88	18.71	3.75	3.62	0.17	0.37	0.46

विश्लेषण एवं व्याख्या :

1. शिक्षकों का छात्रों के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण शिक्षकों के छात्रों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 21.51 तथा मानक विचलन 3.64 है जबकि माध्यमिक स्तर के

शहरी शिक्षकों के छात्रों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 21.91 तथा मानक विचलन 3.65 है। परिगणित सी.आर अनुपात 1.11 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से कम है जो असार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों का छात्रों के प्रति दायित्वबोध समान है।

2. शिक्षकों का अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण शिक्षकों के अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 19.25 तथा मानक विचलन 3.63 है जबकि माध्यमिक स्तर के शहरी शिक्षकों के अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 19.65 तथा मानक विचलन 3.84 है। परिगणित सी.आर अनुपात 1.08 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से कम है जो असार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों का अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध समान है।

3. शिक्षकों का विद्यालय के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण शिक्षकों के विद्यालय के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 21.04 तथा मानक विचलन 3.92 है जबकि माध्यमिक स्तर के शहरी शिक्षकों के अभिभावकों के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 21.24 तथा मानक विचलन 3.99 है। परिगणित सी.आर अनुपात 0.51 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से कम है जो असार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों का विद्यालय के प्रति दायित्वबोध समान है।

4. शिक्षकों का समाज के प्रति दायित्वबोध :

उक्त सारणी के विश्लेषण से स्पष्ट है कि माध्यमिक स्तर के ग्रामीण शिक्षकों के समाज के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 18.88 तथा मानक विचलन 3.75 है जबकि माध्यमिक स्तर के शहरी शिक्षकों के समाज के प्रति दायित्वबोध सम्बन्धी प्राप्तांकों का मध्यमान 18.71 तथा मानक विचलन 3. 62 है। परिगणित सी.आर अनुपात 0.46 है जो स्वतंत्रयाँश 198 के लिए 0.05 सार्थकता स्तर पर सी0आर0 सारणीमान 1.96 से कम है जो असार्थक है। अतः माध्यमिक स्तर के ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों का समाज के प्रति दायित्वबोध समान है।

उक्त सारणी के विश्लेषण से यह स्पष्ट होता है कि माध्यमिक स्तर के शिक्षकों पर अधिवाश सम्बन्धी प्रभाव नहीं पड़ता है। ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों के दायित्वबोध सम्बन्धी दक्षताओं में प्रत्येक आयाम पर समानता दृष्टिगत हुई। इसका सम्भावित कारण ग्रामीण एवं शहरी शिक्षकों के शैक्षिक स्तर, शैक्षिक योग्यता एवं शैक्षिक वातावरण का समान होना तथा शिक्षकों में छात्रों एवं अभिभावकों व समाज से जुड़ा होना शहरी क्षेत्रों में विद्यालयों में शिक्षक–अभिभावक संघो का अधिक सक्रिय होना तथा ग्रामीण क्षेत्रों में छात्रों, अभिभावकों का स्थानीय होने से शिक्षकों से सरलता से सम्बन्धित होना आदि कारण हो सकता है।

सन्दर्भ सूची :

1. डॉ0एस0पी0 गुप्ता एवं डॉ0अलका गुप्ता : आधुनिक भारतीय शिक्षा की समस्यायें, इलाहाबाद, शारदा पुस्तक भवन, पृ0 सं0–151
2. मालती सारस्वत एवं एस0एल0 गौतम : भारत में शैक्षिक प्रणाली का विकास, लखनऊ, आलोक प्रकाशन–2008, पृ0सं0–287–301
3. ट्रस्टन हुसैन, टी0 नेवली, पोस्टलेथवेट (1985), द इंटरनेशनल इन साइक्लोपीडिया आफ एजुकेशन इग्लैंण्ड, प्रागमैन प्रेस, वाल्यूम–।, पेज 16–28।
4. प्रो0 अरूण कुमार सिंहः उच्चतर मनोवैज्ञानिक प्रयोग एवं परीक्षण, 2008 पटना, भारती भवन पब्लिकेशन, पृ0सं0–174
5. जी0सी0 भट्टाचार्यःअध्यापक शिक्षा, वाराणसी, बसुन्धरा प्रकाशन, 2008 पृ0 सं0–48
6. रामपाल सिंह एवं ओ0पी0 शर्मा : शैक्षिक अनुसंधान एवं सांख्यिकी, आगरा, अग्रवाल पब्लिकेशन, 2008, पृ0सं0–464

***

साहित्य में मई विद्या के पुरोधा : बनारसीदास जैन

*डॉ. आशा गुप्ता**

आत्मकथा मनुष्य के अपने जीवन की वह गाथा है जिसे वह अपने ही भाव–रंगों से रंगकर पृष्ठों पर सहेजता है। जिसमें वह अपने जीवन के अनुभवों का इनद्रधनुषी रूप प्रस्तुत करता है। हिन्दी साहित्याकाशा में आत्मकथा रूपी इन्द्रधनुष सजाने वाले कविवर बनारसी दास जैन हिन्दी साहित्य की अनुपम निधि हैं। उन्होंने हिन्दी साहित्य को आत्मकथा जैसी नई विधा से अवगत कराया बनारसीदास से पूर्व आत्मकथा लिखने की प्रवृत्ति हिन्दी साहित्य में दिखाई नहीं देती।

भक्तिकाल में आत्मकथा लिखने की प्रवृत्ति प्राप्त नहीं होती, किंतु बनारसीदास जैन ने इसे एक प्रयोग के रूप में लिखा।इसमें वे सभी पक्ष उपस्थित हैं जो आत्मकथा में होने चाहिए। इस विषय पर टिप्पणी करते हुए पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है—"कोई तीन सौ वर्ष पहले की बात है, एक भावुक हिंदी कवि के मन में नाना प्रकार के विचार उठ रहे थे। जीवन के अनेकों उतार-चढ़ाव वे देख चुके थे।-------- अपने जीवन में अनेकों रंग देखे थे, तरह- तरह के खेल खेले थे। कभी वे आशिकी के रंग में दिखे तो कभी धार्मिकता की धुन पर सवार थी।------ तत्कालीन साहित्य जगत में उन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिल चुकी थी और यदि किवदंतियों पर विश्वास किया जाए तो उन्हें महाकवि तुलसीदास के सत्संग का सौभाग्य ही प्राप्त नहीं हुआ था बल्कि यह सर्टिफिकेट भी प्राप्त हुआ था कि आपकी कविता मुझे बहुत प्रिय लगी है। संवत 1698 (सन् 1641)४ में अपनी तृतीय पत्नी के साथ बैठे हुए अपने विचित्र जीवन पर दृष्टि डालते हुए उन्हें अपने आत्मचरित्त का विचार सूझा तो कोई आश्चर्य की बात नहीं।"[1]

उनको अपना आत्मचरित्(आत्मकथा) लिखने की प्रेरणा अपने जीवन से ही प्राप्त हुई। एक बार अपनी तीसरी पत्नी के साथ बैठे हुए वे अपने जीवन का पुनरावलोकन कर रहे थे, तभी उनके मन में अपनी आत्मकथा लिखने का विचार आया। यथा—

" बनारसी बिहोलिया,आध्यात्मीरसाल।
ताके मन आई यह बात, अपनो चरित्त कहौ विख्यात।
तब तिन बरस पंच पचास। परिमित दसा कहीं मुख भास।।"[2]

अपनी आत्मकथा में उन्होंने अपने जीवन में घटी प्रत्येक घटना को निरपेक्ष भाव से पूर्ण सत्य के साथ उद्घाटित किया है। घटना अच्छी हो या बुरी, कहीं भी अतिशयोक्ति दिखाई नहीं देती। एक डॉक्टर की भाँति जिस प्रकार उन्होंने अपने चरित्र की चीडफाड़ की है वह वास्तव मेंश्लाधनीय है। उन्होंने अपने आप को इस आत्मकथा में कीट-पतंग की श्रेणी में रखा है। बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं—"फक्कड शिरोमणि कविवर बनारसी दास जैन ने तीन सौ वर्ष पूर्व आत्मचरित्र लिखकर वर्तमान और भावी आत्मचरित लेखकों को मानोंन्यौता दे दिया।यद्यपि विनयपूर्वक उन्होंने अपने-आप को कीट पतंगों की श्रेणी में रखा है।------ तथापि इसमें कोई संदेह नहीं कि वे आत्म चरित लेखकों में शिरोमणि हैं।"[3]

अपना आत्मचरित्र लिखते समय उनके मन में कोई दुराग्रह, अभिमान एवं बड़बोलापन नहीं था। बड़ी सहजता से उन्होंने अपने आत्मचरित्र का ताना-बाना बुनते हुए उसे एक पूर्ण आकार प्रदान किया है। वह अपने समय में मानव की आयु 110 वर्ष मानते थे।अर्द्धकथानक में उनके 55 वर्ष की अर्थात् आधे जीवन की कथा है। अतः उन्होंने इसका नाम अर्द्धकथानक रखा। जिसमें उन्होंने अपने गोत्र, परिवार, बच्चे, पत्नी, अपने चारित्रिक दोष, अपनी साहित्यिक अभिरुचियोंआदि का चित्रण किया। अपने कुटुंब की वंशावली का चित्रण करते हुए उन्होंने लिखा है—

---

* एसोसिएट प्रोफेसर एवं प्रभारी, हिंदी विभाग, साहू राम स्वरूप महिला महाविद्यालय बरेली

" भई बहुत बंसावली, कहौ कहालौसोय।
प्रगटे पुर रोहतक में, गंगा गोसलदोय।।
जिनके कुल बस्ता भयौ,जाकौजग परगास।
बस्तुपाल के जेठमल,जेठू के जिनदास।।
मूलदास जिनदास के, भयौ पुत्रपरधान।
पढ्यौ हिन्दुगी फारसी,भाग बान बलबान।।"[4]

उनका बचपन का नाम विक्रमजीत था। बनारसीदास नाम कैसे पड़ा, इसके पीछे एक अंधविश्वास पूर्ण घटना है। जब बनारसीदास छः या सात महीने के थे तब उनके पिता खड़गसेन पार्श्वनाथ की यात्रा करने गए। मंदिर के पुजारी ने मायांतर कर कहा कि पार्श्वनाथ के यक्ष ने आपकी यात्रा स्वीकार कर ली है। तुम्हारा पुत्र दीर्घायु होगा। अब तुम अपने इस बालक का नाम पार्श्वनाथ के जन्म स्थान के आधार पर बनारसीदास रख दो—

"हरसित कहे कुटुंब सब, स्वामी पास सुपास।
दुहु को जनम बनारसी, यहु बनारसी दास।।"[5]

बनारसी दास का गोत्र बिहोलिया था।अर्द्धकथानक में उन्होंने कई स्थानों पर इसका प्रयोग किया है। इसके विषय में उन्होंने अर्द्धकथानक में लिखा है—

" याही भरत सुखेत में,मध्यदेस सुख ठांउ।
बसे नगर रोहतगपुर, निकट बिहोली गांउ।।
गांउबिहोली में बसे, राजवंस राजपूत।
ते गुरुमुख जैनी भए, त्याग करम अवधूत।।
पहरी माला मंत्र की, पायो कुल श्रीमाल।
थाप्यौ गोत्र बिहोलिया,बिहोली रखपाल।।"[6]

बनारसीदास की शिक्षा कुछ विलंब से प्रारंभ हुईकिन्तु बाद में वे गुरु पांडे से शिक्षा ग्रहण करने लगे—

"आठ बरस को हुओ बाल, विद्या पढनगयौचटसाल।
गुरु पांडे से विद्या सीखे,अक्खर बाचै लेखा लिखें।।"[7]

अल्प आयु में विवाह होने के कारण विद्याध्ययन में व्यवधान पैदा हो गया किंतुचौदह साल की आयु में उन्हें पंडित देवदत्त से पढ़ने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।[8]इसके पश्चात उन्होंने मुनि भानुचंद्र जी से शिक्षा ग्रहण की। उन्होंने बनारसीदास को जैन धर्म संबंधी अनेक सिद्धांत कंठस्थ कराए। धीरे-धीरे विद्याध्ययन करते रहे। कहने का तात्पर्य है कि शिक्षा में व्यवधान भी उनकी मेधा को प्रज्ज्वलित होने से रोक नहीं सका। फलस्वरूप हिंदी साहित्य को उच्चकोटि की रचनाएं प्राप्त हुई। उनके द्वारा लिखित रचनाएँ हैं-'समयसार नाटक' ,'बनारसी- विलास','नाममाला' और 'अर्द्धकथानक' आदि। उनकी रचनाएं उनकी उपस्थिति साहित्यिक गलियारों में हमेशा बनाए रखेंगी। डॉ रविंद्र कुमार जैन के अनुसार—"कविवर द्वारा रचित उत्तम ग्रंथ उनकी दिव्य प्रतिभा, विद्वता एवं सुलझे हुए व्यक्तित्व की अमिट छाप लिए हुए आज भी उनके यशः शरीर को प्रकाश स्तंभ की भांति देदीप्यमान किएहुए है"।[9]

बनारसी दास जी ने छोटी सी उम्र से व्यवसाय करना प्रारंभ कर दिया था, लेकिन समझ ना होने के कारण सफलता प्राप्त नहीं हुई।संवत 1667में उन्होंने पिता से व्यापार की इच्छा प्रकट की। उनके पिता ने पुत्र का मान रखा और गहने, माणिक, मोतीऔर कपड़ा इत्यादि देकर व्यापार के लिए विदा किया--

"संवत सोलह सौ सतसठा, घर कौ माल कियौएकठा।
खुला जवाहर और जड़ाऊ, कागज माहिलिखौ सब भाऊ"।।[10]

कष्ट सहते हुए बनारसीदास अपने बहनोई के यहाँ मोती कटरा (आगरा) पहुँचे।कुछ समय पश्चात मकान भी ले लिया। व्यापार आरंभ किया, किंतु अनुभवहीनता के कारण व्यापार में हाँनि ही हाँनि हुई। व्यापार करते हुए आप बीमार भी पड़ गए, लेकिन पिता के बुलाने के पश्चात भी लज्जावश लौटकर जौनपुर नहीं गए। समय बिताने के लिए आप साहित्य प्रेमियों को मंझन की मधुमालती और कुतुबन की मृगावती पढ़कर सुनाने लगे—

"तब घर में बैठे रहे, जाहिं ना हाट बाजार।
मधुमालती मिरगावती, पोथी दोऊ उदार।।
तै बाचै रजनी समय, आवहि नर दस बीस।
गावहि और बातें करें, नित उठि देति असीस।।[11]

बनारसीदास से मृगावती और मधुमालती सुनने एक कचौरी वाला भी आता था। धनाभाव के कारणवे उस से उधार लेकर कचौरिया खाने लगे। एक दिन कविवर ने एकांत में उससे कहा—

"तुम उधार दीनों बहुत, आगे अब जिनि देहु।
मेरे पास किछु नहीं, दाम कहाँ सौलेहु।।"[12]

कचौरीवाला भी सज्जन और साहित्य प्रेमी था। उत्तर दिया—

"कहै कचौड़ी बालनर बीस रुपैया खाहु।
तुमसे कोई किछू न कहै, जहँभावै तहाँजाहु।।"[13]

इस प्रकार वह अपनी आत्मकथा में एक साहित्य प्रेमी कचौरी वाले को अमर कर गए।

बनारसीदास जैन ने अपनी आत्मकथा में अपने संपूर्ण अवगुणों का वर्णन निस्पृहता से किया है। उन्हें आत्मनिंदा में आनंद की अनुभूति हुई है, जबकि आत्मप्रशंसा उनकी आत्मकथा में कोई विशेष स्थान नहीं पा सकी। कवि ने अपनी दुर्बलताओं को उजागर करने में संकोच का अनुभव नहीं किया। श्री नारायण चतुर्वेदी लिखते हैं—"आत्मकथा में दुर्बलताओं का उल्लेख एक बहुत बड़ी कसौटी है, जिस पर आत्मकथा का खरा उतरना बहुत आवश्यक है। आत्मकथा में न तो ऐसा होना चाहिए कि दुर्बलताओं की चर्चा सर्वथा लोप हो जाए और न ही अति विस्तृत वर्णन दिया जाए कि वह साधन के स्थान पर साध्य हो जाए।"[14]

बनारसीदास जैन सच्चे आत्मचरित्र लेखक हैं और गुण- दोषों का निरपेक्ष भाव से चित्रण करते हैं। मित्रों के साथ नग्न होकर 'जूत-पैजारखेलना', आवारा की तरह घूमना, साधुओं को परेशान करना, उधार खाकर पेट भरना तथा व्यापार में असफलता आदि सभी अवगुणों का वर्णन उन्होंने खुलकर अपनी आत्मकथा में किया है। इस विषय पर पंडित पद्मलाल बख्शी के विचार हैं-" आत्मकथा तथा डायरी में सच्चे भावों की अभिव्यक्ति होनी चाहिए। यही लेखकों की सबसे बड़ी कठिनाई होती है।सच्चे भावों को सच्चे रूप में प्रकट करने के लिए रचना की इतनी कुशलता नहीं चाहिए जितनी सत्साहस की।"[15]

बनारसीदास जैन का अर्द्धकथानक इस कसौटी पर खरा उतरता है। लेखक ने अपने संबंध में लिखते समय जिस निर्लिप्तता का परिचय दिया है उससे प्रभावित होकर पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी ने लिखा है—" कविवर बनारसी दास जी का दृष्टिकोण आधुनिक आत्मचरित्र लेखकों के दृष्टिकोण से बिल्कुल मिलता जुलता है। अपने चारित्रिक दोषों पर उन्होंने पर्दा नहीं डाला है बल्कि उसका निवारण इस खूबी के साथ किया है कि मानो कोई वैज्ञानिक तटस्थ वृत्ति से विश्लेषण कर रहा है। आत्मा की ऐसी चीर-फाड़ कोई कुशल साहित्य सर्जन ही कर सकता है।"[16]

बनारसीदास जैन ने जैन धर्म संबंधी रचनाओं का प्रणयन भी किया जो उच्च कोटि के ग्रंथ हैं, किंतु हिंदी साहित्य जगत उन्हें उनकी आत्मकथा अर्द्धकथानक के कारण विशेषतः जानता है। इसका कारण आचार्य रामचंद्र शुक्ल की बेरुखी भी है, जिन्होंनजैनियों के धार्मिक साहित्य को यह कहकर साहित्य के क्षेत्र से बहिष्कृत कर दिया कि-" इनमें से कई तो जैनों के धर्म तत्व निरूपण संबंधी हैं जो साहित्य की कोटि में नहीं आतीं।"[17]अतः परवर्ती साहित्यकारों ने भी उनके धार्मिक साहित्य पर विचार ना कर केवल उनकीआत्मकथा पर ही विचार किया है। साहित्य जगत भीकविश्री की इसी रचना को महत्व देता है। यहएक उच्च कोटि की आत्मकथा है जिसमें जीवन के संघर्ष की अनोखी औषधि निहित है। जिसको पढ़ कर पाठक चमत्कृत होता है। मंथन करता है और विचाराधीन हो जाता है। इस संबंध में पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी लिखते हैं-" हिंदी साहित्य के इतिहास में इस ग्रंथ का एक विशेष स्थान होगा ही। साथ ही इसमें एक ऐसी संजीवनी शक्ति विद्यमान है जो उन्हें कई सौ वर्षों जीवित रखने में समर्थ होगी। सत्यप्रियता, स्पष्टवादिता निरभिमानता और स्वाभाविकता का ऐसा जबरदस्त पुटइसमें विद्यमान है कि साहित्य की चिरस्थायी संपत्ति में इसकी गणना अवश्य होगी। हिंदी का तो यह प्रथम आत्मचरित्र है ही, पर भारतीय भाषाओं में भी इस प्रकार की इतनी पुरानी पुस्तककामिलनाआसाननहींहै।"[18]

अतः हम कह सकते हैंकि बनारसीदास जैन का अर्धकथानक हिंदी साहित्य जगत का पहला आत्मचरित्र है। इसमें कोई संदेह या शंका नहीं। सभी विद्वानों ने एकमत होकर इस को हिंदी का पहला आत्मचरित् स्वीकार किया है। मैं भीअर्द्धकथानक को हिंदी साहित्य का पहला आत्मचरित् मानती हूँ।

संलग्नक :

1. बनारसीदासचतुर्वेदी-- हिंदी का प्रथम आत्मचरित्, पृष्ठ-02
2. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक, पृष्ठ- 43
3. पंडितबनारसीदास चतुर्वेदी, हिंदी का प्रथम आत्मचरित्त, प्रष्ठ-11
4. पंडित बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक,पृष्ठ-07
5. बनासीदास जैन—अर्द्धकथानक पृष्ठ- 11
6. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक,पृष्ठ-05
7. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक,पृष्ठ-12
8. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक,पृष्ठ- 19
9. रवींद्र कुमार जैन-- कविवर बनारसीदास: जीवनी और कृतित्व—पृष्ठ- 90
10. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक, पृष्ठ- 32
11. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक, पृष्ठ-38
12. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक,पृष्ठ-12
13. बनारसीदास जैन—अर्द्धकथानक,पृष्ठ-38
14. श्री नारायण चतुर्वेदी--आत्म निरीक्षण, (भूमिका)पृष्ठ-04
15. पंडित पद्मलाल बक्शी, मेरी आत्मकथा,पृष्ठ- 43
16. पं0 बनारसीदास चतुर्वेदी-- हिंदी का प्रथम आत्मचरित्, पृष्ठ-02
17. आचार्य रामचंद्र शुक्ल-- हिंदी साहित्य का इतिहास,पृष्ठ-03
18. पंडित बनारसीदास चतुर्वेदी-- हिंदी का प्रथम आत्मचरित्,पृष्ठ-02

***

वर्तमान परिप्रेक्ष्य में स्वामी विवेकानन्द के शैक्षिक चिन्तन की प्रासंगिकता

*डॉ. सरोज कुमारी**

"जिस शिक्षा से हम अपना जीवन निर्माण कर सकें, अच्छा मनुष्य बन सके, चरित्र गठन कर सकें और विचारों का सामंजस्य कर सके वही वास्तव में शिक्षा कहलाने योग्य है।"

स्वामी विवेकानन्द

मानव निर्माण को शिक्षा का मूल उद्देश्य मानने वाले स्वामी विवेकानन्द का शैक्षिक दर्शन परम्परागत और आधुनिक शिक्षा प्रणाली का अद्भुत समन्वय है। स्वामी विवेकानन्द जी का शैक्षिक दर्शन जितना पूर्व में प्रासंगिक था उससे भी अधिक वर्तमान एवं भविष्य के लिए प्रासंगिक है और रहेगा। भारत की भूमि पर जन्म लेकर हम सभी स्वयं को यूँहीं गर्वित महसूस नहीं करते। भारत की वसुन्धरा का आँचल है ही इतना पवित्र, सौभाग्यशाली और अनोखा। क्योंकि भारत की भूमि अपने अंतर में जहां असंख्य मणिमुक्ताएं छिपाए बैठी है वहीं उसके आँचल में समय–समय पर ऐसे नवरत्न पैदा हुए हैं जिनकी ज्योति से सारा संसार जगमगा उठा। उन्हीं में से एक रत्न है स्वामी विवेकानन्द जी, जो अपनी बहुआयामी प्रतिभा से आज भी देश के युवाओं को ऊर्जावान बनाकर देश के विकास में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से महत्वपूर्ण योगदान दे रहें हैं।

12 जनवरी 1863 में कलकत्ता में जन्मे स्वामी विवेकानन्द जी का मात्र 39 वर्ष की आयु में ही 4 जुलाई 1902 में उनका देहावसान हो गया था। लेकिन इतनी अल्प आयु में ही वह अपनी विचार धारा एवं जीवन दर्शन से विश्व को अभिभूत कर गए। आज विश्व उनकी शैक्षिक विचार धारा को अपने पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाने के लिए प्रयत्नरत है। मन की एकाग्रता का जो मूलमंत्र उन्होंने दिया उससे विषयों को समझने तथा उसे आत्मसात करने में बहुत आसानी होती है। उनके अनुसार शिक्षा वह है जो जीवन निर्माण कर सके, पूर्ण मानव बना सके और ज्ञान को आत्मसात कर जीवन में उसका उपयोग कर सके। आज शिक्षा को रोजगारपरक बनाने के विषय में तो चर्चा होती है लेकिन मानव बनाने का उद्देश्य पीछे छूट जाता है, जिसके दुष्परिणाम हमें समाज में आए दिन देखने को मिल जाते हैं।

स्वामी विवेकानन्द जी चरम कोटि के महत्वाकांक्षी थे और अपने देश के युवाओं को भी महत्वाकांक्षी बनाना चाहते थे। वे चाहते थे कि देश का युवा ऊँचें सपने देखे, महान कार्य करे, अपनी इच्छाओं से ऊपर उठे, अपने बंधन तोड़े और अपनी विशिष्टता की ओर बढ़े एवं अपनी दिव्यता को पहचाने।

स्वामी विवेकानन्द एक समाज सुधारक भी थे जिन्होंने कई सामाजिक बुराइयों के खिलाफ लड़ाई लड़ी, जो 19वीं और 20वीं शताब्दी के दौरान भारतीय समाज की दुर्दशा कर रहें थे। इस उद्देश्य के लिए उन्होंने हिन्दू धर्म की वकालत भी की, जो लिंग व जाति के नाम पर भेदभाव नहीं करता है लेकिन एक सार्थक जीवन जीने हेतु विचारों को सामने अवश्य रखता है। उन्होंने हिन्दू धर्म के सार को समझने और दुनियाँ में इसे फैलाने की कामना अवश्य की और वेदान्त दर्शन ज्ञान, भक्ति, कर्म और राजयोग के आदर्शों के प्रचार के लिए राम कृष्ण मिशन की भी स्थापना की। इस प्रकार एक अर्थ में, स्वामी विवेकानन्द ने अपना जीवन हिन्दू धर्म के माध्यम से आसपास की दुनियाँ को समझने के लिए समर्पित किया। स्वामी विवेकानन्द जी के अनुसार अपने जीवन और चरित्र का निर्माण ही शिक्षा का मूल उद्देश्य होना चाहिए जानकारियों को रखने मात्र से व्यक्ति शिक्षित नहीं हो जाता। चरित्रवान व्यक्ति उस व्यक्ति से कहीं अधिक श्रेष्ठ है जिसने पूरे पुस्तकालय को कंठस्थ कर लिया है। आज हम चरित्र निर्माण के उद्देश्य से भटक रहें है। स्वार्थ और धन लोलुपता ने चरित्र का हनन करने में कोई कसर नहीं छोड़ी है। शिक्षा ऐसी होनी चाहिए जिससे चरित्र निर्माण हो, जीवन में मानवीय मूल्यों का

* एसोसिएट प्रोफेसर (बी.एड. विभाग), चाधरी शिवनाथ सिंह शाडिल्य (पी.जी.) कॉलेज,माछरा, मेरठ।

समावेश हो, मनुष्य आत्म–निर्भर बने तथा सेवा भाव को अपनाएँ। स्वामी विवेकानन्द भारतीय दर्शन के प्रकाण्ड पंडित और अद्वैत वेदान्त के पोषक थे। उन्होंने वेदान्त को व्यावहारिक रूप प्रदान किया। स्वामी जी ने वेदान्त की पुनर्व्याख्या आधुनिक परिप्रेक्ष्य में की, तथा निराशा और कुंठा के दल–दल में फंसी हुई भारतीय जनता को जीवन का नवीन पथ दिखाया। स्वामी जी का कहना था कि आध्यात्मिक उन्नति से पूर्व देश की समृद्धि आवश्यक है। जब तक प्रत्येक भारतवासी का जीवन–स्तर उच्च नहीं हो जाता, तब तक आध्यात्मिक बातें निस्सार होंगी।

शिक्षा के उद्देश्यों के बारें में उनका कहना था– **"जो शिक्षा प्रणाली जन–साधारण को जीवन–संघर्ष से जूझने की क्षमता प्रदान करने में सहायक नहीं होती, जो मनुष्य के नैतिक बल का उसकी सेवा–वृत्ति का, उसमें सिंह के समान साहस का विकास नहीं करती, ऐसी शिक्षा केवल नाम की शिक्षा है, इस शिक्षा का कोई लाभ नहीं।"** वेदान्त दर्शन के अनुसार प्रत्येक बालक में अनन्त ज्ञान, अनन्त बल एवं अनन्त व्यापकता की शक्तियाँ विद्यमान है। परन्तु उसे इन शक्तियों का पता नहीं है, शिक्षा के माध्यम से उसे उनकी प्रतीति करवाई जाती है।

विवेकानन्द जी स्त्री शिक्षा के प्रबल समर्थक थे। वे चाहते थे कि स्त्री व पुरूष का शिक्षा पर समान अधिकार हो। जब स्त्री व पुरूष परिवार रूपी गाड़ी के दो पहिए हैं तो एक पहिए को कमजोर क्यों रखा जाता है ? क्या कमजोर पहिए के साथ गृहस्थी रूपी गाड़ी सुचारू रूप से चल सकती है ? नहीं, तो क्यों न हम स्त्री को भी शिक्षा के समान अवसर दें। अगर हम प्राचीन भारत का अवलोकन करे तो हमें मैत्रेयी, गार्गी, विद्योत्तमा जैसी अनेक विदुषियों के उदाहरण मिल जाएँगें जिन्होंने अपनी विद्धता से पुरूषों को परास्त किया है। महिलाएँ वेद, वेदांगों का अध्ययन करती थी, तथा पुरूषों से शास्त्रार्थ भी करती थीं। आज पुनर्जागरण का अवसर है महिलाओं के लिए, उन्हें अपनी आत्मशक्ति को पहचानना है, हालांकि इस दिशा में प्रयास किए जा रहें है लेकिन अपनी आबादी को देखते हुए ये प्रयास **"ऊँट के मुँह में जीरा"** साबित हो रहा है। शिक्षा के क्षेत्र में महिलाओं की भागीदारी से बहुत सी समस्याएँ हल हो जाएँगी परिवार की समृद्धि तथा विकास की चाबी महिला के हाथ में होती है, शिक्षित महिला इस दायित्व को बखूबी निभा सकती हैं। अपनी संतान को योग्य बनाकर तथा परिवार को आर्थिक रूप से मजबूत बनाकर सुशिक्षित व चरित्रवान स्त्रियाँ शहरों व गाँवों में शिक्षा की अलख जगाकर महिलाओं को जागरूक व सशक्त बना सकतीं हैं। शिक्षा के अन्तर्गत सिर्फ पढ़ना और पढ़ाना नहीं है वरन घर गृहस्थी के काम काज, बीनना, चुनना, सिलाई, कढ़ाई, बुनाई, शिशुपालन आदि भी शिक्षा के ही अंग है, यानि जो कुछ सीखा जाता है वह शिक्षा है अतः आवश्यकतानुसार महिलाओं के लिए विभिन्न प्रकार के कला कौशल सीखने की आजादी होनी चाहिए। ये कला कौशल उनके पाठ्यक्रम का हिस्सा होने चाहिए जिससे वह अपने गृहस्थ जीवन में उनका उपयोग कर सकें।

शिक्षा देने का कार्य केवल अच्छे शिक्षक ही कर सकते है। शिक्षक का कार्य शिक्षा को थोपना नही है वरन् बालक को शिक्षा का रास्ता दिखाना है वह केवल पथ–प्रदर्शक है जो बालक के लिए शिक्षा का मार्ग प्रशस्त करता है और लड़खड़ाने पर उसका संबल बनता है चलना तो बालक को ही है शिक्षक तो उसका हाथ थामकर उसका मनोबल बढ़ाता है अतः उसका व्यवहार कहीं–कहीं पर मित्रवत भी हो जाता है।

शिक्षक को विषय का उत्कृष्ट ज्ञान, पवित्र जीवन, आदर्श चरित्र शिक्षण के प्रति समर्पण सीखने की प्रक्रिया में अभिप्रेरक का काम करता है बालक ऐसे शिक्षक को प्रेरणास्त्रोत मानकर सीखने की प्रक्रिया में उत्साह से आगे बढ़ते है।

निष्कर्ष :

राष्ट्र के पुनर्निर्माण एवं छात्र को चिंतन शील मानव बनाने वाली शिक्षा की अवधारणा, पाठ्यक्रम, प्रभावी ज्ञानार्जन के लिए मानसिक एकाग्रता का विकास; शिक्षा की इन सभी संकल्पनाओं को साकार करने हेतु **दिल्ली अभी दूर है।** यदि जनसाधारण स्वामी जी के आदर्शों का पालन करते हुए स्वानुशासन, आत्मनिर्भर बनाने वाली शिक्षा पर जोर दे तो निःसन्देह भारत का भविष्य उज्ज्वल होगा

और मानव का निर्माण होगा। उनका शिक्षा दर्शन एक शताब्दी बाद भी आदर्श और प्रेरणा स्त्रोत बना हुआ है। उसे मूर्तरूप देने के लिए हम सतत प्रयासरत रहेंगे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

1. ओढ़, डॉ0 एल0 के0, शिक्षा की दार्शनिक पृष्ठभूमि
2. पचौरी, डॉ0 गिरीश, शिक्षा के दार्शनिक आधार।
3. वर्मा, डॉ0 जी0एस0, आधुनिक भारतीय शिक्षा एवं उसकी समस्याएँ।
4. लाल, रमन बिहारी, भारतीय शिक्षा का विकास एवं उसकी समस्याएँ।

***

विन्ध्यक्षेत्र में नवपाशाणिक अधिवास प्रक्रिया के सामाजिक-आर्थिक आयाम

(Socioecomic Dimention of Vindhyan Neolithic Settlement Pattern)

डॉ. रमाकान्त *

शब्द–कुंजी :

भू–क्षेत्र, बेलन, सोन, अनुभाग, टेक्स्ट बुक सेक्शन, सांस्कृतिक निरन्तरता, क्षैतिज, स्तरीकरण, भूतात्विक जमाव, पुरातात्विक जमाव, उत्खनन, ग्रेवेल, अधिवास, अर्धस्थायी–अधिवास, वन्य–धान, खाद्योत्पादन, अन्नसंग्राहक, पालिशदार मृद्भाण्ड, फर्श, गृह निर्माण–योजना, ब्लेड्स, चक्रिक–प्रस्तर, माइक्रोलिथ, शिल्प–विशिष्टीकरण, विकासात्मक–अनुक्रम, अधिवास–स्थल, पशुबाड़ा, अपघटित शिला, नदी–अनुभाग।

सार–संक्षेप :

प्रागैतिहासिक संस्कृतियों के उद्भव और विकास की दृष्टि से विंध्यक्षेत्र का महत्वपूर्ण स्थान है। इस क्षेत्र में अवस्थित नदियों के अनुभाग तथा खुलेस्थान में अवस्थित प्रागैतिहासिक पुरास्थलों से इस क्षेत्र की पाषाण युगीन संस्कृतियों के विकास का एक अविच्छिन्न अनुक्रम प्रकाशित हुआ है जिसमें नवपाषाणिक संस्कृति के साक्ष्य विशेष महत्वपूर्ण तथा उपादेय हैं। इस क्षेत्र में यद्यपि अनेक नवपाषाणिक पुरास्थलों की खोज की गयी है किन्तु बेलनघाटी में कोलडिहवा, महगड़ा, पचवॅह, अदवा घाटी में इन्दारी, अदवा तथा बेलन के संगम पर अवस्थित टोकवा और सोनघाटी में स्थित कुनझुन नामक पुरास्थल ही उत्खनित हैं। इस शोध–पत्र में सम्बन्धित क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति के समान्य स्वरूप तथा अधिवास–प्रक्रिया के विशेष सन्दर्भ में सम्बन्धित लोगों के सामाजिक–आर्थिक जीवन को विश्लेषित करने का प्रयास किया गया है।

उत्तर–मध्य भारत को प्रायः विन्ध्य क्षेत्र की संज्ञा से भी अभिहित किया जाता है। भौगोलिक विविधता वाला यह भूक्षेत्र दकन तथा उत्तरी भारत के मध्य एक अन्तस्थ क्षेत्र की तरह स्थित है।[1] प्राकृतिक सम्पदा और आर्थिक दृष्टि से समृद्ध यह भू–क्षेत्र ऐतिहासिक तथा सांस्कृतिक दृष्टि से भी अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इस क्षेत्र का जो भू–भाग प्रस्तुत शोध–पत्र में सम्मिलित है वह वस्तुतः उत्तर–मध्य भारत का पठारी क्षेत्र है। गंगा–यमुना नदियाँ इस क्षेत्र की उत्तरी सीमा का निर्धारण करती हैं तथा दक्षिण में यह विन्ध्य पहाड़ियों से घिरा हुआ है। इसकी पश्चिमी सीमा पर भिण्ड, ग्वालियर, दतिया और शिवपुरी (म.प्र.) जिले स्थित हैं तथा दक्षिणी सीमा को मध्य प्रदेश के सागर, गुना, टीकमगढ़, छतरपुर, पन्ना, सतना, रीवा, सीधी और अम्बिकापुर जिले निर्धारित करते हैं। बिहार के शाहाबाद और पलामू जिले इस क्षेत्र की पूर्वी सीमा पर स्थित हैं। सोन, अदवा, कर्मनाशा, चन्द्रप्रभा, बेलन, टोंस, केन, चम्बल, पयस्विनी तथा इनकी सहायक नदियाँ इस क्षेत्र के अपवाहतंत्र को नियत्रित करती हैं।

इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग, जियोलॉजिकल सर्वे ऑफ इण्डिया तथा संयुक्त राज्य अमेरिका के बर्कले स्थित कैलीफोर्निया विश्वविद्यालय के मानवशास्त्र विभाग द्वारा इस क्षेत्र में स्थित टोंस की सहायक बेलन तथा गंगा की सहायक सोन नदी की घाटियों में, सम्पादित अनुसंधान ने न केवल भारतीय पाषाणयुगीन संस्कृति के अध्ययन में एक नये अध्याय को जोड़ा है अपितु इस अध्ययन के फलस्वरूप विन्ध्यक्षेत्र में मध्यप्रातिनूतन काल से लेकर प्रारम्भिक नूतनकाल तक के मानव–जीवन की क्रमबद्ध कहानी का उद्घाटन हुआ है।

उपर्युक्त अनुसंधानों के फलस्वरूप बेलन[2] नदी घाटी में 18 मी. तथा सोन[3] नदी घाटी में 30मी. मोटे प्रातिनूतन कालीन तथा प्रारम्भिक नूतनकालीन अनुभाग प्रकाश में आये हैं जिनमें निम्नपुरापाषाण काल से लेकर मध्य पाषाणकाल तक की मानव–संस्कृति का लम्बवत रिकार्ड सुरक्षित है। प्रसिद्ध विद्वान एच.डी. संकालिया महोदय बेलन नदी–अनुभाग को देखकर बहुत प्रभावित हुए तथा उन्होंने इसे

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्त्व विभाग, नागरिक पी.जी. कालेज, जंघई, जौनपुर

'टेक्स्ट बुक सेक्सन' की संज्ञा प्रदान की।[4] यहाँ यह विशेष रूप से उल्लेखनीय है कि बेलनघाटी में सम्पादित प्रागैतिहासिक अनुसंधान के फलस्वरूप ही भारत के सन्दर्भ में उच्च पुरापाषाण काल का निर्विवाद स्तर प्रकाशित हुआ।

विगत चार दशकों में इलाहाबाद विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास, संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग द्वारा किये गये योजनाबद्ध पुरातात्विक इस अनुसंधान के फलस्वरूप बेलन, अदवा तथ सोन नदियों की घाटियों में अनेक नवपाषाणिक पुरास्थल प्रकाश में आये हैं।[5] ये पुरास्थल मुख्यतः, उत्तर प्रदेष के बाँदा, चित्रकूट, इलाहाबाद, मिर्जापुर तथा मध्य प्रदेश के सीधी जिले में स्थित हैं। इलाहाबाद जिले के दक्षिणांचल में पूर्व से पश्चिम की ओर बहने वाली टोंस की सहायक बेलन नदी की घाटी में जो पुरास्थल मिले हैं, उनमें **कोलहिहवा, महगड़ा, पचोंह, कुकरहटा, देवघाट, कोइलरिहा, फुटहा, चौरडीह–कोटिया, बांसघाट, डइया** और **पटेहरी** का नाम लिया जा सकता है। मिर्जापुर जिले की अदवा घाटी में **मघा, इन्दारी, बरौंचा, सिंदुरिया, महालपुर** और **टोकवा** तथा मध्यप्रदेश के सीधी जिले की सोनघाटी में **कुनझुन, ललनहिया** तथा **धोदउही** महत्वपूर्ण नवपाषाणिक पुरास्थल हैं। उपर्युक्त नवपाषाणिक पुरास्थलों में कोलडिहवा, महगड़ा, पचोंह, इन्दारी, टोकवा तथा कुनझुन नामक पुरास्थलों का उत्खनन कार्य सम्पादित हो चुका है। इन उत्खननों ने इस क्षेत्र की नवपाषाणिक संस्कृति को एक समुचित पुरातात्विक परिप्रेक्ष्य दिया है।

इस क्षेत्र की नवपाषाण युगीन संस्कृति की अधिवास–प्रक्रिया के विवेचन के पूर्व अधिवास प्रक्रिया की अवधारणा तथा पुरातात्विक अनुसंधान के क्षेत्र में इसके महत्व पर विचार कर लेना आवश्यक है। अधिवास–प्रक्रिया या सेटलमेंट पैटर्न आधुनिक पुरातत्व का एक महत्वपूर्ण अंग है। इसके अन्तर्गत विभिन्न स्थानों या स्थान–विशेष में मानव के जीवन–व्यापार के स्थानिक वितरण का अध्ययन किया जाता है।[6] दूसरे शब्दों में, मानव का अपने निवास के लिए स्थान का चुनाव एवं आवश्यकता और उपलब्ध संसाधनों के अनुरूप अपने रहन–सहन तथा जीवन–शैली का निर्माण इत्यादि का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है। प्रारम्भ से ही आदिमानव ने अपने निवास–स्थल का चुनाव तत्कालीन अनूकूलताओं तथा अपनी सुरक्षा आदि को ध्यान में रखकर किया। उत्तरोत्तर मानव सभ्यता के इतिहास में इस प्रक्रिया में समयानुकूल परिष्कार, परिवर्द्धन और निरन्तरता दिखायी देती है।

यद्यपि मानव–सभ्यता की विकास यात्रा में अधिवासों के निर्माण का श्रेय मध्यपाषाणयुगीन मानव को दिया जाता है किन्तु उनके अधिवास स्थायी नहीं थे। भोजन और जल की खोज में वे घुमन्तू तथा खानाबदोश जीवन जीने के लिए विवश थे।[7] आगे चलकर नवपाषाण काल में मानव–जीवन की अर्थव्यवस्था में कृषि तथा पशुपालन का स्थायी रूप से योगदान शुरू हुआ। परिणामस्वरूप मध्यपाषाण युगीन अर्ध–स्थायी अधिवास, स्थायी–अधिवास का स्वरूप ग्रहण कर लेते हैं। अंततः लगभग इन्हीं नवपाषाणयुगीन स्थायी–अधिवासों से गाँव, कस्बे तथा नगरों का विकास हुआ।

विन्ध्य क्षेत्र में पुरातात्विक अनुसंधान के फलस्वरूप अब तक अनेक नवपाषाणिक पुरास्थल प्रकाश में आये हैं तथा उनमें से अनेक पुरास्थलों पर उत्खनन–कार्य भी सम्पादित हुआ है। लेकिन इन पुरास्थलों में महगड़ा के अतिरिक्त किसी भी अन्य पुरास्थल से विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक अधिवास–प्रक्रिया पर समुचित प्रकाश नहीं पड़ता है। इन पुरास्थलों पर क्षैतिज रीति से व्यापक पैमाने पर उत्खनन नहीं किया जा सका है। उल्लेखनीय है कि क्षैतिज रीति से व्यापक पैमाने पर उत्खनन के अभाव में वहाँ की अधिवास–प्रक्रिया की समुचित जानकारी सम्भव नहीं है।

महगड़ा से प्राप्त सांस्कृतिक सामग्री की तरह कोलडिहवा, पचोंह, इन्दारी, कुनझुन तथा टोकवा आदि पुरास्थलों के उत्खनन से भी सामग्रियाँ प्राप्त हुयी हैं। इस प्रकार विन्ध्यक्षेत्र के महगड़ा तथा अन्य उत्खनित आवासीय पुरास्थलों की उपर्युक्त सांस्कृतिक समानतओं के आलोक में हम कह सकते हैं कि महगड़ा के अतिरिक्त अन्य उत्खनित पुरास्थलों के अधिवासों का सामान्य स्वरूप महगड़ा के अधिवास से भिन्न न रहा होगा। अतः सम्पूर्ण विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक अधिवास–प्रक्रिया के विवेचन के लिए बेलन घाटी में स्थित महगड़ा को एक मॉडल साइट माना जा सकता है।

मध्य गंगाघाटी की नवपाषाणयुगीन अधिवास–प्रक्रिया के अध्ययन से भी विन्ध्य क्षेत्र की सम्बद्ध प्रक्रिया के स्वरूप–निर्धारण में सहायता मिल सकती है। इस घाटी में स्थित अनेक पुरास्थलों–चिरॉंद, चेचर–कुतुबपुर, ताराडीह, सेनुआर, सोहगौरा, इमलीडीह, लहुरादेवा, झूँसी तथा हेतापट्टी से यहाँ की नवपाषाणयुगीन अधिवास–प्रक्रिया पर उल्लेखनीय प्रकाश पड़ा है। विद्वानों का विचार है कि मध्यगंगाघाटी की नवपाषाणिक संस्कृति विन्ध्य क्षेत्र की सम्बद्ध संस्कृति से कुछ परवर्ती होने के साथ–साथ उससे प्रभावित भी है। इस आलोक में विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक अधिवास–प्रक्रिया के स्वरूप का निर्धारण इस प्रकार किया जा सकता है :–

अधिवासों की स्थिति मुख्यतः वहाँ के नवपाषाणिक लोगों के जीवन–यापन तथा सुरक्षा की भावना पर आधारित थी। मानव ने अपने आवास बनाने के लिए उन्हीं स्थलों को उपयुक्त समझा जहाँ पर उसकी आजीविका के प्रमुख साधन सुलभ थे। साथ ही साथ जंगली जानवार तथा अन्य प्राकृतिक आपदाओं से अपनी सुरक्षा को ध्यान में रखकर उसने उपयुक्त जगहों पर अपने आवासों का निर्माण किया। अधिवास के लिए नदियों के तटवर्ती क्षेत्रों को चुना जिसके लिए कुछ विशेष आर्थिक कारण उत्तरदायी थे और उनका प्रारम्भिक खाद्योत्पादक संस्कृतियों में महत्वपूर्ण स्थान था। यहाँ वे सिंचाई की सुविधा के बिना चावल की खेती कर सकते थे। चूँकि नदियों द्वारा बहाकर लायी गयी उपजाऊ मिट्टी नमी से युक्त तथा मुलायम होती थी इसलिए उसकी जुताई की आवश्यकता नहीं थी। बाढ़ के अपसर्पण के बाद खाली हुयी नदी की तलहटी में छिटकवाँ विधि से बीज बो दिये जाते रहे होंगे तथा फसल के पक जाने पर उसकी कटायी कर ली जाती रही होगी।[9] नदियों के तटवर्ती क्षेत्र में आवास बनाने का दूसरा महत्वूपर्ण कारण यह रहा होगा कि उन्हें नदियों से कछुआ, मछली आदि जल–जीव उपलब्ध हो जाते रहे होंगे जो उनके भोजन में सम्मिलित थे।

कृषि तथा पशुपालन नवपाषाणिक मानव की अर्थव्यवस्था के अभिन्न अंग बन गये थे। लेकिन अब भी उनका जीवन बहुत कुछ जंगली पशुओं के शिकार तथा वन्य धान के संग्रह पर आधारित था। आजीविका सम्बन्धी इस आवश्यकता ने उन्हें ऐसे स्थलों पर आवास बनाने के लिए विवश किया होगा जहाँ से जंगल करीब थे। विन्ध्य क्षेत्र के नवपाषाणिक अधिवासों की स्थिति के सम्बन्ध में भी उपरोक्त बात कही जा सकती हैं। आवास के समीप स्थित जंगलों का केवल आखेट आदि के लिए ही महत्व नहीं था अपितु वे चारागाह के रूप में भी प्रयुक्त होते रहे होंगे। उन्होंने इन्हीं जंगलों से अपनी झोपड़ियों को बनाने के लिए लकड़ियाँ प्राप्त की होंगी। जलाँऊ लकड़ी के लिए भी ये जंगल उपयोगी रहे होंगे।

अधिवास हेतु स्थलों के चयन के कारणों की विवेचना के उपरान्त यह प्रश्न विचारणीय हो जाता है कि विन्ध्य क्षेत्र में नवपाषाणिक अधिवासों का क्या प्रतिरूप था तथा उनमें गृह–निर्माण की योजना किस तरह की थी। अधिवास–स्थल महगड़ा के क्षैतिज उत्खनन से 8 गृह तथा उनसे सम्बन्धित 18 झोपड़ियाँ प्रकाश में आयी हैं। झोपड़ियों के फर्शों की स्थिति से स्पष्ट संकेत मिलता है कि यहाँ की बस्ती एक अगूँठी की तरह का आकार लिए हुए थी। बस्ती में घरों का निर्माण सीधी रेखा में न करके एक वृत्त के रूप में किया गया था।[10]

दूसरी महत्वपूर्ण बात यह है कि यहाँ की बस्ती में बनाये गये गृहों में एक से लेकर तीन झोपड़ियों तक के साक्ष्य मिले हैं। झोपड़ियों के फर्श अण्डाकार तथा गोलाकार हैं। गोलाकार झोपड़ियों का व्यास 6.40मीटर से 4.30मीटर तक मिलता है। इन झोपड़ियों के फर्शों का औसत आवासीय क्षेत्र 15.79 वर्ग मीटर है।11 इन फर्शों के चारों ओर स्तम्भगर्तें के प्रमाण हैं जिन पर झोपड़ियों की छतें टिकी थीं। बांस–बल्ली और घास–फूस से निर्मित दीवार भी बनायी जाती थी जिस पर मिट्टी का मोटा लेप भी लगाया जाता था। इस बात के प्रमाण जली मिट्टी के टुकड़ों के रूप में प्राप्त हुए हैं। महगड़ा की बस्ती में गृहों के निर्माण के सम्बन्ध में तीसरी महत्वूपर्ण बात यह है कि इन गृहों के चारों ओर पर्याप्त जगह छोड़ी गयी है जो हवा और प्रकाश के लिए उपयुक्त रही होगी।

यहाँ की नवपाषाणिक बस्ती में घरों की विरल स्थिति सबसे महत्वपूर्ण है क्योंकि इससे गृहनिर्माण योजना के विकासात्मक स्वरूप का संकेत मिलता है। इस सन्दर्भ में बेलनघाटी में ही स्थित

मध्यपाषाणिक पुरास्थल चोपनीमाण्डो की गृहनिर्माण योजना का उदाहरण दिया जा सकता है। यहाँ पर घरों की स्थिति मधुमक्खी के छत्ते की तरह दिखायी पड़ती है। घरों की यह स्थिति समाज में सामुदायिक जीवन को अभिव्यक्त करती है। वहीं महगड़ा के घरों की विरल स्थिति समाज की पारिवारिक भावना का प्रतीक मानी जा सकती है। इस प्रकार मध्यपाषाणिक गृहनिर्माण योजना का विकासित स्वरूप हम नवपाषाणिक गृहनिर्माण योजना में देख सकते हैं।

किसी भी अधिवास में गृहों की अन्तर्वस्तुएँ निःसन्देह वहाँ के लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के क्रिया–कलापों की महत्वपूर्ण सूचनाएँ देती हैं। महगड़ा से आठ घर तथा उनकी झोपड़ियों के 18 फर्श प्रकाश में आये हैं। उत्खनन से प्राप्त पुरावशेषों को गृहवार तथा फर्शवार अलग–अलग रखकर विभिन्न गृहों के सन्दर्भ में अध्ययन करने का प्रयास किया गया जिससे कुछ महत्वपूर्ण सूचनायें प्राप्त होती हैं। पहली, यह कि यहाँ के ज्यादातर उद्योग घरेलू थे। यद्यपि शिल्पों के विशिष्टीकरण की शुरूआत का भी संकेत मिलता है क्योंकि गृह संख्या 6 से 43.28% ब्लेड्स तथा माइक्रोलिथ प्राप्त किये गये हैं जो शेष सात गृहों से प्राप्त ब्लेड्स तथा माइक्रोलिथ के बराबर हैं। यहाँ की बस्ती के शिल्प तथ्यों के गृहवार तथा फर्शवार वितरण से दूसरी महत्वपूर्ण बात यह इंगित होती है कि यहाँ के लोग धन और प्रतिष्ठा की दृष्टि से समान थे। लेकिन यह बात भी ध्यातव्य है कि यहाँ की बस्ती में कुछ घर बड़े तथा कुछ घर छोटे दिखायी पड़ते हैं। संभावना बन सकती है कि बड़े घर धनी लोगों के रहे होंगे। बड़े घरों से छोटे घरों की अपेक्षा ज्यादा मात्रा में खाद्योत्पादक उपकरण तथा अनाज रखने के बर्तन भी पाये गये हैं। इन परिलब्धियों से भी उपर्युक्त बात की पुष्टि होती है।

यहाँ की बस्ती के उत्खनन से तीसरी महत्वपूर्ण बात जिसका संकेत मिलता है वह यह है कि यहाँ की बस्ती में निर्मित घरों के कमरे अलग–अलग काम के लिए प्रयुक्त होते थे। सभी बड़े घरों में जिनमें तीन झोपड़ियाँ थीं, प्रायः एक झोपड़ी रहने के लिए तथा शेष दो झोपड़ियाँ उपकरण–निर्माण तथा खाना बनाने आदि के काम में लायी जाती रही होंगी।

गृहों की झोपड़ियों का उद्योग–परक उपयोग अपने आप में काफी महत्व रखता है। मृद्भाण्डों के वितरण–प्रतिरूप में भी समान स्थिति के दर्शन होते हैं। इन सबके अलावा महत्वपूर्ण बात यह है कि गृह संख्या–1 के फर्श–1 तथा गृह संख्या 3 के फर्श–6 से सम्बन्धित झोपड़ियों से खाद्योत्पादक उपकरण एकदम से नदारत हैं जो अनुमानतः रहने के के उपयोग में लायी जाती थीं। इन तथ्यों से गृहों/झोपड़ियों के उपयोगपरक विभाजन की जानकारी प्राप्त होती है।

विन्ध्य क्षेत्र में नवपाषाणिक अधिवासों के उत्खनन से अभी तक ऐसे प्रामाणिक साक्ष्य नही मिले हैं जिनके आधार पर वहाँ के लोगों के जीवन के सामाजिक तथा आर्थिक ढाँचे की पूर्णतया संरचना की जा सके। फिर भी बेलनघाटी में स्थित महगड़ा नामक उत्खनित पुरास्थल से कुछ ऐसे साक्ष्य प्रकाशित हैं जिनका सावधानीपूर्वक अध्ययन किया जाय तो विन्ध्य क्षेत्र के नवपाषाणिक लोगों के सामाजिक तथा आर्थिक जीवन के कुछ पक्षों पर महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है।

महगड़ा की बस्ती दो या तीन झोपड़ियों वाले तथा दूर–दूर स्थित घरों के कारण कई भागों में विभक्त हैं। इससे इस बात का संकेत मिलता है कि विन्ध्य क्षेत्र में नवपाषाण काल में संयुक्त परिवार के उदय की प्रक्रिया प्रारम्भ हो चुकी थी। इस साक्ष्य का महत्व और बढ़ जाता है जब हम इसकी तुलना बेलनघाटी में ही स्थित चोपनीमाण्डो नामक पुरास्थल के विकसित मध्यपाषाण कालीन अधिवास–प्रक्रिया से करते हैं। चोपनीमाण्डो से प्राप्त घर एक झोपड़ी वाले हैं। ये घर आपस में झुण्ड की तरह स्थित हैं तथा इनके बीच जगह भी बहुत कम छोड़ी गयी है। ये घर ठोस–मधुमक्खी के छत्ते की तरह दिखायी पड़ते हैं। इससे संकेत मिलता है कि ये टोलियों में रहते थे तथा इनमें दलीय भावना का विकास हो चुका था। यहाँ पर किसी प्रकार की सामाजिक असमानता नहीं सूचित होती है। यहाँ की अधिवास–प्रक्रिया में विकासात्मक अनुक्रम दिखायी पड़ता है। इस बात का स्पष्ट संकेत मिलता है कि जनसमूह जनजातियों में तब्दील हो रहे थे।

महगड़ा की अधिवास–प्रक्रिया के कुछ अन्य साक्ष्य ऐसे भी हैं जो पारिवारिक भावना के उदय का संकेत देते हैं। इस सन्दर्भ में यहाँ की बस्ती के विभिन्न गृहों से प्राप्त पुरावशेष विशेष रूप से

उल्लेखनीय हैं। ये पुरावशेष परिवार संस्था के उदय का स्पष्ट संकेत देते हैं। यहाँ के गृहों से प्राप्त वस्तुओं के सावधानीपूर्वक निरीक्षण से ज्ञात होता है कि प्रत्येक घर में गृहस्थी के सारे साजो–समान विद्यमान थे। उपर्युक्त तथ्यों के आलोक में यह महत्वपूर्ण है कि नवपाषाणकालीन परिवार संस्था का उदय कृषि तथा पशुपालन के साथ हुआ तथा इसका सम्बन्ध मध्य पाषाणकाल की अपेक्षा नवपाषाण काल से अधिक था।

महगड़ा की बस्ती से प्राप्त साक्ष्यों से यद्यपि कारीगरी के स्तर पर कुछ विशिष्टीकरण की झलक अवश्य दिखायी पड़ती है लेकिन इससे सामाजिक विभेदीकरण का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है।

यहाँ से दो या तीन झोपड़ियों वाले घर प्राप्त हुए हैं लेकिन इनसे सामाजिक विभेदीकरण का स्पष्ट संकेत नहीं मिलता है। यहाँ की झोपड़ियों की संख्या के अतिरिक्त कोई भी ऐसे साक्ष्य नहीं मिल हैं जो सामाजिक विभेदीकरण का समर्थन कर सकें।

विन्ध्य क्षेत्र में नवपाषाणिक अधिवास–स्थलों से प्राप्त साक्ष्य इस बात का संकेत देते हैं कि समाज में कार्यों का बटवारा प्रचलित था लेकिन इसके लिए यह निश्चित नहीं था कि कोई विशेष व्यक्ति ही विशेष कार्य को करेगा। कार्यों का यह बटवारा उम्र तथा लिंग पर आधारित था। बच्चों, स्त्रियों तथा पुरूषों की अलग–अलग सामर्थ्य तथा हुनर के आधार पर कार्यों का बटवारा होता रहा होगा।

लोगों के बीच सम्पत्ति के बटवारे के सम्बन्ध में ऐसे साक्ष्य नहीं मिले हैं जिनके आधार पर सुनिश्चित किया जा सके कि अमुक सम्पत्ति का सम्बन्ध अमुक व्यक्ति से है, यद्यपि इस बात की संभावना बनती है कि आभूषण, औजार तथा बर्तन आदि व्यक्तिगत सम्पत्ति रहे होंगे।

महगड़ा की अधिवासीय व्यवस्था से ऐसा प्रतीत होता है कि घर भी व्यक्तिगत सम्पत्ति रहे होंगे। लेकिन यहाँ से चार घरों से घिरे पशुबाड़े की संप्राप्ति से इस बात का संकेत मिलता है कि मवेशी अब तक सार्वजनिक सम्पत्ति रहे होंगे।

विन्ध्य क्षेत्र के नवपाषाणिक समाज के सामाजिक–आर्थिक ढ़ाँचे से सम्बन्धित साक्ष्यों की समीक्षा से स्पष्ट होता है कि वहाँ का सामाजिक–आर्थिक ढाँचा अतिरिक्त उत्पादन पर आधारित सामाजिक–आर्थिक ढ़ाँचे से भिन्न था। उसका सम्बन्ध मुख्यतः लोगों से सामान्य जीवन–यापन से था।

इस प्रकार विन्ध्य क्षेत्र की नवपाषाणिक अधिवास–प्रक्रिया की सम्यक् विवेचना से स्पष्ट हो जाता है कि परवर्ती युग में गंगाघाटी में होने वाली नगरीय क्रान्ति के बीज नवपाषाणिक अधिवास योजनाओं में खोजे जा सकते हैं।

संदर्भ :

1. वाडिया, डी.एन., 1957, द विन्ध्यन सिस्टम, *जियोलॉजी आफ इण्डिया,* पेज 68, मैकमिलन प्रेस, लंदन।
2. मिश्रा, वी.डी., 1977, प्रीहिस्ट्री इन उत्तर प्रदेश, *सम एसपेक्ट्स ऑफ इण्डियन ऑक्यालाजी,* पेज 30–31, भारत प्रकाशन, इलाहाबाद।
3. विलियम एम.ए. जे. एण्ड के. रास, 1983, एल्युविअल हिस्ट्री ऑफ मिडिल सोन वैली, नार्थ सेंट्रल इण्डिया, *पेलियो इनवायरमेण्ट एण्ड प्रीहिस्ट्री इन मद मिडिल सोन वैली,* जी. आर. शर्मा एण्ड जे. डी. क्लार्क (सम्पादक), पेज 9–21, प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद।
4. संकालिया, एच0डी0, 1974, *प्रीहिस्ट्री एण्ड प्रोटोहिस्ट्री ऑफ इण्डिया एण्ड पाकिस्तान,* पेज–172, डकन कालेज, पूना।
5. यह योजनाबद्ध अनुसंधान इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद के प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग के संस्थापक अध्यक्ष प्रो. जी.आर. शर्मा के नेतृत्व में सम्पन्न हुआ।
6. विली, जी0आर0, 1956, प्रीहिस्टारिक सेटलमेंट पैटर्न इन वीरू वैली, पेरू, *बुलेटिंग ऑफ ब्यूरो ऑफ अमेरिकन एथनोलॉजी,* पेज 1, वाशिंगटन डी.सी.।

7. रे, रेबा, 1987, *एंशियन्ट सेटलमेंट पैटर्न इन ईस्टर्न इण्डिया,* पेज 26–27, घोष प्रकाशन, कलकत्ता।
8. नारायण ए. एल., 1970, नियोलिथिक सेटलमेंट एट चिरौंद, *जर्नल ऑफ बिहार रिसर्च सोसाइटी,* वाल्युम 56, पेज 1–35।
9. शर्मा, जी0आर0 और डी मण्डल, 1980, एक्सकेवेशन एट महगड़ा, *बिगनिंग्स ऑफ एग्रीकल्चर,* पेज 189, प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद।
10. *वही,* पेज 189।
11. मण्डल डी., 1980, नियोलिथिक कल्चर्स इन विन्ध्याज, *इण्डियन प्रीहिस्ट्री,* मिश्रा बी.डी. एवं पाल जे. एन (सम्पादक), प्राचीन इतिहास विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय इलाहाबाद।

***

भारत में उच्च जनसंख्या वृद्धि-दर की समस्या : एक समाजशास्त्रीय अध्ययन

डॉ. ज्ञान माला सिंह *

भारत जैसे विकासशील देश में खासकर स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) के बाद तीव्र गति से जनसंख्या में वृद्धि हुई है। यह वृद्धि दक्षिण भारत के राज्यों की तुलना में उत्तर भारत के हिन्दी भाषायी राज्यों में अधिक हुई है। भारत में जनसंख्या वृद्धि-दर चिंताजनक है। देश में मृत्युदर ह्रास का क्रम जारी है, परंतु जन्म-दर में कोई विशेष कमी दृष्टिगोचर नहीं हो रही है। जनसंख्या में तीव्र वृद्धि के कारण खाधान्न की समस्या, स्वास्थ सम्बन्धी समस्या, आवास समस्या, पारिवारिक विघटन, बेरोजगारी, निर्धनता, पर्यावरणीय समस्या, अपराध, धार्मिक एवं जातीय उन्माद, क्षेत्रीय अलगाव एवं राजनैतिक अस्थिरता की समस्या उत्पन्न हो गयी है। इसके रोकथाम हेतु सरकार द्वारा किये गये प्रयासों से पर्याप्त सफलता नहीं मिल पायी, जितनी सरकार एवं जनता की अपेक्षाएँ थी। अतः भारत में जनसंख्या की समस्या इतना विकराल रूप धारण कर लिया है कि जनसंख्यो नीति, जनसंख्या नियंत्रण अथवा जन्म नियंत्रण का पर्यायवाची बन गया है।

शब्द कुंजी : जनसंख्या वृद्धि-दर, जन्मदर, मृत्यूदर, जनसंख्या नीति, विवाह की उम्र, शिशु एवं बालमृत्यूदर, पुत्र प्राप्ति की चाह, निम्न स्वास्थ्य स्तर, अशिक्षा।

प्रस्तावना - विश्व में जनसंख्या की दृष्टि से भारत का दूसरा स्थान है। भारत के पास 1357 लाख वर्ग किलोमीटर भू-भाग है जो विश्व के कुल भू-भाग का मात्र 2.4 प्रतिशत है फिर भी विश्व की 16.7 प्रतिशत आबादी का भार बहन करता है। जनसंख्या वृद्धि का अर्थ एक क्षेत्र विशेष में किसी समय में निवास कर रहे लोगों की संख्या में परिवर्तन से है। यह परिवर्तन नकारात्मक भी हो सकता है और सकारात्मक भी। ऐसे परिवर्तन को कुल संख्या में परिवर्तन एवं प्रतिशत परिवर्तन दोनों तरह से मापा जाता हैं जहां तक भारत जैसे विकासशील देशों में जनसंख्या वृद्धि का प्रश्न है, तो यहाँ जनसंख्या में नकारात्मक परिवर्तन हुआ है, क्योंकि संसाधन की तुलना में यहाँ की जनसंख्या में खासतौर पर स्वतंत्रता-प्राप्ति (1947) के बाद तीव्र गति से बढ़ोतरी हुई है, जिससे देश में जनसंख्या-विस्फोट की समस्या उत्पन्न हो गयी है। यही कारण है कि भारत में जनसंख्या वृद्धि-दर चिंताजनक है। अगर देश की जनसंख्या वृद्धि-दर को ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में अध्ययन किया जाय तो स्पष्ट होता है कि भारत प्राचीन काल से ही जनसंख्या समूहन का प्रधान क्षेत्र रहा है। मोरलैंड के अनुसार 17वीं शताब्दी के प्रारंभ में भारत की जनसंख्या लगभग 100 मिलियन थी।[1] देश में जनसंख्या सम्बन्धी आँकड़ों का सही जानकारी तब हुई जब भारत में सर्वप्रथम जनगणना (1872) हुई, किन्तु उस समय सम्पूर्ण भारत में जनगणना नहीं हुई थी। देश में वास्तविक जनगणना 1881 मं हुई। 20वीं शताब्दी के आरंभ (1901) में भारत की जनसंख्या 23-84 करोड़ अनुमानित की गयी। 1951 में 36. 10 करोड़, 1981 ई॰ में 68.33 करोड़ एवं 2001 में 102.70 करोड़ था जो 31 मार्च 2011 को राष्ट्रीय जनगणना 2011 के अंतरिम आंकड़ों के अनुसार भारत की जनसंख्या 121.01 करोड़ हो गयी। इस प्रकार 60 वर्षों में देश की जनसंख्या में लगभग 85 करोड़ की वृद्धि हुई। 1991-2001 की जनसंख्या की दशकीय वृद्धि-दर 21.34 प्रतिशत थी जो 2001-2011 में जनसंख्या की दशकीय वृद्धि-दर 17.64 प्रतिशत हो गयी।[2]

* कृषि विज्ञान केन्द्र कालोनी, क्वा. नं. जी-3, राजगढ़ नाका, झाबुआ-457661, म.प्र.

इससे स्पष्ट होता है कि भारत की जनसंख्या वृद्धि-दर में गिरावट का सिलसिला प्रारंभ हो गया है। इसके बावजूद आज भी जनसंख्या वृद्धि-दर अधिक है।

अध्ययन का उद्देश्य : अध्ययन के अंतर्गत निम्नलिखित उद्देश्य निर्धारित किए गए हैं, वे इस प्रकार हैं- (1) भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि-दर की स्थिति कैसी है, उसका पता लगाना, (2) जनसंख्या वृद्धि-दर की कौन-कौन सी समस्या है, उसका पता लगाना, (3) जनसंख्या वृद्धि के कारणों का पता लगाना, (4) जनसंख्या वृद्धि को रोकने हेतु उन सुझावों को प्रस्तुत करना जिससे सरकार, नीति निर्माताओं एवं अनुसंधानकर्त्ताओं को लाभ हो सके।

उपकल्पनाएँ : प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत निम्नलिखित उपलकल्पनाएँ निर्धारित की गयी है, वे इस प्रकार हैं: (1) तीव्र जनसंख्या वृद्धि की समस्याएँ यथा भूमि पर जनसंख्या का दबाव, निर्धनता, निम्न प्रति व्यक्ति आय, बेरोजगारी, आकार्यकारी जनसंख्या में वृद्धि, आवास की समस्या, पर्यावरण एवं पारिस्थितिकी असंतुलन, संतुलित एवं पौष्टिक आहार का अभाव, निम्न स्वास्थ्य स्तर, आर्थिक प्रादेशिक असमानता, जनसंख्या घनत्व में वृद्धि लिंगानुपात में असमानता, बालश्रम की समस्या है। (2) तीव्र जनसंख्या वृद्धि का कारण मृत्यु-दर की तुलना में जन्म-दर में कम गिरावट, विवाह एवं संतोनोत्पादन की अनिवार्यता, लड़कों को अधिक प्राथमिकता, संयुक्त परिवार प्रणाली, (5) जीवित रहने की प्रत्याशा में वृद्धि, शिक्षा एवं साक्षरता का निम्न स्तर तथा गर्भ निरोधक विधि का का कम इस्तेमाल का होना है। (3) तीव्र जनसंख्या वृद्धि का कारण बेहतर प्रबंधन का अभाव रहा है।

अध्ययन पद्धति : प्रस्तुत अध्ययन के अंतर्गत मुख्यत: द्वितीयक आँकड़ों का प्रयोग किया गया है, क्योंकि जिन विषयों पर शोध-पत्र आधारित है उन आँकड़ों को संग्रह करने में विभिन्न प्रकार के सांख्यिकीय प्रविधियों का इस्तेमाल किय ागया है। फिर भी इतना तो कहा जा सकता है कि उपलब्ध आँकड़ों के पुर्नविश्लेषण में मुख्यत: सांख्यकीय पद्धतियों का प्रयोग किया गया हे। यह अध्ययन समस्त भारत के परिप्रेक्ष्य में किया गया है।

आँकड़ों का विश्लेषण : भारत में जनसंख्या-वृद्धि की प्रवृत्ति में भिन्नता को देखते हुए इसे चार कालखण्डों में बाँटकर विश्लेषण किया गया है। जिसे तालिका-1 में प्रदर्शित किया गया है :-

तालिका-1

भारत में जनसंख्या वृद्धि-दर (प्रतिशत में)

(1901-2011)

जनगणना वर्ष	जनसंख्या (करोड़ में)	दशकीय अंतर (करोड़ में)	प्रति-दशक वृद्धि (प्रतिशत में)	औसत वार्षिक वृद्धि-दर (प्रतिशत में
1901	23.84	0.25	1.05	-
1911	25.20	1.36	5.75	0.56
1921	25.13	-0.07	-0.31	-0.03
1931	27.89	2.76	11.00	1.04
1941	31.86	3.97	14.22	1.33
1951	36.10	4.24	13.31	1.25
1961	43.92	7.82	21.64	1.96
1971	54.81	10.89	24.80	2.20

1981	68.33	13.52	24.66	2.14
1991	84.33	16.00	23.86	2.14
2001	102.70	18.37	21.34	1.93
2011	121.01	18.31	17.64	1.64

स्रोतः सेन्सस ऑफ इण्डिया, सीरिज-1, प्रोविजनल पॉप्यूलेशन टेबुल्स, 1961, 1971 एवं 1981 एण्ड फाईनल पॉप्यूलेशन टोटल पेपर-2, 1992 टेबुल्स 2.1, पृ. 28 एण्ड सेन्सस ऑफ इंडिया, 2011, प्रोविजनल पॉप्यूलेशन टोटल्स, पेपर-1, रजिस्ट्रार जेनरल ऑफ इंडिया, नयी दिल्ली।

वर्ष 1991 का काल खण्ड ऐसा था। जब जनसंख्या स्थायी थी। तालिका-1 का अलिोकन करने से स्पष्ट है कि 1901 से 1921 के बीच देश की कुल जनसंख्या में मात्र 1.05 करोड़ की वृद्धि हुयी। इस काल के दौरान जन्मदर और मृत्युदर लगभग बराबर थी। वर्ष 1921 के पश्चात् ाारतीय जनसांख्यिकीय दृश्य में इस काल में महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए। 1921 से 1951 तक जनसंख्या में 10.97 करोड़ की वृद्धि हुई। इस प्रकार 1921-51 की समयावधि में भारत की जनसंख्या में वृद्धि का प्रमुख कारण जन्मदर की तुलना में मृत्युदर का कम होना है। तीस वर्षों की तीसरी अवधि (1951-1981 ई॰) के दौरान भारत की जनसंख्या 1951 में 36.10 करोड़ थी, जो बढ़कर 1981 में 68.33 करोड़ हो गयी 1951 से 1961 की अवधि में जनसंख्या में 43.92 करोड़ की वृद्धि हुयी, जो भारत की गत 100 वर्षों में सर्वाधिक वृद्धि-दर थी। इसी कारण इसे जनसंख्या विस्फोट की अवधि कह सकते हैं। 1981-2011 का काल जनसंख्या-वृद्धि में ह्रास का प्रारंभिक काल हैं तालिका-1 का अवलोकन करने से स्पष्ट होता है कि भारत की जनसंख्या 1981 में 68.33 करोड़, 1991 में 84.33 करोड़ एवं 2001 में जनसंख्या बढ़कर 102.70 करोड़ थी जो जनगणना 2011 के अंतरिम रपट के अनुसार देश की जनसंख्या बढ़कर 121.01 करोड़ हो गयी। इस प्रकार 2011-11 के दशक में देश की जनसंख्या में 18.31 करोड़ की वृद्धि हुई जो पिछले दशक (1991-2001) से 0.6 करोड़ कम है। 1991 से 2001 के दशक में 18.23 करोड़ की बढ़ोतरी हुयी वर्ष 1981 में और महत्वपूर्ण काल का प्रारंभ हुआ जिसे देश में जनसंख्या-वृद्धि में ह्रास के प्रारंभिक काल की संज्ञा दी जा सकती है। इसके बावजूद, आज भी देश की जनसंख्या वृद्धि-दर उच्च है।

तीव्र जनसंख्या वृद्धि के परिणामस्वरूप देश की सीमित भूमि पर जनसंख्या का दबाव बढ़ता जा रहा है। देश में विश्व का मात्र 2.42 प्रतिशत भूभाग है जिसपर विश्व की 16.7 प्रतिशत जनसंख्या निवास करती है। देश में निर्धनता की समस्या बढ़ी है वर्ष 1999-2000 में देश में 26.10 प्रतिशत आबादी गरबी रेखा से नीचे रहने को विवश है।[3] तीव्र गति से जनसंख्या वृद्धि के साथ-साथ समाज की श्रमशक्ति में वृद्धि हो रही है। श्रम-शक्ति की अधिकता के कारण देश में बेरोजगारी तथा अल्प रोजगारी की समस्या अधिक जटिल होती जा रही है। यह समस्या उत्तर भारत के हिन्दी भाषायी प्रदेशों में अधिक है। दसवीं योजना (2002-07) की मध्यावधि समीक्षा के अनुसार 2004-05 में बेरोजगारी की दर बढ़कर 9.11 प्रतिशत हो गयी।[4]

देश में अकार्यकारी जनसंख्या का कार्यकारी जनसंख्या पर दबाव अधिक है। जनसंख्या की अत्यधिक वृद्धि के कारण देश की आयु संरचना कुछ इस प्रकार की हो गयी है कि कार्यशील जनसंख्य (15.59 वर्ष) में उतरोत्तर गिरावट आ रही है, जबकि बच्चों (0-14 वर्ष) एवं वृद्धों (60 या उससे अधिक) आयु वर्ग की जनसंख्या में वृद्धि हो रही है। देश में आकार्यकारी जनसंख्या (0-14 वर्ष एवं 60 या उससे अकधिक) का प्रतिशत सन् 1957 में 43.9 था जो 2001 में घटकर 42.2 प्रतिशत रह गया, जबकि कार्यकारी

(15-59) जनसंख्या सन् 1951, 1971 एवं 1981 में क्रमशः 57.1, 52.0 एवं 57.1 प्रतिशत था, जो 2001 में 59.5 प्रतिशत हो गया।[5]

जनसंख्या की तीव्र वृद्धि ने देश में खाद्यान्न की समस्या उत्पन्न कर दी है, क्योंकि खाद्यान्न की उत्पादन की तुलना में जनसंख्या तीव्र गति से बढ़ती है। टी॰ आर॰ माल्थस का कहना है कि खाद्यान्न की अपेक्षा जनसंख्या में तीव्र गति से बढ़ने की प्रवृत्ति होती है।[6] देश में बढ़ती आबादी का भार हमारे पर्यावरण व पारिस्थितिकी को बुरी तरह प्रभावित किया है। गांव तथा शहर दोनों की सामाजिक, आर्थिक संरचना में बदलाव आया है तथा दोनों स्थानों पर अनेक समस्याएँ उत्पन्न हुई है। बढ़ती जनसंख्या ने पर्यावरण को इस कदर प्रभावित किया है कि हर साल गर्मी में 598 में से 91 जिला सुखा की स्थिति झेलते हैं, जबकि 83 जिलों की 4 हेक्टेयर भूमि बाढ़ में डुबती है।[7]

तीव्र जनसंख्या वृद्धि के फलस्वरूप लोगों का स्वास्थ स्तर निम्न है। देश में निवास कर रहे जनसमुदाय का स्वास्थ्य न केवल उसकी गुणवत्ता का सूचक है वरन् पर्यावरण, पोषकता तथा समृद्धता का भी सूचक है। देश में पुरुषों की अपेक्षा महिलाओं का स्वास्थ्य अधिक दयनीय है। राष्ट्रीय परिवार स्वास्थ्य सर्वेक्षण-III (2005-06) के अनुसार देश में 24.2 प्रतिशत महिलाएँ जिनकी उम्र 15-49 वर्ष है, रक्ताल्पता से ग्रसित है।[8] द्रुत गति से बढ़ती आबादी के फलस्वरूप देश में अपराध और भ्रष्टाचार में वृद्धि हुआ है। आज के उपभोक्ता समाज में जो सामथ्यबान लोग बड़े ठाट-बाट व सुख वैभव से रहते हैं उन्हें देखकर अन्य लोगों में भी वैसे ही जीवन-स्तर पाने की अभिलाषा जागृत होती है जिसकी पूर्ति के लिए युवा वर्ग चोरी, डकैती, अपहरण, फिरौती और धोखाधड़ी, बलात्कार आदि का सहारा लेते हैं।[9]

भारत की जनसंख्या में तीव्र वृद्धि का प्रमुख कारण मृत्युदर की तुलना में जन्मदर में कम गिरावट का होना है। स्वतंत्रता प्राप्ति (1947) के बाद चिकित्सा सुविधा में विस्तार के फलस्वरूप जन्म-दर की तुलना में मृत्यु-दर में तीव्र गति से कमी आयी। यह कमी दक्षिण के राज्यों में अधिक आयी है। वर्ष 2002,2003, 2004 और 2005 में जन्मदर क्रमशः 25.0, 24.8, 24.1 और 23.8 प्रति हजार हो गयी। इसके विपरीत मृत्युदर में अपेक्षाकृत तीव्र ह्रास हुआ। वर्श 2002, 2003, 2004 और 2005 में क्रमशः 8.1, 8.0, 7.5 और 7.6 मृत्युदूर प्रति हजार हो गयी।[10] फलस्वरूप जनसंख्या में तीव्र गति वृद्धि हुयी है।

भारत उन देशों में है जहाँ विवाह की आयु खासकर लड़कियों की आज भी बहुत निम्न है। इसका मुख्य कारण समाज में अभी भी बाल विवाह की प्रथा प्रचलित है। कम उम्र में विवाह होने से स्त्रियों का प्रजनन काल लम्बा हो जात है जिससे जनसंख्या में वृद्धि हाती है। उसके लिए यहाँ के समाज में व्याप्त सामाजिक, धार्मिक तथा सांस्कृतिक परंपराएँ जिम्मेबार है। देश में महिलाएँ (45.6 प्रतिशत), जिनकी उम्र (18-29 वर्ष) एवं पुरुष (26.6 प्रतिशत) जिनका उम्र (21-29 वर्ष) है, का प्रथम विवाह संवैधानिक उम्र से कम में सम्पन्न हो जाता ह।[11]

भारत में लड़कियों की तुलना में लड़कों को अधिक प्राथमिकता दी जाती है। ऐसी धारणा व्याप्त है कि पुत्र के जन्म से माता-पिता को मोक्ष प्राप्त होता है। केवल पुत्र से परिवार का वंश चलता है। पुत्र से आर्थिक संरक्षण मिलता है जो पुत्री से नहीं मिलता है। देश में 22.4 प्रतिशत महिला लड़कियों से ज्यादा लड़कों को प्राथीमकता देती है जबकि 2.6 प्रतिशत महिलाएँ लड़कों से ज्यादा लड़कियों को प्राथमिकता देती है।[12]

भारत में औसत आयु में वृद्धि होने से भी जनसंख्या बढ़ी है। प्रत्याशित आयु से तात्यपर्य जीवित रहने की आयु से है। देश में जीवन की औसत आयु प्रथम दशक (1901-11) में 22.9 वर्ष, पाँचवें दशक (1941-51) में 32.1 वर्ष था जो 2001 में बढ़कर 63.5 वर्ष हो गया।[13] इस प्रकार, देश में पुरुष एवं स्त्री दोनों के औसत आयु में वृद्धि हुई है जिस कारण भी जनसंख्या में तीव्र वृद्धि हुयी है।

भारत में तीव्र जनसंख्या वृद्धि का एक महत्वपूर्ण कारण साक्षरता खासकर महिला साक्षरता का निम्न होना है। शिक्षा के अभाव में न तो लोग परिवार नियोजन के साधन के बारे में जानते हैं और नही अधिक जनसंख्या के परिणामों को समझते हैं। जनगणना 2011 के अनुसार देश में 65.5 प्रतिशत महिलाएँ ही साक्षर हैं।

निष्कर्ष एवं सझाव : उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है कि आज भी देश की जनसंख्या वृद्धि-दर उच्च है जो चिंताजनक है। यह स्थिति उत्तर भारत के हिन्दी भाषायी प्रदेशों में और भयानक है। देश के आर्थिक विकास और लोगों की सामाजिक उन्नति में जनसंख्या वृद्धि सबसे बड़ी बाधा है। जनसंख्या को नियंत्रित करने के लिए सरकार ने प्रयास किए इसके बावजूद इसमें सफलता नहीं मिली जिनती सरकार की अपेक्षा थी। जनसंख्या वृद्धि-दर को कम करने के निम्नलिखित सुझाव है : देश की जन्म-दर को कम किया जाय। इसके लिए पुरुष खासतौर से महिला को जागरूक किया जाय, देश में खासकर ग्रामीण क्षेत्रों में महिलाओं की साक्षरता दर में वृद्धि की जाय, परिवार नियोजन कार्यक्रम को सही तरीके से क्रियान्वित किया जाय और उसे जन-आंदोलन का रूप दिया जाय।

सन्दर्भ :

1. मोरलैंड, डब्ल्यू.एम., इंडिया डेथ ऑफ अकबर, मैकमिलन एण्ड कम्पनी, लंदन, 1920, पृ. 9.
2. सेन्सस ऑफ इंडिया, सीरिज-1, प्रोविजनल वॉप्यूलेशन टेबुल्स 1961, 1971 एवं 1981 एण्ड फाइनल पॉप्यूलेशन टोटल पेपन-2, 1992 टेबुल्स-2.1, पृ. 28 एण्ड सेन्सस ऑफ इंडिया, 2011, प्रोविजनल पॉप्यूलेशन टोटल्स, पेपर-1, रजिस्ट्रार जनरल ऑफ इंडिया, नयी दिल्ली।
3. इकॉनॉमिक सर्वे (2000-2001), प्लानिंग कमीशन, गवर्नमेंट ऑफ इंडिय, नयी दिल्ली।
4. प्लाइइन्ग कमीशन, इकॉनॉमिक सर्वे (2000-2001), गवर्नमेन्ट ऑफ इण्डिया क्वाटेड वाय रूद्र दत्त ऐन्ड के॰ पी॰ एम॰ सुन्दरम, भारतीय अर्थव्यवस्था, एस. चाँद ऐन्ड कम्पनी लि॰, 2007, पृ॰ 334
5. सेन्सस ऑफ इंडिया, 2001, रजिस्ट्रार जेनरल ऑफ इंडिया, नयी दिल्ली
6. माल्थस, टी. आर., ऐन ऐसे ऑन दी प्रिन्सपुल्स ऑफ पॉप्यूलेशन और व्यू ऑफ इट्स पास्ट ऐण्ड प्रजेन्ट इफेक्ट ऑफ ह्यूमन हैपिनेस, 1803
7. मिश्र, राम मिलन : कुरुक्षेत्र, प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, नयी दिल्ली, जुलाई, 2005, पृ॰ 14
8. नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे-III (2005-06) आई॰ आई॰ पी॰ एस॰, मुम्बई, 2007, पृ॰ 273, 290, 313
9. नेशनल क्राइम ब्यूरो, मिनिस्ट्री ऑफ हाम अफेअरस, गवर्नमेंट ऑफ इंडिया, क्वाटेड् वाय सलेक्टेड सोशियो-इकॉनॉमिक स्टैटिस्टिक्स इन इंडिया, नयी दिल्ली, पृ॰ 114-115

10. सैम्पल रजिस्ट्रेशन सिस्टम, रजिस्ट्रार जेनरल ऑफ इंडिया, फेमिली वेल्फेअर स्टैटिस्टिक्स इन इंडिया, 2006, पृ॰ ए-23
11. नेशनल फैमिली हेल्थ सर्वे-III (2005-06), आई॰ आई॰ पी॰ एस॰, मुम्बई, 2007, पृ॰ 167
12. वही, पृ॰ 106
13. सेन्सस ऑफ इंडिया, 2001, प्रोविजनल पॉप्यूलेशन टोटल्स, सीरिज-1, रजिस्ट्रार जेनरल ऑफ इंडिया, नयी दिल्ली।

***

ब्रिटिश कालीन उत्तराखण्ड में यात्रामार्ग तथा परिवहन

*डॉ. किरन त्रिपाठी**
*प्रो. कल्पना पन्त***

उत्तराखण्ड के अधिकतर यात्रामार्ग प्राचीन काल से ही उत्तर भारत के तीर्थों एवं विभिन्न व्यापारिक केन्द्रों को जोड़ने वाले मार्ग रहे हैं। पर्वतीय क्षेत्र में प्रायः सभी मार्ग अत्यंत दुर्गम थे। वर्ष के अधिकांश भाग में सीमान्त क्षेत्रों के बर्फ से ढके होने के कारण उत्तरवर्ती भागों की ओर जाने वाले मार्ग केवल जुलाई से सितंबर की अवधि में ही यात्रा योग्य रहते थे। अन्य मार्गों पर निरंतर व्यापारिक गतिविधियां जारी रहती थीं। इनमें प्रमुख मार्ग थे–[1]

1. हरिद्वार-ऋषिकेश से देवप्रयाग-श्रीनगर-कर्णप्रयाग-जोशीमठ पहुंचने वाला मार्ग। जोशीमठ से इसकी एक शाखा बदरीनाथ और माणा होती हुई तिब्बत पहुंचती थी और दूसरी शाखा धौली नदी के किनारे-किनारे होती हुई मलारी और नीती से तिब्बत में प्रवेश करती थी।
2. एक मार्ग कोटद्वार से खोह नदी घाटी से होता हुआ श्रीनगर के पास हरिद्वार से आने वाले मार्ग से जुड़ता था।
3. काशीपुर से रामनगर और कोसी घाटी होता हुआ मार्ग अनेक शाखाओं में विभक्त था, जिसकी एक शाखा बेतालघाट से भतरौंजखान और फिर रामगंगा घाटी से लखनपुर वैराटपट्टन-चाँदपुरगढ़ी होती हुई कर्णप्रयाग में हरिद्वार से आने वाले मार्ग से मिल जाती थी। दूसरी शाखा द्वाराहाट और सोमेश्वर होती हुई कुमाऊँ के प्रमुख व्यापारिक केन्द्रों में एक बागेश्वर को काशीपुर से जोड़ती थी। बागेश्वर से एक मार्ग मिलम होता हुआ ऊँटाधुरा दर्रे से तिब्बत में प्रवेश करता था।
4. भारत-नेपाल सीमा पर स्थित बरमदेव मण्डी मार्ग चंपावत-पिथौरागढ-धारचूला होता हुआ लिपुलेख दर्रे से तिब्बत में प्रवेश करता था, व्यापार की दृष्टि से सर्वाधिक सुगम माना जाता था। इसकी एक शाखा गंगोलीहाट, बेरीनाग, थल तथा मुन्स्यारी होती हुई ऊँटाधूरा के पास तिब्बत में प्रवेश करती थी।
5. पूर्व से पश्चिम की ओर जाने वाला बरमदेव मण्डी-हिमाचल मार्ग चम्पावत-देवीधुरा-अल्मोड़ा-द्वाराहाट-लखनपुर -श्रीनगर-टिहरी और आराकोट होता हुआ हिमाचल प्रदेश में प्रवेश करता था। इसकी एक शाखा लखनपुर या वर्तमान चौखुटिया से देघाट-बुंगीधार-बीरोंखाल और पौड़ी होती हुई श्रीनगर में हरिद्वार से आने वाले मार्ग से मिल जाती थी। ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण यह मार्ग न केवल उत्तराखण्ड की प्राचीन राजधानियों को जोड़ता था, बल्कि इसके आस-पास मन्दिरों और प्राचीन बस्तियों के सर्वाधिक अवशेष मिलते हैं।
6. अल्मोड़ा से बाड़ेछीना-बूढ़ाजागेश्वर-सेराघाट-गंगोलीहाट होता हुआ एक मार्ग पिथौरागढ़ में बरमदेव मण्डी से आने वाले मार्ग से मिल जाता था। इसकी एक शाखा बाड़ेछीना-धौलछीना-सेराघाट होती हुई थल में बागेश्वर से जोहार जाने वाले मार्ग से मिलती थी। अल्मोड़ा से एक शाखा जागेश्वर को जाती थी।
7. कालसी से यमुना नदी के किनारे होता हुआ बड़कोट-धरासू-उत्तरकाशी मार्ग। आगे यह हरसिल, भैंरोंघाटी होते हुए गंगोत्री जाता था. इसकी एक शाखा माणा से तिब्बत की ओर जाती थी। [2]

---

* एसोसिएट प्रोफेसर, इतिहास विभाग, गोकुलदास हिन्दू गर्ल्स कॉलेज, मुरादाबाद
** प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, राजकीय महाविद्यालय, पावकी देवी, टिहरी गढ़वाल

तीर्थयात्रा मार्ग– उत्तराखण्ड के अधिकांश मार्गों का उपयोग व्यापार और तीर्थ यात्रा दोनों के लिए होता था। उत्तरी भागों से तिब्बत की ओर जाने वाले मार्ग कैलाश मानसरोवर भी जाते थे। इनमें माणा से जाने वाले मार्ग की अपेक्षा माल्पा-गर्ब्यांग- लिपुलेख होकर जाने वाला मार्ग अधिक सुगम माना जाता था। इसी प्रकार हरिद्वार से ऋषिकेश-देवप्रयाग-श्रीनगर-रुद्रप्रयाग-कर्णप्रयाग-नन्दप्रयाग-जोशीमठ-. पाण्डुकेश्वर होकर बदरीनाथ जाने वाला प्रमुख तीर्थ यात्रामार्ग व्यापारिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण था। ''बदरीनाथ से लौटने वाला दूसरा मार्ग श्रीनगर से पौड़ी होकर कोटद्वार तक तथा तीसरा मार्ग कर्णप्रयाग-आदिबदरी होते हुए रामनगर जाता था।''[3] गंगोत्री के लिए एक मार्ग हरिद्वार-ऋषिकेश से गंगा घाटी में होकर देवप्रयाग- टिहरी-धरासू, बाड़ाहाट, हरसिल होते हुए जाता था। गंगोत्री से भटवाड़ी-बूढ़ाकेदार-घुत्तू-पंवालीकांठा- त्रियुगीनारायण होते हुए केदारनाथ होकर बदरीनाथ जाने के लिए भी मार्ग था।[4] यमुनोत्री के लिए हरिद्वार-ऋषिकेश-देवप्रयाग-धरासू-खर्साली-यमुनोत्री मार्ग था। यहाँ से गंगोत्री जाने के लिए राना-गंगाणी-उत्तरकाशी होते हुए मार्ग जाता था।[5] एक अन्य मार्ग रुद्रप्रयाग से अगस्त्यमुनि-मण्डल-उखीमठ-गुप्तकाशी होता हुआ केदारनाथ के लिए था[6]। इसके अलावा खैरना से काकड़ीघाट-द्वारसौं-बगवालीपोखर-द्वाराहाट-चौखुटिया होता हुआ कर्णप्रयाग तक भी एक मार्ग था।

कर्णप्रयाग से आगे आदिबदरी और लोहबा जाने वाले प्रमुख मार्ग तीर्थयात्रा मार्ग को द्वाराहाट और बैजनाथ से जोड़ते थे। अल्मोड़ा से आगे बाड़ेछीना होते हुए जाने वाले मार्ग से होकर तीर्थ यात्री जागेश्वर, गंगोलीहाट, पाताल भुवनेश्वर आदि तीर्थों की यात्रा के लिए जाया करते थे। इन स्थानों पर अनेक तीर्थयात्रियों के नाम भी मिलते हैं।

ब्रिटिश शासन से पूर्व उत्तराखण्ड के अधिकतर यात्रामार्ग अत्यंत दुर्गम थे। मूरक्राफ्ट[7] तथा पिलग्रिम (पी.बैरन)[8] ने भी पर्वतीय क्षेत्र के मार्गों की कठिनाइयों तथा खराब स्थिति का स्थान-स्थान पर उल्लेख किया है। नदियों पर अच्छे पुल नहीं थे। नदी के एक किनारे से दूसरे किनारे तक लकड़ी का एक लट्ठा डालकर पुल बनाया जाता था। कभी-कभी उस पर लकड़ी की पर्तें बिछाकर सांगा नामक पुल तैयार किया जाता था। इसके अलावा दो समानान्तर रस्सियाँ नदी के दोनों ओर बाँधी जाती थीं। एक से दो फुट लम्बाई के लट्ठों में रस्सियाँ बाँधकर झूला पुल तैयार किया जाता था। कहीं नदी के एक सिरे से दूसरे सिरे तक एक रस्सी बाँध दी जाती थी। यात्री इसे पकड़कर हाथ और पैरों की सहायता से पार करते थे। कहीं-कहीं इस रस्सी के साथ एक कण्डी (टोकरी) भी जोड़ दी जाती थी और यात्री या सामान को इसमें रखकर नदी की दूसरी ओर खड़ा व्यक्ति खींचता था।[9]

ब्रिटिश सरकार द्वारा मार्गों में सुधार के लिए कई गाँवों को चौड़ी पगडंडियाँ बनाकर जोड़ा गया और परगनों में अच्छी सड़कें बनाई गईं। पिलग्रिम के विवरण से पता चलता है कि सरकार ने सेना के संचार तथा पर्वतीय और मैदानी क्षेत्रों के बीच व्यापार को बढ़ाने के लिए अल्मोड़ा से मुरादाबाद की ओर जाने वाला एक मार्ग बनवाया।[10] यद्यपि अंग्रेजों द्वारा अपने सामरिक व्यापारिक और विस्तारवादी हितों की पूर्ति के लिए नए मार्गों का निर्माण और पुराने मार्गों की मरम्मत का कार्य किया गया, परंतु इससे स्थानीय स्तर पर भी लाभ हुआ। इन मार्गों के किनारे नई मण्डियों/व्यापारिक केन्दों का विकास हुआ। कई बड़ी नदियों पर लोहे के पुल बनवाए गए। ब्रिटिश काल में बनवाए गए कुछ पुल इतने मजबूत थे कि आज भी विद्यमान हैं और उत्तराखण्ड के विभिन्न क्षेत्रों की यात्रा के दौरान इनका अस्तित्व देखा जा सकता है।

1827-28 में कुमाऊँ के तत्कालीन कमिश्नर ट्रेल द्वारा हरिद्वार से केदारनाथ तथा बदरीनाथ के तीर्थ यात्रामार्ग और वहाँ से रामनगर जाने वाला मार्ग प्रारंभ किया गया, जिसे पूर्ण होने में सात वर्ष लगे।[11] इसके बाद रानीखेत होते हुए अल्मोड़ा तथा पर्वतों की तलहटी से नैनीताल के लिए गाड़ी (बैलगाड़ी) वाले मार्ग बने और कुमाऊँ जिले के सभी महत्वपूर्ण भागों को अच्छे घोड़िया मार्गों द्वारा अल्मोड़ा से जोड़ा गया। इन मार्गों के सभी प्रमुख भागों में पार करने में कठिन और तेज बहाव वाली नदियों पर पुल बनाए गए। कुमाऊँ के बन्दोबस्ती अधिकारी बेकेट ने अपनी रिपोर्ट में 27 पुलों का उल्लेख किया है।[12]

1874 में कुमाऊँ में मार्गों की स्थिति[13] –

1. **प्रथम श्रेणी के बैलगाड़ी वाले मार्ग** – 1- रामनगर से रानीखेत और वहाँ से अल्मोडा तक 85 मील। 2- हल्द्वानी से नैनीताल तक 26 मील
2. **द्वितीय श्रेणी के चौड़े घोड़े में जाने योग्य मार्ग**, जिनकी संख्या 17 थी। इनमें थोड़ा उतार-चढ़ाव था।
3. **तृतीय श्रेणी के कम चौड़े घोड़े में जाने योग्य मार्ग**, जिनकी संख्या 7 थी। इनमें बहुत अधिक उतार-चढ़ाव था। ये अधिक ऊँचे क्षेत्रों में थे।

गढ़वाल में दुर्गम पर्वतीय भौगोलिक स्थिति के कारण यातायात व्यवस्था में घोड़े वाले मार्ग ही अधिक थे। कुछ ही मार्ग ठीक थे, जैसे 1- कोटद्वार से पौड़ी होकर श्रीनगर जाने वाला मार्ग 2- पौड़ी से अल्मोड़ा और समाई तक 3- सिमली और पनुवाखाल के बीच तीर्थयात्रा मार्ग का एक भाग 4- ग्वालदम तथा नारायणबगड़ के बीच मार्ग का एक भाग। इन चारों को छोड़कर जिले के अन्य मार्गों की अधिकतम चौड़ाई लगभग अधिकतम 8 फुट से न्यूनतम 3 या 4 फुट थी। कुछ स्थानों में तो इससे भी कम थी। प्रत्येक गाँव दो या तीन फुट चौड़ी ऊबड़-खाबड़ पगडंडियों से जुड़ा हुआ था।[14]

1880 तक गढ़वाल जिले में दस फीट से लेकर बारह फीट तक चौड़ी बहुत से पहाड़ी मार्ग बन चुके थें। इन पर भारवाही पशु चल सकते थे, परंतु पहियेदार गाड़ियाँ नहीं चल सकती थीं। बड़ी नदियों को पर प्रायः लकड़ी के पुल या तार के झूले बन चुके थे। सरकार ने नए मार्ग बनाने की अपेक्षा पुराने मार्गों के सुधार की ओर ध्यान देना उचित समझा। उस अवधि में जिले में सभी मार्गों की लम्बाई कुल मिलाकर लगभग 1000 मील थी।[15] जिले के मार्गों को प्रांतीय और स्थानीय दो भागों में बाँटा गया। प्रांतीय श्रेणी में से पक्के मार्गों को प्रथम श्रेणी में रखा गया। इनमें पड़ने वाली नदियों पर पुल तथा नालों में पुलिया बनीं हुई थीं। प्रान्तीय श्रेणी में द्वितीय श्रेणी के मार्गों के दो उपवर्ग थे– पहली श्रेणी के अन्तर्गत मार्ग पक्के तो नहीं थे, परंतु उन पर पुल व पुलिया बनी हुई थीं। दूसरी श्रेणी के मार्ग पक्के नहीं थे और उनमें निकास के लिए सर्वत्र नालियाँ नहीं थीं, पर इन पर अधिकतर पुल और पुलियों का निर्माण हो चुका था। जिले में प्रथम श्रेणी के प्रांतीय मार्गों की लम्बाई केवल 22 मील थी। इन पर पहिये वाली गाड़ियाँ चल सकती थीं।[16]

1896 में गढ़वाल में मार्गों की स्थिति इस प्रकार थी[17]

1. **द्वितीय श्रेणी** के 7 मार्ग थे, जिनकी लम्बाई 414 मील थी। इनमें प्रमुख थे[18] 1- दोगड्डा-श्रीनगर 48 मील 2-पौड़ी-सगाई 48 मील 3-लक्ष्मणझूला-बदरीनाथ 170 मील 4- रुद्रप्रयाग-केदारनाथ 53 मील 5-गुप्तकाशी-चमोली 27 मील 6-कर्णप्रयाग-पनुवाखाल 30 मील 7-नन्दप्रयाग-ग्वालदम 38 मील
2. **तृतीय श्रेणी** के 27 मार्ग थे, जिनकी कुल लम्बाई 670 मील थी।[19] सबसे खराब स्थिति वाले और जिन पर कभी-कभी ध्यान दिया जाता था, तृतीय श्रेणी में रखे गए।

1882 तक मार्गों के निर्माण एवं निरीक्षण का कार्य असिस्टेंट कमिश्नर के अधीन था। उसके बाद इन्हें सार्वजनिक निर्माण विभाग (पी.डब्ल्यू. डी.) के अन्तर्गत रखा गया।[20] सैन्य विभाग भी मार्गों के निर्माण और रख-रखाव का कार्य करता था। 1910 में मार्गों के वर्गीकरण में कुछ परिवर्तन किया गया। कोटद्वार-दोगड्डा-लैंसडाउन, लक्ष्मणझूला-बदरीनाथ, रुद्रप्रयाग-केदारनाथ, चमोली-गुप्तकाशी, दोगड्डा-श्रीनगर, कर्णप्रयाग-पांडुवाखाल, कोटद्वार-नजीबाबाद तथा फतेहपुर-कौड़िया के अतिरिक्त शेष मार्गों को स्थानीय वर्ग के अन्तर्गत रखा गया।[21] सार्वजनिक निर्माण विभाग द्वारा कहीं कहीं मार्गों पर चट्टियों में स्वच्छ जल लाने की भी प्रबंध किया गया था।[22]

देहरादून का अधिकांश भाग पर्वतों की तलहटी में स्थित होने के कारण बैलगाड़ियों के चलाए जाने योग्य मार्ग भी थे। मार्गों की स्थिति पर्वतीय क्षेत्रों की अपेक्षा अच्छी थी। तीन प्रमुख मार्ग थे 1- रुड़की-देहरा-राजपुर-लंढौर मार्ग 2- सहारनपुर-चकराता मार्ग 3- देहरा-हरिद्वार मार्ग 19 वीं

शताब्दी के उत्तरार्द्ध में देहरादून में प्रथम श्रेणी के 6 , द्वितीय श्रेणी के 8, जिनमें कच्चे घोड़े से चलने योग्य और पैदल मार्ग भी थे तथा तृतीय श्रेणी के 24 मार्ग थे। जिला बोर्ड तथा वन विभाग द्वारा अनेक मार्गों की मरम्मत और रख-रखाव का कार्य किया जाता था।[23]

उत्तराखण्ड का **टिहरी क्षेत्र** एक पृथक रियासत के रूप में विद्यमान था। 1815 में ब्रिटिश आधिपत्य के बाद इस क्षेत्र पर सुदर्शनशाह के राज्य को मान्यता दी गई। प्रारंभ में टिहरी से देवप्रयाग-तपोवन-ऋषिकेश-बाड़ाहाट-गंगोत्री-यमुनोत्री आदि स्थानों को जाने वाले मार्गों की स्थिति सामान्य पगडंडियों के समान ही थी। सुदर्शनशाह और भवानीशाह ने उन मार्गों पर पड़ने वाले झूलों और सांगाओं की मरम्मत करवाई। भवानीशाह के काल में सरकारी वन विभाग के ऑफिसर कैलघन ने जाडगंगा पर नदी की तलहटी से 400 फीट की ऊँचाई पर तार का एक झूला लगाया, जिसके केवल एक ही ओर पकड़ने के लिए एक तार लगा था। तीर्थयात्री पशुओं के समान हाथ-पैरों से खिसकते हुए आगे बढ़ते थे। प्रतापशाह ने मसूरी-श्रीनगर मार्ग की मरम्मत करवाई।[24] कीर्तिशाह के समय तक (1897- 1913) टिहरी में 10 प्रमुख घोड़े वाले मार्ग थे, जिनकी लम्बाई 263 मील थी। इन पर बैलगाड़ी आदि नहीं चल सकती थी।[25] कीर्तिशाह ने मार्गों व पगडंडियों को बेहतर बनाने और उनके रख-रखाव को नियमित करने के लिए सार्वजनिक निर्माण विभाग का पुनर्गठन किया। पुलों की मरम्मत कराई। इस काल में रियासत में 263 मील मार्ग थे।[26] नरेन्द्रशाह के काल में मार्गों को सुधारने और मोटर मार्ग बनाने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। 1921 में ऋषिकेश से नरेन्द्रनगर तक मोटर मार्ग का निर्माण और ऋषिकेश से देवप्रयाग होकर कीर्तिनगर तक पैदल मार्ग को अधिक चौड़ा करने का काम आरंभ हुआ। 1937-38 में ऋषिकेश से देवप्रयाग तक, फिर कीर्तिनगर तक मोटर मार्ग बनाया गया। 1940 में टिहरी रियासत में ऋषिकेश-नरेन्द्रनगर मोटर मार्ग 53 मील, ऋषिकेश-देवप्रयाग-कीर्तिनगर मोटर मार्ग 63 मील तथा टिहरी-मसूरी खच्चर मार्ग 40 मील था। अन्य कच्चे मार्ग 844 मील थे।[27]

उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्रों में भौगोलिक दुर्गमता के कारण परिवहन के साधनों में घोड़े, डांडी, पीठ बोझ आदि का ही प्रचलन था। मैदानी इलाकों में बैलगाड़ी और भैंस परिवहन के साधन के रूप में प्रयोग किए जाते थे। तराई में ऊँट का प्रयोग भी होता था और जिन क्षेत्रों में जंगल अधिक थे, वहाँ हाथियों को भी परिवहन के कार्य में प्रयुक्त किया जाता था। लेकिन उन्नीसवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में रेल तथा बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में मोटर वाहनों का प्रचलन प्रारंभ होने के बाद थोड़ा परिवर्तन आया। ये साधन पारंपरिक साधनों की अपेक्षा सस्ते थे और दूरी को काफी कम समय में तय कर लेते थे। लेकिन अधिकांशतः ये मैदानी इलाकों तक सीमित रहे और अल्मोड़ा-श्रीनगर से आगे मध्य और उत्तरी क्षेत्रों में परिवहन के वही पुराने साधन प्रचलित रहे।

1880 में रुहेलखण्ड-कुमाऊँ (बरेली-हल्द्वानी) रेलमार्ग प्रारंभ होने से परिवहन और यातायात व्यवस्था में काफी परिवर्तन आया। उत्तराखण्ड के भाबर-तराई इलाकों में यात्रियों के आवागमन तथा खाद्य एवं अन्य सामग्री पहुँचाने के कार्य में भी सुधार हुआ।[28] नजीबाबाद तक रेलमार्ग बनने के बाद गढ़वाल के इलाकों के लिए यातायात और खाद्य सामग्री की आपूर्ति करना अधिक सुगम हुआ। तत्कालीन रिकार्डों से ज्ञात होता है कि इसके कारण तीर्थयात्रियों का आवागमन भी पहले की अपेक्षा बढ़ा। पौ की रिपोर्ट से पता चलता है कि श्रीनगर की ओर जाने वाले मार्ग में सुधार किए जाने से आन्तरिक क्षेत्रों तक परिवहन और अनाज का आयात करने में आसानी हुई।[29]

उत्तराखण्ड के मैदानी इलाकों में रेल यातायात का पुनः विस्तार और विकास हुआ। हल्द्वानी-काठगोदाम रेल मार्ग[30] तथा नजीबाबाद रेलमार्ग[31] (1884) और कोटद्वार (1897)[32], 19 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में हरिद्वार , देहरादून (1904)[33] तथा रामनगर(1907) में रेल मार्ग का प्रारंभ हुआ।[34] हरिद्वार में अवध . रुहेलखण्ड रेलवे की शाखा लक्सर जंक्शन से आती थी।[35] कुमाऊँ क्षेत्र में रेलवे की स्थिति के बारे में राहुल ने अपने ग्रंथ 'कुमाऊँ' में लिखा है कि ''इस जिले में केवल छोटी लाइन है, जिसे पहले रुहेलखण्ड-कुमाऊँ, फिर अवध-तिरहुत और आजकल उत्तरी रेलवे कहते हैं। बरेली और लखनऊ दोनों तरफ से आने वाली लाइनें भोजीपुरा में मिलकर काठगोदाम तक जाती हैं। इसी लाइन से एक

शाखा तराई पार करती काशीपुर जाती है, जहाँ मुरादाबाद से रामनगर जाने वाली लाइन मिल जाती है। पहली रेलवे लाइन जिले में 24 अक्टूबर 1884 को खुली थी।''[36]

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद मोटर मार्गों के निर्माण की ओर विशेष ध्यान दिया गया। यहाँ के मार्ग प्रान्तीय एवं स्थानीय (सरकारी व जमींदारी) दो प्रकार के थे। रेलवे लाइन के साथ-साथ चलने वाले बरेली से किच्छा-लालकुआँ -हल्द्वानी और काठगोदाम होते हुए नैनीताल के प्रान्तीय मार्ग के अलावा छः और प्रान्तीय मार्ग थे, जिनमें अधिकतर कच्चे थे। रामनगर से रानीखेत का पर्वतीय मार्ग बहुत पहले ही बैलगाड़ियों के उपयोग के लिए बनाया गया था। इस मार्ग के कारण रामनगर पहाड़ी सामग्री के लिए सबसे बड़ी मण्डी बन गया था।[37]

राहुल ने 1931 में कुमाऊँ के प्रमुख मार्गों का विवरण इस प्रकार दिया है–[38]

प्रान्तीय मार्ग– (इनमें निम्न मोटर मार्गों का उल्लेख है) –

1- बरेली-रानीखेत 61 मील 2- बरेली-नैनीताल 10 मील 3- रानीबाग-अल्मोड़ा 37 मील 4– रामनगर-रानीखेत 29 मील 5- नैनीताल-रानीबाग 10 मील 6- काठगोदाम-अल्मोड़ा 31 मील 7- पश्चिमी मालरोड भीमताल- 1 मील 8- नैनीताल-रामगढ़ 9 मील 9- भवाली- भीमताल 3 मील 10- नथुवाखान-मुक्तेश्वर 3 मील 11- भीमताल-धारी-मुक्तेश्वर 13 मील

स्थानीय मार्ग – इनमें 23 मार्ग प्रमुख थे और इनकी लम्बाई लगभग 69 मील थी।[39] सरकारी जमींदारी मार्गों में 23 प्रमुख थे[40]

उपर्युक्त अध्ययन से यह निष्कर्ष निकलता है कि ब्रिटिश शासन की अवधि में उत्तराखण्ड में मार्गों के निर्माण तथा जीर्णोद्धार के प्रयास के साथ ही यातायात तथा परिवहन व्यवस्था में अपेक्षाकृत सुधार हुआ। सडक और रेलमार्गों के निर्माण ने यात्रियों के आवागमन तथा सामग्री की आपूर्ति को पहले की अपेक्षा अधिक सुगम बनाया। समग्र आकलन के दौरान हम यह भी देखते हैं कि परिवहन के नये साधन और तकनीक का लाभ उत्तराखण्ड के पर्वतीय क्षेत्र की अपेक्षा मैदानी क्षेत्रों-भाबर और तराई में अधिक रहा। उत्तरी और मध्यवर्ती क्षेत्रों में अभी भी मनुष्य और पशु ही परिवहन तथा भारवहन के प्रमुख साधन रहे। 1926 में अपने विवरण में पं. शालिग्राम वैष्णव लिखते हैं कि ''उत्तराखण्ड की पर्वतीय यात्रा इतनी सुगम नहीं है.....पहाड़ों में सड़कें कहीं ऊपर और कहीं नीचे जाती हैं, इस कारण गाड़ी वहाँ नहीं चल सकती। या तो पैदल ही चलना पड़ता है या घोड़े, टट्टू अथवा झंपान, डांडी और कंडी की सवारी में जाना पड़ता है।''[41] औपनिवेशिक कालीन उत्तराखण्ड में हुए विभिन्न प्रतिरोध आन्दोलनों का अध्ययन करने पर हम यह भी पाते हैं कि उस अवधि में आम जन-मानस में मुख्य धारा से जुड़ने के लिए यातायात मार्गों के महत्व के बारे में जागरूकता थी। इसीलिए नये सम्पर्क मार्गों का निर्माण, मार्गों की खराब दशा और उनके पुनर्निर्माण तथा जीर्णोद्धार के लिए भी लगातार आवाजें उठ रही थीं। 1937 में ही गाड़ी सड़क आन्दोलन हुआ, जिसमें दक्षिणी गढ़वाल की जनता लैंसडाउन को पौड़ी से जोड़ना चाहती थी और ऊपरी गढ़वाल की जनता कर्णप्रयाग को गरुड़ से। जनता के दबाव में दोनों मार्गों को स्वीकृति मिली।[42] इस कार्य में तत्कालीन समाचार पत्र गढ़वाली की भूमिका अत्यंत सक्रिय रही, जो शुरू से ही ब्रिटिश व टिहरी दोनों सरकारों का ध्यान सड़कों की कमी और दुर्दशा की ओर आकर्षित कर रहा था। गाड़ी सड़क के प्रश्न पर विविध लेखों, सम्पादकीय लिखने से लेकर जवाहरलाल नेहरू को इसके संपादक विश्वंभरदत्त चन्दोला द्वारा पत्र लिखे गए। आगे असहयोग के परिप्रेक्ष्य में लिखा गया – ' गढ़वाल की गाड़ी सड़क का सवाल सन 1883 से चल रहा है, किन्तु अब तक (1938) 55 वर्षों के बीत जाने पर भी हमारी सरकार ने इधर ध्यान नहीं दिया.....खुशामद हो चुकी, हाथ जोड़ाई हो चुकी, वैधानिक उपाय पूरे हो चुके और अब यदि कोई उपाय शेष है तो वह वही असहयोग है, जिसे गाँधी जी ने कार्यरूप में लाकर दिखा दिया है।'[43]

आजादी के बाद नये मार्गों और यातायात के साधनों की उपलब्धता में उल्लेखनीय बदलाव आए और पहले की अपेक्षा पिछड़ी तथा दुर्गम भौगोलिक स्थितियों के बावजूद मार्गों का निर्माण नई तकनीक से ज्यादा बेहतर हुआ। इस विकास ने पर्वतीय क्षेत्रों की पहुँच देश के शेष भागों– तीर्थ

स्थलों, व्यापारिक केन्द्रों, पर्यटन तथा रोजगार के नए केन्द्रों तक सुगम बनाई। जलवायु परिवर्तन जैसे उभरते हुए और ज्वलन्त सवालों को देखते हुए वर्तमान में मैदानी इलाकों की तुलना में पर्वतीय क्षेत्रों के भौगोलिक और पारिस्थितिकीय तंत्र की संवेदनशीलता के आधार पर मार्गों के दीर्घकालिक विकास तथा पुनर्निर्माण के लिए एक वैज्ञानिक तथा वैकल्पिक मॉडल को अपनाया जाना भी अपरिहार्य है।

---

[1] 1962 के चीनी आक्रमण के उपरान्त भारत-तिब्बत के बीच पूर्व से चली आ रही व्यापारिक गतिविधियों में व्यवधान पहुँचा। राजनैतिक स्तर पर इस बदलाव के कारण उत्तराखण्ड से तिब्बत जाने वाले मार्गों का प्रयोग भी पूर्व की भांति नहीं रहा। इससे तिब्बत के व्यापार पर निर्भर सीमान्त क्षेत्रों के निवासियों की आजीविका पर भी प्रभाव पड़ा।
यात्रामार्गों के अध्ययन के लिए सर्वे ऑफ इण्डिया स्केलेटन शीट, 1871 तथा पहाड़,(पीपुल्स एसोसिएशन फॉर हिमालय एरिया रिसर्च) नैनीताल द्वारा 2004 में प्रकाशित मानचित्र महत्वपूर्ण स्रोत हैं.

[2] डबराल, शिवप्रसाद, टिहरी गढ़वाल राज्य का इतिहास, भाग 1, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा गढ़वाल, (1964, 1998), देखें मुखपृष्ठ में मानचित्र– उत्तराखण्ड –केदारखण्ड तथा मानसखण्ड

[3] वैष्णव, शालिग्राम, श्री उत्तराखण्ड रहस्य (1926) द्वितीय संस्करण, पहाड़,नैनीताल 2010, पृ. 40, 41, 148

[4] वही पृ. 199, 200, 201

[5] वही पृ. 218 ,219

[6] सर्वे ऑफ इण्डिया स्केलेटन शीट 1871

[7] मूरक्राफ्ट, ए जर्नी टु लेक मानसरोवर, 1816, पुनर्मुद्रित संस्करण 1937, ज्ञान पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, पृ. 8,13, 39,105,110.....

[8] पिलग्रिम (पी. बैरन), वांडरिंग्स इन द हिम्माला, आगरा, 1844, पुनर्मुद्रित 1990, ज्ञानोदय प्रकाशन, नैनीताल, पृ.161,

[9] रेपर,एफ.वी., ए सर्वे फॉर द पर्पज ऑफ डिस्कवरिंग द सोर्सेज ऑफ द गंगेज, एशियाटिक रिसर्चेज , खण्ड 11, कॉस्मो पब्लिकेशन्स, दिल्ली 1979, पृ. 475

[10] पिलग्रिम, वही पृ. 162

[11] पातीराम, गढ़वाल एंश्येंट एंड मॉडर्न, शिमला, 1917, पृ. 235

[12] बेकेट, जे.ओ.बी. , रिपोर्ट ऑन द रिवीजन ऑफ कुमाऊँ डिस्ट्रिक्ट , भाग 1, गवर्नमेंट प्रेस इलाहाबाद 1886, पैरा 45

[13] एटकिंसन, ई.टी. , गजेटियर ऑफ द नॉर्थ वेस्ट प्रोविंसेज– हिमालयन डिस्ट्रिक्ट्स, खण्ड 3, भाग 2, पृ. 414-417

[14] पौ, ई. के. , रिपोर्ट ऑन द सैटिलमेंट ऑफ द डिस्ट्रिक्ट ऑफ गढ़वाल, 1863, पैरा 32

[15] डबराल, शिवप्रसाद, उत्तराखण्ड का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 8, गढ़वाल पर ब्रिटिश शासन (1815-1947) खण्ड 2, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, 1977, पृ. 73

[16] डबराल, वही पृ. 73-74

[17] पौ, वही, पैरा 75 (भौगोलिक स्थिति के कारण ब्रिटिश गढ़वाल के लिए कुमाऊँ की भाँति प्रथम श्रेणी की सड़कों का उल्लेख ब्रिटिश अभिलेखों में नहीं मिलता)

[18] डबराल, वही, पृ. 7)

[19] डबराल, शिवप्रसाद, वही, पृ.74

[20] पौ, वही, पैरा 75

[21] डबराल, वही, पृ. 75

[22] वैष्णव, शालिग्राम, वही, पृ. 39

[23] वॉल्टन, एच. जी. , देहरादून गजेटियर, इलाहाबाद 1911, पृ. 78 से 83

[24] डबराल, शिवप्रसाद, टिहरी गढ़वाल राज्य का इतिहास, भाग 2, वीरगाथा प्रकाशन, दोगड्डा, गढ़वाल, (1974) 1998, पृ. 159

[25] वॉल्टन,एच.जी. , गजेटियर ऑफ गढ़वाल, इलाहाबाद, 1921, पृ. 212

[26] पाठक शेखर, उत्तराखण्ड में कुली बेगार प्रथा, राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली 1987, पृ. 254

[27] डबराल, शिवप्रसाद, टिहरी गढ़वाल राज्य का इतिहास, वही, पृ. 160

[28] एटकिंसन, वही, खण्ड 3, भाग 2, पृ. 414

[29] पौ, वही, पैरा 75

[30] नेविल,एच. आर. , नैनीताल गजेटियर, इलाहाबाद 1922, पृ. 86

[31] पौ, वही, पैरा 75

[32] वॉल्टन, गजेटियर ऑफ गढ़वाल, वही, पृ. 48

[33] सांकृत्यायन, राहुल, जौनसार-देहरादून, इलाहाबाद 1961, पृ. 158

[34] सांकृत्यायन, राहुल, 'कुमाऊँ' बनारस 1959, पृ. 191

[35] वैष्णव, शालिग्राम, वही, पृ. 19

[36] सांकृत्यायन, राहुल, 'कुमाऊँ', वही, पृ. 264

[37] वही, पृ. 264

[38] वही, पृ. 264

[39] वही, पृ. 265

[40] वही, 265-66

[41] वैष्णव, शालिग्राम, वही, पृ. 34 (झंपान और डांडी को चार कुली कन्धों पर और कंडी को एक कुली पीठ पर ले जाता था)

[42] देखें पाठक,शेखर, सरफरोशी की तमन्ना – उत्तराखण्ड में स्वाधीनता संग्राम का दृश्य इतिहास, नैनीताल 1998, पृ.101

[43] गढ़वाली, 1 नवंबर 1938 – देखें शर्मा, भुवन , गढ़वाली पत्र के सौ वर्ष, पहाड़ नैनीताल, भाग 18, 2012-13, पृ. 117

***

वैदिक काल में नारी शिक्षा पर प्रकाश का ऐतिहासिक विहंगावलोकन

डॉ. राम निहोर *

अगर देखा जाय तो प्रागैतिहासिक काल से ही महिलाओं को अपनी विद्वता का प्रमाण देना पड़ा है और महिलाओं ने अपनी प्रबल मेघाशक्ति का परिचय विभिन्न शैक्षणिक सूत्रों की रचना से दिया जिसे महिलाओं ने शिक्षा द्वारा अपने चरित्र और नैतिकता को परिष्कृत कर प्राप्त किया था। वर्तमान समय की बौद्धिक महिलाओं के समान वैदिक युग की नरियाँ भी शैक्षणिक जगत में प्रखर थीं। वे विभिन्न विषयों पर शास्त्रार्थ करने की सामर्थ्य रखती थीं। इन महिलाओं को शिक्षा एवं योग्यता के आधार पर ब्रह्मवादिनी कहा जाता था।प्राचीन भारत में शिक्षा गुरुकुल प्रणाली पर आधारित थी, अर्थात् शिक्षा जगत से जुड़ी महिलायें अपने अस्तित्व का प्रबंधन करना स्वयं जानती थीं। शिक्षक पद पर जिन महिलाओं को नियुक्त किया जाता था। उनकी छवि समाज में अपेक्षाकृत अधिक सम्मानजनक थी। वे समस्त महिला शिक्षकायें अपने–अपने लौकिक एवं अलौकिक ज्ञान के माध्यम से समाज को नई दिशा प्रदान की। वास्तव में शिक्षक को समाज की धुरी कहा जाता है, यदि शिक्षक स्वयं ज्ञानशील, विवेकशील एवं नैतिक मूल्यों से पूर्ण होगा तभी उसके द्वारा दी जाने वाली शिक्षा में भी इन समस्त गुणों का समावेश होगा और आने वाली नई पीढ़ी को सही दिशा व दशा का प्राप्त होगा।

वैदिक समाज में पुत्रों के समान ही पुत्रियों की भी शिक्षा–दीक्षा की पूरी देख–रेख की जाती थी। शिक्षा प्राप्ति के लिए गुरुकुल जाना पड़ता था, ब्रह्मचर्य का पालन करना पड़ता था। कन्या ब्रह्मचर्य का पालन करती थी, आश्रम में शिक्षा प्राप्त करती थी, सह–शिक्षा का प्रचलन था। प्राचीन भारत में शिक्षा से तात्पर्य वैदिक शिक्षा से था। कन्याएं भी बालकों की भांति यज्ञ करती थीं। यज्ञ करने एवं वैदिक प्रार्थनाओं को करने का अधिकार केवल उसी व्यक्ति को प्राप्त था जिसका उपनयन संस्कार किया गया हो। यजुर्वेद के अनुसार बालिकाओं का भी उपनयन संस्कार किया जाता था। कन्याएँ विस्तृत ज्ञान राशि प्राप्त कर सकती थीं। वे बुद्धि एवं शिक्षा में अग्रणी थीं। वशिष्ट सूत्र के अनुसार उपाध्याय की तुलना में आचार्य दस गुना प्रतिष्ठित हैं, आचार्य से सौ गुना प्रतिष्ठित पिता हैं और पिता से सहस्त्र गुना प्रतिष्ठित पद माता का है, माता के पद की यह प्रतिष्ठा प्राचीन भारत में स्त्रियों की उच्च स्थिति का स्पष्ट प्रमाण है। इस काल में गार्गी, मैत्रयी आदि के नाम अविस्मरणीय हैं। ये वाद–विवाद तर्क शास्त्र में पारंगत थीं। रोमशा, उर्वशी, घोषा, विश्ववारा, लोपामुद्रा आदि परम् विदुषी स्त्रियां हुईं, उन्होंने वैदिक ऋचाओं की रचना की। कन्याएँ उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं,

वैदिक युग में स्त्रियाँ यज्ञोपवीत धारण कर वेदाध्ययन प्रातः काल एवं सायं होम आदि कर्म किया करती थी । "शतपथ ब्राह्मण" में व्रतोपनयन का उल्लेख मिलता है । हरित संहिता के अनुसार वैदिक काल में शिक्षा ग्रहण करनेवाली दो प्रकार की कन्याएँ होती थी –ब्रह्मवादिनी एवं सद्योदबाह । ब्रह्मावादिनी जीवन भर ब्रह्मचर्य व्रत का पालन कर अविवाहिता रहतीं थीं और धर्मशास्त्रों के अध्ययन में ही अपना अधिकतर समय व्यतीत करती थीं और सद्योदबाह 15 या 16 वर्ष की उम्र तक, जब तक उनका विवाह नहीं हो जाता था, तब तक अध्ययन करती थी । इन्हें प्रार्थना एवं यज्ञों के लिए आवश्यक महत्वपूर्ण वैदिक मंत्र पढ़ाए जाते थे तथा संगीत एवं नृत्य की भी शिक्षा दी जाती थी । ऐसे कन्याओं के लिए अलग से पाठशाला का निर्माण नहीं हुआ था, उन्हें अगर शिक्षा ग्रहण करनी है तो वे पुरुषों के साथ शिक्षा ग्रहण कर सकती थी।

वैदिक काल में शिक्षक के पद पर चाहे पुरूष हो या स्त्री उनका सम्मान सदा ही समाज के द्वारा व शिष्यों के द्वारा होता रहा है अर्थात् गुरु–शिष्य सम्बन्ध पिता–पुत्र, माता–पुत्री की तरह हमेशा रहा है। गुरु की आज्ञा का पालन, अनुशासन में रहकर मर्यादा एवं विवेक की सीमा रेखा को समझना व उस पर कायम रहना यही भारतीय शिक्षा का आदर्श रहा है और इस पथ पर दृढ़ रहने वाला ही

* एसोसिएट प्रोफेसर, प्राचीन इतिहास विभाग, राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, चुनार, मीरजापुर

गुरु द्वारा दिये गये ज्ञान को पूर्णतः अधीत कर पाता है। ऐसे ही आदर्श को स्थापित करती हुई वैदिक ऋचा कहती है कि 'जो स्त्री पढ़ाने वाली हो, विदुषी हो, कुमारी हो, तीक्ष्ण बुद्धि वाली हो तो उसकी आज्ञा कन्याओं (पढ़ने वाली लड़कियाँ) को मानना चाहिए तथा उनके अनुकूल व्यवहार करना चाहिए। इसी में आगे ऋषि गृहकार्य के प्रति भी सावचेत करते हुए ऋषि कहाता है कि घर की क्रियाओं में तथा पाक विद्या में जो पंडिताइने (कुशल नारी) है उनसे भी बालिकाओं को शिक्षा प्रदत्त करानी चाहिये।'

'वैदिक कालीन समाज में पुत्र और पुत्री दोनों को द्विजत्व प्रदान किया जाता था अर्थात् यज्ञोपवीतउपनयन संस्कार पश्चात् गुरुकुल में अध्ययनार्थ भेजा जाता था। अध्यापक व अध्यापिका जिनके पास विद्या व तेज है उनसे माता–पिता यह निवेदन करते थे कि हमारी सन्तान को ऐसा बना दें कि उनके द्वारा प्राप्त विद्या से वह अपनी व अपने समाज की रक्षा कर प्रेरणा दे सकें। स्त्री–पुरूषों से यह अपेक्षा की जाती थी कि वे अच्छे पुत्र व पुत्रियाँ दें।''

वैदिककाल में राजतन्त्र प्रणाली थी और राजा राज्य का सर्वप्रमुख होता था। उसी के अधीन राज्य के सम्पूर्ण कार्य व व्यवहार सम्पादित होते थे। उसकी आज्ञा सर्वोपरि होती थी। यद्यपि यह बात सत्य है कि वह समिति व सभा के निर्णयों पर विचार करता था। ब्राह्मण या ऋषि उनके मंत्री, गुरु होते थे। अतः परोक्ष रूप से ब्राह्मण या ऋषि की आज्ञा का पालन सामान्यतः किया जाता था। राजा के कर्तव्यों की ओर ध्यान दिलाते हुए ऋषि कहता है कि ''राज्य की स्त्रियों को विद्वान बनाने हेतु परिवार के अलावा राजाओं का भी कर्तव्य है। राजा को चाहिये कि इन बालिकाओं को ऐसी धाइयों को सौंपे जो विद्या सम्पन्न हो। जिससे कोई अशिक्षित न रहे।'' यदि मनुष्य को सुख प्राप्त करना है और दुःख से निवृत्त होना है तो जीवन में विदुषी माता, विद्वान गुरु तथा पदार्थ विज्ञान का ज्ञान आवश्यक है।

समाज में प्रायः लोग किये गये उपकार को भूल जाते है। वैदिक साहित्य में इसको ऋण कहा गया है। इसी का स्मरण कराते हुए कन्या को कहा गया है कि तुझमें जो शिक्षा की चेतना जगी है यह तुझे शिक्षा देने वाली विदुषी महिला के कारण जगी है। उसका साथ कभी मत छोड़ना। शिक्षिका के कर्तव्यों का स्मरण कराते हुए ऋषि कहता है कि उसे अपने विद्यार्थियों को धर्मयुक्त शिक्षा देनी चाहिए। जिससे विद्यार्थी दुर्व्यसनों की ओर न जाएं और चिन्तारहित होकर आनन्दपूर्ण जीवन बिता सके। ऐसी शिक्षा प्रदान करनी है।

शिक्षा, अशिक्षा एवं कुशिक्षा प्रायः समाज में 3 प्रकार की यही शिक्षापायी जाती है। शिक्षा का तात्पर्य व्यक्ति समाज एवं राष्ट्र को एकता अखण्डता, स्नेह, प्यार, न्याय के साथ वैश्विक स्तर बन्धुत्व की भावना का विकास करते हुए ज्ञान प्राप्त करे तथा वैज्ञानिक ज्ञान का सदुपयोग करे। शिक्षा, प्रायः राष्ट्रभाषा का सम्मान करते हुए सम्यक ढंग से लिखना, पढ़ना, बोलना और सुनना भी सिखाती है। इसलिए वैदिक शिक्षा में वाणी का अत्यधिक महत्व दिया गया है। पढ़ने वालों अर्थात् शिक्षित व्यक्ति की वाणी उनके गुणों को प्रकाशित करने वाली है। अतः वह सत शुद्ध और प्रशंसनीय एवं मीठी होनी चाहिए। ऋग्वैदिक ऋषि यह कामना करते थे कि हमें ऐसी स्त्रियां प्राप्त हो जो माता के सदृश पालन करें। सौभाग्य से युक्त हो तथा सदुपदेश देने वाली हो। जिस प्रकार नदियां खेतों को सींचती है वैसे ही स्त्रियां जीवन को सिंचित करें। जैसे गाय बछड़े को पोषित करती है वैसे ही माता रूप में हमें विद्या और शिक्षा से पोषित करे।

कन्या अपने गुरु से निवेदन करती है कि हे आचार्य मैं ब्रह्मचारिणी हूं। मैं आपकी वन्दना करती हूं। जिस प्रकार माता–पिता पुत्र शिक्षा देते है आप मुझे वैसी ही शिक्षा दें, मैं ज्ञान शून्य हूं अतः आप शिक्षा देकर मेरा कल्याण करें। इससे शिष्य का गुरु के प्रति नम्रता एवं आदर भाव तथा श्रृद्धाभाव प्रकट होता है। अतः गीता का यह श्लोक – श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्।' पूर्णतः सार्थक प्रतीत होता है।
अतः उक्त तथ्यों से निम्न निष्कर्ष निकलते है –

1. वैदिककाल में शिक्षा में शिक्षा के क्षेत्र में बालक–बालिका को समान महत्व दिया जाता था।
2. विदुषी एवं शिक्षित स्त्रियाँ समाज में शिक्षिका की भूमिका अदा करती थी।
3. समाज में यह नहीं देखा जाता था कि कोई विवाहित है या अविवाहित। आदर सम्मान केवल शिक्षा का था।

4. विदुषी स्त्रियां केवल परिवार के सदस्यों को ही नहीं बल्कि समाज के समस्त बालक–बालिकाओं को शिक्षित करती थी।
5. नारी शिक्षा का इतना महत्व था कि शिक्षित नारी अपने पति को भी शिक्षित करती थी।

वैदिककालीन विदुषी स्त्रियाँ

ऋग्वेद का चारों वेदों में सर्वाधिक महत्व है। ऋग्वेद के अधिकांश मन्त्र अन्य तीनों वेदों (यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद) में उसी रूप में या आंशिक परिवर्तन के साथ समभावी या समानार्थी रूप में मिलते हैं। ऋग्वेद के अध्ययन से मालूम पड़ता है कि स्त्रियां वेदाध्ययन करती थी। कवितायें बनाती थी एवं मन्त्रों का आविष्कार एवं रचना भी करती थी, कुछ विदुषी नारियाँ निम्न है –

विदुषी घोषा – ज्ञान प्राप्ति हेतु स्वयं का अज्ञानी समझना ही सफलता का मंत्र है। अगर कोई अल्पज्ञ या अज्ञ अपने बहुज्ञ या सर्वज्ञ समझे लगे तो वह कमी भी ज्ञान प्राप्त नहीं कर पाता। इसी विचारधारा एवं श्रेष्ठता को अपने हृदय में उतारकर वैदिककालीन विदुषी घोषा ने ऋग्वेद के 10 मण्डल के 39 से 40 वें सूक्त की सृष्टि की और अपने को अनाथ असहाय और अज्ञानी समझते हुए गुरु से ज्ञान की भिक्षा मांगती है। हे गुरुवर (अश्विनद्वय) जैसे पिता पुत्र को शिक्षा देता है वैसे ही मुझे भी शिक्षा दो। मेरा कोई यथार्थ बन्धु नहीं है। मैं ज्ञानशून्य हूं। मेरा कुटुम्ब नहीं हैं, बुद्धि भी नही है। मैं जीवन में किसी भी संकव से घिरूं उससे पूर्व ही उसे दूर करो। तत्कालीन समाज नारी शिक्षा प्रचलित थी। स्त्रियाँ रथ भी बनाती थी। यज्ञकार्य में भी नियुक्त होती थी और पुत्र–पौत्रों को समाज में प्रतिष्ठित भी करती थी।

विदुषी लोपामुद्रा – महर्षि अगस्त्य की पत्नी लोपामुद्रा द्वारा एक सूक्त सृजित किया गया था। इससे कामशास्त्र के विषय अल्पन्त उच्च कोटि की बाते भी है।

विदुषी अपाला – महर्षि अत्रि की पुत्री अपाला ने देवराज इन्द्र की स्तुति की है और एक सम्पूर्ण सूक्त की रचना की।

विदुषी लोमशा – विदुषी लोमशा इन्द्र की स्तुति में 2 मंत्रों की रचना की है।

विदुषी विश्वावारा – अग्नि की स्तुति अत्यन्त ही रोचक एवं विनम्रता के साथ किया है। यह स्तुति ऋग्वेद के पंचम मण्डल के 28 वे सूक्त में है।

ऋषिका सूर्या – ऋषिका सूर्या ने दशम मण्डल के 85 वें सूक्त की रचना करके अनेक वैज्ञानिक तथ्यों को स्पष्ट किया है। रथ के निर्माण मे पलाश और शाल्मली के वृक्षों की उपयोगिता की श्रेष्ठता 18 नारी को पति के वश में रहकर घर के नौकर पर सेवकों पर शासन या उचित आदेश निर्देश देना। स्त्री वृद्धावस्था तक पतिगृह का स्वामित्व करने वाली आदि बातों का उल्लेख है।

देवी इन्द्राणी – देवी इन्द्राणी ने ऋग्वेद 10वें मण्डल के 86 वें सूक्त के अनेक मंत्रो की अधिष्ठात्री है। जैसे – 2, 4, 7, 9, 10, 15, 18, 22, 23।

ब्रह्मवादिनी जूहू– ब्रह्मवादिनी जूहू ने तपस्या और सच्चरित्रता को सर्वश्रेष्ठ बताया है। इससे निकृष्ट पदार्थ भी उत्तम एवं श्रेष्ठ स्थान पर स्थापित हो सकता है। इन्होनें ऋग्वेद के 10वें मण्डल के 109वें सूक्त की रचना की है।

इसी प्रकार विवस्वान की पुत्री यमी द्वारा 10–154वें सूक्त कामगोत्रीय विदुषी श्रद्धा द्वारा 10–151वें सूक्त, सर्वराज्ञी 10–189वें सूक्त ऋषि दीर्घतमा की माता विदुषी ममता द्वारा 10–15वें सूक्त के 2, 5, 7, 9, 11, 13, 15, 16वें मंत्रों की दृष्टा, ऋषिका वाग्देवी ने 10वें मण्डल 125वां सूक्त सृजित किया गया है।

उपरोक्तः स्पष्ट यह है कि वैदिककालीन स्त्रियों के द्वारा मंत्रों की रचना करना केवल शिक्षित होने का ही प्रमाण नहीं देता बल्कि शिक्षा और विद्या के क्षेत्र में उच्च कोटि का वैदुष्य या विदुषी होने के भी प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। ऋषि कन्यायें आश्रम में स्वतः ही पिता के पास शिक्षित होकर नारियों को शिक्षित करती थी और नारियां समाज में परिवार में प्रतिस्थापित होकर आवश्यकतानुसार परिवार को, समाज में लड़कियों को व नारियों को शिक्षित करती थी।

संदर्भ :

1. नूनं सते प्रतिवरं.....विदये सुवीरा।। ऋग्वेद् 2–17–26
2. अम्बितमें नदीतमें.....नस्कृधि।। ऋग्वेद 2–41–16
3. त्वे विश्वा सरस्वती.....दिदिडिढ नः।। ऋग्वेद 2–41–17
4. अग्ने.....सामपीतये।। यजुर्वेद 19–12
5. नार्य्यस्ते.....शम्यन्तुत्वा।। यजुर्वेद 23–36
6. हिरण्य हस्तमश्विना.....ऐरयतं सुदान।। यजुर्वेद 1–118–24
7. सधमादो द्युम्निनोराप.....तमास्वन्तः।। यजुर्वेद 10–7
8. अविर्मथ्याऽअविचोऽअग्निर्ग.....विश्वशम्भुवावावित्तादितिरूरूशर्म्म।।यजु. 10–9
9. चिदीप ..... ध्रुवासिदम्।। यजुर्वेद 12–53
10. लोके प्रण ..... सीदसम्।। यजुर्वेद 12–54
11. अच्छा सिन्धु ..... मनुसंचरन्ती।। ऋग्वेद 3–33–3
12. ऋग्वेद 10–39–7, 10–40–10 वैदिक साहित्य, पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, भारतीय ज्ञानपीठ काशी–1950
13. ऋग्वेद 1–126, 6–7 वां मंत्र
14. वैदिक साहित्य, पं. रामगोविन्द त्रिवेदी, वाराणसी 1950 पृ. 74
15. वैदिक साहित्य, पं. रामगोविन्द त्रिवेदी,
16. .शर्मा व्यास, ''भारत का इतिहास'' प्रारम्भ से 1200 ईस्वी तक, पृष्ठ 131
17. डॉ. लता सिंहल, ''भारतीय संस्कृति में नारी'', पृष्ठ 132–133
18. अथर्वेद 1.5.18, डॉ. जयशंकर मिश्र, ''प्राचीन भारत का सामाजिक इतिहास'', पृष्ठ 344
19. सत्यकेतु विद्यालंकार, ''प्राचीन भारत का सामाजिक एवं आर्थिक जीवन'', पृष्ठ 213

***